पुस्तक सं. 8

भारतीय संविधान सभा

के

विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

खण्ड X - 06-10-1949 से 17-10-1949

खण्ड XI - 14-11-1949 से 26-11-1949

खण्ड XII - 24-01-1950

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

जैनको आर्ट इण्डिया, 13/10, डब्ल्यूईए, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष :

माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष :

डा. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार :

सर बी.एन. राव, *सी.आई.ई.*

सचिव :

श्री एच.वी.आर. आयंगर

सी.आई.ई., आई.सी.एस.

संयुक्त सचिव :

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव :

श्री जुगल किशोर खन्ना

मार्शल :

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 3. X.1.49
320

अंक 10
संख्या 1

बृहस्पतिवार
6 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
सभा का स्थगन	2665
सभा की बैठक का समय	2665-2666

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 6 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हाल नई दिल्ली, में प्रातः 11 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

सभा का स्थगन

***अध्यक्षः** माननीय सदस्यों को ज्ञात है कि उन्होंने साथ वाले कक्ष में अपनी अन्य हैसियत से एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया है और मुझे सुझाव दिया गया है कि आज सभा स्थगित की जाए ताकि उस प्रश्न पर चर्चा हो सके और आज सायंकाल तक उसे पूरा कर लिया जाए। मैंने कहा है कि यदि सभा के सदस्यों को इस पर आपत्ति न हो तो मुझे भी व्यक्तिगत रूप से इस पर कोई आपत्ति नहीं होगी। अतः मैं जानना चाहूंगा कि क्या माननीय सदस्यों को इस पर कोई आपत्ति है?

***माननीय सदस्यः** हमें कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्षः** तब सभा स्थगित कर दी जायेगी। अब अगला प्रश्न यह है कि हम कितने बजे मिलें?

सभा की बैठक का समय

***कुछ माननीय सदस्यः** 10 बजे।

***अन्य माननीय सदस्यः** 9 बजे।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): हम नौ बजे से 1 बजे तक बैठें।

***अध्यक्षः** मैं नहीं कह सकता कि अधिकांश सदस्यों का क्या मत है, परन्तु यह मैं अवश्य देख रहा हूं कि इस विषय में मतभेद है।

***श्री एम. थिरुमल रावः** (मद्रासः जनरल): सभा से परामर्श किए बिना आज बैठक 11 बजे बुलाई गई थी। कल के लिए भी यही समय रहने दीजिए।

***अध्यक्षः** नियमों में उपबन्ध है कि साधारणतया सभा 11 बजे प्रारम्भ होगी। मैंने नियमों के अनुसार ही सभा 11 बजे बुलाई है।

***श्री एम. थिरुमल रावः** तो फिर अब सभा से परामर्श क्यों किया जा रहा है?

***अध्यक्षः** मैं स्थगन के विषय में सभा से परामर्श कर रहा हूं। अब सभा स्थगित होती है। कल से कोई भी समय निर्धारित किया जा सकता है। परन्तु मुझे सदस्यों से परामर्श करने में प्रसन्नता होगी कि उनके लिए कौन-सा समय सुविधाजनक है।

---

* इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रांत व बरार: जनरल): मेरा सुझाव है कि सभा 9.30 बजे से 1.30 बजे तक बैठे।

***अध्यक्ष:** यह 9 और 10 बजे के बीच का समझौता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (असम: जनरल): 9 बजे, 12.30 बजे, या 1 बजे म.प. का समय निश्चित कर लें क्योंकि 1.30 बजे बहुत भूख लग जाती है।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): मेरा सुझाव है कि यदि आप चार घण्टे का समय रखना चाहते हैं तो आप 10 बजे से 1 बजे तक या 9 बजे से 1 बजे तक का समय निश्चित कर लें, परन्तु 9.30 बजे से 1.30 बजे तक समय निश्चित न करें।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** (मद्रास: जनरल): 10 बजे का समय ठीक होगा। मेरा समझौते के तौर पर 10 बजे का सुझाव है। हम मद्रास में रहने वाले प्राय: 10 बजे तक भोजन कर लेते हैं, हम दोपहर का भोजन आदि नहीं लेते हैं। अत: 10 बजे का समय रखना अधिक उचित रहेगा, क्योंकि 11 बजे बहुत देर हो जाएगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): महोदय, मैं समझता हूं कि 10 बजे से 1 बजे तक का समय ठीक रहेगा।

***अध्यक्ष:** यह इस पर निर्भर करता है कि हमें कितना कार्य निबटाना है।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई: जनरल): हो सकता है कि कभी-कभी हमें दिन में दो बार बैठक करनी पड़े।

***अध्यक्ष:** मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं है। जितना काम हमें निबटाना होगा उसी के अनुसार हम समय निश्चित कर लेंगे।

***श्री विश्वनाथ दास:** (उड़ीसा: जनरल): 9 बजे से 1 बजे तक का समय हमें स्वीकार्य नहीं है। मेरा सुझाव है 3 बजे से 7 बजे तक का समय रखा जाए।

***श्री आर.के. सिधवा:** हमें बाद में दिन में दो बार बैठक रखनी होगी।

***अनेक माननीय सदस्य:** 9 बजे से 1 बजे तक का समय रख लें।

***अध्यक्ष:** यदि सदस्य बुरा न मानें तो मैं एक सुझाव दूं। मेरा सुझाव है कि आरम्भ में हम कल से 10 बजे कार्यवाही आरम्भ करें और फिर देखें कि हम कितना कार्य निबटाते हैं। यदि हम देखते हैं कि प्रतिदिन तीन घण्टे बैठकर हम कार्य निबटा सके हैं तो हम 10 बजे से 1 बजे तक का समय रखेंगे। यदि हम देखते हैं कि हमारी प्रगति सन्तोषजनक नहीं है तब हम समय में परिवर्तन करने पर विचार करेंगे। यदि आप इस सुझाव पर सहमत हों तो हम कल 10 बजे कार्यवाही करेंगे।

***अनेक माननीय सदस्य:** हम सहमत हैं।

***अध्यक्ष:** सभा कल 10 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार, 7 अक्तूबर, 1949 के 10 बजे म.पू. तक के लिए स्थगित हुई।

———————

Con. 3. X.2.49
320

अंक 10
संख्या 2

शुक्रवार
7 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर	2667
संविधान का प्रारूप-(जारी)	
[अनुच्छेद 306, 309, नये अनुच्छेद 310-क, 310-ख, 311-क, 311-ख, अनुच्छेद 312, नये अनुच्छेद 312-क से 312-ङ, 312-छ, 312-ज और अनुच्छेद 313 पर विचार]	2667-2712

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 7 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हाल नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने शपथ ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किए:

श्री सामलदास लक्ष्मीदास गांधी (जूनागढ़)

संविधान का प्रारूप — (जारी)

अनुच्छेद 306

***अध्यक्ष:** अब हम अस्थायी उपबंधों संबंधी अनुच्छेदों पर विचार करेंगे। अनुच्छेद 306।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): महोदय मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 306 के खण्ड (क), खण्ड (ख) और खण्ड (ग) स्थान पर ये खण्ड रखे जाएं:

(a) trade and commerce within a State in, and the production, supply and distribution of, cotton and woollen textiles, raw cotton (including ginned cotton and unginned cotton or kapas) cotton seed, paper (including newsprint), foodstuffs (including edible oilseeds and oil), coal (including coke and derivatives of coal), iron, steel and mica.

(b) offences against laws with respect to any of the matters mentioned in clause (a) jurisdiction and powers of all courts except the Supreme Court with respect to any of those matters, and fees in respect of any of those matters but not including fees taken in any court.'

['(क) सूती और ऊनी वस्त्रों, कच्ची रूई (जिसके अंतर्गत धुनी हुई रूई और बिना धुनी रूई या कपास है), बिनौले, कागज (जिसके अंतर्गत समाचारपत्र का कागज है), खाद्य पदार्थ (जिसके अन्तर्गत खाद्य तिलहन और तेल है), कोयले (जिसके अंतर्गत कोक और पत्थर-कोयला-जन्य पदार्थ हैं), लोहे, इस्पात और अभ्रक का किसी राज्य के अन्दर व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, सम्भरण और वितरण;

---

* इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(ख) खण्ड (क) में वर्णित विषयों में से किसी से सम्बद्ध विधियों के विरुद्ध अपराध, उच्चतम न्यायालय से भिन्न सब न्यायालयों का उन विषयों में से किसी के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियां, तथा उन विषयों में से किसी के संबंध में किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीसों से अन्य फीसें।' "]

इस संशोधन द्वारा मूल अनुच्छेद में जो परिवर्तन किए जा रहे हैं वे इस प्रकार हैं: उप-खण्ड (क) से अब पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पादों का तथा यंत्र-चालित वाहनों को निकाल देने का प्रस्ताव है। पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पादों का उप-खण्ड (क) से लोप इस कारण किया जा रहा है कि अब वह मद सातवीं अनुसूची की सूची 1 में सम्मिलित कर दी गई है। यंत्र-चालित वाहनों का लोप इस कारण किया गया है कि उन पर इस समय नियंत्रण नहीं है और उन्हें समवर्ती सूची में रखा गया है। यदि केन्द्र चाहे तो वह विधान बना सकता है। मूल अनुच्छेद का उप-खण्ड (ख)—विस्थापित व्यक्तियों को राहत तथा उनका पुनर्वास—अब आवश्यक नहीं है चूंकि उसे भी समवर्ती सूची में रख दिया गया है। उप-खण्ड (ग) के संबंध में, जांच पड़ताल और सांख्यिकीय को भी समवर्ती सूची में रखा गया है और इसलिए इसका भी लोप किया जा रहा है। यह केवल पारिणामिक संशोधन है। मूल अनुच्छेद 306 में इस संशोधन द्वारा यही परिवर्तन किए जा रहे हैं।

***अध्यक्ष:** क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से एक बात पूछ सकता हूं? मेरा विचार है कि ढोरों का चारा जिसके अंतर्गत खली और अन्य सारकृत चारे हैं, एक ऐसी वस्तु थी जिस पर पर्याप्त नियंत्रण रखना किसी समय आवश्यक समझा गया था। भारत सरकार अधिनियम में संशोधन करने का प्रस्ताव था, परन्तु उसका संशोधन उस समय किया नहीं जा सका था और काफी कठिनाई का अनुभव हो रहा था। मैं नहीं जानता कि आपने उस पर विचार किया है अथवा नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उद्योग तथा आपूर्ति विभाग के परामर्श से इस अनुच्छेद का प्रारूप पुन: तैयार किया गया था। उन्होंने जिन विषयों पर केन्द्र का नियंत्रण रखना आवश्यक समझा था वे हमने पांच वर्षों की अवधि के लिए इसमें सम्मिलित कर लिए हैं। यदि सभा का ऐसा विचार है कि उप-खण्ड (क) में और कोई विशिष्ट मद सम्मिलित की जानी चाहिए तो मुझे उस पर निश्चय ही कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं जो अब कुछ पुराना पड़ गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझता हूं कि उस वस्तु को सम्मिलित करना निश्चय ही वांछनीय है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): कृषि विभाग के साथ परामर्श करके उसे सम्मिलित कर लिया जाए।

***अध्यक्ष:** मेरा भी यही सुझाव है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझता हूं कि हम उसे सम्मिलित कर लेंगे। मैं ढोरों के लिए चारा सहित खाद्य पदार्थ सम्मिलित कर सकता हूं।

***अध्यक्षः** ढोरों का चारा जिसके अंतर्गत खली और अन्य सारकृत चारे हैं। इसके कुछ संशोधन हैं। संशोधन संख्या 2. डॉ. देशमुख।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूंः

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में, अनुच्छेद 306 के प्रस्तावित खण्ड (क) में, 'State in' **शब्दों के स्थान पर** 'State with respect to' शब्द रखे जाएं।"

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 1 में, अनुच्छेद 306 के प्रस्तावित खण्ड (क) में 'Coal (including coke and derivatives of coal' कोयले 'जिसके अंतर्गत कोक और पत्थर-कोयला जन्य पदार्थ हैं।' **शब्दों तथा कोष्ठकों के स्थान पर** 'coal, coke and derivatives of coal' 'कोयला, कोक और पत्थर-कोयला जन्य-पदार्थ' शब्द रखें जाएं।"

ये संशोधन लगभग प्रारूपण सम्बन्धी हैं, यद्यपि मेरे द्वारा प्रस्तुत पहले संशोधन से, यदि मेरी शब्दावली स्वीकार की गई तो, कुछ अन्तर पड़ेगा। तथापि, मैं इन पर जोर देना नहीं चाहता और मैं इसके लिए तैयार हूं कि प्रारूप समिति इन पर विचार करे।

***अध्यक्षः** खण्ड दो में पंडित कुंजरू के नाम में एक संशोधन मुद्रित है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहारः जनरल): महोदय, मेरा भी एक संशोधन है।

***अध्यक्षः** जी हां, आप इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूंः

"कि संशोधन सूची (खण्ड दो) के संशोधन संख्या 3286 और 3287 के संदर्भ में अनुच्छेद 306 में, 'five (पांच)' शब्द के स्थान पर 'fifteen (पन्द्रह)' **शब्द रखा जाए।**'

प्रारूप समिति के सदस्यों की राय है कि जो आर्थिक कठिनाइयां हमारे समक्ष हैं उन पर वे पांच वर्षों के संक्रमण काल में काबू पा सकेंगे। इस प्रारूप संविधान में अनुच्छेद 306 सम्मिलित करने का यही एकमात्र उद्देश्य है। मेरा विचार है कि वे पांच वर्षों की अवधि में अपने प्रयास में सफल नहीं होंगे। जो आर्थिक संकट हमारे समक्ष है वह केवल राष्ट्रीय स्वरूप का नहीं है, बल्कि इसका अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप भी है। मेरा विचार है कि पूंजीवादी समाज के आर्थिक ढांचे के कारण और युद्ध के परिणामस्वरूप, मानव समाज का समूचा ढांचा ढह रहा है। और भारत विशेष रूप से अवनति एवं ह्रास के काल से गुजर रहा है। हमारे समाज का सम्पूर्ण ढांचा बदल रहा है। मैं समझता हूं कि हम क्रांति के द्वार पर खड़े हैं। खाद्य पदार्थों और खनिजों जैसे विषय भारत सरकार के अधिकार क्षेत्र में रहने चाहिए थे, परन्तु अब हम केवल इतना ही कर सकते हैं कि इन्हें कम से कम संक्रमण काल के लिए भारत सरकार के क्षेत्राधिकार में रखें। संक्रमण काल पन्द्रह वर्षों का होगा, न कि पांच वर्षों का। परन्तु कोई भी संकट लम्बे समय तक चल नहीं सकता और यदि चलता है तो उसका परिणाम होगा राज्य का अन्त। या तो हम संकट पर काबू पा लें या फिर संकट हम पर हावी हो जाएगा। यदि संकट पन्द्रह वर्षों से अधिक समय तक चलता है तो इससे पूर्ण अराजकता फैल जाएगी, जैसा कि हम आज चीन में देख रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम इस अवधि में इन कठिनाइयों पर काबू पा लें।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

इस संविधान का आधार संघीय ढांचा है। मेरा विचार है अपकेन्द्री शक्तियां इतनी प्रबल हो जाएंगी कि इस संविधान में परिवर्तन करने के लिए संशोधन की प्रक्रिया अपनानी पड़ेगी। हमें अपने जीवन के राजनीतिक तथ्यों पर विचार करना होगा। इसी पृष्ठभूमि में अनुच्छेद 306 में रूप-भेद किया जाना चाहिए। मेरा संशोधन बहुत तर्कसंगत है। अनुच्छेद 306 के अन्तिम भाग में कहा गया है कि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत पारित की जाने वाली सभी विधियां उस सीमा तक प्रवर्तन में नहीं रहेंगी जिस सीमा तक कि वे इस संविधान के मुख्य उपबंधों के अनुरूप नहीं हों। मैं समझता हूं कि यह अनावश्यक एवं अवांछनीय है। केन्द्रीयकरण का जो काम पांच वर्षों में किया जाना है उसे व्यर्थ नहीं किया जाना चाहिए। यदि सदन मेरा संशोधन स्वीकार कर लेता है तो प्रान्तीय सरकारों को पांच वर्षों या पन्द्रह वर्षों की अवधि में पारित विधियों को स्वीकार करना ही होगा। अनुच्छेद 306 का कार्यक्षेत्र का एक अन्य दृष्टि से भी सीमित है। हमने इन वस्तुओं के उत्पादन, आपूर्ति एवं वितरण आदि संबंधी शक्तियां संसद को दी हैं। इन विषयों का सम्पूर्ण क्षेत्र भारत सरकार के अधिकार क्षेत्र में रखना चाहिए था। इतना सीमित क्षेत्र में क्यों रखा गया है। यह सीमित शक्ति वांछनीय नहीं है। मैं समझता हूं कि यदि हमें शक्तिशाली राष्ट्र बनना है तो विखण्डनकारी शक्तियों पर नियंत्रण रखना चाहिए।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 306 के खण्ड (क) में, 'Coal (कोयला)' शब्द के पश्चात् 'Charcoal, firewood (लकड़ी का कोयला, जलाऊ लकड़ी)' **शब्द अन्तःस्थापित किये जाएं"**

मुझे विश्वास है कि सदन यह भली-भांति जानता है कि भारत प्रतिरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत लकड़ी के कोयले और जलाऊ लकड़ी के मूल्यों पर नियंत्रण था। यदि भारत सरकार प्रान्तों को शक्ति प्रत्यायोजित न करती तो प्रान्त इन दो वस्तुओं के मूल्यों पर नियंत्रण रखने की स्थिति में न होते। भारत प्रतिरक्षा अधिनियम अब लागू नहीं है और इस कारण डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (क) में संशोधन करना वांछनीय है ताकि इन दो वस्तुओं को सम्मिलित किया जा सके। मैंने सुना है कि भारत प्रतिरक्षा अधिनियम के समाप्त हो जाने के पश्चात्, संसद द्वारा 1946 में पारित भारत सरकार अनिधियम, 1935 के एक संशोधनकारी अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत ये वस्तुएं बराबर भारत सरकार के नियंत्रण में चली आ रही हैं। उसमें लकड़ी के कोयले अथवा जलाऊ लकड़ी का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे कोयलों से उत्पन्न पदार्थों में सम्मिलित हैं। मैं इस व्याख्या को स्वीकार करने में पूरी तरह असमर्थ हूं। लकड़ी के कोयले और जलाऊ लकड़ी के मूल्य निर्धारित करने में प्राधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाही को किसी ने भी चुनौती नहीं दी है। परन्तु यदि किसी ने चुनौती दी होती तो मैं नहीं समझता कि कोई न्यायालय यह तर्क स्वीकार करता कि लकड़ी का कोयला या जलाऊ लकड़ी कोयले से उत्पन्न पदार्थ हैं। सामान्य रूप से हम कोयले का अर्थ "एन्थ्रेसाईट" से लेते हैं। लकड़ी का कोयला लकड़ी का उत्पाद है, न कि कोयले का न तो लकड़ी का कोयला और न लकड़ी ही कोयले का उत्पाद है। अतः इन दोनों वस्तुओं के संबंध में स्पष्ट रूप से भारत सरकार के नियंत्रण की व्यवस्था करना आवश्यक है। ये जन सामान्य के काम की वस्तुएं

हैं। जब हम अनेक वस्तुओं पर भारत सरकार के नियंत्रण के लिए व्यवस्था कर रहे हैं तो हमारे लिए आवश्यक एवं वांछनीय है कि हम निर्धनों की आवश्यकताओं के बारे में भी विचार करें और इन वस्तुओं के मूल्यों पर नियंत्रण रखने के लिए भी संविधान में शक्ति प्राप्त करें। हम सब जानते हैं कि युद्ध के दौरान इन वस्तुओं के बारे में स्थिति कितनी गम्भीर थी और हम यह भी जानते हैं कि अब भी इनके मूल्य कितने अधिक हैं। हम प्रायः खाद्य पदार्थों के अधिक मूल्यों के बारे में सोचते हैं और यह बात बहुत कम लोग महसूस करते हैं कि लकड़ी के कोयले और जलाऊ लकड़ी के अधिक मूल्य निर्धन व्यक्ति के लिए उतनी ही चिन्ता का विषय हैं जितने कि खाद्य पदार्थों के अधिक मूल्य, डॉ. अम्बेडकर चूंकि सदन के समक्ष प्रस्तुत खण्डों में संशोधन करने के सुझावों पर विचार करने की मुद्रा में हैं, अतः मैं आशा करता हूं कि वह इस विषय पर भी विचार करेंगे और खण्ड (क) में इस प्रकार संशोधन करने हेतु शक्ति प्राप्त करेंगे जिससे कि लकड़ी के कोयले और जलाऊ लकड़ी के व्यापार पर नियंत्रण रखने की पूरी शक्ति भारत सरकार को प्राप्त हो जाये।

***अध्यक्षः** यही सब संशोधन हैं। क्या कोई माननीय सदस्य मूल अनुच्छेद अथवा किसी संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद में हमने व्यवस्था की है कि कुछ ऐसे विषय जो साधारणतया राज्य-सूची में शामिल होते हैं पहले पांच वर्षों में समवर्ती सूची में रहेंगे इस समय भी भारत सरकार अधिनियम (अनुकूलन) 1946 में इसी प्रकार की व्यवस्था है जिसका आशय वर्तमान स्थिति पर काबू पाना है। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद में निर्धारित अवधि बहुत कम है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि राज्य-सूची में उल्लिखित इन मदों को प्रथम पांच वर्षों के लिए समवर्ती-सूची में रखना शायद आवश्यक होगा ताकि संसद द्वारा आवश्यक कार्यवाही की जा सके। इस विषय में मैं अपने मित्र श्री बृजेश्वर प्रसाद द्वारा प्रस्तुत इस आशय के संशोधन का समर्थन करूंगा कि यह पांच वर्षों की अवधि बहुत कम है और कि यह अवधि और अधिक होनी चाहिए। यदि उस अवधि को अनावश्यक पाया गया तो हम उसे कम कर सकते हैं, परन्तु संविधान में ज्यादा अवधि के लिए उपबंध करने में कोई हानि नहीं है।

दूसरे, महोदय, मैं समझता हूं कि बेहतर होता यदि राहत एवं पुनर्वास के विषय को भी समवर्ती सूची में रखे जाने वाले विषयों की इस सूची में सम्मिलित कर लिया जाता। मुझे मालूम नहीं कि क्या इस विषय को समवर्ती सूची से निकाल देने का इरादा है। यदि वहां नहीं तो संविधान में किसी अन्य स्थान पर इस विषय का उल्लेख होना चाहिए, ताकि उन लाखों-लाखों लोगों को राहत और पुनर्वास के लिए उचित विधान बनाने की शक्ति संसद को प्राप्त हो जो...।

***अध्यक्षः** समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33-ख में, विभाजन के कारण अपने मूल निवास स्थानों से विस्थापित हुए लोगों को राहत एवं पुनर्वास का विषय सम्मिलित है। अतः आप देखेंगे कि इसकी व्यवस्था की गई है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** महोदय, मुझे खुशी है कि संविधान में इसकी व्यवस्था है। मैं इस विषय में और कुछ नहीं कहूंगा। मैं आपना सुझाव वापस लेता हूं। परन्तु मैं समझता हूं कि पांच वर्षों की अवधि बहुत कम है, इसे बढ़ाया जाना चाहिए।

***अध्यक्षः** क्या कोई अन्य सदस्य बोलना चाहता है? डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मुझे केवल इतना ही कहना है कि मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किया गया संशोधन स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हूं। जहां तक आपके द्वारा और मेरे मित्र डॉ. कुंजरू द्वारा सुझाये गये दूसरे संशोधन का संबंध है, मैं यह कह सकता हूं कि मेरा इस विषय में खुला मन है और मैं उद्योग तथा आपूर्ति मंत्रालय से परामर्श करने के पश्चात् आवश्यक संशोधन पेश करने के लिए तैयार हूं। अतः अब मेरा संशोधन सभा के मतदान के लिए रखा जाए।

***अध्यक्षः** और कृषि मंत्रालय भी आप उस मंत्रालय से भी परामर्श कर लें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, महोदय, मैं सम्बन्धित मंत्रालयों से परामर्श करूंगा।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है उसके अधीन रहते हुए, मैं अनुच्छेद को सभा के मतदान के लिए रखूंगा। पहले मैं संशोधनों को लूंगा। डॉ. देशमुख का संशोधन संख्या 2 लगभग शाब्दिक है और वह इसे प्रारूप समिति पर छोड़ दें और संशोधन संख्या 3 भी। संशोधन संख्या 4 की क्या स्थिति है?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** तब मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन संख्या 5 सभा के मतदान के लिए रखता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन-सूची (खण्ड दो) के संशोधन संख्या 3286 और 3287 के संदर्भ में अनुच्छेद 306 में, 'five (पांच)' **शब्द के स्थान पर** 'fifteen (पन्द्रह)' **शब्द रखा जाये।**"

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया संशोधन सभा के मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 306 के खण्ड (क), खण्ड (ख) और खण्ड (ग) के स्थान पर ये खण्ड रखे जाएं:

(a) trade and commerce within a State in, and the production, supply and distribution of, cotton and woollen textiles, raw cotton (including ginned cotton and unginned cotton or Kapas), cotton seed, paper (including newsprint), foodstuffs (including edible oil-seeds and oil), coal (including coke and derivatives of coal), iron, steel adn mica;

(b) offences against laws with respect to any of the matters mentioned

in clause (a), jurisdiction and powers of all courts except the Supreme Court with respect to any of those matters, and fees in respect of any of those matters but not including fees taken in any court.'

'[(क) सूती और ऊनी वस्त्रों, कच्ची रूई (जिसके अंतर्गत धुनी हुई रूई और बिना धुनी रूई या कपास है), बिनौले, कागज (जिसके अन्तर्गत समाचारपत्र का कागज है), खाद्य पदार्थ (जिसके अंतर्गत खाद्य तिलहन और तेल हैं), कोयला (जिसके अन्तर्गत कोक और पत्थर-कोयला-जन्य पदार्थ हैं), लोहे, इस्पात और अभ्रक का किसी राज्य के अन्दर व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, सम्भरण और वितरण;

(ख) खण्ड (क) में वर्णित विषयों में से किसी से सम्बद्ध विधियों के विरुद्ध अपराध, उच्चतम न्यायालय से भिन्न सब न्यायालयों का उन विषयों में से किसी के बारे में क्षेत्राधिकार और शक्तियां तथा उन विषयों में से किसी के संबंध में किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीसों से अन्य फीसें।' "।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में, अनुच्छेद सभा के मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 306, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 306, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 309

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 309 को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** एक नया अनुच्छेद 307-क जोड़ने के बारे में भी ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन है।

***अध्यक्ष:** परन्तु क्या अब हम उसे लें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसे रोक रखा जाए।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा अपने संशोधन संख्या 3303, खण्ड दो, में नये अनुच्छेद का सुझाव दिया गया है, उसे भी मैं समझता हूं कि निबटा दिया जाए।

***अध्यक्ष:** अच्छा, पंडित ठाकुर दास भार्गव? वह सदन में नहीं हैं। दो अन्य सदस्यों द्वारा संशोधनों की सूचना दी गई है। लाला अचिंत राम? श्री देशबन्धु गुप्त?

इनमें से कोई भी अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा है। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन भी पेश नहीं किया जा सकता।

मैं अनुच्छेद 309 को सभा के मतदान के लिए रखूंगा। इसका कोई संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 309 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

अनुच्छेद 309 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 310-क तथा अनुच्छेद 310-ख

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अगला अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 310 अनुच्छेद 308 से जुड़ा हुआ है। अत: इन दोनों पर एक साथ विचार कर लिया जाए।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 310 पर विचार स्थगित कर दिया गया है। अब सभा अगले अनुच्छेद 310-क तथा अनुच्छेद 310-ख पर विचार आरम्भ करेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, आपकी अनुमति से मैं निम्नलिखित संशोधन संख्या 12, कुछ संशोधित रूप में पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 310 के पश्चात्, निम्नलिखित नये अनुच्छेद रखे जाएं:

Provisions as to Comptroller and Auditor General of India.

'310A. The Auditor General of India holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless he has elected otherwise become on that date the Comptroller and Auditor General of India and shall thereupon be entitled to such salaries and allowances and to such rights in respect of leave and pension as are provided for under clause (2) of article 124 of this Constitution in respect of the Comptroller and Auditor General of India and shall be entitled to continue to hold office until the expiration of his term of office as determined under the provisions which were applicable immediately before such commencement."

Provisions as to Public Service Commissions.

310B. (1) The members of this Public Service Commission for the Dominion of India holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless they have elected othersise, become on that date the members of the Public Service Commission for the Union and shall notwithstanding anything contained in clauses (1) and (2) of article 285 of this Constitution but subject to the proviso to clause (2) of that article continue to hold office until the expiration of their term of office as determined under the rules which were applicable immediately before such commencement to such members.

(2) The members of a Public Service Commission of a Province or of a Public Service Commission serving the needs of a group of Provinces holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall unless they have elected otherwise, become on that date the members of the Public Service Commission for the corresponding State or the members of the Joint Public Service Commission serving the needs of the corresponding States, as the case may be and shall, notwithstanding anything contained in clauses (1) and (2) of article 285 of this Constitution but subject to the proviso to clause (2) of that article, continue to hold office until the expiration of their term of office as determined under the rules which were applicable immediately before such commencement to such members."

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के बारे में उपबन्ध।

['310-क इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले पदस्थ भारत का महालेखापरीक्षक, यदि वह अन्यथा पसन्द न कर चुका हो, ऐसे प्रारम्भ पर भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक हो जाएगा तथा तत्पश्चात् ऐसे वेतनों तथा भत्तों तथा छुट्टी और निवृत्ति-वेतन के विषय में ऐसे अधिकारों का हक रखेगा जैसे भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के बारे में इस संविधान के अनुच्छेद 124 के खण्ड (2) के अधीन उपबंधित हैं तथा अपनी उस पदावधि की, जो कि ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे लागू होने वाले उपबंधों के अधीन निर्धारित हो, समाप्ति तक, पदस्थ बने रहने का हक रखेगा।

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के बारे में उपबन्ध।

310-ख (1) इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के लोक सेवा आयोग के पदस्थ सदस्य, जब तक कि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों, ऐसे प्रारम्भ पर संघ के लोक सेवा आयोग के सदस्य हो जाएंगे और अनुच्छेद 285 के खण्ड (1) और खण्ड (2) में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु उस अनुच्छेद के खण्ड (2) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, अपनी उस पदावधि की, जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसे सदस्यों को लागू होने वाले नियमों के अधीन निर्धारित हो, समाप्ति तक पदस्थ बने रहेंगे।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त के लोक सेवा आयोग के या प्रांतों के समूह की आवश्यकता के लिये सेवा करने वाले किसी लोक सेवा आयोग के पदस्थ सदस्य, जब तक कि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों, ऐसे प्रारम्भ पर, यथास्थिति, तत्स्थानी राज्य के लोक सेवा आयोग के सदस्य अथवा तत्स्थानी राज्यों की आवश्यकताओं के लिये सेवा करने वाले संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य हो जायेंगे तथा अनुच्छेद 285 के खंड (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु उस अनुच्छेद के खण्ड (2) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, अपनी उस पदावधि की, ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसे सदस्यों को लागू नियमों के अधीन निर्धारित हो, समाप्ति तक पदस्थ बने रहेंगे।']

महोदय, इन अनुच्छेदों में केवल कुछ ऐसे पदों के धारकों के बने रहने हेतु उपबंध किया गया है जिनका विनियमन संविधान द्वारा होता है, जैसे लोक सेवा आयोग के सदस्य और महालेखापरीक्षक। इन अनुच्छेदों में सिद्धान्त का कोई मामला अन्तर्ग्रस्त नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** महादेय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

["That in amendment No. 12 of List 1 (First Week), in the proposed new article, 310 B, after the words 'commencement of this Constitution' wherever they occur, the words 'whose services have not, for any reason, been terminated' be inserted."]

["कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 310-ख में, 'पद धारण करने वाले सदस्य' **शब्दों के पश्चात्**, जहां कहीं भी ये प्रयुक्त हुए हों, 'जिन की सेवाएं किसी भी कारण से, समाप्त नहीं की गई हैं **शब्द रखे जाएं**।"]

अनुच्छेद 310 में भी इस प्रकार का संशोधन पेश करने का मेरा विचार है। मेरी कठिनाई यह है कि यदि प्रस्तावित नया अनुच्छेद इसी रूप में रहे तो यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि क्या ऐसे प्रत्येक पद धारक को जो राज्य के सेवा आयोग का सदस्य है, उस स्थिति में भी जब एक से अधिक राज्यों का एक संयुक्त आयोग हो, उन राज्यों के समूह के आयोग का सदस्य बनाए रखना होगा। प्रस्तुत अनुच्छेद के अनुसार, जो इसकी वर्तमान शब्दावली है, सरकार के पास सिवाय इसके कोई शक्ति नहीं रहेगी कि संविधान के प्रारम्भ के पश्चात भी आयोग के वर्तमान पदधारक प्रत्येक व्यक्ति को उस पद पर बनाए रखा जाए। यदि प्रस्तुत अनुच्छेद की वर्तमान शब्दावली वही रही जो कि इस समय है तो उस सदस्य की सेवायें भी समाप्त नहीं की जा सकेंगी जिसकी सेवायें अनेक राज्यों के लिए संयुक्त सेवा आयोग बनने पर समाप्त की जा सकती थी। कुछ सदस्यों की सेवाएं समाप्त करने के लिए कोई उपबंध नहीं है, तो प्रत्येक पद धारक को उसके वर्तमान पद पर बनाए रखना होगा। मैं समझता हूं कि इससे व्यय बहुत बढ़ जाएगा। अतः मेरा प्रस्ताव है कि मेरे शब्द, जिनका मैंने सुझाव दिया है, अनुच्छेद में जोड़े जाएं ताकि किसी क्षेत्र विशेष के लोक सेवा आयोग के सदस्यों के रूप में उस क्षेत्र में पद-धारकों की संख्या कम की जा सके।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं, डॉ. देशमुख का संशोधन स्वीकार नहीं कर सकता। यह अनावश्यक है।

***अध्यक्षः** मैं पहले डॉ. देशमुख का संशोधन सभा के मतदान के लिए रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"That in amendment No. 12 of List I (First Week) in the proposed new article 310-B, after the words 'commencement of this Constitution' wherever they occur, the words 'whose services, have not, for any reason, been terminated' be inserted."

["कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 12, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 310-ख में, 'पद धारण करने वाले सदस्य' **शब्दों के पश्चात्**, जहां कहीं भी ये प्रयुक्त हुए हों, 'जिनकी सेवाएं, किसी भी कारण से, समाप्त नहीं की गई हों' **शब्द रखे जाएं**।"]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में अन्तर्विष्ट अनुच्छेद एक-एक करके सभा के मतदान के लिए रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 310 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

Provisions as to Comptroller and Auditor General of India.

['310A. The Auditor General of India holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless he has elected otherwise, become on that date the Comptroller and Auditor General of India and shall thereupon be entitled to such salaries and allowances and to such rights in respect of leave and pension as are provided for under clause (2) of article 124 of this Constitution in respect of the Comptroller and Auditor General of India and shall be entitled to continue to hold office until the expiration of his term of office as determined under the provisions which were applicable immediately before such commencement.'

भारत के नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक के बारे में उपबंध

['310क. इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले पदस्थ भारत का महालेखापरीक्षक, यदि वह अन्यथा पसन्द न कर चुका हो, ऐसे प्रारम्भ पर भारत का नियंत्रक महालेखापरीक्षक हो जाएगा तथा तत्पश्चात ऐसे वेतनों तथा भत्तों तथा छुट्टी और निवृत्ति-वेतन के विषय में ऐसे अधिकारों का हक रखेगा जैसे भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के बारे में इस संविधान के अनुच्छेद 124 के खण्ड (2) के अधीन उपबंधित है तथा अपनी उस पदावधि की, जो कि ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे लागू होने वाले उपबंधों के अधीन निर्धारित हो, समाप्ति तक, पदस्थ बने रहने का हक रखेगा।"]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 310क के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाए:

Provisions as to Public Service Commissions.

['310B. (1) The members of the Public Service Commission for the Dominion of India holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless they have elected otherwise, become on that date the members of this Public Service Commission for the Union and shall, notwithstanding anything contained in clauses (1) and (2) of article 285 of this Constitution but subject to the proviso to clause (2) of that article continue to hold office until the expiration of their term of office as determined under the rules which were applicable immediately before such commencement to such members.

[अध्यक्ष]

(2) The members of a Public Service Commission of a Province or of a Public Service Commission serving the needs of a group of Provinces holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless they have elected otherwise, become on that date members of this Public Service Commission for the corresponding State or the members of the joint Public Service Commission serving the needs of the corresponding States, as the case may be and shall notwithstanding any thing contained in clauses (1) and (2) of article 285 of this Constitution but subject to the proviso to clause (2) of the article, continue to hold office until the expiration of their term of office as determined under the rules which were applicable immediately before such commencement to such members."

लोक सेवा आयोगों के बारे में उपबंध

['310ख (1) इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के लोक सेवा आयोग के पदस्थ सदस्य, जब तक कि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों, ऐसे प्रारम्भ पर संघ के लोक सेवा आयोग के सदस्य हो जाएंगे और अनुच्छेद 285 के खण्ड (1) और खण्ड (2) में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु उस अनुच्छेद के खण्ड (2) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, अपनी उस पदावधि की, जो कि ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसे सदस्यों को लागू होने वाले नियमों के अधीन निर्धारित हो, समाप्ति तक पदस्थ बने रहेंगे।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रांत के लोक सेवा आयोग के या प्रांतों के समूह की आवश्यकता के लिए सेवा करने वाले किसी लोक सेवा आयोग के पदस्थ सदस्य, जब तक कि वे अन्यथा पसन्द न कर चुके हों, ऐसे प्रारम्भ पर, यथास्थिति, तत्स्थानी राज्य के लोक सेवा आयोग के सदस्य अथवा तत्स्थानी राज्यों की आवश्यकताओं के लिए सेवा करने वाले संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य हो जाएंगे तथा अनुच्छेद 285 के खण्ड (1) और खण्ड (2) में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु उस अनुच्छेद के खण्ड (2) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, अपनी उस पदावधि की, जो कि ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसे सदस्यों को लागू नियमों के अधीन निर्धारित हो, समाप्ति तक पदस्थ बने रहेंगे।']

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 310-क और 310-ख संविधान में जोड़ दिए गए।

अनुच्छेद 311-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 311 के पश्चात्, निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाए:

[311A. (1) Such person as the Constituent Assembly of the dominion of India shall have elected in this behalf shall be the Provisional President of India until a President has been elected in accordance with the provisions contained in Chapter I of Part V of this Constitution and has entered upon his office. Provisions as to Provisional President.

(2) In the event of the occurrence of any vacancy in the office of the provisional President by reason of his death, resignation or removal, or otherwise it shall be filled by a person elected in this behalf by the Provisional Parliament functioning under article 311 of this Constitution and until a person is so elected, the Chief Justice of India shall act as the Provisional President."

[311क (1) ऐसा व्यक्ति, जिसे इस बारे में भारत डोमिनियन की संविधान सभा ने निर्वाचित कर लिया हो, भारत का तब तक अस्थायी राष्ट्रपति होगा जब तक कि इस संविधान के भाग-5 के अध्याय 1 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार राष्ट्रपति निर्वाचित न हो जाये तथा अपने पद को ग्रहण न कर ले। अस्थायी राष्ट्रपति के बारे में उपबंध

(2) अस्थायी राष्ट्रपति के पद में, उसकी मृत्यु, पद त्याग या हटाये जाने के कारण या अन्यथा कोई रिक्तता होने पर उसकी पूर्ति इस संविधान के अनुच्छेद 311 के अन्तर्गत कृत्यकारिणी अन्तर्कालीन संसद द्वारा उस लिये निर्वाचित व्यक्ति से की जायेगी, तथा जब तक ऐसा व्यक्ति निर्वाचित न हो तब तक भारत का मुख्य न्यायाधीश अस्थायी राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।']

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के दो संशोधन हैं। उनमें से एक संशोधन "राष्ट्रपति" शब्द से पहले "अस्थायी" शब्द हटाये जाने के लिए है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं: "कि सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311-क के खण्ड (1) में, 'provisional (अस्थायी)' **शब्द निकाल दिया जाए**।"

"कि सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311-क के खण्ड (2) में, 'Provisional President (अस्थायी राष्ट्रपति)' **शब्दों के स्थान पर**, जहां से ये प्रथम स्थान पर प्रयुक्त हुए हों 'President so elected by the Constituent Assembly of the Dominion of India (भारत डोमिनियन की संविधान सभा द्वारा इस प्रकार निर्वाचित राष्ट्रपति), शब्द रखे जाएं।"

"कि सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311-क के खण्ड (2) में 'Provisional President (अस्थायी राष्ट्रपति)' **शब्दों के स्थान पर**, जहां ये दूसरे स्थान पर प्रयुक्त हुए हों 'President (राष्ट्रपति)' **शब्द रखे जाएं**।"

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मेरे संशोधन के सिद्धांत को चूंकि स्वीकार कर लिया गया है अत: मैं समझता हूं कि मेरा संशोधन पेश करने का कोई औचित्य नहीं है।

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद और संशोधनों पर चर्चा की जा सकती है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): मेरे नाम में भी एक संशोधन है:

"कि संशोधन संख्या 13 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 311-ख में, 'Provisional (अस्थायी)' **शब्द के स्थान पर,** जहां कहीं भी यह प्रयुक्त हुआ हो, 'First (प्रथम)' **शब्द रखा जाए**।"

महोदय, मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर "राष्ट्रपति" शब्द से पहले "अस्थायी" शब्द को हटा दिये जाने पर सहमत हो गये हैं, क्योंकि यह बात मेरी समझ से बाहर है कि आप स्थायी राष्ट्रपति कैसे रख सकते हैं। विधिवत रूप से गठित सभा राष्ट्रपति को निर्वाचित करेगी। उसे प्रथम राष्ट्रपति तो कहा जा सकता है परन्तु आप उसे "अस्थायी" नहीं कह सकते। "अस्थायी" शब्द का अर्थ होगा किसी ने उसे मनोनीत किया है। मैं नहीं चाहता कि हमारे प्रथम राष्ट्रपति पर कोई आक्षेप किया जाये और इसलिए मैंने सोचा कि "प्रथम" शब्द अपेक्षतया अधिक उचित होगा। भारत शासन अधिनियम 1935 के अन्तर्गत, संक्रमण काल के दौरान जब उड़ीसा को बिहार से अलग किया गया था और उत्तर-पूर्व सीमान्त प्रान्त नामक एक अलग प्रान्त का निर्माण किया गया था और जब सिन्ध को बम्बई से अलग किया गया था और उसका एक अलग प्रान्त के रूप में गठन किया गया था तो इन प्रान्तों के गवर्नरों को प्रथम गवर्नर कहा जाता था हालांकि वे मनोनीत किये गये थे। अत: मैं समझता हूं कि अपने प्रथम राष्ट्रपति के लिए, जिसे हम इस संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत निर्वाचित करेंगे, "अस्थायी" शब्द का प्रयोग करना अन्यायसंगत और अनुचित होगा। इसलिए मैं बहुत खुश हूं कि प्रारूप समिति ने "अस्थायी" शब्द हटा दिया है। मैं तो "प्रथम" शब्द को बेहतर समझूंगा परन्तु "अस्थायी" शब्द हटा देने से मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है और मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं सभा से कहूंगा कि मेरे संशोधन को स्वीकार किया जाए।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने जो अनुच्छेद 311-क का खण्ड (2) पेश किया है, उसमें यह उपबंध है कि अस्थायी राष्ट्रपति का पद रिक्त होने की स्थिति में उसे इस संविधान के अनुच्छेद 311 के अन्तर्गत कार्यरत अस्थायी संसद द्वारा इस हेतु निर्वाचित व्यक्ति द्वारा भरा जाएगा। मैं यह कहना चाहता हूं कि उस संसद को 'provisional (अस्थायी)' नहीं कहा जाना चाहिए। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस सुझाव की तर्कसंगतता को समझेंगे और 'Parliament (संसद)' शब्द से पहले 'provisional (अस्थायी)' शब्द को निकाल देंगे, जैसा कि उन्होंने राष्ट्रपति के मामले में किया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझा कि 'Provisional Parliament (अस्थायी संसद)' शब्द रखे जाने पर अधिक आपत्ति हो सकती है। मैं इसमें कोई परिवर्तन नहीं करना चाहता। इसे 'Provisional Parliament (अस्थायी संसद)' नहीं कहा जाएगा, परन्तु इस अनुच्छेद के भाषा के प्रयोजनार्थ मैं समझता हूं कि यह कहना आवश्यक है कि यह अस्थायी संसद है।

***श्री आर.के. सिधवा:** परन्तु मैंने यह समझा था कि डॉ. अम्बेडकर "अस्थायी" शब्द को हटाने के लिए सहमत हो गए हैं।

***अध्यक्ष:** जी नहीं, यह संसद के संबंध में है। श्री शिब्बनलाल सक्सेना चाहते थे कि "संसद" शब्द से पहले "अस्थायी" शब्द हटा दिया जाए।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** यदि ऐसा है तो मैं अन्य स्थान पर भी "अस्थायी" शब्द हटाने के लिए अपना संशोधन पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** क्या आप के संशोधन में संसद का भी उल्लेख है?

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** जी हां, महोदय।

***अध्यक्ष:** श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने इसे पेश कर दिया है। उसे सभा के मतदान के लिए रखा जाए। अब मैं विभिन्न संशोधन सभा के मतदान के लिए रखता हूं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311-क के खण्ड (1) में 'provisional (अस्थायी)' **शब्द निकाल दिया जाए।**"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***माननीय श्री के. सन्थानम** (मद्रास: जनरल): क्या इसका यह अर्थ है कि "संसद" शब्द से पहले भी "अस्थायी" शब्द हटा दिया जाएगा?

***अध्यक्ष:** जी नहीं, वह संशोधन बाद में आएगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 प्रथम सप्ताह के संशोधन संख्या 28 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311-क के खण्ड (2) में 'Provisional President (अस्थायी राष्ट्रपति)' **शब्दों के स्थान पर,** जहां ये प्रथम स्थान पर प्रयुक्त हुए हों 'President so elected by the Constituent Assembly of the Dominion of India भारत डोमिनियन की संविधान सभा द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति।' **शब्द रखे जाएं।**"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 28 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311-क के खण्ड (2) में the Provisional President (अस्थायी राष्ट्रपति)' **शब्दों के स्थान पर,** जहां ये दूसरे स्थान पर प्रयुक्त हुए हों 'President (राष्ट्रपति)' **शब्द रखा जाए।**"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** इसके बाद मैं उस संशोधन को लेता हूं जो डॉ. देशमुख पेश करना चाहते थे परन्तु जिसे वास्तव में श्री शिब्बन लाल सक्सेना ने पेश किया।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 311-क के खण्ड (2) में, 'Parliament (संसद)' शब्द से पहले प्रयुक्त 'provisional (अस्थायी)' **शब्द निकाल दिया जाए।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 311-क, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 311-क, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 311-ख

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 311-क के पश्चात् यह नया अनुच्छेद रखा जाए:

Council of Ministers of the Provisional President

'311B. Such persons as the provisional President may appoint in this behalf shall become members of the Council of Ministers of the provisional President under this Constitution and until appointments are made, all persons holding office as ministers for the Dominion of India immediately before the commencement of the Constitution shall become and shall continue to hold office as members of the Council of Ministers of the provisional President under the Constitution.'

अस्थायी राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद्

['311-ख, ऐसे व्यक्ति, जिन्हें अस्थायी राष्ट्रपति इस लिये नियुक्त करे, इस संविधान के अधीन अस्थायी राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद् के सदस्य होंगे तथा जब तक नियुक्तियां इस प्रकार न की जायें तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के मंत्रियों के रूप में पदस्थ सब व्यक्ति संविधान के अधीन अस्थायी राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद के सदस्य हो जाएंगे तथा इस रूप में पदस्थ बने रहेंगे।"]

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** महोदय, मैं आपका आभारी हूं कि आपने मुझे अपना संशोधन पेश करने का अवसर प्रदान किया। मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 13 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 311-ख में 'provisional (अस्थायी)' **शब्द जहां कहीं** यह प्रयुक्त हुआ है, **निकाल दिया जाए।"**

मैं इतना ही कहना चाहूंगा कि चूंकि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने इस संशोधन के पीछे जो सिद्धान्त है उसे स्वीकार कर लिया है अतः मैं इससे अधिक कुछ कह कर सभा का समय लेना नहीं चाहता। यह लगभग पारिणामिक संशोधन है।

(संशोधन संख्या 15 प्रस्तुत नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार करते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, महोदय, मैं इसे स्वीकार करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** महोदय, मैं इस उपबंध को समझ नहीं पाया। जिस दिन नया संविधान लागू हो जाएगा उसी दिन वर्तमान मंत्रालय विद्यमान नहीं रहेगा और एक नयी मंत्रि-परिषद को शपथ दिलाई जानी चाहिए। ऐसा कोई उपबंध नहीं होना चाहिए कि:

> "इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के मंत्रियों के रूप में पदस्थ सब व्यक्ति संविधान के अधीन अस्थायी राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद् के सदस्य हो जाएंगे तथा इस रूप में पदस्थ बने रहेंगे।"

मैं समझता हूं कि नया संविधान लागू होने के बाद पहला काम यही होना चाहिए कि नयी मंत्रि-परिषद् को शपथ ग्रहण करायी जाए। जब नया संविधान लागू हो जाये तो उचित यही होगा कि राष्ट्रपति नये मंत्रियों को पद ग्रहण करने हेतु बुलाएं। यदि हमें कोई उपबंध करना है तो वह प्रभारी (केअरटेकर) मंत्रियों के लिए होना चाहिए। पुराने मंत्रियों को हम नये राष्ट्रपति के मंत्रियों का नाम न दें। अतः मेरा सुझाव है कि इस अनुच्छेद में संशोधन किया जाए। आप यह कह सकते हैं कि जब तक राष्ट्रपति नई मंत्रि-परिषद् नियुक्त नहीं करता तब तक पुराने मंत्री प्रभावी (केअरटेकर) मंत्री के रूप में बने रहेंगे। यह अनोखी बात लगती है कि पुराने मंत्री अपने आप नये राष्ट्रपति की मंत्रि-परिषद् के सदस्य बन जाएं। इसमें कुछ त्रुटि है जिसमें सुधार किया जाना चाहिए, ताकि 26 जनवरी, 1950 को जब नया संविधान लागू हो तो पुराने मंत्री उसी दिन, नये मंत्रियों द्वारा शासन का प्रभार ग्रहण किये जाने तक, प्रभारी (केअरटेकर) मंत्री बन जाएं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): महोदय, श्री सक्सेना का तर्क कुछ युक्तिसंगत है। वह यह कहना चाह रहे हैं कि जिस दिन नया संविधान लागू हो उस दिन समूची मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व औपचारिक रूप से अवश्य समाप्त हो जाए, और उन्हें नये सिरे से शपथ ग्रहण कराई जा सकती है। मैं समझता हूं कि इस अवसर पर जब कि हम नया गणराज्य प्रख्यापित कर रहे हैं और इस नये संविधान का उद्घाटन कर रहे हैं तो ऐसा करना बहुत वांछनीय है। यह आवश्यक हो सकता है कि वही मंत्री उस दिन शपथ ग्रहण करें।

***एक माननीय सदस्यः** यह आवश्यक तो नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** हो सकता है कि ऐसा आवश्यक न हो, परन्तु इस बात की काफी सम्भावना तो है कि वही मंत्री शपथ ग्रहण करें जो नये संविधान के प्रारम्भ से पहले मंत्री हों। परन्तु संवैधानिक मर्यादा एवं औचित्य की दृष्टि से मैं समझता हूं कि यदि मंत्रि-परिषद् उस दिन सामूहिक रूप से अपना त्याग पत्र दे दे तो बुद्धिमत्ता की बात होगी। प्रधान मंत्री को मंत्री-परिषद् का त्याग पत्र राष्ट्रपति

[श्री एच.वी. कामत]

को देना चाहिए और राष्ट्रपति को सदन के नेता से कहना चाहिए कि वह नये संविधान के संगत अनुच्छेद के अन्तर्गत नया मंत्रि-मंडल बनाए।

इस सम्बन्ध में एक अन्य बात भी है। मैं समझता हूं कि हमारे संविधान के अन्तर्गत अपनाई गई पद की शपथ उस पुरानी शपथ से कुछ भिन्न है। जिसके अनुसार मंत्रीगण शपथ ग्रहण किया करते थे। अब हमने ईश्वर को साक्षी मान कर शपथ की व्यवस्था की है, परन्तु यदि कोई मंत्री अज्ञेयवादी हो या नास्तिक हो तो वह प्रतिज्ञान कर सकता है। इस विषय पर विभिन्न पहलुओं से विचार करके मैं समझता हूं कि बुद्धिमता इसी में होगी कि हम इस सम्भाव्य स्थिति के लिए उपबंध करें और यह निर्धारित करें कि जिस दिन गणराज्य प्रख्यापित हो और संविधान का उद्घाटन हो उसी दिन मंत्रि-परिषद् औपचारिक रूप से त्याग पत्र दे दे और राष्ट्रपति सदन के नेता से कहे कि वह फिर से अपना मंत्रिमंडल बनाए।

एक अन्य बात भी है और मैं चाहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर उस पर विचार करें। यह मात्र शाब्दिक आपत्ति है। क्या डॉ. अम्बेडकर को और प्रारूप समिति को पूरा विश्वास है कि यह अभिव्यक्ति 'Ministers for the Dominion of India' पूर्णतया सही है? मैं स्वयं इसे पसंद नहीं करता। मुझे "for" शब्द पर आपत्ति है। क्या ऐसा कहना अधिक उचित नहीं होगा: Ministers of the Dominion Government of India या 'Ministers of the Dominion of India. "for" शब्द् का प्रयोग पूर्णतया उचित नहीं है, परन्तु यदि डॉ. अम्बेडकर और अन्य भाषाविदों का यह विचार हो कि "for" शब्द का प्रयोग सही है, तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** महोदय, मेरा इस अवसर पर बोलने का विचार तो नहीं था परन्तु श्री शिब्बन लाल सक्सेना और श्री कामत मेरे इन दो मित्रों ने चूंकि इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं अत: मैं भी इस संशोधन पर अपने विचार व्यक्त करना चाहूंगा। यदि इस अनुच्छेद से "dominion (डोमिनियन)" शब्द हटा दिया जाता तो बेहतर होता। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि नये युग के आगमन और भारतीय गणराज्य की स्थापना के साथ हमें नये मंत्रिमंडल के लिए उपबंध करना चाहिए। मैं जानता हूं कि मंत्रिमंडल में तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनके बिना काम चल पाना लगभग असम्भव है। मैं पंडित नेहरू, साहसी सरदार और एशिया के सर्वोत्कृष्ट विद्वान, महान नेता मौलाना साहिब का उल्लेख कर रहा हूं। इन तीनों महान व्यक्तियों का मंत्रिमंडल में रहना परमावश्यक है। मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य तो अधिकतर ऐसे हैं जो प्रवासी पक्षियों.....

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि मंत्रियों का वैयक्तिक रूप से उल्लेख करना माननीय सदस्य के लिए न्यायोचित है। हमारा व्यक्तिगत रूप से उनसे कोई संबंध नहीं है। हम तो समूचे रूप में मंत्रिमंडल की बात कर रहे हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** महोदय, यदि "प्रवासी पक्षियों" शब्दों के प्रयोग से हमारे योग्य मंत्रियों पर आक्षेप होता है तो मुझे इसका खेद है। मेरा यह विचार था कि कि इस देश में वास्तविक गणराज्य की स्थापना होने से हम ऐसे व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में रखें जिन्हें युवा भारत का भी उत्साहपूर्ण समर्थन प्राप्त हो। अत: यही उचित होगा कि राष्ट्रपति के लिए व्यापक विकल्प रहे और वह समयानुकूल नये-नये व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में लें। जहां तक मंत्रिमंडल के वर्तमान सदस्यों का संबंध है, मुझे वैयक्तिक रूप से उनके विरुद्ध कुछ नहीं कहना है, परन्तु मैं समझता

हूं कि नये युग में नये व्यक्तियों की आवश्यकता है। नई बोतलों में पुरानी शराब भरने का कोई लाभ नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, यह प्रश्न चाहे छोटा-सा है परन्तु इससे संवैधानिक स्वरूप का प्रश्न उत्पन्न होता है। मैं समझता हूं कि जब गवर्नर जनरल काम करना बंद कर दें और नया राष्ट्रपति उसका स्थान ले ले तो विद्यमान मंत्रियों को त्याग पत्र दे देना चाहिए और उनको फिर से नियुक्त किया जाना चाहिए। यही बात युक्तिसंगत लगती है। इसका पहला कारण यह है कि वर्तमान मंत्री "गर्वनर जनरल के प्रसाद-पर्यन्त" पद धारण करेंगे। "गवर्नर जनरल" का अर्थ है वह गवर्नर जनरल जो इस समय कार्य कर रहा है। संविधान के प्रारम्भ होने पर गवर्नर जनरल का यह पद समाप्त हो जाएगा और उसका स्थान एक अन्य अधिकारी—अस्थायी राष्ट्रपति ग्रहण कर लेगा। अत: आगामी 26 जनवरी को या जो भी तिथि अन्त में तय की जाए, जब नया संविधान लागू होगा, तो परिवर्तन आएगा। चूंकि मंत्री गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और चूंकि वे संवैधानिक रूप से "उसके प्रसाद-पर्यन्त" पद धारण करते हैं, अत: जैसे ही गवर्नर जनरल का पद समाप्त हो जाता है तो उसके प्रसाद या पीड़ा का प्रश्न ही नहीं रहता और इस कारण मंत्री उसके प्रसाद-पर्यन्त पदासीन नहीं रहेंगे। तब किसी और के प्रसाद—उसके उत्तराधिकारी के प्रसाद—की बात आ जाती है। प्रसाद एक वैयक्तिक बात है और यह आवश्यक नहीं कि उसके उत्तराधिकारी का भी वही प्रसाद हो जो उसका है। अत: नया राष्ट्रपति अपने प्रसाद के अनुसार मंत्री नियुक्त या पुनर्नियुक्त करेगा। और जब तक कि उनकी नियुक्ति न हो जाए तब तक पुराने मंत्री ज्यादा से ज्यादा प्रभारी (केअरटेकर) मंत्री के रूप में काम कर सकते हैं।

यह मामला निस्संदेह संवैधानिक औपचारिकता है, परन्तु मैं समझता हूं कि यह मूलभूत महत्व का है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद 311-ख एक प्रकार से मात्र औपचारिक अनुच्छेद है जिसके द्वारा राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि वह संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले विद्यमान मंत्रिमंडल को आगे बनाए रख सके। यह अनुच्छेद उन अनुच्छेदों के समरूप है जो हम लोक सेवा आयोग के सदस्यों और महालेखापरीक्षक के संबंध में पहले ही स्वीकृत कर चुके हैं। अत: वास्तव में इन अनुच्छेदों और इस अनुच्छेद में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। जिन सदस्यों ने इस अनुच्छेद 311-ख के उपबंधों पर विचार व्यक्त किए हैं उनका यदि यह तर्क है कि 26 जनवरी 1950 को कोई मंत्रिमंडल नियुक्त न किया जाए या कार्य न करे जब तक कि उसे राष्ट्रपति का विश्वास प्राप्त न हो, तो मैं इस तर्क को मानने के लिए पूरी तरह तैयार हूं। परन्तु मैं इस बात को बिल्कुल समझ नहीं पाया कि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संसद के लिए या मंत्रिमंडल के लिए विश्वास मत प्राप्त करना कैसे असम्भव हो जाता है। यदि संसद सदस्य यह समझते हैं कि वर्तमान मंत्रिमंडल उन कृत्यों का निर्वहन करने में सक्षम नहीं है जिनका निर्वहन करना इसका कर्तव्य है तो यह सदन 26 जनवरी से पूर्व मंत्रि-परिषद् में विश्वास का अभाव व्यक्त कर सकता है और उसके द्वारा मंत्रि-परिषद् को भंग कर सकता है। इसी तरह प्रधान मंत्री भी अस्थायी राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल के सदस्यों के नाम प्रस्तुत करने से पहले, सदन से अपने और अपने मंत्रिमंडल के लिए विश्वास का मत प्राप्त कर सकता है। यदि न तो प्रधान मंत्री और न ही सदन अविश्वास का या विश्वास का परीक्षण 26 जनवरी, 1950 से पहले—यह मानते हुए कि संविधान के लागू होने की यही तिथि होगी—करना चाहता हो तो इस अनुच्छेद 311-ख के अन्तर्गत सदन से यह अधिकार छिन नहीं जाता कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

वह 26 जनवरी के पश्चात् उस मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाये और उसे बर्खास्त कर दे और इस अनुच्छेद के अन्तर्गत प्रधान मंत्री पर भी कोई रोक नहीं है कि वह मंत्रिमंडल की नियुक्ति के पश्चात् अपने और अपने मंत्रिमंडल के लिए विश्वास का मत प्राप्त करे।

अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जिन सदस्यों ने अनुच्छेद 311-ख के उपबंधों पर सम्भवतया इस धारणा से टिप्पणियां की हैं कि नये संविधान के अन्तर्गत वर्तमान मंत्रिमंडल को ही बनाये रखने का यह परोक्ष प्रयास है तो वे गलत आशंका में रहे हैं। सदन को इस समय भी और 26 जनवरी के पश्चात् भी इस बात का पूरा अधिकार है कि मंत्रिमंडल के संबंध में जो कार्यवाही वह करना चाहता है उसे करे और यदि वह मंत्रिमंडल को पसन्द नहीं करता तो उसे बर्खास्त कर दे। अतः जैसा मैंने कहा, यह अनुच्छेद औपचारिक मात्र है और राष्ट्रपति को यह अधिकार देता है कि यदि वह चाहे तो नये संविधान के लागू होने के बाद मंत्रिमंडल को बना रहने दे सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** माननीय डॉ. अम्बेडकर ने उन बातों का उत्तर नहीं दिया जो मैंने उठाई थीं। पद की शपथ की क्या स्थिति है जिसका मैंने उल्लेख किया था?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह निस्संदेह ली जायेगी। "नियुक्ति" का अर्थ है पद की शपथ लेना। अन्यथा कोई नियुक्ति नहीं हो सकती।

***श्री एच.वी. कामतः** उसी दिन?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, निश्चय ही, उसी दिन "नियुक्ति' में पद की शपथ लेना सम्मिलित है।

***अध्यक्षः** मैं डॉ. देशमुख का संशोधन सभा के मतदान के लिए रखूंगा—मैं समझता हूं कि प्रस्तावक ने इसे स्वीकार कर लिया है।

प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 13 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 311-ख में 'Provisional (अस्थायी)' शब्द, जहां कहीं यह प्रयुक्त हुआ है, **निकाल दिया जाए।"**

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 311-ख, संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 311-ख संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

———————

अनुच्छेद 312

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 312 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए:

Provisions as to provisional Legislature in each State.

'312. (1) Until the House or Houses of the Legislature of each State for the time being specified in Part I of the first Schedule has or have been duly constituted and summoned to meet for the first session under the provisions of this Constitution the House or Houses of the Legislature of the corresponding Province functioning immediately before the commencement of this Constitution shall exercise the powers and perform the duties conferred by the provisions of this Constitution on the House or Houses of the Legislature of such State.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article where a general election to reconstitute the Legislative Assembly of a Province was ordered before the commencement of this Constitution the election may be completed after such commencement as if this Constitution has not come into operation and the Assembly so reconstituted shall be deemed to be the Legislative Assembly of that Province for the purposes of that clause.

(3) Any person holding office as Speaker of the Legislative Assembly or President of the Legislative Council of a Province immediately before the commencement of this Constitution shall after such commencement be the Speaker of the Legislative Assembly or the Chairman of the Legislative Council as the case may be of the corresponding State for the time being specified in Part I of the first schedule while such Assembly or Council functions under clause (1) of this article:

Provided that where general election was ordered for the reconstitution of the Legislative Assembly of a Province before the commencement of this Constitution and the first meeting of the Assembly as so reconstituted is held after such commencement the provisions of this clause shall not apply and the Assembly as reconstituted shall elect a member of the Assembly as the Speaker thereof.'

['312 (1) जब तक प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य के विधानमंडल का सदन या के सदन इस संविधान के उपबंधों के अधीन सम्यक रूप से गठित न हो जाएं तथा प्रथम सत्र में अधिवेशित होने के लिए आहूत न हो जाए, तब तक इस संविधान के प्रारम्भ में ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्त के कृत्यकारी विधानमंडल का सदन, या के सदन, इस संविधान के उपबंधों द्वारा ऐसे राज्य के विधानमंडल के सदन या सदनों को दी गई सब शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन करेगा या करेंगे।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां कि इस संविधान के प्रारम्भ से पहिले किसी प्रान्त की विधान सभा के पुनर्गठन के लिए सामान्य निर्वाचन का आदेश दे दिया गया हो, वहां ऐसे प्रारम्भ के पश्चात्

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

निर्वाचन इस प्रकार पूरा किया जा सकेगा मानो कि यह संविधान प्रवर्तन में नहीं आया है तथा ऐसी पुनर्गठित सभा उस खण्ड के प्रयोजनों के लिए उस प्रान्त की विधान सभा समझी जाएगी।

(3) कोई व्यक्ति जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त की विधान सभा के अध्यक्ष या विधान परिषद् के सभापति के रूप में पदस्थ था ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित तत्स्थानी राज्य की विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति, जो भी स्थिति हो, होगा जब तक कि वह सभा या परिषद् इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन कृत्य करती है:

परन्तु जहां कि इस संविधान के प्रारम्भ से पहले किसी प्रान्त की विधान सभा के पुनर्गठन के लिए साधारण निर्वाचन का आदेश दे दिया गया हो और इस ऐसी पुनर्गठित सभा का प्रथम अधिवेशन ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् होता है वहां इस खण्ड के उपबंध लागू न होंगे तथा ऐसी पुनर्गठित सभा अपने किसी सदस्य को अपने अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित करेगी।' "]

यह उपबंध पूर्णतया स्पष्ट है और मैं समझता हूं कि इनकी व्याख्या करना आवश्यक नहीं है।

***अध्यक्ष:** क्या इसके कोई संशोधन हैं? मैं समझता हूं कि कोई नहीं है।

***श्री महावीर त्यागी:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): महोदय, मैं नहीं समझता कि उपखण्ड (3) की कोई आवश्यकता है। जब हम पहले ही कह चुके हैं कि किसी राज्य की विधान सभा या विधान परिषद् ज्यों कि त्यों बनी रहेगी तो यह आवश्यक नहीं है कि हम यह भी कहें कि सदनों के क्रमश: अध्यक्ष या सभापति भी ज्यों के त्यों रहेंगे, चूंकि वे तो सदनों के साथ ही होते हैं। दूसरे, मैं यह समझता हूं— परन्तु डॉ. अम्बेडकर फिर यह तर्क दे सकते हैं कि मैं चूंकि एक विशेषज्ञ नहीं हूं अत: वह मेरी बात पर ध्यान नहीं दे सकते—कि जिस शब्दावली का प्रयोग किया है उसके अनुसार सदनों के अध्यक्ष और सभापति निरन्तर अपने-अपने पद पर बने रहेंगे। हम उन्हें निरन्तर अपने-अपने पद पर बने रहने की बात क्यों करे? उन्हें अविश्वास व्यक्त करके पद से हटाया जा सकता है, परन्तु हम कहते हैं कि वे अध्यक्ष के रूप में और सभापति के रूप में बने रहेंगे। क्या इसका यह अर्थ नहीं होगा कि उन्हें हटाया ही नहीं जा सकेगा? मैं इस पर और अधिक बल नहीं देना चाहता। मैं केवल इन शब्दों की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं:

"कोई व्यक्ति जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी प्रान्त की विधान सभा के अध्यक्ष या विधान परिषद् के सभापति के रूप में पदस्थ था ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित तत्स्थानी राज्य की विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति, जो भी स्थिति हो, होगा..." हम ऐसा क्यों कहें? और फिर—

"...जब तक वह सभा या परिषद् इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन कृत्य करती है।"

जब तक वे सभाएं और परिषदें कार्य करती रहेंगी तब तक उन विधायी निकायों के अध्यक्ष और सभापति रहेंगे। क्या इसका यह अर्थ नहीं निकाला जाएगा कि यदि सदन उन्हें न भी रखना चाहें और उनके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को रखना चाहें तो भी वे ऐसा नहीं कर सकेंगे? मेरे मन में केवल यही शंका है जो मैं व्यक्त करना चाहता था।

***माननीय श्री के. सन्तानम** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, स्पष्टतया मुझे इन संक्रमण कालीन उपबंधों के विषय में आशंका है। इन अस्थायी विधान सभाओं और संसद की कार्यावधि के लिए समय-सीमा निश्चित करने वाला कोई उपबंध नहीं रखा गया है। जब फ्रांस ने युद्ध के पश्चात् संविधान का निर्माण करने के लिए और अस्थायी संसद के रूप में भी कार्य करने के लिए संविधान सभा गठित करने का निश्चय किया तो उन्होंने सात मास की समय-सीमा निर्धारित की थी। उन्होंने कहा था कि "यह सभा सात मास के अन्दर-अन्दर संविधान अधिनियमित करेगी। यदि यह ऐसा न कर सकी तो यह संविधान सभा भंग हो जाएगी और उसका पुनर्निर्वाचन होगा।" यदि इस संविधान सभा का गठन करते समय भी कोई ऐसा ही उपबंध किया गया होता तो मैं समझता हूं कि इस संविधान का निर्माण बहुत पहले हो चुका होता। परन्तु इस संविधान सभा के स्वत: भंग हो जाने के विषय में कोई उपबंध न किये जाने के कारण अब हमने संविधान का निर्माण करने में तीन वर्षों का समय ले लिया है।

मैं नहीं जानता कि तथाकथित अस्थायी संसद और विधान सभाएं निर्वाचन कराने में कितने वर्ष लगा देंगी। मैं समझता हूं कि यदि ये अस्थायी संसद और विधान सभाएं निरंतर बनी रहती हैं तो इससे एक प्रकार का राष्ट्रीय विनाश ही होगा। ऐसा सद्भावना से किया जा सकता है, दुर्भावना से किया जा सकता है, किसी भी कारण किया जा सकता है। हम मानव स्वभाव को जानते हैं और वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन होंगे तो इस बात की काफी सम्भावना है कि सदस्यों को यह आशंका रहे कि वे फिर से निर्वाचित नहीं हो सकेंगे, अत: छ: मास के लिए, एक वर्ष के लिये या दो वर्षों के लिए सदस्य बने रहना चाहेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** मंत्रियों की क्या स्थिति है? क्या उनको आशंका नहीं है?

***माननीय श्री के. सन्तानम:** महोदय, मंत्रीगण संसद पर निर्भर करते हैं। यदि संसद भंग की जाती है तो मंत्री स्वत: ही अपदस्थ हो जाते हैं। मैं यह तर्क नहीं समझ सका कि सदस्य तो बने रहना चाहते हैं और केवल मंत्री ही.....

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास: जनरल): महोदय, यह कहना सदन के सदस्यों पर आक्षेप करना है कि वे निर्वाचनों से डरते हैं यह आक्षेप है, जो करना आवश्यक नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मैं किसी व्यक्ति विशेष की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो मानव स्वभाव की बात कर रहा हूं। मैं इस सदन के सदस्यों की ही नहीं, बल्कि सब प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्यों की बात कर रहा हूं। मैं यह समझता हूं कि हम यहां भारत के लोगों के संरक्षक हैं और हमें सबसे ज्यादा उनके हितों का ध्यान रखना चाहिए। मैं सिद्धान्त की बात कर रहा हूं। यदि आप किसी निकाय को शक्ति प्रदान करते हैं तो आप यह नहीं कह सकते कि वह उसका प्रयोग नहीं करेगा। समूचा संविधान रोकों एवं सन्तुलनों से भरा पड़ा है। हम

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

उच्चतम न्यायालय के माध्यम से भावी संसदों की शक्ति सीमित करना चाहते हैं। हमने इसे सीमित करने के लिए मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की है। परन्तु यहां हम इन अस्थायी विधान सभाओं और संसद को प्रायः अनिश्चितकाल के लिए बने रहने की शक्तियां प्रदान कर रहे हैं। अतः हमें इस बारे में कुछ उपाय करने होंगे। इन अस्थायी विधान सभाओं की कोई अन्तिम और निश्चित सीमा निर्धारित करने के लिए या तो संविधान में उपबंध कीजिये या संकल्प पारित कीजिये या कोई अन्य उपाय कीजिये जिससे कि भारत के लोगों को पता चले कि वयस्क मताधिकार के अनुसार नई विधान सभाएं एक युक्तिसंगत समय के भीतर गठित हो जायेंगी। मैं समझता हूं कि ऐसा करना आवश्यक है। मैं तो नहीं समझता कि किसी व्यक्ति को इसे वैयक्तिक आक्षेप के रूप में लेना चाहिए, हम ऐसा उपबंध देश के भविष्य के लिए और संविधान के भविष्य के लिए करना चाहते हैं, चूंकि यदि वास्तविक संविधान के लागू होने में अनुचित विलम्ब होता है तो वह पुराना और व्यर्थ हो जाएगा और उससे संवैधानिक अराजकता भी उत्पन्न हो सकती है। मैं ऐसे लम्बे अन्तराल या अराजकता की स्थिति को रोकना चाहता हूं।

अतः मैं उत्सुक हूं कि जिस संविधान का हमने निर्माण किया है यह 26 जनवरी को संविधान के प्रारम्भ से छः मास की अवधि में या अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि में पूरी तरह अस्तित्व में आ जाए। हमें भारत के लोगों को इस प्रकार का आश्वासन देना ही होगा कि 26 जनवरी, 1951 तक या किसी ऐसी तिथि तक नया संविधान प्रवृत्त हो जाएगा। मैं चाहता हूं कि यह ऐसा मामला है जिसके बारे में इस सदन का प्रत्येक सदस्य उतना ही उत्सुक है जितना कि मैं हूं। अतः मैं आशा करता हूं कि कोई भी सदस्य मेरे कथन को किन्हीं लोगों या लोगों के समूह पर वैयक्तिक आक्षेप के रूप में नहीं लेगा। मैं श्री भारती से पूछना चाहूंगा कि जिस आश्वासन का मैं उल्लेख कर रहा हूं क्या वह आश्वासन भारत के लोगों को देना उनका कर्तव्य नहीं है। मुझे आशा है कि उस आश्वासन को देने में वह भी मेरे सहयोगी होंगे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** महोदय, क्या मैं माननीय सदस्य का ध्यान इस तथ्य की ओर दिला सकता हूं कि मैंने इसी सदन में निवेदन किया था कि निर्वाचन यथासम्भव शीघ्र होने चाहिये?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री सन्थानम ने प्रश्न के इस पहलू की ओर सदन का ध्यान आकर्षित किया है। मैं समझता हूं कि उन्होंने बिल्कुल ठीक ही कहा है कि संविधान में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि नयी विधान सभाएं कितने समय पश्चात् सत्ता में आ जाएंगी। यह बात बिल्कुल सही है कि यदि हम ऐसी व्यवस्था संविधान में नहीं करते सो हम निरन्तर अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं, यद्यपि मुझे विश्वास है कि यह सदन ऐसा नहीं करेगा। हम इस आशय का एक संकल्प पारित कर चुके हैं कि वर्ष 1950 में हम निर्वाचन अवश्य करायेंगे। फिर भी वह मात्र एक प्रकार का परामर्श है। इस संविधान में एक समय-सीमा निर्धारित की ही जानी चाहिए। मेरे माननीय मित्र ने एक वर्ष के समय का सुझाव दिया है। परन्तु यह सब इस बात पर निर्भर कता है कि हमारी वर्तमान सरकार और जो नया मंत्रिमंडल हम नियुक्त करते हैं वह कितनी जल्दी निर्वाचन करा सकेंगे और संसद को पूर्ण बना सकेंगे। जो भी समय निर्धारित किया जाए, कोई अधिकतम सीमा अवश्य होनी चाहिए, एक वर्ष हो, डेढ वर्ष हो या अधिक से अधिक दो वर्ष हो। उन दो वर्षों की अवधि में नयी संसद और नये विधानमंडल अवश्य निर्वाचित होने चाहिएं। यदि

हम संविधान में इस आशय का उपबंध नहीं रखना चाहते तो हमें एक संकल्प पारित करना चाहिए जिसमें ऐसी व्यवस्था हो कि अमुक तिथि तक नई संसद का निर्वाचन हो जाएगा। देश के साथ और लोगों के साथ अन्याय होगा यदि उन्हें ज्ञात ही न हो कि कब तक...

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** महोदय, मेरा एक व्यवस्था का प्रश्न है। इस आशय के संशोधन के अभाव में, मैं नहीं समझता कि इन टिप्पणियों का कोई परिणाम निकल सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मेरे माननीय मित्र श्री सन्थानम ने सुझाव दिया.....

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य को पेश किये गए संशोधन पर सामान्य रूप से बोलने का अधिकार है। उन्होंने संशोधन से ही वह निष्कर्ष निकाला है और वह उस पर टिप्पणी कर रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस अनुच्छेद 312 में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि विधानमंडलों का कार्यकाल कब समाप्त होगा। यदि आप ध्यान से इस अनुच्छेद को देखें तो इसमें कहा गया है कि वे स्वतः ही नये विधानमंडल बन जाएंगे। आपने उनके लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की है। वे सदैव बने रह सकते हैं। इसीलिए मैं कहता हूं कि श्री सन्थानम ने सही प्रश्न उठाया है। हमें कोई समय-सीमा निर्धारित करनी ही चाहिए, चाहे संविधान में करें—और मैं समझता हूं कि ऐसा व्यवहार करना बेहतर होगा—चाहे किसी संकल्प द्वारा करें, जिससे कि उस समय-सीमा के समाप्त होने पर इन विधानमंडलों के पास कोई अधिकार न रह जाए और उनके स्थान पर नये विधानमंडल अस्तित्व में आएं। ऐसा करना न केवल संवैधानिक दृष्टि से आवश्यक है, अपितु देश के लोगों के लिए भी आवश्यक है, चूंकि वे कह सकते हैं कि इसमें विलम्ब होगा, इत्यादि, इत्यादि। यहां कोई समय-सीमा अवश्य निर्धारित की जानी चाहिए जिससे इस हेतु एक प्रकार से प्रोत्साहन मिलेगा कि ये विधानमंडल यथासम्भव शीघ्र अस्तित्व में लाए जाएं। मैं कह नहीं सकता कि समय-सीमा क्या हो, एक वर्ष, डेढ़ वर्ष या दो वर्षों की सीमा निर्धारित की जा सकती है। हाल ही में, नये राज्य संघ बनाए गए हैं। और वहां प्रबन्ध करने के लिए एक वर्ष की कालावधि अपर्याप्त हो सकती है। कुछ भी हो, कालावधि दो वर्षों से अधिक नहीं होनी चाहिए। दो वर्षों के अन्त में, हमारे देश में नई संसद और प्रत्येक राज्य का नया विधानमंडल अवश्य बने।

***श्री बी. दास** (उड़ीसाः जनरल): महोदय, मुझे अपने माननीय मित्र श्री सन्थानम का यह विचार सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई कि संविधान एक निश्चित तिथि तक लागू हो जाना चाहिए। मेरा अपने कांग्रेस मंत्रिमंडल का यह अनुभव रहा है कि वे निर्धारित समय का पालन नहीं करते। उन्होंने उन उत्तरदायित्वों को निभाने से बचने का प्रयास किया है जो इस सदन के या संसद के नहीं अपितु मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व हैं। मान लीजिए हम जनवरी, 1951 की समय-सीमा निर्धारित करते हैं तो मंत्रिमंडल के मंत्रियों और प्रान्तों में मंत्रियों का कर्तव्य हो जाएगा कि वे निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन कराएं और मतदाता सूचियां तैयार कराएं। क्या मेरे माननीय मित्र श्री सन्थानम या यहां उपस्थित मंत्रिमंडल का कोई अन्य सदस्य मुझे बता सकता है कि इस माननीय सदन की इच्छाओं का पालन करने के लिए उन्होंने कहां तक प्रगति की है? हम, जो जनता के प्रतिनिधि हैं, देश की जागरूक लोकतांत्रिक राय व्यक्त करनी होती है। हमने प्रारूप संविधान के उन संवैधानिक पहलुओं को कार्य रूप देने के लिए इन मंत्रिमंडलीय मंत्रियों को और इनके सहयोगियों को कार्यपालिका के रूप में नियुक्त किया है। यदि वे अपने कर्तव्यों

[श्री बी. दास]

का पालन नहीं करते तो विधान सभाओं को भंग करने हेतु एक निश्चित तिथि निर्धारित करने के लिए इस सदन को कहने का कोई उपयोग नहीं है। मैं एक बात जानना चाहता हूं। मान लीजिए 1 जनवरी, 1951 की तिथि निर्धारित कर दी जाती है और मान लीजिए कार्यपालिका, चाहे वह हमारा अपना कांग्रेस मंत्रिमंडल हो या प्रांतों के मंत्रिमंडल हों, इस उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं करती तो क्या मेरे माननीय मित्र श्री सन्थानम या यहां उपस्थित अन्य मंत्री हमें बताएंगे कि इस संविधान में या उस संकल्प में, जो अन्त में इस सदन को पारित करना होगा, कैसे व्यवस्था की जाए कि यहां के मंत्रिमंडल को और प्रांतों के मंत्रिमंडल को ऐसे आदर्शों का पालन करना ही होगा? मैं घोड़े को पानी तक तो ले जा सकता हूं परन्तु मैं उसे पानी पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। लोग मंत्री तो नियुक्त कर सकते हैं, परन्तु मंत्रियों को ही वे समस्याएं हल करनी होंगी जिनके लिए उन्हें भारत सरकार के कार्यपालिका प्रमुख के रूप में नियुक्त किया जाता है। भारत सरकार की और प्रांतीय मंत्रियों की अतीत की परम्पराओं से इस बात का पता नहीं चलता कि वे लोकतंत्र के लिए सब कुछ जल्दी-जल्दी करना चाहते हों। मैं किसी मंत्री पर आक्षेप नहीं कर रहा हूं परन्तु मैं यह अवश्य कहता हूं कि 15 अगस्त, 1947 के पश्चात् गरीबी दूर करने के लिए, सामाजिक न्याय करने के लिए, उनके सामूहिक काम से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि वे इस संविधान में समाविष्ट उन लोकतांत्रिक सिद्धांन्तों को कार्य रूप देने के लिए बहुत उत्सुक रहे हों। यह काम सरकार और मंत्रिमंडल के सदस्यों और उनके सहयोगी अन्य मंत्रियों का है कि वे इस विषय पर विचार-विमर्श करके एक संकल्प लाएं जिस पर यह सदन पूरी सहानुभूति से विचार करेगा। मेरी इच्छा तो यह है कि यह सदन 26 जनवरी, 1950 को भंग कर दिया जाए, परन्तु मुझे विश्वास नहीं है, और मैं नहीं समझता कि वर्तमान मंत्रिमंडल ने और उनके सहयोगी अन्य मंत्रियों ने इस संविधान को कार्य रूप देने सम्बंधी समस्याओं पर विचार किया है। सदन के भीतर और बाहर यह दायित्व मंत्रिमंडलीय मंत्रियों का है, न कि इस सदन के सदस्यों का। परन्तु मैं उनका इस बात पर समर्थन करने के लिए तैयार हूं कि सदन ऐसे संकल्प पर विचार करे और उसे पारित करें कि संविधान को कार्य रूप देने में विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए। उसका उत्तरदायित्व, उसे कार्य रूप देने का उत्तरदायित्व, यहां के और प्रांतों के मंत्रिमंडलों के सदस्यों का है, न कि हमारा या इस लोकतांत्रिक सदन का।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, पिछले कुछ दिनों में हमारी रेलगाड़ियों की, यहां तक कि प्रसिद्ध ग्रांड ट्रंक एक्सप्रैस की भी गति तेज हो जाने के साथ यही उचित था कि हमारे रेल राज्यमंत्री श्री सन्थानम सदन के समक्ष आएं और संविधान निर्माण की गति तेज करने के लिए कहें। यह अनिवार्य है, यह बहुत वांछनीय है कि वह ऐसा करें। परन्तु वह भी यह बात भूल नहीं सकते कि ग्रांड ट्रंक एक्सप्रैस आज भी निर्धारित समय के अनुसार नहीं चलती। पिछले इतवार जब मैं यहां पहुंचा तो ग्रांड ट्रंक एक्सप्रैस साढ़े पांच या छः घण्टे देर से चल रही थी।

***एक माननीय सदस्यः** पंजाब मेल भी।

***श्री एच.वी. कामतः** पंजाब मेल के बारे में तो मैं जानता नहीं, ग्रांड ट्रंक एक्सप्रैस निर्धारित समय से 6 घंटे पीछे चल रही थी, मैं 8.10 या 8.15 बजे की बजाय 2.30 बजे पहुंचा था।

***माननीय श्री के. सन्थानमः** माननीय सदस्य को याद होगा कि बाढ़ आई हुई थी।

***श्री आर.के. सिधवाः** नये इंजनों वाली गाड़ियां लेट हो जाती हैं।

***अध्यक्षः** मैं आशा करता हूं कि सदस्य बाढ़, रेलों के देरी से चलने और देरी से पहुंचने की चर्चा न करके, अपनी बात को संविधान तक सीमित रखेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उसी बात पर आ रहा था। मेरे माननीय मित्र श्री सन्थानम ने जो प्रश्न उठाया है.....

***अध्यक्षः** उन्होंने रेलों के समय और बाढ़ का प्रश्न नहीं उठाया।

***श्री एच.वी. कामतः** महोदय, मुझे आशा है कि जो उदाहरण मैंने दिया है वह आप समझ गये होंगे। मैं यह बात करना चाहता था कि हम अपने मन में निश्चय कर लेते हैं और बहुत अच्छे संकल्प भी पारित कर लेते हैं परन्तु कहीं न कहीं किसी न किसी कारण बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं। मैं सदन को स्मरण करा दूं कि संसार में ऐसी श्रेष्ठ शक्तियां भी हैं जो जन-जीवन की भाग्य-निर्माता हैं। मैं चाहता हूं कि राज्यमंत्री के नाते श्री सन्थानम यह बात ध्यान में रखें कि इस विशाल जगत में कहीं कुछ भी हो सकता है जिससे हमारी सब योजनाएं धरी-धराई रह सकती हैं। मान लीजिए—ईश्वर न करे—कल यूरोप में युद्ध छिड़ जाए, तब संविधान के अध्याय 11 के अन्तर्गत सब उपबंध स्थगित कर दिये जायेंगे और निर्वाचन नहीं होंगे। फिर, मान लीजिए कि देश में गड़बड़ हो जाती है या पुनरुत्थान हो जाता है, आपातकाल की घोषणा हो जाती है, तब राष्ट्रपति सब शक्तियां अपने हाथ में ले लेंगे।

मेरी शीघ्र निर्वाचन कराये जाने की इच्छा किसी से भी कम नहीं है। यदि आवश्यक हो तो आगामी फरवरी मास में निर्वाचन करा लीजिए, परन्तु निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होने चाहिएं, न कि "कैबिनेट मिशन" की पुरानी योजना के अनुसार। हमने गत वर्ष संकल्प पारित करके कहा था कि मतदाता सूचियां यथासम्भव शीघ्र तैयार की जाएं ताकि 1950 में निर्वाचन कराए जा सकें। क्या हमने शब्द एवं भावना में उस संकल्प को कार्यान्वित किया है? प्रान्तों तथा रियासतों की सरकारों ने मतदाता सूचियां तैयार करने के इस कार्य में कितनी प्रगति की है? पूर्व इसके कि श्री सन्थानम संविधान के अन्तर्गत निर्वाचनों के लिए समय-सीमा निर्धारित करने की बात कहें, उन्हें इस पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। मैं इस सभा को भंग करने के विरुद्ध नहीं हूं, परन्तु 1946 की पुरानी योजना के अनुसार निर्वाचन कराने का क्या उपयोग है? यदि निर्वाचन कराए जाने हैं तो वे निश्चय ही नये संविधान के अन्तर्गत होने चाहिएं।

***अध्यक्षः** श्री सन्थानम ने पुरानी योजना की बात नहीं सोची।

***श्री एच.वी. कामतः** उन्होंने सदन को भंग करने और फिर से निर्वाचन कराने की बात कही है।

***अध्यक्षः** "कैबिनेट मिशन" योजना के अंतर्गत नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है, महोदय। तब तो एक ही मार्ग है और वह है इस संविधान के अंतर्गत निर्वाचन कराने का, जिससे मैं सहमत हूं परन्तु इससे जो कठिनाइयां उत्पन्न होंगी उन्हें ध्यान में रखते हुए क्या उन्हें अपने मन में विश्वास है कि यदि हम समय-सीमा निर्धारित करते हैं तो हम निर्वाचन करा सकेंगे? हम एक संकल्प पारित करके विभिन्न सरकारों को निर्देश दे सकते हैं कि वे निर्वाचन के लिए तैयारियां कर लें। श्री सन्थानम ने फ्रांस के संविधान का

[श्री एच.वी. कामत]

उल्लेख किया। मैंने फ्रांस के नवीनतम संविधान का तो अध्ययन नहीं किया परन्तु मैं उन्हें बता सकता हूं कि बॉन संविधान में और इटली के नवीनतम संविधान में नए संविधान के अन्तर्गत निर्वाचन कराने के लिए कोई तिथि निर्धारित नहीं कर गई है।

जहां तक श्री त्यागी द्वारा उठाये गये प्रश्न का संबंध है, मैं उनसे सहमत हूं कि इस अनुच्छेद में खण्ड (3) का समावेश करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमने आदतन इसे सम्मिलत कर लिया है। क्या मैं डॉ. अम्बेडकर को और प्रारूप समिति को बता सकता हूं कि भाग छः के अध्याय 3 में राज्य विधानमंडलों का उल्लेख है? वह मुख्य शीर्षक है और राज्य विधानमंडल के अधिकारियों के विषय में उसका एक भाग है—एक उप-अध्याय। जब हम राज्य के सम्पूर्ण विधानमंडल की निरंतरता को अन्तरिम रूप से बनाये रखने के लिए उपबन्ध कर रहे हैं तो क्या विशेष रूप से अध्यक्ष का उल्लेख करने में कोई सार्थकता है, और यदि प्रारूप समिति और डॉ. अम्बेडकर ऐसा करना आवश्यक समझते हैं तो डिप्टी स्पीकर और उपरि सदन के डिप्टी प्रेजीडेंट का भी उल्लेख क्यों न किया जाए? भाग छः के अध्याय 3 में उनका उल्लेख किया गया है। अन्यथा इनको पूर्णतया हटा दिया जाए चूंकि ये सब समूचे रूप में विधानमंडल के अंग हैं और इस अनुच्छेद 312 के खण्ड (1) और खण्ड (2) में समूचे रूप में राज्य विधानमंडल का उल्लेख किया गया है, अतः अन्य सब कुछ यहां तक कि कार्य-संचालन आदि भी इस अध्याय 3 के अंग हैं। यदि इस खण्ड को आवश्यक माना जाता है तो सदस्यों के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के लिए भी यह कह कर कि वे संविधान के प्रारम्भ से पहले की भांति विद्यमान रहेंगी या इसी प्रकार की कोई अन्य बात कहकर उपबन्ध में क्यों नहीं किया जाए। अतः मेरा सुझाव है कि खण्ड (3) को हटा दिया जाए।

***अध्यक्षः** श्री भारती, बेहतर है कि आप इस विषय पर थोड़ा ही बोलें चूंकि यह वास्तव में प्रस्तुत अनुच्छेद से उत्पन्न नहीं होता।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** बहुत अच्छा, महोदय मेरा बोलने का बिल्कुल इरादा नहीं था। मैं संक्षेप में आपके और माननीय सदन के ध्यान में यह बात लाऊंगा कि हमने क्या किया है। क्या श्री सन्थानम का दृष्टिकोण यह है कि यदि हम एक निश्चित तिथि निर्धारित नहीं करते तो यह धारणा बन सकती है कि सम्भवतया यह सदन निरन्तर बना रहना चाहता है और निर्वाचन कराने में विलम्ब करना चाहता है, जिसके भीषण परिणाम हो सकते हैं। मैं यह बात आपके और इस सदन के ध्यान में लाना चाहता हूं कि यह सदन माननीय पंडत नेहरू द्वारा 8 जनवरी, 1949 को पेश किये गये एक संकल्प को पहले ही पारित कर चुका है, जब वाइस प्रेजीडेंट पीठासीन थे। मैं मामले के इस पहलू की ओर ही ध्यान आकर्षित करना चाहता था। संकल्प का पाठ इस प्रकार हैः

> "संकल्प किया जाता है कि मतदाता सूचियां तैयार करने और सभी आवश्यक कदम उठाने के लिए सम्बन्धित प्राधिकारियों को तुरन्त अनुदेश जारी किए जाएं ताकि नये संविधान के अन्तर्गत विधानमंडलों के निर्वाचन वर्ष 1950 में यथासम्भव शीघ्र हो सकें।"

8 जनवरी, 1949 को यह संकल्प हमने पारित किया था। इस संकल्प पर बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने इस संकल्प के विस्तार का स्पष्ट उल्लेख किया है। मैं उसका केवल एक अंश पढ़कर सुनाऊंगाः

"इस संकल्प का उद्देश्य केवल यह घोषणा करना है कि इस सभा का इरादा यह है कि जहां तक सम्भव हो निर्वाचन वर्ष 1950 में किसी समय हों, परन्तु संकल्प का वास्तविक उद्देश्य यह है कि मतदाता सूचियां, जो सब निर्वाचनों का आधार होती हैं, तैयार करने वाले प्रभारी प्राधिकारियों को कुछ ठोस निर्देश दिये जाएं। मात्र यह घोषणा करना निरर्थक एवं उद्देश्यहीन होगा कि इस संविधान सभा की इच्छा है कि निर्वाचन 1950 में होने चाहिए, इत्यादि।"

अतः हम यह संकल्प पहले ही पारित कर चुके हैं और मैं नहीं सोच सकता कि श्री सन्थानम समझते हैं कि यह संकल्प नाम के लिए ही पारित किया गया है और इसे कार्य रूप देने का कोई इरादा नहीं है। मैं समझता हूं कि वह ऐसा नहीं सोचते। इस सभा ने यही सोचकर यह संकल्प पारित किया है कि यथासम्भव शीघ्र निर्वाचन कराए जाएं। मैं केवल इसलिए चिन्तित हूं कि बाहर यह धारणा न बने कि यह सभा किसी न किसी तरह अपना अस्तित्व निरन्तर बनाए रखना चाहेगी। हमारे मन में यह बात कभी नहीं आनी चाहिए कि निर्वाचन कराने में उस समय से एक मिनट भी विलम्ब हो जो परिस्थितियों के अनुसार पूर्णतया आवश्यक हो जाये, परन्तु यह व्यावहारिक कठिनाई तो है ही। मान लीजिए हम एक तिथि निर्धारित कर देते हैं, उसका क्या अर्थ है? यदि किन्हीं अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण हम निर्वाचन नहीं करा सके तो हम क्या करेंगे? इसीलिए मैं कहता हूं कि यह नहीं समझा जाना चाहिए कि कोई तिथि निर्धारित नहीं करने का अर्थ है कि यह सभा अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती है। पहले ही हम संकल्प पारित कर चुके हैं और हम इसके अनुसार कार्य करना चाहते हैं और इस सभा का यही इरादा है कि निर्वाचन यथासम्भव शीघ्र कराए जाएं। महोदय, मैं केवल यही बात सदन के ध्यान में लाना चाहता था।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि इस प्रश्न पर चर्चा जारी रखना आवश्यक है। यदि मुझे यह सूचना मिली होती कि यह प्रश्न उठाया जाएगा तो मैं इस बारे में उठाये गये कदमों के विषय में अद्यतन रिपोर्ट प्राप्त कर लेता और यदि सम्भव हुआ तो आज नहीं तो कल, मैं इस बारे में एक रिपोर्ट सभा के समक्ष रखूंगा जिसमें दर्शाया गया हो कि मतदाता सूचियां तैयार करने और निर्वाचनों सम्बन्धी अन्य मामलों के विषय में क्या कदम उठाए जा चुके हैं और कितनी प्रगति हो चुकी है। जैसा कि बताया जा चुका है, इस सभा ने इस आशय का संकल्प पारित किया है कि इस दिशा में कदम उठाए जाने चाहिए और संविधान सभा सचिवालय इस विषय में उठाये गये कदमों के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों के साथ पत्र-व्यवहार करता रहा है और कदम निस्संदेह उठाए गए हैं। मेरी केवल यही इच्छा है कि माननीय सदस्य यह याद रखें कि हमने वयस्क मताधिकार का प्रयोग करने का निश्चय किया है और यदि हम सोचें कि इसका निहित अर्थ क्या है तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि यह काम कितना बड़ा है। हमारी इस समय जितनी जनसंख्या है और मतदाताओं के पंजीयन पर आधारित जो जानकारी हमारे पास है उससे पता चलता है कि हमारी मतदाता सूचियों में 17 करोड़ और 18 करोड़ के बीच नाम होंगे। इतनी बड़ी मतदाता सूचियों के मुद्रण का ही काम बहुत बड़ा काम है जिसे करने में, इतना बड़ा काम करने वाले मुद्रणालयों का पता लगाने में हमारी सरकारों को काफी कठिनाई आ रही है। मैं स्वयं एक दिन हिसाब लगा रहा था कि सभी प्रांतों के लिए मतदाता सूचियों का आकार-प्रकार कितना बड़ा होगा और मैंने देखा कि वह लगभग तीन चौथाई फरलांग बैठेगी। यदि हम इस तथ्य को ध्यान में रखें तो आप मानेंगे कि यदि इस काम में विलम्ब होता है तो वह प्रान्तीय या केन्द्रीय सरकार द्वारा जानबूझ कर किया हुआ नहीं होगा अपितु इसलिए होगा कि यह काम ही इतना बड़ा है।

[अध्यक्ष]

मैं समझता हूं कि इस प्रश्न पर सभी प्रकार की अटकलबाजियां इससे समाप्त हो जानी चाहिए। हम भरसक प्रयास कर रहे हैं और वर्तमान परामर्श के अनुसार जो सूचना हमें प्रांतों से प्राप्त हुई है उससे हमें आशा हो गई है कि निर्वाचन 1950-51 की शरद ऋतु के दौरान, अर्थात् नवम्बर 1950 और फरवरी या मार्च 1951 के दौरान किसी समय होंगे। हम यही आशा करते हैं। परन्तु यदि अप्रत्याशित कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि हमें उस समय क्या करना पड़े।

***श्री आर.के. सिधवा:** महोदय, जो कुछ आपने कहा है कि उसके पश्चात् मैं कोई भाषण नहीं देना चाहता। परन्तु मैं केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि श्री सन्थानम ने जो कुछ कहा है उससे इस सदन से बाहर जनता के मन में बहुत बुरी धारणा बन सकती है। अत: महोदय, मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपने स्थिति स्पष्ट कर दी है। मैं इतना ही कहना चाहूंगा कि श्री सन्थानम को, जो एक जिम्मेदार मन्त्री हैं, इतने उत्तरदायी ढंग से नहीं बोलना चाहिए था। इस संविधान सभा के पश्चात् निर्वाचन की तिथि कौन निर्धारित करेगा? तब मंत्रिमंडल यह कार्य करेगा। वह छ: माह पश्चात् तिथि निर्धारित करे, परन्तु इसका निर्णय उन्हें करना होगा और उनके लिए यह कहना उचित नहीं है कि सदन अपना कार्यकाल निरन्तर बनाए रखना चाहता है। महोदय, मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपने इस बारे में काफी रुचि लेकर कहा है कि निर्वाचन यथासम्भव शीघ्र होंगे। मुझे यह बात कहनी पड़ी ताकि ऐसा न हो कि श्री सन्थानम के कथन से गलत धारणा बन जाए। मुझे बड़ा खेद है कि उन्होंने इस प्रकार की बात कही।

***अध्यक्ष:** मैं तो नहीं समझता कि उन्होंने ऐसा कहा है। मैं नहीं समझता कि यह टिप्पणी न्यायोचित है। मैं इस पर आगे चर्चा करना नहीं चाहता। मैं नहीं समझता कि यह आवश्यक है। यदि कोई सदस्य अनुच्छेद के विषय में बोलना चाहे तो वह बोल सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर** (मद्रास: जनरल): महोदय, वर्तमान विधानमंडलों के सदन या सदनों को बनाये रखने के लिए विस्तृत उपबंध किए गए हैं और मंत्री नियुक्त करने के लिए उपबंध हैं। परन्तु इस संक्रमण-काल में, यदि आवश्यक हो जाए तो, किसी सदन को भंग करने के लिए कोई उपबन्ध नहीं है। महोदय, किसी सदन को भंग करने की आवश्यकता पड़ सकती है और उस दृष्टि से श्री सन्थानम द्वारा दिया गया सुझाव बहुत आवश्यक हो जाता है। क्या कोई यह चाहेगा कि इस सभा का कार्यकाल आगे बढ़े? जी, नहीं। परन्तु ऐसे किसी उपबंध के अभाव को देखते हुए.....

***श्री आर.के. सिधवा:** महोदय, आपने कहा है कि इस प्रश्न पर और चर्चा नहीं होनी चाहिए तो क्या यह संगत है?

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर:** मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि विधानमंडलों के वर्तमान सदनों को भंग करने के लिए कोई उपबंध नहीं है। मुझे प्रसन्नता है कि श्री सिधवा ने यह कहने के लिए कि यह संगत है या नहीं है अध्यक्ष महोदय की जगह ले ली है। मैं तो केवल विधानमंडलों को भंग करने के लिए उपबंधों के न होने की बात कह रहा था। यदि सदन तीन या चार वर्षों तक चलता है तो आवश्यकता पड़ने पर इसको भंग करने के लिए भी कोई उपबंध होना चाहिए। अत: मैं माननीय सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि वे इस बारे में गंभीरता

से विचार करें। क्या हमें वर्तमान सदनों को अधिक अवधि के लिए और सदा के लिए बने रहने का अधिकार देना है, चाहे ऐसा देश के हित में न हो? अनेक ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जब सदस्यों को लिए मतदाओं का मत प्राप्त करना आवश्यक हो जाए। उदाहरण के लिए जिन प्रान्तों में मद्यनिषेध लागू नहीं है वहां इसे लागू करने का प्रश्न हो सकता है। या कोई अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हो सकता है जिस पर हमें मतदाताओं का मत प्राप्त करना आवश्यक हो। तब क्या स्थिति होगी? यह एक कमी है जिसे दूर किया जाना चाहिए। मैं अब भी आग्रह करूंगा कि अभी समय है कि हम वर्तमान सदनों को भंग करने के बारे में उपबंध कर लें।

जहां तक विशेषाधिकारों का संबंध है जिसका मेरे मित्र ने उल्लेख किया है, मैं समझता हूं कि कार्य क्षेत्र, विषय-वस्तु इत्यादि के सम्बंध में वर्तमान सदनों का कार्य वर्तमान उपबन्धों के अनुसार चलता और विनियमित होता रहेगा। यह उन सूचियों के अनुसार होगा जो इस संविधान के साथ संलग्न हैं। विषय-वस्तु, कार्य-क्षेत्र और अन्य सभी क्रियाकलापों के विषय में तथा जिन नियमों एवं विनियमों के अनुसार वे कार्य करते हैं उनके विषय में संविधान के उपबन्ध लागू होंगे। अतः पहले की धाराओं में संसद सदस्यों को जो भी विशेषाधिकार हमने प्रदान किए हैं वे संसद सदस्यों को प्राप्त होंगे। एक ही अपवाद है कि संक्रमण-काल में निर्वाचन नहीं होंगे। संसद में प्रक्रिया संबंधी तथा प्रांतों में विधान-मंडलों की शक्तियों संबंधी अन्य सभी उपबंधों का विनियमन अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों आदि द्वारा होगा।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिम बंगाल: जनरल): महोदय, मैं चाहता हूं कि एक बात स्पष्ट की जाए माननीय सदस्य कौन से सदन को भंग करने की बात कर रहे हैं?

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर:** मैं विधानमंडल के सदन या सदनों को भंग करने की बात कर रहा हूं। कभी गम्भीर मतभेद हो सकते हैं कि देश के लोगों का मत प्राप्त करना पड़े। प्रधानमंत्री या गवर्नर विधानमंडल को भंग कर सकता है जिससे कि किसी महत्वपूर्ण विषय के बारे में लोगों का मत प्राप्त किया जा सके।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** क्या माननीय सदस्य के कहने का तात्पर्य यह है कि संक्रमण-काल में मतदाताओं को किसी विशिष्ट विषय पर अपना मत देने का अवसर मिलना चाहिए?

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर:** जी हां।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** संक्रमण-काल में भी? और सामान्य निर्वाचन भी हों? यह अनर्गल है।

***श्री अनन्तशयनम आयंगर:** यह इस पर निर्भर करता है कि संक्रमण-काल कितने समय तक रहता है। यदि थोड़ा रहता है तो हो सकता है कि विधानमंडल भंग करना आवश्यक ही न हो। परन्तु यदि संक्रमण-काल लम्बा हो तो क्या होगा? हम जानते हैं कि प्रत्येक वर्तमान सदस्य संसद या विधायक बने रहने के लिए उत्सुक होगा और प्रत्येक व्यक्ति जिसे अवसर नहीं मिला वह चाहेगा कि सदन भंग हो और उसे अवसर मिले। मैं किसी विशेष पर आक्षेप नहीं कर रहा हूं। मेरा तो इतना ही कहना है कि जिन परिस्थितियों का मैंने उल्लेख किया है उनमें कोई ऐसा उपबंध अवश्य होना चाहिए ताकि, यदि आवश्यक हो तो, विधान सभा को बदलने और मतदाताओं का मत प्राप्त करने का अवसर मिले।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, आपने जो कुछ कह दिया उसके पश्चात् मैं नहीं समझता कि मेरे लिए आगे कुछ कहना आवश्यक है। जहां तक संशोधित अनुच्छेद के गुण-दोषों का सम्बन्ध है इस बारे में मुझे कोई उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है, चूंकि किसी सदस्य ने कुछ कहा ही नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** "स्पीकर" सम्बन्धी खण्ड की क्या स्थिति है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह तो मूल प्रारूप में ही था।

***अध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 312 सभा के मतदान के लिए रखूंगा। प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 312 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 312 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 312-क से 312ङ, 312-छ और 312-ज

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 312 के पश्चात् निम्नलिखित नये अनुच्छेद रखे जाएं:

Provisions as to provisional Governor of Provinces.

'312A. Any person holding office as Governor in any Province immediately before the commencement of this Constitution shall after such commencement be the provisional Governor of the corresponding State for the time being specified in Part I of the First Schedule until a new Governor has been appointed in accordance with the provisions of Chapter II of Part VI of this Constitution and has entered upon his office.

Council of Ministers of Provisional Governors.

312B. Such persons as the provisional Governor of a State may appoint in this behalf shall become members of the Council of Ministers of the provisional Governor under this Constitution and until appointments are so made all persons holding office as Ministers for the corresponding State immediately before the commencement of this Constitution shall become and shall continue to hold office as members of the Council of Ministers of the provisional Governor of the State under this Constitution.

Provisions as to provisional Legislatures in States in Part III of the First Schedule.

312C. Until the House or Houses of the Legislature of a State for the time being specified in Part III of the First Schedule has or have been duly constituted and summoned to meet for the first session under the provisions of this Constitution the body or authority functioning immediately before such commencement as the

Legislature of the corresponding Indian State shall exercise the power and perform the duties conferred by the provisions of this Constitution on the House or Houses of the Legislature of the State so specified.

Council of Ministers for States in Part III of the First Schedule.

312D. Such persons as the Rajpramukh of a State for the time being specified in Part III of the First Schedule may appoint in this behalf shall become members of the Council of Ministers of such Rajpramukh under this Constitution and until appointments are so made all persons holding office as Ministers immediately before the commencement of this Constitution in the corresponding Indian State shall become and shall continue to hold office as members of the Council of Ministers of such Rajpramukh under this Constitution.

प्रान्तों के अस्थायी राज्यपालों के बारे में उपबंध

['312क. इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले जो व्यक्ति किसी प्रान्त में राज्यपाल के रूप में पदस्थ है वह ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रथम अनुसूची के भाग 1 में इस समय उल्लिखित तत्स्थानी राज्य का अस्थायी राज्यपाल तब तक होगा जब तक कि इस संविधान के भाग 6 के अध्याय 2 के उपबंधों के अनुसार नया राज्यपाल नियुक्त न हो गया हो और उसने अपना पद ग्रहण न कर लिया हो।

अस्थायी राज्यपालों की मंत्रिपरिषद

312ख. ऐसे व्यक्ति, जिन्हें किसी राज्य का अस्थायी राज्यपाल इस हेतु नियुक्त करे, इस संविधान के अधीन अस्थायी राज्यपाल की मंत्रिपरिषद के सदस्य होंगे तथा जब तक नियुक्तियां इस प्रकार की जायें तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी राज्य के लिए मंत्रियों के रूप में पदस्थ सब व्यक्ति इस संविधान के अधीन उस राज्य के अस्थायी राज्यपाल की मंत्रिपरिषद् के सदस्य हो जायेंगे तथा उस रूप में पदस्थ बने रहेंगे।

प्रथम अनुसूची के भाग 3 में राज्यों में अस्थायी विधान-मंडलों के बारे में उपबंध

312ग. जब तक प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के विधानमंडल का सदन या के सदन इस संविधान के उपबन्धों के अधीन सम्यक रूप से गठित न हो जायें तथा प्रथम सत्र में अधिवेशित होने के लिए आहुत न हो जायें तब तक वह निकाय या प्राधिकारी जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी देशी राज्य के विधानमंडल के रूप में कृत्यकारी था, इस प्रकार उल्लिखित राज्य के विधानमंडल के सदन या सदनों को इस संविधान के उपबंधों द्वारा दी गयी शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन करेगा।

प्रथम अनुसूची के भाग 3 में राज्यों के लिए मंत्रिपरिषद

312घ. ऐसे व्यक्ति जिन्हें प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित किसी राज्य का राज्यप्रमुख इस हेतु नियुक्त करे, इस संविधान के अधीन ऐसे राजप्रमुख की मंत्रिपरिषद् के सदस्य होंगे तथा जब तक नियुक्तियां इस प्रकार की न जायें तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी देशी राज्य के लिए मंत्रियों के रूप में पदस्थ सब व्यक्ति इस संविधान के अधीन ऐसे राजप्रमुख की मंत्रिपरिषद् के सदस्य हो जायेंगे तथा इस रूप में पदस्थ बने रहेंगे।' "]

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अनुच्छेद 312-ड. के स्थान पर मैं संशोधन संख्या 21 का प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 16 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 312-ड. के स्थान पर यह रखा जाए–

Provision as to Bill pending in the dominion Legislature and in the Legislatures of Provinces and Indian States.

'312E. For the purposes of elections held under any of the provisions of this Constitution during a period of three years from the commencement of this Constitution, the population of India or any Part thereof may not-withstanding anything contained in this Constitution be determined in such manner as the President may by order direct.'

312G. A Bill which immediately before the commencement of this Constitution was pending in the Legislature of the Dominion of India or in the Legislature of any Province or Indian State may subject to any provision to the contrary, which may be included in rules made by Parliament or the Legislature of the corresponding State under this Constitution be continued in Parliament or the Legislature of the corresponding State as the case may be as if the proceedings taken which reference to the Bill in the Cominion Legislature or in the Legislature of the Province or Indian State had been taken in Parliament or the Legislature of the corresponding State.

Transactions occurring between the commencement of the Constitution and 31st of March 1950.

312H. The provisions of this Constitution relating to the Consolidated Fund of India or of any State and appropriation of moneys out of such fund shall not apply in relation to moneys received or raised or expenditure incurred by the Government of India or the Government of any State between the commencement of this Constitution and the thirty first day of March 1950 both days inclusive and any expenditure incurred during that period shall be deemed to be duly authorised if the expenditure was specified in a schedule of authorised expenditure authenticated in accordance with the provisions of the Government of India Act, 1935 by the Governor General of the Dominion of India or the Governor of the corresponding Province or is authorised by the Rajpramukh of the State in accordance with such rules as were applicable to the authorisation of expenditure from the revenues of the corresponding Indian State immediately before such commencement.'

['312ड. इस संविधान के प्रारम्भ से तीन वर्ष की कालावधि में इस संविधान के उपबंधों में से किसी के अधीन किये गये निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिए भारत या उसके किसी भाग की जनसंख्या का निर्धारण, इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी रीति से किया जा सकेगा जैसाकि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्देशित करे।']

डोमिनियन विधानमंडल में तथा प्रांतों और भारतीय राज्यों के विधानमंडलों में लम्बित विधेयकों के बारे में उपबंध।

[312-छ. कोई विधेयक जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत डोमिनियन के विधानमंडल में अथवा किसी प्रांत या देशी राज्य के विधानमंडल में लम्बित था, किसी ऐसे प्रतिकूल उपबंध के अधीन रह कर जो यथास्थिति संसद अथवा तत्स्थानी राज्य के विधानमंडल द्वारा इस संविधान के अधीन निर्मित नियमों के अन्तर्गत किया जाए, यथास्थिति, संसद में अथवा तत्स्थानी राज्य के विधानमंडल में इस प्रकार चालू रखा जा सकेगा मानो कि डोमिनियम विधानमंडल में अथवा उस प्रान्त या देशी राज्य के विधानमंडल में उस विधेयक के बारे में की गई कार्यवाहियां संसद में या तत्स्थानी राज्य के विधानमंडल में की गई थीं।

संविधान के प्रारम्भ और 31 मार्च, 1950 के मध्य सम्पन्न हुआ कार्य।

312-ज. भारत की अथवा किसी राज्य की संचित निधि से ऐसी निधि में धनों के विनियोग से सम्बद्ध इस संविधान के उपबंध इन धनों के संबंध में लागू न होंगे जो धन कि इस संविधान के प्रारम्भ के दिन तथा 1950 की मार्च के 31वें दिन के बीच, इन दोनों दिनों को सम्मिलित करके, भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा प्राप्त या उत्थापित या व्यय किये गये हों तथा उस कालावधि में किया गया कोई व्यय, प्राधिकृत व्यय की ऐसी अनुसूची में उल्लिखित है जो भारत डोमिनियन के गवर्नर-जनरल या तत्स्थानी प्रांत के राज्यपाल द्वारा भारत शासन अधिनियम, 1935 के उपबंधों के अनुसार प्रमाणीकृत है अथवा राज्य के राजप्रमुख द्वारा ऐसे नियमों के अनुसार जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी देशी राज्य के राजस्वों में से व्यय को प्राधिकृत करने के लिए लागू थे, प्राधिकृत कर दिया गया है तो वह व्यय सम्यक् रूप से प्राधिकृत किया गया समझा जायेगा।' "]

मैं नहीं समझता कि इन अनुच्छेदों को कष्ट करने के लिए कुछ कहना आवश्यक है।

'नोटिस पेपर' में दो संशोधन हैं, संशोधन संख्या 18 और संशोधन संख्या 19, जिनके द्वारा अनुच्छेद 312-क और अनुच्छेद 312-ख में 'provisional' (अस्थायी)' शब्द हटाने का प्रस्ताव है। जो कुछ हम कर चुके हैं उसके अनुरूप मेरा ये संशोधन स्वीकार करने का विचार है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** सभापति महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 16 में, नये अनुच्छेद 312-क में, 'provisional (अस्थायी)' शब्द, जहां कहीं भी यह प्रयुक्त हुआ है, **निकाल दिया जाए।"**

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 16 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 312-ख में, 'provisional (अस्थायी)' शब्द, जहां कहीं भी यह प्रयुक्त हुआ हो, **निकाल दिया जाए।"**

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि डॉ. अम्बेडकर को ये संशोधन स्वीकार्य हैं। इसके समर्थन में मेरा तर्क यह है कि प्रेजीडेंट या गर्वनर के लिए "अस्थायी" शब्द का प्रयोग करना उनकी गरिमा के लिए अपमानजनक है। मेरा अनुरोध है कि सदन इन्हें स्वीकार करे।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संख्या 16 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 312-ड. में, 'by order directs (आदेश द्वारा निदेशित करे)' **शब्दों के स्थान पर** 'may, with the approval of Parliament (संसद की स्वीकृति से निदेशित करे)' **शब्द रखे जाएं।"**

[श्री एच.वी. कामत]

यदि सदन मेरा यह संशोधन स्वीकार कर लेता है तो नये अनुच्छेद 312-ङ का पाठ इस प्रकार होगा:

"For the purpose of elections held under any of the provisions of this Constitution during a period of three years from the commencement of this Constitution the population of India or of any part thereof may notwithstanding anything contained in this Constitution be determined in such manner as the President may with the approval of Parliament direct."

['इस संविधान के प्रारम्भ से तीन वर्ष की कालावधि में इस संविधान के उपबंधों में से किसी एक के अधीन किये गये निर्वाचनों के प्रयोजन के लिए, भारत या उसके किसी भाग की जनसंख्या का निर्धारण, इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी रीति से किया जा सकेगा जैसा राष्ट्रपति, संसद की स्वीकृति से, निदेशित करे।"]

यह अनुच्छेद 312-ड. उस नये अनुच्छेद के प्रारूप से कुछ भिन्न है जो हमें एक दिन पूर्व मिला था। कुछ भी हो, मेरा संशोधन इस प्रारूप अनुच्छेद पर लागू होगा। इस प्रस्तावित नये अनुच्छेद से इस संविधान के अन्तर्गत होने वाले निर्वाचनों का प्रश्न उत्पन्न होता है।

मुझे विश्वास है कि सदन मेरी इस बात से सहमत होगा कि निर्वाचनों का विषय एक ऐसा विषय है जिससे संसद का निकट का संबंध है और रहेगा और संसद को इसमें रुचि होगी। जहां तक भारत की या उसके किसी भाग की जनसंख्या के निर्धारण का संबंध है, मुझे ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता जिससे कि संसद् को इससे बिल्कुल अलग रखा जाए। हमने अभी एक अनुच्छेद स्वीकृत किया है जिसमें संविधान के उद्घाटन और गणराज्य की उद्घोषणा के बारे में विभिन्न विषयों के संबंध में उपबंध किया गया है और उस तारीख से अन्तरिम संसद भी कार्य करना आरम्भ करेगी। मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति द्वारा इस संसद के साथ परामर्श करने के विषय में कोई अन्तर्निहित कठिनाई नहीं है। मैंने ऐसा उपबंध करना नहीं चाहा है कि इन सब विषयों के बारे में संसद् अवश्य उपबंध करे। मैं तो केवल इतना चाहता हूं कि राष्ट्रपति इस संबंध में जो भी उपाय करे, जो भी कार्यवाही करे और जो भी कदम उठाये उन्हें संसद के समक्ष रखा जाए। मेरे संशोधन का केवल इतना ही उद्देश्य है कि राष्ट्रपति इस विषय में जो भी उपाय करे उनके लिए संसद की स्वीकृति अवश्य ली जाये।

जो संशोधन मैंने पेश किया है उसकी वांछनीयता और सुदृढ़ता के बारे में मैं विस्तार से कुछ कहना नहीं चाहता। मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद् का जिस विषय से संबंध है उसको देखते हुए यह संशोधन स्वयं ही सदन को स्वीकार्य होगा। मैं नहीं जानता कि भारत की या उसके किसी भाग की जनसंख्या के निर्धारण में राष्ट्रपति अपनी इच्छा से या अपनी मंत्रिपरिषद् के परामर्श से कार्यवाही करे। विधानमंडलों के निर्वाचनों सम्बन्धी यह विषय बहुत ही महत्वपूर्ण है और बेहतर यह होगा कि यह सदन इस आशय का उपबंध करे कि राष्ट्रपति द्वारा इस सम्बन्ध में किए गए कोई भी उपाय संसद के विचारार्थ और स्वीकृति या अस्वीकृति के लिए इसके समक्ष रखे जाने चाहिए। अन्यथा हम जिस संविधान का निर्माण कर रहे हैं उसकी जड़ों पर ही कुठाराघात करेंगे, जिसमें साधारणतया संसद की सर्वश्रेष्ठता को मान्यता दी गई है। हम प्रभुसत्तासम्पन्न लोकतंत्र गणराज्य के लिए व्यवस्था कर रहे हैं और मुझे इसका कोई औचित्य नहीं दिखाई देता कि निर्वाचनों जैसे महत्वपूर्ण

विषय में राष्ट्रपति द्वारा संसद को विश्वास में क्यों नहीं लिया जाना चाहिए। मुझे इसमें कोई अन्तर्निहित कठिनाई या कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती कि राष्ट्रपति अपने द्वारा किये जाने वाले उपायों को संसद के समक्ष रखे। सीधा मार्ग यही होगा कि राष्ट्रपति इस विषय में अपने आदेश संसद के समक्ष रखे, उसकी स्वीकृति मांगे और प्राप्त करे।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद का अन्य कोई संशोधन नहीं है, एक संशोधन है जिसकी सूचना श्री सिधवा ने दी है परन्तु वह वास्तव में अनुच्छेद 311 से सम्बन्धित है जो केन्द्रीय विधानमंडल के बारे में है। जब वह अनुच्छेद लिया जायेगा तो वह संशोधन संगत हो जाएगा, परन्तु वह संशोधन इस अनुच्छेद से संगत नहीं है जो प्रान्तों के विधानमंडलों के संबंध में है। हम इस अनुच्छेद 311 के विचारार्थ लिए जाने तक इसे रोके रखेंगे। क्या कोई अन्य सदस्य इस अनुच्छेद के विषय में कुछ कहना चाहता है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, यह बहु-प्रयोजनीय अनुच्छेद है, जिसमें संक्रमण काल की आवश्यकताओं के लिए उपबंध किया गया है। मैं तो केवल अनुच्छेद 312-ड. के बारे में कुछ कहना चाहता हूं और यहां मैं श्री कामत का समर्थन करता हूं जिन्होंने कहा कि राष्ट्रपति द्वारा जनसंख्या का निर्धारण तो किया जाए परन्तु उस पर संसद की स्वीकृति अवश्य प्राप्त की जाए। वास्तव में, मूल अनुच्छेद 312-ड. अधिक विस्तृत था। पुनरीक्षित अनुच्छेद 312-ङ में कहा गया है:

> "इस संविधान के प्रारम्भ से तीन वर्ष की कालावधि में इस संविधान के उपबंधों में से किसी के अधीन किये गये निर्वाचनों के लिए भारत या उसके किसी भाग की जनसंख्या का निर्धारण, इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, ऐसी रीति से किया जा सकेगा जैसा कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्देशित करें।"

मैं समझता हूं कि ऐसा उपबंध करके राष्ट्रपति को अत्यन्त व्यापक शक्ति प्रदान की जा रही है। यही सदन, जैसा कि प्रस्ताव है, संसद का रूप लेने वाला है। यह सदन संविधान पारित कर रहा है और हम संक्रमण काल के लिए उपबंध कर रहे हैं। यदि संक्रमण काल में कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके लिए संविधान में कोई उपबंध नहीं है तो यह संविधान सभा नई संसद के रूप में फिर भी रहेगी। यदि कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो उसे संसद को निर्दिष्ट किया जा सकता है और संसद उस प्रयोजनार्थ आवश्यक विधि बना सकती है।

अतः मैं नहीं समझता कि हमें ऐसी बातों के लिए राष्ट्रपति को शक्तियां प्रदान करके अपने संविधान पर बोझ डालना चाहिए जिनके लिए स्वयं संविधान में उपबंध नहीं किया गया है। यह सम्भव है कि संक्रमण काल में ऐसे प्रश्न उठ खड़े हों जिनके लिए संविधान में कोई उपबंध नहीं हैं, परन्तु हमें यह अधिकार राष्ट्रपति को नहीं देना चाहिए कि वह उनके बारे में निर्णय लें। यही सभा संसद के रूप में विद्यमान होगी। यदि कोई त्रुटि दिखाई देती है तो राष्ट्रपति उसे इस सदन को निर्दिष्ट कर सकता है और यह सदन उस आकस्मिकता के संबंध में व्यवस्था करने वाली विधि बना सकता है। वास्तव में, संसद में, संसद सदस्य जनसंख्या के आधार पर निर्वाचित होंगे। कम से कम पांच लाख और अधिक से अधिक साढ़े सात लाख लोगों का इस सदन में एक प्रतिनिधि होगा। अतः जनसंख्या के निर्धारण का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न बन जाता है और यह बात राष्ट्रपति की इच्छा पर नहीं छोड़ी जानी चाहिए, क्योंकि राष्ट्रपति की इच्छा वास्तव में वही होगी जो मंत्रियों का परामर्श होगा।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं समझता हूं कि इतनी महत्वपूर्ण शक्ति राष्ट्रपति को सौंपना सदन के लिए और देश के लिए अनुचित होगा। श्री कामत ने जो संशोधन पेश किया है वह बहुत उचित है और यदि ऐसे अवसर पर राष्ट्रपति कोई कार्यवाही करता है तो उसे संसद के समक्ष अवश्य रखा जाना चाहिए।

महोदय, इसके अतिरिक्त, निर्वाचन-क्षेत्रों के बारे में कोई उपबंध नहीं है। मैं चाहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर बताएं कि क्या कोई निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन के लिए संविधान में कोई उपबंध है, या क्या वह इस मामले को पूर्णतया निर्वाचन आयोग पर ही छोड़ना चाहते हैं? पहले, अनुच्छेद 312-ख के अन्तर्गत निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन भी राष्ट्रपति द्वारा किया जाना था। मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने वह उपबंध हटा दिया है मुझे मालूम नहीं कि क्या संविधान में इस आशय का उपबंध किया गया है कि परिसीमन आयोग का प्रतिवेदन स्वीकृति के लिए संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। साधारणतया तो उसे संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो आगामी जनवरी में अस्तित्व में जाएगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे मित्र श्री कामत और प्रो. सक्सेना ने इस अनुच्छेद 312-ड. का अति गहन अर्थ निकालने का प्रयास किया है। वास्तव में यह अनुच्छेद बहुत सीमित महत्व का है और इसमें जिस विषय पर उपबंध किया गया है वह है किसी क्षेत्र विशेष की जनसंख्या का निर्धारण। मेरे मित्र भली-भांति जानते हैं कि जो अनुच्छेद हम पारित कर चुके हैं उसके अनुसार निर्वाचन के प्रयोजनार्थ जनसंख्या वही मानी जाएगी जो विगत जनगणना द्वारा निर्धारित हुई हो। यह बात भी मान ली गई है कि भारत के विभाजन को देखते हुए 1941 की जनगणना के आंकड़ों को सही नहीं माना जा सकता और परिणामत: निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन और सीटों का निर्धारण कटे-छंटे प्रान्तों के आधार पर नहीं हो सकता जिनके जनसंख्या आंकड़ों में बहुत परिवर्तन आ चुका है। अत: किसी को तो यह निर्धारित करने की शक्ति देनी ही होगी कि कितनी जनसंख्या मानी जाये और कि क्या जनसंख्या वह मानी जाये जो पिछली जनगणना के अनुसार थी या फिर से गणना कराने पर बैठती है या फिर जैसा मैंने कहा, केवल मतदाताओं की संख्या के आधार पर जनसंख्या का निर्धारण किया जाए। ये सब बातें राष्ट्रपति पर छोड़ दी गई हैं और मैं नहीं समझ सका कि इस प्रकार के मामले में संसद की स्वीकृति से क्या होगा। यह एक मामले की विशिष्ट परिस्थितियों से उपजा पूर्णतया प्रशासनिक मामला है और मैं समझता हूं कि यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि निर्वाचन शीघ्र हो तो वांछनीय यही है कि इसे राष्ट्रपति पर छोड़ दिया जाए। अत: मैं अपने मित्र श्री कामत का संशोधन स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या डॉ. अम्बेडकर को सिद्धांत रूप में मेरे संशोधन पर कोई आपत्ति है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इसे स्वीकार नहीं करता। इस अनुच्छेद का उद्देश्य बहुत सीमित है। वह जनसंख्या के निर्धारण का प्रश्न है, न कि निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन का। निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन संविधान के उपबंधों के अनुसार होगा।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 312-क में 'provisional (अस्थायी)' शब्द, जहां कहीं भी यह प्रयुक्त हुआ हो, **निकाल दिया जाए।"**

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 312-ख में 'provisional (अस्थायी)' शब्द, जहां कहीं भी यह प्रयुक्त हुआ है, **निकाल दिया जाए।"**

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित नये अनुच्छेद 312-ड. में, 'by order directs (आदेश द्वारा निदेशित करे)' **शब्दों के स्थान पर** 'may, with the approval of Parliament (संसद की स्वीकृति से निदेशित करे)' **शब्द रखे जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 312-क, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 312-क, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 312-ख, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 312-ख, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 312-ग और अनुच्छेद 312-घ संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 312-ग और अनुच्छेद 312-घ संविधान में जोड़ दिए गए।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 312-ड., संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 312-ड. संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 312-छ और अनुच्छेद 312-ज संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 312-छ और अनुच्छेद 312-ज संविधान में जोड़ दिए गए।

अनुच्छेद 313

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 313 के स्थान पर यह रखा जाए:

Power of the President to remove difficulties.

'313 (1) The President may for the purpose of removing any difficulties particularly in relation to the transition from the provisions of the Government of India Act 1935 to the provisions of this Constitution by order direct that this Constitution shall during such period as may be specified in the order have effect subject to such adaptations whether by way of modification, addition or omission as he may deem to be necessary or expedient:

Provided that no such order shall be made after the first meeting of Parliament duly constituted under Chapter II of Part V of this Constitution.

(2) Every order made under clause (1) of this article shall be laid before each House of Parliament.'

कठिनाइयों को दूर करने की राष्ट्रपति की शक्ति

['313 (1) राष्ट्रपति किन्हीं कठिनाइयों को, विशेषतः भारत शासन अधिनियम, 1935 के उपबंधों से इस संविधान के उपबंधों में संक्रमण के संबंध में कठिनाइयों को, दूर करने के प्रयोजन से आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि यह संविधान उस आदेश में उल्लिखित कालावधि में ऐसे अनुकूलनों के अधीन, चाहे वे रूप भेद या जोड़ या लोप के रूप में हों, रह कर जैसे कि वह आवश्यक या इष्टकर समझे, प्रभावी होगा;

परंतु भाग 5 के अध्याय 2 के अधीन सम्यक् रूप से गठित संसद के प्रथम अधिवेशन के पश्चात् ऐसा कोई आदेश नहीं निकाला जाएगा।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन निकाला गया प्रत्येक आदेश संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा।' "]

यह भारत सरकार अधिनियम में किए गए उपबंध का पुनः प्रस्तुतीकरण है जो संक्रमण काल के लिए आवश्यक है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** महोदय मेरे नाम में चार संशोधन हैं, जिनका मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 313 में खण्ड (1) में कोष्ठक और अंक '(1)' तथा खण्ड (2) निकाल दिए जाएं।"

"कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में प्रस्तावित अनुच्छेद 313 के खण्ड (1) में, 'The President may (राष्ट्रपति)' **शब्द के पश्चात्** 'on being moved by Parliament or any Provincial Legislature in that behalf (इस संबंध में संसद द्वारा या किसी प्रांत के विधान मंडल द्वारा कहे जाने पर)' **शब्द अंतः स्थापित किये जाएं।"**

"कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 313 के खण्ड (1) में 'whether by way of modification, addition or omission (रूप भेद या जोड़ या लोप के रूप में)' **शब्दों के स्थान पर** 'by way of modification (रूपभेद के रूप में)' **शब्द रखे जाएं।"**

"that in amendment No. 23 of List I (First week), in clause 2 of the proposed Article 313, the words 'for its approval' be added at the end."

"कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 232 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 313 के खण्ड (2) में, 'प्रत्येक सदन के समक्ष' **शब्दों के पश्चात्** 'उसकी स्वीकृति के लिए' **शब्द जोड़ दिए जाएं।"**

मेरे संशोधनों के स्वरूप से ही यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि इन संशोधनों के पीछे क्या आशय है। अनुच्छेद 313 में प्रस्तावित रूप में इस उपबंध के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियां निश्चित ही भारत शासन अधिनियम की धारा 310 द्वारा महामहिम नरेश को प्रदत्त शक्तियों के समान हैं। परंतु उस अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियां बहुत सीमित थीं और, कुछ भी हो, धारा 310 में छः मास की सीमित अवधि रखी गई थी। यहां ऐसा कोई उपबंध नहीं है और इस बात का सुनिश्चय कदापि नहीं किया जा सकता है कि नई संसद की प्रथम बैठक कब होगी, जब तक कि इस परंतुक "परंतु ऐसा कोई आदेश इस संविधान के भाग 5 के अध्याय 2 के अधीन सम्यक् रूप से गठित संसद के प्रथम अधिवेशन के पश्चात् नहीं किया जाएगा" का अर्थ 26 जनवरी, जिस दिन नया संविधान प्रभावी हो जाएगा, के पश्चात् जारी करने वाले इस सदन के अधिवेशन से नहीं है। उस स्थिति में मैं अपने संशोधन पर बल नहीं देना चाहूंगा।

परंतु यदि राष्ट्रपति को प्रदान की जाने वाली ये शक्तियां नयी संसद के गठित हो जाने और कार्य करना आरंभ कर दिये जाने तक इसे प्राप्त रहनी हैं, जैसाकि इस मामले में स्पष्ट प्रतीत होता है, तो मैं समझता हूं कि ये शक्तियां असाधारण रूप से व्यापक हैं और केवल यह सीमा निर्धारित करना पर्याप्त नहीं होगा कि ये आदेश संसद के समक्ष रखे जाएं। चूंकि संविधान के किसी एक उपबंध को वापस लिए जाने के संबंध में जो शक्तियां हमने राष्ट्रपति को प्रदान की हैं, उनके अतिरिक्त यह एक ऐसा उपबंध है जिसे विशेष रूप से कठिनाइयों को दूर करने के लिए समाविष्ट करने का विचार है। परंतु यदि इन उपबंधों का उद्देश्य कठिनाइयों को दूर करना है तो यह कहना क्यों संभव नहीं है कि प्रस्ताव या तो संसद से आए या प्रांतीय विधानमंडलों से आए? यदि ऐसा रक्षोपाय विद्यमान होगा तो न केवल

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

अनुकूलन द्वारा रूप भेद करने, अपितु इस संविधान में उपबंधों को जोड़ने या लोप करने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करने में भी कोई कठिनाई नहीं होगी। अत: मैंने अपने एक संशोधन में सुझाव दिया है कि ये रूप भेद या परिवर्धन या लोक संसद की सिफारिश पर या किसी प्रांत के विधानमंडल की सिफारिश या सुझाव पर ही किए जाने चाहिएं।

यह स्पष्ट है कि जो संशोधन मैंने पेश किए हैं वे वैकल्पिक स्वरूप के हैं। दो प्रकार के संशोधन हैं। यदि यह व्यवस्था की जा सकती है कि इस संबंध में राष्ट्रपति के आदेश ऐसे विषयों तक सीमित होंगे जिनका सुझाव संसद या प्रांतीय विधानमंडल दें तो अन्य संशोधन आवश्यक नहीं होंगे। परंतु यदि वह स्वीकार्य नहीं हैं तो यह व्यवस्था करना आवश्यक होगा कि ऐसे आदेश संसद के सभा-पटल पर केवल रखे ही न जायें, अपितु उनके लिये संसद का अनुमोदन भी लिया जाये।

मैंने जो विचार व्यक्त किए हैं उनके संबंध में यदि डॉ. अम्बेडकर कुछ प्रकाश डालें और इस मामले से संबंधित स्थिति को स्पष्ट कर दें तो मैं इन संशोधनों पर जोर नहीं दूंगा। परंतु मेरा निजी विचार यह है कि यद्यपि यह धारा 310 पर आधारित है, पर इस संबंध में कोई समय-सीमा नहीं है और यदि इस उपबंध को इसके प्रस्तुत रूप में रहने दें तो हम एक साधारण से तर्क के आधार पर, जो आसानी से दिया जा सकता है कि किसी अमुक उपबंध से कठिनाइयां पैदा होता हैं या किसी कठिनाई को दूर करने के लिये कोई अन्य उपबंध अपेक्षित है, समूचे संविधान में से कुछ लोप करने अथवा उसमें कुछ जोड़ देने की बहुत विशाल एवं व्यापक शक्तियां प्रदान कर रहे हैं। 'कठिनाई' शब्द की कोई परिभाषा नहीं है और कोई भी कठिनाई जिसे राष्ट्रपति अपने स्वविवेक से कठिनाई समझते हों इस अनुच्छेद का अनुचित लाभ उठाने का पर्याप्त कारण होगी और उसे किसी न्यायालय में चुनौती भी नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार इसका गलत अर्थ लगाया जा सकता है जो संविधान व देश के लिये अहितकर सिद्ध हो सकता है। अत: इस संबंध में मेरा सुझाव यह है कि इस पर यदि संभव हो तो कुछ अधिक ध्यानपूर्वक विचार किया जाये अथवा कुछ स्पष्टीकरण दिया जाये जिससे मैं यह निर्णय कर सकूं कि मुझे अपने संशोधनों पर जोर देना है या नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे नाम से एक संशोधन है। संशोधनों की मुद्रित सूची, खंड 2 में संख्या 3320—परंतु मेरा विचार उसको प्रस्तुत करने का नहीं है। तथापि मैं इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि मुझे इस बात की आशंका है कि प्रारूप समिति ने इस संक्रमण काल की, जिससे हम गुजर रहे हैं, सही-सही व्याख्या नहीं की है। जो संक्रमण काल चल रहा है वह इससे कुछ भिन्न है। प्रारूप समिति ने इस प्रस्तावित अनुच्छेद में जिस संक्रमण काल का उल्लेख किया है वह भारत शासन अधिनियम 1935 और इस संविधान के बीच की अवधि है। कहीं कुछ भूल हुई है, मेरे विचार में प्रारूप समिति से कोई बात रह गयी है और उन्होंने संक्रमण काल की वर्तमान स्थिति का सही-सही विवेचन नहीं किया है। हम पर भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन शासन नहीं चलाया जा रहा है बल्कि भारत स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 द्वारा 1935 के उस अधिनियम के अनुकूलित रूप के अधीन चलाया जा रहा है। अत: मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर जिन्होंने संवैधानिक पहलुओं और उनके औचित्य पर सूक्ष्मता से विचार किया है और जो संविधान के पंडित हैं संक्रमण काल की इस समय की गयी व्याख्या से अधिक सही-सही व्याख्या करें तो बेहतर होगा। यह कहना अधिक उचित होगा—"भारत स्वतंत्रता

अधिनियम, 1947 के अधीन अनुकूलित रूप में भारत शासन अधिनियम, 1935 के उपबंधों से इस संविधान के उपबंधों तक संक्रमण।" यह बिल्कुल स्पष्ट है कि 1935 का मूल अधिनियम, अब प्रवर्तन में नहीं है और अब हम पर अनुकूलित अधिनियम लागू होता है। डॉ. अम्बेडकर के लिये व प्रारूप समिति के लिये इसमें संशोधन करना बेहतर रहेगा—इसमें संशोधन किया जा सकता है—और मुझे आशा है कि हम तीसरे वाचन में इसे भिन्न रूप में पायेंगे। मुझे विश्वास है कि सभा को इस संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं होगी। मैंने इसकी सूचना नहीं दी है, परंतु जब डॉ. अम्बेडकर ने इसको पेश किया तब मेरे मन में विचार आया कि उनका भी ध्यान, जैसे कहा जाता है कि उत्कृष्टतम व्यक्तियों से भी भूलें हो जाती हैं, संक्रमण काल, जिससे हम गुजर रहे हैं, के विवरण की त्रुटि अथवा अनौचित्य की ओर नहीं गया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद का उपबंध भारत शासन अधिनियम, 1935 से नये संविधान तक के संक्रमण काल के दौरान पैदा होने वाली किसी आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिये ही किया गया है। यह सोचा गया है कि संविधान में, जिसका हमने मसौदा तैयार किया है, कोई कमी रह सकती है, अत: संक्रमण काल में राष्ट्रपति को संविधान के संबंध में कुछ उपबंध करने की शक्तियां दी जानी चाहिएं, परंतु मैं महसूस करता हूं कि इस अनुच्छेद में उनको दी जाने वाली शक्तियां बहुत ही व्यापक हैं। इसमें कहा गया है कि "यह संविधान... रूप भेद, जोड़ या लोप के रूप में ऐसे अनुकूलनों के अधीन रहते हुए प्रभावी होगा जो वह आवश्यक या इष्टकर समझे।" इस प्रकार राष्ट्रपति को संविधान में परिवर्तन करने की, संविधान की किन्हीं धाराओं का लोप करने की या उनमें रूप भेद करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है जिसके लिए वह यह तर्क दे सकता है कि ऐसा करना भारत शासन अधिनियम से नये संविधान तक के संक्रमण काल के लिये आवश्यक है। निस्संदेह इसका अर्थ यह है कि यदि संविधान सभा को ऐसी किसी आकस्मिक स्थिति का पहले से आभास मिल जाता तो वह उसके लिये उपबंध कर देती। मेरा सुझाव यह है कि यदि कोई ऐसी आकस्मिक स्थिति पैदा हो जाती है जिसका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता और उसके लिये डॉ. अम्बेडकर संविधान के भागों का रूप भेद करने, परिवर्धन करने या लोप करने की शक्तियां राष्ट्रपति को देना चाहते हैं तो संसद के रूप में यही इस काम को करने के लिए सक्षम होनी चाहिए। संविधान में पायी जाने वाली किसी कमी को दूर करने के लिये व्यवस्था करने हेतु इसी संसद का सत्र क्यों नहीं बुलाया जा सकता।

इसलिए मेरे विचार में इस शक्ति का दिया जाना बिल्कुल अनावश्यक है। वास्तव में किया यह जाना चाहिए कि इस संक्रमण काल में यदि किसी कमी अथवा त्रुटि का पता चलता है तो उसको दूर करने की व्यवस्था करने हेतु संसद को शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। संविधान से किसी उपबंध का लोप करने अथवा उसमें जोड़ने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करने का दृष्टान्त किसी अन्य संविधान में नहीं मिलता। यह तो एकदम असंगत बात है कि यह शक्ति राष्ट्रपति को दी जानी चाहिए जबकि यह संविधान सभा राष्ट्र की संसद के रूप में अस्तित्व में रहेगी। इस शक्ति का राष्ट्रपति को दिया जाना पूर्णरूपेण अलोकतंत्रीय है और इसको दिये जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जो भी कमी या त्रुटि सामने आये उसको दूर करने के लिये व्यवस्था करने हेतु संसद का सत्र बुलाया जाना चाहिये।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

यदि डॉ. अम्बेडकर ऐसा करने पर जोर देते हैं तो मैं यह सुझाव दूंगा कि हमें डॉ. देशमुख का संशोधन संख्या 33 स्वीकार कर लेना चाहिए कि यदि राष्ट्रपति परिवर्धन अथवा लोप द्वारा कोई रूपभेद करना चाहते हैं तो उनका अनुमोदन अथवा निरनुमोदन करने या रूपभेद करने हेतु एक मास या लगभग इतनी अवधि के भीतर संसद का सत्र बुलाया जाना चाहिए। राष्ट्रपति को इतनी व्यापक शक्तियां नहीं दी जानी चाहिए और सभा को उन्हें यह शक्ति देने की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, ऐसा प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 313 में किये गये उपबंधों की आवश्यकता के संबंध में भारी शंका है। मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने, जिन्होंने अपना संशोधन प्रस्तुत किया है, कहा है कि यदि मैं अनुच्छेद 313 में किये गये उपबंधों के सम्बन्ध में संतोषजनक स्पष्टीकरण दे दूं तो वह अपने संशोधन पर जोर नहीं देंगे। मेरे विचार में अनुच्छेद 313 के संबंध में कुछ तथ्यों को स्वीकार करना होगा। पहला तथ्य, जिसे मुझे आशा है कि सभी माननीय सदस्य स्वीकार करेंगे, इस प्रकार है। संक्रमण काल के दौरान कुछ कठिनाइयों का आना अवश्यम्भावी है जिनका प्रारूप समिति अथवा इस सभा के किसी सदस्य द्वारा इस समय पूर्वानुमान लगाया जाना संभव नहीं है और इसलिये उस संबंध में कोई उपबंध नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसी अप्रत्याशित कठिनाइयों के समाधान हेतु कुछ शक्ति किसी के पास अवश्य रहनी चाहिए।

अत: प्रश्न यह है कि किसी प्राधिकारी विशेष के पास ये शक्तियां किस सीमा तक व कितनी अवधि के लिये रहनी चाहिए। मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने कहा कि भारत शासन अधिनियम की धारा 310 के अधीन इस शक्ति की अवधि 6 महीने रखी गई है। मेरे विचार से वह गलती पर हैं। यह शक्ति 6 महीने तक उसके बाद रहनी थी जब भाग 3 प्रवर्तन में आ गया हो। हमारा उपबंध बहुत सीमित है। संवैधानिक उपबंधों के माध्यम से कठिनाइयों का समाधान करने हेतु अनुच्छेद 313 द्वारा प्रदत्त उस दिन स्वत: समाप्त हो जायेगी जिस दिन नये उपबंधों के अधीन नई संसद अस्तित्व में आ जायेगी। इसलिए हमारा विचार इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति को दी जाने वाली शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार, संशोधन करने के लिये सक्षम उचित प्राधिकार के अस्तित्व में आ जाने के बाद एक दिन के लिये भी देने का नहीं है। इस अनुच्छेद 313 की एक बात तो यह है।

इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि कठिनाइयां अवश्य आयेंगी और उनका समाधान भी किया जाना चाहिए और इस प्रयोजन के लिये शक्ति किसी न किसी के पास होनी चाहिए, विचारणीय प्रश्न वस्तुत: यह है: क्या यह शक्ति राष्ट्रपति के पास होनी चाहिए अथवा अस्थायी संसद के पास। इसका कोई अन्य विकल्प नहीं है। प्रारूप समिति ने अनुच्छेद 313 में निविष्ट उपबंधों को स्वीकार करना और राष्ट्रपति को शक्ति देना इस कारण वांछनीय समझा कि संक्रमणकालीन संसद का कार्यकाल बहुत थोड़ा है और वह ऐसे अनेक मामलों में व्यस्त रहेगी जिनके लिये संसदीय विधान अपेक्षित है और संक्रमण काल के दौरान संसद के लिये किसी ऐसे मामले से निपटना संभव नहीं होगा जिसका तत्काल समाधान करने की आवश्यकता हो।

मैं ऐसी कठिनाइयों के एक या दो उदाहरण देता हूं जो पैदा हो सकती हैं। हमने संविधान बनाते समय राज्यों और केंद्र के कराधान की शक्तियों में भारी परिवर्तन किये हैं। आगामी 26 जनवरी को जब यह संविधान अस्तित्व में आ जायेगा, विद्यमान भारत शासन अधिनियम के अधीन भारतीय राज्यों को प्राप्त कराधान की शक्तियां

स्वत: समाप्त हो जायेंगी। इसके परिणामस्वरूप संकट की स्थिति पैदा हो जायेगी और इसलिये इस मामले को विनियमित करना होगा। यदि हम इस मामले को अस्थाई संसद द्वारा विनियमित करायेंगे तो मेरे मित्र यह बात मानेंगे कि उसमें बहुत समय लगेगा और संकट की स्थिति जारी रहेगी। इसलिये एक विधेयक प्रस्तुत करने, उसके तीन वाचन कराने, उसे प्रवर समिति को भेजने, उस पर विचार के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत करने, उसका परिचालन करने आदि की साधारण संसदीय प्रक्रिया अपनाने के बजाय मेरे विचार में, संविधान को कठिनाइयों से बचाने के प्रयोजन से यह शक्ति राष्ट्रपति को दिया जाना वांछनीय होगा जिससे यह शीघ्रता से कार्यवाही कर सके। इसलिये जैसा मैंने कहा है कि गुणदोष के आधार पर यह प्रावधान आवश्यक है, धारा 310 में निविष्ट उपबंधों की तुलना में हमारा प्रस्ताव अत्यन्त सीमित है और मेरा निवेदन यह है कि इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सभा को अनुच्छेद 313 को स्वीकार करने में कोई गंभीर या मूलभूत आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

मेरे मित्र श्री कामत द्वारा उठाये गये मुद्दे के संबंध में मुझे यह कहना है कि मेरे विचार में वह यह मानेंगे कि भारत शासन अधिनियम 1935 का उल्लेख करने में प्रारूप समिति ने मूल संविधि व अनुकूलित संविधि के बीच कोई अंतर न रखकर कोई गलती नहीं की है, क्योंकि वह देखेंगे कि अनुकूलित रूप में संविधि में इस बात की व्यवस्था है कि उसका संक्षिप्त नाम "भारत शासन अधिनियम, 1935" रहेगा और मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जब इस अनुच्छेद की व्याख्या की जायेगी तब इसको उसी भावना से समझा जायेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? यदि राष्ट्रपति द्वारा दिये गये आदेश का संसद को अनुमोदन करने के लिए कहा जाये तो क्या इससे कोई हानि होगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** परन्तु "अनुमोदन" का क्या अर्थ है? ऐसा कराने में राष्ट्रपति द्वारा की गयी कार्यवाही को रद्द भी किया जा सकता है, जबकि इस उपबंध का उद्देश्य प्रभावी समाधान की व्यवस्था करना है। उस तरीके से राष्ट्रपति का आदेश तुरंत लागू नहीं किया जा सकता, जबकि हम चाहते हैं कि वह तुरंत लागू हो जाये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों को सभा के मतदान के लिये रखूंगा। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 37 ।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 313 के खंड (2) में 'each House of (के प्रत्येक सदन)' **शब्द निकाल दिये जायें।"**

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** महोदय मुझे अपने संशोधन संख्या 33 को छोड़कर संशोधन संख्या 30, 31 और 32 को वापस लेने की अनुमति दी जाये।

सभा की अनुमति से संशोधन संख्या 30, 31 और 32 वापस लिये गये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"that is amendment No. 23 of List I (First Week) in clause (2) of the proposed Article 313, the Words 'for its approval' be added at the end."

"कि सूची 1 (प्रथम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 313 के खंड (2) "प्रत्येक सदन के समक्ष" शब्दों के पश्चात् "उसकी स्वीकृति के लिए" शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मैं अब डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में, प्रस्तावित अनुच्छेद 313 को सभा के मतदान के लिये रखता हूं। प्रश्न यह है।

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 313, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 313, संशोधित रूप में संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में कार्य-सूची में कोई अन्य मद नहीं है। अब हम सभा को स्थगित करेंगे।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार): (सामान्य): हम सोमवार 10 बजे पुन: समवेत होंगे।

***अध्यक्ष:** अब हम सभा को सोमवार, दस बजे तक के लिये स्थगित करते हैं।

तत्पश्चात् सभा सोमवार, 10 अक्तूबर 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।

———————

Con. 3. X.2.49
320

अंक 10
संख्या 3

शुक्रवार
10 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर	2713
संविधान का प्रारूप-(जारी)	
[अनुच्छेद 306, 309, नये अनुच्छेद 310-क, 310-ख, 311-क, 311-ख, अनुच्छेद 312, नये अनुच्छेद 312-क से 312-ङ, 312-छ, 312-ज और अनुच्छेद 313 पर विचार]	2713-2824

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 10 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान सभा कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने शपथ ग्रहण की और रजिस्टर पर इस्ताक्षर किये:–

श्री हीरा वल्लभ त्रिपाठी (संयुक्त प्रान्त: जनरल)

संविधान का प्रारूप (जारी)

नवीन अनुच्छेद 283-क

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेदों पर विचार रखेंगे। अनुच्छेद 283क–श्री मुंशी।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं नवीन अनुच्छेद 283-क पेश करता हूं जो दूसरे सप्ताह की सूची में शामिल है। जिस अनुच्छेद को मैं सभा के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं। उसका पाठ इस प्रकार है:

Provision for protection of existing officers of certain services.

"283A. Except as otherwise expressly provided by this Constitution, every person who, being a member of a Service specified in clause (2) of article 282-B of this Constitution or a service which was known before the commencement of this Constitution as an All India service, continues on and after such commencement to serve under the Government of India or of a State shall be entitled to receive from the Government of India and the Government of the State which he is from time to time serving, the same conditions of service as respects remuneration, leave and pension, and the same rights as respects disciplinary matters or rights as similar thereto as changed circumstances may permit as that person was entitled to immediately before such commencement."

कतिपय सेवाओं के विद्यमान अधिकारियों के संरक्षण के लिये उपबंध।

["283क. इस संविधान द्वारा स्पष्टतापूर्वक उपबंधित अवस्था को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को, जो इस संविधान के अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) में उल्लिखित किसी सेवा अथवा इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व अखिल भारतीय सेवा के रूप में जानी जाने वाली सेवा का सदस्य होने के नाते, इस संविधान के प्रारम्भ पर और पश्चात् भारत की या किसी राज्य की सरकार के अधीन सेवा में बना रहता है, भारत सरकार और राज्य की सरकार से, जिसकी सेवा वह समय-समय पर करता रहता है, पारिश्रमिक, छुट्टी और निवृत्ति-वेतन के

---

* इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेज़ी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री के.एम. मुंशी]

बारे में उन्हीं सेवा शर्तों का तथा अनुशासनीय विषयों में बारे में उन्हीं अधिकारों का अथवा उनके तुल्य ऐसे अधिकारों का, जैसे कि परिवर्तित परिस्थितियों में सम्भव हों, हक होगा, जिनका कि उस व्यक्ति को ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले हक था।"]

महोदय, जैसा कि माननीय सदस्य पायेंगे, जो मूल प्रारूप परिचालित किया गया था, उसमें लिम्नलिखित शब्द रखे गये थे:

"इस संविधान के अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) में उल्लिखित सेवा अथवा इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व अखिल भारतीय सेवा के रूप में जानी जाने वाली सेवा का सदस्य रहा है।"

इसमें सिविल कर्मचारियों का बहुत बड़ा वर्ग शामिल था और अब उसे भारत में क्राउन की सिविल सेवा के सदस्यों तक ही सीमित कर दिया गया है जो इस संविधान के प्रारम्भ पर और उसके पश्चात् भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन सेवारत रहते आये हैं। इसलिए इसमें कोई वास्तविक अन्तर नहीं है सिवाय इसके कि स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा सिविल सेवा के कतिपय सदस्यों को दी गई गारंटी जारी रखी गयी है और मूल रूप से प्रस्तुत खण्ड के व्यापक अभिप्रेत अर्थों को अब सीमित कर दिया गया है।

इस संबंध में, मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि ब्रिटिश सरकार के साथ राष्ट्र के जिन नेताओं ने बातचीत की थी उनके द्वारा 15 अगस्त, 1947 से पूर्व दी गई कतिपय गारंटियों को ध्यान में रखते हुए कुछ आश्वासनों को स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 10 में स्थान दिया गया। स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 10 (2) इस प्रकार है:

मैं केवल विषय से सम्बन्धित भाग को पढ़ रहा हूं:

"प्रत्येक व्यक्ति जो सेक्रेटरी ऑफ स्टेट या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट इन कौंसिल द्वारा भारत में क्राउन की किसी असैनिक सेवा में नियुक्त होने के पश्चात् नियम दिन पर और उसके पश्चात् या तो नई डोमिनियनों का किसी प्रान्त अथवा उसके भाग की सरकार के अधीन सेवारत रहता है।"

(ख) इस अनुच्छेद के प्रयोजन के लिये महत्वपूर्ण नहीं है–

"उसको डोमिनियन सरकारों और प्रान्तीय अथवा उनके भागों की सरकारों से, जहां वह समय-समय पर सेवारत रहा हो, यथास्थिति... प्राप्त करने का अधिकार होगा"

उन्हीं शब्दों को अनुच्छेद 283-क में रखा गया है। वस्तुत: यह स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 10 के खण्ड 2 (क) का ही पुन: प्रस्तुतीकरण है और उन आश्वासनों पर आधारित है जो हमारे राष्ट्रीय नेताओं द्वारा 15 अगस्त से पूर्व और हमारी सरकार द्वारा समय-समय पर दिये गये हैं। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि इस अनुच्छेद को स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में अनेक संशोधन प्राप्त हुए हैं। 124-श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज डॉ. अम्बेडकर दिखाई नहीं दे रहे और ऐसा लगता है कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है.....

***अध्यक्ष:** वह कहीं और व्यस्त हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं संशोधन संख्या 124 से 131 तक प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** आपको उन्हें ऐसे पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने संशोधनों को शामिल करके इस अनुच्छेद को पढ़िये।

***श्री एच.वी. कामत:** यदि मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया तब यह अनुच्छेद 183-क इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Except as otherwise provided by this Constitution, every person who, having been appointed by the Secretary of State or the Secretary of State in Council to the Civil Service of the Crown in India continues on and after the commencement of this Constitution to serve under the

---

"124. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'expressly (स्पष्टतापूर्वक)' **शब्द निकाल दिया जाये।**

125. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क की पंक्ति 9 में, 'and (और)' **शब्द के स्थान पर** 'or (अथवा)' **शब्द रखा जाये।**

126. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह)' के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'which he is from time to time serving' (जिसकी सेवा वह समय-समय पर करता रहता है)' **शब्दों के स्थान पर** 'as the case may be (यथास्थिति)' **शब्द रखा जाये।**

127. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह)' के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'the same conditions (उन्हीं सेवा शर्तों)' **शब्दों के स्थान पर** 'conditions (शर्तों)' **शब्द रखा जाये।**

128. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह)' के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'remuneration (पारिश्रमिक)' **शब्दों के स्थान पर** 'salary (वेतन)' **शब्द रखा जाये।**

129. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह)' के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'and the same rights (उन्हीं अधिकारों)' **शब्दों के स्थान पर** 'and rules (और... नियमों)' **शब्द रखा जाये।**

130. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह)' के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'as respects disciplinary matters or rights (अनुशासनीय विषयों के बारे में उन्हीं अधिकारों का अथवा उनके तुल्य ऐसे अधिकारों का)' **शब्दों के स्थान पर** 'of conduct and discipline (आचरण तथा अनुशासन के)' **शब्द रखे जायें।**

131. कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह)' के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में, 'as similar thereto as changed circumstances may permit as that person was entitled to immediately before such commencement' **शब्दों के स्थान पर** 'as similar, as changed circumstances may permit to what that person was entitled to immediately before such commencement' **शब्द रखे जायें।**

[श्री एच.वी. कामत]

Government of India or of a State, shall be entitled to receive from the Government of India or the Government of the State as the case may be, conditions of service as regards salary, leave and pension and rules of conduct and discipline, as similar as the changed circumstances may permit, to what that person was entitled to immediately before such commencement."

["इस संविधान द्वारा उपबंधित अवस्था को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को, जो सेक्रेटरी ऑफ स्टेट या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट इन कौंसिल द्वारा भारत में क्राउन की असैनिक सेवा में नियुक्त होने के पश्चात् इस संविधान के प्रारम्भ पर और पश्चात् भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन सेवा में बना रहता है, भारत सरकार या राज्य की सरकार से, यथास्थिति, वेतन, छुट्टी और निवृत्ति-वेतन संबंधी उन सेवा शर्तों का और आचरण तथा अनुशासन के नियमों का, जैसा कि परिवर्तित परिस्थितियों में सम्भव हो, हक होगा, जिनका कि उस व्यक्ति को ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले हक था।"]

महोदय, जब मैंने इस अनुच्छेद 283-क को पढ़ा तो मेरी पहली प्रतिक्रिया यह थी कि इस अनुच्छेद का मसौदा तैयार करने में जल्दबाजी की गयी है। इस अनुच्छेद की रचना, मेरे विचार में, बहुत ही निकृष्ट तरीके से की गयी है और यदि मैं कहूं कि इसका अन्तिम भाग बुरी तरह से गड्डमड्ड कर दिया गया है तो मैं बहुत गलत नहीं होउंगा। मैं इसकी रचना की बात कर रहा हूं और मेरे विचार में यदि इसे ऐसा ही रखा जाये तो प्रारूप समिति की और अन्ततोगत्वा सभा की, जो इसको पास करेगी, खिल्ली उड़ाई जायेगी। शायद विदेशी भाषा होने के कारण ही अशंत: ऐसा हुआ है। इसीलिये यथाशीघ्र राष्ट्रभाषा को बढ़ावा दिया जाना चाहिये जिससे हम अपनी भाषा में अपने मत को भली भांति अभिव्यक्त कर सकें।

महोदय, मेरा पहला संशोधन शाब्दिक मात्र है और मैं उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहना चाहूंगा। मैं उसे प्रारूप समिति की सद्बुद्धि पर छोड़ता हूं।

मेरा दूसरा संशोधन–संख्या 125–"भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार" शब्दों की पूर्वगामिता से सम्बन्धित है। मेरे विचार में उनका क्रम उनकी पूर्ववर्तिता के अनुसार "भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार" होना चाहिए। "और" शब्द लगाने की क्या आवश्यकता है? सही शब्द "या" होना चाहिए।

संशोधन संख्या 126 में "जिसकी सेवा वह समय-समय पर करता रहता है" के स्थान पर "यथास्थिति" शब्द रखने की बात कही गई है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि "जिसकी सेवा वह समय-समय पर करता रहता है।" सम्भव है कि वह भारत सरकार की या किसी राज्य सरकार की सेवा में हो। परन्तु यदि आप "यथास्थिति" शब्द का प्रयोग करें तो उनका अर्थ भी उतना ही सही है और मेरे विचार में संवैधानिक शब्दावली और बोलचाल की दृष्टि से भी यह कहीं अधिक अच्छी व सुन्दर अभिव्यक्ति है।

मेरा एक अन्य शाब्दिक संशोधन है जिसमें "पारिश्रमिक" शब्द के स्थान पर "वेतन" शब्द रखने की बात कही गयी है। मेरे विचार में जहां तक असैनिक कर्मचारियों और सरकारी कर्मचारियों का संबंध है "वेतन" शब्द "पारिश्रमिक" शब्द से अधिक सम्मानजनक है। मेरे विचार में अन्य सभी अनुच्छेदों में इस अर्थ के लिये "वेतन" शब्द का ही प्रयोग किया गया है। हम न्यायाधीशों का वेतन, राष्ट्रपति का वेतन, मंत्रियों का वेतन और "विधान सभाओं के सदस्यों का वेतन और भत्ते" शब्दों का प्रयोग करते आ रहे हैं। इसलिये मेरे विचार में यहां पर भी "पारिश्रमिक" शब्द का प्रयोग न करके "वेतन" शब्द का प्रयोग करना ही उचित रहेगा।

अब मैं उस भाग का उल्लेख करना चाहता हूं जिसे बुरी तरह से गड्डमड्ड कर दिया गया है। यदि मेरे मित्र श्री मुंशी व प्रारूप समिति के उनके अन्य सहयोगी सदस्य मेरी बात को समझने का प्रयत्न करेंगे जो मैं कहने जा रहा हूं तो यदि उनके दिमाग खुले हैं और वे कोई परिवर्तन किये जाने के विरुद्ध नहीं हैं तो मुझे विश्वास है कि वे समझ जायेंगे कि क्या गलती हुई है। यहां पर प्रयुक्त भाषा बहुत ही अशुद्ध है और शब्द विन्यास भी ठीक नहीं है। सभा समझ जायेगी जब मैं अनुच्छेद के उस भाग का हवाला दूंगा जो "उन्हीं सेवा शर्तों का..." शब्दों से आरम्भ होता है और अन्त तक जाता है। परन्तु उसके सम्बन्ध में कुछ कहने से पूर्व में "receive" शब्द के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मुझे ऐसा कोई उचित शब्द नहीं मिला जो इसके बजाय रखा जा सके परन्तु मैं महसूस करता हूं कि इस संदर्भ में यह शब्द बिल्कुल गलत है। क्या प्राप्त करना? सेवा की शर्तें प्राप्त करना? अनुशासनीय मामलों या अधिकारी के संबंध में अधिकर प्राप्त करना? यह बहुत ही अनुपयुक्त अभिव्यक्ति है। मैंने इस संदर्भ में "receive" शब्द का प्रयोग कहीं नहीं देखा यद्यपि, दुर्भाग्य से, मैं इसके लिये कोई अन्य शब्द नहीं ढूंढ सका। फिर भी मैं प्रारूप समिति से अनुरोध करूंगा कि वे इस पर पुनर्विचार करें और मैं आशा करता हूं कि तीसरे वाचन में "receive" शब्द के स्थान पर कोई दूसरा बेहतर शब्द रखा जायेगा।

यदि सभा वाक्य के अन्तिम भाग पर ध्यान देगी तो पायेगी कि इसकी रचना कितनी भद्दी है। इसमें उन्हीं शर्तों और उसी प्रकार की शर्तों अथवा अनुशासकीय मामलों के संबंध में उसी प्रकार के अधिकारों आदि का उल्लेख है। यदि यह "उन्हीं" है तो यह वैसी ही तो हो सकती है, परन्तु "तुल्य" नहीं है। "उन्हीं" और "तुल्य" का प्रयोग एक साथ नहीं किया जा सकता। अतः इसमें से एक का लोप करना होगा। इसलिये मैंने "तुल्य" शब्द का सुझाव दिया है क्योंकि परिस्थितियों के अनुरूप शर्तें यथासम्भव "तुल्य" हो सकती हैं। मेरे संशोधन संख्या 131 और 128 अनुच्छेद के इस भाग से सम्बन्धित हैं मैंने कहना चाहा है कि इसका आशय यह है संविधान के प्रारम्भ से पूर्व जो स्थिति थी उसके तुल्य वाली बात रखी जाये, वहीं वाली नहीं। मुझे विश्वास है कि प्रारूप समिति मेरे विचार से सहमत होगी कि उनका आशय नहीं है। इसलिये यह कहना अधिक उचित होगा—उन विद्यमान शर्तों और नियमों के तुल्य जो परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप हों।

संशोधन संख्या 130 अनुच्छेद के उस भाग से सम्बन्धित है जिसमें अनुशासनीय विषयों से सम्बन्धित अधिकारों अथवा अधिकारों का उल्लेख है। इससे सही-सही क्या अभिप्रेत है यह ईश्वर ही जानता है। "अधिकारों" शब्द दोहराया गया है: "अनुशासनीय विषयों के बारे में अधिकारों अथवा अधिकारों" परन्तु अनुशासनिक विषयों के सम्बन्ध में कोई अधिकार नहीं होते। अनुशासन के नियम, आचार संहिता है और अनुशासन सम्बन्धी विनियम है। परन्तु "अनुशासनिक विषयों के बारे में

[श्री एच.वी. कामत]

अधिकारों अथवा अधिकारों" से क्या तात्पर्य है? मैंने कुछ वर्ष तक सेवारत रह कर देखा है, परन्तु मुझे इस प्रकार के अधिकारों की कोई जानकारी नहीं है। केवल आचार संहिता होती है, अनुशासन सम्बन्धी अधिकार नहीं होते। मैंने इसको एक बार, दो बार, तीन बार पढ़ा और मुझे आश्चर्य हो रहा है कि क्या यह मसौदा प्रारूप समिति के विद्यमान सदस्यों ने तैयार किया है या किसी अन्य व्यक्ति ने तैयार किया है और समिति ने इसे बारीकी से नहीं देखा है।

एक बात और। श्री मुंशी ने हमें बताया है कि जब 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता अधिनियम पास किया गया था, उस समय सिविल अधिकारियों को सरकार द्वारा गारंटी दी गयी थी। इसलिये इस विषय पर कोई विवाद नहीं है। परन्तु इस पूरे अनुच्छेद का प्रारूप इतने गलत तरीके से तैयार किया गया है कि मैं अत्यंत विनम्र भाव से प्रारूप समिति से अनुरोध करना चाहूंगा कि वे इस समूचे विषय पर पुनर्विचार करें और तीसरे वाचन के समय इसे नये रूप में प्रस्तुत करें, जिसकी भाषा शुद्ध हो और रचना भी सुन्दर हो।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 132, श्री नजीरुद्दीन अहमद।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** (बिहार: जनरल): संशोधन संख्या 14 का क्या हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 14 पिछले प्रारूप के संबंध में था।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** (पश्चिम बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मेरे कुछ संशोधन यथार्थ हैं और औपचारिक-मात्र हैं। मैं केवल उप-संख्या (तीन), (चार) और (सात) प्रस्तुत करूंगा। महोदय मैं प्रस्ताव करता हूं "कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 283-क "continues" **शब्द के स्थान पर** "shall continue" **शब्द रखे जायें;** "shall be entitled" **शब्दों के स्थान पर** "and shall be entitled" **शब्द रखे जायें;** और "he is from time to time serving" **शब्द रखे जायें।"** इन संशोधनों का सुझाव देने का मेरा आशय यह है कि हम कुछ सेवाओं के भविष्य के लिये यह व्यवस्था कर रहे हैं। मेरे विचार में इन उपबंधों में भविष्यत्काल का उपयोग किया जाना चाहिए। परंतु इसमें सब जगह वर्तमान काल का प्रयोग किया गया है। अनुच्छेद 283-क में अनेक शर्तों का लोप करते हुए मात्र वाक्य इस प्रकार है—"प्रत्येक व्यक्ति को, जो सेकेटरी ऑफ स्टेट या सेक्रेटरी ऑफ स्टेट इन कौंसिल द्वारा भारत में क्राउन की किसी असैनिक सेवा में नियुक्त होने के पश्चात इस संविधान के प्रारम्भ पर और पश्चात भारत की या किसी राज्य की सेवा में बना रहता है...." मैंने "continues (बना रहता है)" के स्थान पर "shall continue (बना रहेगा)" शब्द रखे जाने का सुझाव दिया है। मेरा विचार यह है कि हम इन सेवाओं के सम्बन्ध में भविष्य के लिये व्यवस्था कर रहे हैं और इसलिये क्रिया का प्रयोग भविष्यकाल में होना चाहिए। अन्य संशोधन इस प्रकार के हैं और उनके संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

अनुच्छेद 283-क का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि श्री कामत ने कहा है कि इस अनुच्छेद का प्रारूप तैयार करने में जल्दबाजी की गयी है। श्री कामत ने प्रारूप तैयार करने की दृष्टि से एक स्पष्ट असंगति अर्थात् "receive" शब्द के प्रयोग की ओर ध्यान दिलाया है। यह शब्द बिल्कुल अनुपयुक्त है। इस सभा में पेश किये गये कुछ संशोधनों व की गयी टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए प्रारूप समिति को इस अनुच्छेद के प्रारूप पर पुनर्विचार करना चाहिए।

इन अनुच्छेदों पर विचार करने वाले सदस्यों को एक अन्य इस कठिनाई का सामना करना पड़ा है। इन अनुच्छेदों को कल 9.00 अथवा 10.00 बजे सायं परिचालित किया गया था और तब इन अनुच्छेदों पर विचार करने और संशोधनों का सुझाव देने का और उन संशोधनों को कल पांच बजे तक कार्यालय में देने का समय ही नहीं था। इसीलिए कुछ संशोधनों पर भलीभांति विचार नहीं किया जा सका और इसीलिए जल्दी में "receive" शब्द पर मेरा ध्यान ही नहीं गया। मेरा सुझाव यह है कि प्रारूप समिति को उस अनुच्छेद के प्रारूप पर पुनर्विचार करना चाहिए। मैंने कुछ और भी छोटे-छोटे सुधार करने के सुझाव दिए हैं जिनको मैंने प्रस्तुत नहीं किया है परन्तु मेरे विचार में प्रारूप समिति को उन पर विचार अवश्य करना चाहिए।

***अध्यक्ष:** एक संशोधन है जिसकी सूचना आज प्रात: श्री सिधवा ने दी है।

***श्री आर.के. सिधवा:** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): महोदय, मैं उसको प्रस्तुत नहीं कर रहा।

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद तथा संशोधनों पर चर्चा की जा सकती है। एक या दो संशोधन ऐसे हैं जिनमें अनुच्छेद के निकाले जाने का प्रस्ताव है। मैं उनको संशोधित नहीं समझता।

***श्री महावीर त्यागी:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): महोदय मैं सिद्धान्त रूप में इस बात से सहमत नहीं हूं कि यह संविधान सभा कोई ऐसे वचन दे जिनकी जिम्मेदारी आगामी संसदों पर आती हो। सिविल सेवा के इन कुछ लोगों के मामले में केवल कुछ गारंटियों को अन्तरित किया जा रहा है। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है परन्तु वे एक संसद से दूसरी संसद को अन्तरित की जानी चाहिए। यदि इस विधान सभा ने अब इन गारंटियों की पुष्टि कर दी तो आगामी संसदों के लिए यह अविरल दायित्व बन जायेगी। इस समय मैं समझता हूं कि इस प्रस्ताव के विरोध को कोई अधिक समर्थन नहीं मिलेगा, फिर भी मैं इन गारंटियों का समर्थन करने से पूर्व कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूं।

जैसा कि देखा जाता है, आज भारत में सिविल सेवा के कुछ अधिकारियों की सेवा केवल आठ या नौ वर्ष की हुई है और वे सेक्रेटेरियट में सचिव व संयुक्त सचिव के पदों पर कार्य कर रहे हैं और बहुत अधिक वेतन प्राप्त कर रहे हैं, इतना वेतन कि यदि भारत स्वतंत्र न हो जाता तो उनको यह वेतन अठारह या उन्नीस वर्षों की सेवा के बाद मिला होता। सिविल सेवा के अनेक अधिकारियों की पदोन्नति इतनी तेजी से हुई है। मैं पूछना चाहता हूं कि उन सचिवों का क्या होगा जो न्यूनतम गारंटीशुदा संख्या "आठ" से अधिक होंगे। जहां तक मेरी जानकारी है, सचिवों के केवल "आठ" पदों की गारंटी दी गई है। इन पदों की संख्या को आठ से सात या छ: नहीं किया जा सकता, परन्तु इस समय इक्कीस सचिव हैं। अब मूल देयता इन आठ में से प्रत्येक सचिव को 4000 रुपये प्रतिमास देने की थी। अब हम उतना ही वेतन इक्कीस सचिवों को दे रहे हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस अनुच्छेद के पास हो जाने के बाद हम सचिवों की संख्या को कम करके आठ तक ला सकेंगे या नहीं? अब यदि यह भी वचन दिया जा रहा है कि आगामी सरकारों की इक्कीस सचिवों और अनेक संयुक्त सचिवों को—जिनकी संख्या गारंटीशुदा संख्या से कहीं अधिक है—विद्यमान वेतन मानों के अनुसार वेतन देना होगा—तो क्या भावी संसद के लिये यह अतिरिक्त देयता नहीं होगी? अथवा क्या भावी संसद सचिवों की संख्या कम कर सकेगी?

आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता का अधिकांश लाभ सिविल सर्विस वाले लोगों को मिला है और अन्य वर्गों की स्थिति गिरी है। सिविल सर्विस वाले

[श्री महावीर त्यागी]

लोग, यदि भारत स्वतंत्र न होता तो जितना वेतन उनको मिलता उससे कहीं अधिक वेतन पा रहे हैं। मुझे पता चला है कि पाकिस्तान में एक नियम बनाया गया है कि प्रत्येक सिविल कर्मचारी को या तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उसे प्राप्त हुए ऊंचे वेतनमान के हिसाब से या स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व उसे पूर्व उसे मिल रहे वेतन से केवल तीस प्रतिशत अधिक, दोनों में से जो कम हो, वेतन मिलेगा।

पाकिस्तान में ऐसा कोई सिविल कर्मचारी नहीं है जिसका वेतन 15 अगस्त, 1947 से पहले मिलने वाले वेतन से तीस प्रतिशत से अधिक बढ़ा हो। परन्तु हमारे देश में सिविल सेवा के यूरोपीय अधिकारियों की सेवानिवृत्ति और मुस्लिम अधिकारियों के पाकिस्तान चले जाने के कारण बहुत कनिष्ठ अधिकारियों की तेजी से पदोन्नति हो गई है और उन्हें ऊंचे वेतनमान मिलने लगे हैं।

मैं चाहता हूं कि श्री मुंशी इस बात को स्पष्ट करें कि इस उपबंध के पास होने जाने के बाद, क्या भारत की भावी संसद के लिये यह जरूरी होगा कि वह इतने अधिक वेतन पर उतनी ही संख्या में सचिवों को रखें अथवा वह सेक्रेटेरियट में सचिवों की संख्या में कमी कर सकेगी और उनको कम वेतन दे सकेगी। लगभग सभी राजवंशियों और जमींदारों जैसे निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों का प्रभुत्व समाप्त हो गया है। केवल कुछ सिविल अधिकारियों के ही निहित स्वार्थों को उनके हितों की गारंटी देकर हम अनवरत बनाए हुए हैं। क्या वे भावी संसदों के लिए अनवरत देयता बने रहेंगे?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): यदि मेरे माननीय मित्र अपने तर्क को संक्षिप्त करने में...

***श्री महावीर त्यागी:** मैं अपनी बात कह चुका हूं, यदि माननीय सदस्य प्रश्न के सम्बन्ध में मुझे और जानकारी देना चाहते हों तो वह कृपया यह स्पष्ट करें कि वास्तविक स्थिति क्या है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (असम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री मुंशी द्वारा इस सभा के समक्ष रखे गये नये अनुच्छेद का मैं स्वागत करता हूं। मैं इसका स्वागत इसलिए करता हूं कि इस व्यवस्था से हम आचार का ऐसा स्तर बनाए रख सकेंगे जो किसी सभ्य सरकार को अपने अधीन साथ-साथ काम करने वाले सिविल सेवा अधिकारियों के साथ बनाए रखना चाहिए।

सभा में इस अनुच्छेद पर विचार करते हुए हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि यद्यपि हमारे देश में काफी लम्बे समय से क्रान्ति संबंधी गतिविधियां चलती रही हैं परन्तु सत्ता के हस्तांतरण का तत्काल कारण क्रांति नहीं था, एक ऐसी क्रांति जो पहले से विद्यमान हमारी प्रत्येक चीज के अस्त-व्यस्त किये जाने को न्यायसंगत सिद्ध कर दे। हमें स्मरण रखना चाहिए कि पिछली सरकार ने सत्ता को शान्तिपूर्वक तरीके से हमें हस्तान्तरित किया है, अत: हमें उनके द्वारा किये गये अनुबंधों का, यथासम्भव आदर करना चाहिए। इस मामले विशेष में न केवल उस अनुबंध का हमारे आचार पर प्रभाव परिलक्षित होना चाहिए बल्कि इसमें तो एक और भी कारण है और वह यह कि हमारे नेताओं ने गारंटी दी थी—उन नेताओं ने जिन्होंने हमारे लिए देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने में प्रमुख भूमिका निभायी थी। चाहे हमारी कितनी भी आलोचना क्यों न की जाये, हमें अपने नेताओं द्वारा दी गई गारंटियों का सम्मान करना चाहिए और उन्हें पूरा करना चाहिए।

इस अनुच्छेद का पूर्ण रूप से समर्थन करते हुए मैं सिविल सेवा के अधिकारियों से एक विनम्र अपील करना चाहूंगा। मैं उनसे कहूंगा कि क्या उनके लिये यह उचित नहीं होगा कि हमने इस अनुच्छेद को स्वीकार करके जिस सद्भावना का परिचय दिया है वे भी उसके बदले में अपने उस वेतन को जो उन्हें दिया गया है और जो इस अनुच्छेद के स्वीकार किये जाने के कारण उनको मिलेगा कुछ प्रतिशत का परित्याग कर दें। महोदय, मुझे याद है—1931 में जब समूचे देश में छंटनी किये जाने की चर्चा चल रही थी तब आई.सी.एस. के अधिकारियों ने जिनके वेतन में भारत सरकार कटौती नहीं कर सकती थी, स्वेच्छा से अपने वेतन तथा भत्तों में कटौती कराने की पेशकश की थी। जबकि भारतीय सिविल सेवा के यूरोपीय अधिकारी इस देश के हित में ऐसा शिष्टाचार दिखा सकते थे तो मुझे विश्वास है कि भारतीय सिविल सेवा के भारतीय अधिकारी अपनी मातृभूमि के प्रति देशभक्ति की भावना प्रदर्शित करने में पीछे नहीं रहेंगे। महोदय, मेरा विचार है कि उनको ऐसा करने में तनिक भी आपत्ति नहीं होगी क्योंकि उनको याद होगा कि कांग्रेस के नेताओं ने अपनी आय का, अपने व्यवसाय का, जीवन में अपनी स्थिति का परित्याग कर दिया था और जेलों में चले गये थे, जबकि सिविल अधिकारी अपने डैस्क पर शान्तिपूर्वक अपना काम करते रहे थे, अपनी जीविका कमा रहे थे और अपना सामान्य कार्य कर रहे थे। हमने उनके ऐसा करने पर शिकायत नहीं की। यदि उस समय सिविल सेवा के सभी अधिकारी भी त्याग-पत्र दे देते तो संक्रमण काल में हमें काम चलाने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता। उस समय उनके ऐसा करने पर मुझे कोई शिकायत नहीं। परन्तु अब जबकि वे हमारे साथ स्वतंत्रता का आनन्द उठा रहे हैं, जिसके लिये उन्होंने किसी प्रकार का कोई त्याग नहीं किया था—निश्चय ही मैं सुभाषचन्द्र बोस और श्री कामत जैसे व्यक्तियों की बात नहीं कर रहा जिन्होंने देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत होकर अत्यन्त स्पृहणीय पद का परित्याग कर दिया था—तो मुझे आशा है कि वे अब स्वेच्छा से अपने वेतन में से कटौती करने की पेशकश करेंगे।

महोदय, इस संबंध में हमें कुछ मंत्रियों व उनके सचिवों के दर्जे की स्थिति पर विचार करना होगा। मंत्री 750 रुपये से 1000 रुपये तक वेतन ले रहे हैं, जबकि उनके इंडियन सिविल सर्विस के सेक्रेटरी 2000 रुपये से 3000 रुपये तक वेतन प्रापत कर रहे हैं। मंत्री अपनी पुरानी कार को चलाने के लिये सड़क पर धक्का लगाते हैं, क्योंकि वे नयी कार लेने की स्थिति में नहीं हैं, ये सेक्रेटरी अपनी नयी सुन्दर मोटरकार में उनके पास से गुजर जाते हैं और मंत्री के पास से केवल हाथ हिलाते हुए और "Cheerio" कहते हुए चले जाते हैं। वह मोटर रोकने का कष्ट भी नहीं उठाते क्योंकि उनके साथ बगल में उनकी सुन्दर पत्नी विराजमान होती है। अब इस प्रकार की बात दोहरायी नहीं जानी चाहिए। मंत्री और उसके सेक्रेटरी के स्तर के बीच इतना अन्तर नहीं होना चाहिए। इस स्थिति से निपटने का एक ही तरीका है, वह यह कि सभी मंत्रियों को सरकारी कार उपलब्ध करायी जाये। मैंने यह भी देखा है कि सेक्रेटरी मंत्रियों के निवास स्थान पर जाना पसन्द नहीं करते क्योंकि उस समय के मंत्री अपने घरों में उस प्रकार का फर्नीचर, आदि नहीं जुटा पाते जिस प्रकार का इंडियन सिविल सर्विस के सेक्रेटरी ले लेते हैं।

इसलिए इस अनुच्छेद को स्वीकार करते हुए मैं सिविल सेवा के अधिकारियों से एक बार फिर अपील करता हूं कि यदि वे कर सकें तो अपने बढ़े हुए वेतन का परित्याग कर दें। वे भी साधारण व्यक्ति के स्तर पर आ जाएं और जितना कर सकते हों परित्याग करें। वे जितना त्याग कर सकते हैं उतना यदि नहीं भी करते तो उन्हें विलास सामग्री का उपयोग नहीं करने देना चाहिए बल्कि उनकी

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

आय को राष्ट्र के कल्याण कार्यों में लगाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए। शिक्षा संस्थाओं के लिये दान दे दीजिए अथवा आम आदमी के उत्थान के लिये कुछ मदद कर दीजिए। मेरी यही अपील है। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, यद्यपि मैं देश के सिविल सेवा अधिकारियों को संतुष्ट रखने की वांछनीयता में विश्वास रखता हूं, परन्तु इन सेवा अधिकारियों को संतोष की सीमा को नहीं लांघना चाहिए। इस मामले में ऐसा हुआ है। इस महान सेवा के अधिकारियों का पूरा सम्मान करते हुए, जो यथार्थ में देश की सेवा कर रहे हैं, मैं यह कहना चाहूंगा कि यदि इस अनुच्छेद को संविधान में शामिल न किया जाता तो मैं उसे अच्छा समझता, यदि हमने कोई करार किया है तो निश्चय ही हमें उस करार को निभाना है और यह मामला नेताओं व सिविल सेवा के अधिकारियों के बीच का है और यह पता चल ही जायेगा कि इसे निष्ठापूर्वक निभाया गया है। फिर इसको संविधान में शामिल करने की क्या आवश्यकता है?

फिर इस अनुच्छेद की शब्दावली भी सुन्दर नहीं है। सम्भवत: प्रारूप समिति ने इसमें प्रयुक्त शब्दों पर उचित ध्यान नहीं दिया। उदाहरण के लिए "पारिश्रमिक" शब्द को ही ले लीजिए। प्रधान मंत्री, मंत्रिगण, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष के मामले में भी "वेतन" शब्द को प्रयोग किया गया है। परन्तु इस मामले में "पारिश्रमिक" शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है? यह कुछ बेहतर शब्द है। यह "वेतन" से अधिक शान-शौकत वाला शब्द है। इसीलिए इसको रखा गया है। इस सेवा के अधिकारी अपने लिये कुछ असाधारण व्यवहार चाहते हैं।

फिर वे अनुशासन के सम्बन्ध में वही अधिकार चाहते हैं। अब हमें समझ में आ रहा है कि अनुशासन से क्या तात्पर्य है। इसका अर्थ नियमों की चारदीवारी में आचरण है। यहां पर शब्द जिस प्रकार से रखे गये हैं वे भावी सरकारों के लिए समस्याएं पैदा करेंगे। यह सरकार जानती है कि ये शर्तें क्या हैं, परन्तु यदि आप इनको संविधान में शामिल करेंगे और और सिविल सेवा अधिकारियों को मनमानी करने दी गई और उन्होंने अपनी शर्तों को जारी रखने के साथ-साथ उन्हीं अनुशासन सम्बन्धी अधिकारियों की भी मांग की तो भावी सरकारों को बहुत परेशानी का सामना करना पड़ेगा। मुझे पता है कि हम सिविल सेवा के अधिकारियों को वह सब कुछ देंगे जिसके लिए हम वचनबद्ध हैं। उस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मेरे विचार में उनको संविधान में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। सेवा के अधिकारियों को हमारे नेताओं पर भरोसा रखना चाहिए कि वे अपने वचनों को निष्ठापूर्वक निभायेंगे।

हमें इस सेवा पर गर्व है। परन्तु क्या यह वांछनीय है कि वे हमारे समक्ष शर्तें रखें कि वे इन शर्तों पर काम करेंगे? यह बहुत अनुचित बात है। यदि आप इस अनुच्छेद की भाषा को पढ़ें तो आप समझ जायेंगे कि वे अपनी शर्तें रखना चाहते हैं जिन पर कि वे भविष्य में सेवा करना चाहते हैं। मैंने एक संशोधन भेजा था। मैंने उसे प्रस्तुत नहीं किया, क्योंकि मैं इस सेवा अधिकारियों को परेशानी में नहीं डालना चाहता। मेरे संशोधन में यह कहा गया है कि इस संविधान के निर्माण के पांच वर्ष बाद संसद को सेवाओं के कार्य संचालन के संबंध में कानून बनाने का अधिकार होगा। परन्तु मैंने उसे पेश नहीं किया, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि सिविल सेवा के अधिकारी यह समझें कि हम उनके लिए कोई परेशानी खड़ी करना चाहते हैं, कि हम उन वचनों को पूरा नहीं करना चाहते जो हमने दिये

हैं। हम ऐसे राष्ट्र के नागरिक हैं जहां यह सिखाया जाता है कि यदि कोई वचन दिया जाये तो उसे निभाया भी जाना चाहिए। हमारे नेता ने हमें यही शिक्षा दी है और हम उस पर अमल करना चाहते हैं। परन्तु उसके साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि सिविल सेवा के हमारे अधिकारी हमारे समक्ष शर्तें रखें। इन शब्दों के साथ, मैं आशा करता हूं कि प्रारूप समिति इस मामले पर पुनर्विचार करेगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा के समक्ष यह निवेदन किये बिना नहीं कह सकता कि हमारे संविधान में इस प्रकार के उपबंध का रखे रहना बिल्कुल अनुचित है। ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश संसद द्वारा बनाये गये संविधानों में इस प्रकार खण्ड रखा जाना ठीक और अच्छा था। परन्तु अब हम स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने जा रहे हैं। भारतीय जन अब अपने लिये स्वयं संविधान बना रहे हैं। इन परिस्थितियों में मैं नहीं समझता कि इस प्रकार की किसी गारंटी की कोई आवश्यकता है। यदि गारंटी दी गई है, यदि हमने कोई वचन दिया है, तो वह वचन काफी होना चाहिए और वह केवल भारतीय सिविल सेवा व अन्य प्रतिज्ञाबद्ध सेवाओं के लिए ही नहीं बल्कि पूरे राष्ट्र के लिये, हम सबके लिए है। यदि हम उस वचन का आदर नहीं करते तो संविधान में सम्मिलित एक अनुच्छेद पर भरोसा करके भी राष्ट्र अथवा सिविल सेवाओं को कोई विशेष लाभ नहीं मिलेगा। आप अपने रास्ते से हटकर एक सेवा के लिए, जो वास्तव में हमारी दासता के दिनों का ही अवशेष है अलग से उपबंध करें और फिर उसे बिल्कल उसी रूप में सम्मिलित करें जैसाकि वह 1935 के अधिनियम में विद्यमान है, तो यह देखने में भी अच्छा नहीं लगता। मेरे विचार में यह बिल्कुल अनावश्यक है। मैं नहीं समझता जैसा कि श्री सिधवा ने बताया है, कि सेवाओं के अधिकारी ऐसा करने के लिए वास्तव में जोर डाल रहे हों। मैं नहीं समझता कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हाल में सिविल सेवा के सभी अधिकारियों के साथ कोई परामर्श किया गया है अथवा उन्होंने अनुबंध सम्बन्धी व्यवस्था को जारी रखने के लिये कोई संकल्प पारित किया है या मांग की है कि उनका संविदागत सम्बन्ध अक्षुण्ण बना रहे। कम से कम मुझे इस बात की कोई जानकारी नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यदि उनसे पूछा जाये तो संभवत: वे स्वयं सबसे पहले आगे बढ़ कर कह सकेंगे कि उनको अपने अधिकारों के लिये किसी संवैधानिक सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है।

दूसरे, यदि वास्तव में हम इस प्रकार का कोई उपबंध रखना ही चाहते हैं तो इन शब्दों को उसमें जोड़ने की क्या आवश्यकता है—"अनुशासनीय विषयों के बारे में उन्हीं अधिकारों—उनके तुल्य ऐसे अधिकारों का जैसे कि परिवर्तित परिस्थितियों में सम्भव हों—"। मेरे विचार में इस प्रकार गारंटी तो बिल्कुल समाप्त हो जाती है। "परिवर्तित परिस्थितियों" का क्या अर्थ है? यदि परिस्थितियों में परिवर्तन से कोई सरकार विद्यमान संविदागत सम्बन्धों अथवा दिये गये वचनों में परिवर्तन कर सकती है तो गारंटी का अर्थ ही क्या रहा जाता है? अपने दिये गये वचन से पीछे हटने के लिये किसी भी समय किसी परिस्थिति का लाभ उठाया जा सकता है। मेरे विचार में हमने कुछ विलक्षण स्थिति पैदा कर ली है। एक ओर हम सिविल सेवा के अधिकारियों को संतुष्ट रखने के इच्छुक हैं और यह कहते हैं कि वे बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं और दूसरी ओर हमने उनको जो कुछ दिया है उसे वापस ले लेना चाहते हैं। मुझे विश्वास है कि वे इन शब्दों "जैसे कि परिवर्तित परिस्थितियों में संभव हो" के उपयोग से हमारे आशय को भलीभांति समझ जायेंगे। वास्तव में 1935 के अधिनियम का अनुसरण व अनुकरण करने में हम अंग्रेजों से भी आगे निकल जाना चाहते हैं। भारतीय सिविल सेवा मूलत: अंग्रेजों

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

ने ब्रिटिश कार्मिकों से बनाई थी और वे प्रत्येक अवस्था में, ज्यों-ज्यों भारतीय लोगों के राजनीतिक अधिकारों की बात आगे बढ़ती, उन लोगों के लिये अधिक से अधिक गारंटी चाहते थे जो उनके देश से आये थे और इस देश में सेवारत थे। मुझे विश्वास है कि कोई भी सेक्रेटरी ऑफ स्टेट किसी भी समय भारतीय कार्मिकों में उतनी ही रुचि नहीं रखता। उनकी रुचि ब्रिटिश कार्मिकों में ही थी और ये गारंटियां उन्हीं ब्रिटिश कार्मिकों के लिये ही थीं। मुझे विश्वास है कि कोई भी भारतीय इतना देशभक्तिहीन नहीं होगा कि वह संवैधानिक गारंटी की मांग करे और न ही वह इतना अनजान होगा कि उसको पता ही न हो कि उस मामले में हमारी सरकार का दृष्टिकोण क्या होगा, कि उसको इस प्रकार दी गई गारंटी पर अधिक विश्वास हो, विशेषकर तब जब कि हम "जैसे कि परिवर्तित परिस्थितियों में सम्भव हों" शब्द जोड़ कर इस अनुच्छेद के समूचे प्रभाव को ही समाप्त कर रहे हैं। वास्तव में सिविल सर्विस का इतिहास क्या है और उनके साथ किये गये करारों का मूल्य ही क्या है? इतिहास से पता चलता है कि यद्यपि सिविल सेवा दृढ़ इरादे वाले लोगों की सेवा मानी जाती थी तथा भारत सरकार और सिविल सेवा के बीच संविदागत संबंध सर्वदा अलंघ्य माने जाते थे परन्तु कम से कम एक अवसर ऐसा अवश्य आया जब इस करार की शर्तों का पूरी तरह उल्लंघन किया गया।

वर्ष 1931 में स्वयं उसी ब्रिटिश सरकार को कुछ सख्ती करनी पड़ती और उन्होंने 10 प्रतिशत की कटौती की और ऐसा परिस्थितियों में परिवर्तन के आधार पर किया गया। कुछ लोगों ने इसे स्वैच्छिक कटौती का रंग देने का प्रयत्न किया। वास्तव में करार की अलंघ्यता वर्ष 1931 में परिस्थिति की आकस्मिकता के आगे टिक नहीं सकी। विगत समय में जो कुछ हुआ, उस सबको ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि करार विषयक यह सम्बन्ध समय-समय पर बदल सकते हैं और इसलिए मैं इस अनुच्छेद को संविधान में सम्मिलित करना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा आवश्यक नहीं समझता। यदि गारंटी दिया जाना आवश्यक है तो जो भी गारंटी अपेक्षित है, वह हमने पहले ही दे रखी है। वह वापस नहीं ली गयी है। किसी भी व्यक्ति ने यह सुझाव नहीं दिया है कि उसे वापस ले लिया जाये या कम कर दिया जाये और मेरे विचार में सिविल सेवा के लिये यह पर्याप्त होना चाहिये।

महोदय, एक अन्य कारण भी है और वह यह है कि "जैसे कि परिवर्तित परिस्थितियों में सम्भव हो" शब्दों को रखकर इस अनुच्छेद को सम्मिलित करने से एक नयी समस्या पैदा हो जायेगी जो इस समय विद्यमान नहीं है। इस समय हम वित्तीय संकट से गुजर रहे हैं। सम्भव है कि अब से आगामी लगभग तीन महीने के भीतर 1500 रुपये अथवा इससे अधिक वेतन पाने वाले सभी लोगों के वेतन में कटौती करनी पड़े। वास्तव में हमने स्वयं वेतन आयोग के प्रस्तावों संबंधी अपने नेक निर्णय का तिरस्कार किया है। हमने उनकी सिफारिशों को स्वीकार किया गया था कि किसी भी व्यक्ति को 2200 रुपये या उसके लगभग राशि से अधिक वेतन न दिया जाये और फिर भी हमने उससे 50 से 75 प्रतिशत तक अधिक देने की व्यवस्था की है जो वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार हमारे द्वारा स्वीकृत अधिकतम राशि से भी अधिक है। अतः वर्तमान वित्तीय संकट को और हमारे द्वारा स्वीकृत सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए आगामी कुछ ही महीनों में हमारे लिए यह आवश्यक हो सकता है कि हमें संसद के समक्ष जाना पड़े और यह प्रस्ताव करना पड़े कि भारत में किसी भी व्यक्ति को इतनी-इतनी राशि से अधिक वेतन नहीं मिलेगा तब हमें अपनी कार्यवाही को उचित ठहराने

के लिए परिवर्तित परिस्थितियों के आधार का ही सहारा लेना पड़ेगा। हमें कहना पड़ेगा कि चूंकि परिस्थितियां बदल गई हैं अत: हम आपको 2000 रुपये से अधिक वेतन नहीं दे सकते। बड़े-बड़े वचन देने और बाद में उनसे मुकर जाने का क्या लाभ है। कोई लाभ नहीं, इस बात को कोई भी व्यक्ति समझ सकता है कि भारत की वर्तमान परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम आज जिस हिसाब से सिविल सेवा के कार्मिकों को वेतन दे रहे हैं आगे उस हिसाब से नहीं दे सकते। जब हम इन कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं तब संविधान में ऐसे वचन को सम्मिलित करने से क्या लाभ होगा, जिसे हम पूरा नहीं कर सकते? अत: मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद पर पुनर्विचार किया जाये और जहां तक सम्भव हो, इसे रोक लिया जाये। यदि सिविल सेवा के अधिकारी गारंटी दिये जाने पर जोर देते हैं तो उन्हें अवश्य दीजिए, परन्तु उसको इस प्रयोजन के लिये संविधान में सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर** (मद्रास: जनरल): इस विषय में मेरे विचार भी उतने ही तीक्ष्ण हैं जितने कि डॉ. देशमुख व मेरे अन्य सहयोगियों के हैं। मैं इस बात से निश्चय ही सहमत हूं कि यद्यपि संतुष्ट सिविल सेवा किसी देश के प्रशासन की आधार-स्तम्भ होती है, परन्तु यह सेवा विशेष जिसके लिये हम यह उपबंध करना चाहते हैं पिछले शासन की असाधारण शक्ति से युक्त सेवा थी और आगामी कुछ समय तक भी यह असाधारण शक्ति से युक्त सेवा ही बनी रहेगी। हम इस देश की आम जनता को खाना और कपड़ा उपलब्ध कराने की गारंटी नहीं दे पाये हैं। प्रशासन में अधीनस्थ वर्ग के लिए भी हमने कोई गारंटी नहीं दी है। पिछले दिनों हमने कुछ अनुच्छेद पास किये थे जिनके माध्यम से संविधान में यह कहा गया कि राज्य के सभी कर्मचारी सरकार के प्रसाद पर्यन्त ही पद धारण करेंगे। जो गारंटी हम इस अनुच्छेद के अन्तर्गत दे रहे हैं वह एक असाधारण गारंटी है। इस गारंटी का तात्पर्य यह है कि ये पिछली सरकार के समय शासक थे और इस सरकार के समय भी शासक बने रहेंगे। यह गारंटी हमसे यह भूल जाने के लिए कहती है कि ये लोग, जिनमें से आज भी लगभग 400 सेवा में हैं, यह सोचकर ज्यादतियां करते रहे हैं कि यह देश उनका नहीं है।

यह गारंटी उन लोगों को गारंटी देती है जो विदेशियों के हाथों की कठपुतली बने रहे थे। मेरे मित्र श्री कामत और उन जैसे कुछ अन्य मित्रों ने, जिनमें अपने दृढ़ विश्वास के अनुसार कार्य करने की हिम्मत है, इस देश की खातिर अपने पद त्याग दिये। वे सभी सम्मान योग्य व्यक्ति हैं जिन्होंने उस समय हिम्मत की और अपने भाग्य को इस देश की आम जनता के साथ जोड़ दिया जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये जबरदस्त संघर्ष कर रही थी। यह श्रेय इस सेवा को नहीं मिल सकता। उन्होंने उन्हें मिलने वाले धन और वेतन की अधिक परवाह की। यूरोपीय सरकार, जो कुछ समय पूर्व तक हमारी शासक रही, इस देश में किसी नागरिक की निष्ठा पर भरोसा नहीं कर सकती थी, क्योंकि उनकी निष्ठा और हमारी निष्ठा अलग-अलग थी, वे हमारे देश से भिन्न देश के थे और इसीलिए उनकी निष्ठा भिन्न थी। इस देश के किसी नागरिक की इंग्लैंड के बादशाह के प्रति निष्ठा को धन से ही खरीदा जा सकता था। इसलिए उन्होंने जो वेतन दिए और वेतनमान निर्धारित किए उनकी कोई सीमा नहीं थी। गवर्नर जनरल का वेतन 21,000 रुपये प्रति मास रखा गया, गवर्नर का 10,000 रुपये प्रति मास और सेक्रेटरी का 4,000 रुपये प्रतिमास रखा गया—जो हमारी राष्ट्रीय आय के अनुपात से कहीं अधिक था।

हमारी राष्ट्रीय आय 100 रुपये प्रति वर्ष से अधिक नहीं है, जबकि ग्रेट ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय 1200 रुपये प्रतिवर्ष है। अमरीका की स्थिति भिन्न है। जहां तक वेतनों का सम्बन्ध है, वे सिविल सर्विस के अधिकारियों को विश्व के अन्य भागों

[श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर]

में दिये जाने वाले वेतनों की अपेक्षा हमारे देश में बहुत अधिक हैं। जहां तक राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध है हमारी राष्ट्रीय आय सबसे कम है। पिछली ब्रिटिश सरकार को अपनी सेवा के लिये उन लोगों को खरीदना पड़ा। हमारे सर्वाधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति अलग कर लिये गये और, चाहे उनका जन्म कहीं का भी हो और चाहे उनमें देशभक्ति की भावना थी या नहीं थी, पिछली सरकार ने उनसे वे सभी काम करवाये जो वे करवाना चाहती थी।

परन्तु मैं सभा के माननीय सदस्यों से कहना चाहता हूं कि वे कुछ बातों को ध्यान में रखें जो हमारे लोगों को करनी पड़ीं। जो व्यक्ति हमारे नेता है और जिन्होंने इस देश की स्वतंत्रता प्राप्त की है वे कहते हैं कि उन्होंने सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से इनमें से प्रत्येक व्यक्ति को गारंटी दी है, चूंकि यह ब्रिटिश सरकार द्वारा हमारे हाथों में सत्ता सौंपने के लिए एक शर्त थी। वे विशेषकर यूरोपीय अधिकारियों के हितों के लिये भारतीय अधिकारियों के हित के लिये तो इतना नहीं, ये शर्तें चाहते थे। सम्भवत: भारतीय नौकरशाहों के हितों की रक्षा करना चाहते थे क्योंकि वे उनके प्रति निष्ठावान रहे थे और वे नहीं चाहते थे कि हमारी सरकार बनने के बाद उनको किसी कठिनाई का सामना करना पड़े। मैं इस संविधान में ऐसा कोई उपबंध रखने के पक्ष में नहीं हूं। हम बाद में इसको संसद के किसी अधिनियम में शामिल कर सकते हैं। परन्तु इसे विनियमित करने की शक्ति हमारे पास रहनी चाहिए। ये लोग इस देश के सर्वसत्ताधारी बनते जा रहे हैं।

मुझे इन सब बातों की जानकारी है, परन्तु परस्पर दोषारोपण से कोई लाभ नहीं है जबकि हमारे अपने बड़े जिम्मेदार नेताओं ने जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अपना जीवन लगा दिया, यह आश्वासन दे दिया है। यह नहीं कहा जाना चाहिए कि हमने इस मामले में हस्तक्षेप किया और इस आश्वासन से मुकर गये। यदि मैं इस खण्ड का समर्थन करता हूं तो केवल इसी भावना से ही कर रहा हूं। मैं इस भावना से ऐसा नहीं कर रहा हूं कि इन सब लोगों ने हमारे समय में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये हमारे देश की सेवा की है। मैं यह कह सकता हूं कि जो माननीय सदस्य अभी भी इसका विरोध कर रहे हैं, जो कि बिल्कुल सही भी है, वे यह सांत्वना रख सकते हैं, वे यह समझ सकते हैं कि इस खण्ड के मूल प्रारूप में प्रयुक्त शब्दावली पर उनकी आपत्ति बिल्कुल सही है। परन्तु बाद में जो संशोधन किया गया है वह अधिक व्यापक नहीं है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान द्वितीय सप्ताह की सूची 2 में दिये गये संशोधन संख्या 11 की ओर दिलाना चाहूंगा। बाद में उसके स्थान पर सूची 1 में सम्मिलित संशोधन संख्या 1 को रखा गया है और हमने इसमें थोड़ा-सा ही परिवर्तन किया है। यह संशोधन भारत स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा अनुकूलित भारत शासन अधिनियम की धारा 247 के अनुसार है। हमारे नेताओं का भी, जिन्होंने कि गारंटी दी थी, यह आशय नहीं था कि नये संविधान के अधीन सिविल सेवा अधिकारियों को उससे अधिक विशेषाधिकार प्राप्त हों जो पिछली सरकार के समय उनको प्राप्त थे। अत: उनको कोई और विशेषाधिकार न दिये जाने के विचार से यह संशोधन पेश किया गया है। इस संशोधन में कहा गया है कि जैसा कि पिछली सरकार के समय गवर्नर जनरल को, परिस्थितियों के अनुरूप, समय-समय पर उनकी सेवा शर्तों में संशोधन करने के लिये नियम और विनियम बनाने की शक्ति प्राप्त थी, अब वही शक्ति सरकार को प्राप्त होगी। इसलिये संशोधित खण्ड के अधीन, मेरे विचार में हमें अधिक परेशानी नहीं होगी। कुछ असाधारण मामले हो सके हैं जिनमें हमें हस्तक्षेप करना पड़ सकता है, ऐसे स्थिति के लिये इसमें पर्याप्त व्यवस्था है। अत: हमें इस संबंध में अधिक भावुक होने की आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह, इसके बिना

भी हमारा काम चल सकता था। परन्तु, इन सेवाओं को ही नहीं बल्कि अन्य व्यक्तियों को भी, जो हमें छोड़ गये हैं, दी गयी गारंटियों और आश्वासनों को देखते हुए मैं सभा के सभी सदस्यों से, जिन्होंने संशोधन प्रस्तुत किये हैं या उन पर बोले हैं, यह अनुरोध करूंगा कि वे अपने संशोधनों पर जोर न दें और इस अनुच्छेद का विरोध न करें।

महोदय, मुझे इस बात की जानकारी है कि पिछली सरकार में केवल 8 सचिव थे जिनका वेतन 4,000 रुपये था। अब उनकी संख्या बढ़कर 18 या 21 हो गई। माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि मेरे माननीय मित्र श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर को सेक्रेटरियट के पुनर्गठन के लिये नियुक्त किया गया था। यह मामला अभी उनके विचाराधीन है, मुझे विश्वास है कि यद्यपि जो गारंटी दी गई है उसके अधीन 4,000 रुपये के वेतन को कम नहीं किया जाना चाहिए, परन्तु हमारे लिये इन में से प्रत्येक को सेक्रेटरी के रूप में नियुक्त करना और सचिवों की संख्या 8 से बढ़ाकर 21 कर देना अनिवार्य नहीं है। अभी भी एन. गोपालस्वामी आयंगर यह सुझाव दे सकते हैं कि हमारे देश के हित में सचिव के केवल 8 पद रहें और शेष को संयुक्त सचिव नियुक्त कर दिया जाये। ऐसा किया जा सकता है। जो लोग गारंटी दिये जाने पर जोर दे रहे हैं उन्हें स्वयं गारंटी मांगने में संकोच होना चाहिए। इस गारंटी का अर्थ क्या है कि उनको 3,000 रुपये के स्थान पर 4,000 रुपये मिलने ही चाहिए। क्या वे जीविका के लिये काम कर रहे हैं या अन्यथा भूखों मर रहे हैं? अभी तक उन्होंने कोई भावभंगी अभिव्यक्ति नहीं की है। उन्हें यह नहीं दिखाया है कि वे स्वतंत्र प्रभुसत्ता सम्पन्न गणतंत्र के नागरिक हैं। उनको भी इस गणतंत्र की प्रगति के लिये अपनी शक्ति लगानी चाहिए। हमारा विचार है कि वे अभी तक अपने ही स्वार्थ पर अड़े हैं। फिर भी हम असहाय नहीं हैं और उनकी संख्या को कम कर सकते हैं। श्री गोपालस्वामी आयंगर सचिवों के पदों की संख्या को 21 या 18 से घटा कर 8 करने के विषय में विचार कर सकते हैं। इसका गारंटी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह सिद्ध करने के लिये मेरे पास कुछ अन्य आंकड़े भी हैं कि सिविल सेवा के अधिकारियों की संख्या में कितनी वृद्धि हो गयी है। हम जिस बहुत ही खराब समय, संकट के समय से गुजर रहे हैं उसमें यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने हाथ में शक्ति लें और कुछ अनावश्यक रूप से बनाए गए पदों की संख्या कम कर दें। पिछली सरकार के समय केवल पांच संयुक्त सचिव थे, जबकि आज हमारे पास 30 संयुक्त सचिव हैं। प्रत्येक संयुक्त सचिव को 3,000 रुपये वेतन मिलता है। मैं ये बातें केवल आपको ही नहीं बता रहा हूं बल्कि मैं उन लोगों को भी बता रहा हूं जो यह समझते हैं कि उन्हें गारंटियां दी जानी चाहियें और उनसे उन्हें लाभ होना चाहिये। आखिर सरकार की सद्भावना और आम जनता की सद्भावना सबसे विश्वस्त गारंटी है जिसे कोई व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। इस सद्भावना के बिना यदि वे केवल अपने वेतनों पर ही जोर देते रहे तो वे उस पर लम्बे समय तक भरोसा नहीं कर सकते। महोदय, संयुक्त सचिवों की संख्या 5 से बढ़कर 30 हो गयी है।

एक बात और है, पिछली सरकार के अधीन कोई यूरोपीय 25 वर्ष की सेवा के बाद सचिव बनता था और 20 वर्ष की सेवा के बाद संयुक्त सचिव बनता था। अब चूंकि यूरोपीय अधिकारी चले गये हैं तो जो अधिकारी निचली सीढ़ी पर थे, ऐसे उप सचिव जिनका सेवा काल अभी 10-12 वर्ष का हुआ था, वे तत्काल संयुक्त सचिव बन गये हैं, क्योंकि उन यूरोपीयों की जगह खाली हो गई है। सिद्धान्त रूप में यह गलत है। हमें उनको एकाएक ज्वाइंट सेक्रेटरी नियुक्त नहीं करना चाहिए था। अब भी अधिक विलम्ब नहीं हुआ है। इस गारंटी के बावजूद हम उनसे कह

[श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर]

सकते हैं "आपको 3,000 रुपये वेतन पाने का पात्र बनने के लिये आपकी इतने वर्ष की सेवा पूरी होनी चाहिये।" अतः हम इस अनुच्छेद को पास भी कर दें तो भी हम असहाय नहीं होंगे। इस अनुच्छेद से जो कठिनाइयां हो सकती हैं उनमें और जिस सटीकता से ये अधिकारी धनराशि का दावा कर सकते हैं उसमें श्री गोपालस्वामी आयंगर के सभापतित्व में नियुक्त समिति द्वारा की जाने वाली उपयुक्त कार्यवाही के माध्यम से कमी की जा सकती है।

इस सेवा के बारे में मैं एक और बात कहना चाहता हूं। हम उनके पक्ष में एक अपवाद बना रहे हैं। हम उनकी आदत बिगाड़ रहे हैं। परन्तु आज भी मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि उनमें से कुछ अधिकारियों ने अपने रवैये में परिवर्तन नहीं किया है। उन्होंने अपने आपको नई स्थिति के अनुसार नहीं ढाला है। वे यह महसूस ही नहीं करते कि वे इसी देश के अभिन्न अंग हैं। हम भ्रष्टाचार के बारे में बहुत कुछ सुनते हैं। यदि किसी विभाग में भ्रष्टाचार है तो उसके लिये कौन जिम्मेदार है? यदि कोई विभागाध्यक्ष दृढ़ निश्चय कर ले कि वह भ्रष्टाचार को जड़ से उखाड़ फेंकेगा तो क्या वह ऐसा कर नहीं सकता? क्या मैं अथवा कोई मंत्री—जिसको प्रशासन के कार्य संचालन की कोई जानकारी नहीं है, इसकी जांच कर सकता है? सिविल सेवा अधिकारी अपने पदों पर कार्यरत रहने का दावा कर सकते हैं क्योंकि उनको अनुभव प्राप्त है। सर्वाधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों को इस सेवा में चुना गया है, आज यदि किसी विभाग में जहां 4,000 रुपये वेतन पाने वाला सचिव विभागाध्यक्ष है, भ्रष्टाचार हो तो उसे स्वयं पर शर्म आनी चाहिए। क्या इसके लिये मैं कानून पास कराने जाऊं कि भ्रष्टाचार का अन्त होना चाहिए? कौन भ्रष्ट है? यदि घर में कोई बात गलत होती है तो उसका जिम्मेदार परिवार के प्रबंधक को ही ठहराया जाना चाहिए। इस प्रकार हमें उनको कुछ और समय तक यह पुराना जत्था जब तक कार्यरत है एक हजार रुपये अधिक देने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु इसके बदले में हम यह आशा करते हैं कि वे भ्रष्टाचार को जड़ से उखाड़ फेंकेंगे। अन्यथा वे यह वेतन पाने के अधिकारी नहीं हैं।

यदि हमने संविधान में ऐसा उपबंध रखा है कि हमें संविधान में संशोधन करने के लिये अनिवार्यता और अधिक बहुमत की आवश्यकता होगी तो संसद में हमें अन्य प्रयोजनों के लिए सामान्य बहुमत की आवश्यकता होगी, नियमों व विनियमों के अधीन संविधान में संशोधन करने के लिये हमें सामान्य से अधिक बहुमत की आवश्यकता होगी। जो कुछ हमने किया है उसके बावजूद, जो आश्वासन दिये हैं उनके बावजूद और उन्हें बड़ी ऊंची दर से वेतन दिये जाने के बावजूद, जिसे देने की स्थिति में हम नहीं हैं, यदि किसी विभाग में भ्रष्टाचार होता है तो हम जानते हैं कि उनसे कैसे निपटना है। संविधान चाहे पत्थर पर, कठोर पत्थर पर अमिट रूप से लिखा जाये, हम उसको भी बदल सकते हैं।

इन शब्दों के साथ, मैं सदस्यों से और सभा से भी अपील करता हूं और अनुरोध करता हूं कि सभी संशोधन वापस ले लिए जाएं और इस अनुच्छेद को, यद्यपि बिना हिचकिचाहट के नहीं, पास कर दिया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं। मैं अपने माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम आयंगर के भाषण को समझ नहीं पाया

हूं। आरम्भ में उन्होंने इस अनुच्छेद का विरोध किया था परन्तु किसी प्रकार बीच में अपनी दिशा बदल ली और उसका समर्थन करना आरम्भ कर दिया। यदि मैं किसी अनुच्छेद के विरुद्ध हूं तो मैं उसका विरोध करूंगा, यदि मैं उसके पक्ष में हूं तो उसका समर्थन करूंगा। मैं दो नावों में सवार नहीं हो सकता।

महोदय, इस अनुच्छेद का समर्थन करने का एक महत्वपूर्ण कारण मेरे मन में है। इस सभा के कुछ सदस्यों द्वारा संविधान में इस अनुच्छेद को सम्मिलित करने पर आपत्ति किये जाने से मेरे मन में संदेह पैदा होता है। उनके मन में क्या है? वे इस अनुच्छेद का विरोध क्यों कर रहे हैं? क्या वे अपने दिये गये वचन को पूरा करना चाहते हैं या नहीं? जो राष्ट्र महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की बलि चढ़ा देता है, जो अपने दिये हुए वचन को पूरा नहीं करता, उसका राजनीति में कोई भविष्य नहीं रह जाता। हमने कतिपय प्राधिकारियों को वचन दिया है जो सत्ता हस्तांतरण से पूर्व विद्यमान थे। मैं यह पूरी तरह जानता हूं कि यदि हम अपने वचन पर कायम नहीं रहते तो हमारा कुछ बिगड़ेगा नहीं। परन्तु इसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ेगा। इसलिए मैं इस अनुच्छेद के पक्ष में हूं। हमने जो वचन दिया है, हमें उस पर कायम रहना चाहिए।

मेरा इस अनुच्छेद के पक्ष में होने का एक अन्य कारण भी है। यदि इस बात की गारंटी होती कि जिन्होंने ब्रिटिश सरकार को वचन दिया है वे तब तक सत्ता में रहेंगे जब तक कि इन सेवाओं के अधिकारी भारत सरकार की सेवा में बने रहते हैं, तो मैं इस अनुच्छेद के पक्ष में न होता। परंतु हमने एक लोकतंत्रात्मक संविधान बनाया है। हम नहीं जानते कि कल हम सत्ता में रहेंगे या नहीं एक अन्य कारण से भी मैं इस अनुच्छेद को संविधान में सम्मिलित किए जाने के पक्ष में हूं। वयस्क मताधिकार में मेरा कोई विश्वास नहीं है। मैं नहीं कह सकता कि भविष्य में भारत की भावी संसद में किस प्रकार के लोग आयेंगे। अतिवाद के जोश में अथवा किसी आमूल सुधारवादी विचारधारा की बिना पर वे इस उपबंध को हटा सकते हैं जो हमने संविधान के अनुच्छेदों में सिविल सेवा के पक्ष में रखा है। इसलिए मैं चाहता हूं कि इसको संविधान का अंग बना दिया जाये ताकि संविधान में संशोधन करना इतना सरल न होने के कारण उसे हटाना उनके लिए मुश्किल हो जाएगा जो हम आज अनुबंधित कर रहे हैं।

श्री त्यागी ने एक बात उठाई थी कि इस संविधान सभा ने कुछ वचन दिये हैं और हमें भारत की भावी संसद के स्वविवेक पर कोई रोक नहीं लगानी चाहिए। मैं कहता हूं कि हमने कोई वचन नहीं दिये। हमारे नेताओं ने कुछ वचन दे रखे हैं। हम उन पर दृढ़ हैं और संसद के स्वविवेक पर कोई रोक लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि उससे तो भावी संसद प्रभुसत्ता सम्पन्न निकाय नहीं रहेगी। आज हम जो कुछ कर रहे हैं। वह संसद तथा संविधान में उल्लिखित अन्य विभिन्न संस्थाओं की शक्ति का विस्तार करने या उसे सीमित करने के लिये कर रहे हैं। हम प्रभुसत्तासम्पन्न हैं, भावी संसद नहीं। हम कार्यपालिका, न्यायपालिका अथवा संसद के स्वविवेक पर रोक लगा सकते हैं। हम इसी प्रयोजन के लिये संविधान का निर्माण कर रहे हैं।

ये विचार मेरे मन में थे और इसलिये मेरी राय यह है कि इस सभा को सर्वसम्मति से इस अनुच्छेद का समर्थन करना चाहिए जिससे विश्व पर यही प्रभाव पड़े कि हम अपने वचन के पक्के हैं। यह तो केवल पहला कदम है—हम नहीं जानते कि हमें अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के दौरान और कितने वचन देने पड़ेंगे। एक गलत कदम हमें विनाश की ओर ले जा सकता है। यह कोई अधिक महत्वपूर्ण कदम नहीं है। हमें यह जानना चाहिए कि विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ अपने

[श्री बृजेश्वर प्रसाद]

सम्बन्धों के बारे में हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। इसलिए मैं इस प्रश्न को गम्भीरता से लेता हूं और इसे बहुत महत्व देता हूं। मैं पूरी तरह से इस अनुच्छेद के पक्ष में हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने इस खण्ड को निकाल देने के लिये संशोधन संख्या 12 पेश किया था। मैं इस अनुच्छेद को जितना पढ़ता हूं, मुझे उतनी ही अधिक हैरानी होती है कि इसको संविधान में सम्मिलित करने के लिए क्यों रखा गया है। यह बात तो मेरी समझ में आती है कि भावी संसद सिविल सेवा के पुराने अधिकारियों को सेवा की पुरानी शर्तों पर ही जारी रखने की अनुमति दे दे, परन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि जो गारंटियां उनको पहले प्राप्त थीं उन सभी गारंटियों की व्यवस्था संविधान में की जाये। कांग्रेस अपने आंदोलन के प्रारम्भ से ही सिविल सेवा को दृढ़ इरादे वाली सेवा मानती रही है जिसने हमें दास बनाया और इसकी सेवा शर्तों की ओर जिस प्रकार इसकी आदत बिगाड़ी गयी उसकी आलोचना करती रही है। इसे ऐसी सेवा माना जाता था जिसको सभी सुख, सुविधाएं उपलब्ध थीं। मेरे विचार में अब जब हम स्वतंत्र हो गये हैं तब हमें वह सब कुछ नहीं रखना चाहिए जिसकी हम अब तक आलोचना करते रहे हैं और हमें स्पष्ट रूप से यह कह देना चाहिए कि उन शर्तों को जारी रखने का तनिक भी कोई कारण दिखाई नहीं देता। मुझे बताया गया है कि उनको कुछ गारंटियां व आश्वासन दिये गये हैं। मुझे इन किसी की कोई जानकारी नहीं है, परन्तु यदि ऐसा किया गया तो इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव यह है कि संसद को उन्हें पूरा करने का प्रयास करना चाहिए, परन्तु भावी संसद को किसी बात से बांधना और यह कहना कि उनको अपने कर्मचारियों की सेवा शर्तें तय करने का अधिकार नहीं होगा कुछ ऐसी बात है जो संसद की प्रभुसत्ता के लिए अपमानजनक है।

फिर, मैं सिविल सेवा के पुराने अधिकारियों के काम से भी प्रसन्न नहीं हूं। मैं जानता हूं कि उनमें बहुत से व्यक्ति ऐसे भी हैं जिन्होंने बहुत अच्छा काम किया है और जो, जैसा कि एक बार सरदार ने कहा था, सोने में तोलने लायक है, परन्तु यह बात सबके बारे में नहीं कही जा सकती और मेरी अपनी शिकायत यह है कि जिस प्रकार का व्यवहार वे अब तक भी कर रहे हैं उसी के कारण हमारे देश को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। मेरे विचार में सिविल सेवा के अधिकारियों के साथ अब बनाई जा रही सेवाओं—प्रशासनिक सेवाएं—से भिन्न तरीके का व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, अन्यथा इससे दुर्भावना पैदा होगी। उन सबके साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। वास्तव में उनकी सेवा का रिकार्ड ऐसा नहीं है जैसा कि कोई चाहेगा कि वह होना चाहिए था। श्री अनन्तशयनम आयंगर ने बताया है कि हमारे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इन लोगों ने राष्ट्र के साथ किस प्रकार धोखा किया था। इसलिये मेरे विचार में यह अनुच्छेद कालदोष है। इसको हमारे संविधान में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए और इसको निकाल देना चाहिए।

***श्री कुलधर चालिहा** (असम-जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि जिस रूप में यह खण्ड है उसका समर्थन करना कठिन बात है, परन्तु साथ ही यह भी है कि हमारे उन लब्धप्रतिष्ठ नेताओं ने वचन दिये हैं जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये अपने जीवन की सुख-सुविधाओं का बलिदान कर दिया और उनके वचनों का आदर किया ही जाना चाहिए। इसका एक दूसरा पक्ष यह है कि हम इस प्रकार की दुविधा में फंसे हैं। हम इस खण्ड का समर्थन इसलिए करना चाहते हैं कि हमारे महान नेताओं ने अपना वचन दे रखा है, परन्तु इसके साथ

ही यह बात भी है कि हम अपने निर्वाचकों से कहते आ रहे हैं कि जब हमें स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी तब हम विभिन्न सेवाओं के अधिकारियों के वेतन कम करके इतने कर दें कि वे उनका भुगतान कर सकें। जैसाकि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा है जो वचन दिये गये हैं उनका समर्थन करने के लिये हम बाध्य हैं और हम उन्हें इस प्रकार पूरा करने के लिए बाध्य हैं कि जिससे सेवाओं के अधिकारियों में विश्वास की भावना पैदा हो जाये। हम भी सेवाओं के अधिकारियों के बारे में सोचते हैं क्योंकि उन्होंने कुछ ऐसे काम किए हैं जिनके बिना सरकार चलाना सम्भव नहीं होगा। वे विश्व की सर्वोत्तम सेवाओं में से एक हैं और अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों में उन्होंने अपने कर्तव्य को भलीभांति निभाया है। फिर भी यह उनके अपने सोचने की बात है कि देश की ऐसी स्थिति है कि उनको कुछ बलिदान करना चाहिए और वे उन शर्तों का परित्याग कर दें जिनकी उनके लिए व्यवस्था की गई थी और जिन शर्तों पर वे काम करना चाहते थे, सर्व सुख-सुविधा सम्पन्न इस सेवा की आदत ली कमीशन ने अपनी अधिक बिगाड़ दी और तब भी हम चिल्लाते रहे। अतः हमने यदि कोई वचन दिये हैं तो हमें उनका पालन करना चाहिए जैसाकि श्री आयंगर ने कहा कि खाद्यान्न के बारे में हम कोई वचन नहीं दे सके और फिर भी हम इस मामले में वचन दे रहे हैं। क्या हम उचित कर रहे हैं? क्या हमारे लिए अर्थव्यवस्था समिति की सिफारिशें लागू करना अनिवार्य नहीं है? श्री आयंगर ने एक दिन कहा था कि समिति ने अनेक बातों की सिफारिश की है परन्तु हमने उनको क्रियान्वित नहीं किया है। क्या जनता को दी गयी गारंटियों को पूरा करना हमारे लिए अनिवार्य नहीं है?

यदि हम सभी परिस्थितियों पर दृष्टिपात करें तो हमें वेतनों में वृद्धि करना बंद कर देना चाहिए और इस मामले में हमें पाकिस्तान के आदर्श का अनुसरण करना चाहिए। उन्होंने वेतन में केवल 30 प्रतिशत की वृद्धि की है जिसके वे लोग अधिकारी थे। जब कोई व्यक्ति संयुक्त सचिव बनता है तो उसे 3000 रुपये मिलते हैं। इतनी राशि क्यों दी जानी चाहिए? यदि उसके वेतन का 30 प्रतिशत उसे और दे दिया जाये तो वह पर्याप्त होना चाहिए। गारंटी या प्रतिज्ञा के सही-सही शब्दों की मुझे जानकारी नहीं है, परन्तु मैं श्री शिब्बन लाल सक्सेना के साथ सहमत हूं कि संविधान में कोई ऐसा उपबंध नहीं करना चाहिये जो भीवी पीढ़ी के हाथ बांध दे। अनेक मामलों में मैं श्री अनन्तशयनम आयंगर द्वारा कही गई बातों से सहमत हूं और मैं आशा करता हूं कि प्रारूप समिति इस पर विचार करेगी और सुनिश्चित करेगी कि इस अनुच्छेद में इस प्रकार संशोधन किया जाये कि यह भावी पीढ़ी के लिये कोई बन्धनकारी न हो।

***बाबू राम नारायण सिंह** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, कभी-कभी सभा के समक्ष विचार के लिये ऐसे मामले आ जाते हैं जिनका समर्थन करना बहुत कठिन हो जाता है। फिर भी मेरा इरादा विचाराधीन उपबंध का विरोध करने का नहीं है, क्योंकि राष्ट्र की ओर से सिविल सेवा के अधिकारियों को गारंटी दी गई है कि उनके हितों की सुरक्षा की जायेगी और उनकी परिलब्धियों तथा विशेषाधिकारों में जिनके वे अब तक अधिकारी थे, कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा। वास्तव में उनको हर प्रकार का आश्वासन दिया जा रहा है। परन्तु मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि इस समय इस प्रकार की गारंटियां दिये जाने की क्या आवश्यकता है। इन आश्वासनों की उस समय आवश्यकता हो सकती थी जब अंग्रेज हमारे देश से गये थे क्योंकि तब सिविल सेवा के अधिकारियों को अपने भविष्य के बारे में शंका थी कि कहीं उनको सेवा से हटा न दिया जाये। परन्तु अब तो इस प्रकार की कोई शंका नहीं है। स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। अब वे महसूस करने लगे हैं कि देश का प्रशासन उनके बिना नहीं चल सकता है। इसलिये इस समय इस प्रकार की गारंटी की कोई आवश्यकता नहीं है।

[बाबू राम नारायण सिंह]

फिर भी यदि आप उनको गारंटियां देना चाहते हैं तो मुझे ऐसा किये जाने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु हमें यह पता होना चाहिए तथा मैं यह और कह दूं कि इस सभा के प्रत्येक सदस्य को अपने हृदय में यह बात नोट कर लेनी चाहिए कि कुछ समय पूर्व इन्हीं सेवाओं ने अंग्रेजी शासन के बने रहने में उनकी सहायता की थी, उनके द्वारा हमारे साथ दुर्व्यवहार किया जाता था, हमारा दमन किया जाता था और हमें जेलों में भेजा जाता था। मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारे देश में सिविल सेवा के अधिकारी यहां ब्रिटिश शासन के समर्थक थे। परन्तु अब उनको समझ लेना चाहिए कि अब हमें किसी का शासन नहीं चाहिए। अब हमने स्वराज्य पा लिया है और स्थापित कर दिया है। स्वराज्य में, सिविल सेवा के अधिकारियों को जनता को आश्वासन देना चाहिए कि वे ईमानदारी के साथ देश की सेवा करेंगे। अपनी ओर से हम उनको यह आश्वासन देते हैं कि उनका भविष्य सुरक्षित रहेगा, परन्तु उनकी ओर से कोई आश्वासन नहीं आ रहा कि वे ईमानदारी से देश की सेवा करेंगे और प्रशासन में भ्रष्टाचार नहीं होगा। अब सभी इस बात को जानते हैं कि उनके व्यवहार में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं आया है और अब भी वे वैसे ही हैं जैसे पहले थे।

पहले—मैं दो वर्ष पूर्व की बात कर रहा हूं—वे सोचते थे कि वे देश के मालिक हैं, वे मालिक ही रहेंगे और जनता पर शासन करते रहेंगे। यही मानसिकता उनमें आज भी काम कर रही है। अब चूंकि अंग्रेज चले गये हैं और जनता की लोकप्रिय सरकार बन गयी है तो सिविल सेवा के अधिकारियों को भी अपना व्यवहार और दृष्टिकोण बदलना चाहिए, जिससे जनता यह महसूस करे कि वे जनता का दमन करने और उस पर शासन करने के लिए नहीं हैं, बल्कि उनकी सेवा व रक्षा करने के लिए हैं। परन्तु मुझे खेद है कि उनके द्वारा इस आशय का कोई आश्वासन नहीं दिया जा रहा है। मैं यह निवेदन कर दूं कि श्री अनन्तशयनम आयंगर द्वारा व्यक्त किये गये विचार बिल्कुल सही हैं। हमें इस बात पर भी विचार करना होगा कि ये लोग कहां तक ठीक से जनता की सेवा और रक्षा कर सकते हैं। सिविल सेवा के अधिकारियों को समझ लेना चाहिए कि उन्होंने अपने आपको अभी तक नहीं बदला है और जब तक वह अपने आपको नहीं बदलते तब तक संविधान में उनकी रक्षा के लिए दी जाने वाली गारंटियों का कोई अर्थ नहीं होगा। उनको राष्ट्र की ईमानदारी से सेवा करनी होगी और ऐसा करने के लिए उनको जनता की इच्छाओं का आदर करना होगा। उन्हें यह बात नोट करनी होगी कि जब तक वे अपनी अत्यन्त पुरानी नीति व व्यवहार नहीं बदलेंगे तब तक संविधान से उनके लिये दी गयी गारंटियों से उन्हें कोई लाभ नहीं पहुंचेगा।

मुझे अधिक और कुछ नहीं कहना है सिवाय इसके कि मैं आशा करता हूं कि वे अपने कार्यों व व्यवहार से देश की सेवा करेंगे और अपने आपको सदा देश का सेवक समझेंगे, मालिक नहीं। अब उन्हें मालिकपन का विचार छोड़ देना चाहिए।

***माननीय सरदार बल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई-जनरल): महोदय, मुझे इस बात से दुख हुआ है कि श्री अनन्तशयनम आयंगर जैसे वरिष्ठ सदस्य, जो कि इस सभा के एक जिम्मेदार सदस्य हैं और जो कि सभा के उपाध्यक्ष भी हैं, यह सोचते हैं और अपनी यह राय अभिव्यक्त करते हैं कि सिविल सेवा के अधिकारी गत दो या तीन वर्षों से बड़ी कठिन स्थिति में प्रशासन का कार्य चला रहे हैं और साथ ही यह भावना भी संजोये हुए हैं कि वे अधिकारी हमारे देश के शत्रु

हैं। यदि ऐसी बात है तो यह उनका, अथवा वैसे ही विचार रखने वाले लोगों का काम था कि वे पहले एक संकल्प प्रस्तुत करते कि उन अधिकारियों की सेवाएं समाप्त कर दी जायें और फिर शून्य में प्रशासन को चलाते—क्योंकि उनके विचार में कांग्रेसजन अथवा कांग्रेस कार्यकर्ताओं को छोड़कर उन अधिकारियों का स्थान लेने के लिये कोई अन्य व्यक्ति उपलब्ध नहीं थे। मुझे बहुत दुख हुआ है कि जिन लोगों से हमने काम लेना है, हम उन्हीं के साथ निरन्तर झगड़ रहे हैं। यदि यही बात है तो हम देश की सेवा नहीं कर रहे हैं बल्कि भारी अनिष्ट कर रहे हैं।

उन्होंने कहा कि यह गारंटी नहीं दी जानी चाहिए थी। वह अब तक क्या करते रहे हैं? जिन लोगों के ऐसे विचार हैं मैं उनसे कहना चाहता हूं कि यह गारंटी किसी गुप्त तरीके से तो नहीं दी गई थी। ब्रिटिश सरकार के साथ जो भी व्यवस्था की गई थी वह गुप्त तरीकों से तो नहीं की गई थी, किसी एक व्यक्ति द्वारा तो नहीं की गई थी, वरन् हमारे प्रतिनिधियों द्वारा, राष्ट्र के मान्यता प्राप्त प्रतिनिधियों द्वारा की गई थी। जब श्री हेंडरसन यहां पर सेवाओं के अधिकारियों सम्बन्धी मामले का समाधान करने के लिये आये थे तो उन्होंने मेरे साथ विस्तृत चर्चा की थीं। उन्होंने कहा था कि सत्ता हस्तांतरण से पूर्व ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये जिससे पार्लियामेंट इस बारे में पूरी तरह संतुष्ट हो जाये—कि सत्ता का हस्तांतरण तभी होगा जब सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स के साथ समझौता है, सदस्यों को गारंटियां दे दी जायेंगी। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की सेवाओं के 50 प्रतिशत से अधिक सदस्य यूरोपीय अथवा ब्रिटेन के थे और शेष भारतीय थे। तब उन्होंने सुझाव दिया था कि भारत और इंग्लैंड के बीच इस संबंध में एक समझौता होना चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया था कि यदि वे सर्विसेज को छोड़ते हैं, क्योंकि वे भारतीय प्रशासन में सेवा नहीं करना चाहेंगे, तो उनको उचित मुआवजा दिया जाना चाहिये और यह कि उन्हें, आनुपातिक पेंशन भी दी जानी चाहिये। सत्ता हस्तांतरण के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व उनकी पद-स्थिति, उनका समयबद्ध वेतनमान आदि सभी बातों का समाधान किया जाना था। मैंने काफी लम्बी बातचीत की थी। उस समय मुसलमानों और गैर-मुसलमानों की संयुक्त सरकार थी। उस समय एक अखिल भारत सरकार थी और इस बातचीत से कुछ निष्कर्ष निकले थे जो मंत्रिमंडल के समक्ष रखे गये थे—उस समय संयुक्त मंत्रिमंडल था—और उन्होंने उनको स्वीकार कर लिया था। फिर वे निष्कर्ष पार्लियामेंट को भेजे गये और वे वहां पर स्वीकार कर लिये गये। अनेक यूरोपीय, जो यहां पर सेवाओं में थे, अब छोड़कर चले गये हैं, परन्तु जब बातचीत चल रही थी तो मैंने उनसे कहा था वे भारतीय व्यक्तियों का मामला हम पर छोड़ दें और हम जैसा न्यायोचित समझें उनके साथ व्यवहार करेंगे, हम उन पर विश्वास करेंगे और वे हम पर विश्वास करेंगे और अन्त में वे कुछ शर्तों पर सहमत हो गये।

अब मैं यह बताना चाहता हूं कि जब हम यह व्यवस्था कर रहे थे तब किसी व्यक्ति ने कोई आपत्ति नहीं की थी, परन्तु यदि उनको हम पर संदेह था तो उस समय उनके लिये इस बात की काफी गुंजाइश थी कि वे सामने आते और बाहर की एजेंसियों से कुछ अच्छी शर्तों कर काम कराते। अब भी यदि आप उनको नहीं रखना चाहते तो आप विकल्प ढूंढ लीजिए, उनमें से बहुत से लोग चले जायेंगे, उनमें से योग्यतम व्यक्ति तो चले ही जायेंगे। मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूं कि मैंने उनके साथ इस कठिन समय में काम किया है—मैं पूरी जिम्मेदारी के साथ बोल रहा हूं—मैं कहना चाहता हूं कि देशभक्ति, निष्ठा, ईमानदारी और योग्यता के मामले में आपको उनका विकल्प नहीं मिल सकता। वे उतने ही अच्छे हैं जितने कि हम हैं और इस सभा में, सार्वजनिक रूप से, अपमानजनक

[माननीय सरदार बल्लभभाई जे. पटेल]

शब्दों में उनकी निन्दा करना और इस प्रकार उनकी आलोचना करना अपना और देश का अनिष्ट करना है। यह मेरा सोचा समझा हुआ मत है।

अब मैं कुछ अन्य तथ्य आपके सामने रखना चाहता हूं कि जिनसे आप संतुष्ट हो जायेंगे कि गारंटियां क्यों दी गई थीं। आपने देखा था, पंजाब में क्या हो रहा था। पांच जिलों में जहां तबाही मची हुई थी, पांच अंग्रेज अधिकारी सत्ता में थे और कुछ नहीं किया जा सका। मैंने गुड़गांव के जिला मजिस्ट्रेट को स्थानान्तरित करवाने का प्रयत्न किया। परन्तु मुझे सफलता नहीं मिली और वहां एक ब्रिटिश अधिकारी ने प्रमुख कांग्रेसजनों को गिरफ्तार कर लिया, जबकि उनकी कोई गलती नहीं थी और उनको जेल में, बन्धकों के रूप में, बन्द कर दिया। वह इतना अक्खड़ था कि बार एसोसिएशन के प्रेसीडेंट द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत आवेदन पर उसने लिख दिया कि वे लोग निर्दोष थे, कि उनको गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए था और उनको तत्काल रिहा कर दिया जाये, कि वे लोग बन्धक के रूप में रखे गये थे। उसके काम करने का यह तरीका था। मुझे यह जानकारी गहरा धक्का लगा और मैं गुड़गांव गया। रास्ते में मैंने उसे आते देखा और मैंने उससे पूछा "क्या आपने बन्धक के रूप में कुछ लोगों को गिरफ्तार किया है?" उसने उत्तर दिया "नहीं तो, आपको किसने बताया है?" सौभाग्य से मेरे पास वह दस्तावेज था जिस पर उसने पृष्ठांकन किया था और मैंने वह उसे दिखा दिया। उसने कहा "यह आपको कैसे मिला?" मैंने कहा, "प्रश्न यह नहीं है। यह आपका पृष्ठांकन है या नहीं?" उसके बाद मैंने बहुत कोशिश की, मैंने पंजाब के तत्कालीन गवर्नर को लिखा, मैंने वाइसराय से भी इस बारे में चर्चा की परन्तु मुझे उसको हटाने में बहुत कठिनाई हुई। और आप जानते हैं कि गुड़गांव तथा अन्य जिलों में किस प्रकार तबाही मची हुई थी। यह हालत पंजाब में ही नहीं थी, अन्य स्थानों पर भी ऐसी अनेक घटनाएं हो रही थीं। उस समय आशंका की स्थिति बनी हुई थी और हम भारत को खो भी सकते थे। तब हमने इस बात पर जोर डाला कि हम ऐसी स्थिति में पहुंच गये हैं कि सत्ता का हस्तांतरण तत्काल हो जाना चाहिए, चाहे कुछ भी हो, और फिर हमने त्याग-पत्र देने का निर्णय किया। उस समय लॉर्ड माउंटबेटन भारत में आये।

मैं आपको यह अंदरूनी इतिहास बताता हूं जिसे कोई नहीं जानता। जब हम एक ऐसी अवस्था में पहुंच गये कि शासन हमारा सब कुछ चला जाता, तब मैंने अन्तिम चारे के रूप में देश के विभाजन को स्वीकार किया था। सरकार में हमारे पास पांच या छः सदस्य थे—मुस्लिम लीग के सदस्य। उन्होंने अपने आपको ऐसे सदस्यों के रूप में स्थापित कर लिया था जो देश का विभाजन कराने के लिये ही आये थे। उस अवस्था में हमने विभाजन के विकल्प को स्वीकार किया था। हमने निर्णय किया कि इस शर्त पर विभाजन माना जा सकता है कि पंजाब का विभाजन किया जाये—वे सारा पंजाब चाहते थे—कि बंगाल का विभाजन किया जाए—वे कलकत्ता और सारा बंगाल चाहते थे। श्री जिन्ना कटा-छंटा पाकिस्तान नहीं चाहते थे, परन्तु उन्हें भी यह मानना पड़ा। हमने कहा कि इन दो प्रान्तों का विभाजन किया जाना चाहिए। मैंने एक और शर्त रखी कि यदि इस बात की गारंटी दी जाये कि ब्रिटिश सरकार देशी रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी तो दो महीने की अवधि में सत्ता का हस्तांतरण कर दिया जाना चाहिए और उस अवधि के भीतर पार्लियामेंट को एक अधिनियम पास कर देना चाहिए। हमने कहा "हम इस मामले के साथ स्वयं निपटेंगे, इसको हम पर छोड़ दो, आप किसी का पक्ष मत लो। सर्वोपरि सत्ता का अब अन्त होने दीजिए, आप प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप

से किसी भी प्रकार से इस मामले को पुनर्जीवित न करें। आप हस्तक्षेप मत कीजिए। हम अपनी समस्या का समाधान कर लेंगे। राजा-महाराजा हमारे हैं और हम उनके साथ निपट लेंगे।" उन शर्तों पर हमने विभाजन की बात स्वीकार की थी और उन्हीं शर्तों पर दो महीने के भीतर पार्लियामेंट में विधेयक पास किया गया था और सभी तीनों पक्षों ने उस पर सहमति व्यक्त की थी। ब्रिटिश पालिर्यामेंट के इतिहास में कोई दृष्टांत दिखा दीजिए जिसमें दो महीने के भीतर कोई विधेयक पास किया गया हो। परन्तु इस मामले में यह किया गया। उसी के परिणामस्वरूप इस पार्लियामेंट का जन्म हुआ।

अब आप कहते हो कि नेताओं ने ये गारंटियां क्यों दीं? इसलिए दीं कि आपको इसी बात को लेकर अपने नेताओं की आलोचना करने का अवसर मिल सके और क्या? आप एक महान देश की संसद के जिम्मेदार सदस्य हैं। इस संसद के नेता को अमरीका ने आमंत्रित किया है जो कि बहुत बड़ा सम्मान है जो उनको दिया जा सकता था। उनका बहुत आदर व सम्मान किया गया है। वे उनको हर प्रकार के सम्मानित कर रहे हैं। आप यहां पर कहते हो "नेताओं ने ये आश्वासन क्यों दिये?" बीते समय को याद कीजिए। उसको आप भूल क्यों जाते हैं? क्या आपने हाल ही का अपना इतिहास पढ़ा है?

ऐसी बातें करने का क्या लाभ है कि जब हम जेलों में थे तब सेवाओं के ये लोग नौकरी कर रहे थे? मैं स्वयं गिरफ्तार किया गया था, मैं अनेक बार गिरफ्तार किया गया हूं। परन्तु उससे सेवाओं में काम करने वाले व्यक्तियों के प्रति मेरी भावनाओं में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ा है। मैं कलंकियों का समर्थन नहीं कर रहा, वे तो हो सकते हैं। परन्तु क्या सेवाओं के अधिकारियों में बहुत से लोग ईमानदार नहीं हैं? परन्तु आप उनके लिए कैसी भाषा का प्रयोग कर रहे हैं? मैं इस सभा के रिकार्ड के लिए यह कहना चाहता हूं कि यदि गत दो या तीन वर्षों में सिविल सेवाओं के अधिकांश अधिकारियों ने देशभक्ति की भावना से और निष्ठा से काम नहीं किया होता तो यह संघ समाप्त हो गया होता। डॉ. जॉन मथाई से पूछिए। वह उनके साथ गत पखवाड़े से आर्थिक मामलों के बारे में कार्य कर रहे थे। आप उनकी राय लीजिए। आपको पता चल जाएगा कि सेवाओं के प्रति उनकी भावना क्या है। आप सभी प्रान्तों के प्रीमियरों से पूछिए। क्या कोई भी प्रीमियर सिविल सेवा अधिकारियों के बिना काम करने को तैयार है? वह तत्काल त्याग-पत्र दे देगा। उसका गुजारा नहीं है। हमारे पास सिविल सेवा के बचे हुए कुछ ही अधिकारी थे। हमने उन थोड़े से व्यक्तियों के साथ बहुत कठिन कार्य चलाया है। यदि कोई जिम्मेदार व्यक्ति इस सेवा के बारे में इस लहजे में बोले तो उसको इस बात का निर्णय करना होगा कि क्या उसके पास कोई विकल्प है और फिर वह जिम्मेदारी ले ले। यह कांग्रेस का कोई प्लेटफार्म नहीं है। यह कहा जाता है कि कराची में पारित एक संकल्प में हमने मंत्रियों को 500 रुपये देने का वचन दिया था। अब कराची और दिल्ली में बहुत दूरी हो गई है। अब स्थिति बदल गई है। आप 45 रुपये प्रतिदिन चाहते हैं और वह भी कर-मुक्त। आज 500 रुपये की बात करने का क्या लाभ है? यह बहुत गलत बात है।

परन्तु मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि यदि भारत सरकार को सेवा के बिना गांधी दर्शन के आधार पर चलाना है तो मैं समूची व्यवस्था को बदलने के लिए तैयार हूं। आज आप सेना पर 160 से 170 करोड़ रुपये प्रति वर्ष खर्च करते हैं। क्या आप इस व्यवस्था को बदलने के लिए तैयार हैं? यदि आपके पास प्रबल सैन्य शक्ति नहीं होगी तो कल एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक समूचे भारत पर कोई अन्य देश कब्जा कर लेगा।

[माननीय सरदार बल्लभभाई जे. पटेल]

पुलिस को, जो एक खण्डित सेवा रह गई थी, समुचित स्तर पर लाया गया है और वह बहुत दक्षतापूर्वक कार्य कर रही है। प्रत्येक प्रान्त के पुलिस विभागाध्यक्ष इस गारंटी के अन्तर्गत आते हैं। क्या आप इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं? क्या आप अपने कांग्रेस स्वयंसेवकों को कैप्टन नियुक्त करेंगे? आपका क्या करने का विचार है?

जब इस प्रकार की संसद में सदस्य, वरिष्ठ सदस्य, इस लहजे से बोलते हैं तो मुझे दुख होता है। मैं आपका ध्यान भारत स्वतंत्रता अधिनियम की ओर दिलाना चाहूंगा जिसके कारण यह संसद अस्तित्व में आई और आपको, पता चला कि उसमें गारंटियां शामिल की गई हैं। जब पार्लियामेंट में भारत स्वतंत्रता अधिनियम पास किया जाना था तो उसका प्रारूप यहां भेजा गया था। राष्ट्र के नेताओं को आमंत्रित किया गया था, वहां मंत्रिमंडल था, कांग्रेस के अध्यक्ष थे, आपके अध्यक्ष थे और आपके विद्यमान नेता वहां पर उपस्थित थे। महात्मा गांधी भी वहां मौजूद थे। प्रत्येक धारा पर बारीकी से विचार किया गया और प्रारूप का अनुमोदन कर दिया गया। तत्पश्चात् वह पार्लियामेंट में पास किया गया। उससे पहले ये गारंटियां सभी प्रान्तों को भेजी गई थीं। सभी प्रान्त उन पर सहमत हो गये थे। इस बात पर भी सहमति हो गई कि उनको संविधान सभा के नये संविधान में भी सम्मिलित किया जाये। गारंटी वाली बात का एक पक्ष यह है। क्या आपने इस इतिहास को पढ़ा है? अथवा क्या आप, जबसे आपने इतिहास बनाना आरम्भ किया है, हाल ही के इतिहास की परवाह नहीं करते। यदि आप करते हैं तो मैं आपको बता दूं कि आपका भविष्य अंधकारमय है। आपने जो वचन दिया है, उस पर कायम रहना सीखिए और एक अनुभवी व्यक्ति होने के नाते मैं आपको बताता हूं कि उन साधनों से झगड़ा मत करो जिनके साथ मिलकर आप काम करना चाहते हैं। जिनके साथ मिलकर आप काम करना चाहते हो उनके साथ झगड़ा करना खराब बात है। उनसे काम लीजिए। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार का प्रोत्साहन चाहता है। यदि सबके सामने किसी व्यक्ति की आलोचना की जाए या उसकी हंसी उड़ाई जाए तो वह काम नहीं करना चाहेगा। इस प्रकार आपको कोई भी काम करके नहीं देगा। इसलिये आप एक ही बार हमेशा के लिये निर्णय कर लीजिये कि आपको इस सेवा की आवश्यकता है या नहीं? यदि आपने विचार कर लिया है और मेरे द्वारा दिये गये वचन के बावजूद इस सेवा को समाप्त कर देने का निर्णय किया है तो मैं यह सोच कर इन सेवाओं को अपने साथ ले जाऊंगा और चला जाऊंगा कि राष्ट्र का मत बदल गया है।

इस सेवा के अधिकारी अपनी जीविका अर्जित कर लेंगे। वे योग्य व्यक्ति हैं। उनका प्रशिक्षण भिन्न वातावरण में हुआ था। मैं इस सेवा के पच्चीस वर्ष की सेवा वाले एक वरिष्ठ सदस्य को जानता हूं जो उच्चतर शिक्षा व सिविल सेवा में प्रशिक्षण के लिए इंग्लैंड गया था और उसने लगभग 50 हजार रुपये खर्च किये थे। उसने ऋण लिया था, उसके पास धन नहीं था। परन्तु भारत के युवकों का सिविल सेवा के प्रति आकर्षण है। वह वहां पर गया, विशिष्ट अंकों से उत्तीर्ण हुआ और स्वदेश लौटा। उसने बड़ी योग्यता से व बहुत निष्ठा के साथ तत्कालीन सरकार की और बाद में वर्तमान सरकार की सेवा की। उसका काम सरकार की सेवा करना है—उसकी वह सेवा कर रहा है। उसमें देशभक्ति की भावना विद्यमान है। प्राय: उसको कठिन स्थिति का सामना करना पड़ता था जब उसे तत्कालीन सरकार के आदेशों का पालन करते हुए कांग्रेसजनों के विरुद्ध कार्यवाही करनी पड़ती थी, उनको जेल में डालना पड़ता था अथवा अन्य ऐसा कुछ करना पड़ता था।

परन्तु वह एक निश्चित सीमा के आगे नहीं जा सकता था। अब आज 25 वर्ष की सेवा के अन्त में उसके पास केवल दस हजार रुपये शेष हैं और जब वह मरेगा तो उसकी पत्नी व बच्चों को भविष्य निधि की थोड़ी सी राशि मिलेगी।

ये परिस्थितियां हैं जिसमें सिविल सेवा के बहुत से लोगों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया, यहां आये और सेवा की। अब हम कह सकते हैं "बहुत अच्छा, उन्होंने यह यह सब कुछ खुली आंखों से किया था, अब उनको कष्ट भोगने दो।" ऐसी अवस्था में आपको उनका विकल्प तैयार करने के लिये इरादा करना होगा। हमारे पास एक विकल्प पहले ही है। हमने भारत में ही एक प्रशिक्षण स्कूल स्थापित कर दिया है, हमने एक संवर्ग बनाया है, प्रान्तों ने तत्संबंधी प्रस्तावों का अनुमोदन कर दिया है। आप यह सब कुछ जानते हैं।

यदि आप एक दक्ष अखिल भारतीय सेवा चाहते हैं तो मैं आपको सलाह दूंगा कि सिविल सेवा के अधिकारियों को स्वतंत्रता से अपनी बात कहने दीजिए। यदि आप मुख्य मंत्री (प्रीमियर) हैं तो आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि आप अपने सेक्रेटरी अथवा चीफ सेक्रेटरी या अपने अधीन कार्यरत अन्य सेवाओं के अधिकारियों को निर्भीक होकर व निष्पक्ष रूप से अपनी राय व्यक्त करने की अनुमति दें। परन्तु आजकल मैं एक प्रवृत्ति देखता हूं कि अनेक प्रांतों में सेवाओं को भड़काया जाता है और उनसे कहा जाता है "नहीं, आप सेवा करने वाले हो, आपको हमारे आदेशों का पालन करना ही चाहिये।" यदि आपके पास एक अच्छी अखिल भारतीय सेवा नहीं है, जिसमें सेवा करने वाले लोग अपना मत व्यक्त करने में स्वतंत्र हों और उनके मन में सुरक्षा की भावना हो कि आपने जो वचन दिया है, आप उस पर कायम रहेंगे और यह कि अन्ततोगत्वा हमारी संसद है, जिस पर हमें गर्व होना चाहिए, जहां उनके अधिकार व विशेषाधिकार सुरक्षित रहेंगे तो यह संघ समाप्त हो जायेगा—संयुक्त भारत का अस्तित्व नहीं रहेगा। यदि आपको यह मार्ग नहीं अपनाना है तो अब वर्तमान संविधान के उपबंधों का पालन मत कीजिए। इसके स्थान पर कुछ और अपना लीजिए। कांग्रेस संविधान लाइए अथवा कोई अन्य संविधान लाइए या आर.एस.एस. संविधान लाइए। जो भी आपको पसन्द हो लाइये—परन्तु इस संविधान का परित्याग कर दीजिए। इस संविधान का पालन तो एक ऐसी सेवा के व्यूह द्वारा किया जाएगा जो देश को अखण्ड बनाये रखेगी। इस संविधान में अनेक बाधाएं हो सकती हैं जिससे हमारा मार्ग अवरुद्ध हो सकता है, परन्तु उसके बावजूद हम सबने मिलकर विचार-विमर्श करके यह निर्णय किया है कि हम संविधान का यह प्रतिरूप रखेंगे जिसमें इस प्रकार की सेवा की व्यवस्था होगी जो देश को नियंत्रण में रखेगी।

जैसाकि मैंने आपको बताया, यह करार और ये गारंटियां प्रान्तों को तथा सेवा के प्रत्येक सदस्य को भेजी गयीं थी। उस करार पर सहमति व्यक्त की गयी और प्रान्तों ने उस पर हस्ताक्षर किये। उन्होंने—उन दोनों ने इसे स्वीकार किया है। क्या आप अब इन बातों से पीछे हट सकते हैं? क्या नई संसद में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है? क्या नयी स्वतंत्रता का प्रारम्भ हम इसी प्रकार करेंगे? मैंने ऐसे लोगों को देखा है जो आज भी इस सेवा के बारे में उसी रूप में अपनी राय व्यक्त करते हैं जिसमें कि वे पुराने जमाने में व्यक्त करते थे जब इस सेवा के 50 या 60 प्रतिशत अधिकारी अंग्रेज होते थे जो इस सेवा पर छाये हुए थे और इस सेवा के भारतीय अधिकारियों को अपनी राय व्यक्त करने की स्वतंत्रता नहीं थी और वे स्वतंत्र नहीं थे। आज मेरा सचिव एक ऐसा टिप्पण लिख सकता है जो मेरे विचारों से मेल न खाता हो। मैंने अपने सभी सचिवों को यह स्वतंत्रता दे

[माननीय सरदार बल्लभभाई जे. पटेल]

रखी है। मैंने उनसे कह रखा है "यदि आप किसी भय के कारण ईमानदारी से अपनी राय व्यक्त नहीं करते तो इससे आपके मंत्री को अप्रसन्नता होगी, ऐसी स्थिति में अच्छा यह होगा कि आप चले जायें। मैं अन्य सचिव ले जाऊंगा।" मैं राय की स्पष्ट अभिव्यक्ति पर कभी अप्रसन्न नहीं होऊंगा। अंग्रेज अंग्रेजों के साथ इसी प्रकार का व्यवहार करते थे। अब हम जिम्मेदारी से अपना-अपना योगदान करते हैं आपने इस जिम्मेदारी को निभाने में अपना योगदान देने पर सहमति व्यक्त की है। उनमें से अनेक व्यक्तियों के बारे में, जिनके साथ मैंने काम किया है, मैं निस्संकोच कह सकता हूं कि वे उतने ही देशभक्त, निष्ठावान व ईमानदार हैं, जितना कि मैं स्वयं हूं। जो लोग यह सोचते हैं कि नेताओं ने ये गारंटियां देने में गलती की है वे उनके मन को नहीं समझते, वे नहीं जानते कि क्या हुआ होता। वे अब भी कुछ नहीं जानते। अब भी कठिन समय हमारे आगे है। बहुत कठिन परिस्थितियों में की गयी सुरक्षा व्यवस्था में हम यहां पर बातें कर रहे हैं। ये लोग माध्यम हैं। इनको हटा देने की स्थिति में मुझे समूचे देश में अराजकता की तस्वीर के अलावा कुछ नजर नहीं आता। मेरी कठिनाई यह है कि हमारे पास व्यक्तियों की कमी है। प्रान्तों की भी यही कठिनाई है और वे अधिक व्यक्ति भेजने की मांग कर रहे हैं। हमने लगभग 300-400 व्यक्तियों की भर्ती के लिए एक विशेष आयोग नियुक्त किया है। हाल ही में उनका चयन किया गया है। उनका चयन भारतीय सिविल सेवा संवर्ग में से नहीं किया गया। उनको कोई अनुभव नहीं है। परन्तु फिर भी हम कार्य कराने के माध्यम चाहते हैं। वे इन लोगों से सीख लेंगे।

अब आप क्या करना चाहते हैं? आप निर्णय कीजिए। मेरी आपको यह सलाह है कि संसद के सभी सदस्यों को सेवाओं का समर्थन करना चाहिए, सिवाय उस मामले के जिसमें सेवा के किसी सदस्य ने दुर्व्यवहार किया हो या अपने कर्तव्य पालन में गलती की हो या अपने कर्तव्य पालन से जी चुराया हो। ऐसे मामले को मेरे ध्यान में लाइये। मैं किसी को नहीं छोड़ूंगा, चाहे वह कोई भी हो। परन्तु यदि सेवाओं के ये लोग अपनी सेवा से आपको पूरा लाभ बल्कि अधिक लाभ पहुंचा रहे हों तो आपको उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। जो समय बीत गया है, उसे भूल जाइए। हम अंग्रेजों के साथ अनेक वर्षों तक लड़े। मैं उनका कट्टरतम शत्रु था और वे मुझे ऐसा ही समझते थे, परन्तु मैं एक स्पष्टवादी व्यक्ति हूं और इसलिए मुझे एक ईमानदार मित्र मानते हैं। गांधी जी ने हमें क्या सिखाया है? आप गांधी की विचारधारा, गांधी दर्शन, प्रशासन चलाने के लिये गांधी के तरीके की बात करते हैं। बहुत अच्छी बात है। परन्तु आप जेल से बाहर निकलते ही कहते हैं "इन व्यक्तियों ने मुझे जेल में डाला था, अब मैं इनसे बदला लूंगा" यह तो गांधी का तरीका नहीं है। यह तो उससे कहीं दूर भटक जाना है।

इसलिए, परमात्मा के लिए, हमें समझना चाहिए कि हम कहां हैं। आज यदि आप सेवा से कुछ ग्रहण करना चाहते हैं तो आप उनके दिल तक पहुंचिए, परन्तु हाथ में लाठी लेकर यह मत कहिये "आपको गारंटी कौन देगा? हमारी संसद सर्वोच्च सत्ता संपन्न है।" आपकी सर्वोच्च सत्ता क्या इस प्रकार की बात के लिए है? क्या अपने वचन से मुकर जाने के लिए है? यदि आप ऐसा करेंगे तो यह सर्वोच्च सत्ता सम्पन्नता कुछ ही दिनों में समाप्त हो जायेगी। मेरी आपसे यही अपील है, ईमानदारी से अपील है। आप इस बात को याद रखिये, इसे प्रान्तों तक पहुंचाइये और कांग्रेस-जनों तक भी, जो बाहर काम कर रहे हैं। प्रशासन चलाने का यही तरीका है। अन्यथा, यह समाप्त हो जाएगा। और जब देश में स्थिरता आ जाएगी,

जब यह काफी मजबूत बन जाएगा तब यदि आप कोई परिवर्तन करना चाहेंगे तो सेवा के अधिकारियों को उसके लिये राजी करना कठिन नहीं होगा। यदि राजाओं-महाराजाओं को अपना राज्य छोड़ देने के लिये राजी किया जा सकता है तब सेवाओं के अधिकारियों के साथ, जो हमारे अपने लोग हैं जिनके बच्चे भी इस देश में सेवा करेंगे और जिन्होंने अपने देश के लिए दिन और रात परिश्रम किया है, अन्यथा बात कैसे हो सकती है। वे ऐसे लोग हैं जो सम्मान, गौरव, प्रतिष्ठा चाहते हैं और जनता के प्यार के पात्र हैं। ऐसे लोग बहुत कम होंगे जो देश के शत्रु कहलाने के लिए सेवा करेंगे। इसलिए उनके लिए अपमानजनक रूप में मत बोलिये और मेरी आप से अपील है कि मेरे शब्दों पर विचार करें और अपना निर्णय दें।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं जानना चाहता हूं कि अपने भाषण के दौरान मैंने जो प्रश्न पूछा था, क्या उसका उत्तर श्री मुंशी देंगे अथवा माननीय सरदार पटेल देंगे। क्या मैं अपने प्रश्न को दोहरा दूं?

***अध्यक्ष:** यह आवश्यक नहीं है। आपका प्रश्न पूछा जा चुका है और यदि इस अनुच्छेद के प्रभावी सदस्य उत्तर देना चाहेंगे तो वह देंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रश्न मतदान के लिए रखा जाये।

***अध्यक्ष महोदय:** प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न अब मतदान के लिए रखा जाए—

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** श्री मुंशी।

***श्री के.एम. मुंशी:** सरदार पटेल के भाषण के बाद मैं कुछ कहना उचित नहीं समझता।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों को मतदान के लिए रखूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं संशोधन संख्या 124, 125 और 128 को मतदान के लिए नहीं रखवाना चाहता। मैं चाहता हूं कि प्रारूप समिति उन पर विचार करे।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में 'which he is from time to time serving' (जिसकी सेवा वह समय-समय पर करता रहता है)' **शब्दों के स्थान पर** 'as the case may be (यथास्थिति)' **शब्द रखा जाए।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में 'the same conditions' (उन्हीं सेवा शर्तों)' **शब्दों के स्थान पर** 'conditions (शर्तों)' **शब्द रखा जाए।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में 'and the same rights' (उन्हीं अधिकारों)' **शब्दों के स्थान पर** 'and rules (और नियमों)' **शब्द रखे जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में 'as respects disciplinary matters or rights' (अनुशासनीय विषयों के बारे में उन्हीं अधिकारों का अथवा उनके तुल्य अधिकारों का)' **शब्दों के स्थान पर** 'of conduct and discipline (आचरण तथा अनुशासन के)' **शब्द रखे जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 283-क में 'as similar thereto as changed circumstances may permit as that person was entitled to immediately before such commencement' **शब्दों के स्थान पर** 'as similar as changed circumstances may permit to what that person was entitled to immediately before such commencement' **शब्द रखे जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे विचार में आप इस बात से सहमत होंगे कि इस अनुच्छेद का मसौदा ठीक तरह तैयार नहीं किया गया है। महोदय क्या आप इस बात से सहमत नहीं हैं?

***अध्यक्ष:** मेरे सहमत अथवा असहमत होने से कुछ नहीं होगा। हमने सभा में मतदान करा लिया है। इसके बाद श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं उन पर जोर नहीं दे रहा। मैं उनको प्रारूप समिति के विचार लिए छोड़ता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 283-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 283-क संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 307

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 307 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखे जायें।

'(2) For the purpose of bringing the provisions of any law in force in the territory of India into accord with the provisions of this Constitution, the President may by order make such adaptations and modifications of such law, whether by way of repeal or amendment as may be necessary or expedient, and provide that the law shall, as from such date as may be specified in the order, have effect subject to the adaptations and modifications so made, and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall be deemed—

(a) to empower the President to make any adaptation or modification of any law after the expiration of two years from the commencement of this Constitution; or

(b) to prevent any competent legislature or other competent authority to repeal or amend any law adapted or modified by the President under the said clause."

['(2) भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी प्रवृत्त विधि के उपबंधों को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन से, राष्ट्रपति आदेश द्वारा ऐसी विधि के ऐसे अनुकूलन और रूपभेद, चाहे निरसन या चाहे संशोधन द्वारा कर सकेगा जैसे कि आवश्यक या इष्टकर हों तथा उपबंध कर सकेगा कि वह विधि ऐसी तारीख से लेकर जैसी कि आदेश में उल्लिखित हो, ऐसे किये गये अनुकूलनों और रूपभेदों के अधीन रह कर ही प्रभावी होगी तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किस न्यायालय में आपत्ति न की जायेगी।

(3) इस अनुच्छेद के खण्ड (2) की कोई बात–

(क) राष्ट्रपति को इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी विधि का कोई अनुकूलन या रूपभेद करने की शक्ति देने वाली, अथवा

(ख) किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी को, राष्ट्रपति द्वारा उक्त खण्ड के अधीन अनुकूलन या रूपभेद की गई किसी विधि को निरसित या संशोधित करने से रोकने वाली, न समझी जाएगी।' "]

"कि अनुच्छेद 307 की व्याख्या 1 में 'but shall not include an Ordinance promulgated under section 88 of the Government of India Act, 1935 (परन्तु भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 88 के अधीन प्रख्यापित कोई अध्यादेश इसमें सम्मिलित नहीं होगा)' **शब्द अन्त में जोड़ दिए जाएं।"**

"कि अनुच्छेद 307 की व्याख्या 2 में 'has' **शब्द के स्थान पर** 'had' **शब्द रखा जाये** और 'continue to have' **शब्दों के पश्चात्** 'such' **शब्द अन्त:स्थापित किया जाये।**

"कि अनुच्छेद 307 की व्याख्या 3 **के स्थान पर यह रखा जाये–**

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

'Explanation III–Nothing in this article shall be construed as continuing any temporary law in force beyond the date fixed for its expiration or the date on which it would have expired if this Constitution had not come into force.' "

['*व्याख्या 3*-इस अनुच्छेद की किसी बात का यह अर्थ न किया जायेगा कि वह किसी अस्थायी प्रवृत्त विधि को, उसकी समाप्ति के लिये नियत तारीख से अथवा उस तारीख से, जिसको कि, यदि यह संविधान प्रवृत्त न हुआ होता तो, वह समाप्त हो जाती, आगे प्रवृत्त बनाये रखती है।' "]

महोदय, प्रारूप समिति का आशय यह है अनुच्छेद 307 के खण्ड (1) को ज्यों का त्यों रखा जाये। खण्ड (2) में एक प्रयोजन विशेष से भिन्नता लाई गई है। इस बात में कुछ दुविधा थी कि क्या राष्ट्रपति विद्यमान विधियों का अनुकूलन, रूपभेद, संशोधन अथवा निरसन कर सकेगा या नहीं और ऐसा करने पर क्या उसकी कार्यवाही को न्यायालय में प्रश्नगत किया जा सकेगा और उसकी कार्यवाही में किसी सीमा तक न्यायिक हस्तक्षेप किया जा सकेगा। वास्तव में, मूल खण्ड (2) में यह कहा गया है कि ऐसे अनुकूलनों पर विधि न्यायालयों में आपत्ति नहीं की जा सकेगी। परन्तु प्रारूप समिति का विचार यह था कि यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि जिस पर आपत्ति नहीं दी जा सकती वह केवल रूप है और अनुकूलन अथवा रूपभेद और ऐसी कार्यवाही के पीछे प्रयोजन की जांच का मामला खुला रखा जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए हमने इस अनुच्छेद के खण्ड (2) का प्रारम्भ इन शब्दों से किया है:

"भारत के राज्य क्षेत्र में किसी प्रवृत्त विधि के उपबंधों को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन के लिए..."

मूल प्रयोजन यही है और यदि अनुकूलन या रूपभेद किसी अन्य प्रयोजन के लिए किया गया है तो निस्संदेह ऐसा मामला न्यायालयों के कार्यक्षेत्र में आएगा। जहां तक वह प्रयोजन रखा गया है, यदि किसी शब्द या साधारण भिन्नताओं पर कोई आपत्तियां की जाती हैं तो उन्हें विधि न्यायालयों में नहीं ले जाया जा सकता।

इस संशोधन में जो दूसरा रूपभेद रखा गया है वह इस संबंध में राष्ट्रपति की शक्ति को खण्ड (3) (क) द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष पश्चात् की अवधि तक सीमित करने के लिए है। दूसरा उपखण्ड (ख) मूल खण्ड (2) के पाठ से लिया गया है और यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति चाहे कुछ भी करे, यदि समुचित प्राधिकारी किसी भी प्रवृत्त विधि में परिवर्तन करना चाहे तो उससे उसमें कोई रूकावट नहीं होगी, चाहे राष्ट्रपति ने उसका अनुकूलन क्यों न किया हो। वह संसद अथवा किसी राज्य के विधानमंडल के समक्ष कोई विधान लाने पर रोक का काम नहीं करेगा।

जहां तक व्याख्याओं के रूपभेदों का संबंध है, व्याख्या 1 संबंधी रूपभेद, इसके अर्थ को सीमित करने के लिए है। यह भारत शासन अधिनियम की धारा 88 के अधीन प्रख्यापित अध्यादेशों के संबंध में लागू नहीं होगा। इस बात का उपबंध वहां होना चाहिए था। यह एक कमी है जिसे हम दूर करने की व्यवस्था कर रहे हैं।

जहां तक नयी व्याख्या (3) का संबंध है, वह विद्यमान व्याख्या का विस्तृत रूप है।

अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, मैं इस बात का उल्लेख करना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 313 के साथ उलझाया नहीं जाना चाहिए, जो पिछले दिन पास किया गया था जिसमें राष्ट्रपति को किसी कठिनाई की स्थिति में इस संविधान में उपबंध का रूपभेद करने की शक्ति दी गई है। विचाराधीन अनुच्छेद राष्ट्रपति को बहुत सीमित शक्ति प्रदान करता है और यह केवल उन विधियों के बारे में है जिनके बारे में राष्ट्रपति को मंत्रणा दी जाती है कि वे संविधान के प्रयोजन को सिद्ध करने में बाधक हैं और रूपभेद करना आवश्यक है। यह अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि हमने अनुच्छेद 307 (1) में व्यावस्था की है कि भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां प्रवर्तन में रहेंगी, बशर्ते कि वे इस संविधान के उपबंधों के विरुद्ध न हों। यह बहुत आवश्यक अनुच्छेद है और मेरे द्वारा सुझाए गए रूपभेद इस बात को ध्यान में रखते हुए आवश्यक हैं कि अनुच्छेद के मूल प्रारूप में किसी त्रुटि की ओर हमारा ध्यान दिलाया गया है और मुझे आशा है कि सभा इस बात को समझेगी कि इन संशोधनों को प्रस्तुत करने में जो प्रयोजन हमारे मन में है वह बहुत सीमित है। राष्ट्रपति की शक्तियां ऐसी हैं जिन्हें कि संसद अथवा उपयुक्त विधानमंडल द्वारा रद्द किया जा सकता है तथा इनका केवल उसी कालावधि के दौरान प्रयोग किए जाने का विचार है जबकि न ही तो संसद् और न ही तो सम्भवतया राज्यों के विधानमंडलों के पास इतना समय होगा जिसमें इतने विस्तार से ध्यान दे सके जो हमारे देश में प्रवृत्त कतिपय विधियों में संशोधन करने के लिए आवश्यक हो। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अनुसरण में जब भारत शासन अधिनियम, 1935 का अनुकूलन किया गया, उस समय कतिपय विधियों के बारे में कुछ इसी प्रकार की कार्यवाही की गई और यह भी उसी आधार पर होगा।

सामान्यतया, मुख्य रूपभेद एक अनौपचारिक स्वरूप के होंगे। सम्भवतया, अनेक स्थानों पर "गवर्नर जनरल" शब्दों को हटाना पड़ेगा और "राष्ट्रपति" शब्द रखना होगा तथा इसी तरह के अन्य परिवर्तन करने होंगे। जहां तक कि हमने इस संविधान में उपबंध किया है उसके सिवाय महत्वपूर्ण परिवर्तनों की सम्भावना नहीं है। यह सम्भव है कि संविधान में समाविष्ट मूल अधिकारों से उत्पन्न होने वाले कुछ परिवर्तन करने पड़ें।

इस बात को दृष्टिगत रखते हुए कि कुछ संशोधन रखे गए हैं, मैं एक तर्क की पूर्वावधारणा करूंगा। इन संशोधनों में यह सुझाव दिया गया है कि ये अनुकूलन संसद को करने चाहिएं। ठीक है, यदि संसद को ऐसा करना चाहिए अथवा संसद को राष्ट्रपति द्वारा संसद की ओर से की गई कार्यवाही का अनुमोदन करना चाहिए तो संसद संशोधनकारी विधान पास करके रूपभेद के इस प्रश्न को अपने हाथ में ले सकती है। इसका कारण यह है कि हमारा यह विचार है कि आरम्भिक अवधि के दौरान संसद के पास इस प्रयोजन के लिए समय नहीं होगा और यही कारण है कि हमने इस अनुच्छेद का प्रावधान किया है।

कुछ सुझाव दिए गए हैं कि इस विषय की जांच करने के लिए किसी न्यायाधिकरण अथवा समिति की नियुक्ति की जाए। इसे उन उपयुक्त प्राधिकारों पर छोड़ना होगा जो कि उचित समय पर इन अनुकूलनों को अपने हाथ में लेंगे। यदि उनका यह विचार होगा कि सरकार के पास जो तंत्र है वह इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त है अथवा यह कि यह तंत्र अल्प रूपभेद कर सकते हैं, और यदि इतने बड़े पैमाने पर रूपभेद की अपेक्षा है कि लोकमत से परामर्श किया जाए अथवा न्यायाधीशों से परामर्श किया जाए तो यह समुचित कार्यपालक प्राधिकारी के लिए होगा कि वह ऐसी कार्यवाही करे जो वह आवश्यक समझे। भविष्य में न्यायाधिकरण नियुक्त करने अथवा या तो भारत सरकार द्वारा या प्रान्तीय

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

सरकारों द्वारा वर्तमान विधियों की जांच करने पर कोई रोक नहीं होगी। मुझे आशा है कि इन तर्कों से वे सदस्य संतुष्ट हो जायेंगे जिन्होंने कि संशोधन प्रस्तुत किए हैं तथा यह अनुच्छेद मेरे द्वारा प्रस्तुत संशोधनों से संशोधित किए जाने के पश्चात् संशोधित रूप में पास कर दिया जाएगा। महोदय, मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मेरा प्रस्ताव है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'President may (राष्ट्रपति)' **शब्दों के पश्चात्** 'in consultation with the Chief Justice of the Supreme Court and the Chief Justices of the High Courts of Bombay, Madras and Bengal (सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा बम्बई, मद्रास और बंगाल के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के परामर्श से)' **शब्द अन्त:स्थापित किए जाएं।**

महोदय, अनुच्छेद 307 में एक उपबंध है—मैं खण्ड 2 का उल्लेख कर रहा हूं—जिसमें कहा गया है कि ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी विधि न्यायालय में आपत्ति नहीं की जाएगी। मैं इस उपबंध का विरोध नहीं करता, मैं इसके पक्ष में हूं। परन्तु यदि हम इतना कठोर उपबंध पास करने जा रहे हैं, तो यह आवश्यक है कि कोई ऐसा अनुकूलन तथा रूपभेद जो कि राष्ट्रपति करे, कम से कम देश के सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकारी से परामर्श करके किया जाए। हम न्यायालयों द्वारा इस प्रश्न की जांच पर रोक लगा रहे हैं। यहां राष्ट्रपति शब्द का अर्थ है विधि मंत्री। केवल वह ही रूपभेदों तथा अनुकूलनों का प्रभारी होगा। राष्ट्रपति के पास इन विषयों में जाने का तनिक भी न तो समय होगा और न ही झुकाव। मैं चाहता हूं कि विधि मंत्री इन मुख्य न्यायाधीशों की सहायता ले। यह किसी भी प्रकार से कोई आलोचना नहीं है और न ही विधि मंत्री की दक्षता में विश्वास की कमी, परन्तु उद्देश्य यही है कि इसके हाथ मजबूत किए जाएं ताकि किसी प्रकार का कोई जोखिम न रहे। इसी दृष्टिकोण से मैंने इन संशोधनों का सुझाव दिया है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की भाषा में, मैं उन "लोगों" में से हूं जिन्होंने संशोधनों की सूचना दी है। मेरे विचार में उनको संसदीय प्रथा तथा शिष्टाचार के अनुरूप इससे बेहतर शब्द का प्रयोग करना चाहिए था और संशोधनों की सूचना देने वालों का उल्लेख यदि माननीय सदस्यों के रूप में नहीं तो सदस्यों के रूप में तो करना चाहिए था। मेरे विचार में मेरे जिन सहयोगियों ने संशोधनों की सूचना दी है, उनके बारे में "लोगों" शब्द का प्रयोग किया जाना उचित नहीं है। तथापि, यह मैं प्रसंगवश कह रहा हूं।

मैं आपकी अनुमति से संशोधन संख्या 134 तथा 137 एक साथ प्रस्तुत करता हूं:

"कि सूची संख्या 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, "repeal or amendement" (चाहे निरसन या चाहे संशोधन)' **शब्दों के स्थान पर** 'alteration or repeal or amendment (चाहे परिवर्तन या चाहे निरसन या चाहे संशोधन)' **शब्द रखे जाएं।**"

"कि सूची संख्या 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में, 'repeal or amend (निरसित या संशोधित)' **शब्दों के स्थान पर** 'alter or repeal or amend (परिवर्तित या निरसित या संशोधित)' **शब्द रखे जाएं।**"

यह लगभग औपचारिक संशोधन है तथा ये अनुच्छेद 307 के मूल प्रारूप के अनुरूप हैं। अनुच्छेद 307 में, जिस रूप में कि वह संविधान के मूल प्रारूप में था, यह कहा गया है:

"(1) ...भारत के राज्यक्षेत्र में संविधान के प्रारम्भ से पहले प्रवृत्त सभी विधियां वहां प्रवृत्त रहेंगी जब तक कि उन्हें किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरसित या संशोधित न किया जाये।"

मेरे विचार में यह उन परिवर्तनों के बारे में, जो कि किए जा सकते हैं, अत्यंत व्यापक वक्तव्य है। अत: मेरा विचार है कि "परिवर्तित" शब्द का बाद में न रखा जाना एक ऐसी कमी है जिसे कि इस सभा को दूर करना चाहिए। अत: मैंने संशोधन संख्या 134 तथा 137 प्रस्तुत किए हैं ताकि इस नए प्रारूप को अनुच्छेद 307 के मूल प्रारूप के अनुरूप बनाया जा सके। मेरे विचार में ये अधिक व्यापक हैं और हम जो कुछ भी व्यक्त करना चाहते हैं इनमें उसकी बेहतर अभिव्यक्ति होगी।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास-जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 135 प्रस्तुत करता हूं जो कि मेरे नाम में है:

"कि सूची संख्या 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, **अन्त में** 'but placed before the Parliament for ratification (परन्तु ये अनुसमर्थन के लिये संसद के समक्ष रखे जायेंगे)' **शब्द जोड़े जाएं**।"

महोदय, मेरा विचार है कि जिस संशोधन की मैंने सूचना दी है, उसमें कुछ सिद्धान्त अन्तर्निहित हैं। इस अनुच्छेद पर बोलते हुए मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने हमें बताया कि राष्ट्रपति को, आपातकालीन स्थिति के दौरान तथा उस समय भी जबकि विधानमंडलों का सत्र न चल रहा हो, शक्ति प्रदान करने हेतु संविधान में ऐसा उपबंध समाविष्ट किया गया है। महोदय, प्रान्तों के राज्यपाल अध्यादेश प्रख्यापित करते हैं और वे अपना यह कर्त्तव्य मानते हैं कि जब कभी भी विधानमंडलों का अधिवेशन आरम्भ हो, वे उन अध्यादेशों तथा कानूनों को, जो कि देश के हित में आवश्यक है, सम्बन्धित विधानमंडल के समक्ष रखें। संविधान में परिकल्पित रूप में, राष्ट्रपति संसद को उस निकाय के रूप में देख सकता है जिसे कि उसकी उन सभी कार्यवाहियों का अनुसमर्थन करना है जो कि राष्ट्रपति ने उस दौरान की है जब संसद का सत्र नहीं चल रहा था। हम राष्ट्रपति से केवल यही मांग कर रहे हैं कि उन्होंने संविधान के अनुरूप जो अनुकूलन या परिवर्तन किए हैं उन्हें वह सभा के समक्ष रखें, ताकि केवल देश को ही नहीं बल्कि संसद में जन प्रतिनिधियों को भी यह पता चले कि राष्ट्रपति ने विधानमंडलों अथवा संसद की अनुपस्थिति में क्या कार्यवाही की है। महोदय, मेरा विचार है कि देश के विधानमंडल अथवा संसद को यह सब कुछ जानने का अधिकार है, क्योंकि यह आशा की जाती है कि प्रत्येक सदस्य को इस बात की जानकारी रहे कि राष्ट्रपति ने आपातकालीन उपायों के रूप में उस दौरान क्या कुछ किया जबकि संसद का सत्र नहीं चल रहा था। मुझे विश्वास है कि प्रारूप समिति इस विषय पर विचार करेगी तथा मेरा संशोधन स्वीकार करेगी। इसके अलावा खण्ड (3) (ख) में यह स्पष्ट किया गया है कि "खण्ड (2) की कोई बात किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी को राष्ट्रपति द्वारा उक्त खण्ड के अधीन अनुकूलन या रूपभेद की गई किसी विधि को निरसित या संशोधित करने से रोकने वाली न समझी जाएगी।" अत: महोदय, मैं यह समझता हूं कि यह संशोधन प्रारूप समिति द्वारा स्वीकार किया जा सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची संख्या 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, (i) उपखण्ड (क) में 'after the expiration of two years from the commencement of this Constitution (इस संविधान के आरम्भ से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात्)' **शब्दों के स्थान पर** 'after the Constitution of the Ministries of the Government of India or of the States as the case may be after the first general election under this Constitution (इस संविधान के अन्तर्गत प्रथम सामान्य चुनाव के पश्चात भारत सरकार अथवा राज्य सरकारों, जैसी भी स्थिति हो, की मंत्रिपरिषद गठित होने के पश्चात्)' **शब्द रखे जाएं;** और

(ii) उपखण्ड (ख) में 'or other competent authority ('या अन्य सक्षम प्राधिकारी)" **शब्द निकाल दिये जाएं।**"

महोदय, ये दो संशोधन प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में मैं यह अवश्य कहूंगा कि जो दो खण्ड प्रस्तुत किए गए हैं, मैं उनके सिद्धान्त से पूरी तरह सहमत हूं। इस अन्तरिम अवधि में जबकि हम एक अत्यन्त त्वरित संक्रमणकाल से होकर गुजर रहे हैं, अनेक असंगतियां तथा कठिनाइयां पैदा होंगी और इसलिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति को ऐसे अनुकूलन तथा रूपभेद करने के प्राधिकार दिए जाएं जो कि अपेक्षित हों। वर्तमान विधियों का अनुकूलन तथा रूपभेद करना होगा ताकि उन्हें नए संविधान में निर्धारित मानक के अनुरूप बनाया जा सके। जब भारत शासन अधिनियम, 1935 पास हुआ था, उस समय भी ऐसा ही किया गया था। इस सिद्धान्त से सहमत होते हुए भी मेरे संशोधन में उस अवधि को सीमित करने का प्रयास किया गया है जिनके दौरान राष्ट्रपति अनुकूलन तथा रूपभेद की अपनी इन शक्तियों का निर्वहन कर सकेगा। खण्ड 3 के उपखण्ड (क) में यह प्रस्ताव है कि इन अनुकूलनों तथा रूपभेदों को करने की राष्ट्रपति की शक्ति दो वर्षों तक सीमित होगी। मेरा संशोधन यह है कि दो वर्षों की इस अवधि के बजाय मैं इसे उस अवधि तक सीमित करना चाहता हूं जिस दौरान कि सामान्य निर्वाचन होंगे तथा केन्द्र और राज्यों में मंत्रिपरिषदें गठित होंगी। तत्पश्चात् केन्द्र तथा राज्यों में विधानमंडल पूरी तरह से कार्यरत होंगे। हम दो वर्षों की अवधि के भीतर संविधान के अंन्तर्गत सामान्य निर्वाचन करा सकते हैं। यदि ऐसा है तो यह एक असंगति पैदा होगी कि केन्द्र तथा राज्यों दोनों में विधानमंडल पूरी तरह से कार्यरत होंगे और फिर भी राष्ट्रपति को संविधान में संशोधन, परिवर्तन और रूपभेद करने की शक्ति होगी। इन विधानमंडलों के कार्यरत होने के बाद राष्ट्रपति की शक्ति समाप्त हो जानी चाहिए। इसके पश्चात् केवल विधानमंडलों को ही रूपभेद करने का अधिकार होना चाहिए। अत: ये रूपभेद करने की शक्ति उसी समय तक रहनी चाहिए जब तक कि अगले सामान्य निर्वाचन नहीं हो जाते तथा मंत्रिपरिषद् गठित नहीं कर ली जाती। इस अवधि को इससे अधिक बढ़ाने का कोई कारण नहीं है। यह हो सकता है कि सामान्य निर्वाचन में विलम्ब हो जाये तथा उस स्थिति में दो वर्षों की अवधि के पश्चात् तथा नए विधानमंडल बनने तक के समय में अन्तराल आ सकता है जबकि ऐसा अनुकूलन करने के लिए कोई भी प्राधिकारी न रहे। उन परिस्थितियों में मैं इस अवधि को उस समय तक की अवधि रखना चाहता हूं जब तक कि चुनाव न हो जाएं तथा मंत्रिपरिषदें गठित न हो जाएं।

मेरे दूसरे संशोधन का संबंध प्रस्तावित खण्ड (3) से है जो कि इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद के खण्ड (2) की कोई बात किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी को राष्ट्रपति द्वारा उक्त खण्ड के अधीन अनुकूलन या रूपभेद की गई किसी विधि को निरसित या संशोधित करने से रोकने वाली न समझी जाएगी।"

मैं "या अन्य सक्षम प्राधिकारी" शब्दों का लोप करना चाहूंगा। मैं इस बात को भली प्रकार समझ सकता हूं कि राष्ट्रपति द्वारा किया गया अनुकूलन किसी सक्षम विधानमंडल द्वारा परिवर्तित किया जा सकेगा, परन्तु मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि आवश्यक परिवर्तन करने के लिए वहां अन्य कौन-सा सक्षम प्राधिकारी हो सकता है। अत: राष्ट्रपति के निर्णयों में परिवर्तन करने की यह शक्ति हमें सक्षम विधानमंडलों के लिए भी छोड़ देनी चाहिए, किसी अन्य प्राधिकारी के लिए नहीं। मैं यह जानना चाहूंगा कि विधानमंडलों से परे और कौन-सा सक्षम प्राधिकारी होगा जिसे कि आवश्यक परिवर्तन करने के लिए शक्ति दी जा सकेगी अथवा दी जानी चाहिए।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची संख्या 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2), 'and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law (तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी)' **शब्द निकाल दिये जाएं।**"

यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुच्छेद है जिसके द्वारा हम सभी वर्तमान विधियों को संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाना चाहते हैं तथा हम ऐसे अनुकूलन के लिए व्यवस्था उपलब्ध करा रहे हैं। राष्ट्रपति को एतद्द्वारा ऐसा करने का प्राधिकार दिया जा रहा है। मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं है। मेरे विचार में यह इस समय विद्यमान विधियों को केवल संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाने के लिए है और इसलिए मैं इस बात से बिल्कुल सहमत हूं कि इसके लिए राष्ट्रपति ही उचित प्राधिकारी हैं। परन्तु जिस बात पर मुझे आपत्ति है, वह यह है कि जो अनुकूलन उनके द्वारा किया जायेगा उस पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। मान लीजिये कि यदि किया गया रूपभेद गलती से अथवा किसी अन्य कारण से वास्तव में इस खण्ड के आशय के अनुरूप नहीं है तथा इससे परे चला जाता है, तब वह कौन-सा प्राधिकारी है जो कि यह घोषणा करेगा कि अनुकूलन इस अनुच्छेद के आशय के अनुरूप नहीं है जो इस प्रकार है:

"भारत के राज्यक्षेत्र में किसी प्रवृत्त विधि को इस संविधान उपबंधों से संगत करने के लिए, आदि।"

परन्तु यह सुनिश्चित करने के लिए किस तंत्र की व्यवस्था की गई है कि इस खण्ड के प्रयोजन को आरम्भ में ही प्रभावी बनाया जाए? यदि आशय यह है कि ऐसे प्रत्येक मामले को उच्चतम नयायालय में ले जाना होगा तो यह काफी कष्टदायक बात होगी तथा खर्चीली भी होगी, क्योंकि संशोधित किए जाने वाला कानून काफी व्यापक होगा। अत: मेरा विचार है कि जो न्यायालय उस कानून को लागू करते हैं, उन्हें यह निर्णय करने की शक्ति दी जानी चाहिए कि क्या ऐसा अनुकूलन उचित है, अथवा नहीं। राष्ट्रपति के पास सभी विधियों की जांच करने तथा यह सुनिश्चित करने के लिए समय नहीं होगा कि इनका अनुकूलन संविधान के अनुरूप ही हो। यह सब कुछ विधि विभाग करेगा तथा विधि मंत्री तक को

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

भी इन सबकी जांच करने का समय नहीं होगा। यह कार्यविधि विभाग के क्लर्कों द्वारा किया जाएगा। हम यह नहीं चाहते कि भूतपूर्व विधानमंडलों द्वारा पास किए गए संसदीय अधिनियमों का साधारण क्लर्कों द्वारा संशोधन तथा अनुकूलन किया जाये और यह कि इस आधार पर भी कि वे संविधान के उपबंधों के अनुरूप नहीं हैं उन पर न्यायालय में आपत्ति न की जा सके।

अत: मैं यह चाहता हूं कि कानून के साधारणतंत्र पर विश्वास रखा जाये कि वह यह सुनिश्चित करे कि यदि अनुकूलन में कोई त्रुटि होती है तो न्यायालय को उसमें सुधार करने की शक्ति दी जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो अनेक गलतियां होंगी जिन्हें कि देश में कोई भी सही नहीं कर सकेगा। यदि आप यह चाहते हैं कि उच्चतम न्यायालय में मामला उठाया जाए तो मेरे विचार में प्रत्येक वादी के पास ऐसा करने की शक्ति नहीं होगी। मुझे नहीं मालूम कि क्या उच्चतम न्यायालय के पास भी ऐसा करने की शक्ति होगी। परन्तु मेरा विचार है कि उच्चतम न्यायालय में किसी भी बात की जांच करने की शक्ति अन्तर्निहित है। परन्तु, फिर भी, इस संविधान में हमें यह उपबंध निश्चित रूप से करना चाहिए कि अनुकूलन प्रथम खण्ड में दिए गए प्रयोजन से किया जायेगा तथा न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की जायेगी कि वह एसे अनुकलन के सही होने के बारे में मूल्यांकन करे। अन्य संशोधनों पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मैं नहीं समझता कि प्रारूप समिति यह स्पष्ट करेगी कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए किस तंत्र की व्यवस्था कर रही है कि किए गए अनुकूलन केवल संविधान के उपबंधों के अनुरूप हों।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब-जनरल): महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) के स्थान पर यह रखा जाए:

'The President shall, as soon as may be after the commencement of this Constitution, by order, appoint a Committee of experts to examine all the laws in force in the territories of India by whichsoever authority enacted and to report to him within a period of 8 months if any or any portion of the laws in force is inconsistent with the provisions of this Constitution and what adaptations and modifications are necessary to bring into accord the inconsistent portions with the provisions of this Constitution. The Government shall forthwith take steps to repeal or amend such laws or portions of them as are not in accord with the provisions of this Constitution and unless such laws or portions of laws are repealed or amended by being brought within a further period of one year and four months from the date of report in accord with the provisions of this Constitution, they shall cease to be in force unless they are repealed or amended earlier by any competent authority or declared void by the courts.'

['राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारम्भ होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र आदेश द्वारा विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करेगा जो भारत के राज्यक्षेत्रों में प्रवृत्त सभी

विधियों की जांच करेगी चाहे ये विधियां किसी भी प्राधिकारी द्वारा बनाई गई हों, तथा आठ मास की अवधि के भीतर उसे रिपोर्ट करेगी कि क्या कोई प्रवृत्त विधि अथवा इसका कोई भाग इस संविधान के उपबंधों के असंगत हैं तथा उन असंगत भागों को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के लिए कौन-कौन से अनुकूलन तथा रूपभेद आवश्यक है। सरकार ऐसी विधियों अथवा उनके भागों का जो कि इस संविधान के उपबंधों से संगत नहीं हैं, निरसन करने अथवा उनमें संशोधन करने के लिए तुरन्त उपाय करेगी और जब तक कि ऐसी विधियों अथवा ऐसी विधियों के भागों को रिपोर्ट की तारीख से एक वर्ष चार महीनों की अग्रेतर अवधि के भीतर इस संविधान के उपबंध से संगत बनाकर उनका निरसन अथवा संशोधन नहीं किया जाता, वे प्रवर्तन में नहीं रहेंगे जब तक कि उन्हें इससे पूर्व किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा निरसित अथवा संशोधित नहीं कर दिया जाता या न्यायालयों द्वारा शून्य घोषित नहीं कर दिया जाता।' "]

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (3) के स्थान पर यह रखा जाए:

'(3) for the purpose of bringing the provisions of the laws in force in the territory of India relating to fundamental rights guaranteed by this Constitution into accord with the provisions of this Constitution the President shall after the commencement of this Constitution appoint as soon as may be a Committee of experts to examine the laws in force in the territory of India with instructions to report if any or any portion of them is inconsistent with the provisions relating to fundamental rights and what adaptations and modifications are necessary to bring such inconsistent laws or portions of laws in accord with the provisions of this Constitution. The Government shall on the receipt of the report forthwith take steps to avoid repeal or amend such laws or portions of them as are not in accord with the guaranteed fundamental rights. Such laws or portions of them as are reported to be inconsistent and not in accord with the guaranteed fundamental rights shall cease to be in force after an year of the commencement of this Constitution if they are not avoided repealed or amended earlier.'

['(3) भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त ऐसी विधियों के उपबंधों को जो इस संविधान में गारंटी दिए गए मूल अधिकारों से सम्बन्धित हैं इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन के लिए, राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् भारत के राज्य क्षेत्रों में प्रवृत्त विधियों की जांच करने हेतु यथाशक्य शीघ्र विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करेगा तथा उसे यह अनुदेश देगा कि वह यह रिपोर्ट दे कि क्या इनमें से कोई विधियां अथवा इनका कोई भाग मूल अधिकारों से सम्बन्धित उपबंधों के असंगत है और ऐसी असंगत विधियों तथा विधियों के भागों को इस संविधान से संगत करने के लिए कौन-कौन से अनुकूलन तथा रूपभेद आवश्यक हैं। रिपोर्ट प्राप्त होने पर सरकार ऐसी विधियों अथवा इनके भागों, जो कि गारंटी दिए गए मूल अधिकारों से संगत नहीं है, का परिवर्जन निरसन तथा संशोधन करने के लिए तुरंत उपाय करेगी। ऐसी विधियां अथवा उनके भाग जिनके बारे में कि ऐसी रिपोर्ट दी गई है कि ये असंगत हैं तथा गारंटी दिए गए मूल अधिकारों के अनुरूप नहीं हैं,

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष के पश्चात् प्रवर्तन में नहीं रहेगी यदि उन्हें इससे पूर्व परिवर्जित, निरसित अथवा संशोधित नहीं किया जाता।' "]

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'made, and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law (प्रभावी होगी तथा ऐसी किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी)' **शब्दों के स्थान पर** 'made (प्रभावी होगी)' **शब्द रखे जाएं।**

यह भी कि:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'and any such adaptations or modifications shall not be questioned in any court of law (तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी।)' **शब्दों के स्थान पर** 'except in so far as they are inconsistent with the provisions of this Constitution (सिवाय इसके कि जहां तक कि ये इस संविधान के उपबंधों से संगत नहीं हों)' **शब्द रखे जाएं।**

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में 'except on the ground that the law so adapted or modified is not in accord with the provisions of this Constitution (सिवाय इस आधार पर कि इस प्रकार अनुकूलन या रूपभेद की गई विधि इस संविधान के उपबंधों से संगत नहीं है)' " **शब्द अन्त में जोड़े जाएं।**"

और यह भी कि...

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) तथा (3) **निकाल दिये जाएं।**"

महोदय ये संशोधन प्रस्तुत करने का मेरा प्रयोजन उन सभी उपबंधों को पूरी तरह प्रभावी बनाना है जो हम पहले ही पास कर चुके हैं, जिनके लिये अनुच्छेद 8 देखिये। अब इन वर्तमान विधियों को आसानी से दो प्रकार की विधियों में बांटा जा सकता है—मूल, गारंटी दिये गए अधिकारों से सम्बन्धित विधियां तथा अन्य मामलों से सम्बन्धित विधियां। मैं इन दोनों में अन्तर करना चाहता हूं और जैसा कि मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधनों से स्पष्ट है इनमें से कुछ संशोधन तो केवल गारंटी दिए गए अधिकारों से सम्बन्धित हैं तथा अन्य कुछ इस समय प्रवृत्त अन्य विधियों से सम्बन्धित हैं। अब मेरी इन शब्दों के प्रति घोर आपत्ति है कि "तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी।" और यही

कारण है कि मैंने ये संशोधन प्रस्तुत किए हैं ताकि ये शब्द हटा दिए जाएं तथा इनके स्थान पर कुछ ऐसे शब्द रखे जाएं जिनसे कि अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जाए। मैं इस खण्ड के आपत्तिजनक उपबंधों को हटाए जाने के लिए लगभग हताश हो गया हूं और इसीलिए मैंने यह प्रस्ताव तक भी किया है कि खण्ड (2) पूरा ही हटा दिया जाए। महोदय, मैं समझता हूं कि इस विषय पर पूरी तरह विचार नहीं किया गया है; मेरा तात्पर्य यह है कि इतना विचार नहीं किया गया है जितना कि किया जाना चाहिए था। यदि प्रस्ताव को इसी रूप में स्वीकार कर लिया जाता है जिस रूप में कि यह इस समय है, यदि श्री कृष्णमाचारी का प्रस्ताव पास हो जाता है तो उसका परिणाम यह होगा कि विधान मंडल नहीं अपितु सरकार अपने विधि विभाग के माध्यम से, विधि मंत्री नहीं अपितु सचिव अथवा क्लर्क लोग ये अनुकूलन तथा रूपभेद करेंगे और यह सभी अनुकूलन तथा रूपभेद कभी भी किसी विधानसभा अथवा विधानमंडल के समक्ष नहीं आएंगे। देश की मूल विधि कार्यपालिका आदेश से स्वत: ही अनुकूलित अथवा संशोधित हो जायेंगी और वह देश की विधि बन जाएगी। विधि अनुकूलित तथा संशोधित मानी जाएगी तथा इसके पश्चात् यह विधि इतनी अपरिवर्तनीय बन जाएगी कि न्यायालय में उस पर आपत्ति नहीं की जा सकेगी। मेरा निवेदन है कि हम अनुच्छेद 8 पास कर चुके हैं: जिसमें कहा गया है:

> "इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां उस भाग तक शून्य होंगी जिस तक कि वे इस भाग के उपबंधों से असंगत हैं।"

अब उन सभी विधियों को जिन्हें शून्य घोषित करने के लिए आज न्यायालय को शक्ति प्राप्त है, इन अनुकूलनों द्वारा पवित्र तथा पक्का बनाया जा रहा है और यह अनुच्छेद 8 के खण्ड (2) के अनुसार नहीं है, जिसमें कि कहा गया है:

> "राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है और इस खण्ड के उल्लंघन में बनाई गई कोई विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।"

यदि ऐसा रूपभेद या अनुकूलन किया जाता है जिससे कि वास्तव में इस खण्ड का उल्लंघन होता है तो उस स्थिति में क्या होगा? उस विधि पर आपत्ति नहीं की जा सकती, कोई भी न्यायालय इस पर आपत्ति नहीं कर सकेगा, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि जो कुछ भी हम अनुच्छेद 8 (1) तथा 8 (2) के माध्यम से दे रहे हैं, उसे चोर दरवाजे से हटाया जा रहा है। मेरा यह कहना नहीं है कि जिन्होंने यह प्रस्ताव बनाया है, उनकी यह इच्छा है, परन्तु मेरा नम्र निवेदन यह है कि इसका परिणाम यही होगा, अर्थात् इससे इसी प्रकार की स्थिति पैदा होगी।

मैं इस बात को उदाहरण देकर समझाता हूं। अनुच्छेद 13 को ही लीजिये। हमने इन अनुच्छेदों के अधीन किये गए उपबंधों से राजद्रोह की परिभाषा को ही बदल दिया। अनुच्छेद 13(3) के अन्तर्गत हमने "अधिकार के प्रयोग पर निर्बंधन....." से पूर्व "युक्तियुक्त" शब्द रख दिया है और इस प्रकार हमने देश के न्यायालयों को यह अवसर दिया है कि वे यह देखें कि क्या वे विशेष विधियां जो कि कठोर तथा दु:सह हैं, शून्य होनी चाहिएं अथवा नहीं। वे न्यायालय के अधिकार के अन्तर्गत आती हैं, तथा कोई भी न्यायालय यह घोषणा कर सकता है कि

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

अमुक-अमुक विधि अनुच्छेद 13 के शब्दों तथा भावना के विरुद्ध हैं और इसलिए शून्य हैं। परन्तु ज्यों ही अनुकूलन कर दिया जाता है—और वह ऐसा नहीं होगा जो विधानमंडल द्वारा किया गया हो, वरन् ऐसा होगा जो कार्यपालिका द्वारा किया गया है—और ऐसा अनुकूलन प्रयोजन सिद्ध करने में असफल रहे, यदि अनुच्छेद 8 के अनुरूप नहीं हो, तो किसी न्यायालय के पास यह शक्ति अथवा अधिकार नहीं होगा कि इस अनुकूलन को गलत घोषित कर सके, जिसका अर्थ यह होगा कि हम कार्यपालिका को ऐसी शक्ति सौंप रहे हैं जो कि हमने विधानमंडलों तक को भी नहीं दी है। यदि यह संसद 26 जनवरी, 1950 के पश्चात् इन मूल अधिकारों के सम्बन्ध में कोई ऐसी विधि पास करती है जो लोगों की स्वतंत्रता को न्यून करती हो, तो उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है तथा कोई भी न्यायालय यह कह सकता है कि जहां तक कि इस विधि से मूल अधिकारों सम्बन्धी उपबंधों का उल्लंघन हुआ, वहां तक संसद गलती पर थी। यदि अनुकूलन इस प्रकार किया जाता है कि इससे पूरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता तो हम अत्यन्त निस्सहाय बन जाते हैं। यह कहा जाता है कि ऐसा उपबंध है कि कोई भी विधानमंडल ऐसी कोई कार्यवाही कर सकता है जो वह आवश्यक समझे और ऐसी विधि का निरसन कर सकता है। बिल्कुल ठीक है। यही स्थिति है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या यह अधिकार पूर्णतः भ्रामक नहीं है? कौन-सा ऐसा प्रान्तीय विधानमंडल है जो कि इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि राष्ट्रपति द्वारा किया गया अनुकूलन अथवा रूपभेद गलत है तथा वह राष्ट्रपति के निर्णयों पर एक अपीलीय न्यायालय के रूप में बैठेगा और नए सिर से कानून बनाएगा? कहां है वह सदस्य विशेष जिसे कि आवश्यक नए उपबंधों को लाने की सुविधाएं दी जाएंगी? हम सभी जानते हैं कि उन लोगों के मार्ग में कितनी रूकावटें हैं जो कि कानून बनाना चाहते हैं। मेरा निवेदन यह है जब ये अनुकूलन या रूपभेद एक बार कर लिए जाएंगे तो उन्हें बदलना अत्यन्त कठिन होगा। सरकार इन्हें नहीं बदलेगी। स्थानीय विधानमंडल उन्हें नहीं बदलेंगे तथा किसी प्राइवेट मेम्बर को उन्हें बदलने का अवसर नहीं मिलेगा। इसका यह स्पष्ट अर्थ हुआ कि ये अनुकूलन अथवा रूपभेद हमेशा बने रहेंगे, चाहे वे संविधान से संगत हों अथवा नहीं। देश का कानून कौन बनाता है? विधानमंडल, कार्यपालिका नहीं, अथवा विधि मंत्री के कार्यालय का सचिव या क्लर्क नहीं। यदि राष्ट्रपति भी कोई अध्यादेश जारी करता है तो वह अध्यादेश भी दो महीनों की अवधि के भीतर विधानमंडल के समक्ष रखा जाएगा, परन्तु जहां तक कि इन अनुकूलनों या रूपभेदों का सम्बन्ध है वे कभी भी विधानमंडलों के समक्ष नहीं रखे जाएंगे। अतः मेरा निवेदन है कि ये अनुकूलन कई प्रकार से दोषपूर्ण होंगे इन पर विधान मंडलों की मोहर नहीं लगेगी तथा न्यायालय इन रूपभेदों पर आपत्ति करने के लिए सक्षम नहीं होंगे।

महोदय, यह कहा जाता है कि पहला वाक्य, अर्थात "भारत के राज्य-क्षेत्र में प्रवृत्त किसी विधि को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन से" पर्याप्त गारंटी है। मेरा निवेदन है कि यह कोई गारंटी नहीं है। मैं यह कहना चाहता हूं कि प्रयोजन तो है, परन्तु यदि प्रयोजन पूरा नहीं किया जाता, यदि अनुकूलन तथा रूपभेद सही नहीं है अथवा इतने उपयोगी नहीं हैं जितने कि मूल अधिकार हैं तो उसका क्या लाभ है? न्यायालयों को हस्तक्षेप करने की कोई शक्ति नहीं है। यदि आप कहते हैं कि "आवश्यक या समीचीन" शब्द इसमें हैं तथा न्यायालय इस बात की जांच कर सकता है कि क्या अनुकूलन आवश्यक या समीचीन हैं, तो मेरा निवेदन है कि "किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी" शब्द रखने में क्या तुक है? मेरी समझ में, श्री कृष्णमाचारी ने यह कहा कि छोटी-छोटी बातों पर प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए और केवल प्रयोजन ही देखा जाना चाहिए।

अनुकूलन में कहा जा सकता है कि अमुक-अमुक प्रयोजन के लिए अनुकूलन किए गए हैं, परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। न्यायालय प्रयोजन पर भी आपत्ति नहीं कर सकेंगे। प्रयोजन तो है, परन्तु इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि अनुकूलनों से प्रयोजन सिद्ध हो जाएंगे। यह कहा जा सकता है कि ऐसा उपबंध पुराने भारत शासन अधिनियम 1935 में धारा 293 के रूप में विद्यमान था निस्संदेह भारत शासन अधिनियम में वह धारा थी, परन्तु फिर भी अब प्रयोजन बिल्कुल भिन्न है। यहां इस संविधान में जो मुख्य परिवर्तन हमने किया है, वह यह है कि हमने कुछ मूल अधिकार दिए हैं। 1935 के अधिनियम में कोई मूल अधिकार नहीं थे। यदि आप देश की साधारण विधियों में अनुकूलन करते हैं तो मुझे चिन्ता नहीं होगी, बशर्ते कि आप लोगों के अधिकारों को हाथ न लगाएं। आप देश की सभी विधियों को संविधान के अनुरूप बना सकते हैं। परन्तु जब आप सामान्य लोगों के नाजुक अधिकारों को हाथ लगाते हैं और उनके मूल अधिकारों को हाथ लगाते हैं तब, मेरा निवेदन है कि यह मामला अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है। "किसी न्यायालय में आपत्ति न की जायेगी" शब्द भी नहीं है। पुरानी धारा 293 में आप देखेंगे कि न्यायालय की शक्तियां हटाई नहीं गई थीं। इस धारा में विधियां पहले की भांति न्यायालयों के अधिकार में थी। अब ये शब्द विशेष रूप से जोड़ दिए गए हैं कि अनुकूलनों तथा रूपभेदों पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जाएगी। मेरी मुख्य आपत्ति इन शब्दों पर है।

अब मैं अपनी गौण आपत्ति पर आता हूं। हालांकि यह भी समान महत्व की है। मैं कहना चाहता हूं कि कार्यपालिका को इन विधियों का अनुकूलन करने का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। मेरा प्रस्ताव है कि इन मूल अधिकारों के सम्बंध में विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की जानी चाहिएं। जो इस प्रश्न की जांच करे। यह एक महत्वपूर्ण समिति होगी तथा देश के सर्वोत्तम व्यक्ति इसके सदस्य होने चाहिएं। वे विधियों की जांच करेंगे तथा राष्ट्रपति को रिपोर्ट देंगे कि वह सुनिश्चित करें कि अमुक-अमुक विधियां बनाई जाए, क्योंकि कानून बनाने की शक्ति विधानमंडलों के पास है तथा हम यह शक्ति किसी राष्ट्रपति को अथवा अन्य किन्हीं लोगों को प्रत्यायोजित नहीं कर सकते। इस समिति द्वारा रिपोर्ट दिए जाने के पश्चात् सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाएगी कि ऐसी असंगत विधियों का निरसन कर दिया जाए। इसमें मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि न्यायालय की शक्ति समाप्त नहीं हो जायेगी। इन मूल अधिकारों का सार यह है कि न्यायालय ही अन्तिम प्राधिकार है तथा न्यायालयों का ही अन्तिम क्षेत्राधिकार भी है। आखिरकार यदि न्यायालय इन अधिकारों की रक्षा नहीं करेंगे तो हम यह आशा कदापि नहीं रख सकते हैं कि कार्यपालिका ऐसा करेगी। वास्तव में आप उलटी गंगा बहा रहे हैं। भारत शासन अधिनियम 1935 में इन अधिकारों को बिल्कुल भी हाथ नहीं लगाया गया था। केवल वर्तमान विधियों पर ही विचार हुआ था, मूल अधिकारों का कोई उल्लेख नहीं था और इसलिए न्यायालयों का क्षेत्राधिकार नहीं हटाया गया था। यह सम्भव है कि अनुच्छेद 13 द्वारा गारंटी दिए गए मूल अधिकारों में अनुकूलन के दौरान इस प्रकार हेर-फेर किया जाए कि हम आने वाले अनेक वर्षों में उनमें परिवर्तन न कर सकें।

अत: महोदय, मुझे यह प्रतीत होता है कि आपने समस्त विश्व के सामने केवल ढिंढोरा पीटा है कि आपने ये मूल अधिकार दिए हैं। मैं यह नहीं कहता कि विधि मंत्री इस प्रकार व्यवहार करेंगे। मेरे विचार में वह इस प्रकार व्यवहार नहीं करेंगे परन्तु वह अपने कक्ष में किसी से यह कह सकते हैं कि वह इस मामले की जांच करें। मैं सम्भवतया इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि यह शक्ति किसी भी प्राधिकारी को जिसमें कि राष्ट्रपति तथा विधि मंत्री तक सम्मलित हैं प्रत्यायोजित की जाए। विधानमंडल को ही इन कानूनों की जांच करने दी जानी चाहिए और

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

उसे इसका पता लगाना चाहिए कि क्या ये अनुकूलन आवश्यक हैं अथवा नहीं। कार्यपालिका को इस ढंग से देश के कानून को नहीं बदलना चाहिए। श्री कृष्णमाचारी ने कहा कि ये शब्द महत्वपूर्ण नहीं है। ठीक है, इन्हें निकाल दें और मेरी मुख्य आपत्ति भी समाप्त हो जाएगी। महोदय, 1947 में हमारे पास विधान सभा में एक विधेयक था जिसमें कि पुरानी विधियों का निरसन विधानमंडलों द्वारा किए जाने की मांग की गई थी। आप एक निरसनकारी विधेयक पुनः संविधान सभा में क्यों नहीं ला सकते? इन मूल अधिकारों के सम्बन्ध में लोग न्यायालय में जाएंगे तथा न्यायालय यह निर्णय दे सकेगा कि अमुक-अमुक विधि संविधान के उपबंधों के अनुकूल नहीं हैं। आप यह शक्ति न्यायालयों को क्यों नहीं दे देते? यदि आप लोगों को लाभ पहुंचाना चाहते हैं, तो उन्हें यह लाभ प्रत्यक्ष रूप में पहुंचाएं। जैसी स्थिति इस समय है, आप अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर सकते हैं तथा लोगों के लिए संकट खड़ा कर सकते हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास-जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तुत संशोधन पर काफी अधिक आलोचना, पूर्ण गलतफहमी के कारण की गई है। इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि इस खण्ड को उद्देश्य क्या है। हमारे संविधान ने संविधान के ढांचे, शक्तियों के वितरण, विशेष प्राधिकारों में निहित शक्तियों, यूनिटों के विधानमंडलों तथा केन्द्रीय विधानमंडल के बीच संबंधों में कुछ मूलभूत परिवर्तन किए हैं। साथ ही हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि हम कानून बनाने का अपना कार्य नए सिरे से आरम्भ करें, परन्तु हमारा उद्देश्य यह है कि हम केवल उन्हीं निषेधों तथा विशेष उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए जिनका कि वर्तमान संविधान में प्रावधान है, पूर्व संविधान के अन्तर्गत आने वाली सभी कानूनों को ग्रहण करें। यह आवश्यक है कि उन सभी अनेक संविधियों, अध्यादेशों, अधिनियमों, अधीनस्थ अधिनियम तथा नियमों के बारे में जानें जो कि वर्ष 1935 में पहले अनुकूलन के पश्चात् इन बीस वर्षों में बनाए गए हैं। यदि प्रत्येक अनिधियम, प्रत्येक नियम तथा प्रत्येक आदेश को न्यायालयों की जांच के अध्यधीन रखा जाना है और यदि इस अनुकूलन की एक न्यायालय के पश्चात् दूसरे न्यायालय में जांच होनी है, तो इससे निस्संदे वकीलों तथा वादियों को तो अनेक सुअवसर उपलब्ध हो जाएंगे, परन्तु यह देश के व्यापक हित में नहीं होगा। अतः सम्पूर्ण विधान को नए संविधान में समाविष्ट करने के लिए आप पहले यह उपबंध करें कि वे अधिनियम प्रवर्तन में बने रहेंगे, जब तक कि वे संविधान के सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों।

यह पहला सिद्धान्त है तथा इसे निर्धारित कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि अनुकूलन के लिए उपबंध किया जाए। यदि ऐसा अनुकूलन दो वर्षों के भीतर किया जाना है जबकि संसद के पास नया संविधान बनाये जाने के परिणामस्वरूप विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अत्यधिक कार्यभार होगा, तो संसद को अनुकूलन के कार्य से परेशानी में डालना एक नामसझी का काम होगा। इन परिजातियों में यह उपबंध किया गया है कि अनुकूलन सरकार द्वारा किया जायेगा। आप उस धारणा को लेकर न चलें कि दिल्ली में बैठा गवर्नर जनरल अथवा राष्ट्रपति ये सब अनुकूलन करेगा। सरकार की सहायता एक विशेषज्ञ समिति करेगी। मेरे मित्र ने जिन सलाहकार समितियों का सुझाव दिया है उनका उपयोग अनुकूलन के प्रयोजन के लिए किया जा सकता है, बशर्ते कि वे बहुत भारी भरकम न बन जाएं और अनुकूलन के कार्य में रुकावट न डालें। अनुकूलन शीघ्र करना होगा और इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्य भी होगा कि जिसे कि संविधान के पास होने के तुरन्त बाद संविधान को प्रभावी बनाने के लिए संविधान सभा को अपने ऊपर लेना पड़ सकता है।

जिस रूप में यह अनुच्छेद सभा में प्रस्तुत किया गया है इस पर अपनी टिप्पणियां करने से पूर्व, यह आवश्यक है कि हम यह बात अपने दिमाग में रखें कि भारत सरकार शासन अधिनियम की धारा 293 में, जिसका अनुकूलन इस अनुच्छेद 283 में किया गया है, ठीक-ठीक क्या उपबंध है। धारा 293 के अन्तर्गत "हिज मैजेस्टी" को अनुकूलन की शक्ति दी गई थी। कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई थी। प्रारूप समिति के सभापति ने जो कि इन दो वर्षों की सीमा निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार थे, यह सोचा की अनुकूलन की शक्ति एक अनिश्चितकाल के लिए राष्ट्रपति में निहित नहीं होनी चाहिए। इस कार्य को शीघ्रतापूर्वक किया जाना चाहिए तथा अनुकूलन दो वर्षों के भीतर पूरा कर लिया जाना चाहिए। अतः दो वर्षों की यह सीमा रखी गई। 1935 के नए संविधान के पश्चात् धारा 293 के अन्तर्गत फेडरल कोर्ट के समक्ष पहले ही मामले में यह प्रश्न आया कि क्या अनुकूलन पर न्यायालय में आपत्ति की जा सकती है। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर मारिस गायर ने यू.पी. केन्टोनमेंट के मामले में अपना निर्णय देते हुए कहा कि अनुकूलनों पर तनिक भी आपत्ति नहीं की जा सकती। हमने वर्तमान अनुच्छेद में आरम्भ के शब्दों में ही एक सीमा रख दी अर्थात् "भारत के राज्यक्षेत्र में किसी प्रवृत्त विधि के उपबंधों को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन के लिए।" केवल इसी प्रयोजन के लिए राष्ट्रपति को अपनी इस शक्ति का प्रयोग करना है। यह अत्यंत आवश्यक, हितकारी, तथा श्रेयस्कर उपबंध है। अन्य उपबंधों तथा उप-नियमों के बारे में न्यायालयों में अपने अनुभव के आधार पर मैं साहसपूर्वक यह कह सकता हूं कि प्रत्येक नियम तथा प्रत्येक अधिनियम पर प्रहार करने की सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है और मैं यह कह सकता हूं कि यह उपबंध अत्यंत हितकारी तथा श्रेयस्कर है। इसे उच्चतम न्यायालय अथवा फेडरल कोर्ट पर पुनः छोड़ने के बजाए कि वह इस बात पर विचार करे कि क्या सर मारिस गायर के निर्णय का अनुसरण किया जाना है अथवा नहीं, या लाहौर उच्च न्यायालय में व्यक्त की कई विरोधी राय का अनुसरण किया जाना है अथवा नहीं, यह स्थिति स्पष्ट कर दी गई है कि अनुकूलन पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। इसको सोच-समझकर रखा गया ताकि तुच्छ तथा सारहीन आपत्तियों को उठाए जाने से रोका जा सके। परन्तु यदि अनुकूलन संविधान के मुख्य उपबंधों से, संविधान के प्रयोजन ही से बहुत परे है तो न्यायालय को ऐसे अनुकूलन को शून्य घोषित करने का आवश्यक अधिकार प्राप्त होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक उप-नियम, प्रत्येक खण्ड, प्रत्येक उप-खण्ड, प्रत्येक अभिव्यक्ति को न्यायालय में परखा जाना होगा। यदि मूल प्रयोजन को दृष्टि में रखा गया है और यदि अनुकूलन इस प्रयोजन से परे नहीं है, तो उस पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जाएगी।

आखिरकार अनुकूलन अपरिवर्तनीय नहीं है। विधानमंडल इसमें हस्तक्षेप कर सकता है। यदि विधानमंडल सतर्क है और लोक राय के प्रति इतना संवेदनशील है कि प्रत्येक अनुकूलन की परख कर सके तो मेरे विचार में से उस समय ऐसा अधिनियम बनाने से कोई नहीं रोक सकता जब कोई अनुकूलन संविधान की भावना के अनुसार नहीं है। हम यह धारणा लेकर चल रहे हैं कि विधानमंडल अपने कर्तव्य के प्रति काफी जागरूक है, वह बहुत सतर्क है, बहुत योग्य है, परिश्रमी है तथा देश में इतने अधिक वकीलों के रहते जो कि निश्चय ही प्रत्येक उप-नियम की जांच-परख करेंगे और इतनी अधिक संख्या में लोगों के रहते, जिनके कि इससे प्रभावित होने की सम्भावना है, इस बात का कोई खतरा नहीं है कि सतर्क जनता तथा समान रूप से सतर्क वकीलों अथवा समान रूप से सतर्क विधायकों द्वारा इसकी ओर ध्यान न दिया जाए। विधायक सतर्क रहेंगे, वकील सतर्क रहेंगे तथा न्यायालय अधिनियमन में त्रुटि का निश्चित ही पता चला लेंगे। इन परिस्थितियों में

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

मेरा निवेदन है कि यह अत्यन्त श्रेयस्कर उपबंध है। इस बात को लेकर पहले ही काफी आलोचना है कि इस संविधान का ही आशय वकीलों को लाभ पहुंचाना है। इस संविधान में यह उपबंध है कि संविधान के अनुकूलन पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जाएगी, एक अत्यंत हितकारी उपबंध है।

जहां तक विधानमंडल की हस्तक्षेप करने की शक्ति का सम्बन्ध है, यह ऐसा किसी भी समय कर सकता है। यह उपबंध राष्ट्रपति द्वारा मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव जैसे सलाहकारों की जो कि निश्चय ही आवश्यक रूपभेद करने में राष्ट्रपति को सहायता देने के लिए लोक हित की भावना रखते हों, समिति बनाने के मार्ग में बाधक नहीं हैं और इसके साथ-साथ यह स्थायी तौर पर आवश्यक रूप भेद करने में राष्ट्रपति को समर्थ बनाता है। जब तक कि राष्ट्रपति पागल न हो अथवा उनका मंत्रिमंडल पागल न हो वे मूल अधिकारों का उल्लंघन नहीं करेंगे। निस्संदेह, किसी विशेष खण्ड के सम्बन्ध में कहीं-कहीं सम्भवतया विधानमंडल भिन्न दृष्टिकोण अपना सकता है, परन्तु यदि तर्कसंगत आधार है, तो विधानमंडल इसकी ओर ध्यान दे सकता है तथा सरकार अथवा सम्बद्ध दल इस उपबंध को बदलने में सक्षम होंगे। इन परिस्थितियों में, मुझे इस बात पर खेद है कि इस उपबंध पर आपत्ति की गई है।

***अध्यक्ष:** यह सुझाव दिया गया है कि हम दोपहर बाद बैठक करें ताकि हम अधिक प्रगति कर सकें। अत: हम चार बजे पुन: बैठेंगे।

तत्पश्चात् सभा मध्याह्न भोजन के लिए 4 बजे म.प. तक के लिए स्थगित हुई।

सभा मध्याह्न भोजन के पश्चात् 4 बजे म.प. समवेत हुई।

अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पीठासीन हुए।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा-जनरल): अध्यक्ष महोदय प्रस्तावित संशोधन बिल्कुल भारत शासन अधिनियम 1935 के अनुसार है। यदि कोई अन्तर है भी, तो वह कठोरता के मामले में है। 1935 के अधिनियम में से जैसा कि इसे अनुकूलित किया गया है, इस धारा, अर्थात 293 का लोप कर दिया गया था। स्वाभाविक है कि इसके स्पष्टीकरण की आशा करने का हमारा अधिकार है। इसका लोप क्यों किया गया और इस संबंध में अब अन्तर करने की आवश्यकता क्यों महसूस की गई।

महोदय, मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव अपनी आपत्तियां स्पष्टत: प्रकट कर चुके हैं। उनमें से अधिकांश हमारी भी आपत्तियां हैं। मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने प्रारूप समिति का प्रतिनिधित्व करते हुए हमें कुछ उपदेश दिए। उन्होंने कहा कि संशोधन से विधानमंडल की शक्ति छीनी नहीं गई है। मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि क्या उन जैसे विख्यात वकील के लिए यह आवश्यक है कि वे इन प्रारम्भिक सिद्धान्तों को हमें बतायें, जैसे कि इस सभा के सदस्य यह भी नहीं जानते हों कि एक उत्तरदायी सरकार की प्रणाली के अंतर्गत "राष्ट्रपति" का अर्थ है मंत्रिमंडल अथवा स्वयं प्रधान मंत्री। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि यह धारा 293 की मानता के अनुरूप है कि ब्रिटेन के मंत्रिमंडल द्वारा सपरिषद आदेश (आर्डर्स इन काउंसिल) जारी किए जा रहे थे। जब आप ब्रिटेन की सरकार पर विश्वास कर रहे थे, तो आप अपनी सरकार पर विश्वास क्यों नहीं कर सकते? यदि इसमें अविश्वास की कोई बात है तो मैं यह कहूंगा

कि यह धारणा दूसरे पक्ष में विद्यमान है। अत: यह कहना अनुचित तथा दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम इस धारा में परिवर्तन इसलिए चाहते हैं क्योंकि हम मंत्रिमंडल में विश्वास नहीं करते। यह मंत्रिमंडल में हमारे विश्वास का प्रश्न नहीं है। इस अनुच्छेद में जो प्रस्ताव किया गया है वह यह कि प्रारूप समिति के अध्यक्ष माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विधानमंडल की सभी शक्तियां भारत के विधि मंत्री माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को हस्तान्तरित कर देंगे। इस स्थिति में भी हमें शायद उतनी चिन्ता न हो, यदि वह अथवा उनका मंत्रिमंडल इस सार प्रश्न पर स्वयं कार्यवाही करे। अध्यक्ष महोदय, यह सुविदित है कि मंत्रिमंडलीय स्तर के मंत्री अत्यधिक व्यस्त रहते हैं उनके लिए यह संभव नहीं है कि वे उन सभी अधिनियमों की बारीकी से जांच करें जिनका कि इस सम्बन्ध में अनुकूलन किया जाना है।

इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए हमें दो या तीन बातें ध्यान में रखनी होंगी। प्रथम, आपने संविधान में मूल अधिकारों का प्रावधान किया है जिनकी पहले कहीं परिकल्पना नहीं की गई थी, और न ही तो इनके बारे में 1935 के अधिनियम में सोचा गया था तथा ब्रिटेन की सरकार अथवा ब्रिटेन के मंत्रिमंडल ने तो इनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था। दूसरे, आपने संविधान में विशिष्ट उपबंध करके न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक लगा दी है। हमारे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने एक बात सामने रखी है कि यह सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक घोषणा है। मैं उन्हें पुन: बताना चाहता हूं, जैसा कि पहले बता चुका हूं—साम्राज्यवादी प्रशासन प्रणाली के अन्तर्गत कार्यरत ब्रिटिश न्यायपालिका की घोषणाओं में मेरा विश्वास इतना नहीं है जैसा कि वह स्वतंत्र भारत की स्वतंत्र न्यायपालिका की घोषणाओं में होगा। जब तक कि ऐसा नहीं होता, मैं उनसे तथा इस सभा के माननीय सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि न्यायपालिका में मेरा विश्वास इसकी सीमाओं के भीतर होगा।

महोदय, दो वर्षों की समय सीमा निर्धारित की गई है मुझे नहीं मालूम कि किस कारण से। कार्यपालिका को दी गई विशाल शक्तियां तनिक भी वांछनीय नहीं हैं। जब मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर कार्यपालिका पर भरोसा रखने के लिए अपने उपदेश हम पर थोप रहे थे, तो मैं स्तब्ध रह गया। मैं यह आशा नहीं करता था कि उन जैसे विख्यात विधिवेत्ता तथा वकील हमारी कार्यपालिका में हमारे विश्वास के संबंध में हमें उपदेश देंगे। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वह अपने तर्क को और आगे बढ़ाएं। अवश्य ही, सभी प्रकार का विश्वास तो रखा जा सकता है। परन्तु फिर कोई कानून बनाने की आवश्यकता ही क्या है। सब कुछ प्रशासन पर ही छोड़ दें। कोई भी कानून न बनायें। कोई संविधान न रखें, मूल अधिकारों की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि हमारे यहां जनता द्वारा निर्वाचित उत्तरदायी सरकार है! उनकी जैसी ख्याति वाले अत्यन्त बुद्धिमान तथा सुयोग्य विधिवेत्ता से हमें ऐसी आशा नहीं थी।

महोदय, मेरी इस संबंध में शिकायत है कि सरकार ने अपनी पूरी स्थिति हमारे समक्ष स्पष्ट नहीं की है। मैं यह भली प्रकार समझता हूं कि सरकार का यहां प्रतिनिधित्व नहीं है तथा सरकार के सदस्य यहां पर सभा के सदस्य होने की अपनी हैसियत के नाते आते हैं। परन्तु निसंदेह यह सच है कि डॉ. अम्बेडकर भारत के विधि मंत्री भी हैं तथा यह उनकी जिम्मेदारी और कर्तव्य है कि वह हमें बताएं कि उन्होंने इस सम्बंध में अब तक क्या कदम उठाए हैं। यह एक बहुत बड़ा आदेश है जो कि वह चाहते हैं कि उन्हें दिया जाये। केन्द्र तथा प्रांतों के हजारों कानून प्रवर्तन में हैं, जिनमें कि ब्रिटिश सरकार द्वारा पास किए विनियम भी शामिल हैं। इन सभी को परिवर्तन में बने रहना है। मैं पूछता हूं कि क्या साधारण सदस्यों के लिए इन सभी को रूपभेदित करने के लिए गैर सरकारी विधान

[श्री विश्वनाथ दास]

का सहारा लेना सम्भव है? विधि मंत्रालय ने क्या किया है? मैं प्रारूप समिति से पुनः निवेदन करूंगा कि उन्होंने अब तक जो दृष्टिकोण अपनाया है तथा विधि मंत्रालय ने इस संबंध में अब तक जो कार्रवाई की है, उसमें कुछ लाभ नहीं हुआ है। मेरे माननीय मित्रों ने विभिन्न सुझाव दिये हैं।

***अध्यक्षः** आप इस विषय के सम्बंध में विधि मंत्रालय से किस प्रकार की कार्रवाई की आशा करते हैं?

***श्री विश्वनाथ दासः** मैं अब उसी पर आ रहा हूं। वास्तव में मैं अपना कर्तव्य निभाने में असफल रहूंगा यदि मैं यह न बता पाऊं। इसलिए मैं इसे दोहराता हूं। कोई भी अनुकूलन आरम्भ किए जाने से पूर्व, ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार तथा भारत सरकार के विधि विभाग से कहा कि सभी आवश्यक कानूनों की जांच की जाए। भारत सरकार अनुकूलनों का सुझाव दे रही थी तथा विधि मंत्रालय, जो कि उस समय भारत सरकार का विधि विभाग था, द्वारा सुझाए गए अनुकूलनों को अनुमोदित किया जा रहा था तथा उन्हें ब्रिटिश सरकार के अनुकूलनों के रूप में "सपरिषद आदेश" (आर्डर इन काउन्सिल) में प्रकाशित किया जा रहा था। इस संबंध में मेरी शिकायत यह है कि न तो विधि विभाग ने और न संविधान ने ही इस बारे में कुछ कार्रवाही की है। मैं आशा करता हूं उनको चाहिए था कि वे अनुकूलनों को तैयार रखते और उन्हें उन विधियों की जांच करनी चाहिए थी जो परिवर्तन में हैं।

***अध्यक्षः** बिना यह जाने कि संविधान कैसा होगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बई-जनरल): मेरे मित्र की जानकारी पूर्णतः गलत है। वह नहीं जानते कि क्या किया जा रहा है।

***श्री विश्वनाथ दासः** यदि मेरी जानकारी गलत है तो मुझे प्रसन्नता होगी और यदि यह सब कुछ कर लिया गया है तो मुझे हर्ष होगा और इस स्थिति में मेरे मित्र द्वारा कम से कम अब तक सब कुछ सभापटल पर रख दिया जाना चाहिए था—जैसा कि मैंने पहले कहा और अब दोहराता हूं अपनी पूरी स्थिति हमारे समक्ष स्पष्ट कर देनी चाहिए थी और यह कहना चाहिए था "मेरे पास वे तैयार हैं। मुझे आदेश दें और मैं उन्हें प्रकाशित करा दूंगा।" मैं उन व्यक्तियों से सहमत नहीं हूं जो यह सोचते हैं कि मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने से मामले में सुधार होगा, तथा न ही उन माननीय सदस्यों से मैं सहमत हूं जिनका यह विचार है कि प्रतिक्रियायें संसद के समक्ष रख दी जायेंगी। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अन्तर्गत अनुकूलनों को संसद के समक्ष रखा गया था। परन्तु उसका प्रभाव क्या रहा? विधानमंडलों के पास गैर-सरकारी सदस्यों के लिए इतना समय कहां है कि वे उतने विशाल कार्य को अपने हाथ में लें? उन परिस्थितियों में संसद की प्रतिक्रिया के लिए इन अनुकूलनों को संसद के समक्ष रखे जाने से कोई लाभ नहीं होगा।

माननीय सदस्यों के समक्ष एक अन्य प्रस्ताव रखा गया है और वह है एक विशेषज्ञ समिति गठित करने के बारे में। वह निश्चय ही उपयोगी तथा लाभदायक रहेगी। परन्तु मैं यह कहूंगा कि हम एक विशाल आदेश जारी कर रहे हैं और कार्यपालिका को महान जिम्मेदारी तथा प्राधिकार सौंप रहे हैं। अतः मेरा यह विचार है कि विधानमंडल के प्रति भी उचित रहेगा कि कुछ विख्यात विधिवेत्ताओं की

जो कि विधानमंडल के सदस्य भी हैं, एक समिति गठित की जाए जो विधि मंत्रालय को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे ताकि मंत्रालय उन्हें मात्र कानूनी रूप दे। उनको कानूनी रूप देना विधि मंत्रालय की जिम्मेवारी होनी चाहिए। मैं अन्य सभी शक्तियों, महत्व तथा जिम्मेवारियों को जिस रूप में भी वे हैं, कार्यपालिका के हाथों में नहीं रखना चाहता। इस दृष्टिकोण से इस प्रश्न के बारे में, जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं पूरी तरह से संतुष्ट हो जाऊंगा यदि माननीय विधि मंत्री या प्रारूप समिति यह कहे कि वे संविधान सभा की विशेषज्ञ समिति बनाने के लिए सहमत और इच्छुक हैं तथा विधानमंडल सभी कानूनों की जांच करेगा और यदि आवश्यक हुआ तो प्रान्तीय सरकारों से कहेगा कि वे सभी कानूनों की जांच करें तथा सभी अनुकूलन एक साथ रखे जायेंगे। स्वतंत्र भारत में जिम्मेवार सरकार बनने के पश्चात् इस बात की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती कि ऐसे कानून रखे जाएं जोकि स्वयं गैर जिम्मेवार हों तथा जिनमें से कि अधिकांश अत्यन्त पुराने हो गए हों और दकियानूसी बन गए हों और जो कि लोगों की साथ-साथ रहने और कार्य की आज की आवश्यकताओं के अनुरूप न हों। इन परिस्थितियों में मैं प्रारूप समिति से तथा संविधान सभा के सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करें।

***एक माननीय सदस्यः** अब प्रश्न मतदान के लिए रखा जाये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** महोदय, इस वाद-विवाद को ध्यानपूर्वक सुनने के पश्चात् मैं अपने मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण का समर्थन करना चाहता हूं। यह बात कदाचित निरर्थक प्रतीत होती है कि यदि विधानमंडल कोई प्रावधान पास कर देता है जो कि संविधान के अनुरूप नहीं है तो उसमें संतप्त किसी व्यक्ति को इस बात को न्यायालय के ध्यान में लाने का अधिकार होगा तथा न्यायालय को उस प्रश्न पर विचार करने से नहीं रोका जाएगा। मान लीजिए कि ऐसा कोई विधान पास किया जाता है जो कि संविधान के मूल अधिकारों के अनुरूप नहीं है, तब कोई व्यक्ति इस मामले को न्यायालय में ले जा सकता है तथा उस विधान को अवैध तथा शून्य घोषित करा सकता है। यह कुछ अजीब लगता है कि राष्ट्रपति अनुकूलन तथा रूपभेद की उसे प्रदत्त शक्ति के अन्तर्गत इस तरह का आदेश जारी करे अथवा उपबंध करे जो कि संविधान के अनुरूप न हो तो हम मामला न्यायालय में नहीं ले जा सकते। महोदय मेरे विचार में वहां इस नए प्रावधान के रद्द किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अब तक अनुकूलन का आदेश इस संविधान के उपबंधों के अनुरूप नहीं है तब तक निचले न्यायालयों का उस पर पूरा क्षेत्राधिकार होगा। परन्तु मेरे माननीय मंत्री श्री अल्लादी कहते हैं कि अभी हाल ही के निर्णय में फेडरल कोर्ट ने घोषणा की है कि किसी अनुकूलन के निरसन के लिए अथवा उसे शून्य घोषित करने के लिए लाए गए किसी वाद पर न्यायालय विचार नहीं करेगा। महोदय इसलिए मैं समझता हूं कि यह निरापद होगा तथा सभी सम्बधित व्यक्तियों के हित में होगा कि पण्डित ठाकुर दास भार्गव द्वारा प्रस्तावित स्वरूप का कोई संशोधन स्वीकार कर लिया जाए।

मैं यह भी कहना चाहूंगा कि इस अनुच्छेद द्वारा निर्धारित की गई दो वर्ष की अवधि बहुत लम्बी होती है। यदि इतनी अवधि रखी जाती है, तो कुछ मामलों में राष्ट्रपति तथा उनके सलाहकार इतने शीघ्र उपाय नहीं करेंगे जितने शीघ्र कि उन्हें करने चाहिए। मेरी राय में, जहां तक आदिवासी क्षेत्रों में न्याय उपलब्ध कराने का सम्बन्ध है, संविधान के पास किए जाने के पश्चात् तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक होगा। सदन को यह याद होगा कि पष्ठ अनुसूची के पैरा 5 में कुछ उपबंध रखे गए हैं जिनके आधार पर कि सिविल प्रक्रिया संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता को आदिवासी क्षेत्रों में प्रवर्तनीय बनाया जा सकता है।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

परन्तु माननीय सदस्यों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि हालांकि ऐसे लोगों के बीच मुकदमेबाजी हो सकती है जो कि आदिवासी समुदाय के नहीं हैं, जिन क्षेत्रों में आदिवासी लोगों की तनिक भी आबादी नहीं हैं, परन्तु वे पर्वतीय क्षेत्रों के अधिकार क्षेत्र के भीतर हैं, वहां सिविल प्रक्रिया संहिता तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता लागू नहीं है। उदाहरणार्थ, वहां डिप्टी कमिश्नर का कोई भी सहायक जिसके पास कि कोई कानूनी शैक्षिक योग्यता नहीं है, किसी अभियुक्त को सात वर्षों तक की अवधि तक के कारावास का दण्ड दे सकता है, और वर्तमान नियमों के अन्तर्गत यदि दण्ड तीन वर्षों से अधिक का है, केवल तब ही अपील की जा सकती है। अन्यथा अपील का कोई अधिकार नहीं है। अन्य मामलों के संबंध में भी वहां सिविल प्रक्रिया संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता लागू नहीं है। यह निर्धारित किया गया है कि न्यायालयों का मार्गदर्शन सिविल प्रक्रिया संहिता की भावना से अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की भावना से होगा। महोदय, इस भावना का तनिक भी पता चला पाना अत्यन्त कठिन सिद्ध हुआ है। कई बार दण्ड प्रक्रिया संहिता की भावना का यह अर्थ लगाया जाता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता का कठोरता से अनुसरण न किया जाये और कई बार इसका यह अर्थ लगाया जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता का कठोरता से अनुसरण किया जाये। यदि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर या अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर उन पर्वतीय क्षेत्रों में अपना विधि व्यवसाय चला रहे होते तो उन्हें यह पता लगा पाना कठिन प्रतीत होता कि सिविल प्रक्रिया संहिता की भावना अथवा दंड प्रक्रिया संहिता की भावना कहां विद्यमान है। इस पैरा के अन्तर्गत राज्यपाल यह घोषणा करने के लिए सक्षम होगा कि ऐसे अपराधों के विचारण में दण्ड प्रक्रिया संहिता लागू की जाएगी जिनके संबंध में कि पांच वर्ष या इससे अधिक की अवधि के कारावास का दण्ड अथवा निर्वासन का दण्ड अथवा मृत्यु दण्ड दिया जाना है। परन्तु जब तक कि कानून का अनुकूलन तुरन्त नहीं कर लिया जाता, संविधान का यह उपबंध केवल एक अपालित नियम बना रहेगा। यह एक बहुत ही मामूली कृपा होगी। मात्र एक क्षण के लिए कल्पना करें कि दिल्ली अथवा अजमेर, मारवाड़ में रह रहे किसी व्यक्ति पर दंड प्रक्रिया संहिता का अनुसरण किए बिना ही मुकदमा चला दिया जाए, उसे सिद्धदोष ठहरा दिया जाए तथा मृत्यु दण्ड भी दे दिया जाए। मैं यह भली प्रकार समझ सकता था यदि यह विधि उन मामलों पर लागू होती जहां कि मूल स्थानीय लोग अथवा आदिवासी लोग पक्षकार हों। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यदि मामला विशुद्ध गैर आदिवासियों के बीच है अथवा एक आदिवासी और एक गैर-आदिवासी के बीच है तो भी दण्ड प्रक्रिया संहिता संहिता लागू नहीं होती और इस स्थिति में किसी भी कानूनी प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता, और किसी भी प्रकार से अपील करने के अधिकार की अनुमति नहीं दी जाती।

मेरा निवेदन है कि वर्तमान विधि को उन उपबंधों के अनुकूल बनाने के लिये, जिन्होंने कि इस बात में थोड़ी सी दया दिखाई है कि राज्यपाल दण्ड प्रक्रिया संहिता के कुछ प्रावधानों को किसी क्षेत्र विशेष में कुछ मामलों के संबंध में लागू किये जाने की घोषणा कर सकता है, विधि में संशोधन करके अथवा उसमें रूपभेद करने के उपाय किए जाने चाहिएं ताकि वह विधि शीघ्र प्रवर्तन में आए। अतः मैं इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं जो कि वर्तमान विधि में परिवर्तन अथवा उपांतरण की अनुमति देता है ताकि इसे संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाया जा सके। इसके साथ-साथ इस बारे में भी हमारी सुरक्षा की जानी चाहिए कि अनुकूलनों अथवा उपांतरणों के इन उपबंधों को इस प्रकार लागू न किया जाए जिससे कि

संविधान द्वारा दिए गए मूल अधिकारों में हस्तक्षेप हो। हस्तक्षेप के ऐसे मामलों में यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि हमें मामला न्यायालय में ले जाने का अधिकार होगा ताकि हम उस अनुकूलन को अविधिमान्य घोषित करवा सकें। अन्यथा जिस निर्णय को उद्धृत किया गया है उसे देखते हुए यदि आप इसे उसी रूप में छोड़ देते हैं तो जब राष्ट्रपति ऐसा कोई अनुकूलन करेंगे जोकि संविधान उपबंधों के अनुरूप नहीं है तो हम कोई कदम उठाने के लिये पूर्णतः शक्तिहीन हो जायेंगे।

***अध्यक्षः** समापन प्रस्ताव पहले ही प्रस्तुत हो चुका है। प्रश्न यह है:

"कि अब प्रश्न मतदान के लिए रखा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत से जो कि, मैं देख रहा हूं, इस समय यहां नहीं हैं, क्षमा मांगता हूं जिन्होंने कि मेरे वक्तव्य में मेरे द्वारा हुई छोटी सी भूल पर आपत्ति की जब कि मैंने उन माननीय सदस्यों का जिन्होंने संशोधन प्रस्तुत किये हैं, संशोधन प्रस्तुत करने वाले लोगों के रूप में उल्लेख किया था।

सदन को यह याद होगा कि मैंने प्रस्तुत किए जा रहे संशोधनों का पूर्वानुमान लगाने तथा अग्रिम रूप से उनका उत्तर देने का प्रयास किया था। इनमें से अधिकांश संशोधनों का, बहारहाल मेरे माननीय मित्रों श्री कामत, श्री मुनिस्वामी पिल्लै तथा प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधनों का, उत्तर मैंने अग्रिम रूप से देने का प्रयास किया था। मेरे विचार में खण्ड (2) में जैसा कि यह खण्ड इस समय है प्रयुक्त शब्द इतने स्पष्ट हैं कि इस खण्ड के अन्त में रखे गये शब्दों, अर्थात् "कि ऐसे अनुकूलन तथा रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी" से सम्भवतया कोई भी परेशानी उत्पन्न नहीं होगी आरम्भ के शब्दों में पर्याप्त उपबंध किया गया है जिनमें कि विशेष रूप से यह कहा गया है कि अनुकूलन केवल भारत के राज्य क्षेत्र में प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों को इस संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाने के प्रयोजनों के लिए ही किया जाना चाहिए।

मेरे माननीय मित्र पण्डित ठाकुर दास भार्गव द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन ही केवल ऐसे संशोधन हैं जिनके लिए अब उत्तर दिये जाने की आवश्यकता है। अपने संशोधन संख्या 188 में, जिसमें कि उन्होंने खण्ड (2) के स्थान पर एक अन्य खण्ड रखने का प्रस्ताव किया है, वह खण्ड (2) का तात्पर्य समझने में असफल रहे हैं। खण्ड (2) का तात्पर्य यह है कि जहां तक सम्भव हो, सरकार के पास उपलब्ध तंत्र किए जाने वाले अनुकूलनों के लिए आवश्यक मात्रा में सामग्री तैयार करेगा जो कि इस संविधान के प्रख्यापन के तुरन्त बाद राष्ट्रपति द्वारा सम्भवतया एक आदेश के रूप में प्रकाशित की जायेगी। यह आवश्यक होगा क्योंकि अनेक ब्यौरे होंगे, कुछ मामलों में छोटे-छोटे तथा कुछ अन्य मामलों में विभिन्न स्वरूप के, जिनके बारे में कि कार्यवाही की जानी होगी ताकि प्रवृत्त विधियों को संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाया जा सके।

मेरे माननीय मित्र द्वारा प्रस्तावित संशोधन में, उन्होंने यह सुझाव दिया है कि एक समिति नियुक्त की जानी चाहिए तथा वह समिति आठ महीनों के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत करे और यह कि कार्यवाही बाद में की जाए। संविधान के प्रख्यापित होने तथा इन आठ महीनों के बीच की अवधि में क्या होगा जो कि स्वाभाविक है कि समिति की रिपोर्ट आने तक बीत जायेंगे। स्पष्ट है कि यदि प्रवृत्त

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

विधियों को वास्तव में संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाना है तो इस दौरान इस प्रकार की किसी भी कार्यवाही का किया जाना असम्भव है। जैसे कि ये संशोधन प्रस्तुत करते समय मैंने अपनी टिप्पणियों में कहा था, सरकार को या संसद को संकल्प पास करने में कोई रुकावट नहीं है अथवा सरकार को इस मामले में पहलकदमी करने तथा एक समिति नियुक्त करने में कोई रुकावट नहीं है जो कि इस देश में कानून के ढांचे की समीक्षा करे, उसको आधुनिक बनाए तथा इसे उन सिद्धांतों के अनुरूप है जो कि संविधान में प्रतिपादित किए गए हैं। मेरे विचार में मेरे मित्र पण्डित ठाकुर दास भार्गव को संविधान के प्रख्यापित होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए तथा या तो एक विधेयक द्वारा अथवा एक संकल्प द्वारा सरकार से इस मामले में, उनके द्वारा दिए गए सुझावों की दृष्टि में, कार्यवाही करवानी चाहिए।

जहां तक खण्ड (3) में उनके संशोधन का सम्बन्ध है, यह संशोधन इस प्रकार का है कि यह उस गारंटी को समाप्त कर देता है जोकि द्वारा प्रस्तुत संशोधन के खण्ड (3) में दी गई है। उन्होंने जो कुछ किया है, वह केवल यह है कि उन्होंने खण्ड (3) में सुझाए गए अपने प्रस्ताव में वह सब कुछ समाविष्ट करने का प्रयास किया है जो उन्होंने एक अलग अनुच्छेद 307-क प्रस्तुत करने के बारे में मूलतः सोचा था। वह विचार जो उनमें उस समय था जब उन्होंने वह संशोधन तैयार किया जिसे कि वह नये अनुच्छेद 307-क के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे, खण्ड (3) में समाविष्ट कर लिया गया है अर्थात् यह कि मूल अधिकारों तथा देश की विधियों को मूल अधिकारों के संगत बनाए जाने के प्रश्न के सम्बंध में कुछ किया जाना चाहिए।

अतः मैं अनुभव करता हूं कि मेरे मित्र पण्डित ठाकुर दास भार्गव ने जिन्हें कि यह सभा एक अत्यन्त विख्यात वकील के रूप में जानती है तथा जो इस संविधान का निर्माण किये जाने में सहायता प्रदान करने हेतु काफी अधिक परिश्रम करते हैं इस मामले विशेष में अपने उल्लास को अपने विवेक पर हावी होने दिया है तथा एक संशोधन प्रस्तुत किया जो कि इस संशोधन विशेष के अनुकूल नहीं है जोकि इस समय सभा के समक्ष है। यह किसी अन्य बात के अनुकूल हो सकता है, यह एक स्वतंत्र प्रस्ताव के रूप में अनुकूल रह सकता है परन्तु यह इस संशोधन विशेष के अनुकूल नहीं है क्योंकि उनके संशोधन संख्या 188 से मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधन के खण्ड (2) के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती तथा उनका संशोधन संख्या 189 खण्ड (3) का प्रयोजन पूरा नहीं करता, यह कि.....

***पण्डित ठाकुर दास भार्गवः** जहां तक प्रस्तावित खण्ड (3) के बारे में संशोधन का प्रश्न है वह एक बिल्कुल अलग बात है। यह खण्ड (2) में संशोधन नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** वास्तव में उनके संशोधन संख्या 189 में कहा गया है–

"कि संशोधन संख्या 2 में, प्रस्तावित खण्ड (3) के स्थान पर यह रखा जाए।"

मेरे विचार में यह प्रतिस्थापन नहीं है क्योंकि इसका खण्ड (3), जैसा कि मैंने प्रस्तुत किया है, के उपबंधों से तनिक भी सम्बन्ध नहीं हैं और मैं समझता हूं कि इसके बारे में कोई रहस्य भी नहीं है क्योंकि खण्ड (3) की शब्दावली बहुत स्पष्ट है। यह शब्दावली बहुत स्पष्ट है। यह शब्दावली राष्ट्रपति को केवल दो वर्षों की अवधि के लिए अनुकूलन करने हेतु शक्ति प्रदान करती है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** यह संशोधन मूल अनुच्छेद के लिए है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** तब मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूं। यदि मेरे माननीय मित्र आज प्रात: 9.35 बजे ऐसा संशोधन लाए हैं जोकि कार्यसूची में दिए गए संशोधन से सम्बन्धित न होकर अलग कोई चीज है तब तो मुझे उन सभी टिप्पणियों को वापस लेना होगा जो कि मैंने अभी की हैं। और केवल यह तर्क देना होगा कि क्योंकि इस बात का मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधन से कोई सम्बन्ध नहीं है अत: मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूं तथा सम्भवतया उत्तर देने के लिए उचित प्राधिकारी भारत सरकार के माननीय विधि मंत्री होंगे अथवा उस भारत सरकार के विधि मंत्री होंगे जो कि 26 जनवरी के पश्चात् होगी। मेरा विचार है कि मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधनों से संशोधित अनुच्छेद 307 एक निश्चित प्रयोजन को पूरा करता है जिसे मेरे माननीय मित्र तथा सहयोगी श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने अपने विद्वतापूर्ण तर्कों द्वारा काफी उचित ठहराया है तथा प्रस्ताव के समर्थन में उनका तर्क स्वीकार करके सदन ठीक ही करेगा और इसीलिए मैं सदन से निवेदन करूंगा कि सदन मेरा संशोधन स्वीकार करे तथा मेरे द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 307 को पास करे।

***श्री अमिय कुमार घोष:** (बिहार-जनरल): मैं एक स्पष्टीकरण चाहता हूं कि वास्तव में इन शब्दों का क्या आशय है, अर्थात्-

"तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी।"

क्योंकि यदि राष्ट्रपति किसी विद्यमान विधि को उन उपबंधों के अनुसार संशोधित अथवा रूपभेदित करता है जिन्हें कि हमने संविधान में पास किया है तब उसके कृत्य अधिकाराधीन होंगे तथा किसी न्यायालय में मामला उठाए जाने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। परन्तु यदि राष्ट्रपति ऐसा कुछ करता है जो कि खण्ड (2) की भावना के विरुद्ध हो अर्थात यदि वह ऐसी किसी विद्यमान विधि को संशोधित, रूपभेदित अथवा निरसित करता है जो कि संविधान में उल्लिखित उपबंधों से भिन्न है अथवा उनके प्रतिकूल है तो उसका कृत्य अधिकार-बाह्य है तथा निश्चय ही इस पर न्यायालय में आपत्ति की जा सकती है। अन्तिम दो पंक्तियों में जिस सीमा का प्रावधान किया गया है उसकी परिधि में वस्तुत: किस प्रकार के मामले की परिकल्पना की गई है? स्पष्ट है कि वे मामले जिनमें कि राष्ट्रपति ठीक इस अनुच्छेद द्वारा उसको प्रदत्त शक्तियों के आधार पर कार्यवाही करता है, इन उपरोक्त अन्तिम दो पंक्तियों के अन्तर्गत नहीं आते और इसलिए इस अन्तिम पंक्ति के अन्तर्गत सम्भवतया आने वाले मामले केवल एक वर्ग के ही हैं जिनमें कि राष्ट्रपति उस उपबंध के उल्लंघन में कार्य करता है जो इस अनुच्छेद में दिया गया है, क्योंकि आपने विद्यमान विधियों में संशोधन करने तथा उपांतरण करने के मामलों में राष्ट्रपति के लिए कोई प्रक्रिया अथवा नियम निर्धारित नहीं किए हैं और इसलिए शक्ति के अनियमित प्रयोग का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरे माननीय मित्र इन उपबंधों के बारे में द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को नहीं समझ पाए हैं, शायद स्पष्टीकरण में मुझसे कोई कमी रह गई हो। मैं चाहता हूं कि वह आरम्भ के शब्दों की ओर ध्यान दें। प्रारम्भिक शब्द न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहराते हैं कि वह यह सुनिश्चित करे कि क्या अनुकूलन प्रारम्भिक शब्दों, "अर्थात् भारत के राज्यक्षेत्र में किसी प्रवृत्त विधि को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन से" के अनुरूप किया गया है अथवा नहीं। यदि न्यायालय यह अनुभव करता है कि यह उस प्रयोजन के लिए नहीं है तो निस्संदेह अनुकूलन अधिकार-बाह्य होगा। परन्तु दूसरी ओर यदि अनुकूलन की शब्दावली आदि के बारे में केवल भिन्न दृष्टिकोण होने के

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

मामले का प्रश्न है तो यह निश्चय ही एक ऐसा मामला है जिसके बारे में हमारा विचार यह है कि उस पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। किसी भी स्थिति में कोई भी बात किसी न्यायालय को इससे नहीं रोकेगी कि वह इस प्रश्न की जांच करे कि क्या अनुकूलन या खंड में आशायित प्रयोजन, अर्थात् "किसी प्रवृत्त विधि के उपबंधों को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के लिए" की पूर्ति के लिए था या अथवा नहीं। हम वास्तव में संविधान में यह नहीं कह सकते कि कौन-सा विशेष मामला अधिकार-बाह्य अथवा अधिकाराधीन होगा। प्रयोजन स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है और मेरे विचार में हम इस खण्ड में दिए गए शब्दों से बाहर नहीं जा सकते।

***श्री अमिय कुमार घोष:** यदि क्षेत्राधिकार के अनियमित प्रयोग के मामले तथा जिनमें कि राष्ट्रपति की कार्यवाही इस उपबंध के अनुरूप है। पूर्वोक्त अंतिम दो पंक्तियों के अन्तर्गत नहीं आते तो निश्चय ही यह खतरा सदैव बना रहता है कि इसका अर्थन्वन इस प्रकार लगाया जा सकता है कि इसमें ऐसे मामले भी शामिल कर लिए जाएं जिसमें कि राष्ट्रपति क्षेत्राधिकार के बिना कार्यवाही करते हैं।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों को मतदान के लिए रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'the President may (राष्ट्रपति)' **शब्द के पश्चात्** 'in consultation with the Chief Justice of the Supreme Court and the Chief Justice of the High Court of Bombay, Madras and Bengal (सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा बम्बई, मद्रास और बंगाल के न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों से परामर्श से)' **शब्द अन्त:स्थापित किए जाएं।**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संख्या 134

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'repeal or amendment (चाहे निरसन या चाहे संशोधन)' **शब्दों के स्थान पर** 'alteration or repeal or amendment (चाहे परिवर्तन या चाहे निरसन हो या चाहे संशोधन)' **शब्द रखे जाएं।**"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संख्या 135

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लै:** महोदय मैं अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 136, में दोनों भागों को मतदान के लिए अलग-अलग रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (3) में-'(1) उपखण्ड (ख) में 'after the expiration of the two years from the commencement of this Constitution (इस संविधान के आरम्भ से दो वर्ष की अवधि के पश्चात्), **'शब्दों के स्थान पर** 'after the Constitution of the Ministries of the Government of India or of the States, as the case may be, after the first General election under this Constitution (इस संविधान के अन्तर्गत प्रथम सामान्य चुनाव के पश्चात् भारत सरकार अथवा राज्य सरकारों, जैसी भी स्थिति हो, के मंत्रिपरिषद् गठित होने के पश्चात्)' **शब्द रखे जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"उपखण्ड (ख) में 'or other competent authority (या अन्य सक्षम प्राधिकारी)' **शब्द निकाल दिए जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (3) के उपखण्ड (2) में, 'repeal or amend (निरसित या संशोधित)' **शब्दों के स्थान पर** 'after or repeal or amend (परिवर्तित या संशोधित)' **शब्द रखे जाएं।**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) में 'and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law (तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी)' **शब्द निकाल दिये जाएं।"**

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची एक द्वितीय सप्ताह के संशोधन संख्या 2 में अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित

[अध्यक्ष]

खण्ड (2) तथा (3) निकाल दिये जाएं।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खण्ड (2) के स्थान पर यह रखा जाये:

'The President shall, as soon as may be after the commencement of this Constitution, by order, appoint a Committee of experts to examine all the laws in force in the territories of India by whichsoever authority enacted and to report to him within a period of 8 months if any or any portion of the laws in force is inconsistent with the provisions of this Constitution and what adaptations and modifications are necessary to bring into accord the inconsistent portions with the provisions of this Constitution. The Government shall forthwith take steps to repeal or amend such laws or portions of them as are not in accord with the provisions of this Constitution and unless such laws or portions of laws are repealed or amended by being brought within a further period of one year and four months from the date of report in accord with the provisions of this Constitution they shall cease to be in force unless they are repealed or amended earlier by any competent authority or declared void by the courts.'

['राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारम्भ होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र आदेश द्वारा विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करेगा जो भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियों की जांच करेगी, चाहे ये विधियां किसी भी प्राधिकारी द्वारा बनाई गई हों, तथा आठ मास की अवधि के भीतर उसे रिपोर्ट करेगी कि क्या कोई प्रवृत्त विधि या इसका कोई भाग इस संविधान के उपबंधों के असंगत हैं तथा इन असंगत भागों को इस संविधान के उपबंधों के असंगत है तथा इनके लिए कौन-कौन से अनुकूलन तथा रूपभेद आवश्यक हैं। सरकार ऐसे विधियां तथा उनके भागों को, जो कि इस संविधान के उपबंधों से संगत नहीं हैं, निरसन करने अथवा उनमें संशोधन करने के लिए तुरन्त उपाय करेगी और जब तक कि ऐसी विधियों या ऐसी विधियों के भागों की रिपोर्ट की तारीख से एक वर्ष चार महीनों की अग्रेतर अवधि के भीतर इस संविधान के उपबंधों से संगत बनाकर उसका निरसन अथवा संशोधन नहीं किया जाता, वे प्रवर्तन में नहीं रहेंगे जब तक कि उन्हें इससे पूर्व किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा निरसित अथवा संशोधित नहीं कर दिया जाता या न्यायालयों द्वारा शून्य घोषित नहीं कर दिया जाता।' "]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद के प्रस्तावित खण्ड (3) के स्थान पर यह रखा जाए:

'(3) For the purpose of bringing the provisions of the law in force in the territory of India relating to fundamental rights guaranted by this Constitution into accord with the provisions of this Constitution, the President shall after the commencement of this Constitution appoint, as soon as may be, a committee of experts to examine the laws in force in the territory of india with instructions to report if any or any portion of them is inconsistent with the provisions relating to fundamental rights and what adaptations and modifications are necessary to bring such inconsistent laws or portions of laws in accord with the provision of this Constitution. The Government shall on the receipt of the report forthwith take steps to avoid, repeal or amend such laws or portions of them as are not in accord with the guaranteed fundamental rights. Such laws or portions of them as are reported to be inconsistent and not in accord with the guaranteed fundamental rights shall cease to be in force after one year of the commencement of this Constitution if they are not avoided repealed or amented earlier.'

['(3) भारत के राज्य क्षेत्र में प्रवृत्त ऐसी विधियों के उपबंधों को जो इस संविधान में गारंटी दिए गए मूल अधिकारों से संबंधित हैं इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन के लिए, राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् भारत के राज्य-क्षेत्रों में प्रवृत्त विधियों की जांच करने हेतु यथाशीघ्र विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करेगा तथा उसे यह अनुदेश देगा कि वह यह रिपोर्ट दे कि क्या इनमें से कोई विधियां अथवा इनका कोई भाग मूल अधिकारों से सम्बन्धित उपबंधों के असंगत है और ऐसी असंगत विधियों तथा विधियों के भागों को इस संविधान से संगत करने के लिए कौन-कौन से अनुकूलन तथा रूपभेद आवश्यक हैं। रिपोर्ट प्राप्त होने पर सरकार ऐसी विधियों अथवा इनके भागों को, जो कि गारंटी दिए गए मूल अधिकारों से संगत नहीं हैं, का परिवर्तन, निरसन तथा संशोधन करने के लिए तुरन्त उपाय करेगी। ऐसी विधियां अथवा उनके भाग जिनके बारे में कि ऐसी रिपोर्ट दी गई है कि ये असंगत हैं तथा गारंटी दिए हुए मूल अधिकारों के अनुरूप नहीं है, उस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष के पश्चात् प्रवर्तन में नहीं रहेंगी यदि उन्हें इससे पूर्व परिवर्जित, निरसित अथवा संशोधित नहीं किया जाता।' "]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खंड (2) में' 'made, and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law (प्रभावी होगी तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी)' **शब्दों के स्थान पर** 'made (प्रभावी होगी)' **शब्द रखे जाएं।**"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के प्रस्तावित खंड (2) में' 'and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law (तथा किसी ऐसे अनुकूलन और रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जायेगी)' **के स्थान पर** 'except in so far as they are inconsistent with the provisions of this Constitution (सिवाय इसके कि जहां तक ये इस संविधान के उपबंधों के संगत नहीं हों)' **शब्द रखे जाएं**।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में, अनुच्छेद 307 के खंड (2) में' 'except on the ground that the law so adapted or modified is not in accord with the provisions of this Constitution (सिवाय इस आधार पर कि इस प्रकार अनुकूलन या रूपभेद की गई विधि इस संविधान के उपबंधों से संगत नहीं है।)' **शब्द अंत में जोड़े जाएं**।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 307 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखे जाएं:–

'(2) For the purpose of bringing the provisions of any law in force in the territory of India into accord with the provisions of this Constitution, the President may by order make such adaptations and modifications of such law, whether by way of repeal or amendment as may be necessary or expedient, and provide that the law shall, as from such date as may be specified in the order, have effect subject to the adaptations and modifications so made, and any such adaptation or modification shall not be questioned in any court of law.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall be deemed:

(a) to empower the President to make any adaptation or modification of any law after expiration of two years from the commencement of this Constitution; or

(b) to prevent any competent legislature or other competent authority to repeal or amend any law adapted or modified by the President under the said clause.

That in Explanation I to article 307, the words 'but shall not include an Ordinance promulgated under section 88 of the Government of India Act, 1935' be added at the end.

That in Explanation II to article 307, the words 'has' the word 'had' be substituted and after the words continue to have the word 'such' be inserted.

That for Explanation III to article 307, the following be substituted:

Explanation III—Nothing in this article shall be construed as continuing any temporary law in force beyond the date fixed for its expiration, or the date on which it would have expired if this Constitution had not come into force.

(2) भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी प्रवृत्त विधि के उपबंधों को इस संविधान के उपबंधों से संगत करने के प्रयोजन से, राष्ट्रपति आदेश द्वारा ऐसी विधि के अनुकूलन और रूपभेद, चाहे निरसन या चाहे संशोधन द्वारा कर सकेगा जैसे कि आवश्यक या इष्टकर हो तथा उपबंध कर सकेगा कि वह विधि ऐसी तारीख से लेकर जैसी कि आदेश में उल्लिखित हो, ऐसे किए गए अनुकूलनों और रूपभेदों के अधीन रह कर ही प्रभावी होगी तथा ऐसे किसी अनुकूलन या रूपभेद पर किसी न्यायालय में आपत्ति न की जाएगी।

(3) इस अनुच्छेद के खंड (2) की कोई बात–

(क) राष्ट्रपति को इस संविधान के प्रारंभ से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी विधि का कोई अनुकूलन या रूपभेद करने की शक्ति देने वाली, अथवा

(ख) किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी को राष्ट्रपति द्वारा उक्त खंड के अधीन अनुकूलन या रूपभेद की गई किसी विधि को निरसित या संशोधित करने से रोकने वाली, न समझी जाएगी।

"कि अनुच्छेद 307 की व्याख्या में 'but shall not include an Ordinance promulgated under Section 88 of the Government of India Act, 1935 (परंतु भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 88 के अधीन प्रख्यापित कोई अध्यादेश इसमें सम्मिलित नहीं होगा)' **शब्द अंत में जोड़ दिये जाएं।**"

"कि अनुच्छेद 307 की व्याख्या 2 में 'has' **शब्द के स्थान पर** 'had' और 'continue to have' **शब्दों के पश्चात्** 'such' **शब्द अंतःस्थापित किया जाये।**'

"कि अनुच्छेद 307 की व्याख्या 3 के स्थान पर यह रखा जाये:

'Explanation III—Nothing in this article shall be construed as continuing any temporary law in force beyond the date fixed for its expiration or the date on which its would have expired of this Constitution had not come into force.' "

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 307 संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 307 संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 308

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 308 पर आते हैं। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 308 के खंड (3) के स्थान पर यह रखा जाए:

'(3) Nothing in this Constitution shall operate to invalidate the exercise of jurisdiction by his Majesty in Council to dispose of appeals and petitions from, or in respect of any judgement, decree or order of any court within the territory of India in so far as the exercise of such jurisdiction is authorised by law, and any order of this Majesty in Council made as any such appeal or petition after the commencement of this Constitution shall for all purposes have effect as if it were as order or decreed made by the Supreme Court in the Exercise of the Jurisdiction conferred on such court by this Constitution.'

'(3) इस संविधान की कोई बात भारत राज्य क्षेत्र के किसी न्यायालय के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या आदेश की, या के विषय में अपीलों और याचिकाओं को निपटाने के लिए सपरिषद् सम्राट के क्षेत्राधिकार के प्रयोग को वहां तक अमान्य न करेगी जहां तक कि ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग विधि द्वारा प्राधिकृत है तथा ऐसी किसी अपील या याचिका पर इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् दिया गया सपरिषद् सम्राट का कोई आदेश सब प्रयोजनों के लिए ऐसे प्रभावी होगा मानो कि वह उच्चतम न्यायालय द्वारा उस क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, जो ऐसे न्यायालय को इस संविधान द्वारा दिया गया है, दिया गया कोई आदेश या आज्ञप्ति हो।' "

और यह भी:

"कि अनुच्छेद 308 के खंड (3) के पश्चात् यह नया खंड अंत:स्थापित किया जाए:

'(3a) On and from the date of commencement of this Constitution the jurisdiction of the authority functioning as the Privy Council in a State for the time being specified in Part III of the First Schedule to entertain and dispose of appeals and petitions from or in respect of any judgement, decree or order of any court within that State shall cease, and all appeals and other proceedings pending before the said authority on the said date shall be transferred to, and disposed of by the Supreme Court.'

'(3क) इस संविधान ने प्रारंभ की तारीख पर और से प्रथम अनुसूची के

भाग 3 में उल्लिखित किसी राज्य में अंत: परिषद् के रूप में फिलहाल कृत्यकारी प्राधिकारी का उस राज्य के किसी न्यायालय के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या आदेश की अपील या याचिका को ग्रहण या निपटाने का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाएगा तथा ऐसे प्राधिकारी के समक्ष उक्त तारीख को लम्बित सब अपीलें और अन्य कार्यवाहियां उच्चतम न्यायालय को भेज दी जाएंगी और उसके द्वारा निपटाई जायेंगी।' "

महोदय, प्रथम संशोधन का प्रयोजन केवल यह है कि प्रिवी कौंसिल द्वारा ऐसी अपीलों को निपटाने के लिए उसके प्राधिकार को जारी रखा जाये जो अपीलें कि इसके समक्ष उस विधि के अंतर्गत लम्बित पड़ी हुई हो सकती हैं, जिसे कि संविधान सभा ने हाल ही में पास किया—अर्थात् धारा 4—यदि वे 26 जनवरी, इसी तारीख को वह तारीख मानते हुए जबकि यह संविधान अस्तित्व में आएगा—से पूर्व अंतिम रूप से नहीं निपटायी गयी हो। महत्वपूर्ण शब्द है "अपील को निपटाने के लिए" अपील ग्रहण करने की कोई शक्ति नहीं हैं और अन्य महत्वपूर्ण शब्द हैं "ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग विधि द्वारा प्राधिकृत है।" अर्थात् हाल ही में पास किए गए अधिनियम का उल्लेख। प्रिवी कौंसिल का अन्य कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा, इससे अधिक क्षेत्राधिकार नहीं होगा जो कि हमने प्रदत्त किया है। परामर्श करके ऐसी व्यवस्था की गई है कि जहां तक संभव हो उस तारीख तक जिस तारीख को कि यह संविधान अस्तित्व में आएगा, प्रिवी कौंसिल उन सभी मामलों को निपटा चुकी होगी जोकि उस विशेष अधिनियम के अंतर्गत उसके लिए छोड़े गए थे। परन्तु यह हो सकता है कि या तो किसी मामले में अभी अंशत: सुनवाई हुई हो अथवा किसी मामले का निपटान उस अर्थ में हो चुका हो कि सुनवाई समाप्त कर दी गई हो परंतु अभी आज्ञप्ति (डिग्री) नहीं लिखी गई है और इस अवस्था में वह मामला उसके समक्ष लम्बित पड़ा हो। यह अनुभव किया गया कि न-निपटाए गए मामलों अथवा अंशत: सुनवाई किए गए मामलों को उच्चतम न्यायालय को भेजने के उपबंध करने के बजाए जिससे कि वादियों को काफी कठिनाई पैदा होगी, यह वांछनीय है कि हम अपने सामान्य नियम में यह अपवाद करें कि प्रिवी कौंसिल का क्षेत्राधिकार उस तारीख को समाप्त हो जायेगा जिसको कि संविधान अस्तित्व में आ जायेगा। संशोधन संख्या 6 का मुख्य प्रयोजन यही है।

जहां तक संशोधन संख्या 7 का संबंध है, यह सुविदित है कि कुछ देशी रियायतों में प्रिवी कौंसिलें हैं जो कि अपने उच्च न्यायालयों के निर्णयों का अधीक्षण करती है जिसका कारण यह है कि वे प्रिवी कौंसिल अथवा यह कहना ठीक रहेगा कि इंग्लैण्ड की हिज मैजेसिटी के प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार को मान्यता नहीं देती थीं। इसलिए उनकी अपनी प्रिवी कौंसिलें थीं। अब यह अनुभव किया गया है कि संविधान में इस उपबंध को दृष्टिगत रखते हुए उच्चतम न्यायालय तथा भिन्न-भिन्न राज्यों के अर्थात् भाग 3 तथा भाग 1 दोनों वर्ग के राज्यों के उच्च न्यायालयों के बीच सीधा संबंध हो, भाग 3 में देशी रियासत के प्रिवी कौंसिल के इस मध्यवर्ती संस्थान को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया जाए, ताकि 26 जनवरी को भाग 3 के राज्य में उच्च न्यायालय से किसी राज्य में सभी अपीलें उच्चतम न्यायालय द्वारा निपटाए जाने के लिए स्वत: अंतरित हो जाएं।

मुझे बताया गया है कि भिन्न-भिन्न राज्यों में इन प्रिवी कौंसिलों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। यदि ऐसा है तो प्रारूप समिति का यह विचार है कि अपने अनुच्छेद 306 में प्रिवी कौंसिल की परिभाषा समाविष्ट करके और उसमें इन संस्थानों के भिन्न-भिन्न नामों तथा भिन्नताओं को शामिल करके इस कठिनाई को दूर किया जाये।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 138 तथा 139—श्री नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं संख्या 138 प्रस्तुत नहीं करना चाहता क्योंकि इसका अर्थ इस खंड का विरोध करना है। जहां तक संख्या 139 के संबंध में यह शाब्दिक स्वरूप का है तथा मैं इसे प्रारूप समिति के विवेक पर छोड़ता हूं।

जहां तक खंड (3) का संबंध है, जो कि सपरिषद् हिज मैजेस्टी को 26 जनवरी—वह तारीख जिस दिन कि संविधान प्रवर्तन में आएगा—के पश्चात् भी अपीलों तथा याचिकाओं को निपटाने की शक्ति देता है, यह खंड कुछ चौंका देने वाला प्रतीत होता है। अभी कुछ दिन पूर्व ही हमने इस सभा में एक अधिनियम पास किया जिसके अंतर्गत उन सभी अपीलों तथा याचिकाओं को जो कि न्यायिक समिति के समक्ष लम्बित हैं, फेडरल कोर्ट को भेज दिया गया है। तथापि, इसके कुछ अपवाद भी थे। एक अपवाद था अनुमति के लिए याचिका। यह उपबंध किया गया कि यदि न्यायालय में अवकाश की अवधि के दौरान, जो कि आज से आरंभ होती है, प्रिवी कौंसिल में अनुमति के लिए कोई याचिका लम्बित हो तो वह केवल अनुमति दे सकती है अथवा इससे इंकार कर सकती है। अत: इसका प्रभाव यह रहा कि यदि प्रिवी कौंसिल ने कोई अनुमति नहीं दी तो मामला अंतिम रूप से समाप्त माना गया। परंतु यदि कोई अनुमति दे दी जाती तो प्रिवी कौंसिल को उस पर आगे सुनवाई करने का अधिकार नहीं था। आगे सुनवाई फेडरल कोर्ट में तथा फेडरल कोर्ट को उच्चतम न्यायालय में बदल दिए जाने के पश्चात् बाद में उच्चतम न्यायालय में होगी और फिर कुछ अन्य मामले भी हैं जिन पर कि प्रिवी कौंसिल विचार कर सकती है, अर्थात् वे अपीलें जिन पर कि सुनवाई हो चुकी है, जिनमें कि न्यायिक समिति अपना निर्णय घोषित कर चुकी है परंतु हिज मैजेस्टी द्वारा उसकी अंतिम स्वीकृति से अभी अवगत नहीं कराया गया है। उन मामलों में हिज मैजेस्टी उस तारीख के पश्चात् भी प्रिवी कौंसिल की सिफारिशें स्वीकार करने की अधिकारी होगी।

जिस समय इस अधिनियम पर सदन में विचार हो रहा था उस समय हमें यह बताया गया था कि ऐसी कोई भी अपील नहीं है जो कि भारत से प्रिवी कौंसिल के पास लम्बित हो। लम्बित मामले केवल अनुमति के लिए याचिकाएं होंगी और यदि ये याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं तो निस्संदेह मामले पर आगे सुनवाई भारत में होगी। लम्बित पड़ी एक मात्र याचिका का संबंध गोडसे की अपीलों से है। अन्य कोई याचिका लम्बित नहीं है। जहां तक अपीलों का संबंध है, कुछ भी लम्बित नहीं होगा, सिवाए न्यायिक समिति की सिफारिशें स्वयं हिज मैजेस्टी द्वारा स्वीकार किए जाने के। परंतु हिज मैजेस्टी द्वारा यह स्वीकृति स्वत: ही मिल जाती है और इसमें कभी भी विलम्ब नहीं होता। अत: खंड (3) की कोई आवश्यकता नहीं है जिसे कि अनावश्यक ही व्यापक रूप में व्यक्त किया गया है। इस सदन ने बार-बार कहा है कि अब से आगे सभी अपीलों की सुनवाई फेडरल न्यायालय द्वारा की जानी चाहिए, परन्तु यह पुराना विचार किसी न किसी रूप में अभी भी जारी है, तथा खंड (3) उस पुराने विचार को चिरस्थायी बनाता है जिसका कि यह सदन निश्चय ही परित्याग कर चुका है। तर्कों के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने हाल ही में पास किए गए अधिनियम की धारा 4 का उल्लेख किया था। हाल ही में पास किए गए अधिनियम की धारा 4 में यह कहा गया है।

"धारा 2 की कोई बात सपरिषद् हिज मैजेस्टी के क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित का निपटान करने से प्रभावित नहीं करेगी–

(क) कोई भी भारतीय अपील या याचिका जिस पर कि प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति ने निर्धारित दिन से पूर्व निर्णय दिया हो, अथवा जैसी भी स्थिति हो, हिज मैजेस्टी को रिपोर्ट किया हो परंतु जिसे कि सपरिषद् हिज मैजेस्टी के आदेश द्वारा अवधारित नहीं किया गया है,"

निर्धारित दिन आज का दिन है, अर्थात् 10 अक्तूबर। यदि आज से पूर्व अर्थात् कल तक कोई निर्णय दिया गया है परंतु हिज मैजेस्टी ने उस पर अपनी अनुमति नहीं दी है, तो अनुमति दी जा सकती है। फिर हम खंड (ख) पर आते हैं:

"कोई भारतीय अपील या याचिका जिस पर कि न्यायिक समिति ने, अपील पर सुनवाई करने के पश्चात् निर्णय या आदेश आरक्षित रखा है"

और (ग)–

"कोई भारतीय अपील जिसे कि निर्धारित दिन से पूर्व वर्ष 1949 की न्यायालय-अवकाश की बैठकों के लिए न्यायिक समिति की कार्यसूची में दर्ज किया गया है और जिसके कि इस दिन के पश्चात् न्यायिक समिति के आदेश द्वारा या प्राधिकार के अंतर्गत वहां से हटाए जाने का कोई निदेश नहीं है।"

अत: यदि, वर्तमान अवधि के लिए प्रिवी कौंसिल के समक्ष आज कोई अपील लम्बित है तो इसे निपटाया जाएगा, जब तक कि इस पर भारत में सुनवाई किए जाने का निदेश नहीं दिया जाता, परंतु हमारे द्वारा पास किए गए अधिनियम के आधार पर प्रिवी कौंसिल इन अपीलों को भारत को भेजने के निर्देश देने के लिए बाध्य होगी। परंतु यह भी सुविदित है कि गोडसे के मामले के सिवाय कोई भी अन्य भारतीय मामला सूची में दर्ज नहीं किया गया है। फिर हम खंड (घ) आते हैं:

"कोई भारतीय याचिका जो कि निर्धारित दिन से पूर्व प्रिवी कौंसिल की रजिस्ट्री में दाखिल की गई है।"

अर्थात् अनुमति तथा अन्य बातों के लिए याचिका पर भी केवल सुनवाई होगी तथा विशेष अनुमति दी जा सकती है अथवा इससे इंकार किया जा सकता है। यदि इंकार कर दिया जाता है तो मामला यहीं समाप्त हो जाता है और यदि अनुमति दी जाती है तो भी मामला समाप्त हो जाता है क्योंकि मामला भारत को वापस आ जाता है।

अत: मेरा निवेदन है कि खंड (3) अनावश्यक रूप से व्यापक रखा गया है और इसमें काल्पनिक मामले शामिल हैं जो कि विद्यमान नहीं हैं। हमें इस बात की सही जानकारी होनी चाहिए कि प्रिवी कौंसिल में कौन-कौन से मामले लम्बित हैं, कितने हैं, कितने मामले निर्धारित दिन 10 अक्तूबर अर्थात्, आज के पश्चात् स्वत: अंतरित हो जाएंगे और क्या कोई मामला शेष रह जाएगा। हमें यह बात स्पष्टतया विदित होनी चाहिए कि उनके समक्ष संभवतया कौन-कौन से मामले लम्बित पड़े होंगे और जिन्हें कि 26 जनवरी 1950, जो कि इस संविधान के प्रवर्तन में आने की अस्थायी तारीख है, के पश्चात् भी धारा (3) के अंतर्गत निपटाया जा सकेगा। हमारे समक्ष विद्यमान परिस्थितियों का यही चित्र होना चाहिए, विपरीत इसके कि हम एक व्यापक धारा पास करें जिसमें कि सभी प्रकार के काल्पनिक और आनुमानिक मामले आते हों, मेरे विचार में 26 जनवरी को भारत की पूर्णरूपेण

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक हमारे द्वारा अपनाए गए संविधान को दृष्टिगत रखते हुए तथा हमारे द्वारा डोमिनियन दर्जे का परित्याग गिए जाने तथा स्वाधीन दर्जा अर्जित करने को दृष्टिगत रखते हुए इन शक्तियों का न्यायिक समिति में जारी रहना कुछ-कुछ असाधारण होगा। महोदय, इन परिस्थितियों में मेरा निवेदन है कि खंड (3) का लोप किया जाना चाहिए तथा इसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। इस मामले का स्पष्टतया विश्लेषण किया जाना चाहिए और सभा को बताया जाना चाहिए कि कौन-कौन से मामले हैं जो कि वास्तव में खंड (3) की परिधि में आते हैं। अतः जब तक कि इस मामले को स्पष्ट नहीं किया जाता, मैं इस खंड का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** डॉ. देशमुख।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** महोदय, मैं अपना संशोधन प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** श्री शिब्बन लाल सक्सेना का संशोधन इसका लोप करने के लिए है। अन्य संशोधन प्रस्तुत हो चुकने के पश्चात् आप इस पर बोल सकते हैं— श्री महावीर त्यागी।

***श्री महावीर त्यागीः** महोदय, मैं अपना संशोधन प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** श्री शिब्बन लाल सक्सेना, आप इस पर बोल सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं।

"That in amendments Nos. 6 and 7 of List I (Second Week), the proposed clause (3) be deleted, and the proposed new clause 3(a) be re-numbered as (3)"

["कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 6 तथा 7 में, प्रस्तावित खंड (3) निकाल दिया जाये तथा प्रस्तावित नये खंड (3क) को खंड (3) के रूप में पुनर्संख्याकित किया जाए।"]

***अध्यक्षः** इसको प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। आप इस पर बोल सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यह संशोधन केवल एक खंड के लोप के लिए है, अनुच्छेद के लोप के लिए नहीं। महोदय, इस खंड (3) पर मेरी आपत्ति यह है कि मैं नहीं चाहता कि 26 जनवरी के पश्चात् सपरिषद् सम्राट का इस देश से कोई सरोकार रहे। उस दिन हम एक पूर्णरूपेण स्वतंत्र गणराज्य बन जाएंगे तथा इस अनुच्छेद का वह उपबंध, जिसमें कि यह परिकल्पना की गई है उस दिन लम्बित पड़ी अपीलों की सुनवाई करने के लिए सपरिषद् सम्राट को अधिकार होगा, मेरे विचार से हमारी स्वाधीनता के लिए अपमानजनक होगा। यह आपत्ति की जा सकती है कि कुछ अपीलें लम्बित पड़ी हुई हो सकती हैं तथा यह कि सम्बन्धित वादियों को कठिनाई होगी, परंतु मैं इस सदन का ध्यान संविधान के प्रारूप के पृष्ठ 153 की पादटिप्पणी की ओर दिलाता हूं। वास्तव में प्रारूप समिति में अनुच्छेद 308 के खंड (3) में मूलतः स्वयं यह परिकल्पना की थी कि अंतःपरिषद् (प्रिवी कौंसिल) का अधिकार क्षेत्र उस दिन समाप्त हो जाएगा।

"इस संविधान के प्रारंभ होने के दिन तथा उसके बाद से सपरिषद् सम्राट का भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर किसी न्यायालय की किसी आज्ञप्ति या आदेश से उत्पन्न या उससे सम्बन्धित अपीलें तथा याचिकाएं ग्रहण करने तथा निपटाने का क्षेत्राधिकार, जिसमें कि दाण्डिक मामलों से सम्बन्धित वह क्षेत्राधिकार भी शामिल है जिसमें कि सम्राट को उस विशेषाधिकार के अधिकार के आधार पर कार्यवाही करनी होती है जो कि सम्राट को प्राप्त है, समाप्त हो जाएगा तथा उक्त तारीख को सपरिषद् सम्राट के समक्ष लम्बित सभी अपीलें तथा अन्य कार्यवाहियां उच्चतम न्यायालय को अंतरित की जाएंगी तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा उन्हें निपटाया जाएगा।"

अत: मूल अनुच्छेद में उन्होंने स्वयं परिकल्पना की थी कि अंत:परिषद् (प्रिवी कौंसिल) का क्षेत्राधिकार उस तारीख को समाप्त हो जाएगा जिस तारीख को कि यह संविधान प्रवर्तन में आएगा। पादटिप्पणी में कहा है:

"समिति का विचार है कि सपरिषद् सम्राट के समक्ष लम्बित सभी अपीलें तथा अन्य कार्यवाहियां उस समय तक अंतिम रूप में निपटा दी जाएंगी जब यह संविधान प्रवर्तन में आएगा। तथापि, यदि संविधान के प्रारूप के समय कुछ अपीलें तथा अन्य कार्यवाहियां सपरिषद् सम्राट के समक्ष लम्बित पड़ी रहती हैं तथा उनको उच्चतम न्यायालय में अंतरित करने तथा उसके द्वारा निपटाए जाने के बारे में यदि कोई कठिनाई पैदा होती है, तो राष्ट्रपति "कठिनाइयों का दूर करना" (अनुच्छेद 313) के अंतर्गत आवश्यक आदेश जारी कर सकते हैं।"

यही कुछ है जो कि प्रारूप समिति ने मूल अनुच्छेद 308 की पादटिप्पणी में कहा है। इस दृष्टिकोण से मैं यह नहीं मानता कि जबकि हमने अनुच्छेद 313 पास कर दिया है, इस नए खंड (3) की कोई आवश्यकता है जिसमें कि यह परिकल्पना की गई है कि प्रिवी कौंसिल का क्षेत्राधिकार 26 जनवरी के पश्चात भी जारी रह सकेगा जिस समय कि हम एक मुक्त तथा स्वाधीन देश होंगे। मेरे विचार में, पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी प्रिवी कौंसिल के हस्तक्षेप का प्रावधान करके हमें संविधान को कुरूपित नहीं करना चाहिए। मेरे विचार में यहां कुछ गलती हुई क्योंकि अनुच्छेद 313 काफी पर्याप्त है तथा अनुच्छेद 308 में इस खंड (3) की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे संविधान को इस खंड द्वारा कुरुपित नहीं किया जाना चाहिए।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं नहीं समझता कि जो संशोधन प्रस्तुत किए गए हैं उनके पक्ष में कही गई कोई बात किसी प्रकार का कोई महत्वपूर्ण मुद्दा उठाती है। यह भावनाओं का मामला अधिक है और मेरा विचार है कि सुविधा की दृष्टि से यह बेहतर है कि हम इस खंड को रखें और ऐसा करने में किसी तरह से अपमानित अनुभव नहीं करें क्योंकि यदि प्रिवी कौंसिल, खंड (3) में उल्लिखित सीमित शर्तों के भीतर, क्षेत्राधिकार का निर्वहन करना जारी भी रखती है तो यह नहीं भूलना चाहिए—और मेरे विचार में जिन मेरे मित्रों ने संशोधन प्रस्तुत किए हैं, वे यह तथ्य भुला चुके प्रतीत होते हैं—कि वह क्षेत्राधिकार प्रिवी कौंसिल का अंतर्निहित क्षेत्राधिकार नहीं है वरन् एक ऐसा क्षेत्राधिकार है जो कि इस सभा

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

ने उन्हें प्रदत्त किया है। वास्तव में प्रिवी कौंसिल कुछ आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए इस सभा के एजेंट के रूप में कार्य करेगी। अतः मेरे विचार में अपमानित महसूस करने का अथवा यह समझने कि हम वास्तव में अपनी स्वतंत्रता का सौदा कर रहे हैं, का कोई कारण नहीं है।

जहां तक मेरे मित्र प्रो. सक्सेना द्वारा उठाए गए प्रश्न का सबंध है जिसमें कि उन्होंने अनुच्छेद 308 की पादटिप्पणी का उल्लेख किया था, मैं यह निर्बाध रूप से स्वीकार करता हूं कि बेहतर विचार के पश्चात् प्रारूप समिति ने यह पाया कि हो सकता है कि कठिनाइयां दूर करने संबंधी खंड का इस प्रयोजन के लिए उचित प्रकार से उपयोग नहीं किया जाये। सभी प्रकार के संदेह को दूर करने के लिए हमने सोचा कि स्वयं संविधान द्वारा क्षेत्राधिकार प्रदत्त करने के लिये इस प्रकार का यह अलग खंड रखना अधिक अच्छा होगा।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन मतदान के लिए रखूंगा। केवल एक ही संशोधन है, संख्या 177 जो कि प्रो. शिब्बन लाल द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्न यह है:

"That in amendment Nos. 6 and 7 of List I (Second Week) the proposed clause (3) be deleted and the proposed new clause (3a) be renumbered as (3)."

["कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 6 तथा 7 में, प्रस्तावित खंड (3) निकाल दिया जाए तथा प्रस्तावित नए खंड (3क) को खंड (3) के रूप में पुनसंख्यांकित किया जाए।"]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन को मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 308 के खंड (3) के स्थान पर यह रखा जाए–

'(3) Nothing in this Constitution shall operate to invalidate the exercise of jurisdiction by His Majesty in Council to dispose of appeals and petitions from or in respect of any judgement, decree or order of any court within the territory of India in so far as the exercise of such jurisdiction is authorised by law, and any order of His Majesty in Council made on any such appeal or petition after the commencement of this Constitution shall for all purposes have effect as if it were an order or decree made by the Supreme Court in the exercise of the jurisdiction conferred on such court by this Constitution.'

['(3) इस अधिनियम की कोई बात भारत राज्य क्षेत्र में के किसी न्यायालय के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या आदेश की, या के विषय में अपीलों

और याचिकाओं को निपटाने के लिए सपरिषद् सम्राट के क्षेत्राधिकार के प्रयोग को वहां तक अमान्य न करेगी जहां तक कि ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग विधि द्वारा प्राधिकृत है तथा ऐसी किसी अपील या याचिका पर इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् दिया गया सपरिषद् सम्राट का कोई आदेश सब प्रयोजनों के लिए ऐसे प्रभावी होगा मानों कि वह उच्चतम न्यायालय द्वारा उस क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, जो ऐसे न्यायालय को इस संविधान द्वारा दिया गया है, दिया गया कोई आदेश या आज्ञप्ति हो।']

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 7 मतदान के लिए रखता हूं। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 308 के खंड (3) के पश्चात् यह नया खंड अंत:स्थापित किया जाए:–

'(3a) On and from the date of commencement of this Constitution the jurisdiction of the authority functioning as the Privy Council in a State for the time being specified in Part III of the First Schedule to entertain and dispose of appeals and petitions from or in respect of any judgement, decree or order of any court within that State shall cease and all appeals and other proceedings pending before the said authority on the said date shall be transferred to, and disposed of by the Supreme Court."

'(3) इस संविधान के प्रारंभ की तारीख पर और से प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित किसी राज्य में अंत: परिषद् के रूप में फिलहाल कृत्यकारी प्राधिकारी का इस राज्य में के किसी न्यायालय के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या आदेश की अपील या याचिका को ग्रहण करने या निपटाने का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाएगा तथा ऐसे प्राधिकारी के समक्ष उक्त तारीख को लंबित सब अपीलें और अन्य कार्यवाहियां उच्चतम न्यायालय को भेज दी जाएंगी और उसके द्वारा निबटाई जाएंगी।' "]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है।

"कि अनुच्छेद 308, संशोधित रूप में संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 308 संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।"

अनुच्छेद 310

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 310 के स्थान पर यह रखा जाए:

'310.(1) Notwithstanding anything contained in clause (2) of article 193

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

of this Constitution, the judges of a High Court in any Province holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless they have elected otherwise, become on that date the judges of the High Court in the corresponding State, and shall thereupon be entitled to such salaries and allowances and to such rights in respect of leave and pensions as are provided for under article 197 of this Constitution in respect of the judges of such High Court.

(2) The judges of a High Court in any Indian State corresponding to any State for the time being specified in Part III of the First Schedule holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless they have elected otherwise, become on that date the judges of the High Court in the State so specified and shall, notwithstanding anything contained in clauses (1) and (2) of article 193 of this Constitution but subject to the proviso to clause (1) of that article, continue to hold office until the expiration of such period as the President may by order determine.

(3) In this article the expression 'judge' does not include an acting judge or an additional judge.' "

["310 (1) इस संविधान के अनुच्छेद 193 के खंड (2) में किसी बात के होते हुए, इस संविधान के प्रारंभ की तारीख से ठीक पहले किसी प्रांत में के उच्च न्यायालय के पदस्थ न्यायाधीश, यदि वे अन्यथा पसंद न कर चुके हों, ऐसी तारीख को तत्स्थानी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो जाएंगे तथा तत्पश्चात ऐसे वेतनों और भत्तों तथा छुट्टी और निवृति-वेतन के विषय में ऐसे अधिकारों का हक रखेंगे जैसे कि ऐसे उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के बारे में इस संविधान के अनुच्छेद 197 के अधीन उपबंधित है।

(2) इस संविधान के प्रारंभ की तारीख से ठीक पहले प्रथम अनुसूची के भाग 3 में फिलहाल उल्लिखित किसी राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य में के उच्च न्यायालय के पदस्थ न्यायाधीश, यदि वे अन्यथा पसंद न कर चुके हों, ऐसी तारीख को वैसे उल्लिखित राज्य में के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो जाएंगे तथा इस संविधान के अनुच्छेद 193 के खंड (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, किंतु उस अनुच्छेद के खंड (1) के परंतुक के अधीन रहते हुए, ऐसी कालावधि तक पदस्थ बने रहेंगे जैसी कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।

(3) इस अनुच्छेद में "न्यायाधीश" पद के अंतर्गत कार्यकारी न्यायाधीश या अपर न्यायाधीश नहीं है।' "]

यह अनुच्छेद केवल इस प्रकार का अनुच्छेद है जिसे कि हम "आगे बढ़ाने वाला" अनुच्छेद की संज्ञा दिया करते थे, केवल उच्च न्यायालयों में नए पदों पर न्यायाधीशों को ले जाने वाला, यदि वे नियुक्त होना पसंद करते हैं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 88

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं 88 प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं। मैं 141 प्रस्तुत करूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन 87 में, प्रस्तावित अनुच्छेद के खंड (1) में, शब्द तथा संख्या 'Article 197 (अनुच्छेद 197)' **के पश्चात्** 'and second schedule (और द्वितीय अनुसूची)' **शब्द अन्त:स्थापित किए जाएं।**"

मेरा संशोधन शाब्दिक मात्र है। इसे प्रस्तुत करने में मेरा उद्देश्य इस प्रकार है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन के संबंध में अनुच्छेद 197 का उल्लेख किया गया है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन के बारे में द्वितीय अनुसूची में भी कहा गया है तथा मैंने इसका उल्लेख अनुच्छेद 197 के साथ-साथ करना ठीक समझा। अनुसूची संविधान का एक महत्वपूर्ण भाग है विशेषकर इस अनुच्छेद के संदर्भ में जिसमें कि वेतन, भत्तों तथा पेंशन से संबंधित अन्य विषयों का उल्लेख किया जाएगा। अत: इसे अत्यन्त स्पष्ट बनाने के लिए मैंने प्रस्ताव रखा है कि "अनुच्छेद 197" के पश्चात् "तथा द्वितीय अनुसूची" शब्द अंत:स्थापित किए जाएं।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 8 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 310 के खंड (1) में 'as are provided under article 197 of this Constitution in respect of the Judges of such High Court' (जैसे कि ऐसे उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के बारे में इस संविधान के अनुच्छेद 197 के अधीन उपबंधित है) **शब्दों के स्थान पर** 'as they were entitled to immediately before the said commencement (जिसके कि वे उक्त प्रारंभ के तुरंत पूर्व हकदार थे)' **शब्द रखे जाएं।**" इस अनुच्छेद के खंड (1) में उपबंध है कि किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश उस तारीख को जिसको कि यह संविधान प्रवर्तन में आता है अंतरिम रूप में 26 जनवरी, 1950 को उसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने रहेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं इस बात की ओर ध्यान दिला सकता हूं कि यह संशोधन द्वितीय अनुसूची का पूर्वानुमान कर रहा है? इस मामले पर द्वितीय अनुसूची के अंतर्गत कार्यवाही की जानी है तथा उचित समय तो वही होगा जब यह अनुसूची सभा के समक्ष होगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने उस पर भी सावधानी पूर्वक विचार किया है, परंतु मामला पूरी तरह से उसके अंतर्गत नहीं आएगा। उसमें इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् न्यायाधीशों के वेतनमानों का उपबंध किया जाएगा, परंतु यहां मामला बिल्कुल भिन्न है। मेरे संशोधन में कहा गया है कि जो वेतन वे संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले अर्थात् 25 जनवरी, 1950 को ले रहे थे, 26 जनवरी से भी वे वही वेतन प्राप्त करेंगे तथा उन्हीं शर्तों के हकदार रहेंगे। अनुसूची में नए वेतनमान दिए गए हैं। वह एक बिल्कुल भिन्न बात है।

मेरा निवेदन है कि खंड (1) की कोई आवश्यकता नहीं है। जहां तक मैं समझ सकता हूं, इस खंड की आवश्यकता केवल वर्तमान न्यायाधीशों के वेतन में अप्रत्यक्ष रूप से कटौती को उचित ठहराने के लिए है। वास्तव में यह स्पष्ट है कि 26 जनवरी को अनुच्छेद 310 के इस खंड (1) के अलावा

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

भी, वे न्यायाधीश उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश बने रहेंगे क्योंकि वही उच्च न्यायालय बना रहेगा। हमने अन्य सरकारी सेवकों के मामले में इस प्रकार की निरंतरता का उपबंध नहीं किया है। प्रत्येक व्यक्ति जो कि 25 जनवरी को सरकारी सेवक है निश्चय ही 26 जनवरी को भी उसी रूप में सेवक बना रहेगा, जब तक कि उसे इस बीच बर्खास्त नहीं कर दिया गया हो या उसने त्यागपत्र न दे दिया हो या उसे सेवामुक्त न कर दिया गया हो अथवा उसकी मृत्यु न हो गई हो। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में 25 जनवरी से 26 जनवरी तक उसकी सेवा स्वत: जारी रहेगी तथा इसके लिए किसी प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है जैसा कि खंड (1) के अंतर्गत प्रावधान किए जाने का प्रयास किया गया है। मेरा निवेदन है कि इस दृष्टि से खंड (1) अत्यंत अनावश्यक है। परंतु यह एक अन्य विचार भी उत्पन्न करता है, अर्थात् यह वर्तमान न्यायाधीशों के वेतन को कम करने का अप्रत्यक्ष प्रयास है। वास्तव में जहां तक वर्तमान न्यायाधीशों का संबंध है, विद्यमान शर्तों के अधीन उनके नियत वेतन हैं। यदि यह खंड न भी हो तो भी वे 26 जनवरी को तथा इससे पश्चात् वही वेतन प्राप्त करते रहते इस खंड का वास्तविक प्रयोजन वर्तमान न्यायाधीशों के वेतन को कम करना है। मेरा निवेदन है कि उनका वेतन कम नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे एक संविदा पर जिसके अंतर्गत कि वे नियुक्त हुए थे, एक विशेष वेतन पा रहे हैं। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश निहायत योग्य वकीलों में से नियुक्त किए जाते हैं जिनके बारे में कि यह मानना होगा कि वे बहुत अच्छी आय अर्जित कर रहे थे। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में केवल दो ही शर्तें थीं, अर्थात् उन्हें साठ वर्ष की आयु होने तक सामान्य रूप में बने रहना था और दूसरे इसके पश्चात् उन्हें उन उच्च न्यायालयों में जिनके कि वे न्यायाधीश रह चुके हों तथा उनके अधीनस्थ न्यायालयों में अपना कानूनी व्यवसाय करने की अनुमति नहीं दी जानी थी। परन्तु अब हम ऐसी शर्तें अधिनियमित कर रहे हैं कि उनके वेतन कम कर दिये जाएंगे और इसके अलावा यह भी कि साठ वर्ष की आयु पूरी हो जाने पर उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों पर न केवल उस उच्च न्यायालय में जिसमें कि वे नियुक्त हैं, अथवा इसके अधीनस्थ न्यायालयों में बल्कि सभी न्यायालयों, जो कि उस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र तक में नहीं आते, अर्थात् अन्य राज्यों के उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय में भी, कानूनी व्यवसाय चलाने पर रोक होगी। इससे उनके साथ किया गया करार दो पहलुओं से भंग होगा।

***डॉ. बख्शी टेक चन्द:** (पूर्वी पंजाब-जनरल): क्या मैं एक सुझाव दे सकता हूं? क्या यह उचित नहीं रहेगा कि इस विषय पर उस समय विचार किया जाए जब कि द्वितीय अनुसूची विचाराधीन होगी? द्वितीय अनुसूची के लिए संशोधन संख्या (11) (जो कि डॉ. अम्बेडकर के नाम में है) में उन न्यायाधीशों के वेतनों का मामला समाविष्ट है जो कि 31 अक्टूबर 1948 को या उससे पूर्व नियुक्त किए गए थे। इस विषय को थोड़ा-थोड़ा लेने के बजाय क्या इस संशोधन पर उस समय चर्चा करना आपके लिए सुविधाजनक नहीं रहेगा जब हम द्वितीय अनुसूची को विचार के लिये लेंगे? जैसा कि संशोधन संख्या 11 से पता चलता है, इसका संबंध केवल उन न्यायाधीशों के वेतन से नहीं है जिन्हें कि नए संविधान के अंतर्गत नियुक्त किया जाएगा, बल्कि इसमें उन न्यायाधीशों के वेतनों का भी उल्लेख है जिनकी नियुक्ति उस तारीख से पूर्व हुई थी और जो इस संविधान के प्रारंभ की तारीख को उच्च न्यायालयों में काम कर रहे होंगे। यदि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का यह संशोधन अस्वीकृत हो जाता है तो इससे उन संशोधनों पर प्रभाव पड़ सकता है जो कि अनुसूची के लिए हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यदि इस संशोधन पर चतुर्थ अनुसूची के लिए संशोधनों के साथ-साथ विचार करने का प्रस्ताव है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परंतु यह मुद्दा उठाने का यही उचित समय है। जहां तक इस तर्क का प्रश्न है कि यदि यह संशोधन अस्वीकृत हो जाता है तो अन्य संशोधन भी अस्वीकृत माने जाएंगे, मैं इससे सहमत नहीं हूं। यह संशोधन, इस तथ्य के बावजूद कि न्यायाधीशों की नियुक्ति एक निश्चित तारीख से पूर्व हुई थी, वर्तमान न्यायाधीशों के वेतन का संरक्षण करने के लिये हैं। परंतु इस संशोधन की अस्वीकृति का अर्थ यह नहीं है कि अन्य संशोधन अस्वीकृत हो जाएंगे। जहां तक डॉ. बख्शी टेक चंद के इस सुझाव का संबंध है कि मुझे इसे संशोधन संख्या 11 के संशोधन के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए मैं इस विषय में आपके अनुदेशों की प्रतीक्षा करूंगा।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में, इस खंड के इसी रूप में पास किए जाने से अनुसूची पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं अनुसूची के मार्ग में बाधा नहीं बनूंगा। किसी भी स्थिति में मैं उसे उस आधार पर असंगत घोषित नहीं करूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** वह संशोधन यह है कि उन न्यायाधीशों के जो कि एक निश्चित तारीख से पूर्व नियुक्त किए गए थे, वेतन का संरक्षण किया जायेगा। परंतु मेरा प्रश्न यह है कि न्यायाधीशों के वेतन जैसे कि वे 25 जनवरी, 1950 को थे, संरक्षित किये जाने चाहिए। इसमें तथा डॉ. अम्बेडकर के उस संशोधन में हल्का सा अंतर है। मेरा निवेदन है कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन मेरे संशोधन के परिचालित किए जाने के पश्चात् भेजा गया है। यह वास्तव में स्थिति में कुछ सीमा तक सुधार करने का प्रयास है, परंतु वह स्थिति में उस सीमा तक इतना सुधार करने के का प्रयास नहीं करता जितना कि मैं चाहता हूं कि वह करता। महोदय, मैं निश्चय ही आपके विनिर्णय का पालन करूंगा।

***अध्यक्षः** यदि आप चाहें तो जो मुद्दा आपने उठाया है उसे समाविष्ट करते हुए आप एक दूसरे संशोधन की सूचना दे सकते हैं। क्या कोई सदस्य इसके संबंध में कुछ कहना चाहता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें सिद्धांत का कोई प्रश्न नहीं है।

***अध्यक्षः** डॉ. सिधवा द्वारा प्रस्तुत एक संशोधन है, और वह भी शाब्दिक स्वरूप का है। तथा मैं इसे मतदान के लिए रखूं?

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं इसे प्रारूप समिति पर छोड़ता हूं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 310 के स्थान पर यह रखा जाए।

Provisions as to Judges of High Courts

310 (1) Notwithstanding anything contained in clause (2) of article 193 of this Constitution the judges of a High Court in any Province holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall unless they have elected otherwise, become on that date the judges of the High Court in the corresponding State, and shall thereupon be entitled to such salaries and allowances and to such rights in respect of leave and pensions as are provided for under article 197 of this Constitution in repect of the judges of such High Court.

[अध्यक्ष]

(2) The judges of a High Court in any Indian State corresponding to any State for the time being specified in Part III of the First Schedule holding office immediately before the date of commencement of this Constitution shall, unless they have elected otherwise, become on that date the judges of the High Court in the State so specified and shall notwithstanding anything contained in clauses (1) and (2) of article 197 of this Constitution but subject to the proviso to clause (1) of that article, continue to hold office until the expiration of such period as the President may by order determine.

(3) In this article the expression 'Judge' does not include an acting judge or an additional judge.'

['310(1) इस संविधान के अनुच्छेद 193 के खंड (2) में किसी बात के होते हुए, इस संविधान के प्रारंभ की तारीख से ठीक पहले किसी प्रांत में के उच्च न्यायालय के पदस्थ न्यायाधीश, यदि वे अन्यथा पसंद न कर चुके हों, ऐसी तारीख को तत्स्थानी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो जाएंगे तथा तत्पश्चात् ऐसे वेतनों और भत्तों तथा छुट्टी और निवृत्ति वेतन के विषय में ऐसे अधिकारों का हक रखेंगे जैसे कि ऐसे उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के बारे में इस संविधान के अनुच्छेद 197 के अधीन उपबंधित है।

(2) इस संविधान के प्रारंभ की तारीख से ठीक पहले प्रथम अनुसूची के भाग 3 में फिलहाल उल्लिखित किसी राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य में के उच्च न्यायालय के पदस्थ न्यायाधीश, यदि वे अन्यथा पसंद न कर चुके हों, ऐसे तारीख को वैसे उल्लिखित राज्य में के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो जाएंगे तथा इस संविधान के अनुच्छेद 193 के खंड (1) और खंड (2) में किसी बात के होते हुए भी, किंतु उस अनुच्छेद के खंड (1) के परंतुक के अधीन रहते हुए, ऐसी कालावधि तक पदस्थ बने रहेंगे जैसा कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।

(3) इस अनुच्छेद में 'न्यायाधीश' पद के अंतर्गत कार्यकारी न्यायाधीश या अपर न्यायाधीश नहीं है।' "]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 310 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 311

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 311 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाए:

Provisions as to provisional Parliament of the Union and the Speaker and Deputy Speaker thereof

311.(1) Until both Houses of Parliament have been duly constituted and summoned to meet for the first session under the provisions of this Constitution, the body functioning as the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before the commencement of this Constitution shall exercise all the powers and perform all the duties conferred by the provisions of this Constitution on Parliament.

Explanation—For the purposes of this clause, the Constituent Assembly of the Dominion of India includes—

(i) the members chosen to represent any State or other Territory for which representation is provided under clause (2) of this article, and

(ii) the members chosen to fill casual vacancies in the said Assembly.

(2) the President may by rules provide for—

(a) the representation in the provisional Parliament functioning under clause (1) of this article of any State or other Territory which was not represented in the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before the commencement of this Constitution.'

(b) the manner in which the representatives of such States or other Territories in the provisional Parliament shall be chosen, and

(c) the qualifications to be possessed by such representatives.

(3) If a member of the Constituent Assembly of the Dominion of India was on the sixth day of October, 1949, also a member of a House of the Legislature of a Governor's Province or an Indian State, then, as from the date of commencement of this Constitution that person's seat in the said Assembly shall, unless he has ceased to be a member thereof earlier, become vacant, and every such vacancy shall be deemed to be a casual vacancy.

(4) Any person holding office immediately before the commencement of this Constitution as Speaker or Deputy Speaker of the Constituent Assembly when functioning as the Dominion Legislature under the Government of India Act, 1935, shall continue to be the Speaker or, as the case may be, the Deputy Speaker of the provisional Parliament functioning under clause (1) of this article."

संघ की अन्तर्कालीन संसद तथा उसके अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के बारे में उपबंध

'311. (1) जब तक कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन संसद् के दोनों सदन सम्यक रूप से गठित न हो जायें तथा प्रथम सत्र में अधिवेशित होने के लिए आहूत न हो जायें तब तक वह निकाय, जो भारत डोमिनियम की संविधान सभा के रूप

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले कृत्यकारी था, इस संविधान के उपबंधों द्वारा संसद को दी गई सभी शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन करेगा।

व्याख्या–इस खंड के प्रयोजनों के लिए भारतीय डोमिनियन की संविधान सभा के अंतर्गत–

(1) किसी राज्य अथवा अन्य राज्य-क्षेत्र का, जिसके प्रतिनिधित्व के लिये इस अनुच्छेद के खंड (2) के अधीन उपबन्ध है, प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने गए सदस्य, तथा

(2) उपरोक्त सभा में आकस्मिक रिक्तता की पूर्ति के लिए चुने गए सदस्य भी होंगे।

(2) राष्ट्रपति नियमों द्वारा–

(क) इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन कृत्यकारिणी अंतर्कालीन संसद में किसी ऐसे राज्य या अन्य राज्य-क्षेत्र के जिसका प्रतिनिधित्व इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत डोमिनियन की संविधान सभा में न था, के प्रतिनिधित्व के लिए,

(ख) अंतर्कालीन संसद में ऐसे राज्यों या अन्य राज्य-क्षेत्रों के प्रतिनिधि जिस रीति से चुने जायेंगे उसके लिये, तथा

(ग) ऐसे प्रतिनिधियों की जो अर्हताएं चाहिये उनके लिये उपबंध कर सकेगा।

(3) यदि भारत डोमिनियन की संविधान सभा का कोई सदस्य अक्तूबर 1949 के छठे दिन किसी राज्यपाल-प्रांत अथवा किसी देशी राज्य के विधानमंडल के सदन का भी सदस्य था, तो इस संविधान के प्रारंभ की तारीख उपरोक्त सभा से लेकर उस व्यक्ति का स्थान, यदि उसका इस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त हो जाएगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी।

(4) कोई व्यक्ति, जो संविधान के प्रारंभ के ठीक पहले भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन डोमिनियन विधानमंडल के रूप में कृत्यकारिणी संविधान सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के रूप में पदस्थ था, इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन कृत्यकारिणी अंतर्कालीन संसद का यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष बना रहेगा।' "

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के स्थान पर, यह रखा जाए:

(3) If a member of the Constituent Assembly of the Dominion of India was on the sixth day of October, 1949 or thereafter becomes at any time before the commencement of this Constitution a member of a House of the Legislature of a Governor's Province or an Indian State corresponding to any State for the time being

specified in Part III of the First Schedule or a Minister for any such State, then as from the date of commencement of this Constitution the seat of such member in the Constituent Assembly shall, unless he has ceased to be a member of that Assembly earlier, become vacant and every such vacany shall be deemed to be a casual vacancy.

['(3) यदि भारत डोमिनियन की संविधान सभा का कोई सदस्य 1949 के अक्तूबर के छठे दिन अथवा तत्पश्चात् इस संविधान के प्रारंभ से पहले किसी समय किसी राज्यपाल-प्रांत अथवा प्रथम अनुसूची के भाग 3 में फिलहाल उल्लिखित किसी राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य के विधानमंडल के सदन का सदस्य अथवा किसी ऐसे राज्य का मंत्री था अथवा बन जाता है तो इस संविधान के प्रारंभ की तारीख से लेकर संविधान सभा में ऐसे सदस्य का स्थान, यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त हो जाएगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी।' "]

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधित संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के पश्चात् यह नवीन खंड अंत:स्थापित किया जाए:

'(3a) Notwithstanding that any such vacancy in the Constitution Assembly of the Dominion of India as is mentioned in Clause (3) of this article has not occurred under that clause, steps may be taken before the commencement of this Constitution for the filling of such vacancy, but any person chosen before such commencement to fill the vacancy shall not be entitled to take his seat in the said Assembly until after the vacancy has so occurred."

['(3क) इस बात के होते हुए भी कि भारत डोमिनियन की संविधान-सभा में ऐसी कोई रिक्तता, जैसीकि इस अनुच्छेद के खंड (3) में वर्णित है, उस खंड के अधीन नहीं हुई है, इस संविधान के प्रारंभ से पहले ऐसी रिक्तता की पूर्ति के लिए पग उठाया जा सकेगा, किंतु ऐसे प्रारंभ से पहले उस रिक्तता की पूर्ति के लिए चुने हुए किसी व्यक्ति को उक्त सभा में अपना स्थान ग्रहण करने का हक तब तक न होगा जब तक कि रिक्तता इस प्रकार न हो जाये।' "]

इस खंड का उद्देश्य यह है कि अंतर्कालीन संसद गठित करने के समय उस बात को समाप्त किया जाए जिसे कि दोहरी सदस्यता की संज्ञा दी जाती है।

अन्य उपबंध केवल आनुषंगिक है।

***श्री एच.वी. कामत:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 में, 'until (जब तक कि)' **शब्द के स्थान पर** 'until such time (ऐसे समय तक जब कि)' **शब्द रखे जाएं।**"

[श्री एच.वी. कामत]

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 में 'the body functioning as' **शब्द निकाल दिये जाएं।**"

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 में, 'Constituent Assembly of the Dominion of India' (भारत डोमिनियन की संविधान सभा)' **शब्दों के स्थान पर,** जहां कहीं भी वे आए हैं, 'Constituent Assembly of India (भारतीय संविधान सभा)' **शब्द रखे जाएं।**"

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 में (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (1) में, immediately before the commencement of this Constitution shall (इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले)' **शब्दों के स्थान पर** 'shall itself (स्वयं)' **शब्द रखे जाएं।**"

मैं संशोधन संख्या 147 प्रस्तुत नहीं करूंगा।

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधित संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) में rules (नियमों) **शब्द के पश्चात्** 'which shall as far as practicable conform to those adopted by the Constituent Assembly (जो यथासाध्य संविधान सभा द्वारा अंगीकृत नियमों के अनुरूप होंगे।' **शब्द अंत:स्थापित किए जाएं।**"

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) में, 'an Indian State (देशी राज्य)' शब्दों के पश्चात् 'or Union of States (अथवा राज्यों के संघ)' **शब्द अंत:स्थापित किए जाएं।**"

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (4) में, 'or Deputy Speaker (अथवा उपाध्यक्ष)' **शब्द निकाल दिये जाएं।**"

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (4) में, 'or, as the case may be the Deputy Speaker (या यथास्थिति उपाध्यक्ष)' **शब्द निकाल दिये जाएं।"**

यदि खंड (1) जो कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) में उल्लिखित है, के लिए संशोधन सभा को स्वीकार्य हों, तो इस खंड का पाठ निम्न प्रकार होगा:

"Until such time as both Houses of Parliament have been duly constituted and summoned to meet for the first session under the provisions of this Constitution, the Constituent Assembly of India shall itself exercise all the powers and perform all the duties conferred by the provisions of this Constitution on Parliament."

["ऐसे समय तक जब तक कि संसद के दोनों सदन इस संविधान के उपबंधों के अंतर्गत सम्यक रूप से गठित न हो जायें तथा प्रथम सत्र में अधिवेशित होने के लिए आहूत न हो जायें तब तक भारत की संविधान सभा इस संविधान के उपबंधों द्वारा संसद को प्रदत्त सभी शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन स्वयं करेगी।"]

पहला संशोधन केवल शाब्दिक है क्योंकि इससे मात्र वाक्यांश में परिवर्तन होता है ताकि यह संवधौनिक भाषा के अधिक अनुरूप बन जाए। मेरे विचार में "जब तक" कहने के बजाए "ऐसे समय तक जबकि" कहना बेहतर है। तथापि मैं इसे प्रारूप समिति के सामूहिक विवेक पर छोड़ता हूं कि वह उचित समय पर इसके संबंध में कार्यवाही करे।

जहां तक संशोधन संख्या 143 का संबंध है, यह अंशत: शाब्दिक है तथा अंशत: सारवान है। मैं यह समझने में असफल हूं कि इस सभा का उल्लेख इस जटिल तरीके से क्यों किया जाए, अर्थात् "इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत डोमिनियन की संविधान सभा के रूप में कृत्यकारी निकाय..."। इस अनुच्छेद का प्रारूप जैसा कि वह मूलत: था अधिक सख्त था। जहां तक "भारतीय डोमिनियन की संविधान सभा" शब्दों का संबंध है, मेरा विचार है कि यहां भी "डोमिनियन की" शब्दों का लोप किया जा सकता है और यह लाभदायक भी रहेगा तथा सही भी। यदि इस सदन में मेरे माननीय सहयोगी इस पुस्तक अर्थात् संविधान का प्रारुप के मुखपृष्ठ को देखने का कष्ट करें तो वे पाएंगे कि इस सभा का उल्लेख "भारतीय संविधान सभा" के रूप में किया गया है तथा "भारतीय डोमिनियन की सभा" के रूप में नहीं। मैं नहीं जानता कि कुछ माननीय सदस्य इस शब्द "डोमिनियन" के हर समय प्रयोग में क्यों रुचि रखते हैं। निस्संदेह, जहां कहीं भी अधिनियमन में यह आवश्यक हो, तब तो इसका प्रयोग किया जा सकता है। उससे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। जहां कहीं किसी खंड अथवा अनुच्छेद के अर्थ में कोई बात बिगाड़े बिना इसे हटा दिया जा सकता है, वहां मेरी समझ में नहीं आता कि हम इस शब्द डोमिनियन, डोमिनियन, डोमिनियन का ढोल क्यों पीटते रहते हैं। यह संविधान सभा वास्तव में देखा जाए तो एक स्वतंत्र देश की विधान सभा है। दुर्भाग्यवश अथवा घटनावश, हमारे देश में परिस्थितियों ने ऐसी चाल चली है कि भारत के पूर्ण रूप से स्वाधीन होने के पूर्व ही हमें संविधान सभा बुलानी पड़ी। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो किसी देश के विदेशी शासन की बेड़ियों से मुक्त होने के पश्चात् ही संविधान सभा बुलाई जाती है। हमने इस सभा द्वारा बनाए गए नियमों—प्रक्रिया नियम तथा स्थायी आदेशों—में स्वयं भारतीय संविधान सभा का

[श्री एच.वी. कामत]

उल्लेख किया है और पहले ही नियम में कहा गया है "इन नियमों में जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो, सभा का अर्थ है भारतीय संविधान सभा"। अत: इस प्रसंग में "डोमिनियन" शब्द के प्रयोग का कोई अधिकार क्षेत्र अथवा आवश्यकता नहीं है तथा इसे तर्कसंगत रूप से और विवेकपूर्वक पूर्णत: निकाला जा सकता है और इससे इस खंड के उस अर्थ में कोई भी बिगाड़ नहीं आयेगा जिसे व्यक्त करने का इसका आशय है।

इसके अलावा, महोदय, मेरी असली आपत्ति इस खंड में विद्यमान जटिल शब्दावली के बारे में है: "इस संविधान के प्रारूप से ठीक पहले भारत डोमिनियन की संविधान सभा के रूप में कृत्यकारी निकाय" मुझे नहीं मालूम कि मूल प्रारूप में परिवर्तन करके इसे क्यों समाविष्ट किया गया है। यदि मेरे माननीय मित्र अनुच्छेद 311 के खंड (1) को देखने का कष्ट करें, जैसा कि यह खंड मूलत: था, तो वे पाएंगे कि इसका उल्लेख "भारत डोमिनियन की संविधान सभा" के रूप में हैं। मैं पहले ही कह चुका हूं कि "डोमिनियन की" शब्द निकाल दिये जाने चाहिएं। अब मैं यह कहता हूं कि इसे और भी अधिक सरलता से भारतीय संविधान सभा कहा जा सकता है। यदि प्रारूप समिति का यह विचार है कि क्योंकि एक सौ से कुछ अधिक स्थानों के रिक्त घोषित किए जाने की संभावना है और इसलिए इस निकाय के उल्लेख में यह परिवर्तन आवश्यक है, तो मैं समझता हूं कि वे गलतफहमी के शिकार होकर यह काम कर रहे हैं। जब तक कि इस निकाय को भंग नहीं किया जाता यह भारतीय संविधान सभा के रूप में जारी रहेगा। यदि बहुत भारी संख्या में सदस्य इस सभा से त्यागपत्र भी दे देते हैं और चाहे उनके स्थान भरे जायें अथवा नहीं, यह वही पुरानी सभा रहेगी जिसे कि सदैव ही भारतीय संविधान सभा कहा जाता रहा है। जब तक कि यह भंग नहीं कर दी जाती सांविधानिक भाषा में इसका उल्लेख भारतीय संविधान सभा के रूप में ही जारी रहेगा। अत: यदि ऐसी कोई गलतफहमी है कि एक सौ से अधिक सदस्यों द्वारा त्यागपत्र दिए जाने के कारण इस निकाय का उल्लेख इस तरीके से किया जाना चाहिए तथा केवल भारतीय संविधान सभा के रूप में नहीं तो उस गलतफहमी का तनिक भी कोई औचित्य नहीं है, तथा यदि हम इसका उल्लेख केवल भारतीय संविधान सभा के रूप में करें तो हम इस निकाय का नाम गलत रूप में नहीं ले रहे होंगे। चाहे एक सौ सदस्य त्यागपत्र दें अथवा इनसे अधिक, संविधान के प्रारंभ होने के समय तक इस निकाय को भारतीय संविधान सभा ही कहा जाता रहेगा। अत: संशोधन संख्या 143, 144 तथा 145 द्वारा जोकि एक साथ हैं, मैं इस अनुच्छेद के खंड (1) में समाविष्ट शब्दों तथा वाक्यांशों को सरल बनाना चाहता हूं ताकि हम स्वयं भारतीय संविधान सभा के लिए ही यह उपबंध करें कि यह इस संविधान के उपबंधों द्वारा संसद को प्रवत्त सभी शक्तियों को निर्वहन तथा कर्तव्यों का पालन करेगी। संविधान के एक बार प्रवर्तन में आ जाने पर निस्संदेह संविधान के अंतर्गत यह सभा अंतर्कालीन संसद कहलाएगी। उस समय तक "अमुक-अमुक रूप में कार्य करने वाला निकाय" कहने की आवश्यकता नहीं है। हमारे प्रयोजनों के लिए "भारतीय संविधान सभा" ही कहा जाना पर्याप्त है। मुझे आशा है कि प्रारूप समिति के सदस्य, जो कि "डोमिनियन" शब्द के प्रयोग के प्रति अनुराग रखते हैं और हमारे प्रयोजन के लिए आवश्यकता से अधिक शब्दों का प्रयोग करने का चाव रखते हैं, वे मेरे इन संशोधनों के तर्क-बल को देखेंगे और इस खंड की शब्दावली को सरल बनायेंगे।

अब मैं खंड (2) पर आता हूं। मैं संशोधन संख्या 147 प्रस्तुत नहीं करना

चाहता। मैं केवल संशोधन संख्या 148 प्रस्तुत करता हूं:

> "कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) में, 'rules (नियमों)' **शब्द के पश्चात्** 'which shall as far as practicable, conform to those adopted by the Constituent Assembly (जो यथासाध्य संविधान सभा द्वारा अंगीकृत किए गए नियमों के अनुरूप होंगे)' **शब्द अन्तःस्थापित किए जाएं।**"

खण्ड (2) में उन कुछ नियमों का उल्लेख है जो कि राष्ट्रपति इस अंतरिम संसद में, अर्थात् जब यह सभा हमारी अंतरिम संसद मे परिवर्तित कर दी जाती है अथवा पुनर्गठित कर दी जाती है, प्रतिनिधित्व के लिए बना सकता है। इस खंड में अंतर्कालीन संसद में भारत के उन राज्यों अथवा अन्य राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के लिए उपबंध है जिनका कि अब तक कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। सदन इस बात से अवगत है कि भोपाल के प्रतिनिधि ने अभी तक इस सभा में अपना स्थान ग्रहण नहीं किया है हालांकि फरमान जारी हो चुका है कि वह यथाशक्य शीघ्र यहां पहुंचे। हम आशा करते हैं कि वह इस संविधान के तीसरे वाचन के दौरान हमारे बीच होगा या होगी। हैदराबाद का भी अभी तक कोई प्रतिनिधि यहां नहीं है। हमें नहीं मालूम कि क्या अब तक किए जा चुके उपाय सफल होंगे ताकि हम हैदराबाद से आने वाले अपने मित्र का इस सभा में तीसरे वाचन के दौरान स्वागत कर सकें। निस्संदेह, जब यह सभा स्वयं को अंतर्कालीन संसद में परिवर्तित कर लेगी, तो मुझे विश्वास है कि राष्ट्रपति इस सभा में हैदराबाद के प्रतिनिधित्व के लिए भी नियमों द्वारा उपबंध करेगा। इसी प्रकार विन्ध्य प्रदेश नाम से देशी राज्यों का संघ भी है जिसका कि अभी इस सभा में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। महोदय, गत अधिवेशन के दौरान आपने हमें यह बताने की कृपा की थी कि संविधान सभा के सचिवालय में विन्ध्य प्रदेश के राजप्रमुख तथा उसके मुख्य मंत्री या रीजनल कमिश्नर से कहा है कि वह इस सभा में विन्ध्य प्रदेश के लिये आवश्यक कदम उठाये। मैं नहीं जानता कि विन्ध्य प्रदेश के मामले में इस बारे में कितनी प्रगति हुई है। हमें आशा है कि प्रतिनिधि अगले सत्र के दौरान जोकि इस सभा का अंतिम सत्र होगा, हमारे बीच होंगे। बहरहाल, मुझे विश्वास है कि जब अगले वर्ष अंतरिम संसद बैठक के लिए समवेत होगी तो वे यहां अपने-अपने स्थान ग्रहण करेंगे। महोदय, जहां तक उन बातों का संबंध है जिनका कि यहां अभी तक कोई प्रतिनिधित्व नहीं है, मुझे इतना ही कहना है।

अब इस खंड (2) में राष्ट्रपति द्वारा नियम बनाए जाने के लिये उपबंध है। सदन को भली प्रकार ज्ञात है कि इस सभा ने देशी राज्यों तथा अन्य यूनिटों के इस सभा में प्रतिनिधित्व के संबंध में कुछ नियम अंगीकृत किए हैं। मैं इस सभा के नियमों, जिन्हें कि हमने मेरे विचार में गत वर्ष किसी समय अंगीकृत किया था के नियम 51 का उल्लेख करता हूं। नियम 51 के अंतर्गत हमने एक अनुसूची भी अंगीकृत की है। उस अनुसूची में इस सभा में राज्यों के प्रतिनिधित्व के बारे में उपबंध है। मेरा संशोधन संख्या 148 हमारे द्वारा बनाए गए नियमों की ओर निर्देश करता है जो कि उस पुस्तिका में समाविष्ट किए गए हैं जो सचिवालय द्वारा सभी सदस्यों को उपलब्ध कराई गई है, अर्थात् प्रक्रिया नियम तथा स्थायी आदेश। कुछ ऐसे नियम हैं जो कि इस सभा में राज्यों के प्रतिनिधित्व के लिए बनाए गए हैं, जैसाकि मैंने पहले भी कहा। मेरे संशोधन का आशय यह व्यवस्था करना है कि जहां तक संभव हो, जहां तक व्यवहार्य हो, राष्ट्रपति के नियम उन

[श्री एच.वी. कामत]

नियमों के अनुरूप होंगे जो कि यह सभा गत वर्ष के दौरान पहले ही अंगीकृत कर चुकी है। हो सकता है कि कुछ राज्यों में कुछ ऐसी परिस्थितियां पैदा हो जाएं जो कि पहले अंगीकृत किये जा चुके उन नियमों के अनुरूप रहने में राष्ट्रपति के मार्ग में बाधक हो। यही कारण है कि मैंने "यथासाध्य" शब्द समाविष्ट किया हैं। मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर, प्रारूप समिति तथा इन सदन में मेरे माननीय सदस्य इस संशोधन को स्वीकार करने के लिए इसके कारणों से आश्वस्त होंगे, क्योंकि आखिरकार इसका संबंध उस विषय से है जिस पर कि सदन पहले ही निर्णय ले चुका है और मुझे इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि जहां यह व्यवहार्य है वहां राष्ट्रपति उन नियमों से परे क्यों चले जिन्हें कि यह सभा पहले ही अंगीकृत कर चुकी है।

अब मैं संशोधन संख्या 155 पर आता हूं जो कि लगभग शाब्दिक संशोधन है। मेरा विचार है कि यह विषय प्रारूप समिति के ध्यान से तनिक बाहर रहा है। खंड (3) में राज्यपाल के प्रांत अथवा देशी राज्य का उल्लेख है। सदन को ज्ञात है कि हमारे यहां केवल देशी राज्य ही नहीं हैं परन्तु वे राज्य भी हैं जिन्हें कि राज्यों के संघ की संज्ञा दी जाती है। मैं अपने इस संशोधन द्वारा यह वाक्यांश भी समाविष्ट करना चाहता हूं ताकि इसका पाठ निम्नलिखित प्रकार का हो जाए:

"राज्यपाल—प्रांत अथवा देशी राज्य अथवा राज्यों के संघ का विधानमंडल।"

"मध्य भारत तथा राजस्थान राज्यों के संघ हैं, मात्र देशी राज्य नहीं। मेरे विचार से बिल्कुल सही होने के लिए हमें "देशी राज्यों" के अलावा "राज्यों के संघ" वाक्यांश को भी अवश्य रखना होगा।

इसके बाद, जहां तक इस खंड (3) के प्रारूप का संबंध है जो कि हमें आज प्रातः मिला, मेरे पास संशोधनों की सूचनायें भेजने का समय नहीं था परंतु मैं प्रारूप समिति तथा सदन का ध्यान उस बात की ओर दिलाना चाहूंगा जो कि मैंने मंत्रियों के विवरण के संबंध में परसों उठाई थी। एक अनुच्छेद में, जिसे कि हमने दो दिन पहले स्वीकार किया था, मंत्रियों का उल्लेख भारत डोमिनियन के लिए मंत्रियों के रूप में किया गया है। मेरे विचार में यह गलत तथा अशुद्ध अभिव्यक्ति थी और उसी तर्क पर चलते हुए मेरा विचार है कि यहां मंत्री का उल्लेख "किसी देशी राज्य का मंत्री" के रूप में किया जाना अधिक ठीक होगा, बनिस्बत इसके कि "किसी देशी राज्य के लए मंत्री" के रूप में उल्लेख किया जाए।

अंत में इसी खंड में मैं लगभग अंतिम पंक्ति में एक बहुत ही लघु शाब्दिक संशोधन का सुझाव देना चाहता हूं। मसौदे का पाठ इस प्रकार है:

"यदि इससे पूर्व उस सभा की उसकी सदस्यता समाप्त न हो गई हो।"

मेरे विचार में "उस सभा" के बजाए "सभा" कहना ही पर्याप्त रहेगा। यह बिल्कुल शाब्दिक संशोधन है तथा मैं इसे प्रारूप समिति के विवेक पर छोड़ता हूं।

इसके पश्चात् मैं अंतिम संशोधन (6) तथा 162 पर आता हूं। यदि सदन द्वारा ये संशोधन स्वीकार कर लिए जाते हैं, तो खंड (4) का पाठ निम्न प्रकार से होगा:

"Any person holding office immediately before the commencement of this Constitution as Speaker of the Constituent Assembly when functioning as Dominion Legislature under the Government of India Act, 1935, shall continue to be the Speaker of the Provisional Parliament functioning under clause (1) of this article."

["इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले कोई व्यक्ति जो भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन डोमिनियन विधानमंडल के रूप में कृत्यकारिणी संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में पदस्थ था इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन कृत्यकारिणी अंतर्कालीन संसद का अध्यक्ष बना रहेगा।"]

मैं उपाध्यक्ष के उल्लेख को हटाना चाहता हूं। अध्यक्ष महोदय, मुझे आशा है कि इसे व्यक्तिगत रूप में अथवा इस सभा के किसी सदस्य पर व्यक्तिगत आक्षेप के रूप में नहीं लिया जाएगा। कुछ दिन पूर्व जब डॉ. अम्बेडकर ने राज्य विधान मंडलों के संबंध में नए अनुच्छेद प्रस्तुत किये तो उन खंडों में से एक में केवल विधानमंडल के अध्यक्ष का ही उल्लेख था। इस संबंध में मुझे उपाध्यक्ष के लोप की ओर ध्यान दिलाने का अवसर मिला। उस अनुच्छेद में केवल विधान सभा के अध्यक्ष तथा उपरि सदन के सभापति का ही उल्लेख था। तब मैंने अवर सदन के उपाध्यक्ष तथा उपरि सदन के उप-सभापति का उल्लेख न होने की ओर ध्यान आकर्षित किया था, हालांकि संविधान में राज्यों के विधानमंडलों से संबंधित अध्याय में उनका निश्चित उल्लेख है इसके अलावा, आज भी हमारे यहां अनेक प्रांतों में उपाध्यक्ष हैं और यही कारण था कि मैं उपाध्यक्ष का उल्लेख भी समाविष्ट करना चाहता था परंतु अपनी ऊंची उड़ान भरते रहे अथवा अपने एकांत में खोये रहे अथवा शायद इस लिए कि वह इस विषय में गंभीरता से सोचने के इच्छुक नहीं थे—मुझे नहीं मालूम कि क्या कारण था—डॉ. अम्बेडकर ने मेरे द्वारा उठाई गई बात का उत्तर तक देने की परवाह नहीं की। अब मैं देखता हूं कि उन्होंने मेरे द्वारा उठाए गई बात को स्वीकार कर लिया है तथा देर आयद दुरूस्त आयद के सिद्धांत पर मैं इससे सहर्ष सहमत हो सकता था परंतु आज कठिनाई यह है कि आप पहले ही दो दिन पूर्व एक अनुच्छेद पास कर चुके हैं जिसमें कि जहां तक राज्य विधानमंडलों का संबंध है केवल अध्यक्ष का ही उल्लेख है तथा उपाध्यक्ष का नहीं और आज संसद के संबंध में एक अनुच्छेद आया है और उसमें हम देखते हैं कि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों का उल्लेख है। यदि डॉ. अम्बेडकर अथवा प्रारूप समिति राज्यों के संक्रमणकालीन विधानमंडलों के संबंध में सुधार करने का आश्वासन देते हैं जिससे कि उपाध्यक्ष का भी उल्लेख किया जा सके और संक्रमणकालीन अवधि के दौरान उपाध्यक्ष एवं उप-सभापति के बने रहने की व्यवस्था की जा सके तब तो निस्संदेह, अनुरूपता के लिए यह अपेक्षित है कि यह अनुच्छेद उसी रूप में पास किया जाये जिसमें कि यह है। परंतु डॉ. अम्बेडकर सभी समय अनुरूपता के बारे में विशेष ध्यान नहीं देते और वह यह कह सकते हैं कि जहां तक संसद का संबंध है, वह चाहेंगे कि उपाध्यक्ष का उल्लेख हो क्योंकि शायद वह हममें से एक हैं। परंतु जहां तक राज्य विधानमंडल का संबंध है, "आंख ओझल, पहाड़ ओझल" के आधार पर हो सकता है कि वह राज्य विधानमंडल के उपाध्यक्ष के उल्लेख के बारे में विशेष ध्यान न दें। तथापि, हम जो कुछ भी करें उसमें

[श्री एच.वी. कामत]

हमें यथासंभव एकरूपता सुनिश्चित करनी चाहिए। यदि हमने उपाध्यक्ष का उल्लेख किया है तो हमें राज्य विधानमंडल में भी उसका उल्लेख करना चाहिए और यदि हम ऐसा न करें तो हमें इस अनुच्छेद से भी उसे निकाल देना चाहिए। परमात्मा की खातिर अथवा कम से कम इस सदन की खातिर हमें इन छोटी-मोटी बातों में एकरूपता रखनी चाहिए। जीवन की बड़ी बातों में हम भले ही इस प्रकार के न हों परंतु जहां तक छोटी-छोटी बातों का संबंध है एकरूपता रखने में कोई कठिनाई नहीं है और इसलिए मैं आशा करता हूं कि मेरे ये संशोधन डॉ. अम्बेडकर समेत इस सदन को पसंद आएंगे।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, 11 अक्तूबर, 1949 के दस बजे तक के लिए स्थगित हुई।

———————

Con. 3. X.4.49
320

अंक 10
संख्या 4

मंगलवार
11 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
संविधान का मसौदा–(जारी) [अनुच्छेद 311, 312-च, अनुसूचियां 3-क, 4 और द्वितीय अनुसूची पर विचार]	2825-2882

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 11 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हॉल नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

मि. अजीज अहमद खां के निधन पर शोक-प्रकाश

***अध्यक्षः** मैं बड़े खेद के साथ सभा को अपने एक सदस्य बरेली के मि. अजीज अहमद खां की मृत्यु की सूचना देता हूं। वे बहुत काल तक संयुक्त प्रान्त की विधान सभा के सदस्य रहे और फिर इस सभा के सदस्य रहे। वे कुछ काल से बीमार थे और कुछ दिन पूर्व उनकी मृत्यु हो गई। माननीय सदस्य अपनी जगहों पर खड़े होकर उन की स्मृति के प्रति अपना आदर प्रदर्शित करेंगे और मुझे उनके कुटम्बियों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति का सन्देश भेजने की आज्ञा देंगे।

(सदस्य शांतिपूर्वक खड़े हो गये)

संविधान का मसौदा—(जारी)

अनुच्छेद 611—(जारी)

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 311 पर आगे विचार करेंगे। इस पर हम कल भी विचार कर रहे थे। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपना संशोधन संख्या 146 उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं अपना संशोधन संख्या 146 उपस्थित करना चाहता हूं:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड 1 की व्याख्या में (1) "Constituent Assembly" (संविधान सभा) **शब्दों के स्थान पर** 'membership of the Constituent Assembly' (संविधान सभा की सदस्यता) **शब्द रखे जायें।** (2) 'includes' (अन्तर्गत हैं) **शब्द**

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के स्थान पर 'shall include' (अन्तर्गत होंगे) **शब्द रखे जायें।"**

अपने पहले संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि इस प्रसंग में उसकी आवश्यकता है। यह पदावली व्याख्या में प्रयुक्त है। व्याख्या में कहा गया है कि "इस खंड के प्रयाजनों के लिये भारत डोमिनियन की संविधान सभा के अन्तर्गत राज्यों के सदस्य हैं" इत्यादि। इस पर यह आपत्ति की जा सकती है। कहा गया है कि "संविधान सभा" के अन्तर्गत कुछ सदस्य हैं। मेरे विचार से "संविधान सभा" भाव वाचक संज्ञा है। वह केवल विधि की पदावली है। संविधान सभा के अन्तर्गत सदस्य नहीं हो सकते किन्तु "संविधान सभा की सदस्यता" के अन्तर्गत सदस्य हो सकते हैं मैं चाहता हूं कि मसौदा समिति ही इस प्रश्न पर विचार करे।

संशोधन का दूसरा भाग भी मसौदे के सम्बन्ध में ही है और पहले भाग का आनुषंगिक भाग।

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं सामान्यत: यह निवेदन करना चाहता हूं कि मैं श्री कामत के इस विचार से सहमत हूं कि "संविधान सभा" जैसी सीधी सादी पदावली का बड़े टेढ़े मेढ़े ढंग से प्रयोग किया गया है। उसमें ये शब्द प्रयुक्त हैं? "वह निकाय, जो भारत डोमिनियन की संविधान-सभा के रूप में इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले कृत्याकारी था।" इस लम्बे वाक्य के स्थान पर केवल "संविधान-सभा" रखा जा सकता था। यह पदावली सुपरिभाषित तथा सुबोध है और भारत स्वाधीनता अधिनियम के फलस्वरूप अस्तित्व में आई है। इसकी व्याख्या की भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं श्री कामत के इस विचार से सहमत नहीं हूं कि इस उपबन्ध की कोई आवश्यकता ही नहीं है। भारत-स्वाधीनता-अधिनियम में इस आशय का एक उपबन्ध है कि भारत-शासन अधिनियम में विहित शक्तियां रूपभेद के साथ संविधान-सभा प्रयोग करेगी और साथ ही वह संविधान बनाने का कार्य भी करेगी। यह शक्ति गवर्नर जनरल द्वारा अनुकूलन किये हुए भारत शासन अधिनियम में वर्णित सभी कर्तव्यों के सम्बन्ध में है। किन्तु यह अनुच्छेद 311 के द्वारा संविधान सभा को उन शक्तियों को प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है जो इस संविधान में वर्णित है और उन शक्तियों में तथा अनुकूलन किये हुए भारत-शासन-अधिनियम में वर्णित शक्तियों में विभेद किया गया है। भारत-शासन-अधिनियम तथा यह संविधान बिल्कुल भिन्न अधिनियम हैं। जब तक निर्वाचन के पश्चात् संसद के नवीन सदनों का निर्माण न हो जाये तब तक इस संविधान के अधीन वर्तमान-संविधान सभा को कार्य करने की क्षमता प्रदान करने के लिये इस प्रकार के अनुच्छेद की बहुत आवश्यकता है।

मेरा एक और संशोधन भी है जो खण्ड (3) के सम्बन्ध में है। वह संशोधन 158वां संशोधन है।

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड 3 के अन्त में 'within the meaning of the Rules of Procedure and Standing Orders of the Constituent Assembly' (संविधान

सभा के प्रक्रिया-नियम तथा स्थाई आदेशों के आशय के अन्तर्गत) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संविधान के पारित होने पर स्थिति में जो अन्तर होगा उसके लिये इसकी भी आवश्यकता होगी। खण्ड (3) में कहा गया है कि जो लोग प्रान्तीय विधान-सभा तथा संविधान सभा के भी सदस्य होंगे वे संविधान सभा के सदस्य नहीं रहेंगे। यह महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार की प्रत्येक रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी। "आकस्मिक रिक्तता" की संविधान में कहीं भी परिभाषा नहीं की गई है। आकस्मिक रिक्तता का उल्लेख केवल संविधान सभा के प्रक्रिया नियमों तथा स्थाई आदेशों में मिलता है—नियम 5, उपनियम (1)। जहां तक विधान सभा के रूप में संविधान सभा की कार्यविधि तथा प्रक्रिया के नियमों का सम्बन्ध है, उनमें आकस्मिक रिक्तता का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मेरे विचार से संविधान-निर्माता-सभा के रूप में संविधान सभा के नियमों में ही इसका उल्लेख है। यदि हम यह कहें कि उन्हें "आकस्मिक रिक्तता" समझा जाये तो हमें नियमों का हवाला देते हुए इस पदावली की व्याख्या करनी चाहिये। अन्यथा यह समझना कठिन हो जायेगा कि आकस्मिक रिक्तता का क्या अर्थ है। अभी तक हमने संविधान का जितना अंश पारित किया है उसमें यह पदावली प्रयुक्त नहीं है और 26 जनवरी को जैसे ही यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा वैसे ही संविधान-निर्मात्र-सभा के रूप में इस सभा का अस्तित्व नहीं रह जायेगा। मेरे विचार से संविधान-निर्मात्र-सभा के प्रक्रिया-नियम, तथा स्थाई आदेश भी, अप्रभावी हो जायेंगे और प्रयोग में नहीं रहेंगे। इस प्रकार "आकस्मिक रिक्तता" पदावली का किसी अधिनियम अथवा नियम से कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। निर्वाचन के पश्चात् जो आकस्मिक रिक्तताएं होंगी वे, मेरे विचार से संविधान के अधीन बनाये हुए नियमों के अन्तर्गत आ जायेंगी। किन्तु इस समय हमारे वर्तमान नियमों के अतिरिक्त इस पदावली का और कहीं उल्लेख नहीं है। मेरे विचार से यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वर्तमान नियमों के अधीन रहते हुए यह एक आकस्मिक रिक्तता है। इस प्रकार नियम 5 का शून्यन नहीं होगा, क्योंकि इस स्थिति में केवल वही नियम प्रयुक्त हो सकता है।

संविधान-निर्मात्र-सभा के रूप में संविधान सभा के नियम, तथा विधान-सभा के रूप में संविधान सभा के नियम, परस्पर-विरोधी प्रतीत होंगे और यह नहीं कहा जा सकेगा कि कौन नियम लागू होता है। अच्छा यह होगा कि हम उस अधिनियम अथवा नियम का स्पष्ट उल्लेख कर दें, जिसके अन्तर्गत "आकस्मिक रिक्तता" पदावली आयेगी। यह संशोधन मसौदे के शोधन के सम्बन्ध में है और मसौदा-समिति कृपया इस पर विचार करे।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'of any State or other territory'

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

(किसी ऐसे राज्य या अन्य राज्य-क्षेत्र के) शब्दों के स्थान पर 'of a Governor's Province or Indian State' (किसी राज्यपाल-प्रान्त या देशी राज्य के) शब्द रखे जायें।"

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'not represented' (प्रतिनिधित्व न था) शब्दों के स्थान पर 'not adequately represented, (पर्याप्त प्रतिनिधित्व न था) शब्द रखे जायें।"

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ) शब्दों के पश्चात् (हिन्दी में अन्त में) 'having due regard to the proper representation of the Scheduled Castes' (अनुसूचित जातियों के यथोचित प्रतिनिधित्व का ध्यान रखते हुए) शब्द रखे जायें।"

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (2) में यह नवीन उपखण्ड प्रविष्ट किया जाये:-'(d) the election of a Speaker or Deputy Speaker for the Parliament' (संसद के लिये अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष का निर्वाचन)।"

श्रीमान, जब मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने सभा में यह अनुच्छेद उपस्थित किया था तो उन्होंने कहा था कि यह दूहरी सदस्यता के सम्बन्ध में है। किन्तु श्रीमान इस अनुच्छेद को पढ़ने पर मैंने देखा कि इसमें कई अन्य बातें भी हैं जिनकी ओर सभा को तथा राष्ट्रपति को ध्यान देना चाहिये क्योंकि अन्ततोगत्वा वही इसका निर्णय करेंगे कि अन्तर्कालीन संसद में राज्यों तथा अन्य राज्य-क्षेत्रों के कौन सदस्य भाग लेंगे। इसके अतिरिक्त व्याख्या के खण्ड (2) में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि खण्ड (1) के अधीन जो अन्तर्कालीन संसद काम करेगी उसकी आकस्मिक रिक्तताओं के सम्बन्ध में प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी नियम बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त होगी।

इस प्रसंग में मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि भारतीय समाज के एक वर्ग के प्रति, अर्थात् अनुसूचित जातियों के प्रति, बहुत अन्याय हुआ है। श्रीमान, जनसंख्या में जो आंकड़े हमें प्राप्त हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि 33 करोड़ की जनसंख्या में भारत में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 5 करोड़ है। यह तय किया गया है कि अन्तर्कालीन संसद में कुल मिला कर 320 सदस्य होंगे। इन में से 55 से लेकर 60 तक जगहें अनुसूचित जातियों के लिये रखी जानी चाहिये। अन्तर्कालीन संसद में अनुसूचित जातियों के कम से कम 55 सदस्य होने चाहियें। मैं देखता हूं कि व्याख्या (2) में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि अनुसूचित जातियों के इतने प्रतिनिधि होंगे या नहीं। इसी उद्देश्य से एक संशोधन

में मैंने यह सुझाव रखा है कि भविष्य के प्राधिकारियों को अथवा राष्ट्रपति को, जो अन्तर्कालीन संसद में विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में नियम बनायेंगे, अनुसूचित जातियों को यथोचित प्रतिनिधित्व प्रदान करना चाहिये।

श्रीमान, संविधान-सभा के कार्य आरम्भ करने के पश्चात् कई देशी राज्य तथा अन्य राज्य क्षेत्र प्रतिनिधित्व के लिये संविधान-सभा के क्षेत्राधिकार में लाये गये हैं। किन्तु हम यह देखते हैं कि इन राज्यों से संविधान सभा में, मैसूर राज्य के एक सदस्य के अतिरिक्त और कोई भी अनुसूचित जातियों का व्यक्ति नहीं भेजा गया है। इस अनुच्छेद का यह विषय बहुत सारवान है और इसकी आवश्यकता है कि राष्ट्रपति तथा संविधान-सभा के सदस्य इस ओर ध्यान दें।

जहां तक भविष्य की केन्द्रीय विधान-सभा तथा प्रान्तीय विधान-सभाओं का सम्बन्ध है। हम कुछ ऐसे अनुच्छेद पारित कर चुके हैं जिनमें हमने जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं। किन्तु 26 जनवरी 1950 को इस सभा के विघटन के पश्चात् जो अन्तर्कालीन संसद अस्तित्व में आयेगी उसमें प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में मुझे इस प्रकार का कोई सूत्र नहीं दिखाई देता।

मेरे अन्य संशोधन अर्थात् संख्या 152 का उद्देश्य यह है कि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव उन नियमों के अधीन हो जिन्हें राष्ट्रपति 26 जनवरी 1950 को पदारूढ़ होने के पश्चात् बनायें। मैंने यह संशोधन इस कारण उपस्थित किया है कि पहले एक अनुच्छेद में हमने यह उपबन्ध रखा है कि जहां कहीं दो सभाएं हैं, विधान सभाओं के अध्यक्ष तथा विधान परिषदों के सभापति संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् पदारूढ़ होंगे। उनमें हमने यही नहीं कहा है कि 26 जनवरी 1950 के पश्चात् उपाध्यक्ष तथा उपसभापति कहां पदारूढ़ रहेंगे। मेरी यह धारणा है कि अन्तर्कालीन संसद के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के निर्वाचन का प्रश्न भी राष्ट्रपति के निर्णय के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये ताकि उन निर्वाचनों का नियमन हो सके।

मैं देखता हूं कि मैंने जो अन्य संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 156 उपस्थित किया है वह माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के उपस्थित किये हुए संशोधन संख्या 195 से मेल नहीं खाता। मैं संशोधन संख्या 195 के पैरा (3) पर अपने संशोधन को इस रूप में उपस्थित करना चाहता हूं:

> "A member in two assemblies shall resign his membership in the legislature of a Governor's Province or an Indian State thirty days prior to this Constitution coming into effect."

(दोनों सभाओं का सदस्य इस संविधान के प्रारम्भ से तीस दिन पूर्व राज्यपाल प्रान्त अथवा देशी राज्य के विधान मंडल की अपनी सदस्यता का परित्याग कर देगा।)

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

डॉ. अम्बेडकर ने कल यह तर्क उपस्थित किया था कि यह अनुच्छेद दुहरी सदस्यता के सम्बन्ध में है। यद्यपि संविधान सभा केवल संविधान-निर्माण के लिये ही अस्तित्व में आई थी किन्तु परिस्थिति-वश यह निर्णय किया गया है कि संविधान-सभा विधान सभा के रूप में भी कार्य कर सकती है। किन्तु एक प्रथा के अनुसार जो सदस्य प्रान्तीय विधान-मंडलों के भी सदस्य हैं वे अपने विधान-मंडलों के कार्य में भी भाग ले सकते थे। इस प्रकार ऐसे सदस्यों ने वास्तव में केन्द्रीय विधान-मंडल के सदस्यों के रूप में कार्य नहीं किया। इस समय दोनों प्रकार के कार्यों को यही सभा करती है किन्तु, मेरे विचार से जब संविधान सभा अन्तर्कालीन संसद का रूप धारण करे उस समय प्रान्तीय विधान-मंडलों से जितने सदस्य इस सभा में आये हैं उनसे कह दिया जाए कि वे अब उसकी कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, यदि यह अनुच्छेद स्वीकार किया जायेगा तो सदस्यों को इसका निर्णय करने की स्वतंत्रता नहीं रहेगी कि वे अन्तर्कालीन संसद में कार्य करें अथवा अपने विधान-मंडलों में। हम इस संविधान में एक ऐसा अनुच्छेद रख चुके हैं जिसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि कोई व्यक्ति केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों विधान-मंडलों का सदस्य नहीं रह सकता है। मेरी यह प्रबल इच्छा है कि इस सम्बन्ध में सदस्यों को ही स्वतन्त्रता दी जाये। मुझे विश्वास है कि सदस्यों में इतना उत्तरदायित्व है कि वे दोनों सभाओं के सदस्य नहीं रहेंगे। कुछ सदस्य ऐसे हैं जो इस संविधान सभा के लिये ही चुने गये हैं, और वे सुयोग्य न्यायवेत्ता हैं, अथवा उन्हें इस देश के प्रशासन का विशेष ज्ञान है। कई सदस्यों का यह विचार हो सकता है कि उनका अन्तर्कालीन संसद में रहना आवश्यक है। हम कह नहीं सकते कि यह अन्तर्कालीन संसद कब तक काम करती रहेगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, हरिजनों के लिये जगहें सुरक्षित रखने के प्रश्न के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष तक जगहें सुरक्षित रहेंगी। हम कह नहीं सकते कि यह अन्तर्कालीन संसद कब तक रहेगी। इस अनुच्छेद में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह अवधि 26 जनवरी 1950 से आरम्भ होगी अथवा दो तीन वर्ष के पश्चात्, जब यह संविधान वास्तव में प्रयोग में आयेगा। कोई कह नहीं सकता कि यह अन्तर्कालीन संसद दो वर्ष रहेगी या दस वर्ष। यह स्थिति पर निर्भर रहेगा। इसलिये मेरी यही इच्छा है कि सदस्यों को इसकी स्वतन्त्रता दी जाये कि वे चाहें तो केन्द्रीय विधान सभा के कार्य करें और चाहें तो प्रान्तीय सभा में कार्य करें। श्रीमान, मुझे आशा है कि इन संशोधनों के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा है कि उस पर मसौदा समिति विचार करेगी और जो कुछ आवश्यकता होगी वह करेगी ताकि सदस्य स्वविवेक से यह निर्णय कर सकें कि वे किस सभा में कार्य करेंगे।

***अध्यक्ष:** क्या आप संशोधन संख्या 150 उपस्थित नहीं कर रहे हैं?

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** श्रीमान, मैं उसे उपस्थित कर चुका हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बईः जनरल): श्रीमान, मैं संशोधन संख्या 153 और 157 को उपस्थित करने के लिये अपनी जगह से उठा हूं। ये संशोधन मेरे नाम से हैं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (3) में 'Sixth day of October 1949' (1949 के अक्टूबर के छठे दिन) शब्दों तथा अंक के स्थान पर 'date of commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि को) शब्द रखे जायें।"

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (3) में 'as from the date of commencement' (इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर 'Casual vacancy' (आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी) शब्दों के स्थान पर यह रखा जाए:

'at the expiration of one month from the date of the commencement of this Constitution, that member's seat in the Legislature of a former Governor's Province or an Indian State shall become vacant unless he has previously resigned his seat in the Constituent Assembly.' "

(इस संविधान के प्रारम्भ की स्थिति से एक मास समाप्त होने पर पहले के राज्यपाल प्रान्त अथवा देशी राज्य के विधान-मंडल में उस सदस्य का स्थान रिक्त हो जायेगा, जब तक कि उसने संविधान सभा के अपने स्थान को पहले ही न त्याग दिया हो।)

अपने संशोधन संख्या 157 के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि मैंने इस विषय पर सावधानी से विचार किया है और मेरी यह धारणा है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने जिस संशोधित खण्ड (3) को उपस्थित किया है उसमें यह रखा जा सकता है। श्रीमान, कुछ ऐसा समझा जाता है कि इस संविधान सभा में जो दुहरी सदस्यता रही है उसका शीघ्रातिशीघ्र परित्याग करना चाहिये और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि संसार के किसी भी संविधान में इस प्रकार की दुहरी सदस्यता की व्यवस्था नहीं है। सभी संविधानों में यह सामान्य उपबंध है कि यदि कोई सदस्य दोनों विधान-मंडलों, अर्थात् उच्च और अवर विधान-मंडलों, अथवा केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मंडलों के लिये निर्वाचित हो तो उस सदस्य को इसकी स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह चाहे तो केन्द्रीय विधान-मण्डल में स्थान ग्रहण करे अथवा प्रान्तीय विधान-मण्डल में स्थान ग्रहण करे। यदि वह अपनी इच्छा

[श्री एच.वी. पातस्कर]

नहीं प्रकट करता है तो अवर सदन में, न कि उच्च सदन में, उसका स्थान रिक्त होता है। भारत-शासन-अधिनियम, 1935, की धारा 68 का खण्ड (2) इसी सिद्धान्त पर आधृत है।

श्रीमान, इस दुहरी सदस्यता का एक इतिहास है और मैं सभा को थोड़े समय में यह बता दूंगा कि यह किस प्रकार अस्तित्व में आई। जब हमारी संविधान-सभा का निर्वाचन हुआ तो उस समय इस देश में पुराने अधिनियम के अधीन एक केन्द्रीय विधान-मंडल कार्य कर रहा था। स्वभावत: उस समय संविधान-सभा के सदस्यों से केवल यह आशा की जाती थी कि वे संविधान का निर्माण करेंगे। किन्तु दस लाख लोगों के एक प्रतिनिधि के आधार पर वे लोग चुने गए थे। उस समय की केन्द्रीय विधान सभा में इतना अधिक प्रतिनिधित्व नहीं था क्योंकि उसका निर्वाचन पुराने अधिनियम के अधीन हुआ था और उस में मनोनीत सदस्य भी थे। इसलिये श्रीमान, आरम्भ में यह समझा गया था कि दोनों 'सभायें' पृथक-पृथक कार्य करेंगी किन्तु राजनैतिक क्षेत्र में बड़ी तीव्र गति से घटनायें घटित हुईं और अंग्रेजों ने यह निर्णय किया कि वे देश का विभाजन करके चले जायेंगे। किसी न किसी प्राधिकारी को उन्हें शक्ति समर्पित करनी थी। स्वभावत:, यह समझा गया कि पुरानी केन्द्रीय सभा लोगों का उतना अधिक प्रतिनिधित्व नहीं करती है जितना कि संविधान सभा करती है। उस समय देश में यदि कोई सभा लोगों का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करती थी तो वह संविधान सभा ही थी। इसलिये यह निर्णय किया गया कि संविधान सभा को ही शक्ति समर्पित की जाये और इस उद्देश्य से स्वाधीनता अधिनियम पारित किया गया। भारत स्वाधीनता अधिनियम में यह उपबन्ध रखा गया कि यह सभा देश के लिये संविधान का निर्माण करेगी और साथ ही विधान-सभा का भी कार्य करेगी। यह उपबन्ध भारत-स्वाधीनता अधिनियम की धारा 8 में रखा गया। धारा 8 का खण्ड (1) इस प्रकार है:

> "प्रत्येक नवीन डोमिनियन में डोमिनियन के विधान-मंडल की डोमिनियन के संविधान के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने की शक्ति पहले उस डोमिनियन की संविधान सभा प्रयोग करेगी और इस अधिनियम में प्रयुक्त डोमिनियन के विधान-मंडल का अर्थ तदनुसार लगाया जायेगा।"

इसके अतिरिक्त एक उपबन्ध खण्ड (2) के उपखण्ड (ङ) में भी है। भारत-स्वाधीनता अधिनियम की धारा 8 के खण्ड (2) का उपखण्ड (ङ) इस प्रकार है:

> "प्रत्येक डोमिनियन में प्रयुक्त उस अधिनियम, अर्थात् भारत-शासन-अधिनियम 1935 के अधीन संघीय विधान-मंडल अथवा भारतीय विधान-मंडल की शक्तियां पहले उस डोमिनियन की संविधान सभा का इस धारा की उपधारा (1) के अधीन प्रयोग में आने वाली शक्तियों के अतिरिक्त प्रयोग में लायेगी।"

यह स्थिति थी जिसमें संविधान-सभा ने केवल संविधान निर्मात्र-सभा के रूप में बल्कि संघीय अथवा केन्द्रीय विधान-मंडल के रूप में भी अस्तित्व में आई। हमारी सरकार ने अन्तर्कालीन संविधानिक आदेश पारित करने की आवश्यकता का अनुभव किया, जिसके द्वारा भारत-शासन-अधिनियम की धारा 68 का उपखण्ड (2) निकाल दिया गया क्योंकि यदि वह बना रहता तो दुहरी सदस्यता नहीं बनी रहती। हमें स्वविवेक से निर्णय करना होता और यदि हम निर्णय नहीं करते तो हम केन्द्रीय विधान-मंडल के सदस्य बने रहते और प्रान्तीय विधान-मंडलों में हमारे स्थान रिक्त हो जाते। उस समय यह विचार किया गया कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय प्रशासन के हित में यह उचित नहीं है कि प्रान्तीय विधान-मंडलों के सदस्य अपनी प्रान्तीय विधान-सभाओं का कार्य छोड़ कर केन्द्रीय विधान-सभा का कार्य करें। इस कारण हमारे नेता ने एक प्रथा स्थापित करने के लिये एक पत्र जारी किया जिसमें यह कहा गया कि साधारणतया प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्य केन्द्रीय विधान-सभा के कार्य में भाग न लें। मैं संविधान-सभा का कोई पदाधिकारी नहीं हूं किन्तु जहां तक मुझे ज्ञात है प्रान्तीय विधान-मंडलों के सदस्यों ने उस पत्र के अनुसार कार्य किया। वे उत्तरदाई लोग हैं और मुझे विश्वास है कि उन्होंने उसी के अनुसार कार्य किया होगा।

इस संविधान-निर्माण के सिलसिले में अनुच्छेद 82 पारित कर चुके हैं जिसका खण्ड 1 (क) इस प्रकार है:

> "(1क) कोई व्यक्ति संसद तथा प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में उल्लिखित किसी राज्य के विधान-मंडल, इन दोनों, का सदस्य न होगा तथा यदि कोई व्यक्ति संसद तथा ऐसे किसी राज्य के विधान-मंडल, इन दोनों, का सदस्य चुन लिया जाये तो ऐसी कालावधि की समाप्ति के पश्चात्, जो कि राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये नियमों में उल्लिखित हो, संसद में ऐसे व्यक्ति का स्थान रिक्त हो जायेगा, यदि उसने राज्य के विधान-मंडल में के अपने स्थान को पहले ही त्याग न दिया हो।"

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि अनुच्छेद 82 का खण्ड (1क) भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की मूल धारा 68 के बहुत कुछ अनुरूप ही है और इनमें केवल इतना अन्तर है कि जहां धारा 68 के खण्ड (2) में यह उपबन्ध है कि यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों के लिये निर्वाचित हो जाए और वह गवर्नर-जनरल द्वारा निश्चित की हुई अवधि में उस अधिनियम के अधीन निर्णय न करे तो अवर सदन में उसका स्थान स्वत: रिक्त हो जायेगा किन्तु अनुच्छेद 82 (1क) में; न जाने किस कारण, मसौदा-समिति ने साधारण मार्ग से भिन्न मार्ग का अनुसरण किया है। साधारणतया इस स्थिति में सदस्यों के अवर सदन के स्थान रिक्त होते हैं न कि उच्च सदन के। मेरे विचार से यह एक विषमता है। किन्तु हम उस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं और उसकी चर्चा कर के मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। इस प्रश्न को अब इस समय उठाना उचित नहीं है।

इस अनुच्छेद को पारित करने के पश्चात् मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार के अनुच्छेद की क्या आवश्यकता रह जाती है क्योंकि अनुच्छेद 82 (1क)

[श्री एच.वी. पातस्कर]

के अधीन, जिसे हम पारित कर चुके हैं, संविधान के प्रारम्भ होते ही वे सदस्य, जो प्रान्तीय विधान-मंडलों के भी सदस्य हैं इस सभा के सदस्य नहीं रह जायेंगे। निस्सन्देह उन्हें निर्णय करने की स्वतन्त्रता है किन्तु जो लोग निर्णय नहीं करेंगे वे लोग संविधान सभा में अपने स्थानों को खो बैठेंगे... (माननीय श्री के. सन्तानम् ने कुछ कहा)। श्री सन्तानम् कहते हैं कि संविधान के प्रारम्भ पर अनुच्छेद 82 प्रयोग में नहीं आयेगा। यदि संविधान 26 जनवरी को प्रारम्भ होगा तो मेरी समझ में नहीं आता कि यह उपबन्ध तब क्यों प्रयोग में नहीं आयेगा। यदि यह विचार किया गया है कि यह उस तिथि को प्रयोग में नहीं आयेगा तो मेरा निवेदन है कि अन्तरिम काल के लिये संविधान में इस प्रकार के उपबन्ध को रखने की आवश्यकता ही नहीं थी। कुछ स्थितियों के कारण, जिनका मैं वर्णन कर चुका हूं, इस सभा के कुछ सदस्य प्रान्तीय विधान-मंडलों के सदस्य भी थे। यदि किसी समय यह समझा गया कि देश का तथा प्रान्तों का हितसाधन एक प्रथा-सम्बन्धी पत्र निकालने से होगा तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस समय केवल एक वर्ष के लिये, क्योंकि एक वर्ष बाद चुनाव होंगे, संविधान में इस प्रकार का विषम उपबन्ध क्यों रखा जा रहा है। यदि यह विचार किया जाता है कि इस प्रकार के प्रथा-सम्बन्धी पत्र के अनुसार कार्य न करके इस थोड़े से समय के लिये भी इस प्रश्न को अन्तिम रूप से हल कर दिया जाए तो इन सज्जनों से अच्छा व्यवहार करना था और इन्हें स्वविवेक से निर्णय करने की स्वतन्त्रता देनी चाहिये थी, क्योंकि इससे अधिक अन्तर नहीं पड़ता। मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि इस सभा के अधिकांश सदस्य कांग्रेस टिकट पर निर्वाचित किये गये थे। यदि उन्हें स्वविवेक से निर्णय करने का अधिकार दिया गया तो उस का यह अर्थ नहीं होगा कि सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से यह अधिकार प्राप्त होगा। इस का अर्थ यह होगा कि यह अधिकार कांग्रेस दल को प्राप्त होगा। यह उद्देश्य उपरोक्त ढंग से भी पूरा किया जा सकता था? इस ढंग से भी कांग्रेस दल को ही निर्णय का अधिकार प्राप्त होता और वास्तव में अभी तक कांग्रेस के सभी सदस्य उसके निर्णय के अनुसार ही कार्य करते रहे हैं।

इस स्थिति में जब हम हमेशा से सुचारू ढंग से कार्य करते आये हैं, मेरी समझ में नहीं आता कि संक्रांति काल के लिये केवल एक वर्ष के लिये ही एक विशेष उपबन्ध क्यों रखा जा रहा है। इस उपबन्ध में कुछ कटुता है क्योंकि 6 अक्तूबर के पश्चात् कोई सदस्य किसी सभा में अपने स्थान को नहीं त्याग सकेगा। इसका यह अर्थ है कि इस सभा के बहुत से सदस्यों पर सन्देह किया जा रहा है। हम परिस्थितिवश बहुत काल से कार्य करते आये हैं और इस सभा के बाहर कई लोगों की तथा समाचारपत्रों की यह धारणा है कि हम अभी तक इसीलिये सदस्य बने हुए हैं कि हम 45 रुपये रोज कमाना चाहते हैं। समाचार-पत्रों में कई व्यंग-चित्र तथा लेख निकले हैं। इस स्थिति में इस उपबन्ध का यह अर्थ लगाया जायेगा कि जो लोग प्रान्तीय विधान-मंडलों के भी सदस्य हैं वे अपने दल का आदेश न मान कर तथा देश के हित का भी ध्यान न रखकर यहां बैठे हुए 45 रुपये रोज कमाना चाहते हैं। यह बहुत ही अनुचित धारणा है।

इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि इस उपबन्ध को यहां रखने की आवश्यकता ही क्या है। इस उपबन्ध को निकाल देना चाहिये। इस उद्देश्य को पूरा करने के अन्य उपाय भी हैं। और कुछ न कह कर मैं इतना तो अवश्य कहूंगा

कि प्रान्तीय विधान-मण्डलों के सदस्यों के बारे में मिथ्या धारणा नहीं बनानी चाहिये। मैं इस उपबन्ध का विरोध करता हूं, क्योंकि इस प्रकार के उपबन्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे संशोधन संख्या 157 का उद्देश्य यह है कि सदस्यों को स्थान त्यागने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। मैं यह जानता हूं कि यह अधिकार हम जिस अनुच्छेद 82 (1क) को पारित कर चुके हैं उससे असंगत है। किन्तु वह 1935 के भारत शासन-अधिनियम से तथा संसार भर में जिन सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है उनसे सुसंगत है। आप संसार के चाहे जिस संविधान को भी देखें आप को उस में इस आशय का एक उपबन्ध मिलेगा कि यदि कोई सदस्य उच्च सदन और अवर सदन दोनों के लिये निर्वाचित हो जाए और इस सम्बन्ध में निर्णय न करे कि वह किस सदन में रहेगा तो वह अवर सदन के स्थान को न कि उच्च-सदन के स्थान को खो बैठेगा। मेरे संशोधन का आधार यही सिद्धान्त है। हमारे सामने जो लक्ष्य है उसे प्राप्त करने के अन्य भी कई उपाय हैं।

मैं पहले यह निवेदन करता हूं कि वर्तमान व्यवस्था एक वर्ष और जारी रखी जाए। 1950-51 में निर्वाचन होंगे। प्रश्न केवल एक वर्ष का है। हम बहुत काल से यहां काम करते रहे हैं और कोई कारण नहीं है कि हम एक वर्ष और क्यों न काम करें। यदि यह सम्भव न भी हो तो सदस्यों को स्वविवेक से निर्णय करने का अधिकार मिलना चाहिये। सदस्यों को इस सम्बन्ध में अधिकार देने का अर्थ यह होगा कि कांग्रेस दल को अधिकार दिया जायेगा, यद्यपि कुछ सदस्य ऐसे भी हैं जो इस दल के नहीं हैं। यदि इस उपबन्ध को नहीं रखा जायेगा तो आसमान नहीं गिर जायेगा। मैं इस उपबन्ध को प्रान्तीय विधान-सभाओं के उन सदस्यों पर एक कलंक समझता हूं जो अपनी इच्छा से नहीं बल्कि परिस्थिति-वश इस सभा के लिये निर्वाचित हुए हैं और दो सभाओं के सदस्य हैं। मुझे इस उपबन्ध पर इसी कारण आपत्ति है। मुझे इस पर आपत्ति है कि जब हम अपना कार्य समाप्त करने को हैं, संविधान में एक ऐसा उपबन्ध रखा जा रहा है जिसका यह अर्थ किया जा सकता है कि हम लोग कुछ कारणों से यहां बने रहना चाहते हैं और हमें अपने प्रान्तों के प्रशासन की चिंता नहीं है। इसी कारण मैंने अपना संशोधन उपस्थित किया है। मुझे आशा है कि मैंने जो कुछ कहा है उस पर इस सभा के सदस्य ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित कहरता हूं कि: "सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (3) में 'a House' (सदन) शब्दों के स्थान पर 'the Lower House (अवर सदन) शब्द रखे जाएं।"

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के पश्चात् यह नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाए:

'(3a) If a member of the Constituent Assembly of the Dominion of India was on the twenty-sixth day of Jannuary, 1950, also a nominated member of the Legislative Council of a Governor's

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

Province, then, as from the date of commencement of this Constitution that person's seat in the said Assembly shall, unless he has ceased to be a member thereof earlier, become vacant, and every such vacancy shall be deemed to be a casual vacancy.' "

[(3क) यदि भारत-डोमीनियन की संविधान सभा का कोई सदस्य जनवरी, 1950, के छब्बीसवें दिन किसी राज्यपाल प्रान्त की विधान-परिषद् का मनोनीत सदस्य भी था तो इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि से उक्त विधान-सभा में उस व्यक्ति का स्थान, यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त हो जायेगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी।]

श्रीमान, उद्देश्य यह है कि संविधान-सभा के एक सौ से अधिक स्थानों के लिये उप-निर्वाचनों की आवश्यकता नहीं रहे। यदि सदस्यों को यह निर्णय करने का अधिकार दिया गया कि वे संविधान-सभा में रहना चाहते हैं या नहीं तो बहुत से स्थान रिक्त हो जायेंगे और सौ से अधिक स्थानों के लिये उपनिर्वाचन करने की आवश्यकता पड़ जायेगी। इस सम्बन्ध में मेरे अपने विचार हैं किन्तु इस समय संशोधन संख्या 160 में मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि विधान-परिषदों के सदस्यों को निर्णय करने का अधिकार देना चाहिये। उन्हें यह निर्णय करना चाहिये कि वे यहां रहना पसंद करेंगे या प्रान्तीय विधान-परिषदों में। यदि वे यहां रहना पसन्द करते हैं तो उप-निर्वाचनों की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि वे मनोनीत सदस्य हैं। सभी प्रान्तीय विधान-परिषदों में कांग्रेस का बहुमत है और सरकार जिस व्यक्ति को चाहेगी मनोनीत करेगी। मुझे कोई ऐसा कारण नहीं दिखाई देता जिसके आधार पर यह सभा तथा मसौदा-समिति के सदस्य मेरे संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकेंगे।

मुझे इस संशोधन के सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना है। किन्तु यदि आपकी अनुमति हो तो जो अनुच्छेद उपस्थित किये गये हैं उनके सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मेरी यह धारणा है कि इस सभा के सदस्यों को यह निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये कि वे यहां रहेंगे अथवा प्रान्तीय विधान-सभाओं में। यदि पश्चिमी बंगाल में सामान्य निर्वाचन करने में कोई कठिनाई नहीं है तो कोई कारण नहीं है कि एक सौ स्थानों के लिये सामान्य निर्वाचन न हों। जिस प्रकार की घटनाएं घटित हो रही हैं उन्हें देखते हुए मेरा यह विचार है कि इस संविधान के अधीन सामान्य निर्वाचनों को हम अनिश्चित काल तक के लिये स्थगित करने के लिये विवश होंगे। पाकिस्तान सरकार से, विशेषतया काश्मीर के मामले के कारण, हमारे सम्बन्ध तेजी से बिगड़ते जा रहे हैं। मेरा अपना यह विचार है कि यह अन्तर्कालीन संसद पांच छः वर्ष तक चलती रहेगी। मैं कह नहीं सकता कि इस काल के पश्चात् संविधान के उपबन्ध प्रवर्तन में आ सकेंगे या नहीं। मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि अन्तर्कालीन उपबन्धों को छोड़कर इस संविधान के अन्य उपबन्ध कभी भी प्रयोग में नहीं आ सकेंगे। इस दृष्टि से मेरा यह विचार

है कि अच्छा यह होगा कि हम इन सौ स्थानों के लिये उपनिर्वाचन करें क्योंकि बिना निर्वाचकों का मत लिये हुए किसी सभा को छः या सात वर्ष से अधिक समय तक चलाना उचित नहीं है। हम बने रहना चाहते हैं इसलिये देश में इस समय भी असंतोष बढ़ रहा है। हमें कुछ स्थानों के लिये निर्वाचकों का मत लेना चाहिये ताकि हमें ज्ञात हो सके कि हम पर उनका विश्वास है या नहीं। इसलिये उचित यही है कि इस देश में एक सामान्य उपनिर्वाचन किया जाए।

यदि मेरा यह विश्वास ठीक है कि संविधान के अधीन सामान्य निर्वाचन नहीं होने जा रहे हैं तो इस देश में हरिजनों तथा आदिवासियों के अतिरिक्त अन्य किसी समुदाय के लिये स्थान सुरक्षित करने का अर्थ यह होगा कि हम संविधान के वाक्यों का तथा आशय का खंडन कर रहे हैं। इस कारण मैं अनुच्छेद 312(च) के मसौदे का विरोध करता हूं। उसमें सभी प्रकार के समुदायों के लिये स्थान सुरक्षित किये गये हैं। संविधान में हमने हरिजनों तथा आदिवासियों के लिये स्थान सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में उपबन्ध रखा है। उस उपबन्ध से मैं पूर्णतया सहमत हूं। अन्य समुदायों के लिये स्थान सुरक्षित नहीं रखने चाहिये क्योंकि अन्य समुदायों को इस देश के अवशिष्ट लोगों के साथ घुल-मिल जाना चाहिये। यदि मुझे इसका थोड़ा भी विश्वास होता कि 1950 अथवा 1951 में सामान्य निर्वाचन होंगे तो मैं यह सुझाव नहीं प्रस्तुत करता। मुझे विश्वास है कि 1950 में अथवा 1951 में, सामान्य निर्वाचन नहीं होंगे। इसलिये हम पुराने जमाने की रूढ़ियों को क्यों बनाये रखें? हम अन्य समुदायों के लिये स्थान सुरक्षित क्यों रखें?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (2) में 'President may by rules' (राष्ट्रपति नियमों द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law' (संसद विधि द्वारा) शब्द रखे जाएं: और उस अनुच्छेद का खण्ड (4) निकाल दिया जाए।"

इस अनुच्छेद में हम अन्तर्कालीन संसद के सम्बन्ध में उपबन्ध रख रहे हैं और यह विचार किया गया है कि इस सभा में प्रान्तों तथा राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों को हटा कर जो सदस्य शेष रह जायेंगे वही संसद के सदस्य होंगे। इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में संघीय संसद में उन राज्यों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये हैं जिनका अभी तक प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। इस समय केवल हैदराबाद राज्य का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है और इस लिये खण्ड (2) का उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति को नियमों द्वारा हैदराबाद के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने की शक्ति दी गई है। मेरा अपना यह विचार है कि इस सभा के विघटित होने के पूर्व ही यहां हैदराबाद के प्रतिनिधि आ जायेंगे। नियमों द्वारा प्रतिनिधित्व प्रदान करने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है किन्तु हैदराबाद को जो प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए उस पर संसद को विचार-विमर्श करने का अवसर मिलना चाहिये। इस खण्ड में यह प्रयास किया गया है। कि राष्ट्रपति नियमों के अधीन जिसे भी चाहेगा उस राज्य का प्रतिनिधि बन सकेगा

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

और संसद को उन नियमों पर विचार विमर्श करने का अवसर नहीं मिलेगा। मेरे विचार से यह उचित नहीं है। सर्वसत्ताधारी संसद होने के कारण उसे इस पर विचार-विमर्श करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि उसका सदस्य कौन होने जा रहा है, किसी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कौन करता है और जो नियम बनाये गये हैं वे स्वीकार किये जा सकते हैं या नहीं किये जा सकते हैं। इसलिये मेरे विचार से यह उचित नहीं है कि राष्ट्रपति नियमों द्वारा इस प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे और जिस प्रकार नियम बनाये जाएं उसके सम्बन्ध में इस सभा को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं हो।

तब आखिर यह राष्ट्रपति है कौन? अनुच्छेद 312 (च) में यह कहा गया है, यद्यपि अभी वह सभा के समक्ष नहीं प्रस्तुत किया गया है, कि 26 जनवरी तक श्रीमान, आप ही राष्ट्रपति रहेंगे और आपको इस प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। इसके पश्चात् गणराज्य के राष्ट्रपति को अर्थात् मंत्रिमंडल को यह अधिकार प्राप्त होगा। मेरे विचार से इस सभा को दोनों अवस्थाओं में नियमों पर विचार-विमर्श करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। जब हमने काश्मीर के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में नियम बनाये थे तो इस सभा को उन पर विचार-विमर्श करने का अवसर प्राप्त हुआ था। सभा को अपना मत प्रकट करने का अधिकार है। किन्तु इस खण्ड में इन शब्दों को रख कर कि राष्ट्रपति नियम द्वारा यह कार्य करेगा आप संसद को इस अधिकार से वंचित कर रहे हैं, जो अनुचित ही नहीं बल्कि जनतंत्र-विरोधी भी है। मैं यह मांग करता हूं कि हैदराबाद के सम्बन्ध में जो भी निर्णय किया जाए, और उसे जिस प्रकार भी प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए, उस सम्बन्ध में नियम बनाने का अन्तिम प्राधिकार संसद को ही प्राप्त होना चाहिये।

मेरे संशोधन के दूसरे भाग का आशय यह है कि खण्ड (4) निकाल दिया जाए। अनुच्छेद 311-क में हम कह चुके हैं कि यह संविधान सभा राष्ट्रपति का निर्वाचन करेगी। तब वह अध्यक्ष का भी निर्वाचन क्यों न करे? मेरी समझ में नहीं आता कि किस कारण अन्तर किया गया है। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि वही राष्ट्रपति तथा वही अध्यक्ष फिर निर्वाचित हो जायेंगे। किन्तु फिर भी यदि हम यह कहते कि यह सभा उन्हें फिर निर्वाचित करेगी तो यह अधिक जनतंत्र-सम्मत होता। जब हम राष्ट्रपति का निर्वाचन करने के लिये सहमत हो गये हैं तो हम अध्यक्ष का निर्वाचन भी क्यों न करें? अध्यक्ष तथा राष्ट्रपति में अन्तर नहीं करना चाहिये। यद्यपि हम उन्हीं व्यक्तियों को चुनेंगे, क्योंकि अन्य व्यक्तियों को चुनने का कोई कारण नहीं है, किन्तु फिर भी मेरी यह धारणा है कि इस मामले में राष्ट्रपति तथा अध्यक्ष में अन्तर करना उचित नहीं है। यह एक प्रकार का विभेद है कि सभा राष्ट्रपति को तो फिर निर्वाचित करे और अध्यक्ष को फिर निर्वाचित न करे। सभा राष्ट्रपति तथा अध्यक्ष को फिर निर्वाचित करेगी। संविधान में इन दोनों के लिये एक ही उपबन्ध होना चाहिये, यही तर्कसंगत है।

कुछ मित्र खंड (3) के उपबन्धों के सम्बन्ध में बोले हैं। उस खण्ड पर आपत्ति की गई है और यह कहा गया है कि उन सदस्यों को, जो प्रान्तीय विधान-मंडलों के भी सदस्य हैं, यह निर्णय करने का अधिकार दिया जाना चाहिये कि वे संसद

के सदस्य रहना चाहते हैं अथवा प्रान्तीय विधान-सभा के सदस्य। मुझे यह मत मान्य है। यह संसद भविष्य की संसद हो जानी चाहिये और इस सभा में स्थान रिक्त न होकर इन सदस्यों के प्रान्तीय विधान-सभाओं में के स्थान रिक्त होने चाहिये और लोगों ने उनके लिये सदस्य निर्वाचित करने के लिये कहा जाना चाहिये। सारे देश में एक सौ स्थान बहुत स्थान नहीं हैं। इन उप-निर्वाचनों से यह भी ज्ञात हो जाता कि देश कांग्रेस का साथ दे रहा है या नहीं। इस प्रकार हम जनतंत्र की प्रणाली का भी अनुसरण करते और हमें यह भी ज्ञात हो जाता कि लोगों की क्या भावनाएं हैं। यद्यपि मैंने इस आशय के संशोधन की सूचना नहीं दी है, किन्तु मैं उन मित्रों से सहमत हूं जिनका यह विचार है कि यह सभा इसी रूप में बनी रहे और इस कारण प्रान्तों में जिन सदस्यों के स्थान रिक्त हो जाएं उन्हें सीधे-सीधे चुनाव से भरा जाए।

श्रीमान मेरे मित्र श्री कामत ने खण्ड (1) के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनका भी मैं समर्थन करता हूं। उन्होंने जो शब्दावलि प्रस्तावित की है वह मसौदे की शब्दावलि से अच्छी है। मेरे विचार से मसौदा-समिति को इन संशोधनों पर विचार करना चाहिये और इन्हें मसौदे में समाविष्ट कर लेना चाहिये ताकि वह अधिक सुगठित और सुन्दर हो जाए।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): श्रीमान, क्या मुझे साधारणतया सारे अनुच्छेद पर अपने विचार प्रकट करने की आज्ञा है?

***अध्यक्षः** पहले आप अपने संशोधनों को उपस्थित करें।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (1) के अन्त में यह जोड़ दिया जाए:-

'and shall be known as the Parliament of the Union of India.' (और भारतीय संघ की संसद कही जायेगी।)"

मेरे नाम से अन्य संशोधन भी हैं किन्तु चूंकि अब डॉ. अम्बेडकर ने अपने नये संशोधन उपस्थित किये हैं जिनसे मेरे बहुत से संशोधनों का आशय पूरा हो जाता है इसलिये मैं अपने अवशिष्ट संशोधनों को नहीं उपस्थित करना चाहता।

इस संशोधन के सम्बन्ध में मुझे केवल एक बात कहनी है। प्रस्तावित अनुच्छेद 311 इस शीर्षक से आरम्भ होता है, "अन्तर्कालीन संसद तथा उसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के बारे में उपबन्ध" "अन्तर्कालीन संसद" शब्द पहली बार इस शीर्षक में प्रयुक्त हैं। अनुच्छेद में कहीं यह नहीं कहा गया है कि कौन सभा अन्तर्कालीन संसद होगी। अनुच्छेद में किसी स्थल पर इस का उल्लेख होना चाहिये कि एक अन्तर्कालीन संसद होगी, किन्तु यह उल्लेख नहीं है। केवल डॉ. अम्बेडकर के अन्तिम संशोधन में यह कहा गया है कि इन आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के पश्चात् एक अन्तर्कालीन संसद निर्मित होगी। उन्होंने केवल आकस्मिक रूप से उसे

[श्री महावीर त्यागी]

"अन्तर्कालीन संसद" कहा है। इसलिये इसे स्पष्ट करने के लिये मैं पहले ही खण्ड में ये शब्द जोड़ना चाहता हूं:

"और वह भारतीय संघ की संसद कही जायेगी।" अपने पहले खण्ड में वे कहते हैं–

> "जब तक कि इस संविधान के उपबन्धों के अधीन संसद के दोनों सदन सम्यक रूप से गठित न हो जाएं तथा प्रथम सत्र में अधिवेशित होने के लिये आहूत न हो जाएं तब तक वह निकाय, जो भारत डोमीनियन की संविधान-सभा के रूप में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले कृत्यकारी था इस संविधान के उपबन्धों द्वारा संसद को दी गई सब शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करेगा।"

इसका मैं यह अर्थ लगाता हूं कि भारत डोमीनियन की संविधान सभा बनी रहेगी और वह सभा अन्तर्कालीन संसद का भी सभी कार्य करेगी। इसकी कहीं परिभाषा नहीं की गई है कि अन्तर्कालीन संसद क्या है। इसलिये मेरा निवेदन है कि हम इन शब्दों को प्रविष्ट करें: "और भारतीय संघ की संसद कही जायेगी।" मैं नहीं चाहता कि "अन्तर्कालीन" विशेषण संसद के साथ, अथवा अधिकारियों के साथ, अपना राष्ट्रपति आदि के साथ रखा जाए। केवल "संसद" शब्द ही रहना चाहिये। इस सम्बन्ध में मुझे केवल इतना ही कहना है और मैं आशा करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा।

श्रीमान, इस अनुच्छेद पर सामान्यत: मुझे यह निवेदन करना है कि मुझे यह देखकर खेद हुआ है कि डॉ. अम्बेडकर को तथा मसौदा-समिति को हमारे सामने इस प्रस्ताव को रखने की आवश्यकता पड़ी। इससे सामान्य निर्वाचन की व्यवस्था कहीं अच्छी होती। यह सुझाव कि यह संविधान सभा बनी रहेगी और प्रथम संसद के रूप में काम करेगी, मेरे विचार से जनतंत्र सम्मत नहीं है। अच्छा यह होता कि संविधान के प्रारम्भ के पूर्व तुरन्त ही एक निर्वाचन करते। सामान्य निर्वाचन के पश्चात् जो संसद बनती वह कार्य आरम्भ करती। यही उचित मार्ग था।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास: जनरल): किस मताधिकार के अधीन?

***श्री महावीर त्यागी:** यही उचित मार्ग होता क्योंकि तब संसद यह जानती कि लोगों के क्या विचार हैं और पदारूढ़ व्यक्ति जिन लोगों का प्रतिनिधित्व करते उनका उन पर पूर्ण विश्वास होता। श्रीमान, हम यहां एक परोक्ष निर्वाचन के फलस्वरूप निर्वाचित होकर आये हैं और हमें प्रान्तों की उन विधान-सभाओं ने निर्वाचित किया है जिनका बहुत पहले अर्थात् 1946 के लगभग निर्वाचन हुआ था। तब से हम निर्वाचकों के सामने नहीं गये हैं। इस दृष्टि से यह अनुच्छेद, जिसे हम पारित करने जा रहे हैं, मेरे विचार से बहुत प्रतिगामी अनुच्छेद है।

यह प्रतीत होता है कि निर्वाचकों की सूचियों को तैयार करने में कुछ कठिनाई है क्योंकि अब मताधिकार वयस्क मताधिकार हो गया है। निर्वाचकों की पंजियों को तैयार करने में कुछ समय लगेगा और इस काल के लिये व्यवस्था करने के उद्देश्य से इस अनुच्छेद को प्रस्तुत किया गया है। मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम के इस सुझाव से भी सहमत हूं कि निर्वाचनों के लिये एक तिथि निश्चित कर दी जाए। तब तक हमें उन्हें समाप्त कर देना चाहिये। आखिर ये निर्वाचक सूचियां

तथा अन्य रस्में किसी समय तो समाप्त होनी ही चाहिये ताकि शक्ति वास्तव में लोगों के हाथ में जा सके। जब वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन होंगे तभी संसद लोगों की प्रतिनिधि सभा होगी। चूंकि यह अनुच्छेद केवल अन्तरिम काल के लिये है इसलिये मुझे आशा है कि नये निर्वाचनों के लिये तैयार करने में अधिक समय नहीं लगाया जायेगा।

डॉ. अम्बेडकर ने एक अन्य संशोधन भी उपस्थित किया है जिसका आशय यह है कि इस सभा के उन सदस्यों के बारे में जो प्रान्तीय सभाओं अथवा प्रान्तीय विधान-मंडलों के भी सदस्य हैं, यह समझा जाएगा कि नये संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले दिन इस सभा में उनके स्थान रिक्त हो जायेंगे। यद्यपि ये स्थान संविधान के प्रारम्भ होने तक रिक्त नहीं होंगे किन्तु उसके पूर्व ही निर्वाचन द्वारा भर दिये जायेंगे। ये स्थान संविधान के प्रारम्भ से पूर्व रिक्त नहीं होंगे। उनके संशोधन के अधीन, ये अतिरिक्त स्थान रिक्त होने के पूर्व ही निर्वाचनों द्वारा भर दिये जायेंगे। यह मेरी समझ में नहीं आता। अच्छा यह होता कि वे यह कहते कि यहां जो विधान-सभाओं के सदस्य हैं उनके स्थान विधान के प्रारम्भ से पन्द्रह दिन पूर्व रिक्त हो जायेंगे। इस पखवाड़े में परोक्ष निर्वाचन द्वारा हम इन स्थानों को भर देते ताकि जब संविधान प्रारम्भ होता, यह सभा भी पूर्ण होती। उचित मार्ग यही था। मैं अब भी यह सुझाव प्रस्तुत करता हूं कि मसौदा-समिति कुछ ऐसे शब्द रखे जिनसे अर्थ बदल जाए और सरकार संविधान के प्रारम्भ से एक पखवाड़े पूर्व निर्वाचन कर सके और इन स्थानों के भरे जाने के पूर्व इन्हें रिक्त करा सके यह अधिक तर्कसंगत होगा।

खण्ड (3) का जो मसौदा अब प्रस्तावित किया गया है वह अधिक पूर्ण है। पहले मसौदे के अधीन केवल वे सदस्य नहीं बने रह सकते थे जो 6 अक्तूबर 1949 को स्थानीय विधान मंडलों के सदस्य थे। जो लोग 6 अक्तूबर 1949 के पश्चात् स्थानीय विधान-मंडलों के सदस्य हुए उन्हें अनर्ह नहीं कहा गया है। इस दृष्टि से यह नवीन प्रस्ताव पूर्ण है क्योंकि इसमें निर्धारित किया गया है कि यदि भारत डोमीनियन की संविधान-सभा का कोई सदस्य 6 अक्तूबर 1949 के दिन, अथवा तत्पश्चात् इस संविधान के प्रारम्भ से पहले किसी समय किसी राज्यपाल प्रान्त अथवा प्राथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित किसी राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य के विधान-मंडल के सदन का सदस्य था, अथवा किसी ऐसे राज्य का मंत्री था, तो इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर संविधान-सभा में ऐसे सदस्य का स्थान, यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इस से पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त हो जायेगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी। श्रीमान, यद्यपि ऐसे बहुत मामले नहीं होंगे, अथवा सम्भव है कि कोई भी मामला न हो, किन्तु इसे मसौदे में ऐसे सदस्यों के मामलों के लिये व्यवस्था कर दी गई है जो इस समय में प्रान्तीय विधान-मंडलों के सदस्य हुए हों। उन लोगों का क्या होगा जो प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्य हैं और इस बीच इस सभा के सदस्य हुए हैं? यदि डॉ. अम्बेडकर के इस अन्तिम मसौदे का ठीक-ठीक निर्वचन किया जाए तो इन सदस्यों के स्थान, जो इस सभा के सदस्य हैं और जो 6 अक्तूबर को तथा उसके बाद किसी प्रान्त के विधान मंडल के सदस्य हुए, रिक्त समझे जायेंगे, अर्थात् उन सदस्यों के स्थान, जो इस सभा के सदस्य हैं, और 6 अक्तूबर को अथवा उसके पश्चात् प्रान्तीय विधान-सभाओं के भी सदस्य थे रिक्त

[श्री महावीर त्यागी]

समझे जायेंगे। उन लोगों का क्या होगा जो इस सभा के सदस्य नहीं हैं किन्तु प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्य हैं और इस काल में इस सभा के सदस्य हो गये हैं? उनकी भी दुहरी सदस्यता हो जायेगी और उनके स्थान रिक्त नहीं समझे जायेंगे।

इस प्रकार यह अनुच्छेद भी थोड़ा बहुत अपूर्ण ही है। मेरा यह सुझाव है कि मेरे सदस्यों के मामले भी इसके अन्तर्गत आ जाने चाहिये। जो लोग आज इस संविधान सभा के सदस्य नहीं हैं, अथवा जो लोग 6 अक्तूबर को अथवा उसके पश्चात् सदस्य नहीं थे, किन्तु 6 अक्तूबर को, उदाहरण के लिये मैं कहता हूं कि संयुक्त प्रान्त के विधान-मंडल के सदस्य थे चाहे एक ऐसा सदस्य हो अथवा अधिक, क्योंकि संख्या कोई अर्थ नहीं रखती और इस बीच संविधान सभा के लिये निर्वाचित हो गये हैं, उनके मामले अन्त में प्रस्तावित मसौदे के उपबन्धों के अन्तर्गत नहीं आयेंगे।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** ये शब्द उन्हीं मामलों के सम्बन्ध में रखे गये हैं जो माननीय सदस्य महोदय की दृष्टि में हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** ऐसा कोई सदस्य प्रान्तीय विधान-सभा का सदस्य पहले से ही होगा और फिर वह इस सभा का सदस्य हो जायेगा। इस काल में जो व्यक्ति इस सभा का सदस्य हो जायेगा उस का मामला वैध रूप से इसके अन्तर्गत नहीं आयेगा, किन्तु सम्भव है कि ऐसे कोई मामले पैदा ही न हों।

मैं आपका ध्यान इस ओर भी आकृष्ट करना चाहता हूं कि मसौदा-समिति ने इस आशय का उपबन्ध रखा है कि सभा का अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष बना रहेगा। यह भी कोई अच्छी भावना नहीं है। आखिर जब सभा के लगभग सौ ऐसे सदस्यों के स्थान जो प्रान्तीय विधान-सभाओं के भी सदस्य हैं, रिक्त घोषित कर दिये जायेंगे और उन स्थानों के लिये अन्य लोग निर्वाचित होंगे और जब इस सभा का एक तिहाई भाग बदला जा रहा है, तो आप उस पर पुराने ही अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को क्यों थोप रहे हैं? हमें केवल यह कहना चाहिये कि संसद के समवेत होने के प्रथम दिन तक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष बने रहेंगे। उसके पश्चात् संसद को अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का नया निर्वाचन करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। जब संसद का एक सत्र समाप्त हो जाता है और दूसरा सत्र निर्वाचन के पश्चात् होता है तो इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता है। संसद सबसे पहले अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को ही निर्वाचित करती है। साधारणतया पुराने ही अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष निर्वाचित होते हैं। किन्तु यह रस्म पूरी की जाती है। बिना किन्हीं व्यक्तियों पर आक्षेप किये हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि यह सिद्धान्ततः गलत है कि वर्तमान अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को संसद पर थोपा जाए और मुझे आशा है कि उनका पुनर्निर्वाचन किया जायेगा। संविधान में यह उपबन्ध रखने से कि वे बने रहेंगे उन उच्च पदों की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। उन पदों पर सभा का पूर्ण विश्वास होता है। यह उचित नहीं है कि स्वतन्त्रता से अपने पदाधिकारी चुनने में संसद के मार्ग में यह सभा बाधा डाले। हमें संसद के सदन के कार्य में बाधा न डालनी चाहिये। उसे सामान्य निर्वाचनों के पश्चात् प्रथम बार समवेत होने पर अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को निर्वाचित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** आप अधिक समय ले चुके हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** मुझे एक प्रश्न पुछने के अतिरिक्त अब और कुछ नहीं कहना है। संविधान-सभा के ऐसे सदस्यों का क्या होगा जो किसी ऐसे प्रान्त से निर्वाचित हुए हों जहां की विधान-सभा विघटित हो गई हो और वहां नये निर्वाचन हो गये हों? थोड़ी देर के लिये मानिये कि बंगाल अथवा संयुक्त प्रान्त में सामान्य निर्वाचन हो गये हैं और वहां के प्रतिनिधि इस सभा में हैं। हमने उनके यहां बने रहने के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं किन्तु क्या वे सामान्य निर्वाचनों के पश्चात् भी बने रहेंगे, अथवा क्या उनसे अपने प्रान्तों की नवनिर्वाचित विधान-सभाओं का विश्वास प्राप्त करने को कहा जायेगा? यह भी स्पष्ट किया जाए।

***श्री सीता राम एस. जाजू** (मध्य भारत): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खण्ड (3) में 'an Indian State' (किसी देशी राज्य) शब्दों के पश्चात् 'or Union of State; or a member who holds any office of profit under any Government other than the ministerial office in the Union Government' अथवा राज्य-संघ; (अथवा ऐसा सदस्य जो संघ-सरकार के अधीन मंत्री-पद के अतिरिक्त किसी अन्य सरकार के अधीन किसी लाभ-पद पर था) शब्द प्रविष्ट किये जाएं।"

मेरा संशोधन बहुत ही सादा और छोटा है। वास्तव में इस संशोधन में जो सिद्धान्त सन्निहित है उसे यह संविधान सभा संविधान के अनुच्छेद 83 में स्वीकार कर चुकी है। मेरी यह धारणा है कि इस अन्तर्कालीन उपबन्धों में इसे प्रविष्ट कर लिया जाये ताकि इनके पारित होने पर किसी प्रकार का भ्रम न रह जाए। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 82 में हम यह स्वीकार कर चुके हैं कि दुहरी सदस्यता समाप्त की जाती है, किन्तु किसी भ्रम की सम्भावना न रहने देने के लिये हम इसे यहां भी रख रहे हैं। इसलिये मुझे आशा है कि आगे के भाग के सम्बन्ध में भी किसी भ्रम की सम्भावना न रहने देने के लिये माननीय डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***अध्यक्ष:** मि. करीमुद्दीन—अनुपस्थित हैं। श्री गुरुव रेड्डी—अनुपस्थित हैं। श्री सिधवा आपने एक संशोधन की सूचना दी थी, जिसके बारे में मैंने वचन दिया था कि वह इनके साथ उठाया जायेगा। मेरे विचार से इस प्रसंग में अब वह नहीं उठता।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): जी हां।

***अध्यक्ष:** और कोई संशोधन नहीं है। अब संशोधनों तथा अनुच्छेद पर बहस हो सकती है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार: जनरल): मैं प्रार्थना करता हूं कि अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** सम्भव है कि कुछ सदस्य बोलना चाहें। मैं उन सदस्यों में से जो अभी तक नहीं बोले हैं केवल एक दो को बोलने की आज्ञा दूंगा। जिन सदस्यों ने संशोधन उपस्थित नहीं किये हैं उनमें से क्या कोई सज्जन बोलना चाहते हैं?

***श्री मोहम्मद ताहिर:** (बिहार: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कुछ कठिनाई का अनुभव कर रहा हूं और मैं उसे सभा के सामने रखना चाहता हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अनुच्छेद का खण्ड (1) उसका एक सारवान अंश है। उसमें कहा गया है कि:–

> "जब तक कि इस संविधान के उपबन्धों के अधीन संसद के दोनों सदन सम्यक रूप से गठित न हो जाएं तथा प्रथम सत्र में अधिवेशन होने के लिये आहूत न हो जाएं तब तक वह निकाय, जो भारत-डोमिनियन की संविधान-सभा के रूप में इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले कृत्यकारी था, इस संविधान के उपबन्धों द्वारा संसद को दी गई सब शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करेगा।"

इस अनुच्छेद के इस सारवान अंश का यह अर्थ है कि जो निकाय इस समय कृत्यकारी हैं अर्थात् जिस निकाय में इस समय इस सभा के सदस्य हैं, वह संविधान के प्रारम्भ होने पर संसद हो जायेगा।

विधि के सारवान अंश का अर्थ यह होता है कि वह आगे के उपबन्धों पर लागू होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि खण्ड (1) जो इस अनुच्छेद का सारवान अंश है इस अनुच्छेद के अन्य उपबंधों पर, अर्थात खण्ड (2) और (3) पर, लागू होगा। किन्तु हम यहां देखते हैं कि बात बिल्कुल इसके विपरीत है। सब कुछ उलट-पलट दिया गया है। वास्तव में खण्ड (3) इस अनुच्छेद के सारवान अंश पर लागू होता है, जो मेरे विचार से अवैध है क्योंकि खण्ड (1) में कहा गया है कि यह निकाय भारत डोमोनियन की संविधान सभा के रूप में कार्य करेगा, जबकि खण्ड (3) के अधीन संविधान-सभा पूर्णत: तो नहीं किन्तु अंशत: विघटित होगी। वास्तव में खण्ड (3) के फलस्वरूप एक एक भाग कर के इस सभा का पूर्णत: विघटन हो जायेगा। मेरे विचार से खण्ड (3) की आवश्यकता नहीं है और इसे इस अनुच्छेद में प्रविष्ट न करना चाहिये।

जब यह सभा डोमिनियन संसद का रूप धारण कर लेगी तो यह प्रश्न उठेगा कि कुछ सदस्य डोमिनियन संसद तथा प्रान्तीय विधान सभा दोनों के सदस्य होंगे। इसके लिये श्रीमान, हम एक अनुच्छेद पारित कर चुके हैं। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 82 की ओर आकृष्ट करता हूं जिसकी व्याख्या मेरे एक मित्र कर चुके हैं। कुछ सदस्यों के इस सभा के तथा प्रान्तीय विधान-मंडल दोनों के सदस्य होने पर जो समस्या उठ खड़ी होगी उसे इस अनुच्छेद में हल किया गया है। किन्तु

खण्ड (3) के समान किसी खण्ड को प्रविष्ट करने से सारा संविधान गंदा हो जायेगा। इसलिये मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस पर विचार करेंगे। इस अनुच्छेद में जो उपखण्ड रखे गये हैं वे उसके सारवान अंश पर लागू नहीं होने चाहियें।

इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं समाप्त करता हूं।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): श्रीमान, इस विषय के सम्बन्ध में अपनी बातें कहने के पूर्व मैं चाहता हूं कि आप की आज्ञा से संशोधन संख्या 195 के खण्ड (3) में 'thereafter' (तत्पश्चात्) शब्द के पश्चात् तथा 'at any time before...' (इस संविधान के प्रारम्भ से पहले) शब्दों के पूर्व आने वाला शब्द 'becomes' (होता है) निकाल दिया जाए। यह शब्द अनावश्यक है।

विभिन्न संशोधनों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उन में से केवल तीन पर विचार करने की आवश्यकता है। पहला संशोधन मेरे मित्र श्री कामत का है, जो यह कहते हैं कि इस अनुच्छेद के खण्ड 4 में केन्द्र के उपाध्यक्ष को बनाये रखने के सम्बन्ध में तो उपबन्ध है किन्तु प्रान्तों के अध्यक्षों को बनाये रखने के बारे में कोई उपबन्ध नहीं है। मैं तथा मसौदा-समिति यह जानते थे कि इन उपबन्धों में यह विभेद है और इसे दूर करने के लिये हम एक संशोधन भी उपस्थित करना चाहते थे। इसलिये मैं श्री कामत को विश्वास दिलाता हूं कि मसौदा-समिति इस विभेद को नहीं रहने देगी और एक संशोधन द्वारा इस त्रुटि को दूर करेगी।

दूसरा प्रश्न जिसमें कुछ सार है, मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने उठाया था। वह अन्तर्कालीन संसद में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में था। स्थिति इस प्रकार है। इस सभा में इस समय 310 सदस्य हैं और अन्तर्कालीन संसद में भी 310 सदस्य ही रहेंगे। भावी संसद में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त अपनाया गया है कि उनका प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर होगा और इस सिद्धान्त के अनुसार इन 310 स्थानों में से 45 स्थान उन को मिलने चाहिये। आज उन्हें केवल 28 स्थान प्राप्त हैं। इस अनुच्छेद में यह स्पष्ट उपबन्ध रख दिया गया है कि इस समय उनके पास जो 28 स्थान हैं वे कम नहीं किये जायेंगे। जहां तक जिन 45 स्थानों को उन्हें पाने का अधिकार है और इस समय के उनके 28 स्थानों के अन्तर का सम्बन्ध है, मेरे विचार से राष्ट्रपति को नियमों के अनुकूलन के लिये तथा उनमें रूप-भेद करने के लिये पर्याप्त शक्ति दी गई है और वे नवीन अनुच्छेद 312 च के उपबन्धों के अधीन इस कमी को यथा सम्भव पूरा कर सकते हैं।

अब मैं श्री पातस्कर का संशोधन उठाता हूं। जहां तक मैं उनके आशय को समझ पाया हूं, उनके संशोधन में तथा अनुच्छेद के मसौदे में सिद्धान्ततः कोई अन्तर नहीं है। मेरे उपस्थित किये हुए अनुच्छेद 311 में तथा श्री पातस्कर द्वारा उपस्थित किये हुए संशोधन में यही कहा गया है कि दुहरी सदस्यता को समाप्त किया जाये। प्रश्न केवल यह है कि इस उद्देश्य की पूर्ति किस प्रकार की जाए। इस अनुच्छेद के उपबन्धों में यह कहा गया है कि संविधान के प्रारम्भ होने पर ही स्थान रिक्त

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

होंगे। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि संविधान 26 जनवरी को प्रवर्तन में आयेगा तो वे 25 जनवरी, 1950, तक सदस्य बने रहेंगे। किन्तु इस प्रकार जो स्थान रिक्त होंगे उनके लिये संविधान के प्रारम्भ के पूर्व किसी समय निर्वाचन हो सकते हैं। इससे जब संविधान सभा अन्तर्कालीन संसद के रूप में समवेत होगी उसके सदस्यों की संख्या एकाएक कम नहीं हो जायेगी। मेरे मित्र पातस्कर यह चाहते हैं कि संविधान के प्रारम्भ होने पर स्थान रिक्त हों और उसके एक मास पश्चात् लोगों को स्थानों से हटाया जाए। अन्तर केवल इतना है। मेरे विचार से यह प्रश्न केवल इसके सम्बन्ध में है कि हम स्थानों को कब से रिक्त घोषित करें और कब से लोगों को उनसे हटायें। हमने किसी सदस्य के बने रहने के सम्बन्ध में 6 अक्तूबर, 1949, की तिथि इस लिये रखी है कि संविधान-सभा का यह सत्र इसी तिथि से आरम्भ हुआ है। मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता कि 6 अक्तूबर, 1949, की तिथि का कोई विशेष महत्व है और मेरे विचार से श्री पातस्कर भी यह नहीं कहेंगे कि अपने संशोधन द्वारा उन्होंने जिस उपबन्ध को प्रस्तुत किया है उसका कोई विशेष महत्व है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, सिद्धान्ततः कोई अन्तर नहीं है और हम सभी इस सम्बन्ध में सहमत हैं कि दुहरी सदस्यता न रखनी चाहिये। इसलिये, मेरे विचार से, मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है...

***श्री एच.वी. पातस्करः** मेरे संशोधन द्वारा सदस्यों को स्वयं निर्णय करने का अधिकार मिल जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इससे, मेरे विचार से, बहुत पेचीदगी पैदा हो जायेगी। यदि सदस्यों को स्वेच्छा से निर्णय करने का अधिकार दिया गया तो उससे पेचीदगी पैदा हो जायेगी, क्योंकि सम्भव है कि जिस दोष को हम दूर करना चाहते हैं उसकी पुनरावृत्ति हो। हमें इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिये कि इस दोष की पुनरावृत्ति न हो। इसलिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि अनुच्छेद 311 के उपबन्ध स्वीकार कर लिये जायें।

***श्री राम सहाय** (मध्य भारत): श्री सीताराम जाजू ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह कैसा है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हम जानते थे कि यह प्रश्न उठेगा। इस कारण मैंने अपने संशोधन संख्या 195 में रूपभेद किया और उसमें देशी राज्यों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखा। मैंने केवल उन लोगों के सम्बन्ध में उपबन्ध नहीं रखे जो लाभ-पद पर आरूढ़ हैं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर एक एक करके मत लूंगा। खण्ड (1) के सम्बन्ध में संशोधनों की पहली शृंखला, अर्थात् संशोधन संख्या 142 से लेकर 145 तक, श्री कामत के नाम से हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड 1 में 'until' (जब तक कि) शब्द के पश्चात् (हिन्दी में पहले) 'such time as' (उस समय तक) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 में से 'the body functioning as, (वह निकाय जो कृत्यकारी था) शब्द निकाल दिये जाएं"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 में 'Constituent Assembly of the Dominion of India' (भारत डोमीनियन की संविधान सभा) शब्द जहां कहीं आये हों उनके स्थान पर 'Constituent Assembly of India' (भारत की संविधान सभा) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 में खंड (1) में, 'immediately before the commencement of this Constitution shall' (इस संविधान के आरम्भ के ठीक पहले कृत्यकारी था, अन्तर्कालीन संसद होगा) शब्दों के स्थान पर 'shall itself' (अन्तर्कालीन संसद होगा) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान मैं चाहता हूं कि मेरे संशोधन संख्या 146 पर मसौदा समिति ही विचार करे।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री त्यागी के संशोधन संख्या 194 पर मत लेता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (1) के अन्त में यह जोड़ दिया जाए:–

'and shall be known as the Parliament of the Union of India' (और भारतीय संघ की संसद कही जाएगी।)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** खंड (1) के संबंध में यही संशोधन है। खंड (2) के संबंध में जो संशोधन हैं उन पर अब मैं एक एक करके मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:–

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) में 'rules' (नियमों द्वारा) शब्द के पश्चात् 'which shall as far as practicable, conform to those adopted by the Constituent Assembly' (जो यथा संभव संविधान सभा द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुरूप होंगे) शब्द प्रविष्ट किये जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब संशोधनों की एक शृंखला आती है। ये संशोधन श्री मुनिस्वामी पिल्ले के नाम से हैं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** माननीय डॉ. अम्बेडकर ने जो आश्वासन दिया है उसे दृष्टि में रखते हुए मैं नहीं चाहता कि मेरे किसी संशोधन पर मत लिया जाए।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रांत और बरार: जनरल): मैं नहीं चाहता कि इन संशोधनों को, जिनकी सूचना मैंने भी दी थी वापस लिया जाए।

***अध्यक्ष:** उन्हें श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने उपस्थित किया था। मैं उन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) उपखंड (क) में 'of any State or other territory' (किसी ऐसे राज्य या अन्य राज्य क्षेत्र के) शब्दों के स्थान पर 'of a Governor's Province or Indian State' (किसी राज्यपाल-प्रांत या देशी राज्य के) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'not represented' (प्रतिनिधित्व न था) शब्दों के स्थान पर 'not adequately represented' (पर्याप्त प्रतिनिधित्व न था) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'commencement of this Constitution'

(इस संविधान के प्रारम्भ) शब्दों के पश्चात् (हिंदी में अन्त में) 'having due regard to the proper representation of the Scheduled Castes' (अनुसूचित जातियों के यथोचित प्रतिनिधित्व का ध्यान रखते हुए) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) में यह नवीन उपखंड प्रविष्ट किया जाए:

'(d) the election of a Speaker or Deputy Speaker for the Parliament'.

(संसद के लिये अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष का निर्वाचन)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन संख्या 178 के भाग 1 पर मत लेता हूं जो खंड (2) के संबंध में है। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (2) में 'President may by rules' (राष्ट्रपति नियमों द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law' (संसद विधि द्वारा) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब हम खंड (3) के संबंध में उपस्थित किये गये संशोधनों को उठायेंगे।

संशोधन संख्या 155, जो श्री कामत के नाम से है प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) में 'An Indian State' (किसी देशी राज्य) शब्दों के पश्चात् 'or Union of States' (अथवा राज्य-संघ) शब्द प्रविष्ट किये जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के अन्त में 'within the meaning of the Rules of Procedure and Standing Orders of the Constituent Assembly.'

[अध्यक्ष]

(संविधान-सभा के प्रक्रिया-नियमों को तथा स्थाई आदेशों के आशय के अन्तर्गत) शब्द जोड़ दिये जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अगला संशोधन, जिस पर मत लेना है, संशोधन संख्या 195 पर संशोधन संख्या 156 है, जिसे श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने कुछ रूप भेद के साथ उपस्थित किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन संख्या 195 में अन्तिम पंक्ति में 'and' (और) से आरम्भ होने वाले सभी शब्द निकाल दिये जाएं और यह जोड़ दिये जायें:

'A member in two Assemblies shall resign his membership in the Legislature of a Governor's province or an Indian State thirty days prior to this Constitution coming into effect.' "

[दोनों सभाओं का सदस्य इस संविधान के प्रारम्भ से तीस दिन पूर्व राज्यपाल प्रांत अथवा देशी राज्य के विधान-मंडल की अपनी सदस्यता का परित्याग कर देगा।]

संशोधन गिर गया।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** श्रीमान, मेरी प्रार्थना है कि मुझे अपने संशोधनों को वापस लेने की अनुमति प्रदान की जाए।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** अब मैं खंड (3) के संबंध में श्री ब्रजेश्वर प्रसाद तथा श्री सीता राम जाजू के संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) में 'a House' (सदन) शब्दों के स्थान पर 'the lower House' (अवर सदन) शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के पश्चात् यह नवीन खंड प्रविष्ट किया जाए:-

'3(a) If a member of the Constituent Assembly of the Dominion of India was on the twenty-sixth day of January, 1950, also a

nominated member of a Legislative Council of a Governor's province, then, as from the date of commencement of this Constitution that person's seat in the said Assembly shall, unless he has ceased to be a member thereof earlier, become vacant, and every such vacancy shall be deemed to be a casual vacancy.' "

[(3क) यदि भारत-डोमिनियन की संविधान-सभा का कोई सदस्य जनवरी, 1950, के छब्बीसवें दिन किसी राज्यपाल-प्रांत की विधान-परिषद् का मनोनीत सदस्य भी था तो इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि से उक्त विधान सभा में व्यक्ति का स्थान यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त हो गया हो, रिक्त हो जाएगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायगी]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) में 'an Indian State' (किसी देशी राज्य) शब्दों के पश्चात् 'or Union of State; or a member who holds any office of profit under any Government other than the ministerial office in the Union Government' (अथवा राज्य-संघ; अथवा ऐसा सदस्य जो संघ सरकार के अधीन मंत्रि-पद के अतिरिक्त किसी अन्य सरकार के अधीन किसी लाभ-पद पर था) शब्द प्रविष्ट किये जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं खंड (4) के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन पर मत लूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** (मध्य प्रांत और बरार: जनरल): श्रीमान, चूंकि माननीय डॉ अम्बेडकर यह आश्वासन दे चुके हैं कि यह विभेद दूर किया जाएगा इसलिये मैं इस पर जोर नहीं देता कि मेरे संशोधन संख्या 161 तथा 162 पर मत लिया जाए।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन संख्या 178 के दूसरे भाग पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 का खंड (4) निकाल दिया जाए।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 311 के सम्बन्ध में सभी संशोधनों पर मत लिया जा चुका है। अब मैं पहले इस अनुच्छेद के खण्डों पर मत लूंगा।

***श्री महावीर त्यागी:** मेरे संशोधन पर मत नहीं लिया गया है।

***अध्यक्ष:** मैंने उस पर मत लिया किन्तु उसके पक्ष में किसी ने मत नहीं दिया।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 311 का खंड (1) संविधान का अंग बना लिया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 311 का खंड (2) संविधान का अंग बना लिया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 9 के खंड (3) के स्थान पर संशोधन संख्या 195 आ गया है। संशोधन संख्या 195 की दूसरी पंक्ति से 'होता है' शब्द निकाल दिये गये हैं और शेष अंश पहले के समान ही हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के स्थान पर यह रखा जाए:–

'3(a) If a member of the Constituent Assembly of the Dominion of India was on the sixth day of October, 1949, or thereafter at any time before the commencement of this Constitution a member of a House of the Legislature of a Governor's Province or an Indian State corresponding to any State for the time being specified in Part III of the First Schedule or a Minister for any such State, then as from the date of commencement of this Constitution the seat of such member in the Constituent Assembly shall, unless he has ceased to be a member of that Assembly earlier, become vacant and every such vacancy shall be deemed to be a casual vacancy.' "

[3(क) यदि भारत-डोमीनियन की संविधान-सभा का कोई सदस्य 1949 के अक्तूबर के छठे दिन, अथवा तत्पश्चात् इस संविधान के प्रारम्भ से पहले किसी समय किसी राज्यपाल-प्रांत, अथवा प्रथम अनुसूची के भाग (3) में उल्लिखित किसी राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य के विधान-मंडल के सदन का सदस्य था, अथवा किसी ऐसे राज्य का मंत्री था तो इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर संविधान सभा में ऐसे सदस्य का स्थान, यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त हो जायेगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित अनुच्छेद 311 के खंड (3) के पश्चात् यह नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:–

'3(a) Notwithstanding that any such vacancy in the Constituent Assembly of the Dominion of India as is mentioned in clause (3) of this article has not occurred under that clause, steps may be taken before the commencement of this Constitution for the filling of such vacancy, but any person chosen before such commencement to fill the vacancy shall not be entitled to take his seat in the said Assembly until after the vacancy has so occurred.' "

[3(क) इस बात के होते हुए भी कि भारत डोमीनियन की संविधान सभा में ऐसी कोई रिक्तता, जैसी इस अनुच्छेद के खंड (3) में वर्णित है, उस खंड के अधीन नहीं हुई है इस संविधान के प्रारम्भ से पहले ऐसी रिक्तता की पूर्ति के लिये पग उठाया जा सकेगा किंतु ऐसे प्रारम्भ से पहले उस रिक्तता की पूर्ति के लिये चुने हुए किसी व्यक्ति को उक्त सभा में अपना स्थान ग्रहण करने का हक तब तक न होगा जब तक कि रिक्तता इस प्रकार न हो जाये।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 311 का खंड (4) संविधान का अंग बना लिया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 311, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 311, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 312-च

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 312-ङ के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाए:-

Provision as to the filling of casual vacancies in the provisional Parliament and provisional legislatures of the States.

'312.F (1) Casual vacancies in the seats of members of the provisional Parliament functioning under clause (1) of article 311 of this Constitution [including vacancies referred to in clauses (3) and (3a) of that article] shall be filled, and all matters in connection with the filling of such vacancies (including the decision of doubts and disputes arising out of, or in connection with elections to fill such vacancies) shall be regulated—

(a) in accordance with such rules as may be made in this behalf by the President, and

(b) until rules are so made, in accordance with the rules relating to the filling of casual vacancies in the Constituent Assembly of the Dominion of India and matters connected therewith in force at the time of the filling of such vacancies or immediately before the commencement of this Constitution, as the case may be, subject to such exceptions and modifications as may be made therein before such commencement by the President of that Assembly and thereafter by the President of the Union:

Provided that where any such seat as is mentioned in this Article is, immediately before it becomes vacant, held by a person belonging to the

Scheduled Castes or to the Muslim or the Sikh community and representing a State for the time being specified in Part I of the First Schedule, the person to fill such seat shall, unless the President of the Constituent Assembly or the President of the Union, as the case may be, considers it necessary or expedient to provide otherwise, be of the same community:

Provided further that an election to fill any such vacancy in the seat of a member representing a State for the time being specified in Part I of the First Schedule, every member of the Legislative Assembly of that State shall be entitled to participate and vote.' "

अन्तर्कालीन संसद तथा राज्यों के अन्तर्कालीन विधान मंडलों में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के बारे में उपबन्ध।

[312.च (1) इस संविधान के अनुच्छेद 311 के खंड (1) के अधीन कृत्यकारिणी अन्तर्कालीन संसद के सदस्यों के स्थानों में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति, जिस के अन्तर्गत उस अनुच्छेद के खंड (3) और (3क) में निर्दिष्ट रिक्ततायें भी हैं तथा ऐसी रिक्तताओं की पूर्ति से सम्बद्ध सब विषयों का (जिनके अन्तर्गत ऐसी रिक्तताओं की पूर्ति के लिये निर्वाचनों से उद्‌भूत या संसक्त शंकाओं और विवादों का विनिश्चय करना भी है) विनियमन—

(क) राष्ट्रपति उस बारे में जो नियम बनायें, उनके अनुसार, तथा

(ख) जब तक इस प्रकार नियम न बने तब तक यथास्थिति भारत डोमीनियन की संविधान-सभा में की आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के समय, अथवा इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वैसी रिक्तताओं की पूर्ति से तथा तत्संसक्त विषयों से सम्बद्ध प्रवृत्त नियमों में, वैसे प्रारम्भ से पहले उस सभा का सभापति तथा तत्पश्चात् संघ का राष्ट्रपति जो अपवाद और रूप भेद करे उनके अधीन रह कर उन नियमों के अनुसार, होगा:

परन्तु जहां ऐसा कोई स्थान, जैसा कि इस खंड में वर्णित है, रिक्त होने से ठीक पहले ऐसे व्यक्ति द्वारा धारित था जो अनुसूचित जातियों का अथवा मुस्लिम या सिख समुदाय का है तथा यथास्थिति किसी प्रांत का अथवा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उल्लिखित किसी राज्य का प्रतिनिधित्व करता रहा है वहां जब तक कि यथास्थिति संविधान सभा का सभापति अथवा भारत का राष्ट्रपति

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अन्यथा उपबन्ध करना आवश्यक या वांछनीय न समझे तब तक ऐसे स्थान की पूर्ति करने वाला व्यक्ति उसी समुदाय का होगा:

परन्तु यह और भी कि किसी प्रांत या प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उल्लिखित किसी राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य के स्थान में ऐसी किसी रिक्तता की पूर्ति करने के लिये निर्वाचन में यथास्थिति उस प्रांत की या तत्स्थानी राज्य की या उस राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक सदस्य को भाग लेने और मत देने का हक होगा।]

अब मैं अपना संशोधन संख्या 205 उपस्थित करूंगा जिसमें दूसरी व्याख्या को रखने का प्रस्ताव रखा गया है।

"सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च के खंड (1) की व्याख्या के स्थान पर यह व्याख्या रखी जाए:

'Explanation—For the purposes of this clause—

(a) all such castes, races or tribes or parts of or groups within castes, races or tribes as are specified in the Government of India (Scheduled Castes) Order, 1936, to be Scheduled Castes in relation to any Province shall be deemed to be Scheduled Castes in relation to that Province or the corresponding State until a notification has been issued by the President under clause (1) of article 300A specifying the Scheduled Castes in relation to that corresponding State;

(b) all the Scheduled Castes in any Province or State shall be deemed to be a single community.' "

[*व्याख्या*—इस खंड के प्रयोजन के लिए—

(क) जो सब जातियों, मूलवंश या आदिमजातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या आदिमजातियों को जो भाग या में के जो यूथ भारत-शासन (अनुसूचित जाति) आदेश 1936 में किसी प्रांत के संबंध में अनुसूचित जातियों के नाम से उल्लिखित हैं वे तब तक उस प्रांत अथवा तत्स्थानी राज्य के संबंध में अनुसूचित जातियां समझी जायेंगी जब तक कि उस तत्स्थानी राज्य के संबंध में अनुच्छेद 300-क के खंड (1) के अधीन अनुसूचित जातियों को उल्लिखित करने की अधिसूचना राष्ट्रपति द्वारा न निकाल दी गई हो;

(ख) किसी प्रांत या राज्य में की सब अनुसूचित जातियां एक ही समुदाय समझी जायेंगी।]

अब मैं उपखंड (2) उठाता हूं:

"(2) Casual vacancies in the seats of members of a House of the provisional Legislature of a State functioning under article 312 or article 312C of this Constitution shall be filled, and all matters in connection with the filling of such vacancies (including the decision of doubts and disputes arising out of or in connection with elections to fill such vacancies) shall be regulated in accordance with such provisions governing the filling of such vacancies and regulating such matters as were in force immediately before the commencement of this Constitution subject to such exceptions and modifications as the President may by order direct."

[(2) अनुच्छेद 312 या अनुच्छेद 312-ग के अधीन कृत्यकारी राज्य के विधान-मंडल के सदन में के सदस्यों के स्थानों में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति तथा ऐसी रिक्तताओं की पूर्ति से संसक्त सब विषयों का (जिनके अन्तर्गत ऐसी रिक्तताओं की पूर्ति के लिये निर्वाचनों से उद्भूत या संसक्त शंकाओं और विवादों का विनिश्चय भी है) विनियमन, ऐसी रिक्तताओं की पूर्ति को शासित तथा ऐसे विषयों का विनियमन करने वाले ऐसे उपबन्धों के अनुसार, जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले प्रवृत्त थे, ऐसे अपवादों और रूप भेदों के अधीन रहकर, जैसे राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्देशित करे, होगा।]

मेरे विचार से इस संबंध में किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। ये उपबन्ध स्पष्ट हैं। यदि बहस में कोई प्रश्न उठाया गया तो मुझ से जैसी भी व्याख्या बन पड़ेगी मैं करूंगा।

***अध्यक्ष:** इस संबंध में चार या पांच संशोधन हैं? संशोधन संख्या 179, श्री शिब्बन लाल सक्सेना।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, छापे की कुछ गलतियां रह गई हैं। मैं अपना संशोधन इस रूप में उपस्थित करता हूं–

"सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च के खंड (1) से उसका पहला परन्तुक निकाल दिया जाए।"

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च के खंड (2) 'as the President may by order direct' (जैसे राष्ट्रपति

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

आदेश द्वारा निर्देशित करे) शब्दों के स्थान पर 'as the Parliament may by law provide' (जैसे संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे) शब्द रखे जाएं।"

श्रीमान, इस अनुच्छेद में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के संबंध में उपबन्ध हैं और खंड (1) के परन्तुक का आशय यह है कि इस सभा में जिन सदस्यों के स्थान रिक्त हों उन्हीं के समुदाय के लोग उन्हें भरें। मैं चाहता हूं कि यह परन्तुक निकाल दिया जाए। मैं मुख्यतः इस कारण इस परन्तुक को निकालना चाहता हूं: सभी अल्पसंख्यक समुदायों की सहमति से हमने संविधान में यह उपबन्धित किया है कि अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिये किसी प्रकार के स्थान रक्षित नहीं रखे जायेंगे। इस परन्तुक के फलस्वरूप अनुसूचित जातियों को कोई लाभ नहीं होगा। अनुसूचित जातियों को उनकी जनसंख्या के आधार पर इस सभा में लगभग 45 स्थान मिलने चाहिये थे किन्तु उन्हें लगभग 28 स्थान ही प्राप्त हैं। यदि इस परन्तुक का अक्षरशः अनुसरण किया गया तो उनके प्रति न्याय नहीं होगा।

श्रीमान, अन्य लोगों के संबंध में हम यह निर्णय कर चुके हैं कि सामान्य निर्वाचनों में उनके लिये कोई स्थान रक्षित नहीं किये जाने चाहिये। यह मेरी समझ में नहीं आता कि यह क्यों विचार किया जाता है कि प्रांतों में विधान-मंडलों के सदस्य उनके प्रति न तो उदारता ही दिखायेंगे और न न्याय ही करेंगे। यदि देश के निरक्षर लोगों पर इसके लिये विश्वास किया जाता है कि वे अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों को यथोचित अनुपात में निर्वाचित करेंगे तो प्रांतों के विधान-मंडलों के सदस्यों का और भी अधिक विश्वास किया जाना चाहिये। वे ज्ञानवान तथा उत्तरदाई लोग होंगे और सभी प्रश्नों पर विचार करेंगे तथा अल्पसंख्यकों को यथोचित संख्या में ही नहीं बल्कि उससे कहीं अधिक संख्या में निर्वाचित करने का प्रयास करेंगे। चूंकि प्रांतीय विधान सभाओं के अधिकांश सदस्य कांग्रेसजन होंगे, और कांग्रेस संसदीय मंडली खड़े किये जाने वाले उम्मीदवारों की सूची तैयार करेगी, इसलिये मुझे विश्वास है कि वे सभी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति न्याय करेंगे। इसलिये श्रीमान, मैं नहीं चाहता कि हमारे संविधान में यह विकृत परन्तुक रहे। मुसलमानों, सिखों तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति कांग्रेस की संसदीय मंडली तथा प्रांतीय विधान-सभायें अवश्य ही बहुत अच्छा व्यवहार करेंगी। इस परन्तुक के फलस्वरूप वे उतने अच्छे व्यवहार की आशा नहीं कर सकते, क्योंकि उसके अधीन उन्हें केवल वही सीमित स्थान प्राप्त होंगे जो उन्हें इस समय प्राप्त हैं। अनुसूचित जातियों के लिये तो यह व्यवस्था ही है क्योंकि उसके अधीन इस सभा के लिये अनुसूचित जातियों के सदस्य तभी निर्वाचित किये जा सकेंगे जब अनुसूचित जातियों के स्थान रिक्त होंगे। इससे मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल ने उनके प्रति जो न्याय किया था वह चिरस्थाई हो जायेगा। मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल ने उन्हें विधान-मंडलों में प्रतिनिधित्व के अनुपात से स्थान प्रदान किये। इसलिये खंड (1) के परन्तुक को निकाल देना चाहिये क्योंकि हमारी दृष्टि में जो उद्देश्य है उसकी इससे पूर्ति नहीं होगी। मेरे विचार से मुसलमानों और सिखों की यह धारणा नहीं है कि केन्द्रीय विधान मंडल के लिये जो उप-निर्वाचन होंगे उनमें उन्हें यथोचित स्थान प्राप्त नहीं होंगे। अनुसूचित जातियों के

लोग भी यह नहीं चाहते कि जो स्थान उन्हें इस समय प्राप्त है वही उनके पास रहे। वे अधिक स्थान चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति इस उपबन्ध को निकालने से ही हो सकती है।

अपने संशोधन संख्या 180 द्वारा मैं आकस्मिक रिक्तताओं के संबंध में जो शब्द, अर्थात् "जैसे राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्देशित करे" शब्द प्रयुक्त हैं उनके स्थान पर "जैसे संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे" शब्दों को रखना चाहता हूं। इसे मैं उन्हीं कारणों से उपस्थित कर रहा हूं जिन्हें मैं पहले संशोधन के संबंध में बता चुका हूं। मेरे विचार से स्थानों को भरने के बारे में नियम बनाने के संबंध में अन्तिम प्राधिकार संसद को ही प्राप्त होना चाहिये। इस संबध में राष्ट्रपति को भी पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिये। जो सभा संविधान बना रही है वही संसद भी होगी। आखिर वह आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के नियमों को मंजूर क्यों न करे? मेरे विचार से न्यायोचित यही है। राष्ट्रपति के स्थान पर यह अधिकार संसद को प्राप्त होना चाहिये।

श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312 च के खंड (1) के पहले परन्तुक में 'the Scheduled Castes or' (अनुसूचित जातियों का अथवा) शब्दों के पश्चात् 'Scheduled Tribes' (अनुसूचित आदिम-जातियों का) शब्द प्रविष्ट किये जाएं।"

डॉ. अम्बेडकर ने जो नवीन संशोधन उपस्थित किया है उसमें उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि उसके अन्तर्गत सभी जातियां, मूलवंश, आदिम-जातियां अथवा जातियों में के यूथ आ जाते हैं। ताकि नवीन संशोधन में जो कुछ कहा गया है वह अनुच्छेद के अनुरूप हो सके इसलिये अच्छा यह होगा कि "अनुसूचित जातियों" शब्दों के पश्चात् "अनुसूचित आदिम-जातियों" शब्द रखे जाएं। इस अनुच्छेद के संबंध में मैं सामान्यतः यह निवेदन करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 311 पर विचार-विमर्श करते समय मैं यह स्पष्ट कर चुका हूं कि अन्तर्कालीन संसद में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व अपर्याप्त है। मैं डॉ. अम्बेडकर को यह स्पष्ट करने के लिये धन्यवाद देता हूं कि राष्ट्रपति इस अपर्याप्त प्रतिनिधित्व पर विचार करेंगे और अनुसूचित जातियों को जितने स्थान मिलने चाहिये उतने स्थान उनको प्रदान करेंगे। मैं पहले परन्तुक के अन्तिम वाक्य का स्वागत करता हूं, जो इस प्रकार है: "जब तक कि यथा स्थिति संविधान-सभा का सभापति अथवा भारत का राष्ट्रपति अन्यथा उपबन्ध करना आवश्यक या वांछनीय न समझे तब तक ऐसे स्थान की पूर्ति करने वाला व्यक्ति उसी समुदाय का होगा।" आरम्भ में यह विचार किया गया था कि चूंकि संविधान सभा में हमने केवल 28 सदस्य लिये थे इसलिये अन्तर्कालीन संसद में भी केवल 28 ही सदस्य लिये जायेंगे। बाद में यह विचार किया गया कि यदि किसी समुदाय के किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो तो उसी समुदाय का एक व्यक्ति निर्वाचित होगा। यह एक कमी थी। प्रश्न यह था कि क्या अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाने की भी संभावना थी। इस संशोधन के फलस्वरूप, अथवा जो उपबन्ध रखा गया है उसके फलस्वरूप, मुझे विश्वास है कि अनुसूचित जातियों को जितने स्थान मिलने चाहिये उतने स्थान उनको मिल जायेंगे। इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** (पूर्वी पंजाब: जनरल): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि: "सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312'च के खंड (1) के पहले परन्तुक में से 'or to the Muslim or the Sikh Community' (अथवा मुस्लिम या सिख समुदाय का) शब्द निकाल दिये जाएं और 'be of the same community' (उसी समुदाय का होगा) शब्दों के स्थान पर 'belong to the Scheduled Caste' (अनुसूचित जाति का होगा) शब्द रखे जाएं।"

जहां तक आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति का सम्बन्ध है मैं यह चाहता हूं कि प्रान्तों तथा केन्द्र के विधान मंडलों के सम्बन्ध में जिन आधारभूत सिद्धान्तों को हमने स्वीकार किया है उनका अनुसरण किया जाये। हमने यह निर्णय किया है कि पृथक निर्वाचन-मंडलों को समाप्त करके उनका स्थान सामान्य निर्वाचन-मंडल ले लेंगे और मुसलमान तथा सिखों के लिये स्थान रखित नहीं रखे जायेंगे तथा अनुसूचित जातियों के लिए स्थान रक्षित किये जायेंगे और वे सामान्य स्थानों के लिये भी खड़े हो सकते हैं। यदि इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है तो मैं जिस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं वह तर्कयुक्त कहा जाता है। यह तर्क मेरी समझ में आता है कि चूंकि पुरानी सभा ही आगामी विधान-सभा का रूप धारण करेगी, इसलिये विभिन्न समुदायों का प्रतिनिधित्व पूर्ववत रहे। किन्तु यह तर्क न्याय संगत नहीं है और साथ ही इस सिद्धान्त का भी परित्याग किया गया है। पहली बात यह है कि विभिन्न समुदायों के वर्तमान सदस्य पृथक निर्वाचन-मंडलों के आधार पर निर्वाचित किये गये थे, जिन्हें दूसरे परन्तुक में समाप्त कर दिया गया है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि राज्य की विधान सभा के प्रत्येक सदस्य को निर्वाचन में भाग लेने तथा मत देने का अधिकार होगा जिसका अर्थ यह है कि आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के लिये हमने पृथक निर्वाचन-मंडलों के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन-मंडलों के सिद्धान्त को अपनाया है। यदि इस परन्तुक को इसी रूप में रहने दिया गया तो इसका अर्थ यह होगा कि मुसलमानों और सिखों को भी, आकस्मिक रिक्तताओं के होने पर, सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने का अधिकार होगा। इस सम्बन्ध में भी इस परन्तुक में मूल सिद्धान्त का खण्डन किया गया है। जब हमने दो आधारभूत सिद्धान्तों का अर्थात् पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के सिद्धान्त का और सिखों और मुसलमानों को सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने की आज्ञा देने के सिद्धान्त का, परित्याग किया है तो समझ में नहीं आता कि सिखों तथा मुसलमानों के लिये जगहें रक्षित न रखने के सिद्धान्त को प्रभाव में क्यों नहीं लाया जाता। जहां तक स्थानों को रक्षित रखने का सम्बन्ध है, हम यह जानते हैं कि इस सभा के सभी समझदार मुसलमान तथा सिखों ने स्वयं इस व्यवस्था का परित्याग किया। यह नहीं कहा जा सकता कि इस सभा ने उन्हें यह निर्णय करने के लिये बाध्य किया। मुसलमानों में दो वर्ग थे। जो लोग पृथक निर्वाचन-मंडल चाहते थे उन्होंने इस सभा में अपने प्रस्ताव रखे और इस व्यवस्था का स्वेच्छा से परित्याग नहीं किया। किन्तु उनमें ऐसे लोग भी थे जिन्होंने आगे बढ़कर कहा कि उन्हें रक्षणों की आवश्यकता नहीं है। इन लोगों को इस उपबन्ध से सख्त चोट पहुंचेगी। सिखों ने भी यही किया। उन्होंने रक्षणों का स्वेच्छा से परित्याग किया। अब इस पूर्व स्वीकृत सिद्धान्त का परित्याग करने से सिखों को हर्ष नहीं होगा।

यदि यह संविधान 1947 में बनता तो मैं यह कह सकता हूं कि मुसलमानों तथा सिखों के लिये रक्षण रखे जाते। पिछले दो वर्षों में हमें जो अनुभव हुआ है उसकी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अब इस व्यवस्था को बनाये रखना बिल्कुल गलत है और मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि वह उसी सिद्धान्त को स्वीकार करे जो उसने आगामी निर्वाचनों के सम्बन्ध में अपनाया है, अर्थात् उसे मुसलमानों और सिखों के लिये स्थान रक्षित न रखने के सिद्धान्त को अपनाना चाहिये। यदि हमारे मुसलमान तथा सिख मित्र यह चाहते हैं कि सिखों ओर मुसलमानों के जो स्थान रिक्त हों उनके लिये उन्हें समुदायों के लोग खड़े हों तो इसकी व्यवस्था एक प्रथा द्वारा की जाये। मैं यह नहीं चाहता कि उन्हें कोई स्थान न मिले किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि स्थानों के रक्षण के सिद्धान्त का उल्लेख करके जिसका सिख और मुसलमान स्वयं परित्याग कर चुके हैं, इस संविधान को कुरूप न बनाया जाये।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं कि:

> "सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च के खण्ड (1) के पहले परन्तुक में, 'Muslim or the Sikh Community' (मुस्लिम या सिख समुदाय) शब्दों के स्थान पर 'Muslim, Christian, Sikh Community or by a woman' (मुस्लिम, ईसाई, सिख, समुदाय का है अथवा कोई स्त्री है) शब्द रखे जायें और उक्त परन्तुक के अन्त में 'or sex, as the case may be' (अथवा लिंग, यथास्थिति) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, इस संशोधन को उपस्थित करते हुए मैं आत्म-लाघव का अनुभव कर रही हूं और मैं यह भी अनुभव करती हूं कि इसकी थोड़ी बहुत निन्दा भी की जायेगी। किन्तु मेरी यह धारणा है कि चाहे जो हो मुझे अपनी बात कहनी ही चाहिये। इस समय जो परन्तुक विचाराधीन है उसमें यह उपबन्धित है कि अन्तर्कालीन संसद में जो आकस्मिक रिक्तताएं होंगी उनमें से जो स्थान सिख अथवा मुसलमान समुदाय के होंगे उनके लिये उन्हीं समुदायों के लोग खड़े किये जायेंगे। अपने संशोधन द्वारा मैंने यही व्यवस्था महिलाओं के लिये भी करने का प्रस्ताव रखा है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूं कि महिलाओं को स्थानों के रक्षण की आवश्यकता नहीं है कि किन्तु इस सभा के सामने मैं यह सुझाव रखना चाहती हूं कि इस समय इस सभा में जितनी महिलाएं हैं उनमें से यदि किसी का स्थान रिक्त हुआ तो उसके लिये महिला ही खड़ी की जाए। पहले भी इस सभा में आकस्मिक रिक्तताएं हुई हैं। अभी तक तीन महिलाओं के स्थान रिक्त हुए हैं; जिनमें से एक स्वर्गवासी श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं; दूसरी श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित थीं और तीसरी श्रीमती मालती चौधरी थीं। इन तीन महिलाओं को कई कारणों से इस सभा से जाना पड़ा। श्रीमती सरोजिनी नायडू की पदपूर्ति तो न कोई पुरूष कर सकता है और न कोई स्त्री। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित बहुत योग्य हैं और श्रीमती मालती चौधरी

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

भी सुयोग्य हैं। इन महिलाओं के स्थानों पर पुरुष निर्वाचित हुए हैं। जो माननीय सदस्य उनके स्थानों के लिये निर्वाचित हुए हैं उनका मैं अपमान नहीं कर रही हूं, और मुझे विश्वास है कि वह इस सभा के सुयोग्य सदस्य हैं, किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगी कि इतनी ही सुयोग्य महिलाएं भी इन स्थानों के लिये निर्वाचित की जा सकती थीं उन्हें खड़े होने के लिये आमंत्रित करना था। चूंकि अब राज्य का स्वरूप ही बदल गया है और अब वह पुलिस राज्य नहीं रह गया है इसलिये अब शिक्षा और स्वास्थ्य के समान सामाजिक विषय उसकी विकास योजना में मुख्य स्थान रखते हैं। मेरी यह धारणा है कि महिलाओं का राजनैतिक क्षेत्र में जाना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। इसलिए मेरे विचार से, उनका इस सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिये। अपने संशोधन द्वारा मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि यदि महिलाओं को अधिक स्थान नहीं दिये जा सकते तो इस सभा में जो आकस्मिक रिक्तताएं हों उनमें से जो स्थान महिलाओं के हों कम से कम उनके लिये वही निर्वाचित की जायें। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन उपस्थित करती हूं।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद तथा इससे सम्बद्ध संशोधनों पर अब बहस हो सकती है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद अन्तर्कालीन संसद तथा राज्यों के अन्तर्कालीन विधान-मंडलों में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में है। इस अनुच्छेद के उपबन्ध अच्छे हैं किन्तु वे इससे भी अच्छे बनाये जा सकते थे। अनुच्छेद 312-च के मसौदे को सावधानी से पढ़ने से मेरे मस्तिष्क में जो प्रश्न उठे हैं अथवा जो सन्देह उत्पन्न हुए हैं, उनकी ओर मैं अपने माननीय सहकारियों का ध्यान आकृष्ट करता हूं। मैं पहले इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) की ओर उनका ध्यान दिलाता हूं। उपखण्ड (ख) में यह उपबन्धित है कि संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् आकस्मिक रिक्तताओं का विनियमन जहां तक हमारे पारित किये हुए नियमों के रूपभेदों तथा अपवादों का सम्बन्ध है, संघ का राष्ट्रपति करेगा यह मेरी समझ में आता है कि सभा का अध्यक्ष, संविधान के प्रारम्भ के पूर्व, रुपभेदों और अपवादों को सभा के समक्ष नहीं रखेगा। किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता कि संविधान के प्रारम्भ होने पर तथा अन्तर्कालीन संसद के अपना कार्य आरम्भ करने पर संघ के राष्ट्रपति द्वारा बनाये हुए नियम संसद के विचारार्थ उसके समक्ष क्यों नहीं रखे जायेंगे। इस सभा को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष पूर्व हमने जिन नियमों को स्वीकार किया था उनमें जब संशोधन तथा रूपभेद करने का विचार किया गया तो उन रूपभेदों को इस सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया और सभा ने नियमित रूप से उन्हें स्वीकार किया। इसलिये इस प्रसंग में भी, जहां तक संघ के राष्ट्रपति का सम्बन्ध है, जब संसद कार्य करने लगे तो संविधान की तथा लोकतंत्र की दृष्टि से यह आवश्यक है कि जब वह कोई आज्ञप्ति निकालें अथवा नियम बनाये तो उन्हें अन्तर्कालीन संसद के समक्ष रखा जाये। संविधान के प्रारम्भ के पूर्व यह हो सकता है कि राष्ट्रपति को सभा के समक्ष नियम रखने के लिये समय ही न मिले किन्तु संविधान के प्रारम्भ होने पर संघ के राष्ट्रपति को नियमों में किये हुए अपवादों तथा रूपभेदों को अन्तर्कालीन संसद की मंजूरी के लिये उसके विचारार्थ उसके सामने रखना चाहिये। पहली बात यह है।

दूसरी बात इस अनुच्छेद की व्याख्या के प्रथम भाग के सम्बन्ध में है। उसमें कहा गया है कि "किसी राज्य में की सब अनुसूचित जातियां एक ही समुदाय समझी जायेंगी। मैं नहीं चाहता कि केवल अनुसूचित जातियों के लिये ही "समुदाय" शब्द प्रयोग किया जाए। मुझे विश्वास है कि यह सभा मेरे इस कथन से सहमत होगी कि बहुत पहले हम यह निर्णय कर चुके हैं कि अनुसूचित जातियों का एक पृथक समुदाय नहीं है और वे महान हिन्दू समुदाय के अंग हैं इस सभा ने यह निर्णय किया है। इसलिये व्याख्या के इस भाग में, मेरे विचार से एक बहुत ही पुरानी विचार धारा का समावेश है। हम इस मिथ्या धारणा से अभी पीछा नहीं छुड़ा सके हैं कि अनुसूचित जातियों का भी एक समुदाय है। उन्हें उपसमुदाय अथवा हिन्दू समुदाय का एक समूह कहिये। मुझे विश्वास है कि इस सम्बन्ध में इस सभा में सभी लोग सहमत होंगे इसलिये मैं मसौदा-समिति से, तथा इस सभा से, प्रार्थना करता हूं कि व्याख्या के इस भाग में यथोचित संशोधन किया जाए तो कि अनुसूचित जातियों का हिन्दू समुदाय के अंग के रूप में, न कि एक पृथक समुदाय के रूप में, वर्णन हो।

इसके अतिरिक्त मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने भी एक प्रश्न उठाया है। मेरे विचार से उनके इस कथन में बहुत बल है कि हाल में हमने सिखों और मुसलमानों के लिये कोई रक्षता न रखने के सम्बन्ध में जो निर्णय किये, उन्हें ध्यान में रखते हुए अन्तर्कालीन संसद में इस व्यवस्था को बनाये रखना उचित नहीं है। खण्ड (1) के इस परन्तुक में पर्याप्त रक्षण हैं:

> ".....जब तक कि यथास्थिति संविधान-सभा का सभापति अथवा भारत का राष्ट्रपति अन्यथा उपबन्ध करना आवश्यक या वांछनीय न समझे तब तक...।'

यह रक्षण है। निस्सन्देह किसी विशेष मामले में वह यह उपबन्धित कर सकता है कि आकस्मिक रिक्तता की पूर्ति कोई ऐसा सदस्य करेगा जो उसी समुदाय का न हो और सिखों और मुसलमानों के लिये स्थान रक्षित नहीं रखे जायेंगे तथा उसका निर्वाचन संयुक्त निर्वाचन-मंडलों के आधार पर होगा। किन्तु मुझे आशा है कि भविष्य में जब कभी आकस्मिक रिक्तताएं होंगी उनकी पूर्ति के समय सभा का अध्यक्ष और संघ का राष्ट्रपति प्रश्न के इस अंग को ध्यान में रखेगा। वास्तव में जनसंख्या के अनुसार मुसलमानों और सिखों को जितने स्थान मिलने चाहिये उनसे अधिक स्थान हम उनमें से सुयोग्य लोगों को दे सकते हैं किन्तु स्थानों के रक्षण तथा पृथक निर्वाचक-मंडलों की जिस व्यवस्था को हम समाप्त कर चुके हैं उसे हम बनाये न रखें और अन्तरिम काल में भी बनाये न रखें। इसलिये मेरी यह इच्छा है कि सभा आज यह स्पष्ट कर दे कि जहां तक मुसलमानों और सिखों के स्थानों में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति का सम्बन्ध है, जनसंख्या अथवा पृथक निर्वाचन-मंडलों के आधार पर, स्थानों के रक्षण कर कोई विचार नहीं किया जायेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** पृथक निर्वाचन-मंडलों के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** अनुच्छेद 311 में, जिसे हमने कल पारित किया था, यह कहा गया है कि राष्ट्रपति नियम द्वारा अन्तर्कालीन संसद में उन राज्यों के

[श्री एच.वी. कामत]

प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रख सकता है, जिनका प्रतिनिधित्व नहीं हुआ हो, इत्यादि। सभा को स्मरण होगा कि इस सभा के लिये भी निर्वाचन पृथक निर्वाचन-मंडलों अर्थात सामान्य, मुस्लिम और सिख निर्वाचक-मंडलों के आधार पर निर्वाचन हुआ था। यदि हम किसी अनुच्छेद में यह स्पष्ट नहीं करते हैं कि आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति करने में इस सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया जायेगा तो भविष्य में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में सन्देह हो सकता है और मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल की योजना का ही अनुसरण किया जा सकता है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि इस अनुच्छेद में अथवा अन्यत्र हम यह उपबन्धित करें कि कहीं भी पृथक निर्वाचन-मंडल नहीं होंगे और आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के लिये भविष्य में सभी निर्वाचन संयुक्त निर्वाचन-मंडलों के आधार पर होंगे।

इसके अतिरिक्त मेरी मित्र श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने भी एक प्रश्न उठाया है। यद्यपि उन्होंने स्त्रियों के लिये विशेष रक्षणों के लिये तर्क नहीं उपस्थित किया है किन्तु, मेरे विचार से, इसके लिये सभा आसानी से सहमत हो सकती है। उन्होंने यहां तक कहा कि श्रीमती सरोजिनी नायडू के रिक्त स्थान की पूर्ति पुरूषों में से कोई नहीं कर सकता। मैं कह नहीं सकता कि उनका आशय क्या था किन्तु इस कारण मैं उनसे झगड़ा नहीं करना चाहता। यदि इस सभा में अधिक महिलाएं हों तो मुझे कोई आपत्ति न हो, और वास्तव में हर्ष हो, किन्तु इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में उन्हें इस प्रश्न को नहीं उठाना चाहिये। यदि मैं उन्हें ठीक सुन पाया तो उन्होंने यह कहा कि महिलाओं को इस समय प्रशासन के कार्य के लिये जितना अवसर मिलता है उससे अधिक अवसर उन्हें दिया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में, अर्थात् प्रशासन कार्य के लिये महिलाओं की योग्यता के सम्बन्ध में; राजनैतिक दार्शनिकों ने यह आपत्ति की है कि स्त्रियों पर हृदय का शासन रहता है और मस्तिष्क का शासन नहीं रहता। शासन-कार्य में अनेक प्रकार की स्त्रियों तथा पुरुषों से बड़ी सावधानी से व्यवहार करना होता है। यदि मस्तिष्क सावधान नहीं रह पायेगा तो स्त्रियों को शासन कार्य में कठिनाई होगी। यदि हृदय का शासन रहेगा और मस्तिष्क का स्थान गौण रहेगा तो, जैसा कि विचारशील पुरुषों तथा स्त्रियों का भी विचार है, शासन कार्य में थोड़ी बहुत गड़बड़ हो जायेगी और वह सुचारू ढंग से नहीं चलेगा। किन्तु मैं इस प्रश्न पर और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। मैं आशा करता हूं कि सभा इस प्रश्न को लेकर कि जब कभी किसी महिला का स्थान रिक्त होगा तो उस स्थान के लिये महिला ही निर्वाचित होगी, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी से नहीं झगड़ेगी।

एक प्रश्न इस अनुच्छेद की व्याख्या (2) के सम्बन्ध में भी उठता है। वह राज्यों के अन्तर्कालीन विधान-मंडलों में होने वाली आकस्मिक रिक्तताओं के सम्बन्ध में है। यह सच है कि राज्यों के विधान-मंडलों के सम्बन्ध में संविधान में निर्वाचन सम्बन्धी उपबन्ध रखे गये हैं। किन्तु अन्तरिम काल के सम्बन्ध में; इस पर विचार करते हुए कि हाल में समाविष्ट तथा अन्य इसी प्रकार के कारणों से देशी राज्यों में तथा राज्यपाल-प्रान्तों में भी बहुत से परिवर्तन हुए हैं; मेरे विचार से इस विषय से सम्बन्ध में; अर्थात् अन्तरिम काल में राज्य के विधान-मंडलों में आकस्मिक

रिक्तताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में; यदि राष्ट्रपति राज्य के अथवा प्रान्त के राज्यपाल से परामर्श करेगा तो कोई हानि नहीं होगी और लाभ ही होगा। प्रान्तों में तथा राज्यों में राज्यपालों को मंत्री परामर्श देते रहेंगे, इसलिये उसे सभी स्थानीय घटनाओं की सूचना होगी और वह इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को यथोचित परामर्श दे सकेगा। इसलिये मेरे विचार से, समझदारी इसी में है कि यह उपबन्धित किया जाये कि व्याख्या (2) में निर्दिष्ट विषय के सम्बन्ध में संघ का राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल से परामर्श करेगा। श्रीमान, मुझे आशा है कि जो प्रश्न मैंने उठाया है उस पर मसौदा समिति तथा यह सभा ध्यानपूर्वक विचार करेगी और इस समय, अथवा संविधान के तीसरे पठन के अवसर पर, इस आशय की पूर्ति के लिये इस अनुच्छेद में यथोचित समाविष्ट करेगी।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** अध्यक्ष महोदय, नवीन अनुच्छेद 312-च अन्तर्कालीन संसद तथा राज्यों के विधान-मंडलों में आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में है। कुछ बातों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करना चाहता हूं।

अभी हमने जिस अनुच्छेद (अर्थात् अनुच्छेद 311) को पारित किया है उसके अधीन उन सदस्यों को, जो दो विधान-मंडलों के सदस्य हैं, इस सभा से चला जाना होगा। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि लोगों के वास्तविक प्रतिनिधि 26 जनवरी, 1950 को इस सभा से चले जायेंगे। अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में इस सभा में फिर वही पुरानी गलती की जा रही है। आरम्भ में हम यह चाहते थे कि हमारी जनसंख्या के आधार पर इस सभा में हमारा प्रतिनिधित्व हो। एक प्रथा इस प्रकार थी कि हरिजनों की प्रत्येक दस लाख की जनसंख्या के लिये इस सभा में एक प्रतिनिधि निर्वाचित होगा। इस सभा में इस समय 28 हरिजन सदस्य हैं जिनमें से दो मंत्री हैं। हरिजनों की जनसंख्या को देखते हुए यहां कम से कम साठ सदस्य होने चाहिये थे। किन्तु अन्तिम अनुच्छेद के अधीन 28 में से 17 हरिजन सदस्य इस सभा से चले जायेंगे। ये लोग हरिजनों के जाने पहिचाने नेता हैं और उनके समुदाय के बुद्धिमान भी यही हैं। इस अनुच्छेद के अधीन संघ के राष्ट्रपति को अथवा संविधान सभा के अध्यक्ष को आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति की शक्ति दी जा रही है तो मेरा एक निवेदन है। मेरा यह निवेदन है कि हरिजन समुदाय में इस कारण सदस्य नहीं मिलते कि उस समुदाय के लोग अशिक्षित हैं। आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के लिये आपको अनुसूचित जातियों में से इतने अधिक सदस्य नहीं मिलेंगे। इसलिये मेरा निवेदन है कि इसकी आवश्यकता है कि इन आकस्मिक रिक्ताओं को पूर्ति करते समय राष्ट्रपति उन सदस्यों के मामलों पर भी विचार करें जो प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्य होने के कारण इस सभा को छोड़ कर जा रहे हैं। जहां तक मेरे प्रान्त का सम्बन्ध है, मैं जानता हूं कि हमें इससे अधिक उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिल सकते। हरिजनों में कुछ लोग हैं किन्तु वे प्रान्तीय-विधान-मंडल के सदस्य हैं। मेरे विचार से अन्य प्रान्तों में भी यही स्थिति होगी। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि जब संघ के राष्ट्रपति अथवा संविधान सभा के अध्यक्ष, आकस्मिक रिक्तताओं के सम्बन्ध में नियम बनायें तो वे हरिजन समुदाय के सदस्यों को स्वेच्छा से निर्णय करने का कुछ अधिकार दें।

[श्री एच.जे. खांडेकर]

दूसरी बात यह है कि इस अनुच्छेद में कहा गया है कि इस सभा से मुसलमानों, सिखों तथा हरिजनों के जितने सदस्य जायेंगे उतने ही उसी समुदाय के सदस्य निर्वाचित होंगे। यहां हमारी संख्या 28 है और 17 सदस्य जा रहे हैं। इस खंड के अधीन 17 सदस्य निर्वाचित होंगे। इस का अर्थ यह है कि स्थिति वही रहेगी। हरिजनों को अधिक प्रतिनिधित्व नहीं प्रदान किया जा रहा है और, जैसा कि मैं कह चुका हूं, पुरानी ही गलती दुहराई जा रही है। मेरा यह सुझाव है। देशी राज्य में हरिजनों की जनसंख्या लगभग एक करोड़ है। मैं बहुत खेद के साथ सभा को यह सूचित करता हूं कि जब देशी राज्यों से सदस्य भेजे गये तो मैसूर के एक सदस्य के अतिरिक्त उनमें से एक सदस्य भी हरिजन नहीं था। मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि आप इस पर विचार करें। मैं कह नहीं सकता कि देशी राज्यों के सदस्य पदत्याग कर रहे हैं या नहीं। यदि वे पद त्याग करें तो मेरा यह सुझाव है कि उनके स्थानों के लिये हरिजन निर्वाचित किये जायें। इसके अतिरिक्त मैं आपके सामने एक उदाहरण भी रखना चाहता हूं। मद्रास में एक प्रथा के अनुसार हमारे समुदाय के आठ सदस्य निर्वाचित होने चाहिये थे, किन्तु केवल सात ही निर्वाचित हुए हैं। एक स्थान अब भी रिक्त है अथवा किसी सवर्ण हिन्दू को दे दिया गया है। वह स्थान किसी हरिजन को दिया जाना चाहिये। मध्य प्रान्त तथा बरार से हमारे तीन सदस्य निर्वाचित होते थे। तीन सदस्य निर्वाचित हुए किन्तु बाद में एक हरिजन सदस्य ने पदत्याग कर दिया।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास: जनरल): उससे पदत्याग करवाया गया।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** उनके स्थान पर एक वर्ण हिन्दू निर्वाचित किया गया। डॉ. रघुवीर, जो मध्य प्रांत से हरिजन सदस्य के स्थान पर निर्वाचित किये गये, मेरे मित्र हैं और उन्होंने यहां भाषा के सम्बन्ध में काम किया हैं। मैं कह नहीं सकता कि वे पदत्याग करेंगे अथवा नहीं क्योंकि वे दो सभाओं के सदस्य नहीं है। दो सभाओं का सदस्य होने के कारण जिस किसी व्यक्ति का स्थान मध्य प्रान्त में रिक्त हो वह किसी हरिजन को दिया जाना चाहिये। मेरी यह प्रार्थना है कि आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में नियम बनाते समय, अथवा उपबन्ध रखते समय, संघ के राष्ट्रपति अथवा संविधान सभा के सभापित, चाहे जो भी हों, हरिजनों को उनके यथोचित स्थान, अर्थात् 60 स्थान, प्रदान करें। संविधान 26 जनवरी, 1950 से प्रवर्तन में आयेगा। संविधान में हमने इस आशय का एक उपबन्ध रखा है कि अन्तर्कालीन संसद में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के आधार पर होगा। मेरी यह प्रार्थना है कि हम संविधान के इस खण्ड को ध्यान में रखें।

मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद में जो व्याख्या रखी है उसका मैं पूर्णतया समर्थन करता हूं। वह अनुसूचित आदिम जातियों तथा अनुसूचित जातियों की सूची के सम्बन्ध में है। जैसे ही यह संविधान प्रवर्त्तन में आयेगा वैसे ही अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों की उन सूचियों का, जो 1935 के अधिनियम में दी हुई हैं; शून्यन हो जायेगा और अन्तरिम काल के लिये कोई सूची नहीं रह जायेगी। इस संविधान के उपबन्धों के अधीन राष्ट्रपति इस सूची को तैयार करेगा और इस सम्बन्ध में घोषणा करेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह अनुसूचित जातियों

के सदस्यों से अथवा संसद से परामर्श करके उसे तैयार करेगा। यह संघ के राष्ट्रपति की स्वेच्छा पर निर्भर है। किन्तु संक्रान्ति काल के लिये एक सूची की आवश्यकता है और उसके सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर की व्याख्या में जो कुछ कहा गया है वह पर्याप्त है। मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री एस. नागप्पा:** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद उन आकस्मिक रिक्तताओं की पूर्ति के सम्बन्ध में है जो दो सभाओं के सदस्यों के अपने स्थानों को रिक्त करने पर होंगी। मेरे माननीय मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले तथा श्री खांडेकर अनुसूचित जातियों की स्थिति स्पष्ट कर चुके हैं। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि अनुसूचित जातियों के लोगों के जो स्थान रिक्त होंगे उनके लिये अनुसूचित जातियों के लोग ही निर्वाचित होंगे और मुसलमानों तथा सिखों के जो स्थान रिक्त होंगे उनके लिये उन्हीं समुदायों के लोग निर्वाचित होंगे। दूसरे शब्दों में जो हिन्दू अनुसूचित जातियों के नहीं हैं उनके स्थान सुरक्षित रहेंगे और उनके लिये वही निर्वाचित होंगे। आरम्भ में जब रिक्तताओं की पूर्ति हुई तो अनुसूचित जातियों के साथ बहुत अन्याय हुआ। मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले तथा श्री खांडेकर इसे स्पष्ट कर चुके हैं। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि संघ का राष्ट्रपति, अथवा संविधान सभा का अध्यक्ष, अन्य कदम भी उठा सकता है, अर्थात् यदि वह सिख और मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य लोगों के स्थानों पर अनुसूचित जातियों के लोगों को लाना चाहे तो वह जितनों को चाहे ला सकता है। मैं न केवल मसौदा-समिति के सभापति से बल्कि संविधान सभा के अध्यक्ष से भी यह आश्वासन चाहता हूं कि अनुसूचित जातियों को जनसंख्या के आधार पर जितना प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये उतना उनको प्राप्त होगा। जो कुछ हुआ है वह हो चुका है। अब 26 जनवरी से अन्तर्कालीन संसद कार्य करेगी। अभी तक हरिजनों का प्रतिनिधित्व दोषपूर्ण रहा है और मैं नहीं चाहता कि गणराज्य में भी उन्हें इसी प्रकार का प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे। देश का, लोगों का, तथा सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया है और मुझे आशा है कि गलती दूर की जायेगी और अनुसूचित जातियों को उनका हक दिया जायेगा।

आखिर यह मांग उचित ही है। हम सीमा का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं। हमें जो मिलना चाहिये उसी की हम मांग कर रहे हैं। हम किसी प्रकार का वज़न नहीं चाहते और किसी का स्थान भी नहीं चाहते और न हम यही कहते हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं। मैं श्री कामत के इस सुझाव से सहमत हूं कि 'समुदाय' शब्द नहीं प्रयोग करना चाहिये। किन्तु मैं यह चाहता हूं कि वर्ग-विभेद रहे। आप हमें भिन्न वर्ग का समझते हैं; यद्यपि भिन्न समुदाय का नहीं समझते। केवल इस कारण कि हम आपके साथ मिल जाते हैं और यहां आप के साथ ही आये हैं, हमारे राजनैतिक अधिकारों का अपहरण नहीं होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** इस खण्ड को पढ़ने पर मुझे यह दिखाई देता है कि अन्य स्थानों से निर्वाचित होने के लिये हरिजनों का अपवर्जन नहीं किया गया है। उसमें केवल

[अध्यक्ष]

यह आश्वासन दिया गया है कि जिन स्थानों को वे रिक्त करेंगे उनके लिये वे अवश्य ही निर्वाचित होंगे। किन्तु उन्हें अन्य स्थानों के लिये निर्वाचित करने की छूट है। आपने यह कहा था कि अन्य हिन्दुओं के स्थान भी रक्षित किये गये हैं। यह बात नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा:** प्रकारान्तर से उसका यही अर्थ है। यदि अनुसूचित जातियों के चार व्यक्ति अपने स्थान रिक्त करेंगे तो उनके लिये चार व्यक्ति निर्वाचित होंगे।

***अध्यक्ष:** यदि उनके पास 27 स्थान हैं तो इसके अधीन 27 व्यक्ति अवश्य ही निर्वाचित होंगे। किन्तु उनके 27 स्थान बढ़कर 54 भी हो सकते हैं। इसके लिये कोई रोक नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा:** इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अनुच्छेद के अधीन वे हिन्दू जो अनुसूचित जातियों के नहीं हैं उसी संख्या में निर्वाचित होंगे।

***अध्यक्ष:** उसमें यह नहीं कहा गया है। उसमें यह आश्वासन दिया गया है कि अनुसूचित जातियों के 27 सदस्य अवश्य ही निर्वाचित होंगे। इससे अधिक और चाहे जितने भी निर्वाचित हों इसकी छूट दी गई है।

***श्री एस. नागप्पा:** मेरा यह निवेदन है कि अनुसूचित जातियों के लोगों को जितने स्थान मिलने चाहिये वे उन्हें मिलें। मुझे इस की चिन्ता नहीं है कि वे स्थान सिखों से लेकर दिये जायें या मुसलमानों से लेकर। मैं यह चाहता हूं कि हमें जितने स्थान मिलने चाहिये वे मिलें। ये स्थान प्रदान किये जायें और नवीन गणराज्य में इस प्रकार का दोषयुक्त प्रतिनिधित्व नहीं रहने दिया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): अब प्रस्ताव पर मत लिया जाए।

***अध्यक्ष:** बहस बन्द करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, इस बहस में केवल एक दो प्रश्न उठाये गये हैं। श्री सक्सेना तथा पंडित भार्गव ने जो प्रश्न उठाया वह अंतरिम काल में मुसलमानों तथा सिखों के प्रतिनिधित्व को बनाये रखने के बारे में है। वे इसे बनाये रखने का विरोध इस कारण करते हैं कि इस संविधान सभा में विचार विमर्श होते समय मुसलमानों और सिखों ने अपने विशेष प्रतिनिधित्व के अधिकार का परित्याग कर दिया था। इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि जो भी व्यवस्था की गई है वह उस स्थाई संसद के लिये की गई है जो इस संविधान के अधीन

निर्मित होगी। इस दशा में यह उचित तथा न्याय संगत नहीं है कि संविधान सभा का स्वरूप बदला जाए और इसे इसी रूप में अन्तर्कालीन संसद का कार्य न करने दिया जाए।

श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी के संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि संविधान सभा में महिलाओं के स्थानों को बनाये रखने के बारे में कोई उपबन्ध रखने की आवश्यकता नहीं है मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि नियम बनाने की अपनी शक्ति की प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति इस ओर ध्यान देगा कि अन्तर्कालीन संसद में कुछ महिला-सदस्य तथा विभिन्न दलों के भी सदस्य आयें।

श्री मुनिस्वामी पिल्ले अपने संशोधन द्वारा अनुसूचित आदिम जातियों के सम्बन्ध में एक नवीन उपबन्ध चाहते हैं। वास्तव में अनुसूचित आदिम जातियों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने के बारे में कोई आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु बात यह है कि इस समय अनुसूचित आदिम जातियों की गणना नहीं की गई है, क्योंकि भारत शासन-अधिनियम 1935 में उनका उल्लेख नहीं किया गया है। भारत-शासन-अधिनियम में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में जहां कहीं आदिम जातियों का उल्लेख है, उनका पिछड़ी हुई आदिम जातियों के रूप में उल्लेख है। यदि मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्ले इस प्रश्न को मसौदा-समिति के निर्णय के लिये छोड़ दें तो वह उनके संशोधन के आशय को कार्यान्वित करने के लिये यथोचित व्यवस्था करेगी।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च का खण्ड (1) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 202 ।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** मैं चाहता हूं कि उस पर मसौदा-समिति ही विचार करे। मैं उस पर मत देने के लिये जोर नहीं देता।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च के खण्ड (2) में 'as the President may by order direct' (जैसे राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेशित करे) शब्दों के स्थान पर 'as the Parliament may by law provide' (जैसे संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं पंडित ठाकुर दास भार्गव के संशोधन संख्या 203 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 164 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 312-च के खण्ड (1) के पहले परन्तुक में से 'or to the Muslim or the Sikh Community' (अथवा मुस्लिम या सिख समुदाय का) शब्द निकाल दिये जायें और 'be of the same community' (उसी समुदाय का होगा) शब्दों के स्थान पर 'belong to the Scheduled Caste' (अनुसूचित जाति का होगा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 204 उठाता हूं।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी:** श्रीमान, मैं चाहती हूं कि मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसे वापस लेने की मुझे आज्ञा दी जाये।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब संशोधन संख्या 205 द्वारा परिवर्तित रूप में मैं इस अनुच्छेद पर मत लूंगा। अर्थात् संशोधन संख्या 205 द्वारा जिस संशोधन संख्या 164 की व्याख्या संशोधित हुई है उस पर मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 312-च, संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 312-च, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुसूचियां 3-क तथा 4

***अध्यक्ष:** अब हमें अनुसूची 3-क को उठाना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, अनुसूची 3-क नहीं उपस्थित की जा रही है। वह सूची से निकाली जा सकती है। विचार यही है।

***अध्यक्षः** इसलिये संशोधनों का प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** किन्तु प्रक्रिया की दृष्टि से उसे उपस्थित करना ही उचित होगा। विचार क्या है? क्या वह स्थगित की जा रही है?

***अध्यक्षः** वह संविधान के मसौदे का अंग नहीं है। वह अनुसूची संशोधन के रूप में रखी गई थी और जब वह संशोधन ही नहीं उपस्थित किया जा रहा है तो उस संशोधन पर संशोधनों का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिये अनुसूची 3-क का, तत्सम्बद्ध सभी संशोधनों के साथ, शून्यन किया जाता है।

अब हम अनुसूची 4 को उठाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि अनुसूची 4 निकाल दी जाये।

***कुछ माननीय सदस्यः** वह निकाली कैसे जा सकती है?

***अध्यक्षः** जहां तक मसौदा-समिति का सम्बन्ध है वह कुछ अनुच्छेदों को निकालने का प्रस्ताव करती रही है। अनुसूची 4 के सम्बन्ध में कुछ संशोधन भी हैं। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि डॉ. अम्बेडकर स्थिति स्पष्ट करें और बतायें कि यह अनुसूची क्यों निकाली जा रही है, क्योंकि सदस्य संशोधनों की सूचना दे चुके हैं। इससे सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री कृष्णमाचारी स्थिति स्पष्ट करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, चौथी अनुसूची की इसलिये आवश्यकता थी कि राष्ट्रपति और राज्यपालों के मंत्रियों से जो सम्बन्ध होंगे उनका वर्णन करने के लिये संविधान में उपबन्ध रखे गये थे। अब यह समझा गया है कि संविधान के एक परिशिष्ट में आदेश-पत्र के रूप में इस विषय का उल्लेख न करके इस सम्बन्ध में एक प्रथा बनने दी जाये बहुत से लोगों की यही सम्मत्ति है। इसलिये संशोधन के रूप में हमने जिस अनुसूची 3-ख को प्रस्तावित किया था उसे तथा संविधान के मसौदे में समाविष्ट अनुसूची 4 को निकालने का निश्चय किया गया है क्योंकि यह विचार किया गया है कि संविधान में इस प्रकार के आदेशों को रखना अनावश्यक है और उचित यही है कि इस समबन्ध में समय-समय पर प्रथायें बनें और राष्ट्रपति तथा राज्यपालों का अपने अपने क्षेत्रों में उनसे पथप्रदर्शन हो। चूंकि यह समझा गया है कि ये अनुसूचियां अनावश्यक हैं इसलिये मैंने दूसरी अनुसूची को निकालने का प्रस्ताव रखा है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसाः जनरल)**:** श्रीमान, मैं भ्रम में पड़ गया हूं। मैं नहीं चाहता कि पूरी अनुसूची 4 को इतनी जल्दी निकाल दिया जाए। गवर्नर-जनरल तथा राज्यपालों की शक्तियों के सम्बन्ध में हम सभी अनुसूचियों को स्वीकार कर लें और यदि मसौदा समिति उनमें से किसी को निकालने की आवश्यकता समझे तो

[श्री बी. दास]

वह बाद में निकाल दी जाये। अब जब हम आज का कार्य समाप्त करने को हैं हमारे समाने एकाएक यह प्रस्ताव रखा गया है कि अनुसूची 4 निकाल दी जाये। हमारे लिये इस स्थिति को समझना कठिन है। मैं यह भी जानना चाहता हूं कि इस विषय पर मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव को क्या कहना है। मैं वकील नहीं हूं। इसलिये मैं जानना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में उनकी क्या सम्मति है। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि अवशिष्ट अनुच्छेदों पर विचार करने के पश्चात् हम अनुसूचियों को निकालने के प्रश्न को उठायें। मेरा यही निवेदन है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यहां केवल एक बात स्पष्ट कराने के लिये आया हूं। मेरी समझ में नहीं आता है कि अनुसूची 4 बिल्कुल ही क्यों निकाली जा रही है। क्या यह समझा जा रहा है कि अब से निर्वाचकों तक उस अनुसूची के किसी अंश को प्रयोग में लाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि यह बात है तो मैं यह बताना चाहता हूं कि पश्चिमी बंगाल में कुछ ही समय पश्चात् निर्वाचन होने वाले हैं, और निर्वाचनों के पश्चात् राज्यपाल को चौथी अनुसूची के दूसरे पैरा के अधीन कार्यवाही करनी होगी। पैरा 2 में कहा गया है कि:

> "मंत्रि-परिषद् के लिये नियुक्तियां करते समय राज्यपाल अपने मन्त्रियों को इस प्रकार चुनने का यथाशक्ति प्रयास करेगा, अर्थात् वह उस व्यक्ति से परामर्श करके, नियुक्तियां करेगा जिसका उसके विचार से, विधान-मंडल में स्थाई बहुमत है और जिसे सामूहिक रूप से विधान-मंडल का विश्वास प्राप्त है....."

पश्चिमी बंगाल में जैसे ही निर्वाचन समाप्त होंगे वहां के राज्यपाल को इस अनुसूची के पैरा 2 में वर्णित शक्तियों को प्रयोग करना होगा। इसलिये अन्तरिम काल के लिये ऐसे उपबन्ध रखे जाने चाहिये जिनके अधीन आवश्यकता पड़ने पर ये शक्तियां प्रयोग की जा सकें। मैं चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट कर दी जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, आदेश-पत्र के सम्बन्ध में दो बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। आरम्भ में ब्रिटिश संविधान में उपनिवेशों के शासन के सम्बन्ध में आदेश पत्र राज्यों के प्रधानों को इस सम्बन्ध में आदेश देने के लिये रखा गया था कि उन्हें स्वविवेक से प्रयोग करने के लिये जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उन्हें वे कैसे प्रयोग करें गवर्नर अथवा वायसराय, जिन्हें ये आदेश दिये जाते थे, भारत मंत्री के अधीन होते थे। यदि कोई बहुत गम्भीर मामला उठ खड़ा होता था, जैसे कि यदि कई गवर्नर आदेश पत्र द्वारा उसे दिये हुए आदेशों की बराबर उपेक्षा करता था तो भारत मंत्री उसे हटा कर किसी अन्य व्यक्ति को उसके स्थान पर नियुक्त कर सकता था और इस प्रकार आदेश-पत्र को प्रयोग में

ला सकता था। जहां तक हमारे संविधान का सम्बन्ध है, हमने उसमें किसी ऐसे प्राधिकारी के सम्बन्ध में उपबन्ध नहीं रखे हैं जो राज्यपालों को आदेश-पत्र के आदेशों का वफादारी से अनुसरण करने के लिये बाध्य करें।

इसके अतिरिक्त इस संविधान के अधीन हमने राज्यपाल को स्वविवेक से निर्णय करने की बहुत कम शक्ति दी है। उसे स्वविवेक से निर्णय करने की वास्तव में कुछ भी शक्ति प्राप्त नहीं है। मंत्रि-मंडल के लिये लोगों को चुनने के सम्बन्ध में उसे मुख्य मंत्री के परामर्श के अनुसार कार्य करना होगा। किसी शासन सम्बन्धी अथवा विधि सम्बन्धी कदम के लिये भी, उसे मुख्य मंत्री तथा अन्य मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना होगा। इस स्थिति में यदि मुख्य मंत्री किसी कारण अपने मंत्रिमंडल में अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को न रखना चाहे तो इस सम्बन्ध में राज्यपाल कुछ नहीं कर सकता, भले ही उसके लिये आदेश-पत्र में यह आदेश हो कि वह एक विशेष कदम उठाये। यह विचार किया गया है कि चूंकि राज्यपाल को स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति नहीं दी गई है, और संविधान में किसी ऐसे प्राधिकारी के लिये व्यवस्था नहीं है जो इन आदेशों को प्रभाव में ला सके, इसलिये इस प्रकार के आदेश नहीं देने चाहिये। वे निरर्थक हैं और उनके किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। इसलिये यह विचार किया गया है कि इस प्रकार के आदेश-पत्र को रखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि एक भिन्न परिस्थिति में उसकी आवश्यकता हो सकती है जो नवीन संविधान के प्रारम्भ होने पर किसी प्रकार उत्पन्न नहीं हो सकती। मुख्यतः इसी प्रकार यह समझा गया है कि इस प्रकार के आदेश-पत्र की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"चतुर्थ अनुसूची निकाल दी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

चतुर्थ अनुसूची संविधान से निकाल दी गई।

द्वितीय अनुसूची

***अध्यक्षः** अब सभा अनुसूची 2 पर विचार करेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"द्वितीय अनुसूची के भाग 1 के स्थान पर यह रखा जाये:-

'Part I

Provisions as to the President and the Governors of States for the time being specified in Part I of the First Schedule.

1. There shall be paid to the President and to the Governors of the States for the time being specified in Part I of the

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

First Schedule the following emoluments per mensem, that is to say:—

The President—10,000 rupees.

The Governer of a State—5,500 rupees.

2. There shall also be paid to the President and to the Governors such allowances as were payable respectively to the Governor-General of the Dominion of India and to the Governors of the corresponding Provinces immediately before the commencement of this Constitution.

3. The President and the Governors throughout their respective terms of office shall be entitled to the same privileges to which the Governor-General and the Governors of the corresponding Provinces were respectively entitled immediately before the commencement of this Constitution.

4. While the Vice-President or any other person is discharging the functions of, or is acting as, President, or any person is discharging the functions of the Governor, he shall be entitled to the same emoluments, allowances and privileges as the President or the Governor whose functions he discharges or for whom he acts, as the case may be.' "

[भाग 1

राष्ट्रपति तथा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उल्लिखित राज्यों के राज्यपालों के लिये उपबन्ध।

1. राष्ट्रपति तथा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उल्लिखित राज्यों के राज्यपालों को निम्नलिखित उपलब्धियां प्रति मास दी जायेंगी अर्थात–

राष्ट्रपति को— 10,000 रुपया

राज्य के राज्यपाल को— 5,500 रुपया

2. राष्ट्रपति तथा इस प्रकार उल्लिखित राज्य के राज्यपालों को ऐसे भत्ते भी दिये जायेंगे जैसे कि क्रमशः भारत डोमिनियन के गवर्नर-जनरल को तथा तत्स्थानी प्रान्तों के गवर्नरों को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले देय थे।

3. राष्ट्रपति तथा ऐसे राज्यों के राज्यपालों को अपनी अपनी सम्पूर्ण पदावधि में ऐसे विशेषाधिकारों का हक होगा जैसे कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः गवर्नर-जनरल तथा तत्स्थानी प्रान्तों के गवर्नरों को था।

4. जब कि राष्ट्रपति अथवा कोई अन्य व्यक्ति राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन अथवा उसके रूप में कार्य कर रहा है अथवा कोई व्यक्ति राज्यपाल के कृत्यों का निर्वहन कर रहा है तब उस को वैसी ही उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का हक होगा जैसा कि यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल को है जिसके कृत्यों का यह निर्वहन करता है अथवा यथास्थिति जिसके रूप में यह कार्य करता है।]

भाग 2

"भाग (2) के शीर्षक में 'Part I (भाग 1) शब्द और अंक के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।"

"पैरा 7 के स्थान पर यह पैरा रखा जाये:-

'7. There shall be paid to the ministers for any State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule such salaries and allowances as were payable to such ministers for the corresponding Province or the corresponding Indian State, as the case may be, immediately before the commencement of this Constitution.' "

[7. प्रथम अनुसूची के भाग (1) या भाग (3) में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य के मंत्रियों को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि यथास्थिति तत्स्थानी प्रान्त या तत्स्थानी देशी राज्य के ऐसे मन्त्रियों को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले देय थे।]

भाग 3

"पैरा 8 में 'respectively to the Deputy President of the Legislative Assembly and to the Deputy President of the Council of States immediately before the fifteenth day of August, 1947' (क्रमशः विधान-सभा के उपाध्यक्ष को तथा विधान-परिषद् के उपाध्यक्ष को अगस्त, 1947 के पन्द्रहवें दिन से ठीक पहले दिये थे) शब्दों के स्थान पर 'to the Deputy Speaker of the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

before such commencement' (भारत डोमिनियन की संविधान सभा के उपाध्यक्ष को इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले देय थे) शब्द रखे जायें।"

भाग 4

"द्वितीय अनुसूची के भाग 4 के स्थान पर यह रखा जाये:–

Part IV

Provisions as to the Judges of the Supreme Court and of the High Courts of States in Part I of the First Schedule.

10. (1) There shall be paid to the judges of the Supreme Court, in respect of time spent on actual service, salary at the following rates per mensem, that is to say:—

The Chief Justice—5,000 rupees

Any other Judge—4,000 rupees:

Provided that if a judge of the Supreme Court at the time of his appointment is in receipt of a pension (other than a disability or wound pension) in respect of any previous service under the Government of India or any of its predecessor Governments or under the Government of a State of any of its predecessor Governments, his salary in respect of service in the Supreme Court shall be reduced by the amount of that pension.

(2) Every judge of the Supreme Court shall be entitled without payment of rent to the use of an official residence.

(3) Nothing in paragraph (2) of this paragraph shall apply to a judge who was appointed as a judge of the Federal Court before the thirty-first day of October, 1948, and has become on the date of the commencement of this Constitution a judge of the Supreme Court under clause (1) of article 308 of this Constitution, and every such

judge shall in addition to the salary specified in sub-paragraph (1) of this paragraph be entitled to receive as special pay an amout equivalent to the difference between the salary so specified and the salary which was payable to him as a judge of the Federal Court immediately before such commencement.

(4) Every judge of the Supreme Court shall receive such reasonable allowances to reimburse him for expenses incurred in travelling on duty within the territory of India and shall be afforded such reasonable facilities in connection with travelling as the President may from time to time prescribe.

(5) The rights in respect of leave of absence (including leave allowances) and pension of the judges of the Supreme Court shall be governed by the provisions which, immediately before the commencement of this Constitution, were applicable to the judges of the Federal Court.

11. (1) There shall be paid to the judges of the High Court of each State for the time being specified in Part I of the First Schedule, in respect of time spent on actual service, salary at the following rates per mensem, that is to say:—

The Chief Justice—4,000 rupees

Any other judge—3,500 rupees

(2) Every person who was appointed permanently as a judge of a High Court in any Province before the thirty-first day of October, 1948, and has on the date of the commencement of this Constitution become a judge of the High Court in the corresponding State under clause (1) of article 310 of this Constitution, and was immediately before such commencement drawing a salary at a rate higher than that specified in sub-paragraph (1) of this paragraph, shall be entitled to receive as special pay an amount equivalent to the difference between the salary so specified and the salary which was payable to him as a judge of the High Court immediately betore such commencement.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(3) Every such judge shall receive such reasonable allowances to re-imburse him for expenses incurred in travelling on duty within the territory of India and shall be afforded such reasonable facilities in connection with travelling as the President may from time to time prescribe.

(4) The rights in respect of leave of absence (including leave allowances) and pension of the judges of any such High Court shall be governed by the provisions which, immediately before the commencement of this Constitution, were applicable to the judges of the High Court of the corresponding Province.

12. In this Part, unless the context otherwise requires,

(a) the expression "Chief Justice" includes an acting Chief Justice, and a "Judge" includes an ad hoc judge,

(b) "actual service" includes—

(i) time spent by a judge on duty as a judge or in the performance of such other functions as he may at the request of the President undertake to discharge;

(ii) vacations, excluding any time during which the judge is absent on leave; and

(iii) joining time on transfer from a High Court to the Supreme Court or from one High Court to another.' "

[भाग 4

उच्चतम न्यायालय तथा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में के राज्यों के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में उपबन्ध।

10. (1) उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों को वास्तविक सेवा में बिताये समय के बारे में निम्नलिखित दर से प्रतिमास वेतन दिया जायेगा अर्थात–

मुख्य न्यायाधिपति.....	5,000	रुपया
कोई अन्य न्यायाधीश	4,000	रुपया

परन्तु यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को अपनी नियुक्ति के समय भारत सरकार की या उसकी पूर्ववर्ती सरकारों में से किसी की अथवा राज्य की सरकार की अथवा उसकी पूर्ववर्ती सरकारों में से किसी की पहले की गई सेवा के बारे में (निर्योग्यता या क्षत-पेन्शन से अतिरिक्त) कोई निवृत्ति वेतन मिलता हो तो उच्चतम न्यायालय में सेवा के बारे में उसके वेतन में से निवृत्ति-वेतन की राशि घटा दी जायेगी।

(2) उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को, बिना किराया दिये, पदावास के उपयोग का हक होगा।

(3) इस कंडिका की उपकंडिका (2) में की कोई बात उस न्यायाधीश को, जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अक्तूबर 1948 के इकत्तीसवें दिन के पूर्व फेडरल न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त हुआ था और इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि को इस संविधान के अनुच्छेद 308 के खण्ड (1) के अधीन उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश बन गया है, लागू न होगी, तथा प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश को इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतन से अतिरिक्त विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस प्रकार उल्लिखित वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे मिलने वाले वेतन के अन्तर के बराबर है।

(4) उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर अपने कर्तव्य पालन में की गई यात्रा में किये गये व्ययों की पूर्ति के लिये ऐसे युक्तियुक्त भत्ते पायेगा तथा यात्रा सम्बन्धी उसे ऐसी सुविधायें दी जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर विहित करे।

(5) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की अनुपस्थिति-छुट्टी (जिसके अन्तर्गत छुट्टी सम्बन्धी भत्ते भी हैं) तथा निवृत्ति-वेतन के बारे में अधिकार उन उपबन्धों से शासित होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को लागू थे।

11. (1) प्रथम अनुसूची के भाग (1) में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य में के उच्चन्यायालय के न्यायाधीशों को वास्तविक सेवा में बिताये समय के बारे में निम्नलिखित दर से प्रति मास वेतन दिया जायेगा, अर्थात्—

मुख्य न्यायाधिपति— 4000 रुपये

कोई अन्य न्यायाधीश— 3,500 रुपये

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) जो व्यक्ति अक्तूबर 1948 के इकत्तीसवें दिन के पूर्व किसी प्रान्त में के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश स्थायी रूप से नियुक्त हुआ था और इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि को इस संविधान के अनुच्छेद 310 के खण्ड (1) के अधीन तत्स्थानी राज्य के उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश बन गया है, यदि वह ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित दर से अधिक वेतन पाता था तो उसको विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस प्रकार उल्लिखित वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे मिलने वाले वेतन के अन्तर के बराबर है।

(3) ऐसा प्रत्येक न्यायाधीश भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर अपने कर्तव्य पालन में कई गई यात्रा में किये गये व्ययों की पूर्ति के लिये ऐसे युक्तियुक्त भत्ते पायेगा तथा यात्रा सम्बन्धी उसे ऐसी सुविधायें दी जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर विहित करे।

(4) ऐसे किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अनुपस्थिति-छुट्टी (जिस के अन्तर्गत छुट्टी भत्ते भी हैं) और निवृत्ति-वेतन के बारे में अधिकार उन उपबन्धों से शासित होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्त के उच्चन्यायालय के न्यायाधीशों को लागू थे।

11. इस भाग में, जब तक प्रसंग से अन्यथा उपेक्षित न हो–

(क) "मुख्य न्यायाधिपति" पदावली के अन्तर्गत कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति है तथा "न्यायाधीश" पद के अन्तर्गत तदर्थ न्यायाधीश है।

(ख) "वास्तविक सेवा" के अन्तर्गत है:–

(1) न्यायाधीश के रूप में कर्तव्य करते हुए अथवा ऐसे अन्य कृत्यों के पालन में, जिनका कि राष्ट्रपति की आकांक्षा पर उसने निर्वहन करने का भार लिया हो, न्यायाधीश द्वारा व्यतीत समय;

(2) उस समय को न गिन कर जिसमें कि वह न्यायाधीश छुट्टी लेकर अनुपस्थित है, विश्रामावकाश; तथा

(3) उच्चन्यायालय से उच्चतमन्यायालय को अथवा एक उच्चन्यायालय से दूसरे को बदले जाने पर योगकाल।]

भाग 5

———————

"भाग 5 के शीर्षक में 'Auditor-General' (महालेखापरीक्षक) शब्द के स्थान पर 'Comptroller and Auditor-General' (नियंत्रक-महा-लेखापरीक्षक) शब्द रखे जायें।"

"पैरा 14 के स्थान पर यह पैरा रखा जाये:-

14. (1) There shall be paid to the Comptroller and Auditor-General of India a salary at the rate of four thousand rupees per mensem.

(2) The person who was holding office immediately before the commencement of this Constitution as Auditor-General of India and has become on the date of such commencement the Comptroller and Auditor-General of India under article 310A of this Constitution shall in addition to the salary specified in sub-paragraph (1) of this paragraph be entitled to receive as special pay an amount equivalent to the difference between the salary so specified and the salary which was payable to him as Auditor-General of India immediately before such commencement.' "

[14.(1) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को चार सहस्र रुपये प्रति मास की दर से वेतन दिया जायेगा।

(2) जो व्यक्ति इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के महालेखा-परीक्षक के रूप में पद धारण किये था तथा ऐसे प्रारम्भ पर अनुच्छेद 310-क के अधीन भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक बन गया है उसको इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतन के अतिरिक्त विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस प्रकार उल्लिखित वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के महालेखापरीक्षक के रूप में उसे मिलने वाले वेतन के अन्तर के बराबर है।]

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

"पैरा 15 में पहली बार जहां 'Auditor-General' (महालेखापरीक्षक) शब्द आया है उसके स्थान पर 'Comptroller and Auditor-General' (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक) शब्द रखे जायें।"

यदि आप की आज्ञा हो तो मैं इन उपबन्धों की व्याख्या कल करूंगा।

***अध्यक्ष:** सभा कल प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 12 अक्तूबर, 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

————————

Con. 3. X.5.49
320

अंक 10
संख्या 5

बुधवार
12 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 2883-2971
[द्वितीय अनुसूची और भाग 6-क पर विचार]

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 12 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हाल नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

द्वितीय अनुसूची–(जारी)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बईः जनरल): अध्यक्ष महोदय, द्वितीय अनुसूची के उपबंधों की व्याख्या के रूप में मैं एक बात कहना चाहूंगा और मैं उस भाग से आरम्भ करूंगा जो न्यायाधीशों के वेतन के संबंध में है।

सर्व प्रथम उच्चतम न्यायालय के संबंध में यह देखा गया होगा कि इस संविधान के आरम्भ पर उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का वेतन 5000/- रुपया मासिक और मकान मुफ्त तथा छोटे न्यायाधीश का वेतन 4000/- रुपया मासिक और मकान मुफ्त होगा। उच्चतम न्यायालय के संबंध में स्थिति यह है कि संविधान के अनुसार किसी फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश को जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होना चाहता है उच्च्तम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जायेगा। अतः फेडरल न्यायालय का कोई न्यायाधीश यदि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होना चाहता है तो जो प्रश्न उठता है वह यह है: क्या उसे वह वेतन मिले जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये संविधान के अधीन नियत किया गया है अथवा उसको वही वेतन लेते रहने के लिये कोई उपबन्ध बनाया जाये जो उसे फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में इस समय मिलता है। मसौदा समिति का विनिश्चय यह है कि यद्यपि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का सामान्य वेतन तो वही होना चाहिये जो द्वितीय अनुसूची में दिया हुआ है, परन्तु यदि फेडरल न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होना चाहें तो उन्हें इस समय जितना वेतन मिल रहा है उतना वेतन प्राप्त करने के लिये उपबन्ध होना चाहिये। इस प्रयोजन के लिये फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है—एक वे जिनको स्थायी न्यायाधीशों के रूप में 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व नियुक्त किया गया था और दूसरे वे जिनको 31 अक्तूबर, 1948 के बाद नियुक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश, अर्थात् वे जिनको 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व नियुक्त किया गया है उनको स्वीय वेतन मिलेगा जो द्वितीय अनुसूची द्वारा नियत किये गये वेतन और उस वेतन के अन्तर के बराबर होगा जो ऐसे न्यायाधीश को इस संविधान के आरम्भ के ठीक पहले दिया जाता था। जिनकी नियुक्ति

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

31 अक्तूबर, 1948 के पश्चात् हुई है उनको द्वितीय अनुसूची में नियत किये गये हिसाब से वेतन मिलेगा। अत: उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को संविधान के अधीन नियत किये गये वेतन से 2000/- रुपया अधिक मिलेगा और फेडरल न्यायालय के छोटे न्यायाधीशों को, यदि वे उच्चतम न्यायालय में जाना चाहते हैं तो छोटे न्यायाधीशों के लिये नियत किये गये सामान्य वेतन से 1500/- रुपया अधिक मिलेगा।

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के लिये इस संविधान के अधीन नियत किया गया सामान्य वेतन 4000/- रुपया है और छोटे न्यायाधीशों का सामान्य वेतन 3500/- रुपया है। इसके लिये भी संविधान में हमने एक उपबन्ध रखा है कि उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश इस संविधान के अधीन उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होना चाहता है तो राष्ट्रपति को उसे नियुक्त करना पड़ेगा। परिणाम स्वरूप उच्चतम न्यायालय के संबंध में जो समस्या खड़ी होती है वही उच्च न्यायालय के संबंध में भी खड़ी होती है क्योंकि जो न्यायाधीश इस समय वर्तमान हैं उनमें से कुछ को उससे अधिक वेतन मिल रहा है जो द्वितीय अनुसूची में नियत किया गया है। अत: किसी तरह की भी शिकायत को दूर करने के लिये यह भी विनिश्चित किया गया है कि उसी प्रक्रिया का पालन किया जाये जिसका फेडरल न्यायालय के संबंध में पालन किया गया है और वह यह कि न्यायाधीशों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जाये—एक वे जिनको 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व नियुक्त किया गया था और दूसरे वे जिनको उसके पश्चात् नियुक्त किया गया था। इस प्रकार जो प्रथम श्रेणी में हैं उनको स्वीय वेतन के रूप में अतिरिक्त वेतन मिलेगा जो उन दोनों वेतनों के अन्तर के बराबर होगा जो संविधान द्वारा नियत किया गया है और जो वे पा रहे हैं। जो द्वितीय श्रेणी में आते हैं उनको वही वेतन मिलेगा जो संविधान द्वारा नियत है।

शायद इस बात की व्याख्या करना आवश्यक है कि हमने 31 अक्तूबर, 1948 से श्रेणियों के दो भाग क्यों किये हैं। इसका उत्तर यह है कि भारत सरकार ने विभिन्न उच्च न्यायालयों और फेडरल न्यायालय को अधिसूचित किया था कि 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व नियुक्त किये गये किसी भी न्यायाधीश को वही वेतन मिलते रहेंगे जो उसे मिलते थे परन्तु 31 अक्तूबर, 1948 के बाद नियुक्त हुये न्यायाधीशों को यह आश्वासन नहीं दिया जा सकता है। यह कहना चाहिये कि इस आश्वासन की प्रत्याभूति करने के लिये यह विभाजन रेखा पुर:स्थापित की गई है।

अनुसूची 2 में नियत किये गये वेतनों और अन्य देशों में के वेतनों के संबध में मैं एक दो बातें कहना चाहूंगा। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमरीका में मुख्य न्यायाधिपति को 7084/- रुपया मासिक मिलता है और छोटे न्यायाधीशों को 6958/- रुपया। कनाडा में मुख्य न्यायाधिपति को 4584/- रुपया और छोटे न्यायाधीशों को 3662/- रुपया मिलता है। आस्ट्रेलिया में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को 3750/- रुपया और छोटे न्यायाधीशों को 3333/- रुपया मिलता है और दक्षिणी अफ्रीका में मुख्य न्यायाधिपति को 3892/- रुपया और छोटे न्यायाधीशों को 3611/- रुपया मिलता है। अनुसूची 2 में जो वेतन स्तर हमने निश्चित किया है उसकी तुलना यदि कोई व्यक्ति उन अंकों से करे जो मैंने बताये हैं तो मैं समझता हूं

कि वह यह अनुभव करेगा कि सिवा संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अन्य देशों में ऐसे ही कार्यकर्त्ताओं के लिये जो वेतन नियत हैं उसकी तुलना में हमारे यहां के वेतन कहीं ज्यादा हैं।

इन वेतनों के नियत करने में हमें जितना न्याय करना चाहिये उतना न्याय हमने किया है। उदाहरणार्थ मसौदा समिति को यह कहने का पूर्ण अधिकार था कि इस नियम का पालन करते हुए कि जिनकी नियुक्ति 31 अक्तूबर, 1948 से पहले हुई थी यदि उनका वेतन इस संविधान द्वारा नियत किये गये सामान्य वेतन से अधिक है तो वह कम हो जायेगा, हम ऐसा उपबन्ध भी बना सकते थे कि नागपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को सामान्य वेतन से कम वेतन मिलेगा क्योंकि उनका वर्त्तमान वेतन सामान्य वेतन से कम है। पर हम कोई ऐसी शिकायत का कारण नहीं रखना चाहते हैं और इसलिये हमने कोई ऐसा समझौते का उपबन्ध नहीं रखा है जिसे रखने में मसौदा समिति इस विषय के प्रति कोरे न्याय की दृष्टि से न्याययुक्त हो सकती थी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि जहां तक न्यायपालिका के वेतन का संबंध है शिकायत करने का कोई अवसर नहीं है।

अब मैं राष्ट्रपति के विषय पर आता हूं। यह स्पष्ट है कि संघ का राष्ट्रपति एक ऐसा कृत्यकारी है जो वर्तमान गवर्नर जनरल का स्थानापन्न होगा और उसका जो वेतन हमने नियत किया है उसके नियत करने में अर्थात् 10,000/- रुपये और इस परिणाम पर पहुंचने में हमें यह यह विचार करना पड़ा कि वह उस वेतन से कम है या ज्यादा जो गवर्नर जनरल को मिल रहा है।

जैसा कि सबको विदित है भारत शासन-अधिनियम, 1935 के अधीन गवर्नर जनरल का वेतन 250800/- रुपये वार्षिक नियत किया गया था जो 20,900/- रुपया मासिक होता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस वेतन पर आय कर लगता था। विधान सभा द्वारा पारित अभी हाल के अधिनियम के अधीन गवर्नर जनरल का वेतन 5500/- रुपये नियत किया गया था पर इस वेतन पर आय कर न था। मुझे बताया गया है कि यदि गवर्नर जनरल के वेतन पर आय कर लगता है तो वह 14,000/- रुपये के लगभग होता। राष्ट्रपति का वेतन 10,000/- रुपये नियत करने में हमने दो बातों पर विचार किया है। एक बात यह है कि राष्ट्रपति के वेतन पर आय कर लगना चाहिये। मसौदा समिति द्वारा तथा इस सभा के अधिकांश सदस्यों द्वारा भी यह अनुभव किया गया कि कोई भी व्यक्ति जो इस संविधान के अधीन कृत्यकारी है अथवा इस संविधान के अधीन असैनिक सेवक है वह किसी ऐसे दायित्व से मुक्त न हो जिसका आरोपण किसी कर संबंधी उपक्रम द्वारा इस देश के जन साधारण पर किया जाता है। अत: हमने यह सोचा कि यदि यह राष्ट्रपति के वेतन पर आय कर लगाना चाहते हैं तो उसकी वृद्धि करना वांछनीय है।

इस बात का एक और कारण कि हमने 10,000/- रुपया नियत क्यों किया है और वह कारण उच्चतम न्यायालय के वर्तमान मुख्य न्यायाधिपति का वेतन है जो 7000/- रुपया है। मसौदा समिति का यह विचार हुआ कि चूंकि राष्ट्रपति राज्य में सर्वोच्च कृत्यकारी है इसलिये ऐसा कोई अन्य व्यक्ति नहीं होना चाहिये जिसे

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

राष्ट्रपति से अधिक वेतन मिले और यदि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को 7000/- रुपया वेतन मिलता है तो यह नितांत आवश्यक है कि उपरोक्त दृष्टिकोण से राष्ट्रपति का वेतन मुख्य न्यायाधिपति के वेतन से कुछ अधिक होना चाहिये। इन सब बातों पर विचार करते हुए हमने सोचा कि राष्ट्रपति का ठीक-ठीक वेतन 10,000/- रुपया ही होगा।

इसके पश्चात् बात यह है कि राष्ट्रपति के वेतन के साथ कुछ भत्ते रहते हैं। इन भत्तों के संबंध में मैं यह कहूंगा कि जब भारत शासन अधिनियम, 1935 पारित किया गया था तो उस अधिनियम में गवर्नर जनरल का केवल वेतन नियत किया गया था। भत्तों के संबंध में उस अधिनियम में यह कहा गया था कि उसे सपरिषद् सम्राट आदेश द्वारा नियत करेंगे, परन्तु दुर्भाग्यवश भारत शासन अधिनियम, 1935 का दूसरा भाग कभी प्रवृत्त नहीं हो पाया और यद्यपि इस आदेश का मसौदा सन् 1937 में तैयार तो कर लिया गया पर सपरिषद् सम्राट द्वारा वह आदेश कभी नहीं निकाला गया। अत: जहां तक भारत शासन अधिनियम का संबंध है उसमें भत्तों के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है और इस कारण किसी निश्चित परिणाम पर पहुंचने के लिये उस अधिनियम से मसौदा समिति को कोई आधारभूत सामग्री न मिली। परिणामत: मसौदा समिति ने यह उपबन्ध कर इस विषय को समाप्त किया कि राष्ट्रपति को वही भत्ते मिलते रहेंगे जो गवर्नर जनरल को इस संविधान के आरम्भ पर मिलते थे। बाद में संसद इस बात के अधीन राष्ट्रपति के वेतन और भत्तों में परिवर्तन कर सकती है कि उनमें सम्बद्ध राष्ट्रपति की पदावधि में परिवर्तन नहीं होगा।

यदि मसौदा समिति द्वारा सुझाया गया यह उपबन्ध, कि गवर्नर जनरल को इस संविधान के आरम्भ पर दिये जाने वाले भत्ते राष्ट्रपति को मिलते रहें, प्रवृत्त होता है तो मैं सभा को उन भत्तों का कुछ अनुमान कराना चाहूंगा जिनके मिलने का हक राष्ट्रपति को होगा।

1949-50 के आनुमानिक आय-व्यय के ब्यौरे से मुझे यह विदित हुआ है कि "गवर्नर जनरल के भत्ते" शीर्षक के अन्तर्गत यह अंक थे:

1-सम्पट्यूरी भत्ता 45,000 रुपया वार्षिक।

2-संविदा भत्ते का व्यय 4,65,000 रुपया।

3-राज्य की सवारी; मोटर गाड़ी: 73,000 रुपया।

4-दौरे का व्यय 81,000 रुपया।

1949-50 के बजट के अनुमान के अनुसार कुल भत्ते मिलाकर 6,64,000/- रुपये होते हैं।

जैसा कि मैं कह चुका हूं भत्तों के बारे में मेरा अधिक कुछ कहना आवश्यक नहीं है क्योंकि भत्तों में संसद द्वारा किसी समय भी परिवर्तन किया जा सकता है। महत्वपूर्ण प्रश्न वेतन के बारे का है और मैं निवेदन करता हूं कि जिन

परिस्थितियों का मैंने उल्लेख किया है उन पर ध्यान रखते हुए मुझे तथा मसौदा समिति को भी 10,000/- रुपया राष्ट्रपति के वेतन के रूप में एक बहुत ही ठीक-ठीक राशि प्रतीत होती है।

राज्यपालों के वेतन के बारे में मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। उसको अभी-अभी गवर्नर जनरल द्वारा निकाले गये आदेश द्वारा नियत किया गया है और वह मुझे बहुत ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है और उसमें भी उसी सिद्धांत का पालन किया गया है कि प्रांतों में अधिकतम वेतन पाने वाला पदाधिकारी मुख्य न्यायाधिपति है, राज्यपाल को प्रांत के मुख्य न्यायाधिपति से कुछ अधिक मिले। इस दृष्टिकोण से राज्यपालों के वेतन नियत किये गये हैं।

एक और उपबन्ध जिसकी ओर मैं निर्देश करना चाहूंगा वह यह है कि इस अनुच्छेद के मूल मसौदे में नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के वेतन के संबंध में किसी उपबन्ध का रखना प्रस्थापित नहीं किया गया था। यहां फिर अनुसूची 2 के द्वारा उसका वेतन 4000/- रुपया नियत किया गया है, पर यह वेतन इस परन्तुक के अधीन है कि जब तक वर्तमान पदधारी नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के रूप में कार्य करेगा उसे अनुसूची 2 द्वारा नियत किये गये वेतन तथा जो वेतन इस समय मिल रहा है इन दोनों वेतनों का अन्तर स्वीय वेतन के रूप में मिलेगा। जब यह पदधारी चला जायेगा और दूसरा नियुक्त किया जाएगा तो उसे वही वेतन मिलेगा जो अनुसूची 2 में नियत है।

मैं आशा करता हूं कि इस अनुसूची में दिये हुये विभिन्न कृत्यकारियों के लिये मसौदा समिति द्वारा जो वेतन सुझाये गये हैं वे सभा को स्वीकार होंगे।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर आता हूं। मैं भिन्न-भिन्न भागों को पृथक-पृथक लूंगा और जिस भाग को मैं लूंगा उससे संबंधित संशोधनों को पेश करने के लिये मैं सदस्यों से निवेदन करूंगा। प्रथम संशोधन भाग 1 पर है, श्री महावीर त्यागी का संशोधन संख्या 259।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान जी, मुझे यह दस हजार रुपये मासिक तनख्वाह प्रेसीडेंट की और पांच हजार रुपये मासिक गवर्नर की होने में एतराज नहीं है कि तनख्वाह ज्यादा है। लेकिन बराबर दो रोज तक विचार करने के बाद मैंने यह तय किया कि अपनी आजाद राय को इस मौके पर जरूर अंकित कर देना चाहिये। मैं इस बात में यकीन रखता हूं कि जो सिविल सर्विस वाले हैं और जो सरकारी कर्मचारी हैं उन तमाम का रहन-सहन अच्छा होना चाहिये, उनकी इज्जत भी होनी चाहिये। लेकिन यह भारत भूमि ऋषियों की भूमि है। यहां पर साधारणतया रुपये के द्वारा कोई इज्जत या डिगनिटी नहीं गिनी जाती है (*हियर हियर*)। हिंदुस्तान के अन्दर हमेशा से त्याग और तपस्या की इज्जत रही है। जो सरकारी कर्मचारी मुस्तकिल रूप से स्थाई रूप से सेवा का भार अपने सिर पर लिये हैं उनकी तनख्वाह, उनका वेतन, इतना होना चाहिये जिससे जीवन भर वह आराम से और इज्जत के साथ अपनी जरूरतों को पूरा कर सकें, लेकिन जो लोग राजनीतिक नेता हैं जिनमें मैं गवर्नरों और प्रेसीडेंट को गिनता हूं और जिनमें असेम्बली के मेम्बरों को भी गिनता हूं और जो लोग राजनीति के कारण सरकार के ऊंचे पदों पर आते हैं उनके लिये मैं ऊंचा आदर्श यही समझता हूं कि वे त्याग की

[श्री महावीर त्यागी]

भावना से इस कार्य को करें। दुनियां भर में बड़ी-बड़ी तनख्वाहें देने का रिवाज है और इसलिये हमें बड़ी तनख्वाहें रखने में कोई लाज नहीं आती है। पर मैं यह कहूंगा, और कांस्टीट्यूएंट असेम्बली से यह अपील करता हूं कि एक नया तरीका हम शुरू करें त्याग का ताकि दुनियां भर को सबक दे सकें और दुनियां का नेतृत्व कर सकें। हमारी कामयाबी जो आजादी हासिल करने में हुई है वह रुपये द्वारा बड़ापन प्राप्त करने से नहीं, बल्कि त्याग के द्वारा हुई है। इस वक्त विशेष रूप से जब कि सारी दुनियां का नैतिक जीवन गिर रहा है उस समय में और भी आवश्यक है कि यह भारतवर्ष दुनियां का नेतृत्व करे और एक आदर्श स्थापित करे, इस बात का, कि त्याग के कारण राष्ट्र की सेवा किस तरह से हो सकती है। अपने त्याग और तपस्या के जरिये से हम लोग केवल अपने ही देश में नहीं बल्कि दुनियां भर में त्याग की भावना पैदा करेंगे। समाज त्याग ही का नतीजा है और समाज को ऊंचा करने के लिये त्याग की भावनाओं को बढ़ाना, उनको जाग्रत करना बहुत आवश्यक है। मैं समझता हूं कि एक राष्ट्र का राष्ट्रपति उस राष्ट्र की इज्जत का प्रतीक है जो आजकल हमारा ख्याल है कि हमारी इज्जत और डिगनिटी और प्रतिष्ठा सारी रुपये के द्वारा होती है, मेरे ख्याल में हिन्दुस्तान के अन्दर यह गलत है (*हियर हियर*)। यहां तो यह पद त्याग ही से प्राप्त है। मेरे अपने स्वप्न के अनुसार तो प्रेसीडेंट आनरेरी (अवैतनिक) रहना चाहिये (*हियर हियर*) और उसका जितना भी खर्चा हो उसको स्टेट बर्दाश्त करे और उसके हाथ में हमारे राष्ट्र का सबसे बड़ा पद हो, उसका जीवन एक सन्यासी के जीवन की तरह सादा होना चाहिये। यह गरीबों का देश है और गरीबों से जो रुपये वसूल किया जाता है करों द्वारा, उससे गरीबों की गरीबी और बढ़ती है। उस रुपये की राजनीतिक लोग आजादी के साथ अपने निजी कार्यों में इस्तेमाल करें यह मुझे स्वीकार नहीं है। मैं इसलिये आपके सामने यह अपना संशोधन रखता हूं कि अगर और कोई तबदीली इस समय नहीं हो सकती तो कम से कम इतनी कर दी जाए कि "राष्ट्रपति का वेतन दस हजार से अधिक नहीं होगा।" बजाय इसके कि दस हजार निश्चित किया जाए यह अच्छा है कि हम यह कर दें कि दस हजार से अधिक नहीं होगा और गवर्नरों का वेतन पांच हजार से अधिक नहीं होगा ताकि आयन्दा आने वाली पार्लियामेंट अगर यहां की राजनीति को त्याग और तपस्या की राह पर चलाना चाहे तो इन राशियों को कम कर सकें। मेरे स्वप्न के अनुसार तो असेम्बली के मेम्बरों को भी केवल खाने पीने और सरकारी खर्च के अलावा और कुछ नहीं मिलना चाहिये। और मेरा विश्वास है कि यदि इस तरह की प्रणाली हम देश में कायम करेंगे तो अवश्य ही देश में सादगी और ईमानदारी का संचार होगा और जो नैतिक पतन दुनियां में हो रहा है उस गिरती हुई हालत को हम रोक सकते हैं। जो वैतनिक सरकारी पदाधिकारी स्थायी पदाधिकारी हैं उनकी तख्नवाह में मुझे कोई आपत्ति नहीं है जैसी देश की दशा है उसके अनुसार उनकी तनख्वाहें बढ़ती जायें। परन्तु जिन लोगों ने देश के गरीब आदमियों का विश्वास प्राप्त किया है, गांधी जी के आदर्श के अनुसार उनको गरीबी के साथ रहना चाहिये। यदि दूसरे देशों के बड़े राष्ट्रपतियों के साथ भी भेंट करें तो हमारी शान इसी में है कि हम लोग गरीबी के साथ उनसे बातचीत करें और आत्म विश्वास और गौरव के साथ अपनी राजनीति को चलायें। मुझे और इस पर कोई ज्यादा बात नहीं कहनी। केवल मैं अपना यह संशोधन पेश करता हूं और यह अपील करता हूं कि यह राष्ट्र चूंकि बहुत गरीब है इसलिये यहां के राष्ट्रपति को बहुत गरीबी के साथ रहना चाहिये ताकि वह गरीबों की तरफ ज्यादा तवज्जह कर सकें।

एक बात मुझे और कहनी है। जब कभी रुपये पैसे और राजनीति सत्ता दोनों का जमाव एक जगह केन्द्रित हो जाता है तो निश्चय ही उस केन्द्र के चारों ओर करप्शन और गिरावट इकट्ठी होने लगती है। लोग उस अधिकारी के यहां खुशामद के लिये आने लगते हैं और जो राजनीति का असली केन्द्र है उसके चारों तरफ गिरावट और पतन का किला-सा बन जाता है और फिर उस किले की हिफाजत के लिये दरबारी लोग उस राजनीति के केन्द्र को उठने नहीं देते और न कोई रिफार्म होने देते हैं। क्योंकि उस रिफार्म से डर यह है कि वह रिफार्म उनके आनन्द को भी खराब न कर दे। इस तरह उसमें गिरावट की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। हमें अपने राष्ट्रपति को उच्च आदर्शों से सुसज्जित करना चाहिये। उसे रुपये से सुसज्जित करने से देश के अन्दर आदर नहीं हो सकता। इसलिये मेरी अपील है कि हमारे राष्ट्रपति बिना किसी वेतन के काम करें और गरीबी के साथ जीवन बितायें। इसी में देश का ज्यादा कल्याण हो सकता है और गरीबों से अपनावट हो सकती है।

इतना कह कर मैं अपना यह संशोधन पेश करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> "कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की कंडिका 1 में '10,000 rupees' (10,000 रुपये) शब्द और अंकों के स्थान में '1 rupee' (1 रुपया) शब्द और अंक रखे जायें।"

श्रीमान, मुझे खुशी है कि मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी ने अपना भाषण अपने संशोधन पर नहीं वरन मेरे संशोधन पर दिया है। मुझे खुशी है कि अपने संशोधन द्वारा जिन भावनाओं को मैं व्यक्त करना चाहता था वैसी भावनाऐं उनकी तथा इस सभा के सदस्यों की भी हैं जो सभा में उनके भाषण पर तालियां बजाने से स्पष्ट हो चुकी हैं। 'जब मैंने यह संशोधन भेजा था तो मुझे वास्तव में बड़ी हिचकिचाहट थी। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि जो कुछ मेरे मन मैं है उसे मुझे अपने संशोधन में व्यक्त कर देना चाहिये। हमारे संविधान में गणराज्य का राष्ट्रपति ब्रिटेन के बादशाह का स्थानापन्न है क्योंकि हमने ब्रिटेन के आधार पर अपना संविधान बनाया है। हमारे देश में राजत्व के आदर्श का उदाहरण जनक जैसे राजाओं का मिलता है जो सन्यासी के समान रहते थे। हमारे समय में भी हमारे स्वामी, हमारे पिता महात्मा गांधी ने वही आदर्श हमारे सामने रखा था। अत: श्रीमान, मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति के लिये वेतन स्वरूप 1 रुपये का उपबन्ध करके हम एक ऐसा कार्य करेंगे जो हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप है। अत: इस संशोधन को स्वीकार करके हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आदर्श विश्व तथा देश के समक्ष रखेंगे। इसके कारण हमें यह भी सुनिश्चयन हो जायेगा कि लोभी व्यक्ति राष्ट्रपति के पद की आकांक्षा नहीं करेंगे बल्कि यह सम्मान केवल उन्हीं लोगों को दिया जायेगा जो इस पद के लिये बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से योग्य हैं और जो उसके वेतन के कारण उसे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं बल्कि जो राजा जनक, महात्मा गांधी और प्राचीन भारत के अन्य महान राजाओं के सदृश्य देश की सेवा करना चाहते हैं।

अपने संविधान में हमने राष्ट्रपति को बड़ी व्यापक शक्तियों से सुसज्जित किया है। अनुदेशों की लिखतें वाली मूल मसौदे की अनुसूचियां 3 (क) और 4 संविधान

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

से निकाल ली गई हैं। अत: अब संविधान किसी प्रकार से भी उसके स्वविवेक में बाधा नहीं डालता है। हमारे संविधान में राष्ट्रपति को जैसा चाहे वैसा करने का प्राधिकार है। हमने उसको बड़ी महान शक्तियां दे दी हैं। इन समस्त वादविवादों में उस पर इन सब शक्तियों के लादने का मैं विरोध करता रहा क्योंकि वास्तव में इन सब शक्तियों का प्रयोग वह मंत्रिमंडल की मंत्रणा के अनुसार करेगा, परन्तु यदि राष्ट्रपति सन्यासी है तो मुझे विश्वास है कि किसी प्रधान मंत्री में उसे सही मार्ग से विचलित करने का साहस नहीं होगा और वह निष्पक्ष रूप से अपने कर्तव्यों का पालन कर सकेगा।

श्रीमान, जब मैंने यह अंक रखा तो गवर्नर जनरल के वर्तमान वेतन और भत्ते का मुझ पर भी प्रभाव पड़ा था। मेरे माननीय मित्रों वित्त समिति के सदस्यों ने मुझे यह बताया है कि गवर्नर जनरल के भत्ते इत्यादि का वर्तमान बजट 20 लाख रुपया प्रति वर्ष के लगभग है जिसमें से लगभग 11 लाख गवर्नमेंट हाउस की मरम्मत में व्यय हो जाता है और 9 लाख गवर्नर जनरल के सम्पच्यूरी तथा अन्य भत्तों पर। श्रीमान, मैं समझता हूं भारत जैसे निर्धन देश में, जिसके नेता महात्मा गांधी ने हमारे सामने आदर्श रखा था और उस आदर्श का हमें पालन करना चाहिये, इतनी राशि व्यय नहीं होनी चाहिये। अपने माननीय मित्र श्री त्यागी से मैं इस बात में सहमत हूं कि गवर्नर जनरल के जीवन निर्वाह का सारा खर्च राज्य बरदाश्त करे और इस प्रयोजन के लिये जो भत्ते उन्हें आवश्यक हों वे उनको दिये जायें—इसमें मेरी अनुमति है। मुझे दुख है कि आज भारत का गौरव उस बड़े वेतन में समझा जाता है जिसकी हम अपने राष्ट्रपति के लिये व्यवस्था कर सकते हैं और उस विशाल भवन में समझा जाता है जिसमें वह रहे। मैं समझता हूं कि हमारे आदर्श इससे भिन्न थे। वर्तमान गवर्नर जनरल जब कि मद्रास का मुख्य मंत्री था अपने ही घर में रहता था और मद्रास के मुख्य मंत्री के पदावास में नहीं गया था। परन्तु यहां हमने उसे एक उस भवन में रहने के लिये विवश किया है जिसकी केवल मरम्मत में 11 लाख रुपया लगता है। श्रीमान, मैं समझता हूं कि इन जीवन स्तरों को हमें बदल देना चाहिये। हमें अपने आदर्शों, अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता के अनुरूप रहना चाहिये। श्रीमान, इस भावनावश मैंने एक रुपये का अंक प्रस्तुत किया है।

श्रीमान, कांग्रेस के अध्यक्ष का कोई वेतन नहीं है और आज कांग्रेस का अध्यक्ष देश का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कृत्यकारी बन गया है। यह अपना सारा समय राष्ट्र की सेवा में लगाता है और उसे कोई भत्ता नहीं मिलता है, परन्तु फिर भी मैं नहीं समझता हूं कि कांग्रेस के काम में किसी प्रकार की भी कमी हुई हो। यह ठीक है कि हमारे कांग्रेस के अध्यक्ष को जितना काम करना पड़ता है वह कदाचित उस काम से अधिक है जो गणराज्य के राष्ट्रपति को करना होगा। अत: मैं समझता हूं कि एक रुपये के इस अंक को रखने में मैंने केवल उस बात को कह दिया है जो अन्य सदस्यों के मन में है और जो हमारे प्राचीन आदर्श तथा संस्कृति और हमारे नवीन उद्देश्यों और आकांक्षाओं के अनुरूप है। मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन का समर्थन करेगी और मसौदा समिति इस उपक्रम पर विचार करेगी।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की कंडिका 1 में राष्ट्रपति और राज्यपाल के वेतन संबंधी अंकों के पश्चात् यह और जोड़ दिया जाये:–

'The salaries of the President and the Governor shall be subject to income-tax' "

[राष्ट्रपति और राज्यपाल के वेतनों पर आयकर लगेगा।]

श्रीमान, इस संशोधन को पेश करने का और विशेषकर संविधान में इस बात का जिक्र करने का कि राष्ट्रपति और राज्यपाल के वेतनों पर आयकर होगा, कारण यह है। यद्यपि माननीय प्रस्तावक महोदय डॉ. अम्बेडकर ने यह कह दिया है कि उनके वेतनों पर आयकर लगेगा और यह एक साधारण नियम तथा प्रथा है कि चाहे आयकर का जिक्र न हो पर वह सब से लिया जाता है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है और इसके प्रति मुझे कोई संदेह भी नहीं है। परन्तु इसके होते हुये भी मैं इस बात के लिये इतना उत्सुक क्यों हूं कि इसका जिक्र कर दिया जाये इसका कारण यह है। अभी तक हमारे गवर्नर जनरल का जो वेतन मिल रहा था उस पर आयकर नहीं था। श्रीमान, आपको विदित है कि जब उसको 20,000/- रुपया मिल रहा था उस पर आयकर लगता था, परन्तु फिर भी लोगों को यह मालूम न था कि वास्तव में उसे क्या वेतन मिल रहा है, यहां तक कि जब संसद में इस विषय पर वाद विवाद हुआ तो उस समय अधिकांश सदस्यों को यह मालूम न था कि उसके वेतन पर आयकर लगता था। इस विषय की देश के इस सिरे से उस सिरे तक चर्चा हुई और लोगों ने समझा कि हमारे गवर्नर जनरल को 20,000/- रुपया नकद वेतन मिल रहा है और वह इतनी रकम अपनी जेब में डाल लेते हैं जब कि वास्तव में उनको केवल 8000/- या 9000/- रुपया मिलना था। बाद में विधान सभा ने यह संकल्प किया कि उनका वेतन 5,500/ रुपया होना चाहिये बिना किसी कर के। आज यदि आप उसे बढ़ा कर 10,000/ रुपया कर देंगे और जनता को यह नहीं बतायेंगे—तो जनता इस बात पर ध्यान नहीं देती है कि आयकर कटता है या अन्य कई करों के रूप में इतना कट जाता है—वह यही कहेगी कि राष्ट्रपति का वेतन 5,500/- रुपये से बढ़ाकर 10,000/- रुपया कर दिया। जनता केवल अंकों पर ध्यान देती है। वह पूछती है कि गवर्नर जनरल को क्या मिलता है और लोग कह देते हैं कि उसे 10,000/ रुपया मिलता है। अत: मैं चाहता हूं कि जनता को यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी जाये। किसी समय आप जनता के सामने यह तर्क रख सकते हैं कि गवर्नर जनरल और गवर्नर से भी आयकर लिया जाता है। कभी-कभी वे विश्वास नहीं कर पाते। विश्वास करने में जब कभी उन्हें संकोच हो और यदि यह संविधान में दिया हुआ है तो निश्चित उत्तर द्वारा उनका खंडन किया जा सकता है। अत: श्रीमान, मैं यह अनुभव करता हूं कि चाहे यह बात व्यर्थ की हो, चाहे यह आवश्यक न हो, परन्तु इस अनावश्यक आलोचना से बचने के लिए कि राष्ट्रपति और राज्यपालों को मोटे-मोटे वेतन मिलते हैं मेरे संशोधन के शब्दों की प्रविष्टि बहुत ही आवश्यक है।

[श्री आर.के. सिधवा]

मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी और प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने वेतन की जो राशि बताई है उसको लेते हुये उन्होंने यह कहा कि गवर्नर जनरल को सन्यासी होना चाहिये। शायद वे उन विचारों से प्रभावित हो गये हैं जो हमें बिना किसी पारिश्रमिक के मानव सेवा करने के लिये सिखाये गये थे। मानवता की हमने अवेतन सेवा की है। वह और बात है। परन्तु आपको इन दोनों बातों को एक साथ नहीं मिलाना चाहिये जो परस्पर बिल्कुल भिन्न-भिन्न है। गवर्नर जनरल सरकार का प्रशासी मुखिया है। इस संविधान में इतने परिसीमनों द्वारा उसको निर्बन्धित किया गया है। मैं यह पूछता हूं कि जैसे निर्बन्धन इस संविधान में उस पर लगाये गये हैं क्या वैसे निर्बन्धन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस या प्रान्तीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षों पर भी हैं। क्या हमारी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष को यह स्वतन्त्रता नहीं है कि वह जो चाहे सो करे और जो चाहे सो कमाये? क्या प्रान्तीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष कमा नहीं रहे हैं? हम जानते हैं कि हमने त्याग किये हैं और त्याग कर रहे हैं। मैं भी उनमें से एक हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** उसे लोक-धन का अपने लिये प्रयोग करने का हक नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** कृपया मेरी बात सुन लीजिये। आप अपनी बात कह चुके हैं। लोक-धन का मूल्य मैं जानता हूं। भावनाओं में बह जाने वाला व्यक्ति मैं नहीं हूं। मैं व्यवहारिक व्यक्ति हूं और यथार्थता में विश्वास करता हूं। लोक-धन के बरबाद करने से क्या लाभ? मैं यह जानना चाहता हूं कि जब आपने संविधान में इतने निर्बन्धन रख दिये हैं कि वह यह कार्य नहीं करेगा वह ऐसा होगा इत्यादि इत्यादि तो आप अपने राष्ट्रपति का भरण पोषण किस प्रकार करेंगे। क्या आपने उसको जकड़ने के लिये संविधान में कई कंडिकायें पारित नहीं की हैं? मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह ने तो यहां तक चाहा था कि जो कुछ संपत्ति उसके पास हो राष्ट्रपति बनाने के पूर्व उसे वह प्रकट कर देनी चाहिये। वह संशोधन गिर गया, पर आप यह तो जानते हैं कि राष्ट्रपति को क्या होना चाहिये। उसे संदेह से परे होना चाहिये। उसे चरित्रवान व्यक्ति होना चाहिये। यद्यपि विधि के उपबन्धों के अन्तर्गत नहीं वरन् नैतिक रूप से वह देश की संपत्ति का संरक्षक है। उसे यह देखना होगा कि उस संपत्ति पर किस प्रकार प्रशासन किया जाता है। इस प्रयोजन के लिए वेतन के रूप में एक तुच्छ राशि आवश्यक है। मैं तुच्छ शब्द का प्रयोग कर रहा हूं: वाइसराय 20,000/- रुपया जिसमें से आयकर निकाल कर 9,000/- रुपया रह जाता है लेता था इसकी तुलना राष्ट्रपति के शुद्ध वेतन से करिये जो लगभग 5,000/- रुपया है। क्या यह गवर्नर जनरल के वेतन में शत प्रति शत की कमी और पहले राज्यपालों के वेतनों में पचास प्रतिशत की कमी एक महान त्याग नहीं है जो हमारे लोग कर रहे हैं?

उन लोगों से मेरा कोई झगड़ा या विवाद नहीं है जो सन्यासी राष्ट्रपति जैसी असंयत भाषा का प्रयोग करते हैं। मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी ने कहा था कि राष्ट्रपति को सन्यासी होना चाहिये। श्री त्यागी सन्यासी हो सकते हैं चूंकि वे त्यागी हैं यदि उन्हें किसी समय राष्ट्रपति बनना है तो वे राष्ट्रपति बन सकते हैं। उनसे मेरा कोई विवाद नहीं है। मैं केवल यही पूछता हूं कि क्या हम यहां कांग्रेस के मंच पर हैं? यहां हम संविधान बना रहे हैं। मैंने केवल जेल जाकर ही त्याग नहीं किया है वरन् बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों तक का त्याग किया है। इसी प्रकार से अनेक,

हजारों लाखों लोगों ने त्याग किया है। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये हमने जो कुछ किया उससे हमें प्रेरित नहीं होना चाहिये। हमने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। मानवता की हम सेवा कर चुके हैं, सब कुछ त्याग कर जैसे हमारे स्वामी ने हमें सिखाया वेसे हम देश के सर्वोत्तम हितों की रक्षा कर चुके हैं। यद्यपि मैं पैगम्बर नहीं हूं, पर मैं यह कहूंगा कि यदि हमारा स्वामी जीवित होता चूंकि मैं उनसे भली भांति परिचित था और यद्यपि मेरे कई मित्र मुझसे भी अधिक उनसे परिचित हैं, परन्तु वह भी इस विचार को विनोद में टाल देता जिसको हमारे दो मित्रों ने सभा के समक्ष रखा है।

अत: मेरा विचार यह है कि संविधान में जिस वेतन की व्यवस्था की गई है वह बहुत ही युक्तियुक्त है। मैं यह कहूंगा कि यह एक महान त्याग है। क्या उन कार्यकर्ताओं का यह त्याग नहीं है जो वकील और डॉक्टर की अपनी-अपनी सफल वृत्ति को त्याग कर नेता बने हैं। मुझे उन लोगों के उदाहरण मालूम हैं जो 20,000/- तथा 30,000/- रुपया कमाते थे और एक समय उन्होंने 500/- रुपये तक की नौकरी की और आज 1,500/- रुपये की नौकरी कर रहे हैं। क्या यह कहना उचित है कि यह लोक धन की बरबादी है? हमें स्वयं अपने तथा अपने नेताओं के कार्य को समझने में उदारता से काम लेना चाहिये और इस बात का हमें गौरव होना चाहिये कि हमने क्या क्या त्याग किये हैं और आज भी क्या क्या त्याग कर रहे हैं। कोई ऐसी प्रस्थापना न रखिये जिसके कारण समस्त संसार हम पर हंसे। यदि सभा मेरे भाषण पर हर्षध्वनि नहीं करती है तो मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है। यदि श्री त्यागी की इस बात पर सभा ने हर्षध्वनि की कि उन्होंने वेतन के रूप में एक रुपया या इससे कुछ अधिक रखा तो इस बात की भी मुझे चिन्ता नहीं। यदि इस सभा में मेरा विरोध होता है तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं क्योंकि मैं जानता हूं कि यह प्रस्थापना ठीक है। मैं समझता हूं कि बिना वेतन वाली बात के कारण हमारी समस्त संसार में हंसी उड़ाई जायेगी। राष्ट्रपति और राज्यपालों ने इस वेतन को स्वीकार कर जो महान त्याग किया है उसे हमें समझना चाहिये। जब समय आयेगा तो मैं भत्तों को भी लूंगा। जहां तक वेतन का सम्बन्ध है मैं समझता हूं कि यह वेतन युक्तियुक्त है। श्रीमान, क्या भत्तों सम्बन्धी संशोधन को मैं पेश कर सकता हूं?

***अध्यक्ष:** जी हां, आप उसे पेश कर सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, मेरा संशोधन संख्या 262 कंडिका 2 और 3 में के भत्तों के सम्बन्ध में है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की 2 और 3 कंडिकाओं के स्थान में ये कंडिकायें रखी जायें:-

'There shall be paid to the President and to the Governor the following allowance:

The President shall draw a lump sum of Rs. 1,35,000 per annum which shall include the cost of renewal, repair and maintenance of furniture

[श्री आर.के. सिधवा]

and motor vehicles, also including sumptuary, contract and all other allowances.

The President shall also draw Rs. 10,000 per annum as touring expenses.

The Governors shall draw a lump sum of Rs. 15,000 per annum which shall include the cost of renewal, repair and maintenance of furniture and motor vehicles, also including sumptuary, contract and all other allowances.' "

The Governors shall also draw Rs. 7,000 per annum as touring expenses.' "

[राष्ट्रपति और राज्यपाल को निम्न भत्ते दिये जायेंगे:

राष्ट्रपति को 1,35,000 रुपये की एक मुश्त रकम मिलेगी जिसमें सामान तथा मोटरगाड़ियों की हिफाजत, मरम्मत और नवीनकरण का खर्च शामिल है और सम्पच्यूरी, संविदा तथा अन्य भत्ते भी शामिल हैं।

राष्ट्रपति को मार्ग व्यय के लिये 10,000 रुपये मिलेंगे।

राज्यपाल को 15,000 रुपये की एक मुश्त रकम मिलेगी जिसमें सामान तथा मोटरगाड़ियों की हिफाजत, मरम्मत और नवीनकरण का खर्च शामिल है और सम्पच्यूरी, संविदा तथा अन्य भत्ते भी शामिल हैं।

राज्यपाल को 7,000 रुपये मार्ग व्यय के लिये मिलेंगे।]

जहां तक गवर्नर जनरल के भत्तों का सम्बन्ध है, कल से मैं स्वयं गवर्नर जनरल के लिये सपरिषद सम्राट द्वारा निकाले गये आदेश की खोज कर रहा हूं और गवर्नर के सम्बन्ध में अतिरिक्त मुझे कोई अन्य अध्याय या अनुसूची न मिल सकी। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस बात को बिल्कुल स्पष्ट किया कि ऐसी अनुसूची कभी बनी ही नहीं। मैंने समझा कि वह कहीं न कहीं होगी और मेरे हाथ नहीं लग रही है। अब मुझे यह विदित हुआ कि वह कभी बनी ही नहीं और राज्य के सचिव ने गवर्नर जनरल के भत्ते नियत कर दिये। वे क्या थे यह मैं नहीं जानता हूं। परन्तु डॉ. अम्बेडकर ने दृष्टान्त दिया और गत बजट से मैं भी यह सामग्री जुटा चुका था कि हमारे गवर्नर जनरल के लिये क्या व्यवस्था की गई थी। उन्होंने गवर्नर जनरल के विभिन्न प्रकार के भत्तों के लिये 6,64,000/- रुपये की राशि बताई है।

श्रीमान, आपकी अनुमति से 35,000/- रुपये को सही करके 1,35,000/- रुपये रखना चाहता हूं। इसके पक्ष में ये तर्क हैं। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद जब मैं प्रथम बार गवर्नमेंट हाउस, दिल्ली गया—मेरे अन्य कई मित्र भी वहां गये होंगे—सर्वप्रथम मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि यह गवर्नमेंट हाउस कल ही बनवाया गया है। मेरे मित्रों ने जिस सजधज और सफाई के साथ यह भवन रखा जाता है वह देखा ही होगा। मैं यह विश्वास दिला सकता हूं कि पहले जो धन इस पर खर्च किया जा चुका है उसका सदुपयोग हुआ है। जिस फर्श का प्रयोग किया जा चुका है वह शीशे की भांति चमक रहा था, छत सुनहरी रंग और चित्रकारी और विभिन्न प्रकार की गृह सामग्री इस प्रकार की थीं कि मानों कल ही तैयार की गई हैं। इसका कारण स्पष्ट वहां की हिफ़ाज़त है। गृह प्रबन्धक स्त्री है या पुरुष यह तो मैं नहीं जानता हूं: वह चाहे कोई भी हो परन्तु इस ऐतिहासिक स्थान को ऐसी दशा में रखने के लिये जैसी दशा में वह है वह व्यक्ति इस देश की जनता से श्रेय प्राप्त करने के योग्य है। यह सुझाव दिया गया है कि गवर्नमेंट हाउस को चिकित्सालय बना दिया जाए। मैं इस विचार का विरोध करता हूं। वह चिकित्सालय के लिये नहीं है चाहे यह बात मेरे मित्र श्री सक्सेना और श्री त्यागी को अच्छी लगे। इसका प्रयोग लाभदायक प्रयोजन के लिये होना चाहिये। आज वह एक कौतुकालय के रूप में प्रयोग में लाई जा रही है और हजारों लोग वहां आते हैं और गवर्नमेंट हाउस को देखने का अवसर प्राप्त करते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): हम किस बात पर वाद-विवाद कर रहे हैं? गवर्नमेट हाउस पर या भत्तों पर?

***श्री आर.के. सिधवा:** भत्तों पर। हमें इस बात का ध्यान रखना है कि इस विषय में हम लोभ न करें। इसी कारण मैंने 1,35,000/- रुपये रखे हैं। 1,35,000/- रुपये की राशि में सम्पच्यूरी भत्ता, संविदा भत्ता और सामान का नवीनकरण शामिल है। यदि आप राज्यपालों के लिये भत्ते की व्यवस्था करने वाले परिषद् के आदेश को देखें तो आप को विदित होगा कि बम्बई के राज्यपाल को केवल 25,000/- रुपया मिलता है और कर्मचारी वृन्द सैनिक सचिव इत्यादि को 1,36,000/- रुपये। मैं इन विषय को नहीं ले रहा हूं। उनको नियुक्तियों की वास्तविक संख्या के लिये दिया जा सकता है। मुझे बताया गया है कि बम्बई, मद्रास और बंगाल के राज्यपालों के पास बेन्ड थे पर उनको हटा दिया गया। मद्रास को अधिकतम 43,000/- रुपया दिया जाता है। यदि उसके पास अंगरक्षक हैं तो उसे 1,26,000/- रुपया दिया जाता है। भत्ते की राशि में मैं इसे सम्मिलित नहीं कर रहा हूं। और फिर एक सर्जन और उसके लिये पूरी व्यवस्था है—मद्रास के लिये अधिकतम 36,000/- रुपया है कि और बम्बई के लिये 33,000/- रुपया। इन विषयों को मैं नहीं ले रहा हूं क्योंकि इन नौकरियों के लिये देना ही पड़ेगा। इसके बाद सरकारी आवासों के सामान, मरम्मत और हिफाजत का प्रश्न उठता है। इसके लिये अधिकतम बंगाल को 34,000/- रुपया है, मद्रास को 21,500/-, बम्बई को 25,000/- और न्यूनतम आसाम को 4,000/- रुपये है। हमने राज्यपालों के सरकारी गृहों को भी देखा है और वे भी बहुत बड़े-बड़े हैं। हमारे गवर्नर जनरल बंगाल के राज्यपाल थे और उन्होंने बताया था कि वहां 134 कमरे थे और वे स्वयं उन सब कमरों को देख

[श्री आर.के. सिधवा]

तक न सके थे, उसकी हिफाजत के लिये 25,000/- रुपये एक ठीक रकम होगी। अत: दिल्ली में के गवर्नमेन्ट हाउस को देखकर मेरा विचार इस राशि को 1,35,000/- रुपये तक बढ़ा देने का हुआ।

संविदा भत्ते के लिये अर्थात् प्रकीर्ण व्यय जिसके अन्तर्गत मोटरगाड़ी का खर्च भी सम्मिलित है। बम्बई के लिये 1,08,000/- रुपये की व्यवस्था है; इसके बाद मद्रास आता है और तीसरे नम्बर पर बंगाल है। न्यूनतम उड़ीसा के लिये 11,500/- रुपया है। मार्ग व्यय बहुत अधिक है। बंगाल के लिये 1,22,000/- रुपये, मद्रास के लिये 1,13,000/- और बम्बई के लिये 65,000/- की व्यवस्था है। पहले राज्यपाल आनन्द के लिये जाते थे। उन्हें किसी कर्तव्य का पालन करना नहीं होता था। कदाचित वह प्रशासी मुखिया होता था और इस प्रकार वह मुख्य कार्यपालक भी होता था और शायद इस कारण उन्हें यात्रा करनी पड़ती थी। अब हमारे राज्यपालों के पास कार्यपालिका का कार्य नहीं होगा। वे केवल आवश्यकता पड़ने पर ही कहीं जायेंगे। अत: राष्ट्रपति के मार्ग व्यय के लिये 10,000/- और राज्यपालों के लिये 7,000/- मैंने रखा है। मैं इस रकम को ठीक-ठीक समझता हूं। राज्यपालों से तथा राष्ट्रपति से भी यह आशा नहीं की जाती है कि वे अपने स्थानों को छोड़कर कहीं जायेंगे। अत: मैं समझता हूं कि सामान और मोटरगाड़ियों की मरम्मत और हिफाजत के लिये जिस के अन्तर्गत सम्पच्यूरी भत्ता तथा अन्य भत्ते भी सम्मिलित हैं 35,000/- जो मैंने पहले रखा था उसके स्थान में राष्ट्रपति के लिये 1,35,000/- और राज्यपालों के लिये 15,000/- युक्ति युक्त होगा।

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था कि इन बातों को संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये। यह एक बहुत बड़ा मद है। मुझे अभी यह बताया गया है कि विभिन्न प्रयोजनों के लिये गवर्नमेन्ट हाउस दिल्ली पर 18 से 20 लाख तक खर्च हो रहा है। हमारे पास इस खर्च की ठीक-ठीक राशि तो नहीं है पर एक बहुत बड़ी राशि खर्च होती है। अत: मैं यह समझता हूं कि राष्ट्रपति और राज्यपालों के भत्तों के प्रयोजनार्थ अनुसूची में विशेष रूप से वर्णन होना चाहिये। आखिर वेतन तो उनके निजी वैयक्तिक प्रयोजनों के लिये है और मैं यह नहीं चाहता हूं कि जनता यह कहे कि राज्यपालों ने वेतन तो कम स्वीकार किया है पर वे परोक्ष रूप से इन भत्तों में से धन प्राप्त कर लेते हैं। साथ ही साथ हमें जनता को यह भी बताना है कि भत्ते की दो लाख की एक बड़ी रकम को घटाकर हमने बहुत कम कर दिया है और यह रकम सरकारी गृहों की हिफाजत करने के लिये वास्तव में आवश्यक है। यदि हम राज्यपालों और राष्ट्रपतियों से सन्यासी बन जाने के लिये कह कर उनके रहन-सहन के ढंग में केवल परिवर्तन करना चाहते हैं तो ये सरकारी गृह उपयुक्त नहीं हैं। तब तो उन्हें कुटिया में जाकर रहना होगा—शायद कभी ऐसा समय आये—यद्यपि मैं यह नहीं जानता हूं कि वह समय कब आयेगा जब हमारे रहन-सहन का दृष्टिकोण और रहन-सहन की प्रणाली में परिवर्तन

हो। हम यह नहीं चाहते हैं कि गवर्नमेन्ट हाउस की वस्तुऐं बरबाद या खराब हों। हमें राज्य के खर्च से उनकी हिफाज़त करना है और वास्तव में भावी संतति का यह कर्तव्य है कि वह इस बात का ध्यान रखे कि ये भवन स्मारकों के रूप में रहें। हां इनमें से कुछ भवन बहुत ही जीर्ण शीर्ण दशा में हैं। यहां तक कि बम्बई का सरकारी गृह भी बहुत प्राचीन है। मसौदा समिति से मैं यह निवेदन करता हूं कि वह संविधान में भत्ते की व्यवस्था करे जिससे कि यह न कहा जा सके कि भत्तों में से धन का अपव्यय किया जाता है और इस प्रकार राज्यपालों पर लांछन लगाया जा सके। इन शब्दों में मैं अपने संशोधन को पेश करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): श्रीमान, क्या प्रत्येक भाग पर या समस्त अनुच्छेद पर साधारण वाद विवाद होगा?

***अध्यक्षः** समूचे अनुच्छेद पर मैं संशोधनों को लूंगा और उसके बाद हम साधारण वादविवाद रखेंगे। संख्या 264 ।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) में संशोधन संख्या 210 के निर्देशानुसार भाग 3 की कंडिका 8 के स्थान में यह कंडिका रखी जायेः—

'8. There shall be paid to the Speaker and the Deputy Speaker of the provisional Parliament, such salaries and allowances as were payable to the Speaker and the Deputy Speaker of the Constituent Assmbly of the Dominion of India immediately before the commencement of this Constitution.'

[अंतर्कालीन संसद के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि भारत डोमिनियन की संविधान सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को इस संविधान सभा के प्रारम्भ से ठीक पहले दिये थे।]

श्रीमान, वर्तमान रूप में भाग 3 में यह कहा गया है—

"लोक-सभा के अध्यक्ष और राज्य-परिषद् के सभापति को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि भारत डोमिनियन की संविधान सभा के अध्यक्ष को इस संविधान सभा के प्रारम्भ से ठीक पहले दिये थे।"

स्थिति यह है कि अन्तर्वर्ती काल में लोक-सभा का न तो अध्यक्ष होगा और न राज्य-परिषद का सभापति। इस समय हम केवल अन्तर्वर्ती काल के लिये उपबन्ध बना रहे हैं बाद में संसद वेतन निश्चित करेगी। इस कारण यह वर्तमान संशोधन ठीक नहीं बैठता है। भाग 3 में आगे यह और कहा गया है—

"...और लोक-सभा के उपाध्यक्ष तथा राज्य-परिषद् के उप-सभापति को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि क्रमशः विधान-सभा के उप-सभापति और राज्य-परिषद् के उप-सभापति को 15 अगस्त 1947 से ठीक पहले दिये थे।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

डॉ. अम्बेडकर के द्वारा पेश किये संशोधन में वे चाहते हैं—

"कि 'क्रमशः विधान-सभा के उप-सभापति और राज्य-परिषद् के उप-सभापति को 15 अगस्त, 1947 से ठीक पहले' शब्दों के स्थान में 'भारत डोमिनियन की संविधान सभा के उपाध्यक्ष को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले' शब्द रख दिये जायें।"

यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो कंडिका का पाठ इस प्रकार का हो जायेगा:—

"....तथा लोक-सभा के उपाध्यक्ष को और राज्य-परिषद् के उप-सभापति को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि भारत डोमिनियन की संविधान सभा के उपाध्यक्ष को इस संविधान के ठीक पहले दिये थे।"

वर्तमान परिस्थिति में यह ठीक नहीं बैठता है। यह स्पष्ट है कि कोई न कोई त्रुटि है और इसी प्रकार मैंने यह संशोधन भेजा है। मेरे इस संशोधन में यह कहा गया है कि अन्तर्कालीन संसद के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि भारत डोमिनियन की संविधान सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को इस संविधान सभा के प्रारम्भ से ठीक पहले दिये थे। मुझे विश्वास है कि डॉ. अम्बेडकर से कोई भूल हो गई है और मसौदा समिति ने उस पर ध्यान नहीं दिया है। मैं अपने मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का ध्यान भाग 3 के इस अंश की ओर आकर्षित करूंगा कि जिसमें स्पष्ट कोई त्रुटि है। अन्तर्वर्ती काल में हमारी लोक-सभा का कोई अध्यक्ष नहीं होगा। मैं आशा करता हूं कि मसौदा समिति द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा और आवश्यक सुधार कर लिया जायेगा।

***अध्यक्षः** इसके बाद हम भाग 4 पर आते हैं। संशोधन संख्या 165 और 265 एक से हैं, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम): श्रीमान, मुझे संशोधन संख्या 265, 267 और 270 पेश करने हैं। अंतिम सूची में मैंने उनको फिर से इकट्ठा रख दिया है।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उप-कंडिका (1) में—

(i) '5000' संख्या के स्थान में '6000' संख्या रख दी जाये; और

(ii) '4000' संख्या के स्थान में '5000' संख्या रख दी जाये।"

मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उपकंडिका (3) में—

(i) 'thirty-first day of October 1948' (31 अक्तूबर, 1948) शब्द और अंक के स्थान में 'commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ) शब्द रख दिये जायें;

(ii) 'the commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ) शब्दों के स्थान में 'such commencement' (ऐसे प्रारम्भ) शब्द रख दिये जायें।"

अपने संशोधन के भाग (3) को मैं पेश नहीं करता हूं।

मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उप-कंडिका (1) में—

(i) '4000' संख्या के स्थान में '5000' संख्या रख दी जाये; और

(ii) '35,500' संख्या के स्थान में '4000' संख्या रख दी जाये।"

मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उप-कंडिका (2) में—

(i) 'thirty-first day of October 1948' (31 अक्तूबर, 1948) शब्द और अंक के स्थान में 'commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ) शब्द रख दिये जायें;

(ii) 'the commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ) शब्दों के स्थान में 'such commencement' (ऐसे प्रारम्भ) शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान, इस संशोधन के तीसरे भाग को मैं जरा-सा बदल कर रखना चाहता हूं यद्यपि प्रभाव उसका वही रहेगा। परिवर्तन केवल शाब्दिक होगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुसूची 2, भाग 4, कंडिका 11, उपकंडिका (2) में shall be entitled' (हक होगा) शब्दों के स्थान में 'shall in addition to the salaries specified

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

in sub-paragraph (1) of this paragraph be entitled' (इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतनों के सहित हक होगा) शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान साधारण.....

***अध्यक्ष:** किसके सहित?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** "इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतनों के सहित।" यह पद रचना ठीक इसी रूप में कंडिका 10 की उपकंडिका (3) में वर्तमान है और इस उपकंडिका में यह भूल से रह गई है और जिस संशोधन का मैंने सुझाव दिया है वह इस प्रसंग में उपयुक्त है।

श्रीमान, मेरे संशोधनों के साधारण प्रयोजन के संबंध में यह बात है कि वे उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कुछ वेतनों के बढ़ाने के लिये हैं जिससे कि वर्तमान स्तर के अनुरूप वेतन हो जायें।

***अध्यक्ष:** आप संशोधन संख्या 271 पेश नहीं कर रहे हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरे पास उसकी प्रति नहीं है। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 12 की उपकंडिका (ख) के मद (2) में से 'excluding any time during which the judge is absent' (उस समय को न गिनकर जिसमें कि वह न्यायाधीश छुट्टी लेकर अनुपस्थित है) शब्द अपमार्जित कर दिये जायें।"

श्रीमान, जैसा कि मैं कह चुका हूं मेरा उद्देश्य उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन को पुराने वेतन के बराबर लाना है। श्रीमान, न्यायाधीशों के सम्बन्ध में एक तथ्य को स्पष्ट याद रखना चाहिये। वह तथ्य यह है कि वकीलों में से बहुत ही सफल वकील को जिस की बहुत अधिक आय होती है उसे न्यायाधीश बनाया जाता है। यदि वह एक अच्छा वकील नहीं है और उसकी आय अधिक नहीं है तो वह न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के योग्य नहीं है। यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारे न्यायाधीशों का जीवन स्तर ठीक-ठीक हो और उसको एक उच्च स्तर पर रखा जाये। न्यायाधीश विशेषकर उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश महान विशेषज्ञ होते हैं और यह बहुत ही आवश्यक है कि इतने उच्च और महान कार्य के लिये उनको ठीक-ठीक पर्याप्त वेतन दिया जाये। उनको विशेषज्ञ के रूप में समझना चाहिये और उसी रूप में उनको वेतन मिलना चाहिये। यदि हम अपने न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन नहीं देंगे तो फल यह होगा कि कुछ समय के बाद उच्च तथा योग्य वकील उच्च

न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीशता स्वीकार करने के लिये आकर्षित नहीं होंगे।

न्यायाधीशों के वर्तमान वेतन के संबंध में डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा एक यह संशोधन पेश किया गया है कि वह वेतन केवल वर्तमान न्यायाधीशों को ही दिया जाये। मैंने अनुच्छेद 310 पर कुछ दिनों पहले इस प्रभाव का एक संशोधन भेजा था, उस समय मुझसे यह स्पष्ट कहा गया था कि उसके लिये उपयुक्त स्थल इस अनुसूची में होगा। मैंने उस बात को मान लिया यद्यपि मैं इस बात से सहमत न था कि उसके लिये उपयुक्त स्थल यह है। उसके लिये स्थल तो अनुच्छेद 310 ही था क्योंकि जहां तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का संबंध है उस अनुच्छेद में यह उपबन्धित है कि 26 जनवरी 1950 को वर्तमान न्यायाधीश स्वत: ही उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश हो जायेंगे। अनुच्छेद 310 पूर्णतया अनावश्यक था क्योंकि प्रत्येक पदाधिकारी चाहे वह किसी भी भी पद पर हो स्वत: ही अपने पद पर बना रहेगा चाहे नया संविधान प्रवृत्त हो जाये। उनकी नौकरी को बनाये रखने के प्रयोजन से तो अनुच्छेद 310 स्पष्टतया निरर्थक है। अन्य किसी सेवा के लिये ऐसा उपबंध आवश्यक नहीं समझा गया। इस अनुच्छेद का आशय इससे अधिक गहरा था। न्यायाधीशों के वेतन संबंधी उपबन्धों का द्वितीय अनुसूची में हस्तान्तरण कर और इस प्रकार एक अति परोक्ष रीति से उनके वेतन कम करने का बहाना कर मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद को न्यायाधीशों के वेतन को चुपचाप प्रकट किये बिना कम करने के लिये पुर:स्थापित किया है। मेरा विचार यह है कि अनुच्छेद 310 के न होने पर भी न्यायाधीश उसी प्रकार से बने रहते जिस प्रकार से अन्य लोक सेवक बने रहेंगे।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का विषय बिलकुल ही भिन्न है। जिस तिथि को यह संविधान प्रवृत्त होता है उसी तिथि से फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बन जाते हैं। इस प्रकार का एक अनुच्छेद आवश्यक था परन्तु अनुच्छेद 310 जैसा अनुच्छेद उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए बिल्कुल ही आवश्यक न था। श्रीमान, अनुच्छेद 310 उच्च न्यायालय के वर्त्तमान न्यायाधीशों को इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि से स्वत: ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में कार्य करने की अनुमति देता है तो उनको वही वेतन मिलना चाहिये जो उन्हें पहले मिल रहा था। केवल इस आधार पर कि हमने यह विधान पास कर दिया है न्यायाधीशों का वेतन कम नहीं किया जा सकता है। अत: जैसाकि मैं कह चुका हूं मैं इस बात पर जोर देता हूं कि अनुच्छेद 310 न्यायाधीशों के वेतन को चुपचाप कम करने के लिये एक बड़ी ही वक्र योजना है।

इसके बाद हम औचित्य प्रश्न पर आते हैं। यह एक प्रसिद्ध बात है कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश अपने उच्च बौद्धिक कार्य के अनुरूप, जिसके करने के वे अभ्यस्त थे, उच्च वेतन प्राप्त कर रहे थे। यह सत्य है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद स्वीकार करने में एक बहुत ही सारवत आर्थिक त्याग करना पड़ता था। हमारे यहां इस सभा में दो प्रसिद्ध भूतपूर्व न्यायाधीश हैं और वे इस बात के साक्षी हैं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद बिना किसी कार्य के वेतन युक्त पद नहीं है। यह बड़े परिश्रम तथा बड़ी चिन्ता का पद है और उनके कर्तव्य का संतोषजनक निर्वहन करने के लिये महान परिश्रम तथा गुरुतर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कार्य आवश्यक है। हर कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय का एक बहुत अच्छा न्यायाधीश नहीं बन सकता है। केवल विशेषज्ञ और उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही अच्छा न्यायाधीश बन सकता है। केवल वही व्यक्ति जिसका उच्च बौद्धिक विकास है और जो बहुत परिश्रम कर सकता है उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कर्त्तव्य का निर्वहन कर सकता है। फेडरल न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यता इससे भी अधिक होती है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि इन न्यायाधीशों का वेतन कम नहीं होना चाहिये। जो वेतन उन्हें मिल रहा था वही मिलता रहे, परन्तु मसौदा समिति का वर्तमान सुझाव इस प्रभाव का है कि केवल वे न्यायाधीश जिनकी नियुक्ति 1 नवम्बर, 1948 से पूर्व हुई थी अपना पहला वेतन पाते रहेंगे, पर इसके बाद में नियुक्त हुए न्यायाधीश को बहुत कम मिलेगा। इस भेद विभेद में मुझे कोई न्याय नहीं दिखाई देता है विशेषकर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि रुपये का मूल्य वर्तमान अवमूल्यन के अतिरिक्त भी बहुत ही गिर गया है। अवमूल्यन के पूर्व युद्ध के पूर्व काल की तुलना में रुपये का अधिक से अधिक मूल्य चार आने था। अब आधुनिक अवमूल्यन के कारण रुपये का मूल्य और भी अधिक गिर गया है और इस कारण न्यायाधीशों के वेतन का मूल्य अधिक नहीं रहा। वर्तमान समय में जो वेतन है वह कई वर्षों से चल रहा है। न्यायाधीशों को ऊंची दर के अनुसार आयकर भी देना होगा। यदि आप एक न्यायाधीश को अधिक वेतन देते हैं तो आप उसको पूरा का पूरा वेतन नहीं देते हैं। आप उसके वेतन में से 20 प्रतिशत काट लेंगे और यदि किसी न्यायाधीश को कोई और आय है तो यह कटौती और भी अधिक हो जायेगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** उस आय को वह छोड़ दें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यह इतना उच्च स्तर है कि हमारे जीवन में वह व्यवहार्य नहीं हो सकता। जिस माननीय सदस्य ने मेरे भाषण में बाधा डाली है वे अपनी आय छोड़ने के लिये राजी नहीं होंगे। मैं निवेदन करता हूं कि आयकर लगेगा। आयकर को काट कर वेतन बहुत कम रह जाता है और रुपये का कम मूल्य हो जाने के कारण उनको बहुत कम वेतन मिलेगा। उनसे जिस विशिष्ट ज्ञान और उच्च कोटि के कार्य की आशा की जाती है उस पर विचार करते हुए उनको पुराना वेतन मिलता रहना चाहिये। उनका जीवन इतना कोलाहल तथा उत्तेजनापूर्ण नहीं है जितना हम समझते हैं। समाज से वे लगभग पृथक से रहते हैं। राजनीति में भाग लेने का सुअवसर उन्हें नहीं मिल सकता।

***श्री एच.वी. कामतः** वे क्लबों में जाते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यदि वे क्लबों में जाते भी हैं तो उन्हें वहां हम में से कुछ लोगों से अधिक गंभीर होकर रहना पड़ता है। अवकाश प्राप्त करने के बाद न्यायाधीशों को अपने प्रान्त से बाहर वकालत करने दिया जाता था। परन्तु अब वे भारत के किसी भाग में भी वकालत नहीं कर सकते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि उनके वेतन कम करने के पक्ष में कोई भी बात नहीं है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन के विषय में यह बात है कि हमें 26 जनवरी से स्वतंत्रता मिलेगी। (**एक सदस्य**–हम स्वतंत्र हो गये हैं।) अभी हम

स्वतंत्र नहीं हैं। हम अभी भी एंग्लो अमेरिकन गुट के पल्ले से बंधे हुए हैं। हमें सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई है। तत्कथित स्वाधीनता प्राप्त होने पर फेडरल न्यायालय उच्चतम न्यायालय में परिवर्तित हो जायेगा। उच्चतम न्यायालय के फेडरल न्यायालय के ही कृत्यों को नहीं करेगा बल्कि प्रीवी कौंसिल के कृत्यों को भी करेगा। वह भारत का सर्वोच्च न्यायालय होगा और विधि के विषय में वास्तव में वह उच्चतम न्यायालय होगा। उच्चतम न्यायालय को फेडरल न्यायालय से अधिक शक्तियां प्राप्त होंगी और उसका स्थान उच्चतर होगा।

परन्तु फेडरल न्यायालय की न्यायाधीशता की स्थिति को हम उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीशता के उच्च स्तर पर ले जा रहे हैं और उनके पद और शक्ति में वृद्धि कर रहे हैं और साथ ही साथ हम उनके वेतन को भी घटा रहे हैं। यह अन्याय है। लोकतंत्र को क्रियान्वित करने के लिये इससे अधिक महत्वपूर्ण बात और दूसरी नहीं है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की दक्षता और योग्यता को अक्षुण्ण रखा जाये। यदि उनका वेतन घटा दिया जाता है तो न्यायालय को जिस सीमा की योग्यता, प्राधिकार और गौरव की आवश्यकता है उससे कम गुणों वाले लोग इन उच्च पदों की ओर आकर्षित होंगे। परिणाम यह होगा न्यायपालिका की कार्यकुशलता में कमी आ जायेगी। उच्चतम न्यायालय इस सभा तथा देश से सर्वोच्च सम्मान प्राप्त करने के योग्य है। उनकी भरती उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में से की जायेगी और उन्हें भारत की राजधानी में आना होगा और उन्हें दो स्थानों पर व्यवस्था करनी पड़ेगी एक अपने घर पर और दूसरी राजधानी में।

इसके बाद मैं वर्तमान न्यायाधीशों के वेतन संबंधी अपने संशोधन के दूसरे भाग पर आता हूं। वर्तमान प्रस्थापना के अनुसार जिन वर्तमान न्यायाधीशों की नियुक्ति 31 अक्तूबर, 1948 तक हुई थी केवल वे ही पुराना वेतन पाते रहेंगे। मैं निवेदन करता हूं कि यह तिथि मनमानी है और किसी पुष्ट सिद्धांत के आधार पर आश्रित नहीं है। उन न्यायाधीशों के वेतन की भी रक्षा करनी चाहिये जिनकी नियुक्ति इस तारीख के पश्चात् और नये संविधान के प्रतिष्ठापन से पहले हुई है। कोई ऐसी बात नहीं है कि उनको कम क्यों मिले। और फिर एक उपबन्ध यह भी है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को सरकारी गृह मिल सकेगा; यह भी केवल उन न्यायाधीशों के लिये है जिनकी नियुक्ति बाद में होगी। जिन न्यायाधीशों को उच्च वेतन मिल रहा था उनको उच्च वेतन तो मिलता रहेगा पर सरकारी गृह मिलने का उन्हें हक नहीं होगा। मैं निवेदन करता हूं कि इन दो वर्गों के न्यायाधीशों के साथ यह दो प्रकार का व्यवहार एक प्रकार की वाणिज्यिक प्रवृत्ति पर आश्रित है। मैं निवेदन करता हूं कि फेडरल न्यायालय के सब न्यायाधीशों को बिना किराये का सरकारी मकान मिलना चाहिये। इस विषय के इस अंग से संबंधित दो संशोधन आनुषंगिक हैं और उनका विशेष रूप से वर्णन करना अपेक्षित नहीं है।

इसके बाद मैं भाग (3) के संशोधन संख्या 270 पर आता हूं। यह संशोधन वास्तव में उस रिक्त स्थल की पूर्ति करता है जो मसौदा समिति से अनजाने में रह गया है। मैं कंडिका 10, उप-कंडिका (3) की ओर ध्यान आकर्षित करता हूं। उसमें यह कहा गया है कि "इस कंडिका की उप-कंडिका (1) में उल्लिखित

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वेतन के साथ-साथ" वर्तमान न्यायाधीश को वर्तमान वेतन और नये वेतन का अन्तर मिलेगा। यह तथ्य कि जो वेतन उन्हें मिलेगा 'उसके साथ' पुराने और नये वेतनों का अन्तर भी मिलेगा कंडिका 10 में विशिष्ट रूप से उल्लिखित है। परन्तु कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) में से यह शर्त्त निकाल दी गई है। इसका प्रभाव यह है कि जिस न्यायाधीश को इस समय 4000 रुपये मिल रहा है उसे नये वेतन के अनुसार 3,500 रुपये मिला करेगा और इस स्वीकृत 3,500 रुपये के साथ साथ 500 रुपया और मिलेगा; परन्तु जैसा यह है उससे यह ख्याल होता है कि उसको केवल विशेष वेतन मिलेगा जो 4,000 रुपये और 3,500 रुपये के अन्तर के बराबर केवल 500 रुपया होगा। इस तथ्य का अभाव कि यह राशि नये मंजूर किये गये वेतन के 'अतिरिक्त' होगी कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) में है। यह एक ऐसी भूल है जो अनजाने में हो गई है और मैं निवेदन करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार किया जाये।

मेरा अन्तिम संशोधन औपचारिक है और उसकी व्याख्या करने में मैं सभा का समय लेना नहीं चाहता हूं। मैं यह सुझाव देता हूं कि इस संशोधन को भी स्वीकार किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की–

(i) उप-कंडिका (1) में '5000' और '4000' अंकों के स्थान में क्रमश: '3000' और '2000' रखा जाये; और

(ii) उप-कंडिका (2) में 'without' शब्द के स्थान में on शब्द रखा जाये।"

श्रीमान, मैंने यह संशोधन इस कारण पेश किया है कि मुझे ऐसा अनुभव होता है कि न्यायाधीशों के लिये हम बहुत अधिक वेतन की व्यवस्था कर रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने डोमिनियनों के न्यायाधीशों के वेतनों को उद्धृत किया था। जब तक हम आस्ट्रेलिया और कनाडा की औसत आय को ध्यान में नहीं लायेंगे तब तक हमारे मन में एक भ्रमपूर्ण धारणा घर कर जायेगी। मैं यह जानना चाहूंगा कि एक भारतीय और आस्ट्रेलिया या कनाडा निवासी की औसत आय में क्या अन्तर है।

एक और तर्क जो बहुधा उन लोगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो न्यायाधीशों के लिये ऊंचे वेतन के पक्ष का समर्थन करते हैं वह यह है कि फेडरल संविधान में उन्हें महत्वपूर्ण भाग लेना है। यह कहा गया है कि न्यायाधीश लोगों की स्वतंत्रता के संरक्षक हैं और इस कारण उच्च वेतन पाने के वे हकदार हैं। गौरव का प्रश्न भी इसके अन्तर्गत आ जाता है। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनके आधार पर उच्च वेतन का प्रश्न उठाया जाता है। मैं इन आधारभूत विचारों के विवरणपूर्ण वाद विवाद में प्रवेश करूंगा जो मुझे प्रमाणहीन प्रतीत होते हैं।

यदि यह संविधान सभा एक भारतीय की औसत आय के आधार को नहीं मानती है तो वह राज्य की जड़ों को खोखला करेगी। इस देश में लोगों का पहले ही से यह विश्वास है कि हमारे जीवन के तथ्यों पर बिना विचार किये भारत सरकार ने न्यायाधीशों और राज्यपालों को समस्त सम्भाव्य सुविधायें दे रखी हैं। उसने मुट्ठी भर लोगों को सब तरह के भत्ते दे रखे हैं जिनको मुख्य राज्यपाल, प्रधान मंत्री, मंत्री, महालेखा परीक्षक इत्यादि के भिन्न-भिन्न पदों पर रखा गया है। क्या मैं सविनय यह निवेदन कर सकता हूं कि इस देश का जन साधारण राज्य के इन पदाधिकारियों को उपेक्षित दृष्टि से देखता है जो उच्च वेतन पा रहे हैं। मैं इस बात के पक्ष में नहीं हूं कि ऊंचे वेतन दिये ही न जायें। मैं इस बात के पक्ष में हूं कि जहां तक विदेशी विशेषज्ञों और प्रौद्योगियों का संबंध है वे जितना चाहें उतना उनको दिया जाये परन्तु जहां तक उन लोगों का संबंध है जो इस देश में रहते हैं, जहां तक उन लोगों का सम्बन्ध है जो कांग्रेस में हैं उनको देश के लिये कुछ त्याग करना चाहिये।

क्या मैं यह समझ लूं कि स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद उन सब सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दी जाये जिनके हम समर्थक थे? क्या उन सिद्धान्तों का परित्याग कर दिया जाये, उनकी उपेक्षा की जाये और उनकी हंसी उड़ाई जाये? दूरदर्शी राजनीतिज्ञों और लोक सेवकों को इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये कि हमारे मन में आर्थिक समानता की प्रेरणा इतना उग्र तथा प्रबल रूप धारण कर चुकी है कि उसकी उपेक्षा सरलता से नहीं की जा सकती। इस सभा का कोई अन्य सदस्य जितना जानता है उतना ही मैं जानता हूं कि वर्त्तमान समय में आर्थिक समानता की सब बातें काल्पनिक हैं पर आप यह नहीं कह सकते कि यह एक ऐसा विचार है जिसका वास्तविक आधार कोई नहीं है। आप 5000 तथा 6000 रुपये वेतन की व्यवस्था कर रहे हैं परन्तु गांवों के जन साधारण के लिये क्या है? आप यह कहते हैं कि यह लोकतंत्रात्मक सरकार है। क्या आप ने जनता से पूछ लिया है? क्या आप जनता से पूछना चाहते भी हैं? मैं यह निवेदन करता हूं कि मैं उन वकीलों के मत का समर्थक नहीं हूं जो यह कहते हैं कि हमारे देश की राजनीति में न्यायपालिका को एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य करना है। यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में स्वयं अपनी महत्ता को वास्तविकता से अधिक आंकता है। एक वकील सदैव यही सोचता है कि समाज में एक बड़ा लाभदायक काम हम करते हैं। मैं यह चाहूंगा कि ये व्यक्ति जिन्होंने महात्मा गांधी की पुस्तक नहीं पढ़ी (मैं "हिन्द स्वराज" का उल्लेख कर रहा हूं जो प्रत्येक कांग्रेसी के लिये राजनीति की धर्मपुस्तक है) वे उस अध्याय को देखें जिसमें उन्होंने वकीलों और न्यायाधीशों के प्रति अपने विचार प्रकट किये हैं।

मेरा विचार यह है कि इस अन्तर्वर्ती काल में न तो विधान मंडल और न न्यायपालिका को महत्वपूर्ण कार्य करना है वरन् कार्यपालिका को महत्वपूर्ण कार्य करना है। 19वीं शताब्दि में विशेषकर अमरीका में न्यायपालिका ने महत्वपूर्ण कार्य किया पर जिस परिस्थिति में हम आज हैं उसके अनुसार इस देश में न्यायपालिका का भविष्य अच्छा नहीं है। न्यायपालिका एक ऐसे समाज में महत्वपूर्ण कार्य करती है जहां विधिवाद की भावना का प्राधान्य होता है जहां राज्य की जड़ें दृढ़ होती हैं और जहां क्रान्तिकारी उत्पात नहीं होते हैं। भारत में इसके विपरीत तथ्य हैं।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

हमारी आर्थिक व्यवस्था तेजी के साथ अवनत होती जा रही है, प्रति दिन आन्तरिक क्रान्ति का भय उग्ररूप धारण करता चला जा रहा है और क्षितिज में विदेशी युद्ध के संकटपूर्ण मेघ छाये हुये हैं। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि न्यायपालिका किस प्रकार हमारे संविधान की संरक्षिका होगी, लोगों के जीवन और स्वातंत्र्य की वह किस प्रकार रक्षा कर सकेगी जब कि लोग दुष्टता करने और राजविद्रोह की शरण लेने पर उतारू हैं।

एक और तर्क जो बहुधा प्रस्तुत किया जाता है वह यह है कि आपको इतना वेतन और भत्ता देना चाहिये कि न्यायाधीश अपने ऐश्वर्य का निर्वाह कर सकें। यह पूरा का पूरा विचार अभ्रद्रता से परिपूर्ण है। इस देश के लोगों का आदर्श सादा जीवन उच्च विचार रहा है। ऐश्वर्य का सम्बन्ध धन से नहीं है। केवल पश्चिम में ही यह विचारधारा प्रचलित है। पर विद्वान मनुष्य हमारे विचारों की उपेक्षा करते हैं। हममें से कुछ लोग जो अपने पुराने आदर्श और पुरानी परम्परा पर आरूढ़ हैं वे इस बात पर जोर देंगे कि हम सादा जीवन और उच्च विचार के पुराने आदर्श पर आरूढ़ हैं और आरूढ़ रहेंगे यद्यपि हम यह भली भांति जानते हैं कि हमारी बात सुनी नहीं जायेगी।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात कहूंगा जो कि यद्यपि पूर्ण रूप से संगत नहीं है। लोग यह पूछ सकते हैं कि संविधान सभा के सदस्यों के भत्ते के बारे में क्या विचार हैं। मैं 45 रुपये प्रति दिन के पक्ष में नहीं हूं। मैं यह चाहता हूं कि हमें तीसरे दर्जे का दिल्ली बिना किराये जाने का एक पत्र दे दिया जाया करे जिसके कारण हम यहां सभा में उपस्थित हो सकें। हम चाहते हैं कि सरकार हमारे लिये एक निवास-स्थान की व्यवस्था करे जिसमें हम विधान निर्माता की हैसियत से रह सकें और कृत्य कर सकें। हम यह चाहते हैं कि यह सरकार हमारे लिये केवल जेल के खाने की व्यवस्था करे और इससे अधिक हम एक पाई भी नहीं चाहते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** क्या आप जेल का खाना खा रहे हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इस विषय पर मैं बहुत गंभीर हूं। मुझे विश्वास है कि यह प्रश्न इस सभा या दूसरी सभा में उठाया जायेगा। यदि मैं इस विषय पर और अधिक कुछ कहूं तो सभा के समक्ष इस समय जो विषय है उसके प्रति वह कहना उपयुक्त नहीं होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** क्या आप जेल में खाना खा रहे हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** लोगों की आर्थिक दशा का ऐश्वर्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन लोगों को इस देश में सबसे अधिक सम्मान प्राप्त हुआ है वे सन्त लोग हैं न कि लखपती। एक न्यायाधीश का ऐश्वर्य वह जो कुछ काम करेगा उस पर निर्भर करेगा बशर्ते कि वह उस कार्य को सेवा और त्याग की भावना से करे। ऐश्वर्य जो कुछ वेतन और भत्ते हम उसे देंगे उस पर निर्भर नहीं करेगा। ऐसे लोग भी हैं जो न्यायाधीश के लिये उच्च वेतन के पक्ष में हैं। वे कहते हैं कि कोई अच्छा वकील न्यायाधीश होना स्वीकार न करेगा जब तक आप उसे

उचित वेतन और भत्ता न देंगे अतः जब तक आप उसे उच्च वेतन का प्रलोभन नहीं देंगे तब तक वह न्यायाधीश के पद को स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत नहीं होगा। श्रीमान, हम ऐसे न्यायाधीश नहीं चाहते हैं जिनको जब तक उचित वेतन और भत्ते न मिलें तब तक वे काम ही न करें। जो लोग भाड़े के टट्टू होते हैं वे अविश्वसनीय होते हैं। यदि वे तब तक काम नहीं कर सकते जब तक कि 5000 रुपये वेतन न दिया जाये तो वे हमारे स्वातंत्र्य के रक्षक किस प्रकार हो सकते हैं? जहां तक वकीलों का संबन्ध है किसी एक सीमा से अधिक कमाने से रोकने के लिये हमें कुछ न कुछ करना चाहिये। हमें कुछ ऐसी विधियां पार करनी चाहिये जिनसे 1000 रुपया प्रति मास से अधिक अर्जन करना उनके लिये असंभव हो जाये।

***श्री महावीर त्यागीः** आप का संशोधन क्या है?

श्री ब्रजेश्वर प्रसादः मैं अपने संशोधन का समर्थन कर रहा हूं कि वेतन कम कर दिये जायें और वे हमारे जीवन के आर्थिक तथ्यों के अनुरूप हों। मैं इस प्रश्न पर अधिक विस्तार-पूर्वक तथा अधिक कुशलतापूर्वक विचार प्रस्तुत करना चाहूंगा, पर इसके लिये मेरे पास समय कम है, मैं स्वयं इस अनुच्छेद पर साधारण रूप में बोलना चाहता हूं।

मैं अनुसूची तथा राष्ट्रपति के वेतन की ओर निर्देश करता हूं। मेरे मित्र प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं। मैं इस संशोधन का इस कारण समर्थन करता हूं कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस संविधान के अधीन प्रथम राष्ट्रपति ही अन्तिम राष्ट्रपति होगा। इस आधार पर मैं ये बातें कह रहा हूं। यदि मैं समझता कि यह संविधान आने वाले कुछ काल तक रहेगा, कि कांग्रेसी ही नहीं बल्कि गैर कांग्रेसी भी भारतीय संघ का राष्ट्रपति बन सकेगा तो शायद मैं यह बातें नहीं कहता जिन्हें मैं कहने जा रहा हूं। यह वास्तव में बड़े ही आश्चर्य और असमंजस का विषय है कि हमारे विश्वासप्रद नेता राजगोपालाचार्य के समान व्यक्ति सरदार पटेल जैसे व्यक्ति जिसने सब कुछ बलिदान कर दिया है आप जैसे महान व्यक्ति धन की बात मन में ला सकते हैं। मैं जानता हूं कि ये महान आत्मायें धन की बात अपने मन में नहीं ला सकती हैं। श्रीमान, मैं जानता हूं कि आप या कांग्रेस हाई कमान्ड का कोई सदस्य राष्ट्रपति होगा।

***अध्यक्षः** आपको व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख नहीं कर रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं। कि कांग्रेस हाई कमान्ड का कोई न कोई सदस्य राष्ट्रपति होगा।

***अध्यक्षः** आपको यह अनुमान करने की भी आवश्यकता नहीं है।

***श्री महावीर त्यागीः** लो कमान में से कोई क्यों नहीं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरी यह धारणा है कि कांग्रेस हाई कमान का कोई सदस्य, जिसने अपने समस्त जीवन भर बिना वेतन और भत्ते के कार्य किया है, बड़ी खुशी से बिना वेतन और भत्ते के संघ के राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेंगे। मुझे खेद है मैं केवल वेतन का ही उल्लेख कर रहा हूं न कि भत्ते का। मुझे

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

यह प्रतीत होता है कि यदि हम यह साहस का कदम उठायें तो इससे कांग्रेस की प्रतिष्ठा फिर स्थापित हो जायेगी। इसका मनोवैज्ञानिक महत्व है। कांग्रेस के शत्रु मेरे इस विचार को पसन्द नहीं करेंगे। वे ऐसे विचार को अव्यवहार्य समझेंगे। पर कांग्रेसियों की क्या हालत है? हमें दूसरों से कमर कसने के लिये कहने का कोई अधिकार नहीं है। जब तक हम अपने आवरण ठीक न कर लें तब तक अंहिसा और सत्य की बातचीत हम किस मुंह से कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि बहुत-सी बातें दुहराई जा रही हैं। अन्य सदस्यों ने ये बातें कही हैं और आप भी कह चुके हैं। मैं माननीय सदस्य को यह स्मरण कराना चाहूंगा कि इस विषय को और राज्यों के विषय में हमें आज समाप्त करना है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं दो बातें और कहना चाहता हूं। मैं इसलाम के महान खलीफाओं का उदाहरण देना चाहूंगा। मैं चाहता हूं कि हमारा राष्ट्रपति महान उमर और अबू बक्र के पदचिन्हों पर चले। गांधी जी बड़े प्रेम से इनका उदाहरण दिया करते थे। क्या हम कुछ यूरोप की विचारधारा की बलिवेदी पर एशिया के इन सिद्धान्तों की भेंट चढ़ा रहे हैं? मैं सभा का ध्यान उस पत्र की ओर आकर्षित करूंगा जिसे गांधीजी ने अपने घुटनों पर लार्ड इर्विन को लिखा था: उन्होंने रोटी मांगी थी और एवज में मिले पत्थर।

***अध्यक्ष:** श्री कामत का संशोधन संख्या 167 इस पेश किये गये संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है। श्री कामत संशोधन संख्या 168 तथा अन्य संशोधनों को पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उपकंडिका (3) को अपमार्जित किया जाये।"

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (2) को अपमार्जित किया जाये।"

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (3) में 'Every such Judge' (प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश) शब्दों के स्थान में 'Every Judge of a High Court' (उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश) शब्द रखे जायें।"

संशोधन संख्या 168 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उप-कंडिका (3) को अपमार्जित करने का प्रयास है। इसी प्रकार संशोधन संख्या 171 प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (3) को अपमार्जित करने का प्रयास है।

इस भाग की कंडिका 11 की उप-कंडिका (3) के संबंध में अन्तिम संशोधन न्यूनाधिक रूप में शाब्दिक है।

"न्यायाधीशों द्वारा किराया न देने के सम्बन्ध में" के पद या खंड को अपमार्जित करने वाला संशोधन संख्या 167, जैसा कि श्रीमान आप ने कहा है, मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किये गये संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है।

अन्तिम संशोधन को सर्वप्रथम लेते हुए अर्थात् संशोधन संख्या 173 को—चूंकि वह छोटा-सा संशोधन है मसौदा समिति का ध्यान, मैं जिस रूप में वह पद है उसके अनुसार उसके अस्पष्ट अर्थ की ओर आकर्षित करता हूं। कंडिका 11 की उप-कंडिका (3) में "प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश" पद का प्रयोग किया गया है और इस भाग की कंडिका 10 की उप-कंडिका (4) में "सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश" पद का प्रयोग किया गया है। यदि "प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश" यह पद, जो कंडिका 11 की उप-कंडिका (3) में है, इस सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो, उसका यह अर्थ होगा कि उसका निर्देश केवल उन लोगों के लिये होगा जो इस कंडिका 11 की उप-कंडिका (2) में निर्दिष्ट है। मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि यह कंडिका 10 की उप-कंडिका (4) की भाषा के अनुरूप क्यों न हो जिसमें उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश निर्दिष्ट है। यह ठीक तथा उचित है कि इस पद में इस प्रकार का रूप भेद कर दिया जाये कि वह स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को निर्दिष्ट करे न कि केवल "प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश" को। अन्यथा इसका यह गलत अर्थ लगाया जा सकता है कि इसका निर्देश केवल उन न्यायाधीशों से है जो कंडिका (2) में निर्दिष्ट हैं।

मैं आशा करता हूं कि मेरे इस संशोधन में विरोध करने के लिये डॉक्टर अम्बेडकर को कोई बात नहीं मिलेगी। और मेरे इस शाब्दिक तथा औपचारिक संशोधन को स्वीकार करने का वे मार्ग खोज निकालेंगे।

श्रीमान, मेरा पहला संशोधन जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन के अन्तर्गत आ गया है, न्यायाधीशों को अपने निवास-स्थानों का किराया न देने के उपबन्ध को अपमार्जित करने का प्रयास करता है। मुझे आश्चर्य है कि न्यायाधीशों के साथ अपने संविधान में इतनी उदारतापूर्वक व्यवहार क्यों किया जाता है। यदि मेरे माननीय साथी डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में उस अनुसूची को देखें तो उनको यह विदित होगा कि न्यायाधीशों से संबंधित भाग 4 लगभग डेढ़ पृष्ठों में है और राष्ट्रपति, राज्यपाल, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष संबंधी अन्य बातें एक या दो कंडिकाओं में रख दी गई हैं। सभा को यह भी याद होगा कि इस अनुसूची पर भाषण देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुसूची में निर्दिष्ट राष्ट्रपति तथा अन्य महानुभावों के बारे में भाषण देने से पूर्व न्यायाधीशों से संबंधित भाग को लिया। यद्यपि मैं मसौदा समिति के किसी सदस्य की निन्दा नहीं करता हूं पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मसौदा समिति जिसमें वकीलों का प्राधान्य है ही, उसके लिये न्यायाधीशों के प्रति दया भाव दिखाना शायद अनिवार्य हो गया और कुछ द्वेषपूर्ण

[श्री एच.वी. कामत]

समालोचक यह भी कहें कि हममें से कुछ भावी भारत के न्यायाधीशों के पक्ष में रहना चाहते हैं और उनकी सहानुभूति चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** कृपया निन्दापूर्ण बातें न कहें।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे ऐसे विचार नहीं हैं, पर सभा के बाहर ऐसी द्वेषपूर्ण आलोचना के लिये हम स्वयं अवसर देते हैं, और इस कारण मैंने सोचा कि किराया न देने का यह उपबन्ध प्रतिष्ठात्मक नहीं है और संविधान की प्रतिष्ठा को गिराता है। यदि सभा इस संविधान के अनुच्छेद 48 पर ध्यान देगी जो स्वीकार किया जा चुका है तथा इस सभा द्वारा पारित अनुच्छेद 135 पर भी ध्यान देगी तो उसे यह विदित होगा कि गणराज्य के राष्ट्रपति को और राज्य के राज्यपाल को बिना किराये के निवास-स्थान नहीं दिया गया है। मेरा अभिप्राय यह है कि यह बात विशिष्ट रूप से संविधान में नहीं है। राज्यपालों और राष्ट्रपति से संबंध रखने वाले अनुच्छेदों में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल के लिये पदावास होगा। उन अनुच्छेदों में केवल यही कहा गया है और किराया देने या न देने का उनमें कोई उल्लेख नहीं है। सभा से मैं यह पूछता हूं कि क्या यह कहना हमारे लिये गौरवहीन बात नहीं है कि ऐसे उच्च पदस्थ व्यक्ति अपने गृह के लिये किराया नहीं देंगे? हमने उस कल्याणकारी उपबंध को स्वीकार कर लिया है कि कोई भी उच्च पदस्थ व्यक्ति, चाहे वह कितने ही उच्च पद पर क्यों न हो, आयकर देने से मुक्त नहीं रहेगा, जैसा कि अब तक गवर्नर जनरल रहता था। जब कि गरीब से गरीब मजदूर तक अपने छोटे से मकान का एक रुपया या कुछ अधिक किराया देता है तो एक न्यायाधीश अपने मकान का किराया क्यों न दे। मुझे विश्वास है कि कोई भी न्यायाधीश इस साधारण सुविधा की मांग नहीं करेगा। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने किराये संबंधी इस उपबंध को जो कि इस सभा और इस संविधान के लिये इतना अपमान जनक है क्यों इस सभा में पेश करने का प्रयास किया है।

इसके बाद वेतन पर आइये, मैं उनसे झगड़ा करना नहीं चाहता हूं क्योंकि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपति को 5000/- रुपये मिलेंगे और अन्य न्यायाधीशों में से प्रत्येक को 4000/- रुपये मिलेंगे और छोटे न्यायाधीश को 3500/- रुपये मिलेंगे। पर जो कुछ मैं नहीं समझ पाया वह यह है कि फेडरल न्यायालय के वर्तमान पदधारी न्यायाधीशों को और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को वही वेतन प्राप्त करने का हक होगा जो उन्हें मिल रहा है। उस दिन माननीय वल्लभभाई पटेल ने सेवा की शर्तें, वेतन, निवृत्ति वेतन, तथा राज्य के सचिव आईसीएस और शायद भारतीय आरक्षी सेवा तथा ऐसी अन्य सेवाओं संबंधी ऐसे ही विशेषाधिकारों को बनाये रखने के पक्ष का समर्थन किया था। इस सभा ने उनके तर्क और निवेदन को उस विशेष अनुच्छेद को पार कर के स्वीकार किया था और वह ठीक ही था क्योंकि अगस्त 1947 में सरकार द्वारा उन सेवाओं को प्रत्याभूति दी गई थी।

मैं यह नहीं जानता हूं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को, फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को और महालेखा-परीक्षक को इस प्रकार की प्रत्याभूति दी गई है या नहीं कि जब यह संविधान प्रवृत्त होगा उनका वेतन और सेवा की अन्य शर्तें सुरक्षित रहेंगी। यदि सरकार ने ऐसी प्रत्याभूति दे दी है तब तो मुझे कुछ भी नहीं कहना है। सरकार में हमारा पूर्ण विश्वास है और हम यह नहीं चाहते कि सरकार अपने वचनों से हटे और यदि उसने उच्च न्यायालय तथा फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को कोई ऐसा वचन दे दिया है तब तो बात दूसरी है। अन्यथा मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि हम इस अनुसूची में एक इस प्रकार का विशेष खंड या कंडिका क्यों रखें कि वर्तमान पदधारियों को पूर्ववत वेतन मिलता रहेगा। मुझे विश्वास है कि यदि हम उच्च न्यायालय या फेडरल न्यायालय में सेवा करने वाले न्यायाधीशों से कुछ पूछें तो जैसे वे देशभक्त हैं और अपने देश की भरसक सेवा करने के लिये इच्छुक हैं उनमें से अधिकांश इस विशेष रियायत की मांग नहीं करेंगे। यदि एक या दो न्यायाधीश इस विशेष रियायत की मांग करते हैं यद्यपि इसमें मुझे संदेह है तो मैं समझता हूं कि जब सरकार द्वारा इन व्यक्तियों को कोई प्रत्याभूति नहीं दी गई है तो इन चन्द व्यक्तियों के लिये संविधान में उपबन्ध नहीं होना चाहिये। संविधान समूचे देश, उसके महानुभावों, उसकी जनता, उसके पदाधिकारी, तथा लोक सेवक इत्यादि इत्यादि के लिये है न कि कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिये। यदि कुछ चन्द व्यक्ति इस संविधान के अधीन देश की सेवा करने के लिये राजी नहीं हैं तो अपनी नीति के विरुद्ध उन चन्द व्यक्तियों के लिये उपबन्ध बनाने के कार्य को न तो हम करेंगे और न हमें करना चाहिये। असैनिकों के पक्ष में ठीक कहा गया था और सभा द्वारा इस कारण स्वीकार कर लिया गया था कि उन असैनिकों को सरकार द्वारा प्रत्याभूति दी गई थी परन्तु जहां तक मैं जानता हूं उच्च न्यायालय और फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को वेतन और सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में कोई प्रत्याभूति नहीं दी गई है। श्रीमान, इसी कारण मैंने संशोधन संख्या 168 और 171 को पेश करने का प्रयास किया है। जिनका संबंध फेडरल न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पदों पर वर्तमान पदधारियों से है।

श्रीमान, इन वेतनों के बारे में एक बात और है। अपने माननीय मित्र श्री त्यागी से मैं पूर्णतया सहमत हूं कि राज्य के सर्वोच्च पदाधिकारी राष्ट्रपति, न्यायाधीश और राज्य के मन्त्रियों को सच्चे त्यागी होना चाहिये। उनको गीता के उपदेशानुसार मन और आत्मा से सच्चा त्यागी होना चाहिये। गीता में कहा गया है:

अनाश्रितः कर्मफलं कार्य कर्म करोति यः।
सः सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

किसी मनुष्य को जो वेतन मिल रहा है वह उसकी कसौटी नहीं है वरन् कसौटी तो यह है कि वह उस वेतन के मोह में है या नहीं। यदि वह 'अपरिग्रह' की भावना से प्रेरणा प्राप्त करता है उच्चतर उद्देश्य के लिये किसी भी समय अपने पद को त्यागने के लिये तैयार है तो वह सच्चा त्यागी है। सच्चा सन्यासी है।

[श्री एच.वी. कामत]

उसे इसी भावना से सेवा करनी चाहिये। यद्यपि मैं उस सीमा तक तो नहीं जाऊंगा कि 'सर्वे गुणा कांचन मा श्रयन्ते, पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व काल के समान इस आधुनिक संसार में प्रत्येक व्यक्ति, उसका मन और उसकी आत्मा उन शारीरिक परिसीमाओं द्वारा प्रतिबन्धित हैं जो उसके शरीर और जीवन को बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं। उसे ऐसी स्थिति में रखना है कि उसे अभाव न खटके; उसे ऐसी स्थिति में रखना है कि उसे भय न सताये; उसे ऐसी स्थिति में रखना है कि वह अपने आपको सुरक्षित समझे। इसीलिये वेतन दिये जाते हैं और दिये जाने चाहियें।

डॉ. अम्बेडकर ने इन वेतनों को स्वीकार करने के लिये कहा है और संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, तथा अन्य देशों से कुछ अंक उद्धृत किये हैं। मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह ठीक प्रश्न उठाया है कि इन वेतनों का राष्ट्रीय आय अथवा उन देशों की प्रति व्यक्ति की आय से क्या संबंध या अनुपात है। मैं इस विषय में नहीं जाना चाहता हूं। डॉ. अम्बेडकर वाद विवाद का उत्तर देते हुए इस विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगे। मैं जो कुछ कहना चाहूंगा वह यह है। यह खबर है कि हमारे मंत्रियों ने अपने वेतनों में स्वेच्छा से 15 प्रतिशत की कटौती स्वीकार कर ली है। यदि यह सत्य है तो यह एक बड़ा ही प्रशंसनीय विनिश्चय है। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने हमारे अपने भत्ते और वेतन का उल्लेख किया था। मैं अपने भत्तों में कमी करने के पक्ष में हूं। परन्तु मैं यह भी सुझाव दूंगा कि भत्तों के इस विषय.....

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** बशर्ते कि सब यह स्वीकार करें।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यही कहने वाला थाः बशर्ते कि सब लोक सेवक अपने वेतनों में से स्वेच्छा से कटौती स्वीकार करें; मैं यह सुझाव दूंगा कि यद्यपि यह सब जानते हैं कि इस सभा के सदस्यों को कोई वेतन नहीं मिलता है, केवल भत्ता मिलता है, परन्तु अन्तर्कालीन संसद के समवेत होने पर या उससे शीघ्र संसद के सदस्यों के वेतन के दुःखद प्रश्न को अधिक पुष्ट आधार पर रखें और सदस्यों को वेतन दिया जाये। और जब वे यहां आयें तो उनको साधारण भत्ता मिले। यह अधिक अच्छा होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** और अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** जी हां, अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण भी। आखिर सदस्यों को दूर-दूर से यहां आना पड़ता है न कि मंत्रियों के समान जो दिल्ली में ठहरते हैं और दिल्ली में ही अपना काम करते हैं।

अन्त में मैं एक बार और अपने उस संशोधन का उल्लेख करूंगा जो किराया न देने वाले उपबन्ध को अपमार्जित करने का प्रयास करता है। यदि इसको शामिल किया ही जाये तो मैं यह भी सुझाव दूंगा कि उसमें हम एक सामान सहित गृह का उपबन्ध भी शामिल कर दें और यह और रखें कि एक न्यायाधीश के गृह

में कितने स्नानागार होंगे, कितने शयनागार होंगे। अन्यथा न्यायाधीश के लिये बिना किराये के गृह के संबंध का यह निर्देशन जिस संविधान पर हम विचार कर रहे हैं उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। इस उपबंध को निकाल देना चाहिये, विशेष कर इस बात पर विचार करते हुए कि राष्ट्रपति और राज्यपालों के संबंध के अनुच्छेदों में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जो उन्हें भाटक देने से वंचित करे।

समाप्त करने से पूर्व मैं मसौदा समिति से और सभा से हार्दिक निवेदन करूंगा कि वे इस बात का ध्यान रखें कि पहले चाहे कितना ही वेतन नियत किया गया हो परन्तु हम एक स्वतन्त्र गणराज्य के रूप में, स्वतन्त्र भारत के रूप में,—जिसे राष्ट्रमंडल में उच्च स्थान प्राप्त करना है, जिसे मनुष्य की उन्नति, स्वातन्त्रय और कल्याण के संघर्ष में महत्वपूर्ण भाग लेना है—मानव का जो मूल्य आज है उसका पुनर्मूल्यन करने के लिये सच्चे और विनम्र रूप में कम से कम प्रयत्न तो करें, और यदि मैं कह सकता हूं तो यह कहूंगा कि मनुष्य को नया मार्ग तथा नया प्रकाश दिखाये जो नवमूल्यन और नव प्रकाश के लिये इस युद्ध से पीड़ित और जर्जरित संसार में भटक रहा है।

***श्री प्रभु दयाल हिम्मतसिंहका:** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन 212 और 213 की सूचना दी है जो कार्यक्रम के पत्र में, पृष्ठ 4 पर है:

> "कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उप-कंडिका (2) में 'Thirty first day of October, 1948' शब्दों के पश्चात् 'or as Chief Justice before the tenth day of October, 1949' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

और कुछ संशोधन सुझाये गये हैं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थिति की व्याख्या सुन लेने के पश्चात् कि उन लोगों को जिनकी नियुक्ति 31 अक्तूबर सन् 1948 के बाद हुई थी उनको यह संकेत दिया जा चुका था कि उनका वह वेतन संविधान सभा के विनिश्चय के अधीन है और यदि संविधान सभा ने उनका वेतन कम करने का विनिश्चय किया तो उस कमी को उन्हें मानना पड़ेगा, अत: उसे मैं इस संशोधित रूप में पेश करना नहीं चाहता हूं। मुझे कंडिका 11 के खंड (2) में एक कमी मालूम होती है और यह स्पष्ट है कि वह कमी इस कारण है कि मसौदा समिति का उस कमी की ओर ध्यान नहीं गया। वह खंड इस प्रकार है "प्रत्येक व्यक्ति जो 31 अक्तूबर, 1948 से पूर्व किसी प्रान्त के उच्च न्यायालय में स्थायी प्रकार से न्यायाधीश के रूप में नियुक्त था और इस संविधान के प्रारम्भ पर अनुच्छेद 310 के खंड (1) के अधीन तत्स्थानी राज्य के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो गया तो उस को यदि वह ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले इस कंडिका की उप-कंडिका (1) में उल्लिखित दर से अधिक वेतन पाता था तो विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस प्रकार उल्लिखित वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे मिलने वाले वेतन के अन्तर के बराबर है।" इससे यह विचार पैदा होता है कि जो व्यक्ति 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व न्यायाधीश

[श्री प्रभु दयाल हिम्मतसिंहका]

नियुक्त हो चुका था वह इस संविधान के प्रारम्भ पर उतना ही वेतन प्राप्त करता रहेगा तो उसे मिल रहा था। परन्तु यदि कोई व्यक्ति 31 अक्तूबर के पश्चात् नियुक्त हुआ था तो वह इस खंड के अधीन आयेगा अर्थात् उसका वेतन कम हो जायेगा और उसे 3500/- रुपया मिलेगा। यदि ऐसा कोई न्यायाधीश जिसकी नियुक्ति 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व हुई थी, उसी प्रान्त में न्यायाधीश बना रहता है और इस अरसे में अक्तूबर 1948 के पश्चात् उसका वेतन बढ़ जाता है तो यदि वह उसी प्रान्त में रहता है तो उसे अधिक वेतन मिलता रहेगा। परन्तु यदि ऐसा न्यायाधीश किसी अन्य प्रान्त में जाने के लिये राजी हो जाता है और नये प्रान्त में दूसरा घर चलाने के एक और दायित्व को ग्रहण कर लेता है तो उसे इस अतिरिक्त वेतन का लाभ नहीं होगा। यदि किसी न्यायाधीश का बंगाल से नागपुर को तबादला हो जाता है तो उसे इस अतिरिक्त वेतन का लाभ नहीं होगा। मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मसौदा बनाने में अवश्य कोई न कोई त्रुटि है। अन्यथा मसौदा लेखक का यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता है कि जो व्यक्ति उसी प्रान्त में बना रहता है उसे अधिक वेतन या अन्तर मिले और यदि उसका तबादला हो जाता है या वह दूसरे प्रान्त में जाना स्वीकार कर लेता है तो उसे अधिक वेतन न मिले। वह न्यायाधीश रहता है और अक्तूबर 1948 के पूर्व वह न्यायाधीश के रूप में नियुक्त हुआ था। अतः आपकी अनुमति से मैं यह सुझाव देता हूं:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (2) में 'in the corresponding State' शब्दों के स्थान में 'in a State for the time being specified in Part I of the first Schedule, शब्द रखे जायें।"

अतः इस संशोधन का प्रभाव यह होगा–

"कि कंडिका 11, उपकंडिका (2) में 'चतुर्थ पंक्ति में आये हुए 'corresponding State' शब्दों के स्थान में 'in a State for the time being specified in Part I of the first Schedule' शब्द रखे जायें।"

ऐसी कोई बात नहीं है कि किसी न्यायाधीश को जिसने दूसरे प्रान्त में जाना स्वीकार कर लिया है इस प्रकार दंडित क्यों किया जाये जब कि कोई न्यायाधीश जो अपने ही प्रान्त में बना रहता है और उसे तबादले तथा अतिरिक्त व्यय का कष्ट नहीं उठाना पड़ता है उसे अधिक मिले। मैं समझता हूं कि यदि इस बात पर समुचित विचार किया जाये तो मेरे संशोधन को स्वीकार करने में मसौदा समिति को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इससे उसी कोटि के मनुष्यों में असमानता दूर हो जायेगी और ऐसे दो व्यक्तियों में जो भेद विभेद किया जा रहा है वह समाप्त हो जायेगा। यह संशोधन किसी विशेष व्यक्ति का पक्ष ग्रहण करने हेतु नहीं है। इसके अन्तर्गत वे सब न्यायाधीश आ जायेंगे जो इस कोटि के हैं। यदि एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को तबादला हो जाता है तो यदि उनको अधिक वेतन मिल

रहा है तो वे सब इस कोटि में आ जायेंगे। यदि ऐसा कोई मामला नहीं है तो नियम के अधीन उस का किसी पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। अन्यथा यह असमानता या भूल या शायद एक प्रकार का अनजाने का अन्याय है जो किसी भी ऐसे व्यक्ति के साथ हो सकता है जिसने दूसरे प्रान्त में जाना स्वीकार कर लिया है।

व्यक्तिगत रूप से वेतनों के सम्बन्ध में मुझे खुशी होती यदि सब न्यायाधीशों को वही वेतन मिलते रहते जो उन्हें मिल रहे थे क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि न्यायाधीशों को प्रलोभन से दूर रहना चाहिये। और उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं होना चाहिये। आखिर उन्हें बड़े महत्वपूर्ण कर्तव्य का निर्वहन करना पड़ता है और उनके मार्ग में इतने प्रलोभन आते हैं कि यदि उन्हें किसी बात का अभाव हुआ तो वे प्रलोभन में आकर भ्रष्ट हो जायेंगे। यह सत्य है कि धन ही एक ऐसी वस्तु नहीं है जो व्यक्ति को प्रलोभित करे। आचरण और अन्य वस्तुएं भी आवश्यक हैं—कांग्रेस पक्ष ने न्यायाधीश के लिये 3500/- रुपये का वेतन नियत करना स्वीकार किया है इस बात पर मेरा कोई झगड़ा नहीं है—पर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद और श्री कामत के संशोधनों का मैं अवश्य विरोध करता हूं जो न्यायाधीशों का वेतन और घटा कर 3000/- रुपये या 2000/- रुपये रखना चाहते हैं और मुझे आशा है कि जिस संशोधन को मैंने पेश किया है वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरे नाम से कुछ संशोधन हैं।

***अध्यक्ष:** इसको मैं रखूंगा।

संशोधन संख्या 266 और 269 का आशय पूरा हो ही चुका। संशोधन संख्या 272 श्री सक्सेना।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मेरा संशोधन जिसको श्री कामत भी पेश कर चुके हैं। वह इस विशेष वेतन के उपबन्ध को हटाने के उद्देश्य से था। इस बात से मेरा सैद्धान्तिक विरोध है। इस समय हम नया संविधान बना रहे हैं और इस अनुच्छेद में हम उन वेतनों के लिये उपबन्ध बना रहे हैं जो भिन्न-भिन्न पद धारण करने वाले पदधारियों को स्वतन्त्र भारत में मिलने चाहियें। परन्तु मसौदा समिति द्वारा पेश किये गये इस संशोधन में हम यहां यह व्यवस्था कर रहे हैं कि न्यायाधीशों और महालेखा परीक्षक को वर्तमान वेतनों का वह भाग विशेष वेतन के रूप में मिलता रहेगा जो नये वेतनों से अधिक है। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि इन पदाधिकारियों को कोई ऐसी प्रत्याभूति दी गई थी कि उनके पद धारण करने की अवधि में उनका वेतन कम नहीं किया जायेगा। मैं समझता हूं कि यह प्रत्याभूति फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये थी न कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों या अन्य न्यायाधीशों के लिये। मुझे स्वयं यह प्रतीत होता है कि यदि उच्चतम न्यायालय का भावी न्यायाधिपति और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और महालेखा-परीक्षक भविष्य में यहां जिस वेतन की व्यवस्था की है उससे संतुष्ट रहेंगे तो मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती कि वे न्यायाधीश जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के नये ढांचे में स्थान प्राप्त करेंगे और महालेखा परीक्षक अपने वेतनों को नये पदधारियों के लिये नियत वेतन के अनुसार नियत कराने में क्योंकर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

संतुष्ट न हों। इस समय मुख्य न्यायाधिपति को 7000/- रुपया मिलता है और न्यायाधीशों को 5500/- रुपया मिलता है। नये उपबन्ध के अनुसार मुख्य न्यायाधिपति को केवल 5000/- रुपया मिलेगा। मान लीजिये बेंच के एक न्यायाधीश की मुख्य न्यायाधिपति के रूप में पदोन्नति की जाती है तो उसे 5000/- रुपये ही मिलेंगे। तो यह एक असमानता और होगी। न्यायाधीश के रूप में उसे 5500/- रुपया मिलता है। मुख्य न्यायाधिपति के रूप में उसे 5000/- रुपया ही मिलेगा। इन सब असमानताओं की व्यवस्था हम नहीं कर सकते हैं। जो कुछ मैं चाहता था वह यह था कि जो आश्वासन दिया गया था वह फेडरल न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीशों के लिये था और जब हम फेडरल न्यायालय को मिटा रहे हैं और नये संविधान के अधीन उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था कर रहे हैं तो मैं समझता हूं कि उस प्रत्याभूति का कुछ अर्थ है। साथ ही साथ मेरा यह भी ख्याल है कि ये पदाधिकारी भी इस विशेष वेतन को अच्छे रूप में स्वीकार नहीं करेंगे जो केवल उन्हीं को मिलेगा और उनके उत्तराधिकारियों को नहीं मिलेगा।

मैं एक क्षण के लिये भी यह नहीं सोच सकता हूं कि मुख्य न्यायाधिपति, न्यायाधीश या महालेखा परीक्षक को समुचित वेतन न मिले। मैं वास्तव में यह अनुभव करता हूं कि इन पदाधिकारियों को समुचित वेतन मिले क्योंकि उन से संबंध रखने वाले उपबन्धों में हमने उन पर कई शर्तें लगा दी हैं। उनको 65 या 60 वर्ष की आयु में सेवा से निवृत्त होना चाहिये। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को सेवा से निवृत्त होने के पश्चात् कहीं भी वकालत नहीं करने दिया जायेगा। ये सब कड़ी शर्तें हैं और मैं यह समझता हूं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ऐसे होने चाहिये जो स्वतंत्र हों, जो ऐसा निर्णय करने में न झिझकें जो तत्कालीन शक्तियों के विरुद्ध हों और इस प्रयोजन के लिये मैं समझता हूं कि उनके लिये कोई अभाव नहीं होना चाहिये और कार्यपालिका की कृपा प्राप्त करने के लिये भटकने की उन्हें आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। अतः उन्हें अच्छे वेतन देने की प्रथा बहुत कल्याणकर है और मैं भी उन उपबन्धों का अनुमोदन करता हूं। मैं उनके निवृत्ति वेतनों के प्रश्न को भी विनिश्चित करना चाहूंगा। इंग्लैंड और अमरीका में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की कोई आयु नहीं है। वे 80 वर्ष की, 90 वर्ष की आयु तक रहते हैं और इस आयु पर भी वे बहुत अच्छे न्यायाधीश होते हैं। हम जानते हैं कि उनका निवृत्ति वेतन उनके वेतन का लगभग तीन चौथाई होता है। ये बहुत बड़े लाभ हैं और इनके कारण वे निर्णय देने में पूर्ण स्वतंत्र रहते हैं। अतः न्यायाधीशों को ऊंचे वेतन देने के विरोध में मैं नहीं हूं। इसके साथ ही साथ मैं यह भी जानता हूं कि इन लोगों को एक विशेष जीवन स्तर को बनाये रखना पड़ता है। उनको समाज से पृथक रहना पड़ता है और जनता से घुलमिल कर रहने के विशेषाधिकार से वे वंचित रहते हैं। वे पार्टियों और आमोद प्रमोदों में भाग नहीं ले सकते हैं जिनका आनन्द मंत्री महोदय उठाते हैं, अतः उनके लिये जो वेतन की व्यवस्था की गई है उससे मुझे विरोध नहीं है। पर मैं नहीं समझता हूं कि प्रथम पदधारियों और उनके उत्तराधिकारियों में कोई भेद विभेद या अन्तर हो। उन सबको समान वेतन मिलने दीजिये और यदि आप यह समझते हैं कि जो दिये गये वेतन समुचित नहीं हैं तो आप वेतनों को बढ़ा सकते हैं, पर यह न हो कि उच्चतम न्यायालय के वर्तमान न्यायाधिपति अधिक वेतन प्राप्त करें और उसका उत्तराधिकारी कम। यह नहीं करना चाहिये।

मुझे यह कहना है कि गणराज्य का लेखा तब तक सही नहीं होगा जब तक महालेखा-परीक्षक असाधारण रूप से स्वतंत्र तथा दृढ़ प्रकृति का व्यक्ति न हो। अत: मैं समझता हूं कि उसका वेतन अच्छा होना चाहिये और ठीक उसी आधार पर होना चाहिये जिस पर उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का वेतन है। अत: वर्तमान पदधारियों और उनके उत्तराधिकारियों के वेतन में मैं कोई अन्तर नहीं चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा। मैंने आपके संशोधन संख्या 94 और 96 देख लिये हैं। मैं नहीं समझता हूं कि उनकी अब आवश्यकता है। वे मूल उपबन्ध पर थे जो संशोधन संख्या 92 में दिया हुआ है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन ने अब उस संशोधन का स्थान ग्रहण कर लिया है और ये संशोधन वहां ठीक नहीं बैठते हैं। मैं समझता हूं कि संशोधन इतने ही हैं। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ऐयर।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, नये संविधान के अधीन उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों के संबंध के अनुच्छेद का समर्थन करते हुए माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई प्रस्थापना के समर्थन में मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। इस समय प्रस्थापित किया गया वेतन का परिमाण लगभग वही है जो मसौदा समिति ने गत वर्ष फरवरी में प्रकाशित संविधान के मसौदे में प्रस्थापित किया गया था—सिवा इसके कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन में कुछ अन्तर है—बिना किराये के मकान की व्यवस्था की गई है और सहायक न्यायाधीशों के वेतन में कुछ कमी है। न्यायाधीशों के वेतन नियत करने में न्यायपालिका की प्रतिष्ठा, कार्य कुशलता और स्वतंत्रता को बनाये रखने के महत्व के प्रति समिति पूर्णतया सचेष्ट थी—विशेषकर एक फेडरल संविधान के अन्तर्गत जहां कि उच्चतम न्यायपालिका को केवल नागरिक और नागरिक के तथा राज्य और नागरिक के परस्पर झगड़ों को निर्णय करने के लिये ही आमंत्रित नहीं किया जाता है वरन् महान संविधानिक महत्व के उन प्रश्नों के विनिश्चय करने के लिये भी आमंत्रित किया जाता है जिन पर संविधान की भावी प्रगति निर्भर करती है। कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और अमरीका के विशाल महाद्वीप के वेतनों के परिमाण तथा अंग्रेजों के शासन के अधीन भारत में के वेतनों पर और इसके साथ-साथ अपने देश की सामान्य निर्धनता को ध्यान में रखते हुए कुछ कमी करने की आवश्यकता पर भी समिति ने ध्यान दिया।

वेतन पुनरीक्षण करने के किसी प्रश्न में हम जिस प्रशासी व्यवस्था से सूत्रपात कर रहे हैं उसकी पूर्णतया उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। यदि हम नये अभिकर्त्ता के रूप में एक नई कार्यपालिका और न्यायपालिका के साथ एक दम किसी संविधान को आरम्भ करते तब तो हमें मन चाहा क्षेत्र मिल सकता था और अपने देश की आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए हम जो चाहते उस वेतन की व्यवस्था कर सकते थे। यद्यपि सैद्धांतिक रूप में हमें जैसा चाहें वैसा संविधान बनाने का पूर्ण स्वातंत्र्य है और जो वेतन हम चाहें उसकी व्यवस्था करने की स्थिति हमें प्राप्त है परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हम वर्तमान आधार पर यह ढांचा खड़ा कर रहे हैं। जो यह विशेष सुझाव मसौदा समिति ने दिया है उसके देने में वह इन विचारों से प्रभावित हुई। बिना किराये के मकानों का जो थोड़ा सा परिवर्तन किया गया है वह दिल्ली की अजीब हालत के कारण है। यह अनुभव

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

किया गया कि बिना किराये के मकान की व्यवस्था करने की आपकी स्थिति होनी चाहिए। न्यायाधीशों को निवास स्थान के लिये कुछ दिनों प्रतीक्षा करने की बजाय यह सोचा गया कि यह अधिक अच्छा होगा कि न्यायाधीशों के लिये पदावास की व्यवस्था हो। इस कारण न्यायाधीशों के निवास स्थान का उपबन्ध रखा गया है।

मैं यह भी कह दूं कि मसौदा समिति इस बात के प्रति भी पूर्णतया सचेष्ट थी। उदाहरणार्थ उस प्रणाली के प्रति जो यूरोप महाद्वीप में प्रचलित थी जहां कि न्यायाधीशों के वेतन इंग्लैंड में और उन देशों में दिये जाने वाले वेतनों से बहुत कम हैं जहां ब्रिटेन के विधि शास्त्र का प्रभाव है। हमने उस प्रणाली को ठीक ही अंगीकार किया है जिसे न्याय प्रशासन की ब्रिटिश प्रणाली कहा जाता है। यूरोप महाद्वीप में बेंच और बार पृथक पृथक संस्थायें हैं। बार में से न्यायाधीशों की भरती बिल्कुल नहीं होती है, तथा फ्रांस में के सेशन न्यायालय के अध्यक्ष का उच्चतम वेतन लगभग 1300/- रुपये है। इसी प्रकार से जर्मनी में उच्चतम वेतन 1300/- रुपये है। परन्तु वहां वे वास्तव में असैनिक सेवा का एक अंग होते हैं। हम इस बात के लिये उत्कंठित थे कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनी रहे और हमने यह अनुभव किया कि ऐसी स्वतंत्रता बार में से भरती करने से प्राप्त की जा सकती है और हमें इस तथ्य पर ध्यान देना पड़ा कि आप वृत्तिजीवी महानुभावों से बेंच पर स्थान स्वीकार करने की तब तक आशा नहीं कर सकते जब तक कि उनके लिये अच्छे पारिश्रमिक की व्यवस्था न की जाये। साथ ही साथ हमें देश की आर्थिक दशा की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और न्यायाधीशों को एक पृथक वर्ग के रूप में देश के साधारण सेवा वर्ग से पूर्णतया पृथक रूप में भी नहीं समझ सकते हैं। इन सब बातों पर ध्यान देते हुए न्यायपालिका की स्वतंत्रता, उनके सम्मान तथा प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए अन्य निकायों से परामर्श कर मसौदा समिति ने अन्त में वेतनों की इस योजना को प्रस्तुत किया।

कुछ और बातें हैं जिनकी ओर वाद-विवाद में ध्यान दिलाया गया है। पहली बात यह है कि गत वर्ष नवम्बर से पूर्व नियुक्त हुए न्यायाधीशों के लिये किसी विशेष उपबन्ध की कहां आवश्यकता है? जहां तक उन असैनिक सेवाओं और न्यायाधीशों का संबंध है जिनकी नियुक्ति अपने अपने पदों पर भारतीय डोमीनियन अधिनियम के लागू होने से पहले हो गई थी उनका वेतन डोमीनियन अधिनियम के एक विशेष उपबन्ध द्वारा सुरक्षित किया गया था जिसकी ओर उस दिन असैनिक सेवाओं पर वाद-विवाद होते समय ध्यान दिलाया गया था। सामान्यतया मुख्य न्यायाधिपति के सहित न्यायाधीशों को डोमिनियन संविधान के लागू होने के बाद तक तथा गत वर्ष फरवरी में संविधान के प्रकाशित होने के बाद तक भी उसी पुराने वेतन पर नियुक्त करते चले आये; और हमको यह बताया गया है कि गत नवम्बर के पश्चात् मंत्रीमंडल ने भविष्य में नियुक्त होने वाले व्यक्तियों को यह ज्ञात करा दिया था कि उनको उस नये वेतन के अधीन अपने-अपने पदों को स्वीकार करने के लिये तत्पर होना चाहिये जो संविधान सभा द्वारा स्वीकार किया जायेगा। इन बातों के कारण उन लोगों की उपलब्धियों को सुरक्षित रखने के लिये जिनकी नियुक्ति गत वर्ष नवम्बर से पूर्व हुई थी एक विशिष्ट उपबन्ध रखा गया है। यह ठीक है कि उन न्यायाधीशों के लिये जिनकी नियुक्ति नवम्बर से पूर्व

हुई थी इस वेतन के अन्तर को हम भत्ते के रूप में रखें क्योंकि साधारण सिद्धांत यह है कि वेतन का वही परिमाण सब न्यायाधीशों पर प्रयुक्त हो। जिनकी नियुक्ति न्यायाधीश के रूप में नवम्बर से पूर्व हुई थी उन्होंने अपना कार्य एक निश्चित समझौते पर संभाला था और इस कारण समिति ने यह ठीक समझा कि वेतनों में जो अन्तर है उसे विशेष भत्ते के रूप में समझ लिया जाये। यह उस सिद्धांत पर जोर देने के लिये है कि सामान्य तथा स्वीकृत वेतन वही है जिसकी व्यवस्था संविधान के साधारण उपबन्धों में की गई है। इसमें सन्देह नहीं कि इसके कारण कुछ असमानतायें आ गई हैं। उनको भुगतना पड़ेगा उनके लिये कोई और चारा नहीं है। उदाहरणार्थ उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को यदि बाद में उच्चतम न्यायालय का न्यायाधिपति नियुक्त किया जाता है। तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उसे जो वेतन मिलता था उससे उसे कम वेतन मिलेगा यद्यपि यह बात है कि उसे दिल्ली में बिना किराये के निवास गृह का अधिकार है। और फिर एक ही प्रकार के कृत्यों के निर्वहन करने वाले न्यायाधीशों को उसी न्यायालय में भिन्न-भिन्न वेतन मिलेंगे, पर इन असमानताओं का किसी प्रकार से भी इस अनुच्छेद में निहित सिद्धांत पर प्रभाव नहीं पड़ सकता है। यह एक कारण है कि प्रस्थापित रूप में इस अनुच्छेद में जैसा कि मैं कह चुका हूं वेतनों के अन्तर को विशेष भत्ते के रूप में रखा गया है। जहां तक न्यायाधीशों का संबंध है मैं इन बातों की ओर निर्देश करना चाहता था।

वाद-विवाद के समय एक यह भी प्रश्न उठाया गया था कि संविधान में एक यह विशेष उपबन्ध होना चाहिये कि राष्ट्रपति के वेतन पर आय कर होगा। जब तक संविधान में उन्मुक्ति नहीं दी गई है तब तक संविधानिक विधि का यह स्वीकृत सिद्धांत है कि प्रत्येक पदाधिकारी पर चाहे वह राष्ट्रपति हो, या मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या मंत्री हो आयकर लगेगा। यदि आप यह एक विशेष उपबन्ध बनाते हैं कि राष्ट्रपति के वेतन पर आयकर लगेगा तो इस तर्क को प्रस्तुत करने का मार्ग खुल जायेगा कि जहां तक अन्य पदाधिकारियों का संबंध है उन पर आयकर नहीं होगा। संविधान का यह सिद्धांत तो नहीं है। अतः राष्ट्रपति के वेतन की 10,000/- रुपये तक वृद्धि करते हुए इस तथ्य का कोई निर्देशन जान बूझकर नहीं किया गया है कि उस पर आयकर लगेगा। जब तक संविधान किसी व्यक्ति को विशेष रूप से आयकर के प्रवर्त्तन से वंचित न करे तब तक प्रत्येक पदाधिकारी पर प्रत्येक उच्च पदस्थ व्यक्ति पर चाहे वह कितने ही उच्च पद पर क्यों न हो आयकर लगेगा। यह दूसरी बात है जिसका मैं जिक्र करना चाहता था।

इसके पश्चात् जहां तक राष्ट्रपति के भत्ते का संबंध है, उसके भत्ते के प्रश्न को लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उस स्थिति की पूरी मालकिन संसद है। राष्ट्रपति को जिन भत्तों का हक होगा उसकी विवरण पूर्ण सूची से इस संविधान को और भी अधिक जटिल बनाने की अपेक्षा इस तथ्य का निर्देशन कर दिया गया है कि अभी राष्ट्रपति को उन भत्तों का हक है जो गवर्नर जनरल को मिल रहे थे। बाद में संसद को अधिकार होगा कि वह इस समूचे प्रश्न पर विचार करे और परिस्थिति, देश की आवश्यकता और राष्ट्रपति के पद के गौरव के लिये जैसे अपेक्षित हो वैसे भत्ते का पुनरीक्षण करें।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

इन चन्द शब्दों में, श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर ने जिस रूप में इस अनुच्छेद को प्रस्तुत किया है उस रूप में मैं इसका समर्थन करता हूं।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांत: जनरल): अध्यक्ष महोदय, संविधान के मसौदे में यह उपबन्धित किया गया था कि राष्ट्रपति को 5000/- रुपया मासिक और राज्यपाल को 4,500/- रुपया मासिक वेतन मिले। उस समय यह प्रस्थापित किया गया था.....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** राष्ट्रपति को 5,500/- रुपया मासिक।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** मेरे सामने संविधान का मसौदा है और उसमें से मैंने पढ़कर सुनाया है। इस कारण यह प्रस्थापित किया गया था कि मुख्य न्यायिक कृत्यकारियों के वेतन इन वेतनों से कम होने चाहिये। यह उपबन्धित किया गया था कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को 5000/- रुपया मासिक मिले और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों को 4000/- रुपया मासिक मिले। यह भी उपबन्धित किया गया था कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 4000/- रुपया मासिक और उच्च न्यायालय के किसी अन्य न्यायाधीश को 3500/- रुपया मासिक वेतन मिले। जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है हम सब यह जानते हैं कि सब प्रांतों में न्यायाधीशों का वेतन समान नहीं था। मध्य प्रांत, उड़ीसा और आसाम प्रांतों में वेतन कम थे। आसाम सबसे कम वेतन देता था। वह मुख्य न्यायाधीश को 4000/- रुपये और अन्य प्रत्येक न्यायाधीश को 3500/- रुपये देता था। अब वेतन के इसी परिमाण को उच्च न्यायालय के सब न्यायाधीशों के लिये संविधान में प्रस्थापित किया गया है।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत किये गये इस संशोधन में राष्ट्रपति और राज्यपालों के वेतन को बढ़ा दिया गया है। राष्ट्रपति का वेतन लगभग दुगना कर दिया गया है और राज्यपाल के वेतन में 1000/- रुपये बढ़ा दिये गये हैं परन्तु उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों को उतना ही रखा है जितना संविधान के मसौदे में दिया गया था। केवल एक अपवाद किया गया है और वह प्रांतीय उच्च न्यायालयों के स्थायी न्यायाधीशों के लिये है। संशोधन में कहा गया है कि 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व किसी प्रांत की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त व्यक्ति इस संविधान के अनुच्छेद 310 के खंड (1) के अधीन संविधान के प्रारम्भ पर तत्स्थानी राज्य में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो जाता है तो वेतन, छुट्टी और निवृत्ति वेतन संबंधी सेवा की शर्तों को उसे वही हक होगा जो हक उसे इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व था। अब एक संशोधन प्रस्थापित किया गया है कि 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व नियुक्त व्यक्तियों के लिये बनाये गये विशेष उपबन्ध का अपमार्जन किया जाये। मैं यह समझता हूं कि जिन लोगों की नियुक्ति 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के रूप में स्थायी प्रकार से की जायेगी उनके लिये एक अपवाद किया जा रहा है—मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि इस उपबन्ध को स्वाधीनता अधिनियम 1947 की धारा 10 के अनुरूप बनाया जा रहा है। उस धारा ने राज्य सचिव (सेक्रटरी ऑफ स्टेट) या सपरिषद राज्य सचिव द्वारा नियुक्त किये गये सब व्यक्तियों को भारत की असैनिक सेवाओं का हक दिया था और उच्चतम न्यायालय

तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को उन्हीं सेवा की शर्तों और अन्य अधिकारों के उपभोग करने का हक दिया था जिनका वे भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन उपभोग कर सकते थे। डॉ. अम्बेडकर का संशोधन स्वाधीनता अधिनियम की धारा 10 से कुछ बातों में भिन्न है। स्वाधीनता अधिनियम में केवल उन लोगों को प्रत्याभूति दी थी जिनकी नियुक्ति स्थायी रूप से न्यायाधीश के पद पर 15 अगस्त, 1947 से पूर्व हो गई थी। डॉ. अम्बेडकर का संशोधन इस अधिकार को 31 अक्तूबर, 1948 तक नियुक्त किये गये व्यक्तियों तक विस्तृत करता है। इस प्रकार यह संशोधन स्वाधीनता अधिनियम की धारा 10 के उपबन्धों से आगे बढ़ जाता है। पर उस धारा के उपबन्धों का पालन करने में यह वह एक प्रकार से असमर्थ हो जाता है। उस धारा में यह निर्धारित किया गया था कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया व्यक्ति चाहे वह किसी प्रांत में नियुक्त हो जिसमें वह अस्थायी या अतिरिक्त न्यायाधीश के रूप में सेवा कर रहा था अथवा किसी अन्य प्रांत में नियुक्त हो उसे सेवा की शर्तें और अन्य विशेषाधिकारों का वही हक होगा जो हक उसे 15 अगस्त 1947 के पूर्व था जिन लोगों की नियुक्ति राज्य सचिव या सपरिषद् राज्य सचिव द्वारा असैनिक सेवाओं में की गई थी उनके लिये स्वाधीनता अधिनियम द्वारा सृजित आभारों का पूर्णतया पालन किया गया है परन्तु उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से संबंध रखने वाली प्रत्याभूतियों का एक उस रूप में सम्मान नहीं किया गया जिसको मैं बता चुका हूं।

अत: मैं समझता हूं कि श्री प्रभु दयाल हिम्मतसिंहका द्वारा पेश किये गये संशोधन के पक्ष में विचार करना उचित है। मान लीजिये कोई व्यक्ति संयुक्त प्रांत के उच्च न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त हो जाता है। और मान लीजिये कि 31 अक्तूबर, 1948 के पूर्व वह पटना उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश हो जाता है। इस दशा में उसे 5000/- रुपये मासिक वेतन मिलने का हक नहीं होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अनुसार उसे केवल 4000/- रुपये मिलने का हक होगा जो वही वेतन है जिसका उसे संयुक्त प्रांत से पटना जाने से पूर्व मिलने का हक था। यह मुझे बिलकुल वांछनीय प्रतीत नहीं होता है। यदि आप 31 अक्तूबर, 1948 के पश्चात् स्थायी रूप से नियुक्त हुए न्यायाधीशों के लिये अपवाद करना चाहते हैं तो जिस प्रत्याभूति को आप देना चाहते हैं उसका पालन केवल शब्दों में ही नहीं वरन् भाव रूप में भी करिये। आपने एक बार किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय का स्थायी न्यायाधीश नियुक्त कर दिया तो यदि उसका कार्य संतोषजनक है तो वह पदवृद्धि की आशा कर सकता है। प्रत्येक न्यायाधीश मुख्य न्यायाधिपति या उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नहीं बन सकता है पर कुछ न्यायाधीश बन सकते हैं, और मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती है कि योग्यता के आधार पर जिन न्यायाधीशों की पदवृद्धि की जाये उनको भारत शासन अधिनियम की धारा 10 के अधीन दी गई प्रत्याभूति से क्यों वंचित रखा जाये।

भावी न्यायाधीशों के संबंध में डॉ. अम्बेडकर ने संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और दक्षिणी अफ्रीका में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को दिये जाने वाले वेतनों का उल्लेख किया था। मुझे विश्वास है कि उन्होंने यह कहा था कि सिवा संयुक्त राज्य अमरीका के कोई भी देश भारत से अधिक वेतन न्यायाधीशों को नहीं देता था। यदि उन्होंने ऐसा कहा तो वे इस बात को भूल गये कि इंग्लैंड में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भारत के किसी भी

[पंडित हृदय नाथ कुंजरू]

न्यायालय के न्यायाधीशों से अधिक वेतन मिलता है। मोटे रूप में हम यह कह सकते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका और इंग्लैंड के अलावा डॉ. अम्बेडकर द्वारा बताये गये अन्य किसी देश में न्यायाधीशों को उस वेतन से अधिक वेतन नहीं दिया जाता है जो भारत वर्ष में है।

मैं यह नहीं जानता हूं कि कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में न्यायाधीशों का निवृत्ति वेतन क्या है। परन्तु न्यायाधीशों का वेतन निश्चित करने में हमें इन अधिकारों पर विचार करना पड़ेगा। संयुक्त राज्य अमरीका में मैं समझता हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का निवृत्ति वेतन उसके वेतन के बराबर है। इंग्लैंड में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का निवृत्ति वेतन उसके वेतन का 70 प्रतिशत है। भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन अनुमानत: उस न्यायाधीश का वेतन जिसने बारह वर्ष तक सेवा की है उसकी वार्षिक आय का तृतियांश है। जिस समय भारत शासन अधिनियम पार किया गया था उस समय इस बात को न्याययुक्त मानने का चाहे जो कुछ भी कारण हो परन्तु यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को अब अधिक निवृत्ति वेतन दिया जाना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा था उसे मैं पूरा नहीं सुन सका पर अपने भाषण में उनको इस बात का उल्लेख करते हुए मैंने नहीं सुना। भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा भेजे गये ज्ञापन में वेतनों की कमी की निन्दा की गई है और न्यायाधीशों की यह सम्मति हो गई है कि न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु और निवृत्ति वेतन की वृद्धि अब भी की जा सकती है। उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बड़े उत्तरदायित्व पूर्ण पदों को धारण करेंगे बल्कि यह कहना चाहिये कि वे संविधान के संरक्षक होंगे। अत: यह आवश्यक है कि उनके वेतन, सेवा की शर्तें और स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि वे लोगों के लिये सम्माननीय होंगे, और अपने तथा अपने परिवार के निर्वाह करने की चिंता से मुक्त होकर वे अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर सकें।

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के संबंध में श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किये गये संशोधन के मैं व्यक्तिरूप से पक्ष में हूं। परन्तु इस विषय पर सभा का विनिश्चय चाहे जो कुछ भी हो मैं समझता हूं कि उनके वेतन की कमी को यदि किसी दृष्टिकोण से न्याययुक्त माना जाता है तो यह नितांत आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का निवृत्ति वेतन बढ़ाया जाये। मैं यह नहीं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर के इस विषय में क्या विचार हैं पर यदि वे यह नहीं समझते कि वर्तमान निवृत्ति वेतन संबंधी उपबन्धों में परिवर्तन होना चाहिये तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं समझता हूं उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को अपने वेतन का दो तिहाई निवृत्ति वेतन के रूप में मिलने दिया जाये।

***अध्यक्ष:** जहां तक निवृत्ति वेतन का संबंध है क्या मैं यह बता सकता हूं कि जब तक संसद कोई अन्य उपबन्ध नहीं करती तब तक के लिये यह अन्तर्कालीन उपबन्ध है? यह विषय संसद के विचार पर छोड़ दिया गया है।

पंडित हृदय नाथ कुंजरू: वह बिल्कुल सच है, पर मैं यह चाहता था कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर इस विषय का भी उल्लेख करते जब उन्होंने अपने संशोधन की व्याख्या की थी। मैं यह जानता हूं कि न्यायाधीशों के निवृत्ति वेतन को नियत करते हुए संसद को एक विधि पार करनी होगी परन्तु यदि उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति यहां—और आज मसौदा समिति के सभापति से अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति अन्य कोई और नहीं है—इस सम्मति को प्रकट कर दे कि निवृत्ति वेतन बढ़ना चाहिये और वेतन का कम से कम दो तिहाई होना चाहिये तो मुझे विश्वास है कि इसका संसद पर प्रभाव पड़ेगा। परन्तु इस विषय को यदि यों ही छोड़ दिया जाता है और ऐसा कोई व्यक्ति, जिसकी सम्मत्ति को संसद महत्व दे, इसका उल्लेख नहीं करता है और माननीय सदस्यों को यह कल्पना करने दी जाती है कि वर्तमान निवृत्ति वेतन संबंधी उपबन्धों में परिवर्तन अपेक्षित नहीं है तो यह बहुत ही संदेहात्मक है कि संसद निवृत्ति वेतन बढ़ाने की ओर प्रवृत्ति दिखाये।

श्रीमान, इस प्रश्न का उल्लेख करने का यह कारण है। मैं इस वाद विवाद को अधिक देर तक जारी रखना नहीं चाहता हूं। मैं नहीं समझता हूं कि मसौदा समिति द्वारा किसी भी संशोधन के स्वीकार किये जाने की तनिक भी गुंजाइश हो। विगत दो वर्षों से इस सभा में वाद विवाद ने जो प्रणाली ग्रहण की है हम सब उससे परिचित हैं। कोई संशोधन चाहे कितना ही युक्ति युक्त रहा हो मसौदा समिति द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है पर मैं आशा करता हूं कि मसौदा समिति के सभापति यह कहना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध नहीं समझेंगे कि उनकी सम्मति में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के निवृत्ति वेतनों में वृद्धि होनी चाहिये।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अब इस विषय पर मत लिया जाए।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं जो कुछ कहना चाहता हूं वह यह है कि केवल तीन बातें उठाई गई हैं जिनका कुछ उत्तर अपेक्षित है। श्री कामत ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को बिना किराये के मकान देने वाले अनुसूची 2 में के उपबन्धों पर आक्रमण किया है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये संविधान में मकान की व्यवस्था करने वाले इस प्रश्न को बड़ी सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् तय किया गया था। यह विचार किया गया है कि बहुत से न्यायाधीश जिनकी उच्चतम न्यायालय में नियुक्ति होगी वे इस देश के दूरवर्ती सिरों से राजधानी में आयेंगे और यह ठीक नहीं होगा कि उनके पद के अनुरूप मकान तलाशना उन पर ही छोड़ दिया जाये। यह मुख्य कारण था कि मसौदा समिति ने मकान की व्यवस्था करने के आभार को अपने ऊपर लिया।

बिना किराये के प्रश्न के संबंध में हमने सोचा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के उस वेतन की कमी के लिये यह एक प्रकार का प्रतिकर है जिसकी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हमने फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों की तुलना में प्रस्थापना की है। व्यक्तिगत रूप में मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था जब कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने इस बात पर उपहासपूर्ण टिप्पणी की थी क्योंकि यदि वे किसी व्यक्ति के लिये बिना किराये के मकान की व्यवस्था करने के विरोध में हैं तो मुझे उनसे यह आशा थी कि वे उन बिना किराये के मकानों के बारे में कुछ कहते जिनकी व्यवस्था हमने राष्ट्रपति तथा गवर्नर जनरल को भी की है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने किराये का उल्लेख नहीं किया था और मैं यह भी नहीं जानता कि आया बिना किराये का मकान है या नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं समझता हूं कि श्री कामत द्वारा उठाये गये इस विशिष्ट प्रश्न में कोई सार नहीं है।

वेतनों की राशि पर सभा में भिन्न-भिन्न प्रकार की सम्मतियां प्रकट की गई हैं। मेरे मित्र श्री शिब्बन लाल सक्सेना ने तो यहां तक कहा कि राष्ट्रपति को एक रुपये से अधिक नहीं मिले। मेरा विचार है कि इस पारिश्रमिक पर सिवा किसी घूमने वाले सन्यासी के अन्य कोई व्यक्ति राष्ट्रपति का कार्य करने के लिये नहीं मिलेगा, और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक घूमने वाले सन्यासी के अन्य गुण चाहे तो कुछ भी हों परन्तु संघ का राष्ट्रपति होने के लिये तो वह एक बिल्कुल ही अयोग्य व्यक्ति होगा।

न्यायाधीशों के वेतन के संबंध में दो प्रश्न उठाये गये हैं। सभा में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने यह कहा है कि अनुसूची में न्यायाधीशों का जो वेतन नियत किया गया है उससे उनका वेतन अधिक होना चाहिये। कुछ लोगों ने यह कहा है कि जो वेतनमान हमने नियत किया है वह देश के वेतन देने के सामर्थ्य से कोई संबंध नहीं रखता है। मेरे विचार से इस देश में हम जो वेतन नियत करें उसका लोगों की आय से संबंध हो इस विषय का नारा एक अच्छा राजनैतिक नारा है, पर मैं यह कहने के लिये उद्यत नहीं हूं कि यह व्यवहारिक राजनीति है। इस देश में तथा अन्य देशों में भी वेतन प्रदाय और मांग के नियम पर निर्भर होने चाहिये। दुर्भाग्यवश अथवा सौभाग्यवश विधान मंडल के सदस्य के रूप में कार्य करने के लिये बहुत से लोग मिल सकते हैं अतः उनके वेतन को हम बहुत कम परिमाण पर नियत करते हैं। सौभाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश उन लोगों का प्रदाय जो न्यायाधीश के रूप में कार्य कर सकते हैं बहुत ही संकुचित है। मैं यह तो नहीं कहता कि वे अलभ्य हैं। परन्तु वास्तव में यह बड़ी कठिनाई से मिलने वाली वस्तु है अतः हमें बाजार दर का मूल्य देना होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस अनुसूची में नियत किये गये वेतन तत्कथित बाज़ार दर के मूल्य के अनुरूप है। अतः मैं नहीं समझता हूं कि जो वेतन हमने नियत किये हैं उन पर कोई बड़ा झगड़ा हो सकता है।

इसके बाद मेरे मित्र श्री हिम्मतसिंहका द्वारा पेश किये संशोधन पर मैं आता हूं। मैं यह कह देना चाहूंगा कि उनके और मेरे विचार में एक ही बात है और उनके मन में जो बात है उनके लिये मुझे असीम सहानुभूति है। पर वे यह चाहते हैं कि मैं एक व्यापक प्रस्थापना को स्वीकार कर लूं अर्थात् इस प्रस्थापना को जिसमें कहा गया है "भाग 1 में वर्णित किसी भी राज्य क्षेत्र में नियुक्त कोई न्यायाधीश।"

मैं समझता हूं कि इन खंडों में व्यापक निबन्धनों के संशोधन का पुर:स्थापन करना वांछनीय नहीं है क्योंकि 31 अक्तूबर, 1948 के पश्चात् प्रांतीय आधार पर न्यायाधीशों के वेतनों में अपने संविधान के उपबन्धों के कारण कोई अन्तर नहीं हो सकता। उच्च न्यायालय के क्षेत्र पर विचार किये बिना जिसके अन्तर्गत वह न्यायालय स्थित है सब न्यायाधीशों को एक आधार पर रख दिया गया है। अत: किसी असमानता को दूर करने के लिये कोई व्यापक उपबन्ध आवश्यक नहीं है क्योंकि ऐसी असमानता के दुबारा होने की संभावना नहीं है। असमानता इस कारण वर्तमान है कि भारत शासन अधिनियम में न्यायाधीशों के वेतन संबंधी कुछ उपबन्धों ने प्रांतों में परस्पर भेद विभेद कर दिये थे। मैं अपने मित्र से जो कुछ कहना चाहता हूं वह यह है कि मसौदा समिति यह आशा करती है कि इस विशेष दशा के लिये अन्य रीति से उपबन्ध कर दिया जायेगा। यदि यह हुआ तो इस विशेष संशोधन को स्वीकार करना आवश्यक नहीं होगा और इसके कारण जिन व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ेगा उनको भी लाभ हो जायेगा। परन्तु यदि मसौदा समिति यह देखती है कि यह नहीं होगा तो मसौदा समिति ने यह अधिकार अपने लिये सुरक्षित रखा है कि उन विशेष व्यक्तियों की शिकायत को दूर करने के लिये एक विशेष संशोधन प्रस्तुत करे।

समाप्त करने से पूर्व मैं इस खंड में एक या दो वाक्यांश और पुर:स्थापित करने के हेतु आपकी अनुमति प्राप्त करने के लिये निवेदन करूंगा, जो भूल से रह गये हैं। मैं भाग 4, कंडिका 11 उपकंडिका (2) की ओर निर्देश करता हूं। सप्तम पंक्ति में 'shall' शब्द के पश्चात् मैं इन शब्दों को प्रविष्ट करना चाहूंगा:

'in addition to the salaries specified in sub-paragraph (1) of this paragraph.'

कंडिका 11 की उपकंडिका (3) के लिये मेरे पास एक संशोधन और भी है। प्रथम 'such' को मैं निकालना चाहूंगा और 'judge' शब्द के पश्चात् मैं यह जोड़ना चाहूंगा:

'of the High Court.'

***श्री एच.वी. कामत:** यह मेरा संशोधन है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उसे स्वीकार करता हूं, और अब मैं आशा करता हूं कि संशोधित रूप में सभा इस अनुसूची को स्वीकार करेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** राष्ट्रपति और राज्यपाल के वेतनों और भत्तों के संबंध के मेरे संशोधन के बारे में क्या विचार है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उसे संसद निश्चित करेगी।

***अध्यक्ष:** अब मैं भागों के अनुसार अनुसूची पर के संशोधनों पर मत लूंगा। इस समय हम अनुसूची के भाग 1 पर हैं।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की कंडिका 1 में '10000' अंक और '5500' अंक के पूर्व 'not more than' शब्द प्रविष्ट किये जायें।'

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की कंडिका 1 में '10,000 Rupees' शब्द और अंक के स्थान में '1 rupee' शब्द और अंक रखे जायें।'

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की कंडिका 1 में राष्ट्रपति और राज्यपाल के वेतन संबंधी अंकों के पश्चात् यह और जोड़ दिया जाये:–

'The salaries of the President and the Governor shall be subject to income tax.' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में प्रस्थापित भाग 1 की 2 और 3 कंडिकाओं के स्थान में ये कंडिकायें रखी जायें:–

'There shall be paid to the President and to the Governor the following allowance:

'The President shall draw a lump sum of Rs. 1,35,000 per annum which shall include the cost of renewal, repair and maintenance of furniture and motor vehicles, also including sumptuary, contract and all other allowances.

'The President shall also draw Rs. 10,000 per annum as touring expenses.

'The Governors shall draw a lump sum of Rs. 15,000 per annum which shall include the cost of renewal, repair and maintenance of furniture and motor vehicles, also including sumptuary, contract and all other allowances.

'The Governors shall also draw Rs. 7,000 per annum as touring expenses.' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** भाग 2 पर कोई संशोधन नहीं है। मैं भाग 3 पर आता हूं। संशोधन संख्या 264 ।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 210 के निर्देशानुसार भाग 3 की कंडिका 8 के स्थान में यह कंडिका रखी जाये:—

'8. There shall be paid to the Speaker and the Deputy Speaker of the provisional Parliament, such salaries and allowances as were payable to the Speaker and the Deputy Speaker of the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before the commencement of this Constitution.' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं भाग 4 पर आता हूं। संशोधन संख्या 265 ।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उपकंडिका (1) में–

(1) '5000' अंक के स्थान में '6000' अंक रखे जायें, और

(2) '8000' अंक के स्थान में '5000' अंक रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 267 का भाग (3) पेश नहीं किया गया था। अत: मैं प्रथम दो भागों पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उपकंडिका (3) में—

[अध्यक्ष]

(1) 'thirty first day of October 1948' शब्दों और अंक के स्थान में 'commencement of this Constitution' शब्द रखे जायें;

(2) 'commencement of this Constitution' शब्दों के स्थान में 'such commencement' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की उपकंडिका 11 में–

(1) '4000' अंक के स्थान में '5000' अंक रखा जाये, और

(2) '3500' अंक के स्थान में '4000' अंक रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (2) में–

(1) 'Thirty first day of October 1948' शब्दों और अंक के स्थान में 'commencement of this Constitution' शब्द रखे जायें;

(2) 'the commencement of this Constitution' शब्दों के स्थान में 'such commencement' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 270 का तीसरा भाग डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। जिस रूप में तीसरा भाग है। वह इस प्रकार है:

"इस अनुसूची के भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (2) में 'specified in sub-paragraph 4 (1) of this paragraph shall' शब्दों के पश्चात् 'in addition to the salary specified in sub-paragraph (1) of this paragraph' शब्द जोड़ दिये जायें।"

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं अपने शब्दों को रखना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं शब्द तो वही हैं।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** वाद-विवाद समाप्त करने के प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने के पश्चात् क्या डॉ. अम्बेडकर को संशोधन पेश करने का हक है?

***अध्यक्ष:** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के शब्दों और जो कुछ डॉ. अम्बेडकर ने कहा है उस में कोई अन्तर नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका 2 की सातवीं पंक्ति में 'shall' शब्द के पश्चात् निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'in addition to the salaries specified in sub-paragraph 1 of this paragraph.' "

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 211 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 12 की उपकंडिका (ख) के मद (2) में से 'excluding any time during which the judge is absent on leave' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की–

(1) उपकंडिका (1) में '5000' और '4000' अंकों के स्थान में क्रमश: '3000' और '2000' अंक रखे जायें; और

(2) उपकंडिका (2) में 'without' शब्दों के स्थान में 'on' शब्द रखा जाये।"

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 10 की उपकंडिका (3) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (2) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 10 में प्रस्थापित भाग 4 की कंडिका 11 की उपकंडिका (3) में 'Every such judge' शब्दों के स्थान में 'Every judge of a High Court' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि द्वितीय अनुसूची के भाग 1 के स्थान में यह अनुसूची रखी जाये:–

'PART I

PROVISIONS AS TO THE PRESIDENT AND THE GOVERNORS OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART I OF THE FIRST SCHEDULE—

1. There shall be paid to the President and to the Governors of the States for the time being specified in Part I of the First Schedule the following emoluments *per mensem,* that is to say:—

   The President..... 10,000 rupees.

   The Governor of a State..... 5,500 rupees.

2. There shall also be paid to the President and to the Governors such allowances as were payable respectively to the Governor-General of the Dominion of India and to the Governors of the corresponding Provinces immediately before the commencement of this Constitution.

3. The President and the Governors throughout their respective terms of office shall be entitled to the same privileges to which the Governor-General and the Governors of the corresponding

Provinces were respectively entitled immediatedly before the commencement ot this Constitution.

4. While the Vice-President or any other person is discharging the functions of, or is acting as, President, or any person is discharging the functions of the Governor, he shall be entitled to the same emoluments, allowances and privileges as the President or the Governor whose functions he discharges or for whom he acts, as the case may be.' "

'भाग (1)

राष्ट्रपति तथा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उस समय उल्लिखित राज्यों के राज्यपालों के लिये उपबन्ध–

1. राष्ट्रपति तथा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उल्लिखित राज्यों के राज्यपालों को निम्नलिखित उपलब्धियां प्रति मास दी जायेंगी अर्थात्:–

राष्ट्रपति को..... 10,000 रुपया

राज्य के राज्यपालों को..... 5,500 रुपया

2. राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को ऐसे भत्ते भी दिये जायेंगे जैसे कि क्रमश: भारत डोमिनियन के गवर्नर जनरल को तथा तत्स्थानी प्रान्तों के गवर्नरों को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले दिये थे।

3. राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को अपनी अपनी सम्पूर्ण पदावधि में ऐसे विशेष अधिकारों का हक होगा जैसे कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमश: गवर्नर जनरल तथा तत्स्थानी प्रान्तों के गवर्नरों को था।

4. जबकि उपराष्ट्रपति अथवा कोई अन्य व्यक्ति राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन अथवा उसके रूप में कार्य कर रहा है अथवा कोई व्यक्ति राज्यपाल के कृत्यों का निर्वहन कर रहा है तब उसको वैसी ही उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का हक होगा जैसा कि यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल को है जिसके कृत्यों का वह निर्वहन करता है अथवा यथास्थिति जिसके रूप में वह कार्य करता है।' "]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि भाग 2 के शीर्षक में 'Part I' शब्द और अंक के पश्चात् 'or Part III' शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 7 के स्थान में यह कंडिका रखी जाये:–

'7. There shall be paid to the ministers for any State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule such salaries and allowances as were payable to such ministers for the corresponding Province or the corresponding Indian State, as the case may be, immediately before the commencement of this Constitution.' "

[7. प्रथम अनुसूची के भाग (1) में या भाग (3) में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य के मंत्रियों को ऐसे वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि यथास्थिति तत्स्थानी प्रान्त या तत्स्थानी देशी राज्य के ऐसे मंत्रियों को इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले दिये थे।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 8 में 'respectively to the Deputy President of the Legislative Assembly and to the Deputy President of the Council of State immediately before the fifteenth day of August 1947 शब्दों के स्थान में 'to the Deputy Speaker of the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before such commencement' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि द्वितीय अनुसूची के भाग 4 के स्थान में यह भाग रखा जाये:–

'PART IV

PROVISIONS AS TO THE JUDGES OF THE SUPREME COURT AND OF THE HIGH COURTS OF STATES IN PART I OF THE FIRST SCHEDULE.

(1) There shall be paid to the judges of the Supreme Court, in respect of time spent on actual service, salary at the following rates *per mensem,* that is to say:—

The Chief Justice.....	5,000 rupees
Any other Judge.....	4,000 rupees

Provided that if a judge of the Supreme Court at the time of his appointment is in receipt of a pension (other than a disability or wound pension) in respect of any previous service under the Government of India or any of its predecessor Governments or under the Government of State or any of its predecessor Governments, his salary in respect of service in the Supreme Court shall be reduced by the amount of that pension.

(2) Every judge of the Supreme Court shall be entitled without payment of rent to the use of an official residence.

(3) Nothing in sub-paragraph (2) of this paragraph shall apply to a judge who was appointed as a judge of the Federal Court before the thirty-first day of October, 1948, and has become on the date of the commencement of this Constitution a judge of the Supreme Court under clause (1) of article 308 of this Constitution and every such judge shall in addition to the salary specified in sub-paragraph (1) of this paragraph be entitled to receive as special pay an amount equivalent to the difference between the salary so specified and the salary which was payable to him as a judge of the Federal Court immediately before such commencement.

(4) Every judge of the Supreme Court shall receive such reasonable allowances to reimburse him for expenses incurred in travelling on duty within the territory of India and shall be afforded such reasonable facilities in connection with travelling as the President may from time to time prescribe.

(5) The rights in respect of leave of absence (including leave allowances) and pension of the judges of the Supreme Court shall be governed by the provisions which, immediately before the commencement of this Constitution, were applicable to the judges of the Federal Court.

11. (1) There shall be paid to the judges of the High Court of each State for the time being specified in Part I of the First Schedule,

[अध्यक्ष]

in respect of time spent on actual service, salary at the following rates *per mensem,* that is to say:—

The Chief Justice.....	4,000 rupees.
Any other judge.....	3,500 rupees.

(2) Every person who was appointed permanently as a judge of a High Court in any Province before the thirty-first day of October, 1948, and has on the date of the commencemnt of this Constitution become a judge of the High Court in the corresponding State under clause (1) of article 310 of this Constitution, and was immediately before such commencement drawing a salary at a rate higher than that specified in sub-paragraph (1) of this paragraph, shall in addition to the salary specified in sub-paragraph 1 of this paragraph be entitled to receive as special pay an amount equivalent to the difference between the salary so specified and the salary which was payable to him as a judge of the High Court immediately before such commencement.

(3) Every judge of the High Court shall receive such reasonable allowances to reimburse him for expenses incurred in travelling on duty within the territory of India and shall be afforded such reasonable facilities in connection with travelling as the President may from time to time prescribe.

(4) The rights in respect of leave of absence (including leave allowances) and pension of the judges of any such High Court shall be governed by the provisions which, immediately before the commencement of this Constitution, were applicable to the judges of the High Court of the corresponding Province.

12. In this Part, unless the context otherwise requires,—
(a) the expression "Chief Justice includes an acting

Chief Justice, and a "Judge" includes an *ad hoc* judge;

(b) "actual service" includes—

(i) time spent by a judge on duty as a judge or in the performance of such other functions as he may at the request of the President undertake to discharge;

(ii) vacations, excluding any time during which the judge is absent on leave; and

(iii) joining time on transfer from a High Court to the Supreme Court or from the High Court to another.' "

[भाग 4

उच्चतम न्यायालय तथा प्रथम अनुसूची के भाग (1) में के राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में उपबन्ध।

(1) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को वास्तविक सेवा में बिताये समय के बारे में निम्नलिखित दर से प्रति मास वेतन दिया जायेगा अर्थात्:—

मुख्य न्यायाधिपति..... 5,000 रुपया

कोई अन्य न्यायाधीश..... 4,000 रुपया

परन्तु यदि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अपनी नियुक्ति के समय भारत सरकार को या उसकी पूर्ववर्ती सरकारों में से किसी की अथवा राज्य की सरकार की अथवा उसकी पूर्ववर्ती सरकारों में से किसी की पहले की गई सेवा के बारे में (निर्योग्यता या क्षतपेन्शन से अतिरिक्त) कोई निवृत्ति-वेतन मिलता हो तो उच्चतम न्यायालय में सेवा के बारे में उसके वेतन में से निवृत्ति वेतन की राशि घटा दी जायेगी।

(2) उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को, बिना किराया दिये पदावास के उपयोग का हक होगा।

(3) इस कंडिका की उप कंडिका (2) की कोई बात उस न्यायाधीश को, जो 31 अक्तूबर, 1948 से पूर्व फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त था और इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख को अनुच्छेद 308 के खंड (1) के अधीन उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो गया, लागू न होगी, तथा प्रत्येक ऐसे न्यायाधीश को इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतन से अतिरिक्त विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस प्रकार उल्लिखित वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उसे मिलने वाले वेतन के अन्तर के बराबर है।

[अध्यक्ष]

(4) उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत राज्य क्षेत्र के भीतर अपने कर्तव्य पालन में की गई यात्रा में किये गये व्ययों की पूर्ति के लिये ऐसे युक्तियुक्त भत्ते पायेगा तथा यात्रा सम्बन्धी उसे ऐसी सुविधायें दी जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति समय समय पर विहित करे।

(5) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की अनुपस्थिति छुट्टी (जिस के अन्तर्गत छुट्टी सम्बन्धी भत्ते भी हैं) तथा निवृत्ति वेतन के बारे में अधिकार उन उपबन्धों से शासित होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों को लागू थे।

11. (1) प्रथम अनुसूची के भाग (1) में उस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य में के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को वास्तविक सेवा में बिताये समय के बारे में निम्नलिखित दर से प्रति मास वेतन दिया जायेगा, अर्थात्:–

मुख्य न्यायाधिपति.....	4,000 रुपये
कोई अन्य न्यायाधीश.....	3,500 रुपये

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो 31 अक्तूबर, 1948 से पूर्व किसी प्रान्त में की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में स्थायी प्रकार से नियुक्त था और इस संविधान के प्रारम्भ की तारीख को अनुच्छेद 310 के खंड (1) के अधीन तत्स्थानी राज्य में की उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो गया और ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतन की दर से अधिक दर का वेतन पा रहा था, उसे इस कंडिका की उपकंडिका (1) में उल्लिखित वेतन के अतिरिक्त विशेष वेतन के रूप में ऐसी राशि पाने का हक होगा जो कि इस प्रकार उल्लिखित वेतन तथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उसे मिलने वाले वेतन के अन्तर के बराबर है।

(3) उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत-राज्य क्षेत्र के भीतर अपने कर्तव्य पालन में की गई यात्रा में किये गये व्ययों की पूर्ति के लिये ऐसे युक्ति युक्त भत्ते पायेगा तथा यात्रा सम्बन्धी उसे ऐसी सुविधायें दी जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर विहित करे।

(4) ऐसे किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अनुपस्थिति छुट्टी (जिस के अन्दर छुट्टी भत्ते भी हैं) और निवृत्ति-वेतन के बारे में अधिकार उन उपबन्धों से शासित होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्त के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को लागू थे।

12. इस भाग में जब तक प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो–

(क) "मुख्य न्यायाधिपति" पदावली के अन्तर्गत कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति है तथा "न्यायाधीश" पद के अन्तर्गत तदर्थ न्यायाधीश है।

(ख) "वास्तविक सेवा" के अन्तर्गत है:–

(1) न्यायाधीश के रूप में कर्तव्य करते हुए अथवा ऐसे अन्य कृत्यों के पालन में, जिनका राष्ट्रपति की आकांक्षा पर उस ने निर्वहन करने का भार लिया हो, न्यायाधीश द्वारा व्यतीत समय;

(2) उस समय को न गिनकर जिसमें कि वह न्यायाधीश छुट्टी लेकर अनुपस्थित है, विश्रामावकाश; तथा

(3) उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय को अथवा एक उच्च न्यायालय से दूसरे को बदले जाने पर योगकाल।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में द्वितीय अनुच्छेद संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में द्वितीय अनुच्छेद संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, क्या आप इस विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगे कि यह सत्र कब तक होगा?

***अध्यक्ष:** यह सब आप पर निर्भर है। मेरा आशय विशेष कर आप से नहीं है वरन सभा से है। मैं समझता हूं कि हमें दोपहर बाद फिर समवेत होना है। हम चार बजे सभा की बैठक करेंगे। सभा 4 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

***एक माननीय सदस्य:** हम चार बजे से छ: बजे तक बैठक करेंगे।

***अध्यक्ष:** देखा जायेगा।

इस के पश्चात् दोपहर के भोजन के लिये सभा दोपहर बाद चार बजे तक के लिये स्थगित हुई।

सभा, दोपहर के भोजन के बाद चार बजे माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुनर्समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

भाग 6-क

***अध्यक्ष:** अब हम भाग 6-क को लेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि भाग 6 के पश्चात् यह नया भाग प्रविष्ट किया जाये:–

'PART VI-A

THE STATES IN PART III OF THE FIRST SCHEDULE

Application of provisions of Part-VI to States in Part-III of the First Schedule.

211A. The Provisions of Part VI of this Constitution shall apply in relation to the States for the time being specified in Part III of the First Schedule as they apply in relation to the States for the time being specified in Part I of that Schedule subject to the following modifications and omissions, namely:—

(1) For the word "Governor" wherever it occurs in the said Part VI, except where it occurs for the second time in clause (b) of article 209, the word "Rajpramukh" shall be substituted.

(2) In article 128, for the word and figure "Part I" the word and figure "Part III" shall be substituted.

(3) Articles 131, 132 and 134 shall be omitted.

(4) In article 135,—

(a) in clause (1), for the words, "be appointed" the word "becomes" shall be substituted;

(b) for clause (3), the following clause shall be substituted, namely:—

"(3) The Rajpramukh shall be entitled without payment of rent to the use of his residences,

and there shall be paid to the Rajpramukh such allowances as the President may, by general or special order, determine.";

(c) in clause (4), the words 'emoluments and' shall be omitted.

(5) In article 136, after the words "senior-most judge of that court available" the words 'or in such other manner as may be prescribed in this behalf by the President' shall be inserted.

(6) In article 144, the proviso to clause (1) shall be omitted.

(7) In article 148, for clause (1) the following clause shall be substituted, namely:—

"(1) For every State there shall be a Legislature which shall consist of the Rajpramukh and—

(a) in the State of Mysore, two houses;

(b) in other States, one house."

(8) In article 163, for the words "as are specified in the Second Schedule" the words "as the Rajpramukh may determine" shall be substituted.

(9) In article 170, for the words "as were immediately before the date of commencement of this Constitution applicable in the case of members of the Provincial Legislative Assembly for that State" the words "as the Rajpramukh may determine" shall be substituted.

(10) In clause (3) of article 177—

(a) for sub-clause (a), the following sub-clause shall be substituted, namely:—

"(a) the allowances of the Rajpramukh and other expenditure relating to his office as

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

determined by the President by general or special order;"

(b) after sub-clause (e), the following sub-clause shall be inserted, namely:—

"(ee) in the case of the State of Travancore-Cochin, a sum of fifty-one lakhs of rupees required to be paid annually to the Devaswom fund under the covenant entered into before the commencement of this Constitution by the Rulers of the Indian States of Travancore and Cochin for the formation of the United States of Travancore and Cochin;"

(11) In article 183, for clause (2), the following clause shall be substituted, namely:—

"(2) Until rules are made under clause (1) of this article, the rules of procedure and standing orders in force immediately before the commencement of this Constitution with respect to the Legislature for the State or, where no House of the Legislature for the State existed, the rules of procedure and standing orders in force immediately before such commencement with respect to the Legislative Assembly of such Province, as may be specified in this behalf by the Rajpramukh of the State, shall have effect in relation to the Legislature of the State subject to such modifications and adaptations as may be made therein by the Speaker of the Legislative Assembly or the Chairman of the Legislative Council, as the case may be."

(12) In clause (2) of article 191, for the word "Province" the words "Indian State" shall be substituted.

(13) For article 197, the following article shall be substituted, namely:—

197. The judges of each High Court shall be entitled to such salaries and allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as may from time to time be determined by the President after consultation with the Rajpramukh: "Salaries, etc. of Judges

Provided that neither the salary of a judge nor his rights in respect of leave of absence or pension shall be varied to his disadvantage after his appointment.' "

[भाग 6-क

प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में के राज्य

211-क. भाग 6 के उपबन्ध प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में निम्नलिखित रूपभेदों और लुप्तियों के अधीन रह कर वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे उस अनुसूची के भाग (1) में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में लागू होते हैं, अर्थात्– प्रथम अनुसूची के भाग (3) में उल्लिखित राज्यों को भाग 6 के उपबन्धों का लागू होना।

(1) "राज्यपाल" पद के लिये अनुच्छेद 209 के खंड (ख) में जहां वह दूसरी बार आता है वहां को छोड़ कर जहां भी वह उस भाग में आता है "राजप्रमुख" शब्द रख दिया जायेगा।

(2) अनुच्छेद 128 में "भाग (1)" शब्द और अक्षर के लिये "भाग (3)" शब्द और अक्षर रख दिये जायेंगे।

(3) अनुच्छेद 131, 132 और 134 लुप्त कर दिये जायेंगे।

(4) अनुच्छेद 135 में:–

(क) खंड (1) में "नियुक्त होने" शब्दों के लिये "होता है" शब्द रख दिये जायेंगे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(ख) खंड (3) के स्थान में निम्नलिखित खंड रख दिया जायेगा–

"(3) राजप्रमुख को बिना किराया दिये पदावास के उपयोग का हक होगा तथा उसको ऐसे भत्ते दिये जायेंगे जैसे कि राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करे।"

(ग) खंड (4) में से "और उपलब्धियां" शब्द लुप्त कर दिये जायेंगे।

(5) अनुच्छेद 136 में "न्यायालय का प्राप्य अग्रतम न्यायाधीश" शब्दों के बाद में "अथवा ऐसी अन्य रीति से जैसी कि राष्ट्रपति द्वारा उस बारे में निर्धारित की जाये" शब्द जोड़ दिये जायेंगे।

(6) अनुच्छेद 144 के खंड (1) का परन्तुक लुप्त कर दिया जायेगा।

(7) अनुच्छेद 148 में खंड (1) के स्थान में निम्नलिखित खंड रख दिया जायेगा, अर्थात्:–

"1. प्रत्येक राज्य के लिये एक विधान मंडल होगा जो राजप्रमुख तथा

(क) मैसूर राज्य में दो सदनों से;

(ख) अन्य राज्यों में एक सदन से;

मिल कर बनेगा।"

(8) अनुच्छेद 163 में "जो द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित है" शब्दों के स्थान में "जो राजप्रमुख निर्धारित करे" शब्द रख दिये जायेंगे।

(9) अनुच्छेद 170 में "जैसे कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्त की विधान-सभा के सदस्यों के विषय में लागू थे" शब्दों के स्थान में "जैसे कि राजप्रमुख निर्धारित करे" शब्द रख दिये जायेंगे।

(10) अनुच्छेद 177 के खंड (3) में:—

(क) उपखंड (क) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रख दिया जायेगा, अर्थात्—

"(क) राजप्रमुख के भत्ते तथा उसके पद सम्बन्धी अन्य व्यय जो राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करे"

(ख) उपखंड (ड) के पश्चात् निम्नलिखित उपखंड रख दिया जायेगा अर्थात्—

"(डड) तिरुवांकुर-कोचीन राज्य के बारे में 51 लाख की राशि जिसका तिरुवांकुर और कोचीन के देशी राज्यों के शासकों द्वारा तिरुवांकुर और कोचीन संयुक्त राज्य के निर्माण के लिये इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई प्रसंविदा के अधीन प्रति वर्ष देवस्वम् निधि को दिया जाना अपेक्षित है।"

(11) अनुच्छेद 183 में खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित खंड रख दिया जायेगा, अर्थात्–

"(2) जब तक खंड (1) के अधीन नियम नहीं बनाये जाते तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले राज्य के विधान मंडल के सम्बन्ध में जो प्रक्रिया के नियम और स्थायी आदेश प्रवृत्त थे अथवा जहां राज्य में विधान मंडल का कोई सदन न था वहां ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसे प्रान्त की जिसको कि उस लिये उस राज्य का राजप्रमुख उल्लिखित करे विधान सभा के बारे में जो प्रक्रिया के नियम और स्थायी आदेश प्रवृत्त थे वे ऐसे रूपभेदों और अनुकूसनों के अधीन रह कर जिन्हें यथास्थिति विधान सभा का अध्यक्ष अथवा विधान परिषद् का सभापति करे उस राज्य के विधान-मंडल के सम्बन्ध में प्रभावी होंगे।"

(12) अनुच्छेद 191 के खंड (2) में "प्रान्त" शब्द के स्थान में "देशी राज्य" शब्द रख दिये जायेंगे।

(13) अनुच्छेद 197 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रख दिया जायेगा, अर्थात्–

197. प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन और भत्तों का तथा अनुपस्थिति छुट्टी के और निवृत्ति वेतनों के सम्बन्ध में ऐसे अधिकारों का जैसे राजप्रमुख से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति समय-समय पर निर्धारित करे, हक होगा। न्यायाधीशों के वेतन इत्यादि

परन्तु न तो न्यायाधीश के भत्ते और न उसके अनुपस्थिति छुट्टी या निवृत्ति-वेतन विषयक उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।

मैं समझता हूं कि और संशोधनों को मैं बाद में पेश करूं।

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यह देखा गया होगा कि इस भाग में यह विचार निहित है कि संविधान का भाग 6 जिसका संबंध राज्यों के संविधान से है वह भाग 3 में के राज्यों पर अनुच्छेद 211-क के उपबन्धों के अधीन अब अपने आप लागू होगा। पर यह अनुभव किया गया कि उन देशी राज्यों पर भाग 6 को लागू करने में, जो भाग 3 में होंगे, कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियां हैं जिनके लिये कोई उपबन्ध रखना आवश्यक है और इस विशेष संशोधन 217 का प्रयोजन यह है कि उन विशिष्ट अनुच्छेदों की ओर संकेत किया जाये जिनमें भाग 3 में के राज्यों की विशेष परिस्थितियों पर विचार करने के लिये इन संशोधनों का करना आवश्यक है। अन्यथा भाग 3 में के राज्य जहां तक उनके आन्तरिक संविधान का संबंध है भाग 1 में के राज्यों के समान होंगे।

***अध्यक्ष:** क्या हम संशोधनों को लें?

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई: जनरल): क्या मैं इसके विवरण को पढ़ूं.....

***अध्यक्ष:** संशोधनों के पेश हो जाने के बाद। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 237 और 238 पेश करूंगा, परन्तु इस संविधान के कलेवर में एक आनुषंगिक संशोधन आवश्यक है और उसका सुझाव मैंने संशोधन संख्या 254 में दिया है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 211-क में 'modification' शब्द के स्थान में 'adaptation, modification' शब्द रखे जायें।"

मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में—

(1) प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (3) में 'shall be omitted' शब्दों के स्थान में 'shall not apply to this part' शब्द रखे जायें;

(2) प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (4) की कंडिका (क) में 'in clause (1)' शब्दों के पश्चात् 'for the time being specified in First Schedule' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन 238 के भाग 2 की स्वीकृति पर आनुषंगिक संशोधन के रूप में मैं संशोधन संख्या 254 को भी पेश करता हूं। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 135 के खंड (1) में से 'for the time being specified in the First Schedule' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान, अनुच्छेद 211-क की योजना के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करता हूं कि मसौदा समिति ने एक प्रकार के कम समय लगने वाले मार्ग की शरण ली है। उसने केवल प्रान्तों पर लागू होने वाले अनुच्छेदों को इस प्रकार अनुकूलित किया है कि वे देशी राज्यों के प्रयोजनों के लिये ठीक हो जायें। इस रीति के अतिरिक्त नये रूप में इन अनुच्छेदों को फिर से लिखना चाहिये था। ऐसे बहुत से उपबन्ध हैं जो प्रान्तों और केन्द्रों के लिये समान हैं। यदि अनुकूलन की रीति का इस प्रकार पालन किया जाता तो कई प्रान्त संबंधी अनुच्छेद इस प्रकार की एक ही धारा द्वारा अनुकूलित हो सकते थे। इस रीति में कई असमानताओं की उपेक्षा हो जाने का भय है और यह करना कठिन हो जाता है कि अनुकूलन के बाद क्या असमानतायें रह जाती हैं। मैं निवेदन करता हूं कि यदि हो सके तो अनुकूलित रूप में इन अनुच्छेदों को एक भिन्न भाग में फिर से लिखा जाये। मैं आशा करता हूं कि मसौदा समिति इस सुझाव पर विचार करेगी।

मेरा पहला संशोधन अनुच्छेद 211-क के कलेवर के संबंध में है। उसमें कहा गया है कि प्रथम अनुसूची का भाग 3 अर्थात् भाग 6 के उपबंध इन "रूपभेदों और लुप्तियों" के अधीन स्वीकार किये जायेंगे। मैं यह चाहता हूं कि वह "अनुकूलनों, रूपभेदों और लुप्तियों" इस प्रकार से हो। "अनुकूलन" शब्द मुझे बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होता है। हम यह कर रहे हैं कि प्रान्तों पर लागू होने वाले उपबंधों को देशी राज्यों के लिये उपयुक्त बनाकर उनका अनुकूलन करें। अतः ये वास्तव में रूपभेद तथा लुप्तियां ही नहीं हैं वरन् यथार्थ में तथा मुख्यतया वे अनुकूलन हैं। इसी कारण इस प्रसंग में "अनुकूलन" शब्द विशेषकर उपयुक्त है और इसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

इसके बाद श्रीमान, इसके बाद का संशोधन भी मसौदा संबंधी है। मैं केवल उसका संकेत करूंगा और उसके विषय पर विचार करना मसौदा समिति पर छोड़ दूंगा। वह पद 3 के सम्बन्ध में है। उसमें यह कहा गया है कि "131, 132 और 134 अनुच्छेदों" को छोड़ दिया जाये। उसके स्थान में यह कहना अधिक अच्छा होगा कि "ये अनुच्छेद इस भाग को लागू नहीं होंगे।" कहने का तात्पर्य यह है कि अनुच्छेद 131, 132 और 134 भाग 6 को लागू नहीं होंगे जिस पर विचार हो रहा है। यह मसौदा सम्बन्धी है और इस पर विचार करना मैं मसौदा समिति पर छोड़ दूंगा।

मेरे विचार से इससे अगला संशोधन महत्वपूर्ण है। वह अनुच्छेद 131 के खंड (1) के अनुकूलन के संबंध का है। उसमें, मेरा आशय मूल अनुच्छेद से है, यह कहा गया है कि राज्यपाल संसद के किसी भी सदन का या उस समय प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के विधान मंडल के सदन का सदस्य नहीं होगा। हम इसे राज्य प्रमुखों को लागू करने के लिये अनुकूलित करना चाहते हैं। इस प्रकार अनुकूलित रूप में वह इस प्रकार पढ़ा जायेगा कि राजप्रमुख संसद के किसी सदन का या उस समय प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन का सदस्य होगा। मैं निवेदन करता हूं कि जिस समय इस साल अनुच्छेद का मसौदा तैयार किया गया था देशी राज्यों का चित्र कदाचित

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

अस्पष्ट सा था और इस कारण हमने प्रान्तों के लिये प्रयोज्य पदावली को ध्यान में रखा जो इस प्रकार थी "उस समय प्रथम अनुसूची में उल्लिखित राज्य।" मैं यह निवेदन करता हूं कि राजप्रमुख न केवल संसद के किसी सदन के या उस समय प्रथम अनुसूची में उल्लिखित राज्यों के ही सदस्य न होने चाहिये वरन् उस समय तृतीय अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के भी सदस्य नहीं होने चाहिये। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि कार्यप्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये कि....

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास: जनरल): माननीय सदस्य प्रथम अनुसूची के भाग 1 और प्रथम अनुसूची में गड़बड़ कर रहे हैं। प्रथम अनुसूची के अन्तर्गत सब राज्य आ जाते हैं।

***अध्यक्ष:** प्रथम अनुसूची में उल्लिखित न कि उस अनुसूची के भाग 1 में।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस बात को बताने के प्रति मैं श्री सन्तानम् का कृतज्ञ हूं। उस दशा में यह संशोधन और संशोधन संख्या 254 भी अनावश्यक हो जायेंगे।

श्रीमान, ये अनुच्छेद एक बहुत बड़ी संख्या में प्रति दिन प्रात:काल मिलते हैं और उसी दिन हमें इन पर विचार करना पड़ता है। अन्य संशोधनों पर मसौदा समिति द्वारा विचार कर लिया जायेगा।

(सूची 8 द्वितीय सप्ताह का संशोधन संख्या 239 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 240, श्री सिधवा।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (4) की कंडिका (ख) में प्रस्थापित खंड (3) के अन्त में 'and such allowances shall be a charge on the revenue of the State' शब्द जोड़ दिये जायें।"

एक इसी प्रकार का संशोधन संख्या 241 है।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (10) की कंडिका (क) में प्रस्थापित उपखंड (क) के अन्त

में 'and such expenditure shall be a charge on the revenues of the State' शब्द जोड़ दिये जायें।"

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** कंडिका (10) पारित करने वाली धारा है। यदि आप उसे अनुच्छेद 177 से मिलाकर पढ़ें तो यह देखा जायेगा कि ये भत्ते एक भार के रूप में होंगे और यही श्री सिधवा चाहते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरा विचार यह है कि संघ पर इसका भार नहीं होना चाहिये, मैं यह जानना चाहता हूं कि भत्तों का भार संघ पर होगा या राज्य पर। यदि उसका भार राज्य पर होता है तो मेरा संशोधन आवश्यक नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अनुच्छेद 177 राजप्रमुखों का निर्देश करता है।

***श्री के.एम. मुंशी:** वह केवल राज्यों पर भारणीय है।

***अध्यक्ष:** यदि आप कंडिका (1) की ओर निर्देश करते हैं तो यह उसके अन्तर्गत आ जाता है। उसमें कहा गया है–

"अनुच्छेद 177 के खंड (3) में उपखंड (क) के स्थान में यह उपखंड रख दिया जाये–

'(a) the allowances of the Rajpramukh and other expenditure relating to his office as determined by the President by general or special order' "

[(क) राजप्रमुख के भत्ते और उसके पद संबंधी अन्य व्यय जिसे राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करे।]

***श्री आर.के. सिधवा:** इससे यह आभास नहीं मिलता है कि वह राज्य पर भारणीय होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** पूरा का पूरा अनुच्छेद 177 उसके संबंध का है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यदि अब यह स्पष्ट हो गया तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं यही चाहता था कि वह राज्य पर भारणीय हो।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 177 खंड (3) के अन्तर्गत यह बात आ जाती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे संशोधन संख्या 10 के अन्तर्गत यह बात आ जाती है।

***श्री आर.के. सिधवा:** अब मैं समझा। तो फिर नये अनुच्छेद 235-क से संबंधित एक और संशोधन है। क्या वह बाद में लिया जायेगा?

***अध्यक्ष:** जी हां, अब हम श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन संख्या 242 को लेते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (13 में 'after consultation with the Rajpramukh' शब्दों) को अनुच्छेद 197 में से अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान, राष्ट्रपति द्वारा राजप्रमुख से परामर्श करने के लिखित कानूनी आभार का मैं विरोधी हूं। मैं यह जानता हूं कि व्यवहार में, राष्ट्रपति सदैव राजप्रमुख से परामर्श करेगा। परन्तु यदि कोई लिखित कानूनी आभार रखा जाता है तो अध्यक्ष की कार्यवाही का क्षेत्र परिसीमित हो जायेगा। कोई व्यक्ति सरलता से राजप्रमुख की मंत्रणा का विरोध नहीं कर सकेगा। इस कारण श्रीमान, मैं इस प्रस्थापना के पक्ष में हूं कि इस क्षेत्र में राष्ट्रपति का प्राधिकार अनिर्बन्धित तथा बिना किसी प्रतिरोध के होना चाहिये। श्रीमान, राजप्रमुख के विरोध में मैं क्यों हूं इसका एक और भी कारण है। मैं यह चाहता हूं कि जहां तक हो सके सब शक्तियां राष्ट्रपति को सौंपी जायें जिसका अर्थ यह होगा कि भारत सरकार के हाथों में। मूलत: फेडरल वाद और प्रान्तीय स्वायत्तता के विरोध में होने के कारण और एकात्मक राज्य के पक्ष में होने के कारण मैं यह समझता हूं कि जहां तक इस विषय का संबंध है शक्तियां केवल राष्ट्रपति को सौंपी जायें।

***अध्यक्ष:** दो और संशोधन हैं जिनमें से एक की सूचना काका भगवन्त राय ने दी है।

***काका भगवन्त राय** (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्यों का संघ): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क की कंडिका (ख) के मत (4) के स्थान में यह मद रखा जाये:-

'(ख) खंड (3) के स्थान में यह खंड रखा जाये; अर्थात्-

(3) The Rajpramukh shall be entitled, without payment of rent to the use of his residences, and there shall be paid to the Rajpramukh such allowances as the President may, on consideration of the recommendation made by the Legislature of the State, by general or special order, determine.' "

[राजप्रमुख को बिना किराया दिये अपने निवासस्थानों के प्रयोग करने का हक होगा और राजप्रमुख को ऐसे भत्ते दिये जायेंगे जैसे राष्ट्रपति उस राज्य के विधान मंडल द्वारा की गई सिफारिश पर विचार कर साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करे।]

श्रीमान, राजप्रमुखों के बड़े-बड़े भत्ते राज्य के राजस्व पर प्रत्यक्ष रूप में एक भार हैं और राज्य का राजस्व राज्य की जनता द्वारा दिया जाता है। अतः जनता के प्रतिनिधियों को—मेरा अभिप्राय राज्य के विधान-मंडलों से है—उन भत्तों पर वाद विवाद करने का हक होगा जो राजप्रमुखों को दिया जायेगा। श्रीमान, आपको यह याद होगा कि जब हम अनुसूची 7 पर वाद विवाद कर रहे थे मैंने एक इसी प्रकार का संशोधन रखा था और मुझे डॉ. अम्बेडकर द्वारा यह आश्वासन दिया गया था कि जब हम राज्य के अध्याय को उठायेंगे हम इस पर अवश्य विचार करेंगे। मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन पर विचार करने और उसे स्वीकार करने की कृपा करेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (10) की कंडिका (क) में 'The President by general or special order' शब्दों के स्थान में 'Parliament by law' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** जो प्रति मेरे पास है वह इस प्रकार है:

"कि सूची 10 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 278 में प्रस्थापित अनुच्छेद 197 के खंड (1) में 'President after consultation with the Rajpramukh' शब्दों के स्थान में 'Parliament by law' शब्द रखे जायें।"

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** जिस संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं वह सूची 12 का संशोधन 288 है।

***अध्यक्षः** यह मुझे अभी मिला है। आप उसे पेश कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** पर वह पेश नहीं किया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आप उसे कैसे पेश कर सकते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं उस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं जिसे अध्यक्ष ने पढ़ा था। मैं सूची 12 के संशोधन संख्या 298 को पेश कर रहा हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** इसके पूर्व सूची 10 में के संशोधन संख्या 276, 277 और 278 हैं।

***अध्यक्ष:** हम अभी उन पर नहीं आ पाये हैं। प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना इस संशोधन को पेश करें और उसके बाद इन संशोधनों को लेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यहां हम राजप्रमुखों को दिये जाने वाले भत्तों के लिये उपबन्ध बना रहे हैं और हम यह कह चुके हैं कि इन भत्तों को राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करेगा। मूल अनुच्छेद में राज्यपालों का वेतन संसद द्वारा निर्धारित किया जायेगा और मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि राजप्रमुख के भत्ते संसद द्वारा निर्धारित क्यों न किये जायें। वास्तव में भत्तों को सदैव के लिये नियत कर देना चाहिये और उनमें परिवर्तन नहीं होना चाहिये। इस कारण मैं समझता हूं कि इन भत्तों का निर्धारण संसद द्वारा होना चाहिये न कि राष्ट्रपति द्वारा। हर एक राष्ट्रपति के बदलने पर इनमें परिवर्तन नहीं होना चाहिये। मेरा संशोधन संख्या 288 यह है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (4) में उप-कंडिका (ख) के स्थान में निम्नलिखित उप-कंडिका रखी जाये:-

'(ख) खंड (3) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखा जायेगा, अर्थात्-

(3) Unless he has his own residence in the Capital of his State, the Rajpramukh shall be entitled to the use of an official residence without payment of rent, and there shall be paid to the Rajpramukh such allowances as the President may, by general or special order, determine.' "

[(3) यदि उसके राज्य की राजधानी में उसका निजी निवासस्थान नहीं है तो राज प्रमुख को बिना किराया दिये पदावास के प्रयोग करने का हक होगा, तथा राजप्रमुख को ऐसे भत्ते दिये जायेंगे जैसे राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करे।]

इस संशोधन का विषय यह है कि जिस रूप में इस खंड का मूलत: मसौदा तैयार किया गया था उसमें उपबन्ध यह है कि अपने निवासस्थानों को बिना किराया दिये प्रयोग में लाने का उसे हक होगा; यदि उसके अपने निवासस्थान हैं तो यह निश्चित है कि हमें एक ऐसा संविधानिक उपबंध नहीं बनाना चाहिये कि उनके प्रयोग करने का उसे हक है। किराया देने का प्रश्न केवल तभी उठता है जब कि उसे किसी ऐसे निवासस्थान का प्रयोग करना पड़े जो अधिकार द्वारा उसका नहीं है। इसी कारण मैं यह उपबन्ध बनाना चाहता हूं कि राजप्रमुख को केवल तभी बिना किराया दिये सरकारी पदावास के प्रयोग करने का हक होगा जब कि

उसकी राजधानी में उसका अपना निवासस्थान न हो और इसी के अनुसार यह मेरा संशोधन प्रस्तुत किया गया है। श्रीमान, मैं इस संशोधन को पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (13) में अनुच्छेद 197 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:-

197. (1) There shall be paid to the judges of each High Court such salaries as may be determined by the President after consultation with the Rajpramukh. Salaries. etc. of judges.

(2) Every judge shall be entitled to such allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as may from time to time be determined by or under law made by Parliament and, until so determined, to such allowances and rights as may be determined by the President in consultation with the Rajpramukh:

Provided that neither the allowances of a judge nor his rights in respect of leave of absence or pension shall be varied to his disadvantage after his appointment.' "

197. (1) प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को ऐसे वेतन दिये जाये जायेंगे जैसे राजप्रमुख से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति निर्धारित करे। न्यायाधीशों के वेतन इत्यादि

(2) प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे भत्तों का तथा अनुपस्थिति-छुट्टी और निवृत्ति-वेतनों के संबंध में ऐसे अधिकारों का हक होगा जैसे संसद द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन समय-समय पर निर्धारित किये जायें और जब तक इस प्रकार से निर्धारित न किये जायें तब तक ऐसे भत्तों का और अधिकारों का हक होगा जैसे राजप्रमुख के परामर्श से राष्ट्रपति निर्धारित करे:

परन्तु न तो न्यायाधीश के भत्ते और न उसके अनुपस्थिति-छुट्टी या निवृत्ति-वेतन विषयक उसके अधकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।"]

श्रीमान, हमारा प्रयत्न यह रहा है कि जहां तक हो सके राज्यों को प्रान्तों की पंक्ति में लाया जाये। जहां तक वेतनों का सम्बन्ध है यह आवश्यक समझा गया कि देशी राज्यों में के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन कम से कम इस

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

समय तो प्रान्तों में के उच्च न्यायालयों के वेतनों से भिन्न होने चाहिये। इसी कारण राष्ट्रपति को अनुच्छेद 197 (1) के अधीन अधिकार दिया गया है। अन्य भत्तों और अनुपस्थिति-छुट्टी तथा निवृत्ति-वेतनों के संबंध के अधिकारों को नियत करने की शक्ति संसद को दे दी गई है। यह न्यायपूर्ण नहीं है कि संसद या संसदीय विधान राज्यों के उच्च न्यायालयों को भी क्योंकर लागू न हो। अतः जहां तक खंड (2) और परन्तुक का संबंध है मैंने उसी भाषा को अपनाया है जो अनुच्छेद 197 में है। अन्तर यह है कि आरम्भ में भत्ते राष्ट्रपति द्वारा नियत किये जायें खंड (1) में मैंने राष्ट्रपति को न्यायाधीशों के वेतन नियत करने का अधिकार दे दिया है जिससे कि नया अनुच्छेद 197 पुराने अनुच्छेद 197 के उतना सन्निकट रहेगा जितना सन्निकट रखना संभाव्य तथा आवश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण संबंधी प्रश्न है, मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् से यह पूछ सकता हूं कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए राजप्रमुखों को अपने पदावास का किराया देने से एक विशिष्ट रूप में मुक्त किया गया है क्या राज्यपालों के संबंध के अनुच्छेद का भी उपयुक्त रूप में संशोधन किया जायेगा? वह अनुच्छेद उन्हें विशिष्ट रूप में मुक्त नहीं करता है।

***अध्यक्षः** इस समय यह प्रश्न नहीं उठता है।

***श्री एच.वी. कामतः** राज्यपाल और राजप्रमुख परस्पर समान हैं।

***अध्यक्षः** होंगे, पर यहां हम राज्यपालों के संबंध में विचार नहीं कर रहे हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं यह और कहूंगा कि सामान्यतया राजप्रमुखों के राजधानी में अपने निजी निवासगृह हैं और इस कारण किराये का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (तिरुवांकुर और कोचीन संघ): क्या मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् से यह जान सकता हूं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में वे अन्तर क्यों करते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** क्योंकि अनुच्छेद 197 ने अन्तर कर दिया है। उसके द्वारा अनुसूची 2 में वेतन नियत हो चुके हैं और संसद् द्वारा वे अपरिवर्त्तनीय बना दिये जा चुके हैं। परन्तु अनुच्छेद 197 के खंड (2) के द्वारा भत्ते को और छुट्टी तथा निवृत्ति-वेतन इत्यादि के संबंध के अन्य अधिकारों को संसदीय विधान के अधीन कर दिया है। चूंकि अनुच्छेद 197 के द्वारा अन्तर कर दिया गया है, राज्यों के संबंध में मैं उसी अन्तर को बनाये रखने का प्रयत्न कर रहा हूं।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> "कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211-क के मद (1) में 'Rajpramukh' शब्द के स्थान में 'Maharaja, Nizam, or Rajpramukh' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, यह कहा जा सकता है कि इस विषय की व्याख्या संविधान में अन्यत्र कर दी जायेगी। पर मैं यह समझता हूं कि यह आवश्यक है...।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): क्या मैं यह बता सकता हूं कि मसौदा समिति का यह विचार है कि इस परिभाषा को खंड 303 की परिभाषा में जोड़ दिया जाये जिसमें हम संशोधन करना चाहते हैं और यदि माननीय सदस्य प्रतीक्षा करें तो कदाचित् उन्हें जैसे वे चाहते हैं वैसे इन शब्दों को हमारी प्रस्थापना पर संशोधन के रूप में रखने का अवसर मिलेगा।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी:** इस दशा में मैं इसे स्थगित रखूंगा। मैं संशोधन संख्या 287 पेश करूंगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्थापित अनुच्छेद 211क के मद (4) की उपकंडिका (ख) में के प्रस्थापित खंड (3) में 'Payments of rent' शब्दों के स्थान में 'any obligation' शब्द रख दिये जायें।"

"किराये" शब्द के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो राज्य के शासकों को तुच्छ बनाया जा रहा है। इस कारण मैं यह सुझाव देता हूं कि "आभार" शब्द रखा जाये। मुझे और कुछ नहीं कहना है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 10 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 273 मैं प्रस्थापित अनुच्छेद 197 के खंड (1) में "President after consultation with the Rajpramukh" शब्दों के स्थान में "Paliament by law" शब्द रखे जायें।"

संशोधन संख्या 278 मेरे मित्र श्री सन्तानम् द्वारा पेश किया गया था। इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है। तिरुवांकुर के मेरे माननीय मित्र ने यह प्रश्न पहले ही उठा दिया था जिसका श्री सन्तानम् ने उत्तर भी दे दिया था। उन्होंने कहा था कि संशोधनों की सूची 7 को जो इस समय विचाराधीन है अनुच्छेद 207 के अनुरूप बनाने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। मैं यह समझता हूं कि वेतन नियत कर देने चाहिये। परिवर्तनशील नहीं होने चाहिये और यह नहीं होना चाहिये कि समय-समय पर राजप्रमुख के परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति उनको नियत करे। वेतन चाहे जो कुछ भी हो, उचित केवल यही है कि उन्हें संसद ही नियत करे। अन्तिम प्राधिकार संसद का ही होना चाहिये। यह मानने के लिए मैं तैयार हूं कि इस संक्रांति काल में आप इस खंड को रख सकते हैं, परन्तु यदि आप उसे संविधान में स्थायी रूप से रखना चाहते हैं तो यह वेतन संसद विधि द्वारा निश्चित करे।

***श्री राज बहादुर** (मत्स्य संयुक्त राज्य): श्री के. सन्तानम् द्वारा दिये गये वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए, मैं संशोधन संख्या 277 को पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन इतने ही हैं। इस अनुच्छेद पर तथा संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई: जनरल): श्रीमान मैंने एक भाषण तैयार किया है जिसके बारे में मैंने सोचा है कि चूंकि उसके पढ़ने से मुझ पर जोर पड़ेगा इसलिये मैं उसे पढ़ नहीं सकूंगा और मैंने अपनी ओर से उसे पढ़ने के लिये श्री मुंशी से निवेदन किया है। इस भाषण में उन संशोधनों के विकास का साधारण सार है जिनको डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है। ऐसे बहुत से संशोधन हैं जिनके बारे में यह बताना आवश्यक है कि वे कैसे पुर:स्थापित किये गये। इन बातों के पीछे जो सामान्य विचार है उसका बताना भी आवश्यक है। अत: यदि आप अनुमति दें तो उसे पढ़ने के लिये मैं श्री मुंशी से निवेदन करूं।

***अध्यक्ष:** जी हां, श्री मुंशी उसे पढ़ सकते हैं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** †श्रीमान, मेरा यह प्रयत्न रहा है कि राज्यों के संबंध में अपनी रीति और प्रगति के बारे में मैं इस सभा को पूर्णतया परिचित रखूं। समय-समय पर इस सभा में मैंने जो वक्तव्य दिये हैं उनके अतिरिक्त गत जुलाई में मैंने इस सभा के समक्ष एक श्वेत पत्र प्रस्तुत किया था जिसमें राज्यों के प्रति भारत सरकार द्वारा बरती गई नीति का ही विवरण न था, वरन् शासकों से किये गये भिन्न-भिन्न करार और प्रसंविदाओं की प्रतिलिपियां भी हैं। गत मार्च में सभा के समक्ष मैंने एक और विवरणपूर्ण प्रतिवेदन राज्यों के मंत्रालय की नीति और क्रियाकरण के विषय पर प्रस्तुत किया था। अब राज्यों के एकीकरण का कार्य समाप्त हो गया है, आगामी माह में इस सभा के समक्ष मैं एक और राज्य पत्र प्रस्तुत करना चाहता हूं जिसमें उन सब प्रगतियों का व्यापक पुनर्विलोकन होगा जो देशी राज्यों में उस समय से हुई हैं जिस समय से भारत सरकार को राज्यों की समस्या का सामना करने के लिये आमंत्रित किया गया था।

राज्यों में प्रयोज्य संविधान के उपबन्धों के संबंध में जो संशोधन इस समय प्रस्थापित किये गये हैं उनमें उस रक्तहीन क्रांति के परिणाम निहित हैं जिसने इतने सूक्ष्म काल में राज्यों की आन्तरिक तथा बाह्य व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया है। यह तथ्य कि नये संविधान की अनुसूची (1) के भाग 3 में केवल नौ राज्यों का उल्लेख है। भारत सरकार द्वारा बरती गई एकीकरण की नीति से हुई प्रत्यक्ष उन्नति का चिन्ह है। 501 राज्यों को बड़े-बड़े एककों में मिला कर और शताब्दियों पुराने स्वैरतंभों को पूर्णतया मिटाकर भारतीय लोकतंत्र ने एक महान विजय प्राप्त की है जिसका शासकों तथा भारत की जनता को समान रूप से गौरव होना चाहिये। यह एक ऐसी सफलता है जो इतिहास के किसी भी अंग में राष्ट्र या जनता के श्रेय का अन्तिम महत्वपूर्ण परिणाम है।

जैसा कि इस सभा को विदित है जब राज्य भारत की संविधान सभा में प्रविष्ट हुए तो यह समझा गया था कि राज्यों का संविधान भारत के संविधान का अंग नहीं होगा। यह भी समझा गया था कि प्रांतों की तरह भारतीय संघ में राज्यों का प्रवेश अपने आप नहीं होगा वरन् संविधान के अनुसमर्थन की किसी रीति द्वारा

---

†यह भाषण श्री के.एम. मुंशी द्वारा पढ़ा गया।

होगा। इन वचनों तथा उस समय की वर्तमान परिस्थितियों के प्रसंगानुसार संविधान के मसौदे में कुछ उपबन्ध रखे गये थे, जिनके द्वारा कुछ महत्वपूर्ण बातों में राज्यों को प्रांतों से भिन्न आधार पर रखा गया था।

भारत सरकार द्वारा बरती गई राज्यों के एकीकरण करने और लोकतंत्रात्मक बनाने की नीति के फलस्वरूप दिसम्बर 1947 से तत्कथित राज्यों के 'संघीकरण' का कार्य बड़ी जोरों से हुआ। इस दिशा में दो महत्वपूर्ण प्रगतियां ये हुईं—राज्यों में डोमिनियन के विधायी प्राधिकार का विस्तार और राज्यों का फेडरल वित्तीय एकीकरण। केवल तीन विषयों के संबंध में प्रतिरक्षा, विदेशी विषय और यातायात के संबंध में राज्य आरम्भ में ही प्रवेश हो चुके हैं। संघों के निर्माण के साथ-साथ डोमिनियन संसद की विधायी शक्ति का विस्तार राज्यों के संघों में करारोपण के विषय को छोड़कर अन्य फेडरल और समवर्त्ती सूची में उल्लिखित सब विषयों तक कर दिया है। मैसूर राज्य के प्रवेश के विषय में भी इसी प्रकार विस्तार कर दिया गया था।

वित्तीय क्षेत्र की कमी को उस प्रबंध द्वारा पूरा कर दिया गया है जिसकी बातचीत राज्यों से देशी राज्यों की वित्तीय परिप्रश्न समिति द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर हुई थी। इस योजना का मूल आधार यह है कि राज्यों का फेडरल वित्तीय एकीकरण भारतीय संघ के नये संविधान में निहित इस आधारभूत विचारधारा के परिणामस्वरूप आवश्यक है कि प्रांत और राज्य समान हैं। अतः यह योजना निम्नलिखित बातों में प्रांतों और राज्यों में परस्पर पूर्ण समानता पर आश्रित है:–

(1) केन्द्रीय सरकार राज्यों में उन्हीं कृत्यों को करे और उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करे जो प्रांतों में करती है।

(2) प्रांतों के समान राज्यों में केन्द्रीय सरकार अपने निजी कार्यपालक संघटनों द्वारा प्रकार्य करे।

(3) प्रांतों और राज्यों से केन्द्रीय साधनों के अंशदान के आधार में एकरूपता और समानता होनी चाहिये।

(4) केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाने वाली साधारण सेवाओं के विषय में तथा विभाजनीय फेडरल कर, सहायक अनुदान, आर्थिक सहायता और अन्य सब प्रकार की वित्तीय तथा प्रौद्योगिक सहायता में प्रांतों और राज्यों में परस्पर समानता का व्यवहार होना चाहिये।

यह तथ्य कि हमारी कर संबंधी व्यवस्था में ये दूर तक प्रभाव डालने वाले परिवर्तन राज्यों की पूर्ण स्वीकृति से पुरःस्थापित किया जा रहे हैं स्वयं उस महान कार्य का सुपरिचायक है जिसको श्री वी.टी. कृष्णमाचारी की अध्यक्षता में देशी राज्यों की वित्तीय परिप्रश्न समिति ने किया है और जिसमें अध्यक्ष महोदय ने इस महत्वपूर्ण समस्या पर देशी राज्यों में के अपने महान अनुभव द्वारा कार्य किया।

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

इन महत्वपूर्ण प्रगतियों के कारण नये संविधान के अधीन हम राज्यों की स्थिति का पुनरीक्षण कर सकें और अतीत से विरासत के रूप में नये संविधान में जो असमानतायें और विभिन्नतायें आ गई थीं उनके समस्त अवशेषों को इस संविधान से दूर कर सकें।

राज्यों के विभिन्न संघों की स्थापना करने वाली प्रसंविदायें जब की गईं तो यह सोचा गया कि विभिन्न संघों का संविधान प्रसंविदाओं तथा भारत के संविधान के अनुसार अपनी-अपनी संविधान सभाओं द्वारा बनाया जाएगा। प्रसंविदाओं में ये उपबन्ध उस समय किये गये थे जब कि हम इस सिद्धांत के अनुसार कार्य कर रहे थे कि भारत की संविधान सभा को राज्यों के लिये संविधान बनाने का प्राधिकार देना राज्यों की स्वायत्तता का हरण करना होगा। परन्तु जैसे-जैसे राज्य केन्द्र के निकटतर आने लगे यह अनुभव किया गया कि भारतीय संघ के विभिन्न संविधानिक एककों के लिये पृथक-पृथक संविधानों का विचार शासकों की शासन विधि से प्राप्त किया गया विचार है और जन शासन व्यवस्था में भिन्न-भिन्न प्रकार के संविधानिक नमूनों के लिये गुंजाइश नहीं है। अतः हमने इस विषय पर विभिन्न संघों के मुख्य मंत्रियों से वाद विवाद किया और उनकी सम्मति से यह निश्चय किया कि राज्यों का संविधान भी भारत संविधान का प्रमुख अंग बने। इस प्रक्रिया को उन तीन राज्यों के विधान मंडलों ने, जिनमें इस समय ऐसे निकाय कार्य कर रहे हैं अर्थात् मैसूर, तिरुवांकुर तथा कोचीन संघ और सौराष्ट्र के विधान मंडलों ने जिस शीघ्रता के साथ स्वीकार किया वह राज्यों की जनता की अतीत की पृथकवाद की प्रवृत्ति को मिटाने की इच्छा का प्रमाण है।

इन महत्वपूर्ण प्रगतियों के कारण संविधान के कई उपबन्धों का, जहां तक कि उनका राज्य से संबंध था, बदलना आवश्यक हो गया। जिन संशोधनों को हम प्रस्थापित कर रहे हैं उनका परीक्षण मैसूर, सौराष्ट्र और तिरुवांकुर तथा कोचीन संघ के संविधान निर्माणक निकायों ने कर लिया है। इन निकायों द्वारा प्रस्थापित किये गये कुछ रूप भेदों को सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये संशोधनों में सन्निहित कर लिया गया है। अन्य रूप भेदों को मैंने इन संविधान सभाओं के प्रतिनिधियों से वाद विवाद कर लेने के पश्चात् छोड़ दिया है।

मेरे लिये यह बड़े खेद का विषय है कि अन्य राज्यों या राज्यों के संघों की जनता की इच्छा उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा जान लेने की इसी प्रकार की प्रक्रिया का पालन करना हमारे लिये संभव न हो सका। दुर्भाग्यवश शेष राज्यों में न तो समुचित रूप से गठित विधान मंडल हैं और न भारत के संविधान के अन्तिम रूप में बन जाने से पूर्व उनमें विधान मंडल का गठन करना संभव हो सकता है। अतः हमारे पास और कोई चारा न था सिवा इसके कि जैसी स्थिति हो शासक या राजप्रमुख की स्वीकृति के आधार पर इन राज्यों में संविधान का प्रवर्त्तन कर दें और शासक या राजप्रमुख अपने-अपने मंत्रिपरिषदों से अवश्य परामर्श करेंगे। मुझे विश्वास है कि न तो वे माननीय सदस्य जो इस सभा में उन राज्यों का प्रतिनिधान कर रहे हैं और न राज्यों की जनता सामान्यतया यह चाहेगी कि जब तक इन राज्यों में विधान मंडलों या संविधान निर्माणक निकायों का गठन न हो तब तक संविधान का प्रवर्त्तन इन राज्यों में स्थगित रखा जाये। नये संविधान के अधीन जब इन राज्यों के विधान मंडल बन जायेंगे तो वे संविधान में संशोधन प्रस्थापित कर

सकते हैं। इन राज्यों की जनता को मैं यह आश्वासन देना चाहता हूं कि उनके प्रथम विधान मंडलों द्वारा की गई किसी सिफारिश पर हम ठीक-ठीक विचार करेंगे। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस काल में इस सभा द्वारा बनाया गया संविधान, जिसमें सिवा एक राज्य के सबका समुचित प्रतिनिधित्व है, उनको स्वीकार्य होगा।

उन विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जिनका सामना जम्मू और काश्मीर के राज्य को करना पड़ रहा है हमने वर्तमान आधार पर उस राज्य के संविधानिक संबंध को संघ के साथ बनाये रखने के लिये एक विशेष उपबन्ध बनाया है। हैदराबाद राज्य के विषय में इस संविधान की स्वीकृति राज्य की जनता के अनुसमर्थन पर आश्रित है।

जैसा कि सभा ने ध्यान दिया होगा जिस रूप में यह संविधान बन रहा है वह कई बातों में मूल मसौदे से भिन्न है। हमने 224 और 225 जैसे अनुच्छेदों को अपमार्जित कर दिया है जो फेडरल क्षेत्र में राज्यों के प्रति संघ के विधायी और कार्यपालक प्राधिकार पर परिसीमायें आरोपित करते थे। इसी प्रकार से विधायी सूची की उन प्रविष्टियों को छोड़ दिया गया है जो प्रांतों और राज्यों में अन्तर उत्पन्न करती थीं। अतः राज्यों के प्रति केन्द्र के विधायी और कार्यपालक के प्राधिकार वैसे ही होने चाहिये जैसे वे प्रांतों में तथा प्रांतों पर हैं। संक्रांति काल में कुछ समायोजनों के अधीन राज्यों का केन्द्र से राजस्व संबंध भी वही होगा जो प्रांतों और केन्द्र में है। अब उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार राज्यों में उसी सीमा तक विस्तृत होगा जिस तक कि वह प्रांतों में है। राज्यों की उच्च न्यायालयों का गठन होगा और वे उसी प्रकार से प्रकार्य करेंगी जैसे कि प्रांतीय उच्च न्यायालय। भारत के समस्त नागरिक, चाहे वे राज्यों में निवास करते हों अथवा प्रांतों में, एक जैसे मूलाधिकारों का उपयोग करेंगे और उनके प्रवर्तन के लिये एक जैसे वैध उपचार होंगे। केन्द्र से संविधानिक संबंध और अपनी आंतरिक व्यवस्था के विषय में राज्य प्रांतों के समान होंगे।

मुझे विश्वास है कि सभा इस महत्वपूर्ण तथ्य पर कृतज्ञतापूर्वक ध्यान देगी कि 1935 की योजना से भिन्न रूप में हमारा संविधान लोकतंत्रों और राजकुलों का मेल नहीं है वरन् जनता की संपूर्ण प्रभुता की आधारभूत विचारधारा पर निर्मित भारतीय जनता का एक वास्तविक संघ है। यह राज्य और प्रांतों की जनता में की समस्त रुकावटों को दूर करता है और समान रूप से प्रांतों और राज्यों की जनता की ओर से किये गये सहयोगी उद्यम के सच्चे आधार पर निर्मित एक सुदृढ़ लोकतंत्रात्मक भारत बनाने के लक्ष्य की प्रथम बार पूर्ति करता है।

चूंकि सभा राज्यों पर प्रभाव डालने वाली प्रगतियों से परिचित है इस कारण जो विभिन्न संशोधन सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं उनका सभा में व्याख्या करना मेरे लिये आवश्यक नहीं है। दो या तीन विषय ऐसे हैं जिन पर मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा।

उनमें से एक प्रस्थापित अनुच्छेद 306-ख है। जैसा कि सभा को विदित है जिस रूप में हमें देशी राज्य मिले हैं उनमें प्रगति की स्थिति भिन्न-भिन्न रूप में थी। कई राज्यों में विशुद्ध रूप के स्वैरतंत्र से प्रारम्भ करना पड़ा। संक्रांति काल में जिस कार्य से संघों की सरकारें भयभीत थीं उस कार्य की विशालता पर ध्यान देते हुए और इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि न तो उन राज्यों में प्राप्त हुई सेवायें

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

और न राजनैतिक संघटन, जिस रूप में कि वे वहां वर्तमान थे, इस स्थिति में थे कि वे प्रशासन के उत्तरदायित्व को बिना सहायता के वहन कर सकें, हमने कुछ प्रसंविदाओं में यह उपबन्ध किया कि जब तक इन संघों में नया संविधान प्रवृत न हो तब तक अपने प्रकार्यों के प्रयोग करने में राजप्रमुख और मंत्री परिषद् भारत सरकार के साधारण नियंत्रण में रहेंगे और भारत सरकार द्वारा समय-समय पर निकाले गये अनुदेशों का पालन करते रहेंगे। संक्रांति कालीन व्यवस्था संभवत: कुछ वर्षों तक रहे। हम स्वयं इस बात के प्रति उत्सुक हैं कि इन राज्यों की जनता अपने पूर्ण उत्तरदायित्व को वहन करे, फिर भी हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं कि अधिकांश राज्यों में प्रशासी संघटन और राजनैतिक संस्थायें तुलनात्मक रूप में बहुत कम उन्नत दशा में पाई जाती हैं और राज्यों के एकीकरण और स्वैरतंत्र के लोकतंत्र व्यवस्था पर आने से संबंध रखने वाली समस्यायें ऐसी हैं कि वे चिरकाल से स्थापित प्रशासन व्यवस्थाओं और जनता के अनुभवी नेताओं के परखने की कसौटी है। अत: हमने यह आवश्यक समझा कि इन राज्यों में लोकतंत्रात्मक संस्थाओं की उन्नति के हित में, जो कि शासन दक्षता की आवश्यकता से किसी प्रकार कम नहीं हैं, भारत सरकार जब तक आवश्यक हो तब तक राज्यों की सरकारों पर अपना साधारण निरीक्षण रखे।

यह स्वाभाविक है कि कोई इस प्रकार का उपबन्ध, जिसमें भाग 3 में के राज्यों के साथ भाग 1 में के राज्यों से भिन्न प्रकार का व्यवहार है, कुछ भ्रम उत्पन्न करे। इन राज्यों के प्रतिनिधान करने वाले माननीय सदस्यों को और उनके द्वारा राज्यों की जनता को मैं यह आश्वासन देना चाहता हूं कि इन उपबन्धों में किसी सरकार की निन्दा नहीं है। उसमें केवल उन आकस्मिकताओं के लिये उपबन्ध है जिनकी वर्तमान दशाओं के कारण अन्य श्रेणियों के राज्यों की अपेक्षा भाग 3 में के राज्यों में उत्पन्न होने की अधिक संभावना है। हम किसी भी राज्य के दिन प्रति दिन के शासन में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते हैं। हम स्वयं इस बात के लिये बहुत उत्सुक हैं कि राज्य की जनता अनुभव द्वारा सीखे। कड़े उपचार के साधनों को टालने के लिये यह अनुच्छेद मुख्यतया एक प्रकार का रक्षामूलक यंत्र है जैसे कि संविधानिक यंत्र के जर्जरित हो जाने के लिये उपबन्ध हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस विषय में मैसूर और तिरुवांकुर तथा कोचीन संघ के साथ जहां लोकतंत्रात्मक संस्थायें एक अरसे से कार्य कर रही हैं और जहां विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण सरकारें पदस्थ हैं, उन राज्यों से भिन्न व्यवहार करना पड़ा जो इस स्तर पर नहीं हैं। इन सब विषयों में प्रत्येक विषय की आवश्यकता के अनुसार हमारा नियंत्रण भिन्न-भिन्न सीमा तक प्रयोग में लाया जायेगा। प्रत्येक विषय को गुणावगुण के आधार पर निपटाने के लिये आवश्यक स्वविवेक इस अनुच्छेद का परन्तुक हमको प्रदान करता है।

मैं आशा करता हूं कि यह कथन, जिसमें हमारी समझी बूझी हुई नीति निहित हैं, किसी भी ऐसी शंका को दूर कर देगा जो इन राज्यों की सरकारों को इस अनुच्छेद के संबंध में हुई हो।

एक और विषय जिसके बारे में संदेह दूर करना चाहूंगा वह अनुच्छेद 3 पर प्रस्थापित संशोधन है। प्रादेशिक पुनर्समायोजन के संबंध में यह संशोधन भाग 3 में के राज्यों को उसी आधार पर रखता है जिस पर भाग 1 में के राज्य हैं। मैसूर

की संविधान सभा ने हमसे यह सिफारिश की थी कि सभा द्वारा जो अनुच्छेद स्वीकार कर लिया गया है और जिसमें यह उपबन्ध है कि भाग 3 के राज्यों के राज्यक्षेत्र पर प्रभाव डालने वाली प्रस्थापनाओं को सभा में रखने से पूर्व भाग 3 में के राज्यों की पूर्व स्वीकृति होनी चाहिये ये उपबन्ध ज्यों के त्यों रहें। हम इस कारण इस सुझाव से सहमत न हो सके कि ऐसे विषयों में भाग 1 और भाग 3 के राज्यों में अन्तर नहीं होना चाहिये। फिर भी मैं इस अवसर पर मैसूर राज्य के प्रतिनिधियों को यह आश्वासन देता हूं कि चाहे अनुच्छेद में प्रभाव पड़ने वाले राज्य के विधान मंडल से परामर्श करने या उसकी अनुमति लेने का उपबन्ध हो या न हो परन्तु जनता की इच्छा की उपेक्षा केन्द्रीय सरकार या विधान मंडल द्वारा नहीं हो सकती है। आखिर हमारे यहां लोकतंत्र है, हमें जनता की इच्छा का मुख्य बल है और लोक मत के विरुद्ध हम कार्य नहीं कर सकते हैं।

अब मैं प्रस्थापित अनुच्छेद 267-क पर आता हूं जिसके सम्बन्ध में कुछ व्याख्या आवश्यक है। जो राज्य विलीन कर लिये गये हैं तथा जिनका एकीकरण हो चुका है उनके शासकों को भिन्न-भिन्न प्रसंविदाओं तथा समाविष्टियों के करारों में नियत की गई निजी थैली देने की भारत सरकार ने प्रत्याभूति की है। अनुच्छेद 267-क इन प्रत्याभूतियों को संविधानिक रूप में अभिज्ञात करता है और उन रकमों के सम्बन्ध में प्रान्तों और राज्यों से समय-समय पर की गई उन प्राप्तियों के अधीन इस व्यय को केन्द्रीय राजस्व पर भारित करने के लिये उपबन्ध करता है।

सर्वप्रथम मैं इन प्रबन्धों के वित्तीय रूप को लूंगा। विगत समय में अधिकांश राज्यों में शासन पर किये जाने वाले और शासक की निजी शैली पर किये जाने वाले व्यय में कोई अन्तर न था। जहां शासकों की निजी थैली नियत भी की जा चुकी थी वहां भी इस बात के सुनिश्चियन के लिये कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया जाता था कि जिस व्यय की निजी थैली द्वारा किये जाने की आशा है वह परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से राज्य के राजस्व पर तो भारित नहीं होता है। इस प्रकार शासक और शासन करने वाले परिवारों के सदस्यों पर बृहद् राशियां व्यय की जाती थीं। यह अनुमान लगाया गया है कि यह व्यय बीस करोड़ रुपये प्रति वर्ष से भी अधिक होता था।

समाविष्टियों के सब करारों और प्रसंविदाओं में शासक की निजी थैली को नियत कर देने की अब व्यवस्था है और उसके अन्तर्गत शासकों के निवासगृहों के व्यय, विवाहों तथा अन्य उत्सवों के व्यय इत्यादि के सहित शासकों और उनके परिवारों के समस्त व्यय आ जाते हैं। जिस निजी थैली की इन करारों के अधीन प्रत्याभूति की गई है वह दक्षिण के लिये उस प्रतिशत से कम है जो डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्री शंकरराव देव और डॉ. पट्टाभि सीतारमैया द्वारा दिये गये पंचाट के अधीन है। उसका हिसाब राज्य के औसत वार्षिक राजस्व के प्रथम लाख पर 15 प्रतिशत इसके बाद चार लाख पर दस प्रतिशत और पांच लाख से ऊपर पर साढ़े सात प्रतिशत तथा अधिकतम 10 लाख लगाया गया है। केवल कुछ बड़े राज्यों के उन शासकों के लिये दस लाख की अधिकतम संख्या से आगे बढ़ गये हैं जिनके जीवन आधार के लिये ऐसा अनुभव किया गया और ऐसे राज्यों के शासकों के केवल जीवन काल तक ही वह देय है। अब तक जो वचन दिये गये हैं उनके अनुसार निजी थैली की कुल वार्षिक रकम लगभग साढ़े चार करोड़ होती है।

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

कुछ शासकों को उनके जीवनकाल के लिय प्रत्याभूति की गई राशि को बाद में जब फिर से नियत किया जायेगा तो निजी थैली का कुछ वार्षिक व्यय चार करोड़ रुपये से कुछ कम हो जायेगा।

प्रसंविदाओं और करारों के निबन्धनों के अधीन, जो शासकों द्वारा किये गये हैं, शासकों को सम्बद्ध राज्यों के आगमों में से निजी थैली देय है और इसी के अनुसार अब तक ये राशियां दी गई हैं भारतीय राज्यों की वित्तीय परिप्रश्न समिति से वाद विवाद करते समय अधिकांश राज्यों द्वारा इस बात पर जोर दिया गया था कि शासकों को निजी थैली की राशि देने का दायित्व इस आधार पर केन्द्र को ले लेना चाहिये कि–

(क) निजी थैली केन्द्र द्वारा नियत की गई है;

(ख) निजी थैली का रूप राजनैतिक है; तथा

(ग) ऐसी राशियां प्रान्तों द्वारा नहीं दी जाती हैं।

इन विचारों के अतिरिक्त प्रसंविदाओं के प्रवर्त्तन में आने के समय से स्थिति वास्तव में बदल गई है। सर्वप्रथम जहां तक समाविष्ट हुये राज्यों का सम्बन्ध है भारत के नये संविधान के अधीन उनके पूर्ण रूप से मिट जाने से उन राज्यों के शासकों को प्रत्याभूति निजी थैली देने के दायित्व के आधार में इस कारण परिवर्तन होगा कि जिन राज्यों के राजस्वों से निजी थैली देय है वे नहीं रहेंगे। दूसरी बात यह है कि "राज्य के राजस्व" पद पर अब राज्यों के फेडरल वित्तीय एकीकरण के प्रसंगानुसार ध्यान देना होगा। इस एकीकरण में दो बातें निहित हैं; एक वर्तमान पृथक् राज्य सरकारों का "कृत्यकारी" विभाजन और दूसरा राज्य की सरकारों विभाजित "फेडरल" भागों की वर्तमान केन्द्रीय सरकार से "समाविष्टि"। अत: यह परिणाम निकलता है कि जब फेडरल वित्तीय एकीकरण प्रभावी हो जाता है तो निजी थैली की राशि देने के दायित्व को सच कहिये तो समाविष्ट हुये और एकीकरण में लाये गये राज्यों के कृत्यकारी उत्तराधिकारियों द्वारा उचित रूप में बांट लेना चाहिये अर्थात् केन्द्रीय सरकार और प्रान्तों तथा राज्यों की सरकारों में। इन सब बातों पर ध्यान देते हुये हमने यह निश्चय किया है कि सर्वोत्तम उपाय यही होगा कि इन देयों का भार केन्द्रीय राजस्व पर रहे परन्तु साथ ही साथ ऐसे संक्रांति काल के लिये और ऐसी राशि के रूप में जिसे समुचित समझा जाये राज्यों की सरकारों से अंशदान प्राप्त करने के लिये उपबन्ध बना देना चाहिये। ये राशियां राज्यों के वित्तीय एकीकरण के लिये बनाई गई योजना के अनुसार प्राप्त की जायेंगी।

मैं यह कह चुका हूं कि हमने यह जो निजी थैली की व्यवस्था की है उससे शासकों पर का व्यय भार पहली संख्या से कम होकर एक चौथाई रह जायेगा। साथ ही साथ राज्यों को शासकों से प्राप्त हुये धन के रूप में एकीकरण की रीति से पर्याप्त लाभ हुआ है। उदाहरणार्थ केवल मध्य भारत के राजप्रमुख ने इतनी बड़ी धन राशि संघ को दी है कि उसका इतना ब्याज है कि वह उन सब शासकों की कुल निजी थैली की राशि के एक बड़े भाग को पूरा कर सकती है जो उस संघ में प्रविष्ट हुये हैं। जहां तक केन्द्र द्वारा इस भार के भाग को वहन

करने का सम्बन्ध है हमें यह याद रखना चाहिये कि यह प्रबन्ध राज्यों के वित्तीय एकीकरण के परिणाम स्वरूप है जिसका इस देश की अर्थ व्यवस्था पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा। भारत आर्थिक एकीकरण भारत की आर्थिक व्यवस्था में की उन विघटनात्मक दरारों को पाट देगा जिनके कारण प्रान्तों में आर्थिक नीतियों का प्रभावी प्रवर्तन असम्भव हो गया था। उदाहरणार्थ केवल आयकर से बचने के विषय में ही, जो कि अभी कुछ वर्षों से एक गंभीर विषय बन गया है, फेडरल वित्तीय एकीकरण से लाभ बहुत ही सारवत् सिद्ध होगा। अतः वित्तीय दृष्टिकोण से, जो प्रबन्ध हमने किये हैं उनसे इस देश की आर्थिक व्यवस्था में बहुत लाभ होगा।

अब मैं इन प्रबन्धों के राजनैतिक तथा नैतिक रूप को लेता हूं। जिन देयों की हमने प्रत्याभूति की है उनको उनके सही स्वरूप में देखने के लिये हमें यह याद रखना होगा कि उनका सम्बन्ध उन महत्वपूर्ण प्रगतियों के साथ जोड़ा जाता है जो इस देश के अति महत्वपूर्ण हितों पर प्रभाव डालती है। ये प्रत्याभूतियां उन ऐतिहासिक निर्णयों का अंग हैं जिनमें भारत के भौगोलिक, राजनैतिक तथा आर्थिक, एकीकरण के महान आदर्श का लक्ष्य वर्तमान है—एक वह आदर्श जो शताब्दियों तक दूर का सपना ही बना रहा और जिसको भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् भी प्राप्त करना उतना ही कठिन तथा जो अब भी उतना की सुदूरवर्त्ती होता है जितना पहले था।

यह प्रसिद्ध है कि मानव-स्मरण शक्ति अल्पकालीन है। अक्तूबर 1949 में एकत्रित होते हुये यह स्वाभाविक है कि हम उस समस्या को भूल गये हैं जिससे हम अगस्त 1947 में भयभीत थे। जैसा कि माननीय सदस्यों को विदित है कि तत्कथित अधिकार सम्बन्धी सर्वोच्च सत्ता का व्ययगत होना जून 3, 1947 को घोषित की गई योजना का अंग था जिसको कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था। इस प्रबन्ध से हम उसी प्रकार से सहमत हो गये थे जैसे हम भारत के विभाजन से सहमत हो गये थे। हमने इसे इस कारण स्वीकार किया था कि हमारे पास अन्य कोई चारा न था। यद्यपि ब्रिटिश सरकार की कई घोषणाओं में इस मूल तथ्य को अभिज्ञात किया गया था कि प्रत्येक राज्य उस डोमीनियन से अपने भावी सम्बन्ध स्थापित करे जिसके साथ वह भौगोलिक दृष्टि से एक है, परन्तु भारत स्वाधीनता अधिनियम ने राज्यों को उन सब आभारों से मुक्त कर दिया जो अंग्रेज़ी ताज के साथ थे। अंग्रेज़ वक्ताओं ने अपनी कई प्राधिकारयुक्त घोषणाओं में यह अभिज्ञात किया था कि सर्वोच्च सत्ता के व्ययगत होने पर पारिभाषिक तथा वैध रूप से राज्य स्वाधीन हो जायेंगे। उन्होंने यहां तक मान लिया था कि सैद्धान्तिक रूप से तो राज्य जिस डोमिनियन से चाहें उससे अपने भावी सम्बन्ध स्थापित करने के लिये स्वतन्त्र हैं—यद्यपि यह कहते हुये वे कुछ भौगोलिक विवशताओं का निर्देश अवश्य करते थे जिनको टाला नहीं जा सकता था। इस परिस्थिति में विघटनात्मक शक्तियों के प्रबल होने का वास्तव में भय था क्योंकि कुछ शासकों की स्वाधीनता घोषित करने के अपने पारिभाषिक अधिकारों को प्रयोग करने की इच्छा थी और कुछ की अपने पड़ौसी डोमिनियन से मिलने की इच्छा थी। यदि शासक अपने अधिकारों का इतनी अनुचित रीति से प्रयोग करते तो उनको इस देश के हित के विरोधी प्रभावशाली व्यक्तियों से यथेष्ट समर्थन प्राप्त होता।

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

इस अनुचित आधार के विरुद्ध भारत सरकार ने राज्यों के शासकों को प्रतिरक्षा, वैदेशिक कार्य और संचार इन तीन विषयों को दे देने के लिये निमंत्रित किया। जिस समय यह प्रस्थापना शासकों के सामने रखी गई थी उनको यह आश्वासन दिया गया था कि इन तीन विषयों के प्रवेशकरण के अतिरिक्त अन्य रूप में स्थिति पूर्ववत् रहेगी। उनको यह स्पष्ट कह दिया गया था कि इस प्रवेशकरण में राज्य पर कोई वित्तीय दायित्व की भावना नहीं है और यह भी कहा था कि राज्य की न तो आन्तरिक स्वायत्तता अथवा न प्रभुत्व को हरण करने का उद्देश्य ही है और न भारत के नये संविधान को मानने के सम्बन्ध में उनके स्वविवेक को ही शृंखलाबद्ध करना है। जब राज्य मंत्रालय ने शासकों से अपने-अपने राज्यों के एकीकरण के लिये सम्पर्क स्थापित किया था तो इन वचनों को ध्यान में रखना पड़ा था। शासकों को अपने-अपने राज्यों की सत्ता को विलीन करने के लिये विवश करने या प्रोत्साहित करने की कोई बात न थी। बल का किसी प्रकार का प्रयोग हमारे अपने स्वीकृत सिद्धान्तों के ही विरुद्ध न था वरन् उसका उलटा प्रभाव होता। यदि शासक बाहर रहना पसन्द करते तो वे उन भारी असैनिक सूचियों के अनुसार रुपया लेते रहते जैसे कि वे पहले लेते थे और अधिकतर वे राज्यों के राजस्व का अनिर्बन्धित रूप से उपयोग करते रहते। अपनी शासन शक्तियों को छोड़ने के लिये जैसे के तैसे रूप में जो कुछ हम न्यूनतम दे सकते थे वह यह था कि उनको निजी थैलियों की प्रत्याभूति दी जाये और युक्तियुक्त तथा पारिभाषित आधार पर उनको कुछ विशेषाधिकार दिये जायें। अत: निजी थैलियों का निर्णय शासकों द्वारा अपनी शासन शक्तियों को छोड़ने तथा पृथक् एककों के रूप में राज्यों के विघटन के कारण किया गया है। हमें यह याद रखना चाहिये कि अंग्रेजी सरकार ने केवल मरहटा राज्य के लिये बहुत बड़ी राशि व्यय की थी। हम स्वयं उन शासकों की निवृत्ति वेतनों के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी सरकार के वचनों का सम्मान कर रहे हैं जिन्होंने उनके साम्राज्य की स्थापना में सहायता की थी। तो फिर क्या हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम इस तुच्छ मूल्य पर आपत्ति करें—मैं जानबूझ कर तुच्छ शब्द का प्रयोग कर रहा हूं—जो हमने उस रक्तहीन क्रान्ति के एवज में दिया है जिसने हमारे करोड़ों लोगों के भाग्य पर प्रभाव डाला है।

यदि शासकों के साथ किया गया निर्णय परस्पर बातचीत के आधार को ग्रहण न करता तो इस समय शासकों की ओर से होने वाले कष्ट और दुष्टता की जितनी कल्पना की जा सकती है उससे कहीं अधिक सामर्थ्य उनमें होती। हमें उनके साथ न्याय करना चाहिये; हमें अपने आपको उनकी स्थिति में रखना चाहिये और उसके बाद उनके बलिदान का मूल्य आंकना चाहिये। समस्त शासन शक्तियों को हस्तान्तरण कर और अपने-अपने राज्यों के एकीकरण से सहमत हो कर शासकों ने अब अपने आभारों को पूरा कर दिया है। इन करारों के अधीन हमारे आभार का मुख्य भाग यह है कि यह विश्वास दिलायें कि निजी थैलियों के सम्बन्ध में जो प्रत्याभूति हमने दी है वह पूर्ण रूप से प्रवृत्त होगी। ऐसा न करना विश्वास का खोना होगा और नई व्यवस्था की स्थापना के लिये बहुत घातक होगा।

राज्यों के सम्बन्ध में इन कई उपबन्धों की सभा में सिफारिश करते हुये मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे इन पर एक जटिल समस्या के एक

सामंजस्यपूर्ण निर्णय के रूप में सोचें। कोई विशेष उपबन्ध अपने प्रसंग से च्युत होने पर पूर्णतया भ्रमात्मक विचार उत्पन्न कर सकता है। कुछ लोग ऐसा दोष निकालें कि उनको यह पहली एकतंत्र व्यवस्था के समान प्रतीत हो। माननीय सदस्यों को मैं यह विश्वास कराना चाहता हूं कि राज्यों में से एकतंत्रवाद सदैव के लिये चला गया। किसी ऐसे विशेष निबन्धन से हमें उकता न जाना चाहिये जो हमें अतीत की याद दिलाता हो। जिस रूप में शासकों को भारत के नये संविधान में अभिज्ञात किया गया वह किसी प्रकार से राज्यों की लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था को कोई हानि नहीं पहुंचाता है। शासक सम्मानपूर्वक छोड़कर चले गये हैं अब यह जनता का कर्तव्य है कि वह इस कमी को पूरा करे और नई व्यवस्था से पूर्ण लाभ उठाये।

सभा को मैं यह स्मरण कराने की धृष्टता करता हूं कि हरीपुरा सत्र में सन् 1938 में कांग्रेस ने राज्यों के प्रति अपने लक्ष्य की इस प्रकार परिभाषा की थी:–

> "कांग्रेस राज्यों में उसी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वातन्त्र्य की समर्थक है जैसी शेष भारत के लिये है और राज्यों को भारत का महत्वपूर्ण अंग समझती है जिसको पृथक् नहीं किया जा सकता है। पूर्ण स्वराज्य अथवा पूर्ण स्वाधीनता जो कि कांग्रेस का लक्ष्य है यह लक्ष्य समस्त भारत के लिये है जिसमें देशी राज्य भी सम्मिलित हैं क्योंकि भारत की अक्षुणता तथा एकता को जिस प्रकार पराधीनता में बनाये रखा गया था उसी प्रकार से स्वातन्त्र्य में भी बनाये रखना चाहिये। कांग्रेस को जो फेडरेशन स्वीकार्य हो सकता है वह फेडरेशन है जिसमें राज्य उस अंश तक लोकतंत्रात्मक स्वातंत्र्य का उपभोग करते हुये, जिस अंश तक शेष भारत उपभोग करेगा, एक स्वतन्त्र एकक के रूप में भाग लेगा।"

मुझे विश्वास है कि यदि मैं यह कहूं तो सभा मुझसे सहमत होगी कि इस समय जिन उपबन्धों को हम सभा के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें इस लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति निहित है।

अध्यक्ष: संशोधन संख्या 217 जिसे डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है और इस पर जो विभिन्न संशोधन पेश हो चुके हैं उन पर अब हम आगे और वाद-विवाद करेंगे। यदि कोई सदस्य कुछ कहना चाहता है तो वह इस समय कह सकता है।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, पिछले अवसर पर जब कि मैं प्रथम बार इस सभा में बोला था मैंने यह कहा था कि यकायक मेरे मन में एक ऐसी प्रेरणा हुई कि वह मुझे ध्वनियंत्र के निकट ले आई। उसी बात को दुहराने की मैं अनुमति मांगता हूं।

ज्यों-ज्यों मैं एक पृष्ठ के बाद दूसरा पृष्ठ, एक कंडिका के बाद दूसरी कंडिका तथा एक वाक्य के पश्चात् दूसरा वाक्य उस प्रमाणबद्ध लेख्य का सुनता जा रहा था जो हमारे सामने अभी पढ़ा जा चुका है मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी और मैं एक नये स्वप्न संसार में पहुंच गया था—उस स्वप्न जगत में जो उस समय हमारी

[डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया]

कल्पना में था जब कि हमने इस संकल्प के द्वारा हरीपुरा में समझौता किया था जिसको सौभाग्यवश अक्षरशः अभी पढ़कर सुनाया गया है। यह संकल्प उन दो वर्गों के परस्पर संघर्ष के परिणामस्वरूप था जिनमें एक वर्ग अधिक अनुदारवादी तथा दूसरा अधिक उग्रवादी था और अन्त में हमारे वर्तमान गृहमंत्री, प्रधान मंत्री और आदरणीय महात्मा जी ने दक्षतापूर्वक हस्तक्षेप कर इस संकल्प को प्रस्तुत किया था। 1936 में राज्य के विषयों में प्रत्यक्ष रूप से मैं रुचि रखने लगा क्योंकि मैंने सोचा कि भारत के प्रान्तों से इनको अब अधिक समय तक अलग नहीं रखा जा सकता है और जब कि मैंने एक राज्य से दूसरे राज्य की यात्रा की और हजारों मील मोटर में चला तो मैंने समझा कि राज्यों और प्रान्तों में कोई प्राकृतिक विभाजन नहीं है। वे न वन, न जंगल, न मरुस्थल, न नदियां और न पहाड़ी शृंखलाओं द्वारा पृथक् किये गये थे वरन् वे सब एक थे और दो क्षेत्रों में विभाजन रेखा केवल चुंगी का रस्से वाला द्वार था और यदि आप काठियावाड़ में होकर जायें जिसे अब सौराष्ट्र कहते हैं, जिसमें 417 राज्य हैं, तो आप राज्य से प्रान्त में या प्रान्त से राज्य में गये बिना दो मील की भी यात्रा नहीं कर सकते हैं। यह एक बड़ी अनहोनी सी बात थी। यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि इन राज्यों का किस प्रकार निर्माण हुआ और प्रान्तों और राज्यों को एक करने के विचार को स्थगित करने में कोई लाभ न था। इस प्रकार हरीपुरा में यह संकल्प बनाया गया था और आज हमें बड़ा संतोष है कि अपने गृहमंत्री की राजनीति और चातुरी से, जो राज्यों के मंत्री भी हैं, वित्तीय विषयों में, राजनैतिक विषयों में, सेना सम्बन्धी विषयों में और यहां तक कि संविधान के विषय में भी यह एकता आ गई।

बधाई के पात्र राज्यों के वे प्रतिनिधि हैं जो यहां एकत्रित हैं और जिन्होंने तुरन्त ही इन सुझावों को स्वीकार कर लिया। पहले ही फरवरी 1947 में जब हम बातचीत करने वाली समिति में लगे हुये थे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस सभा में इन विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों को लाना जादू टोने का काम होगा, परन्तु जब ये व्यक्ति जो शासकों के महलों के एक मील तक के घेरे में नहीं आ सकते थे वे बराबर के पद पर इन लोगों के साथ-साथ बैठे तो वह बड़ा ही आनन्ददायक दृश्य था और उस दिन से हम धीरे-धीरे उन्नति करते रहे और आज उनमें से 92 यहां हैं जो हम सबके साथ मित्र भाव से यहां बैठे हुये हैं।

मैं एक बात कहना चाहूंगा और वह निजी थैली के बारे में है। जब किसी दलदल की जगह महल बनाया जाता है जिसकी वजह से नींव कमजोर हो जाती है तो जितनी ईंटें दीवालों या उसके बाहरी भाग में दिखाई देती हैं उनसे अधिक ईंटें उस दलदल में डाल दी जाती हैं। ध्यान बाहरी भाग की ओर ही आकर्षित होता है, बाहरी भाग पर ही कलापूर्ण कार्य किया जाता है पर ईंटें उस नींव में डाली जाती हैं जो कहीं दिखाई नहीं देती परन्तु ऊपर जो भवन दिखाई देता है उसके भार को वे सदैव लादे रहती हैं। सोलह दक्षिणी राज्यों को एक संघ में लाने के प्रयत्न में हमने इसी नींव को रखा था और यह दूसरा अवसर है जब कि गृहमंत्री ने, जो राज्यों के मंत्री भी हैं, शासकों को जो निजी थैली दी गई है उसके उपक्रम के औचित्य के सम्बन्ध में हममें से तीन के नामों का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रारम्भिक कार्य हमने किया था और अपने शासकों को हमें कुछ

प्रलोभन भी देना था—हमें उनको संघ की योजना में लाना था। सारा सम्मान उन 16 शासकों के लिये है जो ऐसे समय में सर्वप्रथम संघ बनाने के लिये राजी हो गये जबकि न एकीकरण की और न संघीकरण की कल्पना तक थी। फालतन, सांगली भोर और औंध के शासक सम्मान के पात्र हैं जिन्होंने इस विषय का सूत्रपात किया और इस कार्य को एक ऐसी नींव पर सम्भव कर दिखाया जिसकी भली भांति सच्चाई के साथ स्थापना करनी थी और इस कारण उन पर अधिक रुपया खर्च करना पड़ा और उनको हमें अधिक निजी थैली देनी पड़ी। यह सौभाग्यपूर्ण विशेषाधिकार राज्य के मंत्री का था कि उन आधारों पर भवन खड़ा करे और अपेक्षाकृत बहुत कम मात्रा वाली निजी थैलियों को निश्चित करे और उसे न्यूनतम बनाने का सारा श्रेय हमारे राज्य के मंत्री को है।

शायद देश में एक एक ऐसी भावना है और कुछ मित्र जिनको राज्य के प्रशासन के सम्बन्ध में कोई अनुभव नहीं है वे अपने शासकों को निजी थैली दी गई हैं उनकी राशि के बारे में कुछ उपेक्षाकृत बातें कहते हैं। इस बात को स्पष्ट कर दिया जाये कि इनको मंजूर करने में कोई त्रुटि नहीं की गई है और ये बहुत ही कम परिमाण में मंजूर की गई हैं, और मुझे विश्वास है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होता चला जायेगा सम्भव है कि शासक स्वयं सोचने लगें कि इस प्रकार से जीवन की परवरिश करना उनके लिये उपयुक्त नहीं। शासक प्रशासन पर इतने भार स्वरूप नहीं हैं जितने जागीरदार हैं। हैदराबाद में 1200 जागीरदार हैं, ग्वालियर में 600। इन सबको मिटाना होगा और इन लोगों के लिये जितना प्रतिकर उचित है उस पर जब आप विचार करेंगे तो आपको विदित हो जायेगा कि आपने किस अनुपात में एकतंत्रवाद समाप्त किया है। आप अपनी निजी थैली के दायित्व तथा पोषणदायित्व की भी वृद्धि कर रहे हैं। यह अनिवार्य है। परन्तु जैसा कि इस लेख्य में भली भांति बता दिया गया है कि इसमें 20 करोड़ की वह बचत है जो कि अवैध भत्ते के रूप में लिये जाते रहे हैं और अनेक और करोड़ की बचत है जो वैध रूप से उन बजटों में से बचाये जा सकते हैं जिनका अब तक प्रचलन था। आखिर निजी थैली तो एक छोटा-सा विषय है। धन के रूप में यह शासकों के नैतिक त्याग के बराबर है। हम नैतिक त्याग ही तो चाहते हैं और यह सब श्रेय उन शासकों को है जो तुरन्त ही ऐसे प्रबन्ध के लिये सहमत हो गये। देश के साधनों में आप आसानी से वृद्धि कर सकते हैं। करार द्वारा आप आसानी से अपने व्यय कम कर सकते हैं। मैं अपनी ओर से मंत्रालय को बधाई देता हूं कि उन्होंने अपने उत्तरदायित्व को बड़े अच्छे ढंग से निभाया।

अन्त में मैं यह कहना चाहूंगा कि यद्यपि बहुत कुछ काम पूरा किया जा चुका है परन्तु फिर भी अभी कुछ करना शेष है। मैसूर और तिरुवांकुर के बाद मध्य भारत की बारी उस सुन्दर परम्परा के लिये है जो स्वयं बन रही है और राजस्थान को अभी इस दिशा में कार्य करना है। सौराष्ट्र बहुत दिनों तक एकाकी नहीं रह सकेगा, पेप्सू की अपनी समस्यायें हैं और हिमाचल राज्यों की भी समस्यायें हैं और अन्त में विन्ध्य प्रान्त है। मुझे विश्वास है कि वह राजनैतिक चातुर्य और दूरदर्शिता, वह विचारों की सूक्ष्मता और वह सूक्ष्म दृष्टि जिनके कारण ये फल प्राप्त हो सके हैं वह देश और राज्य मंत्रालय को इन चार समस्यावत् प्रश्नों के सम्बन्ध में भी वैसे ही सुन्दर परिणाम पर ले पहुंचेंगे।

[डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया]

जब यह हो जायेगा तो समस्त भारत एक ही आधार पर होगा और हरिपुरा कांग्रेस के संकल्प में जिन कार्य सिद्धियों की कल्पना की गई थी वे पूर्ण हो जायेंगी। अत: केवल एक व्यक्ति के रूप में ही नहीं वरन् राज्यों की जनता के सम्मेलन के स्थायी अध्यक्ष के स्थानापन्न अध्यक्ष के रूप में, कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उस समय के उपराष्ट्रपति और इस समय राष्ट्रपति के रूप में मैं अपना धन्यवाद प्रकट करता हूं और बधाई देता हूं। मैं इस कथन का स्वागत करता हूं और इस सुन्दर महान कार्यसम्पादन के हेतु जिसकी मिसाल इतिहास में नहीं है माननीय राज्यों के मंत्री को बधाई देता हूं। मेरे सामने जर्मन राज्यों के संघ का दृश्य सरलता से प्रस्तुत हो सकता है जिसमें वे 1871 में जीना युद्ध के पश्चात् परस्पर संगठित हुये थे जब कि फ्रांस की हार हुई थी और सारा का सारा कोनफिडरेशन का रूप फेडरेशन में बदल गया था। स्वैरतंत्र के इन 502 टापुओं के—वैयक्तिक शासन के इन केन्द्रों के—संघीकरण के समान वह भी नहीं है जिनकी कि स्थापना अंग्रेजों ने अपने प्रयोजन के लिये की थी। अंग्रेज चले गये पर अपने जाने के बाद सर्वोच्च अधिकार सम्बन्धी 12 मई सन् 1946 के लेख्य का प्रकाशन कर वे अपने सुन्दर नाम में एक कलंक छोड़ गये, जिसको उन्होंने 23 मई 1946 तक प्रकाशित न होने दिया अर्थात् जब तक कि हम 16 मई के लेख्य का अपना उत्तर न दे दें जिस पर सारी बातचीतें हो रही थीं। एक कलम से उन्होंने इन 562 शेरों को पिंजड़ों से बाहर कर दिया और वे देश में भटकने लगे। सौभाग्यवश राज्यों के मंत्रालय ने उनको पकड़ लिया और उनको उपयोगी नागरिक बना लिया और हमें विश्वास है कि राजनय और उद्योग क्षेत्रों में—इन दो क्षेत्रों के लिये वे बड़े ही योग्य हैं—अपने सहयोग से वे राष्ट्रमंडल में भारत का नाम चमका देंगे।

***अध्यक्ष:** कुछ अधिक वक्ताओं को भाषण देने की आज्ञा देने में मुझे चिंता नहीं है पर मेरा यह सुझाव है कि इस भाग को हम आज समाप्त कर दें।

श्री राम सहाय (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, आज रियासतों की जनता के लिये इससे ज्यादा खुशी का मौका नहीं हो सकता है कि वह अपने आपको प्रान्त की जनता के समान पाती है। विधान में उनको वही स्थान मिला हुआ है जो कि प्रान्तों की जनता को मिला है। इसमें कोई शुभा नहीं कि श्री सरदार ने स्टेट्स के सम्बन्ध में जो खासी दिलचस्पी ली है उसकी ही वजह से आज स्टेट्स की जनता को यह मौका मिला है। इसमें भी कोई शुभा नहीं कि कांग्रेस ने हरिपुरा कांग्रेस सेशन में जो रेजोल्यूशन रियासतों के सम्बन्ध में पास किया था उसके ही परिणाम स्वरूप आल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेंस की रीजनल कौंसिल ने अपने अपने रीजन में सारी स्टेट्स को एक स्थान पर लाने का प्रयत्न किया और उसकी वजह से जो वातावरण तैयार हुआ उससे श्री सरदार को काफी सहायता मिली और वह जल्द से जल्द इस कार्य को पूरा कर सके। आल इंडिया स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेंस के मातहत कार्य करने वाले सब ही रीजनल कौंसिल ने इस बारे में भरसक प्रयत्न किया। उनके प्रयत्न के कारण तथा सरदार पटेल के नेतृत्व की वजह से आप लोग देख रहे हैं कि इस विधान में जो स्थान प्रान्तों का है वही स्टेट्स को मिल गया है। अभी पिछले साल कान्स्टिट्युएण्ट असेम्बली के स्टेटस के रिप्रेजेन्टेटिव्ज

का एक कन्वेन्शन यहां दिल्ली में हुआ था और उसने जो स्टेटमेंट इश्यू किया था उसमें भी यही चाहा गया था कि वह जल्द से जल्द विधान में इस किस्म की धारायें लाई जायें जिससे कि सब स्टेट्स और प्रान्त एक बराबर हो जाये। यही कारण था कि जिसकी वजह से स्टेट्स मिनिस्टरी ने पहले एक माडल कान्स्टीट्यूशन के लिये एक कमेटी बनाई और उसने मॉडल कान्स्टीट्यूशन तैयार किये लेकिन हालात इतनी जल्दी तब्दील हुये कि वह मॉडल कान्स्टीट्यूशन तो एक तरफ रहा, हम देख रहे हैं कि रियासतों की जनता को तथा प्रान्तों की जनता को एक ही अधिकार और एक ही जिम्मेदारी से काम करने का मौका मिल रहा है और मॉडल कान्स्टीट्यूशन बनाने वाली कमेटी की रिपोर्ट के मुताबिक ही यह चैपटर विधान में जोड़ा जा रहा है।

मैं एक बात और कहूं कि अब विधान में जो धारा 306-बी आ रही है उसके सम्बन्ध में कई तरह की बातें और बहुत-सी शंकायें स्टेट्स के लोगों के दिल में पैदा हुई थीं। हम कुछ लोग श्री सरदार से मिले भी। इस सम्बन्ध में श्री सरदार ने जो बातें हमसे कहीं उससे हमें काफी सन्तोष हुआ और हम समझते हैं कि हमारी जो शंकायें थीं वह लगभग दूर हो गईं, और उन्होंने जिस तरह से हमें समझाया, हमने समझा कि दरअसल सब की रियासतों की हालत को देखते हुए उसकी जरूरत है।

पहले रियासतें पोलिटिकल डिपार्टमेंट के अण्डर में काम करती थीं। अब स्टेट्स मिनिस्ट्री के अण्डर में काम करना होगा। लेकिन एक बड़ा फर्क है। पहले स्टेट्स का जो शासन चलता था, प्रायः वह फौरन रूल को काम रखने की दृष्टि से चलता था, लेकिन आज जो काम हमें स्टेट्स मिनिस्ट्री के अण्डर में करना होगा वह केवल इसलिये कि हम अपने ऐडमिनिस्ट्रेशन को जल्द से जल्द अच्छा और कामयाब बना सकें। हमको वही सब सहूलियतें वही सारे अधिकार जो प्रान्तों को हैं, मिल रहे हैं। तो फिर मैं समझता हूं कि इस बारे में हमें कोई शंका करने की जरूरत नहीं, और खास तौर पर सरदार ने जो स्टेटमेंट दिया है और हाउस के सामने उसमें जो कुछ उन्होंने बता दिया है और जो आश्वासन दिया है उसके बाद ऐसी कोई शंका करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है।

मध्य भारत में लेजिस्लेटिव असेम्बली है। ग्वालियर में तो वहां की असेम्बली 25-30 साल से काम कर रही थी, इन्दौर में भी करीब 15-20 साल से काम कर रही थी। अभी हाल में जो असेम्बली सारी रियासतों को मिला कर बनी है उसे अवश्य ही थोड़ा ही अर्सा हुआ है, लेकिन उसमें सारी स्टेट्स के जनता के रिप्रेजेन्टेटिव हैं, इस तरह से मध्य भारत की असेम्बली काम कर रही है और वह असेम्बली उस विधान से कार्य कर रही है जो उस असेम्बली ने स्वयं ही अपना तैयार किया है।

मैं समझता हूं कि अब जो कान्स्टीट्यूशन हम बना रहे हैं, उसके अनुसार हम बहुत जल्द से जल्द अपने आपको उसी प्रकार से शासन चलाते पायेंगे जैसे कि प्रान्त में शासन चलेगा।

***श्री ए. थानू पिल्लेः** अध्यक्ष महोदय, राज्य के मंत्रालय की और उस महान व्यक्ति की जिस पर इस समय इस मंत्रालय का भार है, प्रशंसा में मैं कुछ शब्द और जोड़ना चाहता हूं और उनको धन्यवाद देता हूं। श्रीमान, भारत सरकार और

[श्री ए. थानू पिल्ले]

देशी राज्यों के आपस में सम्बन्ध में जो परिवर्तन हुआ है वह और जिस शीघ्र गति से वह परिवर्तन हुआ है वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। इस समय मैं केवल एक ही तथ्य का उल्लेख करूंगा। कुछ माह पूर्व यह आवश्यक समझा गया था कि राज्यों के लिये एक अनुकरणीय संविधान का मसौदा तैयार करने के लिये एक समिति नियुक्त की जाये। इससे यह आशय है कि उस समय तक भी यह विचार था कि देशी राज्यों को अपना पृथक् संविधान बनाना पड़ेगा। और अब हम ऐसी स्थिति को पहुंच गये हैं जहां कि मय राज्यों के समस्त भारत के लिये यही संविधान बनाने में हम समर्थ हैं, और वास्तव में यह एक ऐसी कार्यसिद्धि है जिसका किसी भी प्रशासक को किसी भी मंत्रालय को यथार्थ गौरव हो सकता है; और एक देशी राज्य के होने के नाते मुझे विशेषकर खुशी है कि इस परिवर्तन को देखने का मुझे अवसर मिला। और संविधान निर्माण में भाग लेने का अवसर मिला और भारत के समूचे संविधान के एक भाग के रूप में राज्यों के संविधान का निर्माण किया।

सफलता का यह सुन्दर अभिलेख राज्यों की जनता सहित हम सबके लिये प्रेरणा उत्पन्न करने वाला होना चाहिये। जैसा कि यहां बताया गया था राज्य प्रगति के भिन्न स्तर पर है। मुझे हर्ष है कि प्रान्त सम्बन्धी उपबन्धों को राज्यों के लिये प्रयोज्य बना दिया गया है। इस समूचे देश में जो राज्य सबसे आगे हैं उनका सबसे आगे होने का तथ्य यह है कि उन्होंने प्रान्तों में प्रचलित रीतियों को बहुत पहले से अपना लिया—मेरा आशय प्रशासी तथा विधायी रीतियों से है। यदि इस समय देशी राज्यों में मैसूर, तिरुवांकुर और कोचीन सबसे आगे है तो यह अधिकतर इस तथ्य के कारण है कि हमने प्रान्तों में प्रचलित प्रशासी तथा विधायी रीतियों को बहुत पहले से अपना लिया था। उत्तर के देशी राज्य पीछे रह गये क्योंकि वे पुरानी रीतियों पर अड़े रहे और उसका फल यह हुआ कि आज हम यह देखते हैं कि वे प्रत्यक्ष रूप से पिछड़े हुये हैं। अत: जब हम उसी प्रणाली को अंगीकार करते हैं, जब हम सब राज्यों और प्रान्तों के लिये एक प्रकार के उपबन्धों को स्वीकार करते हैं तो हम यह आशा कर सकते हैं कि जहां तक इन देशी राज्यों का सम्बन्ध है उन्नति शीघ्र होगी। हम इसी परिणाम की आशा करें।

श्रीमान, मैं एक या दो विषयों का उल्लेख करना और चाहता हूं जिनका यहां उल्लेख तो हो ही चुका है। अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में मैं पूर्णतया समझता हूं कि उस अनुच्छेद का क्यों पुर:स्थापन किया गया है। पर मैं इस तथ्य को भी प्रकट करना चाहूंगा कि कुछ राज्य भारतीय प्रान्तों के समकक्ष हैं और इन राज्यों के साथ प्रान्तों से भिन्न प्रकार के व्यवहार करने की न तो आवश्यकता है और न वह उचित ही होगा। हमारे सामने सरदार पटेल का जो भाषण पढ़ा गया था उससे हमें यह विदित होता है कि राज्यों के मंत्रालय का यह उद्देश्य है कि जहां तक हो सके राज्यों में उन्हीं प्रशासी तथा विधायी रीतियों का पुर:स्थापन किया जाये जो प्रान्तों में हैं और दोनों प्रशासी तथा विधायी विषयों में और केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप के विषय में राज्यों के साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार किया जाये जैसा प्रान्तों के साथ है। यदि ऐसी बात है तो मैं निवेदन करूंगा कि कम से कम उन राज्यों को जो इस समय भी प्रान्तों के बराबर हैं उनको इस संविधान में केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण से अलग क्यों नहीं रखा जाता? मैं उस भावना से भली भांति परिचित हूं जिसके कारण संविधान के मसौदे में इस समय प्रस्थापित किये गये इस उपबन्ध

के पुर:स्थापित करने का प्रयास किया गया है और देशी राज्य से आये हुये प्रत्येक सदस्य को इसी रूप में इसे देखना चाहिये। परन्तु हमें परिस्थिति की आवश्यकता से परे नहीं जाना चाहिये। इस विषय के केवल कानूनी तथा संविधानिक पहल ही नहीं है; वरन इसमें भावना और आत्म सम्मान का प्रश्न भी निहित है। मैसूर और तिरुवांकुर और कोचीन के संघ के साथ मद्रास और बम्बई से भिन्न प्रकार का व्यवहार क्यों हो? यह प्रश्न अपने आप उठता है। ये राज्य उतने ही उन्नत हैं जितने कि कोई प्रान्त, तो फिर आप उनसे भिन्न प्रकार का व्यवहार क्यों करें? इसकी क्या आवश्यकता? मसौदा समिति कृपा कर मेरे इस सुझाव पर विचार करे और यदि कुछ राज्यों के लिये प्रस्थापित नियंत्रण आवश्यक समझा जाये तो मैसूर, तिरुवांकुर और कोचीन जैसे उन्नत राष्ट्रों को छोड़कर ऐसे राज्यों ही अनुसूची संविधान में सम्मिलित कर दी जाये। कार्यपालक आदेश द्वारा ऐसे राज्यों के अपवर्जन को राष्ट्रपति पर छोड़ना न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता।

इसके बाद छोटा-सा विषय और है जिसे श्री सन्तानम् ने उठाया था और जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं। उन्होंने यह सुझाव दिया था कि यद्यपि राजप्रमुख के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा राज्यों या राज्य संघों में के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन नियत किये जा सकते हैं, पर उनके भत्ते और निवृत्ति वेतनों पर भिन्न प्रकार से विचार करना चाहिये और ये संसद द्वारा नियत होने चाहिये। निवृत्ति वेतनों के सम्बन्ध में मैं इस बात को समझ सकता हूं क्योंकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के निवृत्ति वेतन का भार भारत की संचित निधि पर होगा। यदि यह बात है तो संसद द्वारा निवृत्ति वेतन नियत किये जा सकते हैं। परन्तु यदि राजप्रमुख के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा राज्यों के उच्चन्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन नियत करने की बात न्यायपूर्ण है तो इसी प्रकार से उनके भत्ते नियत किया जाना भी न्यायपूर्ण है। अत: मैं यह सुझाव दूंगा कि श्री सन्तानम् के प्रस्थापित संशोधन में यह रूपभेद कर दिया जाये कि वह संशोधन केवल निवृत्ति वेतन तक की निर्बन्धित रखा जाये और भत्तों पर उसी प्रकार से विचार किया जाये जैसे वेतनों पर।

इसके बाद श्रीमान, निजी थैली के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं समझता हूं कि प्रस्थापित उपबन्ध उन सदस्यों को मान्य होंगे जो राज्यों से आये हैं।

अन्त में राज्यों की वित्तीय स्थिति के सम्बन्ध में इस सभा से तथा सरकार से एक निवेदन करना चाहूंगा। यह साधारण ज्ञान का विषय है कि फेडरल वित्तीय एकीकरण के कारण राज्यों को अपने वित्तीय साधनों में बहुत कुछ हानि उठानी पड़ेगी। राज्य जिस प्रकार से कुछ काल से अपना प्रशासन चलाते आ रहे हैं उसी प्रकार से चलाते रहने के लिये उपबन्ध करने का प्रयास किया जा रहा है और मैं आशा करता हूं कि भारत सरकार बहुत ही उदार होकर इस उपबन्ध को अमल में लायेगी। वास्तव में मुझे यह एक सच्ची प्रार्थना करनी चाहिये कि इस समस्या पर बड़ी उदारता तथा सहानुभूतिपूर्वक विचार हो। अन्यथा राज्यों का प्रशासन नहीं चल सकता। तिरुवांकुर और कोचीन का जहां तक सम्बन्ध है 10 से 12 करोड़ तक के कुल राजस्व में से हमें तीन या चार करोड़ की हानि होगी और जब तक यह कमी पूरी नहीं होगी तब तक हमारा प्रशासन कार्य नहीं चल सकता,

[श्री ए. थानू पिल्ले]

वह ठप हो जायेगा। मैं आशा करता हूं कि इस विषय पर केन्द्रीय सरकार ठीक-ठीक विचार करेगी।

फेडरल वित्तीय एकीकरण से जो वित्तीय समायोजन आवश्यक हो गये हैं उनके सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार और राज्य संघों में होने वाले करारों के लिये उपबन्ध बनाने का प्रयास किया जा रहा है। जिन विषयों के लिये करार करने होंगे उन सबके लिये उपबन्ध बनाने होंगे। राज्यों में से जिन शुल्कों का उत्पादन किया गया है उनके सम्बन्ध में केन्द्र द्वारा वापसी का उपबन्ध प्रस्थापित किया गया है। आयकर और अन्य राजस्व के साधनों में हानि हो जाने के कारण देशी राज्यों को वित्तीय सहायता देने के लिये किये जाने वाले करारों के लिये भी उपबन्ध बनाने चाहिये। मैं आशा रखता हूं कि संविधान में ये सब आवश्यक उपबन्ध रख दिये जायेंगे।

इन बातों के साथ सभा के समक्ष जो अनुच्छेद प्रस्तुत किया गया है मैं उसका समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** यह प्रार्थना की गई है कि राज्य सम्बन्धी इन अनुच्छेदों पर होने वाले इस वाद-विवाद में राज्य के कई सदस्य भाग लेना चाहते हैं। मेरे विचार से उनकी यह बड़ी ही युक्तियुक्त इच्छा है और उनको अवसर देने के लिये मैं उद्यत हूं। अत: मैं आजकल समूचे विषय पर मत नहीं लूंगा। हम कल वाद-विवाद जारी रख सकते हैं। पर एक सुझाव है जिसको मैं रखना चाहूंगा। ऐसी दशा में हम अन्य संशोधनों को भी सभा के समक्ष प्रस्तुत कराना चाहेंगे जिससे कि इस समूची बात को अन्त में एक ही बार में लिया जा सके और यह तभी होगा जबकि सारे संशोधन सभा के समक्ष हों।

(श्रीमती ऐनी मेस्करीन भाषण देने के लिये उठीं)

***अध्यक्ष:** यदि आप थोड़े से समय में भाषण समाप्त कर दें, तब तो इस समय मैं आपको भाषण देने की आज्ञा दे सकता हूं।

***श्रीमती ऐनी मेस्करीन** (तिरुवांकुर और कोचीन संघ): अध्यक्ष महोदय, सरदार साहब का भाषण सुनने के बाद मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि राज्यों के सम्बन्ध में मेरी सारी कठिनाइयां दूर हो गईं। जबसे मैंने धारा 306-ख को पढ़ा था तभी से उससे मुझे कुछ अशान्ति सी रही थी और मेरा यह विचार हुआ था कि लोकतन्त्रात्मक भारत के निर्माण में बहुत समय तक ये राज्य रोमन जैसे रक्षाकवच के अधीन रहेंगे। तिरुवांकुर, कोचीन और मैसूर बल्कि वास्तविक रूप में दक्षिण भारत के राज्य ऐसे क्षेत्र थे जिनमें लोकतंत्र का सर्वप्रथम प्रवेश हुआ। मैं स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं कर रही हूं पर मैं इस सभा को यह सूचना दूंगी—मैं समझती हूं कि सदस्य इस बात को जानते होंगे—कि वयस्क मताधिकार का सर्व प्रथम पुर:स्थापन भारत में तिरुवांकुर ने किया और लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों को तिरुवांकुर और कोचीन ने उस समय ही पुर:स्थापित कर दिया था जब कि अन्य कोई प्रान्त इस विषय का विचार तक नहीं रखता था। जब अनुच्छेद 306-ख पुर:स्थापित किया

गया तो हमने सोचा कि क्या राज्य के मंत्रालय द्वारा हीन भावना से हमको छोड़ दिया जायेगा? हमारे समझने के लिये भारत के बिस्मार्क का यह ज्ञान बड़ा गहरा था। उन्होंने लोकतन्त्रात्मक भारत के भाग्य को इस प्रकार ढाला है कि जो राज्य यथेष्ठ रूप से उन्नत हैं वे प्रान्तों के बराबर हैं, और जिन राज्यों को एतत्पश्चात् उन्नति करनी है उनको एक रक्षक यंत्र दे दिया गया है जिससे कि वे निर्भय होकर उन्नति कर सकें।

एक बात मुझे बड़े महत्व की लगती है और वह है शक्ति का केन्द्रीयकरण। शक्ति के दृढ़ केन्द्रीयकरण के बिना कोई राष्ट्र, कोई साम्राज्य संसार में जीवित नहीं रहा। बिस्मार्क द्वारा बनाये गये रूप में जर्मनी के कोन्फीडरेशन को आज यूरोप के मानचित्र में वह विषम स्थान प्राप्त है कि उसके विभाजन करना यूरोप के प्रशासकों के लिये एक समस्या है। ग्रीस में वेनेजलोस और चीन में सुनयातसेन के उदाहरण हमें यह विश्वास दिलाने के लिये पर्याप्त हैं कि भारत का यह बिस्मार्क एक ऐसा प्रशासक है जिसकी बुद्धि और अनुभव की उपमा नहीं। विगत दो महीनों में राज्य मंत्रालय ने जो कार्य किया है उसके लिये राज्यों की जनता मंत्रालय के प्रति बहुत आभारी है। अब वह यह अनुभव करने लगी है कि जिस स्वैरतंत्र ने उन्हें अंग्रेजी शासन में दबाकर रखा था उससे अब आगे अधिक कष्ट नहीं होगा। भारत का 40 प्रतिशत राज्यक्षेत्र और 23 प्रतिशत जनसंख्या अब प्रान्त और प्रान्त की जनता के बराबर है और लोकतन्त्रात्मक भारत का भाग्य अब इतना आशाजनक दिखाई देता है कि थोड़े से काल में हम संसार के अग्रतम लोकतंत्रों में गिने जायेंगे। हमें स्वयं अपने आपको बधाई देनी चाहिये कि संसार के इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब कि 40 करोड़ जनता ने स्वराज रूपी समुद्र में अपना बेड़ा खोला है और संसार के इतिहास में यह एक सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करने जा रहा है। मैं एक बार और राज्य के मंत्रालय को धन्यवाद देती हूं और कम उन्नति वाले राज्यों की जनता से निवेदन करती हूं कि वे इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठायें और शीघ्र ही प्रान्तों के बराबर आ जायें जिससे कि आगामी वर्ष में हमारे लोकतन्त्रात्मक भारत में कोई राज्य न रहे केवल प्रांत रहें।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार ता. 13 अक्तूबर, 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-214 PSdeb–11-11-52–320

Con. 3. X.6.49
320

अंक 10
संख्या 6

बृहस्पतिवार
13 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
संविधान का मसौदा–(जारी)	2973-3062
[भाग 6-क–अनुच्छेद 235, 236, 274 घ घ, 302-क, 306-ख, 267, 270-क, 197, 235-क तथा 267-क पर विचार	
अनुच्छेद (पुनः उपस्थित)–3, 47, 55, 67, 83, 92, 100, 248-ख, 263, सप्तम सूची और अनुच्छेद 270 पर विचार, नवीन अनुच्छेद 67-क पर विचार]	
तृतीय पठन के सम्बन्ध में कार्यक्रम	

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 13 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हाल नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — (जारी)

भाग 6-क — (जारी)

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि राज्यों से संबद्ध जिन अन्य अनुच्छेदों को संशोधित करने का विचार है उन्हें उठाया जाये तथा सभी संशोधनों पर विचार किया जाये और फिर सामान्य बहस की जाये। मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर सब कुछ पढ़ें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बंबईः जनरल): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः—

"अनुच्छेद 224 निकाल दिया जाये।"

"अनुच्छेद 225 निकाल दिया जाये।"

"अनुच्छेद 235 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये, अर्थात्ः—

Armed forces in States in Part III of the First Schedule.

'235A. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution, a State for the time being specified in Part III of the First Schedule having any armed force immediately before the commencement of this Constitution may, until Parliament by law otherwise provides, continue to maintain the said force after such commencement subject to such general or special orders as the President may from time to time issue in this behalf.

(2) Any such armed force as is referred to in clause (1) of this article shall form part of the forces of the Union.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रथम अनुसूची के भाग (3) में के राज्यों में के सशस्त्र बल

[235क (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग (3) में इस समय उल्लिखित कोई राज्य, जो कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले सशस्त्र बलों को रखता था, उक्त बलों को ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् ऐसे साधारण या विशेष आदेशों के अधीन रहकर, जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर इस बारे में निकाले, जब तक बनाये रख सकेगा जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे।

(2) कोई ऐसे सशस्त्र बल, जैसे कि इस अनुच्छेद के खंड (1) में निर्दिष्ट हैं, संघ के सशस्त्र बलों का भाग होंगे।]' "

"अनुच्छेद 236 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये, अर्थात्:-

Power of the Union to undertake executive, Legislative or judicial function in relation to any territory not being part of the territory of India.

'236. The Government of India may by agreement with the Government of any territory not being part of the territory of India undertake any executive, legislative or judicial functions vested in the Government of such territory, but every such agreement shall be subject to, and governed by, any law relating to the exercise of foreign jurisdiction for the time being in force.

ऐसे राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में जो भारत राज्य क्षेत्र का भाग नहीं है, कार्यपालक, विधायी या न्याधिक कृत्यों को ग्रहण करने की संघ की शक्ति:

[236. भारत सरकार किसी ऐसे राज्य-क्षेत्र की सरकार से, जो भारत राज्य-क्षेत्र का भाग नहीं है, करार करके ऐसे राज्य-क्षेत्र की सरकार में निहित किसी कार्यपालक, विधायी या न्यायिक कृत्यों को ग्रहण कर सकेगी किंतु प्रत्येक ऐसा करार विदेशी क्षेत्राधिकार के प्रयोग से संबद्ध किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रहेगा और उससे शासित होगा।]' "

"अनुच्छेद 237 निकाल दिया जाये।"

"अनुच्छेद 274-घ के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किये जायें, अर्थात-

Power of certain States in Part III of the First Schedule to impose restrictions on trade and commerce by the levy of certain taxes and duties on goods imported into or exported from such States.

'274DD. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, the President may enter into an agreement with a State for the time being specified in Part III of the First Schedule with respect to the levy and collection of any tax or duty leviable by the State on goods imported

into the State from other States or on goods exported from the State to other States, and any agreement entered into under this article shall continue in force for such period not exceeding ten years from the commencement of this Constitution as may be specified in the agreement:

'Provided that the President may at any time after the expiration of five years from such commencement terminate or modify any such agreement if after consideration of the report of the Finance Commission constituted under article 260 of this Constitution he thinks it necessary to do so.

Effect of articles 274A and 274C on existing laws.

'274DDD. Nothing in articles 274-A and 274-C of this Constitution shall affect the provisions of any existing law except in so far as the President may by order otherwise provide.

प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित कतिपय राज्यों की आयात की हुई या निर्यात की हुई वस्तुओं पर कर और शुल्क लगाकर व्यापार और वाणिज्य पर निर्बन्धनों, आरोपण की शक्ति

[274-घघ इस भाग के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित किसी ऐसे राज्य से, जो दूसरे राज्यों से उस राज्य में वस्तुओं के आयात पर अथवा उस राज्य से दूसरे राज्यों को वस्तुओं के निर्यात पर कोई कर या शुल्क उद्गृहीत करता है ऐसे कर या शुल्क के उद्गृहण या संग्रहण के संबंध में राष्ट्रपति करार कर सकता है और इसे इस अनुच्छेद के अधीन किया हुआ कोई करार, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिये जैसी कि करार में उल्लिखित हो, प्रभावी रहेगा।

परन्तु ऐसे प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी समय भी यदि राष्ट्रपति अनुच्छेद 260 के अधीन गठित वित्त आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ऐसे किसी करार का अन्त या रूपभेद करना आवश्यक समझे तो वह ऐसा कर सकेगा।

वर्तमान विधियों पर अनुच्छेद 274-क और 274-ग का प्रभाव

274. घघघ. अनुच्छेद 274-क और 274-ग की कोई बात किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, जिस मात्रा तक राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्धित करे, उसके अतिरिक्त, कोई प्रभाव न डालेगी।]' "

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

"अनुच्छेद 302 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये, अर्थात्:–

Rights and privileges of Rulers of Indian States.

'302A. In the exercise of the power of Parliament or of the Legislature of a State to make laws or in the exercise of the executive power of the Union or of a State, due regard shall be had to the guarantee or assurance given under any such covenant or agreement as is referred to in article 267A of this Constitution with respect to the personal rights, privileges and dignities of the Ruler of an Indian State.

देशी राज्यों के शासकों के अधिकार और विशेषाधिकार

[302 क. संसद की या किसी राज्य के विधान मंडल की विधि बनाने की शक्ति के प्रयोग में, अथवा संघ या किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में, देशी राज्य के शासक के वैयक्तिक अधिकारों, विशेषाधिकारों और गरिमा के विषय में ऐसी प्रसंविदा या करार के अधीन, जैसा कि इस संविधान के अनुच्छेद 267-क में निर्दिष्ट है, दी गई प्रत्याभूति या आश्वासन का सम्यक् ध्यान रखा जायेगा।]' "

"अनुच्छेद 306 के पश्चात् ये नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किये जायें:–

Temporary provisions with respect to States in Part III of the First Schedule.

'306B. Notwithstanding anything contained in this Constitution during a period of ten years from the commencement thereof, or during such longer or shorter period as Parliament may by law provide in respect of any State, the Government of every State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be under the general control of, and comply with such particular directions, if any, as may from time to time be given by the President, and any failure to comply with such directions shall be deemed to be a failure to carry out the Government of the State in accordance with the provisions of this Constitution:

'Provided that the President may by order direct that the provisions of this article shall not apply to any State specified in the order.

[306-ख. इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इस के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर अथवा किसी ऐसी दीर्घतर या अल्पतर कालावधि के भीतर, जिसे किसी राज्य के बारे में संसद् विधि द्वारा उपबन्धित करे, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य की सरकार राष्ट्रपति के साधारण नियंत्रण के अधीन होगी, तथा ऐसे विशिष्ट निदेशों का, यदि कोई हों, अनुवर्तन करेगी जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर दे, और ऐसे निदेशों के अनुवर्तन में किसी प्रकार की असफलता इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार शासन चलाने में असफलता मानी जायेगी।

प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्यों के विषय में अस्थाई उपबन्ध

परन्तु राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि इस अनुच्छेद के उपबन्ध उस आदेश में उल्लिखित किसी राज्य को लागू न होंगे।]' "

"अनुच्छेद 258 के खंड (1) के स्थान पर यह खंड रखा जाए:–

'(1) Notwithstanding anything contained in this Chapter, the Government of India may, subject to the provision of clause (2) of this article, enter into an agreement with the Government of a State for the time being specified in Part III of the First Schedule with respect to—

(a) the levy and collection of any tax or duty leviable by the Government of India in such State and for the distribution of the proceeds thereof otherwise than in accordance with the provisions of this Chapter;

(b) the grant of any financial assistance by the Government of India to such State in consequence of the loss of any revenue which that State used to derive from any tax or duty leviable under this Constitution by the Government of India or from any other sources;

(c) the contribution by such State in respect of any payment made by the Government of India under clause (1) of article 267A of this Constitution, and when an agreement is so entered into, the provisions of this Chapter shall in relation to such State have effect subject to the terms of such agreement:—

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(1) इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, भारत सरकार, खंड (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य की सरकार से–

(क) ऐसे राज्य में भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत किये जाने वाले किसी कर या शुल्क के उद्ग्रहण और संग्रह करने तथा उसके आगम के, इस अध्याय के उपबन्धों से अन्यथा, वितरण करने के;

(ख) भारत सरकार द्वारा इस संविधान के अधीन उद्गृहीत किये जाने वाले किसी कर या शुल्क से अथवा अन्य किन्हीं स्रोतों से जो राजस्व वह राज्य पाता था उसकी हानि के लिये ऐसे राज्य को भारत सरकार द्वारा वित्तीय सहायता अनुदान करने के;

(ग) अनुच्छेद 267-क के खंड (1) के अधीन भारत सरकार द्वारा दिये जाने वाले किसी देय धन के विषय में ऐसे राज्य द्वारा अशंदान करने के;

विषय में करार कर सकेगी, तथा जब ऐसा करार किया जाये तब इस अध्याय के उपबन्ध ऐसे राज्य के संबंध में ऐसे करार के निबन्धनों के अधीन रह कर ही प्रभावी होंगे।]' "

"भाग 9 के अध्याय 1 में, अनुच्छेद 267 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये, अर्थात्:–

Privy purse sums of Rulers.

'267A. (1) Where under any covenant or agreement entered into by the Ruler of any Indian State before the commencement of this Constitution, the payment of any sums, free of tax, has been guaranteed or assured by the Government of the Dominion of India to any ruler of such State as Privy Purse—

(a) such sums shall be charged on, and paid out of, the Consolidated Fund of India; and

(b) the sum so paid to any Ruler shall be exempted from all taxes on income.

(2) Where the territories of any such Indian State as aforesaid are comprised within a State specified in Part I or Part III of the First Schedule there shall be charged on, and paid out of, the Consolidated Fund of that State such contribution, if any, in respect of the payments made by the Government of India under clause (1) of this article and for such period as may, subject to any agreement entered into in that behalf under clause (1) of article 258 of this Constitution, be determined by order of the President.

[267-क. (1) इस संविधान के प्रारम्भ से पहले जहां किसी देशी राज्य के शासक द्वारा की गई किसी प्रसंविदा या करार के अधीन ऐसे राज्य के शासक को निजी थैली के रूप में किन्हीं राशियों की करमुक्ति देनगी भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा प्रत्याभूत या आश्वासित की गई है वहां– शासकों की निजी थैली की राशि

(क) वैसी राशियां भारत की संचित-निधि पर भारित होंगी तथा उसमें से दी जायेंगी; तथा

(ख) किसी शासक को दी गई वैसी राशियां, सभी आय पर करों से विमुक्त होंगी।

(2) उपर्युक्त जैसे किसी देशी राज्य के राज्य-क्षेत्र जहां प्रथम अनुसूची के भाग (1) या भाग (3) में उल्लिखित किसी राज्य में समाविष्ट हैं वहां इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन भारत सरकार द्वारा दी जाने वाली देनगियों के विषय में ऐसा अंशदान, यदि कोई हो, उस राज्य की संचित-निधि पर भारित होगा और उसे दिया जाएगा और ऐसी कालावधि के लिये जैसी कि अनुच्छेद 258 के खंड (1) के अधीन उस बारे में किये गये किसी करार के अधीन रहकर राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।]' "

"अनुच्छेद 270 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:–

'270A. (1) As from the commencement of this Constitution—

(a) all assets relating to any of the matters enumerated in the Union List vested immediately before such commencement in any Indian State corresponding to any State for the time being Succession to property assets, liabilities and obligations of Indian States.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

specified in Part III of the First Schedule shall be vested in the Government of India, and

(b) all liabilities relating to any of the said matters of the Government of any Indian State corresponding to any State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be the liabilities of the Government of India, subject to any agreement entered into in that behalf by the Government of India with the Government of that State.

(2) As from the commencement of this Constitution the Government of each State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be the successor of the Government of the corresponding Indian State as regards all property, assets, liabilities and obligations other than the assets and liabilities referred to in clause (1) of this article.

[270-क (1) इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर–

(क) संघ सूची में प्रगणित विषयों में से किसी से सम्बद्ध जो आस्तियां प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य में ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले निहित थीं वे सब भारत सरकार में निहित होंगी, और

(ख) उक्त विषयों में से किसी से सम्बद्ध जो दायित्व प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य की सरकार के थे वे सब ऐसे करार के अधीन रह कर जैसा कि उस बारे में भारत सरकार उस राज्य की सरकार से करे, भारत सरकार के दायित्व होंगे।

(2) प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य की सरकार उन सब सम्पत्ति, आस्तियों, दायित्वों और आभारों के बारे में, जो इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में निर्दिष्ट आस्तियों और दायित्वों से भिन्न है तत्स्थानी देशी राज्यों की इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर उत्तराधिकारिणी होगी।]' "

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): श्रीमान मेरा यह सुझाव है कि अनुच्छेद 224 और 225 के संबंध में ये दो संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 218 और 219, पहले निबटा दिये जायें अन्यथा माननीय सदस्यों ने इन अनुच्छेदों के संबंध में जिन संशोधनों की सूचना दी है उन्हें भी उपस्थित करना होगा।

***अध्यक्ष:** इन संशोधनों द्वारा अनुच्छेदों को निकाला जा रहा है। इन्हें निबटाने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 224 निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 224 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 225 निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 225 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 220 से संबद्ध संशोधनों को उठायेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 220 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 235-क के खंड (1) में 'until Parliament by law otherwise provides [जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे]' शब्दों के स्थान पर 'until the President by order otherwise provides (जब तक कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे]' शब्द रखे जाएं।"

मैं इन शब्दों का इस कारण विरोध कर रहा हूं कि, मेरे विचार से, ये शब्द अनुपयुक्त हैं। कार्यपालक आदेशों तथा विधाई प्राधिकार में स्पष्ट विभेद होना चाहिये। यह विषय केवल कार्यपालिका का विषय है। यह प्रश्न कि किसी राज्य के सशस्त्र बल भारतीय सेना में कब से समाविष्ट किये जाएं कोई विधायी विषय नहीं है। इस संबंध में कार्यपालिका निर्णय कर सकती है। कार्यपालक और विधायी कृत्यों के संबंध में किसी प्रकार का भ्रम न होना चाहिये। इसमें कोई सारवान सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त नहीं है। हम यह स्वीकार कर चुके हैं कि किसी भी राज्य की सेना भारतीय सेना का ही अंग है। संक्राति काल के लिये भी इन सेनाओं को भारतीय सेना का अंग माना गया है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि ये शब्द निकाल दिये जाएं और इनके स्थान पर मैंने अपने संशोधन द्वारा जिन शब्दों का सुझाव रखा है वे स्वीकार किये जाएं।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

श्रीमान, एक और कारण से भी मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति इस कृत्य को करे और संसद न करे। यदि हम यह चाहते हैं कि देश शीघ्र से शीघ्र सुगठित हो तो यह शक्ति राष्ट्रपति में निहित होनी चाहिये और संसद में निहित नहीं होनी चाहिये। संसद के कार्य में अवश्य ही विलम्ब होता है।

श्रीमान, मेरे नाम से जो अन्य संशोधन है उसे भी मैं उपस्थित करना चाहता हूं। मैं संशोधन संख्या 251 का निर्देश करता हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 306 (ख) में से–

(1) 'during a period of ten years from the commencement thereof, or during such longer or shorter period as Parliament may by law provide in respect of any State [इसके प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर अथवा किसी ऐसी दीर्घतर या अल्पतर कालावधि के भीतर, जिसे राज्य के बारे में संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे]' शब्द निकाल दिये जाएं, और

(2) 'for the time being specified in Part III of the First Schedule [प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित]' शब्द निकाल दिये जाएं।"

दस वर्ष के लिये जो यह सामान्य नियंत्रण तथा निरीक्षण की शक्ति रखी गई है वह समय की आवश्यकताओं को देखते हुए पर्याप्त नहीं है। मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि देशी राज्यों के सामने जो समस्याएं हैं वे इतने अल्प काल में हल नहीं होंगी। श्रीमान, पिछली दो शताब्दियों में हम जिन रोगों के शिकार रहे हैं वे किसी चाल से इतने थोड़े समय में दूर नहीं हो जायेंगे। संघीय शासन धीरे-धीरे एक सत्तात्मक शासन का रूप धारण कर लेता है। चाहे हम इस उपबन्ध को रखें या न रखें केन्द्र की निरीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण करने की शक्ति किसी न किसी प्रकार स्वत: प्रभावी हो जायेगी। इसलिये, मेरे विचार से, इस शक्ति को अस्थाई शक्ति के रूप में नहीं रखना चाहिये। यह शक्ति अनिश्चित काल के लिये प्रदान की जानी चाहिये।

एक और बात भी है जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। कल उप-प्रधान मंत्री के भाषण में, जिसे श्री मुंशी ने पढ़ा था, जहां तक मुझे स्मरण है ये शब्द कहे गये थे कि "जितने काल तक इन उपबन्धों की आवश्यकता होगी उतने काल तक ये जारी रहेंगे।" किंतु इस अनुच्छेद में ये शब्द प्रयुक्त हैं कि ये दस वर्ष के पश्चात् जारी नहीं रहेंगे। यदि ये शब्द निकाल दिये जाएं तो मुझे संतोष हो जायेगा। मेरे विचार से इस उपबन्ध में वास्तविकता की उपेक्षा की गई है। यह निरर्थक है। देशी राज्यों की समस्याओं को हल करने के लिये हम मनमाने ढंग से कोई कालावधि केवल इस कारण न रखें कि संविधान में हमने इस आशय का एक उपबन्ध रखा है कि दस वर्ष के पश्चात् हमारी शक्ति का अन्त हो जाएगा।

इस संशोधन के एक अन्य भाग की ओर भी मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि प्रांतों के साथ सौतेला व्यवहार क्यों किया जा रहा है। केन्द्र के परिपक्व अनुभव से हम भी लाभ उठाना चाहते हैं? यह द्वेषपूर्ण विभेद क्यों किया जा रहा है? मुझे इस संबंध में असंतोष है। मैं किसी प्रान्त विशेष की चर्चा नहीं कर रहा हूं और कोई व्यक्ति यह न समझे कि मैं किसी प्रांत के प्रशासन से असंतुष्ट हूं। मैं सामान्य रूप से इस विषय पर बोल रहा हूं। मैं प्रांतीय स्वायत्तता की प्रणाली से ही असंतुष्ट हूं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से इस विषय पर इस समय विचार विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है। इस समय हम राज्यों के संबंध में विचार कर रहे हैं। दूसरे प्रश्न पर हमने इतना विचार विमर्श किया है कि उससे जी ऊब गया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं उस संशोधन का निर्देश कर रहा हूं जिसमें मैंने कहा है कि "प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित" शब्द निकाल दिये जाएं। उस का यह अर्थ है कि यह उपबन्ध सभी प्रांतों को लागू होगा। संभवत: मैं इस संशोधन के आशय को स्पष्ट नहीं कर पाया हूं।

***अध्यक्ष:** तब यह अनियमित है। वास्तव में मैंने अपने कागज में यह लिख रखा है कि यह अनियमित है। यह इस कारण अनियमित है कि हम इस प्रसंग में प्रांतों के प्रश्न पर नहीं बल्कि राज्यों के प्रश्न पर, विचार कर रहे हैं। हम प्रांतों के प्रश्न पर विचार कर चुके हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, आपका निर्णय शिरोधार्य है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 220 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 235-क के खंड (1) में 'may until Parliament by law otherwise provides, continue to maintain the said force after such commencement subject to such general or special orders as the President may from time to time issue in this behalf [उक्त बलों को ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् ऐसे साधारण या विशेष आदेशों के अधीन रहकर, जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर इस बारे में निकाले, तब तक बनाये रख सकेगा जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे]' शब्दों के स्थान पर 'shall merge into the armed forces of the Union and shall form part of the forces of the Union [उसके ये बल संघ के सशस्त्र बलों में समाविष्ट हो जायेंगे और संघ के बलों का भाग हो जायेंगे]' शब्द रखे जाएं।"

[श्री आर.के. सिधवा]

श्रीमान, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं संशोधन संख्या 252 भी उपस्थित करना चाहता हूं। मैंने संशोधन का प्रथम भाग, जो दस वर्ष की कालावधि के संबंध में था, निकाल दिया है और मैं उसके केवल द्वितीय भाग को उपस्थित कर रहा हूं। वह इस प्रकार है:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 306-ख के अन्त में, किंतु उसके परन्तुक के पूर्व, यह प्रविष्ट किया जाये:-

'During the period of ten years as stated therein all States shall introduce immediately laws for full-fledged elected local bodies within one year from the commencement of this Constitution.

[उक्त दस वर्ष की कालावधि में सब राज्य इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् एक वर्ष के भीतर निर्वाचित स्थानीय निकायों को स्थापित करने के संबंध में तुरंत ही विधियां प्रयोग में लायेंगे।]' "

पहले संशोधन के संबंध में मेरा यह निवेदन है कि इस समय राज्यों में जो सशस्त्र बल हैं वे भारत के मुख्य सेना नायक के नियंत्रण के अधीन होंगे, अर्थात् वे भारत के बलों के नियंत्रण के अधीन होंगे। किंतु यह मेरी समझ में नहीं आता कि राज्यों में सशस्त्र बल बनाये रखने के लिये विशेष रूप से विभेद क्यों किया जा रहा है। प्रांतों में सशस्त्र बल नहीं हैं। सभी प्रांतों के अपने आरक्षी बल और सशस्त्र आरक्षी बल भी हैं; किंतु किसी भी प्रांत में सशस्त्र सैनिक बल नहीं हैं। इससे पहले जो शासन था उसमें भी कोई सशस्त्र बल नहीं थे और अब भी कोई नहीं हैं। निस्संदेह पहले जो शासन था उसमें देशी राज्य सशस्त्र बलों को बनाये रखते थे। इसका क्या कारण था यह सभी को विदित है। किंतु अब वे प्रातों में समाविष्ट हो गये हैं, अथवा पृथक इकाइयां हो गये हैं। अब वे अपने यहां पृथक सशस्त्र बलों को क्यों बनाये रखें? इसलिये मैं यह चाहता हूं कि राज्यों से सभी सशक्त बल हटा दिये जाएं और उन्हें भारत के सशस्त्र बलों में समाविष्ट कर दिया जाए। तब वे भारतीय संघ के अधीन होंगे। मेरे विचार से किसी कारण भी राज्यों को पृथक सशस्त्र बलों को बनाये रखने का विशेषाधिकार नहीं दिया जा सकता। इसके कारण कई प्रकार से कलह हो सकता है। भारत सशस्त्र बल मुख्य सेना नायक के अधीन होंगे। यदि इन पृथक् सशस्त्र बलों को बिना किसी कारण राज्यों में रहने देना है तो आखिर किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये? आखिर आरक्षी बल तो रहेगा ही। यदि आवश्यकता पड़ी तो भारतीय संघ के सशस्त्र बलों का उपयोग किया जा सकता है। इसलिये मुझे आशा है कि मैंने जिस संशोधन को उपस्थित किया है उस पर मसौदा-समिति विचार करेगी। इस संशोधन का आशय यह है कि देशी राज्यों के सशस्त्र बल भारतीय संघ के सशस्त्र बलों में समाविष्ट किये जाएं और वे भारत के मुख्य सेना नायक के नियंत्रण के अधीन हों।

जहां तक दूसरे संशोधन का संबंध है, कल माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल का जो वक्तव्य श्री मुंशी ने पढ़कर सुनाया था, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूं। राजनैतिक

मामलों के संबंध में देशी राज्यों में वह स्थिति नहीं है जो प्रांतों में है। यह हम सभी को विदित है। मैं किसी देशी राज्य का निवासी नहीं हूं किंतु मैं देशी राज्यों में कई जगह गया हूं और कांग्रेस कार्यकर्त्ता मुझे देशी राज्यों में प्रचार कार्य के लिये ले जाते रहे हैं। कई देशी राज्यों का जो थोड़ा बहुत ज्ञान मुझे है उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि उनकी दशा अत्यन्त दयनीय है। वहां कोई भी स्थानीय निकाय नहीं है। जब मैं कच्छ गया तो मैंने देखा कि वहां कोई भी छापाखाना नहीं है और जब एक सार्वजनिक सभा में मैंने मत-पत्र-पेटिका तथा मतदान के लाभों की चर्चा की तो लोग यह नहीं समझ पाये कि मत-पत्र-पेटिका और गुप्त मतदान क्या होता है। इससे आप समझ सकते हैं कि इन राज्यों के शासकों ने वहां के लोगों को कितने अंधकार में रखा है। कच्छ में छापाखाना खोलने की आज्ञा ही नहीं दी गई। बहुत से देशी राज्यों में, जहां जाने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ मैंने यही दशा पाई।

मैं यह नहीं कहता कि सभी राज्यों में यही स्थिति है। जैसा कि कल माननीय उपप्रधान मंत्री महोदय ने कहा था, त्रावनकोर, मैसूर और कोचीन तथा अन्य राज्यों के समान प्रगतिशील राज्य भी हैं जिनकी हम प्रशंसा करते हैं। ब्रिटिश राज्य-काल में भी वहां बहुत सुचारु ढंग से कार्य होता रहा और हममें कुछ भी संदेह नहीं है कि वे वास्तव में प्रगतिशील हैं। इस समय मैं इन राज्यों की चर्चा नहीं कर रहा हूं। किंतु बहुत से राज्य प्रतिगामी भी हैं और इस लिये मेरी यह धारणा है कि यह उचित ही है कि दस वर्ष तक उनका प्रशासन केन्द्र के नियंत्रण के अधीन रहे। वह नियंत्रण किस प्रकार का होगा? वह नियंत्रण रोक थाम के लिये होगा। वे पहले के समान ही कार्य करेंगे किंतु यदि प्रशासन के संबंध में कोई असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जाए तो केन्द्र को अवश्य ही अपना मत प्रभाव में लाने का अधिकार होगा। यह बिल्कुल स्पष्ट है। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि बहुत से राज्यों की दशा दयनीय है। मैं यह अवश्य कहूंगा। मैं आपको बताना चाहता हूं कि वहां किसी प्रकार का प्रशासन है ही नहीं। मुझे इन बातों के लिये क्षमा किया जाए किंतु तथ्य यह है कि वहां न तो कोई नगरपालिका है और न कोई स्थानीय निकाय। जिस राज्य में लोग यह न जानते हों कि स्थानीय निकाय क्या होता है और नगरपालिका क्या होती है तथा नगरपालिका के क्या अधिकार होते हैं वहां के बारे में यह समझ में आ सकता है कि लोगों को राजनैतिक प्रशासन चलाने में सफलता होगी या नहीं। इस लिये इन राज्यों की जनता को जिसकी जनसंख्या भारत की जन संख्या की एक-तिहाई है, भातीय संघ में लाकर हमने एक बड़ा काम किया है। हमें इस पर गर्व करना चाहिये कि आज देशी राज्यों के दस करोड़ लोग जो अभी तक दासत्व में पड़े हुए थे, आज स्वतंत्र हो गये हैं। जब अंग्रेजों से हमने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तो उन्होंने हमसे कहा कि देशी राज्यों के दस करोड़ लोगों को स्वतंत्र करने को कोई आवश्यकता नहीं है। ब्रिटिश सरकार का यह विचार था कि वे शांति भी स्थापित कर सकते हैं और अशांति भी पैदा कर सकते हैं। किंतु हमारे उप-प्रधान मंत्री ने ऐसा जादू किया कि ये सामन्तशाही राज्य देश के अन्य भागों के साथ मिला दिये गये। जब मैं छोटा था तो मैंने अलादीन और उसकी जादू की लालटेन नाम का एक नाटक देखा था किंतु आज हम अलादीन की लालटेन का वास्तविक जादू देख रहे हैं और हमें इसका गर्व है। इसका उपप्रधान मंत्री महोदय को तो गर्व है ही किंतु इस पर केवल उन्हीं को नहीं बल्कि हम सभी को गर्व करना चाहिये। सरकार की निन्दा करते हुए लोग यह भूल जाते हैं कि दस करोड़ लोगों को

[श्री आर.के. सिधवा]

दासत्व से मुक्त करके उसने कितना बड़ा कार्य किया है। डेढ़, वर्ष में ही इन लोगों की दासता की बेड़ियां काटकर फेंक दी गई। इस पर कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है। अंग्रेजों ने जाते समय इस पर नहीं विचार किया कि इन लोगों का क्या होगा। आज वास्तव में वे किसी जादू से ही मुक्त हुए हैं।

हम पहली मंजिल तक तो पहुंच गये हैं किंतु हमें दूसरी मंजिल भी तय करनी है क्योंकि उस का बहुत महत्व है। वह मंजिल इन राज्यों के सुयोग्य शासन की है। मेरी अपनी यह धारणा है कि विभिन्न प्रांतों के सीमावर्ती राज्य संबंधित प्रांतों से मिला दिये जाने चाहिये। सीमावर्ती प्रांतों में समाविष्ट हो जाने से वे राज्य देश के प्रगतिशील भागों के अंग हो जायेंगे। कुछ राज्य इस प्रकार समाविष्ट किये गये हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत बड़ी नहीं है। अन्ततोगत्वा यही व्यवस्था सर्वोत्तम सिद्ध होगी किन्तु राजस्थान के समान कुछ राज्य ऐसे भी हैं जिन्हें स्वतंत्र रहना है। आपको विदित ही है कि राजस्थान के राज्य राजपूताने में बिखरे हुए हैं, और मेरे विचार से, उन पर केन्द्र का नियंत्रण होना चाहिये। मुझे इसका गर्व है कि राजस्थान महान राजस्थान के रूप में परिणत हो गया है। किंतु इसका मुझे खेद भी है कि वहां का प्रशासन सुयोग्य ढंग से नहीं चल रहा है। भरतपुर तथा धौलपुर के लोगों की इच्छा जानने के लिये जब मुझे नियुक्त किया गया तो, चाहे मेरी अपनी धारणा जो भी रही हो, मैंने देखा कि वहां के लोग राजस्थान में ही सम्मिलित होना चाहते थे। राज्य-मंत्रणालय ने भी यह संकल्प किया कि उनके राज्यों को राजस्थान में ही समाविष्ट किया जायेगा। मुझे राजस्थान के राज्यों से कोई शिकायत नहीं है क्योंकि राज्यों के प्रशासन के लिये सुयोग्य व्यक्ति नहीं मिलते और इसमें राज्यों का कोई दोष नहीं है। उन्हें कभी इसकी शिक्षा ही नहीं दी गई। श्रीमान, यह समझ में आ सकता है कि प्रांतों में जो लोग नगरपालिकाओं के सदस्य रहे हैं उन्हें इस प्रकार की शिक्षा मिली है। नागरिकों को आधारभूत प्रशासन की शिक्षा सबसे पहले नगरपालिकाओं ही में मिलती है। इस लिये, श्रीमान, अपने संशोधन द्वारा मैंने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि यद्यपि उन पर नियंत्रण रहेगा किन्तु जैसा कि कल माननीय सरदार पटेल ने बताया था, वह आवश्यकता पड़ने पर ही व्यवहार में आयेगा। मैं यह चाहता हूं कि इस बीच में समुचित स्थानीय निकाय स्थापित कर दिया जाये तथा विधियां पारित की जायें और उन्हें इस संविधान से प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर प्रभाव में लाया जाये ताकि लोगों को यह विदित हो जाये कि प्रशासन क्या होता है, मताधिकार क्या होता है, शक्तियां क्या होती हैं तथा अधिकार और विशेषाधिकार क्या होते हैं, भले ही उन्होंने ये एक सीमित क्षेत्र में, अर्थात् अपने नगर या गांव में ही, प्राप्त हों। जब उन्हें यह विदित हो जायेगा कि स्थानीय निकाय द्वारा वे अपने छोटे से नगर का स्वयं शासन कर सकते हैं तो वे अपने सारे राज्य के लिये भी प्रशासन-व्यवस्था स्थापित कर लेंगे। साथ ही हमें सुयोग्य मंत्री प्राप्त हो सकेंगे, जो शासन की बागडोर संभालेंगे और इन राज्यों को प्रांतों के स्तर पर लायेंगे। मैंने यह कहा है कि नियंत्रण की व्यवस्था दस वर्ष तक रखी जाये और मुझे आशा है कि मेरे इस कथन से राज्यों के मेरे मित्रों को कोई भ्रम नहीं होगा। जब हम सब स्वतंत्र हो गए हैं तो यह अच्छा नहीं लगेगा कि वहां पुरानी व्यवस्था ही बनी रहे। जब हम पूर्ण नियंत्रण चाहते हैं तो कुछ नियंत्रण केन्द्र का भी होना चाहिये। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं कि स्थानीय निकायों पर किसी प्रकार

का नियंत्रण नहीं होना चाहिये। आज कल सभी स्थानीय निकायों का, नगरपालिकाओं का तथा नियमों का शासन कुछ अधिनियमों से होता है और श्रीमान, मैं आपको बताना चाहता हूं कि बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के निगमों पर स्थानीय सरकारों का नियंत्रण रहता है। यदि किसी समय वे यह समझें कि निगम का प्रशासन ठीक नहीं हो रहा है तो वे हस्तक्षेप कर सकते हैं। इस अधिनियम का उद्देश्य यही है कि आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप किया जायेगा। कलकत्ता निगम में भी यही हुआ है। वहां के अधिनियम में यह उपबन्ध है कि यथोचित प्रशासन न होने पर सरकार हस्तक्षेप कर सकती है और जब कलकत्ता निगम का ठीक प्रशासन नहीं हो रहा था तो बंगाल की सरकार ने उसे अपने हाथ में लिया। वह निगम बहुत बड़े निगमों में से एक है। अध्यक्ष महोदय, आपको विदित ही होगा कि कलकत्ता निगम के प्रशासन को सरकार ने अपने नियंत्रण के अधीन रखा है। इसमें कोई दोष भी नहीं है क्योंकि अब सरकार अपनी ही सरकार है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पूर्व इसे एक दोष समझा जाता था और जब ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार का नियंत्रण लगाया था तो मैंने स्वयं संघर्ष किया था। उस समय मैंने कहा था कि जब वे यथोचित ढंग से कार्य न करें तो उन्हें अपने कार्य में सुधार करने के लिये अवसर किया जाना चाहिये। मेरी अब भी यह धारणा है कि किसी स्थानीय निकाय को समाप्त करने के पूर्व सरकार को उसे अपना सुधार करने के लिये अवसर देना चाहिये। जब वे किसी प्रकार भी अपना सुधार न करें तब केन्द्र को उनका प्रशासन अपने हाथ में ले लेना चाहिये। इसी प्रकार श्रीमान जब राज्यों में कोई अव्यवस्था हो तो केन्द्र संबंधित राज्य को चेतावनी दें किंतु यदि वह राज्य अपना सुधार न करे तो केन्द्र हस्तक्षेप करे और राज्य का शासन अपने हाथ में ले ले। यह उस राज्य के ही नहीं बल्कि सारे देश के हित में होगा। इस लिये मेरा निवेदन है कि जो राज्य बहुत पिछड़े हुए हैं उनमें तुरन्त ही नगरपालिका की विधियां पारित की जायें, ताकि वहां के लोगों को प्रशासन संबंधी उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त हो सके। यदि वे तीन वर्ष तक या पांच वर्ष तक पदारूढ़ रहे तो उनकी बहुत उन्नति हो सकती है। (*विघ्न*)। श्रीमान, चूंकि राज्यों में यथोचित प्रशासन न होने पर केन्द्र को उन पर नियंत्रण रखना होगा इसलिये संशोधन संख्या 252 में मैंने जो कुछ कहा है उस पर मसौदा समिति कृपा करके विचार करे। इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं सिफारिश करता हूं कि संशोधन संख्या 246 तथा 252 स्वीकार कर लिये जाएं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रातः जनरल): श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 220 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 235-क के खंड (2) के अन्त में 'and the Union shall bear the expenses thereof [और संघ उनका खर्च उठायेगा]' शब्द जोड़ दिये जाएं।"

संशोधन संख्या 220 में कहा गया है कि:

> "इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित कोई राज्य, जो कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले सशस्त्र बलों को रखता था, उक्त बलों को ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् ऐसे साधारण या विशेष आदेशों के अधीन रह कर, जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर इस बारे में निकाले, तब तक बनाये रख सकेगा जब तक कि संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे।

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

(2) कोई ऐसे सशस्त्र बल, जैसे कि इस अनुच्छेद के खंड (1) में निर्दिष्ट है, संघ के सशस्त्र बलों का भाग होंगे।"

प्रश्न यह उठता है कि खर्च कौन उठायेगा? पहले भाग में यह कहा गया है कि जब तक संसद अन्यथा निर्णय न करे, राज्य अपने सशस्त्र बल को स्वयं बनाये रखेगा। भाग 2 में कहा गया है कि राज्य का सशस्त्र बल संघ के सशस्त्र बलों का भाग होगा। इन दोनों में कुछ अन्तर है। श्रीमान, मेरी अपनी यह धारणा है कि उद्देश्य यह है कि बहुत शीघ्र सभी सशस्त्र बल संघ के नियंत्रण के अधीन रखे जायेंगे और जब तक संसद इस आशय की विधि पारित न करे तब तक वे सब पहले के समान बने रहेंगे। मेरे विचार से, चूंकि वे संघ के सशस्त्र बलों के भाग हो जायेंगे, इस लिये उनका खर्च संघ ही उठाये और वे संघ के नियंत्रण तथा अनुशासन में रहें। खंड (2) का यही उद्देश्य है। वास्तव में बहुत से राज्य इन बलों को नहीं बनाये रख सकेंगे। इस लिये मेरे विचार से भले ही संसद इस संबंध में विधि पारित करने में विलम्ब करे किंतु वे सशस्त्र बल संघ के अधीन तुरंत ही आ जाने चाहिये और उनका खर्च भी संघ को ही उठाना चाहिये।

मैंने संशोधन संख्या 303, 304 और 305 की भी सूचना दी है। संशोधन संख्या 303 अनुच्छेद 274-घघ के सम्बन्ध में है और वह इस प्रकार है:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 223 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घघ में 'the President [राष्ट्रपति]' शब्द जहां प्रथम बार आया है वहां उसके पश्चात् 'subject to the approval of the Parliament [संसद के अनुमोदन के अधीन]' शब्द रखे जाएं।"

अनुच्छेद 274-घघ में कहा गया है कि "इस भाग के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी ..... राष्ट्रपति करार कर सकता है इत्यादि।" मैं यह चाहता हूं कि राज्यों से जिन वित्तीयकारों को करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी जा रही है उनका अनुमोदन संसद करे। इसी कारण मैं इन शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, अनुच्छेद 274-घघघ में कहा गया है कि "अनुच्छेद 274-क और 274-ग की कोई बात किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, जिस मात्रा तक राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्धित करे, उसके अतिरिक्त, कोई प्रभाव नहीं डालेगी। इस पर मैं यह संशोधन रखना चाहता हूं:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 223 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद, 274-घघघ में 'President may by order [राष्ट्रपति आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law [संसद विधि द्वारा] शब्द रखे जाएं।"

मैं यह चाहता हूं कि इस स्थल पर भी "राष्ट्रपति आदेश द्वारा उपबन्धित करे" शब्दों के स्थान पर "संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे" शब्द रखे जाएं। इस सम्बन्ध में मैं केवल यह तर्क उपस्थित करना चाहता हूं कि ऐसे महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में शक्ति राष्ट्रपति को अर्थात् मंत्रिमंडल को नहीं देनी चाहिये बल्कि संसद को देनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में एक संशोधन है जिसकी बहुत आलोचना हुई है और उसके बारे में माननीय सरदार पटेल ने भी एक वक्तव्य दिया है। उनकी व्याख्या के पश्चात् बहुत कुछ आलोचना समाप्त हो जाती है किन्तु फिर भी मेरा यह विचार है कि श्रीमान पिल्ले का सुझाव एक उपयुक्त सुझाव था। हमें राज्यों की गणना परिशिष्टों में करनी चाहिये थी और कुछ राज्यों को यह अनुच्छेद लागू न करना चाहिये था। मुझे आशा है कि मैसूर और त्रावणकोर जैसे राज्यों को यह अनुच्छेद लागू नहीं किया जायेगा और आरम्भ में ही राष्ट्रपति इस आशय का एक आदेश निकाल देंगे। अनुच्छेद 306-क के सम्बन्ध में मेरा संशोधन इस प्रकार है:

> "सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 306-ख के परन्तुक में 'President may by order' [राष्ट्रपति आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law [संसद विधि द्वारा] शब्द रखे जाएं।"

परन्तुक इस प्रकार है कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि इस अनुच्छेद के उपबन्ध आदेश में उल्लिखित किसी राज्य को लागू नहीं होंगे। इसका यह अर्थ है कि जब किसी राज्य को इस संरक्षण में नहीं रखना होगा तो राष्ट्रपति एक आदेश निकालेगा मैं यह चाहता हूं कि यह कार्य केवल संसद विधि द्वारा करे। यह सम्भव है कि कुछ राज्य यह समझें कि उनके यहां सुयोग्य शासन है और उनको यह अनुच्छेद लागू न होना चाहिये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि वह संसद के समक्ष अपना मामला रख सकें और संसद इसे विधि द्वारा करने में समर्थ होनी चाहिये। अन्यथा राष्ट्रपति के नियंत्रण से मुक्त होने के लिये उन्हें राष्ट्रपति की ही खुशामद करते रहना होगा। मेरे विचार से यदि संसद को यह शक्ति प्राप्त होगी तो उन्हें भारत सरकार के राज्य मंत्रणालय का दासत्व स्वीकार नहीं करना होगा। इस संशोधन के द्वारा संसद को सर्वोच्च शक्ति प्राप्त हो जायेगी और मेरे विचार से इसकी आवश्यकता भी है।

यद्यपि मैंने इस अध्याय के सम्बन्ध में संशोधनों की सचना दी है किन्तु इस ऐतिहासिक अवसर पर हमारे नेता माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल की जो प्रशंसा की गई है उसमें मैं अपना भी योग देना चाहता हूं। मेरे विचार से पिछले दो वर्षों में हमारी सरकार ने जितने भी कार्य किये हैं उनमें यह सब से उत्कृष्ट है। सरदार पटेल को केवल इस एक कार्य से ही आधुनिक भारत के निर्माताओं के बीच सदा के लिये एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो गया है। अंग्रेजों ने पांच सौ से अधिक राज्यों को स्थापित करके देश को अनेक पाकिस्तानों में विभाजित किया था। माननीय सरदार पटेल की प्रतिभा के कारण तथा राज्य मंत्रणालय के

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

कर्मचारियों के परिश्रम के कारण यह महान कार्य सम्पन्न हुआ है। इस महान कार्य के लिये सभा ने सरदार पटेल को जो बधाइयां दी हैं उनमें मैं अपना भी योग देता हूं। मित्रों ने उनकी तुलना बिसमार्क से की है। मेरे विचार से सरदार पटेल ने जो कार्य किया है वह बिसमार्क के कार्य से कहीं अधिक महान है। सरदार पटेल ने बिना रक्त का एक बूंद भी बहाये हुए एक क्रान्ति पैदा कर दी। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वे बहुत काल तक जीवित रहें और उन्हें तुरन्त ही स्वास्थ्य-लाभ हो जाये ताकि वे भविष्य में हमारे राष्ट्र को उत्तरोत्तर विजयों को प्राप्त कराये।

(संशोधन संख्या 247, 297 और 298 उपस्थित नहीं किये गये)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 222: डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उसे उपस्थित कर चुका हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर राज्य): कल माननीय सरदार पटेल ने जो वक्तव्य दिया था तथा मैसूर राज्य के सम्बन्ध में जो आश्वासन दिया उसे दृष्टि में रखते हुए मैं संशोधन संख्या 249 को नहीं उपस्थित कर रहा हूं, मैं केवल बहस में ही भाग लेना चाहता हूं।

(संशोधन संख्या 250 उपस्थित नहीं किया गया)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 279। सारंगधर दास।

***श्री सारंगधर दास:** (उड़ीसा राज्य): अध्यक्ष महोदय.....

***अध्यक्ष:** यह संशोधन अनुच्छेद को निकालने के सम्बन्ध में है। उसे उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। आप उसके सम्बन्ध में बाद में बोल सकते हैं।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी:** (मैसूर राज्य): सरदार पटेल ने जो आश्वासन दिया है उसे दृष्टि में रखते हुए मैं संशोधन संख्या 289 नहीं उपस्थित करना चाहता।

***अध्यक्ष:** प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना, आपने आज प्रात: कुछ संशोधनों की सूचना दी थी।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, नवीन अनुच्छेद 258, 267-क, 270-क तथा 264-क के सम्बन्ध में संशोधनों की सूचना दी गई है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 264-क नहीं उपस्थित किया गया है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 299 में प्रस्तावित अनुच्छेद 258 के खण्ड (1) के अन्त में यह शब्द जोड़ दिये जाएं:-

'after that agreement has been approved by Parliament

[उस करार को संसद से अनुमोदित कराने के पश्चात' "]

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है।

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 299 में अनुच्छेद 258 के प्रस्तावित खण्ड (1) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) की गणना उस खण्ड के उपखण्ड (ख), (ग) और (घ) के रूप की जाये और यह उपखण्ड (क) के रूप में प्रविष्ट किया जाये:–

(a) questions arising from or connected with the vesting in the Union of assets and liabilities of such States related to any of the matters enumerated in the Union List;

[संघ सूची में प्रगणित विषयों में से किसी के सम्बन्ध में ऐसे राज्यों की आस्तियों तथा दायित्वों को संघ में निहित करने के बारे में जो प्रश्न उठें उनके;]' "

यह दूसरा संशोधन वास्तव में श्री कृष्णमाचारी के संशोधन संख्या 300 से अच्छा है। पहले संशोधन के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि जब राज्यों से वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण करार किये जा रहे हैं तो इस सम्बन्ध में अन्तिम प्राधिकार संसद का ही होना चाहिये। इसलिये मैं "उस करार को संसद से अनुमोदित कराने के पश्चात्" शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं।

अनुच्छेद 267-क के सम्बन्ध में मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क निकाल दिया जाये।"

जब करार में यह उपबन्धित है कि भत्ते पर आय-कर नहीं लगेगा तो इस खण्ड की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। अनुच्छेद 267-क के सम्बन्ध में मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के खण्ड (2) में 'by order of the President [राष्ट्रपति आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by law [संसद विधि द्वारा]' शब्द रखे जाएं।"

इस सम्बन्ध में भी व्यय की मंजूरी अन्त में संसद को ही देनी चाहिये। इसी प्रकार मैंने इस परिवर्तन का सुझाव रखा है।

नवीन अनुच्छेद 270-क के सम्बन्ध में मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 302 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 270-क के खण्ड (1) के अन्त में 'and approved by Parliament [जिनका संसद अनुमोदन करेगी]' शब्द जोड़ दिये जाएं।"

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

कि यह सम्पत्ति के सम्बन्ध में है, खण्ड (1) इस प्रकार है:

"इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर संघ सूची में प्रगणित विषयों में से किसी से सम्बद्ध जो आस्तियां प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य में ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले निहित थीं वे सब भारत सरकार में निहित होंगी।"

इसके अन्त में मैं "जिनका संसद अनुमोदन करेगी" जोड़ना चाहता हूं।

इन सभी संशोधनों का उद्देश्य अन्तिम प्राधिकार संसद को प्राप्त कराना तथा उसे बनाये रखना है। मुझे आशा है कि ये संशोधन स्वीकार कर लिये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद तथा संशोधनों पर बहस हो सकती है। श्री सारंगधर दास।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा जनरल): श्रीमान, अनुच्छेद 267-क के सम्बन्ध में मैंने दो संशोधनों की सूचना दी है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के खण्ड (2) के पश्चात् यह नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:-

(3) Where any sums are guaranteed or assured to any Ruler's family members or relations such sums be treated as part of privy purse and as free of tax.

[(3) जहां किसी राज्य के शासक के परिवार के लोगों को अथवा सम्बन्धियों को कोई राशियां प्रत्याभूत अथवा आश्वासित की गई हों वहां ये राशियां निजी थैली का भाग तथा कर-मुक्त समझी जायें।]'"

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के खण्ड (1) में 'to any ruler [शासक को]' शब्दों के पश्चात् 'or his family relations [अथवा उसके परिवार के सम्बन्धियों को]' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

अनुच्छेद 267-क का आशय यह है कि शासकों को जो धन दिया जाए वह कर-मुक्त हो।

जब बातचीत चल रही थी तो हममें से अधिकांश लोग यह समझते थे कि शासक की माता को तथा परिवार के अन्य लोगों को और मरे हुए शासकों की

विधवाओं को जो अनुदान दिये जायेंगे वे आय-कर से तथा अन्य करों से मुक्त होंगे। कल रात जब मयूरगंज की महारानी मेरे यहां आईं और उनसे मैंने बातें की तो मुझे आश्चर्य हुआ। उन्हें 3,000 रुपये मासिक का भत्ता दिया गया है। दो मास तक उन्हें पूरी राशि मिली। उसक पश्चात् अप्रैल से इस राशि से 707 रुपये मासिक आय-कर का काट लिया जा रहा है। वह एक स्वर्गीय महाराजा की पत्नी हैं तथा एक महाराजा की पुत्री हैं। जब कई राज्यों में आय-कर लगाया ही नहीं गया था तो उनसे आय-कर क्यों वसूल किया जा रहा है इसका अर्थ यह है कि शासकों के बहुत से सम्बन्धियों से जैसे कि शासक की माता से तथा जैसा कि मैं बता चुका हूं, शासक के भाईयों की बहुओं से आय-कर वूसल किया जायेगा। कल हमारे आदरणीय नेता सरदार बल्लभभाई पटेल ने एक उत्कृष्ट भाषण दिया जिसमें उन्होंने राज्यों के नागरिकों को सुख-शांति का आश्वासन दिया। मेरे विचार से सुख-शान्ति का आश्वासन शासकों के सम्बन्धियों को भी दिया गया है। अनुच्छेद 267-क के मसौदे के अनुसार निजी थैली आय-कर से मुक्त होगी। भारत के कई राज्यों ने आज तक आय-कर दिया ही नहीं है। विशेषतः भूतपूर्व राजाओं के परिवारों की महिलाओं को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। उनकी समझ में नहीं आता है कि उनसे आय-कर क्यों लिया जा रहा है और वह भी इतना अधिक जैसे 3,000 रु. मासिक में से 707 रु.। इसमें उत्तर-कर तथा अन्य-कर भी सम्मिलित हैं। सम्भवतः इस महारानी के राज्य में आय कर नहीं लिया जाता था और यदि वह लिया भी जाता था तो उतना अधिक नहीं लिया जाता था जितना कि प्रान्तों में। कल रात तक मुझे यह ज्ञात नहीं था कि नरेशों के सम्बन्धियों से, अर्थात् भूतपूर्व राजाओं की माताओं, पत्नियों आदि से इतना अधिक आय-कर लिया जा रहा है। मेरे विचार से निजी थैली वह धन अभिप्रेत है जो किसी शासक को अथवा उसके परिवार के लोगों को दिया गया है। इसलिए वह धन कर-मुक्त होना चाहिये। यदि शासक के भत्तों की 20 लाख अथवा 25 लाख जैसी बड़ी राशि पर आय-कर नहीं लगाया जाता है तो उसके सम्बन्धियों से भारत में अधिक से अधिक जितना आय-कर लिया जा सकता है उतना अधिक आय-कर क्यों लिया जाता है? यह राज्यों में किसी की समझ में नहीं आता। श्रीमान, यह एक दोष रह गया है और इसे दूर कर देना चाहिये। इन राज्यों में जिन लोगों को बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे उनके उत्पीड़न से कोई लाभ नहीं होगा। यदि शासकों को अथवा शासकों के वंशजों को भविष्य में ये विशेषाधिकार देने ही हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि शासक की माता से अथवा भूतपूर्व महारानी से यह आय-कर क्यों वसूल किया जा रहा है। मुझे आशा है कि यह दोष दूर कर दिया जायेगा।

***अध्यक्षः** अब इस पूरे विषय पर बहस हो सकती है। श्री सारंगधर दास।

***श्री सारंगधर दासः** अध्यक्ष महोदय, मैंने अनुच्छेद 306-ख निकाल देने के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था, किन्तु चूंकि अनुच्छेद निकालने के प्रस्ताव नहीं उपस्थित किये जा रहे हैं इसलिये मैं इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

सबसे पहले मेरा निवेदन है कि पांच सौ से अधिक देशी राज्यों को मिलाकर उन्हें सात राज्यों में परिणत कर देने के लिये मैं भी माननीय सरदार बल्लभभाई पटेल

[श्री सारंगधर दास]

की प्रशंसा में अपना योग देना चाहता हूं। 1947 में मैं अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् का सदस्य था इस कारण मुझे ज्ञात हुआ था कि यह कितना बड़ा कार्य और इसमें कितने खतरे हैं। उस समय मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि यह कार्य इतने थोड़े काल में सम्पन्न हो जायेगा। इस महान कार्य को सम्पन्न करने का सारा श्रेय सरदार बल्लभभाई पटेल तथा राज्य मंत्रणालय को है। मुझे यह भी ज्ञात है कि जाड़ों में कुछ आधारभूत विषयों के सम्बन्ध में जब हमने संविधान में प्रान्तों तथा राज्यों के विभेद पर आपत्ति की थी तो उन्होंने हमें यह आश्वासन दिया था कि वे देशी राज्यों को प्रान्तों के स्तर पर लाने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने यह कार्य पूरा कर दिया है।

अनुच्छेद 306-ख पर मुझे इस कारण आपत्ति है कि हम सर्वत्र लोकतंत्रात्मक संस्थाओं को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं—हमने स्वेच्छाचारी शासन का नाश किया है और उसके स्थान पर लोकतंत्रात्मक शासन स्थापति किया है। इस अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 306-ख द्वारा राज्य मंत्रणालय, अर्थात् भारत सरकार राज्य-संघों पर नियंत्रण रख सकेगी। इस प्रकार प्रान्तों और राज्यों में विभेद किया गया है, जिससे लोकतंत्रात्मक संस्थाओं के मूल पर ही कुठाराघात होता है। मैं इस सभा में अकेला ही हूं। मैं जानता हूं कि यहां देशी राज्यों के जो सदस्य हैं उनमें से अधिकांश राज्य-संघों अथवा राज्यों में मंत्री हैं और वे इस अनुच्छेद को पसंद नहीं करते हैं। वे नहीं चाहते कि प्रति दिन के प्रशासन के सम्बन्ध में राज्य भारत सरकार के अधीन रहे, किन्तु किसी आदेश के कारण वे नहीं बोल सकते और वे नहीं बोलेंगे। इस अनुच्छेद पर मुझे विशेषत: इस कारण आपत्ति है कि केन्द्र से राज्यों पर नियंत्रण रखने अथवा उन्हें आदेश देने से नौकरशाही शासन की पूर्णतया स्थापना हो जायेगी। कोई प्रतिनिधि सरकार नहीं रह जायेगी।

जो देशी राज्य प्रान्तों में समाविष्ट कर दिये गये हैं उनके पिछले डेढ़ वर्ष के अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि प्रान्तीय सरकारों ने इन राज्यों में प्रशासक बना कर जिन कर्मचारियों को भेजा है उनका कार्य कुछ ऐसा रहा है कि वे सनकी राजाओं के उत्तराधिकारी समझे जाने लगे हैं। इन राज्यों के जनसाधारण की यही धारणा है। उड़ीसा और मध्यप्रान्त के राज्यों में पिछले वर्ष जो भी मनोनीत प्रतिनिधि थे उनकी कोई पूछ ही न थी। लोगों को यह तुरंत ही ज्ञात हो गया कि प्रान्तीय सरकारों ने जिन सदस्यों को मनोनीत किया था उनका प्रशासन में कोई हक नहीं है। वे नगण्य लोग समझे जाते हैं और जिस प्रकार राजाओं के राज में कर्मचारी शासन करते थे उसी प्रकार वे अब भी शासन करते हैं। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि प्रान्तों की प्रशासन व्यवस्था में काम सीखे हुए जो कर्मचारी इन राज्यों में भेजे जाते हैं, जहां कि कभी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था नहीं रही और लोग अपनी आवाज नहीं उठा सकते थे, वहां वे इस प्रकार कार्य करते हैं जैसे कि वे स्वयं शासक हों। सम्भवत: वे यह समझते हैं कि उन्हें कुछ काल के लिये राजा होने का अवसर मिल गया है।

पिछले वर्ष जो बड़े-बड़े राज्य-संघ स्थापित किये गये उन में मुझे ज्ञात है कि बहुत से छोटे या बड़े कर्मचारी ठीक कार्य नहीं करते और लोगों को अपनी शिकायतों

को सुनाने का कोई अवसर ही नहीं मिलता। जब राज्य मंत्रणालय अथवा भारत सरकार, प्रतिदिन के प्रशासन के सम्बन्ध में आदेश देगी तो स्थिति यह होगी कि यद्यपि राज्य-संघों के अपने विधान मंडल होंगे और उन में लोक-निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे कि किन्तु ये कर्मचारी भारत सरकार के आदेशों का ही पालन करेंगे क्योंकि प्रतिनिधि कोई ऐसा निर्णय भी कर सकते हैं जो भारत सरकार के निर्णय से भिन्न हो। प्रतिनिधियों के लिये खामोश रहने के अलावा और कोई चारा नहीं रहेगा और वे भारत सरकार की इच्छा के अनुसार सब कुछ चलने देंगे। सभी यह समझ जायेंगे कि कर्मचारी ही सर्वेसर्वा हैं। जैसा कि कुछ सदस्यों ने कहा है और सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी अपने वक्तव्य में कहा है, राज्यों में लोकतंत्रात्मक परम्परा कभी रही नहीं। वहां न स्थानीय मंडलियां हैं न नगरपालिकाएं। मैं जानता हूं कि कुछ राज्यों में पुस्तकालय तक नहीं स्थापित किये जा सके और वह इस कारण कि राजाओं और दीवारों को यह भय रहा कि पुस्तकें पढ़ने से लोग विद्रोही हो जायेंगे।

यह मेरी समझ में आता है किन्तु चूंकि हम अब लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने जा रहे हैं इसलिये मुझे इस पर बहुत आपत्ति है कि प्रान्तों और राज्यों के साथ विभिन्न प्रकार का व्यवहार किया जाये। प्रान्तों में मंत्रिमंडल स्वायत्तशासी होंगे और उनके कार्य में बाहर से हस्तक्षेप नहीं होगा किन्तु राज्य-संघों को तथा मैसूर जैसे राज्यों को केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार कार्य करना होगा। मैं जानता हूं कि कुछ अपवाद भी किये जायेंगे। वास्तव में कुछ राज्यों के लिये अवश्य ही अपवाद करना चाहिये किन्तु यदि मैसूर को स्वायत्तशासी होने की प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई और राजस्थान केन्द्र के अधीन ही रहा तो मुझे विश्वास है कि यह सभा अनुभव करेगी कि राजस्थान के प्रतिनिधियों की क्या भावना होगी। मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद द्वारा राज्यों को, अथवा राज्य-संघों को, चाहे जितने समय के लिये भी केन्द्र के अधीन रखा जाये, चाहे वह समय दस वर्ष का हो अथवा चाहे संसद पन्द्रह या बीस वर्ष की अवधि निश्चित करे, किन्तु उसके कारण प्रशासन लोक-प्रतिनिधियों का प्रशासन नहीं रह जायेगा।

दिखाई यह देता है कि जैसे ब्रिटिश सरकार पिछले पचास या साठ वर्षों में हमें लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली की शिक्षा देना चाहती थी उसी प्रकार हमारी सरकार तथा हमारे नेता, जो ब्रिटिश सरकार की नीतियों की निन्दा करते हैं; राज्यों के लोगों के सम्बन्ध में वही चाल चल रहे हैं। मेरी यह धारणा है कि केन्द्रीय सरकार की इस सभा में प्रान्तों के अधिकांश सदस्यों की राज्यों के लोगों के प्रति सौतेली मां की सी भावनाएं हैं। समाविष्ट राज्यों के सम्बन्ध में जो कुछ किया गया है उससे यह स्पष्ट हो जायेगा। पिछली जनवरी को हमने भारत-शासन अधिनियम के सम्बन्ध में इस आशय का एक संशोधन पारित किया कि कुछ राज्य बम्बई, मद्रास, मध्य प्रान्त तथा उड़ीसा के प्रान्तों में मिला दिये जायें। उस समय हमें आशा थी और कुछ लोगों ने हमें यह आश्वासन भी दिया था कि 1935 के अधिनियम द्वारा प्रदत्त सीमित मताधिकार के अधीन निर्वाचन होगा किन्तु कोई निर्वाचन नहीं हुआ है और मुझे यह निश्चित रूप से विदित है कि कम से कम दो प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारों ने सरकारी ढंग से सदस्यों को मनोनीत किया है। यह एक दिलचस्प बात है कि कांग्रेस समितियों ने भी मनोनयन नहीं किया। यह समझा जा सकता था कि चूंकि सरकार कांग्रेस की है इसलिये वह कम से कम कांग्रेस समितियों से

[श्री सारंगधर दास]

परामर्श करेगी। एक प्रान्त में कांग्रेस समितियों की सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया गया। एक अन्य प्रान्त में कांग्रेस समितियों से परामर्श किया ही नहीं गया। यह समझा जा सकता था कि चूंकि सरकार को कांग्रेस दल चला रहा है इस लिये वह कम से कम अपने संगठन से परामर्श करेगा किन्तु यह नहीं किया गया। अधिकांश सदस्यों को कर्मचारियों ने ही नियुक्त किया। वे लोकप्रतिनिधि कहे जाते हैं। मेरे विचार से उन लोगों को मनोनीत करना जिन्हें आज तक सार्वजनिक जीवन में कोई नहीं जानता था अथवा जो राजा का ही साथ देते रहे देशी राज्यों के लोगों का अपमान करना है। मैं चाहता हूं कि यद्यपि अब स्वेच्छाचारी शासन को समाप्त कर दिया गया है और सारे भारत में लोकतंत्र है, और सारे देश का एकीकरण हो गया है, किन्तु फिर भी केन्द्रीय सरकार राज्यों के लोगों को दासत्व में रहने देने की मनोवृत्ति दिखा रही है।

जहां तक देशी राज्यों के मतदाताओं की बुद्धि का सम्बन्ध है, मैं यह कहूंगा और मैं यह अपने प्रदेश का अच्छा ज्ञान होने के कारण ही कह रहा हूं—कि प्रान्तों के तथा राज्यों के जनसाधारण की बुद्धि तथा जागरूकता में कोई अन्तर नहीं है। यदि आप का यह विचार है कि मतदाताओं के अज्ञान के कारण ही इस प्रकार के लोग मनोनीत होते हैं और केन्द्र को आदेश देने की आवश्यकता पड़ती है तो मेरा निवेदन है कि अपने संविधान में वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में उपबन्ध रख कर हम ने गलती की। मेरा निवेदन है कि यदि हमारा लोगों पर विश्वास नहीं है तो हम वयस्क मताधिकार को धीरे-धीरे प्रदान करें। मेरी अपनी यह धारणा नहीं है। मेरा यह विश्वास है कि जब लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित कर दी जायेगी तो लोग अपनी गलतियों से शिक्षा ग्रहण करेंगे और इस प्रकार लोक-तंत्र का विकास होगा। अपने प्रान्त ही के नहीं बल्कि उड़ीसा के राज्यों तथा राजस्थान और मध्य भारत के कुछ भागों के अपने अनुभव के आधार पर मैं यह सकता हूं कि यह अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 306-ख, एक प्रतिगामी अनुच्छेद है। सरदार पटेल इतने थोड़े काल में इस देश का एकीकरण करने तथा स्वेच्छाचारी शासन को समाप्त करने में समर्थ हुए हैं। इस प्रतिगामी अनुच्छेद 306-ख से उन्होंने तथा राज्य-मंत्रणालय ने जो भलाई की है उसका बहुत अंश मिट जायेगा।

मैं आरम्भ में कह चुका हूं कि इस सभा में मैं अकेला ही हूं क्योंकि मैं उस दल का नहीं हूं, जिसका इस सभा में बहुमत है। मैं उस दल में था किन्तु मैंने उसे छोड़ दिया है। इसी कारण मैं इस प्रकार बोल रहा हूं। मैं जो चाहूं स्वतंत्रता से यह कहता हूं। मैं इस सभा के माननीय सदस्यों को तथा सरकार को चेतावनी देता हूं कि जब तक देशी राज्यों के लोगों के प्रति सौतेली मां का सा व्यवहार समाप्त नहीं किया जाता और उन्हें प्रान्तों के लोगों के समान ही कार्य करने नहीं दिया जाता, अथवा संविधान के अधीन जिस प्रकार के कार्य करेंगे उस प्रकार उन्हें कार्य नहीं करने दिया जाता, अथवा राज्यों के लोगों को वही अधिकार नहीं दिये जाते जो प्रान्तों के लोगों को प्राप्त हैं तो मेरे विचार से, लोकतंत्र विकसित नहीं होगा। भविष्य में जाने कौन घटनाएं घटित हों। इन राज्य-संघों के मंत्रिमंडलों में ही कलह हो सकता है, किसी भी स्थान पर विस्फोट हो सकता है अर्थात् किसी भी दशा में लोकतंत्र विकसित नहीं होगा।

इसी कारण मैं इस सभा के माननीय सदस्यों से तथा सरदार वल्लभभाई पटेल से भी अपील करता हूं कि यदि इस अनुच्छेद 306-ख को रखने की आवश्यकता

ही है तो कम से कम राज्यों को वह लागू न किया जाये। किसी राज्य की सरकार के गिर पड़ने पर अनुच्छेद 275, 276 तथा उन अन्य अनुच्छेदों का आश्रय लिया जा सकता है, जो प्रान्तों को भी लागू होंगे। वह अनुच्छेद राज्य-संघों को भी लागू किये जा सकते हैं। इसी कारण मेरा यह विचार है कि अनुच्छेद 306-ख की आवश्यकता नहीं है। यदि वह पारित किया गया, क्योंकि मुझे उसे पारित होने पर कुछ भी सन्देह नहीं है, तो सरदार बल्लभभाई तथा भारत सरकार से मेरी यह अपील है कि उसे प्रयोग में न लाया जाये। यदि संघ-सरकारों में से किसी में कोई दोष है तो उससे कह सुनकर उसे दूर किया जाये।

***श्री के. चेंगलाराय रेड्डी** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सभा के विचाराधीन जो प्रस्ताव है उसके सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें कहने का अवसर मुझे दिया गया है। प्रस्ताव यह है कि संविधान का भाग 6 जो प्रथम अनुसूची के भाग 1 में प्रगणित राज्यों को लागू है, उस अनुसूची के भाग 3 में प्रगणित राज्यों को भी उनकी स्थिति के अनुसार रूप-भेद कर के तथा कुछ बातें छोड़कर लागू किया जाये। मुझे इसकी अत्यंत प्रसन्नता है कि जब यह सभा अपना कार्य समाप्त करने को थी उस समय यह निर्णय भी किया गया है।

जब इस सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया था तो इस सम्बन्ध में बहुत सन्देह था कि भारत डोमीनियन के सभी भागों के लिये एक ही संविधान बनाया जा सकेगा या नहीं। उस समय यह समझा गया था और उसे स्वीकार भी किया गया था कि जहां तक देशी राज्यों का सम्बन्ध है उनका संविधान उनकी संविधान सभाएं ही बनायें। इसी निर्णय के फलस्वरूप कुछ राज्यों में संविधान सभाएं अस्तित्व में भी आईं और उन्होंने उनके लिये संविधान बनाने का कार्य भी आरम्भ किया। इस प्रसंग में मैसूर राज्य के प्रतिनिधियों ने तथा कुछ अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों ने भी सबके लिये एक ही संविधान बनाने के लिये जो प्रयास किया उसका मैं स्मरण कराना चाहता हूं।

बहुत पहले, अर्थात् 1947 में, जब इन राज्यों के प्रतिनिधि इस आदरणीय सभा में आये थे तो देशी राज्यों के लिये एक अनुकरणीय संविधान बनाने तथा उसे इस संविधान का ही अंग बनाने के उद्देश्य से एक समिति के संगठन के लिये बहुत प्रयास किया गया। किन्तु उस समय यह कदम व्यावहारिक नहीं समझा गया और हमसे अपने अपने राज्यों के लिये संविधान बनाने के लिये कहा गया। परन्तु जब हमने अपना कार्य आरम्भ किया तो हम ने इसका अनुभव किया कि इन पृथक संविधानों का भारतीय संविधान के, तथा भारतीय संविधान-सभा के लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप होना परम आवश्यक है। जब हमें अपने संविधानों को स्वयं बनाने की स्वतंत्रता दी गई थी तो उस समय भी हमने यह निर्णय किया था। इसी को ध्यान में रखकर मैं इस समय यह निवेदन कर रहा हूं कि देशी राज्यों के लिये—कम से कम मैसूर के सम्बन्ध में तो मैं अधिकृत रूप से कह ही सकता हूं—यह एक अत्यंत हर्ष का विषय है कि यह आदरणीय सभा अब इस निर्णय को करने जा रही है।

श्रीमान, इस समय देश जिस स्थिति में पड़ा हुआ है उस का सामना करने के लिये हमें बड़ी राजनीतिज्ञता से कार्य करना है, ताकि जिस स्वतन्त्रता को हमने

[श्री के. चेंगलाराय रेड्डी]

प्राप्त किया है वह सुस्थिर तथा संकटमुक्त हो सके। यह हर काल में अनुभव किया गया है कि विभिन्न इकाइयों के लिये विभिन्न प्रकार के संविधान बनाने से उनमें फूट पड़ जाती है और वे विभिन्न दिशाओं की ओर कदम उठाने लगते हैं। अब यह स्वीकार किया गया है कि सभी देशी राज्यों के लिये बहुत कुछ समान ही संविधान बनाया जाये और वह प्रान्तों के संविधान के अनुरूप हो। इस सम्बन्ध में अगस्त 15, 1947 के पश्चात् देशी राज्यों की पेचीदी समस्या को जिस प्रकार सुलझाया गया है उसके लिये मैं राज्य मंत्रणालय तथा सरदार पटेल को नम्रतापूर्वक बधाई देता हूं। उस समय जिस प्रकार की स्थिति थी उसमें बहुत दुष्टता की जा सकती थी और भारत के विघटन के लिये प्रयास किया जा सकता था, जिसके फलस्वरूप हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है वह क्षीण हो जाती। यदि इस प्रश्न को राजनीतिज्ञता से नहीं सुलझाया गया होता तो भारत के विघटन के लिये जो अवसर उपस्थित था वह भारत के लिये उसके स्वातन्त्र्य के शैशव-काल में ही घातक सिद्ध होता। इस लिये इस समस्या को एक अद्भुत ढंग से हल करने लिये राज्य मंत्रणालय तथा सरदार पटेल की संसार भर ने जो प्रशंसा की है उसमें मैं अपना योग भी देना चाहता हूं। यह ठीक ही दावा किया गया है कि आज हमने जो कुछ प्राप्त किया है वह एक रक्तहीन क्रान्ति के फलस्वरूप प्राप्त किया है, जिसका उदाहरण संसार के किसी अन्य देश के इतिहास में नहीं मिलता। आज हमें इसका गर्व है कि हम एक ऐसा संविधान बना रहे हैं जिसके फलस्वरूप हमें आशा है कि भारतीय इतिहास में प्रथम बार एक लोकतन्त्रात्मक तथा शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण होगा। जैसा कि मैं बता चुका हूं, राज्यों के तथा प्रान्तों के लोगों के सहयोग से ही इस उद्देश्य की पूर्ति हुई है और भारत के इतिहास में प्रथम बार लोगों की सर्वसत्ता पर आधृत लोक-राज अस्तित्व में आ रहा है। इसलिये मुझे आशा है कि देश में किसी स्थान पर अथवा किसी राज्य में सभी संघांगों के लिये एक ही संविधान बनाने के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं होगा।

इस सम्बन्ध में इतना कह कर श्रीमान, इस सभा के सामने जो प्रस्ताव रखे गये हैं उनके विवरण के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना चाहता हूं। सभा के सामने जो मुख्य प्रस्ताव तथा संशोधनों के मसौदे रखे गये हैं उनसे मैं सहमत हूं और मैं आशा करता है कि इस सभा में उपस्थित प्रतिनिधियों को जिन में देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हैं, उन्हें स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। सामान्यत: स्थिति यह है कि संविधान के भाग 6 में विभिन्न प्राधिकारियों के जो अधिकार, शक्तियां तथा उत्तरदायित्व रखे गये हैं वही अधिकार, शक्तियां तथा उत्तरदायित्व देशी राज्यों के तत्स्थानी प्राधिकारियों के भी रखे गये हैं। कुछ अन्तर अवश्य है कि और उसके लिये भी उपबन्ध रखे गये हैं। मूलाधिकारों और नागरिकता के अधिकारों के सम्बन्ध में हमेशा यही विचार किया गया कि ये सभी इकाइयों में एक समान होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन प्रदेशों के संविधानों के सम्बन्ध में कुछ रूप-भेद करने की आवश्यकता पड़ी है। स्थिति को स्पष्ट करने के लिये मैं उसकी कुछ चर्चा करूंगा क्योंकि कुछ माननीय सदस्यों ने पूछा है, "यदि आप एक ही संविधान चाहते हैं तो आप रूप-भेद क्यों चाहते हैं? आपको भाग 6-क की आवश्यकता ही क्या है?" इस प्रश्न का उत्तर मैं आसानी से दे सकता हूं।

किन्तु कल सरदार पटेल ने इस सम्बन्ध में जो स्पष्ट विस्तृत वक्तव्य दिया है वह इस प्रकार के प्रश्नों का यथोचित उत्तर है।

श्रीमान, पहले मैं यह बताना चाहता हूं कि सम्बन्धित राज्यों के संविधानिक प्रधानों के सम्बन्ध में रूप-भेद करने की आवश्यकता पड़ी है। प्रान्तों में संविधानिक प्रधान राज्यपाल होगा। देशी राज्यों के इतिहास को तथा उनकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए उनके लिये एक भिन्न प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ी। चूंकि भिन्न प्रकार की व्यवस्था करनी थी इसलिये कुछ रूप भेद करने की आवश्यकता पड़ी और सभा के सामने एक संशोधन रखा गया। देशी राज्यों में संविधानिक प्रधान राजप्रमुख होगा। यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि चाहे संविधानिक प्रधान को जिस नाम से ही कहा जाये, जहां तक उसकी शक्तियों का सम्बन्ध है, वे बिल्कुल वही हैं जो प्रान्तों के राज्यपालों को प्रदान की गई हैं। इसलिये यद्यपि राजप्रमुख संविधानिक प्रधान होगा, उसकी शक्तियां किसी राज्यपाल से न तो कम होंगी और न अधिक।

इस शब्द की परिभाषा के सम्बन्ध में कुछ मतभेद हैं। यह कहा गया है कि "राजप्रमुख" शब्द का यह आशय है कि वह कई राजाओं का प्रमुख होगा, इसलिये ऐसे राज्यों के राजाओं के लिये यह काम में नहीं लाया जा सकता जहां एक ही राजा है। "राजप्रमुख" शब्द की परिभाषा करने से इस दोष का निवारण हो जायेगा और वह परिभाषा यथोचित अवसर पर सभा के सामने रखी जायेगी। विभिन्न राज्यों में जो विभेद है उसे परिभाषा में स्वीकार किया गया है और यह कहा गया है कि "राजप्रमुख" से अभिप्रेत होगा हैदराबाद का निजाम। जम्मू और काश्मीर तथा मैसूर के राज्यों में राजप्रमुख से महाराजा अभिप्रेत होगा किन्तु शर्त यह है कि उन्हें इस रूप में संघ का राष्ट्रपति स्वीकार करें। इसमें कोई बात आश्चर्यजनक नहीं है। अंग्रेजों के शासन-काल में जो व्यवस्था थी उसके अधीन भी स्वीकृति की शर्त थी। अब कोई नई शर्त नहीं रखी जा रही है। यद्यपि राज्यों के संविधानिक प्रधान के लिये इससे अच्छा कोई शब्द रखा जा सकता था किन्तु अभी तक जो प्रसंविदायें की गईं हैं उनमें इसी शब्द को प्रयोग किया गया है इसलिये "राजप्रमुख" शब्द को ही रखा जा रहा है।

विधायी शक्तियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विभेद नहीं किया गया है। प्रान्तों और देशी राज्यों की विधायी शक्तियां बिल्कुल एक समान होंगी और इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं इस सम्बन्ध में अधिक कुछ कहूं।

वित्तीय व्यवस्था के सम्बन्ध में श्रीमान, मैं केवल एक शब्द कहूंगा। इस सम्बन्ध में भी हम जो उपबन्ध रख रहे हैं उनका आधार यह है कि प्रान्तों तथा केन्द्र के सम्बन्ध तथा देशी राज्यों और केन्द्र के सम्बन्ध बिल्कुल एक समान हों। जब इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जायेगा तो इसका अर्थ यह होगा कि देशी राज्यों की वित्तीय व्यवस्था बहुत कुछ विशृंखल हो जायेगी। पिछले कुछ महीनों से किसी ऐसी व्यवस्था को रखने का प्रयास किया जाता रहा है जिससे एकरूपता का सिद्धान्त भी व्यवहार में आ जाये और देशी राज्यों की वित्तीय व्यवस्था भी विशृंखल न होने पाये। संघीय वित्त-एकीकरण समिति ने, जिस के सभापति सर वी.टी. कृष्णमाचारी

[श्री के. चेंगलाराय रेड्डी]

थे, इस प्रश्न पर पूर्ण रूप से विचार किया है और इस सम्बन्ध में लगभग सभी राज्यों ने अस्थाई रूप से एक करार पर हस्ताक्षर किये हैं। इस सम्बन्ध में मेरा एक निवेदन है। केन्द्र के साथ राज्य जो करार करेंगे उसकी अवधि केवल दस वर्ष रखी गई है। मेरा यह अनुरोध है कि दस वर्ष की यह अवधि भी बढ़ा दी जाये और पन्द्रह वर्ष की अवधि रखी जाये ताकि संघीय वित्त-विषयक करार के फलस्वरूप उन्हें जिस कठिनाई का सामना करना पड़ेगा उसे वे दूर कर सकें। सम्बन्धित क्षेत्रों में इस प्रस्ताव पर विचार किया गया है और मुझे आशा है कि हमारे इस सुझाव पर अधिकारी गम्भीरता से तथा सहानुभूति से विचार करेंगे।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, राज्यों की सीमाओं के पुनर्निश्चयन के सम्बन्ध में, कुछ मतभेद रहा है। आरम्भ में इस आदरणीय सभा ने खण्ड (3) को जिस रूप में पारित किया था उसके अधीन यह उपबन्ध था कि भाग-1 में उल्लिखित प्रान्तों की सम्मति ली जायेगी और भाग 3 में उल्लिखित राज्यों की सहमति प्राप्त की जायेगी। मैसूर की संविधान सभा का यह मत था कि देशी राज्यों की सीमाओं के पुनर्निश्चयन के सम्बन्ध में पहले राज्यों की सहमति प्राप्त की जाये। इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं यह बताऊं कि मैसूर की संविधान सभा ने यह निर्णय क्यों किया और इस प्रकार की सिफारिश क्यों की। इसे ध्यान में रखते हुए कि प्रान्तों की केवल सम्मति लेना ही आवश्यक समझा गया है हमारे सामने अब यह प्रस्ताव रखा गया है कि राज्यों के सम्बन्ध में भी यही किया जाये और इस विषय के सम्बन्ध में भाग 1 में उल्लिखित प्रान्तों और भाग 3 में उल्लिखित राज्यों में विभेद न किया जाये। मैं इस सम्बन्ध में अधिक कुछ न कह कर सभा का ध्यान सरदार पटेल के कल के वक्तव्य की ओर आकृष्ट करता हूं। उन्होंने निश्चित शब्दों में कल कहा कि चाहे राज्यों के विधान मंडलों की सहमति ली जाये अथवा प्रान्तों के विधान मंडलों की सम्मति ली जाये, जब कभी सीमाओं के पुनर्निश्चयन का प्रश्न उठेगा लोगों की इच्छाओं की उपेक्षा नहीं की जायेगी। उन्होंने यह भी कहा कि भारत सरकार तथा संसद सम्बन्धित राज्य की इच्छाओं की भी उपेक्षा नहीं करेंगे। इस आश्वासन को दृष्टि में रखते हुए मैं इस विषय पर अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता।

समान्त करने के पूर्व मैं एक और महत्वपूर्ण प्रश्न के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं। इस समय जो प्रस्ताव विचाराधीन है उसका उद्देश्य भाग-1 में उल्लिखित प्रान्तों तथा भाग-3 में उल्लिखित राज्यों को समान स्तर पर रखना ही है। श्रीमान, इस प्रसंग में सरदार पटेल ने कहा कि प्रस्तावित अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में "लोग कुछ निराश हुए हैं। उसके सम्बन्ध में" इस सभा में माननीय सदस्य विभिन्न मत व्यक्त कर चुके हैं। मैं आदरपूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 306-ख से प्रत्यक्षत: यह प्रकट होता है कि उसके द्वारा प्रान्तों और राज्यों में विभेद किया गया है। इसलिये सम्भवत: यह प्रश्न उठता है कि आखिर

यह विभेद क्यों किया जा रहा है। यदि उद्देश्य यह है कि प्रान्तों और राज्यों को समान स्तर पर रखा जाये तो इस अनुसूची के भाग-3 में उल्लिखित राज्यों को अनुच्छेद 306-ख में वर्णित नियंत्रण के अधीन क्यों रखा जा रहा है? यदि मैं यह न बताऊं कि जहां तक मैसूर की संविधान सभा का सम्बन्ध है उसने एकमत होकर यह सम्मति प्रकट की है कि यह अनुच्छेद मैसूर राज्य को लागू न किया जाये तो मैं अपने कर्तव्य का पालन न करूंगा।

श्रीमान, हम राज्यों के लोग समान संविधान की हमेशा मांग करते रहे हैं और उसके लिये आन्दोलन करते रहे हैं ओर यही आशा करते रहे हैं कि प्रान्तों और राज्यों के बीच विभेद नहीं किया जायेगा। दिखाई यह देता है कि इस अनुच्छेद 306-ख द्वारा विभेद किया गया है। मेरा निवेदन है कि इस समस्या को हल करने में हमारी हमेशा यही इच्छा रही है कि भारत की सुस्थिरता तथा सुरक्षा पर जरा भी आंच न आये। हम प्रत्येक प्रस्ताव पर इसी आधारभूत दृष्टिकोण से विचार करना चाहते हैं। यदि राज्य मंत्रणालय की यह धारणा है कि इस समय स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये तथा राज्यों में और अन्यत्र लोकतन्त्र की जड़ों को सींचने के लिये इस प्रकार की शक्ति की आवश्यकता है तो मुझे उसकी इस धारणा पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु इसे ध्यान में रखना चाहिये कि यह खण्ड भाग 3 में उल्लिखित सभी राज्यों में समान रूप से प्रयोग में नहीं लाया जा सकता।

इस अवसर पर मैं केवल मैसूर के सम्बन्ध में बोल रहा हूं। पिछली कई दशाब्दियों से मैसूर में सुव्यवस्थित प्रशासन रहा है। मैसूर की अपनी स्थाई सेवा है, जिस पर मैसूर ही नहीं बल्कि भारत भी गर्व कर सकता है। मैसूर में देशी राज्यों से ही पहले नहीं बल्कि प्रान्तों से भी पहले 1881 में एक लोकतंत्रात्मक सभा स्थापित हो गई थी। 1907 में विधान परिषद् के नाम से दूसरी सभा अस्तित्व में आ गई। इस प्रकार पिछले कई वर्षों से मैसूर के लोगों का लोकतंत्रात्मक संस्थाओं से परिचय रहा है। यह सच है कि कार्यपालिका का पूरा प्राधिकार दीवान को ही प्राप्त था। किन्तु यह कथन अकाट्य है कि कई वर्षों से मैसूर को लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं का अनुभव रहा है।

इसे दृष्टि में रखते हुए यह उचित नहीं होगा कि मैसूर के समान किसी राज्य को अनुच्छेद 306-ख के उपबन्ध लागू किये जायें। सरदार पटेल ने इस सभा में कृपा करके कल अपने वक्तव्य में कहा कि यह स्पष्ट है कि मैसूर, त्रावणकोर तथा कोचीन के राज्यों के सम्बन्ध में, जहां बहुत काल से लोकतन्त्रात्मक संस्थायें अस्तित्व में रही हैं और मंत्री विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी रहे हैं, भिन्न प्रकार का व्यवहार करने की आवश्यकता पड़ेगी। मुझे पूरी आशा है कि अनुसूची के भाग-3 में उल्लिखित अन्य राज्यों के सम्बन्ध में भी अनुच्छेद 306-ख द्वारा केन्द्र को जो शक्तियां प्रदान की जा रही हैं उन्हें प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हमारे नेताओं की सूझ तथा राजनीतिज्ञता के कारण तथा देशी राज्यों के लोगों के सहयोग के कारण आज हमें वह दिन देखने को मिला है जब हम अपने कार्यों पर गर्व कर सकते हैं। भले ही यह अनुच्छेद 306-ख संविधान में समाविष्ट कर दिया जाये, मुझे आशा है कि भविष्य में केन्द्र को किसी कारण इस अनुच्छेद के उपबन्धों को प्रयोग में लाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मुझे आशा है कि यह अनुच्छेद संविधान में एक निष्प्राण अनुच्छेद रहेगा। कम से कम मुझे यह आशा तो है ही कि अनुच्छेद 306-ख मैसूर राज्य को नहीं लागू किया जायेगा।

[श्री के. चेंगलाराय रेड्डी]

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता। कल यह कहा गया था कि राज्यों तथा प्रान्तों के लोगों के सहयोग के फलस्वरूप ही हम आज यह निर्णय करने में समर्थ हैं। हमें इस पर गर्व है और हमें इस पर हर्ष भी है। मैं राज्य-मंत्रालय को इस कार्य के लिये नम्रतापूर्वक बधाई दे चुका हूं। किन्तु अभी हमें इससे भी बड़ा कार्य सम्पन्न करना है। हम सहयोग से कार्य करते रहें ताकि वास्तविक अर्थ में स्वराज्य की स्थापना हो सके। अभी हमें सामाजिक तथा आर्थिक लोकतन्त्र को स्थापित करना है। हम अपने राजनैतिक स्वातन्त्र्य को तथा अपने संविधान को इस प्रकार व्यवहार में लायें कि भारत का सम्मान बहुत ऊंचा हो जाये। मुझे पूरा विश्वास है कि भविष्य में भी पहले के समान परिश्रम, सहयोग तथा तल्लीनता का परिचय दिया जायेगा और यह संविधान बड़ी सफलता के साथ कार्यान्वित होगा।

इन शब्दों के साथ मैं सिफारिश करता हूं कि मसौदा समिति ने सभा के समक्ष जिन संशोधनों को रखा है उन्हें स्वीकार कर लिया जाये और साथ ही मैं सम्बन्धित अधिकारियों से अपील करता हूं कि वे यदि किसी राज्य में विशेष स्थिति देखें तो इस संविधान के इन उपबन्धों को, जो अभी पारित होने जा रहे हैं, प्रयोग में लाते समय उस पर विचार करें।

***श्री जयनारायण व्यास** (संयुक्त राज्यः राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, कल हमें सरदार वल्लभभाई पटेल का उत्कृष्ट वक्तव्य पढ़कर सुनाया गया और हमने कांग्रेस के प्रधान डॉ. पट्टाभी सीतारमैय्या का ओजस्वी भाषण भी सुना जिसमें उन्होंने सरदार पटेल के वक्तव्य का समर्थन किया और देशी राज्यों के लोगों के लिये उन्होंने जो कुछ किया है उसकी सराहना की। हमने कुछ अन्य माननीय सदस्यों के भी भाषण सुने, जिनमें श्री सिधवा जी एक थे, जिन्होंने देशी राज्यों के लोगों को पिछड़े हुए लोग कहा।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैंने यह नहीं कहा कि सभी देशी राज्य पिछड़े हुए हैं।

***श्री जयनारायण व्यासः** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि वे हमें पिछड़ा हुआ नहीं समझते। हम पिछड़े हुए हो सकते हैं किन्तु श्रीमान, मैं आपको तथा आपके द्वारा भारत सरकार को तथा विशेषतः राज्य-मंत्रणालय को आश्वासन देता हूं कि हम कृतज्ञ लोग भी हैं और हम माननीय उप-प्रधानमंत्री, सरदार वल्लभभाई पटेल के कृतज्ञ हैं और हमें यह पूर्णतया विदित है कि 562 देशी राज्यों को सात राज्यों में परिणत करके उन्होंने देश का नक्शा ही बदल दिया है।

मैं संशोधनों के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। मैं मुख्यतः अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में ही बोलूंगा जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति कह चुका है, ऊपरी तौर पर वह अनुच्छेद घृणित प्रतीत होता है और दिखाई यह देता है कि यह देशी

राज्यों के लोगों अर्थात राज्यों के प्रशासन पर दस वर्ष तक निगरानी रखने के लिये बनाया गया है। किन्तु सरदार वल्लभभाई पटेल का वक्तव्य सुनने के पश्चात् इसका विरोध करने को जी नहीं चाहता। उन्होंने कई बातों की चर्चा की थी और मैं, राज्यों के कार्य का तथा थोड़े समय तक वहां के प्रशासन का अनुभव होने के कारण यह कह सकता हूं कि प्रशासकों को अनुभव न हाने के कारण भी इस अनुच्छेद को समाविष्ट करने की आवश्यकता समझी गई है। प्रशासकों के वास्तविक तथा काल्पनिक दोषों के कारण तथा अन्य बातों को भी ध्यान में रखकर इस अनुच्छेद को रखा गया है। सम्भवत: श्री सिधवा तथा अन्य लोगों को यह विदित न हो किन्तु राज्यों में बहुत कुचक्र रचे जाते हैं। राज्यों में सुयोग्य प्रशासक न हो किन्तु ऐसे कुचाली लोग होते हैं जैसे और प्रान्तों में नहीं होते और जो कानाफूसी कर के अथवा गन्दी चालें चल कर कुचक्र रचते रहते हैं। इस प्रकार के लोग हैं और यदि भारत सरकार वहां के प्रशासन को कुचक्रों से मुक्त करना चाहती है तो मैं उसे दोष नहीं दे सकता।

इसके अतिरिक्त मैं यह भी बताना चाहता हूं कि राज्यों का इतना शीघ्र एकीकरण हुआ है कि बहुत सी बातों पर विचार नहीं किया जा सका है। पहले से योजना बनाई जानी चाहिये थी, किन्तु पहले से योजना बनाने के लिये समय ही नहीं था। राज्यों का यह निर्माणकाल है। और अभी उनका पूर्ण निर्माण नहीं हुआ है। इस कारण भी विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता है। श्रीमान, मैं भी उन लोगों में से हूं जो इसके लिये सहमत हुए थे कि जिन राज्यों में विधान मंडल नहीं हैं वहां यह प्रबन्ध तब तक रहे जब तक वहां विधान-मंडल न स्थापित हो जाएं और उसके पश्चात् केन्द्र के ये निर्बन्धन अथवा प्रबन्ध अथवा नियंत्रण, समाप्त कर दिये जाएं। किन्तु अब इस अवधि को बढ़ाकर दस वर्ष कर दिया गया है। जैसा कि श्री रेड्डी अभी बता चुके हैं, मुझे भी यह आशा है कि राज्यों के प्रशासन पर नियंत्रण रखने के लिये इस अवधि का आश्रय नहीं लिया जायेगा। वास्तव में इस राज्य के निवासी स्वयं इसके लिये सचेष्ट होंगे कि ये निर्बन्धन तथा नियंत्रण उनको लागू न हों।

राज्यों में कठिनाई यह थी कि राज्यों के लोगों को कभी अवसर ही नहीं दिया गया। एक वक्ता महोदय ने बताया कि राज्यों में पुस्तकालय खोलने पर भी निर्बन्धन लगाये गये थे। श्रीमान, यह सच है। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि स्कूलों तथा छात्रालयों के खोलने पर भी निर्बन्धन थे। जिन लोगों के प्रदेश में स्कूलों, पुस्तकालयों, छात्रावासों के खोलने पर तथा समाचारपत्रों के निकालने तथा उन्हें पढ़ने पर निर्बन्धन हों उनके लिये संसार की गतिविधि को समझना बहुत कठिन होता है। किन्तु इस पर भी, मैं आपको बताना चाहता हूं कि देशी राज्य प्रजा परिषद् की 1927 में स्थापना होने के पश्चात् देशी राज्यों के लोगों में बहुत जागृति दिखाई देती है और वे अब वैसे नहीं रह गये हैं जैसे कि 1927 के पहले थे। श्रीमान यदि वहां के लोगों को अवसर दिया गया तो वे प्रान्तों के लोगों के पीछे नहीं रहेंगे। इसके विपरीत मैं समझता हूं कि दस वर्ष के पश्चात् अथवा दस वर्ष के पूर्व भी, एक समय ऐसा भी आ सकता है जबकि देशी राज्यों के लोग यह कहेंगे

[श्री जयनारायण व्यास]

कि कुछ प्रान्त बहुत पिछड़े हुए हैं और उन प्रान्तों पर निर्बन्धन लगाये जाने चाहिये न कि उन पर। श्रीमान, ऐसा समय भी आ सकता है।

जब लोग साधारणतया सभी राज्यों के पिछड़े हुए होने की चर्चा करते हैं तो मुझे दुख होता है। कुछ राज्य पिछड़े हुए हो सकते हैं किन्तु कुछ राज्य कुछ विशेष कारणों से पिछड़े हुए हैं और कुछ राज्य तो प्रान्तों से भी अधिक समुन्नत हैं। उदाहरण के लिये मैसूर के राज्य को लीजिये अथवा त्रावणकोर और कोचीन के राज्य को लीजिये। मैं निकटवर्ती अथवा पूर्व में या उत्तर में या दक्षिण में या पश्चिम में स्थित प्रान्तों को नहीं बताना चाहता किन्तु इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि कुछ राज्यों में उनसे कहीं अच्छा प्रशासन है। यदि आप सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करें तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि कुछ राज्यों में प्रान्तों से कहीं अच्छे सांस्कृतिक केन्द्र, इमारतें, आवास-गृह हैं और लोगों के लिये अधिक सुविधायें हैं। श्रीमान, मेरे अपने राज्य में—जी नहीं श्रीमान, मुझे खेद है, मेरी कमिश्नरी में—जो अब राजस्थान का भाग हो गई है बहुत अकाल पड़ते रहते हैं। किन्तु हमने जोधपुर को बंगाल नहीं होने दिया। हमने लोगों की रक्षा की, हमने उन पर बहुत धन व्यय किया हजारों लाखों रुपया नहीं बल्कि करोड़ों रुपया खर्च किया। जो लोग यह समझते हैं कि लोकतंत्र की दृष्टि से हम बहुत समुन्नत नहीं हैं उन्हें मैं यह बताना चाहता हूं कि मनुष्यत्व की दृष्टि से देशी राज्य कई प्रान्तों से अधिक समुन्नत रहे हैं, और मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि यदि उन्हें अवसर दिया गया तो वे उस संस्कृति और मनुष्यत्व को बनाये रखेंगे जिन्हें संभवतः प्रान्त भूल गये हैं।

मैं एक दो बातों की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। देशी राज्यों में कुछ सामन्तशाही लोग हैं। जिस कमिश्नरी का मैं रहने वाला हूं वहां 90 प्रतिशत भूमि सामन्तशाही जमींदारों की है उनमें से कुछ लोग स्वयं बहुत अच्छे हैं किन्तु सब बातों को देखते हुए मैं यह कह सकता हूं कि राजपूताने की सामन्तशाही राष्ट्र के भविष्य के लिये बाधक सिद्ध होगी। मैं सरदार पटेल से प्रार्थना करता हूं कि वे इस ओर ध्यान दें और राज्यों पर नियंत्रण लगाते समय वे इन सामन्तशाही लोगों पर भी यथोचित नियंत्रण लगायें।

श्रीमान, मेरा यह भी निवेदन है कि अब नरेशों को नागरिकता के अधिकार दिये गये हैं और एक प्रकार से शासनाधिकार उनसे ले लिया गया है। कुछ मामलों में यह नागरिकता का अधिकार लोगों के लिये हानिकर भी हो सकता है। मैं यह नहीं कहता कि वे मानुषिक अधिकारों से वंचित किये जाएं किन्तु चूंकि देशी राज्यों के प्रशासन पर दस वर्ष तक निर्बन्धन लगाये गये हैं, इसलिये मेरे विचार से नरेशों के नागरिकता के अधिकार पर भी निर्बन्धन लगाया जाना चाहिये, अन्यथा अपने अधिकारों को स्वतन्त्रता से प्रयोग करने का अवसर मिलने पर वे राज्यों के प्रशासन पर एकाधिकार स्थापित करने के लिये सभी साधनों को अपनायेंगे। श्रीमान, मुझे आशा है कि प्रशासनों पर नियंत्रण लगाते समय इस ओर भी ध्यान दिया जायेगा।

मैं श्री सिधवा के इस कथन से सहमत नहीं हूं कि देशी राज्यों में प्रशासक नहीं मिलते हैं (*विघ्न*)। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि यह सभी राज्यों के सम्बन्ध में नहीं कहा गया है बल्कि कुछ राज्यों के सम्बन्ध में ही कहा गया है। मैं यह बता चुका हूं कि कठिनाई यह है कि प्रान्तों में जैसे विधान मण्डल रहे हैं और लोकतन्त्र की परम्परा रही है वैसी देशी राज्यों की नहीं रही है। मैं श्री सिधवा को विश्वास दिलाता हूं कि यदि देशी राज्यों को अवसर दिया गया तो वे प्रान्तों से कहीं अच्छे प्रशासकों को जन्म दे सकेंगे। क्या आप महात्मा गांधी को भूल गये हैं? यह स्मरण रखिये कि उनका जन्म एक देशी राज्य में हुआ था। हम शेख अब्दुल्ला को भी नहीं भूल सकते। जब देश संकट में पड़ा हुआ था और जब शत्रु श्रीनगर से केवल चार मील की दूरी पर रह गया था और जब सेना श्रीनगर से बाहर चली गई थी तो उन्होंने श्रीनगर की रक्षा की और हिन्दुओं की रक्षा की तथा नाम पैदा किया। हम सर एस. विश्वेश्वरय्या जैसे प्रख्यात प्रशासक को भी नहीं भूल सकते जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप मैसूर में सुयोग्य प्रशासन स्थापित हुआ है। अभी तक हमें अवसर नहीं दिया गया है और अब हम यह चाहते हैं कि हमें अवसर दिया जाये। (*विघ्न*)। हमें अवसर दिया जायेगा क्योंकि हम स्वयं अवसर प्राप्त कर सकते हैं। एक काम हमने यह किया है कि हमने शासकों की सर्वसत्ता को समाप्त कर दिया है। दूसरी बात यह है कि अब शासक वेतन और भत्ते सीधे-सीधे राज्यों से नहीं पायेंगे। वे अपना हिसाब केन्द्र से तय करें। इसलिये अब शासकों को राज्यों के प्रशासन में तथा उनकी वित्तीय व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं है। यह हमने प्राप्त कर लिया है। अन्य लोगों के समान मेरा भी यह विचार है कि नरेशों पर कुछ नियंत्रण रखने की आवश्यकता है और वह अभी तक नहीं रखा गया है। मुझे विश्वास है कि अब राज्यों में विधान-मंडल स्थापित हो जायेंगे तो कई लोग प्रशासक और विधि निर्माता भी हो जायेंगे और फिर जिस प्रकार का समय अनुच्छेद 306-ख द्वारा हम पर नियंत्रण लगाये जा रहे हैं उस प्रकार नियंत्रण लगाने का अवसर हम सरदार पटेल को नहीं देंगे।

इन शब्दों के साथ मैं उपस्थित किये गये संशोधनों का समान्यत: समर्थन करता हूं और माननीय सरदार पटेल ने जो उत्कृष्ट वक्तव्य दिया और जिसके अनुसार राज्यों के लोग दस वर्ष से पूर्व भी अपने यहां सुधार कर सकते हैं, उसके लिये उन्हें कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं। मैं राज्य मंत्रालय को एक बार और धन्यवाद देता हूं और श्रीमान, मुझे अपने विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान करने के लिये मैं आपको भी धन्यवाद देता हूं।

***कंवर जसवंत सिंह** (संयुक्त राज्य: राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, भाग 6-क के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने के लिये आपने मुझे जो अवसर दिया है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। कल माननीय पटेल ने जो वक्तव्य दिया उसके पश्चात् अब राज्यों के प्रतिनिधियों को अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह गई है। इसलिये मैं कुछ बहुत अनावश्यक बातों के सम्बन्ध में ही बोलूंगा।

[कंवर जसवंत सिंह]

पहली बात यह है कि अनुच्छेद 211-क के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) में कहा गया है कि राजप्रमुख अपने आवास-गृह का किराया नहीं देगा। श्रीमान, इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि लगभग सभी राज्यों में राजप्रमुखों के अपने आवास-गृह हैं और इसलिये किराया देने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मसौदा समिति इस मसौदे पर अन्तिम रूप से विचार करे तो वह कृपा कर के इस प्रश्न पर भी विचार करे।

खण्ड 10 (ख) के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि उसमें त्रावणकोर-कोचीन राज्य के सम्बन्ध में 51 लाख रुपये के लिये उपबन्ध रखा गया है जो देवस्वम् निधि में दिया जायेगा। प्रसंविदा में इसका उल्लेख है कि यह धन संघ के खजाने से दिया जायेगा। अन्य राज्यों में भी इस प्रकार की राशियां देवस्थान विभाग पर व्यय की जाती हैं। मुझे ज्ञात है कि राजस्थान संघ के सम्बन्ध में उदयपुर के महाराणा को एक पत्र भेजा गया है जिस में देवस्थान विभाग के लिये एक बड़ी राशि की प्रत्याभूति दी गई है। जब एक राज्य के लिये इस प्रकार की व्यवस्था की गई है तो मेरे विचार से इस सम्बन्ध में इस स्थल पर एक उपबन्ध रखना चाहिये।

श्रीमान, जहां तक अनुच्छेद 302-क और अनुच्छेद 267-क का सम्बन्ध है, जो देशी राज्यों के शासकों के अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा निजी थैलियों की राशियों के सम्बन्ध मैं है, मुझे उन्हें देखकर बहुत संतोष हुआ। शासकों ने जो सेवायें की हैं और जिस देश भक्ति से प्रेरित होकर उन्होंने हमारे आदरणीय नेता सरदार पटेल का परामर्श स्वीकार किया है उसे दृष्टि में रखकर उनकी प्रतिष्ठा का यथोचित ध्यान रखना चाहिये। उन्होंने अपनी शक्ति का तथा अपने राज्यों का इतनी शिष्टता के साथ परित्याग कर दिया कि यह सर्वथा उचित है कि संविधान में ही उन्हें अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा आय-कर मुक्त निजी थैली की प्रत्याभूति दी जाये।

अब मैं अनुच्छेद 306-ख का प्रश्न उठाता हूं। श्रीमान, यद्यपि मैं एक देसी राज्य का निवासी हूं, परन्तु मैं इस उपबन्ध का स्वागत करता हूं। कुछ राज्य-संघों के लिये तो यह बहुत ही उपयुक्त उपबन्ध है। यह हो सकता है कि त्रावणकोर तथा मैसूर के समान समुन्नत राज्यों के लिये इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता न हो। किन्तु जहां तक मेरे प्रदेश का अर्थात् राजस्थान का सम्बन्ध है, यदि वहां के लिये इस प्रकार उपबन्ध नहीं रखा गया तो देश की सुरक्षा किसी समय संकट में पड़ सकती है। मैं राजस्थान के लिये इस उपबन्ध को इसलिये आवश्यक समझता हूं कि वह पाकिस्तान का सीमावर्ती प्रदेश है। पाकिस्तान तथा हमारे देश के बीच तनातनी होने के कारण यह आवश्यक है कि सीमा पर चौकसी रहे जिसके लिये केन्द्र के नियंत्रण की बहुत आवश्यकता होगी। इसके अतरिक्त वहां एक नवीन मंत्रिमंडल स्थापित किया गया है, जिसे यद्यपि एक राजनैतिक दल का समर्थन प्राप्त है किन्तु उसे राजनैतिक अथवा अन्य प्रकार का अनुभव बहुत कम है, और जैसा

कि कल सरदार पटेल ने अपने वक्तव्य में कहा था, राज्यों में राजनैतिक संगठनों का विभिन्न प्रकार का विकास होने के कारण भी इस प्रकार के नियंत्रण की आवश्यकता है।

इस के अतिरिक्त श्रीमान, हमने देखा है कि राजस्थान के मंत्रिमंडल ने पिछले छः मास में क्या कार्य किया है। इस कारण भी हम यह समझते हैं कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता है। प्रधान मंत्री तथ अन्य मंत्री भी इन स्थानों में, अर्थात् भूतपूर्व देशी राज्यों में जाते रहते हैं। मैं आपको बताऊंगा कि वे क्या करते हैं। वे आते हैं और सार्वजनिक सभाओं में भाषण देते हैं। वे नरेशों को तथा जागीरदारों को गालियां देते हैं और प्रचार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे कोई सारवान कार्य नहीं करते। हमारे आदरणीय नेता सरदार वल्लभभाई पटेल की चेष्टा इसके बिल्कुल विपरीत रहती है। कोई भी ऐसा अवसर नहीं आया है जब उन्होंने देश-भक्ति से प्रेरित होकर शक्ति तथा राज्यों का परित्याग करने के लिये नरेशों की प्रशंसा न की हो। किन्तु दुर्भाग्य से अनुभव न होने के कारण तथा राजनैतिक सूझ और उदारता न होने के कारण, हमारे स्थानीय नेता यह नहीं समझते कि नरेशों ने स्वेच्छा से कितना त्याग किया है। वे यह चाहते हैं कि पहले जैसे बिगड़े हुए सम्बन्ध थे वैसे ही अब भी रहें। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा की मिथ्या धारणा है। वे यह समझते हैं कि पहले जैसा नरेश किया करते थे उन्हीं के समान वे भी सज-धज के साथ निकलें और अपनी शक्ति का परिचय दें। वे यह समझते हैं कि ऐसा करने से वे लोगों में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा सकेंगे और अपनी स्थिति सुदृढ़ कर सकेंगे।

मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता महोदय पंडित जयनारायण व्यास ने जागीरदारों की चर्चा की। मैं सभा को आश्वासन देता हूं कि जागीरदार सबसे प्रथम भारतीय ही हैं। दुर्भाग्य से अथवा सौभाग्य से मैं भी एक जागीरदार हूं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि राजस्थान तथा अन्य स्थानों के जागीरदारों के प्रश्न को सरदार पटेल के समान कोई प्रतिष्ठित नेता सावधानी से हल करे तो, जब नरेशों के प्रश्न के समान जटिल प्रश्न हल हो गया है तो इसे भी हल करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। नरेश और हम लोग, जिनका नरेशों से निकट सम्बन्ध रहा है वैसे ही वफादार भारतीय हैं जैसे देश के कोई अन्य लोग। देशभक्ति में हम किसी से पीछे नहीं हैं और यदि आवश्यकता पड़ने पर देशभक्ति की कभी परख हुई तो हम खरे ही उतरेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं समाप्त करता हूं।

***श्री पी. गोविन्द मेनन** (संयुक्त राज्यः त्रावणकोर और कोचीन): अध्यक्ष महोदय, देशी राज्यों के सम्बन्ध में भाग 6-क को संविधान में समाविष्ट करने के बारे में जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है उसका मैं समर्थन करता हूं और इस सम्बन्ध में अपने कुछ विचार व्यक्त करना चाहता हूं।

मेरा निवेदन है कि भाग 6-क के उपबन्धों के सम्बन्ध में, तथा राज्यों के बारे में जो उपबन्ध रखे गये हैं उन पर जो संशोधन प्रस्तावित किये हैं उनके सम्बन्ध

[श्री पी. गोविन्द मेनन]

में कल और आज इस सभा में बहुत कुछ कहा गया है। इस विषय के सम्बन्ध में बोलने के पूर्व मैं इस सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि इस उपबन्ध को संविधान में समाविष्ट करने का निश्चय कर के सभा ने एक बड़ा कदम उठाया है। जब सभा डॉ. अम्बेडकर के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी तो श्रीमान, एक ऐसी घटना घटित होगी जो भारत के पिछले कुछ वर्षों के इतिहास में अद्वितीय होगी। इस सभा ने अभी तक जो कार्य किया है उस पर वह गर्व कर सकती है किन्तु मैं उससे पूछता हूं कि यदि संविधान में भाग 6-क के समान कोई भाग न होता तो उसका स्वरूप कैसा होता?

जब भारत को शासन की बागडोर दी गई और इस संविधान सभा से समवेत होने के लिये कहा गया तो उस समय प्रान्तों के लिये एक संविधान अर्थात् 1935 का अधिनियम अस्तित्व में था। हमने भारत के भावी संविधान में बहुत कुछ इसी अधिनियम के उपबन्धों को उनका अनुकूलन करके, रखा है। इनके अतिरिक्त हमने मूलाधिकारों, निदेशक सिद्धान्तों तथा पृथक् निर्वाचन मंडलों के बारे में कुछ नये उपबन्धों को रखा है। किन्तु मेरा निवेदन है कि भाग 6-क को समाविष्ट करके हम एक बहुत महत्वपूर्ण घटना का, अर्थात् देशी राज्यों का भारत के अवशिष्ट भाग में समाविष्ट हो जाने का, उल्लेख कर रहे हैं। 1935 के अधिनियम के अधीन भारत के लिये एक बेमेल संघ की कल्पना की गई थी और देशी राज्यों का केन्द्र से नाता जोड़ने के लिये सम्राट के प्रतिनिधि ने बहुत काल तक नरेशों से बातचीत की थी। 1939 में युद्ध छिड़ जाने के कारण यह बातचीत समाप्त कर दी गई और पुरानी ही शासन-व्यवस्था चलती रही। 1946 में मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल आया और उसके पश्चात् स्वातंत्र्य अधिनियम पारित हुआ और उसके फलस्वरूप देशी राज्य एक प्रकार से स्वतन्त्र हो गये।

इस परिस्थिति में सन् 1946 के अन्त में यह संविधान-सभा समवेत हुई और मैं यह स्मरण कराना चाहता हूं कि जब यह पहली बार समवेत हुई तो देशी राज्यों के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित नहीं हुए थे। इस सभा ने एक बातचीत करने वाली समिति नियुक्त की थी। इस सभा ने सबसे पहले जो कार्य किये थे उनमें से यह भी एक था। उसने भारतीय नरेशों के प्रतिनिधियों से बातचीत की और उनसे अनुरोध किया कि वे संविधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजें। जब यह बातचीत चल रही थी तो कुछ क्षेत्रों में संविधान-सभा की योजना को ही विनिष्ट करने का प्रयास किया जा रहा था। किन्तु हमारे नेताओं की दूरदर्शिता के कारण, देशी राज्यों के कुछ राजनीतिज्ञों की दूरदर्शिता के कारण, सारे भारत के लिये संविधान बनाने में सहयोग करने की भारत के लागों की आकांक्षा के कारण अप्रैल 1947 में देशी राज्यों के बारह सदस्य इस संविधान सभा के कार्य में भाग लेने के लिये आ गये।

इसके पश्चात् भी देशी राज्यों की स्थिति को स्पष्ट नहीं किया गया। वे अनिश्चित स्थिति में पड़े हुए थे। जिन लोगों के पास भारतीय संविधान के उस समय के

मसौदे की छपी हुई प्रतियां हैं उन्हें उसके विभिन्न अनुच्छेदों को देखने पर ज्ञात हो जायेगा कि उस समय यह विचार किया गया था कि देशी राज्य पृथक् ही रहेंगे। आप संविधान के मूल मसौदे के कई स्थलों पर भाग-3 में के राज्यों, भाग-1 में के राज्यों तथा विभिन्न करारों का उल्लेख पायेंगे जिन्हें करने पर ही भाग-3 में के राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित हो सकते थे। 1947 में यह स्थिति थी। उस समय, जैसा कि श्री के.सी. रेड्डी ने बताया है, विभिन्न देशी राज्यों में संविधान सभाएं अस्तित्व में लाई गई थी और यह सभा जिस प्रक्रिया का अनुसरण कर रही थी वही देशी राज्यों की संविधान सभाओं में भी अपनाई गई थी, लक्ष्यसम्बन्धी प्रस्ताव पारित किये गये थे, अल्पसंख्यक समितियां मसौदा समितियां आदि नियुक्त की गई थीं।

किन्तु भारत को जब स्वतन्त्रता प्रदान की गई, अथवा जब भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की तो, भारत में तेजी से घटनायें घटित हुईं और भारतीय नेताओं ने उस स्थिति का पोषण नहीं किया जो उन्हें शक्ति हस्तान्तरण के दिन दिखाई दी और इस प्रकार अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। इस समय एक समिति अर्थात् राव समिति स्थापित की गई जो साधारणतया अनुकरणीय संविधान समिति के नाम से कही जाती है। उस समिति को इस उद्देश्य से स्थापित किया गया कि वह यह बताये कि देशी राज्यों के लिये किस प्रकार का संविधान समुपयुक्त होगा। उस समिति में अधिकतर देशी राज्यों के ही सदस्य थे। उस समिति ने यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है कि देशी राज्यों का संविधान यथा-सम्भव प्रान्तों के संविधान के अनुरूप ही हो और यह भी कहा कि इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि देशी राज्यों के लिये प्रान्तों के अध्याय में जो रूपभेद किये जाएं उनका उल्लेख भारतीय संविधान के एक पृथक अध्याय में हो। इसी सुझाव को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान में भाग 6-क को समाविष्ट का करने प्रस्ताव उपस्थित किया गया है।

इस अवसर पर मैं देशी राज्यों तथा प्रान्तों के भी कुछ लोगों की एक भ्रान्ति को मिटाना चाहता हूं। उन्हें यह भ्रम है कि भारतीय संविधान में देशी राज्यों के शासन के सम्बन्ध में एक भाग उच्च पदस्थ लोगों के कहने पर समाविष्ट किया जा रहा है और वास्तव में राज्य-मंत्रणालय उसे थोप रहा है और राज्यों के लोग विवश होकर उसे स्वीकार कर रहे हैं। मैं इस सभा में इस अवसर पर यह घोषित करना चाहता हूं कि उनका यह विचार गलत है। देशी राज्यों के लोग भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के प्रारम्भ से ही प्रान्तों के लोगों के साथ सहयोग करते रहे हैं। देशी राज्यों में विभिन्न संविधान-सभाओं के अस्तित्व में आने का कारण यह था कि 1946 में मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल ने जो वक्तव्य निकाले उनमें और भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम तथा मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल की संविधान सभा की योजना में देशी राज्यों के लिये एक भिन्न प्रक्रिया रखी गई थी। मैं इस अवसर पर उस सभा का स्मरण कराता हूं जो 1946 में मैसूर में हुई थी। जब कि मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल यहां उपस्थित था, जिसमें त्रावणकोर, कोचीन, पुडुकोटाह तथा मैसूर के जन-आन्दोलनों के प्रतिनिधि

[श्री पी. गोविन्द मेनन]

आये थे। उस सभा में लोक प्रतिनिधियों ने एक मत से यह प्रस्ताव स्वीकार किया था कि भारत की संविधान-सभा देशी राज्यों के लिये भी एक संविधान बनाये। अर्थात् राज्य-मंत्रणालय के योजना बनाने के पूर्व ही दक्षिण भारत के देशी राज्यों के लोक प्रतिनिधि मैसूर में मई, 1946 में समवेत हुए और उन्होंने यह निर्णय किया कि भारतीय संविधान सभा ही देशी राज्यों के लिये संविधान बनाये। इसके पश्चात्, जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, राव समिति ने भी, जिसमें अधिकतर देशी राज्यों के ही प्रतिनिधि थे यह निर्णय किया कि यह संविधान-सभा ही सारे भारत के लिये एक संविधान का निर्माण करे क्योंकि यह भारत के लोगों की जिनमें देशी राज्यों के लोग भी सम्मिलित हैं इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

इस प्रसंग में मैं उस प्रस्ताव को सुनाना चाहता हूं जिसे त्रावणकोर-कोचीन राज्य के विधान मंडल ने पारित किया था। वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की उस सभा ने इस प्रस्ताव को पारित करने की आवश्यकता का अनुभव किया। वह प्रस्ताव यह था:-

"त्रावणकोर और कोचीन के संयुक्त राज्य की यह विधान-सभा उसमें सन्निहित शक्ति को प्रयोग करते हुए यह संकल्प करती है कि:

(1) त्रावणकोर-कोचीन राज्य भारतीय राज्य-संघ अर्थात् भारत के राज्यों में से एक राज्य होगा।

(2) त्रावणकोर-कोचीन राज्य के लिये एक पृथक संविधान का निर्माण करना उस राज्य के लोगों की आकांक्षाओं से और भारतीय संघ के एक संघांग के रूप में उस राज्य की स्थिति से असंगत है।

(3) इस राज्य के शासन के सम्बन्ध में संविधान में जो उपबन्ध रखे जाएं वे यथा सम्भव उन्हीं उपबन्धों के समान हों जो उन संघांगों के सम्बन्ध में हों जो प्रान्त कही जाती हैं; और भारतीय संविधान-सभा द्वारा निर्मित भारतीय संविधान इस राज्य को भी लागू होगा।"

इसे देखने के पश्चात् यह विचार करना निरर्थक है कि देशी राज्यों के लोगों की इच्छा इसके अतिरिक्त कुछ और है। उनकी यही इच्छा है कि भारत की संविधान सभा देशी राज्यों तथा प्रान्तों दोनों के लिये संविधान बनाये। देशी राज्यों के लोगों की हमेशा यही इच्छा रही है कि भारत में एकता हो और भारत सरकार देशी राज्यों तथा प्रान्तों दोनों की सरकार हो।

जब एक बार यह आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है और यह समझ लिया जाता है कि देशी राज्यों के लोगों की यह इच्छा है तो राज्य-मंत्रणालय ने पिछले दो या तीन वर्षों में जो कुछ किया है वह तर्कपूर्ण प्रतीत होगा। उनका

यह निर्णय है कि केन्द्र की विधायी तथा कार्यपालिका शक्ति का विस्तार देशी राज्यों तक होगा, सारे संघ के वित्त का एकीकरण होगा और भारत की संविधान सभा देशी राज्यों के संविधान का भी निर्माण करेगी। ये सब बातें इस निर्णय से सुसंगत हैं। मैं सभा को सूचित करना चाहता हूं कि इस पर भी देशी राज्यों में, तथा प्रान्तों में भी, कुछ लोगों को इस सम्बन्ध में भ्रम है। भारत सरकार के प्रभुत्व की उन की दुखद स्मृतियां फिर जाग्रत हो उठती हैं। मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि अंग्रेजों के शासनकाल में भारत सरकार का जिस प्रकार का प्रभुत्व था उससे संघ सरकार का प्रभुत्व बिल्कुल भिन्न होगा। यह आवश्यक है कि संघ सरकार का इस प्रकार का प्रभुत्व हो। 15 अगस्त, 1947 के पूर्व देशी राज्यों के लिये भारत सरकार एक विदेशी सरकार थी और अंग्रेजों की सर्वसत्ता का प्रतिनिधित्व करती थी। इस लिये उन दिनों भारत सरकार जो भी करती थी वह वास्तव में बाहर से हस्तक्षेप समझा जाता था। किन्तु इस संविधान के पारित होने पर भारत सरकार का स्वरूप ही बदल जायेगा। प्रान्तों के लोगों को यह न समझना चाहिये कि वह उन्हीं की सरकार होगी और देशी राज्यों के लोगों को यह न समझना चाहिये कि वह किन्हीं और लोगों की सरकार होगी। संविधान में जब कभी और जहां कहीं "संसद", "राष्ट्रपति" और "भारत सरकार" शब्द आये हैं उनके बारे में यही समझना चाहिये कि उनसे भारत के लोगों की, जिन में देशी राज्यों के लोग भी सम्मिलित हैं, सर्वसत्ता व्यक्त होती है। दूसरे शब्दों में देशी राज्य तथा प्रान्त अपनी सर्वसत्ता का एकीकरण करने तथा भारत में अखंड सर्वसत्ता स्थापित करने जा रहे हैं।

15 अगस्त, 1947 को यह हुआ कि प्रत्येक देशी राज्य सर्वसत्ताधारी राज्य हो गया और देशी राज्यों के नरेश स्वतंत्र हो गये। राज्य-मंत्रालय के पिछले दो या तीन वर्षों के प्रयत्नों के फलस्वरूप देशी राज्यों के नरेशों को अंग्रेजों से जो सर्वसत्ता और स्वतन्त्रता मिली थी वह भारत के लोगों को, देशी राज्यों के लोगों को, सौंप दी गई। इस आधारभूत तथ्य को नहीं भूलना चाहिये। इस वाद-विवाद में एक सदस्य के बाद दूसरे सदस्य ने राज्य मंत्रणालय के कार्यक्रम के दोषों को बताया है, किन्तु दोष बताते हुए हमें इसका स्मरण नहीं रहा कि राज्य-मंत्रणालय ने पिछले दो वर्षों में, अथवा इससे कुछ अधिक काल में, एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। वह कार्य यह है कि उसने देशी राज्यों के नरेशों से अधिक लेकर उसे देशी राज्यों के लोगों को सौंप दिया है।

श्रीमान, इस तर्क में बहुत सार है कि शक्ति के हस्तान्तरण से तब तक लाभ न उठाया जाये जब तक शक्ति हस्तान्तरण के समय जो शर्तें रखी गई थीं उन्हें पूरा किया जाये। सरदार पटेल ने अपने वक्तव्य में कल हम से सारे चित्र को, अर्थात देशी राज्यों की पूरी योजना को, देखने के लिये प्रार्थना की और मेरे विचार से कोई भी तर्कप्रिय व्यक्ति इस पर आपत्ति नहीं करेगा। त्रावणकोर तथा अन्य देशी राज्यों के लोग हमेशा से भारत के लोगों की सर्वसत्ता का समर्थन करते रहे हैं। भारत के लोगों में देशी राज्यों के लोग भी सम्मिलित हैं।

इस कारण आज मैं बहुत हर्ष का अनुभव कर रहा हूं। यह देखकर कि संविधान में यह उपबन्ध रख कर हम भारत में एकता स्थापित करने जा रहे हैं और अब

[श्री पी. गोविन्द मेनन]

देशी राज्यों और प्रांतों में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा मुझे उस आदमी के समान हर्ष हो रहा है जिसका जीवन स्वप्न पूरा हो गया हो। एक दो विषयों के सम्बन्ध में अन्तर किया गया है और यह सभी को विदित है। जहां प्रान्तों में राज्यपाल होंगे वहां देशी राज्यों में राजप्रमुख होंगे। उनके नियुक्ति के ढंग में भी कुछ अन्तर है। उनकी उपलब्धियों में भी कुछ अन्तर है। इसके अतिरिक्त हमारे विचाराधीन जो योजना है उसके अन्तर्गत प्रान्तों और देशी राज्यों के बीच, कोई अन्तर नहीं रखा गया है।

इस विषय के सम्बन्ध में सामान्यत: इन बातों को कहने के पश्चात् मैं एक बात अपने राज्य, अर्थात् त्रावणकोर-कोचीन राज्य के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। प्रस्तावित संशोधनों के सम्बन्ध में श्री के.सी. रेड्डी ने जो कुछ कहा है उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता क्योंकि उनसे अच्छी तरह मैं कुछ कह भी नहीं सकूंगा। सरदार पटेल ने कल अपने वक्तव्य में मैसूर राज्य की तथा त्रावणकोर-कोचीन राज्य की चर्चा की थी और कहा था कि उद्देश्य यह नहीं है कि अनुच्छेद 306-ख त्रावणकोर-कोचीन तथा मैसूर के समान थोड़े बहुत समुन्नत राज्यों को लागू किया जाये। उस वक्तव्य के लिये मैं सरदार पटेल का आभारी हूं। इस अवसर पर मैं यह कहना चाहता हूं कि त्रावणकोर-कोचीन राज्य में बहुत पहले से प्रतिनिधि संस्थाएं रही हैं। यदि मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो मैं समझता हूं कि त्रावणकोर-राज्य में 1860 से ही प्रतिनिधि संस्थाएं रही हैं और कोचीन में 1937 से एक प्रकार का उत्तरदाई शासन रहा है। भारत के किसी देशी राज्य अथवा प्रान्त में वयस्क मताधिकार को व्यवहार में लाने के पूर्व ही इन दो राज्यों में वह व्यवहार में लाया गया है और एक वर्ष पूर्व कोचीन में तथा 6 मास पूर्व त्रावणकोर में उसके आधार पर निर्वाचन हुए हैं। मेरे विचार से मैं यह ठीक ही कह रहा हूं कि त्रावणकोर और कोचीन में भारतीय कांग्रेस तथा उसकी संस्थाओं को पहले पहल वयस्क मताधिकार के आधार पर होने वाले निर्वाचन में भाग लेना पड़ा। इस आधार पर निर्वाचन होने पर भी त्रावणकोर और कोचीन ने कांग्रेस के उम्मीदवारों को विधान-मंडलों के लिये बहुत बड़ी संख्या में निर्वाचित करके उस संस्था को सम्मानित किया।

इन राज्यों के समुन्नत होने के कारण ही कल सरदार पटेल ने यह कहा कि उद्देश्य यह नहीं है कि अनुच्छेद 306-ख के समान कोई उपबन्ध सभी देशी राज्यों को समान रूप से लागू किया जाये। इस वक्तव्य से मेरी यह धारणा हुई कि यदि अनुसूची के भाग-3 में के सभी राज्य मैसूर और त्रावणकोर-कोचीन के समान समुन्नत होते तो सम्भवत: अनुच्छेद 306-ख के समान किसी उपबन्ध को संविधान में समाविष्ट करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

मैं एक बात और कह कर समाप्त कर देना चाहता हूं। अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में देशी राज्यों के लोगों की विभिन्न भावनाएं हैं। त्रावणकोर-कोचीन के निवासी होने के कारण हमने यह विचार किया कि इसकी आवश्यकता नहीं है और विधान-सभा में हमने इस आशय का एक प्रस्ताव पारित किया। किन्तु हम केवल त्रावणकोर-कोचीन की ही स्थिति से परिचित हैं। सरदार पटेल तथा राज्य मंत्रणालय सभी राज्यों तथा प्रान्तों की स्थिति से परिचित हैं और उनका यह विचार

है कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता है। मतभेद होते हुए भी जब हम जो कुछ इस सभा में कहा गया है उसे स्वीकार कर रहे हैं तो वह इस कारण कि जिस व्यक्ति को अधिक सूचना तथा अनुभव प्राप्त हो उसी की बात रहनी चाहिये। साथ ही, जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम इसके लिये आभारी हैं कि राज्यों की स्थिति में जो अन्तर है उसे राज्य-मंत्री ने स्वीकार किया है। इन शब्दों के साथ श्रीमान, जो संशोधन सभा में उपस्थित किये गये हैं उनका मैं हृदय से समर्थन करता हूं। श्रीमान, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री हिम्मत सिंह के. महेश्वरी** (सिक्किम और कूच बिहार राज्य): अध्यक्ष महोदय यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं सभा के केवल दो तीन मिनट लूंगा और केवल उस संशोधन के सम्बन्ध में बोलूंगा, जिसे मेरे माननीय मित्र श्री दास ने उपस्थित किया था, और जो कुछ भत्तों पर आय-कर के सम्बन्ध में है। विचाराधीन प्रस्तावों में शासकों की निजी थैली को बनाये रखने और उसे सभी करों से मुक्त रखने की प्रत्याभूति दी गई है। किन्तु अन्य भत्तों के सम्बन्ध में यह उन्मुक्ति नहीं है। इसका प्रभाव राजमाताओं, भूतपूर्व शासकों की विधवाओं पर पड़ेगा, जिन्हें अपने जीवन-काल तक ही भत्ते मिलेंगे। यदि उनके भत्तों से आय कर तथा उत्तर कर की राशि घटा दी गई तो उन्हें बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। उन महारानियों और रानियों के भत्ते, जिन के पति सौभाग्य से जीवित हों, आय कर से मुक्त होंगे और वे शासक की निजी थैली का भाग समझे जायेंगे। यदि दुर्भाग्य से इनमें से कोई महिला विधवा हो जाये तो मेरे विचार से उसकी स्थिति पहले के समान ही रहेगी और वे अपने लड़कों से भत्ते पाती रहेंगी और ये भत्ते शासक की निजी थैली का भाग होने के कारण आय-कर से मुक्त होंगे। इस प्रकार सधवा महारानियों और रानियों तथा उन विधवा महारानियों और रानियों के बीच, जिन के पति वर्तमान प्रसंविदाओं के अस्तित्व में आने के पूर्व मर गये हों, इन उपबन्धों द्वारा विभेद बरता जायेगा। श्रीमान, मेरे विचार से, राजपरिवार की इन महिलाओं के भत्तों की तुलना वेतनों से नहीं की जा सकती। ये भत्ते पोषण के लिये हैं। ये महिलाएं पहले सुख और सम्पन्नता में जीवन बिताती रही हैं। अब वे यह देखेंगी कि आय कर के कारण उनके भत्ते बहुत कम होते जा रहे हैं। सभा को यह विदित है कि राष्ट्रपति, राज्यपालों तथा कुछ अन्य प्रतिष्ठित लोगों के भत्ते आय कर से मुक्त किये जाने वाले हैं। केवल उनके वेतनों पर कर लग सकता है भत्तों पर नहीं।

इसलिये मैं माननीय उप-प्रधान मंत्री महोदय तथा इस सभा से अपील करता हूं कि वे इस विषय पर स्त्री-सम्मान की दृष्टि से तथा उदारता से विचार करें और जितने समय तक ये थोड़ी सी अभागिन महिलाएं जीवति रहें उतने समय तक उनके जीवन को दुखद न बनायें। कुछ देशी राज्यों में श्रीमान; इन अभागिन महिलाओं का जीवन इस समय भी बहुत दु:खद है। अपने पुत्रों से उनके सम्बन्ध बिगड़े हुए हैं। यदि उन के भत्तों को बहुम कम किया गया तो वे बहुत दुखी हो जायेंगी। क्योंकि वर्तमान शासकों से उन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। मुझे आशा है कि यह सभा इस पर विचार करेगी और कम से कम विधवाओं को आय कर तथा अन्य करों से मुक्त कर देगी।

***अध्यक्ष:** श्री गोकुल लाल असावा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं उन्हें बुला चुका हूं।

***श्री गोकुल लाल असावा** (संयुक्त राज्य: राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, इस ऐतिहासिक अवसर पर जब देशी राज्यों के लोगों के इतिहास का एक नवीन अध्याय आरम्भ होने जा रहा है, मैं अपने कुछ विचार व्यक्त करना चाहता हूं। सरदार साहिब के स्पष्ट तथा विस्तृत वक्तव्य के पश्चात् मेरे विचार से हमें बिना किसी कठिनाई अथवा संकोच का अनुभव किये हुए प्रस्तुत संशोधनों को, विशेषत: अनुच्छेद 306-ख को, स्वीकार कर लेना चाहिये। मेरे विचार से इस प्रकार के उपबन्धों को संविधान में समाविष्ट करने का किसी कारण विरोध नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त यद्यपि प्रसंविदा के उपबन्ध में कहा गया है कि राजप्रमुख तथा मंत्रिपरिषद् दोनों अपने कृत्यों के निर्वहन के सम्बन्ध में सामान्यत: भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन होंगे किन्तु वर्तमान अनुच्छेद में यह कहा गया है कि केवल राज्यों की सरकारें सामान्य नियंत्रण के अधीन रहेंगी। मेरे विचार से यह एक सुधार है।

एक बार और कह कर मैं समाप्त कर दूंगा। जहां तक मैं इस सभा में तथा इसके बाहर कुछ लोगों की भावनाएं समझ पाया हूं, आपकी आज्ञा से मैं यह कहना चाहता हूं कि उन्हें पहले और आज भी जिस बात से थोड़ी बहुत चिंता है वह सामान्य नियंत्रण का सिद्धान्त नहीं है किन्तु उसे प्रयोग में लाने का ढंग, उपाय तथा उस उपाय का विस्तार है। मुझे आशा है कि जिन लोगों पर सामान्य नियंत्रण आदि रखने का दायित्व होगा वे इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अब कोई महोदय नहीं बोलना चाहते। श्री मुंशी, क्या आप उत्तर देंगे?

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, सरदार पटेल की विस्तृत तथा ओजस्वी विवेचना के पश्चात् अब किसी विस्तृत उत्तर की आवश्यकता नहीं रह गई है। मैं केवल एक दो प्रश्नों की चर्चा मात्र करूंगा। पहले मैं अनुच्छेद 274 घ-घ को उठा रखने के लिये सभा की अनुमति चाहता हूं। कहा गया है कि उस में कुछ पारिभाषिक दोष रह गया है और मसौदा-समिति उस की परीक्षा करना चाहती है। जहां तक संशोधनों का सम्बन्ध है, मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् द्वारा उपस्थित दो संशोधनों को, अर्थात् संशोधन संख्या 276 और 278 को, स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। इन दो संशोधनों के अतिरिक्त मैं अन्य संशोधनों का विरोध करता हूं। उनकी व्याख्या की जा चुकी है और इसकी आवश्यकता नहीं है कि सभा इन संशोधनों को स्वीकार करे।

मैं एक दो विषयों की चर्चा करना चाहता हूं। जैसा कि प्रोफेसर असावा ने अभी कहा था अनुच्छेद 306-ख एक बहुत उपयोगी उपबन्ध है और मुझे विश्वास

है कि जिन सदस्यों को इस पर आपत्ति थी उन्हें भी अब संतोष हो गया होगा। अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में जो नीति है उसे अधिकृत रूप से सरदार पटेल ने बयान कर दिया है और मेरे विचार से इस बारे में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। वक्तव्य में यह गया है और मैं स्वतन्त्र रूप से भी यह मत प्रकट करता हूं, कि कोई कारण नहीं है कि मैसूर तथा त्रावणकोर कोचीन के संघ को अनुच्छेद 306-ख लागू किया जाये, क्योंकि मैं इन राज्यों की स्थिति से परिचित हूं। जब तक ये राज्य भूतपूर्व दीवानों से प्राप्त सुस्थिर प्रशासन का परित्याग न करें तब तक इस उपबन्ध को लागू करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और मुझे इस का हर्ष है कि जिस प्रकार वहां का प्रशासन इस समय चल रहा है उसके अधीन उस परम्परा की रक्षा होगी।

अपने मित्र श्री जयनारायण व्यास की केवल दो बातों के सम्बन्ध में मैं बोलना चाहता हूं। एक बात उन्होंने यह कही कि देशी राज्यों में सामन्तशाही पर नियंत्रण रखना चाहिये। उस पर केवल प्राधिकार-प्रयोग से नियंत्रण नहीं रखा जा सकता। विधि द्वारा, अथवा शक्तिप्रयोग से, उनकी जड़ उखाड़ने से उन पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता। देशी राज्यों में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित होने से उनका प्रभाव तथा उनकी प्रतिष्ठा कम हो गई है। किन्तु उन्हें बिल्कुल ही समाप्त नहीं किया जा सकता। लोगों को चाहिये कि वे उन सामन्तों को समाज के ही अंग बनाने का प्रयास करें। देश की स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है उसके पूर्व यह कहा जा सकता था कि "सामन्तों को समाप्त कर देना चाहिये", किन्तु जो लोग क्रांति के पश्चात् भी सुरक्षित हैं वे अन्य लोगों के समान की गणराज्य के नागरिक हैं। किन्तु लोगों का और विशेषत: प्रशासन का यह कर्तव्य है कि वे विधि के शासन को इस प्रकार स्थापित करें कि सामन्तशाही के सभी अवशेष समाप्त हो जाएं। यह तुरन्त ही नहीं किया जा सकता और यदि तुरन्त ही कोई कदम उठाया गया तो उसका इन राज्यों के लोकतन्त्र पर, जो इस समय शैशवावस्था ही में हैं बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।

उन्होंने दूसरी बात यह कही कि नरेशों को नागरिकता का अधिकार नहीं प्रदान करना चाहिये। हमें हमेशा के लिये यह अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये कि वे सभी व्यक्ति, जिनका भारत में जन्म हुआ है भारत के नागरिक हैं। जैसा कि सरदार पटेल ने कहा है, इस देश में "रक्तहीन क्रान्ति" हुई है किन्तु उसके द्वारा हम विधि-बहिष्कृत लोगों का कोई वर्ग नहीं स्थापित करना चाहते थे। इस प्रकार के दृष्टिकोण से इस समस्या का तुरन्त हल होना तो दूर रहा वह सन्तोषजनक ढंग से भी हल नहीं हो सकेगी। अब देशी राज्यों में बिल्कुल भिन्न राज व्यवस्था स्थापित हो गई है और वहां के नवीन वातावरण में अब जनसाधारण को तथा उन लोगों को जो अभी तक शासक रहे हैं, घुल-मिल कर रहना है। केवल इस प्रकार ही हम इस क्रान्ति को पूर्णतया सफल कर सकते हैं।

श्रीमान, मैं अपने मित्र श्री गोविन्द मेनन के इस विचार से सहमत हूं कि यह एक ऐतिहासिक अवसर है और उसके कारण मुझे उतनी ही प्रसन्नता है जितनी कि उनको है। मुझे स्मरण है कि 1947 के आरम्भ में इस सभा में देशी राज्यों का प्रतिनिधित्व केवल श्री गोविन्द मेनन ही करते थे। उनका यह विचार था कि पुरानी व्यवस्था का समूल अन्त हो जाना चाहिये और देशी राज्यों को अन्य प्रदेशों

[श्री के.एम. मुंशी]

के साथ समाविष्ट कर देना चाहिये। अपने उद्देश्य को फलीभूत होते देख कर उन्हें कितनी प्रसन्नता हो रही होगी इसका मैं आसानी से अनुभव कर सकता हूं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक ऐतिहासिक अवसर है। सरदार पटेल की प्रतिभा तथा राजनीतिज्ञता के कारण हम सारे भारत का एकीकरण करने में सफल हुए हैं (*वाह वाह*)। पाकिस्तान के पृथक् हो जाने के पश्चात् भी भारत एक विशाल देश है और वह इस समय इतना सुगठित तथा संगठित है जितना कि इतिहास में पहले कभी नहीं रहा है। अब यह हमारा कर्त्तव्य है, विशेषत: भावी संसद तथा भावी भारत सरकार का कर्तव्य है कि वे देश के विभिन्न भागों का इस प्रकार एकीकरण करें कि हमारा राष्ट्र एक सुगठित तथा सशक्त राष्ट्र हो सके। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मुगल तथा ब्रिटिश काल के भग्नावशेष इन देशी राज्यों की विभीषिका का अन्त हो गया है और अब भारत के सर्वसत्ताधारी लोग उत्तरोत्तर शक्तिसम्पन्न होंगे और उन आदर्शों को प्राप्त करेंगे जिनका उन्होंने देश के अनुसरण के लिये हमारे संविधान की प्रस्तावना में उल्लेख किया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, क्या मैं जान सकता हूं कि सशस्त्र बलों को संघ के बलों में समाविष्ट करने के सम्बन्ध में मैंने जो संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 246 उपस्थित किया है उसके सम्बन्ध में श्री मुंशी को क्या कहना है?

***अध्यक्ष:** क्या आप उस संशोधन को स्वीकार कर रहे हैं?

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं उस संशोधन को स्वीकार नहीं करता। मैं बता चुका हूं कि श्री सन्तानम् ने जो दो संशोधन उपस्थित किये हैं उनके अतिरिक्त मैं किसी अन्य संशोधन को स्वीकार नहीं करना चाहता।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या देशी राज्यों के सशस्त्र बल संघीय बलों में समाविष्ट नहीं किये जा सकते?

***श्री के.एम. मुंशी:** यह एक अनुच्छेद में स्पष्ट कर दिया गया है कि देशी राज्यों में जो बल रह गये हैं वे संघीय बलों के भाग समझे जायेंगे। यदि माननीय सदस्य 1935 के भारत-शासन-अधिनियम की संघ सूची को देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उसमें एक पृथक शीर्षक इस प्रकार है—"राज्य के सशस्त्र बल"। यह प्रविष्टि निकाल दी गई है। अब भारत की केवल एक सेना होगी। वह संघ की सेना होगी। अनुच्छेद 246 के अधीन राज्यों में जो सेनाओं की टुकड़ियां रह गई हैं वे संघीय सेना में समाविष्ट हो जायेंगी। किन्तु संगठन आदि की दृष्टि से उन्हें पूर्णतया समाविष्ट करने में अभी कुछ समय लगेगा। उस समय तक सभी बातों का विनियमन राष्ट्रपति करेंगे। साथ ही यदि संसद इस कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न करना चाहे तो उसे इसके लिये इस अनुच्छेद द्वारा शक्ति दी गई है। इस समय जैसी स्थिति है उसमें उन्हें तुरन्त ही समाविष्ट नहीं किया जा सकता है। उन्हें पूर्णतया समाविष्ट करने में कुछ समय लगेगा। इसी कारण अनुच्छेद 246 का इस प्रकार मसौदा तैयार किया गया है।

***अध्यक्ष:** अब मैं जो विभिन्न संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन पर मत लूंगा। मैं जिस प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहता हूं वह इस प्रकार है: मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये प्रत्येक संशोधन को उठाऊंगा और प्रत्येक पर अलग मत लेकर उसे निबटा दूंगा। इसके पश्चात् मैं पूरे भाग पर मत लूंगा।

संशोधन संख्या 217, अर्थात् अनुच्छेद 211-क के सम्बन्ध में कई संशोधन हैं। पहले दो, संशोधन संख्या 237 और 238 हैं। इन दो संशोधनों को मि. नजीरुद्दीन अहमद ने उपस्थित किया था। वे बहुत कुछ मसौदे के सम्बन्ध में हैं। मैं कह नहीं सकता कि वे उन्हें मतदान के लिये प्रस्तुत कराना चाहते हैं या नहीं। वे सभा में उपस्थित नहीं हैं। इसलिये मैं उन पर मत लूंगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 211-क में, 'modifications [रूपभेदों]' शब्द के स्थान पर 'adaptations, modifications [अनुकूलनों, रूपभेदों]' शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में,—

(1) प्रस्तावित अनुच्छेद 211-क की मद (3) में 'shall be omitted [लुप्त कर दिये जायेंगे]' शब्दों के स्थान पर 'shall not apply to this part [इस भाग को लागू नहीं होंगे]' शब्द रखे जाएं;

(2) प्रस्तावित अनुच्छेद 211-क की मद (4) के पैरा (क) में 'in clause (1) [खण्ड (1) में]' शब्दों के पश्चात् 'for the time being specified in the First Schedule [इस समय प्रथम अनुसूची में उल्लिखित]' शब्द रखे जाएं।"

संशोधन गिर गया।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास: जनरल): मेरे संशोधन संख्या 276 के सम्बन्ध में मुझसे श्रीमान, यह कहा गया है कि "राजधानी" शब्द के स्थान पर "सरकार का मुख्य स्थान" शब्द रखे जायेंगे।

***श्री के.एम. मुंशी:** यह एक शाब्दिक संशोधन है जिसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** एक छोटे से परिवर्तन का सुझाव रखा गया है और वह यह है कि "राजधानी" शब्द के स्थान पर "सरकार का मुख्य स्थान" शब्द रखे जाएं।

मेरे विचार से इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है। संशोधन संख्या 276 को श्री मुंशी स्वीकार कर चुके हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्तावित अनुच्छेद 211-क की मद (4) के पैरा (ख) के स्थान पर यह रखा जाए:-

"खण्ड (3) के स्थान पर यह खण्ड रखा जायेगा, अर्थात्:-

'(3) Unless he has his own residence in the principal seat of Government of his State, the Rajpramukh shall be entitled to the use of an official residence without payment of rent, and there shall be paid to the Rajpramukh such allowances as the President may, by general or special order, determine.

[(3) राजप्रमुख जो जबकि राज्य की सरकार के मुख्य स्थान में उसका अपना निवास-गृह न हो, तब बिना किराया दिये पदावास के उपयोग का हक होगा तथा उसको ऐसे भत्तों और विशेषाधिकारों का हक होगा जैसे कि राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित करें।]' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 287 को उठाते हैं, जिसे श्री गुरुव रेड्डी ने उपस्थित किया है।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी:** श्रीमान, मैं इस पर जोर नहीं देता कि उस पर मत लिया जाए।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 292 को उठाते हैं।

***काका भगवंत राय** (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ): श्रीमान, मैं अपने इस संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्तावित अनुच्छेद 211-क की मद (10) के पैरा (क) में 'The President by general or

special order [राष्ट्रपति साधारण या विशेष आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'Parliament by law [संसद विधि द्वारा]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 278 के सम्बन्ध में एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 293, प्रोफेसर सक्सेना ने उपस्थित किया है। मैं पहले उस पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 10 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 278 में प्रस्तावित अनुच्छेद 197 के खण्ड (1) में 'President after consultation with the Rajpramukh [राजप्रमुख से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति]' शब्दों के स्थान पर' 'Parliament by law [विधि द्वारा संसद]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 278 को श्री मुंशी स्वीकार कर चुके हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्तावित अनुच्छेद 211-क की मद 13 में उल्लिखित अनुच्छेद 197 के स्थान पर यह रखा जाये:-

'197. (1) There shall be paid to the judges of each High Court such salaries as may be determined by the Predident after consultation with the Rajpramukh. Salaries, etc. of judges.

(2) Every judge shall be entitled to such allowances and to such rights in respect of leave of absence and pension as may from time to time be determined by or under law made by Parliament and, until so determined, to such allowances and rights as may be determined by the President in consultation with the Rajpramukh:

Provided that neither the allowances of a judge nor his rights in respect of leave of absence or pension shall be varied to his disadvantage after his appointment.

[अध्यक्ष]

[197. (1) प्रत्येक उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिये जायेंगे जैसे कि राजप्रमुख से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति निर्धारित करे। न्यायाधीशों के वेतन इत्यादि

(2) प्रत्येक न्यायाधीश को ऐसे भत्तों के, तथा अनुपस्थिति छुट्टी के और निवृत्ति वेतनों के सम्बन्ध में ऐसे अधिकारों का जैसे संसद् निर्मित विधि के द्वारा या अधीन समय-समय पर निर्धारित किये जायें तथा जब तक इस प्रकार निर्धारित न हों, तब तक ऐसे भत्तों और अधिकारों का, जैसे कि राजप्रमुख से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति निर्धारित करे, हक होगा:

परन्तु न तो न्यायाधीश के भत्ते और न उसके अनुपस्थिति-छुट्टी या निवृत्ति-वेतन-विषयक उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन किया जायेगा।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 220 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 235-क के खण्ड (1) में 'until Parliament by law otherwise provides [जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे]' शब्दों के स्थान पर 'until the President by order otherwise provides [जब तक कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 217 में प्रस्तावित अनुच्छेद 211-क की मद (13) में उल्लिखित अनुच्छेद 197 से 'after consultation with the Rajpramukh [राजप्रमुख से परामर्श के पश्चात्]' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं अपना संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 246, वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 220 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 235-क के खण्ड (2) के अन्त में 'and the Union shall bear the expenses thereof [और संघ उनका खर्च उठायेगा]' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 237 निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 237 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 223 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घघघ में 'President may by order [राष्ट्रपति आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law [संसद विधि द्वारा]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, अनुच्छेद 274 घघ उठा रखा जाये और उस पर किसी दूसरे दिन विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 302-क पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 302 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये, अर्थात्:—

Rights and Privileges of Rulers of Indian States.

'302A. In the exercise of the power of Parliament or of the Legislature of a State to make laws or in the exercise of the executive power of the Union or of a State, due regard shall be had to the guarantee or assurance given under any such covenant or agreement as is referred to in article 267A of this Constitution with respect to the personal rights, privileges and dignities of the Ruler of an Indian State.

[अध्यक्ष]

देशी राज्यों के शासकों के अधिकार और विशेषाधिकार।

[302-क. संसद की या किसी राज्य के विधान-मण्डल की विधि बनाने की शक्ति के प्रयोग में, अथवा संघ या किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में, देशी राज्य के शासक के वैयक्तिक अधिकारों, विशेषाधिकारों और गरिमा के विषय में ऐसी प्रसंविदा या करार के अधीन, जैसा कि इस संविधान के अनुच्छेद 267-क में निर्दिष्ट है, दी गई प्रत्याभूति या आश्वासन का सम्यक् ध्यान रखा जायेगा।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 302-क संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 306-ख के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन पर मत लूंगा। संशोधन संख्या 251 का भाग (2) उपस्थित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अनियमित है। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 306-ख में से—'during a period of ten years from the commencement thereof or during such longer or shorter period as Parliament may by law provide in respect of any State [इसके प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर अथवा किसी ऐसी दीर्घतर या अल्पतर कालावधि के भीतर जिसे राज्य के बारे में संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे]' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं अपना संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 252, वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 225 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 306-ख के परन्तुक में 'President may by order [राष्ट्रपति आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law [संसद विधि द्वारा]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 299 के सम्बन्ध में कुछ संशोधन हैं। मैं प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के पहले संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 299 में प्रस्तावित अनुच्छेद 258 खण्ड (1) के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:—

'after that agreement' has been approved by Parliament [उस करार को संसद से अनुमोदित कराने के पश्चात्]' "

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के दूसरे संशोधन पर मत लूंगा, जिस का आशय मेरे विचार से वही है जो श्री वी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन संख्या 300 का है।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 299 में अनुच्छेद 258 के प्रस्तावित खण्ड (1) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) की गणना उस खण्ड के उपखण्ड (ख), (ग) और (घ) के रूप में की जाये और यह उपखण्ड (क) के रूप में प्रविष्ट किया जाये:–

(a) questions arising from or connected with the vesting in the Union of assets and liabilities of such States related to any of the matters enumerated in the Union List; [संघ-सूची में प्रगणित विषयों में से किसी के सम्बन्ध में ऐसे राज्यों की आस्तियों तथा दायित्वों को संघ में निहित करने के बारे में जो प्रश्न उठें उनके;]' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के सम्बन्ध में प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के नाम से दो संशोधन हैं। मैं पहले संशोधन पर मत लूंगा। वास्तव में वह संशोधन नहीं है बल्कि एक खण्ड को निकालने का प्रस्ताव है। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं दूसरे संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के खण्ड 2 में 'by order of the President [राष्ट्रपति आदेश द्वारा]' शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by law [संसद विधि द्वारा]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री बी. दास के संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन 301 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के खण्ड (2) के पश्चात् यह नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:-

'(3) Where any sums are guaranteed or assured to any Ruler's family members or relations such sums be treated as part of privy purse and as free of tax.

(3) जहां किसी राज्य के शासक के परिवार के लोगों को अथवा संबंधियों को कोई राशियां प्रत्याभूत अथवा आश्वासित की गई हों वहां ये राशियां निजी थैली का भाग तथा कर-मुक्त समझी जायें।]' "

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 301 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 267-क के खण्ड (1) में 'to any ruler [शासक को]' शब्दों के पश्चात् 'or his family relations [अथवा उसके परिवार के सम्बन्धियों को]' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 270-क के सम्बन्ध में प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के संशोधन पर मैं मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 302 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 270-क के खण्ड (1) के अन्त में 'and approved by Parliament [जिन का संसद अनुमोदन करेगी]' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** दो संशोधनों द्वारा अर्थात् संशोधन संख्या 276 और 278 द्वारा संशोधित रूप में भाग 6-क पर अब मैं मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित भाग 6-क, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

भाग 6-क, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं नवीन अनुच्छेद 235-क पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 235 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये, अर्थात्:-

'235A. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution, a State for the time being specified in Part III of the First Schedule having any armed force immediately before the commencement of this Constitution may, until Parliament by law otherwise provides, continue to maintain the said force after such commencement subject to such general or special orders as the President may from time to time issue in this behalf.

Armed forces in States Part III of the First Schedule.

(2) Any such armed force as is referred to in clause (1) of this article shall form part of the forces of the Union.

[235क.(1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित कोई राज्य, जो कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले सशस्त्र बलों को रखता था, उक्त बलों को ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् ऐसे साधारण या विशेष आदेश के अधीन रह कर, जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर इस बारे में निकाले, तब तक बनाये रख सकेगा जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे।

प्रथम अनुसूची के भाग (3) में के राज्यों में के सशस्त्र बल।

(2) कोई ऐसे सशस्त्र बल, जैसे कि इस अनुच्छेद के खंड (1) में निर्दिष्ट हैं, संघ के सशस्त्र बलों का भाग होंगे।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 235-क संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 236, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 236, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

"अध्यक्षः प्रस्ताव यह है कि:

"नवीन अनुच्छेद 274-घघघ संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274-घघघ संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 306-ख पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 306 के पश्चात् ये नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:-

'306B. Notwithstanding anything contained in this Constitution, during a period of ten years from the commencement thereof, or during such longer or shorter period as Parliament may by law provide in respect of any State, the Government of every State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be under the general control of, and comply with such particular directions, if any, as may from time to time be given by the President, and any failure to comply with such directions shall be deemed to be a failure to carry out the Government of the State in accordance with the provisions of this Constitution:

Temporary provisions with respect to States in Part III of the First Schedule.

Provided that the President may by order direct that the provisions of this article shall not apply to any State specified in the order.

[306ख. इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इसके प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर अथवा किसी ऐसी दीर्घतर या अल्पतर कालावधि के भीतर, जिसे किसी राज्य के बारे में संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य की सरकार राष्ट्रपति के साधारण नियंत्रण के अधीन होगी, तथा ऐसे विशिष्ट निदेशों का, यदि कोई हों, अनुवर्तन करेगी जैसे कि राष्ट्रपति समय-समय पर दे, और ऐसे निदेशों के अनुवर्तन में किसी प्रकार की असफलता इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार शासन चलाने में असफलता मानी जायेगी:

प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्यों के विषय में अस्थायी उपबन्ध।

परन्तु राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि इस अनुच्छेद के उपबन्ध आदेश में उल्लिखित किसी राज्य को लागू न होंगे।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 306-ख संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 258 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 258 के खंड (1) के स्थान पर यह खंड रखा जाये:-

'(1) Notwithstanding anything contained in this Chapter, the Government of India may, subject to the provisions of clause (2) of this article, enter into an agreement with the Government of a State for the time being specified in Part III of the First Schedule with respect to—

(a) the levy and colletion of any tax or duty leviable by the Government of India in such State and for the distribution of the proceeds thereof otherwise than in accordance with the provisions of this Chapter;

(b) the grant of any financial assistance by the Government of India to such State in consequence of the loss of any revenue which that State used to derive from any tax or duty leviable under this Constitution by the Government of India or from any other sources;

[अध्यक्ष]

(c) the contribution by such State in respect of any payment made by the Government of India under clause (1) of article 267-A of this Constitution,

when an agreement is so entered into, the provisions of this Chapter shall in relation to such State have effect subject to the terms of such agreement.

When an agreement is so entered into, the provisions of this Chapter shall in relation to such State have effect subject to the terms of such agreement.

[(1) इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, भारत सरकार, खंड (2) के उपबन्ध के अधीन रहते हुए, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य की सरकार से–

(क) ऐसे राज्य में भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत किये जाने वाले किसी कर या शुल्क के उद्ग्रहण और संग्रह करने तथा उसके आगम के, इस अध्याय के उपबन्धों से अन्यथा, वितरण करने के;

(ख) भारत सरकार द्वारा इस संविधान के अधीन उद्गृहीत की जाने वाले किसी कर या शुल्क से अथवा अन्य किन्हीं स्रोतों से जो राजस्व यह राज्य पाता था उसकी हानि के लिये ऐसे राज्य को भारत सरकार द्वारा वित्तीय सहायता अनुदान करने के;

(ग) अनुच्छेद 267-क के खंड (1) के अधीन भारत सरकार द्वारा दिये जाने वाले किसी देय धन के विषय में ऐसे राज्य द्वारा अंशदान करने के,

विषय में करार कर सकेगी, तथा जब ऐसा करार किया जाये तब इस अध्याय के उपबन्ध ऐसे राज्य के संबंध में ऐसे करार के निबन्धनों के अधीन रह कर ही प्रभावी होंगे।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 258 संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 267-क पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"भाग 9 के अध्याय 1 में, अनुच्छेद 267 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये, अर्थात्:–

'267A. (1) Where under any covenant or agreement entered into by the Ruler of any Indian State before the commencement of this Constitution, the payment of

Privy Purse sums of Rulers.

any sums, free of tax, has been guaranteed or assured by the Government of the Dominion of India to any Ruler of such State as Privy Purse—

(a) such sums shall be charged on, and paid out of, the Consolidated Fund of India; and

(b) the sums so paid to any Ruler shall be exempted from all taxes on income.

(2) Where the territories of any such Indian State as aforesaid are comprised within a State specified in Part I or Part III of the First Schedule there shall be charged on, and paid out of, the Consolidated Fund of that State such contribution, if any, in respect of the payments made by the Government of India under clause (1) of this article and for such period as may, subject to any agreement entered into in that behalf under clause (1) of article 258 of this Constitution, be determined by order of the President.

शासकों की निजी थैली की राशि।

[267क.(1) इस संविधान के प्रारम्भ से पहले जहां किसी देशी राज्य के शासक द्वारा की गई किसी प्रसंविदा या करार के अधीन ऐसे राज्य के शासक को निजी थैली के रूप में किन्हीं राशियों की करमुक्त देनगी भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा प्रत्याभूत या आश्वासित की गई है वहां–

(क) वैसी राशियां भारत की संचित-निधि पर भारित होंगी तथा उसमें से दी जायेंगी; तथा

(ख) किसी शासक को दी गई वैसी राशियां, सभी आय पर करों से विमुक्त होंगी।

(2) उपर्युक्त जैसे किसी देशी राज्य के राज्य-क्षेत्र जहां प्रथम अनुसूची के भाग (1) या भाग (3) में उल्लिखित किसी राज्य में समाविष्ट हैं वहां इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन भारत सरकार द्वारा दी जाने वाली देनगियों के विषय में ऐसा अंशदान, यदि कोई हो, उस राज्य की संचित-निधि पर भारित होगा और

[अध्यक्ष]

उससे दिया जायेगा और ऐसी कालावधि के लिये जैसी कि अनुच्छेद 258 के खंड (1) के अधीन उस बारे में किये गये किसी करार के अधीन रहकर राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 267-क संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 270-क पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 270 के पश्चात् यह नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:-

'270A. (1) As from the commencement of this Constitution—

Succession to property, assets, liabilities and obligations of Indian States.

(a) all assets relating to any of the matters enumerated in the Union List vested immediately before such commencement in any Indian State corresponding to any State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be vested in the Government of India, and

(b) all liabilities relating to any of the said matters of the Government of any Indian State corresponding to any State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be the liabilities of the Government of India, subject to any agreement entered into in that benalf by the Government of India with the Government of that State.

(2) As from the commencement of this Constitution the Government of each State for the time being specified in Part III of the First Schedule shall be the successor of the Government of the corresponding Indian State

as regards all property, assets, liabilities and obligations other than the assets and liabilities referred to in clause (1) of this article.

[270क.(1) इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर–

(क) संघ सूची में प्रगणित विषयों में से किसी से संबद्ध जो आस्तियां प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य में ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले निहित थीं वे सब भारत सरकार में निहित होंगी, और

(ख) उक्त विषयों में से किसी से संबद्ध जो दायित्व प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के तत्स्थानी किसी देशी राज्य की सरकार के थे वे सब ऐसे करार के अधीन रह कर जैसा कि उस बारे में भारत सरकार उस राज्य की सरकार से करे, भारत सरकार के दायित्व होंगे।

(2) प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य की सरकार उन सब सम्पत्ति, आस्तियों, दायित्वों और आभारों के बारे में, जो इस अनुच्छेद के खंड (1) में निर्दिष्ट आस्तियों और दायित्वों से भिन्न हैं, तत्स्थानी देशी राज्य की इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर उत्तराधिकारिणी होगी।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 270-क संविधान का अंग बना लिया गया।

इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये चार बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

दोपहर के भोजन के पश्चात् सभा अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में फिर समवेत हुई।

———————

अनुच्छेद 3 (पुनर्उपस्थित)

***अध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 226 आदि आनुषंगिक संशोधनों को उठायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से अनुरोध करता हूं कि वे मेरी ओर से इन संशोधनों को उपस्थित करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से इस प्रस्ताव को रस्मी तौर पर सभा के सामने रखना होगा कि वह इन संशोधनों में जिन अनुच्छेदों का उल्लेख है उनको पुनर्उपस्थित करने की आज्ञा देती है या नहीं।

***अध्यक्ष:** ये आनुषंगिक संशोधन हैं और इन संशोधनों से उत्पन्न होते हैं जो आज स्वीकार किये गये हैं। किंतु चूंकि ये उन अनुच्छेदों के संबंध में हैं जो पारित किये जा चुके हैं, इसलिये उन अनुच्छेदों को पुनर्उपस्थित करने के लिये सभा की स्वीकृति की आवश्यकता है। क्या मैं यह समझूं कि सभा इसके लिये आज्ञा देती है?

***माननीय सदस्य:** जी हां।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, संविधान के मसौदे के उन उपबन्धों के संबंध में, जिन्हें संविधान सभा स्वीकार कर चुकी है, मैं इन आनुषंगिक उपबन्धों को उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 3 के परन्तुक के खंड (क) और (ख) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'where the proposal contained in the Bill affects the boundaries of any State or States for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule, or the name or names of any such State or States, the views of the Legislature of the State, or as the case may be, of each of the States both with respect to the proposal to introduce the Bill and with respect to the provisions thereof have been ascertained by the President.

[जहां विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य या राज्यों की सीमाओं पर अथवा किसी ऐसे राज्य का राज्यों के नाम या नामों पर पड़ता हो वहां जब तक कि विधेयक की पुर:स्थापना की प्रस्थापना के तथा उसके उपबन्ध, इन दोनों के संबंध में, यथास्थिति, राज्य के विधान-मंडल अथवा राज्यों में से प्रत्येक के विधान-मंडल के विचार राष्ट्रपति ने निश्चित रूप से से न जान लिये हों तब तक]' "

संशोधन संख्या 227 ।

***अध्यक्ष:** क्या हम उन्हें एक-एक करके नहीं उठायेंगे? इसके संबंध में तीन संशोधन हैं।

(संशोधन संख्या 253 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी:** माननीय सरदार पटेल ने जो वक्तव्य दिया है उसे ध्यान में रखते हुए मैं संशोधन संख्या 290 उपस्थित नहीं करना चाहता।

***अध्यक्ष:** श्री पातस्कर। संशोधन संख्या 291 ।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बंबई: जनरल): श्रीमान, मैं आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं जिस संशोधन को उपस्थित करना चाहता हूं वह उस विषय के सम्बंध में नहीं है जिसके बारे में अभी एक संशोधन उपस्थित किया गया है। वह उस पूरे अनुच्छेद के संबंध में है जो पुनर्उपस्थित किया गया है। चूंकि यह अनुच्छेद पुनर्उपस्थित किया गया है इस लिये मुझे आशा है कि यह संशोधन नियमित ठहराया जायेगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान, मेरी एक नियम-सम्बंधी आपत्ति है। हमने जो उपबन्ध रखे हैं उनसे, मेरे विचार से, यह असंगत है। कोई भी विधि सभा के बहुमत से पारित होगी। सभा के एक छोटे वर्ग का मत लेने की कोई प्रक्रिया नहीं है। यह संशोधन अनियमित है।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** मैं यह स्वीकार नहीं करता कि वह इस कारण अनियमित है क्योंकि मैंने जिस उपबन्ध का प्रस्ताव रखा है उस प्रकार के उपबन्ध को रखने की हमें स्वतंत्रता है। मेरे ध्यान में केवल यह बात आई कि यह मसौदा-समिति के उस संशोधन के अन्तर्गत नहीं आता जिसे अभी उपस्थित किया गया है। चूंकि यह अनुच्छेद फिर उपस्थित किया गया है इसलिये सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह इसके उपबन्धों को संशोधित करे। इस संशोधन को केवल इस कारण अनियमित नहीं कहा जा सकता। चूंकि पूरा अनुच्छेद फिर उपस्थित किया गया है इसलिये मुझे अपना संशोधन उपस्थित करने का अधिकार है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** लोक-सभा में प्रतिनिधित्व के लिये कुछ राज्यों को एक साथ रखा जा सकता है। संभव है कि हम यह न बता सकें कि कौन सदस्य किस राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। यदि यह खंड पारित भी किया गया तब भी उसे प्रयोग में लाना संभव न होगा।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** अपना संशोधन उपस्थित करते समय कारण बता कर मैं इसे स्पष्ट कर दूंगा। मैंने यह उपबन्ध रखा है कि विधेयक के उपबन्धों का जिन क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता हो उनके प्रतिनिधियों के बहुमत से उसका विषय तय होगा। इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई है।

***अध्यक्ष:** क्या वह एक नवीन बात नहीं होगी?

***श्री एच.वी. पातस्कर:** नवीन बात अवश्य होगी।

***अध्यक्ष:** हम संविधान में इस आशय का कोई भी उपबन्ध रख सकते हैं कि कोई प्रश्न...

***श्री एच.वी. पातस्कर:** अपना संशोधन उपस्थित करने के पूर्व मैं अपना तर्क उपस्थित करना चाहता हूं। मेरे विचार से इसकी आवश्यकता है।

***अध्यक्ष:** आप अपना तर्क उपस्थित करें।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** जहां तक उस संशोधन का सम्बंध है, जिसे माननीय सदस्य महोदय ने अभी उपस्थित किया है वह एक प्रकार से ठीक ही है। अनुच्छेद 3 के मूल-मसौदे के अधीन प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्यों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक था। अनुच्छेद 3 में हमने यह उपबन्ध रखा था कि जब तक राष्ट्रपति सिफारिश न करे, और जब तक राष्ट्रपति ने भाग 1 में के राज्यों के विधान-मंडलों के विचारों को मालूम न किया हो, और भाग 3 में के राज्यों पर प्रभाव पड़ने पर उनकी सहमति नहीं प्राप्त की हो जब तक संसद के किसी सदन में कोई विधेयक नहीं उपस्थित किया जा सकेगा। अब मसौदा-समिति की ओर से जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसमें भाग 3 में के राज्यों की सहमति प्राप्त करने के संबंध में कोई उपबन्ध नहीं है और उन्हें भाग 1 में के राज्यों के स्तर पर लाया गया है। इन दोनों के संबंध में राष्ट्रपति केवल भाग 1 में के राज्यों के विचारों को मालूम करेगा। श्रीमान यह एक प्रकार से ठीक ही है। किंतु मुझे यह भय है कि जहां तक इस अनुच्छेद के शब्दों से इसके उद्देश्य की पूर्ति का सम्बंध है, यह संविधान में बहुत कुछ निष्प्राण अनुच्छेद रहेगा। मेरी यही धारणा है। इसी कारण मैंने इस संशोधन को प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार के उपबन्ध के इतिहास के लिये हमें पहले 1919 का भारत-शासन-अधिनियम देखना होगा। उसमें इसका प्रथम परिचय मिलता है कि एक विदेशी सरकार ने भी यह अनुभव किया कि प्रांतों की सीमाओं में परिवर्तन करके उन्हें फिर निश्चिंत करने की आवश्यकता है और इसलिये 1919 के अधिनियम में इसी के समान एक उपबन्ध रखा गया। किंतु फिर भी 1919 से लेकर 1935 तक इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया और वह इस कारण कि इस प्रकार के परिवर्तन से प्रति दिन के शासन में बाधा पहुंचती है, जो कोई भी सरकार पसन्द नहीं करती। इसलिये यद्यपि इस प्रकार का एक उपबन्ध था और 1919 से लेकर 1935 के काल में क्षेत्रों के नये गुट बनाने में उतनी कठिनाइयां नहीं थीं जितनी कि अब हैं, और आगे चल कर होंगी, किन्तु यह कदम नहीं उठाया गया और वह इस कारण कि उस समय की सरकार प्रति दिन के शासन-कार्य में तल्लीन थी और वह नहीं चाहती थी कि उसे यह बोझ उठाना पड़े। जिलों में भी यदि कुछ क्षेत्र एक जिले से हटाकर दूसरे जिले में रखे जाते हैं तो हमेशा बहुत हलचल होती है। जिन लोगों पर प्रशासन का भार होता है वे यह नहीं चाहते है प्रतिदिन के शासन में किसी प्रकार की बाधा पड़े। इस कारण 1919 के अधिनियम में इस प्रकार का उपबन्ध होने पर भी इस ओर कोई कदम नहीं उठाया गया।

इसके पश्चात् 1935 का अधिनियम आया। संभवत: इसका अनुभव किया गया कि संविधान में इस प्रकार के उपबन्ध को रखने मात्र से भी कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी, यद्यपि इरादा यह था कि सिंध के बम्बई प्रांत में मिले रहने में अथवा उड़ीसा के बिहार प्रांत में मिले रहने में जो दोष है उसे दूर कर दिया जाये। उसके लिये 1935 के भारत-शासन-अधिनियम में दो धाराएं रखी गईं और इस अधिनियम के आरम्भ होने के पूर्व ही इस व्यवस्था को करने के संबंध में भी उपबन्ध रखे गये। मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि इस प्रकार के उपबन्ध को रखने पर भी कोई बात नहीं होगी। वर्तमान धारा द्वारा यह निर्धारित किया गया है

कि संसद विधि द्वारा इस प्रकार का परिवर्तन कर सकती है। अनुच्छेद 3 के पैरा (1) में जिस कार्यवाही की कल्पना की गई है उसका देश के एक छोटे से भाग पर ही प्रभाव पड़ेगा। अधिकांश सदस्य देश के अन्य भागों के होंगे और इस विषय में उनकी संभवतः कोई दिलचस्पी नहीं होगी। जब तक कि तत्कालीन सरकार, यह समझते हुए कि इस प्रकार के कदम से प्रति दिन के प्रशासन के लिये कठिनाइयां बढ़ जायेंगी, यह कदम उठाना आवश्यक न समझे, यह अनुच्छेद निष्प्राण ही रहेगा और इसके अधीन कोई कार्यवाही नहीं की जायेगी। क्योंकि अनुच्छेद 3 में उल्लिखित शर्तों को पूरा करने पर ही, अर्थात् संबंधित राज्यों के विचारों को मालूम करने पर, तथा इस संबंध में अन्य कार्यवाही करने पर, और राष्ट्रपति की अनुमति लेने पर ही इस प्रकार का विधेयक संसद के सामने रखा जा सकेगा और फिर भी कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। थोड़ी देर के लिये कल्पना कीजिये कि दक्षिण के एक छोटे से क्षेत्र की सीमाओं को निश्चित करने का प्रश्न है। अन्य क्षेत्रों के प्रतिनिधियों में से शायद ही कोई इसमें दिलचस्पी ले और यदि तत्कालीन सरकार की इस प्रकार का परिवर्तन करने में कोई दिलचस्पी नहीं होगी तो अधिकांश सदस्य सरकार का साथ देंगे और कहेंगे कि इस समय किसी प्रकार की कार्यवाही की आवश्यकता नहीं है और कोई कदम नहीं उठाया जाना चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि विधेयक पारित नहीं होगा। इस प्रकार जैसे 1919 से अब तक इस आशय का उपबन्ध निष्प्राण रहा है वैसे ही यह अनुच्छेद भी निष्प्राण रहेगा।

इसी कारण मैं इस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं। मैं यह नहीं चाहता कि कोई एक समूह ही इस संबंध में निर्णय करे। यदि कोई प्रांत किसी अन्य प्रांत से पृथक् किया गया, अथवा कोई क्षेत्र किसी प्रांत से पृथक् करके दूसरे प्रांत के साथ जोड़ा गया तो मैं यह चाहता हूं कि किसी एक क्षेत्र के प्रतिनिधि इसका निर्णय नहीं करें किन्तु उन सभी लोगों के मत से, जिन पर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ता हो, इस संबंध में निर्णय हो। मैं इस पर जोर देता हूं कि उन सभी के मतों से इसका निर्णय हो। यदि आप यह उपबन्धित करेंगे कि सभा में उन सभी सदस्यों के मत भी लिये जायेंगे, जिन प्रर इस का प्रभाव नहीं पड़ता और इस अनुच्छेद का आशय इसी प्रकार व्यापक रखेंगे तो मुझे विश्वास है कि अनुच्छेद 3 सदा निष्प्राण रहेगा और जैसे 1919 के अधिनियम तथा 1935 के अधिनियम के अधीन इस संबंध में कोई कार्यवाही नहीं की गई वैसे ही इस उपबन्ध के अधीन भी कोई कार्यवाही नहीं की जायेगी। मेरा निवेदन है कि नवीन संविधान के फलस्वरूप तथा अनुच्छेद 3 के उपबन्धों के फलस्वरूप अधिक कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी।

***अध्यक्षः** श्री पातस्कर, ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जब प्रस्तावित विधि से प्रभावित होने वाले वाले राज्य अथवा राज्यों के प्रतिनिधि, इस प्रकार के परिवर्तन का विरोध करें और सभा के अन्य सदस्य उसके पक्ष में हों।

***श्री एच.वी. पातस्करः** यह संभव नहीं है।

***अध्यक्षः** चाहे यह संभव हो या असंभव, मैं आपके सामने एक काल्पनिक स्थिति रख रहा हूं। यदि इस प्रकार का कोई प्रश्न उठे तो क्या आप यह चाहते हैं कि कुछ सदस्य, जो उस विशेष राज्य के प्रतिनिधि होंगे सभा के अन्य सभी सदस्यों को हरा दें?

***श्री एच.वी. पातस्करः** स्थिति ऐसी है कि इसकी संभावना नहीं है। मुझे यही दिखाई देता है कि अन्य लोगों को इस संबंध में अधिक दिलचस्पी नहीं होगी। यदि उनकी दिलचस्पी हुई भी तो इस प्रश्न का निर्णय उन लोगों के लिये छोड़ देना चाहिये जिन पर इसका प्रभाव पड़े। हाल ही में इस सभा के माननीय सदस्य श्री चलिहा से मुझे ज्ञात हुआ कि आसाम में दिमापुर नाम का एक स्थान है, जिसे एक क्षेत्र के साथ मिलाने के कारण एक विवाद खड़ा हो गया है। उस क्षेत्र के लिये भी एक भीषण आन्दोलन हुआ है। इस स्थिति में कोई भी सरकार परिवर्तन करना नहीं चाहेगी। इसलिये यह काल्पनिक स्थिति नहीं उत्पन्न होगी। यदि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न भी हो तो अच्छा यह होगा कि इस प्रकार के प्रश्न का निर्णय उन लोगों के मत से हो जिन पर उस का प्रभाव पड़े और अन्य लोगों के मत से नहीं हो।

***अध्यक्षः** यह स्थिति बहुत अनहोनी नहीं है। यदि यह प्रस्ताव रखा गया कि एक क्षेत्र को किसी अन्य क्षेत्र के साथ मिला दिया जाये और भाषा पर आधृत पृथक् प्रांतों का कोई प्रश्न न उठाया जाये तो यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस स्थिति पर विचार करना चाहिये।

***श्री एच.वी. पातस्करः** मेरे संशोधन के अनुसार दोनों सम्बंधित राज्यों के मतों से इसका निर्णय होना चाहिये। मेरे संशोधन का यही उद्देश्य है और इसीलिये मुझे आशा है कि वह अनियमित नहीं है। मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"सूची 7 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 226 में अनुच्छेद 3 के परन्तुक के प्रस्तावित शब्दों के पश्चात् यह व्याख्या जोड़ दी जाये:–

'Explanation—Any such law shall be deemed to have been passed if a majority of the members of the House of the People representing the State or States affected by the provision of such a Bill support the same.

[*व्याख्या*–यदि इस प्रकार के विधेयक के किसी उपबन्ध से प्रभावित होने वाले राज्य या राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोक सभा के सदस्यों में से अधिकांश ऐसी विधि का समर्थन करें तो वह विधि पारित समझी जायेगी।]' "

माननीय श्री सन्तानम ने कहा कि उन प्रतिनिधियों का पता लगाने में कठिनाई होगी जो विधेयक से प्रभावित होंगे और जिनके मतों से इस संबंध में निर्णय होगा। मेरा निवेदन है कि इस सम्बंध में कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि मैंने यह कहा है कि केवल लोक सभा के सदस्यों के ही मत लिये जायेंगे और संसद के सभी सदस्यों के अथवा उच्च सदन के सदस्यों के मत नहीं लिये जायेंगे।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से मुझे इसे कई कारणों से अनियमित घोषित कर देना चाहिये। पहला कारण यह है कि जो संशोधन उपस्थित किया गया उससे यह असम्बद्ध है। दूसरा कारण यह है कि जिस स्थिति की कल्पना की गई है उसके फलस्वरूप कई ऐसे प्रश्न उठते हैं जो संविधान के कई ऐसे अनुच्छेदों का खंडन करते हैं

जो पारित हो चुके हैं। उदाहरणार्थ इस संशोधन का यह उद्देश्य है कि इस प्रकार के विधेयक के किसी उपबन्ध से प्रभावित होने वाले राज्य या राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोक सभा के अधिकांश सदस्यों का मत प्रभावी होगा। पहले तो दूसरा सदन का प्रश्न पर विचार करने के अधिकार से वंचित हो जाता है। दूसरी बात यह है कि कठिनाई तब पैदा होगी जब विधि के पक्ष में मत न देकर इस स्थल पर उल्लिखित सदस्यों में से अधिकांश सदस्य इस प्रकार की विधि का विरोध करें और सभा के अधिकांश सदस्य भी उस विधि का विरोध चाहें। इसलिये इन कई कारणों से मेरे विचार से यह अनियमित है।

इसके अतिरिक्त इस सम्बंध में और कोई संशोधन नहीं है। क्या कोई सज्जन बोलना चाहते हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं। हमने इस विचार से यह अनुच्छेद को पुनः उपस्थित करने की आज्ञा दी कि ये संशोधन आनुषंगिक संशोधन हैं। विचाराधीन संशोधन किसी भी पारित अनुच्छेद का आनुषंगिक संशोधन नहीं है। हम सारे विषय पर ही फिर विचार करने जा रहे हैं। मेरे विचार से यह प्रयास संसद की शक्ति कम करने के लिये किया जा रहा है। इससे इस अनुच्छेद का एक प्रकार से निराकरण हो जायेगा।

***अध्यक्षः** मेरी यह धारणा रही है इससे संसद की शक्ति बढ़ती है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यदि संसद इस अनुच्छेद के अनुसार कार्य करेगा और यदि विधेयक को पुरःस्थापित करने के संबंध में राज्य या राज्यों की विधान-मंडलों की राय लेने के पश्चात् ही कदम उठाया जायेगा तो यह अनुच्छेद कभी भी प्रयोग में नहीं आ सकेगा। उसे प्रयोग में लाना असंभव हो जायेगा। यह समझ कर ही कि यह एक आनुषंगिक संशोधन है, हमने इस अनुच्छेद को पुनः उपस्थित करने की आज्ञा दी।

***अध्यक्षः** जिस रूप में परन्तुक (ख) पारित किया गया है, सहमति अपेक्षित है। यहां यह कहा गया है कि केवल परामर्श की अपेक्षा है। परामर्श से सहमति का अधिक मूल्य है। उससे संसद की शक्ति बढ़ती है। वह कम नहीं होती।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** संविधान के इस निर्वचन से मैं सहमत हूं, किंतु मेरे विचार से हमें धोखे की टट्टी नहीं खड़ी करनी चाहिये। हम यह क्यों कहें कि एक आनुषंगिक संशोधन के लिये हम इसे पुनः उपस्थित कर रहे हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इसका सार वही है जो मूल अनुच्छेद के परन्तुक (क) का है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यह हो सकता है किन्तु आपने यह क्यों कहा कि यह एक आनुषंगिक संशोधन है? सभा ने यही समझ कर आज्ञा दी कि यह एक आनुषंगिक संशोधन है।

***श्री बी. दासः** श्रीमान, मेरे मित्र श्री पातस्कर ने जो संशोधन उपस्थित किया है, और मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने जो आपत्ति की है, उससे यह संकेत मिलता

[श्री बी. दास]

है कि हममें से कुछ लोग पुराने अनुच्छेद 3, अथवा अनुच्छेद 3 के वर्तमान मसौदे से संतुष्ट नहीं हैं। मेरे मित्र श्री पातस्कर ने यह कोई नई बात नहीं कही कि उसमें भारत-शासन-अधिनियम के उपबन्ध ही दुहराये गये हैं। श्री पातस्कर यह चाहते हैं कि जो राज्य प्रभावित होते हैं और अन्य राज्यों के साथ मिलाये जाते हैं उसके प्रतिनिधियों का मत उस राज्य की विधान-सभा में अधिक प्रभावी होना चाहिये। मुझे उड़ीसा के प्रांत की स्थापना का कुछ अनुभव है। हमारे यहां 1920 का पुराना भारत-शासन-अधिनियम लागू था। तब हमारा प्रांत बिहार और उड़ीसा का प्रांत कहा जाता था। बिहार और उड़ीसा की विधान-परिषद् ने एक मत से यह प्रस्ताव पारित किया कि उड़ीसा के प्रांत को पृथक् कर देना चाहिये। इसी के समान एक प्रस्ताव मद्रास की विधान-सभा ने भी स्वीकार किया। तत्पश्चात् बिहार के महान नेता श्री सच्चिदानन्द सिन्हा ने पहले की भारतीय विधान-सभा के समक्ष यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि उड़ीसा को एक पृथक् प्रांत बना देना चाहिये, किसी नये राज्य की स्थापना से इस सभा के सदस्य अथवा जन साधारण उत्तेजित नहीं होते। सीमाओं को फिर से निश्चित करने से ही कहीं न कहीं कोई प्रश्न उठ खड़ा होता है और लोग उत्तेजित हो जाते हैं, चाहे वे बंगाल के हों अथवा बिहार के, चाहे वे महाराष्ट्र और गुजरात के हों अथवा आंध्र और उड़ीसा के। कोई न कोई प्रश्न अवश्य ही उठ खड़ा होता है। नेता उत्तरदाई अथवा अनुत्तरदाई वक्तव्य देते हैं और लोग उत्तेजित हो जाते हैं। मुझे स्वयं इस नवीन अनच्छेद 3 से अथवा अनुसूची 1 से, अधिक संतोष नहीं है जिसके द्वारा सरायकेला और खरसूआं के उड़ीसा के दो प्राचीन राज्य एक बार उड़ीसा में समाविष्ट किये जाने पर भी फिर बिहार में समाविष्ट कर दिये गये। हमारी यह धारणा है कि वहां के रहने वाले उड़िया लोगों में अपनी जाति के कोई चिन्ह नहीं रह जायेंगे। सारे मिदनापुर में, जिसकी जन संख्या के तीन-चौथाई लोग उड़िया हैं, एक भी उड़िया स्कूल नहीं है। वहां के लोग अब बंगाली कहे जाने लगे हैं। पुरुलिया जिले में भी बंगालियों ने इसी प्रकार की कठिनाइयां पैदा की हैं। ये समस्यायें हैं किंतु मैं केवल उस मनोविज्ञान की चर्चा करूंगा जो इस भय का आधार है। प्रश्न यह नहीं है कि मसौदा-समिति कैसी विधि बनाती है। जो लोग विभिन्न भाषाओं को बोलते हैं, अथवा जिनके प्राचीन संबंध होते हैं, उन पर इन बातों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। श्रीमान, उत्तरदाई अथवा अनुत्तरदाई राजनैतिक नेताओं के उत्तरदाई अथवा अनुत्तरदाई वक्तव्यों से इस प्रकार की बातें पैदा हो जाती हैं। अनुच्छेद 3 मुझे स्वयं बहुत पसन्द नहीं है क्योंकि उसके अधीन उन लोगों को जो सीमाओं में परिवर्तन करके अपनी जाति के लोगों से मिल जाना चाहते हैं, इसके लिये कोई अवसर नहीं मिलता। इसके अधीन मेरे मित्र श्री चलिहा को सीमाओं में परिवर्तन करने का अवसर नहीं मिलता। मैं केवल यह बता रहा हूं कि हम किस राय से ग्रस्त हैं किंतु हमें यह ज्ञात नहीं है कि वह अनुच्छेद 3 के उपबन्धों से कैसे दूर होगा।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो अनुच्छेद पारित किया गया है, अथवा जो संशोधन उपस्थित किया गया है उनमें से किसी से भी मैं संतुष्ट नहीं हूं। वास्तव में यदि आप पूर्वीय सीमाओं की वर्तमान स्थिति के इतिहास को जानते होते तो आप इस अनुच्छेद के समान किसी अनुच्छेद को पारित नहीं करते। मैं तो यह चाहता हूं कि किसी राज्य के क्षेत्र को निश्चित करने अथवा उसे घटाने बढ़ाने की पूरी शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त हो। इस समय आसाम की

पूर्वी सीमा अर्थात् मैकमोहन पंक्ति बहुत ही अनिश्चित है। आप कह नहीं सकते कि सीमा कहां पर है। आप उसे जितना चाहें आगे बढ़ा सकते हैं और कोई यह नहीं कह सकता कि अमुक अमुक स्थान के आगे वह नहीं बढ़ाई जा सकती। यदि संसद की अनुमति ली जायेगी और उसकी सिफारिश के आधार पर राष्ट्रपति कार्यवाही करेगा तो इसमें बहुत समय लगेगा। उसे सीमा को तुरन्त ही निश्चित करना होगा। पूर्वी और उत्तरी सीमा पर हम निश्चित रूप ये यह नहीं कह सकते कि सीमा इस प्रकार है। कहा जाता था कि ब्रिटिश राज्य क्षेत्र की अन्तिम सीमा पर रीमा का बन्दरगाह है किंतु चीनियों ने वहां से उनका झंडा हटा दिया और उसे वहां फिर लगाने के लिये ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी भेजनी पड़ी। कहा जाता है कि हमारी सीमा वहां तक है किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि वह कभी निश्चित की गई या नहीं की गई। कोई ऐसा उपबन्ध अथवा शक्ति निर्धारित की जानी चाहिये जिसके अधीन राष्ट्रपति सीमा निश्चित कर सके। बालीपाड़ा की सीमा ही को लीजिये। कोई कह नहीं सकता कि वह ठीक-ठीक कहां पर है। कोई कह नहीं सकता कि नागा सीमा ठीक-ठीक कहां पर है और कहां से बर्मा की सीमा आरम्भ होती है। इसलिये जिस रूप में यह अनुच्छेद रखा गया है, अथवा जिस रूप में यह संशोधन उपस्थित किया गया है उनसे मैं संतुष्ट नहीं हूं। राष्ट्रपति को सीमा निश्चित करने की कुछ शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और यदि संभव हो तो मसौदा समिति इस संबंध में कोई ऐसा उपबन्ध रखे जिस के अधीन जहां कहीं सीमाएं अस्पष्ट हों वहां वे निश्चित की जा सकें, क्योंकि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मैकमोहन पंक्ति का अन्त कहां होता है और जनरल हर्ज का दुर्ग, अथवा हर्ज पंक्ति कहां पर है, इत्यादि।

***अध्यक्ष:** मैं यह बताना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद का विदेशी राज्यों की सीमाओं से कोई संबंध नहीं है। इसका संबंध भारत की भीतरी सीमाओं से है। इस प्रसंग में चीनियों आदि की चर्चा क्यों की जाये?

***श्री कुलधर चालिहा:** अच्छी बात है, श्रीमान्,

***अध्यक्ष:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, धोखे की टट्टी खड़ा करने का कोई प्रश्न नहीं है। आज प्रात: जो संशोधन स्वीकार किया गया था उसका सार यह था कि देशी राज्यों को प्रांतों के स्तर पर लाया जाये। इस विषय के संबंध में भाग 3 में के देशी राज्यों के साथ भाग 1 में के राज्यों से भिन्न श्रेणी में रखा गया है और यह संशोधन उन्हें एक ही श्रेणी में रखने के लिये रखा गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही यह संशोधन उपस्थित किया गया है और इसके द्वारा धोखे की कोई टट्टी खड़ी नहीं की जा रही है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, मुझे खेद है कि मैं इसका आशय नहीं समझ पाया।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आपकी व्याख्या के पश्चात् हमें कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्ष:** तब मैं संशोधन संख्या 226 पर मत लूंगा।

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 3 के परन्तुक के खंड (क) और (ख) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'Where the proposal contained in the Bill affects the boundaries of any State or States for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule, or the name or names of any such State or States, the views of the Legislature of the State or, as the case may be, of each of the States both with respect to the proposal to introduce the Bill and with respect to the provisions thereof have been ascertained by the President.

[जहां विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य या राज्यों की सीमाओं पर अथवा किसी ऐसे राज्य या राज्यों के नाम या नामों पर पड़ता हो वहां जब तक कि विधेयक की पुर:स्थापना की प्रस्थापना के तथा उसके उपबन्ध, इन दोनों के संबंध में, यथास्थिति, राज्य के विधान-मंडल अथवा राज्यों में से प्रत्येक के विधान मंडल के विचार राष्ट्रपति ने निश्चित रूप से न जान लिये हों तब तक,]' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 47 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 47 के खंड (2) की व्याख्या के स्थान पर यह व्याख्या रखी जाये:–

Explanation—For the purposes of this clause, a person shall not be deemed to hold any office of profit by reason only that he is the President or Vice-President of the Union or the Governor or Rajpramukh or Uprajpramukh of any State or is a Minister either for the Union or for any State.

[*व्याख्या*–इस खंड के प्रयोजन के लिये कोई व्यक्ति कोई लाभ का पद धारण किये हुए केवल इसलिये नहीं समझा जायेगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या

उपराष्ट्रपति अथवा किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख या उपराजप्रमुख है अथवा या तो संघ का या किसी राज्य का मंत्री है।]"

श्रीमान यह केवल आनुषंगिक संशोधन ही है और इस में जिन नवीन शब्दों को रखा गया है वे "राजप्रमुख" और "उपराजप्रमुख" हैं। मुझे आशा है कि इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

***श्री के. चेंगलाराय रेड्डी:** मैं यह बताना चाहता हूं कि अभी तक "उपराजप्रमुख" की परिभाषा नही की गई है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हमने अभी राजप्रमुख की परिभाषा उपस्थित नहीं की है। हम अपने मित्र के संकेत का ध्यान रखेंगे और उपराजप्रमुख की परिभाषा को भी सम्मिलित कर लेंगे।

***अध्यक्ष:** तब मैं इस पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 47 के खंड (2) की व्याख्या के स्थान पर यह व्याख्या रखी जाए–

Explanation—For the purposes of this clause, a person shall not be deemed to hold any office of profit by reason only that he is the President or Vice-President of the Union or the Governor or Rajpramukh or Uprajpramukh of any State or is a Minister either for the Union or for any State.

[*व्याख्या*–इस खंड के प्रयोजन के लिये कोई व्यक्ति कोई लाभ का पद धारण किये हुए केवल इसलिये नहीं समझा जायेगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अथवा किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख या उपराजप्रमुख है अथवा या तो संघ का या किसी राज्य का मंत्री है।]"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 55 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 55 के खंड (4) की व्याख्या के स्थान पर यह व्याख्या रखी जाये:–

Explanation—For the purposes of this clause, a person shall not be deemed to hold any office of profit by reason only that he is the President

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

or Vice President of the Union or the Governor of Rajpramukh or Uprajpramukh of any State or is a Minister either for the Union or for any State.

[*व्याख्या*–इस खंड के प्रयोजन के लिये कोई व्यक्ति कोई लाभ का पद धारण किये हुए केवल इसलिये नहीं समझा जायेगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अथवा किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख या उपराजप्रमुख है अथवा या तो संघ का या किसी राज्य का मंत्री है।]' "

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन इस संबंध में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मेरे विचार से "राष्ट्रपति" शब्द निकाला जा सकता है क्योंकि इसकी संभावना नहीं है कि राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति पद के लिये खड़ा होगा।

***अध्यक्ष:** श्री कृष्णमाचारी?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं कह नहीं सकता। हम इस प्रश्न की परीक्षा करेंगे।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (त्रावणकोर और कोचीन का संयुक्त राज्य): पदासीन राष्ट्रपति निर्वाचन के लिये फिर खड़ा हो सकता है और इसलिये अनुच्छेद में "राष्ट्रपति" शब्द का उल्लेख होना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, हम इसकी परीक्षा करेंगे। इस पर इस समय मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खंड (4) की व्याख्या के स्थान पर यह व्याख्या रखी जाये:–

Explanation—For the purposes of this clause, a person shall not be deemed to hold any office of profit by reason only that he is the President or Vice-President of the Union or the Governor or Rajpramukh or Uprajpramukh of any State or is a Minister either for the Union or for any State.

[*व्याख्या*–इस खंड के प्रयोजन के लिये कोई व्यक्ति कोई लाभ का पद धारण किये हुए केवल इसलिये नहीं समझा जायेगा कि वह संघ का राष्ट्रपति या

उपराष्ट्रपति अथवा किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख या उपराजप्रमुख है अथवा या तो संघ का या किसी राज्य का मंत्री है।]"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 67 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 का खंड (9) निकाल दिया जाये।"

खंड (9) इस प्रकार है:–

"जब राज्यपरिषद् में प्रतिनिधि भेजने के प्रयोजनार्थ प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्यों को जोड़कर वर्ग बनाया जाये, तो इस अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ यह समस्त वर्ग, एक राज्य समझा जायेगा।"

श्रीमान, इसकी अब आवश्यकता नहीं रहेगी क्योंकि इस प्रकार की आकस्मिक स्थिति के संबंध में अनुच्छेद 3-ख में उपबन्ध है। भाग 3 में के राज्यों की इस समय की स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि छोटे राज्यों के संबंध में उपबन्ध रखने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसलिये अनुच्छेद 67 का खंड (9) निकाल दिया जाये।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन इस संबंध में कुछ कहना चाहते हैं? प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 का खंड (9) निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 83 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 83 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'he is a Minister either for the Union or for such State.

[कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है।]' "

वास्तव में ये उपखंड (क) और (ख) बहुत लम्बे हैं। यह विचार किया गया है कि इस संशोधन से हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन इस संबंध में कुछ कहना चाहते हैं? प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 83 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'he is a Minister either for the Union or for such State.

[कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है।]' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (घ) के पैरा (3) में 'exercises or immediately [प्रयोग करता है अथवा ठीक पहले]' शब्दों के स्थान पर 'exercises jurisdiction within any areas included in the territory of India or which at any time [भारत राज्य-क्षेत्र में के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है अथवा जो किसी समय]' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, यह अनुच्छेद 92 के संबंध में है जिसमें आनुषंगिक रूप से वार्षिक वित्तीय विवरण के संबंध में भी उपबन्ध हैं। इस स्थल पर न्यायाधीशों को दिये जाने वाले निवृत्ति-वेतनों के विषय का उल्लेख है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह समझा गया है कि इस प्रकार के संशोधन की आवश्यकता है। इसलिये श्रीमान, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (घ) के पैरा (3) में 'exercises or immediately [प्रयोग करता है अथवा ठीक पहले]' शब्दों के स्थान पर 'exercises jurisdiction within any area included in the territory of India or which at any time [भारत राज्य-क्षेत्र में के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है अथवा जो किसी समय]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 100 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 100 से खंड (2) निकाल दिया जाये।"

श्रीमान, अनुच्छेद 100 संसद में होने वाले वाद-विवाद पर निर्बन्धनों के संबंध में है। यह खंड अर्थात् खंड (2) इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद में 'उच्च न्यायालय' के निर्देश में, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्य के किसी ऐसे न्यायालय के निर्देश का समावेश होगा, जो इस भाग के अध्याय 4 में दिये हुए किसी प्रयोजन के लिये उच्च न्यायालय है।"

आज प्रातः सभा ने जो कार्यवाही की है उसे ध्यान में रखते हुए इसकी आवश्यकता नहीं रह गई है। श्रीमान, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 100 से खंड (2) निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 248-ख (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 248-ख के खंड (2) में 'Governor [राज्यपाल] शब्द के पश्चात् 'or Rajpramukh of the State [या राज्य का राजप्रमुख]' शब्द रखे जायें।"

मेरे विचार से इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 248-ख के खंड (2) में 'Governor [राज्यपाल] शब्द के पश्चात् 'or Rajpramukh of the State [या राज्य का राजप्रमुख]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 263 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 263 के खंड (2) में 'Governor [राज्यपाल] शब्द के पश्चात् 'or Rajpramukh [या राजप्रमुख]' शब्द रखे जायें।"

यह खंड राज्यों की संचित निधि की अभिरक्षा के संबंध में है। इस सभा के भाग 6-क को पारित करने के कारण इसमें यह परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 263 के खंड (2) में 'Governor [राज्यपाल] शब्द के पश्चात् 'or Rajpramukh [या राजप्रमुख]' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

सप्तम अनुसूची (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सप्तम अनुसूची की सूची 1 में, प्रविष्टि 43 के पश्चात्, यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'43A. Courts of Wards for the estates of Rulers of Indian States.

[43–क. देशी राज्यों की शासकों की संपत्ति के लिये प्रतिपालक–अधिकरण।]' "

श्रीमान, देशी राज्यों की वर्तमान स्थिति को देखते हुए और इसे भी ध्यान में रखते हुए कि बहुत से शासक अब वास्तव में शासक नहीं रह गये हैं बल्कि उनकी केवल संपत्तियां हैं, केन्द्रीय सरकार का इन संपत्तियों को प्रशासनिक करने का दायित्व हो जाता है, विशेषतया जब इन संपत्तियों के स्वामी अल्पवयस्क हों अथवा असमर्थ हों, इत्यादि। जिस उपबन्ध का इस समय प्रस्ताव रखा गया है वह सूची–2 की प्रविष्टि–25 के समान ही है जिसके अधीन प्रांतों का जमींदारों तथा अन्य बड़ी संपत्तियों के स्वामियों की संपत्तियों पर स्वामियों के अल्पवयस्क, असमर्थ आदि होने पर क्षेत्राधिकार रहता है। अब देशी राज्यों की संपत्ति के संबंध में भी उसी के समान एक उपबन्ध रखा जा रहा है। इस शक्ति को भारत सरकार को ही प्रयोग करना होगा क्योंकि कई कारणों से वह संबंधित राज्यों की सरकारों को नहीं सौंपी जा सकती है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सप्तम अनुसूची की सूची 1 में, प्रविष्टि 43 के पश्चात्, यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'43A. Courts of Wards for the estates of Rulers of Indian States.

[43–क. देशी राज्यों की शासकों की संपत्ति के लिये प्रतिपालक अधिकरण।]'

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सप्तम अनुसूची की सूची–2 की प्रविष्टि–25 में ये शब्द और अंक जोड़ दिये जायें:–

'Subject to the provisions of entry 43A of List I.

[सूची 1 की प्रविष्टि 43–क के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।]' "

चूंकि सभा मेरे पहले संशोधन को स्वीकार कर चुकी है इसलिये इस आनुषंगिक संशोधन की आवश्यकता है। इसकी विशेषतया इसलिये आवश्यकता है कि इसमें प्रविष्टि–25 के संबंध में राज्यों की शक्तियां निश्चित रूप से बताई गई हैं। श्रीमान, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सप्तम अनुसूची की सूची-2 की प्रविष्टि-25 में ये शब्द और अंक जोड़ दिये जायें:-

subject to the provisions of entry 43A of list I.

[सूची-1 की प्रविष्टि 43-क के उपबन्धों के अधीन रहते हुए]' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 270 (पुनर्उपस्थित)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, दो अनुच्छेद और हैं। उनमें से एक अनुच्छेद 270 है और मुझे आशा है कि सभा उसे पुनर्उपस्थित करने की आज्ञा दे देगी। इसके अतिरिक्त एक अन्य अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 67-क भी है जिसके संबंध में कोई विवाद नहीं है। मेरा यह सुझाव है कि इन दो अनुच्छेदों को उठाया जाये।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 270 को उठायेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 270 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

'270. (a) All property and assets vested in his Majesty for the purposes of the Government of the Dominion of India and all property and assets vested in His Majesty for the purposes of the Government of each Governor's Province shall, as from the commencement of this Constitution, vest respectively in the Government of India and the Government of each corresponding State, and

Succession to property, assets, liabilities and obligations.

(b) All liabilities and obligations of the Government of the Dominion of India and of the Government of each Governor's province shall, as from the commencement of this Constitution, be the liabilities and obligations, respectively, of the Government of India and the Government of each corresponding State, subject to any adjustment made or to be made by reason of the creation before the commencement of

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

this Constitution of the Dominion of Pakistan or of the provinces of West Bengal, East Bengal, West Punjab and East Punjab.

[270. (क) जो संपत्ति और आस्तियां भारत डोमीनियन की सरकार के प्रयोजनों संपत्ति, आस्तियों दायित्वों के लिये सम्राट में निहित थीं तथा जो संपत्ति और आस्तियां और आभारों का उत्तराधिकारों प्रत्येक राज्यपाल प्रांत की सरकार के प्रयोजनों के लिये सम्राट में निहित थीं, वे सब इस संविधान के आरम्भ से पहले पाकिस्तान की डोमीनियन के अथवा पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के प्रांतों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाले किसी समायोजन के अधीन रह कर क्रमशः भारत सरकार और तत्स्थानी राज्य की सरकार में निहित होंगी; तथा

(ख) जो दायित्व और आभार भारत डोमीनियन की सरकार के तथा प्रत्येक राज्यपाल प्रांत की सरकार के थे, वे सब इस संविधान के प्रारम्भ से पहले पाकिस्तान की डोमीनियन के अथवा पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के प्रांतों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाले किसी समायोजन के अधीन रह कर क्रमशः भारत सरकार तथा प्रत्येक तत्स्थानी राज्य की सरकार के दायित्व और आभार होंगे।]' "

***अध्यक्षः** जिस अनुच्छेद को आप उपस्थित कर रहे हैं वह भी मेरे विचार से एक स्वतंत्र अनुच्छेद है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह इस अध्याय का भाग है। मैं निवेदन कर चुका हूं कि इसका मसौदा भी फिर तैयार करने की अनुमति दी जाये।

***अध्यक्षः** अच्छा यह होगा कि मैं अनुमति मांगूं। सभा के पिछले एक सत्र में जिस अनुच्छेद 270 को स्वीकार किया गया था उसे संशोधित किया जा रहा है। क्या सदस्य इस अनुच्छेद को संशोधित करने की अनुमति देते हैं?

***माननीय सदस्यः** जी हां।

***अध्यक्षः** वह उपस्थित किया जा चुका है। आप आगे बढ़ सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इस संशोधन को इस कारण उपस्थित किया गया है कि हमारे विधि-संबंधी परामर्श-दाताओं ने हमें बताया है कि सभा ने आरम्भ में जिस अनुच्छेद को अपनाया था वह दोषपूर्ण है। श्रीमान, यदि सभा मुझे आज्ञा दे तो मैं स्पष्टीकरण के लिये मूल अनुच्छेद को पढ़कर सुनाऊंगा।

वह इस प्रकार है:-

"इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर, भारत सरकार और प्रथम सूची के भाग-1 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य की सरकार क्रमशः भारत-डोमीनियन

की सरकार की और तत्स्थानी राज्यपाल-प्रांतों की सब संपत्ति, आस्तियों, दायित्वों और आभारों की इस संविधान के प्रारम्भ से पहले पाकिस्तान की डोमीनियन के अथवा पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के प्रांतों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाले किसी समायोजन के अधीन रह कर, उत्तराधिकारिणी होंगी।"

प्रस्तावित परिवर्तन इस कारण किया जा रहा है: पहले ये पारिभाषिक शब्द प्रयोग किये जाते थे कि भारत सरकार द्वारा तथा प्रांतों की सरकारों द्वारा प्रशासित होने वाली संपत्तियां तथा आस्तियां सम्राट में निहित होंगी। किंतु संबंधित सरकारों के दायित्वों तथा आभारों के बारे में भिन्न भाषा प्रयोग की जाती थी। यह समझा गया है कि इस संबंध में स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिये। मैं इस सभा के माननीय सदस्यों को, जो सम्राट के नाम से ही चिढ़ते हैं, बताना चाहता हूं कि इस संबंध में और कोई चारा नहीं है। यदि पहले विधि की यह शब्दावलि थी कि केन्द्रीय सरकार की अथवा प्रांतीय सरकारों की सब आस्तियां तथा संपत्ति सम्राट में निहित होंगी तो इन संपत्तियों तथा आस्तियों को इस संविधान द्वारा निर्मित होने वाली भावी भारत सरकार तथा राज्यों की सरकारों में निहित करने के लिये हमें इन्हीं शब्दों को प्रयोग करना होगा। माननीय सदस्यों को मैं बताना चाहता हूं कि इस विषय के संबंध में हमारे सभी विधि-संबंधी परामर्श-दाताओं का एक ही मत है और हमारे लिये अनुच्छेद में प्रस्तावित संशोधन करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। मुझे आशा है कि इस अनुच्छेद को, संशोधित रूप में, स्वीकार करने में इस सभा के सदस्यों को कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि उससे स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी और अनुच्छेद 270 में जो विधि संबंधी दोष बताया गया है वह उसमें नहीं रह जायेगा।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य महोदय इस संबंध में कुछ कहना चाहते हैं? तब मैं इस नवीन अनुच्छेद 270 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 270 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

'270. (a) All property and assets vested in his Majesty for the purposes of the Government of the Dominion of India and all property and assets vested in His Majesty for the purposes of the Government of each Governor's Province shall, as from the commencement of this Constitution, vest respectively in the Government of India and the Government of each corresponding State, and

Succession to property, assets, liabilities and obligations.

(b) all liabilities and obligations of the Government of the Dominion of India and of the Government of

[अध्यक्ष]

each Governor's Province shall, as from the commencement of this Constitution, be the liabilities and obligations, respectively, of the Government of India and the Government of each corresponding State, subject to any adjustment made or to be made by reason of the creation before the commencement of this Constitution of the Dominion of Pakistan or of the Provinces of West Bengal, East Bengal, West Punjab and East Punjab.

सम्पति, आस्तियों, दायित्वों और आभारों का उत्तराधिकार।

[270. (क) जो संपत्ति और आस्तियां भारत डोमीनियन की सरकार के प्रयोजनों के लिए सम्राट में निहित थीं तथा जो संपत्ति और आस्तियां प्रत्येक राज्यपाल-प्रांत की सरकार के प्रयोजनों के लिये सम्राट में निहित थीं, वे सब इस संविधान के प्रारम्भ से पहले पाकिस्तान की डोमीनियन के अथवा पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के प्रांतों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाले किसी समायोजन के अधीन रहकर क्रमशः भारत सरकार और तत्स्थानी राज्य की सरकार में निहित होंगी; तथा

(ख) जो दायित्व और आभार भारत डोमीनियन की सरकार के तथा प्रत्येक राज्यपाल प्रांत की सरकार के थे, वे सब इस संविधान के प्रारम्भ से पहले पाकिस्तान की डोमीनियन के अथवा पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के प्रांतों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाले किसी समायोजन के अधीन रहकर क्रमशः भारत सरकार तथा प्रत्येक तत्स्थानी राज्य की सरकार के दायित्व और आभार होंगे।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 270 संविधान का अंग बना लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 67-क

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, क्या मैं अनुच्छेद 67-क उपस्थित कर सकता हूं?

***अध्यक्ष:** जी हां।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद-67 के पश्चात् यह अनुच्छेद रखा जाये:-

'67A. Notwithstanding anything contained in clause (5) of article-67 of this Constitution, Parliament may by law provide for the representation in the House of the People of any State for the time being specified in Part II of the First Schedule or of any territories comprised within the territory of India but not included within any State on a basis or in a manner other than that provided in that clause.

Special representation to States in Part-II and territories other than States.

[67क. इस संविधान के अनुच्छेद 67 के खंड (5) में किसी बात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा, लोक सभा में प्रथम अनुसूची के भाग (2) में इस समय उल्लिखित किसी राज्य के, अथवा भारत राज्य क्षेत्र में समाविष्ट किंतु किसी राज्य के अन्तर्गत न होने वाले किन्हीं राज्य क्षेत्रों के, प्रतिनिधित्व का उस खंड में उपबन्धित आधार या रीति से भिन्न उपबन्ध कर सकेगी।]' "

भाग-2 में के राज्यों तथा राज्यों से अन्य राज्य क्षेत्रों का विशेष प्रतिनिधित्व

मेरा माननीय सदस्यों से निवेदन है कि वे अनुच्छेद-67 के खंड (5) के उपखंड (ख) तथा उपखंड (ग) की भी शब्दावलि देखें, जिसमें लोक सभा में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व को सीमित किया गया है। किंतु अनुच्छेद-67 के खंड (7) की शब्दावलि इस प्रकार है:

"संसद विधि द्वारा, राज्यों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों की लोक सभा में प्रतिनिधित्व के संबंध में उपबन्ध रख सकेगी।"

इन प्रदेशों के प्रतिनिधित्व के संबंध में विधि द्वारा उपबन्ध रखने का यह अर्थ नहीं है कि संसद खंड (5) के उपखंड (ख) और (ग) में वर्णित योजना का परित्याग कर सकती है।

इस संशोधन को प्रस्तुत करने का कारण यह है कि यद्यपि संसद को राज्यों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के लोक सभा में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने पड़े किन्तु सम्भावना इसकी भी है कि उपखण्ड (ख) और (ग) में निर्धारित शर्तों को भाग 2 में के कुछ राज्य पूरा न कर सकें। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता था कि लोक-सभा में प्रतिनिधित्व के लिये प्रथम अनुसूची के भाग-2 में के इन प्रदेशों का एक समूह बनाया जा सकता था, किन्तु ऐसा करना हमेशा सम्भव नहीं होगा। मैं अधिक विस्तार से नहीं बताना चाहता कि किन कारणों से प्रेरित होकर यह संशोधन उपस्थित किया गया है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमारे विचार से ऐसी आकस्मिक स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है जिसमें हमें

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

विशेष क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के लिये उपबन्ध रखने पड़ें चाहे वे क्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग-2 में के क्षेत्र हों अथवा राज्यों के अतिरिक्त अन्य प्रदेश हों। इन क्षेत्रों में लोक सभा में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने में अनुच्छेद-67 के वर्तमान उपबन्धों से हमें कठिनाई होगी। इसलिये सभा से मेरा अनुरोध है कि वह मेरे सुझाव को स्वीकार कर ले—यद्यपि मैं बहुत कुछ पहले ही से मान ले रहा हूं—और यह अनुभव करे कि इस प्रकार के संशोधन की आवश्यकता है। जो संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं उनमें से कुछ को मैं पहले ही बता देना चाहता हूं। उनमें से एक यह है कि यह रियायत राज्य परिषद् के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में भी की जाये। मेरे विचार से अनुच्छेद-67 के खण्ड-4 से, जो कार्यवाही विषयक एक खण्ड है, संसद के लिये राज्यपरिषद् प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने में कोई रुकावट नहीं होती। मेरे विचार में हम जिस अनुसूची 3-ख को उपस्थित करने जा रहे हैं उसके उपबन्धों को दृष्टि में रखकर इस विषय की परीक्षा हो रही है। उसमें गणित के अनुपात का हिसाब लगाया जायेगा और राज्यों के लिये जहां तक हो सकेगा ठीक-ठीक स्थान निश्चित किये जायेंगे। यदि संसद अतिरिक्त प्रतिनिधित्व रखना चाहे तो उसमें इसके लिये भी गुंजाइश रहेगी। इसलिये सभा के अपने उन मित्रों के सामने, जो राज्य-परिषद के प्रश्न को भी उठाना चाहते हैं, यह सुझाव रखता हूं कि वे उसे नहीं उठायें। हम स्थिति की परीक्षा कर रहे हैं और आवश्यकता हुई तो हम एक उपयुक्त संशोधन उपस्थित करेंगे। किन्तु मेरे विचार से इस प्रकार के संशोधनों की इस समय आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्ध में इनमें से अधिकांश क्षेत्रों की, विशेषतः उन प्रदेशों की जो भाग-2 में उल्लिखित हैं, प्रबल इच्छा है कि राज्यपरिषद् के स्थान पर लोक सभा में ही उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो। मेरे विचार से इस समय जिन आकस्मिक स्थितियों की कल्पना की जा सकती है उनकी आवश्यकताएं इस उपबन्ध को राज्यपरिषद् को भी लागू करने से उतनी पूरी नहीं होंगी जितनी कि इस उपबन्ध से ही पूरी हो जायेंगी। इसलिये माननीय सदस्यों से मेरी प्रार्थना है कि सभा के विचाराधीन अनुच्छेद राज्य परिषद् को भी सम्मिलित करने के सम्बन्ध में जिन संशोधनों की सूचना दी गई है उन पर मत लेने के लिये वे जोर न दें।

श्रीमान, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 306 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 67-क के सम्बन्ध में 'House of the People' [लोक सभा] शब्दों के पश्चात् 'and the Council of States [और राज्य परिषद्]' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, मेरे संशोधन द्वारा रूप-भेद होने के पश्चात् यह संशोधन इस प्रकार हो जायेगा:-

"इस संविधान के अनुच्छेद-67 के खण्ड (5) में किसी बात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा, लोक सभा और राज्य परिषद् में प्रथम अनुसूची के भाग (2) में इस समय उल्लिखित किसी राज्य के, अथवा भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट किन्तु किसी राज्य के अन्तर्गत न होने वाले किन्हीं राज्य क्षेत्रों के, प्रतिनिधित्व का उस खण्ड में उपबन्धित आधार या रीति से भिन्न उपबन्ध कर सकेगी।"

श्रीमान, मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी इस खण्ड का उद्देश्य बता चुके हैं। वास्तव में सभा को स्मरण होगा कि जब हम दिल्ली प्रान्त के प्रश्न पर विचार कर रहे थे तो उस समय माननीय प्रधान मंत्री महोदय ने यह सुझाव रखा था कि यदि दिल्ली के लिये एक पृथक् विधान-मंडल स्थापित नहीं किया गया तो उसे संसद के सदनों में अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाये। यदि इस वचन को पूरा करना है तो न केवल लोक सभा में बल्कि उत्तर सदन में भी प्रतिनिधित्व के लिये उपबन्ध रखे जायें। दिल्ली के अतिरिक्त कई अन्य केन्द्र प्रशासित क्षेत्र भी हैं। केन्द्रीय प्रशासन के अधीन हम अधिक राज्यों को रखते जा रहे हैं। चन्द्रनगर शीघ्र ही संघ में समाविष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार भारत की पूर्वी सीमा पर तिपरा तथा अन्य राज्य भी हैं जो सम्भवत: संघ में समाविष्ट हो जायेंगे। यदि विचार यह है कि इन क्षेत्रों को लोक सभा में प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाये तो कोई कारण नहीं है कि इन्हें राज्य परिषद् में भी प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया जाये। यदि उत्तर सदन में भी केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में से प्रत्येक को कम से कम एक स्थान प्रदान किया जाता तो अधिक सरलता होती और मैं भी उस उपबन्ध को बहुत पसंद करता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जिस अनुच्छेद को उपस्थित किया है उसका समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं। मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना सम्भवत: उत्तर सदन में प्रतिनिधित्व के अर्थ को बिल्कुल गलत समझे हैं। उत्तर सदन में एक संघांग के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई है, अर्थात् उसमें उन राज्यों का प्रतिनिधित्व हो सकेगा जिन्होंने मिलकर एक संघ बनाया हो। इस स्थल पर हम भाग-2 में के राज्यों के प्रतिनिधित्व के लिये उपबन्ध रख रहे हैं, जो पारिभाषिक रूप से संघांग नहीं है। संघांग वे राज्य हैं जो अनुसूची के भाग-1 तथा भाग-3 में उल्लिखित हैं। अनुच्छेद 67-क में उन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध हैं जिनका भाग-2 में उल्लेख है, जैसे अंडमान और निकोबार द्वीप, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग और पंथ-पिप्लोदा। हम इन क्षेत्रों को संघांग नहीं कह सकते। इसलिये संघीय संसद के उत्तर-सदन में इन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने का कोई अर्थ नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष महोदय, जिस समय लोक-सभा के गठन तथा भाग-2 को निकालने के सम्बन्ध में विचार किया गया था उस समय इस पर भी विचार किया गया था। हमने यह विचार किया था कि लोक सभा के लिये छोटे-छोटे निर्वाचन क्षेत्र बनाना उचित नहीं होगा।

[माननीय श्री के. सन्तानम]

जहां तक राज्य परिषद का सम्बन्ध है अनुच्छेद 67 (4) में यह उपबन्धित है कि भाग-2 में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से निर्वाचित होंगे, जैसे कि विधि द्वारा संसद निर्धारित करे इसलिये यद्यपि भाग-2 में के राज्यों के राज्य परिषद में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये किन्तु लोक सभा में उनको प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया और वह सम्भवत: इस कारण कि उनकी जनसंख्या पर्याप्त नहीं है। यदि उनकी जनसंख्या पर्याप्त होगी तो उन्हें स्वत: प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जायेगा। किन्तु जहां पर्याप्त जनसंख्या न हो उन क्षेत्रों के सम्बन्ध में यह विचार किया गया था कि उनको निकटवर्ती निर्वाचन क्षेत्रों के साथ मिला दिया जाये। अजमेर मेरवाड़ा तथा कुर्ग को निकटवर्ती निर्वाचन क्षेत्रों के साथ मिलाने में कोई कठिनाई नहीं है। यदि यह किया गया तो वहां के निवासी भी लोक-सभा के निर्वाचन में भाग ले सकेंगे। यद्यपि सुविधा के लिये भाग-1 तथा भाग-3 में का प्रत्येक राज्य किन्तु किसी विधि में यह उपबन्धित नहीं है कि लोक सभा के लिये प्रत्येक राज्य एक पृथक निर्वाचन क्षेत्र समझा जाये। भाग-1 और भाग-3 में के दो राज्यों के भी ऐसे सीमावर्ती क्षेत्र हो सकते हैं जिन्हें एक ही निर्वाचन क्षेत्र में रखा जाये।

इसलिये छोटे क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद रख के हम संविधान को बिना किसी कारण कुरूप बना रहे हैं। सम्भव है कि प्रदेशों को समाविष्ट करने के लिये अथवा अन्य कारणों से भी हमें बहुत से केन्द्र प्रशासित-क्षेत्र बनाने पड़े। उदाहरणार्थ यदि भाषा पर आधृत प्रान्तों के निर्माण में हमें कई क्षेत्रों को केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के रूप में रखना पड़े, और यदि हम प्रत्येक क्षेत्र को एक पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बनायें, तो लोक सभा के लिये छोटे-छोटे बहुत से निर्वाचन क्षेत्र हो जायेंगे। इसलिये मेरे विचार से, यह बिल्कुल ही अनावश्यक उपबन्ध है। इस उद्देश्य की पूर्ति अन्य संविधानिक साधनों से हो सकती है और मेरे विचार से, चूंकि लोक सभा के प्रतिनिधित्व को एक वैज्ञानिक आधार पर रखा गया है, इसलिये उसे इस प्रकार के किसी उपबन्ध से दूषित नहीं करना चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि इसका दुरुपयोग किया जायेगा किन्तु किसी संविधान में यह नहीं देखा जाता कि किसी उपबन्ध का दुरुपयोग किया जायेगा अथवा नहीं बल्कि यह देखा जाता है कि उसका दुरुपयोग हो सकता है या नहीं इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद को निकाल दिया जाये।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: अध्यक्ष महोदय, मैं श्री सन्तानम् के इस विचार से सहमत हूं कि अनुच्छेद-67 में बहुत सावधानी से शब्द रखे गये थे और उस समय यह विचार किया गया था कि खण्ड-5 के उपखण्ड (ख) और (ग) में जो शर्तें रखी गई हैं उन्हें किसी प्रकार कम नहीं किया जाये। मैंने इस सभा के माननीय सदस्यों से निवेदन किया था कि इस संशोधन को हमने एक निश्चित उद्देश्य से उपस्थित किया है। मैं यह कह कर किसी बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दूंगा कि मसौदा समिति तथा सम्बन्धित मंत्रियों का भी बिल्कुल यही मत है कि इस प्रकार के संशोधन की आवश्यकता है। इसलिये मैं अपने माननीय मित्र से अनुरोध करता हूं कि वे अपनी आपत्ति को वापस ले लें। साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि वह मुझसे अच्छी तरह जानते हैं कि चूंकि इस प्रकार के विषय के सम्बन्ध में साधारणतया सरकार ही कदम उठायेगी इसलिये इसकी सम्भावना नहीं है कि लोक सभा के

लिये प्रतिनिधित्व निश्चित करने में इस सभा की इच्छाओं को पूरा नहीं किया जायेगा और संसद अकारण ही अनुच्छेद 67 की शर्तों को कम करने के लिये सहमत हो जायेगी। इसलिये संशोधन के उद्देश्य के सम्बन्ध में मैं अपने माननीय मित्र से इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकता। मैं उन्हें यह आश्वासन देता हूं कि इस विषय पर बहुत सावधानी से विचार किया गया है और सावधानी से विचार करने के पश्चात् ही हमने इस नवीन अनुच्छेद को प्रविष्ट करने का निर्णय किया है। मुझे आशा है कि मैंने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसे स्वीकार करने में सभा कोई आपत्ति नहीं करेगी।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची-13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या-306 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 67-क के सम्बन्ध में 'House of the People' [लोक सभा]' शब्दों के पश्चात् 'and the Council of States [और राज्य परिषद] शब्द रखे जायें।

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 67-क पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद-67 के पश्चात् यह अनुच्छेद रखा जाये।

Special representation to States in Part-II and territories other than States.

'67A. Notwithstanding anything contained in clause (5) of article- 67 of this Constitution, Parliament may by law provide for the representation in the House of the People of any State for the time being specified in Part II of the First Schedule or of any territories comprised within the territory of India but not included within any State on a basis or in a manner other than that provided in that clause.'

भाग (2) में के राज्यों तथा राज्यों से अन्य राज्य क्षेत्रों का विशेष प्रतिनिधित्व

[6क. इस संविधान के अनुच्छेद-67 के खण्ड (5) में किसी बात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा, लोक सभा में प्रथम अनुसूची के भाग (2) में इस समय उल्लिखित किसी राज्य के, अथवा भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट किन्तु किसी राज्य के अन्तर्गत न होने वाले किन्हीं राज्य-क्षेत्रों के, प्रतिनिधित्व का उस खण्ड में उपबन्धित आधार या रीति से भिन्न उपबन्ध कर सकेगी।]' "

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 67-क संविधान का अंग बना लिया गया।

तृतीय पठन के सम्बन्ध में कार्यक्रम

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि अनुच्छेद 264-क, 296 और 299 पर कल विचार किया जाये?

***अध्यक्ष:** ये विवाद-ग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में हैं और अच्छा यही होगा कि इन्हें हम कल उठायें। अब हम किसी अन्य अनुच्छेद को नहीं उठा सकते। इसलिये आज अब हम अपना कार्य समाप्त करें।

***मि. नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): जो संशोधन आज पारित किये जा चुके हैं उनके सम्बन्ध में कई अन्य सदस्यों के साथ मैं यह स्वीकार करता हूं कि इन पर जो वाद विवाद हुआ है उसे हम नहीं समझ पाये हैं। ये संशोधन हमारे पास कल रात साढ़े दस बजे भेजे गये। मुझे नींद से जगाना पड़ा। और आज प्रात: से ही हम यहां काम कर रहे हैं; जिसका परिणाम यह हुआ है कि हमें इन संशोधनों पर विचार करने के लिये कुछ भी समय नहीं मिला। मुझे इस प्रक्रिया पर कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि शीघ्र विचार करने का कोई उपाय निकालना ही चाहिये किन्तु मैं यह सुझाव रखता हूं कि मसौदा समिति इन पर फिर विचार करे और यदि कुछ अनियमित बातों के ध्यान में आने पर कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता हुई तो, मेरे विचार से, इन संशोधनों पर फिर विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** आप कौन से संशोधनों की चर्चा कर रहे हैं?

***मि. नजीरुद्दीन अहमद:** जिन संशोधनों को स्वीकार किया जा चुका है उन पर विचार करने के लिये हमें कुछ भी समय नहीं मिला।

***अध्यक्ष:** किन्तु हम बहुत से संशोधनों को स्वीकार कर चुके हैं।

***मि. नजीरुद्दीन अहमद:** जी हां, और मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि उन पर मसौदा समिति फिर विचार करे और यदि उसे कुछ और अनियमित तथा असंगत बातें दिखाई दें तो उन पर आगे चल कर विचार किया जाये। हम पर अत्यधिक संशोधन लादे जा रहे हैं। यदि कोई व्यक्ति उनको समझना चाहे और उन पर विचार करना चाहे तो उसके लिये ऐसा करना असम्भव हो जाता है।

इसके अतिरिक्त कल के कार्य के सम्बन्ध में हमें ज्ञात नहीं है कि किन बातों पर विचार किया जायेगा। आज रात नौ या दस बजे हमें कुछ नये मसौदे दिये जायेंगे और हमसे यह आशा की जायेगी कि हम कल प्रात: तक उन पर विचार कर लें। मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार के संशोधनों के सम्बन्ध में मैं क्या करूं। इसलिये श्रीमान, मैं आदरपूर्वक निवेदन करता हूं कि आप इस पर विचार करें और हमें कृपा करके बतायें कि हमारे पास कोई नये मसौदे भेजे जा रहे हैं या नहीं। यदि भेजे जा रहे हैं तो नये मसौदों के सम्बन्ध में संशोधन भेजने के लिये हमें कितना समय दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से हमने कल के लिये तीन अनुच्छेदों को, अर्थात् अनुच्छेद 264-क, 296 और 299 को रखा है। इन पर सभा में विचार हुआ है। इनमें से दो पर तो बहुत समय तक विचार हुआ है और तीसरे पर भी कुछ समय तक विचार हुआ है। कल यदि कोई नया प्रस्ताव उपस्थित किया जायेगा तो वह इन अनुच्छेदों के पश्चात् उपस्थित किया जायेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह बताना चाहता हूं कि पारित अनुच्छेदों में जो कमी रह गई है तथा जिन आनुषंगिक संशोधनों को करने की आवश्यकता है पर मसौदा समिति विचार कर रही है और सम्भव है कि हमें कल कुछ संशोधन उपस्थित करने पड़ें। मेरे माननीय मित्र को संविधान के सभी अनुच्छेदों की पर्याप्त जानकारी है और उन्हें उनके विषय पर आने में तथा यह समझने में अधिक कठिनाई नहीं होगी कि उन संशोधनों की आवश्यकता है जिनकी सूचना हम आज रात देंगे। वे केवल आनुषंगिक संशोधन ही होंगे। माननीय सदस्यों को इतनी देर में सूचना देने के लिए मैं मसौदा समिति की ओर से उनसे क्षमा मांगता हूं। इसका कारण केवल यह है कि हमारे पास बहुत कम समय है और हम यह चाहते हैं कि संघ सम्बन्धी अनुच्छेदों को यथाशीघ्र समाप्त कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** कल हम पहले इन तीन अनुच्छेदों पर विचार करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** और फिर अन्य अनुच्छेदों को उठायेंगे।

***अध्यक्ष:** जहां तक मुझे विदित है, हमें अब केवल एक दो विषयों पर ही विचार करना है। प्रस्तावना पर अभी विचार नहीं हुआ है। मैं केवल उन बातों को बता रहा हूं जिन पर विचार करना है और जिन्हें मैंने लिख रखा है। इसके अतिरिक्त अनुसूची 1 भी है जिसमें राज्यों की परिभाषा की गई है और ये तीन अनुच्छेद भी हैं, जिन्हें बताया जा चुका है। मेरे विचार से एक अन्य अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 280-क भी उपस्थित किया जायेगा, जो आर्थिक आपात के सम्बन्ध में है। राज्यों के सम्बन्ध में, विशेषत: कश्मीर के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद, अर्थात अनुच्छेद 306-क भी उपस्थित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनुसूची 3-ख भी है जो राज्य-परिषद् के स्थानों के वितरण के सम्बन्ध में है। इनके अतिरिक्त आनुषंगिक संशोधन भी उपस्थित किये जा सकते हैं क्या इनके अतिरिक्त भी अन्य कोई विषय है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं कह चुका हूं कि कुछ आनुषंगिक संशोधन भी हैं।

***अध्यक्ष:** अन्य संशोधन आनुषंगिक संशोधन होंगे क्योंकि वे उन संशोधनों से उत्पन्न होंगे जिन्हें हम पारित कर चुके हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या अनुसूची 1 और प्रस्तावना पर इस सत्र में विचार किया जायेगा। उसके सम्बन्ध में कुछ उलझन थी। इसलिये मैं जानना चाहता हूं कि बिना कुछ रस्मों को पूरा किये हुए क्या अनुसूची-1 उठाई जा सकेगी?

***अध्यक्ष:** उन पर इस सत्र में विचार करना है क्योंकि हमें द्वितीय पठन समाप्त करना है। यदि आवश्यकता हुई और अनुसूची में कोई परिवर्तन किया गया तो हम उसे तृतीय पठन में संशोधित कर सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** अनुसूची 1 बहुत महत्वपूर्ण है और उस पर एक या दो दिन लग सकते हैं। इसलिये जब तक कि मसौदा समिति कार्यकारिणी के प्रस्ताव के अधीन इसके लिये तैयार नहीं है तब तक इस समय उस पर समय नष्ट करने से और फिर इन पर तृतीय पठन के अवसर पर समय लगाने से कोई लाभ नहीं होगा।

***अध्यक्ष:** किन्तु बिना सभी अनुच्छेदों तथा अनुसूचियों पर विराम किये हुए हम द्वितीय पठन को समाप्त नहीं कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): दूसरे सत्र में पहले दो दिनों में द्वितीय पठन को क्यों न समाप्त किया जाये? एक दिन के विचार के पश्चात् फिर तृतीय पठन आरम्भ किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करता हूं कि हम इस पर विचार कर रहे थे कि तृतीय पठन के अवसर पर किस प्रक्रिया का अनुसरण किया जायेगा और शनिवार को कौन से संशोधन सभा के समक्ष उपस्थित किये जायेंगे। यह कहा गया है कि शाब्दिक संशोधनों तथा अनुच्छेदों की पुनर्गणना तथा स्थानान्तरण के अतिरिक्त प्रत्येक अनुच्छेद की परीक्षा करते समय कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता का अनुभव किया जा सकता है और सम्भव है हमें सम्बन्धित अनुच्छेदों में एक सीमा तक संशोधन करने पड़ें। यदि इसके लिये हम द्वितीय पठन को स्थगित रखें तो अगले सत्र में तृतीय पठन को करने में हमें कठिनाई हो सकती है। किन्तु उस सत्र में हमें तृतीय पठन करना ही है। इसलिये हम यह सुझाव रख रहे हैं कि ऐसे संशोधन जो बहुत कुछ आनुषंगिक ही हैं किन्तु केवल शाब्दिक संशोधन नहीं हैं तृतीय पठन के अवसर पर उठाये जायें और सीमित रूप से इन संशोधनों पर संशोधन भी उपस्थित किये जायें तथा उन पर विचार किया जाये। जब हम इन संशोधनों को निबटा लेंगे तब हम सारे संविधान पर सामान्य विचार-विमर्श करेंगे, अर्थात् हम उसका तृतीय पठन करेंगे। इसलिये हम नियमों के अधीन आवश्यक आनुषंगिक परिवर्तनों को करने की शक्ति ग्रहण कर रहे हैं। हो सकता है कि हम यह देखें कि किन्हीं आनुषंगिक परिवर्तनों को करने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह बात हुई तो बहुत ही अच्छा है। किन्तु सम्भव है कि इसकी आवश्यकता पड़े और इसीलिये हम पहले से सावधान हो जाना चाहते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या सभा के वे सदस्य, जो मसौदा समिति के सदस्य नहीं हैं, तृतीय पठन के समय संशोधन में भेज सकते हैं?

***अध्यक्ष:** जी नहीं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हमारे नियमों में यह उपबन्धित है। यदि मसौदा समिति को परिवर्तन करने की इतनी अधिक शक्ति प्राप्त है तो.....

***अध्यक्षः** वह कोई ऐसे परिवर्तन नहीं कर सकती जिन्हें सभा स्वीकार नहीं करे।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** कुछ औपचारिक परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ सकती है। नियमों में इस सम्बन्ध में स्पष्ट उपबन्ध हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अधिक स्वतंत्रता नहीं दी जा सकेगी। यदि माननीय सदस्य कोई ऐसे सुझाव रखना चाहेंगे जिनका उपबन्धों पर सारवान प्रभाव पड़ेगा, तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि मसौदा समिति उनकी ओर यथेष्ट ध्यान देगी और उन पर विचार किया जायेगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैं केवल यह सुझाव रख रहा हूं कि मसौदा समिति का अन्तिम मसौदा हमारे पास समय पर भेजा जाये ताकि हम उस पर पूर्ण रूप से विचार कर सकें।

***अध्यक्षः** मैं समय-सारिणी के बारे में भी सोच रहा था। मेरे विचार से दूसरे पठन में संविधान जिस रूप में पारित किया गया है उस रूप में उसे इस मास की 31 तारीख से पहले छपने के लिये नहीं भेजा जा सकेगा। सारे संविधान पर बहुत सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। प्रत्येक अनुच्छेद, प्रत्येक शब्द की परीक्षा करनी है। इसमें समय लगेगा। इसलिये मसौदा समिति उसे 31 तारीख से पहले तैयार नहीं कर सकेगी। इसके पश्चात् लगभग एक सप्ताह छपने में लगेगा। हम उसे यथासम्भव शीघ्र अर्थात् 4 या 5 तारीख तक, भेजने का प्रयास करेंगे, किन्तु इससे पूर्व वह नहीं भेजा का सकेगा। जहां तक हो सकता है हम समय की बचत करने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु हमारे मार्ग में कई कठिनाइयां हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, आप अगला सत्र कब कर रहे हैं?

***अध्यक्षः** मैं सभा का सत्र 14 नवम्बर से लेकर 25 अथवा 26 नवम्बर तक करना चाहता हूं क्योंकि विधान सभा का सत्र 28 नवम्बर से होने जा रहा है और उसके लिये सदस्यों को आहूत किया जा चुका है। इसलिये हमें तीसरे पठन को उसके पहले समाप्त करना है। और प्रस्ताव यह है कि आवश्यक प्रश्नों तथा आनुषंगिक संशोधनों पर विचार करने के लिये दो या तीन दिन दिये जायें। मुझे आशा है कि दो दिन देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि हम इसके लिये पहले से तीन दिन रख रहे हैं। सामान्य बहस के लिये हमें आठ या नौ दिन मिल जायेंगे। मेरा यह विचार है कि आठ दिन तक सामान्य बहस की जायेगी और अन्तिम दिन संपूर्ण संविधान को पारित करने की रस्म पूरी की जायेगी। यह सुझाव रखा जाता है कि जब संविधान को अन्तिम रूप से पारित किया जाये तो उस पर इस सभा का प्रत्येक सदस्य हस्ताक्षर करे।

***माननीय सदस्यः** जी हां, श्रीमान।

***अध्यक्षः** वह एक ऐतिहासिक लेख होगा और उचित यही होगा कि जिन सदस्यों का इस संविधान के निर्माण में हाथ रहा है उनमें से प्रत्येक उसकी प्रति पर हस्ताक्षर

[अध्यक्ष]

करे। उसे सुरक्षित रखा जायेगा। इसमें एक दिन लग जायेगा। इसलिये उसके लिये मैं एक दिन अलग रख रहा हूं। शेष 6 या सात दिनों में सामान्य बहस होगी।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** संविधान के हिन्दी संस्करण की क्या स्थिति है?

***अध्यक्ष:** संविधान सभा ने एक उपबन्ध इस आशय का पारित किया है कि केन्द्र में ही नहीं बल्कि प्रान्तों में भी सभी विधेयक 15 वर्ष तक अंग्रेजी में पारित किये जायें। इसलिये हम इसे पारित करेंगे और आपने विभिन्न भाषाओं में इस का अधिकृत अनुवाद तैयार कराने का अधिकार मुझे दिया है। जहां तक हिन्दी संस्करण का सम्बन्ध है, आपने उसके सही होने को प्रमाणित करने के लिये मुझे उत्तरदाई ठहराया है। मैं इन अनुवादों को तैयार कराने के लिये कदम उठा रहा हूं। संविधान के प्रवर्तन में आने के पूर्व ही मैं हिन्दी के संस्करण को प्रकाशित करा देना चाहता हूं और अन्य अनुवादों को भी प्रकाशित कराना चाहता हूं किन्तु अन्य अनुवादों के सम्बन्ध में मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या हम जनवरी 25-26 की अर्धरात्रि को कोई उत्सव करने जा रहे हैं?

***अध्यक्ष:** अर्धरात्रि को या दोपहर को कोई उत्सव करने पर मैंने विचार नहीं किया है। किन्तु यह सुझाव रखा गया है कि हम सभी लोग संविधान की प्रति पर हस्ताक्षर करें। अभी तक हमने केवल यही सोचा है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं जनवरी 26 के सम्बन्ध में कह रहा हूं।

***अध्यक्ष:** हम इस सम्बन्ध में अगली बैठक में निर्णय करेंगे। एक अन्य प्रश्न भी में जिस पर अभी तक विचार नहीं किया गया है। सम्भव है कि उसमें सदस्यों की दिलचस्पी हो। वह राष्ट्र-गान का प्रश्न है। संविधान सभा राष्ट्रीय पताका को स्वीकार कर चुकी है। वह संविधान का अंग नहीं था किन्तु संविधान सभा ने उसे स्वीकार किया था। इसी प्रकार संविधान सभा को सम्भवत: राष्ट्र-गान को भी एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार करना होगा। सरकार एक गान को राष्ट्र-गान के रूप में स्वीकार कर चुकी है, किन्तु संविधान सभा ने उसे अभी स्वीकार नहीं किया है। इस दिशा में हमने अभी कोई कदम नहीं उठाया है। मैं कह नहीं सकता कि क्या किया जाये, किन्तु सम्भव है कि हमें इस प्रश्न पर विचार करना पड़े।

***श्री एच.वी. कामत:** हम अगले सत्र में तृतीय पठन के अवसर पर इस प्रश्न को उठा सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं कह नहीं सकता कि सारी सभा राष्ट्र-गान के सम्बन्ध में निर्णय कर सकेगी या नहीं कर सकेगी। यदि यहां हम सभी गाना आरम्भ करें तो वह चाहे और जो कुछ हो गान नहीं होगा। विशेषज्ञों की किसी समिति को उसके सम्बन्ध में निर्णय करना है और अभी मैंने निश्चय नहीं किया है कि उसके सम्बन्ध में क्या किया जाये। यदि सभा की इच्छा हो तो हम इसके लिये एक समिति नियुक्त करने पर विचार कर सकते हैं।

***एक माननीय सदस्य:** एक नवीन राष्ट्र-गान बनाने के लिए।

***श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): पहले संचालन समिति की एक बैठक में यह निर्णय किया गया था कि यह गान संविधान का अंग नहीं समझा जायेगा और उसे तृतीय पठन के समय एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मैंने भी यही कहा है।

***श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार:** अब आप राष्ट्र-गान के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये एक समिति को गठित करने जा रहे हैं। सभा उस समिति के प्रतिवेदन पर विचार करेगी और दो गानों में से किसी एक गान को राष्ट्र-गान के रूप स्वीकार करेगी। मेरे विचार से यह काम संविधान-सभा के जीवन-काल में ही पूरा कर लिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मेरा विचार है कि तृतीय पठन के अवसर पर इस काम को पूरा कर लिया जायेगा।

***श्री बी. दास:** हममें से कुछ लोग "जन-गण-मन" को पसंद नहीं करते। हमारी प्रबल इच्छा है कि "वन्देमातरम्" ही राष्ट्र-गान के रूप में स्वीकार किया जाये, क्योंकि पिछले पचास साठ वर्षों में हमें उसी से प्रेरणा प्राप्त हुई है। किसी भी दशा में जब यह प्रश्न उपस्थित किया जाये तो उस समय हम अपने विचार प्रकट करना चाहेंगे।

***अध्यक्ष:** निस्संदेह यह आपका मत है। मैं यह कह चुका हूं कि सबसे अच्छा गान चुनने के लिये मैं एक समिति गठित करने का विचार कर रहा हूं।

***एक माननीय सदस्य:** क्या वह समिति एक नवीन गान को प्रस्तावित करेगी?

***अध्यक्ष:** समिति को एक नवीन गान रचने की भी स्वतंत्रता होगी।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या यह समिति शीघ्र ही नियुक्त हो जायेगी?

***अध्यक्ष:** उसे इस बीच नियुक्त करना होगा। मैंने इस प्रश्न की व्यवहारिक बातों पर विचार नहीं किया है। इसलिये इस समय मैं कोई घोषणा नहीं कर सकता।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष महोदय मैं, यह समझता हूं कि अन्य देशों में साधारणतया राष्ट्र-गान को संविधान का अंग नहीं बनाया जाता और विशेषज्ञ

[माननीय श्री के. सन्तानम]

संगीतकारों से उसे रचने के लिये कहा जाता है और पुरस्कार भी दिये जाते हैं। इस समय अस्थाई रूप से हमने एक राष्ट्र-गान अपनाया है। मैं कह नहीं सकता कि इस समय इस सम्बन्ध में निर्णय करना उचित होगा या नहीं। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि हम उसे संसद के लिये छोड़ दें कि वह हर प्रकार की कार्यवाही करके विधि द्वारा इसको निश्चित करे।

***अध्यक्ष:** यह भी एक दृष्टिकोण है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मैंने अभी इस प्रश्न की व्यावहारिक बातों पर विचार नहीं किया है।

***श्री सीताराम एस. जाजू** (मध्य भारत): क्या विन्ध्य प्रदेश और भूपाल के सदस्य तृतीय पठन तक यहां आ जायेंगे?

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि वे आ जायेंगे और इसके लिये हम प्रयास कर रहे है किन्तु यदि वे न आयें तो लाचारी है।

अब हम कल दस बजे तक के लिये सभा स्थगित करते हैं।

इस के पश्चात् सभा शुक्रवार, तारीख 14 अक्तूबर, 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-178 PSD–15-11-52–000

Con. 3. X.7.49
320

अंक 10
संख्या 7

शुक्रवार
14 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
संविधान का मसौदा–(जारी)	3063–3174
[अनुच्छेद 296, 299 अनुच्छेद 48, 62, 67, 109, 112, 119, 135, 144, 149, 230, 303 पर पुनः विचार और प्रथम अनुसूची पर विचार]	
अल्पसंख्यक मंत्रणा-समिति के प्रतिवेदन के बारे में वक्तव्य	3129–3131

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 14 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

अनुच्छेद 296

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 296 पर आये हुए संशोधन नं. 15 को लेते हैं। इस अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन आये हैं। कुछ संशोधन ऐसे हैं जो मसौदा समिति की तरफ से उपस्थित किये जाने वाले संशोधन पर रखे गये हैं। अन्य कई संशोधन ऐसे हैं जो सदस्यों द्वारा उपस्थित किये जाने वाले संशोधनों पर रखे गये हैं। इनमें बहुतेरे समान आशय के हैं। इसलिये मेरा ख्याल है कि ऐसे संशोधनों के सम्बन्ध में जो समान आशय के हैं सदस्यों को स्वविवेक से काम लेना चाहिये और उनके लिये आग्रह न करना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** आप के निर्णय को मैं शिरोधार्य करूंगा, श्रीमान।

***अध्यक्षः** जहां तक साध्य हो मैं कोई निर्णय नहीं देना चाहता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बईः जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं। श्रीमान–

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 3165 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 296 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये–

Claims of Scheduled Castes and Scheduled Tribes to services and posts.

'296. The claims of the members of the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes shall be taken into consideration consistently with the maintenance of efficiency of administration, in the making of appointments to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State.' "

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

[296. संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिये नियुक्तियां सेवाओं और पदों के भरने में प्रशासन कार्य पटुता बनाये रखने की संगति के लिए अनुसूचित जातियों अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमवासियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।]

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान** (पूर्वी पंजाब: सिख): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान, वह यह.....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): मेरा भी एक औचित्य प्रश्न था श्रीमान। इस अनुच्छेद पर मैंने एक औचित्य प्रश्न उठाया था। यदि आपकी.....

***अध्यक्ष:** मैं आप दोनों की बातें सुनूंगा।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** मेरा कहना यह है श्रीमान कि जब तक इसके लिए एक प्रस्ताव नहीं पास हो जाता है यह सभा अपने पूर्व निर्णयों से मुकर नहीं सकती है। इसी अनुच्छेद को सभा पहले पास कर चुकी है।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद 296 को?

***सरदार भूपेन्द्र सिंह मान:** मेरा मतलब यह है कि उन सिद्धान्तों को जो इस अनुच्छेद में निहित हैं और जिन पर कि यह अनुच्छेद आधृत है उनको सभा स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर चुकी है। मैं अपनी बात को स्पष्ट किये देता हूं। अल्पसंख्यकों तथा मूलाधिकारों के लिए बनी मंत्रणा समिति के सभापति की हैसियत से माननीय सरदार पटेल ने 27 अगस्त सन् 1947 को सभा के समक्ष अपना जो प्रतिवेदन उपस्थित किया था उसमें दो बातें थीं। एक तो यह कि अल्पसंख्यकों की साफ-साफ परिभाषा दी गई थी और दूसरी यह कि चार बातों पर पृथक् पृथक् पूरी तरह विचार किया गया था। जिन चार बातों पर उसमें विचार किया गया था वह यह हैं। (1) विधान मंडलों में प्रतिनिधान तथा पृथक् और संयुक्त निर्वाचन (2) मंत्रिमंडल में अल्पसंख्यकों के लिए स्थान-संरक्षण (3) सरकारी नौकरियों में अल्पसंख्यकों के लिए जगहों का रक्षण और (4) अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए प्रशासकीय व्यवस्था। यह प्रतिवेदन सभा के समक्ष उपस्थित किया गया था जिसे आगे चलकर सभा ने स्वीकार किया था। इस प्रतिवेदन में जिसे कि सभा ने 1947 के अगस्त वाले अधिवेशन में पास किया था अल्पसंख्यकों के लिए मंत्रिमण्डल और सरकारी नौकरियों में जगहें सुरक्षित रखने के बारे में यह तय पाया था–

पैरा 9 में यह बात दी हुई है—कि अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय सेवाओं में अल्पसंख्यकों को समुचित जगहें दी जायेंगी और इन नौकरियों के लिये नियुक्तियां करने में प्रशासन-कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अल्पसंख्यकों के

दावों का ध्यान रखा जायेगा। इतना ही नहीं साफ-साफ और जोरदार शब्दों में यह बात भी कही गई थी कि इसके लिये एक समुचित उपबन्ध संविधान में या अनुसूची में अवश्य रखा जायेगा।

इन सब बातों को मान लेने के बाद मसौदा समिति ने इसके लिए एक विशेष अनुच्छेद 299 को यहां रखा जिसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों को मंजूर किया गया था। मंत्रणा-समिति ने 11 मई सन् 1949 को अल्पसंख्यकों को राजनैतिक रक्षण देने के बारे में सभा के समक्ष बाद में एक प्रतिवेदन उपस्थित किया था। इस प्रतिवेदन में भी समिति ने अपने पूर्व निर्णयों की पुष्टि की थी और उन पर जोर दिया था। हां इस प्रतिवेदन में यह जरूर किया गया था कि विधान मण्डलों में उनके लिये जगहों को सुरक्षित रखने की जो बात पहले मान ली गई थी उसे जरूर अमान्य कर दिया गया था किन्तु अन्य सभी अधिकार ज्यों के त्यों सुरक्षित रखे गये थे किन्तु इस अनुच्छेद के द्वारा हो यह रहा है कि जो अधिकार अल्पसंख्यकों को दिये जा चुके हैं वह अब छीने जा रहे हैं मेरा कहना यह है कि यह परिवर्तन एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है और इसके लिए एक विशेष प्रस्ताव पास किये बिना सभा अपने पूर्व निर्णयों को बदल नहीं सकती है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं उस औचित्य प्रश्न को समझ नहीं सका हूं जिसे माननीय मित्र श्री.....

***अध्यक्ष:** आप कृपया श्री नज़ीरुद्दीन अहमद को अपनी बात कहने दीजिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** कुछ समय पहले, जब कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने यह अनुच्छेद यहां उपस्थित किया था तो मैंने यह औचित्य प्रश्न उठाया था। गत 28 मई की सभा की कार्यवाही का मैं हवाला दे रहा हूं। उस दिन की कार्यवाही से पता चलता है कि अल्पसंख्यक सम्बन्धी मंत्रणा समिति ने एक विशेष उपसमिति नियुक्त की थी अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर विचार करने के लिये। इस विशेष उपसमिति के सदस्य ये सज्जन थे–

माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू

माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

श्री के.एम. मुन्शी तथा

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर।

इस विशेष उपसमिति ने और बातों के साथ यह भी प्रतिवेदन में कहा था कि अल्पसंख्यकों के लिये विधान-मण्डलों में जगहें सुरक्षित रहनी चाहिये। उसने यह भी कहा था कि अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय सेवाओं में उनके लिये जगहें तो सुरक्षित नहीं रखी जानी चाहिये पर इन सेवाओं के लिये नियुक्तियां करने में अल्पसंख्यकों के दावों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये जहां तक कि प्रशासन-कार्यपटुता को बनाये रखने की संगति के अनुसार ऐसा किया जा सकता हो।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

इस बात को सभा ने स्वीकार किया था अगस्त सन् 1947 में। बाद में चल कर माननीय सरदार पटेल के 11 मई सन् 1949 के एक पत्र के आधार पर इस प्रश्न पर आंशिक रूप से पुनः विचार किया गया था। पुनर्विचार किया गया था केवल विधान मण्डलों में उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने के प्रश्न पर न कि सेवाओं में उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने के प्रश्न पर। सरदार पटेल ने यह प्रतिवेदन किया था कि अनुसूचित जातियों को छोड़कर अन्य अल्प संख्यकों के लिये विधान-मण्डलों में जगहें सुरक्षित रखने की जो पद्धति है वह उठा दी जानी चाहिये। सभा ने 26 मई सन् 1949 को सरदार पटेल के कहने पर इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया था। मूल प्रतिवेदन, सरदार पटेल का पत्र, उनके द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव और सदस्यों की वस्तृतायें—इन सब को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुनर्विचार किया गया था केवल विधान मण्डलों में अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने के प्रश्न पर। मैं यह भी बता दूं कि इस प्रश्न पर पुनर्विचार करके जो निश्चय किया गया था उससे सभा के मुसलिम सदस्य पूर्णतः सहमत थे। मैं भी उनमें से एक था जिनका यह ख्याल था कि विधान मण्डलों में अल्प-संख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने से उनको कोई लाभ नहीं होगा। नौकरियों में उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने के प्रश्न पर तो पुनर्विचार ही नहीं किया गया था। उस मौके पर जब मैंने इस बात का उल्लेख किया था तो डॉ. अम्बेडकर तथा कई अन्य सदस्यों ने यह ख्याल किया था कि स्थिति को मैं ठीक-ठीक समझ ही नहीं पाया हूं। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने तो यहां तक कह दिया कि "अगर इस बात को आप दो दिन में नहीं समझ सकते हैं तो दो महीने में भी आप इसे नहीं समझ सकते हैं।" माननीय मित्र ने इस तरह दर्पपूर्ण भाषा में मुझ से यह बात कही थी। किन्तु मैं यह कहता हूं और जोर देकर कहता हूं कि उस समय जो किया गया था उसको समझने में भूल जिसने भी की हो पर मैंने नहीं की थी।

चूंकि आप खुद इस उपसमिति के एक विशिष्ट सदस्य थे और उस समय सभा में मौजूद थे जब कि यह प्रस्ताव पास किया गया था इसलिये आपसे सादर यह अनुरोध करूंगा कि आप ही यह बताइये कि इस प्रश्न पर भी उस समय क्या पुनर्विचार किया गया था? सरदार पटेल को वैधानिकता का पूरा ख्याल रहता है और उन्होंने इस सम्बन्ध में जो पत्र दिया था उसके पैरा 8 में खुद यह कहा था कि समिति इस बात को अच्छी तरह समझती है कि "अपने पूर्व स्वीकृत निर्णयों को आसानी से हमें नहीं बदल देना चाहिये।" वह बड़े दृढ़-विचार वाले व्यक्ति हैं और उन्होंने इस प्रश्न पर जो पुनर्विचार किया था वह खूब सावधानी के साथ और पर्याप्त कारणों के आधार पर ही किया था। इसलिये मैं यह निवेदन करूंगा कि अल्पसंख्यकों के लिये नौकरियों में जगहें देने के बारे में और विशेष प्राधिकारी नियुक्त करने के बारे में जो उपबन्ध अनुच्छेद 296 और 299 में रखे गये हैं वह खूब सोच समझ कर ही रखे गये हैं।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रासः जनरल): माननीय सदस्य औचित्य प्रश्न उपस्थित कर रहे हैं या कोई वक्तृता दे रहे हैं?

***अध्यक्षः** वह औचित्य प्रश्न रख रहे हैं और उसे समझा रहे हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यदि किसी सदस्य की समझ में यह नहीं आया है तो इसे मैं स्पष्ट किये देता हूं। मेरा औचित्य प्रश्न यह है। अल्पसंख्यक समिति के निर्णयों के अनुसार सभा ने कई निर्णय किये थे। सरदार पटेल के कहने पर इन निर्णयों में केवल आंशिक रूप से कुछ परिवर्तन बाद में किया गया था। अल्पसंख्यकों के लिये सेवाओं में जगहें सुरक्षित रखने के प्रश्न पर जो बातें प्रतिवेदन में कहीं गई थीं उन पर इन परिवर्तनों का कोई असर नहीं पड़ता है। चूंकि इस प्रश्न पर केवल आंशिक रूप से पुनर्विचार किया गया था और वह भी बहुत कुछ उपचार के बाद, इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रतिवेदन में कही गई अन्य बातों के बारे में अब हम कोई परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। सभा से और खास करके आपसे अध्यक्ष महोदय मैं यह अनुरोध करूंगा कि इस पर विचार किया जाये कि क्या इस प्रश्न पर इस तरह मनमाने तौर पर यहां पुनर्विचार किया जा सकता है। सभा का पूर्व निर्णय अपनी जगह है और मैं नहीं समझता कि उसे हम अब उलट सकते हैं। मेरा औचित्य प्रश्न यही है।

***अध्यक्षः** औचित्य प्रश्न की बात को और औचित्य प्रश्न के गुणदोष को— इन दोनों बातों को हमें अलग-अलग रखना होगा। फिलहाल मुझे विचार करना है केवल औचित्य प्रश्न पर जिसे यहां दो सदस्यों ने उठाया है। उनका कहना यह है कि सभा उपस्थित विषय के बारे में पहले कुछ निर्णय कर चुकी है और अब इस संशोधन के द्वारा उस निर्णय को बदलने की कोशिश की जा रही है। सभा के पूर्व निर्णयों पर पुनर्विचार करने के बारे में अपने नियमों में केवल एक ही नियम है और वह है नियम 32 और उसमें यह कहा गया है कि सभा के पूर्व स्वीकृत निर्णय पर पुनर्विचार उसी हालत में किया जा सकता है जब कि सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों की कम से कम एक चौथाई इसके लिए राजी हो। इसलिये, सभा के पूर्व स्वीकृत निर्णय के बारे में पुनर्विचार करने पर एक मात्र प्रतिबन्ध यही रखा गया है कि उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों की कम से कम एक चौथाई पुनर्विचार करने पर राजी हो। मेरा ख्याल है कि अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न को मैं सभा के सामने रख दूं और उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की एक चौथाई अगर पुनर्विचार करने के पक्ष में हो तो इस पर पुनर्विचार करना सर्वथा नियमानुकूल माना जायेगा।

जहां तक कि औचित्य प्रश्न के गुणदोष का सम्बन्ध है, मेरा ख्याल है कि मुझे इस पर अभी या कभी भी कोई राय नहीं जाहिर करनी चाहिये। गुणदोष की बात का निर्णय भी सभा ही कर सकती है। फिलहाल औचित्य प्रश्न पर ही मुझे निर्णय देना है और मेरा निर्णय यह है कि उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों की एक चौथाई अगर इसके पक्ष में हो तो इस पर पुनर्विचार किया जा सकता है।

***श्री आर.के. सिधवाः** मेरा कहना तो यह था कि अनुच्छेद 296 और 299 सभा में कभी पास ही नहीं किये गये हैं।

***अध्यक्षः** वह पूर्व स्वीकृत निर्णयों की बात कर रहे हैं, अनुच्छेद 296 और 299 की नहीं। अल्पसंख्यक सम्बन्धी मंत्रणा-समिति के प्रतिवेदन पर सभा पहले एक बार निर्णय कर चुकी है।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मानः** मैं आपसे निर्णय इस प्रश्न पर मांगता था श्रीमान कि आया प्रस्तुत प्रस्ताव के द्वारा अपना पहले का निर्णय उलटता है या नहीं?

***अध्यक्षः** यदि सभा पुराने निर्णय को उलटना चाहे तो वह इसके द्वारा उलट जायेगा वरना यह बना रहेगा। किन्तु अभी विचाराधीन प्रश्न मेरे सामने केवल यह है कि पुराने निर्णय को बदलने के सवाल पर यहां विचार किया जा सकता है या नहीं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रासः जनरल): किसी विधेयक के खंड में और एक प्रस्ताव में अन्तर होता है।

***अध्यक्षः** इस बात पर आपको बहस करने की जरूरत नहीं है। मैं सभा से यह जानना चाहता हूं कि उसकी इस प्रश्न पर क्या राय है। प्रश्न यह है:–

"क्या सभा इस प्रश्न पर पुनर्विचार करने पर तैयार है।"

***माननीय सदस्यगणः** हां, तैयार हैं।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** सो अब इस सम्पूर्ण प्रश्न पर पुनर्विचार किया जा सकता है, इस पर कोई रुकावट नहीं रह जाती है। अब हम उपस्थित संशोधन के गुणदोष पर विचार कर सकते हैं डॉ. अम्बेडकर इसे पेश कर चुके हैं और इस पर कई संशोधन आये हैं। अब आये हुए संशोधनों को एक एक करके लिया जायेगा। अब संशोधन नं. 16 को पेश करेंगे सरदार हुकुम सिंह।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाबः सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं:

"कि संशोधन सूची के (दूसरा भाग) संशोधन नं. 3163 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 296 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये–

'296. Subject to the provisions of the next succeeding article the claims of all minority communities shall be taken into consideration, consistently with the maintenance of efficiency of administration, in the making of appointments to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State for the time being specified in Parts I & III of the First Schedule.

Explanation.—Among others Muslims, Christians, Sikhs, Anglo-Indians and Parsees shall be recognised as minority communities.' "

[296. अगले अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संघ के या प्रथम अनुसूची के भाग 1 और 3 में अभी उल्लिखित राज्यों की सेवाओं या पदों के लिये नियुक्तियां करने में, प्रशासन-कार्यपटुता को बनाये रखने की संगति के अनुसार सभी अल्पसंख्यक समुदायों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।]

व्याख्या–अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के साथ मुसलमान, ईसाई, सिख, ऐंग्लो-इंडियन और पारसी समुदायों को अल्पसंख्यक समुदाय माना जायेगा।]

इस बारे में एक वैकल्पिक संशोधन की भी सूचना मैंने दे रखी है पर इस संशोधन को मैं पेश नहीं करूंगा।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस बारे में सभा के सामने शुरू में जो मूल अनुच्छेद रखा गया था वह इस प्रस्तावित अनुच्छेद से कहीं भिन्न था और सर्वथा भिन्न था। वह इस प्रकार था–

"296. Subject to the provisions of the next succeeding article the claims of all minority communities shall be taken into consideration, consistently with the maintenance of effciency of administration, in the making of appointments to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State for the time being specified in Part I of the First Schedule."

[296. अगले आगामी अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संघ के अथवा प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे राज्य कार्यों से सम्बन्ध सेवाओं या पदों के लिये नियुक्तियां करने में, प्रशासन कार्य-पटुता को बनाये रखने की संगति के अनुसार सब अल्पसंख्यक समुदायों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।]

संशोधन रखने में मेरा क्या उद्देश्य है यह बिल्कुल स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में सभा ने पहले जो निर्णय कर लिया है मैं उसी निर्णय को कायम रखना चाहता हूं। मसौदा समिति ने यह परिवर्तन करना क्यों ठीक समझा है, इसे मैं समझ नहीं पाता हूं। जहां तक कि मूल अनुच्छेद 296 का सम्बन्ध है, वह अल्पसंख्यकों के लिये परिमाण का काम करता था। उसके द्वारा केवल यह होता था कि बहुसंख्यक समुदाय अपने सदभिप्राय की, अपनी नेकनीयती की पवित्र घोषणा करता था और अल्पसंख्यकों को इससे एक मानसिक संतोष प्राप्त हो जाता था। इसके सिवाय उसका और कोई मूल्य नहीं था। उसके द्वारा कोई ऐसा अधिकार नहीं प्राप्त होता था जिसको न्यायालय द्वारा कोई कार्यान्वित कर सकता हो। वह केवल आश्वासन के लिये था।

[सरदार हुकम सिंह]

किन्तु अब यह आश्वासन भी छीन लिया जा रहा है। मैं आपको यह भी साफ बता दूं कि जहां तक मेरा निजी सम्बन्ध है मैं नहीं समझता कि हमारे असाम्प्रदायिक राज्य के लिये यह अनुच्छेद किसी भी तरह कलंक स्वरूप था या यह कि अपनी राष्ट्रीयता के लिये यह दूषण था। अल्पसंख्यकों को हमेशा यही सलाह दी गई है कि वह बहुसंख्यक समाज पर पूर्णतः विश्वास करें। मूल अनुच्छेद 296, मेरी राय में, केवल इस बात का द्योतक था कि अल्पसंख्यक समुदायों को बहुसंख्यक समुदाय पर पूरा विश्वास है। अगर इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त आश्वासनों का उल्लंघन कभी किया जाता है तो अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य इस अनुच्छेद के बल पर केवल इतना ही कर सकते हैं कि बहुसंख्यक समुदाय का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट कर सकते हैं और वह कुछ नहीं कर सकते हैं। किन्तु अब यह सहारा उठा लिया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में और कुछ कहने के पहले माननीय सदस्यों से दो बातों की अपील करूंगा। वस्तुतः यह बड़े दुर्भाग्य की ही बात है कि अभी तो शासन अधिकारारूढ़ है उस पर पूरा पूरा भरोसा करने में सिख सम्प्रदाय अपने को असमर्थ पा रहा है। इनकी इस असमर्थता का कारण है। उनका यह ख्याल है कि अतीत में जो भी आश्वासन या वचन उनको दिये गये हैं उन पर कभी अमल नहीं किया गया है बल्कि उनको भंग ही किया है। दलील के लिये आप यह भी मान लीजिये कि मैं जो कुछ कह रहा हूं वह गलत है, मेरा कहना सही नहीं है और अपने वर्तमान नेता ऐसे हैं कि उन पर इस बात का पूरा भरोसा किया जा सकता है कि वह हर एक के साथ न्याय करेंगे। मैं पूछता यह हूं कि इस बात की क्या गारण्टी है कि हमारे वर्तमान नेता ही हमेशा अधिकार में बने रहेंगे। क्या आपको यह आभास नहीं मिलने लगा कि बहुत सम्भव है कि भिन्न आदर्शों और उद्देश्य के लोग शीघ्र ही अधिकारारूढ़ हो जायें? सभा को इस प्रश्न पर तटस्थ दृष्टि से विचार करना चाहिये और यह न समझना चाहिये कि अल्पसंख्यक यह आशंकायें इसलिये व्यक्त कर रहे हैं कि उन्हें वर्तमान अधिकारारूढ़ दल पर या वर्तमान नेताओं पर कोई आक्रोश है और वह उनकी निन्दा करना चाहते हैं।

दूसरी बात मैं उनसे यह कहना चाहता हूं कि आप अपने को अल्पसंख्यकों की स्थिति में रख कर उनके द्वारा समय-समय पर व्यक्त की गई आशंकाओं को जरा समझने की कोशिश कीजिये।

हो सकता है कि इस विषम और अप्रिय बात कहने के कारण मुझ पर साम्प्रदायिक होने का दोषारोप किया जाये। किन्तु मेरा यह मत है कि निहित-स्वार्थ वर्ग केवल तर्क के लिये ही राष्ट्रीयता की दुहाई देता है। बहुसंख्यक समाज की उग्रता को तो राष्ट्रीयता माना जाता है पर जब अल्पसंख्यक लोग अपनी असहायावस्था को व्यक्त करते हैं तो उसे साम्प्रदायिक कह कर उसकी निन्दा की जाती है। बहुसंख्यक समाज के लिए अल्पसंख्यकों को राष्ट्रीयता का उपदेश देना तो बहुत आसान है पर राष्ट्रीयता पर अमल करना उनके लिये बड़ा मुश्किल है। मूल अनुच्छेद 296 और 299 को स्वीकार किया गया था इसलिये कि अल्पसंख्यक-मंत्रणा-समिति ने इसके लिये 8 अगस्त सन् 1947 को सिफारिशें की थीं जिन्हें कि संविधान सभा ने उसी साल 27-28 अगस्त को स्वीकार किया था। इन अनुच्छेदों में इन

संरक्षणों के लिये चार निश्चित उपबन्ध रखे गये थे। पहला उपबंध इस बात के लिये रखा गया था कि संरक्षित स्थानों की व्यवस्था के साथ संयुक्त निर्वाचन किया जायेगा। यह उपबन्ध अनुच्छेद 292 में रखा गया था। मंत्रिमण्डल में इनके लिए संरक्षित जगहों की व्यवस्था तो नहीं रखी गई थी किन्तु अनुसूची 4 के द्वारा राज्यपालों को यह निदेश देने की व्यवस्था की गई थी कि मंत्रिमण्डल में जहां तक शक्य हो अल्पसंख्यक समुदाय के लोग भी लिये जायें। अनुच्छेद 296 के द्वारा यह उपबन्ध किया गया था कि सरकारी नौकरियों के लिये नियुक्तियां करने में अल्पसंख्यकों के दावों को ध्यान में रखा जाये। फिर अल्पसंख्यकों के लिये एक आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी और इसके लिये उपबन्ध रखा गया था अनुच्छेद 299 में।

जहां तक कि सिखों का सम्बन्ध है श्रीमान, मैं उनका खास तौर पर उल्लेख करना चाहता हूं क्योंकि मैं यह समझता हूं कि इस सम्बन्ध में वह बड़े ही भाग्यहीन रहे हैं। सन् 1947 में जब अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने के प्रश्न पर निश्चय किया गया था उस समय सिखों को संरक्षण देने की बात यह कह कर टाल दी गई थी कि देश विभाजन के फलस्वरूप क्या स्थिति रहेगी इसका स्पष्ट चित्र अभी हमारे सामने नहीं आ पाया है। मैं यहां यह कह दूं कि विभाजन के सम्बन्ध में आयोग का निर्णय इसके पहले ही दिया जा चुका था। सिख लोग पश्चिमी पंजाब को छोड़कर अन्यत्र जाना आरम्भ कर चुके थे और किस स्थिति में उन्हें अपना घर द्वार छोड़ना पड़ा था इसे सभी जानते हैं। उन्होंने विभाजन की सारी मुसीबतें स्वेच्छा से अपनाई थीं और भारत में रहना पसन्द किया था। अपना घर द्वार और अपना सब कुछ वहां छोड़ कर वह पैदल हिन्दुस्तान पहुंच रहे थे। वह खुद अपने को ही लेकर यहां नहीं पहुंचे बल्कि सात जिलों को बचा कर वह अपने साथ लाये और भारतीय राज्य की सीमा वृद्धि की। इन सारी घटनाओं को देखते हुए तो यह समझ में नहीं आ सकता कि सिखों को संरक्षण देने की बात आखिर 28 अगस्त को अनिश्चित क्यों छोड़ दी गई थी। अगर इनके लिये विशेष रूप से कुछ नहीं करना था तो फिर इस प्रश्न को स्थगित रखने का प्रयोजन ही क्या था? अगर सिखों को संख्या के हिसाब से ही प्रतिनिधान देना था जैसा कि अन्य अल्पसंख्यकों के लिये किया गया है तो फिर इस प्रश्न को अगस्त में अनिश्चित क्यों छोड़ा गया था? इस लिये तो छोड़ा नहीं गया था कि इसके लिये यह जान लेना आवश्यक था कि कितने सिख यहां आ गये हैं क्योंकि इस जानकारी से इस प्रश्न का सरोकार ही क्या हो सकता था। तब सोचा यह गया कि इस मौके पर अगर यह बात कही जाती है तो उससे इस अभागे समुदाय हो बड़ा सदमा पहुंचेगा जिसे वह बरदाश्त न कर सकेगा। इसलिये इस प्रश्न को उस समय अनिश्चित छोड़ दिया गया और सिखों ने यह समझा कि चूंकि उन्हें बड़ी यातनायें झेलनी पड़ी हैं इसलिये उनका विशेष रूप से ख्याल किया जायेगा।

इसके बाद इस प्रश्न पर राय देने का दूसरा मौका आया अल्पसंख्यक-उपसमिति के सामने उस समय जब उसने अपना 23 नवम्बर सन् 1948 का प्रतिवेदन तैयार किया। सिखों को यह बताने के लिये कि उनके लिए खास तौर पर कुछ नहीं किया जा सकता है इस मौके को ठीक समझा गया और शायद इसलिये कि इस बीच में एक साल से अधिक बीत चुका था। उन पर विपत्ति आये एक साल से ज्यादा का अरसा बीत चुका था। इस मौके पर भी सिखों को सन्तोष देने के

[सरदार हुकम सिंह]

लिये इतना अवश्य कर दिया गया था कि संरक्षण तो उनको नहीं दिये गये पर उनक लिए कोरी सदिच्छायें व्यक्त कर दी गई थीं। उपसमिति ने अपने प्रतिवेदन में यह कहा था:–

> "यह कहना हमारे लिये अनावश्यक है कि इस समस्या पर विचार करते समय हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि पंजाब के विभाजन के पूर्व और पश्चात् दोनों ही समय, सिख समाज को कितनी मर्मान्तक यातनायें भुगतनी पड़ी हैं। पश्चिमी पंजाब में जो भयानक काण्ड हुआ है उसके फलस्वरूप उन्हें अपने कितने ही प्रियजनों के जीवन से तथा एक बड़ी भौतिक सम्पत्ति से हाथ धो बैठना पड़ा है। यह ठीक है कि इस सम्बन्ध में हिन्दुओं को भी इन्हीं की तरह समान आपत्तियों का सामना करना पड़ा है किन्तु सिखों पर एक बड़ा विशेष आघात इस बात का पड़ा है कि उन्हें कितने ही ऐसे स्थानों से हाथ धोना पड़ा है जो धार्मिक दृष्टि से उनके लिये विशेष रूप से पवित्र थे। हम इस बात को खूब समझते हैं कि इस विपत्ति से उन्हें कितनी शारीरिक यातनायें भुगतनी पड़ी हैं और उनकी भावना को कितना प्रबल आघात पहुंचा है पर हमारे दिमाग में यह बात अच्छी तरह आ गई है कि जो प्रश्न विचारार्थ हमें सौंपा गया है उसका निर्णय हमें एक भिन्न दृष्टिकोण से ही करना होगा।"

इसके बाद तीसरी मंजिल आई जब उपसमिति का प्रतिवेदन अल्पसंख्यक समिति के सामने पेश किया गया और उसने इस आशय का प्रस्ताव पास किया कि अनुसूचित जातियों को छोड़कर अन्य अल्पसंख्यकों के लिए विधान मण्डलों में स्थान रक्षण की जो पद्धति है वह अब उठा दी जाती है।

अन्य अल्पसंख्यक समदुायों से मैं क्षमा प्रार्थी हूं। उनको संरक्षण प्राप्त था पर सिखों के सवाल के उठते ही उन्हें भी इस संरक्षण से वंचित हो जाना पड़ा। समिति ने सिफारिश की कि अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित करने की जो व्यवस्था विधि द्वारा लिपिबद्ध की गई उसे अब उठा देना चाहिये, मैं इस बात पर ज्यादा जोर देना चाहता हूं इसलिये कि अल्प-संख्यक उपसमिति तथा अल्पसंख्यक-समिति दोनों की ही यह सिफारिश थी कि स्थान रक्षण की व्यवस्था उठा दी जानी चाहिये। इनकी इस सिफारिश को संविधान सभा ने 26 मई सन् 1949 को स्वीकार कर लिया।

अनुच्छेद 292 के अधीन विधान मण्डलों के लिय स्थान रक्षण की जो व्यवस्था थी वह अब समाप्त कर दी गई है। इस अनुच्छेद में इस सम्बन्ध में अब संशोधन कर दिया गया है।

चौथी अनुसूची में इसके लिये एक निदेश-विलेख (Instrument of Instruction) रखा गया था वह भी 11 अक्तूबर के निर्णयानुसार हटा दिया गया है। संरक्षण के लिये बचे खुचे जो दो खण्ड अनुच्छेद 296 और 299 में रह गये हैं जिन पर कि पुनर्विचार करने का अभी अभी हमने फैसला किया है वह संविधान-सभा के निश्चय को प्रतिबिम्बित करते हैं। अत: जहां तक कि मैं समझ पाता हूं इस बात का कोई कारण नहीं है कि इनमें हम ऐसा परिवर्तन करें जैसा कि करने जा रहे हैं।

दूसरी बात मैं यह कहता हूं कि अल्पसंख्यक समिति ने इन दो अनुच्छेदों में किसी भी परिवर्तन की सिफारिश कभी नहीं की है। तीसरी बात मुझे यह कहनी है कि खुद अल्पसंख्यकों ने कभी भी इन परित्राणों को हटाने की बात को नहीं मंजूर किया है। अब तक हमेशा यही कहा गया है कि इन परित्राणों को तभी हटाया जायेगा जब कि अल्पसंख्यक समुदायों को ही इस बात का विश्वास हो जाये कि उनका हित इनको हटाने में ही है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि जहां तक कि इन दो अनुच्छेदों का—नं. 296 और 299 का—सम्बन्ध है, अल्पसंख्यक समुदायों ने कभी भी इनमें रखे गये परित्राणों को हटाने पर रजामन्दी नहीं जाहिर की है। अल्पसंख्यक-समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह कहा है कि वह इस बात को अच्छी तरह जानती है कि सभा जो फैसला एक बार कर लेती है उसे जब तब हमें असानी से नहीं बदल देना चाहिये। फिर मैं पूछता हूं कि इस तरह हमेशा, आसानी से और बिना समझे बूझे आप पूर्व निर्णयों में क्यों परिवर्तन करते जा रहे हैं? मेरी प्रार्थना यही है कि डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है उसे सभा अवश्य अस्वीकार कर दे और संशोधन को स्वीकार कर मूल परित्राणों को पूर्ववत् बना रहने दें।

गत तीन चार दिनों के अन्दर एक बड़ी गम्भीर बात चारों तरफ फैल गई है जिसका सम्बन्ध केवल सिखों से ही है। सबको यह बताया गया है कि अल्पसंख्यक समिति में जो सिख प्रतिनिधि थे उन्होंने लिखित रूप में यह स्वीकार किया है कि संविधान में और कोई संरक्षण रखने की वह मांग नहीं करेंगे यदि—यह एक बहुत बड़ा यदि है—उनके पिछड़े हुए वर्गों को—यानी मजहबी, रामदासी, कबीर पन्थी और सिकलीगर समुदायों को—अनुसूचित जातियों में शामिल कर लिया जाये यह बात सच हो सकती है। गत मई में, जैसा कि मैं कह चुका हूं स्थिति यह थी कि इन दो अनुच्छेदों को अर्थात् नं. 296 और 299 को सभा स्वीकार कर चुकी थी। संरक्षण का उपबन्ध तब तक था पर उस दिन इनको हटाना तय हो चुका था। चौथी अनुसूची का निदेश-विलेख भी हटा दिया गया है। अल्पसंख्यक उपसमिति की कार्यवाही को पढ़कर जहां तक मैं देख पाता हूं मुझे तो कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि अनुच्छेद 296 और 299 का जिक्र हुआ हो या अल्पसंख्यकों से यह कहा गया हो कि वह इनको हटाने पर राजी हो जायें। अल्पसंख्यक समिति ने केवल विधान-मण्डलों में स्थान रक्षण की व्यवस्था को हटाने की बात स्वीकार की थी। यहां मैं यह बता देना चाहता हूं कि इन दो अनुच्छेदों में स्थान-रक्षण का कोई उपबन्ध नहीं है। अल्पसंख्यक समिति ने और किसी बात पर विचार ही नहीं किया। अनुच्छेद 296 और 299 में जो संरक्षण मूलक उपबन्ध थे उन पर तो समिति ने कभी विचार ही नहीं किया। उनको तो पास ही कर लिया गया था।

मैं आप से अपील करता हूं श्रीमान कि जरा सोचिये तो सही कि आखिर सिख प्रतिनिधियों को यह कैसे मालूम होता कि आखिर मौके पर इनमें परिवर्तन कर दिया जायेगा। अगर मैं सभा के पूर्व निर्णयों को रखने का आग्रह कर सकता हूं तो इसमें क्या हर्ज है? मैं यह तो नहीं कह रहा हूं कि सिखों को और परित्राण दिये जायें। मैं तो इन दिये गये परित्राणों को जो अब छीना जा रहा है उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठा रहा हूं। अपनी बात से या समझौते से आज अगर कोई हट रहा है तो मसौदा समिति या शासनारूढ़ दल हट रहा है न कि सिख समाज।

[सरदार हुकम सिंह]

जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है मैं आपके सामने एक और बात रखता जो इस प्रसंग में विचारणीय है। तर्क के लिए थोड़ी देर के लिये आप यह भी मान लीजिये कि सिख प्रतिनिधियों ने परित्राणों को उठा देना मंजूर किया था तो इससे क्या यह समझा जाये कि उन्होंने ऐसा इसलिये किया था कि वह अपने पिछड़े हुए वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल कराने के लिये बहुत ही आतुर थे? अगर यही बात है उनकी आतुरता से लाभ उठा कर क्या उन्हें इस बात पर राजी करना चाहिये कि वह सारे परित्राणों को छोड़ दें? मैं इसे नहीं मान सकता। पर मान लीजिये कि यह सच है पर मैं यह भी जानता हूं अनुसूचित जातियों ने पिछड़े हुए सिखों को अपने साथ शामिल करने का प्रबल विरोध किया था और इन्हें अनुसूचित जातियों में शामिल करने में सरदार पटेल को बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी थी। सिख लोग इसके लिये सरदार पटेल के कृतज्ञ हैं। जैसा कि कहा जाता है, अपनी अन्य सारी मांगों का परित्याग करके सिख लोग अपने पिछड़े हुये वर्गों के लिये कहीं यह रियायत पा सके थे। पर इससे हुआ क्या? इस रियायत पर पहिली कैद यह लगा दी गई थी कि केवल पूर्वी पंजाब के पिछड़े सिखों को ही यह छूट मिलेगी। पटियाला यूनियन के पिछड़े हुए सिखों को यह रियायत नहीं दी गई। यह कैसी विचित्र बात है। मैं पूछता हूं कि धर्म के आधार पर यह भेदभाव बरतना भला कहां तक औचित्य संगत कहा जा सकता है? धर्म के आधार पर जो वर्ग अल्पसंख्यक हैं उनको आप संरक्षण नहीं देते हैं पर अनुसूचित जातियों को सरक्षण देते हैं इसलिये कि वह पिछड़ी हुई हैं। फिर क्या कारण है कि सिख समाज के पिछड़े हुए वर्गों को जो अन्य पिछड़े हुए लोगों की तरह ही समान अयोग्यता के शिकार हो रहे हैं, यह संरक्षण न दिया जाये? क्या केवल इसलिये कि वह सिख सम्प्रदाय के लोग हैं? क्या यही आपका असाम्प्रदायिक राज्य है? जिस मांग को पाने के लिये सिख लोग इतना आतुर थे, जिसे एक बड़ी कीमत चुका कर वह पा सके हैं और जिसे बड़े इतस्ततः के बाद अनिच्छा से दिया गया है वह भी आज अनिश्चित अवस्था में पड़ गई है। अनुसूची 10 को अब हटा दिया गया है जिसमें अनुसूचित जातियों को लिपिबद्ध करके दिखाना था। अनुच्छेद 301 के अधीन जब राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया जा रहा है कि राज्यपाल या शासक से परामर्श करके वही इस बात का ऐलान करेगा कि कौन-कौन जातियां अनुसूचित जातियां समझी जायेंगी। यह सभी समझ सकते हैं कि सिखों को अब फिर इस बात की जबदस्त कोशिश करनी पड़ेगी कि वह राज्यपाल को इस पर राजी करें कि राष्ट्रपति को वह यह परामर्श दे कि पिछड़े हुए सिखों को वह अनुसूचित जातियों में शामिल कर ले। मुझे चिन्ता इसी बात की है कि सिखों के पास अब कुछ भी नहीं रह गया है। उनको कोई और परित्राण नहीं प्राप्त रह गये हैं। फिर किस आधार पर वह अब राज्यपाल से यह अनुरोध करेंगे कि वह राष्ट्रपति को यह परामर्श दें कि सिखों को वह संरक्षण दे। इसलिये मेरा कहना यह है कि सिखों ने अगर कोई बचन दिया भी था तो उसे यहां दलील के रूप में न पेश करना चाहिये क्योंकि उसके बदले में उन्हें जो भी मिला था वह सब अब उनसे ले दिया गया है।

जब सिख लोग कांग्रेस को उसकी उन वचनों की याद दिलाते हैं जो उसने 1929 में, 1946 और 1947 में दे रखे थे तो उनसे यह कहा जाता है कि स्थिति

अब बिल्कुल बदल गई है। कैबिनेट मिशन की योजना में, जिसके फलस्वरूप इस संविधान सभा का जन्म हुआ है, सिखों को यहां के प्रमुख तीन समुदायों में एक माना गया था। परिस्थिति में एकमात्र परिवर्तन तो केवल यह हुआ है कि मुसलमानों को पाकिस्तान मिल गया है। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि चूंकि मुसलमानों को पाकिस्तान मिल गया इसलिये सिख अब अल्पसंख्यक नहीं रह गये? भला आपका यह कहना कहां तक तर्कसंगत माना जा सकता है? अगर मैं यहां यह नहीं बता देता कि सिखों की भावनायें आज क्या हैं तो मैं अपने कर्तव्य पालन में चूक करता हूं। पाकिस्तान ने, वहां के अल्पसंख्यकों को मिटाने के लिये बर्बर, क्रूर और प्रत्यक्ष हिंसा का सहारा लिया किन्तु इसी समस्या को निपटाने के लिये हमने बड़ी चालाकी से और परोक्ष रूप से एक शांतिमय उपाय को अपना रखा है। अपनी परम्परा के अनुसार अहिंसात्मक हम अवश्य बने हुए हैं। सभा से मैं आग्रह करूंगा कि वह जरा मन्द गति से चले। बहुसंख्यक समुदाय से मैं यह अपील करूंगा कि, ठोस कार्रवाई के द्वारा, न कि केवल नारा लगाकर, वह अल्पसंख्यकों का विश्वास प्राप्त करें। अनुच्छेद 296 में ऐसा परिवर्तन करने से अल्पसंख्यकों के मन में जिन पर कि उस परिवर्तन का असर पड़ेगा एक बड़ी व्याकुलता पैदा हो गई है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह समूचे मसौदे को उसी रूप में रहने दे जिसमें कि यह मेरे संशोधन में दिखाया गया है।

लोगों को यह भी बताया गया है कि हमारे नेता यह समझते हैं कि मूल अनुच्छेद 296 को रखने से तो संविधान ही सर्वथा कुरूप हो जायेगा। मैं इसे नहीं समझ पाता हूं। ऐंग्लो-इंडियन और अनुसूचित जातियों के उल्लेख से अपना संविधान अगर कुरूप नहीं हो पाता है फिर फिर सिखों के उल्लेख से ही इसमें क्या कुरूपता आ जायेगी? किन्तु अगर मेरी इस अपील के बावजूद भी सभा पुराने मसौदे को रखने का सुझाव देने वाले संशोधनों में से किसी को भी स्वीकार करना नहीं चाहती है तो मैं अन्तिम प्रार्थना इससे इस बात की करूंगा कि वह मेरे संशोधन नं. 256 को स्वीकार करे। यह संशोधन यों है:—

"सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन नं. 23 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 296 के साथ यह खण्ड जोड़ दिया जाये—

'(2) Nothing in this article or in article 10 of the Constitution shall prevent the State from making any provision for the reservation of appointments or posts in favour of any minority community which, in the opinion of the State, is not adequately represented in the services under the State.' "

[(2) संविधान के इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 10 की कोई बात राज्य को, ऐसे किसी अल्पसंख्यक समुदाय को जिसको राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं प्राप्त है नियुक्तियों या पदों के लिये उपबन्ध करने से नहीं रोकेगी।]

राज्यों में जो कुछ हो रहा है उसकी पूरी जानकारी केन्द्र को होगी। वह हर बात को विस्तारपूर्वक जानता होगा। मेरा कहना यह है कि कुछ न कुछ स्वतन्त्रता तो उस आदमी को रहनी ही चाहिये जो मौके पर रह कर काम देखता है। प्रशासन को शान्तिपूर्वक चलाने के लिये तथा विभिन्न समुदायों के बीच अच्छा सम्बन्ध बनाये

[सरदार हुकम सिंह]

रखने के लिये यदि राज्य अपनी सेवाओं के लिए नियुक्तियां देने के सम्बन्ध में कुछ हेर फेर करने का निर्णय करता है तो उस पर संविधान के अधीन कोई रुकावट न रहनी चाहिये। कुछ उच्च पदस्थ व्यक्तियों का ख्याल यह है कि फिलहाल ऐसी कोई रुकावट उन पर नहीं आती है पर मुझे डर इस बात का है कि अनुच्छेद 10 के द्वारा इस सम्बन्ध में हेरफेर करने पर रुकावट आ सकती है क्योंकि उसमें कहा यह गया है कि सब नागरिकों को राज्याधीन नियुक्ति के विषय में अवसर समता प्राप्त रहेगी। इस बारे में मुझे आशंका न होती यदि अनुच्छेद 10 के खण्ड (3) में यह न कहा गया होता कि:

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधान राज्य की सम्मति में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों अथवा पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई अवरोध न होगा।"

मेरा संशोधन नं. 256 भी कुछ इसी आशय का है जिस आशय का कि अनुच्छेद 10(3) है। मैंने इस संशोधन को उस समय जब कि अनुच्छेद 10 पर विचार हो रहा है पेश इसलिये नहीं किया कि उस समय अनुच्छेद 296 मौजूद था और तब इसकी कोई जरूरत नहीं थी। किन्तु अब चूंकि अनुच्छेद 296 में परिवर्तन किया जा रहा है इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं कि राज्यों को यह स्वतन्त्रता तो मिलनी ही चाहिये और हमें यहां यह साफ साफ कह देना चाहिये कि यदि राज्य विभिन्न समुदायों को नियुक्तियां देने के बारे में कुछ हेर फेर करना चाहता है तो उसे इसकी स्वतन्त्रता होगी।

मैंने कुछ समाचार पत्रों में यह खबर पढ़ी है कि भारत सरकार के कानूनी सलाहकारों ने पूर्वी पंजाब की सरकार को यह सलाह दी है कि नौकरियों के बारे में वह किसी वर्ग विशेष के दावों पर विचार नहीं कर सकती है। इस समाचार को पढ़कर मेरी आशंका और बढ़ गई है और मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि जब तक राज्यों को इस बारे में स्वविवेकानुसार चलने की कुछ स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त रहती है वह चाहने पर भी इस बारे में कोई हेरफेर न कर पायेंगे। मैं पुन: सभा के सामने अपनी यह अपील रखता हूं। मैं यह नहीं मांग रहा हूं कि संविधान में सेवाओं के बारे में रक्षण का कोई उपबन्ध रखिये। संविधान को कुरूप करने वाली किसी बात की मांग नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल इस बात की मांग कर रहा हूं कि बहुसंख्यक समुदाय अपनी सद्भावना का आभास तो हमें दें। यदि इतना भी नहीं किया जाता है तो जहां तक कि अल्प संख्यक समुदायों का सम्बन्ध है उनका रहा सहा विश्वास भी उठ जायेगा।

***अध्यक्ष:** सात आठ संशोधन इस अनुच्छेद पर इस बात के आये हैं कि इसकी जगह संशोधनों द्वारा सुझाये गये अनुच्छेद रखे जायें। पहले मैं उन संशोधनों को लूंगा जिनको इसके स्थान पर अन्य अनुच्छेद रखने का सुझाव दिया गया है। उसके बाद अन्य संशोधन लिये जायेंगे। इसकी जगह दूसरा अनुच्छेद रखने का सुझाव देने वाला संशोधन नं. 28 अब लिया जाता है जो डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 24।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह भी नहीं पेश किया जा रहा है।

***अध्यक्ष:** तो अब आता है संशोधन नं. 25 जो सरदार भूपेन्दर सिंह मान के नाम में है।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** इसका सम्बन्ध है संशोधन नं. 23 से। चूंकि नं. 23 पेश नहीं किया गया है इसलिये मैं इसे नहीं पेश कर सकता हूं।

***अध्यक्ष:** इस संशोधन में और संशोधन नं. 23 में थोड़ा-सा ही अन्तर है अन्यथा दोनों में प्राय: एक ही बात कही गई है। अगर आप इसे पेश करना चाहते हैं तो मेरी तरफ से अनुमति है।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** मैं इसे पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

(संशोधन नं. 26 और 27 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 183 जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है।

***श्री आर.के. सिधवा:** अन्य संशोधनों का क्या होगा?

***अध्यक्ष:** उनको मैं बाद में लूंगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:-

"कि संशोधन सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन नं. 15 में (इसे बजाय नं. 23 कहने के, आपकी अनुमति से मैं इसे नं. 15 कहूंगा) प्रस्तावित अनुच्छेद 296 के स्थान पर यह रखा जाये:-

'296. (1) The maintenance of efficiency of administration shall be the only consideration in the making of appointment to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State.

(2) Parliament may by law prescribe the conditions under which the President may, if he deems necessary, appoint members of the Scheduled Tribes and the Scheduled Castes to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State.

(3) The provisions of clause (2) of this article shall apply in relation to such other backward classes as the President may on receipt of the report of a Commission

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

appointed under clause (1) of article 301 of this Constitution by order specify as they apply in relation to members of the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes.

(4) Parliament shall have the power to repeal, extend or modify any or all of the provisions of this article from time to time.' "

[296. (1) संघ या राज्य के कार्यों संसक्त सेवाओं और पदों के लिये नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्य पटुता को बनाये रखने का ही एक मात्र ख्याल रखा जायेगा।

(2) संसद विधि द्वारा उन शर्तों को विनिहित कर सकती है जिनके अधीन राष्ट्रपति यदि वह आवश्यक समझें संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं या पदों के लिये अनुसूचित जनजातियों या अनुसूचित जातियों के सदस्यों को नियुक्त कर सकता है।

(3) इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के उपबन्ध ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के सम्बन्ध में जिनका राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खण्ड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लेख करे उसी तरह लागू होंगे जैसे कि वे अनुसूचित जनजातियों या अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में लागू होते हैं।

(4) समय समय पर इस अनुच्छेद के किसी या सभी उपबन्धों के निरसन, विस्तार या रूप भेद की शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त रहेगी।]

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** खण्ड (2) और (3) खण्ड (1) से असंगत हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** असंगत नहीं हैं। मैं समझाये देता हूं कि ये क्यों कर असंगत नहीं हैं। अगर ये असंगत हैं तो इसका निर्णय अध्यक्ष देंगे।

***अध्यक्ष:** उन्होंने एक औचित्य प्रश्न उठाया है जिस पर मुझे विचार करना होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** पहले मुझे समझा तो लेने दीजिये। अगर उनका यह औचित्य प्रश्न है कि असंगत है तो मैं यह समझा देता हूं क्यों कर यह असंगत नहीं है। खण्ड (1) में यह कहा गया है कि नियुक्तियां देने में लोक सेवा आयोग ख्याल केवल इस बात का करेगा कि उस नियुक्ति से प्रशासन कार्यपटुता कहां तक बनी रहेगी और अभ्यर्थी की योग्यता कैसी है। लोक सेवा आयोग अल्पसंख्यक समुदायों के दावों को ध्यान में नहीं रखेगा। नियुक्तियां करते समय लोक सेवा आयोग अन्य और किसी भी बात से अपने को प्रभावित नहीं होने देगा। अनुसूचित आदिमजातियों या अनुसूचित जातियों के सदस्यों को नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति में और केवल राष्ट्रपति में निहित मैं रख रहा हूं केवल राजनैतिक आवश्यकता

के ख्याल से। लोक सेवा आयोग को हमें राजनैतिक झंझटों से सर्वथा मुक्त रखना होगा। मैं नहीं समझ पाता कि खण्ड (2) और (3) खण्ड (1) से असंगत क्योंकर हैं। आपका निर्णय पा जाने के बाद ही मैं आगे अपनी बात कहूंगा।

***अध्यक्षः** जिस रूप में यह भाषाबद्ध किया गया है उससे यह असंगत हो जाता है। 'परन्तु' यह आरम्भ में रख कर आप इसे संगत बना सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अवश्य ही मैं मसौदा तैयार करने का काम नहीं करता हूं और न मैं श्री सन्तानम् जैसा योग्य वकील ही हूं।

***अध्यक्षः** आपके संशोधन को मैं अनियमित नहीं ठहराने जा रहा हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जहां तक कि खण्ड (4) का सम्बन्ध है, इसका उद्देश्य यही है कि समूचा अनुच्छेद लचीला रहे ताकि शिक्षा का प्रसार होने पर और देशवासियों के जीवन स्तर में आर्थिक उन्नति होने पर, जब चाहे संसद उस उपबन्ध को हटा दे। जिस रूप में संशोधन नं. 15 को मसौदा समिति ने रखा है उसके मैं विरुद्ध हूं क्योंकि मैं नहीं चाहता हूं कि नियुक्तियां करते समय और अन्य अनावश्यक बातों का ख्याल किया जाये। मुझे डर इस बात का है कि अगर अन्य समुदायों के दावों का इसमें ख्याल किया जाता है तो फिर हमारे राज्य का समूचा ढांचा ही बिगड़कर खतरे में पड़ जायेगा।

यह बात मेरी समझ में अच्छी तरह आ गई है कि हमारे देश में अल्पसंख्यक कोई नहीं है। इसलिये किसी अल्पसंख्यक वर्ग के दावे का ख्याल नहीं किया जायेगा। हां यह पिछड़े हुए लोग अवश्य हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो सर्वथा पिछड़े हुए हैं, जिनको शताब्दियों से दबा कर पीड़ित रखा गया है। नौकरियों के सम्बन्ध में केवल ऐसे ही लोगों के दावों को ध्यान में रखा जायेगा। ऐसे लोगों की नियुक्ति का काम केवल राष्ट्रपति के हाथ में रहना चाहिये। इनको नियुक्त करने का दायित्व राष्ट्रपति पर होना चाहिये। मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि अगर हम इस आशय का उपबन्ध रखते हैं कि नियुक्तियां देने में अनुसूचित आदिम जातियों और अनुसूचित जातियों के दावों को ध्यान में रखा जायेगा तो इसका नतीजा यह होगा कि लोक सेवा आयोग के सदस्यों पर इतना बड़ा भार पड़ जायेगा जिसको वहन करने की शायद उनमें क्षमता न होगी। आखिर अल्पसंख्यक समुदायों का दावा क्या है? अनुसूचित आदिम जातियों या अनुसूचित जातियों का दावा क्या है? कोई भी आदमी जो साधारण बुद्धि और सहज ज्ञान रखता है, वह क्या कभी भी उनके अमान्य दावों को मानने पर तैयार हो सकता है।

इनके दावे यह हैं। कोई कहता है कि हमको समता प्राप्त होनी चाहिये। कोई यह मांग करता है कि नौकरियों में हमें संख्या के आधार पर जगहें मिलनी चाहिये। यहां सभा भवन में एक तीसरी मांग यह की गई है कि चूंकि हमें शताब्दियों तक दबाया गया है और हम पर अत्याचार किये गये हैं इसलिये अब सवर्ण हिन्दुओं से इसके लिये प्रायश्चित करवाया जाये। इन लोगों के विरुद्ध किये गये अपराधों के लिये अगर इस तरह प्रायश्चित हम करते हैं तो फिर हमें सारी राज्य-व्यवस्था

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

ही इन लोगों को यानी अनुसूचित आदिम जातियों को और अनुसूचित जातियों को दे देनी होगी। लोक-सेवा-आयोग क्या इन दावों पर कोई ध्यान देने जा रहा है? मेरा ख्याल है कि इन बातों के लिये किसी समुदाय को दोषी ठहराना गलत होगा। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के विरुद्ध जो भी अन्याय हुआ है उसके लिये किसी समुदाय को दोषी ठहराना गलत होगा। अगर इस दोष का कोई भागी है वह इतिहास है। समय को, और समय के प्रवाह को ही इसके लिये दोषी ठहराया जा सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** आखिर इतिहास बनाता कौन है?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं समझाये देता हूं। इतिहास का निर्माण करते हैं अत्याचार करने वाले और अत्याचार सहने वाले। जिसके साथ अत्याचार किया जाता है उसकी यह भूल है कि वह अत्याचार को स्वीकार करता है। मेरे इस कथन पर अगर आप यह दलील रखते हैं कि वह इस स्थिति में नहीं थे कि सुसंगठित होकर प्रतिरोध करते तो हम यह कहेंगे कि उनमें राजनैतिक चेतना का अभाव था, संगठन का अभाव था जिसके कारण उन पर अत्याचार किया जा सका। इन अत्याचारों के लिये अगर कोई जिम्मेदार था तो व्यवस्था और समाज जिम्मेदार थे। अनुसूचित आदिमजातियों और अनुसूचित जातियों पर किये गये अन्यायों के लिये अगर कोई दोषभागी है वह युग धारा है और कोई नहीं। ऐसे किसी भी अन्याय के दोष सवर्ण हिन्दू नहीं हैं। हमें भी अन्याय का शिकार होना पड़ा है। क्योंकि यहां के निवासियों ने सवर्ण हिन्दुओं का भी शोषण किया है, उन पर अन्याय किये हैं। शताब्दियों तक हमारा देश पराधीन रहा है। चिरकाल से यह देश विदेशियों के हस्तक्षेप के अधीन रहा है और विदेशियों के अत्याचार इस पर हुये हैं। सवर्ण हिन्दुओं को यहां समृद्ध होने का फूलने फलने का कभी मौका नहीं मिला है। सारा दोष सवर्ण हिन्दुओं के मत्थे लादना सरासर गलत है और अन्याय है। वह खुद स्थिति के शिकार रहे हैं। मैं इस बात को नहीं मान सकता हूं कि सवर्ण हिन्दुओं ने किसी पर भी अत्याचार किया है।

मैं इस बात पर भी जोर देना चाहता हूं कि प्रस्तुत अनुच्छेद को हमें रखना चाहिये था राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में। इसके द्वारा तो केवल सदिच्छा की घोषणा मात्र की कई है। सतुरां इसे हमें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में ही स्थान चाहिये था।

मेरी समझ से एक और कारण भी है जिसके लिये मुझे इसका विरोध करना पड़ रहा है। वह यह है कि इन लोगों के नैतिक, आर्थिक तथा भौतिक स्तर को समुन्नत करने के लिये जो कुछ हो सकता था हमने दिया है। मूलाधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले अध्याय को हमने पास किया है। उनके लिये अनुच्छेद 110 को हमने पास किया है। केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मण्डलों में इनके लिये सुरक्षित जगहों का हमें उपबन्ध किया है। वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की है। असाम्प्रदायिक राज्य के लिये जो भी बाते अपेक्षित हो सकती हैं उनकी हमने व्यवस्था की है। और आप क्या चाहते हैं? क्या आप राज्य को ही छिन्न भिन्न कर देना चाहते हैं?

मेरे दिमाग में यह बात भी साफ हो गई है कि अगर इस समय साहस के साथ इस सिद्धान्त को यहां साफ-साफ नहीं रख देते हैं। कि अपने असाम्प्रदायिक राज्य की बुनियाद को, अन्य बातों का ख्याल करके कभी हम बिगड़ने न देंगे तो देश का भविष्य सर्वथा अन्धकारमय हो जायेगा। मेरा अपना यह मत है कि ये लोग जो विधान मण्डलों और नौकरियों में स्थान रक्षण के लिये इतना शोर गुल मचा रहे हैं वह हरिजन समाज के मुट्ठी भर विशिष्ट आदमियों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुसूचित आदिम जातियों और अनुसूचित जातियों में जो राजनैतिक शक्ति सम्पन्न दल है वह इन्हीं लोगों को मिला कर बना है। मैं नहीं समझता कि इनकी इन मांगों और दावों से अनुसूचित जातियों के विशाल जनसमूह का कोई वास्ता है और इन मांगों की पूर्ति से उनको कोई फायदा पहुंच सकता है। इन जातियों के बारे में जो समस्या आज हमारे सामने है उनका समाधान नौकरियां दिला कर नहीं किया जा सकता है। इस समस्या के समाधान का उपाय तो यही है इन लोगों को हम अपने में मिला कर एक कर दें और सभी सम्प्रदायों को एक राष्ट्र के रूप में सुसम्बद्ध कर दें। ऐसा करने से देश में सुखसमृद्धि आ सकती है। मैं नहीं चाहता हूं कि मुसलिम लीग की राजनीति यहां के राजनीतिक रंगमंच पर पुनः अभिनीत की जाये। मेरे संशोधन का मूल उद्देश्य है अपने राज्य की नींव को पुख्ता करना। यहां सभा भवन में मैंने जो भी वक्तृतायें दी हैं उनमें हमेशा मैंने ऐसी बात पर जोर दिया है। राज्य के हितों को सुरक्षित रखने के लिए ही मैंने यह संशोधन पेश किया है।

(संशोधन नं. 280 ओर 309 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** यह है वह संशोधन जिनमें, डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद के स्थान पर अन्य अनुच्छेद रखने की बात कही गई है। पहले मैं इन्हीं संशोधनों को निपटा देना चाहता हूं। एक संशोधन जब स्वीकार कर लिया जायेगा तो बाकी छोड़ दिये जायेंगे। कुछ मिला कर दो ही संशोधन नं. 16 और 180—ऐसे आये हैं। सरदार हुकुम सिंह के संशोधन नं. 256 पर अलग मत लिया जायेगा।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): खण्डों पर आम बहस होगी या नहीं?

***अध्यक्षः** इन पर आम बहस का मौका मैं दूंगा। अभी मैं इन संशोधनों को निपटा देना चाहता हूं ताकि संशोधनों के बारे में कोई गुंजलक न रह जाये। इस अनुच्छेद के स्थान पर अन्य अनुच्छेद रखने का सुझाव देने वाले कई संशोधन आये हैं। पहले मैं सरकार हुकुम सिंह के संशोधन नं. 16 को लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची (भाग 2) के संशोधन नं. 3163 के सम्बन्ध में, प्रस्तावित अनुच्छेद 296 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये।

[अध्यक्ष]

'296. Subject to the provisions of the next succeeding article the claims of all minority communities shall be taken into consideration consistently with the maintenance of efficiency of administration, in the making of appointments to services and posts in connection with affairs of the Union or of a State for the time being specified in Parts I & III of the First Schedule.

claims of minority communities to services and posts.

Explanation—Among others Muslims, Christians, Sikhs, Anglo-Indians and Parsees shall be recognised as minority communities.' "

[296. अगले आगामी अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संघ या प्रथम अनुसूची के भाग 1 और 3 में अभी उल्लिखित राज्यों की सेवाओं या पदों के लिये नियुक्तियां करने में, प्रशासन-कार्य पटुता को बनाये रखने की संगति के अनुसार, सभी अल्पसंख्यक समुदायों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।]

व्याख्या–अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के साथ मुसलमान, ईसाई, सिख, ऐंग्लो-इंडियन और पारसी समुदायों को अल्पसंख्यक समुदाय माना जायेगा।]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है–

"कि सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन नं. 23 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 296 के स्थान पर यह रखा जाये–

'296. (1) The maintenance of efficiency of administration shall be the only consideration in the making of appointment to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State.

(2) Parliament may by law prescribe the conditions under which the President may, if he deems necessary, appoint members of the Scheduled Tribes and the Scheduled Castes to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State.

(3) The provisions of clause (2) of this article shall apply in relation to such other backward classes as the President may on receipt of the report of a Commission

appointed under clause (1) of article 301 of this Constitution by order specify as they apply in relation to members of the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes.

(4) Parliament shall have the power to repeal, extend or modify any or all of the provisions of this article from time to time.' "

[296. (1) संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिये नियुक्तियां करने में प्रशासन-कार्य-पटुता को बनाये रखने का ही एक मात्र ख्याल रखा जायेगा।

(2) संसद् विधि द्वारा उन शर्तों को विनिहित कर सकती है जिनके अधीन राष्ट्रपति, यदि वह आवश्यक समझें, संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं या पदों के लिये अनुसूचित जनजातियों या अनुसूचित जातियों के सदस्यों को नियुक्त कर सकता है।

(3) इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के उपबन्ध ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के सम्बन्ध में जिनका राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खण्ड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लेख करे उसी तरह लागू होंगे जैसे कि वे अनुसूचित जनजातियों या अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में लागू होते हैं।

(4) समय-समय पर इस अनुच्छेद के किसी या सभी उपबन्धों के निरसन, विस्तार या रूप भेद की शक्ति राष्ट्रपति को, प्राप्त रहेगी।]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब रह गया केवल एक संशोधन नं. 15 का। इस पर आये संशोधनों को अब मैं लेता हूं।

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार: जनरल): मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमान:-

"कि ऊपर के संशोधन नं. 15 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 296 में, "The claims of the members of the Scheduled Castes & the Scheduled Tribes" (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के सदस्यों के दावों पर) शब्दों के स्थान पर "The claims of the members of the Scheduled Castes,

[श्री गुप्तनाथ सिंह]

Scheduled Tribes and such other castes who are educationally and socially backward" (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और ऐसी अन्य जातियों के सदस्यों के दावों का जो शैक्षिक तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन पर अपनी बात कहने से पहले आरम्भ में ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि सम्प्रदायवाद, जातिवाद या अन्य किसी वाद के कुत्सित उपाय को अपनाने के मैं सर्वथा विरुद्ध हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** फिर भी आप पिछड़े हुए वर्गों के लिये यह संशोधन पेश कर रहे हैं?

***श्री गुप्तनाथ सिंह:** हां जनाब सिधवा साहब। पर धीरज के साथ मेरी बात तो सुनिये। यह साम्प्रदायिकता हमारे देश के लिये अभिशाप सिद्ध हो चुकी है। इस तरह की चीजों का कुफल हम भोग चुके हैं। फिर भी इन चीजों को हम जारी रखने जा रहे हैं। मानव और मानव के बीच जो भेदभाव और अन्तर बरता जाता है वह एक भयंकर विषवृक्ष है जिसे स्वतन्त्र भारत में कभी पनपने का हमें मौका ही न देना चाहिये। किन्तु अपने समाज का वर्तमान ढांचा ही कुछ ऐसा है कि बाध्य होकर हमें और हमारे नेताओं को रक्षण और संरक्षण के सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ रहा है। मैं जानता हूं कि इस व्यवस्था को हमने खुशी से नहीं रखा है। हम चाहते हैं कि यह व्यवस्था हमेशा के लिये ही उठा दी जाये। किन्तु भारतीय समाज के कतिपय वर्ग ऐसे हैं—हरिजन बंधु और आदिवासी मित्र—जो शताब्दियों से यहां उत्पीड़न सहते आ रहे हैं और चिरकाल से उन पर अत्याचार होता आ रहा है जिससे डर कर वह इन रक्षणों की मांग कर रहे हैं। उनकी यह मांग ठीक है। उनको रक्षण मिलना चाहिये और इतना पर्याप्त रक्षण मिलना चाहिये कि जिससे वह समाज के अन्य वर्गों के समक्ष आ सकें। ऐसा होने पर ही, मानव और मानव के बीच बरते जाने वाले इस भयंकर भेदभाव का अन्त होगा अन्यथा नहीं।

पर इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि देश में और भी बहुत से ऐसे वर्ग हैं जिनकी अवस्था आज अपने हरिजन और आदिवासी बन्धुओं से किसी तरह भी अच्छी नहीं है। देश के कुछ भागों में तो अवस्था इतनी खराब है कि इन लोगों की हालत हरिजनों और आदिवासियों से भी गई बीती है। मैं आप को बताना चाहता हूं कि ब्राह्मण लोग जो अपने को मानव समाज के उच्चतम स्तर पर अवस्थित मानते हैं, उनमें भी बहुत से ऐसे हैं जो अछूत हैं। आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि ब्राह्मणों में भी अछूत वर्ग वर्तमान है और इसे अब्राह्मणों से भी छोटा समझा जाता है। आखिर इन सब बातों का मतलब क्या होता है? यह सब व्यर्थ की बातें हैं। किसी को हम छोटा समझते हैं और किसी को बड़ा। मानव समाज में इस तरह का भेदभाव अन्तर कभी न रहने देना चाहिये। किन्तु हमारा समाज इस भेदभाव को बनाये हुए है। हमारे समाज के लिये यह एक दुर्भाग्य की ही बात है। यही कारण है जो हमारे ये मित्र रक्षण, संरक्षण, आरक्षण आदि की मांग कर रहे हैं।

मैं जानता हूं और इसे आप भी जानते हैं श्रीमान कि रक्षण और नियंत्रण के कारण ही भ्रष्टाचार फैलता है। मैं आपके सामने इसके दो उदाहरण रखता हूं। केन्द्रीय शासन ने इस बात का ऐलान किया था कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों और सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के लोगों को अध्ययन के लिये वह छात्रवृत्तियां देगी। पिछड़े हुए वर्गों में 'किसान' भी माना जाता है। 'किसान' शब्द का आम अर्थ कृषक और कोई भी आदमी कृषक हो सकता है चाहे वह ब्राह्मण हो या कायस्थ हो या और कोई भी हो। किन्तु संयुक्त प्रान्त में 'किसान' शब्द एक सीमित अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। कृषक वर्ग के उस व्यक्ति को जो पिछड़ा हुआ है वहां किसान कहा जाता है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि श्रीमान कि इस छात्रवृत्ति के आवेदन पत्र देने वाले छात्रों में कुछ ऐसे भी थे जो समुन्नत वर्ग के थे, पर आवेदन उन्होंने इस आधार पर दिया था कि उनके पूर्वज किसान थे और वह भी खेतीबारी का ही काम करते हैं इसलिये उन्हें यह छात्रवृत्ति मिलनी चाहिये।

इसी तरह एक बार ऐसा हुआ था कि हरिजन कोष से मिलने वाली छात्रवृत्तियों के लिये कुछ ब्राह्मणों ने आवेदन पत्र दिये थे यह दावा करते हुये कि वह भी हरिजन हैं। इस तरह हम देखते यह हैं कि रक्षण और नियंत्रण की व्यवस्था से भ्रष्टाचार ही फैलता है सुतरां इस व्यवस्था को हमें कभी बढ़ावा नहीं देना चाहिये। किन्तु चूंकि हमारा समाज हठधर्मी हो गया है इसलिये इसका कुपरिणाम हमें भुगतना ही पड़ेगा। हमारे समाज का वर्तमान ढांचा ही कुछ ऐसा है कि उसमें इन खराबियों का पैदा होना अनिवार्य है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के कारण ही दलित वर्गों के मन में अविश्वास और आशंका की भावना पैदा हो रही है। उनको डर इस बात का है कि संरक्षण का उपबंध न रहने से प्रशासकीय सेवाओं में उनको समुचित जगहें न मिल जायेंगी और इसीलिये रक्षण की वह मांग कर रहे हैं। मूल अधिकारों को तथा राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों को संविधान में रख देने से इनके अधिकार सर्वथा सुरक्षित हो जाते हैं पर फिर भी ये रक्षण की मांग पर आग्रह शील बने हुए हैं।

मैं आपकी निगाह में यह बात लाना चाहता हूं कि "शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए" शब्द संविधान में कैसे आये हैं। अनुच्छेद 10 का खण्ड (3) यह कहता है–

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधान राज्य की सम्मति में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों अथवा पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में अवरोध न होगा।"

सो, हमने उनको सभी अधिकार दे रखे हैं पर फिर भी इनके मन में अविश्वास बना हुआ है।

इस सम्बन्ध में सभा के सामने मैं एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूं। बिहार के पड़ौसवर्ती एक प्रान्त में एक बहुत ही मेधावी छात्र ने जिसे मैं निजी तौर पर जानता हूं, एक पद के लिये आवेदन भेजा। वह काशी विश्वविद्यालय से एम. काम की परीक्षा पास कर चुका था। वह प्रान्त के लोक-सेवा-आयोग के सामने

[श्री गुप्तनाथ सिंह]

अभी हाल ही में मुलाकात के लिये हाजिर हुआ था। आयोग के सदस्य शायद इस बात को नहीं जानते थे कि वह अभागा अभ्यर्थी एक बहुत ही पिछड़े हुए वर्ग का आदमी था। वह अपने छात्र जीवन में हमेशा हर परीक्षा में प्रथम आया था। उसको नियुक्ति मिल गई पर एक महीने बाद ही प्रान्तीय सरकार का एक पत्र उसे मिला जिसमें यह सूचित किया गया था कि उसकी नौकरी खत्म कर दी गई है। उसने प्रान्तीय सरकार को तथा अपने विभाग को पत्र लिखा और जानना चाहा कि मामला क्या है। उसने पत्र में यह भी सुझाव दिया था कि अगर उसने कोई अपराध किया है तो उस पर मामला चलाना चाहिये। किन्तु सरकार ने उस सम्बन्ध में कोई सूचना देने से इनकार कर दिया। यह बात उस प्रान्तीय सरकार के लिये वस्तुतः एक बड़ी लज्जा की बात है।

इसी तरह ब्रिटिश अमलदारी में हमारे स्वनाम धन्य प्रान्त बिहार में एक बहुत ही पिछड़े हुए किसान वर्ग के एक व्यक्ति को डिप्टी कलेक्टर का पद केवल इसलिये नहीं दिया गया कि वह एक पिछड़े हुए सम्प्रदाय का आदमी था। (*बाधा*) धीरज रख कर मेरी बात तो सुनिये सिधवा साहब। आपको भी बोलने का मौका दिया गया था। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि यह सज्जन इस समय बिहार के एक उच्चकोटि के डिग्री कालिज में प्रिंसिपल हैं। सरकार की निर्वाचन समिति ने इन्हें डिप्टी कलेक्टरी का पद नहीं दिया पर आप हैं बहुत ही प्रतिभा सम्पन्न विद्वान और योग्य शिक्षण-प्रशासक।

आपके सामने मैं एक और घटना का उल्लेख करना चाहता हूं। वह.....

***अध्यक्षः** इस तरह की घटनाओं का यहां उल्लेख करने में कोई लाभ है क्या? ऐसे बातें तो देश में सर्वत्र ही हो रही होंगी।

***श्री गुप्तनाथ सिंहः** अच्छी बात है श्रीमान। मैं इनका जिक्र न करूंगा। मैं यह चाहता हूं श्रीमान कि कृषक वर्ग, पशुपालक वर्ग और शिल्पी वर्ग को भी जो भारतीय समाज की रीढ़ है, सरकारी नौकरियों में काम करने का मौका मिलना चाहिये क्योंकि इनको अनुसूचित जनजातियों या अनुसूचित जातियों में शामिल नहीं किया गया है। सभा इस आशय के प्रस्ताव को स्वीकार कर चुकी है कि एक आयोग इस बात के लिये नियुक्त किया जाये कि वह इन पिछड़े हुए वर्गों की अवस्था का अध्ययन और छानबीन करे। यदि इन अभागों को भी मौका देने की बात इसमें रख दी जाये तो देश के लिये यह अच्छा होगा। ये लोग राष्ट्र के परम दक्ष और ईमानदार सेवक सिद्ध होंगे।

जब मैंने यह संशोधन भेजा था तो एक दिन मसौदा समिति ने इसे मान भी लिया था और कुछ दिन बाद डॉ. अम्बेडकर ने मेरे सुझाये गये शब्दों को अपने संशोधन नं. 26 में शामिल कर लिया था। उनके संशोधन में जो खामी रह गई थी उसे आपने समझा और मेरे संशोधन को प्रायः ज्यों का त्यों मान लिया। इसके बाद श्री मुंशी ने भी मेरे संशोधन में निहित सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। आज जब आपने उन्हें अनुवर्ती संशोधनों को पेश करने के लिये कहा तो पता

नहीं वह चुप क्यों रह गये। ये लोग मालिक हैं और जो चाहे कर सकते हैं। पर मैं इनसे यह अनुरोध अवश्य करूंगा कि मेरे द्वारा सुझाये गये शब्दों के रखने के औचित्य पर वह विचार अवश्य करें। उन्हें प्रस्तुत अनुच्छेद में मेरे इन शब्दों को भी रखना चाहिये।

आशा है कि जो बात मैंने कही है उस पर वह विचार करेंगे और कृषक और पशुपालक वर्गों को जिनकी अवस्था हरिजनों और आदिवासियों से भी गई बीती है, यह प्रमाणित कर देंगे कि वह उनके लिये भी कुछ करने जा रहे हैं ताकि उनको इस बात का विश्वास हो जाये कि उन्हें भी देश सेवा का मौका दिया जायेगा। आशा है कि साम्प्रदायिकता की यह बाढ़ अब रोक ली जायेगी और जातिवाद के जहरीले सांप का हम हनन कर देंगे और इस बात के लिये शीघ्र कार्रवाई की जायेगी कि अपना यह महिमा मंडित स्वतन्त्र देश उन लोगों के लिये स्वर्ग बन जाये जो शताब्दियों से यहां असमता का उत्पीड़न सहते आ रहे हैं।

(संशोधन नं. 18-22, 28, 29, 30, 31 और 32 पेश नहीं किये गये)

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं:-

"कि ऊपर के संशोधन नं. 23 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 296 में, "shall be taken into consideration consistently with the maintenance of efficiency of administration" (प्रशासन-कार्यपटुता को बनाये रखने की संगति के अनुसार. .. ध्यान रखा जायेगा) शब्दों की जगह "shall, consistently with the maintenance of efficiency of administration, be taken into consideration" शब्द रखे जायें।

जैसा कि आप देख रहे होंगे श्रीमान, यह संशोधन केवल शब्दों के हेरफेर के लिये ही रखा गया है। मेरा ख्याल है कि प्रस्तावित अनुच्छेद को इस रूप में भाषाबद्ध करना ज्यादा शुद्ध होगा जैसा कि मैंने सुझाया है। मसौदा समिति से साग्रह मैं इस बात की सिफारिश करूंगा कि वह इस सुझाव की यथार्थता पर विचार करे। अगर आपकी अनुमति हो श्रीमान, तो डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन पर कुछ बातें कहूं?

***अध्यक्षः** कहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** समस्त देश को एक भारतीय राष्ट्र का रूप देने के लिये हमने आज एक कदम आगे की ओर उठाया है। करीब दो साल से कुछ ज्यादा हुआ कि यहां सभा में यह फैसला किया गया था कि जहां तक देश के विधान मण्डलों का सम्बन्ध है, इन निकायों में अल्पसंख्यकों के लिये स्थान सुरक्षित रहने चाहिये। पर इस बीच में देश में कुछ ऐसी घटनायें हो गई और जादू सी घटनायें हो गईं जो शायद कई दृष्टिकोण से ऐसी थीं कि देश के भाग्य का निबटारा करने वाली थीं। इनको देखकर अभी करीब दो महीने पहले माननीय सरदार बल्लभ भाई पटेल ने सभा में इस आशय का एक प्रस्ताव रखा था जहां तक मुसलमानों

[श्री एच.वी. कामत]

और सिखों का सम्बन्ध है उनके लिये विधान मण्डलों में संरक्षित जगहों की व्यवस्था को अब उठा देना चाहिये। सभा ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। यह बुद्धिमतापूर्ण निर्णय था जो हमें एक राष्ट्रीयता की ओर एक कदम और आगे बढ़ाने वाला था। आज हम फिर एक और निर्णय कर रहे हैं जो हमें अपने लक्ष्य की ओर एक कदम और आगे बढ़ायेगा। आज हम निर्णय यह कर रहे हैं कि जहां कि सरकारी नौकरियों को सम्बन्ध है, इनमें मुसलमान-सिख आदि सभी अल्पसंख्यक समुदायों के लिये जो रक्षण की व्यवस्था है वह अब उठा दी जाती है। दो महीना पहले माननीय सरदार पटेल ने जो प्रस्ताव रखा था उसमें भी एक ही अपवाद रखा गया था और आज भी हम वही अपवाद रख रहे हैं। अपवाद यह रख रहे हैं कि अनुसूचित आदिमजातियों और अनुसूचित जातियों के लिये नौकरियों में संरक्षण की व्यवस्था रहेगी। हो सकता है कि सभा के कुछ सदस्य और बाहर के भी कुछ मित्र यह समझते हों कि यह प्रस्ताव ठीक नहीं है और इसे बुद्धिमत्तापूर्ण न मानते हों। पर बात यह है कि व्यावहारिक राजनीति में हमेशा हमें आदर्शों का ही ख्याल रख कर नहीं चलता पड़ता है बल्कि तात्कालिक स्थिति और आवश्यकता का ख्याल रख कर चलना पड़ता है। आज की स्थिति हमें इस पथ को अपनाने का आदेश देती है और हमें अपनाना ही होगा।

माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यहां अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के कष्टों का उल्लेख किया है और इस सिलसिले में यह कहा है कि हरिजनों की वर्तमान अवस्था के लिये एकमात्र इतिहास ही जिम्मेदार है और इसके लिये सवर्ण हिन्दुओं को दायी नहीं ठहराया जा सकता है। जहां तक मेरा निजी सम्बन्ध है मैं इस बात में नहीं जाऊंगा कि इसके लिए कौन कितना दोषी है। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का यह कहना है इसके लिये इतिहास जिम्मेदार है और अन्य बातों को सोच विचार कर फिर आगे आपने यह कहा है कि युगधारा इसके लिये जिम्मेदार है। पर मैं यह कहना चाहता हूं कि इसके लिये जिम्मेदार है वह दैवी शक्ति या वह सर्वोपरि शक्ति जो इस विश्व में काम कर रही है। आज दुनिया में जो कुछ हो रहा है उसके लिये जिम्मेदार है जातीयता जिसे आप विकासकारी शक्ति कहते हैं। आपने यह फरमाया है कि सवर्ण हिन्दुओं पर विदेशी शोषकों ने अत्याचार किये थे। किन्तु हम देख रहे हैं कि ये विदेशी शोषक एक दूसरी शक्ति द्वारा पराजित हो चुके हैं और इस दूसरी शक्ति पर अब एक तीसरी शक्ति ने आक्रमण कर दिया है। किसी अंग्रेज दार्शनिक का कहना है–"दुनिया में मत्स्य न्याय काम कर रहा है यानी एक छोटी मछली को बड़ी मछली खाती है और फिर उसको उससे बड़ी मछली खा जाती है।" किसी को निश्चित रूप से यह नहीं मालूम है कि यहां क्या हो रहा है। एक कोई बड़ी प्रक्रिया यहां काम कर रही है। मैं नहीं चाहता कि मैं इस गहन प्रश्न में जाऊं कि किसने किसको सताया और यह सिलसिला शुरू कैसे हुआ।

मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूं श्रीमान् कि आज इस अनुच्छेद के पास हो जाने पर एक मात्र वर्ग जिसे कि थोड़ी बहुत आशंका रह जायेगी वह है पिछड़ा हुआ वर्ग जैसा कि माननीय मित्र श्री गुप्तनाथ सिंह ने कहा है। मैं यह

नहीं कहना चाहता हूं कि कौन वर्ग पिछड़े हुए हैं और कौन नहीं। कौन लोग किसानों में आते हैं और कौन वर्ग पिछड़े हुए हैं। इस पर मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं। किन्तु बात यह है कि हमने संविधान में "सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्ग" पद संहति का प्रयोग किया है। हो सकता है कि इन लोगों को अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ आशंका हो, यह डर हो कि राज्य की नौकरियों में उन को भी जगह दी जायेंगी या नहीं। किन्तु मैं उनकी इस मिथ्या आशंका को दूर कर देना चाहता हूं संविधान के मूलाधिकार संबंधी अनुच्छेद 10 का उल्लेख करके जिसमें खण्ड (3) में यह कहा गया है कि:–

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधान राज्य की सम्मति में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है नियुक्तियों अथवा पदों के रक्षण के लिए उपबन्ध करने में कोई अवरोध न होगा।"

यह बात राज्य की नीति में निदेशक सिद्धान्तों में नहीं रखी गई है बल्कि इसे रखा गया है मूलाधिकार विषयक अध्याय 3 में। जब इस बात की उन्हें प्रत्याभूति दी गई है तो पिछड़े हुए किसी भी वर्ग को आशंकित होने की कोई जरूरत नहीं है। यदि नौकरियों में उनको प्रतिनिधान नहीं मिलता है तो इसके लिये वह सरकार के खिलाफ कार्रवाई कर सकते हैं। मेरा ख्याल है कि जहां तक नौकरियों का सम्बन्ध है इसके लिये पर्याप्त संरक्षण की व्यवस्था रहेगी कि उन्हें वहां समुचित जगह मिल पायें। मेरा ख्याल यह है कि अनुच्छेद 10 के द्वारा उन्हें इस अधिकार की प्रत्याभूति अवश्य प्राप्त हो जाती है। इसलिये सभा के समक्ष जो अनुच्छेद पेश है उस पर उन्हें कोई आपत्ति न होनी चाहिये।

अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि मुझे पूरी उम्मीद है कि संविधान के प्रारम्भ से दस साल बाद हमारे देश में जिसका एक प्राचीन इतिहास है, जो एक प्राचीन देश होते हुए भी चिरनवीन है, कोई वर्ग ऐसा न रह जायेगा जो सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ रह जायेगा। उस समय तक देश के सभी वर्गों का मानव स्तर इतना ऊंचा हो जायेगा जितना कि साधारणत: मानव के लिये अपेक्षित होता है। उस समय तक जातियों को अनुसूचित करने की जो कलंकित पद्धति है वह समाप्त हो जायेगी। इस दूषित पद्धति को जन्म दिया था अंग्रेजी राज्य ने जो सौभाग्य से अब यहां से उठ गया है। अंग्रेजी राज के जमाने में जो असंख्य बुराइयां यहां पैदा हो गई थीं उन्हें दूर करने के लिये हमने अनेक उपबन्ध यहां रखे हैं। केवल यही एक मात्र दूषण अब भी रह गया है। पर आशा है कि यह कोढ़ भी जल्दी ही मिट जायेगा और हम दुनिया के सामने एक भारतीय समुदाय के रूप में खड़े दिखाई देंगे।

(संशोधन नं. 184, 255 और 257 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि अब कोई संशोधन नहीं रह गया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** संशोधन नं. 36 रह गया है श्रीमान।

***अध्यक्ष:** वह अनुच्छेद के खण्ड (2) को हटाने की बात कहता है पर इस अनुच्छेद में कोई खण्ड (2) है ही नहीं।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्री गुप्तनाथ सिंह ने अपने संशोधन में पिछड़े हुए वर्गों का उल्लेख किया है।

***अध्यक्ष:** सभा के सामने जो अनुच्छेद है उसमें खण्ड (2) नहीं है। इसलिये इस संशोधन का सवाल ही नहीं उठता है। संशोधन नं. 24 पेश नहीं किया गया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** संशोधन नं. 24 तो नहीं पेश किया गया है पर संशोधन नं. 28 को तो श्री गुप्तनाथ सिंह ने पेश कर दिया है।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन श्री गुप्तनाथ सिंह के संशोधन पर बैठता कहां है?

***श्री आर.के. सिधवा:** मुझे अपने संशोधन में नं. 24 की जगह नं. 28 कह देना है। बस इतना बदल देने से यह संशोधन ठीक बैठ जाता है।

***अध्यक्ष:** पर खण्ड (2) इसमें कहां है?

***श्री आर.के. सिधवा:** मसौदा समिति ने आज सुबह एकाएक एक नया संशोधन रख दिया है। मुझे खुशी है कि खण्ड (2) को उसने हटा दिया है। किन्तु जब 'पिछड़े हुए वर्गों' शब्दों को रखने के लिए जब एक संशोधन आ चुका है तो इस संशोधन को पेश करने की अनुमति मिलनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन तो बहुत पहले से है। खैर अगर आप अनुच्छेद पर बोलना चाहते हैं तो इसका मौका मैं आपको दूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** तो मैं चन्द शब्द इस पर कह सकता हूं श्रीमान?

***अध्यक्ष:** हां आप बोल सकते हैं। मैं यह देख लूं कि और कोई संशोधन् बच तो नहीं गया है। मैं नहीं समझता कि और कोई संशोधन अब रह गया है। मूल प्रस्ताव और संशोधनों पर अब विचार किया जा सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मुझे बड़ी खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर ने संशोधन नं. 15 को यहां पेश किया। मुझे खुशी है कि पिछड़े हुए वर्गों के सम्बन्ध में अन्य सभी संशोधनों को यों ही छोड़ दिया गया और वह पेश नहीं किये। मेरे संशोधन में जैसा कि अभी अभी बताया गया है, पिछड़े हुए वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले खण्ड को हटाने की बात कही गई है।

मैं इस बात को समझने की कोशिश करता आ रहा हूं कि आखिर पिछड़े वर्ग की परिभाषा क्या है? अनुच्छेद 301 में हमने यह बताया है कि जो वर्ग शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है वह पिछड़ा हुआ वर्ग समझा जायेगा। आज देश में 88 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। ये लोग अपनी वर्णमाला का क, ख, भी नहीं जानते हैं। यहां शिक्षित हैं केवल 12 प्रतिशत लोग। यहां के 88 प्रतिशत लोग सामाजिक दृष्टि से भी पिछड़े हुए हैं। तो क्या मैं यह समझूं कि यहां के 88 प्रतिशत लोग पिछड़े हुए हैं? अनुच्छेद 301 में यह साफ-साफ कहा गया है कि जो लोग शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं वह इस अनुच्छेद के अन्तर्गत आते हैं। पर देश की 88 प्रतिशत आबादी को पिछड़ा हुआ कैसे कहा जा सकता है? माननीय मित्र गुप्तनाथ सिंह ने तो यहां तक कह दिया है कि किसान भी पिछड़े हुए वर्ग में हैं। उन्होंने एक ऐसे ब्राह्मण का भी जिक्र किया है जो अपने को पिछड़े हुए वर्ग का कहता था। मुझे भी एक ऐसी घटना मालूम है जिसको मैं यहां अभी बताऊंगा। यह सारी बातें की गई हैं केवल शक्ति और पद पाने के लिये और किसी बात के लिये नहीं। करीब दस साल की बात है कि एक व्यक्ति अधीनस्थ न्यायाधीश के पद पर आना चाहता था। वह पुश्कर ब्राह्मण समाज का आदमी था। उसने यह बात कही कि पुश्कर ब्राह्मण पिछड़े हुए वर्गों में हैं उसने पांच सौ आदमियों के हस्ताक्षर इकट्ठे कर अपनी यह बात मुख्य न्यायाधीश के पास पेश कर दी। न्यायाधीश ने हस्ताक्षरों के आधार पर यह बात मान ली और चूंकि कोई पुश्कर ब्राह्मण नौकरी में न्यायाधीश पद पर था नहीं इसलिये उसने उसे उस पर नियुक्त कर दिया।

मैं सभा को बताऊं कि तीस साल पहले पारसी समुदाय को भी बम्बई सरकार पिछड़ा हुआ वर्ग मानती थी। आप को मालूम है श्रीमान कि पारसी समुदाय एक बहुत ही समुन्नत समुदाय है। तीस साल पहले इस में 80 प्रतिशत लोग शिक्षित थे और आज इसमें करीब 99 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। फिर भी तीस साल पहले बम्बई सरकार ने इसे पिछड़ा हुआ वर्ग घोषित कर रखा था। ब्रिटिश अमलदारी में यही होता था। कुछ आदमी जो नौकरियों में जाना चाहते थे उन्होंने अपना प्रभाव लगा कर अपनी गणना पिछड़े हुए वर्ग में करा दी जब कि देश के उस विशाल जन समूह का जो वस्तुतः पिछड़ा हुआ है नौकरियों में कोई प्रतिनिधान नहीं प्राप्त है। *(बाधा)*।

***श्री गुप्तनाथ सिंहः** आप बोलते तो बहुत हैं पर जनता को आप जानते बिल्कुल नहीं हैं। उनकी मनोदशा मैं जानता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं आप से बहस नहीं करना चाहता। मैं कह यह रहा था कि देश के एक छोटे से वर्ग के साथ अन्याय किया गया है। मैं जानता हूं कि आज अपने आदमियों को जैसे भी हो रखवाने की सभी कोशिश करते हैं और यह बुराई जोरों पर है और हमेशा इसी तरह रहेगी जब तक कि वास्तविक राम-राज्य यहां नहीं आ जाता है। अच्छे अच्छे शासन में भी यह बात किसी न किसी रूप में रहेंगी। जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है मैंने कभी यह

[श्री आर.के. सिधवा]

मंजूर नहीं किया है कि इनका कोई समुदाय है। मैंने हमेशा यही माना है कि यह एक वर्ग है जिसके साथ अतीत काल में हिन्दू समुदाय ने बड़ा अन्याय किया है। इसलिये हम कुछ ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं कि ये भी अपने अन्य भाइयों के जीवन स्तर पर पहुंच जायें। अगर वह खुद भी यह चाहें कि उनको एक अलग समुदाय समझा जाये तो मैं इसका विरोध करूंगा। मैं उनको अलग नहीं मानता हूं। जहां तक अनुसूचित आदिम-जातियों का सम्बन्ध है वह अछूत नहीं हैं। उदाहरण के लिये भीलों को ही लीजिये, वह अछूत नहीं हैं। वह केवल पिछड़े हुए हैं। पर इन्हें भी अनुसूचित आदिम जातियों में शामिल किया गया है। इनके लिये जो विशेष पदाधिकारी नियुक्त किया जाने वाला है उसे इनकी तरफ विशेष रूप से ध्यान देने की जरुरत है।

मैं तो यही महसूस करता हूं कि अनुच्छेद 301 अपने संविधान के लिये एक कलंक ही है। मैं चाहता हूं कि इसे हटा दिया जाये। मैं नहीं चाहता हूं कि संविधान में 'पिछड़े हुए वर्ग' शब्दों का उल्लेख भी आये। इसका उल्लेख हमारी बुद्धि पर एक प्रबल लांछन होगा। जो लोग शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं उनके लिये राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों वाले अध्याय में हमने इस आशय का उपबन्ध रखा है कि राज्य की यह कोशिश होनी चाहिये कि दस साल के भीतर देश का प्रत्येक पुरुष स्त्री और बालक शिक्षित बना दिया जाये। जब देश का प्रत्येक नागरिक शिक्षा की दृष्टि से समुन्नत हो जायेगा तो यहां पिछड़ा हुआ कौन समझा जायेगा। तब यहां कोई पिछड़ा वर्ग न रह जायेगा। सामाजिक दृष्टि से वह फिर समुन्नत हो जायेंगे। शिक्षित होने पर आदमी अपनी स्थिति को समाज में अच्छा बना लेता है। इसलिये मूल बात है शिक्षा जिसके लिये हमने निदेशक सिद्धान्तों में व्यवस्था कर दी है। इस बात को मैं मूल अधिकारों में रखना अधिक पसन्द करता। दस वर्ष के अन्दर यहां सभी शिक्षित हो जायेंगे और फिर आपको एक आदमी अशिक्षित नहीं मिलेगा। यह जरूर है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति में कई कठिनाइयां सामने आयेंगी किन्तु मुझे विश्वास है कि हमारी वर्तमान सरकार यह जरूर करेगी कि दस साल के अन्दर सभी शिक्षित हो जायें, यहां का हर स्त्री पुरुष शिक्षित हो जाये। और तब हमें इस बात का गर्व होगा कि हमारा हर नागरिक अपनी जुबान में लिख पढ़ सकता है।

इसलिये श्री गुप्तनाथ सिंह के संशोधन का मैं विरोध करता हूं। इसका कोई प्रयोजन नहीं है। इसका प्रयोजन तभी है जब हम किसी पर कृपा करना चाहते हों और इसलिये उसे पिछड़े हुए वर्ग में शामिल करना चाहते हों। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन हमारे प्रयोजन के लिये काफी है। जब इसमें किसी सीमित अवधि का उल्लेख नहीं किया गया है तो मुझे पूरा विश्वास है कि थोड़े समय के अन्दर ही ये अनुसूचित वर्ग इस हालत में न रह जायेंगे। ये सभी शेष समाज के स्तर पर पहुंच जायेंगे और हम यह देखेंगे कि अपने संविधान में इसके बाद अनुसूचित वर्गों का उल्लेख नहीं रह जायेगा। इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्तावित अनुच्छेद का समर्थन करता हूं और इस बात का विरोध करता हूं कि संविधान में नौकरियों के बारे में किसी तरह के शिक्षण का उपबन्ध रखा जाये या रक्षण

का उल्लेख भी किया जाये। जब विधान मंडलों के सम्बन्ध में हमने स्थान रक्षण की व्यवस्था को उठा लिया है, तो नौकरियों के बारे में हम किस मुंह से इस व्यवस्था को रखने की बात कह सकते हैं।

यह बात बहुत बुरी मालूम पड़ती है। हमारे नेता सरदार पटेल ने, अभी उस दिन जब विधान मण्डलों में प्रतिनिधान का प्रश्न उठाया गया था तो इस बात को यहां स्पष्ट कर दिया था। आज माननीय मित्र सरदार हुकम सिंह ने पारसी समाज को भी पिछड़े हुए वर्ग में रख दिया है इस आधार पर कि वह इस सम्बंध में विशेष अधिकार चाहते हैं। मेरे समाज में नौकरियां या विधान-मण्डलों के बारे में कभी किसी भी विशेषाधिकार की मांग नहीं की है। वे इन जगहों में आये अपनी योग्यता के बल पर और मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि भारत-शासन में जितने भी पारसी हैं—भारत शासन की सेवाओं में कुछ पारसी हैं—वह अपनी योग्यता के बल पर आये हैं न कि किसी की कृपा के बल पर। देश का बहुसंख्यक समुदाय इस बात को जानता है और इस प्रश्न को हम उसी पर छोड़ते हैं। हम जानते हैं कि वे इस बात को समझ सकते हैं। अपने संविधान के अनुसार भविष्य में सेवाओं के लिये योग्यता के आधार पर ही नियुक्ति होनी चाहिये और किसी बात के आधार पर नहीं। मैं इस बात पर जोर देता हूं। एक समुदाय या दूसरे समुदाय पर कृपा दिखाने की पद्धति चलाई है यहां अंग्रेजी हुकूमत ने। हमने इस बात का अधिकार अब राष्ट्रपति को दिया है कि कौन लोग पिछड़े हुए हैं इसका निर्णय वही करेगा। आज बरसाती मेंढकों की तरह पिछड़े हुए वर्गों के नाम पर बहुत से संगठन उत्पन्न हो जायेंगे और अपना राष्ट्रपति एक बड़ी जटिल स्थिति में पड़ जायेगा क्योंकि सभी समुदाय उस पर इस बात के लिये जोर डालेंगे कि उनके समुदाय को पिछड़ा हुआ वर्ग माना जाये। मुझे दुख है कि यह खण्ड रखा गया है किन्तु उम्मीद यही करता हूं कि अनुच्छेद 301 जो संविधान में रखा गया है वह केवल नाम के लिये ही बना रहेगा पर इस पर कभी अमल नहीं किया जायेगा। इन शब्दों के साथ मैं मूल प्रस्ताव का प्रबल समर्थन करता हूं और सारे संशोधनों का विरोध करता हूं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महादेय, इस अनुच्छेद पर बोलने का मेरा कत्तई कोई इरादा नहीं था किन्तु जब मैंने यहां यह स्पष्ट आरोप लगाते सुना कि चूंकि कांग्रेस पार्टी का यहां बहुमत है इसलिए वह अपने उन वचनों की कोई परवाह नहीं करती है जो उसने सिखों को दे रखे हैं बल्कि उन्हें वह भंग कर रही है तो मुझे विवश हो कर बोलना पड़ा। सिखों की ओर से या उनके किसी प्रतिनिधि की ओर से इस आरोप को सुनकर मुझे घोर दु:ख हो रहा है। यह बात कही है सरदार हुकम सिंह ने। एक दूसरी जगह और दूसरे मौके पर मैंने उन्हें इस बारे में साफ साफ समझा दिया था किन्तु फिर भी वह यह प्रश्न उठा रहे हैं। आज मैं इस आरोप का जवाब दे देना चाहता हूं। और अन्य बातों के बारे में नहीं समझता कि मुझे बहस में जाने की या कुछ भी कहने की कोई जरुरत है पर जहां तक इस आरोप का सम्बन्ध है कि कांग्रेस ने सिखों को जो वचन दे रखे थे, उनको वह भंग कर रही है मैं स्थिति को जरूर समझ लेना चाहता हूं।

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

आपका आरोप यह है कि हम अपने वचनों को तोड़ रहे हैं हमने उस वचन को भंग किया जो सन् 1923 में हमने दिया था और फिर सन् 46 और सन् 47 में जो वचन हमने दिये उसे भी हमने भंग किया। मैं नहीं जानता कि किन वचनों का आप उल्लेख कर रहे हैं। अगर आपका संकेत हैं 1923 के वचन की ओर भारत तथा पाकिस्तान के विभाजन की ओर तो मैं उनको यह बता देना चाहता हूं कि विभाजन के विरुद्ध एक भी सिख की आवाज नहीं उठी थी। बल्कि तथ्य यह है कि पंजाब के विभाजन की मांग करने में सिख ही सबसे आगे थे। रावलपिंडी और मुलतान में खून खराबा होने पर सिख लोग बुरी तरह घबरा गये थे और वह बहुत विपत्ति में पड़ गये थे जो स्वाभाविक ही था। कांग्रेस ने उनके साथ पूरी हमदर्दी दिखाई थी। उस समय देश के अन्य भागों में ऐसी ही दु:खद घटनायें हो रहीं थी और उसके बाद खून खराबा शुरू हो गया लाहौर, अमृतसर तथा पंजाब के अन्य भागों में। भारत के विभाजन की बात हमने उसी समय स्वीकार की थी और सिखों की पूर्ण सहमति से स्वीकार की थी। सिख लोग सर्वसम्मति से एकमत हो विभाजन पर राजी थे। अब हम पर यह आरोप लगाना कि हमने वचन भंग किया और विश्वासघात किया एक ऐसी बात है जिसे समझने में मैं सर्वथा असमर्थ हूं सिख समुदाय के लिये जो एक वीर समुदाय है, हम पर इस तरह का दोषारोप करना कभी ठीक नहीं है। अगर सिख विभाजन के विरुद्ध होते तो हमें क्या हक था कि देश का और पंजाब का विभाजन करते? हम ऐसा कभी नहीं करते। जब उन्होंने भी यही कहा कि देश हित के लिये विभाजन करना ही ठीक है और हमें राय दी कि देश विभाजन की बात हमें मान लेनी चाहिये इस शर्त के साथ कि पंजाब का भी विभाजन किया जाये, हमने विभाजन को स्वीकार कर लिया। यह तो हुआ सन् 1929 के वचन के बारे में।

सन् 1946 के वचन की वह चर्चा करते हैं। अगर वह हवाला देते हैं अल्पसंख्यक समिति की सिफारिशों का तो उनकी बात मैं समझ सकता हूं। उसे मैं विस्तारपूर्वक समझाने की कोशिश करूंगा कि आखिरकार इस बारे में हुआ क्या है? पर मैं नहीं जानता कि सन् 1946 के वचन से उनका मतलब क्या है, कांग्रेस नेताओं ने आखिर क्या वचन उन्हें दिये हैं, यह मैं नहीं समझा पर अगर उन्हें वचन दिये तो मैं नहीं समझता कि कोई भी ऐसा कांग्रेसमैन होगा जो उस से हटेगा पर सिख नेताओं के.... उनमें से कुछ के मनोविज्ञान को समझने में असमर्थ हूं जो सब पर ही प्राय: विश्वास भंग का दोषारोप करते हैं और हमेशा यह शिकायत करते हैं कि अल्पसंख्यकों के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है।

आप सेना की ओर देखिये। क्या सिखों को वहां संख्या से बहुत अधिक प्रतिनिधान नहीं मिला है। हम उनके संरक्षण में हैं और उनका विश्वास करते हैं और एक भी ऐसा अफसर नहीं है जो हमारे लिये निष्ठा न रखता हो। व्यर्थ आप इस तरह की भावनायें क्यों पैदा करते हैं? आखिर आप चाहते क्या हैं?

जब अल्पसंख्यक समिति ने मंत्रणा समिति में अपना पहला निर्णय स्वीकार किया था उस समय मैं उसका सभापति नियुक्त किया गया था और मैं सभी अल्पसंख्यक

वर्गों को साथ लेकर चला था। अल्पसंख्यक समिति और मंत्रणा समिति के निर्णय प्राय: सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए थे। इन समितियों के कामों की इस सभा ने सराहना की थी। और इसके लिये मुझे धन्यवाद दिया था। समय बीतता गया और अल्पसंख्यक समुदाय खुद यह अनुभव करने लगे कि हमें अपने निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिये। महान देशभक्त ईसाई नेता के नेतृत्व में उन्होंने यह प्रस्ताव पास किया कि रक्षण की व्यवस्था को वह उठा देना चाहते हैं। किस रक्षण को उठाने का प्रस्ताव उन्होंने पास किया था? न सिर्फ नौकरियों में स्थान रक्षण की क्षुद्र व्यवस्था को बल्कि विधान मंडलों के लिये स्थान रक्षण को जो बड़ी व्यवस्था थी उसको भी वह नहीं रखना चाहते थे। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों विधान मण्डलों में वह यह व्यवस्था नहीं चाहते थे।

वह सब इस बात पर राजी थे कि संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था रखी जाये और पृथक् निर्वाचन की साम्प्रदायिक व्यवस्था से अब हमारा कोई भी वास्ता न रह जाये। उन्होंने जब यह इच्छा प्रकट करी तो मैंने अल्पसंख्यक समिति की और मंत्रणा समिति की एक बैठक बुलाई। उनके कहने पर ही यह निर्णय किया गया था। सिखों का कहना हमेशा यही था कि "अगर सभी अल्पसंख्यक इस पर राजी हों तो हम भी इस पर राजी हैं हम अपने लिये कोई अलग व्यवस्था नहीं चाहते हैं। हम अपने लिये कोई खास सुविधा नहीं चाहते हैं। हम अपने पांव पर खड़े रह सकते हैं।" हमेशा ही, कांग्रेस के अन्दर या बाहर सिखों का कहना यही रहा है।

जब यह प्रस्ताव लाया गया था और उस पर विचार होने जा रहा था तो पंजाब के कई सिख प्रतिनिधि मेरे पास आये और यह कहा कि जहां तक सिखों की अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है उनको वही सुविधा मिलनी चाहिए जो हिन्दू समाज के अनुसूचित जातियों को दी जा रही है। और इस सम्बन्ध में सिखों से पृथक व्यवस्था उनके लिये होनी चाहिये। उनकी इस बात का अनुसूचित जातियों के हर आदमी ने यह कह कर विरोध किया था कि सिखों में कोई अनुसूचित जाति नहीं है और अगर है तो वह सिख नहीं है। "इसलिये" उनका कहना यह था कि "आप उनके लिये पृथक् व्यवस्था नहीं कर सकते हैं। इसी सुविधा के लिये तो अनुसूचित जातियों के लोगों को बलात् सिख बनाया जा रहा है।" इस सम्बन्ध में उनकी शिकायत यह थी। दूसरी तरफ सिखों का कहना यह था कि "अनुसूचित जातियों के बहुत से लोग सिख बने हैं पर वह स्वेच्छा से बने हैं बलात् नहीं। वह स्वेच्छा से हमारे समाज में आये है अगर आप इनको सिख नहीं मानते है तो यह सबके सब हिन्दू समाज में वापस चले जायेंगे और हमारा नुकसान होगा।"

सिखों में किसी वर्ग को अछूत या अनुसूचित जाति का मानना हमारे विश्वास के विरुद्ध था क्योंकि सिख धर्म अस्पृश्यता को मानता नहीं है। सिखों में कभी कोई वर्ग अनुसूचित जाति कह कर नहीं स्वीकार किया गया है। पर चूंकि सिखों ने कांग्रेस के विरुद्ध और हमारे विरुद्ध लगातार इस बात की शिकायत करनी शुरू की तो अनुसूचित जातियों के लोगों को मैंने बड़ी कठिनाई से इस बात पर राजी किया कि शान्ति के लिये वह सिखों की बात मान लें। मंत्रणा समिति के सदस्यों

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

को भी इस बात को मानने पर राजी किया। और यह बात मंजूर की गई एक शर्त पर जिसको सिख प्रतिनिधियों ने लिखित रूप में स्वीकार किया। वह शर्त यह थी कि इसके बाद सिख लोग और कोई सवाल न उठायेंगे।

तत्पश्चात् जब यह प्रश्न मंत्रणा-समिति के सामने आया तो सरदार उज्जल सिंह ने यह सवाल उठाया कि "नौकरियों के बारे में हमारे लिये क्या किया गया है?" मैंने कहा "आप के प्रतिनिधियों ने लिखित रूप में यह स्वीकार किया है कि और कोई मांग वह नहीं अब आगे रखेंगे।" ज्ञानी करतार सिंह भी मंत्रणा समिति में उपस्थित थे और उन्होंने उठकर यह कहा कि "नहीं, इस सवाल को हम प्रान्तों में तय कर लेंगे। इसे यहां उठाने की जरुरत नहीं है।"

ऐसी सूरत में कांग्रेस पर वचन भंग का आरोप लगाने से क्या लाभ? आपने जो वचन दिया है उसे मत भंग कीजिये और दूसरों पर वचन भंग करने का दोषारोप न कीजिये। यदि अब आप यह कहते हैं जैसा कि सरदार हुकुम सिंह ने कहा है, कि ये लोग तो सिखों की अनुसूचित जातियों को फायदा पहुंचाना चाहते थे इसलिये उन्होंने यह शर्त मान ली थी पर इनका यह काम गलत था तो ठीक है। आप अपने वचन पर फिर विचार कर लीजिये और मैं अपने वचन पर पुनर्विचार कर लूंगा। आपने जो रियायत ली है उसे वापस कर दीजिये और आपको, अगर चाहते हैं तो वह टुकड़े मिल जायेंगे जिनकी मांग आप कर रहे हैं।

सेवाओं में आखिर आप क्या लेंगे? आज भी आखिर सिख क्या करते हैं? अन्य दूसरे समुदाय क्या कर रहे हैं? जहां तक सेवाओं का सम्बन्ध है सभी बड़ी-बड़ी जगहें या सभी जगहें जिनके लिये प्रतियोगिता के आधार पर नियुक्तियां होती हैं, उनके लिये साम्प्रदायिक आधार पर रक्षण की कोई व्यवस्था है नहीं। ऐसी जगहों के लिये अभ्यर्थी लिये जाते हैं लोक सेवा आयोग के द्वारा फिर आप लड़ रहे हैं क्या छोटी मोटी जगहों के लिये—चपरासी और क्लर्क की जगहों के लिए। क्या आपकी अब यह स्थिति हो गई है कि यह कहें कि सिख चपरासी या क्लर्क पर्याप्त संख्या में नहीं हैं। इस तरह अब अपने समुदाय को उन्नत बनाना चाहते हैं क्या? अगर यह बात है तो मुझसे कहिये। अपनी अनुसूचित जातियों के लिये आपको जो मिला है उसे छोड़ दीजिये और संविधान सभा को मैं इस बात के लिये राजी कर लूंगा कि आप जो चाहते हैं आपको वह दे दिया जाये पर इसके लिये आप पीछे पछतायेंगे।

आप कहते हैं कि पटियाला तथा पूर्वी पंजाब-राज्य-संघ में यह व्यवस्था नहीं है। किन्तु आज की शिकायत की सुनवाई यह सभा नहीं कर सकती है। अगर आपको ऐसी कोई शिकायत है तो हमें लिखकर भेजिये। हम लोग इस पर विचार करेंगे। किन्तु अपने वचन से पीछे न हटिये और दूसरों पर वचन भंग करने का दोषारोप न कीजिये। हम लोग वचन भंग करने वाले आदमी नहीं हैं। सिख समुदाय के प्रति हर तरह से सहानुभूति बरती जायेगी और हर तरह से उसका ख्याल रखा

जायेगा क्योंकि यह समुदाय एक खास इलाके में बसा हुआ है। यह एक छोटा समुदाय है पर एक बहादुर समुदाय है जो किसी भी विरोधी के सामने अपनी आन पर डटा रह सकता है। अपनी इस साहस भावना को बराबर यह कह कर नष्ट न कीजिये कि "हम चोट खाये हुए हैं, हम असहाय हैं, हम अल्पसंख्यक हैं, हम अनाथ हैं और कुछ भी नहीं कर सकते हैं।"

इस तरह का मनोभाव आपके समुदाय को ही हानि पहुंचायेगा और किसी को नहीं। समुदाय को नुकसान पहुंचाने से राष्ट्र को नुकसान पहुंचता है। आपको यह राय मैं बहुसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधि के नाते नहीं दे रहा हूं बल्कि सिख समाज का एक भैवी होने के नाते दे रहा हूं। मैं आपको सलाह दूंगा कि हमेशा यह कह कर कि हमारे साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है आप इस तरह का वातावरण न पैदा कीजिए अगर आप ऐसा करते हैं तो इससे सिख समुदाय को ही क्षति पहुंचेगी।

जब रक्षण व्यवस्था को उठाने का निर्णय मंत्रणा-समिति ने किया था तो हमने स्थिति को अच्छी तरह समझ लिया था और सभी समुदायों ने इसे अच्छी तरह समझ लिया था। मंत्रणा-समिति का निर्णय जब इस सभा के सामने स्वीकृति के लिये रखा गया था, तो मैंने यह साफ साफ समझा दिया था कि स्वतन्त्र भारत के असाम्प्रदायिक राज्य का जो यह संविधान बन रहा है उसमें साम्प्रदायिक आधार पर किसी उपबन्ध को रख कर उसे कुत्सित न होने दिया जायेगा। उस समय सब लोगों ने इस निश्चय को सहर्ष स्वीकार किया था।

यह कहा जाता है कि यदि प्रान्तों में कोई प्रबन्ध इस सम्बन्ध में किया जाता है तो संविधान सभा ने मूलाधिकार सम्बन्धी जो उपबंध रखे हैं वह उसमें बाधक होगा। मैं आपको बता दूं कि आपकी रजामन्दी से बिना कोई बात मन में रखे साफ गोई से अगर कोई व्यवस्था की जाती है तो उसमें कोई भी बात बाधक नहीं हो सकती है। मूलाधिकारों में जो उपबन्ध रखा गया है वह उस व्यक्ति के लिये जिसे नुकसान पहुंचा हो। किन्तु अगर पंजाब के लिये आप कोई घरेलू इन्तजाम पदों के बारे में समुदायों की रजामन्दी से करते हैं तो उस पर किसे आपत्ति होगी? किन्तु पहले यह कीजिये कि अपने प्रान्त में ऐसी कोई व्यवस्था करने के लिये अनुकूल वातावरण तो पैदा कर लीजिये। असल में सम्प्रदायों के बीच कलह का जो वातावरण अरसे से बना हुआ है वही उनमें अविश्वास भाव पैदा करता है और कठिनाइयां उत्पन्न करता है। आपको अपने प्रान्तीय काम के लिये हमारा समर्थन और सहानुभूति हमेशा मिलेगी क्योंकि आप के प्रान्त को बड़ी यातनायें झेलनी पड़ी हैं। इसे बड़ी चोट पहुंची है और अभी भी इसके जख्म भर नहीं पाये हैं। इस जख्म को अच्छा करने में, हम सबको और आप लोगों को तो खास तौर पर मदद देनी चाहिये। इसलिए हम सबको मिल कर इस बात की कोशिश करनी चाहिये कि इस प्रान्त के नैतिक बल को, इसकी शक्ति को समुन्नत करें क्योंकि वस्तुतः यह प्रान्त हमारा सीमावर्ती प्रान्त है। ऐसा होने पर आपको कोई शिकायत न रह जायेगी।

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

मैं पूछता यह हूं कि आखिर सिख-समुदाय पिछड़ा हुआ किस बात में है? क्या व्यापार की दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ है? या उद्योग धंधा या अन्य किसी बात के ख्याल से ही यह पिछड़ा हुआ है? आप अपने को पिछड़ा हुआ क्यों समझते हैं? इस मनोभाव को ही आप भूल जाइये। अगर आपके साथ कोई अन्याय हुआ है तो हमसे कहिये। हम लोग यह देखेंगे कि आपके साथ कोई अन्याय न होने पाये।

सरदार हुकुम सिंह ने अभी फरमाया है कि "हम अपने वर्तमान नेताओं पर तो पूरा भरोसा करते हैं पर भविष्य का क्या होगा?" मैं कहता हूं आपमें साहस इस बात का होना चाहिये कि आप अपने भविष्य पर भरोसा कर सकें न कि वर्तमान नेताओं पर। वर्तमान नेताओं के उठ जाने पर आखिर क्या होगा? क्या सरदार हुकुम सिंह तब तक जीवित रह जायेंगे? फिर इस बात को क्यों उठाते हैं? हमें इस बात पर विश्वास करना होगा कि वर्तमान नेताओं के उठ जाने पर इनसे भी अच्छे नेता देश को मिलेंगे। अगर देश के भविष्य पर हमारा विश्वास है तो हम इस बात पर अच्छी तरह भरोसा कर सकते हैं कि भविष्य में यह देश ऐसे नेताओं को पैदा करेगा जो दुनिया के इतिहास में अपना नाम कर जायेंगे। हमने यह बात आज सिद्ध कर दी है। भविष्य में भी हम इसे दिखा देंगे। यह हिन्दुस्तान है। इसने महात्मा गांधी को पैदा किया उस अवस्था में जब राष्ट्र दासता की पाश में बंधा था और चारों ओर यहां दासता का जोर था। वह महात्मा यहां से एक अन्य देश को गये जहां हम लोग रास्ता नहीं चल सकते थे, जहां तीसरे दर्जे में भी सुरक्षा के साथ सफर करना हमारे लिये कठिन था, जहां हम सबके साथ अछूतों का सा व्यवहार किया जाता था और आज भी किया जा रहा है। वहां जाकर इस महात्मा पुरुष ने तमाम दुनिया में अपना नाम उजागर किया और संसार को एक नया अस्त्र प्रदान किया। वहां से फिर वह इस देश को वापस आये। यहां आकर उन्होंने सिख, मुसलमान, हिन्दू तथा अनुसूचित जातियों को ऊपर उठाया और देश को स्वतन्त्र बनाया। क्या आप सोचते हैं कि अपने वचनों को भंग कर के हम देश के नैतिक स्तर को उसकी प्रतिष्ठा और ख्याति को ऊंचा उठाने जा रहे हैं? हरगिज नहीं। हम सब इस बात पर सहमत हो चुके हैं कि हम परस्पर एक दूसरे का विश्वास करेंगे।

यह मैं जानता हूं कि जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, वातावरण अभी भी वैसा अच्छा नहीं है जैसा कि होना चाहिये। किन्तु इसके कई कारण हैं। इसके लिये कांग्रेस को जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता है। अगर देश विभाजन न हुआ होता तो शायद हम अपने मतभेदों को अब तक दूर कर दिये होते। किन्तु देश का विभाजन हो गया और आपस की रजामन्दी से यह विभाजन हुआ जिसके फलस्वरूप कितनी घटनायें हुई पर विभाजन के बाद से पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा है उसकी प्रतिक्रिया यहां होती है जिसके दबाव के लिये हमें रात दिन यहां संघर्ष करना पड़ता है।

एक असाम्प्रदायिक राज्य के शासन को ऐसी अवस्था में शान्तिपूर्वक चलाने में क्या बड़ी-बड़ी कठिनाइयां आती हैं इसे आप नहीं जानते हैं। आज दुनिया की ऐसी

स्थिति है कि हम अपनी इच्छानुसार कोई स्वतन्त्र कार्यवाही नहीं कर सकते हैं अन्याय किये जाने पर भी हमें प्रतीक्षा करनी पड़ती है, रुकना और सोचना समझना पड़ता है क्योंकि संयुक्त-राष्ट्र-संघ नाम से एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित हो गई है जो दिन रात दुनियां की स्थिति पर निगाह रखती है और इस बात की कोशिश करती है कि शान्ति कैसे कायम रखी जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र-संघ के काम के बारे में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता क्योंकि इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। किन्तु हमारा पड़ौसी पाकिस्तान, चाहे कोई मौका हो, या न हो, हमेशा दुनियां में हमें बदनाम करने का और धमका कर कुछ पाने का मौका ढूंढा करता है। इसलिये हमें खास तौर पर सावधान रह कर चलने की जरुरत है। वचन भंग करते हैं वे लोग और इसका दोषारोप करते हैं हम पर। बिना अन्य देशों को इसका हवाला दिये या बिना इसका ख्याल किये कि अन्य देशों की प्रतिक्रिया क्या होगी हम इस समस्या के समाधान के लिये कोई कार्यवाही नहीं कर सकते हैं।

इसलिये मैं कह रहा हूं कि हमें सावधान होकर चलने की जरुरत है। ऐसी आभ्यंतरिक कठिनाइयां पैदा करके जिसमें कि विभिन्न समुदायों में यहां कलह हो सकता हो, आप हमारी कठिनाइयां और न बढ़ाइये। समस्या के समाधान में आप हमारी सहायता कीजिये और इसमें आपका लाभ होगा और सारे देश का लाभ होगा। नौकरियों के बारे में अल्पसंख्यक समुदायों के लिये छोटे मोटे उपबन्धों की मांग का परित्याग करके आप फायदे में रहेंगे और इसके लिये आपको पछताना न पड़ेगा। ऐसी बातों के लिये लड़िये जिनसे सारे देश को लाभ पहुंचता हो। इसकी चेष्टा कीजिये और इसके लिये जमीन तैयार कीजिये। दो प्रान्तों में आपके बड़े-बड़े स्वार्थ निहित हैं। बंगाल की समस्या भिन्न जरूर है पर पंजाब की तरह वहां भी कई समस्यायें वर्तमान हैं। इन समस्याओं का समाधान केन्द्र नहीं कर सकता है बल्कि इनका समाधान करना होगा इन प्रान्तों के निवासियों को ही। इसलिये मैं यह निवेदन करूंगा कि जो लोग देश हित का ख्याल रखते हैं उन्हें इस अविश्वास और असहमति के वातावरण को दूर करके एक अनुकूल वातावरण पैदा करने की कोशिश करनी चाहिये।

मैं यहां जवाब में बोलने के लिये जो आया हूं वह केवल इसी बात के लिये कि कांग्रेस पर लगाये गये आरोपों का जवाब में दे दूं। मुझे आपका आरोप सुनकर बड़ा दुख हुआ है। न तो मैंने और किसी भी कांग्रेस जन ने यहां केन्द्र में कोई भी ऐसी बात की है जिससे सिखों को हम पर अविश्वास करने का कारण मिल सकता हो। आप कुछ भी क्यों न करें पर हम कभी ऐसी बात न करेंगे जिससे आप हम पर अविश्वास कर सकें। इसलिये यहां मैं आखिरी बार संसद के एक जिम्मेदार सदस्य के नाते आपसे यह अपील करता हूं। आप जो भी चाहते हैं उसके लिये आप अवश्य कहिये पर अपनी गलतियों के लिये दूसरों को दोषी न बनाइये। मैं आपको बता देना चाहता हूं कि यदि आप अब भी यही महसूस करते हैं कि जो सुविधायें आपने हमसे प्राप्त की हैं वह ऐसी नहीं हैं कि उनके लिये आप अपनी इस मांग को छोड़ दें तो आप उन सुविधाओं को छोड़ दीजिये। अगर आप अपनी इस मांग को ही अच्छा समझते हैं तो आपको वह दे दी जायेंगी। किन्तु इस बात पर आप आपस में विचार करके एक फैसला कर लीजिये। किन्तु दोनों

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

ओर न चलिये। आपका एक वर्ग आकर पहले कुछ सुविधायें प्राप्त कर ले जाता है और अपने समुदाय के लोगों को यह वचन दे देता है कि उसे यह सुविधायें प्राप्त रहेंगी। इसके बाद एक दूसरा वर्ग आकर हम पर यह आरोप लगाता है कि हमने उसे अमुक-अमुक और सुविधायें नहीं दी हैं जिसके लिये वह आतुर है। इन मसलों को तय करने का यह तरीका नहीं है। पहले आप लोग मिल कर यह तय कर लीजिये कि आप चाहते क्या हैं। अगर आपने यह तय नहीं किया है तो यह आपकी गलती है हमारी नहीं। आखिर यह तो तय कीजिये कि आप चाहते क्या हैं। आप एक बहुत ही क्षुद्र बात मांग रहे हैं जिसका मंजूर करना संविधान में एक कलंक रखना होगा। अभी उस दिन हम सभी बातों पर सहमत हो गये थे और सबने खुशी-खुशी उसे मान लिया था। इसलिये आपने जो कुछ भी पहले तय कर लिया है उससे सन्तुष्ट रहिये और मैं आपको बताता हूं कि इसके लिये आपको कभी न पछताना पड़ेगा। *(प्रशंसा-ध्वनि)*

***अध्यक्ष:** बहस को जारी रखने की जरुरत है क्या?

***सदस्यगण:** नहीं, नहीं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई: जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान् कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।

***सरदार हुकुम सिंह:** मैं सादर यह कहना चाहता हूं श्रीमान् कि संविधान में कहीं भी ऐसी कोई बात मुझे नहीं दिखाई दी है जिसे हमने इतनी बड़ी कीमत चुका कर लेना मन्जूर किया हो।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): मैं आपसे यह अपील करना चाहता हूं श्रीमान् कि इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद पर अभी पूरी तरह विचार नहीं किया गया है। यह देखना आपका काम है कि बहस बन्दी के प्रस्ताव को स्वीकार करना ठीक है या नहीं।

***अध्यक्ष:** मैं इसे देख रहा हूं और इस प्रस्ताव को मानने के लिये तैयार हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जो कुछ कहा गया है उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री गुप्तनाथ सिंह के संशोधन नं. 17 पर मत लूंगा।

***श्री गुप्तनाथ सिंह:** मैं इसे वापस लेने की अनुमति मांगता हूं श्रीमान।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम आते हैं श्री कामत के संशोधन पर।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इसे मसौदा समिति के सदविवेक पर छोड़ता हूं, श्रीमान।

***अध्यक्षः** इसमें केवल शाब्दिक हेर-फेर की बात कही गई है सुतरां उसे मसौदा समिति पर छोड़ा जा सकता है। अब मैं सरदार हुक्म सिंह के संशोधन नं. 256 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:–

"कि सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन नं. 23 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 296 के साथ यह खण्ड जोड़ा जाये।

'(2) Nothing in this article or in article 10 of the Constitution shall prevent the State from making any provision for the reservation of appointments or posts in favour of any minority community which, in the opinion of the State is not adequately represented in the services under the State.' "

[(2) संविधान के इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 10 की कोई बात राज्य को, ऐसे किसी अल्पसंख्यक समुदाय को, जिसको राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं प्राप्त है, नियुक्तियों या पदों के लिये उपबंध करने से नहीं रोकेगी।]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 3163 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 296 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'296. The Claims of the members of the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes shall be taken into consideration, consistently with the maintenance of efficiency of administration in the making of appointments to services and posts in connection with the affairs of the Union or of a State.' "

Claims of Scheduled Castes and Scheduled Tribes to services and posts.

[296. संघ या राज्यों के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिये नियुक्तियां करने में प्रशासन-कार्य पटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमवासियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।]

सेवाओं और पदों के लिये अनुसूचित जातियों और आदिम जातियों के दावे।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 296 यथा संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 296 यथा संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 299

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई: जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:–

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 299 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये–

Special Officer for Scheduled Castes, Scheduled Tribes, etc.

'299. (1) There shall be a Special Officer for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes to be appointed by the President.

(2) It shall be the duty of the Special Officer to investigate all matters relating to the safeguards provided for the Scheduled Castes and Scheduled Tribes under this Constitution and report to the President upon the working of those safeguards at such intervals as the President may direct, and the President shall cause all such reports to be laid before each House of Parliament.

(3) In this article, the reference to the Scheduled Castes and Scheduled Tribes shall be construed as including the reference to such other backward classes as the President may on receipt of the report of a Commission appointed under clause (1) of article 301 of this Constitution by order specify and also to the Anglo-Indian community.' "

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों इत्यादि के लिये विशेष पदाधिकारी।

[299. (1) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये इस संविधान के अधीन उपबन्धित परित्राणों से सम्बद्ध सब विषयों का अनुसंधान करना तथा उन परित्राणों पर कार्य होने के सम्बन्ध में ऐसी अन्तराविधियों में, जैसी कि राष्ट्रपति निदिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा तथा राष्ट्रपति ऐसे सब प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(3) इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के प्रति निर्देश के अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निर्देश, जिनको कि राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खण्ड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करे तथा आंग्ल-भारतीय समाज के प्रति निर्देश भी हैं।]

इस संशोधन पर मुझे कुछ कहने की जरुरत नहीं है। विशेष प्राधिकारी की व्याख्या इस उद्देश्य से की जा रही है कि संविधान के अन्य अनुच्छेदों द्वारा जो राजनैतिक परित्राण दिये गये हैं उनकी वह देखभाल कर सके। इन शब्दों के साथ मैं यह अनुच्छेद उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** पहले मैं उन संशोधनों को लूंगा जो श्री मुंशी के संशोधन के सम्बंध में आये हैं।

(संशोधन नं. 78 पेश नहीं किया गया।)

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान्:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 64 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खण्ड (3) में 'to such other backward classes...'

किन्तु यहां 'पिछड़े हुए वर्ग' रखा नहीं गया है। श्री मुंशी ने केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों का ही यहां उल्लेख किया है। अगर यह बात है तो मैं अपना संशोधन नहीं पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** खण्ड (3) में श्री मुंशी ने यह कहा है:—

"In this article, the reference to the Scheduled Castes and Scheduled Tribes shall be construed to including the reference to such other backward classes as the President may on receipt of the report etc."

(इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के प्रति निर्देश के अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निर्देश जिनको राष्ट्रपति..... नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करे इत्यादि।)

***श्री आर.के. सिधवा:** तब मैं संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"to such backward classes as the President may on receipt of the report of a Commission appointed under clause (1) of article 301 of this Constitution, by order specify and'

[ऐसे अन्य पिछड़े हुए वर्गों के प्रति जिनको राष्ट्रपति का संविधान के अनुच्छेद 301 के खण्ड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करे, तथा] शब्दों को इस खण्ड से हटा दिया जाये।"

मैं इस पर ज्यादा नहीं बोलना चाहता क्योंकि अपने पहले के संशोधन पर बोलते समय मैं इस बात की चर्चा कर चुका हूं। मैं जानता हूं अनुच्छेद 301 के पिछड़े हुए वर्गों के लिये उपबन्ध किया गया है किन्तु मुझे इस बात का पूरा विश्वास नहीं है कि राष्ट्रपति के लिये यह बताना आसान होगा कि कौन-कौन लोग पिछड़े हुए माने जायेंगे। मैं यह महसूस करता हूं कि पिछड़े हुए वर्गों के लिये जो यह अनुच्छेद है वह केवल कोरा कागजी अनुच्छेद ही रह जायेगा और कभी इस पर अमल नहीं किया जा सकेगा। मैं जानता हूं कि पिछड़े हुए वर्गों के जो लोग लिये जायेंगे वह केवल ऐसे ही लोग होंगे जो अपने को उस वर्ग में इसीलिये शामिल करायेंगे कि उनकी वैयक्तिक समुन्नति हो सके और वह अपना निजी स्वार्थ सिद्ध कर सकें। मैं जानता हूं कि पिछड़े हुए वर्गों के लोग अपने को इसी लिये शामिल करायेंगे कि उनको चन्द नौकरियां मिल जायें। अपने गरीब समुदाय की उन्हें कोई चिन्ता न होगी। इसलिये 'पिछड़े हुए वर्ग' शब्दों के रखने पर मुझे प्रबल आपत्ति है। अनुच्छेद 301 में कहा गया है कि ".....सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों की अवस्थाओं के, और उनकी कठिनाइयों के अनुसंधान के लिये....." इसका आखिर मतलब क्या होता है? यहां तो 80 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। क्या ये सबके सब पिछड़े हुए माने जायेंगे? कभी-कभी तो ऐसा देखने में आता है कि, अशिक्षितों को शिक्षितों की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान है, बातों को सोचने समझने का।

इसलिए मैं तो यही मानता हूं कि यहां पिछड़ा हुआ वर्ग बोल कर कोई वर्ग नहीं है। असल में अंग्रेजों की यह मंशा थी कि बहुतों को पिछड़ा हुआ वर्ग की संज्ञा देकर दुनिया के सामने उनका प्रदर्शन किया जाये और यह बताया जाये कि भारत इतना पिछड़ा हुआ है कि वह स्वराज्य के लायक नहीं है। मैं नहीं चाहता हूं कि अपने संविधान में "पिछड़ा हुआ वर्ग" पदसंहति को स्थान देकर उसे स्थायित्व दिया जाये। जितना ही शीघ्र हम इसे हटा दें उतना ही देश का भला होगा और दुनिया की निगाह में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सिवाय और किसी के लिये कोई रक्षण की व्यवस्था न रहनी चाहिये। अगर कोई ऐसा वर्ग है जो यह महसूस करता है कि राज्याधीन सेवाओं में उसके वर्ग को उचित प्रतिनिधान नहीं मिला है तो उसके लिये उसे समुचित प्राधिकारियों के पास जाकर अपनी शिकायत करने की कोशिश करनी चाहिये। सरदार पटेल की वक्तृता सुनने के बाद, मैं यह नहीं समझता हूं कि किसी भी वर्ग के साथ,

जो सहानुभूति और न्याय पाने का अधिकारी है, कोई भी अन्याय किया जायेगा। और अगर कोई अन्याय किया जाता है तो हमारे नेता तो हैं ही वे लोग उसके हितों का जरूर बचाव करेंगे। इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का समर्थन करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह उसे स्वीकार करे।

(संशोधन नं. 80, 258 और 284 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन नं. 65 का क्या हुआ?

***अध्यक्षः** उसी की ओर मैं आ रहा हूं। अब तक हमने उन संशोधनों को लिया है। जो श्री मुंशी द्वारा पेश किये गये संशोधन नं. 64 पर आये हैं। श्री मुंशी का संशोधन नं. 63 के बारे में है और नं. 63 है संशोधन नं. 43 के बारे में। नं. 63 में यह कहा गया है कि संशोधन नं. 43 की जगह उसे रखा जाये और नं. 64 में यह कहा गया है कि नं. 63 की जगह उसे रखा जाये। इसलिये संशोधन नं. 64 पर आये संशोधनों को मैंने पहले लिया है। अब अगर कोई सदस्य अपना अन्य संशोधन पेश करना चाहते हैं और वह नं. 64 के साथ ठीक बैठता तो उसे पेश करने की मैं अनुमति दूंगा अन्यथा नहीं। मैं केवल संशोधनों का नं. बोल दूंगा और उसके प्रस्तावक सदस्य यदि उसे पेश करना चाहें तो वे पेश कर सकते हैं।

नं. 44 जो श्री लक्ष्मी नारायण साहू और श्री कुलधर चालिहा के नाम से हैं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसामः जनरल): मैं यह संशोधन पेश करता हूं श्रीमानः–

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खण्ड (2) के अन्त में 'for its approval, modification or addition.'

(उसके द्वारा अनमोदन, रूप भेद और अभिवर्धन के लिये) शब्द जोड़ दिये जायें।"

***अध्यक्षः** आप कौन सा संशोधन पेश कर रहे हैं?

***श्री कुलधर चालिहाः** मैं पेश कर रहा हूं संशोधन नं. 71 को।

***अध्यक्षः** ठीक है, अपनी बात कहिये।

***श्री कुलधर चालिहाः** अनुच्छेद में केवल इतना ही कहा गया है श्रीमान् कि प्रतिवेदन संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा। हमें यहां यह साफ साफ बता देना चाहिये कि इस सम्बन्ध में संसद की शक्तियां क्या होंगी। इसीलिये मैंने इन शब्दों को यहां जोड़ने का सुझाव दिया है क्योंकि उससे खण्ड और स्पष्ट हो जायेगा। मेरा निजी अनुभव यही है कि सदन के समक्ष ऐसे अनेक प्रतिवेदन रखे जाते हैं पर बहुत ही कम सदस्य ऐसे हैं जो उसको बारीकी से देखते हों या उसे अमल मे लाने के लिये कुछ करते हो, इसीलिये मैंने यहां उन शब्दों

[श्री कुलधर चालिहा]

को जोड़ने का सुझाव दिया है कि संसद का कर्तव्य क्या है यह यहां स्पष्ट हो जाये। मुझे विश्वास है कि मसौदा समिति और डॉ. अम्बेडकर इन शब्दों को यहां रख लेंगे। सभा से मैं इस बात की सिफारिश करता हूं कि वह मेरे इस संशोधन को स्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** और कोई सदस्य कोई संशोधन रखना चाहते हैं क्या? हां, आप भी तो कोई संशोधन रखना चाहते थे सरदार भूपेन्द्र सिंह जी मान?

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** हां नं. 67 और 69 को मैं पेश करना चाहता हूं जो श्री मुंशी के संशोधन नं. 63 से सम्बन्ध रखते हैं।

मैं ये संशोधन रखता हूं:

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खण्ड (1) में, 'by the President' (राष्ट्रपति नियुक्त करेगा) शब्दों के आगे 'and a Special Officer for minorities for each State for the time being specified in Part I and II and Part III of the First Schedule, who shall be appointed by the Governor or Rajpramukh of the State, as the case may be' (तथा प्रत्येक राज्य में जो प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में अभी उल्लिखित हैं, अल्पसंख्यकों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा। जिसे यथास्थिति, राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख नियुक्त करेगा) शब्द जोड़े जायें।"

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खण्ड (2) में, 'Under this Constitution and' (इस संशोधन के अधीन) शब्दों के आगे 'their representation in different Legislatures and services of the country' (देश के विभिन्न विधान मंडलों और सेवाओं में उनके प्रतिनिधान का,) शब्दों को रखा जाये।"

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 की व्याख्या के अन्त में 'Muslim, Christian and Sikh' (मुसलमान, ईसाई और सिख) शब्द जोड़ दिये जायें।"

मेरे पहले संशोधन में यह कहा गया है कि राज्यों में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष पदाधिकारी रखने की जो बात शुरू में प्रस्तावित की गई थी उसके अनुसार ही हमें इस सम्बन्ध में व्यवस्था करनी चाहिये। मैं यह अनुभव करता हूं कि केन्द्र में जो अल्पसंख्यक पदाधिकारी होगा वह राज्यों से उतनी दूर रहेगा कि वह इस बात को नहीं देख सकेगा और न इसका अनुसंधान कर सकेगा कि संविधान पर किस तरह अमल किया जा रहा है। यदि राज्यों के लिये अल्पसंख्यक पदाधिकारियों

के रखने की व्यवस्था नहीं की जाती है तो अनुच्छेद 299 में परित्राण का जो उपबंध रखा गया है वह कभी प्रभावी नहीं हो सकेगा। आखिर और किसी बात से अधिक महत्व यह बात रखती है कि राज्यों में प्रशासन किस तरह चल रहा है, वहां के दैनिक जीवन में प्रशासन कहां तक संविधान पर अमल करता है। मैं यह अनुरोध अवश्य करूंगा कि न केवल केन्द्र में ही एक अल्पसंख्यक-पदाधिकारी रहना चाहिये बल्कि राज्यों में भी एक ऐसा पदाधिकारी होना चाहिये।

मेरे बाकी दो संशोधनों में यह कहा गया है कि अल्पसंख्यक-पदाधिकारी न केवल इस बात का ही अनुसंधान करेगा कि संविधान में रखे गये रक्षणमूलक उपबंधों पर कहां तक अमल किया जा रहा है बल्कि वह अल्पसंख्यकों से सम्बन्ध रखने वाली और बातों को भी देखेगा और इस बात का ख्याल रखेगा कि विधान मंडलों में और नौकरियों में उनको कहां तक प्रतिनिधान मिला है। अल्पसंख्यकों के बारे में यहां लोगों में में कुछ गलत फहमियां दिखाई देती हैं। कुछ मित्रों का कहना यह है कि चूंकि अल्पसंख्यक-मंत्रणा समिति ने यह फैसला किया है कि विधान-मण्डलों में इनके लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था नहीं रखी जायेगी इसलिये देश में अब कोई अल्पसंख्यक रह ही नहीं जायेंगे। मैं अवाक इस बात से हूं कि आखिर कोरे कागजी प्रस्ताव से यह समस्या कैसे मिट जायेगी और वह भी करीब एक साल की लघु अवधि के अन्दर।

संविधान सभा के पूर्व के निर्णयों से जहां तक में समझ पाता हूं स्थिति यह है कि इस सभा ने यह मंजूर किया है कि देश में अल्पसंख्यक वर्ग हैं। इस सभा ने उन्हें क.ख. और ग. इन तीन गुटों में बांटा है। न केवल इतना ही, मेरे हाथ में अभी एक पुस्तिका है जिसे इंफारमेशन और ब्राडकास्टिंग की मिनिस्ट्री ने प्रकाशित कराया है। इसमें भी यही मत प्रकट किया गया है और कहा गया है कि ये लोग अल्पसंख्यक हैं धर्म के आधार पर। इसमें भारतीय संघ राज्य में मुसलमान, सिख, इसाई, पारसी और ऐंग्लो इंडियन ये पांच अल्पसंख्यक वर्ग बताये गये हैं। अब इस मत के विरूद्ध बहस करना अपनी बात से मुकरना है।

खुशी की बात यह है कि अब एक अनुकूल वातावरण पैदा कर दिया गया है और अल्पसंख्यकों ने बहुसंख्यक समुदाय की सद्भावना पर विश्वास कर लिया है। उनको यह भरोसा हो गया है कि उनका अस्तित्व सर्वथा समाप्त न हो जायेगा। हम यह आशा करके इस दिशा में आगे बढ़े हैं कि हमारे साथ अन्याय न होगा। किन्तु इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अब कोई अल्पसंख्यक वर्ग यहां रह ही नहीं गया। आखिर परित्राण का उपबंध तो इसी बात के लिये ही रखा जाता है कि देश की शासन व्यवस्था में अल्पसंख्यकों को जो अंश मिलना चाहिये वह प्राप्त रहे। अब हमें इस बात का पक्का आश्वासन हो जाता है कि जहां तक शासन व्यवस्था का सम्बन्ध है, हमारे साथ कोई अन्याय नहीं होने पायेगा तो फिर यह स्वाभाविक है कि विधान मंडलों के लिये या अन्य जगहों के लिये हम राजनैतिक रक्षण पाने की मांग ही न करेंगे।

हम यह कहेंगे हमारा यह प्रयोग बड़े साहस का काम है। मैं इसके साफल्य की कामना करता हूं। मुझे विश्वास है कि यह अवश्य सफल होगा। इसे सफल होना ही चाहिये। यदि यह सफल होता है, अगर अल्पसंख्यकों की आशंकायें

[सरदार भूपेन्दर सिंह मान]

अन्ततोगत्वा मिथ्या सिद्ध हो जाती है तो मुझे बड़ी ही खुशी होगी। पर इस प्रयोग को सफल बनाने के लिए ही मैं यह कह रहा हूं कि अल्पसंख्यकों की सभी बातों का पुनरीक्षण होना चाहिये और सभी अल्पसंख्यकों के लिये अल्पसंख्यक-पदाधिकारी नियुक्त किये जाने चाहियें। आखिर ऐसी व्यवस्था कर के आप किसी को कुछ दे तो रहे नहीं हैं। आप यह तो कर नहीं रहे हैं कि किसी को कोई कोटा या अंश दे रहे हैं या किसी के लिये जगहें रक्षित रख रहे हैं आप तो केवल इतना ही कह रहे हैं कि अल्पसंख्यक-पदाधिकारी अल्प-संख्यकों के और अनुसूचित जातियों के मामले का पुनरीक्षण करेंगे।

आप तो अपने कंधों पर एक बहुत बड़े दायित्व का भार ले रहे हैं। आप हमें इस बात का वचन दे रहे हैं कि आपकी ओर से कोई ऐसी बात न होगी जिससे हम चिंता में पड़ सकते हो। फिर डॉ. अम्बेडकर से मैं यह पूछता हूं कि सभी अल्पसंख्यकों के मामलों की पुनरीक्षण की बात यहां रखने में आप क्यों सकुचा रहे हैं। मुझे पूरा यकीन है कि आप हमेशा ठीक और न्याय का ही बर्ताव करेंगे और अल्प-संख्यकों को उनका समुचित अंश अवश्य मिलेगा। फिर यहां यह उपबंध रखने में नुकसान ही क्या है कि इन सभी बातों पर समय-समय पर विचार किया जायेगा और उन्हें संसद के समक्ष रखा जायेगा? इससे यह होगा कि हम लोगों को संविधान के अधीन अपनी स्थिति पर पुनरीक्षण करने का अवसर मिल जायेगा। अगर ऐसा उपबंध नहीं रखा जाता है तो एक मात्र दूसरा उपाय यही रह जायेगा कि हम आन्दोलन करके आप के कान में यह बात डालें कि हमारे साथ यह अन्याय हो रहा है। मैं तो इसे सोच कर ही कांप जाता हूं, बजाय इसके लिए अल्पसंख्यक अपनी शिकायतों को जताने के लिये किसी अवैध उपाय का अवलम्बन करें, अच्छा यही होगा कि यह उपबंध रख दिया जाये ताकि उन्हें अपनी शिकायतों को जताने का एक सांविधानिक मार्ग मिल जाये। मैं यह विश्वास करता हूं कि उनके साथ कोई अन्याय नहीं होगा किन्तु केवल इस आधार पर एक सांविधानिक मार्ग को बन्द करना ठीक नहीं हो सकता है।

मैं आप से साग्रह यह अनुरोध करूंगा कि इन अनुच्छेदों का सर्वथा निराकरण न कर दीजिये; जो कुछ आप स्वीकार कर चुके हैं उस पर अब पुनः विचार न शुरू कीजिये। मैं अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा अगर यहां यह न कह दूं कि यदि इन अनुच्छेदों को—296 और 299 को—नराकृत किया जाता है तो जहां तक हमारे समुदाय का सम्बन्ध है, इसका बड़ा व्यापक और गहरा प्रतिघात पड़ेगा। हमें हमेशा जो मानसिक आश्वासन आप देते आये हैं वह इससे जाता रहेगा। आपने कहा यह था कि "चिन्ता न करो, कोई न कोई आदमी हमेशा इस बात को देखता रहेगा कि संविधान पर किस तरह अमल किया जा रहा है।" अब आप इस बात को वापस लिये ले रहे हैं और यह कह रहे हैं कि "न्याय हो या अन्याय हो, आपके मामले का पुनरीक्षण नहीं किया जायेगा।" मेरा ख्याल यह है कि आप के इस रुख से यह होगा कि आपके आश्वासन के फलस्वरूप जो अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण पैदा हो गया है उसको नुकसान पहुंचेगा। मैं ऐसा समझता हूं कि जहां तक कि अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है, संविधान किस तरह कार्यान्वित किया जा रहा है इसे देखने के लिये जो व्यवस्था आपने पहले की थी उसे यदि आप हटा

देते हैं तो हमारी जो यह रही सही आशा है कि वैधानिक रूप से संसद के समक्ष अपनी बात कहने का और अपने मामलों का समय समय पर पुनरीक्षण कराने का मौका हमें मिलेगा, वह भी जाती रहेगी। मेरा यह विश्वास है श्रीमान कि जिस उपबंध को रखने का सुझाव दे रहा हूं उसके रखने से अपना संविधान किसी तरह भी कुरूप न होगा जैसाकि लोग आमतौर पर कह रहे हैं।

अब अन्त में मैं उस आश्वासन का जिक्र करूंगा जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसे मेरे सम्प्रदाय के कुछ प्रतिनिधियों ने दे रखा है। इस बात से लोगों में एक धारणा पैदा हो गई है। और सरदार पटेल से असहमति व्यक्त करते हुए मैं यह कहूंगा कि एक गलत धारणा पैदा हो गई है। वस्तुतः जहां तक कि इस आश्वासन का सम्बन्ध है, (मैं उसे अस्वीकार नहीं करता हूं) इसकी बाबत मैंने उन प्रतिनिधियों से पूछा था और मुझे मेरे पास उस आश्वासन की प्रति मौजूद है। इसको लेकर मेरे सम्प्रदाय में और अन्यत्र भी कुछ गलत फहमी पैदा हो गई है जिसकी वजह से सिखों पर यह दोषारोप किया जा रहा है कि वह अपनी बात से हट रहे हैं। मैं इस गलत फहमी को दूर कर देना चाहता हूं। अनुच्छेद 296 और 299 को सभा ने उसी रूप में मंजूर किया था जिसमें कि मंत्रणा-समिति ने इसे मंजूर करने की सिफारिश की थी और इसके मसौदे में कोई अदल बदल नहीं किया गया था और यह भी ऊपर से मान लिया गया था कि अनुसूचित जातियों को इसमें शामिल कर लिया जायेगा। इन सब बातों को देख कर ही सिखों ने यह बात कही थी कि वह अब और किसी भी बात की मांग न करेंगे। किन्तु उनसे यह वचन लेकर अब अगर आप पीछे हटते हैं और सभा में इस प्रश्न पर पुनर्विचार प्रारम्भ करके अनुच्छेद 296 और 299 के उपबंधों से हटते हैं तो हम पर यह दोषारोप नहीं कर सकते हैं कि हम अपनी बात से हट रहे हैं। समझौते में जो ठीक ठीक शब्द रखे गये हैं उनको मैं पढ़कर सुनाये देता हूं। अगर समझौते में और कोई बात कही गई थी तो आप उसे सामने रखिये ताकि गलत फहमी दूर की जा सके। सिखों ने जो आश्वासन दिया उसके शब्द ये थे:—

> "पूर्वी पंजाब की विधान-सभा के हम सिख सदस्य अल्पसंख्यक-मंत्रणा-समिति की उप-समिति के प्रतिवेदन के प्रसंग में यह कहना चाहते हैं कि जहां तक कि प्रतिवेदन का सिख सम्प्रदाय की समस्याओं से सम्बन्ध है, उसमें जो बातें कहीं गई है उनके अलावा निम्नलिखित बातें भी उसमें आनी चाहिये....."

अल्पसंख्यक-मंत्रणा-समिति की कतिपय सिफारिशों को आपने स्वीकार किया जो बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में रखी गई हैं। जहां तक कि नौकरियों में उनके अंश का प्रश्न है, उसके बारे में आपने यह कहा है कि यह भी दिया जायेगा और उसके लिये एक विशेष अनुच्छेद संविधान में रख दिया जायेगा आपने यह भी कहा है कि सभी अल्पसंख्यकों के लिये अल्पसंख्यक-पदाधिकारी नियुक्त किये जायेंगे। आपने यह सभी बातें मंजूर की थीं तब हमने यह वचन दिया था कि जो परित्राण दिये गये हैं उनके अलावा और किसी परित्राण की मांग हम न करेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या आप ने कहा? क्या देना मंजूर किया गया था?

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** जो परित्राण आपने दिये हैं वह अभी तक निराकृत नहीं किये हैं। यह परित्राण देना आपने मंजूर किया था सन् 1947 में।

***श्री आर.के. सिधवा:** उसके बाद बहुत सी नई बातें पैदा हो गई।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** मैं उसका भी जिक्र करने जा रहा हूं। इसके बाद मंत्रणा समिति ने अपना दूसरा प्रतिवेदन किया जो 11 मई सन् 1949 का था। यदि माननीय मित्र इसे ध्यान से पढ़े तो, जहां तक कि इन दो प्रस्तावों का सम्बन्ध है, उसमें इसका कोई उल्लेख उन्हें नहीं मिलेगा। जहां तक कि विधान-मण्डलों में स्थान-रक्षण की व्यवस्था का सम्बन्ध है, इस प्रतिवेदन में यह व्यवस्था जरूर हटा दी गई है। किन्तु नौकरियों में जगह देने की बात और अल्पसंख्यकों के लिये अलग अलग पदाधिकारी नियुक्त करने की बात इसमें ज्यों की त्यों बनी हुई है। माननीय मित्र से मैं कहूंगा कि इस सभा द्वारा मंजूर किये गये, मंत्रणा समिति के बाद वाले प्रतिवेदन से वह एक भी वाक्य या पंक्ति पेश तो करें जिससे यह जाहिर हो सके कि अनुच्छेद 296 और 299 को निराकृत किया गया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** अल्पसंख्यक समिति का मैं शुरू से ही सदस्य रहा हूं पर मुझे नहीं याद आता है कि कभी भी यह प्रश्न वहां इस रूप से उठा हो जैसा कि माननीय मित्र बता रहे हैं।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** यदि माननीय मित्र की निगाह में यह बात न आ सकी हो तो इसमें मेरी क्या गलती है? किन्तु यह बात लिखित रूप में आ गई है और मेरे लिये यह बड़े महत्व की बात है आप.....

***अध्यक्ष:** वह लेख्य क्या है जिसे पढ़कर आप अभी सुना रहे थे? आप किसी वचन का जिक्र कर रहे थे?

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** मैं कतिपय उन आश्वासनों का जिक्र कर रहा था जिन्हें कहा जाता है कि सिख समुदाय ने दे रखा है। कहा जाता है कि सिखों ने यह वचन दे रखा है कि वह और किसी बात की मांग न करेंगे और किसी रक्षण की मांग न करेंगे। वस्तुत: यह बात समाचार पत्रों में भी आ गई हैं। मानों हमने कोई ऐसा आश्वासन दे रखा है कि अब हम अपने अधिकारों की मांग न करेंगे।

***अध्यक्ष:** वह लेख आपके पास है क्या?

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** हां मेरे पास है।

***अध्यक्ष:** तो उसे पढ़कर सुनाइये।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** उसे मैंने पढ़ तो दिया है।

***अध्यक्ष:** मैंने ठीक ठीक सुना नहीं। यदि आपने उस समूचे लेख्य को यहां पढ़ दिया है जिसका जिक्र सरदार पटेल कर रहे थे.....

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** मेरे पास जो प्रति है वह यह है। यदि वह और कोई अन्य लेख है तो मैंने जो कुछ पढ़ा है यह शायद गलत पढ़ा है।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है अच्छा यह होगा कि आप उसे पढ़कर सुना दें ताकि सरदार पटेल और कोई भी यह जान सकें कि आया यह वही लेख है या दूसरा।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** मैं कह चुका हूं कि मुझे उस लेख के बारे में कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है। सिख प्रतिनिधियों ने अपने आश्वासन को जिस लेख में दिया था उसके बारे में मैंने पता लगाया था और मुझे मालूम हुआ है कि यही वह लेख्य है जिसमें उन्होंने अपने आश्वासन दिये हैं।

***अध्यक्ष:** लेख में क्या है यह तो हमें बताइये।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** हां मैं पढ़कर सुना देता हूं। यह यों है:

"पूर्वी पंजाब की विधान सभा के हम सिख सदस्य अल्पसंख्यक-मंत्रणा-समिति की उपसमिति के प्रतिवेदन के प्रसंग में यह कहना चाहते हैं कि जहां तक कि सिख समुदाय की समस्याओं का सम्बन्ध है, प्रतिवेदन में जो सिफारिशें की गई हैं उनके अलावा उसमें यह बातें भी होनी चाहिये।

(1) सिखों के पिछड़े हुए वर्गों को अर्थात् मजहबी, कबीर पन्थी, रामदासी, बाबरिया, सरेना और सिकलीगर जातियों को, राजनैतिक अधिकारों के मामले में अनुसूचित जातियों के बराबर रखा जाये। यह किया जा सकता है इस तरह:-

(क) इन वर्गों को, संविधान के प्रारूप में संख्याबद्ध किये गये अनुसूचित जातियों में शामिल करके, या

(ख) सभी अल्पसंख्यकों के लिये, जिसमें कि पूर्वी पंजाब की अनुसूचित जातियां भी शामिल हैं, स्थान रक्षण की व्यवस्था को उठा करके; या

(ग) सिखों के लिये रक्षित जगहों में से सिखों के इन पिछड़े हुए वर्गों के लिये जगहें रक्षित करके। सिखों में इन वर्गों की संख्या करीब दस प्रतिशत है। सिखों की जगहों से दस प्रतिशत जगहें इनको इस तरह मिलेंगी।

[सरदार भूपेन्दर सिंह मान]

(2) भाषा लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में या तो संविधान में प्रादेशिक आधार पर कोई व्यवस्था उपबन्धित होनी चाहिये या कार्यपालिका की कार्रवाई द्वारा इसको सद्यः तय कर देना चाहिये।

(3) पूर्वी पंजाब के बाहर जो सिख अल्पसंख्यक हैं उनको वही अधिकार मिलना चाहिये जो राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों को दिया गया हो या दिया जाये।

हम सादर यह सुझाव देंगे कि इस सम्बन्ध में कोई अन्तिम निर्णय न किया जाये इससे पहले हमें अपनी बात कहने का मौका मिलना चाहिये ताकि हम अपनी बात का खुलासा कर सकें। हम यह भी कह देना चाहते हैं कि जहां तक संविधान में उपबन्ध रखने का सवाल है, हमें अब अन्य परित्राण की मांग नहीं करनी है। इस सुझाई गई व्यवस्था के होने से सिखों को जो सन्तोष मिलेगा उससे बड़ी मदद इस बात में मिलेगी कि सिख जनता राष्ट्रीय हितों का समर्थक बन जायेगी।"

***श्री आर.के. सिधवा:** इस पर हस्ताक्षर किसने किया है?

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** सिख सदस्यों ने तथा सिख प्रतिनिधियों ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं। सवाल यह है कि हमें सिखों का विश्वास प्राप्त करना है। मैं फिर यह कहूंगा कि जो कुछ मंजूर किया जा चुका है उसे अब इनकार किया जा रहा है।

***श्री आर.के. सिधवा:** अनुच्छेद में तो ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह प्रकट होता हो कि किसी प्रदत्त अधिकार को अब अस्वीकार किया जा रहा है।

***अध्यक्ष:** इस लेख्य की एक प्रति आप मुझे दीजिये। सरदार पटेल से पूछ कर मुझे यह तय करना है कि आया यह वही लेख्य जिसे सिख प्रतिनिधियों ने दिया है या कोई दूसरा है। सरदार पटेल से दरयाफ्त करके यह मैं आपको बताऊंगा।

***सरदार भूपेन्दर सिंह मान:** श्री सिधवा यह अच्छी तरह जानते हैं कि अध्यक्ष ने आज जो निर्णय किया है उसे देखते हुए यह कहना होगा इस मसले पर अब पुनर्विचार होने जा रहा है।

***अध्यक्ष:** जहां तक इस पर पुनर्विचार करने का सम्बन्ध है, इस पर आपत्ति ही इस आधार पर उठाई गई थी कि इस पर निर्णय किया जा चुका है और मैंने यह कहा था निर्णय होने पर भी इस पर पुनर्विचार किया जा सकता है। किन्तु पुनर्विचार से मेरा मतलब यह नहीं था कि किसी बात से अब पीछे हटा जायेगा। पुनर्विचार करने के विरुद्ध यह आपत्ति उठाई गई थी कि इस पर पहले निर्णय किया जा चुका है और अब जो निर्णय किया जा रहा है वह पहले वाले निर्णय

से असंगत होगा। उस आपत्ति पर मैंने यह मत व्यक्त किया था कि फिर भी इस पर पुनर्विचार किया जा सकता है अगर 25 प्रतिशत सदस्य पुनर्विचार के पक्ष में हों।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह संशोधन पेश करता हूं श्रीमानः–

"कि संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खण्ड (2) के अन्त में 'for such action as Parliament may deem necessary' (ऐसी कार्रवाई के लिये जैसा कि संसद आवश्यक समझे) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संभव है श्रीमान कि जब प्रतिवेदन इस अनुच्छेद के अधीन नियुक्त विशेष पदाधिकारी द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाय तो संसद इस बात को आवश्यक या अत्यावश्यक समझे कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों ने जितनी उन्नति कर ली है उसे देखते हुए देश के हित में सर्वोत्तम यह होगा कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों की संज्ञा को बिल्कुल उठा दिया जाये और इन सब को विशाल हिंदू संप्रदाय का अंग मान लिया जाये। अगर ऐसा करना जरूरी हुआ तो यह काम अकेले राष्ट्रपति पर नहीं छोड़ा जा सकता है। संविधान में ऐसा निर्णय लेने का अधिकार संसद को दिया गया है। संविधान के अनुसार, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों को सांविधानिक रक्षणों की प्रत्याभूति दी गई है सुतरां इस तरह का महत्वपूर्ण निर्णय केवल संसद ही कर सकती है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि जो प्रतिवेदन संसद के सामने रखा जाये उस पर कार्रवाई राष्ट्रपति न करे। उस पर जो कुछ कार्रवाई करनी हो, वह संसद ही करे।

एक दूसरा संशोधन है नं. 75 का जो संशोधन नं. 63 के बारे में हैं। किंतु दुर्भाग्य से इस संशोधन की जगह एक दूसरा संशोधन रख दिया गया है नं. 64 को, जिसे श्री मुन्शी ने पेश किया है। किंतु, मेरा संशोधन इस संशोधन पर भी किंचित परिवर्तित रूप में लागू हो सकता है। संशोधन नं. 63 में जो व्याख्या है?....

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 63 में कोई व्याख्या नहीं रखी गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** व्याख्या की जगह संशोधन नं. 64 में खंड (3) है। इस संशोधन में ऐंग्लो इंडियन समुदाय के लिये रक्षण प्रस्तावित किया गया है। मेरी तुच्छ राय यह है कि यहां ऐंग्लो इंडियन समुदाय का स्पष्ट उल्लेख बिल्कुल बे मौके हैं। हमने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये परित्राण उपबन्धित किये हैं पर....

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल यह है कि वस्तुतः संशोधन नं. 75 की मूल बात खंड (3) में आ गई है। संशोधन नं. 64 के खंड (3) में अब ऐंग्लो इंडियन समुदाय नहीं शामिल किया गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** शामिल किया गया है श्रीमान्। उसमें अन्तिम शब्द रखे गये है "ऐंग्लो इंडियन समुदाय"। मैं चाहता हूं कि ये शब्द हटा दिये जायें।

***अध्यक्ष:** ठीक है, ये शब्द तो आये हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** इसमें कहा यह गया है कि "अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के प्रति निदेश के अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निदेश, जिनको राष्ट्रपति आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करे, तथा ऐंग्लो इंडियन समुदाय के प्रति निदेश भी है।" ऐंग्लो इंडियन समुदाय न तो पिछड़ा हुआ वर्ग है और न अनुसूचित जाति है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के साथ इन्हें कैसे रखा जा सकता है। इस समुदाय के लिये तो एक मात्र परित्राण यही दिया जायेगा कि यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल यह समझते हों कि इस समुदाय को विधान मंडलों में पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिला है तो मनोनयन के द्वारा लोक सभा में और राज्यों के विधान मंडलों में इसके लिये प्रतिनिधान दिया जायेगा। और फिर यह व्यवस्था भी केवल दस साल के लिये रहेगी। इस अवधि के बाद यह परित्राण स्वत: समाप्त हो जायेगा।

जहां तक कि इस समुदाय को नौकरियों में जगहों के रक्षण की सुविधा देने का सवाल है मैं यह कहता हूं कि यह समुदाय पिछड़ा हुआ नहीं है और आज भी कई सेवाओं में तो इसे इतनी जगहें मिली हुई हैं जो इसकी आबादी को देखते हुए कहीं ज्यादा हैं। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि खंड (3) में ऐंग्लो इंडियन समुदाय का उल्लेख करना सर्वथा अनावश्यक है। इसे धर्म के आधार समुदाय नहीं माना जा सकता है। अधिक से अधिक प्रजाति के आधार पर ही इसे एक समुदाय हम मान सकते हैं। मेरा ख्याल यह है कि हमें इस देश में, प्रजाति के आधार पर निर्मित समुदायों को कतई कोई बढ़ावा नहीं देना चाहिये। अगर वह किसी अल्पसंख्यक वर्ग में शामिल होना ही चाहते हैं तो उन्हें भारत के ईसाई समाज में शामिल होना चाहिये। एक पृथक ऐंग्लो इंडियन समुदाय के रूप में वह अपना अस्तित्व, यहां बनाये रहे इसका कोई कारण नहीं है। आशा है कि इस अनुच्छेद के खंड (3) में आवश्यक संशोधन परिवर्तन अवश्य कर दिये जायेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि संशोधन सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

'299. (1) There shall be a special officer for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes to be appointed by the President.

(2) The special officer in consultation with the President may appoint a special officer for each State who shall work exclusively under his superintendence, direction and control.

(3) The special officer appointed either for the Union or for a State shall not be a member either of the Scheduled Tribes, the Scheduled Castes or of such other backward classes as the President may on receipt of the report of a commission appointed under clause (1) of Article 301 of this Constitution by order specify.

(4) The salaries, allowances and pensions payable to the special officer for the Union and to the special officer for each State shall be expenditure charged on the revenues of India.

(5) It shall be the duty of the special officer for the Union to make annual recommendations as to the steps that should be taken by the Union and by each State to improve the economic, educational and cultural level of the Scheduled Tribes, the Scheduled Castes or of such other backward classes as the President may on receipt of the report of a commission appointed under clause (1) of Article 301 of this Constitution by order specify and as to the sums that should be separately allotted in the annual budget of the Union Government and of each State Government for the purpose; and the President shall cause all such recommendations to be laid before Parliament.

(6) Parliament shall have the power to reject or accept in whole or in parts any of the recommendations contained in the Report.

(7) All State Governments shall be bound to make annual allotment in their budgets of such sums as Parliament may deem to be necessary for the purpose of giving effect to the recommendations contained in the Report of the Special officer for the Union.

(8) Until the appointment of the Commission and consideration of its Report by the President under clause (1) of Article 301 of the Constitution the backward classes shall consist of such castes and communities as may be determined by the President.

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

(9) The President may delegate the power to the special officer for the Union to supervise and give effect to all or any recommendations made by the commission appointed under Article 301 and accepted by the President.

(10) All appointment to be made under clauses (1) and (2) of this Article shall be made from the following category of persons:

(a) Doctors

(b) Scientists

(c) Socialogists, and

(d) Anthropologists

(11) Parliament shall have the power to repeal or amend any or all of the provisions of this Article.' "

[299. (1) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) यह विशेष पदाधिकारी राष्ट्रपति के परामर्श से प्रत्येक राज्य के लिये एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त कर सकता है जो बिल्कुल उसके ही अधीक्षण, निदेश तथा नियंत्रण में काम करेंगे।

(3) संघ या किसी राज्य के लिये नियुक्त विशेष पदाधिकारी न तो अनुसूचित जातियों का न अनुसूचित आदिमजातियों का या अन्य ऐसे किसी पिछड़े वर्ग का सदस्य होगा जिसे राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करेगा।

(4) संघ के विशेष पदाधिकारी को तथा प्रत्येक राज्य के विशेष पदाधिकारी को जो वेतन, भत्ते और निवृति वेतन देय होंगे वह भारतीय राजस्व पर प्रभारित व्यय होंगे।]

(5) संघ के विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह उस बारे में अपनी वार्षिक सिफारिश दे कि अनुसूचित जातियों की, अनुसूचित आदिम जातियों की या ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों की, जिनको राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर, उल्लिखित

करे, आर्थिक शैक्षणिक और सांस्कृतिक समुन्नति के लिये संघ द्वारा तथा प्रत्येक राज्य द्वारा क्या कार्रवाई की जानी चाहिये और कितनी रकमें संघ शासन के तथा राज्यों के वार्षिक बजट में उस प्रयोजन के लिये पृथक रखी जानी चाहिये, तथा राष्ट्रपति ऐसी सभी सिफारिशों को संसद के समक्ष रखवायेगा।

(6) संसद को उसकी शक्ति होगी कि वह प्रतिवेदन में दी गयी सिफारिशों को पूर्णत: या अंशत: स्वीकार अथवा अस्वीकार करे।

(7) संघ के विशेष पदाधिकारी के प्रतिवेदन में दी गई सिफारिशों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिये जितनी रकम संसद आवश्यक समझेगी उतनी रकम प्रति वर्ष अपने बजट में रखना सभी राज्य शासनों के लिये जरूरी होगा।

(8) तब तक जब तक कि संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन आयोग नियुक्त न हो जाये और राष्ट्रपति प्रतिवेदन पर विचार न कर ले, पिछड़े हुए वर्गों में वह जातियां या समुदाय माने जायेंगे जिनको राष्ट्रपति विनिश्चित करे।

(9) अनुच्छेद 301 के अधीन नियुक्त आयोग द्वारा की गई तथा राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत सभी नियम किन्हीं सिफारिशों के प्रबंध के लिये तथा उनके कार्यान्वित करने के लिये राष्ट्रपति संघ के विशेष पदाधिकारी को अधिकार सौंप सकता है।

(10) इस अनुच्छेद के खंड (1) और (2) के अधीन की जाने वाली सभी नियुक्तियां इन श्रेणियों के लोगों में से की जायेंगी:

(क) डॉक्टर

(ख) वैज्ञानिक

(ग) समाज विज्ञानवेता, तथा

(घ) प्राणि विज्ञानवेत्ता।

(11) संसद को इस अनुच्छेद के किसी या सभी उपबन्धों को निरसित या स्थगित करने की शक्ति होगी।]

***सरदार हुकम सिंह:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान.....

***श्री आर.के. सिधवा:** यह संशोधन तो एक पहले मौके पर अस्वीकृत हो चुका है। ईसाई, पारसी और सिख समुदायों को इसमें शामिल करने की बात नामंजूर हो चुकी है।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन है अनुच्छेद 299 के बारे में। अनुच्छेद 299 पर तो अभी विचार ही नहीं किया गया है, फिर यह कैसे अस्वीकृत हो चुका है। हां इसी तरह का एक संशोधन अनुच्छेद 296 के संबंध में अस्वीकृत हो चुका है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यहां भी ईसाई, सिख और पारसी समुदायों को शामिल करने की बात कही गई है। पहले के एक अनुच्छेद पर विचार करते समय सभा इस सिद्धान्त को नामंजूर कर चुकी है।

***सरदार हुकम सिंहः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन पेश करता हूंः—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (2) की व्याख्या में 'means' शब्द के आगे 'the Muslims, the Christians, the Sikhs, the Parsees, the Anglo-Indians' शब्द रखे जायें।"

जिन बातों की चर्चा की जा चुकी है उनकी पुनरावृत्ति मैं यहां नहीं करूंगा किंतु.....

***श्री के.एम. मुन्शीः** मेरा एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान। मेरे संशोधन नं. 64 में है "परिमाणों से संबद्ध सब विषयों से"। यानी केवल उन्हीं परिमाणों से सम्बद्ध विषयों के बारे में जो संविधान में उपबन्धित किये गये हैं। मुसलमान, ईसाई, सिख और पारसी समुदायों के लिये कोई परित्राण नहीं उपबन्धित किये गये हैं। संविधान में अब तक जो परित्राण स्वीकृत हुए हैं वह है केवल ऐंग्लो इंडियन, तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के बारे में। इसलिये मेरा कहना यह है श्रीमान्, कि अन्य समुदायों के लिये कोई परित्राण नहीं उपबन्धित किये गये हैं और यह संशोधन अनियमित है।

***सरदार हुकम सिंहः** संविधान के अधीन परित्राण अवश्य उपबन्धित किये गये हैं।

***श्री के.एम. मुन्शीः** इन समुदायों के लिये कोई परित्राण नहीं उपबन्धित किये गये हैं।

***सरदार हुकम सिंहः** अनुच्छेद 23 के अधीन अल्पसंख्यकों के लिये परित्राण रखे गये हैं। यह अनुच्छेद भी तो आखिर संविधान में ही शामिल है।

***श्री के.एम. मुन्शीः** अनुच्छेद 23 है संस्कृति संबंधी मूल अधिकार के बारे में जिसके लिये परित्राण का काम दे सकता है उच्चतम न्यायालय न कि यह विशेष पदाधिकारी।

***अध्यक्षः** इस पदाधिकारी को इस बारे में प्रतिवेदन देने को तो कहा जा सकता है कि उपबन्ध पर कहां तक अमल किया गया है। फेडरल न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में जाकर आप उससे इस बात पर फैसला पा सकते हैं कि संविधान के किसी अनुच्छेद विशेष का उल्लंघन किया गया है या नहीं। पर यह विशेष पदाधिकारी भी तो इस बारे में प्रतिवेदन दे ही सकता है कि आया संविधान के एक अनुच्छेद विशेष पर अमल किया गया है या नहीं। सरदार हुक्म सिंह का मतलब इसी बात से है।

***श्री के.एम. मुन्शीः** यह परित्राण नहीं हुआ श्रीमान्। मैं सादर कहूंगा कि यह परित्राण नहीं है। परित्राण का मतलब है राजनैतिक परित्राण से जो संविधान में उपबन्धित किया गया हो। मूलाधिकार तो सभी नागरिकों को ही प्राप्त हैं और अगर उनके अधिकार पर आघात पहुंचता है तो इसके लिए एक मात्र उपाय यह है कि वह उच्चतम न्यायालय से अपील करे। यदि विशेष पदाधिकारी को इसके अनुसंधान का अधिकार दिया भी जाता है तो इस अधिकार का कोई मूल्य नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रशासन-प्रयोजनों के लिए इसका एक मूल्य है। शासन, विशेष पदाधिकारी के इस प्रतिवेदन को कि अमुक अधिकार को प्रदत्त किया गया है पालन नहीं किया जा रहा है या उसको मान्यता नहीं दी जा रही, ध्यान में रखेगा और उसके बारे में कार्यवाही करेगा।

***सरदार हुकम सिंहः** और अगर किसी अधिकार की उपेक्षा की जाती है और इसकी शिकायत फेडरल न्यायालय में नहीं की जाती है तो शासन का यह फर्ज नहीं है क्या कि वह इस बात को देखे कि अल्पसंख्यकों के साथ समुचित व्यवहार किया जा रहा है या नहीं, उनके साथ न्याय किया जा रहा है या नहीं?

जवाब से मैं भयभीत नहीं हूं। जो बातें कही जा चुकी हैं उनको मैं नहीं दुहराऊंगा। मैं एक या दो बातें ही आप के सामने रखूंगा। अनुच्छेद 296 पर जो मेरा संशोधन था और भी आवश्यक हो गया है कि अनुच्छेद 299 के अधीन विशेष पदाधिकारी के यह अधिकार प्राप्त रहे कि वह सभी अल्पसंख्यकों को दिये गये परित्राणों की देख भाल करे न कि केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के ही परित्राणों की। हमसे यहां कहा गया है कि हमें अपने नेताओं पर विश्वास करना चाहिये, अपने भविष्य पर भरोसा करना चाहिये। यह तो ठीक है, मैं मानता हूं। यह भी मान लेता हूं कि सभी लोग ईमानदार होंगे और शासन सब समुदायों के साथ न्याय करेगा। पर जब तक शासन को यह न मालूम हो कि कोई बात गलत तो नहीं हुई है, कहीं किसी के साथ अनुचित व्यवहार तो नहीं किया जा रहा है, किसी वचन का उल्लंघन तो नहीं किया गया है, और सबके साथ न्याय हो रहा है, या नहीं, तब तक शासन आखिर न्याय करने में समर्थ ही कैसे होगा? जब तक कि शासन को इन सब बातों की जानकारी का कोई साधन न हो, वह कैसे किसी अन्याय का या किसी भूल का सुधार कर सकता है? इसलिये मेरा निवेदन यह है कि भले ही इन सब अल्पसंख्यकों को शामिल करना और अनुच्छेद 296 में इनका उल्लेख देना अनावश्यक समझा गया हो, पर यह है बहुत जरूरी कि नियुक्त किया जाने वाला विशेष पदाधिकारी इन सब बातों को देखे और अपने प्रतिवेदन में यह बताये कि, जहां तक अल्पसंख्यकों का संबंध है, संविधान के उपबन्धों पर किस तरह अमल हो रहा है। यह न होना चाहिये कि विशेष पदाधिकारी केवल दो ही वर्गों के संबंध में ध्यान दे।

इस मौके पर मैं एक बात का जवाब दे देना चाहता हूं जिसकी चर्चा यहां की गई है। मैंने एक सवाल किया था पर उसका जवाब मुझे नहीं दिया गया। माननीय श्री मुन्शी से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह मेरे सवाल का जवाब दें। माननीय सरदार पटेल ने मुझ से यह कहा है कि अगर सिखों को इसका खेद है तो जो कुछ उन्हें दिया गया है उसे वापस कर दें और हमसे यह परित्राण ले लें। मैं यही जानना चाहता हूं कि उनको दिया क्या गया है। हमें यह बताया गया है कि हमारी चार पिछड़ी हुई जातियों को पिछड़े हुए वर्गों में शामिल कर लिया गया है। वह कहां किसी अनुसूची में शामिल किये गये हैं? मैं यही जानना चाहता हूं। पहले एक अनुसूची रखीं गई थी और आपने पिछड़े वर्गों को उसमें शामिल कराने के लिये हमें अपनी सभी मांगों का परित्याग करना पड़ा। किंतु अब वह अनुसूची ही उड़ा दी गई है। अनुच्छेद 300-क के अनुसार यह बात राष्ट्रपति

[सरदार हुकम सिंह]

पर छोड़ी गई है कि राज्यपाल से परामर्श करके वह यह बताये कि कौन-कौन जातियां अनुसूचित जातियां मानी जायेंगी। इसके लिये मैंने कीमत जरूर चुकाई है जैसा कि कहा गया है। जो कुछ भी मेरे पास था उसका मैंने त्याग किया है पर इसके लिये संविधान में मुझे कुछ भी नहीं मिला है। मेरी शिकायत यही है और इसका जवाब मुझे मिलना चाहिये।

(संशोधन नं. 80 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** बस इतने ही संशोधन इस पर आये हैं। कोई सदस्य कुछ कहना चाहते हैं क्या?

***माननीय सदस्यगण:** नहीं श्रीमान्।

***श्री के.एम. मुन्शी:** जवाब में मुझे चन्द शब्द ही कहने हैं। जहां तक कि माननीय मित्र श्री चालिहा के संशोधन का सवाल है, उनको यह मालूम होगा कि विशेष पदाधिकारी का जो प्रतिवेदन संसद के सामने रखा जायेगा वह एक तरह से एक विशेषज्ञ का प्रतिवेदन होगा। अवश्य ही संसद को उस पर विचार करने का अधिकार होगा। कोई सदस्य उस पर बहस उठा सकता है पर यह तो निश्चित है कि विशेषज्ञ ने अपने प्रतिवेदन में तथ्य दिये होंगे उसमें संसद कोई परिवर्तन या परिवर्धन नहीं कर सकती है। उस प्रतिवेदन में तो केवल सामग्री रहेगी और संसद के समक्ष विचारार्थ वह रखी जायेगी। इसलिए मैं यह कहूंगा कि संशोधन नं. 71 यहां उपयुक्त नहीं होगा।

जहां तक कि श्री कामत के संशोधन नं. 80 का संबंध है, वस्तुत: मुझे बड़ा आश्चर्य इस बात पर है कि वह "and also to the Anglo Indian community" (ऐंग्लो इंडियन समुदाय के प्रति निदेश भी है) शब्दों को हटाना चाहते हैं। अनुच्छेद 297 और 298 के द्वारा संविधान ने इस समुदाय को कुछ परित्राण दिये हैं और इस अनुच्छेद का मुख्य अभिप्राय यही है कि संविधान द्वारा जो राजनैतिक परित्राण कतिपय समुदायों को दिये गये हैं उन पर किस तरह अमल किया जा रहा है इसका अनुसंधान किया जाये और इसे संसद के समक्ष रखा जाये। यदि ऐंग्लो इंडियन समुदाय को कोई परित्राण दिये गये हैं तो इस पदाधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह इस बात को देखे कि इन परित्राणों पर किस तरह अमल किया जा रहा है।

अब मैं लेता हूं सरदार हुकुम सिंह के संशोधन नं. 74 को जिसके द्वारा वह यह चाहते है कि ऐंग्लो इंडियन समुदाय के साथ मुसलमान, ईसाई, सिख और पारसी समुदायों को भी यहां शामिल कर लिया जाये। उस संबंध में सादर मैं यह निवेदन करूंगा कि अनुच्छेद 299 में जिन परित्राणों को देने की बात सोची गई वह कोई मूल अधिकार नहीं है जो सभी नागरिकों को प्राप्त रहेंगे। वह तो केवल राजनैतिक परित्राण हैं देशवासियों के कतिपय सुपरिभाषित वर्गों की रक्षा के लिये। अन्यथा तो विशेष पदाधिकारी को संविधान के सारे मूलाधिकारों के संबंध में ही इसको देखना होगा कि उन पर कहां तक अमल किया जा रहा है। जहां तक मैं अपने संशोधन को समझ पाता हूं यह केवल अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम

जातियों, ऐंग्लो इन्डियन समुदाय और पिछड़े वर्गों के लिए है जिसको मूलाधिकार संबंधी अनुच्छेद 10 में निश्चित परित्राण दिये गये हैं और विशेष पदाधिकारी को यह देखना चाहिये कि इन पर ठीक ठीक अमल किया गया है या नहीं। ऐसी हालत में संशोधन नं. 74 में सुझाये गये "मुसलमान, ईसाई, सिख इत्यादि" शब्दों को मंजूर करना संभव नहीं है।

अब मुझे एक ही बात कहनी रह गई है और वह है सरदार भूपेन्द्र सिंह मान के संशोधन नं. 67 के बारे में।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन नं. 72 का क्या हुआ?

***श्री के.एम. मुन्शीः** नं. 72 में सुझाये गये "ऐसी कार्यवाही के लिये जैसी कि संसद को उचित प्रतीत हो" शब्दों को रखना अनावश्यक है। प्रतिवेदन जब संसद के सामने पेश हो जायेगा तो उस पर जैसा मैं कह चुका हूं, बहस की जा सकती है और प्रस्ताव रखा जा सकता है। यह बात जोकि यहां लिखित रूप में नहीं कही गई है पर यह स्वतः निहित है। इसलिये इन शब्दों को यहां रखने की कोई जरुरत नहीं है।

संशोधन नं. 67 के द्वारा भूपेन्द्र सिंह मान यह चाहते हैं कि प्रत्येक राज्य में एक विशेष पदाधिकारी होना चाहिये। इस अनुच्छेद में जिस विशेष पदाधिकारी की रखने की बात सोची गई है उसे यदि अन्य पदाधिकारियों के साहाय्य की अपेक्षा होगी तो इनको अवश्य नियुक्त किया जाये किंतु हर राज्य के लिये एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त करने की जरुरत नहीं है। इससे तो स्थिति और जटिल हो जायेगी। प्रस्तुत व्यवस्था को इसी उद्देश्य से रखा जा रहा है कि देश भर में सर्वत्र एक सिद्धांत के आधार पर काम हो। हम नहीं चाहते हैं कि हर राज्य में बतौर स्थायी अभिभावक के विशेष पदाधिकारियों को रखा जाये। और फिर माननीय संशोधनकर्त्ता महोदय ने अपने संशोधन में 'minorities' (अल्पसंख्यक) शब्द को भी स्थान दिया है। अनुच्छेद 296 से हम ने इस शब्द को हटा दिया है और इस अनुच्छेद में इसे रखना सर्वथा अनुपयुक्त होगा। अपने भाषण के सिलसिले में आपने उन बातों का भी जवाब देने का प्रयास किया है जिन्हें सिखों को परित्राण देने के बारे में सरदार पटेल ने यहां कही हैं। सरदार पटेल ने जो कुछ कहा है, उसे मैं दुहराना नहीं चाहता हूं। मैं तो केवल एक बात के संबंध में ही कुछ कहूंगा जिसकी आपने यहां चर्चा की है और मेरा ख्याल है कि मुझे उसे जरूर कहना चाहिये। सिख प्रश्न पर छान बीन करने के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी उसका मैं सदस्य रह चुका हूं। मंत्रणा समिति और अल्पसंख्यक समिति के नियुक्त काल से ही बातचीत के हर मौके से मेरा कुछ न कुछ संबंध बना रहा है। मैं सभा को यह विश्वास दिला सकता हूं कि मंत्रणा-समिति की गत बैठक में किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय के लिए जो धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक हो, परित्राण देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठा था। सारी बातचीत ही इस आधार पर चली थी कि पिछड़े वर्गों को जो कि आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों को छोड़कर संविधान में और किसी को भी अल्पसंख्यक समुदाय नहीं माना जायेगा। माननीय सदस्य ने कतिपय सिखों द्वारा दिये गये एक वक्तव्य से कुछ अंश पढ़कर अवश्य सुनाया था। दुर्भाग्य की बात है कि जो थोड़ा समय मेरे पास रहा है उसमें मैं विभिन्न लेख्यों को सभा के

[श्री के.एम. मुन्शी]

सामने नहीं रख सका हूं। पर मैं सभा को यह विश्वास दिला सकता हूं कि जब यह मसला मंत्रणा-समिति के सामने पेश हुआ था उस समय सिख सदस्यों ने परित्राण के बारे में अपनी सभी मांगों को वापस ले लिया था इस बात के बदले में कि सिखों की अनुसूचित जातियों को अनुसूचित जातियों में शामिल कर लिया जाये और उनको वही विशेष सुविधायें दी जायें जिनकी हकदार हैं शेष अनुसूचित जातियां। अब इस संबंध में अगर कोई सवाल उठाया जाता है तो वह बाद की सूझ है।

इस संबंध में मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं। जिस तरह के आरोप यहां लगाये गये हैं वह सर्वथा निराधार हैं। मुसलिम समुदाय के संबंध में भी बहस केवल प्रतिनिधान के प्रश्न पर हुई थी। जहां तक मुसलमानों का संबंध है, इनके बारे में भी नौकरियों को बाबत यही तय पाया था कि यह कोई परित्राण नहीं मांगेंगे। यह जरूर है कि यह बात लिखित रूप में समिति के प्रतिवेदन में नहीं दी गई है। समिति ने निर्णय ही इस आधार पर किया था कि संविधान में धर्म के आधार पर किसी भी समुदाय को अल्पसंख्यक समुदाय नहीं माना जायेगा इसी आधार पर सारी बातें हुई थीं और अब हम इससे पीछे नहीं हट सकते हैं।

***सरदार हुकम सिंह:** मेरे सवाल का जवाब मुझे नहीं मिला है। मैं यह पूछता हूं कि क्या सिखों की इन चार जातियों को अनुसूचित जातियों में शामिल कर लिया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अवश्य ही शामिल किये जायेंगे।

***श्री के.एम. मुन्शी:** अनुच्छेद 300-क के अधीन राष्ट्रपति को अनुसूचित जातियों की सूची निकालने का अधिकार दिया है। उस सूची में इनको जरूर शामिल किया जायेगा।

***सरदार हुकम सिंह:** इस बात की गारंटी क्या है कि राष्ट्रपति इनको सूची में शामिल करेगा ही? संविधान में यह अधिकार पाने के लिये ही तो हमने सारी मांगों को छोड़ा है पर हमें यह मिला कहां?

***श्री के.एम. मुन्शी:** राष्ट्रपति को इसकी शक्ति प्राप्त है। यहां जो भी वचन दिया गया है राष्ट्रपति अवश्य उसका निर्वाह करेंगे। मंत्रणा-समिति के प्रतिवेदन में उसका यह निर्णय दिया हुआ है कि सिखों की अनुसूचित जातियों को देश की अनुसूचित जातियों का अंग माना जायेगा और अनुच्छेद 296 के अधीन जिसे कि हमने अभी स्वीकार किया है उसे सभी परित्राण दिये जायेंगे। अपने इस वचन के पीछे हटने की कोई बात नहीं है। आपको मैं विश्वास दिलाता हूं कि सिखों की अनुसूचित जातियों को वही सुविधायें प्राप्त रहेंगी जो शेष अनुसूचित जातियों को दी जायेंगी। मैं पुन: इस बात को दुहराता हूं कि सिखों की अनुसूचित जातियों को पंजाब की अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों की सूची में जरूर शामिल किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा। जो कि ये सभी संशोधन, संशोधन नं 63 पर रखे गये हैं, नं. 64 के साथ भी यह ठीक बैठेंगे

और इसलिये इनको पेश करने की अनुमति दी गई है। इनमें से अगर कोई संशोधन मंजूर किया जाता है तो उसे हम ठीक जगह बिठा देंगे।

प्रश्न यह है:

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (1) में 'by the President' (राष्ट्रपति नियुक्त करेगा) शब्दों के आगे 'and a special officer for minorities for each State for the time being specified in Part I, II and III of the first Schedule who shall be appointed by the Governor or Rajpramukh of the State as the case may be' (तथा प्रत्येक राज्य में जो प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में अभी उल्लिखित हैं, अल्पसंख्यकों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा जिसे, यथा स्थिति, राज्यपाल या राजप्रमुख नियुक्त करेगा) शब्द जोड़े जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (2) में 'under this Constitution and' (इस संविधान के अधीन) शब्दों के आगे 'their representation in different Legislatures and services of the country' (देश के विभिन्न विधान मंडलों में और सेवाओं में उनके प्रतिनिधान का) शब्दों को रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (2) के अन्त में 'for its approval, modification or addition' (इसके द्वारा अनुमोदन, रूप भेद और अभिवर्धन के लिये) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (2) के अन्त में 'for such action as Parliament may deem necessary' (ऐसी कार्रवाई के लिये जैसी कि संसद आवश्यक समझे) शब्द जोड़े जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (2) की व्याख्या में 'means' शब्द के आगे 'the Muslims, the Christians, the Sikhs, the Parsees, the Anglo-Indians' (मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी, ऐंग्लो-इंडियन समुदाय) शब्दों को रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 की व्याख्या में 'and include the Anglo-Indian Community' (तथा ऐंग्लो इंडियन समुदाय के प्रति निदेश भी है) शब्दों की जगह 'and includes such community or communities as the President may then specify' (तथा अन्य ऐसा या ऐसे समुदाय के प्रति, जिन्हें राष्ट्रपति उस समय उल्लिखित करे निदेश भी है) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 की व्याख्या के अन्त में 'Muslims, Christians and Sikhs,' (मुसलमान, ईसाई और सिख) शब्द जोड़े दिये जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (3) में, 'to such other backward classes as the President may on receipt of the report of a Commission appointed under clause (1) of article 301 of this Constitution, by order specify and' (ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निदेश, जिनको कि राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अंधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करे) शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 80। इसे श्री मुन्नावाली ने पेश नहीं किया था। मेरा ख्याल यह है कि इस संशोधन की बात अन्य संशोधनों के अन्दर आ जाती है। अच्छा यही होगा कि इस पर राय ही ले लूं। प्रश्न यह है:

"कि ऊपर के संशोधन नं. 64 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के खंड (3) में, 'and also to the Anglo Indian Community' शब्दों को हटा दिया जाये।'

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:—

"कि संशोधन सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन नं. 63 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 299 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

'299. (1) There shall be a special officer for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes to be appointed by the President.

(2) The special officer in consultation with the President may appoint a special officer for each State who shall work exclusively under his superintendence, direction and control.

(3) The special officer appointed either for the Union or for a State shall not be a member either of the Scheduled Tribes, the Scheduled Castes or of such other backward classes as the President may on receipt of the report of a commission appointed under clause (1) of Article 301 of this Constitution by order specify.

(4) The salaries, allowances and pensions payable to the special officer for the Union and to the special officer for each State shall be expenditure charged on the revenues of India.

(5) It shall be the duty of the special officer for the Union to make annual recommendations as to the steps that should be taken by the Union and by each State to improve the economic, educational and cultural level of the Scheduled Tribes, the Scheduled Castes or of such other backward classes as the President may on receipt of the report of a commission appointed under clause (1) of Article 301 of this Constitution by order specify and as to the sums that should be separately allotted in the annual budget of the Union Government and of each State Government for the purpose; and the President shall cause all such recommendations to be laid before Parliament.

[अध्यक्ष]

(6) Parliament shall have the power to reject or accept in whole or in parts any of the recommendations contained in the Report.

(7) All State Governments shall be bound to make annual allotment in their budgets of such sums as Parliament may deem to be necessary for the purpose of giving effect to the recommendations contained in the Report of the special officer for the Union.

(8) Until the appointment of the commission and consideration of its Report by the President under clause (1) of Article 301 of the Constitution the backward classes shall consist of such castes and communities as may be determined by the President.

(9) The President may delegate the power to the special officer for the Union to supervise and give effect to all or any recommensations made by the commission appointed under Article 301 and accepted by the President.

(10) All appointments to be made under clauses (1) and (2) of this Article shall be made from the following category of persons:

(a) Doctors

(b) Scientists

(c) Socialogists, and

(d) Anthropologists.

(11) Parliament shall have the power to repeal or amend any or all of the provisions of this Article.' "

[299. (1) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) यह विशेष पदाधिकारी राष्ट्रपति के परामर्श से प्रत्येक राज्य के लिये एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त कर सकता है जो बिल्कुल उसके ही अधीक्षण, निदेश तथा नियंत्रण में काम करेगा।

(3) संघ या किसी राज्य के लिये नियुक्त विशेष पदाधिकारी न तो अनुसूचित जातियों का न अनुसूचित आदिमजातियों का या अन्य ऐसे किसी पिछड़े वर्ग का सदस्य होगा जिसे राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करेगा।

(4) संघ के विशेष पदाधिकारी को तथा प्रत्येक राज्य के विशेष पदाधिकारी को जो वेतन, भत्ते और निवृति वेतन देय होंगे वह भारतीय राजस्व पर प्रभारित व्यय होंगे।]

(5) संघ के विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह उस बारे में अपनी वार्षिक सिफारिश दे कि अनुसूचित जातियों की, अनुसूचित आदिम जातियों की या ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों की जिनको राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर, उल्लिखित करे, आर्थिक शैक्षणिक और सांस्कृतिक समुन्नति के लिये संघ द्वारा तथा प्रत्येक राज्य द्वारा क्या कार्रवाई की जानी चाहिये और कितनी रकमें संघ शासन के तथा राज्यों के वार्षिक बजट में उस प्रयोजन के लिये पृथक रखी जानी चाहिये तथा राष्ट्रपति ऐसी सभी सिफारिशों को संसद के समक्ष रखवायेगा।

(6) संसद को उसकी शक्ति होगी कि वह प्रतिवेदन में दी गयी सिफारिशों को पूर्णत: या अंशत: स्वीकार अथवा अस्वीकार करे।

(7) संघ के विशेष पदाधिकारी के प्रतिवेदन में दी गई सिफारिशों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिये जितनी रकम संसद आवश्यक समझेगी उतनी रकम प्रति वर्ष अपने बजट में रखना सभी राज्य शासनों के लिये जरूरी होगा।

(8) तब तक जब तक कि संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन आयोग नियुक्त न हो जाये और राष्ट्रपति प्रतिवेदन पर विचार न कर ले, पिछड़े हुए वर्गों में वह जातियां या समुदाय माने जायेंगे जिनको राष्ट्रपति विनिश्चित करे।

(9) अनुच्छेद 301 के अधीन नियुक्त आयोग द्वारा की गई तथा राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत सभी नियम किन्हीं सिफारिशों के प्रबंध के लिये तथा उनको कार्यान्वित करने के लिये राष्ट्रपति संघ के विशेष पदाधिकारी को अधिकार सौंप सकता है।

(10) इस अनुच्छेद के खंड (1) और (2) के अधीन की जाने वाली सभी नियुक्तियां इन श्रेणियों के लोगों में से की जायेंगी:

(क) डॉक्टर

(ख) वैज्ञानिक

(ग) समाज विज्ञानवेता, तथा

(घ) प्राणि विज्ञानवेता।

(11) संसद को इस अनुच्छेद के किसी या सभी उपबन्धों को निरसित या स्थगित करने की शक्ति होगी।]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** कुल यही संशोधन हैं जो कि पेश किये गये हैं। अब मैं श्री मुंशी द्वारा यथा प्रस्तावित अनुच्छेद 299 (संशोधन नं. 64) पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:—

"संशोधन नं. 63 के संबंध में, अनुच्छेद 299 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

Special officer for Scheduled Castes, Scheduled Tribes etc.

'299. (1) There shall be a Special Officer for the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes to be appointed by the President.

(2) It shall be the duty of the Special Officer to investigate all matters relating to the safeguards provided for the Scheduled Castes and Scheduled Tribes under this Constitution and report to the President upon the working of those safeguards at such intervals as the President may direct, and the President shall cause all such reports to the laid before each House of Parliament.

(3) In this article, the reference to the Scheduled Castes and Scheduled Tribes shall be construed as including the reference to such other backward classes as the President may on receipt of the report of a Commission appointed under clause (1) of article 301 of this Constitution by order specify and also to the Anglo-Indian community."

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों इत्यादि के लिये विशेष पदाधिकारी।

[299. (1) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये एक विशेष पदाधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये इस संविधान के अधीन उपबन्धित परित्राणों से संबद्ध सब विषयों का अनुसंधान करना तथा उन परित्राणों पर कार्य होने के संबंध में ऐसी अन्तराविधियों में, जैसी कि राष्ट्रपति निदिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना विशेष पदाधिकारी का कर्तव्य होगा तथा राष्ट्रपति ऐसे सब प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(3) इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के प्रति निर्देश के अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निर्देश, जिनको कि राष्ट्रपति इस संविधान के अनुच्छेद 301 के खंड (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा उल्लिखित करे तथा आंग्ल-भारतीय समाज के प्रति निर्देश भी है।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 299 यथा संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** अब सभा स्थगित होती है। हम पुन: चार बजे समवेत होंगे।

इसके पश्चात् सभा भोजनार्थ, चार बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में, सभा भोजनोपरान्त 4 बजे समवेत हुई।

अल्पसंख्यक मंत्रणा-समिति के प्रतिवेदन के बारे में वक्तव्य

***अध्यक्ष:** पहले इसके कि आज के कार्यक्रम में दिये गये अन्य अनुच्छेदों को हम लें, मैं एक बात कहना चाहता हूं। आज सवेरे जब यहां अनुच्छेद 296 और 299 पर विचार किया जा रहा था उस समय माननीय सरदार पटेल ने एक लेख्य का हवाला दिया था। सभा के माननीय सदस्य सरदार भूपेन्द्र सिंह मान ने एक लेख्य से कुछ अंश पढ़कर सुनाया था। आपका ख्याल था कि यह वही लेख्य है जिसका हवाला माननीय सरदार पटेल ने दिया था। चूंकि उस लेख्य के बारे में मुझे कुछ संदेह था इसलिये मैंने यह सोचा कि लेख्य के केवल एक अंश को ही कार्रवाई में शामिल करना ठीक नहीं होगा और माननीय सदस्य से मैंने इस बात का अनुरोध किया कि वह समूचा लेख्य पढ़कर सुना दें जो उनके हाथ में था और उन्होंने समूचे लेख्य को पढ़कर सुना दिया। इसके बाद मैंने इस संबंध में पूछताछ की और मुझे यह मालूम हुआ है कि यह वह लेख्य नहीं है जिसका हवाला माननीय सरदार पटेल ने अपने भाषण में दिया था। मैं उस लेख्य को पढ़कर सुना देना चाहता हूं जो कि सरदार पटेल के दिमाग में था ताकि जब दूसरा लेख्य कार्रवाई में आ गया है तो यह लेख्य भी इसमें दिखा दिया जाय जिससे कि उस लेख्य के कारण अगर किसी को कोई गलतफहमी हुई हो तो वह दूर हो जाये।

***सरदार सुचेत सिंह** (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ): क्या इस लेख्य की प्रतियां सदस्यों को मिल सकती हैं?

***अध्यक्ष:** अवश्य मिल सकती हैं। पर अभी तो मैं उसे पढ़कर ही सुनाये देता हूं। यह लेख्य पर तारीख दी हुई है 10 मई सन् 1949 की। मंत्रणा-समिति की बैठक हुई थी 11 मई सन् 1949 को और यह स्पष्ट है कि मंत्रणा समिति ने जो निर्णय किया था वह इस लेख्य के आधार पर ही किया था। इस पर हस्ताक्षर किये हैं तीन सदस्यों ने—सरदार उज्जल सिंह, माननीय सरदार योगिन्दर सिंह मान तथा सरदार गुरुवचन सिंह ने। अब मैं समूचे लेख्य को पढ़ देता हूं।

"पूर्वी पंजाब की विधान सभा के तथा संविधान सभा के सिख सदस्यों की एक बैठक 10 मई को दिल्ली में हुई जिसमें ये सदस्य उपस्थित थे:—

1-सरदार कपूर सिंह

2-ज्ञानी करतार सिंह

3-सरदार स्वरन सिंह

4-सरदार ईशर सिंह मझाइल

[अध्यक्ष]

5-सरदार उज्जल सिंह

6-सरदार योगिन्दर सिंह मान

7-भाई पियारा सिंह

8-सरदार इन्दर सिंह

9-सरदार गुरवचन सिंह वजवा

10-सरदार दलीप सिंह कंग

11-सरदार अजित सिंह

12-सरदार शिवसरन सिंह

13-सरदार नरोत्तम सिंह

14-संत नरीन्दर सिंह

15-सरदार हुकुम सिंह

16-सरदार तारा सिंह

17-सरदार रतन सिंह मोंगा

18-सरदार रतन सिंह लोगाढ़

19-सरदार गुरुवचन सिंह फिरोजपुर

20-सरदार सजन सिंह मिरगंदपुरी

21-सरदार जगजीत सिंह मान

22-सरदार सारदूल सिंह

पूर्वी पंजाब की विधानसभा के अध्यक्ष सरदार कपूर सिंह के सभापतित्व में यह बैठक हुई। अल्प संख्यक सिख समुदाय के लिए संविधान में परित्राण उपबन्धित करने के बारे में सर्व सम्मति से यह बातें स्वीकृत हुई थीं। इन बातों को उन सब सिख सदस्यों का भी समर्थन प्राप्त था जो इस बैठक में उपस्थित न हो सके थे।

1-सिख समुदाय के पिछड़े वर्गों को अर्थात् मजहबी, कबीर पंथी, राम दासी, बावरिया तथा सिकलीगर इत्यादि जातियों को, पूर्वी पंजाब तथा पेप्सू में, विधान मंडलों में प्रतिनिधान के बारे में और अन्य राजनैतिक रियायतों के बारे में वही सुविधायें मिलनी चाहिये जो कि अनुसूचित जातियों को दी जायें। इस प्रयोजन के लिये, या तो इन वर्गों को संविधान के प्रारूप में अनुसूचित जातियों की जो सूची दी गई है उसमें दिखाया जाये या सिखों के लिए जितनी जगहें रक्षित रखी गई हैं उनमें से आबादी के आधार पर इनके लिए जगह रक्षित रखी जायें।

2-पूर्वी पंजाब में, सिखों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर जगहें रक्षित रखी जायें और अतिरिक्त जगहों के लिए चुनाव लड़ने का उन्हें अधिकार रहे।

3-पूर्वी पंजाब के सिवाय अन्य प्रांतों में तथा केन्द्र में, जहां संख्या के आधार पर प्रतिनिधान पाने का सिखों को हक हो, वहां उनके लिये जगहें रक्षित रहनी

चाहियें तथा जहां चुनाव द्वारा उनके पर्याप्त प्रतिनिधि न आ पाये हों। वहां मनोनयन के द्वारा उनके प्रतिनिधि लिये जायें ताकि संख्या के हिसाब से उनको ठीक प्रतिनिधान प्राप्त हो जाये।

4–पूर्वी पंजाब में स्थान रक्षण की व्यवस्था को उठाने पर सिख राजी हैं अगर सिखों को और हिंदू अनुसूचित जातियों को साथ मिला दिया जाये और उनकी जनसंख्या के आधार पर उनके लिये जगहें रक्षित रख दी जायें।

यदि ये बातें नहीं मंजूर होती हैं तो सिखों को परित्राण देने का समूचा प्रश्न, कांग्रेस द्वारा दिये गये आश्वासन के अनुसार, मध्यस्थ–निर्णयन पर छोड़ दिया जाये।

(हस्ताक्षर) उज्जल सिंह

ता. 10 मई सन् 1949 ई. (हस्ताक्षर) योगिन्दर सिंह मान

(हस्ताक्षर) गुरवचन सिंह वजवा

मैं इस पर कोई राय नहीं जाहिर करना चाहता हूं। दोनों लेखों को साथ साथ पढ़ने पर सदस्य स्वयं अपना निर्णय कर सकते हैं।

अनुच्छेद 48

***अध्यक्ष:** अब हम उन विभिन्न अनुच्छेदों को लेंगे जो आज के कार्यक्रम में दिये गये हैं और शुरू करेंगे अनुच्छेद 48 से। ये सभी संशोधन उन अनुच्छेदों पर आये हैं जो स्वीकृत हो चुके हैं। जहां भी आवश्यक होगा, पूर्व निर्णय को बदलने के लिये सभी की अनुमति ले ली जायेगी। अनुच्छेद 48 ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 48 से लेकर अनुच्छेद 306 तक प्राय: सभी अनुच्छेदों पर, सिवाय 273–क और 302–क के, पुनर्विचार करने की जरुरत होगी क्योंकि ये सब पहले स्वीकृत हो चुके हैं। इसलिये मेरा कहना यह है कि अगर आप चाहें तो, इन सभी अनुच्छेदों पर पुनर्विचार करने की अनुमति सभा से मांग ली जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सभा इन निर्णयों पर पुनर्विचार करने की अनुमति दे।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन रखता हूं:—

"कि अनुच्छेद 48 के खंड (3) में "the President shall have an official residence" (राष्ट्रपति के लिये पदावास रहेगा) शब्दों की जगह "the President

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

shall be entitled without payment of rent to the use of his official residences" (राष्ट्रपति को, बिना किराया दिये, अपने पदावासों के उपयोग का हक होगा) शब्द रखे जाये।"

मैं यह देखता हूं कि मेरे इस संशोधन पर एक संशोधन भेजा है माननीय मित्र श्री सिधवा ने। इस संबंध में मैं उनका ध्यान आकृष्ट करूंगा उस संशोधन की ओर जिसे सभा ने कल यहां भाग 6-क के बारे में स्वीकार किया है। मेरा मतलब है माननीय मित्र श्री सन्तानम् के संशोधन से जो यों है:-

"Unless he has his own residence in the capital of his State, the Rajpramukh shall be entitled to the use of an official residence without payment of rent and there shall be paid to the Rajpramukh such allowances... etc."

[राजप्रमुख को जब कि राज्य की सरकार के मुख्य स्थान में उनका अपना निवास गृह न हो, तब बिना किराया दिये पदावास के उपयोग का हक होगा तथा उसको ऐसे भत्तों... इत्यादि, इत्यादि।]

राजप्रमुख के संबंध में जब यह उपबन्ध स्वीकार किया जा चुका है तो इसी के अनुसार राज्यपाल के बारे में भी उपबन्ध रखना होगा। सभा इस संशोधन को कल स्वीकार कर चुकी है। यही कारण है कि मैं अपना यह संशोधन रख रहा हूं। आशा है कि श्री सिधवा, इस बात को देखते हुए कि भाग 6-क के संबंध में श्री सन्तानम् के संशोधन को पास कर जिस मार्ग का प्रदर्शन किया है हम उसी का अनुगमन कर रहे हैं, अपने संशोधन के लिये जोर नहीं देंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, श्री संतानम् का संशोधन है राजप्रमुख के संबंध में। पर मेरे संशोधन में यह कहा गया है कि जहां तक राष्ट्रपति का संबंध है, उसे बिना किराया दिये गवर्नमेंट हाउस का, अपने आवास के रूप में उपयोग करने का हक होगा। मैं नहीं समझ पाता हूं कि आखिर श्री संतानम् के संशोधन से यह प्रयोजन कैसे हल होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** माननीय मित्र श्री सिधवा से मैं यह कहूंगा कि यह फिर से संशोधन को देख लें। वह यों है:-

"राष्ट्रपति को, बिना किराया दिये, अपने पदावास के उपयोग का हक होगा।"

वस्तुत: श्री सिधवा के ध्यान में मूल बात नहीं आ पाई है। मेरे संशोधन में "official residence" शब्द प्रयुक्त हुए हैं। राष्ट्रपति को एक से अधिक पदावास

हो सकते हं। गवर्नर जनरल का एक पदावास है दिल्ली में और एक है शिमला में। इसीलिये इन शब्दों को यहां रखा गया है और विशेषज्ञ की राय यही है कि विधेयक में यही शब्द बिल्कुल ठीक बैठेंगे। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं कि इस में किसी परिवर्तन की जरुरत नहीं है। इसलिये श्री सिधवा से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह अपने संशोधन के लिये आग्रह न करें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री सिधवा यह कहना चाहते हैं कि गवर्नमेंट हाउस का उपयोग केवल राष्ट्रपति के आवास के लिये ही किया जायेगा। किन्तु हो सकता है कि भावी संसद इसे और किसी उपयोग में भी लाना चाहे।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं सोचता यह था कि अपने संशोधन के लिये जोर न दूं किन्तु प्रो. शिब्बनलाल की बात सुनकर मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि मुझे इस पर जोर देना ही चाहिये। उनका कहना है कि गवर्नमेंट हाउस का उपयोग किसी अन्य प्रयोजन के लिये भी किया जा सकता है जैसा प्रो. सक्सेना चाहते हैं उसके हिसाब से तो इसका उपयोग कोई परिव्राजक भी कर सकता है। पर इस सम्बन्ध में किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं रहने देना चाहता इसलिये मैं साफ तौर पर 'गवर्नमेंट हाउस' का उल्लेख यहां कर देना चाहता हूं जैसा कि मैंने अपने संशोधन में किया है इसका उपयोग अन्य प्रयोजनों के लिये भी किया जा सकता है जैसा कि प्रदर्शिनी के लिये इसका उपयोग हमने किया है। पर यह बात हमें यहां अवश्य रख देना चाहिये कि गवर्नमेंट हाउस का उपयोग राष्ट्रपति के आवास गृह के लिये किया जायेगा।

***अध्यक्षः** किन्तु श्री कृष्णमाचारी के संशोधन से यह तो नहीं होता है कि राष्ट्रपति के आवास गृह के लिये इसका उपयोग वर्जित हो जाता हो। क्या इस मामले पर हमें किसी बहस की जरुरत है?

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये बिना किराया के आवास गृह देने के बारे में जो उपबन्ध अभी उस दिन रखा गया था उसका मैंने विरोध किया था। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने जवाब में यह बताया कि जिन अनुच्छेदों को पास कर चुके हैं। उनमें राष्ट्रपति और राज्यपाल के लिये बिना किराये के आवास गृह का उपबन्ध रखा गया है। उन्होंने मुझसे कहा कि राज्यपाल और राष्ट्रपति के लिये बिना किराये के आवास गृह के उपबंध पर जब यहां विचार किया जा रहा था उस समय मुझे आपत्ति उठानी चाहिये थी। अब ऐसा मालूम पड़ता है कि खुद उनके दिमाग में ही यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि कहीं पहले के अनुच्छेदों का कोई और निर्वचन न किया जा सकता हो; कहीं यही अर्थ न किया जाये कि किराया देने पर ही उनको आवास गृह दिया जायेगा बिना किराया दिये नहीं। उस दिन उनका तर्क यह था कि जहां तक न्यायाधीशों का सम्बन्ध है, वह दूर दूर की जगहों से यहां राजधानी में आते हैं और उनको यह तकलीफ न देनी चाहिये कि दिल्ली में अपने लिये मकान ढूंढते फिरें। उस दिन आपने यही दलील पेश की थी किन्तु उनके इस तर्क के आधार पर उनसे मैं यह कहूंगा कि फिर तो मिनिस्टरों को भी, बिना उनसे किराया लिये आवास गृह देना अनुचित नहीं होगा। आखिर जब आप उच्चतम न्यायालय के

[श्री एच.वी. कामत]

न्यायाधीशों के लिये बिना किराया के आवास गृह की व्यवस्था कर रहे हैं, कार्यपालिका के प्रधान के लिये जब बिना किराया के आवास गृह की व्यवस्था कर रहे हैं तो मेरी समझ से तो बुद्धि संगत और तर्क संगत बात यही होगी कि मिनिस्टरों के लिये ऐसी ही व्यवस्था की जाये। आशा है कि सभा मेरे इस मन्तव्य से सहमत होगी कि संविधान में ऐसा उपबंध रहना चाहिये।

***अध्यक्ष:** सभा के सामने जो संशोधन पेश है उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता ही कहां है?

***श्री एच.वी. कामत:** अभी उस दिन जब डॉ. अम्बेडकर ने मुझे उत्तर दिया था तो उनको इस बारे में कोई सन्देह नहीं था। पर आज, ऐसा मालूम पड़ता है कि, उनको खुद कुछ सन्देह हो रहा है जो यह राज्यपालों के लिये तथा राष्ट्रपति के लिये बिना किराये के आवास गृह देने का संशोधन रख रहे हैं। फिर तो तर्क संगत यही है कि मिनिस्टरों को भी बिना किराया लिये आवास गृह दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि अनुमति हो तो एक बात कहूं। राजप्रमुख के सम्बन्ध में इस बारे में जो उपबन्ध रख चुके हैं उसके अनुरूप उपबन्ध यहां रखने के लिये यह संशोधन रखना जरूरी है। राजप्रमुखों के आवास गृह के सम्बन्ध में जो खण्ड अभी उस दिन पेश किये गये थे उनमें हमने यह साफ साफ कहा है कि इनके आवास गृह के लिये इनसे कोई किराया न लिया जायेगा। राज्यपालों के सम्बन्ध में इस बारे में जो खण्ड हमने रखे हैं उनका इनसे मिलान करने पर हमने यह देखा कि वहां किसी तरह एक बात छूट गई है और वह यह कि बिना किराया लिये आवास गृह देने की बात वहां नहीं रखी गई है। इस खामी को दूर करने के लिये तथा राज्यपालों को और राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में राजप्रमुखों के स्तर पर लाने के लिये इस संशोधन की जरुरत पड़ी है।

मिनिस्टरों को बिना किराया के आवास गृह देने का जो प्रश्न है उस पर विचार करना है संसद को इस बात का कि उनको वेतन के साथ आवास गृह दिया जाये या नहीं और अगर दिया जाये तो किराया लेकर या बिना किराये के, विनिश्चयन संसद करेगी क्योंकि मिनिस्टरों का जो पद है वह राजनतिक पद है जो सदन की सदभावना और विश्वास पर निर्भर करता है और मेरा ख्याल है कि श्री कामत इस बात को आसानी से समझ सकते हैं कि मिनिस्टरों को संसद के क्षेत्राधिकार से बाहर रखना ठीक नहीं होगा।

अध्यक्ष: इस पर अब में मत ले लेना चाहता हूं। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'the President shall have an official residence' (राष्ट्रपति के लिये पदावास रहेगा) शब्दों की जगह 'the President shall be entitled to the use of Government House without payment of

rent' (राष्ट्रपति को बिना किराया दिये गवर्नमेंट हाउस के उपयोग का हक होगा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'The President shall have an official residence' (राष्ट्रपति के लिये पदावास रहेगा) शब्दों की जगह 'The President shall be entitled without payment of rent to the use of his official residences' (राष्ट्रपति को बिना किराया दिये अपने पदावासों के उपयोग का हक होगा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं अपना संशोधन नं. 360 पेश करता हूं श्रीमान। वह यों है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (5क) को हटा दिया जाये।"

इसको रखने का कारण यह है जैसा कि अभी उस दिन डॉ. अम्बेडकर की ओर से मैंने यहां कहा है, कि हम अनुसूची 3-क को नहीं रखना चाहते हैं और उस अनुसूची को भी नहीं रखना चाहते हैं जिसमें राज्यपालों के लिये अनुदेश रखे गये हैं। प्रस्तुत खण्ड में यह कहा गया है: "(5a) in the choice of his ministers and in the exercise of his functions under this Constitution to the President shall be personally guided by instructions set out in schedule IIIA." (अपने मिनिस्टरों को चुनने में तथा इस संविधान के अधीन अपने प्रकार्यों के प्रयोग में राष्ट्रपति अनुसूची 3-क में दिये गये अनुदेशों पर चलेगा।) किन्तु जब यह अनुसूची 3-क अब प्रस्तावित ही नहीं की जा रही है तो इस खण्ड का रखना भी अनावश्यक है। इसीलिये मैंने इसे हटाने का संशोधन रखा है।

***श्री एच.वी. कामत:** आपको याद होगा श्रीमान कि कुछ महीना पहले आपने यह महत्वपूर्ण प्रश्न यहां उठाया था कि आया राष्ट्रपति के लिये हमेशा अपने मंत्रिपरिषद् की राय को मानना अनिवार्य होगा क्या। हमारा संविधान इस प्रश्न पर खामोश है इसमें केवल इतना ही कहा गया है कि "राष्ट्रपति को सहायता और राय देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी" उस अवसर पर डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था कि इस बात के स्पष्टीकरण के लिये संविधान में कहीं न कहीं एक उपबन्ध आगे चल कर हम रख देंगे। मुझे तो ऐसा ही याद आता है। अध्यक्ष

[श्री एच.वी. कामत]

महोदय कृपा कर यह बता दें कि मेरा कहना सही है या गलत? संविधान में कहीं भी इस प्रश्न का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। आशा है डॉ. अम्बेडकर इसे स्पष्ट कर देंगे और इसे यों ही अस्पष्ट न रह जाने देंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं चाहता यह हूं कि इसके लिये नोटिस दिया गया होता ताकि मैं आवश्यक उद्धरण यहां रख सकता। फिर भी इस पर एक सामान्य वक्तव्य तो मैं दे सकता हूं। यह प्रश्न कि आया संविधान में ऐसी कोई बात रखी गई है जिससे राष्ट्रपति के लिये मंत्रिपरिषद् की राय को मानना लाज़िमी हो, एक ऐसा प्रश्न है जो विस्तृत प्रश्न की तुलना में बहुत छोटा-सा प्रश्न है। पहले मैं विस्तृत प्रश्न के सम्बन्ध में ही चन्द बातें कहना चाहूंगा:

जहां तक कि संसदात्मक लोकतन्त्र का सम्बन्ध है, प्रत्येक संविधान में राज्य के लिये ये तीन अंग—कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधान मण्डल—आवश्यक माने गये हैं किसी भी संविधान में मुझे ऐसा एक भी उपबन्ध नहीं मिला है जिसमें यह कहा गया हो कार्यपालिका विधान मण्डल के आदेश का पालन करेगी और न किसी संविधान में ऐसा ही कोई उपबन्ध मिला है कि कार्यपालिका न्यायपालिका के आदेश का पालन करेगी। किसी भी संविधान में आपको इस तरह का उपबन्ध नहीं मिलेगा। इसका कारण यह है कि यह आम तौर से एक मानी हुई बात है कि संविधान के उपबन्धों को मानना राज्य के इन तीनों अंगों के लिये लाजिमी है। इसलिये हमें यह मान लेना होगा कि जो लोग कि संविधान को कार्यान्वित करते हैं अर्थात विधानमण्डल के सदस्य तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के सदस्य अपने प्रकार्यों को अपने परिसीमनों को और अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये हमें यह मानना होगा कि अगर कार्यपालिका संविधान पर ईमानदारी से अमल करती है तो उसके लिए विधान मण्डल का आदेश मानना अनिवार्य है चाहे इसके लिए संविधान में कोई आदेश मूलक उपबन्ध कार्यपालिका के लिये भले ही न रखा गया हो।

इसी तरह कार्यपालिका अगर संविधान को ईमानदारी से कार्यान्वित करती है तो उसके लिये उच्चतम न्यायालय के न्यायिक निर्णयों के अनुसार काम करना अनिवार्य है। इसलिए मेरा कहना यह है कि यह मामला राज्य के एक अंग से सम्बन्ध रखता है। यह अंग अपनी सीमाओं के अन्दर रह कर कार्य करता है और साथ ही राज्य के अन्य अंगों के प्रभुत्व को भी स्वीकार करता है। यदि संविधान में इस अंग को भी प्रभुत्व प्रदान किया गया है तो इसका यह अर्थ है कि उसका एक सांविधानिक दायित्व है। यह दायित्व संविधान में निहित है।

मुझे स्मरण है श्रीमान कि आपने यह प्रश्न उठाया था और मैंने इस पर छानबीन की थी और इंग्लैण्ड की सर्वोपरि अदालत के दो निर्णयों को रख लिया था जिन्हें सभा के सामने में किसी दिन रखना चाहता था इस प्रश्न को स्पष्ट करने के लिये। किन्तु मुझे खेद है कि इसकी सूचना मुझे नहीं थी कि आज यह प्रश्न उठाया जायेगा। अस्तु, जो प्रश्न उठाया गया है उसका यही जवाब है।

किसी भी देश में कोई सांविधानिक शासन तब तक चल नहीं सकता है जब तक कि वहां का एक सांविधानिक पदाधिकारी इस तथ्य को न याद रखे कि उसका अधिकार संविधान द्वारा परिसीमित है तथा इस तथ्य को न याद रखे कि, उसके और अन्य किसी पदाधिकारी के बीच उठने वाले किसी प्रश्न के विनिर्णयन के लिये संविधान ने अगर किसी पदाधिकारी की व्यवस्था की है तो उस पदाधिकारी के निर्णय को मानना, उसके लिए तथा राज्य के अन्य अंग के लिये लाजिमी है। यह मंजूरी संविधान ने इसलिये दी है कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की राय पर अवश्य चले और कार्यपालिका अपने कार्यपालिक अधिकारों के प्रयोग में संसद निर्मित विधियों का अतिक्रमण न करे तथा कार्यपालिका विधि पर अपना कोई ऐसा निर्वचन न दें जो संविधान द्वारा प्रतिष्ठापित राज्य की न्यायपालिका के निवर्चन से प्रतिकूल हो।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि किसी खास मामले में राष्ट्रपति अपने मंत्रिपरिषद की सलाह पर नहीं चलता है तो क्या यह संविधान का उल्लंघन समझा जायेगा और क्या इसके लिए उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें तो रंचमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रासः जनरल): डॉ. अम्बेडकर के कथन में मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूं और बता देना चाहता हूं कि कई मामलों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की राय नहीं भी मान सकता है। यदि मंत्रिमंडल यह चाहता हो कि उसका विघटन कर दिया जाये तो राष्ट्रपति यह कह सकता है कि उसके स्थान पर वह अन्य मंत्रिमण्डल बिठायेगा जिस पर बहुमत का विश्वास हो और शासन को चालू रख सकता है। कुछ मामलों में उत्तरदायी शासन के हित में राष्ट्रपति अपने उत्तरदायी मंत्रियों की राय की अवहेलना कर सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जवाब में मैं केवल एक बात कहना चाहता हूं एक समय यह स्थिति जरूर थी। मेकाले लिखित इंग्लैण्ड के इतिहास में यह साफ-साफ बता दिया गया है कि सम्राट क्या कर सकता है। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि यह प्रश्न रूढ़ि से सम्बन्ध रखता है। कनाडा में जब मिस्टर मेकेंजी किंग ने मंत्रिमण्डल का विघटन करना चाहा था तो वहां यह प्रश्न उठा था। प्रश्न यह था कि आया गवर्नर जनरल के लिये विघटन का निर्णय देना लाजिमी है या उसे इस बात की स्वतन्त्रता है कि विरोधी पक्ष के नेता को बुला कर उसे मंत्रिमंडल बनाने को कहे। गवर्नर जनरल ने ब्रिटिश शासन की राय से मिस्टर मेकेंजी किंग की राय को स्वीकार किया था और मंत्रिमंडल को भंग कर दिया था।

***श्री एच.वी. कामतः** बजाय इसके कि डॉ. अम्बेडकर के किसी प्रसंगात कथन पर हम निर्भर करें, संविधान में इसके लिए उपबन्ध क्यों न रख लें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस प्रश्न पर हम इस तरह विचार नहीं कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हमने एक बहुत ही विवादास्पद विषय उठा लिया है। यह प्रश्न कि मंत्रिमण्डल और राष्ट्रपति संसद् के निश्चय को मानने के लिए बाध्य हैं या नहीं, एक बड़ा विवादास्पद प्रश्न है। इस प्रश्न पर ब्रिटिश संविधान का निर्णय क्या है, यह चर्चा वस्तुत: यहां प्रासंगिक नहीं हो सकती है। ब्रिटिश संविधान बहुत सी चिर स्थापित रूढ़ियों को लेकर बना है। लिपिबद्ध विधियों को लेकर वह नहीं बना है। वहां, सम्राट् की तथा कार्यपालिका की क्या शक्तियां हैं इसे सारा देश अच्छी तरह जानता है। किन्तु हमारा संविधान बन रहा है लिपिबद्ध विधियों को लेकर। इसलिये मेरा ख्याल तो यही है कि हमें इन प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिए एक न एक उपबन्ध अवश्य रख देना चाहिये। अन्यथा, हो सकता है कि कभी गतिरोध उत्पन्न हो जाये। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेंट की नजीर से हमें कोई सहायता नहीं मिल सकती है। जहां तक कि कनाडा की नजीर का सम्बन्ध है वह भी रूढ़ियों पर और एक चिरकालीन मान्यता पर ही आश्रित है। किन्तु हमारे यहां इसके लिये कोई पूर्ववर्ती उदाहरण या नजीर नहीं है जिसका हम सहारा ले सकें। पर इस विषय को यहां उठाना एक गड़ी हुई बात को उठाना है और मैं नहीं समझता कि इस पर हमें यह बहस और चलानी चाहिये। पर यह जरूर है कि डॉ. अम्बेडकर की राय को हम अपने लिए लाजिमी ही नहीं मान सकते हैं।

***श्री अलादी कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस बहस में दखल देने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी पर मैं यह देख रहा हूं कि यहां उपबन्ध रखने की आवश्यकता का जो प्रश्न उठाया गया है वह सर्वथा निस्सार है। अनुच्छेद 61 (3) में हमने यह कहा है कि मंत्रिपरिषद लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। यदि कोई राष्ट्रपति इस उत्तरदायित्व की पूर्ति में मंत्रिपरिषद को रुकावट डालता है जो वह संविधान को भंग करने का अपराधी है और उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है। यह तो किसी कठोर बात को कोमल बनाने का ढंग है जो यहां यह कहा गया है कि अपने प्रकार्यों के पालन में राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की सलाह से चलेगा। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से उत्तरदायी रहेगी लोकसभा के प्रति। बजट के बारे में, या विधि बनाने के बारे में अथवा देश के प्रशासन से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विषय के बारे में स्थिति के अनुसार सारा काम करना होगा वस्तुत: लोक सभा को। इसलिये, अगर मंत्रिपरिषद को अपने दायित्वों का पालन करना है तो राष्ट्रपति को इस बात का ख्याल रखना होगा कि संविधान का पालन हो। इसलिये अनुच्छेद 61 तथा 62 (3) के द्वारा यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरदायी शासन का दायरा क्या है? अन्यथा आपको एक बड़ी सूची इस बात की रखनी होगी कि किसका क्या दायित्व है; आपको यह बताना होगा कि संसद का विघटन अगर किया जाता है तो इसकी जिम्मेदारी होगी प्रधान मन्त्री पर; आप को यह भी बताना होगा कि ऐसे मौकों पर राष्ट्रपति को क्या क्या रायें माननी होंगी। कहने का मतलब यह है कि बहुत सी विस्तार की बातों का आपको उल्लेख देना होगा। आयरलैंड में कुछ ऐसा ही प्रयास किया गया था क्योंकि उन दिनों सम्राट के प्रति वहां अविश्वास भाव था। आयरलैंड का जो संविधान शुरू में बना था उसमें कुछ उपबन्ध रखे गये थे जिनमें इन सब विस्तार की बातों का उल्लेख था कि किसका क्या दायित्व होगा। यदि आप कनाडा, आस्ट्रेलिया या अन्य किसी देश के संविधान को देखें, जिसमें उत्तरदायी शासन की व्यवस्था रखी गई है या नाममात्र के भी उत्तरदायी शासन की व्यवस्था रखी गई

है तो आपको मालूम होगा कि कहीं भी इसके लिए विस्तृत उपबन्ध नहीं रखे गये हैं। जर्मनी के संविधान विशारदों ने जिन्होंने वहां का संविधान तैयार किया था, इसके बारे में कुछ परिभाषायें रखने का प्रयास किया था जिसके फलस्वरूप वह संविधान ही असफल हो गया जैसा कि हम सभी जानते हैं कि ज्यों ही वहां राष्ट्रपति तथा मंत्रियों के अधिकारों के बीच संघर्ष पैदा हुआ था उससे जर्मन संसद का ही खात्मा हो गया था। इसलिए, इन बातों को देखते हुए, मैं तो साहसपूर्वक यही कहूंगा कि संविधान के किसी अनुच्छेद में हमें विस्तारपूर्वक इन बातों को रखने की जरूरत नहीं है कि उत्तरदायी शासन की क्या-क्या जिम्मेदारियां होंगी और क्या प्रकार्य होंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, हमने एक ऐसा संविधान बनाया है जिसमें छोटे से छोटे विस्तार की बात के लिए उपबन्ध रख दिया है। हमारा संविधान इंग्लैण्ड के संविधान से भिन्न है, इस ख्याल से कि इंग्लैण्ड का संविधान आधृत है रूढ़ियों पर और अपना संविधान बना है लिपिबद्ध बातों को लेकर। इस तरह के महत्वपूर्ण मसले के बारे में संविधान में हमने कहीं भी यह नहीं कहा है कि राष्ट्रपति के लिये यह अनिवार्य होगा कि बहुमत प्राप्त दल के नेता को बुलाकर मंत्रिमंडल बनाने को कहे और न हमने यही कहा है कि मंत्रिपरिषद की राय मानना राष्ट्रपति के लिये आवश्यक होगा। वह अनुसूची जिसमें अनुदेशों का उल्लेख करना था वह भी अब हटा दी गई है। डॉ. अम्बेडकर ने हमें अभी यह समझाया है कि अन्य देशों में इस सम्बन्ध में रूढ़ियों के आधार पर काम होता है। अब यहां अनुसूची 4 पर विचार किया जा रहा था तो मैंने यह उम्मीद की थी कि इन बातों के लिए संविधान में कुछ न कुछ उपबन्ध जरूर रखे जायेंगे। दरअसल खुद डॉ. अम्बेडकर ने एक बार मुझसे यह कहा था कि हमें इन सब विस्तार की बातों के लिए संविधान में उपबंध जरूर रखना चाहिये क्योंकि लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था की दिशा में हम एक बहुत बड़ा प्रयोग शुरू करने जा रहे हैं। जब हम संविधान में छोटी-छोटी विस्तार की बातों के लिए उपबन्ध रख रहे हैं तो मैं यह महसूस करता हूं कि इन बुनियादी बातों को कि राष्ट्रपति के लिये यह लाजिमी होगा कि बहुमत प्राप्त दल के नेता को बुलाकर मंत्रिमण्डल बनाने को कहे तथा यह कि मंत्रिपरिषद की राय मानना उसके लिये जरूरी होगा, हमें संविधान में किसी न किसी रूप में अवश्य रख देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि इस पर काफी बहस हो चुकी है। श्री कृष्णमाचारी। आप कुछ कहना चाहते हैं क्या?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं श्रीमान। डॉ. अम्बेडकर सारी बातों का जवाब दे चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** बहस के सम्बन्ध में आपकी अपनी प्रतिक्रिया क्या है? यह सवाल शुरू में उठाया था आपने ही।

***अध्यक्ष:** इसमें मेरी प्रतिक्रिया से कोई वास्ता नहीं है। इसका निश्चय करना है सभा को।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** इस प्रश्न पर फिर से विचार करने की अनुमति मिलनी चाहिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** यह संशोधन तो बिल्कुल आनुषंगिक है।

***अध्यक्षः** इस संशोधन पर मुझे मत लेना चाहिये। बस, यही मेरी प्रतिक्रिया है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (5-क) को हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमान: "कि अनुच्छेद 67 का खण्ड (6) हटा दिया जाये।"

यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण खण्ड है, सुतरां माननीय मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने जिस सजगता के साथ मेरे संशोधन को निराकृत करने के लिये अपना संशोधन भेजा है उसे मैं समझ रहा हूं। किन्तु मैं सभा को यह अविलम्ब बता देना चाहता हूं कि इस महत्वपूर्ण खण्ड को, जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर लोक सभा के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है, हम यों ही बिना सोचे समझे हटाने का संशोधन नहीं रख रहे हैं। इस सम्बन्ध में सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करूंगा 289-ख की ओर जिसमें यह कहा गया है:-

"The elections to the House of the People and to the Legislative Assembly of every State shall be on the basis of adult franchise; that is to say, every citizen, who is not less than twenty-one years of age on such date as may be fixed in this behalf by or under any law made by the appropriate Legislature and is not otherwise disqualified under this Constitution or any law made by the appropriate Legislature on the ground of non-residence, unsoundness of mind, crime or corrupt or illegal practice, shall be entitled, to be registered as a voter at any such election."

[326—लोक सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधान सभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे अपितु प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है तथा जो ऐसी तारीख पर, जैसी कि समुचित विधान मण्डल द्वारा नियमित किसी विधि के द्वारा या अधीन इसलिये नियत की गई हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम नहीं है, तथा इस संविधान अथवा समुचित विधान मण्डल द्वारा

निर्मित किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त-विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अनर्ह नहीं कर दिया जाता है, ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में पंजीबद्ध होने का हकदार होगा।]

अनुच्छेद 67 के खण्ड (6) का समूचा सार भाग अनुच्छेद 289-ख में आ गया है और मसौदा समिति ने मतदाताओं की अनर्हता को रखने के लिये इसी स्थल को उपयुक्त समझा है। इसलिये अब अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) को रखने की कोई जरूरत नहीं रह गई है। यही कारण है जो मैंने यह संशोधन रखा है।

(प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने अपना संशोधन नहीं पेश किया)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 67 का खण्ड (3) हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि 67 के खण्ड (7) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये।

'The representation in the House of the People of the territories comprised within the territory of India but not included within any State shall be such as Parliament may by law provide.' "

[भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट किन्तु किसी राज्य के अन्तर्गत न होने वाले राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व लोक सभा में वैसा होगा जैसा कि संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे।]

मूल खण्ड (7) का पाठ यह था:

"Parliament may, by law, provide for the representation in the House of the People of territories other than States."

[संसद, विधि द्वारा राज्यों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के, लोक सभा में प्रतिनिधित्व का उपबन्ध कर सकेगी।]

सभा को स्मरण होगा कि अभी कल हमने नया अनुच्छेद 67-क पास किया है जो कमोवेश अधिकार देने वाला अनुच्छेद है। इससे खण्ड (7) जैसे खण्ड को रखने की आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती है। सोचा यह है कि इस खण्ड को विशद् बनाकर इस रूप में रखने की जरूरत है जैसाकि संशोधन में सुझाया गया है।

***अध्यक्षः** इस पर कोई संशोधन नहीं है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (7) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:–

'(7) The representation in the House of the People of the territories comprised within the territory of India but not included within any State shall be such as Parliament may by law provide.' "

[भारत राज्य क्षेत्र में समाविष्ट किन्तु किसी राज्य के अन्तर्गत न होने वाले राज्य-क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व लोक सभा में वैसा होगा जैसा कि संसद विधि द्वारा उपबन्धित करे।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं:

"कि अनुच्छेद 109 के परन्तुक के स्थान पर यह परन्तुक रखा जाये:–

'Provided that the said jurisdiction shall not extend to—

(i) a dispute to which a State for the time being specified in Part III of the First Schedule is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, covenant, engagement, *sanad* or other similar instrument which was entered into or executed before the date of commencement of this Constitution and has, or has been, continued in operation after that date;

(ii) a dispute to which any State is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, covenant. engagement, *sanad*, or other similar instrument, which provides that the said jurisdiction shall not extend to such dispute.' "

[परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद पर न होगा जिसमें:–

(1) प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचनबन्ध, सनद या अन्य तत्सम लिखित के, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई या निष्पादित थी तथा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रवर्तन में है या रख ली गई है, किसी उपबन्ध से पैदा हुआ है।

(2) कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा वचनबंध, सनद या अन्य तत्सम लिखित के, जो उपबन्ध करती है कि वैसा क्षेत्राधिकार ऐसे विवाद पर विस्तृत न होगा, किसी उपबन्ध से पैदा हुआ है।]

इस सम्बन्ध में सदस्यों से मैं इस बात का अनुरोध करूंगा कि, इस अनुच्छेद के पास किये जाने के पहले, संविधान के प्रारूप में यह अनुच्छेद जिस रूप में रखा गया था उसकी ओर वह दृष्टिपात करें। वह यह देखेंगे कि प्रारूप में ये परन्तुक ठीक इसी रूप में रखे गये हैं। किन्तु प्रारूप के अनुच्छेद 109 को जब हमने यहां पेश किया था उस समय महसूस यह किया था कि जिस परिस्थिति में हम हैं उसमें शायद हम सभा से यह अनुरोध नहीं कर सकते हैं कि इस परन्तुक (1) के आशय के किसी परन्तुक को वह स्वीकार करे। इसलिये सभा द्वारा उस समय स्वीकृत किये अनुच्छेद 109 में ऐसा परन्तुक नहीं है जिससे भाग 3 वाले राज्यों की बात आ जाती हो और उसमें केवल परन्तुक (2) को उस समय सभा ने रखा था। किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है और हम यह आवश्यक समझ रहे हैं कि मूल मसौदे के परन्तुक (1) के आशय का एक परन्तुक हमें इस अनुच्छेद में रखना चाहिये और इसीलिये यह संशोधन मैंने रखा है। आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 109 के परन्तुक के स्थान पर यह परन्तुक रखा जाये:

'Provided that the said jurisdiction shall not extend to—

(i) a dispute to which a State for the time being specified in Part III of the First Schedule is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, covenant, engagement, *sanad* or other similar instrument which was entered into or executed before the date of commencement of this Constitution and has, or has been, continued in operation after that date;

(ii) a dispute to which any State is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, covenant, engagement, *sanad,* or ohher similar instrument which provides that the said jurisdiction shall not extend to such dispute.' "

[परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद पर न होगा जिसमें:—

(1) अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचनबंध, सनद या अन्य तत्सम लिखित के, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई या

[अध्यक्ष]

निष्पादित थी तथा ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रवर्तन में है या रख ली गई है, किसी उपबन्ध से पैदा हुआ है।

(2) कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद, किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचनबंध, सनद या अन्य तत्सम लिखित के, जो उपबंध करती है कि वैसा क्षेत्राधिकार ऐसे विवाद पर विस्तृत न होगा, उपबन्ध से पैदा हुआ है।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं आपसे यह अनुरोध करना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद पर विचार अभी कल तक स्थगित रखा जाये। कई सदस्यों ने ऐसा आवेदन किया है कि इस अनुच्छेद की वह कुछ और छानबीन करना चाहते हैं। यदि इतना समय देने में असुविधा होती हो तो कृपा कर कल तक के लिये इसे अवश्य रोक लीजिये।

***अध्यक्ष:** तो इस पर विचार अभी रुका रहता है। अब हम लेंगे संशोधन नं. 365 को जो अनुच्छेद 119 पर आया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन नं. 365 को उपस्थित करते हुए मैं आपसे इस बात की अनुमति चाहता हूं कि इसमें अपने संशोधन नं. 388 को भी शामिल कर लूं जिसको मैंने आज भेजा है। मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:–

"कि अनुच्छेद 119 के संख्याक्रम को बदल कर अनुच्छेद 119 के खण्ड (1) के रूप में रखा जाये और उसके साथ यह खण्ड और जोड़ दिया जाये:

'(2) The President may notwithstanding anything contained in clause (i) of the proviso to article 109 of this Constitution, refer a dispute of the kind mentioned in the said clause to the Supreme Court for opinion and the Supreme Court may, after such hearing as it thinks fit, report to the President its opinion thereon.' "

[(2) राष्ट्रपति, इस संविधान के अनुच्छेद 109 के परन्तुक के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुये भी, उक्त खण्ड में वर्णित प्रकार के विवाद को उच्चतम न्यायालय को राय देने के लिये सौंप सकेगा तथा उच्चतम न्यायालय, ऐसी कार्रवाई के पश्चात् जैसी कि वह उचित समझे, राष्ट्रपति को उस पर अपनी राय प्रतिवेदित करेगा।]

यह खण्ड भी संविधान के प्रारूप में जो अनुच्छेद 119 रखा गया है उसका ही अंश है। मूल अनुच्छेद 119 की सारी बातें प्रायः यहां शब्दशः रखी गई हैं सिवाय इसके कि उसके अन्तिम तीन पंक्तियों में जरा सा अदल बदल कहीं कहीं कर दिया गया है। अनुछेद 119 को जिस रूप में सभा ने पास किया है उसमें यह खंड नहीं रखा गया है पर अब हम ऐसा महसूस कर रहे हैं कि यह खण्ड अब फिर इस अनुच्छेद में आ जाना चाहिये। इसको किस अभिप्राय से रखा जा रहा है यह बात स्वतः स्पष्ट है। इसके द्वारा अधिकार दिया जा रहा है राष्ट्रपति को इस बात का कि वह ऐसे मामले को, जैसाकि संशोधन में वर्णित है, उच्चतम न्यायालय को उसकी राय के लिये सौंप सकता है और उच्चतम न्यायालय उस पर अपनी राय राष्ट्रपति को प्रतिवेदित कर सकता है। वर्तमान अनुच्छेद 119 में और इस प्रस्तावित अनुच्छेद 119 में बड़ा महत्वपूर्ण अन्तर आ जाता है इस उपबन्ध से। इस अनुच्छेद को पहले जब पास किया गया था तब से बहुत सी और बातें जोड़ दी गई हैं जिससे संविधान का दायरा बहुत विस्तृत हो गया है। इस दायरे के विस्तृत होने से जो परिस्थिति अब पैदा हो गई है उसमें इस उपबन्ध का रखना जरूरी हो गया है।

*अध्यक्षः प्रश्न यह हैः

"कि अनुच्छेद 119 के संख्या क्रम को बदल कर अनुच्छेद 119 के खण्ड (1) के रूप में रखा जाये और उसके साथ यह खण्ड और जोड़ दिया जायेः

'(2) The President may, notwithstanding anything contained in clause (1) of the proviso to article 109 of this this Constitution, refer a dispute of the kind mentioned in the said clause to the Supreme Court for opinion and the Supreme Court may, after such hearing as it thinks fit, report to the President its opinion thereon.' "

[(2) राष्ट्रपति, इस संविधान के अनुच्छेद 109 के परन्तुक के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, उक्त खण्ड में वर्णित प्रकार के विवाद को उच्चतम न्यायालय को राय देने को सौंप सकेगा, तथा उच्चतम न्यायालय, ऐसी कार्रवाई के पश्चात् जैसी कि वह उचित समझे, राष्ट्रपति को उस पर अपनी राय प्रतिवेदित करेगा।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं—

"कि अनुच्छेद 135 के खण्ड (3) में 'shall have an official residence' (पदावास रहेगा) शब्दों की जगह 'shall be entitled without payment of rent to

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

the use of his official residence' (बिना किराया दिये अपने पदावासों के उपयोग का हक होगा) शब्द रखे जायें।"

यह अनुच्छेद राज्यपाल के सम्बन्ध में है। राष्ट्रपति से सम्बन्ध रखने वाले अनुच्छेद 49 में इस सम्बन्ध में जो संशोधन रखा गया था उसे सभा ने स्वीकार किया है।

श्री एच.वी. कामतः मेरी तुच्छ राय में तो यहां एक विषमता रह गई है। केन्द्र के सम्बन्ध में तो हमने राष्ट्रपति और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को—दोनों को—ही बिना किराये का आवास गृह का उपबंध किया है। फिर यहां भी क्यों न राज्यपाल और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों—दोनों के लिये बिना किराये के आवासगृह का उपबन्ध करें? कवल राज्यपाल के लिये क्यों ऐसा किया जाये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** किसी भी प्रस्ताव को निरर्थक बनाने के लिये तर्क का इस प्रकार उपयोग नहीं किया जाता है।

***अध्यक्षः** यह सवाल यहां नहीं उठता है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 135 के खण्ड (3) में 'shall have an official residence' (पदावास रहेगा) शब्दों की जगह 'shall be entitled without payment of rent to the use of his official residences' (बिना किराया दिये अपने पदावासों के उपयोग का हक होगा) शब्द रखे जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं—

"कि अनुच्छेद 135 के खण्ड (3) में 'Legislature of the State' (राज्य के विधान मण्डल) शब्दों की जगह 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

अब राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। इसलिये यह महसूस किया आ रहा है कि यह ठीक नहीं होगा कि राज्यपाल के उपलब्धियों के विनिश्चयन का प्रश्न राज्य के विधान मण्डल को सौंपा जाये। शुरू में ऐसा किया गया था इसलिये कि हमने सोचा यह था कि राज्यपाल का निर्वाचन किया जाये। यह संशोधन और पहले ही आ जाना चाहिये था पर हमने यह देखा कि अब यह अन्तिम मौके पर ही रखा जा सकता है। इसीलिये अब मैं यह संशोधन रख रहा हूं ताकि राज्यपाल की उपलब्धियों का विनिश्चयन संसद विधि द्वारा करे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मुझे खुशी है कि यह परिवर्तन यहां किया जा रहा है। केवल यह जानना चाहता हूं कि राज्यपाल का वेतन कहां से दिया जायेगा, केन्द्रीय कोष से या प्रान्तीय कोष से?

***अध्यक्ष:** यह प्रान्तीय राजस्व पर प्रभारित होगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 135 के खण्ड (3) में 'Legislature of the State' (राज्य का विधानमण्डल) शब्दों की जगह 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 144 का खण्ड (4) निकाल दिया जाये।"

यह खण्ड (4) उसी तरह का है जैसा कि अनुच्छेद 62 (5-क) जिसे हम हटा चुके हैं। इसे हटाने का कारण यह है कि सभा यह फैसला कर चुकी है कि संविधान में अनुसूची 4 नहीं रहनी चाहिये और यह खण्ड इस बात पर ही आधृत है कि अनुसूची 4 संविधान में रहे। सुतरां अब इसको रखने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 144 का खण्ड (4) हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 149 का खण्ड (2) हटा दिया जाये।"

अनुच्छेद 149 का खण्ड (2) प्राय: वैसा ही है जैसा कि पूर्ववर्ती अनुच्छेद जिसे सभा लोक सभा के बारे में पास कर चुकी है। इस खण्ड में वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन का उपबंध किया गया है और अब हम इसे दूसरे स्थल पर रख रहे हैं। संसद तथा राज्यों के विधान-मण्डलों के चुनाव के सम्बन्ध में सारी व्यवस्था अनुच्छेद 289-ख में रख दी गई है। इसलिये अब इस खण्ड की जरुरत नहीं रह गई है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं अपना टाइप किया हुआ संशोधन नहीं उपस्थित कर रहा हूं। यह संशोधन यों है:-

"कि संशोधन सूची 4 (द्वितीय सप्ताह) का संशोधन नं. 369 हटा दिया जाये।"

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** कुछ सदस्य, जिनमें मैं भी हूं, यह समझने में असमर्थ हैं कि आखिर क्यों यहां लोग अपने विचार बदल दिया करते हैं। जब अनुच्छेद 149 (2) यहां मौजूद था तो हमें अनुच्छेद 289-ख को नहीं पास करना चाहिये था। इनमें से एक अनुच्छेद को हटाने का ही संशोधन हमें तुरन्त पास कर लेना

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

था। जहां तक वर्तमान संशोधनों का सम्बन्ध है, यह आज ही सदस्यों के पास भेजे गये हैं। सदस्यों को इन पर विचार करने का अभी मौका भी नहीं मिल पाया है। इस तरह से जल्दबाजी में संशोधनों को रखने का परिणाम यह हो सकता है कि जगह-जगह असंगतियां आ जायेंगी जिनको हमें पुनः ठीक करना होगा। इन संशोधनों को समझना मुश्किल है और जिस तरह असंगति और द्वित्व के आधार पर अपने पूर्व स्वीकृत बातों के बारे में हम संशोधन कर रहे हैं उससे यह आशंका होती है कहीं इनको बिना विचारे ही न हम पास कर बैठें।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल है कि यह सभी अनुच्छेद पहले अलग एक दूसरे भाग में रखे गये थे जो निर्वाचन के बारे में था। पर अब आवश्यक यह समझा गया है कि निर्वाचन से सम्बन्ध रखने वाले इन सभी अनुच्छेदों को उठाकर इस स्थल पर रख दिया जाये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जब संशोधनों को पास किया गया था उस समय यह बात क्यों नहीं सोची गई?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष ने जो समझाया वह बिल्कुल ठीक है। पर असल में इन सभी बातों को हम एक अध्याय में रखना चाहते थे और जिस समय यह अध्याय रखा गया और पास किया गया था उस समय हमने इस अनुच्छेद को उठाने का संशोधन इसलिये नहीं पेश किया था कि सोचा यह गया कि द्वितीय पठन के समय जब इन पर बहस खत्म होगी उस समय ऐसा कर दिया जायेगा। हमने यह अनुभव किया कि और भी तरह-तरह की बातें यहां उठायी जायेंगी और इन सबके लिये एक संशोधन अन्त में रख दिया जायेगा। यही कारण है जो जब यह संशोधन आपके सामने रखा गया है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 149 का खण्ड (2) हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (4) में 'Legislature of the State' (राज्य का विधान-मण्डल) शब्दों की जगह 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

इस संशोधन को रखने का कारण यह है कि इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के अधीन जो शक्ति राज्य के विधान मण्डल को प्राप्त है वह अब अनुच्छेद 289-ख के द्वारा संसद को दे दी गई है। मुझे विश्वास है कि माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद हमें इस बात के लिये दोषी न बतायेंगे कि उस समय हमने इन शब्दों की जगह 'संसद' शब्द रखने का संशोधन रख कर क्यों नहीं इस खण्ड को हटाने

का प्रस्ताव किया। हमने ऐसा नहीं किया क्योंकि हमने यह अनुभव किया कि बाद में चल कर हम यह सब ठीक तरह से कर सकेंगे और इसीलिये तब इसे छोड़ दिया था। यह बात नहीं है कि हम यह नहीं जानते थे कि हम जो कर रहे हैं वह अनुच्छेद 149 के खण्ड (4) के प्रतिकूल है।

***श्री एच.वी. कामतः** मसौदा समिति ने इसमें एक छोटी सी शाब्दिक भूल कर दी है। होना यह चाहिये कि "Legislature of a State" शब्दों की जगह "Parliament" शब्द रखा जाये। अगर यह संशोधन इसी रूप में स्वीकृत होता है तो खण्ड का रूप यह होगाः–

"With effect from such date as the Parliament may by law determine."

यहां 'Parliament' के आगे 'the' का प्रयोग गलत है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** माननीय मित्र का मैं बहुत ही अनुगृहीत हूं कि इन्होंने इस त्रुटि की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। संशोधन को इस रूप में पढ़िये कि 'Legislature of a State' की जगह 'Parliament' शब्द रखा जाये।

माननीय मित्र का इसके लिये मैं अतिशय ही कृतज्ञ हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्यों न मान लीजिए कि आपके संशोधन पर मैंने यह संशोधन रखा है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण संशोधन है। इसमें कहा यह गया हैः

" 'Upon the completion of each census, the representation of the several territorial constituencies in the Legislative Assembly of each State shall subject to the provisions of article 289 of this Constitution, be, readjusted by such authority, in such manner and with effect from such date as the Legislature of the State may by law determine...'

(प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर, प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में विविध प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधान, इस संविधान के अनुच्छेद 289 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए ऐसे प्राधिकारी द्वारा, ऐसी रीति से और ऐसी तिथि से प्रभावी होने के लिये पुनर्व्यवस्थापित किया जायेगा जैसा कि उस राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा निश्चय करे।)"

इसको रखने का अभिप्राय यह था कि नई जनगणना की समाप्ति पर और निर्वाचन क्षेत्रों के बन जाने पर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था राज्य का विधान मण्डल करेगा। अब यह अधिकार संसद को दे दिया जा रहा है। संसद को यह अधिकार दिया जा रहा है। इसको तो मैं बहुत पसन्द करता हूं क्योंकि संसद की व्यवस्था

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

में एकरूपता रहेगी। पर मैं जानना यह चाहता हूं कि यह काम सम्पादित किस तरह किया जायेगा। हो सकता है कि प्रान्तों की आबादी और बढ़ जाये। अतः प्रश्न यह है कि निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन कैसे किया जायेगा। अवश्य ही प्रान्त यह तो चाहेंगे ही कि इस सम्बन्ध में कोई भी व्यवस्था की जाये इसके पहले उनको अपनी बात कहने का मौका दिया जाये और उसकी सुनवाई हो इसलिये कुछ न कुछ व्यवस्था इस बात के लिये होनी चाहिये कि संसद को इस बारे में कोई निर्णय करने से पहले, यह मालूम हो जाये कि सम्बन्धित राज्य के विधान-मण्डल की राय क्या है। आप मेरे ही प्रान्त को लीजिये। वहां की आबादी 6 करोड़ है और जगहें रखी गई हैं 500। अब मान लीजिये कि वहां की आबादी बढ़ जाती है। उस हालत में वहां निर्वाचन क्षेत्रों में पुनः परिवर्तन करना होगा। या ऐसे किसी प्रान्त को लीजिये जहां आबादी अभी कम है पर आगे चल कर बढ़ जाती है। ऐसे प्रान्त क्या अपने निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या में आबादी के हिसाब से वृद्धि कर सकेंगे? हमें इस बात का उपबन्ध करना ही होगा कि संसद कोई निर्णय करे इसके पहले राज्य के विधान-मण्डल को इस बारे में अपनी बात कहने का मौका जरूर दिया जायेगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के कथन के उत्तर में मैं केवल एक शब्द कहना चाहता हूं। पूर्वगामी एक संशोधन पर मैंने जो बात कही थी उसके जवाब में आप यह फरमाते हैं कि मैं हमेशा उनकी गलती ढूंढा करता हूं। वस्तुतः मैं उनका छिद्रान्वेषण नहीं कर रहा था बल्कि अपनी कठिनाई समझा रहा था। मेरी तरह सभा के अन्य कई सदस्यों को भी यही कठिनाई है। वस्तुतः श्री कृष्णमाचारी ही सदस्यों की गलती ढूंढा करते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अगर माननीय मित्र को मेरे कारण कुछ भी असुविधा हुई है तो इसके लिए मैं अवश्य उनसे क्षमा चाहूंगा। जहां तक कि माननीय प्रो. शिब्बललाल सक्सेना की बात का सम्बन्ध है मैं उनसे यह कहूंगा कि वह अनुच्छेद 290 को फिर पढ़ें। जहां तक इस बात का सम्बन्ध है कि राज्य के विधान-मण्डलों की राय संसद को मालूम होनी चाहिये, इरादा यही किया गया था कि इसके लिये एक न एक व्यवस्था रखी जायेगी। किन्तु अभी इस समय, अनुच्छेद 290 तथा अनुच्छेद 149 के खण्ड (4) में जो कुछ कहा गया है, उससे अधिक हम कुछ नहीं कह सकते हैं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (4) में 'the Legislature of a State' शब्दों की जगह 'Parliament' शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं आपसे यह अनुरोध करना चाहता हूं श्रीमान कि संशोधन नं. 371 को अभी रोके रखिये क्योंकि यह भी संशोधन नं. 364 के समान

है जिसके सम्बन्ध में मेरा अनुरोध स्वीकार करके आपने कल तक स्थगित रखने की कृपा की है। अब मैं यह संशोधन रखता हूं:

"कि अनुच्छेद 230 में, अन्त में यह शब्द जोड़ दिये जायें:—

'or any decision made at any international conference, association or other body.'

[या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संस्था या अन्य निकाय द्वारा किये गये किसी विनिश्चयन के]"

मेरा ख्याल है कि माननीय मित्र श्री कामत इस संशोधन को अवश्य पसन्द करेंगे खास करके इस बात को देखते हुए कि अनुसूची 7 की सूची 1 की एतत्सम्बन्धी प्रविष्टियों के उपबंध को और विस्तृत करने पर आपका प्रबल आग्रह था। इस संशोधन के स्वीकृत होने पर इस अनुच्छेद का रूप यह होगा:–

" 'Notwithstanding anything in the foregoing provisions of this Chapter, Parliament has power to make any law for any State or part thereof for implementing any treaty, agreement or convention with any other country or countries or any decision made at any international conference, association or other body.'

[इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई किसी संधि, करार या अभिसमय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संस्था या अन्य निकाय में किये गये किसी विनिश्चय के परिपालन के लिये किसी राज्य या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति है।]"

मेरा ख्याल है कि इस संशोधन से अनुच्छेद सर्वथा पूर्ण हो जायेगा और उन सभी आवश्यकताओं की इससे पूर्ति हो जायेगी जिनके लिये संसद को, ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को या अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के निर्णयों को जिनमें कि भारत भी एक पक्ष होगा कानून बनाने की जरूरत पड़ सकती है।

***श्री एच.वी. कामत:** माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी के कथन से मैं सर्वथा सन्तुष्ट हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 230 में अन्त में यह जोड़ दिया जाये:–

'or any decision made at any international conference, association or other body' (या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संस्था या अन्य निकाय द्वारा किये गये किसी विनिश्चय के)"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन नं. 373 के बारे में मैं आपसे इसे कल तक रोकने की अनुमति चाहूंगा, श्रीमान।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह तो मैं समझ सकता हूं कि कुछ समय बाद कोई किसी संशोधन के बारे में अपना विचार बदल दे, किन्तु यह संशोधन तो अभी कल ही सभा के सामने रखा गया है और इतनी जल्दी माननीय मित्र ने इस बारे में अपना विचार बदल दिया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** तो मैं इसे अभी उपस्थित किये देता हूं श्रीमान।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान। यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण खण्ड माना गया है और आज सवेरे ही हम लोगों को यह मिला है। इस सभा में योगदान देने के अलावा भी तो और भी कई बातें हमें देखनी पड़ती हैं। इन संशोधनों पर विचार करने के लिये हमें कुछ समय चाहिये। हम अभी एकाएक इस पर कोई विचार तो दे सकते हैं।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है, संशोधन कल तक रुका रहेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:–

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ग) हटा दिया जाये।"

अनुच्छेद 303 को पेश करने से पहले मैं अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) (ख) में, जो रोक रखा गया है, एक बात पेश करने की अनुमति चाहता हूं। अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के मद (ख) और (ग) उस दिन रोक रखे गये थे और मेरा संशोधन नं. 375 के मद (ग) को हटाने की अनुमति चाहता है। मद (ख) को हमें पेश करना ही होगा और अगर आपकी अनुमति हो तो मैं इसे पेश करूं। इस पर कोई संशोधन नहीं आया है। यह ऐंग्लो इंडियनों को परिभाषा के बारे में में है। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:—

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का मद (ख) उस रूप में रखा जाये जिसमें कि प्रारम्भ में संविधान के प्रारूप में इसे रखा गया था।"

***श्री एच.वी. कामत:** उन लोगों के बारे में क्या होगा श्रीमान जिनके जनक पिता पक्ष में आस्ट्रेलियन या अमेरिकन वंश के हैं? 'ऐंग्लो' का मतलब है केवल इंग्लैंड से न कि यूरोप से। इसका मसौदा कुछ ठीक नहीं बन पाया है। उनका क्या होगा जो अमेरिकन, आस्ट्रेलियन या कैनाडियन वंश के होंगे। मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस कठिनाई का हम कैसे हल करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह परिभाषा दी गई है भारत शासन अधिनियम में। हमने तो उसे वहां से ही लिया है।

***श्री एच.वी. कामत:** भारत शासन अधिनियम में अगर कोई गलती है तो क्या हम उसे ठीक नहीं कर सकते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** "यूरोपीय वंश का" शब्दों के अन्दर अमेरिकन और आस्ट्रेलियन वंश के लोग भी आ जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** आप इस मसौदे से सन्तुष्ट हैं क्या श्रीमान। मुझे तो आश्चर्य है।

***अध्यक्ष:** व्यक्तिगत रूप से मेरे सामने कोई प्रश्न न रखिये। जो भी सभा स्वीकार करती है उससे मैं सन्तुष्ट हूं। अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का मद (ख) 16 सितम्बर को स्थगित रखा गया था और.....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इसका स्मरण तो हमें तब हुआ जब माननीय सदस्य ने अपना फिर से बनाया मसौदा पढ़कर सुनाया है। कार्यक्रम में यह नहीं दिया गया है। इससे यही जाहिर होता है कि कितनी लापरवाही यहां की जाती है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 303 कार्यक्रम में है और इसमें किसी बात को सुधारने या हटाने का कोई संशोधन नहीं आ रहा है। ऐसी हालत में मैं नहीं समझता कि इसको और रोके रखने में कोई लाभ है। संशोधनों की जो दूसरी छपी हुई सूची है उसको मैंने देख लिया है। उसमें कोई भी संशोधन इस पर नहीं है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ख), जिस रूप में कि संविधान के प्रारूप में वह शुरू में रखा गया है, स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ग) हटा दिया जाये।"

यह भारतीय इसाइयों के बारे में है और अपने संविधान में 'भारतीय इसाई' कह कर कोई उल्लेख नहीं आया है क्योंकि शुरू में जो अधिकार उनको दिये गये थे उनका अब प्रस्तावित संशोधनों द्वारा निरसन कर दिया गया है। इसलिये अब इस परिभाषा को रखने की कोई जरूरत नहीं रह गई है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** संशोधन क्या है श्रीमान?

***अध्यक्ष:** संशोधन यह है कि 'इसाई' शब्द की जो परिभाषा अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) में रखी गई है वह हटा दी जाये क्योंकि 'इसाई' शब्द संविधान में अब कहीं नहीं आता है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ग) हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन रखता हूं कि:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (3) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये।

'(iii) 'Indian State' means any territory which the Government of the Dominion of India recognised as such a State.'

[(3) 'देशी राज्य' से अभिप्रेत है कोई ऐसा राज्यक्षेत्र जिसे भारत डोमिनियन की सरकार ऐसा राज्य अभिज्ञात करती थी।]"

यहां निर्देश हैं संविधान के प्रारूप के पृष्ठ 157 के प्रति तथा उस पर आये उपखण्ड के प्रति जिसे हम पास कर चुके हैं। जिस रूप में हमने इस उपखण्ड (3) को पास किया है यह दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। एक में तो देशी राज्य की परिभाषा दी गई है संविधान के प्रारम्भ के पूर्व की अवधि के बारे में और दूसरे में, संविधान के प्रारम्भ के बाद की अवधि के बारे में। किन्तु अब इन दो अवधियों के लिये अलग-अलग परिभाषा देने की जरूरत नहीं रह गई है। इसलिये अब यह परिभाषा दी जा रही है।

***श्री एच.वी. कामत:** "भारत डोमिनियन की सरकार" रखना क्या जरूरी है श्रीमान? 'भारत सरकार' कहना क्या पर्याप्त न होगा?

***अध्यक्ष:** इससे एक भ्रान्ति होती है। भारत सरकार से अभिप्रेत है वह भारत सरकार जो नये संविधान के अधीन काम करेगी और भारत डोमिनियन की सरकार से अभिप्रेत है वह सरकार जो संविधान के प्रारम्भ के पूर्व यहां अधिकारारूढ़ रही है। इस भ्रान्ति को बचाने के लिये ही यह संशोधन रखा जा रहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मुझे ऐसा मालूम होता है श्रीमान कि यहां 'डोमिनियन शब्द का प्रयोग भविष्य के सम्बन्ध में किया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मेरा ख्याल यह है कि यहां अन्त में 'such a State' शब्दों की जगह "an Indian State" शब्द रखना ज्यादा अच्छा होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मुझे यह परामर्श मिला है कि अगर श्री सन्तानम् का संशोधन स्वीकार किया जाता है तो अर्थ स्पष्ट नहीं हो पायेगा। तथ्य यह है कि संविधान के प्रवर्तन में आ जाने पर 'देशी राज्य' को परिभाषित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी। संविधान के प्रारम्भ के पूर्व के सम्बन्ध में ही देशी राज्य का उल्लेख आयेगा। इसलिये संविधान के प्रवर्तन में जाने के बाद संविधान से इसका नाता जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि हमने इसकी परिभाषा संक्षिप्त कर दी है। शुरू में सभा ने इसकी परिभाषा के लिये दो अलग-अलग पैरा रखे थे पर अब इसकी परिभाषा एक ही पैरे में दे दी गई है। मुझे यह भी बताया गया है कि 'as such' शब्दों को यहां जिस प्रयोजन के लिये प्रयुक्त किया है वह उसके लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** नये संविधान में भी "Indian States" (देशी राज्य) शब्द आये हैं और परिसम्पत्ति तथा देयता (assets & liabilities) के प्रयोजन के लिए, इनका निर्वचन देना ही होगा। इसलिय हमें यहां यह कहना होगा कि 'देशी राज्यों' से अभिप्रेत है वह राज्य क्षेत्र जो भारत डोमिनियन द्वारा देशी राज्य के नाम से अभिज्ञात था। यह संशोधन शाब्दिक मात्र है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नये संविधान में जहां कहीं भी देशी राज्य के प्रति निर्देश आया है वहां इसे राज्य ही कहा गया है और उसका मतलब है पूर्ववर्ती तत्स्थानी राज्य से या तत्स्थानी प्रान्त से। संविधान के प्रवर्तन में आ जाने के बाद इस सम्बन्ध में जो स्थिति रहेगी उसके निर्वचन के लिये संविधान में कहीं भी 'देशी राज्य' शब्द नहीं रखे गये हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं एक बात जानना चाहता हूं। वह यह कि संविधान में कहां-कहां 'देशी राज्य' शब्द रखे गये हैं? हमें यह मालूम होना चाहिये कि किस प्रसंग में यह शब्द प्रयुक्त हुए हैं। तभी हम इसकी परिभाषा दे सकते हैं।

***अध्यक्ष:** श्री कृष्णमाचारी ने अभी दो स्थानों का उल्लेख किया तो है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यदि माननीय मित्र इसी वक्त यह देखना चाहते हैं कि किस प्रसंग में यह शब्द आये हैं तो मैं उनसे कहूंगा कि वह अनुच्छेद 273-क को देखें जो अभी रुका हुआ है तथा अनुच्छेद 267-क को देखें जो पास हो चुका है। इसके अलावा भी अन्य कई अनुच्छेदों में यह शब्द आये हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'such a State' शब्द जो रखे गये हैं इसमें आर्टिकल 'a' को तो कम से कम अवश्य हटा देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** 'recognised as an Indian State' कहने में कुछ हानि है क्या?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आर्टिकल का हटाना गलत होगा। यदि 'Indian State' शब्दों को आप रखते हैं तो 'an Indian State' कहना ही होगा क्योंकि केवल 'Indian State' कहना शुद्ध नहीं होगा। चाहे 'Indian State' शब्द रखिये या 'State' शब्द रखिये 'an' या 'a' आर्टिकल तो आपको रखना ही होगा। भारत शासन अधिनियम में क्या परिभाषा दी गई है यह मैं पढ़कर सुना दूं श्रीमान?

> "Indian State means any territory not being part of British Indian which his Majesty's Government recognised as being such a State whether described as a State, an estate, jagir or otherwise."
>
> [देशी राज्य से अभिप्रेत है वह राज्य क्षेत्र जो ब्रिटिश भारत का अंग नहीं है और जिसे सम्राट् की सरकार देशी राज्य के नाम से अभिज्ञात करती थी चाहे वह राज्य, इस्टेट, जागीर या अन्य नाम से वर्णित हो]

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि अर्थ के बारे में कोई कठिनाई हो सकती है। यह तो केवल भाषा की बात है कि अंग्रेजी में इसे कैसे व्यक्त करते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इन मामलों में कमोबेश हमने भारत शासन अधिनियम का ही अनुगमन किया है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (3) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये:

'(iii) 'Indian State' means any territory which the Government of the Dominion of India recognised as such a State.'

[(3) 'देशी राज्य' से अभिप्रेत है कोई ऐसा राज्य क्षेत्र जिसे भारत डोमिनियन की सरकार ऐसा राज्य अभिज्ञात करती थी।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:–

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ढ़) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये:

'(nn) 'Rajpramukh' means—

(i) in relation to the State of Hyderabad, the person who for the time being is recognised by the President as the Nizam of Hyderabad;

(ii) in relation to the State of Jammu and Kashmir or the State of Mysore, the person who for the time being is recognised by the President as the Maharaja of that State; and

(iii) in relation to any other State for the time being specified in Part III of the First Schedule, the person who for the time being is recognised by the President as the Rajpramukh of that State,

and includes in relation to any of the said States any person for the time being recognised by the President as competent to exercise the powers of the Rajpramukh in relation to that State;'

["राजप्रमुख" से अभिप्रेत है:—

(1) हैदराबाद राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा हैदराबाद के निजाम के रूप में तत्समय अभिज्ञात है;

(2) जम्मू और कश्मीर राज्य या मैसूर राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के महाराजा के रूप में तत्समय अभिज्ञात है; तथा

(3) प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में उल्लिखित किसी अन्य राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के राजप्रमुख के रूप में तत्समय अभिज्ञात है;

तथा उसमें उक्त राज्यों में से किसी के सम्बन्ध में, वह कोई व्यक्ति भी अन्तर्गत है जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के सम्बन्ध में राजप्रमुख की शक्तियां प्रयोग करने के लिये सक्षम तत्समय अभिज्ञात है;]

मूल परिभाषा, जिसके स्थान पर अब यह रखी जा रही है वह केवल शासक के बारे में थी। इसके बाद एक परिभाषा मैं राज्यपाल के बारे में रखना चाहता हूं जो यों है:—

" '(nnn) 'Ruler' in relation to an Indian State means the Prince, Chief or other person by whom any such covenant or agreement as is referred to in clause (1) of article 267A of this Constitution was entered into and who for the time being is recognised by the President as the Ruler of the State, and includes any person who for the time being is recognised by the President as the successor of such Ruler;'

["शासक" से किसी देशी राज्य के सम्बन्ध में अभिप्रेत है कोई राजा, प्रमुख या अन्य कोई व्यक्ति जिसने ऐसी कोई प्रसंविदा या करार, जैसा कि इस संविधान के अनुच्छेद 267 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट है, किया था तथा जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य का शासक तत्समय अभिज्ञात है तथा उसके अन्तर्गत ऐसा कोई व्यक्ति भी है जो राष्ट्रपति द्वारा ऐसे शासक का उत्तराधिकारी तत्समय अभिज्ञात है;]"

जैसा कि पहले मैं कह चुका हूं, मूल अनुच्छेद 303 (1) के उपखण्ड (ढ़ढ़) को यहां दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। यहां यह साफ-साफ व्यक्त किया गया है कि राजप्रमुख कौन है और राजप्रमुख का निर्देश करने में हैदराबाद के शासक के लिये 'निजाम' शब्द के प्रयोग की तथा जम्मू और कश्मीर तथा मैसूर के शासकों के लिये महाराजा शब्द के प्रयोग की अनुमति दी गई है। राजप्रमुख और शासक में यहां अन्तर भी कर दिया गया है क्योंकि यहां यह कहा गया है कि शासक एक ऐसा व्यक्ति होगा जो राजप्रमुख नहीं होगा। वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसने भारत सरकार के साथ ऐसी कोई प्रसंविदा या करार, जैसा कि

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अनुच्छेद 267-क में निर्दिष्ट है, किया था चाहे उसे शासन की शक्तियां भले ही न प्राप्त हों। इस अनुच्छेद 267-क को हमने कल ही पास किया है। इसके लिये यह उपबन्धित किया गया है कि वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य का शासक माना जाता हो। यह भी उपबन्धित किया गया है कि राष्ट्रपति उसके उत्तराधिकारी को भी शासक मानेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** दुर्भाग्यवश इस संशोधन में दो त्रुटियां आ गई हैं श्रीमान। पहली त्रुटि यह रह गई है कि इसमें उप-राजप्रमुख और महाराज प्रमुख की परिभाषा नहीं दी गई है। मुझे यह मालूम हुआ है उदयपुर के महाराजा महाराज प्रमुख के नाम से अभिज्ञात हैं। इस संशोधन में इन दोनों की परिभाषा नहीं दी गई है। यह दोनों परिभाषायें यहां अवश्य आ जानी चाहियें और तभी यह अनुच्छेद पूर्ण हो सकता है।

***अध्यक्षः** उप-राजप्रमुख की परिभाषा के लिये एक संशोधन की सूचना आई है। यह संशोधन आगे चल कर आ रहा है। महाराज प्रमुख शब्द तो कभी व्यवहृत ही नहीं हुआ है।

***एक माननीय सदस्यः** उसे तो कोई शक्ति ही नहीं प्राप्त है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** शासक की परिभाषा के बारे में अन्तिम वाक्य में यह कहा गया है कि "तथा उसके अन्तर्गत ऐसा कोई व्यक्ति भी है जो राष्ट्रपति द्वारा ऐसे शासक का उत्तराधिकारी तत्समय अभिज्ञात है।" यदि वह ऐसे शासक का उत्तराधिकारी है तो वह अपने आप ही शासक हो जायेगा। शासक तथा उसका उत्तराधिकारी दोनों ही तो एक साथ शासक नहीं रहेंगे। मेरा ख्याल है कि अनुच्छेद के अन्तिम अंश से भ्रान्ति पैदा होगी। इससे यह अर्थ लगाया जा सकता है कि किसी राज्य के लिए शासक भी होगा और साथ ही उसका उत्तराधिकारी भी शासक माना जायेगा। यह एक असम्भव सी बात है। यदि कोई वास्तविक उत्तराधिकारी है तो वह तो अपने आप आगे चल कर शासक हो जायेगा। पर दोनों साथ ही शासक तो नहीं रह सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** माननीय मित्र जिस तरह से इस पर विचार कर रहे हैं उसमें दिक्कत यह आती है कि अपने आप उत्तराधिकार पाने की व्यवस्था अब नहीं रह गई है। उत्तराधिकारी वही होगा जिसे राष्ट्रपति उत्तराधिकारी माने।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** मेरा मतलब यह है कि ज्यों ही कोई व्यक्ति उत्तराधिकारी स्वीकार किया जायेगा वह शासक बन जायेगा। अन्यथा किसी को उत्तराधिकारी स्वीकार करने का कोई अर्थ नहीं होता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यहां कुछ भ्रान्ति इसलिये हो रही है कि बिना राज्य हुए भी कुछ लोग शासक माने जायेंगे। राजप्रमुख तो केवल राज्यों में ही होंगे पर शासकों का सम्बन्ध होगा जागीरों या जमींदारियों से जो पहले उनके पास रही हैं। हम लोगों का विचार यह है कि जो व्यक्ति जागीर का उत्तराधिकारी होगा वही

राष्ट्रपति द्वारा शासक माना जायेगा। यदि राष्ट्रपति उसे शासक नहीं मानता है तो वह शासक नहीं बन सकता है। किसी को उत्तराधिकार अपने आप नहीं मिल सकेगा। यदि राष्ट्रपति किसी को उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेता है तो उसके बाद जब तक कि वह जगह खाली नहीं होती वह किसी और को उत्तराधिकारी नहीं मान सकता है। किसी को उत्तराधिकारी मानने के पहले उसके लिए खाली जगह होनी चाहिये। अनुच्छेद के शब्दों को लेकर मुझे तो कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं यह जानना चाहता हूं कि राज्यों को प्रान्तों में मिला देने से, जिसका राज्य समाप्त हो गया है वह शासक माना जायेगा या उत्तराधिकारी?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** सारी कठिनाई यह है कि यह व्यवस्था ही कुछ बड़ी जटिल है। वस्तुत: यह चकरा देने वाली व्यवस्था है। मैं यह मानता हूं कि उपखण्ड (ढ़ढ़) में जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार तथा अनुच्छेद 267-क के प्रयोजन के लिये वह व्यक्ति भी शासक ही माना जायेगा जिसका राज्य प्रान्त में मिल गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उसके पुत्र को भी फिर क्यों न शासक बनाया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** ऐसा भी हो सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि अनुमति हो तो मैं यह कहूंगा श्रीमान कि शासक की परिभाषा यहां केवल इस सीमित प्रयोजन के लिये रखी जा रही है कि निजी थैली (प्रिवी पर्स) से उनको रकम दी जा सके। इसको रखने का और कोई मतलब नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मेरा प्रश्न यह है कि इसका यह मतलब तो नहीं होगा कि दो व्यक्तियों को एक साथ निजी थैली से रकम पाने का हक होगा? मैं इस बात को सुनिश्चित कर लेना चाहता हूं कि प्रसंविदा के अधीन एक समय एक ही व्यक्ति निजी थैली से रकम पाने का अधिकारी होगा।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि इस संशोधन के द्वारा यह बात सुनिश्चित हो जाती है क्योंकि केवल वही व्यक्ति इस थैली से रकम पाने का अधिकारी होगा जो राष्ट्रपति द्वारा शासक माना जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसकी व्यवस्था तो उन उपबन्धों के अधीन रहेगी जो राष्ट्रपति द्वारा किसी को शासक माने जाने के बारे में रखे गये हैं। मुझे विश्वास है कि राष्ट्रपति एक ही व्यक्ति को शासक मानेगा न कि दो, तीन या चार व्यक्तियों को शासक मानेगा। यह पद संहिता यहां जानबूझ कर इसी उद्देश्य से रखी गई है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त रहे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उस व्यक्ति को शासक या उत्तराधिकारी के नाम से अभिज्ञात किया जा सकता है:

***अध्यक्षः** श्री सन्तानम्। मैं समझता हूं संशोधन बिल्कुल स्पष्ट है। इस उपबन्ध के पीछे मूल विचार यह है कि शासकों को जो विशेषाधिकार दिये गये हैं वह उनको भी मिलें जो उनके उत्तराधिकारी स्वीकार किये जायेंगे। कहने का मतलब यह है कि अगर किसी व्यक्ति को शासक माना जाता है तो वह विशेषाधिकार जो उसे दिये गये हैं केवल उसी व्यक्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त होंगे जिसे राष्ट्रपति उसका उत्तराधिकारी स्वीकार करेगा।

मैं नहीं समझता कि इस पर और बहस की कोई जरूरत है। अब मैं इस पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ढ़ढ़) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये:

'(nn) 'Rajpramukh' means—

(i) in relation to the State of Hyderabad, the person who for the time being is recognised by the President as the Nizam of Hyderabad;

(ii) in relation to the State of Jammu and Kashmir or the State of Mysore, the person who for the time being is recognised by the President as the Maharaja of that State; and

(iii) in relation to any other State for the time being specified in Part III of the First Schedule, the person who for the time being is recognised by the President as the Rajpramukh of that State;

and includes in relation to any of the said States any person for the time being recognised by the President as competent to exercise the powers of the Rajpramukh in relation to that State;

(nnn) 'Ruler' in relation to an Indian State means the Prince, Chief or other person by whom any such covenant or agreement as is referred to in clause (1) of article 267A of this Constitution was entered into and who for the time being is recognised by the President as the Ruler of the State, and includes any person who for the time being is recognised by the President as the successor of such Ruler;'

[(ढ़ढ़) "राजप्रमुख" से अभिप्रेत है:

(1) हैदराबाद राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा हैदराबाद के निजाम के रूप में तत्समय अभिज्ञात है;

(2) जम्मू और कश्मीर राज्य या मैसूर राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के महाराजा के रूप में तत्समय अभिज्ञात है; तथा

(3) प्रथम अनुसूची के भाग (3) में उल्लिखित किसी अन्य राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के राजप्रमुख के रूप में सत्समय अभिज्ञात है;

तथा उसमें उक्त राज्यों में से किसी के सम्बन्ध में, वह कोई व्यक्ति भी अन्तर्गत है जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के सम्बन्ध में राजप्रमुख की शक्तियां प्रयोग करने के लिये सक्षम तत्समय अभिज्ञात है;

(ढ़ढ़ढ़) "शासक" से किसी देशी राज्य के सम्बन्ध में अभिप्रेत है कोई राजा, प्रमुख या अन्य कोई व्यक्ति जिसने ऐसी कोई प्रसंविदा या करार, जैसा कि अनुच्छेद 267-क के खंड (1) में निर्दिष्ट है, किया था तथा जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य का शासक तत्समय अभिज्ञात है तथा उसके अन्तर्गत ऐसा कोई व्यक्ति भी है जो राष्ट्रपति द्वारा ऐसे शासक का उत्तराधिकारी तत्समय अभिज्ञात है;]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन रखता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (द) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये–

'(r) railway does not include:—

(a) a tramway wholly within a municipal area, or

(b) any other line of communication wholly situate in one State and declared by Parliament by law not to be a railway.'

[(द) रेल में यह शामिल नहीं हैं:

(क) किसी नगरक्षेत्र में ही पूर्णतया स्थित ट्रामवे, अथवा

(ख) संचार की कोई अन्य लीक जो किसी एक राज्य में पूर्णतया स्थित हो और जिसे संसद ने विधि द्वारा रेल न होना घोषित किया हो।]"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

मूल परिभाषा यों रखी गई थी श्रीमान:

" 'A railway does not include a tramway whether wholly within a municipal area or not.'

[रेल में कोई ट्रामवे नहीं शामिल है चाहे वह किसी नगरक्षेत्र में पूर्णतया स्थित हो या नहीं।]"

अब पता यह चला है कई राज्यों में कुछ ऐसी रेलें हैं जो माने हुए अर्थ में रेलें नहीं हैं। वह रेल तथा ट्रामवे की बीच की चीज हैं। अब परिभाषा में ऐसा परिवर्तन कर दिया गया है कि संसद विधि द्वारा यह बता सके कि कौन से संचार के मार्ग रेल नहीं माने जा सकते हैं। यह परिवर्तन करना जरूरी हो गया है क्योंकि मूल परिभाषा जब बनाई थी तबसे कुछ ऐसा हुआ है कि अधिकांश देशी राज्यों ने रेलों को भारत सरकार को सौंप दिया है या करने वाले हैं। इन राज्यों में आज जो स्थिति है उसका हमें ख्याल रखना होगा और उसके लिए उपबन्ध करना होगा यही कारण है जो यह संशोधन सभा के सामने रखा जा रहा है।

श्री आर.के. सिधवा: ट्रामवे को कभी रेल नहीं कहते हैं। नगर क्षेत्र के स्थित ट्रामवे का यहां उल्लेख करना सर्वथा अनावश्यक है। ट्रामवे को ट्रामवे ही कहते हैं। मसौदा समिति के दिमाग में किसने यह बात ला दी है कि ट्रामवे रेलवे है। यहां इसका उल्लेख करना बड़ी बेतुकी बात है। इसलिए मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान कि संशोधन का उपखण्ड (क) अनावश्यक है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मेरा ख्याल है कि माननीय की बात गलत है। उस समय भी जब कि मूल परिभाषा पर यहां बहस की जा रही थी मैंने यह बताया था कि यह कहना गलत है कि रेल में ट्रामवे शामिल नहीं है। रेलवे और ट्रामवे में सिवाय इसके और अन्तर ही क्या है कि ट्राम में एक या दो गाड़ियां रहती हैं पर रेलों में ज्यादा गाड़ियां रहती हैं। इसलिए यह संशोधन जरूरी है। अन्यथा बहुत से स्थानों में लोग अन्य लीकों को भी ट्रामवे मान सकते हैं और इसको लेकर विवाद खड़ा हो सकता है। हम नहीं चाहते हैं कि किसी भी विवाद की कोई गुंजाइश रह जाये। इसलिये यह परिभाषा ठीक परिभाषा है और इसको रखना ही उचित होगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** प्रस्तुत संशोधन के उपखण्ड (ख) को स्वीकार करने में मुझे कुछ कठिनाई है। अभी श्री कृष्णमाचारी ने अपनी अपील में यह कहा है.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** माननीय मित्र से मैं यह कहूंगा कि इस संशोधन के समर्थन में पूर्ववक्ता विशेषज्ञ ने जो तर्क रखा है उसे आप स्वीकार कीजिए और मैंने जो कुछ कहा है उसकी आप उपेक्षा कीजिए।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इससे अब यह स्पष्ट हो गया है कि श्री कृष्णमाचारी केवल सन्देश वाहक मात्र हैं। आखिर इस मसले को समझाने की जिम्मेदारी इन्होंने ले रखी है। इन्होंने यह बताया है कि 'State' शब्द से अभिप्रेत है देशी राज्य न कि प्रान्त अभिप्रेत है। किन्तु नई व्यवस्था में 'State' शब्द के अन्तर्गत प्रान्त भी आ जाते हैं। यहां 'स्टेट' शब्द से शायद उनका मतलब है प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों से। अगर यह बात है तो उसको यहां साफ-साफ बता देना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो होगा यह कि भाग एक वाले किसी प्रान्त में अगर कोई छोटी रेल है तो वह भी रेल नहीं मानी जायेगी। अगर अभिप्राय यह है कि देशी राज्यों की रेलों को इसमें शामिल न किया जाये क्योंकि इन्होंने अब तक शर्तें नहीं मंजूर की हैं तो यहां यह साफ-साफ कह देना चाहिए रेलों में देशी राज्यों की रेलें शामिल न मानी जायेंगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** समूचे संविधान में हमने सर्वत्र 'State' शब्द का ही प्रयोग किया है। जहां कहीं राज्यों में कोई अन्तर व्यक्त करना पड़ा है हमने यह कह कर उनका उल्लेख किया है कि भाग 1 के राज्य या भाग 2 अथवा 3 के राज्य। इसलिए श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के कथन में सार क्या है इसे मैं नहीं समझ पाता हूं।

***अध्यक्षः** 'State' शब्द के प्रयोग के आधार पर अपना तर्क नहीं रखा है और न उन्होंने यह कहा ही है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** बहस के सिलसिले में आपने कई देशी राज्यों का जिक्र किया है। इससे मुझे भ्रम हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:-

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (द) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये:—

'(r) 'railway' does not include:—

(a) a tramway wholly within a municipal area, or

(b) any other line of communication wholly situate in one State and declared by Parliament by law not to be a railway.'

[(द) रेल में यह शामिल नहीं हैं:

[अध्यक्ष]

(क) किसी नगरक्षेत्र में ही पूर्णतया स्थित ट्रामवे, अथवा

(ख) संचार की कोई अन्य लीक जो किसी एक राज्य में पूर्णतया स्थित हो और जिसे संसद ने विधि द्वारा रेल न होना घोषित किया हो।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं आपसे एक संशोधन पेश करने की अनुमति चाहता हूं जिसकी सूचना तो आई है पर वह सदस्यों के पास नहीं भेजा गया है। इसको संख्या-बद्ध नहीं किया गया है और यह है उप-राज्य प्रमुख के बारे में। मैं इसे पेश करता हूं। संशोधन यह है....

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) में यह उपखण्ड जोड़ दिया जाये...

'(y) 'Uprajpramukh' in relation to any State means the person who for the time being is recognised by the President as the 'Uprajpramukh' of that State.'

[(म) 'उपराजप्रमुख' से, किसी राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के उपराजप्रमुख के रूप में तत्समय अभिज्ञात है।]"

मैं कृतज्ञ हूं माननीय मित्र मैसूर के प्रधान मंत्री का जिन्होंने मेरा ध्यान इस त्रुटि की ओर आकृष्ट किया है।

महाराज प्रमुख के सम्बन्ध में जो प्रश्न माननीय मित्र श्री कामत ने उठाया है उसके बारे में मुझे इतना ही कहना है कि संविधान में कहीं भी महाराजप्रमुख का उल्लेख नहीं आया है जोकि एक ऐसा व्यक्ति मौजूद है जिसे महाराजप्रमुख कहा जाता हे। संविधानिक रूप से, ऐसे व्यक्ति के अस्तित्व को हमने स्वीकार नहीं किया है। इस परिभाषा को रखने की आवश्यकता इसलिये पड़ी है कि कल, पद सम्बन्धी अनर्हता को हटाने के बारे में जो संशोधन यहां रखे गये हैं उनमें दो स्थलों पर उपराजप्रमुख का उल्लेख हमें करना पड़ा है। आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

श्री एच.वी. कामत: इस सम्बन्ध में एक छोटी सी कठिनाई है और वह यह है कि संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं के अनुसार–भाषा विज्ञान की दृष्टि से तथा शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से—होना चाहिये उपराजप्रमुख (Uprajpramukh)। अन्यथा अंग्रेज तथा विदेशी पत्रकार इसे 'अपराजप्रमुख' पढ़ेंगे और मैंने उनको ऐसा उच्चारण करते सुना है।

***अध्यक्ष:** अक्षर विन्यास को हम ठीक कर लेंगे। पर मैं नहीं समझता कि ठीक करने पर भी हम अनभिज्ञ आदमियों को अशुद्ध उच्चारण करने से रोक सकेंगे।

***श्री जयनारायण व्यास** (संयुक्त राज्य राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, महाराजप्रमुख की स्थिति से मैं सहमत नहीं हूं। राजाओं की बैठकों का सभापतित्व महाराजप्रमुख ही करता है। अगर हम संविधानिक रूप से उसे महाराज प्रमुख नहीं स्वीकार करेंगे तो वह सारी बैठकें जो उसके सभापतित्व में होंगी अवैध होंगी।

***अध्यक्ष:** क्या राजाओं की ऐसी बैठकें होती हैं जैसी कि नरेन्द्र मंडल की हुआ करती थीं?

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट** (राजस्थान): राजस्थान के कवेनेन्ट में एक आर्टिकल है जिसमें यह लिखा है कि राजाओं की जब कोई मीटिंग होगी जहां महाराणा उदयपुर हाजिर होंगे, तो वह महाराजप्रमुख की हैसियत से उसके सदर होंगे। यह स्पष्ट तौर से लिखा है तो उसमें उनकी कुछ हैसियत तो जरूर आती है। उनके हाथ में दूसरी एडमिनिस्ट्रेटिव पावर नहीं है। लेकिन इतना तो जरूर इसमें है और यह सोचने की बात है। इस पर दोबारा गौर करने की जरूरत है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** भाग 6-क में हमने इस तरह का कोई उपबन्ध नहीं रखा है।

***अध्यक्ष:** क्या अपने संविधान में नरेशों की बैठक के लिये कोई उपबन्ध है?

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट:** जिन राज्यों को मिला कर राजस्थान-संघ बना है उनके नरेशों की बैठक के लिये उपबन्ध किया गया है।

***एक माननीय सदस्य:** प्रसंविदा में इसके लिये एक उपबंध है।

***अध्यक्ष:** पर संविधान में नहीं है।

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट:** राजप्रमुख और उपराजप्रमुख शब्द प्रसंविदा में हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** प्रसंविदायें संविधान का ही अंग हैं। इन प्रसंविदाओं के अधीन ही तो नरेश भारतीय संघ में शामिल हुए हैं। इसलिये हमें इन्हें मानना ही होगा। इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है।

***श्री एच.जे. खाण्डेकर** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मेरा ख्याल है कि अभी इसे हमें स्थगित रखना चाहिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** यहां तो केवल परिभाषा रखने की बात है। जब तक कि संविधान में इसका प्रयोग नहीं होता है हम कैसे कह सकते हैं कि इसकी क्या परिभाषा होगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इस संशोधन को तो हमें स्वीकार करना ही होगा क्योंकि, एक संशोधन को, जिसमें यह शब्द आया है, हम स्वीकार कर चुके हैं। अगर किसी ऐसे शब्द की परिभाषा का सवाल है जो संविधान में आया ही नहीं, तो इसका प्रस्तुत संशोधन से क्या सम्बन्ध है? माननीय मित्र का जो मत है उससे इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं पैदा होती है।

***अध्यक्ष:** तो उपराजप्रमुख की परिभाषा के बारे में कोई आपत्ति नहीं है। महाराजप्रमुख की परिभाषा के सवाल को अभी हम आगे के लिये छोड़ते हैं।

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट:** मैं चाहता हूं कि इस बात का यहां खुलासा हो जाना चाहिये नहीं तो हो सकता है कि यह कहा जाये कि जिस तरह राजप्रमुख और उपराजप्रमुख का स्पष्ट उल्लेख संविधान में दिया गया है उसी तरह महाराजप्रमुख का भी स्पष्ट उल्लेख आना चाहिये था।

***अध्यक्ष:** अपने संविधान में हमने केवल उपराजप्रमुख शब्द का प्रयोग किया है। प्रमुख के पूर्व विशेषण के रूप में किसी शब्द के रखने से कोई कठिनाई नहीं आ सकती है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मुझे मालूम हुआ था कि उदयपुर के महाराजप्रमुख को जो भत्ता दिया जायेगा वह अनुच्छेद 267-क के एक शासक के नाते निजी थैली से दिया जायेगा न कि महाराजप्रमुख होने के नाते। इसलिये उनके लिये संविधान में विशेष उपाधि के उल्लेख की जरूरत नहीं है।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस पर मत लूंगा।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** अगर उपराजप्रमुख कोई महिला हुई तो क्या स्थिति होगी? उसको किस नाम से पुकारा जायेगा।

***अध्यक्ष:** इस तरह तो कई समितियों की महिला चेयरमैन भी हमारे यहां हैं। जहां तक अंग्रेजी भाषा का सम्बन्ध है इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) में यह उपखण्ड जोड़ दिया जाये:—

'(y) 'Uprajpramukh' in relation to any State means the person who for the time being is recognised by the President as the Uprajpramukh of that State.'

[(म) 'उपराजप्रमुख' से, किसी राज्य के सम्बन्ध में वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के उपराजप्रमुख के रूप में तत्समय अभिज्ञात है।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब हम लेते हैं अनुसूची को।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा के राज्य): अध्यक्ष महोदय, मेरा यह सुझाव है श्रीमान, कि प्रथम अनुसूची पर विचार कृपया कल तक के लिये स्थगित रखा जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** हां श्रीमान। इसे स्थगित रखा जा सकता है। यह सूची अभी आज सवेरे ही आठ बजे तो हम लोगों को मिली है।

***अध्यक्षः** अनुसूची उपस्थित तो कर ली जाये पर विचार इस पर किया जाये कल प्रातः।

प्रथम अनुसूची

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान....

"कि प्रथम अनुसूची की जगह यह अनुसूची रखी जाये:–

'FIRST SCHEDULE
(Articles 1 and 4)
The States and the territories of India
PART I.

	Names of States	Names of Corresponding Provinces
1.	Assam	Assam
2.	Bengal	West Bengal
3.	Bihar	Bihar
4.	Bombay	Bombay
5.	Koshal-Vidarbh	Central Provinces and Berar
6.	Madras	Madras
7.	Orissa	Orissa
8.	Punjab	East Punjab
9.	United Provinces	Unitel Provinces

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Territories of States

The territory of the State of Assam shall comprise the territories which immediately before the commencement of this Constitution were comprised in the Province of Assam, the Khasi States and the Assam Tribal Areas.

The territory of the State of Bengal shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the Province of West Bengal."

[प्रथम अनुसूची
(अनुच्छेद 1 और 4)
भारत के राज्य और राज्यक्षेत्र
भाग–1

	राज्यों के नाम	तत्स्थानी प्रान्तों के नाम
1.	आसाम	आसाम
2.	बंगाल	पश्चिमी बंगाल
3.	बिहार	बिहार
4.	बम्बई	बम्बई
5.	कौशल विदर्भ	मध्यप्रान्त और बरार
6.	मद्रास	मद्रास
7.	उड़ीसा	उड़ीसा
8.	पंजाब	पूर्वी पंजाब
9.	युक्त प्रदेश	संयुक्त प्रान्त

राज्यों के राज्यक्षेत्र

आसाम राज्य के राज्यक्षेत्र में वह राज्यक्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले आसाम प्रान्त, खासी राज्य, और आसाम आदिमजाति क्षेत्र के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट था।

पश्चिमी बंगाल राज्य के राज्यक्षेत्र में वह राज्यक्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले पश्चिमी बंगाल प्रान्त के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट था।]

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): हम लोग उड़ीसा का नाम उत्कल रखना चाहते थे श्रीमान।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसके लिये आप संशोधन पेश कर सकते हैं।

"The territory of the State of Bombay shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the Province of Bombay and the territories which by virtue of an order made under section 290A of the Government of India Act, 1935, were immediately before such commencement being administered as if they formed part of that Province or which immediately before such commencement were being administered by the Government of that Province under the provisions of the Extra Provincial Jurisdiction Act, 1947.

The territory of each of the other States shall comprise the territories which immediately before the commencement of this Constitution were comprised in the corresponding Province and the territories which, by virtue of an order made under section 290A of the Government of India Act, 1935, were immediately before such commencement being administered as if they formed part of that Province.

PART II.

Names of States.

1. Ajmer
2. Bhopal
3. Bilaspur
4. Coorg
5. Cooch-Behar
6. Delhi
7. Himachal Pradesh
8. Kutch
9. Manipur
10. Rampur
11. Tripura

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Territories of States

The territory of the State of Ajmer shall comprise the territories which immediately before the commencement of this Constitution were comprised in the Chief Commissioners' Provinces of Ajmer-Merwara and Panth Piploda.

The territory of each of the States of Coorg and Delhi shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the Chief Commissioner's Province of the same name.

The territory of each of the other States shall comprise the territories which, by virtue of an order made under section 290A of the Government of India Act, 1935, were immediately, before the commencement of this Constitution administered as if they were a Chief Commissioner's Province of the same name.

PART III.

Names of States

1. Hyderabad
2. Jammu & Kashmir
3. Madhya Bharat
4. Mysore
5. Patiala & East Punjab States Union
6. Rajasthan
7. Saurashtra
8. Travancore-Cochin
9. Vindhya Pradesh

Territories of States

The territory of the State of Rajasthan shall comprise the territories which immediately before the commencement of this Constitution were comprised in the United State of Rajasthan and the territories which immediately before such commencement

were being administered by the Government of that State under the provisions of the Extra Provincial Jurisdiction Act, 1947.

The territory of the State of Saurashtra shall comprise the territories which immediately before the commencement of this Constitution were comprised in the United States of Kathiawar (Saurashtra) and the territories which immediately before such commencement were being administered by the Government of that State under the provisions of the Extra Provincial Jurisdiction Act, 1947.

The territory of each of the other States shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the corresponding Indian State.

PART IV.

The Andaman and Nicobar Islands.

[बम्बई राज्य के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट होगा वह राज्यक्षेत्र जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले बम्बई प्रान्त के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट था तथा वह राज्यक्षेत्र जो भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 290-क के अधीन निकाले गये आदेश के आधार पर, इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले इस प्रकार प्रशासित थे मानो वह उस प्रान्त के अंग रहे हों अथवा जो प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अधीन, इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले, उस प्रान्त की सरकार द्वारा प्रशासित थे।

अन्य राज्यों में से प्रत्येक के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट होंगे वह राज्यक्षेत्र जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी प्रान्तों के राज्यक्षेत्र में, समाविष्ट थे तथा वह राज्यक्षेत्र जो भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 290-क के अधीन निकाले गये आदेश के आधार पर इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले, इस प्रकार प्रशासित थे मानो वह उस प्रान्त के अंग रहे हों।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

भाग 2

राज्यों के नाम

1. अजमेर
2. भोपाल
3. विलासपुर
4. कोड़गू
5. कूच बिहार
6. दिल्ली
7. हिमाचल प्रदेश
8. कच्छ
9. मनीपुर
10. रामपुर
11. त्रिपुरा

राज्यों के राज्य-क्षेत्र

अजमेर राज्य के राज्यक्षेत्र में वह राज्यक्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अजमेर-मारवाड़ा और पंथ पिपलौदा के मुख्यायुक्तों के प्रान्तों के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट था।

कोड़गू और दिल्ली राज्यों में से प्रत्येक के राज्यक्षेत्र में वह राज्यक्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले, उसी नाम के, मुख्यायुक्त प्रान्त के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट था।

अन्य राज्यों में से प्रत्येक के राज्यक्षेत्र में वे राज्यक्षेत्र समाविष्ट होंगे जो भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 290-क के अधीन निकाले गये आदेश के आधार पर, इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले, इस प्रकार प्रशासित थे मानो कि वे उसी नाम के मुख्यायुक्त प्रान्त रहे हों।

भाग 3

राज्यों के नाम

1. हैदराबाद
2. जम्मू और काश्मीर
3. मध्य भारत
4. मैसूर
5. पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ

6. राजस्थान
7. सौराष्ट्र
8. तिरूवांकुर-कोचीन
9. विन्ध्य प्रदेश

राज्यों के राज्यक्षेत्र

राजस्थान राज्य के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट होंगे वह राज्यक्षेत्र जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले राजस्थान के संयुक्त राज्य के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट थे तथा वह जो प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के अधीन इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले उस राज्य की सरकार द्वारा प्रशासित थे।

सौराष्ट्र राज्य के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट होंगे वह राज्यक्षेत्र जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले का काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के संयुक्त राज्य के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट थे तथा वह जो प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अधीन, इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले, उस राज्य की सरकार द्वारा प्रशासित थे।

अन्य राज्यों में प्रत्येक के राज्यक्षेत्र में वह राज्यक्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी देशी राज्य के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट था।

भाग 4

अन्दमान और निकोबार द्वीप

मैं नहीं समझता श्रीमान, कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है उस पर कोई प्रकाश डालने की जरूरत है।

***श्री जयनारायण व्यास:** मैं यह जानना चाहता हूं श्रीमान कि सिरोही राज्य का भी कहीं उल्लेख किया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के अधीन सिरोही अंशत: प्रशासित हो रहा है बम्बई द्वारा और अंशत: राजस्थान द्वारा। यही कारण है जो उसका पृथक् उल्लेख नहीं किया गया है।

***श्री जयनारायण व्यास:** किन्तु सिरोही अभी न बम्बई में है और न राजस्थान में।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मुझे दो एक सुझाव रखने हैं। जहां तक पदसंहिता "भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 290-क के अधीन" का संबंध है, मेरा कहना यह है कि इसके साथ एक व्याख्या यह रख देनी चाहिये यहां मतलब है यथानुकूलित अधिनियम से। मेरा दूसरा सुझाव यह है कि भाग 2 में राज्यों को वर्णानुक्रम से नहीं रखा गया है। पर मैं देख रहा हूं कि यहां चौथे और पांचवें राज्य वर्णानुक्रम के हिसाब से ठीक नहीं रखे गये हैं। पांचवें राज्य का नाम पहले दिया जाना चाहिये और उसके नीचे आना चाहिये चौथे राज्य का नाम। इतना हो जाने से वर्णानुक्रम ठीक हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** आपका मतलब है कोड़गू और कूच बिहार से। ठीक है मेरा भी यही ख्याल है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जहां तक कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की पहली बात का सम्बन्ध है मैं यह बताना चाहता हूं कि एक पूर्व अवसर पर यह व्यक्त कर दिया गया है कि यथानुकूलित भारत शासन अधिनियम का संक्षिप्त नाम रहेगा 'भारत शासन अधिनियम, 1935 ।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं अब बैठक समाप्त होनी चाहिये। अब हम कल प्रात: पुन: समवेत् होंगे और संशोधनों को लिया जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** प्रस्तावना को भी क्या कल ही लिया जायेगा?

***अध्यक्ष:** हां, जहां तक संभव होगा हम इसे कल ही समाप्त करने की चेष्टा करेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** और भी कोई अनुच्छेद या संशोधन विचारार्थ लिया जायेगा क्या?

***अध्यक्ष:** हां, एक या दो अनुच्छेद ऐसे हैं जिनको हम स्थगित छोड़ आये हैं।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): क्या सबसे आखिर में प्रस्तावना पर विचार किया जायेगा?

***अध्यक्ष:** हां, अन्त में उसी पर विचार किया जायेगा। कार्यक्रम में एक और अनुच्छेद 264-क भी है पर यह अभी तक सदस्यों को मिला नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** हर रोज नये अनुच्छेद, नये संशोधन और संशोधनों पर संशोधन यहां पेश किये जाते हैं। पर चूंकि मूल संशोधन पेश नहीं होते हैं इसलिये हम जो संशोधन भेजते हैं वह भी पेश नहीं होने पाते हैं।

***अध्यक्ष:** इस तरह तो हमने किसी संशोधन को नहीं रोका है। जहां तक कि मेरे नियम के आधार पर संशोधन के पेश होने में कठिनाई आ सकती है, मैंने ऐसी कठिनाइयों को कभी बाधिक नहीं बनने दिया है।

अब सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शनिवार ता. 15 अक्तूबर सन् 1949 के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. X.8.49
320

अंक 10
संख्या 8

शनिवार
15 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
संविधान सभा के नियम (संशोधन)	3175-3218
संविधान का मसौदा–(जारी)	3219-3236
[प्रथम अनुसूची पर विचार]	

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 15 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत् हुई।

***एक माननीय सदस्यः** क्या मैं जान सकता हूं यह सत्र कब समाप्त होगा?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अभी एक दिन के लिये तो काम है और इसलिये हमें सोमवार को अथवा रविवार को सभा की एक बैठक करनी होगी। आज सभा स्थगित करने के पूर्व हम इस सम्बन्ध में निर्णय करेंगे कि सभा की अगली बैठक कब हो। इस समय मैं केवल यह कह सकता हूं कि हमें एक दिन और बैठक करनी होगी। संभव है कल करनी पड़े या परसों, यह सभा की इच्छा पर निर्भर है।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मेरा यह प्रस्ताव है कि हम कल बैठक करें न कि सोमवार को।

***अध्यक्षः** मैं यह जानने का प्रयास करूंगा कि सदस्यों की इच्छा क्या है।

***श्रीमती ऐनी मैसकरीन** (संयुक्त राज्य-तिरुवांकुर और कोचीन): हम ईसाई लोग चाहते हैं कि रविवार को कोई कार्य नहीं किया जाये।

***अध्यक्षः** रविवार को बैठक करने पर ईसाई सदस्यों को आपत्ति है।

***माननीय सदस्यः** एक बार, रविवार को हमने बैठक की है।

***अध्यक्षः** किन्तु उससे ईसाई सदस्य रविवार की बैठकों पर आपत्ति करने के अधिकार से वंचित नहीं होते। आज अन्त में मैं यह जानने का प्रयास करूंगा कि सभा की इच्छा क्या है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): श्रीमान, प्रथम अनुसूची के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है.....

***अध्यक्षः** पहले हम श्रीमती जी. दुर्गाबाई के प्रस्ताव को निबटायेंगे, जो नियम 38-द के स्थान पर अन्य नियम रखने के सम्बन्ध में है।

संविधान सभा के नियम (संशोधन)

नवीन नियम 38-द और 38-दद

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं कि:

"संविधान सभा के नियमों के नियम 38-द के स्थान पर ये नियम रखे जायें:—

Revision of the Constitution by the Drafting Committee and the consideration of the amendment recommended by them.

'38R. (1) When a motion that the Constitution be taken into consideration has been carried and the amendments to the Constitution moved have been considered, the President shall refer the Constitution as amended to the Drafting Committee referred to in sub-rule (1) of rule 38-L with instructions to carry out such re-numbering of the clauses, such revision of punctuation and such revision and completion of the marginal notes thereof as may be necessary and to recommend such formal or consequential or other necessary amendments to the Constitution as may be required.

(2) After the Constitution has been referred to the Drafting Committee, the report of the Committee shall be presented to the Assembly by the Chairman or any other member of the Drafting Committee and thereafter the Chairman or other member of the Committee may move that the amendments recommended by the Committee in the Constitution so referred to them be taken into consideration:

Provided that no such motion shall be made until after the report of the Drafting Committee together with the copies of the Constitution as revised by them has been made available for the use of members and that any member may object to any such motion being made unless the report and the copies of the Constitution as so revised have been made available three clear days before the date on which the motion is made, and such objection shall prevail unless the President in his discretion allows the motion to be made.

(3) While making any motion referred to in sub-rule (2), the mover shall confine himself to an explanatory statement and at this stage there shall be no debate, and the President may, after such statement has been made, put the question.

(4) After the motion referred to in sub-rule (2) has been carried, any member may move an amendment which is either formal or consequential upon an amendment recommended in any provision of the Constitution by the Drafting Committee after the Constitution was referred to them under sub-rule (1) but shall not be allowed to move any other amendment.

(5) If notice of a proposed amendment has not been given two clear days before the day on which the motion referred to in sub-rule (2) is to be taken up for consideration, any member may object to the moving of the amendment, and such objection shall prevail unless the President in his discretion allows the amendment to be moved.

(6) Notwithstanding anything in these rules, all the amendments recommended by the Drafting Committee, after the Constitution was referred to them under sub-rule (1), shall be deemed to have been moved, and it shall not be necessary for the President to put each of those amendments separately to vote.

(7) The provisions of sub-rules (2) and (3) of rule 38-P shall apply to every amendment of which notice has been given under sub-rule (5), and notwithstanding anything in these rules it shall be in the discretion of the President to disallow any amendment of which notice has been so given.

(8) The President shall allot not more than two days for the consideration by the Assembly of all amendments after the motion referred to in sub-rule (2) has been carried and shall, at the time appointed by him for the close of the sitting of the Assembly on the last of the allotted days,

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

forthwith put every question necessary to dispose of all the outstanding matters in connection with those amendments, and in the case of amendments recommended by the Drafting Committee as such, he shall put only the question that the amendments so recommended be made or that the amendments so recommended as modified by any amendment or amendments adopted by the Assembly be made, as the case may be.

(9) For the purpose of bringing to a conclusion any proceedings relating to such amendments on the last of the allotted days, the President shall have power to select the amendments to be proposed.' "

मसौदा समिति द्वारा संविधान का पुनर्विलोकन और उसने जिस संशोधन की सिफारिश की हो उस पर विचार।

[38-द (1) जब यह प्रस्ताव कि संविधान पर विचार किया जाये पारित हो गया हो और संविधान संबंधी जो संशोधन उपस्थित किये गये हों उन पर विचार हो गया हो तब अध्यक्ष संविधान को, संशोधित रूप में, नियम 38 के उपनियम (1) में निर्दिष्ट मसौदा समिति के पास भेजेगा और आदेश देगा कि आवश्यकतानुसार खंडों की पुनर्गणना की जाये, विरामों को फिर से लगाया जाये और हाशिये के लेखों को दुहराया जाये और पूरा किया जाये और संविधान संबंधी ऐसे रस्मी अथवा आनुषंगिक अथवा अन्य आवश्यक संशोधनों की सिफारिश की जाये।

(2) संविधान को मसौदा समिति के पास भेजने के पश्चात् समिति के प्रतिवेदन को मसौदा-समिति का सभापति अथवा अन्य कोई सदस्य सभा में उपस्थित करेगा और तत्पश्चात् समिति का सभापति अथवा अन्य कोई सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है कि उसके पास जो संविधान भेजा गया था उसके संबंध में समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है, उन पर विचार किया जाये:

परन्तु जब तक मसौदा-समिति का प्रतिवेदन तथा उसके साथ उसके दुहराये हुए संविधान की प्रतियां सदस्यों के उपयोग के लिये उपलब्ध न की जायें तब तक इस प्रकार का कोई प्रस्ताव उपस्थित न किया जायेगा और प्रस्ताव उपस्थित करने के दिन से पूरे तीन दिन पहले यदि यह प्रतिवेदन और संविधान की दुहराई हुई प्रतियां उपलब्ध न की जायें तो कोई भी सदस्य इस पर आपत्ति कर सकता है, और जब तक कि अध्यक्ष स्वविवेक से प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा न दे तब तक यह आपत्ति अभिभावी होगी।

(3) उपनियम (2) में निर्दिष्ट किसी प्रस्ताव को उपस्थित करते समय प्रस्तावक अपने को व्याख्यात्मक वक्तव्य तक ही सीमित रखेगा और इस अवसर पर कोई वाद-विवाद नहीं होगा और अध्यक्ष, इस वक्तव्य के पश्चात् प्रस्ताव पर मत ले सकता है।

(4) उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, कोई भी सदस्य किसी रस्मी संशोधन को अथवा किसी ऐसे संशोधन के आनुषंगिक संशोधन को उपस्थित कर सकता है जिसकी मसौदा-समिति ने उपनियम (1) के अधीन उसके पास संविधान भेजे जाने पर किसी उपबन्ध के संबंध में सिफारिश की हो, किन्तु उसे किसी अन्य संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी।

(5) यदि किसी प्रस्तावित संशोधन की सूचना उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव पर विचार करने के दिन के पूरे दो दिन पूर्व नहीं की गई हो तो कोई भी सदस्य उस संशोधन के उपस्थित किये जाने पर आपत्ति कर सकता है और जब तक अध्यक्ष स्वविवेक से संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दे तब तक यह आपत्ति अभिभावी होगी।

(6) इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी मसौदा-समिति ने, उसके पास उपनियम (1) के अधीन संविधान के भेजे जाने के पश्चात्, जिन संशोधनों की सिफारिश की हो, वे सब उपस्थित किये गये समझे जायेंगे और अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले।

(7) नियम 38-त के उपनियम (2) और (3) के उपबन्ध ऐसे प्रत्येक संशोधन को लागू होंगे जिसकी उपनियम (5) के अधीन सूचना दी गई हो और इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी अध्यक्ष स्वविवेक से किसी ऐसे संशोधन की आज्ञा नहीं दे सकता है जिसकी इस प्रकार सूचना दी गई हो।

(8) अध्यक्ष उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, सभी संशोधनों पर सभा के विचार करने के लिये दो दिन से अधिक नहीं देगा और दिये हुए दिनों में से अन्तिम दिन को सभा की बैठक समाप्त करने के लिये उसने जो समय निश्चित किया हो उस समय इन संशोधनों के संबंध में सभी रहे हुए प्रश्नों को निबटाने के लिये प्रत्येक प्रश्न पर मत लेगा और उन संशोधनों के संबंध में, जिनकी सिफारिश मसौदा-समिति ने की हो, वह केवल इस प्रश्न पर मत लेगा कि जिन संशोधनों की सिफारिश की गई है उन्हें किया जाये अथवा, यथास्थिति, जिन संशोधनों की सिफारिश की गई है उन्हें सभा द्वारा स्वीकृत किसी संशोधन अथवा संशोधनों द्वारा परिवर्तित रूप में किया जाये।

(9) दिये हुए दिनों में से अन्तिम दिन को इन संशोधनों के संबंध में किसी कार्यवाही को समाप्त करने के लिये अध्यक्ष को प्रस्तावित होने वाले संशोधनों को चुनने की शक्ति प्राप्त होगी।]' "

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

श्रीमान, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं नियम 38-दद को भी उपस्थित करना चाहती हूं। वह इस प्रकार है:

"38-RR.(1) When the amendments to the Constitution referred to the Drafting Committee under sub-rule (1) of rule 38-R have been considered, any member may move that the Constitution as settled by the Assembly be passed, and to a motion so made no further amendment shall be allowed to be moved.

Passing of the Constitution.

(2) The President may fix a time-limit for speeches during the debate on a motion made under sub-rule (1).

(3) The President may in relation to any proceedings in connection with the passing of the Constitution under rule 38-R or this rule relax or suspend any of these rules.

['38-दद (1) जब नियम 38-द के उपनियम (1) के अधीन मसौदा-समिति को भेजे हुए संविधान-संबंधी संशोधनों पर विचार हो गया हो तब कोई भी सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है कि सभा ने संविधान को जिस रूप में निश्चित किया है उस रूप में वह पारित किया जाये और इस प्रकार उपस्थित किए हुए प्रस्ताव के संबंध में अन्य किसी संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी।

संविधान का पारण

(2) अध्यक्ष उपनियम (1) के अधीन उपस्थित किए हुए प्रस्ताव पर होने वाले वाद-विवाद में भाषणों के लिये काल-सीमा निश्चित कर सकता है।

(3) अध्यक्ष नियम 38-द अथवा इस नियम के अधीन संविधान के पारण से संबंधित किसी कार्यवाही के बारे में इन नियमों में से किसी को विस्तृत या निलम्बित कर सकता है।]' "

अध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्यों को यह विदित है कि अब हमने सौभाग्य से संविधान के मसौदे का द्वितीय पठन समाप्त कर दिया है। अब हमें तुरन्त ही संविधान के मसौदे का तृतीय पठन आरम्भ करना है और संभवत: हम उसे अगले महीने आरम्भ करें। इसलिये संविधान के मसौदे के तृतीय पठन की तथा संविधान को पारित करने की प्रक्रिया निश्चित करने की आवश्यकता है।

श्रीमान, मुझे आशा है कि यह सदस्यों के ध्यान में आ गया होगा कि इन नियमों की एक विशेषता यह है कि इन नियमों में जिस प्रक्रिया को निर्धारित किया गया है उसके अधीन मसौदा-समिति तृतीय पठन के अवसर पर मसौदे में आनुषंगिक

अथवा अन्य आवश्यक संशोधन कर सकेगी। इन नियमों की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके अधीन सदस्य तृतीय पठन के अवसर पर मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधनों पर केवल रस्मी अथवा आनुषंगिक संशोधन कर सकेंगे। श्रीमान, इनके द्वारा अध्यक्ष को स्वविवेक से किसी भी संशोधन के लिए आज्ञा देने तथा भाषणों के लिये समय निश्चित करने की शक्ति तथा इस प्रकार की अन्य शक्तियां भी दी गई हैं।

श्रीमान, इस सभा के माननीय सदस्यों ने इस संबंध में जिन संशोधनों की सूचना दी है उनमें से पन्द्रह-बीस को मैंने देखा है। श्रीमान, इनमें से कुछ संशोधनों के संबंध में मैं उस समय बोलूंगी जब वे उपस्थित किये जायेंगे किन्तु उनमें से कुछ संशोधनों का उद्देश्य उस खंड को निकालना है जिसके अधीन अध्यक्ष भाषणों के लिये समय निश्चित कर सकेगा, अथवा उनका उद्देश्य यह है कि दो दिन पहले सूचना देने का नियम हटा दिया जाये और उसके स्थान पर सात दिन अथवा पांच दिन पहले सूचना देने का नियम रखा जाये।

श्रीमान, यह हम सबको को विदित है कि इस संविधान को बनाने में हमने पूरे दो वर्ष और दस महीने लगा दिये हैं। हम सभी जानते हैं कि इसका भारत के वित्तीय साधनों पर बहुत भार पड़ा है और इसलिये हमें लम्बे भाषण देकर, अथवा संविधान को पारित करने में ढील देकर, समय नष्ट नहीं करना चाहिये। संविधान को शीघ्र पारित करने के उद्देश्य से इन नियमों द्वारा राष्ट्रपति को कुछ शक्तियां दी गई हैं।

इसलिये श्रीमान, मैं माननीय सदस्यों से अपील करती हूं कि वे अपने संशोधनों को वापस ले लें अथवा उन पर मत लिये जाने पर जोर न दें और संविधान को आसानी से पारित होने दें। इन शब्दों के साथ मैं सभा से सिफारिश करती हूं कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं।

***अध्यक्ष:** इस संबंध में कई संशोधन हैं। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इन नियमों के संबंध में दुर्भाग्य से मुझे कुछ संशोधन उपस्थित करने हैं। मैंने अपने संशोधनों की संख्या कम करने का बहुत प्रयास किया किन्तु मैं असफल रहा। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-द और 38-दद में 'Constitution' (संविधान) शब्द जहां कहीं आया है उसके स्थान पर 'Draft Constitution' (संविधान का मसौदा) शब्द रखे जायें।"

यह एक रस्मी संशोधन है। मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) में—(1) 'considered'—(विचार हो गया हो) शब्दों के स्थान पर 'considered and disposed of' (विचार हो गया हो और निबटा दिये गये हों) शब्द रखे जायें;

(2) 'amended' (संशोधित रूप में) शब्दों के स्थान पर 'amended by the Assembly' (सभा द्वारा संशोधित रूप में) शब्द रखे जायें;

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

(3) 'clauses' (खंडों) शब्द के स्थान पर 'articles, clauses and sub-clauses' (अनुच्छेदों, खंडों और उपखंडों) शब्द रखे जायें; और

(4) 'to recommend' (सिफारिश की जाये) शब्दों के स्थान पर 'to submit a report recommending' (सिफारिश करते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाये) शब्द रखे जायें।"

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) के पश्चात् यह नवीन उपनियम प्रविष्ट किया जाये:—

'(1a) The Draft Constitution as revised by the Drafting Committee under sub-rule (1) shall indicate by suitable typographical arrangements the changes and omissions made by the Committee.'

[(1क) उपनियम (1) के अधीन मसौदा-समिति ने संविधान के मसौदे को दुहरा कर जिस रूप में रखा हो उसमें समिति ने जो परिवर्तन किये हों, अथवा उससे जो शब्द निकाले हों वे उपयुक्त छपाई द्वारा दिखाये जायेंगे।]"

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (2) में 'After the Constitution has been referred to the Drafting Committee the report of the Committee' (संविधान को मसौदा-समिति के पास भेजने के पश्चात् समिति के प्रतिवेदन को) शब्दों के स्थान पर 'the report of the Drafting Committee' (मसौदा-समिति के प्रतिवेदन को) शब्दों को रखा जाये।"

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (2) में 'in the Constitution' (इन दी कांस्टीट्यूशन) शब्दों के स्थान पर 'to the Constitution' (टू दी कांस्टीट्यूशन) शब्द रखे जायें।"

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (2) के परन्तुक में 'three clear days' (पूरे तीन दिन) शब्दों के स्थान पर 'seven clear days' (पूरे सात दिन)' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, मैं अपने संशोधनों का उद्देश्य स्पष्ट करना चाहता हूं। मैं निवेदन कर चुका हूं कि पहला संशोधन केवल रस्मी संशोधन है। मेरे विचार से मसौदे की शुद्धि की दृष्टि से उसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

अन्य संशोधनों के संबंध में कठिनाई यह है कि अधिकारियों के संशोधन हमें कल दिये गये और हमें अपने संशोधन दफ्तर में कल पांच बजे के पहले देने

पड़े। वे छाप कर आज प्रातः ही सदस्यों को दिये गये। इसलिये, मेरे विचार से, मसौदा-समिति के सदस्यों को, अथवा इन नियमों को प्रस्ताविका महोदया को, इन संशोधनों को पढ़ने और इनके उद्देश्य को समझने का समय नहीं मिला। मैं अपने संशोधनों की कुछ बातों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास करूंगा।

संशोधन संख्या 2 के पहले भाग का उद्देश्य यह है "विचार हो गया हो" शब्दों के पश्चात् "निबटा दिये गये हों" शब्द रखे जायें। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो यह खंड इस प्रकार हो जायेगा:–

".....संविधान-संबंधी जो संशोधन उपस्थित किये गये हों उन पर विचार हो गया हो और निबटा दिये गये हों।"

वास्तव में उपनियम (1) उस स्थिति के संबंध में है जब द्वितीय पठन के अवसर पर संशोधनों पर न केवल विचार हो गया हो बल्कि वे निबटा भी दिये गये हों। उन्हें निबटाने के पश्चात् ही संविधान का मसौदा मसौदा-समिति के पास भेजा जायेगा। इसलिये इस संशोधन की आवश्यकता है।

मेरे अगले संशोधन का उद्देश्य यह है कि "संशोधित रूप में" शब्दों के स्थान पर "सभा द्वारा संशोधित रूप में" शब्द रखे जायें। संशोधन दो प्रकार के होंगे और इसलिये भ्रम होने की संभावना है। सभा जिन संशोधनों को करेगी और मसौदा-समिति जिन संशोधनों का सुझाव रखेगी उनमें विभेद करने की आवश्यकता है। इन शब्दों को प्रविष्ट करने का उद्देश्य वही है। इन्हें रखने से खंड इस प्रकार हो जायेगा–

".....संविधान को सभा द्वारा संशोधित रूप में"

और सभा द्वारा किये हुए संशोधनों में तथा मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधनों में विभेद हो जायेगा।

कुछ समय पश्चात् हम मसौदा-समिति को "खंडों" की पुनर्गणना करने का अधिकार देने जा रहे हैं। मेरा निवेदन है कि यद्यपि पुराने नियम में "खंड" शब्द आया है किन्तु वह इस संविधान के प्रसंग में उपयुक्त नहीं होगा। हम इसके अनुच्छेदों को अनुच्छेद ही कहते आये हैं और खंड नहीं कहते आये हैं। अभी तक "खंडों" का अभिप्राय अनुच्छेदों के खंडों से रहा है। किन्तु यहां "खंड" शब्द के प्रत्यक्षतः "अनुच्छेद" अभिप्रेत है। इसी कारण मैंने यह संशोधन रखा है ताकि इस नियम की शब्दावली इस प्रकार हो जाये:

".....अनुच्छेदों, खंडों और उपखंडों की पुनर्गणना की जाये।"

यह अधिक व्याकरण-संगत तथा विधि-संगत होगा।

मेरे अगले संशोधन, अर्थात् दूसरे संशोधन के चौथे भाग का उद्देश्य यह है कि "सिफारिश की जाये" शब्दों के स्थान पर "सिफारिश करते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाये" शब्द रखे जायें। इस संशोधन की बहुत आवश्यकता है क्योंकि उपनियम (2) में हमने दो स्थानों पर "प्रतिवेदन" शब्द प्रयोग किया है। मसौदा-समिति का

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

यह प्रतिवेदन अन्तिम प्रतिवेदन होगा किन्तु उपनियम (1) में हमने प्रतिवेदन को उपस्थित करने के संबंध में कोई उपबन्ध नहीं रखा है। हमने केवल यह कहा है कि:

".....ऐसे रस्मी तथा आनुषंगिक अथवा अन्य संशोधनों की सिफारिश की जाये जिनकी आवश्यकता हो।"

मैं चाहता हूं कि इसकी शब्दावली इस प्रकार हो:

".....ऐसे रस्मी तथा आनुषंगिक अथवा अन्य संशोधनों की, जिनकी आवश्यकता हो, सिफारिश करते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाये।"

वास्तव में उपनियम (2) में दो स्थानों पर प्रयुक्त शब्दों का आशय स्पष्ट करने के लिये इस स्थान पर भी "प्रतिवेदन" शब्द प्रस्तुत होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, मेरे अगले संशोधन का उद्देश्य है कि एक और उपनियम, अर्थात् उपनियम 1 (क) प्रविष्ट किया जाय जिसकी शब्दावली इस प्रकार हो:–

"उपनियम (1) के अधीन मसौदा-समिति ने संविधा के मसौदे को दुहरा कर जिस रूप में रखा हो उसमें समिति ने जो परिवर्तन किये हों, अथवा उससे जो शब्द निकाले हों, वे उपयुक्त छपाई द्वारा दिखाये जायेंगे।"

इसकी बहुत आवश्यकता दिखाई देती है। हमें आखिर मसौदा-समिति के दुहराये हुए संविधान के मसौदे पर विचार करना होगा और अपने संशोधनों का सुझाव रखना होगा। इसका निर्णय करने के लिये कि किन संशोधनों की आवश्यकता होगी हमें यह जानना होगा कि वास्तव में मसौदा-समिति ने किन संशोधनों को प्रस्तावित किया है। हमें विदित है कि मसौदा-समिति सभा में किस ढंग से काम करती रही है। संविधान के मसौदे में अपने संशोधनों को न दिखाकर वह अनुच्छेदों को नये सिरे से लिखकर हमारे सामने रखती रही है और सदस्यों को यह समझने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा है कि वास्तव में कौन से परिवर्तन किये गये हैं। इससे सदस्यों को संविधान के मसौदे के अनुच्छेदों की प्रस्तावित अनुच्छेदों से बहुत सावधानी से तुलना करनी होती है और अकारण परिश्रम करना होता है। इसलिये, मेरे विचार से मसौदा-समिति ने संविधान को जो अन्तिम मसौदा तैयार किया हो उसमें जो परिवर्तन किये गये हों उन्हें दिखाया जाये ताकि सदस्यों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो सके और यदि आवश्यकता हुई तो वे उनके संबंध में आनुषंगिक अथवा रस्मी संशोधनों का सुझाव रख सकें। इससे उनका काम सरल हो जायेगा। इसका प्रबन्ध बहुत आसानी से किया जा सकता है, अर्थात् जो कोई परिवर्तन किये जायें उन्हें टेढ़े अक्षरों में छापा जाये अथवा उनके नीचे रेखा खींच दी जाय। हाशिये पर रेखा खींचने से लाभ नहीं होगा। यदि कुछ शब्द निकाले जायें तो वहां पर सितारा लगाया जा सकता है। ये बातें बहुत आसानी से की जा सकती हैं और इनके कारण सदस्यों के लिये बहुत सुविधा हो जायेगी क्योंकि वे यह देख सकते हैं कि कौन से परिवर्तन किये गये हैं और तदन्तर अपने संशोधन प्रस्तुत कर सकते हैं।

खंड (2) के संबंध में मेरा निवेदन है कि उसके आरम्भ के शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं और उनके कारण एक हद तक भ्रम भी होता है। उसमें कहा गया है:

"संविधान को मसौदा-समिति के पास भेजने के पश्चात् समिति के प्रतिवेदन को... सभा में उपस्थित करेगा।"

इसमें एक महत्वपूर्ण कदम का उल्लेख नहीं किया गया है। संविधान को मसौदा-समिति को भेजने के पश्चात् मसौदा-समिति अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। इसलिये हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि मसौदा-समिति का प्रतिवेदन मिलने के पश्चात् वह सभा में उपस्थित किया जायेगा। इस कारण मैंने यह सुझाव रखा है कि इन प्रारम्भिक शब्दों को निकाल दिया जाये। इसे स्वीकार करने पर उपनियम (2) इस प्रकार हो जायेगा: "मसौदा-समिति के प्रतिवेदन को.... सभा में उपस्थित करेगा।" अपने संशोधन संख्या 2 के भाग (4) में मैं यह सुझाव रख चुका हूं कि "प्रतिवेदन" शब्द समाविष्ट किया जाये।

अब श्रीमान, मैं परन्तुक को उठाता हूं। मुझे इस संबंध में एक बहुत बड़ी शिकायत है और वह यह है कि इस परन्तुक में यह उपबन्धित करने का प्रयास किया गया है कि मसौदा-समिति के दुहराये हुए संविधान के मसौदे को उस पर विचार करने के दिन से पूरे तीन दिन पहले सदस्यों के पास भेजा जायेगा। श्रीमान, इतने थोड़े समय में किसी भी माननीय सदस्य के लिये संविधान के दुहराये हुए मसौदे को पढ़ना तथा उसके संबंध में संशोधन प्रस्तुत करना बहुत कुछ असंभव ही होगा। श्रीमान, आप कृपा करके देखें कि सदस्यों को संविधान के मसौदे पर विचार करने के लिये केवल तीन दिन दिये गये हैं जबकि उपनियम (5) में यह उपबन्धित है कि हमें अपने संशोधनों की सूचना पूरे दो दिन पहले दे देनी चाहिये।

यदि हम संविधान पर 14 नवम्बर से विचार करना आरम्भ करेंगे तो हमें संविधान का मसौदा 10 नवम्बर को अर्थात् पूरे तीन दिन पहले मिलेगा और हमें अपने संशोधन 11 नवम्बर को अर्थात् पूरे दो दिन पहले भेज देने होंगे। इसलिये यह स्पष्ट है कि हमें प्रतिवेदन को पढ़ने, संशोधनों को तैयार करने और उन्हें सूचनालय को भेजने के लिये केवल एक दिन मिलेगा इससे बहुत सी अनर्गल बातें पैदा हो जायेंगी। मेरा निवेदन है कि इस नियम को इस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। आप कृपया विचार करें कि 14 तारीख को सभा में उपस्थित होने के लिए हमें 10 नवम्बर को अपने-अपने स्थानों से रवाना होना होगा और प्रस्ताव यह है कि 10 नवम्बर को मसौदा-समिति के दुहराये हुए संविधान के मसौदे को सदस्यों के पास भेजा जायेगा। 10 नवम्बर को हम सड़क से, रेल से या आकाश से नई दिल्ली की यात्रा पर होंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि 10 नवम्बर को संविधान के दुहराये हुए मसौदे की प्रतियां हमारे पास कैसे पहुंचेंगी। यदि वे हमारे घरों के पते से भेजी गईं तो उस समय तक हम अपने घरों से रवाना हो चुकेंगे और जब हम दिल्ली के मार्ग पर होंगे तो संविधान की प्रतियां हमारे घर के मार्ग पर होंगी। यदि वे 10 या 11 तारीख को हमारे दिल्ली के पते से भेजी गईं तो हमें संशोधनों को तैयार करने के लिये समय नहीं मिलेगा और न हम कार्यालय के विचारार्थ उन्हें दो दिन पूर्व सूचनालय ही को भेज सकेंगे।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

यद्यपि मुझे मसौदा-समिति से इस कारण सहानुभूति है कि उसे अत्यधिक कार्य करना पड़ा है किन्तु साथ ही मैं यह भी बताना चाहता हूं कि सभा में कई लोगों की यह धारणा है कि वह समय-सारिणी का बिल्कुल भी अनुसरण नहीं कर पाई है। मसौदा-समिति का इरादा बार-बार बदलने के कारण ही उसके लिये अत्यधिक कार्य रहा है यद्यपि संभव है अन्य कारणों से भी देर हो गई हो किन्तु मेरा निवेदन है कि इस स्थिति का कुफल भोगने के लिये सदस्यों को विवश नहीं करना चाहिये। श्रीमान, मैं सभा से, तथा विशेषतया आपसे, पूछता हूं कि 10 तारीख को अन्तिम मसौदे की प्रति मिलने पर कोई भी सदस्य अपने संशोधनों को 11 तारीख को कैसे भेज सकेगा? इसलिये मेरा यह सुझाव है कि दुहराये हुए संविधान का अध्ययन करने के लिये, तथा अपने संशोधनों को भेजने के लिए, हमें सात दिन का समय दिया जाना चाहिये। क्या मैं यह सुझाव भी रख सकता हूं कि संविधान के अन्तिम मसौदे की प्रति के कारण हमें प्रत्येक अनुच्छेद के संबंध में प्रस्तुत किये हुए संशोधनों की एक तुलनात्मक सूची भी दी जाये ताकि हम संशोधनों का अध्ययन कर सकें और उन पर विचार करने के लिये तैयारी कर सकें।

मेरा यह सुझाव भी है कि संविधान के मसौदे को छपने के लिये भेजने के पूर्व उसकी साइक्लोस्टाइल की हुई प्रतियां तैयार की जायें और उन्हें उन सभी सदस्यों के पास भेजा जाये जो उन्हें देना चाहें। मुझे विश्वास है कि उनमें अधिक से अधिक छः सदस्यों की दिलचस्पी होगी। किन्त मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि यह सुविधा केवल इन थोड़े से सदस्यों को ही प्रदान की जाय। साइक्लोस्टाइल की हुई प्रतियां उन सभी सदस्यों के पास भेजी जाये तो उनके लिये कहें। यदि यह सब किया गया तो मेरे विचार से हम यथासमय कार्य समाप्त कर सकते हैं। अन्यथा सदस्यों के लिये तैयारी करना तथा समय पर संशोधनों को भेजना बहुत कठिन हो जायेगा। वास्तव में मुझे तो यह दिखाई देता है कि यह सब कार्य समय पर समाप्त करना बहुत कुछ असंभव ही है। मुख्य प्रश्न यह है कि संविधान का अन्तिम मसौदा सदस्यों के पास किस स्थान पर और किस समय भेजा जाये ताकि उन्हें भी अपना योग देने के लिये समय मिले। मेरा निवेदन है कि इन नियमों को स्वीकार करने के पूर्व इन बातों पर विचार किया जाये।

मसौदा-समिति ने सदस्यों के लिये एक कठिनाई और खड़ी की है और वह यह है कि इन कठिन नियमों को उपस्थित करने के लिये उसने एक महिला सदस्य को चुना है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, इसका इस विषय से क्या संबंध है?

***अध्यक्ष:** उन्हें चुना नहीं गया। उन्होंने इन नियमों को उपस्थित करने की इच्छा स्वयं प्रकट की।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** कठिनाई यह है कि हम उनके साथ सख्ती नहीं कर सकते। आखिर किसी महिला सदस्य से व्यवहार करने में कुछ शिष्टता का परिचय देना ही पड़ता है। तथ्य यह है कि मसौदा-समिति ने अपने पक्ष के प्रतिपादन के लिए एक महिला को आगे बढ़ाया है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** माननीय सदस्य महोदय को मैं बताना चाहती हूं कि मैंने इस प्रस्ताव को अपनी इच्छा से उपस्थित किया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** माननीय प्रस्ताविका से मैं इस संबंध में विवाद नहीं करना चाहता। ये संशोधन मसौदा-समिति की ओर से प्रस्तुत किये गये हैं। मसौदा-समिति ने साम्यवादियों की प्रणाली अपनाई है जो महिलाओं को आगे करके लड़ते हैं ताकि दूसरे पक्ष के लिये उन पर प्रहार करना असंभव हो जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं अपनी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई के इस विचार से सहमत हूं कि संविधान को शीघ्र पारित किया जाये। किन्तु मैं उनके एक विचार से असहमत हूं। उन्होंने कहा कि संविधान के निर्माण से देश को बहुत वित्तीय भार उठाना पड़ा। मैं यह जानता हूं कि हमने कुछ धन व्यय किया है। सभा को स्मरण होगा कि विधान-सभा ने 1946 में अथवा 1947 के आरभ में संविधान सभा के लिये अपने आयव्यक में एक करोड़ रुपया अलग रखा। पिछले सत्र में किसी समय इस सभा में या बाहर यह कहा गया था कि दो करोड़ से अधिक रुपया व्यय किया जा चुका है। जब मैंने यह सुना तो मैंने स्वयं हिसाब लगाया और मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि केवल साठ सत्तर लाख के लगभग खर्च हुआ है। मैं केवल इस सभा के संविधान निर्माण के कार्य के बारे में यह कह रहा हूं और इस सभा के विधाई कार्य के संबंध में कुछ नहीं कह रहा हूं। यदि आप विधानसभा के सत्रों को भी अपने हिसाब में सम्मिलित करें तो संभवत: व्यय की हुई राशि अधिक निकलेगी। किन्तु आयव्ययक में संविधान-निर्माण के लिये जो राशि रखी गई थी उसमें यह राशि सम्मिलित नहीं है। यदि बहुत बड़ी राशि भी व्यय हुई है तो मेरे विचार से इसके लिये इस सभा के सदस्यों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

सभा को स्मरण होगा कि जनवरी 1947 से लेकर अक्तूबर 1948 तक सभा को दो वर्षों में अधिक से अधिक 35 या 40 दिन के लिये समवेत् हुई। कोई न कोई कारण ऐसा आ गया कि मसौदा-समिति सामग्री तैयार नहीं कर सकी और 22 महीनों में हम केवल 40 दिन सम्मिलित हो सके। यदि हम अधिक समय तक कार्य करते और शीघ्र सत्र करते तो हम संविधान को बहुत पहले पारित कर दिये होते। आज भी संविधान को बिना समझे बूझे बहसों को कम करके पारित नहीं करना चाहिये। यदि उन्हें कम करना पड़े तो तर्कपूर्ण ढंग से कम करना चाहिये। इस उद्देश्य को आवश्यकतानुसार अधिक समय तक काम करने से पूरा करना चाहिये। हमने इसका अनुभव बहुत देर में किया है। यदि 1947 में अथवा 1948 में हम अधिक समय तक काम किये होते तो अभी तक हम इस संविधान को पारित कर चुके होते। मैं सदा रात्रि की बैठकों के पक्ष में रहा हूं। यदि हम प्रात: मध्याह्न तथा रात्रि को कार्य करें तो मुझे विश्वास है कि हम लगभग एक सप्ताह में अपना कार्य समाप्त कर सकते हैं। अब जब हम संविधान को समाप्त करने को हैं और जब तृतीय पठन आरम्भ करने में केवल कुछ दिनों ही की देर है, इस प्रकार के सुझाव से कोई लाभ नहीं होगा। मैं अपनी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई को बताना चाहता हूं कि उन्होंने यह एक गलत बात कही है कि यह सभा देश का बहुत धन व्यय करने के लिये उत्तरदायी है। इसका दोष इस सभा पर नहीं है।

[श्री एच.वी. कामत]

कई परिस्थितियों के कारण तथा अन्य कारणों से भी यह धन व्यय हो गया। मेरे विचार से यह कोई बड़ी धन-राशि नहीं है। संविधान निर्माण के लिये आयव्ययक में जो राशि अलग रखी गई थी उससे अधिक धन हमने व्यय नहीं किया है।

श्रीमान, अब मैं अपने संशोधनों को उठाता हूं। श्रीमान, मेरे नाम से छः संशोधन हैं। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (4) में 'which is either formal or consequential upon' (किसी रस्मी संशोधन को अथवा किसी ऐसे संशोधन के आनुषंगिक संशोधन को) शब्दों के स्थान पर 'to' (किसी ऐसे संशोधन के संशोधन को) शब्द रखे जायें।"

यदि इस संशोधन को सभा स्वीकार कर लेगी तो यह उपनियम इस प्रकार हो जायेगा:

"उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, कोई भी सदस्य किसी ऐसे संशोधन के संशोधन को उपस्थित कर सकता है जिसकी मसौदा-समिति ने उसके पास उपनियम (1) के अधीन संविधान भेजे जाने पर किसी उपबन्ध के संबंध में सिफारिश की हो, किन्तु उसे किसी अन्य संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी।"

यह संशोधन इस कारण उपस्थित किया गया है: श्रीमती दुर्गाबाई ने सभा के समक्ष जो योजना रखी है उसके अनुसार द्वितीय पठन के पश्चात् संविधान पर मसौदा-समिति विचार करेगी और जब कभी तृतीय पठन होगा तब उसे सभा में उपस्थित करेगी। मेरे विचार से तृतीय पठन आरम्भ करने से तीन दिन पूर्व संविधान का मसौदा सदस्यों के पास भेज दिया जायेगा। मैं इसे बिल्कुल स्वीकार करता हूं कि मसौदा-समिति में बुद्धिमान लोग हैं जो अपने विषय के विशेषज्ञ हैं और वास्तव में बहुत ज्ञानवान विशेषज्ञ हैं, किन्तु मुझे विश्वास है कि सभी मेरे इस विचार से सहमत होगी कि यह बात नहीं है कि वे गलती कर ही नहीं सकते। समय के अभाव के कारण, अथवा अत्यधिक कार्य होने के कारण, वे भी कुछ बातों की, अथवा संविधान के कुछ अनुच्छेदों की, या खंडों की, उपेक्षा कर सकते हैं। इसलिये जो बातें रह गई हों उन्हें रखने की ओर जो दोष रह गये हों उन्हें दूर करने की आवश्यकता पड़ सकती है। यदि संविधान के किसी अध्याय अथवा उप-अध्याय पर ध्यान देने के पश्चात् कुछ सदस्यों को यह दिखाई दे कि उसमें कुछ दोष अथवा कमी रह गई है, अथवा कोई बात छूट गई है, तो क्या यह उचित नहीं है कि उन्हें सभा में किसी संशोधन को प्रस्तुत करने, अथवा किसी संशोधन में रूप-भेद करने का अवसर दिया जाये?

मेरे माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई यह तर्क उपस्थित कर सकती हैं कि मसौदा-समिति के संशोधनों को सभा में तृतीय पठन के लिये उपस्थित करने के पूर्व सदस्य मसौदा-समिति के सम्पर्क में आ सकते हैं किन्तु यह भी हो सकता है कि वे पहले ही दिन यहां पहुंचे, अथवा जिस दिन संविधान का तृतीय पठन आरम्भ किया जाये उस दिन प्रातः ही यहां पहुंचे और उन्हें मसौदा-समिति के सम्पर्क में आने के लिए और उसके सामने अपना दृष्टिकोण रखने के लिये समय ही नहीं मिले। अपना मत लिखकर डाक द्वारा द्वारा भेजने का कोई अर्थ नहीं होगा

क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति मसौदा-समिति से स्वयं विचार-विमर्श नहीं करेगा तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि लिखने से उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जायेगा। यदि सदस्य उसके सम्पर्क में नहीं आ सके तो क्या उनकी बात सुनी ही नहीं जायेगी? इसी कारण श्रीमान, मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है ताकि उन सदस्यों को, जिन्हें संविधान को सावधानी से पढ़ने के पश्चात् यह दिखाई दिया हो कि उसके किसी भाग में त्रुटियां हैं, अथवा कुछ बातें रह गई हैं, सभा में अपने संशोधन उपस्थित करने का अवसर मिले। श्रीमान, आप किसी भ्रामक अथवा अनावश्यक संशोधन को अनियमित घोषित कर ही सकते हैं और सभा को आपके निर्णय पर पूर्ण विश्वास है। यदि कोई सदस्य कोई ऐसा संशोधन उपस्थित करे जो अनावश्यक, अथवा अप्रासंगिक, अथवा भ्रामक अथवा अनर्गल हो तो, सभा को यह विदित है, उसके प्रस्ताव को आपका निर्णय शिरोधार्य होगा। आपके अधिकारों, विशेषाधिकारों और शक्तियों में हस्तक्षेप करने का कोई अर्थ नहीं होगा। आप श्रीमान, स्वविवेक से किसी भी संशोधन को अनियमित घोषित कर सकते हैं। इसलिये नियम 38-द के इस उपनियम (4) की कोई आवश्यकता नहीं है।

मेरा अगला संशोधन इस सूची का आठवां संशोधन है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (6) में से 'and it shall not be necessary for the President to put each of those amendments separately to vote' (और अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले) शब्द निकाल दिये जायें।"

मैंने अभी जो संशोधन किया था उसके फलस्वरूप ही यह संशोधन उत्पन्न होता है। श्रीमती दुर्गाबाई ने जो उपनियम उपस्थित किया है उसमें यह उपबन्धित है कि मसौदा-समिति द्वारा उपस्थित संशोधनों पर मत लेने के लिये उन्हें सभा के सामने एक साथ रखा जा सकता है। श्रीमान मैं अपने पहले संशोधन के संबंध में निवेदन कर चुका हूं कि सदस्यों को संशोधन उपस्थित करने का अधिकार दिया गया है और उन्हें दृष्टि में रखकर सभा यह निर्णय करती है कि मसौदा-समिति ने जिस संशोधन की सिफारिश की है उसमें रूप-भेद किया जा सकता है या नहीं। एक साथ उन पर मत लेने से कठिनाई उठ खड़ी होगी। यदि उन संशोधनों को सभा ने संशोधित नहीं किया हो तो उन पर एक साथ मत लिया जा सकता है। किन्तु यदि कुछ संशोधनों में सभा ने रूप-भेद कर लिया हो तो उन पर पृथक् मत लेने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है? यह संभव है कि माननीय सदस्यों ने जिन संशोधनों को उपस्थित किया हो उनके द्वारा कुछ संशोधनों में रूप-भेद हो गया हो और सभा ने उन्हें उस रूप में स्वीकार किया हो।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं अपने माननीय मित्र को यह प्रक्रिया समझा सकता हूं? वही प्रक्रिया अपनाई जायेगी जिसका सभा प्रवर समिति के प्रतिवेदन पर विचार करते समय अनुसरण करती है। प्रवर समिति के प्रतिवेदन के भाग नहीं किये जाते और उसे एक पूर्ण प्रतिवेदन समझा जाता है। यदि सदस्य कोई संशोधन उपस्थित करते हैं और वह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो वह संशोधन समाविष्ट कर लिया जाता है। अन्यथा प्रवर समिति का प्रतिवेदन उसी प्रकार रहता है। यहां भी उसी प्रकार की प्रक्रिया अपनाई गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे विचार से इस उपनियम में इस आकस्मिक स्थिति के संबंध में उपबन्ध नहीं है। यदि मैं इस उपनियम को ठीक समझ पाया हूं तो, मेरे विचार से, इसमें उस स्थिति के संबंध में उपबन्ध नहीं हैं जब माननीय सदस्यों के संशोधनों को स्वीकार कर ले और इसके परिणामस्वरूप मसौदा-समिति के संशोधनों में रूप-भेद हो जाये। उप-नियम (6) में यह कहा गया है कि मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की हो वे सब उपस्थित किये गये समझे जायेंगे और अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले। मैं कह नहीं सकता कि जब मैंने अपना पहला संशोधन उपस्थित किया था और सभा के समक्ष अपना दृष्टिकोण रखा था तो उस समय मेरे माननीय मित्र यहां उपस्थित थे या नहीं। मैंने उसके द्वारा यह सुझाव प्रस्तुत किया था कि मसौदा-समिति की सिफारिशों पर किस प्रकार के भी संशोधनों को उपस्थित करने की आवश्यकता हो, चाहे वे आनुषंगिक हों या रस्मी हों या अन्य प्रकार आवश्यक हों, उन्हें उपस्थित करने का अधिकार प्रत्येक सदस्य को दिया जाना चाहिये। यदि मसौदा-समिति के संशोधनों में, माननीय सदस्यों के संशोधनों के स्वीकृत होने के फलस्वरूप रूप-भेद हो गया हो तो मसौदा-समिति के संशोधनों पर एक साथ मत नहीं लिया जा सकता। उन संशोधनों के समूहों को उठाना होगा और जिन संशोधनों में रूप-भेद हो जायेगा उन पर पृथक् मत लेना होगा। संशोधन संख्या 8 का उद्देश्य यही है।

मेरा संशोधन संख्या 9 इस प्रकार है:

> "प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (8) में से 'shall allot not more than two days for the consideration by the Assembly of all amendments after the motion referred to in sub-rule (2) has been carried and' [उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, सभी संशोधनों पर सभा के विचार करने के लिये दो दिन से अधिक नहीं देगा और] शब्द निकाल दिये जायें।"

यदि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी तो यह उपनियम इस प्रकार हो जायेगा:

> "अध्यक्ष, दिये हुए दिनों में से अन्तिम दिन को सभा की बैठक समाप्त करने के लिये उसने जो समय निश्चित किया हो उस समय, इत्यादि।"

श्रीमान, मुझे यह आशंका है, अथवा में यह कहूंगा कि यह मेरी धारणा है कि इस उप-नियम के पहले भाग से आपकी शक्तियों में अनुचित हस्तक्षेप होता है। मैं कह चुका हूं कि मैं सच्चे हृदय से इसके पक्ष में हूं कि अनावश्यक बहस तथा वाद-विवाद न हो और संविधान को शीघ्र पारित किया जाये। किन्तु क्या श्रीमान, यह आपकी शक्तियों का प्रश्न नहीं है और क्या इस विषय के संबंध में सभा अथवा उसका कोई भाग उन शक्तियों को छीन सकता है? यह अविवाद है कि आपको किसी बहस के लिये काल-सीमा निश्चित करने का अधिकार है। तब इस नियम में यह उल्लेख क्यों किया जाता है कि अध्यक्ष दो दिन से अधिक समय नहीं देगा? इस स्थान पर यदि "देगा" शब्द के स्थान पर "दे सकता है" शब्द

प्रयोग किये जाते तो वह अधिक शिष्ट भाषा होगी। क्या इस सभा के कार्य के संचालन के संबंध में अध्यक्ष को उच्चतम शक्ति प्राप्त नहीं है? वे सभा के कार्य का संचालन जिस प्रकार भी चाहें कर सकते हैं। यह कह कर कि वे दो दिन से अधिक समय नहीं देंगे उनके हाथ क्यों बांधे जा रहे हैं? इस संबंध में उन्हें स्वविवेक से निर्णय करने दिया जाये। यदि वे इसकी आवश्यकता समझें तो वे अवश्य ही तीन-चार दिन से भी अधिक समय दे सकते हैं। श्रीमान आपको स्मरण होगा कि नवम्बर 1948 में संविधान के प्रथम पठन के अवसर पर, बीमार पड़ने के पहले आप आरम्भ में संविधान के प्रथम पठन के लिये, अर्थात् डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर विचार करने के लिये केवल दो दिन देना चाहते थे। बाद को आपने देखा कि सभा अधिक विचार करना चाहती है और इसलिये उस प्रस्ताव पर विचार करने के लिये आपने दो दिन और दे दिये। संभव है कि सभा के अधिकांश सदस्यों की यह इच्छा हो कि अधिक समय दिया जाये। श्रीमान, आपको जो शक्तियां दी गई हैं उनके द्वारा आप सभा के कार्य का नियमन करेंगे। इस नियम को आखिर रखा ही क्यों जा रहा है? इससे आपका निर्णय सीमित हो जायेगा। अथवा इससे अध्यक्ष में निहित शक्तियों का निराकरण हो जायेगा अथवा वे कम हो जायेंगी। यह मैंने तीसरे संशोधन के संबंध में कहा है। मैं चाहता हूं कि इस संबंध में निर्णय करने की शक्ति अध्यक्ष को दी जाये कि संशोधनों पर विचार करने के लिये तथा उन्हें निबटाने के लिये कितना समय रखा जाये। इस संबंध में अध्यक्ष की शक्तियों को सीमित करने की आवश्यकता नहीं है।

मैं अब संशोधन संख्या 10 को उठाता हूं जो इस प्रकार है:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-दद का उप-नियम (2) निकाल दिया जाये।"

यह उपनियम नियम 38-दद के उपनियम (1) के अधीन उपस्थित किये हुए प्रस्ताव पर होने वाले वाद-विवाद में भाषणों के लिये काल-सीमा निश्चित करने के सम्बन्ध में है। मैं श्रीमती दुर्गाबाई का तथा इस सभा का ध्यान इस सभा द्वारा स्वीकृत नियमों के 34वें नियम की ओर दिलाता हूं जो इस प्रकार है: "सभा की प्रक्रिया तथा उसके कार्यसंचालन के सम्बन्ध में सभी मामलों में अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा।" मैं पूछता हूं कि क्या हमारे उद्देश्यों की पूर्ति के लिये यह पर्याप्त नहीं है? क्या एक अन्य नियम को, अर्थात् उपनियम (2) को, बनाने की अथवा पारित करने की आवश्यकता है? इस सभा के नियमों के इस 34वें नियम द्वारा अध्यक्ष को सभा के कार्य का अपनी इच्छानुसार नियमन अथवा संचालन करने के लिये पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई है और उसमें यह उपबन्धित है कि इस सम्बन्ध में उसका निर्णय हमेशा अन्तिम निर्णय समझा जायेगा। नियमों में यह छोटी बात क्यों रखी जा रही है कि वह काल-सीमा निश्चित करेगा। यह शक्ति उसे स्वत: प्राप्त है। इस छोटी-सी बात को क्यों रखा जा रहा है? यह एक छोटी बात है। यह उनके कार्य-संचालन के ढंग में आ जाती है। श्रीमान, आपने कई अवसरों पर काल-सीमा निश्चिम की है और कार्य को शीघ्र समाप्त करने के लिये आप उसे फिर निश्चित करेंगे। इस उपनियम (2) की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से मसौदा-समिति के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों की छोटी-छोटी बातें रखने की आदत के कारण सम्भवत: इसका यहां उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के अनावश्यक विवरण से हमारे नियम तथा हमारा संविधान बोझल हो जायेगा। इसलिए, मेरे विचार से, इस उपनियम को निकाल देना चाहिये।

[श्री एच.वी. कामत]

अब मैं अपने संशोधन संख्या 11 को उठाता हूं। वह इस प्रकार है:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-दद का उपनियम (3) निकाल दिया जाये।"

इस संशोधन के दो अंग हैं। पहले अंग के सम्बन्ध में मैं बोल चुका हूं। मैं सभा का ध्यान इस उपनियम की ओर दिलाता हूं जो इस प्रकार है: "अध्यक्ष नियम 38-द अथवा इस नियम के अधीन संविधान के पारण से सम्बन्धित किसी कार्यवाही के बारे में इन नियमों में से किसी को विस्तृत या निलम्बित कर सकता है।" यह एक हास्यास्पद और बिल्कुल ही अनावश्यक नियम है। श्रीमान, मैं यह कह चुका हूं कि सभा के कार्य का संचालन करने की शक्ति आपको स्वत: प्राप्त है और आप इस विषय का भी नियमन कर सकते हैं।

इस संशोधन का दूसरा अंग यह है। हम कई विषयों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखते हैं और अन्तिम उपबन्ध में एकाएक कहते हैं कि इन नियमों के होते हुए भी सभी कुछ हो सकता है। हमने नियम 38 तथा 38-दद में कई विषयों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं और अन्त में हम यह कहते हैं कि अध्यक्ष इनमें से किसी नियम को विस्तृत या निलम्बित कर सकता है। जब यह कहा जाता है कि अध्यक्ष इन्हें विस्तृत कर सकता है तो इन नियमों को बनाया ही क्यों जाता है? क्या अध्यक्ष स्वविवेक से निर्णय नहीं कर सकता है? यह नियम बिल्कुल ही अनावश्यक है और इसे निकाल देना चाहिये।

मेरा संशोधन संख्या 12 अभी मैंने जिन संशोधनों को उपस्थित किया है उनका, अर्थात् संशोधन संख्या 10 और 11 का, आनुषंगिक संशोधन है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:—

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-दद का उपनियम (1) नियम 38-द में उपनियम (10) के रूप में रखा जाये।"

नियम 38-दद का उपनियम (1) संविधान के तृतीय पठन के सम्बन्ध में है और उसमें यह उपबन्धित है कि कोई भी सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है कि सभा ने संविधान को जिस रूप में निश्चित किया है उस रूप में वह पारित किया जाये और इस प्रकार उपस्थित किये हुए प्रस्ताव के सम्बन्ध में अन्य किसी संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी। यह एक रस्मी उपबन्ध है और मेरे विचार से इसे नवीन नियम 38-दद में समाविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। नियम 38-द में जो उपबन्ध रखे गये हैं उनसे इसका आशय पूरा हो जाता है और इसकी आवश्यकता नहीं है कि इसे नियम 38-दद के एक उपबन्ध के रूप में पृथक् रूप से रखा जाये। ये सब नियम संविधान के अन्तिम पारण के सम्बन्ध में है। और इन विषयों के सम्बन्ध में नियमों की एक ही शृंखला पर्याप्त है। नियमों की दो शृंखलाओं की कोई आवश्यकता नहीं है।

अन्त में मैं केवल यह निवेदन करता हूं कि श्रीमती दुर्गाबाई के इस कथन से कोई भी असहमत नहीं हो सकता कि संविधान को शीघ्र पारित करना चाहिये। किन्तु यह एक गलत बात है कि विलम्ब के लिये इस सभा के सदस्यों को दोषी ठहराया जाये। इस सभा के सदस्य हमेशा इसके लिये इच्छुक रहे हैं कि इस संविधान को शीघ्र निबटा दिया जाये और बड़ी तत्परता से कार्य करते रहे हैं। सदस्यों ने संविधान पर अधिक काल तक वाद-विवाद जारी रखने पर कभी भी आपत्ति नहीं की। विलम्ब के लिये और चाहे कोई दोषी हो किन्तु इस सभा के सदस्य नहीं हैं। मैं यह नहीं बताना चाहता कि दोषी कौन हैं किन्तु यह कथन गलत है और अनुचित भी है कि इस सभा के सदस्य, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, संविधान के पारण में विलम्ब करने तथा इस कारण हमारा बहुत धन व्यय करने के लिये दोषी हैं। इस संविधान को शीघ्र पारित करने के लिये हम अपनी पूरी योग्यता से सहयोग करते रहे हैं और जब थोड़े समय पश्चात् हमारा कार्य समाप्त हो जायेगा तो हमें प्रसन्नता होगी।

***अध्यक्ष:** सभी संशोधन उपस्थित किये जा चुके हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैंने एक संशोधन की सूचना दी है।

***अध्यक्ष:** मुझे कोई सूचना नहीं मिली है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैंने आज प्रात: सूचना दी थी।

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-द के खण्ड (1) के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

'But the President shall have power to allow any other amendments to be moved according to his discretion.' (परन्तु अध्यक्ष को किन्हीं अन्य संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा स्वविवेक से देने की शक्ति प्राप्त होगी।)"

पहले नियम में हमने यह शब्द रखे हैं:

"जब यह प्रस्ताव कि संविधान पर विचार किया जाये पारित हो गया हो और संविधान-सम्बन्धी जो संशोधन उपस्थित किये गये हों उन पर विचार हो गया हो तब अध्यक्ष संविधान को, संशोधित रूप में, नियम 38-ठ के उपनियम (1) में निर्दिष्ट मसौदा-समिति के पास भेजेगा और आदेश देगा कि आवश्यकतानुसार खण्डों की पुनर्गणना की जाये, विरामों को फिर से लगाया जाये और हाशिये के लेखों को दुहराया जाये और पूरा किया जाये और संविधान सम्बन्धी ऐसे रस्मी अथवा आनुषंगिक अथवा अन्य संशोधनों की सिफारिश की जाये जिनकी आवश्यकता हो।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

श्रीमान, परिशिष्ट 1 में हमने कई ऐसी बातें रहने दी हैं जो उस समय तक बिल्कुल बदल जायेंगी जब हम तीसरे पठन के लिये यहां आयेंगे। सम्भव है कई प्रान्त मिल कर दो तीन प्रान्तों में ही परिणत हो जायें। मद्रास में सम्भव है केवल आंध्र और तामिलनाडु रहे और कर्नाटक के समान अन्य प्रान्तों का भी निर्माण हो जाये। यदि यह हुआ तो मसौदा-समिति को कुछ संशोधन उपस्थित करने पड़ेंगे। सदस्यों को भी इन संशोधनों पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिलना चाहिये। इसलिये यह आवश्यक है कि अध्यक्ष को अन्य संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा स्वविवेक से देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। श्रीमान, हमें इसका पूरा विश्वास है कि आप केवल उन संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा देंगे जिनकी उन परिवर्तनों के कारण आवश्यकता होगी जो अब से लेकर अगले सत्र तक होंगे। इसलिये, मेरे विचार से, यह एक बहुत महत्वपूर्ण संशोधन है, क्योंकि यदि इसे स्वीकार नहीं किया गया तो उस समय तक प्रान्तों की सीमाओं में जो परिवर्तन होंगे उनके सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने की आज्ञा अध्यक्ष सदस्यों को नहीं दे सकेगा। इसलिये मुझे आशा है कि मेरी बहिन श्रीमती दुर्गाबाई मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेंगी और जो नये प्रान्त बनेंगे उनके सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने का अवसर सदस्यों को प्रदान करेंगी।

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"नियम 38-द के उपनियम (2) के परन्तुक में 'three clear days' (पूरे तीन दिन) शब्दों के स्थान पर 'five clear days' (पूरे पांच दिन) शब्द रखे जायें।"

मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने सात दिन का सुझाव रखा है। तीन दिन रखना एक अजीब बात है। यह कहा गया है कि प्रत्येक संशोधन की सूचना कम से कम पूरे दो दिन पहले दी जानी चाहिये। यदि नवीन संविधान की प्रतियां हमें सत्र आरम्भ होने के केवल तीन दिन पहले मिलीं तो उन्हें पढ़ने तथा संशोधनों को भेजने के लिये हमें केवल एक दिन मिलेगा। हमारे लिये यह सब करना असम्भव हो जायेगा। हमें कम से कम तीन दिन मिलने चाहियें। अच्छा तो यह होता कि हमें सात दिन दिये जाते किन्तु मैं जानता हूं कि इतना समय देना कठिन हो जायेगा। इसलिये मैं सात दिन दिये जाने के लिये जोर नहीं देता किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि कम से कम पांच दिन जाने चाहियें।

श्रीमान, आपने बताया है कि संविधान का अन्तिम मसौदा इस महीने के अन्त तक छपने के लिये भेज दिया जायेगा और वह पांच या छः दिन में तैयार हो जायेगा जिससे पांच या छः नवम्बर तक छपी हुई प्रतियां उपलब्ध हो जायेंगी और फिर दो तीन दिन में वे सदस्यों के पास भेजी जा सकेंगी। यदि वे हमारे दिल्ली के पते से भेजी गईं तो सम्भवतः वे हमें उसी दिन मिल जायें किन्तु जो लोग उन्हें अपने घर पर चाहेंगे उन्हें वे तीन दिन में मिलेंगी। सदस्यों को कम से कम तीन या चार दिन मिल जायेंगे। इसलिये मेरे विचार से, इस स्थल पर तीन दिन के स्थान पर पांच दिन का उल्लेख होना चाहिये।

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (3) में 'and at this stage' (और इस अवसर पर) शब्दों से आरम्भ होने वाले वाक्यांश से लेकर इस उपनियम के अन्त तक के शब्दों के स्थान पर यह रखा जाये:

'and at this stage the debates shall be controlled by the President according to his discretion' (और इस अवसर पर अध्यक्ष वाद-विवाद पर स्वविवेक से नियंत्रण रखेगा।)"

वर्तमान उपबन्ध बहुत ही अनुपयुक्त है। जब मसौदा-समिति किसी संशोधन को उपस्थित करे तो सदस्यों को उस पर अपना मत प्रकट करने का अधिकार होना चाहिये। हमने अध्यक्ष को स्वविवेक से निर्णय करके सदस्यों को बोलने की आज्ञा देने की शक्ति दी है। यदि कोई सदस्य किसी सारवान संशोधन का सुझाव रखे तो अध्यक्ष को उसे उपस्थित करने की आज्ञा देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। मुझे आशा है कि श्रीमती दुर्गाबाई इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगी।

मेरा अगला संशोधन इस प्रकार है:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (6) में से 'and it shall not be necessary for the President to put each of those amendments separately to vote' (और अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले) शब्द निकाल दिये जायें।"

यह संशोधन उपस्थित किया जा चुका है। मैं उसका केवल समर्थन करना चाहता हूं।

उचित यही है कि प्रत्येक संशोधन पर मत लिया जाये। इसमें अधिक समय नहीं लगेगा।

इसके अतिरिक्त मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूं कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (4) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये: 'except by the President according to his discretion' (उस दशा के अतिरिक्त जब अध्यक्ष ने स्वविवेक से आज्ञा दी हो)"

प्रस्तावित उपनियम 4 में कहा गया है कि:

"उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, कोई भी सदस्य किसी रस्मी संशोधन को अथवा किसी ऐसे संशोधन के आनुषंगिक संशोधन को उपस्थित कर सकता है जिसकी मसौदा-समिति ने उपनियम (1) के अधीन

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

उसके पास संविधान भेजे जाने पर किसी उपबन्ध के सम्बन्ध में सिफारिश की हो, किन्तु उसे किसी अन्य संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी।"

मैंने यह सुझाव रखा है कि इसमें "उस दशा के अतिरिक्त जब अध्यक्ष ने स्वविवेक से आज्ञा दी हो" शब्द जोड़ दिये जायें। इसके फलस्वरूप सारवान संशोधन भी उपस्थित किये जा सकेंगे, यद्यपि वे अध्यक्ष के स्वविवेक से आज्ञा देने पर ही उपस्थित किये जा सकेंगे। सम्भव है कि संशोधन केवल आनुषंगिक अथवा रस्मी ही न हों और ऐसे संशोधन भी हों जो सारवान हों। इसलिये अध्यक्ष को उन्हें भी उपस्थित करने की आज्ञा देने की शक्ति प्रदान करनी चाहिये। मैं इस संशोधन द्वारा सदस्यों को कोई अधिकार नहीं दे रहा हूं। किन्तु अध्यक्ष को स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति प्रदान कर रहा हूं। मुझे आशा है कि इस संशोधन पर आपत्ति नहीं की जायेगी।

इसके अतिरिक्त प्रस्तावित नियम 38-दद के सम्बन्ध में भी मैं दो संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। उपनियम दो में यह प्रस्तावित किया गया है कि "अध्यक्ष उपनियम (1) के अधीन उपस्थित किये हुए प्रस्ताव पर होने वाले वाद-विवाद में भाषणों के लिये काल-सीमा निश्चित कर सकता है।" इसका अर्थ यह है कि सब संशोधनों को निबटाने के पश्चात् तृतीय पठन के अवसर पर काल-सीमा निश्चित की जायेगी। अच्छा तो यह होता कि कोई काल-सीमा नहीं रखी जाती किन्तु यह सम्भव नहीं है। इसलिये अपने संशोधन में मैंने यह सुझाव रखा है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-दद के उपनियम (2) के स्थान पर यह रखा जाये:

'(2) Members desirous of participating in the debate on a motion made under sub-rule (1) shall notify their names to the President at least 36 hours before the motion is made and the President may fix a time limit on the duration of speeches on the motion after receiving all such names, but the time limit shall not be less than 40 minutes. The President shall have power to give longer time to any speaker in exceptional circumstances, and he may also order a speaker to cut short his speech according to his discretion.'

[(2) उपनियम (1) के अधीन उपस्थित किये गये प्रस्ताव पर होने वाले वाद-विवाद में जो सदस्य भाग लेना चाहेंगे वे प्रस्ताव उपस्थित होने से कम से कम 36 घंटे पूर्व अपने नामों की सूचना अध्यक्ष को देंगे

और अब अध्यक्ष को ये सब नाम मिल जायेंगे तब वह भाषणों की काल-सीमा निश्चित करेगा किन्तु वह काल-सीमा 40 मिनट से कम की नहीं होगी। विशेष स्थिति में अध्यक्ष किसी वक्ता को अधिक समय दे सकेगा और वह किसी वक्ता को स्वविवेक से यह आदेश भी दे सकेगा कि वह अपने भाषण को शीघ्र समाप्त करे।]"

श्रीमान, मैं केवल यह चाहता हूं कि जो सदस्य वाद-विवाद में भाग लेना चाहें उन्हें इसके लिये अवसर मिलना चाहिये। प्रस्ताव उपस्थित करने के 36 घंटे पूर्व उन्हें अपने नाम भेजने का अवसर मिलना चाहिये। इससे श्रीमान, आपको विदित हो जायेगा कि कौन से सदस्य विचार-विमर्श में भाग लेना चाहते हैं। मेरा यह सुझाव है कि प्रत्येक वक्ता को कम से कम 40 मिनट दिये जाने चाहिये क्योंकि उसे पूरे संविधान के सम्बन्ध में बोलना होगा। आप यदि यह देखें कि कोई सदस्य महत्वपूर्ण तर्क उपस्थित कर रहा है अथवा सभा का समय नष्ट कर रहा है तो आप स्वविवेक से उसे अधिक समय दे सकते हैं, अथवा कम समय दे सकते हैं किन्तु जो कोई व्यक्ति वाद-विवाद में भाग लेना चाहे उसे उसके लिए अवसर मिलना चाहिये। यदि मेरा सुझाव स्वीकार कर लिया गया तो किसी को कोई शिकायत नहीं रहेगी। आपको यह विदित होगा कि कितने वक्ता भाग लेंगे और आप उसके अनुसार समय देंगे। इस प्रकार वाद-विवाद यथोचित रूप से हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त मैंने खण्ड (2क) में यह भी कहा है कि:

" 'The President shall have power to extend the duration of the daily sittings of the Assembly' (अध्यक्ष को सभा के प्रतिदिन की बैठकों के समय को बढ़ाने की शक्ति होगी।)"

इस समय हम प्रात: तीन घंटे बैठते हैं और दोपहर के पश्चात् केवल दो घंटे बैठते हैं और उसका कारण यह है कि हमारे दल की बैठकें होती हैं और अन्य बैठकें भी होती हैं। किन्तु अन्तिम पठन अर्थात् तृतीय पठन आरम्भ करने तक यह सब समाप्त हो जायेंगी और कोई कारण नहीं है कि हम अधिक समय तक नहीं बैठ सकें। श्रीमान, यह हम सभी को विदित है कि कामन्स सभा की बैठकें नौ दस घंटे तक होती हैं। यदि हम निश्चित समय में अपना संविधान समाप्त कर देना चाहते हैं तो हमें अपनी बैठकों का समय बढ़ाना चाहिये और आवश्यकता होने पर आठ या दस घंठे तक भी बैठना चाहिये। मैं चाहता हूं कि आपको यह शक्ति प्राप्त हो जाये ताकि आप बैठकों के समय को बढ़ा सकें। आपको विदित होगा कि वाद-विवाद में कितने वक्ता भाग लेंगे और आप इसका भी हिसाब लगा सकेंगे कि कितने समय की आवश्यकता होगी। इसे ध्यान में रखकर आप बैठकों का समय बढ़ा सकते हैं। मेरी इच्छा तो यह थी कि विधान सभा का सत्र 14 तारीख से आरम्भ होता और संविधान का अन्तिम पठन उसके पश्चात् आरम्भ किया जाता ताकि उसे पढ़ने के लिये, तथा छूटी हुई बातों तथा विराम आदि को देखने के लिये, हमें अधिक समय मिल जाता। किन्तु मुझे आशा है कि मसौदा-समिति शीघ्र कार्य में लग जायेगी और हमारे लिये सभी कुछ तैयार रखेगी।

श्रीमान, श्रीमती दुर्गाबाई के इस कथन से मुझे कुछ भी प्रसन्नता नहीं हुई कि हम इस कार्य पर बहुत धन नष्ट कर चुके हैं। पिछले तीन वर्षों में हमने जितने

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

भी कार्य किये हैं उनमें संविधान के निर्माण का कार्य सबसे महान है। हमने कितने ही जटिल प्रश्नों को हल किया है और उसे ध्यान में रखते हुए जितना समय लगा है और जितना धन व्यय हुआ है वह अधिक नहीं है। श्री कामत ने हमें बताया कि हमने इस संविधान पर लगभग 60, 70 लाख रुपया व्यय किया है। यह धन तीन वर्षों में व्यय हुआ है और यह कोई बड़ी धन-राशि नहीं है। अपने देश के इतिहास में आज प्रथम बार हम एक लोकतंत्रात्मक संविधान स्वीकार कर रहे हैं और देश के विभिन्न भागों को एक ही संघ में समाविष्ट करने में समर्थ हुए हैं। इसलिये मेरे विचार से इसमें जो समय लगा है और जो धन व्यय हुआ है वह नष्ट नहीं हुआ है। सब कार्य इन बैठकों में ही सम्पन्न नहीं हुआ है। बहुत सा काम इस सभा के बाहर मसौदा समिति ने समिति की बैठकों में किया है। मैं यह नहीं चाहता कि अब अन्त में हम किसी काम को जल्दी में करें ताकि हमारे विरोधी यह न कह सकें कि हमने संविधान जल्दी में पारित किया है। इसलिये मेरा निवेदन है कि मेरे संशोधनों की आवश्यकता है और मुझे आशा है कि श्रीमती दुर्गाबाई उन्हें स्वीकार कर लेंगी।

***डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमय्या** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अब हम अपनी यात्रा की अन्तिम मंजिल के निकट आ पहुंचे हैं। जब रेलगाड़ी सीधी पटरियों पर चलती है तो वह नियमित ढंग से चलती है और अधिक से अधिक तेज चलकर फिर रुक जाती है। रेलवे स्टेशन के निकट आने पर उसे टेढ़ी-मेढ़ी पटरियों पर चलना होता है और उसके अगल-बगल भी पटरियां होती हैं तथा स्टेशन का सुपरिंटेंडेंट अपने कमरे में नकशे पर पटरियों के प्रत्येक जोड़ को देखता रहता है और वहां से गाड़ी को ठीक रास्ते पर रखता है। इसी दृष्टि से हम नियमों में प्रस्तावित परिवर्तनों को देखना है। हो सकता है कि वे रस्मी अथवा अनावश्यक प्रतीत हों किन्तु अब चूंकि हम अन्तिम मंजिल के निकट हैं इसलिये सदन के प्रत्येक सदस्य को उनकी ओर ध्यान देना चाहिये।

इस दृष्टि से मैंने उनकी शब्दावली की परीक्षा है। मेरे विचार से पैरा (1) में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है। उसमें कहा गया है कि:

> ".....और हाशिये के लेखों को दुहराया जाये और पूरा किया जाये और संविधान-सम्बन्धी ऐसे रस्मी अथवा आनुषंगिक अथवा अन्य आवश्यक संशोधनों की सिफारिश की जाये।"

"अन्य" और "आवश्यक" दोनों शब्दों के कारण मैं कुछ कठिनाई का अनुभव कर रहा हूं। इस स्थल पर "आवश्यक" शब्द जानबूझ कर रखा गया है। यदि उद्देश्य यह है कि अर्थ पूरा किया जाये तो "अन्य" शब्द से भिन्न अर्थ हो जाता है। इसलिये मेरा निवेदन है कि यदि आपका आशय "अथवा आवश्यक संशोधन" से है तो इस आवश्यकता का स्पष्ट शब्दों में वर्णन करना चाहिये। आवश्यकता अधिक भी हो सकती है और कम भी हो सकती है। यदि यह कहा जाये कि आवश्यकता के अन्तर्गत वे सब दशाएं आ जाती हैं जो मसौदे को मसौदा-समिति

के पास भेजने के पश्चात् उत्पन्न हुई हों तो इस शब्द से आशय पूरा हो जायेगा और संशोधन केवल रस्मी अथवा आनुषंधिक नहीं रह जायेगा। किन्तु "आवश्यक" शब्द का यह विस्तृत अर्थ करने में "अन्य" शब्द बाधक सिद्ध होता है। इसलिये श्रीमान, मैं चाहता हूं कि अध्यक्ष महोदय अथवा कोई सदस्य महोदय जो अधिकृत रूप से बता सकें हमें बतायें कि "आवश्यक" शब्द का क्या अर्थ है। यदि उसका अर्थ वही है जो मैंने किया है तो ठीक ही है किन्तु यदि वह अर्थ नहीं तो इस शब्द की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि इसका वही अर्थ है तो "अन्य" शब्द को कृपा करके निकाल दिया जाये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि नियमित रूप से मैंने किसी संशोधन की सूचना नहीं दी है। यह संशोधन सारवान तो है किन्तु है यह शाब्दिक ही। मुझे विश्वास है कि इन नियमों की प्रस्ताविका इसे स्वीकार कर लेंगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, अपनी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मैं अपने माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद की एक दो आलोचनाओं का उत्तर देना चाहता हूं। यद्यपि, मैं देखता हूं कि वे सभा में उपस्थित नहीं हैं।

श्रीमान, संचालन समिति ने नियमों में इस संशोधन का प्रस्ताव इस उद्देश्य से किया है कि तृतीय पठन के अवसर पर सभा का कार्य शीघ्रता से तथा सुविधा के साथ हो और अनावश्यक रूप से वाद-विवाद में भी किसी प्रकार का निर्बन्धन न लगे। श्रीमान, तृतीय पठन के अवसर पर समय का बहुत महत्व होगा। हमें आशा है कि आप सम्भवत: 14 नवम्बर से ही सत्र आरम्भ करने का निर्णय करेंगे। इस दशा में हमें 26 नवम्बर तक संविधान का तृतीय पठन समाप्त कर देना होगा क्योंकि इस सभा की बैठक अन्यत्र 28 नवम्बर से होने जा रही है। तृतीय पठन के लिये कार्यक्रम निश्चित करने में इन सभी बातों की ओर ध्यान दिया गया है। इसलिये मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित रस्मी संशोधनों को स्वीकार करने के समान प्रारम्भिक कार्यों के लिये कुछ ही दिन रखे गये हैं। मसौदा-समिति को संविधान को दुहरा कर उसकी एक साफ प्रति भी तैयार करनी होगी। नियम 38-द के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसके द्वारा यह परिसीमन रखने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार के किसी विषय के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय आप ही को करना चाहिये, भले ही नियमों में हम यह निर्धारित कर दें कि इतने दिन दिये जाने चाहियें। इस विषय के सम्बन्ध में आप ही स्वविवेक से अन्तिम निर्णय करेंगे। स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति नियम 38-दद से और भी बढ़ जाती है। इसका निर्णय आप ही करेंगे कि नियम में जितना समय रखा गया है उतना ही दिया जाये अथवा अधिक समय दिया जाये। स्वविवेक से निर्णय करने की आपकी शक्ति को सीमित करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु मेरे विचार से हमें एक कार्यक्रम के अनुसार, एक योजना के अनुसार, कार्य करना चाहिये। इस समय हमारे ध्यान में यह योजना आई है कि संविधान की एक साफ प्रति बनाने में मसौदा-समिति हमारे सामने जिन प्रारम्भिक परिवर्तनों को रखे उन पर विचार-विमर्श करने के लिये हमें कुछ दिन अलग रखने चाहियें और फिर तृतीय पठन के भाषण आरम्भ करने चाहियें जिनको इस सभा के सदस्य बहुत महत्व देते हैं।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि जब तक तृतीय पठन आरम्भ किया जायेगा तब तक इस सभा में सारे देश का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो जायेगा और उस समय हमारे इस कार्य की प्रशंसा होगी क्योंकि वह एक ऐसा कार्य है जो पीढ़ियों तक स्थाई रहेगा। इस कार्य में जिन माननीय सदस्यों का हाथ रहा है वे अवश्य ही बोलना चाहेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहस करते समय हम स्वयं बता चुके हैं कि हमारे मार्ग में कौन-सी कठिनाइयां हैं और हमने एक प्रकार से उन लोगों के लिये इस मार्ग को प्रकाशित कर दिया है तो भविष्य में इस संविधान को प्रयोग में लायेंगे। इसलिये तृतीय पठन के अवसर पर वाद-विवाद के लिये जितने भी दिन अलग रखे जा सकें उतने अलग रखने चाहियें। यदि प्रारम्भिक बातों के लिये अधिक समय दिया गया तो तृतीय पठन के वाद-विवाद के लिये अधिक समय नहीं दिया जा सकेगा, यद्यपि बहुत से माननीय सदस्य उसमें भाग लेना चाहेंगे। इसलिये मेरे माननीय मित्र श्री कामत तथा प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना को इसे स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि वे प्रारम्भिक वाद-विवाद के लिये अधिक समय रखना चाहते हैं।

श्री कामत ने एक बात कही है जिसे मैं अभी भी नहीं समझ पाया हूं, यद्यपि जब वे बोल रहे थे तो मैंने आपकी अनुमति से बीच में बोलकर उसकी व्याख्या की थी। जैसा कि मैंने उस समय उन्हें बताया था, इस स्थल पर यह कल्पना की गई है कि यदि आप इसके लिये सहमत हो गये कि सब कुछ मसौदा समिति के पास भेजा जाये और वह एक साफ प्रति तैयार करे, तथा आवश्यक आनुषंगिक संशोधनों को भी करे, और अन्य आवश्यक संशोधनों को भी करे, तो हम आशा करते हैं कि हम संविधान को तथा संशोधनों को पुस्तक रूप में निकाल सकेंगे और उसके साथ एक प्रतिवेदन भी जोड़ सकेंगे जिसमें, अथवा जिसके परिशिष्ट में, छोटे बड़े सभी परिवर्तनों की व्याख्या की जायेगी जिससे सभा सीधे-सीधे समझ सकेगी कि कौन से संशोधन किये गये हैं। यदि सदस्य यह देखेंगे कि वे इन संशोधनों को, अथवा इनमें से कुछ को, स्वीकार नहीं कर सकते तो वह संशोधन उपस्थित कर सकते हैं, किन्तु शर्त यह है कि आप यह समझें कि वे आवश्यक हैं और केवल मसौदे की शुद्धि के सम्बन्ध में अथवा भिन्न शब्दों में समान आशय के नहीं हैं। इस दशा में मसौदा समिति ने जो संशोधन उपस्थित किये हों वही पर्याप्त समझे जाने चाहियें। आप स्वयं इसका निर्णय करेंगे कि किन संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये।

हमने जिस प्रक्रिया की कल्पना की है वह यह है कि जैसे पहले हमने संविधान के मसौदे पर विचार किया था वैसे ही हम इस पूरे मसौदे पर विचार करें और आपके विवेक के अधीन रहकर सदस्यों को संशोधन उपस्थित करने का अधिकार हो। उन संशोधनों के स्वीकार या अस्वीकार होने पर तदनुसार कार्यवाही होगी। यदि कोई संशोधन उपस्थित नहीं किये गये तो मसौदा समिति का प्रस्ताव बिना संशोधन के ही स्वीकार कर लिया जायेगा। इस दशा में जब कि इस सभा के सदस्यों का यह विचार हो कि मसौदा-समिति ने जिन परिवर्तनों का सुझाव रखा है और जिन्हें संविधान की साफ प्रति में समाविष्ट कर लिया गया है उन्हें स्वीकार कर लिया जाये और उनके विपरीत वे किन्हीं संशोधनों को उपस्थित न करें तो मसौदा

समिति के किये हुए प्रत्येक परिवर्तन पर मत लेकर निर्णय करने की प्रक्रिया का फिर अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये।

श्रीमान, हमारे आदरणीय नेता डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने जो प्रश्न उठाया है उसके सम्बन्ध में इस संशोधन का मसौदा तैयार करने वाले एक सदस्य के नाते मैं सभा से क्षमा चाहता हूं और यह निवेदन करता हूं कि हमने इसकी पूर्ण रूप से परीक्षा नहीं की है कि "अन्य" शब्द का क्या प्रभाव होगा। और मेरी अपनी यह धारणा है कि डॉक्टर महोदय का निर्वचन सही निर्वचन है। हमने "आवश्यक संशोधन" शब्द इस उद्देश्य से रखे कि मसौदा-समिति सभा के समक्ष जिस साफ प्रति को रखेगी उसमें यदि आप "आवश्यक संशोधनों" की आवश्यकता समझें तो आप "आवश्यक संशोधनों" को उपस्थित करने की आज्ञा दे सकते हैं। मेरा आपसे तथा सभा से अनुरोध है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या का सुझाव स्वीकार कर लिया जाये और नियम 38-द के खण्ड (1) में प्रयुक्त "अन्य आवश्यक संशोधनों" पदावली में से "अन्य" शब्द निकाल दिया जाये।

जो अन्य संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनके गुण-दोषों पर मैं अपने विचार व्यक्त नहीं करना चाहता। मेरे विचार से उनके सम्बन्ध में मेरी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई बोलेंगी। किन्तु मैं यह कहूंगा कि सम्भवत: मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन संख्या 2 के अतिरिक्त, जिसमें मेरे मित्र ने "खण्ड" के स्थान पर "अनुच्छेद, खण्ड, और उपखण्ड" शब्द रखे हैं अन्य किसी संशोधन को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। इस संशोधन से शब्दावली अवश्य अच्छी हो जाती है। इसके अतिरिक्त डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने भी जिस संशोधन का सुझाव रखा है उसे भी स्वीकार कर लिया जाये। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद, श्री कामत और प्रो. सक्सेना ने जिन अन्य संशोधनों का सुझाव रखा है उन्हें स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। किन्तु यह मूल संशोधन की प्रस्ताविका की इच्छा पर निर्भर है कि वे मेरे सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करें। मुझे आशा है कि सभा यह अनुभव करेगी कि तृतीय पठन के लिये एक कार्यक्रम निश्चित करने की आवश्यकता है क्योंकि उस अवसर पर हमें सदस्यों को आवश्यक संशोधनों को उपस्थित करने के लिये अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देनी होगी। साथ ही अन्तिम बार सभा के वाद-विवाद में भाग लेने तथा अपना पूर्ण योग देने के लिये हमें अधिक से अधिक सदस्यों को अवसर देना होगा। इसी को दृष्टि में रखकर इस प्रकार का नियम बनाया गया है।

अब मैं दो शब्द उन शक्तियों के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं जो अध्यक्ष में सन्निहित हैं और जिनका हमने निश्चित शब्दों में उल्लेख किया है। यह उल्लेख विशेषतया नियम 38-दद में किया गया है। मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने खण्ड (2) और (3) पर इस कारण आपत्ति की है कि ये शक्तियां सन्निहित हैं और इनका निश्चित शब्दों में उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। यदि स्थिति यह है तो उनका निश्चित शब्दों में उल्लेख करने से भी कोई हानि नहीं होगी। इन शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख करने से हम कई ऐसी कठिनाइयों को भी दूर कर सकते हैं जो पहले कई अवसरों पर, विशेषतया पिछले सत्र में उठ खड़ी हुई थीं। नियमों की कठोरता के कारण हमें कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा था। अध्यक्ष

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

में जो अत्यधिक शक्तियां निहित हैं उनसे वे बिना सभा की मंजूरी के लाभ उठाना नहीं चाहते थे। श्रीमान, मेरी यह धारणा है कि तृतीय पठन के अवसर पर अध्यक्ष को इस प्रकार की तथा निश्चित शक्तियों को देने की आवश्यकता पड़ेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे माननीय मित्र डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने जिस "अन्य" शब्द को निकालने का प्रस्ताव किया है उससे वास्तव में कैसा भ्रम उत्पन्न होता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** भ्रम इस कारण उत्पन्न होगा कि आरम्भ में उद्देश्य यह था कि केवल रस्मी और आनुषंगिक संशोधन उपस्थित किये जायेंगे। अब से सम्भवत: 14 नवम्बर तक जो कुछ होगा यदि उसके सम्बन्ध में किसी अन्य प्रकार के संशोधनों की आवश्यकता हुई और अध्यक्ष का यह विचार हुआ कि इस प्रकार के रूप-भेद की आवश्यकता है तो माननीय सदस्यों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि इसका निर्णय अध्यक्ष ही करेगा कि कौन से संशोधन आवश्यक है। तदन्तर वे पारित किये जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** "अन्य" शब्द के सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हमारे आदरणीय नेता डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या की यह धारणा है कि अन्य शब्द "आवश्यक संशोधनों" का विशेषण बेकार में बनाया गया है और वास्तव में वह उनके पहले आने वाले शब्दों का अर्थात् "रस्मी अथवा आनुषंगिक" शब्दों का विशेषण हो जाता है और आवश्यक शब्द का विशेषण नहीं होता। मैं डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या के निर्वचन से सहमत हूं। यदि अध्यक्ष उससे सहमत हो तो वह सभा के सामने यह प्रस्ताव रख सकता है कि वह उसके सम्बन्ध में निर्णय करे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अनावश्यक और बेकार संशोधनों के सम्बन्ध में अध्यक्ष को पूर्ण शक्ति प्राप्त है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह हमेशा ही हमारे ध्यान में रहा है। यह संविधान सभा एक सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न निकाय है और अध्यक्ष को ऐसी सर्वोच्च शक्तियां प्राप्त हैं जिन पर नियमों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु फिर भी हमने यह अनुभव किया कि इसका निश्चित शब्दों में उल्लेख कर देना चाहिये कि वह इन शक्तियों को क्यों और कैसे प्रयोग करेगा। हमने यही उचित समझा है कि अपने नियमों की सीमा के अन्दर रहते हुए जहां तक हो सके इसका उल्लेख कर दिया जाये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यदि मसौदा-समिति कोई ऐसी गलती करे जो स्पष्ट हो और जो एक बड़ी गलती हो तो.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हमें भरोसा है कि जो कमी रह जायेगी उसे मि. नज़ीरुद्दीन अहमद पूरा कर देंगे।

***श्री कला वेंकट राव** (मद्रास : जनरल): मैं चाहता हूं कि मेरे एक प्रश्न का उत्तर दिया जाये। भाषा पर आधृत प्रान्तों का प्रश्न अभी हल नहीं किया गया है। उद्देश्य यह दिखाई देता है कि यदि आवश्यकता हुई तो तृतीय पठन के अवसर पर अनुसूची को संशोधित किया जाये। इन नियमों का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा? तृतीय पठन के अवसर पर किसी संशोधन द्वारा हम भाषा पर आधृत नवीन प्रान्त कैसे बना सकेंगे और जिस प्रक्रिया का प्रस्ताव श्रीमती दुर्गाबाई ने रखा है, और जिसका स्पष्टीकरण श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने किया है, उसमें इस सम्बन्ध में किस प्रकार का उपबन्ध है? श्रीमान, मैं चाहता हूं कि यह स्पष्ट कर दिया जाये कि क्या अनुसूची 1 में कुछ राज्यों को प्रविष्ट करने के सम्बन्ध में किसी संशोधन को उपस्थित किया जा सकेगा और क्या तदनुसार सारे अधिनियम में आनुषंगिक संशोधन किये जा सकेंगे। मैं यह चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में इन नियमों में स्पष्ट शब्दों में कोई उपबन्ध रख दिया जाये। मेरी यही प्रार्थना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं पहले से इसका अनुमान नहीं लगाना चाहता कि माननीय अध्यक्ष महोदय अनुसूची 1 के सम्बन्ध में कैसा वक्तव्य देंगे किन्तु मेरा निवेदन है कि यह प्रश्न तथा अन्य प्रश्न भी "आवश्यक संशोधनों" शब्दों के अधीन उठाये जा सकेंगे। यदि सभा डॉ. पट्टाभी सीतारमय्या के सुझाये हुए संशोधनों को स्वीकार कर लेगी तो इस नियम का आशय स्पष्ट हो जायेगा। तब आनुषंगिक तथा आवश्यक दोनों प्रकार के संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मेरे माननीय मित्र को विदित है कि विधान सभा के नियमों के अधीन प्रथम पठन तथा तृतीय पठन के अवसरों पर भाषणों के लिये कोई काल-सीमा नहीं होती? इस दशा में तृतीय पठन के अवसर पर हम सदस्यों को जितने समय तक वे चाहें उन्हें बोलने क्यों न दें?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरे मित्र को इस सम्बन्ध में जानकारी नहीं है। विधान सभा के वर्तमान नियमों में वित्त-विधेयक के सम्बन्ध में एक काल-सीमा निश्चित की गई है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं कह नहीं सकता कि अध्यक्ष महोदय ने कोई नये नियम बनाये हैं या नहीं। किन्तु यह मैं जानता हूं कि वे नियम सभा के समक्ष नहीं रखे गये हैं। जहां तक मुझे विदित है, कोई काल-सीमा नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि कोई वक्ता अप्रासंगिक बातें कर रहा हो अथवा उन्हीं तर्कों को बार-बार दुहरा रहा हो, अथवा सभा का समय बेकार में नष्ट कर रहा हो तो अध्यक्ष उसे रोक सकता है।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव पर मत लेने के पूर्व मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। जैसाकि श्री कृष्णमाचारी बता चुके हैं, तृतीय पठन आरम्भ करने के पूर्व हमें सारी स्थिति पर विचार करना होगा। केवल हम दो सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकते। एक सीमा इस ओर है और दूसरी उस ओर। अर्थात् 14 नवम्बर के पूर्व कार्य आरम्भ करना सम्भव नहीं है और 25 तारीख के आगे अथवा अधिक से अधिक 26 तारीख से आगे इस बहस को जारी रखना भी सम्भव नहीं है क्योंकि संविधान-सभा (विधाई) की बैठक 28 तारीख से होने जा रही है।

***श्री आर.के. सिधवा:** उसके पश्चात् भी हम रात की बैठकें कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** उन बारह दिनों में और यदि शनिवार की भी बैठक की जाये तो तेरह दिनों में, हमें पूरा तृतीय पठन समाप्त कर देना होगा। नियमों के इस संशोधन में यह समय-सारिणी निश्चित की गई है और हमें इन काल-सीमाओं का ध्यान रखना है। यदि हम इस ओर संशोधनों पर अधिक समय लगायेंगे तो हमें सामान्य वाद-विवाद के लिये उतना ही कम समय मिलेगा। यदि हम किसी वक्ता को अधिक समय दें तो हम अधिक वक्ताओं को अवसर नहीं दे सकेंगे। यदि हम संशोधनों को निबटाने के लिये तीन दिन अलग रखें—क्योंकि दो दिन का सुझाव रखा गया है और यदि संशोधनों के महत्व को देखते हुए एक दिन और रखें—तो केवल नौ दिन बचेंगे। अन्तिम दिन मैं कुछ रस्मों के लिये अलग रखना चाहता हूं। इसलिये केवल आठ दिन रह जायेंगे। चालीस मिनट प्रति वक्ता के हिसाब से साठ वक्ताओं को बोलने का अवसर मिल सकेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** सभा प्रति दिन कितने घंटों के लिये समवेत् होगी?

***अध्यक्ष:** पांच घंटे के लिये।

***श्री आर.के. सिधवा:** हम दस घंटे बैठ सकते हैं।

***अध्यक्ष:** दस घंटे का अर्थ होगा कि 120 वक्ता बोल सकेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हम दस घंटे बैठने के लिये तैयार हैं।

***अध्यक्ष:** यह आप पर निर्भर है। आप जितने समय तक बैठना चाहें बैठें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।

***श्री एच.वी. कामत:** हम आठ घंटे बैठें।

***अध्यक्ष:** हम इसका निश्चय उसी समय करेंगे। मैं इस समय इस सम्बन्ध में निश्चय नहीं कर रहा हूं कि हम कितने घंटे बैठेंगे। मैं केवल हिसाब लगा रहा हूं। सभा कितने घंटे तक समवेत् रहे इस सम्बन्ध में वह स्वयं निर्णय करेगी। मैं यह वचन देता हूं कि मैं उसके मार्ग में बाधा नहीं डालूंगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गणपूरक का प्रश्न रहेगा। (*हास्य*) और यह मेरी शक्ति से बाहर है कि मैं सदस्यों को सभा में आने के लिये बाध्य करूं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैं एक प्रश्न के सम्बन्ध में आपका निर्णय अथवा माननीय प्रस्ताविका का उत्तर जानना चाहता हूं। संयुक्त प्राप्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में भी संशोधन आ रहे हैं। मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप तृतीय पठन के अवसर पर उन पर विचार करने की आज्ञा देंगे।

***अध्यक्ष:** मैं केवल यह कह सकता हूं कि यदि नाम बदलने के बारे में सामान्यत: सभी सहमत हों तो मैं बाधा नहीं डालूंगा। यदि वाद-विवाद हुआ और विभिन्न प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये तो जो नाम दिया गया है उसी नाम को मैं रहने दूंगा।

***श्री महावीर त्यागी:** यदि सभा इस प्रश्न को संयुक्त प्रान्त के सदस्यों के निर्णय के लिये छोड़ दे तो?

***अध्यक्ष:** मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी किन्तु मैं स्वयं संयुक्त प्रान्त के नाम के सम्बन्ध में हस्तक्षेप नहीं करना चाहूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** नाम बदलने का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है और मेरा यह सुझाव है कि इस सभा के सदस्यों को इस सम्बन्ध में निर्णय करने की स्वतंत्रता देना उचित नहीं होगा। इसका अधिकार सम्बन्धित प्रान्त की सरकार तथा वहां के विधान-मंडल को देना चाहिये। यहां बहस करके हम किसी प्रान्त का नाम नहीं बदल सकते। इस विषय पर साधारण तौर पर विचार नहीं करना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से आप ठीक कहते हैं। मैं यह कह चुका हूं कि यदि सभी पक्ष इस सम्बन्ध में सहमत हों तो मैं बहस का विरोध नहीं करूंगा।

***श्री महावीर त्यागी:** प्रान्त के प्रधान मंत्री का कथन पर्याप्त समझा जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** इस विषय मेरे विचार से हमें इस पर जोर न देना चाहिये कि मैं अथवा कोई सदस्य कोई वचन दे। जैसे-जैसे प्रश्न उठेंगे हम उन पर विचार करेंगे और निर्णय करेंगे।

मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद ने तथा कुछ अन्य सदस्यों ने भी यह कहा था कि संशोधनों की सूचना देने के लिए बहुत कम समय दिया जा रहा है। अब केवल तीन दिन दिये जा रहे हैं। मेरा यह सुझाव है कि अच्छा यह होगा कि श्री शिब्बन लाल सक्सेना का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये जिसके अधीन यह समय बढ़ाकर पांच दिन कर दिया गया है। किन्तु सब कुछ छापेखाने के साधनों पर निर्भर रहेगा। हम अपनी ओर से यथासम्भव प्रयास करेंगे किन्तु यदि आप चाहेंगे कि पांच दिन दिये जायें और कार्यालय का भी यही विचार होगा तो मैं पांच दिन दिये जाने पर कोई आपत्ति नहीं करूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, आप बैठकों के समय के सम्बन्ध में सभा से कुछ कह रहे थे जब श्री त्यागी बीच में बोल उठे थे और मेरे विचार से कुछ बात बिना कही रह गई है।

***अध्यक्ष:** यह सभा पर निर्भर रहेगा कि वह कितने घंटे तक बैठना चाहेगी किन्तु किसी दशा में भी हम 26 तारीख से आगे बैठक नहीं कर सकेंगे। यह निश्चित है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या आप मेरे इस सुझाव को स्वीकार नहीं करेंगे कि जो सदस्य भी भाग लेना चाहें वे पहले से अपने नाम भेज दें?

***अध्यक्ष:** इसे नियमों में रखने की आवश्यकता नहीं है। यदि कोई सदस्य अपना नाम नहीं भेज सके तो मैं कह नहीं सकता कि आप यह चाहेंगे कि मैं उसे नहीं बोलने दूं। श्रीमती दुर्गाबाई अब उत्तर देंगी।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** अध्यक्ष महोदय, इसके पूर्व कि मैं अपने माननीय मित्रों द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को उठाऊं, मैं संशोधनों के कुछ प्रस्तावकों की दो बातों के सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट करना चाहती हूं। मैं उत्तर देने के लिये सभा का बहुत कम समय लूंगी।

मैंने एक माननीय सदस्य को मसौदा-समिति पर यह आरोप लगाते हुए सुना कि उसने इन नियमों को उपस्थित करने के लिए एक महिला को खड़ा किया है। मैं सभा को बताना चाहती हूं कि इसमें मसौदा-समिति का कोई हाथ नहीं है। इन नियमों पर संचालन-समिति ने विचार किया और इन्हें मंजूर किया और अब मैंने इन्हें सभा में उपस्थित किया है। एक अन्य सदस्य ने यह कहा कि मसौदा-समिति के कार्य का समर्थन करने के लिये एक महिला को खड़ा किया गया है। श्रीमान, मुझे खेद है कि इस सभा के कुछ माननीय सदस्यों के ध्यान में, पुरुष सदस्यों के ध्यान में, स्त्री-पुरुष का विभेद ही रहता है, यद्यपि यह महिला सदस्यों के ध्यान में कभी नहीं रहता। मैं चाहती हूं कि भविष्य में स्त्री-पुरुष की कोई चर्चा न हो।

जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से कुछ को, जैसा कि सदस्यों को विदित है, मि. नजीरुद्दीन अहमद ने उपस्थित किया था। मैं सभा को बताना चाहती हूं कि मैं बड़े हर्ष से उनका संशोधन संख्या 2 (3) स्वीकार करती हूं जो इस प्रकार है:

"खण्डों' शब्द के स्थान पर 'अनुच्छेदों, खण्डों और उपखण्डों' शब्द रखे जायें।"

यद्यपि इस प्रश्न को मसौदा समिति हल कर सकती है किन्तु मैं बिना किसी संकोच के इस संशोधन को स्वीकार करती हूं।

श्री शिब्बन लाल सक्सेना ने संशोधनों की जिस सूची को उपस्थित किया है उसके संशोधन संख्या 2 को स्वीकार करने के लिये भी मैं तैयार हूं। माननीय अध्यक्ष महोदय ने भी यह सुझाव रखा है कि पूरे पांच दिन का समय दिया जाना चाहिये। इसलिये इस संशोधन को स्वीकार किया जा रहा है।

अन्य सभी संशोधनों के सम्बन्ध में, विशेषत: मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधनों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उनमें जो प्रश्न उठाये गये हैं उन्हें मसौदा-कार हल कर सकते हैं क्योंकि वे या तो शाब्दिक संशोधन हैं या ऐसे संशोधन हैं जो व्याकरता अथवा विराम आदि से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये उन्हें मसौदा-समिति तथा मसौदा-कारों के हल करने के लिये छोड़ा जा सकता है। उन्होंने पूरे तीन दिन पूर्व सूचना देने के सम्बन्ध में जो संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या है, उपस्थित दिया है, उसका आशय श्री सक्सेना के संशोधन से पूरा हो जाता है, जिसमें उन्होंने तीन दिन के स्थान पर पांच दिन रखने का प्रस्ताव किया है।

श्री कामत के संशोधनों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि वे यह चाहते हैं कि 'किसी रस्मी संशोधन को अथवा किसी ऐसे संशोधन के आनुषंगिक संशोधन

को' शब्द निकाल दिये जायें जिससे केवल सारवान संशोधन उपस्थित किये जा सकें। हम यह अनुभव करते हैं कि संविधान के मसौदे के द्वितीय पठन के अवसर पर हजारों सारवान संशोधन उपस्थित किये जा चुके हैं। अब किसी सारवान संशोधन का सुझाव रखने की शक्ति माननीय अध्यक्ष महोदय को दी गई है। इस प्रकार के संशोधनों को मसौदा-समिति ही उपस्थित करेगी। इसलिये उस अवसर पर इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी कि सदस्य सारवान संशोधनों को, अथवा स्वतंत्र संशोधनों को, उपस्थित करें।

श्री कामत ने यह आपत्ति भी की है कि अध्यक्ष को भाषणों के लिये काल-सीमा निश्चित करने और नियमों को विस्तृत तथा निलम्बित करने की शक्ति क्यों दी जा रही है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैंने उसकी शक्ति पर आपत्ति नहीं की। मैंने यह कहा था कि ये शक्तियां उसमें निहित हैं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि इन सभी विषयों के सम्बन्ध में अध्यक्ष को पूर्ण शक्ति प्राप्त है। उसे काल-सीमा निश्चित करने की शक्ति भी प्राप्त है और स्वविवेक से किसी संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देने की भी शक्ति है। किन्तु मैं यह चाहती थी कि जो नियम आज उपस्थित किये गये हैं वे स्वतंत्र नियम हों और उनके द्वारा संविधान के मसौदे के तृतीय पठन के लिये तथा उसे पारित करने के लिये पूरी प्रक्रिया निर्धारित कर दी जाये। इसलिये यदि पूरी प्रक्रिया निर्धारित की जा रही है तो यह कोई आपत्तिजनक बात नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** इसकी आवश्यकता नहीं है यद्यपि यह आपत्तिजनक भी नहीं है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्री सिधवा ने यह आपत्ति की थी कि विधान-सभा के नियमों में काल-सीमा के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है इसलिये अध्यक्ष काल-सीमा निश्चित नहीं कर सकता है। मैं श्री सिधवा का ध्यान केवल विधान-सभा के नियमों के नियम 46 के उपखण्ड (4) की ओर दिलाती हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** उन्हें सभा ने पारित नहीं किया है। वे सभा के सामने नहीं रखे गये।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** हम उस सभा में उन्हीं नियमों का अनुसरण कर रहे हैं। इसलिये मैं उनका ध्यान उन नियमों की ओर दिलाती हूं जिनके अधीन अध्यक्ष को काल-सीमा निश्चित करने की शक्ति प्राप्त है। जब तक कि हम संविधान को शीघ्रता से पारित न करना चाहें और उसमें और विलम्ब करना चाहें तब तक सभी यह अनुभव करते हैं कि अध्यक्ष को ये शक्तियां अवश्य ही प्राप्त होनी चाहियें। कुछ सदस्यों ने मेरे इस कथन पर आपत्ति की है कि हमारे कार्य पर देश का बहुत राजस्व व्यय होता है। देश के जन-साधारण के नाम पर जिनकी हम यहां तथा अन्यत्र चर्चा करते हैं मैं इस सभा के अपने मित्रों से अपील करती हूं कि

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

इस कार्य को शीघ्र समाप्त किया जाये क्योंकि लम्बी प्रक्रिया के प्रश्नों में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है और वे उस दिन की बाट जोह रहे हैं जब वे इस संविधान से लाभान्वित होंगे। संविधान निर्माण के कार्य को शीघ्र समाप्त करने के लिये हम अध्यक्ष को अधिक शक्ति दें।

***श्री एच.वी. कामत:** जनसाधारण के नाम पर जो सभा में विलम्ब करने के लिये दोषी हैं?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने जो प्रश्न उठाया था उसके सम्बन्ध में मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी स्थिति स्पष्ट कर चुके हैं। मैं बिना किसी संकोच के उनका यह सुझाव स्वीकार करती हूं कि "आवश्यक" शब्द के पूर्व जो "अन्य" शब्द प्रयुक्त है वह निकाल दिया जाये।

मेरे विचार से उन्होंने यह भी कहा था कि "आवश्यक संशोधन" शब्दों की व्याख्या की जाये। आवश्यक संशोधन वे संशोधन होंगे जिनकी देश में परिवर्तन होने के कारण आवश्यकता पड़ गई हो यदि अध्यक्ष उन्हें आवश्यक समझेगा जो वह मसौदा-समिति को उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा देगा। यहां जो विभिन्न प्रश्न उठाये गये हैं उनका उत्तर देने के पश्चात् मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि मैंने जो प्रस्ताव किया है उसको सभा स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-द और 38-दद में 'Constitution' (संविधान) शब्द जहां कहीं आया है उसके स्थान पर 'Draft Constitution' (संविधान का मसौदा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) में–

(1) 'Considered' (विचार हो गया हो) शब्दों के स्थान पर 'Considered and disposed of' (विचार हो गया हो और निबटा दिये गये हों) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) में–

(2) 'amended' (संशोधित रूप में) शब्दों के स्थान पर 'amended by the Assembly' (सभा द्वारा संशोधित रूप में) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से भाग (3) स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) में—

(3) 'clauses' (खंडों) शब्द के स्थान पर 'articles, clauses and sub-clauses' (अनुच्छेदों, खण्डों और उपखंडों) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) में—

(4) 'to recommend' (सिफारिश की जाये) शब्द के स्थान पर 'to submit a report recommending' (सिफारिश करते हुए प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाये) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:—

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (1) के पश्चात् यह नवीन उपनियम प्रविष्ट किया जाये:

'(1a) the Draft Constitution as revised by the Drafting Committee under sub-rule (1) shall indicate by suitable typographical arrangements the changes and ommissions made by the Committee.'

[(1क) उपनियम (1) के अधीन मसौदा-समिति ने संविधान के मसौदे को दुहरा कर जिस रूप में रखा हो उसमें समिति ने जो परिवर्तन किये हों, अथवा उससे जो शब्द निकाले गये हों, वे उपयुक्त छपाई द्वारा दिखाये जायेंगे।]"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:—

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (2) में 'after the Constitution has been referred to the Drafting Committee the report of the Committee' (संविधान को मसौदा-समिति के पास भेजने के पश्चात् समिति के प्रतिवेदन

[अध्यक्ष]

को) शब्दों के स्थान पर 'the report of the Drafting Committee' (मसौदा-समिति के प्रतिवेदन को) शब्दों को रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (2) में 'in the Constitution' (इन दी कांस्टीट्यूशन) शब्दों के स्थान पर 'to the Constitution' (टू दि कांस्टीट्यूशन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (2) के परन्तुक में 'three clear days' (पूरे तीन दिन) शब्दों के स्थान पर 'seven clear days' (पूरे सात दिन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (4) में 'which is either formal or consequential upon' (किसी रस्मी संशोधन को अथवा किसी ऐसे संशोधन के आनुषंगिक संशोधन को) शब्दों के स्थान पर 'to' (किसी ऐसे संशोधन के संशोधन को) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (6) में से 'and it shall not be necessary for the President to put each of those amendments separately to vote' (और अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (8) में से 'shall allot not more than two days for the consideration by the Assembly of all amendments after

the motion referred to in sub-rule (2) has been carried and' [उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, सभी संशोधनों पर सभा के विचार करने के लिये दो दिन से अधिक नहीं देगा और] शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-दद का उपनियम (2) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-दद के उपनियम (3) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, संशोधन संख्या 122 पर मत लेने की आवश्यकता नहीं है। वह आनुषंगिक संशोधन ही है।

***अध्यक्ष:** मैं उस पर भी मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-दद का उपनियम (1) नियम 38-द में उपनियम (10) के रूप में रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री शिब्बन लाल सक्सेना के संशोधनों पर मत लूंगा। वे घुमाये नहीं गये हैं इस कारण मैं उन्हें पढ़कर सुनाऊंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन नियम 38-द के खण्ड (1) के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:-

'But the President shall have power to allow any other amendments to be moved according to his discretion' (परन्तु अध्यक्ष को किन्हीं अन्य संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा स्वविवेक से देने की शक्ति प्राप्त होगी।)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"नियम 38-द के उपनियम (2) के परन्तुक में 'three clear days' (पूरे तीन दिन) शब्दों के स्थान पर 'five clear days' (पूरे पांच दिन) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (3) में 'and at this stage' (और इस अवसर पर) शब्दों से आरम्भ होने वाले वाक्यांश से लेकर इस उपनियम के अन्त तक के शब्दों के स्थान पर यह रखा जाये:

'and at this stage the debates shall be controlled by the President according to this discretion' (और इस अवसर पर अध्यक्ष वाद-विवाद पर स्वविवेक से नियंत्रण रखेगा।)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (6) में से 'and it shall not be necessary for the President to put each of those amendments separately to vote' (और अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-द के उपनियम (4) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये: 'except by the President according to his discretion' (उस दशा के अतिरिक्त जब अध्यक्ष ने स्वविवेक से आज्ञा दी हो।)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नियम 38-दद के उपनियम (2) के स्थान पर यह रखा जाये:

'(2) Members desirous of participating in the debate on a motion made under sub-rule (1) shall notify their names to the President

at least 36 hours before the motion is made and the President may fix a time limit on the duration of speeches on the motion after receiving all such names, but the time limit shall not be less than 40 minutes. The President shall have power to give longer time to any speaker in exceptional circumstances, and he may also order a speaker to cut short his speech according to his discretion.

(2a) The President shall have power to extend the duration of the daily sittings of the Assembly.'

[(2) उपनियम (1) के अधीन उपस्थित किये गये प्रस्ताव पर होने वाले वाद-विवाद में जो सदस्य भाग लेना चाहेंगे वे प्रस्ताव उपस्थित होने से कम से कम 36 घंटे पूर्व अपने नामों की सूचना अध्यक्ष को देंगे और जब अध्यक्ष को यह सब नाम मिल जायेंगे तब वह भाषणों की काल-सीमा निश्चित करेगा किन्तु वह काल-सीमा 40 मिनट से कम की नहीं होगी। विशेष स्थिति में अध्यक्ष किसी वक्ता को अधिक समय दे सकेगा और वह किसी वक्ता को स्वविवेक से यह आदेश भी दे सकेगा कि वह अपने भाषण को शीघ्र समाप्त करे।

(2क) अध्यक्ष को सभा के प्रतिदिन की बैठकों के समय को बढ़ाने की शक्ति होगी।]"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने एक संशोधन का सुझाव रखा है और वह यह है कि अन्तिम पंक्ति से पहली पंक्ति में जो "अन्य" शब्द प्रयुक्त हैं वह निकाल दिया जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 38-द (1) की अन्तिम पंक्ति से पहली पंक्ति में जो 'other' (अन्य) शब्द प्रयुक्त है वह निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा उपस्थित प्रस्ताव पर, संशोधित रूप में, मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"संविधान सभा के नियमों के नियम 38-द के स्थान पर ये नियम रखे जायें:

Revision of the Constitution by the Drafting Committee and the consideration of the amendments recommended by them.

'38-R. (1) When a motion that the Constitution be taken into consideration has been carried and the amendments to the Constitution moved have been considered, the President shall refer the Constitution as amended to the Drafting

[अध्यक्ष]

Committee referred to in sub-rule (1) of rule 38-L with instructions to carry out such re-numbering of the articles, clauses and sub-clauses, such revision of punctuation and such revision and completion of the marginal notes thereof as may be necessary, and to recommend such formal or consequential or necessary amendments to the Constitution as may be required.

(2) After the Constitution has been referred to the Drafting Committee, the report of the Committee shall be presented to the Assembly by the Chairman or any other membar of the Drafting Committee and thereafter the Chairman or other member of the Committee may move that the amendments recommended by the Committee in the Constitution so referred to them be taken into consideration:

Provided that no such motion shall be made until after the report of the Drafting Committee together with the copies of the Constitution as revised by them has been made available for the use of members and that any members may object to any such motion being made unless the report and the copies of the Constitution as so revised have been made available five clear, days before the date on which the motion is made, and such objection shall prevail unless the President in his discretion allows the motion to be made.

(3) While making any motion referred to in sub-rule (2), the mover shall confine himself to an explanatory statement and at this stage there shall be no debate, and the President may, after such statement has been made, put the question.

(4) After the motion referred to in sub-rule (2) has been carried, any member may move an amendment which

is either formal or consequential upon an amendment recommended in any provision of the Constitution by the Drafting Committee after the Constitution was referred to them under sub-rule (1) but shall not be allowed to move any other amendment.

(5) If notice of a proposed amendment has not been given two clear days before the day on which the motion referred to in sub-rule (2) is to be taken up for consideration, any member may object to the moving of the amendment, and such objection shall prevail unless the President in his discretion allows the amendment to be moved.

(6) Notwithstanding anything in these rules, all the amendments recommended by the Drafting Committee, after the Constitution was referred to them under sub-rule (1), shall be deemed to have been moved, and it shall not be necessary for the President to put each of those amendments separately to vote.

(7) The provisions of sub-rules (2) and (3) of rule 38-P shall apply to every amendment of which notice has been given under sub-rule (5), and notwithstanding anything in these rules it shall be in the discretion of the President to disallow any amendment of which notice has been so given.

(8) The President shall allot not more than two days for the consideration by the Assembly of all amendments after the motion referred to in sub-rule (2) has been carried and shall, at the time appointed by him for the close of the sitting of the Assembly on the last of the allotted days, forthwith put every question necessary to dispose of all the outstanding matters in connection with those amendments, and in the case of amendments recommended by the Drafting Committee as such, he shall put only the question

[अध्यक्ष]

that the amendments so recommended be made or that the amendments so recommended as modified by any amendment or amendments adopted by the Assembly be made, as the case may be.

(9) For the purpose of bringing to a conclusion any proceedings relating to such amendments on the last of the allotted days, the President shall have power to select the amendments to be proposed.

Passing of the Constitution.

38-RR.(1) When the amendments to the Constitution referred to the Drafting Committee under sub-rule (1) of rule 38-R have been considered, any member may move that the Constitution as settled by the Assembly be passed and to a motion so made no further amendment shall be allowed to the moved.

(2) The President may fix a time-limit for speeches during the debate on a motion made under sub-rule (1).

(3) The President may in relation to any proceedings in connection with the passing of the Constitution under rule 38-R or this rule relax or suspend any of these rules.'

मसौदा-समिति द्वारा संविधान का पुनर्विलोकन और उसने जिस संशोधन की सिफारिश की हो उस पर विचार

[38-द (1) यह जब प्रस्ताव कि संविधान पर विचार किया जाये पारित हो गया हो और संविधान सम्बन्धी जो संशोधन उपस्थित किये गये हों उन पर विचार हो गया हो तब अध्यक्ष संविधान को, संशोधित रूप में नियम 38-द के उपनियम (1) में निर्दिष्ट मसौदा-समिति के पास भेजेगा और आदेश देगा कि आवश्यकतानुसार अनुच्छेदों, खंडों और उपखंडों की पुनर्गणना की जाय, विरामों को फिर से लगाया जाये और हाशिये के लेखों को दुहराया जाये और पूरा किया जाये और संविधान सम्बन्धी ऐसे रस्मी अथवा आनुषंगिक अथवा आवश्यक संशोधनों की सिफारिश की जाये।

(2) संविधान को मसौदा-समिति के पास भेजने के पश्चात् समिति के प्रतिवेदन को मसौदा-समिति का सभापति अथवा अन्य कोई सदस्य सभा में उपस्थित करेगा और तत्पश्चात् समिति का सभापति अथवा अन्य कोई सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित कर

सकता है कि उसके पास जो संविधान भेजा गया था उसके सम्बन्ध में समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है, उन पर विचार किया जाये:

परन्तु जब तक मसौदा-समिति का प्रतिवेदन तथा उसके साथ उसके दुहराये हुए संविधान की प्रतियां सदस्यों के उपयोग के लिये उपलब्ध न की जायें तब तक इस प्रकार का कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जायेगा और प्रस्ताव उपस्थित करने के दिन से पूरे पांच दिन पहले यदि यह प्रतिवेदन और संविधान की दुहराई हुई प्रतियां उपलब्ध न की जायें तो कोई भी सदस्य इस पर आपत्ति कर सकता है, और जब तक कि अध्यक्ष स्वविवेक से प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा न दे तब तक यह आपत्ति अभिभावी होगी।

(3) उपनियम (2) में निर्दिष्ट किसी प्रस्ताव को उपस्थित करते समय प्रस्तावक अपने को व्याख्यात्मक वक्तव्य तक ही सीमित रखेगा और इस अवसर पर कोई वाद-विवाद नहीं होगा और अध्यक्ष, इस वक्तव्य के पश्चात् प्रस्ताव पर मत ले सकता है।

(4) उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, कोई भी सदस्य किसी रस्मी संशोधन को अथवा किसी ऐसे संशोधन के आनुषंगिक संशोधन को उपस्थित कर सकता है जिसकी मसौदा-समिति ने उपनियम (1) के अधीन उसके पास संविधान भेजे जाने पर किसी उपबन्ध के सम्बन्ध में सिफारिश की हो, किन्तु उसे किसी अन्य संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी।

(5) यदि किसी प्रस्तावित संशोधन की सूचना उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव पर विचार करने के दिन के पूरे दो दिन पूर्व नहीं की गई हो तो कोई भी सदस्य उस संशोधन के उपस्थित किये जाने पर आपत्ति कर सकता है और जब तक अध्यक्ष स्वविवेक से संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दे तब तक वह आपत्ति अभिभावी होगी।

(6) इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी मसौदा-समिति ने, उसके पास उप-नियम (1) के अधीन संविधान के भेजे जाने के पश्चात्, जिन संशोधनों की सिफारिश की हो, वे सब उपस्थित किये गये समझे जायेंगे और अध्यक्ष के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह उन संशोधनों में से प्रत्येक संशोधन पर पृथक् मत ले।

(7) नियम 38-त के उपनियम (2) और (3) के उपबन्ध ऐसे प्रत्येक संशोधन को लागू होंगे जिसकी उपनियम (5) के अधीन

[अध्यक्ष]

सूचना दी गई हो और इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी अध्यक्ष स्वविवेक से किसी ऐसे संशोधन की आज्ञा नहीं दे सकता है जिसकी इस प्रकार सूचना दी गई हो।

(8) अध्यक्ष उपनियम (2) में निर्दिष्ट प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात्, सभी संशोधनों पर सभा के विचार करने के लिये दो दिन से अधिक नहीं देगा और दिये हुए दिनों में से अन्तिम दिन को सभा की बैठक समाप्त करने के लिये उसने जो समय निश्चित किया हो उस समय इन संशोधनों के सम्बन्ध में सभी रहे हुए प्रश्नों को निबटाने के लिए प्रत्येक प्रश्न पर मत लेगा और उन संशोधनों के सम्बन्ध में, जिनकी सिफारिश मसौदा-समिति ने की हो, वह केवल इस प्रश्न पर मत लेगा कि जिन संशोधनों की सिफारिश की गई है, उन्हें किया जाये अथवा, यथास्थिति, जिन संशोधनों की सिफारिश की गई है उन्हें सभा द्वारा स्वीकृत किसी संशोधन अथवा संशोधनों द्वारा परिवर्तित रूप में किया जाये।

(9) दिए हुए दिनों में से अन्तिम दिन को इन संशोधनों के सम्बन्ध में किसी कार्यवाही को समाप्त करने के लिये अध्यक्ष को प्रस्तावित होने वाले संशोधनों को चुनने की शक्ति प्राप्त होगी।

38-दद संविधान का पारण

(1) जब नियम 38-द के उपनियम (1) के अधीन मसौदा-समिति को भेजे हुए संविधान-सम्बन्धी संशोधनों पर विचार हो गया हो तब कोई भी सदस्य यह प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है कि सभा ने संविधान को जिस रूप में निश्चित किया है उस रूप में वह पारित किया जाये और उस प्रकार उपस्थित किए हुए प्रस्ताव के सम्बन्ध में अन्य किसी संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी।

(2) अध्यक्ष उपनियम (1) के अधीन उपस्थित किये हुए प्रस्ताव पर होने वाले वाद-विवाद में भाषणों के किये काल-सीमा निश्चित कर सकते हैं।

(3) अध्यक्ष नियम 38-द अथवा इस नियम के अधीन संविधान के पारण से सम्बन्धित किसी कार्यवाही के बारे में इन नियमों में से किसी को विस्तृत या निलम्बित कर सकता है।]"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान का मसौदा–(जारी)

प्रथम अनुसूची–(जारी)

***अध्यक्ष:** अब हम प्रथम अनुसूची को उठायेंगे। प्रथम अनुसूची के सम्बन्ध में बहुत से संशोधनों की सूचना दी गई है। इनमें से कुछ संशोधन उस अनुसूची के सम्बन्ध में हैं जो मूल मसौदे में दी हुई थीं और कुछ डॉ. अम्बेडकर ने कल जो प्रस्ताव उपस्थित किया था उसके सम्बन्ध में हैं। कठिनाई यह है कि वे इस समय के तथ्यों से असम्बद्ध हैं। उदाहरणार्थ इनमें से कुछ संशोधनों का उद्देश्य ऐसे प्रान्तों का नामकरण है जो आज अस्तित्व में नहीं हैं और जिनके बारे में हम कह नहीं सकते कि वे अस्तित्व में भी आयेंगे या नहीं। वास्तव में यदि इस संविधान में ऐसे प्रान्तों के नाम रहने दिये गये, जो अस्तित्व में नहीं हैं, और उन प्रान्तों के नाम न रखे गये जो आज अस्तित्व में हैं, और इस रूप में हमने उसे पारित किया, तो बहुत बड़ी कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी और मैं यह नहीं सकता कि संविधान को कैसे प्रयोग में लाया जायेगा। संविधान के ढांचे को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उसे प्रयोग में लाना कठिन हो जायेगा। उदाहरणार्थ हम यह नहीं कर सकते कि किसी विधान-सभा का स्वरूप क्या होगा और वह विधान-सभा मद्रास की होगी, अथवा आन्ध्र देश की होगी, अथवा तमिलनाडु की होगी। संविधान के कई अन्य उपबन्धों के सम्बन्ध में भी यही कठिनाई उठ खड़ी होगी।

इसलिये माननीय सदस्यों के समक्ष मैं यह सुझाव रखता हूं कि इस अवसर पर, जब कि नये प्रान्तों के निर्माण के सम्बन्ध में, कोई निर्णय नहीं किया गया है, यह कोई समझदारी की बात नहीं होगी कि हम संविधान में ऐसे प्रान्तों के नाम रखें जिनके निर्माण के सम्बन्ध में, हम आगे चल कर प्रस्ताव रखेंगे, किन्तु जो इस समय अस्तित्व में नहीं हैं। इसी प्रकार ऐसे प्रान्तों के सम्बन्ध में भी जो अस्तित्व में हैं और जिनमें कुछ परिवर्तन करने के लिये कुछ संशोधनों की सूचना दी गई है अन्य कठिनाइयां उठ खड़ी हो सकती हैं।

वर्तमान प्रान्तों के कुछ क्षेत्रों को अन्य प्रान्तों में मिला देने के सम्बन्ध में भी कुछ संशोधन हैं। यदि हम संविधान को इसी रूप में पारित कर देंगे तो वे क्षेत्र अन्य प्रान्तों से स्वत: नहीं मिल जायेंगे। यदि हम संविधान में वर्णित राज्य-क्षेत्रों में ऐसे क्षेत्रों को मिला देंगे जो उल्लिखित प्रान्तों में इस समय सम्मिलित नहीं है तो भी इसी प्रकार की कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी।

इसलिये माननीय सदस्यों के सामने मैं यह सुझाव रखता हूं कि वे इस अवसर पर किसी संशोधन को उपस्थित न करें क्योंकि संविधान के पारित होने पर उसको प्रयोग में लाने में उससे कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि इस सभा में कुछ सदस्यों की, वास्तव में बहुत से सदस्यों की यह प्रबल इच्छा है कि कुछ नवीन प्रान्तों का निर्माण किया जाये अथवा प्रान्तों

[अध्यक्ष]

की सीमाएं बदली जायें किन्तु इन बातों को संविधान में समाविष्ट करने के पूर्व इन्हें पहले सम्पन्न कर लेना चाहिये। इसलिये उन माननीय सदस्यों से, जिन्होंने इन परिवर्तनों के सम्बन्ध में संशोधनों की सूचना दी है, मेरा यह निवेदन है कि वे वास्तविक स्थिति में परिवर्तन कर लें और फिर संविधान सभा से उन परिवर्तनों को संविधान में समाविष्ट करने को कहें। हमने नियमों में इस सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं कि तृतीय पठन के अवसर पर जिस प्रकार के तथ्य होंगे उनके सम्बन्ध में संशोधन उपस्थित किये जा सकेंगे। यदि इस बीच कोई परिवर्तन हुए तो मसौदा-समिति अवश्य ही उनको ध्यान में रखेगी और सभा को उनके बारे में सूचना देगी। मुझे आशा है कि इस वक्तव्य के पश्चात् माननीय सदस्य इस प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करेंगे। यदि वे मुझ से सहमत हुए तो हम इन संशोधनों पर विचार नहीं करेंगे, क्योंकि यह भी सम्भव है कि अन्ततोगत्वा उनमें से बहुत से स्वीकार नहीं किये जायें। इस प्रकार सभा का कुछ समय भी बच जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** वर्तमान प्रान्तों के नाम बदलने के सम्बन्ध में मेरा आपसे निवेदन है कि प्रान्तों के नाम बदलने का प्रत्येक प्रश्न प्रान्तीय सरकारों, विधान मंडलों, प्रान्तीय कांग्रेस समितियों तथा इस सभा में सम्बन्धित प्रान्तों के प्रतिनिधियों के निर्णय के लिये छोड़ दिया गया है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से केवल एक ही प्रान्त का नाम बदलने का प्रश्न है। उसके अतिरिक्त इस प्रकार का और कोई प्रश्न नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मध्य प्रान्त और बरार के सम्बन्ध में भी यह प्रश्न है।

***श्री महावीर त्यागीः** संयुक्त प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में भी संशोधन है।

***अध्यक्षः** उड़ीसा का नाम उत्कल रखने के सम्बन्ध में भी संशोधन है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** सभा के समक्ष जो मसौदा है उसमें दिये हुए किसी राज्य का नाम बदलने के सम्बन्ध में हम एक सिद्धान्त का अनुसरण करते आये हैं। वह यह है कि यदि पर्याप्त सदस्यों ने नाम बदलने की इच्छा प्रकट की हो और उस बदले हुए नाम का समर्थन सम्बन्धित प्रान्त के प्रधान मंत्री ने किया हो तो हम उस नाम को संशोधित अनुसूची में रख देते हैं। मध्य प्रान्त का नाम इसी प्रकार बदला गया है। उड़ीसा के कई सदस्यों से भी एक अभ्यावेदन प्राप्त हुआ है। हमें इस प्रश्न को उड़ीसा के प्रधान मंत्री के सामने रखना होगा। यदि वे सहमत हो जायेंगे और यदि आप आज्ञा देंगे ओर सभा आज्ञा देगी तो हम दुहराई हुई साफ प्रति में यथोचित परिवर्तन करके उड़ीसा का नाम उत्कल रख देंगे। उस प्रति पर अगले सत्र में विचार किया जायेगा। नामों के जिन परिवर्तनों का समर्थन सम्बन्धित प्रान्तों के प्रधान मंत्रियों ने किया है उनके सम्बन्ध में हम इस सिद्धान्त का अनुसरण करते आये हैं.....

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो सुझाव रखा है उस पर मुझे बहुत आपत्ति है.....

***अध्यक्ष:** उन्होंने केवल स्थिति स्पष्ट की है।

***श्री आर.के. सिधवा:** हमें द्वितीय सदनों के प्रश्न को इस सभा के सदस्यों के निर्णय के लिये छोड़ने का अनुभव है। बाद में चीख-पुकार की गई थी और कहा गया था कि प्रान्त में किसी से परामर्श नहीं किया गया और सम्बन्धित प्रान्तों के बहुत से लोगों ने यह विचार प्रकट किया कि बिना वहां के लोगों से पूछे हुए द्वितीय सदन को रखकर गलती की गई है। इससे कहीं अधिक महत्व के प्रश्न के सम्बन्ध में, अर्थात् नाम बदलने के प्रश्न के सम्बन्ध में, मैं यह सुझाव प्रस्तुत कर चुका हूं कि न केवल प्रधान-मंत्रियों को बल्कि सारे प्रान्तीय मंत्रिमंडल को और वहां के विधान मंडल के सदस्यों को अपना मत प्रकट करने का अवसर देना चाहिये। यह कोई साधारण प्रश्न नहीं है। इस सभा में कोई भी सदस्य अपना सुझाव प्रस्तुत कर सकता है और प्रधान मंत्री भी अपना मत प्रकट कर सकता है। प्रधान मंत्री के मत का आदर करते हुए मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह भी सम्भव है कि.....

***अध्यक्ष:** क्या मैं इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक उपाय बता सकता हूं? जिन प्रान्तों का नाम बदलने का प्रस्ताव है उनकी सरकारों के नाम संविधान सभा की ओर से मैं इन प्रस्तावों को भेजना चाहता हूं और उनसे कहना चाहता हूं कि उन पर वे अपना मत प्रकट करें। जब हमें उनका मत प्राप्त हो जायेगा तो, यदि आवश्यक हुआ तो, हम तृतीय पठन के अवसर पर भी परिवर्तन कर सकते हैं।

***माननीय सदस्य:** अच्छी बात है, श्रीमान।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मुझे हर्ष है कि आप प्रान्तीय सरकारों को आदेश दे रहे हैं और उनके सामने नामों का सुझाव रख रहे हैं। मेरा यह भी सुझाव है.....

***अध्यक्ष:** आप मेरा आशय नहीं समझ पाये हैं। मैं आदेश नहीं दे रहा हूं। यदि यहां कोई सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं तो मैं उन सुझावों को प्रान्तीय सरकारों के पास उनकी सम्मति के लिये भेज दूंगा।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** श्रीमान, मेरा यह निवेदन है कि जिस प्रकार उत्तर सदन के सम्बन्ध में सम्बन्धित प्रान्तों के सदस्यों के मत पर विचार किया गया था उसी प्रकार इस प्रश्न के सम्बन्ध में भी उनके मत पर विचार किया जाये। मेरा अर्थ संविधान सभा के सदस्यों से है।

***अध्यक्ष:** ये सदस्य यहां उपस्थित हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** श्रीमान, मेरा भी अर्थ यही है। मैं यह चाहता हूं कि जिस प्रान्त का नाम बदला जाये वहां के संविधान सभा के सदस्यों की सम्मति ली जाये।

***अध्यक्ष:** वे यहां उपस्थित रहेंगे और अपना मत प्रकट कर सकेंगे।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** धन्यवाद, श्रीमान।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, क्या आप यह चाहते हैं कि इस सम्बन्ध में निश्चित प्रस्ताव प्रस्तुत किये जायें?

***अध्यक्ष:** जी नहीं: बहुत से संशोधनों की सूचना दी गई है। जो संशोधन प्राप्त हो चुके हैं उन्हें मैं ध्यान में रखूंगा।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): मैंने एक संशोधन की सूचना दी है जिसका आशय यह है कि "आसाम" शब्द के हिज्जे बदल दिये जायें क्योंकि उसका उच्चारण अंग्रेजी ढंग से किया जाता है। मैं चाहता हूं कि "आसाम" शब्द के स्थान पर "आसोम" शब्द रखा जाये।

***अध्यक्ष:** इस सम्बन्ध में भी मैं प्रान्तीय सरकार से परामर्श करूंगा। अब हमें कौन-सा कार्य करना है। क्या मैं अब संशोधनों को उठाऊं?

***माननीय सदस्य:** जी हां, श्रीमान।

***श्री गोकुल भाई भट्ट** (राजस्थान): सभापति जी, मैं खुलासा चाहता हूं, यह जो शिड्यूल आया है हमारे सामने, उसमें एक हिस्सा हिन्दुस्तान का ऐसा रह गया है, जिसका अब तक कोई निर्णय नहीं हुआ है और वह है सिरोही। तो इसके विषय में अगर ड्राफ्टिंग कमेटी के कोई सदस्य कुछ खुलासा कर दें तो अच्छा होगा।

***अध्यक्ष:** इस सम्बन्ध में एक संशोधन है किन्तु मैं स्वयं नहीं जानता कि वास्तव में स्थिति क्या है।

***श्री के.एम. मुन्शी:** श्रीमान, मेरे माननीय मित्र श्री गोकुल भाई भट्ट ने जो कुछ कहा है उसके सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि मैंने उपप्रधान मंत्री महोदय से पूछा था कि स्थिति क्या है। सिरोही के सम्बन्ध में अभी यह तय नहीं किया गया है कि वह किस प्रान्त के साथ मिलाया जायेगा। इस समय वहां का प्रशासन बम्बई की सरकार प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम के अधीन करती है।

***श्री जयनारायण व्यास** (राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, मैं भाग 1 के अधीन दिये हुये लेख की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करता हूं, जिसमें बम्बई प्रान्त की परिभाषा की गई है। उस लेख की अन्तिम चार पंक्तियों में कहा गया है कि "कोई राज्य-क्षेत्र जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उस प्रान्त की सरकार द्वारा प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के अधीन प्रशासित किया जा रहा था।" इस लेख में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान के प्रारम्भ के पूर्व उस प्रान्त द्वारा जो राज्य-क्षेत्र प्रशासित किया जा रहा था वह बम्बई प्रान्त में समाविष्ट किया जायेगा। इसका अर्थ यह है कि यदि सिरोही का बाल-शासक, अथवा शासक

की माता, अथवा वह शासक जिसका मामला बम्बई में विचाराधीन है, किसी प्रसंविदा पर हस्ताक्षर न भी करे तो उस दशा में भी सिरोही बम्बई प्रान्त में समाविष्ट कर दिया जायेगा। उस स्थिति में मैं श्री मुन्शी से प्रार्थना करूंगा कि ये पंक्तियां, अर्थात् यह कि "कोई राज्य-क्षेत्र जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले उस प्रान्त की सरकार द्वारा प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के अधीन प्रशासित किया जा रहा था।" निकाल दिया जाये ताकि सिरोही के लोगों को इस सम्बन्ध में कोई शंका न हो कि सिरोही समाविष्ट किया गया है।

***अध्यक्ष:** यह केवल सिरोही के सम्बन्ध में ही नहीं है। यह अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी है।

***श्री जयनारायण व्यास:** यह सिरोही को भी लागू होगा और यह समझा जायेगा कि सिरोही को बिना किसी प्रसंविदा पर हस्ताक्षर हुए ही समाविष्ट कर लिया गया है। मैं केवल यही बताना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** उस दशा में हम अपवाद कर सकते हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मेरे माननीय मित्र श्री व्यास को यह समझना चाहिये कि इस पूरी अनुसूची का मसौदा वर्तमान स्थिति के आधार पर तैयार किया गया है। हम इस समय की स्थिति में फेरफार नहीं करना चाहते हैं। उद्देश्य यह भी नहीं है कि इस सम्बन्ध में कोई बदलाव नहीं किये जायें। जैसा कि माननीय अध्यक्ष महोदय बता चुके हैं, यदि आगे चल कर स्थिति में कुछ परिवर्तन हुए तो तृतीय पठन के अवसर पर उनका संविधान में उल्लेख कर दिया जायेगा। इस समय अनुसूची में जो कुछ कहा गया है वह स्पष्ट है और इसलिये इस अवसर पर सिरोही की चर्चा अप्रासंगिक है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या सिरोही बम्बई का एक भाग है अथवा वह एक पृथक् राज्य है?

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं कह नहीं सकता। मैं इस प्रश्न के सम्बन्ध में अधिकृत रूप से कुछ नहीं कह सकता। जहां तक मुझे ज्ञात है वह केन्द्र को सौंप दिया गया है और केन्द्र ने उसे बम्बई सरकार को सौंप दिया है ताकि पूर्वोक्त अधिनियम के अधीन उसका प्रशासन हो सके। यदि मैं कोई गलती कर रहा हूं तो वह ठीक कर दी जाये। मेरी अपनी यही धारणा है।

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल): श्रीमान, क्या यह आवश्यक नहीं है कि सभा को ठीक-ठीक स्थिति बताई जाये? कुछ सदस्यों की इस विषय में दिलचस्पी है और वे यह जानना चाहते हैं कि सिरोही बम्बई का एक भाग है अथवा प्रशासन के उद्देश्य से बम्बई को सौंपा गया है। क्या आप कृपा करके राज्य-मंत्रणालय से प्रार्थना करेंगे कि वह इस सम्बन्ध में एक वक्तव्य दे।

***श्री के.एम. मुन्शी:** जी हां, मैं उससे प्रार्थना करूंगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास: जनरल): क्या राज्य-मंत्रणालय को इसकी स्वतन्त्रता नहीं है कि वह 26 जनवरी तक समायोजन करे?

***श्री के.एम. मुन्शी:** श्री सन्तानम् ठीक कह रहे हैं। 26 जनवरी तक भारत सरकार को किसी राज्य के किसी भाग को किसी भी प्रान्त को सौंपने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। विधि के अन्तर्गत यही स्थिति है। जहां तक वर्तमान अनुसूची का सम्बन्ध है वह 26 जनवरी से लागू होगी। उस तारीख तक किसी राज्य का कोई भाग यदि प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम के अधीन बम्बई प्रान्त को सौंप दिया गया हो तो वह बम्बई का अंग समझा जायेगा। जो क्षेत्र अन्य प्रान्तों को सौंपे जायेंगे वे उनके अंग होंगे। श्री शंकरराव देव ने पूछा है कि सिरोही की वर्तमान स्थिति क्या है। मैं समझता हूं कि उसकी स्थिति इसी प्रकार है।

***श्री शंकरराव देव:** मैं यह जानना चाहता हूं कि 26 जनवरी के पश्चात् उसकी क्या स्थिति होगी?

***श्री के.एम. मुन्शी:** इस सम्बन्ध में 26 जनवरी के लगभग निर्णय किया जायेगा।

***श्री शंकरराव देव:** हममें से कुछ सदस्य चाहते हैं कि आप राज्य मंत्रणालय से कहें कि हम जानना चाहते हैं कि सिरोही के सम्बन्ध में उसका क्या उद्देश्य है और वह किस योजना को कार्यान्वित करना चाहता है।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं सम्बन्धित अधिकारियों को इस प्रार्थना की सूचना दे दूंगा।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीस : राज्य): श्रीमान, मेरे नाम से भी कुछ संशोधन है जो उस श्रेणी के संशोधन नहीं है जिन्हें उपस्थित करने के लिये आपने कहा है। यदि मुझे अवसर दिया जा सकता है तो मैं उन्हें उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं प्रत्येक संशोधन को उठाऊंगा और प्रत्येक सदस्य किसी भी संशोधन को उपस्थित कर सकेगा। पहला संशोधन श्री कुलाधार चालिहा का संशोधन संख्या 404 है– क्या आप उसे उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री कुलधर चालिहा:** जी हां, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** यह सुझाव रखा गया है कि इन संशोधनों को प्रान्तीय सरकारों के पास भेज दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** वे रस्मी तौर से उपस्थित किये जायं और फिर प्रान्तीय सरकारों के पास भेजे जायें।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, इस सम्बन्ध में आप सभा से पूछ लें कि उसकी इच्छा क्या है?

***अध्यक्षः** मैंने केवल एक सुझाव रखा है किन्तु यदि सदस्य अपने संशोधनों को उपस्थित करना ही चाहते हैं तो मैं उन्हें रोक नहीं सकता।

***श्री कुलधर चालिहाः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 15 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 380 में भाग 1 की मद 1 के स्थान पर यह रखा जाये।

'1. Asom' (आसोम)"

***अध्यक्षः** यदि कोई संशोधन उपस्थित कर दिया जाता है तो मुझे उसे किसी न किसी प्रकार निबटाना होता है। उस पर मत लेना होता है।

***श्री थिरुमल राव** (मद्रास : जनरल): आसाम का उच्चारण आसाम ही है। वे चाहते हैं कि उसके हिज्जे बदल कर उसे "आसोम" कहा जाये। यदि वे चाहें तो "आसाम" को "आसोम" कहें।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 405 ।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** प्रत्येक संशोधन को पृथक् निबटाया जाये और उस पर मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** मैं प्रत्येक संशोधन को पृथक् उठाऊंगा। श्री चालिहा यदि आप अपना संशोधन उपस्थित करना चाहते हैं तो मुझे उस पर मत लेना होगा।

***श्री कुलधर चालिहाः** श्रीमान, मैं केवल यह चाहता हूं कि उसे सरकार के पास भेजा जाये।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 405 । श्री ब्रजेश्वर प्रसाद क्या आप उसे उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): जी हां, श्रीमान।

***श्री आर.के. सिधवाः** यदि वह उपस्थित कर दिया गया तो वह फिर सभा की सम्पत्ति हो जायेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जी हां, श्रीमान, यह मुझे विदित है। आप उसे अस्वीकार कर सकते हैं। मैं जानता हूं कि आप उसे अस्वीकार करेंगे।

***अध्यक्षः** यदि आप चाहें तो आप उसे अस्वीकार कर सकते हैं। वे यह खतरा उठाने के लिये तैयार हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** प्रथम अनुसूची के सम्बन्ध में मेरे नाम से सात संशोधन हैं। मैं सूची 14 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 335, 340, 348, 356,

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

357 की ओर संकेत कर रहा हूं। सूची 17 में मेरे नाम से दो संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 405 और 411 हैं। श्रीमान, यदि आपकी अनुमति हो तो मैं संशोधन संख्या 358 उपस्थित करना चाहता हूं। एक प्रक्रिया सम्बन्धी कठिनाई है।

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं बता चुका हूं यदि आपका संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिसमें संविधान को प्रयोग में लाना असम्भव हो जायेगा। उसके फलस्वरूप हिन्दी-भाषी प्रदेशों का एक गुट बन जायेगा। उनका संविधान में किस प्रकार वर्णन किया जायेगा और उनका कौन-सा विधान-मंडल तथा राज्यपाल होगा? पांच राज्यों और प्रान्तों में इस समय पांच राज्यपाल हैं। आप अपने संशोधन द्वारा जिस राज्य का निर्माण करना चाहते हैं वहां कौन-सा विधान-मंडल कार्य करेगा? मैं बता चुका हूं कि यह कठिनाई उठ खड़ी होगी।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैंने यह विचार किया था कि आपने वे बातें भाषाओं पर आधृत प्रान्तों के सम्बन्ध में ही कही थी।

***अध्यक्ष:** जी नहीं। मैंने यह सुझाव सभा के सदस्यों के सामने शिष्टता के नाते रखा है अन्यथा मैं इन्हें अनियमित घोषित कर सकता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, आपका कथन शिरोधार्य है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि प्रान्तों के नाम बदलने के सम्बन्ध में जो संशोधन हैं उन सबको क्या आपका सचिवालय सम्बन्धित प्रान्तों को भेजेगा?

***अध्यक्ष:** जी हां, नाम बदलने के सम्बन्ध में जो संशोधन हैं वे सब उनके पास भेजे जायेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या वे सब अनियमित घोषित कर दिये गये हैं?

***अध्यक्ष:** जी हां, वे सब संशोधन जो कुछ प्रान्तों को मिलाकर, अथवा कुछ प्रान्तों के भागों को उनसे पृथक् करके उन्हें अन्य प्रान्तों में मिलाकर नये प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में हैं वे सब अनियमित घोषित कर दिये गये हैं। यदि किसी संशोधन के फलस्वरूप किसी वर्तमान प्रान्त की सीमा में परिवर्तन होता है तो वह अनियमित हैं क्योंकि वह वर्तमान स्थिति के अनुरूप नहीं है।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): एक संशोधन मध्य भारत के एक सदस्य के नाम से था। उस समय यह कहा गया था कि डॉ. अम्बेडकर उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं।

***अध्यक्ष:** वह परिवर्तन हो जाने दीजिये तभी हम उस प्रश्न को उठायेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या मैं संशोधन संख्या 406 उपस्थित कर सकता हूं जिसमें यह प्रस्ताव रखा गया है कि संयुक्त प्रान्त का नाम बलवर्त, आर्यावर्त, हिन्द अथवा बृज-साकेत रखा जाये?

***अध्यक्ष:** नामों के सम्बन्ध में सभी संशोधन प्रान्तीय सरकारों के पास उनकी सम्मति जानने के लिये भेजे जायेंगे। इसलिये इसकी आवश्यकता नहीं है कि आप अपना संशोधन उपस्थित करें। राज्य-क्षेत्रों के परिवर्तन के सम्बन्ध में सभी संशोधनों को निबटाने के पश्चात् मेरे विचार से अब और कोई संशोधन नहीं रह जाता।

***श्री सारंगधर दास:** श्रीमान, क्या मैं जान सकता हूं कि मेरे संशोधन के सम्बन्ध में आपका निर्णय क्या है?

***अध्यक्ष:** मैंने उसे अनियमित घोषित किया है क्योंकि उसका उद्देश्य यह है कि एक प्रान्त से कुछ राज्य-क्षेत्र पृथक् करके दूसरे प्रान्त के साथ मिला दिये जायें।

***श्री सारंगधर दास:** श्रीमान, वह एक प्रान्त से राज्य-क्षेत्र पृथक् करके दूसरे प्रान्त में मिलाने के सम्बन्ध में नहीं है। वह लोगों की इच्छा ज्ञात करने के सम्बन्ध में है जिसके फलस्वरूप किसी प्रान्त का कुछ भाग पृथक् करके दूसरे प्रान्त के साथ मिला दिया जायेगा अथवा नहीं मिलाया जायेगा। मैं इस सम्बन्ध में तर्क उपस्थित कर सकता हूं।

***अध्यक्ष:** यह संविधान का अंग नहीं हो सकता। यह प्रस्ताव विधान-सभा में उपस्थित किया जा सकता है। आप उसे विधान सभा के समक्ष रख सकते हैं। यदि आपको वहां सफलता प्राप्त हुई और यह परिवर्तन हो गया तो यह संविधान का अंग हो जायेगा।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (संयुक्त राज्य-तिरुवांकुर और कोचीन): अनुच्छेद 3 में इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में उपबन्ध हैं।

***अध्यक्ष:** जी हां, यह बताने के लिये मैं आपका आभारी हूं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): जिन संशोधनों की सूचना दी गई है उनमें से कुछ विभिन्न प्रान्तों की सीमाओं को बदलने के सम्बन्ध में हैं। किन्तु राज्यों के सम्बन्ध में मेरे विचार से आपको स्मरण होगा कि पिछली जनवरी को हमने भारत शासन अधिनियम, 1935, को संशोधित किया था और उसमें एक नवीन धारा अर्थात् धारा 290-क, रखी थी। उस धारा के अधीन ही प्रशासन के प्रयोजन के लिये ये राज्य निकटवर्ती प्रान्तों को सौंपे गये हैं। मेरा निवेदन है कि वे वैध रूप से उन प्रान्तों के अंग नहीं हैं बल्कि प्रशासन के उद्देश्य से उन्हें सौंपे गये हैं। इसलिये मेरा संशोधन संख्या 390 अनियमित नहीं घोषित किया जा सकता।

***अध्यक्ष:** मैंने इस आधार पर निर्णय किया है कि हम अनुसूची को संशोधित करके वर्तमान स्थिति में परिवर्तन नहीं कर सकते। संविधान में हम केवल उन बातों को रख रहे हैं जो आज अस्तित्व में हैं और उन सब बातों को नहीं रख

[अध्यक्ष]

रहे हैं जिन्हें हम चाहते हैं, अथवा जो बाद में अस्तित्व में आयेंगी। इसलिये मैं यह कहूंगा कि ये संशोधन अनियमित हैं क्योंकि इनका उद्देश्य राज्य-क्षेत्रों में परिवर्तन करना है।

***श्री सारंगधर दास:** सरायकेला का क्या होगा?

***अध्यक्ष:** इसकी स्वतन्त्रता है कि 26 जनवरी से पहले दूसरा निर्णय कर लिया जाय।

***श्री सारंगधर दास:** श्री जयनारायण व्यास ने सिरोही के सम्बन्ध में जो प्रश्न पूछा था उसके उत्तर में श्री मुन्शी ने बताया था कि उपप्रधान मन्त्री महोदय क्या करना चाहते हैं। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि मेरे संशोधन पर कोई वक्तव्य दिया जाये क्योंकि मेरी यह धारणा है कि ये दो राज्य लोगों की तथा नरेशों की इच्छा न होते हुये भी बिहार में मिला दिये गये थे। यह उस करार की प्रस्तावना के विरुद्ध है। जो नरेशों ने भारत सरकार के साथ किया था। पिछली मई को जब वे बिहार में समाविष्ट किये गये थे तो सरायकेला के नरेश ने राज्य-मंत्रणालय द्वारा नियुक्त अधिकारी से कहा था कि सरायकेला को प्रशासन की सुविधा के लिये अस्थाई रूप से समाविष्ट किया जा रहा है और संविधान को अन्तिम रूप से पारित करने के पूर्व लोगों की तथा नरेशों की इच्छा ज्ञात करने की आवश्यकता पड़ेगी। इसी कारण मैंने इस उपबन्ध का प्रस्ताव रखा है। यदि राज्य-मंत्रणालय इस आशय का वक्तव्य निकाले कि ये राज्य स्थाई रूप से बिहार में समाविष्ट कर दिये गये हैं, अथवा एक सीमा-आयोग इस प्रश्न पर विचार करेगा, अथवा लोगों की इच्छा जानने के लिये कोई अन्य उपाय निकाला जायेगा तो मुझे संतोष हो जायेगा और मैं अपना संशोधन वापस ले लूंगा।

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि राज्य-मंत्रणालय ने हाल में यह विज्ञप्ति निकाली थी कि वह उसी निर्णय को रहने देगा जो उसने पहले किया था। मेरे विचार से उसने इस आशय की एक विज्ञप्ति निकाली थी और वह हाल में प्रकाशित भी हुई थी।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र:** जहां तक हम समाविष्ट राज्यों के प्रतिनिधियों का सम्बन्ध है हम इस सभा में उनका प्रतिनिधित्व करने आये हैं। आप संविधान में समाविष्ट राज्यों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने जा रहे हैं। यदि इस अवसर पर हम समाविष्ट राज्यों के प्रतिनिधि अपनी बात नहीं कहेंगे तो हम यहां आये किसलिये हैं? मेरा निवेदन है कि इस प्रश्न पर वाद-विवाद समाप्त कर देना उचित नहीं है।

***अध्यक्ष:** मैं जो निर्णय सुना चुका हूं उसे नहीं बदल सकता।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, भाग 3 के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना है।

***अध्यक्ष:** क्या भाग 3 के बारे में?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, हमने राजस्थान और सौराष्ट्र के राज्यों की परिभाषा की है और कहा है कि सौराष्ट्र के विषय में वे राज्य-क्षेत्र भी समाविष्ट

होंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले काठियावाड़ से संयुक्त राज्य में थे और जो राज्य-क्षेत्र ऐसे प्रारम्भ से पूर्व तत्स्थानी देशों राज्य की सरकार द्वारा प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 के उपबन्धों के अधीन प्रशासित थे। जहां हमने राज्यों के नाम लिखे हैं वहां जम्मू और कश्मीर का नाम भी लिखा है। मैं स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूं। मैं यह चाहता हूं कि इस स्थल पर यह लिख दिया जाय कि जम्मू और कश्मीर के विषय में वह राज्य-क्षेत्र समाविष्ट होगा जो 15 अगस्त 1947 के ठीक पूर्व अस्तित्व में था और जिस पर उस तिथि को जम्मू और कश्मीर के महाराजा प्रशासन करते थे। श्रीमान, इसकी आवश्यकता है क्योंकि हम सबको विदित है कि इस समय एक युद्ध विराम पंक्ति बनाई गई है और उस क्षेत्र का एक भाग आक्रमणकारियों के हाथ में है।

***अध्यक्ष:** यह एक राजनैतिक प्रश्न है और इसे हम इस सभा के एक प्रस्ताव से हल नहीं कर सकते।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** तब जम्मू कश्मीर की स्थिति क्या होगी? उसका कौन-सा राज्य-क्षेत्र होगा?

***अध्यक्ष:** इस समय हमारे हाथ में जो कुछ है वह है ही और आगे चल कर हमें यदि कुछ अधिक प्राप्त हो जायेगा तो हमारा अधिक क्षेत्र पर अधिकार हो जायेगा।

मेरे विचार से अब और कोई संशोधन नहीं है। यदि कोई सदस्य संशोधनों पर बोलना चाहते हैं तो वे बोल सकते हैं।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल** (बम्बई : जनरल): श्रीमान, मेरे विचार से महाराष्ट्र के हम कुछ लोगों का यह कर्तव्य है कि इस अवसर पर हम अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। कार्यकारिणी समिति ने हाल में जो प्रस्ताव स्वीकार किया था वह यद्यपि बहुत सहायक है किन्तु उससे अधिक पथप्रदर्शन नहीं होता क्योंकि इस समय जब कि संघीय संविधान का निर्माण हो रहा है, उचित यह था कि संघांगों की सीमाओं को निश्चित करने के लिये कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये जाते। साथ ही मैं यह भी अनुभव करता हूं कि यह समय बहुत अनकल समय नहीं है। मैं हमेशा यह कहता आया हूं कि यह प्रश्न समझदारी से, समझौते से तथा सद्भावना के वातावरण में हल किया जाना चाहिये। मैं इसका अनुभव करता हूं और आपने जो समिति नियुक्त की थी उसके समक्ष बोलते हुये मैंने कहा था कि इस प्रश्न पर विचार-विमर्श पांच वर्ष के लिये स्थगित कर देना चाहिये। मैं यह पहली बार नहीं कह रहा हूं। मैं जानता हूं कि क्या कठिनाइयां हैं। मैं यह केवल संयुक्त महाराष्ट्र के निर्माण के सम्बन्ध में ही नहीं कहता हूं बल्कि अन्य प्रान्तों के सम्बन्ध में भी कहता हूं। मुझे यह कहने का साहस इस कारण भी हो रहा है कि मैं देखता हूं कि वर्तमान खण्ड (2) से, उसके संशेधित रूप में, वास्तव में कुछ सुविधा हो गई है। आरम्भ में बहुत ही पेचीदी प्रथा रखी गई थी किन्तु अब किसी प्रान्त की सीमा निश्चित करने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार का विधेयक संविधान को संशोधित करने वाला विधेयक नहीं समझा जायेगा अब स्थिति यह है कि इसके लिये संविधान में ही साधन उपलब्ध हैं। इसलिये प्रान्तों के निर्माण के सम्बन्ध में इस समय किन्हीं प्रश्नों को उठाने

[माननीय श्री एन.वी. गाडगिल]

की आवश्यकता नहीं है और डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुसूची को प्रस्तुत किया है उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं यह निवेदन करना चाहता था।

मैं एक सुझाव और प्रस्तुत करना चाहता हूं। यदि आप नामों का हिन्दीकरण चाहते हैं तो केवल कुछ प्रदेशों के नामों का ही जैसे कौशल, विदर्भ आदि का हिन्दीकरण न करिये। आप बम्बई को 'पश्चिम भारत'... और मद्रास को 'दक्षिण देश', कह सकते हैं, इत्यादि। यदि आप हिन्दीकरण चाहते हैं तो सभी नामों का, न कि कुछ नामों का, हिन्दीकरण कीजिये। कृपा करके मसौदा-समिति मेरे इस सुझाव को ध्यान में रखे। अन्यथा अनेक प्रकार की पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी और जो लोग कुछ ही नामों का हिन्दीकरण चाहते हैं उनके प्रयास से हितसाधन न होकर हितहानि होगी। इसलिये मसौदा-समिति के सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि इसे ध्यान में रखा जाय।

मेरे विचार से उचित यह होगा कि नवीन संविधान जब प्रयोग में आ जाये तभी सीमाओं को बदलने अथवा ठीक करने के प्रश्न पर विचार किया जाये। वास्तव में उसे हल करने में तभी सफलता भी प्राप्त हो सकती है, क्योंकि उस समय उन्हें निर्वाचकों से इसके लिये अधिकार भी प्राप्त रहेगा। जिन लोगों की यह धारणा है कि इस प्रश्न का एक विशेष हल ही उसका एकमात्र हल है उन्हें यह समझाना चाहिये और यह विश्वास दिलाना चाहिये कि इसका एक भिन्न हल भी है जिसके देश का अधिक हितसाधन हो सकता है। इसलिये इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात् मेरा निवेदन है कि इस पूरे प्रश्न को इस समय स्थगित रखा जाये और यह अनुसूची जिस रूप में प्रस्तावित हुई है उस रूप में इसे स्वीकार कर लिया जाये और नामों के परिवर्तन के सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव रखा है वह भी स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री जयनारायण व्यास:** अध्यक्ष महोदय, आपका निर्णय शिरोधार्य है किन्तु मैं सिरोही के सम्बन्ध में दो साधारण बातें कहना चाहता हूं। एक बात यह है कि संविधान की दृष्टि से सिरोही इस समय 'शासन-विहीन भूमि' है। यह राज्य क्षेत्र न तो प्रथम अनुसूची के भाग 1 के अन्तर्गत आता है और न भाग 2 अथवा भाग 3 के अन्तर्गत आता है। मेरे विचार से मेरे विद्वान मित्र श्री मुन्शी इस विषय पर घोषणा करने के लिये राज्य-मंत्रणालय से कहने वाले हैं। मुझे आशा है कि यह घोषणा की जायगी। दूसरी बात यह है कि डॉ. अम्बेडकर ने अधिकृत रूप से जो दूसरा संशोधन प्रस्तुत किया है उसमें बम्बई प्रेसीडेंसी की ऐसी परिभाषा की गई है कि उसमें सिरोही सम्मिलित हो जाता है। प्रान्तातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1947 को बम्बई को लागू करने का अर्थ यह है कि सिरोही ही सम्मिलित किया जा रहा है और कोई क्षेत्र नहीं सम्मिलित किया जा रहा है। इसलिये मुझे आशा है कि उस घोषणा में राज्य-मंत्रणालय, बम्बई की परिभाषा के सम्बन्ध में भी स्थिति स्पष्ट करेगा। अन्यथा सिरोही तथा राजपूताने के निवासी तथा सारे देश के लोग भी यही समझेंगे कि बिना यथोचित रस्मों को पूरा किये हुए सिरोही को चुपचाप बम्बई में समाविष्ट कर दिया जा रहा है। मैं केवल इतना ही निवेदन करना चाहता था।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र:** श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसके अनुसार ऐसे राज्य, जिनके शासकों ने उनके सम्बन्ध में अपने क्षेत्राधिकार

तथा शक्तियों को केन्द्रीय सरकार को सौंप दिया है, प्रान्तों में समाविष्ट कर दिये गये हैं। पिछली जनवरी को भारत शासन अधिनियम, 1935 संशोधित किया गया और केन्द्रीय सरकार को प्रशासन के लिये इन राज्यों को किसी प्रान्त को सौंप देने की शक्ति दी गई। अनुच्छेद 290-क के उपबन्धों के अनुसार यद्यपि प्रशासन के लिये इन राज्यों को प्रान्तों में समाविष्ट कर दिया गया है किन्तु विधि का सहारा लेकर इन राज्यों के अस्तित्व को अब भी बनाये रखा जा रहा है। इसलिये मैं मसौदा-समिति ने यह स्पष्ट कराना चाहता हूं कि इस मसौदे में भी क्या पुरानी ही स्थिति बनाई रखी गई है अथवा अब वह स्थिति नहीं है।

श्रीमान, जब 14 दिसम्बर, 1948 को सरदार पटेल कटक गये थे तो उड़ीसा राज्यों के शासकों ने भारत सरकार से एक करार किया था और उस करार की प्रस्तावना में इन शासकों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रशासन के लिये उनके राज्यों को उड़ीसा प्रान्त को सौंप दिया जाये। सरायकेला के राजा ने जो करार किया था उसके शब्द मैं आपको पढ़कर सुनाता हूं। "चूंकि राज्य के तथा उसके लोगों के तात्कालिक हितों को दृष्टि में रखते हुये सरायकेला के राजा की यह इच्छा है कि राज्य का प्रशासन उड़ीसा प्रान्त के प्रशासन में यथाशीघ्र उस प्रकार समाविष्ट किया जाये जिस प्रकार भारत सरकार उसे समाविष्ट करना चाहे....." अब मसौदा-समिति ने जो संशोधन उपस्थित किया है उससे इस करार का खण्डन होता है। मैं मसौदा-समिति से प्रार्थना करता हूं कि वह इस पर विचार करे।

श्रीमान, मैं और श्री सारंगधर दास उड़ीसा राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसलिये इस सम्बन्ध में हमारा विशेष उत्तरदायित्व है। सरायकेला और खरसवां इन दो राज्यों ने हमें अपना प्रतिनिधि चुना है। मेरे विचार से हमारे लिये उचित यही है कि हम सभा को संक्षेप में सूचित करें कि इन राज्यों की क्या इच्छा है। बहुत प्राचीन काल से इन दो राज्यों के लोगों के उड़ीसा प्रान्त के लोगों से सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। भाषा तथा जाति की दृष्टि से भी वे उनके निकट सम्बन्धी हैं। उत्कल विश्वविद्यालय का क्षेत्राधिकार इन दो राज्यों तक भी है, यद्यपि वह कटक में स्थित है। इन दो राज्यों के न्यायालयों की भाषा उड़िया है और अभी हाल तक वहां के प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा उड़िया के माध्यम से ही जाती थी। प्रशासन तथा राजनीति के प्रयोजनों के लिये भी 1948 के पूर्व ये दो राज्य उड़ीसा राज्य-समूह में सम्मिलित किये जाते थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सरायकेला तथा खरसवां सहित उड़ीसा राज्यों के एकीकरण का आन्दोलन उड़ीसा में, उड़ीसा के नेताओं के नेतृत्व में, आरम्भ हुआ था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इस मामले को राज्य-मंत्रणालय अन्तिम रूप से निबटा चुका है और जो परिपत्र निकाला गया था उसमें यह उल्लिखित था कि प्रान्तों की सीमाओं को फिर से निश्चित किया गया है। अब एक प्रान्त से कोई राज्य-क्षेत्र हटा कर दूसरे प्रान्त में नहीं मिलाया जा सकता। मेरे विचार से माननीय सदस्य महोदय अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन कर रहे हैं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्रः** कम से कम इस सभा के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इसका राज्य-मंत्रणालय से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये मुझे इस सभा में अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार है। श्रीमान, यदि आप यह कहते हैं कि मुझे यह अधिकार नहीं प्राप्त है तो मैं अपनी जगह पर जाकर बैठ जाऊंगा।

***अध्यक्ष:** मैं यह बताना चाहता हूं कि आप जिन विचारों को यहां व्यक्त करना चाहते हैं उनका कहीं भी कोई प्रभाव नहीं होगा। यह सभा उड़ीसा की सीमाओं को नहीं बदल सकती।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र:** यदि आप मुझे अपने विचार व्यक्त करने देंगे तो कम से कम मुझे यह संतोष हो जायेगा कि एक लोक-प्रतिनिधि के नाते मैंने लोगों के विचार सभा के सामने रख दिये हैं। इसी प्रकार इस वाद-विवाद में भाग लेने के लिये मैंने आपकी आज्ञा मांगी थी।

श्रीमान, उड़ीसा राज्यों में ही सबसे पहले छोटे-छोटे राज्यों को प्रान्तों में समाविष्ट करने का प्रश्न उठाया गया था और उन्हीं राज्यों में यह विचार परिपक्व हुआ था। जब माननीय सरदार पटेल कटक गये थे तो अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद् ने उनको प्रादेशिक परिषद् तथा विभिन्न प्रजा मण्डलों के द्वारा बताया था कि वहां के लोगों की क्या इच्छा है और तदन्तर उन्होंने वहां के राज्यों के शासकों से एक करार किया था। यह आपको विदित ही है कि जनवरी 1948 में ये दो राज्य उड़ीसा के प्रान्त को सौंपे गये थे। दुर्भाग्य से कुछ घटनाओं के कारण इन राज्यों में गोलियां चलानी पड़ीं जिसके फलस्वरूप इन दो राज्यों को बिहार को सौंप दिया गया। इसके पूर्व इस प्रश्न पर बिहार और उड़ीसा में बड़ी तनातनी रही और भारत सरकार ने एक न्यायाधिकरण की नियुक्ति की घोषणा की जिसके सभापति बम्बई के उच्च न्यायालय के एक प्रतिष्ठित न्यायाधीश थे, और उसे इन दो राज्यों की भाषा, संस्कृति तथा प्रशासन-सम्बन्धी सुविधाओं के बारे में लोगों की इच्छाओं का पता लगाने का कार्य सौंपा। आशा यह की जाती थी कि न्यायाधिकरण इस प्रश्न को न्यायोचित ढंग से हल करेगा। किन्तु इन राज्यों के लोगों को यह जान कर बहुत आश्चर्य हुआ कि इन दो राज्यों को बिहार के साथ मिला दिया गया है और इस प्रकार वहां के लोगों को स्वयं निर्णय करने के अधिकार से वंचित किया गया है। उस समय यह ज्ञात हुआ था सरायकेला के राजा यह चाहते थे कि जब तक नया संविधान नहीं बन जाता और उसे स्वीकार नहीं कर लिया जाता तब तक प्रशासन के लिये अस्थाई रूप से उनका राज्य बिहार सरकार को सौंप दिया जाये।

श्रीमान, 1948 में जब संविधान सभा (विधाई) में मैंने एक प्रश्न पूछा था तो.....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** माननीय सदस्य महोदय को उत्तर देने के लिये मुझे समय नहीं मिलेगा। मैं सरायकेला के महाराजा से मिला था और उन्होंने मुझ से कहा था कि वे सरायकेला को बिहार में समाविष्ट करना चाहते हैं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र:** सरायकेला के महाराजा ने राज्य-मंत्रणालय के पास जो आवेदन पत्र भेजा है उसे माननीय सदस्य महोदय पढ़ें। 1948 में सरदार पटेल ने कृपा करके मुझे यह उत्तर दिया था कि सरायकेला और खरसवां के प्रशासन को बिहार को थोड़े समय के लिये ही सौंपा जा रहा है। श्रीमान, मैंने देखा कि पिछले अगस्त में ये राज्य भारत शासन अधिनियम की धारा 290-क के अधीन बिहार को स्थाई रूप से सौंप दिये गये। यह जानने का प्रयास नहीं किया गया कि इन राज्यों के लोगों की क्या इच्छा है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यह एक गलत बयान है।

***श्री युधिष्ठिर मिश्रः** जहां तक वहां के लोगों का सम्बन्ध है उनसे कुछ नहीं पूछा गया। यदि, जैसा कि मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद करते हैं, यह एक बलत बयान है तो मैं उनको चुनौती देता हूं कि इन राज्यों के लोगों की इच्छा का पता लगाने के लिये जनमत-संग्रह किया जाये। यदि वे इस चुनौती को स्वीकार करते हैं तो मैं इस समय सभा के समक्ष जो कुछ कह रहा हूं उस पर जोर नहीं दूंगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** माननीय सदस्य सरदार पटेल को लिखें और उनसे इस प्रश्न को फिर उठाने के लिये कहें।

***श्री युधिष्ठिर मिश्रः** मेरे मित्र एक भिन्न प्रश्न उठा रहे हैं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं चाहता कि यहां चुनौतियां दी जायें और स्वीकार की जायें।

***श्री युधिष्ठिर मिश्रः** राज्य-मंत्रणालय ने इन राज्यों को बिहार को सौंपने का एकमात्र कारण यह बताया है कि यदि ये राज्य उड़ीसा को सौंपे जायेंगे तो प्रशासन सम्बन्धी असुविधा उत्पन्न हो जायेगी। श्रीमान जब मयूरभंज का राज्य उड़ीसा में समाविष्ट किया गया था तो उस समय यह असुविधा उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिये राज्य-मंत्रणालय ने जिस कारण से इन राज्यों को बिहार को सौंपा है वह निराधार है।

मैं एक-दो बातें और कह के अपनी जगह पर चला जाना चाहता हूं। इन दो राज्यों के सम्बन्ध में जो कदम उठाया गया है वह न तो उचित अथवा न्यायोचित है और न वैध ही है। मैं चाहता हूं कि प्रथम अनुसूची में परिवर्तन करके उनकी स्थिति में परिवर्तन किया जाये। मेरा निवेदन है कि मेरी इन बातों पर विचार किया जाये और इन दो राज्यों के भविष्य के सम्बन्ध में लोगों की इच्छानुसार निर्णय किया जाये।

(श्री चदुबंस सहाय बोलने के लिये उठे)

***श्री एच.वी. पातस्करः** मैं कुछ ही मिनटों में अपनी बात समाप्त कर दूंगा। मैं कल जा रहा हूं।

***अध्यक्षः** क्या हम कल बैठक कर रहे हैं?

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान आज अपराह्न में तो नहीं कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** (श्री जदुबंस सहाय से) अधिक समय न लीजियेगा।

***श्री जदुबंस सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान, उड़ीसा के मेरे माननीय मित्र ने अभी जो बातें कही हैं उनके कारण ही मुझे इस सामान्य वाद-विवाद में भाग लेना पड़ रहा है अन्यथा मेरा कोई ऐसा इरादा नहीं था। मैं विवरण नहीं देना चाहता

[श्री जदुबंस सहाय]

किन्तु अपने उड़ीसा के मित्रों से तथा अन्य मित्रों से भी इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि यह मामला अन्तिम रूप से तय किया जा चुका है। प्रत्येक प्रश्न का आखिर कोई अन्तिम हल भी होना ही चाहिये। यदि उड़ीसा और बिहार के मित्र इस प्रश्न को लेकर विवाद करते रहे यद्यपि राज्य-मंत्री महोदय इसे अन्तिम रूप से तय कर चुके हैं, तो दोनों प्रान्तों के बहुत कटु सम्बन्ध हो जायेंगे। बिहार में हम लोग इस प्रश्न के अन्तिम रूप से हल किये जाने पर यह आशा करते हैं कि दो प्रान्तों के बीच पारस्परिक सद्भाव की अभिवृद्धि होगी क्यों कि यह न केवल दोनों प्रान्तों के कल्याण के लिये आवश्यक है बल्कि सारे देश के हितसाधन के लिये भी आवश्यक है। इसलिये श्रीमान, श्री युधिष्ठिर मिश्र ने अपने भाषण में जिस प्रश्न को उठाया है वह वास्तव में इस सभा में नहीं उठाया जाना चाहिये था।

प्रश्न वास्तव में यह है कि क्या सरायकेला और खरसवां की बिहार में समाविष्टि के विषय को फिर से उठाया जाये या नहीं। माननीय सरदार पटेल कटक गये, उन्होंने सब कुछ देखा तथा एक अधिकारी को नियुक्त किया और सरायकेला के राजा ने जिस प्रसंविदा पर हस्ताक्षर किये थे उसे भी देखा। इन सब बातों पर विचार करके सरदार पटेल के सुयोग्य पथप्रदर्शन से राज्य-मंत्रणालय ने यह अन्तिम निर्णय किया है कि सरायकेला तथा खरसवां के दो देशी राज्य बिहार में ही स्थाई रूप से समाविष्ट रहें। अब इस विषय को फिर उठाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रश्न को फिर उठाने से दोनों प्रान्तों में से किसी का भी हितसाधन नहीं होगा। इसलिये उड़ीसा के अपने मित्रों से मेरा निवेदन है कि इस प्रश्न को उठाने से इन दो प्रान्तों की प्रशंसा नहीं होगी।

इसके अतिरिक्त उड़ीसा से प्रोत्साहन पाने पर सरायकेला के महाराजा ने, जो एक असंतुष्ट व्यक्ति हैं, ऐसे कारणों से, जो बिहार सरकार के नियंत्रण के बाहर थे, संविधान-सभा के सदस्यों को एक पुस्तिका की प्रतियां दी हैं। हमने यह समझा था कि उड़ीसा में आखिर लोग समझदारी से काम लेंगे किन्तु यदि उड़ीसा के राजनीतिज्ञ ही इस प्रकार के आन्दोलन को प्रोत्साहित करेंगे तो उससे न तो उड़ीसा का और न बिहार का हितसाधन होगा। उन्हें हमें सरायकेला के आदिवासियों की तथा अन्य लोगों की भी स्थिति में सुधार करने के लिये कुछ समय देना चाहिये। इन दो राज्यों के लोगों की आर्थिक स्थिति तथा शिक्षा-सम्बन्धी स्थिति में सुधार करने के लिये बिहार सरकार पूरी शक्ति लगा कर प्रयास कर रही है। यदि यह विवाद चलता रहा तो वह सरायकेला तथा खरसवां के राज्यों के लिये बहुत हानिकर सिद्ध होगा। इसलिये श्री युधिष्ठिर मिश्र की बातों का जवाब न देकर मैं उड़ीसा के अपने मित्रों से फिर अपील करता हूं कि वे दो प्रान्तों के बीच सद्भावना स्थापित करने में हमारी सहायता करें और जिस प्रश्न को राज्य-मंत्री महोदय ने अन्तिम रूप से हल कर दिया है उसे फिर नहीं उठायें।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुसूची के सम्बन्ध में मेरे नाम से कई संशोधन थे किन्तु मैंने यह विचार किया, और यह ठीक ही विचार किया, कि उनको उपस्थित करने से कोई लाभ नहीं होगा। मेरे नाम से संशोधन संख्या 324 भी है जिसका उद्देश्य यह है कि महाराष्ट्र के नवीन राज्य के निर्माण के लिये एक अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 3-क, रखा जाये किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से

विचार करने पर मैंने उसे भी उपस्थित नहीं किया, क्योंकि मैं जानता था कि वह स्वीकार नहीं किया जायेगा। मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि हमने इस प्रश्न पर विचार-विमर्श कार्यकारिणी समिति के एक प्रस्ताव के कारण स्थगित किया है जिसके फलस्वरूप उन प्रान्तों को स्थापित किया जा सकेगा जिनके बारे में श्रीमान, कुछ समय पूर्व एक आयोग नियुक्त करके आपने जांच करवाई थी।

जहां तक महाराष्ट्र का सम्बन्ध है कार्यकारिणी समिति के उस प्रस्ताव में कहा गया है कि तीन आदमियों की समिति, अर्थात् जे.वी.वी. समिति के प्रतिवेदन की शर्तों के अधीन रहते हुए महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की जायेगी। उस प्रतिवेदन में कहा गया है कि किसी भी दशा में बम्बई का नगर महाराष्ट्र राज्य में सम्मिलित नहीं किया जायेगा। इस समय मैं कोई विवाद खड़ा करना नहीं चाहता। मैं केवल यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि बम्बई नगर के बिना महाराष्ट्र राज्य वहां के लोगों को कभी भी स्वीकार्य नहीं होगा। इसी व्यावहारिक दृष्टि से मैंने अपना संशोधन संख्या 324 उपस्थित नहीं किया। अच्छा यह होगा कि हम उस समय तक प्रतीक्षा करें जब कि वे लोग जो इस समय अविश्वास और सन्देह होने के कारण तथा अन्य कई कारणों से भी, बम्बई को महाराष्ट्र से हटाना चाहते हैं, पारस्परिक समझौते और सहयोग के फलस्वरूप बम्बई को अपनी पहली प्राकृतिक जगह, अर्थात् महाराष्ट्र में रहने देने के लिये सहमत हो जायेंगे। हम केवल महाराष्ट्रियों के हितसाधन के लिये नहीं बल्कि सारे देश के हितसाधन के लिये महाराष्ट्र की मांग करते हैं। इसमें प्रान्तीयता की कोई बात नहीं है। इसलिये जहां तक महाराष्ट्र का सम्बन्ध है मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि मैं अपना संशोधन संख्या 324 केवल इस कारण नहीं उपस्थित कर रहा हूं कि मैं देखता हूं कि वर्तमान स्थिति में महाराष्ट्र प्रान्त को स्थापित करने की सम्भावना नहीं है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** श्रीमान, अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** क्या डॉ. अम्बेडकर बोलना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मुझे कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्ष:** तब मैं पूरी अनुसूची पर मत लूंगा क्योंकि बाद में कोई भी संशोधन नहीं उपस्थित किया गया।

***श्री एच.वी. कामत:** प्रान्तों के नामों के संशोधनों के अधीन रहते हुए।

***अध्यक्ष:** "अधीन रहते हुए" का कोई प्रश्न नहीं है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह प्रश्न प्रान्तों के सामने रखा जायेगा। यदि हमें कोई ऐसा उत्तर मिला जिसके

[अध्यक्ष]

फलस्वरूप किसी परिवर्तन को करने की आवश्यकता पड़ी तो हम उस पर तृतीय पठन में विचार करेंगे। प्रस्ताव यह है कि:

"प्रथम अनुसूची को संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रथम अनुसूची को संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** आज सभा स्थगित करने के पूर्व हमें समय-सारिणी निश्चित करनी है। कुछ सदस्यों ने आज प्रात: यह कहा था कि हम कल बैठक करें। ("नहीं" और "हां" की ध्वनियां)

***श्रीमती एनी मैसकरीन:** क्या हमें बहुसंख्यक दल की तानाशाही भुगतनी होगी?

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से माननीय सदस्य का यह कथन निराधार है। किसी बहुसंख्यक समुदाय की तानाशाही का कोई प्रश्न नहीं है। केवल समय-सारिणी निश्चित करने का प्रश्न है और निस्सन्देह इस सभा की समय-सारिणी को देखकर गिरजे जाने के लिये भी समय निकाला जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। किन्तु यदि सदस्य रविवार को बैठक नहीं करना चाहते हैं तो यह दूसरी बात है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यदि हमें अपना कार्य एक दिन में समाप्त करना है तो मेरी समझ में नहीं आता कि हम कल रविवार को बैठक क्यों नहीं करें।

***अध्यक्ष:** हम एक दिन में कार्य समाप्त नहीं कर सकेंगे। यदि हमने कल भी बैठक की तो फिर भी हमें सोमवार को बैठक करनी होगी और यदि हमने कल बैठक नहीं की तो हमें मंगलवार को बैठक करनी होगी। इसलिये यदि सदस्यों की इच्छा हो तो हम कल बैठक कर सकते हैं।

***कुछ माननीय सदस्य:** "जी नहीं, जी नहीं"

***अध्यक्ष:** तब मैं इस पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सभा कल रविवार को समवेत् हो"

सभा में सदस्यों ने हाथ खड़े करके मत दिये, पक्ष में: 41, विपक्ष में : 35 ।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** तब हम कल बैठक करेंगे।

इसके पश्चात् सभा रविवार तारीख 16 अक्तूबर 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

GIPD–HS-191 PSD–3-12-52–320

Con. 3. X.9.49
320

अंक 10
संख्या 9

रविवार
16 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3237-3332
[अनुच्छेद 264 क, 274 घघ और 302 कक पर विचार]
[अनुसूची 3 और अनुच्छेद 13, 16, 27, 42, 280 क, 85, 111, 112, 203, 122, 130, 169, 213 क, और 215 क पर विचार]

भारतीय संविधान सभा

रविवार 16 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत् हुई।

संविधान का मसौदा (जारी)

***अध्यक्षः** कार्यावली में बहुत से अनुच्छेद हैं। उनमें से कुछ विवादास्पद हैं और अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन पर शायद वाद-विवाद कुछ समय ले, किन्तु अन्य अनुच्छेद लगभग औपचारिक ही हैं। मैं कठिन तथा विवादास्पद अनुच्छेदों को पहले लेना चाहता हूं, जिससे कि हम उन्हें निबटा दें और फिर उन संशोधनों को ले लें जो केवल औपचारिक ही हैं। क्या हम 264क से आरंभ करें, डॉ. अम्बेडकर? क्या आपके लिये यह ठीक रहेगा?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): क्या मैं यह बता सकता हूं कि ये संशोधन हमारे पास आज प्रातः काल सवा नौ बजे पहुंचे थे और मुझे सभा को आते समय मार्ग में पढ़ने पड़े थे।

***अध्यक्षः** सवा नौ बजे? वे कल रात को भेज दिये गये थे।

***कुछ माननीय सदस्यः** हमें वे नौ बजे प्रातःकाल मिले।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रांत : जनरल): मेरा सुझाव यह है कि इस अनुच्छेद को दोपहर बाद ले लिया जाये, श्रीमान।

***अध्यक्षः** दोपहर बाद शायद हम सत्र ही न करें। ऐसी स्थिति में मेरी समझ में नहीं आता कि क्या किया जाये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** यह बहुत उलझे हुए अनुच्छेद हैं और उनसे कई विनिश्चयों पर जो सदन पहले कर चुका है पुनः विचार आरंभ हो जायेगा।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 264 क कई दिनों से हमारे सामने है; 274घघ भी कई दिनों से है; अनुच्छेद 302कक के विषय में भी यही बात है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैं आज की कार्यावली के विषय में सामान्य रूप से कह रहा हूं। उनमें से अधिकांश में वे मामले पुनः उपस्थित हो जायेंगे जिन पर सदन पहले ही विचार कर चुका है। किसी के लिये, तीक्ष्णतम बुद्धि वाले के लिये भी इन परिवर्तनों को इतने समय में समझना कठिन है। ऐसा कोई संकेत नहीं किया गया है कि क्या परिवर्तन किये जाने हैं।

***अध्यक्ष:** निस्संदेह मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 280क तो निस्संदेह नया अनुच्छेद है जो आज ही आया है। किन्तु अन्य अनुच्छेद कई दिनों से कार्यावली में चले आ रहे हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रदेश और बरार : जनरल): 264क बिल्कुल नया अनुच्छेद है और हमारे पास इसकी सूचना आज 9 बजे पहुंची थी। इस अनुच्छेद पर संशोधन भेजना तो असंभव ही है। अत: मेरी प्रार्थना है कि इसे दोपहर बाद या कल लिया जाये।

***अध्यक्ष:** इसका अर्थ यह है कि हमें सत्र को दो तीन दिन के लिये बढ़ाना पड़ेगा। मेरे विचार में यह ठीक नहीं रहेगा। हम अनुच्छेद 264क को लेते हैं।

अनुच्छेद 264क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान, मैं संशोधन सं. 425 को पेश करता हूं।

"कि सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 307 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 264क के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'264A. (1) No law of a State shall impose, or authorise the imposition of, a tax on the sale or purchase of goods where such sale or purchase takes place—

Restriction as to imposition of tax on the sale or purchase of goods.

(a) outside the State; or

(b) in the course of the import of the goods into, or export of the goods out of, the territory of India.

Explanation.—For the purposes of sub-clause (a) of this clause a sale or purchase shall be deemed to have taken place in the State in which the goods have actually been delivered as a direct result of such sale or purchase for the purpose of consumption in that State, notwithstanding the fact that under the general law relating to sale of goods the property in the goods has by reason of such sale or purchase passed in another State.

(2) Except in so far as Parliament may by law otherwise provide, no law of a State shall impose, or authorise

the imposition of, a tax on the sale or purchase of any goods where such sale or purchase taken place in the course of inter-State trade or commerce:

Provided that the President may by order direct that any tax on the sale or purchase of goods which was being lawfully levied by the Government of any State immediately before the commencement of this Constitution shall, notwithstanding that the imposition of such tax is contrary to the provisions of this clause, continue to be levied until the thirty-first day of March, 1951.

(3) No law made by the Legislature of a State imposing, or authorising the imposition of, a tax on the sale or purchase of any such goods as have been declared by Parliament by law to be essential for the life of the community shall have effect unless it has been reserved for the consideration of the President and has received his assent.'

[264क.(1) राज्य की कोई विधि, वस्तुओं के क्रय और विक्रय पर, जहां ऐसा क्रय या विक्रय: वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर करारोप के बारे में निर्बन्धन

(क) राज्य के बाहर, अथवा

(ख) भारत राज्य-क्षेत्र में वस्तुओं के आयात अथवा उसके बाहर निर्यात के दौरान में, होता है वहां कोई करारोपण, न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी।

व्याख्या.—उपखंड (1) के प्रयोजनों के लिये क्रय या विक्रय उस राज्य में हुआ समझा जायेगा जिसमें ऐसे क्रय या विक्रय के परिणामस्वरूप उसी राज्य में उपयोग के लिये वस्तुओं का भुगतान उस राज्य में किया गया है चाहे फिर वस्तु-विक्रय सम्बन्धी साधारण विधि के अधीन उन वस्तुओं का स्वत्व हस्तान्तरण ऐसे क्रय या विक्रय के कारण किसी दूसरे राज्य में क्यों न हो चुका हो।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) जहां तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित करे उसके अतिरिक्त राज्य की कोई विधि किन्हीं वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर वहां कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी जहां ऐसा क्रय-विक्रय अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान में होता है:

परन्तु राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्देश दे सकेगा कि वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कोई कर जो किसी राज्य की सरकार द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले विधिवत् उद्गृहीत किया जा रहा था, इस बात के होते हुए भी कि ऐसे कर का आरोपण इस खंड के उपबन्धों के प्रतिकूल है, 1951 के मार्च के 31वें दिन तक उद्गृहीत किया जाता रहेगा।

(3) किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि ऐसी वस्तुओं के, जो संसद द्वारा समुदाय के जीवन के लिये आवश्यक घोषित की गई हैं, क्रय या विक्रय पर करारोपण करती या करना प्राधिकृत करती है, तब तक प्रभावी न होगी जब तक कि राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने पर उसे उसकी अनुमति प्राप्त न हो गई हो।]"

श्रीमान, जैसा कि सबको ज्ञात है, विक्रय कर से भारत भर में व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में बहुत कठिनाई हो गई है। यह पता लगा है कि बहुत से विक्रयकरों से, जो विविध प्रांतीय सरकारों ने लगाये हैं, या तो आयात अथवा निर्यात होने वाले माल में कमी हो गई है, या अन्तर्राज्यिक व्यापार अथवा वाणिज्य में कमी हो गई है। यह मान लिया गया है कि इस प्रकार की अराजकता को चलने नहीं देना चाहिये और प्रांतों को विक्रय-कर लगाने की स्वतंत्रता तो होनी चाहिये किन्तु कुछ ऐसे विनियम भी होने चाहियें जिससे कि प्रांतों द्वारा आरोपित विक्रय-कर उन उचित सीमाओं में रहेगा जो विक्रय-कर के लिये होनी चाहिये। अतः यह अनुभव किया जाता है कि कुछ विशिष्ट उपबंध होना चाहिये जिससे विक्रय-कर लगाने की प्रांतों की शक्ति पर कुछ सीमाएं लगा दी जायें।

पहली बार जो मैं सदन को बताना चाहता हूं वह यह है कि इस अनुच्छेद 264क में कुछ उपबंध हैं जो संविधान के विविध भागों की नकल ही हैं। उदाहरण के लिये, मेरे द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद 264क के उप-खण्ड (1) में, उप-खण्ड (ख) संविधान के उस अनुच्छेद की नकल ही है—विधायी सूची की प्रविष्टि कि आयात तथा निर्यात पर करारोपण केन्द्रीय सरकार का अनन्य क्षेत्र होगा। अतएव जहां तक उप-खण्ड (1) (ख) का संबंध है, कोई विवाद हो ही नहीं सकता कि यह प्रांतों के विक्रय कर लगाने के अधिकार का किसी अर्थ में भी अपहरण है।

इसी प्रकार उप-खंड (2) भी भाग 10क की पुनरावृत्ति है जिसे हमने हाल ही में पारित किया था और जो अंतर्राज्यिक वाणिज्य तथा व्यापार के उपबंधों के विषय में है। अतएव उपखंड (2) में भी कोई नई बात नहीं है। इसमें यही लिखा है कि यदि कोई विक्रय कर लगाया जायेगा तो वह भाग 10क के उपबंधों के विपरीत नहीं होगा।

उप-खंड (3) के विषय में यह स्वीकार कर लिया गया है कि कुछ ऐसी वस्तुएं हैं जो भारत भर में जनता के जीवनार्थ इतनी अपेक्षित हैं कि उन पर उन

प्रांतों द्वारा कर नहीं लगाया जाना चाहिये जिनमें वे पैदा होती हैं। अतः यह अनुभव किया गया कि यदि ऐसी वस्तु है, जो भारत भर में जनता के जीवनार्थ अपेक्षित हो, तो यह आवश्यक है कि सम्बद्ध प्रांत उस वस्तु पर कर लगाये इससे पूर्व, प्रांत द्वारा निर्मित विधि पर राष्ट्रपति की अनुमति मिलनी चाहिये ताकि राष्ट्रपति तथा केन्द्रीय सरकार यह देख सकें कि उस करारोपण से, जो वह प्रांत विशेष लगाना चाहता है, कोई कठिनाई न हो।

उपखंड (2) का परन्तुक भी महत्वपूर्ण है और सदन का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया जा सकता है। यह बिल्कुल सत्य है कि कुछ विक्रय कर जो प्रांतों ने लगाये हैं अनुच्छेद 264क में समाविष्ट उपबंधों से सर्वथा संगत नहीं हैं। वे शायद उपबंधों से आगे बढ़ गये हैं। अतएव यह अनुभव किया जाता है कि जब संविधान का यह विधि-नियम लागू हो तब संविधान के उपबंधों से असंगत सब विधियां समाप्त हो जायेंगी। संविधान के आरंभ के दिन इससे विविध प्रांतों को, जिनमें ऐसे कर हैं तथा जिनके वित्त उनकी आय पर कुछ हद तक निर्भर हैं, कुछ वित्तीय कठिनाई हो जायेगी। इसलिये इस संविधान के सामान्य उपबंधों की व्याख्या के रूप में यह प्रस्थापना है कि चाहे किसी प्रांत द्वारा आरोपित विक्रय कर अनुच्छेद 264क के उपबंधों से असंगत हो, फिर भी वह विधि 31 मार्च 1951 तक लागू रहेगी, अर्थात् हम प्रांतों को कुछ मास और देना चाहते हैं जिसमें वे ऐसे फेर-बदल कर सकें जो उन्हें अपनी विधि को इस अनुच्छेद के उपबन्धों से संगत बनाने के लिये करने होंगे।

मैं नहीं समझता कि मेरे संशोधन के विषय में अधिक व्याख्या की आवश्यकता है किन्तु यदि कोई प्रश्न उठाया जायेगा तो मैं वाद-विवाद का उत्तर देते समय उस पर सहर्ष प्रकाश डालूंगा।

(संशोधन सं. 426 तथा 427 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सं. 425 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 264क के खंड (1) की व्याख्या में, 'for the purpose of consumption in that State' ये शब्द हटा दिये जायें, और अन्त में निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:-

'(4) The Union Parliament shall have power to amend the laws in respect of taxes on sale or purchase of goods with a view to bring uniformity in the laws made by the various States of the Union or in the interests of the Union as a whole, provided that no Bill for such amendment shall be moved in Parliament without the prior permission of the President, and the President before giving such permission shall obtain the views of the Governments of the various States concerned.'

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

[(4) संघ संसद की शक्ति होगी कि वह माल के क्रय या विक्रय पर करों के विषय में विधियों को संशोधित कर सके जिससे कि संघ के विविध राज्यों द्वारा निर्मित विधियों में या समस्त संघ के हितों में एकरूपता लाई जा सके, परन्तु ऐसे संशोधनों के लिये कोई विधेयक संसद में राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना पेश नहीं किया जायेगा, और राष्ट्रपति ऐसी अनुमति देने से पूर्व विविध सम्बद्ध राज्यों की सरकारों के विचारों का पता लगायेगा।]"

श्रीमान, यह संशोधन सं. 425 पहले के संशोधन सं. 307 के रूपभेद के रूप में है। यह कुछ अधिक व्यापक है और इसमें उन आपत्तियों का निराकरण किया गया है जो उस अनुच्छेद पर उठाई गई थीं। किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया अनुच्छेद भी बहुत त्रुटिपूर्ण है, और इसका प्रभाव यह होगा कि कई प्रांतों की आय कुछ करोड़ रुपये कम हो जायेगी।

डॉ. अम्बेडकर ने हमारे समक्ष जो सिद्धान्त रखे हैं वे सरल हैं। पहली बात, निर्यात तथा आयात पर विक्रय-कर नहीं लगेगा; दूसरी बात, अंतर्राज्यिक व्यापार पर विक्रय-कर नहीं लगेगा; और तीसरी बात, जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर विक्रय कर राष्ट्रपति के अनुमोदन के बिना नहीं लगेगा। किन्तु खंड (1) में, आयात तथा निर्यात की वस्तुओं पर विक्रय कर लगाने के विषय में राज्यों की शक्ति पर निर्बंधन लगाये जाने हैं; चाहे उसकी दर एक पैसा प्रति मन ही क्यों न हो। इसका परिणाम यह होगा कि कई प्रांतों की राजस्व की बड़ी-बड़ी राशियां उनके साथ से निकल जायेंगी। उदाहरण के लिये, मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री मुझे बता रहे थे कि वे मेंगनीज तथा अन्य खनिज पदार्थ राज्य से निर्यात करते हैं। बिहार अभ्रक तथा ऐसी अन्य वस्तुओं का निर्यात करता है। वे विक्रय कर के रूप में केवल एक दो पैसा प्रति मन लगा देते हैं। इससे प्रांत के कोष में एक करोड़ के लगभग रुपया आ जाता है।

अब हम कह चुके हैं कि यदि ये वस्तुएं राज्य में उपभोगार्थ हों तभी यह कर लगाया जा सकता है, अन्यथा नहीं; और इसका परिणाम यह होगा कि प्रांतों के वित्तों में भयानक कमी पड़ जायेगी। अतएव मेरे विचार में 'for the purpose of consumption in that State' शब्द हटा दिये जाने चाहियें और उस कमी को पूरा करने के लिये मैं एक नये खंड का सुझाव दे रहा हूं जो मैंने अभी पढ़ा था और जिसमें लिखा है "The Union Parliament shall have power to amend the laws in respect of taxes on sale or purchase of goods with a view to bring uniformity in the laws made by the various States of the Union or in the interests of the Union as a whole" यह तर्क किया जा सकता है कि यदि यह शक्ति यहां नहीं रखी गई तो कई राज्य ऐसे कर लगायेंगे जो वास्तव में आबकारी कर या उत्पादन कर ही होगा। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि जब ऐसे कर लगाये जायें जिनसे केन्द्र को या व्यापार को हानि पहुंचे, तब खंड (4) में प्रदत्त यह शक्ति प्रयुक्त होगी और मैं यह भी कहता हूं कि राष्ट्रपति को अंतिम शक्ति होगी, ताकि आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र हस्तक्षेप कर सके।

इसके साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि इस अनुच्छेद 264क से प्रांतों को ऐसा कुचल दिया जाये कि वे अपने राष्ट्रनिर्माण के कार्यों—जैसे शिक्षा आदि को भी न चला सकें। अतः मेरे इस संशोधन से, कि 'for the consumption in that State' इन शब्दों को हटा कर खंड 4 जोड़ दिया जाये, केन्द्र को किसी प्रकार की हानि नहीं होगी और राज्य को भी कुछ आय हो जायेगी। वास्तव में वित्तीय उपबंधों संबंधी हमारे वाद-विवाद के समय आसाम जैसे राज्यों ने हमें बताया था कि वे खनिज तेल, पेट्रोलियम आदि उत्पन्न करते हैं किन्तु उन्हें कुछ भी नहीं मिलता है। प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में भी यह बात तय हो गई थी कि वे एक पाई तक का विक्रय-कर लगा सकते हैं जिसे उन्हें अपना प्रशासन चलाने के लिये कुछ आय मिल जाये। यह तो न्यायपूर्ण ही है कि जा प्रांत कोई वस्तु उत्पन्न करता है उसे उसके राजस्व का कुछ तो भाग मिलना ही चाहिये। वास्तव में मेरे प्रांत में चीनी होती है जिस पर कर नहीं है, पर गन्ना कर से ही हमें एक करोड़ रुपया मिलता है।

मैं नहीं समझता कि ऐसे निर्बन्धनों से केन्द्र को कुछ मिलेगा। किन्तु उनसे प्रांतों के मुख्य राजस्व स्रोत को हानि होगी। वास्तव में कुछ प्रांतों में राजस्व बहुत अधिक हैं। अतएव मेरे विचार में यह अनुच्छेद बहुत महत्वपूर्ण है और इसमें समुचित संशोधन होना चाहिये, और मैं नहीं समझता कि प्रांतों के साथ ऐसा अन्याय होना चाहिये जैसा इस अनुच्छेद में होता है। यदि मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जायेगा तो केन्द्र और प्रांतों को—दोनों को लाभ होगा, और 'for the purpose of consumption in that State इन शब्दों को हटा देने से आयात तथा निर्यात शुल्कों में से केन्द्र का कुछ नहीं जायेगा। मेरे विचार में किसी प्रांतीय सरकार का यह विचार नहीं है कि उस कृत्य को हथिया ले, और इसके अतिरिक्त खण्ड (4) से संघ संसद को विक्रय कर की राशियों पर सीमा लगाने का सामर्थ्य होगा और उससे आयात तथा निर्यात पर प्रभाव नहीं पड़ेगा और यदि थोड़ा-सा कर लगा दिया जायेगा तो प्रांतों को लाभ हो सकेगा और यह उनके लिये बहुत अच्छा रहेगा।

उन प्रांतों के प्रति भी यह अन्याय है, जो पेट्रोलियम अथवा चाय जैसे मुख्य वस्तुओं को पैदा करते हैं, कि उन्हें उनमें से कोई आय न दी जाये। अब यदि आसाम को एक दो पैसा प्रति मन का थोड़ा-सा विक्रय-कर लगाने की अनुमति दे दी जाये तो उसे अपने प्रांत के लिये बहुत धन मिल जायेगा। इसी प्रकार बंबई जैसे प्रांतों को वहां उत्पन्न वस्तुओं पर विक्रय कर से कुछ धन मिल जायेगा और यदि ये सब देश भर में एकसम हों तो प्रांतों को भी लाभ होगा और अंतर्राज्यिक व्यापार तथा आयात एवं निर्यात में कोई कठिनाई नहीं होगी। मेरे विचार में मेरे संशोधन बहुत न्यायपूर्ण हैं और इन मामलों के लिये उपबंध कराने की कुछ व्यवस्था होनी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 18 के संशोधन संख्या 425 में, अनुच्छेद 264क के खंड (1) के पश्चात्, निम्न नया परन्तुक प्रविष्ट कर दिया जाये:—

'Provided that the Sale tax shall not exceed Rs. 3/2 percent of the sale price.'

[श्री महावीर त्यागी]

[किन्तु विक्रय कर विक्रय-मूल के 3/2 प्रतिशत से अनधिक होगा।]"

श्रीमान, इस संशोधन को पेश करते हुए मैं उन लोगों के नाम में जिनके प्रतिनिधि हम हैं, सदन की न्याय-भावना से अपील करता हूं। एक दृष्टिकोण से यह अनुच्छेद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं समझता हूं कि यह संविधान राज्य तथा जनता के बीच एक संविदा है। इस संविदा का मसौदा बनाने का कार्य जनता के प्रतिनिधियों की इच्छा पर छोड़ा गया है। अतएव हमें उन प्रशासकीय कठिनाइयों से विचलित नहीं होना चाहिये जो विविध प्रांतों में, माननीय मंत्री बतायें वरन् हमें सामान्य नागरिकों की कठिनाइयों का ध्यान रखना चाहिये। संविधान नागरिक तथा राज्य के बीच एक संविदा है इसकी मुख्य शर्तें ये हैं कि नागरिक अमुक-अमुक कर देगा जब भी उसे विधि द्वारा ऐसा करने के लिये कहा जायेगा। यह सबसे बड़ा दायित्व है जो नागरिक अपने ऊपर लेने के लिये तैयार हैं। एक ओर भारत के नागरिक हैं और दूसरी ओर संविदे के दूसरे पक्षक, राज्य की ओर से डॉ. अम्बेडकर हैं। वे राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तथा राज्य के दृष्टिकोण को ही पेश कर रहे हैं। राज्य, इस संविधान द्वारा शांति बनाये रखने का तथा जनता की समृद्धि को बढ़ाने का उत्तरदायित्व लेता है। जनता अनुपस्थित है, मैं उन लोगों के प्रतिनिधियों की सद्भावना को अपील करता हूं कि वे अपने लोगों के प्रति जिनके वे प्रतिनिधि हैं, सच्चे रहें तथा राष्ट्र के इस उच्चतम न्यायालय में उनके हितों का रक्षण करें। हम उनकी अनुपस्थिति में ही इस सदन में उनके भाग का निर्णय कर रहे हैं।

जब हम प्रांतीय सरकारों को किसी नागरिक की जेब से एक पाई लेने की अनुमति दें तो हमें देखना चाहिये कि वह राजी से ली जाये और प्रत्येक पाई अंततः उसकी जेब में ही वापस लौट जाये चाहे उस व्यक्ति को उसके बदले में कोई सुविधाएं मिलें या अधिक राशि मिल जाये। आज भारत में सैकड़ों कर लिये जा रहे हैं और जनता को वास्तव में इन करों में से कोई विशेष लाभ नहीं होता, न उन्हें अधिक समृद्धि प्राप्त होती है जिसकी आशा सरकार से करने के लिये उन्हें कहा जाता है और न कोई और ही सुविधा प्राप्त होती है। राज्य यहां भारत में थोड़ी सी सेवा अवश्य करते हैं किन्तु उसका जनता पर अतिरिक्त भार पड़ता है। उदाहरणार्थ रेलें जनता की सुविधा के लिये हैं किन्तु उन्हें वाणिज्यिक आधार पर चलाया जाता है तथा जनता को उनके लिये पैसा देना पड़ता है। तार, डाकघर, नहरें आदि सब सुविधाएं कहलाती हैं पर उनके लिये हमें अतिरिक्त धन देना पड़ता है। राज्य जनता को कोई भी मुफ्त सुविधा नहीं देता—केवल कुछ कुनीन पानी मिला कर निर्धन लोगों में मुफ्त बांट दिया जाता है। अन्यथा डॉक्टर भी शुल्क लेते हैं और लोगों से पैसा लेकर इलाज करते हैं। अतः हम देखते हैं कि राज्य कोई सुविधा मुफ्त नहीं दे रहा, केवल हम अपने नागरिकों को यह विश्वास दिला कर मानसिक संतोष दे रहे हैं कि वे स्वतंत्र हैं। वे स्वतंत्रता के मूल्य को नहीं जानते। सरकार करों के बारे में सफाई देती है कि वह युद्ध में सीमान्त की रक्षा करता है। जब भी युद्ध होता है तब अतिरिक्त कर लगाये जाते हैं।

अब, मेरा निवेदन है कि हमें गैर-सरकारी व्यक्तियों से जो कर मिलते हैं वह उन्हें वापस नहीं लौटते। यदि प्रांतीय सरकारों को विक्रय-कर उगाहने की अनुमति दी जाये तो उन्हें यह भी देखना चाहिये कि वे वाणिज्य में समृद्धि बढ़ायें और उन लोगों में व्यापक वैभव बढ़ायें जो वाणिज्य में लगे हुए हैं। अब वे दुकानदारों को या उन लोगों को जो खरीदते या बेचते हैं या सुविधाएं प्रदान करते हैं? वे उन्हें कोई लाभ नहीं पहुंचाते। क्या उन्होंने कोई नई मंडियां बनाई हैं या कोई नई सुविधाएं प्रदान की हैं? यह कर किसलिये है? जब प्रांतीय विषयों की सूची में विभिन्न करों का उल्लेख किया गया था तब यह समझा गया था कि विक्रय कर प्रांतों के लिये छोटी सी सहायता है। क्योंकि उनका राजस्व बढ़ने की संभावना नहीं है। प्रांत अधिकत: अपने भू-राजस्व पर निर्भर हैं जो कई वर्षों के लिये लगभग पर निश्चित ही है। अत: प्रांतीय सरकारों के काम बढ़ने के साथ-साथ यह अच्छा समझा गया था कि उन्हें अपने आय-व्ययक का संतुलन करने के लिये कुछ अतिरिक्त राजस्व दिया जाये।

अब श्रीमान उन्हें विक्रय-कर के रूप में यह थोड़ा-सा सहारा दिया गया था। मैं देखता हूं कि वस्तुस्थिति ऐसी है कि कुछ वर्षों में ही परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। विक्रय-कर राजस्व का मुख्य स्रोत बनता जा रहा है, उनसे भी बड़ा बन गया है जो उनके राज्य के मुख्य स्रोत थे। मेरे प्रांत में युद्ध से पूर्व कुल राजस्व मुश्किल से 13 करोड़ के लगभग था। अब वह लगभग 55 करोड़ बन गया है। ये अन्य कर भी जो प्रांतों ने अपने राजस्व के मुख्य स्रोत के अतिरिक्त लगाये हैं जनता पर ही पड़े हैं।

अब श्रीमान भारत में करों का भार सबसे अधिक है। भारत में युद्ध काल में भी इतने कर नहीं लगाये गये जितने कि आज हैं। और सरकार इन करों के बदले में सबसे कम सुविधाएं दे रही है। यह सदन उच्चतम प्राधिकारी है जिसमें प्रभुता की सब शक्तियां निहित हैं। हम उच्चतम न्यायालय के रूप में यह निश्चित करने के लिये बैठे हैं कि क्या हम प्रांतीय सरकारों को छूट दे सकते हैं कि वे जनता पर कर लगाये जायें तथा कोई उच्चतम सीमा उस पर न लगे। क्योंकि विक्रय कर पर कोई सीमा नहीं है इसलिये वे कर को बढ़ाये जा सकते हैं और अंततोगत्वा ऐसा वक्त आयेगा जब जनता अधिक कुछ देने में समर्थ नहीं रहेगी और इसका विपरीत प्रभाव हमारे केन्द्र के करों पर भी पड़ेगा। यदि प्रांतीय सरकारें अपने करों को वर्तमान गति से बढ़ाती गईं तो जनता की समस्त करदान की समर्थता का शोषण प्रांतीय सरकार द्वारा ही हो जायेगा तथा इससे केन्द्रीय सरकार को हानि पहुंचेगी। मेरा कहना यह है कि यदि हम सीमा निश्चित नहीं करेंगे तो प्रांतीय सरकारें कर बढ़ाये जायेंगी और यह उन लोगों के साथ घोर अन्याय होगा जो हमारी दया पर निर्भर हैं। और जिन्हें विरोध करने का या कर देने से इनकार करने का अधिकार भी नहीं होगा। उन्हें केवल इसी बात पर संतोष करना होगा कि आखिर उन पर वे ही लोग कर लगा रहे हैं जिनके लिये उन्होंने मत दिये थे। यह 'मत पेटिका लोकतंत्र' है जिसका लोगों पर यह प्रभाव पड़ेगा। अत: मेरा निवेदन है कि श्रीमान, दो पैसे रुपये की दर नियत कर देनी चाहिये, जो 3/2 प्रतिशत बैठता है, ताकि प्रांत इस कर की दर को न बढ़ा सकें।

[श्री महावीर त्यागी]

फिर मैं एक और दृष्टिकोण से भी सीमा नियत करना चाहता हूं। मेरा यह कहना है कि चाहे विविध प्रांतों के आय-व्ययक बहुत बढ़ गये हैं, फिर भी वे जनता को पुरानी सरकारों से अधिक सुविधाएं नहीं दे रहे हैं। परिणाम यह है कि यद्यपि वे अपने आय-व्ययकों को अवाध रूपेण बढ़ा रहे हैं क्योंकि उन्हें कर उगाहने की स्वतंत्रता है, फिर भी वे अपना व्यय घटाने के लिये कुछ नहीं कर रहे हैं; किसी प्रांत में व्यय घटाने की प्रवृत्ति है ही नहीं। आज व्यय इतने हैं जितने युद्धकाल में भी नहीं थे। मैं कहता हूं कि युद्ध एक आपात था और उन्हें अस्थायी रूप में कर लगाने पड़ते थे। श्रीमान, उस समय विदेशी शासन था। किन्तु आज जनता की सरकार है। यद्यपि युद्ध समाप्त हो गया है फिर भी प्रांतीय सरकारों ने अपना व्यय कम करना आरंभ नहीं किया है। उनकी अधिकांश आय खर्च-खाते में चली जाती है और उसका कोई भी अंश पूंजीखाते में खर्च नहीं होता जिसका उद्देश्य लोगों को समृद्ध बनाना होता है। यदि इस धन को पूंजीखाते में खर्च किया जाता तो मैं इसकी सराहना कर सकता था। खर्च खाते में से बहुत कम धन पूंजी खातों में जा रहा है। पूंजीखाते में जब भी कोई धन व्यय करना होता है तब उसे ऋण द्वारा प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार, श्रीमान, वे प्रांतों के साधनों को ही नहीं घटा रहे हैं, वरन् नागरिकों पर भी भार डाल रहे हैं। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि यदि इस प्रकार प्रांतों को आजादी दे दी जायेगी कि वे प्रांत के नागरिकों पर भार बढ़ाये जायें तो इसका प्रभाव समस्त देश की समृद्धि पर पड़ेगा। अतः जब हम नागरिकों तथा राज्यों के बीच विनिश्चय कर रहे हैं तब हमें वे सीमायें भी नियत कर देनी चाहियें जहां तक प्रांत जा सकते हैं। अतः मैं, दलीय पक्षपातों को त्याग कर, प्रांतीय सरकारों से अनुरोध करता हूं कि हमें, राष्ट्र के न्यायाधीशों के रूप में बैठे हुए नागरिकों के प्रति जो यहां उपस्थित नहीं हैं, न्याय करना चाहिये—पक्षपात हीन न्याय, पूर्ण न्याय, ठीक-ठीक तथा संतुलित न्याय करना चाहिये। उन्हें पूरा न्याय मिलना चाहिये।

आजकल की विक्रय-कर प्रणाली में कई त्रुटियां हैं। अब, दिल्ली में विक्रय कर नहीं है; संयुक्त प्रांत में मोटर गाड़ियों, रेडियो, बाइसिकलों आदि पर विक्रय कर है। जब भी मेरठ में किसी नागरिक को मोटर गाड़ी या बाइसिकल की अपेक्षा होती है वह वहां स्थानीय दुकान पर नहीं जाता। स्थानीय अधिकरण को हानि होती है। वह दिल्ली आ जाता है। मैं देखता हूं कि डॉ. अम्बेडकर मुझे चुप होने के लिये कह रहे हैं। वे अनुचित प्रभाव डाल रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने यह बात समझ ली है।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या आप समझ गये? क्या आप इसकी सराहना भी करते हैं? क्या आप मेरी बात मानने के लिये तैयार हैं?

आपके पीछे जनता के प्रतिनिधि हैं। डॉ. अम्बेडकर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आप न्यायी हैं, यदि आप न्याय को मान्यता देते हैं, तो आप अपने जीवन में आगे चल कर भारत के उच्चतम न्यायाधीश बन सकते हैं, यदि आप

नागरिक के प्रति न्याय करें। मेरा निवेदन है, श्रीमान, यही तरीका है जिससे कि कर लगाया जा रहा है। एक राज्य में दो आना रुपया कर है और दूसरे राज्य में दो पैसा रुपया कर है। एक राज्य में एक ही स्थान पर कर लगाया जाता है, दूसरे राज्य में कई स्थानों पर बिक्री के समय कर लगाता है। जुआधार के समान जो भी कुछ रकम देता है उसका कुछ अंश जुए के कोष में चला जाता है। इस प्रकार प्रांत प्रत्येक बिक्री के पीछे पड़े हुए हैं। यह तो अंधा कानून बनता जा रहा है।

मेरा निवेदन है कि यह बहुत गम्भीर मामला है। अच्छा हो यदि डॉ. अम्बेडकर समस्त अनुच्छेद पर पुनर्विचार करें तथा इसे 'एक रूप कर' बना दें तथा केन्द्रीय सरकार के हाथ में दे दें। केन्द्रीय सरकार के लिये सबसे अच्छी बात यह होती कि वे एक विधि बना देते। जिससे कि प्रांतों में करारोपण में एकरूपता आ जाती और कर एक ही स्थान पर वसूल होता और एक ही वस्तु के विषय में वसूल होता। इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि सदन, उन आदेशों की परवाह न करते हुए जो उन्हें मिले हों, कृपया न्याय करेगा और इस मामले में स्वतंत्रतापूर्वक बोलेगा तथा मत देगा और नागरिकों के अधिकारों का रक्षण करेगा।

***अध्यक्षः** कुछ ऐसे संशोधन हैं जो इस अनुच्छेद की मूल प्रस्थापना के विषय में हैं। मुझे पता नहीं है कि वे सब संशोधन अब ठीक बैठते हैं या नहीं किन्तु एक तो ऐसा है ही जो पेश हो सकता है। संशोधन सं. 385, श्री अजित प्रसाद जैन।

***श्री अमिय कुमार घोष** (बिहार : जनरल): मेरे नाम से संशोधन सं. 383 है।

***अध्यक्षः** मैं पहले संशोधन सं. 385 को लेता हूं।

(संशोधन सं. 385 को पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** क्या आप संशोधन सं. 383 को पेश करना चाहते हैं।

***श्री अमिय कुमार घोषः** हां श्रीमान।

***अध्यक्षः** जरा बताइये कि अब यह इसमें कैसे ठीक बैठता है।

***श्री अमिय कुमार घोषः** अध्यक्ष महोदय, हां, मेरा संशोधन सं. 383 पहले संशोधन सं. 307 पर था, अर्थात् अनुच्छेद 264-क के मूल मसौदे पर था, किंतु अब उस संशोधन पर दूसरा एक संशोधन पेश कर दिया गया है जिससे पहले की स्थिति में जरा भी अन्तर नहीं पड़ता, केवल इतनी सी बात है कि कुछ छोटी छोटी बातों को स्पष्ट करने के लिये पुराने अनुच्छेद में एक व्याख्या जोड़ दी गई हैं। अतः मेरा संशोधन उस संशोधन में भी ठीक बैठता है जो अभी डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है। अतएव मैं अपना संशोधन पेश करता हूं:

"कि सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 307 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 264क का खंड (2) हटा दिया जाये।"

[श्री अमिय कुमार घोष]

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि खंड (2) को हटा दिया जाये जो अन्तर्राज्यिक व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में है तथा ऐसे वाणिज्य को विक्रय कर से मुक्त करता है। वास्तव में मेरा स्पष्ट विचार यही है कि यह संविधान चाहे किसी रूप में संथानीय हो किंतु असल में यह एकात्मक संविधान ही है। इस संविधान में सब शक्तियों तथा वित्त-साधनों को केन्द्र ने ले लिया है और प्रांतों के पास अपने साधन नहीं रहे हैं। वास्तव में संघ पर इतना बोझ डाल दिया है कि वह शायद अपने बोझ से ही टूट जाये। यह कहा जाता है कि हमें प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त है, किन्तु मैं बलपूर्वक कहता हूं कि इस संविधान के अन्तर्गत हमें जो प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त होगी वह 1935 के अधिनियम वाली से भी बुरी होगी। अब मैं इस प्रश्न पर आता हूं कि इस संविधान में प्रांतों को केवल एक ही कर-साधन प्राप्त है और वह है—विक्रय कर। किन्तु इस शक्ति को भी इस नये अनुच्छेद 264क द्वारा बहुत हद तक छीन लिया गया है।

अब मैं विशेषत: बिहार प्रांत के निर्देश से बोलूंगा, क्योंकि मुझे अन्य प्रांतों की विक्रय-कर स्थिति का ज्ञान नहीं है। जहां तक बिहार का संबंध है, मुझे बलपूर्वक कहना होगा कि यदि यह नया अनुच्छेद 264क रहेगा तो इस प्रांत को तत्काल 2 करोड़ रुपये की आय की हानि होगी। बिहार की प्रति व्यक्ति आय और उसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति व्यय भी समस्त भारत में न्यूनतम है, कारण यह है कि अब तक उसके वित्तीय साधन अपरिवर्तनशील थे। उसकी भू-राजस्व की आय भी निश्चित है। संयुक्त प्रांत, मद्रास तथा बम्बई जैसे अन्य प्रांतों में भू-राजस्व बढ़ता रहता है, किन्तु बिहार में स्थायी कर व्यवस्था के कारण भूमि से आय सदा एक-सी रहती है, वह लगभग दो करोड़ से कुछ कम है।

फिर आय का एक दूसरा स्रोत है—आबकारी, किन्तु यदि मद्य-निषेध होगा तो प्रांत के वर्तमान राजस्व में से साढ़े पांच करोड़ की हानि हो जायेगी और इस हानि को पूरा करने का एकमात्र वित्तीय साधन यह विक्रय कर ही रह जाता है। यह विक्रय कर ही एकमात्र लचकदार कर था जो राज्यों के पास शेष था जिससे वे अपने राजस्व को बढ़ा सकते थे, किन्तु वह भी उनसे छीना जा रहा है। बिहार के पास महान साधन हैं किन्तु उनके होते हुए भी वह भारत के निर्धनतम प्रांतों में से है। आज भारत में प्रयुक्त होने वाले कोयले तथा लोहे का तीन-चौथाई बिहार से आता है। इनके अतिरिक्त चीनी, सीमेंट, मिर्च, तम्बाकू आदि अन्य वस्तुऐं भी बिहार से बाहर जाती हैं; किन्तु यदि यह उपबन्ध रहेगा तो परिणाम यह होगा कि बिहार को इन चीजों पर कोई कर लगाने का अधिकार नहीं होगा तथा वह अपने धन से भी कोई लाभ नहीं उठा सकेगा। इस अनुच्छेद से सदा के लिये आय बढ़ाने का द्वार भी बन्द हो जाता है।

अतएव यही न्याय है कि बिहार को, जो प्रांत के श्रम द्वारा लोहा, कोयला आदि पैदा करता है तथा उन औद्योगिक क्षेत्रों में विधि व्यवस्था बनाये रखने के लिये बहुत धन व्यय करता है, उन में से कुछ आय भी मिलनी चाहिये। यह बात तो समझ में आ सकती है कि कोई ऐसा खंड रख दिया जाये कि उन सब वस्तुओं पर जो किसी प्रांत से बाहर जायें एक समान दर से कर लगेगा तथा उस कर में से एक अंश तो उस प्रांत को मिलेगा जो उसे पैदा करता है तथा शेष उस प्रांत को मिलेगा जहां वह वस्तु खर्च होती है। वर्तमान अनुच्छेद 264क के

अधीन लोहा, कोयला तथा अन्य वस्तुऐं बिहार से बाहर जायेंगी, पर प्रांत को उन पर कर लगाने का अधिकार नहीं होगा। यह स्थिति प्रांत के प्रति अन्यायपूर्ण है। इसका प्रभाव प्रांत के वित्तीय साधनों पर बहुत बुरा पड़ेगा।

राज्य-सरकारें प्रधानत: जनता के प्रति उत्तरदायी हैं और वे कई सामाजिक कल्याण के कार्यों को करने के किये नैतिक रूप में बाध्य हैं। उन्हें विधि-व्यवस्था बनाये रखनी पड़ती है जिस पर महान व्यय होता है। उन्हें कमी, अशिक्षा, रोग तथा बेकारी को दूर करना होता है। इन कर्तव्यों को कैसे पूरा किया जाये? इन सब कार्यों के लिये धन खर्च करना पड़ता है। किन्तु आय नहीं होगी तो खर्च कहां से किया जायेगा?

अत: मैं इस अनुच्छेद 264क का विरोध करता हूं और मेरा निवेदन है कि जहां तक अंतर्राज्यिक व्यापार का संबंध है, विशेषत: बिहार का, मैं मसौदा समिति से प्रार्थना करता हूं कि वे इस विषय पर पुन:विचार करें। प्रतिदिन प्रांतों पर नये उत्तरदायित्व लादे जा रहे हैं और वे उन्हें पूरा करेंगे तो बहुत धन चाहिये, अधिक धन चाहिये। देश में स्थिति ऐसी है कि पुलिस तथा अन्य प्रशासकीय मामलों पर खर्च बढ़ते जाते हैं। वे कहां से पूरे हो सकते हैं जब तक कि हमारे अपने वित्तीय साधन न हों?

अत:, मैं इस अनुच्छेद 264क का विरोध करता हूं तथा निवेदन करता हूं कि जहां तक अन्तर्राज्यिक व्यापार तथा वाणिज्य का संबंध है, उन्हें विक्रय कर से मुक्त नहीं करना चाहिये तथा प्रांतों को ऐसे महत्वपूर्ण आय-साधन से वंचित नहीं करना चाहिये। इस अनुच्छेद से केवल बड़े व्यापारी को ही लाभ होगा जो सदा करों को देने से बचता रहता है, किन्तु छोटे व्यापारियों को तथा उपभोक्ताओं को कोई लाभ नहीं होगा। यदि विक्रय कर लगाने की शक्ति को इस प्रकार समाप्त करना है तो यही अच्छा है कि राज्यों को सर्वथा समाप्त ही कर दिया जाये। यदि आप राज्यों को बनाये रखना चाहते हैं तो आपको उन्हें अनाथ के समान नहीं बना देना चाहिये जो सदा झोली फैला कर संघ सरकार के सामने धन तथा सहायता की याचना करते रहें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति देनी चाहिये और कुछ साधन देने चाहिये जिनसे वे अपनी विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित कर सकें। स्वस्थ्य राज्य से ही शक्तिशाली संघ बनता है।

फिर, श्रीमान, इस नये अनुच्छेद में लिखा है:—

"No law of a State shall impose, or authorise the imposition of, a tax on the sale or purchase of goods where such sale or purchase takes place—

* * *

(b) in the course of the import of the goods into, or export of the goods out of, the territory of India.

[राज्य की कोई विधि, वस्तुओं के क्रय और विक्रय पर, जहां ऐसा क्रय या विक्रय–

* * *

(ख) भारत राज्य-क्षेत्र में वस्तुओं के आयात अथवा उसके बाहर निर्यात के दौरान में, होता है वहां कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी।]"

[श्री अमिय कुमार घोष]

अब इससे व्यापारी को बचने की काफी गुंजाइश हो जाती है। निर्यात के समस्त मामलों में वस्तु के देश से निर्यात होने तक कई क्रय विक्रय हो जाते हैं। किन्तु इस खंड के अन्तर्गत ये सब क्रय विक्रय—वे मध्यवर्ती क्रय-विक्रय भी—विक्रय कर से मुक्त होंगे। यह बात समझ में आ सकती थी यदि निर्यात के समय ही, अर्थात् निर्यात के पहले अंतिम क्रय-विक्रय पर ही विक्रय-कर नहीं लगाया जायेगा। किन्तु वर्तमान रूप में इस खंड का तो यह अर्थ है कि सामान के भारत के राज्य क्षेत्र से बाहर भेजने के दौरान में जितने भी क्रय-विक्रय होंगे वे सब विक्रय-कर से मुक्त होंगे। अब आप इन क्रय-विक्रयों के विषय में कैसे जान सकते हैं कि वे किस प्रकार के हैं। 'क' किसी वस्तु को यह कहकर खरीदता है कि वह उसका निर्यात करेगा। किन्तु वह उसका निर्यात करने की बजाय 'ख' को बेच देता है तथा 'ख' भी उसे निर्यात करने का प्रयोजन बताकर ही खरीदता है, और इस प्रकार वह वस्तु एक हाथ में दूसरे हाथ में जाती है, एक प्रांत से दूसरे प्रांत में जाती है पर उस पर कर नहीं लगता और शायद अंत में वह वस्तु निर्यात होती ही नहीं है। आप इस क्रिया को कैसे रोक सकते हैं? यदि इस खंड को इसी रूप में पारित कर दिया जायेगा तो बहुत कठिनाई होगी तथा गड़बड़ होगी। अतः मेरा नम्र निवेदन है कि यहां निर्यात तथा आयात की स्पष्ट परिभाषा कर देनी चाहिये, और हमें कहना चाहिये कि निर्यात का अर्थ है 'अन्तिम क्रय-विक्रय' और आयात का अर्थ है 'प्रथम क्रय-विक्रय', और केवल इन्हीं क्रय-विक्रयों में वस्तु को विक्रय-कर से मुक्त किया जायेगा, अन्य स्थितियों में नहीं।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं अपने संशोधन को सभा में स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** डॉ. कुंजरू, क्या आप इस अनुच्छेद पर संशोधन पेश करना चाहते हैं?

***पं. हृदय नाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांत : जनरल): हां, श्रीमान, किंतु मेरा संशोधन टाइप हो रहा है और आशा है वह शीघ्र ही तैयार हो जायेगा। आशा है आप मुझे कुछ समय देंगे, जिससे.....

***अध्यक्षः** आप उसे बाद में पेश कर सकते हैं और इस बीच में हम कुछ चर्चा चला सकते हैं।

श्री जगत नारायण लाल।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैंने कोई संशोधन नहीं भेजा है, और न मेरा विचार किसी संशोधन के समर्थन में, जो पेश हो चुका हो, जोर देने का है। किंतु साथ ही मैं इस अनुच्छेद 264क के प्रस्तावक को एक सुझाव देना चाहता हूं कि वे कुछ बातों पर विचार करें जिन्हें सदन में काफी बड़ा वर्ग प्रबल रूप में अनुभव कर रहा है तथा जिनके कारण यहां पहले ही बताये जा चुके हैं।

इस प्रश्न पर कोई मतभेद नहीं है कि राज्यों को आयात या निर्यात पर कर न लगाने दिया जाये। किंतु जैसा कि कुछ सदस्य पहले कह चुके हैं, और मुझे उसी बात को दोहराना पड़ेगा कि जब तक कि 'in the course of' इन शब्दों को

स्पष्ट नहीं किया जायेगा जो खंड (1) के उप-खंड (ख) में है तब तक इन शब्दों से अवश्य काफी गड़बड़ी होगी। यह बताया गया है कि अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न पर कुछ विनिश्चय किये हैं जिससे स्थिति स्पष्ट हो गई है। कई कारणों से हम चाहते हैं कि ये शब्द हटा दिये जायें। मेरा सुझाव है कि उनके स्थान पर 'at the initial stage of import into' तथा 'at the ultimate stage of export out of India' ये शब्द रख दिये जायें। मेरा सुझाव है इन शब्दों को रखा जाये, पहला कारण यह है कि इससे गड़बड़ दूर हो जायेगी, दूसरा कारण यह है कि वे कठिनाइयां दूर हो जायेंगी जो किसी वस्तु के एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने से तथा अंततः उसका एक अंश निर्यात होने से पैदा हो जाती हैं। अन्यथा बहुत ज्यादा बड़बड़ी होगी और बहुत कठिनाई होगी।

पहले के कुछ वक्ताओं ने पहले ही बता दिया है कि यदि उप-खंड (1) में 'for the purpose of consumption in that State' इन शब्दों को रहने दिया जायेगा तो बिहार तथा मध्य-प्रदेश जैसे प्रांतों को क्या-क्या कठिनाइयां होंगी, और मैं इन युक्तियों को दोहराना नहीं चाहता। किंतु मैं यह बात अवश्य बताना चाहता हूं कि हमें कुछ महत्वपूर्ण राजस्व-साधनों की आवश्यकता है जिससे कि हम उन कार्यों को पूरा कर सकें जो कांग्रेस ने हमें सौंपे हैं—जैसे मद्य-निषेध आदि हैं—और विक्रय कर अत्यन्त महत्वपूर्ण राजस्व साधन है जो बढ़ता रहता है। केन्द्र को कोई हानि भी नहीं होती और उस पर कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता, फिर यह कहना व्यर्थ है कि जिन प्रान्तों में लोहा, चीनी, कोयला, सीमेंट आदि बड़ी-बड़ी चीजें बनती हैं तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, वे प्रांत उनके विक्रय पर प्रांत में या बाहर कर न लगायें। अतः मैं चाहता हूं कि 'for the purpose of consumption in that State' ये शब्द हटा दिये जायें। अन्यथा उप-खंड (2) का परन्तुक हटा दिया जाना चाहिये जिसमें लिखा है कि वे कर एक वर्ष तक लगाये जा सकते हैं, और वे कर पहले के समान लगते रहने चाहियें।

मैं इस अनुच्छेद के प्रस्तावक को ये ही थोड़े से सुझाव देना चाहता हूं। मैं इस पर संशोधन के रूप में जोर नहीं देना चाहता, वरन! मैं इसे प्रस्तावक की सद्भावना पर छोड़ देता हूं। केन्द्र को हानि पहुंचाने की किसी की इच्छा नहीं है, फेडरल सरकार को भी करों से या कर लगाने की शक्ति से वंचित करके हानि पहुंचाने की कोई इच्छा नहीं है, और फेडरल सरकार को भी ऐसी इच्छा नहीं होनी चाहिये कि राज्यों को हानि पहुंचाई जाये—मुझे आशा है कि ऐसी इच्छा नहीं है। दोनों को मिलजुल कर काम करना चाहिये। दोनों का परस्पर संबंध है, क्योंकि फेडरल सरकार तथा राज्यों की सुरक्षितता तथा भलाई पर समूचे देश की सुरक्षितता तथा भलाई निर्भर है। अतः, श्रीमान, मैं इन अनुच्छेद के प्रस्तावक से अपील करता हूं कि वे इन दो सुझावों पर विचार करें तथा ऐसे परिवर्तन या रूप भेद कर दें जो समस्त सदन को स्वीकार्य हों तथा कोई ऐसी क्षोभ की भावना न हो और ऐसी भावना न हो कि राज्यों की कठिनाइयों पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। जो कुछ कहा जा चुका है उसके अतिरिक्त मैं कुछ और नहीं कहना चाहता।

पंडित हृदय नाथ कुंजरू: अध्यक्ष महोदय, महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 264क के खंड (1) के पश्चात्, निम्न नये खंड प्रविष्ट कर दिये जायें:

'(1a) No law of a State shall impose or authorise the imposition of a tax on the sale or purchase of goods within a State except where such sale or purchase is made to or by a consumer.

(1b) Parliament may, by law, fix the maximum rate at which a sale tax may be levied by a State on the sale or purchase of goods.'

[(1क) राज्य की कोई विधि राज्य के भीतर ही वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी, सिवाय उस स्थिति के जब कि वह क्रय या विक्रय किसी उपभोक्ता द्वारा किया जाये।

(1ख) संसद, विधि द्वारा, अधिकतम दर निश्चित कर सकती है जिससे कोई राज्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर विक्रय कर लगा सकता है।]"

श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर ने सदन के समक्ष जो संशोधन रखा है उससे राज्य को आयात तथा निर्यात पर कर लगाने का वर्जन है। इस प्रकार वह केन्द्रीय सरकार के हितों की रक्षा करता है। संशोधन से राज्य को यह भी वर्जन हो जाता है कि वह अंतर्राज्यिक व्यापार के दौरान में खरीदे गये या बेचे गये माल पर विक्रय कर नहीं लगा सकता। इस प्रकार वह उस राज्य के हितों की रक्षा करता है जिसमें अंततोगत्वा वे वस्तुएं बिकेंगी। किंतु वह उपभोक्ताओं के हितों का रक्षण बहुत सीमित रूप में ही करता है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये हुए संशोधन के खंड 3 में कहा गया है कि कोई विधान-मंडल ऐसी वस्तुओं के, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा समुदाय के जीवन के लिये आवश्यक घोषित की गई है, क्रय या विक्रय पर कोई कर नहीं लगायेगा, जब तक कि कर लगाने वाली विधि राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने पर उसे उसकी अनुमति प्राप्त न हो गई हो।

यह संशोधन उपभोक्ताओं के हितों की भी रक्षा करता है, किंतु केवल उन वस्तुओं के विषय में जिन्हें केन्द्रीय सरकार समुदाय के जीवन के लिये आवश्यक घोषित कर दे। यह तो केन्द्रीय सरकार पर ही निर्भर होगा कि वह उस श्रेणी में समय-समय पर किन वस्तुओं को शामिल करेगी। अतएव यह अभीष्ट है कि उपभोक्ता के हितों की रक्षा के लिये कुछ और किया जाये।

कई प्रांतों में, श्रीमान, विक्रय कर तभी लगाया जाता है जब कि वस्तुएँ उपभोक्ता के पास पहुंचती हैं। किंतु सब प्रातों में यह बात नहीं है, और कर की दर पर सीमा भी नहीं है। मेरे विचार में जन साधारण के हित में यह अभीष्ट है कि संविधान में इन बातों का ध्यान रखा जाये।

मेरे संशोधन के प्रथम भाग में यह लिखा है कि वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर केवल तभी लगाया जाये जब कि क्रय या विक्रय किसी उपभोक्ता द्वारा किया जाये। मेरे संशोधन के दूसरे भाग में संसद को प्राधिकार दिया गया है कि वह कर लगाने की अधिकतम दर निश्चित कर सकती है। यह कहा जा सकता है कि जनता की सामान्य आर्थिक स्थिति से किसी राज्य की सरकार की विक्रय कर लगाने की शक्ति पर सीमा लग जायेगी। सर्वप्रथम तो यह निर्धारण करना बहुत कठिन है कि उपयुक्त दर क्या होनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि यदि दर को अनुभव से ही निर्धारित करना है तो परीक्षण तथा त्रुटियां करनी होंगी, किसी वस्तु विशेष के कर की आय अधिक हो सकती है, किंतु दूसरी ओर, किसी अन्य वस्तु की बिक्री शायद गिर जाये। अतएव यह मामला किसी राज्य के वित्त-मंत्री के निर्णय पर ही नहीं छोड़ा जा सकता। यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसे इसी समय निबटाना होगा।

कुछ देशों में बहु-मुखी विक्रय कर है। शायद इन देशों की आर्थिक स्थिति ऐसी है कि यहां ऐसे कर लगाये जा सकते हैं। किन्तु, भारत में, विशेषत: इस समय जब कि मूल्य बहुत चढ़े हुए हैं, यह स्पष्टत: अवांछित है कि उपभोक्ता के पास पहुंचने से पहले वस्तुओं के निर्माण में प्रत्येक पग पर क्रय या विक्रय पर कर लगे। मेरे विचार में इस पर सब सामान्यत: सहमत होंगे कि यह अभीष्ट है कि इस संबंध में राज्य की शक्ति पर कुछ निर्बंधन लगने चाहियें। और जहां ऐसा निर्बंधन लगाया भी गया है वहां यह वांछनीय है कि संसद को कर की अधिकतम सीमा निश्चित करने की शक्ति होनी चाहिये।

कई वक्ताओं ने शिकायत की है कि आजकल के विक्रय कर बहुत भारी हैं। इससे पता लगता है कि संबद्ध सरकार ऐसी दरों को निश्चित नहीं कर सकी है। जिनसे उपभोक्ताओं में संतुष्टता की भावना पैदा हो। अतएव कुछ और कार्यवाही करना आवश्यक है। इस संबंध में इतना ही करना काफी है कि संसद को यह शक्ति दे दी जाये कि वह, जहां आवश्यक हो, उच्चतम सीमा निर्धारित कर दे। वह विलासिता की वस्तुओं के विषय में चाहे वैसा न करे किन्तु ऐसी वस्तुओं के विषय में वह सीमा नियत कर सकती है जो, चाहे हमारी प्रधान आवश्यकताओं के लिये सर्वथा अपेक्षित न हों, फिर भी जिनकी ऐसी व्यापक मांग है कि जनता के लिये उनके बिना काम चलाना कठिन होगा।

श्रीमान, मेरे विचार में मैंने जो कुछ कहा है उससे मेरे संशोधन का प्रयोजन काफी स्पष्ट हो जाता है और यह सिद्ध हो जाता है कि संशोधन ऐसा है कि सदन उसका अनुमोदन कर सकता है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, डॉ. अम्बेडकर ने सदन के समक्ष जो संशोधन रखा है उसमें केन्द्रीय सरकार के हितों का तथा उन राज्यों के हितों का, जिनमें अन्य राज्यों से लाकर सामान बेचा जाएगा, पूरा रक्षण किया गया है। किन्तु उसमें उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा अंशत: ही की गई है। मेरे संशोधन द्वारा उपभोक्ता की भी उतनी ही पूरी रक्षा की जानी है जितनी डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में केन्द्रीय सरकार के हितों की तथा उस राज्य के हितों की, जिसमें वे वस्तुएं अंतत: बेची जायें, रक्षा की गई है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मुझे खंड (2) के वर्तमान रूप पर अपना असंतोष अभिव्यक्त करना है। मेरी शिकायत यह है कि इसमें प्रांतीय सरकारों की कठिनाइयों का समुचित ध्यान नहीं रखा गया है। हमारा राज्य सर्वकल्याणकारी राज्य है और ज्यों-ज्यों समय गुजरेगा वह अधिकाधिक वैसा बनता जायेगा, किन्तु अधिकांश कल्याण कार्य प्रांतों और स्थानीय निकायों के भाग में आता है। हम प्रशासन के एककों की सीढ़ी पर ज्यों-ज्यों नीचे उतरते हैं, वे जनता की आवश्यकताओं से अधिक सन्निकट दिखाई देते हैं, और आज भी प्रांतीय सरकारों को राष्ट्र-निर्माण के कार्यों को पूरा करने में बहुत कठिनाई पड़ती है। और कई प्रांतों में राज्यों में राज्यों के विलय के कारण उनकी कठिनाइयां बढ़ गई हैं।

उदाहरण के लिये, मेरे प्रांत बंबई का मामला लीजिये, आज बंबई में आगामी कुछ वर्षों के आय-व्ययकों में भारी घाटे की संभावना दिखाई दे रही है, और ऐसे समय उन्हें कुछ राजस्व-साधन प्रदान करने की बजाय हम उन साधनों पर भी निर्बंधन लगा रहे हैं जो उन्हें इस समय उपलब्ध हैं। अब, विक्रय कर सबसे अधिक महत्वपूर्ण और शायद सबसे अधिक लचकदार राजस्व साधन है और यदि हम उस साधन की आय को कम कर देंगे तो वे अपने घाटे को कैसे पूरा करेंगे? प्रांतीय सरकारों ने यह प्रस्थापना रखी थी कि प्रांतों तथा केन्द्र को एक मेज के चारों ओर समवेत् होकर समस्त स्थिति का सिंहावलोकन करना चाहिये और देश के वित्तीय साधनों के अधिक न्यायपूर्ण वितरण के लिये कोई व्यवस्था बना लेनी चाहिये, और यदि अधिक कुछ न हो, तो वित्तीय कठिनाइयों में से सबको न्यायपूर्ण अंश बंटाना चाहिये।

श्रीमान, आपने जो विशेषज्ञ वित्त-समिति नियुक्त की थी, उसका प्रतिवेदन उस प्रयोजन के लिये प्रशंसनीय अवसर था, किन्तु मस्विदा समिति ने उस प्रतिवेदन पर विचार नहीं होने दिया, पूर्व स्थिति को बनाये रखा तथा संविधान के आरम्भ से दो वर्ष में एक वित्त-आयोग नियुक्त करने का उपबन्ध कर दिया। वह सकारण हो सकता है। मैं उसे चुनौती नहीं देता, किन्तु मेरा कहना यह है कि वे ही कारण इन निर्बंधनों के आरोपण पर भी उसी प्रकार लागू होने चाहियें। यदि वित्तीय आयोग का काम बाद में हो सकता है, तो इन निर्बंधनों का आरोपण भी निस्संदेह बाद में हो सकता था। आखिर, प्रश्न यह नहीं है कि ये निर्बंधन उचित हैं या नहीं—वे उचित हो सकते हैं—किन्तु प्रश्न यह है कि क्या प्रांतों को प्रतिकर के रूप में अन्य साधन उपलब्ध कराये बिना इन निर्बंधनों को लगाना हमारे लिये औचित्यपूर्ण है। इन राजस्व-साधनों की अनुपस्थिति में प्रांत क्या करेंगे? वे सदा अनुदानों के लिये केन्द्र का मुख देखेंगे और प्रांतीय वित्त मंत्रियों की दशा हम अभागे भिखारियों के समान बना देंगे जो केन्द्रीय वित्त-मंत्री के द्वार पर ही पड़े रहेंगे। मेरे विचार में यह बहुत वांछनीय स्थिति नहीं है।

मुझे प्रसन्नता है कि इस उपबन्ध में एक रियायत कर दी गई है। वह रियासत यह है कि वर्तमान व्यवस्था 31 मार्च 1951 तक चल सकती है। मेरा कहना यह है कि अच्छा होता यदि यह अवधि उस समय तक बढ़ा दी जाती जब कि प्रथम वित्त-आयोग प्रांतों तथा केन्द्र के वित्तीय संबंधों में आवश्यक परिवर्तन कर चुका होता। हम निस्संदेह उस समय तक ठहर सकते थे। इसमें डेढ़ के स्थान पर तीन

लग जाते, जो छोटी-सी बात है। अन्यथा मैं अनुभव करता हूं कि प्रांतों के वित्तीय ढांचे में अवश्य ही गड़बड़ पड़ेगी। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस गड़बड़ के प्रभावों से केन्द्र भी अछूता नहीं रह सकता।

आखिर केन्द्र तथा प्रांत एक ही व्यवस्था के अंग हैं। उदाहरण के लिये इस समय चीनी की स्थिति को लीजिये। केन्द्रीय सरकार ने दिल्ली से माल पर ताला लगाने का आदेश जारी किया, किन्तु लूट और गोलीकांड कलकत्ता और बम्बई में हुए। अतः हमें याद रखना चाहिये कि प्रांतों की आर्थिक कठिनाइयों से जो भी गड़बड़ होगी उसका अंततोगत्वा यही प्रभाव होगा कि केन्द्र की शक्ति कम होगी, चाहे केन्द्र कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो। और जैसा कि मैं एक बार कह चुका हूं, शक्तिशाली केन्द्र निर्बल एककों के सहारे खड़ा नहीं रह सकता।

***श्री प्रभु दयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं अनुच्छेद 261क के विषय में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं। इस अनुच्छेद की रचना बहुत-सी कठिनाइयों को दूर करने के लिये की गई हैं तथा इन परिस्थितियों में यही सर्वोत्तम दिखाई देता है। मुझे तो व्यक्तिगत रूप से यही अच्छा लगता है कि केन्द्र को ही प्राधिकृत कर दिया जाता कि वही कर लगाता, उसे स्रोत पर उगाहता—आयात या उत्पादन केन्द्रों पर—तथा उसे प्रांतों में बांट देता। इससे कम स्थानों पर हिसाब किताब रखने का खर्च पड़ता, किन्तु प्रांतीय सरकारें इस बात पर सहमत नहीं हुईं कि केन्द्र ही कर लगा कर फिर उसे बांटे, अतः अब जो अनुच्छेद रखा गया है वही सर्वोत्तम है। इसका उद्देश्य कुछ असंगतियों को हटा देना है, जो कुछ प्रांतों के विधान में हैं जहां प्रत्येक विक्रय पर करारोपण हो जाता है चाहे उस वस्तु का दूसरे प्रांत में जाकर उपभोग होता है। इसी प्रकार इससे कुछ अनुच्छेदों पर कर नहीं रहेगा जो एक प्रांत में पैदा होकर दूसरे प्रांत में जाते हैं—अर्थात् अंतर्राज्यिक क्रय-विक्रय पर कर नहीं लग सकेगा। इस समय, श्रीमान, मुझे दो मामलों का ज्ञान है जहां बंगाल में एक मिल पर, जो उड़ीसा में स्थित है, 25 लाख रुपये कर के रूप में लगाये गये हैं। चाहे वस्तुएं बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रांतों में बेची गईं थीं, फिर भी बंगाल ने 25 लाख रुपये कर लगा दिया, केवल इस कारण कि कम्पनी का सदर मुकाम बंगाल में है। इस धारा से ऐसे करों को हटा दिया जायेगा जो उन विक्रयों पर लगते हैं जो प्रांत के बाहर होते हैं।

जहां तक पं. हृदय नाथ कुंजरू का संबंध है, बंगाल ने इस कठिनाई को पहले ही दूर कर दिया है क्योंकि उसने पंजीबद्ध दुकानदारों की व्यवस्था कर दी है। जब दो पंजीबद्ध दुकानदारों के बीच माल बिकता है तब कोई विक्रय कर नहीं लिया जाता। जब माल किसी ऐसे व्यक्ति को बेचा जाता है जो पंजीबद्ध दुकानदार नहीं है तभी कर लिया जाता है; और इसलिये यह समझ लिया जाता है कि वह व्यक्ति, जो पंजीबद्ध दुकानदार नहीं है, उपभोग के लिये खरीद रहा है। अतः, बंगाल ने उन लोगों के लिये, जो क्रय पर कर नहीं देना चाहते, पंजीयन आवश्यक बनाकर इस कठिनाई को दूर कर दिया है।

[श्री प्रभु दयाल हिम्मतसिंहका]

मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये हुए अनुच्छेद का समर्थन करता हूं। विविध प्रांतों ने कुछ आशंकाऐं अभिव्यक्त की हैं, किन्तु मैं नहीं समझता कि उनका कोई औचित्य है। उन्हें यह मालूम होना चाहिये कि वे सुरक्षित रहेंगे क्योंकि प्रत्येक प्रांत में कुछ वस्तुऐं होती हैं जो अन्य प्रांतों को उपभोग के लिये जाती हैं। इसी प्रकार उन्हें पता होना चाहिये कि बहुत-सी ऐसी वस्तुऐं हैं जो विविध प्रांतों में उपभोग के लिये आती हैं। उदाहरण के लिये बम्बई के कपड़े का ही मामला लीजिये जब बंबई से कपड़ा जायेगा तब वे कोई विक्रय कर नहीं लगा सकेंगे और बिहार, जो बम्बई से बहुत-सा कपड़ा मंगवाता है उस पर कर वसूल कर सकेगा अतएव, अन्ततोगत्वा, ऐसा हिसाब बैठ जायेगा कि सब प्रांतों को लगभग वही मिल जायेगा जो उन्हें अब मिलता रहा है। सब कुछ एक दो वर्ष में ठीक-ठाक हो जायेगा और किसी भी प्रांत को कोई हानि नहीं होगी, किन्तु साथ ही समस्त प्रक्रिया सादी बन जायेगी। अतः मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित रूप में इस अनुच्छेद का समर्थन करत हूं।

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्त प्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने मित्र श्री महावीर त्यागी के संशोधन का समर्थन करने खड़ा हुआ हूं। उन्होंने ठीक बात कही है। कर लगाने में या करारोपण का कोई प्रस्ताव रखने में पहला विचार यह होना चाहिये कि क्या वह जनता के हित में है। हमें कर लगाते समय यह देखना है कि वह जनता के जनसाधारण के हित में खर्च किया जाये। यह तर्क किया जाता है कि हमने मद्य-निषेध किया है और इस नये कर का उद्देश्य उस कमी को पूरा करना है। मेरे अपने प्रांत में केवल आठ जिलों में हमने मद्य-निषेध किया है और वह भी सफल नहीं है। यह किसी अर्थ में मद्य-निषेध नहीं है।

हमें ऐसे करारोपण की आवश्यकता क्यों है? मैं कह सकता हूं, श्रीमान, कि चोटी पर भारी व्यय होने के कारण ही हम नये कर लगा रहे हैं। उस दिशा में हम केन्द्र में तथा प्रांतों में बचत नहीं कर रहे हैं। हम देखते हैं कि बचत समितियां स्थापित हुईं तथा उन्होंने अपने प्रतिवेदन पेश किये। मेरे अपने प्रांत में उन्होंने प्रतिवेदन पेश किया है कि हमें अपने खर्च में 6 करोड़ की कमी करनी चाहिये, और इस छह करोड़ में से मैंने देखा कि चार करोड़ तो सड़कों और मकानों के पूंजीगत व्यय में से कम करना था और शेष दो करोड़ अन्य दिशाओं से। यह पर्याप्त नहीं है। इस नये करारोपण से पहले हमें केन्द्र में तथा प्रान्तों में बचत करने का प्रयत्न करना चाहिये। हम जनसाधारण का कोई भला नहीं कर रहे हैं, वरन् उन पर करों का बोझ डालते जा रहे हैं। मेरे मित्र श्री त्यागी ने सभा का ध्यान इसी ओर आकृष्ट किया है। उन्होंने कहा है कि हमें देखना चाहिये कि इस कर से जनसाधारण को कोई लाभ होगा या नहीं। मेरे विचार में शासन के, प्रशासन के भारी खर्च के कारण उन पर अनावश्यक भार डाला जा रहा है। पहले हमें उसे कम करना चाहिये और फिर इस कर को लगाने का विचार करना चाहिये।

मैं एक बात और कहूंगा। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में कुछ भेदभाव है। कुछ प्रांतों को उससे हानि पहुंचेगी। उस संशोधन में संयुक्त प्रांत, बिहार और मध्य प्रांत को सर्वाधिक हानि होगी। मेरे विचार में प्रांत और प्रांत के बीच कोई भेदभाव नहीं

होना चाहिये। यदि प्रांतों को हानि हो तो सभी प्रांतों को समान रूप से होनी चाहिये। एक प्रांत को हानि होगी और शायद दूसरे प्रांत को लाभ न हो। मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि वे श्री त्यागी के संशोधन को स्वीकार कर लें।

इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं श्री महावीर त्यागी द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री युधिष्ठर मिश्र** (उड़ीसा के राज्य): श्रीमान, अब प्रश्न पर मत लिये जायें।

***कई माननीय सदस्य:** नहीं नहीं।

***श्री महावीर त्यागी:** आप कृपया स्वविवेक का प्रयोग करें, श्रीमान। यह मामला बहुत महत्वपूर्ण है।

***अध्यक्ष:** आप तो पहले ही बोल चुके हैं और आपको फिर अवसर नहीं मिलेगा। मुझे समाप्ति प्रस्ताव पर मत लेने हैं।

प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, सदन के समक्ष तीन संशोधन हैं: पहला संशोधन मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना का है। उनके संशोधन के अनुसार यह प्रस्थापना है कि विक्रय कर लगाने की शक्ति संसद में होनी चाहिये। इस प्रस्ताव पर दो मूल आपत्तियां हैं। पहली बात तो यह है कि इस मामले पर प्रांतीय मुख्य मंत्रियों तथा भारत सरकार के वित्त-विभाग में यह प्रस्थापना की गई थी कि विक्रय कर के आरोपण में जो कठिनाइयां होती हैं उन्हें दूर करने के लिये यह अधिक अच्छा हो यदि वह कर केन्द्र द्वारा ही लगाया जाये तथा उगाहा जाये और किसी मान्य सिद्धान्तों के अनुसार या किसी आयोग के प्रतिवेदन के आधार पर प्रांतों में बांट दिया जाये। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से, प्रांतीय मुख्य मंत्रियों ने एक होकर इस सिद्धान्त का विरोध किया और मेरे विचार में श्रीमान, मेरे दृष्टिकोण से उनका विनिश्चय ठीक था।

यद्यपि मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि संविधान के मसौदे की योजना में जो वित्तीय व्यवस्था रखी गई है वह अन्य सब वित्तीय व्यवस्थाओं से, जिनका मुझे ज्ञान है, अच्छी है, किंतु मेरे विचार में यह तो कहना ही होगा कि उसमें एक त्रुटि है। त्रुटि यह है कि प्रांत बहुत अधिक हद तक अपने साधनों के लिये केन्द्र द्वारा दिये गये अनुदानों पर निर्भर होंगे। हम सबको यह मालूम ही है कि उत्तरदायी शासन के काम करने का एक तरीका यह भी है कि विधान मंडल को धन-विधेयक को परास्त कर देने की शक्ति प्राप्त होती है। हमने जो योजना रखी है उसके अधीन प्रांत का धन-विधेयक बहुत छोटी-सी चीज होगी। वे जो कर प्रत्यक्ष

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रूप से लगा सकते हैं वे बहुत साधारण प्रकार के हैं और विधान-मंडल करों को मंजूर करने से इन्कार करके सरकार में 'अविश्वास' प्रकट करने के इस सामान्य उपाय से वंचित हो जाएगा। अतः मेरे विचार में बहुत से ऐसे साधनों को, जिन पर प्रांत निर्भर होते हैं, केन्द्र में एकत्र कर दिया गया है और यह संविधानिक शासन के दृष्टिकोण से अभीष्ट है कि कम से कम एक महत्वपूर्ण राजस्व-साधन को प्रातों के पास रहने दिया जाये। अतः मेरे विचार में, उस दृष्टिकोण से, प्रांतों के हाथों में विक्रय-कर रहने देने की प्रस्थापना अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। ऐसी स्थिति में मेरे विचार में मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना का संशोधन गिर जाता है।

मेरे मित्र, श्री त्यागी के संशोधन के संबंध में, मैं यह कहना चाहता हूं कि उन्होंने जो कुछ कहा है उससे मुझे बहुत सहानुभूति है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विक्रय-कर जब 1937 में आरम्भ हुआ था तब वह महत्वपूर्ण राजस्व साधन नहीं था। मैंने बंबई तथा मद्रास के विषय में आंकड़ों पर विचार किया है। 1937 में मद्रास में लगभग 2.35 करोड़ रुपये कर था। आज वह लगभग 14 करोड़ है। बंबई के विषय में भी यही स्थिति है कि 1937 में कर लगभग 3.5 करोड़ था, और आज वह लगभग 14 करोड़ है। यह स्वीकार करना होगा कि यह बहुत बड़ी वृद्धि है और मैं नहीं समझता कि राजस्व उगाहने के लिये विक्रय कर से खेल खेलना वांछित है, क्योंकि कर व्यवस्था में, जहां तक मेरा ख्याल है, दो सिद्धांतों के आधार पर परिवर्तन किया जा सकता है। एक तो यह है कि विविध वर्गों में अधिकतम न्याय हो। यदि एक श्रेणी पर दूसरी श्रेणी के अधिक कर हों तो व्यवस्था में परिवर्तन करके भार को बराबर बना देना और औचित्यपूर्ण होगा।

दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत जो, मेरे विचार में, समस्त विश्व में मान्य है, यह है कि कोई करारोपण व्यवस्था ऐसी नहीं होनी चाहिये कि उससे जनता का जीवन-स्तर कम हो, और मेरे मन में जरा भी संदेह नहीं है कि विक्रय-कर का प्रांत की जनता के जीवन-स्तर से बहुत प्रगाढ़ संबंध है। किन्तु अपने मित्र के साथ पूर्ण सहानुभूति होते हुए भी मैं देखता हूं कि यदि उनके संशोधन को स्वीकार कर लिया जायेगा तो उसका अर्थ यह होगा कि प्रांतों की विक्रय कर लगाने की शक्ति स्वतंत्र और अबाध नहीं रहेगी। उस पर संसद द्वारा नियत उच्चतम सीमा रहेगी। मेरा ख्याल है कि यदि हम प्रांतों को विक्रय कर लगाने देते हैं तो प्रांतों को यह भी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे प्रांत की बदलती हुई स्थिति के अनुरूप विक्रय कर की दर को घटा-बढ़ा सकें, केन्द्र की ओर से उच्चतम सीमा नियत कर देने से विक्रय कर को क्रियान्वित करने में बहुत बाधा पड़ेगी। मुझे संदेह नहीं है कि मेरे मित्र श्री त्यागी, यदि प्रांतीय विधान मंडल में जायें तो वे प्रांतीय सरकारों को यह बता समझा कर अपने आदर्शों को पूरा कर सकते हैं कि विक्रय कर का जनता के जीवन-स्तर पर बहुत प्रभाव पड़ता है, अतः उन्हें उसका आरोपण करने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या मैं आपके लिये इतना असुविधाजनक बन गया हूं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कदापि नहीं। यदि मैं कोई मुख्य मंत्री होता हो मैं भी वही रुख अपनाता जो आपने अपनाया है।

अब मैं अपने माननीय मित्र पं. कुंजरू के संशोधन को लेता हूं तो मेरा यह ख्याल है कि उनके संशोधन का प्रयोजन उप-खंड (1) की व्याख्या से लगभग पूरा हो जाता है, क्योंकि उसमें भी हमने इसी बात पर जोर दिया है कि विक्रय कर का मूलत: उपभोग पर कर होना चाहिये; और मैं नहीं समझता कि उनके संशोधन से इस मामले में कोई ज्यादा सुधार होगा।

मेरे विचार में, केवल एक बात है, जिसके विषय में मैं एक शब्द कहना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि कुछ ऐसे 'मित्र हैं जो उप-खंड (1) की इस भाषा को पसन्द नहीं करते, 'in the course of export and in the course of import' अब मसौदा समिति ने ठीक ठीक भाषा चुनने के लिये बहुत समय खर्च किया है। जहां तक उनका संबंध है वे संतुष्ट हैं कि यही भाषा यथासाध्य सर्वोत्तम है। किन्तु मैं यह कहता हूं कि मसौदा-समिति इस भाषा पर पुन: विचार करेगी कि क्या कोई अन्य भाषा रखी जा सकती है जिससे वह आलोचना का कारण मिट सकेगी अनुच्छेद के इस भाग पर की गई है। श्रीमान मुझे आशा है कि अब सदन संशोधन को स्वीकार कर लेगा।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस प्रस्थापना पर मत लेने से पूर्व, मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं, विशेषत: इसलिये कि मेरे सामने माननीय वित्त मंत्री बैठे दिखाई दे रहे हैं। मैं प्रस्तावित अनुच्छेद के पक्ष में या विपक्ष में कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं, पर मैं यह करना चाहता हूं कि प्रांतों में काफी प्रबल भावना है कि उनके राजस्व साधनों को बहुत कम कर दिया गया है, और विशेषत: गरीब प्रांतों की यह भावना है कि आय कर का वितरण ऐसा नहीं है जिससे उन्हें संतोष हो। मैं वित्त मंत्री से कहना चाहता हूं कि वे जब आय कर के वितरण के प्रश्न पर विचार करें तब इस बात का ध्यान रखें, जिससे कि यह न कहा जा सके कि भारत सरकार की नीति ऐसी है कि जिनके पास बहुत है उन्हें बहुत दिया जाता है और जिनके पास थोड़ा है जिनसे वह थोड़ा भी ले लिया जाता है।

अब मैं विविध संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 307 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 264क का खंड (2) हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सं. 425 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 264क के खंड (1) की व्याख्या में, 'for the purpose of consumption in that State' ये शब्द हटा दिये जायें, और अन्त में निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:—

'(4) The Union Parliament shall have power to amend the laws in respect of taxes on sale or purchase of goods with a view to

[अध्यक्ष]

bring uniformity in the laws made by the various States of the Union or in the interests of the Union as a whole, provided that no Bill for such amendment shall be moved in Parliament without the prior permission of the President, and the President before giving such permission shall obtain the views of the Government of the various States concerned.'

[(4) संघ संसद को शक्ति होगी कि वह माल के क्रय या विक्रय पर करों के विषय में विधियों को संशोधित कर सके जिससे कि संघ के विविध राज्यों द्वारा निर्मित विधियों में या समस्त संघ के हितों में एकरूपता लाई जा सके, परन्तु ऐसे संशोधन के लिये कोई विधेयक संसद में राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना पेश नहीं किया जायेगा और राष्ट्रपति ऐसी अनुमति देने से पूर्व विविध संबद्ध राज्यों की सरकारों के विचारों का पता लगायेगा।]"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 के संशोधन सं. 425 में, अनुच्छेद 264-क के खंड (1) के पश्चात्, निम्न नया परन्तुक प्रविष्ट कर दिया जाये:-

'Provided that the sales tax shall not exceed Rs. 3/2 percent of the sale price.'

[किन्तु विक्रय-कर विक्रय-मूल्य के तीन रुपये दो आना प्रतिशत से अनधिक होगा।]"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 264 के खंड (1) के पश्चात्, निम्न नये खंड प्रविष्ट कर दिये जायें:—

'(1a) No law of a State shall impose or authorise the imposition of a tax on the sale or purchase of goods within a State except where such sale or purchase is made to or by a consumer.

(1b) Parliament may, by law, fix the maximum rate at which a sale tax may be levied by a State on the sale or purchase of goods.' "

[(1क) राज्य की कोई विधि राज्य के भीतर ही वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर करारोपण न करेगी और न करना प्रधिकृत करेगी, सिवाय उस स्थिति के जब कि वह क्रय या विक्रय किसी उपभोक्ता द्वारा किया जाये।

(1ख) संसद, विधि द्वारा अधिकतम दर निश्चित कर सकती है जिससे कोई राज्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर विक्रय कर लगा सकता है।]"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित मूल प्रस्थापना पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 13 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 307 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 264क के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:–

'264A. (1) No law of a State shall impose or authorise the imposition of a tax on the sale or purchase of goods where such sale or purchase takes place—

Restriction as to imposition of tax on the sale or purchase of goods.

(a) outside the State: or

(b) in the course of the import of the goods into, or export of the goods out of, the territory of India.

Explanation.—For the purposes of sub-clause (a) of this clause a sale or purchase shall be deemed to have taken place in the State in which the goods have actually been delivered as a direct result of such sale or purchase for the purpose of consumption in that State, notwithstanding the fact that under the general law relating to sale of goods the property in the goods has by reason of such sale or purchase passed in another State.

(2) Except in so far as Parliament may by law otherwise provide, no law of a State shall impose, or authorise the imposition of, a tax on the sale or purchase of any goods where such sale or purchase takes place in the course of inter-State trade or commerce:

[अध्यक्ष]

Provided that the President may by order direct that any tax on the sale or purchase of goods which was being lawfully levied by the Government of any State immediately before the commencement of this Constitution shall, notwithstanding that the imposition of such tax is contrary to the provisions of this clause, continue to be levied until the thirty-first day of March, 1951.

(3) No law made by the Legislature of a State imposing, or authorising the imposition of, a tax on the sale or purchase of any such goods as have been declared by Parliament by law to be essential for the life of the community shall have effect unless it has been reserved for the consideration of the President and has received his assent.'

वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर करारोप के बारे में निर्बन्धन

[264-क (1) राज्य की कोई विधि, वस्तुओं के क्रय और विक्रय पर, जहां ऐसा क्रय या विक्रय:-

(क) राज्य के बाहर, अथवा

(ख) भारत राज्य-क्षेत्र में वस्तुओं के आयात अथवा उसके बाहर निर्यात के दौरान में,

होता है वहां कोई करारोपण, न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी।

व्याख्या.—उपखंड (1) के प्रयोजनों के लिये क्रय या विक्रय उस राज्य में हुआ समझा जायेगा जिसमें ऐसे क्रय या विक्रय के परिणामस्वरूप उसी राज्य में उपयोग के लिये वस्तुओं का भुगतान उस राज्य में किया गया है चाहे फिर वस्तु-विक्रय संबंधी साधारण विधि के अधीन उन वस्तुओं का स्वत्व हस्तांतरण ऐसे क्रय या विक्रय के कारण किसी दूसरे राज्यों में क्यों न हो चुका हो।

(2) जहां तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित करे उसके अतिरिक्त राज्य की कोई विधि किन्हीं वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर वहां कोई करारोपण न करेगी और न करना प्राधिकृत करेगी जहां ऐसा क्रय-विक्रय अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान में होता है:

परन्तु राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कोई कर, जो किसी राज्य की सरकार द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले विधिवत् उद्गृहीत किया जा रहा था, इस बात के होते हुए भी कि ऐसे कर का आरोपण इस

खंड के उपबन्धों के प्रतिकूल हैं, 1951 के मार्च के 31वें दिन तक उद्गृहीत किया जाता रहेगा।

(3) किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि ऐसी वस्तुओं के, जो संसद द्वारा समुदाय के जीवन के लिये आवश्यक घोषित की गई है, क्रय या विक्रय पर करारोपण करती या करना प्राधिकृत करती है, तब तक प्रभावी न होगी जब तक कि राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने पर उसे उसकी अनुमति प्राप्त न हो गई हो।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 264क संविधान में जोड़ दिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं चाहता हूं कि आप अनुच्छेद 280क को ले लें।

***पं. हृदय नाथ कुंजरू:** उस अनुच्छेद के आज लेने पर मुझे प्रबल आपत्ति है। मुझे यह संशोधन आज प्रात:काल ही मिला है। इसमें जो विषय रखा गया है वह बहुत महत्वपूर्ण है और हमें इस पर विचार करने के लिये तथा संशोधनों को पेश करने के लिये समय मिलना चाहिये, यदि हम ऐसा करना चाहें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इसके अतिरिक्त, इस अनुच्छेद का प्रयोजन एक नये प्रकार का आपात रखना है जो किसी व्यवस्था में भी अज्ञात है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मुझे आशा है कि आप इन बातों से सभा के कार्य में बाधा न पड़ने देंगे। अब, यदि माननीय सदस्य को संशोधन नौ बजे भी मिला है तब भी उनके पास 9 से बारह तक का समय था। मैं नहीं समझता कि इस संशोधन में कोई अस्पष्ट बात है। मेरे माननीय मित्र पं. कुंजरू से बहुत कम बुद्धि वाला व्यक्ति भी उसे पहली बार पढ़कर समझ सकता था। इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है।

***पं. हृदय नाथ कुंजरू:** श्रीमान, यह बहुत महत्वपूर्ण मामला है और डॉ. अम्बेडकर की अधीरता तथा कठोरता के कारण सदस्यों के अधिकारों का—उन अधिकारों का जो उन्हें नियमों के अधीन प्राप्त हैं—हनन नहीं होने देना चाहिये। मैं मांग करता हूं, श्रीमान कि हमें इस संशोधन पर विचार करने के लिये अधिक समय मिलना चाहिये, चाहे डॉ. अम्बेडकर की स्पष्ट इच्छा संशोधन को सदन में से जल्दबाजी में से पारित करवाने की है।

***अध्यक्ष:** मेरा सुझाव है कि हम उसी क्रम से चलें जिससे वह कार्यावली में है और अनुच्छेद 274घघ को ले लें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उसके लिये तैयार हूं, श्रीमान, किन्तु मुझे कहना होगा कि हमारे पास समय इतना कम है कि मैं नहीं समझता कि इन नियम-संबंधी बातों को आवश्यकता से अधिक महत्व देना चाहिये।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** यह क्षोभ की बात है कि मसौदा समिति के सभापति से आशा की जाती है कि वे अपनी स्थिति के कारण दूसरों के अधिकारों को भी समझेंगे, किन्तु वे उनका मूल्य इतना कम बताते हैं।

अनुच्छेद 274 घघ

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 17 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 400 के निर्देश से, अनुच्छेद 27 घ के पश्चात् निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:—

'274DD. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part or in any other provisions of this Constitution, any State which before the commencement of this Constitution was levying any tax or duty on the import of goods into the State from other States or on the export of goods from the State to other States may, if an agreement in that behalf has been entered into between the Government of India and the Government of that State, continue to levy and collect such tax or duty subject to the terms of such agreement and for such period not exceeding ten years from the commencement of this Constitution as may be specified in the agreement:

Power of certain States in Part III of the First Schedule to impose restrictions on trade and commerce by the levy of certain taxes and duties on the import of goods into or the export of goods from such States.

Provided that the President may at any time after the expiration of five years from such commencement terminate or modify any such agreement if, after consideration of the report of the Finance Commission constituted under article 260 of this Constitution, he thinks it necessary to do so.'

[274घघ. इस भाग के पूर्वगामी उपबन्धों में, अथवा इस संविधान के अन्य उपबन्धों में, किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित कोई राज्य, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले दूसरे राज्यों से उस राज्य में वस्तुओं के आयात पर अथवा उस राज्य से दूसरे राज्यों को वस्तुओं के निर्यात पर कोई कर या शुल्क उद्गृहीत करता था, ऐसे कर या शुल्क को, यदि भारत सरकार और उस राज्य की सरकार में उस लिये करार हो जाये तो, ऐसे करार के निर्बंधनों के अधीन रहते हुए तथा इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष से अधिक ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि करार में उल्लिखित हो, उद्गृहीत और संगृहीत करता रहेगा।

प्रथम अनुसूची के भाग 3 के कतिपय राज्यों की ऐसे राज्यों में वस्तुओं के आयात तथा से वस्तुओं के निर्यात पर कुछ कर तथा शुल्क लगा कर व्यापार और वाणिज्य पर निर्बन्धनों के आरोपण की शक्ति।

परन्तु ऐसे प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी समय भी यदि राष्ट्रपति अनुच्छेद 260 के अधीन गठित वित्त आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ऐसे किसी करार का अन्त या रूपभेद करना आवश्यक समझे तो वह ऐसा कर सकेगा।]

श्रीमान, यह नया अनुच्छेद तो अनुच्छेद 258 के परिणामस्वरूप ही है, जिसे सदन स्वीकार कर चुका है तथा जिससे भारत सरकार को शक्ति दे दी गई है कि वह किसी थोड़े से समय के लिये कुछ वित्तीय परिवर्तन करने के प्रयोजनों के लिये भाग 3 के राज्यों से समझौते कर सकती है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सं. 428 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 274घघ के परन्तुक में 'President' शब्द के स्थान पर 'Parliament' शब्द रख दिया जाये तथा 'he thinks' इन शब्दों के स्थान पर 'it thinks' ये शब्द रख दिये जायें।"

मैं केवल यही चाहता हूं कि राज्यों के साथ वित्तीय समझौते के विषय में संसद को प्राधिकार मिलना चाहिये, राष्ट्रपति को नहीं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने जो एक मात्र आपत्ति उठाई है उसके विषय में मैं कहना चाहता हूं कि हमने अनुच्छेद 258 की योजनानुसार कार्य किया है, जिसे सदन पहले ही पारित कर चुका है, और जिसमें लिखा है कि राष्ट्रपति ही समझौते करेगा, संसद नहीं।

वास्तव में यदि हम राज्य के नरेश के साथ या राज्य की कार्यपालिका के साथ समझौता करने के लिये संसद को बीच में लायेंगे तो इससे संसद की स्थिति गिर जायेगी जो राज्यों पर सर्वोच्चता की है। संसद राज्यों के साथ समझौते में पक्षक नहीं बन सकती: यह तो कार्यपालिका संबंधी व्यवस्था है जो उसी योजनानुसार बनाई गई है जिसकी वी.टी. कृष्णमाचारी समिति के प्रतिवेदन में सिफारिश की गई थी। उस समिति ने वित्तीय एकीकरण की अपनी योजना में उन भू-चुंगियों को लगभग हटा दिया है जो विभिन्न राज्यों में लगाई जाती थीं। केवल दो अपवाद रखे गये हैं, और एक मात्र अपवाद राजस्थान है जहां संघ के आंतरित वित्तीय ढांचे को देखने से पता लगा कि यदि राज्य का आयव्ययक संतुलित रखना है तो भारत सरकार को सहायता के रूप में या अनुदान के रूप में भारी राशियां देनी होंगी। अतएव उन्होंने आरम्भ में पांच वर्ष के लिये—शायद अन्त में यह दस वर्ष ही रहे—उन्हें भू-शुल्क लगाने की अनुमति दे दी है। यह मामला तो एक कार्यपालिका प्राधिकारी तथा दूसरे के बीच में तय होना है, और यदि श्री सक्सेना के संशोधन को स्वीकार किया जायेगा तो संसद की वह सर्वोच्च स्थिति नहीं रहेगी जो केन्द्र की कार्यपालिका के विषय में ही नहीं, वरन राज्यों की कार्यपालिका के विषय में भी उसे प्राप्त है। यह एक संक्रमणकालीन उपबन्ध है और उस योजना के अनुसार बना है जिसकी उस समिति ने सिफारिश की है जिसने राज्यों के वित्तों की योजना पर पूरा विचार किया है और ऐसे उपाय तथा साधन निर्धारित किये

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हैं जिनसे यथासंभव शीघ्र ही पूर्ण एकीकरण हो सकता है। मैं यह अनुभव करता हूं कि विचाराधीन अनुच्छेद के विषय में कोई ऐसी संभव आपत्ति नहीं उठाई जा सकती जिसे सिद्ध किया जा सके।

***माननीय श्री के. सन्तानम** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मुझे हर्ष है कि इस अनुच्छेद के मसौदे में बहुत कुछ सुधार कर दिया गया है और इस अनुच्छेद के सिद्धांत तथा उद्देश्य का निश्चय ही अनुमोदन करता हूं। किन्तु इस संबंध में एक बात पर विचार करना है। इसमें लिखा है "कोई राज्य जो इस संविधान के आरम्भ से पहले दूसरे राज्यों से उस राज्य में वस्तुओं के आयात पर अथवा उस राज्य से दूसरे राज्यों को वस्तुओं के निर्यात पर कोई कर या शुल्क उद्गृहीत करता था।" मान लीजिये कुछ वस्तुएं बंबई बंदरगाह पर आती हैं और सीधी राजस्थान चली जाती हैं जहां उन पर भू-शुल्क लग सकता है। क्या वह अन्य राज्यों से राजस्थान को वस्तुओं के आयात की परिभाषा में आयेगा? वह भारत के बाहर से राजस्थान में आयात है। मेरे विचार में वर्तमान समझौतों के अनुसार ऐसी वस्तुओं पर भी भू-शुल्क लग सकता है। अत: मैं नहीं जानता कि क्या 'अन्य राज्यों को' और इसी प्रकार 'अन्य राज्यों से' इन शब्दों की आवश्यकता है या नहीं। वे सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होते हैं। हमें केवल उन वस्तुओं के भू-शुल्क से मतलब है जो राज्य में आती हैं या राज्य से बाहर जाती हैं। वे कहां जाती हैं और कहां से आती हैं, मेरे विचार में, महत्वपूर्ण बातें नहीं हैं जहां तक कि हमारे इस उद्देश्य विशेष का संबंध है, और क्योंकि सब बातें उस समझौते में स्पष्ट परिभाषित होती हैं, अत: मेरे विचार में हमें ऐसे शब्द नहीं रखने चाहिये जिनसे व्यापारियों को कर से बचने का रास्ता मिल सके। क्योंकि वस्तुएं बम्बई से आती हैं अत: वे कहेंगे कि वे भारत के किसी राज्य से नहीं आतीं और वे बाहर से आती हैं और इस लिये उन पर समझौते के अधीन भू-शुल्क नहीं लगा ने चाहिये। मैं चाहता हूं कि मसौदा समिति इस बात पर विचार करे और देखे कि कर से बचने के लिये कोई मार्ग न रह जाये। आशा है मेरी बात स्पष्ट हो गई होगी। मेरी आपत्ति यह है कि 'अन्य राज्यों से' और 'अन्य राज्यों को' इन शब्दों को, जो इस खंड के प्रयोजन के लिये सर्वथा अनावश्यक हैं, हटा दिया जाये और इस प्रकार मुकदमेबाजी और कर से बचने का एक मार्ग बंद कर दिया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इसमें वर्तमान राज्यों को ध्यान में रखा गया है, जहां वे उन वस्तुओं पर शुल्क लगाते हैं जो राज्यों में आती हैं, चाहे वे बाहर से आयें या अन्दर से आयें, और यह तो केवल...

***माननीय श्री के. सन्तानम:** इस खंड का यह अर्थ होगा कि यह उन वस्तुओं पर लागू है जो भारत के किसी राज्य से दूसरे राज्य में जाये और यदि वस्तुएं बाहर से आयें और किसी राज्य में प्रविष्ट हों तो यह खंड लागू नहीं होगा और इसलिये सम्बद्ध राज्य उन पर भू-शुल्क नहीं लगा सकेगा। राज्य को भू-शुल्क लगाने से वंचित रखने की हमारी इच्छा नहीं है, अत: इस पर विचार किया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आखिर उस समझौते का उद्देश्य कुछ अधिकार देना ही तो है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** वह संविधान के खंड से सीमित है। यदि खंड से शुल्क लगाना वर्जित हो तो इस खंड के विरुद्ध कोई समझौता सफल नहीं हो सकता। इसी प्रकार मेरा सुझाव है कि हमें इस खंड का क्षेत्र विस्तृत बना देना चाहिये और समझौते को लागू होने देना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हम इसे देख लेंगे।

***श्री राज बहादुर** (मत्स्य का संयुक्त राज्य): इस अनुच्छेद पर विचार करते समय मैं इस सभा के कुछ मिनट लेकर इन शुल्कों, करों आदि के विषय में राज्य-संघों की सामान्य जनता की भावनाओं को व्यक्त करना चाहता हूं। वास्तव में जब से देशी राज्यों की जनता में राजनैतिक चेतना आई है तब से ही सीमा कर राजनैतिक विरोधियों का विशेष लक्ष्य रहा है। यह बात अकारण नहीं थी कि आयात तथा निर्यात दोनों पर सीमा-शुल्क लगाने के विरुद्ध देशी राज्यों की जनता और उनके आंदोलन खड़े हुए थे। जनता में एक विशेष प्रकार की भावना के ही कारण यह विरोध उत्पन्न हुआ था। हम सदा से ही अनुभव करते रहे हैं कि इन सीमा-शुल्कों के कारण हमारे सब व्यापार और हमारे उद्योगों को बहुत हानि पहुंचती रही है। आज भी हमें लाभ नहीं होगा। वे राज्य बड़े-बड़े नहीं थे अतः उन्हें अपने आयव्ययक को संतुलित करने के लिये सीमा-कर लगाना पड़ता था। उसके अतिरिक्त यह राज्यों के प्रभुताधिकारों का भी अंग माना जाता था। किन्तु इन सीमा-शुल्कों से जनता के हितों का तो अनुसेवन नहीं होता था।

अब जब कि इस अनुच्छेद को संविधान में रखा जा रहा है, मैं अपनी भावना को तथा देशी राज्यों की अधिकांश जनता की भावना को व्यक्त करना चहता हूं कि वे अपने राज्यों में इन सीमा-शुल्कों से खुश नहीं हैं। वास्तव में बैलों, भैंसों, ऊंटों और गधों के निर्यात पर भी ये सीमा-शुल्क लग ही जाते हैं। राजस्थान में, यदि आप एक गधे का निर्यात करना चाहें तो आपको 7 रुपये देने होंगे। यदि आप बैल का निर्यात करें तो 15 देने होंगे तथा ऊंट के 25 देने होंगे। हमारे यहां जो अतिरिक्त या बचे हुए डंगर-ढोर हैं उन्हें भी हम निर्यात नहीं कर सकते। हमारे यहां जो गधे हैं उनका भी निर्यात नहीं हो सकता जब तक कि सीमा-शुल्क के रूप में कुछ दिया न जाये। जहां तक घरेलू तथा अन्य उद्योगों का संबंध है, इन सीमा-शुल्कों के कारण उन्हें बहुत हानि पहुंची है।

अतः इस अनुच्छेद पर विचार करते समय मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि केन्द्र को हमारी सहायता करनी चाहिये। हम इन सीमा-शुल्कों को जारी रखना नहीं चाहते। हमारा प्रांत एक घाटे का प्रांत है तथा वहां स्तर बहुत नीचा है, अतः जितनी जल्दी इन सीमा-शुल्कों को तथा सीमा-शुल्क विभाग को हटा दिया जायेगा उतना ही हमारे लिये अच्छा रहेगा। आज भी ऐसे निर्बंधनों के कारण ही अन्तर्राज्यिक वाणिज्य तथा व्यापार पर प्रभाव पड़ रहा है। अन्य प्रांतों से हमारे व्यापार पर स्पष्ट ही बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ रहा है। उपभोग की वस्तुओं पर सीमा-शुल्क लगने के कारण हमारे यहां उनका मूल्य अन्य प्रांतों से अधिक है। इन सब बातों के कारण सड़क पर सामान्य व्यक्ति या गांवों के साधारण व्यक्ति अपने जीवन में प्रति दिन इस कर से जो भार पड़ता है, उसे अनुभव करते हैं। इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं नेताओं से तथा केन्द्रीय सरकार से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस बात पर विचार करें और हमारे नये संघ की सहायता करें जिससे कि हम इस रोग से यथा संभव शीघ्र छुटकारा पा सकें।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सं. 428 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 274घघ के परन्तुक में 'President' शब्द के स्थान पर 'Parliament' शब्द रख दिया जाये तथा 'he thinks' इन शब्दों के स्थान पर 'it thinks' ये शब्द रख दिये जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 17 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 400 के निर्देश से, अनुच्छेद 274घ के पश्चात् निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:—

'27DD. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part or in any other provisions of this Constitution, any State which before the commencement of this Constitution was levying any tax or duty on the import of goods into the State from other States or on the export of goods from the State to other States may, if an agreement in that behalf has been entered into between the Government of India and the Government of that State, continue to levy and collect such tax or duty subject to the terms of such agreement and for such period not exceeding ten years from the commencement of this Constitution as may be specified in the agreement:

Power of certain States in Part III of the First Schedule to impose restrictions on trade and commerce by the levy of certain taxes and duties on the import of goods into or the export of goods from such States.

Provided that the President may at any time after the expiration of five years from such commencement terminate or modify any such agreement if, after consideration of the report of the Finance Commission constituted under article 260 of this Constitution, he thinks it necessary to do so.'

[274घघ. इस भाग के पूर्वगामी उपबन्धों में, अथवा इस संविधान के अन्य उपबन्धों में, किसी बात के होते हुए भी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित कोई राज्य, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले दूसरे राज्यों से उस राज्य में वस्तुओं के आयात पर अथवा उस राज्य से दूसरे राज्यों को वस्तुओं के निर्यात पर कोई कर या शुल्क उद्गृहीत करता था, ऐसे कर या शुल्क को, यदि भारत सरकार और उस राज्य की सरकार में उस लिये करार हो जाये तो, ऐसे करार के निर्बंधनों के अधीन रहते हुए तथा इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिये, जैसी कि करार में उल्लिखित हो, उद्गृहीत और संगृहीत करता रहेगा:

प्रथम अनुसूची के भाग 3 के कतिपय राज्यों की ऐसे राज्यों में वस्तुओं के आयात तथा से वस्तुओं के निर्यात पर कुछ कर तथा शुल्क लगा कर व्यापार और वाणिज्य पर निर्बन्धनों के आरोपण की शक्ति।

परन्तु ऐसे प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी समय भी यदि राष्ट्रपति अनुच्छेद 260 के अधीन गठित वित्त-आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ऐसे किसी करार का अन्त या रूपभेद करना आवश्यक समझे तो वह ऐसा कर सकेगा।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 274घघ संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 274घघ संविधान में जोड़ दिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि मेरे माननीय मित्र पं. कुंजरू को कोई आपत्ति न हो तो हम नये अनुच्छेद 280क को ले सकते हैं। उन्हें आधा घंटा और मिल चुका है।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में हम इसे कुछ देर में ले सकते हैं।

अनुच्छेद 302 कक

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 302क के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:-

'302AA. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution and subject to the provisions of article 119 thereof, neither the Supreme Court nor any other court shall have jurisdiction in any dispute arising out of any provision of a treaty, agreement, covenant, engagement, *sanad* or other similar instrument which was entered into by any Ruler of an Indian State and to which the Government of the Dominion of India or any of its predecessor Governments was a party and which has or has been continued in operation after the date of commencement of this Constitution, or in any dispute in respect of any right accruing under any of the provisions of this Constitution relating to any such treaty, agreement, covenant, engagement, *sanad* or other similar instrument.

Bar of jurisdiction of courts with respect to certain treaties, agreements, etc.

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

(2) In this article—

(a) 'Indian State' means any territory recognised by His Majesty or the Government of the Dominion of India as being such a State; and

(b) 'Ruler' includes, the Prince, Chief or other person recognised by His Majesty or the Government of the Dominion of India as the Ruler of any Indian State.'

कतिपय सन्धियों, करारों इत्यादि से उद्भूत विवादों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप का वर्जन।

[302कक. (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी किन्तु अनुच्छेद 119 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए न तो उच्चतम न्यायालय और न किसी अन्य न्यायालय को किसी सन्धि, करार, प्रसंविदा, वचन-बन्ध, सनद अथवा ऐसी ही किसी अन्य लिखत से, जो इस, संविधान के प्रारम्भ से पहले किसी देशी राज्य के शासक द्वारा की गई या निष्पादित की गई थी तथा जिसमें भारत डोमीनियन की सरकार या इसकी पूर्वाधिकारी कोई भी सरकार एक पक्ष थी तथा जो ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रवर्तन में है या बनी रही है, उद्भूत किसी विवाद में अथवा ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचन-बन्ध, सनद अथवा ऐसी ही किसी अन्य लिखत से सम्बद्ध इस संविधान के उपबन्धों में से किसी से प्रोद्भूत किसी अधिकार, या उद्भूत किसी दायित्व या आभार के विषय में किसी विवाद में क्षेत्राधिकार होगा।

(2) इस अनुच्छेद में:–

(क) "देशी राज्य" से अभिप्रेत है कोई राज्य-क्षेत्र जो सम्राट या भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा, इस संविधान के प्रारम्भ से पहले, ऐसा राज्य अभिज्ञात था, तथा

(ख) "शासक" के अन्तर्गत है, राजा, मुखिया या अन्य कोई व्यक्ति जो सम्राट या भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा, ऐसे प्रारम्भ से पहले किसी देशी राज्य का शासक अभिज्ञात था।]"

जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है। यह स्वयं स्पष्ट ही है। इसका मंशा यह है कि उच्चतम न्यायालय और किसी अन्य न्यायालय को किसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचनबद्ध, सनद अथवा ऐसी ही किसी अन्य लिखत से जिसे भारत डोमीनियन की सरकार या इसकी पूर्वाधिकारी किसी सरकार ने किया हो उद्भूत किसी विवाद में क्षेत्राधिकार से वंचित कर दिया जाये.....

***एक माननीय सदस्य:** विनिश्चय कौन करेगा?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** विचार यह है कि इस मामले में न्यायालय विनिश्चय नहीं करेगा। इस पर केवल अनुच्छेद 119 के उपबंध लागू हैं जिसके अनुसार राष्ट्रपति कोई मामला उच्चतम न्यायालय को भेज कर उसकी राय पूछ सकता है और उच्चतम न्यायालय ऐसे मामले पर अपनी राय राष्ट्रपति को बताने के लिये बाध्य होगा। सदन को यह भी याद होगा कि इस संविधान में कुछ अनुच्छेद हैं, विशेषत: 302क तथा 267क हैं, जहां इन संधियों, करारों, सनदों आदि का निर्देश है, और वे भी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। सदन यह बात मानेगा कि यह अत्यावश्यक है कि ऐसे मामलों को न्यायालय के समक्ष पेश होने वाला विवादास्पद मामला न बनने दिया जाये, ऐसा न हो कि उससे वे प्रबंध उलट पुलट हो जायें जो संक्रमणकाल में राज्यों के शासकों तथा भारत सरकार के बीच के संबंधों का निर्धारण करने के लिये भारत सरकार ने स्वीकार किये हैं। संविधान के पारित होने के पश्चात् स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। लगभग समस्त राज्य भाग 6क के क्षेत्र में आ गये हैं और उन पर इस संविधान के उपबन्ध लागू होंगे, और सिवाय उन संधियों आदि के जिन का स्पष्ट उल्लेख सविधान में किया गया है और जैसा कि मैं कह चुका हूं दो अनुच्छेद 267क तथा 302क हैं, उन करारों का संविधान के क्रियान्वित होने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा, और क्योंकि इस संविधान में न्यायपालिका को बहुत शक्तियां दी गई हैं, अत: आवश्यक है कि इस संविधान के पारित होने से पूर्व जो चीज हो चुकी है और जो संयोगवश संविधान के पारित होने के बाद प्रभावी हो, तो वह न्यायालय में विवाद का कारण नहीं बननी चाहिये। मेरे विचार में इस सदन के सदस्य यह समझ जायेंगे कि यह अत्यावश्यक उपबंध है कि ऐसे व्यक्ति अनावश्यक झगड़े पैदा न कर सकें जो यह अनुभव करें कि उन पर कुप्रभाव पड़ा है या उन्हें हानि हुई है और वे एसे अधिकारों को मान्यता दिलवाने के लिये न्यायालय में न जा सकें जो इस संविधान के उपबंधों से लगभग समाप्त ही हो गये हैं, सिवाय उन मामलों के जो संविधान के कुछ अनुच्छेदों से लक्षित हैं। श्रीमान, मुझे आशा है कि सदन बिना विरोध के इस अनुच्छेद को पारित कर देगा।

(संशोधन 403 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन नहीं है। क्या कोई सदस्य इस अनुच्छेद के विषय में कुछ कहना चाहता है? मैं इस पर मत ले लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 302क के पश्चात् निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:–

Bar of jurisdiction of courts with respect to certain treaties, agreements, etc.

'302AA. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution and subject to the provisions of article 119 thereof, neither the Supreme Court nor any other court shall have jurisdiction in any dispute arising out of any provision of a treaty,

[अध्यक्ष]

agreement, covenant, engagement, *sanad* or other similar instrument which was entered into by any Ruler of an Indian State and to which the Government of the Dominion of India or any of its predecessor Governments was a party and which has or has been continued in operation after the date of commencement of this Constitution, or in any dispute in respect of any right accruing under any of the provisions of this Constitution relating to any such treaty, agreement, covenant, engagement, *sanad* or other similar instrument.

(2) In this article—

(a) 'Indian State' means any territory recognised by His Majesty or the Government of the Dominion of India as being such a State; and

(b) 'Ruler' includes, the Prince, Chief or other person recognised by His Majesty or the Government of the Dominion of India as the Ruler of any Indian State.'

कतिपय सन्धियों, करारों इत्यादि से उद्भूत विवादों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप का वर्जन।

[302कक. (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी किन्तु अनुच्छेद 119 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए न तो उच्चतम न्यायालय और न किसी अन्य न्यायालय को किसी सन्धि, करार, प्रसंविदा, वचन-बन्ध, सनद अथवा ऐसी ही किसी अन्य लिखत से, जो इस, संविधान के प्रारम्भ से पहले किसी देशी राज्य के शासक द्वारा की गई या निष्पादित की गई थी तथा जिसमें भारत डोमीनियन की सरकार या इसकी पूर्वाधिकारी कोई भी सरकार एक पक्ष थी तथा जो ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रवर्तन में है या बनी रही है, उद्भूत किसी विवाद में अथवा ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचन-बन्ध, सनद अथवा ऐसी ही किसी अन्य लिखत से सम्बद्ध इस संविधान के उपबन्धों में से किसी से प्रोद्भूत किसी अधिकार, या उद्भूत किसी दायित्व या आभार के विषय में किसी विवाद में क्षेत्राधिकार होगा।

(2) इस अनुच्छेद में:—

(क) "देशी राज्य" से अभिप्रेत है कोई राज्य-क्षेत्र जो सम्राट या भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा, इस संविधान के प्रारम्भ से पहले, ऐसा राज्य अभिज्ञात था, तथा

(ख) "शासक" के अन्तर्गत है, राजा, मुखिया या अन्य कोई व्यक्ति जो सम्राट या भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा, ऐसे प्रारम्भ से पहले किसी देशी राज्य का शासक अभिज्ञात था।]"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 302कक संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुसूची 3

***अध्यक्षः** हम अन्य अनुच्छेदों तथा अनुसूची 3 को ले सकते हैं। वे छोटी चीजें हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अनुसूची 3 और अन्य अनुच्छेद पहले पारित हो चुके हैं तथा उन पर पुनर्विचार होना है। हमें सदन की अनुमति लेनी होगी।

***अध्यक्षः** आप पुनरारंभ करने के लिये अनुमति मांगेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, आज की कार्यावली में, पहली मद अनुच्छेद 13 से आरम्भ करके तीसरी अनुसूची तक लगभग सभी मदें, सिवाय अनुच्छेद 264क, 274घघ, 302कक के जो पारित हो चुके हैं तथा 280क के जो उठा रखा गया है, अन्य सब मदें उन अनुच्छेदों तथा अनुसूचियों पर पुनर्विचार करने के विषय में हैं, जो पहले पारित हो चुकी थीं। अतएव मैं प्रार्थना करना चाहता हूं कि आप सदन में इस प्रस्थापना पर मत लें कि वे इन अनुच्छेदों पर पुनर्विचार की अनुमति देना चाहते हैं या नहीं।

***अध्यक्षः** मैं मान लेता हूं कि सदन इन अनुच्छेदों पर पुनर्विचार की अनुमति देता है।

***माननीय सदस्यगणः** हां।

***अध्यक्षः** हम अनुसूची 3 को लेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): अनुच्छेद.....

***अध्यक्षः** पहले हम इस अनुसूची को समाप्त कर लें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं संशोधन 401 तथा 402 को साथ पेश करता हूं:

"कि शपथ के प्रपत्र की मद 4 में, तृतीय अनुसूची में, 'judges of the Supreme Court' इन शब्दों के पश्चात् 'and the Comptroller and Auditor-General of India' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

"कि शपथ के प्रपत्र की मद 4 में, तृतीय अनुसूची में, 'Supreme Court of India' इन शब्दों के पश्चात्, '(or Comptroller and Auditor-General of India)' ये कोष्ठक तथा शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

यह केवल एक भूल है जो हम अब ठीक करना चाहते हैं। शपथ का जो प्रपत्र उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये रखा गया है वही, सदन द्वारा, स्वीकृत हो जायेगा तो भारत के महालेखापरीक्षक के लिये भी रखा जायेगा।

***अध्यक्षः** अनुसूची 3 के इस संशोधन पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

"कि शपथ के प्रपत्र की मद 4 में, तीसरी अनुसूची में 'judges of the Supreme Court' इन शब्दों के पश्चात्, 'and the Comptroller and Auditor-General of India' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

"कि शपथ के प्रपत्र की मद 4 में, तीसरी अनुसूची में 'Supreme Court of India' इन शब्दों के पश्चात्, '(or Comptroller and Auditor-General of India)' ये कोष्ठक तथा शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुए।

अनुच्छेद 13

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 13 को ले लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या मैं प्रार्थना कर सकता हूं, श्रीमान.....

***श्री एच.वी. कामतः** इस संशोधन के विषय में, श्रीमान.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या मैं प्रार्थना कर सकता हूं, श्रीमान कि आप पहली मद को, बाद में, अंत में ही ले लें।

***अध्यक्षः** हम मद 1 को बाद में लेंगे। हम अनुच्छेद 16 से आरम्भ कर सकते हैं।

अनुच्छेद 16

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान मैं संशोधन सं. 393 को पेश करता हूं जो यह है:

"कि अनुच्छेद 16 को हटा दिया जाये।"

कारण यह है कि हमने अनुच्छेद 16 को मूलाधिकारों के अध्याय से लेकर भाग 10क के अध्याय में, जिसका शीर्षक 'भारत के राज्य-क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम' है, रख दिया गया है। अब यह अनुच्छेद 274क के रूप में जरा भिन्न शक्ल में रखा गया है जो इस प्रकार है:

" 'Subject to the other provisions of this Part, trade, commerce and intercourse throughout the territory of India shall be free.'

[भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए भारत-राज्यक्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।]"

इस अनुच्छेद और अनुच्छेद 16 में यही अंतर है, कि अनुच्छेदों की भाषायें ही भिन्न हैं, और लिखा है कि संसद की शक्तियों के अधीन रहते हुए, व्यापार, वाणिज्य तथा समागम आदि अबाध होंगे। यह बात भाग 10क में रख दी गई है, अनुच्छेद 16 को मूलाधिकारों में रखना व्यर्थ है, अत: मैंने यह संशोधन पेश किया है।

क्या, श्रीमान, मैं इस सदन के सदस्यों को यह भी बता दूं, जिन्हें मेरे ख्याल में इस बात का पता ही है, कि इस अनुच्छेद को, जो बहुत कम अधिकार प्रदान करता है, मूलाधिकारों, में रखने के मूल विचार के पीछे एक इतिहास है। इसका कारण यह था कि जिस समय हमने मूलाधिकारों की रचना की थी उस समय हमारा ख्याल यह था कि संविधान का ढांचा दूसरा ही होगा। फिर भी जो अधिकार प्रदान किया गया है वह संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन होगा। अतएव इस प्रकार के अनुच्छेद के लिये, जो अन्य अनुच्छेदों के समान सच्चे अर्थ में मूलाधिकार नहीं हैं, समुचित स्थान व्यापार तथा वाणिज्य का अध्याय है। मेरे विचार में सदन को ऐसे अनुच्छेद को हटाने में कोई आपत्ति नहीं होगी तो मूलाधिकारों के अनुच्छेदों में अब व्यर्थ-सा ही है।

(संशोधन सं. 416 पेश नहीं किया गया।)

***पंडित ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): क्या मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से एक प्रश्न पूछ सकता हूं। उनके अनुसार, अनुच्छेद 274क अब अनुच्छेद 16 का स्थान ले रहा है। क्या मैं जान सकता हूं कि अनुच्छेद 25 अनुच्छेद 274क पर लागू होगा या नहीं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यदि मेरे माननीय मित्र कुछ दिन ठहरेंगे तो वे देखेंगे कि मैं एक दूसरा संशोधन भी पेश करूंगा जिसमें लिखा होगा कि अनुच्छेद 25 अनुच्छेद 274क पर लागू नहीं होगा और अनुच्छेद 16 पर भी नहीं। विधि की साधारण प्रक्रिया, इस संविधान के अधीन उच्चतम न्यायालय को जो सामान्य शक्ति दी गई है कि वह यह देखें कि इस संविधान के प्रत्येक उपबन्ध का पालन किया जाये वही प्रक्रिया तथा शक्ति अनुच्छेद 274क से 274ङ तक सब पर लागू होगी।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

कोई विशेष उपबन्ध जो लागू होता, अनुच्छेद 16 के विषय में बहुत निर्बन्धित होगा। यदि संसद विधि द्वारा उस शक्ति का न्यूनन कर देती, तो अनुच्छेद 25 क्या विशेष अधिकार प्रदान कर सकता था, क्योंकि अनुच्छेद 16 के अधीन वही चीज़ उच्चतम न्यायालय को जा सकती थी जो संसद जाने देती।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, जैसा कि मैं अनुच्छेद 16 को समझता हूं, वह भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। मैंने अपने माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की वक्तृता को बहुत ध्यान से सुना था और मैं अनुभव करता हूं कि यद्यपि हमने अनुच्छेद 274क या अन्य किसी अनुच्छेद के अधीन कुछ शक्तियां दे दी हैं फिर भी मैं इस विचार को बहुत अच्छा नहीं समझता कि मूलाधिकारों में, जिन पर हमने सदन में दो तीन बार अच्छी तरह विचार किया है, कोई परिवर्तन किया जाये। मान लीजिये कि आपने 264क द्वारा वह समान स्वतन्त्रता दे दी है जैसी कि अनुच्छेद 16 में दी गई है, फिर भी अनुच्छेद 16 को भी रहने दीजिये। हां, मैंने श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की इस युक्ति को सुना है कि उच्चतम न्यायालय में जाकर यह तर्क करना आवश्यक नहीं है कि मूलाधिकारों में हस्तक्षेप नहीं हुआ है। किन्तु मैं स्पष्ट नहीं समझा हूं कि क्या अनुवर्ती अनुच्छेदों से वैसा ही पूर्ण न्याय होगा जैसा कि अनुच्छेद 16 में रखा गया था मैं नहीं चाहता कि संविधान निर्माण के अंतिम चरण में हम मूलाधिकारों को छेड़ें, जिन्हें हमने इतने विचार-विमर्श तथा ध्यान के बाद पारित किया था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं एक दो शब्द कहना चाहता हूं।

श्रीमान, मुझे सचमुच खेद है कि इस अनुच्छेद को मूलाधिकारों में से निकाल दिया गया है मेरा यह अभिप्राय है कि व्यापार तथा वाणिज्य की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। और न प्रांतीय विधान मंडल को और न संसद को ही इस मूलाधिकार को कम करने का अधिकार होना चाहिए। मुझे सचमुच खेद है कि यह अनुच्छेद अंशत: अनुच्छेद 274क में समाविष्ट कर दिया गया है। मैं चाहता था कि मसौदा समिति के सदस्य अनुच्छेद 274क को हटाने का संशोधन पेश करते, अनुच्छेद 16 को नहीं।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** श्रीमान, अनुच्छेद 16 भी एक ऐसा उपबंध है जो अनुच्छेद 25 के प्रभाव के अंतर्गत था और यह नागरिकों का बहुत महत्वपूर्ण मूलाधिकार है कि भारत के राजक्षेत्र में समागम अबाध होगा। इससे यह निश्चय हो जाता है कि प्रांतीय सीमाओं से किसी प्रकार के आवागमन में बाधा नहीं पड़ेगी और प्रत्येक व्यक्ति भारत के गणराज्य की नागरिकता से पूरा लाभ उठा सकेगा। किन्तु क्योंकि हमने भाग 10क के कुछ उपबंधों को पारित कर दिया है अत: यह सच है कि कुछ हद तक यह स्वतन्त्रता कम कर दी गई है और जब इन अनुच्छेदों पर विचार किया जा रहा था तब मैंने कहा था कि इस अधिकार को छीना जा रहा है, किन्तु साथ ही अनुच्छेद 16 को अपने स्थान पर रहने दिया

गया था। हमें यह अधिकार प्रिय है क्योंकि यह उन अधिकारों में से है जो अनुच्छेद 25 के अधीन समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय द्वारा क्रियान्वित किये जा सकते हैं, यद्यपि हमने यह विनिश्चय नहीं किया है कि यह प्रक्रियायें कैसी होंगी, क्योंकि मूलाधिकार नये उपबन्ध हैं; किन्तु फिर भी हमारा यह ख्याल है कि कोई ऐसा तरीका निकाल लिया जायेगा जिससे इस गणराज्य के नागरिकों को अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत सस्ता और सुगम न्याय प्राप्त हो सकेगा।

अब इस अनुच्छेद को मूलाधिकारों में से निकाला जा रहा है और उसके स्थान पर 274क रखा जा रहा है। मुझे भय है कि हमें अन्यायपूर्ण उपाय द्वारा उन सस्ते उपचारों से वंचित किया जा रहा है जो अनुच्छेद 16 द्वारा हमें मिले थे। केवल यही एक धारा नहीं है जिससे सत्र के अन्त में इस सदन में अधिकारों तथा उपचारों को छीना जा रहा है। अनुच्छेद 13 पर भी एक संशोधन है। हम यह भी देख चुके हैं कि अनुच्छेद 307 के अधीन सरकार सब अधिकारों को किस प्रकार अनुकूलन तथा रूप भेद करने के बहाने, छीन रही है तथा ऐसे रूप में बदल रही है जो सरकार को उचित जान पड़ता है।

मुझे खेद है कि मैं सहमत नहीं हूं कि अनुच्छेद 16 को इस मूलाधिकार के स्थान से हटाना चाहिये, क्योंकि इसे क्रियान्वित करने में उच्चतम न्यायालय को प्राप्त समुचित कार्यवाहियां शायद आसान तथा सस्ती हों। मैं चाहता हूं कि यह अनुच्छेद 16 हटाया न जाये।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** अध्यक्ष महोदय, मुझे भय है कि मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव अनुच्छेद 274क के मुकाबले में अनुच्छेद 16 का समर्थन करने में गलती कर रहे हैं क्योंकि यदि वे अनुच्छेद 304 को देखेंगे जो संविधान के संशोधन के विषय में है तो उन्हें पता चलेगा कि अनुच्छेद 16 में संशोधन करने की प्रक्रिया वही है जो 274क के विषय में है। एक ओर 274क में संसद साधारणत: परिवर्तन कर सकती है, उधर अनुच्छेद से संसद को शक्ति मिल जाती है कि वह भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में व्यापार तथा वाणिज्य की स्वतन्त्रता को सीमित करने की विधि बना सकती है। 274क में वाणिज्य की स्वतन्त्रता संविधान में संशोधन किये बिना तो, कम से कम छिन नहीं सकती, 16 से संसद को स्वतंत्रता ही मिल जाती है। आप 16 तथा 274क को साथ नहीं रख सकते क्योंकि वे असंगत हैं। एक को या दूसरे को हटाना पड़ेगा। अत: उन्हें यह निश्चय करना है। कि 16 को हटाया जाये या 274क को।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** 274क एक पवित्र घोषणा है। घोषणा-आज्ञप्ति पर शायद अमल न हो सके। अनुच्छेद 25 के अधीन उपचार सस्ता और आसान है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** 274क में लिखा है कि यह स्वतन्त्र होगा और फिर सामान्य उपचार तो है ही। किसी को अधिकार है कि वह संविधान के किसी अनुच्छेद को क्रियान्वित करवाने के लिये उच्चतम न्यायालय में जा सकता है, केवल मूलाधिकार को ही नहीं। उच्चतम न्यायालय संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद का संरक्षक है। 16 केवल पवित्र घोषणा-मात्र जिससे संसद को सब शक्तियां दे दी गई हैं

[माननीय श्री के. सन्तानम]

अनुच्छेद 274क में लिखा है कि संविधान का संशोधन न हो तो व्यापार अबाध होगा, और उस पर केवल वे ही सीमायें होंगी जो अनुवर्ती खंडों में उपबंधित हैं। अतः संगति के लिये तथा व्यापार की स्वतन्त्रता के लिये यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 16 हट जाना चाहिये।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): श्रीमान, मैंने श्री सन्तानम को बहुत ध्यान से सुना है, किन्तु मैं उनकी बात समझने में या उनके विचारों को स्वीकार करने में कठिनाई अनुभव करता हूं। यह आवश्यक है कि समस्त राज्य-क्षेत्र में समागम के अधिकार अबाध होने चाहियें। ऐसे अधिकारों को सदा विधि में समाविष्ट कर देना चाहिये और यदि उन्हें छीन लिया जाये तो शायद हम महान अधिकार से वंचित हो जायेंगे जिसे बाद में कम किया जा सकता है संशोधन द्वारा हटाया जा सकता है। हम देख चुके हैं कि उसमें कैसे धीरे-धीरे परिवर्तन किया गया है—पहले एक धारा द्वारा, फिर दूसरी धारा द्वारा और तीसरी धारा द्वारा। हम उस क्रम को देख चुके हैं। यदि इसे छीन लिया गया तो हम यहां चर्चा तक भी नहीं कर सकेंगे कि हमें ऐसा अधिकार प्राप्त है। अतएव इन मूलाधिकारों को किसी प्रकार रहने देना चाहिये। इसलिये मैं इसे हटाने का विरोध करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, बहुत आदर के साथ मेरा निवेदन है कि मैं इस संबंध में श्री सन्तानम के तर्कों को नहीं समझ सका हूं। अनुच्छेद 16 को मूलाधिकार के अंग के रूप में रखा गया था कि व्यापार अबाध होगा। फिर किसी प्रकार मसौदा समिति के दिमाग में आया कि उसने ऐसा ही एक उपबन्ध, अनुच्छेद 274क रख दिया, और शायद वह अनुच्छेद 16 के अस्तित्व को बिल्कुल ही भूल गई। यदि उसे इसका पता होता या याद होता तो 274क को पारित करते समय ही अनुच्छेद 16 का निरसन भी कर दिया जाता। किन्तु बाद में उन्होंने देखा कि अनुच्छेद 274क और 16 में पुनरावृत्ति हो गई है। मेरा निवेदन है कि अब प्रश्न यही है कि अनुच्छेद 16 को हटाया जाये या 274क को। व्यक्तिगत रूप से मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 274क को हटाना होगा। क्योंकि संविधान में 16 की स्थिति 274क से अधिक अच्छी है। अनुच्छेद 16 अनुच्छेद 25 के उपबंधों के अधीन है जिससे यह अधिकार न्याय्य बन जाता है। यह स्पष्ट नहीं बताया गया है कि इसका क्या औचित्य है कि उसे न्याय्य अधिकारों में से हटा कर अनुच्छेद 274क में रख दिया जाये। यह बहुत संदिग्ध है और शायद इससे कई सांविधानिक वकीलों की तथा उच्चतम न्यायालय की बुद्धि चकरायेगी कि यह न्याय्य है या नहीं। यदि यह न्याय्य है तो अनुच्छेद 16 को हटा कर यहां रखने का कोई कारण नहीं है। मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 274 क को हटाया जाये और 16को रखा जाये जिससे कि वह स्पष्टतः न्याय्य रहे।

***पं. ठाकुर दास भार्गव:** वह समुचित कार्यवाहियों से न्याय्य होगा, घोषणात्मक दावे से अवश्यमेव न्याय्य नहीं होगा।

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर आपत्ति बिल्कुल गलतफहमी के कारण उत्पन्न हुई है। जैसा कि श्री सन्तानम पहले ही कह चुके हैं कोई उपबंध मूलाधिकारों के अध्याय में है, केवल इसी कारण उसमें कोई विशेष पवित्रता या बल नहीं आ जाता विशेषत: जब अनुच्छेद 16 में ही यह अपवाद है "Subject to any law made by Parliament"।

मूलाधिकारों में अनुच्छेद 16 की यह भाषा थी:

"Subject to any law made by Parliament, trade, commerce and intercourse throughout the territory of India shall be free."

अतएव इस अनुच्छेद में संसद को खुली छुट्टी दे दी गई थी, यद्यपि उसका नाम मूलाधिकार रखा गया है। यह ऐसा अधिकार है जिसका अतिक्रमण या न्यूनन संसद इच्छानुसार कर सकती है। अनुच्छेद 16 का प्रभाव यह था।

इस उपबंध को अंतर्राज्यिक व्यापार संबंधी अध्याय में ले जाने का कारण स्पष्ट करना अपेक्षित है। जब संविधान सभा ने केबिनेट मिशन की प्रस्थापनाओं के अन्तर्गत कार्य आरम्भ किया था तब यह अनुभव किया गया था कि यदि हम अंतर्राज्यिक उपबन्ध को मूलाधिकार के रूप में न रखेंगे तो व्यापार की स्वतन्त्रता भी न रह सकेगी। उस समय की परिस्थितियां ऐसी थीं कि हमने व्यापार-स्वातंत्र्य के खंड को मूलाधिकारों के अध्याय में रखना ही अभीष्ट समझा क्योंकि जब संविधान सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया था तब उसकी शक्तियां सीमित थीं। इस प्रकार यह अध्याय मूलाधिकारों में रखा गया।

सदन को स्मरण होगा कि मूलाधिकारों की समिति बनी थी उस समय भारत की स्थिति के विषय में बाद के बहुत से परिवर्तन नहीं हुए थे और संविधान सभा को विस्तृत शक्तियां प्राप्त नहीं हुई थीं। अब संविधान सभा के कार्यों पर किसी प्रकार का निर्बन्धन लगाने का प्रश्न नहीं है और हम अब स्वतन्त्र तथा स्वाधीन भारत के लिये जैसा संविधान चाहें बना सकते हैं। इन परिस्थितियों में व्यापार-स्वातन्त्र्य संबंधी विषय में नये अनुच्छेद बनाये गये हैं जो अनुच्छेद 274क से आरंभ होते हैं। हमने अनुच्छेद 274क में रखा है कि भारत भर में व्यापार तथा वाणिज्य, उस भाग के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अबाध होगा। अत: संसद द्वारा निर्मित व्यापार स्वातंत्र्य संबंधी विधान उस अध्याय के उपबंधों के अधीन होंगे।

केवल इस कारण कि व्यापार-स्वातंत्र्य का उपबंध संविधान के इस भाग में है या उस भाग में है, उस अधिकार में कोई अंतर नहीं पड़ता। अनुच्छेद 274ख, 274ग और 274घ में व्यापार-स्वातंत्र्य के आवश्यक अपवाद तथा सीमायें हैं। एक और भी बात है जो आप इस संबंध में देख सकते हैं। अनुच्छेद 274ग से व्यापार-स्वातंत्र्य के अधिकार का क्षेत्र कम होने या निर्बंधित होने की बजाय बढ़ जाता है।

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

उसमें लिखा है:

"Notwithstanding anything contained in article 274B of the Constitution, neither Parliament nor the Legislature of a State shall have the power to make any law giving or authorising the giving of preference to one State over another or making any discrimination or authorising the making of any discrimination..."

इस उपबंध में राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार की शक्तियों को निर्बंधित किया गया है जिससे मूलाधिकार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। यदि आप व्यापार-स्वातंत्र्य को संविधान के अर्थ में मूलाधिकार कहना चाहें।

चाहे कोई उपबंध विशेष को मूलाधिकार कहें या नहीं, मेरे मित्र पं. भार्गव ने न्याय्यता के विषय में जो आपत्ति उठाई है वह न्याय्यता भी इस बात पर निर्भर नहीं है कि कोई उपबंध मूलाधिकारों में है या संविधान में कहीं अन्यत्र है। जहां तक उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार का संबंध है, उस संविधान के निर्वचन के विषय में पूर्ण क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय से प्रत्येक मामले में यह विनिश्चय करने के लिये कहा जा सकता है कि कोई विधि विशेष संविधान से संगत है या नहीं है।

अत: मेरा निवेदन है कि किसी अनुच्छेद के मूलाधिकारों संबंधी अध्याय में होने से उसमें कोई गुण विशेष नहीं आ जाता। मेरे विचार में जब अनुच्छेद 274 सदन के समक्ष था तब मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने बताया था कि व्यापार तथा वाणिज्य संबंधी सब उपबंधों को एक ही अध्याय में रखने से क्या लाभ होंगे। इन आधारों पर मेरा निवेदन है कि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो प्रस्थापना रखी है उस पर आपत्ति में बिल्कुल कोई बल नहीं है।

***अध्यक्ष:** क्या श्री कृष्णमाचारी कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं, श्रीमान। श्री कृष्णस्वामी अय्यर ने सब बातों का उत्तर दे दिया है।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं इस पर मत लेता हूं, अर्थात संशोधन सं. 393 पर मत लेता हूं जो अनुच्छेद 16 को हटाने के विषय में है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 16 को हटा दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 16 संविधान से हटा दिया गया।

अनुच्छेद 27

***अध्यक्षः** फिर हम संशोधन सं. 417 को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं संशोधन सं. 394 और 417 को साथ पेश करना चाहता हूं क्योंकि वे दोनों अनुच्छेद 27 के विषय में हैं। मैं सबसे पहले सं. 394 को पेश करूंगा।

"कि अनुच्छेद 27 के खंड (क) में, 'अनुच्छेद 16' ये शब्द तथा अंक हटा दिये जायें।"

सदन ने अनुच्छेद 16 को हटाने का जो संशोधन 393 अभी स्वीकार किया है, उसी के परिणामस्वरूप यह संशोधन है।

***अध्यक्षः** हम इसे अभी निबटा देते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** हां, श्रीमान।

***अध्यक्षः** अभी-अभी जो विनिश्चय किया गया है, उसी के परिणामस्वरूप यह संशोधन है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 27 के खंड (क) में, 'अनुच्छेद 16' ये शब्द तथा अंक हटा दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं अपना संशोधन सं. 417 पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 27 के परन्तुक में, 'subject to the terms thereof' इन शब्दों के पश्चात्, 'and to any adaptations and modifications that may be made therein under article 307 of this Constitution' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

श्रीमान, यह अनुच्छेद 307(2) की भाषा के कारण आवश्यक हो गया है, जिसे हम पारित कर चुके हैं, जिसमें हमने राष्ट्रपति को अधिकार दिया है कि वह विद्यमान विधियों को ऐसे अनुकूलित तथा परिवर्तित कर सकता है कि वे इस संविधान के उपबंधों से तथा मूलाधिकारों से संगत बन जायें।

***अध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन नहीं है। क्या कोई इस पर कुछ कहना चाहता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** संशोधनों के लिये बिल्कुल समय ही नहीं है।

***अध्यक्ष:** यह तो 15 तारीख से चल रहा है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** नहीं, हमें यह आज सवेरे ही मिला है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** नौ बजे।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में यह तो लगभग पहले संशोधनों के परिणामस्वरूप ही है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** इस संशोधन के प्रभाव की थाह पाना असम्भव है जब तक कि किसी में डॉ. अम्बेडकर जैसी प्रतिभा न हो।

***अध्यक्ष:** मैं इस पर मत ले लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 27 के परन्तुक में, 'subject to the terms thereof' इन शब्दों के पश्चात्, 'and to any adaptations and modifications that may be made therein under article 307 of this Constitution' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 42

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 42 के खंड (1) में, 'may be exercised by him' इन शब्दों के स्थान पर 'shall be exercised by him either directly or through officers subordinate to him' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान, इस संशोधन के पश्चात् अनुच्छेद 42 का खंड (1) इस प्रकार बन जायेगा:

"The executive power of the Union shall be vested in the President and shall be exercised by him either directly or through officers subordinate to him in accordance with the Constitution and the law."

श्रीमान, यह आवश्यक प्रतीत हुआ है और इससे कोई गम्भीर परिवर्तन नहीं होता। यह काफी....

***माननीय श्री के. सन्तानम:** श्रीमान, क्या इसका यह अर्थ है कि विधान-मंडल द्वारा पारित विधेयक पर राष्ट्रपति के अधीनस्थ कोई अधिकारी हस्ताक्षर कर सकता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** खंड में लिखा है "in accordance with the Constitution and the law"। यदि संविधान और विधि से यह अनुमति हो कि विधेयकों का कोई और भी, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करे, प्रमाणीकरण कर सकता है तो यह भी संभव होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** संशोधन से इसकी अनुमति मिल जाती है। आप संविधान से राष्ट्रपति को यह अनुमति दे रहे हैं कि वह अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा अपने कृत्यों को करवा सकता है।

***अध्यक्ष:** यह कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों के विषय में है, विधायिनी शक्तियों के विषय में नहीं। मेरा अनुमान है कि विधेयकों पर हस्ताक्षर करना विधायिनी शक्तियों के अन्तर्गत आता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हां, यह कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों के विषय में है। मैं आपका आभारी हूं, श्रीमान।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** यदि आप और दूसरा उदाहरण चाहते हैं तो युद्ध की घोषणा का प्रश्न है क्या इसे मुख्य समादेशक कर सकता है? क्या यह शक्ति किसी को प्रदान की जा सकती है? मैं नहीं समझा कि इस संशोधन की अनुपस्थिति में कार्यपालिका का प्रमुख अपने पदाधिकारियों द्वारा कुछ कार्य करने की शक्ति से वंचित हो जायेगा। मैं इसे आवश्यक नहीं समझता। मैं नहीं समझता कि किसी अन्य संविधान में ऐसा उपबन्ध होगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 42 के प्रस्थापित खंड (1) में, जो सूची 18 के संशोधन सं. 418 में है, 'either directly or through officers subordinate to him' ये शब्द हटा दिये जायें।"

'may' शब्द को बदल कर 'shall' बनाने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह आवश्यक है और ठीक है।

***एक माननीय सदस्य:** आपके संशोधन की संख्या क्या है?

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे संशोधन की कोई संख्या नहीं है, क्योंकि मैंने इसकी सूचना आज सवेरे ही दी थी। मुझे सूची 18 कल रात ही मिली थी अत: मैं उस पर अपना संशोधन आज प्रात: ही भेज सका था।

श्रीमान, जब इस अनुच्छेद पर विचार हो रहा था तब यह स्पष्ट किया गया था कि राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका सम्बन्धी शक्ति का प्रयोग व्यक्तिगत रूप में या सीधा नहीं करेगा, किन्तु निस्संदेह इस संविधान के अनुसार ही करेगा। राष्ट्रपति तो कार्यपालिका सत्ता का प्रतीक मात्र है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह दिल्ली में बैठकर ऐसे आदेश देता रहेगा कि अमुक-अमुक को बन्दी बना लिया जाये। उसके साथ या अधीन काम करने वाले मंत्री या पदाधिकारी संविधान

[श्री एच.वी. कामत]

तथा विधि के अनुसार कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करेंगे। मैं समझ नहीं पाता कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर तथा श्री टी.टी. कृष्णमाचारी इस प्रकार का संशोधन पेश करना क्यों आवश्यक समझते हैं। यह व्यर्थ है और मेरा सदन से यह निवेदन है कि 'either' से आरम्भ होने वाले तथा 'him' पर समाप्त होने वाले शब्दों को हटा दिया जाये, जिससे कि अनुच्छेद ऐसा बन जायेगा:–

"The executive power of the Union shall be vested in the President and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and law."

हमारे प्रयोजन के लिये यही काफी है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मेरा निवेदन है कि यह संशोधन केवल जल्दबाजी में ही नहीं रखा गया है, वरन पूर्णत: प्रयोजनहीन भी है। इसे पर्याप्त विचार के बिना ही पेश कर दिया गया है। मैं सदन का ध्यान अनुच्छेद 130 (1) की ओर आकृष्ट करूंगा जहां राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित की गई है और वह उसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकता है। इसका अर्थ स्पष्टत: यही है कि वह उस शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुसार, अर्थात् अभिकर्ताओं की सहायता से कर सकता है। वास्तव में सरकारों के बहुत से विभाग इसी प्रयोजन के लिये होते हैं जैसे न्यायालय, पुलिस, जेल आदि हैं। क्या यह मान लिया जाये कि यदि हम यह स्पष्ट नहीं करेंगे कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का अभिकर्ताओं के द्वारा प्रयोग करेगा, तो उसे स्वयं व्यक्तिगत रूप से ही पहल करनी होगी? ऐसा मानना बेहूदगी बात होगी। सब बातों को स्पष्ट करने का प्रयत्न तो विस्तार की बातें कहने में अत्युक्ति करना है। मेरा निवेदन है कि जब हम राज्यपालों या राष्ट्रपति को शक्ति देते हैं तो हम उसके नाम से उसकी कार्यपालिका को काम करने देते हैं। इससे सिद्ध होता है कि राष्ट्रपति तथा राज्यपाल केवल वैधानिक सत्ताएं हैं तथा भूषणात्मक प्रतीक हैं। सब काम राष्ट्रपति के नाम से किये जाते हैं। अनुच्छेद 42 (1) का यही आशय है कि कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुसार किया जा सकता है। यही स्पष्ट आशय है। फिर 'may' शब्द के स्थान पर 'shall' रखने का क्या उद्देश्य है? 'may' शब्द का प्रयोग अत्युचित है।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे विचार में 'shall' शब्द उस शक्ति के सांविधानिका प्रयोग के निर्देश से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस प्रयोजन के लिये 'may' शब्द काफी है। इस शक्ति का प्रयोग स्वेच्छा पर निर्भर है और यदि उसका प्रयोग किया जाये तो संविधान के अनुसार होना चाहिये। राष्ट्रपति उसका प्रयोग न करे यह सम्भव है, और यदि वह करेगा तो संविधान के अनुसार ही करेगा। उस प्रयोजन के लिये 'may' शब्द काफी है। आखिरी वक्त में ही इस संशोधन की त्रुटियों को ढूंढना कठिन है। मैं पूछता हूं कि मसौदा समिति कब अपना काम समाप्त करेगी जिससे कि हमें कुछ आराम और संतोष मिल सके। हम यथासंभव शीघ्र घर जाना चाहते हैं। किन्तु मसौदा

समिति हमें ऐसा नहीं करने देगी। जैसा मैं बार-बार निवेदन कर चुका हूं, उन्हें अपना निश्चय कर लेना चाहिये तथा सदन को अपने मसौदों की पूरी रूपरेखा दे देनी चाहिये और प्रतिदिन इस प्रकार के नये संशोधन पेश नहीं करने चाहिये। सदस्यों के लिये इन परिस्थितियों में काम करना बहुत कठिन है।

***अध्यक्ष:** मैं सर अलादि कृष्णस्वामी अय्यर से कहने वाला हूं कि वे स्थिति को स्पष्ट करें। किन्तु ऐसा करने से पहले मैं उनसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं जो मेरे ध्यान में आया है। इसमें लिखा है 'through officers subordinate to him'। क्या इसका यह अर्थ है कि राष्ट्रपति प्रान्तों में संघ की ओर से पदाधिकारी रखेगा, या इसका यह अर्थ है कि केवल प्रान्तीय पदाधिकारी होंगे जो राष्ट्रपति के अधीनस्थ के रूप में काम करेंगे? क्या यह विचार है कि, अमरीका के समान, दो भिन्न-भिन्न प्रकार के पदाधिकारी होंगे, एक संघ के लिये और दूसरे प्रांतों के लिये?

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर:** पूर्णत: फेडरल विषयों के लिये तो आप पूर्णत: फेडरल सरकारी अभिकरण रख सकते हैं; किन्तु समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में आप प्रांतीय अभिकरणों से काम चला सकते हैं। यदि फेडरल सरकार प्रांतीय अभिकरणों से संतुष्ट नहीं है, तो संविधान में उपबन्ध है कि फेडरल सरकार समवर्ती विषयों के लिये अपने अभिकरण रख सकती है। केवल प्रांतीय विषयों के सम्बन्ध में समस्त प्रांतीय अभिकरण को यह काम सौंप दिया गया है। वहां आप अपने अधीनस्थ अधिकारियों का प्रयोग करते हैं, चाहे वे सीधे अधीन न हों। जब प्रांतीय अभिकरण का प्रयोग किया जाये तब भी हस्तक्षेप की शक्ति है ही। जहां तक फेडरल विषयों के क्रियान्वित करने का सम्बन्ध है उसे प्रांतीय अभिकरण के प्रयोग करने का अधिकार होगा।

जो व्यापक प्रश्न उठाया गया है उसके विषय में मैं बाद में कुछ कहना चाहता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं उस संशोधन का विरोध करने खड़ा हुआ हूं जो मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया है। मेरा मत यह है कि यह संशोधन केवल अविचारपूर्ण ही नहीं है जैसा कि मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने इसे बताया है, वह भयानक भी है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्ति उसके हाथों में होनी चाहिये और केवल उसी के हाथों में होनी चाहिये, उसे संविधान के अंतर्गत विशेष कृत्य करने होंगे; उसे विशेष शक्तियों का प्रयोग करना होगा। मेरे मित्र, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की इस बात से मैं सहमत नहीं हूं कि राष्ट्रपति केवल आभूषणात्मक प्रधान है। यदि वह ऐसा ही होता तो मुझे श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संधोधन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती, किन्तु मैं तो संविधान का यह अर्थ समझता हूं कि राष्ट्रपति को बहुत महान शक्तियां प्राप्त हैं। अत: मेरा यह ख्याल है, श्रीमान, कि यह जोखम की बात है—मेरे विचार में केवल अविचारपूर्ण ही नहीं है—कि राष्ट्रपति को यह अधिकार दे दिया जाये कि वह अपनी शक्तियों को, जो उसे संविधान के अधीन प्राप्त हैं, कार्यपालिका पदाधिकारियों के हाथों में सौंप दे।

***पं. ठाकुर दास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, इस संशोधन के विषय में, मेरा समाधान नहीं हुआ है कि यह संशोधन आवश्यक है। वास्तव में जब हम अनुच्छेद 42 के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियों के प्रयोग की तथा 'may be exercised by him' इन शब्दों के प्रयोग की बात करते हैं तो हम यह समझते हैं कि इन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति लगभग अव्यक्तिगत प्रणाली से करेगा। जहां तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का सम्बन्ध है, उसका प्रयोग राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रधान मंत्री या कई अन्य अधिकारी करेंगे। यह बात नहीं है कि राष्ट्रपति उनका प्रयोग व्यक्तिगत तौर पर करेगा। कई नियम तथा विनियम हैं जिनसे कई अधिकारियों को संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। यदि ये शब्द रहेंगे तो यह तर्क उठ खड़ा होगा कि शक्तियों का प्रयोग या तो वह स्वयं करे या उसके अधीनस्थ अधिकारी ही करें। जब वे अधिकारी इन शक्तियों का प्रयोग करते हैं तो कई बार राष्ट्रपति को पता भी नहीं होता कि वे शक्तियां उसके नाम में प्रयुक्त हो रही हैं। अतः मेरा निवेदन है कि 'by him' इन शब्दों का अर्थ यह है कि या तो राष्ट्रपति उनका प्रयोग कर सकता है या उन शक्तियों को प्रदान कर सकता है।

दूसरा यह प्रश्न उठ सकता है कि उसके द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग वे ही लोग कर सकते हैं जिन्हें वे दी गई हैं, क्योंकि एक सिद्धान्त है कि प्रदत्त शक्तियों को आगे प्रदान नहीं किया जा सकता। इससे और भी बहुत-सी कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी यदि हम यह मान लें कि उसके द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग या तो व्यक्तिगत है या उसके अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा है। अतएव मेरा निवेदन है कि जो शब्द रखे गये हैं वे बहुत काफी हैं और उनसे कोई अस्पष्टता उत्पन्न नहीं होती है। इसके अतिरिक्त, श्रीमान, मैं यह भी नहीं मानता कि 'shall' शब्द का प्रयोग आवश्यक है। विशेष प्रसंग में इस 'may' शब्द का अर्थ भी 'shall' ही होता है।

जहां तक श्री कामत द्वारा उठाये गये प्रश्न का सम्बन्ध है कि शक्तियों का प्रयोग संविधान और विधि के अनुसार होगा, 'may' शब्द का सम्बन्ध किसी प्रकार भी 'in accordance with the Constitution and the law' इन शब्दों से नहीं है। मेरा निवेदन है कि हम जो स्वीकार कर चुके हैं वे काफी हैं और उनसे सब आवश्यक योजन पूरे हो जाते हैं और कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, प्रश्न यह है कि यदि यह संशोधन किया जायेगा तो हानि होगी? यदि मैं उस दृष्टिकोण से उसे देखूं तो मेरे विचार में यह संशोधन केवल व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक भी है। वास्तव में किसी ने अभी तक यह नहीं सोचा कि यह अनुच्छेद 42 अपूर्ण है। इसमें लिखा है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह उसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकता है। अब संशोधन में लिखा है कि इस शक्ति का प्रयोग वह स्वयं करेगा या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा। क्या यह आवश्यक है? क्या संविधान और विधि में यह नहीं लिखा कि राष्ट्रपति को जो पदाधिकारी दिये जायेंगे उनका प्रयोग वह अपने प्रयोजन के लिये करेगा? वास्तव में खंड में लिखा है: "in accordance with the Constitution and law" क्योंकि

संविधान तथा विधि में उल्लिखित है कि राष्ट्रपति किस प्रकार अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वयमेव या पदाधिकारियों के द्वारा करेगा, अत: मेरे विचार में ये शब्द नितान्त अनावश्यक हैं। मैं नहीं समझता कि कोई संशोधन आवश्यक है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी अयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मुझे उस आपत्ति को समझने में, जो इस संशोधन पर उठाई गई है, कुछ कठिनाई अनुभव होती है। अनुच्छेद 42 में लिखा है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी। हमें सबको पता है कि राष्ट्रपति को बहुत-सी शक्तियां दी गई हैं किन्तु वास्तव में वह उनका प्रयोग नहीं करता। वह उनका प्रयोग केवल उनके आदेश पर करता है जो विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह पहली बात है जो, मैं चाहता हूं, सदन को समझ लेनी चाहिये।

दूसरी बात यह है कि संविधान में ही लिखा है कि कार्यपालिका कार्यवाही, जो वास्तव में कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग ही है, वास्तव में राष्ट्रपति द्वारा सीधी नहीं की जा सकती। अनुच्छेद 64 (1) को देखिये, उसमें लिखा है:

" 'All executive action of the Government of India shall be expressed to be taken in the name of the President.'

[भारत-सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम से की हुई कही जायेगी।]"

अतएव वस्तुस्थिति से यह अपेक्षित है कि असंख्य मामलों में संविधान या विधि से राष्ट्रपति को शक्ति प्राप्त होती है, किन्तु उसका वास्तविक प्रयोग अन्य लोगों पर छोड़ दिया जाता है जो उसके प्रति उत्तरदायी समझे जाते हैं। निस्संदेह, वह इन अधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाही का उत्तरदायित्व लेता है। कार्यरूप में प्रशासन के दृष्टिकोण से यह असम्भव है कि राष्ट्रपति उन सब शक्तियों का प्रयोग कर सके जो संविधान द्वारा उसमें निहित हैं। उदाहरण के लिये उन शक्तियों को ही लीजिये जो विधान के विषय में उसके कृत्यों के प्रयोग के सम्बन्ध में हैं। कई मामलों में, उदाहरण के लिये सभा को आहूत करने तथा उसका विघटन करने के विषय में वह कार्यवाही करता है किन्तु उन शक्तियों का प्रयोग वह अपने सांविधानिक परामर्शदाताओं की मंत्रणा पर करता है। और साधारणत: वह उन सब शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता जो उसमें निहित हैं। इस पर क्या आपत्ति है कि वह अपने अधीनस्थ अधिकारियों से, जो उसके प्रति उत्तरदायी हैं, ऐसी शक्तियों के प्रयोग के लिये कह दे? क्योंकि उसके लिये उन आदेशों के जारी होने से पहले उन्हें देखना भी नितांत अनावश्यक है, अत: हमें उसे अधिकार देना चाहिये कि वह ऐसे अधिकारियों को चुन ले जिन पर उसे विश्वास है और जिन्हें इस शक्ति का प्रयोग करने का काम सौंपा जा सकता हो।

निस्संदेह मैंने इस आपत्ति पर विचार किया है; विधान-मंडल द्वारा पारित होने के पश्चात् विधेयकों पर अपनी अनुमति देने के विषय में वह क्या करेगा? साधारणत: हम राष्ट्रपति से आशा करते हैं कि वह अपनी अनुमति के प्रतीकस्वरूप, अपनी

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी अयंगर]

अनुमति अभिव्यक्त करने के लिये उन विधेयकों पर हस्ताक्षर करे। स्वभावतः ऐसे मामले में वह साधारणतः पदाधिकारियों से नहीं कहेगा कि वे उसकी ओर से हस्ताक्षर करें; किन्तु यदि यह मान लिया जाये कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जायें जब कि वह उस प्रकार की अनुमति पर अपने हस्ताक्षर न कर सके, तो उसके लिये यह कहना भी आवश्यक हो सकता है कि उसके नाम में अनुमति पर कोई अन्य व्यक्ति हस्ताक्षर कर दे। मैं नहीं समझता कि इसमें कोई ऐसी बात है जो वैधानिक रूप में अनुचित हो, या सांविधानिक रूप में भी अनुचित हो, कि कोई अन्य व्यक्ति विधान-मण्डल द्वारा पारित विधेयक पर अनुमति सूचक हस्ताक्षर कर दे, जबकि राष्ट्रपति ऐसा करने में असमर्थ हो या वह समझता हो कि विशेष परिस्थितियों में अन्य लोग उसकी ओर से हस्ताक्षर कर सकते हैं। मेरे विचार में उन कठिनाइयों को दूर करने के लिये, जो वास्तव में पैदा होंगी, इन शब्दों को जोड़ना आवश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मेरे मित्र श्री गोपालस्वामी अयंगर का प्रयोजन 'in accordance with the Constitution and the law' इन शब्दों से पूरा नहीं हो जाता? राष्ट्रपति अन्य व्यक्तियों को या अभिकर्ताओं को जो कुछ शक्ति प्रदान करेगा वह संविधान और विधि के अनुसार होगी।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी अयंगरः** उस स्थिति में वह जब भी किसी अधिकारी को कोई प्राधिकार देना चाहेगा, हमें संसद से विधि बनवानी पड़ेगी। किन्तु यदि संसद उसके लिये प्राधिकार दे सकती है तो संविधान ही ऐसा क्यों न कर दे?

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यरः** श्रीमान, कुछ बातों को जो मैं कहना चाहता था पहले ही मेरे मित्र श्री गोपालस्वामी अयंगर ने कह दिया है। इसमें कोई नई बात नहीं है कि वर्तमान उपबन्ध को भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 7 के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। यद्यपि श्री नजीरुद्दीन अहमद ने अपनी साहित्यक बुद्धिमत्ता से मसौदा समिति को असावधान कह कर डांटा है, पर मैं उनका ध्यान उस भाषा की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो संसदीय मसौदाकार ने भारत शासन अधिनियम की धारा 7 में प्रयोग की है। मैं धारा को पढ़ रहा हूं:

> "Subject to the provisions of this Act, the executive authority of the Federation shall be exercised on behalf of His Majesty by the Governor either directly or through officers subordinate to him....."

अतएव ऐसा स्पष्ट उपबन्ध रखने में, कि कार्यपालिका प्राधिकार का प्रयोग पदाधिकारियों के द्वारा भी किया जा सकता है, कोई नई या विचित्र बात नहीं है।

जहां तक साधारण कार्यपालिका शक्ति का सम्बन्ध है, वह राष्ट्रपति में निहित है। जहां तक कार्यपालिका प्रशासन को चलाने के उत्तरदायित्व का सम्बन्ध है वह मंत्रियों में निहित है। जहां तक शासकीय अभिकरणों से काम लेने का प्रश्न है,

वह संविधान के आधार में ही स्पष्टतः निहित है। मेरा ख्याल है कि संशोधन के बिना जो उपबन्ध है उसके अधीन भी राष्ट्रपति के लिये यह पूर्णतः सम्भव होगा कि वह कोई शासकीय अभिकरण नियुक्त कर दे, यद्यपि शासकीय अभिकरण के कार्यों का अन्तिम उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर होगा जो केबिनेट की मंत्रणा पर चलता है। वास्तव में, जब मूल अनुच्छेद की रचना की गई थी तो वह आयर के संविधान के अनुच्छेद 12 के आधार पर की गई थी। वह अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "There shall be a President..... who shall exercise and perform the powers and functions conferred on the President by this Constitution and by law."

***श्री एच.वी. कामतः** यह युक्ति तो आपके विचारों के विपरीत है।

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यरः** विद्यमान संधोधन में कहा गया है कि राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा कर सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे पास यहां आयर के संविधान की प्रति है। उसमें पदाधिकारियों का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यरः** यदि केवल आप मेरी बात सुनने की कृपा करें तो आप यह आपत्ति नहीं उठाते। मैंने कहा था कि ऐसे स्पष्ट उपबन्ध के बिना भी राष्ट्रपति को क्षमता होगी कि कोई शासकीय अभिकरण बना दे या रख ले, और ऐसे भी संविधान हैं जिनमें इसका स्पष्ट उपबन्ध नहीं है, और मैंने आयर के संविधान के अनुच्छेद 12 का निर्देश दिया था, जिससे किसी हद तक श्री कामत के दृष्टिकोण का समर्थन होता है। कुछ ऐसे भी वकील हैं जो ऐसी अवस्था में भी विरोधी पक्ष का विरोध करते हैं जबकि विरोधी पक्ष उनकी बात पर उनके पक्ष में कोई बात स्वीकार कर ले। मेरे मित्र श्री कामत का यही रुख मालूम होता है। मैंने तो यही कहा था कि यह तो केवल रचना का प्रश्न है और उपबन्ध को स्पष्ट करने का प्रश्न है। संसदीय मसौदाकार ने भारत शासन अधिनियम की धारा 7 में पदाधिकारियों को स्पष्ट निर्देश किया था। आयर के संविधान में पदाधिकारियों का कोई निर्देश नहीं है। पदाधिकारियों का कोई निर्देश न करने पर भी, राष्ट्रपति को पूर्ण क्षमता होगी कि वह कार्यपालिका के कृत्यों को पूरा करने के लिये शासकीय अभिकरणों का प्रयोग करे, यद्यपि अंततोगत्वा कार्यपालिका में निहित कृत्यों के निर्वहन के विषय में उत्तरदायित्व राष्ट्रपति तथा कार्यपालिका पर ही आयेगा, चाहे किसी विधि के अंतर्गत हो या कार्यपालिका के कृत्यों सम्बन्धी संविधान के साधारण सिद्धांतों के अंतर्गत हो।

अतएव मेरा निवेदन है कि श्रीमान, जो बात निहित है उसे स्पष्ट करने में कोई हानि नहीं है। वहां 'पदाधिकारी' शब्द का प्रयोग किया गया है। 1935 के भारत शासन अधिनियम के सम्बन्ध में आपको चाहे कोई भी आपत्ति हो, साधारणतः इस भाषा को यहां रखने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं तो और भी आगे बढ़कर यह बल देना चाहता हूं कि सांविधानिक दृष्टि से ऐसे उपबन्ध की

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

आवश्यकता है। राष्ट्रपति अपने कृत्यों को कितनी हद तक प्रदान कर सकता है इस प्रश्न पर अमरीका में वाद-विवाद हो चुका है। उदाहरण के लिये, यदि राष्ट्रपति में कोई शक्ति निहित हो तो ये प्रश्न उठ सकते हैं कि क्या यह सम्भव है कि वह अपने प्राधिकार को प्रदान कर सकता है या फिर प्रत्येक मामले में वह प्रश्न राष्ट्रपति के समक्ष पेश होना चाहिये। हमें बताया गया है कि वास्तव में राष्ट्रपति से लगभग 2,000 हस्ताक्षर प्रतिदिन करवाने पड़ेंगे तभी प्रधानात्मक पद्धति चल सकती है। अभी हाल ही में अमरीकी संविधान के विषय में प्रकाशित एक पुस्तक में बताया गया है कि राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों की बहुत से विधेयकों पर आवश्यकता होती है, जिनके विषय में उसे कुछ भी पता नहीं होता।

अतः हमें इन दो प्रश्नों को अलग-अलग करना पड़ेगा: अंतिम उत्तरदायित्व का प्रश्न और उस अभिकरण विशेष का प्रश्न जो किसी सरकारी संस्था या किसी ढांचे के काम करने में नियोजित किया जा सकता है। अतः किसी विधि में यह उपबंध किया जा सकता है कि एक अभिकरण विशेष आदेशों को क्रियान्वित करेगा। वहां भी उसका यह अर्थ नहीं है कि देश की सरकार पर उस विधिरूप अभिकरण के समुचित रूप से काम करने का उत्तरदायित्व नहीं है। चाहे वह विधिरूप अभिकरण हो या प्रशासकीय अभिकरण हो। इन सब मामलों में कार्यपालिका को कोई विशेष शासकीय अभिकरण नियोजित करने की मनाही नहीं है; 'पदाधिकारी' शब्द रख कर हमने उन सब परिकल्पनाओं को समाप्त कर दिया है जो अमरीकी संविधान में शक्ति-प्रदान करने के विषय में चल रही थीं।

यह संभव है कि यह ध्यान रखते हुए कि हमारी व्यवस्था मुख्यतः ब्रिटिश विचारों पर आधारित है, ऐसे उपबन्ध के बिना भी, शासकीय अभिकरण का नियोजन किया जा सकता है। अन्य अधिराज्य-संविधानों में इस आशय का एक साधारण उपबन्ध है कि शक्ति रानी में निहित है। आस्ट्रेलिया और कनाडा के संविधानों में भी ऐसा ही है। यह तो केवल भाषा विशेष का प्रयोग है और मुझे उस पर कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। सामान्य व्यक्ति को अमरीकी विधि या संविधान या अधिराज्यों के संविधानों के उपबन्धों के प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस देश में सामान्य जन को स्पष्ट बताने के लिये कि शासकीय अभिकरण का प्रयोग किया जा सकता है, यह उपबंध अच्छा है।

***श्री एच.वी. कामतः** एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं, श्रीमान, कि क्या मैं अपने मित्र श्री अलादि कृष्णस्वामी से पूछ सकता हूं कि क्या संसार के किसी अन्य संविधान में राज्य के कार्यपालिका प्रधान के अधीनस्थ अधिकारियों को इस प्रसंग में निर्देश किया गया है।

***अध्यक्षः** उन्होंने भारत शासन अधिनियम से एक धारा पढ़ कर सुनाई थी।

***श्री एच.वी. कामतः** भारत शासन अधिनियम किसी स्वतंत्र राज्य का संविधान नहीं है।

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यरः** इस प्रश्न का स्वतंत्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** यह मूर्खतापूर्ण उपबन्ध है।

***अध्यक्षः** मैं इस पर मत लूंगा। श्री कामत का संशोधन वास्तव में इसका निराकरण ही है।

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं श्रीमान्।

***श्री एच.वी. कामतः** बहुत अच्छा, पहले मैं आपके संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सं. 418 में, अनुच्छेद 42 के प्रस्थापित खंड (1) में, 'either directly or through officers subordinate to him' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** फिर, मैं श्री कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तावित प्रस्थापना पर मतदान लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 42 के खंड (1) में, 'may be exercised by him' इन शब्दों के स्थान पर 'shall be exercised by him directly or through officers subordinate to him' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में एक बज चुका है और हम अब स्थगित हो जायेंगे। मैं सदस्यों को बताना चाहता हूं कि हम अन्य अनुच्छेदों को, जिनकी सूचना आज की कार्यावली में दी गई है, आज मध्याह्नन्तर के साढ़े चार बजे लेंगे।

***पं. हृदय नाथ कुंजरूः** हम जब आज सत्र करने के लिए राजी हुए थे तो मेरे विचार में यही समझा गया था कि सत्र केवल प्रातःकाल ही होगा। मैं नहीं समझता कि कोई मध्याह्नान्तर सत्र के लिये तैयार था। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि दूसरा सत्र कल प्रातःकाल कर लें। आज मध्याह्नन्तर में हमें कुछ काम है जो हमने इसलिये ले लिए थे कि सामान्यतः सभा मध्याह्नन्तरों में समवेत् नहीं होती।

***अध्यक्षः** कुछ भी हो, मैं यह नहीं समझा था कि हम आज दोपहर बाद नहीं बैठेंगे। यह अनिश्चित रहने दिया गया था और हमें अब निश्चय करना है कि हम दोपहर बाद बैठेंगे या नहीं। यह देखते हुए कि कई सदस्य द्वितीय पठन को समाप्त करना चाहते हैं और उनमें से कई दीपावली के कारण चले जाना चाहते हैं, मेरे विचार में हमें आज दोपहर बाद बैठना चाहिये। यदि हम आज दोपहर बाद नहीं बैठेंगे तो संभव है कि हम कल भी समाप्त न कर सकें।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी अयंगरः** वास्तव में, श्रीमान, हमने और कई अन्य सदस्यों ने भी आज सायंकाल 5 बजे सरकारी भवन में भोज के लिये निमंत्रण स्वीकार कर लिये हैं। यदि हम 4.30 बजे आरंभ करेंगे तो मेरे विचार में हम कुछ कार्य नहीं कर सकेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उस स्थिति में हम चार बजे समवेत् हो सकते हैं।

***अध्यक्षः** सदन का अपने सदस्यों पर पहला दावा है। अतएव में आज सायंकाल के साढ़े चार बजे का समय निश्चित करता हूं। सदन सायंकाल के साढ़े चार बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सभा साढ़े चार बजे तक के लिये मध्याह्न भोजनार्थ स्थगित हुई।

सभा मध्याह्न भोजन के पश्चात् साढ़े चार बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में पुनः समवेत हुई।

अनुच्छेद 280क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 280 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:–

'280A (1) If the President is satisfied that a situation has arisen whereby the financial stability or credit of India or of any part of the territory thereof is threatened, he may be a proclamation make declaration to that effect.

Provisions as to financial emergency

(2) The provisions of clause (2) of article 275 of this Constitution shall apply in relation to a proclamation issued under clause (1) of this article as they apply in relation to a proclamation of Emergency issued under clause (1) of the said article 275.

(3) During the period any such proclamation as is mentioned in clause (1) of this article is in operation, the executive authority of the Union shall extend to the giving of directions to any State to observe such canons of financial propriety as may be specified in the directions, and to the giving of such other directions as the President may deem necessary and adequate for the purpose.

(4) Notwithstanding anything contained in this Constitution—

(a) any such direction may include—

(i) a provision requiring the reduction of salaries and allowances of all or any class of persons serving in connection with the affairs of a State;

(ii) a provision requiring all Money Bills to which the provisions of article 182 of this Constitution apply to be reserved for the consideration of the President after they are passed by the Legislature of the State;

(b) it shall be competent for the President during the period any proclamation issued under clause (1) of this article is in operation to issue directions for the reduction of salaries and allowances of all or any class of persons serving in connection with the affairs of the Union including the judges of the Supreme Court and the High Courts.

(5) Any failure to comply with any directions given under clause (3) of this article shall be deemed to be a failure to carry on the Government of the State in accordance with the provisions of this Constitution.'

[280क (1) यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिससे भारत अथवा उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में हो तो वह उद्घोषणा द्वारा उस बात की घोषणा कर सकेगा। वित्तीय आपात के बारे में उपबन्ध

(2) अनुच्छेद 275 के खंड (2) के उपबन्ध इस अनुच्छेद के अधीन निकाली गई उद्घोषणा के सम्बन्ध में वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे अनुच्छेद 275 के अधीन निकाली गई आपात की उद्घोषणा के लिये लागू होते हैं।

(3) उस कालावधि में जिसमें कि खंड (1) में वर्णित कोई उद्घोषणा प्रवर्तन में रहती है संघ की कार्यपालिका शक्ति किसी राज्य को वित्तीय औचित्य सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का पालन करने के लिये निदेश देने तक जैसे कि निदेशों में उल्लिखित हों तथा ऐसे अन्य निदेश देने तक, जिन्हें राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये देना आवश्यक और समुचित समझे, विस्तृत होगी।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(4) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

(क) ऐसे किसी निदेश के अन्तर्गत–

(1) राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किन्हीं वर्गों के वेतनों और भत्तों में कमी की अपेक्षा करने वाले उपबन्ध,

(2) धन-विधेयकों अथवा अन्य विधेयकों को, जिनको अनुच्छेद 182 के उपबन्ध लागू हैं, राज्य के विधान-मंडल के द्वारा उनके पारित किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित रहने के लिये उपबन्ध, भी हो सकेंगे,

(ख) उस कालावधि में, जिसमें कि इस अनुच्छेद के अधीन निकाली गई उद्घोषणा प्रवर्तन में हैं, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के सहित, संघ के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किसी वर्ग के वेतनों और भत्तों में कमी के लिये निदेश निकालने के लिये राष्ट्रपति सक्षम होगा।

(5) इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन दिये गये निदेशों का पालन करने में असफलता को भी इस संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य का शासन चलाने की असफलता समझा जायेगा।)"

श्रीमान, इस देश की वर्तमान आर्थिक तथा वित्तीय स्थिति को देखते हुए इस सभा में मुशकिल से ही कोई ऐसा सदस्य होगा जो ऐसे उपबन्ध की आवश्यकता पर आपत्ति करे जो इस नये अनुच्छेद 280क में रखा गया है और इसलिये इस अनुच्छेद को हमारे संविधान के मसौदे में रखने का औचित्य बताने पर मैं अधिक समय खर्च करना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि यह अनुच्छेद लगभग उसी अधिनियम के आधार पर बनाया गया है जो संयुक्त राज्य अमरीका में 1930 में या उस समय के लगभग पारित हुआ था और जिसे राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम कहते हैं जिससे राष्ट्रपति को आर्थिक तथा वित्तीय दोनों प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये ऐसे ही उपबंध बनाने की शक्ति दी गई थी, जब कि महान आर्थिक संकट के कारण अमरीकी लोगों पर वे कठिनाइयां आ पड़ीं थीं। उदाहरण के लिये, हमने संविधान में ऐसा उपबंध रखना आवश्यक क्यों समझा इसका कारण यह है कि हमें पता है कि अमरीका संविधान के अधीन उस विधान को जो पारित किया गया, थोड़े समय बाद ही उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई और उच्चतम न्यायालय ने समूचे विधान को असंविधानिक घोषित कर दिया जिसका परिणाम यह है उच्चतम न्यायालय की घोषणा के पश्चात्, राष्ट्रपति वह काम नहीं कर सकता जो वह राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम के उपबंधों के अधीन करना चाहता था। यदि हमारे राष्ट्रपति को ऐसे ही वित्तीय तथा आर्थिक आपात

का सामना करना पड़ जाये तो शायद ऐसी ही कठिनाई उसके सामने भी आ सकती है। उस कठिनाई को रोकने के ही लिये हमने सोचा कि संविधान में ही स्पष्ट उपबंध रख देना अधिक अच्छा होगा और यही कारण है कि यह अनुच्छेद पेश किया गया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (1) में, 'has arisen' इन शब्दों के स्थान पर 'is imminent' ये शब्द रख दिये जायें।"

यदि मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये तो अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

"If the President is satisfied that a situation is imminent whereby the financial stability or credit of India or of any part of the territory thereof is threatened, he may by a proclamation make a declaration to that effect."

इस संशोधन के लिये मेरी युक्ति यह है कि स्थिति उत्पन्न हो जाने के पश्चात् तो बहुत गड़बड़ हो सकती है और शायद लोगों को देश के प्रत्यय में भरोसा ही न रहे। अनुच्छेद में लिखा है कि यदि स्थिति पैदा हो गई है और अराजकता फैल चुकी है, तो लोगों को राज्य के प्रत्यय में भरोसा ही न रहेगा। मैं चाहता हूं कि 'has arisen' [पैदा हो गई है] इन शब्दों के स्थान पर 'is imminent' [पैदा होने वाली है] ये शब्द रख दिये जायें।

मेरा दूसरा संशोधन सं. 441 है जो इस प्रकार है:—

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (3) में, 'operation' शब्द के पश्चात् 'Parliament shall have power to make laws in respect of subjects contained in the State List as if they were subjects in the Concurrent List and" ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:—

'During the period any such proclamation as is mentioned in clause (1) of this article is in operation Parliament shall have power to make laws in respect of subjects contained in the State List as if they were subjects in the Concurrent List, and the executive authority of the Union shall extend to the giving of directions to any State to observe such canons of financial propriety as may be

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

specified in the directions, and to the giving of such other directions as the President may deem necessary and adequate for the purpose."

श्रीमान, मेरे इन संशोधनों का उद्देश्य केवल यही है कि अनुच्छेद में जो दो त्रुटियां हैं उन्हें दूर किया जाये। यद्यपि यह अनुच्छेद असाधारण है और इसमें वित्तीय आपात का उपबन्ध है, हमारे देश की वर्तमान स्थिति में, मेरे विचार में यह शक्ति कार्यपालिका के हाथ में होनी चाहिये। मैंने केवल इसकी तुलना अनुच्छेद 275 से करने का प्रयत्न किया है। मैं तो यह चाहता था: कि सर्वप्रथम, खंड (1) में 'has arisen' इन शब्दों के स्थान पर 'is imminent' ये शब्द रख देने चाहिये जिससे कि हम स्थिति गम्भीर होने से पूर्व ही उपाय कर सकें। अतएव ज्यों ही वित्तीय आपात पैदा होने वाला हो, हम आवश्यक उपाय कर सकते हैं, यदि 'has arisen' के स्थान पर 'is imminent' ये शब्द रख दिये जायें।

फिर राष्ट्रपति को शक्ति होनी चाहिये कि वह सब राज्य-विषयों को समवर्ती सूची के विषय मान कर उनके संबंध में विधान बना सके। यह सर्वथा संभव है कि राज्य को अपने किसी विधान से बाध्य होकर, अपनी ही विधियों से बाध्य होकर किसी विशेष प्रकार से कार्य करना पड़े और उन्हें राष्ट्रपति के निर्देशों का पालन करने का वैधानिक प्राधिकार प्राप्त न हो। मैं यह चाहता हूं कि संसद को राज्यों की उन विधियों में परिवर्तन करने की शक्ति होनी चाहिये और इसलिये मैं चाहता हूं कि उस कालावधि में संसद को सूची 2 के विषयों पर विधियां बनाने की शक्ति होगी, मानो कि वे विषय समवर्ती सूची में थे, ताकि आपात का सामना करने के लिये आवश्यक वित्तीय उपाय किये जा सकें। मेरे विचार में, यदि यह नहीं किया जायेगा तो केवल एक आदेश मात्र से राष्ट्रपति को क्षमता नहीं हो जायेगी कि वह आदेश पारित कर सके या उनका पालन करवा सके क्योंकि संभवत: वे राज्यों की विधियों के अनुकूल न हों और राष्ट्रपति के लिये उन विधियों को बदलना संभव न हो। इसके अतिरिक्त शायद वे प्रांत भी उन पर सहमत न हों। अत: मैं तो यही चाहता हूं कि संसद को ये शक्ति मिल जानी चाहिये कि उन मामलों में संसद विधि बना सकती है।

मेरे विचार में श्रीमान, यह संशोधन आवश्यक है। हम यह शक्ति चाहते हैं। क्या मैं यह भी कह सकता हूं कि इस अनुच्छेद से विधान मंडलों की भी कोई शक्तियां नहीं छिनतीं और मेरे विचार में राज्य के हितों के लिये यह आवश्यक है, विशेषत: जब हम वित्तीय कठिनाई में हों।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, क्या मैं संशोधन सं. 438 में एक मौखिक परिवर्तन करने के लिये आपकी अनुमति मांग सकता हूं? मैं 'chaos' के स्थान पर 'breakdown' शब्द का प्रयोग करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** हां। (*बाधा*)।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे 'chaos' के स्थान पर 'breakdown' शब्द रखने के लिये अध्यक्ष महोदय की अनुमति मिल गई है। श्रीमान, मैं सूची सं. 19 के संशोधन सं. 438, 442 और 444 को पेश करता हूं। संशोधन सं. 438 यह है:

"कि प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (1) में, 'whereby the financial stability or credit of India or of any part of the territory thereof is threatened' इन शब्दों के स्थान पर 'which threatens India or any part thereof with financial breakdown or economic disaster' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन सं. 442 यह है:

"कि उसी सूची के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क का खंड (4) हटा दिया जाये।"

संशोधन सं. 444 यह है:

"कि उसी सूची के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क का खंड (5) हटा दिया जाये।"

इस नये अनुच्छेद 280क से संघ के राष्ट्रपति को काफी आपात-शक्तियां दी गई हैं, जो उन शक्तियों से अधिक हैं जो उसे संविधान के द्वारा अनुच्छेद 275, 276 तथा 280 तक के अनुच्छेदों से प्राप्त हुई है। इस अनुच्छेद में ऐसी आकस्मिकता या स्थिति की कल्पना की गई है जहां भारत का या उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय खतरे में हो। मैं अनुभव करता हूं कि यह आकस्मिकता या भारत के अथवा उसके किसी भाग के वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय को खतरा आपात की उद्घोषणा के लिये पर्याप्त आधार नहीं माना जाना चाहिये। आपात की घोषणा का औचित्य तो तभी हो सकता है जब कि अधिक गम्भीर परिस्थितियां हों, अर्थात् जब वित्तीय गतिरोध का या आर्थिक व्यवस्था के ठप्प होने का खतरा हो। यह तो बहुत ज्यादती है कि राष्ट्रपति को भारत के या उसके किसी प्रांत या राज्य के वित्तीय स्थायित्व को खतरा होने की स्थिति में ऐसी विस्तृत शक्तियां दे दी जायें।

आज प्रात:काल, आपने ठीक ही कहा था, श्रीमान, कि कई प्रांतों ने आय कर की आय के गलत वितरण के विषय में शिकायत की है या कर रहे हैं, और कि उनके राजस्वों का आज सवेरे नया अपहरण किया गया था, जब कि इस सदन ने विक्रय-कर का अनुच्छेद स्वीकार किया था, कुछ माननीय सदस्यों का यही ख्याल था। मद्रास जैसे कुछ प्रांतों में, और अंशत: मध्य प्रदेश में भी, मद्य-निषेध आरंभ कर दिया गया है। उससे प्रांतों के राजस्वों में कमी हो गई है, और उन्हें मद्य-निषेध के लिये कर्मिवृंद आदि रख कर अतिरिक्त खर्च भी करना पड़ा है।

[श्री एच.वी. कामत]

मान लीजिये इन परिस्थितियों में भविष्य में स्थिति खराब हो जाती है। विश्व की आर्थिक स्थिति खराब हो सकती है, बिगड़ सकती है। हम यथासंभव प्रयत्न करेंगे कि हमारी आर्थिक स्थिति सुधरे किन्तु संसार भर में अवमूल्यन हुए हैं तथा हमारे अपने रुपये का भी अवमूल्यन हो चुका है, अत: कोई भी ज्योतिषी बन कर नहीं कह सकता कि निकट भविष्य में हमारी स्थिति सुधर जायेगी। मान लीजिये कि बुरी से बुरी बात हो जाती है, आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जाती है, और प्रांत, मद्यनिषेध के कारण आय कम हो जाने से और अन्य अतिरिक्त कारणों से, अपनी रचनात्मक योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकते हैं, और मान लीजिये कि वे अपना खर्च भी नहीं चला पाते, और उनके आय-व्ययक घाटे में चलते हैं, कल्पना कीजिये, यह असंभावित नहीं है—घाटे के आय-व्ययकों की शृंखला—अधिक घाटा न सही—प्रतिवर्ष थोड़ा ही घाटा सही—राष्ट्रपति ऐसी स्थिति का मतलब यह लगा सकता है कि प्रांत या राज्य विशेष का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय खतरे में है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या राष्ट्रपति के लिये यह पर्याप्त आधार होगा कि वह सब शक्तियां अपने हाथ में ले लें, जो वह आपात की उद्घोषणा करते ही ले सकता है? मैं कहता हूं, श्रीमान, कि यदि हम वास्तव में प्रांतीय स्वायत्तता की योजना को क्रियान्वित करना चाहते हैं तो हमारे एककों के साथ यह व्यवहार नहीं करना चाहिये। निस्संदेह आप ध्यान रखिये कि वित्तीय रूप में, या आर्थिक रूप में हमारी अच्छी स्थिति रहे। किन्तु प्रशासन अपनी योजनाओं को सफल नहीं बना सकते, और नफे के आय-व्ययक तैयार नहीं कर सकते, इन छोटे-छोटे बहानों को लेकर आपात की उद्घोषणा कर देना और उसके फलस्वरूप सब शक्तियों को अपने हाथ में ले लेना राष्ट्रपति के लिये बुद्धिमानी नहीं होगी—मैं अधिक कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करूंगा।

मैं मानता हूं, मैं स्पष्टत: स्वीकार करता हूं कि यह उपाय उस समय अपनाना चाहिये जब वित्तीय व्यवस्था ठप्प ही हो जाये—निस्संदेह वह अधिक खराब स्थिति है, वह आर्थिक अस्थायित्व से कहीं अधिक भयानक स्थिति है। आर्थिक स्थायित्व का अर्थ कोई कुछ भी नहीं समझ सकता या कुछ भी समझ सकता है। यदि वित्त-व्यवस्था के ठप्प हो जाने की या आर्थिक सत्यानाश की आशंका हो, तो निस्संदेह मैं मान सकता हूं कि राष्ट्रपति को कुछ आपात-शक्तियां दे दी जायें, किन्तु अन्यथा नहीं; किसी प्रांत के आर्थिक स्थायित्व या वित्तीय स्थायित्व के संकट में होने मात्र से ऐसा नहीं होना चाहिये। सदन से मेरा निवेदन है कि यदि व्यवस्था के ठप्प हो जाने का या सत्यानाश का ही खतरा हो तब ही राष्ट्रपति को आपातिक शक्तियां देनी चाहियें।

मुझे भय है, कि आज सदन में उपस्थिति कम है अत: संभव है कि हम इस अनुच्छेद को पूरी तरह विचार किये बिना तथा ध्यान दिये बिना ही पारित कर देंगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि दीपावली इतनी निकट है। माननीय सदस्य दीवाली पर अपने घरों को प्रकाशित करने के लिये अधिक आतुर हैं, जितने कि वे उस अंधकार को प्रकाशित करने के लिये नहीं हैं जो अंतिम दिनों में इस सदन में छा गया प्रतीत होता है। मुझे आशा है कि उपस्थिति कम होने के बावजूद भी जो सदस्य यहां उपस्थित हैं वे इस मामले पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे कि क्या

राष्ट्रपति को ऐसी शक्तियां प्रदान करना आवश्यक है जब कि वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय केवल संकट में हो।

अब मैं संशोधन 442 और 444 को लेता हूं जिसका उद्देश्य खंड 4(क) को हटाना है—यह 4 (क) होना चाहिये; यहां अशुद्ध छप गया है; मैंने संशोधन सं. 442 भेजा था जिसमें प्रस्थापित नये खण्ड के खंड 4(क) का निर्देश था, समूचे खंड (4) का नहीं—और प्रस्थापित नये अनुच्छेद के खंड 5 का निर्देश था। सदन देखेगा कि राष्ट्रपति को आपात की उद्घोषणा होने पर, इन परिस्थितियों में, काफी शक्तियां मिल जाती हैं। खंड (3) के अंतिम भाग में लिखा है कि "and to the giving of such other directions as the President may deem necessary and adequate for the purpose." इस उपबंध से उसे शक्ति मिल जाती है कि वह जो चाहे कर सकता है जब तक कि वह आदेश पर यह लिखता रहे "मेरा समाधान हो गया है कि यह इस प्रयोजन के लिये आवश्यक और समुचित है।" वह जो चाहे कर सकता है और कोई भी न्यायालय में या संसार में अन्यत्र कहीं भी जाकर उसके अधिनियमों या आज्ञप्तियों या अध्यादेशों पर आपत्ति नहीं कर सकता। इस बात को देखते हुए मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह है कि इस अनुच्छेद में खंड 4(क) को रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि खंड 4(क) में वेतनों और भत्तों की कमी का विषय है तथा धन-विधेयकों के विषय में कुछ उपबन्ध हैं जो कि ऐसे मामले हैं जो खंड (3) के दूसरे भाग में समाविष्ट उपबंध के क्षेत्र में आ सकते हैं अतः इसे आसानी से हटाया जा सकता है और इससे खंड (क) के आशय में कोई फर्क नहीं जायेगा तथा उनमें से कोई भी शक्तियां कम नहीं होंगी जो इस खंड द्वारा राष्ट्रपति को वित्तीय आपात में मिलती हैं।

खंड (5) तो केवल आनुषंगिक उपबंध है। इसे यहां क्यों रखा गया है, मैं नहीं समझ पाता; मुझे इस खंड के लिये कोई कारण नहीं दिखाई देता। यदि सदन अनुच्छेद 277क तथा 278 को देखेगा जो इस सदन ने कुछ मास पूर्व स्वीकार किया था, तो मेरे माननीय साथी देखेंगे कि इस आकस्मिकता की, कि राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, स्पष्टतः अनुच्छेद 277 क तथा 278 में कल्पना कर ली गई थी। अब, श्रीमान, राज्य के राज्यपाल को यह निश्चय करना होगा कि राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाया जा सकता है या नहीं, और राज्यपाल को प्रतिवेदन देना होगा। 278 के पहले खंड में लिखा है:—

> " 'If the President, on receipt of a proclamation issued by the Governor of a State under article 188 of this Constitution, is satisfied that a situation has arisen in which the government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constitution, he may by proclamation etc. etc.'
>
> [यदि इस संविधान के अनुच्छेद 188 के अन्तर्गत राज्य के राज्यपाल द्वारा की गई उद्घोषणा के प्राप्त होने पर राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तो वह उद्घोषणा द्वारा..... आदि]"

[श्री एच.वी. कामत]

यह बहुत स्पष्ट है। इस नये अनुच्छेद 280क के अधीन राष्ट्रपति द्वारा निर्देश जारी करने के पश्चात् जब कि उसे भारत में या उसके किसी भाग में वित्तीय आपात का ख्याल हो, तब इस खंड (5) की क्या अपेक्षा है? राज्यपाल घटनास्थल पर है ही और यदि वह ईमानदार तथा सावधान राज्यपाल है तो वह राष्ट्रपति को समय-समय पर सूचना दे सकता है, देगा ही, वह सूचना देने के लिये बाध्य है कि इन निदेशों को कैसे कार्यान्वित किया जा रहा है। हम यहां पूर्णतया अनावश्यक शब्दजाल को रख रहे हैं उससे क्या लाभ है—मैं अधिक कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहता? हमने कई अनुच्छेद स्वीकार किये हैं जहां हमने आपात की शक्तियों का उपबंध किया है, और यदि राज्यपाल अनुभव करता है या उसका समाधान हो जाता है कि राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो वह राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे देगा। हम यह क्यों कहें 'निदेशों का पालन करने में असफलता आदि'? इसका निर्णय कौन करेगा? खंड (5) में निर्देशित मामला मुख्यतः यही है। इसका निर्णय कौन करेगा–राष्ट्रपति या राज्यपाल या कोई अन्य प्राधिकारी? इसे स्पष्ट करिये, इसे अस्पष्ट मत छोड़िये। यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि यह असफलता है, तो इसे स्पष्ट कीजिये कि यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि यह असफलता है, तो इसका अर्थ यह है कि राज्य सरकार असफल रही है। अन्यथा यह कहिये कि राज्य का राज्यपाल असफलता या अन्यथा स्थिति के विषय में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा।

किन्तु खंड (5) सर्वप्रथम तो अनावश्यक, व्यर्थ है और दूसरी बात, यह अत्यन्त अस्पष्ट है। यह कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है कि कौन प्राधिकारी या व्यक्ति यह निश्चय करेगा कि असफलता हुई है या नहीं और इसे इतना अस्पष्ट छोड़ना भयानक है। इसे इतना स्पष्ट कीजिये कि संदेह का नाम भी न रहे कि राष्ट्रपति ही यह निर्णय करेगा कि असफलता हुई है या नहीं। यदि इसे अस्पष्ट रहने दिया जायेगा तो इससे हमारी ही बुद्धिमानी पर आक्षेप होगा। मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर की विद्वत्ता, सद्भावना तथा विवेकशीलता से इतनी पूरी तरह भिन्न नहीं है कि वे मेरी बात के औचित्य को न समझ सकें। मैं मानता हूं कि वे विद्धान हैं, किन्तु मुझे आशा है कि उनकी विद्वत्ता मानवीय विवेकशीलता के अन्य अंगों से पूरी तरह भिन्न नहीं है; और मैं आशा करता हूं कि वे मेरे प्रस्तावित संशोधनों पर काफी ध्यान देंगे। मैं उन्हें सदन के विचार के लिये अपने पूरे दिल से पेश करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन सं. 439, 440 तथा 443 को पेश करता हूं। वे ये हैं:

> "कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (1) में, 'threatened' शब्द के पश्चात् 'or is likely to be threatened' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280 के खंड (2) के स्थान पर, निम्न रख दिया जाये:—

'(2) The proclamation issued under clause (1) of this article shall continue till such time it is revoked by the President.

[इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा उस समय तक जारी रहेगी जब तक कि राष्ट्रपति उसे समाप्त न कर दें।]"

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (4) के उप-खंड (क) की कंडिका (2) के स्थान पर, निम्न रख दी जाये:–

'(ii) a provision requiring all Bills to be reserved for the consideration of the President after they are passed by the Legislature of the State;' "

मैंने जो संशोधन पेश किये हैं, उनके विषय में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। श्रीमान, मेरा यह मत है कि जब वित्तीय आपात का काल हो जब प्रान्तीय स्वायत्तता का पूर्णत: निलम्बन हो जाना चाहिये। इस विषय में कोई हिचक नहीं होनी चाहिये। मेरा यह मत है कि आपातकाल तब तक रहना चाहिये जब तक कि राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे आवश्यक समझे। उद्घोषणा तब तक रहनी चाहिये जब तक कि आपात रहे। संसद के पास जाकर उससे यह पूछना व्यर्थ है कि कालावधि को बढ़ाया जाये या नहीं। राष्ट्रपति और केवल राष्ट्रपति ही यह सबसे अच्छी तरह निर्णय कर सकता है कि आपात समाप्त हुआ है या नहीं। राष्ट्रपति पर अविश्वास मत कीजिये—वह राज्य का प्रथम नागरिक है। वह संसद के किसी सदस्य से अधिक सच्चे अर्थ में भारत की जनता का प्रतिनिधि है। वह केन्द्र तथा प्रान्तों के विधान-मंडलों के प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाता है। वह किसी एक निर्वाचन क्षेत्र से नहीं चुना जाता। अत: यह उचित ही है कि शक्ति केवल राष्ट्रपति के हाथों में होनी चाहिये।

मेरा यह ख्याल है कि हमारे ऐसा करने से किसी सांविधानिक अभिसमय का उल्लंघन नहीं होगा। क्योंकि संघानीय संविधान का आशय ही शक्तियों का पार्थक्य ही तो है। नये संविधान में हमारी संसद सम्पूर्ण-प्रभुत्व संपन्न निकाय नहीं होगी। मैं अमरीकी राष्ट्रपति का उदाहरण देता हूं। उसको बहुत-सी शक्तियां प्राप्त हैं। कोई यह नहीं कह सकता कि वह तानाशाह है या स्वेच्छाचारी है या कि उसे शक्तियां देने से संघवाद के किसी सिद्धान्त का अतिक्रमण हो गया है। अतएव मेरे ख्याल में उसके हाथों में शक्ति होनी चाहिये कि वह किसी परिस्थिति को, जो भविष्य में वित्तीय अस्थायित्व या गतिरोध के कारण उत्पन्न हो जाये, संभाल सके।

हमने कुछ वर्ष पूर्व ही अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है। क्या यह ठीक या उचित है कि हम अपने किसी नये विचार या कल्पना की वेदी पर अपनी स्वतन्त्रता

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

को बलिदान कर दें? हमारा राज्य ऐसे समय पर स्वतंत्र हुआ है जब कि राजनैतिक आकाश चिन्ता से भरा है। केवल इस देश की ही नहीं संसार के सब भागों की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति सर्वनाश के निकट है।

अतएव हमारे संविधान में इन बातों का ध्यान रखना होगा।

श्रीमान, एक और बात है जिसका मन में ध्यान रखना चाहिये। संसदीय शासन की यह प्रणाली हमारे लोगों की आत्मीयता के सर्वथा विपरीत है। हमारे प्राचीन विधि-निर्माता ऋषि मुनि थे, संसद-वेत्ता नहीं थे। अतएव ऐसे देश में, जहां साक्षरता नहीं है, जहां जीवन स्तर बहुत नीचा है और जहां लोग सांप्रदायिक आवेगों के शिकार हैं, वहां वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संसद की बजाय मुझे राष्ट्रपति में अधिक श्रद्धा है। अतएव मेरे मतानुसार हमें संसद-वाद या किसी आदर्श-वाद की वेदी पर राज्य के हितों को बलिदान नहीं करना चाहिये। आदर्श केवल कल्पनायें ही हैं। वे धुंधले और अस्पष्ट हो सकते हैं। किन्तु राज्य एक ठोस कल्पना है, और हम राज्य के हितों का बलिदान नई विचारधाराओं की वेदी पर नहीं कर सकते। जर्मन दार्शनिक हीगल ने लिखा है कि "राज्य पृथ्वी पर भगवान ही है।" अतएव मेरा यह मत है कि यदि महत्वपूर्ण प्रश्नों को संसद द्वारा निर्णय के लिये छोड़ दिया जाये तो राज्य का अंत ही हो जायेगा। केवल अत्यन्त विकसित समाज में ही संसद प्रभावशाली भाग ले सकती है। भारत जैसे देश में उसका कार्य अवश्य गौण होगा। भविष्य में आने वाले लम्बे समय तक, कार्यपालिका और केवल कार्यपालिका का ही हमारे राष्ट्रीय जीवन में आधिपत्य होगा। यदि संविधान में इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया जाता, तो संविधान टूट जायेगा और देश में अराजकता तथा गड़बड़ हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** क्या आपने संशोधन संख्या 443 को पेश किया है?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** हां, श्रीमान, तीनों संशोधन।

***अध्यक्ष:** सब संशोधन पेश किये जा चुके हैं और उन पर तथा अनुच्छेद पर अब चर्चा हो सकती है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त तथा बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कल, जब मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी ने मुझे बताया था कि वित्तीय आपात संबंधी एक खंड पेश होना है तो मैंने अनुभव किया कि शायद विधान-मंडल के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों में कुछ और कमी की जाने वाली है। किन्तु जब यह अनुच्छेद मुझे कल रात को मिला तो मुझे स्वीकार करना होगा कि मैंने देखा कि यह अनुच्छेद उचित ही है; और अब जो परिस्थितियां हैं, और हो सकती हैं, उनमें मैं अवश्य अनुभव करता हूं कि यदि यह अनुच्छेद नहीं रखा जाता तो हमारा संविधान पूर्ण नहीं बनता। मैं मसौदा समिति को बधाई देता हूं कि इस अंतिम अवसर पर भी उसने समझ लिया कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है, और इसलिये राष्ट्रपति को यह असाधारण शक्तियां दी जानी चाहियें। मेरे मित्र श्री कामत को अनावश्यक

आशंका है कि राष्ट्रपति इन शक्तियों का दुरुपयोग करेगा। श्री कामत ने कहा कि केवल घाटे का आयव्ययक होने मात्र से ही राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि देश के वित्तीय स्थायित्व में आपात है। यदि हमारा राष्ट्रपति ऐसा है जो बजट में घाटा देखकर ही वास्तव में यह घोषणा कर दे कि वित्तीय आपात है, तो मुझे कहना होगा कि वह राष्ट्रपति उस उच्च पद को धारण करने के योग्य नहीं है जो उसे प्राप्त होगा, और मैं यह भी कह सकता हूं कि इसका उत्तरदायित्व सदन पर तथा उन लोगों पर होगा जो राष्ट्रपति का निर्वाचन करेंगे। किन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि दोनों सदन वास्तव में योग्य और प्रसिद्ध, न्यायप्रिय तथा ठीक प्रकार के व्यक्ति को ही चुनेंगे जो उन शक्तियों का ठीक प्रकार प्रयोग करेगा और जो इस अनुच्छेद के उपबंधों को न्यायिक निर्वचन करेगा। मुझे ऐसी कोई आशंका नहीं है, चाहे भारत संघ का राष्ट्रपति कोई भी हो।

श्रीमान, खंड में क्या लिखा है? उसमें लिखा है:–

" 'If the President is satisfied that a situation has arisen whereby the financial stability or credit of India or of any part of the territory thereof is threatened, he may be a proclamation make a declaration to that effect.'

[यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत अथवा उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में हो तो वह उद्घोषणा द्वारा उस बात की घोषणा कर सकेगा।]"

अब हमें दो ढाई वर्ष की स्वतंत्रता के अनुभव से पता है कि हमें जो राजनैतिक स्वतन्त्रता मिली है वह सम्पूर्ण है किन्तु जहां तक हमारी आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध है, हमें अन्य देशों, के वित्तों पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि हमने अपने वित्तों को अभी स्थिर नहीं बनाया है। मेरा इससे यह मतलब नहीं है कि अब आपात है। मैं केवल यही कह सकता हूं कि हमारे सामने यह आर्थिक स्थिति है, और चाहे इसके कारण कुछ भी हों, परन्तु उन कारणों को हमने पैदा नहीं किया है। किन्तु जिन परिस्थितियों में हम रहते थे या शासित होते थे उनके कारण और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण, वर्तमान आर्थिक स्थिति उत्पन्न हुई है। यह आपात नहीं है किन्तु वास्तविक आपात उत्पन्न हो सकता है जिससे कि वित्तीय स्थायित्व पर असर पड़े, और यदि ऐसा अनुच्छेद हो तो हमारी बात सर्वथा उचित होगी, और मुझे जरा भी संदेह नहीं है कि उस समय इस अनुच्छेद से बहुत सहायता मिलेगी।

श्री कामत ने खंड (4) पर शोर मचाया है, किन्तु मैं उस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं। उसमें क्या लिखा है? उसमें लिखा है कि राष्ट्रपति को शक्ति होगी कि आवश्यकता पड़ने पर वह कर्मचारियों के वेतनों तथा भत्तों को कम कर सकेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे यही कठिनाई प्रतीत हुई कि यह शक्ति खंड (3) के अंतर्गत नहीं दी गई थी।

***श्री आर.के. सिधवा:** किन्तु खंड (4) में लिखा है:

" 'Notwithstanding anything contained in this Constitution—

any such direction may include (i) a provision requiring the reduction of salaries and allowances of all or any class of persons serving in connection with the affairs of a State.'

[इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

ऐसे किसी निदेश के अंतर्गत (1) राज्य के कार्यों के संबंध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किन्हीं वर्गों के वेतनों और भत्तों में कमी की अपेक्षा करने वाले उपबंध भी हो सकेंगे।]"

आज हमें भली भांति ज्ञात है कि हमारे कर्मचारियों को केवल भारी वेतन ही नहीं मिलते वरन् उनकी संख्या भी अत्यधिक हैं। किन्तु उसके अतिरिक्त यह बहुत सुखद उपबंध है, और हमें, सबको इस बात का स्वागत करना चाहिये कि राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई है, क्योंकि हम जानते हैं कि संविधान में, हमने न्यायाधीशों के वेतनों का उपबंध कर दिया है और उन्हें आपात में कम नहीं किया जा सकता। हम न्यायाधीशों के उच्च वेतनों पर आपत्ति करते रहे हैं, और जब मसौदा समिति यह उपबंध रखती है कि वित्तीय अस्थायित्व के होने पर, राष्ट्रपति को वेतनों के भी कम करने का अधिकार होगा, तो हम कहते हैं, कि यह उचित नहीं है। मुझे यह सुन कर बहुत खेद है। दूसरी ओर मुझे मसौदा समिति की सराहना करनी होगी। मैं ऐसा व्यक्ति हूं कि जहां सराहना की आवश्यकता होती है वहां मैं सराहना करता हूं, यद्यपि मैं आवश्यकता पड़ने पर अपने कुछ विचारों को भी अभिव्यक्त कर देता हूं। न्यायाधीशों के विषय में भी, (ख) में हमने कहा है कि राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतनों को कम कर सकता है। मैं इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं। यह बात मेरे ध्यान में ही नहीं आई थी कि ऐसा उपबंध आवश्यक है, किन्तु इसे पढ़ने के बाद तथा यह देखने के बाद कि हमारे चारों ओर क्या हो रहा है, और क्या होने वाला है, मैं अनुभव करता हूं कि यह अत्यावश्यक है। हमें भावी घटनाओं को देखना चाहिये। हमें यह भी देखना चाहिये कि भविष्य में क्या होने वाला है। हम सदा अपने विचारों को वर्तमान तक ही सीमित करके संतुष्ट नहीं हो सकते हैं। राजनीतिज्ञ वह है जो भावी घटनाओं को पहले ही देख लेता है। राजनीतिज्ञ वह है जो यह पहले ही देख लेता है कि क्या होने वाला है।

हम जानते हैं कि हमने राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, किन्तु जब तक हमारी स्थिति में पूर्णत: स्थायित्व नहीं आ जाता, तब तक हमारी प्राप्त की हुई राजनैतिक स्वतन्त्रता की ऐसी स्थिति रहेगी, हम मानवता की यथेष्ट सेवा नहीं कर सकेंगे। आज हम जानते हैं कि हमने इतनी विधियां पारित की हैं और हम जानते हैं कि विक्रय-कर संबंधी अनुच्छेद के विषय में कई सदस्यों को कुछ आशंका थी। और मैं अनुभव करता हूं कि उनकी यह भावना उचित ही है कि उन्हें अपने वित्तों को कम करना होगा और इसलिये वे अपनी बहुत-सी विकास योजनाओं को लागू नहीं कर सकेंगे। किन्तु फिर भी मैंने उस अनुच्छेद का समर्थन किया था

क्योंकि उससे देश का हित होगा। और जब भी कभी विधान मंडलों की या राष्ट्रपति की शक्तियों को कम करने का प्रश्न उठेगा तब ही हम उसके गुणावगुण पर विचार करेंगे, और वर्तमान प्रश्न के गुणावगुण कर विचार करके मैं अनुभव करता हूं कि यह अनुच्छेद पूर्णत: उचित है और मुझे विश्वास है कि राष्ट्रपति, चाहे वह कोई भी हो, अपनी शक्तियों का ठीक प्रयोग करेगा, और इस अनुच्छेद का निर्वचन ठीक अर्थ में और ठीक तरीके से और देश के लाभार्थ तथा इस देश की जनता के लाभार्थ ही करेगा। इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन, अनुच्छेद 280क का समर्थन करता हूं।

मैं कुछ और कहना नहीं चाहता। किन्तु यदि आप अनुच्छेद को तथा खंड (4) के उपखंड (2) के उपबंधों को देखें तो आपको पता लगेगा कि वह धन विधेयकों के भी संबंध में है। राष्ट्रपति को यह देखने की शक्ति दी गई है कि यदि वह अनुभव करता है कि अनुच्छेद 174 तथा 182 के उपबंधों के कारण देश के वित्तीय स्थायित्व को खतरा हो सकता है तो वह निस्संदेह अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा और इस अनुच्छेद 280क को लागू करने में रोक लगा देगा। किन्तु जैसा कि अनुच्छेद की प्रस्तावना में लिखा है यह तभी होगा जब कि आपातिक स्थिति हो जहां तक कि वित्तीय स्थायित्व का संबंध है। मुझे ऐसी कोई आशंका नहीं है कि इस अनुच्छेद का राष्ट्रपति दुरुपयोग करेगा, और इन शब्दों के साथ मैं इसका समर्थन करता हूं।

***पं. हृदय नाथ कुंजरू:** अध्यक्ष महोदय, संशोधन के प्रस्तावक ने संशोधन का औचित्य न बताने का यह बहाना बना दिया कि यह निश्चित है कि प्रत्येक सदस्य इसकी आवश्यकता को समझता है। अपने उत्तरदायित्व से पीछा छुटाने का उसके लिये यह बहुत सीधा रास्ता था। उन्होंने संशोधन की सफाई पेश करने का दिखावा करने के लिये अमरीकी राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम का निर्देश किया। अब, उस अधिनियम का उद्देश्य अमरीकी राष्ट्र को उस महान आर्थिक संकट से पार कराना था जो 1930 के लगभग संयुक्त राज्य अमरीका में तथा अन्य देशों में भी आया था। क्या इस संशोधन में कोई ऐसी बात है जिससे कि भारत सरकार आर्थिक संकट आने पर उसका सामना वैसे ही कर सकेगी, जैसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने करने का प्रयत्न किया था? संशोधन का सारा उद्देश्य यह मालूम होता है कि व्यय को कम किया जाये और प्रान्तीय सरकारों को अपने किसी विद्यमान राजस्व-स्रोत को छोड़ने से रोका जाये। क्या ऐसे संशोधन की तुलना किसी प्रकार संयुक्त राज्य के राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम से पासंग भर भी की जा सकती है?

श्रीमान मुझे विश्वास है कि इस सदन को प्रत्येक सदस्य यह स्वीकार करेगा कि केन्द्रीय सरकार को जो शक्तियां प्रदान की जा रही हैं वह अत्यन्त कठोर शक्ति हैं। अत: हमारे लिये यह समझना आवश्यक है कि क्या कारण है कि संविधान के द्वितीय पठन पर वाद-विवाद के अंत में अनुच्छेद 280क को संविधान में प्रविष्ट करने की प्रस्थापना की गई है। इस मामले को संविधान के अन्य वित्तीय उपबंधों के साथ भी निबटाया जा सकता था। किन्तु ऐसा नहीं किया गया इससे पता लगता है कि वित्तीय अनुच्छेदों पर विचार किया गया था तब ऐसी आवश्यकता अनुभव नहीं की गई थी कि केन्द्रीय सरकार को प्रान्तों के आय-व्ययकों पर पूर्ण

[पं. हृदय नाथ कुंजरू]

नियंत्रण रखने की शक्ति दी जाये। उस समय के बाद, इस संशोधन को रखने क्या आवश्यकता पैदा हो गई है। श्रीमान, संशोधन के खंड (4) में ऐसे मामले हैं जो राष्ट्रपति द्वारा दिये गये निदेशों में रखे जा सकते हैं जब कि यह उद्घोषणा की जा चुकी हो, कि भारत का या उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में है। राष्ट्रपति को शक्ति होगी कि वह किसी राज्य को निदेश दे सके कि वह राज्य 'वित्तीय औचित्य के ऐसे नियमों' का पालन करे जो उसके निदेश में उल्लिखित हों। खंड (4) में, उदाहरण है कि राष्ट्रपति कैसे निदेश दे सकता है। इस खंड के उपखंड (क) से राष्ट्रपति को शक्ति मिलती है कि वह राज्य को आदेश देकर सब सरकारी सेवकों के या उनके किसी वर्ग के वेतनों तथा भत्तों को कम कर सकता है। श्रीमान, हमें कुछ ही वर्ष पूर्व गम्भीर आर्थिक कठिनाई में से गुजरना पड़ा था। इसका प्रभाव केवल केन्द्रीय सरकार पर ही नहीं, वरन्, प्रान्तों पर भी पड़ा था। क्या फिर प्रान्त अपना व्यय करने में पीछे थे? क्या उन्होंने अपने सरकारी सेवकों के वेतन कम करने में अनिच्छा दिखाई थी या उन्होंने केन्द्रीय सरकार के उदाहरण को मान कर सब प्रकार के सरकारी कर्मचारियों के वेतनों को प्रसन्नता से कम कर दिया था? हमारे सामने यह अनुभव होते हुए ऐसा संशोधन सदन में प्रस्थापित करना हमारे लिये आवश्यक क्यों हुआ? क्या कारण है कि सब विगत अनुभवों की उपेक्षा करके हम प्रान्तों में पूर्ण अविश्वास दिखायें तथा उनसे ऐसा व्यवहार करें जैसे कि वे बच्चे हैं और राष्ट्रपति मास्टर हैं?

श्रीमान, उपखंड (क) की मद (2) में लिखा है कि राष्ट्रपति आदेश दे सकता है कि धन-विधेयकों या अन्य विधेयकों को, जिनको अनुच्छेद 182 के उपबंध लागू हैं, राज्य के विधान मंडल के द्वारा उनके पारित किये जाने के पश्चात् उसके विचार के लिये रक्षित किया जाये।

सदन को ज्ञात है कि धन-विधेयक की क्या परिभाषा है। धन-विधेयक किसी विधेयक को कह सकते हैं जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त किसी कर के आरोपण, समाप्ति, परिवर्तन, विनियमन आदि का उपबन्ध हो। मेरे विचार में इन शब्दों से हमें पता लग जाता है कि हमारे समक्ष जो संशोधन पेश किया गया है, उसका क्या आशय है। प्रांत स्वयं कोई ऐसी बात कर ही क्यों सकता है जिससे भारत का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में पड़ जाये। हद से हद वह अपनी हानि कर सकता है। किन्तु यदि हम प्रांतीय सूची में उल्लिखित राजस्व-स्रोतों को देखें तो हमें पता लगेगा कि ऐसा कोई स्रोत है ही नहीं जिसके प्रयोग से केन्द्र या प्रांत के वित्तीय स्थायित्व को खतरा हो सकता हो। यदि कोई प्रांत अपनी मूर्खता से अपने आपको कठिन वित्तीय स्थिति में डाल देता है तो उसे अपनी गलतियों से पाठ क्यों न सीखने दिया जाये?

शायद, श्रीमान, सदन को इसमें दिलचस्पी होगी यदि प्रांतीय आय के मुख्य स्रोतों को गिना दूं। वे ये हैं: मुख्यतः भू-राजस्व, संघ सूची में उल्लिखित मुद्रांक-शुल्कों के अतिरिक्त अन्य मुद्रांक शुल्क, कृषि-भूमि के उत्तराधिकार के विषय

में शुल्क, कृषि आय पर आय-कर, मद्यसारिक, पानों आदि पर उत्पादन-शुल्क, विक्रय कर जिसमें विद्युत के उपभोग पर कर भी शामिल हैं, और विलास तथा प्रमोद पर तथा प्रमोद वस्तुओं पर कर।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यानों पर कर का क्या हुआ?

***पं. हृदय नाथ कुंजरू:** मैंने उसका उल्लेख इसलिये नहीं किया है कि यान-कर आदि प्राय: स्थानीय निकायों के लाभार्थ प्रयुक्त होते हैं। अब, इन राजस्व-स्रोतों में से प्रान्त किनका दुरुपयोग कर सकते हैं? कुछ प्रांतों ने केन्द्र के अनुमोदन से जिस नीति को अपनाया है यदि उस पर अन्य प्रांत भी चलेंगे तो भू-राजस्व अवश्यमेव कम हो जायेंगे और उसके कम होने पर केन्द्रीय सरकार को शिकायत नहीं हो सकती। प्रांतों की सरकारों ने अब तक मुद्रांक-शुल्क की दरों को बढ़ाने की या विक्रय-कर अथवा कृषि आय का यथासंभव प्रयोग करने की कोई अनिच्छा प्रकट नहीं की है।

केवल एक ही कर है जिसके विषय में केन्द्रीय सरकार तथा कुछ प्रांतीय सरकारों में गम्भीर मतभेद हो गया है, वह है मद्यसारिक पानों तथा कुछ पिनक वाले पदार्थों पर उत्पादन-शुल्क। मुझे पता लगा है कि भारत सरकार द्वारा बार-बार मंत्रणा देने पर भी कुछ प्रांत मद्य-निषेध की नीति पर चल रहे हैं। जिससे कुछ समय के पश्चात् उत्पादन-कर से सब राजस्व पूर्णत: समाप्त हो जायेगा। केन्द्रीय सरकार की मंत्रणा शायद बिल्कुल ठीक हो। भारतीय वित्त के विद्यार्थियों के मत में विद्यमान स्थिति में ऐसा आवश्यक हो सकता है कि प्रांतों को पूर्ण मद्य-निषेध के उपायों को पूरा करने में धीरे-धीरे चलना चाहिये। केन्द्र तथा प्रांत दोनों ही वित्तीय कठिनाइयों में फंसे हुए हैं, और यह ठीक नहीं मालूम होता कि ऐसे समय पर किसी प्रांत को कोई बड़ा राजस्व स्रोत छोड़ देने का प्रयत्न करना चाहिये। सिद्धान्तानुसार यह अभीष्ट हो सकता है कि मद्यसारिक पानों तथा पिनक लाने वाले पदार्थों के प्रयोग को बिल्कुल बंद कर दिया जाये, किन्तु हमें संसार की सब अच्छी वस्तुएं एक दम प्राप्त नहीं हो सकतीं। अत: प्रांतों के लिये यह आवश्यक होगा कि वे संयम रखें तथा इस सुधार के लिये समुचित समय आने तक ठहरे रहें।

किन्तु यदि वे केन्द्रीय सरकार की बात नहीं सुनते तो क्या इसी कारण अनुच्छेद 280क द्वारा भारत सरकार को ऐसी कठोर शक्ति दे दी जाये कि एक बार राष्ट्रपति द्वारा यह उद्घोषणा होते ही कि समूचे भारत का भी नहीं, केवल उसके एक भाग का वित्तीय स्थायित्व संकट में है, प्रांत केन्द्रीय सरकार की इच्छा के विरुद्ध कुछ न कर सकें? जब भी प्रांत और केन्द्रीय सरकार के बीच गम्भीर मतभेद हो, तभी राष्ट्रपति से यह घोषणा करवाई जा सकती है कि प्रांत का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में है, फिर अनुच्छेद 280क के सभी परिणाम प्रकट हो जायेंगे। प्रांत के आय-व्ययक पर केन्द्र का पूर्ण नियंत्रण हो जायेगा और केन्द्र प्रांतीय सरकार तथा प्रांतीय विधान-मंडल दोनों को आदेश दे सकेगा कि वे किन वित्तीय नीतियों को अपनायें।

यह अनुच्छेद भारत के साधनों का केन्द्र तथा प्रान्तों में अधिक अच्छा विभाजन करने के विषय में नहीं है। इसका उद्देश्य केन्द्रीय सरकार को ऐसी शक्ति प्रदान

[पं. हृदय नाथ कुंजरू]

करना नहीं है जिससे कि वह बेकारों की सहायता, या सार्वजनिक निर्माण, या उनमें से किसी समस्या को हल कर सके जिनके हल से आर्थिक संतोष उत्पन्न होगा और भारत की समृद्धि बढ़ेगी। इसका उद्देश्य बिल्कुल भिन्न है। संशोधन के प्रस्तावक ने इस संशोधन के औचित्य को सिद्ध करने के लिये कोई कारण नहीं बताये हैं, अतः हमें ही यथाशक्ति यह सोचना है कि संविधान में ऐसा अनुच्छेद रखने के लिये केन्द्रीय सरकार क्यों सहमत हुई है। इन प्रांतों के हाल ही के वित्तीय इतिहास को देखते हुए मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि केन्द्रीय सरकार क्यों चिंतित है कि उसे प्रांतों पर वित्तीय नियंत्रण रखने की शक्ति मिल जाये, केवल वही कारण हो सकता है जो कि मैंने बताया है।

यह तो सदन को ही निश्चय करना है कि क्या इस संविधान को एकात्मक प्रकार का संविधान बना दिया जाये, जब कि उस दिन हमारे प्रधान मंत्री ने अमरीकी प्रतिनिधि-सभा तथा सीनेट के समक्ष अपने अभिभाषण में कहा था कि यह संविधान संघानवाद के सिद्धान्त पर आधारित है जो कि हमने अमरीकी संविधान से लिया है। यदि संविधान संघानीय हो तब भी क्या केन्द्रीय सरकार के लिये यह बुद्धिमानी होगी कि वह प्रांतों के वित्तीय स्वविवेक को कुचलने का प्रयत्न करे, चाहे उनके उपायों से उनकी हानि ही क्यों न हो? प्रांतों में लोकतंत्र कैसे स्थापित होगा, विधान-मंडलों के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना कैसे पैदा होगी, मंत्री अनुभव से पाठ कैसे सीख सकेंगे, जब तक कि उन्हें अपनी गलतियों के परिणामों का सामना करने के लिये अवसर न दिया जाये। यदि केन्द्र प्रत्येक बात में हस्तक्षेप करना चाहता है, यदि वह चाहता है कि वह ऐसा पूर्ण नियंत्रण रख सके कि कोई ऐसी बात न होने दी जाये जिससे किसी प्रांत के या भारत के हितों को हानि हो, तो हमें लोकतंत्र से विदा लेनी चाहिये। केन्द्र तो यही चाहेगा कि उसे संविधान में जितना नियंत्रण सौंपा गया है वह उससे भी अधिक नियंत्रण रखे, यदि हम विगत अनुभव से या तथ्य से निर्णय करेंगे तो यही बात पता लगेगी। किन्तु इससे ठीक काम नहीं चलेगा और मैं यह कह सकता हूं कि प्रस्तावक ने इस संशोधन के स्वीकार करने के लिये जरा भी औचित्य सिद्ध नहीं किया है।

***श्री के.एम. मुंशी** (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र, पंडित कुंजरू की भावनाओं को, जो उन्होंने इस 280क के विरोध में प्रकट की हैं, आसानी से समझ करता हूं, किन्तु वे भी उस गम्भीर स्थिति को समझ जायेंगे जिसका निर्देश मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने पहले ही कर दिया है। संसद में, अर्थात् इस सदन के दूसरे अंग में जो बहस एक पखवारे पहले हुई थी, उससे स्पष्ट पता लग गया था कि देश गर्त के किनारे पर ही है, और मैं नहीं समझता कि आज हमारे समक्ष जो कठिनाई है वह उससे किसी प्रकार भी कम महत्वपूर्ण है, जो फ्रांस में, 1937 में आई थी जब कि उसने जून 1937 की विधि पारित की थी या जब कि 1933 में संयुक्त राज्य अमरीका ने ऐसा ही उपाय किया था। मैं राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम की प्रस्तावना को, जो अमरीका में स्वीकार किया गया था, पढ़कर सुना देता हूं।

"A national emergency productive of widespread unemployment and disorganization to industry which burdens the State and foreign commerce and affects the public welfare and undermines the standard of living of the American people is hereby said to exist.'

[एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि आर्थिक आपात है जिससे विस्तृत बेकारी तथा उद्योग का विघटन उत्पन्न होता है जिससे राज्य के तथा विदेशी वाणिज्य पर भार पड़ता है और लोक कल्याण पर प्रभाव पड़ता है और अमरीकी लोगों का जीवनस्तर गिरता है।]"

यदि मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू उन वक्तृताओं को पढ़ेंगे जो अवमूल्यन की बहस में इस सदन के सदस्यों तथा वित्त मंत्री ने दी थीं, तो मुझे भरोसा है कि उन्हें विश्वास हो जायेगा कि इस समय देश में जैसी स्थिति है उसमें केन्द्र के हाथों में वैसी ही विस्तृत शक्तियां होनी चाहियें जो अनुच्छेद 280क में निहित हैं। उनकी यह आशंका वास्तविक नहीं है कि कार्यकर्ता बढ़ जायेंगे, क्योंकि जब केन्द्र अनुच्छेद 280 के अंतर्गत काम करेगा तो वह राज्य के कर्मचारियों के द्वारा ही काम चलायेगा। वह प्रांतीय व्यवस्था के स्थान पर अपनी व्यवस्था को नियोजित नहीं करेगा। दूसरी युक्ति भी पूर्णतः ठीक नहीं है कि प्रांत केन्द्र की अनुमति के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। साधारण परिस्थितियों में जब कि देश के वित्त स्थिर हों, जब तक देश का प्रत्यय स्थिर है, तब तक इस अनुच्छेद को लागू करने की कोई संभावना नहीं है। इसे तभी लागू किया जायेगा जब कि वित्तीय आपात होगा और तब तक प्रांतों को पूरी स्वतन्त्रता है कि वे जो चाहें करें। यह 'मास्टर' के समान दृष्टिकोण नहीं है जैसा कि इसे बताया गया है। दृष्टिकोण यह है कि जब देश की वित्तीय व्यवस्था टूट जायेगी तब केन्द्र हस्तक्षेप करेगा।

संविधान के इस अनुच्छेद में एक सर्वोच्च तथ्य को स्वीकार किया गया है कि देश की आर्थिक व्यवस्था एक है तथा अखंड है। यदि कोई प्रांत आर्थिक रूप में ठप्प हो जाता है तो इसका प्रभाव केन्द्र की वित्त व्यवस्था पर पड़ेगा, यदि केन्द्र कठिनाई में होगा तो सब प्रान्त ठप्प हो सकते हैं। अतः प्रान्तों तथा केन्द्र की पारस्परिक निर्भरता इतनी अधिक है कि देश की समूची वित्तीय अखंडता एक है और ऐसा समय आ सकता है जब कि एकात्मक नियंत्रण सर्वथा अपेक्षित हो जाये।

श्रीमान, मैं यह भी कहना चाहता हूं कि अब तक इस सदन ने जो विविध अनुच्छेद पारित किये हैं उनमें उपबंध है कि आपात में, साधारण समयों में भी, केन्द्र तथा प्रांतों के बीच कुछ एकीकरण होगा। मैं केवल अनुच्छेद 226 का निर्देश दूंगा। जिसके अनुसार उच्च सभा के मतदान से यह निश्चय हो सकता है कि राज्य सूची की किसी मद को केन्द्र को हस्तांतरित कर दिया जाये। हमारे यहां मनोनीत राज्यपाल होंगे जिन्हें हमने निर्वाचित राज्यपाल के स्थान पर स्वीकार किया है। हमने अनुच्छेद 275 तथा 278 में आपात की धारायें रखी हैं: जब प्रान्त का

[श्री के.एम. मुंशी]

सांविधानिक ढांचा टूट जाये तब केन्द्र हस्तक्षेप कर सकता है। उदाहरण के लिये, जब देश के किसी भाग में आंतरिक उपद्रव का संकट हो तब केन्द्र आपात-विधान द्वारा हस्तक्षेप कर सकता है। परन्तु क्या यह सुझाव दिया जा रहा है कि यदि समूचे देश की वित्तीय व्यवस्था ठप्प हो जाये तो केन्द्र को चुप बैठे रहना चाहिये और कुछ नहीं करना चाहिये? अतएव मेरा निवेदन है कि हमने जो ढांचा बनाया था उसे हमने किसी प्रकार छोड़ा नहीं है।

केवल एक शब्द और कह कर मैं समाप्त कर दूंगा: मेरे मित्र पं. कुंजरू ने कहा था कि अनुच्छेद के प्रस्तावक डॉ. अम्बेडकर ने इसका उद्देश्य नहीं समझाया। मेरे विचार में इसका उद्देश्य तो इससे स्वयं ही प्रकट हो जाता है। केवल इसी सरकार की यह इच्छा नहीं है कि वे प्रांतों में हस्तक्षेप करें, वरन भारत की प्रत्येक सरकार की यह इच्छा होनी चाहिये कि वह देखें कि भारत के वित्तीय स्थायित्व को हर कीमत पर और प्रत्येक परिस्थिति में बनाये रखा जाये। किसी सरकार के समक्ष यही प्रधान भावना है, चाहे यह सरकार हो या कोई और।

हमने प्रस्तावना में, जो कल सदन के समक्ष आयेगी, लिखा है कि भारत के सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोग इस संविधान को बनाते हैं। सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोग सब लोग नहीं हैं, वरन् भारत के सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोग जो एक इकाई के रूप में अपने उच्चतम निकाय, संविधान-सभा के द्वारा काम करते हैं, वे ही समस्त देश के लिये संविधान का निर्माण कर रहे हैं। कोई प्रान्तीय स्वायत्तता नहीं है, उनके द्वारा या उनके लिये कोई संधान नहीं बन रहा है; वे पवित्र शब्द नहीं हैं। प्रत्येक सरकार को भारत के सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। वित्तीय आपात में इससे बड़ा विशेषाधिकार कोई नहीं हो सकता कि सब वित्तीय मामलों पर केन्द्र का नियंत्रण तथा निदेश हो, जैसा कि 280क में रखा गया है। यही उद्देश्य है, और मेरा निवेदन है कि यह ऐसा उद्देश्य है जिसके बिना संविधान अपूर्ण रहेगा और मैं सदन से अनुरोध करता हूं कि वह इस अनुच्छेद को एकमत से स्वीकार कर ले।

***अध्यक्ष:** क्या आपको कुछ कहना है।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: यदि आप समझते हैं कि मेरा बोलना आवश्यक है तो मैं बोल दूंगा।

***अध्यक्ष:** नहीं, नहीं। मैं यह नहीं कहता। तो फिर मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरा सुझाव है कि डॉ. अम्बेडकर 'threatened' शब्द के स्थान पर 'gravely threatened' इन शब्दों को रखने पर विचार करें।

***अध्यक्ष:** आपने अपना सुझाव दे दिया था। वे विचार कर लेंगे कि वह विचार-योग्य है या नहीं। मैं नहीं समझता कि डॉ. अम्बेडकर को सुझाव देने के रूप में आपको दूसरा भाषण करने की अनुमति मिलनी चाहिये।

श्री रोहिणी कुमार चौधरी (आसाम : जनरल): मैं अपना एक मात्र भाषण देना चाहता था।

***अध्यक्ष:** परन्तु मैं वाद-विवाद को पहले ही समाप्त कर चुका हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (1) में, 'has arisen' इन शब्दों के स्थान पर 'is imminent' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (1) में, 'whereby the financial stability or credit of India or any part of the territory thereof is threatened' इन शब्दों के स्थान पर 'which threatens India or any part thereof with financial breakdown or economic disaster' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (1) में, 'threatened' शब्द के पश्चात् 'or is likely to be threatened' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (2) के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:–

'(2) The proclamation issued under clause (1) of this article shall continue till such time it is revoked by the President.'

[इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन की गई उद्घोषणा उस समय तक जारी रहेगी जब तक कि राष्ट्रपति उसे समाप्त न कर दे।]"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (3) में, 'operation' शब्द के पश्चात्, 'Parliament shall have power to make laws in respect of subjects contained in the State list as if they were subjects in the Concurrent List, and' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (4) हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (4) के उप-खंड (क) कंडिका (2) के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'(ii) a provision requiring all Bills to be reserved for the consideration of the President after they are passed by the Legislature of the State.' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 429 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 280क के खंड (5) को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अॅबेडकर के मूल संशोधन पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 280 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:–

'280A. (1) If the President is satisfied that a situation has arisen whereby the financial stability or credit of India or of any part of the territory thereof

Provisions as to financial emergency.

is threatened, he may by a proclamation make a declaration to that effect.

(2) The provisions of clause (2) of article 275 of this Constitution shall apply in relation to a proclamation issued under clause (1) of this article as they apply in relation to a Proclamation of Emergency issued under clause (1) of the said article 275.

(3) During the period any such proclamation as is mentioned in clause (1) of this article is in operation, the executive authority of the Union shall extend to the giving of directions to any State to observe such canons of financial propriety as may be specified in the directions, and the giving of such other directions as the President may deem necessary and adequate for the purpose.

(4) Notwithstanding anything contained in this Constitution—

(a) any such direction may include—

(i) a provision requiring the reduction of salaries and allowances of all or any class of persons serving in connection with the affairs of a State;

(ii) a provision requiring all Money Bills or other Bills to which the provisions of article 182 of the Constitution apply to be reserved for the consideration of the President after they are passed by the Legislature of the State.

(b) it shall be competent for the President during the period any proclamation issued under clause (1) of this article is in operation to issue directions for the reduction of salaries and allowances of all or any class of persons serving

[अध्यक्ष]

in connection with the affairs of the Union including the judges of the Supreme Court and the High Courts.

(5) Any failure to comply with any directions given under clause (3) of this article shall be deemed to be a failure to carry on the Government of the State in accordance with the provisions of this Constitution.'

वित्तीय आपात के बारे में उपबन्ध।

[280क. (1) यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिससे भारत अथवा उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भी भाग का वित्तीय स्थायिल या प्रत्यय संकट में हो तो वह उद्घोषणा द्वारा उस बात की घोषणा कर सकेगा।

(2) अनुच्छेद 275 के खंड (2) के उपबन्ध इस अनुच्छेद के अधीन निकाली गई उद्घोषणा के सम्बन्ध में वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे अनुच्छेद 275 के अधीन निकाली गई आपात की उद्घोषणा के लिये लागू होते हैं।

(3) उस कालावधि में जिसमें कि खंड (1) में वर्णित कोई उद्घोषणा प्रवर्तन में रहती है संघ की कार्यपालिका शक्ति किसी राज्य को वित्तीय औचित्य सम्बन्धी ऐसे सिद्धान्तों का पालन करने के लिये निदेश देने तक, जैसे कि निदेशों में उल्लिखित हों तथा ऐसे अन्य निदेश देने तक, जिन्हें, राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये देना आवश्यक और समुचित समझे विस्तृत होगी।

(4) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी–

(क) ऐसे किसी निदेश के अन्तर्गत–

(1) राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किन्हीं वर्गों के वेतनों तथा भत्तों में कमी की अपेक्षा करने वाले उपबन्ध,

(2) धन-विधेयकों अथवा अन्य विधेयकों को, जिनको अनुच्छेद 182 के उपबन्ध लागू हैं, राज्य के विधान-मंडल के द्वारा उनके पारित किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित करने के लिये उपबन्ध, भी हो सकेंगे,

(ख) उस कालावधि में, जिसमें कि इस अनुच्छेद के अधीन निकाली गई उद्घोषणा प्रवर्तन में है, उच्चतम न्यायालय

और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के सहित, संघ के कार्यों के सम्बन्ध में सेवा करने वाले व्यक्तियों के सब या किसी वर्ग के वेतनों और भत्तों में कमी के लिये निदेश निकालने के लिये राष्ट्रपति सक्षम होगा।

(5) इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के अधीन दिये गये निदेशों का पालन करने में असफलता को भी इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य का शासन चलाने की असफलता समझा जायेगा।]"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 280क संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 85

***अध्यक्षः** अब हम अन्य मदों को लेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 85 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:—

'(3) In other respects, the privileges, immunities and powers of each House of Parliament and of the members and the Committees of each House shall be such as may from time to time be defined by Parliament by law, and until so defined, shall be those of the House of Commons of the Parliament of the United Kingdom and of its members and committees at the commencement of this Constitution.'

[(3) अन्य बातों में, संसद के प्रत्येक सदन की तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी संसद, समय-समय पर, विधि द्वारा परिभाषित करे, तथा जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं, तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के प्रारम्भ पर इंग्लिस्तान की पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कामन्स की तथा उसके सदस्यों और समितियों की हैं।]"

इस परिवर्तन को करने का कारण यह है कि उप-खंड का क्षेत्र विस्तृत करना है क्योंकि मूल खंड में केवल सदस्यों के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का उल्लेख था। वर्तमान खंड में यही करने का प्रयत्न किया गया है कि इसे प्रत्येक सदन के सब सदस्यों और समितियों पर लागू कर दिया गया है। यह इसलिये आवश्यक हो गया है कि हमने अनुसूची 7, सूची 1, प्रविष्टि मैं संसद की विधायिनी शक्ति का उपबन्ध 69क में किया है। वह विधायिनी शक्ति इस प्रकार है:

"संसद के प्रत्येक सदन के तथा प्रत्येक सदस्यों के और समितियों के विशेषाधिकार, के उन्मुक्तियां और शक्तियां।"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अनुच्छेद 85 के उप-खंड (3) को उस प्रविष्टि के अनुरूप बनाने के लिये, यह संशोधन पेश किया गया है। सदन के माननीय सदस्य कृपया ध्यान दें कि इसका उद्देश्य सदनों के सदस्यों के तथा समितियों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों तथा शक्तियों को विस्तृत करना ही है और यह ऐसा मामला नहीं है जिस पर विवाद हो क्योंकि यह सदन द्वारा 69क, सूची 1, अनुसूची 7 की स्वीकृति के फलस्वरूप ही है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** खंड (4) में भी समितियों को वही विशेषाधिकार दिये गये हैं जो कि सदस्यों को दिये गये हैं।

***अध्यक्षः** यह सदन के सम्बन्ध में भी है, केवल सदस्यों के लिये ही नहीं है।

एक और संशोधन है जिसकी सूचना श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने दी है। किन्तु वह एक अन्य संशोधन—सं. 397 में आ जाता है। अतः इसका प्रश्न नहीं उठता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** किन्तु अगले पृष्ठ पर दो भाग (क) तथा (ख) हैं।

***अध्यक्षः** हां, 3 (ख) है। परन्तु क्या यह संविधान का विषय है? राष्ट्रपति श्वेत-पत्र निकालेगा, यह संविधान का विषय नहीं है। यदि राष्ट्रपति को श्वेत-पत्र निकालने का सुझाव दिया जायेगा तथा यदि सभा में प्रस्ताव पारित होगा तो वह श्वेत-पत्र निकाल देगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** सारा प्रयोजन तो यह जानने का है कि हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों की शक्तियां तथा विशेषाधिकार क्या हैं।

***अध्यक्षः** आप राष्ट्रपति से श्वेत-पत्र निकालने के लिये कह सकते हैं, किन्तु यह संविधान का अंग नहीं बन सकता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं इस संशोधन में मौखिक परिवर्तन कर सकता हूं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में, हम इसे छोड़ दें तो अच्छा रहेगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** श्रीमान, जब इस अनुच्छेद पर पिछली बार चर्चा हुई थी, तब हमें निश्चित ज्ञान नहीं था कि हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं। मैंने 'मे' की पुस्तक 'संसदीय प्रक्रिया' से मालूम करना चाहा परन्तु मुझे पता नहीं लग सका। अतः, हमें कुछ पता होना चाहिये कि हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं। अन्यथा संसद में संघर्ष पैदा हो सकता है। संसद के निर्माण के पश्चात् दो तीन वर्ष तक भी शायद ये विशेषाधिकार लिखित रूप में न आ सकें, क्योंकि मुझे पता है कि अब तक विशेषाधिकारों का कोई अधिनियम नहीं बन सका है, यद्यपि भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत यह उपबन्ध है कि सदस्यों के विशेषाधिकारों का अधिनियम बनेगा; दो प्रांतों के अतिरिक्त वे न केन्द्र में और न किसी प्रान्त में ही अब तक लिखित रूप में बने हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं आपकी अनुमति से अपने मित्र श्री सिधवा को सूचना दे सकता हूं कि वह चर्चा हुई थी उसके बाद मैंने कुछ खोज की है और मुझे पता लगा है कि दक्षिण अफीका की संसद ने उन्मुक्तियों तथा विशेषाधिकारों को परिभाषित करने वाला एक अधिनियम पारित किया है। मेरे पास एक प्रतिलिपि है। यदि वे चाहें तो उन्हें यह पढ़ने के लिये दे सकता हूं। बाद में हमारी संसद के लिये भी उन विशेषाधिकारों को रखना संभव हो सकता है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, संशोधन सं. 419 में, "Provincial Parliament" ये शब्द हैं। यह मुद्रण की त्रुटि है। यहां 'Provincial' नहीं, 'Provisional' शब्द होना चाहिये। यह अलग संशोधन है जिसे किसी ने भी पेश नहीं किया है। क्या मैं इसे पेश कर सकता हूं?

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में अंतर्कालीन (Provisional) संसद को वे सब शक्तियां तथा विशेषाधिकार होंगे जो स्थायी संसद को होंगे। अत: यह प्रश्न वास्तव में नहीं उठता।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या हम यह शक्ति संसद पर ही नहीं छोड़ सकते कि वही विनिश्चय कर ले?

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद में यही तो लिखा है। संसद ही शक्तियों तथा विशेषाधिकारों को परिभाषित करेगी, किन्तु जब तक संसद इस विषय में विधान पारित न करे तब तक हाउस ऑफ कामन्स के विशेषाधिकार तथा शक्तियां ही लागू होंगी। अत: यह केवल अस्थायी बात है। हां, हो सकता है कि संसद इस विषय पर कभी भी विधान न बनाये और इसलिये सदस्यों को सावधान होना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या अंतर्कालीन संसद को अधिकार होगा कि इन शक्तियों को परिभाषित कर दे?

***अध्यक्ष:** निस्संदेह, उसे अधिकार होगा, यदि वह चाहे।

***श्री बी. दास:** श्रीमान, इस संशोधन सं. 419 में, 'Provincial' संसद है या 'Provisional' संसद है?

***अध्यक्ष:** यह गलती है। 'Provisional' संसद होना चाहिये। जब श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह गलती बताई थी तो मैं उनकी बात को समझा नहीं था। यह मुद्रण की गलती है। अतएव, अंतर्कालीन संसद को वही अधिकार है जो स्थायी संसद को है। क्या इस पर वाद-विवाद आवश्यक है? अत:, मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 85 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:—

'(3) In other respects, the privileges, immunities and powers of each House of Parliament and of the members and the

[अध्यक्ष]

committees of each House shall be such as may from time to time be defined by Parliament by law, and until so defined, shall be those of the House of Commons of the Parliament of the United Kingdom and of its members and committees at the commencement of this Constitution.'

[(3) अन्य बातों में, संसद के प्रत्येक सदन की तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी; जैसी संसद, समय-समय पर, विधि द्वारा परिभाषित करे, तथा जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं, तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के प्रारंभ पर इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कामन्स की तथा उसके सदस्यों और समितियों की हैं।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 111

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 111 के खंड (1) के परन्तुक के स्थान पर निम्न परन्तुक रख दिया जाये:–

'Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment, decree or final order of one judge of a High Court.'

[किन्तु उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय, आज्ञप्ति या अंतिम आदेश की कोई अपील उच्चतम न्यायालय को नहीं जायेगी।]"

इससे वर्तमान स्थिति स्पष्ट हो जाती है। वर्तमान उपबन्ध कुछ लम्बा चौड़ा है। वर्तमान उपबन्ध, जिसे यह संशोधन हटाना चाहता है, यह है:—

"Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment, decree or order of one judge of a High Court or of one judge of a Division Court thereof, or of two or more judges of a High Court, or of a Division Court constituted by two or more judges of a High Court, where such judges are equally

divided in opinion and do not amount in number to a majority of the whole of the judges of the High Court at the time being.' "

यह अनुभव किया जाता है कि यह आवश्यक नहीं है क्योंकि यह मूल लेटर्स पेटेंट से लिया गया था, जिसका संशोधन 1928 में हो चुका था। संशोधित लेटर्स पेटेंट, जिस रूप में वह हमारे न्यायालयों में लागू था, इस लम्बे चौड़े परन्तुक से आसान है, और उसका आशय लगभग वही था जो हम अनुच्छेद 111 के परन्तुक के रूप में रखना चाहते हैं, पुराने परन्तुक का आशय नहीं था। मैं नहीं समझता कि इस मामले विशेष में वाद-विवाद की कोई गुंजाइश है, क्योंकि इस संशोधन का उद्देश्य उस सीमा को, जो उच्चतम न्यायालय को जाने वाली अपीलों के विषय में रखी गई थी, अधिक आसान बनाना तथा निर्बन्धित करना है। यदि माननीय सदस्य इस स्पष्टीकरण से संतुष्ट हैं तो यह स्वीकृत हो सकता है। किन्तु यदि वे समस्त प्रश्न का स्पष्टीकरण चाहते हैं कि उच्च न्यायालयों में न्याय-मंडलियों की शक्तियों पर लेटर्स पेटेन्ट का क्या प्रभाव पड़ा था और हमने उसमें से क्या-क्या चीजें ली हैं तो, मेरे विचार में, मेरे माननीय साथी श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर इस विषय में सदस्यों को संतुष्ट करने के लिये तैयार हैं।

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 111 के खंड (1) के परन्तुक के स्थान पर निम्न परन्तुक रख दिया जाये:-

'Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment, decree or final order of one judge of a High Court.'

[किन्तु उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय, आज्ञप्ति या अंतिम आदेश की कोई अपील उच्चतम न्यायालय को नहीं जायेगी।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112 तथा 203

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 15 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 364 के निर्देश से, अनुच्छेद 112 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:-

'112. (1) The Supreme Court may, in its discretion, grant special leave to appeal from any judgment, decree, determination, sentence or order in any cause or matter passed or made by any court or tribunal in the territory of India. Special leave to appeal by the Supreme Court.

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

(2) Nothing in clause (1) of this article shall apply to any judgment, determination, sentence or order passed or made by any court or tribunal constituted by or under any law relating to the Armed Forces.'

अपील के लिए उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत

[112. (1) उच्चतम न्यायालय, स्वविवेक से, भारत राज्य-क्षेत्र में के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुए किसी निर्णय, आज्ञप्ति, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा।

(2) सशस्त्र बलों से सम्बद्ध किसी विधि के द्वारा या अधीन गठित किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा पारित या दत्त किसी निर्णय, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश को खंड (1) की कोई बात लागू न होगी।]"

अनुच्छेद 112 के खंड (1) पर मेरा संशोधन बहुत सादा है। इसका उद्देश्य यह है कि मूल अनुच्छेद में 'final order' इन शब्दों को हटा दिया जाये, और 'determination, sentence or order' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें। जहां तक खंड (2) का सम्बन्ध है, यह संशोधन माननीय सदस्यों के लिये बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिये। इसका उद्देश्य यह है कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार से (जो उसे अनुच्छेद 112 द्वारा दिया गया है) सैनिक न्यायालय के विनिश्चयों को निकाल दिया जाये जो सशस्त्र बलों से सम्बद्ध मामलों के विषय में हों या सेना अधिनियम से शासित मामलों के विषय में हों। मैं समझता हूं कि यही स्थिति संयुक्त राज्य ब्रिटेन में है जहां न्यायालय सैनिक-न्यायालयों के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करते। मुझे एकदम स्वीकार करना पड़ेगा कि जब यह अनुच्छेद तैयार हुआ था तथा सदन के समक्ष पेश किया था तब यह बात हमारे ध्यान में नहीं आई थी, किन्तु अब प्रतिरक्षा विभाग ने इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है तथा उन्होंने हमें विश्वास दिला दिया है कि ऐसा उपबन्ध, जो अन्य देशों में लागू है, हमारे संविधान में भी होना ही चाहिये।

श्रीमान, यदि आप मुझे अनुमति देंगे तो मैं एक और अनुच्छेद भी पेश करना चाहता हूं जो इसी विषय में है, ताकि सारे मामले पर एक साथ ही विचार किया जा सके।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 203 में, निम्न खंड जोड़ दिया जाये:

(4) Nothing in this article shall be deemed to extend the powers of superintendence of a High Court over any court or tribunal constituted by or under any law relating to the Armed Forces.'

[(4) इस अनुच्छेद की कोई बात उच्च न्यायालय को सशस्त्र बलों सम्बन्धी विधि के द्वारा या अधीन गठित किसी न्यायालय या अधिकरण पर अधीक्षण की शक्तियां देने वाली न समझी जायेगी।]"

अनुच्छेद 203 का खंड (4) तथा अनुचछेद 112 का खंड (2) उसी विषय में है। अनुच्छेद 203 के विषय में इसका उद्देश्य सैनिक न्यायालयों पर उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का वर्जन करना है, जबकि उच्चतम न्यायालय के विषय में ऐसा ही निर्बंधन अनुच्छेद 112 के अधीन लगाया जाना है। इन दो नये संशोधनों को पेश करने का कारण प्रतिरक्षा मंत्रालय द्वारा अभिव्यक्त विचार हैं कि सैनिक न्यायालयों के विनिश्चयों के विषय में ऐसा रक्षण आवश्यक है क्योंकि वे न्यायालय सशस्त्र बलों के विषय में होते हैं और अन्य देशों में जो कुछ होता है उनका उदाहरण हमारे समक्ष पेश किया गया था। अतः हमने अनुभव किया कि अनुच्छेद 112 तथा 203 में ऐसा उपबन्ध रखना ठीक प्रतीत होता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 421 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 112 के खंड (2) को हटा दिया जाये।"

मैं इस विषय में डॉ. अम्बेडकर के विरुद्ध विश्वासघात का आरोप लगाना चाहता हूं। कुछ समय पूर्व मैंने अनुच्छेद 112क पर एक संशोधन पेश किया था जिसमें मैं विशेषतः यह चाहता था कि ऐसा उपबन्ध रखा जाये कि सैनिक न्यायालयों द्वारा मृत्यु दण्ड प्राप्त व्यक्ति उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकें। डॉ. अम्बेडकर ने मुझे आश्वासन दिया था कि ऐसे व्यक्ति अनुच्छेद 112 के अंतर्गत आ जाते हैं और उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 112 के अधीन दी गई शक्तियों के अंतर्गत उन व्यक्तियों पर ध्यान दे सकता है। शायद इस सदन की चर्चा पत्रों में छपी थी और प्रतिरक्षा विभाग ने, सैनिक न्यायालयों द्वारा मृत्यु दंड प्राप्त लोगों का इस अनुच्छेद से जो रक्षण होगा, उसके विरुद्ध अपने हाथ मजबूत करने चाहे हैं। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अभी कहा है कि यह आवश्यक है क्योंकि प्रतिरक्षा विभाग ऐसा चाहता है। शायद उन्होंने यहां के वाद-विवाद की रिपोर्ट पढ़ ली है और इसलिये उन्होंने इस उपबन्ध की मांग की है।

अतएव, मेरे विचार में, श्रीमान, यह उचित नहीं है। मैंने अपना संशोधन उस दिन इसी आश्वासन पर वापिस ले लिया था कि वह इस अनुच्छेद में आ जायेगा, और अब बिल्कुल उल्टा उपबन्ध रखा जा रहा है और वह स्वीकार होने वाला है। मैंने कई न्यायाधीश-अधिवक्ताओं को देखा है तथा सुना है जो इन सैनिक न्यायालयों से सम्बद्ध होते हैं और वे कहते हैं कि वे ही अभियोजन की तैयारी करते हैं और वे ही मुकदमों को सुनते हैं और फिर निर्णय देते हैं, और यदि कोई न्यायाधीश-अधिवक्ता अपने ही तैयार किये हुए मुकदमों के विरुद्ध प्रायः विनिश्चय करे तो सैनिक प्राधिकारी उसे ही हटा देते हैं। वे इस बात को पसन्द नहीं करते कि इन मुकदमों को खारिज किया जाये। मेरे विचार में, श्रीमान, यह गम्भीर मामला है। हाल ही में युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन में भी इन सैनिक न्यायालयों के प्रशासन पर गौर करने के लिये एक आयोग नियुक्त किया गया था तथा उसने भी यह सिफारिश की थी कि प्रक्रिया को अधिक सभ्य बना देना चाहिये और अनुशासन के नाम में लोगों की हत्या नहीं की जानी चाहिये। मैंने देखा है कि न्यायाधीश अधिवक्ताओं की वर्तमान प्रक्रिया न्याय-सिद्धान्त के सब नियमों के विरुद्ध

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है और मेरे विचार में जिन लोगों को मृत्यु दण्ड दिया जाये उन्हें तो अवश्य ही उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होना चाहिये। मेरे विचार में यह उपबन्ध अन्याया पूर्ण ही नहीं है, वरन् उस वचन के भी विरुद्ध है जो डॉ. अम्बेडकर ने मुझे पहले दिया था।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, मुझे इस खंड के विषय में संदेह है। मैं इस बात पर सर्वथा सहमत हूं कि सशस्त्र बलों को रक्षण दिया जाना चाहिये और कि सैनिक विधि का पुनरीक्षण उच्चतम न्यायालय द्वारा नहीं होना चाहिये। उस हद तक मैं सहमत हूं, किन्तु मैं बहुत से मामले बता सकता हूं जिनमें बहुत से सशस्त्र बलों का बहुत से नागरिक लोगों से संघर्ष हुआ था। श्रीमान, बहुत से सैनिक मोटर-चालकों के मामले थे जिन्होंने दुर्घटनाएं करके कई नागरिकों को मार डाला था और उन पर सैनिक न्यायालयों द्वारा मुकदमे चलाये गये जब 90 प्रतिशत मामलों में बेचारे असैनिकों को ही हानि उठानी पड़ी। उन्हें कोई प्रतिकर या न्याय प्राप्त नहीं हुआ और न सैनिक चालक को ही किसी तरह कोई दण्ड दिया गया। अतएव मेरा कहना यह है कि मसौदा समिति नगर की जनता के हित में कृपया इस बात का ध्यान रखे और यहां कोई प्रबन्ध या उपबन्ध कर दे कि इन दुर्घटनाओं से हानि उठाने वाली जनता की रक्षा की जा सके। उन पर सैनिक विधि से मुकदमा नहीं चलना चाहिये। मैं बहुत से मुकदमों के हवाले दे सकता हूं और यदि इन मुकदमों को असैनिक न्यायालयों में पेश किया जाता तो उचित न्याय हो सकता था। व्यवहार तथा दण्ड न्यायालयों में उन्हें प्रतिकर मिल जाता है और वहां दोषी को दण्ड दिया जाता है। इसी त्रुटि के कारण कई चालक इतने तेज चलाते हैं कि वे कई नागरिकों को मार डालते हैं। मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर का ध्यान इस मामले की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। शायद इस मामले पर पहले उनका ध्यान नहीं गया, किन्तु वह बहुत महत्वपूर्ण मामला है और हम सशस्त्र बलों की रक्षा तो करना चाहते हैं और उनकी अपील उच्चतम न्यायालय को नहीं आनी चाहिये, किन्तु असैनिकों की भी समान रूपेण रक्षा करनी चाहिये।

***श्री बी. दास:** मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस बात को स्पष्ट कर दें कि भारत के राज्य-क्षेत्र में न्यायाधिकरण का अर्थ आय-कर न्यायाधिकरण से है या विविध लेख न्यायाधिकरणों से है। यदि शक्ति का विस्तार किया जाये तो आयकर न्यायाधिकरण को एक दम विघटित कर दिया जाना चाहिये। हमारे यहां आयकर न्यायाधिकरण है जो अंतिम प्राधिकारी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या ये बातें प्रसंगानुकूल हैं? आयकर न्यायाधिकरण कहां से आ गया?

***श्री बी. दास:** इस अनुच्छेद में लिखा है:

" 'The Supreme Court may, in its discretion, grant special leave to appeal from any judgment, decree, determination, sentence or order in any cause or matter passed or made by any court or tribunal in the territory of India.'

[उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से भारत राज्य-क्षेत्र में के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुए किसी निर्णय, आज्ञप्ति, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा।]"

मैं आपसे केवल यह आश्वासन चाहता हूं कि 'न्यायाधिकरण' का अर्थ आयकर न्यायाधिकरण नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आपने अन्य व्यक्तियों के विषय में भी कहा था। जहां तक मुझे याद है, इसका संशोधन इस लिये किया गया था कि आयकर के मामले भी उच्चतय न्यायालय में जा सकें। मैं जानता हूं कि इसमें संशोधन किया गया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान, मेरे विचार में खंड (2) अत्यन्त विस्तृत तथा अनावश्यक दिखाई देता है। वह इस प्रकार है:

" 'Nothing in clause (1) of this article shall apply to any judgment, determination, sentence or order passed or made by any court or tribunal constituted by or under any law relating to the Armed Forces.

[सशस्त्र बलों से सम्बद्ध किसी विधि के द्वारा या अधीन गठित किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा पारित या दत्त किसी निर्णय, निर्धारण, दंडादेश या आदेश को खंड (1) की कोई बात लागू नहीं होगी।]"

जहां तक सैनिक व्यक्तियों और सैनिक अपराधों का सम्बन्ध है, वे उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार से विमुक्त रह सकते हैं; किन्तु सशस्त्र बलों के विषय में बहुत-सी विधियां हैं जो इन अधिनियमों के अधीन उन मुकदमों के विषय में हैं जिनमें अभियुक्त असैनिक लोग होते हैं या ऐसे सैनिक व्यक्ति होते हैं जो असैनिक अपराधों के दोषी हों। उदाहरण के लिये, कटक क्षेत्र अधिनियम के विषय में या प्रादेशिक बल अधिनियम के विषय में, कुछ ऐसे अपराध हैं जिनमें असैनिक लोग अभियुक्त होते हैं और कोई कारण नहीं है कि ऐसे दण्डादेश उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत न हों। अतः मेरे विचार में, इस खंड की भाषा बहुत विस्तृत है और उसमें संशोधन की आवश्यकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने जो बातें कहीं हैं उन्हें देखते हुए, मेरे लिये यह आवश्यक हो गया है कि मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तावित संशोधन के विषय में मैं कुछ कहूं। यह सर्वथा सत्य है कि जब हमने अनुच्छेद 112 पर विचार किया था तथा मेरे माननीय मित्र प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने संशोधन पेश किया था, उस समय मैंने यह अवश्य कहा था कि अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को क्षेत्राधिकार होगा कि वह सैनिक न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील को सुन सके। सिद्धान्त में वह बात अब भी ठीक है और मुझे इस विषय में कोई संदेह नहीं है, किन्तु मैं केवल यही बात कहना

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

भूल गया था कि हमारे उच्च न्यायालयों तथा ब्रिटिश न्यायालयों तथा प्रिवी परिषद् के निर्णयों के अनुसार यह सुमान्य सिद्धान्त है कि यद्यपि असैनिक न्यायालयों को विधि के अधीन क्षेत्राधिकार प्राप्त है पर वे सैनिक न्यायालय के निर्णय या आदेश को उलटने के लिये उसका प्रयोग नहीं करेंगे। मैं उन कारणों पर यहां कुछ नहीं कहना चाहता कि उच्चतर प्राधिकार वाले असैनिक न्यायालयों ने यह क्यों कहा है कि उन्हें क्षेत्राधिकार प्राप्त होते हुए भी वे उसका प्रयोग नहीं करेंगे, किन्तु तथ्य तो यही है और मैंने सोचा था कि यदि हमारे भारत के न्यायालय भी उसी विनिश्चय कर चलें जो ब्रिटिश न्यायालयों ने दिया है—लार्ड सभा, बादशाह की मंडली डिवीजन तथा प्रिवी परिषद् ने भी यही निर्णय दिया है और मैं यह भी कह सकता हूं कि हमारे फेडरल न्यायालय ने भी दो तीन मामलों में यही निर्णय दिया है–तो खंड (2) की आवश्यकता ही नहीं रहेगी; किन्तु दुर्भाग्य से प्रतिरक्षा मंत्रालय यह अनुभव करता है कि ऐसे महत्वपूर्ण मामले को संदेह की स्थिति में नहीं छोड़ना चाहिये और विधि रूप उपबन्ध होना चाहिये कि कोई असैनिक न्यायालय—चाहे उच्च न्यायालय हो या उच्चतम न्यायालय हो—किसी ऐसे न्यायालय या न्यायाधिकरण के विषय में, जो सशस्त्र बलों सम्बन्धी विधि के अधीन बना हो, ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

यह प्रश्न केवल परिकल्पना का ही नहीं है, वरन् इसका बहुत क्रियात्मक महत्व है क्योंकि इसमें सशस्त्र बलों के अनुशासन का प्रश्न अंतर्ग्रस्त है। यदि सशस्त्र बलों के विषय में कोई चीज आवश्यक है तो वह अनुशासन है। प्रतिरक्षा मंत्रालय यह अनुभव करता है कि यदि सशस्त्र बलों का कोई व्यक्ति उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय से यह आशा कर सकता है कि वह ऐसे न्यायालय या न्यायाधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उसकी सहायता कर सकता है जो सशस्त्र बलों में अनुशासन रखने के लिये बनाया गया है, तो अनुशासन समाप्त ही हो जायेगा। मुझे कहना होगा कि यह ऐसी युक्ति है जिसका कोई उत्तर नहीं है। इसी कारण इस संशोधन विशेष द्वारा अनुच्छेद 112 में खंड (2) को जोड़ दिया गया है और उच्च न्यायालयों की अधीक्षण की शक्तियों विषयक उपबंधों में भी ही उपबन्ध जोड़ दिया गया है। अनुच्छेद 112 में खंड (2) जोड़ने के लिये मेरा यही औचित्य है।

किन्तु मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इस खंड (2) से उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय की शक्तियां पूर्णतः समाप्त नहीं हो जातीं। विधि सशस्त्र बलों के सदस्य को पूरी तरह उस विधि विशेष के अधीन निर्मित न्यायाधिकरण की ही कृपा पर नहीं छोड़ देती है। क्योंकि, अनुच्छेद 112 के खंड (2) के होते हुए भी उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को क्षेत्राधिकार के प्रयोग का अधिकार होगा, यदि सैनिक न्यायालय उस क्षेत्राधिकार से आगे बढ़ जाये जो उसे सशस्त्र बलों सम्बन्धी विधि द्वारा प्रदत्त है। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने का अधिकार होगा कि क्या क्षेत्राधिकार का प्रयोग उस विधि के अंतर्गत किया गया है जिससे यह न्यायालय या न्यायाधिकरण बना था। दूसरी बात यह है कि यदि सैनिक न्यायालय साक्ष्य के बिना भी निर्णय दे दे तो भी उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को अपील पर विचार करने का अधिकार

होगा ताकि वह मालूम कर सके कि साक्ष्य है या नहीं। हां, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करने का अधिकार नहीं होगा कि साक्ष्य पर्याप्त है या नहीं है। यह मामला इन न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है। साक्ष्य है या नहीं, इस मामले पर वे विचार कर सकते हैं। इसी प्रकार मैं कह सकता हूं कि सशस्त्र बलों के व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह न्यायालयों से अपील कर सके कि वे लेख निकाल कर वह विचार कर सकें कि क्या उसके विरुद्ध सैनिक न्यायालय की कार्यवाहियां संसद-निर्मित किसी विधि के अधीन की गई हैं या वे मनमानी हैं। अतः मेरे विचार में, प्रतिरक्षा मंत्रालय द्वारा उठाई गई कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, यह अनुच्छेद आवश्यक है। इससे ऐसे नियम को मान्यता मात्र दी गई है जो पहले ही लागू है और जिसे समस्त बड़े न्यायालयों ने मान्यता दी है, इससे कुछ अधिक नहीं होता।

मुझे बताया गया है कि कुछ लोग सशस्त्र बलों सम्बन्धी विधि के विषय में कठिनाई अनुभव करते हैं। कहा जाता है कि सशस्त्र बलों में कई ऐसे व्यक्ति हैं जो वास्तव में 'मोर्चे वाले व्यक्ति' नहीं हैं, वे मोर्चे से पीछे रहते हैं। मुझे उन लोगों में विभेद करना असम्भव दिखाई देता है जो वास्तव में शस्त्र धारण करते हैं और अन्य लोग जो सेना अधिनियम के अधीन भर्ती किये जाते हैं, क्योंकि सशस्त्र बलों में अनुशासन इतना ही आवश्यक है जितना उन लोगों में अनुशासन बनाये रखना आवश्यक है जो सशस्त्र बलों में समाविष्ट नहीं हैं।

मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने यह प्रश्न उठाया है कि कभी सशस्त्र बलों का कोई सदस्य कोई अपराध कर देता है, तेज सवारी चला कर या और काम करके किसी को मार डालता है तो उस पर प्रायः सैनिक न्यायालय में मुकदमा चलता है और उसे साधारण दंड विधि न्यायालय के समक्ष लाने के लिये कोई कार्यवाही नहीं की जाती। खैर, मुझे पता नहीं है, किन्तु मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि जहां तक सशस्त्र बलों के सदस्य का सम्बन्ध है वह दुहरे क्षेत्राधिकार के अधीन होता है। निस्संदेह वह सैनिक विधि के अधीन निर्मित न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत है। साथ ही वह देश की सामान्य विधि से विमुक्त नहीं है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति ऐसा अपराध करता है जो भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत अपराध है और सेना अधिनियम के अधीन भी अपराध है तो उस पर दोनों अधिनियमों के अधीन मुकदमा चल सकेगा। यदि सेना का कोई सदस्य ऐसे मुकदमे से बच गया है तो इसका यही कारण है कि लोगों ने उस मामले का पीछा नहीं पकड़ा। विधि की सामान्य परिकल्पना यह है कि कोई व्यक्ति सशस्त्र बलों का सदस्य बन जाने से देश की सामान्य विधि के क्षेत्राधिकार से नहीं बच जाता। वह उसके अधीन रहता है, किन्तु उसके अतिरिक्त उस पर उस अधिनियम का दायित्व भी आ पड़ता है जिसके अधीन वह भर्ती हुआ है।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या उसे एक ही अपराध के लिये दो दण्ड मिल सकते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, हां।

***श्री आर.के. सिधवाः** इसे स्पष्ट क्यों नहीं कर देते?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह बिल्कुल स्पष्ट है। भारतीय दंड संहिता की धारा (2) में लिखा है। "प्रत्येक व्यक्ति"। "प्रत्येक व्यक्ति" का अर्थ है ऊंचा या नीचा सशस्त्र या शस्त्रहीन।

***अध्यक्षः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी। क्या आप इसके पश्चात् कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** नहीं, श्रीमान्

***अध्यक्षः** मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 421 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 112 के खंड (2) को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** मैं संशोधन सं. 421 में प्रस्थापित अनुच्छेद 112 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 15 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन सं. 364 के निर्देश से, अनुच्छेद 112 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:—

'112. (1) The Supreme Court may, in its discretion, grant special leave to appeal from any judgment, decree, determination, sentence or order in any cause or matter passed or made by any court or tribunal in the territory of India.

Special leave to appeal by the Supreme Court.

(2) Nothing in clause (1) of this article shall apply to any judgment, determination, sentence or order passed or made by any court or tribunal constituted by or under any law relating to the Armed Forces.'

[112. (1) उच्चतम न्यायालय, स्वविवेक से, भारत राज्य-क्षेत्र में के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुए किसी निर्णय, आज्ञप्ति, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा।

अपील के लिए उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत।

(2) सशस्त्र बलों से सम्बद्ध किसी विधि के द्वारा या अधीन गठित किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा पारित या दत्त किसी निर्णय, निर्धारण, दण्डादेश या आदेश को खंड (1) की कोई बात लागू न होगी।]"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 112, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 203 में, निम्न खंड जोड़ दिया जाये:—

'(4) Nothing in this article shall be deemed to extend the powers of superintendence of a High Court over any court or tribunal constituted by or under any law relating to the Armed Forces.'

[(4) इस अनुच्छेद की कोई बात उच्च न्यायालय को सशस्त्र बलों सम्बन्धी विधि के द्वारा या अधीन गठित किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण पर अधीक्षण की शक्तियां देने वाली न समझी जायेगी।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 122क

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 122क में, 'In this Chapter' इन शब्दों के पश्चात्, 'and in Chapter VII of Part VI of this Constitution' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

यह बहुत साधारण-सा मामला है। अनुच्छेद 122क में संविधान के निर्वचन का विषय है, जहां तक उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध है। अब हम यह कहना चाहते हैं कि यह खण्ड उच्च न्यायालय विषयक अध्याय पर भी लागू होगा, जहां तक विधि के सारवान प्रश्न के निर्देश से संविधान के निर्वचन का सम्बन्ध है। यह ऐसी भूल है जिस पर उस समय ध्यान नहीं गया था अब यह अनुच्छेद पारित किया गया था और यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें कोई सारवान प्रश्न अंतर्ग्रस्त हो। यह तो उस भूल का ही सुधार करना है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 122क में, 'In this Chapter' इन शब्दों के पश्चात्, 'and in Chapter VII of Part VI of this Constitution' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 130

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 130 को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 130 के खंड (1) में, 'may be exercised by him' इन शब्दों के स्थान पर, 'shall be exercised, by him either directly or through officers subordinate to him' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान, आज सदन ने अनुच्छेद 42 के विषय में जो राष्ट्रपति के विषय में है, कुछ चर्चा के पश्चात् एक ऐसा ही अनुच्छेद पारित किया है। हम राज्यपाल की कार्यपालिका शक्तियों के विषय में भी ऐसे ही शब्द रखना चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** श्री कामत का दूसरे अनुच्छेद पर एक संशोधन था। शायद इस पर भी ऐसा संशोधन है। क्या इस पर चर्चा करना आवश्यक है?

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे विचार में वे गलती को दोहरा रहे हैं। मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करता।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 130 के खंड (1) में, 'may be exercised by him' इन शब्दों के स्थान पर, 'shall be exercised by him either directly or through officers subordinate to him' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 169

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 169 को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 169 के खंड (3) के स्थान पर, निम्न खंड रख दिया जाये:–

'(3) In other respects, privileges, immunities and powers of a House of the Legislature of a State and of the members and the committees of a House of such Legislature shall be such as may from time to time be defined by the Legislature by law, and until so defined, shall be those of the House of Commons of the Parliament of the United Kingdom and of its members and committees at the commencement of this Constitution.'

[(3) अन्य बातों में राज्य के विधान-मंडल के प्रत्येक सदन की, ऐसे विधान मंडल के तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की, शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी वह विधान-मंडल, समय-समय पर, विधि द्वारा परिभाषित करे, तथा जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के आरम्भ पर इंग्लिस्तान की पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कामन्स की तथा उसके सदस्यों और समितियों की हैं।]"

यह उसी संशोधन के समान है जो अनुच्छेद 85 के खंड (3) पर प्रस्तावित किया गया था और सदन ने उसे स्वीकार किया था और हमारा उद्देश्य विधान-मंडल के सदनों की शक्तियों के विषय में, विधान-मंडलों के सदनों की समितियों के सदस्यों की शक्तियों और विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के विषय में ऐसे ही उपबन्ध रखना है।

***अध्यक्ष:** हमने संसद के विषय में अभी ऐसा ही उपबन्ध पारित किया है। यह राज्यों के विधान मंडलों के सम्बन्ध में है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 162 के खंड (3) के स्थान पर, निम्न खंड रख दिया जाये:—

'(3) In other respects, privileges, immunities and powers of a House of the Legislature of a State and of the members and the committees of a House of such Legislature shall be such as may from time to time be defined by the Legislature by law, and until so defined, shall be those of the House of Commons of the Parliament of the United Kingdom and of its members and committees at the commencement of this Constitution.' "

[(3) अन्य बातों में राज्य के विधान-मंडल के प्रत्येक सदन की, ऐसे विधान मंडल के तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की, शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी वह विधान-मंडल, समय-समय पर, विधि द्वारा परिभाषित करे, तथा जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के आरम्भ पर इंग्लिस्तान की पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कामन्स की तथा उसके सदस्यों और समितियों की हैं।]"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 213क

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 213क को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 213क के खंड (1) में, 'for the purposes of this Constitution' इन शब्दों के स्थान पर 'for all or any of the purposes of this Constitution' ये शब्द रख दिये जायें।"

यह संशोधन प्रथम अनुसूची के भाग 2 के राज्यों के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में है और यह भाषा मूल भाषा का विस्तार मात्र है और इस विस्तार पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मुझे वैधानिक परामर्शदाताओं ने मंत्रणा दी है कि यह आवश्यक है अत: यह संशोधन पेश किया जा रहा है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मुझे भय है कि हम बहुत से व्यर्थ संशोधन रख रहे हैं।

***अध्यक्ष:** क्या कोई कुछ कहना चाहता है? श्री सन्तानम् का ख्याल है कि यह अनावश्यक है और पं. भार्गव का भी यही ख्याल है। श्री कृष्णमाचारी, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इस मामले में मुझे भय है कि हमें अपने परामर्शदाताओं की बात को मानना होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** चाहे उन्होंने मूल प्रारूप में कोई गलती भी कर दी हो फिर भी, जब तक अनिवार्य न हो तब तक हमारे समक्ष इस समय कोई संशोधन पेश नहीं किया जाना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मुझे भय है कि हमने एक अन्य अनुच्छेद में एक और गलती की है यदि मैं अपने माननीय मित्र भी सन्तानम के तर्क को स्वीकार करूं। हमने 303, खंड (1) मद (11) उप-मद (2) में गलती की है। उसमें परिभाषा में लिखा है:

"any other court in the territory of India which may be declared by Parliament by law to be a High Court for all or any of the purposes of this Constitution."

यदि हम उच्च न्यायालय की परिभाषा में ये शब्द रखें तो, चाहे यह इस सदन के माननीय सदस्यों को कितना ही अनावश्यक क्यों न जंचे, फिर भी मैंने सोचा कि इसे उसी परिभाषा के अनुरूप बनाना सबसे अच्छा रहेगा जो इस सदन के अनुच्छेद के निर्वचन में सचमुच मुख्य अंग होगी।

***एक माननीय सदस्य:** यदि वे नितान्त आवश्यक हैं तो उन्हें तीसरे पठन के समय पेश किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि इस पर कोई वास्तविक विरोध है किन्तु सदस्य इसे अनावश्यक समझते हैं:

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 213क के खंड (1) में, 'for the purposes of Constitution' इन शब्दों के स्थान पर 'for all or any of the purposes of this Constitution' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 215 क

***अध्यक्ष:** हम 215क को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 215क को हटा दिया जाये।"

यह अनुच्छेद अनुसूचित और आदिम जातीय क्षेत्रों के विषय में है। वह इस प्रकार है:

"In this Constitution the expression 'scheduled areas' means the areas specified in Parts I to VII of the Table appended to paragraph 18 of the Fifth Schedule in relation to the States to which those parts respectively relate subject to any order made under sub-paragraph (2) of that paragraph."

फिर आदिमजातीय क्षेत्रों की परिभाषा पुन: दी गई है।

श्रीमान, सदन ने पंचम तथा षष्ट अनुसूची पारित कर दी है जिनमें वे सब बातें आ जाती हैं जो अनुच्छेद 215क के दो खंडों में अंतर्विष्ट हैं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 215क को हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** प्रस्तावना को लेने से पूर्व एक और मद लेनी है।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान, मुझे इस पर आपत्ति है कि प्रस्तावना को दिन के अंत में लिया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हमने प्रस्तावना को पेश नहीं किया है। मेरा सुझाव है कि अनुच्छेद 13 को कल तक के लिये उठा रखा जाये।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, आपने 445 को नहीं रखा।

***अध्यक्ष:** यह आज की कार्यावली में नहीं है। मेरे विचार में इसमें, अनुच्छेद 13 के अतिरिक्त, सब अनुच्छेद आ जाते हैं जो आज की कार्यावली में हैं। सुझाव यह है कि हम अनुच्छेद 13 को कल लें क्योंकि कुछ सदस्यों ने संशोधनों की सूचना दी है और वे विचारार्थ कुछ अधिक समय चाहते हैं। श्री सिधवा—क्या आपने 302कक का निदश किया है? यह कल आ रहा है। क्या हम प्रस्तावना को कल ले लें?

***माननीय सदस्यगण:** कल।

***अध्यक्ष:** आज जो पत्र घुमाया गया है उसमें कुछ अन्य अनुच्छेद भी हैं। हमें उन्हें कल प्रस्तावना के साथ ही निबटाना होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मसौदा समिति विचार कर सकती है कि क्या उनमें से कोई अनिवार्य है; अन्यथा वे आनुषंगिक संशोधनों के रूप में तीसरे पठन में पेश हो सकते हैं। हमें ऐसे संशोधनों पर समय खर्च नहीं करना चाहिये।

***अध्यक्ष:** जो खंड पारित हो चुके हैं उन पर संशोधनों के विषय में अधिक कुछ नहीं है। अन्य सारवान प्रस्थापनायें हैं। हां, मसौदा समिति स्वभावत: विचार तो करेगी ही कि इन संशोधनों पर जोर दिया जाये या नहीं।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या हम यह समझ लें कि कल सायंकाल तक हम सत्र को समाप्त कर देंगे?

***अध्यक्ष:** यह सब आप पर निर्भर है। मसौदा समिति आपसे अलग नहीं है। उसमें सदन के सब शामिल हैं।

तो फिर हम कल किस समय तक के लिये स्थगित होंगे? हम कल कब समवेत् होंगे?

***माननीय सदस्यगण:** कल प्रात:काल, नौ बजे।

***अध्यक्ष:** बहुत अच्छा, यदि सदन की यही इच्छा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हम 9 बजे समवेत् हो सकते हैं, ताकि हमें इसको समाप्त करने के लिये चार घंटे मिल जायें।

सदन कल प्रात: के 9 बजे तक के लिये स्थगित होता है।

तत्पश्चात् सभा सोमवार, तारीख 17 अक्तूबर 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

GIPD–HS-195 PSD–27-11-52–320.

Con. 3. X.10.49
320

अंक 10
संख्या 10

सोमवार
17 अक्तूबर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

	पृष्ठ
सदस्यों के भत्ते सम्बन्धी प्रस्ताव	3333-3338
संविधान का मसौदा–(जारी)	3338-3448
[अनुच्छेद 59, 62, 147, 175, 13 तथा अनुच्छेद 302 ककक, अनुसूची 3 क, भाग 18, अनुच्छेद 315, 306 क, और प्रस्ताव पर विचार]	

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 17 अक्तूबर, 1949

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत् हुई।

सदस्यों के भत्ते संबंधी प्रस्ताव

***अध्यक्षः** सबसे पहले श्री मुनिस्वामी पिल्ले के प्रस्ताव को हम लेंगे।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुज्ञा से मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि भारतीय संविधान सभा के सदस्यों के भत्तों को शासित करने वाले नियमों में निम्नलिखित संशोधन किये जायें:

'(1) That in rule (D), relating to daily allowance, in paragraph 4 of the Handbook for members, and in paragraph 8 (relating to allowances admissible to members residing at the place where the Assembly meets) of the said Handbook, for the figure, brackets and words 'Rs. 45 (Rupees forty-five)', The figure, brackets and words 'Rs. 40 (Rupees forty)' be substituted.

(2) That exception (c) to Note 1 under rule (A) in paragraph 4 of the Handbook for members, be deleted.'

[(1) कि सदस्यों के लिये गुटका की कंडिका 4 में दैनिक भत्ते संबंधी नियम (घ) में और उपरोक्त गुटका की कंडिका 8 में (जो उन भत्तों के संबंध में है जो सभा समवेत् होने के स्थान में रहने वाले सदस्यों को ग्राह्य हैं) 'Rs. 45 (Rupees forty-five)' संख्या, कोष्ठक और शब्दों के स्थान में 'Rs. 40 (Rupees forty) संख्या कोष्ठक और शब्द रखे जायें।

(2) कि सदस्यों के लिये गुटका की कंडिका 4 में नियम (क) के अधीन टिप्पणी 1 का अपवाद (ग) अपमार्जित किया जाये।]"

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

श्रीमान, कुछ कारणवश इस प्रस्ताव को सभा के सामने लाया गया है। इस महान सभा का प्रत्येक सदस्य भारत की वर्तमान सामान्य आर्थिक स्थिति से परिचित है तथा वर्तमान वित्तीय संकट से भी परिचित है। समस्त देश में इस बात की चीख पुकार मची हुई है कि सरकार को मदद करने के लिये इधर-उधर से कुछ बचत करनी चाहिये। यह जो संशोधन मैंने पेश किया है उसमें ये बात है कि दैनिक भत्ते के रूप में जिन सदस्यों को 45 रुपये प्रति दिन पाने का हक है वे उसमें से 11 प्रतिशत छोड़ देंगे और इस प्रकार वह 40 रुपये रह जायेगा। यद्यपि मैं यह मानता हूं कि यह एक छोटा-सा त्याग है। आज जो आर्थिक स्थिति वर्तमान है उसको सुधारने के लिये इस महान निकाय को देश के समक्ष एक मार्ग प्रदर्शन करना है।

श्रीमान, यह 40 रुपये की राशि, जिसे हम अपने दैनिक भत्ते के रूप में कम करके रखने का प्रस्ताव कर रहे हैं हमारा वेतन नहीं है। यह विषय कर्मचारी-वृन्द और वित्त समिति के सामने आया था और इस समिति के सदस्यों ने यह सोचा कि इस विषय को संविधान सभा के समक्ष रखा जाये। सदस्य स्वेच्छापूर्वक अपने दैनिक वेतन में से 11 प्रतिशत की कमी कर रहे हैं। इस महान सभा के कई सदस्यों से मैंने बातें कीं और मुझे विदित हुआ कि वे सब इस विचार से सहमत थे कि दैनिक भत्ते में से पांच रुपये की कमी से कोई कठिनाई नहीं होगी। ऐसी दशा में मैं आशा करता हूं कि सदस्यों के दैनिक वेतन को 45 रुपये से घटा कर 40 करने में यह सभा अपनी सम्मति देगी।

मेरे संशोधन का दूसरा भाग यह है कि सदस्यों के लिये गुटका की कंडिका 4 में के नियम (क) के अधीन टिप्पणी 1 के अपवाद (ग) को अपमार्जित किया जाये। मद्रास से आने के कारण मैं जानता हूं कि दिल्ली से बलहरशाह तक तथा बलहरशाह से दिल्ली तक गाड़ी में उपाहार के लिये एक डिब्बा लगाने का प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध से सदस्यों को भोजन तथा अन्य बातों में कुछ सुविधा मिलती है। एक बार यह समझा गया था कि इस उपाहार के लिये लगाये गये डिब्बे में अधिकतर पाश्चात्य ढंग की मांगों की पूर्ति नहीं होती है। पर वर्तमान प्रबन्ध जो अधिकांश रूप में भारतीय ढंग का है वह शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजनों की व्यवस्था करता है। मेरी राय से दिल्ली से मद्रास और वापसी यात्रा के लिये किया गया यह प्रबन्ध संतोषजनक है। बलहरशाह से मद्रास तक प्रबन्ध पूर्णतया संतोषजनक नहीं है, क्योंकि बलहरशाह पर उपाहार का डिब्बा काट दिया जाता है। पर मार्ग में प्रथम कोटि के उपाहारगृह मिलते हैं और प्रत्येक महत्वपूर्ण स्टेशन पर भोजन का प्रबन्ध करने वाले सेवक यात्रियों से मिलते हैं और उनसे आदेश प्राप्त कर व्यालू तथा अन्य बातों का प्रबन्ध या तो गाड़ी ही में या गाड़ी के रुकने के स्थानों पर करते हैं।

अतः नियमों में ये दो परिवर्तन आवश्यक हैं और मैं आशा करता हूं कि सदस्य इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार करेंगे।

***अध्यक्षः** इस प्रस्ताव पर श्री शंकरराव देव ने एक संशोधन की सूचना दी है।

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जरनल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (सी.पी. और बरार : जनरल): सभापति महोदय, मैंने श्री मुनिस्वामी पिल्ले जी के इस मोशन पर एक अमेंडमेंट भेजी है उसे मैं पेश करता हूं और वह इस तरह है। श्री मुनिस्वामी जी का मोशन है कि इस असेम्बली के सदस्यों को जो 45 रुपये रोज का डेली अलाउंस मिलता है उसके बजाय 40 रुपया मिले। मैंने श्री मुनिस्वामीजी के इस मोशन पर कि 40 रुपया मिले यह अमेंडमेंट भेजी है कि 40 रुपये के बजाय इस हाउस के हर सदस्य को 20 रुपया रोजाना भत्ता मिले। मेरी इस अमेंडमेंट के भेजने का खास कारण है, वह यह कि जब हम इस देश को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये लड़ते थे उस वक्त हममें से हर एक व्यक्ति ने और इस देश के लाखों और करोड़ों व्यक्तियों ने इस देश को स्वतंत्र बनाने के लिये जितना चाहिये उतना त्याग किया। और त्याग करने के बाद महात्मा जी की कृपा से हमें स्वराज्य मिला और हमने इस देश को स्वतंत्र बनाया। स्वतंत्र बनाने के बाद, सभापति जी, इस देश में इस प्रकार का वातावरण पैदा हुआ कि जो कोई भी स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लेने वाला था वह हर आदमी अब यह चाहता है कि मैं कुछ न कुछ ज्यादा कमाऊं और अब मैं अपना जीवन सफल और सुखी करूं। परन्तु स्वतंत्रता मिलने के बाद भी उसको निभाने के लिये इस देश के हर एक व्यक्ति को त्याग करने की जरूरत है। अगर हम इस देश की स्वतंत्रता निभाने के लिये त्याग न करें और आज जो देश की परिस्थिति है यही परिस्थिति आगे चलती रही तो मुझे डर मालूम होता है कि देश की स्वतंत्रता कब तक ठीक रहेगी और कब तक टिकेगी। देश की सरकार की आर्थिक दशा भी बहुत बुरी होती जा रही है और इसलिये उस आर्थिक दशा को दुरुस्त करने के लिए जितना ज्यादा हो उतना ज्यादा त्याग करना चाहिये।

हम तो पहले ही सब त्यागी पुरुष हैं। श्री शंकरराव देव जी ने अपनी अमेंडमेंट मूव नहीं की। मैं चाहता था कि वे मूव करते और उन जैसे आदमी को, जो सात हाथ धोती नहीं पहनते, कुरता और टोपी भी नहीं पहनते उन्होंने जो अमेंडमेंट भेजी है वह खास उनके लिये ठीक नहीं थी। उनकी अमेंडमेंट तो ऐसी होनी चाहिये थी कि इस हाउस के सदस्य को एक पैसा भी नहीं लेना चाहिये। वह तो बैचलर हैं, यानी उनकी शादी नहीं हुई। दूसरे, उनके कोई घर और द्वार नहीं है। तीसरे, वह जो कपड़ा पहनते हैं वह मेरे जैसा नहीं हैं। मैं तो उन्हें महान् त्यागी पुरुष कहूंगा। इतना ही नहीं, वह तो बैरागी हैं। ऐसे बैरागी और त्यागी पुरुष को इस तरह की अमेंडमेंट भेजना ठीक नहीं था।

***श्री एम. सत्यनारायण** (मद्रास : जनरल): मैं पूछना चाहता हूं कि क्या इस तरह किसी व्यक्ति के बारे में कहा जा सकता है?

श्री एच.जे. खांडेकर: नहीं, नहीं। मैं तो उनकी तारीफ कर रहा हूं। मैं तो उन्हें त्यागी, बैरागी, सब कुछ कह रहा हूं। उनके खिलाफ तो मैं कुछ भी नहीं कह रहा हूं। मैं तो यही कहना चाहता हूं कि उन जैसे नेता को इस प्रकार की अमेंडमेंट लानी थी कि हम में से किसी को भी एक पाई नहीं लेनी चाहिये। मैं यही कहना चाहता हूं।

[श्री एच.जे. खांडेकर]

लेकिन मैं तो घरबारी आदमी हूं, मैं कपड़े पहनने वाला हूं, मेरे बाल बच्चे हैं, मेरे मकान हैं और मेरा संसार है। इसलिये मैं तो कुछ न कुछ लेना चाहूंगा। लेकिन उसके साथ-साथ कुछ त्याग भी करना चाहूंगा। तो इन दोनों बातों को मद्देनजर रखते हुए मैंने ऐसी अमेंडमेंट पेश की है कि इस हाउस के हर सदस्य को जो मेरे जैसा है और शंकरराव जी जैसा नहीं है उसको कम से कम 20 रुपये डेली अलाउंस लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ, सभापति जी, मैं कहना चाहता हूं कि मेरा जो यह अमेंडमेंट है वह बहुत रीजनेबुल है और हर सदस्य को जिसने आज तक इतना त्याग किया है उसे आगे भी त्याग करने की कोशिश करनी चाहिये और त्यागियों के लिये मेरी ही अमेंडमेंट ठीक है ऐसा मेरा विश्वास है। हर त्यागी को इसे पसन्द करना चाहिये।

त्याग की बातें तो हम इस सभागृह के बाहर हर इन्सान से और हर व्यक्ति से, इस असेम्बली के सदस्यों से और कांग्रेस मंच से सुनते हैं और हमारे नेतागण यह कहा करते हैं कि हमको देश के लिये जितना ज्यादा हो सके उतना अधिक त्याग करना चाहिये। लेकिन अगर हम मुनिस्वामी पिल्ले जी की इस अमेंडमेंट को जिसमें सिर्फ पांच रुपये का त्याग है—इससे ज्यादा का त्याग तो उसमें है नहीं—हम स्वीकार करें तो यह इस हाउस के बड़े-बड़े सदस्यों के लिये बहुत अच्छी बात नहीं है। यह आपके योग्य त्याग नहीं है और अगर आप देहात में जायेंगे और कहेंगे कि हमने अपनी आमदनी में से 5 रुपये रोज का त्याग किया है तो सब लोग हंसेंगे।

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल): क्या इस प्रश्न पर वाद-विवाद करना आवश्यक है?

***श्री एच.जे. खांडेकर:** श्रीमान, अब मैं अपने भाषण को समाप्त कर रहा हूं। इसलिये, सभापति जी, मेरी जो अमेंडमेंट है वह बहुत ठीक है और मैं आशा करता हूं कि इस अमेंडमेंट को हाउस मंजूर करेगा।

(श्री आर.के. सिधवा भाषण देने के लिये खड़े हुये।)

***अध्यक्ष:** क्या कोई वाद-विवाद आवश्यक है?

***माननीय सदस्यगण:** इस विषय पर अब मत लिया जाये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, इस प्रस्ताव का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं जिसको.....

***अध्यक्ष:** इस वाद-विवाद से क्या लाभ?

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, केवल एक बात जिसे मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि यह कमी स्वेच्छापूर्वक होनी चाहिये। मंत्री स्वेच्छापूर्वक कमी कर रहे हैं। हम सर्वसम्पति से यह घोषणा कर सकते हैं कि हम भी 5 रुपये प्रति

दिन छोड़ देंगे। नियमों में संशोधन करने तथा इसे अनिवार्य बनाने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा। और कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्षः** श्री सिधवा का आशय यह है कि नियमों में संशोधन करने की बजाय इसे एक संकल्प के रूप में रहने दीजिये जिसका प्रत्येक सदस्य पालन करेगा। उनका आशय यह है कि नियमों के संशोधन द्वारा इसे अनिवार्य बनाने की बजाय इसे संकल्प के रूप में रहने दिया जाये जिसे प्रत्येक सदस्य स्वीकार कर लेगा।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** श्री खांडेकर द्वारा पेश किये गये संशोधन पर क्या मैं कुछ शब्द कह सकता हूं। जहां तक श्री सिधवा की बात का संबंध है एक संकल्प का व्यवहार में वही अर्थ होता है।

***अध्यक्षः** कार्यालय बिल किस प्रकार बनायेगा?

***श्री आर.के. सिधवाः** संकल्प के आधार पर।

***अध्यक्षः** जी नहीं, स्वेच्छित संकल्प के आधार पर कार्यालय बिल नहीं बना सकता। जब तक कि सम्बद्ध सदस्य लिखित रूप में न दे। क्या यहां के प्रत्येक सदस्य के लिये आप ऐसा कर सकते हैं? प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत रूप से ऐसा करना पड़ेगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** मंत्रियों के वेतन एक अधिनियम द्वारा अधिनियमित हैं। उस अधिनियम का संशोधन नहीं किया गया है। फिर भी कटौती स्वेच्छापूर्वक की गई है। इस दशा में भी ऐसी ही प्रक्रिया स्वीकार कर लेनी चाहिये।

***अध्यक्षः** मंत्री संख्या में बहुत कम हैं और सब इस बात को लिख कर दे सकते हैं। परन्तु हम यहां पर 300 से भी अधिक हैं। हम सब यहां उपस्थित भी नहीं हैं।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): एक बात और है, हमारे बहुत से सदस्य यहां नहीं हैं। इस कारण सभा को ही इस प्रश्न पर विनिश्चय करने दीजिये।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** श्रीमान, इन नियमों को इस सभा ने बनाया था और मैं समझता हूं कि यही ठीक है कि एक प्रस्ताव पेश किया जाये और वह पारित किया जाये। श्री खांडेकर इस प्रश्न का उल्लेख कर रहे थे कि सदस्यों को क्या कोई अतिरिक्त व्यय मिलता है। मैं भी यह समझता हूं कि यह बात संगत है। इस सभा में हमने जब मूल प्रस्ताव स्वीकार किया था तो किसी व्यक्ति विशेष का न कोई संबंध था न उल्लेख किया गया था। कुछ सदस्य ऐसे थे जिनके परिवार तथा सेवक यहां थे। इस प्रकार बहुत खर्च वाली दो व्यवस्थायें उनकी थीं। जिस समय नियम बनाये गये थे सत्ता ने सर्वसम्मति से 45 रुपये भत्ता स्वीकार किया था अब इस प्रस्ताव द्वारा उसमें से 5 रुपये कम करके 40 रखने का प्रयास किया जाता है और बम्बई होकर चक्करदार मार्ग के बजाय तथा इस प्रकार सरकार से अधिक रुपया देने की बजाय हम सबसे छोटे मार्ग के लिये व्यवस्था कर रहे हैं और जो राशि वास्तव में है उसे देने की व्यवस्था कर रहे हैं।

***अध्यक्ष:** सबसे पहले मैं श्री खांडेकर के संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि नियम (घ) और कंडिका 8 पर के संशोधन में प्रस्थापित 'Rs. 40 (Rupees forty)' संख्या, कोष्ठक और शब्दों के स्थान में 'Rs. 20 (Rupees twenty)' संख्या, कोष्ठक और शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि भारतीय संविधान सभा के सदस्यों के भत्तों को शासित करने वाले नियमों में निम्नलिखित संशोधन किये जायें:

'(1) That in rule (D), relating to daily allowance, in paragraph 4 of the Handbook for members, and in paragraph 8 (relating to allowances admissible to members residing at the place where the Assembly meets) of the said Handbook for the figure, brackets and words 'Rs. 45 (Rupees forty-five)' the figure, brackets and words 'Rs. 40 (Rupees forty)' be substituted.

(2) That exception (c) to Note 1 under rule (A) in paragraph 4 of the Handbook for members, be deleted.'

[(1) कि सदस्यों के लिये गुटका की कंडिका 4 में दैनिक भत्ते संबंधी नियम (घ) में और उपरोक्त गुटका की कंडिका (8) में (जो इन भत्तों के संबंध में हैं जो सभा समवेत् होने के स्थान में रहने वाले सदस्यों को ग्राह्य हैं) 'Rs. 45 (Repees forty five)' संख्या, कोष्ठक और शब्दों के स्थान में 'Rs. 40 (Rupees forty)' संख्या, कोष्ठक और शब्द रखे जायें।

(2) कि सदस्यों के लिये गुटका की कंडिका 4 में नियम (क) के अधीन टिप्पणी 1 का अपवाद (ग) अपमार्जित किया जाये।]"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संविधान का मसौदा–(जारी)

अनुच्छेद 59

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम कार्यावली के अनुच्छेदों पर विचार करना आरम्भ करेंगे। अनुच्छेद 59 संशोधन संख्या 445।

***माननीय श्री के. सन्तानम** (मद्रास: जनरल): क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि हम उन अनुच्छेदों को लें जिन पर संशोधन कुछ समय पहले घुमा दिये गये थे। ये संशोधन तो हमें आज सुबह ही दिये गये हैं।

***अध्यक्ष:** सदस्यों में ये कल सायंकाल को, जब कि हम सभा में बैठे हुए थे, बांट दिये गये थे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 59, 62, 141, 175 और 13 पर संशोधनों का अर्थ यह होगा कि जो अनुच्छेद पास हो चुके हैं उनको फिर से लिया जाये। क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि सभा की अनुज्ञा ले ली जाये?

***अध्यक्ष:** क्या इन अनुच्छेदों को फिर से ले लेने के लिये सभा अनुमति देती है।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 59 के खंड (1) के उपखंड (ख) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रखा जाये:

'(b) in all cases where the punishment or sentence is for an offence under any law relating to a matter to which the executive power of the Union extends;

[(ख) उन सब अवस्थाओं में जिनमें कि दंड अथवा दंडादेश ऐसे विषय सम्बन्धी किसी विधि के अधीन अपराध के लिये दिया गया हो जिस विषय तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है;]"

मूल अनुच्छेद 59 का उपखंड (ख) जो राष्ट्रपति की क्षमा प्रदान करने की शक्ति के संबंध का है वह इस प्रकार है:

"(ख) उन सब अवस्थाओं में जिनमें कि दंड अथवा दंडादेश ऐसे विषय संबंधी किसी विधि के अधीन अपराध के लिये दिया गया हो जिस विषय के लिये विधि बनाने की शक्ति संसद को है और उस राज्य के विधान मंडल को नहीं है जिसमें कि अपराध किया गया हो।"

इसका अर्थ यह है कि समवर्ती क्षेत्र एक बहुत ही अस्पष्ट स्थिति में छोड़ दिया जायेगा। अनुच्छेद 60 में यह उपबंध किया गया है कि जिन विषयों के लिये संसद ऐसा विनिश्चित करे उन विषयों में संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार समवर्ती क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों के संबंध में राज्यों तक होगा। यह

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

स्थिति अस्पष्ट रह जायेगी। अतः इस संशोधन द्वारा इस दोष के निराकरण का प्रयत्न किया गया है और राष्ट्रपति के क्षमा करने की शक्ति का विस्तार उन सब विषयों तक कर दिया है जिन तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।

अनुच्छेद 141 में, जिसमें कि राष्ट्रपति को क्षमा करने की शक्ति दी गई है, एक आनुषंगिक संशोधन करना पड़ेगा जिसे मैं, यदि सभा द्वारा यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो, अभी पेश करूंगा।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** श्रीमान इस पर मैंने एक संशोधन रखा है। पर मैं इसे इस समय से पूर्व न भेज सका।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 20 के संशोधन संख्या 445 में अनुच्छेद 59 के खंड (1) के प्रस्थापित उप-खंड (ख) में 'offence under any law' शब्दों के पश्चात् 'made by Parliament' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन संख्या 445 के प्रयोजन को मैं समझता हूं, पर वह अपने उद्देश्य से भी अधिक व्यापक हो गया है। क्योंकि संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार संसद द्वारा निर्मित विधियों तक ही नहीं होता है वरन् राज्य के विधान मंडल द्वारा बनाई हुई कुछ विधियों तक भी होता हे। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 234 और 234 क में, जो निदेश देने के संबंध में हैं, संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधियों तक है। कल वित्त संबंधी आपात के विषय में हमने यह उपबंध किया है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक है जिनका संबंध मुद्रा विधेयकों तथा वित्तीय विषयों से है। हम यह नहीं चाहते हैं कि राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के अधीन अपराधों की अवस्था में क्षमा करने का अधिकार राष्ट्रपति को हो। इस कारण मैं इसे संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन अपराधों तक ही समिति रखना चाहता हूं। बात यह है कि जब संसद कोई विधि समवर्ती सूची के अधीन बनाती है और संघ की कार्यपालिका को कार्यपालिका शक्ति दे देती है तब तो क्षमा की शक्ति राष्ट्रपति को होनी चाहिये। परन्तु राष्ट्रपति को क्षमा करने का अधिकार हम नहीं देना चाहते हैं चाहे कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य के विधान मंडल द्वारा बनाई गई विधियों तक हो। अतः मैं समझता हूं कि संशोधन बहुत अधिक व्यापक है और मैं उसे संसद द्वारा निर्मित विधियों तक सीमित रखना चाहता हूं।

मसौदा समिति जो कि बहुत थकी हुई है जल्दी में बनाये हुए संशोधनों को पुनःस्थापित करने का प्रयास कर रही है। न तो जांच करने का उसके पास समय है और न हमारे पास ही।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान् औचित्य प्रश्न पर क्या मैं यह कह सकता हूं कि माननीय सदस्य को अपने प्रति कहने का पूर्ण अधिकार है। उनके पास समय नहीं था, हम इस बात से सहमत हैं। पर यह कह कर कि मसौदा समिति के पास जांच करने के लिए समय नहीं था, मैं नहीं समझता हूं, कि उन्हें मसौदा समिति की निन्दा करनी चाहिये। यदि इन संशोधनों की जांच करने का समय हमारे पास नहीं होता तो हम इन्हें प्रस्तुत न करते।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): यह कहना कि मसौदा समिति के पास समय नहीं था मसौदा समिति की किसी प्रकार से निन्दा करना नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** उनके उद्देश्य या योग्यता के प्रति मैं शंका नहीं कर रहा हूं, मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि वे जल्दी में हैं जो कि एक सच बात है।

***अध्यक्ष:** अब हम खंडों की समाप्ति पर हैं और चार या पांच खंडों पर हमें झगड़ा नहीं करना चाहिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** पर जो संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं उनमें से कुछ ऐसे सारवत् विषय के हैं कि मैं समझता हूं कि उन पर देर तक वाद-विवाद करना होगा। श्रीमान् इस विषय को मैं आप पर छोड़ता हूं, परन्तु जहां तक इस वर्तमान विषय का संबंध है, मैं समझता हूं कि "made by Parliament" शब्द अर्थ को स्पष्ट तथा ठीक करने के लिए नितान्त आवश्यक है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मेरे मित्र श्री सन्तानम द्वारा पेश किया गया संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है। चूंकि वे अनुच्छेद 60 में दिये गये उपबन्धों को ध्यान में रखना भूल गये इस कारण उन्होंने यह पेश किया है। अनुच्छेद 60 में यह कहा गया है कि संघ की कार्यपालिका का विस्तार उन सब विषयों तक होगा जिनके लिये संसद को विधियां बनाने की शक्ति है, परन्तु जब तक संसदीय विधि इस प्रकार उपबंधित न करे उसका विस्तार उन विषयों तक इस प्रकार से नहीं होगा जिनके सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति राज्य के विधान मण्डल को भी है अर्थात् समवर्ती सूची के विषयों तक। अत: अनुच्छेद 59 के खंड (1) के उप-खंड (ख) में जो संशोधन मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी ने पेश किया है वह संसद की विधि बनाने की शक्ति से परे नहीं जा सकता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** इस अनुच्छेद में केवल उन्हीं विधियों तक सीमित रखने की बात नहीं कही गई है, उसका और आगे तक भी विस्तार हो सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, उसका और आगे तक विस्तार नहीं हो सकता है। उपखंड (ख) में संशोधन करने की यह आवश्यकता है कि केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार केवल सूची 1 में दिये हुए विषयों तक ही

[माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर]

नहीं है वरन् सूची 3 में दिये हुए विषयों तक भी है। और मसौदा समिति की स्थिति यह है कि जब कभी संसद द्वारा कोई विधि बनाई जाती है तो सूची 3 में दिये हुए किसी विषय के सम्बन्ध में यदि वह विधि केन्द्र को कार्यपालिका शक्ति देती है तो राष्ट्रपति को प्राविलम्बन मंजूर करने की शक्ति का विस्तार उस विधि तक होना चाहिये। इस कारण ये शब्द आवश्यक हैं। श्री सन्तानम का संशोधन पूर्णतया अनावश्यक तथा प्रसंग विरुद्ध है क्योंकि अनुच्छेद 60 के अंतर्गत वह बात आ जाती है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 20 के संशोधन संख्या 445 में अनुच्छेद 50 के खंड (1) के प्रस्थापित उपखंड (ख) में 'offence under any law' शब्दों के पश्चात् 'made by Parliament' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 59 के खंड (1) के उपखंड (ख) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रखा जाये:

'(b) In all cases where the punishment or sentence is for an offence under any law relating to a matter to which the executive power of the Union extends;

[(ख) उन सब अवस्थाओं में जिनमें कि दंड अथवा दंडादेश ऐसे विषय सम्बन्धी किसी विधि के अधीन अपराध के लिए दिया गया हो जिस विषय तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।]"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 62

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (5) में 'who from the date of his appointment is, for a period of six consecutive months, not a member' शब्दों के स्थान में 'who for any period of six consecutive months is not a member' शब्द रखे जायें।"

मंत्रियों की योग्यता अथवा कदाचित् निर्योग्यता के संबंध में यह एक कोरा शाब्दिक परिवर्तन है। यदि मेरी स्मरण शक्ति ठीक है तो जिस समय हम इस

अनुच्छेद को पारित कर रहे थे तो उस समय मेरे माननीय मित्र श्री गुप्ते ने यह कहा था कि यह शब्दावली अधिक उपयुक्त है। और मैं समझता हूं कि इस स्थिति का परीक्षण करने का विचार डॉ. अम्बेडकर के मन में था। हम समझते हैं कि यह शब्दावली अधिक उपयुक्त है और इसी कारण हमने इस संशोधन का सुझाव रखा है।

इस प्रसंग में मैं यह भी कह दूं कि एक संशोधन मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम ने दिया है जो बिल्कुल सही हो सकता है, पर वह भी भाषा परिवर्तन करने का ही विषय है। वास्तव में संशोधन में कोई सार-विषय नहीं है वरन् शब्दों को एक ऐसे ठीक रूप में रख दिया है कि जिससे भविष्य में किसी भ्रमपूर्ण निर्वचन से बच सकें।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** जैसा कि मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी ने कहा है वह बिल्कुल ठीक बात है कि मेरा संशोधन विषयों के स्पष्टीकरण मात्र के लिए है, क्योंकि जिस रूप में सरकारी संशोधन है उसमें यह बात स्पष्ट नहीं है कि छः महीने की अवधि को कहां से आरम्भ किया जाये और उसकी किस प्रकार गणना हो। यह भी अर्थ लगाया जा सकता है—यद्यपि वह अर्थ ठीक प्रतीत न हो—कि उसके मंत्री होने के पूर्व से ही इस अवधि की गणना की जाये क्योंकि यह कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति संसद् का सदस्य नहीं है तो उसे मंत्री नियुक्त नहीं किया जा सकता। हमारा उद्देश्य यह है कि कोई व्यक्ति, जो संसद का सदस्य नहीं है मंत्री नियुक्त किया जा सकता है, पर इस नियुक्ति के पश्चात् वह छः महीने के अन्दर सदस्य हो जाये और बाद में सदस्य बना रहे। इस कारण मेरा संशोधन यह है:

> "कि सूची 20 के संशोधन संख्या 446 में प्रस्थापित 'who for any period of six consecutive months is not a member' शब्दों के स्थान में 'who, 'after the date of his appointment is for any period of six consecutive months not a member' शब्द रखे जायें।"

जब हमने भारत शासन अधिनियम, 1935 की शब्दावली में परिवर्तन किया था तो उस समय मुझे याद है कि इस बात पर हमने वाद-विवाद किया था और उस अवधि के आरम्भ के लिए हमने 'नियुक्ति तिथि से' शब्द रखे थे। पर उस का यह भी निर्वचन हो सकता था कि बाद में छः महीने के पश्चात् वह सदस्य न रहे और ऐसी अवस्था उसके अंतर्गत न आ सके। अतः मैं इस बात से सहमत हूं कि संशोधन वांछनीय है। परन्तु यदि नियुक्ति तिथि के बाद' शब्द रख दिये जायें तो वह और अधिक ठीक हो जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि श्री सन्तानम ने जिस 'बाद' शब्द का सुझाव दिया है उसके स्थान में 'से' शब्द अधिक उपयुक्त होगा? 'बाद' सही नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** 'से' का यह अर्थ हो सकता है कि प्रथम छः महीने तक वह सदस्य रहे और उसके बाद यदि वह सदस्य न रहे तो भी मंत्री बना रह सकता है। इस कमी को दूर करने का हम प्रयास कर रहे हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्री सन्तानम के संशोधन के संबंध में केवल एक बात मैं कहना चाहूंगा। उनका संशोधन लगभग वैसा ही है केवल एक जरा-सा अन्तर है वह यह कि कोई व्यक्ति मंत्री है और उचित रीति से निर्वाचित होने के पश्चात् और बाद में मूल निर्वाचन के चार या पांच महीने के पश्चात् निर्वाचन में कोई अनियमितता मालूम हुई और उस निर्वाचन को रद्द कर दिया तो श्री सन्तानम के संशोधन के अंतर्गत ऐसी अवस्था के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। अत: मैं यह सुझाव दूंगा कि हमें ऐसी गलती करनी चाहिये जिसमें कम क्षति हो और सभा को वह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये जिसे मैंने पेश किया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम :** मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं संशोधन संख्या 446 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (5) में 'who from the date of his appointment is, for a period of six consecutive months, not a member' शब्दों के स्थान में 'who for any period of six consecutive months is not a member' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 147

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं संशोधन संख्या 447 को पेश करता हूं, जो इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 147 में 'with respect to which the Legislature of the State has power to make laws' शब्दों के स्थान में 'to which the executive power of the State extends' शब्द रखे जायें।"

संशोधन संख्या 445 पेश करते समय मैं इस स्थिति की व्याख्या कर चुका हूं और उस संशोधन को इस सभा ने कृपापूर्वक स्वीकार कर ही लिया है। इसमें जहां तक राज्यपाल की क्षमा करने की शक्तियों का संबंध है वहां तक उस स्थिति को संभालने का प्रयास किया गया है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 147 में 'with respect to which the Legislature of the State has power to make laws' शब्दों के स्थान में 'to which the executive power of the State extends' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 175

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 175 के साथ निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided further that the Governor shall not assent to, but shall reserve for consideration of the President, any Bill which in the opinion of the Governor would, if it became law, so derogate from the powers of the High Court as to endanger the position which that Court is by this Constitution designed to fill.' "

[परन्तु यह और भी कि जिस विधेयक से, यदि वह विधि हो गया तो, राज्यपाल की राय में उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण हो कि वह स्थान, जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस संविधान द्वारा बनाया गया है, संकटापन्न हो जायेगा, उस विधेयक पर राज्यपाल अनुमति न देगा, किन्तु उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित रखेगा।]

इस स्थिति में हमें यह संशोधन क्यों लाना पड़ रहा है इसका कारण यह है कि संशोधनों पर संशोधनों के अंक 2 के संशोधन संख्या 3406 को डॉ. अम्बेडकर ने भेजा है जिसमें अनुसूची 4 को फिर से बनाने का प्रयास किया गया है, पर सभा ने इस समय उस अनुसूची को छोड़ देने का विनिश्चय किया है और इस कारण डॉ. अम्बेडकर उस संशोधन को पेश न कर सके। उस संशोधन के खंड (7) में इस परन्तुक के संबंध में उपबंध कर दिया था जिसे मैंने अभी पेश किया है। यदि चतुर्थ अनुसूची होती तो यह संशोधन आवश्यक न होता। जब हमने अनुच्छेद 175 पर विचार किया था हमें पूर्ण विश्वास नहीं था कि चतुर्थ अनुसूची संविधान का अंग होगी या नहीं। इस संशोधन को प्रस्तुत करने के पक्ष में मेरी यह व्याख्या है।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

औचित्य के आधार पर सभा यह स्वीकार करेगी कि जहां तक उच्च न्यायालय की नियुक्ति, क्षेत्राधिकार तथा ऐसी ही बातों का संबंध है यह केन्द्रीय सक्षमता का ही विषय होता है। पर ऐसे भी विषय हैं जिनमें प्रान्त भी हस्तक्षेप कर सकते हैं और यह परन्तुक उच्च न्यायालय की शक्तियों के संबंध में प्रान्तों द्वारा जल्दी में की गई कार्यवाही से बचने के उद्देश्य से है और इसमें यह निदेश है कि राज्यपाल ऐसे विधेयकों को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए रक्षित रखे।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय मैं अपने मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से यह निवेदन करूंगा कि इस विषय के एक अस्पष्ट पहलू पर वे कुछ प्रकाश डालें—जो कि मेरे लिये अस्पष्ट है। मैं उनके इस तर्क को न समझ सका जब कि उन्होंने यह कहा था कि कुछ ऐसे उपक्रम तथा विधेयक पुरःस्थापित हो सकते हैं जो स्थिति को संकटापन्न बना दें। सर्वप्रथम यदि ऐसे विधेयक पुरःस्थापित किये जाते हैं तो क्या आरम्भ में ही यह कार्य विधान मंडल की शक्तियों के परे नहीं होगा। क्या उस विधेयक का पुरःस्थापन संविधान द्वारा नहीं रोका जा सकेगा? और फिर इस संशोधन के अंन्तिम भाग में प्रयुक्त की गई भाषा पर मुझे कुछ आपत्ति है। वह बहुत जटिल है। उसको सरल बनाया जा सकता है जिससे कि उन सबको फायदा हो सके जिनका उससे संबंध है। "वह स्थान....संकटापन्न हो जायेगा" यह सब कहने की अपेक्षा क्या "उच्च न्यायालय की संविधान द्वारा (या अधीन) दी गई शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण होगा" शब्द कहना पर्याप्त नहीं होगा? इससे अनुच्छेद का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा, संशोधन के अंत में इस जटिल शब्दावली की मुझे कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी द्वारा पेश किया गया संशोधन बहुत पुराना है। भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन प्रांतों के राज्यपालों को दिये गये अनुदेशों की लिखत में वह मिलता है। अनुदेशों की लिखत की कंडिका 17 में यह कहा गया है:

> "विधेयकों को रक्षित रखने की उसकी शक्तियों की व्यापकता का विरोध किये बिना हमारा गवर्नर यहां उल्लिखित किसी विधेयक की या किसी खंडों की अनुमति नहीं देगा वरन् हमारे गवर्नर जनरल के विचारार्थ रक्षित रखेगा, अर्थात्–
>
> (ख) किसी विधेयक को जिससे, यदि वह विधि हो गया तो उसकी राय में उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण होगा कि वह स्थान जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस अधिनियम द्वारा बनाया गया है, संकटापन्न हो जायेगा।"

यह खंड अनुदेशों की पुरानी लिखत में है, जिसे मसौदा समिति ने चतुर्थ अनुसूची में ज्यों का त्यों रख दिया है। इस अनुसूची का पुरःस्थापन करने का मसौदा समिति

का विचार था और यह संशोधनों की सूची अंक 2 के 368-369 पृष्ठों पर मिलेगा। इस तथ्य के कारण कि मेरी सिफारिश पर सभा इस परिणाम पर पहुंची कि उस समय मैंने जो कारण बताये थे उनके आधार पर भाग 1 में के राज्यों के राज्यपालों के लिए अनुदेशों वाली किसी अनुसूची को रखना अनावश्यक था, अतः मसौदा समिति ने यह समझा कि किसी न किसी तरह से प्रस्थापित अनुदेशों की लिखत का यह विशेष भाग अर्थात् कंडिका 17 संविधान में रखी जाये। श्रीमान् ऐसा करने के कारण ये हैं:

उच्च न्यायालय केन्द्रों के तथा प्रान्तों के भी अधीन रखे गये है। जहां तक उच्च न्यायालय के संगठन और प्रादेशिक क्षेत्राधिकार का संबंध है वे निस्सन्देह रूप से केन्द्र के अधीन है और उच्च न्यायालय के संगठन तथा प्रादेशिक क्षेत्राधिकार में परिवर्तन करने का प्रान्तों को कोई अधिकार नहीं है। परन्तु अर्थ संबंधी क्षेत्राधिकार के संबंध की और सूची 2 में दिये गये किसी विषय संबंधी क्षेत्राधिकार के संबंध की शक्ति नये संविधान के अधीन राज्यों को है। उदाहरणार्थ इस बात की पूरी संभावना है कि राज्य का विधान मंडल उस दावे का मूल्य बढ़ाकर जो उच्च न्यायालय में जा सकता है उच्च न्यायालय के अर्थ संबंधी क्षेत्राधिकार को कम कर दे। यह एक प्रकार है जिसके द्वारा राज्य उच्च न्यायालय के प्राधिकार को कम करने की स्थिति ग्रहण कर सकता है।

दूसरी बात यह है कि सूची 2 में दी हुई किसी प्रविष्टि के अधीन किसी उपक्रम को अधिनियमित करने में, उदाहरणार्थ ऋण रद्द करने अथवा ऐसे किसी विषय में प्रान्त यह कह सकते हैं कि किसी ऐसे न्यायालय अथवा मंडल द्वारा दी गई आज्ञप्ति अंतिम होगी, और उच्च न्यायालय का इस विषय में कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ऐसे अधिनियम का अर्थ यह होगा कि वह उच्च न्यायालय के उस प्राधिकार का अल्पीकरण करेगा जिसे यह संविधान उच्च न्यायालय को देना चाहता है। इस कारण यह आवश्यक समझा गया कि ऐसी विधि के अंतिम स्वरूप ग्रहण करने के पूर्व राष्ट्रपति को इन बातों का परीक्षण करने का अवसर मिले कि क्या ऐसी किसी विधि को प्रभाववर्ती होने दिया जाये अथवा क्या यह विधि उच्च न्यायालय के प्राधिकार का इतना अल्पीकरण करती है कि उच्च न्यायालय एक निर्जीव शरीर की भांति रह जाता है।

अतः मैं निवेदन करता हूं कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उच्च न्यायालय एक ऐसी महत्वपूर्ण संस्था है जो संविधान द्वारा विधान मंडल और कार्यपालिका में तथा नागरिकों में परस्पर अभिनिर्णय करने के उद्देश्य से बनाई गई है इस कारण संविधान द्वारा सृजित इस महत्वपूर्ण संस्था के पोषण के लिए राष्ट्रपति को ऐसी शक्ति देना बहुत आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए यह संशोधन पुरःस्थापित किया जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामतः** भाषा को सरल बनाने के हेतु मेरे सुझाव पर क्या विचार है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस समय मैं मसौदा संबंधी किसी संशोधन पर विचार नहीं कर सकता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** बहुत ठीकः बाद में ही करिये।

***अध्यक्षः** अब मैं इस प्रश्न पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 175 के साथ निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:–

'Provided further that the Governor shall not assent to, but shall reserve for the consideration of the President, any Bill which in the opinion of the Governor would, if it became law, so derogate from the powers of the High Court as to endanger the position which that court is by this Constitution designed to fill.'

[परन्तु यह और भी कि जिस विधेयक से, यदि वह विधि हो गया तो, राज्यपाल की राय में उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण हो कि वह स्थान, जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस संविधान द्वारा बनाया गया है, संकटापन्न हो जायेगा, उस विधेयक पर राज्यपाल अनुमति न देगा किन्तु उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित रखेगा।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 13

***अध्यक्षः** एक पहले का संशोधन है जिसकी सूचना दी जा चुकी है—संशोधन संख्या 415 ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं उसे पेश करना नहीं चाहता हूं। श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 13 के खंड (2) में 'defamation' शब्द के पश्चात् 'contempt of court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान् सभा को यह विदित होगा कि पहले संशोधन सं. 415 रखा गया था, चूंकि हमारे विधि संबंधी मंत्रणा देने वालों ने यह मंत्रणा दी थी कि जहां तक अनुच्छेद 13 के खंड (1) के उपखंड (क) का संबंध है अनुच्छेद 13 के उपखंड (2) के अपवादों पर कुछ कठिनाइयां होंगी। पर, श्रीमान् इस सभा के कई माननीय सदस्यों ने इस संशोधन के बारे में मसौदा समिति के सदस्यों को कहा, और उन्होंने सोचा कि यह संशोधन केवल किसी कमी को पूरा करने वाला ही नहीं है वरन् वह पूर्णतया उस खंड की रूप रेखा को बदलने वाला भी है। उन्होंने "सार्वजनिक व्यवस्था" इन दो शब्दों के सम्मिलित करने पर आपत्ति की

थी। उस संशोधन के एक भाग के संबंध में विचार यह था कि वाक् स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के प्रयोग में तत्कथित कमियों की एक श्रेणी उसके अंतर्गत आ जाये: अर्थात् कोई व्यक्ति एक ऐसे विषय पर भाषण दे जो न्यायालय के अधीन हो और इस प्रकार न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करे। यह उस श्रेणी के अपराध हैं जो अनुच्छेद 13 के खंड (2) में दिये हुए अपवादों के अन्तर्गत नहीं आते हैं जहां तक कि वाक् स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का संबंध है। इस सभा के माननीय सदस्य यह स्वीकार करेंगे कि हमारा उद्देश्य यह नहीं था कि बिना किसी रुकावट के न्यायालय का अवमान होने दिया जाये, और हमारा विचार यह भी नहीं है कि अनुच्छेद 13 के खंड (1) के उपखंड (क) का इस प्रयोजन के लिए प्रयोग हो।

अत: श्रीमान्, हमने यह सोचा कि खंड (2) में दिये हुए अपवादों के क्षेत्र को विस्तृत करने की अपेक्षा हम केवल इस कमी को दूर करने तक ही अपने आपको निर्बन्धित रखें और इसी कारण हमने मूल संशोधन 415 को छोड़ देने का निश्चय किया और संशोधन संख्या 449 को रखा है जिसमें न्यायालय-अवमान को अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि के अथवा किसी ऐसे विषय के जो शिष्टता तथा शील के विरुद्ध है अथवा जो राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाले अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले विषय हैं उनके बराबर रख दिया है। वास्तव में न्यायालय-अवमान पहली तीन बातों के साथ रहेगा और मैं आशा करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करने में सभा को कोई आपत्ति नहीं होगी।

***अध्यक्ष:** प्रो. सक्सेना का एक संशोधन है। मैं उसे नहीं समझ सका हूं। क्या वे उसकी व्याख्या कर देंगे?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): "न्यायालय-अवमान" के स्थान में "अथवा न्यायालय अवमान" पढ़ा जाये। वह भूल से रह गया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** "न्यायालय-अवमान अथवा कोई विषय": यह बाद में आता है। पारिभाषिक रूप से "मानहानि" के पश्चात् अर्द्ध-विराम होना चाहिये।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुज्ञा से मैं संशोधन संख्या 435 पेश करता हूं जो संशोधन संख्या 415 में संशोधन करने के लिए था पर यह संशोधन पेश नहीं किया गया। मेरे संशोधन द्वारा "किसी विधि" शब्दों के स्थान में "किसी युक्तियुक्त विधि" शब्द रख दिये जायें। संशोधन संख्या 415 के संबंध में यह एक पुराना संशोधन था। अब संशोधन संख्या 415 के स्थान में श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने 'मानहानि' शब्द के पश्चात् 'सदाचार, सार्वजनिक व्यवस्था अथवा न्याय-प्रशासन' के स्थान में 'न्यायालय-अवमान' शब्द रखने का संशोधन पेश किया है: और जब मैंने यह संशोधन भेजा था तो वह 'सार्वजनिक व्यवस्था अथवा न्यायप्रशासन' शब्दों को ध्यान में रखकर भेजा था। यह सब कुछ होते हुए भी मेरे संशोधन का मूल्य इस रूप में कम नहीं हुआ है

[पं. ठाकुर दास भार्गव]

कि मैंने यह चाहा था कि अनुच्छेद 13 में संशोधन किया जाये। श्री कृष्णमाचारी के संशोधन में परिवर्तन से मेरे संशोधन में कोई अन्तर नहीं आता। अतः आप की अनुज्ञा से मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि 'any law' शब्दों के स्थान में 'any reasonable law' शब्द रख दिये जायें।"

***एक माननीय सदस्य:** विधि सदैव युक्तियुक्त है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** विधि की परिभाषा केवल एक उपक्रम के रूप में की है जिसे विधान मंडल पार करता है। विधि दोनों प्रकारों की हो सकती है युक्तियुक्त तथा अयुक्तियुक्त भी। यह विधि कि सब नीली आंखवालों को मार डाला जाये एक अच्छी विधि हो सकती है यद्यपि है अयुक्तियुक्त। हम किसी भी विधि को पार करने के लिए सक्षम हैं जो युक्तियुक्त हो अथवा अन्यथा हो। यह सत्य है कि अज्ञानता, आवेश विप्लव तथा ईर्ष्या के कारण हम ऐसी विधि पारित करते हैं जो कुछ को युक्तियुक्त प्रतीत हो और कुछ को अयुक्तियुक्त। इसलिए न्यायालयों को यह देखने की शक्ति दी गई है कि विधियां युक्तियुक्त हैं अथवा अन्यथा। मूल अनुच्छेद 13 में आपने कुछ संशोधन किये हैं, संशोधित रूप में अनुच्छेद 13 में यह कहा गया है कि न्यायालयों को यह देखने की शक्ति दी जाती है कि कोई निर्बन्धन युक्तियुक्त है या नहीं। विधानमंडल को किसी भी प्रकार की विधि पारित करने की क्षमता है और इस कारण कुछ विषयों में न्यायालय को यह देखने की शक्ति है कि विधान मंडल द्वारा प्रयोग में लाई गई शक्तियां युक्तियुक्त हैं। जहां तक मूल रूप का संबंध है मैं नहीं समझता हूं कि कोई भी व्यक्ति इस बात में संदेह करेगा कि न्यायालयों को इस प्रकार की शक्ति से सुसज्जित किया जा सकता है क्योंकि इन शक्तियों से हम न्यायालयों को सुसज्जित पहले ही कर चुके हैं।

अब श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन को लीजिये—वे यह चाहते हैं कि अनुच्छेद 13(2) में "मानहानि" के पश्चात् "न्यायालय अवमान" शब्द जोड़ दिया जाये और फिर वह खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:—

"इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, न्यायालय अवमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्तिवाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि संबंध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा सम्बन्ध रखने वाली किसी विधि को बनाने में राज्य के लिए रुकावट न डालेगी।"

इस न्यायालय-अवमान के संबंध में मेरा विचार यह है कि ये शब्द अनुच्छेद 13 में जोड़ने नहीं चाहियें क्योंकि वास्तव में जिस रूप में न्यायालय-अवमान को हम समझते हैं वह एक ऐसा व्यवहार है जिसके लिए यह आवश्यक नहीं कि

उसका संबंध वाक-स्वातन्त्र्य से हो, क्योंकि जब आप न्यायालय-अवमान संबंधी विधि को पढ़ेंगे तो आप दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 480 में देखेंगे कि बहुदा सामान्य न्यायालय अवमान भारतीय दंड संहिता की धारा 175, 178, 179 और धारा 180 तथा 288 के भंग करने में है। ये सब धारायें व्यक्ति विशेष के एक खास प्रकार के व्यवहार से संबंध रखती हैं। उदाहरणार्थ धारा 175 का संबंध न्यायालय के चपरासी से आह्वान पत्र के न लेने से तथा लेख्य प्रस्तुत न करने से है; धारा 178, 179 और 180 का संबंध न्यायालय द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देने से इंकार करने अथवा शपथ लेने से इन्कार करने से है। इसी प्रकार से धारा 288 तब लागू होती है जबकि किसी न्यायिक कार्यवाही में हस्तक्षेप हो अथवा जबकि न्यायालय का कोई अपमान हो; अपमान कई प्रकार से हो सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि वह भाषण द्वारा ही हो।

अत: मेरा निवेदन यह है कि इनमें से किसी भी धारा का सार यह है कि किसी गलत बात, गलत व्यवहार या प्रवृत्ति पर दंड दिया जाता है न कि स्वयं भाषण पर। अवमान कार्य पर कार्यवाई करने की शक्ति न्यायालयों को है और वे तुरन्त उन अपराधों का निपटारा कर सकते हैं। अत: मेरी प्रथम बात यह है कि ये 175, 178, 180 और 288 धारायें जो धारा 480 में अवमान का विषय हैं इनका वाक्-स्वातन्त्र्य से कोई संबंध नहीं है अत: यह संशोधन वाक्-स्वातन्त्र्य अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विषय से संगत नहीं है।

और फिर श्रीमान्, इस संविधान में हम अनुच्छेद 118 पार कर चुके हैं। उस का संबंध उच्चतम न्यायालय की शक्तियों से है, और जहां तक उच्चतम न्यायलय के अवमान का सम्बन्ध है वह विधि के अन्तर्गत आ चुका है और अवमान के मामलों को निपटाने का उच्चतम न्यायालय को पूर्ण हक है। श्रीमान्, अन्य न्यायालयों के संबंध में यह विधि सामान्यतया या तो मानहानि विधि के या 1926 के अधिनियम 12 के अंतर्गत है। जैसा कि भारतीय दंड विधि की धारा 480 में है न्यायालय के सामने किये गये प्रत्यक्ष अवमान के अलावा न्यायालय तथा दंडाधिकारियों के न्यायिक कार्यों की टीका टिप्पणियां एक प्रकार का पारिभाषिक अवमान है, और यदि आप इस विधि को बदलना चाहते हैं जिनका ऐसे अवमान से संबंध है, यदि आप वाक्-स्वातन्त्र्य की शक्तियों को छीनना चाहते हैं तो आप को यह अधिनियम बनाना चाहिये कि यदि विधान मंडल ऐसी कोई विधि पार करता है तो वह न्यायालयों के परीक्षण के अधीन रहनी चाहिये।

'मानहानि' जिसके अधीन बहुधा ऐसे अवमान आते हैं वह दंड संहिता के उपबंधों के अंतर्गत आ जाती है। मानहानि का प्रश्न बड़ा जटिल है जहां तक व्यवहार सम्बन्धी मानहानि का सम्बन्ध है सत्य पूर्ण प्रतिरक्षा है पर जहां तक अपराध संबंधी मानहानि का संबंध है उसका जितना अधिक सत्यरूप होता जाता है उतनी ही अधिक मानहानि बढ़ती जाती है। जब आप विधान मंडल को कोई भी विधि बनाने की मुख्य शक्ति से सुसज्जित करते हैं और उस विधि की न्यायालय जांच नहीं कर सकते हैं तो इसका यह अर्थ है कि विधान मंडल को बहुत अधिक स्वतंत्रता दी जा रही है और वाक्-स्वातन्त्र्य एक तमाशा-सा हो जायेगा। अभी कुछ दिनों पहले एक अधिनियम पूर्ववर्ती सरकार ने बनाया था और उस अधिनियम द्वारा न्यायालयों को उन व्यक्तियों को दंड देने का अधिकार दिया गया था जो कुछ निर्णयों की टीका टिप्पणी करते थे। वह न्यायिक-पदाधिकारी-रक्षक अधिनियम कहा

[पं. ठाकुर दास भार्गव]

जाता था और उस अधिनियम के उपबंध बहुत ही विस्तृत तथा व्यापक थे। यह भी हो सकता है कि न्यायालय-अवमान के अन्तर्गत ऐसे अवमान भी आ जायें। ऐसे अवमान के मामलों में जो पारिभाषिक रूप में अवमान के मामले हैं और जो न्यायालय के समक्ष उसी समय नहीं किये जाते है वे विधि-अवमान के अंतर्गत आ सकते हैं और इसी प्रकार से उन पर नियंत्रण होना चाहिये। और उनके निर्वचन का उत्तरदायित्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार में होना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करते तो मुझे इस बात का भय है कि वाक्-स्वातन्त्र्य अथवा अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य प्रायः नष्ट हो जायेगा।

यदि आप अनुच्छेद 13 के छः खंडों को कृपा कर देखेंगे तो आपको "युक्तियुक्त निर्बन्धन" शब्द मिलेंगे। पर खंड (2) में "युक्तियुक्त निर्बन्धन" जैसे शब्द नहीं हैं। जिसका अर्थ यह है कि विधान मंडल को किसी प्रकार के भी निर्बन्धन लगाने की शक्ति दी गई है युक्तियुक्त अथवा अयुक्तियुक्त। जबकि खंड (2) का मूल विषय कुछ विषयों तक ही सीमित था तब तो मैं समझ सकता था कि "युक्तियुक्त" शब्द लुप्त कर दिया होगा। फिर भी जहां तक राजद्रोह का संबंध है जबकि मूल अनुच्छेद हमारे सामने था हमने इस विधि का संशोधन किया था और हमने यह देखा था कि "राजद्रोह" के अंतर्गत वे मामले नहीं आते थे जिन पर इसके अंतर्गत विचार नहीं हो सकता था। इस कारण हमने शब्दों में इस प्रकार परिवर्तन कर दिया था: "जो राज्य की सुरक्षा को दुर्बल बनाने अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले" और चूंकि इन शब्दों में परिवर्तन कर दिया गया था इस कारण "युक्तियुक्त" शब्द खंड (2) में नहीं रखा गया था। अब खंड (2) द्वारा केवल सामान्य विषयों पर ही विचार नहीं किया जायेगा बल्कि न्यायालयों के कार्यपालिका प्राधिकार संबंधी वाक्-स्वातन्त्र्य के प्रश्न का पुरःस्थापन भी इसमें किया जा रहा है।

अतः चूंकि हम खंड (2) के क्षेत्र को बढ़ा रहे हैं, यह बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है कि विधान मंडल की शक्तियों पर निर्बन्धनों के क्षेत्र को हम यहां तक विस्तृत कर दें कि यदि हम "विधि" शब्द के पूर्व "युक्तियुक्त" शब्द रख दें तो हम अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेंगे और मानहानि, अपमान-लेख तथा अपमान-वचन, इत्यादि की अथवा किसी ऐसे विषय की जो शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाला है, परिभाषा करने में विधान मंडल के क्षेत्र को निर्बन्धित करने के उद्देश्य की भी हम पूर्ति कर लेंगे। ये सब विषय किसी सीमा तक तर्कसम्मत हो जायेंगे और गणराज्य के नागरिकों के अधिकार तथा विशेषाधिकारों को कम करने की अपेक्षा यदि हम उनकी स्वाधीनता के क्षेत्र विस्तृत कर दें तो अधिक अच्छा होगा और इस कारण मैं यह सुझाव देता हूं कि "किसी विधि" शब्दों के स्थान में "किसी युक्तियुक्त विधि" शब्द रख दिये जायें। यदि इन शब्दों को जोड़ कर हम इसमें और आगे संशोधन करने से सहमत नहीं हैं तो मुझे इस बात का भय है कि हम फिर उसी रीति को अपनाने में अग्रसर होंगे जिसे दुर्भाग्यवश हम अपनाते रहे हैं अर्थात् यह कि अनुच्छेद 13 में जो कुछ दिया गया है उसे किसी न किसी रूप में छीन लिया जाये। अनुच्छेद 24, 241, 278 और 307 तथा अन्य अनुच्छेदों को अधिनियमित करके हम ऐसा कर चुके हैं।

अतः मेरा विनम्र निवेदन यह है कि वाक्-स्वातन्त्र्य तथा अभिव्यक्ति संबंधी इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय में हमारा इस प्रकार का प्रबन्ध हो कि जो दिया जा चुका है वह छीना न जाये और विधान मंडल को हमने जो शक्तियां दी हैं उनकी यहां तक कमी कर दी जाये कि वे न्यायालय के परीक्षण के अधीन हों। आखिर जिस सरकार ने जिस प्रकार से विधान मंडल का सृजन किया है उसी सरकार ने उसी प्रकार से न्यायालयों का सृजन किया है। अतः जब आप स्वयं विधान मंडल को यह शक्ति दे रहे हैं कि वह न्यायालय को अवमान के अपराध में लोगों को दोषी ठहराने का अथवा न्यायालय-अवमान के संबंध में उन पर कार्यपालिका रीति से कार्यवाही करने का अधिकार दे तो न्यायालयों के प्राधिकार के प्रति शंका करने की कोई बात नहीं है। इस संशोधन द्वारा आप न्यायालयों को यह देखने की शक्ति दे रहे हैं कि न्यायालय-अवमान के संबंध में अधिनियमित की हुई विधि ठीक है या नहीं। वास्तव में एक प्रकार से आप न्यायालयों की सहायता कर रहे हैं और दूसरे प्रकार से न्यायालयों के प्राधिकार को विस्तृत कर रहे हैं। इसलिए मैं निवेदन करता हूं कि सभा मेरे इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, यह संशोधन अनुच्छेद 13 खंड (1) (क) के संबंध में है। खंड (1) (क) में कहा गया है कि समस्त नागरिकों को वाक्-स्वातन्त्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का अधिकार होगा। खंड (2) भाषण देने तथा किसी ऐसे शब्द के प्रयोग करने पर जिसमें अपमान-वचन, अपमान-लेख तथा मानहानि हो, निर्बन्धन आरोपित करता है। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी यह चाहते हैं कि "मानहानि" शब्द के पश्चात् "न्यायालय-अवमान" शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।

सर्वप्रथम मुझे यह कह लेने दीजिये कि यह आनुषंगिक संशोधन नहीं है। यह एक मूल प्रस्थापना है जो सभा के समझ प्रस्तुत की जा रही है। श्रीमान्, हम जानते हैं कि इस न्यायालय-अवमान के संबंध में न्यायाधीश पहले अपनी शक्तियों का किस प्रकार प्रयोग करते थे—मानों वे त्रुटि कर ही नहीं सकते। यहां तक कि तीसरे दर्जे के दंडाधिकारी, प्रथम दर्जे के दंडाधिकारी, और उपन्यायाधीश ऐसी निन्दा किया करते थे कि जिसको उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तक ने कई बार निन्दा की है। मैं यह भी कहना चाहूंगा कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश स्वयं अभियोजक के रूप में बैठते हैं। वे स्वयं यह चाहते हैं कि न्यायपालिका और कार्यपालिका के कृत्यों को पृथक्-पृथक् कर दिया जाये। न्यायालय-अवमान के मामले में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अभियोजक होता है और वह स्वयं उन मामलों का निर्णय करने बैठता है जिनमें वह स्वयं यह समझता है कि न्यायालय-अवमान किया गया है। हमारे सामने ऐसे कई मामले आये हैं। मैं दो मामलों के दृष्टान्त दूंगा, श्री बी.जी. हैरीमेन 'सेन्टिनल' के संपादक और श्री देवदास गांधी 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संपादक। इन दोनों व्यक्तियों द्वारा की गई बहुत ही युक्तियुक्त आलोचना की निन्दा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने की। उच्च न्यायालय के एकतरफा निर्णय को मानने की बजाय उन्होंने जेल जाना अच्छा समझा और वे जेल गये। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि मेरे वकील मित्र जो यहां पर हैं वे न्यायाधीशों के प्रति इतने

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

उदार क्यों हैं। न्यायाधीशों के कोई सींग तो लगे नहीं हैं, वे भी आखिर मनुष्य ही हैं। उनसे भी त्रुटियां हो सकती हैं। हम उनके प्रति इतने कोमल क्यों बनें? हमें लोकहित की रक्षा करनी चाहिये। यदि कोई नागरिक भाषण के रूप में किसी उस तीसरी श्रेणी या चौथी श्रेणी के दंडाधिकारी के कार्य को निन्दा करता है जिसने जनता की निन्दा की है तो क्या उस व्यक्ति को भाषण देने और उस कार्य की आलोचना करने का हक नहीं है?

यह अनुचित है कि न्यायालय-अवमान के विषय में यह खंड जोड़ा जाये। मैं इसका कड़ा विरोध करता हूं। यह बहुत अनुचित है कि नागरिक को कुछ अधिकार देने के पश्चात् और उसे इतने खंडों द्वारा निर्बन्धित कर आप "न्यायालय-अवमान" की प्रविष्टि कर उसे और भी अधिक निर्बन्धित करना चाहते हैं। न्यायालय-अवमान में हम जानते हैं कि जब कोई असाधारण बात हो जाती है तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को कुछ शक्ति होती है। यहां आप दंडाधिकारियों से लेकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तक शक्ति देते हैं। उस दशा में भी मैं यह कहता हूं। कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ऐसे नहीं हैं कि उनसे त्रुटि न हो; उन्होंने भी बहुत-सी त्रुटियां की हैं। वे यह नहीं चाहते हैं कि जब लोक-जीवन के हित में आलोचना आवश्यक है तब भी उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध आलोचना न की जाये।

श्रीमान इन शब्दों के सहित इस समय मैं यह समझता हूं कि मसौदा समिति इन "न्यायालय-अवमान" शब्दों को छोड़ दें जो दोनों समाचार पत्र तथा लोक की ओर से सदैव झगड़े की जड़ रही है। मैं यह जानना चाहता हूं कि किस संविधान में न्यायालय-अवमान रखा गया है। मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर यह बतायें कि क्या संसार के किसी संविधान में न्यायालय अवमान समाविष्ट है। यह शक्ति सदैव न्यायाधीश के साथ रहती है। आप इसे संविधान में क्यों रखना चाहते हैं और न्यायाधीशों को सर्वोपरि क्यों बनाना चाहते हैं? आप उसे ईश्वर से भी बड़ा बनाना चाहते हैं।

***अध्यक्षः** इसका न्यायालय से कोई संबंध नहीं है। यदि आप अनुच्छेद को पढ़ेंगे तो आपको मालूम होगा कि उसमें यह कहा गया है कि उपखंड (क) की किसी बात से अवमान संबंधी किसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा अवमान संबंधी किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये रुकावट न होगी।

***श्री आर.के. सिधवाः** उसका संबंध नागरिकों से है। नागरिकों को वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का अधिकार होगा पर वे कोई ऐसा भाषण न दे सकेंगे जिसमें अपमान लेख अपमान-वचन या न्यायालय-अवमान हो। कोई निर्णय न्यायालय द्वारा दिया गया हो.....

***अध्यक्षः** एक ऐसी विधि पार की जा सकती है जो किसी गैर सरकारी व्यक्ति की मानहानि करने में रुकावट डाले, पर ऐसी विधि पार न की जाये जो न्यायालय

की मानहानि या उसके प्रति अपमान-लेख को रोके। आपके तर्क का यह आशय है।

* **श्री आर.के. सिधवा:** न्यायालय-अवमान के संबंध में, मैं नहीं चाहता हूं कि कोई विधि बनाई जाये। इस विषय में मैं बहुत स्पष्ट हूं क्योंकि न्यायालय-अवमान के बारे में मेरा पिछला अनुभव है कि छोटे से लेकर बड़े न्यायालयों तक के न्यायाधीश निष्पक्ष नहीं रहे हैं। इसलिए मैं इस संशोधन के विरोध में हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, न्यायालय-अवमान पर गरमागरम बहस चल रही है। मैं निवेदन करता हूं कि उच्च न्यायालयों को तात्कालिक रीति से अवमान के लिए दंड देने की शक्ति होनी चाहिए। इसका यह कारण है कि किसी मामले में जांच शांत तथा निष्पक्ष वातावरण में केवल साक्ष्य के आधार पर होनी चाहिए। यदि न्यायालय-अवमान को लेकर आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है तो न्यायालय में लम्बित किसी मामले की समाचार पत्र द्वारा जांच कोई भी व्यक्ति आरम्भ कर सकता है और यह भी हो सकता है कि मामले के गुणावगुणों के बारे में वह जनता में धुंआधार भाषण देने लगे और इस प्रकार मामले की ठीक तथा निष्पक्ष जांच में बहुत हानि पहुंचाये। इस कारण न्यायालय-अवमान को हमारी विधि पुस्तक में स्थान मिला है। न्यायालय-अवमान अधिनियम के नाम से 1926 का एक अधिनियम है। कुछ ऐसे अवमान है जिनके लिए छोटे से छोटे दंडाधिकारी द्वारा दंड दिया जा सकता है। श्री सिधवा ने ऐसे दंडाधिकारी को चौथी श्रेणी का दंडाधिकारी कहा है; ऐसी कोई श्रेणी है ही नहीं। यदि कोई व्यक्ति न्यायालय की कार्रवाई में हस्तक्षेप करता है तो किसी भी न्यायालय द्वारा उसे उसी समय दंड मिलना चाहिये। अवमान के कई अन्य घोर प्रकार भी हैं जिनके लिए केवल उच्च न्यायालय द्वारा ही दंड दिया जा सकता है।

यह कहा गया है कि उच्च न्यायालय अभियोगी या अभियोजक बन जाता है। वास्तव में न्यायालय की प्रतिष्ठा कम हो जाती है और उसकी निरपेक्षता पर संदेह होता है, इस कारण अवमान के लिए दंड देने की शक्ति केवल उच्च न्यायालय को होनी चाहिये। उदाहरण के रूप में यदि हम राष्ट्रपति का अवमान करें तो केवल राष्ट्रपति को ही उसे निपटाने की तात्कालिक शक्ति होनी चाहिये। यह केवल समानता के रूप में है कि न्यायालय अवमान विधि का अंग हो। विधि का अंग तो वह है ही। पंडत ठाकुर दास भार्गव ने यह बताया था कि अन्य स्थान में हम यह उपबंध पहले कर चुके हैं कि न्यायालय-अवमान को न्यायालय द्वारा निपटाया जाये और इस संशोधन पर उनकी आपत्ति केवल यह है कि क्या इसे अनुच्छेद 13 के खंड (2) में स्थान दिया जाये। इसी समय यह मालूम करना कठिन है कि जो उपबन्ध हम बना चुके हैं उसका क्या प्रभाव है। हम अपने विचारों में बार-बार परिवर्तन करते हैं और बार-बार रद्दी प्रकार के नये संशोधन

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

पुर:स्थापित करते हैं कि यह मालूम करना बहुधा असम्भव हो जाता है कि संशोधन का आशय क्या है। अधिक से अधिक यह होगा कि एक बात दो स्थानों पर आ जाये। यदि ऐसा हो भी जाये तो इस संविधान में वह कोई बड़ा दोष नहीं होगा क्योंकि अन्य स्थानों में एक बात दो स्थानों पर बहुत आई हैं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये।

पंडित ठाकुर दास भार्गव का संशोधन कि "किसी विधि" के स्थान में, "किसी युक्तियुक्त विधि" रखा जाये।, व्यवहार में व्यर्थ सिद्ध होगा। यदि कोई विधि पार की जायेगी तो वह विधान मंडल द्वारा पार की जायेगी। यह हमेशा मानना पड़ेगा कि विधान मंडल ऐसी विधि पारित करता है जो युक्तियुक्त होती है न कि अयुक्तियुक्त—कम से कम विधान मंडल तो यही समझता है। आखिर विधान मंडल पूर्णतया स्वतंत्र है। परन्तु, "युक्तियुक्त" शब्द कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता है। ऐसा प्रतिबन्ध तो उनकी शक्ति ही में निहित मान लेना चाहिये और इस तथ्य में कि निर्वाचित सदस्य विधि बनायेंगे यह भाव निहित है कि बनाई गई विधि युक्तियुक्त है। परन्तु मान लीजिये कि हम इस पद का पुर:स्थापन करें और उसे "युक्तियुक्त विधि" बना दें तो विधान मंडल पर उसका कोई बन्धनकारी बल नहीं होगा। "युक्तियुक्त" शब्द उनकी शक्ति में कोई कमी नहीं करेगा या उनके स्वविवेक में कोई रुकावट नहीं डालेगा। इन परिस्थितियों में 'युक्तियुक्त' शब्द बिल्कुल अनावश्यक होगा और व्यवहार में व्यर्थ सिद्ध होगा और इस कारण यह संशोधन स्वीकार नहीं होना चाहिये। जहां तक न्यायालय-अवमान का संबंध है इस समय उसे स्वीकार कर लेना चाहिये पर मसौदा समिति द्वारा यह विचार होना चाहिये कि दो स्थानों में एक बात न आने पाये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, मसौदा समिति की क्रूरता से बचने के लिए मैं आपकी शरण चाहता हूं। मूलाधिकारों को हमने बहुत दृढ़ संकल्प होकर पारित किया था—मैं वकील नहीं हूं पर साधारण व्यक्ति होने के कारण इतनी समितियों में विचार होने के पश्चात् और इस सभा में गम्भीर विचार करने के पश्चात् जो मूलाधिकार हमको दिये गये थे उनको मैं समझता हूं। पिछले दो या तीन दिनों में ऐसा क्या हुआ है जिसके कारण हम मसौदा समिति की क्रूरता से पीड़ित हैं? 15 तारीख को हमें इन्हीं दो सज्जनों डॉ. अम्बेडकर तथा श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के अनुच्छेद 13 पर संशोधन प्राप्त हुए और आज श्री कृष्णमाचारी ने एक दूसरा संशोधन पेश किया है। गत रात्रि को हमें यह वर्तमान संशोधन मिला जिस पर यह सभा विचार कर रही है। मूलाधिकारों को यकायक नहीं बदला जा सकता है। यदि और अधिक संशोधनों पर विचार करने के लिए आज का दिन ही सभा का अंतिम दिन न था तो संविधान में किसी परिवर्तन के लिए अनुच्छेद 304 लागू किया जा सकता था; संविधान के किसी परिवर्तन के लिए उसमें कहा गया है:

"संसद के किसी सदन में तदर्थ विधेयक पुर:स्थापित करके संविधान के संशोधन का सूत्रपात किया जा सकेगा, और जब प्रत्येक सदन में उस सदन की समस्त

सदस्य संख्या के बहुमत से तथा उस सदन में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत से इत्यादि इत्यादि।"

जब डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं सभापति के रूप में इतने दृढ़ संकल्प होकर भाग 16 में 'संविधान के संशोधन' की व्यवस्था की है तो फिर रातों-रात यह परिवर्तन कैसे हो जाते हैं।

मैं उनमें से नहीं हूं जो न्यायाधीशों के प्रति उच्च धारणा रखते हैं, विशेषकर जबकि उन्हें अंग्रेजी परम्परा के अधीन शिक्षा मिली है और उन्होंने न्याय का दुरुपयोग किया है और हमारा दमन किया है। किसी भी सार्वजनिक भाषण के सम्बन्ध में मैंने यह नहीं पढ़ा है कि भारत के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों अथवा अन्य न्यायालय के न्यायाधीशों या दंडाधिकारियों में अगस्त 1947 से परिवर्तन हो गया है और वे अपने कृत्यों और कर्तव्यों को पहले से अच्छे रूप में समझ गये हों। अवकाश प्राप्त करने के दस वर्ष पश्चात् यदि डॉ. अम्बेडकर न्यायालयों की धांधलियों पर तथा न्यायालय-अवमान के बारे में पुस्तक लिखें तो वे यह देखेंगे कि इन दंडाधिकारियों और न्यायाधीशों को कुछ अधिक शक्तियां देने का उनका यह यकायक किया गया पक्षपात आवश्यक नहीं था। वह एक बहुत ही आश्चर्यजनक पुस्तक होगी क्योंकि बहुत से कंगाल वकील न्यायाधीश हुए और उन्होंने विदेशी राज के कारबार तथा शासन को न्यायालय-अवमान शब्द के द्वारा विनियमित तथा नियंत्रित किया और डरपोक वकील उनसे डर के मारे कांपते थे।

***अध्यक्षः** जहां तक उच्च न्यायालयों का संबंध है इस देश के सब पक्ष तथा व्यक्ति उनकी प्रशंसा करते रहे और उनकी इस प्रकार निन्दा करने से कोई लाभ नहीं। कोई एकाध ऐसा न्यायाधीश होगा जिसने मूल की हो, पर समूची न्यायपालिका की हमें निन्दा नहीं करनी चाहिये।

***श्री बी. दासः** श्रीमान्, मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरा मन साफ होता और भारत के न्यायाधीशों की उनके महान पद तथा उनके उचित रूप से कर्तव्य पालन के लिए मैं उनका सम्मान करता। फिर भी मैं आपकी शरण लेता हूं। यदि मैं अपने व्यक्तिगत विचार का पालन कर सकूं तो सत्र के इस अंतिम समय में मूलाधिकारों के अनुच्छेदों में किसी प्रकार के भी परिवर्तन का विरोध करूंगा जब कि हम सभा समाप्त करने जा रहे हैं और शीघ्र ही संविधान के तृतीय पठन को ले रहे होंगे। मूलाधिकारों के परिवर्तन के विषय में हमारी भावनायें पवित्र होनी चाहियें। यदि यह ऐसी ही त्रुटि थी तो फिर इस माह की 15वीं तारीख को वह क्यों नहीं बताई गई? वह कल ही मालूम हुई। डॉ. अम्बेडकर को इस शताब्दी का मनु कहा गया है। क्या मनु रातों रात परिवर्तन कर देते हैं? ऐसी दशा में से हर एक मनु है न कि केवल डॉ. अम्बेडकर। मैं समझता हूं कि यदि अनुच्छेद 13 में यह संशोधन न किया जाये तो कोई हानि नहीं होगी। संसद को समवेत होने दीजिये और डॉ. अम्बेडकर को स्वयं एक विधेयक प्रस्तुत करने दीजिये और हम उसके गुणावगुण के आधार पर उसकी परीक्षा करेंगे। परन्तु मूलाधिकारों में परिवर्तन क्यों? यह मेरा निवेदन है और श्रीमान मैं आशा करता हूं कि हमारे अध्यक्ष के रूप में आप मूलाधिकारों पर संशोधन जैसे विषय पर आदेश देंगे।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा तथा सम्मान से मुझे ईर्ष्या है। मेरी यह धारणा है कि लोकतंत्र में न्यायाधीशों का सम्मान जनता के सब वर्गों द्वारा होना चाहिये और इन व्यक्तियों तथा इनके कृत्यों की प्रतिष्ठा होनी चहिये। पर एक बात जिस पर मैं आपत्ति करता हूं वह यह है कि न्यायालय-अवमान की यह प्रविष्टि अनावश्यक है क्योंकि उस अनुच्छेद में "वर्तमान विधि" शब्द हैं और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 480 में एक उपबंध है जो कार्यवाई के समय न्यायालय-अवमान के संबंध में है जबकि स्वयं न्यायालय को अवमान करने वाले व्यक्ति को दंड देने की शक्ति है। एक और न्यायालय-अवमान संबंधी अधिनियम है जो कहीं के किसी भी न्यायालय-अवमान पर कार्यवाई करने की शक्ति उच्च न्यायालय को देता है। अत: वर्तमान उपबंधों को ध्यान में रखते हुए और अधिक रक्षा की आवश्यकता नहीं है और मैं समझता हूं कि परिस्थिति को संभालने के लिए ये उपबंध काफी हैं। अत: यह प्रविष्टि अनावश्यक तथा अवांछनीय है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** श्रीमान मैं नहीं समझता हूं कि अन्तिम वक्ता का तर्क सही है क्योंकि अनुच्छेद 13 वर्तमान विधि में रूपभेद करेगा। इस कारण न्यायालय-अवमान का उपबन्ध आवश्यक है पर मेरी कठिनाई यह है कि अनुच्छेद 13 (2) के अधीन प्रत्येक राज्य के विधान मंडल को न्यायालय-अवमान संबंधी विधि अधिनियमित करने की शक्ति दी गई है। यदि कई विधान मंडल न्यायालय-अवमान संबंधी कई भिन्न-भिन्न विधियां बनाते हैं तो मैं समझता हूं स्थिति और विशेषकर समाचार पत्रों की स्थिति बड़ी कठिन हो जायेगी।

उदाहरणार्थ यदि मद्रास का विधान-मंडल न्यायालय-अवमान संबंधी कोई विधि बनाता है तो वास्तव में वह विधि क्षेत्राधिकार के अनुसार मद्रास में प्रकाशित पत्रों पर ही लागू होगी। परन्तु वह विधि उन सब पत्रों पर लागू नहीं होगी जो भारत के किसी अन्य स्थान से आते हैं और जिनका मद्रास में प्रचार है और यह सब प्रान्तों में होगा। जहां तक मानहानि, अपमान-वचन इत्यादि का संबंध है ये अभियोज्य अपराध हैं जिनको समवर्ती सूची में रखा गया है। जब कोई गड़बड़ होती है तो संसद आड़े आ जाती है और एकरूपता कर देती है। परन्तु न्यायालय अवमान के संबंध में मैं नहीं समझता हूं कि एकरूपता करने का अधिकार संसद को है। अत: यदि वे इसे अनुच्छेद 13 में रखना चाहते हैं तो समवर्ती सूची में एक पृथक् मद होना चाहिये जिससे कि किसी भी समय संसद दखल दे सके और विधि में कुछ एकरूपता कर सके। अन्यथा, मेरा यह सुझाव है कि अनुच्छेद 13 के खंड (2) में "न्यायालय-अवमान" की यह प्रविष्टि का परिणाम न्यायालय-अवमान की भिन्न-भिन्न विधियों के रूप में निकलेगा और इससे समस्त देश में गड़बड़ी होगी। मैं यह सुझाव रखता हूं कि न्यायालय-अवमान के लिए विधि बनाने को या यह देखने को, कि न्यायालय-अवमान संबंधी विधि में कुछ न कुछ एकरूपता हो, संसद के लिए कम से कम शक्ति रक्षित करने का उपक्रम करना चाहिये। यदि "न्यायालय-अवमान" शब्द अनुच्छेद 13 के खंड (2) में प्रविष्ट किये जाते हैं तो उसे समवर्ती सूची में रखा जाये।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप उत्तर देना चाहेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, यह अनुच्छेद अनुच्छेद 8 के साथ-साथ पढ़ा जायेगा।

अनुच्छेद 8 में कहा गया है:

"इस संविधान के प्रारम्भ होने से ठीक पहले भारत के राज्य-क्षेत्र में प्रवृत्त सब विधियां, उस मात्रा तक शून्य होंगी, जिस तक कि वे इस भाग के उपबंधों से असंगत हैं।"

और इस अनुच्छेद में जो कुछ कहा गया है वह यह है कि अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाले, किसी विषय पर अनुच्छेद 8 का प्रभाव नहीं पड़ेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि वे विधियां प्रवृत्त रहेंगी। यदि "न्यायालय-अवमान" शब्द वहां न होते तो न्यायालय-अवमान संबंधी किसी विधि पर अनुच्छेद 8 लागू होता और वह निराकृत हो जाता। इस प्रकार की स्थिति से बचने के लिए "न्यायालय-अवमान" शब्दों को रखा जा रहा है, अतः इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है।

मेरे मित्र श्री सन्तानम द्वारा उठाये गये प्रश्न के प्रति यह बात बिल्कुल सत्य है कि जहां तक मूलाधिकारों का संबंध है "राज्य" शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है केन्द्र के अर्थ में तथा प्रान्तों के भी अर्थ में। पर मैं समझता हूं कि उनको इस बात का ध्यान होगा कि इस तथ्य के होते हुए भी राज्य कोई विधि बना सकता है तथा केन्द्र भी कोई विधि बना सकता है।

कुछ शीर्षक जिनका यहां वर्णन है, जैसे कि अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राज्य की सुरक्षा इत्यादि, समवर्ती सूची में दिये हुए हैं अतः यदि इन विषयों के संबंध में निर्मित विधियों में कोई बड़ा भरी अन्तर है तो केन्द्र को हस्तक्षेप करने तथा ऐसी एकरूपता करने का अधिकार होगा जैसी केन्द्र इस प्रयोजन के लिए उचित समझे

***माननीय श्री के. सन्तानमः** परन्तु न्यायालय अवमान समवर्ती सूची अथवा अन्य किसी सूची में सम्मिलित नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह तो सम्मिलित किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** मैं इन दो संशोधनों पर मत लूंगा। वास्तव में पंडित ठाकुर दास भार्गव का संशोधन श्री कृष्णामाचारी के संशोधन पर संशोधन नहीं है। वह पूर्णतया स्वाधीन रूप का संशोधन है। मैं उनको अलग-अलग रखूंगा। सर्वप्रथम में श्री कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लूंगा।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 13 के खंड (2) में 'defamation' शब्दों के पश्चात् 'Contempt of Court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं पंडित ठाकुर दास भार्गव के संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 18 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 415 के अंत में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

"कि 'any law' शब्दों के स्थान में 'any reasonable law' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् हम नया अनुच्छेद 302 ककक को लेते हैं अर्थात् संशोधन संख्या 450। श्री सन्तानम ने एक सुझाव दिया है कि जो संशोधन अभी पारित किया गया है उसे पूर्ण रूप देने के लिए "न्यायालय-अवमान" को समवर्ती सूची में सम्मिलित कर देना चाहिये। और मैं समझता हूं कि यह आनुषंगिक बात है और अच्छा हो हम इसे ले लें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं एक संशोधन पेश करूंगा: श्रीमान् मैं पेश करता हूं:

"कि समवर्ती सूची में प्रविष्टि 15 के पश्चात् निम्नलिखित जोड़ दिया जाये: '15A. Contempt of Court.'

(15क. न्यायालय-अवमान।)"

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता हूं कि इस पर कोई आपत्ति हो सकती है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** ऐसी बहुत-सी बातें होंगी।

***अध्यक्ष:** हो सकती है, पर वे समय पर प्रस्तुत होंगी। अत: मैं इस पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि समवर्ती सूची में प्रविष्टि 15 के पश्चात् निम्नलिखित जोड़ दिया जाये '15-A. Contempt of Court.'

(15 क. न्यायालय-अवमान।)"

संशोधन स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 15क संविधान में प्रविष्ट की गई।

नया अनुच्छेद 302 ककक

***अध्यक्षः** इसके पश्चात् हम संशोधन संख्या 450 लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

"कि अनुच्छेद 302 कक के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जायेः

Special provisions as to major ports and aerodromes.

'302AAA. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution, the President may by public notification direct that as from such date as may be specified in the notification—

(a) any law made by Parliament or by the Legislature of a State shall not apply to any major port or aerodrome or shall apply thereto subject to such exceptions or modifications as may be a specified in the notification, or

(b) any existing law shall cease to have effect in any major port or aerodrome except as respects things done or omitted to be done before the said date, or shall in its application to such port or aerodrome have effect subject to such exceptions or modifications as may be specified in the notification.

(2) In this article—

(a) 'major port' means a port declared to be a major port by or under any law made by Parliament or any existing law and includes all areas for the time being included within the limits of such port;

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

(b) 'aerodrome' means aerodrome as defined for the purposes of the enactments relating to airways, aircraft and air navigation.'

[302ककक (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक-अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि ऐसी तारीख से लेकर जैसी कि अधिसूचना में उल्लिखित हो–

महापत्तनों और विमान क्षेत्रों के लिए विशेष उपबन्ध।

(क) संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि किसी महापत्तन या विमान-क्षेत्र को लागू न होगी अथवा ऐसे अपवादों या रूपभेदों के अधीन रह कर जैसे कि लोक-अधिसूचना में उल्लिखित हों, लागू होगी; अथवा

(ख) कोई वर्ममान विधि किसी महापत्तन या विमान-क्षेत्र में उक्त तारीख से पहले की हुई या किये जाने से छोड़ दी गई बातों के संबंध से अतिरिक्त अन्य बातों के लिए प्रभावी न होगी, अथवा ऐसे पत्तन या विमान-क्षेत्र में ऐसे अपवादों या रूपभेदों के अधीन रहकर, जैसे कि लोक-अधिसूचना में उल्लिखित हों, प्रभावी होगी।

(2) इस अनुच्छेद में-

(क) "महापत्तन" से अभ्रिपेत है कोई पत्तन जो संसद द्वारा निर्मित किसी विधि या किसी वर्तमान विधि के द्वारा या अधीन महापत्तन घोषित किया गया है तथा उसके अंतर्गत वे सब क्षेत्र हैं जो तत्समय ऐसे पत्तन की सीमाओं के अन्तर्गत हैं;

(ख) "विमान-क्षेत्र" से अभिप्रेत है वायु-पथों, विमानों और विमान-परिवहन से संबंद्ध अधिनियमितियों के प्रयोजनों के लिए परिभाषित विमान-क्षेत्र।]"

श्रीमान इस अनुच्छेद को पेश करने का कारण यह है कि तत्कथित अन्तर्राष्ट्रीय विमान-क्षेत्रों के संबंध में कुछ कठिनाइयों का अनुभव किया गया है—वे कठिनाइयां उन यात्रियों—परराष्ट्र व्यक्तियों के आवागमन में व्यवस्था करने के प्रयत्न के कारण उत्पन्न होती हैं जो वहां आते हैं पर जो सामान्यतया उस समय उस प्रांत की विशेष विधियों के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आते हैं। जिनमें वे विमान-क्षेत्र स्थित हैं। मैं समझता हूं कि विचार यह है कि बम्बई के सान्ताक्रूज विमान-क्षेत्र तथा कलकत्ते के डमडम विमान क्षेत्र को अब अन्तर्राष्ट्रीय विमान-क्षेत्र समझा जायेगा। यह भी हो सकता है कि शीघ्र ही अन्य विमान-क्षेत्र भी इसी श्रेणी में आ जायें। मान लीजिये किसी प्रांत में मद्य के संबंध में पूर्ण प्रतिषेध विधि प्रवृत है तो जिस समय वह व्यक्ति जहाज पर से उतरता है और यदि उसके पास कुछ मद्य है तो वह उस प्रान्त की विधि के क्षेत्र के अंतर्गत आ जाता हैं जबकि उचित केवल यह है कि उसे उस राज्य की विधि के क्षेत्रान्तर्गत तब आना चाहिये जबकि वह विमान-क्षेत्र के बाहर जाकर राज्य-क्षेत्र में प्रवेश करे। और फिर कुछ विशिष्ट प्रतिभूति विनिमय

है जो विमान-क्षेत्रों में आवश्यक हो सकते हैं पर जो उस राज्य में प्रचलित प्रतिभूति-विनियमों की योजना के अनुकूल न हों। उदाहरणार्थ सैनिक विमान-क्षेत्रों में प्रतिभूति-विनियम बड़े कठोर होते हैं क्योंकि समूचा विमान-क्षेत्र सैनिक नियंत्रण के अधीन रहता है। असैनिक विमान-क्षेत्रों में स्थिति कुछ भिन्न होती है। जहां तक प्रतिभूति संबंधी प्रबन्धों तथा अन्य ऐसे ही विषयों का संबंध है केन्द्रीय सरकार को, जो असैनिक विमान-क्षेत्रों पर नियंत्रण रखती है, अधिकतर स्थानीय विधियों पर निर्भर करना पड़ता है और केवल निवारक कर्मचारी वृन्द को ही रखना आवश्यक नहीं है जिसके रखने की शक्ति अर्थसंबंधी विधान के द्वारा केन्द्रीय सरकार को है वरन् अंतर्राष्ट्रीय यातायात से तथा उनसे जो हस्तक्षेप करते हैं सुलझने के लिए विशेष शक्तियों युक्त विशेष आरक्षी भी रखनी पड़ती है।

महापत्तनों को भी यही आकस्मिकता लागू होगी विशेषकर नये पत्तनों को जो उन क्षेत्रों में स्थापित किये जायेंगे जिनको पहले देशी रियासतें कहा जाता था। इन पत्तनों के विषय में कुछ कठिनाइयां अनुभव की जा चुकी हैं और संभव है भविष्य में कुछ और कठिनाइयां हों। यह केवल एक शक्तिप्रदायक उपबन्ध है जो राष्ट्रपति को जो कठिनाइयां उत्पन्न होंगी उनको दूर करने की परिमित शक्तियां देता है और जिसके कारण प्रांतों को किसी विमान-क्षेत्र या पत्तन संबंधी विशेष परिस्थितियों के अनुकूल अपनी विधियों में परिवर्तन करना आवश्यक नहीं होगा। इस तथ्य के होते हुए भी कि राज्य में कोई महापत्तन या विमान क्षेत्र है यह प्रांतों को विधि बनाने में सहायता देगा और इसके द्वारा केन्द्र यदि चाहता है तो प्रांत में वर्तमान विधियों के अतिरिक्त विधियां पार कर या उस स्थिति की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल उन विधियों में रूप भेद कर वह उन क्षेत्रों पर नियंत्रण करने की सहायता प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के अनुच्छेद की उपयोगिता के विरुद्ध उदाहरण दिये जा सकते हैं पर उनकी मान्यता परिमित है। भविष्य में भिन्न प्रकार के उदाहरण पैदा होने की संभावना है। मैं फिर दुहराता हूं कि यह एक शक्तिप्रदायक उपबन्ध है जो प्रांतों की शक्तियों में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप नहीं करता है। महापत्तन तथा विमान क्षेत्र निर्विवाद रूप से केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन है और राष्ट्रपति द्वारा की गई कार्यवाही के द्वारा केन्द्र को अतिरिक्त विधायी नियंत्रण रखने की भी शक्ति है।

इस अनुच्छेद का प्रयोजन साधारण-सा है और मुझसे यह कहा गया है कि अंतर्राष्ट्रीय यातायात संबंधी विमान क्षेत्र और महापत्तनों के प्रशासन के संबंध में यह बहुत आवश्यक है। मैं आशा करता हूं कि सभा इसे स्वीकार करेगी।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** क्या सप्तम अनुसूची में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं होगा?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** जी नहीं, महापत्तन और विमान क्षेत्र केन्द्रीय विषय हैं।

***अध्यक्षः** प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना ने एक संशोधन की सूचना दी है। वे अपनी जगह पर नहीं हैं और इस कारण वह पेश नहीं किया जाता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि यह अनुच्छेद साधारण-सा क्यों कहा गया है और यह क्यों कहा गया है कि इसके द्वारा केवल आनुषंगिक परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है।

***अध्यक्ष:** यह नहीं कहा गया था कि यह आनुषंगिक परिवर्तन है।

***श्री आर.के सिधवा:** प्रस्तावक महोदय ने कहा था कि यह एक साधारण-सा अनुच्छेद है और इसका संबंध अन्तर्राष्ट्रीय यातायात से है और यह सभा द्वारा स्वीकृत हो जाना चाहिये।

श्रीमान, प्रस्तावना में यह नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति को असाधारण शक्तियां क्यों दी जायें और उस विधि के अतिक्रमण करने की शक्ति क्यों दी जाये जिसे विमान क्षेत्र तथा महापत्तन के संबंध में संसद बनायेगी। वे विषय संघ सूची में आते हैं। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि खंड (क) में यह उपबन्ध क्यों किया गया है कि "संसद द्वारा या राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि"। मैं नहीं समझता हूं कि महापत्तनों तथा विमान क्षेत्रों के संबंध में विधि बनाने की शक्ति किसी राज्य को है।

श्रीमान यदि यह अनुच्छेद युद्ध अथवा ऐसे ही अन्य आपातों के लिए हो तब तो मैं इसे समझ सकता हूं। विगत दो महायुद्धों में जनता का महापत्तनों तथा विमान क्षेत्र में प्रवेश प्रतिषिद्ध है और उनके यातायात पर अनेक निर्बन्धन लगा दिये गये हैं। इन बातों को मैं समझ सकता हूं। पर मैं यह नहीं समझ पाता कि जब संसद सामान्य रूप से विधि निर्मित करती है तो उन विधियों का राष्ट्रपति द्वारा अतिक्रमण क्यों हो। राष्ट्रपति को ऐसा करने के लिए शक्तियां देने के कारण क्या हैं? इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है। आज अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तनों में यदि कोई यात्री विदेश से आता है तो उसकी तलाशी होती है। उसका सामान और यहां तक कि स्वयं उसकी तलाशी ली जाती है। इस प्रयोजन के लिए चुंगी में दोनों पुरुष और स्त्री निरीक्षक होते हैं। ये सब निर्बन्धन अब भी हैं और इस कारण मैं नहीं समझता हूं कि राष्ट्रपति को यह शक्ति देने की कोई आवश्यकता है। जैसाकि मैं कह चुका हूं इस शक्ति की आवश्यकता को आपात में मैं मान सकता हूं। परन्तु जबकि संसद द्वारा निर्मित विधियां इस प्रयोजन के लिए सामान्यतया हैं तो इन विधियों के अतिक्रमण करने की शक्ति राष्ट्रपति को क्यों हो? मैं इस बात से सहमत हूं कि आपात में स्थिति भिन्न हो जायेगी। मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है। पत्तनों पर उतरने चढ़ने वाले यात्रियों के संबंधियों का प्रवेश वहां नहीं होने दिया जाता है। ऐसे निर्बन्धन वहां आपात काल में होते हैं। राष्ट्रपति में यह शक्ति सौंपने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता हूं। इसके स्थान में निम्नलिखित उपबन्ध का सुझाव दूंगा "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा यह निदेश देगा कि उस तिथि से जो उल्लिखित होगी आपात या युद्ध होने पर कोई विधि निर्मित की जा सकेगी।" यदि ये पंक्तियां जोड़ दी जायें तो इस अनुच्छेद का भिन्न अर्थ हो जायगा और वह आवश्यक हो सकता है। अन्यथा इसका यह आशय होगा कि आप संसद को विधि निर्माण करने की शक्ति से वंचित करना चाहते हैं। मैं इस बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं कि "राज्य का विधान मंडल" शब्द क्यों रखे गये हैं। क्या किसी राज्य को विमान क्षेत्र संबंधी विधि बनाने की शक्ति है?

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान् मैं समझता हूं कि मेरे मित्र श्री सिधवा ने स्थिति को बिल्कुल गलत समझा है। यदि वे अनुसूची सात सूची 2 के मद 30 और 35 को देखेंगे, जो उस विषय से संबंध रखते हैं जो मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किये संशोधन के अंतर्गत आता है तो उनको विदित होगा कि मद 30 और 35 के अधीन विधान बनाने की शक्ति जो केन्द्र को दी गई है वह बहुत ही परिमित रूप की है। मद 30 के अधीन दी गई शक्ति विमान यातायात के विनियमन तथा संगठन के प्रयोजन के लिए है। मद 35 के अधीन दी गई शक्ति विधान के परिसीमन के तथा पत्तन प्राधिकारियों की शक्ति के प्रयोजन के लिए है। उनको तुरन्त यह विदित हो जायेगा कि जहां तक विमान क्षेत्रों या विमान-पत्तनों तथा पत्तनों द्वारा घेरे गये राज्य क्षेत्र का संबंध है वह प्रांत के राज्य क्षेत्र का भाग है अत: राज्य द्वारा निर्मित कोई विधि विमान-क्षेत्र या पत्तन द्वारा घेरे गये क्षेत्र पर प्रयोज्य है। ये 30 और 35 प्रविष्टियां केन्द्र को उन सब विषयों के लिये विधान बनाने की शक्ति नहीं देती है जो इन प्रविष्टियों के अधीन केन्द्रीय सरकार के क्षेत्र के अंतर्गत हैं। ये शक्तियों परिमित हैं। अत: इस अनुच्छेद के अधीन प्रस्थापना यह है: यद्यपि विमान क्षेत्रों द्वारा तथा पत्तनों द्वारा घेरे गये क्षेत्रों को वह प्रांतों के क्षेत्र के भाग के रूप में रहने देता है–वह उनको अपवर्जित नहीं करता है—पर वह सूची 2 में दिये गये किसी मद के अधीन विधि बनाने की राज्य की शक्ति को बनी रहने देता है और ये विधियां विमान-क्षेत्रों तथा पत्तनों द्वारा घेरे गये क्षेत्रों पर प्रयोज्य होंगी। संशोधन में जो कुछ कहा गया है वह यह है कि यदि केन्द्रीय सरकार समझती है कि किसी विशेष कारणवश, जैसेकि स्वच्छता, निरोध इत्यादि, उस राज्य द्वारा कोई विधि बनाई जाती है जिसके अधिकार क्षेत्र में वह विमान-क्षेत्र तथा पत्तन स्थित है तो राष्ट्रपति को यह कहने का अधिकार होगा कि उस राज्य की वह विशेष विधि उस अथवा किसी अन्य अधिसूचना के अधीन विमान क्षेत्रों या पत्तनों को लागू होगी। जहां तक विमान क्षेत्रों और पत्तनों का संबंध है इससे अधिक केन्द्र की ओर से सूची 2 में दी हुई प्रविष्टियों के संबंध में राज्य की विधि बनाने की शक्तियों पर कोई आक्रमण नहीं होगा। मैं आशा करता हूं कि मेरे मित्र श्री सिधवा अब अपना विरोध वापस ले लेंगे।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 450 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 302 कक के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'302AAA. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution, the President may by public notification direct that as from such date as may be specified in the notification—

Special provisions as to major ports and aerodromes.

(a) any law made by Parliament or by the Legislature of a State shall not apply to any major port or aerodrome or shall apply thereto subject to such exceptions or

[अध्यक्ष]

modifications as may be specified in the notification, or

(b) any existing law shall cease to have effect in any major port or aerodrome except as respects things done or omitted to be done before the said date, or shall in its application to such port or aerodrome have effect subject to such exceptions or modifications as may be specified in the notification.

(2) In this article—

(a) 'major port' means a port declared to be a major port by or under any law made by Parliament or any existing law and includes all areas for the time being included within the limits of such port;

(b) 'aerodrome' means aerodrome as defined for the purposes of the enactments relating to airways, aircraft and air navigation.'

महापत्तनों और विमान क्षेत्रों के लिए विशेष उपबन्ध।

[302ककक. (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि ऐसी तारीख से लेकर जैसी कि अधिसूचना में उल्लिखित हो–

(क) संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित कोई विधि किसी महापत्तन या विमान-क्षेत्र को लागू न होगी अथवा ऐसे अपवादों या रूप भेदों के अधीन रहकर, जैसे कि लोक-अधिसूचना में उल्लिखित हों, लागू होगी, अथवा

(ख) कोई वर्तमान विधि किसी महापत्तन या विमान-क्षेत्र में उक्त तारीख से पहले की हुई या किये जाने से छोड़ दी गई बातों के संबंध से अतिरिक्त अन्य बातों के लिए प्रभावी न होगी, अथवा ऐसे पत्तन या विमान-क्षेत्र में ऐसे अपवादों या रूप भेदों के अधीन रहकर, जैसे कि लोक-अधिसूचना में उल्लिखित हों, प्रभावी होगी।

(2) इस अनुच्छेद में–

(क) "महापत्तन" से अभिप्रेत है कोई पत्तन जो संसद द्वारा निर्मित किसी विधि या किसी वर्तमान विधि के द्वारा या अधीन महापत्तन घोषित किया गया है तथा उसके अंतर्गत

वे सब क्षेत्र हैं जो तत्समय ऐसे पत्तन की सीमाओं के अंतर्गत हैं;

(ख) "विमान-क्षेत्र" से अभिप्रेत है वायु-पथों, विमानों और विमान-परिवहन से संबद्ध अधिनियमितियों के प्रयोजनों के लिए परिभाषित विमान-क्षेत्र।]"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 302 ककक संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् हम अगले मद अनुच्छेद 306 क पर आते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि हम अगले मद को इस समय छोड़ दें ओर अनुसूची 3 क को ले लें।

***अध्यक्ष:** हां, हम उसे ले सकते हैं।

अनुसूची 3क

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय:

"कि अनुसूची 3 के पश्चात् यह अनुसूची प्रविष्ट की जाये:

'SCHEDULE III-A

[ARTICLES 4(1) & 67(1A)]

ALLOCATION OF SEATS IN THE COUNCIL OF STATES

To each State or States specified in the first column of the table of seats appended to this Schedule there shall be allotted the number of seats specified in the second column of the said table opposite to that State or States, as the case may be.

TABLE OF SEATS

THE COUNCIL OF STATES

REPRESENTATIVES OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART I OF THE FIRST SCHEDULE

	States					Total Seats
	1					2
1.	Assam	...	...	...	...	6
2.	Bengal	...	...	...	...	14

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

1		2
3.	Bihar	21
4.	Bombay	17
5.	Koshal-Vidarbh	12
6.	Madras	27
7.	Orissa	9
8.	Punjab	8
9.	United Provinces	30
	Total	144

REPRESENTATIVES OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART II OF THE FIRST SCHEDULE

States and Groups of States		Total Seats
1.	Ajmer }	1
2.	Coorg }	
3.	Bhopal	1
4.	Bilaspur }	1
5.	Himachal Pradesh }	
6.	Cooch-Behar	1
7.	Delhi	1
8.	Kutch	1
9.	Manipur }	1
10.	Tripura }	
11.	Rampur	1
	Total	8

REPRESENTATIVES OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART III OF THE FIRST SCHEDULE

States		Total Seats
1		2
1.	Hyderabad	11
2.	Jammu and Kashmir	4
3.	Madhya Bharat	6

1		2
4.	Mysore	6
5.	Patiala and East Punjab States Union	3
6.	Rajasthan	9
7.	Saurashtra	4
8.	Travancore-Cochin	6
9.	Vindhya Pradesh	4
	Total	53
	Total of all Seats	205' "

[अनुसूची 3क

[अनुच्छेद् 4 (1) और 67 (1क)]

राज्य-परिषद में के स्थानों का बंटवारा

इस अनुसूची से संलग्न स्थान-सारिणी के प्रथम स्तम्भ में उल्लिखित प्रत्येक राज्य या राज्यों को यथास्थिति उतने स्थान बांट में दिये जायेंगे जितने कि उक्त सारिणी के दूसरे स्तम्भ में उस राज्य या राज्यों के सामने उल्लिखित हैं।

स्थान-सारिणी

राज्य-परिषद्

प्रथम अनुसूची के भाग (1) में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि

राज्य		कुल स्थान
1		2
1.	आसाम	6
2.	उड़ीसा	9
3.	पंजाब	8
4.	बंगाल	14
5.	बिहार	21
6.	मद्रास	27
7.	कौशल-विदर्भ	12
8.	मुम्बई	17
9.	युक्त प्रदेश	30
	कुल	144

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

प्रथम अनुसूची के भाग (2) में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि

	राज्य और राज्य समूह	कुल स्थान
1.	अजमेर	1
2.	कोड़गु	
3.	कच्छ	1
4.	कोच-बिहार	1
5.	दिल्ली	1
6.	बिलासपुर	1
7.	हिमाचल प्रदेश	
8.	भोपाल	1
9.	मनीपुर	1
10.	त्रिपुरा	
11.	रामपुर	1
	कुल	8

प्रथम अनुसूची के भाग (3) में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि

	राज्य	कुल स्थान
1.	जम्मू और कश्मीर	4
2.	तिरुवांकुर-कोचीन	6
3.	पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य	3
4.	मध्य भारत	6
5.	मैसूर	6
6.	राजस्थान	9
7.	विन्ध्य प्रदेश	4
8.	सौराष्ट्र	4
9.	हैदराबाद	11
	कुल	53
	कुल स्थानों का जोड़	205]"

श्रीमान्, ये तीन सारिणियां हैं, एक उन राज्यों के संबंध में है जो भाग 1 में उल्लिखित है, दूसरी भाग 2 में उल्लिखित राज्यों के संबंध में है और तीसरी भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के संबंध में है और बांट में दिये जाने वाले स्थानों की कुल संख्या 205 होती है। श्रीमान, संविधान में तत्संबंधी अनुच्छेद 67

खंड (1), (2), (3) और (4) हैं और माननीय सदस्यों ने यह देखा होगा कि खंड (1) के अधीन अधिकतम संख्या 250 नियत की गई है जिनमें बारह सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे और शेष राज्यों के प्रतिनिधि होंगे इन सारिणियों की योजना का आधार संघ संविधान समिति का पहली दिसम्बर सन् 1948 की बैठक का विनिश्चय है जिसमें इस सभा के निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे:

माननीय श्री जवाहर लाल नेहरू,

माननीय श्री जगजीवन राम,

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर,

श्री के.एम. मुंशी,

प्रो. के.टी. शाह,

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी, और

श्री बी.एच. जैदी।

यदि मुझे अनुमति दी जाये तो मैं इस समिति के प्रतिवेदन के सुसंगत भाग को पढ़कर सुनाऊंगा।

"कार्यालय द्वारा तैयार की गई राज्य-परिषद् में स्थानों के बंटवारे की पुनरीक्षित योजना के विवरण को इस समिति ने नहीं लिया क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकार के विलयन के कारण देशी राज्यों की स्थिति अभी अनिश्चित है। उसका यह विचार है कि स्थानों के विवरण पूर्ण बंटवारे पर किसी बाद की तिथि तक विचार स्थगित कर दिया जाये। अपने पहले विनिश्चय को दुहराते हुए कि राज्य-परिषद में एककों का प्रतिनिधान प्रत्येक दस लाख जनसंख्या से लेकर पचास लाख जनसंख्या तक एक प्रतिनिधि के हिसाब से और उसके पश्चात् प्रत्येक बीस लाख जनसंख्या पर एक और प्रतिनिधि के हिसाब से होगा, समिति ने एक और विनिश्चय को मानना आवश्यक समझा कि किसी एक एकक से प्रतिनिधियों की अधिकतम संख्या 25 तक परिमित होगी। यह देखा गया कि केवल दो राज्य मद्रास और संयुक्त प्रांत पर ऐसे परिसीमन के आरोपण का प्रभाव पड़ेगा और एकरूपता लाते हुए इस परिसीमा के निराकरण से स्थानों की समस्त संख्या में सात स्थानों की वृद्धि होगी जो उस समस्त 250 सदस्यों की अधिकतम संख्या के अंतर्गत होगी जो संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 67(1) में उपबंधित है।"

श्रीमान्, संघ संविधान समिति के इस प्रतिवेदन के आधार पर प्रत्येक दस लाख से पचास लाख जनसंख्या तक एक स्थान और प्रत्येक बीस लाख की और अधिक जनसंख्या पर एक और स्थान के हिसाब से स्थान बांटे जाने चाहियें और इसका कुल जोड़ लगा लिया गया है और जैसा कि माननीय सदस्य देखेंगे कि कुल जोड़ 205 जिसमें 12 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत और जोड़कर 217 हो जाता है। हमारे पास अभी अनुच्छेद 67(1) में उल्लिखित अधिकतम संख्या तक पहुंचने के लिए 33 स्थान शेष हैं।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

मैं यह कहना चाहूंगा कि यह क्यों आवश्यक है क्योंकि हम कोई और योजना भी अभिस्वीकृत कर सकते थे चाहे वह संघ संविधान समिति की सिफारिशों के विरुद्ध होती। सभा के माननीय सदस्य यह समझ जायेंगे कि यह हो सकता है कि भाग 1 में के एककों में आगे और जोड़ तोड़ हो। यदि ऐसा होगा तो यह स्वाभाविक है कि संख्या में वृद्धि होगी क्योंकि एककों के प्रत्येक जोड़ तोड़ से कम से कम 5 सदस्य संख्या और बढ़ जायेगी। इस संविधान के अनुच्छेद 3 के अधीन भावी सरकारों द्वारा की गई कार्यवाही के आधार पर फिर बंटवारा करने से इस संख्या 217 को और भी अधिक बढ़ाना आवश्यक हो जायेगा इसलिए संघ संविधान समिति द्वारा बताई गई योजना के अनुसार यह उपबंध कर दिया गया है कि दस लाख से पचास लाख तक एक स्थान और इसके बाद प्रत्येक बीस लाख पर एक स्थान जो मैं समझता हूं कि एक बहुत ही उचित प्रबन्ध है और जहां तक भविष्य का संबंध है इसके कारण कार्य में स्वतंत्रता हो जायेगी। जहां तक इन संख्याओं का संबंध है मैं इनके सही होने का दावा नहीं करता हूं। यह भी हो सकता है कि व्यवस्था किसी दूसरी प्रकार से हो। उदाहरणार्थ भाग 2 में के राज्यों के पुनर्सामुहिककरण पर आपत्ति की जाये। यह सम्मति पर निर्भर करता है।

मैं समझता हूं कि यह योजना ठीक है पर यदि इस सभा के सदस्यों तथा बाहर की जनता को कोई आपत्ति है तो उन आपत्तियों की जांच की जायेगी और वे आपत्तियां आपके सामने रखी जायेंगी और यदि आप मुझे आज्ञा देंगे तो बाद में आवश्यक संशोधन पेश कर दिये जायेंगे, पर मैं नहीं समझता हूं कि अब से लेकर तृतीय पठन तक सभा के समक्ष रखे गये इस प्रबंध में किसी भी गंभीर परिवर्तन की आवश्यकता हो।

मैं एक और बात का जिक्र करना चाहूंगा कि इस संशोधन के करने से मुझे तीन आनुषंगिक संशोधन करने पड़ेंगे क्योंकि कुछ परिवर्तन हो गये हैं। एक बात यह है कि अनुच्छेद 67 (1क) अनुसूची 3ख के संबंध में है। इस अनुच्छेद के इस विशिष्ट उपखंड में एक संशोधन आवश्यक होगा। अनुच्छेद 4 में भी एक संशोधन आवश्यक होगा क्योंकि अनुच्छेद 4 पर विचार करते समय प्रथम अनुसूची के साथ हम राज्य-परिषद् में स्थान-सारिणी संबंधी अनुसूची का वर्णन करना भूल गये। अनुच्छेद 4 इस प्रकार है:

> "इस संविधान के अनुच्छेद 2 अथवा 3 में निर्दिष्ट किसी विधि में, प्रथम अनुसूची के संशोधनार्थ, ऐसे उपबंध होंगे, जो उस विधि के उपबंधों को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हों, तथा ऐसे प्रासंगिक तथा आनुषंगिक उपबन्ध भी हो सकेंगे जैसे संसद आवश्यक समझे।"

प्रथम अनुसूची में कोई परिवर्तन अनुसूची 3 में परिवर्तन आवश्यक कर देगा। प्रथम अनुसूची और तृतीय अनुसूची को साथ-साथ लेना आवश्यक है। बाद में अनुसूची 3क को अनुच्छेद 4 में रखने का संशोधन पेश करूंगा। यदि वह संशोधन, जिसे मैंने अभी अनुसूची 3क को समाविष्ट करने के लिए पेश किया है जिसमें राज्य-परिषद् की स्थान-सारिणी दी हुई है, सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो बाद में ये संशोधन पेश किये जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह नहीं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र ने एक बार फिर मेरे माननीय साथियों को "इस सभा में के लोग" के रूप में उल्लेख क्यों किया।

***अध्यक्षः** उन्होंने "माननीय सदस्य और बाहर की जनता" कहा था।

प्रश्न यह है:

"कि अनुसूची 3 के पश्चात् निम्नलिखित अनुसूची प्रविष्ट की जाये

'SCHEDULE III-A

[ARTICLES 4(1) & 67(1a)]

ALLOCATION OF SEATS IN THE COUNCIL OF STATES

To each State or States specified in the first column of the table of seats appended to this Schedule there shall be allotted the number of seats specified in the second column of the said table opposite to that State or States, as the case may be.

TABLE OF SEATS

THE COUNCIL OF STATES

REPRESENTATIVES OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART I OF THE FIRST SCHEDULE

	States	Total Seats
1.	Assam	6
2.	Bengal	14
3.	Bihar	21
4.	Bombay	17
5.	Koshal-Vidarbh	12
6.	Madras	27
7.	Orissa	9
8.	Punjab	8
9.	United Provinces	30
	Total	144

[अध्यक्ष]

REPRESENTATIVES OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART II OF THE FIRST SCHEDULE

States and Groups of States	Total Seats
1. Ajmer 2. Coorg	1
3. Bhopal	1
4. Bilaspur 5. Himachal Pradesh	1
6. Cooch-Behar	1
7. Delhi	1
8. Kutch	1
9. Manipur 10. Tripura	1
11. Rampur	1
Total	8

REPRESENTATIVES OF STATES FOR THE TIME BEING SPECIFIED IN PART III OF THE FIRST SCHEDULE

	States	Total Seats
1.	Hyderabad	11
2.	Jammu and Kashmir	4
3.	Madhya Bharal	...6
4.	Mysore	6
5.	Patiala and East Punjab States Union	3
6.	Rajashtan	9
7.	Saurashtra	4
8.	Travancore-Cochin	6
9.	Vindhya Pradesh	4
	Total	53
	Total of all Seats	205’

[अनुसूची 3क

[अनुच्छेद 4(1) और 67(1क)]

राज्य-परिषद् में के स्थानों का बंटवारा

इस अनुसूची से संलग्न स्थान-सारिणी के प्रथम स्तम्भ में उल्लिखित प्रत्येक राज्य या राज्यों को यथास्थिति उतने स्थान बांट में दिये जायेंगे जितने कि उक्त सारिणी के दूसरे स्तम्भ में उस राज्य या राज्यों के सामने उल्लिखित हैं।

स्थान-सारिणी

राज्य-परिषद्

प्रथम अनुसूची के भाग (1) में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि

	राज्य	कुल स्थान
1.	आसाम	6
2.	उड़ीसा	9
3.	पंजाब	8
4.	बंगाल	14
5.	बिहार	21
6.	मद्रास	27
7.	कौशल-विदर्भ	12
8.	बम्बई	17
9.	युक्त प्रदेश	30
	कुल	144

प्रथम अनुसूची के भाग (2) में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि

राज्य और राज्य समूह 1		कुल स्थान 2
1.	अजमेर	1
2.	कोड़गु	
3.	कच्छ	1

[अध्यक्ष]

1		2
4.	कोच-बिहार	1
5.	दिल्ली	1
6.	बिलासपुर	1
7.	हिमाचल प्रदेश	
8.	भोपाल	1
9.	मनीपुर	1
10.	त्रिपुरा	
11.	रामपुर	1
	कुल	8

प्रथम अनुसूची के भाग (3) में इस समय उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि

	राज्य	कुल स्थान
1.	जम्मू और कश्मीर	4
2.	तिरुवांकुर-कोचीन	6
3.	पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य	3
4.	मध्य भारत	6
5.	मैसूर	6
6.	राजस्थान	9
7.	विन्ध्य प्रदेश	4
8.	सौराष्ट्र	4
9.	हैदराबाद	11
	कुल	53
	कुल स्थानों का जोड़	205]"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुसूची 3-क संविधान में प्रविष्ट की गई।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 67 के खंड (1क) में 'Schedule III B' शब्द, संख्या और अक्षर के स्थान में 'Schedule IIIA' शब्द, संख्या और अक्षर रखे जायें।"

इस संशोधन की आवश्यकता मैं बतला ही चुका हूं। मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

***अध्यक्षः** यह केवल आनुषंगिक है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 67 के खंड (1क) में 'Schedule III B' शब्द, संख्या और अक्षर के स्थान में 'Schedule III A' शब्द, संख्या और अक्षर रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'First Schedule' शब्दों के पश्चात्, 'and Schedule III A' शब्द, संख्या और अक्षर रखे जायें।"

इस संशोधन की आवश्यकता को भी मैं बता चुका हूं। मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

***अध्यक्षः** यह भी आनुषंगिक है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'First Schedule ' शब्दों के पश्चात्, 'and Schedule III A' शब्द, संख्या और अक्षर जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'incidental and consequential provisions' शब्दों के स्थान में 'supplemental, incidental and consequential provisions (including provisions as to representation in Parliament and in the Legislature or Legislatures of the State or States to be affected by such law)' शब्द और कोष्ठक रख दिये जायें।"

यह उन शब्दों का रूप भेद है जिन्हें हम हटाना चाहते हैं। इस संशोधन में ऐसी यथार्थ बात कोई नहीं है जो अनुच्छेद 4 में दिये हुए किसी सिद्धांत का परिवर्तन करती हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** क्या इससे मूल पाठ के क्षेत्र का परिवर्द्धन हो जाता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** केवल इस सीमा तक कि अनुच्छेद 4 अनुच्छेद 3 के संबंध में एक प्रवृतनीय खंड है, और यह परिवर्तन केवल उसी सीमा तक निर्बन्धित है जिस तक वह नितांत आवश्यक है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 4 के खंड (1) में 'incidental and consequential provisions' शब्दों के स्थान में 'supplemental, incidental and consequential provisions (including provisions as to representation in Parliament and in the Legislature or Legislatures of the State or States to be affected by such law)' शब्द और कोष्ठक रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

भाग 18

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि भाग 18 के स्थान में निम्नलिखित भाग रखा जाये:

'Part XVIII

Short Title, Commenement and Repeals.

Short title 313A. This Constitution may be called the Constitution of India.'

[भाग 18

संक्षिप्त नाम, प्रारम्भ और निरसन।

संक्षिप्त नाम 313क–यह संविधान भारत का संविधान नाम से ज्ञात हो सकेगा।]"

***श्री बी. दासः** आपको "इंडिया अर्थात् भारत" कहना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** जैसे हमने संविधान में अन्यत्र इंडिया का प्रयोग किया है उसी प्रकार से इस शब्द का हमने यहां प्रयोग किया है।

" '314. This article and articles 5, 5A, 5AA, 5B, 303, 311' 311A and 312F of this Constitution shall come into force at once, and the remaining provisions thereof shall come into force on the twenty-sixth day of January, 1950, which date is referred to in this Constitution as the date of commencement of this Constitution.

Commence-ment

315. The Indian Independence Act, 1947, in so far as its provisions are repugnant to this Constitution and the Government of India Act, 1935, including the India (Central Government and Legislature) Act, 1946 and, all other enactments amending or supplementing the Government of India Act, 1935, shall cease to have effect: Repeals

Provided that nothing in this article shall affect the provisions of the Abolition of Privy Council Jurisdiction Act, 1949.'

[314—यह अनुच्छेद और अनुच्छेद 5, 5क, 5कक, 5ख, 303, 311, 331क और 312 (च) तुरन्त प्रवृत्त होंगे, तथा इस संविधान के अवशिष्ट उपबन्ध 1950 की 26 जनवरी के दिन प्रवृत होंगे जो दिन कि इस संविधान में इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। प्रारम्भ

315—भारत स्वाधीनता अधिनियम, 1947, उस सीमा तक जहां तक कि उसके उपबन्ध इस संविधान के विरुद्ध है, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935, भारत (केन्द्रीय शासन और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 के सहित, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935 को संशोधन और अनुपूरण करने वाली सब अधिनियमितियां प्रभाव-शून्य हो जायेंगे: निरसन

परन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात से प्रिवी कौंसिल क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1949 के उपबन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।]

श्रीमान, प्रथम खंड 313 क औपचारिक है। दूसरा खंड अनुच्छेद 314 के संबंध में है जिसके लिए संविधान के मसौदे में "यह संविधान भारत का संविधान..... ....." शब्दों के पश्चात् खाली स्थान छोड़ दिया गया था। इस खंड में नागरिकता संबंधी अनुच्छेद 5 (क), 5 कक और 5 ख, (परिभाषायें) अनुच्छेद 303 और अनुच्छेद 311, 311क और 312 (च) जो अन्तर्कालीन उपबंद हैं, रखे गये हैं। 311क अन्तर्कालीन संसद के निर्वाचन के और 311 क अन्तर्कालीन राष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में हैं और अनुच्छेद 312(च) अन्तर्कालीन संसद के संबंध में है जिससे कि उपनिर्वाचनों में पालन की जाने वाली रीति का तथा इस प्रयोजन के लिये पालन किये जाने वाले नियमों का विनिश्चयन हो सके। चूंकि ये अनुच्छेद तुरन्त ही प्रवृत होंगे इसलिए ये रख दिये गये हैं। अवशिष्ट अनुच्छेद एक नियत किये हुए दिन को प्रवृत होंगे जो 1950 की 26 जनवरी है।

जहां तक अनुच्छेद 315 का संबंध है, यह न्यूनाधिक रूप से संविधान के मसौदे की योजना के अनुसार है केवल इस अपवाद के कि हमने यह उपबन्ध

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

करना आवश्यक समझा कि इस सभा द्वारा पारित प्रिवी कौंसिल क्षेत्राधिकार अधिनियम के प्रवर्तन पर इस निरसन का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं नहीं समझता हूं कि इन अनुच्छेदों के आशय को समझाना आवश्यक है क्योंकि ये अनुच्छेद स्वयं व्याख्यात्मक है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन के लिए एक आयोग की नियुक्ति के बारे में क्या विचार है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उसको हमने नहीं रखा है। मैं उसे जोड़ना चाहूंगा। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 290 के अधीन निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन का प्रश्न हो सकता है। इसके पूर्व अन्तर्कालीन संसद द्वारा एक विधान पारित होना चाहिये। मैं नहीं समझता हूं कि अब से लेकर 26 जनवरी 1950 तक इस संबंध में कुछ किया जा सकता है। यदि आपकी अनुज्ञा हो तो यहां मैं एक और विषय का जिक्र करूंगा। ये वे अनुच्छेद हैं जिनका अनुच्छेद 314 में रखना अब हमें आवश्यक प्रतीत होता है। इस स्थिति की जांच कुछ समय बाद की जायेगी। मैं समझता हूं कि भारत सरकार से सम्बद्ध विधि मंत्रालय इस समूचे विषय पर विचार कर रहा है और संविधान के उन उपबंधों की सावधानीपूर्वक जांच कर रहा है जिनको नियुक्त तिथि से पूर्व प्रवृत्त करना होगा। यदि हमने यह अनुभव किया कि इन अनुच्छेदों में कुछ बातें जोड़ी जायें तो बाद में उन बातों को रखने के लिए हम आपकी तथा इस सभा की अनुज्ञा ले लेंगे। अनुच्छेदों का अध्ययन करने के बाद और उन अनुच्छेदों के आशय की जांच करने के बाद इस समय ये ही ऐसे अनुच्छेद हैं जिन पर, जहां तक हम देख सकते हैं, प्रभाव पड़ा है। परन्तु अन्य आनुषंगिक विषय उत्पन्न हो सकते हैं, और यदि अनुच्छेदों की जांच और परीक्षण करने पर हमें ऐसे विषय दिखाई दिये तो आपकी अनुज्ञा प्राप्त कर हम उन विषयों को अवश्य सभा के समक्ष रखेंगे।

***अध्यक्षः** मूल अनुच्छेद संबंधी कुछ संशोधन हैं। यदि सदस्य चाहते हैं और यदि वे इस समय रखे गये संशोधन में ठीक बैठते हैं तो मैं उन्हें ले लूंगा। ऐसे संशोधन तीन ये हैं। एक डॉ. देशमुख का है। वे यहां पर नहीं हैं इस कारण वह पेश नहीं किया जाता है। दूसरा श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है वे भी यहां नहीं हैं। इसलिए वह भी पेश नहीं किया जाता है। इसके बाद अनुच्छेद 315 के संबंध में डॉ. देशमुख का एक और संशोधन है। अतः वह भी पेश नहीं किया जाता है। क्या और भी हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मुद्रित सूची के अंक 2 में मेरे कुछ संशोधन हैं।

***अध्यक्षः** आप उन्हें पेश कर सकेंगे। पर मैं समझता हूं कि हम उन्हें आरम्भ से लें। सर्वप्रथम 314, इस पर कुछ संशोधन हैं। एक श्री एन. अहमद का, इस अध्याय की क्रम संख्या के संबंध का है। यह शाब्दिक है और इसको लेना आवश्यक नहीं है। श्री प्रकाशम् यहां नहीं हैं। श्री लारी अब सदस्य नहीं हैं। 314 पर और कोई संशोधन नहीं है। 315 पर कामत द्वारा एक संशोधन संख्या 3325 है। वे उसे पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं मुद्रित सूची 2 के संशोधन 3325 और 3327 का उल्लेख करता हूं। संशोधन संख्या 3325 को मैं पेश करना नहीं

चाहता हूं क्योंकि जिस रूप में यह अनुच्छेद अब मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने पेश किया है। उसमें जिस तिथि को यह संविधान प्रवृत होगा उस तिथि के संबंध में अनुच्छेद 314 में परिवर्तन कर दिया गया हैं अत: मेरा वह संशोधन जो संविधान की आरम्भ तिथि के संबंध में था अब कोई मान्यता नहीं रखता है। संशोधन संख्या 3327 शाब्दिक अथवा औपचारिक है। सभा ने यह देखा होगा कि अनुच्छेद 315 का हाशिये में शीर्षक "निरसन" है और इसके अनुरूप मैंने सोचा कि इस अनुच्छेद के अंत में "प्रभावशून्य होंगे" के स्थान में "निरसित किये जायेंगे" कहना अधिक ठीक होगा। वास्तव में मैं न तो वकील हूं और न संविधानिक शब्दावलियों तथा पदावलियों के विषय का माना हुआ विद्वान हूं। मैं इस विषय को मसौदा-समिति की सामूहिक बुद्धिमता पर छोड़ने से संतुष्ट हूं।

पर श्रीमान्, अभी मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने जो संशोधन 463 पेश किया है उसके संबंध में मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा। पहली बात जिस रूप में उन्होंने अनुच्छेद 315 पेश किया है उसके संबंध में है। यह भारत स्वाधीनता अधिनियम, 1947 के संबंध में है। यदि सभा इसकी तुलना इस अनुच्छेद के मूल मसौदे से करेगी तो उनको यह विदित हो जायेगा कि "उस सीमा तक जहां तक कि इसके उपबंध इस संविधान के विरुद्ध हैं" शब्द नये प्रविष्ट किये गये हैं। मूल मसौदा इस विषय में मौन था। मैं यह जानना चाहूंगा कि इन शब्दों का वास्तविक महत्व क्या है। क्या हम साफ, स्पष्ट तथा निश्चित रूप में यह नहीं कहते हैं कि इस संविधान के आरम्भ की तिथि से भारत स्वाधीनता अधिनियम निरसित हो जायेगा तथा भारत शासन अधिनियम और जो कुछ हो वह भी? जब यह संविधान प्रवृत होता है तो उस तिथि तक जो विधियां प्रवृत थीं वे सब अपने आप रद्द तथा शून्य हो जाती हैं। अत: "उस सीमा तक जहां तक उसके उपबंध इस संविधान के विरुद्ध हैं" शब्द अनावश्यक हैं और इनको अपमार्जित किया जाये। मुझे खेद है कि मेरे पास संशोधन की सूचना देने का समय नहीं था।

अनुच्छेद 314 इस संविधान के आरम्भ की तिथि का निर्देशन करता है। यह ठीक है कि कुछ अनुच्छेद तुरन्त प्रवृत होंगे। इस विषय पर मुझे कुछ भी नहीं कहना है। पर इस अनुच्छेद के दूसरे भाग के बारे में जिसमें यह कहा गया है कि शेष संविधान 1950 की 26 जनवरी से प्रवृत होगा मैंने कुछ समय पूर्व एक सुझाव दिया था कि हमारे राष्ट्रीय पत्र में 26 जनवरी की अपनी निराली पवित्रता है इस बात को अपने संपूर्ण हृदय से मानते हुए यह सुझाव दिया था कि फिर भी हम कोई और दिन रखें और वह दिन वस्तुस्थिति के अनुकूल तथा एक बहुत ही उपयुक्त रूप में हमारी पूर्ण स्वतंत्रता तथा गणतंत्रात्मक रूप का प्रतीक हो। हम उसका नाम "गणराज्य दिवस" रख सकते हैं। 26 जनवरी तो फिर भी "स्वाधीनता दिवस" के रूप में माना जा सकता है, वह दिन जिस दिन हमने प्रसिद्ध स्वाधीनता शपथ ग्रहण की थी, जिसे हम अपने राष्ट्रीय पत्रे में अन्य दिवस के समान मान सकते हैं। "स्वाधीनता दिवस" और "गणराज्य दिवस" के एक

[श्री एच.वी. कामत]

होने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर मैं समझता हूं कि यदि हम "स्वाधीनता दिवस" 26 जनवरी को रखें और जनवरी या दिसम्बर के किसी और दिन "गणराज्य दिवस" रखें तो इससे हमारे राष्ट्रीय पत्रे का महत्व और अधिक बढ़ जायेगा। यदि हो सके तो 9 दिसम्बर 1949 को हम "गणराज्य दिवस" रखें क्योंकि इस ऐतिहासिक सभा का आरम्भ हमने 9 दिसम्बर को किया था। पर शायद उस समय तक ये सब बातें तैयार नहीं हो सकती हैं अतः जनवरी के किसी दिन के लिए सुझाव दूंगा और उस दिवस को "स्वाधीनता दिवस" या "गांधी जयंती" या अन्य किसी राष्ट्रीय दिवस के समान "गणराज्य दिवस" के रूप में मनाया जाये। सभा से अपने एक इस प्रकार के छोटे से निवेदन पर विचार करने के लिए प्रार्थना करूंगा कि हम यह भी कह सकते हैं कि इस संविधान के अवशिष्ट उपबन्ध 25-26 की अर्द्ध-रात्रि से प्रवृत होंगे। जिस प्रकार से हमने स्वतंत्रता का स्वागत 14-15 अगस्त 1947 की रात्रि को किया था उसी प्रकार से यदि हम यहां निश्चित रूप से यह कह दें कि इस संविधान के अवशिष्ट उपबंध 25-26 जनवरी की रात्रि से प्रवृत होंगे तो यह वस्तुस्थिति के अनुकूल होगा और यदि आज यह स्वीकार कर लिया जाता है तो इससे एक और ऐतिहासिक उत्सव मनाने का मार्ग खुल जायेगा।

मैं यह नहीं जानता हूं कि ज्योतिषी लोग इस विषय में क्या कहेंगे, क्योंकि पिछली बार जब उनसे परामर्श किया गया था तो उस तिथि के शुभ होने के बारे में मतभेद था।

***अध्यक्षः** उन्होंने अपना मत बिना पूछे दिया था।

***श्री एच.वी. कामतः** बाहर के मित्रों ने उनसे परामर्श किया था और वे इस बात से पूर्णतया सहमत न थे कि वह पूर्णरूप से शुभ है। मैं नहीं समझता हूं कि हमें सदैव ज्योतिषियों की सम्मति पर निर्भर करना चाहिये, पर अन्य बातें समान होने पर हम उसे 25-26 जनवरी 1950 की अर्द्ध रात्रि को भी मना सकते हैं।

मैं आशा करता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी मेरी बातें सुन रहे थे और जो सुझाव मैंने दिये हैं उनका उत्तर देने का वे भरसक प्रयत्न करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं, पर श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन पेश किया है उसके प्रति प्रस्थापित अनुच्छेद 315 के बारे में मुझे कुछ कठिनाई है। अनुच्छेद 315 में यह कहने का प्रयत्न किया गया है कि भारत स्वाधीनता अधिनियम उस सीमा तक जिस तक कि वह इस संविधान के विरुद्ध है प्रभाव शून्य होगा। मैं समझता हूं कि यह बात पुराने अनुच्छेद 307 के अंतर्गत आ जानी चाहिये। मैं यह नहीं जानता हूं कि उस अनुच्छेद का क्या हुआः उसको पेश करने का विचार है या नहीं। पर संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 307.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** दूसरा अनुच्छेद 307 पेश किया जा चुका है। तथा स्वीकार हो गया है और इस संविधान का अंग है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस अनुच्छेद 307 के अंतर्गत 315 आ जाता है। मैं पुराने अनुच्छेद को निर्दिष्ट कर रहा हूं और मैं समझता हूं कि नया अनुच्छेद 307 का सार उसी प्रकार का है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** सिवा खण्ड (2) के।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** खण्ड (1) में कहा गया है "इस संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में सब प्रवृत विधियां तब तक प्रवृत्त होंगी जब तक.....

अत: "भारत के राज्यक्षेत्र में सब प्रवृत्त विधियां" के अंतर्गत भारत स्वाधीनता अधिनियम, 1947 भी आ जाता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह विशेष रूप से उल्लिखित है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वह आवश्यक नहीं है: अन्यथा आपको उन सब अन्य अधिनियमों का जिक्र करना चाहिये जो उसके अंतर्गत आ जाते हैं। भारत स्वाधीनता अधिनियम पूर्णतया भारतीय विधानमंडल के हाथों में है। उस अधिनियम में कहा गया है कि नियुक्त तिथि से भारत स्वाधीनता संबंधी सब विधियों पर और भारत में प्रयोज्य सब ब्रिटेन की विधियों पर न तो कोई प्रभाव पड़ना चाहिये अथवा न उनका रूपभेद होना चाहिये अथवा न उन पर ब्रिटिश संसद द्वारा किसी प्रकार का कोई विचार होना चाहिए पर उन पर भारतीय विधानमंडल द्वारा विशिष्ट रूप से विचार होना चाहिये। यदि ऐसी बात है तो मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि भारत स्वाधीनता अधिनियम किस प्रकार से एक ऐसा अधिनियम है जिसका विशेष उल्लेख उपेक्षित है। वह वास्तव में हमारी क्षमता के अंतर्गत है। ब्रिटिश संसद का अब इस पर कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। उसने आत्म-वंचित अध्यादेश अधिनियमित किया है और वह वास्तव में भारत राज्य-क्षेत्र में प्रवृत्त एक विधि है। ये विधियां जो इस समय वर्तमान हैं उनको अनुच्छेद 307 के अधीन स्वीकार करना पड़ेगा। मैं यह नहीं जानता हूं कि कार्यालय ने इस विषय में कितनी प्रगति की है, क्योंकि 26 जनवरी को हम एक पूर्ण अनुकूल आदेश की आशा करते हैं जो उस तिथि को प्रयोज्य होगा। उस तिथि को तथा उस तिथि से वर्तमान संविधान से असंगत सब विधियां इस संविधान के अनुकूल स्पष्ट रूप से अनुकूलित हो जानी चाहिये।

मैं समझता हूं कि "निरसन" शब्द जो हाशिये की टिप्पणी में है वह अप्रयोज्य है क्योंकि हम "स्वाधीनता अधिनियम" का निरसन नहीं कर रहे हैं: हम केवल यह कह रहे हैं कि जहां तक वह वर्तमान संविधान से असंगत है वहां तक वह प्रभावशून्य होगा। हम वास्तव में इस अधिनियम का रूपभेद कर रहे हैं या उसे वर्तमान संविधान के अनुकूल बना रहे है और इस प्रयोजन की पूर्ति अनुच्छेद 307 द्वारा अवश्य हो जायेगी। इसलिए मैं अनुच्छेद 315 का विरोध करता हूं। हम जो कुछ चाहते है वह वास्तव में अनुकूलन है न कि निरसन।

अनुच्छेद 314 में एक ऐसी पदावली है जो बार-बार इस सभा के समक्ष आ रही है अर्थात् "इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि"। कभी हम "इस संविधान का प्रारम्भ" कहते हैं और कभी "इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि"। मैं समझता हूं कि "की तिथि" शब्द अनावश्यक तथा इनमें पुनरुक्ति है। हम यहां यह कहते हैं कि "जनवरी 1950 का 26वां दिन", जिस तिथि को इस अनुच्छेद में इस संविधान के प्रारम्भ 'की तिथि' के रूप में निर्दिष्ट किया है।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

जनवरी 1950 का 26वां दिन वास्तव में एक "तिथि" है, और यदि उसको इस संविधान के प्रारम्भ के रूप में निर्दिष्ट किया गया है तो "की तिथि" शब्द पूर्णतया अनावश्यक हैं। इस पदावलि का प्रयोग कदाचित् इस रूप में अव्यवस्थित है कि कई स्थानों पर ये शब्द पाये जाते हैं और कई स्थानों पर नहीं। मैं समझता हूं कि मसौदा समिति द्वारा ये शब्द अपमार्जित कर दिये जायें जिससे कि यह पदावली शुद्ध और स्पष्ट हो जाये और फिर भी पूर्ण रहे।

मै यह जानना चाहूंगा कि वर्तमान विधियों के अनुकूलन में कितनी प्रगति हुई है क्योंकि यह बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है और इन बातों को 26 जनवरी के लिए तैयार कर लेना चाहिये इसका प्रभाव न्यायालयों, कार्यालयों तथा अन्य विभिन्न व्यक्तियों पर पड़ेगा। जैसा कि भारत शासन अधिनियम के लिए किया गया था हमारे पास अधिनियमों की पूर्ण अनुकूलित मालायें होनी चाहिए। भारत शासन अधिनियम के संबंध में सब विधियों को अनुकूलित कर लिया गया था और समय से पूर्व अनुकूलन आदेश मुद्रित करा लिया था और घुमा दिया गया था जिससे उस संविधान के प्रभाव में आने की तिथि अर्थात् 1 अप्रैल 1937 को पूरी तैयारी थी।

मैं यह जानना चाहूंगा कि अब तक क्या प्रगति हो चुकी है क्योंकि यदि इस कार्य को हाथ में नहीं लिया जाता है तो एक कठिन स्थिति तथा गड़बड़ी पैदा हो सकती है। अत: इस बात के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है और यदि इस कार्य को हमने अपने हाथों में ले लिया है तो अनुच्छेद 315 पूर्णतया अनावश्यक हो जायेगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** श्रीमान, संशोधन संख्या 463 के सम्बन्ध में मुझे दो बातें कहनी हैं। मैं समझता हूं कि किसी अन्य अनुच्छेद के प्रवर्तन करने के पूर्व यह वांछनीय है कि कम से कम प्रस्तावना और अनुच्छेद 1 को भी प्रवृत्त किया जाये क्योंकि अन्य सब खंड भारत के संबंध में हैं और इस कारण अनुच्छेद 1 के प्रवृत्त होने के पूर्व मैं नहीं समझता हूं कि यह बात बिल्कुल ठीक है कि अन्य अनुच्छेद प्रवृत्त किये जायें। मैं यह सुझाव देता हूं कि प्रस्तावना और अनुच्छेद 1 को भी जोड़ दिया जाये। इन अनुच्छेदों को तो तुरन्त प्रवृत्त कर देना चाहिये और शेष 26 जनवरी को प्रवृत्त हो सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** कठिनाई यह होगी कि प्रस्तावना को तो अभी तक इस सभा ने स्वीकार नहीं किया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** संविधान को पूर्ण करने के पूर्व उसे स्वीकार करना पड़ेगा। मैं केवल यह सुझाव दे रहा हूं....

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि आप प्रस्तावना को तुरन्त प्रवृत्त करना क्यों चाहते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम:** पूरे संविधान को प्रवृत्त करने से पूर्व, हम संविधान के कुछ उपबन्धों को प्रवृत्त कर रहे हैं, और संविधान के किसी भाग को प्रवृत्त

करने से पूर्व संविधान का उद्देश्य और देश का नाम होना चाहिये। यह विचार जिस योग्य है उतना आप इस पर विचार करें।

प्रस्थापित अनुच्छेद 315 में ऐसे उपबन्ध हैं जो इस नये संविधान की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं हैं। उसमें कहा गया है "भारत स्वाधीनता अधिनियम, उस सीमा तक जहां तक कि उसके उपबन्ध इस संविधान के विरुद्ध हैं, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935, भारत (केन्द्रीय शासन और विधानमंडल) अधिनियम, 1946 के सहित, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935 को संशोधन और अनुपूरण करने वाली सब अधिनियमितियां प्रभावशून्य हो जायेंगे।" जिस सीमा तक यह स्वाधीनता अधिनियम इन उपबन्धों के विरुद्ध नहीं है उस सीमा तक वह वर्तमान बना रहेगा और प्रवृत्त रहेगा। मेरे विचार से पूरा का पूरा स्वाधीनता अधिनियम निरसित हो जाना चाहिये। यह संविधान ही एकमात्र मूल विधि होनी चाहिये। अन्य सब विधियों को इस संविधान से मान्यता मिलनी चाहिये। जब भारत शासन अधिनियम, 1935 पार किया गया था पहले सब अधिनियम पूर्णतया निरसित कर दिये गये थे। मेरा यह विचार नहीं है कि हम भारत स्वाधीनता को इस रूप में छोड़ दें कि वह इस संविधान के साथ-साथ इस देश की मूलविधि के रूप में बना रहे जिसके कारण उच्चतम न्यायालय में यह तर्क प्रस्तुत किया जा सके कि भारत स्वाधीनता अधिनियम का कोई उपबन्ध इसलिये प्रवृत्त बना रहेगा चूंकि वह इस संविधान के विरुद्ध नहीं है। हमारा उच्चतम न्यायालय भारत स्वाधीनता अधिनियम से कोई प्राधिकार प्राप्त न करे: वह केवल इस संविधान से अपने प्राधिकार प्राप्त करे। मेरे विचार से यह एक ऐसा प्रारम्भिक सिद्धांत है जो इस समूचे संविधान की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है। हमें यह नहीं कहना चाहिए कि हमारा संविधान जो संविधान हमें अधिनियमित किया है वह और उतना भारत स्वाधीनता अधिनियम जितना कि वह इस संविधान के उपबंधों से विरुद्ध नहीं है इन दोनों से मिलकर बना है। अत: मैं समझता हूं कि यह विषय महत्व का है और मैं यह सुझाव देता हूं कि श्री अल्लादी तथा अन्य व्यक्ति मिलकर इस पर विचार करेंगे और इस बात का ध्यान रखेंगे कि हम कोई ऐसा खंड तो अधिनियमित नहीं करते हैं जो संभवत: जो संविधान हम बना रहे हैं उसकी प्रतिष्ठा के लिए हानिकर हो।

***श्री बी. दास:** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 314 में यह कहा गया है "यह अनुच्छेद 311 तुरन्त प्रवृत्त होगा।" जब अनुच्छेद 311 पार किया गया था मैंने समझा कि प्रान्तीय विधानमंडलों के वे सदस्य जो इस सभा के सदस्य हैं वे 26 जनवरी 1950 तक सदस्य बने रहेंगे। मैं यह चाहता हूं कि यह स्पष्ट कर दिया जाये कि प्रान्तीय विधानमंडलों के सब सदस्य, यहां जो हमारे मित्र और साथी हैं वे हमारे साथ 26 जनवरी 1950 तक रहेंगे जिस दिन गणराज्य को घोषणा की जायेगी। यदि हम वर्तमान अनुच्छेद 314 को स्वीकार कर लेंगे तो मुझे आशा है कि इस विषय में कोई बाधा नहीं होगी। (*बाधायें*) मैं आप से सम्मानपूर्वक निवेदन करता हूं कि आप अनुच्छेद 311 का परीक्षण करें और मैं यह जानना चाहता हूं कि प्रान्तीय विधान मंडलों से आये हुए हमारे यहां के साथी हमारे साथ 26 जनवरी 1950 तक रहेंगे या नहीं जिस दिन कि गणराज्य की घोषणा की जायेगी। यदि यह विचार नहीं है तो मैं यहां अनुच्छेद 311 की प्रविष्टि का विरोध करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** वह तो स्पष्ट है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम की प्रथम आपत्ति के संबंध में मैं केवल एक दो बातें कहना चाहता हूं। मैं यह बता दूं कि संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 315 में अपने संविधान के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् अधिराज्य अधिनियम के किसी भी पुनरीक्षित रूप के बने रहने का निर्देश नहीं है। कथित मूल अनुच्छेद की भाषा को मैं पढ़ कर सुनाऊंगा। "भारत स्वाधीनता अधिनियम, 1947, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935, भारत (केन्द्रीय शासन और विधान मंडल) अधिनियम, 1946 के सहित, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935 का संशोधन और अनुपूरण करने वाली अन्य सब अधिनियमितियां प्रभावशून्य हो जायेंगे।" सावधानीपूर्वक विचार करने पर मैं श्री सन्तानम से सहमत हूं कि हमारे नये संविधान के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् पहले अधिनियम के किसी भी उपबन्ध को बनाये रखने की कोई बात ही नहीं रहती है। इसमें संदेह नहीं कि उन कुछ विधियों को हम नया जीवन दान दें जो पुराने संविधान के अधीन पार की गई थीं और उनको, ये कहना चाहिये कि अपने संविधान की विधियों के रूप में हम ग्रहण कर लें। यह आवश्यक है और ऐसा उपबन्ध कर दिया गया है। मैं यह भी बता दूं कि इस बात के प्रति हम विशेष रूप से उत्सुक हैं कि जिस संविधान को हम बना रहे है या पारित कर रहे हैं उसके लिए स्वाधीनता अधिनियम की धारा 7 का अनुसरण नहीं करना चाहिये और हमने यह विचार अपनाया कि नये संविधान के लिए गवर्नर जनरल की अनुमति लेने की भी आवश्यकता नहीं है। यह नया संविधान भारत स्वाधीनता अधिनियम की धारा 7 या 8 के अधीन दी हुई वृहद् तथा व्यापक शक्तियों के अधीन अथवा उनके अनुसार पारित संविधान नहीं होगा। अत: जब हम एक बार संविधान पारित कर लेते हैं, किसी पहले अधिनियम से स्वतंत्र होकर तथा उसके बिना निर्देश के अपनी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग करते हैं तो फिर यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि स्वाधीनता अधिनियम प्रवृत्त बना रहेगा चाहे वह किसी भी सीमा तक हो। मैं यह कहूंगा कि जब भारत शासन अधिनियम, 1935 जैसा अधिनियम पारित किया गया था तो वह संसद के अधिनियम के अनुसार पारित किया गया था और पहला भारत शासन अधिनियम निरसित कर दिया गया था सिवा पहले भारत शासन अधिनियम के उन उपबंधों के जो भारत शासन, अधिनियम 1935 की विशेष धाराओं द्वारा ग्रहण कर लिये गये थे और चालू रखे गये थे। इन परिस्थितियों के अधीन श्री सन्तानम के सुझाव में बल है, पर उनका प्रकार एक मसौदा संबंधी संशोधन जैसा है। यदि अनुज्ञा दे दी जाये तो उनको बाद में हटाया जा सकता हैं मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि मसौदा समिति से आने के कारण यही ठीक है कि उसका संशोधन फिर मसौदा समिति द्वारा ही हो। इस विषय के सम्बंध में कोई भी कठिनाई नहीं होगी।

इसके पश्चात् मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने "प्रभावशून्य हो जायेंगे" शब्दों पर एक पारिभाषिक प्रश्न उठाया था। उसी बात के कारण जिसके लिए वे लड़ते रहे हैं हमने सोच-समझकर "प्रभावशून्य हो जायेंगे" शब्दों को रखा था। निरसन के विषय में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारा निकाय स्वाधीन है। स्वाधीनता अधिनियम एक दूसरी संसद से आया था। दूसरों के अधिनियम को हमारे द्वारा

निरसित किये जाने का कोई प्रश्न नहीं है। इसलिए सोच-समझकर संविधान के मसौदे में विशिष्ट उपबन्ध "प्रभावशून्य हो जायेंगे" रखा गया था। अतः अपने माननीय मित्र श्री कामत जो हमेशा इस देश की स्वाधीनता के समर्थक रहे हैं उनके विचारों सें संगत कि संविधान में ब्रिटिश संसद से आई हुई किसी बात का निर्देश न हो यही ठीक तथा उचित है कि "निरसित" शब्द के बजाय "प्रभावशून्य हो जायेंगे" पदावली ही रहे।

इसके पश्चात् श्रीमान अंतिम बात श्री सन्तानम द्वारा कहे गये विषय के संबंध में है जो प्रस्तावना तथा भारत राज्यों का संघ होगा के प्रवृत्त किये जाने के सम्बन्ध में है। मैं समझता हूं कि यदि अपने माननीय मित्र के प्रति, जो अपने विषय के बारे में सदैव बहुत सावधान रहते हैं, सम्मानपूर्वक यदि मैं कह सकता हूं तो यह कहूंगा कि इस आपत्ति में कोई बल नहीं है। जहां तक प्रस्तावना का सम्बन्ध है यद्यपि एक साधारण विधि पुस्तक की प्रस्तावना को हम कोई महत्व नहीं देते हैं पर संविधानिक विधि पुस्तक में प्रस्तावना को सारा महत्व देना पड़ता है, ऐसी कोई बात नहीं है कि प्रस्तावना तुरन्त ही प्रवृत्त की जाये। प्रस्तावना अपने पूर्ण रूप से उस समय प्रवृत्त होगी जब कि संविधान प्रवृत्त हो जायेगा। इस कथन में कोई युक्ति नहीं है कि संविधान के प्रवृत्त होने से पूर्व प्रस्तावना प्रवृत्त हो जायेगी।

दूसरी बात यह है मैं नहीं समझता हूं कि हम इस अनुच्छेद को कि भारत राज्यों का संघ होगा प्रवृत्त कर सकते हैं क्योंकि जिस रूप में राज्यों का संघ इस संविधान में आद्योपान्त समझा गया है उस रूप में भारत तुरन्त राज्यों का संघ नहीं हो जाता है। संघ को उस समस्त संविधानिक तंत्र के सहित समझना चाहिये जिसका उस संविधान के अधीन सृजन किया जा चुका है। जिसे हम पार कर रहे हैं। बिना अवयवों के हम शरीर अथवा आत्मा की कल्पना नहीं कर सकते हैं। यदि अवयव क्रियाशील नहीं होते हैं तो संघ की स्थापना कैसे हो सकती है। जहां तक इस बात का सम्बन्ध है एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति भी भूल कर जाता है, श्री सन्तानम की इस आपत्ति में कोई बल नहीं है कि यह अनुच्छेद तुरन्त प्रवृत्त किया जाये।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 311 के सम्बन्ध में श्री दास ने एक प्रश्न उठाया था।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान वह बात तो बहुत ही स्पष्ट है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मैं उस प्रश्न को सुन न सका।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मसौदा समिति से मैं यह समझना चाहता हूं कि अनुच्छेद 311(3) का अनुच्छेद 314 से किस प्रकार मेल मिलाया जा सकता है। अनुच्छेद 314 में कहा गया है कि वह तुरन्त प्रवृत्त होगा। मैं समझता हूं कि इन सदस्यों को तुरन्त स्थान रिक्त करने पड़ेंगे। मैं श्री कृष्णमाचारी से इस बात का उत्तर चाहता हूं। यदि यही परिणाम है तो हम इसका समर्थन नहीं कर सकते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** यह तीसरा पठन पारित हो जाने पर प्रवृत्त होगा।

***अध्यक्षः** यह ठीक वही प्रश्न है जिसे श्री बी.दास ने भी उठाया था।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान श्री बी. दास और श्री कुलधर चालिहा द्वारा उठाये गये प्रश्न के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहूंगा। अनुच्छेद 311 (3) में यह कहा गया है:

> "यदि भारत डोमिनियन की संविधान सभा का कोई सदस्य 1949 के अक्तूबर के छठे दिन अथवा तत्पश्चात् इस संविधान के प्रारम्भ के पहले किसी समय किसी राज्यपाल प्रान्त.....के विधान मंडल के सदन का सदस्य था... तो इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर संविधान सभा में ऐसे सदस्य का स्थान, यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त जो जायेगा.....।"

यहां अनुच्छेद 314 में यह कहा गया है कि इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि 26 जनवरी 1950 होगी। चाहे ये अनुच्छेद तुरन्त प्रवृत्त होने को है पर इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि ही प्रवर्तन की तिथि होगी। मैं नहीं समझता हूं कि इस विषय में कोई सन्देह है। माननीय सदस्यों को मैं यह बताना चाहता हूं। विचार यह है कि जिन सदस्यों को दुहरी सदस्यता है वे 25 जनवरी तक सदस्य रहेंगे। (*बाधायें*)। माननीय सदस्य सब्र से मेरी बातें सुनें। हमें इस स्थिति की फिर से जांच करनी होगी कि "संविधान के प्रारम्भ की तिथि" के स्थान में "नियुक्त तिथि" अधिक उपयुक्त शब्द होंगे। क्योंकि नियुक्त दिन 26 जनवरी है। इस स्थिति की जांच डॉ. अम्बेडकर तथा मसौदा समिति द्वारा की जायेगी और यदि यह अनुभव किया गया कि सदस्यों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा तो इस सभा को मैं यह आश्वासन दूंगा कि एक उपयुक्त संशोधन द्वारा हम उसका परित्राण करने का प्रयत्न करेंगे। मैं समझता हूं कि इस विषय में माननीय सदस्यों को कोई शंका नहीं होनी चाहिए।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रास : जनरल): मैं यह जानना चाहूंगा कि किस उद्देश्य से यह सम्मिलित किया गया था। संविधान के प्रारम्भ की तिथि प्रकट है तथा उस तिथि तक ही पदावधि रहेगी यह भी प्रकट है तो फिर उन अनुच्छेदों के वर्णन में जो तुरन्त प्रवृत्त किये जा रहे हैं इस अनुच्छेद के सम्मिलित करने में क्या उद्देश्य है? शायद यह निर्वाचन को प्रवर्तन में लाने के उद्देश्य से है। यदि यह बात है तो क्या आप ऐसे निहित प्रयोजन तथा घोषित प्रयोजन रख सकते हैं जो परस्पर एक-दूसरे से विभिन्न हों? इस बात की फिर से जांच होनी चाहिए।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** माननीय डॉक्टर ने इस बात को ठीक समझा है। बात यह है कि इस तथ्य के होते हुए भी कि 25 जनवरी तक रिक्तियां न हों निर्वाचन करने होंगे जिससे कि नये सदस्य 26 जनवरी को अपने स्थान ग्रहण कर सकें जिस तिथि को रिक्तियों का होना अवश्यमभावी है। विचार यह है कि संविधान सभा के अध्यक्ष को इन निर्वाचनों के करने की शक्ति हो इस तथ्य के होते हुए भी कि रिक्तियां बाद में होंगी। अनुच्छेद 311 की शब्दावली स्पष्ट है। दोनों अनुच्छेद 311 और 312 (च) इस आधार पर निर्वाचन कर सकने के प्रयोजन के लिए समुचित नियम बनाने की अनुज्ञा संविधान सभा के अध्यक्ष को

देते हैं कि 25 जनवरी को स्थान रिक्त हो जायेंगे। इस स्थिति को जिस रूप में डॉक्टर ने समझा है वह सही है और यह स्थिति है भी बिल्कुल स्पष्ट। मैं नहीं समझता हूं कि किसी सदस्य पर इस तथ्य के कारण विपरीत प्रभाव पड़ेगा कि इन अनुच्छेदों का ठीक उस समय से प्रवर्तन किया जा रहा है जब कि संविधान अंतिम रूप में पारित कर दिया जायेगा या तृतीय पठन पारित कर दिया जायेगा। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो संविधान सभा के अध्यक्ष को अनुच्छेद 311 और 312 (च) के अधीन कोई कार्रवाई करने की शक्ति नहीं होगी।

अनुच्छेद 315 की शब्दावली के सम्बन्ध में मुझे अपने माननीय साथी श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को उच्च बुद्धिमत्तापूर्ण बात को शिरोधार्य करना चाहिये। यदि अब वे यह समझते हैं कि शब्दावली जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं है तो यह निश्चित है कि इस विषय पर फिर से विचार होना चाहिये। मैं केवल यही कहूंगा। जब विशेषज्ञों में मतभेद हो जाता है तो साधारण व्यक्ति असमंजस में पड़ जाता है। संविधान के मसौदे के इस अनुच्छेद में हमने यह परिवर्तन क्यों किया इसका कारण वह मंत्रणा है जो इस आदरणीय सभा के संविधानिक परामर्शदाताओं ने हमें दी थी जो इस प्रकार है "यह अनुच्छेद बिना किसी प्रतिबन्ध के यह उपबन्ध करता है कि भारत स्वाधीनता अधिनियम, 1947 और कुछ अन्य अधिनियमितियां प्रभावशून्य हो जायेंगी। पर भारत स्वाधीनता अधिनियम के कुछ उपबन्ध ऐसे हैं जो प्रभावशून्य नहीं होंगे। उदाहरणार्थ ऐसी कोई बात नहीं है कि उस अधिनियम के उपबन्ध जिसमें यह कहा गया है कि युनाइटेड किंगडम में की बादशाह की सरकार पर अब ऐसी किसी राज्यक्षेत्र के शासन का उत्तरदायित्व नहीं रहेगा जो अगस्त 1947 से ठीक पहले ब्रिटिश भारत में सम्मिलित कर लिया गया था और यह अधिनियम कि देशी राज्यों पर से बादशाह का अधिपत्य व्यपगत होता है इत्यादि इत्यादि क्यों प्रवृत्त नहीं रहेंगे। इस उपबन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है जो इस संविधान के विरुद्ध हो। इस कारण यह अनुच्छेद प्रस्थापित किया गया है।" मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का यह विचार है कि चूंकि इस संविधान का रूप पूर्णतया स्वतंत्र है, यह अपने संकल्प पर ही प्रवृत्त हो जायेगा और इस कारण इसके पूर्व की अन्य सब अधिनियमितियां अपने आप प्रभावशून्य हो जायेंगी। मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं। पर संविधानिक परामर्शदाताओं ने हमें यह सम्मति दी थी और इस सम्मति के आधार पर ही हमने "उस सीमा तक जिस तक इसके उपबंध इस संविधान के विरुद्ध नहीं है" शब्द रखे थे।

आरम्भ में मैंने यह सुझाव देने का विचार किया था कि इस विशेष अनुच्छेद के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हम इसको दो भागों में बांट दें और निम्नलिखित शब्दों के सहित इसे 314(1) कहें "भारत स्वाधीनता अधिनियम, 1947, उस सीमा तक जिस तक इसके उपबन्ध इस संविधान के विरुद्ध नहीं हैं", और इसके बाद अंक (2) रखें, और उसके बाद निम्नलिखित शब्द रखें "भारत शासन अधिनियम, 1935, भारत (केन्द्रीय सरकार और विधानमंडल) अधिनियम, 1946 और भारत शासन अधिनियम का संशोधन और अनुपूरण करने वाली अन्य सब अधिनियमितियां", और इसके पश्चात् नीचे "प्रभावशून्य हो जायेंगे" शब्द रखें जो दोनों (1) और (2) को लागू होंगे। मेरे माननीय मित्र भी अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जो

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

स्थिति ग्रहण की है उसको ध्यान में रखते हुए आपकी अनुज्ञा से मैं यह सुझाव दूंगा कि सभा इसी रूप में इस अनुच्छेद को पारित करे और हम इस स्थिति पर फिर विचार करेंगे। मेरे माननीय साथी मसौदा समिति के सभापति यहां नहीं हैं। हम इस स्थिति पर फिर विचार करेंगे और यदि आवश्यक हुआ तो "उस सीमा तक जिस तक इसके उपबन्ध इस संविधान के विरुद्ध हैं" शब्द निकाल दिये जायेंगे। इन शब्दों को हम तृतीय पठन के समय निकाल देंगे।

अत: मैं सुझाव देता हूं कि इस अनुच्छेद को हम वर्तमान रूप में पास करें और यदि कोई परिवर्तन आवश्यक हुआ तो हम विधि संबंधी उचित मंत्रणा प्राप्त करेंगे और मसौदा समिति के विख्यात वकील सदस्य इसकी जांच करेंगे। हम अपने माननीय साथी श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को डॉ. अम्बेडकर और श्री मुन्शी के विपक्ष में रखेंगे और जहां तक इन शब्दों का सम्बन्ध है संभव है कि हम किसी निश्चय तक पहुंच सकें। मैं यह आशा करता हूं कि.....

***माननीय श्री के. सन्तानम:** क्या यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि विपरीत मार्ग ग्रहण किया जाये?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैंने एक मार्ग का सुझाव दिया है। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम इसके विरुद्ध विचार रखते हैं। यह विनिश्चय करना सभा का काम है कि मेरा विचार ठीक है या विरोधी विचार ठीक है। मैं यह भी सुझाव दूंगा कि इस अनुच्छेद की शब्दावली को अंतिम रूप देने से पूर्व इस विषय के प्रति हम श्री बी.एन. राव के विचारों से भी लाभ उठायें। हम उनको तुरन्त पत्र लिखेंगे और उनसे यह पूछेंगे कि सभा में जो विपरीत विचार प्रकट किये गये हैं उनको ध्यान में रखते हुए क्या वे अपने विचारों का पुनरीक्षण करेंगे। इसलिए मैं यह सुझाव देता हूं कि यह अनुच्छेद इसी रूप में इस सभा द्वारा स्वीकार किया जाये इस शर्त के अधीन कि इस पूरे के पूरे विषय पर पुन:विचार किया जायेगा और विचार करने पर हमें यह विदित हुआ कि मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम द्वारा उठाई गईं तथा मेरे माननीय साथी द्वारा समर्पित आपत्तियों में कोई मान्यता है तो यह अनुच्छेद सभा के समक्ष पुनरीक्षित रूप में प्रस्तुत होगा।

जहां तक "प्रभावशून्य हो जायेंगे" शब्दावली पर आपत्ति का सम्बन्ध है मेरे माननीय मित्र श्री कामत यह चाहते हैं कि इसके स्थान में "निरसित हो जायेंगे" शब्द रखे जायें। मैं समझता हूं कि मेरे माननीय साथी श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने उनको ठीक उतर दे दिया है। अत: सभा को "प्रभावशून्य हो जायेंगे" शब्दों को स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

***श्री एच.वी. कामत:** एक अलग गणराज्य दिवस तथा अर्द्धरात्रि के उत्सव के बारे में भी मेरे जो दो सुझाव थे उनके बारे में क्या हुआ?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह विषय समुचित प्राधिकारियों के लिये है न कि मसौदा समिति के लिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** क्या पुनर्विचार के अधीन इस अनुच्छेद को स्वीकार करना ठीक है? यदि ये विवादास्पद विषय तृतीय पठन के लिए छोड़े जायेंगे तो अन्य विषयों के लिए समय नहीं रहेगा। मैं सुझाव देता हूं कि इसे छोड़ दिया जाये। वह अनुच्छेद 307 में सम्मिलित है।

***अध्यक्षः** यह भी तो विवादास्पद विषय है। किसी न किसी रूप में आज इसे पारित करना ही है जिससे कि द्वितीय पठन समाप्त हो जाये। यदि पुनरीक्षण के लिए कोई प्रश्न उठेगा तो वह तृतीय पठन के समय कर लिया जायेगा और जैसा कि श्री कृष्णमाचारी ने कहा है वे इस विषय की फिर से जांच करायेंगे और यदि उनको यह विदित हुआ कि कोई संशोधन आवश्यक है तो उस समय हम उसे ले लेंगे। यदि हम उसे छोड़ दें तो उस समय हम कोई नई बात नहीं रख सकेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** यदि "उस सीमा तक जिस तक इसके उपबन्ध इस संविधान के विरुद्ध हैं" शब्दों को निकाल दिया जाये तो उसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया जायेगा। और यदि ये शब्द आवश्यक समझे जायें तो इनका पुनः पुरःस्थापन करने में कोई रुकावट नहीं हैं इस समय हमसे उसे एक ऐसे रूप में स्वीकार करने के लिए कहा जा रहा है जिसे हम नहीं चाहते हैं और ये कहा जाता है कि वे उस पर बाद में विचार करेंगे। यदि इन शब्दों को आवश्यक समझा जाये तो इनके पुनः पुरःस्थापन करने में मसौदा समिति को कोई कठिनाई नहीं होगी।

***अध्यक्षः** यह विषय वास्तव में सभा के विनिश्चय करने का है। मैं दोनों विचारों को पृथक्-पृथक् रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि भाग 18 के स्थान में निम्नलिखित भाग रखा जाये:

'Part XVIII

Short Title, Commencement and Repeals.

313- This Constitution may be called the Constitution of India.'

भाग 18

संक्षिप्त नाम, प्रारम्भ और निरसन।

313—यह संविधान भारत का संविधान नाम से ज्ञात हो सकेगा।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

" 'This article and articles 5, 5A, 5AA, 5B, 303, 311, 311A and 312F of this Constitution shall come into force at once, and the remaining provisions thereof shall come into force on the twenty-sixth

[अध्यक्ष]

day of January, 1950, which date is referred to in this Constitution as the date of commencement of this Constitution.'

[यह अनुच्छेद और अनुच्छेद 5, 5क, 5कक, 5ख, 303, 311, 311क और 312च तुरन्त प्रवृत्त होंगे, तथा इस संविधान के अवशिष्ट उपबन्ध 1950 की 26 जनवरी के दिन प्रवृत्त होंगे जो दिन कि इस संविधान में इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।]"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 315

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 315 में से 'in so far as its provisions are repugnant to this Constitution' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** यह बात मान ली गई है कि यह पुनर्परीक्षण के अधीन है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** जी हां, यह बात मान ली गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुद्रित सूची में के अपने संशोधन को मैं मसौदा समिति की बुद्धिमानी पर छोड़ता हूं। उस पर मत न लिया जाये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रस्थापित अनुच्छेद 315 इस संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 315 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 306 क

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 306क पर आते हैं।

यह सुझाव दिया गया है कि अच्छा हो यदि हम प्रस्तावना को आरम्भ करें। उसे पेश किया जा सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उसको पेश करना आवश्यक नहीं है। प्रस्तावना पर विचार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** प्रस्तावना पेश हो चुकी है। अब मुझे प्रस्तावना पर भिन्न-भिन्न संशोधनों को लेना होगा। मेरे पास संशोधनों की एक बहुत बड़ी संख्या है—उनमें से बहुत से मुद्रित सूची में छपे हुए हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैं समझता हूं कि आप यह विनिश्चित कर चुके हैं कि प्रस्तावना सबके अंत में ली जायेगी। यह किस प्रकार है कि कुछ अनुच्छेदों पर अभी वाद-विवाद नहीं हुआ है और आप प्रस्तावना पर चले गये?

***अध्यक्ष:** बहुत से अनुच्छेद तो नहीं रहे हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** चाहे एक ही अनुच्छेद रहे, जब तक उन अनुच्छेदों को समाप्त नहीं कर लेते तब तक आप प्रस्तावना को नहीं उठा सकते हैं।

***अध्यक्ष:** बहुत अच्छा। हम अनुच्छेद 306क को ले लें।

***माननीय श्री सत्यनारायन सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान, क्या आप प्रस्तावना को ले रहे हैं?

***अध्यक्ष:** जी नहीं, मौलाना हसरत मुहानी अन्य सब अनुच्छेदों के समाप्त होने से पूर्व प्रस्तावना के लेने पर आपत्ति करते हैं।

एक और अनुच्छेद है जिसकी सूचना दी गई थी और वह स्थगित रहा है, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा संशोधन संख्या 472 और मैं समझता हूं कि वह एक अन्य उस अनुच्छेद के समान है जिसकी सूचना पं. ठाकुर दास भार्गव ने दी थी।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** श्रीमान, तीन जून को आपके आदेश से वह स्थगित किया गया था।

***अध्यक्ष:** तो क्या हम उसे अब ले लें? उनमें से हम किसको लें, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के को या पंडित ठाकुर दास भार्गव के को?

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** श्रीमान मैं प्रस्ताव पेश करता हूं.....

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, अन्य ऐसे अनुच्छेद और भी हैं जिनकी सूचना अन्य सदस्यों द्वारा दी जा चुकी है।

***अध्यक्ष:** मसौदा समिति द्वारा अन्य कोई संशोधन नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** पर इन दो सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्य भी हो सकते हैं जिनके संशोधन हों।

***अध्यक्षः** नये अनुच्छेद प्रविष्ट करने के लिए संशोधन?

***श्री आर.के. सिधवाः** जी हां।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि उनकी अब आवश्यकता नहीं है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** श्रीमान मैं समझता हूं कि श्री गोपालास्वामी आयंगर अभी आये हैं, इसलिए जब वे अपना प्रस्ताव पेश कर लें उसके बाद मुझे पेश करने की आज्ञा दी जाये।

***अध्यक्षः** ऐसे बहुत से अनुच्छेद हैं जिनकी सूचना दी गई थी और जो छोड़ दिये गये हैं। प्रत्येक दृष्टिकोण से हम समस्त संविधान पर विचार कर चुके हैं, और अब हम नये अनुच्छेद लेना आरम्भ नहीं कर सकते हैं। मैं जानता हूं कि पंडित ठाकुर दास भार्गव का संशोधन स्थगित कर दिया था, पर वह अन्य संशोधनों के अंतर्गत आ जाता है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** श्रीमान, वह किसी संशोधन के अंतर्गत नहीं आता है।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा, अब हम अनुच्छेद 306क को लेते हैं। श्री गोपालास्वामी आयंगार।

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, प्रस्ताव पढ़ने से पूर्व मैं मद 379 को पेश न करने की तथा उसके स्थान में मद 450 को पेश करने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए निवेदन करूंगा। श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 15 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 379 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 306 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:—

'306A. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution,—

(a) the provisions of article 211A of this Constitution shall not apply in relation to the State of Jammu and Kashmir;

(b) the power of Parliament to make laws for the State shall be limited to

(i) those matters in the Union List and the Concurrent List which in consultation with the Government of the State, are declared by the President to correspond to matters specified in the Instrument of Accession governing the accession of the State to the Dominion of India as the matters with respect to which the Dominion Legislature may make laws for the State; and

(ii) such other matters in the said List as, with the concurrence of the Government of the State, the President may by order specify.

Explanation.—For the purposes of this article, the Government of the State means the person for the time being recognised by the Union as the Maharaja of Jammu and Kashmir, acting on the advice of the Council of Ministers....."

[306क (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी,–

(क) अनुच्छेद 211क के उपबन्ध जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में लागू न होंगे;

(ख) उक्त राज्य के सम्बन्ध में विधि बनाने की संसद की शक्ति–

(1) संघ-सूची और समवर्ती सूची में के जिन विषयों को राज्य की सरकार से परामर्श करके राष्ट्रपति उन विषयों को तत्स्थानी विषय घोषित कर दे जो भारत डोमिनियन में उस राज्य के प्रवेश को शासित करने वाली प्रवेश-लिखित में उल्लिखित ऐसे विषय है जिनके बारे में डोमिनियन-विधान मण्डल विधि बना सकता है उन विषयों तक; तथा

(2) उक्त सूचियों में के जिन अन्य विषयों को उस राज्य को सरकार की सहमति से राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे उन विषयों तक सीमित होगी।

व्याख्या—इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए राज्य की सरकार से अभिप्रेत है वह व्यक्ति जिसे संघ 1948 की मार्च के पांचवें दिन निकाली गई महाराजा की उद्घोषणा के अधीन....]"

श्रीमान, आपकी अनुमति से मैं यहां एक परिवर्तन कर रहा हूं। "नियुक्त" शब्द के स्थान में मैं "तत्समय पदस्थ" शब्द रख रहा हूं, इसके बाद शेष व्याख्या पूर्ववत् है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** माननीय सदस्य को हम ठीक-ठीक नहीं सुन सके।

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर—**

Explanation.—For the purposes of this article, the Government of the State means the person for the time being recognised by the Union as the Maharaja of Jammu and Kashmir, acting on the advice of the Council of Ministers for the time being in office, under the Maharaja's proclamation, dated the fifth day of March, 1948.' "

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

[*व्याख्या*—इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए राज्य की सरकार से अभिप्रेत है वह व्यक्ति जिसे संघ 1948 की मार्च के पांचवें दिन निकाली गई महाराजा की उद्घोषणा के अधीन तत्समय पदस्थ मंत्रि-परिषद् की मंत्रणा के अनुसार कार्य करने वाला जम्मू और कश्मीर का महाराजा तत्समय अभिज्ञात करता है;]"

अत: मैंने "नियुक्त" शब्द के स्थान में "तत्समय पदस्थ" शब्द रख दिये हैं।

" (c) the provisions of article 1 of this Constitution shall apply in relation to the State;

(d) such of the other provisions of this Constitution and subject to such exceptions and modifications shall apply in relation to the State as the President may by order specify:

Provided that no such order which relates to the matters specified in the Instrument of Accession of the State aforesaid shall be issued except in consultation with the Government of the State:

Provided further that no such order which relates to matters other than those referred to in the last preceding Proviso shall be issued except with the concurrence of that Government.

(2) If the concurrence of the Government of the State referred to in sub-clause (b) (ii) or in the second proviso to sub-clause (d) of clause (1) was given before the Constituent Assembly for the purpose of framing the Constitution of the State is convened, it shall be placed before such Assembly for such decision as it may take thereon.

(3) Notwithstanding anything in the preceding clauses of this article, the President may, by public notification, declare that this article shall cease to be operative or shall be operative only with such exceptions and modifications and from such date as he may specify:

Provided that the recommendation of the Constituent Assembly of the State shall be necessary before the President issues such a notification."

[(ग) इस संविधान के अनुच्छेद 1 के उपबन्ध उस राज्य के सम्बन्ध में लागू होंगे;

(घ) इस संविधान के उपबन्धों में से ऐसे अन्य उपबन्ध ऐसे अपवादों और रूपभेदों के साथ उस राज्य के बारे में लागू होंगे जैसे कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे:

परन्तु ऐसा कोई आदेश जो राज्य के प्रवेशलिखत में उल्लिखित विषयों से सम्बद्ध हो राज्य की सरकार से परामर्श किये बिना न निकाला जायेगा:

परन्तु यह और भी कि ऐसा कोई आदेश, जो अन्तिम पूर्ववर्ती परन्तुक में निर्दिष्ट विषयों से भिन्न विषयों से सम्बद्ध हो, उस सरकार की सहमति के बिना न निकाला जायेगा।

(2) यदि उस राज्य की सरकार द्वारा खंड (1) के उपखंड (ख) की कंडिका (2) में अथवा उस खंड के उपखंड (घ) के दूसरे परन्तुक में निर्दिष्ट सहमति उस राज्य के लिए संविधान बनाने के प्रयोजन वाली संविधान सभा के बुलाये जाने से पहले, दी जाये तो उसे ऐसी सभा के समक्ष ऐसे विनिश्चय के लिए रखा जायेगा जैसा कि वह उस पर ले।

(3) इस अनुच्छेद के पूर्ववर्ती उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक-अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगा कि यह अनुच्छेद ऐसी तारीख से प्रवर्तनहीन, अथवा ऐसे अपवादों और रूपभेदों के सहित ही प्रवर्तन में, होगा जैसे कि वह उल्लिखित करे:

परन्तु ऐसी अधिसूचना को राष्ट्रपति द्वारा निकाले जाने से पहले उस राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।]"

श्रीमान, ये विषय, इस विशेष प्रस्ताव का विषय जम्मू और कश्मीर राज्य से सम्बद्ध है। यह सभा इस बात से पूर्णतया परिचित है कि यह राज्य भारत डोमिनियन में प्रवेश कर गया है। प्रवेश होने का इतिहास भी प्रसिद्ध है। प्रवेश 26 अक्तूबर 1947 को हुआ उस समय से राज्य का रंग बिरंगा इतिहास रहा हैं राज्य में अब तक हालत शांतिपूर्ण नहीं है इस प्रवेश का अर्थ यह है कि इस समय वह राज्य फेडरल राज्य अर्थात् भारत डोमिनियन का एकक है। यह डोमिनियन गणराज्य में परिवर्तित की जा रही है जिसका उद्घाटन 26 जनवरी 1950 को होगा। अत: जम्मू और कश्मीर राज्य को भारत गणराज्य का एकक होना चाहिए।

जैसाकि सभा को विदित है डोमिनियन में प्रवेश सदैव एक लिखत द्वारा हुआ है जिस पर राज्य के शासक को हस्ताक्षर करने पड़ते है और जिसे भारत के गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकार किया जाता है। इस विषय में यह हो चुका है। जैसा कि सभा को विदित है प्रवेश-लिखत नये संविधान में पिछली बीती हुई बात हो जायेगी। फेडरल गणराज्य में राज्यों का प्रवेश इस रीति से हुआ है कि उनको

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

गणराज्य के एकक होने के प्रयोजन के लिए प्रवेश करना अथवा कोई प्रवेश-लेख लिखना नहीं पड़ेगा, वरन् उनका स्वयं संविधान में वर्णन किया गया है और जम्मू और कश्मीर को छोड़कर लगभग सब राज्यों का संविधान समस्त भारत के संविधान में निहित भी कर दिया गया हैं अन्य सब राज्य इस प्रकार अपने आपको प्रवेश करने के लिये सहमत हो गये हैं और उपबंधित संविधान को स्वीकार करते हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** तो फिर यह अन्तर क्यों?

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** यह अन्तर कश्मीर की विशेष दशा के कारण है। यह विशेष राज्य अभी इस प्रकार के प्रवेश के लिए पूर्ण-रूपेण तैयार नहीं है। यहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को यह आशा है कि समय आने पर जम्मू और कश्मीर उसी प्रकार के प्रवेश के लिए पूर्णरूपेण तैयार हो जायेगा जैसे अन्य राज्यों ने प्रवेश किया है (*तालियां*)। अभी इस प्रकार से प्रवेश करना सम्भव नहीं है। ऐसा इस समय संभव क्यों नहीं है इसके अनेक कारण हैं। इस विषय का मैं थोड़ी देर बार फिर निर्देश करूंगा।

अन्य देशी राज्यों या राज्य-संघों के विषय में दो या तीन बातें ऐसी हैं जिनको ध्यान में रखना होगा। उन सब ने नये संविधान में भाग 1 में के राज्यों के लिए बने हुए संविधान को स्वीकार कर लिया है और उन उपबंधों को इस प्रकार अनुकूलित कर लिया गया है जिससे कि वे देशी राज्यों या राज्य-संघों की परिस्थितियों के अनुकूल हो जायें। दूसरी बात यह है कि केन्द्र अर्थात् गणतंत्रात्मक फेडरल केन्द्र को सब संघ तथा समवर्ती विषयों के लिए ऐसे प्रत्येक राज्य या संघ को लागू होने वाली विधियां बनाने के शक्ति होगी। तीसरी बात यह है कि इन राज्यों तथा संघों और केन्द्र के बीच में एक समान सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। जैसा कि मैं कह चुका हूं कश्मीर की परिस्थिति विशेष है और उसके लिए विशेष व्यवहार अपेक्षित है।

सभा का मैं अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं, पर मैं संक्षेप में यह बताऊंगा कि विशेष परिस्थितियां क्या हैं। सर्वप्रथम यह कि जम्मू और कश्मीर राज्य की सीमाओं के भीतर युद्ध हो रहा है।

इस वर्ष के आरम्भ में युद्ध बन्द करना निश्चित हो चुका था और युद्ध अब तक बन्द है। पर अब भी राज्य की हालत असामान्य तथा अशान्त है। अभी शांति नहीं हुई है। अत: यह आवश्यक है कि इस राज्य के प्रशासन का संचालन तब तक इन असामान्य परिस्थितियों के अनुकूल किया जाये जब तक वैसी शांति स्थापित न हो जैसी कि अन्य राज्यों में है।

राज्य का कुछ भाग अब भी राजद्रोहियों तथा दुश्मनों के हाथ में है।

जम्मू और कश्मीर के सम्बन्ध में हम संयुक्त राष्ट्र संघ में उलझे हुये हैं और अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इस उलझन से हमें कब छुटकारा मिलेगा। यह तभी हो सकता है अब कि कश्मीर की समस्या संतोषजनक रूप से निश्चित हो जाये।

और फिर भारत सरकार कुछ बातों में कश्मीर की जनता से स्वयं वचनबद्ध है। उसने स्वयं इस बात के लिए वचन दे रखा है कि राज्य की जनता को स्वयं यह विनिश्चित करने का अवसर दिया जायेगा कि वह गणराज्य के साथ रहना चाहती है या उससे बाहर जाना चाहती है। जनमत द्वारा जनता की इस इच्छा को मालूम करने के लिए भी हम वचन दे चुके हैं बशर्ते कि शान्तिमय वातावरण स्थापित हो जाये और निष्पक्ष जनमत की प्रत्याभूति की जा सके। हमने यह भी मान लिया है कि एक संविधान सभा द्वारा जनता की इच्छा से राज्य का संविधान निश्चित किया जायेगा तथा राज्य पर संघ के क्षेत्राधिकार की सीमा भी निश्चित की जायेगी।

राज्य में जो विधानमंडल प्रजा सभा को मन से ज्ञात था अब नहीं रहा। वह विधानमंडल और संविधान सभा तब तक समवेत् नहीं हो सकते या कार्य नहीं कर सकते जब तक कि राज्य में शांति स्थापित नहीं होती। अत: हमें उस सरकार के साथ व्यवहार करना है जो अपने मंत्रिपरिषद् के रूप में राज्य के सबसे बड़े राजनैतिक दल की सम्मति को प्रतिबिम्बित करती है। जब तक संविधान सभा स्थापित नहीं होती तब तक अन्तर्वर्ती प्रबन्ध ही हो सकता है और वह प्रबन्ध तुरन्त नहीं किया जा सकता है जो अन्य राज्यों में वर्तमान है।

यदि आप इन बातों को ध्यान में रखें जो मैंने कही हैं तो निश्चित परिणाम यह निकलता है कि वर्तमान समय में हम केवल अन्तर्वर्ती प्रणाली की ही स्थापना कर सकते हैं। अनुच्छेद 306क में एक ऐसी प्रणाली की स्थापना का प्रयास है।

अब मैं इस सभा का ध्यान इस अनुच्छेद के उपबंधों की ओर ले जाऊंगा। माननीय सदस्यों को यह याद होगा कि देशी राज्यों का संविधान विशेषकर इस संविधान के अनुच्छेद 211क द्वारा शासित है जो अनुसूची सहित भाग 6क में दिये हुए रूपभेदों के अधीन देशी राज्यों को यह संविधान लागू होता है। जहां तक इस भाग का सम्बन्ध है मैं आपको यह बता चुका हूं कि अन्य राज्यों संबंधी उपबंध अभी जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू नहीं किये जा सकते हैं। अत: इस अनुच्छेद के खंड (1)क में यह कहा गया है कि इस संविधान के अनुच्छेद 211क के उपबन्ध जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू नहीं होंगे।

इस अनुच्छेद का दूसरा भाग जम्मू और कश्मीर राज्य पर संसद की विधायी शक्ति से सम्बद्ध है। यह मुख्यतया प्रवेश-लिखत द्वारा शासित है। मोटे रूप से वह विधायी शक्ति प्रतिरक्षा, विदेशी विषय और संचार के तीन विषयों तक सीमित है, पर वास्तव में इन तीन व्यापक श्रेणियों में कुछ ऐसे मद सम्मिलित हैं जो प्रवेश-लिखत में सूचीबद्ध कर दिये गये हैं। मेरा विश्वास है कि उनकी संख्या बीस पच्चीस के लगभग है। इन मदों के विवरण, क्रम संख्या और प्रबन्ध में नये संविधान की सूची 1 और सूची 3 से कुछ परिवर्तन हो गया है। अत: यह आवश्यक है कि प्रवेश-लिखत में दिये हुए मदों को नये संविधान की सूची 1 और 3 की प्रविष्टियों के परिवर्तित नामों के अनुसार कर दिया जाये। इसलिए अनुच्छेद 306क के खंड (1) (ख) में यह कहा गया है कि राज्य की सरकार के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा नये संविधान के नामों के अनुसार मदों को सूचीबद्ध किया जाये।

खंड (ख) (2) प्रवेश-लिखत की सूची में सम्भाव्य परिवर्धनों का निर्देश करता है और इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार ये परिवर्धन राज्य की सरकार की

[माननीय श्री एन. गोपलास्वामी आयंगर]

सहमति से किये जा सकेंगे। विचार यह है कि संविधान-सभा के समवेत् होने से पूर्व राज्य और केन्द्र दोनों के हित में यह आवश्यक हो सकता है कि कुछ मदों को, जो प्रवेश-लिखत में नहीं है, लिखत की सूची में समुचित रूप से रख दिया जाये जिससे कि प्रशासन, विधान-निर्माण और कार्यपालिका कार्रवाई आगे बढ़ाई जा सके और संभव है कि संविधान-सभा के समवेत् होने से पूर्व ऐसी आवश्यकता आ पड़े तो इस परिवर्तन के लिए हम जिस प्राधिकार से सम्मति ले सकते हैं वह केवल राज्य की सरकार ही है। यह उपबन्ध कर दिया गया है।

इसके बाद व्याख्या है जिसमें यह परिभाषित किया गया है कि राज्य की सरकार का क्या अर्थ है। जो संविधान इस समय जम्मू और कश्मीर में राज्य प्रवृत्त माना जाता है उसमें तथा इस उद्घोषणा में भी जिसे महाराजा ने 5 मार्च 1948 को निकाला था राज्य की सरकार की परिभाषा की गई है।

जहां तक इस उद्घोषणा के निबन्धन राज्य के संविधान-अधिनियम के उपबन्धों से असंगत हैं वहां तक के माने जायेंगे न कि संविधान-अधिनियम और इसी कारण इस व्याख्या में उद्घोषणा को ही निर्दिष्ट किया गया हैं इस उद्घोषणा के निबन्धों के अधीन महाराजा ने एक अंतर्कालीन लोकप्रिय सरकार का गठन किया था और कहा था:

"मैं एतद्द्वारा निम्नलिखित नियुक्तियां करता हूं:-

(1) मेरा मंत्रिपरिषद् प्रधान मंत्री और उन अन्य मंत्रियों से मिलकर बनेगा जिनकी नियुक्ति प्रधान मंत्री की मंत्रणा पर की जायेगी। मैंने शाही अधिपत्र द्वारा शेखमुहम्मद अबदुल्ला को मार्च 1948 के प्रथम दिन से प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त किया।"

वे आगे और कहते हैं-

"प्रधान मंत्री और अन्य मंत्री मंत्रिमंडल के रूप में प्रकार्य करेंगे और संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांत के अनुसार कार्य करेंगे।"

उस समय कोई विधानमंडल नहीं था इसलिए उन्होंने एक प्रधान मंत्री और उसके साथियों के सहित एक प्रकार की उत्तरदायित्व सरकार की स्थापना की जो अपने कार्यों के लिए संयुक्त उत्तरदायित्व को अपनायेंगे और सब सरकारी कार्यों के लिए अपने आपको संयुक्त रूप से उत्तरदायी समझेंगे। इस व्याख्या में यह बात लाई गई है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** व्याख्या में कहा गया है कि महाराजा संघ द्वारा अभिज्ञात होगा बजाय इसके कि राष्ट्रपति द्वारा।

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** इसे हम तृतीय पठन के लिए छोड़ दें। जैसाकि आप जानते हैं संविधान अधिनियम की योजना यह है कि राजप्रमुख राष्ट्रपति द्वारा अभिज्ञात होना चाहिये। और इसमें भी यही कहा गया है कि जम्मू और कश्मीर का महाराजा ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो उस समय अभिज्ञात हो।

मंत्रिपरिषद् के सम्बन्ध में उद्घोषणा में एक प्रणाली निर्धारित है जिसके अधीन यह परिषद् स्थापित की जाने को थी। वह यह है सर्वप्रथम महाराजा प्रधान मंत्री नियुक्त करता है और फिर उसकी मंत्रणा से उसके सहयोगी नियुक्त करता है और जिस रूप में मैंने इस व्याख्या को इस समय संशोधित किया है उसमें कहा गया है कि तत्समय जो भी मंत्रिपरिषद् हो वह महाराजा सहित जिसके प्रति कि वह उत्तरदायी है उन विषयों पर अपनी सहमति या मंत्रणा देगी जो उसको इस अनुच्छेद के अधीन निर्दिष्ट किये गये हैं।

खंड (ग) और (घ) सूची 1 और 3 में सूचीबद्ध विषयों के अतिरिक्त संविधान के अन्य उपबंधों का निर्देश करता है। इन विभिन्न उपबन्धों को कुछ श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है। इस मसौदे के अनुसार प्रथम श्रेणी यह है कि संविधान का अनुच्छेद 1 अपने आप लागू होगा। जैसाकि आप को विदित है इस अनुच्छेद में भारत के राज्य-क्षेत्र का वर्णन है और राज्यक्षेत्रों में यह उन सब राज्यों को सम्मिलित करता है जो भाग 3 में दिये हुए हैं और जम्मू और कश्मीर भाग 3 में दिये हुए राज्यों में से एक राज्य है। संविधान में के अन्य उपबन्ध जम्मू और कश्मीर राज्य को ऐसे संशोधनों और रूपभेदों के सहित लागू होंगे जैसे उस समय विनिश्चित हों जबकि राष्ट्रपति इस हेतु आदेश निकाले। प्रवेश-लिखित में दिये हुए विषयों के सम्बन्ध में यह आदेश राज्य की सरकार के परामर्श के पश्चात् ही निकाला जा सकता है। अन्य विषयों के सम्बन्ध में सरकार की सहमति लेनी होगी।

यह बात नहीं है और इस मसौदे को अंतिम रूप देने से पूर्व कश्मीर सरकार के सदस्यों से परामर्श करने का मुझे अवसर मिला था तो न उनकी ही यह मंशा है कि संविधान के अन्य उपबन्ध लागू नहीं होंगे। उनका विशेष दृष्टिकोण यह है कि ये उपबन्ध केवल उन मामलों में लागू हों जिनमें वे उपयुक्त प्रकार से लागू हो सकते हैं और केवल ऐसे संशोधनों, तथा रूपभेदों के अधीन जैसे जम्मू और कश्मीर राज्य की विशेष परिस्थितियों के लिए अपेक्षित हों। इस समय मैं इस विशेष प्रश्न पर और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

इसके बाद हम खंड (2) पर आते हैं। आपको यह याद होगा कि इन खंडों में से अनेक में जम्मू और कश्मीर राज्य की सरकार की सहमति के लिए उपबन्ध हैं। इनका सम्बन्ध विशेषकर उन विषयों से है जो प्रवेश-लिखित में दिये हुए नहीं हैं और कश्मीर की जनता और सरकार को हमने एक यह वचन भी दिया था कि उस संविधान सभा की सम्मति के बिना कोई परिवर्धन न किया जाये जिसको संविधान बनाने के प्रयोजन के लिए राज्य में बुलाया जायेगा। दूसरे शब्दों में हमने जो कुछ वचन दिया है वह यह है कि ये परिवर्धन ऐसे विषय है जो राज्य की संविधान सभा के निश्चय करने के लिए हैं।

आपको यह याद होगा कि इस अनुच्छेद के कुछ खंडों में हमने राज्य की सरकार की सहमति के लिए उपबन्ध किया है। राज्य की सरकार यह समझती है कि राज्य और केन्द्र में जो वचन हो चुके हैं उनको ध्यान में रखते हुए इस सहमति को देने के लिए वह अंतिम प्राधिकारी के रूप में नहीं समझी जा सकती है यद्यपि अन्तर्वर्ती काल में वह सहमति देने के लिए तैयार है, परन्तु यदि वह ऐसी सहमति देती है तो जब संविधान सभा समवेत् हो उस समय यह सहमति

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

उसके समक्ष रखी जाये और उन विषयों पर संविधान सभा जो चाहे विनिश्चित करे।

अन्तिम खंड बाद में जो कुछ हो उसका निर्देश करती है। हमने यह कहा है कि अनुच्छेद 211क जम्मू और कश्मीर राज्य को लागू नहीं होगा। पर वह राज्य के संविधान का एक स्थायी रूप नहीं हो सकता है और आशा है कि न वह होगा ही। अत: यह उपबन्ध किया गया है कि जब राज्य की संविधान सभा समवेत् हो चुके और राज्य के संविधान के लिए तथा राज्य पर फेडरल क्षेत्राधिकार की सीमा के सम्बन्ध में अपना विनिश्चय कर चुके तो इस संविधान सभा की सिफारिश पर राष्ट्रपति एक आदेश निकालेंगे कि यह अनुच्छेद 306क या तो प्रवृत्त न रहेगा या केवल ऐसे अपवादों और रूपभेदों के अधीन प्रवृत्त होगा जैसे राष्ट्रपति द्वारा उल्लिखित किये जायें। परन्तु ऐसे किसी आदेश के निकालने से पूर्व संविधान सभा की सिफारिश प्राप्त करने की शर्त पहले पूरी करनी होगी। यह इस अनुच्छेद की पूरी व्याख्या है।

इस अनुच्छेद का यह प्रभाव है कि जम्मू और कश्मीर राज्य जो इस समय भारत का एक भाग है वह भारत का भाग बना रहेगा और भारत के भावी फेडरल गणराज्य का एक एकक होगा और संघविधानमंडल को प्रवेश-लिखित में उल्लिखित विषयों पर और बाद में राज्य की सहमति से परिवर्धित विषयों पर विधियां अधिनियमित करने का क्षेत्राधिकार मिल जायेगा। और इस समय में संविधान सभा बुलाने के प्रयोजन हेतु कदम उठाने पड़ेंगे जो इन विषयों पर विचार करेगी जिनको मैं निर्दिष्ट कर चुका हूं। यह सभा जब इन भिन्न-भिन्न विषयों पर विनिश्चय कर चुकेगी तो वह राष्ट्रपति से सिफारिश करेगी जो या तो अनुच्छेद 306क को निराकृत कर देंगे या वह निदेश देंगे कि वह ऐसे रूपभेदों तथा अपवादों सहित लागू होगा जैसे संविधान सभा सिफारिश करे। श्रीमान, इस अनुच्छेद के प्रभाव का यह संक्षिप्त विवरण है और मैं आशा करता हूं कि सभा इसे स्वीकार करेगी।

(संशोधन संख्या 459, 460 और 461 पेश नहीं किये गये।)

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): इन खंडों की शब्दावली से मैं सहमत नहीं हूं, पर मैं संशोधनों को पेश नहीं करना चाहता हूं।

(संशोधन संख्या 462 पेश नहीं किया गया।)

अध्यक्ष: एक और संशोधन है जिसकी सूचना आज प्रात:काल मिली थी। वह श्री महावीर त्यागी द्वारा भेजा हुआ संशोधन इस प्रभाव का है "कि सूची 20 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 451 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 306क के खंड (3) के परन्तुक में 'सिफारिश' शब्द के स्थान में 'परामर्श' शब्द रख दिया जाये।"

***श्री महावीर त्यागी:** मैं उसे भी पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान् आरम्भ में ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि न तो मैं इन सब रियायतों को अपने मित्र शेख अबदुल्ला को देने के विरोध में हूं और न मैं महाराजा को कश्मीर के शासक के रूप में स्वीकार किये जाने के विरोध में हूं और यदि कश्मीर के महाराजा को और भी अधिक शक्तियां तथा रियायतें मिल जायें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। पर जिस बात पर मैं आपत्ति करता हूं वह यह है शासकों में आप यह विभेद क्यों करते हैं? भी आयंगर ने स्वयं यहां यह स्वीकार किया है कि कश्मीर राज्य का प्रशासन एक बहुत अच्छे आधार पर नहीं है।

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** यह गलत बात है। मैंने ऐसा कभी नहीं कहा।

***मौलाना हसरत मोहानी:** और यह भी कहा कि वह बाद में स्वाधीनता प्राप्त करेगा। पर क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? जब आप कश्मीर के लिए यह सब रियायतें करते हैं तो मैं बड़ोदा राज्य को बम्बई में मिलने के लिए बाध्य करने वाले आपके मनमाने कार्य पर घोर आपत्ति करता हूं। बड़ोदा राज्य का प्रशासन अन्य कई भारतीय प्रान्तों के प्रशासन से अच्छा है। यह दुष्टता है कि बड़ोदा राज्य को बम्बई में मिलाने के लिए आप बड़ोदा महाराज को बाध्य करें और उसको निवृत्ति वेतन देकर दूर करें। कुछ लोग कहते हैं कि उन्होंने स्वयं अपनी इच्छा से राज्य को बम्बई में मिलाना स्वीकार किया है। मैं जानता हूं और यह रहस्य खुल गया है कि उसे इंग्लैंड से बुलाया गया और उसकी इच्छा के विरुद्ध विवश किया गया....

***अध्यक्ष:** मौलाना साहब, यहां हमारा महाराजा बड़ोदा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** बहुत अच्छा, मैं इसके किसी विवरण में नहीं जाऊंगा। पर मैं यह कहूंगा कि मैं ऐसी बातों का विरोध करता हूं। यदि आप कश्मीर के महाराजा को ये रियायतें मंजूर करते हैं तो बड़ोदा को बम्बई में मिलाने के अपने विनिश्चय को भी आप वापस करें और ये तथा और भी अधिक रियायतें बड़ोदा महाराज को दें।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 15 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 379 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 306 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:—

'306A. (1) Notwithstanding anything contained in this Constitution,—

(a) the provisions of article 211A of this Constitution shall not apply in relation to the State of Jammu and Kashmir;

[अध्यक्ष]

(b) the power of Parliament to make laws for the State shall be limited to

(i) those matters in the Union List and the Concurrent List which, in consultation with the Government of the State, are declared by the President to correspond to matters specified in the Instrument of Accession governing the accession of the State to the Dominion of India are the matters with respect to which the Dominion Legislature may make laws for the State; and

(ii) such other matters in the said Lists as, with the concurrence of the Government of the State, the President may by order specify.

Explanation.— For the purposes of this article, the Government of the State means the person for the time being recognised by the Union as the Maharaja of Jammu and Kashmir, acting on the advice of the Council of Ministers, for the time being in office, under the Maharajas Proclamation, dated the fifth day of March, 1948.

(c) the provisions of article 1 of this Constitution shall apply in relation to the State;

(d) such of the other provisions of this Constitution and subject to such exceptions and modifications shall apply in relation to the State as the President may by order specify:

Provided that no such order which relates to the matters specified in the instrument of accession of the State aforesaid shall be issued except in consultation with the Governmnet of the State:

Provided further that no such order which relates to matters other than those referred to in the last preceding proviso shall be issued except with the concurrence of that Government.

(2) If the concurrence of the Government of the State referred to in sub-clause (b) (ii) or in the second proviso to sub-clause (d) of clause (1) was given before the Constituent Assembly for the purpose of framing the Constitution of the State is convened, it shall be placed before such Assembly for such decision as it may take thereon.

(3) Notwithstanding anything in the preceding clauses of this article, the President may, by public notification, declare that this article shall cease to be operative or shall be operative only with such exceptions and modifications and from such date as he may specify:

Provided that the recommendation of the Constituent Assembly of the State shall be necessary before the President issues such a notification.'

[306क (1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी,—

(क) अनुच्छेद 211क के उपबन्ध जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में लागू न होंगे;

(ख) उक्त राज्य के सम्बन्ध में विधि बनाने की संसद् की शक्ति–

(i) संघ-सूची और समवर्ती सूची में के जिन विषयों को राज्य की सरकार से परामर्श करके राष्ट्रपति उन विषयों को तत्स्थानी विषय घोषित कर दे जो भारत डोमिनियन में उस राज्य के प्रवेश को शासित करने वाली प्रवेश-लिखित में उल्लिखित ऐसे विषय हैं जिनके बारे में डोमिनियन विधान-मण्डल विधि बना सकता है उन विषयों तक; तथा

(ii) उक्त सूचियों में के जिन अन्य विषयों को उसे राज्य की सरकार की सहमति से राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे उन विषयों तक सीमित होगी।

व्याख्या–इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए राज्य की सरकार से अभिप्रेत है वह व्यक्ति जिसे संघ 1948 की मार्च के पांचवें दिन निकाली गई महाराजा की उद्घोषणा के अधीन तत्समय पदस्थ मंत्रिपरिषद की मंत्रणा के अनुसार कार्य करने वाला जम्मू और कश्मीर का महाराजा तत्समय अभिज्ञात करता है;

[अध्यक्ष]

(ग) इस संविधान के अनुच्छेद 1 के उपबन्ध उस राज्य के सम्बन्ध में लागू होंगे;

(घ) इस संविधान के उपबन्धों में से ऐसे अन्य उपबन्ध ऐसे अपवादों और रूपभेदों के साथ उस राज्य के बारे में लागू होंगे जैसे कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा उल्लिखित करे:

परन्तु ऐसा कोई आदेश जो राज्य के प्रवेश लिखित में उल्लिखित विषयों से सम्बद्ध हो राज्य की सरकार से परामर्श किये बिना न निकाला जायेगा:

परन्तु यह और भी कि ऐसा कोई आदेश, जो अन्तिम पूर्ववर्ती परन्तुक में निर्दिष्ट विषयों से भिन्न विषयों से सम्बन्ध हो, उस सरकार की सहमति के बिना न निकाला जायेगा।

(2) यदि उस राज्य की सरकार द्वारा खंड (1) के उपखंड (ख) की कंडिका (2) में अथवा उस खंड के उपखंड (3) के दूसरे परन्तुक में निर्दिष्ट सहमति, उस राज्य के लिये संविधान बनाने के प्रयोजन वाली संविधान सभा के बुलाये जाने से पहले, दी जाये तो उसे ऐसी सभा के समक्ष ऐसे विनिश्चय के लिये रखा जायेगा जैसा कि वह उस पर ले।

(3) इस अनुच्छेद के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुये भी राष्ट्रपति लोक-अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगा कि यह अनुच्छेद ऐसी तारीख से प्रवर्तनहीन, अथवा ऐसे अपवादों और रूपभेदों के सहित ही प्रवर्तन में, होगा जैसे कि वह उल्लिखित करे:

परन्तु ऐसी अधिसूचना को राष्ट्रपति द्वारा निकाले जाने से पहले उस राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 306क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** मसौदा समिति से हमें ये ही सब संशोधन प्राप्त हुये थे। संशोधनों की सूची में कुछ संशोधन मुद्रित हैं और शायद कुछ अन्य संशोधन संशोधनों की उन अनेक सूचियों में की एकाध सूचियों में हैं जो बाद में घुमाई गई थीं। प्रश्न यह है कि इन संशोधनों में से हम किसी को लें या नहीं। हमने एक-एक अनुच्छेद को लेकर, एक एक खंड को लेकर विस्तारपूर्वक समस्त संविधान पर विचार कर लिया है और मैं नहीं समझता हूं कि नये संशोधन प्रस्तुत करके इस समय हम उन बातों में से किसी बात को फिर विचार के लिए रख सकते हैं। पंडित ठाकुर दास भार्गव का एक संशोधन संख्या 472 पर है जिस पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने एक संशोधन की सूचना दी है और यह पंचम सप्ताह की सूची 1 में सम्मिलित कर लिया गया था। वह स्वयं अपने रूप में संशोधन नहीं था वह एक बहुत लम्बा अनुच्छेद था और उसका सम्बन्ध उस अनुच्छेद की केवल एक कंडिका

से था। मैं समझता हूं कि यही विषय अनुच्छेद 109 के अंतर्गत आ जाता है जिसे हम पारित कर चुके हैं। अनुच्छेद 109 सर्वोच्च न्यायालय को मूल क्षेत्राधिकार देता है और अनुच्छेद 121 यह निर्धारित करता है कि सर्वोच्च न्यायालय प्रक्रिया के अपने नियम रखेगा, और अनुच्छेद उन उपचारों के सम्बन्ध में है जो न्यायालय में मूलाधिकार प्रवृत्त कराने के लिए पक्ष को दिये गये हैं। मैं समझता हूं कि इन तीन अनुच्छेदों में वे सब बातें आ जाती हैं जो श्री नज़ीरुद्दीन अहमद और पंडित भार्गव के संशोधनों में हैं। अत: पंडित भार्गव के संशोधन को मैं नियम विरुद्ध ठहराता हूं।

अब हम प्रस्तावना को लेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि जब हम नवम्बर में तृतीय पठन के लिये समवेत् हों उस समय प्रस्तावना ली जाये? तब तक मसौदा समिति भी सभा को अपना प्रतिवेदन भेज चुकेगी।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं इस बात का विरोध करता हूं क्योंकि जब तक आप आज प्रस्तावना पारित नहीं करेंगे तब तक आप द्वितीय पठन पर कोई प्रतिवेदन किस प्रकार प्रस्तुत कर सकेंगे।

***श्री के.एम. मुंशी:** अपने जीवन भर में इस बार मैं मौलाना साहब का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि हमें प्रस्तावना आज पारित कर देनी चाहिये। द्वितीय पठन में संविधान को सम्पूर्ण रूप में पारित करना है और प्रस्तावना संविधान का अंग है। अत: प्रस्तावना को स्थगित नहीं रखा जा सकता हैं यदि आवश्यक होगा और यदि पन्द्रह मिनट में हम इसे समाप्त नहीं कर पायेंगे, जो एक बजने में अभी बाकी है, तो हम दोपहर बाद बैठेंगे।

मैं देखता हूं कि मुद्रित सूची के अंक 1 में प्रस्तावना पर बहुत से संशोधन हैं। इनमें से बहुत से उन विषयों को प्रस्तुत करते हैं जो वास्तव में प्रस्तावना के अनुकूल नहीं हैं वरन् प्रस्तावना में पुर:स्थापन स्वरूप हैं। पर मैं देखता हूं कि मौलाना हसरत मुहानी का संशोधन सारयुक्त है और उसमें पूर्णतया नये विचार प्रस्तुत करने का प्रयास है। अत: यदि वे चाहते हैं तो मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वे सर्वप्रथम अपना संशोधन पेश करें।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मेरे पास तीन संशोधन हैं। मैं उनको पृथक्-पृथक् पेश करना चाहता हूं न कि इकट्ठे मिलाकर एक।

***अध्यक्ष:** आप सर्वप्रथम किसको पेश करना चाहते हैं?

***मौलाना हसरत मोहानी:** सर्वप्रथम मैं 453 को पेश करना चाहता हूं। वह इस प्रकार है:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 1) के संशोधन संख्या 8 के स्थान में निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic' शब्दों के स्थान में निम्नलिखित शब्द रखे जायें:–

'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Federal Republic.'

[मौलाना हसरत मोहानी]

अथवा विकल्पत:

'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Independent Republic.' "

इन संशोधनों के प्रस्थापित करने के मैं अभी अपने कारण बताऊंगा। इस बात को ध्यान में रखकर कि सार्वजनिक स्मरण शक्ति लोक-प्रसिद्ध रूप में अल्प-कालीन है सर्वप्रथम मैं सदस्यों को एक बहुत ही मौलिक तथ्य की याद दिलाना चाहता हूं जो वर्तमान संविधान तथा डॉ. अम्बेडकर द्वारा तैयार किये गये मसौदे में ले आया गया है। इस सभा की कार्रवाई की सरकारी रिपोर्ट के अंक 4 संख्या 6—सूची 738, भाग 1: फेडरल राज्य क्षेत्र तथा क्षेत्राधिकार का मैं निर्देश करता हूं। "राज्य-क्षेत्र तथा फेडरेशन का नाम" शीर्षक के अन्तर्गत यह कहा गया है कि जो फेडरेशन स्थापित किया जा रहा है वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वाधीन गणराज्य होगा। अत: यह स्पष्ट निर्धारित कर दिया गया है कि हम केवल फेडरेशन रखेंगे और वह भारतीय गणराज्यों को फेडरेशन होगा। पर मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने मैं समझता हूं कि बड़ी चतुराई से 'फेडरल' शब्द को बिल्कुल छोड़ दिया तथा "स्वाधीन" शब्द को भी छोड़ दिया और "लोकतंत्रात्मक राज्य" कहा है। अभी उस दिन जब मैंने भाषण दिया था मैंने इस बात का विरोध किया था।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है: यदि ये संशोधन पारित हो जाते हैं तो इनका प्रभाव यह होगा कि समस्त संविधान को फिर से बनाना पड़ेगा।

***मौलाना हसरत मोहानी:** इसके लिए कौन उत्तरदायी होगा?

***श्री देशबन्धु गुप्त:** इस समय ऐसा संशोधन पेश करना नियम विरुद्ध है अत: इसको पेश नहीं होने देना चाहिये।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं यह निवेदन करूंगा कि आरम्भ में ही आपको रोकने का मैंने भरसक प्रयत्न किया था। मैंने कहा था कि यदि आप भारत की तकदीर का फैसला करना चाहते हैं तो पहले आपको यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिये और इस बात की घोषणा कर देनी चाहिये कि आप किस प्रकार के संविधान का निर्माण कर रहे हैं। पर मेरी बात नियम विरुद्ध ठहराई गई। हां, मैंने यह अवश्य कहा था कि यदि आप मेरा सुझाव स्वीकार नहीं करते हैं तो न करिये पर आपको गुर्राना नहीं चाहिये, अब जब कि प्रस्तावना प्रस्तुत की जा रही है तो क्या मैं कोई आपत्ति न उठाऊं? तब तो यदि आप ये कहें कि चूंकि हमने अमुक-अमुक बातें पारित कर दी हैं तो मैं आपकी बात नहीं सुनूंगा.....

***श्री देशबन्धु गुप्त:** क्या मैं आपका आदेश प्राप्त कर सकता हूं?

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं कहता हूं कि आरम्भ में इस बात पर वाद-विवाद करने में मुझे रोकने का उत्तरदायित्व आप पर है और इस कारण यदि आपको

सारा संविधान फिर से बनाना पड़े तो कोई बात नहीं है। मैं इस बात पर आग्रह करूंगा। प्रस्तावना पर कोई भी संशोधन प्रस्थापित करने का मुझे पूर्ण अधिकार है, और यदि आपको यह विदित हो कि आप कोई बिल्कुल ही भिन्न बात पहले ही पारित कर चुके हैं तो मैं आपको यह कह दूं कि प्रस्तावना आपके गलत विनिश्चयों के अधीन नहीं होगी और आपको उन विनिश्चयों को ही सही करना होगा चाहे इस कार्य में एक या दो वर्ष लगें। यह कोई चिन्ता की बात नहीं है। परन्तु जब तक आप उन स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार नहीं चलते जो समस्त संसार में प्रचलित हैं तब तक मैं समझता हूं कि इसको इतनी असावधानीपूर्वक पारित करना हास्यास्पद होगा।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** क्या मैं अध्यक्ष का ध्यान उस औचित्य प्रश्न की ओर आकर्षित कर सकता हूं जिस मैंने पेश किया है? मैं उसके प्रति गम्भीर हूं।

***अध्यक्ष:** वे संशोधन संख्या 453 पेश कर रहे हैं जो इस प्रकार है:

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute Inda into a Sovereign Democratic Republic' शब्दों के स्थान में निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

'We, the people of India, 'having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Federal Republic.'

या

'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Independent Republic.'"

जहां तक संशोधन का सम्बन्ध है मुझे इसमें ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है जो नियम विरुद्ध हो।

आप केवल इसी संशोधन को ले रहे हैं, मौलाना साहब?

***मौलाना हसरत मोहानी:** जी नहीं। समय पर मैं दूसरे को प्रस्थापित करूंगा।

***अध्यक्ष:** अभी तो आप इसे ही पेश कर रहे हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** जी हां, पर मैं दूसरे संशोधन को छोड़ नहीं रहा हूं।

***अध्यक्ष:** इस समय तो आप किसी अन्य संशोधन को नहीं ले रहे हैं। आपने संशोधन संख्या 453 पेश किया है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** जी हां, यह और एक और।

***अध्यक्ष:** कौन-सा और? हमारे पास केवल एक संशोधन है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** इसके विकल्प में दूसरा।

***अध्यक्ष:** उससे कोई अन्तर नहीं आता।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** आपने पहले यह कहा था कि यदि वैकल्पिक संशोधन हैं और उनमें से एक पेश हो चुका है तो दूसरा रोक दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** दोनों संशोधनों में मुझे कोई अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता है न्यूनाधिक रूप से वे एक समान हैं। अत: चाहे वह स्वीकार किया जाये या वह, इसमें कोई बात नहीं है।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** अत: यदि वे दोनों एक समान हैं तो केवल एह ही स्वीकार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** जिसको वे पेश करेंगे उस पर मैं सभा का मत लूंगा।

***मौलाना हसरत मोहानी:** अत: मैंने सरकारी रिपोर्ट पढ़ कर सुना दी है। मैं अंक 4...

***अध्यक्ष:** प्रस्तावना को अन्त में रखने का उद्देश्य यह है कि जिस रूप में विधेयक स्वीकार किया जाता है प्रस्तावना उसके अनुरूप हो।

***मौलाना हसरत मोहानी:** जब मैंने आरम्भ में ही प्रस्तावना पर वाद-विवाद करना चाहा था तो आपने कहा था कि हम इस पर वाद-विवाद नहीं होने देंगे। अत: मैंने यह कहा था कि मुझे इस बात की शंका है कि जब आप अपनी इच्छा के अनुसार अन्य सब अनुच्छेदों को पारित कर लेंगे और यदि कोई अन्य व्यक्ति प्रस्तावना के बारे में कोई बात प्रस्थापित करेगा तो आप कह देंगे कि जो कुछ हम पारित कर चुके हैं उससे पीछे हटना अब सम्भव नहीं है; वह अब एक निश्चित तथ्य है और उस समय आप मुझे नियम विरुद्ध ठहरायेंगे। आपने मुझे वचन दिया था कि आप ऐसा नहीं करेंगे और ये बात मेरे पास छपी हुई रिपोर्ट में है।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया:** आपने तो औचित्य प्रश्न को नहीं माना, पर वे उसे मानते हैं, इसलिए उन्हें अब नियम विरुद्ध ठहराया जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी:** औचित्य प्रश्न क्या है?

***अध्यक्ष:** मौलाना साहब, आप इस बात का निर्देश कर रहे हैं जिसका मैंने वचन दिया था। मैं उसे जानना चाहता हूं कि वह क्या वचन था।

***मौलाना हसरत मोहानी:** एक बार पिछली दफा आपने जो कुछ कहा था उसे मैं आपको पढ़ कर सुनाऊंगा। डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं एक बार ऐसा कहा था, वह भी यहां मेरे पास है: मैं अंक 7 संख्या 6 पृष्ठ 418 का निर्देश करता हूं जहां वे यह कहते हैं कि इस समय मेरे संशोधन पर वे आपत्ति नहीं करेंगे।

आपके सम्बन्ध में मैं अंक 4 संख्या 6 पृष्ठ 733 का निर्देश करता हूं। यह वह अवसर था जब प्रस्थापित संघ संविधान की रिपोर्ट पंडित नेहरू द्वारा प्रस्तुत की जा रही थी। उस समय मैंने एक आपत्ति उठाई थी और आपने यह कहा था "इस समय आप उसके मार्ग में रुकावट न डालें।" आपने कहा था कि इस आपत्ति को मैं बाद में उठा सकता हूं। "जैसाकि मैं समझता हूं मौलाना का प्रश्न यह है कि इस समय मैं उनको यह वचन दे दूं कि उनका संशोधन नियम विरुद्ध

नहीं ठहराया जायेगा।" इसके बाद आपने कहा था "इससे अधिक मैं इस समय और कुछ नहीं कह सकता हू।" "मैंने कुछ ऐसा वचन दे दिया है जो मौलाना साहब चाहते हैं। मैं यह मानता हूं कि सभा यह चाहती है कि हम इस रिपोर्ट पर विचार करें।" मैने आपत्ति की थी और कहा था कि मैं इस रिपोर्ट पर विचार नहीं होने दूंगा और तब आपने यह कहा था कि मैं अपनी आपत्ति बाद में रख सकता हूं और इस समय मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू को वह रिपोर्ट लेने दूं, और इस विचार से ही उस समय मैंने यह सब बातें नहीं कहीं।

***अध्यक्ष:** वचन देना तो दूर रहा मैंने निश्चित रूप से वचन देना अस्वीकार किया। उस वाद-विवाद के विषय-संगत अंश को मैं पढ़कर सुनाता हूं। "जैसाकि मैं समझता हूं मौलाना का प्रश्न यह है कि इस समय मैं उनको यह वचन दे दूं कि उनका संशोधन नियम विरुद्ध नहीं ठहराया जायेगा। यह स्पष्ट है कि जब तक विषय प्रस्तुत न हो तब तक मैं किसी सदस्य को कोई वचन नहीं दे सकता हूं। पर आप सबने यह देखा होगा कि चाहे संशोधन समय बीत जाने पर आयें फिर भी उन संशोधनों को पेश करने देने में मैं बहुत उदार हूं। जब तक कोई परिभाषिक आधार न हो तब तक मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उनका संशोधन क्यों नियम विरुद्ध ठहराया जाये। इससे अधिक मैं इस समय और कुछ नहीं कह सकता हूं।"

***मौलाना हसरत मोहानी:** मुझे कुछ वचन दिया गया था। बहुत अच्छा, श्रीमान्। उस रिपोर्ट के अनुसार विधान-निर्माण के लिए नियुक्त की गई समिति को यह स्पष्ट निदेश दिया गया था कि संविधान का निर्माण इस सभा द्वारा पारित लक्ष्यमूलक संकल्प के अनुसार होना चाहिए। यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि लक्ष्यमूलक संकल्प के अनुसरण करने की अपेक्षा डॉ. अम्बेडकर जो चाहते हैं सो पार कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि लक्ष्यमूलक संकल्प उनके त्रुटिपूर्ण विनिश्चय के अनुरूप हो। उन्होंने व्यवस्था उलट दी है और यही बात है जिसका मैं घोर विरोध करता हूं क्योंकि इसके कारण संविधान का प्रकार ही बदल गया। जैसा मैंने यहां बताया था लक्ष्यमूलक संकल्प का तथा उस रिपोर्ट का क्या उद्देश्य था। इनमें कहा गया था कि वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वाधीन गणराज्यों का फेडरेशन होगा। गणराज्य के बहुवचन रूप पर ध्यान दीजिये। और अब उन्होंने पूरी की पूरी बात उलट दी। उन्होंने 'फेडरेशन' शब्द को छोड़ दिया; उन्होंने 'गणराज्य' शब्द को छोड़ दिया और किसी अन्य उद्देश्य के लिए जिसे मैं इस समय बताना नहीं चाहता हूं उन्होंने 'स्वाधीन' शब्द को भी छोड़ दिया। मैं इस बात को किसी भावी अवसर के लिए रक्षित रखता हूं और जब समय आयेगा मैं उनके सामने यह बात कहूंगा। इस समय मैं केवल यही कहता हूं कि लक्ष्यमूलक संकल्प के अनुसार तथा पंडित जवाहर लाल नेहरू के अनुदेशों के अनुसार वे कम से कम इस अनुच्छेद को इस रूप में बदल दें कि जो कुछ नेहरू ने सुझाव दिया है वह डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद में सम्मिलित कर लिया जाये। सच तो यह है कि उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली थी; और अब से 'स्वाधीन' शब्द को निकालते हैं। 'स्वाधीन' शब्द के स्थान में मैं 'फेडरल' शब्द रखना चाहता हूं अर्थात् एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न फेडरल गणराज्य; यह कोई बात नहीं है कि वह गणराज्य नहीं है जब मैं एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न फेडरल गणराज्य कहता हूं तो उसका अर्थ एक गणराज्य से है और उसके एकक राज्य भी गणराज्य होंगे या वह एक फेडरेशन होगा, कम से कम वह नहीं हो जो वे चाहते है। गणराज्य या कोई फेडरेशन रखने

[मौलाना हसरत मोहानी]

की अपेक्षा वे केवल राज्यों का संघ रखना चाहते हैं और 'संघ' को भी फेडरेशन के अर्थ में रखना चाहते हैं। मैं कहता हूं 'नहीं', वे इस शब्द को इस कारण भी ग्रहण करते हैं कि इसमें एक प्रकार की एकात्मक प्रणाली का भाव निहित है, पर उन्होंने जैसा चाहा वैसा उलट दिया है और इस संविधान के सम्पूर्ण रूप को बदल दिया है हमारा यह आशय है और लक्ष्यमूलक संकल्प का भी यह आशय है कि भारत स्वाधीन गणराज्यों का फेडरेशन बनाया जायेगा पर वे कहते हैं "नहीं"। भारत का स्वरूप बदल जायेगा और ब्रिटिश साम्राज्य के स्थान में आप एक भारतीय साम्राज्य स्थापित करेंगे जिसमें केवल वे राज्य होंगे जिनको कोई शक्ति नहीं होगी और राज्यों में आपने प्रान्तों को भी उनका स्तर गिराकर अन्तर्विष्ट कर लिया है। पहले मैंने यह सोचा था कि इस प्रकार अन्तर्विष्ट करने से राज्यों को लाभ होगा पर आपने तो प्रान्तों के स्तर को भी गिरा दिया और आपने उनको सब बातों से वंचित कर दिया और यहां तक कि प्रान्तीय स्वायत्तता भी छीन ली गई और वास्तव में प्रान्तों को आपने कुछ भी नहीं दिया है। आपने यह निश्चय किया था कि आप प्रान्तों में निर्वाचित राज्यपाल रखेंगे। मैंने 'राज्यपाल' शब्द पर आरम्भ में ही आपत्ति की थी और उस समय पंडित नेहरू ने कहा था "मौलाना को मैं सन्तुष्ट नहीं कर सकता हूं; उनके विचार बड़ी गहराई तक जाते हैं। वे 'राज्यपाल' शब्द से भयभीत हैं।" मैंने सुझाव दिया था कि प्रान्तों के लिए भी 'राज्यपाल' शब्द के स्थान में हम 'राष्ट्रपति' शब्द रखें। उन्होंने कहा कि वे यह नहीं करेंगे। उस समय मैंने इस विषय पर जोर नहीं दिया था, पर अब डॉ. अम्बेडकर द्वारा की गई व्याख्याओं को सुनकर मैं देखता हूं कि उन्होंने सारी की सारी बात उलट दी और उन्होंने रहस्य प्रकट कर दिया। वे साफ कह चुके हैं: "भारत अर्थात् इंडिया क्या होगा? वह राज्यों का संघ होगा।" इसका क्या अर्थ है? आपने 'गणराज्य' शब्द को छोड़ दिया; आपने 'फेडरेशन' शब्द को छोड़ दिया; आपने 'स्वाधीन' शब्द को छोड़ दिया और मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर कहते हैं "इससे क्या फर्क पड़ता है? जब हम गणराज्य कहते हैं तो कोई फर्क नहीं आता है। यह अनावश्यक है चाहे आप उसे स्वाधीन कहें या न कहें।" मैं कहता हूं कि यदि यह अनावश्यक है तो वे 'स्वाधीन' शब्द को 'लोकतंत्रात्मक' शब्द में बदलने के लिए क्यों इतने चिन्तित हैं? परदे की आड़ में कोई न कोई शिकार खेली जा रही है और एक बार पहले मैंने यह कहा था कि जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विचार बदल दिये और ब्रिटिश कामनवेल्थ से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने के लिए इंग्लैंड गये तब उन्होंने यह सोचा था कि हम एक गणराज्य बनायेंगे और वह 'स्वाधीन' भी होगा। अत: उन्होंने अपने लिये एक मार्ग खोज निकालना चाहा क्योंकि अब वे यह कह सकते हैं "हमारा राज्य एक गणराज्य है ही।" हमारा राज्य एक स्वाधीन गणराज्य नहीं है। हमारा किस प्रकार का गणराज्य है? एक इस प्रकार का गणराज्य जिसे इन यूरोप के देशों में इन साम्राज्यवादियों ने, जो इस वाग्जाल के प्रसिद्ध रचयिता हैं, नये पद गढ़े हैं: और ये नये पद क्या हैं? हालैंड ने एक "गणतंत्रात्मक डोमिनियन" पर की खोज की है और फ्रांस ने एक नया पद वीटनाम गढ़ा है जिसका अर्थ है कि वह औपनिवेशिक गणराज्य होगा। हम यह मानते है कि वीटनाम एक गणराज्य है और हालैंड यह कहता है कि उसने हिन्देशिया को एक गणराज्य के रूप में स्वीकार कर लिया है पर हिन्देशिया कहता है कि वह एक गणतन्त्रात्मक डोमिनियन है। डोमिनियन की अपेक्षा

वह एक साम्राज्यशाही राज्य में अन्तर्विष्ट किया जायेगा और ये धोखा हालैण्ड तथा फ्रांस ने किया है और क्या आप भी यही प्रस्थापना करते हैं कि आप भी उसी धोखे का अधिनियम यहां बनायेंगे? आपने यह कहा था कि हमने गणराज्य शब्द रखा है। आपने फेडरेशन शब्द को छोड़ दिया है। आप यह भी कहेंगे कि जवाहरलाल नेहरू ने ब्रिटिश कामनवेल्थ में रहना स्वीकार कर लिया है क्योंकि वे यह स्वीकार करते हैं कि हम स्वाधीन हैं। पर यह किस प्रकार की स्वाधीनता है? वह एक गणतन्त्रात्मक डोमिनियन राज्य होगा। क्योंकि यदि वह वास्तविक गणराज्य है और गणतन्त्रात्मक डोमिनियन नहीं है तो किसी विषय में भी आपका बादशाह या सम्राट से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहेगा। जब एक बार पंडित जवाहरलाल ने ब्रिटिश कामनवेल्थ में रहना स्वीकार कर लिया तो मैं समझता हूं कि उन्होंने भारत को गणराज्य के रूप में पुकारे जाने के अपने अधिकार को खो दिया। यह गणराज्य नहीं है। यदि वह गणराज्य है तो जैसा मैंने अभी कहा था वह गणतंत्रात्मक डोमिनियन है।

अत: मेरी वैकल्पिक प्रस्थापना यह है। या तो "लोकतंत्रात्मक" शब्द के स्थान में "फेडरल" शब्द पुर:स्थापित करिये। इससे कुछ अर्थ स्पष्ट हो जायेगा। यदि आप 'फेडरेशन' शब्द पुर:स्थापित नहीं करना चाहते हैं, यदि आप इससे भयभीत हैं तो जाने दीजिये, मैं डॉक्टर अम्बेडकर के साथ एक रियायत कर दूंगा और आपने जो लक्ष्यमूलक संकल्प यहां दिया हुआ है उसके मूल शब्दों को अपनाइये। वह एक "स्वाधीन सम्पूर्ण प्रभुत्व गणराज्य" होगा। मैं यह कहता हूं कि इस "लोकतन्त्रात्मक" शब्द को छोड़िये और लक्ष्यमूलक संकल्प में के मूल शब्दों को रखिये। मैं आगे बढ़ कर यह कहता हूं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जो कुछ किया है वह एक पूर्णतया गलत नीति है।

***अध्यक्ष:** क्या कोई अन्य व्यक्ति इस संशोधन के बारे में कुछ कहना चाहता है? मैं इस पर मत लूंगा। प्रथम विकल्प।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic' शब्दों के स्थान में निम्नलिखित शब्द रखे जायें:–

'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Federal Republic.'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं दूसरे विकल्प पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic' शब्दों के स्थान में निम्नलिखित शब्द रखे जायें:–

'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Independent Republic.'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अन्य बातों को, जब हम छ: बजे समवेत् होंगे, लेंगे।

इसके पश्चात् सभा दोपहर बाद के भोजन के लिए सायंकाल के छह बजे तक स्थगित हुई।

सभा दोपहर बाद के भोजन के पश्चात् सायंकाल के छह बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुन: समवेत् हुई।

***अध्यक्ष:** अब हमें अन्य संशोधनों को लेना है। एक मौलाना हसरत मुहानी के नाम में संख्या 9 पर है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** अध्यक्ष महोदय, में प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic' शब्दों के स्थान में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Union of Indian Socialistic Republics to be called U.I.S.R. on the lines of U.S.S.R.' रख दिये जायें।"

***श्री देशबन्धु गुप्त:** क्या मैं पुन: औचित्य प्रश्न उठा सकता हूं और यह निवेदन कर सकता हूं कि यह संशोधन व्यवस्था के विरुद्ध है क्योंकि यह उस संविधान का विरोध करता है जिसे हम पार कर चुके हैं।

***अध्यक्ष:** यह यह औचित्य प्रश्न उठा दिया गया है कि वह सारा का सारा संविधान, जिसे इस सभा ने निर्माण तथा स्वीकार किया है, इस संशोधन से असंगत है अत: इस संशोधन को व्यवस्था के विरुद्ध ठहराया जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी:** इसी बात के लिये मैंने आपसे निवेदन किया था कि आप मेरी इस प्रकार के कपटयुक्त प्रयोगों से रक्षा करें। उन्हीं बातों को मैं दुहरा नहीं रहा हूं। अनुच्छेद 1 के सम्बन्ध में अभी उस दिन मैंने यही बात प्रस्थापित की थी। आज मैं जो कुछ प्रस्थापित करने जा रहा हूं वह एक भिन्न आधार पर है। यदि आप मुझे उन्हीं तर्कों को दुहराते हुए देखें तो आप मुझे व्यवस्था के विरुद्ध घोषित कर सकते हैं, पर यदि मैं कोई बिलकुल नई बात कहूं जिसका इस संविधान के प्रथम अनुच्छेद से कोई सम्बन्ध न हो तो मैं समझता हूं कि मैं आपकी ओर से कुछ अनुग्रह प्राप्त करने का अधिकारी हूँ। जैसाकि मैंने अपने पहले कथन में सिद्ध किया था आपने एक प्रकार का वचन दिया था कि आप एक दम या बिना किसी विचार के मुझे नियम विरुद्ध नहीं ठहरायेंगे। हां, यदि आप यह समझें मैं कोई नवीन बात नहीं कह रहा हूं और आप मुझे पुरानी बातों को फिर से कहते हुए पायें तो आप मुझे नियम विरुद्ध ठहरा सकते हैं; पर यदि अनुच्छेद 1 के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा था उससे बिल्कुल ही भिन्न विषय हो तो मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता कि मेरा संशोधन व्यवस्था के विरुद्ध क्यों ठहराया जाये?

डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैय्या: क्या मैं यह जान सकता हूं कि आज प्रात: काल जो मत लिया गया था वह मौलाना के संशोधन को अस्वीकार कराने के लिए मतदान था? प्रस्तावना की शब्दावली पर कोई मत नहीं लिया गया था।

***अध्यक्षः** हां, उस पर मैंने कोई मत नहीं लिया था।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैय्याः** अतः जो कुछ हुआ था वह 'लोकतंत्रात्मक' शब्द के स्थान में 'स्वाधीन' या 'फेडरल' रखने वाले संशोधन को अस्वीकार कराने के लिए था।

***अध्यक्षः** मौलाना, मुझे जो कुछ विनिश्चय करना है वह यह नहीं है कि आप अपनी बातें दुहरायेंगे या नहीं। प्रश्न यह है कि यह व्यवसथा के अंतर्गत है या नहीं। आपत्ति यह है कि यह उस समस्त संविधान से असंगत है जिसे हम पारित कर चुके हैं। इसके बारे में आपको क्या कहना है?

***मौलाना हसरत मोहानीः** मैं नहीं समझता हूं कि यह किस प्रकार असंगत है। क्योंकि प्रस्तावना में 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' है। मैं यह कहता हूं कि इन शब्दों की जगह आप 'स्वाधीन गणराज्यों का संघ' कहें। तो फिर असंगति कहां है? इसमें मुझे कोई असंगति नहीं दिखाई देती है।

***अध्यक्षः** क्या आप वास्तव में यही सुझाव रखते हैं कि जो संविधान हमने पारित किया है वह सोवियत रूस के संयुक्त राज्य के आधार पर है?

***मौलाना हसरत मोहानीः** इस प्रकार की मैं कोई बात नहीं कहूंगा। मैं यह नहीं कहता कि हम सोवियत राज्य में जाकर मिल जायें और न मैं यह कहता हूं कि आप वैसा संविधान स्वीकार करें, पर जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि हमें अपने संविधान को सोवियत रूस के आधार तथा शैली के अनुसार क्रियान्वित करना चाहिये। वह एक विशेष शैली है तथा गणतंत्रात्मक शैली है और वह विकेन्द्रीयकरण शैली भी है।

***श्री जयनारायण व्यास** (राजस्थान): क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि माननीय सदस्य भाषण दे रहे हैं या औचित्व प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं?

***अध्यक्षः** वे औचित्य प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** जब मैं यह विचार प्रस्तुत करता हूं कि हम रूस से नहीं मिलेंगे या हम सोवियत रूस का संविधान ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं केवल यह सुझाव दे रहा हूं कि द्वितीय पठन में यहां हम जिस संविधान और प्रस्तावना को ग्रहण कर रहे हैं वह उसी प्रकार के उसी शैली के होने चाहियें जैसे सोवियत रूप के हैं और मैं नहीं समझता हूं कि इसमें कोई असंगति है। वे बातें क्या हैं? सोवियत रूस के मूल सिद्धांत क्या हैं? वे सिद्धान्त तीन हैं। सर्वप्रथम यह कि उनका संविधान फेडरल होगा। दूसरा यह कि वह विकेन्द्रीयकरण के सिद्धांत का फेडरेशन होगा और साथ ही साथ केन्द्र ने कुछ केन्द्रीय शक्तियां पाकर फिर उन शक्तियों को अपने अंगभूत एककों को दे दिया यह घोषणा करते हुए कि वे....

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि यदि मैं मौलाना साहब को बिना नियम-निर्देश के उनका संशोधन पेश करने की आज्ञा दे दूं तो समय की बचत होगी। अतः आप अपना भाषण समाप्त करें।

***मौलाना हसरत मोहानीः** यहां उपस्थित मेरे कुछ मित्र जब 'सोवियत' शब्द को सुनते हैं तो कहते हैं कि "यह सोवियत सरकार का अभिकर्त्ता है और यह सोवियत सरकार से वेतन पाता है।" मैं नहीं समझता हूं कि इस संसार में कोई भी व्यक्ति मुझ पर ऐसा दोषारोप कर सकता है।

***अध्यक्ष:** सभा में ऐसा किसी ने नहीं कहा।

***मौलाना हसरत मोहानी:** सोवियत के विश्वस्त अनुचर हैं, और वे सोवियत सरकार से प्राप्त आदेशों का पालन करते हैं। मेरा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा भारत के साम्यवादी पक्ष से भी कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि मैंने इस आधार के कारण उनमें सम्मिलित होने से इंकार कर दिया कि एक बार उन्होंने यह कहने की गलती की कि चूंकि हमारा और इंग्लैंड का राष्ट्र दोनों वीर राष्ट्र हैं और इसलिए इंग्लैंड का और हमारा आधार एक ही है। उस समय मैंने यह कहा था और अब भी कहता हूं "कोई भी व्यक्ति किन्हीं भी निबन्धनों के अधीन अथवा किसी उद्देश्य के लिए किसी विदेशी सरकार को और विशेषकर ब्रिटिश सरकार को सहायता करता है तो मैं कहता हूं कि वह गलती करता है....

***अध्यक्ष:** मौलाना साहब, मैं आपको यह याद दिला दूं कि हमारा इन जीवन सम्बन्धी विवरणों से कोई सम्बन्ध नहीं है। आप कृपा कर अपने संशोधन पर भाषण दें।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं ऐसी कोई बात नहीं कहूंगा जिस पर कोई आपत्ति कर सके। सोवियत सरकार अथवा सोवियत संविधान से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं केवल यह चाहता हूं कि हमारा संविधान और हमारी प्रस्तावना उस आधार का अनुसरण करे जिसे सोवियत सरकार ने ग्रहण किया है और ये वे तीन आधार हैं जिनका मैं जिक्र कर चुका हूं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा संविधान फेडरल होना चाहिये और फेडरल होने के साथ-साथ ऐसा भी होना चाहिये कि केन्द्र को अधिक शक्तियां न हों और अंगभूत राज्य या गणराज्य अपनी इच्छा से कुछ केन्द्रीय शक्तियां केन्द्र को दे दें। और इसके पश्चात् अंगभूत एककों को सद्भावना प्राप्त करने के लिए वह फिर, मेरा आशय यह है, कि सोवियत सरकार फिर अपने अंगभूत एककों या गणराज्यों को स्वतन्त्रता दे। यह कह दे कि "यदि आप किसी समय यह देखें कि केन्द्र आपके हित के विरुद्ध विनिश्चय कर रहा है तो केन्द्र से मतभेद रखने की आपको स्वतन्त्रता है।" और इस प्रकार उसने उसे उसी समय अधिकार दे दिया और यदि उन्होंने कोई बात गलत होते देखी, केन्द्र का कोई प्रस्ताव गलत देखा तो वे एक दम उससे बाहर हो सकते थे और उसने यह उस समय भी कहा जब युद्ध हो रहा था। उसने सोवियत रूस के सब मुस्लिम गणतंत्रों से यह कह दिया था "यदि आप चाहते हैं तो आप जिस पक्ष में युद्ध करना चाहते हैं आप उस पक्ष में जाकर युद्ध कर सकते हैं। यदि आप हमारे लिये युद्ध करना नहीं चाहते तो हम आप पर दबाव नहीं डालते।" इसका क्या फल हुआ? सोवियत रूस ने उनमें अपने प्रति विश्वास पैदा किया और फल यह हुआ कि एक भी मुसलमान सोवियत गणराज्य के विरुद्ध नहीं हुआ। प्रत्येक ने सोवियत सरकार की ओर से अपनी पूरी सहानुभूति से युद्ध किया। इसका क्या कारण था? उन्होंने यह इसलिए किया कि उन्होंने देखा कि सोवियत सरकार ने उन्हें अपना विश्वासपात्र बना लिया है। सोवियत समूह को छोड़ देने का उन्हें अवसर नहीं दिया। और वे उसे छोड़ते भी क्यों? वह भी सावधान थी। उसने कभी कोई ऐसी बात नहीं रखी जो स्पष्टतया अपने अंगभूत एककों के विरुद्ध हो।

अत: इस प्रकार की सान्तवनाप्रदायक प्रवृत्ति ग्रहण करने से उन्हें इस प्रकार की स्वतंत्रता और इस प्रकार की सफलता मिली जो इससे पूर्व संसार में किसी को नहीं मिली थी। श्रीमान, मैं यह कहता हूं कि हम भी इसी नीति का अनुसरण

करें और हम भी इसी प्रवृत्ति को ग्रहण करें। हम भी अपने अल्पसंख्यक वर्गों को अपना विश्वासप्रद बनायें। ऐसा करने की अपेक्षा आप तो उन्हें बिल्कुल बाहर निकाल फैंक रहे हैं। आप अपने राजनैतिक अल्पसंख्यक वर्गों तक के हितों पर किंचित मात्र विचार किये बिना जो चाहते हैं वह पारित कर रहे हैं। आपको हमारी कुछ भी चिंता नहीं। आप देखते हैं कि आपकी बंगाल सरकार और आपकी मद्रास सरकार ने इस आधार पर कि साम्यवादियों ने कुछ अवैध उपायों को अपनाया है—वे लड़ रहे हैं, मार काट कर रहे हैं, हत्या कर रहे हैं और लूटमार कर रहे हैं—साम्यवादी पक्ष को अवैध घोषित कर दिया है। ठीक है, मैं कहता हूं कि साम्यवादी भी यही बात कह सकते हैं। वे कह सकते है "आप हमें कोई अवसर नहीं देते हैं, आप हमें स्वाधीन तथा संविधानिक विचार नहीं रखने देते हैं और आप.....

***अध्यक्ष:** क्या मैं आपको यह याद दिला सकता हूं कि यह विधान सभा नहीं है, बल्कि यह संविधान सभा है और इस समय देश में क्या हो रहा है उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** बहुत अच्छा श्रीमान, इस सम्बन्ध में मुझे कुछ थोड़े से वाक्य और बोलने हैं और उनमें मैं अधिक समय नहीं लगाऊंगा।

मान लीजिये कि आप यह कहें कि आगामी निर्वाचन में संयुक्त निर्वाचक मंडल सहित तथा अन्य सब बातों के सहित बिना किसी निबंधन के साम्यवादी स्वतंत्र रूप से चुनाव लड़ सकते हैं। पर आप ऐसा कैसे करेंगे? मान लीजिए कि साम्यवादी पक्ष इस संविधानिक उपाय को काम में लेना चाहते हैं क्या उन्हें आप अपना घोषणापत्र निकालने देंगे जो अवश्य ही आपके सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा? निर्वाचनों के लिए क्या आप उन्हें अपने अभिकर्ता रखने देंगे? क्या आप उन्हें अपने कार्यकर्ता रखने देंगे जो प्रत्येक मतदाता के सम्पर्क में आयेंगे? आप ऐसी कोई बात नहीं करेंगे। एक बार यदि उन्होंने अपना घोषणापत्र निकाला आप उन्हें तुरन्त कारावास में डाल देंगे। अत: यह एक ऐसा प्रश्न है कि पहले मुर्गी हुई या अंडा। आप उन्हें कारावास में इसलिये बन्द करते हैं कि वे हिंसात्मक उपाय काम में लाते हैं और वे यह कहते हैं "कि हमें बाध्य होकर हिंसात्मक उपायों की शरण लेनी पड़ती है क्योंकि संविधानिक उपायों की आप हमारे लिये कोई गुंजाइश नहीं रहने देते हैं।"

***अध्यक्ष:** मौलाना साहब, आप अपने संशोधन पर भाषण नहीं दे रहे हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** बहुत अच्छा। मुझे डॉ. अम्बेडकर और इस सभा से केवल यह निवेदन करना है कि सब राजनैतिक अल्पसंख्यक वर्गों के प्रति वैसी ही सान्तवनाप्रदायक प्रवृत्ति ग्रहण की जाये और वैसे ही सिद्धान्त ग्रहण किये जायें जैसे सोवियत संघ द्वारा ग्रहण किये गये हैं। मैं आपसे यह निवेदन नहीं कर रहा हूं कि आप सोवियत संघ में सम्मिलित हों या उनके संविधान को स्वीकार करें। इन चन्द शब्दों के सहित में अपना संशोधन पेश करता हूं और डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे इसे स्वीकार करें।

***अध्यक्ष:** क्या कोई व्यक्ति इस संशोधन पर कुछ कहना चाहता है?

***माननीय सदस्यगण:** जी नहीं।

***अध्यक्षः** तो मैं इस पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic' शब्दों के स्थान में 'We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a Union of Indian Socialistic Republics to be called U.I.S.R. on the lines of U.S.S.R.' शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** हमारे पास अब ऐसे बहुत से संशोधन हैं जिनकी सूचना अन्य सदस्यों ने दी है। इन संशोधनों में से कुछ संशोधन दो बातों से सम्बद्ध हैं। उनमें से कुछ में ईश्वर का नाम प्रस्तावना में किसी न किसी रूप में लाया गया है। अन्य संशोधनों में महात्मा गांधी का नाम किसी न किसी रूप में लाया गया है। और कुछ संशोधन ऐसे हैं जिनमें शब्दावली पर कुछ संशोधनों का सुझाव दिया गया है। पर कदाचित् ये बातें साधारण हैं, और मुख्य संशोधन वास्तव में वे हैं जिनमें ईश्वर का या महात्मा गांधी का या दोनों का नाम लाया गया है। अब मैं सदस्यों से यह पूछना चाहूंगा कि क्या वे इन संशोधनों को पेश करने का आग्रह करेंगे क्योंकि मैं उनको संशोधन पेश करने से रोक नहीं सकता हूं; पर मैं यह सुझाव दूंगा कि इस सभा में न तो ईश्वर पर और न महात्मा गांधी पर वाद-विवाद हो (*वाह-वाह*)।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, क्या मैं अपने संशोधन संख्या 430 को पेश कर सकता हूं?

***अध्यक्षः** यदि वह पेश किया जायेगा तो उस पर मत भी लिया जायेगा।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** श्रीमान, इसके पूर्व कि श्री कामत अपना संशोधन पेश करें क्या मैं सभा का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कर सकता हूं कि जब इस सभा ने सत्यनिष्ठ होकर लक्ष्यमूलक संकल्प सब सदस्यों ने खड़े होकर पारित किया था और उस समय प्रधान मंत्री ने इन शब्दों में अपील की थी:

फिर भी'

"यह एक संकल्प है और यह एक संकल्प से बहुत कुछ अधिक भी है। यह एक घोषणा है। यह एक दृढ़ संकल्प है। यह एक प्रतिज्ञा है, एक बीड़ा है और मुझे आशा है कि यह हम सबके लिए एक समर्पण है....और यदि मैं सम्मानपूर्वक ऐसा कह सकता हूं तो मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इस संकल्प पर संकीर्ण विधि सम्बन्धी शब्दावली के रूप में विचार न करे वरन् इस संकल्प के पीछे जो भावना है उस पर विचार करे"

प्रस्तावना किसी रूप में भी कम महत्वपूर्ण नहीं है और प्रधान मंत्री के वाक्य समान रूप से उस पर प्रयोज्य हैं। अतः मैं श्री कामत से निवेदन करता हूं कि इस बात पर ध्यान रखा जाये।

***अध्यक्षः** क्या श्री कामत को मैं एक बात बता सकता हूं? अनुसूची 3 में जिसे हम पारित कर चुके हैं मंत्रियों तथा अन्य व्यक्तियों के लिए जो कि पद धारण करेंगे एक शपथ या प्रतिज्ञान विहित कर दिया गया है। हमने इसे वैकल्पिक रूप में रख दिया है जैसे कि "ईश्वर की शपथ लेता हूं" या "सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं" और इस प्रकार आस्तिकों और नास्तिकों के लिए शपथ लेने अथवा प्रतिज्ञान करने की स्वतन्त्रता दी है। यहां भी क्या आप इस बात को वैकल्पिक रूप में लायेंगे?

***श्री एच. वी. कामतः** यहां हम व्यक्तिगत रूप में नहीं हैं यहां हम सब भारत की जनता के रूप में हैं। इन दोनों में बहुत कुछ अन्तर है।

***अध्यक्षः** भारत की जनता के अंतर्गत व्यक्ति सम्मिलित हैं। यदि आप अपने संशोधन को पेश करने का आग्रह करेंगे तो आपको मैं रोक नहीं सकता हूं। पर मैं आपको यह सुझाव देता हूं कि आप इसका आग्रह न करें।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं....

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैं आपसे इस बात पर ध्यान रखने के लिए निवेदन करूंगी कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक वर्गों में ईश्वर सम्बन्धी विषय को वाद-विवाद का विषय नहीं बनाया जाये। इस विषय में बड़ी उलझने हैं। हममें से अधिकांश व्यक्तियों को चाहे वे आस्तिक हों अथवा नास्तिक हों ईश्वर की सत्ता को सिद्ध तथा असिद्ध करना कठिन होगा। उसके नाम को व्यर्थ लाने का प्रयत्न हम न करें। यहां उसका नाम न लाया जाये। संसार में प्रत्येक राष्ट्र ईश्वर की स्तुति करता है और ईश्वर एक निष्पक्ष सत्ता है और उसका रूप निष्पक्ष है और सदस्यों को इस विषय पर किसी न किसी पक्ष में मत देना होगा। उसकी संज्ञा इसी रूप में रहने दी जाये। इन शब्दों में मैं श्री कामत से अपील करती हूं कि ईश्वर पर मत देने की उलझन में हमें न डालें।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि मैं इस अपील को स्वीकार नहीं कर सकता। अपने नाम के संशोधन संख्या 430 को मैं पेश करूंगा। श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 1) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित प्रस्तावना के स्थान में निम्नलिखित प्रस्तावना रखी जाये:–

'In the name of God,

We, the people of India,

having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic, and to secure to all her citizens

Justice, social, economic and political;

[श्री एच.वी. कामत]

Liberty of thought, expression, belief, faith and worship;

Equality of status and of opportunity; and to promote among them all;

Fraternity, assuring the dignity of the individual and the unity of the nation;

in our Constituent Assembly do hereby adopt, enact and give to ourselves this Constitution.'

[ईश्वर का नाम लेकर हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।]"

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैय्या:** श्रीमान, आप देख लीजिये, संशोधन केवल प्रथम पंक्ति में है।

***अध्यक्ष:** वह ठीक वैसा ही है जैसी कि प्रस्तावना है सिवा इसके कि उसका आरम्भ 'ईश्वर का नाम लेकर' शब्दों द्वारा हुआ है।

माननीय सदस्यगण: इस विषय पर कृपया भाषण न हों।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मैं एक औचित्य प्रश्न रखने के लिए खड़ा होता हूं। पेश किये गये संशोधन का कुछ अर्थ होना चाहिए।

***अध्यक्ष:** वास्तव में यह औचित्व प्रश्न नहीं है।

***श्री एच. वी. कामत:** श्री सन्तानम को मैं उत्तर दे सकता हूं। मेरे संशोधन का अर्थ यह है कि ईश्वर का नाम लेकर हम अमुक कार्य करते हैं। इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए किसी लम्बे भाषण की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर का नाम लाने के साथ-साथ मैंने केवल एक शब्द के लिए कुछ थोड़ी-सी स्वतन्त्रता और ले ली है, और वह यह है मैंने 'its' citizens के स्थान में 'her' citizens शब्द रखे हैं।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (तिरुवांकुर और कोचीन राज्य): श्रीमान, क्या मैं एक औचित्य प्रश्न रख सकता हूं। यद्यपि मैं आस्तिक हूं, परन्तु यदि श्री कामत का संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो क्या उसका अर्थ विश्वास के विषय में विवश करना नहीं होगा? क्या इस प्रकार का प्रस्ताव पेश करना व्यवस्था के विरुद्ध नहीं है? यह विश्वास स्वातन्त्र्य के मूलाधिकार पर प्रभाव डालता है। संविधान के अनुसार किसी व्यक्ति को ईश्वर में विश्वास करने या न करने का अधिकार है। इस दृष्टिकोण से यह संशोधन नियम विरुद्ध ठहराया जाना चाहिये, यद्यपि मैं स्वयं कट्टर आस्तिक हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्री थानू पिल्ले के लिए मेरा उत्तर यह है कि इस संविधान को हम भारतीय जनता के नाम में तथा उसकी ओर से पारित कर रहे हैं। इस सभा में हमने जो कुछ किया है वह सब भारतीय जनता के नाम से और उसकी ओर से किया है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): क्या मैं श्री कामत के संशोधन पर यह संशोधन पेश कर सकता हूं कि "ईश्वर का नाम लेकर" के स्थान में "देवी का नाम लेकर" रखना श्री कामत स्वीकार करें। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामत:** इस सभा में जो कुछ हमने किया है वह सब भारतीय जनता की ओर से भारतीय जनता के लिए ही किया है और यहां सब विनिश्चय सभा का मत लेकर किये गये हैं। यह विषय चाहे सभा के मत के लिए हो या न हो, पर मुझे यह विश्वास है कि वह भारत की जनता जिसके लिए हम विगत तीन वर्षों से यहां काम तथा परिश्रम कर रहे हैं वह पूर्ण रूप से इस संशोधन की पुष्टि करेगी। यहां तक तो श्री पिल्ले द्वारा उठाये गये प्रश्न के सम्बन्ध में है।

प्रस्तावना के मूल पाठ के सम्बन्ध में मैने केवल थोड़ी-सी स्वतन्त्रता बरती है। जैसाकि मैं बता चुका हूं, मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा दिसम्बर 1946 में पेश किये गये लक्ष्यमूलक संकल्प की शब्दावली का ही अनुसरण कर रहा हूं। उसके प्रथम भाग में देश के शासन के निर्देश में भावी शब्द के साथ "her future governance" शब्दों का प्रयोग किया गया है; 'her' मातृभूमि के लिए उपयुक्त प्रयोग है। ऐसा होने से प्रस्तावना में हमें 'her citizens' कहना चाहिये न कि 'its citizens'। इस विषय को मैं मसौदा समिति पर छोड़ दूंगा।

प्रस्ताव के सार के सम्बन्ध में मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देना चाहता हूं। यह देश जो प्राचीन होते हुए भी सदैव तरुण रहा है, जो ईश्वरीय ज्ञान के निर्मल स्रोत की शरण लेकर युग-युगान्तरों से अपना कायाकल्प करता रहा है उस देश की इस विशाल सभा में, जो भारत की—हमारे भारतवर्ष की प्रथम संविधान सभा है, इस संविधान के पवित्र संस्कार को गीता के निम्नलिखित श्लोक के अनुसार हम ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण दृढ़ संकल्प द्वारा करें।

यत्करोसि यदश्नासि
यज्जुहोसि ददासियत्
यत्तपस्यसि कौन्तेय
तत्कुरुष्व मदर्पणम्।

[श्री एच.वी. कामत]

हमारी कमियां चाहे जो कुछ भी हों, इस संविधान में चाहे जो कुछ दोष और त्रुटियां हों हम ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि वह हमें ऐसी शक्ति, साहस और बुद्धि दे जिससे हम भारत और भारत की जनता के लिए कठोर परिश्रम करके कष्ट सहकर और त्याग करके अपने लोहे को सोना बना दें। हमारी प्राचीन सभ्यता का यही मत है और इन समस्त शताब्दियों में भी यही मत रहा है—यह एक ऐसा मत है जो विशिष्ट, प्रमुख तथा सृजनात्मक है और यदि हम, भारत के लोग, इस मत पर ध्यान दें तो हमारा कल्याण होगा।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): श्री कामत द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं जोरदार समर्थन करता हूं।

(प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना बोलने के लिए खड़े हुये।)

***अध्यक्ष:** क्या आप कोई संशोधन पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** जी हां, संशोधन संख्या 3 ।

***अध्यक्ष:** क्या श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन पर कोई बोलना चाहता है?

***श्री एम. थिरुमल राव** (मद्रास : जनरल): क्या आप श्री सक्सेना को अपना संशोधन पेश करने दे रहे हैं? मैं श्री कामत के संशोधन पर चन्द शब्द कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** इस समय हम श्री कामत के संशोधन पर हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं डॉ. अम्बेडकर को उस वचन की याद दिला सकता हूं जो उन्होंने मुझे एक बार दिया था। श्रीमान, क्या मैं चन्द पंक्तियां पढ़ सकता हूं? श्रीमान, 15 नवम्बर 1948 को जब इस प्रश्न पर विचार हो रहा था, डॉ. अम्बेडकर ने सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के इस प्रश्न के बारे में याद दिलाने के लिए मुझसे कहा था। मैंने कहा था–

> "मैं आशा करता हूं.....कि उनके मसौदे का अभिप्राय है कि वह (सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता) जनता में निहित है, और उनकी व्याख्या अभिलेखों में भावी निर्देशन के लिए अंकित होगी।"

इसका उन्होंने यह उत्तर दिया था–

> "नि:सन्देह वह जनता में निहित है। मैं अपने मित्र को यह भी बता दूं कि यदि यह विषय उस समय उठाया जाये जबकि हम प्रस्तावना की चर्चा कर रहे हों तो मैं इस पर कोई भी आपत्ति नहीं करूंगा।"

***अध्यक्ष:** यह बात नहीं है। इस समय हमारे सामने श्री कामत का संशोधन है, यह बात नहीं है। इस समय हम इस प्रश्न को नहीं ले रहे हैं।

***श्री एम. थिरुमल रावः** यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि श्री कामत ने इस संशोधन पर जोर न देने के मार्ग को नहीं अपनाया है। यह बात इतने प्रमुख महत्व की है और समस्त राष्ट्र के जीवन पर इतनी प्रभाव डालता है कि वह तीन सौ व्यक्तियों की सभा के मत के अधीन नहीं होनी चाहिये चाहे भारत ईश्वर को चाहे या न चाहे। हमने यह स्वीकार कर लिया है कि शपथ में ईश्वर का नाम होना चाहिये, पर जो लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते उनके लिये वहां एक विकल्प है, पर प्रस्तावना में इन दोनों बातों का उपबन्ध करने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि श्री कामत अपना संशोधन वापस कर लें और उस ईश्वर को इस सभा के मत के अधीन न लायें जिसके प्रति उन्होंने इतने सम्मानसूचक शब्दों में भाषण दिया है और यदि इस पर मत लिया जाता है तो न तो यह हमारे लिये उचित है और न राष्ट्र के लिये।

***डॉ. वी. पट्टाभि सीतारमैय्याः** क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि किसी अन्य कार्य के लेने के पूर्व उस संशोधन को पहले समाप्त कर दिया जाये।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** यह बड़े ही खेद का विषय है कि वह विषय, जिसका हमारी आन्तरिक तथा बहुत ही पवित्र भावनाओं से सम्बन्ध है, चर्चा का विषय बनाया जाये। अपने सर्वोच्च सद्विश्वासों और अपनी निश्चित धारणाओं के प्रति यह अधिक सुसंगत होगा कि हम उन पर आरूढ़ रहें और हम अपने विश्वासों को दूसरों पर लादने का प्रयास न करें। श्री कामत तथा उन लोगों की, जो उनसे सहमत हैं, निष्ठा को मैं अभिज्ञान करता हूं, पर मैं नहीं समझता हूं कि एक ऐसे विषय में, जिसका प्रत्येक व्यक्ति से वैयक्तिक सम्बन्ध है, क्यों सामूहिक विचार किसी व्यक्ति पर लादा जाये। इस प्रकार की कार्रवाई प्रस्तावना से असंगत है जिसमें विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता का वचन प्रत्येक व्यक्ति को दिया गया है। इस प्रश्न पर संकीर्ण रूप में हम कैसे विचार कर सकते हैं? हम ईश्वर का आह्वान करते हैं, पर मैं यह साहसपूर्वक कह सकता हूं कि जब हम ऐसा करते हैं तो हम एक संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना का प्रदर्शन करते हैं जो संविधान की आत्मा के विरुद्ध है और जिसे हमें इस समय भूल जाना चाहिए जबकि हम अपने परिश्रम के इस महत्वपूर्ण अंत तक पहुंच गये है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** श्रीमान, मेरे मित्र श्री कामत ने जो संशोधन पेश किया है उसका विरोध करने में मैं अपने मित्र पंडित कुंजरू के साथ हूं। अपने मित्र श्री कामत में मुझे बड़ी श्रद्धा है। जहां तक राजनैतिक विषयों का सम्बन्ध है मैं वह व्यक्ति हूं जो श्री कामत में असीम विश्वास रखता है। मुझे यह कहना पड़ेगा कि आज सायंकाल को मुझे उनसे बड़ी निराशा हुई। इस संशोधन से उन्होंने कई व्यक्तियों की भावनाओं को कुचल डाला जबकि उन्होंने उस संशोधन को बड़ी जोरदारी से अस्वीकार किया जिसको मैंने प्रस्थापित किया था। श्रीमान, मेरे लिये यह हंसी का विषय नहीं है। मैं देवी में विश्वास करता हूं। मैं कामरूप का रहने वाला हूं जहां कामाख्या देवी की उपासना की जाती है।

***एक माननीय सदस्यः** ईश्वर के अंतर्गत देवी आ जाती है।

***अध्यक्षः** यह उतना ही बुरा है जितना कि इस चर्चा में हम ईश्वर के नाम को ले आये हैं। इस विषय में हमें अविनीत नहीं होना चाहिए।

***श्री रोहिणीकुमार चौधरीः** हमें स्मरण रखना चाहिए कि जब हमने अपना राजनैतिक आन्दोलन आरम्भ किया था हमने बन्देमातरम् के गान से उसे आरम्भ किया था। बन्देमातरम् का क्या अर्थ है? वह देवी की स्तुति है। उसका अर्थ है देवी में विश्वास। श्रीमान, हम लोग जो शक्ति सम्प्रदाय के हैं देवी की पूर्णतया उपेक्षा कर केवल ईश्वर का आह्वान करने में विरोध करते हैं। मेरा यह निवेदन है। यदि हम ईश्वर का नाम लाते ही हैं तो हमें देवी का नाम भी लाना चाहिये। जैसा कि मैंने कहा था इस संशोधन को लाना ही न चाहिये था। पर चूंकि यह ले आया गया है मेरे विचार ये हैं।

***माननीय श्री सत्यनारायन सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान, इस विषय पर अब मत लिया जाये।

***पंडित गोविन्द मालवीय** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** और भी बहुत से व्यक्ति बोलना चाहते हैं। पर यह सुझाव दिया गया है कि इस विषय पर अब वाद-विवाद समाप्त किया जाये।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** यह कहा गया है कि हमें अपनी इच्छा को किसी पर लादना नहीं चाहिये। मैं आशा करता हूं कि इस सभा का दूसरा वर्ग भी ऐसा नहीं करेगा। इस विषय पर आपकी अनुज्ञा से मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** पर विवादान्तक प्रस्ताव पेश हो चुका है। मैं विवादान्तक प्रस्ताव पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मुझे श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन पर मत लेना पड़ेगा। मेरे लिये और कोई विकल्प नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उनसे वापस कर लेने के लिए कहा जाये।

***अध्यक्षः** मैंने उनसे न पेश करने के लिए कहा था। इसको वापस लेना उन पर निर्भर करता है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इसे वापस नहीं ले रहा हूं।

***अध्यक्षः** वे कहते हैं कि वे वापस नहीं लेते।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 1) के संशोधन 2 में प्रस्थापित प्रस्तावना के स्थान में निम्नलिखित प्रस्तावना रखी जाये:–

'In the name of God,

We, the people of India,

having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic, and to secure to all her citizens

Justice, social, economic and political;

Liberty of thought, expression, belief, faith and worship;

Equality of status and of opportunity; and to promote among them all;

Fraternity, assuring the dignity of the individual and the unity of the nation;

in our Constituent Assembly do hereby adopt, enact and give to ourselves this Constitution.'

[ईश्वर का नाम लेकर हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।]"

***श्री एच.वी. कामतः** मैं मत-विभाजन की मांग करता हूं।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** इस प्रश्न पर मैं मत-विभाजन चाहता हूं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** इस प्रश्न पर मैं भी मत-विभाजन चाहता हूं।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** मैं इसलिए मत-विभाजन चाहता हूं कि मैं समझता हूं कि हम उस देश और उसकी जनता के साथ अन्याय कर रहे हैं और मैं यह जानना चाहता हूं। कि कौन इस विषय पर क्या कहता है।

सभा में हाथ उठा कर मत-विभाजन हुआ।

पक्ष में: 41

विपक्ष में: 68

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, हमारे इतिहास में आज का दिन कलंक का दिन है। ईश्वर भारत की रक्षा करे।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** श्रीमान, यह बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है और मैं आपसे फिर निवेदन करता हूं कि हम इस विषय पर मत-विभाजन करें।

***अध्यक्षः** मैंने अभी मत-विभाजन किया था।

***श्री ए. थानू पिल्लेः** श्रीमान, श्री कामत को वह कथन नहीं करना चाहिये और उन्हें उसे वापस कर लेना चाहिये।

***अध्यक्षः** पंडित गोविन्द मालवीय को मैं यह कहूंगा। हमारे नियमों में इस प्रकार की व्यवस्था है:

"जिस विषय के लिये सभा का विनिश्चय अपेक्षित हो वह विषय सभापति द्वारा मतदान के लिए रखे गये प्रश्न के द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा।

उन सब विषयों में जिनके लिये सभा के सदस्यों द्वारा विनिश्चय किया जाना अपेक्षित है सभापति मत बराबर होने की दशा में ही मत का प्रयोग करेगा।

मत शब्द द्वारा या मत-विभाजन द्वारा लिया जायेगा और यदि कोई सदस्य चाहता है तो मत-विभाजन द्वारा लिया जायेगा।"

यहां मैंने शब्द द्वारा मत लिया है और उसके पश्चात् इसकी अपेक्षा कि सदस्यों से अपने-अपने स्थानों में खड़े होने के लिए कहा जाये मैंने उनसे अपने-अपने हाथ उठाने के लिए कह कर मत-विभाजन की विशिष्ट रीति को अपनाया है। मैं समझता हूं कि नियमों में जो कुछ अपेक्षित है उसकी मैंने सारवत् रूप में पूर्ति की है।

***श्री महावीर त्यागीः** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान, अध्यक्ष एक स्थायी आदेश द्वारा यह निर्धारित कर चुके हैं कि मत-विभाजन की क्या रीति होगी। मेरे पास वह आदेश नहीं है चूंकि वह पृथक् रूप में निकाला गया थ। उस स्थायी आदेश में यह कहा गया है कि जब कोई सदस्य मत-विभाजन की मांग करता है तो अध्यक्ष सब दरवाजों को बन्द करा देंगे और कहेंगे "समर्थक दाईं ओर को और

विरोधी बाईं ओर को।" और इसके पश्चात् सदस्य अपने-अपने पक्ष में पंक्ति में खड़े होंगे। यह स्थायी आदेश इसी सत्र में निकाला गया था और उस स्थायी आदेश में जो अपेक्षित है उसकी पूर्ति नहीं हुई।

***अध्यक्षः** आपने उस नियम को ठीक से नहीं पढ़ा। नियम 30 की कंडिका (4) में कहा गया है "मत-विभाजन द्वारा मत लेने की रीति को सभापति विनिश्चित करेगा।" मैंने इसका पालन किया है।

***श्री महावीर त्यागीः** मेरा प्रश्न यह है कि एक बार स्थायी आदेश निकाल देने पर वह जबानी नहीं बदला जा सकता।

***अध्यक्षः** क्या यह सुझाव दिया जा रहा है कि नियम 30 की कंडिका (4) का उल्लंघन हुआ है?

***श्री एच. वी. कामतः** आपकी कार्यालय की गश्ती चिट्ठी में उसको विस्तृत तथा स्पष्ट कर दिया गया है।

***अध्यक्षः** उसके लिए कोई स्पष्टीकरण अपेक्षित नहीं है। वह बहुत ही स्पष्ट है। मत-विभाजन द्वारा मत लेने की रीति को सभापति विनिश्चित करेगा।

"यदि सभापति का आसन ग्रहण करने वाले व्यक्ति की सम्मति में मत-विभाजन की मांग व्यर्थ की गई है (अर्थात्, जब कि किसी विशिष्ट विषय में उसको यह समाधान हो जाये कि उसकी घोषणा के समर्थन में तथा आपत्तिकर्त्ता के विरुद्ध स्पष्ट बहुमत है) तो वह मत-विभाजन लाबियों में मतों को लेखबद्ध करने की साधारण रीति का पालन नहीं करेगा वरन् सदस्यों से यह कह कर कि जो 'पक्ष में' हैं और जो 'विपक्ष में' हैं वे क्रमशः अपने-अपने स्थानों में खड़े हो जायें, सभा का मत प्राप्त करेगा और उसके आधार पर जैसा वह ठीक समझे या तो तुरन्त ही सभा के विनिश्चय की घोषणा कर देगा या मत-विभाजन करने का आदेश देगा। जबकि सभापति सभा के विनिश्चय की घोषणा उसी समय कर देगा तो साधारणतया मतदाताओं के नाम अंकित नहीं किये जायेंगे।"

***एक माननीय सदस्यः** "मत-विभाजन" शब्द का पदावली के अनुसार एक विशिष्ट अर्थ है। मत-विभाजन की मांग का अर्थ है कि नाम अंकित किये जायेंगे। उसका अर्थ केवल हाथों को गिन लेना ही नहीं है। विधान सभा में इसी प्रथा का पालन किया जाता है।

***अध्यक्षः** किसी अन्य स्थान की प्रक्रिया से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारी प्रक्रिया हमारे अपने नियमों द्वारा शासित है और मैंने मत-विभाजन को उसी रूप में लिया है जो आदेश द्वारा अभिप्रेत है। यह मेरा अंतिम नियम-निर्देश है।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** नियमों के बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं है। यह अध्यक्ष का कार्य है कि वह उस रीति को विनिश्चित करे जिसके अनुसार सभा के विचार प्राप्त किये जा सकें। जब मैंने आपसे यह प्रार्थना की थी उस समय मेरे मन में ऐसी कोई शंका नहीं थी। परन्तु चूंकि यह एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय है जिसके प्रति हममें से बहुतों की धारणायें बड़ी प्रबल हैं, मैं आपके विनिश्चय पर छोड़ता हूं कि इस विषय में कुछ और किया जाये या नहीं। यदि आपको यह समाधान हो गया है कि जो कुछ कहा गया है वह पर्याप्त नहीं है तो हमारी प्रार्थना और भावनाओं पर ध्यान देते हुए यदि आप मत-विभाजन के लिए किसी अन्य रीति को उचित समझें तो हम बड़े कृतज्ञ होंगे।

***अध्यक्षः** मुझे पूर्ण समाधान हो गया है कि मैंने सभा के सही विचार जान लिये हैं, और मेरा सम्बन्ध केवल इसी बात से है। अब हम अगले मद को लेंगे।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** इस प्रश्न पर मेरे नाम से एक संशोधन था। आपने यह विनिश्चय किया है कि केवल श्री कामत का संशोधन पेश किया जायेगा, पर मेरा संशोधन बिलकुल अलग है। उसमें ईश्वर का नाम नहीं है और हो सकता है कि वह किसी भी व्यक्ति को बुरा न लगे।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों को उस रूप में ले रहा हूं जैसेकि वे कार्यावली में हैं। जब हम आपके संशोधन पर आयेंगे उस समय मैं यह देखूंगा कि उसका क्या किया जाये। प्रो. शाह यहां पर नहीं हैं अतः उनका संशोधन पेश नहीं किया जाता है। इसके पश्चात्, श्री सक्सेना का संशोधन है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि प्रस्तावना के स्थान में निम्नलिखित प्रस्तावना रखी जाये:

'In the name of God the Almighty, under whose inspiration and guidance, the Father of our Nation, Mahatma Gandhi, led the Nation from slavery into Freedom, by unique adherence to the eternal principles of Satya and Ahimsa, and who sustained the millions of our countrymen and the martyrs of the Nation in their heroic and unremitting struggle to regain the Complete Independence of our Motherland,

We, the people of Bharat, having solemnly resolved to constitute Bharat into a Sovereign, Independent; Democratic, Socialist Republic, and to secure to all its citizens:

Justice, social, economic and political,

LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship, EQUALITY of status and of opportunity; and to promote among them all

FRATERNITY assuring the dignity and freedom of the individual and the unity of the country and the nation;

In our Constituent Assembly this.....day of Vikrami Samvat 2006 (the 26th day of January, 1950 A.D.) do hereby enact, adopt and give to ourselves this Constitution.'

[सर्वशक्तिमान् ईश्वर के नाम पर जिसकी प्रेरणा तथा मार्ग प्रदर्शन के अधीन हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के शाश्वत् सिद्धान्तों पर अटल रहकर राष्ट्र को दासत्व से मुक्त कर स्वतन्त्रता प्राप्त कराने का मार्ग दिखाया और जिन्होंने हमारे करोड़ों देशवासियों तथा राष्ट्र पर प्राणोत्सर्ग करने वाले व्यक्तियों को अपनी मातृभूमि की खोई हुई पूर्ण स्वाधीनता को पुनः प्राप्त करने के लिए उनके वीरोचित तथा निरन्तर होने वाले संघर्ष में, सहारा दिया,

हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, स्वाधीन, लोकतंत्रात्मक, समाजवादी गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और स्वतन्त्रता और देश तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज मिति.....संवत् 2006 विक्रमी (26 जनवरी, 1950 ई.) को एतद्द्वारा इस संविधान को अधिनियमित, अंगीकृत और आत्मार्पित करते हैं।]"

अपने संविधान के आरम्भ में ईश्वर के पवित्र नाम और राष्ट्रपिता के पुरःस्थापन करने के सम्बन्ध में अपने कुछ मित्रों की प्रवृत्ति देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ है। जबकि उनको अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है तो अन्य व्यक्तियों को भी अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है। आत्मज्ञान के क्षेत्र में अपने अन्वेषणों पर इस देश को सदैव गर्व रहा है और अब हम अपने संविधान के आरम्भ में ईश्वर का नाम रखने तक में डरते हैं। मैं उन लोगों में से हूं जिनका यह विचार है कि इस संविधान को तैयार करके हमने एक महान् कृति की रचना

[प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना]

की है। सम्भव है इसमें कुछ दोष हों। पर मुझे यह विश्वास है कि हमने कुछ बहुत बड़ी बातें निश्चित की हैं। यही उचित और ठीक है कि अपने संविधान के आरम्भ में ईश्वर और राष्ट्रपिता के नाम रखे जायें। मुझे दुख है कि कुछ लोगों का यह विचार हुआ कि हम इस बात को उन पर लाद रहे हैं। संसार में ऐसे और संविधान हैं, उदाहरणार्थ आयरलैंड का संविधान जिसके आरम्भ में, प्रस्तावना में ईश्वर का उल्लेख किया गया है और जिन वीरों ने प्राणोत्सर्ग पर स्वतन्त्रता प्राप्त की उनके प्रति श्रद्धांजलि भेंट की गई है। अतः मुझे यह देखकर बड़ा दुख हुआ कि ईश्वर के नाम और राष्ट्रपिता के उल्लेख मात्र से कुछ सदस्यों ने यह समझा कि किसी पर कुछ लादने का प्रयास किया जा रहा है। यदि उनके इस प्रकार के विचार हैं तो इन विचारों के रखने की उन्हें स्वतन्त्रता है, पर जिन लोगों के इस विषय में बड़े दृढ़ विचार हैं उनको ईश्वर का नाम हटाने के लिए क्यों बाध्य किया जाये? अपने मित्रों की इस प्रवृत्ति पर मुझे बड़ा खेद है। मैं आशा करता हूं कि वे इस विषय पर फिर विचार करेंगे। कदाचित् यह संविधान हमारे देश का एक नये रूप में राष्ट्रपिता द्वारा निश्चित आदर्शों के आधार पर निर्माण करेगा। अतः यह उचित और ठीक है कि संविधान के आरम्भ में इनके नाम रख कर ईश्वर के समक्ष हम अपनी विनम्रता प्रकट करें और राष्ट्रपिता के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करें।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रो. शिब्बन-लाल सक्सेना द्वारा पेश किये गये संशोधन का विरोध करने के लिए मैं खड़ा होता हूं। मैं यह नहीं चाहता हूं कि महात्मा गांधी का नाम इस संविधान में लाया जाये क्योंकि यह संविधान गांधी जी के सिद्धांतों के आधार पर नहीं है। इस संविधान की आधारशिला अमरीका के उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय हैं। यह संविधान भारत शासन अधिनियम, 1935 की पुनरावृत्ति है। यदि हमारा संविधान गांधी जी के सिद्धांतों के आधार पर होता तो इसका समर्थन करने में सर्वप्रथम व्यक्ति मैं होता। मैं नहीं चाहता हूं कि महात्मा गांधी का नाम इस रद्दी संविधान के साथ घसीटा जाये।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

***आचार्य जे.बी. कृपलानी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): क्या इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय से मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि वे इसे वापस ले लें? इस संशोधन पर मत देना हमें शोभा नहीं देता है। महात्मा गांधी के नाम का प्रयोग हमें बहुत बचा-बचा कर करना चाहिये। मेरे मित्र शिब्बनलाल जानते हैं कि गांधी जी के प्रति प्रेम और सम्मान में मैं किसी से पीछे नहीं हूं। मैं समझता हूं कि उस सम्मान के प्रति यह बात सुसंगत होगी कि हम उनका नाम इस संविधान में न लायें जो किसी समय भी बदला या पुनर्निर्मित किया जा सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** चूंकि आचार्य कृपलानी ने अपील की है, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

(संशोधन संख्या 4 पेश नहीं किया गया।)

***पंडित गोविन्द मालवीयः** जिस संशोधन की मैंने सूचना दी थी वह इस प्रकार थाः

"कि प्रस्तावना में 'We, the people of India' (हम, भारत के लोग) शब्दों के स्थान में निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

'By the Grace of Parameshwar, The Supreme Being, Lord of the Universe (called by different names by different peoples of the world),

From Whom emanates all that is good and wise, and

Who is the Prime Source of all Authority,

We the people of Bharata (India),

Humbly acknowledging our devotion to Him;

And gratefully remembering our great leader Mahatma Mohandas Karamchand Gandhi and the innumerable sons and daughters of this land who have laboured, struggled and suffered for our freedom, And.'

[परमेश्वर की कृपा से, जो पुरुषोतम तथा ब्रह्मांड का स्वामी है (जो संसार के भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है),

जिससे समस्त सत् और ज्ञान प्रस्फुटित होता है और जो समस्त प्राधिकार का मूल स्रोत है,

हम, भारत (इंडिया) के लोग,

उसके प्रति अपनी भक्ति विनयपूर्वक स्वीकार करते हुये,

और अपने महान् नेता महात्मा गांधी और इस देश के उन असंख्य पुत्र पुत्रियों का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए घोर परिश्रम तथा संघर्ष किया और कष्ट सहे,

और]

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं एक औचित्य प्रश्न करने के लिए खड़ा होता हूं। इस संशोधन में दो विशेष बातें हैं। इसमें ईश्वर का नाम रखा गया है और महात्मा गांधी का नाम लाया गया है। इन दोनों बातों का सभा विनिश्चय कर चुकी है। एक बात पर जो कुछ वाद-विवाद भी हुआ था और मत भी लिया गया था; दूसरी बात को माननीय सज्जन ने वापस ले लिया। अतः मैं इस बात का आग्रह करता हूं कि इस संशोधन को व्यवस्था के विरुद्ध ठहरा दिया जाये क्योंकि इस संशोधन की मुख्य बातों पर सभा पहले ही विनिश्चय कर चुकी है।

***पंडित गोविन्द मालवीयः** जिन शब्दों का मैंने प्रयोग किया था यदि उन शब्दों पर ध्यान दिया जाता तो यह स्पष्ट विदित हो जाता कि मैंने यह कहा था कि मैं उस संशोधन को पढ़ रहा हूं जिसको मैंने पेश करना चाहा था। मैंने कहा

[पंडित गोविन्द मालवीय]

था कि "वह इस प्रकार था।" यदि सभा मुझे एक क्षण का अवसर देती तो मैं यह कहने वाला था श्रीमान, कि मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी, पर इस समय जो वाद-विवाद हुआ है उसको ध्यान में रखते हुए जो कुछ मैं पेश करना चाहता था वह यह है:

महात्मा गांधी और अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले अन्तिम अंश को मैं निकाल दूंगा और आरम्भ में के परमेश्वर शब्द को भी निकाल दूंगा। जो विचार यहां प्रकट किये गये हैं उनके अनुसार मैं यह कहने वाला था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वे शब्द निकाल दिये गये।

***पंडित गोविन्द मालवीय:** इसके बाद संशोधन इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"By the Grace of the Supreme Being, Lord of the Universe, called by different names...."

***मौलाना हसरत मुहानी:** क्या वे कोई नया संशोधन रख रहे हैं? मैं एक औचित्य प्रश्न करने के लिए खड़ा होता हूं। वे कोई नया संशोधन प्रस्थापित कर रहे हैं।

***पंडित गोविन्द मालवीय:** इससे उस अयुक्तियुक्त बात का भी समाधान हो जायेगा जो यहां व्यक्त की गई थी। न तो हम ईश्वर का ईश्वर के रूप और न किसी व्यक्ति के विशिष्ट ईश्वर के रूप में उल्लेख करेंगे क्योंकि मेरे संशोधन में यह कहा गया है "संसार के भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं" और इस प्रकार हम अपनी प्रस्तावना में एक ऐसी बात रख सकेंगे जो अनादि काल से इस देश के लोगों के विचार और विश्वास का, परम्परा का, सभ्यता का तथा सम्पूर्ण जीवन के इतिहास का अति विशिष्ट तथा स्थायी लक्षण रही है। श्रीमान मैं निवेदन करता हूं कि हम यहां भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के रूप में आये हुये हैं। ईमानदारी का यह तकाजा है कि हम यहां उनके विचारों का प्रतिपादन करें। इस प्रस्तावना में, श्रीमान.....

***अध्यक्ष:** मैं औचित्य प्रश्न का निर्णय करूंगा। पहला प्रश्न यह है कि जो संशोधन अस्वीकार किया जा चुका है क्या यह उसके अंतर्गत है या नहीं। मैं समझता हूं कि यह उसके अंतर्गत है।

***पंडित गोविन्द मालवीय:** अपमार्जनों के बाद भी, यदि आपका ऐसा विचार है तो मैं अपना स्थान ग्रहण करूं।

***अध्यक्ष:** परमेश्वर शब्द को केवल हटा कर ही आप उस संशोधन के क्षेत्र से बाहर नहीं निकल जाते हैं जिसे अस्वीकार किया जा चुका है।

***पंडित गोविन्द मालवीय:** मैंने समझा था कि हमारे कुछ मित्रों की आपत्ति 'ईश्वर' शब्द पर थी। श्रीमान्, मैं आपके नियम निर्देश का पालन करूंगा।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं अपने संशोधन संख्या 11 को पेश करना नहीं चाहता हूं, पर मैं डॉ. अम्बेडकर से यह पूछना चाहता हूं कि उन्होंने जो वचन दिये थे क्या वे उनका निर्वाह करेंगे।

***अध्यक्षः** यह एक अन्य विषय है।

***श्री महावीर त्यागीः** उन्होंने मुझ से कहा था कि जब प्रस्तावना पर वाद-विवाद हो उस समय मैं उनको याद दिला दूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यदि वचन-भंग किया जाता है तो मेरे मित्र को न्यायालय की शरण लेनी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागीः** यह वचन-भंग करने का प्रश्न नहीं है। सम्पूर्ण प्रभुता निहित करने के बारे में जो कुछ डॉ. अम्बेडकर ने कहा था उस कार्रवाई के अनुसार मुझे आश्वासन दिया गया था। मैंने एक संशोधन पेश किया था और उन्होंने यह उत्तर दिया था कि उसका अर्थ "जनता में निहित" है, पर इस बात को इन शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया गया था, मैंने यह आग्रह किया था कि इसको सुनिश्चित कर देना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर ने कहा "आपको इसमें संदेह है कि वह जनता में निहित है। मैं अपने मित्र को यह बता दूं कि मुझे कोई भी आपत्ति नहीं होगी।"

***अध्यक्षः** क्या कोई और संशोधन है?

***श्री महावीर त्यागीः** यह काम तो मसौदा समिति का है।

***श्री सतीश चन्द्र** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): सूची 21 में श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी और मेरे दोनों के नाम से एक संशोधन 452 इसी प्रकार का है।

***श्री महावीर त्यागीः** यदि आप मुझे अनुज्ञा दें तो मैं यह कहूंगा कि मसौदा समिति इस पर विचार कर लेगी।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि एक संशोधन इस प्रकार का है। जब हम उस पर आयेंगे तो हमें उसे लेना पड़ेगा। संशोधन संख्या 14 नाम के सम्बन्ध में कई संशोधन हैं। वे संशोधन अब पैदा ही नहीं होते।

क्या कोई सदस्य, जिसने प्रथम अंक में छपे हुये संशोधनों की सूचना दी है, अपना संशोधन पेश करना चाहता है?

***माननीय सदस्यः** जी नहीं।

***अध्यक्षः** मैं अनुपूरक सूची को लूंगा। मुद्रित अनुपूरक सूची में संशोधन हैं और मैं यह समझता हूं कि कोई भी सदस्य इन संशोधनों को भी पेश करना नहीं चाहते हैं।

***माननीय सदस्यः** जी नहीं।

(इस समय श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी बोलने के लिए खड़ी हुईं।)

***अध्यक्षः** आपका संशोधन तो अभी के संशोधनों में से है, मैं तो इस समय पुरानी मुद्रित सूची का विचार कर रहा हूं।

इसके बाद हम संशोधन संख्या 452 पर आते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इसके पहले सूची 13 द्वितीय पृष्ठ पर संशोधन संख्या 313 है।

***अध्यक्षः** हां है, आप उसे पेश कर सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम से आठ संशोधन हैं, मैं संशोधन संख्या 313, 314, 316, 317, 318, 319, 320 और 323 का निर्देश करता हूं। श्रीमान् मैं केवल एक संशोधन पेश करना चाहूंगा।

मैं संशोधन संख्या 313 का निर्देश करता हूं।

अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक-1) के संशोधन संख्या 1 के स्थान में निम्नलिखित संशोधन पेश किया जाये:

'कि प्रस्तावना के स्थान में निम्नलिखित प्रस्तावना रखी जाये:–

'WE THE PEOPLE OF INDIA, having resolved to constitute India into a SECULAR CO-OPERATIVE COMMONWEALTH to establish SOCIALIST ORDER and to secure to all its citizens.

1. An adequate means of LIVELIHOOD
2. FREE AND COMPULSORY EDUCATION
3. FREE MEDICAL AID
4. COMPULSORY MILITARY TRAINING

do hereby ordain and establish this Constitution for India.' "

[हम, भारत के लोग, भारत को एक असाम्प्रदायिक सहयोगी राष्ट्र बनाने के लिए, समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को

1. जीविका के पर्याप्त साधन
2. नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा
3. चिकित्सा सम्बन्धी नि:शुल्क सहायता
4. अनिवार्य सैनिक शिक्षा प्राप्त कराने के लिए

इस संविधान को एतद्द्वारा विनियमित तथा स्थापित करते हैं]

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** ऊंट और मोटर साइकिल का क्या हुआ?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इनके सम्बन्ध का सुझाव देना आपका काम है। श्रीमान्, 'असाम्प्रदायिक' शब्द को हमारे संविधान में स्थान नहीं मिला है। यह वह शब्द है जिस पर हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने सबसे अधिक जोर दिया है। मैं यह निवेदन करता हूं कि इस शब्द को अपनी प्रस्तावना में रखना चाहिये क्योंकि यह अल्पसंख्यक वर्गों की मानसिक तथा नैतिक अवस्था में मृदुलता उत्पन्न करेगा और

यह गुंडागीरी की उस भावना में रुकावट डालेगा जिसका राजनीति में बोलबाला है। मैंने एक और शब्द पर जोर दिया है। मैं 'समाजवादी' शब्द की ओर संकेत कर रहा हूं। मेरा विश्वास है कि भारत का भविष्य समाजवाद में ही है। मैं समाजवादी व्यवस्था में विश्वास करता हूं। जब मैं यह कहता हूं कि मेरा विश्वास समाजवादी व्यवस्था में है तो मेरा आशय यह नहीं है कि मैं इसके इतिहास के मार्क्सवादी निर्वचन को स्वीकार करता हूं। मैं न तो वर्ग युद्ध में विश्वास करता हूं और न भौतिकवादी दर्शन में जिनका समाजवादी क्षेत्रों में बड़ा व्यापक प्रचार है। समाजवाद से मेरा अभिप्राय एक समतल सामाजिक व्यवस्था से है। आय-समता के बिना अवसर-समता केवल कोरा नारा ही है। मेरा विश्वास है कि भारत में हमें एक नये प्रकार के समाजवाद का विकास करना है जो इस देश की परम्परा और इतिहास के अनुकूल हो। भौतिकवाद का सिद्धान्त एक सुदृढ़ सिद्धांत है। मैं समझता हूं कि हम भारत के लोगों को दार्शनिक बातों में जर्मनी से कोई शिक्षा नहीं लेनी है।

इसके बाद मैं कुछ और उन शब्दों को लेता हूं जो प्रस्तावना में रखे गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विचार-अस्पष्ट हैं। मेरी यह धारणा है कि 'स्वातन्त्रय' और 'समता' शब्द साथ-साथ नहीं आते हैं। ये बेमेल शब्द हैं। वे एक दूसरे के शत्रु हैं। एक की हानि ही दूसरे के लाभ का कारण हो सकती है। आपकी दयापूर्ण अनुज्ञा से मैं एक पुस्तिका से एक छोटा-सा कुछ पंक्तियों का अंश उद्धृत करूंगा।

मूरियल जैगर की "स्वातंत्र्य और समता" (Liberty versus Equality) नामक पुस्तक का मैं उल्लेख कर रहा हूं।

"यह बात अब अधिकाधिक व्यापक रूप में स्वीकार होती चली जा रही है कि सम्पत्ति पर स्वामित्व उन स्वतन्त्रताओं में से है जो अन्य व्यक्तियों को स्वतन्त्रता का खंडन करता है और इस कारण इसे मिटा देना चाहिये या बहुत अधिक निर्बन्धित कर देना चाहिये। और इस स्थल पर आकर यह कहा जा सकता है कि "स्वातन्त्र्य का यह आत्मविरोध" बड़ा तीव्र रूप धारण कर लेता है। यदि ऐसी प्रत्येक स्वतन्त्रता को छीन लिया जाता है जो अपने साथियों को हानि पहुंचाती है या पहुंचा सकती है तब तो स्वतन्त्रता नाम की कोई वस्तु ही न रहेगी। निजी सम्पत्ति के मिटाने या उसको निर्बन्धित करने में एक प्रकार के लोक-नियंत्रण का भाव निहित है। लोक-नियंत्रण से अभिप्रेत है सार्वजनिक योजना, क्योंकि सम्पत्ति पर से निजी अधिकार छीनने का पूर्ण उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण ही है इस निरर्थक सिद्धान्त की खूब धज्जियां उड़ चुकी हैं; पर इसके विवरण और उस प्रभाव में हमारी रुचि हो जाती है जो इस निरर्थक सिद्धान्त के प्रयोग करने से हमारे दिन प्रतिदिन, वर्ष प्रतिवर्ष और पीढ़ी दर पीढ़ी के जीवन पर पड़ेगा।

"सार्वजनिक योजना का अर्थ है कि उद्यम, श्रम और वितरण को कठोरतापूर्वक विनियमित कर देना चाहिये। अत: इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति को अपनी उप-जीविका पसन्द करने के कम अवसर होने चाहियें क्योंकि सम्भवत: योजना जब तक क्रियान्वित नहीं की जा सकती तब तक कि जहां आवश्यकता है वहां, बिना इस बात के विचारे कि पर्याप्त संख्या में लोग उस प्रकार के कार्य को करना चाहते हैं या नहीं, उस वृत्ति में श्रमिकों को लगाया जाये।"

श्रीमान्, कुछ चन्द मिनटों के लिए आप मुझ पर अनुग्रह करेंगे।

***अध्यक्ष:** क्या आप पूरी पुस्तक पढ़ना चाहते हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** जी नहीं।

***अध्यक्ष:** मैंने समझा था कि आपने यह कहा था कि मैं एक वाक्य ही पढ़ूंगा, पर आपने तो कम से कम एक पूरी की पूरी कंडिका पढ़ डाली।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैंने कुछ पंक्तियां ही पढ़ी है। मैं 12 पंक्तियों की एक कंडिका समाप्त करना चाहता था।

मैं अभी एक और बात पर जोर दूंगा। मेरी यह धारणा है कि स्वातन्त्र्य और समता केवल असंगत ही नहीं है, वरन् उनको केवल एक वर्गविहीन समाज में ही संगत बनाया जा सकता है और इस सम्बन्ध में मैं एक और कंडिका का उल्लेख करूंगा और आपकी अनुज्ञा से मैं कुछ पंक्तियां पढ़ कर सुनाऊंगा:

> "अंतिम लक्ष्य के लिए मार्क्सवादी, जो काल्पनिक साम्यवादियों के प्रति बहुत उग्र हैं, सदैव कदाचित् करुणाजनक रूप से अस्पष्ट रहे हैं। पर कोई भी व्यक्ति यह मालूम कर सकता है कि उन्होंने एक ऐसे राज्य की पूर्वकल्पना कर ली थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सार्वजनिक कल्याण के लिए हर्षपूर्वक कार्य करेगा, यदि वह कोई वस्तु चाहता है तो सार्वजनिक भंडार से वह स्वयं प्राप्त कर सकता है और वह भंडार इतना परिपूर्ण होगा कि किसी स्पर्धा या स्वार्थ-संघर्ष का संकट नहीं होगा। उनका विचार है कि जिस समाज पर बल का प्रयोग नहीं है और जो दासता के अधीन नहीं है उसका इसी रूप में स्वाभाविक विकास होगा और एक वर्गहीन समाज में शुभ सामाजिक आचरणों की स्वयं वृद्धि होती रहेगी और इस प्रकार राज्य के विशेष तंत्र शनै:शनै: व्यर्थ होते जायेंगे इससे यह प्रकट होता है कि अंतिम साम्यवादी विचार पूर्णसमता से संयुक्त पूर्ण स्वातन्त्र्य है।"

राष्ट्र के समक्ष मैं असम्भव आदर्श नहीं रखना चाहता हूं। श्रीमान, केवल वर्ग-हीन समाज में ही हम इन दो स्वातन्त्र्य और समता के विचारों में सन्धि कर सकते हैं।

मैंने यह सुझाव दिया है कि प्रस्तावना में इन आदर्शों के रखने के स्थान में हमें अपने समक्ष कुछ व्यावहारिक आदर्श रखने चाहिये। यदि हम जीविका के पर्याप्त साधन, नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी नि:शुल्क सहायता और अनिवार्य सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करने में सफल हुये तो मैं समझूंगा कि हमारे प्रयत्न सार्थक हुये हैं। राष्ट्र के समक्ष मैं ऐसे असम्भव आदर्श नहीं रखना चाहता हूं जिनके सम्बन्ध में हमें पूर्ण विश्वास है कि हम उनको न अपने जीवन काल में और न अपने नाती पोतों के जीवन काल में प्राप्त कर सकेंगे। समाप्त करने से पूर्व मैं एक और प्रश्न का उल्लेख करना चाहूंगा। इस प्रस्तावना में मैं "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता" शब्दों पर आपत्ति करता हूं। मेरी यह धारणा है कि आस्टिन के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के समूचे सिद्धान्त का खंडन हो चुका हैं किसी विधि सम्बन्धी विचारधारा का वास्तविक तथ्यों से कुछ न कुछ सम्बन्ध होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो उस विचारधारा का कुछ भी मूल्य नहीं है।

श्रीमान यह कहना ठीक नहीं है कि नेपाल की सरकार सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है। उसे अधिकार है; वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है और वह संयुक्त राज्य अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर सकती है। सोवियत रूस की सरकार को रूस के साम्यवादी पक्ष को खत्म करने की स्वतन्त्रता है। हम जानते हैं, कि दोनों आन्तरिक और बाह्य विषयों में कई बातों के कारण राज्य को एक घेरे में डाल दिया जाता है। यदि नेपाल सरकार अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करती है या सोवियत रूस साम्यवादी पक्ष को खत्म करने का प्रयत्न करता है तो हम जानते हैं कि परिणाम क्या होगा। इसलिए मेरी यह धारणा है कि हमें "सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न" शब्द पर अनुचित रूप में जोर नहीं देना चाहिये। मेरा यह विचार है कि यह आदर्श न तो आवश्यक है और न वांछनीय है क्योंकि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता युद्ध की ओर ले जाती है वह साम्राज्यवाद का कारण बनती है (*तालियां तथा बाधायें*)।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य को संकेत मिल गया होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** आपसे रक्षा पाने का मुझे अधिकार है। इस तरह से मुझे नहीं दबाया जा सकता है। मैं अपना भाषण देता रहूंगा और सदस्य अपने हाथ पीटते रहें, मैं भाषण देता रहूंगा और जब तक आप भाषण समाप्त करने को नहीं कहेंगे मैं बोलता रहूंगा। श्रीमान् अपना विरोध प्रकट किये बिना.....

***श्री महावीर त्यागी:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान् मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्यों के अधिकारों के संरक्षण होने के नाते आप इस बात का ध्यान रखेंगे कि सदस्य को इस प्रकार शोर मचा कर चुप नहीं किया जाये।

***अध्यक्ष:** शोर मचा कर चुप करने का प्रयास नहीं है। वे ताली बजा कर वक्ता को निरुत्साहित करना चाहते है। अच्छा हो कि माननीय सदस्य अपना भाषण समाप्त कर दें।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, अब मैं इस विषय के केवल एक पहलू को लूंगा। 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' शब्द इस प्रस्तावना में हैं। मैं भी मोटा बेशरम हूं। मैं अपना स्थान कभी इस प्रकार ग्रहण नहीं करूंगा। अपनी बातें कह कर ही मैं अपना स्थान ग्रहण करूंगा। मैं समझता हूं कि यह 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' शब्द का प्रयोग सर्वथा गलत है। राज्य का निर्माण व्यक्तियों द्वारा होता है। क्या किसी प्रकार से भी व्यक्ति सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है? यदि व्यक्ति सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न नहीं है तो वह राज्य जिसका निर्माण व्यक्तियों से होता है किस प्रकार सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हो सकता है। यह एक प्रसिद्ध तथ्य है कि मनुष्य की अपनी कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं होती और वह वंश तथा वातावरण सम्बंधी बातों के घेरे में पड़ जाता है। दोनों मानसिक तथा शारीरिक रूप में इस विश्व में उसका स्थान नगण्य सा है। जबकि मनुष्य इतना नगण्य है, जबकि संसार में मनुष्य की सत्ता कुछ भी नहीं है तो राज्य जिसका निर्माण व्यक्तियों से होता है वह किस प्रकार सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हो सकता है? अत: श्रीमान, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के इस विचार के मैं विरुद्ध हूं।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

हम सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हैं। हम केवल वहीं तक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हैं जहां तक कि किसी आधुनिक राज्य का सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न होना सम्भव है। हम आस्टिन की उस सीमा तक पहुंचने की आकांक्षा नहीं करते हैं जो जैसाकि मैं कह चुका हूं एक गलत विचारधारा पर आश्रित हैं और भ्रमात्मक हैं। 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' शब्दों के निकाल देने से उस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के प्रकार्यों के प्रयोग में हमें कोई बाधा नहीं होगी जो भारत सरकार में निहित कर दी गई है। इससे सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता में लेशमात्र की कमी नहीं आती है। पर इन 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' शब्दों के रहने देने से हम राष्ट्र के समक्ष एक गलत आदर्श, एक भ्रमात्मक आदर्श रख रहे हैं। इस कारण मैं इस प्रस्तावना के विरुद्ध हूं। हम कुछ व्यावहारिक आदर्श रखें जिनको हम अपने या अपनी संतानों के जीवन काल में प्राप्त कर सकें।

***अध्यक्ष:** क्या कोई व्यक्ति इस संशोधन पर कुछ कहना चाहता है? मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 1) के संशोधन संख्या 1 के स्थान में निम्नलिखित संशोधन पेश किया जाये:

कि प्रस्तावना के स्थान में निम्नलिखित प्रस्तावना रखी जाये:

"WE THE PEOPLE OF INDIA, having resolved to constitute India into a SECULAR CO-OPERATIVE COMMONWEALTH to establish SOCIALIST ORDER and to secure to all its citizens—

1. An adequate means of LIVELIHOOD
2. FREE AND COMPULSORY EDUCATION
3. FREE MEDICAL AID
4. COMPULSORY MILITARY TRAINING

do hereby ordain and establish this Constitution for India."

[हम, भारत के लोग, भारत को एक असाम्प्रदायिक सहयोगी राष्ट्र बनाने के लिए, समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को—

1. जीविका के पर्याप्त साधन
2. नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा
3. चिकित्सा सम्बन्धी नि:शुल्क सहायता
4. अनिवार्य सैनिक शिक्षा

प्राप्त कराने के लिए

इस संविधान को एतद्द्वारा विनियमित तथा स्थापित करते हैं]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम उस संशोधन को लेंगे जिसकी सूचना श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने दी है, संशोधन संख्या 452 ।

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि मैंने अपना संशोधन संख्या 2 पेश नहीं किया है? यह मेरे संशोधन के सम्बन्ध में है। अत: वह पेश नहीं हो सकता है।

श्री महावीर त्यागी: एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं.....

***अध्यक्ष:** औचित्य प्रश्न कर दिया गया है। मैं उस पर विचार कर रहा हूं। मुझे यह देख लेने दीजिये कि उन्होंने क्या पेश किया है और क्या पेश नहीं किया है।

***श्री महावीर त्यागी:** मेरे माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उठाये गये औचित्य प्रश्न पर मैं निवेदन करना चाहता हूं कि पूर्व अवसरों पर सभा में ऐसे संशोधनों को पेश होने दिया गया है। समय निकल जाने के कारण जब संशोधन भेजने का अवसर नहीं रह जाता था तो हम में से बहुतों ने अपने संशोधनों को पहले संशोधनों से जोड़ कर या उनसे सम्बन्ध स्थापित कर उनको रखने का अवसर प्राप्त किया था। यदि वे सदस्य अपने संशोधन पेश नहीं करते थे तो यह उन अन्य सदस्यों का दोष नहीं है जो अपने विचार और अपने संशोधन लेकर आये हैं। क्योंकि अपने संशोधनों को समयान्तर्गत सुसंगत बनाने के लिए अन्य कोई चारा नहीं है सिवा इसके कि वे अपने संशोधनों को उन पहले संशोधनों से सम्बद्ध करें जिनकी सूचना आ चुकी है। अत: श्रीमान्, मैं निवेदन करूंगा कि वाद-विवाद के इस अंतिम काल में आप कृपया कोई ऐसा नियम निर्देश न करें जिससे इस संशोधन के पेश होने में बाधा पड़ जाये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह किसी अन्य संशोधन पर संशोधन नहीं है जिस दशा में कि नियमों द्वारा यह रोका जा सकता था, वरन् यह तो किसी अन्य संशोधन के निर्देश सहित एक संशोधन है। इस कारण यह संशोधन व्यवस्था के अनुकूल है।

***अध्यक्ष:** मैंने वास्तव में ऐसे संशोधनों को पेश होने दिया है। इस कारण मैं इसे नियम विरुद्ध नहीं ठहरा सकता हूं।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 1) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित प्रस्तावना की प्रथम कंडिका के स्थान में निम्नलिखित कंडिका रखी जाये:

'We on behalf of the people of India from whom is derived all power and authority of the Independent India....."

(हम, भारत की जनता की ओर से जिससे स्वाधीन भारत को...)

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

श्रीमान, आपकी अनुज्ञा से मैं 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' शब्द को छोड़ देना चाहूंगी।

" 'Its constituent parts and organs of Government, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic and to secure to all its citizens:—' "

(उसके अंगभूत भागों को तथा सरकार के अंगों को सब शक्ति और प्राधिकार प्राप्त होते हैं, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:)

श्रीमान, मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी ने मेरे संशोधन को एक बात से सबल बना दिया है और मेरे पक्ष को और भी अधिक दृढ़ बना दिया है। मैं समझती हूं कि जिस प्रस्तावना पर इस समय हम विचार कर रहे हैं वह संविधान का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है और हम जैसे व्यक्तियों के लिये, जिनकी मानसिक प्रवृत्तियां विधि सम्बन्धी बातों की ओर नहीं हैं, यह हमारी स्वतन्त्रता के अधिकार पत्र के रूप में है तथा हमारी सफलताओं और असफलताओं के मापदंड के रूप में है। यह उस लक्ष्य को निर्धारित करता है जिसकी ओर से हम अग्रसर हो रहे हैं और इस कारण यदि इस सभा के सदस्य कुछ धैर्य धारण कर मुझे जो कुछ हम इस विषय के सम्बन्ध में समझते हैं उसे व्यक्त करने देंगे तो मैं स्वयं उनकी बड़ी कृतज्ञ होऊंगी।

श्रीमान, मैं समझती हूं कि जो संविधान हमने बनाया है उसके द्वारा राष्ट्रपति और संसद में व्यापक शक्तियां निहित की गई हैं। इस समय मैं यह नहीं समझती हूं कि हमें यह सोच समझ कर ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिये कि हमारी जनता ही वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न प्राधिकार है जिससे समस्त शक्ति प्राप्त होती है और जिसमें समस्त सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न प्राधिकार निहित रहते हैं केवल इस बात में विश्वास करके कि पांच वर्ष में केवल एक बार वह निर्वाचन स्थल पर मत देने जायेगी इसलिए उसकी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता सुरक्षित है। अत: मैं समझती हूं कि प्रस्तावना में उस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता का उल्लेख कर देना चाहिये। जो कुछ सभा पारित कर चुकी है मैं उससे परे नहीं गयी हूं। जिस शब्दावली को मैंने उद्धृत किया है वह अक्षरश: उस लक्ष्यमूलक संकल्प में से ली गई है जिसे इस सभा में 1947 में पहले पारित किया था। जैसाकि मैंने पहले कहा था कि इस संविधान के तीन भाग अथवा सम्भवत: इस संविधान में की तीन घटनायें, एक लक्ष्यमूलक संकल्प, दूसरी राज्य की नीति सम्बन्धी लक्ष्यों के सम्बन्ध का कथन और यह प्रस्तावना, ऐसी समझी जाती हैं कि इनका संविधान पर कोई विधि सम्बन्धी बन्धन नहीं है। पर वास्तव में वे ही जिस संविधान का हमने यहां निर्माण किया है उसका प्राण हैं। मैं आपका अधिक समय लेना नहीं चाहती हूं। मैं अपने तर्क को अपने माननीय मित्र श्री त्यागी द्वारा उद्धृत उस भाषण से पुष्ट करूंगी जिसको उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के उस भाषण में से लिया था जिसे उन्होंने प्रस्तावना पेश करते समय दिया था। उस समय मैं सभा में उपस्थित न थी। पर उससे मेरे विचार की पुष्टि होती है कि जनता की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता का संविधान में कहीं न कहीं उल्लेख होना चाहिये। इन शब्दों के सहित मैं अपना संशोधन पेश करती हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** अपनी माननीया मित्र श्रीमती बनर्जी के संशोधन का समर्थन करते हुए मैं सभा को 15 नवम्बर 1948 की कार्रवाई की याद दिलाऊंगा जब मैंने एक ऐसा ही संशोधन पेश किया था। उसके शब्द इस प्रकार के थे कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित होगी। उस पर खूब वाद-विवाद हुआ था और मुझे यह आश्वासन दिया गया था कि जिस अनुच्छेद पर मैं वह संशोधन पेश कर रहा था वह उस संशोधन के लिये ठीक अनुच्छेद न था और मुझे यह वचन दिया गया था कि जब प्रस्तावना पर वाद-विवाद होगा उस समय इस संशोधन पर विचार किया जायेगा। अब वह समय है जबकि मैं सभा को उस वचन की याद दिलाऊं जो मसौदा समिति के सभापति ने मुझे दिया था। मैं इस बात के लिए बड़ा उत्सुक हूं कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के स्थल की परिभाषा हो जानी चाहिये। मैं इसके प्रति और भी अधिक उत्सुक इस कारण हूं कि अब तक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता इंग्लैंड के राजा में निहित है। वह एक अंग्रेज है जिसमें पिछली शताब्दि से हमने सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता निहित कर दी है। अत: यदि हम शब्दों में यह नहीं कहेंगे कि यह संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता कहां निहित होगी तो वह एक अंग्रेज में निहित बनी रहेगी। हम उसे उससे पृथक् करना चाहते हैं। अत: हमें निश्चित रूप से यह कह देना चाहिये कि इंग्लैंड के राजा के साथ अब सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता नहीं है।

और फिर मैं यह भी नहीं चाहता हूं कि इस या किसी भावी सरकार के लिये संयुक्त राष्ट्र या संयुक्त बन्धुता या संयुक्त नागरिकता अथवा वह चाहे जो कुछ भी हो—उसके नाम से देश की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के सौदा करने का कोई संदेह या संकट बना रहें। अत: स्पष्ट शब्दों में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित होनी चाहिये। चीन ने अपने संविधान में यह रखा है कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता चीन की समस्त जनता में निहित है। चाहे साम्यवादियों का चीन पर अधिकार रहे या न रहे जनता तो रहेगी ही। यदि जनता साम्यवादी हो जाती है या किसी अन्य पक्ष को अपना लेती है तो पशु तो नहीं हो जाती। भारत में लोग तो रहेंगे ही और भारत के लोगों में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता निहित रहेगी। इसकी परिभाषा हो जानी चाहिये जिससे कि सरकार इसका दुरुपयोग न कर सके। वह सरकार में भी निहित नहीं होती है। सरकार केवल जनता का प्रतीक है। क्योंकि डॉ. अम्बेडकर ने इसे संविधान में रखना स्वीकार कर लिया है मैं इस विषय को बढ़ाना नहीं चाहता हूं और मैं आशा करता हूं कि वे कृपा कर इन शब्दों को स्थान देंगे और सदैव के लिए यह स्पष्ट कर देंगे कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित है न कि किसी विदेशी में जैसी कि इस समय वह है और न किसी राज्य में चाहे उस राज्य का नाम "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य" हो।

***आचार्य जे.बी. कृपलानी:** अध्यक्ष महोदय, मेरा विचार भाषण देने का नहीं था। पर कुछ मित्र यह चाहते थे कि इस अंतिम समय में जबकि हम अपना संविधान प्राय: समाप्त कर रहे हैं मैं चन्द शब्द कहूं। मेरे कुछ मित्रों ने यह भी कहा कि एक औपचारिक भाषण द्वारा मैंने इस सभा की कार्यवाही का सूत्रपात किया था और इस द्वितीय पठन के समय जो समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए अंतिम पठन ही है मैं कार्रवाई को अपने भाषण द्वारा समाप्त करूं।

[आचार्य जे.बी. कृपलानी]

श्रीमान, एक अच्छे यजमान की तरह आपने बढ़िया से बढ़िया शराब को अन्त के लिए रख छोड़ा है। इस प्रस्तावना को संविधान के आरम्भ में आना चाहिये था और वह संविधान के आरम्भ में दी भी गई है। इसके लिए एक कारण भी था कि प्रत्येक विवरणपूर्ण उपबन्ध के लिए जिसे हम संविधान में रखना चाहते थे यह हमारे सामने रहती। यह हमें सावधान करती रहती कि कहीं हम उन आधारभूत सिद्धान्तों से दूर तो नहीं हो रहे है जिनको हम प्रस्तावना में निर्धारित कर चुके हैं। अभी हाल ही में हम लोकतन्त्र के महान सिद्धान्त के विरुद्ध चले गये थे। यह अभागा देश कई जातियों तथा आर्थिक वर्गों में विभाजित है। ये विभाजन असंख्य हैं। मैं समझता हूं कि संसार के संविधानों में यह प्रथम अवसर है कि दो प्रशासकों की एक नई जाति बनाई गई है और उसको एक विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति में रखा गया है। उसको ऐसी स्थिति में रखा गया है कि जनता के प्रसिद्ध प्रतिनिधि भी उसके विशेषाधिकारों को नहीं छू सकते चाहे वे जनता विरुद्ध ही हों। मैं निवेदन करता हूं कि यह हमारे संविधान के प्रथम मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

श्रीमान, इस गम्भीर समय में मैं सभा को यह याद दिलाना चाहता हूं कि इस प्रस्तावना में हमने जो सिद्धांत रखे हैं वे केवल नैतिक तथा राजनैतिक सिद्धांत ही नहीं हैं महान् नैतिक तथा आध्यात्मिक सिद्धांत भी हैं और यदि मैं कह सकता हूं तो यह कहूंगा कि ये गहन सिद्धांत हैं। वास्तव में ये प्रथम विधि सम्बन्धी तथा संविधानिक सिद्धान्त नहीं थे वरन् ये यथार्थ में नैतिक तथा आध्यात्मिक सिद्धान्त थे। यदि हम इतिहास की ओर ध्यान दें तो हमें विदित होगा कि चूंकि वकीलों और राजनीतिज्ञों ने अपने सिद्धांतों को विधि सम्बन्धी तथा संविधानिक रूप दिया इस कारण उनका जीवन और उनकी शक्ति क्षीण हो गई और अब भी क्षीण होती जा रही है। लोकतन्त्र को ही लीजिये। यह क्या है? उसमें मानव समता का भाव निहित है, उसमें बन्धुता का भाव निहित है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें अहिंसा के महान् सिद्धान्त का भाव निहित है। जहां हिंसा है वहां लोकतन्त्र कैसे हो सकता है? लोकतन्त्र की साधारण परिभाषा तक यह है कि सर तोड़ने की अपेक्षा हम सर गिनते हैं। तो फिर लोकतन्त्र के मूल में यह अहिंसा है। और मैं यह निवेदन करता हूं कि अहिंसा का सिद्धान्त एक नैतिक सिद्धांत है। वह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है वह एक गहन सिद्धान्त है। यह वह सिद्धान्त है जो यह बताता है कि जीव एक है, आप उसका विभाजन नहीं कर सकते हैं और हम सबों में वही एक जीव स्पंदन करता है। बाइबिल इसे इस रूप में कहती है कि "हम सब ईश्वर की संतान हैं इसलिये एक हैं" और वेदान्त इसे इस रूप में कहता है "यह सब एक ही ब्रह्म है"। यदि हम लोकतन्त्र का प्रयोग केवल एक विधि सम्बन्धी संविधानिक और औपचारिक योजना के रूप में करना चाहते हैं तो मैं निवेदन करता हूं कि हम असफल होंगे। चूंकि लोकतन्त्र को हमने संविधान के मूल में रखा है श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि समस्त देश 'लोकतन्त्र' के नैतिक, आध्यात्मिक और गहन भाव को समझ ले। यदि नहीं समझा तो हम उसी प्रकार असफल होंगे जैसे और लोग अन्य देशों में असफल हुये हैं। लोकतंत्र को स्वैरतंत्र बना दिया जायेगा और फिर उसको साम्राज्यतंत्र बना दिया जायेगा और फिर एकतन्त्र हो जायेगा। पर एक नैतिक सिद्धान्त के रूप में उसे जीवन में चरितार्थ करना चाहिये। यदि उसको जीवन में चरितार्थ नहीं किया जाता है और समूचे सिद्धान्त

को जीवन के सब अंगों में चरितार्थ नहीं किया जाता है तो वह केवल एक औपचारिक तथा विधि सम्बन्धी सिद्धान्त रह जाता है। हमें इस बात पर ध्यान रखना है कि हम इस लोकतन्त्र को अपने जीवन में चरितार्थ करें। लोकतन्त्र को केवल विधि सम्बंधी और राजनैतिक क्षेत्र में रखना लोकतन्त्र से असंगत बात होगी। राजनैतिक रूप में हम लोकतंत्रवादी हैं पर आर्थिक रूप में हम इतने वर्गों में विभाजित हैं कि इन वर्ग भेदों को मिटाया नहीं जा सकता है। यदि हमको लोकतन्त्रवादी बनना है तो हमें आर्थिक स्थिति में भी ऐसा ही बनना है।

मैं यह भी कहता हूं कि लोकतंत्रवाद जाति-व्यवस्था से असंगत है। जाति-व्यवस्था सामाजिक शिष्ट-जन-सत्तावाद है। जातिभेद और वर्गभेद को हमें मिटा देना चाहिये। अन्यथा हम लोकतन्त्रवाद की शपथ ग्रहण नहीं कर सकते हैं। और हमें यह याद रखना चाहिये कि आर्थिक लोकतंत्र का केवल यही अर्थ नहीं है कि वर्गभेद न रहे, कोई गरीब तथा अमीर न रहे; वरन् यह कि यदि जनता दैवयोग से गरीब है तो राज्य स्वयं अपना जीवन इस रीति से बिताये कि वह उन गरीबों के जीवन के अनुसार हो। यह आर्थिक समता नहीं है कि शान शौकत के लिए हम हजारों लाखों रुपया खर्च कर दें। और यह भी लोकतन्त्र नहीं है कि राष्ट्रपति भवन के प्रत्येक कोने पर लोगों को निश्चल मूर्तिवत् खड़े होने के लिए बाध्य किया जाये। ऐसी बातें व्यक्तियों के गौरव के विरुद्ध हैं। यदि हम लोकतन्त्र स्थापित करना चाहते हैं तो उसे हमें अपने सम्पूर्ण जीवन में, उसके सब अंगों में चाहे उसका सम्बन्ध प्रशासन से हो समाज से हो या आर्थिक क्षेत्र से हो, स्थापित करना पड़ेगा। यह बात हमें जाननी चाहिये और समझ लेनी चाहिये।

हमने यह भी कहा है कि हम विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता रखेंगे। हमें इसकी जटिलता को भी समझ लेना चाहिये। इन सब स्वतन्त्रताओं की अहिंसा के आधार पर ही प्रत्याभूति हो सकती है। यदि हिंसा है तो आप विचार की स्वतन्त्रता नहीं पा सकते हैं, आप अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं पा सकते हैं, आप धर्म की स्वतन्त्रता या उपासना की स्वतन्त्रता नहीं पा सकते हैं। और इस अहिंसा का प्रसार इतना होना चाहिये कि वह हमें अन्य व्यक्ति के प्रति केवल सहिष्णु ही न बनाये जैसा कि लौकिक रूप में कहा जाता है वरन् किसी सीमा तक हम उसके विचारों को उसके लिए अच्छा समझें। केवल सहिष्णुता से ही हमें बहुत अधिक सहायता नहीं मिलेगी। बहुत से व्यक्ति सहिष्णु मात्र हैं। क्यों? क्योंकि वे उदासीन हैं। वे कहते हैं "इस व्यक्ति की उपासना हमारी उपासना से भिन्न है। वह गलत है। वह व्यक्ति अवश्य नरकगामी होगा; होने दीजिए, मुझे क्या मतलब।" यह सहिष्णुता नहीं है। यह तो असहिष्णुता है। यदि दैहिक रूप में अहिंसा प्रयोग में नहीं लाई जाती है तो इसलिये कि अहिंसा का प्रयोग सदैव सम्भव नहीं; पर मानसिक हिंसा तो है ही। हमें एक दूसरे के धर्म का सम्मान करना चाहिये। हमें उसका सम्मान इस रूप में करना चाहिये कि उसमें सत्य का तत्व है। संसार का कोई धर्म पूर्ण नहीं है परन्तु फिर भी ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें ईश्वरीय सत्य का कुछ तत्व न हो।

इसके बाद हमने कहा है कि प्रतिष्ठा और अवसर की समता होनी चाहिये। इसका यह अर्थ है कि हमारे सरकारी कार्यों में हमको पूर्णतया कलंक मुक्त रहना चाहिये, कुल-पोषणता नहीं होनी चाहिये, पक्षपात नहीं होना चाहिये, "अपना" "पराया" नहीं होना चाहिये। यह हो सकता है। प्रतिष्ठा की समता और अवसर

[आचार्य जे.बी. कृपलानी]

की समता हम केवल तभी दे सकते हैं जबकि जिसे हम "अपना" समझते हैं उसे पीछे रखें और जिसे "अपना नहीं" समझते हैं उसे आगे रखें। जब तक हम ऐसा नहीं करते तब तक हम अपने संविधान के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकेंगे।

बन्धुता के महान सिद्धान्त को मैं फिर से लेता हूं जो लोकतन्त्र से सम्बंधित है। इसका अर्थ यह है कि हम सब उसी एक ईश्वर की सन्तान हैं जैसाकि कोई धार्मिक व्यक्ति कहेगा और एक रहस्यवादी यह कहेगा कि हम सबों में एक ही जीव है या बाइबिल यह कहती है "हम सब एक हैं"। इसके बिना बन्धुता हो ही नहीं सकती। अत: मैं चाहता हूं कि यह सभा इस बात को याद रखे कि जो हमने घोषित किये हैं वे केवल विधि सम्बन्धी संविधानिक और औपचारिक सिद्धान्त ही नहीं हैं वरन् नैतिक सिद्धान्त भी हैं, और नैतिक सिद्धान्तों को जीवन में चरितार्थ करना पड़ता है। उनको चरितार्थ करना पड़ेगा चाहे निजी जीवन हो या सार्वजनिक, चाहे वाणिज्यिक जीवन हो या राजनैतिक जीवन हो या एक प्रशासक का जीवन हो। उनको सर्वत्र चरितार्थ करना पड़ेगा। यदि अपने संविधान को सफल बनाना है तो हमें इन बातों को याद रखना होगा।

श्रीमान, एक बात और कह कर मैं समाप्त करने वाला हूं। मैं समझता हूं कि श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा प्रस्थापित संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये, क्योंकि उसमें यथार्थ स्थिति का वर्णन है और इस कारण प्रस्तावना में उसको रख देना चाहिये। रस्मी मौकों पर, महान अवसरों पर, महत्वपूर्ण अवसरों पर हमें स्वयं अपने आपको यह याद दिलानी होती है कि हम यहां जनता के प्रतिनिधि के रूप में हैं। इतना ही नहीं बल्कि इससे भी अधिक। हमें स्वयं अपने आपको यह याद दिलानी होती है कि हम जनता के सेवक हैं। हम बहुधा यह भूल जाते हैं कि हम यहां प्रतिनिधि के रूप में हैं। हम बहुधा यह भूल जाते हैं कि हम जनता के सेवक हैं। सदैव यही होता है कि हमारे विचारों और कर्मों के कारण हमारी भाषा इस आधारभूत विचार के अनुसार नहीं होती है। एक मंत्री "हमारी सरकार" कहता है "जनता की सरकार" नहीं कहता। प्रधान मंत्री "मेरी सरकार" कहता है "जनता की सरकार" नहीं कहता। अत: इस गंभीर अवसर पर स्पष्ट तथा विशिष्ट रूप में यह निर्धारित करना आवश्यक है कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित है और वही उसका उद्गम है। (*तालियां*) अत: मैं आशा करता हूं कि यह सभा श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी के संशोधन को स्वीकार करेगी।

***अध्यक्ष:** क्या कुछ अन्य व्यक्ति भाषण देना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, आचार्य कृपलानी के प्रभावपूर्ण शब्दों के कारण एक बात की व्याख्या आवश्यक हो जाती है। मैं यह सम्मानपूर्वक कहता हूं कि उनके ऐसे विचार प्रतीत होते हैं कि लोकतन्त्र की सफलता संविधान में कुछ मीठे तथा मधुर शब्दों के पुर:स्थापन पर निर्भर है। पर मैं निवेदन करता हूं कि लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसको किस प्रकार व्यवहार में क्रियान्वित किया जाता है। उसका इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम प्रस्तावना या संविधान में क्या कहते हैं। लोकतंत्र के वास्तविक क्रियाकरण पर उसकी सफलता निर्भर करती है।

***माननीय सदस्य:** विवादान्त, विवादान्त।

***अध्यक्षः** मैं यह मान लेता हूं कि विवादान्तक प्रस्ताव स्वीकार हो चुका है। अब मैं डॉ. अम्बेडकर से उत्तर देने के लिए कहूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, संशोधन में की वह बात, जो उसे मसौदा समिति द्वारा बनाये गये मसौदे से भिन्न रूप प्रदान करती है, इन शब्दों के बढ़ाने में निहित है "जिससे समस्त शक्ति और प्राधिकार प्राप्त होते हैं"। अतः प्रश्न यह है कि जिस रूप में प्रस्तावना का मसौदा बनाया गया है उससे क्या इस सभा के सामान्य विचार से भिन्न कोई अन्य अर्थ निकलता है। वह सामान्य विचार यह है कि यह संविधान जनता से उद्भूत हो और इस बात को अभिज्ञात करे कि इस संविधान के बनाने की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित है। मैं समझता हूं कि ऐसी अन्य कोई बात नहीं है जो विवादास्पद हो। मेरा विचार यह है कि इस संशोधन में जो कुछ सुझाया गया है वह प्रस्तावना के इस मसौदे में पहले से ही है।

***मौलाना हसरत मोहानीः** तो फिर आप उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** विवरणपूर्ण परीक्षण द्वारा अब मैं यह सिद्ध करूंगा कि मेरा विचार सही है।

श्रीमान, इस संशोधन का यदि कोई विश्लेषण करे तो उसके तीन विशिष्ट भाग होते हैं। एक भाग घोषणात्मक है। दूसरा भाग वर्णनात्मक है। तीसरा भाग यदि मैं उसके सम्बन्ध में यह कह सकता हूं तो वह लक्ष्यमूलक और आवश्यक है। घोषणात्मक भाग में निम्नलिखित पद है "हम, भारत के लोग, अपनी संविधान सभा में, अमुक दिवस अमुक मास..... एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।" इस सभा के वे सदस्य, जो इस बात के लिए चिन्तित हैं कि इस प्रस्तावना में यह कहा गया है या नहीं कहा गया है कि यह संविधान और इस संविधान के बनाने की शक्ति और प्राधिकार और सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित है, संशोधन के अन्य भागों को इस भाग से पृथक् कर दें जिसको मैंने पढ़ कर सुनाया है अर्थात् आरम्भ के शब्दों से पृथक् कर दें जो ये हैं "हम भारत के लोग, अपनी संविधान सभा में अमुक दिन, एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।" इस प्रकार से इसे पढ़ने पर.....

***श्री महावीर त्यागीः** लोग कहां से आ गये? इस कार्य में तो संविधान सभा के सदस्य हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह विषय भिन्न है। इस समय मैं इस बारीक बात पर वाद-विवाद कर रहा हूं कि क्या इस संशोधन में यह कहा गया है या नहीं कहा गया है कि यह संविधान लोगों द्वारा निर्मित, अंगीकृत और अधिनियमित है। मैं समझता हूं कि यदि कोई व्यक्ति अन्य भागों से अर्थात् वर्णनात्मक तथा लक्ष्यमूलक भागों से पृथक् कर इसकी सरल भाषा को पढ़ता है तो उसे इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि इस प्रस्तावना का अर्थ वही है।

मेरे मित्र श्री त्यागी ने यह कहा था कि यह संविधान जनता के एक ऐसे निकाय द्वारा पारित किया जा रहा है जिसका निर्वाचन एक संकीर्ण मताधिकार के आधार पर हुआ था। यह बिलकुल सत्य है कि यह वह संविधान सभा नहीं है

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जिसमें इस देश का प्रत्येक वयस्क पुरुष और स्त्री सम्मिलित हो। पर यदि मेरे मित्र श्री त्यागी यह चाहते हैं कि यह संविधान तब तक प्रवृत्त न हो जब तक कि यह जनता के सामने जन-मत के रूप में न रखा जाये तो यह तो बिलकुल ही भिन्न विषय है जिसका उस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है जिस पर हम वाद-विवाद कर रहे हैं। चाहे इस संविधान को संविधान सभा द्वारा पारित होने पर मान्यता मिले या इसे मान्यता केवल तभी मिले जबकि यह जन-मत द्वारा पारित हो। यह बात बिल्कुल भिन्न है। इसका विवादान्तर्गत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है।

विवादान्तर्गत प्रश्न यह है। क्या यह संशोधन इस बात को स्वीकार, अभिज्ञात तथा घोषित करता है या नहीं कि यह जनता से उद्‌भूत है। मैं कहता हूं कि करता है।

मैं यह चाहूंगा कि माननीय सदस्य संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान को प्रस्तावना पर विचार करें। मैं उसके एक अंश को पढ़कर सुनाऊंगा। उसमें कहा गया है "हम, अमरीका के लोग"—मैं अन्य भागों को नहीं पढ़ रहा हूं—"हम, अमरीका के लोग, संयुक्त राज्य अमरीका के लिए इस संविधान को निर्मित तथा स्थापित करते हैं"। जैसाकि अधिकांश सदस्यों को विदित है इस संविधान का मसौदा एक छोटे से निकाय ने बनाया था। मैं इसका ठीक-ठीक विवरण और उन राज्यों की संख्या भूल गया हूं जिनका प्रतिनिधित्व उस छोटे से निकाय में था जिसकी बैठक फिलाडेल्फिया में संविधान बनाने के लिए हुआ था। (माननीय सदस्य–13 राज्य थे।) 13 राज्य थे। अतः यदि 13 राज्यों के प्रतिनिधि फिलाडेल्फिया में एक छोटे से सम्मेलन में एकत्रित होकर एक संविधान बना सके और यह कह सके कि जो कुछ उन्होंने किया वह जनता के नाम से था, उसके प्राधिकार पर था, उसकी सम्पूर्ण प्रभुता पर आधृत था तो मैं स्वयं तो यह नहीं समझता हूं—हां यदि कोई व्यक्ति पूर्णरूप से विद्याभिमानी हो तो बात दूसरी है—कि इस महान् महाद्वीप का प्रतिनिधित्व करने वाले 292 व्यक्तियों का निकाय अपनी प्रतिनिधित्व सामर्थ्य के अनुसार यह न कह सकें कि वह इस देश की जनता के नाम से कार्य कर रहे हैं। (*वाह, वाह*)।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं ऐसा नहीं समझता हूं। यह सब केवल एक सम्प्रदाय कर रहा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह विषय ही दूसरा है, मौलाना, मैं इस विषय को नहीं ले सकता हूं। अतः जहां तक इस विचार का सम्बन्ध है मैं निवेदन करता हूं कि किसी प्रकार के भय या शंका के लिए कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये। इस सभा में कोई व्यक्ति यह नहीं चाहता है कि इस संविधान में ऐसी कोई भी बात हो जिससे ऐसा किंचित मात्र भी आभास हो कि यह संविधान ब्रिटिश संसद की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता से उद्‌भूत है। इसके लिए किसी व्यक्ति की कोई अभिलाषा नहीं हैं हम वास्तव में ब्रिटिश संसद की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जिस रूप में इस संविधान के प्रवर्तन से पूर्व वर्तमान थी हर प्रकार के अवशेष का अपमार्जन करना चाहते हैं। जहां तक इस विषय का सम्बन्ध है मसौदा समिति के किसी सदस्य और इस सभा के किसी सदस्य में कोई मतभेद नहीं है।

मैं समझता हूं कि कुछ सदस्यों को कुछ भय या शंका इस तथ्य के कारण है कि इस वर्ष के आरम्भ में संविधान सभा ने यह घोषणा निकालने में साथ दिया था कि यह देश ब्रिटिश कामनवेल्थ के साथ रहेगा। उनका विचार है कि इस मेल ने जनता की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता का कुछ अल्पीकरण किया है। श्रीमान, मैं नहीं समझता हूं कि ऐसा विचार करना ठीक है। प्रत्येक स्वाधीन देश को किसी अन्य देश से किसी न किसी प्रकार की संधि रखनी चाहिये। यदि एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न देश दूसरे सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न देश से संधि करता है तो इसके कारण वह देश कोई कम सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न नहीं हो जाता। मैं सबसे भद्दा उदाहरण ले रहा हूं। मैं जानता हूं कि कुछ लोगों को इस प्रकार का भय है। (*बाधायें*)।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी:** श्रीमान, क्या मैं....

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर को भाषण देने दीजिये। उन्होंने किसी के प्रति उत्तेजनात्मक बात नहीं कही है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह कहता हूं कि इस प्रस्तावना में वह बात है जिसके लिए इस सभा का प्रत्येक सदस्य इच्छुक है कि यह संविधान अपना मूल स्रोत, अपना प्राधिकार और अपनी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता से प्राप्त करे। यह बात उसमें है।

इस कारण मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं। संशोधन के मूलपाठ के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं। यदि मैं कह सकता हूं तो सम्मानपूर्वक यह कहूंगा कि शायद इस संशोधन की रचना कुछ ऐसी है कि जिस रूप में प्रस्तावना का मसौदा हमने मनाया है उस रूप में वह उसमें ठीक नहीं बैठेगी, अत: इन दोनों बातों के कारण मैं समझता हूं कि मसौदा समिति द्वारा प्रयोग में लाई गई भाषा में परिवर्तन करना उचित नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 1) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित प्रस्तावना की प्रथम कंडिका के स्थान में निम्नलिखित कंडिका रखी जाये:

'We, on behalf of the people of India from whom is derived all power and authority of the Independent India, its constituent parts and organs of Government, having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign Democratic Republic and to secure to all its citizens.'

[हम, भारत की जनता की ओर से जिससे स्वाधीन भारत को, उसके अंगभूत भागों को तथा सरकार के अंगों को सब शक्ति और प्राधिकार प्राप्त होते हैं, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को]"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अन्य कोई संशोधन नहीं है। यदि कोई सदस्य कुछ कहना चाहता है तो प्रस्तावना जिस रूप में है उस पर वाद-विवाद हो सकता है।

***माननीय सदस्यः** अब मत ले लिया जाये।

***अध्यक्षः** यदि कोई नहीं बोलना चाहता तो मैं प्रस्तावना पर मत लूंगा। प्रश्न यह है "कि प्रस्तावना संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रस्तावना संविधान में प्रविष्ट की गई।

***अध्यक्षः** अब हम इस सत्र को समाप्त करने वाले हैं। इससे पूर्व कि मैं इस सभा को स्थगित करूं कुछ ऐसी बातें हैं जिनका इस समय निश्चित करना आवश्यक है। एक प्रश्न जिसको निश्चित करना है वह इस संविधान के तृतीय पठन के लिए आगामी सत्र के सम्बन्ध में है, और पूर्व अवसरों पर सभा मुझे अनुज्ञा दे देती थी कि मैं किसी भी समय आवश्यक समझूं बुला लूं, और इस बार भी मैं समझता हूं कि सभा मुझे वैसी अनुज्ञा दे देगी, पर मैं श्री सत्यनारायण सिंह से निवेदन करूंगा कि वे इस प्रकार का एक औपचारिक संकल्प पेश कर दें।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हाः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि यह सभा नवम्बर 1949 की की किसी ऐसी तिथि तक स्थगित की जाये जिसे राष्ट्रपति नियत करे।"

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि यह सभा नवम्बर 1949 किसी ऐसी तिथि तक स्थगित की जाये जिसे अध्यक्ष नियत करे।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि जिन संशोधनों की सूचना हमारे पास आई थी उन सबको हम समाप्त कर चुके हैं, और उनके बारे में मुझे कुछ और अधिक नहीं कहना चाहिये। अब हमने संविधान का द्वितीय पठन समाप्त कर दिया है। अभी हाल में इस सभा द्वारा पारित नियम 38-द के अधीन मुझ में सौंपी गई शक्ति के आधार पर अनुच्छेदों का फिर से मसौदा बनाने के लिए, विराम चिह्नों के पुनरीक्षण के लिए, हाशिये की टिप्पणियों के पुनरीक्षण और पूर्ण करने के लिए और संविधान में उन औपचारिक या आनुषंगिक या आवश्यक संशोधनों की सिफारिश करने के लिए, जो आवश्यक समझे जायें, संशोधनों सहित इस संविधान के मसौदे को मसौदा समिति के पास भेजूंगा। इस कार्य को समाप्त करने के लिए यह करना होगा और यह मैं जो प्राधिकार आपने मुझे दिया है उसके आधार पर करूंगा। इन बातों के सहित हम उस तिथि तक स्थगित होते हैं जिसे मैं घोषित करूंगा।

इसके पश्चात् सभा नवम्बर, 1949 की किसी उस तिथि तक के लिए स्थगित हो गई जिसे अध्यक्ष नियत करेगा।

GIPD–HS-271 PSD–6-12-52–320

खण्ड XI
पुस्तक सं. 8

14.11.1949
से
26.11.1949

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

जैनको आर्ट इण्डिया, 13/10, डब्ल्यूईए, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष :

माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष :

डा. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार :

सर बी. एन. राव, *सी.आई.ई.*

सचिव :

श्री एच.वी.आर. आयंगर

सी.आई.ई., आई.सी.एस.

संयुक्त सचिव :

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव :

श्री जुगल किशोर खन्ना

अवर सचिव :

प्रो. बाल कृष्ण

मार्शल :

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 3. XI.1.49
320

अंक XI
संख्या 1

सोमवार
14 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 3449
संविधान का मसौदा–(जारी) 3449–3519
[अनुच्छेदों का संशोधन]

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 14 नवम्बर, सन् 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टिट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः ग्यारह बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से दो सदस्यों को शपथ ग्रहण करनी है और रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने हैं।

निम्नलिखित सदस्य महोदय ने शपथ ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:—

श्री एम.आर. मसानी (बम्बई: जनरल):

संविधान का मसौदा — (जारी)

***अध्यक्ष:** अब हम संविधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इंडोनेशिया के लोगों को एक महान संघर्ष के पश्चात् स्वातन्त्रय प्राप्ति के लिये संविधान-सभा की ओर से संदेश भेजने के सम्बन्ध में मैंने जिस प्रस्ताव की सूचना दी है उस की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। मेरे विचार से उपयुक्त यही होगा कि भारत की ओर से संविधान सभा ही इस सन्देश को भेजे क्योंकि उस ने स्वतन्त्रता प्राप्त की है और वह अब एक संविधान का निर्माण कर रही है। इंडोनेशिया के लोग भी अपने संविधान का निर्माण कर रहे हैं। श्रीमान, यदि मेरे प्रस्ताव पर इस सभा में विचार नहीं हो सका तो मैं आप से प्रार्थना करूंगा कि आप अध्यक्ष के नाते उस देश को एक बधाई का तार भेज दें।

***अध्यक्ष:** जिस प्रस्ताव की सूचना दी गई है उसे मैं संचालन-समिति की एक बैठक में रखूंगा और वह समिति जिन कदमों के लिये मंत्रणा देगी उन कदमों को उठाऊंगा।

अब हमें मसौदा समिति के प्रतिवेदन पर, तथा मसौदा-समिति के किये हुए संशोधनों पर, तथा उन अन्य संशोधनों पर भी विचार करना है जिन की सूचना दी गई है। इस सम्बन्ध में मैं जिस प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहता हूं उसकी मैं व्याख्या करुंगा। जब प्रतिवेदन पर विचार करने का प्रस्ताव पारित हो जायेगा तब संशोधन उठाये जायेंगे। जिन संशोधनों की सूचना मसौदा-समिति ने दी है उन के बारे में समझा जायेगा कि वे उपस्थित किये जा चुके हैं और मसौदा-समिति के प्रतिवेदन में जो संशोधन सम्मिलित किये गये हैं उन के सम्बन्ध में रस्मी तौर पर कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जायेगा।

[अध्यक्ष]

मसौदा-समिति ने जो संशोधन किये हैं वे दो प्रकार के हैं। कई संशोधन प्रतिवेदन में सम्मिलित कर दिये गये हैं और माननीय सदस्यों के हाथों में संविधान की जो प्रतियां हैं उन में वे टेढ़े अक्षरों में छपे हुए हैं। मसौदा-समिति ने कुछ अन्य संशोधनों की भी सूचना दी है जो न तो प्रतिवेदन में सम्मिलित किये गये हैं और न संविधान के मसौदे में छापे गये हैं। उन संशोधनों के सम्बन्ध में जो प्रतिवेदन में सम्मिलित किये गये हैं और टेढ़े अक्षरों में छापे गये हैं, सदस्यों को संशोधन भेजने का अवसर मिला है और उन्होंने उन के सम्बन्ध में संशोधनों की सूचना दी है। किन्तु उन नवीन संशोधनों के सम्बन्ध में जिन की सूचना मसौदा-समिति ने अब दी है, सदस्यों को न तो कोई सूचना मिली है और न संशोधनों की सूचना देने के लिये अवसर ही मिला है। उन संशोधनों के सम्बन्ध में, दो संशोधनों की द्वितीय सूची में दिये हुए हैं, मैं कल कार्य आरम्भ करने के पूर्व तक संशोधन भेजने की आज्ञा देता हूं। इस प्रकार कल प्रातः तक, माननीय सदस्यों को इन नवीन संशोधनों पर विचार करने के लिये, तथा यदि वे चाहें तो संशोधनों की सूचना देने के लिये, समय मिल जायेगा। जहां तक इन संशोधनों पर विचार करने की प्रक्रिया का सम्बन्ध है, पिछले सत्र में जिन नियमों को स्वीकार किया गया था उन के अधीन, मेरे विचार से, कोई ऐसा संशोधन, जो मसौदा समिति की ओर से प्रस्तुत संशोधनों से असम्बद्ध होगा, अनियमित होगा। इसलिए मैं ऐसे किसी संशोधन को नहीं उठाऊंगा, जब तक कि किसी संशोधन के सम्बन्ध में मैं यह न देखूं कि अपवाद करने के लिए कोई विशेष कारण हैं। नियमों के अधीन मुझे इस प्रकार स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है और यदि कोई ऐसा संशोधन भेजा गया जो नियमों के अधीन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, किन्तु जो, मेरे विचार से, तर्कयुक्त तथा आवश्यक है तो मैं उसे उपस्थित करने की आज्ञा दे दूंगा। इस समय ऐसे संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं है जो नियमों के अधीन उपस्थित नहीं किये जा सकते। किन्तु मैं इस विषय पर आगे भी विचार करने के लिये तैयार हूं। यदि कोई माननीय सदस्य सभा में नहीं बल्कि लिख कर किसी ऐसे संशोधन की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करेंगे जिस को वे विशेष महत्व देते हैं तो मैं उस संशोधन पर विशेष रूप से विचार करूंगा और यदि उचित समझूंगा तो उसे उपस्थित करने की आज्ञा दूंगा अथवा आज्ञा नहीं दूंगा।

किसी संशोधन के सम्बन्ध में किसी संशोधन के उपस्थित किये जाने पर, मैं कह नहीं सकता कि सदस्य प्रत्येक ऐसे संशोधन पर पृथक रूप से विचार करना चाहेंगे या नहीं क्योंकि हमारे पास बहुत कम समय है और सभी संशोधनों को निबटाने का कार्य परसों एक बजे तक समाप्त कर दिया जाना चाहिये। नियमों के अधीन मैं इस कार्य के लिये केवल दो दिन दे सकता था किन्तु सदस्यों की सुविधा के लिये मैंने कुछ समय अधिक दे दिया है और इस कार्य के लिये बुधवार को एक बजे तक का समय रखा है। मैंने यह इसलिये किया है कि मैं समझता हूं कि प्रस्ताव पर प्रारम्भिक विचार-विमर्श पर आज कुछ समय लग जायेगा और यह उचित नहीं होगा कि सदस्यों को सब संशोधनों पर विचार करने के लिये दो दिन से कम समय दिया जाये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यदि कोई

सदस्य अपने किसी संशोधन के सम्बन्ध में बोलना चाहे तो वह कम से कम समय ले ताकि अन्य सदस्यों के लिये अधिक समय मिल सके।

मुझे आशा है कि मसौदा-समिति के संशोधनों के सम्बन्ध में सूची 2 में दिये हुए संशोधनों के अतिरिक्त जो संशोधन हैं वे सब आज उपस्थित कर दिये जायेंगे और कल हम संशोधनों की सूची 2 के संशोधनों को उपस्थित करेंगे। कल हम सभी संशोधनों पर बहस कर सकते हैं। मुझे उन सब पर परसों बारह बजे तक मत लेना चाहिये और एक बजे तक मतदान समाप्त कर देना चाहिये। मैं इस प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहता हूं। मुझे आशा है कि इससे सभी महत्वपूर्ण संशोधनों पर विचार-विमर्श किया जा सकेगा और कार्य शीघ्र समाप्त किया जा सकेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं जानना चाहता हूं कि क्या आज दो बैठकें होंगी।

***अध्यक्ष:** हम कल से प्रत्येक दिन दस बजे से एक बजे तक और फिर तीन बजे से पांच बजे तक बैठेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** आज भी हम ऐसा ही क्यों न करें।

***अध्यक्ष:** जी हां, आज भी हम यही करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): संविधान के दुहराये हुए मसौदे के सम्बन्ध में जो संशोधन हैं उन पर विचार करने के लिये पिछले सत्र में सभा द्वारा स्वीकृत नियमों के अधीन जो समय निश्चित किया गया है उस के बारे में मेरा निवेदन है कि आपको किसी भी नियम को विस्तृत अथवा निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त है।

***अध्यक्ष:** मैंने परसों एक बजे तक का जो समय दिया है उस से अधिक समय देने के लिये मैं तैयार नहीं हूं। उस समय तक मैं जिस नियम को विस्तृत करने की आवश्यकता देखूंगा उसे विस्तृत कर दूंगा।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान्, क्या आप अनुच्छेदों में टेढ़े अक्षरों में छपे हुए सशोधनों को उठाने जा रहे हैं? यदि आप का यह विचार है तो हमारे लिये निश्चित समय में कार्य समाप्त करना कठिन होगा। इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर बिल्कुल नवीन परिवर्तन किये गये हैं और उन पर पहले कभी विचार नहीं किया गया है। कुछ ऐसे परिवर्तन किये गये हैं जिन पर सभा में कभी भी विचार नहीं किया गया है। सदस्य इस प्रकार के परिवर्तनों का विरोध करना चाहेंगे।

***अध्यक्ष:** सदस्य ऐसे प्रश्नों को मेरे निर्णय के लिये छोड़ सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है।

***पंडित लक्ष्मी कांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय के वक्तव्य के सम्बन्ध में औचित्य प्रश्न कैसे उठाया जा सकता है?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय के वक्तव्य के विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है।

***श्री आर. के. सिधवाः** जब सभा के समक्ष कोई प्रश्न ही नहीं है तो औचित्य प्रश्न कैसे उठाया जा सकता है?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से माननीय सदस्य महोदय अन्य सदस्यों के समान कुछ बातें कहना चाहते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैं कार्यवाही में बाधा नहीं डालना चाहता। श्रीमान्, आपने कृपा कर के कहा है कि सभा में इस सत्र में केवल वे संशोधन उपस्थित किये जायें जो मसौदा-समिति के किये हुए संशोधनों से सुसम्बद्ध हों। मेरा निवेदन है कि यह नियम न केवल हमारे संशोधनों को लागू किया जाये बल्कि मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधनों को भी लागू किया जाये। यदि हमारा कोई संशोधन मसौदा-समिति के किये हुए संशोधनों से असम्बद्ध हो तो उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाये। मैं इस से सहमत हूं किन्तु साथ ही, मेरे विचार से, मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित उन संशोधनों को उपस्थित करने की भी आज्ञा नहीं दी जानी चाहिये जो कल रात हमें दिये गये थे। संशोधनों पर संशोधनों के सम्बन्ध में एक ही नियमों का अनुसरण करना चाहिये। हमारे नियमों में मसौदा-समिति द्वारा आगे उपस्थित किये जाने वाले संशोधनों में तथा सदस्यों द्वारा उपस्थित किये जाने वाले संशोधनों में विभेद नहीं किया गया है। इसलिये या तो उन सब को उपस्थित करने की आज्ञा देनी चाहिये या उन सब को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिये। मैं आप से पूछता हूं कि क्या आप मसौदा-समिति द्वारा बाद में भेजे गये संशोधनों पर उसी आधार पर विचार करेंगे जिस आधार पर आप हमारे संशोधनों पर विचार करेंगे।

जहां तक दुहराये हुए मसौदे मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तुत संशोधनों का सम्बन्ध है, कई स्थलों पर परिवर्तनों को नहीं दिखाया गया है। कुछ स्थलों पर उन्हें टेढ़े अक्षरों में छापा गया है। कुछ स्थलों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को दिखाया ही नहीं गया है। इसलिये आपको तथा कार्यालय को यह पता लगाने में बहुत कठिनाई पड़ेगी कि जो संशोधन किये गये हैं उन से हमारे संशोधन सुसम्बद्ध हैं या नहीं। यह एक बहुत कठिन समस्या है। मैं निवेदन करता हूं कि इन सब बातों पर विचार किया जाये।

इस के अतिरिक्त मेरा एक सुझाव है और वह यह है कि जो संशोधन नियमों के अन्तर्गत नहीं आते उन पर मसौदाकार विचार करें। मैं चाहता हूं कि मसौदाकार उन पर विचार करें और यदि वे उन को मान्य हों तो, मेरा निवेदन है कि यद्यपि वे नियमों के अन्तर्गत न आ सकें परन्तु फिर भी उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये। मेरा निवेदन है कि उन से पाठ सुधर सकता है। उन्हें केवल प्रक्रिया-सम्बन्धी-कारणों के आधार पर अनियमित नहीं घोषित करना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि कि मेरी इन बातों पर सावधानी से विचार किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मि. नजीरुद्दीन अहमद ने उन संशोधनों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, जिन की सूचना मसौदा-समिति ने दी है और जो सूची 2 में छपे हुए हैं, मेरे विचार से, मुझे नियमों के अन्तर्गत स्वविवेक से निर्णय करने की जो शक्ति दी गई है वह इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में ही है। मैं उन संशोधनों के सम्बन्ध में तथा अन्य संशोधनों के सम्बन्ध में भी स्वविवेक से निर्णय करूंगा। किन्तु मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों की सूचना दी है उन का अवश्य ही कुछ महत्व है जो महत्व प्रत्येक सदस्य के प्रत्येक संशोधन का नहीं है। इसे दृष्टि में रखते हुए मैं उन संशोधनों पर विचार करूंगा और स्वविवेक से निर्णय करूंगा। यदि में यह देखूंगा कि किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है तो मैं उसे अनियमित घोषित कर दूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, मेरे इस सुझाव के बारे में कि सभी रस्मी संशोधनों पर मसौदा-कार विचार करें और यदि वे उन्हें मान्य हों तो उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये, क्या तय किया गया है?

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस प्रकार के संशोधनों पर मसौदा-समिति विचार करती रही है और यदि उस ने अभी तक उन पर विचार नहीं किया है तो वह अब करेगी। इसी कारण मैं किसी संशोधन पर इस समय मत नहीं लेना चाहता और परसों मत लेना चाहता हूं। इस बीच मसौदा-समिति को उन संशोधनों पर विचार करने के लिये समय मिल जायेगा। यदि वह उन में से किसी संशोधन को स्वीकार करना चाहती है वह स्वीकार कर सकती है अथवा यदि मसौदा-समिति किन्हीं ऐसे संशोधनों को भी स्वीकार करना चाहती है जो पहली श्रेणी के न हों किन्तु संशोधनों पर संशोधन हों तो वह यह भी कर सकती हैं। मैं बुधवार को इन सभी संशोधनों को एक साथ उठाऊंगा। इस कारण मैं इस अवसर पर किसी भी संशोधन पर मत नहीं ले रहा हूं। इस से प्रत्येक व्यक्ति को संशोधनों पर विचार करने के लिए समय मिल जायेगा और प्रत्येक संशोधन पर पूर्ण विचार हो सकेगा।

जहां तक संशोधनों को उपस्थित करने के लिए समय देने का सम्बन्ध है मैं किसी संशोधन के लिए पांच मिनट से अधिक समय नहीं देना चाहूंगा। किन्तु, जैसा कि श्री महावीर त्यागी ने कहा है, यदि कोई संशोधन सारवान संशोधन हो और संविधान-सभा के पहले सत्र में किये हुए निर्णयों के परे हो तो सम्भवत: मैं बहस के लिये कुछ अधिक समय दूंगा। उन संशोधनों पर सम्भव है मैं कुछ लोगों को बोलने की आज्ञा भी दे दूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम** (मद्रास: जनरल): सदस्यों के ऐसे संशोधनों पर भाषण नहीं देना चाहिये जो केवल रस्मी हों।

***अध्यक्ष:** मुझे आशा है कि सदस्य भाषण देने पर जोर नहीं देंगे क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि हमें यह कार्य परसों एक बजे तक समाप्त कर देना है। यदि वे ऐसे संशोधनों पर भाषण देने के लिये आग्रह करेंगे जो न तो आनुषंगिक हों और न आवश्यक ही हों तो जो समय अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार-विमर्श करने में लगाया जा सकता है उसे वे नष्ट करेंगे।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब: जनरल): श्रीमान्, कुछ विषयों के सम्बन्ध मसौदा-समिति के संशोधनों को देख कर प्रत्येक व्यक्ति हतोत्साह हो जाता है। इस सभा के विचारपूर्ण निर्णयों की उपेक्षा कर के संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं और इस प्रकार मसौदा-समिति ने अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया है। सभा ने कुछ संशोधनों को अस्वीकृत कर दिया था किन्तु उन संशोधनों को फिर समाविष्ट कर दिया गया है। मेरा नम्र निवेदन है कि तृतीय पठन के अवसर पर मसौदा-समिति विषयों को इस प्रकार नहीं रख सकती कि सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों का खंडन हो जाये। मेरा नम्र निवेदन है कि जो संशोधन पहले अस्वीकार किये जा चुके हैं और जिन पर सभा में विचार-विमर्श हो चुका है उन्हें तृतीय पठन के अवसर पर फिर नहीं उठाना चाहिये।

मसौदा-समिति को केवल रस्मी और आनुषंगिक संशोधनों को तथा अत्यन्त आवश्यक संशोधनों को करने की आज्ञा दी गई थी। आवश्यक संशोधनों का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि मसौदा-समिति सभा के विचारपूर्ण निर्णयों को दुहराये और इस लिये मेरा नम्र निवेदन है कि जहां तक इन संशोधनों का सम्बन्ध है इन्हें अनियमित घोषित कर देना चाहिये। जब संशोधन आयें तो उन के गुण-दोषों पर विचार कर के निर्णय किया जाये कि उन्हें प्रस्तुत करने की आज्ञा दी जाये या नहीं दी जाये।

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैंने कहा है, मैं प्रत्येक संशोधन के गुण-दोषों पर विचार करूंगा। श्री ठाकुर दास भार्गव ने कोई बात ऐसी नहीं कही है जिस से इस विषय पर फिर विचार करने की आवश्यकता हो। उन्होंने जो कुछ कहा है उस का आशय वही है जिसे मैं व्यक्त कर चुका हूं।

***श्री एच. वी. कामत:** क्या बुधवार 1 बजे तक के लिये अन्तिम रूप से निर्णय कर लिया गया है?

***अध्यक्ष:** श्री हां, वह निर्णय अन्तिम निर्णय है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे मसौदा-समिति का प्रतिवेदन तथा समिति ने संविधान-सभा के नियमों के नियम 38-द के अधीन भारतीय संविधान के जिस मसौदे को दुहराया है उसे उपस्थित करना है श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''भारतीय संविधान के मसौदे के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है उन पर विचार किया जाये।''

श्रीमान्, इस सभा के पिछले सत्र में जो अनुच्छेद पारित किये गये थे उन्हें दुहराने अथवा उन में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है अथवा सिफारिशें की हैं उन पर मैं बहुत लम्बा वक्तव्य नहीं देना चाहता। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि सभा के समक्ष जो लम्बा शुद्धि-पत्र रखा गया है, अथवा सूची 2 में समाविष्ट संशोधनों की जो अनुपूरक सूची रखी गई है, उस के लिये मैं क्षमा-याचना नहीं करता। मेरे विचार से अच्छा तो यह

होता कि मसौदा समिति इस लम्बे शुद्धि-पत्र को तथा सूची 2 में समाविष्ट संशोधनों की अनुपूरक सूची को प्रस्तुत न करती किन्तु सभा को यह समझना चाहिये कि मसौदा समिति को बहुत कम समय में अत्यधिक कार्य करना पड़ा है। इस सभा के सभी सदस्यों को विदित है कि संविधान-सभा का पिछला सत्र 17 अक्तूबर को समाप्त हुआ था। आज 14 नवम्बर है। इस प्रकार संविधान के 395 अनुच्छेदों की परीक्षा करने के वृहत् कार्य को सम्पन्न करने के लिये मसौदा-समिति को पूरा एक महीना भी नहीं मिला। मैंने कहा तो यह है कि मसौदा-समिति को पूरा एक महीना भी नहीं मिला किन्तु यह भी सही वक्तव्य नहीं है क्योंकि नियम 38-द तथा अन्य नियमों के अधीन मसौदा-समिति को संविधान के दुहराये हुए मसौदे को सदस्यों को इस सभा के सत्र के आरम्भ होने से पांच दिन पूर्व देना था। वास्तव में संविधान की प्रतियां 6 नवम्बर को दे दी गईं थी, अर्थात् इस सत्र के आरम्भ होने से लगभग आठ दिन पूर्व दे दी गई थी। इसलिये मसौदा-समिति को आठ दिन और भी कम मिले। इस के अतिरिक्त इस पर भी विचार करना चाहिये कि संविधान के मसौदे को सदस्यों के पास समय पर भेजने के लिये उसे मसौदे को छापेखाने कुछ दिन पूर्व भेजना पड़ा ताकि उस की प्रतियां समय पर मिल सकें। मसौदे को छापेखाने 4 नवम्बर को भेजा गया। मसौदा-समिति के संशोधनों तथा परिवर्तनों को छापने के लिए छापेखाने को वास्तव में एक ही दिन मिला। न तो छापेखाने के लिये और न मसौदा-समिति के लिये और न प्रूफ देखने वाले के लिये यह सम्भव है कि वह एक ही दिन में 395 अनुच्छेदों के ग्रन्थ की सही प्रति प्रकाशित कर सके।

इस कारण से, जो कि एक पर्याप्त कारण है, मसौदा-समिति को एक लम्बा शुद्धि-पत्र निकालना पड़ा ताकि 5 तारीख को छापेखाने से उन्हें जो प्रति प्राप्त हुई थी उस में जो त्रुटियां रह गई थी, या जो अंश टूट गये थे उन की ओर ध्यान आकृष्ट हो सके। इन सब दिनों को निकाल कर यह ध्यान में आ जायेगा कि मसौदा-समिति को इस वृहत् कार्य को सम्पन्न करने के लिये केवल दस दिन मिले थे। चूंकि बहुत कम समय मिला था, अर्थात् केवल दस दिन मिले थे, इसलिये संशोधनों की दूसरी सूची निकालनी पड़ी। यदि मसौदा-समिति को इस विषय पर विचार करने के लिये अधिक समय मिला होता तो न तो शुद्धि-पत्र निकाला जाता और न संशोधनों की अनुपूरक सूची निकाली गई होती। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तुत शुद्धि-पत्र तथा संशोधनों की द्वितीय सूची को पढ़ने में सभा को जो कष्ट होगा उस के लिये वह क्षमा प्रदान करेगी।

श्रीमान्, इस अवसर पर इस की आवश्यकता नहीं है कि मैं इस का विवरण दूं कि मसौदा-समिति ने संविधान के मसौदे में किस प्रकार के संशोधन तथा परिवर्तन किये हैं। प्रतिवेदन के पैरा 2 में बताया गया है कि किस प्रकार के परिवर्तन किये गये हैं। यह देखा जा सकता है कि मसौदा-समिति ने जो परिवर्तन किये हैं उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग के जो

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

परिवर्तन हैं वे अनुच्छेदों, खंडों तथा उपखंडों की पुनर्गणना करने तथा विराम-चिन्हों को दुहराने के सम्बन्ध में हैं। यह बहुत कुछ इस कारण किया गया कि संविधान सभा के पिछले सत्र में जो अनुच्छेद पारित हुए वे यत्र तत्र बिखरे हुए थे और किसी एक विषय के शीर्षक के अधीन नहीं रखे गये थे। इसलिये पाठकों को तथा सभा के सदस्यों को किसी विषय से सम्बन्धित अनुच्छेदों का पूर्ण चित्र देने के लिये मसौदा-समिति ने कुछ अनुच्छेदों को एक भाग से निकाल कर दूसरे भाग में रखना तथा एक अध्याय से निकाल कर दूसरे अध्याय में रखना आवश्यक समझा ताकि उनके यथोचित समूह बन सकें और संविधान के विषय यथोचित रूप में रखें जा सकें। दूसरे वर्ग के जिन परिवर्तनों का प्रतिवेदन में वर्णन है वे केवल रस्मी और आनुषंगिक संशोधन हैं मसौदे के विभिन्न अनुच्छेदों में जहां कहीं ''इस संविधान के'' शब्द आये हैं उन्हें निकालने के सम्बन्ध में इसी प्रकार के संशोधन हैं। कहीं बड़े अक्षर न छाप कर छोटे अक्षर छाप दिये गये थे और उन्हें शुद्ध करना पड़ा है। अन्य भी कुछ परिवर्तन करने पड़े हैं जैसे कि शासक और राजप्रमुख का उल्लेख करना पड़ा है। इस प्रकार के परिवर्तन अन्त में किये गये थे जब कि हम परिभाषा-सम्बन्धी अनुच्छेदों पर विचार कर रहे थे। अन्य परिवर्तनों को संक्षेप में "आवश्यक संशोधन" कहा जा सकता है। ये आवश्यक परिवर्तन दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। कुछ परिवर्तन तो ऐसे हैं जिन से अनुच्छेदों में कोई सारवान परिवर्तन नहीं होता। ये परिवर्तन भी आवश्यक हैं क्यांकि पिछले सत्र में कुछ अनुच्छेद जिस रूप में पारित किये गये उन की भाषा को देखते हुए यह अनुभव किया गया कि उन का आशय स्पष्ट नहीं होता अथवा उन में कुछ कमी रह जाती है। मसौदा-समिति ने इन अनुच्छेदों में बिना कोई सारवान परिवर्तन किये हुए इस कमी को दूर करने का प्रयास किया है। कुछ अन्य अनुच्छेदों में ऐसे आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं जिन से उन में कुछ हद तक सारवान परिवर्तन होता है। यद्यपि ये परिवर्तन सारवान हैं किन्तु मसौदा-समिति ने यह विचार किया है कि इन परिवर्तनों को करना आवश्यक है क्योंकि यदि इन्हें नहीं किया जाता तो पिछले सत्र में ये अनुच्छेद जिस रूप में पारित किये गये थे उस रूप में उन में बहुत से दोष रह जाते तथा कई बातें छूट जाती। यह उचित नहीं समझा गया कि इन्हें इस रूप में रहने दिया जाये और इसलिये मसौदा-समिति ने उन परिवर्तनों को किया है जिन का सुझाव पैरा 2 के खंड (घ) में रखा गया है। मुझे आशा है कि ये परिवर्तन सभा को मान्य होंगे। कुछ सारवान परिवर्तनों की पैरा 4 में पर्याप्त व्याख्या की गई है। इस की आवश्यकता नहीं है कि इन परिवर्तनों के समर्थन में प्रतिवेदन में जो कुछ कहा गया है उसे मैं दुहराऊं।

श्रीमान्, मेरे विचार से मसौदा-समिति के प्रतिवेदन में जो कुछ कहा गया है उस से अधिक और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति ने जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है तथा प्रतिवेदन में और सूची 2 में,

जिन की प्रतियां सदस्यों के पास भेज दी गई हैं, जिन परिवर्तनों की सिफारिश की है उन्हें सभा स्वीकार कर लेगी।

अनुच्छेदों के संशोधन

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर प्रतिवेदन को उपस्थित कर चुके हैं और अब सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है कि मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है उन पर तथा संविधान के मसौदे पर विचार किया जाये.....

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मेरे नाम से एक संशोधन है।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से वह केवल एक शाब्दिक संशोधन ही है।

***श्री एच.वी. कामत:** वह नियम 38-द के सम्बन्ध में है। मैं आधा ही मिनट लूंगा।

***अध्यक्ष:** मैं घड़ी को देखता रहूंगा। आप आधा ही मिनट लें।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं सभा को† संशोधन पढ़ कर नहीं सुनाऊंगा। इस संशोधन को उपस्थित करते हुए मैं केवल मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने जो कुछ कहा है उस का अनुमोदन करना चाहता हूं और यह निवेदन करना चाहता हूं कि उसने ऐसे कार्य किया है जैसे कि उसे विशेष स्वातंत्र्य प्राप्त हो। इसलिए श्रीमान् मेरी आप से प्रार्थना है कि आप कृपा कर के हमारे उन संशोधनों के सम्बन्ध में उदारता से निर्णय करें जो मसौदा-समिति के संशोधनों से भिन्न हैं। मेरा केवल यही निवेदन है।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपने संशोधन के बारे में आप ने कुछ नहीं कहा है। अच्छी बात है .....

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि क्या संशोधन में जो असंख्य शुद्धियां प्रकाशित की गई हैं वे भी सम्मिलित हैं और क्या वे भी संविधान के अंग समझी जायेंगी।

***अध्यक्ष:** शुद्धियां शुद्धियां ही हैं और वे उस में सम्मिलित हैं।

चूंकि श्री कामत ने अपना संशोधन उपस्थित किया है इसलिये मैं पहले उन के संशोधन पर मत लूंगा।

---

†प्रस्ताव में "the amendments recommended by the Drafting Committee in the Draft Constitution of India [भारतीय संविधान के मसौदे में मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है]" शब्दों के स्थान पर "the amendments to the Draft Constitution of India as recommended by the Drafting Committee under sub-rule (1) of Rule 38-R of the Constituent Assembly Rules [भारतीय संविधान के मसौदे में मसौदा-समिति ने संविधान-सभा के नियमों के नियम 38-द के उप-नियम (1) के अधीन जिन संशोधनों की सिफारिश की है]" शब्द रखे जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** चूंकि वह बहुत कुछ मसौदे के शुद्धि के सम्बन्ध में है इसलिये मैं इस पर जोर नहीं देता कि उस पर मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"भारतीय संविधान के मसौदे के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है उन पर विचार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब हम संशोधनों को उठायेंगे। प्रस्तावना। मसौदा-समिति ने प्रस्तावना के सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया है और जो संशोधन प्रस्तावना के सम्बन्ध में है उन्हें मैं नहीं उठाऊंगा। तब हम अनुच्छेद 1 उठायेंगे। एक संशोधन श्री नजीरुद्दीन अहमद और श्री कामत † के नाम से है। श्री कामत क्या आप उसे उपस्थित करना चाहते हैं और क्या उस सम्बन्ध में भाषण भी देना चाहते हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान् जहां तक विराम चिह्न विषयक संशोधनों का सम्बन्ध है, मैं चाहता हूं कि उन पर मसौदाकार ही विचार करें।

***अध्यक्षः** (श्री एच.वी. कामत से) आप का संशोधन भी विराम चिह्न ही के सम्बन्ध में है। आप को स्मरण रखना चाहिये कि आप अधिक महत्वपूर्ण संशोधनों को इस प्रकार कम समय देंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं जानना चाहता हूं कि क्या मसौदा-समिति उसे स्वीकार कर रही है।

***अध्यक्षः** कोई भी किसी संशोधन को स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर रहा है।

***श्री एच. वी. कामतः** सभा ने मसौदे को जिस रूप में स्वीकार किया है, उस रूप में उस में ये शब्द हैं-"इंडिया, अर्थात्, भारत ....." सभा को जो दुहराया हुआ मसौदा दिया गया है उस में कहा गया है-"इंडिया, अर्थात् भारत....." मेरे विचार से जब अनुच्छेद 1 स्वीकार किया गया था तो सभा का उद्देश्य यह नहीं था। आशय यह था—इंडिया, अर्थात्, भारत'। इसी कारण दो कामा रखे गये और उन के बीच में पदावलि रखी गई। आशय,

---

† "अनुच्छेद 1 के खंड (1) में 'that is [अर्थात]' शब्द के पश्चात् एक कामा लगाया जाये और 'Bharat [भारत]' शब्द के पश्चात् जो कामा प्रयुक्त है वह निकाल दिया जाये।"

"इंडिया, अर्थात् भारत" नहीं है। अंग्रेजी के वाक्य का आशय इन विरामों के परिवर्तन से भिन्न हो जाता है। मेरे विचार से मूल-मसौदे में ये शब्द ठीक ढंग से रखे गये थे और मसौदा-समिति ने शब्दों में हेर-फेर कर के गलती की है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मेरा यह सुझाव है कि मेरे जो रस्मी संशोधन हैं वे मसौदाकारों के सामने रखे जायें और यदि वे उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार हों तो मैं उन्हें उपस्थित करूंगा अन्यथा मैं उन्हें उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** उन्हें उन पर विचार करने दीजिये और यदि वे उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार होंगे तो वे उन के उपस्थित न किये जाने पर भी उन्हें स्वीकार कर लेंगे।

अब हम अनुच्छेद 5 उठायेंगे। मसौदा-समिति ने कोई संशोधन नहीं प्रस्तुत किया है इसलिये इन संशोधनों का प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): मैं अपने संशोधन को (संशोधन संख्या 15) नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** उस का आशय अनुच्छेद 4 से पूरा हो जाता है। अनुच्छेद 13, श्री राज बहादुर, संशोधन संख्या 33 ।

***श्री राज बहादुर** (संयुक्त राज्य-मत्स्य): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खंड (3) के उपखंड (क) में,

(1) 'having [में]' शब्द के पश्चात् 'the force of law [विधि के समान प्रभावी]' शब्द रखें जायें।

(2) 'India [भारत]' शब्द के पश्चात् 'or any part thereof [अथवा उस का कोई भाग]' शब्द रखे जायें।

(3) 'the force of law [विधि के समान प्रभावी]' शब्द निकाल दिये जायें।

इस अनुच्छेद का आशय स्पष्ट करने के लिये ही मैं इस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 14 उठायेंगे। मि. नजीरुद्दीन अहमद।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को रस्मी तौर पर उपस्थित नहीं करना चाहता किन्तु केवल एक दो बातें मसौदाकारों के विचारार्थ कहना

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

चाहता हूं। अनुच्छेद 12 तथा अनुच्छेद 36 में ''राज्य'' शब्द की एक ही परिभाषा की गई है। इस कारण इन दो स्थलों में यह शब्द समानार्थक है। इसलिये हम यह कहते हैं कि ''राज्य को अमुक अधिकार है'' इत्यादि। यदि हम यह स्मरण रखें कि ''राज्य'' शब्द की अनुच्छेद 12 और 36 में जो परिभाषा की गई है उसमें केवल भारत सरकार ही सन्निहित नहीं है बल्कि प्रान्तों की सरकारें, देशी राज्यों की सरकारें, जिला बोर्ड, नगरपालिकाएं, स्थानीय बोर्ड तथा संघीय बोर्ड आदि भी सन्निहित हैं तो हम देखेंगे कि 'राज्य' शब्द के अन्तर्गत इस प्रकार की हजारों संस्थाएं आ जायेंगी। चूंकि हमने अनुच्छेद 37 से आरम्भ होने वाले तथा अनुच्छेद 50 में समाप्त होने वाले भाग 4 में प्रयुक्त इस शब्द की परिभाषा की है इसलिये हमने ''राज्य करेगा'' आदि पदावलियां प्रयोग की हैं।

यदि हम एक ही राज्य की चर्चा करते तो ''राज्य'' शब्द का प्रयोग उपयुक्त होता। चूंकि बहुत से राज्य होंगे और चूंकि हम ''यह राज्य'', ''वह राज्य'', ''कोई राज्य'', ''प्रत्येक राज्य'' आदि पदावलियों को प्रयोग करना चाहेंगे इसलिये हमें प्रसंगानुसार इन पदावलियों को प्रयोग करने की स्वतंत्रता प्रदान करने के लिये परिभाषा में जो ''दी'' शब्द रखा गया है वह निकाल दिया जाये। ''वह'', ''कोई'', ''प्रत्येक'' शब्द प्रसंगानुसार काम में लाये जा सकते हैं और उन्हें प्रयोग करने में परिभाषा से कोई बाधा नहीं होनी चाहिये। मैं अपने संशोधन को उपस्थित नहीं करना चाहता। जैसा कि मैं कह चुका हूं यह मसौदे की शुद्धि का प्रश्न है और इसे मसौदा-समिति के विचारार्थ छोड़ा जा सकता है। यदि वह इन संशोधनों को स्वीकार करने के लिये तैयार हो गई तो यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि इन्हें उपस्थित कर दिया गया है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 35 और 36 उपस्थित नहीं किये गये हैं। हम अब अनुच्छेद 18 को उठायेंगे।

मि. नजीरुद्दीन अहमद, आपने जो कुछ कहा है वह संशोधन संख्या 54 के सम्बन्ध में भी पर्याप्त है, क्यों?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** जी हां।

(संशोधन संख्या 55 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष** अब हम अनुच्छेद 22 को उठायेंगे। श्री शिब्बन लाल सक्सेना।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): श्रीमान, खण्ड (4) और खण्ड (7) के सम्बन्ध में मेरे कुछ संशोधन हैं।

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) में 'No law providing for preventive detention [निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि]' शब्दों के स्थान पर 'Nothing in sub-clause (b) of clause (3) [खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) की कोई बात]' शब्द, कोष्ठक, अक्षर तथा अंक रखे जायें और खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) के अन्त में ये शब्द रखे जायें:—

'authorising such longer detention [जिन के द्वारा अधिक निरुद्ध रखने के लिये प्राधिकार दिया गया हो]' "

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 22 के खंड (7) में से 'for a poriod longer than three months [तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये]' शब्द निकाल दिये जायें।"

मैं केवल यह चाहता हूं कि खंड (4) की पदावलि में सुधार किया जाये और खण्ड (7) में से ''तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये" शब्द निकाल दिये जायें। संसद् को निरोध की अल्प कालावधि अथवा दीर्घ कालावधि निर्धारित करने के लिये विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** श्री सक्सेना, क्या संशोधन संख्या 82 एक पूर्व निर्णय का खंडन नहीं करता?

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** इस का अर्थ यह है कि संसद् तीन महीने से कम कालावधि अथवा तीन महीने से अधिक कालावधि विधि द्वारा निर्धारित कर सकती है। मैं नहीं चाहता कि कार्यपालिका इस शक्ति को प्रयोग करे।

***अध्यक्ष:** खण्ड (4) में इसे स्थान देकर उस का पाठ कैसा हो जायेगा?

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** वह इस प्रकार हो जायेगा–

"संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन इत्यादि।"

मैं यह चाहता हूं कि संसद को लोगों को तीन महीने से कम कालावधि के लिये, अथवा तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये, लोगों को निरुद्ध करने के सम्बन्ध में सरकार को प्राधिकार प्रदान करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इस खंड के अधीन संसद को तीन महीने से कम कालावधि के लिये विधि बनाने की शक्ति प्राप्त नहीं होगी।

(संशोधन संख्या 83 और 84 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** जब हम अनुच्छेद 31 उठायेंगे।

(संशोधन संख्या 115 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, अपने संशोधन संख्या 116 के सम्बन्ध में सभा का, मसौदा-समिति का तथा विशेष रूप से मसौदाकारों का ध्यान 'भारत सरकार' पदावलि के प्रयोग की ओर आकृष्ट करता हूं। वास्तव में यह पदावलि "भारत डोमीनियन'' पदावलि से विभेद करने के लिये प्रयोग की गई है। मेरा निवेदन है कि "भारत-डोमीनियन'' पदावलि केवल उस कालावधि के सम्बन्ध में है जो 15 अगस्त 1947 से आरम्भ होती है और 25 जनवरी 1950 को समाप्त होती है। उस के पूर्व हम "भारत सरकार'' पदावलि प्रयोग करते थे। जब तक डोमीनियन की हैसियत प्राप्त नहीं हुई तब तक के लिये सरकार को ''भारत सरकार'' कहना चाहिये। जब से हमारा देश डोमीनियन नहीं रहा तब से सरकार को ''संघ सरकार'' अथवा ''संघ की सरकार'' कहना चाहिये। यह हम जो कुछ निर्धारित कर आये हैं उस के अनुरूप होगा। अनुच्छेद 300 के खण्ड (1) में तथा अन्यत्र हम ने ''भारत संघ'' शब्द प्रयोग किये हैं। कुछ अनुच्छेदों में हम ने ''संघ के कार्य'' पदावलि भी प्रयोग की है। अन्यत्र भी हम ने ''संघ'' शब्द रखा है। इस प्रकार भारत सरकार को हम ने संघ कहा है। इस लिये मेरा निवेदन है कि हम ''भारत सरकार'' पदावलि को नहीं प्रयोग करें क्योंकि उस से डोमीनियन के पूर्व की सरकार का बोध होता है और किसी स्पष्ट पदावलि को प्रयोग करें। यह पदावलि ''संघ सरकार'' अथवा "भारतीय संघ की सरकार'' ही हो सकती है। हम अनुच्छेद 1 में कह आये हैं कि भारत राज्यों का संघ होगा। इस लिये हम जिस नई व्यवस्था को स्थापित करने जा रहे हैं उस में ''भारत सरकार'' पदावलि के स्थान पर ''संघ सरकार'', अथवा "भारतीय संघ की सरकार'' अथवा अन्य किसी पदावलि का प्रयोग करें। मैंने कुछ संशोधनों का सुझाव रखा है। मैं यह चाहता हूं कि इस पर मसौदा-समिति ही विचार करे।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 117—श्री सिधवा।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं समझता हूं, कि मसौदा समिति ने जिस ''अन्यथा'' शब्द का सुझाव रखा है उस से मेरे संशोधन का आशय पूरा हो जाता है। इस लिये मैं अपने संशोधन को नहीं उपस्थित करना चाहता।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 118 उठाता हूं, जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, संशोधन संख्या 118 के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि वह केवल मसौदे की शुद्धि के सम्बन्ध में है और मैं उसे मसौदाकारों के विचारार्थ अलग रख रहा हूं।

***अध्यक्ष:** अब हमारे सामने अनुच्छेद 34 आता है। वह एक नवीन अनुच्छेद है। इस के सम्बन्ध में बहुत से संशोधन आये हैं। श्री दास। यह संशोधन अनुच्छेद निकाल देने के सम्बन्ध में है।

***श्री बी. दास:** श्रीमान, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, उसे मैं उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या आप इस अनुच्छेद को निकालने के सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित करना चाहते हैं?

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** जी हां, श्रीमान। यह अनुच्छेद 34 एक नवीन अनुच्छेद है। इस में कहा गया है कि जब सेना-विधि प्रवृत कर दी जायेगी उस समय संसद को पदाधिकारियों को तारण देने की शक्ति प्राप्त होगी। मेरे विचार से यह नवीन अनुच्छेद अनियमित घोषित कर देना चाहिये। इसे सभा ने पहले कभी पारित नहीं किया था। इस के अतिरिक्त इस अनुच्छेद को रखने से वे पदाधिकारी, जो सेना-विधि वाले क्षेत्र में काम करेंगे ज्यादती करने के लिये प्रोत्साहित होंगे क्योंकि वे समझेंगे कि संसद-निर्मित अधिनियम से उन का तारण हो जायेगा। इस कारण मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद को रखना उचित नहीं है। जब कभी सेना-विधि प्रवर्तन में लाई जाये वह तत्सम्बन्धी विधि के अन्तर्गत ही प्रवर्तन में लाई जाये। वह तत्सम्बन्धी विधि का अतिक्रमण करके प्रवर्तन में न लाई जाये। इस लिये, मेरे विचार से इस अनुच्छेद की आवश्यकता नहीं है और इसे संविधान से निकाल देना चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं। यह अनियमित भी है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 34 निकाल दिया जाये।"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, क्या मैं इस संशोधन पर बोल सकता हूं?

***अध्यक्ष:** सभी संशोधनों के उपस्थित किये जाने के पश्चात् ही सदस्य बोल सकेंगे।

संशोधन संख्या 122, श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं तीनों संशोधनों को एक साथ उपस्थित कर सकता हूं?

***अध्यक्ष:** जी हां।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 122, 123 और 124 को उपस्थित करता हूं।

"अनुच्छेद 34 से 'or any other person [अथवा किसी अन्य व्यक्ति को]' शब्द निकाल दिये जायें।''

"अनुच्छेद 34 में 'order [व्यवस्था]' शब्द के स्थान पर 'public-order [लोक-व्यवस्था]' शब्द रखे जायें।"

[श्री एच.वी. कामत]

अन्तिम संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 124, इस प्रकार है:

''अनुच्छेद 34 में 'done under martial law [सेना-विधि के अधीन]' शब्दों के स्थान पर 'done by such person under martial law [जो उस व्यक्ति ने सेना विधि के अधीन]' शब्द रखे जायें।''

श्रीमान, मैं आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जैसा कि श्री शिब्बन लाल सक्सेना भी चाहते हैं, मैं इस का स्वागत करूंगा कि संविधान में कहीं भी सेना-विधि का उल्लेख न हो। देश में लोक-व्यवस्था तथा सुख शान्ति बनाये रखने के लिये संविधान में पर्याप्त उपबन्ध हैं। हम संविधान के अध्याय 1 को स्वीकार कर चुके हैं, जिस में आपात सम्बन्धी उपबन्ध भी हैं। यदि हम यह मान लेते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब सेना-विधि की घोषणा करना आवश्यक हो जायेगा तो इस का कुछ परिणाम भी अवश्य ही होगा। सेना-विधि को प्रवृत्त करने में कई कार्य किये जाते हैं। हम सभी जानते हैं कि सेना-विधि किस प्रकार प्रवृत्त की जाती है। अधिकारी कई ऐसे कार्य करते हैं जो वास्तव में संविधान के अधीन निमित विधि के अनुसार अवैध होते हैं और इस लिये बाद में उन का तारण करने की आवश्यकता होती है ताकि उन्हें उन कार्यों के लिये कोई दंड न दिया जा सके। इसी को दृष्टि में रख कर मैने सभा के समक्ष ये संशोधन उपस्थित किये हैं।

मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 34 को जिस रूप में रखा है उस में संघ अथवा किसी राज्य की सेवा में किसी व्यक्ति को अथवा किसी अन्य व्यक्ति को तारण देने का प्रयास किया गया है। मैं यह नहीं चाहता कि हम इतना आगे बढ़ें कि किसी भी व्यक्ति को तारण दे दें। संघ अथवा किसी राज्य की सेवा में जो व्यक्ति है उन के सम्बन्ध में हम अपवाद कर सकते हैं। किन्तु जिस परिवर्तन का प्रस्ताव रखा गया है उस के अधीन इस आशय के एक उपबन्ध को सभी को लागू किया जा रहा है। इस प्रकार के किसी उपबन्ध का बहुत विस्तृत प्रभाव होगा और इसे संविधान में स्थान नहीं देना चाहिये। इस उद्देश्य से मैंने एक संशोधन उपस्थित किया है जिस का आशय यह है कि ''अथवा किसी अन्य व्यक्ति को'' शब्द निकाल दिये जायें। यदि हमें तारण देना ही है तो हम केवल उन व्यक्तियों को तारण दें जो संघ की अथवा अन्य किसी राज्य की सेवा में हों और केवल उस काल के लिये तारण दें जब कि उन के क्षेत्र में सेना विधि प्रवर्तन में रही हो।

मेरे अन्य दो संशोधन बहुत कुछ रस्मी संशोधन हैं। पहले संशोधन द्वारा अनुच्छेद की पदावलि 34 को अनुच्छेद 33 की पदावलि के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया है। इस अनुच्छेद में ''लोक व्यवस्था'' शब्द प्रयुक्त हैं। मैंने यह सुझाव रखा है कि यह अनुच्छेद भी अनुच्छेद 33 के अनुरूप हो और इस में जो ''व्यवस्था'' शब्द प्रयुक्त है उस के स्थान पर 'लोक-व्यवस्था'' शब्द रखे जायें।

अनुच्छेद 34 के प्रथम भाग की शब्दावलि को देख कर ही अन्तिम संशोधन उपस्थित किया गया है। जब हम संघ की अथवा किसी राज्य की सेवा में किसी व्यक्ति के

कार्यों की चर्चा करते हैं तो अनुच्छेद के अन्तिम भाग में भी इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है और हम कहते हैं उस व्यक्ति के कार्य। इस लिये मेरे विचार से ''उस'' शब्द रखा जाना चाहिये ताकि अनुच्छेद के पहले भाग में उल्लिखित लोक-सेवकों के कार्यों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के कार्य नहीं समझे जायें।

श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 122, 123 और 124 उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि उन पर सावधानी से विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** चूंकि यह एक बिल्कुल ही नवीन अनुच्छेद है इस लिये प्रश्न यह उठता है कि मैं उसे संशोधन के रूप में उपस्थित करने की आज्ञा दूं या न दूं। मेरे विचार से सभी लिखित और अलिखित संविधानों में, यद्यपि मैं यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता परन्तु मेरा यह विचार है कि सभी संविधानों में सेना-विधि के प्रवृत होने के पश्चात् इस प्रकार के तारण सम्बन्धी अधिनियम बनाने के बारे में उपबन्ध होते हैं। यदि हम अपने संविधान में सेना-विधि के प्रवर्तन-काल में किये हुए कार्यों के लिये तारण देने के सम्बन्ध में उपबन्ध नहीं रखेंगे तो कठिनाई उठ खड़ी होगी। इस लिये मैं मसौदा-समिति के इस संशोधन को नियमित घोषित करता हूं।

जो अन्य संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन के सम्बन्ध में अब बहस की जा सकती है। यदि सदस्य चाहें तो वे अब इस अनुच्छेद पर तथा उपस्थित किये गये संशोधनों पर बोल सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस नवीन अनुच्छेद का समर्थन करने के लिये उठा हूं। जो बातें कही गई हैं और जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उन्हें मैं नहीं दुहराऊंगा क्योंकि श्रीमान्, आप इस अनुच्छेद को नियमित घोषित कर चुके हैं। मसौदा-समिति को आवश्यक संशोधनों का सुझाव रखने की शक्ति दी गई थी। इस लिये मेरे विचार से उस ने अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नहीं किया है। मेरे विचार से जब देश में क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी तो सरकार को सेना-विधि प्रवृत्त करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा असाधारण स्थितियों में देश की साधारण विधि का आश्रय नहीं लिया जा सकता। क्रान्ति की स्थिति उत्पन्न होने पर ही सेना-विधि प्रवृत्त की जाती है। क्रान्ति की स्थिति का निराकरण क्रान्ति के उपायों से ही हो सकता है। सभी अधिकारियों के मुक्त हो जाने का खतरा कोई विशेष खतरा या गम्भीर खतरा नहीं है। मैं यह इस लिये कह रहा हूं कि संसद को ऐसे मामलों का पुनर्विलोकन करने की शक्ति प्राप्त है। यदि किसी अधिकारी ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया हो, अथवा सेना-विधि की आवश्यकताओं के लिये जितनी कठोरता की आवश्यकता थी उस से अधिक कठोरता की हो, तो संसद् इस प्रकार के अधिकारियों को तारण नहीं देगी। जिन अधिकारियों ने मनमाने ढंग से कार्य किया हो उन के आचरण का पुन:विलोकन करने का संसद् को पूर्ण अधिकार है। सेना-विधि के प्रवर्तन में आने पर देश में जो स्थिति उत्पन्न हो गई हो उस का निराकरण मनमाने ढंग से ही किया जा

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

सकता है। मैं इस उपबन्ध का समर्थन करता हूं और वह केवल इस कारण नहीं कि संसार के अन्य संविधानों में भी इस प्रकार के उपबन्ध हैं बल्कि इस कारण भी कि यह एक आवश्यक तथा न्यायोचित उपबन्ध है। अपने देश के राजनैतिक जीवन को ध्यान में रखते हुए मैं इस अनुच्छेद का हृदय से समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या इस सम्बन्ध में और भी कोई सदस्य बोलना चाहते हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी नहीं।

***अध्यक्ष:** अब हम आगे का अनुच्छेद उठायेंगे। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर अन्त में उत्तर देंगे।

हम अनुच्छेद 35 तथा श्री कामत के संशोधन को उठाते हैं। किन्तु मेरे विचार से वह एक शाब्दिक संशोधन ही है?

***श्री एच.वी. कामत:** जी हां, श्रीमान। मैं चाहता हूं कि उस पर मसौदा-समिति ही स्वविवेक से निर्णय करे।

***अध्यक्ष:** तब हमें अब अनुच्छेद 47 उठाना होगा। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में श्री कामत तथा मि. नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 140 है।

***श्री एच.वी. कामत:** जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं चाहता हूं कि उस पर मसौदा-समिति ही विचार करे।

***अध्यक्ष:** वह उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 48 में 'improving the breeds of milch and draught cattle including cows and calves and for prohibiting their slaughter [दुधारू और वाहक ढोरों की, जिन में गाय और बछड़े भी सम्मिलित हैं, नस्ल को सुधारने तथा उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये]' शब्दों के स्थान पर 'preserving and improving the breeds of cattle and prohibit the slaughter of cows and other useful cattle especially milch and draught cattle and their young stock [ढोरों की नस्ल के परिरक्षण और सुधारने के लिये अग्रसर होगा और गायों के अन्य उपयोगी ढोरों के, विशेषत: दुधारू और वाहक ढोरों के तथा उन के बछड़ों के वध का प्रतिषेध करेगा]' शब्द रखे जायें।"

इस स्थल पर भी यह देखा जा सकता है कि इस सभा ने मूल अनुच्छेद जिस रूप में स्वीकार किया था उस में सारवान परिवर्तन किया गया है श्रीमान, मूल अनुच्छेद इस प्रकार था:

''राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संघटित करने का प्रयास करेगा तथा ढोरों की नस्ल के परिरक्षण और सुधारने के लिये अग्रसर होगा और गायों तथा अन्य उपयोगी ढोरों के वध का, विशेषत: दुधारू और वाहक ढोरों तथा उन के बछड़ों के वध का, प्रतिषेध करेगा।"

इस प्रकार मूल अनुच्छेद में कहा गया है कि "राज्य गायों के वध का प्रतिषेध करेगा।" वर्तमान अनुच्छेद में इसे अशक्त शब्दों में कहा गया गया है। वह इस प्रकार है:

"राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संघटित करने का प्रयास करेगा तथा दुधारू और वाहक ढोरों की, जिन में गाय और बछड़े भी सम्मिलित हैं, नस्ल को सुधारने तथा उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा।"

इस प्रकार इस में यह नहीं कहा गया है कि "राज्य गायों के वध का प्रतिषेध करेगा।" इस में कहा गया है कि ''वह दुधारू और वाहक ढोरों की, जिन में गाय भी सम्मिलित हैं, नस्ल को सुधारने तथा उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा।'' मूल अनुच्छेद में कहा गया है कि वह गायों तथा अन्य उपयोगी ढोरों के वध का, विशेषत: दुधारू और वाहक ढोरों के वध का प्रतिषेध करेगा। यह एक सारवान परिवर्तन है और मेरे विचार से मसौदा-समिति को एक ऐसे विषय के सम्बन्ध में इस प्रकार का परिवर्तन करने का प्राधिकार नहीं दिया गया था जो एक आधारभूत विषय है और जिस के विषय में बहुत उत्तेजना-पूर्ण बहस हो चुकी है। एक लम्बी बहस के पश्चात् यह निर्णय किया गया था। मेरे विचार से किसी व्यक्ति को इस प्रकार का परिवर्तन करने और मूल शब्दों के स्थान पर अन्य शब्द रखने का अधिकार नहीं है। मैं अपील करता हूं कि मूल शब्द ही रखे जायें। यह परिवर्तन अनियमित है क्योंकि मसौदा-समिति को ऐसा कोई परिवर्तन करने का अधिकार नहीं दिया गया था जैसा कि उस ने इस अनुच्छेद में किया है।

***अध्यक्ष:** पंडित भार्गव, क्या आप के संशोधन का आशय बहुत कुछ प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के संशोधन से पूरा नहीं हो जाता?

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** उस का आशय अंशत: पूरा होता है किन्तु कुछ अन्य बातें भी हैं। चूंकि मेरा संशोधन संख्या 142 ठीक उसी प्रकार नहीं है जैसा कि प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन है इस लिये इसे उपस्थित करने के लिये मैं आप की अनुमति चाहता हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 48 में 'milch and draught cattle including cows and calves and for prohibiting their slaughter [दुधारू और वाहक ढोरों की, जिन

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

में गाय और बछड़े भी सम्मिलित हैं, नस्ल को सुधारने तथा उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा], शब्दों के स्थान पर cattle and prohibit the slaughter of cows and other useful cattle specially milch and draught cattle and their young stock [ढोरों की नस्ल सुधारने के लिये अग्रसर होगा और गायों के और अन्य उपयोगी ढोरों के, विशेषत: दुधारू और वाहक ढोरों के तथा उन के बछड़ों के वध का प्रतिषेध करेगा]' शब्द रखे जायें।"

यदि आप की अनुमति हो तो मैं यह भी उपस्थित करना चाहता हूं कि:

"अनुच्छेद 48 में 'for prohibiting their slaughter [उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा]' शब्दों के स्थान पर 'prohibit the slaughter of such cattle [ऐसे ढोरों के वध का प्रतिषेध करेगा]' शब्द रखे जायें।' "

अथवा, विकल्पत:

"अनुच्छेद 48 में 'and for prohibiting their slaughter [और उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा]' शब्दों के स्थान पर 'and prohibit their slaughter [और उन के वध का प्रतिषेध करेगा] शब्द रखे जायें।"

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं सभा को पहले यह स्मरण कराना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद पर सभा में काफी उत्तेजनापूर्ण बहस हो चुकी है। इस अनुच्छेद को सारी सभा ने तथा इस सभा के सब से बड़े दल ने मंजूर किया है। इस के अतिरिक्त श्रीमान, मैं बिना किसी के विशेषाधिकार में हस्तक्षेप किये हुए यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद का मसौदा-समिति के सभापति महोदय ने भी अनुमोदन किया था। मूल अनुच्छेद की शब्दावलि बिल्कुल भिन्न थी। हम ने बहुत-समझ बूझ कर मसौदा तैयार करने का कार्य ऐसे लोगों को सौंपा था जो कार्य निपुण थे ताकि उस पर कोई व्यक्ति आपत्ति न कर सके। मूल मसौदा बहुत सशक्त था किन्तु उसे अन्त में यह रूप दिया गया। जब इस सम्बन्ध में सभा में बहस हुई थी तो यह पूर्ण रूप से बता दिया गया था कि ये शब्द किन कारणों से रखे जा रहे हैं। मेरा निवेदन है कि इस प्रकार के विषय के सम्बन्ध में, जब कि किसी अनुच्छेद का समर्थन और विरोध होने के पश्चात वह पारित कर दिया गया हो, कोई कारण नहीं है कि मसौदा समिति उस की शब्दावलि में हेरफेर करे। इसके अतिरिक्त, सभा को स्मरण होगा कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कई अन्य संशोधन भी उपस्थित किये गये थे। सेठ गोविन्द दास ने धार्मिक दृष्टि से एक संशोधन उपस्थित किया था किन्तु वह स्वीकार नहीं किया गया। मेरा निवेदन है कि मेरे लिये इस अनुच्छेद का प्रत्येक शब्द पवित्र है और वह इस अर्थ में कि

उसे सारी सभा ने स्वीकार किया है। मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद के आधार पर कुछ प्रान्तीय सरकारें कार्यवाही कर चुकी हैं। उन्होंने गो-वध का प्रतिषेध किया है। इसलिये जब इस अनुच्छेद को कुछ प्रान्त बहुत कुछ कार्यान्वित भी कर चुके हैं, यह उचित नहीं है कि इसकी शब्दावलि में हेरफेर किया जाये।

उस अनुच्छेद के सम्बन्ध में, जो अब संशोधित रूप में हमारे सामने रखा गया है, मेरा निवेदन है कि उस पर विचार किया जाये। अब वह अनुच्छेद इस रूप में है:

> ''राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संघटित करने का प्रयास करेगा तथा दुधारू और वाहक ढोरों की, जिन में गाय और बछड़े भी सम्मिलित हैं, नस्ल को सुधारने.....''

मूल अनुच्छेद में ''ढोरों की नस्ल के परिरक्षण और सुधारने के लिये.....'' शब्द प्रयुक्त थे। मेरा निवेदन है कि ''ढोरों की नस्ल सुधारने'' शब्दों का आशय ''ढोरों की नस्ल के परिरक्षण और सुधारने'' शब्दों के आशय से भिन्न है। यह कहा जा सकता है कि जब तक किसी नस्ल का परिरक्षण नहीं किया जाये तब तक वह सुधारी नहीं जा सकती है किन्तु यह कथन, मेरे विचार से गलत है।

हो सकता है कि सुधारने के लिये किसी नस्ल को नष्ट करना पड़े। कुछ लोग यह तर्क भी उपस्थित कर सकते हैं कि ढोरों की एक नस्ल नष्ट कर दी जाये ताकि अन्य नस्लों में सुधार हो सके। यह बहुत सूक्ष्म और महत्वपूर्ण विषय है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** आखिर 'प्रतिषेध'' का आशय क्या है? उस का अर्थ परिरक्षण ही है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** जब दुर्भिक्ष पड़ता है तो सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह कुछ नस्लों का परिरक्षण करे भले ही वह उन्हें सुधार न सके। इस प्रकार इन शब्दों का एक विशेष अर्थ है। इन में हेर-फेर नहीं करना चाहिये।

अब मैं उस विषय को उठाता हूं जिसकी ओर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। वे यह कहते हैं कि ''प्रतिषेध'' शब्द प्रयुक्त है और उस में परिरक्षण सन्निहित है। यदि वे इस अनुच्छेद को पढ़ें तो वे देखेंगे कि इस प्रतिषेध शब्द को भी कुछ हेर-फेर के साथ रखा गया है। अब ये शब्द रखे गये हैं।

''दुधारू और वाहक ढोरों की, जिन में गाय और बछड़े भी सम्मिलित हैं, नस्ल को सुधारने तथा उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा।'' यदि ये ''उन के'' शब्द गायों और बछड़ों के सम्बन्ध में हैं तो सांडों, बैलों, और भैंसों का क्या होगा? यदि वे दुधारू और वाहक ढोरों के सम्बन्ध में है तो इस प्रश्न

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

पर विचार करना होगा कि दुधारू ढोर किन्हें कहते हैं। इसके अतिरिक्त ''दुग्धहीन'' ढोर दुधारू ढोरों के अन्तर्गत नहीं आते। इस के अतिरिक्त वाहक ढोर कौन कहे जायेंगे? इस सम्बन्ध में अवश्य ही कठिनाई उठ खड़ी होगी। मेरा नम्र निवेदन है कि यदि अनुच्छेद 38-क को यथोचित रूप से पढ़ा जायेगा तो उस का यही अर्थ लगाया जायेगा कि कम से कम गायों और बछड़ों के वध का पूर्ण प्रतिषेध है। जो शब्द प्रयुक्त हैं वे ये हैं कि ''और गायों के वध का प्रतिषेध करेगा''। उपयोगिता का प्रश्न वाहक ढोरों के सम्बन्ध में उठता है। उपयोगी ढोरों का वध नहीं किया जाना चाहिये। अब प्रश्न यह है कि उपयोगी ढोर किन्हें कहा जायेगा संशोधन में ''उपयोगी'' शब्द नहीं प्रयुक्त है। सभा को स्मरण होगा कि सरकार ने एक समिति नियुक्त की थी और उस समिति के प्रतिवेदन को सरकार ने स्वीकार किया था। इस समय सरकार उपयोगी ढोरों के परिरक्षण के लिये तथा उन के वध का प्रतिषेध करने के लिये वचनबद्ध है। इस प्रकार के ढोरों के सम्बन्ध में कुछ विधेयक विधान-सभा के विचाराधीन हैं।

यदि आप शब्दावलियों की तुलना करें तो आप देखेंगे कि मूल-अनुच्छेद में ये शब्द प्रयुक्त हैं:

> ".....ढोरों की नस्ल के परिरक्षण और सुधारने के लिये अग्रसर होगा और गायों तथा अन्य उपयोगी ढोरों के वध का, विशेषत: दुधारू और वाहक ढोरों तथा उन के बछड़ों के वध का प्रतिषेध करेगा।''

ये शब्द निकाल दिये जायेंगे और इनके स्थान पर ये शब्द रखे जायेंगे:—

> ".....उनके वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा।" मेरा नम्र निवेदन है कि यद्यपि इन दो शब्दावलियों में अधिक अन्तर नहीं है किन्तु ''करेगा'' शब्द से जो जोर पड़ता था उस के कारण संविधान में यह निर्देशक सिद्धान्त एक अनिवार्य सिद्धान्त का रूप धारण कर लेता था किन्तु अब वह बात नहीं रह गई है। मेरा निवेदन है कि यह अनुच्छेद पहले जिस रूप में था उस में हेर-फेर नहीं किया जाये और इसे उसी रूप में रहने दिया जाय। डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को पहले जिस रूप में रखा था वह इस का ठीक रूप था। अब यदि वे शब्दावलि में हेर-फेर करेंगे तो मेरा निवेदन है कि उस से अर्थ भी बदल जायेगा। इस दृष्टि से मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि इस अनुच्छेद में परिवर्तन नहीं किया जाये। यह एक बहुत नाजुक मामला है। जिस अनुच्छेद को अन्य सदस्य धार्मिक दृष्टि से रखना चाहते थे उस के स्थान पर हम ने इस अनुच्छेद को रखा है। यह अब एक उपयोगी धारा के रूप में ही रह गया है किन्तु फिर भी इस में करोड़ों लोगों की भावनाएं अन्तर्ग्रस्त हैं।

मैं संशोधन संख्या 144 के सम्बन्ध में दो शब्द और कहूंगा। "और उनके वध" शब्दों के कई अर्थ लगाये जा सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि वे गायों

और बछड़ों के सम्बन्ध में प्रयुक्त है और यह भी कहा जा सकता है कि वे दुधारू और वाहक ढोरों के सम्बन्ध में प्रयुक्त है। चाहे इन शब्दों का इन में से कोई अर्थ क्यों न हो, अथवा दोनों अर्थ क्यों न हों, ये दोनों अर्थ आपत्तिजनक हैं। मेरा आप से निवेदन है कि आप मूल अनुच्छेद 38-क के इस से कहीं अधिक विस्तृत आशय पर विचार करें जिस में ये दो अर्थ भी निहित हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि उस से जनसाधारण की आशा पूरी नहीं होती किन्तु उस अनुच्छेद को सभा ने एक समझौते के पश्चात् रखा था। इस समझौते में हस्तक्षेप न किया जाये।

***अध्यक्ष:** मि. नजीरुद्दीन।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं अपना संशोधन नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन इस अनुच्छेद पर, अथवा संशोधनों पर बोलना चाहते हैं?

तब हम अनुच्छेद 53 को उठायेंगे। संशोधन संख्या 151, श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 151 और 152 को उपस्थित करता हूं। संशोधन संख्या 151 इस प्रकार है।

"अनुच्छेद 53 के खंड (1) में 'this Constitution [इस संविधान]' शब्दों के स्थान पर 'the Constitution [संविधान]' शब्द रखा जाये।"

संशोधन संख्या 152 इस प्रकार है:

''अनुच्छेद 53 के खंड (1) में 'Constitution [संविधान]' शब्द के पश्चात् 'and the law [और विधि] शब्द रखे जायें।"

यदि सभा मेरे संशोधनों को स्वीकार कर लेगी तो अनुच्छेद 53 का खंड (1) इस प्रकार हो जायेगा:-

"संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इस का प्रयोग संविधान और विधि के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा।"

सभा के पिछले सत्र में हमने इस अनुच्छेद को इसी रूप में स्वीकार किया था। मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदा-समिति इस अनुच्छेद के इस खंड में आखिर इन परिवर्तनों को क्यों करना चाहती है। मसौदा-समिति ने जिन परिवर्तनों का सुझाव रखा है उन में कोई सार नहीं है। आइये, हम इस खंड की सावधानी से परीक्षा करें। यदि इस खंड में केवल संघ के राष्ट्रपति का उल्लेख होता तो सम्भवत: इस देश की विधि का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि राष्ट्रपति संविधान के अनुसार ही कार्य करेगा और हम ने एक अनुच्छेद इस आशय का भी रखा है कि संविधान का अतिक्रमण करने के लिये राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जायेगा। पिछले सत्र में पूर्वोक्त शब्दों को विशेष रूप से रखा गया था। मसौदा-समिति ने प्रस्तुत किया था तथा सभा ने स्वीकार किया था। वे शब्द कौन से थे?

[श्री एच.वी. कामत]

"...राष्ट्रपति..... या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा।''

हम ने इन शब्दों का विरोध किया था और कहा था कि ये शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं किन्तु मसौदा-समिति के इस सम्बन्ध में अपने विचार थे और उस ने अपना मत स्वीकार करवा दिया और इन शब्दों को प्रविष्ट किया यद्यपि मेरी अब भी यही धारणा है कि ये अनावश्यक हैं। किन्तु यह पदावलि, अर्थात् ''अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा,'' सभा ने स्वीकार की है और यदि इसे रहने दिया जाता है तो कम से कम मेरी यह धारणा है कि विधि का भी स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये। इस अनुच्छेद के खंड (2) को देखने से भी सभा को ज्ञात हो जायेगा। कि उस में यह उल्लिखित है कि रक्षा-बलों का सर्वोच्च समादेश राष्ट्रपति में निहित होगा और उस का प्रयोग विधि से विनियमित होगा। संविधान में कई विषयों के सम्बन्ध में हम ने कहा है कि उन के बारे में संसद् को विधि-निर्माण की शक्ति प्राप्त है। हमारे संविधान में सभी प्रश्नों को हल नहीं किया गया है। कई बातें संसद के लिये छोड़ दी गई हैं और यह कहा गया है कि उन का विनियमन विधि द्वारा होगा।

इस लिये जब अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा शक्ति प्रयोग का उल्लेख होता है तो इसका उल्लेख भी आवश्यक है कि उस का विनियमन संविधान तथा विधि द्वारा होगा।

पहला संशोधन एक शाब्दिक संशोधन ही है क्योंकि मेरी यह धारणा है कि जब कभी संविधान का उल्लेख हो तो हर बार ''इस संविधान'' पदावलि के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। ''संविधान'' से भारत का संविधान ही अभिप्रेत है। मैं कह नहीं सकता कि मसौदा-समिति ने इस खंड में इस प्रकार की गलती कैसे की है। मैं सिफारिश करता हूं कि सभा संशोधन संख्या 151 और 152 पर सावधानी से विचार करे।

(संशोधन संख्या 153 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** क्या कोई सज्जन श्री कामत द्वारा उपस्थित किये गये संशोधनों के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं?

तब हम अगले अनुच्छेद को, अर्थात् अनुच्छेद 57 को उठायेंगे।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या† 156, श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामतः** वह केवल एक रस्मी संशोधन है और मैं चाहता हूं कि उस पर मसौदा-समिति ही विचार करे।

---

†अनुच्छेद 57 से 'subject to the other provisions of the Constitution [इस संविधान के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए]' शब्द निकाल दिये जायें।

***अध्यक्षः** अच्छी बात है। तब हम अनुच्छेद 69 उठाते हैं। संशोधन संख्या 188 और 189, श्री कामत।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं संशोधन संख्या 188 और 189 को उपस्थित करता हूं। संशोधन संख्या 188 इस प्रकार है—

"अनुच्छेद 69 में शपथ और प्रतिज्ञान के प्रपत्र में से 'as by law established [विधि द्वारा स्थापित]' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन संख्या 189 इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 69 में शपथ और प्रतिज्ञान के प्रपत्र में 'the duty upon which I am about to enter [जिस कर्त्तव्य को मैं करने जा रहा हूं उस का]' शब्दों के स्थान पर 'the duties of the office upon which I am about to enter जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उस के कर्त्तव्यों का]' शब्द रखे जायें।"

यदि मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद को देखा जाये तो मैं समझता हूं कि यह स्पष्ट हो जायेगा कि मैंने जिन परिवर्तनों का सुझाव रखा है वे आवश्यक हैं। पहले संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि मसौदा-समिति ने जिस शपथ का सुझाव रखा है उस में ''विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान'' का उल्लेख है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संविधान विधि द्वारा स्थापित किया गया है। वास्तव में विधि संविधान के अधीन बनती है और संविधान विधि के अधीन नहीं बनता। हम संविधान को स्वीकार करते हैं और जो कोई विधियां बनाई जाती हैं वे बाद में संविधान के अधीन बनाई जाती हैं। यह सभा एक सर्वोच्च सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न सभा है और वह जिस संविधान को बनायेगी उस के सम्बन्ध में यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि वह विधि द्वारा स्थापित किया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं माननीय सदस्य को यह सूचित कर सकता हूं कि तृतीय अनुसूची में यह पदावलि प्रयुक्त है?

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं श्री सन्तानम को सूचित कर सकता हूं कि राष्ट्रपति की शपथ के सम्बन्ध में जो अनुच्छेद है उस में ''विधि द्वारा स्थापित संविधान'' पदावलि प्रयुक्त नहीं है?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** वह इस से बिल्कुल भिन्न है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे विचार से यह बिल्कुल इस के समान ही है। श्री सन्तानम् का मत भिन्न हो सकता है किन्तु यदि वे अनुच्छेद 60 में राष्ट्रपति के लिये जो शपथ रखी गई है उसे देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उस में ''विधि द्वारा स्थापित संविधान'' शब्द प्रयुक्त नहीं है। संविधान विधि द्वारा स्थापित नहीं किया जाता है।

[श्री एच.वी. कामत]

संविधान का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। यदि श्री सन्तानम इस सूक्ष्म बात को नहीं समझ पा रहे हैं तो मुझे खेद है। अनुच्छद 60 में राष्ट्रपति के लिये जो शपथ रखी गई है वह इस प्रकार है:

"मैं... श्रद्धापूर्वक भारत के राष्ट्रपति-पद का कार्यपालन करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा...."

यह दूसरी बात है कि ''और विधि'' शब्द प्रयोग किये गये हैं किन्तु संविधान विधि द्वारा नहीं स्थापित किया जाता। मैं यही निवेदन करना चाहता हूं।

मुझे आशा है कि मसौदा-समिति संशोधन संख्या 188 पर विचार करेगी और उसे स्वीकार कर लेगी। ''विधि द्वारा स्थापित संविधान'' में और ''सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न सभा द्वारा निर्मित संविधान'' में अन्तर है। यह कहना अनावश्यक है कि वह विधि द्वारा स्थापित किया गया है।

अपने दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि मसौदा-समिति ने गलत अंग्रेजी प्रयोग की है। 'समिति में विधि के, संविधान के और भाषा के कई विशेषज्ञ हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि उस समिति ने अंग्रेजी भाषा की ऐसी गलती क्यों की है। मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाता हूं कि कोई व्यक्ति पद के कर्तव्य का नहीं बल्कि कर्तव्यों का निर्वहन करता है। ''पद के कर्तव्यों'' पदावलि प्रयोग करनी चाहिये। यदि अनुच्छेद 71 के खंड (2) को देखा जाये तो यह विदित हो जायेगा कि उस में ठीक अंग्रेजी प्रयुक्त है। उस में जो पदावलि प्रयुक्त है उस का आशय इस प्रकार है-''राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पद के कर्तव्यों''। मैं पहले के एक अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 68 के खंड (2) के अन्तिम भाग की ओर भी निर्देश करता हूं जिस में कहा गया है– ''अपने पद ग्रहण की तारीख से''। सभी समझदार लोग यही कहेंगे कि उस अनुच्छेद की अंग्रेजी सही है। यदि सभा मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी तो शपथ अथवा प्रतिज्ञान का यह रूप हो जायेगा:

''मैं, अमुक, ईश्वर की शपथ लेता हूं / सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।''

मैं इन संशोधनों को उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि इन्हें स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** जैसा कि सन्तानम् ने कहा है, अनुसूची 3 में भी यही पदावलि प्रयुक्त है।

***श्री एच.वी. कामतः** उस में भी आनुषंगिक परिवर्तन करना होगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 71 के खंड (2) में 'the date of the decision [विनिश्चय की तारीख]' शब्दों के स्थान पर 'the time of the decision [विनिश्चय का समय]' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, यह संशोधन राष्ट्रपति का निर्वाचन उच्चतम-न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किये जाने पर उसकी पदावलि की समाप्ति के सम्बन्ध में है। प्रश्न यह है कि क्या पदावलि विनिश्चय की तारीख से समाप्त होती है अथवा विनिश्चय के समय से समाप्त होती है। यदि विनिश्चय बारह बजे किया जाता है तो तर्कयुक्त यही है कि राष्ट्रपति बारह बजे तक कार्य करता रहे और उस समय के पश्चात् राष्ट्रपति न रहे। यदि हम शब्दावलि को इसी रूप में रहने दें तो इसका अर्थ यह होगा कि यदि विनिश्चय बारह बजे किया गया तो राष्ट्रपति पहले दिन की अर्धरात्री से कृत्यकारी नहीं रहेगा। इसका यह प्रभाव होगा कि राष्ट्रपति ने अर्धरात्री से बारह बजे तक जो भी कार्य किये होंगे उन का शून्यन हो जायेगा।

***माननीय श्री के सन्तानमः** इस आशय का एक संशोधन (अर्थात संशोधन संख्या 448) है

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** कठिनाई यह है कि इन में अधिकांश संशोधन सदस्यों के संशोधनों से लिये गये हैं। मैं केवल यह चाहता हूं कि यह त्रुटि दूर कर दी जाये परन्तु अपनी जगह पर यह बात भी है कि सदस्यों के बहुत से संशोधनों को अपनाया गया है और उन्हें मसौदा-समिति के संशोधन कहा गया है। इस से समिति के सदस्यों को जो प्रतिष्ठा प्राप्त होगी उस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि वे यह पहली बार नहीं कह रहे हैं। मैंने द्वितीय पठन के अवसर पर भी यह कहा था। वे सीधे सीधे हमारे संशोधनों को स्वीकार नहीं करते हैं किन्तु उन्हें अपने बना कर उपस्थित करते हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अपने संशोधनों के लिये अन्य सदस्यों को जो श्रेय प्राप्त हो सकता है उस पर मसौदा-समिति को कोई आपत्ति नहीं है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 66 का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।''

यह भी एक नया उपबन्ध है और इस से मंत्रियों के उत्तरदायित्व में हस्तक्षेप होता है। इस लिये इसे नहीं रहने देना चाहिये। यह अनावश्यक है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि इसमें दुष्टता छिपी हुई है। इसे न रखना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 77 के खंड (3) में 'President [राष्ट्रपति] शब्द के स्थान पर 'Prime-Minister [प्रधानमंत्री] शब्द रखे जायें"।

श्रीमान यह अनुच्छेद सरकारी कार्य के संचालन ने सम्बन्ध में है। सरकारी कार्य का वास्तव में अर्थ है मंत्रालयों के कृत्य। मंत्रालयों का प्रधान प्रधान-मंत्री होगा। मुझे विदित है कि सभी आदेश राष्ट्रपति के नाम से निकाले जायेंगे किन्तु इस अनुच्छेद का राष्ट्रपति से कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी मंत्रालय के अन्दरूनी मामलों के सम्बन्ध में प्रधान-मंत्री मंत्रालय से परामर्श करता है और स्वयं उत्तरदायी होता है। इसलिये ''राष्ट्रपति'' शब्द के स्थान पर ''प्रधान-मंत्री'' शब्द रखे जाने चाहियें।

मुझे इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है कि विधि के अधीन सभी आदेश राष्ट्रपति के नाम से निकाले जाते हैं। यह एक भिन्न बात है क्योंकि इसका मंत्रालय के अन्दरूनी मामलों से सम्बद्ध नियमों से ही सम्बन्ध नहीं है और इस लिये इस सम्बन्ध में संसद हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। इस में कोई सन्देह नहीं कि संसद आलोचना कर सकती है। किन्तु यह अन्दरूनी मामलों के सम्बन्ध में है जिन के लिये सम्बन्धित मंत्री उतरदाई होगा और इस लिये मंत्रालय से परामर्श कर के प्रधान-मंत्री को न कि राष्ट्रपति को नियम बनाने चाहियें। उन नियमों पर प्रधान-मंत्री के हस्ताक्षर होने चाहियें।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 203 तथा 204 उपस्थित करता हूं।

"अनुच्छेद 77 के खंड (3) में 'shall [बनायेगा]' के स्थान पर 'may [बना सकता है]' शब्द रखे जायें।''

''अनुच्छेद 66 के खंड (3) में 'more convenient [अधिक सुविधापूर्वक]' शब्द के स्थान पर 'efficient and convenient [योग्यता से तथा सुविधापूर्वक]' शब्द रखे जायें:

अथवा, विकल्पत:

"अनुच्छेद 77 के खंड 3 में से 'more (अधिक)' शब्द निकाल दिया जाये।"

मैं अपने मित्र प्रोफेसर सक्सेना के इस विचार से सहमत नहीं हूं कि इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता नहीं है। मंत्रिमंडल के कार्य के संचालन के लिये कुछ नियमों का होना आवश्यक है। इन नियमों को बनायेगा कौन? प्रश्न यह है कि क्या इन्हें-संसद बनायेगी अथवा राष्ट्रपति। कार्य-संचालन के नियमों को राष्ट्रपति को बनाना चाहिये। और उसे, जैसा कि संविधान में निर्धारित है, मंत्रियों से परामर्श

करके कार्य करना चाहिये। इसलिये प्रोफेसर सक्सेना के संशोधन में कोई बल नहीं है क्योंकि जहां कहीं "राष्ट्रपति" शब्द प्रयुक्त है उस का अर्थ यही है कि राष्ट्रपति मंत्री-परिषद् से परामर्श कर के कार्य करेगा।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** किन्तु संविधान में इस आशय के कोई शब्द नहीं हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** पिछले सत्र में मैंने यह प्रश्न उठाया था और डॉ. अम्बेडकर तथा श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने हमें यह आश्वासन दिया था कि स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार का उपबन्ध न रख के भी इस का उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

जहां तक मेरे उस संशोधन का सम्बन्ध है जो "बनायेगा" शब्द के स्थान पर "बना सकता है" शब्द रखने के सम्बन्ध में है, मेरा यह निवेदन है कि इस स्थल पर "बनायेगा" शब्द बहुत कुछ अनुपयुक्त है। अन्य कई अनुच्छेदों में हम ने ''कर सकता है'' शब्द प्रयोग किये हैं और यहां भी हम उन्हीं शब्दों को रख सकते हैं। इन शब्दों में वही बल है जो ''करेगा'' शब्द में है। ''बना सकता है'' शब्द इस स्थल पर अधिक उपयुक्त होंगे और उन से इस अनुच्छेद का आशय अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

मेरे दूसरे संशोधन, अर्थात संशोधन संख्या 204 का उद्देश्य यह है कि ''अधिक सुविधापूर्वक'' शब्दों के स्थान पर ''योग्यता से तथा सुविधापूर्वक'' शब्द रखे जायें। मुझे विश्वास है कि यह खंड भारत शासन अधिनियम से ज्यों का त्यों ले लिया गया है क्योंकि प्राय: सभी अवसरों पर, सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से मसौदा-समिति के बुद्धिमान सदस्यों का पथप्रदर्शन उसी से हुआ है। वे हम से कहते आये हैं कि भारत शासन-अधिनियम में इस प्रकार की भाषा प्रयुक्त है और हम से पूछते रहे हैं कि क्या आप सर सैमुअल होर तथा उन के सहकारियों की भाषा पर आपति करने का साहस कर सकते हैं क्योंकि आखिर हम भारतीय उन की भाषा पर आपत्ति करने वाले होते कौन हैं? किन्तु अब संसार में इसे सभी स्वीकार करते हैं कि भारतीय अंग्रेजों से अच्छे भाषा-विद हैं। यह कहा जाता है कि इंगलिस्तान के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने एक बार कहा था कि संसार में केवल दो ही व्यक्ति दोष-शून्य अंग्रेजी बोलते है और वे दोनों ही भारतीय हैं। यह कुछ वर्ष पूर्व कहा गया था।

***श्री आर.के. सिधवा:** वे कौन हैं?

***श्री एच.वी. कामत:** चूंकि श्री सिधवा उन के नाम जानने के इच्छुक हैं इसलिये मैं बताना चाहता हूं कि यह स्वर्गीय श्री निवास शास्त्री तथा सरोजनी नायडू के बारे में कहा गया था। जबकि भारतीय दोष-शून्य अंग्रेजी बोलते तो हम भारत-शासन-अधिनियम की अंग्रेजी के सम्बन्ध में शपथ लेकर यह क्यों कहें कि वह शत-प्रतिशत सही है? समझदारी की बात यही है कि उस की अंग्रेजी में जो दोष हों उन्हें दूर कर दिया जाये और साथ ही ''अधिक सुविधापूर्वक'' शब्दों के स्थान पर ''योग्यता से तथा सुविधापूर्वक'' शब्द रखे जायें। यह सभी स्वीकार करते

[श्री एच.वी. कामत]

हैं कि कुछ समय से योग्यता गिर गई है। इस लिये हमें यह संकल्प करना चाहिये कि हम कार्य-संचालन केवल सुविधा-पूर्वक ही नहीं करेंगे बल्कि योग्यता से भी करेंगे। इन शब्दों के साथ मैं इन दो संशोधनों को उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि इन्हें स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 90 उठायेंगे। संशोधन संख्या 215 ।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं संशोधन संख्या 214 उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** वह प्रश्न वास्तव में उठता ही नहीं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं संशोधन संख्या 214 उपस्थित नहीं कर रहा हूं। मैं केवल एक दोष की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं। मैं यह बताना चाहता हूं कि अंग्रेजी के शब्द ''दी'' का कई स्थलों पर ठीक प्रयोग नहीं किया गया है। कई स्थलों पर ''डिप्टी चेयरमैन'', ''चेयरमैन'' अथवा ''स्पीकर'' के पहले हम ने ''दी'' शब्द प्रयोग किया है और कई स्थलों पर उसे प्रयोग नहीं किया है। एकरूपता लाने के उद्देश्य से मैंने संशोधन उपस्थित किये हैं। उन पर विचार किया जाये। मैं संशोधन संख्या 215 नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 96 को उठायेंगे।

***श्री एच.वी कामत:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 96 के खंड (2) में 'and shall, notwithstanding anything in article 100, be entitled to vote only in the first instance on such resolution or on any other matter during such proceedings but not in the case of equality of votes [तथा अनुच्छेद 100 में किसी बात के होते हुए भी ऐसे संकल्प पर, अथवा ऐसी कार्यवाहियों में किसी अन्य विषय पर, प्रथमत: ही मत देने का हक होगा किन्तु मत-साम्य होने की दशा में न होगा]' शब्दों के स्थान पर 'but, notwithstanding anything in article 100, shall not be entitled to vote at all on such resolution or any other matter during such proceedings [किन्तु अनुच्छेद 100 में किसी बात के होते हुए भी ऐसे संकल्प पर, अथवा ऐसी कार्यवाहियों में किसी अन्य विषय पर मत देने का कोई हक नहीं होगा]' शब्द रखे जायें।"

अब मैं अपने अगले संशोधन को उपस्थित करता हूं। वह इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 96 के खंड (2) में 'anything in article 100 '[अनुच्छेद 100 में किसी बात के होते हुए भी]' शब्दों के स्थान पर anything contained in article 100 [अनुच्छेद 100 में किसी बात के रहते हुए भी]' शब्द रखे जायें।"

मेरा दूसरा संशोधन केवल शाब्दिक संशोधन ही है और मैं चाहता हूं कि मसौदा-समिति उसे, जैसे भी चाहे वैसे, निबटाये। किन्तु पहला संशोधन (संशोधन संख्या 227) एक आनुषंगिक तथा सारवान संशोधन है। मसौदा-समिति ने जिस खंड (2) को प्रस्तुत किया है वह एक नवीन खंड है। लोक-सभा के अध्यक्ष को पद से हटाने की प्रक्रिया तथा राज्य परिषद् के सभापति को पद से हटाने की प्रक्रिया में विभेद किया गया है। मसौदा-समिति के सभापति ने आज सभा को नहीं बताया कि यह विभेद क्यों किया गया है।

यदि सभा के माननीय सदस्य अनुच्छेद 292(2) को देखेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि राज्य-परिषद के सभापति को पद से हटाने के लिये जो संकल्प प्रस्तुत किया जायेगा उस पर मत देने का उसे हक नहीं होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** क्या मैं यह बता सकता हूं कि सभापति उत्तर सदन का सदस्य नहीं होगा? वह उप-राष्ट्रपति होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** संघ का उप-राष्ट्रपति सभापति होगा। तर्क की दृष्टि से भी मेरी समझ में नहीं आता कि जब आलोचना अथवा अविश्वास का प्रस्ताव अथवा उसे पद से हटाने के लिय कोई अन्य प्रस्ताव उपस्थित किया जायेगा, तो उसे आखिर मत देने का हक क्यों हो।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रासः जनरल): उस के मत देने का हक नहीं छीना जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्री कृष्णमाचारी वाद-विवाद का उत्तर बाद में दे सकते हैं। वे बिना किसी कारण विध्न न डालें।

जब सभा में अध्यक्ष को हटाने के उद्देश्य से कोई प्रस्ताव उपस्थित किया गया हो तो अध्यक्ष सभा में विद्यमान रह सकता है और कार्यवाही में भाग ले सकता है तथा अपनी प्रतिरक्षा कर सकता है। किन्तु औचित्य तथा न्याय की दृष्टि से उसे मत नहीं देना चाहिये। वह अपनी प्रतिरक्षा कर सकता है किन्तु उसे मत देने का अधिकार प्रदान करना बहुत ही अनुचित होगा। मसौदा-समिति को इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी हो सकती है किन्तु अपनी जानकारी के आधार पर मैं कह सकता हूं कि जिस अध्यक्ष को पद से हटाना हो उसे मत देने का अधिकार नहीं प्रदान करना चाहिये। हो सकता है कि दो पक्षों में बहुत कम अन्तर हो और एक ओर 55 तथा दूसरी ओर 56 मत पड़े हों। इस दशा में अध्यक्ष अपने ही मत से पदासीन रह सकता है किन्तु इस सभा का यह उद्देश्य नहीं है। इसलिये श्रीमान, मेरा निवेदन है कि अध्यक्ष को पद से हटाने के लिये जो कार्यवाही हो उस में मत देने के अधिकार से उसे वंचित रखना चाहिये। मैं अपना संशोधन उपस्थित

[श्री एच.वी. कामत]

करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि उस पर गम्भीरता से विचार किया जाये।

(संशोधन संख्या 229 उपस्थित नहीं किया गया)

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद संसद के अध्यक्ष के आचरण के सम्बन्ध में बहस करने के बारे में हैं। इसलिये नवीन खंड (2) एक उपयुक्त खंड है। साधारणत: सभा की कार्यवाही में भाग लेने अथवा बोलने का अधिकार अध्यक्ष को प्राप्त नहीं होता है । किन्तु जब उस के आचरण पर बहस हो रही हो तो यह उचित है कि उसे सफाई देने के लिये अवसर प्रदान किया जाये। इसलिये खंड (2) एक उपयुक्त खंड है। श्रीमान, मैं केवल उस में थोड़ा परिवर्तन करना चाहता हूं। मैं यह प्रथा चाहता हूं कि अध्यक्ष अन्य मामलों में न तो बोले और न सभा की कार्यवाही में भाग ले। इस खण्ड में कहा गया है-"जब अध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प लोक-सभा में विचाराधीन हो तब उस को लोक-सभा में बोलने तथा दूसरे प्रकार से उस की कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा, इत्यादि।'' मैं यह चाहता हूं कि ''तब'' के स्थान पर ''केवल तब'' शब्द रखे जायें। मैं उस शब्द पर अधिक जोर देना चाहता हूं। यह एक उपयुक्त प्रथा है कि जब अध्यक्ष के अपने आचरण पर बहस हो रही हो उस समय के अतिरिक्त अन्य किसी समय उसे सभा की कार्यवाहियों में भाग नहीं लेना चाहिये।

***अध्यक्ष:** इस खंड की शब्दावलि का यही अर्थ है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यदि यह बात है तो ठीक है। मत देने के प्रश्न के सम्बन्ध में श्री कामत ने कहा था कि अध्यक्ष को मत देने का अधिकार नहीं होना चाहिये। मेरे विचार से उसे मत देने का अधिकार होना चाहिये। आखिर है तो वह सभा का सदस्य ही। पहली बार उसे मत देने का अधिकार होना चाहिये किन्तु जब दूसरी बार मत लिया जाये तो वह मत न दे। उसे एक मत देने का अधिकार होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 100 को उठायेंगे। संशोधन संख्या 231 ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मसौदा-समिति के द्वितीय सूची के संशोधन संख्या 452 को दृष्टि में रखते हुए माननीय सदस्य कृपा कर के विचार करें कि क्या उन के संशोधन के उपस्थित किये जाने की आवश्यकता है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 100 के बारे में जहां तक उन संशोधनों का सम्बन्ध है, जिन की सूचना श्री कामत ने दी है, श्री कृष्णमाचारी बता चुके हैं कि उस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कुछ संशोधन मसौदा-समिति भी उपस्थित करना चाहती है। वे द्वितीय सूची के संशोधन संख्या 452 में निविष्ट हैं सम्भवत: उस

संशोधन को देखने के पश्चात आप अपने संशोधनों को उपस्थित करना आवश्यक समझें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद के निराकरण विषय संशोधन के अतिरिक्त अधिकांश संशोधनों का आशय उस से पूरा हो जाता है।

***अध्यक्ष:** श्री कामत, यदि आप अपने संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं तो आप को इस की पूरी स्वतंत्रता है। केवल यह कहा गया है कि सम्भव है कि आप उन्हें उपस्थित करने की आवश्यकता का अनुभव न करें। अच्छी बात है, आप उन्हें उपस्थित करें। मेरे विचार से यदि आप उन्हें उपस्थित कर देंगे तो कुछ समय बच जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान मैं इस सूची के संशोधन संख्या 231, 234, 235 और 238 को उपस्थित करता हूं।

"अनुच्छेद 100 के खण्ड (1) में 'other than the Speaker [अध्यक्ष को छोड़ कर] शब्दों के स्थान पर 'other than the Chairman or Speaker [सभापति अथवा अध्यक्ष को छोड़ कर]' शब्द रखे जायें।"

"अनुच्छेद 100 के खण्ड (1) के दूसरे पैरा में 'acting as such [इस के रूप में कार्य करने वाला]' शब्दों के स्थान पर 'acting as Chairman or Speaker [सभापति अथवा अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाला]' शब्द रखे जायें।''

''अनुच्छेद 100 के खंड (1) के दूसरे पैरा में 'in the case of [इन दी केस आफ]' शब्दों के स्थान पर 'in case of [इन केस आफ]' शब्द रखे जायें।"

"अनुच्छेद 100 के खंड (3) में 'Until Parliament by law otherwise provides, the quorum shall be one tenth of the total number of members of the House [जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे तब तक... गणपूर्ति सदन के सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश होगी]' शब्दों के स्थान पर उस खंड के दूसरे पैरा के रूप में यह रखा जाए:-

'Until Parliament by law otherwise provides, the quorum shall be one-tenth of the total number of members of the House.

[जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे तब तक गणपूर्ति सदन के सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश होगी।]"

संशोधन संख्या 235 केवल 'दी' विशेषण के सम्बन्ध में एक शाब्दिक संशोधन है। मैं चाहता हूं कि यथोचित अवसर पर मसौदा-समिति ही उस पर विचार करे। 231 से लेकर 234 तक जो संशोधन हैं उन का एक ही समूह है। वे एक समान हैं। यदि सभा उस अनुच्छेद को देखे जिसका मसौदा द्वितीय

[श्री एच.वी. कामत]

पठन के अवसर पर निश्चित किया गया था और उस की तुलना वर्तमान मसौदे से करे तो उसे ज्ञात हो जायेगा कि क्या अन्तर है। मैं कह नहीं सकता कि उस में छापे की गलती रह गई है अथवा जान बूझ कर परिवर्तन किया गया है। अनुच्छेद 100 का खंड (1) सभा में उपस्थित कर दिया गया है। उस के अन्तिम भाग में ये शब्द प्रयुक्त हैं- ''अध्यक्ष या सभापति अथवा अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति को छोड़ कर"।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** वह सभा का सदस्य नहीं होगा इसलिये उसे मत देने का अधिकार नहीं दिया गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या स्थिति यह है कि जब उपराष्ट्रपति राज्य-परिषद् के सभापति की हैसियत से काम करेगा तो उसे इस दशा में मत देने का अधिकार नहीं होगा?

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारतीः** (मद्रासः जनरल): सभापति की हैसियत से निर्णायक मत देने के अतिरिक्त।

***श्री एच.वी. कामतः** तब ठीक है।

अब मैं संशोधन संख्या 238 उठाता हूं। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अभी कहा कि मसौदा-समिति ने भी इस विषय पर तथा इस खंड पर विचार किया है और तदुपरान्त उस ने भी इसी के समान एक संशोधन का सुझाव रखा है। मैं यह नहीं चाहता कि मसौदा-समिति को उस के कठिन परिश्रम के लिये श्रेय न दिया जाये। यदि वह श्रेय लेना चाहती है तो अवश्य ले किन्तु, चूंकि संशोधन मेरे नाम से है इसलिये में उसे रस्मी तौर से उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि उसे स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्षः** उस की शब्दावलि कुछ भिन्न है किन्तु सार वही है। मैं यह माने लेता हूं कि वह उपस्थित कर दिया गया है। संशोधन संख्या 232, जो श्री नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है, एक रस्मी संशोधन ही है।

(संशोधन संख्या 232 उपस्थित नहीं किया गया)

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, संशोधन संख्या 233 के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 100 में चार भिन्न पैरा हैं। पहला पैरा खंड (1) के रूप में रखा गया है, दूसरे पैरा को कोई संख्या नहीं दी गई है और तीसरे पैरा को संख्या 2 और चौथे पैरा को संख्या 3 दी गई है। दूसरे पैरा को कोई संख्या नहीं दी गई है। यह किसी भी विधि में एक अजीब सी बात है। सभी पैराओं की, या तो अनुच्छेदों के रूप में या खण्डों के रूप में, गणना करना आवश्यक है। साधारण अधिनियमों में उन की गणना धाराओं और उपधाराओं के रूप में होती है। जहां तक मेरा अनुभव है यह कभी नहीं हुआ कि एक पूरे पैरा को कोई

संख्या ही नहीं दी गई। संख्या देने का उद्देश्य यह है कि उन्हें ठीक ठीक जाना जा सके। जब तक हम दूसरे पैरा को संख्या 2 नहीं देंगे तब तक किसी निर्णय में अथवा पुस्तक में अथवा तर्क में उस की चर्चा करने में कठिनाई होगी। यह कहना पड़ेगा: खण्ड (1) के बाद आने वाला पैरा। इस कठिनाई को दूर करने के लिये मैंने यह सुझाव रखा है कि पैरा 2 को खंड (2) के रूप में रखा जाय और अन्य पैराओं की तदनुसार गणना की जाये। अनुच्छेद 189 में भी इसी प्रकार गणना नहीं हुई है। श्रीमान में अपने संशोधन को रस्मी तौर से उपस्थित करता हूं।

"अनुच्छेद 100 में खंड (1) का दूसरे पैरा की गणना खंड (2) के रूप में की जाये और खंड (2) और खंड (3) की गणना क्रमश: खंड (3) और खंड (4) के रूप में की जाये।"

***श्री राज बहादुर:** मेरे संशोधन संख्या 236 का आशय मसौदा-समिति के संशोधन संख्या 452 से पूरा हो जाता है। इस संशोधन के स्वीकार किये जाने का श्रेय उसी को दिया जाये किन्तु इससे जो प्रसन्नता हो सकती है। वह मुझे है।

(संशोधन संख्या 237 और 239 उपस्थित नहीं किये गये)

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 100 के खंड (3) में 'one-tenth [दशांश]' शब्द के स्थान पर 'one-sixth [षष्ठांश]' शब्द रखा जाये।"

श्रीमान, मैं गणपूर्ति-विषयक खंड (3) की चर्चा कर रहा हूं। पिछले सत्र में हम ने इस विषय पर पूर्ण रूप से विचार किया था और सभा ने यह निर्णय किया था कि संसद के प्रत्येक सदन में गणपूर्ति सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का षष्ठांश होगी। श्रीमान, अब मसौदा-समिति ने यह सुझाव रखा है कि वह दशांश हो। मेरा निवेदन है कि अन्तर्कालीन संसद में, जिसमें केवल 300 सदस्य होंगे दशांश का अर्थ होगा केवल 30 सदस्य और बाद में 500 सदस्यों की सभा में दशांश का अर्थ होगा 50 सदस्य। मैं नम्रतापूर्वक पूछता हूं कि क्या मसौदा-समिति यह चाहती है कि 35 करोड़ लोगों के नाम से केवल 30 लोग विधि-निर्माण करें? यह बहुत ही अनुचित है। हो सकता है कि कामन्स-सभा के 600 सदस्यों की संख्या की तुलना में उस सभा की गणपूर्ति की संख्या बहुत कम प्रतीत हो। श्रीमान, यह समझा जा सकता है। हम ने कामन्स सभा की कुछ अच्छी विधियों की नकल की है। किन्तु यदि कोई विधि खराब हो तो मैं नहीं चाहता कि उस की नकल की जाये। किन्तु सदस्यों से यह कहा जा रहा है कि वे बेकार बैठे रहें और चाहे वे सभा में जाये या न जायें उस के 50 अथवा 30 सदस्य सब कुछ कर लेंगे। मैं किसी सदस्य पर आक्षेप नहीं करना चाहता किन्तु साथ ही मेरा यह विचार

[श्री आर.के. सिधवा]

अवश्य है कि हम कार्य-संचालन के लिये इतने कम सदस्यों को रखें। इस के विपरीत इस आशय का एक उपबन्ध होना चाहिये कि सदस्यों को अपना कर्तव्य समझ कर सभी सत्रों में, विशेषत: जिन सत्रों में विधि-निर्माण हो उन में, भाग लेना चाहिये। इस लिये, मेरे विचार से, हमें संविधान में इस आशय का कोई खंड नहीं रखना चाहिये कि 500 सदस्यों की सभा में विधि-निर्माण के लिये केवल 50 सदस्य रहें।

***डॉ. बी. पट्टाभी सीमारमय्या** (मद्रास: जनरल): नियम यह नहीं है कि केवल 50 सदस्य ही रहें।

***श्री आर.के. सिधवा:** उस का प्रभाव वही हो जाता है। हमें भी कुछ अनुभव है। मैं यह नहीं कहता कि नियम में यह कहा गया है। किन्तु कई बार हम ने स्वयं देखा है कि यही हुआ है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि आज कितने सदस्य उपस्थित हैं? मेरे माननीय मित्र डॉ. पट्टाभी सीतारमय्या को यह अच्छी तरह विदित है। जब सदस्य नहीं उपस्थित रहते हैं तो हमें विदित है कि उन्हें ढूंढ कर लाने में कितनी कठिनाई होती है।

***डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमय्या:** हम नहीं चाहते कि बेकार बैठे रहने और अकर्मण्यता को प्रोत्साहित किया जाये।

***श्री आर.के. सिधवा:** सदस्यों को भी अपना कर्तव्य समझना चाहिये और सभी सत्रों में उपस्थित रहना चाहिये। मेरे विचार से किसी ऐसे खण्ड की आवश्यकता नहीं है जिसके आधार पर वे बेकार रह सकें अथवा सत्र में उपस्थित न हों। उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करना है क्योंकि उन्हें लोगों ने निर्वाचित किया है। उन्हें भी अपने कर्तव्य का ध्यान होना चाहिये। इसलिये मेरे विचार से सभा के कार्य के संचालन के लिये सदस्य यथोचित संख्या में उपस्थित रहने चाहिये। मैं नहीं चाहता कि 600 सदस्य उपस्थित रहें, मैं नहीं चाहता कि 500 सदस्य उपस्थित रहें, मैं यह भी नहीं चाहता कि 250 सदस्य उपस्थित रहें। मैं केवल यह चाहता हूं कि वे यथोचित संख्या में उपस्थित रहें अर्थात् कम से कम 80 सदस्य उपस्थित रहें। क्या यह उचित नहीं है? मैं अपने माननीय मित्र, डॉ. पट्टाभी सीतारमय्या से पूछता हूं कि क्या उन्हें 50 सदस्यों से संतोष हो जायेगा? मुझे विदित है कि अकेले उन्हीं को असंतोष नहीं होगा। मैं उन से पूछता हूं कि क्या 500 सदस्यों में से 30 सदस्य पर्याप्त होंगे? कामन्स सभा का उदाहरण देने से कोई लाभ नहीं होगा। इस अनुच्छेद का अर्थ यह है कि स्थाई संसद में 50 सदस्यों से गणपूर्ति हो जायेगी और अन्तर्कालीन संसद में 30 सदस्यों से गणपूर्ति हो जायेगी। अन्तर्कालीन संसद में 300 के लगभग सदस्य होंगे। अगले वर्ष कई बड़ी बड़ी घटनाएं घटित होने जा रही हैं और हम संविधान में यह उपबन्धित करने जा रहे हैं कि अन्तर्कालीन संसद के 30 सदस्य विधि-निर्माण करेंगे। इस विषय के सम्बन्ध में मेरी प्रबल

भावनाएं हैं और मैं यह भी कहूंगा कि यदि सत्र में भाग लेने के लिये सदस्यों के लिये, यदि उचित समझा जाये तो निर्योग्यता भी रखी जाये। एक खंड इस आशय का रखा जा सकता है कि जो लोग सभा में नियमित रूप से उपस्थित नहीं होंगे वे निर्योग्य घोषित कर दिये जायेंगे। यदि मसौदा-समिति की यह धारणा हो कि इस प्रकार का कोई उपबन्ध रहे तो हम फिर सदस्यों से अपील भी कर सकते हैं कि वे सभा में उपस्थित हों। सदस्यों को भी कर्तव्यपालन का परिचय देना चाहिये। निर्वाचित होने के पश्चात् उन्हें कर्त्तव्य-पालन में इतनी लापरवाही नहीं दिखानी चाहिये और उन के निर्वाचन-क्षेत्र के लोगों ने उन्हें जिस कर्त्तव्य का पालन करने के लिये यहां भेजा है उस का उन्हें निर्वहन करना चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है उस पर पिछले सत्र में विचार-विमर्श हुआ था और वह पारित किया गया था। सम्भव है कि चूंकि हम यह अनुभव करते हैं कि सदस्य पर्याप्त संख्या में सभा में कठिनाई से उपस्थित होते हैं, इसलिये छोटी संख्या का सुझाव रखा गया है। इस के विपरीत मेरा निवेदन है कि छोटी संख्या न रखने के लिये यह और भी बड़ा कारण है। जब एक या दो बार सभा स्थगित होगी तो लोगों के ध्यान में आ जायेगा कि सदस्यों में उत्तरदायित्व की कितनी कमी है। वे हमेशा अनुपस्थित नहीं रह सकते। उन्हें लोगों को सफाई देनी होगी। यदि एक या दो बार सभा स्थगित होगी तो उन की बुद्धि ठिकाने आ जायेगी और वे सभा में जिस कार्य के लिये भेजे गये हैं उस के संचालन के लिये फिर पहले से अधिक नियमित रूप से उपस्थित होने लगेंगे। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाए।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं यह विचार कर रहा था कि यदि सभा से सदस्य उठ कर चल दिये तो कैसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हम ने इस पर पूर्ण रूप से विचार नहीं किया है कि आगे चल कर देश में कौन सी राजनैतिक घटनाएं घटित होंगी। यदि सदस्य उठकर चले गये तो संविधान का अन्त हो जायेगा। बिना अधिक कठिनाइयों के काम चलाते रहने के लिये यह आवश्यक है कि गणपूर्ति के लिये छोटी संख्या रखी जाये। इस से सदस्यों के लिये सभा में आने तथा उपस्थित रहने में कोई रुकावट नहीं होगी। हम इस आशय की कोई विधि पारित नहीं कर रहे हैं कि केवल 30 सदस्य ही विधान-मंडल की बैठकों में उपस्थित रहें। हम केवल गणपूर्ति का निर्णय कर रहें हैं। यदि हम यह चाहते हैं कि गत्यवरोध न हो तो हमें गणपूर्ति के लिये छोटी संख्या रखनी चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद के इस सुझाव का समर्थन करता हूं कि सभी पैराओं की गणना की जानी चाहिये।

मैं एक और सुझाव भी प्रस्तुत करना चाहता हूं, और वह यह है कि इस अनुच्छेद का अन्तिम भाग, जिस में कहा गया है कि "गणपूर्ति सदन के सदस्यों

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

की सम्पूर्ण संख्या का दशांश होगी", खंड (3) के पूर्व आना चाहिये क्योंकि खंड (3) में यह निर्धारित किया जा रहा है कि गणपूर्ति न होने का क्या परिणाम होगा। गणपूर्ति की संख्या क्या होगी यह वर्तमान अनुच्छेद में बाद में कहा गया है अर्थात् इस का उल्लेख उचित स्थल पर नहीं है। हमें पहले यह निर्धारित करना चाहिये कि गणपूर्ति की संख्या क्या होगी और फिर परिणामों का उल्लेख करना चाहिये। यह एक छोटा सा सुझाव है और मेरे विचार से इसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 452 में यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** इसके अतिरिक्त मैं अपने माननीय मित्र श्री सिधवा के इस मत का समर्थन करता हूं कि गणपूर्ति सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या की षष्ठांश हो और दशांश न हो।

***अध्यक्षः** अब सभा स्थगित होती है। हम तीन बजे फिर बैठक कर रहे हैं।

इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

सभा तीन बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में फिर समवेत हुई।

***अध्यक्षः** अब हम उन संशोधनों को उठायेंगे जो अवशिष्ट अनुच्छेदों के सम्बन्ध में हैं अनुच्छेद 128।

***श्री जसपत राय कपूरः** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): क्या मैं अनुच्छेद 100 के सम्बन्ध में एक शब्द कह सकता हूं?

***अध्यक्षः** जी हां।

***श्री जसपत राय कपूरः** अध्यक्ष महोदय, अभी घंटी बजने के कारण सभा में गणपूर्ति न होने और सभा में जल्दी उपस्थित होने के लिये हमें जो चेतावनी मिली है उसी से गणपूर्ति विषयक इस संशोधन पर बोलने के लिये मुझे प्रलोभन हुआ है। मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने गणपूर्ति को षष्ठांश से घटा कर दशांश न करने के सम्बन्ध में जिस जोश से अपना तर्क उपस्थित किया है उस से भी मैं इस विषय पर बोलने के लिये प्रेरित हुआ हूं। उन्होंने जिस जोश खरोश के साथ अपना भाषण दिया उस से यह समझा जा सकता है कि इस सभा के सदस्यों की शक्तियों तथा उन के विशेषाधिकारों और अधिकारों को कम करने का प्रयास

किया जा रहा है किन्तु बात यह नहीं है। संशोधन द्वारा गणपूर्ति की संख्या घटाने का जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है वह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण, आवश्यक तथा उपयोगी प्रस्ताव है और उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। वह हमारे इस सभा के ही नहीं बल्कि दूसरी सभा अर्थात् डोमीनियन संसद् के भी पिछले अनुभव पर आधृत है। मुझे यह दिखाई देता है कि उस अनुभव का मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या वह अनुभव प्रशंसनीय है?

***श्री जसपत राय कपूर:** उस अनुभव से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। मेरे विचार से उस में न तो सदस्यों के सम्बन्ध में और न सभा के सम्बन्ध में कोई बात ऐसी है जिसे निन्दनीय कहा जा सकता है। जब संसद् समवेत हो तो, मेरे विचार से, यह आशा नहीं करनी चाहिये कि सभी सदस्य पूरे समय के लिये उपस्थित रहेंगे, चाहे वे उस विशेष विषय में दिलचस्पी रखते हों या नहीं रखते हों जो किसी दिन या किसी समय विचाराधीन हो। इस से उन सदस्यों का समय तो नष्ट होगा ही किन्तु साथ ही करदाता को भी बेकार में अधिक खर्च उठाना होगा। मेरे विचार से आशा यही करनी चाहिये कि सदस्य सभा में तभी आयेंगे जब विचाराधीन विषय में उन की दिलचस्पी होगी अन्यथा वे अन्यत्र अपने निजी कार्यों में नहीं बल्कि देश के कल्याण में अपने समय का सदुपयोग कर सकते हैं। आखिर यह आशा क्यों की जाती है कि 500 सदस्यों में से सभी प्रात: काल से दोपहर तक और दोपहर से शाम तक सारे वर्ष अथवा लगभग सारे वर्ष सभा में बैठे रहेंगे? श्री सिधवा प्राय: इस की मांग करते रहे हैं कि संसद अधिक काल तक समवेत रहे और यदि अगले दो वर्षों में, अथवा उस के पश्चात् बहुत से सदस्यों का मत वही रहा जो श्री सिधवा का है तो संसद वर्ष में आठ या दस मास तक समवेत रहेगी। यदि 500 सदस्यों से यह कहा जायेगा कि, चाहे विचाराधीन विषयों में उन की दिलचस्पी हो या न हो किन्तु वे अपना सब समय यहीं बितायें तो वे अपने अधिक महत्वपूर्ण कार्यों को समय नहीं दे सकेंगे।

जो सदस्य यहां लोक-प्रतिनिधि हो कर आयेंगे वे सब उत्तरदाई लोग होंगे और उन्हें न केवल संसद में बल्कि अन्यत्र, देश के राजनैतिक क्षेत्र में भी अपने कर्तव्यों का पालन करना होगा। मैं यह समझता हूं कि हम उन से यह आशा करते हैं कि वे देश में रचनात्मक कार्य में अधिक से अधिक समय लगायेंगे और देश की अधिक से अधिक सार्वजनिक संस्थाओं की देख-रेख करेंगे और यहां आकर ऐसी बातों को चुपचाप देखते न रहेंगे जिन में उन की कोई दिलचस्पी न हो। गणपूर्ति को घटा कर सभा के सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश करने के सम्बन्ध में जो संशोधन है उस से सदस्यों के अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों में कोई हस्तक्षेप नहीं होता। श्री सिधवा तथा अन्य कोई सदस्य इस सभा में जितने समय तक रहना चाहे रहें। यदि कोई सदस्य कई भाषण देना चाहे, अथवा कई प्रश्न पूछना चाहे अथवा कई संशोधन उपस्थित करना चाहे और लम्बे लम्बे भाषण देना चाहे, भले ही वे अच्छे हों या बुरे या उदासीन तो उसे इस के लिये पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

[श्री जसपत राय कपूर]

कोई व्यक्ति जो सभा में बोल रहा हो अथवा सभा का बहुत सा समय स्वयं ले रहा हो यह आशा क्यों करे कि उसे हमेशा भरी सभा सुने? उसे बोलने का विशेषाधिकार प्राप्त हो सकता है किन्तु वह इस संतोष की आशा नहीं कर सकता कि हमेशा उसे भरी सभा सुनेगी। मेरा निवेदन है कि सरकार की दृष्टि से, करदाता की दृष्टि से, सदस्यों की दृष्टि से भी और देश के लिये ठोस कार्य करने की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि गणपूर्ति की संख्या जितनी कम हो सके उतनी कम रखी जाये। सरकार की दृष्टि से तो यह आवश्यक है ही क्योंकि यदि गणपूर्ति के अभाव के कारण विधान-मंडल के कार्य में विलम्ब हो गया तो वह असमंजस में पड़ जायेगी। करदाता की दृष्टि से तो यह आवश्यक है ही क्योंकि यदि सभी सत्रों में सभी सदस्य आयेंगे तो दैनिक भत्तों के रूप में बहुत धन व्यय होगा। सदस्यों की दृष्टि से भी यह आवश्यक है क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, सभा के बाहर उन्हें अधिक से अधिक रचनात्मक कार्य करना चाहिये और सभा में तभी आना चाहिये जब वह विचाराधीन विषयों में दिलचस्पी रखते हों।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अन्यथा उन्हें चांदनी चौक चला जाना चाहिये। *(हास्य)*

***श्री आर.के. सिधवा:** वाह, वाह।

***श्री जसपत राय कपूर:** डॉ. देशमुख चांदनी चौक जा सकते हैं अथवा यदि उन की दिलचस्पी किसी अन्य मनोरम स्थान में हो तो वहां जा सकते हैं किन्तु सब सदस्य हमेशा दिल्ली में क्यों रहें? वे अपने अपने स्थानों में कार्य कर सकते हैं और यहां समय नष्ट न कर के सारवान रचनात्मक, राजनैतिक, आर्थिक और समाजिक कार्य कर सकते हैं। इस लिये मेरा निवेदन है कि गणपूर्ति को सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का षष्ठांश न रख कर दशांश रखने के सम्बन्ध में जो सुझाव रखा गया है वह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण तथा उपयोगी सुझाव है और वह स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

(कुछ सदस्य अपनी जगहों से उठे)

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से इस साधारण संशोधन में इतने अधिक भाषण देने की आवश्यकता नहीं है। उस के सम्बन्ध में सदस्यों को सभी कुछ ज्ञात है और वे या तो उसे स्वीकार कर सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं। अब हम अनुच्छेद 128 को तथा पंडित ठाकुर दास भार्गव के संशोधन संख्या 288 को उठायेंगे।

(संशोधन संख्या 288 उपस्थित नहीं किया गया)

***अध्यक्ष:** तब हम श्री कामत का संशोधन संख्या 289 उठाते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 128 में 'the President may by order [राष्ट्रपति आदेश द्वारा] शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law [संसद विधि द्वारा]' शब्द रखे जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो यह अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, भारत का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से किसी व्यक्ति से, जो उच्चतम न्यायालय के या फेडरल न्यायालय के, न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना कर सकेगा, तथा इस प्रकार प्रार्थित प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के काल में, ऐसे भत्तों का जैसे कि संसद विधि द्वारा निर्धारित करे.... इत्यादि, इत्यादि।"

संविधान के मसौदे में इस का जो तत्स्थानी अनुच्छेद है, जिसे सभा ने मसौदे पर विचार करते समय स्वीकार किया था वह अनुच्छेद 107 है। उस में जो शब्द प्रविष्ट किये गये हैं वे ये हैं—"ऐसे भत्तों का, जैसे कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।" यदि इस सभा के मेरे माननीय सहकारी अनुच्छेद 125 के खण्ड (2) को देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि उस में यह निर्धारित है कि उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को "ऐसे विशेषाधिकारों और भत्तों का, तथा अनुपस्थिति छुट्टी और निवृत्ति-वेतन के बारे में ऐसे अधिकारों का, जैसे कि संसद्-निर्मित विधि के द्वारा या अधीन निर्धारित किये जायें,..... हक होगा"। मैं यह अनुभव करता हूं कि इस स्थल पर यह उपबन्ध एक अस्थाई उपबन्ध है किन्तु इस में विनियमन की शक्ति संघ के राष्ट्रपति को दी गई है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस विषय के सम्बन्ध में भी यह क्यों नहीं कहा गया है कि इन्हें संसद विधि द्वारा निर्धारित करेगी। संसद यह उपबन्धित कर सकती है कि जब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों अथवा फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों अथवा सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से, क्योंकि यह अनुच्छेद सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के सम्बन्ध में है, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना की जाये तो उन के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न होने पर भी संसद निर्धारित कर सकती है कि उन्हें कौन से भत्ते पाने का हक होगा। इसे राष्ट्रपति को नहीं बल्कि संसद को निर्धारित करना चाहिये। इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान, यदि श्री कृष्णमाचारी इस विषय पर प्रकाश डालेंगे तो उस से हमें कुछ सहायता मिलेगी। मेरा निवेदन है कि हमें बताया गया है कि भावी संविधान में अतिरिक्त न्यायाधीशों अथवा अस्थाई न्यायाधीशों को नहीं रखा गया है। यदि संविधान में वास्तव में अतिरिक्त न्यायाधीशों को नहीं रखा गया है तो क्या यह अनुच्छेद 128 हमारे उस निर्णय के अनुरूप है? उस निर्णय के होते हुए इस अनुच्छेद को कैसे रखा जा रहा है?

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न अतिरिक्त न्यायाधीशों का नहीं है। किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को थोड़े समय के लिये अथवा किसी विशेष मामले के सम्बन्ध में कार्य करने के लिये प्रार्थना की जा सकती है। प्रश्न सेवानिवृत्त न्यायाधीश का है न कि अतिरिक्त

[अध्यक्ष]

न्यायाधीश का। किसी ऐसे व्यक्ति से, जो उच्चतम न्यायालय अथवा फेडरल न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो, कार्य करने के लिये प्रार्थना की जा सकती है।

(संशोधन संख्या 290 उपस्थित नहीं किया गया)

(प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना अपनी जगह से उठे)

***अध्यक्ष:** हमें सूची 1 में दिये हुए सभी संशोधनों को समाप्त करना है। जो संशोधन उपस्थित नहीं किये गये हैं उन्हें हमें बिलकुल छोड़ देना होगा।

***एक माननीय सदस्य:** क्या वे रद्द हो जायेंगे?

***अध्यक्ष:** जी हां। वे सब संशोधन जो सूची 1 में दिये हुए हैं आज उपस्थित कर दिये जाने चाहियें। इसी कारण मैं सदस्यों से आरम्भ से ही कहता आया हूं कि उन्हें अपनी बात संक्षेप में कहनी चाहिये और न तो बोलने के लिये और न सारहीन संशोधनों को उपस्थित करने के लिये आग्रह करना चाहिये।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं चाहता था कि यह निकाल दिया जाता क्योंकि यदि राष्ट्रपति को न्यायाधीशों के भत्तों को निर्धारित करने की शक्ति दी गई तो इस का यह अर्थ होगा कि वे राष्ट्रपति और कार्यपालिका के अधीन हो जायेंगे। यह बहुत ही अनुचित व्यवस्था होगी। यदि इन भत्तों को संसद निर्धारित करे तो बात दूसरी है।

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 145 का खंड (1) का उपखंड (ग) निकाल दिया जाये और अनुच्छेद 145 के खंड (1) के पूर्व यह रखा जाए:

'The Supreme Court shall make rules for regulation the practice and procedure of the appropriate proceeding relating to the enforcement of rights conferred under part III.

[उच्चतम न्यायालय भाग 3 के अधीन प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने की उपयुक्त कार्यवाही की कार्यप्रणाली और प्रक्रिया के विनियमन के लिये नियम बनायेगा।]' और बाद में आने वाले खण्डों की तदनुसार गणना की जाये।"

भाग 3 मूलाधिकारों के विषय में है। आप के मतानुसार न्यायालय के नियमों तथा उसकी प्रक्रिया को राष्ट्रपति निर्धारित करेगा। मैं यह चाहता हूं कि मूलाधिकार उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत हो। इसलिये मैंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि खण्ड (ग) निकाल दिया जाये और वह आरम्भ में स्वतंत्र रूप से रखा जाये। यह बहुत महत्वपूर्ण है। मूलाधिकारों का अनुमोदन करने या न करने की शक्ति राष्ट्रपति को नहीं प्राप्त होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** किन्तु आप के संशोधन से सभा के पूर्वनिर्णय का खंडन होता है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** जी नहीं। यह एक नवीन प्रस्ताव है। यह अनुच्छेद 185 का खंड (ग) ही है।

***अध्यक्ष:** जी नहीं। वह उस अनुच्छेद का खंड (ख) है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** यह पृष्ठ 58 पर दिया हुआ खंड (ग) है।

***अध्यक्ष:** अच्छा, आप खंड (ग) की चर्चा कर रहे हैं।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** संशोधन संख्या 308 और 309 का आशय बहुत कुछ समान ही है। मैं उनके सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं। आरम्भ में मैंने संविधान के सम्बन्ध में एक संशोधन भेजा था, जो संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 109-क के रूप में छापा गया था। उस का प्रथम भाग इस प्रकार था:

> "उच्चतम न्यायालय को संविधान द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों को प्रयोग में लाने के सम्बन्ध में ही क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा और संविधान के अनुच्छेद 25 में उल्लिखित यथोचित कार्यवाही की कार्य-प्रणाली तथा प्रक्रिया निश्चित करने तथा उस का विनियमन करने की शक्ति प्राप्त होगी।"

जब इसे उपस्थित किया गया था तो उस समय मैंने आप से प्रार्थना की थी कि इसे स्थगित रखा जाये किन्तु यह एक दुर्भाग्य की बात है कि द्वितीय पठन के अंतिम दिन इस संशोधन को आप ने अनियमित घोषित कर दिया। मुझे इस की प्रसन्नता है कि मसौदा-समिति ने उस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है जिस का मैं द्वितीय पठन के अवसर पर विधेयक में समावेश चाहता था। यद्यपि इस नियम (ग) के लिये मैं उस का आभारी हूं किन्तु मेरा निवेदन है कि वर्तमान रूप में वह एक निष्प्राण तथा खोखला नियम है। यदि आप कृपा कर के इस संविधान की पूरी योजना पर दृष्टि डालें तो आप को यह स्पष्ट हो जायेगा कि इन मूलाधिकारों से कार्यपालिका तथा विधान-मंडल के अधिकारों का भी परिसीमन होता है। विधान-मंडल अथवा कार्यपालिका इन अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है और मेरा यह क्षुद्र मत है कि इन अधिकारों में जनसाधारण का सम्पूर्ण प्रभुत्व सन्निहित है। यदि ये अधिकार प्रयोग में रहेंगे तो प्रत्येक व्यक्ति हर प्रकार के अत्याचार से मुक्त रहेगा। इसलिये इन मूलाधिकारों को मैं सब से अधिक महत्व देता हूं किन्तु यह कहा नहीं जा सकता कि इन नवीन उपबन्धों के रहते हुए ये अधिकार कैसे प्रयोग में आयेंगे। यह सच है कि उच्चतम न्यायालय को इन अधिकारों को प्रयोग में लाने के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। किन्तु अभी तक हम ने यह निर्धारित नहीं किया है कि उच्चतम-न्यायालय इन अधिकारों को प्रयोग में कैसे लायेगा। ये अधिकार विशेष प्रकार के आदेशात्मक अधिकार हैं। मैं कह नहीं सकता कि मुद्रांकों अथवा लेखों आदि के सम्बन्ध में अन्य न्यायालयों का क्षेत्राधिकार क्या है और उच्चतम न्यायालय क्या कार्यवाही कर सकता है।

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

किन्तु अनुच्छेद 25 के अधीन उच्चतम न्यायालय को इन अधिकारों को प्रयोग में लाने की शक्ति हो गई है। वास्तव में यद्यपि यह अधिकार पूर्ण अधिकार के रूप में दिया गया है किन्तु नियम बनाने की शक्ति देकर इस का न्यूनन किया जा रहा है। इन नियमों को बनाने की शक्ति केवल उच्चतम न्यायालय को दी जानी चाहिये। यदि यह शक्ति विधान-मंडल को दी गई, अथवा राष्ट्रपति की स्वीकृति अनिवार्य की गई, तो इस का अर्थ यह होगा कि मूलाधिकारों में हस्तक्षेप किया जायेगा।

श्रीमान, हमें यह विदित है कि मसौदा-समिति ने अन्तिम दिनों में इन मूलाधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया है। सोलहवां अधिकार निकाल दिया गया है। पन्द्रहवां अधिकार खण्डित कर दिया गया है और समायोजन के सम्बन्ध में जो शक्ति अपनाई गई है उस से ये अधिकार पहले के समान प्रभावपूर्ण नहीं रह जाते। महत्व इसे दिया जाना चाहिये कि जब इन अधिकारों के सम्बन्ध में उपबन्ध पारित किये जा चुके हैं तो तृतीय पठन के अवसर पर हम इतना परिवर्तनकारी उपबन्ध नहीं रखना चाहते। इन अधिकारों को उसी रूप में रखना चाहिये जिस रूप में ये आरम्भ में थे और उच्चतम न्यायालय को कोई अन्य ऐसी शक्ति नहीं देनी चाहिये जिस से इन अधिकारों का अपहरण हो सके। यह सभा के ध्यान में आ गया होगा कि मेरे मूल संशोधन संख्या 109-क का जो उद्देश्य था वह पूरा कर दिया गया है। मैं यह चाहता हूं कि इन अधिकारों को प्रयोग में लाने की कार्य-प्रणाली और प्रक्रिया का विनियमन करने के लिये नियम बनाने की शक्ति उच्चतम न्यायालय को ही दी जाये। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि खंड (1) से उपखंड (ग) निकाल दिया जाये और एक अन्य पृथक खंड (2) जोड़ दिया जाये ताकि भाग 1 में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में मूलाधिकार प्रदान करने वाले अनुच्छेद 25 में वर्णित समुचित कार्यवाही की कार्यप्रणाली तथा प्रक्रिया का विनियमन करने की शक्ति केवल उच्चतम न्यायालय को ही प्राप्त हो।

***अध्यक्षः** क्या इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई सज्जन बोलना चाहते हैं? तब हम अब अनुच्छेद 148 को उठायेंगे। संशोधन संख्या 312, श्री बी. दास।

***श्री बी. दासः** मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***श्री राज बहादुरः** मैं भी उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** श्रीमती दुर्गाबाई। वे यहां नहीं हैं, संशोधन संख्या 313, श्री बी. दास।

***श्री बी. दासः** श्रीमान, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं, जो मेरे तथा मेरे मित्र श्री राज बहादुर के नाम से है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 148 के खंड (5) में 'persons serving in the office [सेवा करने वाले व्यक्तियों]' शब्दों के स्थान पर members of the staff' [कर्मचारी-वर्ग के लोगों] शब्द रखे जायें।"

यह वास्तव में मेरा संशोधन नहीं है। इसे सभा ने स्वयं बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् पारित किया था। मसौदा-समिति ने, सम्भवतः भूल से इसे इस प्रकार रख दिया है। अभी पंडित ठाकुर दास भार्गव ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के पद तथा प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में जो तर्क उपस्थित किया था वही मेरा भी तर्क है। यदि हमें भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न सरकार को बनाये रखना है तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि स्थाई कार्यपालिका किसी प्रकार उच्चतम न्यायालय, महा-लेखापरीक्षक और संघीय लोक-सेवा-आयोग के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सके। सभा ने बहुत काल तक इन अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श किया था। ये अनुच्छेद पहले के अनुच्छेद 124 और 125 थे और अब ये अनुच्छेद 148 और अनुच्छेद 149 के रूप में रखे गये हैं। सभी ने यह निर्धारित किया था कि लेखा-नियंत्रण द्वारा महा-लेखापरीक्षक को वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में बहुत ऊंची कोटि की सच्चाई बनाये रखना चाहिये और भारत-सरकार के वित्त को लेखा-परीक्षण करने तथा उस पर नियंत्रण रखने में महा-लेखापरीक्षक के कार्य में स्थाई कार्यपालिका को किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करना चाहिये।

हम व्यवसाई लोग, जो व्यवसाय-विषयक वित्त से परिचित हैं, कभी देखते हैं कि कम्पनियों के बोर्डों के डाइरेक्टर लेखा-परीक्षकों पर प्रभाव डालते हैं और गलत प्रतिवेदन छापे जाते हैं। इस प्रथा का प्रचलन भारत सरकार में नहीं होना चाहिये। दुर्भाग्य से विदेशियों के शासन-काल में 1921 से लेकर 1947 तक, केवल दो वर्ष पूर्व तक, यह प्रथा प्रचलित रही। महा-लेखापरीक्षक का कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया था। सार्वजनिक वित्त का लेखा-परीक्षण नहीं होता था। अंग्रेज शासकों ने यह भी निर्णय कर लिया था कि जब तक महा-लेखापरीक्षक अथवा महांकिक और लेखा-परीक्षण के निदेशक के समान उस के कर्मचारी विभाग के सचिव अथवा विभाग के प्रधान के बीच सहमति न हो तब तक वित्त-विषयक कोई भी अनियमित बात न तो लोक-लेखा-समिति और न संसद के ध्यान में लाई जायेगी। यह 1927 में हुआ था और द्वितीय युद्ध के समय इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता था। इस प्रकार की प्रथा को न रहने देने के लिये हमने यह विचार किया कि महा-लेखापरीक्षक के उच्च पद तथा प्रतिष्ठा को बनाये रखना चाहिये। इसलिये हम यह चाहते हैं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर ले और अनुच्छेद 148(5) में "कर्मचारि-वर्ग के लोगों" शब्द रखे जायें ताकि प्रत्येक महांकिक तथा लेखाधिकारी की पदोन्नति किसी विभाग के, अथवा धन व्यय करने वाले विभाग के, प्रधान की इच्छा पर निर्भर न रहे। मुझे मसौदा-समिति ने आश्वासन दिया है कि वह मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी। श्रीमान मैं इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना चाहता।

***अध्यक्षः** श्रीमती जी. दुर्गाबाई, संशोधन संख्या 314। वे यहां नहीं हैं। संशोधन संख्या 315, श्री दास।

***श्री बी. दासः** मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 316।

***श्री राज बहादुरः** श्रीमान्, मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं किन्तु मैं संशोधन संख्या 313 पर बोलना चाहता हूं।

महा-लेखापरीक्षक के कर्त्तव्यों तथा पद पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पदाधिकारी को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त होना चाहिये। वास्तव में उस की स्थिति बहुत कुछ उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की स्थिति के समान ही है। वह हमारे वित्त का धरोहरी, और मैं कहूंगा कि हमारे वित्त का चौकीदार है। वह कार्यपालिका और करदाता के मध्य में प्रहरी रूप से स्थित रहता है। वह हमारे वित्त को नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाता है।

मुझ से पूर्व बोलने वाले वक्ता महोदय ने जो कुछ कहा है उसके आगे मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि हम में से उन लोगों का, जो लोक-लेखा-समिति में रहे हैं, यह दुखद अनुभव रहा है कि 1945 और 1946 के बीच, अथवा यों कहिये कि देश-विभाजन और स्वतन्त्रता के पूर्व देश के लेखे के सम्बन्ध में इतनी अनियमित बातें तथा गम्भीर दोष दिखाई दिये कि हम इस परिणाम पर पहुंचे कि उस पदाधिकारी को कार्यपालिका के प्रभाव से बिल्कुल मुक्त रखने से ही देश का कल्याण हो सकता है। मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं कि उसे कार्य पालिका के नियन्त्रण से बिल्कुल मुक्त रखना चाहिये। मैंने एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 312, भेजा था जिस का आशय यह था कि उस के वेतन को ही नहीं बल्कि उस के भत्तों को भी संसद को निर्धारित करना चाहिये और राष्ट्रपति अथवा सरकार को निर्धारित नहीं करना चाहिये। हम देखते हैं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते सरकार द्वारा दिये जाने वाले उपहार नहीं हैं बल्कि वास्तव में वे संविधान के विषय हैं। मैं इस से भी आगे बढ़ना चाहता हूं और यह निवेदन करना चाहता हूं कि उन्हें संसद् को भी स्वविवेक से निर्धारित नहीं करना चाहिये और संविधान में ही इस सम्बन्ध में उपबन्ध होने चाहियें क्योंकि यदि इस पदाधिकारी को पूर्णतया स्वतन्त्र बनाया गया तो उस से देश का हित साधन होगा। कम से कम विधान-मंडल और इस पदाधिकारी के बीच कोई खाई नहीं होनी चाहिये।

यदि हम यह चाहें कि वह योग्यता से तथा यथोचित रूप से कार्य करे तो उस के कर्मचारी भी उस के ही अधीन होने चाहिये। यदि उसके कर्मचारियों को मंत्रिमंडल अथवा कार्यपालिका के नियंत्रण के अधीन रखा गया और उन्हें अपनी पदोन्नति तथा भविष्य के लिये मंत्रियों का मुंह ताकना पड़ा तो यह स्पष्ट है कि महा-लेखापरीक्षक अपने कर्मचारियों पर यथोचित नियंत्रण नहीं रख सकेगा। इसलिये जब हमने दुहराये हुए मसौदे में "कर्मचारी-वर्ग के लोगों" शब्दों के स्थान पर "सेवा करने वाले व्यक्तियों" शब्दों को देखा तो हमें आश्चर्य भी हुआ और दुख भी हुआ क्योंकि इस परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप महा-लेखापरीक्षक केवल उन लोगों पर नियन्त्रण रख सकेगा जो किसी समय उस के विभाग में कार्य करते हों। उचित यही समझा गया कि कि इस सभा ने आरम्भ में जिन शब्दों का अनुमोदन किया था उन्हीं को रहने दिया जाये। इसी कारण यह संशोधन उपस्थित किया गया है।

मैं एक अन्य बात पर भी जोर देना चाहता हूं और वह यह है कि चूंकि महा-लेखापरीक्षक लोगों के विश्वास-पात्र उच्चतम पदाधिकारियों में से एक होगा इस लिये इस आशय का एक उपबन्ध रखा गया है कि उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी पदावधि के समाप्त होने पर सरकार के किसी अन्य पद के लिये नियुक्त नहीं किया जाये। जब उस पदाधिकारी का पद इतना ऊंचा बनाया गया है तो उचित यही है कि अपने कर्मचारियों पर भी उसी पदाधिकारी का नियन्त्रण रहे। इन शब्दों के साथ में सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 154, श्री कामत।

***श्री एच. वी. कामत:** श्रीमान, ये संशोधन भी बिल्कुल उन्हीं संशोधनों के समान हैं जो आज प्रात: उपस्थित किये गये थे। मैं चाहता हूं कि इन पर तथा प्रात: उपस्थित किये गये संशोधनों पर मसौदा-समिति ही विचार करे।

***अध्यक्ष:** तब मैं यह मान लेता हूं कि संशोधन संख्या 320 और 321 उपस्थित नहीं किये गये हैं। अनुच्छेद 162 के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 324 का आशय भी इसी संशोधन के आशय के समान है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी हां, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 164 के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 328 और 329 को उठाते हैं—श्री कामत। संशोधन संख्या 328 का प्रश्न नहीं उठता। श्री कामत आप संशोधन संख्या 329 उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 164 के खंड (1) के परन्तुक में 'Koshal Vidarbh [कोशल-विदर्भ]' शब्दों के स्थान पर 'Madhya Pradesh [मध्य प्रदेश]' शब्द रखे जायें।"

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय के समक्ष यह सुझाव रख सकता हूं कि वे इस प्रस्ताव को उस समय उपस्थित करें जब हम तद्विषयक अनसूची को उठायें? जब उस स्थल पर हम इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे तो इस अनुच्छेद में भी आनुषंगिक संशोधन किया जा सकता है।

***श्री एच.वी. कामत:** अच्छी बात है।

***अध्यक्ष:** श्री ए.वी. ठक्कर ने तीन संशोधनों की अर्थात् संशोधन संख्या 329-क, 330 और 331 की सूचना दी है। माननीय सदस्य यहां उपस्थित नहीं हैं। इस लिये अब हम अनुच्छेद 166 उठायेंगे। (संशोधन संख्या 332)।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** मेरे संशोधन (संख्या † 332) के सम्बन्ध में यह समझा जाये कि वह रस्मी तौर से उपस्थित कर दिया गया है।

---

† 332 "अनुच्छेद 166 का खंड (3) निकाल दिया जाये।"

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या †333, †334 और †335 के सम्बन्ध में मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के संशोधन उपस्थित किये गये हैं। इसलिये मैं वह माने लेता हूं कि ये रस्मी तौर पर उपस्थित कर दिये गये हैं। 336 से लेकर 339 तक जो संशोधन हैं उन्हें उपस्थित करने से कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये हम श्री कामत के संशोधन संख्या 340 और 341 को उठायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 172 के खंड (1) में 'no longer [इस से अधिक नहीं]' शब्दों के पश्चात्, एक कामा प्रविष्ट किया जाये।"

"अनुच्छेद 172 के खंड (2) में 'possible [यथाशक्य]' शब्द के स्थान पर 'practicable [यथाव्यवहार्य]' शब्द रखा जाये।"

जहां तक पहले संशोधन का सम्बन्ध है मैं अपने अंग्रेजी के थोड़े बहुत ज्ञान के आधार पर कह सकता हूं कि वाक्य-रचना के नियमों के अनुसार 'लांगर' शब्द के पश्चात् एक कामा की आवश्यकता है।

दूसरे संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 341 के सम्बन्ध में मेरी यह धारणा है कि इस प्रसंग में "यथाव्यवहार्य" शब्द अधिक उपयुक्त है। मेरे विचार से विचार-विमर्श करते समय पहले मसौदे में सभा ने "जहां तक हो सकेगा" शब्द रखे थे। "यथाशक्य" और "यथाव्यवहार्य" शब्दों में बहुत सूक्ष्म विभेद है जो इस सभा के माननीय सदस्यों के ध्यान में आ गया होगा। उदाहरणार्थ यदि किसी राज्य की विधान-परिषद् में 32 सदस्य हुए तो "यथाव्यवहार्य निकटतम एक तिहाई" से अभिप्रेत होगा 11 सदस्य। इसके विपरीत "यथाशक्य" शब्द से भ्रम हो सकता है क्योंकि कोई बात ऐसी नहीं है जो शक्य न हो। संसार में प्रत्येक बात शक्य कही जा सकती है किन्तु ''यथाव्यवहार्य" शब्द का वास्तविकता से सम्बन्ध होगा। यहां हम वास्तविकता के सम्बन्य में उपबंध रख रहे हैं। इस अनुच्छेद के इस खंड का आशय "यथाशक्य" की अपेक्षा "यथाव्यवहार्य" शब्द से अधिक सुचारु रूप से व्यक्त होगा।

---

†333 "अनुच्छेद 166 के खंड (3) में जहां 'Governor [राज्यपाल]' शब्द पहली बार आया है उस के स्थान पर 'Premier [प्रधान मंत्री]' शब्द रखा जाये।"

†334 "अनुच्छेद 166 के खंड (3) में 'more convenient [अधिक सुविधापूर्वक]' शब्दों के स्थान पर 'efficient [योग्यतापूर्वक]' शब्द रखा जाये।"

†335 "अनुच्छेद 166 के खंड (3) में से 'in so far as it is not business with respect to which the Governor is by or under this Constitution required to in his discretion [तथा जहां तक वह कार्य ऐसा कार्य नहीं है जिस के विषय में इस संविधान के द्वारा या अधीन अपेक्षित है कि राज्यपाल स्वविवेक से कार्य करे वहां तक]' शब्द निकाल दिये जायें।"

***अध्यक्षः** मैं संशोधन संख्या †343, †344, †345 और †346 के सम्बन्ध में मान लेता हूं कि वे उपस्थित कर दिये गये हैं। अब हम अनुच्छेद 189 को उठायेंगे (संशोधन संख्या 347)।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन संख्या †347 के सम्बन्ध में मैं एक बात कहना चाहता हूं। श्रीमान, यह समझ में आता है कि संसद् के समान एक बड़ी सभा

---

†343 "अनुच्छेद 181 के खंड (2) में 'and shall, notwithstanding anything in article 189, be entitled to vote only in the first instance on such resolution or on any other matter during such proceedings but not in the case of equality of votes [तथा, अनुच्छेद 189 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे संकल्प पर, अथवा ऐसी कार्यवाहियों में किसी अन्य विषय पर प्रथमतः ही मत देने का हक होगा किन्तु मत साम्य होने की दशा में न होगा]' शब्दों के स्थान पर 'but notwithstanding anything in article 189, shall not be entitled to vote on such resolution or on any matter during such proceedings [परन्तु, अनुच्छेद 189 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे संकल्प पर अथवा ऐसी कार्यवाहियों में किसी विषय पर मत देने का हक नहीं होगा]' शब्द रखे जायें।"

†344 "अनुच्छेद 181 के खंड (2) में 'anything in article 189 [अनुच्छेद 189 में किसी बात]' शब्दों और अंक के स्थान पर 'anything contained in article 189 [अनुच्छेद 189 में उल्लिखित किसी बात]' शब्दों और अंक को रखा जाये।"

†345 "अनुच्छेद 185 के खंड (2) में 'and shall, notwithstanding anything in article 189 be entitled to vote only in the first instance on such resolution or on any other matter during such proceedings but not in the case of equality of votes [तथा अनुच्छेद]' 189 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे संकल्प पर, अथवा ऐसी कार्यवाहियों में किसी अन्य विषय पर प्रथमतः ही मत देने का हक होगा किन्तु मत साम्य होने की दशा में न होगा]' शब्दों के स्थान पर 'but notwithstanding anything in article 189, shall not be entitled to vote on such resolution or on any matter during such proceedings [परन्तु, अनुच्छेद 189 में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे संकल्प पर अथवा ऐसी कार्यवाहियों में किसी विषय पर मत देने का हक नहीं होगा]' शब्द रखे जायें।"

†346 "अनुच्छेद 185 के खंड (2) में 'anything in article 189 [अनुच्छेद 189 में किसी बात]' शब्दों और अंक के स्थान पर 'anything contained in article 189 [अनुच्छेद 189 में उल्लिखित किसी बात]' शब्दों और अंक को रखा जाये।"

†347 "अनुच्छेद 189 के खंड (3) के दूसरे पैरा में 'the quorum shall, until the Legislature of the State by law otherwise provides [गणपूर्ति जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे]' शब्दों के स्थान पर 'until the Legislature of the State by law otherwise provides, the quorum shall [जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे, गणपूर्ति]' शब्द रखे जायें।"

[श्री एच.वी. कामत]

के लिये गणपूर्ति की संख्या सदस्य-संख्या का दशांश रखी जा सकती है कि किन्तु यदि राज्यों के लिये भी यही संख्या रखी गई तो इसका परिणाम कभी बड़ा विचित्र होगा। इस समय ऐसे राज्य भी हैं जिन के अवर सदनों में एक सौ अथवा एक सौ बीस से अधिक सदस्य नहीं हैं। जब तक नवीन संविधान प्रारम्भ नहीं होगा और निर्वाचनों के पश्चात् उन की फिर से रचना नहीं होगी तब तक वे ऐसे ही रहेंगे। उदाहरणार्थ मध्यप्रान्त और बरार की विधान-सभा में इस समय लगभग 120 सदस्य हैं। यदि गणपूर्ति की संख्या उस की सदस्य संख्या की दशांश रखी गई तो इस का अर्थ यह होगा कि किसी भी विधि को पारित करने के लिये बारह सदस्य पर्याप्त होंगे। यह तर्क उपस्थित किया गया है कि कामन्स सभा में गणपूर्ति की संख्या सदस्य-संख्या की केवल पन्द्रहवां अंश है। यह बात समझ में आती है क्योंकि उस सभा में छः सौ सदस्य हैं। हमारे यहां मैसूर की विधानसभा में केवल 70 सदस्य होंगे और उस में गणपूर्ति की संख्या सात होगी। उसमें कोई सन्देह नहीं कि हम यह उपबन्धित कर रहे हैं कि गणपूर्ति की संख्या कम से कम दस होनी चाहिये। ऐसी हास्यास्पद व्यवस्था करने के बजाय अच्छा यह होगा कि हम लोकतन्त्र को तिलांजलि दें और अपने अपने घरों को वापस चले जायें।

श्रीमान, मेरी अपनी यह धारणा है कि जिन विधान-मंडलों में केवल साठ से लेकर एक सौ बीस सदस्य तक हैं, हमें गणपूर्ति की संख्या सदस्य संख्या की पंचमांश अथवा षष्ठांश निर्धारित करनी चाहिये। वर्तमान उपबन्ध को रख के हमें संसार में अपनी हंसी नहीं करानी चाहिये।

***श्री आर. के. सिधवा:** श्रीमान, अनुच्छेद 189 के सम्बन्ध में मेरा संशोधन इस प्रकार है:

> "अनुच्छेद 189 के खंड (3) में 'ten [दस]' और 'one tenth [दशांश]' शब्दों के स्थान पर क्रमशः 'twenty [बीस]' और 'one eighth [अष्ठांश]' शब्द रखे जायें।"

संघीय संसद की गणपूर्ति के सम्बन्ध में मैंने जो तर्क उपस्थित किये थे उन्हीं को मैं इस सम्बन्ध में भी उपस्थित करता हूं। मेरे मित्र श्री कपूर ने जो तर्क उपस्थित किये हैं उन का मैं समर्थन नहीं करता। इस के विपरीत यह स्मरण रखना चाहिये कि भावी-संसद् को वर्ष में कम से कम नौ मास तक समवेत रहना होगा। यदि किन्हीं सदस्यों को अन्य कार्य करना हो तो वे उसे करें और सभा में बैठ कर लोगों ने उन्हें जिस कार्य के लिये भेजा है उसे अनुपयुक्त ढंग से न करें। मेरी अपनी यह धारणा है कि संसद के अगले चुनाव के पश्चात् जो सदस्य यहां आयें वे केवल संसद का ही कार्य करें। यदि वे वास्तव में कोई अन्य कार्य करना चाहें तो करें किन्तु उन्हें संसद की सदस्यता पर भी अधिकार नहीं जमाये रहना चाहिये और अन्य राजनैतिक कार्य भी नहीं करते

रहना चाहिये। हमें अब इस सम्बन्ध में निर्णय कर लेना चाहिये विशेषतया इस अवसर पर जब हम संविधान के इस भाग का निर्माण कर रहे हैं। मेरे मित्र भी कह चुके हैं और मैं भी यह चाहता हूं कि हर समय 500 सदस्य उपस्थित न रहें। मेरा निवेदन है कि सदस्य-संख्या का कम से कम आठवां अंश, अर्थात् कम से कम बीस सदस्य उपस्थित रहने चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी:** तब सभा में केवल बेकार लोग ही रहेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैंने बीस सदस्य कहा है। क्या गणपूर्ति के लिए बीस सदस्यों की भी आवश्यकता नहीं है? मतदान के समय सभा को मसौदा-समिति के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देना चाहिये और अपने पहले किये हुए निर्णय को स्वीकार करना चाहिये।

अब मैं अपना अगला संशोधन उपस्थित करता हूं। वह इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 222 के खंड (1) के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:—

'only when urgency arises [केवल जब कि यह अत्यावश्यक हो]' जब अत्यावश्यक हो तभी किसी न्यायाधीश का स्थानान्तरण करना चाहिये।"

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि: "अनुच्छेद 222 का खंड (2) निकाल दिया जाये।"

इस खंड के अधीन उच्च न्यायालय के किसी ऐसे न्यायाधीश के लिये, जिस का एक राज्य से दूसरे राज्य को स्थानान्तरण हुआ हो, प्रतिकरात्मक भत्ता निर्धारित करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी गई है। मेरे विचार से उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों और भत्तों के सम्बन्ध में संविधान में हम जिन उपबन्धों को रख चुके हैं उन में परिवर्तन न करना ही हमारे लिये उचित है। इस विषय के सम्बन्ध में सारे भारत में एकरूपता होनी चाहिये। सीमित रूप से ही क्यों न हो परन्तु इस से देश में एक राष्ट्र की भावना जाग्रत होगी। यदि हम किसी एक राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और किसी अन्य राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों और भत्तों में द्वेष से विभेद करेंगे तो इस का परिणाम बुरा ही होगा। कम से कम मैं इसे न तो पसंद करूंगा और न प्रोत्साहित करूंगा। संविधान में अथवा संसद द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये जो वेतन और भत्ते निर्धारित किये गये हों वे मद्रास अथवा बम्बई अथवा संयुक्त प्रान्त के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को समान रूप से मिलने चाहियें। मेरे विचार से जब उन के लिये अनुसूची में चार अंकों वाला वेतन निर्धारित किया गया है तो उन्हें प्रतिकरात्मक भत्ता देने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि जब उन्हें

[श्री एच.वी. कामत]

3000 रुपए अथवा 4000 रुपए का वेतन मिलेगा तो स्थानान्तरित होने पर उन्हें प्रतिकरात्मक भत्ता क्यों दिया जाये। अपने न्यायाधीशों तथा लोक-सेवकों से हम यही आशा करेंगे कि वे देश भक्त होंगे और जब सार्वजनिक हित की दृष्टि से वे एक राज्य से दूसरे राज्य को स्थानान्तरित किये जायेंगे तो वे भत्तों की मांग नहीं करेंगे। उन्हें जो वेतन और भत्ते दिये जाते हैं वे पर्याप्त होने चाहियें। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** इस उपखंड को निकालने के सम्बन्ध में मेरे मित्र श्री कामत ने जो तर्क उपस्थित किये हैं उन का मैं एक अन्य कारण से समर्थन करता हूं। हम यह चाहते हैं कि न्यायाधीशों के हितों की रक्षा हो किन्तु इस सम्बन्ध में व्यवस्था करने में हम बहुत आगे बढ़ रहे हैं। उन की छुट्टी भत्तों, निवृत्ति-वेतनों आदि के सम्बन्ध में हम विस्तृत उपबन्ध रख चुके हैं। इतना अधिक विवरण देकर हमें अपने संविधान को बोझल नहीं बनाना चाहिये। यदि न्यायाधीशों को अधिक भत्ते देने की आवश्यकता पड़ेगी तो मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति अथवा संसद उसे प्रदान करने के किसी संविधानिक कठिनाई का अनुभव नहीं करेगी। मेरे विचार से यह उपबन्ध बिलकुल अनावश्यक है और उसे निकाल देना चाहिये।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** श्रीमान्, अनुच्छेद 224 के सम्बन्ध में मैं अपना संशोधन संख्या 355 नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं संशोधन संख्या 356 के समान ही एक संशोधन को उपस्थित कर चुका हूं। इसलिये मैं संशोधन संख्या 356 नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** मैं संशोधन संख्या 377 नहीं उपस्थित कर रहा हूं। मैं अनुच्छेद 302 के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 383 को उपस्थित करना चाहता हूं।

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 302 में 'as may be required in the public interest [जैसे कि लोक-हित में अपेक्षित हों]' शब्दों के स्थान पर 'as may be required in the general public interest [जैसे कि जनसाधारण के हित में अपेक्षित हों]' शब्द रखे जायें।"

अथवा, विकल्पत:

"अनुच्छेद 302 में 'may by law [विधि द्वारा]' शब्दों के पश्चात् 'enacted by virtue of power conferred by the Constitution [जो संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो]' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

यदि आप कृपा कर के अनुच्छेद 302 को देखें तो आप को ज्ञात होगा कि 'संसद विधि द्वारा' शब्दों के पश्चात कुछ बिन्दु हैं और दूसरे पठन के अवसर पर इन के स्थान पर ये शब्द थे:

"जो संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो।"

यह अनुच्छेद 302 तथा अनुच्छेद 301, 303 आदि भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम के सम्बन्ध में हैं। वास्तव में आरम्भ में मूलाधिकारों में एक धारा इस आशय की थी कि सारे भारत में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध रूप से किया जा सकेगा, वह अनुच्छेद निकाल दिया गया है और कुछ अन्य उपबन्ध रख दिये गये हैं। यह अनुच्छेद 303 आदि प्रारम्भिक उपबन्धों में भी थे किन्तु हम ने यह विचार किया था कि वे अनुच्छेद 16 के अधीन हैं। अब दिखाई यह देता है कि अनुच्छेद 302 के द्वारा व्यापार आदि की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाने की शक्ति संसद को दी जा रही है। यदि आप कृपा कर के अनुच्छेद 19 (छ) पर दृष्टि डालें जिस पर हम विचार कर चुके हैं तो आप देखेंगे कि वह इस प्रकार है—

"सब नागरिकों को कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।"

जो निर्बन्धन लगाये गये हैं वे खंड (6) में वर्णित हैं। उस में कहा गया है—

"उक्त खंड के उपखंड (6) की कोई बात उक्त खंड द्वारा दिये गये अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में युक्ति युक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उस के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी....."

मेरा निवेदन है कि भारत के निवासियों को जो न्यूनतम तथा आधारभूत अधिकार प्राप्त हैं वे मूलाधिकार ही हैं। भारत के प्रत्येक निवासी को इस देश का नागरिक होने के नाते भारत के किसी भी भाग में व्यापार करने का अधिकार है। इस पर केवल वही निर्बन्धन लगाये गये हैं जो खंड (6) में वर्णित हैं। अनुच्छेद 302 के अधीन भी लोक-हित में अपेक्षित होने पर न कि सार्वजनिक हित में अपेक्षित होने पर, संसद निर्बन्धन आरोपित कर सकती है। इन दो पदावलियों में यह अन्तर है। अनुच्छेद 19 में जिन अधिकारों को स्पष्ट शब्दों में मूलाधिकारों के रूप में प्रदान किया गया है उन्हें अनुच्छेद 302 में "लोक-हित में'' शब्द रख कर अपहृत किया जा रहा है। मैं यह बता कर कि इन पदावलियों में क्या अन्तर है सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। "लोक-हित'' शब्द प्रयुक्त हैं न कि "जनसाधारण के हित"। "लोक-हित" राज्य के लोगों के वर्गीय हित हो सकते हैं किन्तु जनसाधारण के हित का अभिप्राय होगा भारतीय जन-साधारण के हित।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** यह संशोधन मसौदा-समिति के उपस्थित किये हुए किसी संशोधन से उत्पन्न नहीं होता और इसलिये यह अनियमित है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से आप ठीक कहते हैं।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** इस सम्बन्ध में निर्णय करने के पूर्व मेरी बात कृपा कर के सुन ली जाये।

संशोधन संख्या 383 में दो संशोधन सन्निहित हैं—एक यह है कि ''जो संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो'' शब्द प्रविष्ट किये जायें और दूसरा यह है कि "जनसाधारण के हित में" शब्द रखे जायें। वास्तव में इन दोनों संशोधनों का उद्देश्य एक ही है। इन दो संशोधनों में कुछ भी अन्तर नहीं है। यदि ये शब्द रखे गये तो यह अनुच्छेद उन्नीसवें अनुच्छेद के अधीन हो जायेगा। इसलिये मेरा निवेदन है कि या तो "जो संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो" शब्द पूर्ववत् रखे जायें या "जनसाधारण के हित में" शब्द रखे जायें। मेरे विचार से जब हम अनुच्छेद 19 को पारित कर चुके हैं तो हम किसी ऐसे अनुच्छेद को पारित नहीं कर सकते जिस से उस का शून्यन होता हो। इन दोनों में असंगति है और मसौदा-समिति तथा सभा से मेरा निवेदन है कि वे इस असंगति पर विचार करें और इसे दूर कर दें।

***अध्यक्षः** आप का तर्क यह है कि "साधारण" शब्द का आशय वही है जो निकाले गये शब्दों का है। इसलिये या तो "साधारण" शब्द जोड़ा जाये या निकाले गये शब्द फिर रखे जायें।

संशोधन संख्या 384

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 309 के परन्तुक में से 'or such person as he may direct [अथवा ऐसे व्यक्ति को जिसे वह निदेशित करें]' शब्द निकाल दिये जायें।"

मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा संघ की सेवाओं के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को और राज्यों की सेवाओं के सम्बन्ध में राज्यपाल अथवा राजप्रमुख को भर्ती करने तथा उन में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में उस समय तक नियम बनाने की शक्ति दी गई है जब तक कि यथास्थिति संसद अथवा राज्य का विधान-मंडल इस सम्बन्ध में उपबन्ध न बना ले। मैं देखता हूं कि मसौदा समिति ने जिस संशोधन की सिफारिश की है उस में कुछ भी सार नहीं है। संशोधन का आशय यह है कि इस सम्बन्ध में केवल राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की ही क्षमता प्राप्त नहीं है किन्तु ऐसे व्यक्ति को भी यह क्षमता प्राप्त

है जिसे वह निदेशित करे। मेरे विचार से इस संशोधन को उपस्थित कर के लड़कपन का ही परिचय दिया गया है। आज प्रातः जब हम ने कार्यपालिका प्राधिकार के विषय पर विचार किया तो हम ने देखा कि संघ की कार्यपालिका शक्ति को राष्ट्रपति या तो स्वयं प्रयोग कर सकता है या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा प्रयोग कर सकता है। इसका यह अर्थ है कि यदि उसे वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है तो अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा प्रयोग करवा सकता है। इस प्रसंग में भी नियम बनाने की शक्ति को या तो वह स्वयं प्रयोग कर सकता है अथवा प्राधिकार दिये हुए व्यक्तियों से प्रयोग करवा सकता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदा-समिति इस का उल्लेख क्यों करना चाहती है कि उसे या तो वह स्वयं प्रयोग कर सकता है या अपने निदेशित किये हुए किसी व्यक्ति से प्रयोग करवा सकता है। सारे संविधान में हम ने इस का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है कि राष्ट्रपति जब कभी कार्य करेगा अपने मंत्रिमंडल से मंत्रणा लेकर कार्य करेगा और अपनी इच्छा से कार्य नहीं करेगा। वह अपना प्राधिकार किसी अन्य व्यक्ति को भी दे सकता है। ये शब्द बिल्कुल अनावश्यक और सारहीन हैं। इसलिये मैंने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल तथा राज्यप्रमुख के सम्बन्ध में जहां कहीं "अथवा ऐसे व्यक्ति को जिसे वह निर्देशित करे" शब्द आये हों वे निकाल दिये जायें क्योंकि इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि जहां कहीं राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राज्यप्रमुख का उल्लेख है उस से व्यक्ति विशेष अभिप्रेत नहीं है बल्कि संघ के अथवा राज्य के कार्यपालिका प्राधिकार का प्रतीक अभिप्रेत है। इस लिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह मेरे संशोधन संख्या 384 पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने इस सम्बन्ध में जो तर्क उपस्थित किये हैं उन से भी मैं सहमत हूं। हम या तो राष्ट्रपति को यह शक्ति दें या न दें। यदि हमारा यह विचार हो कि वह इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन नही कर सकेगा और वह इस कारण कि वह बहुत विस्तृत है अथवा उस का कोई महत्व नहीं है और उस के लिये यह आवश्यक होगा कि वह अपनी शक्ति किसी अन्य व्यक्ति को प्रदान करे तो अच्छा यह होगा कि हम इस स्थल पर उस व्यक्ति का उल्लेख कर दें और राष्ट्रपति को यह शक्ति दे कर फिर उस से उसे किसी अन्य व्यक्ति को देने को न कहें। वास्तव में श्रीमान्, संविधान में सेवाओं के हितों के रक्षण को जो महत्व दिया गया है उस से मैं पूर्णतया असहमत हूं। मुझे तो इस से भारत-मंत्री के दिनों का स्मरण होता है जब वह संसार के किसी भी भाग में सेवाओं में प्रसंविदा द्वारा नियुक्त सभी-व्यक्तियों का पिता था। मेरे विचार से यह इस विचार-धारा का भी द्योतक है कि देश में सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों का इतना अधिक महत्व है कि राष्ट्रपति के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति उन की सेवा की शर्तों आदि के सम्बन्ध में हस्तक्षेप नहीं करेगा। श्रीमान,

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

यद्यपि मैं यह चाहता हूं कि यह शक्ति किसी अन्य व्यक्ति को दी जाये किन्तु अच्छा यह होगा कि या तो यह शक्ति राष्ट्रपति को ही दी जाये अथवा यह शक्ति संघ की या राज्य की सरकार को दी जाये और राष्ट्रपति का कोई उल्लेख ही नहीं किया जाये। किन्तु यदि हम अपने संविधान में राष्ट्रपति को बहुत कुछ पहले के भारत-मंत्री के समान बनाना चाहते हैं तो केवल राष्ट्रपति का उल्लेख किया जाये और यह न कहा जाये कि वह किसी अन्य व्यक्ति को शक्ति सौंप सकेगा। वास्तव में राष्ट्रपति से यह अभिप्रेत नहीं है कि प्रत्येक मामले में वह स्वयं कार्य करेगा। अधिकांश मामलों में वह किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा कार्य करेगा। अधिसूचनाओं में लिखा जायेगा कि "राष्ट्रपति ने कृपा कर के यह आदेश दिया है, इत्यादि" किन्तु सम्भवत: एक स्टैनोग्राफर, जो स्नातक भी न होगा, राष्ट्रपति के नाम से उस अधिसूचना का मसौदा तैयार करेगा। *(हास्य)*।

(संशोधन संख्या 387 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 311 के खंड (3) में 'reasonably practicable to give to any person an opportunity [किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है या नहीं]' शब्दों के स्थान पर 'practicable to give any person a reasonable opportunity [किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर देना व्यवहार्य हैं या नहीं]' शब्द रखे जायें।"

यदि मेरे माननीय सहकारी थोड़ी देर के लिये इस अनुच्छेद के खंड (2) की ओर ध्यान दें तो वे देखेंगे कि उसमें "युक्तियुक्त अवसर उसे न दिया गया हो, इत्यादि" शब्द प्रयुक्त हैं, अर्थात् जब तक किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर न दिया गया हो तब तक उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है किन्तु खण्ड (3) में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है और "युक्तियुक्त अवसर" शब्दों को प्रयोग न करके "युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है" शब्द प्रयोग किये गये हैं। मेरे विचार से इस परिवर्तन के कारण इस खण्ड का अर्थ बहुत बदल जायेगा। यदि सभा मेरे संशोधन की स्वीकार करेगी तो जो अवसर दिया जायेगा वह युक्तियुक्त अवसर होगा। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव पहले के अनुच्छेद 13 के सम्बन्ध में ''युक्तियुक्त" शब्द पर बहुत जोर दिया था और मुझे आशा है कि इस प्रसंग में भी युक्तियुक्त शब्द रखने के सम्बन्ध में वे मुझ से सहमत होंगे क्योंकि जब कभी कार्यवाही करने वाला व्यक्ति सम्बन्धित पदाधिकारी को अवसर नहीं देना चाहेगा तो वह यही कहेगा कि यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं था। ''व्यवहार्य" का अर्थ है पूर्णतया व्यवहार्य। मुझे विश्वास है कि जब विचार-विमर्श करते समय डॉ. अम्बेडकर ने यह अनुच्छेद उपस्थित किया था तो उनकी दृष्टि में यही अर्थ था। इसका यह अर्थ है कि किसी पदाधिकारी

को उस दशा में और केवल उसी दशा में, कारण दिखाने का अवसर नहीं दिया जा सकता है जब कि उसका पता न लगे अथवा उसका पता ज्ञात न हो। अब मसौदा-समिति ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें कहा गया है कि-"यदि पदाधिकारी का यह विचार हो कि उस व्यक्ति को अवसर देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है"। इसका यह अर्थ है कि सम्भव है कि व्यवहार्य हो किन्तु युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य न हो। अन्तर यह है कि मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय सहकारी इसे समझेंगे। हमें निश्चित शब्दों में यह निर्धारित कर देना चाहिये कि केवल उस दशा में, जब सम्बन्धित पदाधिकारी को युक्तियुक्त अवसर देना सम्भव न हो, उससे ऊंचे पदाधिकारी का विनिश्चय अन्तिम होगा। मेरे विचार से, पिछले सत्र में इस सभा ने जो मसौदा स्वीकार किया था उसमें मसौदा-समिति ने मनमाने ढंग से परिवर्तन किये हैं और मैं समझता हूं कि हमें इस में इस प्रकार रूप भेद कर देना चाहिये कि इस खंड का आशय पूर्णतया स्पष्ट हो जाये। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरे संशोधन संख्या 388 पर विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 389 ।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 316 के खण्ड (1) के परन्तुक में 'under an Indian State [किसी देशी राज्य के अधीन]' शब्दों के स्थान पर 'in an Indian State [किसी देशी राज्य में]' शब्द रखे जायें।"

मैं यह नहीं कहता कि मुझे अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार है या मैं उस भाषा का विशेषज्ञ हूं। मैं इस संशोधन को केवल इसलिये उपस्थित कर रहा हूं कि मैं इसे आवश्यक समझता हूं। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति के सदस्य, जो इस सम्बन्ध में मुझ से कहीं अधिक बुद्धिमान हैं, इस परन्तुक द्वारा तथा 'किसी देशी राज्य के अधीन पद धारण कर चुके हैं' पदावलि द्वारा जिस अर्थ को व्यक्त करना चाहते हैं उसकी ओर यथेष्ट ध्यान देंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि "सम्राट के अधीन पद धारण किया हो" पदावलि संविधानिक पदावलि है किन्तु मैंने "किसी देशी राज्य के अधीन पद धारण किया हो" पदावलि कभी नहीं सुनी। यह पदावधि या तो "किसी देश राज्य की सरकार के अधीन" होनी चाहिये या "किसी देशी राज्य में" होनी चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं अपने माननीय मित्र को बता सकता हूं कि इरादा यह है कि सभा की अनुमति से इन शब्दों के स्थान पर "किसी देशी राज्य की सरकार के अधीन" शब्द रखे जायें।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने मेरे इस सुझाव को स्वीकार कर लिया है और इसलिये श्रीमान, मैं इस संशोधन पर जोर नहीं देता।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से संशोधन संख्या 392 का प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं माननीय सदस्य से निवेदन कर सकता हूं कि वे शुद्धिपत्र पर दृष्टि डालें और देखें कि उसमें इसे स्थान मिल गया है या नहीं। उसमें दो कामा दिये गये हैं।

***एक माननीय सदस्य:** मसौदा-समिति ने इस संशोधन को चुरा कर इसे स्थान दे दिया है।

***श्री एच.वी. कामत:** "चुरा कर" शब्द संसदोचित नहीं हो सकते हैं इसलिये यह कहा जाये कि उसने इस संशोधन को अपना कह कर स्थान दिया है। संशोधन सख्या 392 भी विराम चिह्नों के ही सम्बन्ध में है। चूंकि मसौदा-समिति को विराम चिह्नों का यथेष्ट ज्ञान है इसलिये मैं इसे उसी के निर्णय के लिये छोड़ देता हूं। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 319 के खंड (ग) में 'other than a Joint Commission [संयुक्त आयोग के अतिरिक्त]' शब्दों के स्थान पर 'or as the Chairman of a Joint Commission [अथवा संयुक्त आयोग के सभापति के रूप में]' शब्द रखे जायें।"

यह अनुच्छेद आयोग के सदस्यों द्वारा ऐसे सदस्य न रहने पर, अर्थात आयोग के सदस्य न रहने पर, पदों के धारण के सम्बन्ध में प्रतिषेध के सम्बन्ध में है। जब लोक सेवा आयोग के कोई सदस्य आयोग के सदस्य अथवा सभापति न रहें तो ऐसी दशा में इस अनुच्छेद में इनके सम्बन्ध में कुछ निर्बन्धन रखे गये हैं। इस अनुच्छेद के खंड (ग) में संघ-लोकसेवा-आयोग के सभापति के अतिरिक्त अन्य सदस्यों के लिये निर्बन्धन रखे गये हैं। उसमें कहा गया है "ऐसा सदस्य पद रिक्त करने पर संयुक्त आयोग के अतिरिक्त किसी राज्य-लोकसेवा-आयोग का सभापति नियुक्ति होने का पात्र होगा।" मेरी समझ में नहीं आता कि संयुक्त-आयोग के सम्बन्ध में यह प्रतिषेध क्यों रखा गया है। उस व्यक्ति ने संघ-आयोग के सदस्य का पद रिक्त कर दिया होगा। मेरे विचार से तर्कयुक्त यही है कि जैसे राज्य आयोग के सम्बन्ध में कोई प्रतिषेध नहीं है वैसे ही संयुक्त-आयोग का सदस्य होने के लिये भी कोई प्रतिषेध नहीं होना चाहिये। प्रतिषेध केवल संघ-लोकसेवा-आयोग का सदस्य अथवा सभापति रहने के सम्बन्ध में होना चाहिये। किन्तु न तो राज्य-आयोग के सम्बन्ध में और न संयुक्त आयोग के सम्बन्ध में कोई प्रतिषेध होना चाहिये। इस कारण मैं संशोधन संख्या 393 को उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 320 को उठायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** टी.टी. कृष्णमाचारी कहते हैं कि मसौदा-समिति ने यह संशोधन स्वीकार कर लिया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यदि मेरे माननीय मित्र संशोधन संख्या 394 और 395 के प्रथम विकल्प को (क्योंकि उसे केवल दोहराया ही गया है) उपस्थित करेंगे तो हम उनके संशोधनों को स्वीकार कर लेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे इसकी प्रसन्नता है। मैं संशोधन संख्या 394 तथा 395 का प्रथम विकल्प उपस्थित करता हूं।

"अनुच्छेद 320 के खंड (3) के उपखंड (घ) में 'under an Indian State [किसी देशी राज्य के अधीन]' शब्दों के स्थान पर 'under the Government of an Indian State [किसी देशी राज्य की सरकार के अधीन]' शब्द रखे जायें।"

"अनुच्छेद 320 के खंड (3) के उपखंड (ङ) में 'under an Indian State [किसी देशी राज्य के अधीन] शब्दों के स्थान पर 'under the Government of an Indian State [किसी देशी राज्य की सरकार के अधीन]' शब्द रखे जायें।"

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 320 के खंड (4) में से 'the members of the Scheduled Castes or Scheduled Tribes [अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्य]' शब्द निकाल दिये जायें।"

यदि आप कृपा करके अनुच्छेद 320 के खण्ड (4) पर दृष्टि डालें तो आप देखेंगे कि उसमें ये शब्द प्रयुक्त हैं:

"खंड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोकसेवा-आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे संघ में, अथवा राज्यों में, अनुसूचित जातियों, अथवा अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के लिये, अथवा नागरिकों के किसी पिछड़े हुए वर्ग के लिये, पद अथवा स्थान रक्षित रखे जायें।"

ये शब्द अर्थात् "अनुसूचित जातियों, अथवा अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के लिये, अथवा" नवीन शब्द हैं। पहले ये शब्द नहीं रखे गये थे। अब जहां तक स्थान रक्षित करने का सम्बन्ध है हम देखते हैं कि अनुच्छेद 16 में इसका उल्लेख किया गया है जिसके खंड (1) में ये शब्द प्रयुक्त हैं ''राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।" इसके अतिरिक्त खंड (4) में कहा गया है कि "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई बाधा नहीं होगी।'' इन दो धाराओं को पढ़ने में यह स्पष्ट हो जायेगा कि वास्तव में यह रक्षण केवल उस पिछड़े हुए नागरिक वर्ग के सम्बन्ध में है जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के लिये स्थान रक्षित करने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। इस वर्ग

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

को विधि द्वारा जो रक्षण प्रदान किया गया है वह अनुच्छेद 335 में वर्णित है जिसमें कहा गया है कि "संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिये नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।" इसलिये कम से कम इतना तो स्पष्ट है ही कि अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के लिये स्थान रक्षित करने का कोई इरादा नहीं था। मुझे स्मरण है कि अल्पसंख्यक समिति की उपसमिति के सामने यह मामला आया था और उस समय हमने यह निर्णय किया था कि स्थान रक्षित न रखे जायें। अब चुपचाप छिपाकर अनुच्छेद 320 के खंड (4) में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के लिये स्थान रक्षित करने के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे जा रहे हैं। मेरा निवेदन है कि जब संविधान में लोकसेवा-आयोग के सदस्यों को स्पष्ट शब्दों में यह समादेश दिया गया है कि नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाये, जिसका कि उसे पालन करना ही होगा, तो यह उपबन्ध निरर्थक सिद्ध होगा और वास्तव में इससे एक प्रकार से अनुच्छेद 335 का प्रभाव कम हो जायेगा। मैं यह चाहता हूं कि जहां तक अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों का सम्बन्ध है, सभी नियुक्तियों के सम्बन्ध में न कि केवल रक्षित स्थानों के सम्बन्ध में उनके दावों का ध्यान रखा जाये। यदि स्थान रक्षित किये गये तो उनके लिये अन्य लोगों के दावों पर विचार नहीं किया जायेगा और केवल उन्हीं के दावों का ध्यान रखा जायेगा। इससे यह होगा कि केवल रक्षित स्थानों के सम्बन्ध में उनके दावों पर विचार किया जायेगा और अन्य स्थानों के सम्बन्ध में उनके दावों का ध्यान नहीं रखा जायेगा।

सभा को यह विदित है कि अनुच्छेद 16 के खंड (4) में जो उपबन्ध हैं वे निराकरण मूलक उपबन्ध हैं और इस कारण रखे गये हैं कि अवसर समता से सभी नागरिक समान रूप से लाभ उठा सकें क्योंकि उनमें से कुछ का बहुत विकास हुआ है और कुछ का बिलकुल भी नहीं हुआ है। उपबन्ध यह रखा गया है कि नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में राज्य के लिये कोई बाधा नहीं होगी। मैं कह नहीं सकता कि राज्य पदों को उन के लिये रक्षित रखेगा या नहीं। यदि पद रक्षित नहीं किये गये तो इस उपबन्ध से न तो पिछड़े हुए वर्गों को और न किसी अन्य वर्ग को लाभ होगा। जब इस सभा ने यह निर्णय नहीं किया है कि पद रक्षित किये जायेंगे तो हम इस खंड (4) में किसी ऐसी स्थिति के लिये व्यवस्था नहीं कर सकते हैं जिस में पदों के रक्षित करने की आवश्यकता पड़े। सभा ने अन्तिम रूप से यह निर्णय किया है कि पदों को रक्षित नहीं किया जायेगा किन्तु इन शब्दों से यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि पदों को रक्षित किया जा सकता है।

मैं यह चाहता हूं कि संविधान द्वारा जो अधिकार प्रदान किये गये हैं उन का अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लोग भी पूर्ण रूप से उपभोग करें और उन्हें न तो उन से अधिक अधिकार प्राप्त हो न उन से कम। अनुच्छेद 335 के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि वह एक सार्थक उपबन्ध है और उस का पर्याप्त विस्तार है। यदि मैं लोक सेवा-आयोग का सदस्य होता तो मैं प्रशासन कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के सदस्यों को आने वाले पांच या दस वर्षों तक प्रत्येक स्थान देना चाहता ताकि वे.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या माननीय सदस्य महोदय बतायेंगे कि आखिर अनुच्छेद 335 को किस प्रकार प्रवर्तन में लाया जाये?

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** क्या उसे केवल स्थानों के रक्षण से ही प्रवर्तन में लाया जा सकता है? यदि यही बात है तो इस सम्बन्ध में सभा ने निर्णय क्यों नहीं किया? हम ने इस के विरुद्ध निर्णय किया और हम इस के विरुद्ध रहे हैं। मसौदा-समिति छिपा कर एक ऐसे उपबन्ध को प्रविष्ट करना चाहती है जिस से सभा के निर्णय का खंडन होता है। आखिर यह प्रश्न पहले क्यों नहीं उठाया गया? मेरे विचार से स्थान रक्षण की व्यवस्था एक गलत व्यवस्था है। अनुच्छेद 335 के अधीन उन के दावों पर अवश्य ही विचार किया जायेगा। आखिर एक आयोग नियुक्त किया जायेगा और कल्याण सम्बन्धी अधिकारी भी नियुक्त किये जायेंगे। राष्ट्रपति यह देखता रहेगा कि इन समुदायों के अधिकारों की रक्षा हो रही है या नहीं। मेरे विचार से कोई कारण नहीं है कि अनुच्छेद 335 प्रवर्तन में नहीं लाया जाये। उसे प्रवर्तन में लाना चाहिये किन्तु यह उसे प्रवर्तन में लाने का कोई ढंग नहीं है।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से यह एक दुर्भाग्य की बात है कि इस सभा ने जो थोड़ी सी सुविधाएं प्रदान की हैं उन्हें भी इस प्रकार सीमित किया जा रहा है। मैं अपने माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव के संशोधन से सहमत नहीं हूं क्योंकि अनुच्छेद 335 को, अर्थात् पूर्व अनुच्छेद 296 को प्रवर्तन में लाने के लिए अनुच्छेद 320 के खंड (4) में उपबन्ध रखे जा रहे हैं। श्रीमान, उन्होंने पिछड़े हुए समुदायों की चर्चा की है किन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि यह पदावलि कोई विस्तृत पदावलि नहीं है और इसे भारत की सभी प्रान्तीय सरकारों ने भी स्वीकार नहीं किया है। मद्रास में पिछड़े हुए समुदायों से लोगों के कुछ वर्ग-विशेष समझे जाते हैं और वास्तव में अनुसूचित जातियां और अनुसूचित आदिम जातियां पिछड़े हुए समुदायों से भिन्न हैं। यदि मेरे विद्धान मित्र का उद्देश्य यह है कि संविधान में स्थानों के रक्षण के सम्बन्ध में केवल पिछड़े हुए समुदायों का ही उल्लेख रहे तो अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लोगों के लिये न तो मद्रास में और न कुछ अन्य प्रान्तों में स्थानों का रक्षण रहेगा। इस लिये मेरी यह धारणा है कि अनुच्छेद 335 के आशय को स्पष्ट करने के लिये तथा उसे प्रवर्तन में लाने के लिये अनुच्छेद

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

320 के खंड (4) में जो उपबन्ध रखे गये हैं वे उपयुक्त उपबन्ध हैं। मेरे मित्र कहते थे कि रक्षण के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई है किन्तु यदि वे अनुच्छेद 335 का अध्ययन करें तो वे देखेंगे कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के लोगों के लिये सेवाओं में स्थानों के रक्षण की व्यवस्था की गई है। खंड (4) द्वारा लोकसेवा-आयोग से परामर्श करने की शक्ति दी गई है। लोक सेवा-आयोग ही अन्तिम रूप से राज्यपालों को तथा संघ के राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में मंत्रणा देगा कि अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों के लोगों को किस आधार पर नियुक्त किया जाये। इसलिये मेरी यह प्रबल धारणा है कि यदि मेरे माननीय मित्र का संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो उस का अर्थ यह होगा कि अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों के लोगों के लिये सेवाओं में स्थान रक्षित नहीं किये जायेंगे। इस कारण मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, मेरा यह प्रस्ताव है कि इस अनुच्छेद को स्थगित रखा जाये। यह एक बहुत ही विवादग्रस्त अनुच्छेद है।

***अध्यक्ष:** मैं अब इस पर बहस करने की आज्ञा देता हूं। जो लोग बोलना चाहते हैं वे बोल सकते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं है कि मत अन्त में लिया जायेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मुझे इस की प्रसन्नता है कि बहुत से माननीय सदस्य इस का अनुभव कर रहे हैं कि यह एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। इस में कोई सन्देह नहीं कि यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। मसौदा-समिति ने इस अनुच्छेद में जो परिवर्तन किये हैं उन का मैं विरोध नहीं करता और मैं इस सभा के सदस्यों तथा अनुसूचित जातियों और आदिम-जातियों के प्रतिनिधियों से अपील करता हूं कि वे भी अनुच्छेद 335 में ''पिछड़े हुए वर्ग'' शब्दों के प्रविष्ट किये जाने का विरोध न करें। यह बहुत ही अनुचित हुआ कि उस अनुच्छेद से यह पदावलि निकाल दी गई। इस से किसी व्यक्ति को कोई लाभ नहीं हुआ और विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों के लोगों को तो कुछ भी लाभ नहीं हुआ। जिस प्रकार हम अनुच्छेद 320 में ''अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों के सदस्य'' शब्द जोड़ना चाहते हैं और ''नागरिकों के पिछड़े हुए वर्ग'' शब्द रहने देना चाहते हैं उसी प्रकार अनुच्छेद 335 में भी ''पिछड़े हुए वर्ग'' शब्द जोड़ दिये जाने चाहिये। यह सर्वथा समुपयुक्त तथा सुसंगत होगा। यदि इस सुझाव को स्वीकार कर लिया गया तो अभी जो संशोधन उपस्थित किया गया है उस का मैं बहुत विरोध करूंगा। यदि अनुसूचित जातियों के लोगों को कुछ अधिक आश्वासन देने के लिये भी रक्षणों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करने की आवश्यकता हो तो हमें उन का उल्लेख करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिये। हम लोगों से अपने उदार उद्देश्यों पर विश्वास रखने के लिये बहुत कुछ कहते हैं। उचित यह होगा कि हम अपने उद्देश्यों को व्यावहारिक राजनीति में चरितार्थ करें

और उन्हें ऐसे शब्दों में स्पष्ट रूप में व्यक्त करें जिन्हें साधारण नागरिक समझ सकें। यदि इस उद्देश्य से मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 320 में समुदायों के दो वर्गों का उल्लेख करने का सुझाव रखा है तो मुझे उस के सुझाव पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु साथ ही मैं सभा से, तथा प्रत्येक व्यक्ति से, अपील करता हूं कि अनुच्छेद 335 में "पिछड़े हुई वर्ग" शब्द भी रखे जायें। इस अनुच्छेद का यह छोटा सा इतिहास है और मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार इस संविधान के अन्य उपबन्धों के सम्बन्ध में अकस्मात् कई बातें हो गईं उसी प्रकार ये शब्द भी छूट गये हैं। अनुच्छेद 335 में "पिछड़े हुए वर्ग" पदावलि का इसी प्रकार उल्लेख नहीं हुआ था। उद्देश्य यह नहीं था कि उन का उल्लेख नहीं किया जाये। श्री मुंशी ने प्रस्तावित अनुच्छेद के सम्बन्ध में कई बार संशोधन उपस्थित किये किन्तु किसी भी संशोधन में यह सुझाव नहीं रखा गया कि "पिछड़े हुए वर्ग" शब्द निकाल दिये जायें। बहुत बाद में जब दुर्भाग्य से मैं दिल्ली से बाहर गया हुआ था, मैंने एकाएक देखा कि ये शब्द निकाल दिये गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति यही समझता है कि इस प्रश्न का सर्वोत्तम हल यही है कि अनुच्छेद 320 में जिन शब्दों को जोड़ने का प्रस्ताव रखा गया है उन्हें स्वीकार किया जाये और इस सभा के माननीय सदस्य इस पर जोर दें कि अनुच्छेद 335 में 'पिछड़े हुए वर्ग' शब्द पूर्ववत् रहें। ये शब्द जान बूझ कर रखे गये थे और प्रत्येक व्यक्ति की, तथा विशेषत: पिछड़े हुए वर्गों के प्रतिनिधियों की, और मैं कहूंगा कि अनुसूचित जातियों और आदिम-जातियों के प्रतिनिधियों की भी वास्तव में यही मांग थी। विभिन्न समुदायों के हितों में कभी भी विरोध नहीं रहा है और मुझे आशा है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लोग इस विरोध का सूत्रपात नहीं करेंगे क्योंकि इस का दुष्परिणाम सारे राष्ट्र को भोगना पड़ेगा। इस लिये मैं अपील करता हूं कि अनुच्छेद 320 में जो शब्द रखे गये हैं वह रहने दिये जायें और अनुच्छेद 335 में "पिछड़े हुए वर्ग" शब्द.....

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 335 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैंने इस आशय का एक संशोधन भेजा है किन्तु उसे भेजने में कुछ देर हो गई है। मैं घर से बाहर गया हुआ था और मैं उसे समय पर नहीं भेज सका किन्तु जैसे ही मुझे सूचना मिली मैंने उसे भेज दिया। मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये। वह संशोधन संख्या 530 है। उस में मैंने यह कहा है कि "अनुच्छेद 335 में 'सदस्यों' शब्द के पश्चात् 'पिछड़े हुए वर्गों' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव ने जो संशोधन उपस्थित किया है उस का विरोध करने के लिये मैं अपनी जगह से उठा हूं। मसौदा-समिति ने जो मसौदा प्रस्तुत किया है वह कुछ कारणों से प्रस्तुत किया है। चूंकि इस सभा ने पिछली बार अनुच्छेद 335 को अनुच्छेद 296 के रूप में स्वीकार कर लिया था इस लिये उस अनुच्छेद

[श्री एच.जे. खांडेकर]

को प्रयोग में लाने के लिये अनुच्छेद 324 सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। अनुच्छेद 335 के अनुसार अनुसूचित जातियों के लिये सेवाओं में स्थान रक्षित किये गये हैं किन्तु उस अनुच्छेद के अधीन लोकसेवा-आयोग अथवा संघ-लोकसेवा-आयोग को इस सम्बन्ध में शक्ति नहीं दी गई है। उस अनुच्छेद को प्रयोग में लाना आवश्यक है। इसी प्रयोजन से मसौदा-समिति ने इस संशोधन को उपस्थित किया है। इस के स्वीकार होने पर ही संघ-लोकसेवा-आयोग तथा राज्यों के लोकसेवा-आयोग अनुसूचित जातियों के दावों पर विचार कर सकेंगे। मैं बहुत खेद के साथ यह कहता हूं कि ऐसे संशोधन जैसे कि श्री भार्गव ने उपस्थित किये हैं, इस अवसर पर हरिजनों को दफनाने के लिये ही उपस्थित किये गये हैं। देश में सवर्ण हिन्दुओं में कुछ लोग ऐसे हैं—मैं उन की आलोचना नहीं कर रहा हूं किन्तु कुछ तथ्यों को बता रहा हूं—जो हमें कुछ भी सुविधा नहीं देना चाहते। हिन्दू समाज के कुछ लोगों को तभी संतोष होगा जब अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के लोगों को दफना दिया जायगा। श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि ये संशोधन इसी उद्देश्य से उपस्थित किये गये हैं। मुझे ऐसे सवर्ण हिन्दू मित्रों पर अफसोस तो है ही किन्तु साथ ही मुझे उन पर दया भी आती है। इन शब्दों के साथ मैं अपने मित्र श्री भार्गव के संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, वाद-विवाद के दौरान में तथा इस संविधान पर विचार-विमर्श करते समय मेरा हमेशा यही मत रहा कि यदि किन्हीं लोगों को रक्षण अथवा विशेषाधिकारों की आवश्यकता है तो वह अनुसूचित जातियों के लोगों को ही है और जिन कारणों को मैं बराबर बताता आया हूं उन के आधार पर मैं आज भी कहता हूं कि हम ने उस वर्ग के प्रति अन्याय किया है और उस के निराकरण के लिये हम ने उसे रक्षण प्रदान किया है। इस कारण मैं इस का बराबर समर्थन करता आया हूं। मैं तथाकथित पिछड़े हुए वर्गों को रक्षण प्रदान करने के पक्ष में नहीं हूं। "पिछड़े हुए वर्ग'' पदावलि को ब्रिटिश सरकार ने प्रचलित किया था किन्तु मैं नहीं चाहता कि इसे हमारे संविधान में स्थान देकर उसे कलंकित किया जाये। पिछड़े हुए वर्ग सभी समुदायों में हैं। निर्देशक नीति तथा आधारभूत नीति का उल्लेख करते हुए हम ने यह निर्धारित किया है कि दस वर्ष के भीतर प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर बना दिया जायेगा। साक्षर होने पर कोई व्यक्ति पिछड़ा हुआ नहीं रह जायेगा। मैं जानना चाहता हूं कि "पिछड़े हुए वर्ग" पदावलि का क्या अर्थ है।

***एक माननीय सदस्य:** उन लोगों का वर्ग जो सेवा में नहीं लगे हुए हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** शिक्षा से इस प्रकार की सेवाएं भी सुलभ हो जायेंगी। जब यथेष्ट शिक्षा का प्रबन्ध हो जायेगा तो सेवाओं में वे स्वत: नियुक्त होने लगेंगे। इस लिये मैं अपने मित्र डॉ. देशमुख के इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता कि अनुच्छेद 313 में "पिछड़े हुए वर्ग" शब्द रखे जायें। हम ने बहुत विचार विमर्श

के पश्चात् यह निर्णय किया था कि ये शब्द नहीं रहने चाहिये। मेरा निवेदन है कि मसौदा-समिति ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह एक उपयुक्त संशोधन है। उस में कोई संशोधन न कर के हमें उसी संशोधन का समर्थन करना चाहिये। अनुसूचित जातियों को जो शक्तियां अथवा अधिकार दिये गये हैं उन्हें मेरे विचार से इस सभा में कोई भी सदस्य समाप्त नहीं करना चाहता। मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने कहा था, यद्यपि मेरे विचार से उन का यह आशय नहीं था कि ये शब्द निकाल दिये जायें। मैं इस सुझाव का विरोध करता हूं। जब हम इन्हें अपने संविधान में स्वीकार कर चुके हैं तो हम इन्हें निकालें क्यों। इसलिये मसौदा-समिति ने जो संशोधन उपस्थित किया है उस का मैं समर्थन करता हूं और उस के सम्बन्ध में किसी भी अन्य संशोधन का विरोध करता हूं। मैं नहीं चाहता कि "पिछड़े हुए वर्ग" शब्द रहें किन्तु फिर भी मैं उन्हें स्वीकार करता हूं। यदि मुझे अपनी इच्छानुसार कदम उठाने दिया जाता तो मैं इन शब्दों को नहीं रहने देता। मैं आगामी पांच वर्षों में सब लोगों को साक्षर बनाने के लिये प्रयास करता ताकि समाज में वे अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी स्थान को प्राप्त कर सकते। पिछले 150 वर्षों में जो कुछ किया गया है उस का हमें निराकरण करना है और शीघ्रातिशीघ्र निराकरण करना है। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं मसौदा-समिति के संशोधन का पूर्ण समर्थन करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं कह नहीं सकता कि इस प्रकार के विधेयकों के तृतीय पठन की प्रक्रिया का मैं ठीक निर्वाचन कर रहा हूं या नहीं किन्तु जहां तक मेरी जानकारी है मेरे प्रान्त की विधान सभा में तृतीय पठन में केवल.....

***श्री आर.के. सिधवा:** यह तृतीय पठन नहीं है।

***श्री महावीर त्यागी:** तब यह कौन सा पठन है? द्वितीय पठन समाप्त किया जा चुका है और अब इस अवसर पर केवल वे आनुषंगिक संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं जो पूर्व निर्णयों से उत्पन्न होते हों। किन्तु यदि इस समय ऐसे प्रश्नों को फिर छेड़ा गया जो बहुत काल तक विचार-विमर्श तथा गर्म बहस करने के पश्चात् हल किये गये हैं तो हम न तो विचार-विमर्श करने के लिये और न निर्णय करने के लिये, यथोचित समय दे सकेंगे। श्रीमान मेरा निवेदन है कि यदि वे विषय, जिन पर विचार विमर्श किया जा चुका है और जिन पर सदस्य भी दलों अथवा समूहों के रूप में परस्पर विचार-विमर्श कर चुके हैं और जिन के सम्बन्ध में समझौता कर के एक मत से निर्णय किया गया है, फिर प्रस्तुत किये गये तो श्रीमान, इस में बहुत समय लग जायेगा और आप ने कृपा करके जो समय निर्धारित किया है उस समय में आप यथोचित रूप से कार्य समाप्त नहीं कर सकेंगे। मेरा निवेदन है कि विचाराधीन संशोधन न तो आनुषंगिक संशोधन है और न इस प्रसंग में अनुसूचित जातियों के लिये पद अथवा स्थान रक्षित करने के प्रश्न को ही उठाने की आवश्यकता है। श्रीमान, पहले कई बार सभा यह मत प्रकट कर चुकी है कि हमारे देशवासियों को किन्हीं रक्षणों की आवश्यकता नहीं है।

[श्री महावीर त्यागी]

विशेषत: अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में सभा ने एक गरम बहस के पश्चात् सभी की सहमति से वर्तमान अनुच्छेद 335 पारित किया था जिस में कहा गया है कि "संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाओं और पदों के लिये नियुक्तियां करने में प्रशासन कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जायेगा।" यह पर्याप्त समझा गया और यह आखिरी बात थी जिस के लिये सभा एकमत से सहमत हो गई। अनुसूचित जातियों के सभी सदस्यों को भी इस अनुच्छेद से संतोष हो गया। इस सांप्रदायिकता को आप एक अन्य अनुच्छेद में भी क्यों स्थान दे रहे हैं? क्या इस के लिये एक अनुच्छेद पर्याप्त नहीं है? उसे इस स्थल पर फिर स्थान देने का अर्थ यह है कि पुराना विवाद फिर छेड़ा जा रहा है। मेरे विचार से यह कहना कि अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व यह होगा उसे इस प्रणाली से प्रदान किया जायेगा, सेवाओं में तथा पदों में अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के सम्बन्ध में जो नियम बनाये जायेंगे वे लोकसेवा आयोग से परामर्श करके नहीं बनाये जायेंगे इत्यादि बिल्कुल आवश्यक तो है ही और साथ ही इस से अनुसूचित जातियों के लोगों को भी कोई लाभ नहीं होता। अनुच्छेद 335 का विषय भी एक विवाद-ग्रस्त विषय था और उस का विरोध किया गया था। हम में से कुछ लोगों की यह धारणा थी कि विशेष रक्षणों की व्यवस्था उन लोगों पर जबरदस्ती थोपी जा रही है। किन्तु उस समय हम से यह कहा गया कि यह एक निदेशक अनुच्छेद है और इस में इस का निदेशन किया गया है कि भावी सरकारों की नीति क्या होगी। सभा उसे केवल निदेशक अनुच्छेद के रूप में स्वीकार करने के लिये सहमत हुई थी। अब आप इसे एक अन्य अनुच्छेद में भी स्थान देने जा रहे हैं। संविधान आप के हाथों में है और आप किसी भी अनुच्छेद में विवादग्रस्त विषयों को स्थान दे सकते हैं। इस सभा में उसे आधारभूत प्रस्ताव समझा जायेगा और उस पर बहस होगी तथा उस के सम्बन्ध में संशोधन भी उपस्थित किये जायेंगे। श्रीमान मेरा निवेदन है कि आप कृपा करके ऐसे प्रश्नों को अनियमित घोषित कर दें। जिन विषयों पर दो तीन बार बहस हो गई हो उन्हें सभा में फिर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सभा इन विषयों पर कब तक विचार-विमर्श करती रहे?

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महादय, मैं मसौदा समिति को बधाई देने के लिये आगे बढ़ा हूं क्योंकि यदि वह अनुच्छेद 320 के खंड (4) के सम्बन्ध में इस संशोधन को उपस्थित नहीं करती तो उस का आशय पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट नहीं होता। मैं यह कहूंगा कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने सभा के समक्ष जो संशोधन उपस्थित किया है उसे देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ है। मेरी स्मरण शक्ति बहुत दुर्बल नहीं है। कुछ ही महीने पूर्व उन्होंने स्वयं अपने को तथा सभा को इस के लिये बधाई दी कि शताब्दियों से जो कार्य नहीं हो पाया था वह आज सम्पन्न कर दिया गया है। किन्तु अब

वह अपने ही शब्दों की उपेक्षा करके मसौदा-समिति, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों और पिछड़े हुए वर्गों पर यह आरोप लगाने का प्रयास करते हैं कि उन्होंने अपना एक साम्प्रदायिक समूह बनाया है। मुझ से पूर्व बोलने वाले वक्ता महोदय ने अभी इस ओर संकेत किया था। श्रीमान, हम इस की मांग साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं कर रहे हैं। हम कोई भी चीज नहीं चाहते हैं। यदि आप इसे नहीं देना चाहते तो न दीजिये। हम उस की मांग नहीं कर रहे हैं। आप दाहिने हाथ से दे कर बायें हाथ से छीन न लीजिये। मैं हर बार यह कहता रहा हूं कि यह मेरा सौभाग्य है कि मैं देश के सब से पिछड़े हुए वर्ग का प्रतिनिधि हो कर, तथा उन की ओर से तर्क उपस्थित करने के लिये इस सभा में उपस्थित हुआ हूं और मैं हमेशा यह भी कहता रहा हूं कि मैं यहां भिखारियों के समान हाथ फैलाने के लिये नहीं आया हूं। यदि आप कोई अधिकार प्रदान करना चाहते हैं तो खुले दिल से प्रदान कीजिये।

जहां तक मैं समझता हूं मसौदा-समिति ने केवल यह स्पष्ट किया है कि संविधान के मूलाधिकारों तथा निदेशक तत्वों का क्या उद्देश्य है। इस के अतिरिक्त उन्होंने और कुछ नहीं किया है। मेरे मित्र इसे सब से पहले स्वीकार करेंगे कि अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित आदिम जातियां पिछड़े हुए वर्ग हैं। पहले जब विचार-विमर्श हुआ था उस समय तथा अपने पहले के भाषणों में वे स्वीकार कर चुके हैं कि पिछड़े हुए वर्गों को सामान्य स्तर पर लाने की आवश्यकता है। जब तक आप अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कोई साधन नहीं अपनायेंगे तब तक आप यह कैसे करेंगे? हम भाषण अनेक सुन चुके हैं और शताब्दियों से सुनते आये हैं। इस संविधान में हम इस सम्बन्ध में उपबन्ध रख रहे हैं कि इन उद्देश्यों को किस प्रकार पूरा किया जायेगा। आप ने हम से अपील की है कि हम लंबे भाषण न दें। मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देना चाहता और केवल यह कहना चाहता हूं कि उदारता दिखाइये और वास्तविक अर्थ में उदारता दिखाइये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मेरे विचार से इस खण्ड के विस्तार को लगभग प्रत्येक वक्ता ने बढ़ा कर बताया है। इस में किसी ऐसे रक्षण अथवा विशेषाधिकार का उल्लेख नहीं है जो संविधान के अन्य अनुच्छेदों द्वारा प्रदान न किया गया हो। इस के द्वारा केवल इस सम्बन्ध में निर्णय करने का प्रयास किया गया है कि यदि अनुच्छेद 335 के अधीन पिछड़े हुए वर्गों अथवा अनुसूचित जातियों के लोगों के लिये स्थानों के रक्षण की आवश्यकता हुई तो क्या इस सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोगों का भी कुछ हाथ रहेगा। यह कोई नहीं कहेगा कि अनुसूचित जातियों के लोगों के दावों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 335 को प्रयोग में लाते हुए स्थान रक्षित नहीं किये जायेंगे। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि कोई स्थान रक्षित नहीं किये जायेंगे तो, मेरे विचार से अनुच्छेद 335 को बिल्कुल भी प्रयोग में नहीं लाया जा सकेगा। इस में कोई संदेह नहीं कि इस सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है, तर्क-वितर्क किया जा सकता है और स्वविवेक से निर्णय किया जा सकता है कि किसी विशेष सेवा में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व हो या न

[माननीय श्री के. सन्तानम]

हो और यदि हो तो किस सीमा तक। किन्तु यह कहना कि किसी भी अवस्था में स्थान रक्षित नहीं किये जायेंगे, मेरे विचार से अनुच्छेद 335 की शब्दावलि तथा उस में सन्निहित भावना से बिल्कुल असंगत है।

यह मानते हुए कि कुछ अवस्थाओं में स्थानों को रक्षित करने की आवश्यकता पड़ेगी, प्रश्न यह उठता है कि क्या वे लोकसेवा-आयोग के नियमों द्वारा रक्षित किये जायेंगे अथवा सरकार द्वारा सीधे सीधे रक्षित किये जायेंगे। यह खंड केवल इस छोटे से प्रश्न के सम्बन्ध में है। हमारी यह नीति है कि लोकसेवा-आयोग को इन साम्प्रदायिक तथा अन्य बातों से मुक्त रखा जाये।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या अनुच्छेद 335 के उपबन्ध लोकसेवा-आयोगों के लिये बन्धनकारी नहीं हैं? उन्हें उन पर भी विचार करना चाहिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** विचाराधीन प्रश्न यह है कि जो नियम बनाये जायेंगे उन्हें लोकसेवा-आयोग बनायेगा अथवा सरकार बनायेगी। हम नहीं चाहते कि लोकसेवा-आयोग का इन मामलों में कोई हाथ रहे। उस में केवल यह कहा गया है कि ''खंड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोकसेवा-आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये...."

***श्री महावीर त्यागी:** इसे स्पष्ट क्यों नहीं कर दिया जाता। क्या सरकार को अनिवार्यत: लोकसेवा-आयोग से इस सम्बन्ध में परामर्श करना है कि आप अपवाद रखना चाहते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी का यह विचार बिल्कुल गलत है कि यह एक नवीन प्रविष्टि है। यह अनुच्छेद 335 का आनुषंगिक उपबन्ध है।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या यह अनिवार्य है कि हम नियमों के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोग से परामर्श करें?

***माननीय श्री के. सन्तानम:** यदि सदस्य महोदय खंड (3) पढ़ें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि इन सब मामलों के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोगों से परामर्श करना आवश्यक है। यदि खंड (4) को नहीं रखा गया तो यह एक विवादग्रस्त विषय रहेगा कि स्थानों को रक्षित करने की रीति के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोग से परामर्श किया जाये या नहीं किया जाये। हम नहीं चाहते कि इस से लोकसेवा-आयोगों का कोई सम्बन्ध रहे। यदि स्थानों के रक्षण की आवश्यकता ही हो तो उन्हें केन्द्रीय अथवा स्थानीय सरकार स्वविवेक से रक्षित करे। खंड (4) को केवल इसलिये रखा जा रहा है कि लोकसेवा-आयोग विवाद में न पड़े। यदि उसे नहीं रखा गया

और किसी समय स्थानों के रक्षण की आवश्यकता हुई तो उस दशा में लोकसेवा-आयोगों से परामर्श करना होगा और लोग रक्षण की रीति अथवा विस्तार के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोग को दोष देंगे। लोकसेवा-आयोगों को दोषों से मुक्त रखने के लिये ही इस खंड को प्रविष्ट किया जा रहा है। रक्षण के सम्बन्ध में किसी को कोई आपत्ति क्यों न हो, उसका इस से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि कोई सरकार अनुच्छेद 335 का यह निर्वचन नहीं कर सकती है कि उसे स्थान रक्षित करने ही हैं। उच्चतम न्यायालय अथवा कोई व्यक्ति यह तर्क उपस्थित कर सकता है। मसौदा-समिति अथवा यह सभा यह नहीं कर सकती कि अनुच्छेद 335 के अधीन स्थान रक्षित नहीं किये जा सकते हैं और इस लिये लोक सेवा-आयोगों को दोषमुक्त बनाये रखने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में यदि मसौदा-समिति इस संशोधन को उपस्थित न करती तो वह अपने कर्तव्य का पालन न करती।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, विचाराधीन प्रश्न पर उन लोगों ने विचार-विमर्श किया है जो उस संशोधन के पक्ष में हैं जिसे मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 335 का निर्देश करते हुए अनुच्छेद 320 के खंड (4) के सम्बन्ध में उपस्थित किया है। श्रीमान, मेरा यह विचार है कि अन्य किसी अनुच्छेद का निर्देश करने के पूर्व हमें अनुच्छेद 16 के खंड (4) का निर्देश कर देना चाहिये। उस में कहा गया है:

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिन का प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई बाधा नहीं होगी।"

इस खंड के अधीन इस की आवश्यकता नहीं है कि केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य की सरकार पिछड़े हुए वर्गों में से किसी वर्ग के लिये अथवा सभी वर्गों के लिए स्थान रक्षित करने के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोगों से परामर्श करे। इस प्रकार विचाराधीन प्रश्न का स्वरूप यह हो जाता है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों को पिछड़े हुए वर्गों में सम्मिलित किया जाये या नहीं किया जाये। यह कहा जा सकता है कि चूंकि इन जातियों का संविधान के अनेक भागों में विशेष रूप से उल्लेख किया जा चुका है इस लिये इन को पिछड़े हुए वर्गों में सम्मिलित न किया जाये। इस प्रकार के निर्वचन को स्वीकार करना कम से कम मेरे लिये बहुत कठिन होगा। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों का कई स्थलों पर इस कारण उल्लेख किया गया है कि वे प्रान्तीय सरकारों ने जिन वर्गों को पिछड़े हुए वर्ग कहा है उन से भी अधिक पिछड़ी हुई हैं। मुझे विश्वास है कि इसी कारण कई अनुच्छेदों में उन का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसलिये, मेरे विचार से, यदि मसौदा समिति ने अनुच्छेद 320 के खंड (4) को उस प्रकार संशोधित न भी किया होता जिस प्रकार उस ने संशोधित किया है तो अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के लिये स्थान रक्षित करने के सम्बन्ध में किसी राज्य के लिये यह आवश्यक नहीं होता कि वह लोकसेवा-आयोगों से परामर्श करता। अनुच्छेद 335 का निर्देश किया

[पंडित हृदय नाथ कुंजरू]

गया है किन्तु वह सीमित रूप से ही प्रयोग में आयेगा। उस में केवल यह कहा गया है कि.....

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट कर सकता हूं? वे कहते हैं कि सरकार यह न समझे कि उस का यह कर्तव्य है कि वह लोकसेवा-आयोग से परामर्श करे किन्तु यदि वे अनुच्छेद 320 (3) (क) को देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि असैनिक सेवाओं में और असैनिक पदों के लिये भर्ती की रीतियों से सम्बद्ध समस्त विषयों पर लोकसेवा-अयोग से परामर्श करना होगा। इस का यह निर्वचन किया जा सकता है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम-जातियों और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिये स्थान रक्षित करने के सम्बन्ध में लोकसेवा-आयोग विवाद में पड़ सकते हैं। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न न होने देने के लिये ही यह संशोधन उपस्थित किया गया है।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** मुझे विदित है कि खंड (3) में कौन से उपबन्ध हैं। मैं केवल यह निवेदन करना चाहता था कि खंड (3) के उपबन्ध अनुच्छेद 16 के खंड 4 के उपबन्धों के अधीन समझे जायें, विशेषतया जब कि उस में सोलहवां मूलाधिकार सन्निहित है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** वास्तव में वह एक आनुषंगिक खंड है।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** मैं यह स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा था कि अनुच्छेद 320 के खंड (4) के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है उस से राज्य को पिछड़े हुए वर्गों के लोगों के लिये स्थान रक्षित करने के बारे में कोई ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं हो जाती जो उसे पहले प्राप्त नहीं थी।

श्रीमान, मैं अनुच्छेद 335 की चर्चा कर रहा था। उस में केवल यह कहा गया है कि प्रशासन कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम-जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जायेगा। जांच करन पर यह स्पष्ट हो सकता है कि बिना इन वर्गों के लोगों के लिये कुछ स्थानों को रक्षित किये हुए इन के दावों का ध्यान नहीं रखा जा सकता। इस लिये मेरे विचार से इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 16 को अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। मेरे विचार से अनुच्छेद 335 को उतने विस्तृत रूप से प्रयोग में नहीं लाया जा सकता जितने विस्तृत रूप में अनुच्छेद 16 को प्रयोग में लाया जा सकता है। हम अनुच्छेद 335 का यह अर्थ लगा सकते हैं कि राज्य को अनुसूचित जातियों और पिछड़ी हुई आदिम-जातियों के लिये स्थान रक्षित करने की शक्ति प्राप्त है। किन्तु, मेरे विचार से, अनुच्छेद 16 के खंड (4) में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के रक्षण की शक्ति होगी। यदि यह भी कहा जाता है कि अनुच्छेद 320 के खंड (4) को संशोधित

करने की आवश्यकता नहीं है तो फिर भी यह स्पष्ट है कि उस में सन्निहित शक्ति अनुच्छेद 16 द्वारा राज्य को प्रदत्त शक्ति से सुसंगत ही है और उस की आनुषंगिक शक्ति ही है।

***अध्यक्षः** हम बहस को कल जारी रखेंगे।

आज अपराह्न में जो वाद-विवाद हुआ था उस के सिलसिले में मैंने एक बार यह कहा था कि मैं चाहता हूं कि सभी संशोधनों की कार्यवाही को समाप्त कर दिया जाये किन्तु चूंकि इस अनुच्छेद में जितना समय हम लगाना चाहते थे उस से कुछ अधिक समय लग गया है इस लिये मैं अन्य संशोधनों को उपस्थित करने के लिये भी कुछ अधिक समय देना चाहता हूं।

***पंडित बालकृष्ण शर्माः** श्रीमान, सूची 1 में कुछ ऐसे संशोधन हैं जो सूची 2 में छपे हुए संशोधनों से सम्बद्ध हैं। इसलिये मुझे विश्वास है कि यदि सूची 1 के संशोधन निश्चित समय में उपस्थित नहीं किये जा सके तो आप कृपा कर के उन्हें भी उपस्थित करने की आज्ञा देंगे।

***अध्यक्षः** हम इस पर विचार करेंगे।

इसके पश्चात सभा मंगलवार तारीख 15 नवम्बर 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

Con. 3. XI-2.49.
320

अंक 11
संख्या 2

मंगलवार
15 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3521-3612
[अनुच्छेदों पर संशोधन]–(जारी)

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 15 नवम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया।
ठाकुर लाल सिंह (भोपाल राज्य)

संविधान का मसौदा—(*जारी*)

***अध्यक्षः** अब हम उस बहस को जारी करते हैं जो कल यहां हो रही थी।

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): आज के कार्यक्रम को प्रारम्भ करने से पहले मैं आप से यह अनुरोध करूंगा कि सभा को कृपा कर के यह बता दें कि विन्ध्य प्रदेश और हैदराबाद से संविधान सभा के लिये प्रतिनिधियों के चुनाव के सम्बन्ध में क्या प्रगति हो पाई है।

***अध्यक्षः** जहां तक हैदराबाद की बात है, मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि आप को कोई जानकारी दे सकूं। किन्तु विन्ध्य प्रदेश के बारे में एक निर्वाचन मंडल बनाने का प्रयास अवश्य किया गया था जिस को इस सभा के लिये प्रतिनिधि चुना था। किन्तु दुर्भाग्यवश वहां के राजनैतिक दलों को यह बात पसन्द न आ सकी और इस लिये अन्तोगत्वा बाध्य हो कर मुझे मनोनयन द्वारा सदस्यों को लेने की बात स्वीकार करनी पड़ी है। शीघ्र ही उन का मनोनयन हो जायेगा और वह यहां आ जायेंगे।

***श्री एच. वी. कामतः** इस अन्तिम सत्र में क्या वह यहां उपस्थित हो जायेंगे?

***अध्यक्षः** मैं तो ऐसी ही आशा करता हूं। मैंने उन से यह कह रखा है कि 20 तारीख से पहले वह अपने प्रतिनिधि यहा भेज दें।

***श्री एच.वी. कामतः** और हैदराबाद के बारे में क्या होगा?

***अध्यक्षः** जैसा कि कह चुका हूं, मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि हैदराबाद के बारे में आप को कोई जानकारी दे सकूं।

अब हम बहस जारी करते हैं।

अनुच्छेदों पर संशोधन—(जारी)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** (मैसूर : जनरल): मै यह बता देना चाहता हूं श्रीमान, कि मसौदा समिति ने कई सदस्यों से परामर्श किया है जिन्होंने इस अनुच्छेद 320 पर कल कुछ संशोधन रखे हैं तथा उस ने अन्य सदस्यों से भी परामर्श किया है जिन्हें इस अनुच्छेद से दिलचस्पी है और इस के फलस्वरूप, अब इस पर एक नया संशोधन लाया जा रहा है जो आज की सूची मैं है। इस संशोधन का नं. है 559। यदि सभा इस अनुच्छेद पर अभी विचार स्थगित रखे और इस पर विचार करे उस समय जब कि यह संशोधन यहां पेश हों तो शायद उस से हमें कुछ अधिक सुविधा मिलेगी और समय में भी बचत हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** तो मैं यह समझ लूं कि यह संशोधन और सदस्यों को मान्य है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उन सदस्यों को यह अवश्य स्वीकार्य है जिन्होंने कल इस अनुच्छेद पर संशोधन पेश किये हैं। जो भी हो, इस संशोधन के पेश होने पर हम इस अनुच्छेद पर विचार कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** तो इस को हम बाद में लेंगे। अब हम लेते हैं अन्य संशोधनों को जो अनुच्छेद 325 पर आये हैं। श्री कामत अपना संशोधन नं. 397 अब पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय: मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 325 में ''shall be ineligible for inclusion in any such roll or claim to be included in'' (ऐसी किसी नामावलि में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा अथवा.....सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।) शब्दों की जगह ''shall be excluded from or claim to be included in'' (ऐसी किसी नामावलि से हटाया न जायेगा अथवा उस में सम्मिलित होने का दावा न करेगा) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन को पेश किया गया है कुछ तो इस लिये कि अनुच्छेद की भाषा और सरल हो जाये और कुछ इस लिये कि अनुच्छेद की मूल बात में संशोधन हो जाये। मसौदा समिति के संशोधन में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए विशेष निर्वाचक-नामावलि का निर्देश किया गया है। विचार विमर्श के समय यह अनुच्छेद जिस रूप में रखा गया था और सभा द्वारा स्वीकृत हुआ था उस में किसी विशेष निर्वाचन क्षेत्र के लिए विशेष, निर्वाचक-नामावलि का कोई निर्देश नहीं था। किन्तु प्रस्तुत संशोधन में इस का निर्देश किया गया है। इस में यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति जाति आदि के आधार पर किसी साधारण निर्वाचक-नामावलि से सम्मिलित किये जाने के लिए अपात्र न होगा अथवा किसी विशेष निर्वाचक-नामावलि

में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा। संशोधन के प्रथम अंश में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए बनी किसी साधारण निर्वाचक नामावलियों में सम्मिलित किये जाने का जिक्र किया गया है और दूसरे अंश में केवल धर्म आदि के आधार पर किसी विशेष निर्वाचन नामावलि में सम्मिलित किये जाने के दावे का जिक्र किया गया है। मेरे संशोधन से यह होता है कि दोनों ही बातें—अर्थात् किसी साधारण निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किये जाने की अपात्रता तथा सम्मिलित किये जाने के दावे की अमान्यता—और सरल भाषा में यहां लिपिबद्ध हो जाती हैं। दूसरी बात यह है कि विशेष निर्वाचक-नामावलि का निर्देश इसी संशोधन में आया है और वह अनुच्छेद में पहले नहीं रखा गया था। इस बात को देखते हुए मैंने अपने संशोधन नं. 399 की सूचना भेजी है और आप की अनुमति से मैं इसे भी पेश किये देता हूं। यह यों है:

"कि अनुच्छेद 325 में 'caste' (जाति) शब्द के आगे 'class' (वर्ग) शब्द जोड़ दिया जाये।"

इस शब्द को यहां रखने की जरूरत है क्योंकि अनुच्छेद में विशेष निर्वाचक-नामावलि का उल्लेख किया गया है। इस विशेष नामावलि में भिन्न धर्मों, प्रजातियों, और जातियों के लोगों के नाम सम्मिलित किये जा सकते हैं। और इस में भिन्न भिन्न वर्गों के लोगों के नाम भी सम्मिलित किये जा सकते हैं आज हमारे समाज में अनेक वर्ग हैं। प्रयास तो हम इसी बात का कर रहे हैं कि हमारे समाज में वर्ग भेद न रह जाये और सारा समाज एक सुसम्पन्न समाज बन जाये। किन्तु जब तक यहां वर्ग हैं हमें उन के अस्तित्व को स्वीकार करना ही होगा। और तदनुसार इन का भी उल्लेख देना ही होगा। उदाहरण के लिए हमारे यहां जमींदारी वर्ग है और इसी तरह अन्य भी कई वर्ग हैं। खुशी की बात है कि जमींदारी वर्ग का अस्तित्व बड़ी तेजी से मिटता जा रहा है। इसलिये जब हम, विशेष निर्वाचक-नामावलि का निर्देश करते हैं तो हमें निर्वाचन के लिये व्यापक उपबन्ध रखना होगा और वर्गों का भी उल्लेख करना होगा ताकि कहीं किसी तरह की खामी न रह जाये। मैं सभा से साग्रह निवेदन करूंगा कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

(पं. ठाकुर दास भार्गव ने अपना संशोधन नं. 398 नहीं पेश किया।)

***अध्यक्ष:** अब श्री कामत अनुच्छेद 330 पर अपना संशोधन नं. 400 पेश कर सकते हैं।

श्री एच.वी. कामत: संशोधन नं. 400 तो केवल शाब्दिक मात्र है। उसे मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन नं. 401 भी श्री कामत का है और वह अनुच्छेद 344 पर है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह संशोधन पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 344 के खंड (3) 'persons belonging to non-Hindi speaking areas' (अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों के) शब्दों की जगह 'non-Hindi speaking sections of the population' (अहिन्दी भाषी लोगों के) शब्द रखे जायें।"

[श्री एच.वी. कामत]

सदस्यगण देखेंगे कि इस अनुच्छेद 344 में राजभाषा के लिए संसद के आयोग और समिति का उपबंध किया गया है जिसे राष्ट्रपति संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर तथा तत्पश्चात ऐसे प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर गठित करेगा। इस आयोग का कर्तव्य होगा कि संघ में तथा राज्यों में राजभाषा की प्रगति से सम्बन्ध रखने वाली विभिन्न बातों के बारे में वह अपना प्रतिवेदन पेश करे। इस अनुच्छेद के खंड (3) को विचार विमर्श की अवस्था में सभा ने जिस रूप में स्वीकार किया था उस में यह कहा गया था:

"In making their recommendations under Clause (2), the Commission shall have due regard to the industrial, cultural and scientific advancement of India and the just claims and the interests of the non-Hindi speaking areas in regard to public services."

[खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग, भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक-सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के न्याय पूर्ण दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।]

अब जो संशोधन मसौदा समिति ने रखा है उस के अनुसार यहां "अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के" की जगह "अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों के" शब्द आ जायेंगे। किन्तु एक नया अनुच्छेद 347 अब मसौदा समिति ने रख लिया है, और इस में किसी राज्य के जन समुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में, विशेष उपबन्ध का निर्देश है। अनुच्छेद 344 के खंड (3) का सम्बन्ध है अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों के हितों से जहां तक कि लोक सेवाओं का सम्बन्ध है। यह बता देना तो आसान है कि कौन क्षेत्र हिन्दी-भाषी हैं और कौन अहिन्दी भाषी हैं। उदाहरण के लिए बिहार, संयुक्त प्रान्त और दिल्ली को, सभी हिन्दी भाषी प्रान्त जानते हैं। इसी तरह मध्य प्रान्त का उत्तरी इलाका या महाकोशल का प्रदेश हिन्दी भाषी क्षेत्र है। इस अनुच्छेद को अगर हम इसी रूप में रहने देते हैं अर्थात् जहां केवल इन क्षेत्रों के लोगों का उल्लेख करते हैं तो मेरा ख्याल यह है कि उस से अहिन्दी भाषी वर्गों को पर्याप्त परिणाम नहीं मिल पायेगा। क्योंकि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो हिन्दी न बोलते हों, जिन की भाषा हिन्दी न हो, और भाषा की दृष्टि से वह वहां अल्प संख्यक हों। सारे देश में ही, हर प्रान्त में, भाषा की दृष्टि से अल्प संख्यक वर्ग है। और सभा को मालूम ही है कि भाषावार प्रान्तों की रचना के विरुद्ध यही दलील पेश की जाती है। भाषावार प्रान्तों की रचना की मांग के विरुद्ध यही कहा जाता है कि भाषावार प्रान्त बन जाने पर भी हर प्रान्त में भाषा के आधार पर एक न एक अल्प संख्यक वर्ग रहेगा ही। इस लिये मेरा कहना यह है कि यहां यह कहना पर्याप्त न होगा कि इस अनुच्छेद के द्वारा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों के हित सुरक्षित रहेंगे। वस्तुत: इस अनुच्छेद को रखने का उद्देश्य है समस्त देश के अहिन्दी भाषी वर्गों के हितों को सुरक्षित रखना चाहे वह कहीं भी बसे हों। आज दिल्ली में ही बहुत से मद्रासी रहते हैं और इनमें से कुछ लोगों ने अपनी यह आशंका

व्यक्त की है कि पांच साल के अन्दर या इस से भी शीघ्र यदि हिन्दी राज भाषा स्वीकार कर ली जाती है, तो जहां तक सेवाओं का सम्बन्ध है उन के हितों पर बड़ा आघात पहुंचेगा। वह रहते दिल्ली में जरूर हैं जो हिन्दी भाषी क्षेत्र है पर वह हैं अहिन्दी भाषी वर्ग के आदमी। यह परिवर्तन मैं यहां जरूर रख देना चाहता हूं। इसलिये मेरा कहना यह है कि अगर हमें अपने मन्तव्य को यहां रखना है तो हमें यहां यह साफ बता देना चाहिये कि हमें इस अनुच्छेद के द्वारा अहिन्दी भाषी वर्गों के हितों को सुरक्षित रखना है। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन नं. 401 यहां पेश करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

***श्री महावीर त्यागी:** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): इस मसले पर सभा का अधिक समय मैं नहीं लेना चाहता हूं पर सभा को यह जरूर याद दिला देना चाहता हूं कि भाषा विषयक प्रश्न यहां, गहन विवादास्पद प्रश्नों में एक रहा है और जब जब इस पर यहां बहस हुई है बड़ी लम्बी बहस चल पड़ी है और बड़े बड़े विवाद उठ खड़े हुए हैं और बहुत समय देने के बाद कहीं हम इस पर एक समझौते पर पहुंच पाये हैं और सर्व सम्मति से इन अनुच्छेदों को स्वीकार किया है। मेरी राय में श्रीमान अब अगर इस अनुच्छेद में से जिसे कि सभा सर्व-सम्पति से स्वीकार कर चुकी है एक भी शब्द जोड़ा जाता है या निकाला जाता है तो यह बड़ी ही आपत्तिजनक बात होगी। अगर मसौदा समिति को कोई आनुषंगिक परिवर्तन करना हो तो यह बात मेरी समझ में आ सकती है, किन्तु यहां सर्वथा एक नया विचार रखना और सर्व सम्मति से स्वीकृत अनुच्छेद के अर्थ में परिवर्तन करना एक ऐसी बात है जिसके लिये आप से मैं यह जरूर आग्रह करूंगा कि इसे अनियमित करार दीजिये। मसौदा समिति ने जो संशोधन रखा है वह सभा के पूर्व स्वीकृत सर्व सम्मति निर्णय से संगत नहीं है। पहले यह बातें अनुच्छेद 301 (ङ) में रखी गई थी। अनुच्छेद 301 (ङ) के अनुसार राष्ट्रपति को यह निदेश देने का अधिकार था कि राज्य के किसी भाग में किसी.....

***अध्यक्ष:** त्यागी जी, जहां तक कि अनुच्छेद 301 (ङ) का सम्बन्ध है, एक संशोधन इस बात के लिये आया है कि उस का मूल पाठ ज्यों का त्यों यहां रखा जाये।

***श्री महावीर त्यागी:** मसौदा समिति की ओर से आया है?

***अध्यक्ष:** हां।

***श्री महावीर त्यागी:** फिर मुझे कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है। इस के लिये मैं मसौदा समिति को धन्यवाद देता हूं। यह बड़ा ही अच्छा हुआ श्रीमान।

(संशोधन नं. 402, 403, 404, 405 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 365। संशोधन नं. 408 जो पंडित ठाकुर दास भार्गव के नाम से है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल) एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान। संविधान के आवृत्त मसौदे के साथ जो प्रतिवेदन मसौदा समिति ने दिया है वह उसमें उसने कतिपय बातों के आधार पर अनुच्छेद 365 को उचित बताया है। उसमें यह कहा गया है, कि संविधान के कतिपय अनुच्छेदों को अगर मिला कर पढ़ा जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि अनुच्छेद 365 को जिस रूप में भाषा-बद्ध किया गया है वह उचित है। कतिपय अनुच्छेदों से उन का मतलब है अनुच्छेद 256, 257, 353, 369 और 371 से। पहले मैं अनुच्छेद 256 और 257 के उपबंधों की ही लेता हूं।

***श्री एल. कृष्णस्वामी** (मद्रास : जनरल): आखिर आप का औचित्य प्रश्न क्या है?

***पंडित हृदयनाथ कुंजरु:** मेरा औचित्य प्रश्न यह है कि इन अनुच्छेदों में कोई भी ऐसी बात नहीं कही गई है जो इतनी व्यापक हो जैसा कि अनुच्छेद 365 का उपबंध व्यापक है। जैसा कि सदस्यगण खुद देखेंगे, अनुच्छेद 365 के द्वारा राष्ट्रपति को यह अधिकार मिलता है कि अगर किसी राज्य की सरकार केन्द्रीय कार्य पालिका के निदेश पर, जो संविधान द्वारा प्राप्त शक्तियों के प्रयोग में वह उसे देता है अमल नहीं करती हैं, तो वह इस आशय की घोषणा कर सकता है कि परिस्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई है कि जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। यह एक नीति संबंधी प्रश्न है। मसौदा समिति उसे ऐसा मान कर चल रही है मानो यह तथ्य सम्बन्धी प्रश्न हो। किन्तु अनुच्छेद 256 और 257 को देखने से ज्ञात हो जायेगा कि केन्द्रीय कार्यपालिका को यह शक्ति जरूर प्राप्त है कि कई मामलों में प्रान्तीय कार्यपालिका को वह निदेश भेज सकती है पर अगर प्रान्तीय कार्य-पालिका उस निदेश के पालन में असफल रहती है तो उस से यह नहीं माना जायेगा कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल नहीं सकता है। संविधान के मसौदे के विभिन्न उपबंधों पर जब यहां विचार किया गया था उस समय इन सभी प्रश्नों पर पूरी तरह सोच-विचार किया गया था। अनुच्छेद 353, 360 और 371 उन शक्तियों के सम्बन्ध में हैं जिनका प्रयोग राष्ट्रपति या संसद् कतिपय आपात की दशाओं में कर सकते हैं। इसलिये इन अनुच्छेदों का इस प्रश्न से कोई सरोकार नहीं है जो मैंने यहां उठाया है। हमारा प्रयोजन है मुख्यत: अनुच्छेद 256 और 257 से और हमें देखना यह है कि क्या इन दोनों अनुच्छेदों का दायरा वही है जो 365 का है? क्या इन दोनों अनुच्छेदों में कोई ऐसी बात है जिस से राष्ट्रपति को यह अधिकार मिलता हो कि अगर राज्य की कार्यपालिका केन्द्रीय अनुदेशों पर अमल करने में असफल होती है तो राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चल सकता है? केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासनों के बीच समय समय पर मतभेद हो सकता है और केन्द्रीय शासन को इसका कानूनन हक होगा कि वह प्रान्तीय शासन को यह अनुदेश दे कि वह अमुक तरह से चले। उस हालत में प्रान्तीय शासन का यह कर्तव्य होगा कि वह उन अनुदेशों पर अमल करें। पर यह कहना कि अगर प्रान्तीय शासन अनुदेशों पर पूर्णतया अमल करने

में असफल रहता है या केन्द्रीय शासन यह अनुभव करता है कि उसके अनुदेशों पर पूर्णतः अमल नहीं किया गया है तो राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अधीन नहीं चल सकता है और उस हालत में शासन की सारी शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है और जैसा ठीक समझे व्यवस्था कर सकता हैं, मेरी समझ से तो सीमा से आगे बढ़ना होगा। कुछ माननीय सदस्यों का यह मत हो सकता है कि यह परिवर्तन यहां होना चाहिये पर ऐसे परिवर्तन का समय अब निकल चुका है। उस सभा के नियम नं. 38-ख द्वारा मसौदा समिति को यह अधिकार प्राप्त है.....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): माननीय सदस्य अपना औचित्य प्रश्न उपस्थित कर रहे हैं या वक्तृता दे रहे हैं?

***अध्यक्षः** वह अपने औचित्य प्रश्न पर ही बोल रहे हैं। उन का औचित्य प्रश्न मेरी समझ में आ गया है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** मैं यह कह रहा था कि नियम 38-ख द्वारा उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसे परिवर्तन कर सकती है जो पूरक या आनुषंगिक अथवा आवश्यक हों। हमें विचार इस बात पर करना होगा कि 'आवश्यक' का यहां मतलब क्या है। क्या उस का मतलब यह है कि अगर मसौदा समिति यह अनुभव करती हो कि सभा ने नीति सम्बन्धी किसी प्रश्न पर गलत निर्णय दिया है तो वह सभा के निर्णय की जगह अपना निर्णय रख सकती है, या इस का यह मतलब है कि मसौदा समिति ऐसे परिवर्तन कर सकती है जैसे कि सभा के किन्हीं पूर्व निर्णयों में निहित तो हैं पर उन के लिये उपबंध नहीं किया गया है? मेरा अपना ख्याल यह है कि श्रीमान, कि जहां तक प्रस्तुत प्रश्न का सम्बन्ध है अनुच्छेद 365 के इस मसौदे का हम तभी अनुमोदन कर सकते हैं जब हम यह मान लें कि मसौदा समिति सभा के निर्णय को उलट सकती है और उस की जगह अपना निर्णय रख सकती है। हमें इस समय इस बात से कोई मतलब नहीं है कि आया नीति सम्बन्धी प्रश्न के नाते यह उचित होगा या नहीं कि केन्द्रीय कार्यपालिका को कुछ ऐसी शक्तियां प्राप्त रहें जो संविधान द्वारा उसे नहीं दी गई हैं। हमें इस समय केवल यही देखना है कि इस प्रश्न पर सभा ने पहले जो निर्णय किया है उस पर समुचित रूप से अमल किया जाये।

***अध्यक्षः** जहां तक मैं समझता हूं पंडित कुंजरू, आप ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है वह यह है कि प्रस्तुत अनुच्छेद जिस रूप में यहां उपस्थित किया गया है, उस से सभा के पूर्व निर्णय का अतिक्रमण होता है और सभा के किसी पूर्व निर्णय के आधार पर इस में ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बई : जनरल): इस औचित्य प्रश्न पर एक मात्र प्रश्न यही उठ सकता है कि अनुच्छेद 365 में जो परिवर्तन प्रस्तावित किये गये हैं वह आनुषंगिक हैं या नहीं। मसौदा समिति की राय में यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रस्तावित परिवर्तन न केवल आवश्यक हैं बल्कि आनुषंगिक हैं क्यों कि जब आप संघ-शासन को यह अधिकार देते हैं कि वह राज्यों की सरकारों को यह निदेश दे सकता है कि अमुक अमुक मामलों में वह इस-इस तरह काम

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

करें तो उस हाल में उसे यह अधिकार भी आप को देना होगा कि अगर राज्य की सरकार उस के निदेशों पर अमल नहीं करती है तो वह उस के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है। अगर उसे यह अधिकार नहीं दिया जाता है तो उसे निदेश देने का अधिकार देना सर्वथा निरर्थक है। अधिकार को कार्यान्वित करने के लिये उपचार की भी व्यवस्था होनी चाहिये। अन्यथा अधिकार कोरा कागजी अधिकार रह जायेगा, वह सर्वथा निरर्थक और सार शून्य अधिकार रहेगा। यही कारण है जो मसौदा समिति ने ऐसे अनुच्छेद को रखना आवश्यक समझा है।

अब मैं कुछ बातें और कहना चाहता हूं जिन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि वस्तुतः मसौदा समिति ने उन उपबन्धों का यहां अतिक्रमण नहीं किया है जिन्हें संविधान सभा ने गत सत्र में स्वीकार किया था। माननीय मित्र पंडित कुंजरू से मैं कहूंगा कि वह कृपया अनुच्छेद 280-क के खण्ड (5) को और अनुच्छेद 306-ख को देखें। जो उपबंध अनुच्छेद 280-क (5) में और अनुच्छेद 306-ख के मुख्य भाग के अन्तिम अंश में रखे गये हैं वही इस अनुच्छेद 365 में अब रखे गये हैं। इस लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 365 नया अनुच्छेद है जिसे मसौदा समिति ने अपनी ओर से जोड़ दिया है। माननीय मित्र अगर....

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** यदि अनुमति हो श्रीमान, तो माननीय मित्र की बात में दखल दूं? अनुच्छेद 306-ख है उन शक्तियों के बारे में जो केन्द्रीय कार्यपालिका को प्रथम अनुसूची के भाग ख के राज्यों पर प्राप्त हैं। किन्तु माननीय मित्र केन्द्रीय कार्यपालिका की इस शक्ति को अब सभी राज्यों पर लागू कर रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र यदि मुझे अपनी बात पूरी करने दें तो मैं अनुच्छेद 280-क को पढ़ कर सुना देना चाहता हूं। वर्तमान अनुच्छेद 280-क को नहीं बल्कि पूरा अनुच्छेद 280-क को मैं पढ़ देना चाहता हूं जिसे सभा ने द्वितीय पठन के समय स्वीकार किया था। इस में वित्तीय उपबंध रखे गये हैं। इस के खंड (3) में यह कहा गया है कि "इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन दिये गये निदेशों में से किसी के पालन में यदि कोई असफलता हुई तो यह समझा जायगा कि राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।" इसलिये, अनुच्छेद 365 में, अनुच्छेद 280-क के खण्ड (3) के उपबंध को ही रखा जा रहा है। माननीय मित्र अगर अनुच्छेद 306-ख को देखें.....

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** माननीय मित्र की अनुमति हो तो मैं फिर दखल दूं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरी समझ से अच्छा यह होगा कि मेरी बात खतम होने पर माननीय मित्र बोलें। यदि वह अनुच्छेद 306-ख को देखें जिस में केन्द्रीय कार्यपालिका को उसी तरह के निदेश देने की शक्ति दी गई। भाग-3

के राज्यों के लिए जो अब प्रथम अनुसूची के भाग ख में रखे गये हैं तो वह देखेंगे कि उस के अन्तिम अंश में यह कहा गया है:—

"ऐसे निदेशों के पालन में कोई असफलता हुई तो यह समझा जायेगा कि राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।"

इस लिये मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 365 में कोई नई बात नहीं रखी गई है। यहां किया केवल यह गया है कि विभिन्न अनुच्छेदों में निदेश देने के बारे में जो उपबन्ध रखे गये हैं उन सब को संग्रहीत कर के यहां एक जगह रख दिया गया है और यह कहा गया है कि केन्द्रीय कार्यपालिका को निदेश देने की जो शक्ति दी गई है उस के पालन में अगर राज्य की सरकार असफल रहती है तो राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार होगा कि वह यह समझ ले कि स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई जिस में इस संविधान के उपबंधों का पालन करने में राज्य की सरकार असफल है। केवल दो अनुच्छेदों में ही अर्थात् अनुच्छेद 256 और 257 में इस अधिकार का स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है। इनमें केवल इतना ही कहा गया है कि केन्द्र को निदेश देने का अधिकार होगा। इस लिये, अनुच्छेद 280-क (5) और 306-ख में रखे गये सिद्धान्त का विस्तार अगर इस अनुच्छेद 365 में किया भी गया है तो केवल उन्हीं अनुच्छेदों के सम्बन्ध में किया गया है जिनसे यह बात निश्चयात्मक रूप से नहीं कही गई थी। मेरा कहना यह है कि जब संविधान में ही यह कहा गया है कि, कतिपय अनुच्छेदों के सम्बन्ध में जिन में कि निदेश देने का अधिकार दिया गया है, राष्ट्रपति को इस का हक होगा या उस के लिए यह वैद्य होगा, कि वह यह समझे कि सविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य का शासन चलाने में वहां की सरकार असफल रही है तो, उस हालत में यह बात भला कैसे औचित्य संगत हो सकती है। अन्य कई अनुच्छेद जिन में भी निदेश देने का अधिकार दिया गया है, वह अनुच्छेद 365 की परिधि में न रखे जायेंगे। अनुच्छेद 365 को रखने का उद्देश्य यह है कि यह व्यवस्था पूर्ण हो जाये और उन स्पष्ट उपबंधों को और विस्तृत कर दिया जाये जो अनुच्छेद 280-क और 306-ख में रखे गये हैं जिन्हें सभा स्वीकार कर चुकी है। इसलिये मेरा कहना यह है कि यहां हम कोई नई बात नहीं रख रहे हैं। कई अनुच्छेदों में, जो कि अनुच्छेद 280-ख तथा 306 (ख) के समकक्ष हैं, भूल से एक बात का उल्लेख नहीं हो पाया है और इस अनुच्छेद 365 से यही होता है कि वह भूल सुधर जाती है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** मैं यह बताना चाहूंगा कि माननीय मित्र ने इस सम्बन्ध में जो संविधान सभा द्वारा यथा संशोधित अनुच्छेद 280-क और 306(ख) का हवाला दिया है वह यहां अप्रासंगिक है। अनुच्छेद 280-क है केवल वित्तविषयक आपात की दशाओं के बारे में। इस अनुच्छेद के अधीन जो शक्ति राष्ट्रपति को दी गई है उस का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कि राष्ट्रपति यह घोषणा कर दे कि भारत की या उस के किसी भाग की वित्तीय स्थिरता या साख संकट में पड़ गई है। इसलिये इस अनुच्छेद की परिधि बड़ी सीमित है। संविधान में एक और अनुच्छेद है जिस के अधीन राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा कर सकता है। किन्तु ऐसी उद्घोषणा तभी की जा सकती है जब कि भारत पर युद्ध का

[पंडित हृदयनाथ कुंजरू]

संकट हो या आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट हो। किन्तु कतिपय आपात की अवस्थाओं के लिये केन्द्रीय कार्यपालिका को जो शक्ति दी गई है उस के प्रयोग का अधिकार उसे इन अनुच्छेदों के आधार पर हर अवस्थाओं में देना कभी उचित नहीं माना जा सकता है। अनुच्छेद 306-ख का उपबंध निश्चित रूप से उन्हीं राज्यों तक सीमित है जो प्रथम अनुसूची के भाग ख में है। प्रथम अनुसूची के भाग-क के राज्यों के सम्बन्ध में ऐसा उपबंध संविधान में पहले नहीं रखा गया था। डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि अनुच्छेद 306-ख और 280-क के उपबन्धों का दायरा उन्होंने विस्तृत कर दिया है। उन्होंने इन अनुच्छेदों के उपबन्धों को व्यापक बना दिया है और उन राज्यों के बारे में भी इन को लागू कर दिया है जो प्रथम अनुसूची के भाग क में दिये गये हैं। मैं यह कहूंगा श्रीमान् कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने पक्ष समर्थन के लिये जो इन अनुच्छेदों का—280-क और 306-ख का हवाला दिया है वह ठीक नहीं है। प्रथम अनुसूची के भाग ख के राज्यों के सम्बन्ध में सभा ने जो भी उपबन्ध रखे हों किन्तु उसका यह मतलब नहीं हो सकता है कि उन उपबंधों को प्रथम अनुसूची के भाग-क के राज्यों पर जरूर लागू किया जाये। इसलिये मेरा यह कहना है कि अनुच्छेद 365 में जो कुछ कहा गया है वह संविधान-सभा के पूर्व स्वीकृत निर्णय से परे की चीज है। प्रथम अनुसूची के भाग-क के तथा भाग-ख के राज्यों में हमें कुछ न कुछ अन्तर रखना ही होगा। केवल इस आधार पर कि मसौदा समिति ऐसा नहीं चाहती है, हम उस अन्तर को हटा नहीं सकते हैं।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): यदि अनुमति हो तो मैं चन्द बातें कहूं?

***अध्यक्ष:** औचित्य प्रश्न पर?

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** हां, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** उस का जवाब तो डॉ. अम्बेडकर दे चुके हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं आप का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करना चाहूंगा कि वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम में भी इस आशय का एक उपबन्ध धारा 126 में रखा गया है और उस के द्वारा.....

***पंडित ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 365 हटा दिया जाये।"

इस प्रस्ताव को रखने में वस्तुत: मेरा यही ख्याल है कि इस उपबंध को रख कर और आखिरी समय में रख कर मसौदा समिति अपने क्षेत्राधिकार की परिधि से बहुत आगे निकल गई है। यह उपबंध संविधान के महत्वपूर्ण उपबंधों में से एक है। चूंकि आप औचित्य प्रश्न पर अपना निर्णय दे चुके हैं श्रीमान, इस लिये मैं उस के बारे में कुछ नहीं कहूंगा। मैं अपनी बात केवल इसी प्रश्न तक सीमित रखूंगा कि आया इन हालतों में इस अनुच्छेद को संविधान में हमें रखना चाहिये या नहीं। जैसा कि आपने कहा है श्रीमान, अनुच्छेद 256 और 257 तथा अनुच्छेद

280-क और 306-ख में जहां तक कि प्रस्तुत प्रश्न का सम्बन्ध है बड़ी अनुरूपता है। अनुच्छेद 280-क में हमने अवश्य ही यह उपबंध स्वीकार किया है कि अगर ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि वित्तीय मामलों में भारत सरकार के निदेशों का पालन नहीं किया जाता है तो केन्द्रीय कार्यपालिका यह मान सकती है कि संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन चलाने में प्रान्तीय सरकार असफल है। यदि आप अनुच्छेद 356 को देखें तो आप को मालूम होगा कि उस में जो मूलभूत उपबंध रखा गया है वह यह है:

> ''If the President on receipt of a report from the Governor or Rajpramukh of a State, or otherwise is satisfied that a situation has arisen in which the government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constitution, the President, may by Proclamation...''
>
> [यदि किसी राज्य के राज्यपाल या राज्यप्रमुख से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिस में उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा .....]

जिस स्थिति में राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है उस का वर्णन उन शब्दों में यहां किया गया है: "यदि ऐसी स्थिति पैदा हो गई जिस में राज्य का शासन, इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।"

अगर अनुच्छेद 256 या 257 अथवा 280-क या 306-ख के अधीन दिये गये किसी निदेश के न पालन करने से ऐसी स्थिति पैदा होती है तो उस हालत में राष्ट्रपति को आपात की उद्घोषणा करने का या आदेश देने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है चाहे राज्यपाल से उसे प्रतिवेदन भी न मिला हो। यह एक तथ्य सम्बन्धी प्रश्न है। ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर ही राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। पर वास्तविकता यह होने पर भी, कि ऐसी स्थिति नहीं है अनुच्छेद 280-क और 306-ख के अधीन जिन में अब यह उपबंध नहीं रखा गया है, एक काल्पनिक स्थिति को वास्तविक बताया जा सकता है। अब अनुच्छेद 365 को रख कर हम उसी पर तुले हैं कि इस के अधीन दिखावटी स्थिति भी असली बताई जाये और इस अनुच्छेद के आधार पर राष्ट्रपति यह कह सकता है कि राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है भले ही तथ्य यह न हो। किसी विशेष निदेश को न मानने पर चाहे वह निदेश कितना भी महत्वशून्य क्यों न हो अनुच्छेद 365 के अधीन यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिस में राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। अत: सवाल अब यह उठता है कि क्या भारत सरकार को यह शक्ति देना उचित है कि चाहे उस का निदेश कितना भी महत्वशून्य क्यों न हो, स्थिति चाहे कितनी भी निर्दोष क्यों न हो, उस को यह मानने का अधिकार है कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें अनुच्छेद 365 का उपबंध लागू होगा?

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

मेरी समझ से तो वस्तुतः इस को ले कर असली सवाल जो हमारे सामने आता है वह यह है कि अगर किसी निदेश के पालन में प्रान्त गलती करता है तो उस के लिये क्या प्रान्तीय सरकार पर हमें इतना प्रबल दण्ड लगाना चाहिये? हो सकता है कि जहां तक संविधान के अनुसार शासन के चलाने का सम्बन्ध है या एक सुव्यवस्थित शासन का सम्बन्ध है, वह खूब शान्तिपूर्वक सुव्यवस्थित रूप से चलता हो पर एक तुच्छ निदेश के पालने में त्रुटि हो गई हो।

हमें अनुच्छेद 256 और 257 के प्रभाव को भी सोचना होगा। मेरी विनम्र राय में अनुच्छेद 256 में ऐसी भाषा रखी गई है कि हम यह नहीं कह सकते हैं कि अमुक कर्तव्य के त्याग पर ही यह भयानक उपबंध लागू हो सकता है। अनुच्छेद 256 में यह कहा है:

> ''The executive power of every State shall be so exercised as to ensure compliance with the laws made by Parliament and any existing laws which apply in that State and the executive power of the Union shall extend to the giving of such directions to a State as may appear to the Government of India to be necessary for that purpose''
>
> (प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का, इस प्रकार प्रयोग होगा, कि जिस से संसद द्वारा निर्मित विधियों का, तथा किन्हीं वर्तमान विधियों का, जो उस राज्य में लागू हैं, पालन सुनिश्चित रहे तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निदेश देने तक विस्तृत होगी जो कि भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिये आवश्यक दिखाई दे।)

अनुच्छेद 257 के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है क्योंकि यही शब्द यहां भी प्रयुक्त हुए हैं। यहां जो शब्द रखे गये हैं वह बहुत ही विस्तृत और अस्पष्ट हैं। मैं इस बात की तो कल्पना नहीं कर सकता हूं कि हमारे वर्तमान नेता कभी ऐसे मनमाने और व्यापक अधिकारों का प्रयोग करेंगे। पर मैं चाहता यह हूं कि कोई भी शासन इन अधिकारों का प्रयोग मनमाने तौर पर न करने पाये। मैं यह जानता हूं कि आज भारत शासन में जो लोग मंत्रिपद पर आसीन हैं वे ऐसे व्यक्ति हैं जिन पर जनता को पूर्ण विश्वास है और वह लोग कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करेंगे। पर हमें ख्याल रखना होगा आगामी सभी शासनों का। हमें इस बात का ख्याल रखना होगा कि आगे जो सरकारें यहां बनेंगी उन में अगर ऐसे आदमी आते हैं जिन पर जनता का पूरा विश्वास नहीं है तो उन उपबंधों का दुरुपयोग न कर सकें। वस्तुतः मुख्य प्रश्न हमारे सामने यही है। मेरा विनम्र कथन यह है कि कोई भी भारत सरकार जिस में बीस मंत्री होंगे और जिस को विभिन्न और विस्तृत विषयों पर क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा, वह किसी प्रान्तीय सरकार को फैक्टरी अधिनियम या बाल विवाह अधिनियम या पुनर्वास अधिनियम के अधीन या अन्य किसी बात के बारे में तरह तरह के निदेश दे सकती है और अगर प्रान्तीय सरकार ने उन में से किसी का पालन नहीं किया, चाहे उस का ऐसा करना वैध और समुचित

ही क्यों न हो, पर केन्द्रीय शासन इस से लाभ उठाकर यह घोषणा करा सकता है कि वहां ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिस में राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है भले ही यह वास्तविकता न हो।

***अध्यक्षः** किन्तु, पंडित भार्गव! क्या आप का यह तर्क ऐसा तर्क नहीं है जो दोनों और लागू हो सकता हो? मान लीजिये कि कोई प्रान्तीय सरकार संविधान के किसी महत्वपूर्ण उपबंध के या किसी विधि के पालन के संबंध में मनमानी करती है और भारत सरकार इसे यह निदेश देती है कि वह संविधान के उपबंधों के अनुसार वहां का शासन चलाये। अब प्रान्तीय सरकार अगर उस निदेश का पालन करने से मुकरती है तो भारत सरकार कैसे अपने आदेशों पर उस से अमल करा सकती है?

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** इस पर मैं अभी प्रकाश डालता हूं। श्रीमान।

मैं उन में से हूं जो चाहते हैं कि केन्द्र सर्वथा शक्ति सम्पन्न रहे और वह इतना शक्तिशाली रहे कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को वह नियंत्रण में रख सके। मैं यह भी समझ रहा हूं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती हैं कि भारत सरकार के किसी बहुत महत्वपूर्ण निदेश का पालन न किया जाये। इसलिए, मेरा कहना यह है कि जब भी ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी इस के समाधान के लिए अनुच्छेद 356 हमारे पास मौजूद है। इस अनुच्छेद की इबारत ऐसी है कि इस से सभी स्थितियों का निराकरण किया जा सकता है। यहां बात यह नहीं है कि शासन चलाया नहीं जा सकता है। बात केवल यह है कि अगर राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिस में ऐसी कार्यवाही करना जरूरी है तो वह यह घोषणा कर सकता है ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिस में राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। मेरा विनम्र निवेदन यह है कि ऐसी स्थिति वस्तुतः पैदा नहीं हुई है या उस के पैदा होने की आशंका भर है पर उस हालत में भी यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है। इस प्रश्न के दो पहलू हैं श्रीमान, जैसा कि आप ने बताया है। यह जरूरी नहीं है कि ऐसी स्थिति पैदा हो ही गई हो फिर भी राष्ट्रपति यह कह सकता है ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिस में अनुच्छेद 256 और 356 के अधीन कार्यवाही करना जरूरी है। वह यह कह सकता है संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य का शासन नहीं चलाया जा सकता है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है कि मान लीजिये स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई है जिस में शासन संविधान के उपबधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। यह स्थिति इस से भिन्न है कि शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है। मान लीजिये कि शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है तो इस स्थिति का निराकरण उस अनुच्छेद के द्वारा होता है क्या?

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** हां हो जाता है और खूब हो जाता है। इसमें ऐसी स्थिति के लिए उपबंध किया गया है जब कि शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है। यदि शासन संविधानों के उपबंधों के अनुसार नहीं

[पंडित ठाकुर दास भार्गव]

चलाया जा रहा है तो कोई सवाल नहीं उठता है। अनुच्छेद 352 के अधीन, जिस में बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति के कारण उत्पन्न होने वाले संकट के लिए उपबंध किया गया है इस के लिये राष्ट्रपति को शक्तियां प्राप्त हैं।

***अध्यक्ष:** बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति का यहां कोई प्रश्न नहीं है। प्रश्न है यह कि स्थिति ऐसी है कि शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है। क्या उस स्थिति के लिए अनुच्छेद 356 लागू हो जाता है?

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** मैं समझता हूं कि भारत सरकार स्थिति को हर क्षण देखती रहेगी और अच्छी तरह जानती रहेगी कि स्थिति क्या है? अगर संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन नहीं चलाया जा सकता है तो भारत सरकार को इस के लिए कार्यवाही करने की शक्ति प्राप्त है। इस अनुच्छेद में यहां तक उपबंध किया गया है कि संकट उत्पन्न होने की आशंका होने पर ही इस के लिए कार्रवाई की जा सकती है। फिर किसी उपस्थित संकट की तो चर्चा ही छोड़िये। अनुच्छेद 280-क के द्वारा, वित्तीय विषयों के बारे में आवश्यकता से अधिक अधिकार केन्द्रीय शासन को दिया गया है और ऐसा इसलिये किया गया है कि वित्तीय विषय बहुत ही आवश्यक विषय होता है। और उन के बारे में अविलम्ब कार्रवाई करने की जरूरत होती है। अनुच्छेद 306-ख को हमने स्वीकार किया है इसलिये कि हम जानते हैं कि चूंकि हमारे कई राज्य ऐसे हैं जो पूर्णत: समुन्नत नहीं हो पाये है उन पर हमें कम से कम दस वर्ष तक कठोर नियंत्रण रखना जरूरी है। हो सकता है कि किसी राज्य की आर्थिक स्थिति उतनी खराब न हो, फिर भी चूंकि वित्त का विषय एक आवश्यक विषय है इसलिए आवश्यकता से अधिक अधिकार हम ने केन्द्र को दे रखे हैं। क श्रेणी के प्रान्तों को नियंत्रण में नहीं रखा गया है। माननीय सरदार पटेल ने हमें यह बताया है कि अनुच्छेद 306ख के अधीन जो ख श्रेणी के प्रान्तों के बारे में है, शासन को इतने व्यापक अधिकार क्यों नहीं दिये गये हैं। भाग क एवं ख के राज्यों में जो अन्तर है उसे अनुच्छेद 365 खत्म कर देता है। अनुच्छेद 256 के उपबंध हैं संघ की कार्यपालिका शक्ति के बारे में तथा संसद निर्मित विधियों के बारे में जो एक तरह से परिवर्तनशील हुआ करती है। इस तरह से क श्रेणी के प्रान्त अब प्राय: ख श्रेणी वाले प्रान्तों के स्तर पर ला दिये गये हैं। और फिर दंड सम्बन्धी उपबंध की दृष्टि से, अनुच्छेद 365 के कारण एक मनोवैज्ञानिक कठिनाई भी पैदा हो जाती है। भारतीय दंड संहिता के हर अपराध के सम्बंध में अगर हम यह व्यवस्था करते हैं कि अपराधी को हर अपराध के लिए मृत्यु दंड दिया जा सकता है या बीस साल के कारावास की सजा दी जा सकती है अथवा एक साल की सजा दी जा सकती है या केवल जुर्माना अथवा चेतावनी मात्र दी जा सकती है तो इस व्यवस्था का परिणाम यह होगा कि लोगों को अपराध के लिय प्रोत्साहन मिलेगा और वह गम्भीरतर अपराध करने लगेंगे। दंड के सम्बन्ध में श्री बेन्थम के सिद्धान्त का यही दूसरा नियम है। मुझे विश्वास है कि साधारण मामलों में या महत्व की बातों के बारे में अनुच्छेद 365 का प्रयोग कभी नहीं किया जायेगा। मैं इस बात को भी जानता हूं कि खाद्य या पुनर्वास सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के आदेशों का पूर्णत: पालन नहीं कर रही हैं और इस कारण देश में बड़ी कठिनाइयां पैदा हो गई हैं। अनुच्छेद 365

द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग साधारण बातों के लिए किया नहीं जायेगा जिसका फल यह होगा कि प्रान्तीय सरकारों में यह प्रवृत्ति पैदा हो जायेगी कि वह बड़े बड़े मामलों में केन्द्रीय सरकार के आदेशों की उपेक्षा करने लग जायेंगी या गम्भीरतर अपराध करने लग जायेंगी क्योंकि परिणाम अर्थात् दंड तो उन को छोटे बड़े अपराधों के लिये एक ही मिलेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि अपराध या भूल की गम्भीरता के अनुपात से ही उन के लिये दंड की व्यवस्था की जाये। साधारण भूल के लिये साधारण सजा दी जाये। और गम्भीर भूलों के लिए गम्भीर दंड दिये जायें। मेरा कहना यह है कि इस उपबंध के रखने से सम्भवत: और भी कठिनाइयां पैदा होंगी।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** यदि अनुमति हो तो माननीय वक्ता महोदय की बात में एक मिनट के लिए मैं दखल दूं। अनुच्छेद 365 में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति अपना यह मत व्यक्त कर सकता है कि स्थिति ऐसी पैदा हो गई है जिस में संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन नहीं चलाया जा सकता है। उस के लिए यह जरूरी नहीं है कि प्रान्तीय सरकार की हर छोटी मोटी अवज्ञा के लिए वह यह कहे.....

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** इसे मैं समझता हूं। अगर वह हर मामले में ही ऐसा करेगा तो फिर भारत सरकार को चलाना ही असम्भव हो जायेगा। पर इस अनुच्छेद का मतलब क्या है? इस का मतलब यह है कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार प्रधान मंत्री के सामने सदा कांपती रहेगी, भारत के प्रधान मंत्री की स्थिति, इस अनुच्छेद के कारण न केवल मुगल सम्राट की हो जायेगी बल्कि उस की स्थिति सिंह की हो जायेगी और सारे प्रान्त भेड़ की तरह उस के आगे थर थर कांपेंगे। इस अनुच्छेद के द्वारा केन्द्रीय शासन को मनमाने अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। और मेरा मत यह है कि किसी भी व्यक्ति को मनमाने अधिकार नहीं दिये जाने चाहियें। फिर तो मंत्रियों या प्रान्तीय सरकारों की स्थिरता या सुरक्षा जाती रहेगी और वह प्रधान मंत्री की सनक या झक पर सदा बदलते रहेंगे।

वस्तुत: व्यवहार में होगा यही कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जायेगा और इस के प्रयोग में लाये जाने के ख्याल से प्रान्तीय सरकारों की विघटन की प्रवृत्ति या आदेश-अवज्ञा की प्रवृत्ति और भी बढ़ जायेगी। उस गम्भीर उपबंध को रखने की कोई जरूरत नहीं है और जिस उपबन्ध की हमें आवश्यकता है उस की व्यवस्था अनुच्छेद 356 के द्वारा कर दी गई है।

***अध्यक्ष:** एक तो स्थिति यह हुई कि भारत सरकार द्वारा दिये गये किसी आदेश की—जिस का दिया जाना संविधान के किसी न किसी उपबंध के अधीन सर्वथा उचित है—अवज्ञा की जाती है और दूसरी स्थिति यह हुई कि परिस्थिति ही ऐसी पैदा हो गई जिस में प्रान्तीय सरकार के लिए शासन का चलाना सर्वथा असम्भव हो जाता है। इन दोनों स्थितियों में अन्तर है। एक स्थिति ऐसी है कि उस में शासन का चलाना किसी भी सरकार के लिए सर्वथा असम्भव है और दूसरी यह है कि भारत सरकार के आदेश की अवज्ञा की जाती है। प्रस्तुत अनुच्छेद इसी अन्तर पर आधृत है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** मान लीजिये कि भारत सरकार के किसी आदेश का पालन प्रान्तीय सरकार ने नहीं किया। अब यदि उस की इस अवज्ञा के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना है जिसकी कल्पना इस अनुच्छेद में की गई है तो उस हालत में क्या यह घोषणा नहीं की जायेगी कि वहां का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। अगर आप इस बात को स्वयं सिद्ध मान लेते हैं कि इस सूरत में राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो भारत सरकार अनुच्छेद 356 के अधीन इस के लिये कार्यवाही कर सकती है अगर इस अनुच्छेद का मतलब यह है कि शासन के न चलने की सम्भावना होने पर ही यह अनुच्छेद लागू होगा तो उस सूरत में तो आप की आपति सर्वथा सही है। किन्तु अगर आप का मत यह है कि एक परिस्थिति विशेष में, जब कि शासन अनुच्छेद 356 के उपबंधों के अनुसार नहीं चल रहा है तो उस सूरत में यह अनुच्छेद 356 दोनों अवस्थाओं के लिए लागू होता है तो फिर इस तरह के (356) अनुच्छेद रखने की, जो वस्तुतः एक मनमाना और तानाशाही अधिकार देने वाला अनुच्छेद है, कोई जरूरत ही नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** (मद्रासः जनरल): मैं यह कहना चाहता हूं श्रीमान् कि यह संशोधन समुचित नहीं है। अनुच्छेद 360 और 371 का, जिस रूप में कि उन्हें हम शुरू में पास कर चुके हैं, बिना अंग भंग किये हम इस अनुच्छेद 365 को हटा नहीं सकते हैं। उक्त अनुच्छेद के जिन खण्डों द्वारा राष्ट्रपति को ऐसा मानने का अधिकार दिया गया है कि परिस्थिति ऐसी पैदा हो गई है जिस में राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है, उन को वहां से हटा कर अनुच्छेद 365 में रख दिया गया है। अब अगर इस अनुच्छेद को बिल्कुल ही हटा दिया जाता है तो ऐसा करना सभा के पूर्व निश्चय के विरुद्ध होगा अनुच्छेद को बिल्कुल ही हटा दिया जाता है तो ऐसा करना सभा के पूर्व निश्चय के विरुद्ध होगा अनुच्छेद 360 और 371 के खंडों को हटाया ही इस आधार पर गया है कि अनुच्छेद 365 को स्थान दिया जा रहा है। इसलिए इसका हटाना नियमित नहीं माना जा सकता है। हां उन अनुच्छेदों पर अनुच्छेद 365 के उपबंधों को लागू होने के सम्बन्ध में अगर कोई प्रतिबन्ध रखा जाता है तो यह बात नियमित अवश्य मानी जा सकती है। अन्यथा, इन अनुच्छेदों को बिल्कुल हटा देने का अर्थ होगा मूल अनुच्छेद 360 और 371 को निरर्थक करना।

***श्री एच. वी. कामतः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमानः—

"कि अनुच्छेद 365 में, 'where' (जहां) शब्द के आगे 'the President is satisfied that' (राष्ट्रपति को समाधान हो जाता है कि) शब्द रखे जायें।"

संविधान के द्वितीय पठन के समय आपात-उपबंध सम्बन्धी अध्याय में रखे गये इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैंने कुछ बातें कहीं थी और इस अध्याय में कई उपबंधों की कठोरता को कम करने की तथा उन की भयंकरता को घटाने की मैंने कोशिश की थी। इस लिये इस समय इस अनुच्छेद के गुण दोष के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं क्योंकि सभा आपात-उपबंध सम्बन्धी अनुच्छेदों को स्वीकार कर चुकी है। जब इन को हम ने स्वीकार कर लिया है तो मेरा ख्याल है कि इस अनुच्छेद को भी संविधान में हमें स्थान देना होगा। मेरे संशोधन

में केवल यह बात कही गई है कि हमें अनुच्छेद के प्रथम भाग में यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये कि आखिर वह आधारभूत बात क्या होनी चाहिये जिस पर राष्ट्रपति यह घोषित कर सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिस में राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। यदि सभा अनुच्छेद 356 की ओर दृष्टिपात करे तो वह देखेगी कि वहां यह कहा गया है कि राष्ट्रपति तब तक ऐसी घोषणा नहीं कर सकता है जब तक कि राज्यपाल से या राजप्रमुख से उसे ऐसा प्रतिवेदन न मिल जाये और उसे इस का विश्वास न हो जाये। अवश्य की वहां या 'अन्यथा' शब्द भी रखे गये हैं। यदि सभा अनुच्छेद 360 को देखे, जिस में वित्तीय संकट या वित्तीय आपात की स्थिति के बारे में व्यवस्था रखी गई है, तो उसे मालूम होगा कि वहां भी यह साफ साफ कहा गया है कि राष्ट्रपति को जब समाधान हो जाये कि स्थिति ऐसी पैदा हो गई है जिस से देश या उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या साख संकट में हैं तभी वह उद्घोषणा करेगा। आपात के सम्बन्ध में उपबंध करने वाले इन दोनों अनुच्छेदों में यह साफ-साफ उपबंधित किया गया है कि राष्ट्रपति को इस बात का पक्का समाधान हो जाना चाहिए, पहले तो राज्यपाल या राजप्रमुख के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर फिर अन्यथा जिस तरह भी वह इस का अनुसंधान करना चाहें। उस के बाद दोनों ही अनुच्छेदों में सदस्यगण यह देखेंगे कि यही बात कही गई है कि जब राष्ट्रपति को इस का समाधान न हो जाये इन अनुच्छेदों पर अमल नहीं किया जा सकता है। इस लिये अपने संशोधन के द्वारा मैं यह चाहता हूं कि उस अनुच्छेद में भी वही शब्द रखे जायेंगे जो उन दो अनुच्छेदों में रखे गये हैं जिन का मैंने हवाला दिया है ताकि इस सम्बन्ध में सर्वत्र एकरूपता आ जाये। सभा से मैं आग्रह करूंगा कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे ताकि यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाये कि उसी सूरत में जब कि राष्ट्रपति को इस का समाधान हो जाये कि किसी राज्य ने भारत सरकार के किसी निदेश का पालन करने में या उस पर अमल करने में चूक की है तभी वह ऐसी उद्घोषणा कर सकता है जिस में अपने विशेष शक्तियों पर वह अमल कर सकता है। सुतरां, सभा से मैं सिफारिश करूंगा वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री आर.के. सिधवा:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान्:—

> "कि अनुच्छेद 365 में, 'under any of the provisions of this Constitution' (इस संविधान के उपबंधों में से किसी के अधीन) शब्दों के बाद में 'which is in direct contravention of the declared policy of the Union' (जो संघ की घोषित नीति के सीधे प्रतिकूल है) शब्द रखे जायें।"

इस अनुच्छेद पर बहस में बहुत ज्यादा नहीं बोलना चाहता हूं क्योंकि पंडित कुंजरू और पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा उपस्थित किये तर्कों का समुचित उत्तर देते हुए आप ने इस पर पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है। इन माननीय मित्रों को जो इस अनुच्छेद के विरुद्ध हैं, मैं केवल इस बात की याद दिलाना चाहता हूं कि जब हम यहां सभा के प्रथम अधिवेशन में लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार कर रहे थे उस समय हर सदस्य ने ही, जो उस मौके पर बोले थे, इस बात पर

[श्री आर.के. सिधवा]

जोर दिया था कि हमें केन्द्र को खूब मजबूत रखना चाहिये। उस समय मैंने यह पूछा भी था कि क्या कोई ऐसा भी सदस्य है जो केन्द्र को मजबूत रखने के पक्ष में नहीं पर हर सदस्य ने केन्द्र को मजबूत रखने की ही राय दी थी। लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के सम्बन्ध में व्यक्त किये विचारों को ध्यान में रख कर मसौदा समिति ने संविधान में सर्वत्र तदनुसार संशोधन किया है। यद्यपि मैं यह नहीं चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकारें सर्वथा अशक्त बना दी जायें पर यह मैं आवश्यक अनुभव करता हूं कि देश में जो स्थिति वर्तमान है उस में यह आवश्यक है कि केन्द्र के हाथ में कुछ न कुछ शक्ति जरूर रहे ताकि प्रान्त बहुत प्रबल होकर मनमानी न कर सकें। क्या मुहुर्त्त मात्र के लिए भी आप ऐसा सोचते हैं कि कोई भी व्यक्ति भला इस बात का विश्वास कर सकता है कि प्रान्तों के ठीक ठीक काम करने पर भी केन्द्र इन शक्तियों को प्रयोग में ला सकता है? मेरे संशोधन में यह कहा गया है कि प्रान्तीय सरकार का कार्य संघ की घोषित नीति के प्रतिकूल हो' तभी उस के विरुद्ध ऐसी कार्यवाही की जायेगी। मैं इस बात को यहां साफ कर देना चाहता हूं। प्रान्तीय सरकारों के मन में यह ख्याल न आने दीजिये कि साधारण बात से भी केन्द्रीय शासन यह फरमान निकाल देगी कि 'चूंकि तुम ने ठीक काम नहीं किया है, तुम्हारे अधिकार निलम्बित रखे जाते हैं। मैं यह कहता हूं कि केन्द्रीय शासन देश को तथा प्रान्त को जब यह समझा सके कि प्रान्तीय सरकार ने संघ की घोषित नीति के प्रतिकूल तथा संविधान के प्रतिकूल काम किया है और उस ने गलत काम किया है तभी केन्द्र को प्रान्तीय शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार होना चाहिये। यदि केन्द्र को हस्तक्षेप का अधिकार नहीं रहता है तो फिर इस संविधान का कोई मूल्य नहीं रह जायेगा वह रद्दी कागज का टुकड़ा मात्र रह जायेगा। अगर केन्द्र के आदेश की उपेक्षा कर के एक प्रान्त एक दिशा में चलता और दूसरा प्रान्त दूसरा दिशा में चलता है तो इस से तो एक अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो जायेगी। क्या हमें यह मालूम नहीं है कि मूल्य नियंत्रण के बारे में अर्थ सम्बन्धी बातों के बारे में तथा अन्य बहुत से विषयों के बारे में जहां समवर्ती सूची या प्रान्तीय सूची के अधीन प्रान्तों को अधिकार दिये गये हैं, प्रान्तीय सरकार की कार्रवाइयों के कारण आज तरह तरह की समस्यायें पैदा हो रही हैं? यदि वह रुपयों को इस तरह बर्बाद करते हैं और भारत सरकार के घोषित निश्चय प्रतिकूल, स्वेच्छापूर्वक खाद्य तथा अन्य वस्तुओं पर नियंत्रण रखते हैं तो इस का परिणाम यह होगा कि प्रान्त समस्त देश के हित को भुला कर अपने हित का ही ख्याल रखने लग जायेंगे। समस्त देश के हित की देखभाल करती है केन्द्रीय सरकार और उस की आवाज जनता की आवाज है। यदि उस के निश्चय की उपेक्षा प्रान्त करते हैं तो उस का परिणाम वही होगा जो मैंने कहा है। बहुत से प्रान्तीय विषयों के बारे में मैंने यहां देखा है कि सदस्य लोग समस्त देश के हित की उपेक्षा कर केवल अपने प्रान्त के हित को देखते हैं। मैंने यह बात यहां देखी है इसलिये अगर भारत सरकार प्रान्तीय सरकार के काम में हस्तक्षेप करती तो उस का ऐसा करना सर्वथा उचित है क्योंकि समस्त देश का प्रतिनिधित्व वह करती है, प्रान्तीय सरकारों की वह मालिक है यदि उस की आज्ञा का पालन नहीं किया जाता है तो वह प्रान्तों से कह सकती है कि वह ठीक तरह से चलें। यदि प्रान्त अपने शासन प्रबन्ध को सुधारते नहीं हैं तो उन के शासन को केन्द्रीय सरकार अपने हाथ में ले लेगी। इस अनुच्छेद की आवश्यकता को यहां अच्छी तरह ठीक-ठीक

समझा दिया गया है। यह अनुच्छेद सभा के किसी पूर्व निश्चय के प्रतिकूल नहीं है। माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू और पंडित ठाकुर दास भार्गव के तर्कों को समझने की मैंने कोशिश की है इस में शक नहीं है कि शब्दों में जरूर हेर फेर किया गया है किन्तु जहां तक कि आशय और अभिप्राय का सम्बन्ध है वह वहीं है जो सभा ने तय कर रखा है। इसलिये मेरा मन्तव्य यह है कि इस अनुच्छेद को अवश्य रखा जाये और इस में जो संशोधन मैंने सुझाया है वह स्वीकार किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं खड़ा हो रहा हूं अनुच्छेद 365 का समर्थन करने के लिये जिस रूप में कि वह मसौदा समिति द्वारा पेश किया गया है। दुर्भाग्य की बात है कि संविधान की बहुत सी महत्वपूर्ण बातों के बारे में डॉ. अम्बेडकर से मेरा मतैक्य नहीं रहा है पर इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में, जो मेरी समझ से एक बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है, मेरा उन से पूर्ण मतैक्य है।

माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने अपने भाषण के सिलसिले में यह कहा है कि वह इस बात के पक्ष में नहीं हैं कि केन्द्र में या प्रान्त में कहीं भी किसी प्राधिकारी को मनमाने अधिकार दिये जायें। मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि अधिकार या शक्ति के सम्बन्ध में हमारी जो धारणा है उसे हमें अब बदल देना चाहिये। अधिकार सम्बन्धी समस्या की कठिनाईयों को हम ठीक ठीक नहीं समझ पाते हैं। अधिकार का सम्बन्ध होना चाहिये वस्तुस्थिति से, देश की राजनैतिक अवस्था से। भारतीय जीवन के सम्बन्ध में जो असलियत है उस की हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। भारत में केन्द्रीय शासन के हाथ में मनमाने अधिकार देने से हमें कोई खतरा नहीं हो सकता है। यहां खतरा इस बात का है, जिस का कि इतिहास साक्षी है, कि कही विघटन मूलक शक्तियां जोर न पकड़ जायें और जैसा कि अतीत में उन्होंने साम्राज्यों को गिराया है, कहीं यह हमें भी वही दिन न दिखा दें। मैं यह महसूस करता हूं कि अगर हमें देश को एक बनाना है और इस संकट को बचाना है कि यहां जगह जगह पाकिस्तान न बन जाये, तो यह शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में हमें रखनी ही होगी। मुझे इस की चिन्ता नहीं है कि यह अनुच्छेद पूर्ववर्ती किसी अनुच्छेद से असंगत है। इस तर्क के प्रति मैं सर्वथा उदासीन हूं कि इस अनुच्छेद को रख कर मसौदा समिति ने अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। मैं यह जानता हूं कि इस अनुच्छेद पर यथार्थवादी दृष्टिकोण छाप पड़ी हुई है। यदि केन्द्र के हाथ में आप यह अधिकार नहीं देते हैं तो प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय शासन के आदेशों की उपेक्षा कर इसी तरह स्वेच्छा पूर्वक काम करती रहेंगी।

डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रसंग में पंजाब की खाद्य नीति का हवाला दिया है। आप ने इस बात का उल्लेख किया है कि किस तरह पंजाब सरकार ने भारत सरकार की खाद्य नीति पर चलने से इनकार कर दिया था। आप दूर क्यों जाते हैं? आज भी हमारे निगाह में यह बात लायी गयी है—कुछ लोग इस की कानाफूसी कर रहे हैं—कि कतिपय मुख्य मंत्री ऐसे अढ़ियल हैं जो भारत सरकार के आदेशों को मानने से इनकार कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति को हमें रोकना ही होगा, अन्यथा भारतीय राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं रह जायेगा। आज पूर्वी पंजाब में, या पश्चिमी बंगाल में तथा कुछ हद तक अन्य कई प्रान्तों में भी जो स्थिति वर्तमान है, वह

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

बड़ी खतरनाक है। और अगर यह अधिकार भारत सरकार को नहीं प्राप्त रहता है तो देश का भविष्य अन्धकार पूर्ण ही समझिये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा जनरल): इस अनुच्छेद पर मुझे दुख है और सन्देह है। माननीय मित्र श्री सन्तानम् की बात को मैंने ध्यान से सुना है। पर मैं नहीं समझता हूं कि इस अनुच्छेद 365 की कोई जरूरत है। पाकिस्तान की सरकार ने, पाकिस्तान-शासन-अधिनियम में भारत-शासन-अधिनियम की धारा 93 को रहने दिया है पर हमने इसे अपने अधिनियम से उठा दिया है। लोकतंत्रीय प्रान्तीय सरकार का अर्थ क्या होता है उस की जानकारी हमने ली है उन प्रान्तीय सरकारों से जो ब्रिटिश अमलदारी में यहां थी। सुतरां हमको वास्तविक लोकतंत्रीय शासन का अनुभव नहीं है, जो कुछ अनुभव है केवल एक नियंत्रित लोकतंत्र का। आज हम केवल अनुच्छेद 371 को संविधान में रखने जा रहे हैं बल्कि मसौदा समिति ने अनुच्छेद 365 को रखने का भी प्रस्ताव रखा है। भयंकरता और नंगापन के लिहाज से इस अनुच्छेद को भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 93 ही समझिये। इधर सभा की बैठक में एक पखवारे का जो व्यवधान पड़ा है उस में मसौदा समिति की समझ में एकाएक यह बात आ गई है कि इस अनुच्छेद को रखना ही बुद्धिसंगत होगा। माननीय मित्र श्री सन्तानम का ख्याल है कि इस अनुच्छेद को रखने की जरूरत है पर मैं उन से सहमत नहीं हूं। मेरा ख्याल है कि इस अनुच्छेद को रखने की जरूरत है पर मैं उन से सहमत नहीं हूं। मेरा ख्याल है कि अनुच्छेद 371 हमारे लिये काफी है। इस के द्वारा केन्द्रीय शासन को इसके लिये व्यापक अधिकार मिल जाता है कि वह राज्यों पर जो आज स्वशासी नहीं रह गये हैं, और जो न कभी स्वशासी थे और न कभी इस संविधान के अधीन स्वशासी हो सकेंगे, अपना नियंत्रण और कठोर कर सकता है। आखिर राज्यों द्वारा विद्रोह की वीभत्स कल्पना आप क्यों कर रहे हैं? यह तो तभी हो सकता है जब राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल ही सर्वथा प्रभाव शून्य हो जाये। अगर राज्य केन्द्र के नियंत्रण से बाहर जाते हैं और विद्रोह कर बैठते हैं तो उसका मतलब तो यही होगा कि केन्द्रीय शासन तथा राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे नहीं रह गये हैं। कोई भी आदमी जिसे कानून का ज्ञान नहीं है, मेरे जैसा कानून से अनभिज्ञ आदमी भी इस संविधान को पढ़ने पर यही पायेगा कि इस में प्रान्तों को कोई अधिकार दिया ही नहीं गया है। इस संविधान के अनुसार प्रान्तों की स्थिति प्रतिष्ठित नगर पालिकाओं या निगमों से ज्यादा कुछ नहीं है। फिर आपको अनुच्छेद 365 को रखने की क्या जरूरत है? क्या विद्रोह की वीभत्स कल्पना आप कर रहे हैं? हम फासिस्टी लोकतंत्र के लिये संविधान नहीं बना रहे हैं, संविधान हम बना रहे हैं सच्चे लोकतंत्र के लिये। फिर यह डर क्यों? यह सन्देह क्यों? राष्ट्रपति को आपात-स्थिति के लिये पर्याप्त अधिकार प्राप्त हैं और उस के लिये अनुच्छेद 371 काफी है। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि अनुच्छेद 365 के अभाव में राष्ट्रपति या मंत्रिमंडल को संविधान के अधीन राज्यों को अपने नियंत्रण में रखने का अधिकार नहीं है? मैं ऐसा नहीं समझता। मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति को या मंत्रिमंडल को वैसी आपात-स्थिति का सामना करने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त हैं जैसी स्थिति का सामना अभी पाकिस्तान सरकार को पश्चिमी पंजाब के शासन को अपने हाथ में लेने में करना पड़ा था। मैं नहीं चाहता हूं कि इस समय जब कि यह सभा अपने जीवन के अन्तिम काल

में हैं, जब हम संविधान को अन्तिम रूप रेखा देने के लिये यहां समवेत हुये हैं, हमारे मन में यह भाव पैदा हो कि हम स्वेच्छाचारी हो कर संविधान बना रहे हैं। मैं यहां यह आवाज नहीं उठाना चाहता हूं कि हमें अनुच्छेद 365 को हर्गिज न पास होने देना चाहिये। पर आखिर ऐसा क्यों और किस लिये हुआ कि इस पखवारे के व्यवधान में मसौदा समिति की यह फासिस्टी मनोवृत्ति हो गई है? हम जब यहां से उठेंगे तो, संविधान की सारी त्रुटियों के बावजूद भी हम ने यही अनुभव किया था कि जो भी हो हमने एक लोकतंत्रीय संविधान बनाया है। पर अब इस अनुच्छेद 365 से तो धारा 93 की ही विभीषिकायें सामने आयेंगी जिनका हम सालों तक शिकार रह चुके हैं। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर यहां उपस्थित हैं। मैं चाहता हूं कि वह इस बात पर प्रकाश डालें कि अनुच्छेद 365 को रखना क्यों ठीक समझा है।

***श्री के. हनुमन्थैया** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, जब भी यहां केन्द्र का प्रश्न आता है लोग यही कहते हैं कि केन्द्र को हमें मजबूत रखना होगा क्योंकि प्रान्तों का आचरण ठीक नहीं है। हमेशा यहां यही कहा जाता है कि हमें प्रान्तों पर हमेशा निगाह रखनी चाहिये। केन्द्र को मजबूत बनाने के ख्याल का मैं विरोधी नहीं हूं। पर मैं यह जरूर कहूंगा कि जो लोग लोकतंत्र के लिये सदा लड़ते हैं, और आज देश के लिये लोकतंत्रीय संविधान बना रहे हैं, वह इस बात को भूल जाते हैं कि अगर प्रान्तीय सरकारें ठीक तरह से नहीं चलती हैं तो उन को ठीक करने के लिये वहां विधान मंडल भी मौजूद हैं। वस्तुत: हम लोगों के लिये यह बड़े खेद की ही बात है कि हममें से अधिकांश इस बात को सर्वथा भूल जाते हैं कि प्रान्तों में विधान मंडल हैं और वहां की जनता है जो उनके कामों पर दृष्टि रखेंगे वह हमेशा केन्द्रीय शासन का ही गुणगान करते हैं और यह समझते हैं कि सारी शक्तियां दिल्ली स्थित केन्द्रीय सरकार में ही है। यदि थोड़ी देर के लिये भी हम इस बात की तुलनात्मक विवेचना करें कि केन्द्र में तथा प्रान्तों में किस तरह शासन चल रहा है तो कम से कम मैं तो यह मानने के लिये तैयार नहीं हूं कि केन्द्रीय शासन प्रांतीय शासनों से अच्छी तरह या ज्यादा ईमानदारी के साथ चल रहा हैं। अच्छा यह होगा कि हम इस बात को देखें कि यथार्थता क्या है, वस्तु स्थिति क्या है। क्या आप यह कह सकते हैं कि दिल्ली का सचिवालय प्रान्तों के सचिवालयों से ज्यादा कुशलतापूर्वक और ईमानदारी के साथ अपना काम कर रहा है? जैसा कि मैंने अभी कहा हैं, वस्तुत: यह खेद की बात है कि हम तथ्य को तो भूल जाते हैं और हमेशा प्रान्तीय शासनों की और प्रान्तीय विधानमण्डलों की निन्दा करते हैं और गला फाड़ कर केन्द्रीय शासन का सदा गुणगान करते हैं। हमारी यह मनोवृत्ति तो अन्तोगत्वा यहां से लोकतंत्र को ही समूल नष्ट कर देगी। जैसा कि मेरे एक मित्र ने अभी कुछ समय पहले कहा है, हम केन्द्रीय शासन को ऐसी शक्तियां दे रहे हैं जिन का वह कुशलतापूर्वक प्रयोग नहीं कर सकेगी और न ईमानदारी से उन का उपयोग कर सकेगी।

इतना कह लेने के बाद अब मैं यह बताना चाहता हूं कि जब हम स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे थे उस समय संविधान निर्माण के सम्बन्ध में एक मुख्य सिद्धान्त हमारे दिमाग में यह था कि शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। इस विशाल देश

[श्री के. हनुमन्थैया]

में शक्तियों के केन्द्रीकरण से अन्ततोगत्वा हमारी एकता में बाधा पहुंचेगी किसी भी मानवप्राणी के लिये या शासन के लिये यह सम्भव नहीं है कि कन्याकुमारी से ले कर हिमाचल तक के विस्तृत प्रदेश के समस्त शासन को वह कुशलता पूर्वक चला सके। शक्ति का विकेन्द्रीकरण आज बड़ा आवश्यक हो गया है। उसी सिद्धान्त पर महात्मा गांधी भी इस देश का संविधान बनाना चाहते थे। यह जरूर है कई बातों में हमने उसके सिद्धान्तों का परित्याग कर रखा है और उन का हवाला मैं इस लिये नहीं यहां दे रहा हूं कि सदस्यों की सहानुभूति मैं प्राप्त कर सकूं। जो भी हो, अपनी सारी जिम्मेदारी समझते हुए मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि आज कुछ वर्ग, कुछ हित, और कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं जिन्होंने केन्द्रीय शासन पर कब्जा कर रखा है और वह यह समझते हैं कि केन्द्र के लिये अधिकाधिक शक्ति प्राप्त कर लेने से वह शासन को चलाते रहेंगे और उन सारी सुविधाओं का उपयोग करते रहेंगे जो उन को केन्द्रीकरण से उपलब्ध हो सकती हैं। यह है मनोवृत्ति जो यहां.....

***श्री एम. थीरूमल रावः** (मद्रासः जनरल): सम्प्रदायों से आपका क्या मतलब है?

***श्री के. हनुमन्थैयाः** मतलब क्या है इसे आप जानते हैं और मैं जानता हूं कि इस सवाल से लाभ क्या? उनका ख्याल है कि इस व्यवस्था द्वारा उन को सारी शक्ति और विशेष सुविधायें प्राप्त हो सकेंगी। इसके पीछे यह मनोवृत्ति काम कर रही है और इस मनोवृत्ति की पृष्ठ ही वह चट्टान बनेगी जिस से टकरा कर हमारी समूची एकता अन्ततोगत्वा चूर चूर हो जायेगी, यदि हम ने अपनी मनोवृत्ति में सुधार नहीं किया।

बात यह नहीं है श्रीमान् कि मैं इस अनुच्छेद के विरुद्ध हूं। जिस तरह का संविधान हम बनाते आ रहे हैं उस में तो केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त रहना ही चाहिये। केन्द्रीय शासन को हमने, आर्थिक कार्यपालिका सम्बन्धी तथा विधिनिर्माण, सम्बन्धी शक्तियां विभिन्न मात्राओं में दे रखी हैं और उस से प्रान्तों को तथा प्रादेशिक घटकों को अवश्य नुकसान पहुंचेगा। यह अनुच्छेद 365 तो केवल इस बात के लिये है कि केन्द्र को जो शक्तियां प्रदत्त की गई हैं उनको वह प्रयोग में ला सके। जब हम ने केन्द्र को इतने अधिकार दे रखे हैं तो यह बात सर्वथा असंगत होगी अगर हम इन अधिकारों को प्रभावी बनाने की शक्ति उसे नहीं देते हैं। अनुच्छेद 365 केवल उसी प्रजोजन के लिये रखा जा रहा है पर, इस अनुच्छेद का समर्थन करते हुए मैं एक चेतावनी भी जरूर दे देना चाहता हूं। जो लोग आज यह समझ रहे हैं कि मौका रहते अपना काम बना लेना चाहिये उन्हें भविष्य का भी ख्याल कर लेना चाहिये। जैसा कि हमारी आशंका है, अगर इस अनुच्छेद का उपयोग उन वर्गों और सम्प्रदायों के स्वार्थ साधन के लिये किया जाता है जो आज भारत सरकार पर कब्जा जमायें बैठे हैं तो जनता इस पर चुप नहीं बैठी रह जायेगी। इससे उस उपद्रव का श्री गणेश होगा जो बहुत प्रयास से प्राप्त की हुई हमारी भारतीय एकता और राष्ट्रीयता को खंड खंड कर देगा।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं इस नव प्रस्तावित अनुच्छेद 365 के पक्ष में हूं श्रीमान्। मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि इस अनुच्छेद के द्वारा विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी अपनी

योजना का किसी तरह भी उल्लंघन नहीं होता है। विकेन्द्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि समूचे राज्य को ही हम एक परिधि द्वारा निर्बन्धित कर दें। यदि संघ के अंग भूत सभी राज्यों को हमें किसी सूत्र द्वारा एक परिधि के अन्दर बद्ध रखना है तो इस के लिये हमें एक केन्द्र रखना ही होगा। बिना एक केन्द्र के कोई परिधि या वृत्त टिक नहीं सकता है। इस अनुच्छेद के द्वारा राज्यों के परस्पर सम्बन्ध की व्यवस्था मात्र की गई है। ये अधिकार न केवल राज्यों को या शासनों को अथवा मंत्रियों को ही दिये जा रहे हैं। जनता के अधिकार क्या होंगे, इस की व्याख्या भी संविधान में की गई है। जब किसी प्रान्त या राज्य में संविधान का उल्लंघन किया जाता है और वहां के निवासियों को उन के अधिकारों से वंचित रखा जाता है तो उन के पास सिवा इसके और उपाय नहीं है कि वह संसद से, अपने प्रतिनिधियों से इस की अपील करें, यद्यपि अमली-तौर पर होता यही है कि शपथ लेने के बाद प्रतिनिधियों का, जनता पर कर लगाने और उन पर शासन करने के सिवाय, उस से और कोई वास्ता नहीं रह जाता है। इस लिये शासित होने वालों को अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिये अपील करने की एक अदालत या जरिया तो होना ही चाहिये। इस अनुच्छेद के द्वारा इस बात का भरोसा मिल जाता है कि प्रान्तीय सरकारें उन पर ठीक तरह से शासन करेंगी। अगर प्रान्तीय सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार उन पर शासन नहीं करती है तो उन को केन्द्र से अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा। एक मात्र केन्द्र ही स्थिति पर प्रशान्त हो तटस्थ रूप से विचार कर सकता है। यहां केन्द्र में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि समवेत रहेंगे। वे सदा प्रशान्त होकर तटस्थ रूप से स्थिति पर विचार करेंगे। निश्चय ही, राष्ट्रपति जो भी कार्रवई करेगा, उस पर संसद् विचार करेगी। संसद ही देश के लिये सर्वोच्च न्यायनिकाय होगा इस लिये उसे यह अधिकार प्राप्त रहना ही चाहिये कि वह जनता के अधिकारों को अमली रूप दिला सके। यहां केन्द्रीकरण का कोई प्रश्न नहीं है। न तो इस में केन्द्रीयकरण का कोई प्रश्न है और न राज्य को परिधि में निर्बन्धित रखने का। वास्तविक प्रश्न यह है कि राष्ट्र का विघटन नहीं होने पाये। राज्य की दृढ़ता के लिये यह व्यवस्था प्रत्याभूति का काम करेगी। इस उपबन्ध को रखने के लिये मैं मसौदा समिति को धन्यवाद देता हूं। यद्यपि कुछ लोग इस का विरोध कर सकते हैं पर मैं इस का समर्थन करता हूं। राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त रहने से कि अगर राज्यों में सरकारें संविधान के उपबन्धों के अनुसार शासन नहीं करती हैं तो वह इस में हस्तक्षेप कर सकता है, जनता के अधिकार सर्वथा सुरक्षित हो जायेंगे।

***अध्यक्ष:** सदस्यों को मैं बता देना चाहता हूं कि हम समय से बहुत पीछे हैं। यह अनुच्छेद चूंकि एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है इस लिये इस पर मैंने इतनी बहस चलने दी है। किन्तु अब अगर कोई सदस्य इस पर बोलना चाहते हैं उन्हें समय का ख्याल रखना होगा। और भी अनुच्छेदों पर हमें अभी विचार करना है। कल दोपहर के एक बजे हमें संशोधनों पर विचार समाप्त कर देना है।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है श्रीमान।

***अध्यक्ष:** इसीलिये तो इस पर 1।। घंटे से भी ज्यादा अरसे तक हमने विचार किया है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** अध्यक्ष महोदय, कई सदस्यों ने इस अनुच्छेद 365 की इबारत को इस आधार पर औचित्यपूर्ण माना है कि सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि वर्तमान परिस्थिति में देश को एक सुदृढ़ और शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। मेरा उन सदस्यों से पूर्ण मतैक्य है जो यह चाहते हैं कि केन्द्र को पर्याप्त अधिकार प्राप्त रहना चाहिये ताकि वह अपनी जिम्मेदारियों को पूरा कर सके। किन्तु केन्द्र को मजबूत बनाने की जरूरत का सहारा ले कर हम संविधान में अपनी मरजी का कोई पक्षपातमूलक उपबन्ध नहीं रख सकते हैं।

माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद 365 के बचाव में बोलते हुए यह कहा है कि यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि जब हमने अनुच्छेद 256 और 257 के द्वारा केन्द्र को यह अधिकार दे रखा है कि कई मामलों में वह राज्यों की सरकारों को अनुदेश दे सकता है तो हमें इस के लिये भी उपचारमूलक व्यवस्था कर देनी होगी कि राज्य अगर केन्द्रीय कार्यपालिका के अनुदेशों पर अमल न करें तो केन्द्र अमुक कार्रवाई कर सकता है। पर मैं यह कहूंगा कि इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर का रवैया हमेशा एक नहीं रहा है। अभी कुछ समय पूर्व जब उनसे यह पूछा गया था कि राष्ट्रपति की शक्ति पर कोई प्रतिबंध रखा गया है या नहीं अर्थात् संविधान में कोई ऐसा उपबंध तो नहीं है जिस के अनुसार राष्ट्रपति को अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह पर चलना ही लाजमी हो, तो इसके जवाब में आपने यह कहा था कि संविधान तो यही मान कर चल रहा है कि हर प्राधिकारी अपने उस कर्तव्य का पालन करेगा जो संविधान उस पर आरोपित करेगा। वह यह नहीं मान सकता है कि हर प्राधिकारी संविधान का ही उल्लंघन करेगा जिसके आधार पर कि वह अस्तित्व में आया है। किन्तु आज आप सर्वथा एक प्रतिकूल मत व्यक्त कर रहे हैं और चाहते हैं कि केन्द्र को राज्यों पर एकदम अधिकार दे दिया जायें। आप यह चाहते हैं कि केन्द्रीय कार्यपालिका के अनुदेशों की किसी भी हालत में राज्य अवज्ञा न करने पाये।

चाहे जो भी बात हो, गुणदोष के आधार पर इस प्रश्न पर विचार करने के लिये मैं बिलकुल तैयार हूं। आइये हम यह देखें कि अनुच्छेद 365 के सिवाये और भी उपबन्ध संविधान में हैं या जिन के द्वारा केन्द्र को कोई कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया है उस सूरत के लिये कि जब प्रान्तीय सरकार अपने दायित्वों को पूरा करने में चूकती हों। अगर प्रान्तीय सरकार कोई ऐसा काम करती है कि उस के फलस्वरूप प्रान्त में उपद्रव या अशान्ति होने की सम्भावना हो जाती है तो अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा करने का अधिकार रखता है और उद्घोषणा के बाद उसे इसकी पर्याप्त शक्ति होगी कि वह प्रान्तीय शासन को केन्द्रीय शासन के अनुदेशों को मानने के लिये विवश कर दे। और भी बहुत सी ऐसी बातें हो सकती हैं जिन के कारण कई विषयों के बारे में हो सकता है कि कुप्रशासन चल रहा हो और कुव्यवस्था हो, पर उनसे प्रान्त की शान्ति को कोई खतरा न हो। यदि कुशासन या कुव्यवस्था इस हद तक पहुंच जाती है कि स्वयं राज्यपाल या राज्य प्रमुख अथवा राष्ट्रपति ऐसा अनुभव करने लगता है कि राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो उस सूरत में भी राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन आवश्यक उपचार

की व्यवस्था कर सकता है। किन्तु अनुच्छेद 352 और 356 में यह बात जरूर है कि उन पर अमल करने में केन्द्रीय कार्यपालिका को धीरज से काम लेना होगा। उन पर तभी अमल किया जा सकता है जब कि प्रान्तीय शासन अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने में लगातार उपेक्षा दिखाता रहे। यदि केन्द्रीय शासन के पास बुद्धि है तो वह हर मामले में ही अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिये प्रान्तीय शासन को बाध्य नहीं करेगा। इस का अधिकार उसे अवश्य प्राप्त है पर संसार का अनुभव तथा जनता को और प्रान्तीय शासनों को अपने साथ मिला कर चलने की आवश्यकता उसे यही सीख देंगे कि प्रान्तीय शासन द्वारा की गई अवज्ञाओं की उसे जब तक उपेक्षा कर देनी चाहिये और प्रान्त के निर्वाचकों को तथा वहां विधान सभा को इस बात का मौका देना चाहिये कि वह स्वयं परिस्थति में अनुकूल परिवर्तन कर लें। पर अगर प्रान्तीय निर्वाचक समूह या वहां की विधान सभायें अपने दायित्वों को पूरा करने में चूकती हैं और प्रांतीय सरकार केन्द्रीय शासन के अनुदेशों की उपेक्षा जारी रखती है तो उस सूरत में इस संविधान के अधीन, अनुच्छेद 365 के उठाये जाने पर भी केन्द्रीय शासन को ऐसी कार्रवाई करने के लिये पर्याप्त अधिकार है कि देश का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाया जाये।

अपना स्थान ग्रहण से पहले मैं एक और बात का उल्लेख कर देना चाहता हूं। अनुच्छेद 365 की इबारत के समर्थन के लिये मसौदा समिति ने यहां कई अनुच्छेदों का हवाला दिया है। जिन अनुच्छेदों का हवाला दिया गया है उन में अनुच्छेद 371 भी एक है जो पुराने अनुच्छेद 306-ख से बिलकुल मिलता हुआ है। अगर यह अनुच्छेद न रखा गया होता तो अनुच्छेद 365 का रखना कुछ उचित भी होता। पर अनुच्छेद 306 को हटाया तो गया नहीं है, उसे अब अनुच्छेद 371 के रूप में रख दिया गया है। इन दोनों अनुच्छेदों की इबारतों को मिला कर मैंने नहीं देखा है। पर अगर दोनों की इबारत एक है—कुछ लोगों का कहना है कि दोनों की इबारत एक है- तो मैं नहीं समझ पाता हूं कि अनुच्छेद 365 के औचित्य के लिये मसौदा समिति ने अनुच्छेद 371 का हवाला कैसे दिया है। इस अनुच्छेद का हवाला देना सर्वथा अप्रासंगिक है। इस सम्बन्ध में दो और अनुच्छेदों का भी हवाला दिया गया है और यह अनुच्छेद है 353 और 380। अनुच्छेद 380 में....

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्र आगे कुछ और कहें, उस के पहले में उन्हें यह बता देना चाहता हूं कि अनुच्छेद 306-ख में प्रयुक्त इन शब्दों को ''and any failure to comply with such directions shall be deemed to be a failure to carry on the Government of the State in accordance with the provisions of this Constitution'' (यदि ऐसे किसी निदेश के पालन में कोई चूक हुई तो तो यह समझा जायेगा कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।) अनुच्छेद 371 में नहीं रखा गया है।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरु:** तो इस सम्बन्ध में मैं गलत कह रहा था जिसे आप ने सुधार दिया। अगर अनुच्छेद 365 को हटा दिया जाता है, जैसा कि यह पं. ठाकुर दास भार्गव ने प्रस्ताव रखा है तो इस हालत में मसौदा समिति पुराने अनुच्छेद 306-ख को अपना सकती है। इसके सिवा चूंकि इस प्रश्न का जिक्र किया है डॉ. अम्बेडकर ने, मैं यह बता देना चाहता हूं कि संविधान सभा द्वारा

[पंडित हृदयनाथ कुंजरू]

यथा संशोधित पुराना अनुच्छेद 306 जो संविधान के वर्तमान मसौदे में अनुच्छेद 371 है जिस पर कि अभी हम विचार कर रहे हैं, वह एक सीमित अवधि के लिये है। यह केवल दस साल के लिये है अतः संविधान में रखे जाने वाले किसी ऐसे नये अनुच्छेद को उचित बताने के लिये जो स्थायी रूप से प्रभावी रहेगा, इस अनुच्छेद का हवाला नहीं दिया जा सकता है।

मैं जिक्र कर रहा था अनुच्छेद 353 और 360 का जब माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने मुझे रोक कर यह बताया कि अनुच्छेद 306 के मसौदे में परिवर्तन कर दिया गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह बताना चाहता हूं श्रीमान् कि अनुच्छेद 371 में दस वर्ष से भी दीर्घतर अवधि का उपबन्ध किया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस में कहा यह गया है किः "इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इस के प्रारम्भ से दस साल की कालावधि के भीतर अथवा ऐसी दीर्घतर या अल्पतर कालावधि के भीतर जिसे संसद विधि द्वारा.....इत्यादि"

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** अनुच्छेद 353 में, श्रीमान केवल उन शक्तियों का उल्लेख किया गया है जिनका प्रयोग केन्द्रीय कार्यपालिका या संसद, आपात की उद्घोषणा होने के बाद कर सकते हैं यह स्पष्ट है कि आपात की स्थिति थोड़े अरसे तक ही बनी रहेगी। इस लिये इस शक्ति का प्रयोग आम तौर पर नहीं किया जा सकता है। उन का प्रयोग विशेष प्रकार की स्थिति में ही किया जा सकता है। अनुच्छेद 360 में उस स्थिति का जिक्र किया गया है जिस में राष्ट्रपति को इसका पक्का समाधान हो जाये कि भारत की या उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या साख संकट में पड़ गये हैं। ऐसी परिस्थितियों में केन्द्रीय कार्यपालिका प्रान्तीय शासनों को वितीय व्यवस्था के सम्बन्ध में अनुदेश दे सकता है कि वह अमुक तरह चलें। इस उपबन्ध का प्रयोग भी स्थिति विशेष में ही किया जा सकता है। जैसा कि मैं तब कह चुका हूं जब कि अनुच्छेद विचाराधीन था, यह अनुच्छेद सभा के सामने अन्त समय में लाया ही इस उद्देश्य से गया था कि केन्द्रीय कार्यपालिका प्रान्तीय सरकारों के मद्यनिषेध नीति को छोड़ने का आदेश दे सके। इस अनुच्छेद को प्रस्तावित करने का एक मात्र उद्देश्य यही था। (**श्री टी.टी. कृष्णमाचारी**-आपत्ति) अनुच्छेद की भाषा निस्सन्देह व्यापक है किन्तु मुझे इस का पक्का विश्वास है कि अगर, केन्द्रीय शासन की राय की सर्वथा उपेक्षा करके मद्यकर सम्बन्धी आय को छोड़ने का आग्रह प्रान्तीय सरकारों ने न किया होता तो संविधान में यह अनुच्छेद 360 कभी न रखा गया होता।

मैंने यह बता दिया है श्रीमान, कि मसौदा समिति ने इस अनुच्छेद 365 को उचित बताया है कई ऐसे अनुच्छेदों का हवाला दे कर जिनका सीमित रूप से ही प्रयोग किया जा सकता है उन में कोई भी अनुच्छेद ऐसा नहीं है जिसके आधार

पर, केन्द्रीय कार्यपालिका की शक्ति को इस हद तक विस्तृत करना उचित माना जा सकता हो कि वह स्थायी रूप से और हर स्थिति में अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकती है। मेरा ख्याल है, श्रीमान कि पंडित ठाकुर दास भार्गव का संशोधन अगर मान लिया जाता है तो उस से कठिनाई नहीं पैदा होगी। हम फिर इसी स्थिति पर वापस पहुंच जायेंगे, जहां इस नवीन अनुच्छेद 365 के प्रस्तावित किये जाने के पहले थे। मसौदा समिति ने अधिक से अधिक परिवर्तन करने की आतुरता में आ कर ही यह प्रस्ताव रखा है। पंडित ठाकुर दास भार्गव के संशोधन का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल है कि अब इस अनुच्छेद पर बहस हमें बन्द कर देनी चाहिये।

***माननीय सदस्यगणः** हां, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** इस पर काफी बहस हो चुकी है और सभा के सामने सभी तरह के दृष्टिकोण साफ-साफ रखे जा चुके हैं। इस पर सदस्यों को अपना निर्णय कर लेना चाहिये। अब हम लेंगे अनुच्छेद 372 को।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 366 अभी बाकी है। इस पर मैंने अपना एक संशोधन भेजा है जो 411 नम्बर का है। मैंने नई परिभाषा रखी है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संविधान के सम्बन्ध में और कोई मद नहीं रह गया है जिस पर हमें विचार करना हो।

***श्री एच.वी. कामतः** मसौदा समिति ने समूचे अनुच्छेद को ही संशोधित कर दिया है। उस संशोधित अनुच्छेद पर मैंने एक संशोधन रखा है और मसौदा समिति के संशोधन को देखते हुए मेरा संशोधन सर्वथा आनुषंगिक है।

***अध्यक्षः** यह बिलकुल स्पष्ट है कि 'संविधान' से यहां अभिप्रेत केवल भारत का संविधान न कि अन्य कोई संविधान। मेरा ख्याल है कि अच्छा होगा अपने संशोधन को आप मसौदा समिति पर छोड़ दें।

(संशोधन नं. 412 पेश नहीं किया गया)

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं: "कि अनुच्छेद 373 हटा दिया जाये"

इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है अनुच्छेद 22 से। इसमें कहा गया है कि संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् एक वर्ष के अन्दर, जब तक कि संसद अनुच्छेद 22 के लिये विधि न बना दे राष्ट्रपति को इस की शक्ति होगी। अनुच्छेद 22 एक बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है श्रीमान। इस संविधान के प्रारम्भ से तीन महीने के भीतर संसद इस बारे में विधि बना देगी इसलिये मेरी राय में.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि अनुच्छेद 22 के खंड (4) के अधीन कुछ बातें करनी होंगी जिन्हें कोई भी 26 जनवरी को नहीं कर सकता है यदि इस उपबन्ध को हम नहीं रखते हैं तो सारा अनुच्छेद ही प्रभाव शून्य हो जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस की अहमियत को अब मैं समझ रहा हूं। मेरा ख्याल था कि सचिवालय तीन महीने के अन्दर संसद में विधेयक रख सकेगा। पर अगर यह सम्भव ही नहीं है तो मैं अपने संशोधन के लिये जोर नहीं देना चाहता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** (संयुक्त प्रान्त जनरल): अध्यक्ष महोदय मैं यह संशोधन रखता हूं:—

"कि अनुच्छेद 373 में 'one year' (एक साल) शब्दों की जगह 'three months' (तीन माह) शब्द रखे जायें।"

इस अनुच्छेद को इस प्रयोजन से रखा जा रहा है कि अनुच्छेद 22, और खास करके उसके खंड (4) और (7) के अधीन विधिनिर्माण की जो शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त है वह राष्ट्रपति को प्राप्त हो जाये। यदि डॉ. अम्बेडकर का यह नया अनुच्छेद यानी संशोधन नं. 545 और 546 को स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 22 का अन्तिम रूप यह होगा।

"(4) No law providing for preventive detention shall authorise the detention of a person for a longer period than three months unless—

(a) an advisory Board consisting of persons who are, or have been, or are qualified to be appointed as, judges of a High Court has reported before the expiration of the said period of three months that there is in its opinion sufficient cause for such detention:

Provided that nothing in this sub-clause shall authorise the detention of any person beyond the maximum period prescribed by order made by President under sub-clause (b) of clause (7); or

(b) such person is detained in accordance with the provisions of order made by President under sub-clauses (a) and (b) of clause (7)"

["(4) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि:—

(क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्चन्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणा-मंडली ने तीन

महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिये उस की राय में पर्याप्त कारण हैं।

परन्तु इस उपखंड की कोई बात किसी व्यक्ति के, उस अधिकतम कालावधि से आगे निरोध को प्राधिकृत न करेगी जो खंड (7) के उपखंड (ख) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा निकाले गये आदेश द्वारा विहत की गई हो; अथवा

(ख) ऐसा व्यक्ति खंड (7) के उपखंड (क) और (ख) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा निकाले गये आदेश के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।"

खंड (7) का रूप यह होगा:–

''(7) The President may by order prescribe—

(a) the circumstances under which, and the class or classes of cases in which, a person may be detained for a period longer than three months under any law providing for preventive detention without obtaining the opinion of a Advisory Board in accordance with the provisions of sub-clause (a) of clause (4);

(b) the maximum period for which any person may in any class or classes of cases be detained under any law providing for such detention: and

(c) the procedure to be followed by and Advisory Board in an inquiry under sub-clause (a) of clause (4);''

"(7) राष्ट्रपति आदेश द्वारा विहित कर सकेगा कि:—

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये खंड (4) के उपखंड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किये बिना निरुद्ध किया जा सकेगा;

(ख) किसी प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिये कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा या;

(ग) खंड (4) के उपखंड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में मंत्रणा मंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया क्या होगी।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इसलिये, अनुच्छेद 22 के द्वारा जो शक्तियां संसद को दी गई हैं वह अब एक साल के लिये राष्ट्रपति को प्राप्त हो जाती हैं। मेरी समझ से तो श्रीमान एक वर्ष की मुद्दत बहुत ज्यादा है। यह तो मैं समझ सकता हूं कि 26 जनवरी तक सम्भवत: हम नया कानून इस बारे में नहीं पास कर सकते हैं। किन्तु बजट-अधिवेशन के पहले पहले यानी अप्रैल तक तो हम जरूर ही नया कानून तैयार कर लेंगे। इसलिये इस अनुच्छेद को बिलकुल हटाने का तो मैं सुझाव नहीं दूंगा जैसा कि माननीय मित्र श्री सिधवा ने संशोधन रखा है, पर एक वर्ष की जगह तीन महीने की मुद्दत रखने का सुझाव मैं जरूर दूंगा। यह साफ है कि यह अधिवेशन 22 दिसम्बर तक समाप्त हो जायेगा और उसके बाद पुन: समवेत होकर हम 26 जनवरी तक कानून बना लें, यह तो नहीं सम्भव हो सकता है। पर बजट अधिवेशन खतम होने तक हम जरूरी यह कानून बना लेंगे और इस के लिये हमें दूसरे साल तक रूकने की कोई जरूरत न होगी मैं निजी तौर पर यह महसूस करता हूं कि यहां एक वर्ष की मुद्दत रखने से यही पता चलता है कि मसौदा समिति को जनता स्वतन्त्रता की कितनी फ्रिक है। इस प्रश्न का सम्बन्ध है नागरिकों की आजादी के छिने जाने से। और उन के नजरबन्द रखे जाने से मेरा ख्याल है कि अपने संशोधन में मैंने जो तीन महीने की अवधि रखी है वह काफी है इस अवधि के अन्दर, मेरा ख्याल है, कि हमें कानून बना देना चाहिये कि किन किन अवस्थाओं में किसी को सरकार तीन महीने से ऊपर नजरबन्द रख सकती है। अनुच्छेद 22-क खंड (7) में यह बताया गया है कि संसद विधि द्वारा यह विहित कर सकती है किन स्थितियों में तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति का तीन महीने से ज्यादा और अधिक से अधिक किस मुद्दत तक, नजरबन्द रखा जा सकता है। इन सब बातों के विनिश्चयन का अधिकार संसद को मिलना चाहिये न कि कार्यपालिका को। यहां असल बात यह है कि यह शक्ति दी जा रही है कार्यपालिका को और हम चाहते हैं कार्यपालिका पर कुछ प्रतिबन्ध रखना यदि यह काम कार्यपालिका पर छोड़ा जाता है कि एक साल के अन्दर इस बारे में कानून बनावे तो उस के अधिकार पर कोई प्रतिवन्ध न रह जायेगा और देशवासी अपनी स्वाधीनता से और लोकतंत्रीय व्यवस्था से वंचित रह जायेंगे। इस अनुच्छेद के द्वारा जनता की स्वाधीनता के प्रति बड़ी उपेक्षा प्रदर्शित की गई है। इस लिये मैं यही समझता हूं कि यहां एक वर्ष की जगह तीन महीने की अवधि रखी जानी चाहिये।

***श्री बी. दास:** संशोधन नं. 415 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं श्रीमान।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 418 श्री कामत आप उसे पेश कीजिये।

***पंडित बाल कृष्ण शर्मा:** मेरा एक संशोधन नं. 412 का श्रीमान।

***अध्यक्ष:** मसौदा समिति के किसी संशोधन पर यह नहीं लागू होता है।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** अनुवर्ती सूची में एक संशोधन है जिस पर यह रखा गया है।

***अध्यक्षः** वह संशोधन हैं नं. 503 का। जब संशोधन नं. 503 पेश हो जायेगा तो उस पर आप अपना संशोधन रख सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं अपने संशोधन न. 418 और 419 दोनों को पेश करता हूं। वह यों हैं।

"कि अनुच्छेद 371 के खंड (5) में 'after such commencements' (ऐसे प्रारम्भ के बाद) शब्दों की जगह 'on such commencement' (ऐसे प्रारम्भ पर) शब्द रखे जायें।"

गत रात को जो सूची 4 सदस्यों को भेजी गई है, उससे मैं देखता हूं कि मसौदा समिति ने इसे बेहतर समझा है और उसने इस संशोधन को स्वीकार किया है:—

"कि अनुच्छेद 379 के खंड (5) में 'as the case may be, the deputy speaker' शब्दों की जगह 'the deputy speaker, as the case may be' शब्द रखे जायें।"

यह केवल एक रस्मी संशोधन है और आप इसे केवल शाब्दिक मात्र मान सकते हैं। इसे मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 387, संशोधन नं. 420।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान्:—

"कि अनुच्छेद 387 में, 'the different provisions may be made for different States and for different purposes by such order' ऐसे आदेश द्वारा विभिन्न राज्यों तथा विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न उपबन्ध बनाये जा सकेंगे।) शब्दों को हटा दिया जाये।"

अनुच्छेद 387 के द्वारा, कुछ निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिये जनसंख्या के निर्धारण के बारे में विशेष उपबन्ध दिये गये हैं। मुझे स्मरण है कि सभा के पिछले अधिवेशन में, इसकी जगह पहले जो अनुच्छेद था, उससे राष्ट्रपति को उससे भी अधिक अधिकार देने की बात कही गई थी जितना कि वर्तमान अनुच्छेद में (अंग्रेजी प्रति में दिये टेढ़े अक्षरों को छोड़कर) सोचा गया है। उस समय सभा में इस पर पूरी तरह से बहस हुई थी और अन्त में अनुच्छेद में ऐसा संशोधन किया गया था कि उसमें भारत या उस के किसी भाग की जनसंख्या के निर्धारण का ही उल्लेख रखा गया था। अनुच्छेद की अन्य बातों को बहुत महत्वपूर्ण बताया गया था और उनके बारे में विनियमन का काम संसद् पर छोड़ा गया था। मुझे अच्छी तरह याद है कि आप ने भी बहस में दखल दिया था और सभा को विश्वास दिलाया था कि देश की या उसके किसी भाग की जनसंख्या के निर्धारण की ही बात अनुच्छेद में रखी गई है। अंग्रेजी प्रति में अब टेढ़े अक्षरों में जो बातें यहां बढ़ा दी गई हैं वह ऐसी हैं जो मेरी तुच्छ राय में बहुत ही महत्वपूर्ण

[श्री एच.वी. कामत]

हैं और उन्हें हमें राष्ट्रपति तथा कार्यपालिका के विवेक और निर्णय पर न छोड़ना चाहिये। इस अंश में विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न उपबंधों के बनाये जाने की भी बात कही गई है। मैं नहीं जानता कि किन प्रयोजनों के लिये यह उपबन्ध किया जा रहा है। मेरा ख्याल तो यही है कि हमें इस बात को राष्ट्रपति और कार्यपालिका के हाथ में न छोड़ना चाहिये। इस संशोधन न. 420 को मैं सभा के सामने रखता हूं और सिफारिश करता हूं कि वह इस पर अच्छी तरह विचार करे।

संशोधन नं. 421 को मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। संशोधन नं. 422 शाब्दिक मात्र है और उसे भी मैं मसौदा समिति के निर्णय पर छोड़ता हूं।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 391, संशोधन नं. 424।

***श्री एच.वी. कामतः** एक संशोधन है श्री ठक्कर बापा का जिसका नं. है 423।

***अध्यक्षः** मसौदा समिति की ओर से कोई संशोधन नहीं है। आप अनुच्छेद 391 पर अपने संशोधन नं. 424 को पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 391 के खंड (1) में, amendment in' शब्दों की जगह जहां भी वह प्रयुक्त हुए हों, 'amendment to' शब्द रखे जायें।"

यह केवल एक शाब्दिक संशोधन है और इसे मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। आगे मैं यह संशोधन रखता हूंः

"कि अनुच्छेद 391 के खंड (1) में, 'anything in the Constitution' शब्दों की जगह 'anything contained in the constitution' शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन भी नं. 424 की ही तरह का है और इसे भी मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। वह जो चाहे फैसला करे।

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूंः

"कि अनुच्छेद 391 के अन्त में यह नया खंड जोड़ दिया जायेः

['(3) Such an amendment or amendments shall be placed, within two months of the passing of such an order before Parliament for its approval'.

(3) ऐसा या ऐसे संशोधन, ऐसा आदेश निकालने से दो महीने के भीतर संसद के अनुमोदन के लिये उसके सामने रखे जायेंगे]

यह अनुच्छेद एक बड़ा ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है श्रीमान और...

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अगर अनुमति हो तो माननीय मित्र की बात में हस्तक्षेप करूं? मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि राष्ट्रपति तो संविधान के उपबंधों में एक ऐसी बात रखेगा जो तथ्य होगी और उस पर संसद की स्वीकृति की या उसे संसद के समक्ष रखे जाने की कोई गुन्जाइश नहीं होगी क्योंकि 26 जनवरी तक ये सभी परिवर्तन संविधान में शामिल कर लिये जायेंगे। अगर ऐसा नहीं होता है तो ये राज्य जिन के सम्बन्ध में इन परिवर्तनों की चर्चा की गई है वह अनिश्चित दशा में पड़े रह जायेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरा कहना यह है मैं इस अनुच्छेद को पढ़ देता हूं इस में कहा गया है कि:-

''If at any time between the passing of this Constitution and its commencement any action is taken under the provisions of the Government of India Act, 1935, which in the opinion of the President requires any amendment in the First Schedule and the Fourth Schedule, the President may, notwithstanding anything in this Constitution, by order, make such amendments in the said Schedules as may be necessary to give effect to the action so taken and any such order may contain such supplemental, incidental and consequential provisions, as the President may deem necessary''.

(यदि संविधान के पारित होने तथा उस के प्रारम्भ के बीच में किसी समय भारत-शासन-अधिनियम 1935 के उपबन्धों के अधीन कोई क्रिया की जाती है जिसके लिये राष्ट्रपति की राय में प्रथम अनुसूची और चतुर्थ अनुसूची में कोई संशोधन अपेक्षित है तो राष्ट्रपति, इस संशोधन में किसी बात के होते हुए भी, आदेश द्वारा उक्त अनुसूचियों में ऐसे संशोधन कर सकेगा जैसे कि इस प्रकार की गई क्रिया को प्रभावी बनाने के लिये आवश्यक हों तथा ऐसे किसी आदेश में ऐसे अनुपूरक, प्रासंगिक तथा अनुषंगिक उपबन्ध भी अन्तर्विष्ट हो सकेंगे जैसे कि राष्ट्रपति आवश्यक समझे।)

मैं यहां प्रथम अनुसूची के लिये ही कह रहा हूं जो एक बड़ा विवादास्पद विषय है। गत अधिवेशन में हमने इस पर विचार किया था और सभा के विचारार्थ इसे स्थगित रखा था। प्रथम अनुसूची है राज्यों के बढ़ाने या घटाने के बारे में तथा उनके नामकरण के बारे में। अगर उस में कोई अतिरिक्त नाम जोड़ा जाता है तो यह काम क्या राष्ट्रपति पर छोड़ा जायेगा? मान लीजिए मद्रास को विभक्त करना है। मैं जानना यह चाहता हूं कि क्या राष्ट्रपति को यह शक्ति रहेगी कि वह सूची में आंध्र का नाम या महाराष्ट्र का नाम जोड़ सकता है या राज्यों के नामों में परिवर्तन कर सकता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इस संविधान के प्रवर्तन में आने के पहले ही इस सम्बन्ध में भारत-शासन-अधिनियम के अधीन कार्रवाई की जा चुकी रहेगी?

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं समझता हूं कि राज्यों के नाम को बदलने का प्रश्न सर्वथा सभा के अधिकार में रहना चाहिये। मैं सादर यह कहूंगा श्रीमान, कि मैं यह महसूस करता हूं कि यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण मसला है जिस पर सभा की राय लेकर ही कुछ किया जा सकता है। संयुक्त प्रान्त से उसका नाम बदलने के बारे में एक सुझाव आ चुका है और संयुक्त प्रान्त के सदस्यों को छोड़ कर बाकी सब की ओर से उस का विरोध हो रहा है। फिर नये प्रान्तों के बनने की बात है। मैं यह जानना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में क्या हमारी कोई बात न सुनी जायेगी और केवल सम्बन्धित प्रान्तों के सदस्यों की राय से यह काम कर लिया जायेगा? अतिरिक्त प्रान्त बनाये जायें या नहीं, प्रान्तों का विभाजन किया जाये या नहीं तथा उन के नामों में क्या परिवर्तन किया जाये, इन सभी बातों के बारे में हमारी राय के अनुसार काम होना चाहिये। इसलिये केवल रस्मी तौर पर मैंने यह संशोधन रखा है। मेरा अभिप्राय यही है कि राष्ट्रपति को इसका अधिकार न देना चाहिये। इससे तो यह होगा। वह बड़ी विषम स्थिति में पड़ जायेगा। ऐसे महत्वपूर्ण मसलों के बारे में, जिस को ले कर यहां सभा में तथा सदस्यों में बड़ा मतभेद होगा? राष्ट्रपति को अधिकार दे कर आप उसे संकट में डाल देंगे।

इसलिय मेरा मन्तव्य तो यही है कि इस अनुच्छेद का मसौदा फिर से बनाया जाये या कल तर्क इसमें इतना अंश और जोड़ दिया जाये। या यह भी हो सकता है कि आपस की रजामंदी से इसे अभी स्थगित रखा जाये और सभा के उठने के पहले यानी तृतीय पठन को स्वीकार करने से ठीक पहले हम इस पर विचार कर के निश्चय कर लें। पर राज्यों के नामकरण के सम्बन्ध में या नये राज्यों की रचना के सम्बन्ध में इस सभा को कोई अधिकार न हों—मैं निजी राय जाहिर कर रहा हूं—यह मेरी समझ से तो बड़ा अनुचित होगा। इसलिये मेरा कहना यह है और मैं आप से यह अनुरोध करूंगा—मैं व्यक्तिगत रूप से यह अपील आप से कर रहा हूं श्रीमान—कि.....

***अध्यक्ष:** भारत-शासन-अधिनियम के उपबन्धों के अधीन की गई कार्रवाई की बात यहां कही गई है। यदि भारत-शासन-अधिनियम के अधीन किसी नये प्रान्त की रचना की जाती है तो राष्ट्रपति इस अनुच्छेद के अधीन तदनुसार कार्रवाई करेगा। वर्तमान प्रान्तों के नामकरण से इस का कोई वास्ता नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या राष्ट्रपति इस संविधान के अधीन प्रान्तों के नाम में परिवर्तन तो नहीं कर सकता है?

***अध्यक्ष:** वर्तमान प्रान्तों के नाम में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है किन्तु अगर कोई नया प्रान्त बनता है तो उस का नाम तो रखना ही होगा। यदि भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के उपबन्धों के अधीन कोई कार्रवाई की गई यानी

यदि 26 जनवरी के पहले कोई नया प्रान्त बनाया गया तो राष्ट्रपति का काम यही होगा कि वह इस तथ्य को दृष्टि में रख ले और अनुसूची में इसको शामिल कर दे।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस में संसद को अपनी राय देने का हक होगा या नहीं।

***अध्यक्ष:** नये प्रान्त बनाने के बारे में धारा 90 के अधीन, कार्रवाई करेगा गवर्नर जनरल। राष्ट्रपति तो केवल यह करेगा कि इस नये प्रान्त को अनुसूची में शामिल कर देगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस का मतलब तो यह हुआ कि इस धारा के अधीन, मंत्रियों की राय पर गवर्नर जनरल कार्रवाई करेगा।

***अध्यक्ष:** अवश्य ही यह सब कार्रवाई गवर्नर जनरल करेगा और मंत्रियों की राय पर करेगा। प्रान्तों के विधान मंडलों की राय को अच्छी तरह समझे बिना गवर्नर जनरल सम्भवत: कोई कार्रवाई न करेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या इस अधिनियम के अधीन गवर्नर जनरल प्रान्तों के नाम भी अपनी ओर से रख सकता है?

***अध्यक्ष:** वर्तमान प्रान्तों के नाम में वह परिवर्तन नहीं कर सकता है पर केवल नवरचित प्रान्तों को नाम दे सकता है। यदि कोई नया प्रान्त बनता है तो राष्ट्रपति इस बात को दृष्टि में रखेगा और अनुसूची में इसे शामिल कर देगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस का मतलब यही हुआ कि हमें अपनी राय जाहिर करने का मौका नहीं दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो नये प्रान्तों के बनने का सवाल तब तक रुका रह जायेगा जब तक कि नया संविधान प्रर्वतन में नहीं आ जाता है। यह अनुच्छेद रखा ही इस लिये गया है कि अगर नये प्रान्तों की रचना के लिये अनुकूल स्थिति हो तो नये प्रान्त बनाये जा सकें। पर गवर्नर जनरल को 26 जनवरी के बाद धारा 290 के अधीन इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई करने का अधिकार न रह जायेगा। 26 जनवरी तक तो उसको यह अधिकार भारत-शासन-अधिनियम के द्वारा मिला प्राप्त ही रहेगा। इसे आप कैसे छीन सकते हैं?

***श्री आर.के. सिधवा:** 26 नवम्बर को जब सभा का अधिवेशन समाप्त होगा उस के पहले क्या हमें यह मालूम नहीं हो जा सकता है?

अध्यक्ष: यह मैं नहीं कह सकता हूं।

***श्री थिरूमल राव:** यह मसला है विधान सभा का, वही इस पर विचार कर सकते हैं। हम यहां भविष्य के लिये संविधान तैयार कर रहे हैं। श्री सिधवा का संशोधन यह सर्वथा अप्रासंगिक है क्योंकि उनके प्रश्न का सम्बन्ध है संसद से।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं अपनी राय जरूर व्यक्त कर देना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के अधीन, गर्वनर जनरल जो कुछ भी कार्रवाई कर सकता है वह 26 जनवरी तक ही कर सकता है और इस अधिनियम के अधीन उसके उपचार के लिये आप जो भी चाहें कर सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस में उपचार की तो कोई व्यवस्था नहीं रखी गई है।

***अध्यक्ष:** उपचार के लिये इस अधिनियम पर आप संशोधन रख सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** इसके लिये समय जो नहीं रह गया है।

***अध्यक्ष:** यही तो बात है जो यह अनुच्छेद रखा गया है ताकि किसी आवश्यकता विशेष का निराकरण किया जा सके।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं आशा करता हूं कि श्रीमान आप इस बात को ध्यान रखेंगे। यह विषय सभा के समक्ष पहले भी आया था। अब इस अनुच्छेद के द्वारा सभा का अधिकार छिन जाता है।

***अध्यक्ष:** सभा का कोई अधिकार इस से नहीं छिनता है। इससे केवल यही होता है कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 के अधीन अगर इस सम्बन्ध में कोई बात की जाती है तो राष्ट्रपति उसको अनुसूची में शामिल कर लेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** सभा का जो अधिकार छिनता वह यह है गत अधिवेशन हम ने प्रथम अनुसूची पर तथा नये प्रान्तों के बनाने के प्रश्न पर विचार किया था उस समय इस मसले को स्थगित रखा गया था।

***अध्यक्ष:** किस बात को स्थगित रखा गया था? इस बात को नये प्रान्त बनाये जायें या नहीं। यह प्रश्न आज भी स्थगित रखा जा रहा है।

***श्री महावीर त्यागी:** आशा करता हूं श्रीमान कि यहां प्रेसिडेंट से अभिप्रेत है संविधान सभा का प्रेसिडेंट न कि शासन का प्रेसिडेंट।

***अध्यक्ष:** प्रेसिडेंट तो केवल एक ही होगा और वह होगा भारतीय राज्य-संघ का प्रेसिडेंट।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जवाब में मैं इस मसले पर भी प्रकाश डालने जा रहा हूं। श्री सिधवा अपनी बात अब खतम कर सकते हैं।

(अनुच्छेद 392 पर आया हुआ संशोधन नं. 427 पेश नहीं किया गया)

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 428 जो श्री कामत का है। पर मैं समझता हूं कि यह मंजूर हो चुका है?

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं श्रीमान, यह अभी मंजूर नहीं हुआ है।

मैं अपना संशोधन नं. 428 उपस्थित करता हूं श्रीमान। पर मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 392 को प्रस्तावित खंड (2) का मसौदा बदल दिया गया है। जो संशोधन सूची 4 हम लोगों को कल रात को मिली है उसमें यह खंड संशोधित रूप में रखा गया है। अगर अनुमति हो तो उस पर ही मैं अपना संशोधन पेश करूं?

***अध्यक्षः** हां, पेश कीजिये।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमानः—

"कि संशोधन-सूची 4 के संशोधन नं. 505 में, जो अनुच्छेद 392 के खंड (3) पर है, (अब सूची 4 में इस का नम्बर हो जायेगा 572) 'before' शब्द की जगह 'until' शब्द रखा जाये।"

अथवा विकल्पशः यहः

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 572 में जो अनुच्छेद 392 के खंड (3) पर है, 'before' शब्द की जगह 'until immediately before' शब्द रखे जायें।"

मैं यह देखता हूं श्रीमान कि यहां 'before' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है और इससे खंड के आशय का बोध नहीं हो पाता है। यहां मतलब यह है कि जब तक कि नया संविधान प्रारम्भ नहीं हो जाता है तब तक इन शक्तियों का प्रयोग गवर्नर जनरल करेगा। मान लीजिये नया संविधान 26 जनवरी को प्रायः सूर्योदय के समय से लागू हो जाता है तो सूर्योदय से ठीक पहले तक इन शक्तियों का प्रयोग गवर्नर जनरल द्वारा किया जायेगा। यहां 'before' शब्द का प्रयोग बड़ा अस्पष्ट है और खासकर के संविधान में ऐसे अस्पष्ट शब्द का प्रयोग मेरी समझ से अच्छा नहीं माना जा सकता है। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि इस की जगह 'until' शब्द रख दिया जाये। इस शब्द के द्वारा हमारा आशय उस से कहीं अधिक साफ हो जाता है जितना कि 'before' शब्द से हो पाता है। 'before' का मतलब तो यह हुआ कि संविधान के प्रारम्भ के पहले किसी भी समय। इससे किसी निश्चित समय का बोध नहीं होता है। पर अगर मेरे कथन में कोई गलती हो तो उसे मानने को मैं तैयार हूं। मैं उन लोगों की बात मानने को तैयार हूं जिन्हें भाषा का मुझसे अधिक ज्ञान है तथा जो इस मसले पर मुझ से अधिक योग्यता रखते हैं। अगर उनका यही कहना है कि 'before' शब्द ही यहां ठीक होगा तो मैं इसे मान लूंगा पर ऐसे लोगों की कोई राय नहीं और मुझे खुद अपने आप इस पर फैसला करना हो तो मैं 'before' की जगह 'until' शब्द ही रखूंगा। या अगर 'before' शब्द को रखना हो तो "until immediately before" इस रूप में रखूंगा। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं इसे सभा तथा मसौदा समिति की बुद्धिमता पर छोड़ता हूं और वह जो भी करेंगे वह मुझे मान्य है।

[श्री एच.वी. कामत]

अब मैं अपने दूसरे संशोधन—संशोधन नं. 434 को पेश करता हूं।

वह यों है:—

"कि प्रथम अनुसूची के भाग क के मद 5 में 'कोशल विदर्भ' नाम की जगह 'मध्य प्रदेश' रखा जाये।"

सभा को याद होगा श्रीमान् कि जब गत अधिवेशन में यह सूची स्वीकार की गई थी उस समय आप ने हम लोगों को बताया था कि प्रथम अनुसूची के भाग-क के राज्यों के नामों में जो भी परिवर्तन किये जायेंगे या सोचे जायेंगे उन पर इस अधिवेशन में यहां विचार किया जायेगा। उस समय जो संशोधन आये थे वह सब आप के अनुदेशाधीन प्रान्तीय सरकारों को भेज दिये गये थे।

***अध्यक्ष:** मैं आप को यह बता दूं और शायद इस से बहस में कम समय लगे कि मध्यप्रान्त की सरकार ने अपने प्रान्त का नाम मध्य प्रदेश रखने की सिफारिश की है। अत: इस संशोधन पर शायद अब और बहस करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

***श्री एच.वी. कामत:** इस को लेकर पत्रों में कुछ विवाद जरूर चला था पर अगर इस नाम को स्वीकार कर लिया गया है तो इस पर बहस की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। मैंने यह सुना था कि मसौदा समिति ने इस नाम को पुन: प्रान्तीय सरकार के पास विचारार्थ वापस भेज रखा है।

***श्री आर.के. सिधवा:** एक बात जानना चाहता हूं श्रीमान। क्या प्रान्तीय सरकार की जो सिफ़ारिश होगी वही यहां मंजूर की जायेगी?

अध्यक्ष: ऐसी बात नहीं है। मैं केवल यह कह रहा था कि यही संशोधन मसौदा समिति ने रखा है इसलिये इस पर राय ले ली जायेगी और श्री कामत को अपने संशोधन पर वोट देने की कोई जरूरत नहीं है।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** आप ने अभी जो कुछ कहा है उसे देखते हुए मैं यह जानना चाहता हूं कि संयुक्त प्रान्त ने जिस नाम की सिफारिश की वही क्या मसौदा समिति का भी संशोधन समझा जायेगा?

***श्री आर.के. सिधवा:** ठीक इसी बात की ओर तो मैं आप का ध्यान आकृष्ट कर रहा था। मैं भी यही जानना चाहता था कि प्रान्तीय सरकार का निर्णय ही क्या मसौदा समिति का निर्णय हो जायेगा? मैं नहीं समझता कि ऐसा होगा।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है, अगर आप का यह ख्याल है तो हम यही मान कर चलेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** अभी उस दिन हम ने यह निर्णय किया था कि प्रान्तीय सरकारों की ओर से नाम आ जाने पर हम नामों को स्वीकार करेंगे।

***अध्यक्षः** नाम तो आ चुके हैं, पर अगर किसी को कोई आपत्ति है तो सभा को अधिकार है कि वह जो नाम चाहे स्वीकार करे और उसके लिये कोई जरूरी नहीं है कि वह प्रान्तीय सरकार की सिफारिशों को माने ही।

***श्री आर.के. सिधवाः** आप ने भी तो यही कहा था श्रीमान कि मसौदा समिति प्रान्तीय सरकारों की सिफारिशों पर विचार करेगी।

***अध्यक्षः** अच्छी बात है, अब हम लेते हैं संशोधन नं. 432 को।

***श्री एच.वी. कामतः** अपने संशोधन नं. 431 के सम्बन्ध में मुझे खुशी है कि प्रान्तीय सरकार ने भी 'मध्य प्रदेश' नाम की सिफारिश की है। मेरा ख्याल है, 'कोशल विदर्भ' से कहीं अच्छा और सुन्दर नाम होगा 'मध्य प्रदेश' मुझे विश्वास है कि सभा इसे अवश्य स्वीकार करेगी।

अब मैं अपने संशोधन नं. 432 को पेश करता हूं। वह यों है:—

"कि प्रथम अनुसूची के भाग क की मद 9 में 'संयुक्त प्रान्त' की जगह 'गंगावर्त' नाम रखा जाये।"

***श्री महावीर त्यागीः** क्या कहा गंगापुत्र?

श्री एच.वी. कामतः नहीं, गंगावर्त।

श्री आर.के. सिधवाः मैं यह कहना चाहता हूं कि अभी इसे स्थगित रखा जाये जब तक कि मसौदा समिति की राय हमें न मालूम हो जाये। गत अधिवेशन में आप ने यही कहा था कि मसौदा समिति उस सम्बन्ध में अपने प्रस्ताव रखेगी।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव तो यहां आ चुके हैं। उन पर मत लेने के पहले हम मसौदा समिति की राय ले लेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** यह मैं अवश्य अनुभव करता हूं श्रीमान् कि 'आर्यावर्त' एक भव्य संस्कृत नाम होगा और शायद वेदों में भी इसका उल्लेख है—किन्तु मेरी इस बात से किसी को कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि आजकल आर्यावर्त नाम समस्त भारत के लिये, ही लागू होता है न कि इसके किसी अंग विशेष के लिये। खूब, खूब, मैं नहीं समझता कि आज के जमाने में हम किसी प्रान्त विशेष का नामकरण प्रजाति के आधार पर कर सकते हैं और आर्यावर्त नाम में प्रजातीयता की गंध अवश्य है।

***पंडित बालकृष्ण शर्माः** प्रजातीयता की कोई गंध इस में नहीं है, हां संस्कृतिक गंध अवश्य इस में है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि इस में केवल संस्कृतिक गंध भी है तो भी यह नाम किसी प्रान्त विशेष को देना ठीक नहीं होगा क्योंकि समूचे भारत की

[श्री एच.वी. कामत]

संस्कृति–चाहे आप आर्य-संस्कृति कहिए या भारतीय संस्कृति कहिए—एक है। किसी प्रान्त विशेष को आर्यावर्त कहना यानी आर्यों का निवास स्थान बताना अन्य प्रान्त वालों पर एक आक्षेप होगा जिस पर, मेरा ख्याल है कि अन्य प्रान्त वाले अवश्य आक्रोश करेंगे। जब सारा भारतवर्ष आर्यावर्त के नाम से ज्ञात है, तो किसी विशेष प्रान्त को यह नाम देना उचित नहीं होगा। जब आर्य लोग भारतवर्ष में आये और उत्तरी भारत के एक प्रदेश विशेष में बस गये तो उस भाग को उन्होंने आर्यावर्त का नाम दे दिया। जब वे लोग दक्षिण की ओर बढ़ गये तो सारे देश को ही, जिसे हम आज भारत कहते हैं उन्होंने आर्यावर्त नाम दे दिया। अपने एक वेद के अनुसार ऐसा ही माना जाता है। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि किसी एक प्रान्त को आर्यावर्त कहना ठीक नहीं होगा।

जहां तक कि 'गंगावर्त' नाम का सम्बन्ध है, खुद तो मैंने वेद नहीं पढ़े हैं पर मुझे एक प्रामाणिक सज्जन ने बताया है कि किसी एक वेद में ऋगवेद या सामवेद में उस भाग का उल्लेख गंगावर्त के नाम से किया गया है जहां आर्य लोग आ कर पहले बसे थे। अधिकतर उल्लेख आप को आर्यावर्त का ही मिलेगा पर कहीं कहीं अब तक गंगावर्त का उल्लेख भी आप को मिलेगा और इस नाम में प्रजातीयता की कोई गंध नहीं है। गंगा भारत की सब से बड़ी और पवित्र नदी है और सभी भारतीयों की दृष्टि में यह नदी संसार की शेष सभी नदियों से महत्वपूर्ण और पवित्र है। गंगा के सम्बन्ध में एक प्राचीन परम्परा चली आयी है। संयुक्त प्रान्त के अपने माननीय मित्रों से मैं अनरोध करूंगा कि वह इस नाम पर गम्भीरता के साथ विचार करें और इस पर गौर करें कि आर्यावर्त की अपेक्षा गंगावर्त नाम रखना क्या अधिक उपयुक्त और बुद्धिसंगत नहीं होगा। भारतीय इतिहास और पौराणिक कथाओं पर हमारे दर्शनों, वेदों, पुराणों तथा धर्मग्रंथों पर गंगा का बहुत प्रभाव पड़ा है। जहां तक मेरा निजी सम्बन्ध है, अगर आर्यावर्त की जगह इस प्रान्त का नाम गंगावर्त रखा जाता है तो मुझे परम प्रसन्नता होगी क्योंकि आर्यावर्त तो, समूचे भारत को कहते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"कि प्रथम अनुसूची के भाग क की मद 9 में, 'the United Provinces (संयुक्त प्रान्त)' की जगह 'आर्यावर्त' नाम रखा जाये।"

माननीय मित्र श्री कामत ने आर्यावर्त नाम का विरोध किया है जिसे हमारा प्रान्त चाहता है और गंगावर्त नाम का सुझाव दिया है। आर्यावर्त नाम रखने के विरुद्ध वह इसलिये है कि यह नाम समूचे भारत के लिये लागू होता है। यदि वह अनुच्छेद-1 को देखें तो उन्हें मालूम होगा कि अपने समस्त देश का नाम वहां बताया गया है भारत और आर्यावर्त नाम छोड़ दिया गया है। इस लिये आप का यह कहना कि आर्यावर्त समूचे देश को कहते हैं, सही नहीं है। यदि हमारे प्रान्त ने अपने लिये भारत नाम रखने का सुझाव दिया होता तो उनके कहने का कुछ मतलब होता पर जब हम अपने प्रान्त का नाम आर्यावर्त रखना चाहते हैं तो उनका यह तर्क सर्वथा अनुपयुक्त है।

समूचे भारत को कभी आर्यावर्त नहीं कहा जाता था। केवल उत्तरी भारत और विशेषत: पंजाब संयुक्त प्रान्त और बिहार को ही लोग यहां आर्यावर्त कहते थे। श्री कामत ने गंगावर्त नाम का सुझाव दिया है पर गंगा न केवल संयुक्त प्रान्त में ही बहती है बल्कि यह बिहार और बंगाल में भी प्रवाहित होती है। इसलिये उनका तर्क तो इस नाम के बारे में भी लागू किया जा सकता है। यह कहना कोई तर्क नहीं है कि हम अपने प्रान्त को ऐसा नाम देना चाहते हैं जो समस्त देश के लिये लागू होता है, और.....

***श्री वी. दास:** आप एक तो अपनी भाषा को हम पर लाद ही रहे हैं पर अब हमारे देश के नाम को भी अपने प्रान्त के लिये चुरा लेना चाहते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** आर्यावर्त नाम का मुझाव न केवल मैंने दिया है बल्कि हमारी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने भी दिया है जिसके पचास सदस्यों ने मिलकर इस पर विचार किया है। उन लोगों ने सर्वसम्मति से यह मत व्यक्त किया है कि हमारे प्रान्त का नाम 'आर्यावर्त' होना चाहिये। प्रान्त की सरकार ने भी इसी नाम की सिफारिश की है मैं नहीं समझता कि हमें वह नाम देने में सभा को इनकार करना चाहिये जिस नाम से हम आज चिरकाल से ज्ञात होते आये हैं। यदि किसी प्रान्त को, जैसे कि पंजाब या बिहार को इस पर ईर्ष्या होती है और यह नाम वह अपने लिये चाहते हैं तो बात दूसरी है वरना जब और किसी प्रान्त ने अपने लिये इस नाम की मांग नहीं की है तो कोई कारण नहीं है क्यों नहीं हम अपने प्रान्त को इस नाम से पुकारें। आशा है कि हमारे प्रान्त को यह नाम देने पर किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। प्रान्त की कांग्रेस कमेटी ने तथा वहां के मंत्रिमण्डल ने—दोनों ने ही—प्रान्त का यही नाम तय किया है।

इस के विरुद्ध एक तर्क यहां यह रखा गया था कि अगर हम अपने प्रदेश को आर्यावर्त कहते हैं तो इसका मतलब यह होगा कि हम ही आर्य हैं और यहां शेष लोग नहीं हैं। इसका यह मतलब नहीं है। चूंकि समस्त देश में केवल एक हमारे ही प्रान्त ने इस नाम की मांग की है अत: माननीय मित्र का कहना यह है कि इसमें प्रजातीयता की गंध है। आर्यावर्त शब्द में प्रजातीयता की कोई बात नहीं है। उत्तरी भारत का यही प्राचीन नाम है और हमारा प्रान्त उत्तरी भारत का हृदयस्थल है। मैं नहीं समझता कि सभा को हम पर कोई नाम लादना चाहिये जिसे हम नहीं चाहते हैं। आशा है सभा मेरे संशोधन का समर्थन करेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इस प्रश्न पर हमें कल विचार करना चाहिये क्योंकि हो सकता है कि मसौदा समिति ऐसी स्थिति में हो कि कोई एसा संशोधन रखे जिससे सम्भवत: सभा के अधिकांश सदस्यों को सन्तोष हो जाये।

***अध्यक्ष:** हां, नाम के प्रश्न पर हम कल विचार करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** अब मैं नं. 434 से 437 तक के सभी संशोधनों को पेश करता हूं। वह यों हैं:

"कि पैरा 9 के उप पैरा 3 में, 'during the period' से लेकर 'before such commencement' तक के सभी शब्द हटा दिये जायें।"

"कि पैरा 10 का उप पैरा 2 हटा दिया जाये।"

"कि पैरा 10 के उपपैरा 4 में 'for any state' शब्दों की जगह 'of any state' शब्द रखे जायें।"

"कि पैरा 12 के उपपैरा 3 में, प्रथम पंक्ति में आय 'and' शब्द की जगह कामा (अर्ध विराम) का चिह्न रखा जाये।"

मेरा अन्तिम संशोधन केवल विराम चिह्न से सम्बन्ध रखता है और इसे मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। वह जो ठीक समझे रखे।

मुझे यह मालूम हुआ है श्रीमान, कि इस बारे में एक शुद्धि पत्र निकाला गया है अत: इस के लिये जोर नहीं दूंगा। जहां तक संशोधन नं. 434 और 435 का सम्बन्ध है इनमें उन न्यायाधीशों के वेतन के सम्बन्ध में उपबंध किया गया है जो संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति या न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे। नये न्यायाधीशों को नियुक्त करने में तथा न्यायाधीश पद पर काम करने वाले पुराने व्यक्तियों को न्यायाधीश नियुक्त करने में एक अन्तर रखा गया है। जिन खंडों या उनके अंश विशेषों को मैं संशोधन द्वारा हटाना चाहता हूं उसमें कहा यह गया है कि मुख्य न्यायाधिपति तथा न्यायाधीशों के लिये अब रखे गये वेतन में तथा संविधान के प्रारम्भ के पूर्व इनको मिलने वाले वेतन में जो अन्तर होगा वह उन लोगों को दिया जायेगा जो पहले से इन पदों पर काम करते आ रहे हैं। मैं ऐसा समझता हूं कि नव नियुक्त न्यायाधीशों में, तथा, फेडरल न्यायालय और उच्च न्यायालयों के जो पदस्थ न्यायाधीश अब उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे उनमें यह अन्तर न रहना चाहिये। चंद व्यक्तियों के लिये ही यह अन्तर रखा गया है। अपने न्यायाधीशों के लिये हमने अब पांच हजार और साढ़े चार हजार वेतन रखा है। इतने पर भी अब अगर हम उनके नये और पुराने वेतन में जो अन्तर है उसे उन्हें देते हैं तो भारतीय जनता यही सोचेगी और ठीक सोचेगी कि हम अपने न्यायाधीशों को मोटा बना रहे हैं। यदि पुराने पदधारी नये वेतन पर काम करने को तैयार नहीं हैं तो मेरी समझ से सर्वोत्तम यह होगा कि—मैं यह नहीं विश्वास कर सकता हूं कि वह काम करने को तैयार नहीं होंगे क्यों कि वह भी उतने ही देशभक्त हैं जितना हम, और मेरा ख्याल है कि इस नवनिश्चित वेतन पर वह स्वेच्छा से काम करने को तैयार होंगे पर अगर उनमें से कुछ केवल हठ या दुराग्रहवश उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश के पद पर काम करने को तैयार नहीं होते हैं—तो सर्वोत्तम यह होगा कि नव भारतीय गणराज्य की सरकार उन लोगों से जगह छोड़ने को कह दे और उनकी जगह नये लोगों को नियुक्त कर ले जो हमें अपने सुयोग्य वकील समुदाय से पर्याप्त संख्या में मिल जायेंगे और नव निर्धारित वेतन पर काम करने के लिये सहर्ष तैयार रहेंगे। इस बात को मैं फिर कहूंगा कि हमारे लिये यह गलत होगा कि हम चंद व्यक्तियों

को जो संविधान के प्रारम्भ के पहले न्यायाधीश थे और जिनको हम अब भी उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनाना चाहते हैं, इस तरह सन्तुष्ट करें। संविधान हमने बनाया समस्त देशवासियों का ख्याल रख कर न कि चंद व्यक्तियों का ख्याल रख कर जिन पर उसके उपबन्धों का असर पड़ सकता है। इसलिये सभा से मैं यह सिफारिश करता हूं कि वह इन दो संशोधनों को स्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 438 पहले ही पेश हो चुका है। अब लिया जाता है संशोधन नं. 439 जो सातवीं अनुसूची पर है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 1 में 'preparation' (तैयारी) शब्द के बाद 'and operation' (तथा प्रतिरक्षा विषयक कार्रवाई) शब्द रखे जायें।"

प्रविष्टि में टेढ़े अक्षरों में जो शब्द आये हैं वही मसौदा समिति का संशोधन है और इन शब्दों को रखा गया है प्रतिरक्षा की तैयारी के सम्बन्ध में। मेरा ख्याल है श्रीमान, कि जहां तक सैन्य विज्ञान और युद्ध कला का सम्बन्ध है, इसमें प्रतिरक्षा की तैयारी तथा प्रतिरक्षा विषयक कार्रवाई दोनों ही बातें आती हैं। मैं अपना यह संशोधन इसी उद्देश्य से रख रहा हूं कि यह प्रविष्टि व्यापक रहे और इस में किसी तरह के किसी छिद्र की गुंजाइश न रह जाये। मेरे संशोधन के स्वीकृत होने पर प्रविष्टि का रूप यह हो जायेगा:–

"Defence of India and every part thereof including preparation and operation for defence....." (भारत की तथा उसके प्रत्येक भाग की प्रतिरक्षा जिस के अन्तर्गत प्रतिरक्षा के लिये तैयारी तथा प्रतिरक्षा की कार्रवाई.....")

मैं यह संशोधन भी रखता हूं श्रीमान:

"कि सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 65 में, 'police' (आर्मी) शब्द के पहले 'administration or' (प्रशासन या) शब्द रखे जायें।"

यह नई प्रविष्टि जो यहां जोड़ी गई है वह है संघ के अभिकरण और संस्थाओं के बारे में जो वृत्तिक, व्यावसायिक या शिल्पिक प्रशिक्षण—जिनके अन्तर्गत आरक्षी पदाधिकारियों का प्रशिक्षण भी है—के लिये हैं। इंडियन सिविल सर्विस वालों को भरती कर देने के बाद हमारी सरकार ने 'Indian Administrative Service' (भारतीय प्रशासन सेवा) नाम की एक नई सेवा की यहां व्यवस्था की है और जो लोग इस सेवा में लिये जाते हैं उन्हें दिल्ली के एक विद्यालय में शिक्षा दी जाती है या और कहीं भी उन को शिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु यह एक तथ्य है कि प्रशिक्षण-विद्यालय न केवल आरक्षी पदाधिकारियों को शिक्षा देने के लिये है बल्कि प्रशासनीय पदाधिकारियों को शिक्षा देने के लिये है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि यहां केवल आरक्षी पदाधिकारियों का ही उल्लेख क्यों

[श्री एच.वी. कामत]

किया जा रहा है। या तो आप सभी असैनिक पदाधिकारियों का यहां उल्लेख कीजिये या अगर आरक्षी पदाधिकारियों का उल्लेख करते हैं तो अन्य आवश्यक सेवाओं के पदाधिकारियों का भी अर्थात प्रशासकीय पदाधिकारियों का भी उल्लेख कीजिये। इसलिये सभा से मैं सिफारिश करूंगा कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा किस प्रविष्टि को आप स्थानान्तरित करना चाहते हैं?

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरा संशोधन यह है श्रीमान:

"कि सूची 3 की प्रविष्टि 34, सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

प्रविष्टि 34 मूल्य नियंत्रण के सम्बन्ध में है और इस प्रविष्टि को सूची 1 में रखना ही उपयुक्त होगा। बहुत से विषयों का नियंत्रण केन्द्र करता है सुतरां मूल्य नियंत्रण भी केन्द्र के हाथ में होना चाहिये। समय समय पर चीजों की कीमत सवर्त्र भित्र रही हैं और प्रान्तीय सरकारों ने बिना सोचे विचारे चीजों का मूल्य निर्धारित किया है। मूल्यों के बारे में आज क्या स्थिति है इसे हम अच्छी तरह जानते हैं श्रीमान्। यदि मूल्य नियंत्रण की व्यवस्था को हमें प्रभावी बनाना है तो मूल्य नियंत्रण का विषय केन्द्र के हाथ में होना चाहिये उसी को उसके बारे में सब के हितों को सोच समझ कर विनियमन करना चाहिये। इसमें प्रान्तीय शासनों का कोई दखल न होना चाहिये। आप चीनी को ही ले लीजिये, कुछ प्रान्तों ने चीनी की कीमत ऐसी निर्धारित कर रखी है जो, अन्य प्रान्तों में रखी गई कीमत से कहीं ज्यादा है। रेलभाड़ा वगैरह देने के बाद भी वहां चीनी की इतनी कीमत नहीं होनी चाहिये जो वहां रखी गई है। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि मूल्य नियंत्रण का विषय केन्द्र के हाथ में होना चाहिये। केन्द्र के हाथ में होने से इसका समुचित विनियमन हो सकेगा। केन्द्र सारे देशवासियों के हितों को ध्यान में रख कर मूल्य निर्धारित करेगा और इससे जनता को कोई शिकायत न रहेगी और न उनमें कोई विवाद या कलह होगा। मूल्य नियंत्रण को केन्द्र के हाथ में रखने की जरूरत है क्योंकि मूल्य एक ऐसी बात है जिसको लेकर जनता में असन्तोष फैल गया है और अकारण बिना किसी गलती के, दोष भारत सरकार को लोग देने लगे हैं। वस्तुत: इस स्थिति के लिये जिम्मेदार हैं प्रान्तीय सरकारें। इस विषय को हमें केवल सूची 1 में ही रखना चाहिये। मुझे विश्वास है कि प्रान्तीय सरकारें भी इस प्रस्ताव का स्वागत करेंगी क्यों कि जनता में जो असन्तोष और कलह है उस से इस व्यवस्था को अपना कर, वह बच जायगी। यदि यह विषय केन्द्र के सुपुर्द कर दिया जाता है तो सारी व्यवस्था का ठीक ठीक विनियमन होगा। सभा से मैं सिफारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

इसके पश्चात सभा मध्यान्ह भोजन के वास्ते तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

भोजनोपरान्त तीन बजे सभा पुन: अध्यक्ष महोदय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञाग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया।

श्री हैदर हुसैन (संयुक्त प्रान्तः मुस्लिम)।

***श्री एच.वी. कामतः** पहले इसके कि हम दूसरी सूची को लें, मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि अनुच्छेद 57 पर मेरा एक संशोधन है जिसका नम्बर है 156 और यह पहली सूची में है। यह संशोधन आप की निगाह से छूट गया है।

***अध्यक्षः** हम इसे प्रस्तावित मान लेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 41 पर मेरा एक संशोधन है—न. 138 का। मेरा ख्याल है कि यहां "Public assistance" शब्द का प्रयोग अनुपयुक्त है। होना चाहिये इस की जगह "State assistance" (सरकारी सहायता)।

***अध्यक्षः** इसे आप मसौदा समिति पर छोड़ सकते हैं। वही इस पर विचार कर लेगी। अब हम दूसरी सूची को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 9 में, शब्द और अंक 'article 5' (अनुच्छेद 5) के बाद 'or be deemed to be a citizen of India by virtue of' शब्द रखे जायें।"

इन शब्दों को जोड़ देने से होता यह है कि अनुच्छेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है और कुछ कहने की जरूरत नहीं रह जाती है।

***अध्यक्षः** अब हम आते हैं अनुच्छेद 22 पर।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन सूची 4 का पिछला संशोधन मैं पेश करूंगा जिसका नं. है 543। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 22 के खंड (4) की जगह यह खंड रखा जायेः

'(4) No law providing for preventive detention shall authorise the detention of a person for a longer period than three months unless—

(a) an Advisory Board consisting of persons who are, or have been, or are qualified to be appointed as, Judges of a High Court has reported before the expiration of the said period of three months that there is in its opinion sufficient cause for such detention:

---

*"156 'कि अनुच्छेद 57 में 'Subject to other Provisions of this Constitution' (इस संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए) शब्द हटा दिये जायें।"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

Provided that nothing in this sub-clause shall authorise the detention of any person beyond the maximum period prescribed by any law made by Parliament under sub-clause (b) of clause (7) ; or

(b) such person is detained in accordance with the provisions of any law made by Parliament under sub-clauses (a) and (b) of clause (7).' "

(4) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि—

(क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्चन्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणामंडली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिये उस की राय में पर्याप्त कारण हैं:

परन्तु इस उपखंड की कोई बात किसी व्यक्ति के, उस अधिकतम कालावधि से आगे, निरोध को प्राधिकृत न करेगी जो खंड (7) के उपखंड (ख) के अधीन संसद निर्मित किसी विधि द्वारा विहित की गई हैं, अथवा

(ख) ऐसा व्यक्ति खंड (7) के उपखंड (क) और (ख) के अधीन संसद निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।

***अध्यक्ष महोदय:** अब मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खंड (7) के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

'(7) Parliament may by law prescribe—

(a) the circumstances under which, and the class or classes of cases in which, a person may be detained for a period longer than three months under any law providing for preventive detention without obtaining the opinion of an Advisory Board in accordance with the provisions of sub-clause (a) of clause (4);

(b) the maximum period for which any person may in any class or classes of cases be detained under any law providing for such detention; and

(c) the procedure to be followed by an Advisory Board in an inquiry under sub-clause (a) of clause (4).' "

(7) संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी—

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये खंड 4 क उपखंड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किये बिना निरुद्ध किया जा सकेगा,

(ख) किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिये कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा, तथा

(ग) खंड (4) क उपखंड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में मंत्रणा-मंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया क्या होगी।

सभा देखेगी कि अनुच्छेद 22 के खंड (4) और (7) को यहां प्रायः पुनः उदृत कर दिया गया है। परिवर्तन केवल इतना ही किया गया है कि मसौदा समिति के मूल संशोधन नं. 443—के सुझाव इसमें शामिल कर दिये गये हैं। मसौदा समिति के इस संशोधन में यह बात कही गई थी कि संसद विधि द्वारा यह विहित कर सकती है कि कोई व्यक्ति अधिक से अधिक किस अवधि तक निरुद्ध रखा जा सकता है। सभा ने गत अधिवेशन में इस खंड को जिस रूप में पास किया था उसमें यह एक कमी रह गई थी। सभा इसे स्वीकार करेगी कि यह एक उपयोगी संशोधन है क्यों कि खंड 4(क) को जिस रूप में पहले पास किया गया था उसमें, उस व्यक्ति के लिये जिसे मंत्रणा-मण्डली निरुद्ध रखे जाने के लायक समझती हो, निरोध की अधिकतम अवधि नहीं विहित की गई है और न इसके अनुसार संसद या अन्य प्राधिकारी निरोध की अधिकतम अवधि विहित कर सकते हैं। मूल संशोधन नं. 443 इसी प्रयोजन के लिये रखा गया था, पर बाद में देखा यह गया कि इस खंड को खंड (7) के साथ बिल्कुल मिला कर उसके अनुरूप रखना होगा। इसलिये सोचा यह गया कि अच्छा होगा कि खंड (7) को तीन भागों में विभक्त कर दिया जाये और यह साफ-साफ विहित कर दिया जाये कि निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किसी व्यक्ति को या किस प्रकार या प्रकारों के व्यक्तियों को किस अधिकतम कालावधि तक निरुद्ध रखा जा सकता है। इस मसले पर वाद विवाद की कतई कोई गुंजाइश नहीं है और इस बारे में बहुत से सदस्यों से राय मशविरा किया गया है और सभी इससे सहमत हैं कि इस उपबन्ध का रखना आवश्यक है। यही एकमात्र उपबन्ध है जो किसी को अनिश्चित अवधि के लिये निरुद्ध रखना असम्भव कर देता है। आशा है सभा इन संशोधनों को स्वीकार करेगी।

***अध्यक्षः** कल कई संशोधन पेश किये गये थे जैसे कि संशोधन नं. 78, 82 और 83 । प्रस्तुत संशोधन नं. 443 में क्या इन सभी संशोधनों की बातें आ जाती हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह बता दूं कि श्रीमान इस संशोधन को इस रूप में रखने में हमने उन सभी सदस्यों की राय ले ली है जिन्होंने उक्त संशोधन भेजे हैं। मैं इस स्थिति में तो नहीं हूं कि यह कह सकूं उन की सभी बातें इसमें आ जाती हैं पर मुझे यह अवश्य मालूम होता है कि वे लोग इससे सहमत हैं कि इस संशोधन के द्वारा उक्त सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है जो उन्होंने सोच रखी थी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** हम अपने संशोधनों को वापस ले लेंगे श्रीमान।

***अध्यक्ष:** तो आप अपने दोनों संशोधनों को वापस ले रहे हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** हां, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** कई संशोधन ऐसे आये हैं जो संशोधन नं. 443 पर हैं। श्री कामत अपने संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं अपने संशोधन नं. 579, 581 और 583 पेश करता हूं। वह यों हैं:—

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 545 में, अनुच्छेद 22 के प्रस्तावित खंड (4) के उप-खंड (क) का परन्तुक हटा दिया जाये।"

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 545 में, अनुच्छेद 22 के प्रस्तावित खंड (4) के उप-खंड (क) में, आखिर वाले 'or' शब्द की जगह 'and' शब्द रखा जाये।"

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 546 में, अनुच्छेद 22 के प्रस्तावित खंड (7) के उप-खंड (क) में 'without obtaining the opinion of any Advisory Board in accordance with the provisions of sub-clause (a) of Clause (4)' (खंड (4) के उपखंड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किये बिना) शब्दों को हटा दिया जाये।"

पहले मैं प्रथम संशोधन को ही लेता हूं और इस पर विस्तारपूर्वक बोलने की कोई जरूरत नहीं है। मैं केवल यह बताना चाहता हूं कि यहां खंड (7) में केवल यह उपबन्ध है कि संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि अधिक से अधिक किस अवधि तक किसी प्रकार या प्रकारों के मामलों में व्यक्तियों को निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध रखा जा सकता है। जब यह कह दिया गया है कि केवल संसद ही इस विषय में विनियमन करेगी तो फिर राज्य में और कौन अधिकारी होगा जो संसद द्वारा पास की गई किसी विधि का अतिक्रमण करे। इसलिये मेरी राय में खंड (4) का यह परन्तुक सर्वथा अनावश्यक है और इसको रखने की कोई जरूरत नहीं है। इसको रखने पर सिद्धान्ततः मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर मैं इसे अनावश्यक समझता हूं। हमने साफ-साफ यह कह दिया है कि केवल संसद को ही इस बात का अधिकार है कि इस अनुच्छेद के अधीन निरोध की अधिकतम अवधि क्या हो। इस का विनियमन वह करे।

अत: मैं अपने संशोधन 581 को लेता हूं जिसमें यह कहा गया है कि 'or' शब्द की जगह 'and' शब्द रखा जाये। इस संशोधन के द्वारा व्यक्ति के स्वातन्त्रय को सुरक्षित रखने के लिये मैं अन्तिम प्रयास कर रहा हूं। यह सच है कि वैयक्तिक स्वातन्त्रय की पूर्णत: रक्षा नहीं की जा सकती है क्योंकि न तो व्यक्ति को पूर्ण स्वातन्त्रय प्राप्त है और न अगर कार्यपालिका वैयक्तिक स्वातन्त्रय की अवहेलना करती है तो उसके लिये परित्राण की कोई पूर्ण व्यवस्था की जा सकती है। मैं तो वैयक्तिक स्वातन्त्रय की रक्षा उसी हद तक करना चाहता हूं जहां तक कि राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रख कर ऐसा किया जा सकता है। यदि यह अनुच्छेद उसी रूप में रहने दिया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि अगर संसद किसी प्रकार के मामलों में निवारक निरोध की कोई अधिकतम अवधि विहित कर देती है तो उस हालत में मामले को मंत्रणा मंडली को भेजे बिना ही किसी को दो तीन साल तक-जितनी भी अवधि संसद् विहित करे—निरुद्ध रखा जा सकता है। इस खंड (4) में दो प्रकार के मामलों का उल्लेख किया गया है। एक तो वह मामले जो मंत्रणा-मंडली को भेजे जायेंगे जिनमें तीन महीने से ज्यादा किसी को निरुद्ध रखना है। दूसरे वह मामले जिनमें किसी को खंड (7) के अधीन संसद निर्मित किसी विधि के अनुसार निरुद्ध रखा गया है।

खंड (7) के अनुसार निवारक निरोध की अधिकतम अवधि के सम्बन्ध में संसद विधि बना सकती है। मैं यह चाहता हूं श्रीमान कि निवारक निरोध का हर मामला मंत्रणा-मंडली के पास भेजा जाये। यदि कोई राज्य या हुकूमत किसी भी व्यक्ति को तीन माह से अधिक निरुद्ध रखना चाहती है तो उसका मामला मंत्रणा-मंडली के पास जाना ही चाहिये चाहे वह मामला किसी भी तरह का हो। पर जिस रूप में अभी यह खंड है उसके अन्तिम 'or' शब्द से सारी स्थिति जटिल और दूषित हो जाती है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इस 'or' की जगह 'and' शब्द रख दिया जाये ताकि किसी को निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन ही निरुद्ध रखा जाये और उसका मामला मंत्रणा-मंडली को अवश्य भेजा जाये जब कि उसे तीन माह से ऊपर निरुद्ध रखना हो। यदि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक निरुद्ध रखना है तो ये दोनों बातें अवश्य पूरी की जानी चाहिये। इसलिये मेरा सुझाव है कि खंड (4) के इस 'or' की जगह 'and' शब्द रखा जाये। मेरे संशोधन न. 581 का बस इतना ही प्रयोजन है।

अपने संशोधन नं. 583 के द्वारा मैं यह चाहता हूं कि "without obtaining the opinion of the Advisory Board in accordance with the provisions of Sub-clause (a) of Clause (4)" [खंड (4) के उपखंड (क) के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किया बिना] शब्दों को हटा दिया जाये। ऊपर के संशोधन नं. 581 के फलस्वरूप जिसे कि मैंने अभी पेश किया है, यह संशोधन अपने आप अनिवार्य हो जाता है। ऊपर के संशोधन नं. 581 में निवारक निरोध के सभी मामलों को, जिनमें किसी को तीन महीने से ऊपर निरुद्ध रखना है, मंत्रणा-मंडली के पास भेजने की बात कही गई है चाहे वह मामला किसी प्रकार का भी हो। इसलिये खंड (7) में जो यह अन्तर किया गया है कि कुछ मामले तो मंत्रणा-मंडली के पास भेजे जा सकते हैं और कुछ मामलों में बिना मंत्रणा-मण्डली की राय लिये ही तीन महीने से ऊपर निरुद्ध रखा जा सकता है, वह अन्तर नहीं रह सकता है। जब सभी मामलों को, जिन में तीन महीने से ऊपर किसी को

[श्री एच.वी. कामत]

निरुद्ध रखना है, मंत्रणा मण्डली के पास भेजना होगा तो इन शब्दों को—जिनको हटाने का मैं संशोधन रख रहा हूं—यहां रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

इस अनुच्छेद 22 के द्वारा, जिस पर कि गत अधिवेशन में हमने यहां विस्तृत रूप से विचार किया था, एक मात्र मूल अधिकार यही प्राप्त होता है कि बिना मामला चलाये ही नागरिकों को निरुद्ध रखा जा सकता है। मैं नहीं समझता कि यह भी कोई अधिकार है। पर जो भी हो, हमें कोशिश इस बात की करनी चाहिये कि उस अधिकार के दुरुपयोग के फलस्वरूप नागरिकों के साथ जो अन्याय या कठोरता हो सकती हो जहां तक कि सम्भव हो शमन किया जाए। व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने के लिए, जहां तक राज्य की सुरक्षा का ख्याल रखते हुये ऐसा करना संगत है, मैं यह अन्तिम प्रयास कर रहा हूं। इन शब्दों के साथ मैं अपने तीनों संशोधनों को—नं. 579, 581 और 583 को—पेश करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इन्हें स्वीकार करे।

***श्री अजीत प्रसाद जैन** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान्:–

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 443 में, अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) के प्रस्तावित परन्तुक के स्थान पर यह परन्तुक रखा जाये:–

'Provided that nothing in this clause shall authorise the detention of any person beyond the maximum period prescribed by any law under the authority conferred by Parliament under clause (7)' "

[परन्तु उस खण्ड की कोई बात किसी व्यक्ति को उस अधिकतम कालावधि से आगे, निरोध को आधिकृत न करेगी जो खण्ड (7) के अधीन संसद द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अधीन किसी विधि द्वारा विहित की गई है।]

मैं यह देखता हूं कि खण्ड (7) का मसौदा अब जिस रूप में तैयार किया गया है उसमें, संसद को निवारक निरोध के बारे में विधि बनाने का अधिकार नहीं दिया गया है। उल्टे उसे यह अधिकार दिया गया है कि वह विधि द्वारा यह विहित कर सकती है कि किन परिस्थितियों में तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी को तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरुद्ध रखा जा सकेगा। आप यह देखेंगे कि खण्ड (4) के आरम्भिक भाग के अनुसार साधारणत: राज्य के विधान मण्डल को या संसद को तीन महीने तक निरुद्ध रखने के लिये निवारक निरोध के लिये विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है। पर इस बारे में दो अपवाद रखे गये हैं। एक अपवाद उपखण्ड (क) में रखा गया है जो यह है कि जब तक कि ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, बनी मंत्रणा-मण्डली ने यह राय न दे दी हो कि ऐसे निरोध के लिये पर्याप्त कारण हैं तब तक कोई विधि किसी को तीन महीने से अधिक अवधि के लिये निरुद्ध रखना प्राधिकृत न करेगी। दूसरा अपवाद उपखण्ड

(ख) में यह रखा गया है कि संसद यह विहित कर सकती है कि किन परिस्थितियों में तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरुद्ध रखा जा सकता है। यह स्पष्ट है कि बहुत से मामलों में कानून बनाने का काम राज्य के विधान मण्डल को ही करना होगा क्योंकि निवारक निरोध का विषय समवर्ती सूची में रखा गया है। जो संशोधन मैं रख रहा हूं उसमें उस तथ्य पर जोर दिया गया है कि उस सम्बन्ध में विधि तो बनायेगा राज्य का विधान मण्डल ही पर तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरोध को उपबन्धित करने वाली विधि को बनाने का प्राधिकार उसे संसद द्वारा ही मिलेगा। मसौदा समिति ने संशोधन रखा है उसमें यह बात स्पष्ट नहीं हो पाई है और इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये ही मैंने यह संशोधन रखा है।

दूसरा संशोधन मैं यह पेश करता हूं श्रीमान:—

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 545 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 22 के प्रस्तावित खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये–

'(b) such person is detained in accordance with the provisions of any law made by a State under the authority conferred by Parliament under clause (7)' "

[ऐसा व्यक्ति, खण्ड (7) के अधीन संसद द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अधीन, किसी राज्य द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।]

या विकल्पश: यह संशोधन:—

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 545 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये:–

'(b) such person is detained in accordance with the provisions of any law made under the authority conferred by Parliament under clause (7)' "

[ऐसा व्यक्ति, खण्ड (7) के अधीन संसद द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अधीन निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।]

यह संशोधन सम्बन्धित है संशोधन नं. 580 से। खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) की जगह दूसरा उपखण्ड रखने के लिये यहां मैंने विकल्पश: दो मसौदे रखे हैं। उपखण्ड वर्तमान (ख) में यह कहा गया है कि "ऐसा व्यक्ति खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन संसद निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।" खण्ड (7) में तो किसी को निरुद्ध रखने का कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है। इसमें तो केवल यही कहा गया है कि किन परिस्थितियों में तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये किसी को निरुद्ध रखा जा सकता है इसे संसद विहित कर सकती है। खण्ड (4) और खण्ड (7) को परस्पर संगत बनाने के उद्देश्य से ही मैंने यह संशोधन रखा है। पर यह मैं अवश्य स्वीकार करूंगा कि श्री कृष्णमाचारी के दोनों संशोधन

[श्री अजीत प्रसाद जैन]

जो उन्होंने अभी पेश किये हैं वह मेरे पास थे नहीं और इसलिये मैं यह ठीक ठीक नहीं समझ सका हूं कि उनका प्रभाव क्या होगा। मैंने अपने संशोधनों में—नं. 580 और 582 में—जो बातें उठाई हैं अगर वह श्री कृष्णमाचारी के संशोधनों के अन्दर आ जाती हैं तो मुझे अपने संशोधनों को रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। पर चूंकि ठीक ठीक मैं उनके संशोधनों को समझ नहीं पाया हूं इसलिये ये संशोधन मैंने पेश कर दिये हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं ये संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 58 की व्याख्या में, 'for the purposes of this clause' (इस खण्ड के प्रयोजन के लिये) शब्दों की जगह 'for the purposes of this article' (इस अनुच्छेद के प्रयोजन के लिये) शब्द रखे जायें।"

"कि अनुच्छेद 49 के खण्ड (3) की जगह यह खण्ड रखा जाये:—

'(3) The President shall be entitled without payment of rent to the use of his official residences and shall be also entitled to such emoluments, allowances and privileges as may be determined by Parliament by law and, until provision in that behalf is so made, such emoluments, allowances and privileges as are specified in the second schedule.' "

[(3) राष्ट्रपति को बिना किराया दिये, अपने पदावासों के उपभोग का हक होगा तथा उसको उन उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का भी, जो संसद निर्मित विधि द्वारा निर्धारित किये जायें तथा जब तक उस विषय में इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता तब तक ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का भी जैसे द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित है, हक होगा।]

"कि अनुच्छेद 65 के खण्ड (3) में 'Privileges, emoluments and allowances' (विशेषाधिकार, उपलब्धियों और भत्तों) शब्द की जगह 'emoluments, allowances, and privileges' शब्द रखे जायें।"

"कि अनुच्छेद 66 की व्याख्या में 'for the purposes of this clause' (इस खण्ड के प्रयोजन के लिये) शब्दों की जगह 'for the purposes of this article' (इस अनुच्छेद के प्रयोजन के लिये) शब्द रखे जायें।"

"कि अनुच्छेद 71 के खण्ड (2) में, 'before the date' (तारीख से पूर्व) शब्दों की जगह 'on or before the date' (तारीख को या से पूर्व) शब्द रखे जायें।"

अध्यक्ष: इस पर एक संशोधन है श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का जिस का नं. है 584। मुझे खेद है, एक संशोधन और है जो भूल से छूट गया है। यह संशोधन है श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी का और इसका नं. है 617।

श्रीमति पूर्णिमा बैनर्जी (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन उपस्थित करती हूं:

"कि सूची 4 के संशोधन नं. 548 में, अनुच्छेद 22 का प्रस्तावित खण्ड (7) हटा दिया जाये।"

मेरा मतलब यह है कि खण्ड (7) का मूल मसौदा जिसे मसौदा समिति ने सदस्यों के पास भेज रखा था और जो अब पुनरावृत्त संविधान में टेढ़े अक्षरों में दिया गया है वही रहना चाहिये। हममें से अधिकांश लोग, इस परन्तुक से सहमत होंगे, जो संशोधन नं. 545 के द्वारा अनुच्छेद 22 में रखा जा रहा है, कि मंत्रणा-मण्डली किसी व्यक्ति को उस अवधि से ऊपर निरुद्ध नहीं रख सकती है जो विधि द्वारा विहित की गई हो। पर अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) में अब एक परिवर्तन करने की चेष्टा की जा रही है जिससे हम लोगों के मन में कुछ सन्देह पैदा हो रहा है। हम लोगों में से किसी ने भी किसी समय भी यह नहीं समझा था कि मंत्रणा-मण्डली किसी समय संसद का काम करेगी। मूल मसौदे में इतना ही कहा गया था कि, किसी विधि के अभाव में, यदि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक अवधि के लिये निरुद्ध रखा जाता है तो उसका मामला एक न्यायिक निकाय के पास भेजा जायेगा जो मामले पर विचार करके, जरूरत होने पर, यदि तीन महीने से ऊपर निरोध को उपबन्धित करने वाली कोई विधि नहीं है तो इसके लिये अनुमति देगी। मसौदा समिति द्वारा प्रस्तावित नये संशोधन के अनुसार खण्ड (7) का रूप यह हो जाता है कि "संसद विधि द्वारा विहित कर सकती है कि किन किन परिस्थितियों में... खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मण्डली की राय प्राप्त किये बिना निरुद्ध किया जा सकेगा।" अब इससे हमारे मन में एक सन्देह होता है। हमारे मन में यह ख्याल पैदा होता है कि मान लीजिये कि संसद को ऐसा कानून बनाने की शक्ति है—और हम मानते हैं कि उसे ऐसी शक्ति प्राप्त है—जिसके अनुसार किसी को तीन महीने से ऊपर निरुद्ध रखा जा सकता है, तो उस हालत में यदि कोई व्यक्ति ऐसे कानून के अधीन निरुद्ध रखा जाता है तो क्या उसका मामला मंत्रणा-मण्डली के सामने न्यायिक विचार के लिये न भेजा जायेगा? क्या संसद मंत्रणा-मण्डली का निर्माण ही नहीं करेगी? मेरा सुझाव यह है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। मंत्रणा-मण्डली के पास मामले को विचारार्थ भेजने की जो व्यवस्था है वह ज्यों की त्यों रहनी चाहिये चाहे संसद को तीन माह से अधिक कालावधि के लिये निरोध को उपबन्धित करने वाली विधि बनाने का अधिकार भले ही प्राप्त हो। संविधान में हमने बिना मामला चलाये किसी को तीन महीने तक निरोध में रखने का उपबन्ध अवश्य रखा है पर इसकी कठोरता का बहुत कुछ शमन हमने कर दिया है मंत्रणा-मण्डली की व्यवस्था करके जो हर मामले पर विचार करके, यह निर्णय

[श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी]

देगी कि किसी निरुद्ध व्यक्ति को तीन महीने से ऊपर निरोध में रखना उचित है या नहीं। यदि यह व्यवस्था नहीं रहती है तो संसद निर्मित विधि के अनुसार ही निरुद्ध व्यक्ति के साथ कार्रवाई की जायेगी। संशोधित अनुच्छेद में यह सा. फ-साफ़ कह दिया गया है कि मंत्रणा-मण्डली से राय लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। यदि इसका मतलब यह है कि विधि बनाने के बारे में मंत्रणा-मण्डली की राय लेना ज़रूरी नहीं है तो हम इससे सहमत हैं और शायद किसी को भी इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती है। किन्तु अगर इसका मतलब यह है कि तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरोध को उपबन्धित करने वाली कोई विधि यदि है, और उसके प्रवर्तन में आ जाने पर अगर कोई निर्दोष व्यक्ति उसके शिकंजे में आ जाता है तो उसका मामला भी मंत्रणा-मण्डली के पास नहीं भेजा जायेगा तो इस पर हमें अवश्य आपत्ति है। प्रस्तावित संशोधन से तो यही पता चलता है कि ऐसी सूरत में नज़रबन्द का मामला मंत्रणा-मण्डली के पास कत्तई भेजा ही नहीं जायेगा। मसौदा समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधन से तो यही मालूम होता है कि संसद को अधिकार होगा कि खास-खास मामलों पर भी न्यायिक पुनर्विचार के लिये वह चाहे तो मंत्रणा-मण्डली का निर्माण ही न करे। मंत्रणा-मण्डली के निर्माण का काम अब संसद द्वारा बनाई जाने वाली किसी भावी विधि पर छोड़ा जा रहा है। इसलिये मैं यह सुझाव दे रही हूं कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) की इबारत वहीं रखी जाये जिसे मसौदा समिति ने पहले रखा था और यहां मंत्रणा-मण्डली से परामर्श न करने का जो उल्लेख है, जिससे कि हमारे दिलों में सही सन्देह पैदा हो रहा है, वह हटा दिया जाये। हमने किसी समय भी यह नहीं माना था कि मंत्रणा-मण्डली संसद का कृत्य करेगी या यह कि वह विधि बनाने वाला निकाय बन जायेगी। हमने यही समझा था कि मंत्रणा-मण्डली, जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की श्रेणी के लोग सदस्य होंगे, निरुद्ध व्यक्तियों के लिये सामान्य न्यायपालिका का ही काम करेगी क्योंकि उनको बिना मामला चलाये निरुद्ध रखा गया है। इस अनुच्छेद की रचना करने में मैं यही सुझाव दूंगी कि यह उपबन्ध इसमें अवश्य रहना चाहिये कि मंत्रणा-मण्डली का निर्माण किया जायेगा जिसके सामने ऐसे सभी मामले अवश्य भेजे जायेंगे। यह उपबन्ध यहां साफ-साफ हमें रख देना चाहिये और इसे संदिग्ध रूप में न छोड़ना चाहिये कि लोग इसका मनमाना अर्थ लगाते रहें। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन उपस्थित करती हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 448 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 71 के खण्ड (2) को हटा दिया जाये"

अथवा विकल्पश: यह:

"कि सूची 3 के संशोधन नं. 448 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 71 के खण्ड (2) में, 'before the date of the decision' (विनिश्चयन की तारीख से पूर्व) शब्दों की जगह 'upto the time when the decision is communicated to him' (विनिश्चयन की सूचना उसको मिलने के समय तक) शब्द रखे जायें।"

सरकारी संशोधन के अनुसार तो यह होगा कि यदि उच्चतम न्यायालय किसी राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को रद्द कर देता है तो वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय का विनिश्चयन होने के पूर्व तक या उस तारीख तक अपने प्रकार्यों का सम्पादन करता रहेगा। मेरा कहना यह है श्रीमान कि इससे बड़ी अनर्गल बातें पैदा हो जायेंगी। मान लीजिये उच्चतम न्यायालय ने अपना विनिश्चयन किसी तारीख को 12 बजे दिन को किया। इस संशोधन के अनुसार होगा यह कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति उस तारीख की समाप्ति तक राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में काम करता रहेगा। 12 बजे दिन को ही वह उस पद पर न रह जायेगा पर काम करता रहेगा उसके बाद भी उसी पद पर। मैं संशोधन द्वारा पहले तो यह चाहता हूं कि इस खण्ड को ही हटा दिया जाये क्योंकि यह एक स्वाभाविक बात है कि ज्यों ही ऐसा विनिश्चयन होगा राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपना पद खो बैठेगा और इसलिये उस पद पर काम करना ही कत्तई उसका बन्द हो जायेगा। ऐसी हालत में इस खण्ड का रखना सर्वथा अनावश्यक है। पर अगर इसका रखना आवश्यक ही समझा जाता है तो यह इस रूप में रखना चाहिये जैसा कि अपने वैकल्पिक संशोधन में मैंने सुझाया है। हमारा यह संशोधन इस आशय का है कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चियन की सूचना मिलते ही, उसी क्षण से वह अपने पद पर न रह जायेगा। यही बुद्धिसंगत व्यवस्था होगी। उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयन की सूचना ज्यों ही उसे प्राप्त होगी, उस समय से ही विनिश्चयन प्रभावी हो जायेगा। यदि यह बात साफ-साफ नहीं रखी जाती है कि ठीक अमुक समय से राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपने पद पर न रह जायेगा तो इससे बड़ी सांविधानिक असंगतियां उत्पन्न हो सकती हैं। हो सकता है कि राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति को बहुत महत्वपूर्ण सांविधानिक काम करने हों और अगर हम यह साफ साफ नहीं कहते हैं कि ठीक अमुक समय से राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपने पद पर न रह जायेगा तो उसके द्वारा किये गये कृत्यों की वैधानिकता विवादास्पद हो जायेगी और उस पर आपत्ति की जा सकती है क्योंकि विनिश्चयन के पहले किया हुआ उसका कार्य तो वैध होगा और उसके बाद किया हुआ कार्य अवैध होगा। इसलिये मैं यह समझता हूं कि ठीक उसी समय से राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपने पद से अलग समझा जाये जब कि उसे उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयन की सूचना प्राप्त हुई।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह संशोधन पेश करता हूं श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 72 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में 'offence under any law' (किसी विधि के अधीन अपराध) शब्दों की जगह 'offence against any law' (किसी विधि के विरुद्ध अपराध) शब्द रखे जायें।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह संशोधन पेश करता हूं श्रीमान:

"कि सूची 2 का संशोधन नं. 449 हटा दिया जाये।"

इस संशोधन में यह कहा गया है कि उपखण्ड में प्रयुक्त शब्दों के स्थान पर 'offence against any law' शब्द रखे जायें। सवाल यह पैदा होता है कि विधि

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के विरुद्ध अपराध क्या हो सकता है? किसी सिद्धान्त के विरुद्ध या समाज के विरुद्ध तो अपराध किये जाते हैं पर किसी कानून के विरुद्ध क्या अपराध हो सकता है? अंग्रेज़ी मुहावरे के मुताबिक 'offence under law' ही कहा जाता है। मेरी समझ से खण्ड की मूल इबारत बिल्कुल ठीक है पर संशोधन करने के जोश में मसौदे की इबारत को चौपट कर दिया जा रहा है। जिस तरह से मसौदा समिति अपने विचारों में अस्थिर हो रही है उससे तो हमारे लिये यह जरूरी हो जाता है कि हम संविधान को फौरन पास कर लें। इससे यह तो होगा कि मसौदा समिति की कार्रवाई रुक जायेगी। संविधान को संकट की सम्भावना श्री कामत अथवा मुझ जैसे महत्वशून्य सदस्यों की ओर से नहीं है क्योंकि हमारे संशोधन तो अन्ततोगत्वा अस्वीकृत ही हो जायेंगे, पर वास्तविक संकट की सम्भावना उसे खुद मसौदा समिति से है। मसौदा समिति अन्त तक संशोधन करती रहे इसके लिये ज़रूरी है कि हम अब सब संशोधनों को बन्द करने यथाशीघ्र संविधान को पास कर लें। अब जो संशोधन का प्रयास किया जा रहा है उसे मैं उसी दृष्टिकोण से देखता हूं।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है। अब आता है संशोधन नं. 586। यह भी इसी तरह का है। अब आता है संशोधन नं. 450 जो यों है:

"कि अनुच्छेद 73 के खण्ड (1) के परन्तुक में 'any State' (किसी राज्य) शब्दों के बाद 'specified in Part A or B of the first Schedule' (जो प्रथम अनुसूची के भाग क या ख में उल्लिखित है) शब्द रखे जायें।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरा यह संशोधन है श्रीमान:

"कि सूची 2 का संशोधन नं. 450 हटा दिया जाये।"

वस्तुत: मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं श्रीमान। अनुच्छेद 73 के मूल खण्ड (2) में यह कहा गया है कि संसद का अधिकार का विस्तार सभी राज्यों यानी भाग क, ख, ग एवं घ के राज्यों तक होगा। पर इस संशोधन के द्वारा उसके अधिकार के विस्तार को केवल भाग क और ख के राज्यों तक ही सीमित रखा जा रहा है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि आखिर संसद के अधिकार का विस्तार इन सभी राज्यों तक क्यों नहीं रहेगा और...

***अध्यक्ष:** इसलिये कि दूसरे राज्य सीधे संसद के अधिकाराधीन आ गये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अगर यही बात है तो इसे यहां लिखने की क्या जरूरत है यह मैं नहीं समझ पाता हूं। इस संशोधन का ठीक-ठीक क्या प्रभाव पड़ेगा और अगर यह स्वीकृत नहीं होता है तो इसका क्या परिणाम होगा यह समझना मुश्किल है। जो भी हो, यह कठिन सांविधानिक परिवर्तन सदस्यों पर यहां बड़ी शीघ्रता से लादे जा रहे हैं और मैं नहीं समझता कि इस संशोधन की कत्तई कोई ज़रूरत है। अगर अन्त समय तक हम इसी तरह संशोधन करते गये तो मैं नहीं जानता कि कितनी असंगतियां हम इस तरह संविधान में रख देंगे। एक खराबी दूर करने के लिये शायद संविधान में हम और बहुत सी खराबियां भरते जा रहे हैं।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 81। इस पर संशोधन नं. 451 आया है मसौदा समिति की ओर से। संशोधन यह है:

"कि अनुच्छेद 81 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में शब्द और अंक 'अनुच्छेद 331' की जगह 'अनुच्छेद 33 और 331' रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 100। इस पर मसौदा समिति का संशोधन नं. 452 आया है वह यों है:

"कि अनुच्छेद 100 के खण्ड (3) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:

'(3) Until Parliament by law otherwise provides, the quorum to constitute a meeting of either House of Parliament shall be one-tenth of the total number of members of the House.

(4) If at any time during a meeting of a House, there is no quorum, it shall be the duty of the Chairman or Speaker, or person acting as such, either to adjourn the House or to suspend the meeting until there is a quorum' "

[(3) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे, तब तक संसद के प्रत्येक सदन का अधिवेशन गठित करने के लिये गणपूर्ति सदन के सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश होगा।

(4) यदि सदन के अधिवेशन में किसी समय गणपूर्ति न हो तो सभापति या अध्यक्ष अथवा उसके रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या अधिवेशन को तब तक के लिये निलम्बित कर दे जब तक कि गणपूर्ति न हो जाये।]

इस पर दो या तीन संशोधन हैं। संशोधन नं. 587 लिया जाता है जो श्री नजीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 588 में, अनुच्छेद 100 के प्रस्तावित खण्ड (3) में 'Until Parliament by law otherwise provides the quorum' (जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित न करे... गणपूर्ति) शब्दों की जगह केवल '..... गणपूर्ति' शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन की इबारत से यह होगा कि संविधान द्वारा जो गणपूर्ति निर्धारित की जायेगी उससे संसद पुन: हस्तक्षेप कर सकती है। मैं यह कहना चाहता हूं श्रीमान, कि गणपूर्ति का प्रश्न एक बुनियादी सिद्धान्त का प्रश्न है। उसमें संसद

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

द्वारा परिवर्तन की गुंजाइश न रखनी चाहिये। अगर इस में संसद को हस्तक्षेप का अधिकार रहता है तो उसका परिणाम यह होगा कि यह प्रश्न संसद की तात्कालिक मनोदशा पर निर्भर कर जायेगा। गणपूर्ति को निर्धारित करना होगा सैद्धान्तिक दृष्टि से विचार करके और बुनियादी किस्म की बातों पर सोच विचार करके। संविधान में जब हम एक बार गणपूर्ति निर्धारित कर देते हैं तो उसमें फिर संसद द्वारा हस्तक्षेप या परिवर्तन न होना चाहिये। यदि उसमें कोई परिवर्तन करना जरूरी ही हो तो, वह परिवर्तन खुद संविधान में संशोधन करके करना चाहिये। इसके लिये आवश्यक परिमाण की व्यवस्था रखकर संविधान में ही संशोधन करना चाहिये। यह एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक प्रश्न है जिसको हमें संसद की तात्कालिक मनोदशा पर न छोड़ना चाहिये। भारत-शासन-अधिनियम में गणपूर्ति निर्धारित कर दिया गया था और उसमें संसद परिवर्तन नहीं कर सकती थी। यहां भी संविधान में इसे हमें निर्धारित कर देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं. 588। श्री सिधवा। आपका संशोधन यही तो है कि गणपूर्ति सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का षष्ठांश हो न कि दशांश? आपके संशोधन की बात एक संशोधन के अन्दर आ जाती है जो पहले पेश हो चुका है। उसी के साथ मैं आपके संशोधन को लूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** ठीक है श्रीमान। मेरा संशोधन यों है:—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 452 में, अनुच्छेद 100 के प्रस्तावित खण्ड (3) में, 'One tenth' (दशांश) शब्द की जगह 'One sixth' (षष्ठांश) शब्द रखा जाये।"

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है नं. 589 का जिसमें बैठक को आधे घंटे तक निलम्बित रखने की बात कही गई है। क्या आप इस पर कुछ बोलना चाहते हैं क्या?

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं इस पर बोलना नहीं चाहता हूं। केवल रस्मी तौर पर अपने संशोधन नं. 589 को पेश कर देता हूं। वह यों है:—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 452 में, अनुच्छेद 100 के प्रस्तावित खण्ड (4) में, 'suspend the meeting' (अधिवेशन को स्थगित कर दे) शब्दों के आगे 'for half an hour' (आधे घंटे के लिये) शब्द जोड़ दिये जायें।"

मेरा कहना यह है श्रीमान कि संशोधित अनुच्छेद में यह कहा गया है कि अधिवेशन स्थगित कर दिया जायेगा.....

***अध्यक्ष:** या तो सदन को स्थगित कर दिया जायेगा या अधिवेशन निलम्बित कर दिया जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** पर कब तक स्थगित रखा जायेगा श्रीमान? मान लीजिये गणपूर्ति नहीं है तो...

***अध्यक्ष:** जब तक गणपूर्ति न हो जाये तब तक अधिवेशन स्थगित रहेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** इसका मतलब यह हुआ कि सारा दिन अधिवेशन स्थगित रहेगा और सदस्यों को सदन में बिना काम बैठना पड़ेगा। यही तो बात है जिसके लिये मैं संशोधन रख रहा हूं। सदस्यों को वहां अनिश्चित अवधि तक बैठना होगा, यह बात कुछ ठीक नहीं जंचती है। अगर आधा घंटा काफी नहीं है तो एक घंटा कर दीजिये पर एक समय निश्चित हो जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है इसके लिये कुछ न कुछ उपबन्ध नियमों में रहेगा जो सभा की कार्रवाई के बारे में होंगे। खैर आपने अपना संशोधन पेश कर दिया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरा कहना यह है श्रीमान कि इसके लिये एक अवधि निश्चत हो जानी चाहिये। गणपूर्ति के लिये उपबन्ध संविधान में रखा जाता है न कि नियमों में। हम यहां उपबन्ध कर रहे हैं गणपूर्ति की संख्या के बारे में। इसलिये संविधान में इसके लिये एक अवधि भी रख देनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं. 453 जो मसौदा समिति की ओर से है। मैं इसे प्रस्तावित मान लेता हूं। संशोधन यह है:—

"कि अनुच्छेद 104 में, 'the Government of India' (भारत-शासन) शब्दों की जगह 'the union' (संघ) शब्द रखे जायें।"

संशोधन नं. 454 है अनुच्छेद 105 पर। इस पर कोई संशोधन नहीं है। इसे भी मैं उपस्थित किया हुआ मान लेता हूं।

यह संशोधन यों है:

"कि अनुच्छेद 105 के खण्ड (1) में, 'Subject to the rules and standing orders' (...नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुये) शब्दों की जगह 'subject to the provisions of this Constitution and to the rules and standing orders' (...इस संविधान के उपबन्धों के तथा ..... नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुये) शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 114, संशोधन नं. 455।

"कि अनुच्छेद 114 के खण्ड (2) में, 'the amendments which are admissible' (कौन से संशोधन... प्रवेश्य है) शब्दों की जगह 'whether an amendment is inadmissible' (कोई संशोधन... अप्रवेश्य हैं या नहीं) शब्द रखे जायें।"

इस पर एक संशोधन है श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का जो 590 नं. का है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 455 में, अनुच्छेद 114 के खण्ड (2) में, 'whether an amendment is inadmissible' (कोई संशोधन... अप्रवेश्य है या नहीं) 'as to the admissibility of the amendment' (संशोधन की प्रवेश्यता के बारे में) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन द्वारा मसौदे की इबारत में परिवर्तन करने का सुझाव दिया गया है। इससे अर्थ में कोई फर्क नहीं पड़ता है। पर मैं यह कहूंगा जो मसौदा मैंने सुझाया है वह बेहतर जरूर है। मसौदा समिति के संशोधन द्वारा संशोधित अनुच्छेद 114 (2) की इबारत यह होगी 'the decision of the person presiding as to amendments being inadmissible under this clause shall be final' (संशोधन इस खण्ड के अधीन अप्रवेश्य है या नहीं इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा) मैं इसे इस रूप में रखना चाहता हूं कि संशोधन इस खण्ड के अधीन प्रवेश्य है या नहीं इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा।' वस्तुत: मसौदा समिति का संशोधन यह है कि संशोधन अप्रवेश्य है या नहीं इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा। मैं यह चाहता हूं कि संशोधन प्रवेश्य है या अप्रवेश्य इन दोनों बातों के बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होना चाहिये। इसलिये हमें यहां अधिक स्पष्टता के लिये यही कहना चाहिये कि संशोधन की प्रवेश्यता के बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा। इसका अर्थ यह होगा कि संशोधन प्रवेश्य है या अप्रवेश्य इन दोनों ही बातों के बारे में उसका विनिश्चय अन्तिम होगा।

***अध्यक्ष:** अब हम आते हैं अनुच्छेद 124 पर।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यदि मुझे यह बताने की अनुमति मिल जाये कि क्यों मैंने संशोधन नं. 124 को रखा है तो शायद उससे माननीय मित्र को पूरा समाधान हो जायेगा। मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं जो यों है:—

"कि अनुच्छेद 124 के खण्ड (1) में, 'seven other Judges' (अन्य सात न्यायाधीशों) शब्दों की जगह 'not more than seven other judges' (अन्य सात से अनधिक न्यायाधीशों) शब्द रखे जायें।"

अभी अनुच्छेद 124(1) की इबारत यह है–

"There shall be a Supreme Court of India consisting of a Chief Justice of India and, until Parliament by law prescribes a larger number, of seven other Judges"

(भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा जो भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा, जब तक संसद विधि द्वारा और अधिक संख्या निर्धारित नहीं करती तब तक, अन्य सात न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा।)

इसका मतलब यह होगा कि 26 जनवरी को ही जब कि संविधान प्रवर्त्तन में आयेगा, न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर सात कर देनी होगी चाहे पर्याप्त काम हो या नहीं। अत: इस संशोधन के द्वारा इनकी अधिकतम संख्या विहित कर दी

गई है और यह काम तात्कालिक शासन पर छोड़ दिया गया है कि वह संख्या बढ़ा ले या सात से अधिक की आवश्यकता होने पर वह संसद से कहे ताकि इसके लिये 26 जनवरी को ही, जिस दिन कि संविधान लागू होता है, इसके लिये कार्रवाई करने की जरूरत न हो।

***अध्यक्ष:** आप अपना संशोधन पेश करना चाहते हैं क्या?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं अपना संशोधन पेश करता हूं श्रीमान। यह यों है: "कि सूची 2 का संशोधन नं. 456 हटा दिया जाये।"

यहां भी मैं यही देखता रहा हूं कि मसौदा समिति ने आखिरी समय पर अपना विचार बदल दिया है। विचाराधीन खण्ड में न्यायाधीशें की संख्या मुख्य-न्यायाधिपति को छोड़ कर सात रखी गई है। अब मसौदा समिति के इस संशोधन में सुझाये गये 'अन्य सात से अनधिक न्यायाधीशों, शब्दों को रख देने से इनकी संख्या और घटाई जा सकती है। इस संशोधन के अनुसार सात से कम न्यायाधीश भी उच्चतम न्यायालय के लिये रखे जा सकते हैं। मैं नहीं समझता कि आखिर किस आधार पर मूल मसौदे को बनाया गया था और उसे पास किया गया था। अगर काफी काम नहीं था तो इसके लिये समिति के पास काफी समय था कि उसी समय वह मसौदे में समुचित संशोधन कर देती। आगामी 26 जनवरी के बाद से फेडरल न्यायालय या उच्चतम न्यायालय को कितना काम करना होगा इसका कोई आभास हम लोगों को अब तक नहीं दिया गया है। वस्तुत: यह परिवर्तन हमें करना चाहिये इस बात को देखकर कि न्यायाधीशों को कितना काम करना होगा। मेरा विश्वास तो यह है कि प्रिवी कौंसिल का क्षेत्राधिकार उठ जाने से, आपराधिक मामलों में उच्चतम न्यायालय को अधिकार मिल जाने से तथा निरीक्षण का काम और संविधान से सम्बद्ध अन्य मामलों का काम आ जाने से उच्चतम न्यायालय का काम 26 जनवरी के बाद से बहुत बढ़ जायेगा। इसलिये न्यायाधीशों की संख्या के सम्बन्ध में इतनी सतर्कता से काम लेकर हम इनकी संख्या निश्चित करने का काम जो शासन को सौंप रहे हैं वह गलत है। इस सम्बन्ध में हमें व्यवस्था करनी चाहिये इस बात के आधार पर कि 26 जनवरी के बाद वस्तुत: इस न्यायालय को काम कितना करना पड़ेगा। यही कारण है कि मैंने इस खण्ड को हटाने की मांग की है।

***अध्यक्ष:** अब आता है अनुच्छेद 133। इस पर मसौदा समिति के दो संशोधन हैं—नं. 457 *और 457-क—457-क †पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है।

---

*"कि अनुच्छेद के खण्ड (1) का परन्तुक हटा दिया जाये और उक्त खण्ड के अन्त में सेमीकोलन की जगह पूर्ण विराम का चिह्न रखा जाये।"

†"कि अनुच्छेद 133 के खण्ड (2) के आगे यह खण्ड जोड़ दिया जाये:-

'(3) Notwithstanding anything in this article, no appeal shall, unless Parliament by law othersise provides, lie to the Supreme Court from the judgment, decree or final order of one Judge of a High Court'.

[इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी, उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में न होगी, जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करें।]

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह संशोधन पेश करता हूं श्रीमानः

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 457-क में, अनुच्छेद 133 के प्रस्तावित नये खण्ड (3) में 'Notwithstanding anything in this article' (इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

"इस अनुच्छेद में या संविधान में किसी बात के होते हुये भी" यह पदसंहति सभा के सामने अनेक बार आ चुकी है।

यह पदसंहति संविधान में इतने स्थलों पर प्रयुक्त की गई है कि किसी खण्ड विशेष का निर्वचन क्या है यह समझना पड़ा मुश्किल हो जाता है। वस्तुतः मसौदा समिति संविधान- निर्माण का काम एक बार बैठकर नहीं किया है बल्कि यह काम उसने किया है कई किश्तों में। यही कारण है कि इस परिचित पदसंहति का प्रयोग खूब स्वतन्त्रता से किया गया है। अधिक सन्तोष की बात यह होती कि इसको बिना रखे ही संविधान का मसौदा तैयार किया जाता। मैं नहीं समझ पाता हूं कि प्रस्तुत प्रसंग में इसका प्रयोग क्यों किया गया है। इस पर स्पष्टीकरण अपेक्षित है।

***अध्यक्षः** अब हम लेते हैं अनुच्छेद 135 को। इस पर मसौदा समिति का एक संशोधन है नं. †458 का। इस संशोधन पर कोई संशोधन नहीं है। इसी तरह अनुच्छेद 139 पर मसौदा समिति का संशोधन है नं ‡459 का। इस पर भी कोई संशोधन नहीं है। अनुच्छेद 145 पर मसौदा समिति का संशोधन हैं नं. §460 का। इस पर भी कोई संशोधन नहीं है पर कल दो संशोधन पेश किये गये थे नं. 308 और 309 के। मुझे नहीं मालूम है कि इनकी बातें आज वाले संशोधनों में आ गई हैं या नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं अपना संशोधन नं. 550 पेश करता हूं श्रीमान। वह यों हैः

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 460 की जगह यह रखा जायेः—

"कि अनुच्छेद 145 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) में, rights conferred by Part III (भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकार) शब्दों की जगह 'rights guaranteed

---

†458 "कि अनुच्छेद 135 में 'not being a matter referred to in any of the foregoing provisions of this chapter' शब्दों की जगह 'which the provisions of article 1B5 or article 1B4 do not apply' शब्द रखे जायें।"

‡459 "कि अनुच्छेद 135 के खण्ड (1) में The Supreme Court शब्दों की जगह 'Notwithstanding anything in this chapter, the Supreme Court' शब्द रखे जायें।"

§460 "कि अनुच्छेद 145 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) में 'enforcement of the rights' शब्दों की जगह 'enforcement of any of the rights' शब्द रखे जायें।"

by article 32 (1) of the Constitution' [संविधान के अनुच्छेद 32 (1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार] शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद का संशोधित रूप यह होगा:—'145 (c) rules as to the proceedings of the Court for the enforcement of the rights guaranteed by article 132 (1) of the Constitution' [संविधान के अनुच्छेद 132 (1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों की पूर्ति कराने के लिये उस न्यायालय में कार्यवाहियों के बारे में नियम]

सभा द्वारा यथास्वीकृत अनुच्छेद 132 को देखने से माननीय मित्रों को पता चलेगा कि उसमें यह कहा है कि "इस भाग द्वारा दिये अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये, उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचालित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।" मुझे यह देखकर खुशी है कि संशोधन-सूची 4 के एक संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद में उपयुक्त संशोधन कर दिया गया है। इस अनुच्छेद के खण्ड (4) में 'अधिकार' शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया गया था पर अब वह एक वचन में रख दिया गया है क्योंकि इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में तो केवल एक अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है। भाग 3 में जो अधिकार प्रदत्त किये गये हैं वह इस अधिकार से भिन्न हैं जो इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत है। इसलिये यहां 'अधिकार' शब्द का प्रयोग एक वचन में ही होना चाहिये न कि बहुवचन में जैसा कि खण्ड (4) में आता है।

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में निर्णय हो जाने के बाद अब मैं अनुच्छेद 145 के इस खण्ड की ओर आता हूं। मेरा ख्याल यह है कि जहां तक कि इस अनुच्छेद के अधीन उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों के बारे में नियम बनाने का प्रश्न है, यहां, अनुच्छेद 32 के खण्ड (1) का हवाला दे देना ही पर्याप्त होगा। अनुच्छेद 32 (1) में जिस अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है वह भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के बारे में। इसलिये अगर अनुच्छेद 32 का यहां हवाला दिया जाता है तो स्पष्ट है कि इससे मतलब है भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने से। भाग 3 के अधिकारों को प्रवर्तित कराने के अधिकार की प्रत्याभूति अनुच्छेद 32 द्वारा दी जा चुकी है। इसलिये यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि अनुच्छेद 145(1) के उपखण्ड (ग) में हवाला दिया गया है ऐसी कार्यवाहियों का जो अनुच्छेद 32(1) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार को प्रवर्तित कराने के बारे में की जाये।

***अध्यक्ष:** मसौदा समिति का संशोधन नं. 461। यह यों है:

"कि अनुच्छेद 158 के खण्ड (3) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:

'(3) The Governor shall be entitled without payment of rent to the use of his official residences and shall be also entitled to such emoluments, allowances and privileges as may be determined by Parliament by law and, until provision in that behalf is so made, such emoluments, allowances and privileges as are specified in the Second Schedule.'

[श्री अध्यक्ष]

[(3) राज्यपाल को, बिना किराया दिये, अपने पदावासों के उपयोग का हक होगा तथा उसको उन उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकार का, जो संसद निर्मित विधि द्वारा निर्धारित किये जायें, तथा जब तक इस विषय में इस प्रकार उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का, जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं, हक होगा।]

इस पर कोई संशोधन नहीं है।

अब आता है मसौदा समिति का संशोधन नं. 462। इस पर भी कोई संशोधन नहीं आया है। यह यों है:—

"कि अनुच्छेद 162 के परन्तुक में, 'the Government of India' (भारत शासन) शब्दों की जगह 'the Union' (संघ) शब्द रखे जायें।"

संशोधन नं. 463:

"कि अनुच्छेद 168 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) की जगह यह उपखण्ड रखा जाये:

'(a) in the States, Bengal, Bihar, Bombay, Madras, Punjab, and the United Provinces two Houses.'"

(बंगाल, बिहार, मुम्बई, मद्रास, पंजाब और संयुक्त प्रान्त के राज्यों में दो सदनों से)

इस पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं महज़ रस्मी तौर पर यह संशोधन पेश करता हूं:

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 463 में, अनुच्छेद 168 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में अन्त में प्रयुक्त सेमीकोलन की जगह अर्धविराम का चिन्ह रखा जाये।"

इस संशोधन को मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। इसमें केवल रचना सम्बन्धी सुझाव दिया गया है।

***अध्यक्ष:** अब हम आते हैं अनुच्छेद 181 पर। इस पर दो संशोधन आये हैं नं. 464 और 465 के। इन दोनों संशोधनों पर कोई संशोधन नहीं आया है। यह दोनों यों हैं:

"कि अनुच्छेद 181 के खण्ड (1) में, 'of a State' (किसी राज्य की) शब्दों को हटा दिया जाये।"

"कि अनुच्छेद 181 के खण्ड (2) में, 'House' (सदन) शब्द की जगह 'Assembly' (सभा) शब्द रखा जाये।"

अब हम आते हैं अनुच्छेद 185 पर। इस मसौदा समिति का एक संशोधन है नं. 466 का, संशोधन यों है:—

"कि अनुच्छेद 185 के खंड (1) में, 'of a State' (किसी राज्य की) शब्दों को हटा दिया जाये।"

इस पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है, जिसकी संख्या है 595।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"कि सूची 2 का संशोधन नं. 466 उठा दिया जाये।"

अनुच्छेद 185 का खण्ड (1) यह कहता है कि "at any sitting of the Legislative Council of a State etc. etc." यहां से 'of a State' शब्दों को मसौदा समिति हटा देना चाहती है। मैं यह कहना चाहता हूं कि 'the Legislative Council of a State.' पदसंहति अन्य कई प्रसंगों में प्रयुक्त की गई है और यह संशोधन यहां अन्तिम समय में उपस्थित किया गया है। मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा अनुच्छेद 182 की ओर जहां यह कहा गया है कि 'the Legislative Council of every state having such Council...etc.' (प्रत्येक राज्य की विधानपरिषद् जहां ऐसी परिषद हो....)

***अध्यक्ष:** केवल ऐसा राज्य जहां ऐसी परिषद हो।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** 'The Legislative Council of a State '

(किसी राज्य की विधान परिषद) पदसंहति कोई बैठक तो नहीं है। ऐसी पदसंहति और कहां कहां आई है। इसे मैं तुरन्त नहीं बता सकता हूं। पर अगर इसमें इस तरह संशोधन करना ही है तो संविधान में जहां कहीं भी यह पदसंहति आई है में एक सुव्यवस्थित रूप से बता देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मसौदा समिति का संशोधन नं. 467 जो अनुच्छेद 189 पर आया है। यह यों है:—

"कि अनुच्छेद 189 के खण्ड (3) के स्थान पर ये खंड रखे जायें:—

'(3) Until the Legislature of the State by Law otherwise provides, the quorum to constitute a meeting of a House of the Legislature of a State shall be ten members or one-tenth of the total number of members of the House, whichever is greater.

(4) If at any time during a meeting of the Legislative Assembly or the Legislative Council of a State there is no quorum, it shall be the duty of the Speakar or Chairman, or person acting as such, either to adjourn the House or to suspend the meeting until there is a quorum.' "

[श्री अध्यक्ष]

(3) जब तक राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित न करे तब तक राज्य के विधान मंडल के प्रत्येक सदन का अधिवेशन गठित करने के लिये गणपूर्ति दस सदस्य अथवा सदन के समस्त सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश, इसमें से जो भी अधिक हो, होगी।

(4) यदि राज्य की विधान सभा अथवा विधान परिषद के अधिवेशन में किसी समय राष्ट्रपति न रहे तो अध्यक्ष या सभापति अथवा उसके रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या अधिवेशन को तब तक के लिये निलम्बित कर दे जब तक कि गणपूर्ति न हो जाये।)

इस पर तीन संशोधन आये हैं नं. 596, 597 और 598।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह संशोधन रखता हूं:—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 467 में, अनुच्छेद 189 के प्रस्तावित खण्ड (3) में 'until the legislature of the State by law otherwise provides the quorum' (जब तक राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित न करे तब तक... गणपूर्ति) शब्दों की जगह 'the quorum' (..... गणपूर्ति) शब्द रखा जाये।"

इस संशोधन को पेश करने का कारण मैं पहले बता चुका हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं अपने संशोधन नं. 597 और 598 को रस्मी तौर पर पेश किये देता हूं। वह यों हैं:—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 467 में, अनुच्छेद 189 के प्रस्तावित खण्ड (3) में, 'ten members or one tenth' (दस सदस्य अथवा..... दशांश) शब्दों की 'twenty members or one-sixth' बीस सदस्य (अथवा..... षष्ठांश) शब्द रखे जायें।"

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 467 में अनुच्छेद 189 के प्रस्तावित खण्ड (4) में, 'suspend the meeting' (अधिवेशन को.....) शब्दों के आगे 'for half an hour' (आधा घंटा के लिये) शब्द जोड़ दिये जायें।"

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 191 संशोधन नं. 468 और 469 जिसे मसौदा समिति ने रखा है। वह यों है:—

"कि अनुच्छेद 191 के खण्ड (1) के उपखंड (ङ) में 'the legislature of the State' (राज्य का विधान मण्डल) शब्दों की जगह 'Parliament' (संसद) शब्द रखा जाये।"

"कि अनुच्छेद 191 के खण्ड (2) में, 'either for India or for any such State' (भारत का या ऐसे राज्य का) शब्दों की जगह 'either for the Union or for such State' (संघ का या ऐसे राज्य का) शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 193–संशोधन नं. 470 जो समिति का है। इस पर भी कोई संशोधन नहीं आया है। संशोधन यों है:—

"कि अनुच्छेद 193 में 'the Legislature of the State' (राज्य के विधान मण्डल) शब्दों की जगह 'Parliament or the Legislature of the State' (संसद अथवा राज्य के विधान मण्डल) शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 194—संशोधन नं. 471 जो मसौदा समिति का है। यह संशोधन यों है:—

"कि अनुच्छेद 194 के खण्ड (1) में, 'subject to the rules and standing orders' (नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए) शब्दों की जगह 'subject to the provisions of this Constitution and to the rules and standing orders' (इस संविधान के उपबंधों के तथा..... नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए) शब्द रखे जायें।"

***श्री एच.वी. कामत:** अनुच्छेद 194 पर मेरा एक संशोधन है जिसका नं. है 554 ।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान।

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 471 में, अनुच्छेद 194 के खण्ड (1) में, प्रस्तावित शब्द 'the provisions of this Constitution and to' (इस संविधान के उपबन्धों के तथा) हटा दिये जायें।"

मैं अपने संशोधन के द्वारा यह चाहता हूं कि यह खण्ड उसी रूप में रखा जाये। जिसमें कि यह पहले था। मैं नहीं समझ पाता हूं अब आखिरी समय में इस खण्ड में यह संशोधन क्यों किया जा रहा है। जहां तक कि विधान मण्डल का प्रश्न है उसके सदस्यों को वाक् स्वातंत्र्य प्राप्त है विधान मण्डल के नियमों या स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए। न तो डॉ. अम्बेडकर ने और न श्री कृष्णमाचारी ने यहां यह बतलाया है कि क्यों इस स्वातन्त्र्य पर अब संविधान के उपबंधों का नियंत्रण क्यों रखा जा रहा है। यह नहीं हमें बताया गया है कि...

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: माननीय मित्र को मैं यह बताऊं कि अगर वह अनुच्छेद 211 को पढ़ें तो देखेंगे कि इन शब्दों को जोड़ना यहां आवश्यक है।

***अध्यक्ष:** उस अनुच्छेद के द्वारा न्यायाधीशों के आचरण पर बहस करने की रोक लगा दी गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** आशा करता हूं कि वाक स्वातन्त्र्य के बारे में अनुच्छेद 19 के जो उपबंध हैं उनके सम्बन्ध में यह नहीं है। यदि यह संशोधन उन उपबंधों के बारे में है तो इसका अर्थ यह होगा कि वाक् स्वातंत्र्य हमें प्राप्त ही नहीं रहेगा। फिर तो जो अधिकार एक अनुच्छेद द्वारा दिया गया है वह दूसरे अनुच्छेद द्वारा छीन लिया जायेगा। इस मसले पर माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है और अब मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** अब हम आते हैं अनुच्छेद 204 पर। इस पर मसौदा समिति का संशोधन नं. 471 लिया जाता है जो यों है:—

"कि अनुच्छेद 204 के खण्ड (2) में 'the amendments which are admissible' शब्दों की जगह, 'whether an amendment is inadmissible' (कोई संशोधन..... अप्रवेश्य है या नहीं) शब्द रखे जायें।'

इस पर एक संशोधन है नं. 599 का जो श्री नजीरुद्दीन अहमद का है। पर यह ठीक उसी तरह का संशोधन है जैसा कि पहले पेश हो चुका है। इस लिये मैं इसे पेश किया हुआ मान लेता हूं। संशोधन यह है:—

"कि सूची (2) के संशोधन नं. 472 में, अनुच्छेद 204 के खण्ड (2) में 'whether an amendment is inadmissible' (कोई संशोधन... अप्रवेश्य है या नहीं) शब्दों की जगह, 'as to the inadmissibility of the amendment' (संशोधन की अप्रवेश्यता के बारे में) शब्द रखे जायें।"

अब हम आते हैं अनुच्छेद 217 पर। इस पर मसौदा समिति का संशोधन नं. 473 यह है:–

"कि अनुच्छेद 217 के खण्ड (1) के परन्तुक के खण्ड (ग) के स्थान पर यह रखा जाये—

'(c) the office of a judge shall be vacated by his being appointed by the President to be a judge of the Supreme Court or by his being transferred by the President to any other High Court with in the territory of India.' "

(किसी न्यायाधीश का पद, राष्ट्रपति द्वारा उसे उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किये जाने पर, अथवा राष्ट्रपति द्वारा उसे भारत राज्य क्षेत्र में के अन्य उच्च न्यायालय को स्थानान्तरित किये जाने पर, रिक्त कर दिया जायेगा।)"

इस पर कोई संशोधन नहीं है।

अब हम आते हैं अनुच्छेद 230 और 231 पर। इस पर मसौदा समिति के संशोधन नं. 474 और 475 यों हैं—

"कि अनुच्छेद 230 में, 'any State' (किसी राज्य) शब्द के बाद, 'specified in the first schedule' (जो प्रथम अनुसूची में उल्लिखित हैं) शब्द रख जायें।"

"कि अनुच्छेद 232 में, 'more than one State' (एक से अधिक राज्यों के) शब्दों के बाद 'specified in the first schedule' शब्द रखे जायें।"

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैं अपने संशोधन नं. 600 को रस्मी तौर पर पेश किये देता हूं श्रीमानः—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 474 को हटा दिया जाये।"

मूल अनुच्छेद में 'किसी राज्य' शब्द रखा गया था पर अब स्पष्टीकरण के लिए संशोधन द्वारा यह कहा जा रहा है कि 'प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य' मेरा ख्याल है कि 'किसी राज्य' से प्रथम अनुसूची का कोई राज्य ही अभिप्रेत है। सभी राज्य प्रथम अनुसूची में चार विभिन्न श्रेणियों में दिखाये गये हैं। यदि किसी राज्य का उल्लेख किया जाता है तो निश्चय ही मतलब है प्रथम अनुसूची के राज्य से। इस लिये मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि इस स्पष्टीकरण की यहां कोई आवश्यकता नहीं है।

मैं अपना यह संशोधन भी पेश करता हूं:—

"कि सूची 2 का संशोधन नं. 475 हटा दिया जाये।"

यह संशोधन भी उसी सिद्धान्त पर आधृत्त है जिस पर कि इससे पूर्व का संशोधन।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 476 ।

"कि अनुच्छेद 234 में 'governor' (राज्यपाल) शब्द के पहले 'of the State' (उस राज्य के राज्यपाल) शब्द तथा 'High Court' (उच्च न्यायालय) के पहले 'exercising jurisdiction in relation to such State' (ऐसे राज्य के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय) शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः मैं यह संशोधन रखता हूं, श्रीमानः—

"कि सूची 2 का संशोधन नं. 476 निकाल दिया जाये।"

अनुच्छेद 234 में 'राज्यपाल' शब्द का उल्लेख किया गया है। अब इस संशोधन द्वारा राज्यपाल के पहले (उस राज्य के) शब्द जोड़े जा रहे हैं। राज्यपाल का अर्थ ही होता है प्रथम अनुसूची के भाग-क के किसी राज्य का राज्यपाल। राज्य के राज्यपाल के सिवाये और राज्यपाल हो ही कौन सकता है। केवल राज्यपाल शब्द रखने से भी.....।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** माननीय मित्र को राज्यपाल शब्द के सम्बन्ध में कुछ कहने की जरूरत नहीं है। संशोधन के पिछले अंश के सम्बन्ध में जो कुछ वह कहना चाहते हों कहें। राज्यपाल के साथ यह विशेषण यों ही जुड़ गया है।

***अध्यक्षः** अच्छा होगा माननीय सदस्य इस प्रश्न को छोड़ दें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** तो मैं इसे छोड़े देता हूं श्रीमान।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अपने संशोधन नं. 478 और 479 को मैं नहीं पेश करना चाहता हूं। संशोधन नं. 556 में इन दोनों की बातें आ जाती हैं। मैं उसी को पेश करता हूं। यह यों है:

"कि अनुच्छेद 289 के खण्ड (1) की व्याख्या की जगह यह व्याख्या रखी जाये:—

'*Explanation*—The expression 'law of a State in force in this clause shall include a law of a State passed or made before the commencement of this Constitution and not previously repealed notwithstanding that it or parts of it may not be then in operation either at all or in particular areas'."

(*व्याख्या*—इस खण्ड में 'राज्य में की कोई प्रवृत्त विधि' के अन्तर्गत राज्य की ऐसी विधि भी होगी, जो इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व पारित या निमित्त हो तथा पहले ही निरसित न कर दी गई हो चाहे फिर वह उसके कोई भाग तब पूर्णतः अथवा किन्हीं विशिष्ट क्षेत्रों में, प्रवर्त्तन में न हों।)

(श्री अजीत प्रसाद जैन ने अपना संशोधन नं. 603 पेश नहीं किया।)

(यह संशोधन उपस्थित किया हुआ मान लिया गया।)

"कि अनुच्छेद 289 के खण्ड (2) में 'any property used or occupied for the purposes thereof, or any income accruing or arising therefrom' (उनके प्रयोजनों के लिये उपयोग में आने वाली या आधिपत्य में की गई किसी सम्पत्ति के बारे में अथवा उनसे प्रोद्भूत या उत्पन्न किसी आय के बारे में) शब्दों की जगह 'any property used or occupied for the purposes of such trade or business or any income accruing or arising in connection therewith' (ऐसे व्यापार या कारोबार के प्रयोजनों के लिये उपयोग में आने वाली या आधिपत्य में की गई किसी सम्पत्ति के बारे में अथवा उनके सम्बन्ध में प्रोदभूत या उत्पन्न किसी आय के बारे में) शब्द रखे जायें।]

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 481 ।

"कि अनुच्छेद 294 की जगह यह अनुच्छेद रखा जाये:—

As from the commencement of this Constitution.

Succession to property, assets, rights, liabilities and obligations in certain cases.

(a) all property and assets which immediately before such commencement were vested in His Majesty for the purposes of the Government of the Dominion of India and all property and assets which immediately before such commencement were vested in His Majesty for the

purposes of the Government of each Governor's Province shall vest respectively in the Union and the corresponding State and

(b) all rights, liabilities and obligation of the Government of the Dominion of India and of the Government of each Governor's Province, whether arising out of any contract or otherwise, shall be the rights, liabilities and obligations respectively of the Government of India and the Government of each corresponding State, subject to any adjustment made or to be made by reason of the creation before the commencement of this Constitution of the Dominion of Pakistan or of the Provinces of West Bengal, East Bengal, West Punjab and East Punjab."

294 इस संविधान के आरम्भ से लेकर

कतिपय अवस्थाओं में सम्पत्ति, आस्तियों अधिकारों, दायित्वों और आभारों का उत्तराधिकार।

(क) जो सम्पत्ति और आस्तियां भारत डोमिनियन की सरकार के प्रयोजनों के लिये सम्राट में ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले निहित थीं तथा जो सम्पत्ति और आस्तियां प्रत्येक राज्यपाल या प्रान्त की सरकार के प्रयोजनों के लिये सम्राट में ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले निहित थीं, वे सब इस संविधान के अथवा पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के प्रान्तों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाली किसी समायोजन के अधीन रह कर क्रमशः संघ और तत्स्थानी राज्य में निहित होंगी तथा,

(ख) अधिकार, दायित्व और आभार भारत डोमिनियन की सरकार के तथा प्रत्येक राज्यपाल प्रान्त की सरकार के थे, चाहे वे फिर किसी संविदा से या अन्यथा उदभूत हुए हों, वे सब इस संविधान के प्रारम्भ से पहले पाकिस्तान की डोमिनियन के अथवा पश्चिमी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल और पूर्वी पंजाब के प्रान्तों के सृजन के कारण किये गये या किये जाने वाले किसी समायोजन के अधीन रहकर क्रमशः भारत सरकार तथा प्रत्येक तत्स्थानी राज्य की सरकार के अधिकार दायित्व और आभार होंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमानः—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 481 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 289 में—

(क) प्रथम पंक्ति में 'Constitution' (संविधान) शब्द के आगे अर्ध विराम का, चिह्न रखा जाये।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

(ख) 25वीं पंक्ति में प्रयुक्त 'Constitution' (संविधान) शब्द के बाद अर्ध विराम का चिन्ह रखा जाये।

यह संशोधन विराम चिह्नों के सम्बन्ध में है। अगर मसौदा समिति इन्हें मंजूर करना चाहे तो कर सकती है।

ये संशोधन उपस्थित किये गये मान लिये गये:—

"कि अनुच्छेद 395 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में, 'the Commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ) शब्दों की जगह 'such Commencement'(ऐसे प्रारम्भ) शब्द रखे जायें।"

"कि अनुच्छेद 295 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में, 'the Government of India' (भारत शासन) शब्दों की जगह 'the Union' (संघ) शब्द रखा जाये।"

"कि अनुच्छेद 296 में 'His Majesty' (सम्राट के) शब्द के बाद में, जहां यह प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है, 'or as the case may be to this Ruler of an Indian State' (अथवा यथास्थिति देशी राज्य के शासक को) शब्द रखा जाये।"

"कि अनुच्छेद 296 के परन्तुक में, 'His Majesty' (सम्राट को) शब्द के बाद 'or to the Ruler of an Indian State' (अथवा देशी राज्य के शासक को) शब्द रखे जायें।"

"कि अनुच्छेद 296 के साथ यह व्याख्या जोड़ दी जाये:—

'*Explanation*— In the article the expression 'Ruler' and Indian State have the same meaning as in article 363.'

(*व्याख्या*–उस अनुच्छेद (शासक) और देशी राज्य पदों का वही अर्थ होगा जो अनुच्छेद 363 में है।)

"कि अनुच्छेद 316 के खण्ड (1) के परन्तुक में, 'under an Indian State' (देशी राज्य के अधीन) शब्दों की जगह 'Under the Government of an Indian State' (देशी राज्य के सरकार के अधीन) शब्द रखे जायें।"

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन नं. 488, 489 और 490 की जगह मैं संशोधन नं. 557 और 558 को उपस्थित कर रहा हूं श्रीमान यह यों है:—

"कि अनुच्छेद 319 के खण्ड (ग) में 'as the Chairman of a State Public Service Commission, other than a Govt. Commission' (संयुक्त आयोग को

छोड़कर राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्दों की जगह, 'as the Chairman of this Union Public Service Commission or as the Chairman of a State Public Service Commission' (संघ लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में या, राज्य-लोक-सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्द रखे जायें।"

"कि खण्ड (घ) में 'as the Chairman of any other State Public Service Commission' (अन्य किसी राज्य-लोक-सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्दों की जगह 'as the Chairman of that of any other State Public Service Commisision' (उसी या अन्य किसी राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्द रखे जायें।"

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह संशोधन रखता हूंः—

"कि संशोधन नं. 557 में, अनुच्छेद 319 के खण्ड (ग) में, 'as the Chairman of the Union Public Service Commission or as the Chairman of a State Public Service Commission' (संघ-लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में या राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्दों की जगह 'as the Chairman of a State Public Service Commission or as the Chairman of a Joint Commission' (राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में या संयुक्त आयोग के सभापति के रूप में) शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधन नं. 558 में अनुच्छेद 319 के खण्ड (घ) में 'as the Chairman of that or any other State Public Service Commission' (उसी या अन्य किसी राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्दों की जगह 'as the Chairman of any other State Public Service Commission' (अन्य किसी राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में) शब्द रखे जायें।"

मेरा ख्याल है कि इन संशोधनों को पेश कर मसौदा समिति ने इस बात का एक उदाहरण पेश किया है कि इस प्रश्न पर उसने विचार सम्बन्धी कितनी अस्थिरता व्यक्त की है। उसकी इस अस्थिरता पर आश्चर्य होता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उसकी अस्थिरता पर अब आश्चर्य नहीं होता है क्योंकि यह उसका अब रोज़ का काम हो गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** दो दिनों के अन्दर वह दो बार अपना विचार बदल चुकी है और मसौदे में परिवर्तन कर चुकी है। अपने अथक परिश्रम के फलस्वरूप उसने अब यह दो सूचियां सामने रखीं हैं। यदि आप कृपा कर संशोधनों के लिये कल तक समय बढ़ा दें तो शायद वह फिर अपना विचार बदल दे और नया संशोधन पेश करे।

***अध्यक्षः** आप यह आशंका न कीजिये कि संशोधनों की अवधि बढ़ाई जायेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** जो वस्तुस्थिति है उससे तो मैं यह ही अनुभव करता हूं कि मसौदा समिति द्वारा सुझाये गये इन नये संशोधनों से उस संशोधित मसौदे में जो अभी कल हमारे सामने पेश किया गया था, आमूल परिवर्तन हो जाता है।

मेरे ये संशोधन उन संशोधनों से सर्वथा संगत हैं जिन्हें कल अनुच्छेद 319 पर मैं पेश कर चुका हूं। गत कुछ दिनों के भीतर मसौदा समिति ने जो कई परिवर्तन सुझायें हैं उनका कारण मेरी समझ में नहीं आता है।

अध्यक्षः इन संशोधनों के द्वारा वह उस मूल मसौदे को अपना रहे हैं जिन्हें द्वितीय पठन के समय स्वीकार किया जा चुका है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इनके द्वारा हम पुनः सभा द्वारा यथा स्वीकृत मसौदे को ही अपना रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं नहीं समझ पाता कि फिर उन्होंने संशोधित मसौदे के बारे में अपना विचार क्यों बदला था।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** इसलिए कि माननीय मित्र श्री कामत अन्यथा चाहते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** इन्होंने कहा है यह मैं सुन नहीं पाया। अस्तु, मैं तो यही रखना पसन्द करूंगा कि संघ लोक सेवा आयोग के सभापति के अतिरिक्त कोई अन्य सदस्य, जब वह पद पर न रह जाये, तो वह राज्य लोक सेवा आयोग का अथवा संयुक्त आयोग का सभापति बनाया जा सकता है। उसे संघ लोक सेवा आयोग का सभापतित्व मिलना ठीक नहीं होगा। मसौदा समिति की कल्पना है कि ऐसे व्यक्ति को संघ लोक सेवा आयोग का सभापति बनाया जा सकता है। मेरी समझ से, संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य को, सदस्य पद पर न रह जाने पर, उसी आयोग का सभापति बनाया जाये जिसकी कि वह सदस्यता रिक्त कर चुका है, एक अच्छा उदाहरण रखना नहीं होगा। हां वह, राज्य लोक सेवा आयोग का अथवा संयुक्त आयोग का सभापति बनाया जा सकता है।

मेरा दूसरा संशोधन अनुच्छेद 319 के खण्ड (घ) के सम्बन्ध में है। किसी राज्य के लोक-सेवा आयोग के सभापति के अतिरिक्त अन्य सदस्य पर पद धारण करने का प्रतिबंध इसमें लगाया गया है। मेरा संशोधन यह कहता है कि किसी राज्य लोक सेवा आयोग के सभापति से अतिरिक्त अन्य सदस्य, अपने पद पर न रह जाने

पर, उसी राज्य के लोक सेवा आयोग के सभापति पद के लिये तो पात्र न समझा जाये पर अन्य किसी राज्य के लोक सेवा आयोग के सभापति पद के लिये वह अवश्य पात्र समझा जाये। मसौदा समिति के नये संशोधन के अनुसार वह उसी राज्य के तथा अन्य किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का सभापति नियुक्त किया जा सकता है। पहले जो संशोधित मसौदा यहां स्वीकृत हुआ था उसके अनुसार, वह उसी राज्य के लोक सेवा आयोग का सभापति नहीं बनाया जा सकता था। पर अब इस नये संशोधन द्वारा वही पहले की स्थिति अब ला दी गई है। जिस आयोग से सदस्य अपना पद रिक्त करता है उसे उसी आयोग का सभापति बनाना ठीक नहीं होगा। हां, उसे अन्य राज्य लोक सेवा आयोग का सभापतित्व की अर्हता अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 320 पर एक संशोधन है नं. 491 का और एक और भी संशोधन है नं. 559 का। मेरा ख्याल है यह एक अतिरिक्त संशोधन है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन नं. 559 एक अतिरिक्त संशोधन ही है। उस अनुच्छेद विशेष के सम्बन्ध में जो आपत्ति उठाई गई है उसका इससे निराकरण हो जाता है।

***अध्यक्षः** इसे हम बाद में चल कर लेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उसे अभी भी लिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** मैं इसे प्रस्तावित मान लेता हूं। यह यों है:–

"कि अनुच्छेद 320 के खण्ड (4) की जगह यह खण्ड रखा जाये:–

'(4) Nothing in clause (3) shall require a Public Service Commission to be consulted as respects the manner in which any provision referred to in clause (4) of article 16 may be made or as respects the manner in which effect may be given to the provisions of article 335'."

[(4) खण्ड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोक-सेवा आयोग से उस नीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे कि अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) में निर्दिष्ट कोई उपबन्ध बनाया जाना है अथवा जिस रीति से कि अनुच्छेद 335 के उपबंधों को प्रभाव दिया जाना है।]

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन 491 की शायद हमें जरूरत नहीं हो सकती है क्योंकि श्री कामत अपने संशोधन नं. 394 और 395 को पेश कर चुके हैं। और उनके संशोधन में वही बात कही गई है जो नं. 491 में है।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है। अब हम लेते हैं अनुच्छेद 351—संशोधन नं. 492 ।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अनुच्छेद 320 पर एक संशोधन नं. 559 का है। उसके बारे में आपने क्या किया श्रीमान।

***अध्यक्ष:** मैंने इसे प्रस्तावित समझ लिया है। आप संशोधन नं. 559 की बात कह रहे हैं तो? डॉ. देशमुख क्या आप उस पर बोलना चाहते हैं?

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** हां श्रीमान। दुख के साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि यह नया संशोधन सन्तोषप्रद नहीं मालूम पड़ता है। पहली बात तो यह है कि इसकी रचना बड़ी जटिल है। इसमें कहा गया है:—

"Nothing in clause (3) shall require a Public Service Commission to be consulted as respects the manner in which any provision referred to in clause (4) of article 16 may be made or as respects the manner in which effect may be given to the provisions of article 335."

[खण्ड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोक सेवा आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे कि अनुच्छेद 16 के खण्ड (4) में निर्दिष्ट कोई उपबन्ध बनाया जाता है अथवा जिस रीति से कि अनुच्छेद 335 के उपबंधों को प्रभाव दिया जाना है।]

अनुसूचित जातियों ओर अनुसूचित कबायली जातियों के प्रतिनिधि यदि इस संशोधन को सन्तोषप्रद समझते हैं तो मैं उनसे यह अनुरोध अवश्य करूंगा कि वह अनुच्छेद 335 पर दिये गये मेरे संशोधन को स्वीकार कर लें। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी। अन्यथा, जहां तक कि पिछड़े वर्गों का सम्बन्ध है, इस अनुच्छेद के कारण वह भाग सर्वथा वंचित नहीं हुए तो यह जरूर होगा इस अनुच्छेद की परिधि उनके लिये बड़ी संकुचित हो जायेगी। यह इसलिये कि अनुच्छेद 335 में 'पिछड़े हुए वर्ग' शब्द पहले ही गलती नहीं आ पायी है। यही कारण है कि अनुच्छेद 335 में इस शब्द को रखने का मैंने संशोधन भेजा है।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 530 का आप जिक्र कर रहे हैं?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** हां श्रीमान। सो अगर हमें इस संशोधन को स्वीकार करना है। जिसे श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अभी पेश किया है तो मैं माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी से यह अवश्य पूछना चाहूंगा कि क्या वह मेरे संशोधन को मानने पर तैयार हैं, जिस में 'पिछड़े हुए वर्गों' शब्दों को अनुच्छेद 335 में रखने की बात कही गई है। यदि वह इसे मान लेते हैं तो मुझे उनके इस संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं होगी क्योंकि इससे इस विषय पर जितने अनुच्छेद हैं उन सबों में एक सुव्यवस्थित संगति आ जायेगी। मगर ऐसा नहीं किया जाता है तो एक बड़ी विचित्र स्थिति यह होगी कि अनुच्छेद 16 (4) में तो 'पिछड़े हुए वर्ग' शब्द मिलेंगे पर अनुच्छेद 335 में पिछड़े हुए वर्ग का कोई उल्लेख नहीं होगा और वहां केवल 'अनुसूचित जातियां और अनुसूचित आदिमजातियां' इन्हीं दो वर्गों का उल्लेख मिलेगा। यह एक बड़ी असंगत बात होगी। यदि माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी यह चाहते हैं कि उनका यह संशोधन स्वीकार किया जाये तो मैं उनके संशोधन को मानने पर तैयार हूं बशर्ते कि अनुच्छेद 335 में 'पिछड़े हुए वर्ग' शब्दों को रखने पर उन्हें कोई आपत्ति न हो। अन्यथा यह होगा कि किसी उपबंध के सम्बन्ध में हम एक जगह तो एक बात कहेंगे पर दूसरी जगह 'अनुसूचित जातियों अनुसूचित आदिमजातियों' को अनुच्छेद में शामिल नहीं करेंगे। यदि यह संशोधन स्वीकार किया जाता है तो इसका अर्थ होगा अनुच्छेद 16(4) में और अनुच्छेद 320 में इनका कोई उल्लेख नहीं होगा। पर अनुच्छेद 335 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों का ही उल्लेख है, वहां पिछड़े वर्ग का कोई उल्लेख ही नहीं है।

अगर माननीय मित्र मेरे संशोधनों को मानने पर राज़ी नहीं हैं तो दूसरा सुझाव मैं यह रखूंगा कि इस मसले को फिलहाल स्थगित रख दिया जाये क्योंकि सम्भवतः आज शाम को ही हम इस मसले पर विचार करें।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः मैं यह कहना चाहता हूं कि अनुच्छेद 16 (4) पिछड़े हुए वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व देने के लिये क्षमता देने वाला एक उपबंध है। अनुच्छेद 335 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के दावों को ध्यान में रखने का उपबंध करता है। इन दोनों उपबंधों को यहां इस खण्ड विशेष में एक साथ रख दिया गया है। इसके द्वारा केवल यह होता है कि शासनों के लिये यह अपेक्षित नहीं रह जाता है कि वह अपने अपने लोक सेवा आयोगों से इस मसले पर परामर्श करें। और ऐसा केवल इसलिए किया गया है कि अनुच्छेद 320 (3) के उपबन्ध द्वारा यह आवश्यक है कि हर मसले में शासन लोक सेवा आयोग से परामर्श करे। इसलिये इस बात की कत्तई कोई गुंजाइश नहीं है, अनुसूचित जातियों या अनुसूचित आदिमजातियों अथवा पिछड़े हुए वर्गों के साथ इसको लेकर कोई अन्याय हो सकता है या उनमें एक के हक को दबाकर दूसरे को तरजीह दी जा सकती है। मैं नहीं समझता कि माननीय मित्र को यह आशंका होनी चाहिए कि इसके द्वारा पिछड़े वर्गों के अधिकार छिन जाते हैं या कोई ऐसी बात होती है जो उनको, क्षत्ति पहुंचा सकती है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं नहीं समझता कि माननीय मित्र की इस व्याख्या से मुझे संतोष हो पाया है। अनुच्छेद 16 (4) में यह कहा गया है:—

"Nothing in this article shall prevent the State from making any provision for the reservation of appointments, or posts in favour of any backward class....."

[इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी वर्ग के पक्ष में... नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिए उपबंध करने में कोई बाधा न होगी।]

यहां पिछड़े हुए वर्ग का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया गया है जैसा कि डॉ. अम्बेडकर के उस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है जो उन्होंने यहां सभा में अनुच्छेद 16 पर विचार होते समय दी थी। इसके अन्दर न केवल अनुसूचित जातियां और अनुसूचित आदिमजातियां ही आती हैं बल्कि सभी ऐसे समुदाय भी आ जाते हैं जो शिक्षा और अर्थ की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। अब आश्चर्य की ही बात है कि माननीय मित्र इन दो अनुच्छेदों–16 (4) और 335—के उपबंधों में असंगति पैदा करके अपनी बात पूरी करना चाहते हैं। उनका मन्तव्य घोर आश्चर्यप्रद है। अनुच्छेद 16 (4) में इन तीनों वर्गों को नियुक्तियों के बारे में रक्षण दिया गया है पर आप इस सम्बन्ध में वही विशेषाधिकार पिछड़े हुए वर्गों को नहीं देना चाहते हैं जो अनुसूचित जातियों और आदिम जातियों को दिया गया है—जब कि अनुच्छेद 16 (4) में आरक्षण की व्यवस्था है और "नियुक्तियां और पदों" पदसंहति का उल्लेख वहां किया गया है तो मेरी समझ से वह मन्तव्य बिल्कुल गलत है जो माननीय मित्र यहां पेश कर रहे हैं। इस समूचे प्रश्न को माननीय मित्र किस दृष्टिकोण से देख रहे हैं इसे मैं जानता हूं। मेरा ख्याल यह है इस संशोधन द्वारा माननीय मित्र पिछड़े वर्गों का बड़ा अहित करेंगे और प्रकारान्तर से उनको बड़ा नुकसान पहुंचा देंगे क्योंकि अनुच्छेद 16 (4) का उपबंध सभी पिछड़े हुए वर्गों के लिए ही किया गया है। वहां किसी वर्ग विशेष का नाम नहीं दिया गया है। इस दृष्टिकोण से, मैं यह अनुरोध करूंगा कि फिलहाल इस विषय को स्थगित रखा जाये। अनुच्छेद 335 में पिछड़े हुए वर्ग को शामिल न करना बड़ी भूल होगी।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** यदि अनुमति हो तो माननीय मित्र से मैं एक प्रश्न करूं? यदि अनुसूचित जातियों को और अनुसूचित आदिमजातियों को पिछड़े वर्गों की अपेक्षा अधिक अधिकार दिये जाते हैं तो इसमें गलत क्या है? उनको अधिक अधिकार मिलने चाहियें। क्या ये लोग पिछड़े हुए नहीं हैं?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं यह नहीं मांगता हूं कि पिछड़े वर्ग से ज्यादा या कम अधिकार दिया जाये। मैं तो इतना ही चाहता हूं कि सबको समान अधिकार दिये जायें यदि 'पिछड़े वर्ग' में अनुसूचित जातियां, अनुसूचित आदिमजातियों तथा

आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी हुई अन्य जातियां शामिल हैं और अब आप अगर पिछड़े वर्गों का उल्लेख यहां केवल इसलिये नहीं करते हैं कि उन्होंने अपना एक संगठित दल नहीं बनाया है या अधिकार के लिये आन्दोलन नहीं किया है तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर उनको यदि आप इस स्थिति में डाल देते हैं तो मैं नहीं समझता कि देश के लिये या अपने लिये यह कोई हितकर बात होगी। इसलिये मैं तो यही चाहता हूं कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों के अलावा पिछड़े वर्गों को भी शामिल करने का जो पहले विचार था उसे हमें इस तरह नहीं छोड़ देना चाहिए। शुरु में तो हम लोग यहां इन दो वर्गों का भी उल्लेख नहीं रखना चाहते थे और जिस माननीय मित्र ने अभी अभी दखल दिया है वही उसके कट्टर समर्थक थे कि यहां केवल "पिछड़े वर्ग" का उल्लेख होना चाहिये, और पृथक रूप से किसी दल या वर्ग का उल्लेख न होना चाहिये।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास: जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान। मसौदा समिति ने अनुच्छेद 335 में कोई परिवर्तन नहीं किया है। इसलिये मैं नहीं समझती कि मेरे संशोधन को पेश किये जाने का कोई सवाल उठता है।

***अध्यक्ष:** वक्ता को अपनी बात समाप्त कर लेने दीजिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** इसलिये माननीय, वस्तुत: अपने ही मंतव्य के विरुद्ध बोल रहे हैं।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** यह तो सभा का निर्णय है। मैं तो यही चाहता हूं कि सभी सुविधायें सारे पिछड़े वर्ग को मिलनी चाहियें पर सभा का निर्णय माननीय मित्र के वर्तमान मन्तव्य के विरुद्ध है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अगर वह यह स्वीकार करते हैं कि उनके विरोध के बावजूद भी सभा ने यह निश्चय किया है तो यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। किन्तु जब वह इस बात का समर्थन करते हैं कि "पिछड़े वर्गों" का उल्लेख करना यहां आवश्यक नहीं है तो वह अपने ही मन्तव्य के विरुद्ध बोल रहे हैं।

***अध्यक्ष:** कल और आज, दोनों ही दिन इस अनुच्छेद पर यहां काफी बहस हो चुकी है।

अब हम आते हैं अनुच्छेद 351 पर। इस पर आये मसौदा समिति के संशोधन नं. 492 पर कोई संशोधन नहीं है। इसके बाद आता है अनुच्छेद 352। इस पर आये संशोधन पर भी कोई संशोधन नहीं है। अनुच्छेद 353—इसके संशोधन पर भी कोई संशोधन नहीं है। अनुच्छेद 357—इसके संशोधन पर कोई संशोधन नहीं है। अनुच्छेद 365—इस पर संशोधन नं. 496 है। इसकी जगह अब संशोधन नं. 561 आ गया है। इसके बाद आता है अनुच्छेद 366। इस पर तीन संशोधन हैं नं. 497, 498 और 499 के।

[श्री अध्यक्ष]

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है नं. 606 का। * * *

---

* * * ये सभी संशोधन यह हैं:–

नं. 492–"कि अनुच्छेद 351 में, 'so specified' (वैसी उल्लिखित) शब्द उठा दिये जायें।"

नं. 493–"कि अनुच्छेद 352 के खण्ड (2) में कोष्ठ तथा शब्द 'in this Constitution referred to as a proclamation of Emergency' (संविधान में आपात-उद्घोषणा के नाम से जिसका उल्लेख किया गया है) हटा दिया जाये।"

नं. 494–"कि अनुच्छेद 353 के खण्ड (ख) में 'the Government of India or officers and authorities of the Government of India' (भारत शासन अथवा भारत शासन के पदाधिकारी और प्राधिकारी) शब्दों की जगह 'the Union or officers and authorities of the Union' (संघ अथवा संघ के पदाधिकारी और प्राधिकारी) शब्द रखे जायें।"

नं. 495–"कि अनुच्छेद 357 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में, 'the Government of India or officers and authorities of that Government' शब्दों की जगह the Union or officers and authorities thereof शब्द रखे जायें।"

नं. 561–"कि अनुच्छेद 365 में 'the President may hold' (राष्ट्रपति यह मान सकता है) शब्द की जगह 'it shall be lawful for the President to hold' (राष्ट्रपति के लिए यह मानना विधि-संगत होगा) शब्द रखे जायें।"

नं. 497–"कि अनुच्छेद 368 का खण्ड (12) उठा दिया जाये।"

नं. 498–"कि अनुच्छेद 366 के खण्ड (13), (14), (15), (16), (17), और (18) का संख्या क्रम बदल कर क्रमशः (12), (13), (14), (15), (16) और (17) कर दिया जाये।"

नं. 499–"कि इस तरह पुनः संख्याबद्ध किये गये खंड (17) के आगे यह खण्ड जोड़ा जाये:–

'(18) Proclamation of Emergency means a Proclamation issued under clause (1) of article 362'

[(18) आपात की उद्घोषणा से अभिप्रेत है वह उद्घोषणा जो कि अनुच्छेद 361 के खण्ड (1) के अधीन निकाली गई हो।]

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमानः—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 499 में, अनुच्छेद 366 के प्रस्तावित नये खण्ड (18) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये–"and the succeeding clauses be renumbered accordingly" (और तदनुसार बाद के खण्डों को पुनः संख्याबद्ध किया जाये)।

***अध्यक्षः** इस का प्रश्न ही नहीं उठता है। अब हम आते हैं अनुच्छेद 367 पर। इस पर एक संशोधन है नं. 500 का। इस संशोधन पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है जिसकी संख्या है 607।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** नं. 607 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन नं. 500 को नहीं पेश किया जायेगा। उसकी जगह संशोधन नं. 562–क को पेश करना चाहता हूं जो यों हैः–

"कि अनुच्छेद 367 में ये खण्ड जोड़ दिये जायेंः—

'(3) For the purposes of this Constitution 'foreign State' means any country which is outside the territorial jurisdiction of the Union:

Provided that, subject to the provisions of any law made by Parliament, the President may by order declare any country not to be a foreign country for such purposes as may be specified in the order.' "

[(3) इस संविधान के प्रयोजनों के लिये 'विदेशी राज्य' से अभिप्रेत है भारत से भिन्न कोई राज्य।

परन्तु संसद-निर्मित किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति आदेश द्वारा किसी राज्य का किसी विदेशी राज्य न होना ऐसे प्रयोजनों के लिये जैसे कि आदेशों में उल्लिखित किये जायें, घोषित कर सकता है।]

श्री एच.वी. कामतः अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन रखता हूंः—

"कि सूची 4 में संशोधन नं. 562-क (आपकी अनुमति से नं. 500 की जगह 562-क रखता हूं श्रीमान) में, अनुच्छेद 367 के नवप्रस्तावित खण्ड (3) के परन्तुक को उठा दिया जाये।"

[श्री एच.वी. कामत]

मसौदा समिति फिर अपने ही निर्मित अनुच्छेदों में परिवर्तन करने जा रही है। जिस अनुच्छेद को उसने अभी कल यहां पेश किया था उसी में आज वह संशोधन करने जा रही है। देश के भविष्य के लिये मैं इसे एक शुभ लक्षण ही समझता हूं कि अपने संविधान का निर्माण कर रहे हैं। ऐसे बुद्धिमान लोग जिनका मस्तिष्क सदा एक नवीन बात को ग्रहण करने के लिये सत्य के प्रकाश को ग्रहण के लिये खुला रहता है। पर खेद इस बात का है कि अपनी सीमित बुद्धि के कारण मैं इस परन्तुक की परिधि को समझने में असमर्थ हूं। मेरी समझ में तो वह सभी राज्य जो भारतीय संघ के क्षेत्राधिकार के अन्दर नहीं हैं, वह सब विदेशी राज्य ही माने जायेंगे। जब तक कि दुनिया एक नहीं हो जाती है, दुनिया के सभी देश एक राज्य के रूप में नहीं आ जाते हैं, मेरा तो यही ख्याल है कि दुनिया के सभी राज्य अपना अपना पृथक अस्तित्व बनाये रहेंगे और अपने संघ के क्षेत्राधिकार के बाहर के सभी राज्य विदेशी राज्य ही समझे जायेंगे, हां यह बात जरूर है कि यदि किसी राज्य विशेष के साथ हम विशेष रूप से व्यवहार बरतना चाहते हैं तो ऐसे राज्य के बारे में संसद विधि बना सकती है। उन देशों के लिये जिनके साथ हम पक्षपात बरतना चाहते हैं।, इम्पीरियल प्रेफरेंस-कामनवेल्थ प्रेफरेंस (साम्राज्यिक पक्षपात, राष्ट्रमंडलीय देशों के प्रति पक्षपात) की नीति को अपनाने वाली धारायें संधियों में आ चुकी हैं। मैं नहीं समझ पाता कि यहां क्यों इस आशय का परन्तुक रखा जाये कि राष्ट्रपति घोषित कर सकता है कि अमुक अमुक राज्य हमारे लिये विदेशी राज्य नहीं हैं। हम यहां सामान्य तौर पर यह कह सकते हैं कि भारत के क्षेत्राधिकार के बाहर के राज्य विदेशी राज्य माने जायेंगे। मेरी विनम्र राय में तो इस तरह के परन्तुक को और इस अस्पष्ट रूप में रखने की कोई जरूरत नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस अनुच्छेद पर एक संशोधन की सूचना मैंने दे रखी है और इस संशोधन का नं. 608। मैं श्री कामत के तर्कों का समर्थन करता हूं। मसौदा समिति की तरफ से मैं इसका स्पष्टीकरण चाहता हूं कि इस तरह का उपबंध किस प्रयोजन के लिये रखा जा रहा है। कल हमने यह साफ-साफ कह दिया था कि जो लोग अन्य देश की नागरिकता स्वीकार करेंगे उनकी यहां की नागरिकता पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा। जो लोग किसी विदेश की नागरिकता स्वीकार करेंगे उन्हें उन अधिकारों और विशेषाधिकारों का हक न होगा जो भारतीय संघ के नागरिकों को उपलब्ध होते हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि आखिर राष्ट्रपति को यह अधिकार क्यों दिया जा रहा है कि वह घोषणा कर सकता है कि अमुक देश विदेशी राज्य नहीं है। आखिर इसके पीछे मूल बात क्या है। इस बारे में डॉ. अम्बेडकर से हमें कुछ न कुछ जानकारी मिलनी ही चाहिये। हम लोग इस उपबंध से सर्वथा आश्चर्य में पड़ गये।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मेरा ख्याल है कि संशोधन नं. 562-क की रचना जिस रूप में की गई है, वह कुछ त्रुटिपूर्ण है। इसके प्रथम भाग में 'विदेशी राज्य' की परिभाषा दी गई है इसके परन्तुक में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया

है कि वह घोषणा कर सकता है कि अमुक देश विदेशी देश नहीं है। मेरा ख्याल है कि दोनों स्थलों पर या तो 'राज्य' या 'देश' का प्रयोग होना चाहिये। एक ही प्रसंग में दो शब्दों से भ्रम पैदा हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** इससे तो उस आपत्ति का निराकरण नहीं हो पाया जो मैंने उठाई है।

***अध्यक्ष:** यह बात आपकी आपत्ति के जवाब में नहीं कही गई है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यदि हमें अपने सन्देहों के बारे में जवाब मिले तो इससे हमें समझने में बड़ी सहायता पहुंचेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि माननीय मित्र सिधवा मसौदा समिति के संशोधित मसौदे में अनुच्छेद 366 (12) को देखें तो तो उन्हें मालूम होगा कि अनुच्छेद 367 के इस उपखंड (3) में, जिसपर कि यह संशोधन नं. 562–क आया है वस्तुत: कोई नई बात नहीं रखी गई है। अनुच्छेद 366 एक परिभाषा मूलक अनुच्छेद है और उसके खण्ड (12) में केवल यह परिभाषित किया गया है कि संविधान के अनुसार विदेशी राज्य किसे कहेंगे। यह महसूस किया कि अनुच्छेद 366 का खण्ड (12) बड़े संक्षिप्त और अव्यक्त रूप में रखा गया है और वांछनीय यह है कि इसे और विशेष कर दिया जाये। सुतरां मसौदा समिति ने यह सोचा कि उसके लिये सर्वोत्तम यह होगा कि इस खंड (12) को ही उठा दिया जाये। संशोधन नं. 497 के द्वारा यह खण्ड उठा दिया जा चुका है और अब इस संशोधन नं. 562–क के द्वारा इस उपबंध को यहां रखा जा रहा है। सभा के सामने प्रतिवेदन के साथ मसौदा जिस रूप में पेश किया गया था उसमें प्रधान उपबंध यही था कि राष्ट्रपति को इसका अधिकार होगा कि वह आदेश द्वारा यह घोषित कर सकता है कि जहां तक भारत का सम्बन्ध है अमुक देश विदेश नहीं माना जायेगा। अनुच्छेद 367 के खण्ड (3) में मुख्य बात यही रखी गई है। केवल एकमात्र और बात यहां यही जोड़ी गई है कि इस बारे में संसद विधि बना सकती है और उसमें राष्ट्रपति यह अधिकार दे सकता है कि आदेश द्वारा वह यह घोषणा कर सकता है कि कौन देश विदेशी राज्य माना जायेगा और कौन देश विदेशी राज्य नहीं माना जायेगा। मसौदा समिति ने यह और महसूस किया कि "for such purposes as may be specified in the order" (ऐसे प्रयोजनों के लिये जैसे कि आदेश में उल्लिखित किये जायें)–इन शब्दों को परन्तुक में रखे बिना यह बहुत व्यापक और कठोर हो जायेगा और इस रूप में यह अधिकार देना वांछनीय न होगा। इन शब्दों के न रखने पर राष्ट्रपति या संसद के सामने दो ही अनिवार्य मार्ग रह जायेंगे। या तो वह यह कहें कि बाहरी देश एक विदेशी राज्य है या यह कहें कि वह विदेशी राज्य नहीं है। इसका परिणाम यह होगा कि जो देश विदेशी राज्य नहीं कहा जायेगा उसके निवासी इससे अपने आप भारत के नागरिक हो जायेंगे और उन्हें उन अधिकारों का हक हो जायेगा जो इस संविधान के अधीन भारतीय नागरिकों को प्राप्त हैं। अपने देश के लिये सम्भवत: हितकर यह होगा कि किसी देश को विदेशी राज्य न मानने की वांछनीयता को स्वीकार करते हुए, सीमित प्रयोजनों के लिये ही जैसा

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

कि आदेश में उल्लिखित किये जायें, हम किसी बाहरी राष्ट्र को विदेशी न होने की घोषणा करें। इससे यह सुविधा होगी कि आदेश निकालते समय राष्ट्रपति यह भी कह सकेगा कि यद्यपि अमुक राष्ट्र को हम विदेशी राज्य नहीं मानने की घोषणा करते हैं परन्तु उसके नागरिकों को, उन सभी अधिकारों और विशेषाधिकारों का हक न होगा जो भारतीय नागरिकों को प्राप्त हैं। वरन् केवल ऐसे चन्द विशेष अधिकारों का ही उन्हें हक होगा। इस प्रयोजन के लिये तथा अन्य कई बातों का उपबंध करने के लिये ही अनुच्छेद 317 के खण्ड (12) को स्थानान्तरित करके यहां खण्ड (3) के रूप में रखना वांछनीय समझा गया है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 368—संशोधन नं. 609 जो श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं श्रीमान। अनुच्छेद 368 पर संशोधन नं. 501 को हम नहीं पेश कर रहे हैं।

अब मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"कि अनुच्छेद 370 के खण्ड (2) में, 'in paragraph (II) of sub-clause (b) or in the second proviso to sub-clause (d) of clause (1)'—इन शब्दों, कोष्ठों, अक्षरों तथा अंकों के स्थान पर ये शब्द, कोष्ठ, अक्षर तथा अंक रखे जायें 'in paragraph (II) of sub-clause (b) of clause (1) or in the second proviso to sub-clause of that clause' रखे जायें।"

मैं यह भी संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"कि अनुच्छेद 379 के खण्ड (1) में, 'shall exercise' (प्रयोग करेगा) शब्दों की जगह 'shall be the provisional Parliament and shall exercise' (अस्थायी संसद होगा और..... प्रयोग करेगा) शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा का एक संशोधन है नं. 610 का।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं यह संशोधन रखता हूं श्रीमान:—

"कि सूची 2 का संशोधन नं. 503 उठा दिया जाये।"

यहां जिस शब्द पर मुझे आपत्ति है वह है 'Provisional' (अन्तर्कालीन) शब्द जो 'Parliament' के पहले प्रयुक्त किया गया है। गत अधिवेशन में हमने इस मसले पर सोच विचार किया था और यह विचार व्यक्त किया था कि यहां इस शब्द का रखना राष्ट्रपति तथा संसद के लिये गौरवदायक नहीं होगा। एक अधिनियम के द्वारा इसी 26 जनवरी को संसद अस्तित्व में आ जायेगी। एक तरह से यह संसद

अस्थायी ही होगी फिर भी संविधान के अधीन यह अस्तित्व में आयेगी और पूर्णतः समुचित संसद ही यह होगी। इस लिये इसके पहले 'अस्थायी' शब्द का रहना कुछ उचित नहीं लगता है। मैं यह ही अनुभव करता हूं कि इस शब्द को हटा देना चाहिये। इन शब्दों के साथ संशोधन को मैं सभा के समक्ष रखता और यह सिफारिश करता हूं कि इसे स्वीकार किया जाये।

***अध्यक्षः** श्री बालकृष्ण शर्मा। अनुच्छेद 379 पर आपके दो संशोधन हैं— नं. 416 और 417 के। आप इन्हें पेश करना चाहते हैं क्या? अगर आप चाहते हैं तो पेश कर सकते हैं।

***पंडित बालकृष्ण शर्माः** अध्यक्ष महोदय मैं यह संशोधन रखता हूं:—

"कि अनुच्छेद 379 के खण्ड (1) में, 'the body functioning as the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before the Commencement of this Constitution' (वह निकाय जो भारत डोमिनियन की संविधान सभा के रूप में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले कृत्यकारी था) शब्दों के स्थान पर 'the Constituent Assembly of India' (भारतीय संविधान सभा) शब्द रखे जायें और अनुवर्ती खण्डों और अनुच्छेदों में, जहां कहीं भी 'the Constituent Assembly of the Dominion of India' शब्द आये हैं वहां केवल 'the Constituent Asembly of India' (भारत की संविधान सभा) शब्द रखे जायें।"

यदि सभा मेरे इस संशोधन को स्वीकार करती है तो अनुच्छेद का रूप यह होगा:—

"Until both the Houses of Parliament have been duly constituted and summoned to meet for the first session under the provisions of this Constitution, the Constituent Assembly of India shall exercise all powers and perform all the duties conferred by the provisions of this Constitution on Parliament."

[जब तक कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन संसद के दोनों सदन सम्यक् रूप से गठित न हो जायें तथा प्रथम सत्र में अधिवेशित होने के लिये आहूत न हो जायें तब तक वह निकाय, जो भारत की संविधान सभा के रूप में, इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले कृत्यकारी था, इस संविधान के उपबंधों द्वारा संसद को दी गई सब शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करेगा।]

इस संशोधन को प्रस्तावित करने का कारण यह है कि मैं इस विचार को पसन्द नहीं करता हूं कि संविधान में, "भारत-डोमिनियन की संविधान सभा" शब्द रखे जायें। यह सच है कि यथानुकूलित भारत शासन-अधिनियम 1935 में अर्थात् अपने स्वाधीनता अधिनियम में यह शब्द रखे गये हैं फिर भी अच्छा होगा कि अपने संविधान में इस पदसंहति को न रखें। आप यह देखेंगे श्रीमान कि प्रस्तावना में,

[पंडित बालकृष्ण शर्मा]

जहां इस संविधान को हमने आत्यापित किया है, वहां हमने ऐसा पूर्णतः अपने अधिकार के बल पर किया है और संविधान-सभा को ही देश को संविधान प्रदान करने का पूर्णाधिकार प्राप्त है। यदि हम "भारत-डोमनियन की संविधान सभा" शब्द संविधान में रखते हैं तो हम एक ऐसी स्थिति का स्थायी उल्लेख करेंगे जो ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण हम पर जबरदस्ती लद बैठी है। हम यह नहीं चाहते हैं कि संविधान में यह नाम रखा जाये। यही कारण है कि मैंने अपना यह संशोधन पेश किया है और चाहता हूं कि सभा इसे स्वीकार करे ताकि संविधान में "भारत-डोमिनियन" की "संविधान सभा" के स्थान पर केवल "भारत की संविधान-सभा" शब्द रहे।

अब मैं अपना संशोधन नं. 417 पेश करता हूं–

"कि अनुच्छेद 379 के खण्ड (2) में, 'the provisional Parliament' (अन्तर्कालीन संसद) शब्दों की जगह, जहां कहीं भी वह प्रयुक्त हुए हैं, 'the Constituent Assembly of India' (भारत की संविधान सभा) शब्द रखे जायें। इस संशोधन को रखने का कारण यह है कि अनुकूलन अधिनियम के अधीन देश के शासन की सर्व सत्ता जो हमने अपने हाथ में ली है वह संविधान सभा होने के नाते ही ली है और किसी नाते से नहीं। इसलिये जब तक कि यथार्थ रूप में में गठित संसद अस्तित्व में नहीं आ जाती है तब तक इस नाम को छोड़ना हमारे लिये उचित नहीं होगा। अब शासन के नियम के पूर्व ही हम क्यों स्वतः अपना अस्तित्व मिटावें? संविधान के प्रवर्त्तन में आने पर तो हम स्वतः निरोहित हो जायेंगे फिर "भारत की संविधान सभा" की जगह इस का नाम "अन्तर्कालीन संसद" अभी क्यों रखा जाये? यदि हम इस का यही नाम रहने देते हैं तो जो कतिपय कृत्य अभी संविधान सभा द्वारा निष्पादित होते हैं उनका निष्पादन इसी के द्वारा होता रहेगा। पर अगर हम नाम बदल देते हैं तो यह निर्वचन किया जा सकता है कि अन्तर्कालीन संसद के रूप में हमारा यही निकाय उस निकाय से भिन्न है जो अभी संविधान के रूप में काम कर रहा है और इस लिये अभी जिन कृत्यों का निष्पादन हम एक सचिवालय द्वारा कर रहे हैं वह अब नहीं किया जा सकता है। इसलिये मेरा कहना यह है कि कि भविष्य में यह सारा काम अर्न्तकालीन संसद नहीं करेगी बल्कि संविधान सभा ही इन कृत्यों को निष्पादित करती रहेगी।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** पर उसे जो शक्तियां अभी प्राप्त हैं वह तब प्राप्त न रहेंगी।

***पंडित बालकृष्ण शर्माः** माननीय मित्र श्री सन्तानम् का कहना है कि 26 जनवरी के बाद संविधान सभा अपने समस्त अधिकारों से वंचित हो जायेगी। पर मैं यह कहना चाहता हूं कि 26 जनवरी के बाद भी संविधान सभा अपने इन अधिकारों से हाथ नहीं धो बैठेगी। क्योंकि अनुच्छेद 379 में यह साफ-साफ कहा

गया है कि जब तक कि नई संसद अस्तित्व में नहीं आ जाती है तब तक यह संविधान सभा ही उन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगी और उन सभी कृत्यों को निष्पादित करेगी जो इस संविधान के उपबंधों के अधीन संसद को प्रदत्त किये गये हैं और चूंकि मूल संविधान सभा को उन सभी कृत्यों को निष्पादित करना होगा जो भावी संसद करेगी इसलिये यह नहीं कहा जा सकता है कि 26 जनवरी के बाद संविधान सभा का अवसान हो जाता है। यहां यह कहा गया है कि 26 जनवरी के बाद संविधान निर्माता के रूप में यह सभा न रह जायेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि 26 जनवरी के बाद हम संविधान निर्माता निकाय के रूप में न रहेंगे पर विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग हम इस बीच में करते रहे हैं और वह शक्तियां तो हममें निहित ही बनी रहेंगी इस लिये मेरा ख्याल तो यही है कि हमें इस निकाय का नाम बदल कर 'भारत की संविधान सभा' के स्थान पर 'अन्तर्कालीन संसद' न करना चाहिये और न 'भारत डोमिनियन की संविधान-सभा' ही करना चाहिये। मैं समझता हूं कि शायद 'भारत डोमिनियन' शब्द तो इस लिये जोड़ा गया था कि पाकिस्तान डोमिनियन की संविधान सभा में और अपनी संविधान सभा में अन्तर किया जा सके। पर मैं नहीं समझता हूं कि इस नाम पर चिपके रहने की हमें कोई जरूरत है। मैं कह चुका हूं कि प्रस्तावना में हमने साफ-साफ एक सर्वोच्च सत्ताधारी निकाय के रूप में हमने संविधान को आत्मार्पित किया है। फिर हम क्यों इस का नाम 'भारत डोमिनियन की संविधान सभा' रखें। इन शब्दों के साथ मैं यह दोनों संशोधन सभा के सामने उपस्थित करता हूं और सिफारिश करता हूं कि वह इन्हें स्वीकार करे।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं सूची 4 के अपने संशोधन नं. 563 को यहां पेश करता हूं जो कमोबेशी वैसा ही है जिससे अभी माननीय मित्र पंडित बालकृष्ण शर्मा ने पेश किया है। जहां तक 'भारत-डोमिनियन' का सम्बन्ध है मैं उनसे सर्वथा सहमत हूं कि यह पद संहति कुछ ठीक नहीं है और यहां 'भारत की संविधान सभा' पद संहति का रखना हमारे प्रयोजनों के लिये पर्याप्त है। पर जहां तक उनके इस मन्तव्य का सम्बन्ध है कि संविधान के प्रारम्भ के बाद भी, भारतीय संघ के यथा विधि स्थापित हो जाने के बाद भी यह संविधान सभा अस्तित्व में बनी रहनी चाहिये, मैं उनसे मंतव्य नहीं रख सकता हूं।

पं. बालकृष्ण शर्माः फ्रांस में ऐसा ही किया गया थाः

***श्री एच.वी. कामतः** फ्रांस में क्या स्थिति थी इसे मैं नहीं जानता पर जहां तक कि इतिहास की मेरी जानकारी है और मैं स्मरण कर पाता हूं, सभी देशों में यही हुआ है कि संविधान के प्रवर्त्तन में आ जाने पर संविधान सभा का काम समाप्त हो गया है और वह अस्तित्व में नहीं रह गई है। अपना संविधान प्रवर्त्तन में आयेगा 26 जनवरी 1950 को और उसके बाद यह निकाय संविधान निर्मात्र सभा के रूप में काम नहीं करेगा। इसके बाद तो वह विधि निर्मात्र सभा के रूप में ही काम करेगी और तब तक करेगी जब तक कि नवीन संविधान के अधीन निर्वाचन नहीं हो जाता है। इस लिये यह कहना बिल्कुल सही है कि उसके बाद यह निकाय अन्तर्कालीन संसद के नाम से ज्ञात होगा क्यों कि इसे यह संज्ञा देना भी प्रकारान्तर से 'संविधान सभा' ही कहना है। आज इस सभा को ''भारत की संविधान सभा (विधि-निर्मात्र)'' कहते हैं अब यह विधि निर्माण का काम करती रहती है पर नये संविधान के अधीन हम इसे संसद की सभी शक्तियां प्रदत्त कर देना चाहते हैं और जब तक इसे अन्तर्कालीन संसद नहीं कहा जाता है यह निकाय

[श्री एच.वी. कामत]

उन शक्तियों को नहीं ग्रहण कर सकता है जो संविधान संसद को देना चाहता है। इसलिये मैं नहीं समझता हूं माननीय मित्र पंडित बालकृष्ण शर्मा की दूसरी बात सही है। अतः मैं सूची 2 के संशोधन नं. 563 को उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह उसे स्वीकार करे पर उन कारणों के आधार पर नहीं जिनका उल्लेख पं. बालकृष्ण शर्मा ने किया है। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करता हूं:—

"कि सूची 2 के संशोधन नं. 503 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 379 के खण्ड (1) में, 'the body functioning as the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before the Commencement of this Constitution' (वह निकाय जो भारत डोमिनियन की संविधान सभा के रूप में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले कृत्यकारी था) शब्दों की जगह 'the Constituent Assembly of India' (भारतीय संविधान सभा) शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** सूची 4 में दो और अन्य संशोधन हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह सुझाव देना चाहता हूं श्रीमान कि इस अनुच्छेद 379 पर विचार करते समय संशोधन नं. 564 को भी इसमें शामिल कर लेना चाहिये।

***अध्यक्ष:** हां, मैं उसे प्रस्तावित मान लेता हूं। यह संशोधन यों है:—

"कि अनुच्छेद 379 के खण्ड (5) में, 'after such Commencement' (ऐसे प्रारम्भ के पश्चात्) शब्दों की जगह 'on such Commencement' (ऐसे प्रारम्भ पर) शब्द रखे जायें।"

अब आते हैं अनुच्छेद 385, 388 और 392। इन पर मसौदा समिति की तरफ से आये संशोधनों पर कोई संशोधन नहीं आये हैं। मसौदा समिति के संशोधन यह हैं:—

"565—कि अनुच्छेद 385 में, 'such Commencement' (ऐसे प्रारम्भ के) शब्दों की जगह 'the Commencement of this Constitution' (इस संविधान के प्रारम्भ के) शब्द रखे जायें।"

"566—कि अनुच्छेद 388 के खण्ड (1) में, दो स्थलों पर जहां 'the President of the Union' (संघ का राष्ट्रपति) शब्द आये हैं उनकी जगह 'the President of India' (भारत का राष्ट्रपति) शब्द रखे जायें।"

"504—कि अनुच्छेद 388 के खण्ड (2) में, 'the Provisional Legislature' (अन्तर्कालीन विधान-मण्डल) शब्दों की जगह 'the Legislature' (विधान मण्डल) शब्द रखे जायें।"

"571—कि अनुच्छेद 390 में 'out of such Fund' (ऐसी निधि से) शब्दों की जगह 'out of either of such Funds' (ऐसी निधियों में किसी से) शब्द रखे जायें।"

***श्री एच.वी. कामतः** इस सम्बन्ध में एक संशोधन है नं. 611 का।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** हम अभी विचार कर रहे हैं उन संशोधनों पर जो सूची 4 में है न कि उन पर जो सूची 2 में हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा संशोधन सूची 6 से सम्बन्ध रखता है।

***अध्यक्षः** अभी मैं सूची 4 को ले रहा हूं। उन संशोधनों को ले रहा हूं जो अनुछेच्द 388 पर आये हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन नं. 392 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं क्योंकि वह सूची 2 में है और संशोधन नं. 505 की जगह नं. 572 को मैं पेश कर रहा हूं।

"572–कि अनुच्छेद 392 के खण्ड (3) की जगह यह रखा जाये:–

'(3) The powers conferred on the President by this article, by article 324, by clause (3) of article 367 and by article 391 shall, before the commencement of this Constitution, the exercisable by the Governor-General of the Dominion of India.'"

[(3) इस अनुच्छेद, अनुच्छेद 324, अनुच्छेद 367 के खण्ड (3) और अनुच्छेद 391 द्वारा राष्ट्रपति को दी गई शक्तियां इस संविधान के प्रारम्भ से पहले भारत डोमिनियन के गवर्नर जनरल द्वारा प्रयोक्तव्य होंगी।]

***अध्यक्षः** तो मैं यह मान लेता हूं कि संशोधन नं. 505 की जगह नं. 572 आ गया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** हां श्रीमान।

***अध्यक्षः** एक संशोधन है नं. 573 का जो श्री कामत के नाम से है।

***श्री महावीर त्यागीः** श्री कृष्णमाचारी के जवाब को मैं समझ नहीं सका।

***अध्यक्षः** वह केवल यह कह रहे हैं कि मसौदा समिति के संशोधन नं. 505 की जगह वह पेश करते हैं संशोधन 573 को जिसकी सूचना आ चुकी है। नं. 505 की जगह वह इसे रख रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा संशोधन नं. 573 तो केवल एक शाब्दिक संशोधन है।

***अध्यक्षः** सूची 4 में यही संशोधन है। सूची 4 के बाकी संशोधनों को तथा अन्य कई संशोधनों को जो देर से आये हैं, कल लिया जायेगा। दो सदस्यों की ओर से—श्री ठक्कर तथा प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना से एक अनुरोध आया है। मध्यभारत, राजस्थान, त्रिवांकुर-कोचीन और विन्ध्य प्रदेश आदि राज्यों में आदिम जातियों के कल्याणार्थ एक मंत्री नियुक्त करने के बारे में अनुच्छेद 238 का जो खण्ड (6) है उसमें श्री ठक्कर एक संशोधन रखना चाहते हैं। यह एक सर्वथा नया संशोधन जिसे सामान्यतः हम नहीं ले सकते हैं पर अगर मसौदा समिति को

[श्री अध्यक्ष]

कोई आपत्ति न हो तो मैं इसे उपस्थित करने की अनुमति दे सकता हूं। यह सर्वथा निर्भर करता है मसौदा समिति पर है। मैं समझता हूं कि इस तरह की किसी बात को मंजूर करने से पहले मसौदा समिति परामर्श करना चाहेगी स्टेट मिनिस्ट्री से। सो अगर आप इस बीच में अपना निर्णय कर लें तो कल इस को लिया जाये।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** उस हालत में यह संशोधन मसौदा समिति की ओर से ही पेश किया जा सकता है न कि व्यक्तिगत रूप से किसी सदस्य के द्वारा।

***अध्यक्षः** अगर वह लोग इसे मान लेते हैं तो वही पेश कर सकते हैं।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** मसौदा समिति के मानने से उसका क्या सम्बन्ध है। माननीय मित्र के संशोधन को वह माने या न माने, फैसला तो देना है आपको कि यह पेश किया जा सकता है या नहीं।

***अध्यक्षः** अब तो हम लोगों ने केवल ऐसे संशोधनों को यहां लिया है जो मसौदा समिति के संशोधन पर आये हैं। किन्तु यह संशोधन मसौदा समिति के संशोधन पर नहीं आया है इस लिये साधारणतः इस नियम के अनुसार तो मुझे इसे अनियमित ही ठहरा देना चाहिये किन्तु श्री ठक्कर के संशोधन के पक्ष में खास तौर पर छूट इसलिये दे रहा हूं कि मसौदा समिति राज्य सचिवालय से इस बारे में परामर्श करके अगर यह पाती है कि वह इसे स्वीकार कर सकती है तो हम इसे उस समय ले लेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उसे लेना या न लेना आप पर निर्भर करता है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** श्री ठक्कर के संशोधन पर मसौदा समिति की राय कुछ भी हो आप इसे पेश करने की अनुमति देते हैं क्या? मसौदा समिति, हो सकता है इसे अस्वीकार कर दे। पर श्री ठक्कर को इसे यहां पेश तो करने दीजिये।

***अध्यक्षः** अब तक मैंने ऐसे किसी संशोधन को पेश किये जाने की अनुमति नहीं दी है जो मसौदा समिति के संशोधन पर नहीं आया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** हो सकता है कि इस संशोधन को समिति मंजूर कर ले, पर हमें अपने सलाहकारों से यह तो पूछना ही होगा कि यह ठीक बैठेगा या नहीं। अगर उनका जवाब हमें समय के अन्दर मिल जाता है तो कल इस पर हम अन्तिम रूप से निर्णय कर लेंगे।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना एक संशोधन पेश करना चाहते है जो यहां देर से पहुंचा है इसलिये वह पहुंचा तो है संशोधन पहुंचने की अवधि बीत जाने पर ही किन्तु और सब तरह से वह वैध है। संशोधनकर्ता का कहना है उन पर यह संशोधन सम्बन्ध रखता है भाषा सम्बन्धी एक खण्ड से जिसे समझौते के लिये स्वीकार किया गया था पर इसमें अब आखिरी समय में मसौदा समिति ने कुछ परिवर्तन दिया है इस लिये वह इसे पेश करना चाहते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** नियम सम्बन्धी उपबन्ध इस बारे में आपको कोई स्वतंत्रता नहीं देते हैं। वह सर्वथा आदेश मूलक हैं। इनमें यही कहा गया है कि और अन्य संशोधन नहीं पेश किये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन पर संशोधन है पर देर से आया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मैं तो केवल दूसरे संशोधन के बारे में कह रहा हूं।

***अध्यक्ष:** उसके बारे में तो मैंने कहा है कि मसौदा समिति अगर उसे मंजूर करने पर तैयार नहीं है तो मुझे उसे अनियमित ठहरा देना होगा।

***श्री महावीर त्यागी:** यह संशोधन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि यह एक समझौते के बारे में में है और इस लिये मसौदा समिति इस पर सम्भवत: फिर से विचार कर सकती है। मैं आप से भी यह अपील करूंगा श्रीमान कि इस पर पुनर्विचार होना चाहिये? आखिर मसौदा समिति के संशोधन भी तो यहां आकस्मिक रूप से उपस्थित किये गये हैं। खास करके ऐसे मसलों पर जिन पर कि कोई समझौता या करार हो चुका हो, कोई संशोधन पेश ही नहीं होना चाहिये था। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसलिये मैं आपसे यह अनुरोध करूंगा श्रीमान कि आप कृपा करके इस पर विचार कीजिये और.....

***अध्यक्ष:** श्री शिब्बन लाल जी सक्सेना। आपका संशोधन क्या है? इसका नं. क्या है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह सूची में छपा नहीं है। मैंने इसे भेजा था कल पर देर से पहुंचने के कारण इसे शामिल नहीं किया गया। यह सूची में नहीं आया है संशोधन यह है "कि अनुच्छेद 348 के खण्ड (3) के स्थान पर मूल खण्ड (3) रखा जाये।"

***अध्यक्ष:** संशोधन कर्ता यह चाहते हैं कि इस खण्ड की जगह मूल खण्ड रखा जाये जो द्वितीय पठन के समय स्वीकृत हुआ था।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** सारे अनुच्छेद को मैं नहीं बदलना चाहता हूं, केवल खण्ड (3) को ही।

***श्री महावीर त्यागी:** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना के मन्तव्य से यहां अनेक सदस्य सहमत हैं।

***अध्यक्ष:** संशोधन यह है कि अनुच्छेद 348 का खण्ड (3) उसी रूप में रखा जाये जिसमें कि यह द्वितीय पठन के समय पास किया गया था। इस पर हम कल विचार करेंगे।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** अगर अनुमति हो तो सभा उठने के पहले मैं शब्द कहूं?

***अध्यक्ष:** कहिये।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** (संयुक्त प्रान्त जनरल): जहां तक कि प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना के उस संशोधन का सम्बन्ध है मैं यह बताना चाहता हूं कि अगर इस संशोधन को रखने की इस कारण से अनुमति नहीं भी दी जाती है कि यह देर से पहुंचा है तो उस हालत में भी तो मसौदा समिति के इस सारे प्रस्ताव का, जो कि सर्वथा एक नया प्रस्ताव है, विरोध किया ही जा सकता है। मैं इसका विचार करने का विचार कर रहा था। मैंने कोई संशोधन नहीं पेश किया है पर सभा में उपस्थित किये गये किसी प्रस्ताव का विरोध करने का अधिकार तो मुझे है ही। यह अधिकार तो नहीं छीना जा सकता है। मेरा ख्याल है कि मैं मसौदा समिति के प्रस्ताव का विरोध कर सकता हूं।

***अध्यक्ष:** इसमें क्या शक है। मसौदा समिति का या अन्य किसी सदस्य के हर संशोधन का यहां विरोध किया जा सकता है और उसे ना पास किया जा सकता है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** इस हालत में बात तो एक ही है। यदि मेरा विरोध सफल होता है तो उसका परिणाम यह होगा कि इस खण्ड की जगह मूल खण्ड रख दिया जायेगा। अगर प्रक्रिया सम्बन्धी प्रयोजनों के लिये आप प्रो. सक्सेना को अपना संशोधन पेश करने की अनुमति देते हैं तो हम उस पर विचार कर सकते हैं क्योंकि इसमें भी मूल खण्ड को ही रखने की बात कही गई है।

***अध्यक्ष:** अगर विरोध सफल होता है तो उसका क्या प्रभाव होगा यह भी एक विचार वाली बात होगी।

सभा अब कल प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हो जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** तो कल क्या आप मुखबन्द (guillotine) प्रयोग में लायेंगे श्रीमान?

***अध्यक्ष:** हां, कल 11 बजे मैं मुखबन्द लागू करूंगा और डॉ. अम्बेडकर को जवाब देने की अनुमति दूंगा। उसके बाद मत लिया जायेगा।

इसके पश्चात सभा बुधवार तारीख 16 नवम्बर सन् 1949 के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. XI.3.49
320

अंक 11
संख्या 3

बुधवार
16 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3613-3701
[अनुच्छेदों का संशोधन–(जारी)]

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 16 नवम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

***अध्यक्षः** हम अब लेंगे.....

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम) मेरा एक औचित्य प्रश्न है। पुनरीक्षित संविधान-प्रारूप हमें उपलब्ध हुआ था उसके पश्चात् शुद्धियों की सूची के रूप में हमें बहुत सी शुद्धियां भेजी गई थीं—वह थी सूची सं. 1, और मैं समझता हूं कि पुनरीक्षित प्रारूप को सदन ने सूची 1 के सुधारों के साथ स्वीकार किया था। उसके पश्चात् उसी दिन, अर्थात् इस मास की 14 तारीख को एक और सूची हमें दी गई थी—वह थी सूची 2। फिर कल एक और बड़ी सूची हमें भेजी गई थी—वह थी सूची 3। इन सूचियों में कुल मिला कर 200 से अधिक परिवर्तन हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या सदन का यह विनिश्चय कि 'संविधान के पुनरीक्षित प्रारूप पर इन शुद्धिसूचियों के साथ विचार किया जाना चाहिये' शुद्धि सूची सं. 2 तथा 3 पर भी लागू होना चाहिये। वे हमारे पास उस समय आई थीं जब कि हम प्रारूप को शुद्धि-सूची सं. 1 के साथ स्वीकार करने का विनिश्चय कर चुके थे। दूसरे शब्दों में, क्या शुद्धि-सूची 2 तथा 3 का पूर्ववर्ती प्रभाव होगा। यदि उनका प्रभाव पूर्ववर्ती होगा तो उनसे बहुत कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी। कुछ संशोधन केवल औपचारिक ही नहीं, वरन् सारवान भी थे। इससे सदस्यों के इस अधिकार पर प्रभाव पड़ेगा कि वे इनके निर्देश से संशोधनों की सूचनाएं दे सकते हैं। वे विनिश्चय के पश्चात् परसों तथा कल भेजे गये थे। इससे बड़ी बात यह है कि मेरे कुछ संशोधन, जिन्हें मैंने पेश नहीं किया था, चुराये गये हैं और उन्हें उन अंतिम शुद्धि-सूचियों में शामिल कर दिया गया है।

***अध्यक्षः** क्या आपको उन शुद्धियों पर भी आपत्ति है जो आपके संशोधनों से चुराई गई हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** नहीं। मैं इसके लिये मसौदा समिति का अत्यन्त आभारी हूं कि उन्होंने मुझे यह सम्मान प्रदान किया है।

---

* इस चिह्न का अर्थ यह है कि यह अंग्रेज़ी वक्तृता का हिन्दी अनुवाद है।

***अध्यक्षः** जैसा कि मुझे पता लगा है, वे शुद्धियां केवल शुद्धियां हैं, उनमें वही बात है जो पहले थी, और जो मुद्रित प्रारूप में मुद्रक की गलती के कारण नहीं आ सकी। मैं समझता हूं कि शुद्धियां वे ही हैं, कुछ और नहीं। अतः सब शुद्धियों को मसौदा समिति द्वारा पेश किये गये संविधान का अंग समझना चाहिये।

अनुच्छेदों का संशोधन–(जारी)

***अध्यक्षः** मैं अब अन्य अनुच्छेदों को जल्दी जल्दी लूंगा, जिनकी सूचना आई है। मैं अब सूची 4 को लेता हूं।

अनुच्छेद 32 पर संशोधन सं 548 है जो मसौदा समिति का संशोधन है।

***एक माननीय सदस्यः** सूची सं. 4?

***अध्यक्षः** हां। हमने सूची 2 को कल समाप्त किया था, और अब मैं सूची 4 के संशोधनों को लूंगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रदेश तथा बरारः जनरल): सूची 3 का क्या हुआ?

***अध्यक्षः** मैं सूची 3 को नहीं ले रहा हूं, क्योंकि वह देर में आई थी।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** किन्तु सूची 3 केवल छोटी-सी सूची है, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** किन्तु सूची 3 समय के पश्चात् आई थी।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, उसमें जरा सी ही देर हुई थी, और क्योंकि हम अधिकांश संशोधनों पर विचार कर रहे हैं अतः उस पर भी कृपया विचार कर लिया जाये।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैं कह चुका हूं मैं किसी संशोधन विशेष को उसके गुणावगुण देख कर पेश करने दूंगा। यदि कोई सदस्य उस पर जोर देगा, किन्तु सूची के रूप में मैं उस सूची को नहीं लूंगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, मेरा मतलब सूची 3 के संशोधन सं. 530 से ही है।

***अध्यक्षः** उस पर हमने कल विचार किया था।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** क्या हम उसे पेश किया हुआ समझ लेंगे?

***अध्यक्षः** हां। अब मैं सूची 4 को तथा अनुच्छेद 32 पर संशोधन सं. 548 को लेता हूं। वह मसौदा समिति का है। मैं देखता हूं कि उस संशोधन पर कोई संशोधन नहीं है। अतः मैं उसे पेश किया हुआ समझ लेता हूं:

"कि अनुच्छेद 32 के खंड (4) में, 'rights' शब्द के स्थान पर 'right' शब्द रख दिया जाये।

फिर अनुच्छेद 48 और संशोधन संख्या 549 है। अब इसी संशोधन में प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना का पेश किया हुआ संशोधन भी आ जाता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत: जनरल): मैं उस संशोधन को वापस लेता हूं।

***अध्यक्ष:** आप उस संशोधन को वापस लेते हैं, और हम उसके स्थान पर इसे स्वीकार करते हैं। सं. 549 इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद में 'for improving the breeds of milch and draught cattle including cows and calves and for prohibiting their slaughter' इन शब्दों के स्थान पर 'for preserving and improving the breeds and prohibiting the slaughter of cows and calves and other milch and draught cattle' ये शब्द रखे जायें।"

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल) क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि अनुच्छेद 106 को तथा उस पर सूची 7 के संशोधन को ले लिया जाये?

***अध्यक्ष:** इसके स्थान पर।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं वह स्वतंत्र है।

***अध्यक्ष:** मैं उसे बाद में लूंगा।

अनुच्छेद 148, संशोधन सं. 551। इस पर एक संशोधन सं. 618 है। मेरे विचार में वही मसौदा समिति का नवीनतम संशोधन है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हां, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** मैं कौन-सा लूं? 618 को ले लूं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** सं. 618 अंतिम संशोधन है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 148 पर तीन संशोधन हैं—551, 552 तथा 553।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हमने उन सबको हटा दिया है और संशोधन सं. 618 ही अन्तिम है।

***अध्यक्ष:** केवल एक ही संशोधन है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हां।

***अध्यक्ष:** और हम अन्य खंडों को वैसे ही रहने दें?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हां श्रीमान।

***अध्यक्ष:** सूची 6 का संशोधन सं. 618।

"कि अनुच्छेद 148 के खंड (5) के स्थान पर, निम्न खंड रख दिया जाये:

'(5) Subject to the provisions of this Constitution and of any law made by Parliament, the conditions of service of persons serving in the Indian Audit and Accounts Department and the administrative powers of the Comptroller and Auditor-General shall be such as may be prescribed by rules made by the President after consultation with the Comptroller and Auditor-General.' "

[(5) इस संविधान के तथा संसद निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारतीय लेखापरीक्षा और लेखा-विभाग में सेवा करने वाले व्यक्तियों की सेवा-शर्तें तथा नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक की प्रशासनीय शक्तियां ऐसी होंगी जैसी कि नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति नियमों द्वारा विहित करे।]

***अध्यक्ष:** इस पर संशोधन सं. 593 है, श्री राज बहादुर का।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन सं. 593 तो गिर जायेगा, श्रीमान। इस संशोधन के कारण वह अब उपयुक्त नहीं रहा है।

***श्री राज बहादुर** (मत्स्य का संयुक्त राज्य): मैं इसे पेश नहीं करना चाहता।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं अनुच्छेद 222 को, तथा मसौदा समिति के संशोधन सं. 555 को लेता हूं। उस पर किसी सदस्य का कोई संशोधन नहीं है।

"कि अनुच्छेद 222 के खंड (1) में, 'The President may' इन शब्दों के पश्चात् 'after consultation with the Chief Justice of India' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***अध्यक्ष:** फिर अनुच्छेद 288—संशोधन सं. 556। यह भी मसौदा समिति का है। इसे कल पेश किया गया था।

अनुच्छेद 319, संशोधन 557।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह भी पेश किया गया था।

***अध्यक्ष:** सं. 558 कल पेश हुआ था, 559 भी। फिर हम अनुच्छेद 347 तथा संशोधन सं. 560 पर आते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रदेश तथा बरार: जनरल): सं. 557 तथा 558 की क्या स्थिति है?

***अध्यक्ष:** वे कल पेश हुए थे। अब हम अनुच्छेद 347, संशोधन 560 पर आते हैं।

"कि अनुच्छेद 347 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

347. *Special provision relating to language spoken by a section of the population of a State*—On a demand being made in that behalf, the President may, if he is satisfied that a substantial proportion of the population of a State desire the use of any language spoken by them to be recognised by that State, direct that such language shall also be officially recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.'"

[347. **किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध:** तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान, आप आगे बढ़ें, उससे पहले क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि मुझे संशोधन सं. 531 पेश करने दिया जाये जो सं. 530 से आनुषंगिक है? मैं उसे सूची 3 में से औपचारिक रूप में ही पेश करूंगा। वह आनुषंगिक संशोधन है, और यदि इसे स्वीकार किया जाये तो वह आवश्यक होगा।

***अध्यक्ष:** मैं उसे पेश किया हुआ समझ लूंगा। जब मतदान का समय आयेगा, तब मुझे स्मरण करवा देना। मैं इसे पेश किया हुआ समझता हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** यह अतिरिक्त अनुच्छेद 340 क के विषय में है।

"कि अनुच्छेद 340 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:—

'340A.(1) The President may, after consultation with the Governor or Rajpramukh of a State, by public notification, specify the castes, communities or parts of, or groups within castes or

[श्री पी.एस. देशमुख]

communities which shall, for the purposes of this Constitution, be deemed to be 'Backward Classes' in relation to that State.

(2) The Parliament may, by law, include in or exclude from the list of Backward Classes, specified in a notification, issued under clause (1) any caste or community or part of or group within any caste or community but save as aforesaid a notification issued under the said clause shall not be varied by any subsequent notification.' "

***माननीय श्री के. सन्तानम** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, यह संशोधन नहीं है, किन्तु यह तो मूल अनुच्छेद को प्रत्यावर्तन है। संशोधन सं. 531 वास्तव में संशोधन नहीं है क्योंकि इसका उद्देश्य मूल अनुच्छेद को बनाये रखना है।

***अध्यक्ष:** यह बात पूर्णत: ठीक नहीं है, कुछ परिवर्तन हैं; यद्यपि साररूप में कोई परिवर्तन नहीं है, तथापि शब्दों में थोड़ा सा अन्तर है।

खैर, फिर हम संशोधन सं. 605 पर आते हैं, और वह श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं इसे पेश नहीं करना चाहता, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 379 ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, हम संशोधन सं. 418 को स्वीकार कर रहे हैं और इस लिये सं. 568 को पेश करना अपेक्षित नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान, अन्तिम प्रार्थना के रूप में मेरा निवेदन है कि मैं केवल एक संशोधन को पेश करने के लिए कुछ आतुर हूं और वह है अनुच्छेद 379 पर संख्या 535 ।

***अध्यक्ष:** नहीं, मैं नहीं समझता कि मैं उस संशोधन को पेश करने की अनुमति दे सकता हूं। यह बिल्कुल नया अनुच्छेद है और उन अनुच्छेदों में जो कुछ है यह उससे बिल्कुल उल्टा है। मैं उसकी अनुमति नहीं दे सकता, मुझे खेद है।

फिर हम अनुच्छेद 388 को लेते हैं, और उस पर संशोधन संख्या 566 है, श्री कृष्णमाचारी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हां ये सब संशोधन संख्या 566 से 570 तक, पेश किये जाते हैं।

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) में, 'the President of the Union' इन शब्दों के स्थान पर, दोनों स्थानों पर जहां वे हैं, 'the President of India' ये शब्द रख दिये जायें।"

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के प्रथम परन्तुक में 'mentioned in this article' इन शब्दों के स्थान पर 'mentioned in this clause' ये शब्द रख दिये जायें।"

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के प्रथम परन्तुक में, 'representing a State' इन शब्दों के स्थान पर 'representing a Province or, as the case may be, a State' ये शब्द रख दिये जायें।"

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'representing a State' इन शब्दों के स्थान पर 'representing a Province or a State' ये शब्द रख दिये जायें।"

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'Legislative Assembly of that State' इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of that Province or of the corresponding State or of that State, as the case may be' ये शब्द रख दिये जायें।"

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 388, संशोधन संख्या 611 और 621 ।

(संशोधन संख्या 611 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रदेश तथा बरारः जनरल): श्रीमान, मैं संशोधन सं. 621, 622 तथा 623 को पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** हां।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 568 के निर्देश से, अनुच्छेद 388 के खंड (1) के प्रथम परन्तुक में 'Part A of' इन शब्दों तथा वर्ण को हटा दिया जाये।"

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 570 के निर्देश से, अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'Part A of' इन शब्दों तथा वर्ण को हटा दिया जाये।"

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 570 के निर्देश से, अनुच्छेद 388 के खंड (1) के दूसरे परन्तुक में, 'the Legislative Assemble of that State' इन शब्दों

[श्री एच.वी. कामत]

के स्थान पर, 'the Legislative Assembly of that Province or of the corresponding State or of that State wherever such Assembly has been constituted' ये शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, ये संशोधन अनुच्छेद 388 के खंड (1) के परन्तुक से पैदा होते हैं। यह परन्तुक उन स्थानों की रिक्तियों को भरने के विषय में हैं जो अनुसूचित जाति, मुस्लिम या सिख सम्प्रदाय के किसी व्यक्ति द्वारा सभा को छोड़ने पर पैदा होंगी।

मुझे तो यह कठिनाई दिखाई देती है। केबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत संविधान सभा के निर्वाचन निर्वाचन-मंडलों के द्वारा होने थे, जिसमें प्रांतीय विधान-मंडलों के सदस्य हैं और अलग मतदाता भी थे जैसे जनरल, सिख और मुस्लिम सम्प्रदाय थे। यह बात मेरी समझ में आ सकती थी यदि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के इस परन्तुक में जो निर्देश हैं वह केबिनेट मिशन योजना में उल्लिखित जनरल, सिख तथा मुस्लिम सम्प्रदायों के लिये होता, जिस योजना के अंतर्गत यह सभा चुनी गई थी। किन्तु श्रीमान, इस परन्तुक में अनुसूचित जातियों, मुस्लिमों तथा सिखों का उल्लेख है, परन्तु जनरल सम्प्रदाय का उल्लेख नहीं है। अनुसूचित जातियों को यहां रख दिया गया है।

अतएव मैं अनुभव करता हूं कि हमने, कुछ हद तक, इस विषय में 1946 के केबिनेट मिशन की योजना को छोड़ दिया है जिसके अधीन यह सभा बनाई गई थी। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि केवल प्रथम अनुसूची के भाग-क में उल्लिखित राज्यों का ही यहां उल्लेख क्यों किया जाये। यदि आप प्रथम अनुसूची को देखें तो आपको पता लगेगा कि उसमें तीन भाग हैं—भाग-क, भाग-ख और भाग-ग। भाग-ग के तीन एककों—अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग तथा दिल्ली—की तो 1946 की केबिनेट मिशन योजना में भी चर्चा थी। अतएव प्रथम अनुसूची के भाग-क के राज्यों में जो बात लागू थी वह भाग 'क' के कम से कम इन तीन राज्यों पर तो लागू होनी ही चाहिये। किन्तु अब भाषा को बदल कर जनरल के स्थान पर अनुसूचित जातियां कर दिया गया है, अतः मेरे विचार में यह अनुच्छेद 388 प्रथम अनुसूची के सब राज्यों पर लागू कर देना चाहिये, चाहे वे भाग 'क' के राज्य हों, चाहे भाग 'ख' के राज्य हों, चाहे भाग 'ग' के राज्य हों। इसी उद्देश्य से मैंने पहले दो संशोधन भेजे हैं (सं. 621 तथा 622), अर्थात् अनुसूचित जातियों, सिख या मुस्लिम जाति के सदस्य द्वारा सभा त्याग करने पर जो भी स्थान रिक्त हो उसे यथासाध्य उसी जाति के सदस्य द्वारा भरा जाना चाहिये। यह प्रथम अनुसूची के भाग-क के राज्यों तक ही सीमित नहीं होना चाहिये, क्योंकि भाग ख में उल्लिखित कई राज्यों में विधान-मंडल हैं, मैसूर में विधान-मंडल है, त्रावनकोर-कोचीन में भी विधान मंडल है: और मध्य भारत में भी, मुझे विश्वास है कि एक

विधान-मंडल है। इसलिये भाग-क के राज्यों पर जो उपबन्ध लागू हैं वे इन राज्यों पर भी लागू होने चाहियें।

मेरे अंतिम संशोधन सं. 623 का भी उसी वस्तुस्थिति से संबंध है जिसका मैंने अभी अभी हवाला दिया है। मसौदा समिति द्वारा सुझाये गये संशोधन में लिखा है कि 'the Legislative Assembly of that State' इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of that Province or the corresponding State or of that State as the case may be' ये शब्द रखे जायें। ये बिल्कुल ठीक है, क्योंकि मसौदा समिति इस अनुच्छेद को प्रथम अनुसूची के भाग क के राज्यों पर ही लागू करना चाहती है। किन्तु मेरा संशोधन इससे भी आगे बढ़ जाता है। वह उसे अधिक व्यापक बना देता है; उससे वह प्रथम अनुसूची के समस्त राज्यों पर लागू हो जाता है, चाहे वे भाग 'क' के राज्य हों, चाहे भाग 'ख' या 'ग' के। हम सबको ज्ञात है कि कुछ राज्यों में कोई विधान-मंडल है ही नहीं। मेरा संशोधन यह है कि यह अनुच्छेद उन समस्त राज्यों पर लागू किया जाये जहां कोई सभा या विधान-मंडल है चाहे वह राज्य प्रथम अनुसूची के भाग क में हो, या ख अथवा ग में हो, और केवल प्रथम अनुसूची के भाग क के ही राज्यों पर लागू नहीं किया जाये।

श्रीमान, मैं संशोधन सं. 621, 622 तथा 623 को पेश करता हूं तथा सदन से उन पर विचार करने की प्रार्थना करता हूं।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 394 पर मसौदा समिति का एक संशोधन (सं. 574) है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 394 में, '60' इस संख्या के पश्चात् '324' यह संख्या प्रविष्ट की जाये, और '388' इस संख्या के पश्चात् '391' यह संख्या प्रविष्ट की जाये।"

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रांत: जनरल): क्यों मैं आपकी अनुमति से संशोधन संख्या 572 के विषय में कुछ कह सकता हूं? क्या मैं मसौदा समिति का ध्यान इस ओर आकृष्ट करके उससे यह पूछ सकता हूं कि क्या उन्होंने 366 को भी अनुच्छेद 392 के उपखण्ड (3) में रखना अपेक्षित नहीं समझा है, क्योंकि अनुच्छेद 366 भी इस संविधान के पारित करने के बाद एकदम लागू हो जायेगा। अनुच्छेद 366 परिभाषाओं के विषय में है किन्तु उसी अनुच्छेद के अन्तर्गत राष्ट्रपति से भी कई कृत्य करने की आशा की जाती है और इसलिये गवर्नर-जनरल को अनुमति होनी चाहिये कि वह 26 जनवरी को इस संविधान के आरंभ से ये कृत्य कर सके।

***अध्यक्ष:** किन्तु अनुच्छेद 366 परिभाषाओं के विषय में है।

***श्री जसपतराय कपूरः** अनुच्छेद 392 के प्रस्थापित खंड के अन्तर्गत यह सुझाव दिया गया है कि राष्ट्रपति को इस अनुच्छेद द्वारा, अनुच्छेद 324 द्वारा, अनुच्छेद 367 के खंड (3) द्वारा और अनुच्छेद 391 द्वारा जो शक्तियां दी गई हैं वे इस संविधान के प्रारंभ से पूर्व भारत अधिराज्य के गवर्नर-जनरल द्वारा प्रयोक्तव्य होंगी। मेरा तो यह निवेदन है कि शायद यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 366 के अधीन जो शक्तियां प्रयोक्तव्य हैं उनके प्रयोग करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को भी अनुच्छेद 392 के खंड (3) के अधीन दे दिया जाये।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 366 के अधीन किसी शक्ति का प्रयोग नहीं होना है—उसमें केवल परिभाषाएं हैं।

***श्री जसपत राय कपूरः** श्रीमान, उसमें शक्तियां भी हैं। क्या मैं आपको उसके खंड(12), (21), (22) तथा (30) का हवाला दे सकता हूं? ये विविध खंड हैं जिनके अंतर्गत राष्ट्रपति से कुछ कृत्यों के करने की आशा की जाती है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 394 के अधीन, अनुच्छेद 366 इस संविधान के पारित होते ही लागू हो जायेगा। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस अनुच्छेद विशेष के विषय में गवर्नर-जनरल को राष्ट्रपति की शक्तियां दी जायें, क्योंकि, जैसा श्रीमान ने स्वयं कहा है, ऐसा कोई कृत्य नहीं है जो इस अनुच्छेद के अंतर्गत गवर्नर-जनरल को करना पड़े। इस अनुच्छेद के खंड (12) का जो विशेष हवाला दिया गया है वह अब लागू नहीं होता क्योंकि खंड (12) को निर्वचन-खंड से हटाकर अलग रख दिया गया है। जहां तक खंड (21), (22) और (30) का सम्बंध है वे ऐसी शक्तियां हैं जो गवर्नर-जनरल द्वारा प्रयोक्तव्य नहीं होंगी और उसे अंतरिम काल में उनका प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी तथा बाद में नया संविधान लागू हो जाने पर राष्ट्रपति शक्ति ग्रहण कर लेगा। मैं नहीं समझता कि मेरे माननीय मित्र के सुझाव में कोई तथ्य है यद्यपि इस ओर ध्यान आकर्षित करने पर मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** श्रीमान, संशोधन सं. 572 में अनुच्छेद 324 शामिल है किन्तु वह अनुच्छेद 394 द्वारा लागू नहीं होता। अतः इसमें यह त्रुटि है।

***अध्यक्षः** संशोधन सं. 574 है जिसमें वह बात आ जाती है जिसे आपने उठाया है।

फिर, प्रथम अनुसूची के संशोधन।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि प्रथम अनुसूची के भाग क में, 'Territories of States' इस उप-शीर्षक के अंतर्गत 'The territory of the State of Bombay...' इन शब्दों से आरंभ

होने वाली तथा 'Extra-Provincial Jurisdiction Act, 1947' इन शब्दों पर समाप्त होने वाली कंडिका को हटा दिया जाये।"

***अध्यक्ष:** इनमें से एक संशोधन पर श्री सिधवा का संशोधन सं. 613 है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरा संशोधन यह है:

"कि संशोधन सं. 575 को हटा दिया जाये।"

जैसा कि हम प्रथम अनुसूची में देखते हैं वहां राज्यों के राज्य-क्षेत्रों का उल्लेख है। पहले खंड में आसाम के राज्य का निर्देश है, उसे रहने दिया गया है। बंगाल के राज्य को रहने दिया गया है। किन्तु तीसरे खंड को, जिसमें बंबई के राज्य का निदेश है, हटया जा रहा है। अन्य राज्यों के विषय में भी उपबंध किया गया है। मेरी समझ में नहीं आता कि बंबई को विशेषत: हटाने के लिये इस संशोधन में क्यों लिखा गया है। उसके स्थान पर कुछ नहीं लिखा जा रहा है, और मुझे आश्चर्य है कि बंबई राज्य का उल्लेख न करने का क्या कारण है। अत: मैंने सोचा कि इसे नहीं हटाना चाहिये जब तक कि कोई विशेष कारण न हो और उसके स्थान पर कुछ रखने का उपबन्ध न किया जाये। मैं अपना संशोधन पेश कर चुका हूं किन्तु मैं मसौदा समिति से यह जानना चाहता हूं कि इस खंड को हटाने में उनका उद्देश्य क्या है। मैं इस पर तब तक टिप्पणी नहीं कर सकता जब तक मैं यह न जान सकूं कि इसे हटाने का उद्देश्य क्या है। मैं तो यही कह सकता हूं कि इसे रहने देना चाहिये।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बंबई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री सिधवा ने संशोधन सं. 575 का निदेश किया है। इसे हटाने का कारण यह है कि अब उसकी आवश्यकता नहीं रही है, क्योंकि भारत सरकार ने समुचित आदेश पारित कर दिये हैं जिससे कि सिरोही के भाग इस अनुसूची के अनुवर्ती भाग के अंतर्गत आ जायेंगे। यह पृष्ठ 182 के ऊपर की चार पंक्तियों में आ जायेगा:

"The territory of each of the other States in this Part shall comprise the territories which immediately before the commencement of this Constitution were comprised in the corresponding Province and the territories which, by virtue of an order made under section 290A of the Government of India Act, 1935, were immediately before such commencement being administered as if they formed part of that Province."

[श्री के.एम. मुन्शी]

[इस भाग के अन्य राज्यों में से प्रत्येक के राज्य-क्षेत्र में वे राज्य-क्षेत्र समाविष्ट होंगे जो इस संविधान के आरंभ से ठीक पहले तत्स्थानीय प्रांत के राज्य-क्षेत्र में तथा ऐसे राज्य-क्षेत्रों में समाविष्ट थे जो कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 290 (क) के अधीन निकाले गये आदेश के आधार पर ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले इस प्रकार प्रशासित थे मानो कि वे उस प्रांत के भाग रहे हों।]

सिरोही का एक भाग अनुसूची के इस भाग के अंतर्गत आयेगा तथा दूसरा भाग पृष्ठ 183 की अंतिम कंडिका के अंतर्गत आयेगा। अतएव इस कंडिका की अंतिम पंक्तियों को रखना आवश्यक नहीं रहा है।

***श्री जयनारायण व्यास** (संयुक्त राज्य: राजस्थान): श्रीमान, एक सूचना चाहता हूं। श्रीमान, क्या सिरोही के नरेश ने या किसी ने कोई संधि पर हस्ताक्षर किये हैं कि सिरोही के दो भाग करके एक भाग को बंबई में और दूसरे को राजस्थान में मिला दिया जाये?

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं नहीं समझता कि यह प्रश्न यहां उपयुक्त है। मैं तो केवल सांविधानिक स्थिति को समझा रहा हूं कि हमने इसे क्यों हटा दिया है। क्या किया गया है यह प्रश्न तो समुचित क्षेत्रों से पूछा जाना चाहिये।

***श्री जयनारायण व्यास:** सांविधानिक रूप में सिरोही को दो भागों में बांटना उचित नहीं है, जब तक कि जनता ऐसा न चाहे। मुझे इस पर आपत्ति है।

***श्री के.एम. मुन्शी:** जैसाकि मैंने कहा है यह भारत सरकार की नीति का प्रश्न है, और माननीय सदस्य को समुचित प्राधिकार के लिये माननीय उपप्रधान मंत्री से पूछना चाहिये। यहां इसका स्पष्टीकरण करना मेरा काम नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरे मित्र श्री मुंशी ने संविधान के पृष्ठ 181 तथा 182 का उद्धरण दिया है। किन्तु उन्होंने जो कुछ कहा है वह अतीव स्पष्ट नहीं है और मैं उनकी बात को समझ नहीं सका।

***अध्यक्ष:** अब राज्य इस कंडिका में उल्लिखित दो श्रेणियों में से एक या दूसरी में आता है। राज्य का एक भाग प्रथम श्रेणी में आता है और दूसरा भाग दूसरी श्रेणी में आता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** आसाम तथा बंगाल के नये प्रदेशों का उल्लेख है किन्तु पंजाब भी नया प्रदेश है, जो विभाजन द्वारा उत्पन्न हुआ है और वह रखा जाना चाहिये। अन्यथा केवल अंतिम खंड रहना चाहिये।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा ने जो प्रश्न उठाया है वह यह है कि बंगाल का उल्लेख क्यों किया गया है जब कि पंजाब का उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि दोनों

ही विभाजन के कारण ही बने हैं। मैं समझता हूं कि पंजाब में आजकल कुछ राज्यों के अंश समाविष्ट हैं और इसलिये वह इस अंतिम कंडिका के अधीन आयेगा जब कि बंगाल के विषय में यह बात है कि बंगाल में कोई राज्य नहीं मिलाया गया है और इसलिये बंगाल का विशेष उल्लेख किया गया है।

***श्री जयनारायण व्यास:** श्रीमान, मैं समझता हूं कि सिरोही के विषय में कुछ आदेश पारित किये गये हैं। चाहे वे आदेश कुछ भी हों, मैं उनके विषय में चिन्ता नहीं करता। किन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि अनुसूची 1 में तीन भाग हैं। भाग 1 में वे क्षेत्र शामिल है जो प्रांत कहलाते हैं, भाग 2 में वे क्षेत्र शामिल हैं जो केन्द्र द्वारा शासित हैं तथा भाग 3 में वे क्षेत्र शामिल हैं जो अब राज्यों के संघ हैं। मैं सिरोही के नाम को इन तीनों भागों में नहीं पाता। अब यह कहने मात्र से कि परदे के पीछे ऐसी ऐसी बात हो गई है इस प्रश्न का हल नहीं होता। सिरोही में आज किसी का शासन नहीं है। हमारे समक्ष जो संविधान पेश किया गया है उसके अनुसार सिरोही भारत में है ही नहीं। वह भाग 1, या 2 या 3 किसी में नहीं है। यदि आप 'Extra-Provincial Jurisdiction Act, 1947' इन शब्दों पर समाप्त होने वाले शब्दों को रखते तो सिरोही बम्बई में शामिल हो जाता। किन्तु इन शब्दों को हटाकर आपने सिरोही को बम्बई से निकाल दिया है, किन्तु उसे आपने भाग 1, या 2 या 3 में नहीं रखा है। इस प्रकार संविधान में एक भूल रह गई है, और मुझे आशा है कि श्री मुन्शी या मसौदा समिति के कुछ सदस्य कृपया इस बात को स्पष्ट करेंगे, जिससे कि मैं आगे बढ़ सकूं।

***अध्यक्ष:** जहां तक मैं समझता हूं, सिरोही का कहीं उल्लेख नहीं है और कई अन्य राज्य भी हैं जिनका कहीं उल्लेख नहीं है, क्योंकि वे किसी न किसी प्रांत में मिला दिये गये हैं। वे राज्य जो प्रांतों में मिला दिये गये हैं अब उन प्रांतों के अंग बन गये हैं। वे राज्य जो कहीं नहीं मिलाये गये हैं भाग ख में अलग दिखाये गये हैं। सिरोही का एक भाग बम्बई में मिला दिया गया है और कुछ भाग अन्य प्रांत में मिलाया गया है और अब इसका कहीं उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। अतएव अब तीसरी कंडिका का अन्तिम भाग लागू नहीं होता। अब उस पर 'प्रांतातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम' लागू नहीं है। मैं तो समझता हूं कि स्थिति ऐसी ही है।

***श्री जयनारायण व्यास:** आप जो कुछ कहते हैं वह मैं समझता हूं, श्रीमान, किन्तु मैं इस स्थिति से अधिक संतुष्ट नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** वह अलग बात है।

***श्री जयनारायण व्यास:** अब श्रीमान, सिरोही का विभाजन कर दिया है। इस समय राजस्थान में सिरोही समाविष्ट नहीं है। मुझे यह पता है। जनता की इच्छा के बिना सिरोही का विभाजन करना सिरोही और राजस्थान के लोगों के साथ तथा

[श्री जयनारायण व्यास]

स्वयं न्याय के साथ ही अन्याय करना है। मैं सरकार के कार्य का, जो परदे के पीछे किया गया है, नरम या प्रबल विरोध करता हूं, कि वह ऐसे समय संविधान में हस्तक्षेप कर रही है जब कि भारत का संविधान बन रहा है और सिरोही का नरेश कुछ कह नहीं सकता है और जब कि सिरोही के लोग बम्बई में मिलाये जाने का विरोध कर चुके हैं। यदि श्री गोकुल भाई जो बम्बई का प्रतिनिधित्व करते हैं और जो एक बार सिरोही का प्रतिनिधित्व करते थे, वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है।

***कंवर जसवन्त सिंह** (संयुक्त राज्य: राजस्थान): श्रीमान, सिरोही के सम्बन्ध में एक गम्भीर स्थिति पैदा हो गई है, जहां तक राजस्थान का सम्बन्ध है। अन्य भारतीय राज्यों के सम्बन्ध में स्थिति यह है कि उनके नरेश संधि-पत्र द्वारा अपने राज्यों को प्रान्तों में या राज्य-संघों में मिलाने के लिये सहमत हो गये हैं; जहां तक सिरोही का सम्बन्ध है, उसका नरेश बालक है और इसलिये उस राज्य से ऐसी संधि नहीं हुई है और इसलिये उसका विभाजन नहीं किया जा सकता और उसे किसी राज्य-संघ या प्रांत में मिलाया नहीं जा सकता। अत: इस प्रकार सिरोही राज्य को समुचित प्रक्रिया या संधि के बिना विभाजित करना अत्यन्त अनियमित है और राजस्थान के साथ बहुत अन्याय किया जा रहा है।

***श्री गोकुलभाई भट्ट** (बम्बई स्टेट्स): सभापति जी, सिरोही का यह मसला कुछ तकलीफ ही दे रहा है और मैं सिरोही के मामले में जो कुछ जानता हूं वह यह है कि करीब एक साल के पहले सिरोही की राजमाता ने, रिजन्सी काउन्सिल की प्रेसिडेन्ट ने सिरोही को सौंप दिया था और सैन्ट्रल गवर्नमेन्ट जैसे उसका कारोबार ठीक समझे, वैसे चलाये। ऐसा भी राजमाता ने यहां लिखकर दे दिया था। उसके बाद सिरोही का कारोबार सैन्टर की ओर से बम्बई सरकार चला रही है। अब सवाल यह आया है कि सिरोही का क्या होने वाला है। और मैं नहीं था, तब शायद यह खुलासा किया गया है कि सिरोही का कुछ हिस्सा बम्बई में जायेगा और बहुत-सा हिस्सा राजस्थान में रहेगा। यह पक्का मालूम नहीं है कि कौन-सा कौन-सा हिस्सा कहां जायेगा तथा माउन्ट आबू का क्या होगा, कोई पक्की बात मेरी जानकारी में नहीं है। कोई पक्की आखिरी बात नहीं हुई है। पर मेरी जानकारी है और मैं मानता हूं कि जो उचित होगा वह हमारे सरदार साहिब और दूसरे बैठकर करेंगे।

***अध्यक्ष:** जो बात गोकुलभाई कह रहे हैं मुन्शी जी ने अभी कहा है कि आर्डर नोटीफिकेशन हो चुका है और जब तक कोई दूसरा नोटीफिकेशन न हो, तब तक यह जिस रूप में आया है, वैसे ही रहना चाहिये। जब और नोटीफिकेशन होगा तभी हट सकता है।

***श्री गोकुलभाई भट्ट:** एक बात साफ है। पिछली मर्तबा सोच रहे थे कि पूरे का पूरा हिस्सा बम्बई में जाना था इस प्रकार का एक सन्देह था। अब पूरा

सिरोही बम्बई में नहीं जा रहा है, कुछ हिस्सा जा रहा है, लेकिन बहुतेरा हिस्सा राजस्थान में रहता है यह बात भी साफ हो जाती है। मुझे पूरी जानकारी नहीं है, इससे मैं इस विषय में ज़्यादा नहीं कह सकता हूं। लेकिन यह ऐसा विषय है जिसमें हमने सिरोही के भाइयों ने कुछ ऐसा भी सोचा है कि आखिर हमारी और राजस्थान की बात ध्यान में रख कर सरदार साहिब जो करेंगे, वह हमें मंजूर होगा।

***श्री राज बहादुरः** (संयुक्त राज्य मत्स्य): क्या मैं कुछ शब्द कह सकता हूं, श्रीमान।

***अध्यक्षः** किन्तु माननीय सदस्यों को याद रखना चाहिये कि हमें साढ़े ग्यारह बजे तक चर्चा समाप्त करनी है।

***श्री राज बहादुरः** श्रीमान, मैं इस विषय पर, जो बहुत समय से राजस्थान के लोगों के मन में उठता रहा है, अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता हूं। जब से सिरोही को केन्द्र प्रशासित क्षेत्र के रूप में बम्बई के प्रशासन के अधीन रखा गया है तभी से राजपूताना की प्रांतीय कांगेस समितियां तथा वहां की अन्य कांग्रेस समितियां ये प्रस्ताव पारित करती रही हैं कि इसे राजस्थान से नहीं छीनना चाहिये और राजस्थान सरकार के प्रशासन के अधीन रखना चाहिये। कल यह खबर थी कि सिरोही का विभाजन कर दिया गया है और उसका एक भाग राजस्थान को तथा दूसरा बम्बई को दे दिया गया है। वास्तव में इस मामले में जनता की इच्छा यह रही है कि माउन्ट आबू के पहाड़ी नगर को उनसे नहीं छीनना चाहिये। माउन्ट आबू उस क्षेत्र में एकमात्र पहाड़ी नगर है और अत्यन्त रमणीक स्थान है, जो वहां के सब लोगों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। राजस्थान की जनता के लिये यही एक स्वास्थ्यवर्धक स्थान है और आरोग्य स्थान है जहां वे जा सकते हैं। इस मामले में माउंट आबू ही ऐसा स्थान है जिस पर दोनों में झगड़ा है। अतएव राजस्थान में रहने वालों को इस पर दुःख तथा आश्चर्य है कि उनसे वह स्थान छीन लिया गया है। किन्तु अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि माउंट आबू राजस्थान में रहेगा या बम्बई में जायेगा। यह अधिक अच्छा होता कि यदि सिरोही के किसी भाग को अलग करना था तो इस सदन के लोगों को समय पर बता देना चाहिये था और जनता को यह मालूम हो जाना चाहिये कि कौन-सा भाग राजस्थान को मिलेगा तथा कौन-सा भाग बम्बई को मिलेगा। इस समय सब कुछ अंधकार में ही है। हम सब इस विषय में अंधकार में हैं और यह वास्तव में आश्चर्य की बात है कि लोगों को बताए बिना और स्थानीय कांग्रेस समिति से पूछे बिना ही यह विभाजन कर दिया गया है। यह दावा किया जाता है कि यह संविधान भारत के तथा उसके अंगों के लोगों की स्वतंत्र इच्छा तथा मर्जी से बना है। मैं नहीं समझता कि यह बात इस सिद्धान्त के अनुरूप होगी यदि सिरोही को, जनता की इच्छाओं का पता लगाये बिना ही विभक्त कर दिया जाये। हमारे मन में हमारे नेता सरदार वल्लभभाई पटेल के लिये बहुत सम्मान है। मैं

[श्री राज बहादुर]

उनसे प्रार्थना करता हूं कि इस मामले में वे कृपया हमारी भावनाओं का ख्याल रखें। यदि कोई आदेश पहले ही पारित किये जा चुके हैं तो मैं चाहता हूं कि इस संविधान को अन्तिम रूप देने से पहले उन पर पुनर्विचार किया जाये तथा उन्हें बदल दिया जाये। सिरोही राज्य माउंट आबू सहित उसी प्रान्त को मिलना चाहिये जिसका उस पर न्याय से अधिकार है, और उन लोगों को मिलना चाहिये जिन्होंने उसे आज की स्थिति को प्राप्त कराया है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि कोई और चर्चा आवश्यक है। मैं श्री मुन्शी से कहूंगा कि वे सदन को बतायें कि सिरोही को किस अधिसूचना के अधीन विभक्त किया गया है जिससे कि सदस्यों का भ्रम मिट सके।

***श्री के.एम. मुन्शी:** ऐसी कोई अधिसूचना नहीं है।

***अध्यक्ष:** यदि कोई ऐसी अधिसूचना नहीं है तो आप संविधान में उसे मान्यता कैसे दे सकते हैं? मैं तो आपकी बात से यह समझा था कि अधिसूचना है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई: जनरल): श्री मुन्शी इसे स्पष्ट नहीं कर पायेंगे। मैं इसे समझता हूं।

राजस्थान के कुछ लोग, जो यहां कांग्रेस की ओर से आये हैं, इस माउंट आबू को सुन्दर स्थल समझते हैं और इस लिये वह कहते हैं कि राजस्थान का उस पर दावा है। भारत में कई सुन्दर स्थल हैं और माउंट आबू को मांगने के लिये वह औचित्य नहीं है। राजस्थान कांग्रेस समिति को आरंभ से ही बता दिया गया था कि सिरोही गुजरात का भाग है और बम्बई को मिलेगा। कांग्रेस समिति ने मंत्रालय से यह झगड़ा आरंभ किया और यह शोर मचाया। उससे पूर्व, जब कि कांग्रेस का वार्षिक सत्र राजस्थान में हुआ था, श्री गोकुल भाई भट्ट, जो सिरोही के मुख्य मंत्री थे, राजस्थान कांग्रेस समिति के भी प्रधान थे। श्री गोकुल भाई भी गुजरात के ही हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या वह गोकुल भाई को चाहते हैं क्योंकि वे राजस्थान कांग्रेस समिति के प्रधान हैं या वे सिरोही को चाहते हैं। वास्तव में वे तो यह चाहते थे कि गोकुल भाई जो स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गये थे, राजस्थान कांग्रेस समिति के भी प्रधान रहें। उनके लिये उन्हें वहां रखना कठिन था जब तक कि सिरोही राजस्थान में न रहे, पर हमारा विनिश्चय यह था कि सिरोही बम्बई में मिलना चाहिये। किन्तु उनकी बात को रखने के लिए हमने कहा कि हम अभी तो सिरोही को केन्द्र के अधीन रख देंगे परन्तु उस पर बम्बई सरकार प्रशासन करेगी। इस प्रकार वह अंत में बम्बई में चला गया। राजस्थान के एक दो भागों में अब भी ऐसे लोग हैं जो बम्बई में मिलना चाहते हैं जैसे डूंगरपुर आदि। वे गुजराती लोग हैं। जब कांग्रेस संघ के समाप्त होने पर यह निश्चय किया गया तब कांग्रेस का वहां के मंडल से संघर्ष हो गया और उसके फलस्वरूप राज्य मंत्रालय से भी संघर्ष हुआ। यहां कांग्रेस की ओर से जो राजस्थान के प्रतिनिधि

आये हैं उन्होंने यह शोर मचाना आरम्भ कर दिया है कि सिरोही राजस्थान में मिलना चाहिये। उन्होंने श्री गोकुल भाई भट्ट को कांग्रेस की प्रधानता से हटा दिया है और मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी पारित कर दिया है।

***श्री जयनारायण व्यास:** सिरोही को राजस्थान में रखने के लिये जितने प्रस्ताव श्री गोकुल भाई भट्ट की प्रधानता में पारित हुए थे उतने बाद में भी नहीं हुए हैं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** मैं नहीं चाहता कि बीच में कोई बाधा डाले। मैं तो यह बताना चाहता हूं कि स्थिति क्या है।

इस लिये अन्त में उनकी बात रखने के लिये हमने पड़ताल करने के लिए एक विशेष पदाधिकारी भेजा था। उसका प्रतिवेदन यह था कि सिरोही का एक भाग विशेष बम्बई में मिलना चाहिये क्योंकि वहां के अधिकांश लोगों ने उसके लिये मांग की है। सिरोही के लोगों में स्वयं मतभेद है, सिवाय उस भाग के जिसे अलग किया जाना है।

अब यदि राजस्थान के लोग चाहते हैं कि सिरोही का एक भाग जिसमें नगर भी शामिल हो उन्हें मिल जाना चाहिये तो हम उनकी बात रखने के लिए तैयार हैं। किन्तु यदि वह चाहते हैं कि सारा सिरोही उन्हें मिले तो उनकी बात मानना असंभव है।

फिर प्रश्न यह है कि वह विभाजन चाहते हैं या नहीं। यदि वे विभाजन नहीं चाहते तो समस्त सिरोही बम्बई प्रदेश को मिलेगा। यदि वे विभाजन चाहते हैं तो उसका एक भाग बम्बई प्रान्त को मिलेगा। एक मानचित्र तैयार कर लिया गया है और संविधान के लागू होने से पूर्व ही आदेश पारित कर दिये जायेंगे। मानचित्र उन्हें दिखाया जा सकता है; वे अब भी आकर कार्यालय में देख सकते हैं। जो सज्जन अभी बोले थे वह सिरोही के नहीं हैं। वे भरतपुर के हैं। वे कहते हैं कि आबू सुखदायक स्थल है। भरतपुर भी समान रूप से सुखदायक स्थान है। अतएव कोई और उसकी मांग नहीं कर सकता। हो सकता है कि उन्हें यह बात पसंद न हो पर तथ्य यह है कि आदेश पहले ही पारित किये जा चुके हैं। उन्हें अभी तक इस लिये रोक लिया गया है क्योंकि इन लोगों का निश्चय ऐसा है। हम अब भी उनकी बात को रखना चाहते हैं, यदि वे युक्तिपूर्ण बात पर सहमत हो जायें। यदि वे नहीं मानते हैं तो सिरोही चला जायेगा, किन्तु जो भी आदेश पारित करने हैं वे संविधान के लागू होने से पूर्व पारित कर दिये जायेंगे। किन्तु सिरोही अलग एकक के रूप में नहीं रहेगा। या तो वह सारा ही बम्बई में चला जायेगा या एक भाग राजस्थान को मिलेगा और एक भाग बम्बई को मिलेगा। यही स्थिति है। यदि सिरोही का विभाजन करना है तो उसका विभाजन उनकी सहमति से किया जायेगा। फिर वह दो भागों में विभाजित हो जायेगा। यदि वे विभाजन नहीं चाहते तो सारा ही बम्बई में चला जायेगा।

***अध्यक्षः** मुझे इस समय इस प्रश्न के गुणावगुण से कोई मतलब नहीं है, सरदार, कि सिरोही.....

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** किन्तु गुणावगुण पर ही चर्चा हो रही थी।

***अध्यक्षः** किन्तु आदेश के साथ।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** किन्तु विभाजन के आदेश तो पहले ही हैं।

***अध्यक्षः** मुझे गुणावगुण से कोई मतलब नहीं है किन्तु मुझे केवल आदेशों से मतलब है। आदेश पारित कर दिये गये हैं, जिससे कि अब जो संशोधन प्रस्थापित है वह उस वस्तुस्थिति का प्रतिनिधि है जिसे राज्य मंत्रालय ने स्वीकार कर लिया है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** हां।

***अध्यक्षः** यदि यह बात है तो संशोधन आ सकता है, परन्तु यदि वह भविष्य में लागू होना है तो संशोधन नहीं आ सकता।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** आदेश तो हैं किन्तु यदि वे चाहें तो संविधान के लागू होने से पूर्व उनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** उस हालत में हम उसे संशोधन के रूप में नहीं ले सकते। यदि हम आदेश को अन्तिम आदेश मान लें, तो यह इसी रूप में पेश हो सकता है जिस रूप में हुआ है। अन्यथा, यदि आदेश नहीं है, तो हम इसे नहीं ले सकते। अतः मैं आपकी बात का मतलब यह समझता हूं कि आदेश पहले ही पारित हो चुके हैं.....

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** हां।

***अध्यक्षः** और सिरोही दो भागों में विभाजित किया जा चुका है, एक भाग बम्बई में चला गया है तथा दूसरा राजस्थान में।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** इन लोगों की बात रखने के ही लिये वह प्रकाशित नहीं किया गया है। आदेश तो है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): हमारे माननीय मित्र सरदार वल्लभभाई पटेल ने जो युक्तियां पेश की हैं वे मेरे विनम्र मतानुसार अधिक वजन वाली नहीं हैं। सिरोही.....

***अध्यक्षः** वह अलग बात है। मुझे भय है कि यहां हमें इस प्रश्न के गुणावगुण से कोई मतलब नहीं है।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या मैं जान सकता हूं कि सिरोही की जनता क्या भाषा बोलती है?

***अध्यक्षः** यह मुझे पता नहीं है किन्तु कई राज्य हैं जो किसी न किसी प्रान्त में मिला दिये गये हैं और उन मामलों में हमने विलय के तथ्य को स्वीकार करके

उसे संविधान में शामिल कर दिया है। यदि सिरोही की स्थिति भी अन्य राज्यों के समान ही हो, जैसे कि सिरोही का किसी राज्य में विलय कर दिया गया है तो हम इस संशोधन को स्वीकार कर सकते हैं। मुझे सरदार पटेल से पता लगा है कि सिरोही को दो भागों में विभक्त करने का आदेश पारित कर दिया गया है, एक बम्बई में चला गया है तथा दूसरा राजस्थान में। तो हम संशोधन को स्वीकार करते हैं। अन्यथा नहीं। हमें इस सदन में इस प्रश्न के गुणावगुण से कोई मतलब नहीं है कि यह ठीक हुआ है या गलत हुआ है।

***कंवर जसवंत सिंहः** उप-प्रधान मंत्री ने केवल यही कहा है कि आदेश फाइल पर हैं। जब तक आदेश जारी नहीं कर दिये जाते हैं तब तक वे लागू नहीं हो सकते। अतएव मेरे मतानुसार इस प्रश्न को इस समय संविधान सभा में नहीं लिया जा सकता। सिरोही के प्रश्न को भविष्य में किसी तारीख तक के लिये स्थगित करना होगा, जब तक कि राजस्थान की जनता की इच्छा को जान लेना चाहिये।

***अध्यक्षः** वे पारित कर दिये गये हैं, मुझे सरदार पटेल से यही पता लगा है।

फिर हम अन्य संशोधनों को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि प्रथम अनुसूची के भाग ख में, 'Territories of States' इस उप-शीर्षक के अंतर्गत कण्डिका के स्थान पर निम्न कण्डिका जोड़ दी जाये:—

'The territory of each of the States in this Part shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the corresponding Indian State, and—

(a) in the case of each of the States of Rajasthan and Saurashtra, shall also comprise the territories which immediately before such commencement were being administered by the Government of the corresponding State, whether under the provisions of the Extra-Provincial Jurisdiction Act, 1947, or otherwise; and

(b) in the case of the State of Madhya Bharat, shall also comprise the territory which immediately before such commencement was comprised in the Chief Commissioner's Province of Panth Piploda.' "

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

[इस भाग में के राज्यों में से प्रत्येक के राज्य-क्षेत्र में वह राज्यक्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी देशी राज्य में समाविष्ट था तथा—

(क) राजस्थान और सौराष्ट्र के प्रत्येक राज्य के विषय में वे राज्य-क्षेत्र भी समाविष्ट होंगे जो तत्स्थानी देशी राज्य की सरकार द्वारा प्रांतातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम 1947 के उपबन्धों के अधीन या अन्यथा ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले प्रशासित थे; तथा

(ख) मध्य भारत के राज्य के विषय में वह राज्यक्षेत्र भी समाविष्ट होगा जो ऐसे आरम्भ से ठीक पहले पन्थ पिपलोदा के मुख्य आयुक्त प्रान्त में समाविष्ट था।]

"कि प्रथम अनुसूची के भाग ग में, 'Territories of States' इस उप-शीर्षक के अन्तर्गत प्रथम दो कंडिकाओं के स्थान पर निम्न कंडिका रख दी जाये:—

'The territory of each of the States of Ajmer, Coorg and Delhi shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the Chief Commissioner's Province of Ajmer-Merwara, Coorg and Delhi, respectively.'"

[अजमेर, कोड़गु और दिल्ली राज्यों में से प्रत्येक के राज्यक्षेत्र में वह राज्य-क्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान में प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमश: अजमेर-मेरवाड़ा, कोड़गु और दिल्ली के मुख्य-आयुक्तों के प्रान्त में समाविष्ट था।]

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 में, प्रविष्टि 8 के स्थान पर, निम्न प्रविष्टि रखी जाये:—

'8. "Central Bureau of Intelligence and Investigation.' "

[8. केन्द्रीय गुप्तवार्ता और अनुसंधान विभाग।]

***अध्यक्ष:** संशोधन सं. 542 । मैं नहीं समझता कि मैं उसे ले सकता हूं। यह बहुत देर में आया है।

षष्ठ अनुसूची

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि कंडिका 3 की उप-कंडिका (1) के खंड (छ) को हटा दिया जाये और शेष खंडों (ज), (झ) तथा (ङ) के वर्ण-नामों को बदलकर (छ), (ज) और (झ) ये वर्ग-नाम क्रमश: रख दिये जायें।"

"कि कंडिका 4 में निम्न उप-कंडिका जोड़ दी जाये:

'(4) The Regional Council or the District Council, as the case may be,

may with the previous approval of the Governor make rules regulating—

(a) The constitution of village councils and courts and the powers to be exercised by them under this paragraph;

(b) the procedure to be followed by village councils or courts in the trial of suits and cases under sub-paragraph (1) of this paragraph;

(c) the procedure to be followed by the District or Regional Council or courts constituted by such Council in appeals and other proceedings under sub-paragraph (2) of this paragraph;

(d) the enforcement of decisions and orders of such councils and courts;

(e) all other ancillary matters for the carrying out of the provisions of sub-paragraphs (1) and (2) of this paragraph.' "

[(4) यथास्थिति प्रादेशिक परिषद् या जिला परिषद् राज्यपाल के पूर्व अनुमोदन से—

(क) ग्राम-परिषदों और न्यायालयों के गठन तथा इस कंडिका के अधीन प्रयोक्तव्य उनकी शक्तियों के;

(ख) इस कंडिका की उप-कंडिका (1) के अधीन व्यवहार-वादों और मामलों के परीक्षण में परिषदों या न्यायालयों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के;

(ग) इस कंडिका की उप-कंडिका (2) के अधीन अपीलों और अन्य कार्यवाहियों में प्रादेशिक या जिला-परिषद् अथवा ऐसी परिषद् द्वारा संगठित किसी न्यायालय द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के;

(घ) ऐसी परिषदों और न्यायालयों के विनिश्चयों और आदेशों के परिपालन के;

(ङ) इस कंडिका की उप-कंडिका (1) और (2) के उपबन्धों को कार्यान्वित करने लिये अन्य सब सहायक विषयों के,

विनियमन के लिये नियम बना सकेगी।

"कि कंडिका 5 की उप-कंडिका (3) में, 'and the Governor may by rules prescribe the procedure to be followed at such trial' इन शब्दों के स्थान

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

पर 'to which the provisions of this paragraph or paragraph 4 apply' ये शब्द रख दिये जायें।"

कि कंडिका 20 की उप-कंडिका (2) के परन्तुक में, 'clauses (e) and (f) तथा (g)' इन शब्दों, कोष्ठकों तथा वर्णों के स्थान पर 'clauses (e) and (f)' ये शब्द, कोष्ठक तथा वर्ण रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** इससे सूची 6 समाप्त हो जाती है। फिर सूची 7 में तीन संशोधन हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि अनुच्छेद 106 में 'Constituent Assembly of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Constituent Assembly of the Dominion of India' ये शब्द रखे जायें।"

"कि अनुच्छेद 348 के खंड (1) में 'shall for the purposes of the said clause be deemed to be the authoritative text thereof' इन शब्दों के स्थान पर 'shall be deemed to be the authoritative text thereof in the English language under this article' ये शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** मैं संशोधन *सं. 615 और 616 को पेश किया हुआ समझ लेता हूं। सं. 630 श्री चालिहा का है।

श्री कुलधर चालिहा (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि सूची 6 के संशोधन सं. 621 में, षष्ट अनुसूची की प्रस्थापित कंडिका (4) की प्रथम तीन पंक्तियों के स्थान पर निम्न शब्द रखे जायें:

(4) That the Governor shall make rules regulating—"

मेरा सारा उद्देश्य यह है कि आदिकालीन समाजों में, जिनके लिये ये अनुसूचियां तैयार की गई हैं, हमें प्रादेशिक तथा जिला परिषदों को नियम बनाने की शक्तियां देने में कुछ अधिक सावधान होना चाहिये। खासी पहाड़ियों जैसे कुछ स्थानों में हमारे यहां शिक्षित व्यक्ति हैं किन्तु नागा पहाड़ियों जैसे स्थानों में लोग साक्षर नहीं

---

*615 कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 75 में, 'Emoluments, allowances' इन शब्दों के पश्चात् 'privileges' शब्द रखा जाये।

616. कि सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 46 में, 'other than the 'Supreme Court' इन शब्दों के स्थान पर 'except the Supreme Court' ये शब्द रखे जायें।"

हैं। इन क्षेत्रों में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो लिख पढ़ सकता हो। जब अंग्रेज यहां थे तब उनका शासन निरंकुश था। किसी न किसी प्रकार यहां से जाते समय वे इन लोगों के दिमाग में यह बात पैदा कर गये कि वे अन्यन्त लोकतंत्रात्मक लोग हैं, वे अपने नियम बना सकते हैं। उन्होंने जाते समय उन्हें ये उमदा विचार दे दिये, और हम जाल में फंस गये हैं, और हम समझते हैं कि वे अत्यन्त लोकतंत्रात्मक हैं, वे स्वायत्तशासी हैं, वे अपने नियम आदि बना सकते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। मसौदा समिति कहती है कि वे राज्यपाल के पूर्व अनुमोदन से नियम बनायेंगे। यह क्यों? राज्यपाल नियम क्यों नहीं बना सकता? ये लोग ऐसा करने के योग्य नहीं हैं। वे ऐसा करना जानते ही नहीं। अतएव मेरा सदा यही विचार रहा है कि षष्ट अनुसूची में राज्यपाल को अधिकाधिक शक्ति होनी चाहिये। हमने प्रादेशिक परिषद् या जिला परिषद् को राज्यपाल के पूर्व अनुमोदन से नियम बनाने की शक्ति दी है। इसके स्थान पर राज्यपाल को नियम क्यों नहीं बनाने देते जिससे कि वहां के सीधे सादे व्यक्तियों के लिये राज्यपाल द्वारा निर्धारित बातों को समझना आसान हो जाये? नियमों को भेजने की बजाय, हम देखते हैं कि वे नियम बनायेंगे और राज्यपाल का अनुमोदन प्राप्त करेंगे। सर्वप्रथम, राज्यपाल की स्थिति बहुत नाजुक होगी और एक बार नियम बन जाने के पश्चात् वह कुछ हद तक उन से बाध्य हो जायेगा, किन्तु यदि आप इसे राज्यपाल पर छोड़ दें तो उसके पास वैधानिक परामर्शदाता होंगे, राजनैतिक परामर्श होंगे, और वह उनके परामर्श से लाभ उठाकर अधिक अच्छे नियम बना सकेगा। मेरा विनम्र संशोधन केवल यही है कि राज्यपाल को नियम बनाने दिया जाये और आदिम लोगों द्वारा इन अत्यन्त कठिन तथा जटिल बातों के नियम बनाने की मुसीबत को हटा दिया जाये, और इसलिये मैं मसौदा समिति से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करके सारी चीज को सरल बना दे। मेरे संशोधन का यही उद्देश्य है, श्रीमान।

हम बहुत गलत पृष्ठभूमि से चल रहे हैं कि आदिम लोग अत्यन्त लोकतंत्रात्मक हैं किन्तु यदि हम प्राणीशास्त्र या सामाजिक शास्त्र की पुस्तकों को पढ़ें तो हमें पता चलेगा कि हवाई तथा दक्षिण अमरीका के अतिरिक्त कहीं भी आदिम समाज में, संसार भर में कहीं भी आदिम जातियों में लोकतंत्र नहीं है, और इसलिये मेरा निवेदन यह है कि हमें उन पर नियम बनाने का भार नहीं डालना चाहिये, हमें राज्यपाल को उनके लिये नियम बनाने का अधिकार देना चाहिये और मैं इस संशोधन को सदन की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे. एम. निकल्स राय** (आसाम: जनरल): श्रीमान, मैं मसौदा समिति के संशोधन का समर्थन करता हूं। मैं श्री चालिहा द्वारा प्रस्तावित संशोधन का विरोध करता हूं। मैंने श्री चालिहा के संशोधन को नहीं देखा है। क्या वह मुद्रित है?

***अध्यक्षः** संशोधन में यही लिखा है कि प्रादेशिक या जिला परिषद् के स्थान पर हम नियम बनाने की शक्ति राज्यपाल को दे दें।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः** श्री चालिहा ने कहा है कि जो क्षेत्र जिला परिषदों द्वारा शासित होंगे उनमें ऐसे व्यक्ति हैं ही नहीं जो इस प्रशासन को चलायेंगे या नियम बनायेंगे। मेरे विचार में वे गलती पर हैं क्योंकि इन जिला परिषदों में केवल छः पहाड़ी जिले हैं। इन पहाड़ी जिलों की स्थिति अन्य आदिम जातीय क्षेत्रों से, जो जिला परिषद् से बाहर हैं, सर्वथा भिन्न है। इन जिला परिषदों को वे लोग चलायेंगे जो बुद्धिमान हैं। इन क्षेत्रों में काफी बुद्धिमान लोग हैं जो इन प्रशासनों को चलायेंगे तथा वे नियम भी बना सकेंगे। उत्तर कचर पहाड़ियां, तथा मिकिर पहाड़ियां जो अधिक उन्नत नहीं हैं जिला पदाधिकारियों के अधीक्षण में होंगी, जो जिला परिषदों के सभापति होंगे, किन्तु अन्य क्षेत्रों में हमें ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जो प्रशासन चला लेंगे। अतः मैं श्री चालिहा के संशोधन का विरोध करता हूं तथा मसौदा समिति के संशोधनों का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहारः जनरल): श्रीमान, मैं एक शब्द जोड़ना चाहता हूं.....

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि हमें इस विषय में और अधिक वादविवाद करना चाहिये। दोनों दृष्टिकोण पेश किये जा चुके हैं और हमारे पास समय की बहुत कमी है। अब तीन संशोधन बच गये हैं जो पेश होने हैं या अन्यथा निबटाये जाने हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या 616 को निबटा दिया गया है, श्रीमान?

***अध्यक्षः** मैंने दोनों को पेश हुआ समझ लिया है। क्योंकि वे ही सब संशोधन हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा उस पर एक संशोधन था। मैंने उसकी सूचना आज सवेरे भेजी थी। मैं अधिक नहीं कहना चाहता, किन्तु केवल.....

***अध्यक्षः** आपका संशोधन कौन-सा है?

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने उसे आज सवेरे दिया था, श्रीमान।

***अध्यक्षः** मैं उसे पेश किया हुआ समझ लूंगा। जैसाकि मैं कह रहा था तीन प्रकार के संशोधन हैं जिन्हें किसी न किसी प्रकार निबटाना होगा। एक प्रकार के संशोधन बंगाल के नाम के विषय में है। मैंने सूची 7 को भी लिया है और मैंने उन्हें पेश किया हुआ समझ लिया है।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन 628 के निर्देश से, क्या मैं पूछ सकता हूं कि मसौदा समिति को 'डोमीनियन' शब्द से इतना प्रेम क्यों हो गया है और वे उसे बार-बार क्यों दोहरा रहे हैं?

***अध्यक्ष:** खैर, आप चाहें तो उन्हें रद्द कर सकते हैं। तीन संशोधन एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं जिनका आशय यह है कि बंगाल का नाम "पश्चिमी बंगाल" होना चाहिये। एक संशोधन तो यह है। फिर दूसरा संशोधन है, जिसका मैंने कल उल्लेख किया था, वह प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना का है और अनुच्छेद 348 खंड (3) के विषय में है। क्या आप उसे पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत: जनरल): मैं पहले ही पेश कर चुका हूं।

***अध्यक्ष:** मैं उसे पेश किया हुआ समझूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह 629 में आ जाता है श्रीमान।

***अध्यक्ष:** आ जाता है। बहुत अच्छा है। फिर उसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। फिर एक संशोधन श्री ए.वी. ठक्कर का था। उसके विषय में मसौदा समिति की क्या स्थिति है?

***श्री पी.टी. चक्को** (त्रावणकोर तथा कोचीन का संयुक्त राज्य): यदि उस संशोधन को पेश करने दिया जाता है तो मैं औचित्य प्रश्न उठाता हूं। यह हम लोगों के लिये आश्चर्य है जो उनमें उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधि हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तावक एक सारवान मामला पेश कर रहा है जो न आवश्यक है और न आनुषंगिक ही है.....

***अध्यक्ष:** वे केवल मध्य भारत के विषय में पेश करना चाहते हैं अत: आप पर प्रभाव नहीं पड़ता।

***श्री पी.टी. चक्को:** तो फिर मैं अपनी बात पर जोर नहीं देता।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): जिस समय प्रांतों के नाम रखे जा रहे थे तब आदिम जातियां जिनको यह लाभ प्राप्त होगा कि उनके विभाग का भार-साधक विशेष मंत्री होगा, अर्थात् 1947 में उन राज्यों का काई जिक्र नहीं था। वे बाद में संघ में शामिल किये गये हैं; वे अनुसूची के विभिन्न भागों में मिला दिये गये हैं या लुप्त कर दिये गये हैं; और उन राज्यों में, जिनमें बहुत-सी आदिम जातियां थीं, ये चार संघ हैं—मध्य भारत, राजस्थान, त्रावनकोर-कोचीन और विंध्य प्रदेश, किन्तु राज्य मंत्रालय इस बात से सहमत है कि इसे मध्य भारत के लिये ही स्वीकार किया जाना चाहिये क्योंकि उनसे एक संधि पर हस्ताक्षर किये गये हैं और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया है। अतएव मेरा सुझाव है कि मध्य भारत का राज्य अनुच्छेद 164 में जोड़ दिया जाये, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** एक और संशोधन है। श्री कृष्णमाचारी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि संशोधन के भाग 16 में, 'minorities' शब्द के स्थान पर, जहां भी वह हो, 'certain classes' ये शब्द रखे जायें।"

श्रीमान कई माननीय सदस्यों ने इस भाग के शीर्षक में 'minorities' शब्द के प्रयोग पर और अन्यत्र इस शब्द के आनुवंशिक प्रयोग पर भी आपत्ति की है। अतएव इस शब्द को हटाने का और 'minorities' शब्द के स्थान पर 'certain classes' इन शब्दों को रखने का विनिश्चय किया गया है। मुझे एक और संशोधन भी रखना है।

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 67 में, 'records' शब्द के पश्चात् 'and archaeological sites and remains' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

इसका उल्लेख समवर्ती सूची में है। किन्तु जहां तक केन्द्र को यह शक्ति है कि वह विधि द्वारा किसी पुरातत्वीय स्थानों तथा अवशेषों को तथा प्राचीन स्मारकों को केन्द्र के अधीन घोषित कर सकता है, उस विषय में यह बात कहनी रह गयी थी जिसे अब ठीक किया जा रहा है। अतएव मुझे विश्वास है कि आप इस संशोधन को पेश करने की अनुमति देंगे और सदन उसे स्वीकार कर लेगा।

अध्यक्ष महोदय, मैं आपसे तथा सदन से इस बात की क्षमा मांगना चाहता हूं कि मैंने इस संशोधन को इतनी देर में पेश करने का साहस किया है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान अनुच्छेद 367 के विषय में संशोधन सं. 562-क की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो कल पेश किया गया था। अनुच्छेद 367 के उप-खंड (3) के संबंध में इस संशोधन का प्रथम भाग यह है:—

"इस संविधान के प्रयोजनों के लिये 'Foreign State' से अभिप्रेत है ऐसा देश जो संघ के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के बाहर हो।"

उस समय कुछ माननीय सदस्यों ने, विशेषत: मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम ने कहा था कि भाषा अधिक सुखद नहीं थी। इस प्रश्न पर और विचार किया गया है और हमारे वैधानिक परामर्शदाता का सुझाव है कि 'which is outside the territorial jurisdiction of the Union' ये शब्द हटा दिये जायें तथा 'Other than India' ये शब्द रख दिये जायें। खंड का प्रभावी भाग संशोधन के स्वीकृत हो जाने पर से बन जायेगा:—

"(3) For the purposes of this Constitution, 'Foreign State' means any State other than India."

[(3) इस संविधान के प्रयोजन के लिये 'विदेशी राज्य' से अभिप्रेत है भारत से भिन्न कोई राज्य]

परन्तुक में भी, मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम की आपत्ति को स्वीकार कर लिया गया है। तथा 'country' शब्द के स्थान पर दोनों जगह 'State' शब्द रख दिया जायेगा। माननीय सदस्यों के लाभ के लिये मैं खंड को संशोधित रूप में पढ़ दूंगा।

***डॉ. बख्शी टेक चंद** (पूर्वी पंजाब: जनरल): इन संशोधनों को घुमाया नहीं गया है; हम माननीय सदस्य की बात को सुन भी नहीं पाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है। मैं इसे फिर पढ़ दूंगा:—

"(3) For the purposes of this Constitution, foreign State' means any State other than India:—

Provided that, subject to the provisions 'of any law made by Parliament, the President may by order declare any State not to be a foreign State for such purposes as may be specified in the order."

[(3) इस संविधान के प्रयोजनों के लिये 'विदेशी राज्य' से अभिप्रेत है भारत से भिन्न कोई राज्य:

परन्तु संसद-निर्मित किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति आदेश द्वारा किसी राज्य का विदेशी राज्य न होना ऐसे प्रयोजनों के लिये, जैसे कि आदेश में उल्लिखित किये जायें, घोषित कर सकेगा।]

एक और बात है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है, श्रीमान। अनुच्छेद 164 के संशोधन सं. 463 में, एक आनुषंगिक परिवर्तन करना होगा क्योंकि बंगाल का नाम बदल कर पश्चिमी बंगाल करने के लिये एक संशोधन पेश किया गया है। वह संशोधन सदन के अनुमोदन से किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** आपने प्रविष्टि सं. 67 में संशोधन पेश कर दिया है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हां, पेश कर दिया है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मेरा एक संशोधन है जो संविधान के अनेक अध्यायों के पुनर्प्रबन्ध के विषय में है, सूची 1 में संशोधन सं. 430। इसे पेश किया हुआ समझना चाहिये; मैं सदन का समय नहीं लेना चाहता।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में इससे सारी ही चीज़ का पुनर्प्रबन्ध हो जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** केवल संख्या निश्चित करना, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** केवल संख्या ही नहीं, पुनर्प्रबन्ध भी।

***श्री एच.वी. कामत:** आप उसे पेश किया हुआ समझ लें या नियम-विरुद्ध घोषित कर दें। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, श्रीमान कि मुझे आप सूची 1 के संशोधन सं. 207 तथा 197 को औपचारिक रूप में पेश करने दें। एक केन्द्रीय संसद के उच्च सदन के विषय में है: कि 'Councial of States' के स्थान पर 'Chamber of States' यह नाम रखा जाये। मैं केवल उन्हें औपचारिक रूप में पेश करूंगा।

***अध्यक्ष:** यह किसी संशोधन से पैदा नहीं होता।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं आपकी विशेष अनुमति चाहता हूं, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** नहीं। मैं इसकी अनुमति नहीं दूंगा, और 430 की भी नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** संशोधन 197, श्रीमान, मंत्रियों के संयुक्त और वैयक्तिक उत्तरदायित्व के विषय में है और केवल सामूहिक उत्तरदायित्व के विषय में ही नहीं।

***अध्यक्ष:** वह किसी संशोधन से पैदा नहीं होता। मैं इनमें से किसी की अनुमति नहीं दूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, एक महत्वपूर्ण संशोधन पर अब तक निश्चय नहीं हो पाया है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है सदस्य इस बात पर सहमत नहीं हैं कि संयुक्त प्रान्त का क्या नाम रखा जाये। इसलिये मैं आपकी अनुमति से औपचारिक रूप में निम्न संशोधन पेश करना चाहता हूं, जिससे कि संयुक्त प्रान्त तथा संभवत: बंगाल के नाम के विषय में विनिश्चय करने में कोई कठिनाई न हो, क्योंकि बंगाल के सदस्य भी 26 जनवरी से पूर्व अपने प्रान्त का नाम बदलता चाहते हैं। यदि आप अनुमति दें तो, श्रीमान मैं यह संशोधन पेश करना चाहता हूं:

"कि एक नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'Notwithstanding anything in article 3, the Constituent Assembly of India, before the commencement of this Constitution, may by resolution alter the name of any State.' "

मैं जानता हूं, श्रीमान, माननीय सदस्य इस बात के लिये उत्सुक हैं कि किसी राज्य का नाम उनकी सहमति के बिना नहीं बदला जाये और इसलिये मैं इस

संशोधन में यह रख रहा हूं कि इस संविधान के लागू होने से पहले संविधान सभा के संकल्प द्वारा कोई नाम परिवर्तन किया जा सकता है। मैं समझता हूं कि हम 26 नवम्बर तक ही नहीं बैठ रहे हैं, वरन हमें एक बार जनवरी में भी समवेत होना पड़ेगा जबकि राष्ट्रपति का चुनाव होगा और शायद कोई अन्य कार्य भी हो। यदि अब और तब के बीच में इस विषय में सदस्यों में कोई समझौता हो जाये, तो सदन द्वारा स्वीकृत किसी संकल्प द्वारा नाम बदला जा सकता है। अन्यथा अनुच्छेद 3 में उल्लिखित लम्बे चौड़े तरीके से ही नाम बदला जा सकता है। आपकी अनुमति हो तो इसे पेश किया हुआ समझ लिया जाये।

अनुच्छेद 394 में भी एक छोटा-सा संशोधन करना पड़ेगा जिसका आशय यह है कि 392 के पश्चात् 392-क की संख्या रख दी जाये जिसका अर्थ यह होगा कि मैंने अभी जिस संशोधन का उल्लेख किया है वह उसी दिन से लागू हो जाये जिस दिन यह संविधान पारित हो।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अनुच्छेद 391 में वह बात आ जाती है जो मेरे मित्र ने उठाई है। यदि समझौता हो जायेगा तो राष्ट्रपति केवल एक आदेश पारित कर देगा और यह बात प्रारम्भ से पहले ही की जा सकती है।

***श्री जसपतराय कपूर:** मैंने इस प्रश्न पर वैधानिक परामर्शदाताओं से राय ली है और उनका मत यह है कि 391 के अधीन यह नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा किया जा सके तो किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है, किन्तु मुझे परामर्श दिया गया है। कि 391 भारत शासन अधिनियम के संशोधन के विषय में है जो बहुत लम्बा चौड़ा उपाय है।

***अध्यक्ष:** यदि आपका संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा तो इसका अर्थ यह होगा कि यहां तृतीय पठन में जो संविधान स्वीकृत होगा उसे, जहां तक नाम का सम्बन्ध है, इस सदन के संकल्प द्वारा ही संशोधित किया जा सकता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** इसके लिये तृतीय पठन के पश्चात् भी सत्र करना पड़ेगा। मैं नहीं समझता कि इसकी अनुमति मिलनी चाहिये।

***श्री मोहन लाल गौतम:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): सदन के समक्ष वास्तविक प्रश्न यह है कि संयुक्त प्रान्त का नाम बदलना है और हम अभी तक कोई निश्चय नहीं कर पाये हैं और हम चाहते हैं कि संविधान के आरम्भ से पहले ही, अर्थात् 26 जनवरी से पूर्व ही नाम बदल देना चाहिये। सदन के समक्ष यही प्रश्न है। मेरा सुझाव यह है कि सभा से यह कहने के बजाय कि वह नाम बदलने के लिये पुन: समवेत होकर संकल्प पारित करे जो कि लम्बा चौड़ा उपाय है और इसलिये मेरे विचार में वांछनीय नहीं है, राष्ट्रपति को शक्ति दे दी जाये कि वह

[श्री मोहन लाल गौतम]

प्रान्तीय सरकार की सिफारिश पर संयुक्त प्रान्त का नाम बदल सके। यह बहुत सीधा-सादा प्रश्न है। नाम को बहुत पहले बदला जा सकता था। यदि प्रान्तीय सरकार उसका नाम अब तक बदल चुकी होती तो यह निश्चित बात हो जाती और कोई उस पर आपत्ति नहीं की जाती, किन्तु अब यह हमारे समक्ष है और क्योंकि अभी तक यू.पी. नाम चल रहा है अतः हम इस पर चर्चा कर रहे हैं। अतएव मेरा निवेदन यह है कि प्रांत की सिफारिश पर, अर्थात् प्रांतीय सरकार की सिफारिश पर, राष्ट्रपति उसे स्वीकार कर ले तथा सदन को इस प्रयोजन के लिये समवेत न होना पड़े। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाये तो मसौदा समिति इस आशय का समुचित संशोधन रख सकती है।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** मेरे विचार में तृतीय पठन के पारित होने तक काफी समय शेष है—अब और तृतीय पठन के अन्त के बीच इस प्रश्न का निश्चय हो सकता है।

***अध्यक्षः** पंडित भार्गव का सुझाव है कि अब भी 25 तारीख तक सदस्यों के लिये इस प्रश्न पर समझौता करने के लिये काफी समय है। यदि वे इस पर सहमत हैं तो ऐसा किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बईः जनरल): मेरे विचार से यह कठिनाई आसानी से दूर की जा सकती है यदि यह सभा 26 नवम्बर को अपना सत्र समाप्त करने से पहले एक अधिनियम पारित करके भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 290 को संशोधित कर दे, जिससे गवर्नर-जनरल को यह भी शक्ति मिल जाये कि प्रांत का नाम भी बदल सके, जिससे कि राष्ट्रपति अनुच्छेद 391 के अन्तर्गत कार्यवाही करके अनुसूची को संशोधित कर सके जिससे कि गवर्नर-जनरल द्वारा भारत-शासन अधिनियम के अधीन की गई कार्यवाही को पूरा किया जा सके। इस पर कुछ मिनट से अधिक नहीं लग सकते। मसौदा-समिति या गृह-विभाग के लिये यह सम्भव होगा कि वह इस सभा के समक्ष भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 290 में परिवर्तन करने के लिये एक विधेयक पेश कर सके। ऐसा विधेयक 26 जनवरी से पूर्व पारित किया जा सकता है।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** हमें नाम बदलने पर आपत्ति नहीं है, केवल 'आर्यवर्त्त' पर आपत्ति है। इसी प्रकार हम गवर्नर-जनरल को भी अनुमति नहीं दे सकते कि वह नाम बदल कर 'आर्यवर्त्त' कर सके।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आर्यवर्त्त नाम नहीं रखा जा सकता क्योंकि दल ने उसके विषय में निर्णय कर दिया है। मुझे विश्वास है कि बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन ने यह बात समझ ली होगी।

***माननीय पंडित गोविंद वल्लभ पंत** (संयुक्त प्रांतः जनरल): आपने जो नाम अस्वीकार कर दिया है उसे संयुक्त प्रांतीय सरकार पेश नहीं करेगी तथा गवर्नर जनरल भी स्वीकार नहीं करेगा। इसे हम सब जानते हैं।

***अध्यक्ष:** तो फिर अभी कुछ नहीं करना है।

***माननीय पंडित गोविंद वल्लभ पंत:** यदि यह समझ लिया जाये कि डॉ. अम्बेडकर ने जिस संशोधक विधेयक का सुझाव दिया है वैसा विधेयक हमारे विसर्जन से पूर्व पारित कर दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** यह तो डॉ. अम्बेडकर को कहना है।

***श्री ए. थानु पिल्ले** (त्रावनकोर तथा कोचीन का संयुक्त राज्य): वह तो इस सदन को विनिश्चय करना है। उस प्रांत के लोग उसे 'भारत हृदय' कहना चाहें यह सम्भव है। हम उसे स्वीकार नहीं करेंगे। समस्त भारत के लिये इसका महत्व है कि उसके किस भाग को किस नाम से पुकारा जाये।

***अध्यक्ष:** जब संशोधक विधेयक आये तब आप उसका विरोध कर सकते हैं। इस समय कुछ नहीं करना है।

***श्री महावीर त्यागी:** मुझे भय है कि अब भी एक गम्भीर कमी शेष है। अनुच्छेद 394 में लिखा है कि अनुच्छेद 5, 6, 7 आदि एक दम लागू हो जायेंगे। इनमें अनुच्छेद 397 भी शामिल है जो ऐसे सदस्यों के सम्बन्ध में है जो प्रांतीय सभाओं के भी सदस्य हैं और उसमें लिखा है कि उनकी सदस्यता इस संविधान के आरम्भ पर समाप्त हो जायेगी। अब यदि अनुच्छेद 394 के अनुसार, अनुच्छेद 379 पर तत्काल अमल होना है तो दोहरी सदस्यता एक दम समाप्त हो जायेगी। किन्तु तत्काल प्रभावी होने वाले संविधान में लिखा है कि इस संविधान के आरम्भ पर जिसका अर्थ यह है कि 26 जनवरी 1950 के दिन दोहरी सदस्यता समाप्त हो जायेगी। शब्द ये हैं "इस संविधान के प्रारम्भ से लेकर संविधान सभा में ऐसे सदस्य का स्थान, यदि उसका उस सभा का सदस्य होना इससे पहले ही समाप्त न हो गया हो, रिक्त हो जायेगा तथा प्रत्येक ऐसी रिक्तता आकस्मिक रिक्तता समझी जायेगी।" दोनों अनुच्छेद एक दूसरे से समानान्तर हैं और 'notwithstanding' शब्द द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं और उनका आशय एक-दूसरे से विपरीत है। मैं जानना चाहता हूं कि सदस्यता एक दम समाप्त हो जायेगी या 26 जनवरी को समाप्त होगी।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि उसका यह निर्वचन हो सकता है। सदस्यता 26 जनवरी से पूर्व समाप्त नहीं होगी।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): मैं जानना चाहता हूं, श्रीमान, क्या मसौदा समिति का संशोधन सं. 618 पेश किया जा चुका है।

***अध्यक्ष:** हां, वह पेश कर दिया गया है।

अब हम सब संशोधनों को समाप्त कर चुके हैं, और व्यापक चर्चा के लिये अब समय नहीं है। किन्तु वास्तव में जो भी चीज पेश हुई तथा जिस पर वाद-विवाद

[अध्यक्ष]

की आवश्यकता थी उस पर हम सब चर्चा कर चुके हैं। अतः मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि वे विविध संशोधनों पर वाद-विवाद का उत्तर दें।

***श्री राज बहादुरः** श्रीमान, मैं केवल एक बात कहना चाहता हूं। क्या मैं प्रार्थना कर सकता हूं कि सिरोही विषयक आदेश सदन के समक्ष रख दिया जाये जिससे हम यह जान सकें कि उसमें क्या है, और यह सभा उसका अनुमोदन या समर्थन कर सकती है या नहीं, या उस पर किसी प्रकार ध्यान दे सकती है या नहीं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि यह ऐसा मामला है जो इस सदन में आ सके। यह दूसरे सदन के लिये है। इस सदन के लिये नहीं, डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, अपने उत्तर में मेरा विचार कुछ अनुच्छेदों को लेने का है जिन पर सभा के सदस्यों ने अधिक आलोचना की है। हां, मेरे लिये प्रत्येक अनुच्छेद पर कुछ कहना असंभव है जिसका निर्देश सदस्यों ने अपने भाषणों में किया है। अतः मैं अधिक महत्वपूर्ण अनुच्छेदों पर ही कुछ कहूंगा जिनके विरुद्ध गम्भीर आपत्तियां उठाई गई हैं।

मैं अनुच्छेद 22 से आरम्भ करता हूं। वाद-विवाद के सुनते समय मैंने देखा कि इस अनुच्छेद 22 को तथा मसौदा समिति द्वारा संशोधित उसके उपबन्धों को ठीक प्रकार समझा नहीं गया है, अतः मैं ठीक-ठीक बताना चाहता हूं कि इसका उद्देश्य क्या है। मसौदा समिति द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 22 के उपबन्धों में निम्न महत्वपूर्ण बातें हैं।

सर्वप्रथम, निवारक निरोध का प्रत्येक मामला विधि द्वारा प्राधिकृत होना चाहिये। यह बात कार्यपालिका की इच्छा पर नहीं हो सकती।

दूसरी बात यह है कि तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये जो निवारक निरोध हो उसका प्रत्येक मामला न्यायिक मंडली के समक्ष पेश किया जायेगा, जब तक कि वह ऐसा मामला न हो जिसमें संसद, खंड (7), उप-खंड (क) के अधीन विधि द्वारा निर्धारित करे कि उसे न्यायिक मंडली के समक्ष पेश न किया जाये जिसे तीन महीने से अधिक निरोध का प्राधिकार हो।

तीसरी बात यह है कि प्रत्येक मामले में चाहे वह न्यायिकमंडली के समक्ष पेश होने वाला मामला हो या न हो, संसद निरोध की अधिकतम कालावधि को निश्चित करेगा ताकि कोई व्यक्ति, जो निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के अधीन निरुद्ध हो, अनिश्चित काल के लिये निरुद्ध किया जा सकता है। सदा निरोध की अधिकतम कालावधि तो होगी ही जो संसद को विधि द्वारा निर्धारित करनी पड़ेगी।

चौथी बात यह है कि जो मामले अनुच्छेद 22 के अधीन न्यायमंडली के सामने जाने चाहिये, उनमें मंडली जो प्रक्रिया बरतेगी उसका निश्चय संसद करेगी। मैं चाहता

हूं कि सदन मसौदा समिति द्वारा संशोधित रूप में इस नये अनुच्छेद 22 के उपबन्धों पर मूल अनुच्छेद 15क की तुलना में विचार करे। यह पता लगेगा कि मौलिक अनुच्छेद 15क पर दो आपत्तियां की गई हैं। एक यह थी कि 4(क) निरोध की उस अधिकतम कालावधि के अन्तर्गत नहीं दिखाई देता जो खण्ड (7) के अधीन निश्चित की जायेगी। खण्ड 4(क) स्वयं स्वतन्त्र प्रतीत होता है, खण्ड (7) से स्वतन्त्र। दूसरी त्रुटि यह थी कि निरोध के आधारों को बताने की आवश्यकता वाली शर्त उन लोगों पर लागू नहीं होती जो 4(क) के अधीन निरोधित हों। अब यह पता चलेगा कि अनुच्छेद 22 के वर्तमान खंड (4) से ये दो त्रुटियां दूर हो जाती हैं जो 15क के मौलिक मसौदे में थीं।

अनुच्छेद 22 में कुछ संशोधन करने के बावजूद भी, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी की वक्तृता से पता लगता है कि उन्हें अब भी इस अनुच्छेद से कुछ शिकायत है। कल वक्तृता देते समय उन्होंने कहा कि निवारक निरोध विधि के प्राधिकार के बिना किया जा सकता है, और दूसरी बात, अब भी ऐसे मामले हैं जिन्हें न्याय-मंडली में जाने की आवश्यकता नहीं हैं। उनकी प्रथम टिप्पणी के विषय में मैं सादर यह कहना चाहता हूं कि वे बहुत गलती पर हैं। यद्यपि निवारक निरोध सामान्य विधि के अधीन निरोध से भिन्न है, फिर भी निवारक निरोध विधि के ही अधीन होगा। वह कार्यपालिका की इच्छा पर नहीं हो सकता। वह बात पूर्णतः स्पष्ट है। उन्होंने जो दूसरी टिप्पणी की है कि नये अनुच्छेद में कुछ मामले न्याय-मंडली के क्षेत्र से बाहर रहेंगे, उसके विषय में मैं स्वीकार करता हूं कि यह बात ठीक है। किन्तु मैं यह भी कहता हूं कि ऐसा विभेद करना आवश्यक है, क्योंकि ऐसे निरोध के मामले भी हो सकते हैं जिनमें कि परिस्थितियां ऐसी गम्भीर हों और परिणाम ऐसे भयानक हों कि किसी व्यक्ति विशेष के निरोध विषयक तथ्यों को न्याय-मंडली के सदस्यों को भी जानने देना अभीष्ट नहीं होगा। ऐसे तथ्यों का बताना राज्य के अस्तित्व के लिये महान खतरा हो सकता है। निस्सन्देह, वे यह बात समझ जायेंगी कि अन्तिम कोटि के व्यक्तियों के लिये भी, जो न्याय-मंडली के हस्तक्षेप के बिना, तीन मास से अधिक निरुद्ध किये जायेंगे, दो विशेष परिस्थितियां हैं। पहली बात यह है कि ऐसे मामले संसद द्वारा परिभाषित होंगे। उन पर कार्यपालिका मनमाना निर्णय नहीं करेगी। सरकार को किसी व्यक्ति को तीन मास की कालावधि से अधिक निरुद्ध करने का अधिकार उन्हीं मामलों में होगा जिनमें कि संसद यह उपबन्ध कर दे कि वे मामले न्याय-मंडली में नहीं जायेंगे। किन्तु यह समझना अधिक महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक मामले में, विधि द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि निश्चित होगी चाहे वह मामला न्याय-मंडली के समक्ष जाने वाला हो या न हो।

मेरे विचार से इन संशोधनों के सम्बन्ध में जो मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 22 में सुझाये हैं, अनुच्छेद 14क के उपबन्धों की मौलिक कठोरता में बहत सुधार कर दिया गया है। श्रीमान, अनुच्छेद 22 के विषय में मैं जो कुछ कहना अपेक्षित समझता हूं वह कह चुकने के पश्चात, मैं अनुच्छेद 373 को लूंगा, क्योंकि उसका अनुच्छेद 22 से गहरा सम्बन्ध है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अनुच्छेद 373 पर बहुत आलोचना हुई है तथा कुछ सदस्यों ने ऐसे अनुच्छेद को संविधान में रखने के औचित्य पर भी चुनौती दी है। किन्तु उसके उत्तर में, मैं सदस्यों का ध्यान इस प्रश्न की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। यदि इस अनुच्छेद को संविधान में नहीं रखा जायेगा तो क्या होगा? मेरे विचार में यह सर्वथा स्पष्ट है कि यदि इस अनुच्छेद 373 को संविधान में नहीं रखा जायेगा तो यह होगा, कि निवारक निरोध के अधीन सब व्यक्तियों को 26 जनवरी 1950 को छोड़ दिया जायेगा, यदि उस दिन तक वे तीन मास का निरोध पूरा कर चुके हैं जो अनुच्छेद 22 के अधीन संभव है और यदि संसद अनुच्छेद 22 के खंड (7) के अधीन ऐसी विधि पारित न कर सके जिसके अधीन अधिक लम्बे समय तक निरोध किया जा सके। प्रश्न यह है: क्या यह परिणाम अभीष्ट है? क्या यह अभीष्ट है कि विद्यमान विधि के अधीन निरुद्ध सब व्यक्तियों को 26 जनवरी के दिन छोड़ दिया जाये केवल इस कारण कि संसद अधिक काल तक निरोध करने की विधि 26 जनवरी 1950 को ही बनाने में समर्थ नहीं हो सकेगी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह अत्यन्त हानिकारक बात होगी। अतएव यह देखते हुए कि संसद के लिये एकदम या 26 जनवरी से पूर्व समवेत होकर ऐसी विधि बनाना असंभव है जो उसी दिन लागू हो जाये, यह बात देखते हुए, यह आवश्यक है कि संविधान के अधीन किसी प्राधिकारी को ऐसा काम करने की शक्ति देना चाहिये जो अनुच्छेद 22 के उपबंधों को पूर्णत: क्रियान्वित करने के लिये संसद को करना चाहिये। संविधान के अधीन ऐसा अधिकारी कौन है? स्पष्ट है कि वह राष्ट्रपति है। राष्ट्रपति ही ऐसा प्राधिकारी है जो 26 जनवरी को या उससे पूर्व विद्यमान होगा और जो जल्दी से विधि बना कर संसद का स्थान ले सकेगा तथा अधिक लम्बे काल तक निरोध की अनुमति देने के लिये अनुच्छेद 22 के उपबंधों को क्रियान्वित कर सकेगा। अतएव निवारक निरोध संबंधी विधि को बनाये रखने के लिये यह अत्यावश्यक है कि अनुच्छेद 373 को रखा जाये जिससे राष्ट्रपति को ऐसी विधि बनाने की शक्ति मिले जिसे संसद ही बना सकती है। श्रीमान, मैं एक और भी बात कहना चाहता हूं कि अनुच्छेद 373 के उपबंधों में कोई नई बात भी नहीं है, क्योंकि हमने अन्य अनुच्छेद द्वारा राष्ट्रपति को शक्ति दी है कि वह कुछ विधियों का अनुकूलन कर सकता है जिससे कि वे संविधान के उपबंधों के अनुरूप बन सकें। ऐसा रूपभेद केवल संसद ही कर सकती है, किन्तु हम यह भी जानते हैं कि संसद के लिये यह संभव नहीं होगा कि एकदम 26 जनवरी को ही वह भारतीय विधान-मंडलों द्वारा अधिनियमित इतने वृहद विधि-ग्रन्थों का अनुकूलन कर सके और उन्हें संविधान के अनुरूप बना सके। अतएव वह शक्ति राष्ट्रपति को दे दी गई है। इसी प्रकार हमने एक और अनुच्छेद द्वारा राष्ट्रपति को शक्ति दी है कि वह कठिनाइयों को दूर करने के प्रयोजन के लिये इस संविधान को ही अस्थायी रूप में संशोधित कर सकता है। अत: मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद 373 में कोई नई बात नहीं है, कोई बुरी बात नहीं है। बल्कि निवारक

निरोध की विधि को नष्ट होने से बचाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक पूरक अनुच्छेद है।

अब श्रीमान, मैं अनुच्छेद 34 को लेता हूं जो सैनिक विधि के विषय में है। इस अनुच्छेद पर भी कठोर आलोचना हुई है। मुझे खेद है कि जो सदस्य अनुच्छेद 34 के विरुद्ध बोले हैं उन्होंने यह पूरी तरह नहीं समझा कि संविधान के अनुच्छेद 20 खंड (1) तथा अनुच्छेद 21 का क्या प्रयोजन है। श्रीमान, मैं अनुच्छेद 20, खंड (1) तथा अनुच्छेद 21 को पढ़ देना चाहता हूं, क्योंकि इन दो अनुच्छेदों के उपबन्धों को समझे बिना कोई सदस्य अनुच्छेद 34 की वांछनीयता को—मैं तो यह भी कहूंगा कि आवश्यकता को—नहीं समझ सकता। अनुच्छेद 20, खंड (1) में लिखा है:—

"No person shall be convicted of any offence except for violation of a law in force at the time of the commission of the act charged as an offence."

[कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिये सिद्ध-दोष नहीं ठहराया जायेगा, जब तक कि उसने अपराधारोपित क्रिया करने के समय किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण न किया हो।]

अनुच्छेद 21 में लिखा है:

"No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law."

[किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा देहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा।]

अब, यह स्पष्ट है कि जब भी किसी क्षेत्र में उपद्रव, विद्रोह या गड़बड़ हो जाये या राज्य की सत्ता को उखाड़ दिया जाये तो सैनिक विधि लागू कर दी जाती है। सैनिक विधि का भारसाधक पदाधिकारी दो बातें करता है। वह अपने आदेश द्वारा यह घोषित कर देता है कि उसके प्राधिकार के विरुद्ध कुछ कार्य अपराध होंगे, और दूसरी बात, वह अपराध घोषित किये हुए कार्यों को करने वाले व्यक्तियों के मुकदमे के लिये अपनी प्रक्रिया निश्चित कर देता है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उस गड़बड़ वाले क्षेत्र के भार-साधक सैनिक समादेशक द्वारा घोषित कोई कार्य प्रवृत्त विधि द्वारा अधिनियमित अपराध नहीं है, क्योंकि उस क्षेत्र का समादेशक विधि-निर्माता व्यक्ति नहीं है। उसे यह घोषणा करने की शक्ति नहीं है कि कोई

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

कार्य विशेष अपराध है, और दूसरी बात उसके द्वारा दिये गये किसी आदेश का अतिक्रमण 'प्रवृत्त विधि' इस वाक्यांश के अर्थ में अपराध नहीं होगा क्योंकि 'प्रवृत्त विधि' का अर्थ विधि-निर्माता प्राधिकारी द्वारा निर्मित विधि ही हो सकता है। इसे अतिरिक्त प्रधान सेनापति या सैनिक समादेशक द्वारा निर्धारित प्रक्रिया भी विधि के अनुसार प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि उसे विधि बनाने का हक नहीं है। ये आदेश तो उसने अपने कृत्यों को अर्थात् विधि व्यवस्था स्थापित करने के कृत्यों को पूरा करने के प्रयोजनार्थ निकाले हैं। स्पष्ट है कि यदि अनुच्छेद 20 खंड (1) तथा अनुच्छेद 21 को वर्तमान रूप में रहने दिया जाये, तथा अनुच्छेद 34 में उल्लिखित शर्त न लगाई जाये तो देश में सैनिक विधि असंभव होगी, और राज्य के लिये ऐसे क्षेत्र में जो विद्रोही हो गया है शीघ्रता से व्यवस्था कायम करना असंभव होगा।

अतएव ऐसा निश्चित उपबन्ध करना आवश्यक है कि चाहे अनुच्छेद 20 या अनुच्छेद 21 में कोई बात हो फिर भी प्रधान सेनापति द्वारा अपने आदेश के विरुद्ध उद्घोषित अपराध होगा। इसी प्रकार उसके द्वारा निर्धारित प्रक्रिया विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया समझी जायेगी। मुझे आशा है कि यह स्पष्ट होगा कि यदि हमारे संविधान में अनुच्छेद 34 नहीं होगा, तो सैनिक विधि का प्रशासन सर्वथा असंभव होगा और शांति स्थापित करना उस परिस्थिति में असंभव हो सकता है। अतः मेरा निवेदन है श्रीमान कि अनुच्छेद 20 (1) तथा 21 की कठोरता को कम करने के लिये अनुच्छेद 34 अत्यावश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं पूछ सकता हूं कि लोक सेवकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को इस अनुच्छेद में तारण क्यों दिया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्योंकि, यदि मेरे माननीय मित्र वकील हैं तो वे शायद जानते ही हैं....

***श्री एच.वी. कामतः** मैं तो वकील नहीं हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकरः** .....कि जब सेना-विधि होती है तब लोगों को दंड देने का कार्य केवल प्रधान सेनापति का ही नहीं होता, वरन राज्य के प्रत्येक व्यक्तिगत नागरिक का कर्तव्य भी है कि अपने कंधे पर उत्तरदायित्व को ले तथा प्रधान सेनापति की सहायता करे। इससे यह देखा गया है कि कोई व्यक्ति, जो सामान्य नागरिक हो और प्रधान सेनापति के कर्मचारियों में न हो, कोई कार्य करे तो यह नितान्त आवश्यक है कि उसे भी तारण दिया जाये, क्योंकि वह जो भी कार्य करता है वह राज्य की शांति को बनाये रखने के लिए करता है और कोई कारण नहीं है कि शांति स्थापित करने में राज्य की सहायता करने वाले सैनिक अधिकारी तथा नागरिक में अन्तर क्यों किया जाये।

अब, श्रीमान, मैं अनुच्छेद 48 पर आता हूं जो गोवध के विषय में है। उसके विषय में मेरे लिये कुछ भी कहना आवश्यक नहीं है क्योंकि मसौदा-समिति ने एक सर्वसम्मत संशोधन रखा है जो सूची 4 में सं. 549 है। मुझे आशा है कि उससे उन्हें संतोष हो जायेगा जो अनुच्छेद 48 के लिये मसौदा समिति द्वारा प्रस्थापित नये मसौदे से कुछ असन्तुष्ट थे।

फिर मैं अनुच्छेद 77 पर आता हूं जो कार्य-नियमों के विषय में है। इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद के समय, कुछ सदस्य तो समझ ही नहीं सके थे कि इस अनुच्छेद की आवश्यकता ही क्या है। कुछ सदस्यों ने कहा था कि यदि यह अनुच्छेद आवश्यक है ही तो कार्य-नियमों को बनाने का अधिकार प्रधान मंत्री को दिया जाना चाहिये। दूसरों ने कहा था कि यदि यह अनुच्छेद आवश्यक है तो केवल इसलिये कि कार्य का निर्वहन कुशलता से हो और इसलिये इस खण्ड में 'कुशलता' (efficient) शब्द रख देना चाहिये। अब, श्रीमान, मुझे इस पर खेद है कि अनुच्छेद 77 पर वाद-विवाद में भाग लेने वाले अधिक सदस्य इस अनुच्छेद के मूल आधार को ही नहीं समझे। कार्य नियम बनाने की शक्ति प्रधान में होने के प्रश्न पर, मेरा विचार है कि यह बात समुचित रूप से नहीं समझी गई है कि इसका प्रभाव वही होगा क्योंकि यद्यपि अनुच्छेद में राष्ट्रपति का उल्लेख है तथापि राष्ट्रपति के लिये प्रधान मंत्री की मन्त्रणा को स्वीकार करना भी तो आवश्यक है। इसका परिणाम यह होगा कि अनुच्छेद 77 के अन्तर्गत राष्ट्रपति जो नियम बनायेगा वे वास्तव में प्रधान मंत्री द्वारा तथा उसकी मन्त्रणा पर ही बनाये जायेंगे।

अब, श्रीमान, अनुच्छेद 77 की आवश्यकता को ठीक-ठीक समझने के लिये, पहली बात तो यह समझनी अपेक्षित है कि अनुच्छेद 77 का अनुच्छेद 53 से गहरा सम्बन्ध है। वास्तव में अनुच्छेद 77 तो अनुच्छेद 53 के परिणामस्वरूप ही बना है। अनुच्छेद 53 में एक आवश्यक उपबन्ध है। संविधान के सामान्य उपबन्धों के अनुसार संघ की समस्त कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति करेगा यह कहा जा सकता है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा किया जाना है अतः राष्ट्रपति को जिस शक्ति के प्रयोग का अधिकार दिया गया है उसका प्रयोग वह व्यक्तिगत रूप से ही करेगा। ऐसी बात का निराकरण करने के लिये, अनुच्छेद 53 रखा गया था जिसमें स्पष्ट लिखा है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति या तो प्रत्यक्ष रूप में या दूसरे के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में कर सकता है। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 53 से राष्ट्रपति को अनुमति मिल जाती है कि वह दूसरों को अधिकार दे सकता है कि वे उस शक्ति का प्रयोग करें जो संविधान द्वारा उसमें निहित की गई है। अब, श्रीमान, अनुच्छेद 53 के इस विशिष्ट उपबन्ध को भी कार्यान्वित करना है जिससे राष्ट्रपति को अधिकार मिला है कि राष्ट्रपति अपनी शक्ति का प्रयोग स्वयं न करके दूसरों के द्वारा कर सकता है। अन्यथा, अनुच्छेद 53 व्यर्थ हो जायेगा। यह प्रश्न उठ सकता है कि ऐसा विधि-रूप उपबन्ध करना क्यों आवश्यक है जो कि अनुच्छेद 77 में किया जा रहा है जिससे राष्ट्रपति को कार्य-नियम बनाने के लिये कहा गया है। यह बात राष्ट्रपति पर क्यों

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

नहीं छोड़ दी गई कि वह चाहे तो ऐसा करे और चाहे तो न करे। अतः अनुच्छेद 77 में ऐसे विधि-रूप उपबन्ध रखने की आवश्यकता को समझना अपेक्षित है।

अनुच्छेद 77 की आलोचना करते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि यदि राष्ट्रपति अपनी शक्ति किसी अधिकारी को या किसी अन्य प्राधिकारी को देना चाहे तो इसका कोई साक्ष्य होना चाहिये कि उसने अपनी शक्ति प्रदान कर दी है। दूसरी बात, यदि राष्ट्रपति किसी व्यक्ति विशेष को अपने नाम से काम करने या सरकार के नाम से कम करने की शक्ति देना चाहता है, तो भी उस व्यक्ति विशेष की या पदाधिकारी विशेष की स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिये। अन्यथा न्यायालय में बहुत मुकदमेबाजी आरम्भ हो सकती है जिसमें राष्ट्रपति द्वारा शक्ति प्रदान करने के प्रश्न उठें या संघ के राष्ट्रपति में निहित शक्तियों को प्रयोग करने वाले किसी व्यक्ति विशेष की सत्ता के प्रश्न उठें। हमारे न्यायालयों की मुकदमेबाजी से परिचित व्यक्तियों को शिवनाथ बनर्जी बनाम बंगाल सरकार वाला प्रसिद्ध मामला याद होगा। भारत प्रतिरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत, राज्यपाल ने कुछ नियम बनाये थे जिनमें कुछ व्यक्तियों को शक्ति दी गई थी कि वे कुछ व्यक्तियों को, जिन्होंने भारत प्रतिरक्षा अधिनियम के विरुद्ध अपराध किये थे, गिरफ्तार कर सकें। प्रश्न यह उठता था कि क्या इस व्यक्ति विशेष को, जिसने उस विधि विशेष के अन्तर्गत गिरफ्तारी का आदेश दिया था, उस काम के करने की शक्ति थी, और अपने आप को संतुष्ट करने के लिये कलकत्ता उच्चन्यायालय ने बंगाल सरकार से कहा कि वह न्यायालय का समाधान करे कि वह व्यक्ति विशेष जिसे गिरफ्तार करने का प्राधिकार दिया गया था बंगाल सरकार द्वारा अभिप्रेत व्यक्ति ही था। बंगाल सरकार को न्यायालय के निरीक्षण के लिये अपने कार्य-नियम उपस्थित करने पड़े तब न्यायालय का समाधान हुआ कि जिस व्यक्ति ने उस शक्ति का प्रयोग किया था वही कार्य-नियमों द्वारा अभिप्रेत व्यक्ति था।

कार्यों के लिये शक्ति देने के सम्बन्ध में इस प्रकार की मुकदमेबाजी को हटाने के लिये ही हमने यह सोचा था कि अनुच्छेद 77 के समान उपबन्ध रखना अपेक्षित है। हां, इस अनुच्छेद से संसद की यह शक्ति नहीं छिन जाती कि वह विधि बनाकर अन्य व्यक्तियों को भी भारत सरकार के नाम से काम करने की शक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु जब संसद ऐसा उपबंध नहीं बनाती, तब यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति ऐसी कार्यवाही करेगा जिससे ऐसी कोई कोई मुकदमेबाजी न हो जो अन्यथा हो सकती है।

अनुच्छेद 100 के विषय में, जो गणपूर्ति के विषय में है, मुझे पता नहीं है कि मेरे लिये उसके उत्तर में कुछ कहना आवश्यक है या नहीं। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि अन्य देशों के विधायी निकायों में निश्चित गणपूर्ति सम्बन्धी तुलनात्मक आंकड़ों को देखते हुए यह आशंका है कि पहले जो गणपूर्ति निश्चित

की गई थी वह शायद काफी ज्यादा थी और इसलिये हमने यह सुझाव दिया कि गणपूर्ति को कम कर दिया जाये। मसौदा समिति की प्रस्थापना पूर्ण प्रस्थापना नहीं है, क्योंकि वह संसद द्वारा बनाई गई विधि के अधीन है। यदि संसद गणपूर्ति के विषय में कुछ अनुभव के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे कि अधिक गणपूर्ति से संसद का काम चलाना संभव है। तो संसद को अनुच्छेद 100 के इस उपबन्ध को बदलने में कोई बाधा नहीं होगी। अतएव यह उपबंध अत्यन्त लचकदार है और इसमें विद्यमान स्थिति का ध्यान रखा गया है, और भविष्य के अनुभव से लाभ उठाकर संसद को यह उपबन्ध बदलने की अनुमति होनी चाहिये।

अनुच्छेद 128 के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है। यह कहा गया है कि हमें अपने न्यायाधीशों को अधिक मोटा नहीं बनाना चाहिये। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि न्यायाधीशों के वेतनों का प्रश्न इस समय विचाराधीन नहीं है। सदन ने विद्यमान न्यायाधीशों के लिये वेतन-क्रम निश्चित कर दिया है तथा भावी न्यायाधीशों के लिये भी वेतन-क्रम निश्चित कर दिया है। हमें केवल इसी प्रश्न पर विचार करना है कि जब कोई व्यक्ति किसी राज्य विशेष के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होता है तब क्या सरकार को यह अधिकार होना चाहिये कि वह उसे उस न्यायालय से किसी अन्य राज्य के उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर सके? यदि ऐसा हो तो, क्या उस स्थानान्तरण पर उसे कुछ आर्थिक भत्ता देकर उस हानि की पूर्ति की जाये जो उसे उस स्थानान्तरण के कारण उठानी पड़ सकती है? मसौदा समिति ने यह अनुभव किया कि जहां तक न्यायाधीशों की नियुक्तियों का प्रश्न है समस्त उच्च न्यायालय अब केन्द्रीय हो जायेंगे, अतएव भारत भर के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को आई.सी.एस. के समान एक ही श्रेणी में समझना अभीष्ट होगा और वे उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में भेजे जा सकें। यदि ऐसी शक्ति केन्द्र के लिये रक्षित नहीं की जायेगी तो न्याय प्रशासन अत्यन्त कठिन मामला बन जायेगा। यह आवश्यक हो सकता है कि किसी स्थान पर योग्य व्यक्तियों के अभाव के कारण बाहर से अधिक योग्य व्यक्ति को बुला कर वहां के उच्च न्यायालय को अधिक प्रबल बनाने के उद्देश्य से एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में किसी न्यायाधीश को भेजा जाये। दूसरी बात, किसी उच्च न्यायालय में नये मुख्य न्यायाधिपति को बाहर से बुलाना अभीष्ट हो सकता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति को बुलाना वांछनीय हो सकता है जो स्थानीय राजनीति तथा स्थानीय ईर्षा-द्वेष से अप्रभावित है। अतएव हमने यह सोचा कि स्थानान्तरण की शक्ति को केन्द्रीय सरकार के हाथ में रख देना ठीक रहेगा।

हमने इस बात को भी ध्यान में रखा है कि एक उच्च न्यायालय से दूसरे में किसी न्यायाधीश का स्थानान्तरण करने की इस शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है। हो सकता है कि कोई प्रांतीय सरकार किसी न्यायाधीश विशेष को अपने उच्च न्यायालय से इस कारण स्थानान्तरित करना चाहे कि वह न्यायाधीश कुछ न्यायिक

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मामलों में विशेष प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने के कारण प्रान्तीय सरकार के लिये अत्यन्त असुविधाजनक हो गया है, वह ऐसे निर्णय करने के कारण जो प्रान्तीय सरकार को पसन्द न हों उनके लिये आफत बन गया है। हमने इस बात का ध्यान रखा है कि इन स्थानान्तरणों के करने में ऐसी किसी बात का प्रभाव न पड़े। स्थानान्तरण केवल सामान्य प्रशासन की सुविधा के आधार पर होने चाहिये। अतएव हमने एक उपबन्ध रखा है कि ऐसे स्थानान्तरण भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके किये जायें क्योंकि उस पर भरोसा किया जा सकता है कि वह सरकार को इस प्रकार मंत्रणा देगा जिस पर स्थानीय या व्यक्तिगत पक्षपातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अतएव केवल यही प्रश्न रह जाता है कि क्या यह स्थानान्तरण ऐसा बाध्यकारी हो कि हानि की क्षतिपूर्ति का कोई उपबंध न हो। हमने अनुभव किया कि इससे बहुत कठिनाई होगी। उच्च न्यायालय में न्यायाधीश स्थानीय वकीलों में से नियुक्त होता है। उसका वहां मकान हो सकता है। उसके पास मकान तथा अन्य चीज़ें हो सकती हैं जिनमें उसकी व्यक्तिगत दिलचस्पी हो। यदि उसे एक उच्च न्यायालय से दूसरे में स्थानान्तरित कर दिया जाये तो स्पष्टत: वह अपना सारा घरबार स्थानान्तरित नहीं कर सकता। उसे अपने पुराने प्रांत में जहां उसे स्थानान्तरित किया जायेगा, नया घरबार स्थापित करना होगा। अत: मसौदा समिति ने ऐसा उपबंध करने में औचित्य अनुभव किया कि जहां ऐसा स्थानान्तरण किया जाये वहां संसद को अधिकार होगा कि इस प्रकार स्थानान्तरित न्यायाधीश को वह व्यक्तिगत भत्ता दे सकती है। मेरा कहना यह है कि मसौदा समिति द्वारा प्रस्थापित संशोधन में कोई त्रुटि नहीं है।

अनुच्छेद 148 के विषय में, मुझे इस समय कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन (सं. 618) पेश किया है वह उन सब को पसंद है जिन्होंने इस अनुच्छेद विशेष में दिलचस्पी ली थी।

इसी प्रकार अनुच्छेद 320, जिस पर इतना विवाद था (यदि मैं किसी का दिल दुखाये बिना कह सकूं तो यह बिल्कुल व्यर्थ विवाद था) पर वह सब विवाद नये संशोधन सं. 558 से समाप्त हो गया है जिससे वे आपत्तिजनक भाग हट गये हैं जिन्हें एक समय सदस्य पसंद नहीं करते थे।

अनुच्छेद 365 के विषय में काफी वाद-विवाद तथा चर्चा पहले ही हो चुकी है। मैंने भी उसी वाद-विवाद में भाग लिया था और अपने दृष्टिकोण को व्यक्त किया था। मुझे विश्वास है कि मैंने जो कुछ कहा था उस पर विचार करने के पश्चात् सदस्य देखेंगे कि अनुच्छेद 365 एक आवश्यक अनुच्छेद है और उससे किसी प्रकार सदन द्वारा पहले किये हुए विनिश्चय समाप्त नहीं हो जाते।

मैं अनुच्छेद 378 को लेता हूं। यह कहा गया था कि इस अनुच्छेद में एकरूपता वाला उपबंध होना चाहिये जिससे कि निर्वाचन के प्रयोजनों के लिये जनसंख्या का निर्धारण किया जा सके। मुझे यह कहने में खेद है कि मैं इस एकरूपता वाले नियम की प्रस्थापना को स्वीकार नहीं कर सकता। विविध प्रांतों की बदलती हुई परिस्थितियों में एकरूप नियम रखना असंभव है। अतएव केन्द्र को अपने पास यह स्वतंत्रता रखनी चाहिये कि वह जनसंख्या का निर्धारण करने के प्रयोजन के लिये विभिन्न प्रांतों में अलग-अलग कसौटियां लागू कर सके। यदि विभिन्न प्रांतों पर विभिन्न नियम लागू करने के कारण कोई गम्भीर अंतर पड़ जाये तो भावी संसद इस पर फिर भी विचार कर सकती है, क्योंकि निर्वाचन क्षेत्रों से सम्बद्ध सब मामले निस्संदेह संसद के समक्ष पेश होंगे और संसद स्वयं यह देख सकेगी कि केन्द्रीय सरकार ने जो जनसंख्या का पता लगाया है वह ठीक है, या कम है या अधिक है। अब श्रीमान, मैं अनुच्छेद 361 पर आता हूं।

***पंडित बालकृष्ण शर्माः** अनुच्छेद 379?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अनुच्छेद 379 के विषय में मैं अपने माननीय मित्र श्री शर्मा की आपत्ति को बिल्कुल समझ सकता हूं। उन्हें प्रधानतः 'Dominion of India' इन शब्दों पर आपत्ति है। कल मैंने प्रमुख मसौदा-लेखक श्री मुखर्जी की सहायता से अनुच्छेद की पुनर्रचना करने का प्रयत्न किया जिससे कि 'Dominion of India' इन शब्दों को हटाया जा सके। किन्तु मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं सफल नहीं हुआ। अतएव मैं श्री शर्मा से प्रार्थना करता हूं कि वे अनुच्छेद को इसी रूप में रहने दें। यह दुर्भाग्यपूर्ण है, किन्तु हमारे पास जो थोड़ा सा समय रह गया था उसमें मुझे इसका कोई इलाज दिखाई नहीं दिया।

अब अनुच्छेद 391 के विषय में, स्थिति यह हैः संविधान में नौ प्रांतों के निर्माण के लिये दो प्रकार के उपबंध हैं। संविधान के प्रारंभ के पश्चात् प्रांतों की सृष्टि हो सकती है। 26 नवम्बर तथा 26 जनवरी के बीच में भी नये प्रांत बनाये जा सकते हैं। संविधान के प्रारंभ के पश्चात् प्रांतों के निर्माण के विषय में अनुच्छेद 3 तथा 4 का प्रयोग होगा। उनसे संसद को शक्ति मिलती है कि वह नये प्रांत बनाने के लिये प्रांतों की वर्तमान सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है। वे अनुच्छेद इतने स्पष्ट हैं कि मैं नहीं समझता कि मेरे लिये कोई व्याख्या करना आवश्यक है।

अब तथा 26 जनवरी के बीच नये प्रांतों के निर्माण के विषय में, 1935 के भारत-शासन अधिनियम की धारा 290 तथा वर्तमान संविधान का अनुच्छेद 391 लागू होंगे। श्रीमान, अनुच्छेद 391 में लिखा है कि यदि अब तथा 26 जनवरी के बीच में किसी समय भारत-शासन-अधिनियम 1935 के अधीन कार्यवाही करने

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

की शक्ति रखने वाला प्राधिकारी कार्यवाही नहीं करता, तो राष्ट्रपति को, अनुच्छेद 391 में अधिकार दिया गया है कि वह भारत-शासन-अधिनियम की धारा 290 के अधीन दिये गये आदेश को प्रभावी बना सकता है। 'चाहे'—यह महत्वपूर्ण बात है—'चाहे 25 जनवरी को भारत-शासन-अधिनियम, 1935 का निरसन हो जायेगा,' फिर भी यह कार्य वैध रहेगा। राष्ट्रपति को अनुच्छेद 391 के अधीन शक्ति दी गई है कि वह भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के अधीन की गई इस कार्यवाही को बनाये रखे और उसे प्रभावी बनाने के लिये एक आदेश निकाल दे जिससे कि प्रथम अनुसूची को तथा इसके फलस्वरूप चौथी अनुसूची को, जो राज्य-परिषद् में प्रतिनिधित्व के विषय में है, संशोधित कर दिया जाये।

***एक माननीय सदस्यः** वह 26 जनवरी के पश्चात् ही कार्यवाही कर सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह कभी भी कार्यवाही कर सकता है। संविधान सभा उस विषय में कुछ भी नहीं कर सकेगी क्योंकि वह उस प्रयोजन के लिये 26 नवम्बर के पश्चात् रहेगी ही नहीं। बात यह है कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 तो 25 नवम्बर के पश्चात् भी लागू रहेगा। जब तक वह अधिनियम लागू रहता है तब तक उसके अंतर्गत काम करने का अधिकार भी गवर्नर-जनरल को रहता है। वह जब चाहे कार्यवाही कर सकता है।

मेरे मित्र, श्री सिधवा ने एक प्रश्न उठाया था कि अभी और 25 जनवरी के बीच जो कार्यवाही की जाये उस पर संसद को विचार करने का अधिकार होना चाहिये। मेरे विचार में उनकी यही मंशा है कि यह काम केवल कार्यपालिका द्वारा ही नहीं किया जाना चाहिये। मेरे मित्र श्री सिधवा को याद होगा कि हमारा संविधान 26 जनवरी को लागू होगा। 25 जनवरी तक जो संविधान लागू रहेगा वह भारत-शासन अधिनियम 1935 में, जो 15 अगस्त 1947 को अनुकूल बनाया गया था निहित संविधान है। अतएव, अब तथा 25 जनवरी के बीच का संविधान वह संविधान नहीं है जो हम पारित कर रहे हैं, वरन भारत-शासन-अधिनियम 1935 में निहित संविधान है। अतएव उनके इस प्रश्न के विषय में कि इस मामले में राय देने का अधिकार संसद को होना चाहिये या भारतीय विधान-मंडल को होना चाहिये, उत्तर यह है कि भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की धारा 290 से इसका निर्धारण होगा।

यदि मेरे मित्र श्री सिधवा भारत-शासन-अधिनियम की धारा 290 को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि गवर्नर जनरल को प्रांतीय विधान-मंडल के विचारों का पता लगाने की आवश्यकता नहीं है और भारतीय विधान मंडल के विचारों को जानने की भी आवश्यकता नहीं है। उसके लिये इतना ही अपेक्षित है कि वह उस आदेश से प्रभावित किसी प्रान्त की सरकार के विचारों का पता लगा ले। अतएव जहां तक धारा 290 के क्रियान्वित होने का संबंध है, इसमें प्रांतीय विधान-मंडल तथा भारतीय विधान-मंडल दोनों में से किसी से परामर्श करना गवर्नर जनरल के लिये

आवश्यक नहीं है, और जहां तक अब तथा 25 जनवरी के बीच प्रांतों के निर्माण का संबंध है यही धारा प्रयुक्त हो सकती है। अतएव कितनी ही सद्भावना हो फिर भी मेरे मित्र श्री सिधवा की इच्छाओं को पूरा करना संभव नहीं है। इसलिये उन्हें धारा 290 के उपबन्धों से ही संतुष्ट हो जाना चाहिये। श्रीमान, मैं नहीं समझता कि किसी अन्य अनुच्छेद पर उत्तर देना आवश्यक है। अतएव मैं इस आशा के साथ अपना भाषण समाप्त करता हूं कि सदन मसौदा-समिति द्वारा प्रस्थापित संशोधनों को स्वीकार कर सकेगा *(हर्षध्वनि)*

***अध्यक्ष:** मैं अब संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा। सदस्यों ने देख लिया है कि ऐसे कई संशोधन हैं जो मसौदा समिति के किसी न किसी संशोधन से उत्पन्न होते हैं। हो सकता है कि कुछ संशोधन, जो सदस्यों ने पेश किये हैं, मसौदा समिति को स्वीकार्य हों और यह भी हो सकता है कि कुछ सदस्य अपने संशोधनों को, जो कि उन्होंने पेश किये हैं, वापिस लेने के लिये राजी हों।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं उन संशोधनों का उल्लेख कर दूं, जिन्हें हम स्वीकार करने के लिए तैयार हैं?

***अध्यक्ष:** मैं अभी उसी पर आ रहा था। यदि मसौदा समिति यह संकेत कर दे कि उन्हें कौन से संशोधन स्वीकार्य हैं तो हम उन पर मतदान के बिना काम चला सकते हैं, और यदि दूसरी ओर, अन्य सदस्य भी यह बता सकें कि वे किन संशोधनों पर जोर नहीं देना चाहते तो हम उन्हें छोड़ देंगे, जिससे कि मतदान होने वाले संशोधन कम हो सकें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, इस सदन के माननीय सदस्य कृपया ध्यान दें कि सूची 4, 5, 6 तथा 7 में मसौदा समिति द्वारा सुझाये गये कुछ संशोधन कुछ सदस्यों से वाद-विवाद के फलस्वरूप रखे गये हैं जिन्होंने कि संशोधन पेश किये थे जो सूची 1 में थे, और उनके तथा मसौदा समिति के बीच जो समझौता हुआ है उसके फलस्वरूप ही इन में से कुछ संशोधन पेश किये गये हैं, जो मेरे विचार में, सदन स्वीकार कर लेगा। जिन माननीय सदस्यों ने मूल संशोधन पेश किये थे जो सूची 1 में थे, मेरे विचार में वे उन संशोधनों पर जोर नहीं देंगे वरन उन्हें वापस ले लेंगे क्योंकि मसौदा समिति ने उनकी बात पूरी करने के लिये नये संशोधन पेश किये हैं। इन संशोधनों के अतिरिक्त, कुछ ऐसे संशोधन हैं जो हम स्वीकार कर लेंगे और जो सूची 1 में हैं। ये सब संशोधन मेरे माननीय मित्र श्री एच.वी. कामत के नाम से हैं। वे हैं—अनुच्छेद 164 पर संशोधन सं. 329 जो 'कोशल विदर्भ' के स्थान पर 'मध्य प्रदेश' रखने के विषय में है, अनुच्छेद 320 पर दो संशोधन सं. 394 तथा 395 में से पहला विकल्प। मसौदा समिति का संशोधन इसी आशय का है। किन्तु क्योंकि मेरे माननीय मित्र ने यह संशोधन पेश कर दिया है अत: हम उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं—अनुच्छेद 379 पर संशोधन सं. 41त तथा प्रथम अनुसूची पर संशोधन सं. 431 जो संशोधन

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

सं. 329 की स्वीकृति का ही परिणाम है कि "कोशल विदर्भ" के स्थान पर "मध्य प्रदेश" रख दिया जाये। हम इन संशोधनों को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। जहां तक अन्य संशोधनों का सम्बन्ध है उनमें से सबसे महत्वपूर्ण को मसौदा समिति ने स्वीकार कर लिया है और माननीय सदस्यों के प्रयोजन के अनुकूल संशोधन पेश कर दिये हैं क्योंकि हमने देखा कि विधि-संबंधी बातों को पूरा करने के लिये उन संशोधनों को अन्य रूप में रखना अत्यावश्यक था। मुझे पूरी आशा है कि माननीय सदस्य अपने संशोधनों पर जोर न देकर सदन की सहायता करेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 41 पर मेरे संशोधन के विषय में क्या स्थिति है जिसके बारे में मैंने अपने माननीय मित्र से बात की थी और जिसे वे स्वीकार करने के लिए तैयार थे।

***अध्यक्षः** जब हम उस तक पहुंचेंगे तब उसे ले लेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं कह सकता हूं, श्रीमान, कि उन्होंने मुझे कहा अवश्य था कि अनुच्छेद 41 में 'public assistance' के स्थान पर 'State assistance' ये शब्द होने चाहिये। यदि संशोधन भेजा जाये तो आप कृपया संशोधन को पेश करने दें। मुझे संशोधन कर कोई आपत्ति नहीं हैं, किन्तु मैं देखता हूं कि कोई संशोधन ही नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा संशोधन है, सूची 1 में सं. 138 ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं उसे स्वीकार कर लूंगा।

***अध्यक्षः** आपने उसका आज प्रातःकाल उल्लेख किया था। अब मैं संशोधनों को उसी हिसाब से लूंगा जिस हिसाब से वे पेश किये गये हैं। सबसे पहले, श्री कामत का संशोधन सं. 6 है।

***श्री बी. दासः** श्रीमान, आपके लिये सूची 1 के संशोधनों को पढ़ना आवश्यक नहीं है। हम सब सहमत हैं कि हमारे सब संशोधन वापिस लिये जा सकते हैं, क्योंकि मसौदा समिति ने उन्हीं संशोधनों को दूसरे रूप में पेश कर दिया है। उदाहरण के लिये मेरे संशोधन सं. 313 को लीजिये। वह 618 में आ जाता है। आपके लिये संशोधनों को पढ़ना अपेक्षित नहीं है। मैं ऐसा समझ लूंगा कि सूची 1 के सब संशोधन वापिस ले लिये गये हैं।

***अध्यक्षः** अन्य संशोधन भी हैं जिन्हें शायद माननीय सदस्य वापस नहीं लेना चाहें। मेरे विचार में मैं सब संशोधनों पर मत ले लूं।

---

*138. कि अनुच्छेद 41 में, 'public assistance' इन शब्दों के स्थान पर 'State assistance' ये शब्द रख दिये जायें।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 1 के खंड (1) में, 'that is' इन शब्दों के पश्चात् एक अर्ध विराम (कामा) लगा दिया जाये तथा 'भारत' शब्द के पश्चात् का अर्ध-विराम हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 13 के खंड (3) के उप-खंड (क) में

(1) 'having' शब्द के पश्चात् 'the force of law' ये शब्द रख दिये जायें;

(2) 'India' शब्द के पश्चात् 'or any part thereof' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें; और

(3) 'the force of law' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** यदि मैं गलती से कोई संशोधन छोड़ दूं, तो माननीय सदस्य मेरा ध्यान उसकी ओर आकृष्ट कर देंगे। अनुच्छेद 22 पर संशोधन सं. 83 जो काफी बदला जा चुका है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं उसे वापस लेने की अनुमति चाहता हूं। सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 34 को हटा दिया जाये"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद 122 पर कुछ और संशोधन भी हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं सं. 122 तथा 123 को वापस लेता हूं, किन्तु 124 को नहीं।

संशोधन सं. 122 तथा 123, सभा की अनुमति से वापिस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 34 में, 'done under martial law' इन शब्दों के स्थान पर 'done by such person under martial law' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे संशोधन सं. 138 का क्या हुआ जिसका मैंने अभी निर्देश किया था।

***अध्यक्ष:** हां। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 41 में, 'public assistance' इन शब्दों के स्थान पर 'State assistance' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर हम अनुच्छेद 48 को लेते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं अपने संशोधन सं. 141 को वापिस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***पं. ठाकुर दास भार्गव:** मैं अनुच्छेद 48 के विषय में अपने सब संशोधनों को (142 तथा 144 को) वापिस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** मैं मान लेता हूं कि अनुच्छेद 549 स्वीकृत हो जायेगा। अतएव मैं उसपर सीधा ही मत ले लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 48 में 'for improving the breeds of milch and draught cattle including cows and calves and for prohibiting their slaughter' इन शब्दों के स्थान पर 'for preserving and improving the breeds and prohibiting the slaughter of cows and calves and other milch and draught cattle' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर हम अनुच्छेद 53 पर आते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं अपने संशोधन सं. 151 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 53 के खंड (1) में, 'Constitution' शब्द के पश्चात् 'and the law' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर हम अनुच्छेद 57 पर आते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 57, 'subject to the other provisions of this Constitution' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"यह अनुच्छेद 69 में शपथ या प्रतिज्ञान के प्रपत्र में, 'as by law established' ये शब्द हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 69 में शपथ या प्रतिज्ञान के प्रपत्र में 'the duty upon which I am about to enter' इन शब्दों के स्थान पर 'the duties of the office upon which I am about to enter' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 71 के खंड (2) में, 'the date of the decision' इन शब्दों के स्थान पर 'the time of the decision' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

(श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन सं. 584 पर ज़ोर नहीं दिया।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 71 के खंड (2) में, 'before the date' इन शब्दों के स्थान पर 'on or before the date' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं संशोधन सं. 201 को वापिस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं अपने संशोधन सं. 202 को वापिस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं अपने संशोधन सं. 203 को वापिस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 77 के खंड (3) में, 'more convenient' इन शब्दों के स्थान पर 'efficient and convenient' ये शब्द रखे जायें।"

या विकल्प से

"कि अनुच्छेद 77 के खंड (3) में, 'more' शब्द हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 96 के खंड (2) में, 'and shall, notwithstanding anything in article 100, be entitled to vote only in the first instance on such resolution or on any other matter during such proceedings but not in the case of equality of votes' इन शब्दों के स्थान पर 'but, notwithstanding anything in article 100, shall not be entitled to vote at all on such resolution or on any other matter during such proceedings' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं अपने संशोधन सं. 228 को वापिस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

(श्री कामत ने अपने संशोधन सं. 231, 234 तथा 235 पर जोर नहीं दिया।)

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 100 पर संशोधन सं. 233 है। मेरे विचार में मैं इस पर अभी मत नहीं लूं तो अच्छा है। मेरे विचार में यह कंडिकाओं की संख्या बदलने के विषय में है।

संशोधन सं. 238 श्री कामत तथा प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना के नाम से है। मैं भूल गया कि उसे किसने पेश किया था।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** वह स्वीकार कर लिया गया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह संशोधन सं. 452 में आ जाता है।

***अध्यक्ष:** मैं मान लेता हूं कि संशोधन संख्या 238 को वापस ले लिया गया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** हां, श्रीमान।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 452 के लिये, मैं उसे अभी छोड़ दूं तो अच्छा होगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 100 के खंड (3) में, 'one-tenth' शब्द के स्थान पर 'one-sixth' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 128 में, 'the President may by order' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 145 के खंड (1) के उपखंड (3) को हटा दिया जाये और अनुच्छेद 145 के खंड (1) से पूर्व, निम्न प्रविष्ट किया जाये:–

'The Supreme Court shall make rules for regulating the practice and procedure of the appropriate proceeding relating to the enforcement of rights conferred under Part III';

और बाद के खंडों की संख्या तदनुसार बना दी जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 145 के खंड (1) के उपखंड (ग) को हटा दिया जाये; और कथित अनुच्छेद के खंड (1) के पश्चात्, निम्न नया खंड प्रविष्ट किया जाये और आनुषंगिक परिवर्तन कर दिये जायें:–

'(2) The Supreme Court shall make rules for regulating the practice and procedure of the appropriate proceedings relating to the enforcement of rights conferred under Part III.' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 313। एक और संशोधन है। यह मसौदा समिति के संशोधन संख्या 618 में आ जाता है।

***श्री बी. दासः** मैं इसे वापस लेने की अनुमति चाहता हूं, श्रीमान।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं संख्या 320 वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 154 के खंड (1) में, 'Constitution' शब्द के पश्चात् 'and the law' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 164 के खंड (1) के परन्तुक में, 'कोशल विदर्भ' इन शब्दों के स्थान पर 'मध्य प्रदेश' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं सं. 332 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** और सं. 333, श्रीमान।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 166 के खंड (3) में, 'more convenient' इन शब्दों के स्थान पर 'efficient' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 166 के खंड (3) में, 'in so far as it is not business with respect to which the Governor is by or under this Constitution required to act in his discretion' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं सं. 340 को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

*कि अनुच्छेद 172 के खंड (2) में, 'possible' के स्थान पर 'practical' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 181 के खंड (2) में, 'and shall, notwithstanding anything in article 189, be entitled to vote only in the first instance on such resolution or on any other matter during such proceedings but not in the case of equality of votes' इन शब्दों के स्थान पर 'but notwithstanding anything in article 189, shall not be entitled to vote on such resolution or on any matter during such proceedings' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं सं. 344 को वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 185 के खंड (2) में, 'and shall, notwithstanding anything in article 189, be entitled to vote only in the first instance on such resolution or on any other matter during such proceedings but

[अध्यक्ष]

not in the case of equality of votes' इन शब्दों के स्थान पर 'but, notwithstanding anything in article 189, shall not be entitled to vote on such resolution or any matter during such proceedings' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं 346 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 189 के खंड (3) की द्वितीय कंडिका में, 'The quorum shall, until the legislature of the State by law otherwise provides' इन शब्दों के स्थान पर 'Until the legislature of the State by law otherwise provides, the quorum shall' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या वह मसौदा समिति के एक संशोधन में नहीं आ जाता?

***अध्यक्षः** इसके शब्द भिन्न हैं। यदि यह किसी संशोधन में आ जाता है तो उसे ले लिया जायेगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 189 के खंड (3) में, 'ten' तथा 'one-tenth' इन शब्दों के स्थान पर 'twenty' और 'one-eighth' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री आर.के. सिधवाः** श्रीमान, मैं सं. 353 को वापिस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 222 का खंड (2) हटाया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि, अनुच्छेद 224 में, 'the President may by order' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***पंडित ठाकुर दास भार्गव:** मैं संख्या 383 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 309 के परन्तुक में, 'or such person as he may direct' ये शब्द जहां कहीं भी हों हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 311 के खंड (3) में, 'reasonably practicable to give to any person an opportunity' इन शब्दों के स्थान पर 'practicable to give to any person a reasonable opportunity' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं संशोधन सं. 389 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 319 के खंड (ग) में, 'other than a Joint Commission' इन शब्दों के स्थान पर 'or as the Chairman of a Joint Commission' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 394 ।

***श्री एच.वी. कामत:** संख्या 394 तथा 395 स्वीकृत हो गये हैं, श्रीमान, प्रथम विकल्प।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उन्हें एक साथ रखा जा सकता है; वे लगभग एक से ही हैं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 320 के खंड (3) के उप-खंड (घ) में 'under an Indian State' इन शब्दों के स्थान पर 'under the Government of an Indian State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 320 के खंड (3) के उप खंड (ङ) में, 'under an Indian State' इन शब्दों के स्थान पर 'under the Government of an Indian State' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***पंडित ठाकुर दास भार्गवः** मैं सं. 396 को वापिस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 325 में, 'shall be ineligible for inclusion in any such roll or claim to be included in' इन शब्दों के स्थान पर 'shall be excluded from or claim to be included in' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 333 ।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा संशोधन संख्या 399 है, श्रीमान।

***अध्यक्षः** मुझे पता नहीं कि यह संगत है या नहीं; किन्तु मैं इस पर मत ले लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 325 में, 'caste' शब्द के पश्चात् 'class' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 344 के खंड (3) में, 'persons belonging to the non-Hindi speaking areas' इन शब्दों के स्थान पर 'the non-Hindi speaking sections of the population' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 365 को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 365 में, 'where' शब्द के पश्चात् 'the President is satisfied that' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 365 में under any of the provisions of this Constitution' इन शब्दों के पश्चात् 'which is in direct contravention of the declared policy of the Union' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 373 हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 373 में, 'one year' इन शब्दों के स्थान पर 'three months' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 379 के खंड (5) में, 'after such commencement' इन शब्दों के स्थान पर 'on such commencement' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** संशोधन संख्या 416 छूट गया है।

***अध्यक्ष:** मैं इसे संशोधन सं. 503 के साथ लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 387 में, 'and different provisions may be made for different States and for different purposes by such order' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं सं. 424 तथा 425 को वापस लेता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** सं. 426 भी।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिये गये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 392 के खंड (3) में, 'before' शब्द के स्थान पर 'until' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 392 के खंड (3) में, 'before' के स्थान पर 'until immediately before' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रथम अनुसूची के भाग क की मद 5 में 'कोशल विदर्भ' नाम के स्थान पर 'मध्य प्रदेश' यह नाम रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं सं. 432 को वापस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रथम अनुसूची के भाग क की मद 9 में, 'The United Provinces' इस नाम के स्थान पर 'आर्यवर्त' नाम रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 9 की उप-कंडिका (3) में 'during the period' इन शब्दों से आरम्भ होने वाले तथा 'before such commencement' इन शब्दों पर समाप्त होने वाले शब्दों को हटाया जाये।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) को हटाया जाये"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 10 की उप-कंडिका (4) में, 'for any State' इन शब्दों के स्थान पर 'of any State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 12 की उप-कंडिका (3) में, 'and' शब्द के स्थान पर जो पंक्ति 1 में है, एक अर्ध-विराम रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ अनुसूची में स्तम्भ 1 में, 'कोशल विदर्भ' नाम के स्थान पर 'मध्य प्रदेश' नाम रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 1 में, 'preparation' शब्द के पीछे 'and operation' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 65 में, 'police' शब्द से पूर्व 'Administrative or' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 3 की प्रविष्टि 34 को सूची 1 में स्थानान्तरित कर दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 9 में 'article 5' इस शब्द तथा अंक के पश्चात् 'or be deemed to be a citizen of India by virtue of' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं सं. 443 को वापिस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 58 की व्याख्या में, 'For the purposes of this clause' इन शब्दों के स्थान पर 'For the purposes of this article' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 59 के खंड (3) के स्थान पर, निम्न खंड रखा जाये:—

'(3) The President shall be entitled without payment of rest to the use of this official residences and shall be also entitled to such emoluments, allowances and privileges as may be determined by Parliament by law and, until provision in that behalf is so made, such emoluments, allowances, and privileges as are specified in the Second Schedule.' "

[(3) राष्ट्रपति को, बिना किराया दिये, अपने पदावासों को उपयोग का हक होगा तथा उसको उन उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का भी, जो संसद-निर्मित विधि द्वारा निर्धारित किये जायें तथा जब तक उस विषय में इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता तब तक ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का भी, जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित है, हक होगा।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 65 के खंड (3) में, 'privileges, emoluments and allowances' इन शब्दों के स्थान पर, दोनों स्थानों पर जहां वे हैं, 'emoluments, allowances and privileges' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** 447 ।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मसौदा-समिति के सब संशोधनों पर एक साथ मत ले लिये जायें।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** कुछ शायद पेश ही न किये गये हों।

***अध्यक्षः** तो फिर मैं इसी तरह चलूंगा। एक एक करके।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 66 की व्याख्या में, 'For purposes of this clause' इन शब्दों के स्थान पर 'For the purposes of this article' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 449 को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 72 के खंड (1) के उप-खंड (ख) में, 'offence under any law' इन शब्दों के स्थान पर 'offence against any law' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

(श्री नजीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन सं. 586 पर जोर नहीं दिया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 73 के खंड (1) के परन्तुक में, 'any State' इन शब्दों के पश्चात् 'specified in Part A or Part B of the First Schedule' ये शब्द तथा वर्ण प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 81 के खंड (1) के उपखंड (क) में, 'अनुच्छेद 331' इस शब्द तथा अंकों के स्थान पर 'अनुच्छेद 82 तथा 331' ये शब्द तथा अंक रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 452 में, अनुच्छेद 100 के प्रस्थापित खंड (3) में, 'until Parliament by law otherwise provides, the quorum' इन शब्दों के स्थान पर, 'the quorum' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 452 में अनुच्छेद 100 के प्रस्थापित खंड (3) में, 'one tenth' के स्थान पर, 'one-sixth' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं सं. 589 को वापस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 100 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रखे जायें:—

'(3) Until Parliament by law otherwise provides, the quorum to constitute a meeting of either House of

Parliament shall be one-tenth of the total number of members of the House.

(4) If at any time during a meeting of a House there is no quorum, it shall be the duty of the Chairman or Speaker, or person acting as such, either to adjourn the House or to suspend the meeting until there is a quorum.' "

[(3) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक संसद के प्रत्येक सदन का अधिवेशन गठित करने के लिए गणपूर्ति सदन के सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश होगी।

(4) यदि सदन के अधिवेशन में किसी समय गणपूर्ति न हो तो सभापति या अध्यक्ष या उसके रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या अधिवेशन को तब तक के लिये निलम्बित कर दे जब तक कि गणपूर्ति न हो जाये।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 104 में, 'The Government of India' इन शब्दों के स्थान पर 'the Union' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 105 के खंड (1) में 'subject to the rules and standing orders' इन शब्दों के स्थान पर 'subject to the provisions of this Constitution and to the rules and standing orders' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 455 में, अनुच्छेद 114 के खंड (2) में, 'whether an amendment is inadmissible' इन शब्दों के स्थान पर

[अध्यक्ष]

(जिन्हें प्रस्थापित करने की प्रस्थापना है) 'as to the admissibility of the amendment' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन सं. 455 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 114 के खंड (2) में, 'the amendments which are admissible' इन शब्दों के स्थान पर 'whether an amendment is inadmissible' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

(श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन सं. 491 पर जोर नहीं दिया।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 124 के खंड (1) में, 'seven other Judges' इन शब्दों के स्थान पर 'not more than seven other Judges' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 133 के खंड (1) का परन्तुक हटाया जाये, और कथित खंड के अंत के कोलन के स्थान पर 'पूर्ण विराम' रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 133 के खंड (2) के पश्चात् निम्न खंड जोड़ दिया जाये:—

'3. Notwithstanding anything in this article, no appeal shall, unless Parliament by law otherwise provides, lie to the Supreme Court from the Judgment, decree or final order of one Judge of a High Court.' "

[(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी उच्चन्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय, आज्ञप्ति या अंतिम आदेश की अपील उच्चतम

न्यायालय में न होगी जब तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्धित न करे।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** फिर अनुच्छेद 135, और संशोधन सं. 458।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 135 में 'not being a matter referred to in any of the foregoing provisions of this Chapter' इन शब्दों के स्थान पर 'to which the provisions of article 133 or article 134 do not apply' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** संशोधन सं. 459।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 136 के खंड (1) में, 'The Supreme Court' इन शब्दों के स्थान पर 'notwithstanding anything in this Chapter, the Supreme Court' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** फिर हम अनुच्छेद 145 को लेते हैं। मसौदा समिति का संशोधन सं. 460 है, तथा श्री कामत का सं. 550 भी है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापिस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** फिर मैं संशोधन सं. 460 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 145 के खंड (1) के उप-खंड (ग) में, 'enforcement of the rights' इन शब्दों के स्थान पर 'enforcement of any of the rights' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 158, और संशोधन सं. 461।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 158 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रखा जाये:–

'(3) The Governor shall be entitled without payment of rent to the use of this official residences and shall be also entitled to such emoluments, allowances and privileges as may be determined by Parliament by law and, until provision in that behalf is so made, such emoluments, allowances and privileges as are specified in the Second Schedule.' "

[(3) राज्यपाल को, बिना किराया दिये, अपने पदावासों के उपयोग का हक होगा तथा उसको उन उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का, जो संसद निर्मित विधि द्वारा निर्धारित किये जायें, तथा जब तक इस विषय में इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता तब तक ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का, जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं, हक होगा।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 462 ।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 162 के परन्तुक में, 'the Government of India' इन शब्दों के स्थान 'the Union' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 463 । और उस पर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन सं. 594 है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 168 पर एक और संशोधन मैंने पेश किया है कि 'बंगाल' के स्थान पर 'पश्चिमी बंगाल' रखा जाये। अत: इस पर संशोधित रूप में मत लिये जायें।

***अध्यक्ष्य:** हां, हम उस संशोधन को भी, जो आज बंगाल के नाम के विषय में पेश हुआ है, तथा 'बंगाल' नाम के स्थान पर 'पश्चिमी बंगाल' नाम रखने के विषय में जो आनुषंगिक परिवर्तन है उन्हें इसके साथ लेते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 168 के खंड (1) के उप-खंड (क) के स्थान पर, निम्न उपखंड रखा जाये:—

'(a) in the States of West Bengal, Bihar, Bombay, Madras, Punjab and the United Provinces, two Houses.' "

[(क) पश्चिमी बंगाल, बिहार, बम्बई, मद्रास, पंजाब और युक्त प्रदेश के राज्यों में दो सदनों से;]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 181, संशोधन सं. 464।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 181 के खंड (1) में, 'of a State' ये शब्द हटाये जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 181, संशोधन सं. 465।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 181 के खंड (2) में, 'house' शब्द के स्थान पर 'Assembly' शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन सं. 466, और इस पर सं. 595 है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** सं. 595 नकारात्मक संशोधन है।

***अध्यक्ष:** अच्छा तो फिर। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 185 के खंड (1) में, 'of a State' ये शब्द हटाये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 189 और संशोधन सं. 467। इस पर कई संशोधन हैं।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का सं. 596 है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इसमें वही बात है जो सं. 100 में है। शायद माननीय सदस्य उसे वापिस लेने के लिये तैयार होंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं इसे वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** फिर श्री सिधवा का सं. 597 है। क्या आप इस पर जोर देते हैं? यह 'ten members or one-tenth' तथा 'twenty members or one-sixth' के विषय में है।

***श्री आर.के. सिधवाः** हां, श्रीमान।

***अध्यक्षः** अच्छा तो फिर। प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 467 में, अनुच्छेद 189 के प्रस्थापित खंड (3) में, 'ten members or one-tenth' इन शब्दों के स्थान पर 'twenty members or one-sixth' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** फिर सं. 598। आप इसे वापिस लेते हैं, मेरे विचार में?

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं इसे वापिस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** संशोधन सं. 467।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 189 के खंड (3) के स्थान पर, निम्न खंड रखे जायें:–

'(3) Until the Legislature of the State by law otherwise provides, the quorum to constitute a meeting of a House of the Legislature of a State shall be ten members or one-tenth of the total number of members of the House, whichever is greater.'

(4) If at any time during the meeting of the Legislative Assembly or the Legislative Council of a State there is no quorum, it shall be the duty of the Speaker or Chairman, or person acting as such, either to adjourn the House or the suspend the meeting until there is a quorum.' "

[(3) जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के विधान-मंडल के प्रत्येक सदन का अधिवेशन गठित करने के लिये गणपूर्ति दस सदस्य अथवा सदन के समस्त सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या का दशांश, इसमें से जो भी अधिक हो, होगी।

(4) यदि राज्य की विधान-सभा अथवा विधान परिषद् के अधिवेशन में किसी समय गणपूर्ति न रहे, तो अध्यक्ष या सभापति अथवा उसके रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या अधिवेशन को तब तक के लिये निलम्बित कर दे जब तक कि गणपूर्ति न हो जाये।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 46। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 191 के खंड (1) के उप-खंड (ङ) में, 'the Legislature of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament' शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 469। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 191 के खंड (2) में, 'either for India or for any such State' इन शब्दों के स्थान पर 'either for the Union or for such State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 470। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 193 में, 'the Legislature of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament or the Legislature of the State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर सं. 471। इस पर एक संशोधन है—श्री कामत का सं. 554।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, मैं उस संशोधन को वापस लेता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस लिया गया।

***अध्यक्ष:** फिर प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 194 के खंड (1) में, 'Subject to the rules and standing orders' इन शब्दों के स्थान पर 'Subject to the provision of this Constitution and to the rules and standing orders' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 472। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 204 के खंड (2) में, 'the amendments which are admissible' इन शब्दों के स्थान पर 'whether an amendment is inadmissible' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 473। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 217 के खंड (1) के परन्तुक के खंड (ग) के स्थान पर, निम्न खंड रखा जाये:–

(c) the office of a Judge shall be vacated by his being appointed by the President to be a Judge of the Supreme Court or by his being transferred by the President to any other High Court with in the territory of India.' "

[(ग) किसी न्यायाधीश का पद, राष्ट्रपति द्वारा उसे उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किये जाने पर, अथवा राष्ट्रपति द्वारा उसे भारत राज्य-क्षेत्र में के अन्य उच्चन्यायालय को स्थानान्तरित किये जाने पर, रिक्त कर दिया जायेगा]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

(श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन सं. 599, 600 तथा 601 पर जोर नहीं दिया।)

***अध्यक्ष:** सं. 474। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 230 में 'any State' इन शब्दों के पश्चात् 'specified in the First Schedule' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** सं. 475। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 232 में 'more than one State' इन शब्दों के पश्चात्, 'specified in the First Schedule' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** सं. 476। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 234 में, 'Governor' शब्द के पश्चात् 'of the State' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें और 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'exercising jurisdiction in relation to such State' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** सं. 77। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 238 की मद (4) में, अनुच्छेद 158 के प्रस्थापित खंड (3) में, 'entitled to the use of an official residence without payment of rent, and there shall be paid to the Rajparamukh such allowances' इन शब्दों के स्थान पर 'entitled without payment of rent to the use of an official residence and shall be also entitled to such allowances and privileges' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** सं. 478। वह वापस ले लिया गया, क्योंकि सं. 556 में वह आ जाता है। सं. 479 को भी वापिस ले लिया गया है।

सं. 480। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 289 के खंड (2) में, 'any property used or occupied for the purposes thereof, or any income accruing or arising therefrom' इन शब्दों के स्थान पर 'any property used or occupied for the purposes of such trade or business, or any income accruing or arising in connection therewith' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** सं. 481। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 294 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रखा जाये:–

'294 *Succession to property, assets, rights, liabilities and obligations in certain cases.*—As from the commencement of this Constitution—

(a) all property and assets which immediately before such commencement were vested in His Majesty for the purposes of the Government of the Dominion of India and all property and assets which immediately before such commencement were vested in His Majesty for the purposes of the Government of each Governor's Province shall vest respectively in the Union and the corresponding State, and

(b) All rights, liabilities and obligations of the Government of the Dominion of India and of the Government of each Governor's Province, whether arising out of any contract or othersise, shall be the rights, liabilities and obligations respectively of the Government of India and the Government of each corresponding State, subject to any adjustment made or to be made by reason of the creation before the commencement of this Constitution of the Dominion of Pakistan or of the Provinces of West Bengal, East Bengal, West Punjab and East Punjab.' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने अनुच्छेद 294 और 366 पर अपने संशोधन सं. 604 और 606 पर जोर नहीं दिया।

***अध्यक्षः** सं. 482। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 295 के खंड (1) के उप-खंड (क) में 'the commencement of this Constitution' इन शब्दों के स्थान पर 'such commencement' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 483। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 295 के खंड (1) के उप-खंड (क) में, 'the Government of India' शब्दों के स्थान पर 'the Union' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 484। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 296 में 'His Majesty' इन शब्दों के पश्चात्, पहले स्थान पर जहां वे हैं, 'or as the case may be, to the Ruler of an Indian State' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 485। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 296 के परन्तुक में, 'His Majesty' इन शब्दों के पश्चात्, 'or to the Ruler of an Indian State' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 486। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 296 के साथ निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:-

"Explanation—In this article, the expression 'Ruler' and 'Indian State' have the same meanings as in article 363."

[*व्याख्या*—इस अनुच्छेद में 'शासक' और 'देशी राज्य' पदों का वही अर्थ होगा जो अनुच्छेद 363 में है।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 487। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 316 के खंड (1) के परन्तुक में 'under an Indian State' इन शब्दों के स्थान पर 'under the Government of an Indian State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर अनुच्छेद 319। संशोधन 488, 489 तथा 490। इन के स्थान पर कुछ विकल्प हैं। अत: ये वापिस ले लिये जाते हैं, मैं ऐसा समझ लेता हूं। फिर अनुच्छेद 320। संशोधन संख्या 491। किन्तु वह संशोधन सं. 559 में आ जाता है, और इस लिये मैं समझ लेता हूं कि 491 को वापिस ले लिया गया।

फिर अनुच्छेद 351 और संशोधन सं. 492।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 351 में, 'so specified' ये शब्द हटाये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 493। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 352 के खंड (2) में, '(in this Constitution referred to as a "Proclamation of Emergency")' ये कोष्ठक तथा शब्द हटाये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 494। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 353 के खंड (ख) में, 'the Government of India or officers and authorities of that Government' इन शब्दों के स्थान पर 'The Union or officers and authorities of the Union' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

*अध्यक्ष: सं. 495। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 357 के खंड (1) के उपखंड (ख) में, 'Government of India or officers and authorities of that Government' इन शब्दों के स्थान पर, 'the Union or officers and authorities thereof' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 395। संशोधन सं. 496। किन्तु सं. 496 के स्थान पर संशोधन सं. 591 आ गया है, अत: वह वापिस लिया गया।

अनुच्छेद 366। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 366 के खंड (12) को हटाया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 366 के खंडों (13), (14), (15), (16), (17) तथा (18) की संख्यायें क्रमश: (12), (13), (14), (15), (16) तथा (17) की जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि इस प्रकार संख्या बदले हुए खंड (17) के पश्चात् निम्न खंड प्रविष्ट किया जाये:–

"(18) 'Proclamation of Emergency' means a Proclamation issued under clause (1) of article 352;"

[(18)'आपात की उद्घोषणा' से अभिप्रेत है वह उद्घोषणा जो कि अनुच्छेद 352 के खंड (1) के अधीन निकाली गई हो।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर हम अनुच्छेद 500 पर आते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान इसके स्थान पर संशोधन सं. 562 है।

***अध्यक्ष:** अत: मैं ऐसा मान लूंगा कि इसे वापिस ले लिया गया। मुझे बताया गया है कि 501 को पेश नहीं किया गया। अत: हम 502 को ले लेते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 370 के खंड (2) में 'in paragraph (ii) of Sub-clause (b)or in the second proviso to sub-clause (d) of clause (1), इन शब्दों, कोष्ठकों तथा अंक के स्थान पर 'in paragraph (b) of clause (1) or in the second proviso to sub-clause (d) of that clause' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि 503 पर कई संशोधन हैं।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा:** श्रीमान, मैं सं. 416 तथा 417 को वापिस लेता हूं। संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिये गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 503 के निर्देश से अनुच्छेद 379 के खंड (1) में, 'the body functioning as the Constituent Assembly of the Dominion of India immediately before the commencement of this Constitution' इन शब्दों के स्थान पर 'the Constituent Assembly of India' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** सं. 564 वापिस ले लिया गया। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 379 के खंड (1) में, 'shall exercise' इन शब्दों के स्थान पर 'shall be the provisional Parliament and shall exercise' यह शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (2) में, 'the provisional legislature' इन शब्दों के स्थान पर 'the Legislature' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 335 पर एक संशोधन (सं. 530) है जिसके पेश करने की अनुमति मैंने डॉ. देशमुख को दी थी?

कि 'members' शब्द के पश्चात् 'the backward classes' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 335 में, 'members' शब्द के पश्चात् 'the Backward classes' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ है।

***अध्यक्ष:** फिर हम संशोधन सं. 545 पर आते हैं। इस पर कई संशोधन हैं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 545 में अनुच्छेद 22 के प्रस्थापित खंड (4) के उप-खंड (क) के परन्तुक को हटाया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** श्री अजित प्रसाद जैन का संशोधन सं. 580 संगत नहीं है। मैं 581 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 545 में अनुच्छेद 22 के प्रस्थापित खंड (4) के उपखंड (क) में, 'or' शब्द के स्थान पर, जो अंत में है, 'and' शब्द रखा जाये।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 545 के निर्देश से, अनुच्छेद 22 के प्रस्थापित खंड (4) के उप-खंड (ख) के स्थान पर, निम्न रखा जाये:—

'(b) such person is detained in accordance with the provisions of any law made by a State under the authority conferred by Parliament under clause (7).' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 545 के निर्देश से, अनुच्छेद 22 के खंड (4) के उप-खंड (ख) के स्थान पर निम्न रखा जाये:—

'(b) such person in detained in accordance with the provisions of any law made under the authority conferred by Parliament under clause (7).' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खंड [4] के स्थान पर, निम्न खंड रखा जाये:—

'(4) No law providing for preventive detention shall authorise the detention of a person for a longer period than three months unless—

(a) an Advisory Board consisting of persons who are, or have been, or are qualified to be appointed as, judges of a High Court has reported before the expiration of the said period of three months that there is in its opinion sufficient cause for such detention:

Provided that nothing in this sub-clause shall authorise the detention of any person beyond the maximum period prescribed by any law made by Parliament under sub-clause (b) of clause (7); or

(b) such preson is detained in accordance with the provisions of any law made by Parliament under sub-clauses (a) and (b) of clause (7).' "

[(4) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये निरूद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि—

(क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्चन्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणा-मंडली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिये उसकी राय में पर्याप्त कारण है:

परन्तु इस उपखंड की कोई बात किसी व्यक्ति के, उस अधिकतम कालावधि से आगे, निरोध को प्राधिकृत न करेगी जो खंड (7) के उपखंड (ख) के अधीन संसद-निर्मित किसी विधि द्वारा विहित की गई है; अथवा

(ख) ऐसा व्यक्ति खंड (7) के उप-खंड (क) और (ख) के अधीन संसद निर्मित किसी विधि के उपबंधों के अनुसार निरूद्ध नहीं है।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि संशोधन 546 पर दो संशोधन है। मैं पहले श्री कामत के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 546 में, अनुच्छेद 22 के प्रस्थापित खंड (7) के उप-खंड (क) में—

'without obtaining the opinion of an Advisory Board in accordance with the provisions of sub-clause (a) of clause (4)' ये शब्द हटाये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी:** श्रीमान, मैं अपने संशोधन सं. 617 को वापिस लेती हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापिस लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खंड (7) के स्थान पर निम्न खंड रखा जाये:–

'(7) Parliament may by law prescribe—

(a) the circumstances under which, and the class or classes of cases in which, or a person may be detained for a period longer than three months under any law providing for preventive detention without obtaining the opinion of an Advisory Board in accordance with the provisions of sub-clause (a) of clause (4);

(b) the maximum period for which any person may in any class or classes of cases be detained under any law providing for preventive detention; and

(c) the procedure to be followed by an Advisory Board in an inquiry under sub-clause (a) of clause (4).'"

[(7) संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि—

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिये खंड (4) के उपखंड (क) के उपबंधों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किये बिना निरुद्ध किया जा सकेगा;

(ख) किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिये कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन निरूद्ध किया जा सकेगा; तथा

(ग) खंड (4) के उप-खंड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में मंत्रणा-मंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया क्या होगी।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 32 के खंड (4) में, 'rights' शब्दों के स्थान पर 'right' शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

संशोधन सं. 551, 552 तथा 553, सभा की अनुमति से, वापिस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 222 के खंड (1) में, 'The President may' इन शब्दों के पश्चात् 'after consultation with the Chief Justice of India' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 288 के खंड (1) की व्याख्या के स्थान पर, निम्न रखा जाये:—

'*Explanation.*—The expression 'law of a State in force' in this clause shall include a law of a State passed or made before the commencement of this Constitution and not previously repealed, notwithstanding that it or parts of it may not be then in operation either at all or in particular areas.' "

[*व्याख्या*—इस अनुच्छेद में "राज्य में की कोई प्रवृत्ति विधि" के अंतर्गत राज्य की ऐसी विधि भी होगी, जो इस संविधान के प्रारंभ से पूर्व पारित या निर्मित हो तथा पहले ही निरसित न कर दी गई हो चाहे फिर वह या उसके कोई भाग तब पूर्णत:, अथवा किन्हीं विशिष्ट क्षेत्रों में, प्रवर्तन में न हो।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 319 के खंड (ग) में, 'as the Chairman of a State Public Service Commission other than a Joint Commission' इन शब्दों के

[अध्यक्ष]

स्थान पर 'as the Chairman of the Union Public Service Commission or as the Chairman of a State Public Service Commission' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 319 के खंड (घ) में, 'as the Chairman of any other State Public Service Commission' इन शब्दों के स्थान पर 'as the Chairman of that or any other State Public Service Commission' ये शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 320 के खंड (4) के स्थान पर, निम्न खंड रखा जाये:

'(4) Nothing in clause (3) shall require a Public Service Commission to be consulted as respects the manner in which any provision referred to in clause (4) of article 16 may be made or as respects the manner in which effect may be given to the provisions of article 335.' "

[(4) खंड (3) की किसी बात से यह अपेक्षा न होगी कि लोकसेवा-आयोग से उस रीति के बारे में परामर्श किया जाये जिससे कि अनुच्छेद 16 के खंड (4) में निर्दिष्ट कोई उपबंध बनाया जाता है। अथवा जिस रीति से कि अनुच्छेद 335 के उपबंधों को प्रभाव दिया जाना है।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 347 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रखा जाये:—

"347. *Special provision relating to language spoken by a section of the population of a State.*—On a demand being made in that behalf, the President may, if he is satisfied that a substantial proportion of the

population of a State desire the use of any language spoken by them to be recognised by that State, direct that such language shall also be officially recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.' "

[347. **किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध.**–तद्विषेयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

"अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 365 में, 'the President may hold' इन शब्दों के स्थान पर 'it shall be lawful for the President to hold' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 के संशोधन सं. 500 में, अनुच्छेद 367 के प्रस्थापित नये खंड (3) के परन्तुक को हटाया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

"अध्यक्षः संशोधन सं. 562 क।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैंने जो परिवर्तन का सुझाव दिया है, उसके साथ।

"अध्यक्षः हां अब वह इस प्रकार बन जायेगा और मैं उस पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 367 में, निम्न खंड जोड़ दिया जाये:—

'(3) For the purposes of this Constitution 'foreign State' means any State other than India:

Provided that, subject to the provisions of any law made by Parliament, the President may by order declare any State not to

[अध्यक्ष]

be a foreign State for such purposes as may be specified in the order.' "

[(3) इस संविधान के प्रयोजनों के लिये "विदेशी राज्य" से अभिप्रेत है भारत से भिन्न कोई राज्य:

परन्तु संसद-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति आदेश द्वारा किसी राज्य का विदेशी राज्य न होना ऐसे प्रयोजनों के लिये, जैसे कि आदेश में उल्लिखित किये जायें, घोषित कर सकेगा।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 385 में, 'such commencement' इन शब्दों के स्थान पर 'the commencement of this Constitution' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) में, 'the President of the Union' इन शब्दों के स्थान पर, दोनों जगह जहां वे हैं, 'the President of India' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के प्रथम परन्तुक में, 'mentioned in this article' इन शब्दों के स्थान पर 'mentioned in this clause' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन सं. 568। इस संशोधन पर श्री कामत का संशोधन सं. 621 है। मैं पहले उस पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 568 के निर्देश से, अनुच्छेद 388 के खंड (1) के प्रथम परन्तुक में, 'Part A of' ये शब्द तथा वर्ण हटाये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर मैं सं. 568 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के प्रथम परंतुक में, 'representing a State' इन शब्दों के स्थान पर 'representing a Province or, as the case may be, a State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन सं. 569। इस संशोधन पर संशोधन सं. 622 है। मैं पहले 622 पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 569 के निर्देश से, अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'Part A of' ये शब्द तथा वर्ण हटाये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'representing a State' इन शब्दों के स्थान पर 'representing a Province or a State' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** संशोधन सं. 580। इस पर एक संशोधन सं. 623 है जिस पर मैं पहले मत लूंगा।

"कि सूची 4 के संशोधन सं. 570 के निर्देश से, अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'the Legislative Assembly of that State' इन शब्दों के स्थान पर 'the Legislative Assembly of that Province or of the corresponding State or of that State, wherever such Assembly has been constituted' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 388 के खंड (1) के द्वितीय परन्तुक में, 'Legislative Assembly of that State' इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of that Province or of the corresponding State or of that State, as the case may be' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 390 में, 'out of such Fund' इन शब्दों के स्थान पर 'out of either of such Funds' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 392 के खंड (3) के स्थान पर, निम्न खंड रखा जाये:–

'(3) the powers conferred on the President by this article, by article 324, by clause (3) of article 367 and by article 391 shall, before the commencement of this Constitution, be exercisable by the Governor-General of the Dominion of India.' "

[(3) इस अनुच्छेद, अनुच्छेद 324, अनुच्छेद 367 के खंड (3) और अनुच्छेद 391 द्वारा राष्ट्रपति को दी गई शक्तियां इस संविधान के प्रारम्भ से पहले भारत डोमीनियन के गवर्नर जनरल द्वारा प्रयोक्तव्य होंगी।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 394 में, '60' इस संख्या के पश्चात् '324', यह संख्या प्रविष्ट की जाये, और '388' संख्या के पश्चात् '391', संख्या प्रविष्ट की जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रथम अनुसूची के भाग 1 में, 'Territories of States' इस उपशीर्षक के अन्तर्गत, 'The territory of the State of Bombay...' इन शब्दों से आरम्भ

होने वाली तथा 'Extra-Provincial Jurisdiction Act, 1947' इन शब्दों तथा संख्या पर समाप्त होने वाली कंडिका को हटाया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रथम अनुसूची के भाग ख में, 'Territories of States' इस उप-शीर्षक के अन्तर्गत कंडिका के स्थान पर, निम्न कंडिका रखी जाये:—

'The territory of each of the States in this Part shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the corresponding Indian State, and—

(a) in the case of each of the States of Rajasthan and Saurashtra, shall also comprise the territories which immediately before such commencement were being administered by the Government of the corresponding Indian State whether under the provisions of the Extra-Provincial Jurisdiction Act, 1947, or otherwise; and

(b) in the case of the State of Madhya Bharat, shall also comprise the territory which immediately before such commencement was comprised in the Chief Commissioner's Province of Panth Piploda.'"

[इस भाग में के राज्यों में से प्रत्येक के राज्य-क्षेत्र में वह राज्य-क्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के आरम्भ से ठीक पहले तत्स्थानी देशी राज्य में समाविष्ट था तथा–

(क) राजस्थान और सौराष्ट्र के प्रत्येक राज्य के विषय में वे राज्यक्षेत्र भी समाविष्ट होंगे जो तत्स्थानी देशी राज्य की सरकार द्वारा प्रांतातीत क्षेत्राधिकार अधिनियम 1947 के उपबन्धों के अधीन या अन्यथा ऐसे आरम्भ से ठीक पहले प्रशासित थे; तथा

(ख) मध्य भारत के राज्य के विषय में वह राज्य-क्षेत्र भी समाविष्ट होगा जो ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले पंथ पिपलोदा के मुख्य आयुक्त प्रान्त में समाविष्ट था।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रथम अनुसूची के भाग ग में, 'Territories of India' इस उप-शीर्षक के अन्तर्गत प्रथम दो कंडिकाओं के स्थान पर निम्न कंडिका रखी जाये:—

"The territory of each of the States of Ajmer, Coorg and Delhi Shall comprise the territory which immediately before the commencement of this Constitution was comprised in the Chief Commissioner's Province of Ajmer-Marwara, Coorg and Delhi, respectively.' "

[अजमेर, कोड़गु और दिल्ली में से प्रत्येक के राज्य-क्षेत्र में वह राज्य-क्षेत्र समाविष्ट होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमश: अजमेर-मारवाड़ा, कोड़गु और दिल्ली के मुख्य आयुक्तों के प्रांत में समाविष्ट था।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 में, प्रविष्टि 8 के स्थान पर, निम्न प्रविष्टि रखी जाये:-

'8. Central Bureau of Intelligence and Investigation.' "

[8. केन्द्रीय गुप्त वार्ता और अनुसंधान विभाग।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** फिर हम सूची 5 पर आते हैं। संशोधन सं. 614 पेश नहीं किया गया। मैं सं. 615 पर सदन का मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 75 में, 'Emoluments, allowances' इन शब्दों के पश्चात् 'privileges' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान, संशोधन सं. 616 पर मेरा एक संशोधन है जो मैंने आज सवेरे दिया था। उसे पेश हुआ समझ लिया गया था।

***अध्यक्ष:** हां, मैं इस पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि 'except' शब्द के स्थान पर 'other than' ये शब्द रखे जायें और सप्तम अनुसूची, सूची 3 की प्रविष्टि 46 में दो अर्ध-विराम हटाये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** अशुद्ध विराम-चिह्न, श्रीमान।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 46 में, 'other than the Supreme Court' इन शब्दों के स्थान पर 'except the Supreme Court' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब हम सूची 6 पर आते हैं संशोधन सं. 618।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 148 के खंड (5) के स्थान पर निम्न खंड रखा जाये:—

'(5) Subject to the provisions of this Constitution and of any law made by Parliament, the conditions of service of persons serving in the Indian Audit and Accounts Department and the administrative powers of the Comptroller and Auditor-General shall be such as may be prescribed by rules made by the President after consultation with the Comptroller and Auditor-General.' "

[(5) इस संविधान के तथा संसद-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारतीय लेखा-परीक्षा और लेखा-विभाग में सेवा करने वाले व्यक्तियों की सेवा-शर्तें तथा नियन्त्रक-महालेखा-परीक्षक की प्रशासनिक शक्तियां ऐसी होंगी जैसी कि नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक से परामर्श करने के पश्चात् राष्ट्रपति नियमों द्वारा विहित करे।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 3 की उप-कंडिका (1) के खंड (छ) को हटाया जाये, और अवशिष्ट खण्ड '(h), (i), (j) और (k)' के वर्णों की संख्या कमशः '(g), (h), (i) और (j) की जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

"अध्यक्षः संशोधन सं. 625। इस पर श्री चालिहा का संशोधन सं. 630 है। मैं उस पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 6 के संशोधन सं. 621 में, षष्ठ अनुसूची की कण्डिका (4) की प्रस्थापित उप-कंडिका की प्रथम तीन पंक्तियों के स्थान पर निम्न रखा जाये:—

'(4) That the Governor shall make rules regulating—' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका (4) में निम्न उप-कंडिका जोड़ी जाये:—

'(4) The Regional Council or the District Council, as the case may be, may with the previous approval of the Governor make rules regulating—

(a) the constitution of village Councils and courts and the powers to be exercised by them under this paragraph;

(b) the procedure to be followed by village Councils or courts in the trial of suits and cases under sub-paragraph (1) of this paragraph;

(c) the procedure to be followed by the District or Regional Council or courts constituted by such Council in appeals and other proceedings under sub paragraph (2) of this paragraph;

(d) the enforcement of decisions and orders of such Councils and courts;

(e) all other ancillary matters for the carrying out of the provisions of sub-paragraphs (1) and (2) of this paragraph.' "

[(4) यथास्थिति प्रादेशिक परिषद् या जिला-परिषद् राज्यपाल के पूर्व अनुमोदन से—

(क) ग्राम-परिषदों और न्यायालयों के गठन तथा इस कंडिका के अधीन प्रयोक्तव्य उनकी शक्तियों के;

(ख) इस कंडिका की उप-कंडिका (1) के अधीन व्यवहार-वादों और मामलों के परीक्षण में परिषदों या न्यायालयों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के;

(ग) इस कंडिका की उप-कंडिका (2) के अधीन अपीलों और अन्य कार्यवाहियों में प्रादेशिक या जिला परिषद् या ऐसी परिषद् द्वारा संगठित किसी न्यायालय द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के;

(घ) ऐसी परिषदों और न्यायालयों के विनिश्चयों और आदेशों के परिपालन के;

(ङ) इस कंडिका की उप-कंडिका (1) और (2) के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिये अन्य सब सहायक विषयों के, विनियमन के लिए नियम बना सकेगी।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 5 की उप-कंडिका (3) में, 'and the Governor may by rules prescribe the procedure to be followed at such trial' इन शब्दों के स्थान पर 'to which the provisions of this paragraph or paragraph 4 apply' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 20 की उप-कंडिका (2) के परन्तुक में, 'clauses (e), (f) and (g)' इन शब्दों, कोष्ठकों तथा वर्णों के स्थान पर 'clauses (e) and (f)' ये शब्द, कोष्ठक तथा वर्ण रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 106 में, 'Constituent Assembly of India, इन शब्दों के स्थान पर 'Constituent Assembly of the Dominion of India' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 348 के खंड (3) में 'shall for the purposes of the said clause be deemed to be the authoritative text thereof' इन शब्दों के स्थान पर 'shall be deemed to be the authoritative text thereof in the English language under this article' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संसद में श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि भाग 16 में 'minorities' शब्द के स्थान पर 'certain classes' ये शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 67 में, 'records' शब्द के पश्चात् 'and archaeological sites and remains' ये शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** एक आनुषंगिक संशोधन है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुसूची 7, सूची 3 की प्रविष्टि 40 में, 'and remains' इन शब्दों के पश्चात् 'other than those declared by Parliament by law to be of national importance' ये शब्द जोड़े जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मैं मान लेता कि बंगाल के नाम के स्थान पर पश्चिमी बंगाल रखने के विषय में संशोधन स्वीकृत हो गया। ठक्कर बापा का एक संशोधन है जिस पर मैं सदन का मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि परन्तुक 164 के परन्तुक में ये शब्द प्रविष्ट किये जायें, 'Provided that in the State of Madhya Bharat there shall be a minister in charge of tribal welfare, who may in addition be in charge of the welfare of the Scheduled Castes and backward classes or any other work.' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** आज स्थगित होने से पूर्व, हम कार्यक्रम सम्बन्धी कुछ प्रबंध करेंगे कि हमें क्या करना है। मैं मान लेता हूं कि हम आज मध्यान्ह के पश्चात् नहीं बैठेंगे। मैं सदस्यों से यह जानना चाहता हूं कि उनमें से कितने बोलना चाहते हैं, ताकि मैं क्रम तथा समय नियत कर सकूं। अगले शनिवार को बैठने के विषय में मेरे लिये अभी विनिश्चय करना संभव नहीं है। मैं शुक्रवार को निश्चय करूंगा कि हम शनिवार को बैठेंगे या नहीं। दिन प्रति दिन के सत्रों के विषय में, सदन की इच्छा क्या है?

***कई माननीय सदस्य:** प्रति दिन पांच घन्टे।

"प्रो. एन.जी. रंगा (मद्रास: जनरल): ढाई बजे से साढे छह बजे सायंकाल तक एक बैठक, ताकि हम केवल एक बार आयेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रत्येक वक्ता के लिये क्या अवधि होगी।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मेरा सुझाव है 15 मिनट हो, और प्रति दिन 5 घंटे हो ताकि सदस्यों को इस सत्र तथा अगले सत्र तक कुछ दिन मिल जायें।

***कई माननीय सदस्य:** आधा घंटा।

***अध्यक्ष:** बीच की बात सही, प्रत्येक वक्ता के लिये 20 मिनट की अवधि होगी।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** अभी तो हम यही निर्णय कर सकते हैं कि हमें कल बैठना चाहिये या नहीं। इस बीच में यह अभीष्ट होगा यदि आप सदस्यों से कह दें कि जो बोलना चाहते हैं वे अपने नाम आप को दे दें। सामान्य वाद-विवाद में जो वक्ता भाग लेना चाहते हैं उनकी संख्या जानने के पश्चात् आप यह निश्चय कर सकेंगे कि हमें प्रति दिन दो सत्र करने चाहिये या नहीं और प्रत्येक वक्ता को कितना समय देना चाहिये। इस समय किसी को भी पता नहीं है कि कितने सदस्य बोलना चाहते हैं। यदि वक्ता बहुत नहीं होंगे तो प्रत्येक सदस्य को अधिक समय भी दिया जा सकेगा और प्रति दिन एक सत्र से ही काम चल जायेगा। अत: मेरा सुझाव है कि आप केवल कल तक के लिये ही बैठक निश्चित करें और इस बीच सदस्यों से कहें कि वे अपनी इच्छा आपको बतायें, जिससे कि आपके पास वक्ताओं की सूची हो और आप अन्य बातों का निर्णय कर सकें कि प्रत्येक वक्ता को कितना समय मिले और प्रति दिन कितने सत्र हों—एक या दो।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार मैं यह व्यवहारिक सुझाव है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं कह सकता हूं श्रीमान, कि हम कल यथावत दस से एक तक तथा तीन से पांच बजे तक बैठें?

***अध्यक्ष:** इस समय मेरा निश्चय है कि हम कल यथावत् 10 बजे समवेत हों और मैं सदस्यों से आशा करता हूं कि यदि वे वाद-विवाद में भाग लेना चाहते हैं तो आज सायंकाल तक कार्यालय को अपने नाम भेज दें। उस सूचना से मैं बैठक का समय आदि निश्चित कर सकूंगा। मैं कह सकता हूं कि सदस्यों को अधिकार होगा कि वे नाम देने पर भी चाहें तो वाद-विाद में भाग न लें।

सदन कल के 10 बजे तक के लिये स्थगित होता है।

तत्पश्चात् सभा बृहस्पतिवार 17 नवम्बर 1949 के 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

GIPD–HS-252 PSD–17-12-52–320

Con. 3. XI.4.49
320

अंक 11
संख्या 4

बृहस्पतिवार
17 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3703-3746
[तृतीय पठन]

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 17 नवम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा-(जारी)

(तृतीय पठन)

***अध्यक्षः** अब हम संविधान के तृतीय पठन को आरम्भ करेंगे। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बंबईः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"संविधान को सभा ने जिस रूप में निश्चित किया है उस रूप में पारित किया जाये।" *(हर्षध्वनि)*

***श्री महावीर त्यागीः** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): बधाई।

****श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): डॉ. अम्बेडकर को कृपा कर के बोलने दीजिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं अन्त में बोलूंगा। साधारणतः इस समय नहीं बोला जाता।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल** (बंबईः जनरल): अब इस प्रस्ताव पर मत लिया जाये। *(हास्य)*

***श्री महावीर त्यागीः** इस संविधान के सम्बन्ध में जिसे हम पारित करने जा रहे हैं, डॉ. अम्बेडकर की क्या राय है?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अब हम कार्य आरम्भ करें। डॉ. अम्बेडकर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि संविधान को सभा ने जिस रूप में निश्चित किया है उस रूप में पारित किया जाये। अब इस प्रस्ताव पर बहस हो सकती है। कल हम इस सम्बन्ध में विचार कर रहे थे कि तृतीय पठन में कितना समय लगेगा और मैंने सदस्यों से प्रार्थना की थी जो लोग बोलना चाहें वे अपने नाम मेरे पास भेज दें। कल शाम तक 71 लोगों ने अपने नाम मेरे पास भेजे थे। आज प्रातः

[अध्यक्ष]

कुछ और नाम भी मिले हैं। मुझे यह दिखाई देता है कि यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति बीस मिनट लेगा और यदि हम इस सप्ताह में तीन दिन और अगले सप्ताह में पांच दिन बैठें तो हमें चौबीस घंटे मिलेंगे और इस समय में बहत्तर वक्ता बोल सकेंगे। जिन लोगों ने बोलने की इच्छा प्रकट की है उन्हें इस समय में बोलने का अवसर मिल जायेगा और अधिक बैठने की आवश्यकता नहीं होगी।

***श्री एच.वी. कामतः** हम चार घंटे क्यों न बैठें।

***अध्यक्षः** इस स्थिति में हमें चार घंटे बैठने आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि हम प्रति दिन चार घंटे बैठेंगे तो हम इस सत्र को शुक्रवार के बजाय बृहस्पतिवार ही को समाप्त कर देंगे। यदि हम इससे भी पहले समाप्त कर सके तो हमें विधान मंडल के सत्र के पूर्व अधिक समय मिल जायेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): सम्भव है कि कुछ माननीय सदस्य बाद में आयें और उस समय अपने नाम दें।

***अध्यक्षः** वे आयें। हमें कुछ और कार्य भी करना है। कम से कम आज और कल, अथवा इस सप्ताह के अन्त तक, हम तीन घंटे ही बैठें। यदि हम इसकी आवश्यकता देखें, अथवा यह देखें कि अधिक कार्य नहीं हुआ है, तो अगले सप्ताह के सत्र में हम कमी पूरी कर सकते हैं।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रासः जनरल): क्या सभा दस बजे से एक बजे तक समवेत रहेगी?

***अध्यक्षः** जी हां।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारतीः** हमें यह पूर्णतया माननीय है।

***अध्यक्षः** मेरी समझ में नहीं आता कि मैं सदस्यों को किस क्रम से बुलाऊं। मेरे विचार से मुझे पहले की ही प्रथा का अनुसरण करना चाहिये। यदि सदस्य अपने स्थानों पर खड़े होंगे तो मैं उनमें से किसी एक को बुला लूंगा।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): वे अंग्रेज़ी अक्षरों के क्रम से बुलाये जायें।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से यह एक निष्प्राण रीति होगी। मैं पहले की प्रक्रिया का ही अनुसरण करूंगा और मुझे आशा है कि मुझे किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। श्री मुनिस्वामी पिल्ले।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया है उसका समर्थन करने के लिए मैं इस आदरणीय सभा के सामने आया हूं। श्रीमान, हमारे महान देश के संविधान के निर्माता की इस सभा की कार्यवाही का जिस उदारता से आपने संचालन किया है यदि उसकी मैं चर्चा नहीं करूंगा तो मैं अपने कर्तव्य का पालन

नहीं करूंगा। श्रीमान, पूना के युगप्रवर्तक समझौते पर आपने भी हस्ताक्षर किये थे इसलिये आज आपको यह देख कर हर्ष होगा कि भारतीयों की सभी जातियों तथा वर्गों को समान अवसर प्रदान करके हम भारतीय इतिहास के एक नवीन अध्याय का आरम्भ कर रहे हैं। श्रीमान दलित वर्गों के उत्थान का बीज महात्मा गांधी ने बोया था जो आगे चल कर इतना वृहदाकार हो गया कि आज हमें ऐसे लोगों का संग प्राप्त है जिनका यह विचार है कि हमारे महान देश में जनसाधारण को सुविधायें प्रदान करना बहुत आवश्यक है।

श्रीमान, मसौदा समिति ने जो बहुमूल्य तथा महान सेवा की है उसकी मैं प्रशंसा करता हूं। उसके सदस्य रात-दिन अथक परिश्रम करते रहे हैं जिसके फलस्वरूप ही महत्वपूर्ण अनुच्छेदों के सम्बन्ध में निर्णय हो सका है। मसौदा समिति के सभापति डॉ. अम्बेडकर ने जिस बुद्धिमत्ता तथा कार्यक्षमता का परिचय दिया है उसकी भी मैं प्रशंसा करता हूं। *(तुमूल हर्षध्वनि)*। मैं भी उसी जाति का हूं जिसने डॉ. अम्बेडकर को जन्म दिया है और मुझे इसका गर्व है कि उनकी कार्य पटुता को न केवल हरिजनों ने बल्कि भारत की सभी जातियों के लोगों ने स्वीकार किया है। अनुसूचित जातियों ने महान भक्त नन्दनार, महान वैष्णव सन्त निरुपाजानालवार और महान दार्शनिक निरुबलुवार को जन्म दिया है जो इस देश के कोने-कोने ही में नहीं बल्कि सारे संसार में विख्यात हैं।

इन महान हरिजनों की नामावलि में अब हमें डॉ. अम्बेडकर का नाम भी जोड़ना है, जिन्होंने संसार को दिखा दिया है कि अनुसूचित जातियों का किसी से कम महत्व नहीं है और वे संसार में किसी भी महान कार्य को तथा महान सेवा को कर सकते हैं। श्रीमान, मैं जानता हूं कि 26 जनवरी 1950 से जो संविधान प्रवर्त्तन में आयेगा उसका निर्माण करके उन्होंने केवल हरिजन समुदाय की ही नहीं बल्कि सारे भारत की सेवा की है। श्रीमान साथ ही मेरी यह धारणा भी है कि मुख्य मसौदाकार तथा उनके कर्मचारियों ने संविधान निर्माण के सम्बन्ध में जो कार्य किया है उसका महत्व कम नहीं है। वे भी प्रशंसा के पात्र हैं।

श्रीमान, जहां तक संविधान का सम्बन्ध है, मुझे इसका गर्व है कि हमारे देशवासियों ने इस आवश्यकता का अनुभव किया है कि जो लोग समाज में निम्न स्तर के समझे जाते हैं उनके प्रति विभेद न बरता जाये और उसका उल्लेख मूलाधिकारों में किया गया है। अनुच्छेद 15 और 16 में विभेद का प्रतिषेध है और साथ ही नौकरी के सम्बन्ध में अवसर-समता की व्यवस्था है। मैं इन उपबन्धों का विशेष रूप से स्वागत करता हूं।

इस संविधान द्वारा इस देश का ही नहीं बल्कि सारे संसार का ध्यान एक बड़ी बात की ओर आकर्षित किया गया है और वह यह है कि अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है। अस्पृश्यता भारत के समाज पर एक कलंक थी। बड़े-बड़े अवतारों तथा सन्तों ने अस्पृश्यता का अन्त करने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगाई किन्तु इस नवीन संविधान द्वारा इस आदरणीय सभा को ही यह घोषित करना था कि हमारे देश में अब अस्पृश्यता का लेशमात्र भी नहीं रहेगा।

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 29 द्वारा भावी सरकारों को हिन्दुओं की सभी धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों के लिये खोल देने की शक्ति प्रदान की गई। कभी यह होता था कि मंदिरों की पवित्र चाहर दीवारी के अन्दर कुत्ते और सुवर भले ही चले जायें किन्तु किसी अछूत की छाया पड़ने से भी वह अपवित्र हो जाती थी। श्रीमान, मुझे इसका गर्व है कि इस अनुच्छेद द्वारा यह कलंक मिटा दिया गया है। हिन्दुओं के एक वर्ग के प्रति विभेद बरते जाने के कारण और उसे प्रवेश न मिलने के कारण उसके लोगों ने विभिन्न धर्मों को अंगीकार कर लिया। इससे हमारी जनसंख्या भी कम हो गई और हमारे समाज में सुयोग्य व्यक्ति भी कम हो गये। आज मुझे इसका गर्व है कि अनुच्छेद 29 के अधीन केवल यही नहीं होगा कि हिन्दुओं की धार्मिक संस्थायें हिन्दुओं के सभी वर्गों के लोगों के लिये खोल दी जायेंगी किन्तु वे शिक्षा-संस्थायें भी, जिनका पोषण राज्य करता है अथवा जो सरकार से सहायता पाती हैं, लोगों के सभी वर्गों के लिये खोल दी जायेंगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, महात्मा गांधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि सर्वत्र नशाबन्दी होनी चाहिये। मैं यह घोषित करता हूं कि यदि एक दिन के लिये भी उन्हें पूर्ण शासनाधिकार मिलता तो वे सारे भारत में नशाबन्दी कर देते। संविधान के अनुच्छेद 47 में यह ठीक ही कहा गया है कि भारत में सर्वत्र नशाबन्दी की जायेगी। अनुच्छेद 46 द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों को एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है और मैं उसका स्वागत करता हूं। अनुच्छेद 48 दुधारू गायों के परिरक्षण तथा गोवध के प्रतिषेध के सम्बन्ध में है। भारत में गाय को बहुत महत्व दिया जाता है और लोगों की यह धार्मिक भावना है कि गाय का परिरक्षण होना चाहिये। एक हिन्दू होने के नाते मुझे इसका हर्ष है कि संविधान में इस सम्बन्ध में एक अनुच्छेद रखा गया है। अनुच्छेद 343 में हम सारे भारत के लिये एक ही सरकारी भाषा के सम्बन्ध में उपबन्ध रखने के लिये सहमत हो गये हैं। यह कहा गया है कि 15 वर्ष की अवधि में सारे भारत को एक ही भाषा अंगीकार कर लेनी चाहिये। मैं एक ऐसे प्रदेश का निवासी हूं जो हिन्दी भाषी नहीं है और मेरी जाति के लोगों को हिन्दी भाषा सीखने का अवसर नहीं मिला है। चाहे जो भी हो भावी सरकार इस विषय पर विचार करेगी और यदि वह यह देखेगी कि अहिन्दी प्रदेशों में लोगों का एक बड़ा वर्ग हिन्दी को अभी पूर्णतया नहीं अपना पाया है तो वह उसे कुछ अधिक समय दे देगी।

अनुच्छेद 74 के सम्बन्ध में, जो मंत्रियों को चुनने के बारे में है, श्रीमान, मेरा निवेदन है कि मैं समुदाय के अधिकारों में विश्वास रखता हूं। पिछले वर्षों में, जब 1935 का अधिनियम प्रवर्त्तन में था एक प्रथा इस प्रकार की थी कि जिन समुदायों का प्रतिनिधित्व नहीं होता था उनके कुछ लोग मंत्री बना दिये जाते थे। इसमें इसका उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु मुझे विश्वास है कि जिन लोगों के हाथ में भविष्य में शासन की बागडोर होगी वे मंत्रिमंडलों में उन समुदायों के लोगों को रखने का प्रयास करेंगे जिनका प्रतिनिधित्व नहीं हुआ हो ताकि वे समुदाय पिछड़े हुए न रहें और समाज में वही स्थान प्राप्त कर सकें जो अन्य लोगों को प्राप्त हो। अनुच्छेद 81 के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि लोक-सभा में स्थान

रक्षित नहीं किये गये हैं। जब इस आदरणीय सभा में मैंने इस पर आपत्ति की थी तो उस समय मसौदा समिति के सभापति ने कहा था कि अल्पसंख्यक मंत्रणा समिति ने इस सम्बन्ध में कोई विशेष सिफारिश नहीं की है किन्तु मुझे विश्वास है कि राष्ट्रपति जो अन्तर्कालीन संसद की रचना के लिये उत्तरदायी होंगे, उन लोगों के लिये किसी न किसी प्रकार कुछ स्थान रक्षित कर देंगे।

श्रीमान, मुझे इस का गर्व है कि मसौदा समिति ने अनुसूचित जातियों के सदस्यों का तथा अन्य लोगों का दृष्टिकोण समझा है और सेवाओं में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में अनुच्छेद 320 तथा 335 को उपस्थित किया है। मैं इसे बहुत महत्व देता हूं कि एक ऐसे समुदाय को जिसे शताब्दियों से समाज ने बहिष्कृत कर रखा था, आज एक स्थान दिया जा रहा है। मेरे विचार से सेवाओं में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में इन अनुच्छेदों से अनुसूचित जातियों के हितों की बहुत कुछ रक्षा हो सकेगी।

संविधान के मसौदे की एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत के लोगों को वयस्क मताधिकार प्रदान किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप इस देश के सभी वयस्कों को विशेषत: अनुसूचित जातियों के लोगों को जो भारत के जन-समुदाय के षष्ठांश हैं, विभिन्न विधान-सभाओं में अपने यथेष्ट प्रतिनिधि भेजने के लिये समान अवसर मिल जायेगा। मुझे केवल यह सन्देह है कि क्या ये लोग, जिन्हें अभी यथोचित शिक्षा नहीं मिली है, अपने मत समझदारी से देकर सुयोग्य प्रतिनिधियों को भेज सकेंगे या नहीं। किन्तु मुझे विश्वास है कि भारत में विभिन्न समुदायों की सहायता से वे विभिन्न विधान-सभाओं में यथेष्ट प्रतिनिधि भेज सकेंगे।

श्रीमान, प्रान्तीय विधान-सभाओं में अनुसूचित जातियों के लिये स्थान रक्षित रखने के सम्बन्ध में दस वर्ष की कालावधि रखना आवश्यक था किन्तु मंत्रणा-समिति के समक्ष मैंने यह तर्क उपस्थित किया था कि कोई कालावधि नहीं रखनी चाहिये क्योंकि संकटापन्न स्थिति तथा महात्मा गांधी के निधन के कारण देश किसी भी वर्ग के लिये स्थान रक्षित करने के पक्ष में नहीं है। इसे ध्यान में रखा गया किन्तु सरदार पटेल की उदारता के कारण, जिन्होंने अल्पसंख्यक मंत्रणा समिति की बैठकों को बड़ी योग्यता के साथ संचालन किया, हमने दस वर्ष की कालावधि रखी और एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति के लिये व्यवस्था की, जो हरिजनों तथा अनुसूचित जातियों के लोगों की आवश्यकताओं को पूरी करने का प्रबन्ध करेगा। यदि इस काल में हमारी यथेष्ट उन्नति हो गई तो हम कालावधि को हटा देंगे। किन्तु यदि यह देखा गया कि ये लोग इस समय में अन्य समुदायों के स्तर पर नहीं आये हैं तो मुझे विश्वास है कि भावी संसद-सदस्य तथा सरकार इस कालावधि को बढ़ा देंगे।

श्रीमान, एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की परिभाषा की गई है। यह कहा जाता है कि प्रान्तीय विधान-मंडलों के अस्तित्व में आने के पूर्व राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में एक घोषणा निकालेंगे कि कौन से समुदाय अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के अन्तर्गत आते हैं। मुझे तथा मेरी जाति के अन्य लोगों को यह ज्ञात हुआ है कि कुछ लोग अनुसूचित

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

जातियों के अन्तर्गत आने वाली कुछ जातियों को उस वर्ग से हटाने के लिये चाल चल रहे हैं। श्रीमान, मुझे आशा है कि जो जातियां वास्तव में अनुसूचित जातियों के वर्ग में हैं उनमें से किसी को भी उस वर्ग से नहीं हटाया जायेगा।

सभा के विचाराधीन इस संविधान की सबसे बड़ी बात यह है कि इस से "अल्पसंख्यक" शब्द निकाल दिया गया है। वास्तव में मेरी जाति के लोगों की यह इच्छा कदापि नहीं है कि वे सदा अल्पसंख्यक अथवा अनुसूचित जाति के लोग कहे जायें। हम इस देश के तीस करोड़ लोगों में समाविष्ट हो जाना चाहते हैं। महात्मा गांधी ने यह ठीक ही कहा था कि आवश्यकता है हृदय परिवर्तन की। यदि सवर्ण हिन्दू, अथवा वे लोग जिनका इस देश में बाहुल्य है, हृदय परिवर्तन का परिचय दें, तो श्रीमान, हम स्वतः भारतीयों के वृहत् समुदाय में समाविष्ट हो जायेंगे। मैं नहीं चाहता कि हमेशा के लिये एक पृथक वर्ग के लोग बने रहें।

अन्त में मैं इस सभा में उपस्थित हरिजन सदस्यों की ओर से, तथा देश के अन्य हरिजनों की ओर से, आप को तथा इस आदरणीय सभा को और सरकार को आश्वासन देता हूं कि इन हरिजन.....

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर राज्य): क्या हम हरिजनों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** हम विशेष रूप से हरिजन समुदाय के लोग कहे जाते हैं। हरिजनों की ओर से मैं आपको तथा भावी भारत सरकार को आश्वासन देता हूं कि हरिजनों का एक एक आदमी संविधान-सभा द्वारा पारित संविधान का समर्थन करेगा और उसकी भावना को तथा उसके प्रत्येक अक्षर को प्रवर्त्तन में लाने के लिये प्रयत्न करेगा।

श्रीमान, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): सभापति जी, आज मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि हमने जिस विधान को लगभग तीन वर्षों में पूरा किया, उसका अब अन्तिम पारायण होना आरम्भ हुआ है। इस अवसर पर सर्वप्रथम मैं डॉ. अम्बेडकर साहब को बधाई देता हूं कि उन्होंने इस विधान की तैयारी में इतना परिश्रम किया और आज उन्होंने यह प्रस्ताव भी हमारे सामने उपस्थित किया कि यह विधान, जो भी हमने उस में संशोधन किये हैं उन सबके साथ, स्वीकृत किया जाये। डॉक्टर अम्बेडकर साहब को वर्तमान काल का मनु कहा जाता है। जो कुछ हो, मेरा यह मत है कि उन्हें जो विधान सम्बन्धी यह कार्य दिया गया उसके वे सर्वथा योग्य थे।

हमारी बधाई के दूसरे पात्र हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू हैं, जिन्होंने इस विधान परिषद् में सर्वप्रथम उस प्रस्ताव को उपस्थित किया जो इस विधान की आधार शिला कहा जा सकता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं जानना चाहता हूं कि क्या माननीय सदस्य महोदय हिन्दू कोड की चर्चा करते हुए डॉ. अम्बेडकर को मनु कहा है?

***सेठ गोविन्द दास:** जी नहीं। हिन्दू कोड से मेरे कथन का कोई सम्बन्ध नहीं था। आप जानते हैं कि मैं हिन्दू कोड के बहुत से अंशों के विरुद्ध हूं तो मैं उस प्रस्ताव को स्मरण दिला रहा था जो पंडित जवाहर लाल जी ने इस परिषद् में आरम्भ में रखा था और जैसा मैंने कहा था वह प्रस्ताव हमारे इस विधान की आधारभूत शिला है।

हमारे तीसरे बधाई के पात्र सरदार वल्लभभाई पटेल हैं, जिन्होंने हमारी विविध रियासतों को, जिनके कारण हमारा देश भिन्न-भिन्न टुकड़ों में बंटा हुआ था, एकीकरण किया।

इस प्रकार आज इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मैं इन तीनों महानुभावों को बधाई देता हूं।

हमारा देश संसार के 6 प्राचीनतम देशों में एक है। वे प्राचीनतम देश हैं भारत, चीन, यूनान, बेबीलोनिया और मैसोपोटामिया। जहां तक बेबीलोनिया और मैसोपोटामिया का सम्बन्ध है, आज संसार में उनका कोई विशिष्ट स्थान नहीं है। यूनान को यदि हम देखें तो हमें ज्ञात होता है कि आज प्राचीन यूनान केवल उसके खंडहरों में दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन यूनान की संस्कृति और सभ्यता हमें वर्तमान यूनान में दिखाई नहीं देती। यहां पर ईसाई संस्कृति और सभ्यता का दौर-दौरा है। जहां तक कि मिश्र का सम्बन्ध है, मिश्र में भी हमें मिश्र की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता केवल वहां के पिरामिडों में दृष्टिगोचर होती है। मिश्र में यदि आज कोई जाये तो उसे मिश्र की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के दर्शन नहीं होते। वहां पर आज इस्लामी संस्कृति और सभ्यता का दौर-दौरा है। जहां तक चीन का सम्बन्ध है, चीन में हमें बौद्ध काल के भारत और उसके पश्चात् वहां पर जो कुछ हुआ उसकी संस्कृति और सभ्यता का थोड़ा बहुत दर्शन अवश्य होता है, परन्तु चीन में भी हमें अधिकांश में आधुनिकता का ही दौर-दौरा दिखाई देता है। इस प्रकार इन 6 प्राचीनतम देशों में से पांच देशों में हमें उनकी प्राचीन संस्कृति दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल भारत ही संसार के प्राचीनतम 6 देशों में से एक ऐसा देश है जिसमें आज भी हमें उस की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की परम्परा हर क्षेत्र में दिखाई देती है।

यदि कोई यह आशा करे कि भारत प्राचीन ऋग्वेद के काल का भारत रह सकता है तो यह आशा कभी पूरी नहीं हो सकती और न यह उचित ही है। हम इस समय के भारत को प्राचीन ऋग्वेद काल का भारत नहीं बनाना चाहते। परन्तु इसी के साथ साथ हम एक बात यह भी चाहते हैं कि जो संस्कृति और सभ्यता हमें सहस्रों वर्षों से प्राप्त हुई है जिसकी परम्परा आज भी हमारे देश में दृष्टिगोचर होती है और जिस परम्परा को हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस शताब्दी में भी हमारे यहां पर स्थित रखने के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न किये, उस प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को हम सर्वथा विस्मृत न कर दें। आधुनिक जगत में जिन वस्तुओं की हमें आवश्यकता है, आधुनिक काल में विज्ञान में जो जो आविष्कार किये हैं, उन सबको हमें ग्रहण करना चाहिये। यूरोप या अमरीका में जो जो नई बातें हुई हैं उनसे भी हमें घृणा करने की आवश्यकता नहीं है। उन नई बातों में हमारे देश

[सेठ गोविन्द दास]

के लिये जितनी उपयोगी बातें हों सबको हमें ग्रहण करना चाहिये। आधुनिक भारत ऐसा भारत होना चाहिये जिसमें हमें प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के भी दर्शन हों और आधुनिक काल की जो आवश्यकतायें हैं उनका भी समावेश हो। इस दृष्टि से यदि हम अपने विधान को देखें तो इसमें हमें कई न्यूनतायें दृष्टिगोचर होती हैं। कई लोग तो यह भी समझते हैं कि वर्तमान विधान 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट का ही एक वृहद रूप है। चाहे हमको उस दृष्टि से इस विधान में कुछ कमियां दृष्टिगोचर हों पर मैं इसको मानने के लिये तैयार नहीं हूं कि वर्तमान विधान 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट का ही एक वृहद रूप है। इस बात की आवश्यकता थी कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट की कुछ धारायें इसमें रखी जायें। अन्य देशों के जो विधान हैं, आयरलैंड का, कनाडा का, अमरीका का, इन विधानों की भी कई धारायें हमें विधान में दृष्टिगोचर होती हैं। फिर इस विधान में कोई भी मौलिकता न हो, यह बात भी नहीं, मौलिकता भी इस विधान में पर्याप्त है। हां, इस बात को मानने के लिये मैं तैयार हूं कि यह विधान पूर्ण रूप से संतोषप्रद नहीं है। कुछ लोगों का मत है कि यह विधान इतना बड़ा हो गया, इस विधान में इतनी अधिक धारायें हैं और इसमें इतनी बातें कहीं गई हैं कि जिनकी आवश्यकता नहीं थी पर मेरा इससे मतभेद है। यदि विधान लम्बा भी हो गया और इस में ब्यौरों की भी कुछ बातें कहीं गई तो इससे हमें असंतोष नहीं होना चाहिये। वरन इन ब्यौरे की बातों के कारण हमारी पार्लियामेंट को इस विधान के द्वारा अनेक निर्देश मिलेंगे। इसलिये इस विधान के बड़े हो जाने के कारण, इस विधान में इतनी अधिक धारायें आ जाने के कारण, इस विधान में ब्योरे की बातें कही जाने के कारण, हमें उलटा संतोष होना चाहिये। मुझे एक ही बात खटकती है और वह बात सदा खटकती रहेगी, कि इस प्राचीनतम देश का यह विधान देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् विदेशी भाषा में बना है। मैं सदा आपके सामने इस प्रश्न को उठाता रहा हूं और आपने भी एक बार नहीं अनेकों बार इस बात का विश्वास दिलाया था कि आपकी यह इच्छा है कि हमारा विधान हमारी राष्ट्रीय भाषा में हो। मेरा यह मत है कि यदि हम प्रयत्न करते तो हम अवश्य इस काम में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकते थे। तीन वर्ष तक हम लोग अंग्रेजी विधान को पास करने के लिये यहां बैठे। इस विधान को यदि हम एक मास और बैठकर हिन्दी में पास करते तो यह बात न असम्भव थी और न कष्टसाध्य है। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि हमारी गुलामी की समाप्ति के पश्चात् हमारे स्वतन्त्र होने के पश्चात् विधान जो हमने एक विदेशी भाषा में पास किया है, हमारे लिये सदा कलंक की वस्तु रहेगी। यह गुलामी का धब्बा है, यह गुलामी का चिन्ह है। चाहे आप इस विधान का अनुवाद 26 जनवरी तक प्रसारित कर दें तो भी मैं यह कहना चाहता हूं, स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूं कि अनुवाद सदा अनुवाद ही रहेगा। अनुवाद मूल का स्थान नहीं ले सकता है और जब कभी कोई भी वैधानिक अड़चन हमारे सामने उपस्थित होगी, जब कोई वैधानिक प्रश्न हमारे सुप्रीम कोर्ट, हमारे हाई कोर्ट या दूसरी कचहरियों के सामने उपस्थित होगा, हमारे सामने एक विदेशी भाषा का विधान रहेगा और इसके कारण विदेशी भाषा का प्रभुत्व। यह बात हमें सदा सताती रहेगी, मैं उस समय की कल्पना करता हूं, उस समय का स्वप्न देखता हूं जिस समय हमारा देश एक और विधान परिषद् की सृष्टि करेगा और वह विधान परिषद् हमारे सामने, हमारी राष्ट्र भाषा में हमारा मूल विधान उपस्थित करेगी।

अब यदि हम विधान को देखें तो सबसे पहले, जो उसका आदि वाक्य है, जिसे अंग्रेजी में प्रिएम्बल कहते हैं, उस तरफ हमारा ध्यान जाता है। जैसा कि मैंने अभी कहा था कि पंडित जवाहर लाल नेहरू का प्रस्ताव इस विधान की आधारशिला है उसी प्रकार जो प्रिएम्बल है, यह जो आदि वाक्य है उस आदि वाक्य में विधान का सारा निचोड़ आ गया है।

इस प्रिएम्बल में हमने स्पष्ट कर दिया है कि हमारे देश में जो शासन-पद्धति रहेगी वह प्रजातंत्रात्मक रहेगी। हमारे सामने दो ही रास्ते थे। या तो हम प्रजातंत्रात्मक विधान की रचना करते या हम तानाशाही की ओर बढ़ते और इस प्रकार का विधान तैयार करते जिसका अन्तिम निचोड़ होता इस देश में तानाशाही की स्थापना। हमने इस प्रिएम्बल में, इस आदि वाक्य में स्पष्ट कर दिया है कि हमारा शासन प्रजातंत्रवादी होगा। इसके पश्चात् इस आदि वाक्य में जिन चार वस्तुओं का वर्णन है उस तरफ भी मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। पहली बात न्याय, दूसरी बात स्वतंत्रता, तीसरी बात समानता और चौथी बात भ्रातृभाव। न्याय का प्रथम स्थान रहना सर्वथा उचित है। हमारे देश में सदा न्याय को ही प्रथम स्थान प्राप्त रहा है। यदि हम अपने प्राचीन इतिहास को देखें उस इतिहास की परम्परा को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि इस देश में न्याय का प्रथम स्थान था। हमारे यहां कहा गया है:

"स्वस्ति प्रजाभ्य: परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेता महीं महीशा:।।"

अर्थात् शासक न्याय मार्ग से प्रजा का पालन करें। इस लिये प्रजातन्त्र की घोषणा के बाद इस आदि वाक्य में न्याय को स्थान देना सर्वथा उचित बात हुई है। उसके पश्चात् स्वाधीनता का स्थान है। स्वाधीनता बिना सब व्यर्थ है। हमारी स्वाधीनता चली गई थी, सब कुछ चला गया था। स्वाधीनता प्राप्त करके हमने सब कुछ प्राप्त किया है।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने अपनी रामायण में लिखा है:

"पराधीन सपनेहु सुख नाही।"

गोस्वामी जी का यह वाक्य चाहे कितना भी प्रचलित क्यों न हो गया हो, उसका महत्व सदा रहेगा। इसलिये इस आदि वाक्य में जो दूसरा स्थान स्वाधीनता को दिया गया है वह सर्वथा उचित बात है। इसके पश्चात् तीसरा स्थान है समानता का। एक आदमी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं में निवास करे अनेकों प्रकार का भोजन करे, जाड़ों में पशमीनों जैसी वस्तुओं को और गर्मियों में हवा की फूंक से उड़ने वाले कपड़े पहने और दूसरी ओर 99 को झौंपड़े भी प्राप्त न हों। कपड़े भी पूरे न मिलें, यहां तक कि उनकी स्त्रियों को अपनी लाज ढकने के लिये वस्त्र भी उपलब्ध न हों, यदि किसी देश की ऐसी परिस्थिति है तो वह देश कभी सुखी देश नहीं रह सकता। उस देश में क्रान्ति अवश्यम्भावी है। इस लिये इसमें समानता को स्थान देना सर्वथा उचित है। चौथा स्थान भ्रातृ-भाव को दिया गया है। बिना प्रेम के कौन सामाजिक रचना सुखप्रद हो सकती है? तो यह जो आदि वाक्य इस विधान में है उसके अनुसार हमारा देश शासित होगा इसकी मैं आशा करता हूं।

[सेठ गोविन्द दास]

जहां तक विधान की भिन्न-भिन्न धाराओं का सम्बन्ध है, मैं तीन ही धाराओं के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। एक का हमारे नाम का सम्बन्ध है। "इंडिया दैट इज़ भारत" इस विधान में देश का नाम दिया गया है। भारत नाम होना यह उचित बात हुई परन्तु जिस ढंग से देश का नाम भारत रखा गया है उससे हमें पूरा संतोष नहीं हो सका। "इंडिया दैट इज भारत" एक विलक्षण नाम है। दूसरी धारा गौ-रक्षा के सम्बन्ध में है। गौ-रक्षा की धारा इस विधान में जोड़ दी गई है यह संतोष की बात है परन्तु जिस प्रकार हमने अपने मूल अधिकारों, फंडामेंटल राइट्स में यह लिखा है—अनटचेबिलिटी इज ए क्राइम वहीं हमें यह भी लिखना चाहिये था कि—काऊ किलिंग इज ए क्राइम। वह हम नहीं कर सके। तीसरी धारा हमारी भाषा के सम्बन्ध में है। इस धारा से भी हम को पूरा संतोष नहीं है। पन्द्रह वर्ष तक इस देश में अंग्रेजी का दौर-दौरा रहेगा और नागरी लिपि के अन्दर अंग्रेजी अंकों को रखकर उसका भी विरूपण कर दिया गया है। हिन्दी भाषा भाषियों को इससे बड़ा क्षोभ है।

तो मैं यह कहना चाहता हूं कि जिन तीन बातों पर मैंने आरम्भ से ही जोर दिया था, उन तीन बातों से हमें पूरा संतोष नहीं है। परन्तु इन तीन बातों को इस विधान में स्थान मिला, यह अवश्य संतोष की बात है।

अन्त में मैं फिर डाक्टर अम्बेडकर साहब, पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मसौदा कमेटी के अन्य सदस्यों और सभापति जी आपके साथ सारी विधान परिषद् को इस बात पर बधाई देता हूं कि हमने इस स्वतंत्र भारत का विधान तैयार कर लिया और ऐसा विधान तैयार कर लिया जिस पर हमें और सारे देश को गर्व हो सकता है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा: जनरल): सभापति जी, आज इस संविधान की धाराओं की समालोचना होती है। इस समालोचना के अवसर पर मैं दो चार बातें जरूर कहूंगा। पहले तो मुझे यह ख्याल होता है कि जिस आदर्श से हम यह संविधान बनाना चाहते थे, उस आदर्श से हम बहुत दूर भाग गये हैं और अब जो आदर्श हम लोगों के सामने रखे हुए हैं, उस से भारत की आत्मा का कुछ परिचय नहीं मिलता है। जैसा कि सेठ गोविन्द दास जी ने भी कहा है, बहुत लोग कहते हैं कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट से इसमें ज्यादातर इस संविधान का जो मसाला दिया गया है, वह ठीक नहीं है। मैं कहता हूं कि ज्यादातर गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट जैसा मसाला लिया गया है, और बाहर के जिन जिन देशों से जो मसाला लिया गया है यह सब लेकर वह जो संविधान बनाया गया है, यह एक खिचड़ी बन गया है। यह खिचड़ी बहुत आदमी जो दारू पीते हैं, उनकी तो कोकटेल के मुवाफिक अच्छा मालूम होता है, यह जो खिचड़ी कभी-कभी खाते हैं, उनको भी अच्छा मालूम होता है? लेकिन प्रत्येक दिन के व्यवहार के लिये यह जो संविधान बनाया गया है, वह ठीक नहीं है और यह स्थायी रूप से चालू नहीं हो सकेगा।

पहले तो हमें यह देखना चाहिये कि जैसे हमने पहले आरम्भ किया था, हर एक प्रान्त की हर एक एक यूनिट बनायेंगे और एक फैडरेशन के ख्याल से इसको

हम बनाने जाते थे। लेकिन बीच में रोक कर हमने इसको बन्द कर दिया और जितनी यूनिट हैं, उनके हाथ से सब शक्ति छीन ली, यह तैयार ड्राफ्ट कांस्टिट्यूशन ऐसा ही मालूम होता है। और प्रान्तों के ऊपर जैसे अविश्वास करके ड्राफ्ट कांस्टिट्यूशन बनाया गया है। विश्वास विश्वास से जन्मता है, लेकिन इस विधान में प्रान्तों पर विश्वास नहीं है। हर एक प्रान्त के ऊपर इतनी कड़ी जंजीर बांधी गई है कि कोई प्रान्त अपने को ऐसा नहीं समझ सकता है कि वह स्वाधीन बन गया है। हर एक प्रान्त, अब भी जब यह ड्राफ्ट कांस्टिट्यूशन चालू होगा, तो उनको ऐसा मालूम पड़ेगा कि मानो वह दूसरी नई गुलामी में पड़ गये हैं। इसलिये मैं डॉक्टर अम्बेडकर को, जिन्होंने इतना परिश्रम किया है, उसके लिये मैं जरूर उन्हें धन्यवाद देता हूं, लेकिन जब वह बदलते बदलते एक मरकट (बन्दर) बना दिया, इस लिये मैं इस को पसन्द नहीं कर सकता हूं और उनको हार्दिक धन्यवाद नहीं दे सकता हूं। यह तो मैं कह सकता हूं कि यह सिर्फ डॉक्टर अम्बेडकर के हाथ का काम नहीं है, वह ऐसा कहेंगे और यह सच भी है। देश में जो प्रधान दल है, उस दल की मंशा के ख्याल से डॉक्टर अम्बेडकर को भी तोड़ मरोड़ कर उसको बनाना होता है। मुझे तो ऐसा आभास होता है कि देश को दो तीन बरस बाद एक नया संविधान जरूर बनाना होगा। पहले जो हम लोगों के सामने ड्राफ्ट कांस्टिट्यूशन पेश किया गया था, उसमें जवाहर लाल का जो प्रारंभिक भाषण था, उसमें वह बहुत जोर-शोर के साथ बोलते थे सावरिन इंडिपेंडेंट रिपब्लिक की बात, लेकिन धीरे-धीरे उसकी जगह आ गया डेमोक्रेटिक रिपब्लिक। पहले जवाहर लाल जी ने कहा था कि कामनवैल्थ में रहना यह तो हम लोगों के लिये कलंक है, उसमें हम कभी नहीं रह सकते हैं। जिस दिन हम स्वाधीन होंगे हम कोमनवैल्थ से निकल जायेंगे। लेकिन आज मैं देखता हूं कि हम उसी कामनवैल्थ में घुसे हुए हैं। यह तो ऐसा हो रहा है जैसे बिना जहाज का लंगर उठाये हम जहाज चलाने की कोशिश करते हैं, तो वह जहाज नहीं चलता है, और वह जहाज नहीं चलेगा। यह आप देख सकते हैं और फिर उसमें क्या है? इसमें कोई ऐसी बोल्ड पालिसी नहीं है। शायद हम लोगों के दिल और दिमाग में कोई ऐसा साहस, कोई ऐसी बुद्धि नहीं आई है, जिससे हम इस देश को जैसा उचित होगा वैसा विधान बनायेंगे। हम तो बराबर पश्चिम की ओर ताक रहे हैं और दुनिया कैसे चलती है, इसको देखते रहते हैं। जवाहर लाल जी अभी अभी कहते हैं कि हम अपना विधान ऐसा बनायेंगे कि कि सारी दुनिया हमारी तरफ देखेगी और हमारी तरफ आयेगी। दुनिया कैसे इंडिया की तरफ आयेगी? इंडिया में क्या है? इस ड्राफ्ट कांस्टिट्यूशन में क्या है। जो चरखा इस भारत भूमि का आदर्श था और महात्मा गांधी जी का प्रिय था इस चरखे को फैंक दिया गया और जो चरखा नहीं है उसके स्थान पर एक राज्य चक्र लगा दिया है। और फिर जब मैं यह ड्राफ्ट कांस्टिट्यूशन देखता हूं, पहले तो यह था कि उसमें नेशनल सौंग होगा, बन्दे मातरम् होगा, जनमन गण होगा, वह सब कहां भाग गया? इस कांस्टीट्यूशन में है क्या? कल सेठ गोविन्द दास जी ने कहा था कि कऊ स्लाटर बन्द करना चाहिये। यह तो धीरे-धीरे होगा ही। तो जिस आर्टिकल में यह लिखा है कि यह कार्य धीमे-धीमे होगा, उसमें साफ तौर से यह नहीं बतलाया गया है कि हम कऊ स्लाटर एक दम बन्द करते हैं। क्यों नहीं करते हैं? क्या हम लोगों के दिल में कुछ डर है? फिर हम देखते हैं कि इस संविधान में हम कैसी व्यवस्था करेंगे, सोशलिज्म या और कुछ। यह तो ठीक नहीं है। एक ओर हम व्यक्तिगत सम्पत्ति, प्राइवेट प्राफिट, देने की व्यवस्था रखते हैं और फिर यह भी कहते हैं कि गवर्नमेंट के

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

साधन महदूद हैं। इसी लिये प्राहिबिशन भी अभी नहीं करते हैं। इस ही लिये यह दारू चलती है। यह दारू तो चलती ही रहेगी जब तक हम दिल में यह निश्चित नहीं कर लेंगे, कि हम क्या करना चाहते हैं? जब तक हम लोगों का आदर्श, हम लोगों के भीतर, प्रतिफलित नहीं होगा, तब तक हम बाहर क्या प्रतिफलित कर सकते हैं? इस लिये हम लोगों को यह बात अच्छी तरह सोचना चाहिये। चरखा जो भारत जाति का प्रतिबिम्ब था हम रखेंगे या नहीं।

श्री एच.वी. कामतः प्रतीक।

श्री लक्ष्मीनारायण साहूः प्रतीक ठीक है। प्रतीक। फिर नेशनल सौंग, नेशनल फ्लैग। हम लोग कुछ तय ही नहीं करते। आखिर यह सब है क्या? और सब कुछ कहां चला गया? प्राहिबिशन के लिये कहते हैं कि धीरे-धीरे चलो। धीरे-धीरे चलो। यह महात्मा जी का सिद्धान्त कहां गया। अभी एक वक्ता ने कहा कि यदि आज मैं एक रोज के लिये डिक्टेटर होता तो पूरे तौर से प्राहिबिशन हो जाता। हम लोग कहते हैं कि धीरे-धीरे चलो। दारू भी धीरे-धीरे छोड़ो। हम लोगों के प्रदेश (उड़ीसा) में ग्रीन बार, ब्लू बार बने हैं। आज हम प्राहिबिशन करते हैं तो फिर यह सब बार क्यों बनाते हैं। अभी कटक में ब्लू बार और ग्रीन बन गये हैं। इसके बाद मैं यह कहता हूं कि हम लोगों को फिर यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हम कामनवैल्थ में रहेंगे या नहीं? हम सोशलिज्म स्थापित करेंगे या नहीं? यहां तो ऐसा है कि ऐंग्लो इंडियन को स्पेशल प्रिविलेज देते हैं, क्यों देते हैं यह मेरी समझ में नहीं आता है। जो जाति यहां इतने आनन्द में रही है रेलों में और जहां-जहां भी गये उसी अवस्था में रहे हों वह जितने लायक हैं उनके माफिक दूसरे भी यदि लायक हों तो भी इतनी सुविधा नहीं मिलती है जितनी ऐंग्लो इंडियन्स को दी गई है। उसी लिये मैं कहता हूं कि रेलवे में हम लोगों को सुभीता नहीं है। पहले देश का नाम भारत रखा गया लेकिन भारत दुनिया की समझ में नहीं आयेगा इस लिये "इंडिया दैट इज भारत" कर दिया। यह क्या बात है। नैशनल लैंग्वेज क्या होगी? इसकी कोई चर्चा नहीं है। इसके विपरीत आफिशियल लैंग्वेज क्या होगी ऐसा लिखा है। वह हिन्दी होगी। फिर अंग्रेजी चलेगी। फिर पांच बरस के बाद देखेंगे। फिर पन्द्रह बरस के बाद फिर देंखेंगे। ऐसा कहा गया है। इस तरह से हमारा कांस्टिट्यूशन क्या बन गया है। मैं समझता हूं कि यह सब एक दम वृथा है, एक दम रद्दी है। इस में मुझे कुछ मालूम नहीं होता है। कामत साहब ने बहुत धीरे चलकर गाड भी घुसा दिया। बाजे लोग कहते हैं गाड भी नहीं है। भारत के आदमी गाड नहीं चाहते हैं। हम लोगों को ठीक कर लेना चाहिये। कि जब मेजारिटी के लोग जो तय करते हैं उसको मानें लेकिन मैं देखता हूं कि हम लोग डरते-डरते चलते हैं और इस लिये यह कांस्टिट्यूशन ऐसा बन गया जिस कांस्टिट्यूशन में कुछ मालूम नहीं होता है कि भारत का इसमें प्रतिबिम्ब क्या पड़ता है। मैं तो चाहता था कि अब जब मौका मिलता तो इस संविधान को और भी साफ कर दिया जाता। ठीक किया जाता लेकिन अभी तो मौका नहीं है और यह कुछ नहीं होगा। सिविल लिबर्टिज देखिये। आगे ब्रिटिश जमाने में जितनी सिविल लिबर्टीज लोगों को थी उनको इतना जकड़ दिया गया है कि उतनी सिविल लिबर्टीज भी हम लोगों को नहीं मिलेगी। बहुत से आदमी तो बरसों तक जेलों में रखे जाते हैं। ऐसी सिविल लिबर्टीज हम लोगों को मिली है।

***श्री आर.के. सिधवाः** सिविल लिबर्टीज ब्रिटिश के जमाने में हम लोगों को कितनी थी?

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** बहुत ज्यादा थी। जब यह कांस्टिट्यूशन लागू होगा तो आप देखेंगे कि इस संविधान में सिविल लिबर्टीज बहुत कम होगी। भारतवर्ष का जो स्थान है वह ग्राम में है। ग्राम का ख्याल न करके हम सब सिटीजन बन जाते हैं और सिटीजनशिप राइटस मांगते हैं। मैं तो कहता हूं कि ऐसा कुछ होना चाहिये कि विलेजियन के राइट्स होना चाहिये। इस विधान में हम लोगों को विलेजियन-शिप राइट कहीं नहीं मालूम होता। हमको इस समय क्या करना चाहिये। काटेज इंडस्ट्रीज पुनर्जीवित करना चाहिये। लेकिन इसको करने का हमें ख्याल नहीं होता। थोड़े आदमी जब किसी सम्बन्ध में कुछ चिल्लाते हैं तो कह दिया जाता है कि अच्छा इस विषय को भी इसमें रखो। जब हम चाहते हैं कि एक नया संसार बनायें, जब हम कहते हैं कि हिन्दुस्तान नानवायोलेंट होगा और जब हम उसको दुनिया के लिये आदर्श बनाना चाहते हैं तो ऐसा क्यों कहते हैं कि हम कैपिटल पनिशमेंट नहीं उठा सकते हैं। मेरी समझ में नहीं आता है कि हमारे दिमाग में क्या है। आखिर कुछ क्यों नहीं हो पा रहा है। हम लोग बोलते हैं गज्जलिका प्रवाह। हम लोग कुछ चिन्ता नहीं करते हैं। दुनिया जैसा बनाती है जैसा जम्प देती है वैसा हम भी करते हैं। इस लिये मैं तो एक दम परेशान हो गया हूं। यहां जो कांस्टिट्यूशन अभी बनाया जाता है वह है क्या? हम लोगों के जो निर्वाचित गवर्नर होने वाले थे वह कहां गये? पहले तो हम लोगों ने तय कर लिया था कि ऐलेक्टेड गवर्नर हों। फिर उसको रिओपन करके उसको अपोइंटेड गवर्नर बना दिया। यह सब हो रहा है मेजारिटी के नाम पर। यह हम देख रहे हैं कि देखते देखते जैसे हम लोगों का देश पत्थर जैसा हो गया है। डिसेंट्रलाइजेशन की बात एक दम नहीं है आदर्श तो था इतने बड़े भारत वर्ष को विकेन्द्रित करना चाहिये। और ठीक करना चाहिये। लेकिन इतना केन्द्रीकरण हो गया कि एक केन्द्र हो गया और यूनिट जितने हैं सब म्यूनिसिपैलिटीज और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के माफिक हो गये हैं। इस प्रकार जो दुर्बल यूनिट होगा वह तो एक दम मर जायेगा और जो सबल यूनिट है वह सेंटर से कुछ बढ़ावा लेकर आगे बढ़ जायेगा। बम्बई, मद्रास या सब बड़े-बड़े यूनिट्स जैसे यू.पी. भी सुविधा लेकर और रुपये भी लेकर आगे बढ़ जायेंगे। यह ठीक है कि कंसोलिडेटेड फंड से हर एक यूनिट जिस को घाटा है उसको पैसा दिया जायेगा। लेकिन देगा कौन। वह जो कंसोलिडेटेड फंड है वहां जो बड़े-बड़े मद्रास के और बम्बई के लोग बैठे हैं वह सब सोच विचार करके देंगे। बेचारे आसाम को मार देंगे, उत्कल को मार देंगे। हम गुलाम हो कर रहेंगे। मैं देख रहा हूं, दो तीन बरस से देख रहा हूं कि उत्कल को क्या सुविधा मिली है। इसी लिये मैं कहता हूं कि यह कांस्टिट्यूशन हमारी पसन्द का नहीं है।

***श्री के. हनुमनथय्या:** अध्यक्ष महोदय, आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व यह सभा एक संविधान के निर्माण के लिये समवेत हुई थी। अब हमारा श्रम समाप्त होने जा रहा है। इस सभा ने तथा विशेषत: मसौदा-समिति ने जिस कठिन स्थिति में अपने कार्य को समाप्त किया उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

आज, संविधान के पूर्ण चित्र पर दृष्टिपात करने पर मेरी अपनी यह धारणा होती है कि इस पूरे संविधान की न तो प्रशंसा की जा सकती है और न इसका स्वागत ही किया जा सकता है। इसके बहुत से गुण अवश्य हैं—कोई सन्देह नहीं

[श्री के. हनुमनथय्या]

कि इस संविधान में स्वतंत्रता, समता तथा बन्धुता के सिद्धान्त सन्निहित हैं और यह हर्ष की बात है। किन्तु, श्रीमान, इस संविधान में कई अन्य बातें ऐसी हैं जिनसे सम्भवत: बहुत से लोगों की आशायें पूरी न हो सकें। प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस संविधान का निर्माण किसने किया।

जब मैंने मसौदा-समिति के सदस्यों की नामावलि देखी तो मैं यह कहूंगा कि मेरी यह धारणा हुई कि उनमें से अधिकांश बहुत ही आदरणीय पुरुष हैं। उनमें से अधिकांश सुयोग्य व्यक्ति हैं। किन्तु उनमें से कुछ ही की स्वातंत्र्य आन्दोलन से सहानुभूति रही। मसौदा-समिति के सदस्यों की नामावलि को देखने से मेरी यह धारणा बनती है कि उनमें से अधिकांश लोगों ने स्वातंत्र्य आन्दोलन में उस अर्थ में भाग नहीं लिया जिस अर्थ में हमारे अधिकांश नेताओं ने भाग लिया था। स्वभावत: उन्होंने अपने दृष्टिकोण तथा अपने ज्ञान को संविधान में स्थान दिया है। कांग्रेस को, अथवा देश को इस प्रकार के ज्ञान अथवा मनोविज्ञान की आवश्यकता नहीं है। मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हें स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की बहुत-सी विधियों का तथा नियमों का ज्ञान है। उन्हें न्यायालय-निर्णय-विधि तथा संहिता-विधि का बहुत अच्छा ज्ञान है। परन्तु भारत जैसे महान देश के लिये तथा उसके भविष्य के लिये यह ज्ञान पर्याप्त नहीं था। हम चाहते थे वीणा और सितार का संगीत और हमें प्राप्त हुआ अंग्रेजी वाद्यों का संगीत। इसका कारण यह था कि हमारे संविधान-निर्माताओं की शिक्षा-दीक्षा ही इस ढंग की हुई थी। मैं उनको दोष नहीं देता। मैं उन लोगों को अर्थात् हममें से उन लोगों को दोष देता हूं जिन्होंने उन्हें यह कार्य सौंपा।

जरा संविधान के ढांचे को तो देखिये, स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में हमने कुछ सिद्धान्तों तथा आदर्शों को अंगीकार किया था, जिन्हें महात्मा गांधी ने हमारे सामने रखा था और जिन की शिक्षा हमें दी थी। अपनी विवरणपूर्ण भाषा में उन्होंने पहली सलाह यह दी थी कि इस देश के संविधानिक ढांचे का आधार विस्तृत होना चाहिये और उसका स्वरूप पिरैमिड के आकार का होना चाहिये। इसकी नींव जमीन पर डालनी चाहिए और उसे शंकु के समान ऊंचा उठाना चाहिए। किन्तु किया गया है बिल्कुल इसका उल्टा। पिरैमिड को उलट दिया गया है। प्रान्तों और राज्यों से तथा लोगों से अधिकार ले लिया गया है और सब शक्ति केन्द्र को दे दी गई है। यदि महात्मा गांधी किसी संविधान को नहीं चाहते थे तो वह इसी प्रकार का संविधान था। हम अभी इसका निर्णय नहीं कर सकते कि लोकतन्त्रात्मक संविधान में विश्वास खोकर तथा गांधी जी के संविधान निर्माण के विचारों का परित्याग करके हमने ठीक किया है या नहीं। इसका निर्णय भविष्य ही करेगा।

श्रीमान, इस संविधान में कई बहुत दिलचस्प परस्पर-विरोधी बातें हैं। हमने एक ऐसे गणराज्य का चित्र खींचा है जिसके शिखर पर एक राजा होगा और उसके नीचे राजप्रमुख होंगे। हम कहते हैं कि यह संविधान एक संघीय संविधान है परन्तु वास्तव में यह एक—एक सत्तात्मक संविधान है। हम कहते हैं कि यह संविधान लोकतंत्रात्मक है किन्तु वास्तव में लोकतंत्र का संकेन्द्रण दिल्ली में ही हुआ है और देश के अन्य भागों में उसे उस अर्थ में तथा उस भावना से कार्यान्वित नहीं किया जा रहा है। यह हिन्दुओं की इस विख्यात धारणा के समान है कि यदि

किसी व्यक्ति की स्वर्ग जाने की आकांक्षा है तो इसके लिये गंगा-स्नान, विशेषत: काशी में गंगा-स्नान के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। देश का अन्य कोई भी भू भाग इतना पवित्र नहीं है और न इस योग्य ही है कि लोगों को स्वर्ग भेज सके। इस संविधान के निर्माण में भी बहुत कुछ इसी प्रकार की बातों को स्वीकार किया गया है। यदि लोकतंत्र किसी प्रदेश में पनप सकता है और वास्तव में उसे कार्यान्वित किया जा सकता है तो दिल्ली में ही अन्य किसी स्थान में नहीं। यह संविधान इस भावना से बनाया गया है। इसके अतिरिक्त जिन लोगों ने संविधान के निर्माण में योग दिया है वे न केवल प्रान्तों और राज्यों के लोगों को बल्कि भविष्य को भी सन्देह की दृष्टि से देखते रहे हैं। उन्होंने अनेक पीढ़ियों तक लोगों को दुर्व्यवहार करने से रोकने के लिये बहुत से उपबन्ध रखे हैं। हमने संविधान निर्माण का कार्य इस उद्देश्य से आरम्भ नहीं किया था किन्तु प्रवृत्ति इस ओर बढ़ती गई।

इसके अतिरिक्त भाषा का प्रश्न भी है जिसके सम्बन्ध में मुझ से पूर्व बोलने वाले वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम यह चाहते थे कि संविधान हमारी भाषा में बनता किन्तु हम इस विदेशी भाषा को रखने के लिये विवश हुए। ये भी दिलचस्प परस्पर विरोधी बातें हैं। किन्तु ये परस्पर-विरोधी बातें कोई गम्भीर बातें नहीं हैं। हमने जिस गणराज्य का चित्र खींचा है उसके शिखर पर यद्यपि राजा है, और उसके नीचे राजप्रमुख हैं, किन्तु वे उसे हानि नहीं पहुंचा सकेंगे। हम जिस व्यवस्था को स्थापित करने जा रहे हैं उसमें वे बहुत कुछ शक्तिहीन ही रहेंगे।

यद्यपि हमारे संविधान-निर्माताओं ने विकेन्द्रीकरण का मार्ग नहीं अपनाया है। किन्तु फिर भी मुझे भारत के लोगों पर विश्वास है। वे भविष्य में आगे बढ़कर लोकतन्त्र को हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक न्यायपूर्ण ढंग से कार्यान्वित कर सकेंगे। चाहे हम जैसे भी नियमों को रखें और जैसे भी अनुच्छेदों को बनायें किन्तु मनुष्य के जीवन में मनुष्य के मस्तिष्क का, तथा मनुष्य की शक्ति का अधिक महत्व होता है। मुझे पूरी आशा है कि भविष्य में वे सभी दोषों को दूर कर सकेंगे।

स्वभावत: मेरे कुछ मित्रों को इसका खेद है कि संविधान हिन्दी में नहीं लिखा गया और राष्ट्र भाषा को सीधे-सीधे नहीं स्वीकार किया गया। यह भी स्थितिवश तथा कालवश ही हुआ है। यदि हममें से कुछ लोगों को, बालकाल से ही हिन्दी में शिक्षा नहीं मिली है तो इसके लिये हम दोषी नहीं हैं। यह उस समय की स्थिति का दोष है। हमने अंग्रेजी सीखी और इस लिये अंग्रेज़ी से प्रेम करने लगे। एक दिन वह आयेगा जब लोग हिन्दी सीखेंगे और हिन्दी से उतना ही प्रेम करने लगेंगे। केवल कुछ धैर्य, उदारता तथा सहिष्णुता की आवश्यकता है और मुझे इस की प्रसन्नता है कि जो लोग हिन्दी के प्रेम में अन्धे हैं वे भी इतनी सहिष्णुता तथा उदारता दिलाने के लिये तैयार हैं।

मैं एक राज्य का प्रतिनिधि हूं और यदि मैं अपने अन्तरतम विचारों को व्यक्त नहीं करूंगा तो मैं अपने प्रति न्याय नहीं करूंगा। संविधान में अनुच्छेद 371 चाहे

[श्री के. हनुमनथय्या]

जिन कारणों से भी रखा गया हो किन्तु मुझे उसे देखकर हर्ष नहीं होता। मेरे हृदय में यह विचार भी उठता है कि हमारे आत्म-सम्मान का आदर नहीं किया गया है। मेरी यह धारणा है कि कई पीढ़ियों तक लोग इस पर आश्चर्य करेंगे कि हम राज्यों के लोगों ने अनुच्छेद 371 को कैसे स्वीकार कर लिया। हो सकता है कि राज्यों की कुछ सरकारों ने, अथवा कुछ राजनैतिक नेताओं ने, वैसे कार्य नहीं किये हैं जैसे कार्यों की उनसे हमारे बड़े-बड़े नेता आशा करते थे, और वास्तव में इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है, किन्तु मैं तो इस सिद्धान्त का समर्थक हूं कि लोकतंत्र अपना सुधार स्वयं कर लेता है। यदि किसी विशेष प्रदेश में लोकतंत्र में दोष आ जाये तो बुद्धिमत्ता इसमें नहीं है और न यह खतरे से खाली ही है कि बाहर का कोई व्यक्ति उसे दूर करे। यह व्यवस्था चल नहीं सकती। सम्भव है कि जब तक सरदार पटेल रहेंगे तब तक वे सब दोष दूर करते रहेंगे। किन्तु हम इस संविधान को एक पीढ़ी के लिये, अथवा, एक शताब्दी के लिये नहीं बना रहे हैं बल्कि असंख्य शताब्दियों के लिये बना रहे हैं। क्या हम इसकी प्रत्याभूति दे सकते हैं कि शासक की बागडोर हमेशा एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में रहेगी जो हमारे महान नेता सरदार पटेल के समान सुयोग्य होगा और वह हमेशा दोषों को दूर करता रहेगा? यह ध्यान में रखना चाहिये कि सरदार पटेल अपने वैयक्तिक प्रभाव के कारण मामलों को ठीक कर सकते हैं न कि अपने संविधानिक प्राधिकार के कारण। संविधानिक नियमों अथवा उदाहरणों के आधार पर वैयक्तिक प्रभाव नहीं बढ़ाया जा सकता। इस लिये जिन लोगों ने इस अनुच्छेद को रखा है उनका यदि इस सिद्धान्त में विश्वास होता कि लोकतंत्र अपने दोषों को स्वयं दूर करने की सामर्थ्य रखता है और उन्होंने यह लोगों के लिये छोड़ दिया होता कि किसी क्षेत्र में किसी मंत्रिमंडल, अथवा विधान-मंडल, अथवा किसी मंत्री विशेष के उचित व्यवहार नहीं करने पर वे उसे ठीक करें तो मैं उनकी तथा इस सभा की प्रशंसा करता और उन्हें धन्यवाद देता। यह अनुच्छेद 371 सच्चे लोकतंत्र के सिद्धान्तों का खंडन ही नहीं करता किन्तु अन्ततोगत्वा इसी के कारण संघर्ष का तथा कई संविधानिक संग्रामों का सूत्रपात होगा। संतोष की बात केवल यह कि यह केवल दस वर्ष की कालावधि तक रहेगा। किन्तु इस दस वर्ष की कालावधि में भी हम तथाकथित "दुर्व्यवहार" की छाया से त्रस्त रहेंगे। यह भय हमारे हृदय में घर कर गया है। मुझे आशा है कि ऐसे अवसर नहीं आयेंगे जब इस अनुच्छेद को प्रयोग में लाना पड़ेगा। मैं यह कहूंगा कि यह राज्यों के लोगों की भी जिम्मेदारी है कि वे ऐसा व्यवहार करें कि अनुच्छेद 371 अन्ततोगत्वा निरर्थक सिद्ध हो।

श्रीमान, हमने जिस संविधान का निर्माण किया है वह एक विचित्र प्रकार का संविधान है। इस संविधानिक विधि तथा इतिहास के विद्यार्थी दो प्रकार के संविधानों से परिचित थे अर्थात् फैडरल संविधान से और एकसत्तात्मक संविधान से। यह संविधान इन दो शीर्षकों में से किसी शीर्षक के अधीन नहीं आ सकता। यह एक नवीन प्रकार का संविधान है जिसे फैडरल संविधान अथवा एकसत्तात्मक संविधान न कह कर मैं "संघीय संविधान" कहूंगा। संविधानिक शब्दावलि को यह पदावलि इस सभा की देन है। इसका निर्णय भविष्य में ही हो सकेगा। कि इस प्रकार का संविधान फैडरल संविधानों के समान ही सफल होता है या नहीं। यह एक नवीन प्रकार का संविधान है और हमें इसी भावना से इसे कार्यान्वित करना है।

आखिर लोग यह कहते हैं कि नियम अथवा अनुच्छेद चाहे जैसे भी हों, उनका सफल होना उन पर नहीं निर्भर होता बल्कि उन लोगों पर निर्भर होता है जो उन्हें कार्यान्वित करते हैं। इसी विश्वास के कारण, न कि संविधान द्वारा अद्‌भुत विश्वास के कारण, हम निराश नहीं हुए हैं। मुझे यही आशा है कि भारत के लोग, तथा उनके प्रतिनिधि, इस संविधान को प्रवर्तन में ला सकेंगे और चाहे उसके गुण-दोष कुछ भी क्यों न हो उससे देश का अधिक से अधिक हितसाधन कर सकेंगे।

***प्रो. के.टी. शाहः** (बिहारः जनरल)ः अध्यक्ष महोदय, संविधान-विषयक इस वाद-विवाद के अवसर पर मैं समझता हूं कि यह आवश्यक है कि मैं उन भूलों की ओर तथा जान बूझकर की हुई गलतियों की ओर ध्यान दिलाऊं जिन के सम्बन्ध में यथा समय मैंने संशोधन उपस्थित किये थे। किन्तु चूंकि उन संशोधनों को, लगभग उनमें से प्रत्येक को, मसौदाकारों ने पसन्द नहीं किया इसलिये मैं यह समझता हूं कि इस अन्तिम अवसर पर मैं उन गलतियों की ओर ध्यान आकृष्ट कर दूं।

श्रीमान, सभा को स्मरण होगा कि मेरे संशोधन शाब्दिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में नहीं थे और न वे किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में थे जो केवल रूप अथवा आकार-सम्बन्धी विवाद का विषय था। इसका यह अर्थ नहीं कि मुझे सुन्दर स्वरूप अथवा सुस्पष्ट भाषा पसन्द नहीं है। वास्तव में मैं यह कहने के लिये विवश हूं कि यद्यपि मि. नज़ीरुद्दीन के समान मेरे मित्रों ने यथेष्ट सुस्पष्ट भाषा तथा यथोचित विराम चिन्हों को रखने के लिये तथा संविधान का सांगोपांग सुन्दर स्वरूप प्रदान करने के लिये बहुत परिश्रम किया किन्तु उनके श्रम की उतनी प्रशंसा नहीं की गई जितनी की जानी चाहिए थी। मेरे इस कथन से यह न समझा जाये कि मसौदा-समिति तथा उसके सभापति और कुछ अन्य सदस्यों ने जो कठिन परिश्रम किया है तथा जिस बुद्धिमत्ता और सावधानी का परिचय दिया है उसकी मैं प्रशंसा नहीं करता। मसौदे की कला की दृष्टि से मैं उस मसौदे को आदर्श मसौदा नहीं समझता किन्तु मैं यह स्वीकार करता हूं कि जिस स्थिति में इस कार्य को सम्पन्न करना पड़ा उसमें मसौदा-समिति ने, तथा विशेषतः उसके सभापति ने, बदलती हुई स्थिति तथा दशाओं में कार्य करने की योग्यता तथा बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। इसके लिये वे इस सभा तथा सरकार की प्रशंसा के पात्र हैं।

इसे स्वीकार करने के पश्चात् भी मैं यह समझता हूं कि मुझे स्वरूप और सिद्धान्त के उन दोषों को बताना चाहिये जिनसे, मेरे विचार से, यह संविधान दूषित है और इस कारण उस स्वरूप को प्राप्त नहीं है जिस स्वरूप की हमें आशा थी। जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, मैंने साधारण परिवर्तनों के सम्बन्ध में सुझाव न रखकर मौलिक बातों तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में संशोधन प्रस्तुत किये थे। अपनी बातों को उन्हीं तक सीमित रख कर मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि प्रस्तावना में तथा इस सभा के सर्वप्रथम प्रस्ताव में हमने जो वचन दिया है वह उस अर्थ में पूरा नहीं किया गया है जिस अर्थ में हम आशा करते थे। उदाहरणार्थ हमारा यह दावा है कि हमारा देश सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य है। किन्तु जब तक वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बना रहेगा तब तक हम उसे सम्पूर्ण प्रभुत्व

[प्रो. के.टी. शाह]

सम्पन्न स्वतंत्रता को व्यवहार में नहीं ला सकते जिसका हमने इस संविधान में उल्लेख किया है और जिसे हम समझते हैं हम इस संविधान के द्वारा प्राप्त कर रहे हैं।

हो सकता है कि संविधान का स्वरूप लोकतंत्रात्मक हो और उसका लक्ष्य भी लोकतन्त्र ही हो। किन्तु यदि कोई व्यक्ति इस संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों की सावधानी से परीक्षा करे तो उसे ज्ञात हो जायेगा कि लोगों का शासन, लोगों के लिये शासन और लोगों द्वारा शासन के रूप में लोकतन्त्र की मंजिल अभी बहुत दूर है।

उदाहरणार्थ जनमत-संग्रह द्वारा लोगों से परामर्श करने के अधिकार के सम्बन्ध में अथवा संविधान को वास्तविक अर्थ में लोक-तंत्रात्मक बनाने के लिये किसी उग्र विधि का निर्माण करने के सम्बन्ध में लोगों की शक्ति के बारे में यथोचित अवसर पर कई सुझाव रखे गये थे। किन्तु वे सब अस्वीकार कर दिये गये। बहाना यह बनाया गया है कि अभी हम लोकतन्त्र को पूर्ण रूप से व्यवहार में लाने के उपायों को अपनाने के योग्य नहीं हुए हैं। हमसे कहा गया है कि हमें अधिक अनुभव की आवश्यकता होगी और अधिक शिक्षा की भी आवश्यकता होगी। साथ ही जनसाधारण को राजनैतिक शक्ति के सम्बन्ध में तथा अपने उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में अधिक सचेत करना है ताकि वे लोकतंत्रात्मक शासन में इस प्रकार के उग्र सुधारों को अधिक सफलता के साथ कार्यान्वित कर सकें। श्रीमान, मैं अपने देशवासियों की क्षमता के तथा इस देश में प्रवृत्त लोकतंत्रात्मक शासन के इस अनुमान को स्वीकार नहीं कर सकता। लोकतन्त्र को कार्यान्वित करने की क्षमता उत्तरदायित्व ग्रहण करने से प्राप्त होती है न कि कागज पर केवल घोषणा करने से और उसके स्वरूप का बहुत कुछ निराकरण करने से। यदि पहले हम इन तर्कों को स्वीकार कर लेते और अंग्रेजों की इस सम्मति को स्वीकार कर लेते कि भारत के लोग न तो इतने शिक्षित हैं और न उन्हें अपने अधिकारों का अथवा अपने दायित्वों का इतना ज्ञान है कि वे अपने यहां लोकतंत्रात्मक शासन चला सकें तो हम अभी तक न तो स्वतंत्रता को प्राप्त कर सकते और न जिस स्वराज्य पर हम गर्व करते हैं उसे ही प्राप्त कर सकते।

चूंकि आपका अब भी लोगों पर पूर्ण विश्वास नहीं है चूंकि आप अब भी यह नहीं समझ पाये हैं कि लोकतंत्र को प्रयोग में लाने से ही इस देश में वास्तव में लोकतन्त्र की स्थापना होगी, इस लिये आपने मेरे उन सुझावों तथा संशोधनों को स्वीकार नहीं किया जिनका उद्देश्य संविधान में ऐसे उपायों तथा साधनों को स्थान देना था जिनसे लोगों की इच्छानुसार, लोगों के हितार्थ, लोगों के प्रतिनिधियों के द्वारा यथोचित कार्य किया जाता।

केवल यही बात नहीं हैं कि आपका जनसाधारण पर विश्वास नहीं है। इससे भी अधिक सच्चाई इस कथन में है कि आपको अपने नेताओं पर ही विश्वास नहीं है। यदि आपके नेता वास्तव में लोकप्रिय हैं, यदि आपके नेता वास्तव में लोगों की अर्ध चेतना में संचित भावनाओं, आशाओं तथा आकांक्षाओं के मूर्त रूप हैं तो आपको इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं होना चाहिये कि संकट उपस्थित

होने पर लोग नेताओं के बताये हुए मार्गों पर चलेंगे और मेरे बताये हुए साधनों से लाभ ही होगा, हानि नहीं होगी।

इसलिये मेरी यह धारणा है कि यद्यपि भारत के लोगों को यह विश्वास दिलाया गया है कि उन्होंने सक्रिय लोकतंत्रात्मक व्यवस्था प्राप्त कर ली है किन्तु वास्तव में वह पूर्ण रूप से इस संविधान में सन्निहित नहीं है।

इसके अतिरिक्त हममें से उन लोगों को जिन्होंने अपने सामने स्वतंत्रता के विशेष आदर्श रखे थे, इस संविधान की शब्दावलि से निराश होना पड़ा है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मूलाधिकारों और नागरिक स्वतंत्रताओं के सम्बन्ध में तथा सामाजिक नीति के निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में, जो अध्याय है वे उस रूप में नहीं हैं जिस रूप में वे रखे जा सकते थे। मेरे विचार से उन अनुच्छेदों द्वारा केवल वचन ही दिया गया है और उनके आधार पर किसी कार्य के किये जाने की आशा नहीं है। प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में, प्रत्येक अनुच्छेद में, प्रत्येक खण्ड में और प्रत्येक खण्ड के प्रत्येक वाक्य में कोई न कोई अधिकार प्रदान किया गया है अथवा उसकी घोषणा की गई है किन्तु उसे निबन्धित और प्रतिबन्धित कर दिया गया है अथवा कुछ ऐसी आकस्मिक स्थितियों पर आश्रित किया गया है जो उत्पन्न हो या न उत्पन्न हो। सम्पूर्ण संविधान में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे यह प्रकट होता हो कि ये अधिकार और स्वतंत्रतायें केवल कागज़ पर लिखे हुए अधिकार नहीं रहेंगे किन्तु वास्तव में प्राप्त किये जायेंगे और उनके कारण लोगों का जीवन आनन्दपूर्ण हो उठेगा।

श्रीमान, मैं कुछ उदाहरण दूंगा। निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के अधिकार पर, आजीविका प्राप्त करने के अधिकार पर व्यक्तिक स्वातंत्र्य के अधिकार और लगभग प्रत्येक अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। मुझे आशा थी कि हम इस प्रकार के प्रतिबन्धों को एक ऐसे संविधान में नहीं रखेंगे जिसके बारे में हमारा यह दावा है कि वह लोकतन्त्रात्मक तथा लोकप्रिय है और भारत के लोगों के चुने हुए प्रतिनिधियों ने, तथा विश्वासपात्र नेताओं ने बनाया है। श्रीमान, यह खेद की बात है बहुत खेद की बात है कि व्यक्तिक स्वातंत्र्य के अधिकार के समान साधारण अधिकार भी आपात-सम्बन्धी उपबन्धों के अधीन एक भ्रामक अधिकार हो जाता है। किसी व्यक्ति को किसी बहाने से बिना मुकद्दमा चलाये हुए तीन महीने तक निरुद्ध किया जा सकता है इसलिये यह कोई व्यक्तिक स्वातंत्र्य का अधिकार नहीं है बल्कि बिना मुकद्दमे के और बिना यथोचित न्यायिक कार्यवाहियों के तीन महीने तक निरुद्ध रहने का अधिकार है।

बहुत से बहाने बनाये जा सकते हैं। मेरी यह धारणा है कि लोगों को मूलाधिकारों से अथवा नागरिक स्वतंत्रताओं से वंचित रखने के लिये अथवा उन्हें प्रतिबन्धित करने के लिये कोई कारण नहीं बताये जायेंगे। किन्तु बहाने बनाकर कठिनाइयां उपस्थित की जायेंगी। मेरे विचार से इस संविधान में मूलाधिकार तथा नागरिक स्वतंत्रताओं के विषय में जो अध्याय है उससे अधिक दुखद अध्याय और कोई नहीं है।

[प्रो. के.टी. शाह]

इसके अतिरिक्त संविधान में कोई उपबन्ध ऐसा नहीं रखा गया है जिसमें लोगों के आभारों अथवा कर्तव्यों की परिभाषा की गई हो ताकि वे यह समझ सकें कि जहां उन्हें कुछ अधिकार प्राप्त हैं वहां उन पर लोकतंत्र की नागरिकता के कुछ आभार भी हैं। आप पूर्ण अधिकारों को इसलिये नहीं प्रदान कर रहे हैं कि आपको भय है कि लोकतंत्र नृशंस समूहतन्त्र में परिणत हो जायेगा। इस लिये आप ने नागरिकों के आभार-विषयक अध्याय को प्रतिबन्धित किया है।

मैं एक अन्य उदाहरण यह दर्शाने के लिये दूंगा कि इस देश में कार्यशील लोकतंत्र अभी भविष्य की ही व्यवस्था है। कम से कम उसे इस संविधान में कोई स्थान नहीं मिला है। मेरा अभिप्राय राज्य के विभिन्न अंगों की स्थापना तथा उनके कृत्यों से है। मैंने बार-बार इस उद्देश्य से संशोधनों को उपस्थित किया कि यदि राज्य के मुख्य अंगों की शक्तियों, कृत्यों तथा संगठनों का पूर्णतया पृथक्करण न भी हो सके तो कम से कम वे इतने स्वतंत्र तो हों ही कि संविधान के अधीन उन्हें जिस क्षेत्र में काम करने की शक्ति प्रदान की गई है उसमें वह बिना बाहर से किसी के हस्तक्षेप के अथवा राज्य के किसी अन्य अंग के हस्तक्षेप के किसी स्वतंत्रता से कार्य कर सकें। यदि हम विधान मंडल, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका विषयक अध्यायों की परीक्षा करें तो हम इसी निर्णय पर पहुंचेंगे कि इन संस्थाओं का स्वातंत्र्य तथा प्रभुत्व व्यवहार में निरर्थक सिद्ध होगा। इस सभा के कई संविधान के पंडितों का यही मत है कि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का जनाजा निकल चुका है। मेरा अपना यह मत नहीं है। वे लोग भी जो यह चाहते हैं कि राज्य के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्ध रहें और वे एक दूसरे को प्रभावित करें, ऐसे रक्षणों तथा उपबन्धों को रखना चाहते हैं जिनके फलस्वरूप प्रत्येक अंग स्वतंत्रता से तथा विश्वास से कार्य कर सकें। किन्तु ये रक्षण नहीं रखे गये हैं। श्रीमान, समय के अभाव के कारण मैं संविधान के प्रत्येक ऐसे अनुच्छेद का विवरण नहीं दे सकता जिससे यह स्पष्ट हो जाता।

मुझे यह कहना पड़ रहा है कि देश के शासकों के आचरणों में कुछ पवित्रता तथा त्याग लेने के लिये, तथा निर्दोष साधनों द्वारा प्रशासन को भ्रष्टाचार से बचाने के लिये, इस सभा में बार-बार प्रत्यत्न किये गये किन्तु वे उतने सफल नहीं हुए जितने सफल होने की मुझे आशा थी। श्रीमान, बार-बार मैंने इस उद्देश्य से संबोधन उपस्थित किये कि राज्य का प्रधान और राज्य के उच्च शासनाधिकारी अपने दलों की राजनीति तथा उनके प्रभाव से मुक्त रहें और ऐसे मामलों में दिलचस्पी न रखें जिनके कारण उन्हें अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक ज्ञान न हो सके और वे अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करें। किन्तु श्रीमान, बार-बार यही बहाना बनाया गया कि सांसारिक व्यवहार में तथा साधारण मनुष्यों के बीच में यह बहुत ही आदर्शवादी-सिद्धान्त सिद्ध होगा। बिना केवल साधारण मनुष्य होने का दावा किये हुए यह उन लोगों को शोभा नहीं देता जिनका यह दावा है कि वे महात्मा गांधी के पद-चिन्हों का अनुसरण करते आये हैं, उन्हीं के आदर्शों से प्रेम करते आये हैं, और राष्ट्रपति द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को ही कार्यान्वित करते आये हैं।

ये कुछ उदाहरण हैं। मैं और भी कई उदाहरण दे सकता हूं जिनसे यह स्पष्ट हो सकता है कि हम जिस संविधान को पारित कर रहे हैं उसमें व्यवहारिक लोकतंत्र

के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से नहीं अपनाया गया है। उदाहरणार्थ बहुत से निकायों के पारस्परिक सम्बन्ध, विभिन्न अंगों की स्थापना तथा स्थानीय स्थापित शासन का स्वरूप ही बहुत सीमित है। यदि आप केन्द्र के तथा स्थानीय एककों के, कृत्यों अथवा विषयों से सम्बद्ध अनुसूचियों की परीक्षा करें तो आपको विदित हो जायेगा कि स्थानीय एककों को बिल्कुल की अशक्त बनाया गया है। अपने कर्तव्यों का सुचारु रूप से निर्वहन करने के लिये न तो उनके पास शक्ति है और न धन ही। मुझ से पूर्व बोलने वाले एक वक्ता महोदय यह कह चुके हैं कि वास्तविक स्वशासन तथा लोकतंत्र केवल एककों में ही सम्भव है। केन्द्र में केवल प्रतिनिधियों के प्रतिनिधि होने चाहिये क्योंकि उसे केवल एककों की दी हुई शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार की सरकार ही वास्तव में उत्तरदायी तथा लोकप्रिय सरकार होगी। सम्भव है कि इस समय एक ही दल का बहुमत होने के कारण, तथा उसके नेता की सुदृढ़ स्थिति के कारण आपको एक तथ्य दृष्टिगोचर न हो। वह तथ्य यह है कि जिस रूप में संविधान इस समय है उस रूप में उसके द्वारा वास्तविक व्यवहारिक लोकतंत्र का उतना विकास नहीं होगा जितना कि फासिज्म का विकास होगा। एककों की अपेक्षा केन्द्र में इसका खतरा अधिक है। संविधान में आपने राज्य के प्रधान में—जो वास्तव में नाममात्र का प्रधान होगा और प्रधान मंत्री उसके नाम पर कृत्य करेगा, शक्तियों का संकेन्द्रण किया है और इस कारण यदि प्रधानमंत्री चाहे तो वह वास्तव में एक तानाशाह हो सकता है। इस दशा में मंत्रिमंडल के सहकारी तथा संसद भी केवल उसके रजिस्ट्री के दफ्तर का रूप धारण कर लेगी।

इस संविधान में जो जो सम्भावनायें सन्निहित हैं उनका विचार करके मैं कांप उठता हूं। मुझे आशा है कि जिस रूप में मैं इन सम्भावनाओं के चरितार्थ होने की कल्पना कर रहा हूं उस रूप में ये चरितार्थ नहीं होंगी। किन्तु फिर भी मुझे यह देखकर खेद होता है कि इस संविधान में ऐसे उपबन्धों को स्थान दिया गया है जिनका सहारा लेकर राष्ट्रपति, अथवा उसके नाम पर प्रधान मंत्री, एक खतरनाक तानाशाह बन सकता हैं।

श्रीमान इस संविधान में कुछ अन्य बातें भी ऐसी हैं, कि उन्हें देखते हुए यह आशा नहीं की जा सकती कि कोई ऐसा लोकतंत्र स्थापित होने जा रहा है जो बन्धनों से मुक्त हो तथा बाहर के प्रभाव और पराधीनता से भी मुक्त हो तथा जो वर्गहीन हो और सभी को समान रूप से प्राप्त हो। श्रीमान, हम आशा करते थे कि लोगों की सम्पूर्ण प्रभुता को व्यवहार में कम से कम इस रूप में लाया जायेगा कि राज्य को सभी प्रकार के प्राथमिक उत्पादन के साधनों पर पूर्णस्वामित्व प्राप्त हो जायेगा। जब मैंने राज्य को सभी खनिजों, प्रवाहित जलों तथा अन्य ऐसी आधारभूत सम्पत्तियों को दिलाने के सम्बन्ध में संशोधन उपस्थित किया था, जिनसे मनुष्य की उन्नति की जा सकती है, तो उसका रूखा जवाब यही दिया गया कि वह व्यवहारिक नहीं है।

श्रीमान, ये उदाहरण, और कई अन्य उदाहरण भी, यह दिखलाने के लिए दिये जा सकते हैं कि जो संविधान हम पारित करने जा रहे हैं। उसमें कई सारवान विषयों के सम्बन्ध में उन आदर्शों का अनुसरण नहीं किया गया है जिनका अनुसरण किये जाने की हमें आशा थी। किन्तु फिर भी मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि इस संविधान को इसकी कमजोरियों तथा इसके दोषों के कारण अस्वीकार कर दिया जाये। मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि अनेक दोषों के होते हुये

[प्रो. के.टी. शाह]

भी हम इस संविधान को इस प्रकार व्यवहार में लाये कि इसमें सन्निहित भावना से हमारा पथप्रदर्शन हो तथा इसी की छत्रछाया में हम आगे बढ़ें। यदि इसकी कुछ कमजोरियां हैं, और इसमें कुछ दोष हैं और कुछ बातें रह गई हैं, अथवा जानबूझ कर कुछ पाप किये गये हैं, तो व्यवहार में वे प्रकाश में आ जायेंगे यदि हम उसे यथोचित भावना से व्यवहार में लायें और शुद्ध बुद्धि से व्यवहार में लायें, और केवल लोक कल्याण की भावना से ही प्रेरित हों तो मुझे विश्वास है कि दोषों तथा कमजोरियों के होते हुए भी इस संविधान को इस प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है कि थोड़े ही समय में वास्तविक लोकतंत्र स्थापित हो जायेगा और यदि निकट भविष्य में नहीं तो पांच या दस वर्षों में यहां के लोग अपने देश के वास्तविक शासक हो जायेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस संविधान को तृतीय पठन में पारित करने के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसका सहर्ष अनुमोदन करने के लिये मैं आगे बढ़ा हूं। श्रीमान, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आरम्भ में कुछ निजी बातें कहना चाहता हूं। श्रीमान, आपको विदित है कि मेरा जन्म सिंध में हुआ था। अपने युवा काल में बत्तीस वर्ष तक मैं लोकसेवा का कार्य करता रहा और अपनी पूरी योग्यता से यथाशक्ति सिंध के लोगों की सेवा करता रहा। जब ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने यह घोषणा की कि संविधान के निर्माण के लिये एक संविधान सभा स्थापित की जानी चाहिये तो सिंध को एक स्थान दिया गया। मेरी इच्छा थी कि मैं संविधान सभा में आकर सेवा करता किन्तु मेरे मित्र भी जेरामदास दौलतराम मनोनीत किये गये। श्रीमान, मैं अपने नेता माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद का आभारी हूं, जिन्होंने मुझे संविधान सभा में आने के लिये प्रोत्साहित किया। उन्होंने मेरे लिये मध्य प्रान्त और बरार का निर्वाचन क्षेत्र ढूंढ निकाला। मौलाना साहिब ने मुझे एक पत्र सेठ गोविन्द दास के नाम से दिया और उन्होंने तथा पंडित रविशंकर शुक्ल ने मुझे मध्य प्रान्त और बरार से एकमत से निर्वाचित करा दिया। इस अवसर पर मैं सेठ गोविन्द दास तथा पंडित रविशंकर शुक्ल को और मध्य प्रान्त की विधान सभा के सदस्यों को मुझे इस संविधान सभा में भेजने तथा इसके कार्य में अपना योग देने का अवसर देने के लिये धन्यवाद देता हूं। श्रीमान, इस प्रकार मुझे इस संविधान के निर्माण में अपना थोड़ा-सा योग देने और भारत की नागरिकता प्राप्त करने का अवसर मिला जिसकी मुझे हमेशा आकांक्षा रही और जिसे स्वीकार करने का मुझे गर्व है। देश के विभाजन के पश्चात् इस सभा में मुझे अपने स्थान से हटाने के लिये कुछ प्रयत्न इस कारण किया गया कि मैं सिंध का निवासी था। श्रीमान, आपने विधि का सही निर्वचन किया और कहा कि मैं भले ही सिंध का निवासी क्यों न हूं, यद्यपि मैं आज नहीं हूं। किन्तु मध्य प्रान्त से निर्वाचित समझा जाऊंगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं आशा करता हूं कि यह आखिरी बार ही होगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** आपने विधि का ठीक निर्वचन किया और सभा में यह घोषित किया कि मेरा निर्वाचन वैध है। श्रीमान, मैं आपको धन्यवाद देता हूं। आपने कोई पक्षपात नहीं किया बल्कि ठीक ही कदम उठाया।

संविधान के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि 6 दिसम्बर 1946 को इस सभा में अर्थात् इस ऐतिहासिक हाल में प्रवेश करने के पूर्व जिसका विशेषत: इस संविधान

को बनाने के लिये नवनिर्माण किया गया है हम कुछ मित्र आपस में साधारणतः इस सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे कि किस प्रकार का संविधान बनाया जायेगा और उसे बनाने में कितना समय लगेगा। श्रीमान, इस सभा के एक प्रख्यात सदस्य ने, जिन्होंने बाद को पदत्याग कर दिया था, मुझसे कहा कि अंग्रेज भारत नहीं छोड़ने जा रहे हैं और यह संविधान वास्तव में एक द्वितीय नेहरू प्रतिवेदन होगा। एक अन्य माननीय मित्र सेठ गोविन्द दास ने मुझसे कहा कि उसे बनाने में छः महीने लगेंगे। मैंने कहा कि इसे बनाने में कम से कम दो वर्ष लगेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** आपने ठीक कहा था।

***श्री आर.के. सिधवा:** आज हम देखते हैं कि तीन वर्ष बीत चुके अथवा यों कहिये कि 15 दिन कम तीन वर्ष बीत चुके हैं, और अब हम संविधान को पूरा करने जा रहे हैं। 9 दिसम्बर, 1946 से लेकर 1947 तक विचार-विमर्श करने के पश्चात् 1 फरवरी 1948 को हमें संविधान का मसौदा दिया गया। उसमें संविधान के 313 अनुच्छेद थे। आज इस सभा में 395 अनुच्छेद प्रस्तुत किये गये हैं, अर्थात पहले के मसौदे में 82 नवीन अनुच्छेद और जोड़ दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 220 पुराने अनुच्छेदों को बिल्कुल मिटा ही दिया गया है और लगभग 120 अनुच्छेदों की शब्दावलि में सारवान परिवर्तन किया गया है। यद्यपि प्रस्तावना का एक शब्द और एक विराम भी नहीं बदला गया है किन्तु बहुत से अनुच्छेद बदल दिये गये हैं। मुझे इसकी प्रसन्नता है और सभा को भी इसकी प्रसन्नता है कि हमने अपने अनुभव के आधार पर यह विचार किया कि हमें संविधान जल्दी में नहीं तैयार करना चाहिये। इसलिये यदि कुछ अधिक समय लेकर हमने संविधान तैयार किया है तो हमने ठीक ही किया है, विशेषतया जब कि वह एक ऐसा संविधान है जिसपर हम सब गर्व करेंगे। इस सभा के बाहर यह आलोचना की गई है कि हमने अधिक समय लिया और और कुछ धन नष्ट किया है। मुझे उस की कोई भी परवाह नहीं है। यह भी कहा गया था कि हम संशोधनों को केवल इस लिये भेज रहे हैं कि हमें उन्हें उपस्थित करना है और भाषण देने हैं। हमने न तो इस प्रकार के तर्कों को सुना और न उनकी परवाह ही की। हम अपना मत व्यक्त करने के लिये इस संविधान सभा में संघर्ष कर रहे थे। और हमने सुन्दर ढंग से संघर्ष किया। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मसौदा समिति ने हमारे संघर्ष को यथोचित दृष्टि से देखा। हमने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। आने वाली पीढ़ियां इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदन को देख सकती हैं और इतिहासकार इसका निर्णय कर सकते हैं कि हमने समय नष्ट किया अथवा इस देश के लोगों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया और एक ऐसे संविधान का निर्माण किया जिस पर हम सब को गर्व है और मुझे भी बहुत गर्व है।

इस संविधान का एक उज्ज्वल अंग इसका नागरिकता-सम्बन्धी भाग है। देश के विभाजन के पश्चात् नागरिकता की परिभाषा करना एक पेचीदा प्रश्न हो गया था। मसौदा-समिति तथा अन्य लोगों ने इस ओर ध्यान दिया और इसे हल करने के लिये वे बधाई के पात्र हैं। विस्थापित लोगों से सीधे सीधे यह कहा गया है कि यदि उनके माता-पिता ने भी भारत में जन्म लिया हो तो वे स्वतः भारत के नागरिक हो जायेंगे।

जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, उनकी अनेक आलोचनाएं की गई हैं, किन्तु सभी बातों को ध्यान में रखकर मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं, और मैं यह पहले कई बार बता भी चुका हूं, कि वाक्-स्वातंत्र्य अथवा अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य

[श्री आर.के. सिधवा]

का यह अर्थ नहीं है कि कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से बोले और ऐसी बातें भी कहे जिन से हमारी स्वतन्त्रता की हानि हो। लोकतंत्रात्मक देशों में यह सभी जानते हैं कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शाह अभी 'लोकतंत्र' की आलोचना कर रहे थे। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि लोकतंत्र का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति जो भी करना चाहे करे। इसलिये यदि मूलाधिकार-विषयक कुछ अनुच्छेदों में कुछ निर्बन्धन रखे गये हैं तो वह इस लिये कि इसकी आवश्यकता थी, भले ही हमें यह नापसन्द हो। उनमें से कुछ मुझे भी नापसन्द हैं। मैं यह चाहता हूं कि मैं बिल्कुल ही स्वतन्त्र व्यक्ति रहूं किन्तु मुझे कुछ परिसीमाओं के अधीन कार्य करना है। इन मूलाधिकारों को प्राप्त करके हम किसी भी व्यक्ति से कह सकते हैं कि हमारे अधिकार ये हैं और यदि किसी समय कोई व्यक्ति हमारे अधिकारों को कुचलना चाहे तो हम उच्चतम न्यायालय में केवल आवेदन-पत्र देकर न्याय करा सकते हैं। आप इस संविधान में इससे अधिक और क्या चाहते हैं?

इस संविधान का एक अन्य उज्जवल अंग इसका वयस्क-मताधिकार-विषयक भाग है। इस संविधान सभा ने वयस्क मताधिकार प्रदान करके बहुत बड़ा खतरा उठाया है। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि बहुत बड़ा खतरा इस कारण हो सकता है कि हमारे 85 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं और अभी भी यह संदिग्ध है कि वयस्क मताधिकार की व्यवस्था सफल होगी या असफल। श्रीमान, चाहे जो भी हो, चाहे वह सफल हो या असफल, हमने यह खतरा सोच समझ कर ही उठाया है। हमें यह खतरा उठाना था और हमने इसे उठाया है। बिना वयस्क मताधिकार के लोकतन्त्र का कोई भी अर्थ नहीं होगा। इसलिये मुझे इसकी बहुत प्रसन्ता है, और सभा को इसका गर्व है कि हमने इस संविधान में "वयस्क मताधिकार" की व्यवस्था की है। इस सभा के बाहर कुछ आलोचकों ने हमारे कार्य की आलोचना की है और कहा है कि हमने एकाधिपत्य प्राप्त किया है और हम यहां हमेशा के लिये इसी स्थिति में बने रहना चाहते हैं। यदि संविधान सभा की यह इच्छा होती तो हम मताधिकार की व्यवस्था अन्य प्रकार करते। किन्तु हमने यह विचार किया है कि चाहे जो भी हो "वयस्क मताधिकार" की व्यवस्था करनी ही है क्योंकि पिछले पचास वर्षों से कांग्रेस घोषणा करती चली आ रही है कि जब कभी स्वतन्त्रता प्राप्त होगी 18 अथवा 21 वर्ष की आयु के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को मत देने का अधिकार होगा। मेरे विचार से यह सबसे बड़ा अधिकार है। *(विघ्न)*। 21 वर्ष की आयु रखी गई है। मेरी इच्छा थी कि 18 वर्ष की आयु रखी जाती किन्तु 21 वर्ष की आयु रखी गई है। इस अधिकार को आने वली पीढ़ियों ने ठीक ढंग से प्रयोग में लाना है। यह देखना है कि विभिन्न विधान मंडलों के सदस्यों को निर्वाचित करने में वे अपने अधिकार को किस प्रकार प्रयोग करते हैं। यह कहा जाता है कि भावी विधान-मंडलों में निरक्षर लोगों का बाहुल्य रहेगा। यदि भारतीय संघ के सुदूर भागों से निरक्षर लोग ही आयेंगे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मैंने देखा है कि कई निरक्षर लोगों में इतनी मौलिकता होती है कि वे हममें से कई साक्षर लोगों से अच्छा तर्क उपस्थित करते हैं। इस लिये मुझे कोई भय नहीं है और मैं समझता हूं कि हमने सही रास्ता अपनाया है। यदि कुछ खतरा है, और मैं जानता हूं कि खतरा है, तो हमने उसे जानबूझ कर उठाया है।

मुझे वास्तव में खेद है कि स्थानीय निकायों के सम्बन्ध में यह संविधान मौन है। मौन इस अर्थ में है कि उन्हें वह अधिकार नहीं दिया गया है जिसके दिये जाने की हमें आशा थी। हमारी यह आकांक्षा है कि प्रत्येक गांव तथा प्रत्येक गांव वाला सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर हो। हमारे महान नेता महात्मा गांधी ने अपने सामने "देहाती स्वराज" का आदर्श रखा था और वे यह चाहते थे कि प्रत्येक गांव आत्मनिर्भर तथा आत्म सेवी हो। श्रीमान, मैं खेद के साथ कहता हूं कि इस संविधान में इस आदर्श का सन्निवेश नहीं है। इस उद्देश्य से मैंने कई संशोधन उपस्थित किये थे किन्तु मुझे खेद है कि मसौदा-समिति उन्हें स्वीकार नहीं कर सकी।

जैसा कि मैंने पिछले किसी दिन कहा था, आरम्भ में जब हम लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार-विमर्श कर रहे थे तो इस समय पूरी सभा का यह मत था कि केन्द्र शक्तिशाली होना चाहिये। इसलिये मसौदा-समिति का यही दृष्टिकोण रहा। मैं यह नहीं कहता कि प्रान्तों के केवल कंकाल खड़े किये गये हैं। उन्हें बहुत सी शक्तियां दी गई हैं और केन्द्र को शक्तिशाली बनाया गया है। मैं इसके पक्ष में हूं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि गांवों को सशक्त तथा आत्मनिर्भर नहीं बनाया जाये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने पंचायत सम्बन्धी विधियां बनाई हैं। बम्बई सरकार ने बम्बई पंचायत अधिनियम पारित किया है, मध्य प्रदेश ने जनपद अधिनियम पारित किया है, संयुक्त प्रान्त की सरकार ने गांव पंचायत अधिनियम पारित किया है और बिहार सरकार ने ग्रामीण पंचायत राज अधिनियम पारित किया है। ये सब अधिनियम हैं। किन्तु यदि आप इन प्रदेशों को अपेक्षित धन नहीं देंगे तो वे आखिर करेंगे क्या? मुझे खेद है कि गांवों को राष्ट्रीय वित्त का जो भाग वहां के प्रशासन के लिये तथा उनके आत्मनिर्भर होने के लिये मिलना चाहिये वह उन्हें नहीं मिल रहा है। प्रान्त गांवों को उन का यथोचित भाग नहीं देते हैं। देश में, मैं कहूंगा कि इस समय स्थानीय निकायों का एक स्वांग ही दिखाई देता है। मुझे आशा है कि, चाहे संविधान कैसा ही क्यों न हो प्रान्तीय सरकारें गांवों को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करेंगी। जब तक हम गांवों को आत्मनिर्भर नहीं बनायेंगे तब तक साधारण नागरिक न तो सुखी हो सकेगा और न सम्पन्न भले ही हम उसका सम्मान करते हों।

श्रीमान, इस संविधान का एक अन्य उज्ज्वल अंग यह है कि इसके द्वारा साम्प्रदायिकता को समाप्त कर दिया गया है। आरम्भ में हमें यह भय था कि हम से यह कहा जायेगा कि हम अल्पसंख्यक वर्गों के प्रति उदारता नहीं दिखा रहे हैं। इस लिये संविधान के पुराने मसौदे में, जिसे 1 फरवरी 1948 को सभा में उपस्थित किया गया था, हमने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे थे। मेरा समुदाय एक अल्पसंख्यक समुदाय है। मेरा अपने जीवन पर्यन्त यही विचार रहा है कि अल्पसंख्यकों का प्रश्न हमारे राजनैतिक जीवन के लिये क्षय रोग तथा विष के समान है। बाद को इस सभा ने यह अनुभव किया कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की विभिन्न व्यवस्थाओं को समाप्त कर देना चाहिये और वे समाप्त कर दी गई हैं। वह एक शुभ दिन था जब अल्पसंख्यक समिति के सभापति, सरदार पटेल के प्रयत्नों के फलस्वरूप संविधान में जिस साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई थी उसे समाप्त कर दिया गया। आज हम जिस संविधान को देश को तथा

[श्री आर.के. सिधवा]

संसार को प्रदान कर रहे हैं उसके किसी भी अनुच्छेद में साम्प्रदायिकता का लेशमात्र भी नहीं है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों के सम्बन्ध में मैं अपने विचार व्यक्त कर चुका हूं। मेरे विचार से उनका साम्प्रदायिक समुदाय नहीं है। मेरे विचार से वह हिन्दू समुदाय का ही एक वर्ग है जिसके सम्बन्ध में हमारे महान नेता, आदरणीय महात्मा गांधी का यह मत था, और उनका यह मत ठीक ही था, कि उसके प्रति बहुत अन्याय किया गया है। यद्यपि मैं पारसी हूं किन्तु मुझे हरिजन सेवक संघ के मंत्री की हैसियत से कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि उनके प्रति वास्तव में बहुत अन्याय किया गया है। हमने यह उचित ही किया है कि उन के लिये विशेषाधिकारों की व्यवस्था की है। मुझे विश्वास है कि संविधान आरम्भ होने के पश्चात् दस वर्ष के भीतर ही यह वर्ग भी अन्य लोगों के स्तर तक पहुंच जायेगा और ये अनुसूचित जातियां दस वर्ष पश्चात् स्वतः समाप्त हो जायेंगी।

श्रीमान, न्यायपालिका पर कार्यपालिका का कोई भी प्रभाव न पड़ने देने के लिये इस संविधान में प्रत्येक प्रयत्न किया गया है। मैं पूछता हूं कि आप और चाहते क्या हैं? हम ने बहुत यत्न से यह व्यवस्था की है कि चाहे कार्यपालिका का कितना ही अधिक प्रभाव क्यों न हो उसका न्यायपालिका से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये ताकि नागरिकों को उनके अधिकार तथा विशेषाधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त हों और उनकी रक्षा हो सके। मेरा केवल यह निवेदन है कि कभी न्यायाधीश भी बहुत अहंकारपूर्ण दिखाई देते हैं। जब हमने उन्हें पूर्ण प्रभुत्ता प्रदान की है तो उन्हें भी अहंकारपूर्ण नहीं होना चाहिये। यदि उनके निर्णयों की आलोचना की जाती है तो वे न्यायालय अपमान का अभियोग लगाकर कार्यवाही करते हैं, मुकदमा चलाते हैं और स्वयं निर्णय करते हैं। इस सम्बन्ध में मैंने एक संशोधन उपस्थित किया था किन्तु मुझे खेद है कि वह अस्वीकार कर दिया गया। जब न्यायाधीश यह कहते हैं कि कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का पृथक्करण होना चाहिये तो उन्हें यह न कहना चाहिये कि अमुक समाचार-पत्र ने अथवा अमुक व्यक्ति ने न्यायालय का अपमान किया है। उन्हें उनके खिलाफ मुकदमा नहीं चलाना चाहिये जब कि वे स्वयं ही उनका निर्णय करेंगे। ऐसी प्रक्रिया के सम्बन्ध में हमने कभी सुना नहीं। मैं आशा करता हूं कि उच्चतम न्यायालय से लेकर निचले न्यायालयों तक के भावी न्यायाधीश इस सम्बन्ध में उदारता का परिचय देंगे और उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालयों के सामने यह उदाहरण रखेगा कि उन्हें अब न्यायालय-अनुमान के सम्बन्ध में पहले के समान व्यवहार नहीं करना है।

भाषा के सम्बन्ध में, हमें कितना गर्व है? कुछ लोग कहते हैं कि अंग्रेजी ही रहने दी जाये और किसी अन्य भाषा को नहीं अपनाया जाये। जिस देश की अपनी भाषा न हो वहां लोकतन्त्र कभी भी स्थापित नहीं हो सकता। भाषा का प्रश्न बहुत पेचीदा प्रश्न था और इस प्रश्न को ले कर कभी बड़ा संघर्ष भी होता था। सभा ने एकमत से यह निर्णय किया है कि हमारी भाषा हिन्दी होगी और हमें इसका गर्व है। सब ही हम प्रादेशिक भाषाओं को भी नहीं भूले और हमने उन्हें भी रहने दिया है।

इस संविधान के सम्बन्ध में निर्णय इतिहास का ही होगा। यह निश्चित है कि यह सर्वगुणसम्पन्न नहीं है। इसमें कुछ दोष भी हो सकते हैं और मैं जानता हूं

कि इसमें दोष है। मैंने आपको बताया था कि इस सभा में संशोधन उपस्थित करके मैंने संघर्ष किया था किन्तु मेरे संशोधन गिर गये। किन्तु मैं समझता हूं कि यह मेरा कर्तव्य है कि मैं लोगों को बताऊं कि यह एक सर्वोत्कृष्ट संविधान है और मैं आशा करता हूं कि संविधान सभा का प्रत्येक सदस्य भिन्न मत रखते हुए भी यह कहेगा कि हमें इस संविधान पर गर्व है और हमें संसार को यह बता देना चाहिये, और संसार इसे समझेगा भी कि संसार के विभिन्न देश इस संविधान से सीख ले सकते हैं। इस लिये जब 26 जनवरी 1950 के ऐतिहासिक दिवस को, जब हम सम्पूर्णप्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना करेंगे तो उस दिन अवश्य ही मैं इस संविधान से गर्वान्वित हूंगा। संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों का बहुत प्रचार हुआ है। इस प्रचार की आवश्यकता भी थी क्योंकि अब प्रत्येक व्यक्ति जान गया है कि संविधान क्या है और इसके अनुच्छेद क्या हैं। दो वर्ष पूर्व जब हमने अपना कार्य आरम्भ किया था तो लोग यह बिल्कुल नहीं जानते थे कि आखिर यह संविधान है क्या चीज। किन्तु संविधान सभा की बैठकों को तथा उसके सत्रों को अधिक काल तक करने से लोग विभिन्न अनुच्छेदों को समाचारपत्रों में पढ़ते हैं और बड़ी दिलचस्पी से उनके सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते हैं यद्यपि समाचारपत्रों में केवल सारांश ही निकलता है क्योंकि वे पूर्ण विवरण नहीं दे सकते। लोग आज इस संविधान पर तथा इसके अनुच्छेदों पर, जिनसे उन्हें अपने अधिकार तथा आभार प्राप्त हो रहे हैं, बहुत दिलचस्पी ले रहे हैं।

अन्य में श्रीमान, मेरा निवेदन है कि इस संविधान के एक अनुच्छेद में यह कहा गया है कि सदस्यों को वही अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो कामन्स-सभा के सदस्यों को प्राप्त हैं। मैं, मसौदा-समिति से यह जानने के लिये कि कामन्स-सभा के क्या विशेषाधिकार हैं, अपनी जगह से कई बार उठा किन्तु उसके किसी सदस्य को यह ज्ञात नहीं था और न उनमें से किसी ने मुझे बताया। जब मैंने मसौदा-समिति के सभापति डॉ. अम्बेडकर से बार-बार यह प्रश्न पूछा तो उन्होंने कहा कि मेरे पास दक्षिणी अफ्रीका की संसद के कुछ विशेषाधिकारों का विवरण है और मैं उसे आपको दिखा सकता हूं। मैंने उसे मेरे पास भेज देने के लिये उनको लिखा है कि मुझे अभी तक न तो कोई उत्तर मिला है और न विशेषाधिकारों का विवरण ही। मैं कह नहीं सकता कि वह उनके दफ्तर में उपलब्ध है या नहीं, किन्तु मुझे उसकी एक प्रति नहीं दी गई है। मैं वास्तव में यह जानने के लिए उत्सुक हूं कि वे विशेषाधिकार क्या हैं। संविधान का यह उपबन्ध बहुत ही अस्पष्ट है कि सदस्यों को वही अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो कामन्स सभा के सदस्यों को प्राप्त हैं जब कि मसौदा-समिति को स्वयं ज्ञात नहीं है कि वे क्या हैं? संविधान में इस प्रकार का उपबन्ध नहीं रखना चाहिये था। चाहे जो भी हो, इस आशय का उपबन्ध रखा गया है किन्तु मुझे आशा है कि संसद के पहले सत्र में ही सदस्यों के अधिकारों को प्राप्त करने के लिये तथा उनकी रक्षा करने के लिये प्रयत्न किये जायेंगे।

श्रीमान, अन्त में मैं केवल यह कहूंगा कि अपने महान नेता से प्रेरणा प्राप्त करके, जिनका चित्र आपके स्थान के ऊपर टांगा गया है, हमने इन अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श किया। यद्यपि वे हमारे बीच में सशरीर उपस्थित नहीं हैं किन्तु मुझे विश्वास है कि इस संविधान के विधि-रूप में प्रवर्तन में आने पर उनकी आत्मा

[श्री आर.के. सिधवा]

हमारा पथप्रदर्शन करेगी और हम सत्यनिष्ठा से तथा वफादारी से कार्य करेंगे और वे अपने जीवन भर हमें जो सीख देते रहे उसका सत्यनिष्ठा तथा वफादारी से अनुसरण करेंगे।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे इसकी बहुत प्रसन्नता है कि इस सभा को दो वर्ष से अधिक समय के अपने जीवन-काल में जो शुभ दिवस प्राप्त हुए उनमें से आज का दिन भी एक है: एक समय वह था जब इस सभा को हमारे प्रधान मंत्री तथा उपप्रधान मंत्री तथा अन्य नेताओं के भाषणों से बहुत प्रेरणा प्राप्त होती थी। आज का दिन भी एक शुभ दिवस है क्योंकि आज हमें इसका हर्ष है कि आज स्वतन्त्र भारत के स्वप्न पूरे हो रहे हैं और भारत के भावी संविधान का निर्माण करके हम एक महान कार्य सम्पन्न करने जा रहे हैं। एक अन्य अर्थ में भी यह एक शुभ दिवस है क्योंकि इस सभा के तथा आपके आशीर्वाद से और हमारे दो महान राष्ट्रीय नेता, अर्थात पंडित जी और सरदार जी की शक्ति तथा प्रेरणा से और उनके समर्थन से इस संविधान सभा के विचार-विमर्श के फलस्वरूप एक नवीन प्रान्त अस्तित्व में आ रहा है। सौभाग्य से मैं आंध्र से हूं और मुझे अपने दो महान नेताओं, अर्थात केसरी श्री प्रकाशम तथा हमारे राष्ट्रपति डॉ. पट्टाभि के साथ आंध्र प्रान्त को अस्त्वि में लाने के लिये प्रयत्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज हमें यह सुसंवाद प्राप्त हुआ है कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति हमारी सरकार से यह प्रार्थना करने के लिये सहमत हो गई है कि वह आंध्र प्रान्त को अस्तित्व में लाने के लिये कदम उठाये। इस प्रान्त को अस्तित्व में लाने के लिये आंध्र तथा अन्य लोग पिछले 35 या 36 वर्षों से संघर्ष करते चले आ रहे हैं। मुझे केवल यह खेद है कि इस आन्दोलन के प्रवर्तक तथा किसी समय भारतीय कांग्रेस के स्थानापन्न राष्ट्रपति और इस देश के महान शहीद देशभक्त कोंडा वेंकटापय्या आज इस सुसंवाद को सुनने के लिये जीवित नहीं हैं। मुझे पूरी आशा है कि सरकार, तथा आप भी हमारे अध्यक्ष होने के नाते इस प्रान्त को अस्तित्व में लाने के लिये भारत-शासन अधिनियम की धारा 290 के अधीन तथा बाद को संविधान की तत्विषयक धारा के अधीन आवश्यक कदम उठायेंगे और इस देश के राज्यों के बीच सुचारू रूप से अपना कार्य आरम्भ करने के लिए उसकी पूरी सहायता करेंगे और स्वतन्त्र भारत की उन्नति में अपना योग देने के लिये उसे समर्थ बनायेंगे।

इस सभा के विचाराधीन जो संविधान है उसके बारे में मेरा निवेदन है कि मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कई विषयों के सम्बन्ध में इस संविधान सभा ने संसार के सामने एक उदाहरण रखा है। हमें आज ही यह समाचार विदित हुआ कि अमरीका के राष्ट्रपति मि. ट्रुमैन अपने देशवासियों को इसके लिये राजी करने का प्रयास कर रहे हैं कि वे उस देश के हबशियों को, जो उस देश की जनसंख्या के दस प्रतिशत हैं, नागरिक अधिकार प्रदान करें। अपने संविधान द्वारा हमने यह अधिकार हरिजनों तथा अन्य अनुसूचित जातियों तथा पिछड़ी हुई आदिम-जातियों को प्रदान किये हैं। हमने अस्पृश्यता को पहले अपने मस्तिष्क से हटाया और फिर अपने समाज से। इस सम्बन्ध में हम सभी सहमत हो गये हैं कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाये अैर जो कोई उसे बरते उसे दण्डित किया जाये। हम इसके लिये भी राजी हो गये हैं कि अनुसूचित जातियों की रक्षा की जाये। मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी

पिल्ले का विचार है कि इन जातियों के लोग दस वर्ष में भी उन्नति नहीं कर सकेंगे और देश को दस वर्ष के पश्चात् रक्षणों को समाप्त नहीं करना चाहिये। मुझे इससे अधिक आशा है। मैं इसके लिये उत्सुक हूं कि भारतीय लोकतन्त्र में लोग अनुसूचित जातियों के लोगों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन इतने संतोषजनक ढंग से करें कि दस वर्ष के पश्चात् अनुसूचित जातियों के हमारे मित्र अन्य लोगों के साथ घुल-मिल जाने के लिये तथा इन रक्षकों को समाप्त करने के लिए स्वयं तैयार हो जायें।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, इस संविधान द्वारा संसार के साम्राज्यवादी देशों के सामने तथा आदिम-जातियों के लोगों के सामने विशेषकर अफ्रीका के ऐसे लोगों के सामने हमने अपने देश की आदिम-जातियों के लोगों के लिये रक्षण रखकर एक आदर्श रखा है। यह सभी को विदित है कि हमारा देश एक प्राचीन देश है और यहां प्राचीन काल के बहुत से भग्नावशेष पड़े हुए है जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। हम उन्हें बिना समझे बूझे नहीं दूर कर सकते हैं। हमें रचनात्मक कदम उठाने हैं और विचार यह है कि संविधान के अधीन रचनात्मक कदम उठाये जायेंगे। हम इसके लिये सहमत हो गये हैं कि आसाम के सुदूर प्रदेशों में आदिम-जातियों के स्वायत्तशासी गणराज्य स्थापित कर दिये जायें ताकि आदिम-जातियों के लोग अपनी जातियों का सामाजिक जीवन ही व्यतीत न कर सकें बल्कि राजनैतिक जीवन भी व्यतीत कर सकें और वह भी इस प्रकार कि उनकी शीघ्र उन्नति हो सके। हमने अभी लोगों के सामने एक उदाहरण रखा है क्योंकि हम सभी जानते हैं कि अंग्रेज़, बेल्जियन, फ्रांसीसी तथा अन्य साम्राज्यवादी, जो अभी तक अफ्रीका के लोगों पर अपना अधिपत्य जमाये हुए थे आज इस सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई का सामना अनुभव कर रहे हैं कि वे अपने साम्राज्य में आदिम-जातियों के लोगों की किस प्रकार सहायता करें कि वे शीघ्र उन्नति कर सकें। यह हम सभी को विदित है कि इन देशों के आदिम जातियों के लोग केवल पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये ही नहीं किन्तु अपने सामाजिक उत्थान के लिये शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये राजनैतिक साधनों को प्राप्त करना चाहते हैं। मेरी यह धारणा है कि वे उसी मार्ग का अनुसरण करके उन्नति कर सकते हैं जिस मार्ग को हमने इस अध्याय में अपने देश की आदिम-जातियों के लोगों के लिये प्रशस्त किया है।

श्रीमान, कई देशों ने धार्मिक सामंजस्य के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहा और इस कारण उनका इतिहास बहुत संकटपूर्ण रहा। कनाडा, इंग्लैंड तथा फ्रांस में ईसाइयों के दो सम्प्रदायों में संघर्ष रहा और कई वर्षों तक इसका सामंजस्यपूर्ण हल नहीं निकाला जा सका कि ये संप्रदाय अपने सिद्धान्तों की शिक्षा किस प्रकार दें और उनका प्रचार किस प्रकार करें ताकि इनके अनुयायी उन्नति करें और सुचारू सामाजिक जीवन व्यतीत करें। अपने देश में भी हमें अपने कुछ धर्मों के अनुयायियों के हितों तथा धर्मपरिवर्तन की भावनाओं में सामंजस्य लाना पड़ा। हमारे देश में कई अन्य देशों की अपेक्षा अधिक धर्म हैं किन्तु फिर भी हमने एक हल ढूंढ निकाला है और मुझे विश्वास है कि संसार के सभी संविधान-वेत्ता तथा समाज-शास्त्र-वेत्ता इसे प्रगतिशील सामंजस्यपूर्ण तथा उपयोगी घोषित करेंगे। पुराने राष्ट्रमंडल तथा वर्तमान राष्ट्रसंघ को तथा विभिन्न देशों के लोगों को द्वि-भाषा भाषी क्षेत्रों के प्रश्न को हल करने में भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है और अपने अल्पसंख्यकों से उनके हितों तथा कलहों से संघर्ष करना पड़ा है। हमने अपने देश में एक ऐसा हल ढूंढ निकाला है जो प्रगतिशील है और जो एक ही क्षेत्र में रहने वाले

[प्रोफेसर एन.जी. रंगा]

अथवा विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न लोगों के बीच सामंजस्य पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। श्रीमान, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि केन्द्रीय सरकार को द्विभाषी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अपने बच्चों को अपनी भाषाओं में ही शिक्षा देने की स्वतन्त्रता प्रदान करने की शक्ति दी गई है। साथ ही वे जिस प्रान्त अथवा राज्य में रहते हों वहां की सेवाओं में नियुक्त हो सकते हैं, विधान-मंडलों में तथा वहां के राजनैतिक जीवन में भाग ले सकते हैं।

श्रीमान, जैसा कि आपने अपने सुन्दर शब्दों में कहा है यह भी एक अच्छी बात हुई है कि हम सभी लोगों के लिये एक भाषा के सम्बन्ध में निर्णय कर सके हैं, सभी लोगों को एक सशक्त, सुगठित तथा सामंजस्यपूर्ण राष्ट्र में परिणत करने की ओर यह इस देश का सबसे बड़ा रचनात्मक कार्य होगा। मुझे पूरी आशा है कि हमारे बच्चों के लिये तथा उनके बच्चों के लिये इस भाषा को सीखना सम्भव ही नहीं होगा किन्तु वे अपनी तथा अपने पूर्वजों की उस प्रतिभा से, जो इस वृहत् देश की विभिन्न भाषाओं के माध्यमों से विकसित हुई है, उसे अधिक सुसम्पन्न बना सकेंगे।

हम अपने सरदार जी के बहुत आभारी हैं जिनसे हम सबको प्रेम है और जिनका हम सब आदर करते हैं और वह इस कारण कि उन्होंने हमारे देश को एक सूत्र में बांधा है और एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त में तथा एक राज्य को दूसरे राज्य में और सबको सम्पूर्ण संयुक्त भारत में समाविष्ट किया है। उन्होंने एक ऐसी सामाजिक क्रान्ति कर दिखाई है जिस पर कोई भी देश अथवा राष्ट्र गर्व कर सकता है। यह क्रान्ति ऐसे अहिंसात्मक ढंग से तथा इतने अल्पकाल में हुई है कि यह एक अद्वितीय क्रान्ति है।

श्रीमान, हम अपने देश में लोकतंत्र की नींव डाल रहे हैं। जिस प्रकार यह नींव डाली गई है उससे मुझे इस समय संतोष है। हमने मूलाधिकारों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं। संसार के अन्य देशों ने जो अनुभव प्राप्त किया है उससे आगे हम नहीं बढ़े हैं। किन्तु साथ ही इन मूलाधिकारों का उल्लेख करते हुए हमने अपने अनुसरण के लिये अनेक आदर्श रखे हैं। एक अर्थ में हम कुछ आगे भी बढ़ गये हैं। और यह हम ने ठीक ही किया है। वह इस अर्थ में कि यदि कार्यपालिका का कोई प्राधिकारी उन अधिकारों में से किसी का खण्डन करे जिन का हम ने विवरण दिया है तो हम किसी न्यायालय के सामने जा कर न्याय करवा सकते हैं।

मुझे इसकी भी प्रसन्नता है कि हम इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहे हैं कि हमारे देश में उस प्रकार की घटनायें घटित न हों जैसी कि कई वर्षों तक अमरीका में घटित होती रही हैं वहां एक ओर राज्यों के बीच कलह होता रहा और दूसरी ओर राज्यों तथा फेडरल सरकार के बीच कलह होता रहा है। हमने उस देश के अनुभव से सीख ली है और राज्यों के बीच कलह न होने देने के लिये संविधान में आवश्यक उपबन्ध रखे हैं। हमने अन्तर्प्रान्तीय नहरों, खाद्य नियंत्रण तथा अनेक अन्य विषयों के सम्बन्ध में राज्यों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये हैं और हमें इसकी भी चिंता रही है कि हमारे देश के आर्थिक विकास में कोई एक राज्य देश के सामान्य विकास अथवा किसी पड़ौसी राज्य की प्रगति में बाधा न डाल सके।

मुझे इसकी भी प्रसन्नता है कि हमने साहस और नैतिक दृढ़ता के साथ इसे देश के ऐसे लोगों पर निर्बन्धन लगाये हैं जो एक विशेष प्रकार की स्वतन्त्रता अथवा स्वच्छन्दता का उपभोग करना चाहते थे। इसके लिये नैतिक दृढ़ता की आवश्यकता थीं। चूंकि हम में से बहुत से लोग जेल गये हैं, निरुद्ध रहे हैं, और हमने अन्य कई प्रकार के उत्पीड़न भी सहे हैं इस लिये हम जानते हैं कि इनके कारण किस प्रकार की पीड़ा सहन करनी पड़ती है। कार्यपालिका के इस प्रकार के प्राधिकार के विरुद्ध हम वर्षों से संघर्ष करते चले आये हैं। इसलिये हमने यह अनुभव किया कि इन बातों की आवश्यकता है। जो लोग थोड़े समय से ही क्रान्तिकारी थे वे तुरन्त ही अपने लक्ष्य अर्थात् स्वतन्त्रता को प्राप्त करने पर आसानी से यह अनुभव नहीं कर सकते कि यदि इस देश को उत्तरोत्तर शक्तिशाली तथा सुस्थिर होना है और यदि हमें सामाजिक उन्नति करनी है तो हमें ऐसे समूहों, दलों अथवा व्यक्तियों पर नियंत्रण रखना चाहिये जो अपने वादों के अथवा साम्प्रदायिकता के हित में तथा अपनी जाति तथा राजनीति और अपने धर्म और वर्ग के हित में अपना तथा प्रत्येक व्यक्ति का सर्वस्व बलिदान करना चाहते हैं। इसलिये इस सभा के किसी सदस्य को किसी ऐसे व्यक्ति से क्षमा याचना करने की आवश्यकता नहीं है जो यह कहे कि "आपने अमुक अमुक मूलाधिकारों पर इतने अधिक निर्बन्धन लगा दिये हैं, इत्यादि।" हमने इस सम्बन्ध में भी कार्यपालिका के प्राधिकार-प्रयोग पर परिसीमन लगाने की चिंता की है।

हमने एक अन्य दिशा में भी नैतिक दृढ़ता का परिचय दिया है और वह इस सम्बन्ध में कि हमने यह स्वीकार किया है कि एक सशक्त, सुस्थिर, सत्यनिष्ठ तथा देशभक्त लोक-सेवकों की आवश्यकता है। जब मैं एक नवयुवक था और विश्वविद्यालय में पढ़ता था तो लायड जार्ज भारत के "फौलादी ढांचे" की चर्चा करते थे जिससे मुझे बहुत क्षोभ होता था। मुझे बहुत क्रोध होता था और मैं यह विचार करता था कि आखिर यह "फौलादी ढांचा" है किस लिये। किन्तु इन तीन वर्षों में हमने अनुभव किया है कि यह हमारे लिये कितना आवश्यक है। यदि हम सहयोग के आधार पर उन्नति करना चाहते हैं अथवा गांधी की समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं तो हमें इस असैनिक सेवा की बहुत आवश्यकता पड़ेगी। यदि हमें असैनिक सेवकों को रखना है तो हमें उसका विश्वास करना होगा और उन्हें हमारा विश्वास करना होगा तथा हमें उसका सत्यनिष्ठा से समर्थन करना होगा और उसे सत्यनिष्ठा से हमारी सेवा करनी होगी। इसलिये हमारे लोक सेवकों के वेतनों तथा उपलब्धियों की रक्षा के सम्बन्ध में हमारे संविधान में जो उपबन्ध रखे गये हैं उनसे मैं सहमत हूं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपने लोक सेवकों को मन माना अधिकार दे रहे हैं। हम असैनिक सेवकों के लिये इन विशेषाधिकारों को इसी आशा से, तथा इसी उद्देश्य से रख रहे हैं कि वे सत्यनिष्ठा से तथा योग्यता से देश की सेवा करेंगे।

श्रीमान, संविधान की एक व्यवस्था के सम्बन्ध में मुझे थोड़ा बहुत क्षोभ है। इस संविधान द्वारा हमने बहुत अधिक केन्द्रीकरण की व्यवस्था की है। यह बात नहीं है कि मैं एक सशक्त केन्द्रीय सरकार के पक्ष में नहीं हूं। हम सभी उसके पक्ष में हैं। किन्तु एक क्षण के लिये यह विचार करिये कि यदि एक हिटलर और उत्पन्न हुआ और उसने केन्द्रीय सरकार पर अधिकार जमा लिया और जो चालें जर्मनी के हिटलर ने चली थी वही चालें उसने भी चलीं और समाजवादी प्रान्तीय सरकारों को अथवा

[प्रोफेसर एन.जी. रंगा]

एक या दो उदार प्रान्तीय सरकारों को समाप्त कर दिया तो कैसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हमने केन्द्रीय सरकार को कुछ ऐसी शक्तियां प्रदान की हैं जिनके आधार पर वे हमारी कुछ प्रान्तीय सरकारों को समाप्त कर सकती हैं। यह भविष्य ही बतायेगा कि यह एक सुन्दर प्रगतिशील व्यवस्था है या नहीं। यह शक्ति हमने केन्द्रीय सरकार को इसी आशा से दी है कि लोग हमेशा केन्द्र में लोकतंत्रात्मक सरकार रखेंगे और उसे साम्यवादी अथवा फासीवादी पूर्णसत्तात्मक सरकार नहीं होने देंगे।

श्रीमान, प्रान्तीय सरकारों के तथा उनके संविधान के सम्बन्ध में भी हमने लोकतंत्रात्मक आधार पर व्यवस्था की है। हमारे देशवासियों को इस व्यवस्था का आदर करने तथा इसे सुदृढ़ बनाने की चिंता करनी चाहिए। किसी संविधान का सफल होना या असफल होना देश के लोगों पर निर्भर करता है क्योंकि वही उसे आयोग में लाते हैं और अनेक प्रथाओं को स्थापित करते हैं तथा उदाहरणों को रखते हैं। क्या हमारे लोग अपने उत्तरदायित्वों का गम्भीरतापूर्वक निर्वहन करेंगे? मुझे इस का पूरा विश्वास है। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे देशवासी, जो बहुत काल तक संकटों को झेलते हुए महात्मा गांधी के नेतृत्व में आगे बढ़ते रहे तथा जिन्होंने साम्राज्यवाद से संघर्ष किया और इस देश को स्वतंत्र किया, इस संविधान को लेकर उत्तरोत्तर प्रगतिशील तथा उत्कृष्ट लोकतन्त्रात्मक व्यवहार तथा अनुभव के लिये जिस बुद्धिमत्ता तथा राजनीतिज्ञता की आवश्यकता है उसका परिचय देंगे। मैं उस दिन की राह देख रहा हूं जब हम बापू की कल्पना का सहयोगपूर्ण राष्ट्रमंडल किसान-मजदूर-बुद्धिजीवी-कलाकार राज द्वारा स्थापित कर सकेंगे। यह राज देश के श्रमजीवियों का राज होगा न कि आलसियों का और शोषकों का राज। इस राज में श्रमजीवी समाज के उत्थान में ईमानदारी से अपना योग दे सकेंगे। यह राज उन लोगों का होगा जो लोकतन्त्र की उन्नति के लिये जीवित रहेंगे तथा कार्य करेंगे और उसकी रक्षा के लिये प्राण त्याग देंगे। उन्हें केवल लोकतन्त्र से ही प्रेम होगा और तानाशाही को पास नहीं फटकने देंगे।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, एक बार एक आदमी समुद्र-यात्रा के लिये घर से बाहर गया। बहुत समय बाद जब वह अपने गांव वापस आया तो लोगों ने उससे पूछा। आपने कौन-सा सबसे बड़ा आश्चर्य देखा है? उसने कहा कि मैंने जिस सबसे बड़े आश्चर्य का अनुभव किया है वह यह है कि मैं घर वापस चला आया हूं। इस संविधान के सम्बन्ध में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि हमने इसे समाप्त कर दिया है। एक अन्य आश्चर्य और सम्भवत: संसार में अपने ढंग का अनूठा आश्चर्य तब दिखाई दिया जब "दूसरे" द्वितीय पठन का आविष्कार हुआ, जिसे कि हमने कल समाप्त किया है।

***एक माननीय सदस्य:** यह ढाइवां पठन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हो सकता है। संसार के किसी भाग के संविधान-निर्माण अथवा विधान-निर्माण के इतिहास में इस प्रकार का उदाहरण नहीं मिलता है। इस शरारत में अनजाने कुछ मेरा भी योग रहा है। आरम्भ में मैंने यह सुझाव रखा था कि द्वितीय पठन में जो कार्य हो उसे मसौदा-समिति को दुहराना चाहिये। मेरी यह धारणा थी कि जिस ढंग से हम काम कर रहे हैं उसके फलस्वरूप बहुत

सी गलतियां होने की आशंका है। इस लिये मैंने यह सुझाव रखा कि द्वितीय पठन में जब संविधान का स्वरूप निश्चित कर लिया जाये तब उसे मसौदा-समिति के पास भेजा जाये और वह उसे दुहराये। उस समय डॉ. अम्बेडकर ने उस सुझाव का बहुत विरोध किया किन्तु अन्त में वे उसे स्वीकार करने के लिए सहमत हो गये। अब हम देख सकते हैं कि वह किस प्रकार व्यवहार में लाया गया है। दुर्भाग्य से इस प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि जो उपबन्ध कठिन या पेचीदे या अयुक्त समझे गये वे मसौदा-समिति के पास भेजे जाने लगे। केवल एक शर्त रखी गई और वह यह थी कि मसौदा समिति केवल रस्मी परिवर्तन करे और सदस्य इन्हीं परिवर्तनों के सम्बन्ध में संशोधन उपस्थिति करें। किसी विधान-मंडल के सचिव को जो कार्य दिया जाता है वही कार्य मसौदा-समिति को दिया गया। इसका एक अप्रत्याशित दुष्परिणाम यह हुआ कि सभा बहुत से अयुक्त उपबन्धों पर विचार नहीं कर सकीं। द्वितीय पठन में भी वे नहीं उठाये जा सके। यह उस नियम के कारण हुआ। जिसे श्रीमती दुर्गाबाई ने जारी किया। विराम, व्याकरण के दोष आदि के सम्बन्ध में तथा अन्य रस्मी संशोधनों को उठाया ही नहीं गया जैसे कि उनका कोई अर्थ ही नहीं था। उन पर मसौदा समिति ने कभी विचार नहीं किया और सभा को भी उन पर विचार करने से वंचित रखा गया। यह पठन मेरे विचार से वास्तव में चतुर्थ पठन कहा जा सकता है। संसार के सामने यह एक नया उदाहरण रखा गया है।

जो संशोधन रस्मी, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा विराम-सम्बन्धी थे उन्हें इंग्लिस्तान की प्रथा के आधार पर नहीं उठाया गया। किन्तु इंग्लिस्तान में मसौदा-सम्बन्धी ऐसी गलतियां नहीं की जाती जैसी कि हम करते हैं। मसौदे की गलतियों का वहां प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि वे होती ही नहीं और यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि वे होंगी। किन्तु इस संविधान के शब्दों तथा विरामों के सम्बन्ध में हमने अंग्रेजी के व्याकरण के नियमों का मनमाना प्रयोग किया है। व्याकरण के तथा स्वरूप के दोषों की उपेक्षा की गई है जिसके कारण ऐसी गलतियां तथा अयुक्त बातें रह गई हैं जैसी कि संसार में पहले कभी नहीं देखी गईं।

मेरा निवेदन है कि इन नियमों के कारण व्यवहार में बहुत गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई हैं। कई गलतियां, अयुक्त तथा अनावश्यक बातें रह गई हैं और कई स्थलों पर उन्हीं बातों को दुहराया गया है। मैं एक उदाहरण दूंगा जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार उन्हीं शब्दों को दुहराया गया है। अनुच्छेद 89 के खण्ड (1) में कहा गया है: "भारत का उपराष्ट्रपति पदेन राज्य-परिषद् का सभापति होगा।" अनुच्छेद 64 में भी इन्हीं शब्दों में यही उपबन्ध रखा गया है। उसमें भी कहा गया है: "भारत का उपराष्ट्रपति पदेन राज्य-परिषद् का सभापति होगा।" इनमें से एक उपबन्ध का निकाला जा सकता था। मैंने उसे निकालने का प्रयास किया किन्तु मेरे सुझाव को इस आधार पर अनियमित ठहराया गया कि इस प्रकार जहां वही शब्द, दुहराये गये हों उन्हें मसौदा-समिति स्वयं ठीक कर लेगी। मसौदा-समिति ने इनकी उपेक्षा की है। इस प्रकार की बातें कई स्थानों पर दुहराई गई है *(विघ्न)*

***श्री आर.के. सिधवा:** गलती क्या है?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** एक ही उपबन्ध उन्हीं शब्दों में संविधान में दो स्थलों पर प्रयुक्त है। किन्तु उसकी उपेक्षा की गई है। इस दोष को रहने दिया गया है, अब इसकी परीक्षा करने से क्या लाभ होगा।

***श्री महावीर त्यागी:** किन्तु हम आपके तर्क को समझना चाहते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह गलती कहां पर हुई है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरे पास इतना समय नहीं है कि सदस्य मेरी परीक्षा करें।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्यों से मेरा निवेदन है कि वे वक्ता महोदय को अपने ढंग से बोलने दें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** संविधान में बहुत सी अयुक्त बातें तथा गलतियां रह गई हैं। मैं उनका विवरण देकर सभा को थकाना नहीं चाहता। इस सभा में जो संशोधन उपस्थित किये गये उनमें से कुछ को मसौदा-समिति ने इस कारण अस्वीकार नहीं किया कि वे अनावश्यक थे बल्कि इस कारण कि उसके सदस्यों ने कुछ शर्म और घबड़ाहट का अनुभव किया और यह विचार किया कि यदि वे उन्हें स्वीकार कर लेंगे तो उन्हें छोटा समझा जायेगा। मेरे विचार से उनका यह रुख ठीक नहीं था। कई संशोधनों को दुहराते समय चुपचाप समाविष्ट कर लिया गया और यह नहीं कहा गया है कि अमुक अुमक संशोधन स्वीकार किया गया है। मैं एक दो उदाहरण दूंगा। एक उदाहरण यह है कि संविधान में इस प्रकार की पदावलियां थी जैसे "इस संविधान का अमुक अनुच्छेद", "इस अनुच्छेद का अमुक खंड। यह मसौदा बनाने के सिद्धान्तों के विरुद्ध है कि एक सौ से भी अधिक स्थानों पर ऐसे शब्द प्रयुक्त हों जैसे "इस संविधान का अमुक अनुच्छेद", "इस अनुच्छेद का अमुक खंड" इत्यादि। इन बेकार के शब्दों की ओर मैंने बार-बार ध्यान आकृष्ट किया किन्तु मेरे सुझावों को उस समय स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु दुहराते समय उन्हें चुपचाप समाविष्ट कर लिया गया है और यह नहीं बताया गया कि उन्हें कहां से लिया गया। यदि इसके लिये मसौदा-समिति की प्रशंसा की जाये तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि उसने कुछ सुधार किया है। इसके अतिरिक्त "इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी" पदावलि प्रयुक्त थी। मसौदा बनाने के आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार अंग्रेजी का "वांटेड" शब्द बेकार है। इस शब्द पर मैंने आपत्ति की थी किन्तु यह नहीं बताया गया कि किसका सुझाव स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त मैंने "इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि" पदावलि की ओर ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि "तिथि" शब्द निकाल देना चाहिये क्योंकि इसका अर्थ सन्निहित है। मसौदा समिति ने इसे भी निकाल दिया है किन्तु इस सम्बन्ध में भी नहीं बताया है कि कौन-सा सुझाव स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त मैंने कहा कि अंग्रेजी के "जन" शब्द को बड़े अक्षर से लिखना चाहिये। यह किया गया है। "मिनिस्टर" शब्द को भी, मैंने कहा था बड़े अक्षर से लिखना चाहिये। यह भी किया गया है। इन सबको एक सौ स्थानों पर शुद्ध किया गया है किन्तु यह नहीं बताया गया है कि कौन से सुझाव स्वीकार किये गये हैं।

***एक माननीय सदस्य:** वास्तव में यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** इन छोटे-मोटे सुधारों के लिये भी हमें कृतज्ञ होना चाहिये। न्यायालयों के सम्बन्ध में मेरे सुझाव के अनुसार अंग्रेजी के शब्द "फेडरल कोर्ट" तथा "हाई कोर्ट" बड़े अक्षरों से लिखे गये हैं किन्तु छोटे न्यायालयों को मसौदा-समिति ने छोटा ही समझा है और उनके सम्बन्ध में जहां कहीं "कोर्ट" शब्द प्रयुक्त है वहां उसे छोटे अक्षर से ही लिखा गया है। उसने उस सुझाव को आंशिक रूप से ही स्वीकार किया है।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय का ध्यान घड़ी की ओर आकृष्ट कर सकता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस प्रकार के शब्द हमारी सभी विधियों में बड़े अक्षरों से लिखे गये हैं। "मैजिस्ट्रेट", "डिस्ट्रिक्ट जज", "असिस्टेंट मैजिस्ट्रेट" जैसे शब्दों को तथा इन्हीं के समान अन्य शब्दों को सुस्थापित प्रथा के विरुद्ध छोटे अक्षरों से लिखा गया है।

मसौदा-समिति का सबसे बड़ा दोष यह रहा है कि वह अपने विचार बदलती रही है। वास्तव में इन परिवर्तनों से सभी परिचित हैं। ये परिवर्तन प्रतिदिन किये गये और बार-बार किये गये। इसलिये इनकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। इनके कारण कई अयुक्त बातें पैदा हो गई हैं।

श्रीमान, वाद-विवाद में इस दोष की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया कि मसौदा-समिति प्रान्तीय अधिकार-क्षेत्र में अधिकाधिक हस्तक्षेप कर रही है और उसने प्रान्तों के सभी उत्तरदायित्व तथा उनकी शक्तियां समाप्त कर दी हैं और सारी शक्ति केन्द्र को दे दी गई है। इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्तों के उत्तरदायित्व तो रहेंगे किन्तु उन्हें शक्ति प्राप्त नहीं होगी। इससे वे अनुत्तरदाई हो जायेंगे। यही द्वैध शासन के साथ भी हुआ और वह बुरी तरह असफल रहा।

एक अन्य दोष यह है कि "राज्य" शब्द का बहुत दुरुपयोग हुआ है। संविधान में "राज्य" शब्द से विभिन्न प्रकार की संस्थायें अभिप्रेत हैं। पाठक को प्रत्येक भाग में "राज्य" शब्द की विशेष परिभाषाओं को जानना होगा ताकि वह अर्थ को ठीक-ठीक समझ सके। किन्तु फिर भी उसका सन्देह बना रहेगा। इसका कारण यह है कि मसौदा समिति केन्द्रीय, राज्यों, प्रान्तों, देशी राज्यों, जिला बोर्डों, नगरपालिकाओं, स्थानीय बोर्डों और संघीय बोर्डों के बीच विभेद नहीं कर सकी और उनके अलग-अलग नाम नहीं रख सकी। वे सब "राज्य" कहे गये हैं। इससे यह अयुक्त बात पैदा हो गई है कि जो उपबन्ध केवल केन्द्र के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने चाहिये थे वे नगरपालिकाओं, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, स्थानीय बोर्डों के लिये भी प्रयुक्त किये गये हैं। इस प्रकार के वाक्य हैं जैसे "राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का प्रयास करेंगे", और "राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रयास करेंगे", "राष्ट्रों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि-सम्बन्धों के प्रति आदर बढ़ाने का प्रयास करेंगे", "अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेंगे"—जैसे कि नगरपालिकाएं, जिला बोर्ड तथा अन्य स्वायत्त-शासी स्थानीय निकाय यह सब करेंगे। अभिप्राय केन्द्र से है। बिना किसी आवश्यकता के यह विस्तृत परिभाषा रखी गई

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है जिससे केवल भ्रम उत्पन्न होता है। यह शब्द इस कारण रखा गया है कि मसौदा-समिति चित्ताकर्षक तथा कर्णमधुर पदावलि को रखना चाहती थी। शब्दाडंबर के प्रेम के कारण ही उसने इस प्रकार की पदावलियां रखी हैं। किन्तु प्रसंगानुसार विचारों को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिये अंग्रेजी जैसे सुसम्पन्न भाषा में शब्द मिल सकते हैं और "सेल्फ गवर्निंग बाडीज" तथा "लोकल बाडीज" जैसी पदावलियों को केवल विशेष प्रसंगों में ही आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता था। मेरा निवेदन है कि इससे बहुत भ्रम उत्पन्न हो गया है।

इसके अतिरिक्त मसौदा-समिति ने "स्टेट" शब्द के साथ "दी" शब्द प्रयोग किया है। ऐसा प्रयोग प्रचलित नहीं है। इसके समर्थन में डॉ. अम्बेडकर केवल आस्ट्रेलिया का उदाहरण दे सके। जैसा कि श्री सिधवा बता चुके हैं, जब कभी वे कठिनाई में पड़ते हैं तो वे दक्षिणी अफ्रीका अथवा आस्ट्रेलिया का उदाहरण देते हैं। किन्तु जब उनसे प्रमाण के लिये आग्रह किया जाता है तो वे उसे नहीं प्रस्तुत करते। श्रीमान, मेरा निवेदन है कि इन शब्दों को एक साथ नहीं रखना चाहिये था। "स्टेट" शब्द को बिना "दी" शब्द के साथ रखे हुए ही परिभाषा में रखा जा सकता था। "दी" शब्द डेफनिट आर्टिकल अर्थात् निश्चयात्मक विशेषण है किन्तु इसे विभिन्न स्थलों में अनिश्चित अर्थ में प्रयोग किया गया है। हमने सर्वत्र "दी स्टेट" पदावलि प्रयोग की है जिससे अभिप्रेत है नगरपालिकाएं, जिला बोर्ड, स्थानीय बोर्ड, संघीय बोर्ड तथा इन्हीं के समान अन्य निकाय। यदि भारत में एक ही राज्य होता तो "दी स्टेट" पदावलि प्रयोग की जा सकती थी। अनिश्चित अर्थ में इसे प्रयोग नहीं किया जा सकता। "दी स्टेट" की जो परिभाषा की गई है उसके अन्तर्गत कई लाख राज्य आ जायेंगे जिनमें जिला बोर्ड, नगरपालिकाएं, स्थानीय बोर्ड तथा संघीय बोर्ड आदि भी सम्मिलित हैं। इसलिये यदि हमने विभिन्न स्थानों पर "दी स्टेट" पदावलि प्रयोग की है तो उससे वास्तव में कई लाख राज्य अभिप्रेत हैं। इस प्रसंग में "दी" शब्द नहीं प्रयोग किया जाना चाहिये। हमें प्रसंगानुसार कहना चाहिये "यह राज्य" अथवा "वह राज्य" अथवा "एक राज्य" अथवा "कोई राज्य" अथवा "प्रत्येक राज्य"। "दी" और "स्टेट" शब्दों को एक साथ रखने से मसौदाकार के लिये किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं रह जाती।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या आप कभी किसी विद्यालय में अध्यापक रहे हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इसके अतिरिक्त श्रीमान, "भारत डोमीनियन" पदावलि को बड़े प्रेम से बार-बार प्रयोग किया गया है। वास्तव में इस सम्बन्ध में उस चिड़िया का उदाहरण दिया जा सकता है जो बहुत काल तक पिंजड़े में रही हो। जब उसे छोड़ा जाता है तो वह फिर उसी पिंजड़े में वापस चली आती है। इसी प्रकार जो अपराधी जेल में रहने का अभ्यस्त हो गया हो वह मुक्त होने पर फिर अपराध करता है और फिर जेल चला जाता है। यद्यपि हम डोमीनियन के बन्धनों से मुक्त हो गये हैं किन्तु हम उन्हें फिर स्वीकार करना चाहते हैं। "भारत की संविधान सभा" जैसी सीधी-सादी पदावलि प्रयोग न करके मसौदा समिति ने बिना किसी आवश्यकता के "डोमीनियन की संविधान सभा" पदावलि प्रयोग की है। इसकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं है किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने हमें बताया कि उनके लिये इसके अतिरिक्त और

कोई चारा नहीं था। इसका सीधा सादा उपाय था। वे केवल "भारत की संविधान सभा" कह सकते थे। इससे पूरा आशय प्रकट हो जाता। हमने इस पदावलि को इतना अधिक प्रयोग किया है कि इससे कोई अयुक्त बात पैदा नहीं होगी।

जैसा कि श्री सिधवा ने कहा है। यह किसी को विदित नहीं है कि इस सभा को कौन से विशेषाधिकार प्राप्त हैं। द्वितीय पठन के अवसर पर मैंने बताया था कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार किसी को विदित नहीं हैं और उनका उल्लेख यत्र तत्र इंग्लिस्तान के कई नियमों में तथा पाठ्य पुस्तकों में मिलता है। इन उल्लेखों को संकलित करना चाहिये था। इस काम को केवल कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकारों का अस्पष्ट शब्दों में उल्लेख करके टाल न देना चाहिये था। विशेषाधिकारों की गणना करनी चाहिये थी और उन्हें संविधान में समाविष्ट करना चाहिये था। किन्तु इसके लिये मसौदा-समिति के पास न तो समय था और न इस ओर उसकी प्रवृत्ति ही थी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि वे बिना किसी आवश्यकता के अन्यायपूर्ण ढंग से कम कर दिये गये हैं। कुछ मामलों में वर्तमान न्यायाधीशों के भी वेतनों को तुरन्त ही घटाने का प्रयास किया गया था। यह उस संविदा के विरुद्ध होता जिसके आधार पर वे नियुक्त किये गये थे। मेरे आपति करने पर यह रियायत की गई कि 31 अक्टूबर 1948 तक जो न्यायाधीश नियुक्त किये गये थे उन्हें पुराना ही वेतन देने का निश्चय किया गया था। बहुत आगा-पीछा करने के बाद इसे भी हटा दिया गया और अब न्यायाधीशों के वर्तमान वेतन को रहने दिया गया है।

मैं वादों अर्थात् ऐसे लघुवादों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में, जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, एक अन्य अयुक्त बात की ओर ध्यान आकृष्ट करूंगा। मसौदा-समिति को ऐसे विधि प्रश्न से बहुत प्रेम रहा है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त रहा है। जिलों में लघुवादों में यदि संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अन्तर्गस्त होता तो इसका परिणाम यह होगा कि उच्च न्यायालय को इन वादों को वापस लेना होगा और उन्हें तुरन्त ही निबटाना होगा अथवा इस प्रकार के प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करना होगा। मेरा निवेदन है कि वास्तव में संविधान के निर्वचन का प्रश्न तथ्यों पर निभर रहेगा। उच्च न्यायालय को बहुत से लघुवादों को निबटाना पड़ेगा और एक पुराना मुकदमेबाज यह आपत्ति करेगा कि संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है—उस वाद को वापिस लेना होगा और मुकदमेबाज़ी में बहुत धन व्यय होगा। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की मुकदमेबाजी में गरीबों को ही हानि उठानी पड़ेगी। इस प्रकार इससे जनसाधारण को हानि होगी और विधि का प्रशासन अधिक व्यय साध्य तथा काल-साध्य हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, मैं देखता हूं कि संविधान में एक व्यक्ति का कोई भी कृत्य नहीं रखा गया है। वह अनुच्छेद 366 के खण्ड (30) में उल्लिखित उप राजप्रमुख है—उप-राजप्रमुख युक्लिड के बिन्दु के समान है, जिसका अस्तित्व तो होता है किन्तु परिमाण कुछ नहीं होता। उपराजप्रमुख को एक ओहदा दिया गया

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

है किन्तु कोई कह नहीं सकता है वह है क्या। उसे कोई कृत्य नहीं दिया गया है। संविधान में यह नहीं बताया गया है कि वह राज-प्रमुख के होते हुए भी कार्य करेगा अथवा वह केवल एक अतिरिक्त कार्यकर्ता होगा। मेरा निवेदन है कि जैसा कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने एक अन्य पद धारण करते हुए कहा था, इस संविधान का मसौदा इतना दोषपूर्ण है कि वकील इसे प्राप्त करके निहाल हो जायेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मसौदा-समिति जैसी समुन्नत संस्था में समुन्नत स्थान प्राप्त करके उन्होंने अपनी राय बदल दी है।

मेरे विचार से अब मुझे समाप्त करना चाहिये। मसौदा-समिति की इस प्रकार आलोचना करने के लिये मैं सभा से क्षमा मांगता हूं। साथ ही मसौदा समिति ने इस कार्य को सम्पन्न करने में जो कष्ट उठाया है उसके लिये हमें उसे धन्यवाद भी देना है। यह स्वीकार करना होगा कि मसौदा-समिति ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर कार्य किया है। उसने बहुत कठिन परिश्रम किया किन्तु किसी निश्चित योजना के आधार पर कार्य नहीं किया। वे अपनी योजनायें प्रतिदिन बदलते गये। इसी कारण इतनी अधिक अयुक्त बातें रह गई हैं। कई बार तो पदारूढ़ दल ने उसे विशेष प्रकार के निर्णय करने के लिये विवश किया।

इसके अतिरिक्त एक अन्य अयुक्त स्थिति भी है। भाग 6 में प्रान्तों के सम्बन्ध में उपबन्ध है। इसे राज्यों के सम्बन्ध में भी लागू करने के लिए भाग 7 रखा गया और उसमें अनुकूल करने के लिए कुछ वाक्य रखे गये। ये वाक्य बहुत अव्यवस्थित हैं और वास्तव में इन्हें भाग 6 में रखना चाहिये था। यह आसानी से कहा जा सकता था कि जहां कहीं "राज्यपाल" शब्द प्रयुक्त हैं वहां अथवा "राजप्रमुख" शब्द भी जोड़ दिये जायें। इसमें कोई कठिनाई नहीं थी। मैंने इस आशय के एक संशोधन की अर्थात् संशोधन संख्या 364 की सूचना दी थी। अपने विचार से मैंने उपयुक्त से उपयुक्त संशोधन उपस्थित किया था और मसौदा-समिति यदि चाहती तो उसमें कुछ रूप-भेद करके स्वीकार कर सकती थी इससे ये उपबन्ध सारवान तथा सुसम्बद्ध हो जाते। इसके अतिरिक्त प्रान्तों और राज्यों के सम्बन्ध में सभी उपबन्ध एक साथ रखे गये हैं। किन्तु मेरा विश्वास है कि मसौदा समिति थक गई थी क्योंकि उसने अत्यधिक कार्य किया था। यद्यपि इस सुधार की आवश्यकता थी किन्तु उसमें अधिक कार्य करने की सामर्थ्य नहीं रह गई थी। मेरा संशोधन बना बनाया था और उसे केवल एक बार दुहराने की आवश्यकता थी।

समय के अभाव के कारण मैंने थोड़ी सी बातें संक्षेप में कहीं हैं। अपना भाषण समाप्त करने के पूर्व में यह कहे बिना नहीं रह सकता कि श्रीमान, हम सभी तथा मैं स्वयं आपका हृदय से आभारी हूं। चाहे सभा में जो भी कार्य हुआ है आप उन सदस्यों के संरक्षक रहे हैं जिन्होंने इसे अपना कर्तव्य समझा कि वे मसौदा-समिति के विरुद्ध बोलें। आपने अपना कार्य इतनी बुद्धिमत्ता, उदारता तथा योग्यता से किया है कि यह सभा आपकी आभारी है। आप इस सभा की कार्यवाही की बड़ी सावधानी के साथ देखरेख करते रहे हैं। यह बात नहीं थी कि आप मसौदा समिति की अयुक्त बातों को नहीं समझते थे किन्तु यह आपका कर्तव्य नहीं था कि आप गुणदोषों का विचार करके हस्तक्षेप करते। जिन सदस्यों ने अपना

कर्तव्य समझ कर मसौदा-समिति के विरुद्ध इच्छा न होते हुए भी बोलना चाहा उन्हें आपने अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की।

श्रीमान, यद्यपि संविधान के मसौदा में ये दोष हैं और कई अन्य दोष भी हैं किन्तु उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। आखिर अच्छे मसौदे का बहुत अधिक महत्व नहीं है। मसौदा दोषपूर्ण है और उसके फलस्वरूप बहुत से मामले उठ खड़े होंगे। जैसा कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अन्यत्र कहा था, इसे पाकर वकील निहाल हो जायेंगे किन्तु मेरा विश्वास है कि संविधान का सफल होना या विफल होना इस पर निर्भर करता है कि यह किस भावना से प्रयोग में लाया जायेगा। यदि इसे अच्छी भावना से प्रवर्तन में लाया जायेगा तो यह दोषपूर्ण संविधान भी सुन्दर से सुन्दर परिणामों का स्रोत प्रमाणित होगा और जैसे जैसे समय बीतेगा भारत के लोग अधिकाधिक राजनैतिक तथा आर्थिक स्वातन्त्रय प्राप्त करेंगे।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान, तीन वर्ष तक कठिन परिश्रम करने के पश्चात्, चाहे इस संविधान को बनाने में मेरा योग कितना ही नगण्य क्यों न रहा हो, मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हमने अपना कार्य सुन्दर ढंग से किया है। विभिन्न मत अवश्य ही होंगे क्योंकि यदि हममें से सभी लोगों का एक ही मत हुआ तो वह फासीवाद होगा अथवा निरंकुशता होगी और लोकतन्त्रवाद नहीं रहेगा। यह हो सकता है कि इस समय, या इसके पश्चात्, मतभेद हो किन्तु यह एक तथ्य है कि हमने एक संविधान का, एक लोकतंत्रात्मक संविधान का निर्माण किया है। आपके बुद्धिमत्तापूर्ण पथप्रदर्शन से जिस प्रकार यह नैया किनारे आ लगी है उसके लिये मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। मैं मसौदा-समिति को भी धन्यवाद देता हूं। मेरा उससे कुछ अनुच्छेदों के सम्बन्ध में कितना ही मतभेद क्यों न रहा हो और अब भी कितना ही मतभेद क्यों न हो किन्तु मैं यह कहूंगा कि उन्होंने अपने कर्तव्यों का पालन योग्यता के साथ किया है।

श्रीमान, यद्यपि मसौदा-समिति ने संविधान को उसका वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में अथक परिश्रम किया किन्तु मेरी हमेशा यह धारणा बनी रही कि यह एक दुख की बात है कि संविधान में कांग्रेस के आदर्शों का कोई प्रतिबिम्ब नहीं है। मैं इस समय इसका विश्लेषण करने नहीं जा रहा हूं कि कांग्रेस ने गैर कांग्रेसी लोगों का बहुमत कैसे प्राप्त कर लिया किन्तु मेरे हृदय में यह धारणा बनी रही, और मेरे विचार से यहां मेरे बहुत से साथी भी मेरे इस विचार से सहमत होंगे, कि यद्यपि यह संविधान कुछ काल तक हमारे अधिकार-पत्र के रूप में रहेगा किन्तु इसमें कांग्रेस के आदर्शों का अभाव है।

अधिक और कुछ कहने के पूर्व मैं आदरपूर्वक राष्ट्रपिता को प्रणाम करता हूं जिन्होंने भारतीय लोगों के स्वातन्त्र्य के लिये संघर्ष किया और जो हमें एक ऐसे स्तर पर लाये कि हम इस संविधान को बना सके। वे अब हमारे बीच में नहीं हैं किन्तु वे हमें देख रहे हैं। नम्रतापूर्वक मैं इस समय उनका स्मरण करता हूं। राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध बनाये रखने पर भी, जो मुझे तथा कई अन्य लोगों को बिल्कुल नापसन्द है, हमने जो कुछ प्राप्त किया है वह सब राष्ट्रपिता की ही देन है।

[श्री बी. दास]

इस सभा के बाहर मैंने उन लोगों के आरोप सुने हैं जो अपने को समाजवादी कहते हैं। वे यह कहते हैं कि यह संविधान प्रभावशून्य हो जायेगा। मुझे स्मरण है कि कुछ महीने पूर्व समाजवादियों ने "एक ड्राफ्ट कंस्टिट्यूशन" नाम की एक किताब निकाली थी। यदि समाजवादी तथा उनके नेता श्रीयुत जयप्रकाश नारायण धृष्टता से यह कहते हैं कि संविधान प्रभावशून्य हो जायेगा तो मैं उन्हें तथा उनके नेता को और समाजवादी दल को चुनौती देता हूं। यदि वे कांग्रेस से स्वर्ग के साम्राज्य को, इस देश की सरकार को प्राप्त करना चाहते हैं तो...

***श्री एच.वी. कामतः** हम पार्थिव साम्राज्य चाहते हैं?

***श्री बी. दासः** मुझे क्षमा कीजिये, पार्थिव साम्राज्य, मैं इसे स्वीकार करता हूं। यदि वे हमसे अर्थात् कांग्रेस दल से, शासन की बागडोर लेना चाहते हैं तो उन्हें यथार्थवादी तथा व्यावहारिक होना चाहिये। उनका दल एक बहुत ही अल्पसंख्यक दल है। इस लिये उन्हें यह न कहना चाहिये कि यह संविधान रद्द कर दिया जायेगा। इसके स्थान पर वे क्या रखना चाहते हैं? मैं श्रीयुत जयप्रकाश नारायण जी का आदर करता हूं किन्तु इस सभा के मंच से मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे व्यावहारिक हों। यदि उनका यह विचार है कि वे शासन-कार्य कांग्रेस सरकार से अच्छी तरह चला सकते हैं तो वे एक संविधान बनायें। हम देखेंगे कि इस संविधान में तथा जिस संविधान की वे कल्पना करते हैं उसमें कितना आधारभूत अन्तर है।

उन प्रश्नों को उठाने के पूर्व जिनके विषय में मैं बोलना चाहता हूं मैं संविधान सभा के सचिवालय को तथा उन सभी को धन्यवाद देता हूं जो इस समय यहां नहीं हैं किन्तु राज्य के कार्य के लिये बाहर गये हुए हैं। मुझे श्रीयुत बी.एन. राव का स्मरण होता है जिन्होंने, हमारे अवैतनिक परामर्शदाता के रूप में, हमें अपने ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर बहुत उत्कृष्ट परामर्श दिया। कुछ अन्य लोग भी हैं जो वैदेशिक सेवा में लगे हुए हैं और बाहर हमारे दूतावासों आदि में हैं। उन सबको हम धन्यवाद देते हैं। मुझे आशा है कि मेरे सहकारी भी मुझसे इस सम्बन्ध में सहमत हैं कि हम उन्हें धन्यवाद दें क्योंकि उन्होंने यथोचित अवसर पर यथोचित परामर्श देकर इस सभा के सदस्यों को सेवा की है।

श्रीमान, क्या हमारा देश एक गणराज्य है अथवा क्या राष्ट्रमंडल के देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके हम अब भी एक पाप के भागी हैं? प्रस्तावना में कहा गया है कि हमें आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक न्याय करना चाहिये। क्या सुलभ-मुद्रा प्रदेशों से सम्बन्ध बनाये रख कर हम आर्थिक न्याय कर सकते हैं? राष्ट्रमडल तथा एक बाहर के देश अर्थात् इंग्लिस्तान के अधीन रहने के कारण ही आज भारत का जन समुदाय महंगाई के कारण कष्ट झेल रहा है। हमारे आर्थिक संकट के लिये इंग्लिस्तान ही उत्तरदाई है। सात वर्ष महंगाई रहने पर इंग्लिस्तान में मूल्य केवल साठ प्रतिशत बढ़े हैं किन्तु हमारे गरीब देश में मूल्य 400 प्रतिशत तक बढ़ गये हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में मूल्य केवल 220 प्रतिशत बढ़े हैं। यह विचार करने की बात है कि युद्धकाल में हम इंग्लिस्तान तथा अमरीका के मित्र थे। श्रीमान, मैं कभी भी इंग्लिस्तान अथवा अमरीका का मित्र नहीं रहा। मैं

एक दास रहा और मेरे गले में फंदा पड़ा रहा। मेरा शोषण किया गया और मेरा खून चूसा गया। भारत की सारी दौलत तथा उसके आर्थिक साधन इंग्लिस्तान के हाथ में चले गये। किन्तु फिर भी मि. चर्चिल ने, तथा पार्लियामेंट के लेबर पार्टी के सदस्यों ने इन निन्दनीय शब्दों को कहने की धृष्टता की है कि पिछले युद्ध में भारत की रक्षा पर जो धन व्यय हुआ था उसे भारत को चुकाना चाहिये। इंग्लिस्तान के राजनीतिज्ञ अब भी इस देश के प्रति द्रोह रखते हैं। मुझे इंग्लिस्तान से कोई प्रेम नहीं है। 26 जनवरी 1950 को जब भारतीय गणराज्य की घोषणा की जायेगी तो मैं यह घोषणा करूंगा कि हमने राष्ट्रमंडल से और विशेषतया इंग्लिस्तान से नाता तोड़ दिया है।

श्रीमान, मसौदा-समिति ने 395 अनुच्छेदों का एक संविधान बना कर हमें दिया है। संविधान तथा इतिहास की दृष्टि से यह एक महाभारत है। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने जिस संविधान को बनाया था उसमें 321 धारायें थीं किन्तु हमने जो संविधान बनाया है उसमें 395 अनुच्छेद हैं। मसौदा-समिति को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जो उसके वश में नहीं थी और इस लिये उसे संविधान के अनुच्छेदों को बढ़ाना पड़ा। सम्भवत: वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई थी जैसी स्थिति में सिपाहियों में भगदड़ मच जाती है। इस लिये वह उपबन्धों को एक ओर कठोर बनाती गई तथा दूसरी ओर उन्हें विस्तृत करती गई ताकि प्रत्येक व्यक्ति संविधान को समझ सके। मैं यह कहूंगा कि उसने विधि के भाष्यकारों का कार्य सम्पन्न कर दिया है। 395 अनुच्छेदों को भाष्यकारों अथवा व्याख्याकारों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

श्रीमान, इस संविधान में जिस संगठन की कल्पना की गई है उसके शिखर पर एक मंत्रिमंडल है जिसका संयुक्त रूप से उत्तरदायित्व है, यद्यपि राष्ट्रपति को सरकार का प्रधान होने के नाते कुछ आपात-सम्बन्धी शक्तियां प्रदान की गई हैं। श्रीमान, मैंने कभी भी इन आपात सम्बन्धी शक्तियों को पसन्द नहीं किया किन्तु इन्हें संविधान में स्थान दिया गया है: जिस प्रशासन-संगठन की व्यवस्था की गई है और जिसके द्वारा मंत्रिमंडल देश के जन-साधारण पर शासन करेगी उस पर नियंत्रण सरकार के तीन अंगों द्वारा रखा जायेगा। उच्चतम न्यायालय के रूप में निरपेक्ष न्यायपालिका न्याय-प्रशासन करेगी, महा-लेखापरीक्षक सार्वजनिक धन के व्यय की परीक्षा करेगा तथा उस पर देख रेख रखेगा और संघीय लोकसेवा आयोग सेवाओं के लिये पदाधिकारियों को चुनेगा और सरकार उसकी सिफारिशों को स्वीकार करेगी। गृह-मंत्री इसकी चिंता करेंगे कि यह आयोग जो कुछ परामर्श देगा उसे मंत्रणालय स्वीकार करेगा। पहले यह नहीं किया जाता था और स्वतंत्रता प्राप्ति के ढाई वर्ष पश्चात् तक भी यह नहीं किया गया।

श्रीमान, महालेखापरीक्षक को देश के वित्त को सुव्यवस्थित रखना चाहिये। उसे पदाधिकारियों को संसद की यथोचित स्वीकृति के बिना धन व्यय न करने देना चाहिये और अधिक धन भी व्यय न करने देना चाहिये। कोई भी संसद पदाधिकारियों को स्वीकृत धन-राशि से अधिक राशि व्यय करने की आज्ञा देने के लिये, अथवा उसे व्यर्थ में व्यय करने देने के लिये, सहमत नहीं होगी। विदेशी राज में यही होता आया है। चाहे हमारे पदाधिकारियों ने कितना ही हृदय परिवर्तन क्यों न कर लिया हो और चाहे वे एक लोकतंत्रात्मक शासन के अधीन कार्य कर रहे हों और

[श्री बी. दास]

अपनी नीतियां कांग्रेस सरकार तथा मंत्रिमंडल की नीतियों के अनुरूप बना रहे हों। किन्तु अब भी उनकी बड़ी पुरानी धारणा है और वे यह समझते हैं कि उनकी वित्त-सम्बन्धी अनियमित बातों पर लेखा-परीक्षक को आपत्ति नहीं करनी चाहिये। इन सब बातों को दूर करना होगा।

श्रीमान, इस राष्ट्र को जिस आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है उसे मंत्रिमंडल को प्रशासन के प्रभुत्वों तथा जनसाधारण तथा इस सभा की सहायता से दूर करना चाहिये। किन्तु जब हमारा मंत्रिमंडल बीस अथवा इक्कीस मंत्रियों का है तो आर्थिक आत्म-निर्भरता कैसे सम्भव हो सकती है? इस स्थिति में कोई भी व्यक्ति कटौती की अथवा व्यय में कमी की आशा नहीं कर सकता। मंत्रालय अधिक धन व्यय करेंगे ही। यदि उनकी संख्या में कमी की जाये तो कुछ बचत हो सकती है। अंग्रेजी शासकों ने सात सचिवों की सहायता से भारत पर शासन किया था। आज हमारे यहां उन्नीस सचिव हैं। इस स्थिति में ऊपर से कटौती करने की आवश्यकता है। हमारा मंत्रिमंडल अनिवार्य रूप से बचत करके, मंत्रिमंडल के मंत्रियों के वेतनों को अनिवार्य रूप से घटा कर तथा हमें अपने दैनिक भत्तों के रूप में कम धन-राशि लेने के लिये राजी करके वर्तमान आर्थिक संकट को दूर करने का प्रयास कर रहा है। किन्तु जब तक हम ऐसी सरकार स्थापित नहीं करेंगे जो हमारी राष्ट्रीय व्यवस्था तथा देशवासियों के स्वभाव के अनुरूप न होगी तब तक हम अपनी आर्थिक समस्या को हल नहीं कर सकते हैं। हम अंग्रेजों की पुरानी शासन-प्रणाली को स्वीकार करके अपना शासन चला रहे हैं और भूतपूर्व अंग्रेज़ पदाधिकारी अब हमारे विश्वास-पात्र परामर्शदाता हैं। मुझे आशा है, और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि 26 जनवरी, 1950 से भारत में देशी ढंग के प्रशासन को स्थापित करने की भावना प्रबल हो उठेगी।

श्रीमान, मैं दो शब्द वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। यह लोकतन्त्र का एक सुन्दर सिद्धान्त है। किन्तु यह एक पश्चिमी विचार है। हमने इसे पाश्चात्य लोगों से लिया है। मैंने इसे स्वीकार किया है किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इसे व्यवहार में लाया जा सकता है या नहीं और हमारे मंत्री वयस्क मताधिकार की प्रणाली के अधीन जनवरी, 1951 तक निर्वाचन कर भी सकेंगे या नहीं। बाहर से लिये हुए विचार भारत की भूमि में नहीं पनपते। इस लिये सम्भवत: पांच या दस वर्ष के पश्चात् जब हम यह देखेंगे कि भारत में वयस्क मताधिकार को व्यवहार में लाना सम्भव नहीं है तो हो सकता है कि हमें अपनी विचारधारा बदलनी पड़े।

श्रीमान, इस अवसर पर मैं आंध्र प्रदेश के अपने मित्रों को आंध्र प्रान्त के चित्र को अन्तिम रूप देने के लिये बधाई देता हूं। वे लोग मेरे पड़ोसी हैं और कई वर्षों तक मेरा उस प्रान्त से निकट सम्पर्क रहा है। मेरी यह इच्छा थी कि इस संविधान द्वारा सरकार को इस प्रान्त को 26 जनवरी 1950 को स्थापित करने की शक्ति दी जाती किन्तु मैं समझता हूं कि इसमें कुछ समय लगेगा।

जब मैं संविधान को उठाकर उसके उपबन्धों को देखता हूं तो मैं उनमें से कुछ को पसंद नहीं कर पाता। निरोध-विषयक अनुच्छेद 22 मुझे नापसन्द है। सैनिक-विधि-विषयक अनुच्छेद 34 को भी मैं पसन्द नहीं करता और न अनुच्छेद 128 को ही पसन्द करता हूं जिस के अधीन, जैसा कि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल कहा था, उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशों को प्रशासन की सुविधा के लिये देश के एक भाग से किसी भी दूसरे भाग को भेजा जा सकता है। आज प्रातः यह बताया जा चुका है कि सामान्य असैनिक प्रशासन से न्यायपालिका के पृथक्करण की इस समय आवश्यकता नहीं है। विदेशियों के शासन काल में जिस की बहुत शिकायत की जाती थी और जिस सम्बन्ध में बहुत मतभेद था उसके सम्बन्ध में आज कोई आपत्ति नहीं है। यदि सभी पदाधिकारी ईमानदार हों तो न्यायपालिका को सामान्य प्रशासन से पृथक करने की आवश्यकता ही नहीं पड़े क्योंकि वास्तव में ऐसा करने से प्रत्येक प्रान्त का प्रशासन व्यय बढ़ जायेगा। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री बारदोलोइ आज उपस्थित हैं। आसाम को एक बहुत बड़े आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है। इस संविधान के अधीन यदि आज हमें आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है तो कल किसी अन्य बड़े संकट का सामना करना पड़ेगा। इसलिये कुछ मामलों में हमें तेज़ी से आगे बढ़कर सावधानी से धीरे-धीरे कदम उठाना चाहिये।

जहां तक संघ लोक सेवा आयोग-विषयक अनुच्छेद 322 का सम्बन्ध है। किसी सचिव अथवा उपसचिव को आयोग के परामर्श की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये थी।

अनुच्छेद 148 के सम्बन्ध में हमने एक प्रकार का समझौता किया था। चाहे जो भी कठिनाइयां हों और सरकार की चाहे जो भी इच्छा हो। व्यय के नियंत्रण की परीक्षा के सम्बन्ध में महा-लेखापरीक्षक को सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। यदि उसे यह प्राधिकार नहीं दिया गया तो सब कुछ अव्यवस्थित हो जायेगा जैसा कि हम 1938-39 से अब तक देखते आये हैं।

मैं यह कह कर समाप्त करना चाहता हूं कि इस संविधान में जो बातें रह गई हैं उन्हें इस महीने की 25 अथवा 26 तारीख से पहले उसमें समाविष्ट कर लेना चाहिये। राष्ट्र-गान के सम्बन्ध में हमें निर्णय कर लेना चाहिये और मेरा यह भी निवेदन है कि हमें राष्ट्रीय पोशाक भी निश्चित कर देनी चाहिये। टाई कालर लगाये हुए पदाधिकारियों को इधर-उधर जाते देख कर मुझे घृणा होती है। केवल इस कारण कि हमारा राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध बना हुआ है किसी को विदेशी पोशाक पहनने का अधिकार नहीं मिल जाता। उन्हें विदेशी पोषाक नहीं पहनने देनी चाहिये। संसद को विधि द्वारा उसका प्रतिषेध करना चाहिये। राज्य की सेवा में जो व्यक्ति लगा हुआ है उसे विदेशी पोशाक नहीं पहननी चाहिये।

केन्द्र और प्रान्तों के बीच वित्त के बंटवारे के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर ने इस सभा में दो बार कहा था कि आयकर के बंटवारे के सम्बन्ध में एक तदर्थ समिति के नियुक्त किये जाने की घोषणा की जायेगी। श्रीमान मुझे आशा है कि आयकर के बंटवारे के सम्बन्ध में इस समिति को नियुक्त करने के लिये आप

[श्री बी. दास]

भारत सरकार पर जोर डालेंगे क्योंकि इससे न केवल मेरे मित्र श्री बारदोलोइ के प्रान्त आसाम को सहायता मिलेगी बल्कि कुछ सहायता उड़ीसा को भी प्राप्त होगी। श्रीमान, मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

अध्यक्ष: अब सभा कल प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 18 नवम्बर, 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

GIPD–HS-252 PSD–17-12-52–320

Con. 3. XI.5.49
320

अंक 11
संख्या 5

शुक्रवार
18 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3747–3814

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

श्री रामनारायण सिंह (बिहार: जनरल): सभापतिजी, आज विधान पर बोलने के लिये सबसे पहले मुझे अवसर मिल गया। इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं और अपने को बधाई देता हूं।

सभापतिजी, हमारे देश में प्राचीन काल में एक राजा भारथरी हो गये हैं। संसार का वर्णन करने के समय उन्होंने कहा, एक श्लोक में जिसका आखिरी पद मुझे याद है। उन्होंने कहा–"न जाने संसार: किममृतमय: किं विषमय:" न जाने यह संसार अमृत से भरा हुआ है या विष से भरा हुआ है। यही मेरे कहने का मतलब था। इसी तरह हम लोगों ने बहुत समय लगाया, देश के बहुत रुपये खर्च हुये, बहुत समय लगा, बहुत सी शक्ति लगी। अब विधान करीब करीब तैयार है जो पूर्णतया स्वीकार हो जायेगा। कुछ लोग कहते हैं कि बहुत बढ़िया है। अम्बेडकर साहब को कलियुग का मनु भी कह डाला। एक पक्ष यह कहता है दूसरा पक्ष यह कहता है कि कुछ नहीं है बहुत बुरा है। मैं जहां तक समझता हूं कि राजा भारथरी की भाषा में जब मैं यह सोचता हूं कि अंग्रेज़ यहां के मालिक थे, अब वह चले गये, हम भारतवादी अपना एक विधान बना रहे हैं जिसका मतलब हमारे देश का भावी राज्यप्रबन्ध या शासन होगा। यह विचार कर तो बहुत आनन्द होता है, लेकिन जब जब विधान के अन्दर घुसकर देखता हूं कि इसमें क्या क्या स्वीकृत हुआ है, इसके मुताबिक हमारे देश का शासन कैसे होगा तो बहुत तकलीफ होती है। मैं आपसे कहता हूं कि यह तो ठीक है कि बहुत दिनों से हम लोग गुलाम थे, लेकिन एक जमाना था जब हम लोगों का भी राज्य था, साम्राज्य भी था। जहां-तहां प्रजातंत्र भी चलता था। लेकिन इस विधान में अगर आप देखें तो मालूम नहीं होता कि इस विधान में भारतीयता कौन-सी चीज है। मैं तो यहां तक कहता हूं कि जो लोग इसका इतिहास नहीं जानेंगे, हमारी भावी सन्तान होगी वह तो कहेगी कि यह विधान दिल्ली में नहीं बना था यह लन्दन में बना था। लोगों को यह शक होगा। किसी को यह शक भी होगा कि हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों ने इस विधान को बनाया था या लन्दन के व्हाइटहाउस के अंग्रेजों ने यह कृपा करके बना दिया। ऐसी बातें हो सकती हैं उस विधान के बारे में। इसकी भाषा तो अंग्रेजी है ही यह सब देख रहे हैं। इसमें जैसा मैंने कहा भारतीयता क्या है। अंग्रेज़ चले गये यह तो सही है लेकिन सभापतिजी, दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि अंग्रेजीपन हमारे देश के लोगों में, उनके दिमागों में कूट कूट कर भरा हुआ है, और अंग्रेजों

[श्री रामनारायण सिंह]

से छुटकारा पाना जितना कठिन था मैं समझता हूं और लोग भी समझते हैं कि अंग्रेजीपन से छुटकारा पाना उससे भी कहीं अधिक कठिन होगा।

सभापतिजी, यह विधान जब देखते हैं तब मालूम होता है कि कुछ तो ब्रिटिश कान्स्टीट्यूशन से लिया गया है, कुछ अमेरिकन कान्स्टीट्यूशन से लिया गया है। यानी एक तरह की अजीब ढंग की खिचड़ी है जिसको अंग्रेजी में कह सकते हैं 'fantastic mixtures of the various constitutions, obtaining in the world' (विश्व में प्रचलित विभिन्न संविधानों का अनोखा सम्मिश्रण) मैं बहुत अदब के साथ अर्ज करना चाहता हूं कि साहब, पहले तो आप यह बात सोचें कि अंग्रेज़ तो गये, अब हम विधान बना रहे हैं, इस विधान में सरकार कैसी बनेगी। वह सरकार जो बनेगी देश की सेवा करेगी या देश पर शासन करेगी। मैं आपसे कहूंगा कि यदि शासन की बात है, अगर उसमें ऐसी बात है तो आप जान लें कि दुनियां में अब वह समय आ गया है कि उसको शासन नहीं चाहिये, सरकार नहीं चाहिये, गवर्नमेंट नहीं चाहिये। गवर्नमेन्ट की कोई जरूरत नहीं है महात्मा गांधी जी हमारे नेता थे, जो पहले यहां अंग्रेज सरकार थी उसको उन्होंने कहा कि यह तो शैतानी सरकार है। सभापतिजी, मैं तो नहीं समझता कि अब इस दुनियां में कहीं पर कोई ऐसी भी सरकार है जिसे शैतान नहीं कहा जा सके। अब मालूम होता है कि सरकार के माने ही शैतान है। इसलिये हमारे देश को हमारे समाज के लिये सरकार की जरूरत नहीं है। मैंने आरम्भ में कुछ संशोधन भी दिये थे, मंजूर तो नहीं हुए हमारे देश में सेवक मंडल की जरूरत है। "सोसायटी ऑफ सरवेन्ट्स", सरकार नहीं चाहिये। जो हमारे देश की रक्षा करेंगे, सच्ची सेवा करेंगे। लेकिन आज भी जो सरकार है, शासन है उसका दावा तो है कि वह भी पब्लिक सरवेन्ट्स हैं, सेवक हैं, लेकिन जैसा काम देखा जाता है उससे सेवा का क्या सम्बन्ध, बिल्कुल मालिक की बात होती है। लेकिन आज जरूरत है देश को, मैं सीधे-सीधे कह देता हूं कि अब हमारे देश को शासक की जरूरत नहीं है, सेवक की जरूरत है, शासन की जरूरत नहीं है सेवा की जरूरत है। इसके साथ-साथ मैं आपसे कहता हूं कि पहले सिद्धान्त तो यह है, और सारे संसार ने इसको मान लिया है कि किसी मनुष्य को किसी पर शासन करने का अधिकार नहीं है। हिटलर कहता था। इसके अतिरिक्त कोई दुनिया में शासन नहीं कर सकता है। लेकिन वह अपने सारे समाज के साथ चला गया। पहले जमाने में भी लोग थे, राजे महाराजे जो कहते थे कि शासन करना उनका ईश्वरीय हक है लेकिन यह सब विचारों का तो खात्मा हो गया। अभी बहुत से लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि हम पब्लिक सरवेन्ट्स हैं लेकिन काम करते हैं जैसे पब्लिक मास्टर हों।

मैं एक बात और लेता हूं। यह जो हम लोगों ने पास किया है कि यहां के जो पब्लिक सरवेन्ट्स होंगे किसी को पांच हजार वेतन दिया जायेगा किसी को छः हजार होगा किसी का दस हजार भी हो सकता है ऐसा भी होता है। सभापतिजी, कराची कांग्रेस में आप भी थे, हमारे बहुत से और साथी भी थे, और मैं भी था। हम लोगों ने पास किया था कि हाईएस्ट सैलरी यानी हमारे देश में ऊंचे से ऊंचे वेतन होगा पांच सौ, इससे अधिक नहीं। यहां पर जो वेतन चलाये गये थे वह अंग्रेजों के चलाये हुए थे, लेकिन अंग्रेज तो यहां की सेवा के लिये नहीं थे, वह तो लूट के लिये थे, और जिन लोगों को उन लोगों ने यहां पर शामिल किया

अपने कार्य में उनको लूट का हिस्सा दिया। लेकिन दु:ख की बात है कि आज कांग्रेस के प्रतिकूल अपने सिद्धान्तों के प्रतिकूल अपने निर्णय के प्रतिकूल आज भारत के प्रतिनिधि हम लोग यहां जमा होकर प्रस्ताव पास करते हैं कि एक व्यक्ति को पांच हजार दो और किसी को छ: हजार और किसी को दस हजार दो। याद रहे यह सेवा नहीं है। यह शासन है। मैं सारी सभा से पूछता हूं और श्रीमान जी आपसे पूछता हूं कि देश की हालत कैसी है। उस दिन जब हम ने प्रस्ताव पास किया था कि पांच सौ से अधिक वेतन नहीं होना चाहिये, उस समय में और आज में क्या परिवर्त्तन हो गया है। क्या देश में लोगों की आमदनी बहुत कुछ बढ़ गई है? संसार का कानून है कि पब्लिक सर्वेन्ट का वेतन पब्लिक का जो औसत स्टेंडर्ड है उसके मुताबिक होना चाहिये। हमारे देश में 90 प्रतिशत आदमी नहीं समझते कि दिन भर में दो बार भोजन क्या चीज़ कहलाता है। लोग किसी तरह अपना जीवन यापन करते हैं। लेकिन थोड़े से लोगों के सिवा अधिकतर लोग ठीक भोजन नहीं पाते हैं। लोग तो भूखे हैं और आप इस देश में पांच हजार और चार हजार का वेतन रखेंगे, तो लोग कहेंगे कि यह पब्लिक सर्वेन्ट का वेतन है या अंग्रेजों सरीखे डाकुओं की लूट है। मुझे ऐसा कहने के लिये माफ करेंगे, पर मुझे इससे बहुत तकलीफ होती है। मैं बहुत सोचता हूं पर मेरी समझ में नहीं आता कि लोग कहते हैं कि वह पब्लिक सर्वेन्ट हैं यह कैसे ठीक है। कहीं सेवक भी चाहता है कि उसकी आमदनी मालिक से अधिक हो, वह मालिक से अधिक अच्छे-अच्छे खाने खाये और उसको मालिक से अच्छे रहने के लिए महल मिले। हिन्दुस्तान की आम जनता जनार्दन जो कि देश की मालिक है वह तो झोंपड़ों में रहती है और सेवक चार-चार और पांच-पांच हजार तनखाह लेकर महलों में रहें यह ढोंग नहीं है तो क्या है। सीधे-सीधे कहिये कि अंग्रेजों का राज्य गया, हमको राज्य मिला है, हम लोगों पर राज्य करते हैं। लोग जहां के तहां हैं। हम सेवक नहीं शासक हैं। आप जिस तरह से विधान बनाना चाहें बना लें, वेतन जितना चाहें लें, यह सब यही है, लेकिन यह कहना कि हम पब्लिक सर्वेन्ट हैं, यह बात उठा देनी चाहिये, बल्कि यह कहिये कि हम पब्लिक मास्टर हैं। मैं अपने भाइयों से कहूंगा और अर्ज करूंगा कि इस तरह का वेतन का प्रस्ताव और बहुत-सा व्यवहार जो हम कर रहे हैं वह तो कम्युनिस्टों के लिये सीधा निमंत्रण है। दमन करने से कुछ नहीं होगा। कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों को जेल में देने से हमारे देश का उद्धार नहीं होगा। इस तरह इस विप्लव से छुटकारा नहीं मिल सकता। अगर आप चाहते हैं कि देश में शान्ति रहे तो आपको इस प्रकार का भेद दूर करना होगा। सबसे पहली बात मैं आप दोनों से कह कहूंगा कि अभी भी समय है कि आप पांच सौ वेतन लें और नहीं तो सीधे-सीधे आपको संसार में कहना पड़ेगा कि हम कुछ भारत वासियों ने जो आगे थे सुविधा पाकर अंग्रेजों की तरह हिन्दुस्तान में राज करना आरम्भ कर दिया है। लेकिन यह हिन्दुस्तान में स्वराज्य चलने की बात नहीं है। मैं कहता हूं कि आप इस पर विचार करें।

सभापतिजी, घंटी तो बज गई है। पर मुझे थोड़ा-सा और अर्ज करना है। इस लिये मुझे एक आध मिनट और मिलना चाहिये।

यह जो विधान बना है इसमें पार्लियामेन्टरी सिस्टम रखा गया है, यानी दलबन्दी का राज। मैं कहता हूं कि यह हिन्दुस्तान के लायक नहीं है। दुर्भाग्यवश हमारे देश

[श्री रामनारायण सिंह]

में तो वैसे ही बहुत दलबन्दी है। कास्ट सिस्टम की दलबन्दी तो यहां पहले ही से है। फिर और आप दलबन्दी कर देंगे। तो क्या होगा। जो आपने दलबन्दी के इस राज्य में सबको फ्रेंचाइज़ का हक दिया है उसके माने होंगे कि उसमें कुछ धूर्त और कुछ धनी मिलेंगे और ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि वोट वह ले लेंगे। उनके साथियों की कमी नहीं रहेगी। डिमोक्रेसी इस तरह से नहीं हो सकती है। पाश्चात्य देशों में जिस तरह से यह होता है उसमें डिमोक्रेसी का एक अंश जरूर है लेकिन उसको डिमोक्रेसी नहीं कहा जा सकता है। मैं तो कहता हूं कि दलबन्दी का राज्य तो डिमोक्रेसी पर कुल्हाड़ी मारता है। उसमें भी तो दो चार आदमियों का राज्य रहता है। दो चार धूर्त और दो-चार धनी मिलकर वोट ले लेंगे और राज करेंगे। यह तो ठीक है कि पंचायती राज्य में हर एक का एक वोट होना चाहिये और यह भी ठीक है कि किसी बात का निर्णय बहुमत से ही होगा। पर उन निर्णय को करने के लिये हर एक आदमी को किसी दल का नहीं होना चाहिये। यह नहीं होना चाहिये कि एक बात पार्टी में पास हो गई इसलिये वोट दे दिया या लीडर ने कह दिया तो वोट दे दिया। हर एक वोटर बिल्कुल स्वतन्त्र हो और ईमानदारी के साथ वोट दे। उससे जो फैसला होगा वह डिमोक्रेसी का फैसला होगा और वही देश के लिये कल्याणकर होगा। नहीं तो किसी पाटी के लीडर ने कह दिया और शेष ने वोट दे दिया यह होगा। इस तरह का फैसला जो होगा वह डिमोक्रेसी का फैसला नहीं होगा वह पंचायत का फैसला नहीं होगा। हमारे देश में पंचायत राज के बारे में कहते हैं कि पंच परमेश्वर होता है। ऐसा परमेश्वर नहीं कि एक परमेश्वर के मातहत बहुत से छोटे-छोटे परमेश्वर हों। ईश्वर के माने हैं कि जितने बैठे हुये हैं सब स्वतन्त्र हैं और किसी के अधीन नहीं हैं। और किसी का मुंह देख फैसला नहीं करते हैं, न इस तरह वोट देते हैं।

सभापतिजी, मेरा समय हो गया है इस लिये मैं और अधिक नहीं कहूंगा। पर एक बात और कह देना चाहता हूं जैसा कि और लोगों ने भी कहा है हमारे देश के विधान में गौवध एकदम बन्द होना चाहिये। आप किसानों की हालत देखें कि वह बैलों के बिना खेतियां छोड़ रहे हैं।

इसी के साथ हिन्दी भाषा के लिये मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारे दखिनी भाइयों ने हिन्दी भाषा को पास तो कर दिया है। पर वह समझते हैं कि हम अपनी भाषा उनके ऊपर लादना चाहते हैं। मैं तो समझता हूं कि यह देश मेरा देश है और इसकी सारी भाषायें मेरी भाषायें हैं। अगर मैं तमिल और तेलगू भाषायें नहीं जानता हूं तो इसके मानी यह हैं कि यह मेरी कमी है और अगर मैं इन भाषाओं को सीखता हूं तो मैं किसी पर अहसान नहीं करता हूं, केवल अपनी योग्यता ही बढ़ाता हूं। तो इस तरह देश की जितनी भाषायें हैं वह हमारी भाषायें हैं ऐसा हमको मानना चाहिये। हां नेशनल भाषा के तौर पर एक भाषा को चुनना था। अब जो हिन्दी भाषा को चुना गया है तो इसको अपनी भाषा समझ कर चलाया जाये। हममें से कुछ यह समझते हैं कि वह अंग्रेजी पढ़कर पंडित हो गये हैं पर उनके बार-बार अंग्रेजी बोलने से हमको बार-बार अपनी अंग्रेजी की गुलामी का ही स्मरण होता है। अंग्रेजी तो हमने केवल अंग्रेजों के वास्ते सीखी थी। इसलिये इसको जहां तक

जल्दी हो हमको इसे छोड़ देना चाहिये। और अपनी राष्ट्रभाषा को उसकी जगह लाना चाहिये। पन्द्रह बरस बाद अपनी भाषा को लाने की बात तो उसको टालने वाली बात है। अपनी भाषा की हमको जहां तक हो सके जल्दी उन्नति करनी चाहिये ताकि अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता न रह जाये।

इसके बाद, सभापतिजी, मैं एक बात और अर्ज करूंगा। दुनिया के जितने विधान हैं सबमें आम तौर पर फंडामेन्टल राइट्स में हथियार रखने का हक होता है। मैं कहता हूं कि वह विधान जिसमें हर आदमी को अपने स्वाभाविक हक के अनुसार जो कि ईश्वर दत्त हक है जितने हथियार चाहे रखने का हक नहीं है तो वह विधान कुछ नहीं है। आप जानते हैं कि सरकार रक्षा करने का भार लेती है मगर वह हर एक व्यक्ति के पीछे नहीं बैठ सकती है और न हर एक व्यक्ति के घर में ही बैठ सकती है। लेकिन सरकार हर फैमिली और हर व्यक्ति को कम से कम इतने शस्त्र से सुसज्जित रखे जितनी कि रक्षा करने के लिये जरूरी हों। तो मैं यह कहता हूं कि कम से कम यह तो कर दिया जाये जिससे हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति को हथियार रखने का अधिकार हो जाये। और आज कल जैसा चल रहा है उसके लिये मुझे दु:ख है और मैं आशा करता हूं कि सरकार जल्दी से जल्दी इसको दूर करेगी।

मैंने कुछ ज्यादा समय ले लिया है इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूं। जैसा कि मैंने कहा है और मैं बार-बार अर्ज करता हूं कि जो यह तीन चार बातें हैं वह जल्द खत्म हों। जो घोर पाप और बुराई हो रही है वह भी समाप्त हो। इतना कहकर मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही यह आवश्यक है कि मसौदा समिति और विशेषकर डॉ. अम्बेडकर की इस बात के लिये प्रशंसा की जाये कि जिन कठिनाइयों का उन्हें सामना करना पड़ा उनके होते हुए भी उन्होंने ऐसा आश्चर्यजनक संविधान प्रस्तुत किया। हमें मसौदा समिति के सदस्यों की भी प्रशंसा करनी चाहिये और विशेषकर श्री मुंशी की जिन्होंने कई विषयों में लगे रहने पर भी सदैव समझौते की सूरतें पैदा करने का प्रयास किया और इस रूप में हम उनके कार्यों की बड़ी प्रशंसा करते हैं तथा उन सब चुपचाप काम करने वालों तथा कर्मचारी वृन्द की प्रशंसा करते हैं जिन्होंने इस संविधान के सफल निर्माण में अपना महान सहयोग दिया। श्रीमान, यह कहना आवश्यक है कि चाहे हमसे सर्वोत्तम संविधान न बन पाया हो पर साथ ही साथ हम यह अवश्य कहेंगे कि भारत में वर्तमान दशाओं के अधीन हम जैसे संविधान बना सकते थे उनके सर्वोत्तम संविधानों में से एक यह भी है। उन्होंने तथ्यों का सामना किया और एक ऐसा संविधान बनाया जो आवश्यक था। यह कहा जाता है कि मसौदा समिति के सदस्य स्वातन्त्र्य युद्ध में आगे नहीं आये थे पर मैं समझता हूं कि इससे लाभ ही हुआ क्योंकि वे निष्पक्ष होकर विचार कर सके और एक ऐसा संविधान बना सके जो आवश्यक था। तृतीय पठन की चर्चा के आरम्भ में हमने श्री मुनिस्वामी पिल्ले से यह सुना कि छ: करोड़ अछूतों को इस संविधान से समाधान हो गया है। यह वास्तव में एक महान कार्य है और जिन अछूतों की हम उपेक्षा करते चले आये थे उनका यदि हमने समाधान कर दिया तो मैं समझता हूं कि हमने एक आश्चर्यजनक कार्य कर लिया। अत: मेरी प्रशंसा तो पूर्णतया मसौदा समिति

[श्री कुलधर चालिहा]

और उन कर्मचारियों के लिये है जिनका इसके बनाने में कोई हाथ न होते हुये हुये भी उन्होंने घोर परिश्रम किया और यह पुस्तक तैयार की जो हमारे सामने है।

अत: श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि हमने एक ऐसा संविधान तैयार किया है जो यद्यपि यह सत्य है कि एक उस स्तर का संविधान नहीं है जैसा हममें से कुछ लोग चाहते थे परन्तु फिर भी मैं समझता हूं कि निदेशक सिद्धान्तों के अधीन हमने ऐसी बहुत सी बातें रखीं हैं जिससे हममें से प्रत्येक व्यक्ति का समाधान हो जायेगा। यदि कोई व्यक्ति समाजवादी है तो उसके विचारों के अनुकूल उसमें समता का अधिकार है। यदि कोई व्यक्ति अछूत है तो उसके हितों की संरक्षा के लिये हमने कुछ संरक्षण रखे हैं। यदि कोई कोई व्यक्ति "पिछड़ा हुआ" है तो उसके हितों के सम्बन्ध के उपबन्ध भी हमने रखे हैं। अत: हम उसे चाहे किसी दृष्टि से देखें, हमें यह विदित होता है कि जो संविधान हमने बनाया है उससे अच्छा संविधान हम नहीं बना सकते थे।

श्रीमान, यह सत्य है कि नागरिकता की परिभाषा पर बड़ी ही सद्भावना से विचार किया गया है पर उसमें एक ऐसी कमी है जिसके कारण संभव है कि हम स्वयं धोखा खा जायें। यदि कोई व्यक्ति 19 जुलाई से छ: महीने पहले आ जाता है और भारत सरकार द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों द्वारा पंजीबद्ध कर लिया जाता है तो वह नागरिक हो सकता है। पर जब आप इसे आसाम जैसे प्रान्त को लागू करेंगे तो आपको बड़ी कठिनाई होगी। आप विघटन की ओर अग्रसर होंगे। अत: जब यह लागू होगा तो हमें बहुत सावधान रहना पड़ेगा और हमें इस बात पर ध्यान रखना पड़ेगा कि हम उन उच्च सिद्धान्तों में न बह जायें जो इस संविधान में निर्धारित कर दिये गये हैं। अत: इस तथ्य के होते हुए भी कि नागरिकता की परिभाषा बड़ी अच्छी तरह से बनाई है, पर फिर भी उसको यदि आप इस प्रकार से लागू करना चाहते हैं जिस प्रकार से हमने यहां रखी है तो उसमें कुछ थोड़ा-सा संकट है। आसाम से हमारे पास तार आ रहे हैं कि हम नाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। शायद यहां प्रत्येक सदस्य को आसाम से तार पर तार मिल रहे हैं कि इस सिद्धान्त को कुछ रोक थाम के साथ हम पर लागू करना चाहिये, नागरिकता की इस परिभाषा में कुछ रोकथाम लगा कर हमें आसाम में लागू करना चाहिये और इस संविधान में इस बात पर ध्यान दिया जाये।

निदेशक सिद्धान्तों में हम देखते हैं कि एक ऐसा निदेशक है जो जनसाधारण के लिए अहितकारी रूप में संपति संचय में रुकावट डालता है। संपत्ति विभाजन में परिवर्तन करने के लिये कोई रुकावट नहीं है, यदि रुकावट है तो यही कि संविधानिक रूप में हमें ऐसा करना चाहिये। अत: जो कुछ संभव हो सकता था वह संविधान में है और हम जानते हैं कि यदि उसका ठीक ढंग से उपयोग किया गया तो हम एक सच्ची लोकतन्त्रात्मक सरकार का निर्माण कर सकेंगे।

श्रीमान, हमारा संविधान वास्तव में अमरीका और इंग्लैंड के संविधानों का सम्मिश्रण है और बीच-बीच में कनाडा के संविधान का पुट्ट है। अमरीका के संविधान से

हमने राष्ट्रपति को यह प्राधिकार दिया है कि वह स्वयं कार्यपालिका का रूप धारण कर सकता है और शासन चलाने के लिये अपने आदमी नियुक्त कर सकता है। पर इसमें एक दोष भी है। इंग्लैंड का संविधान भी है जिसमें बहुसंख्यक वर्ग के पक्ष के नेता को ही आमंत्रित किया जायेगा। अमरीका के संविधान में मंत्रियों का कांग्रेस से कोई सम्बन्ध नहीं है। मंत्री केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदाई हैं न कि सदन के प्रति। पर हमने अपने संविधान में यह रखा है कि हमारा प्रधानमंत्री सदन के प्रति उत्तरदाई है। इसमें भी एक छोटा-सा दोष है। वह लगभग बारह सदस्य मनोनीत कर सकता है। वह अपना मंत्रिमंडल भी उनमें से बना सकता है, ऐसा करने में उसके लिये कोई रुकावट नहीं है, मनोनीत सदस्यों में से, जिन्हें विज्ञान, कला और साहित्य और सामाजिक सेवा का विशिष्ट ज्ञान है, मंत्रिमंडल के सदस्य चुनने में उसके लिये कोई रुकावट नहीं है। मुख्य मंत्री यह कर सकता है। पर आधुनिक समय में हमें "मनोनीत सदस्य" जैसी कोई असामयिक बात नहीं रखनी चाहिये। कला, साहित्य इत्यादि का प्रतिनिधित्व करने वाले भिन्न-भिन्न संस्थायें अपने में से प्रतिनिधि चुनने के लिये हम रख सकते थे पर यदि आप राष्ट्रपति को इस प्रकार अपना प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल चुनने देते हैं तो हम लगभग सब मंत्रियों को मनोनीत सदस्यों में से रख सकते हैं। यह सत्य है कि वर्तमान नेताओं से इस प्रकार के संकट की आशा नहीं है। पर हमें तो एक ऐसा संविधान बनाना है जिसमें मूर्खता ही नहीं वरन दुष्टता तक भी प्रवेश न कर सके। कुछ काल पश्चात् कुछ ऐसे लोग आ जायें जो दुष्ट हों और इस लिये हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हमारे संविधान में दुष्टता भी प्रवेश न कर सके। संभव है आगामी दस वर्षों में हमें इसमें परिवर्त्तन करना पड़े। वर्तमान समय में इस प्रकार का कोई संकट नहीं है और आगामी बीस वर्षों तक हम यह सोच सकते हैं कि राष्ट्रपति एक ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करेगा। अत: हमें इस बात से सतर्क रहना चाहिये कि संविधान इस प्रकार से कार्यन्वित न किया जाये कि मंत्रिमंडल में केवल मनोनीत सदस्य ही आयें।

श्रीमान, इस संविधान में एक और दोष है और वह यह है यह कहा गया है कि मंत्री को सदन का सदस्य बनना पड़ेगा। वह मनोनीत सदस्य भी हो सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह एक निर्वाचित सदस्य हो। इस 'निर्वाचित' शब्द को छोड़ दिया गया है और यदि यह जानबूझ कर छोड़ा गया है तब तो यह संकट जनक बात है और लोकतन्त्र पर भीषण आघात है। मेरा विचार यह है कि हमें इसे 'निर्वाचित सदस्य' कर देना चाहिये न कि 'सदन का सदस्य' जैसा कि इस समय है। वह सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत हो सकता है और वह मंत्रिमंडल का मंत्री भी हो सकता है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि भविष्य के लिये इस कमी को भी दूर करना चाहिये और इस बात को हमें बहुत दिनों तक के लिये नहीं रहने देना चाहिये।

इसके पश्चात् हम देखते हैं कि न्यायपालिका के वेतन के बारे में हम बहुत ही चिन्तित रहे हैं। मैं नहीं समझ पाता कि हम इतने चिन्तित क्यों रहे, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम इस बात से भयभीत थे कि यदि हमने इनको कम वेतन दिये और उनके लिये निवास स्थान इत्यादि की व्यवस्था नहीं की तो वे क्षुब्ध हो जायेंगे। मैं समझता हूं कि बाबू रामनारायण सिंह ने पदाधिकारियों के उच्चतर वेतन के प्रति इस चिन्ता के बारे में ठीक-ठीक कहा है। यह सत्य है कि हमने

[श्री कुलधर चालिहा]

500 रुपये का आदर्श आरम्भ में अपनाया था पर हमने देखा कि अब कुछ ऐसे परिवर्तन हो गये हैं और वर्तमान वस्तुस्थिति ऐसी हो गई है कि आरम्भ में जिस स्तर को हमने अपनी दृष्टि के सन्मुख रखा था उस स्तर पर आना कदाचित अब सम्भव नहीं है। परन्तु फिर भी हमें यह मालूम होता है कि जो वेतन नियत किये गये हैं वे इतने अधिक हैं कि शीघ्र ही मेरे विचार से हमें इनका पुनरीक्षण करना पड़ेगा।

एक बात और है। महाभियोग द्वारा न्यायपालिका के हटाने का हमने उपबन्ध किया है। पर यह कोई बहुत अधिक सुरक्षित प्रस्थापना नहीं है। मेरे विचार से सर्वोत्तम मार्ग यह होता कि उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों को चुना जाता है और वे यह निश्चय करते कि न्यायाधीश दुर्व्यवहार, कदाचार अथवा रिश्वत् का अपराधी है या नहीं। अन्यथा यदि हम इस प्रकार न्यायाधीश पर महाभियोग चलाने देंगे तो कदाचित समस्त देश का वातावरण दूषित हो जायेगा और लोग पक्षपात करने लगेंगे और आगे चल कर यह हो सकता है कि इन भावनाओं और पक्षपातों के कारण दोषी व्यक्ति बच जाये और निर्दोष व्यक्ति पर दोषारोपण हो जाये। अत: मेरे विचार से न्यायाधीश के अपराधी या निरपराधी होने पर विचार करने के लिये हम एक न्यायाधिकरण रखते—एक ऐसा न्यायाधिकरण जिसमें उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति होता। यह एक अधिक अच्छा उपबन्ध होता।

इसके बाद मैं देखता हूं कि राज्य के विधान मंडलों में कई प्रान्तों के लिये उत्तर सदनों की व्यवस्था की गई है। इन दिनों में जब कि प्रत्येक राष्ट्र ऐसे उत्तर सदनों को मिटाने का प्रयास कर रहा है यह बात कदाचित असामयिक है। इन उत्तर सदनों में हमें आसक्त नहीं होना चाहिये। इन जीर्ण शैली के निकायों से वाद विवाद में कोई सहायता नहीं मिलेगी। और हम यह देखते ही हैं कि लार्ड सभा में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो वास्तव में कोई नया विचार प्रस्तुत करते हों। अत: मेरा निवेदन यह है कि इन उत्तर निकायों को हमें अभी या बाद में मिटा देना चाहिये। हम यह जानते हैं कि लार्ड सभा तक लगभग शक्तिहीन सी ही है और मैं नहीं समझ पाता हूं कि अब भी हम इस समय में इन उत्तर सदनों की स्थापना के लिये इतने उत्सुक क्यों हैं। अत: मेरा निवेदन यह है कि संविधान के आगामी पुनरीक्षण में हम इस बात का ध्यान रखें और इस उपबन्ध के पुनरीक्षण करने का प्रयास करें।

राज्याधिकार का एक छोटा-सा चिन्ह यहां पाया जाता है कि जब किसी विधेयक को दोनों सदनों ने पारित कर दिया है तो राष्ट्रपति उसे अपने संदेश सहित पुनर्विचार के लिये वापस कर सकता है। यह वास्तव में राज्याधिकार का चिन्ह है और मैं यह नहीं समझ पाता कि राष्ट्रपति को इतनी शक्ति क्यों दी जाये या हम उसको इतना बुद्धिमान क्यों मान लें कि वह उन विधेयकों तक को वापस कर दे जिन को दोनों सदन पारित कर चुके हैं। यह शक्ति आवश्यकता से अधिक है और मेरे विचार से इसे शीघ्र संविधान से निकाल देना चाहिये।

जैसा कि मैं बहुत पहले कह चुका हूं, मेरा छठी अनुसूची पर घोर विरोध है जिसको इस संविधान में अधिनियमित कर दिया है। इसका इस गलत आधार

पर निर्माण किया गया है कि जनजातियों का विचार यह है कि हम उनके शत्रु हैं। अंग्रेजों ने उनमें यह विचार भरा था। उन्होंने जनजातियों को पृथक रखा और उनका मेल जोल नहीं होने दिया। अंग्रेज जब यहां से गये तो उनसे कहा कि "भारतीय-अर्थात् हिन्दू शत्रु हैं। हम तुम्हारे मित्र हैं।"

वे उनके मित्र हैं क्योंकि दोनों गौ-मांस खाते हैं। उन्होंने पहाड़ी जन-जातियों से देश को जीता और उनके छोड़ने पर सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता फिर जनजातियों के हाथों में आ गई। प्रादेशिक परिषदें और जिला-परिषदें संसदों से भी बड़ी हो गई हैं। इस स्थिति को श्री मुंशी ने कुछ थोड़ा बहुत ठीक किया है। अत: इस रूप में मैं समझता हूं कि हम एक कठिन परिस्थिति की ओर अग्रसर हो रहे हैं और यदि जनजातियां हमारे लिये उपद्रव खड़ा करें तो उसका कारण हम स्वयं ही हैं। पर एक बात अच्छी है और वह छठी अनुसूची की कंडिका 21 है जो इस प्रकार है:

(1) संसद समय-समय पर विधि द्वारा जोड़, परिवर्तन या निरसन करके इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी, तथा जब अनुसूची इस प्रकार संशोधित की जाये, तब इस संविधान में इस अनुसूची के प्रति कोई निर्देश इस प्रकार संशोधित अनुसूची के प्रति निर्देश समझा जायेगा।

(2) कोई ऐसी विधि जो इस कंडिका की उपकंडिका (1) में वर्णित है इस संविधान के अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिये इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।

अत: हमें बहुत सावधान रहना चाहिये और संसद की पहली बैठक में इसका संशोधन हो जाना चाहिये; अन्यथा हम नाश की ओर उन्मुख होंगे और ऐसे कई क्षेत्र तथा स्थल होंगे जिनमें उपद्रव हो जायेंगे।

इसके पश्चात् श्रीमान, आसाम के नाम के संबंध में मुझे आसाम के मुख्य मंत्री माननीय श्री गोपी नाथ बारदोलोई से विदित हुआ है कि नाम परिवर्तन से वे सहमत हो चुके हैं और इस बात को मंत्रिमंडल में तय कर लिया गया है। उन्होंने मसौदा समिति को मेरे ख्याल से 12 तारीख को तार भेजा था। पर वह उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। मेरा विश्वास है। कि धारा 391 के अधीन संविधान के उद्घाटन के पश्चात् राष्ट्रपति इस नाम को 'आसोम' में बदलते हुये प्रथम अनुसूची को संशोधित करेगा।

एक बात और है जिसका मैं जिक्र करना चाहता हूं और वह भाषा के बारे में है। इस समय 'आसामीज' शब्द का प्रयोग किया गया है। श्री साहू ने एक इस प्रकार के संशोधन की सूचना दी है कि उनको 'आसामिया' कहा जाये। मैं आशा करता हूं उन छोटे-छोटे दोषों को यथासमय दूर कर दिया जायेगा।

मुझे फिर उन सदस्यों को धन्यवाद देना चाहिये जिन्होंने इस संविधान के वाद-विवाद में सहयोग दिया जो बहुत सोच समझ कर बनाया गया है। मैं यह भी कहूंगा कि जो सदस्य इस समय दोष निकाल रहे हैं वे उन उपबन्धों से पक्ष के अधिवेशन में तथा यहां इस सभा में भी सहमत हो चुके थे और अब दोष निकालना शोभा नहीं देता।

***श्रीमती ऐनी मेस्करीन** (तिरुवांकुर राज्य): अध्यक्ष महोदय, इस अवसर पर, जब कि सभा संविधान पर अपना अन्तिम निर्णय पारित करने के लिये समवेत हुई है, भाषण देना मैं गौरव समझती हूं। यह हमारा प्राचीन उप-महाद्वीप जो राष्ट्र के लिये राजनैतिक प्रयोगों की प्रयोगशाला रहा, जो एक ऐसी सराय रहा जिसमें एक राष्ट्र के पश्चात् दूसरा राष्ट्र और एक सुलतान के बाद दूसरा सुलतान आया और अपना काम करके चला गया, श्रीमान उस देश में हम उस ऐतिहासिक घटना का सूत्रपात करने वाले हैं जिसके द्वारा उस देश की जनता की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न इच्छा के आधार पर दृढ़ संकल्प होकर एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नगणराज्य घोषित करेंगे तथा उसके सब नागरिकों को न्याय, स्वातंत्र्य, समता और बन्धुता प्राप्त करायेंगे। श्रीमान, संसार के इतिहास में इतने महान तथा विशाल जन समूह युक्त राष्ट्र ने अहिंसा, सभ्यता और त्याग के इतिहास और परम्परा से युक्त होकर संसार के सर्वोच्च शक्तिशाली साम्राज्य से एक ऐसे महान नेतृत्व के अधीन, जो समय के समक्ष आकाशदीप की तरह स्थिर है, कभी युद्ध नहीं किया और न उसे पराजित किया तथा लोकतंत्र संविधान बनाने के लिये कभी अपनी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न इच्छा की घोषणा नहीं की है। इतिहास में दो विश्व-युद्धों की समाप्ति के पश्चात् जब कि घोर वैमनस्य छाया हुआ है, जब कि तर्क और बुद्धि को अमान्यता दी जाती है तथा स्वातंत्र्य, समता और बन्धुता के सिद्धान्त हमारे कानों में मादक गान प्रतिध्वनित कर रहे हैं—ऐसे समय में श्रीमान, हमने—संसार के महानतम राष्ट्र में अपने संविधान का निर्माण करना विनिश्चित किया है।

इस संसार में क्रान्तियां हुई हैं और जैसा जर्मनी, फ्रांस, रूस और चीन में हुआ—समय द्वारा उद्‌भूत भावनाओं के प्रवाह में संविधान बहे चले गये। पर हमारी वह अनूठी जाति है जिसने विदेशी सत्ता का सामना किया है और जो शताब्दियों तक संघर्ष करती रही और राष्ट्रीय सुदृढ़ता के ढांचे को ध्वंस किये बिना आत्मोद्वेलित त्याग की शक्ति के कारण जो जीवित रही है इन आधारों पर हमने लोकतंत्रात्मक रूप के एक सुन्दर भवन का निर्माण किया है जो संसार के विशाल भवन का मुकाबला करेगा।

हजारों वर्षों के अनुभव और बुद्धि विकास के कारण राजनैतिक प्रयोग में हम उच्च शिखर पर पहुंचे हुए हैं जिसकी खोज प्राचीन यूनान तथा रोम तक की जा सकती है। श्रीमान, मेरा कार्य यह नहीं है कि इस सभा के सामने खड़ी होकर मैं अपनी सफलताओं का यशोगान गाऊं। इसे हम सन्ततियों के निर्णय तथा इतिहास लेखकों के कथनों के लिये छोड़ दें। यह पहला उदाहरण है जब कि भारत जैसे महाद्वीप-राज्य में विभिन्न हितों के व्यक्ति, ऐसे नियम तथा विनियम निर्धारण करने के लिये जो भविष्य में राष्ट्रीय जीवन बिताने में हमारा मार्गप्रदर्शन करेंगे, एक समाज बनाने के लिये स्वयं संगठित हुये हैं। संसार के अन्य राष्ट्रों के समान हम लोगों में अनोखी अनोखी बातें हैं। हममें जाति, सम्प्रदाय और मत सम्बन्धी विभिन्नतायें हैं; अस्पृश्यता का प्रश्न है; दलित जातियों का उद्धार, जनजातियों के लिये उपबन्ध, मुसलमान, सिख, इसाई जैसे धर्म तथा भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक वर्गों का विचार, उनके परिमाण और रक्षण: और फिर शासकों की तथा ज़मीदारों की स्थिति, उनके परिमाण और रक्षण का प्रश्न, और इसके बाद स्थितियों के अधिकार—इन

सब पर विचार करना पड़ा, सब में मेल बिठाना और उनको संविधान में रखना पड़ा। यह कहना पड़ेगा कि यह श्रेय राजनैतिक विज्ञान तथा संविधानिक विधि के महान विद्वान के नेतृत्व के सहित मसौदा समिति को है और माननीय सदस्यों द्वारा पेश किये गये संशोधनों के लिये उनको धन्यवाद है कि जिनके कारण इस संविधान में उन अधिकारों के समाविष्ट करने का सफल प्रयत्न हुआ है। हमारा संविधान आज उन मूलाधिकारों की घोषणा सहित संसार की भेंट है, जिनकी खोज अधिकारपत्रों तथा अधिकार-विधेयक तक की जा सकती है—ये वे अधिकार हैं जिनको 18वीं शताब्दि के राजनैतिक विचारकों ने मानवता के लिये नियत किया और जो उन संविधानों में रखे गये जिनका निर्माण उस समय के बाद में हुआ। और समस्त संसार यह देख सकता है कि वे अधिकार हमारे संविधान में भी रखे गये हैं। अत: व्यक्ति स्वातंत्र्य, मत-स्वातंत्र्य, धर्म तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, जीवन स्वातंत्र्य तथा सम्पत्ति की क्षेम, सुख की खोज इन सबका हमारे संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को आश्वासन दिया गया है और उसको ये सब प्राप्त है। यह लोकतंत्र पर आधृत संविधान है और इसमें बीते युगों का समस्त अनुभव तथा ज्ञान है; मुझे अपने संविधान की विलक्षणताओं पर कुछ बातें कहनी हैं।

हमारे संविधान की रूपरेखा अमरीका के संविधान के आधार पर बनाई गई है। अर्थात् यह एक फेडरल संविधान है जिसमें शक्ति केन्द्र तथा स्थानीय सरकारों में विभक्त है। यह हमारे लिये कोई नवीन बात नहीं है। यह बात स्विटजरलैंड के संविधान के आधार पर है जिसको अमरीका ने ग्रहण किया, आस्ट्रेलिया और कनाडा ने जिसका अनुसरण किया और आज वह संसार के महानतम लोकतंत्रात्मक राष्ट्र द्वारा परिक्षित तथा अंगीकृत हुआ। पर यह समानता तो यहीं समाप्त हो जाती है। यद्यपि हमारे संविधान की रूप रेखा अमरीका के संविधान के समान है पर राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्ति के सम्बन्ध में वह भिन्न है। अमरीका के राष्ट्रपति से भिन्न रूप में हमारा राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद द्वारा मंत्रणा प्राप्त करता है जिसको मंत्रिमंडल का पद प्राप्त है और जिस पर संसदीय उत्तरदायित्व तथा मंत्रणा सम्बन्धी आभार है: यहां तक कि हमारा संविधान लिखित संविधान की कठोरता और इंग्लैन्ड के संविधान की अभिसमय सम्बन्धी समायोजनों का मिश्रण है। कठोरता के साथ-साथ हमने शक्तियों के पर्थिक्य का भी समावेश किया है जो उतना ही कठोर है जितना कि लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तों पर आधृत किसी अन्य संविधान में वह कठोर होता है। अपने मूल तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार के सहित और संविधान के निर्वचन के अधिकार के सहित हमारी न्यायापालिका अमरीका की न्यायपालिका से भिन्न है। जिसको कार्यपालिका तथा विधान सम्बन्धी कार्यों के न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार है।

मेरे कुछ विद्वान मित्रों ने हमारे संविधान में कई त्रुटियां बताई हैं। उनका कहना है कि इसमें हमारे आदर्श और सिद्धान्त पूर्ण रूप से नहीं आ पाये हैं। क्या मैं उनका ध्यान उन संविधानों की ओर आकर्षित कर सकती हूं जिनका निर्माण अब तक संसार में के लोकतंत्रात्मक देशों ने किया है? अमरीका के संविधान को देखिये। उस समय का ध्यान करिये जो इसको यह अन्तिम रूप देने में लगा। स्वाधीनता की घोषणा के पश्चात् फिलाडेल्फिया के सम्मेलन की स्वाधीनता की घोषणा के

[श्रीमती ऐनी मेस्करीन]

ग्यारह वर्ष के पश्चात् तक क्या इसमें कई परिवर्तन नहीं हुए और तब इसका यह अन्तिम स्वरूप हो पाया? क्वेबेक सम्मेलन में अन्तिम रूप में निश्चित होने के पूर्व क्या कनाडा के संविधान में इतने अधिक परिवर्तन नहीं हुये? आस्ट्रेलिया के संविधान को देखिये। क्या उसमें बहुत से परिवर्तन नहीं हुये और क्या उसे सिडनी के सम्मेलन तक की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी? दक्षिणी अफ्रीका का एक संविधान था जो वहां के मूलनिवासियों से भेद विभेद बरतते हुये केवल श्वेत जाति के लिये संविधान था। उस संविधान तक को अपना अन्तिम स्वरूप प्राप्त करने के लिये 1943 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। हमारे समक्ष जो अन्य लोकतंत्रात्मक देश हैं यदि आप उनके संविधानों पर दृष्टि डालें तो आप को विदित होगा कि फ्रांस ने वेस्टील पर आक्रमण करने के साथ-साथ अपना संविधान आरम्भ किया और अपना संविधान बनाने में उसे 100 वर्ष तक ठहरना पड़ा। और इस काल में एक एकाधिपति शासन पद्धति और गणतंत्रात्मक शासन पद्धति के बीच में लटकता रहा। क्या आज संसार में कोई अन्य राष्ट्र ऐसा है जिसने जानबूझ कर एक ऐसी संविधान सभा का निर्वाचन किया हो जो लगातार तीन वर्ष तक समवेत हुई हो और अपना संविधान बनाया हो? क्या मैं अपने माननीय मित्रों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कर सकती हूं कि हमने लोकतंत्र पर आधृत एक आदर्श संविधान बनाया है और यह संविधान अमरीका के संविधान के समान तब तक काल के थपेड़ों में अचल खड़ा रहेगा जब तक संसार को यह सिद्ध न कर दे कि भारत जैसा एक महाद्वीप एक लोकतंत्रात्मक संविधान बना सकता है और समस्त संसार को यशस्वी करने के लिये उसको कार्यान्वित भी कर सकता है।

अब मैं अगले प्रश्न पर आती हूं वह यह है कि हमने आवश्यकता से अधिक केन्द्रीयकरण किया है जिसके कारण राज्यों की शक्तियों की उपेक्षा हुई है। हम लोकतन्त्र के द्वार पर खड़े हुये हैं। लोकतंत्र में यह एक प्रवृत्ति होती है कि अनिश्चित भावनाओं तथा विघटनात्मक बलों को ढील मिल जाती है। ऐसी परिस्थितियों में बिना एक सुदृढ़ केन्द्र के मैं नहीं समझती हूं कि हम लोकतंत्र को सफल बना सकते हैं। हम राष्ट्र निर्माण के कार्य को आरम्भ कर रहे हैं। एक राष्ट्र के रूप में हमें जीवित रहना है। इस अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष युक्त संसार में एक राष्ट्र के जीवित रहने का प्रश्न है। जब यह बात है तो हमें एक दृढ़ केन्द्र के पक्ष में विनिश्चित करना है। यदि किसी पक्ष के लिये नेता आवश्यक है तो क्या राष्ट्र एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार न रखे? अमरीका ने एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार रखना विनिश्चित किया। कनाडा ने एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार बनाना विनिश्चित किया। संविधान के नेता श्री मेकडोनेल्ड ने कहा कि समस्त केन्द्र-विघटनकारी बलों पर नियंत्रण रखना चाहिये और इस कारण एक दृढ़ केन्द्र आवश्यक है। यदि राज्य के प्रारम्भिक काल में किसी राष्ट्र को इतनी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़े तो उसके लिये एक दृढ़ केन्द्र होना चाहिये जिससे कि शक्ति का समस्त भागों में विकिरण हो सके। केन्द्र को इतना शक्तिशाली नहीं होना चाहिये कि वह स्थानीय सरकारों की स्वायत्तता का अन्त कर दे। पर हमने केन्द्र में ऐसी किसी शक्ति का संचयन नहीं किया है जिससे राज्यों की स्वायत्तता का अन्त हो जाये। अतः इस दोषारोपण के लिये कि इस संविधान में केन्द्र को अधिक शक्तियां दी

गई हैं कोई आधार नहीं है। यह ठीक है कि 365, 371 और 324 जैसे अनुच्छेद एकाधिपति-शासनात्मक प्रतीत होते हैं पर अब आप उन भावनाओं और केन्द्र को दुर्बल बनाने वाले बलों की आंधी की ओर दृष्टि करेंगे जो लोकतंत्र के पदार्पण से चल उठी है तो आप देखेंगे कि राजनैतिक हित तथा विधि और व्यवस्था की सुरक्षा के लिये एक दृढ़ केन्द्र होना चाहिये जिससे कि राष्ट्र जीवित रह सके। संविधान में संशोधन करने के उपबन्ध है और यदि केन्द्र अधिक शक्तिशाली है तो हमें डरना नहीं चाहिये, क्योंकि जब राष्ट्र अपना पूर्ण स्वरूप प्राप्त कर लेगा और जब हम अपने पैरों पर खड़े होंगे तब हम संविधान का संशोधन कर सकते हैं और शक्तियों का सम विभाजन कर सकते हैं।

इन बातों को कह कर मैं अपने मित्रों को धन्यवाद देती हूं कि उन्होंने धैर्यपूर्वक मेरा भाषण सुना। हम सब इस संविधान के सफल बनाने की कामना करें और हम यह भावना ले कर घर जायें कि हमने अपने देश और जनता के प्रति अपना कर्तव्य-पालन किया।

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट** (बम्बई स्टेट्स): माननीय सभापति, हमने जिस मसौदे को अब तैयार किया है और जिसको अब स्वीकार करने जा रहे हैं उस विधान के बारे में अगर हम कुछ बातें कहें तो उसके दो मतलब निकलते हैं। एक तो यह है कि हमारी खुद की कृति की हम प्रशंसा कर रहे हैं। और अगर उसकी बुराईयों को दिखलाने के लिये हम बैठें तो यह मतलब होगा कि हमने यह ऐसा क्या बनाया है कि जिसकी हम खुद बुराइयां कर रहे हैं। हमने जो विधान तैयार किया है उसमें काफी समय भी लगा है, शक्ति खर्च हुई है और सम्पति भी खर्च हुई है। इस विधान को तैयार करने में सिर्फ हमारी मसौदा कमेटी के सयाने सदस्यों को जैसा कि भाई कामथ बार-बार उन लोगों को कहा करते हैं और जो भाई दूसरों को सयाना कहते हैं वह खुद तो सयाना होना ही चाहिये, बल्कि सवाया श्याणा होना चाहिये तो उस मसौदा कमेटी के भाइयों ने जो मेहनत की, और सभापतिजी, आपने भी जिस सबूरी से काम लिया और हम लोगों ने भी बहुत धीरज से सुना और बैठे रहे, कोरम बनाने के लिये भी और हमारे सलाहकार श्रीयुत राव ने भी कुछ सलाह दी और उन्होंने भी बहुत कुछ मदद की और ऑफिस के कर्मचारियों ने भी जो दिक्कत उठाई है, वह कम नहीं है, तो इन सबों की मेहनत के फलस्वरूप आज हमारे सामने यह विधान आ रहा है और हम उसकी चर्चा कर रहे हैं कि हमने क्या अच्छा लड्डू बनाया है, कैसे अच्छी रोटी बनाई है। बनाने वाले तो पहला अनुभव करने वाले आदमी थे लेकिन दूसरों के नमूने को देखकर हमने उस रोटी को बहुत ही मजेदार गोल बनाने की कोशिश की। सेकने की भी कोशिश की, सेकी भी है और अच्छी सेकी है। अब उसमें गेहूं भी मिला है, चना भी मिला है, जो भी मिला है और शायद दूसरा जैसा आटा मिला वह भी मिलाया होगा। इस तरह से इस रोटी को हमने पकाई है और अब उसकी प्रशंसा कर रहे हैं, उसके बारे में हम बोल रहे हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास: जनरल): अब खाना शुरू करेंगे।

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट:** खैर, मैं अपनी रोटी का दूसरों के पाउ बिसकुट वगैरह से 'मुकाबला नहीं करना चाहता और न इस बहस में उतरना चाहता

[श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट]

हूं कि दूसरे देशों के विधानों के मुकाबले में हमारा विधान कैसा है। यह बात तब तक नहीं कही जा सकती है जब कि हम उस रोटी को खाने न लगें और खाने के बाद हज़्म करने न लगें। तब तक हमको उसमें से कितना तत्व मिलता है यह हम नहीं कह सकते। तो इसी तरह विधान के बारे में भी हम उस समय तक कुछ ज़्यादा न कहें यही ठीक रहेगा और इसी दृष्टि से मैं आज न तो प्रशंसा के शब्द कहना चाहता हूं और न इसमें किसी कमी के लिये कोई कटु शब्द ही कहना चाहता हूं।

पहले पहले जब यह मसौदा हमारे सामने आया था तब मैंने यह कहा था कि अलग अलग जगह के फूल यहां इकट्ठा किये गये हैं। कागज़ी फूल भी इकट्ठे किये गये हैं और उसमें बीच-बीच में कहीं गुलाब भी आ गया होगा, चमेली भी आ गई होगी। अलग-अलग तरह के फूल यहां आये हैं। अब जो हमारे सामने आज गुलदस्ता है वह गुलदस्ता हमने ही बनाया है और उसमें तरह-तरह की चीजें हमने रखी हैं और उन चीज़ों में कई खुशबुदार चीजें हैं और उनमें सुगन्ध भी है। लेकिन सब तरह की चीजों की जरूरत होती है क्योंकि हम कहते हैं कि पूरी पूरी सुगन्ध ही भर दी जाये तो आदमी का दिमाग चकरा जाता है, वह इतनी सुगन्ध बरदाश्त नहीं कर सकता। तो उस सुगन्ध की अतिशयता को मिटाने के लिये दूसरी चीज़ें भी रखी गई हैं।

अब अगर कोई कहे कि इतना लम्बा विधान 395 धाराओं का विधान नहीं बनाना चाहिये था और करीब 100 धाराओं में खत्म कर देना चाहिये था। यह हो सकता था लेकिन हमारे कई पंडित भाई हैं। एक तो पंडित नज़ीरुद्दीन जैसे भी पंडित हैं और भाई कामथ जैसे भी पंडित हैं जो अपने-अपने दिमाग लड़ाते हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (सी.पी. और बरार: जनरल): मैं पंडित नहीं हूं।

***श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट:** ठीक है, लेकिन आप गीता के अभ्यासी तो हैं ही और ईश्वर का स्मरण करने वाले भी हैं तो वे तो पंडित हैं ही। तो वह लोग कहते हैं कि इसमें यह कमी रह गई। यह सब कहा गया था नहीं तो हम इसको बहुत कुछ लचकदार बना लेते, जैसे मरोड़ना होता मरोड़ लेते। लेकिन उस मरोड़ने की इजाजत हर एक नहीं देता, हर एक को इसमें विश्वास नहीं होता है और कहते हैं कि कि इसमें यह अर्थ भी निकलता है, दूसरा अर्थ भी निकलता है और तीसरा अर्थ भी निकल आयेगा क्योंकि अदालत और वकीलों का सवाल है और वहां जाकर क्या जवाब देना होगा और जो कारोबार चलाने वाले लोग हैं उनको मुसीबत पेश न हो इसलिये इस विधान को इतना लम्बा बनाना पड़ा और इसमें इतना तफसील में जाना पड़ा।

तो मैं यह अर्ज कर रहा था कि यह विधान हमने कई जटिल समस्याओं को पार करके बनाया है। कभी-कभी ऐसा सन्देह होने लगा था कि कहीं इस पर बड़ा झगड़ा न चल पड़े जैसे कि भाषा के सवाल पर, देश के नाम के सवाल पर, जो अचल मिल्कियत है उसको किस तरह केन्द्र या प्रान्त जनता के लिये

ले सके इस सवाल पर। और इस तरह के दूसरे सवाल भी हमारे सामने आये थे जिनको हम लोगों ने अपनी अक्ल और होशियारी से तय किया और जो हमारे नेता थे उनके मार्ग प्रदर्शन से उन सवालों को तय किया और इन झगड़ों का निबटारा किया, समझौता किया। निबटारे से मेरा मतलब यह है कि जिन लोगों को भाषा के सम्बन्ध में कुछ विशेष कहना था, जिनका कुछ आग्रह था उनको पूरा सन्तोष तो नहीं हुआ होगा जैसे माननीय टंडनजी को इसमें कुछ न कुछ कमी रह गई है। लेकिन इस दुनिया में पूर्ण तो कोई चीज़ होती नहीं और पूर्ण बनाने के लिये हम कोशिश कर रहे हैं और जब पूर्ण बना लेंगे तो हमीं पूर्ण हो जावेंगे, कुछ रहेगा ही नहीं। यह उपनिषदों के वाक्य हैं, उसमें मैं नहीं जाना चाहता हूं। लेकिन मैं यह कहता हूं कि हमने आपस में बैठकर कई सवालों का समझौता कर लिया है और यह अच्छा ही हुआ है और इतना समय लगाने के बाद भी हम निबटारा नहीं करते तो लोग हमारा उपहास करते, हंसी उड़ाते और ठठ्ठा करते।

प्रस्तावना में मेरी अगर चलती तो मैं ज़रूर कहता कि इसमें महात्मा गांधीजी का और उन शहीदों का नाम जरूर आता कि जिनके जरिये हमने यह सब कुछ हासिल किया है। लेकिन हमारे नेता पंडित जवाहर लाल जी ने और हमारे बुजुर्ग सरदार साहब ने जैसी हमें सलाह दी हमने उसे शान्ति से माना और हम यह कहते हैं कि अगरचे इस विधान में महात्माजी का नाम नहीं है, इस विधान में उन शहीदों के नाम नहीं हैं जिन शहीदों ने सैकड़ों वर्षों से कुरबानी करके हमको यह मुकम्मिल आजादी प्राप्त कराई है तो भी हम आज उनको याद करते हैं और हम कहते हैं कि कि उनकी बदौलत ही हम आज यहां दिखाई दे रहे हैं। इस आजादी के वातावरण में, इस आबोहवा में आज हम यहां बैठे हैं और गुजारा कर रहे हैं।

अब इस विधान में महात्माजी की विचार शैली कितनी आई है और कहां तक उनकी विचारधारा ने हमें प्रेरणा दी है इस सम्बन्ध में मेरे अल्प मत में कह कहता हूं कि अच्छा होता अगर पंचायतों के ज़रिये हमारा काम आगे बढ़ता। मैं इस प्रश्न को बहुत ही जरूरी समझता हूं और जब जब मुझे बोलने का मौका मिला है यहां और दूसरी जगहों पर भी मैंने पंचायत की संस्था के बारे में बहुत कुछ आग्रह रखा है। यह ठीक है कि हमने बालिग मताधिकार के लिये कोशिश की, कशमकश की और हमने यह चाहा कि बालिग मताधिकार के आधार पर ही चुनाव होना चाहिये। जब हम लोग इस मंजिल पर पहुंचे हैं। एक मर्तबा हमने यह कहा था कि हमारा जो राष्ट्र प्रमुख हो वह भी बालिग मताधिकार पर चुना जायेगा। हमने एक मसौदे से वह मंजूर भी कर लिया था। लेकिन बाद में हमने सोचा कि यह मुमकिन नहीं है। कि एक तरफ तो बड़ा वजीर बनेगा, प्रधान मंत्री बनेगा, वह और दूसरी तरफ से जो उस राष्ट्र का प्रमुख है वह दोनों ही एक तरह से चुने हुये हों और शायद उनमें आपस में झगड़ा भी चले तो हमने उसकी वास्तविकता को स्वीकार किया और व्यावहारिक रूप से क्या हो सकता था उसका हल निकाला और कहा कि उनको तो इस रीति से नहीं चुना जायेगा लेकिन हमारे जो दूसरे प्रतिनिधि केन्द्र में होंगे और दूसरे सूबों की धारा सभाओं में रहेंगे वे लोग तो बालिग मताधिकार पर चुने हुये होंगे। मुझे संशय है कि हम यह कहां तक ठीक कर पायेंगे और कहां तक इसको अमल में ला सकेंगे। लेकिन एक मर्तबा अनुभव तो कर लेना चाहिये, तजुर्बा कर लेना चाहिये। आगे हम कुछ परिवर्तन कर सकते हैं लेकिन एक दफा तजुर्बा करने के बाद और शायद तब हमें इस नतीजे पर

[श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट]

पहुंचना पड़ेगा कि हमारा जो इलेक्टोरेट हो वह गांव की पंचायत होनी चाहिये और उनके जरिये जो प्रतिनिधि चुने जायें वे हमारे लोकप्रिय प्रतिनिधि माने जाने चाहिये। अब इस सवाल को मैं बहुत ज्यादा तफसील में नहीं लेना चाहता क्योंकि मुझे चन्द मिनटों में कुछ बातें आप से कहनी हैं।

एक सवाल यहां भाषा के बारे में आया। सेठ गोविन्ददासजी ने कहा कि अगर हिन्दी भाषा में विधान बनता और अगर एक साल और लग जाता तो उसमें कोई बेजा बात नहीं थी। मैं उनके भाषण का सार कह रहा हूं। हो सकता है कि उनकी भावना यह हो और शायद यह अच्छा भी होता कि हिन्दी में हमारा विधान बन गया होता। लेकिन इस काम के लिये हम एक साल के लिये रुक जायें यह मैं मानता हूं कि हमारी होशियारी का नमूना नहीं होगा। हम जिन संयोगों में बैठे हैं उन संयोगों में यह बना है और उससे ज्यादा अच्छा इन संयोगों में नहीं हो सकता था। और यदि हम ज्यादा समय लगावें तो लोगों को यह मौका देना होगा वह कहेंगे कि हम लोग ख्वामख्वाह बेठे हैं और पैसा खर्च कर रहे हैं, पैसा जेब में डाल रहे हैं और हमारा मजाक उड़ा रहे हैं और जनतन्त्र के नाम पर वहां बैठे हैं। हम अपने ऊपर यह आरोप लगवाना नहीं चाहते थे और यह ठीक हुआ है कि अब हम विधान को जल्दी तय कर रहे हैं।

भाषा के बारे में जहां तक प्रादेशिक भाषाओं का सवाल है मुझे एक बहुत नम्र निवेदन यह करना है। उस रोज मैं हाजिर नहीं था जब यह सवाल आया था। लेकिन मेरे बुजुर्ग ने और दूसरे भाईयों ने यह कहा कि इस सवाल को आप न छेड़िये। लेकिन मैं यह कहता हूं कि गुजराती, मराठी आदि जो भाषायें हैं वे सब प्रादेशिक भाषायें बन सकती हैं तो राजस्थानी भाषा भी वैसी है और वह करीब डेढ़ करोड़ जनता की भाषा है। और अलग-अलग उसमें बोलियां हैं, लेकिन इसका इतिहास कोई आज का नहीं है। आज से नहीं इस डिंगल भाषा और राजस्थानी भाषा का चलन है। मैं यह भी जानता हूं कि अभी भी राजा जो हैं, वे उसे अपना लेते हैं, या जब वह जागीरदार भाइयों को लिखवाते हैं, तब वह राजस्थानी में लिखवाते हैं। इस रीति से इस भाषा के पक्ष में कई नमूने हैं। तो इस राजस्थायी या प्रादेशिक भाषा को भी स्थान दिया जाना चाहिये, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है, और अगर कभी भी मौका आये, तब हमारे भाई इस पर विचार जरूर करें। और मेरा नम्र निवेदन है और जितनी मेरी बोलने की ताकत है मैं कहता हूं कि इसको मान्यता मिलनी चाहिये। मैं इसके पक्ष में कोई ग्रिर्यसन का प्रमाण नहीं देना चाहता हूं, वह बहुत लम्बा हो जायेगा। इतना में जरूर कहना चाहता हूं कि इस भाषा को प्रादेशिक भाषाओं में भी स्थान मिलना चाहिये।

कई मित्रों ने यह कहा कि केन्द्र को सब सौंप दिया गया है। मैं यह मानता हूं कि समय तो ऐसा है कि अभी फिलहाल 10-15 साल तक जब तक हम केन्द्र के आधीन सब चीजों को नहीं सौंपेंगे, तब तक हम नई चीज अच्छे तरीके से नहीं बना पायेंगे। जो नवनिर्माण हम करना चाहते हैं वह अगर आप शृंखलाबद्ध केन्द्र के नीचे रह कर नहीं करेंगे, तब तक यह चीज चलने वाली नहीं है ऐसा

मेरा नम्र निवेदन है, और यही एक वास्तविक चीज है। वैसे स्वप्नलोक में विचरना दूसरी बात है। उससे हम कहीं पहुंचने वाले नहीं हैं। हमें तो देखना है कि जमीन कहां है जमीन कैसी है उसमें कितनी पथरीली जमीन है, उसमें आप कहां बाग लगाना चाहते हैं। जैसी जमीन है, जैसे बीज हों उसी के मुवाफिक और जितना पानी हमारे पास हो उतना ही हमें काम करना होगा। तो आज जैसा हमारा हाल है उसको देखते हुए हमें केन्द्र के नीचे रहना ही होगा। मेरे मित्र हनुमंत अय्यर ने कल कहा था। बीच में यह बात निकली थी कि जो रियासती संघ बने हैं, उनके ऊपर केन्द्र का नियन्त्रण ज्यादा रहेगा और दस साल केन्द्र का नियंत्रण रहेगा। मैं इसका पूरा इतिहास देना नहीं चाहता हूं लेकिन जब राजस्थान बना, उस समय जो पहले पहल बात हमारे तथा स्टेट मिनिस्टरी के बीच में चल रही थी तो हमारे भाइयों ने, जिसमें मैं भी एक था, यह मंजूर किया था कि नियंत्रण केन्द्र का रखना ही होगा। राजस्थान की परिस्थिति कुछ विचित्र है, उस विचित्र परिस्थिति में हमने यह ठीक समझा कि केन्द्र के नियन्त्रण में रहकर हम कुछ कर सकेंगे और यही हल इसके बाद फिर दूसरी रियासतों के लिये भी लागू है। और आज हमारे सामने इस विधान में भी वही चीज आ गई। उसमें यह दिया हुआ है कि जो जो संघ और जो जो रियासती संघ बनाये जायें तो केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि जिन पर नियन्त्रण नहीं रहे उन पर से यह नियन्त्रण हट जायेगा। इसमें घबराने की कोई चीज नहीं है और मैं इसका एक तौर से स्वागत करता हूं। और मैंने उसमें एक प्रकार से हिस्सा भी लिया था।

श्रीयुत के.टी. शाह ने कल कहा था कि नागरिक अधिकारों के बारे में इतनी पाबन्दियां लगाई गई हैं, और वह आज हाज़िर होते, हां, हाजिर तो हैं, मैं पूछ सकता हूं कि कौन-सा ऐसा देश है जहां पब्लिक इन्ट्रेस्ट और मोरेलिटी के लिए कोई पाबन्दी न लगाई गई हो? कौन-सा ऐसा मुल्क है जहां आप किसी न किसी तरीके से और एक ऐसे संयम में रखने के लिये, संयत भाषा इस्तेमाल करने के लिये पाबन्दी की जरूरत हर जगह होती है और उसकी जरूरत सिर्फ इतनी ही है कि जिससे सामाजिक व्यवस्था में अंधेर न हो, कोई गड़बड़ न हो जाये, इसके सिवा इसका कोई मतलब नहीं है। हम देखते हैं कि हमारे जो नागरिक अधिकार हैं जिन अधिकारों का पालन और उपभोग जनता करेगी एक अदालत की मार्फत भी करवाया जायेगा वह अधिकार इतने वसीय हैं, इतने व्यापक हैं, और मैं तो मानता हूं कि हर एक को इस पर संतोष होना चाहिये। मैं अब जरा आगे जाता हूं। अब मुझे बहुत जल्द जल्द कहना पड़ेगा। एक बड़ी चीज जो हमारे पास आई है, वह यह है। पहले तो राजाओं ने भारतीय संघ में तीन ही विषयों में शामिल होने को कबूल किया। उसके बाद वह धीरे-धीरे सब एक-एक करके हमारे साथ मिल गये। यह सब हमारे बुजुर्ग सरदार साहब के पुण्य से उनकी अक्ल और होशियारी से उन लोगों को समझाया और वह अब हमारे साथ हो गये हैं। अलग-अलग विधान सभायें, अलग-अलग रियासती संघों में बैठने के बावजूद अब हमने यह तय किया कि उन रियासती संघों का विधान भी उसी के साथ शामिल होगा और सातवें पार्ट में हमने एक मामूली से परिवर्तन के साथ जो प्रान्त का विधान है, वह रियासती संघों के लिये लागू कर दिया। यह मामूली चीज नहीं है। मैं अब इस विषय में कुछ ज्यादा कहूं, यह भी ठीक नहीं है। लेकिन मैं यह कहता हूं कि सारी दुनियां को यह कहना पड़ेगा कि 100,200 साल में जो

[श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट]

चीज हिन्दुस्तान में नहीं हो पाई, उसे हमारे देश के नेताओं ने करके दिखा दिया है। जो छह सौ अलग-अलग रियासतें थीं वह एक में हो गई हैं। ऐसे हमारे सरदार साहब हैं उनके लिये क्या कहूं हम सब उनकी प्रशंसा करते हैं। उन्होंने रियासती संघों के बनाने में बहुत ही तकेदारी और सावधानी के साथ काम किया है। राजस्थान का मामला उन्होंने बड़ी अच्छी तरह से तय किया। और सिरोही का मसला परसों आया था और सिरोही की मांग राजस्थान की मांग क्या है वह भी मैंने आपको और कुछ मेरे मित्रों ने भी उसके बारे में कहा है। मैंने भी बराबर दूसरी जगह कहा है कि भाई यह सिरोही राजस्थान में रहे लेकिन मैं एक चीज़ और मानने वाला हूं कि हम सारी परिस्थित सरदार साहिब के सामने रख कर उनके ही जिम्मे सब सिपुर्द करना चाहते हैं। इसमें मैं अक्लमन्दी समझता हूं और यह वास्तविकता भी है। चूंकि इस बुजुर्ग ने, इस हमारे सरदार ने ऐसे मसले हल किये हैं जो मसले दूसरे कोई नहीं हल कर सकते थे तो यह सिरोही का मसला भी वही ही हल करें और हमारे राजस्थान के मित्र उनसे मिलकर सारी बात उनके सामने रख दें। पहले एक मौका था जब कि यह सिरोही बम्बई में चला गया मालूम होता था। अब कुछ हिस्सा बम्बई में जा रहा है, उसके बारे में हम सरदार साहेब से मिलें और सरदार साहेब से कहें कि क्या हमारी भावना है, क्या राजस्थान की भावना है, और क्या सिरोही की भावना है। उनसे मिलकर मिन्नत करें और मुझे विश्वास है कि उनके फैसले से सबको सन्तोष होगा। उन्होंने सबको संतोष दिया है और हमें आशा है कि हमें भी वह संतोष देंगे।

इस विधान की दूसरी बातों पर अब मैं कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि समय नहीं है। यह विधान जैसा मैंने पहले कहा था, ऐसा बना है कि जिसमें प्रेजीडेन्ट भी खुद परिवर्तन कर सकेंगे और हम खुद भी उसमें संशोधन करवा सकेंगे। इस प्रकार का जो हमारा विधान है मैं आशा करता हूं कि आज विधान की जो भावना है उसका उपयोग देश के नवनिर्माण में बहुत ही ठीक होगा। मैं अन्त में फिर से मसविदा कमेटी तथा दूसरे सब को जिन्होंने इसके बनाने में परिश्रम किया है उन सबको धन्यवाद देता हूं।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह स्पष्ट स्वीकार करता हूं कि आज जो मैं भाषण दे रहा हूं वह इस कारण नहीं है कि मुझे कोई बात रखनी है। क्योंकि पहली बात यह है वह स्थिति नहीं है कि वाद विवाद के या किसी अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई बात रखी जाये और दूसरी बात यह है कि ऐसा करने की मेरी तबियत नहीं है। पर श्रीमान, मैं उस मानव दुर्बलता का सरलता से शिकार हो जाने से न बच सका जो यह है कि आज के दिन, जो भारत के इतिहास में एक चिर स्मरणीय दिन रहेगा, मैं भी कुछ कहकर सहयोग दूं। इस देश के एक ऐसे तुच्छ सेवक के रूप में जितने संसदीय या विधान सम्बन्धी कार्यों में अपने जीवन का अधिकांश भाग लगाया है मैं इस दिवस को अपने जीवन का सबसे महान गौरवमय दिवस समझता हूं कि आज यहां खड़े होकर मैं उस प्रस्ताव में अपना सहयोग दे सका जो स्वतंत्र भारत के इस संविधान को पारित करने के लिये है। अध्यक्ष महोदय किसी देश में किसी विरले मनुष्य के भाग में यह बदा होता है कि वह अपने जीवनकाल में यह सुयोग

प्राप्त कर सके। और फिर भारत में तो इस समय से पिछले हजार वर्षों तक मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि ऐसा अवसर कभी आया हो। यह एक चिर स्मरणीय अवसर है; महत्वपूर्ण अवसर है, गंभीर अवसर है। श्रीमान, आज मैं ज्योंही बोलने के लिये खड़ा होता हूं तो कटु तथा मर्मभेदी संस्मरणों का समूह मेरे मस्तिष्क के सामने प्रस्तुत हो जाता है हमारे सामने इस देश की स्वतन्त्रता के लिए दो मानव पीढ़ियों ने युद्ध किया और खून बहाया। संसदीय क्षेत्र में हमारे अनेक यशस्वी पुत्रों ने सुखद आशा में बंजर भूमि को सींचा कि किसी भी साधन में कुछ परिवर्त्तन करके उन लोगों से कुछ न कुछ उन्नति प्राप्त कर सकें जिनके हाथ में इस देश का भाग्य था। वे लोग अब नहीं रहे। उन्होंने जो पौधे लगाये उनको पूर्ण रूप से फलते न देख सके। उनका कार्यभार हम पर आया। केवल विधान या संसदीय क्षेत्र में में नहीं वरन् प्रत्येक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र में हमारे लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये भीषण कार्य किये। हममें से कुछ लोग अपने स्वप्नों को साकार देखने के लिये बचे रहे। कुछ लोग चल बसे। मैं विस्मृति में विश्वास नहीं करता हूं और एक कृतज्ञ राष्ट्र को ऐसे अवसर पर सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि वे न होते तो आज संविधान के निर्माण करने जैसे कार्य से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता था। *(वाह, वाह)* अध्यक्ष महोदय, मैं यह अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूं कि आज उन महान देशभक्त पुत्रों के प्रति अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि भेंट करूं।

***एक माननीय सदस्यः** पुत्रियों के प्रति भी।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः** पुत्रों के अन्तर्गत पुत्रियां आ जाती हैं—उन सब पुत्र पुत्रियों, माता, पिता, भाई और बहिनों को श्रद्धांजलि भेंट करूं जिन्होंने इस स्वाधीन राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दिया। जिस मसौदा समिति में कुछ हमारे बड़े पक्के तथा परखे हुये मित्र हैं उस मसौदा समिति द्वारा की गई सेवाओं के प्रति इस सामूहिक यशोगान में मैं आज सहर्ष सम्मिलित होता हूं। उनकी इस सफलता पर मैं उनको बधाई देता हूं। संयुक्त सचिव श्री मुकर्जी तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा किये गये कार्यों के प्रति अपनी प्रशंसा को भी मैं अभिलेख बद्ध करना चाहता हूं जिन्होंने हमारे साथ कार्य किया और उनके सहयोग से हम यह संविधान बना सके। प्रसिद्ध तथा परिचित व्यक्तियों की प्रशंसा करते समय हम इन लोगों को न भूलें। 'जो खड़े रहते हैं और प्रतीक्षा करते रहते हैं वे भी सेवा करते हैं।' अध्यक्ष महोदय, इन सब बातों से परे क्या मैं एक अपनी तान छेड़ सकता हूं और मुझे विश्वास है कि इस तान में मैं जो कुछ कहूंगा उसकी गूंज यहां उपस्थित प्रत्येक माननीय सदस्य के हृदय में होगी और वह यह है कि यदि सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं तो यह सम्पूर्ण सभा, जिस प्रशंसनीय रीति से आपने इस महान सभा की कार्रवाइयों का विनियमन तथा संचालन किया उसके लिये अध्यक्ष महोदय, आप ही कृतज्ञ हैं। हममें से बहुतों का यद्यपि मैं उनमें न था, यह खयाल था कि जिस क्षेत्र में आप को यकायक सेवा करने के लिये आमंत्रित किया था उसका अनुभव न होने के कारण आपकी स्थिति संदेहजनक थी। अध्यक्ष महोदय, मुझे आश्चर्य है और जब मैं यह कहता हूं तो आपकी कोई खुशामद नहीं कर रहा हूं कि मुझे आश्चर्य है कि आपने किस प्रकार इतनी प्रशंसापूर्वक तथा नीति कौशल के साथ इस महान सभा के विचार विमर्शों का नियंत्रण किया। आपने किसी को शिकायत का अवसर

[पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र]

नहीं दिया आपने कभी वाद विवाद को रोका नहीं आपने प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण अवसर दिया। जिन लोगों में बहुत जोश भरा हुआ था उनको जोश निकाल देने के लिये स्वतन्त्र अवसर दिया जिनको व्यर्थ बकवास करने में विशेष आनन्द आता था उनको जी भर के संतोष कर लेने का अवसर दिया। मैं जानता हूं और कई सदस्य जानते हैं कि आसन पर चुपचाप बैठे हुए आपने इस सभा में कई ऐसी बातों को देखा जिनको कदाचित् आप पसन्द नहीं करते पर फिर भी आप अपना हाथ खींचे रहे। हम इस बात की प्रशंसा करते हैं और एक तुच्छ संसदीय प्रक्रिया वेत्ता होने के नाते जिस बात की मैं सबसे अधिक प्रशंसा करता हूं वह यह है कि यद्यपि आसन पर बैठे हुये ऐसे अनेक अवसर आये जब आपने हस्तक्षेप करना उचित समझा। जब आपने यह देखा कि सभा गलत तथा त्रुटिपूर्ण कदम उठा रही है तो आपने उसे रोका, आपने कहा कि इस विषय में जल्दी न करें बल्कि सोच विचार कर धीरे-धीरे आगे बढ़ें और मैं जानता हूं कि ऐसे प्रत्येक अवसर पर आपकी मंत्रणा से यथार्थ लाभ हुआ। यह एक ऐसी बात है जिसे यह सभा कभी नहीं भूलेगी। कदाचित् यह उल्लेखनीय है कि संविधान सभा के सदस्यों का भी इस श्रेय में भाग है इस देश में वे भी इस श्रेय के पात्र हैं। सदस्यों को दिल्ली बुलाया जाता है, उनको यहां महीनों ठहरना पड़ता है और कठिन परिस्थितियों में उन्हें अपने निजी व्यापारों की पूर्ण अपेक्षा करनी पड़ती है। श्रीमान, थोथी परम्परा के प्रति सम्मान के लिये मैं यह सब नहीं कहता हूं। मैं शुद्ध हृदय से विश्वास करता हूं कि केवल इस संयुक्त उद्यम के कारण, उन समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों के, जिन के मुखिया श्रीमान् आप हैं, सामूहिक उद्यम के कारण हम इस महान कार्य में सफलता प्राप्त कर सके।

अब मैं संविधान सम्बन्धी एक दो बातों का निर्देश करूंगा। यहां तथा अन्यत्र यह आलोचना लगातार होती रही है कि यह संविधान उन सब प्रकार की व्यवस्थाओं की खिचड़ी है जिनका प्रचलन अन्य देशों में है। ठीक है। सैद्धान्तिक रूप ये यह ठीक है। कुछ मात्रा में सब व्यवस्थाओं की चुनी चुनी बातें इसमें हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं, हम इसे न रोक सके। इस देश में इसे कौन रोक सकता था? इस देश में किस व्यक्ति को एक स्वतंत्र देश का अनुभव तथा उसकी परम्पराओं का ज्ञान है या किसने स्वतंत्रता का स्वाद चखा है? स्वतंत्रता की स्वच्छन्द वायु का न हमने सेवन किया न सेवन कर सके। हम अपनी राष्ट्रीय तथा राजनैतिक परम्पराओं में प्रगति नहीं कर सके हमें अपने प्राचीन शास्त्रों तथा प्राचीन ज्ञान का ही सहारा लेना पड़ा। अतः अन्य देशों के संविधानों में प्रमाणित ऐतिहासिक शिक्षाओं को अस्वीकार न करने में मेरी सम्मति से हमने ठीक-ठीक कार्य किया है। यह देख कर कि हमारे लिये क्या बात सबसे अधिक उपयुक्त होगी, राष्ट्र की विचारधारा के लिये क्या बात सबसे अधिक उपयुक्त होगी हमें उन बातों को 'छांट छांट कर चुनने' की नीति का पालन करना पड़ा और मुझे पूरा विश्वास है कि ये जो बातें चुनी गई हैं उनके लिये हमें खेद प्रकट करने की आवश्यकता नहीं होगी।

इस संविधान के प्रति एक और आलोचना यह है कि यह एक विशाल लेख्य है। व्यर्थ विषय की, अनावश्यक विषय की इसमें भरमार है। इस आलोचना में

भी शायद कुछ सच्चाई है। परन्तु क्या इस बात पर भी विचार किया गया है कि आप 34 करोड़ लोगों के लिये संविधान बना रहे हैं? आप अपने राज्य और उसकी जनता के परिमाण या आकार की ओर देखिये। क्या इसकी समानता संसार में कहीं है? क्या संसार के किसी अन्य देश में, किसी अन्य राज्य में इतनी जटिल तथा इतनी विभिन्न समस्याओं का ऐसा बाहुल्य है जैसा हमारे यहां है? अत: वस्तुस्थिति के अनुसार यह अनिवार्य था और उसके लिये मैं कोई क्षमा प्रार्थना नहीं करता हूं। मैं यह नहीं कहता हूं कि इस संविधान में सर्वोच्च ज्ञान, सर्वोच्च राजनैतिक ज्ञान निहित है। न मैं यह कहता हूं न इस बात का दावा करता हूं। आप भी ऐसा दावा नहीं करते हैं, कोई व्यक्ति भी ऐसा दावा नहीं करता है। न मसौदा समिति न इस सभा का कोई सदस्य इस बात का दावा करता है कि यह संविधान पूर्ण है और इसका सीधा सादा कारण यह है कि पूर्ण होना मनुष्य मात्र का लक्षण नहीं है और यह आवश्यक है कि मानव व्यवस्था अपूर्ण हो। और समाज भी तो स्थिर नहीं है। हम एक गतिमान शक्तिशाली युग में होकर गुजर रहे हैं, शक्तिशाली बल अपनी क्रियाओं में संलग्न है। आज हमने जो व्यवस्था की है दो साल आगे सम्भव हो सकता है कि उसे रद्द करना पड़े, यह कोई नहीं जानता। अत: हमें इसे काल की कसौटी पर रखना चाहिये। हमें यह देखना चाहिये कि यह संविधान किस प्रकार क्रियान्वित होता है। भावी विधि निर्माताओं को, आगे आने वाली सन्तति को, जो हमारे बाद यहां आते हैं उनको यह पूर्ण अधिकार होगा कि वे परिवर्तनों को करें जो उनके समय की आवश्यकताओं के अनुसार न्याययुक्त हों।

यह कहा गया है कि इस संविधान को निर्बन्धित उपबन्धों द्वारा जकड़ दिया गया है और मूलाधिकार जो एक हाथ से दिये गये हैं उनको दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। उस संविधान की आलोचना करने के उत्साह में जो हमारे ही हाथों द्वारा बनाया गया है क्या यह विचार किया गया है कि हमने कितना अधिकार प्राप्त किया है? आइये, हम इस बात पर विचार करें कि मूलाधिकारों के रूप में इस संविधान में हमने क्या क्या उपबन्धित किया है। बहुत से मूलाधिकार न्याय्य हैं। हमें यह बात नहीं भुला देनी चाहिये। अन्य मूलाधिकारों के साथ-साथ हमने भाषण, विचार, कर्म, सन्था तथा उन सब बातों के स्वातन्त्र्य का उपबन्ध किया है जो इस संसार में ज्ञानमय तथा सभ्य समागम के लिये आवश्यक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनको कुछ निर्बन्धनों द्वारा जकड़ना होगा अन्यथा स्वयं स्वातन्त्र्य पतित होकर लम्पटता का रूप ग्रहण कर लेगा। स्वातंत्र्य नाममात्र को भी न रहेगा। उस महान कवि की इस प्रसिद्ध पंक्ति को याद रखिये 'मुझे तो अभियंत्रित स्वातंत्र्य परेशान करता है।' अन्य व्यक्तियों को नियंत्रित स्वातंत्र्य परेशान करता है। परन्तु राज्य की क्षेम के लिये तथा स्वातंत्र्य-नागरिक स्वातंत्र्य के महानतर तथा पूर्णतर उपभोग के लिये यह सत्य है कि ये निर्बन्ध चाहे कितने ही लोक विरुद्ध प्रतीत हों पर हैं आवश्यक।

श्रीमान, अस्पृश्यता के कंलक को हमने इस भूभाग से पूर्णतया मिटा दिया है। लिखित-विधि-उपबन्धों द्वारा हमने—मैं आशा करता हूं कि सदैव के लिये उन अवरोधों को चकनाचूर कर दिया जो मनुष्य मनुष्य में परस्पर विभेद उत्पन्न करते थे। क्या यह एक तुच्छ सफलता है? पृथकवाद को इस देश से हमने पूर्णतया निकाल दिया। पृथक निर्वाचक मंडलों को हमने मिटा दिया। यथार्थत: पिछड़े हुये वर्गों के

[पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र]

लिये रक्षण के सिवा जो इस समय नितान्त आवश्यक है और रक्षणों को हमने मिटा दिया। मानव में मानवता विकसित करने के हेतु प्रगति तथा विस्तार के लिये समान अवसरों को प्रस्तुत करने का हमने प्रयास किया है। यह सब हमने किया है। क्या यह तुच्छ कोटि की सफलता है? भाषा, लिपि, सभ्यता और उन सब बातों का, जिस सम्प्रदाय का कोई विशिष्ट भाग अपने लिये सुरक्षित रखना चाहता है, रक्षणाधिकार इस देश के लिये हमने रखा है। ये हमारी कुछ ठोस सफलतायें हैं। इन सबसे महान बात यह है कि वयस्क मताधिकार मंजूर करके इस देश के शासन में उन लोगों को प्रधानता दी गई है जो अब तक उपेक्षित तथा पशुओं से भी निम्न स्तर के समझे जाते थे। मैं देखता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत् हंस रहे हैं। मैं यह नहीं जानता हूं कि वे मेरी इस बात के समर्थन में हंस रहे है या विरोध में।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं आपकी बातों पर नहीं हंस रहा था। मैं आपसे सहमत हूं।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः** आपको धन्यवाद है। कम से कम एक बार तो मेरे माननीय मित्र मुझसे सहमत हुये। अध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा से और इस सभा के द्वारा समस्त देश से यह पूछ रहा था कि वे इस बात पर विचार करें कि हमने इस देश में कितना क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे इस देश में पूर्णरूप से वयस्क मताधिकार की जटिलताओं को समझें।

पर हमारे निन्दक यह कहेंगे कि हमने नागरिक स्वातंत्र्य का नाश कर दिया। हां, जहां तक मानव द्वारा संभव हो सकता है। हमने स्वातन्त्र्य को लम्पटता में पतित होने की समस्त सम्भावनाओं का नाश कर दिया है। यह सत्य है। मेरी तुच्छ सम्मति के अनुसार कम से कम संक्रान्ति काल के लिये तो ये निर्बन्धन आवश्यक हैं। ब्रिटिश शक्ति के यकायक हट जाने के बाद जो यह नहीं देखता कि वातावरण क्या हो रहा है, जो यह नहीं देखता कि अहिंसा और स्वेच्छाचारिता बढ़ती जा रही है उसकी नज़र कमजोर है। इन शक्तियों का प्रयोग कौन करेगा? कोई विदेशी तो इनका प्रयोग करेंगे ही नहीं, इनका प्रयोग करेंगे स्वयं हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि—वे लोक–प्रतिनिधि जिनका निर्वाचन सर्वसाधारण जनता द्वारा होगा। यह तथ्य भली प्रकार विचारणीय है। मेरी यह उत्कट आशा है—केवल आशा ही नहीं मुझे दृढ़ विश्वास है कि इन विशिष्ट रक्षित शक्तियों का बहुधा प्रयोग नहीं होगा। शायद वे एक कोने में पड़ी रहें। मुझे पूर्ण आशा है कि यदि हम केवल अपने उत्तरदायित्व को समझ लें तो अपने पसीने से कमाई हुई स्वतंत्रता की रक्षा के लिये जो हथियार हमने छलपूर्वक बनाये हैं उन पर हमारे शस्त्रागार में जंग और धूल चढ़ती रहेगी और उनका प्रयोग नहीं होगा। मैं उस लोकतंत्र को नहीं समझ पाता हूं कि जिस में जनता के लिये केवल समस्त अधिकार तथा विशेषाधिकार हों और उनके एवज में राज्य के प्रति कोई आभार न हों। मैं देखता हूं कि इस बात में सार्वजनिक विश्वास है कि साधारण व्यक्ति केवल लेने में विश्वास करता है देने में नहीं। लोकतंत्र की इस मिथ्या धारणा से या मैं यह कहूंगा कि इस पवित्र पद को इस भ्रष्ट प्रयोग से बचाना चाहिये, और जब तब इसे बचाया नहीं जायेगा और जब

तक वह लोग जिन पर इस लोकतंत्र को कार्यान्वित करने का भार है जनता को इसे भली प्रकार से समझा नहीं देंगे और इसके अनुसार आचरण करना नहीं बता देंगे तब तक यह संविधान व्यर्थ ही रहेगा। क्योंकि मैं तो इस बात में विश्वास नहीं करता हूं कि किसी संविधान की अच्छाई और खूबी केवल उसके अनोखे मसौदा-लेखन में है या उन उपबन्धों में है जिनको आप उसमें निहित करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अपने रूप में वे महत्वपूर्ण हैं। पर किसी देश में लोकतंत्र की सफलता समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों के संयुक्त तथा सामूहिक प्रयत्न पर निर्भर करती है। सर्वप्रथम यह कि इस संविधान में जो उपबंध आपने निहित किये हैं उनका शब्द और भाव दोनों रूपों में परिपालन होना चाहिये बल्कि शब्द रूप से भावरूप में अधिक। संसार में कोई भी मसौदा लेखक संविधान का इतने पूर्ण रूप में मसौदा नहीं बना सकता कि इन सब सामाजिक तथा राजनैतिक दोषों का एक दिन में परिहार हो जाये जिनके अधीन व्यक्ति है। कोई भी मोची संसार में एक ऐसा जूते का जोड़ा नहीं बना सकता जिसे पहन कर कोई लंगड़ा आदमी अच्छी तरह से शीघ्र चल सके। संसार में कोई भी चश्मे वाला ऐसा चश्मे का शीशा नहीं बना सकता जिससे अंधे या धुंधे भी साफ देख सकें। कोई भी दर्जी किसी कुरूप व्यक्ति को सुरूपवान तथा सुन्दर नहीं बना सकता। इसलिये मैं कहता हूं कि इस संविधान की सफलता या असफलता उन लोगों के हाथों में होगी जो इसे कार्यान्वित करेंगे और अन्ततः उन पर ही सफलता या असफलता निर्भर है। इसीलिये मैंने यह कहा था कि यह एक स्मरणीय अवसर है, परम हर्ष का अवसर है, कदाचित उन्नति और प्रशंसा का अवसर भी है परन्तु सावधान रहने का अवसर अवश्य है। यह आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-परीक्षण का अवसर है। हमें यह देखना है कि यदि हम उन सब उपबन्धों का परिपालन करना चाहते हैं जिनकी हमने इस संविधान में व्यवस्था की है, यदि जो सफलता हम प्राप्त करना चाहते हैं जिनकी हमने इस संविधान में व्यवस्था की है, यदि जो सफलता हम प्राप्त करना चाहते हैं उसे प्राप्त करना है तो उसके लिये वातावरण बनाना हमें अभी यहीं से आरम्भ कर देना चाहिये। इस देश में असाम्प्रदायिक लोकतन्त्र के समुचित विकास के लिये हमें अविलम्ब परिस्थितियां पैदा करनी चाहिये। आपने हमारी जनता को वयस्क मताधिकार दे दिया है। यदि आप जनता में से निरक्षरता को पूर्णतया मिटाने के लिये पूर्ण उत्साह से कार्यारम्भ नहीं करते हैं तो वयस्क मताधिकार की मंजूरी वरदान होने की अपेक्षा अभिशाप हो जायेगी।

समस्त राष्ट्र-निर्माण सम्बन्धी विभागों की तुरन्त देखभाल करनी चाहिये और यदि जिस रूप में लोकतंत्र को इस संविधान में सोच समझ कर रखा गया है उस रूप में इसे सफल बनाना है तो इन राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में निधि की कमी या किसी अन्य कारण द्वारा रुकावट नहीं आने देनी चाहिये। यदि इस महान प्रयोग को सफल बनाना है तो मैं सेवा में के लोगों से विशेष कर निवेदन करूंगा कि वे इस काल का ध्यान रखें। इस सभा में जब सेवा में के लोगों के एक वर्ग के लिये संविधानिक प्रत्याभूतियां निहित की जा रही थीं तो इस सभा का और बाहर का एक बड़ा भाग ऐसा था जिसने उनके प्रति असन्तोष तथा अनिच्छा प्रकट की थी। इसके कारण सेवा के उन वर्गों में पर्याप्त वेदना हुई है जिनके लिये प्रत्याभूति की व्यवस्था नहीं की गई है। प्रत्याभूतियां देने के विरोध में मैं नहीं हूं, मुझे इस बात का खेद नहीं है कि इस संविधान में सेवा में के इन लोगों को कुछ प्रतिभूति दी गई है। सेवायें प्रत्येक सरकार की मेरूदंड होती हैं पर उसके एवज में हम यह आशा करते हैं

[पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र]

कि उन सब सेवा में के लोगों को, जिनको एक सुरक्षित पदावधि की प्रत्याभूति की गई है, हमें यह नैतिक प्रत्याभूति करनी चाहिये कि वे इस अवसर के अनुकूल उन्नत हो जायेंगे और वे अपनी ओर से सेवा की भावना से, अपने देश के प्रति सेवा की भावना से, अपने भाइयों के प्रति सेवा की भावना से, जो उनके अब स्वामी हैं, कार्य करेंगे, न कि केवल अपनी ही सेवा की भावना से कार्य करेंगे। सचिवालय में अथवा अन्य स्थानों में पद प्राप्त करने के लिये छल कपट नहीं होना चाहिये। हमें यह आश्वासन होना चाहिये कि जिस महान कार्य-क्षेत्र में हम प्रवेश कर रहे हैं उसको पूरा करने में सब सेवायें सहयोग देंगी और इस कार्य को पूरा करने में क्या मैं यह कह सकता हूं कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति पर उत्तरदायित्व है जिसे हमें पूरा करना है। भावी विधि निर्माता, भावी संसदीय ज्ञान वेत्ता, भावी मंत्री और वे लोग जिनको इस संविधान के प्रवर्त्तन करने के लिये, इस देश में शासन संचालन करने के लिये आमंत्रित किया जायेगा वे प्रथम व्यक्ति होने चाहिये जो अपनी नि:स्वार्थ लगन द्वारा संविधान के उपबन्धों के भावों का परिपालन करने के लिये अपने कठोर तथा सदप्रयत्नों द्वारा शेष देश के लिये उदाहरण प्रस्तुत करें। यदि इस कार्य को कर लिया तो मुझे पूर्ण आशा है कि हम इस देश को उस उच्च स्तर पर ला सकेंगे जिस पर यह पहले था। हम लोग जो कि उस प्राचीन गौरव के उत्तराधिकारी रहे हैं तभी देश के समक्ष और इतिहास के समक्ष खड़े हो सकेंगे और यह कह सकेंगे कि अपने समस्त दोषों तथा कमियों के सहित हमने अपनी निम्न रीति से अपना कार्य पूरा किया है; और भविष्य को वे संभालें जो हमारे बाद में आयेंगे।

अध्यक्ष महोदय: समाप्त करने के पूर्व, मैं जिस प्रस्तावना से हमने अपना संविधान आरम्भ किया है उसके भाव पर सभा में जोर डालना चाहूंगा। मेरे विचार से किसी भी संविधान में पाई जाने वाली वह एक अत्यन्त गंभीर तथा अति महान और सुन्दर घोषणा है। समाप्त करने के पूर्व उसकी ओर मुझे सभा का ध्यान आकर्षित करने दीजिये। मैं उसे पूरा का पूरा नहीं पढ़ूंगा पर जब कि मैं अपने मित्रों के आलोचनापूर्ण भाषणों को सुन रहा था मुझे उसके सुन्दर संदेश की याद आ गई:—

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये, तथा इसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिये, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर।"

इन महान शब्दों को, इन गंभीर शब्दों को हम अपने मंत्रों की तरह स्वीकार करें और प्रस्तावना तथा बन्देमातरम् इन दो मंत्रों को लेकर आगे बढ़ें।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे याद है कि लगभग तीन वर्ष पूर्व हमने इस संविधान सभा में विचार विमर्श आरम्भ किया था। इन तीन वर्षों में कई घटनायें हुई हैं और इस संविधान के प्रति, जो अब पारित होने वाला है, एक महान घटना जो उल्लेखनीय है वह यह है कि इन तीन वर्षों में जो अनुभव प्राप्त किया गया है वह इस संविधान के खंडों में लिख दिया गया हे। इससे यह सिद्ध हो जायेगा कि जिन लोगों पर इसके मसौदा बनाने का उत्तरदायित्व था वे हरे भरे स्थान के वातावरण में काम करने वाले केवल किसी विद्वत्परिषद के सदस्य या केवल वकील ही न थे। यह ठीक कहा जा चुका कि इतने अल्प काल में इतनी अच्छी रीति से इतना कार्य सिद्ध किया जा चुका है कि अन्य राष्ट्रों द्वारा संविधान का मसौदा बनाने के कार्य में प्राप्त की गई सफलताओं की तुलना में इस सफलता में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिये किसी को खेद हो सके, वरन ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनके लिये युक्ति युक्त रूप से हम गौरव अनुभव कर सकते हैं। तीसरा पठन ऐसा अवसर नहीं है कि संविधान के उपबन्धों का आलोचनात्मक या सुधारात्मक विश्लेषण किया जाये। पर चूंकि इस संविधान की यहां इस सभा के तथा बाहर के अनेक व्यक्तियों तथा पक्षों द्वारा आलोचना हुई है इस कारण मेरी कुछ ऐसी इच्छा है कि मैं उन मुख्य उपबन्धों का पुनर्विलोकन करूं जो इस संविधान में रखे गये हैं।

इस प्रयोजन के लिये मैंने इस देश में से दो पक्षों को चुना है—समाजवादी और हिन्दू महासभा। एक "भारतीय गणराज्य के संविधान का मसौदा" शीर्षिक के अधीन प्रकाशित हुई है जिस का रंग लाल है जो रंग कि कदाचित साम्यवादियों के एकाधिपत्य में है पर इस पर जो चिन्ह है वह उनसे भिन्न है। दूसरे पक्ष—हिन्दू महासभा ने भी "हिन्दुस्तान के स्वतंत्र राज्य का संविधान" नाम से ज्ञात पुस्तक प्रकाशित की है। मैंने इन दोनों लेख्यों का सावधानी पूर्वक अध्ययन किया है और मैंने यह देखा है कि इस देश में जिस संविधान का प्रचलन होना चाहिये उसकी मुख्य बातों में समानता है। लार्ड ब्राइस ने संविधान की यह परिभाषा की है "वह उस राजनैतिक समाज का रूप है जिसका संघठन विधि के द्वारा तथा आधार पर होता है अर्थात् वह जिसमें विधि ने अभिज्ञात प्रकार्यों तथा परिभाषित अधिकारों सहित स्थायी व्यवस्थायें स्थापित की हैं। वह केवल साधारण सिद्धान्तों का संग्रह भी हो सकता है जिनके अनुसार संविधान की शक्तियां, शासितों के अधिकार और इन दोनों में सम्बन्ध का समायोजन होता है।" अत: यह देखना है कि इस संविधान में इस रूप की स्थायी व्यवस्थायें कौन-कौन सी निहित की कई हैं कि जिनसे कोई राजनैतिक व्यवस्था स्थायी हो सकती है एक आधुनिक संविधान की परीक्षा पांच दृष्टिकोणों से की जा सकती है।

1. राज्य का प्रकार जिसके लिये संविधान बनाया गया है।
2. स्वयं संविधान का प्रकार।
3. विधानमंडल का प्रकार।
4. कार्यपालिका का प्रकार।
5. न्यायपालिका का प्रकार।

[श्री एन.वी. गाडगिल]

इस संविधान में राज्य का प्रकार फेडरल है। मुझे इस बात में संदेह है कि यहां अथवा बाहर कोई भी ऐसा व्यक्ति अथवा पक्ष है जो पूर्णतया एकात्मक राज्य का समर्थक रहा हो या अब भी हो।

इतने विशाल देश पर, जिसमें इतनी परम्परायें हों और जिसमें इतनी विभिन्न संस्कृतियां हों जिसमें लगभग दो सौ पचास विभिन्न भाषायें हों, शासन करना और इन सब बातों को इस रूप में एक शासन सूत्र में बांधना, कि एक एकात्मक राज्य, एक विधान-मंडल और एक कार्यपालिका हो, असम्भव है। श्रीमान, आखिरकार प्रत्येक संविधान अतीत के संचित ज्ञान का प्रतीक होता है और संविधानिक क्षेत्रों में के प्रयोगों के कुछ तत्व उसमें निहित होते हैं। जैसा कि मेरे पूर्व वक्ता ने अभी बड़े सुन्दर ढंग से कहा था कि कोरे कागज़ पर लिखना हमारे लिये सम्भव नहीं था। गत डेढ़ सौ वर्षों से और विशेषकर पिछले चालीस वर्षों से देश कुछ राजनैतिक संस्थाओं से प्रभावित हो चुका था और देश में जिन राजनैतिक विचार-धाराओं तथा प्रवृत्तियों का प्रचार हो चुका था उनसे यकायक सारवत् रूप में अलग होना संभव नहीं था। अतः यह स्पष्ट था कि राज्य का प्रकार फेडरल हो। यह एक ऐसा विषय है कि जिस पर इस देश में के सब पक्षों की पूर्ण सहमति है। अन्तर केवल यहां है कि इस फेडरल राज्य में केन्द्र दृढ़ होना चाहिये या दुर्बल। इस विषय में भी दोनों समाजवादी तथा हिन्दू महासभाई भी इस बात से सहमत हैं कि फेडरल राज्य या केन्द्र दृढ़ होना चाहिये। अतः मेरा विचार है कि ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिये लज्जित होना चाहिये। उपबन्ध—यहां तक कि जो सबसे बाद में जोड़े गये हैं उन पर भी विचार करते हुये सब उपबन्ध ऐसे हैं कि इन तीन वर्षों में जो अनुभव प्राप्त हुआ है उनके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि केन्द्र को अनावश्यक रूप में शक्तिशाली बना दिया गया है। इतिहास का यह अनुभव है कि राष्ट्रीयता के एकरूप करने वाले प्रभाव का जब आभास होता है तो सर्वप्रथम स्वाधीनता पर जोर दिया जाता है और उसके बाद लोकतंत्र पर। जैसा कि मैं कह चुका हूं दृष्टिकोण में संस्कृति में, भाषा में और इतिहास में अन्तर होने के कारण इसके पूर्व कि हम यह कह सकें कि भारतीय राज्य इस रूप में एक पूर्ण एकक है कि वह एक ठोस तथा सुगठित राज्य है हमें अभी बहुत कुछ करना बाकी है। अब भी विघटनात्मक प्रवृत्तियां हैं, अब भी ऐसी व्यक्तिगत तथा प्रान्तीय प्रवृत्तियां हैं कि यदि कोई अप्रिय बात हो जाती है तो बाहर हो जाना चाहते हैं, और आवश्यक राजभक्ति में अब भी तीव्रता की उस मात्रा की कमी है जो हम अन्य फेडरल राज्यों में देखते हैं। जब हमने तीन वर्ष पूर्व यह कार्य आरम्भ किया था तो वास्तव में हमारे सामने महानतम कठिनाई यह थी कि उन अनेक राज्यों को किस प्रकार संघटित किया जाये तो जो एकदम स्वतंत्र हो गये थे तथा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भी हो गये थे। पर धीरे-धीरे इस देश का संघटन हुआ और यह देखने के लिये कि यह पूर्ण रूप से सुसंघठित हो और किसी विघटनात्मक प्रवृत्ति या सम्बन्ध-विच्छेद के संकट से परे हो मेरा अब भी यह विचार है कि अभी कम से कम दस वर्ष के लिए एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से कुछ उपबन्ध जो केन्द्रीय सरकार को प्रान्तों के कुछ कार्यों या प्रशासनीय क्षेत्रों में निरीक्षण करने, या नियंत्रण करने या निदेश देने की शक्ति प्रदान करते हैं वे सब कल्याण के लिये हैं।

इसके पश्चात्, श्रीमान, जैसा कि मैं कह चुका हूं दूसरी कसौटी स्वयं संविधान का प्रकार है। यहां भी हम परम्परा पर बहुत अधिक निर्भर नहीं कर सकते हैं और इस कारण सदैव दृष्टिकोण यह रहा है कि केवल साधारण सिद्धान्तों को ही न रखा जाये जैसा कि अन्य अनेक देशों में किया गया है वरन बहुत सी अन्य बातों को भी रख लिया जाये और स्वतंत्रता की ओर ले जाने वाली अपनी यात्रा को प्रारंभिक स्थिति में महत्वपूर्ण विषयों को परम्परा पर न छोड़ें। इस संविधान पर यह दोष लगाया गया है कि इसको बहुत अधिक विवरणपूर्ण बना दिया गया है और अधिकांश विवरण हटाया जा सकता था। यह एक ऐसा विषय है जिससे बहुत से लोग सहमत होंगे। पर साथ ही साथ विगत कुछ वर्षों के प्राप्त किये गये अनुभव ने यह सिखाया कि केवल परम्परा पर बहुत सी बातों में निर्भर करना एक संकटजनक कार्य है और इसी कारण उन नये उपबन्धों की आवश्यकता हुई जो इस संविधान में निहित किये गये हैं।

लिखित संविधानों के प्रति महान आपत्ति यह है कि उनमें परिवर्तन करना बहुत कठिन हो जाता है। इस सम्बन्ध में मेरे विचार से जो उपबन्ध अन्तिम रूप में स्वीकार किये गये हैं वे न इतने व्यापक हैं जितने कि आस्ट्रेलिया के संविधान में या संयुक्त राष्ट्र अमरीका के संविधान में हैं और न वे इतने सरल हैं जितने इंगलैंड के संविधान में हैं। साधारण विधि और संविधानिक विधि में कुछ अन्तर होना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि संविधान की विधि जैसा कि इसके नाम ही से प्रतीत होता है एक संविधानिक विधि है और इसमें कोई परिवर्तन उतनी सुविधाजनक रीति से अथवा मैं यह कहूंगा कि उतनी सरलतापूर्वक नहीं करना चाहिये जैसा कि किसी साधारण विधि में कोई परिवर्तन किया जाता है। किसी भवन का एक समझदार स्वामी भी उस मरम्मत को कराने के लिये दस बार सोचेगा जिसे इंजीनियर निर्माण सम्बन्धी मरम्मत कहते हैं पर बार-बार साधारण मरम्मत कराने में कोई चिन्ता नहीं करेगा। इसी प्रकार इस संविधान के कुछ मूल सिद्धान्त हैं जिनको सरलता से नहीं बदला जा सकता या उतनी साधारण रीति से नहीं बदला जा सकता जैसे किसी साधारण विधि में परिवर्तन किया जाता है। मान लीजिये कि हम राष्ट्रपति के पद को मिटाना चाहते हैं या उसे वंशानुगत बनाना चाहते हैं। क्या एक विधेयक पेश करने और केवल बहुमत द्वारा उसे पारित कर देने की साधारण रीति से हम यह कर सकते हैं? यह संकटजनक होगा। इसी प्रकार वे उपबन्ध और वे व्यवस्थायें जो इस संविधान की आधार शिलायें हैं उनको इतनी सरलता से नहीं निपटाया जा सकता है। अतः जैसा मैंने कहा था जो उपबन्ध बनाये गये हैं न तो बहुत जटिल ही हैं और न बहुत सरल ही हैं।

जो इस संविधान की इस आधार पर आलोचना कर रहे हैं कि इसका निर्माण एक पक्ष ने किया है और यह ठीक वही यन्त्र है जिसका निर्माण फैसिज्म के उद्घाटन के प्रयोजन हेतु किया गया है मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वे उन उपबन्धों का अध्ययन करें विशेष कर उन उपबन्धों का जो संविधान की परिवर्त्तनीयता से सम्बन्ध रखते हैं और उनको यह विदित होगा कि यदि वे उसे बदलना चाहते हैं और यदि वे जनता को जनता के प्रतिनिधियों द्वारा उनकी दो-तिहाई की सीमा ही को अपने सहयोग में रख सकते हैं तो वे यदि पूरे के पूरे संविधान को नष्ट करना चाहते हैं तो कर सकते हैं। मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह यह देख सकते हैं कि इस संविधान में उनके पुराने मित्रों और नये दुश्मनों अर्थात् उद्योगपतियों पर उतना

[श्री एन.वी. गाडगिल]

कर लगाने की उनको पर्याप्त शक्ति है कि उद्योगपतियों की सत्ता मिट जाये। इस संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है जो पूर्णप्रभुता के समकक्ष न रखी जा सकती हो। विधान मंडल का प्रकार ऐसा है कि जहां तक प्रक्रिया का सम्बन्ध है केवल वहीं तक उसमें निर्बन्धन हैं। पर सार रूप में विधान मंडल या संसद की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता पर कोई निर्बन्धन नहीं है कोई परिसीमन नहीं है। जैसा कि किसी फ्रांसीसी लेखक ने अंग्रेजी संविधान के लिये कहा था कि "संसद सब कुछ कर सकती है सिवा इसके कि वह नर को नारी नहीं बना सकती।" मेरे विचार से यही इस संविधान के बारे में कहा जा सकता है और मैं समझता हूं कि भावी विधानमंडल जो कुछ नहीं कर सकता है वह यह है कि एक मूर्ख को चतुर नहीं बना सकता।

कार्यपालिका के प्रकार के सम्बन्ध में सब पक्ष इस बात से सहमत हैं कि वह संसदीय होनी चाहिये न कि राष्ट्रपतीय। वह संसद के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिये। यह प्रयोग कहां तक सफल होगा यह उन कतिपय परिस्थितियों पर निर्भर करता है जिनके अन्तर्गत वह प्रयोग कार्यान्वित होगा। यदि केवल दो ही पक्ष हों तो मुझे इसमें किंचितमात्र भी सन्देह नहीं कि यह प्रयोग बहुत कुछ रूप में सफल होगा। परन्तु यदि दो से अधिक पक्ष हुये तो मंत्रिमंडल का जीवन बहुत ही संकटमय हो जायेगा। जैसा कि मेरे एक मित्र ने अभी उस दिन एक प्रांत के मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में कहा था कि मंत्री लोरीवाले को इस कारण पैसा नहीं देता है कि शायद दूसरे दिन उसे उस मंत्री के बंगले से सामान वापस ले जाने के लिये उसकी आवश्यकता पड़े। फ्रांस के मंत्रिमंडलों जैसा अनुभव भी हो सकता है कि मंत्रिमंडल का औसत जीवन छः महीने से भी कम हो जाये।

इस दशा में जिस बात की आवश्यकता है जो नितान्त आवश्यक है वह वही है जिसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र ने, किया है कि एक शक्तिशाली, कुशल, ईमानदार तथा परिश्रमी असैनिक सेवा हो। मंत्री आते जाते रहेंगे; मंत्रिमंडल आते जाते रहेंगे; परन्तु वास्तविक सरकार; वास्तविक शासन असैनिक सेवाओं द्वारा चलता रहेगा। इस दृष्टिकोण से मेरी व्यक्तिगत सम्मति यह है कि यद्यपि जो उपबन्ध इस संविधान में बनाये गये हैं वे अच्छे हैं परन्तु वे पर्याप्त नहीं हैं। क्योंकि असैनिक सेवाओं पर देश का सुशासन निर्भर करता है: मंत्रिमंडल तथा संसदीय नेताओं पर यह बात निर्भर करती है कि सरकार लोकप्रिय है या अन्यथा। एक स्वतन्त्र देश में एक सर्वसाधारण व्यक्ति जो कुछ चाहता है या जिसके लिये उत्सुक रहता है वह सुशासन है, क्योंकि सुशासन प्राप्त कर लेने पर यह स्वाभाविक है कि स्वशासन से हट कर जोर सुशासन पर हो जाता है। मैं यह कहूंगा कि इस संविधान में जिस संसदीय कार्यपालिका का विचार प्रस्तुत किया गया है उसके लिये उच्च चरित्रबल के व्यक्तियों की अपेक्षा है और इस संविधान के अधीन सम्पूर्ण भार, सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वस्तुतः अध्यक्ष पर नहीं डाला गया है जैसा कि कुछ माननीय सदस्यों द्वारा सुझाव दिया गया था वरन वह प्रधान मंत्री पर, उसके व्यक्तित्व पर, कार्यारम्भ करने की उसकी चेतना पर, कथन करने की उसकी सामर्थ्य पर, लोक-मत का प्रतिवाद करने या उसके अनुकूल होने की उसकी सामर्थ्य पर और सबसे अधिक लोकप्रिय बातों के विरुद्ध ठीक और सही कार्य करने की

उसकी सामर्थ्य पर रहेगा—इस गुण और इस नैतिक साहस पर इस प्रयोग की सफलता या असफलता अवलम्बित होगी।

विधानमंडल के सम्बन्ध में हमने दोघरे विधानमंडल स्वीकार किये हैं और इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है और चूंकि निर्वाचक मंडल वयस्क मताधिकार पर आधृत होंगे मेरे विचार से प्रत्येक विधानमंडल को जितना गौरव प्राप्त होगा वह उससे कहीं अधिक होगा जो आज उसे प्राप्त है। पर इसके साथ-साथ अपने स्वामियों को शिक्षित बनाने का महान उत्तरदायित्व आ जाता है। यदि निर्वाचक मंडल सामान्य रूप में पर्याप्त शिक्षित नहीं है, यदि उसे किसी महान समस्या की ब्योरेवार नहीं वरन् एक मोटी रूप रेखा में जांच करने की सामर्थ्य नहीं है, यदि उसे एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के समक्ष परख करने की सामर्थ्य नहीं है तो जिस लोकतंत्र की हम कल्पना कर रहे हैं वह असफल होगा। प्रोफेसर लास्की ने यह कहा है कि विश्लेषण करने पर अन्तिम रूप में यह विदित होता है कि निर्वाचक मंडल के समक्ष कार्यक्रम की तुलना में कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया जाता है वरन नेतृत्व का व्यक्तिगत समीकरण प्रस्तुत किया जाता है यद्यपि बाह्य रूप में कार्यक्रम ही प्रस्तुत होता है। अमुक पक्ष का नेतृत्व किसके हाथ में है? साधारण जन पर इसका ही प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व का अनिवार्य प्रभाव पड़ता है—और इस देश में तो और भी अधिक प्रभाव पड़ेगा जहां महान आत्माओं का पूजन प्रचलित है और जहां यह कहना चाहिये कि राजभक्ति व्यक्ति जीवन का धर्म है। अतः निर्वाचक मंडल को शिक्षित बनाने की आवश्यकता सबसे बड़ी आवश्यकता है। अतः मैं इस बात पर जोर दूंगा कि जिन लोगों ने इस संविधान के निर्माण करने में भाग लिया है वे इस समय से लेकर निर्वाचन तक के बीच के समय को अपने-अपने निर्वाचक-मंडलों को इस संविधान के उपबन्धों को समझाने में लगायें।

न्यायपालिका के सम्बन्ध में श्रीमान, हमने उसको स्वाधीनता दी है और मैं समझता हूं कि ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें हम उन साधारण उपबन्धों से दूर हो गये हों जो अन्य देशों के संविधानों में पाये जाते हैं। आखिर संविधान तो केवल एक यंत्र मात्र है और उसकी मुख्य कसौटी तो यह है कि क्या उसके द्वारा उन आर्थिक तथा सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाती है जो हमारी दृष्टि में हैं यह यदि नहीं होती है तो उसे अस्वीकार कर देना चाहिये चाहे वह देश के महानतम संविधान के जानकारों अथवा महानतम वकीलों या स्मृतिज्ञों द्वारा बना हुआ हो और चाहे उन लोगों ने संघर्ष में भाग लिया हो या न लिया हो इससे कोई अन्तर नहीं आता। मुख्य बात यह है कि क्या यह यंत्र ऐसा है जो इस प्रकार का हो कि जिससे हम उन सामाजिक तथा आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें जो इस संविधान की प्रस्तावना में इतने सुन्दर शब्दों में निहित किये गये हैं। मैं इस संविधान की प्रस्तावना की तुलना अपने प्राचीन नाटकों के नान्दी-पाठ से करता हूं। नाटक की प्राचीन पुस्तकों में यह कहा गया है कि नान्दी पाठ ऐसा होना चाहिये कि उसमें कुछ ऐसे सुझाव हों जो यह प्रकट करें कि नाटक की क्या कथावस्तु होगी। इस संविधान में ठीक यही किया गया है। आलोचना की एक धारा का मुझे स्मरण होता है जो इस प्रकार थी कि इस संविधान में आर्थिक समता की प्रत्याभूति नहीं है। मैं उनसे यह कहूंगा कि वे केवल इन शब्दों को पढ़ें "सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय"। वर्त्तमान परिस्थितियों के प्रसंग में मैं यह कल्पना नहीं कर सकता

[श्री एन.वी. गाडगिल]

हूं कि यदि निजी उद्यमों को स्वतंत्र तथा निर्विरोध छोड़ दिया जाये तो सामाजिक न्याय सम्भव हो सकता है। पर जिन पर शासन का भार है यदि वे सामाजिक न्याय प्राप्त कराने के प्रति उत्सुक हैं और जब इस उद्देश्य से वे कार्य करेंगे तो परिवर्तन अवश्य होगा और उनको उत्पादन के साधनों का समाजीकरण करना पड़ेगा। केवल समाज का स्वामित्व ही सामाजिक न्याय प्राप्त करायेगा। इससे किसी प्रकार नहीं बच सकते हैं। यदि अमुक व्यक्तियों के हाथ में शक्ति रहती है तो यह धीरे-धीरे होगा और यदि अन्य लोगों के हाथ में शक्ति आती है तो वह शीघ्र होगा। पर जिस बात को मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि इस संविधान में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व, नियंत्रण और विनियमन को समाज के नेताओं के हाथों में सौंपते हुए—दूसरे शब्दों में राज्य के हाथों में सौंपते हुए सम्प्रदाय का संगठन करके सामाजिक न्याय प्राप्त किया जायेगा।

श्रीमान, संविधान एक यंत्र है और वह स्वयं लक्ष्य की पूर्ति नहीं है। चतुर कारीगर के हाथों में जाकर वह उसे जो कुछ वह चाहता है प्रदान कराने में सहायक होगा। असावधान कारीगर के हाथ में जाकर उसके लिये शिकायत की उसमें पर्याप्त मात्रा है। मेरी तुच्छ सम्मति में दोषों के होते हुए भी (इस संविधान में दोष अवश्य हैं और इसकी प्रशंसा करते हुये मैंने विवेक का परित्याग नहीं किया है यद्यपि अन्य व्यक्तियों के समान विश्वामित्र की तरह मैं इसका खंडन करना नहीं चाहता हूं) इस संविधान से वे सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं जिनका प्रस्तावना में समर्थन है। एक दूरदर्शी राष्ट्रपति प्राप्त करके, उत्साह और विचार पूर्ण प्रधान मंत्री प्राप्त करके, प्रसन्नचित विधि-निर्माताओं तथा उत्तरदायित्वपूर्ण विरोधी दल प्राप्त करके मेरे विचार से ऐसी कोई बात नहीं है जो हमें इस संविधान के अधीन उन लक्ष्यों को प्राप्त करने से रोक सके जिनका हममें से प्रत्येक व्यक्ति समर्थक है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगार** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, संविधान को अन्तिम रूप दिया जा चुका है और यह अवसर अपने श्रम पर एक और दृष्टि डालने के लिये है। इसमें सन्देह नहीं कि इस संविधान को हमने तीन वर्ष पूर्व आरम्भ किया था। जो समय इसमें लगा है वह अधिक नहीं है और इस समय का सदुपयोग हुआ है। केबिनेट मिशन की योजना के अधीन जब हमने कार्यारंभ किया था यह आशा थी कि केन्द्र के अन्तर्गत पाकिस्तान सहित समस्त भारतीय संघ आ जायेगा और उस सबके लिये संविधान बनेगा। उस समय यह विचार किया गया था कि केन्द्र केवल प्रतिरक्षा, संचार और विदेशी विषयों पर ही शक्तियां रखते हुये दुर्बल होना चाहिये। यदि हम उस योजना को स्वीकार कर लेते तो देश में के 565 राज्य सरलता से इस ढांचे में नहीं आते। यद्यपि हमारा कोई दोष न था फिर भी मुस्लिम लीग उसमें सम्मिलित नहीं हुई—नवम्बर या दिसम्बर 1946 से 15 अगस्त 1947 तक, जब कि देश का विभाजन हुआ, हमें उसके सम्मिलित होने की आशा में प्रतीक्षा करनी पड़ी। 15 अगस्त 1947 के बाद हमें उन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो विभाजन, शरणार्थियों, महात्मा गांधी की हत्या, हैदराबाद का झगड़ा और काश्मीर युद्ध के कारण पैदा हुई और इन कठिनाइयों में हमारा

बहुत सा समय लग गया। बहुत समय बाद हम इस कार्य में लगे और जितने दिन हम बैठे उसका हिसाब लगाया जाये तो इस दीर्घ काल में हमने पांच महीने से अधिक समय नहीं लगाया है। उन कारणों से जो हमारे काबू से बाहर थे हम इन विषयों को शीघ्र नहीं निपटा सके। उन विभिन्न समस्याओं पर और उनके आकार प्रकार पर तथा उन विभिन्न हितों पर विचार करते हुये, जिनको सुलझाना था, हमारी जैसी विशाल जन संख्या वाला कोई अन्य देश, मुझे पूर्ण विश्वास है कि, अपना संविधान बनाने में तीन वर्ष न लगाता बल्कि बहुत अधिक वर्ष लगाता। अतः यह हमारे लिये गौरव का विषय है कि आखिर हमने अपने इस परिश्रम को तीन वर्ष में समाप्त कर दिया।

आइये हम यह देखें कि इस समय में जो देखने में इतना दीर्घ है पर वस्तुतः बहुत ही अल्प है हमने क्या किया। हमने बहुत सी आश्चर्यजनक सफलतायें प्राप्त की हैं। हमने भारत का एकीकरण किया और यह कोई कागज पर की ही सफलता नहीं है। इस समय में जैसे-जैसे हम इस संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों का निर्माण करते गये वैसे ही वैसे हम उनको प्रवृत्त भी करते गये। हमने वास्तव में कई समस्याओं को सुलझाया और उसके बाद उनको संविधान में रखा। किसी अन्य देश में बिना खून बहाये 565 राज्यों का प्रवेश नहीं हो सकता था जैसा कि भारतीय संघ में हुआ। बिना खून बहाये यह सफलता प्राप्त की गई है और अब तक के हमारे अंग्रेज स्वामियों के लिये यह आश्चर्य की बात है कि एक बूंद खून तक बहाये बिना हमने इस कार्य को पूरा किया और इतनी सरलता से कि जनता ने स्वयं उसे स्वीकार किया। महाराज और राजकुमार सहर्ष संघ में सम्मिलित हुये और उसको सफल बनाने के लिये उद्यत हैं।

इसके बाद राज्यों के संविधान सम्बन्धी सफलतायें हैं। सर्वप्रथम राज्य इसके अन्तर्गत आने के इच्छुक न थे, और जब उनको प्रान्तों के साथ बुलाया गया तो राज्यों के लिये निर्मित अनुकरणीय संविधान को उन्होंने स्वीकार कर लिया है। यह कार्य भी बिना अधिक कष्ट या विरोध के पूरा कर लिया गया है। जिन व्यक्तियों पर इस कार्य का भार था उन्होंने सफलतापूर्वक इस कार्य का प्रबन्ध किया और लगभग प्रत्येक राष्ट्र संघ में आ गया है।

अल्पसंख्यक वर्गों की समस्या सरलता से हल नहीं की जा सकती थी, पर विभिन्न धार्मिक तथा अन्य अल्पसंख्यक वर्गों को धन्यवाद है कि उन पथृक निर्वाचक-मंडलों का परित्याग कर दिया गया जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने इस देश में एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय से विभाजित किया और देश पर शासन किया। आरम्भ में ही उन्होंने पृथक निर्वाचक-मंडलों को त्याग दिया और स्थानों के रक्षण सहित संयुक्त निर्वाचक-मंडलों को अपनाया पर बाद में उन्होंने स्थानों के रक्षण को भी छोड़ दिया। उनकी दूरदर्शिता को धन्यवाद है, देश के एकीकरण में यह एक अन्य कदम है और मुझे विश्वास है कि इसको उसी रूप में कार्यान्वित किया जायेगा जिस रूप में अल्पसंख्यक वर्गों ने स्वीकार किया है। अब यह बहुसंख्यक सम्प्रदाय पर छोड़ दिया गया है कि वह यह सिद्ध करे कि किसी व्यक्ति का चाहे जो कुछ धर्म हो केवल उसकी योग्यता और सेवा-भावना पर ध्यान दिया जायेगा न कि उसके संप्रदाय पर और अल्पसंख्यक वर्गों के व्यक्तियों से केवल इस आधार पर विभेद नहीं बरता जायेगा कि वे किसी विशिष्ट अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के व्यक्ति हैं।

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगार]

एक और कष्टदायक प्रश्न एककों और केन्द्र में शक्ति-विभाजन का था। एक समिति नियुक्त की गई और प्रान्तों के मुख्य मंत्री जो उसमें सम्मिलित हुये थे उन्होंने जहां आवश्यक समझा सहर्ष स्वीकार किया और इस प्रकार केन्द्र को शक्तिशाली बनाया। यहां तक कि उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में भी जहां संसद ने यह आवश्यक समझा कि समूचे भारत के लोक-हित के लिये किसी विशिष्ट उद्योग का केन्द्रीय विधान-मंडल द्वारा विनियमन किया जाये वहां समस्त देश के हित को ध्यान में रख कर इसे एक रियायत के रूप में मंजूर किया गया।

केन्द्र तथा राज्यों और प्रान्तों में वित्तीय शक्तियों का बंटवारा बहुत समय तक हल नहीं हो पाया और एक स्थिति में तो ऐसा प्रतीत हुआ है कि यह हल नहीं हो सकेगा। विक्रयकर जिस पर तू तू मैं मैं हुई अन्त में मिलकर तय कर लिया गया। संपत्ति-अर्जन का विषय भी सरल नहीं था। उदाहरणार्थ जमींदारी ले लेने पर प्रतिकर के विषय को लीजिये। अन्य देशों में सामन्तशाही पट्टों को मिटाने में बहुत समय लगता और इस प्रश्न पर युद्ध तक हो जाते। कई प्रान्तों में जमींदारी सम्बन्धी विधान का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। यद्यपि प्रतिकर के सम्बन्ध में एक बार ऐसा प्रतीत हुआ कि इस वाद हेतु से यह सारा का सारा विधान टूट जायेगा पर अन्त में राष्ट्र ने इसका भी हल खोज लिया।

इसके बाद भाषा का प्रश्न है जिस पर हमने यह सोचा कि कभी न कभी इस विषय पर बहुत वाद विवाद होगा। तीन या चार बार इस सभा से बाहर तथा इस सभा में भी हम एकत्रित हुए और अन्त में इस विषय पर भी हमने मिलकर संकल्प कर लिया। राष्ट्रभाषा या भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी स्वीकार कर ली गई है। ये ऐसे विषय हैं जिनमें से प्रत्येक यदि वर्ष नहीं तो कई महीने अवश्य लेता। हमने इन सब को हमारे पास जो अल्प समय था उसी में हल कर लिया।

कुछ उन आलोचकों को मैं उत्तर देने का प्रयास करूंगा जो यह कहते हैं हमने लगभग एक लाख रुपया प्रति दिन खर्च किया है अथवा ऐसी ही अन्य बातें कहते हैं। यह पूर्णतया गलत है। बाहर के लोग जो स्थिति का वास्तविक रूप में अनुमान नहीं कर पाते हैं वे दिनों की संख्या से बहक जाते हैं। तथ्य यह है कि हमने अधिक खर्च नहीं किया है। इसके विपरीत रुकावटें होते हुये भी हम कार्य करते रहे और अब सफलतापूर्वक संविधान की समाप्ति पर हैं।

हम यह ठीक-ठीक मालूम करें कि यह किस प्रकार का संविधान है जिसे हमने आत्मार्पित किया है। मैं यह दावा करता हूं कि यह संविधान पूर्णतया लोकतंत्रात्मक संविधान है। यह संविधान सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता को जनता में निहित करता है और इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता का पूर्ण रूप से प्रयोग करने की उसको शक्ति देता है। राजनैतिक प्रभुता के साथ-साथ इस संविधान में सामाजिक न्याय भी दिया गया है। व्यक्ति में परस्पर कोई भेद-विभेद नहीं है। बिना किसी पक्षपात के सब समान अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं, जब तक कि कोई व्यक्ति शील या लोक-चेतना के विरुद्ध न हो। अस्पृश्यता को सदा के लिए मिटा दिया गया है। आर्थिक क्षेत्रों में भी यद्यपि हमने स्पष्ट शब्दों में ऐसा नहीं कहा है पर हमने

समाजवादी लोकतंत्र को ही रखा है जिसका स्पष्ट रूप में कहना मैं अधिक पसन्द करता। संपत्ति अर्जन करने के लिये सब व्यक्तियों को समअवसर दिया गया है।

इस संविधान के विरुद्ध एक यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि यह भारत सरकार अधिनियम 1935 की प्रतिलिपि मात्र है और यह हमारे राष्ट्र की विचारधारा का प्रतीक नहीं है। इस तर्क में कुछ सच्चाई है पर वह पूर्णतया सच नहीं है। इस समय राजनैतिक क्षेत्र में दो विचारधारायें हैं जो एक-दूसरे के विरुद्ध कार्य कर रही हैं। एक पूंजीवादी लोकतंत्र है दूसरी समाजवादी आधिपत्य है। समाजवादी आधिपत्य रूस में प्रचलित है और पूंजीवादी लोकतंत्र अमरीका और इंगलैंड में है। संसार को आज दोनों राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में लोकतंत्र की आवश्यकता है। किसी मनुष्य से यह कहने से कोई लाभ नहीं होता कि संपत्ति के लिये समअवसर के बिना वह राजनैतिक लोकतंत्र से संतोष करे और उत्पादन के साधन चन्द व्यक्तियों के हाथों में सीमित कर दिये जायें। पूंजीवादी लोकतंत्र में राजनैतिक स्वतंत्रता है पर आर्थिक अधिपत्य है। समाजवादी अधिपत्य में राजनैतिक स्वतंत्रता नहीं है पर आर्थिक लोकतंत्र है। ये दो बल परस्पर संषर्घ कर रहे हैं और संभव है कि शीघ्र ही युद्ध छिड़ जाये। मैंने सोचा कि हम इन दोनों के बीच का मार्ग ग्रहण करें और ऐसा संविधान बनायें जो समाजवादी लोकतंत्र को निरूपित करे, दोनों आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों के लोकतंत्रात्मक होने से शक्ति अथवा संपत्ति चन्द व्यक्तियों के हाथों में न रहेगी। एक अर्थात् राजनैतिक लोकतंत्र का निरुपण कर दिया गया है। जाति, रंग अथवा धर्म के बिना किसी भेद-विभेद के प्रत्येक पुरुष और स्त्री को इस देश की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता धारण करने का और जैसी वह चाहे वैसी सरकार स्थापित करने और समय समय पर उसे बदलने का हक है। सामान्यतया अर्हता के रूप में साक्षरता या किसी प्रकार की शिक्षा पर आग्रह किया जाता है पर हमने यहां यह उपबन्ध किया है कि 21 वर्ष से अधिक आयु का कोई व्यक्ति जिस रूप की सरकार बनाना चाहता है उस रूप की सरकार बनाने में भाग लेने का उसे हक है। परन्तु आर्थिक क्षेत्र में मैं इस बात को बहुत पसन्द करता कि हम उस सिद्धान्त की परिभाषा से सूत्रपात करते जिसको हम एक लोकतंत्रात्मक समाजवादी गणराज्य में निरूपण करने का प्रयास कर रहे हैं। पर दुर्भाग्यवश हम शेष जनता को अपने साथ नहीं ले सके हैं। "समाजवाद" शब्द तक निन्दनीय समझा गया। पर बाद में निदेशक सिद्धान्तों में के कई खंडों द्वारा हमने पूंजीवादी की कठोरता को दूर कर दिया है। संसद में औद्योगिक नीति की परिभाषा में यह कहा गया था कि हम एक मिली-जुली आर्थिक व्यवस्था का अनुसरण करेंगे, अर्थात्, यह कि कुछ क्षेत्रों में राज्य उद्यमों का संचालन करेगा और अन्य क्षेत्र निजी उद्यमों पर छोड़ दिये जायेंगे। यद्यपि हमने शब्दों में ऐसा नहीं कहा है, पर इस संविधान में इसके लिये पर्याप्त उपबन्ध हैं और यदि उनको ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जायेगा तो शीघ्र ही देश में समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य का निरूपण हो जायेगा।

इसके बाद, श्रीमान, यह भी कहा जाता है कि अनुच्छेद 93 और 371 के द्वारा केन्द्र को बहुत अधिक शक्ति सौंप दी गई है और यह बहुत कुछ संभव है कि इसके कारण देश मैं फैसिस्ट प्रवृत्तियां फैल जायें। मैं कहता हूं कि इसके कारण ऐसी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगार]

कोई तानाशाही नहीं होगी। हमारे देश में 14 प्रतिशत से अधिक साक्षर नहीं हैं और सबको साक्षर बनाने में काफी समय लगेगा। अत: मुझे तो इस बात में भी सन्देह है कि वयस्क मताधिकार इस देश में सफल भी हो सकेगा या नहीं। यदि यह बात मुझ पर छोड़ी जाती तो मैं इस बात को अधिमान देता कि गांव को एकक बनाया जाये और वयस्क मताधिकार द्वारा पंचायत बनाई जाये जिनमें स्थानीय परिषदें इत्यादि हों और निर्वाचन परोक्ष हों। पर समय के अनुसार हमने देश के लिये वयस्क मताधिकार को चुना है। मुझे विश्वास है कि प्रौढ़ शिक्षा की उन्नति के साथ साथ यह अद्भुत प्रयोग भी शीघ्र ही सफल होगा जिसे हम वयस्क मताधिकार के रूप में इस देश में कर रहे हैं और प्रौढ़ शिक्षा के लिये हमने निदेशक सिद्धान्त में व्यवस्था की है और वह यह है कि प्रत्येक लड़के और लड़की के लिये 14वीं वर्ष की आयु तक शिक्षा नि:शुल्क तथा अनिवार्य होगी। इस बात पर भी हमें कोई शंका नहीं होनी चाहिये। जब तक प्रत्येक व्यक्ति साक्षर न हो तब तक अनुच्छेद 93 और 371 में जैसे उपबन्ध रखे गये हैं वैसे उपबन्धों की आवश्यकता होगी। यह एक परित्राण है जिसका इस देश में स्वतंत्रता के समस्त प्रेमियों द्वारा स्वागत होगा।

अत: मेरा विचार है कि यदि इन विभिन्न उपबन्धों को उसी रूप में कार्यान्वित किया जायेगा जिस रूप में इनका निर्माण किया गया है तो इस देश में शान्ति तथा मेल-जोल का प्रसार होगा। इस सभा के सदस्यों और बाहर के प्रत्येक स्त्री पुरुष को यह अनुभव करना चाहिये कि यह संविधान उन्हीं का है। कोई अन्तर नहीं रखा गया है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि यह एक प्रतिनिधियों की सभा है। इस संविधान के बनाने में सब संप्रदायों ने हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित जनजातियां सबके प्रतिनिधियों ने भाग लिया है। यहां सब राजनैतिक हितों का प्रतिनिधान है। यहां सब विचार धाराओं के नेता हैं। यहां तक कि डॉ. अम्बेडकर जो केवल देखने के लिये आये थे उन्होंने भी इस संविधान के निर्माण में प्रमुख भाग लिया है और जिस संविधान को हम अब पारित कर रहे हैं उसके वे भी एक बनाने वालों में से हैं। वही व्यक्ति जिसे शंका थी और जो आलोचना करने के लिये आया था उसने अन्त में इस संविधान का भार ग्रहण किया और उसका निर्माण किया। मैं उसको बधाई देता हूं और उसके प्रति जो सद्भावना हमने प्रकट की उसके लिये अपने आपको और जिस प्रकार से उसके प्रत्युत्तर में सौजन्यपूर्ण व्यवहार उसने किया उसके लिये उसको बधाई देता हूं। आखिर निकटतर सम्पर्क द्वारा हम एक दूसरे के दृष्टिकोण को सरलता से समझ सकते हैं। जब तक हम दूर दूर रहते हैं हम अपने छोटे-छोटे विरोधों को बढ़ा-चढ़ा देते हैं। यदि यह संविधान उसी भावना से कार्यान्वित किया जाता है जिस भावना से यह बनाया गया है तो मुझे विश्वास है कि हमारा राष्ट्र संसार में एक अग्रगण्य राज्य होगा।

हम लोगों में श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर जैसे महान स्मृतिज्ञ कई थे जिनको हम भूल नहीं सकते हैं। अपना दुर्बल तथा बुरा स्वास्थ्य होने पर भी इस सभा में तथा इससे बाहर समितियों में दोनों स्थानों में उन्होंने महान सेवा की। हम लोगों में हमारे मित्र श्री गोपाला स्वामी आयंगार जैसे प्रशासक भी हैं। एक असैनिक सेवक के रूप में, उसके बाद राज्यों में दीवान के रूप में, फिर राज्य-परिषद में उनको बहुत अनुभव है। यद्यपि बाद में इस कार्य को डॉ. अम्बेडकर के ले लेने पर उनके पास यह कार्य नहीं रहा और संविधान के विषय में उनका ज्यादा हाथ नहीं

रहा, पर मुझे विश्वास है कि उन्होंने जो महान सेवायें की हैं उनको हम नहीं भूलेंगे। सभा के प्रत्येक वर्ग ने अपना पूर्ण सहयोग दिया। हमारे कुछ मित्र जिन्हें संशोधन प्रस्तुत करने का बड़ा उत्साह था जैसे श्री कामत, श्री शिब्बनलाल सक्सेना, श्री सिधवा और डॉ. पंजाबराव देशमुख जिन्होंने बाद में अपना नाम इस सूची में जुड़वा लिया, इन सबने सहयोग दिया। यद्यपि अपने मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत किये गये कई संशोधनों को हम स्वीकार नहीं कर सके जिनकी विद्वता, बुद्धि और योग्यता का मैं बहुत प्रशंसक हूं, पर इस सभा के बाहर जब मैंने उनसे इस विषय पर बातें कीं तो उन्होंने यह स्वीकार किया कि यद्यपि हम उनके संशोधनों को स्वीकार नहीं करेंगे पर चूंकि वे अपना दृष्टिकोण हमारे सामने रखना चाहते थे इस लिये उन्होंने संशोधन प्रस्तुत किये। उन्होंने एक अच्छे खिलाड़ी की तरह अपनी पराजय स्वीकार की है। अत: मैं समझता हूं कि अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ने सहर्ष इस संविधान का निर्माण किया है। यदि कुछ लोगों की पराजय भी हुई तो वह पराजय इस रूप में स्वीकार की गई है कि अल्पसंख्यक मत वालों ने बहुसंख्यक मत वालों के समक्ष इस आशा में अपने विचार रखे हों कि किसी न किसी समय भविष्य में वे बहुसंख्यक मत वालों के विचार अपने पक्ष में कर लेंगे।

अन्तिम बात यह है श्रीमान कि हमने इस देश का विस्तार करने का प्रयत्न नहीं किया है। हमें राज्य-विस्तार लिप्सा नहीं है। हम अन्य देशों के प्रदेश नहीं चाहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हम शान्ति और मेल-जोल चाहते हैं। इस सम्बन्ध में संविधान में इस भाव का एक खंड जोड़ दिया है कि परस्पर राष्ट्रों के झगड़ों का निपटारा करने के लिये पंचायत के नियम का पालन होना चाहिये न कि युद्ध। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम राष्ट्रों में परस्पर युद्ध को बचाने के लिये अपना भरसक प्रयत्न करेंगे और शान्ति पूर्ण रीतियों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाने के लिये मध्यस्थ के रूप में कार्य करेंगे।

श्रीमान, इस अवसर पर यदि मैं राष्ट्रपिता-महात्मा गांधी—संसार में शान्ति और प्रेम के अवतार के प्रति अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि अर्पित न करूं तो मैं स्वयं अपने ही प्रति अन्याय करूंगा। *(तालियां)*। मैंने प्रस्तावना पर इस प्रकार का संशोधन प्रस्तुत किया था कि हमें अपने देश और अपने संविधान के लिये उनका चिर आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये उनसे प्रार्थना करते हुये इसे आरम्भ करना चाहिये। मैंने देखा कि आयरलैंड के संविधान में एक इसी प्रकार का उपबन्ध है जो "सर्वशक्तिमान की कृपा से..." शब्दों द्वारा आरम्भ हुआ है। मैंने सोचा कि इसी प्रकार से हम "महात्मा गांधी—राष्ट्र पिता की कृपा तथा आशीर्वाद से" इन शब्दों द्वारा आरम्भ करते। पर मेरा संशोधन पेश न होने दिया गया। श्रीमान, चाहे उनका नाम प्रस्तावना में अंकित हो या न हो कोई भी व्यक्ति हमारे हृदयों में से महात्मा गांधी की शान्तिपूर्ण तथा गंभीर वाणी को नहीं मिटा सकता। उनको अपना आदर्श मानकर आइये हम आगे बढ़ें और शान्ति के लिये तब तक प्रयत्न करते रहें जब तक कि सुख और शान्ति का संसार में साम्राज्य स्थापित न हो जाये। भगवान हम पर कृपा करें।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अवसर पर मैं इस कार्य की समाप्ति पर अपनी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकता हूं और इस बात का मानना बड़ा ही कठिन सा प्रतीत होता है कि इस कार्य

[श्री बी.जी. खेर]

को हमने केवल तीन वर्ष पूर्व ही आरम्भ किया था। मुझे याद है हमारी पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई थी और इन तीन वर्षों में इतनी अधिक घटनायें हुईं कि सामान्यतया उनको सुलझाने में शायद तीन दशक लगते। बाहर जो घटनायें हुईं उनके कारण हमारे संविधान में भी रूप-भेद हुआ है। अत: मेरी प्रथम प्रेरणा यह है कि एक बड़े कठिन, विशाल तथा महान कार्य को समाप्त करने और स्वतंत्र भारत को संविधान देने के प्रति मैं इस सभा को बधाई दूं। प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत होगा कि यह एक महान कार्य था। भारत ने जिस रीति से स्वाधीनता प्राप्त की यह रीति जितनी अनूठी थी उतना ही अनूठा इसी संविधान सभा का यह संविधान है। मैं नहीं समझता हूं कि कहीं भी एक संविधान सभा संविधान बनाने वाले निकाय के रूप में और देश की संसद के रूप में तीन वर्ष जैसे एक दीर्घ काल तक कार्य करती रही हो। तीन वर्ष के परिश्रम के बाद हमने एक संविधान का निर्माण किया है जिस पर गौरव करने का हमें पूरा पूरा अधिकार है।

जैसा कि मैंने कहा था कि हमारे संविधान के मसौदे में हमारे पहली बार अधिवेशन करने के बाद जो घटनायें हुईं उनके कारण बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। श्रीमान, इस बात को स्मरण रखिये कि मई 1946 में ही केबिनेट मिशन ने हमें एक दुर्बल केन्द्र दिया था—इसमें सन्देह नहीं कि वह एक फैडरेशन था पर एक बहुत दुर्बल केन्द्र के सहित था। लगभग 565 राज्यों और पन्द्रह प्रान्तों के सहित हमें एक संघ का निर्माण करना था जिसमें प्रतिरक्षा, विदेशी सम्बन्ध और संचार ही फेडरेशन के सब एककों के लिये संगठित होने के साधन थे। अब जो फेडरेशन हमने अपने देश के लिये रखा है उस पर ध्यान दीजिये। फेडरेशन का निर्माण इस विचार से किया गया है कि एक शक्तिशाली केन्द्र को शक्तिशाली रूप में संघठन करने के साधन हों।

हमने ऐसी कई समस्याओं को सुलझा लिया है जो आरम्भ में न सुलझने वाली सी प्रतीत होती थीं। पृथक निर्वाचक-मंडलों का प्रश्न था, मताधिकार की समस्या थी और अल्पसंख्यक वर्गों का प्रश्न था। परस्पर सद्भावना और एक-दूसरे के विचारों का सम्मान करते हुये इन समस्याओं को हमने अब संतोषजनक रीति से सुलझा लिया है। हमने इन सब जटिल समस्याओं को सुलझा लिया है जिनमें भाषा और लिपि की बड़ी दु:खदाई समस्या भी सम्मिलित है। उन सब विषयों को लेना मेरे लिये आवश्यक नहीं है जो इस संविधान के 395 अनुच्छेदों के अन्तर्गत आते हैं। कई मित्र ऐसे कई विषयों का निर्देश कर चुके हैं जिनका निर्देश करना मैं चाहता था।

श्रीमान, एक बात जो हमारे फेडरेशन को विशिष्टता प्रदान करती है वह यह है कि अन्य देशों के समान जिनमें फेडरेशन है किसी आक्रमण या किसी बाह्य अभिकरण के भय से हम फेडरेशन बनाने के लिये प्रेरित नहीं हुये हैं। डर के कारण हमारा फेडरेशन नहीं बना है। हमारा फेडरेशन स्वतन्त्रता के लिये वर्षों तक हमारे अनुपम संघर्ष का स्वाभाविक परिणाम है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में हम एक संकल्प पारित करते रहते थे कि स्वतन्त्र भारत का अपना संविधान बनाने के लिये हमारी एक संविधान सभा होनी चाहिये अपेक्षाकृत इसके कि वह संविधान किसी बाह्य अभिकरण द्वारा या किसी प्रकार के भय की भावना द्वारा हमें लिखाया जाये। हमारे संविधान का विकास एक वैसी ही अनुपम रीति का स्वाभाविक परिणाम है

जैसी अनुपम रीति से हमने स्वाधीनता प्राप्त की है। हमारा अब एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है जो विदेशी सम्बन्धों को विनिश्चित करने के लिये और जिस रूप में हम चाहें उस रूप में अपना भाग्य निर्माण करने के लिये भी पूर्णतया स्वतन्त्र है।

इस संविधान के उपबंधों के सम्बन्ध में मैं प्रो. शाह से इस बात में सहमत नहीं हूं कि हमने अनेक निर्बंधनों से अपने मूलाधिकारों को ऐसा जकड़ दिया है कि उन निर्बन्धनों ने उन अधिकारों को लगभग प्रभावशून्य सा कर दिया है। कुछ वक्ताओं ने इस विषय का निर्देश किया है। श्रीमान, मेरा विश्वास है कि ये बड़े बहुमूल्य अधिकार हैं। जिनको हमने अपने नागरिकों के लिये सुनिश्चित किया है। हमने उनको न्याय्य बना दिया है। उनके आधार पर न्यायिक जांच पड़ताल हो सकती है। अनुच्छेद 13 में यह व्यवस्था है कि भारत में प्रवृत्त विधियां जहां तक मूलाधिकारों के अध्याय से असंगत है वहां तक वे एकदम रद्द हो जायेंगी। भविष्य में भी जो विधियां इन अधिकारों के विरुद्ध होंगी वे रद्द समझी जायेंगी। अतः मेरा विश्वास है कि यह अध्याय हमारे नागरिकों के लिये बड़े बहुमूल्य अधिकारों की व्यवस्था करता है। जैसा कि मेरे एक मित्र ने अभी कहा था इतिहास में प्रथम बार अपने नागरिकों के लिये ये अधिकार सुनिश्चित किये गये हैं।

हमने अपने सार्वजनिक जीवन के अभिशाप अस्पृश्यता को मिटा दिया है। हमने अपेक्षित लोगों की एक महान संख्या की अर्थात् जन-जातियों की हालत सुधारने का प्रयत्न किया है। हमें अपने आपको इस बात की बधाई देनी चाहिये कि हमने मूलाधिकारों को पूर्ण सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समता प्रवृत्त करने या प्राप्त करने के साधन के रूप में भी दोनों अस्पृश्यों तथा जनजातियों और अन्य पददलित लोगों के लिये जनता के अन्य वर्गों के साथ समता की व्यवस्था की है। भाग-3 में, जो इन अधिकारों से सम्बन्ध रखता है, हमने एक अनुच्छेद रखा है जो संपत्ति के अनिवार्य अर्जन से सम्बन्ध रखता है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि यह एक ऐसा अनुच्छेद है जिसके कारण संपत्तिवानों को बड़ी घोर चिन्ता हुई थी। इस अनुच्छेद पर कटु वादविवाद हुआ—और एक बार तो ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारे इस झगड़े के कारण हमारा जहाज चट्टानों से टकरा कर चूर-चूर हो जायेगा पर अन्त में सद्भावना की विजय हुई और विचार विमर्श तथा वादविवाद द्वारा इस अनुच्छेद को यह रूप दिया गया और श्रीमान, मुझे विश्वास है कि हमने एक ऐसा हल निकाला है जिसके कारण संपत्तिवानों को कोई अनावश्यक शंका नहीं होनी चाहिये अपितु इसके कारण उनके मनों में विश्वास की भावना जाग्रत होनी चाहिये। मेरा ख्याल है कि स्वयं किसी संपत्ति का स्वामी न होने के कारण उनकी ओर से बोलने का मुझे हक नहीं है, पर यह स्पष्ट है कि हमारे जैसे राज्य को, जो सामाजिक न्याय और समता प्राप्त करने के सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास प्रकट करता है, लोकहित के लिये संपत्ति अर्जन करने के कुछ अधिकार रखने चाहिये और जब तक संपत्ति-स्वामियों की संपत्ति हरण नहीं करते, जब तक हम उनको यह निश्चित करने देते हैं कि राज्य जो प्रतिकार दे रहा है वह ठीक है या नहीं तब तक मैं नहीं समझता हूं कि उनके सशंकित होने के लिये कोई भी कारण हो।

इसके बाद श्रीमान, हमारे यहां निदेशक सिद्धान्त हैं और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि एक निदेशक सिद्धान्त यह है कि यह राज्य का कर्तव्य है कि वह पोषण

[श्री बी.जी. खेर]

भरण के स्तर को उच्च करे और औषधीय प्रयोजनों के अतिरिक्त अन्य रूप में, उन मादक पेय-पदार्थों तथा भेषजों के प्रयोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करे जो स्वास्थ्य के लिये हानिकर हैं। हम सब यह जानते हैं कि महात्मा गांधी के लिये यह कितनी चिन्ता का विषय था। स्वयं अपने प्रान्त के सम्बन्ध में मैं जानता हूं कि हमारी यह आलोचना की जाती है कि हमने बहुत जल्दी ही और उस सुधार को हाथ में ले लिया जिसका पुर:स्थापन करने में अन्य देश सफल नहीं हो पाये हैं। पर श्रीमान, मुझे यह देख कर बड़ा हर्ष हुआ है कि निदेशक सिद्धान्तों में यह एक बहुत ही आवश्यक निदेशक है कि इस देश के असंख्य लोगों के स्वास्थ्य और सुख की देख भाल राज्य द्वारा ही की जाये इसलिये उसका यह कर्तव्य होगा कि वह इस विषय के प्रयोग का प्रतिषेध करे। यह कहना व्यर्थ है कि हमने बहुत जल्दी की और मैं निवेदन करता हूं कि इस बात का निश्चय कि हमने जल्दी ही परिस्थितियों के आधार पर करना चाहिये। अपने प्रान्त के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि हमने सर्वप्रथम 1938 में प्रतिषेध का पुर:स्थापन किया। हमारे प्रान्त के एक भाग में प्रतिषेध था। इस समय हमने चार वर्ष दिये हैं अत: रूढ़िगत स्वार्थों में लिप्त व्यक्ति या वे व्यक्ति, जो इस बुरी आदत के शिकार हैं और जिसे वे छोड़ नहीं सकते हैं, हमारी या संविधान के इस भाग की जो व्यर्थ की आलोचना करते हैं वह आलोचना वास्तव में किसी प्रकार से न्यायपूर्ण नहीं है।

श्रीमान, यह भी कहा गया है कि इस संविधान का निर्माण करने के लिये हमने सन् 1935 के अधिनियम को ही आदर्श रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि उसे आदर्श रूप में क्यों न स्वीकार किया जाये परन्तु फिर भी मैं यह बताना चाहता हूं कि वह एक ऐसा आदर्श रूप न था जो एक स्वाधीन सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य के लिये बनाया गया हो। उसे आदर्श रूप में उन भिन्न भिन्न राज्यों की एक संस्था बनाने के लिये व्यवस्था की गई थी जिनमें राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति की समता का अभाव था। देशी राज्यों की समस्या को जिस रूप में हमने सुलझाया है उसके लिये धन्यवाद—सौ से लेकर कई करोड़ की जनसंख्या वाले 556 देशी राज्यों के स्थान में जिनको अब देशी राज्यों का अवशेष रूप कहा जा सकता है उनकी संख्या अब नौ रह गई है और यह सब अठारह महीने की अल्प अवधि के अन्तर्गत किया गया है। हमारे संविधान के मसौदे की प्रथम अनुसूची में केवल तीस एकक हैं जबकि भारत शासन अधिनियम 1935 में पन्द्रह प्रान्त और पांच सौ छप्पन देशी रियासतें हैं। अत: यद्यपि यह सही है कि हमने भारत शासन अधिनियम को यह देखने के लिये आदर्श माना है कि कोई महत्वपूर्ण प्रश्न, कोई महत्वपूर्ण समस्या, कोई महत्वपूर्ण मद ऐसे महत्वपूर्ण लेख्य के निर्माण करने में से रह न जाये, पर यह सत्य है कि 1935 के अधिनियम और सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य के इस संविधान में कोई समानता नहीं है जिस का इतनी सावधानी से परीक्षण कर, विचार विमर्श कर और पहले सोच समझ कर चार सौ अनुच्छेदों को बनाकर, हम निर्माण कर सके हैं। इसमें संदेह नहीं कि हमने तीन सूचियां स्वीकार की हैं जैसी कि 1935 के अधिनियम में हैं, पर हमने वर्तमान समय की व्यवहारिक आवश्यकताओं पर ध्यान दिया है। मैं यह जानता हूं कि सूचियों में रखे गये मदों

की अपेक्षित स्थिति के सम्बन्ध में बहुत असन्तोष है, पर यह कार्य संघ और प्रान्तों का है कि सुचारू रूप से कार्य संचालन करने के लिये कोई ऐसी रीति खोज निकाली जाये जिससे प्रान्तों की उन्नति को बनाये रखते हुए भी केन्द्र की शक्ति कम न हो।

श्रीमान, केन्द्र और राज्यों में वित्तीय सम्बन्ध वास्तव में एक बड़ी चिन्ता का विषय है, पर मुझे बड़ा हर्ष है कि सद्भावना के कारण हमने एक ऐसा सूत्र खोज लिया है। जिसको बड़ी उदारतापूर्वक दोनों प्रान्तों तथा केन्द्र ने स्वीकार कर लिया है। इसके प्रति हम शुभकामना की आशा करें।

एक और विषय जिसके लिये हमें गौरव करना चाहिये वह जिस रीति से हमने अल्पसंख्यक वर्गों की समस्या को सुलझाया है वह रीति है। हमारे मार्ग में वह एक बहुत बड़ा रोड़ा था। हमारे संविधान का भाग 16 हमारी रचनात्मक शैली का साक्षी है। अल्पसंख्यक वर्गों के भी हम बहुत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने एक सुन्दर रीति से हमारे उन प्रयत्नों में साथ दिया है जो हमने पृथक निर्वाचन मिटाने के सम्बन्ध में किये थे और साथ ही साथ उनमें यह विश्वास की भावना प्रेरित करने के लिये थे कि उनके हितों की उपेक्षा नहीं की जायेगी।

भाषा के प्रश्न पर भी, जिसका यहां निर्देश किया गया है और जिस पर बहुत समय तक चर्चा हुई है, बहुत कटु वाद विवाद उत्पन्न हो गया था। श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि एक वास्तविक राष्ट्र-भाषा के विकास करने का प्रयत्न किया जायेगा। नामों पर हमें झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। मुझे विश्वास है कि हमारी लिपि बहुत ही समृद्ध तथा वैज्ञानिक है, और यद्यपि जो लोग इसे जानते नहीं हैं उनको सीखने में संभव है कुछ कठिनाई हो पर यदि वे एक बार इसे सीख जायेंगे तो यह अनुभव कर सकेंगे कि राष्ट्रभाषा के लिये इस लिपि को स्वीकार करने का हमारा विनिश्चय बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण है।

इसके बाद श्रीमान, न्यायपालिका के विषय के बारे में मैं अधिक नहीं कहना चाहता हूं सिवा इसके कि केवल नारों के आधार पर हमें बहक नहीं जाना चाहिये। अधिकांश लोगों का ऐसा विचार प्रतीत होता है कि कार्यपालिका में सदैव ऐसे लोग होते हैं जो जनता की स्वतंत्रताओं का दमन करना चाहते हैं और न्यायपालिका उस साहसी योद्धा के समान हैं जो कार्यपालिका के चंगुल से जनता के स्वातंत्र्य को बचाती है। श्रीमान, मेरे विचार से यह धारणा बहुत ही गलत है और मुझे बड़ी खुशी है कि इस विषय पर हमारे संविधान में सहज तथा व्यवहारिक ज्ञान के विचार को अपनाया गया है। हमने न्यायपालिका के अधिकारों को सुनिश्चित किया है और कार्यपालिका की शक्तियों के लिये भी उपबन्ध बनाये हैं। आप इस सिद्धान्त को किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं कि कार्यपालिका में तो ऐसे ही व्यक्ति हों जो दुष्ट हों और जो केवल जनता की स्वतंत्रताओं का दमन करने के लिये चिंतित रहते हों और न्यायपालिका में केवल संत ही संत हों और यद्यपि मैं यह तो नहीं कहूंगा कि वे ऐसे संत हों जो शक्ति प्राप्त करने के सब विचारों से सर्वथा परे हों, हां, पर ऐसे हों जो उन भावनाओं में प्रवाहित न हों जिन में और लोग निश्चित रूप से प्रवाहित हो जायेंगे। मैं जानता हूं कि न्यायपालिका का निर्माण करना हमारे लिये एक बहुत कठिन कार्य है। न्यायाधीश बनने के लिये यदि वकील मंडल

[श्री बी.जी. खेर]

के सदस्यों को निमंत्रित किया जाये और वे इसे एक ऐसे कर्तव्य-पालन के निमंत्रण के रूप में न समझें जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये, क्योंकि न्यायासन पर आसीन न्यायाधीश उतना नहीं कमा सकता है जितना वकील-मंडल का एक वकील कमा सकता है, तो मुझे भय है कि शायद हम अच्छे न्यायाधीश प्राप्त न कर सकेंगे और उच्चतर पदों को प्रवर न्यायपालिका के न्यायाधीशों की पदोन्नति करके भरना पड़े। मुझे वास्तव में इस सम्भावना की आशंका है। चूंकि वकील के पेशे से मेरा 1909 से लेकर लगभग 40 वर्षों तक सम्बन्ध रहा है अत: परिस्थिति से अनभिज्ञ होकर मैं यह नहीं कहता हूं कि दोनों वकील-मंडल तथा न्यायाधीश गण को यह स्मरण कराने की आवश्यकता है कि वे भी नागरिक हैं और उन्हें जनता के अन्य वर्गों के दुखों में हाथ बंटाने के लिये उद्यत रहना चाहिये। मैं इस बात से सहमत हूं कि ऐसे परिमाण का होना आवश्यक है कि कार्यपालिका जनता के अधिकारों का अतिक्रमण न करे। कार्यपालिका और न्यायपालिका को पृथक करने से हम सहमत हो गये हैं परन्तु लोकतंत्र के आरम्भ में जिस बात की महान चिन्ता है वह है राज्य की प्रतिभूति। यह प्रतिभूति बहुत ही बहुमूल्य वस्तु है विशेष कर हमारे जैसे नवजात लोकतंत्र के लिये जहां नये विचार, नये सिद्धान्त, नये अधिकारों के प्रति धारणायें और स्थिति की समता जनता द्वारा कोई शनै: शनै: धारण नहीं की जा रही हैं। अत: वे लोग जो "नागरिक स्वातंत्र्य संकट में हैं" "कार्यपालिका द्वारा कष्ट" के नारे लगाते हैं उनके लिये यह अच्छा होगा कि वे इस बात को याद रखें कि वे इन नारों को तभी तक लगा सकते हैं और वे अपने नागरिक स्वातंत्र्य की तभी तक रक्षा कर सकते हैं जब तक कि अराजकता न होने पाये और कार्यपालिका कुशलता-पूर्वक, न्यायपूर्वक तथा समुचित रूप से कार्य करती रहे। *(वाह, वाह)*

श्रीमान भाषण समाप्त करने से पूर्ण इस महान कार्य के लिये, जिसे हम पूरा कर पाये हैं मुझे इस सभा को बधाई देनी चाहिये—और मैं इन तीन वर्षों के एक अधिक काल तक यहां सुख पूर्वक रहा। हममें से कुछ अपने निर्वाचनों में वयस्क मताधिकार पुर:स्थापन करने के परिणामों से घबराये हुए हैं। हमने एक बड़े साहस का कदम उठाया है। इसके लिए जिस परित्राण का मैं विचार कर सकता हूं वह सामाजिक शिक्षा की गति को बढ़ाता है। दूसरा परित्राण उत्तर सदन है। एक मित्र ने कहा था कि उत्तर सदन को हटा देना चाहिये। मैं उनके विचारों से सहमत नहीं हूं। कम से कम प्रथम दस वर्ष तक तो उत्तर सदन की नितान्त आवश्यकता है और मुझे खुशी है कि हमने जो विनिश्चय किये हैं उनसे उत्तर सदन की स्थिति असम्भव नहीं बना दी गई है। समता, स्वातंत्र्य तथा बन्धुता और सामाजिक न्याय के स्वप्न को पूरा करने की उत्सुकता में हम इस तथ्य को न भूल जायें कि इन महान बातों की प्राप्ति भी तभी संभव है जबकि अपने नव-जीवन के आरम्भ काल ही में हमारा क्षय न हो और अज्ञानता अथवा दुष्टता के कारण इस समस्त यंत्र का विध्वंस न हो। ऐसे राजनैतिक पक्ष हैं जो देश में उपद्रव पैदा करना चाहते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि केवल इसी ढंग से और केवल हिंसा द्वारा ही वे अपने स्वप्नों को पूरा कर सकते हैं। राष्ट्रपिता ने इसके विपरीत सोचा और इसके विपरीत शिक्षा दी और हमने उनके पद चिन्हों का अनुसरण किया और हमें उसका परिणाम बड़ा सुखद मिला और यही तथ्य—कि हम इस संविधान को इतना

शीघ्र बना सके–मैं इसे 'शीघ्र' ही कहता हूं– और इतनी शान्तिपूर्ण नीति से बना सके—इस बात के कारण हैं कि हमने उन्हें अपना मार्गदर्शक तथा नेता समझा। कुछ भी हो, श्रीमान, यह एक यशपूर्ण संकट है जिसे हमने अपने ऊपर लिया है—उस साधारण जन को भाग्य सौंपते हुए जिसके सुख और जिसकी उन्नति के लिये यह संविधान है और इस संविधान का निर्माण किया गया है।

एक बार फिर मैं इस सभा को बधाई देता हूं, और मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि हमने एक ऐसा काम किया है जो इस बात को निश्चित करेगा कि जिस सामाजिक न्याय, शान्ति, उन्नति तथा सम्पन्नता को प्राप्त करने का हमारा उद्देश्य था वे भारत को प्राप्त होंगे। *(तालियों की घोर ध्वनि)*

***अध्यक्ष:** सभा स्थगित करने से पूर्व मैं सदस्यों को यह सूचित करना चाहता हूं कि कल जिस अनुमान को लेकर मैं आगे बढ़ा था वह गलत निकला। मैं इस आधार पर आगे बढ़ा था कि वक्ताओं की संख्या 72 होगी जिनके नाम मुझे कल प्रात:काल तक प्राप्त हो चुके थे। उस समय से अब तक इस सूची में नामों की संख्या बढ़कर 125 हो गई है और संभव है, कि इस सप्ताह के शुक्रवार तक, जिस दिन कि हम समाप्त करना चाहते हैं, इस सूची में इस सभा के सब सदस्यों की संख्या आ जाये। इस कारण न तो केवल तीन घंटे प्रति दिवस बैठना संभव है और न यह ही संभव है कि प्रति वक्ता को 20 मिनट दिये जायें। अत: मेरा यह विचार है कि आज से आगे हम सुबह और दोपहर बाद, दस से एक तक और तीन से पांच तक, दोनों समय समवेत हों, और वक्ताओं से मैं यह आशा करूंगा कि वे इस सप्ताह में तो 15 मिनट अपने भाषण में लगायें और आगामी सप्ताह में शायद यह घटा कर 10 मिनट कर दिया जायेगा। आज दोपहर बाद से प्रत्येक वक्ता के लिये 15 मिनट का समय होगा और प्रत्येक दिन हम दस से एक और तीन से पांच तक समवेत हों।

सभा तीन बजे तक स्थगित हुई।

इसके बाद सभा दोपहर के भोजन के लिये दोपहर बाद के तीन बजे तक के लिये स्थगित हुई।

सभा दोपहर के भोजन के बाद तीन बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

***अध्यक्ष:** हम अब चर्चा आरम्भ करेंगे।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, कई माननीय सदस्य भाषण दे चुके हैं, और संविधान के मसौदे में अपने अपने विचारों के अनुसार अच्छी और बुरी बातें बता चुके हैं। माननीय श्री अनन्तशयनम् आयंगार तथा माननीय श्री गाडगिल ने बड़े विशद रूप में उपबन्धों का विश्लेषण किया है और सभा को यह बताया कि जिस अवधि में यह संविधान सभा इस संविधान को बनाती रही उस अवधि के अन्तर्गत इस संविधान में हमने क्या कार्य पूरे किये हैं। कुछ उपबंधों के प्रति संभव है कुछ मतभेद हो सकता है। कुछ

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

लोग कुछ उपबंधों को कल्याणकारी समझें और कुछ लोग उन्हीं उपबंधों को आपत्तिजनक समझें। परन्तु श्रीमान, इस बात पर बहुत कुछ निर्भर करता है कि इन उपबंधों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जायेगा तथा यह भी कि जनता कितनी सचेष्ट है। यदि हम सब सचेष्ट हैं तो संविधान के उपबंधों में चाहे जो कुछ भी हो, सारी बातें ठीक होंगी। ऐसे व्यक्ति हैं जो उन शक्तियों पर आपत्ति करते हैं जो 257, 358 और 365 जैसे तथा अन्य अनुच्छेदों के उपबंधों द्वारा केन्द्र को दी गई हैं। लोग 371 अनुच्छेद पर आपत्ति करते हैं जो राज्यों पर अधीक्षण रखने और उनको निदेश देने की शक्ति केन्द्र को देता है। पर जो राज्यों की हालतों से परिचित हैं वे वास्तव में केन्द्र को और भी अधिक व्यापक शक्तियां देने का स्वागत करेंगे। राजस्थान में क्या हो रहा है। लोगों को उनके घरों से उठा लिया जाता है और उनको मुक्त करने के लिये धन लिया जाता है। यदि राजस्थान के प्राधिकारी सख्ती करने या कदम उठाने में समर्थ नहीं हैं तो यह निश्चय ही उनके हित की बात होगी कि केन्द्र निदेश दे और उन निदेशों का पालन किया जाये और यदि पालन न हो तो केन्द्र शासन भार ले ले और प्रबन्ध करे। कुछ स्थानों में सायंकाल के 6 बजे बाद लोगों का घूमना फिरना असंभव हो गया है और लोग घर के भीतर रहना पसंद करते हैं। यदि ऐसी घटनायें होतीं हैं तो आप यह कल्पना नहीं कर सकते हैं कि किस प्रकार की सहायता या किस प्रकार हस्तक्षेप आवश्यक होगा। आखिर सब शक्तियों का प्रयोग आपात की दशा में ही होगा और अपनी ओर से यह धारणा कर लेना गलत होगा कि केन्द्र इन शक्तियों का प्रयोग करेगा ही—वह तो केवल तभी प्रयोग करेगा जब कि उनका प्रयोग करना नितान्त आवश्यक होगा। जो कार्यपालिका इन शक्तियों का प्रयोग करेगी वह कोई अदमनीय या न हटाई जा सकने वाली कार्यपालिका नहीं है। यदि वह गलत प्रयोग करती है तो सभा के सदस्य उसको हटा सकते हैं और मैं नहीं समझता हूं कि हम इस समय की वस्तुस्थिति की तुलना भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व की वस्तुस्थिति से करें जब कि कार्यपालिका न हटाई जा सकती थी और न सभा को उसे हटाने की कोई शक्ति थी। कुछ ऐसे उपबंध हैं जिनके बारे में मिथ्या धारणायें फैली हुई हैं। जनता के कुछ वर्ग यह कहते हैं कि यह वयस्क मताधिकार एक शुभ वस्तु है यह प्रत्येक व्यक्ति को 16 आने लोकतन्त्र प्रदान करता है और प्रत्येक स्त्री या पुरुष सरकार पर अपना प्रभाव जमा सकेगा। कुछ लोग समझते हैं कि 90 प्रतिशत निरक्षरता से मुक्त यह शत प्रतिशत लोकतंत्र एक संकटजनक प्रयोग होगा और इस विषय में हमें सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये था। लोग यह विचार कर कांपते हैं कि कोई व्यक्ति जो निरक्षर है और अभी तक मतों का मूल्य नहीं समझता है यदि वह अपने मत का गलत प्रयोग करेगा तो क्या होगा। पर वयस्क मताधिकार दिया गया है, क्योंकि वयस्क मताधिकार के समर्थक होते हुए नेताओं के लिये यह असंभव हो गया है कि वे यह कहें कि वे उसे नहीं चाहते। मैं जानता हूं कि कई नेता वयस्क मताधिकार को अच्छा नहीं समझते पर उन्हें ऐसा कहने का साहस नहीं होता।

कई प्रान्तों में वर्तमान वस्तुस्थिति के कारण भी केन्द्र के लिये शक्तियां आवश्यक हो गई हैं। जो प्रान्तीय सरकारों तथा केन्द्र के कार्यों का पक्ष-समर्थन करने वाले हैं वे ही लोग सरकार के सर्वोच्च आसन पर विराजमान हैं। कांग्रेसियों का एक दल

कांग्रेसियों के दूसरे दल से लड़ रहा है—जो लोग सरकार से बाहर हैं वे केवल इस कारण सरकार की शक्ति कम करना चाहते हैं कि वे दूसरे दल के हैं। लगभग सब प्रान्तों में यही हो रहा है और जिस दिन भी आप समाचार पत्रों को खोलें आपको यही समाचार मिलेगा। यह एक वैयक्तिक ईर्ष्या तथा झगड़े का प्रश्न हो गया है। यदि विरोध करने के लिये कोई भी बात न हो तो भी चूंकि शक्ति हमारे हाथ में नहीं है वह दूसरे के हाथ में है हम शिकायत करते हैं और वहां दोष निकालते हैं जहां दोष है ही नहीं। इस प्रकार कांग्रेसी सरकार जन साधारण की दृष्टि में घृणित बनाई जा रही है और इसी कारण यदि हम वास्तव में कांग्रेस तथा सरकार की स्थिति में सुधार करना चाहते हैं तो इस दुर्गन्ध को निकाल देना चाहिये। पर अभी मुझे ऐसे कोई लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। और अधिकांश प्रान्तों में यही दुखप्रद कहानी गढ़ी जाती है और प्रत्यक्ष देखी जाती है। अत: यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे उपबन्ध होने चाहिये जिनका जब शासन भंग होने की संभावनायें प्रतीत हों तो उपयोग हो सके। अब भी आप यह देखते हैं कि जब केन्द्र के मन्त्री कोई बात कहते हैं तो कुछ प्रान्तीय मंत्री ऐसे कथन निकाल देते हैं जो केन्द्र की नीति के पूर्णतया विरुद्ध होते हैं। केन्द्रीय सरकार कहती है "हम चाहते हैं कि कपास पैदा किया जाये।" बम्बई के एक मंत्री कहते हैं "हम तब तक ऐसा नहीं करेंगे जब तक कि केन्द्रीय सरकार हमें खाद्य-पदार्थों के प्रदाय का आश्वासन न देगी" मानो कि केन्द्र द्वारा खाद्य-पदार्थ दिये ही न जाते हों और बिना उस आश्वासन के खाद्य-पदार्थ भेजे ही न जायेंगे। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों में परस्पर संयोग होना चाहिये। अन्यथा शासन चलाना लगभग असंभव सा हो जायेगा और यह कार्य बहुत कठिन हो जायेगा।

श्रीमान, इस बात पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि संविधान किस प्रकार कार्यान्वित होगा और कौन व्यक्ति उसे कार्यान्वित करेगा। यदि आप किसी कार्य का भार 'क' व्यक्ति पर डालते हैं तो संभव है कि वह उसे बड़ी सफलतापूर्वक कर सके परन्तु यदि आप 'क' के स्थान में कोई अन्य व्यक्ति रखें तो यद्यपि इस तथ्य के होते हुए भी कि उसे वही साधन प्राप्त होंगे वह सब गड़बड़ कर दे। इस बात पर बहुत अधिक निर्भर करता है कि संविधान किस प्रकार कार्यान्वित होता है, कौन कार्यान्वित करता है और किस नीति से कार्यान्वित किया जाता है। लोग सदैव दोष निकालते रहेंगे पर यह संविधान बहुत ही संतोषजनक संविधान है और यदि इसको ठीक रूप से कार्यान्वित किया जाता है और जो लोग सहारा दे सकते हैं उन लोगों द्वारा ठीक सहारा मिल जाता है तो मैं समझता हूं कि काम संतोषजनक रीति से होंगे। कुछ लोग यह कहते हैं कि कुछ मूलाधिकार और भी अधिक व्यापक होने चाहिये थे। मेरी इच्छा है कि मूलाधिकारों के साथ साथ कुछ मूल कर्तव्य भी होते। यदि हम अपने अधिकारों की अपेक्षा अपने कर्तव्य का अधिक विचार करें तो हमारी बहुत-सी कठिनाइयां दूर हो जायें और अधिकार अपने आप मिल जायें और उन अधिकारों के अभाव के कारण कठिनाइयां अनुभव करने का अवसर ही न मिले।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, लगभग तीन वर्ष के अन्त में हम अपना विचार विमर्श समाप्त करने की स्थिति में हैं। वर्तमान संविधान के कुछ पहलुओं की चर्चा करने से पूर्व जिस रीति का हम पालन कर चुके हैं

[श्री एच.वी. पातस्कर]

उसका मैं बहुत संक्षेप में वर्णन करना चाहूंगा। जब हमने सर्वप्रथम यह कार्य आरम्भ किया था हमारा निकाय केवल संविधान निर्माण करने वाला निकाय था और उस समय भारत अविभाजित था और अखंड रूप में था। जब हम प्रथम बार यहां समवेत हुए थे सदस्यों का एक ऐसा भी वर्ग था जिसका इस सभा के लिये निर्वाचन हुआ था और वे सदस्य हम से संयोग नहीं रखते थे। इस समय अपने अधिवेशन के पांचवें दिन लक्ष्यमूलक संकल्प प्रथम बार पेश किया गया जिसका भारत स्वतंत्रता का आदेश-पत्र के रूप में ठीक वर्णन किया गया है। वह संकल्प 13 दिसम्बर 1946 को पेश किया गया था और 22 जनवरी 1947 को सर्वसम्मति से पारित किया गया था। मैं सभा का ध्यान उन तीन बातों की ओर आकर्षित करना चाहूंगा जो उस संकल्प में थीं। सर्वप्रथम उसमें यह निर्धारित किया गया था कि भारत एक स्वाधीन संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य होगा। दूसरी बात यह है कि भारत एक संघ या फेडरेशन होगा और उस फेडरेशन में अपनी वर्तमान सीमाओं सहित तथा ऐसी अन्य सीमाओं सहित जो संविधान सभा द्वारा विनिश्चित की जायें राज्य-क्षेत्र होंगे और ये राज्य-क्षेत्र अवशिष्ट शक्तियों सहति न्यूनाधिक रूप में स्वायत्तशासी एकक होंगे, और सिवा उन शक्तियों और कृत्यों के जो केन्द्र को सौंपे जायें या सौंपे जायेंगे ये एकक सरकार और प्रशासन की सब शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करेंगे। श्रीमान, उससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय जो कुछ हमने चाहा था वह भारत के उन कई राज्यों-क्षेत्रों या राज्य-क्षेत्रों के भागों का एक प्रकार का फेडरेशन था जिनका स्वायत्तशासी या अर्द्ध स्वायत्त-शासी एककों में निर्माण होने वाला था। उस संकल्प से पारित हो जाने के पश्चात् कई समितियां बनाई गईं और उनमें से एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण समिति संघीय शक्ति समिति थी जिसने अपना प्रतिवेदन 4 जुलाई 1947 को प्रकाशित किया था। वह प्रतिवेदन मई 1947 में तैयार हो गया था। श्रीमान, उस प्रतिवेदन में, आप यह देखेंगे कि उसके सर्वप्रथम खंड में यह कहा गया है कि फेडरेशन भारत नाम से ज्ञात एक स्वाधीन गणराज्य होगा। इसका यह अर्थ है कि अब तक यही विचार था कि भारत इन एककों का फेडरेशन होगा। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं उस समय सर्वसम्मत्ति यह थी कि हम जो निर्माण करना चाहते थे वह कई राज्यों का एक पूर्ण, शुद्ध फेडरेशन था। पर इसी समय में कई घटनायें हुईं। 15 अगस्त 1947 को भारत की जनता को शक्ति हस्तान्तरित की गई और उसी समय भारत का विभाजन भी हुआ। यह हमारे कार्य आरम्भ करने के पश्चात् और भारतीय स्वतंत्रता के आदेश-पत्र के नाम से ज्ञात संकल्प को पारित करने के पश्चात् हुआ। इसके पश्चात् श्रीमान, जैसा कि हम सब को भली प्रकार विदित है विभाजन के बाद कई दुखद घटनायें हुईं और केवल हमारे नेताओं पर ही नहीं वरन् संविधान सभा पर भी भारी उत्तरदायित्व लादा गया जो भारत स्वाधीनता अधिनियम के अधीन दोनों संविधान निर्माता निकाय के रूप में तथा केन्द्रीय संसद के रूप में भी कार्य करने लगी। यदि ये घटनायें न होतीं तो शायद एककों का एक वैज्ञानिक व्यवस्थानुसार, पूर्ण फेडरेशन बनाने की अपनी मूल योजना पर हम जमे रहते। पर इन घटनाओं और संविधान निर्माण करने के कार्य ने मिल कर हमारे दृष्टिकोण पर प्रभाव डाला जो उस समय तक तो पूर्ववत ही था और हमारे कार्य के कई पहलुओं पर भी प्रभाव डाला। इस काल में इन विरोधी घटनाओं के यकायक होने से कुछ सीमा तक हमारी दृष्टि धुंधली हो गई। एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार एक दम एक प्रमुख विषय बन गया। मैं यह कहने

में अन्तिम वक्ता सहित किसी से पीछे नहीं हूं कि एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार की निस्सन्देह आवश्यकता है। पर यह देखना होगा कि इसका क्या अभिप्राय है। राज्यों की समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए जिनको जाने वाले अंग्रेज प्राधिकारियों द्वारा अस्वाभाविक दशा में छोड़ा गया था हमारा कार्य और भी अधिक जटिल हो गया और स्वयं पाकिस्तान की उत्पत्ति ही ने बहुत सी कठिनाइयां पैदा कर दी हैं। पाकिस्तान के भूत ने, जो भारत के ही शरीर से पैदा हुआ था, भारत के तीन टुकड़े कर दिये और उसी पर उन निर्दोष हत्याओं का उत्तरदायित्व है जिसका उदाहरण मानव इतिहास में नहीं है और इसके कारण हम शेष भारत में कभी भी कोई भाग रखने के विचार मात्र से कांपने लगे। इसके कारण उस समस्या के प्रति हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया जो हमारे सम्मुख थी। यदि हम उन बातों पर ध्यान दें जिनको हम सदा विचारते आये थे तो हम यह देखेंगे कि पहले हम शुद्ध रूप में फेडरल संविधान बनाने का प्रयास करने में संलग्न थे, पर अन्तर्कालीन घटनाओं, विभाजन की दुख:पूर्ण घटना और बाद में जो घटनायें हुई उन्होंने हमारे प्रथम स्वाधीनता के आदेश पत्र में परिवर्तन करने के लिये हमें विवश किया और जो लक्ष्य हमने अपने सामने निश्चित किया था उससे अपने आपको हटा लेने के लिये विवश किया। और ये सब बातें इस तथ्य के कारण हुईं कि हम एक ऐसे केन्द्र को रखने के विचार से प्रभावित हो गये जो शक्तिशाली हो। इस सम्बन्ध में मैं यहां यह कहना चाहूंगा कि प्रत्यक व्यक्ति यह चाहता है कि विश्व की घटनाओं का जो रूप इस समय है उसके अनुसार हम देश में एक शक्तिशाली सरकार चाहते हैं। इस सरकार के 'शक्तिशाली' होने का क्या अर्थ है? 15 अगस्त 1947 को शक्ति उस जनता को दे दी गई थी जो कई बातों में आपस में मतभेद रखती थी। कम से कम 15 अगस्त तक हम यह सोचते थे कि प्रशासन का उपयुक्त रूप केवल फैडरल ही हो सकता है जिसमें जनता के इन वृहद समुदायों द्वारा निर्मित उपयुक्त एकक हों। पर जैसा कि मैं कह चुका हूं कि जो घटनायें हुईं उनके कारण हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। इस नई शक्तिशाली रचना का हम किस प्रकार निर्माण करें? हमें जनता को एक-एक प्रकार के पृथक-पृथक शक्तिशाली एककों में बांटना है। अथवा क्या केन्द्रीय प्रशासन का एक उस रूप में यकायक परिवर्तन करना संभव हो सकता है जिस रूप की एक केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी सरकार जैसी किसी विदेशी सरकार द्वारा आरोपित की जा सकती थी? हमें इन एककों का निर्माण करना है और एक शक्तिशाली केन्द्र के निर्माण करने में हमें एककों का ऐसा निर्माण करना चाहिये कि वे स्वयं शक्तिशाली हों। जब तक एकक शक्तिशाली नहीं होंगे तब तक फेडरेशन कभी भी शक्तिशाली नहीं हो सकता है। और मैं तो यही कहूंगा कि द्वितीय पठन के समय हम में भय की भावना पैदा हो गई। यह हो सकता है कि हमारे ही देश में जो घटनायें हुईं उन के आधार पर तथा बाहर की घटनाओं के भी आधार पर इसको ठीक समझा गया था। जनता में निरक्षरता के कारण वयस्क मताधिकार पर भी भिन्न रूप से विचार किया जाता था। पर इस निरक्षरता से तो सब पहले से ही परिचित हैं और इस बात से भी परिचित हैं कि यद्यपि हम इस निरक्षरता को अल्पकाल में हटाना चाहते हैं पर वह हटाई नहीं जा सकती है। अत: वयस्क मताधिकार को केवल एक गंभीर संदेहयुक्त विषय के रूप में ही नहीं वरन एक घोर संकट के विषय के रूप में समझा जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्यों का स्वायत: शासन का अर्द्ध-स्वायत्त शासन राष्ट्र संकट का एक विषय समझा जाने लगा। हमने फैडरेशन

[श्री एच.वी. पातस्कर]

का रूप तो रखा परन्तु उस फैडरेशन का सार या विषय बदल दिया। एक फैडरेशन रखने के विचार से ही हम प्रांत संज्ञा के स्थान में राज्य संज्ञा रखने लगे। यदि आरम्भ से वर्तमान विचार रहता तो हम यह परिवर्तन कदापि नहीं करते। परन्तु यद्यपि 'राज्य' संज्ञा तो है पर राज्य की शक्ति इतनी कम कर दी गई है कि उसको अब 'राज्य' कहना गलत है। यदि हम ऐसा ही चाहते थे तो एकात्मक प्रणाली की सरकार रखना कहीं अधिक अच्छा होता। उस दशा में इस समूची रचना का निर्माण भिन्न प्रकार से होता।

इन बातों से भयभीत हो जाने के परिणामस्वरूप मैं देखता हूं कि निम्नलिखित परिवर्तन इस संविधान के निर्माण में हो गये हैं। निर्वाचित राज्यपाल के स्थान में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल हो गया। अवशिष्ट शक्तियां जो यदि संविधान वास्तव में फैडरल होता तो राज्यों को होनी चाहिये थी वे संघ को दे दी गई हैं। उसकी तो धारणा ही गलत है। मैं यह समझ सकता हूं कि एक एकात्मक शासन पद्धति में अवशिष्ट शक्तियां संघ के पास होंगी क्योंकि शक्तियों की उत्पत्ति केन्द्र से है। पर एक फैडरल संविधान में शक्तियां वास्तव में एककों से उत्पन्न होती हैं और अवशिष्ट शक्तियां उनके पास ही रह सकती हैं। और फिर, श्रीमान, एक और आश्चर्यजनक बात हुई। प्रथम पठन में हमने यह विनिश्चित किया कि राज्यों में निर्वाचन जैसा साधारण विषय स्वयं राज्यों द्वारा नियंत्रित होना चाहिये। पर अब हमने एक ऐसा उपबंध रखा है कि उन पर केन्द्र द्वारा भी नियंत्रण हो (अनुच्छेद 324)। और फिर उन विषयों पर भी विधान बनाने की शक्ति केन्द्र को दे दी जो राज्य-सूची में रखे गये हैं। वित्त सम्बन्ध में भी राज्य न्यूनाधिक रूप से केन्द्र की दया पर आश्रित हैं। वे अपनी अधिकांश आय केन्द्र से प्राप्त करेंगे और उनको अपने निजी आय के साधन बहुत ही कम दिये गये हैं। राज्यपाल अब केवल संविधानिक मुखिया ही नहीं है वरन मंत्रालयों के कार्यों में हस्तक्षेप करने की शक्ति उसे दी गई है। इस सम्बन्ध में मैं केवल अनुच्छेद 167 का उल्लेख करूंगा। एक शक्तिशाली केन्द्र रखने के विचार से बहुत सी ऐसी समस्यायें भविष्य के लिये छोड़ दी गई हैं जिनका हल करना नितान्त आवश्यक था और ऐसा प्रतीत होता है कि मानों हम पुराने अधिनियम को जारी रख रहे हैं।

मैं जानता हूं कि कठिनाइयां बहुत सी हैं। हमारा देश ऐसा है कि इसमें प्रवेश प्रगति के भिन्न-भिन्न स्तर पर हैं। हमारे देश में कई भाषायें हैं। एक शताब्दि से अधिक काल तक अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन रहने के फलस्वरूप हममें बहुत सी कमियां भी आ गई हैं। देश की वर्तमान दशा गभीर चिन्ता पैदा करने वाली है और देश से बाहर संसार की दशा भी कोई कम संकट-जनक नहीं है। पूर्व अपनी प्रगाढ़ निद्रा से जाग रहा है और दबी हुई स्थिति से ऊपर उठ रहा है। इन सब बातों को मानते हुए भी हम एक ऐसा समुचित लोकतंत्रात्मक संविधान नहीं बना सकते हैं। जो उस जनता के प्रति सामान्यतया तथा उस जनसाधारण के प्रति अपने कुछ भागों में अविश्वास प्रकट करे जो एक लोकतंत्रात्मक राज्य की एकमात्र आधारशिला हो सकते हैं। श्रीमान, इस प्रकार के एक शक्तिशाली केन्द्र के प्रति

मेरी यह आपत्ति है। हां, यह सत्य है कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिये हम उसे सब शक्तियां दे सकते हैं। पर यह केन्द्र प्राचीन काल के केन्द्र नहीं है जिसके लिये शक्तियों का प्रवाह बाहर से अर्थात् अंग्रेजी सत्ता से होता था। इस केन्द्र को शक्तियां राज्यों से प्राप्त होनी चाहिये जिन को सर्वप्रथम शक्तिशाली तथा दृढ़ बनाना चाहिये। जब तक एकक शक्तिशाली नहीं होंगे तब तक आप एक ऐसा फैडरेशन किस प्रकार रख सकते हैं जो शक्तिशाली हो।

श्रीमान, इस संविधान-निर्माण कार्य के आरम्भ करने और इसको समाप्त करने तक के समय में ऐसी बहुत सी बातें हुई हैं जिनके कारण हमारी बुद्धि मलिन हो गई है और इसका परिणाम यह हुआ है कि हम एक शक्तिशाली केन्द्र के विचार को लेकर दौड़ लगा रहे हैं। और कदाचित अबोध, अजान तथा अप्रतिहत होकर अपने आपको उस ओर ले जा रहे हैं जिस ओर संभव है कि सफलता न मिले। यदि हम अपने विचार और कर्म की धारा की उलझन को स्पष्ट रूप से समझ गये हैं तो उसका आशय यह है कि हमारा यह मत है कि समस्त जनता-जनसाधारण, एक लोकतंत्रात्मक फैडरेशन के नागरिक के रूप में अपने अधिकारों का ठीक-ठीक प्रयोग करने की सामर्थ्य नहीं रखती है। इस दशा में सर्वोत्तम मार्ग यही है कि फैडरेशन के विचार को पूर्ण तिलांजली दे दी जाती और एकात्मक शासन पद्धति का संविधान बनाया जाता है। इस बात को मैं समझ सकता था। उस समय हम यह कह सकते थे, "हम फैडरेशन के पक्ष में नहीं हैं; इस देश के लिये हम एकात्मक शासन पद्धति चाहते हैं।" पर ऐसा हमने नहीं किया। और फिर यदि हम यह समझते हैं कि कुछ वर्षों तक हमारी जनता निरक्षर रहेगी और इस समय में वह निरक्षरता मिट जायेगी जो हमारे लोकतंत्र के लिये एक अभिशाप है तो हम यह कह सकते थे "ठीक है, हमारी जनता पन्द्रह या बीस वर्ष बाद फैडरल शासन पद्धति के लिये तैयार हो जायेगी।" उस दशा में हमें एक संक्रांति कालीन संविधान बनाकर संतुष्ट हो जाना चाहिये था और अन्तिम संविधान बनाने के लिए कार्य को उन लोगों पर छोड़ देना चाहिये था जो हमारे बाद आयेंगे। पर यह वर्तमान संविधान यद्यपि एक संघ के नाम से ज्ञात है परन्तु सार रूप में यह फेडरल नहीं है—फैडरेशन शब्द का लोप हो गया है और उसके स्थान में 'संघ' शब्द आ गया है। मैं किसी पक्ष या किसी जन-समूह को दोष नहीं देना चाहता हूं पर उन परिस्थितियों और घटनाओं के परिणामस्वरूप, जिनमें से कुछ तो हमारे नियंत्रण से बाहर हैं, यह पूरा का पूरा संविधान दोनों फैडरल तथा एकात्मक पद्धति के संविधानों से असंबद्ध भागों का एक अनोखा समिश्रण है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जो कुछ मैं यह कह रहा हूं उससे मैं मसौदा समिति के मत्थे कोई दोष मढ़ना नहीं चाहता हूं। मैं उन कारणों की व्याख्या करने का प्रयास कर रहा हूं जिनसे यह परिणाम निकला।

इसके पश्चात्, श्रीमान, इस संविधान का एक और पहलू भी है। मैं जानता हूं कि हम एक कोरे कागज़ पर नहीं लिख रहे थे, ब्रिटिश साम्राज्य से हमारे पूर्व-सम्बन्ध थे और उस साम्राज्य के अधीन सौ वर्ष से अधिक काल तक हम रहे थे। वह हम पर शासन करता था और भारत शासन अधिनियम 1935 लागू था। भारत शासन अधिनियम क्या था? वह इगलैंड के अलिखित संविधान के कुछ

[श्री एच.वी. पातस्कर]

सिद्धान्तों का अनुकूलन मात्र था और जिस रूप में भारत उस समय अधीन था उस अधीनता के लिये वह अनुकूलित किया गया था तथा उपयुक्त बनाया गया था। यह स्पष्ट है कि वह स्वतन्त्र भारत के संविधान का एक बहुत ही उपयुक्त आधार नहीं हो सकता था। और फिर, उसकी हर एक बात बुरी नहीं थी। पर हुआ यह कि हमारा संविधान बड़ा विशाल हो गया क्योंकि हमने न्यूनाधिक रूप से अपने संविधान को उस अधिनियम पर आधृत किया। भारत शासन अधिनियम में 328 धारायें और आठ अनुसूचियां थीं, वर्तमान संविधान में, 395 अनुच्छेद और आठ अनुसूचियां हैं। 1935 के अधिनियम में रखे हुए उपबन्धों का हमने बहुत कुछ अनुसरण किया है। इस तथ्य को छिपाने का प्रयास करने में कोई लाभ नहीं है कि हमने अपने संविधान का आधार इगलैंड के उस अलिखित संविधान को बनाया है जो 1935 जैसी भारत की अधीनता के लिये अनुकूलित किया गया था। यह वांछनीय नहीं है कि संविधान इतना विशाल हो। हमने संविधान में उन बातों को रखने का प्रयास किया है जो देश के वर्तमान या भावी विधान का अंग होती। निर्वाचनों का समस्त अध्याय कनाडा की संसद के एक अधिनियम पर आधृत है और वह अधिनियम कनाडा के संविधान का अंग नहीं है। अत: इस विषय को देश के वर्तमान या भावी विधान में स्थान मिल सकता था। दुर्भाग्यवश इन सब बातों को संविधान में रखने का इस कारण प्रयास होता रहा कि विधान मंडल के अधिनियम और संविधान के उपबन्ध के अन्तर को हम अपने मन में स्पष्ट नहीं कर सके।

हमारे मूलाधिकार बहुत अच्छे तथा व्यापक हैं, पर एक परिवर्तन से मैं खुश नहीं हूं जो वैयक्तिक स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में किया गया है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं यह नहीं समझ सका हूं कि केवल एक उस पदावली के कारण जिसे हम नहीं रखना चाहते थे हमें 21 और 22 अनुच्छेदों को क्यों पुर:स्थापन करना पड़ा। प्रसिद्ध 'विधि की उचित प्रक्रिया" से बचने के लिये हमने अनुच्छेद 21 में "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" पदावली रखी। उस कठिनाई से मुक्त होने के लिये हमने अनुच्छेद 22 का पुर:स्थापन किया। फिर भी जिस प्रयोजन के लिये वह पुर:स्थापित किया गया है उसकी वह पूर्ति नहीं करेगा।

अभी उस दिन डॉ. अम्बेडकर ने हमें यह बताया था कि खंड (4) में उपबन्ध कर दिया गया है जिसके द्वारा परामर्शदात्री मंडलियां नियुक्त होंगी जिनके समक्ष ये विषय रखे जा सकेंगे परामर्शदात्री मंडलियां न्यायाधिक रूप में कार्यपालिका द्वारा ही नियुक्त की जायेंगी। और सुदूर भविष्य के सम्बन्ध में सोचते हुए—संभव है हम यहां रहें या न रहें और अन्य लोग हमारा स्थान ग्रहण करलें पर यह तथ्य बना रहेगा कि परामर्शदायी समितियां तत्कालीन कार्यपालिका की ही मंडलियां होंगी, अत: उनके इतने स्वाधीन होने की आशा नहीं की जा सकती जितनी न्यायपालिका हो सकती है। मुझे विदित हुआ है हम वर्तमान न्यायपालिका से कदाचित् संतुष्ट नहीं हैं। यदि ऐसा है तो हम उसे बदल सकते हैं, पर एक ऐसे संविधान में, जौ सदैव बना रहेगा न्यायपालिका के हाथों में से इतनी व्यापक शक्तियों का छीन लेना और कार्यपालिका द्वारा नियुक्त परामर्शदात्री मंडली को सौंप देना एक ऐसी बात है जो संभव हो सकता है कि भविष्य में हम ही को अपनी लपेट मैं ले ले और यदि ऐसा हुआ तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा।

इन त्रुटियों के होते हुए भी इस संविधान में हमने एक बहुत ही अच्छा उपबंध रखा है, अर्थात् वह अनुच्छेद जिसके द्वारा अवसर पड़ने पर इस संविधान का संशोधन हो सकता है। संविधान एक जीती जागती उन्नति है और मैं आशा करता हूं कि समय आने पर इस उपबंध का उपयोग उन लोगों द्वारा किया जायेगा जो हमारे बाद आयेंगे और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार जैसा वह चाहें वैसा परिवर्तन करेंगे।

***श्री बी.ए. मान्डलोई:** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, हम अपनी यात्रा समाप्त करने वाले हैं। और कुछ दिनों में यह सभा अपना कार्य समाप्त करेगी और राष्ट्र को स्वतंत्र तथा स्वाधीन भारत का संविधान भेंट करेगी।

पिछली बार संविधान सभा ने कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये थे और मसौदा समिति को संविधान निर्माण करने का कार्य सौंपा था और मसौदा समिति ने संविधान का मसौदा प्रस्तुत किया था। हमें यह देखना है कि क्या संविधान में हमने कोई सुधार किये हैं और उसमें क्या क्या रूप भेद किये हैं और क्या वे रूप भेद वास्तव में देश के सर्वोत्तम हित के लिये हैं।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत से नरेन्द्र व्यवस्था पूर्णतया उठ गई और 560 देशी रियासतें या तो पड़ौसी प्रान्तों में मिल गई या आपस में मिलकर उन्होंने संघ बना लिये या उनको केन्द्रीय सरकार के प्रशासन में रख दिया गया। नरेन्द्रों के अधीन भारत की जनता जिसको नगरपालिकाओं तथा जिला मंडलियों के संचालन करने तक के साधारण अधिकार नहीं थे वह अब स्वतंत्र हैं और उसको अब अपने अपने राज्यों के प्रशासन करने का हक अधिकार रूप में होगा और राज्यों को भारतीय संघ के अन्य प्रान्तों के स्तर पर रख दिया गया है।

केबिनेट मिशन की योजनानुसार देशी रियासतों को केवल सीमित विषयों के लिये केन्द्र में प्रवेश करना था अर्थात् प्रतिरक्षा, विदेशी विषय और संचार के लिये। पर अब हम देखते हैं कि इन देशी रियासतों का संविधान प्रान्तों के संविधान के अनुरूप होने वाला है। केवल पांच वर्ष का समय देशी रियासतों को प्रान्तों के समक्ष आने के लिये दिया गया है।

इस सभा में संविधान के मसौदे के उपस्थित हो जाने के पश्चात जो परिमाण इस संविधान द्वारा तथाकथित अल्पसंख्यक वर्गों को दिये गये थे उन परित्राणों को उन्होंने स्वेच्छापूर्वक छोड़ दिया। इन उपबंधों को अर्थात् बिना रक्षण के संयुक्त निर्वाचन सम्बन्धी उपबंधों को आरम्भ में ही अल्पसंख्यक वर्गों पर लागू किया जा सकता था, पर हमने देखा कि भारत के विभाजन के पश्चात् अल्पसंख्यक वर्गों को इन बातों का समाधान हो गया था कि हमारी सरकार असाम्प्रदायिक होगी और धर्म तथा अन्य कारणों के आधार पर भिन्न प्रकार का व्यवहार नहीं किया जायेगा, अत: अल्पसंख्यक वर्ग पूर्ण संतुष्ट होकर आगे बढ़े और उनके नेताओं ने स्पष्ट घोषणा की कि वे किसी प्रकार के रक्षाकवच नहीं चाहते हैं। उनका यह विचार परिवर्तन एक महान सफलता है और एतद्पश्चात हम संयुक्त निर्वाचन रखने वाले हैं। अनुसूचित जातियों के लिये उपबन्ध जरूर बनाये गये हैं कि कुछ वर्षों तक रक्षित

[श्री बी.ए. मान्डलोई]

स्थानों का वे उपभोग करेंगे पर उस समय के पश्चात् यह रक्षाकवच भी मिट जायेगा। इसका यह अर्थ कि अल्पसंख्यक वर्गों को यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि भारतीय संघ में उनको सम-अधिकार, सम-विशेषाधिकार और सम-अवसर प्राप्त होंगे जैसा कि संविधान में उपबन्ध किया गया है। अत: यह बात बहुसंख्यक वर्ग द्वारा अल्पसंख्यक वर्ग पर आरोपित नहीं की गई है वरन् यह उस विश्वास के कारण अल्पसंख्यक वर्ग ने स्वेच्छापूर्वक छोड़ दी है जिसकी उन्हें प्रतीति हो गई है।

एक अन्य महत्वपूर्ण विषय जिस में संविधान सभा ने सफलता प्राप्त की है वह एक राजभाषा का उपबन्ध है अथात् समस्त संघ के लिये देवनागरी लिपि में हिन्दी। यदि हम अपने देश के पिछले इतिहास को देखें तो हमें विदित होगा कि भारत में किसी समय भी एक ऐसी भाषा नहीं रही जो समस्त देश में बोली और लिखी जाती हो। संविधान सभा ने समस्त देश के लिये एक भाषा और लिपि की नींव रखी है और इस कार्य में उन सब सदस्यों को सर्वसम्मति से सफलता मिली है जो भिन्न भिन्न प्रान्तों से आये हैं और भिन्न भिन्न भाषा भाषी हैं। हिन्दी को राज भाषा के रूप में पसन्द करने पर कोई मनोमालिन्य नहीं था यद्यपि छोटी-छोटी बातों पर आरम्भ में कुछ झगड़ा था पर अन्त में हम इस सुखद विनिश्चय पर पहुंचे कि भारत जैसे महान देश के लिये हमें एक भाषा रखनी चाहिये और वह एक भाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी हो।

समस्त देश के लिये एक भाषा की व्यवस्था करते हुए हम इस बात के प्रति सावधान रहे कि प्रांतीय भाषाओं को किसी रूप में कोई हानि न हो। प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति के लिये पूर्ण क्षेत्र है और उन भाषाओं का अपना उच्च साहित्य है।

अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और परम्परा का विचार करते हुए हमने अपने देश का एक उपयुक्त नाम रखा है और वह नाम भारत है। यह सबकी मर्जी से किया गया है।

एक और सफलता समस्त संघ में न्याय प्रशासन की एक रूप पद्धति का उपबन्ध है। हमने केन्द्र में उच्चतम न्यायालय और विभिन्न राज्यों में उच्च न्यायालयों की व्यवस्था की है। उच्च न्यायालय केन्द्र के नियंत्रण में रहेंगे। अत: दोनों उन्नत तथा पिछड़े हुए राज्यों में न्याय की एक रूप पद्धति होगी। निदेशक सिद्धान्तों में हमने यह भी उपबन्ध किया है कि कुछ वर्षों में हमारे यहां न्यायपालिका और कार्यपालिका अलग-अलग हो जायेंगी।

केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए सफल प्रयास किया गया है। यद्यपि प्रान्तीय स्वायत्तता के कुछ समर्थकों ने इस बात पर जोर दिया था कि प्रान्तों की स्वायत्तता पर कोई अतिक्रमण नहीं होना चाहिये पर हमने यह सोचा कि हमें पिछड़े हुए क्षेत्रों को उन्नत बनाना है और भारतीय संघ को भी दृढ़ तथा शक्तिशाली बनाना है इसलिये हमने यह स्वीकार किया कि केन्द्र को पर्याप्त शक्तियां होनी चाहिये। साथ ही साथ यह सावधानी की गई कि प्रान्तीय प्रशासन को दुर्बल न बनाया जाये। प्रान्तीय विषयों में और प्रान्तों को जो विषय सौंपे गये हैं उनके शासन में उन्नति करने के लिये प्रान्तों को पर्याप्त क्षेत्र दिया गया है। जिससे कि केन्द्र की सहायता से प्रान्तों में वास्तविक कार्य किया जा सके।

अन्तिम विषय जो कि एक बहुत ही विवादास्पद विषय था, वह सूत्र था जिसे हमने राज्य और संघ के प्रयोजन हेतु संपित्त-अर्जन करने के लिये स्वीकार किया है। सूत्र एक ही बनाया गया चाहे वह जमींदारी मिटाने के लिये हो या औद्योगिक कारखानों पर अधिकार करने के लिये हो या उद्योगों के राष्ट्रीकरण के लिये हो। उस सूत्र के अनुसार हम देखते हैं कि लोक प्रयोजनों के लिये संपत्ति-अर्जन की विधि बनाने की मुख्य शक्तियां विधान मंडलों को दे दी गई हैं। यह वास्तव में एक महान सफलता है।

ये कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं जो इस वर्तमान मसौदे में रखी गई हैं जो सभा में अन्तिम स्वीकृति के लिये पेश किया गया है।

हम अपने संविधान में दो महत्वपूर्ण बातें पाते हैं उनमें से एक प्रस्तावना है जो संविधान के उद्देश्यों की एक परिभाषा है। हमने उद्देश्यमूलक सिद्धान्तों में यह संकेत किया है; हमारे संविधान का प्रकार और क्षेत्र न्याय, स्वातन्त्र्य, समता और बन्धुता पर आश्रित है। मूलाधिकारों के अनुच्छेदों में हमने वाक्-स्वातन्त्र्य, सन्था बनाने का स्वातन्त्र्य, अपने अपने धर्म पालन का स्वातन्त्र्य इत्यादि के उपबन्ध रखे हैं। निदेशक सिद्धान्तों के विषय का एक अध्याय है जिसमें हमने वह मूल सिद्धान्त निर्धारित किये हैं जो राज्यों और एककों को इस विषय में मार्ग प्रदर्शित करेंगे कि प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये राज्यों को क्या करना चाहिये। अत: जिन लोगों पर केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासन संचालन करने का उत्तरदायित्व है यदि वे लोग लक्ष्यमूलक संकल्प, मूलाधिकारों और निदेशक सिद्धान्तों को ध्यान में रखेंगे तो मुझे इस में सन्देह नहीं कि हमारा देश कालान्तर में सुखी, सम्पन्न, दृढ़ तथा शक्तिशाली होगा।

इस संविधान की कुछ आलोचनायें की गईं थीं जिनमें से एक यही थी कि प्रशासन अतिव्ययी है। स्वराज्य प्राप्त करने से पूर्व कांग्रेस जनता को विश्व में पुकार पुकार कर यह कहती थी कि हमारे जैसे निर्धन देश में जहां कि अधिकांश लोगों को दो बार भर पेट भोजन नहीं मिलता है किसी व्यक्ति को चार और पांच अंकों का वेतन न मिले, परन्तु फिर भी अपने संविधान में कुछ महत्वपूर्ण पदों के लिये हमने बड़े-बड़े वेतनों की व्यवस्था की है। इस आलोचना में कुछ सच्चाई है। जनता को यह आशा थी और वह इस बात को पसन्द करती कि संविधान सभा उन प्रतिज्ञाओं को पूरा करती जो कांग्रेस ने समय समय पर जनता के साथ की थीं और लोगों के कर देने की सामर्थ्य पर विचार करते हुए उच्च वेतनों को कम करती। दुर्भाग्यवश हमने ऐसा नहीं किया है। पर अब भी आशा की किरण है। यह उपबन्ध कर दिया गया है कि संक्रांति काल में और जब तक कि संसद इस विषय को अपने हाथ में न ले और विधान द्वारा उच्च पदों के लिये वेतन नियत न करे तब तक संविधान की विभिन्न अनुसूचियों में जिन वेतनों की व्यवव्था की गई है वे उन व्यक्तियों को दिये जायेंगे। मुझे आशा है कि हमारी भावी संसद जिसका निर्माण वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा वह इस उत्तरदायित्व का अनुभव करेगी और वेतन की दरों में उग्र रूप से परिवर्तन करेंगी जिससे कि यह भार इस देश के लोगों के कर देने की सामर्थ्य के अनुपात में आ सके।

दूसरी आलोचना जो की गई है वह यह है कि एककों को दुर्बल बनाकर केन्द्र बहुत शक्तिशाली बना दिया गया है। मेरा निवेदन यह है कि इस आलोचना में

[श्री बी.ए. मान्डलोई]

कोई बल नहीं है। केन्द्र की शक्ति एककों की शक्ति है और एककों की शक्ति केन्द्र की शक्ति है। एकक एक समस्त संयुक्त शरीर के अर्थात् केन्द्र के अंग हैं। हमें केन्द्र के महान उत्तरदायित्वों और विभिन्न एककों के प्रकार तथा रचना को ध्यान में रखना है। अतः यह आवश्यक है कि केन्द्र शक्तिशाली हो।

श्रीमान, अपने भाषण के अन्त में यदि मैं मसौदा समिति के बारे में कुछ शब्द न कहूं तो मैं अपने कर्तव्य से विमुख हो जाऊंगा। यह सुविदित है कि इस समिति पर बड़ा भारी तथा बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य था। डॉ. अम्बेडकर के सभापतित्व के अधीन इस समिति के सदस्यों ने अपना कार्य प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ रूप में किया और हमें संविधान का मसौदा भेंट किया। मैं जानता हूं कि इस सभा में कई विवादग्रस्त विषयों में मसौदा समिति के सभापति ने अपना दृष्टिकोण बड़ी योग्यता से प्रस्तुत किया और उस वाद विवाद को संतोषजनक रीति से समाप्त करने में सफल हुए। यह सभा मसौदा समिति की सेवाओं की प्रशंसा करती है और स्वतंत्र तथा स्वाधीन भारत के संविधान के सफल संचालन के लिये मैं इस समिति के सभापति डॉ. अम्बेडकर को बधाई देता हूं। यह संविधान तीन वर्ष की एक प्रमाणिक अवधि के अन्तर्गत तैयार किया गया है—सच तो यह है कि इन तीन वर्षों में से हमें वह समय निकाल देना चाहिये जिसमें हमें वे कष्ट भुगतने पड़े जिनको न हम रोक सकते थे और जो अनिश्चित दशाओं के कारण हुए। यह एक महान सफलता है। श्रीमान, पत्र पर एक अच्छा संविधान बना लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उसको कार्यान्वित करने की जनता की इच्छा, जनता की निष्कपटता और उसकी उत्कट अभिलाषा है जो कि महत्वपूर्ण है। यदि इस भावना से यह संविधान कार्यान्वित किया जाता है तो मुझे विश्वास है कि हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल होगा। हम अपने देश के लिये उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते हैं और हम यह कामना करते हैं कि वह संसार का एक अग्रगण्य देश हो। जिस भावना से हमने यह संविधान बनाया है यदि उसी भावना से हम इसे कार्यान्वित करें तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि देश का भविष्य उज्ज्वल होगा। इन शब्दों के सहित मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज का दिवस महान है क्योंकि आज हम एक स्वतंत्र वातावरण में एक स्वतंत्र देश का संविधान पारित कर रहे हैं।

तीस वर्ष पूर्व जब मैं युवा हुआ ही था मुझसे 'बादशाह चिरायु हो' गाना गवाया जाता था। बाद में उस बादशाह के एक अधिकार चिन्ता के कारण मुझे कई रातें बेचैनी में बितानी पड़ी। इस दिवस के लिये मैंने स्वप्न देखा, आशायें बांधी, संघर्ष किया और कष्ट सहे। मुझे हर्ष है कि वह दिन आज आ गया। शताब्दियों पूर्व संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जब उन्होंने अपना स्वतंत्र संविधान बनाया तो एक व्यक्ति उत्साहपूर्वक चिल्लाया "हे ईश्वर, तेरी कृपा से हमारा राष्ट्र बन गया...।" अतः, ईश्वर की कृपा से हमारा भी राष्ट्र बन गया—एक ऐसा राष्ट्र जिसे सद्विचार करने की शक्ति है, एक ऐसा राष्ट्र जिसे आकांक्षायें करने की शक्ति है, एक ऐसा राष्ट्र जिसे कार्य-संपादन करने की शक्ति है, अपने स्वप्नों को सार्थक बनाने और

अपनी उन्नति की संभावनाओं पर विचार करने की शक्ति है। यह अब आप ही पर निर्भर है कि उन व्यक्तियों की, जो चल बसे हैं, मनोवांछित इच्छाओं की पूर्ति करें, उन लोगों की, जो आपके साथ प्रयत्नशील हैं, इच्छाओं को पूरा करें और उनकी भलाई करें जो हमारे बाद आयेंगे।

श्रीमान, अन्य किसी वस्तु के समान जिस की उत्पत्ति मानव प्रयास द्वारा होती है संविधान भी अपने युग की एक सन्तति होती है और यह संविधान भी उसी रूप में है। जिन परिस्थितियों में इसका निर्माण हुआ है उसके अनुसार यह एक अच्छा या बुरा संविधान होगा। वर्षों पूर्व सन् 1928 की नेहरू रिपोर्ट में कुछ लक्ष्य निर्धारित किये गये थे और संविधान की कुछ रूप रेखा दी गई थी। यद्यपि इतने शब्दों और पदों में, इतने खंडों और अनुच्छेदों में यह संविधान उस रिपोर्ट की प्रतिच्छाया नहीं है पर उसका भाव इस संविधान में रख दिया गया है और फिर हमारे पास सप्रू रिपोर्ट भी थी। और कांग्रेस के उद्देश्यों पर विभिन्न संकल्प भी थे। और हमारे पास भारत शासन अधिनियम 1935 भी था। इस संविधान में जो विचार आपको निहित दिखाई देते हैं उसके लिये आपको वे पिछले लेख देखने होंगे जो प्राप्य हो सके थे जैसे कि गोल मेज सम्मेलन के परिणाम। इन सब बातों में सबसे महत्वपूर्ण बातें आर्थिक दबाव, सामाजिक बल, राजनैतिक प्रगति और बाह्य संसार से हमारे सम्बन्ध और सम्पर्क थे जिन्होंने हमारे संविधान को यह रूप दिया। संसार में कोई भी लिखित संविधान अपनी एकमात्र पृथक सत्ता नहीं रख सकता है और आर्थिक दबाव से विदेशी शक्तियों के सम्बन्धों या देश की विदेशी नीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। यदि आप अमरीका के संविधान पर गौर करें तो आपको विदित होगा कि उस पर अठारहवीं शताब्दि की और ब्रिटिश संविधान की प्रगति की छाप है। बोनापार्ट के समय के फ्रांस के संविधान ने यूरोप के उन्नीसवीं शताब्दि के संविधानों को अधिकांश रूप में प्रभावित किया है। कोई भी संविधान अपनी एकमात्र पृथक सत्ता नहीं रख सकता है। सही मार्ग केवल यही है कि हम अन्य व्यक्तियों के अनुभव से ब्रिटिश संविधान और अमरीका के संविधान से लाभ उठायें। उन राष्ट्रों को लोकतंत्रात्मक तथा प्रतिनिध्यात्मक संस्थायें चलाने का दीर्घकालीन अनुभव है। हमने संसार के अन्य भागों के अनुभवों से लाभ उठाया है। इस विचार से हमें किसी संविधान का विश्लेषण करना है, जैसा कि मार्शल ने 1816 में कहा था, और यह देखना है कि क्या वह तीन महान विभागों की कार्यपालिका की, विधान मंडल की और न्यायपालिका की व्यवस्था करता है। विधान मंडल का कार्य जनता की संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता बनाये रखते हुए विधि पारण करना है। अन्य लोकतंत्रात्मक संविधानों के समान हमारा संविधान जनता की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता को प्रतिष्ठित करता है। अमरीका के संविधान के समान हमारा संविधान अपनी प्रस्तावना को "हम, भारत के लोग..." इन स्पष्ट शब्दों से आरम्भ करता है। हमने सबके लिये मताधिकार रखा है। हम विश्वास कर सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जो सोच समझ सकता है उसे मत देने का अधिकार होगा और इस महान देश के निर्माण में अपना सहयोग देगा। एक व्यापक आधार पर आश्रित विधान मंडल जिसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होगा वह जनता की इच्छा को व्यक्त कर सकता है और उसका पालन कर सकता है। ऐसा विधान मंडल विधि के वास्तविक अर्थ के अनुरूप विधि का निर्माण करेगा क्योंकि न्यायिक व्यवस्था के दीर्घकालीन विकास के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि विधि

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

का अर्थ है लोगों की इच्छा। प्राचीन काल में विधि का अर्थ था एक व्यक्ति की इच्छा, बाद में उसका अर्थ हुआ कुछ व्यक्तियों की इच्छा, पर अब विधि का वास्तविक अर्थ जनता की इच्छा है। क्योंकि हमने वयस्क मताधिकार रखा है हमारा विधान मंडल समस्त राष्ट्र की इच्छा को व्यक्त करेगा।

इसके पश्चात् कार्यपालिका आती है। जो कार्यपालिका हमारे यहां है वह राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री सहित एक शक्तिशाली कार्यपालिका है और राष्ट्रपति को सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये प्रधान मंत्री है। यदि आप अमरीका की ओर देखें तो वहां न्यायपालिका को सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है और ब्रिटिश संविधान में भी विधान मंडल की यही स्थिति है। ब्रिटिश संविधान में यह होता है कि संपत्ति के समाजीकरण के लिये विधान मंडल कोई भी विधि पार कर सकती है पर सेवक वर्ग उसका पालन नहीं करेगा। अत: वहां विधान मंडल और सेवक वर्ग एक दूसरे से प्रथक हैं। विधान मंडल कोई भी विधि पारित कर सकती है पर सेवक वर्ग को यह अधिकार है कि वह उसके पालन करने से इन्कार कर दे और विधान मंडल सेवक वर्ग को अपदस्थ नहीं कर सकता। अत: केवल विधि पारित करने की शक्ति का अर्थ यह नहीं है कि उनको प्रवर्त्तन करने की भी शक्ति है। अमरीका के संविधान में कांग्रेस कोई भी विधि पारित कर सकती है पर उच्चतम न्यायालय उसे रद्द कर देगी। वहां विधान मंडल और न्यायपालिका में परस्पर तथा राष्ट्रपति और कांग्रेस में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। फल यह हुआ कि 1933 से 1936 तक राष्ट्रपति और उच्चतम न्यायालय में तथा राष्ट्रपति और कांग्रेस में परस्पर कटु संघर्ष हुआ है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने और उनको हटाने के कई मामले हुए हैं। हमारे संविधान में इन सब कठिनाइयों पर ध्यान दिया गया है। हमारे यहां राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री सहित एक कार्यपालिका है और प्रधान मंत्री के द्वारा वह कार्यपालिका विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी है। और फिर, हमारे यहां न्यायपालिका है और वह उस न्यायपालिका से अधिक कार्यक्षम है जिसकी व्यवस्था अमरीका के संविधान में है। अमरीका के संविधान में यह होता है कि राष्ट्रपति न्यायाधीशों को नियुक्त करता है और शिकायत यह है कि कुछ न्यायाधीश व्यभिचारी हैं और बिल्कुल निकम्मे लोग जिला-न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किये जाते हैं। उच्चतम न्यायालय के कुछ न्यायाधीश विधि-विज्ञ न्यायाधीश नहीं हैं। उनकी नियुक्ति वकील मंडल में से नहीं हुई है। उन्हें विधि का अधिक ज्ञान नहीं है। बहुत सी नियुक्तियां राजनैतिक दृष्टिकोण से की गई हैं। जैसा मैंने कहा था अदक्षता से उद्दंडता उत्पन्न होती है और उद्दंडता का परिणाम अनुत्तरदायित्व है और अनुत्तरदायित्व कदाचार और रिश्वत का जनक है। हमारा संविधान ब्रिटिश और अमरीका के संविधानों से अच्छा संविधान है क्योंकि तीनों मूलभूत विभागों में अर्थात् विधान मंडल में, जो विधि निर्माण करती है, हमने जनता की इच्छा व्यक्त करने के लिये व्यवस्था की है। हमने जनता के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण एक शक्तिशाली कार्यपालिका की व्यवस्था की है। न्यायपालिका में हमने स्वाधीन, ईमानदार और दक्ष न्यायाधीशों की व्यवस्था की है और जब कि अमरीका की उच्चतम न्यायालय जनता

की इच्छा को ठुकरा सकती है, हमारे संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है। साथ ही साथ कार्यपालिका या विधान मंडल द्वारा कोई अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सकता है क्योंकि मूलाधिकारों के अनुच्छेद 19 में हमने 'युक्तियुक्त निर्बन्धन रख दिये हैं। यदि कार्यपालिका या विधान मंडल कभी अपने युक्तियुक्त क्षेत्र से परे होती है तो उच्चतम न्यायालय को उस विधि की मान्यता पर आपत्ति करने का अधिकार है। इस विषय पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। कि मूलाधिकारों पर बहुत से निर्बन्धन रख दिये गये हैं और व्यक्ति के लिये बहुत ही कम स्वतंत्रता रहने दी गई है। जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा था मैं निवेदन करता हूं कि संविधान अपने युग की एक सन्तति है। यदि आप आधुनिक संविधानों पर ध्यान दें तो प्रत्येक आधुनिक संविधान पर आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियां और देश की विदेशी नीति और आधुनिक युग के विचारकों और लेखकों की छाप होती है। वे लेखक और विचारक जिन्होंने ने इस युग का निर्माण किया: रूसो का विधि तथा वाद-विवाद करने वालों का प्रभाव, बेन्थम का सामान्य इच्छा का विचार और हेगल, ओवन, मार्क्स के उपयोगिता के सिद्धान्त। अपने मार्ग प्रदर्शन के लिये हमारे पास हमारी निजी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमिका थी। हमारे लिये स्वतंत्रता का विषय इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि राष्ट्र निर्माण का। वर्तमान आवश्यकता एक दृढ़, संगठित और सम्पन्न राष्ट्र बनाने की है। अत: इस दृष्टिकोण से मैं देखता हूं कि इस संविधान में केवल एक बात की कमी है। हमने मूलाधिकार तो कई रखे हैं पर हमने नागरिकों के तदनुवर्त्ती आभार नहीं रखे हैं। नार्वे का उदाहरण लीजिये, रूस का उदाहरण लीजिये आप देखेंगे कि मूलाधिकारों के साथ-साथ नागरिकों के मूलाभार भी हैं। मेरी बड़ी इच्छा है कि नागरिकों के मूलाभारों का अनुच्छेद भी इस संविधान में होता। परन्तु फिर भी मेरा विचार है कि यदि हमने घोर परिश्रम किया तो हम अपने देश को शक्तिशाली और सम्पन्न बना सकते हैं।

***श्री खांडूभाई के. देसाई** (बम्बई: जनरल): श्रीमान, हम अपने संविधान का तृतीय पठन कर रहे हैं और कुछ दिनों में हम इस संविधान को स्वीकार कर लेंगे और देश को तथा स्वयं अपने आप को अर्पण करेंगे। अत: यह स्वाभाविक है कि जो चित्र हम तीन वर्ष के पश्चात् खींच पाये हैं। उसके प्रति परस्पर धन्यवाद देने और कृतज्ञता प्रकट करने का यह अवसर है।

सभा के समक्ष मुझे यह स्पष्ट प्रकट का देना चाहिये कि हम में से बहुत से व्यक्ति जिनको इस संविधान सभा में संविधान बनाने के लिये भेजा गया है उनको संविधानों के विषय में केवल कुछ बातों का अस्पष्ट सा ज्ञान था और एक स्वतंत्र गणराज्य का क्या संविधान होना चाहिये इस विषय में हमारे कुछ नारे, कुछ विचार और कुछ सैद्धान्तिक धारणायें थीं और इस कारण जहां तक मेरा सम्बन्ध है—औरों के लिये मैं नहीं कह सकता—यह सभा मेरे लिये तो एक प्रकार की पाठशाला रही है। मैंने यह सीखा है कि संविधान किस प्रकार बनाये जा सकते हैं जिससे कि यथार्थ परिस्थिति पर ध्यान रखा जा सके। मैं कोई संविधान के विषय का वकील नहीं हूं और न मैं साधारण वकील हूं और इस कारण मैं यह नहीं जानता

[श्री खांडूभाई के. देसाई]

हूं कि जिस संविधान को हम आत्मार्पित कर रहे हैं क्या वह उन उद्देश्यों की पूर्ति करेगा जिनको लेकर हमने इस संविधान का निर्माण करना आरम्भ किया था, पर श्रीमान, एक आशा अवश्य है और वह यह है कि हमें लगभग तीन वर्ष लगे हैं और ये तीन वर्ष ऐसे नहीं थे कि इस समय में समाज की दशा स्थिर रही हो। समाज की दशा भारतीय सम्प्रदाय की दशा अस्थिर रही थी, परिवर्तन हो रहे थे और उन परिवर्तनों को हमें अपने संविधान में भी रखना पड़ा और हमारे उन दो महान नेताओं ने हमें मंत्रणा दी जो सर्वोच्चासन पर हैं और जो वास्तव में महात्मा गांधी की हमारे लिये देन है। उन्होंने अपने महान स्वामी के चरणों में दोनों व्यावहारिक कार्य संचालन और आदर्शवाद के पाठ पढ़े हैं और इन विगत तीन वर्षों की अवधि में हमें सदैव उनसे पथप्रदर्शन मिला। और उनकी मंत्रणा मिली और मैं यह कहूंगा कि हमने, जब हम पर कठिनाइयां आई सदा, उनकी मंत्रणा को स्वीकार किया। कुछ लोग पिछले दो दिनों से इस सभा में यह कह रहे हैं कि यह संविधान एकात्मक है और कुछ लोग फेडरल कहते हैं। मेरे विचार से यह दोनों में से एक भी नहीं है, न यह एकात्मक है और न फेडरल। यह एक ऐसा संविधान है जो हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप है। हम सिद्धान्तों के आधार पर इसको क्यों आंकें? यह एक ऐसा संविधान है जो हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप है। हमारी अपेक्षायें क्या हैं? हमारी अपेक्षायें ये हैं कि एक ऐसा राजनैतिक ढांचा हो जो यह देखने के लिये कि आर्थिक या राजनैतिक ह्रास न हो केन्द्र को पर्याप्त शक्तियां देने के साथ-साथ उपक्रमण करने का कार्य एककों पर छोड़ दे। क्या इस उद्देश्य की पूर्ति हुई है श्रीमान, इस विषय में मेरी तुच्छ धारणा यह है कि उस उद्देश्य की यथार्थ रूप में पूर्ति हुई है। कोई मुझे से यह प्रश्न कर सकता है "आप यह निश्चयोक्ति क्यों करते हैं?" इसका मैं यह उत्तर दूंगा कि मैं यह निश्चयोक्ति नहीं करता हूं पर सौभाग्यवश इस संविधान के बनाने में विभिन्न प्राप्त के प्रधान मंत्रियों ने पूर्ण भाग लिया है। वे कभी कभी केन्द्र से झगड़ जाते थे और कभी कभी केन्द्र उनसे झगड़ जाता था और अन्त में वे लोग जो केन्द्रीकरण के पक्ष में थे और वे जो विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे किसी सुखद परिणाम पर पहुंचते थे और जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा था हम लोग जो न तो प्रशासन कार्य के विशेषज्ञ थे और न संविधान कार्य के विशेषज्ञ थे और इस कारण जब ये लोग इस परिणाम पर पहुंच जाते थे कि जो कुछ उन्होंने तय किया है वह हमारी आवश्यकताओं के अनुकल है तो हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि वह सच है। और फिर हमें यह भी विचार करना है कि हम यहां संसार के एक सबसे महान गणराज्य के लिये संविधान बनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। और वह भी एक अहिंसात्मक तथा लोकतंत्रात्मक क्रांति की एक अनोखी रीति के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करने के पश्चात्। यह वास्तव में संतोष का विषय है कि हम एक शांतिपूर्ण तथा लोकतंत्रात्मक वातावरण में यह संविधान बना सके।

मैं यह कह रहा था कि विश्व इतिहास की एक बहुत ही अनोखी घटना के परिणामस्वरूप हमें यह संविधान निर्माण करने के लिये आमंत्रित किया गया था अर्थात् एक लोकतंत्रात्मक अहिंसात्मक क्रांति के परिणामस्वरूप और जैसा कि मैंने कहा था हम वास्तव में कृतज्ञ हैं कि हमें बिना किसी ऐसी रुकावटों के लिए किसी कठिनाइयों के विगत तीन वर्षों में अपना संविधान बनाने दिया जब कि अन्य देशों को अपने संविधान बनाने में इन रुकावटों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

अतः श्रीमान, हमें इस बात का गौरव है कि हम एक लोकतंत्रात्मक तथा शांतिपूर्ण रीति से संविधान बना सके। और इस देश को एक ऐसा संविधान भेंट कर सके जो लोकतंत्र स्थापित करेगा और लोकतंत्र द्वारा हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुकूल उसका विकास होगा।

इस दृष्टिकोण से यह संविधान हमारे प्रयोजन की पूर्ति करे या न करे पर उसे ग्रहण तो करना ही होगा। आखिर यह संविधान है क्या? यह संविधान हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल एक तंत्र है जिसका हमने अपने लिये उपयुक्त रूप में सृजन किया है और जो कुछ हमने प्रस्तावना और मूलाधिकारों में कहा है और जो निदेशक विधान मंडल को दिये हैं उनके संपालनाथ इसका सृजन किया है। यह कहा गया है कि उन प्रयोजनों की पूर्ति नहीं होगी क्योंकि हममें कुछ लोग दुर्भाग्यवश अब भी यह समझते हैं कि वयस्क मताधिकार एक बड़ा महान प्रयोग है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि यह प्रयोग क्यों है। यदि आप वयस्क मताधिकार नहीं देना चाहते हैं तो आपको सब प्रकार के प्रतिनिधियों को लाना होगा—आपको श्रम के प्रतिनिधि लाने होंगे, आपको वाणिज्य के प्रतिनिधि लाने होंगे, आपको स्त्रियों के प्रतिनिधि, उद्योग के प्रतिनिधि और जमींदारों के प्रतिनिधि भी और न जाने किस किस के प्रतिनिधि लाने होंगे। आप प्राचीन रीति के अनुसार भिन्न-भिन्न विभागों को लेकर नहीं चल सकते हैं। वयस्क मताधिकार कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो एक प्रकार का प्रयोग हो और मेरी सम्मत्ति में तो वह इस संविधान का एक अत्यन्त आवश्यक अंग है। वयस्क मताधिकार को निकाल दीजिये तो आप का एक ऐसा संविधान हो जायेगा जिसकी ओर आप देखना तक पसन्द नहीं करेंगे। बहुधा यह कहा जाता है कि चूंकि साक्षरता नहीं है इसलिए वयस्क मताधिकार नहीं होना चाहिये। एक उस व्यक्ति के रूप में, जो पिछली पीढ़ी के तत्कथित निरक्षर लोगों के सम्पर्क में रहा है, क्या मैं यह कह सकता हूं कि तत्कथित निरक्षर व्यक्ति तत्कथत साक्षर व्यक्तियों की अपेक्षा वस्तुस्थिति के निरीक्षण करने का बहुत अच्छा साधारण ज्ञान रखते हैं। मुझे सदैव यही अनुभव हुआ। अब हम सदा के लिये यह भूल जाएं कि हममें से वे लोग जिन्हें विश्वविद्यालय की या माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है किसी रूप में भी उन लोगों से अच्छे हैं जो किसी प्रकार का साहित्यिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): इस शिक्षा ने यदि कुछ किया है तो यह कि उसने हमें खराब किया है।

***श्री खांडूभाई के. देसाईः** और फिर, श्रीमान, आखिर साक्षरता है क्या? साक्षरता और कुछ नहीं है सिवा एक छोटे से यंत्र के, जिसमें साधारण ज्ञान है, प्रगति है, साहित्य है। प्रौढ़ शिक्षा के विषय में जो प्रयोग बम्बई प्रान्त में किये जा रहे हैं वे वास्तव में सफल हो रहे हैं यदि आप प्रौढ़ों को साक्षर बनाना चाहते हैं तो तीन या चार महीनों में आप उन्हें साक्षर बना सकते हैं। आपको उन्हें इतिहास सिखाने की आवश्यकता नहीं है; आपको उन्हें भूगोल सिखाने की आवश्यकता नहीं है; आपको उन्हें तत्कथित नीति तथा अध्यात्म शास्त्रों को सिखाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इन बातों को वे मुझ से या आप से कहीं अधिक अच्छे रूप में जानते हैं। आखिर किसके लिये हम इस लोकतंत्र को कार्यान्वित कर रहे हैं?

[श्री खांडूभाई के. देसाई]

क्या हम इस लोकतंत्र को उन दो या तीन प्रतिशत लोगों के लिये कार्यान्वित कर रहे हैं जिनको अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है? हम वास्तव में इस लोकतंत्र को शेष 97 प्रतिशत लोगों के लिये कार्यान्वित कर रहे हैं और इस लोकतंत्र को उनकी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुसार कार्यान्वित करना चाहिये। न कि जो कुछ मैंने और आपने पुस्तकों में अध्ययन किया है उसके अनुसार। जैसा कि मैंने कहा था जब मैं इस संविधान सभा में आया था मुझे संविधान निर्माण कार्य का बहुत अस्पष्ट ज्ञान था; तो फिर यह संविधान किसने बनाया है, मेरे विचार से संविधान के जानने वाले वकीलों ने इसे नहीं बनाया है यद्यपि मैं यह कहूंगा कि अच्छे प्रोफेसरों और अध्यापकों के समान उन्होंने हमें कुछ शिक्षा दी। हम एक उस अध्यापक की सी शैली को किस प्रकार भूल सकते हैं जिसे श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ऐयर हमें क्या अच्छा है और क्या बुरा है का पाठ पढ़ाते समय ग्रहण करते थे? हम उन अति पांडित्य पूर्ण भाषणों को किस प्रकार भूल सकते हैं जो डॉ. अम्बेडकर ने हमारे सामने दिये थे। आखिर अन्त में हुआ क्या? जब उन्होंने अपने ज्ञान का सुन्दर स्पष्टीकरण हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया तो उसके पश्चात् यथार्थवादी क्षेत्र में उतरे, प्रांतों के तथा केन्द्र के प्रशासक आये और हमारे संविधान का निर्माण किया। अन्ततोगत्वा यथार्थवादियों ने हमारे अनुच्छेदों की रचना की। अत: जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि आज जिस संविधान को हम बना पाये हैं वह वास्तव में एक अच्छा और उपयुक्त संविधान है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो अक्षय हो। आपके संविधान में एक खंड है जो संविधान में संशोधन करने की व्यवस्था करता है। यदि भावी पीढ़ियां यह समझें कि इस संविधान में कोई त्रुटि या कोई कमी है और यदि उनमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है तो वे परिवर्तन कर सकती हैं। इसमें क्या बुराई है?

श्रीमान, संविधान की प्रशंसा में ये सब बातें कहने के पश्चात् एक बात और है जिसके बारे में मैं कुछ कहूंगा। यद्यपि मेरे तुच्छ विचारों के अनुसार यह संविधान अपने देश की समस्याओं के यथार्थ दृष्टिकोण के आधार पर न्यूनाधिक रूप में बनाया गया है पर एक विषय ऐसा है जिसमें अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने में हम सब असफल हुए हैं। हमने देश के प्रत्येक यथार्थ पहलू पर विचार किया है। पर हम एक यथार्थ पहलू को भूल गये और वह है हमारे देश की राष्ट्रीय संपत्ति। हमने संविधान में कुछ वेतनों की व्यवस्था की है और संविधान द्वारा उनकी प्रत्याभूति की गई है। मेरे विचार से जिन उच्च वेतनों की इस संविधान के अधीन प्रत्याभूति की गई है वे अपने देश की राष्ट्रीय संपत्ति की तुलना में अवास्तविक हैं। सरकारी सेवकों और उच्च राष्ट्रीय पदस्थित महानुभावों के वेतन और उपलब्धियों का देश की राष्ट्रीय संपत्ति से कुछ सम्बन्ध होना चाहिये। क्योंकि संक्रांति काल में गैर सरकारी सेवकों और उद्योग की आयों और वेतनों के लिये ये वेतन और उपलब्धियां एक स्तर स्थापित करेंगी: मेरे विचार से एक समुचित स्तर स्थापित करने का यह अवसर हमने खो दिया। जैसा कि आप जानते हैं 4000 रुपयों या 5000 रुपयों या 10,000 रुपयों या 15,000 रुपयों के प्रति कोई पवित्र भावना नहीं है। यदि इस संविधान द्वारा कोई स्तर निर्धारित कर दिया जाता है और यदि हम एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न निकाय के रूप में देश के लिये एक स्तर निर्धारित करते हुए यह विधान बनाते कि इस देश में किसी भी व्यक्ति को 1500 रुपये या 1000 रुपये से अधिक नहीं मिलेगा तो प्रत्येक व्यक्ति को संतोष हो

जाता। बड़े-बड़े उद्योगपतियों को अपनी आमदनी कम करनी होती, वाणिज्य से सम्बन्धित व्यक्तियों को अपनी आमदनी कम करनी पड़ती। और किसी प्रकार का डाह, ईर्ष्या तथा द्वेष न होता। यदि मेरे मित्र श्री कन्हैया लाल मुन्शी 40,000 या 50,000 या एक लाख तक रुपया कमाते हैं तो वे उस सब रुपये को खर्च नहीं करते हैं। वे एक लाख रुपया इसलिये चाहते हैं कि कुछ सौदागर दो या तीन लाख कमा लेते हैं। यदि एक बार यह कह दिया जाये कि किसी भी व्यक्ति को 1200 या 1500 रुपये से अधिक नहीं मिलेगा तो यह वैयक्तिक ईर्ष्या और द्वेष मिट जायेगा। क्योंकि आपको यह समझ लेना चाहिये कि यदि आप अपने राष्ट्रपति को 10,000 रुपया देते हैं या राज्यपाल को 5,500 रुपया देते हैं या उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को 5000 रुपया देते हैं तो यह रुपया कहां से आयेगा? यह राष्ट्रीय संपत्ति में से भुनाया जाने वाला एक प्रकार का चैक है और यदि राष्ट्रीय निधि में कोई कमी है तो इस कमी को पूरा करने के लिये किसी न किसी को धन से वंचित रखना होगा। अत: जैसा कि मैंने कहा था जहां तक अपने संविधान में वेतनों की इस अनुसूची का सम्बन्ध है मेरे विचार से हम अपने कर्तव्य पालन में असफल रहे। पर ये प्रश्न किया जा सकता है कि भावी पीढ़ियां इसमें परिवर्तन कर सकती हैं; नया विधान मंडल इस में परिवर्तन कर सकता है। श्रीमान, वैयक्तिक उपलब्धियों और अन्य बातों के विषय में विशेषकर, जिनका प्रभाव उच्च पदस्थित महानुभावों पर पड़ता है जो व्यवहार्यत: हमारे राज्य के कर्णाधार होंगे, ऐसा करना कठिन होगा। यदि भावी पीढ़ियां और भावी विधान मंडल भी कुछ परिवर्तन करना चाहेंगे तो उन्हें विचार करना होगा, उन्हें केवल विचार करना ही नहीं होगा वरन संभव है राष्ट्रपति को यह भद्दा लगे। अत: हमने यह अवसर खो दिया इसके विरोध में मैं अपना क्षोभ प्रकट करना चाहता हूं यह प्रश्न एक और स्थल पर भी उठाया गया था, उस पर वादविवाद हुआ था पर हमने पुरानी व्यवस्था को ही अपनाया। इस प्रकार की विचार धारा को कोई समझ नहीं सकता है। हम अंग्रजों की हर एक बात छोड़ देना चाहते हैं; अंग्रेजों से हमने जो कुछ प्राप्त किया है। वह सब त्याज्य था; पर एक बात हम अवश्य रखेंगे; और वह यह है कि हमारे वेतनों का अंग्रेजी स्तर बना रहे। मैं समझता हूं कि अपने घटकों के प्रति हम यह अच्छी बात करते यदि इन बातों को बिना विनिश्चित किये छोड़ देते। भावी संसद को आवश्यकता के अनुसार इस विषय पर विनिश्चय करने के लिये स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये था।

इसके बाद श्रीमान, एक बात और है और उसके बाद मेरा भाषण समाप्त हो जायेगा। नागरिक स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। यह सच है कि हमारे मित्र प्रो. शाह को किसी भी ऐसी बात के प्रति आम शिकायत रही है जो उनकी विचार धारा के अनुकूल नहीं है। पर जब नागरिक स्वातंत्र्य का प्रश्न आता है तो लोग उन व्यक्तियों के व्यक्तिगत नागरिक स्वातंत्र्य की बातें करने लगते हैं जो सब लोगों के नागरिक स्वातन्त्र्य को छीनना चाहते हैं। जैसा कि कलकत्ता में हो रहा है या आंध्र के कुछ स्थानों में हो रहा है क्या यह उचित है कि नागरिक स्वातंत्र्य के पवित्र नाम में कुछ लोगों को अपनी वैयक्तिक नागरिक स्वतंत्रता का लाखों लोगों के नागरिक स्वातंत्र्यों का हरण करने के लिये और उनमें भय उत्पन्न करने के लिये प्रयोग करने दिया जाये? मेरे विचार से यह नागरिक स्वातंत्र्य नहीं है।

***एक माननीय सदस्य:** आपराधिक स्वातन्त्र्य है।

***श्री खांडूभाई के. देसाई:** इन परिस्थितियों में मैं समझता हूं कि इस देश के अधिकांश लोगों के नागरिक स्वातन्त्र्य की रक्षा करने के लिये जो उपबन्ध इस संविधान में बनाये गये हैं वे उचित निदेश हैं जिनके अनुसार राज्य को प्रकार्य करना चाहिये।

इन शब्दों द्वारा मैं तृतीय पठन का समर्थन करता हूं।

पंडित ठाकुरदास भार्गव (ईस्ट पंजाब: जनरल): माननीय प्रेसीडेण्ट साहब, आज मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं है जब कि हजारों वर्ष गुलामी के बाद यह मौका हमको नसीब हुआ कि हम अपने देश का कान्स्टीट्यूशन बनाने की थर्ड रीडिंग पर चल रहे हैं। इस मौके पर मैं परमात्मा का धन्यवाद करता हूं जिन्होंने यह मौका हमें अता फरमाया है और जिनकी असीम कृपा से आज हम अपना कान्स्टीट्यूशन बना कर समाप्त कर रहे हैं।

इसके बाद जनाब वाला, मैं जनाब का शुक्रिया अदा करता हूं और जनाब को मुबारकबाद देता हूं कि जिस तरीके से और जिस मुहब्बत और खुलूस से और जिस इम्पारसियलटी से जनाब ने इस हाउस का प्रोसीडिंग्स कंडक्ट किया वह जनाब ही का हिस्सा था। इसमें शक नहीं है और मेरी बड़ी ख्वाहिश है कि ऐसा मौका जल्द आवे कि उस पंडित ने जिसको नामकरण के मौके पर आपकी वालदैन ने बुलाया था उसकी प्रोफेटिक वाणी फलीभूत हो जावे। मैं समझता हूं कि 'इस्म बा मुसम्मा' जिसे फारसी में कहते हैं वह चीज बहुत जल्दी अमल में आने वाली है। गवर्नरों के इन्द्र यानी नेता जनाब वाला राजेन्द्र यानी प्रेसीडेण्ट जरूर बनेंगे और आपके नाम के मुताबिक बिला शक व शुबहा हमारी ख्वाहिश पूरी होगी। और जिस असेम्बली के प्रधान जनाब वाला जब तक रहे हैं उसके फ्यूचर प्रेसीडेण्ट भी आप ही होंगे। और जो कान्स्टीट्यूशन आप की अध्यक्षता में बना है उसे अमल में आप ही परिणित करेंगे। मैं इस मौके पर कम से कम उन अशखासों को जिन्होंने इस आईन के बनाने में हमको इमदादा पहुंचाई है उनका शुक्रया अदा करना चाहता हूं। हमारे डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी जो हमारे वाइस प्रेसीडेण्ट रहे हैं उस जमाने में जब कि जनाब वाला बीमार थे, इस हाउस की प्रोसिडिंग बहुत खूबी और मुहब्बत के साथ कंडक्ट की, उनको मैं मुबारकबाद पेश करता हूं।

इसके बाद जनाब वाला, मैं अपनी ड्राफ्टिंग कमेटी को पूरे तौर से अपना शुक्रिया अलफाजों में जाहिर नहीं कर सकता। ड्राफ्टिंग कमेटी के प्रेसीडेण्ट साहब, उनकी मेहनत, उनकी कानूनी कान्स्टीट्यूशनल वाकफियत, उन्होंने जिस कद्र वक्त दिया, जिस खूबी से एक्सपोजीशन दिया, जिस स्ट्रैन्थ के साथ और जिस मोडरेशन के साथ उन्होंने सारे सवालों का हल किया, मेरे पास इसके सिवा तारीफ के और कोई अलफाज नहीं हैं।

डॉक्टर अम्बेडकर साहब जो अपने आपको अछूतों का लीडर कहते हैं अफसोस है कि वह इस समय हाउस में मौजूद नहीं हैं, जिस पब्लिक स्प्रिट से उन्होंने इस काम में दिलचस्पी ली है हम चाहते हैं कि वह कांग्रेस में शामिल हो जायें। उन्होंने हमारे दिलों में घर कर लिया है, मुनासिब है कि संकुचित स्थान छोड़कर कांग्रेस के लीडरों के विकसित स्थान में जगह लेवें।

इसके बाद हमारे गोपालास्वामी आयंगर साहब ने हम लोगों को मुश्किल से मुश्किल मौकों पर, हमारी पार्टी में और दूसरी जगहों पर साइलैण्ट वर्कर की तरह

जिस तरह से हम लोगों की मदद की वह कहने लायक नहीं है। वह हमें बहुत अजीज हैं और मैं उनका शुक्रिया अदा करना चाहता हूं। उन्होंने ड्राफ्टिंग कमेटी में बहुत ज्यादा काम किया है।

इसके बाद मैं श्री के.एम. मुन्शी साहब को जिनका इल्म इस कदर यूनीक है, जिनका इमेजिनेशन, जिनका कम्प्रोमाईज फार्मूला लैंगवेज के ऊपर और दूसरी जगहों पर, वह हम लोगों को हमेशा याद रहेंगे। उनका भी मैं शुक्रिया अदा करना चाहता हूं।

श्री अल्लादी कृष्णा स्वामी जो देश के सबसे मशहूर कानूनदां हैं, जिनकी इलमियत, जिनकी कानूनी काबलियत हमारे इस कदर काम आई है कि उसका बयान नहीं किया जा सकता है। जिनकी दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशन की इलमियत हमारे वास्ते इतनी मुफीद हुई, वह भी हमारे शुक्रिये के मुस्तहक हैं।

मि.बी.एन. राव जो इस समय यू.एन.ओ. में हैं मगर फिर भी उनको हर वक्त हमारी ही फिक्र लगी रहती है। उनके दूसरे मुल्कों के कान्स्टीट्यूशन के बारे में जो इल्म था और उन्होंने हमारे इस आईन के बनाने में जिस कदर मेहनत की है उसकी तारीफ के लिये मेरे पास कोई अलफाज नहीं हैं। मैं उनका भी शुक्रिया अदा करना चाहता हूं।

इसके अलावा हमारे मि. टी.टी. कृष्णमाचारी जिनके मैनर्स और कर्टसी ऐसी लुभाने वाली हैं कि उसकी तारीफ पूरी नहीं की जा सकी है और जितनी तारीफ की जाये वह थोड़ी है। डॉक्टर अम्बेडकर की तरह उन्होंने भी बड़ी मेहनत से काम किया। उन्होंने बड़ी मुहब्बत और दिलचस्पी के साथ काम किया और वकील न होते हुये भी कानूनी काबलियत दिखलाई। मैं उनका भी शुक्रिया अदा करना चाहता हूं।

ड्राफ्टिंग कमेटी के दीगर मेम्बरान जिन्होंने इसमें हिस्सा लिया वह सब हमारे शुक्रिया के मुस्तहक हैं। इन सब लोगों ने जिन्होंने इस आईन के बनाने में थोड़ा या ज्यादा काम किया है उन सबके लिये हमारे दिलों में सिवाय इज्जत के और कुछ नहीं है।

इसके सिवा मैं इस मौके पर जनाब के नीचे जो डेस्क पर जो साहबान बैठे हैं और जिन्होंने इतनी मेहनत के साथ हम लोगों को मदद पहुंचाई है उन सबको मैं मुबारकबाद देता हूं। हमारे मुकरजी साहब जो हमेशा हंसते हुये हम लोगों के पास आते हैं और ड्राफ्टिंग कमेटी के अन्दर मुश्किल से मुश्किल ड्राफ्ट को जिस काबिले कदर, ईमानदारी के साथ, मेहनत के साथ और इल्म के साथ उन्होंने जांफिशानी से काम किया है, मैं उसके लिये मुबारकबाद देता हूं। इस तरह से दूसरे साहबान श्री जुगुलकिशोर खन्ना जी, दूसरे साहबान के नाम से मैं वाकिफ नहीं हूं, मैं उनको भी मुबारकबाद देता हूं। यह ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन जिसकी तीसरी रीडिंग हम लोग कर रहे हैं वह कोई बिल की तरह नहीं है। यह ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन एक अजीब चीज है। यह मुल्क में बार-बार नहीं आता है और परमात्मा न करे कि फिर बहुत जल्द इस देश में नये सिरे से बने। प्रेसमैन रिपोर्टर साहबान और दूसरे दीगर साहबान और कर्मचारियों ने इस काम में किसी भी तरह से हिस्सा लिया है मैं हाउस की तरफ से उन लोगों का शुक्रिया अदा करता हूं।

इसके अलावा जब मैं कान्स्टीट्यूएन्ट असेम्बली के कर्मचारियों को छोड़ कर जब मैं मि. कामथ की तरफ देखता हूं जिनकी मेहनत का कोई ठिकाना नहीं है। जब मैं शिब्बन लाल सक्सेना का ख्याल करता हूं उनकी अनथक काम का ख्याल

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

करता हूं तो उनको भी मुबारकबाद दिये बगैर नहीं रह सकता। हमारे बृजेश्वर प्रसाद जी जिनकी युनिटरी सिस्टम की अमेण्डमेंट बार बार आती रही उनके इस्तकलाल और फ्री थाट की जिन्दा मिसाल है। मि.के.टी. शाह सोशलिस्ट फिलौसौफर हैं और जिन्होंने हमको अपने इल्म से और उसूलों के 'flow' से माला माल किया। मि. सिधवा जो कि पब्लिक कौजेज के एडवोकेट मशहूर हैं उन्होंने भी इसमें काफी हिस्सा लिया। डॉक्टर पंजाब राव देशमुख ने अपना नुक्ता निगाह पेश करने में पूरी कोशिश की। हमारे दोस्त व्याकरणाचार्य नजीरुद्दीन अहमद ने बड़ी मेहनत की इन सब लोगों के लिये हमारे दिलों में मुहब्बत है और मैं इन सब लोगों का शुक्रिया अदा करना चाहता हूं।

यह मुमकिन है कि इन साहबानों के वास्ते एक्सचेकर को कुछ ज्यादा खर्च करना पड़ा। इस कान्स्टीट्यूशन को बनाने में जिस मेहनत से काम किया गया अगर इस तरह से न होता तो हम ऐसा कान्स्टीट्यूशन जैसा अब यह है न बना सकते। फिर भी अखबारों में इसके बारे में कुछ का कुछ कहा गया है। मगर इन सब बातों के होते हुये भी इस काम को करने में इन सब लोगों ने अपना फर्ज अच्छी तरह से अदा किया।

मैं इसको छोड़कर जनाब वाला एक बुजुर्ग हस्ती का जिक्र करना चाहता हूं जिनके वास्ते दरअसल मेरे पास कोई अलफाज नहीं हैं कि मैं अपनी अकीदत उनके बारे में पेश कर सकूं।

जनाब वाला उन अमेण्डमेण्ट से जो मेरे हिस्से में आई हैं उनसे जनाब को और हाउस को जरूर यकीन होगा कि मेरी आदत हरगिज हरगिज फ्लैटरी की नहीं है। लेकिन मैं अन्दर से मजबूर हूं कि इस वक्त जो सही बात है वह कहूं। मेरे वास्ते गैर मुमकिन है कि मैं सरदार वल्लभ भाई पटेल का पब्लिक शुक्रिया अदा न करूं। सरदार वल्लभ भाई पटेल वह एक शख्स हैं जिन्होंने एक अमेंडमेंट भी नहीं भेजी "but he has made the Constitution himself" सरदार वल्लभभाई पटेल ने सब कुछ मामले को इस खूबसूरती से सुलझाया है इस अच्छी तरह से सुलझाया कि मेरे ख्याल में शायद अगर उनको आरचीटेक्ट ऑफ इंडिया कहा जाये तो कुछ बेजा ना होगा। स्टेट्स के मामले में हाउस ने मौके ब मौके उनकी सराहना की है। लेकिन एक और सवाल इसके साथ जो कम अहमियत का नहीं है, अगर बराबर अहमियत का नहीं तो कम अहमियत का भी नहीं है, उसके सुलझाने में इस जादूगर ने जो तमाशा दिखलाया वह बिल्कुल और फैक्ट न होता तो नाकाबिल यकीन होता है। कोई और श्ख्स जो इस कान्स्टीट्यूएण्ट असेम्बली में न हो वह जाकर इस करिश्मे को बयान करे कि इस हिन्दुस्तान में अंग्रेज इतने मत मतान्तर के झगड़े छोड़ गये थे, माइनोरिटीज थीं, सैपरेट इलेक्टोरेट था, जिसका जहर फैलकर पाकिस्तान बना, अछूत कहते थे कि हमको हिन्दू हकूक नहीं देते और अलैहदगी चाहते थे, इस तमाम मसले को हमारी इन माइनारिटीज को जिस लियाकत और जिस खूबी से, जिस टैक्टिक्स और जिस पालिसी से, सरदार पटेल ने खत्म किया मेरे ख्याल में उसकी मिसाल कहीं भी मिलनी मुश्किल है। जिस वक्त माइनोरिटीज सब कमेटी पहले पहल बनी तो मैं हैरान था कि इतने सब मामले किस तरह सुलझेंगे। हमारे सरदार पटेल ने इस सारी माइनारिटीज कमेटी को माइनोरेटीज मेम्बर्स से भर दिया। अगर आप उस फेहरिस्त को मुलाहिजा फरमायें कि उसमें कितने मेम्बर माइनोरिटीज के थे तो आप हैरान हो जायेंगे कि किस तरह यह फैसला

वहां माना जा सकता था कि जहां आकर मेम्बरान कहें कि हमको सेपरेट इलेक्टोरेट नहीं चाहिये, हमको रिजर्वेशन नहीं चाहिये। सिख कहते थे कि हमको सेपरेट एलोक्टोरेट और रिजर्वेशन नहीं चाहिए हमारे अछूत भाइयों ने कहा कि हमको रिजर्वेशन दस वर्ष से ज्यादा के लिये नहीं चाहिये।

जनाब वाला यह उन्हीं की मेहरबानी का फल है कि हम आज सर ऊंचा करके चल सकते हैं और कह सकते हैं कि इस बड़े मुल्क में इस तीस करोड़ के देश में अडल्ट फ्रेंचाइज होगा लेकिन एक ही इलेक्टोरेल रोल होगा। मैं कहता हूं कि यह खुद एक बड़ी भारी अचीवमेंट है और हमारे लिये एक नियामत है और इसके लिये मैं उनको मुबारकबाद पेश करता हूं और सिर्फ अपनी ही तरफ से नहीं बल्कि सारी असेम्बली की तरफ से मुबारकबाद देता हूं कि उन्होंने इस चीज को हमारे लिये मुमकिन बना दिया।

जनाब वाला मुझे इस बात का डर तो है मेरा बहुत सारा वक्त गुजर गया लेकिन सब से पहली चीज जिसकी तरफ मैं आपकी तवज्जह दिलाना चाहता हूं वह है हमारा प्रीएम्बुल। यह प्रीएम्बुल सचमुच जवाहरपारा है। यह प्रीएम्बुल हमारे सारे कान्स्टीट्शन की जान है। यह सारे कान्स्टीट्यूशन की कुंजी है और प्राबल्म के हल करने का सही यार्डस्टिक है या तोल की तराजू है। मैं यह अर्ज करना चाहता हूं कि जहां तक इस प्रीएम्बुल का 395 दफाओं से ताल्लुक है तो इस प्रीएम्बुल के कांटे पर जो प्रावीजन्स दुरुस्त हैं वह फिलवाके हमारे वास्ते दुरुस्त हैं और जो इस कांटे पर दुरुस्त नहीं हैं वह सही नहीं हैं। गरीबनिवाज, सच तो यह है कि हमारे जवाहर लाल ने जो हमारा जवाहर भी है और लाल भी है इस जवाहरपारे को इस पोटरी में प्रोज को इतना मुकम्मिल बनाया है। और यह खुद perfection बन गया है कि मिस्टर कामथ का खुदा इसमें न धंस सका क्योंकि परफेक्शन में ईजादी या कमी नहीं हो सकती।

जनाब वाला, मैं तो चाहता हूं कि कि इस कसौटी पर सारे प्रावीजन्स देखे जायें और इस कसौटी से फैसला करें कि हमारा कान्स्टीट्यूशन दुरुस्त है या नहीं। मैं अर्ज करता हूं कि हमारी तीन साल की मेहनत में हमने जरूर एक ऐसा कान्स्टीट्यूशन बनाया है जिसपर कि हम नाज़ कर सकते हैं जिसको कि हम कम से कम टोलरेबली गुड कह सकते हैं। इसके अन्दर खामियां हैं इससे मैं इनकार नहीं करना चाहता और खामियों के वास्ते हम लड़ते रहे हैं लेकिन ताहम मुझे इसके कहने में जरा भी ताम्मुल नहीं है कि यह एक अच्छा कान्स्टीट्यूशन है जो दुनिया के कान्स्टीट्यूशनस में शामिल हो सकता है। सच तो यह है कि जैसा कि एक अंग्रेज ने कहा है कि लोगों को वैसी ही हुकूमत मिलती है जिसको कि वह डिजर्व करते हैं और ऐसा ही कान्स्टीट्यूशन हमको मिला है। इस कान्स्टीट्यूशन में हमारे तरक्की के रास्ते पूरे खुले हैं लेकिन यह ideal Constitution नहीं लेकिन हम तरक्की करके इसे बेहतर बनाऐंगे।

अब जनाब वाला, पेश्तर इसके कि मैं इसकी खराबियों की तरफ आपकी तवज्जह दिलाऊं मैं सबसे पहले एक बात की तरफ आपकी तवज्जह दिलाना चाहता हूं। अंग्रेज़ों ने हमारे दिमाग में यह डाल दिया था कि इस देश में प्यौर फेडरेशन होना चाहिये। जब राउंड टेबिल कानफरेन्स के मौके पर वहां पर यह सवाल उठा कि हिन्दुस्तान में किस तरह की हुकूमत हो तो वहां पर यह फैसला किया कि एक फैडरल सिस्टम होगा। मुझे वह दिन याद है कि जब कि सन् 1927 में All parties conference में हमारे बुजुर्ग श्री विजय राघवाचार्य ने जोर दिया था

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

कि भारत के भले के लिये Unitary system जरूरी है। गो वह आज यहां नहीं हैं लेकिन मुझे उनकी वह दिव्य मूर्तियों की यों याद आती है और मुझे खुशी है कि वह इस कान्स्टीट्यूशन को देखते तो खुश होते। आज वह इस unitary Federal system से जरूर मुतमईन होते। मैं यह मानता हूं कि यह प्योरली यूनीटरी कान्स्टीट्यूशन नहीं है। हमने गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट से बहुत बातें ली हैं, यह दुरुस्त है। हमको उसके अनुसार बहुत दूर तक चलना था। लेकिन जो हल गुत्थी का हमने निकाला है वह गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट का कान्स्टीट्यूशन का नहीं था। हमारा कान्स्टीट्यूशन इस वक्त यूनीटरी फेडरल है और इस देश की यह जरूरत थी कि इस देश में ऐसा कान्स्टीट्यूशन बने। मुझे खुशी है कि सबने सहमत होकर यहां ऐसा कान्स्टीट्यूशन बनाया और सेन्टर को इतना स्ट्रांग बनाया कि जितने की जरूरत थीं लेकिन साथ ही साथ यह अर्ज करना चाहता हूं कि इसके स्ट्रांग होते हुये, ओवर स्ट्रांग होते हुये भी ताहम जो इसका लाजिकल नतीजा निकलता था उसको हमने आगे नहीं निभाया क्योंकि हम तो एक ऐसे जमाने में पैदा हुये हैं कि प्रीवियस गवर्नमेंट के हालत को देख चुके हैं और उसके ख्यालात का हम पर असर है। इसमें कोई शक नहीं कि जो कान्स्टीट्यूशन है उसमें ऐसे प्रावीजन हैं कि जिससे अगर सेंटर चाहे तो प्राविन्स को हर तरह से दबा सकता है और यह इसकी खूबी है कि इसके अन्दर ऐसे अख्तियारात हैं। ताहम, हमारे चन्द दोस्तों ने फरमाया है कि जहां फंडामेंटल राइट्स हैं वहां ड्यूटीज भी हैं। इस असूल से सेन्टर की ड्यूटी भी अब बहुत ज्यादा है। इसमें शक नहीं कि यह सेन्टर की ड्यूटी है कि इस कान्स्टीट्यूशन के मुताबिक वह न यहां एक्सटर्नल अग्रेशन होने दे और न इंटरनल डिस्टरबेंसेज होने दे। लेकिन इसके आगे जाना पड़ेगा। जब दफा 356 आती है तो इसमें सेन्टर का फर्ज हो जायेगा कि प्राविन्सेज में ऐसा निजाम रखे ऐसे अहकामात सादिर करे कि जो प्राविन्सेज की गवर्नमेंट व लेजिस्लेचर की तबियत के बहुत विरुद्ध न हो। और मेरी समझ में इसके लिये एक नया वजीर भी सेन्टर में बनाना पड़ेगा। एक ऐसा वजीर बनाना पड़ेगा कि जो प्राविंशयल गवर्नमेंट्स की, प्राविंशयल एडमिनिस्ट्रेशन को ही देखे और उसके जिम्मे और कोई काम न हो। मैं तो चाहता था कि ऐसा वजीर प्राइम मिनिस्टर होना चाहिये लेकिन अगर प्राइम मिनिस्टर न हो तो वह मिनिस्टर विदाउट पोर्टफोलियो होना चाहिये। फिर एक ऐसा मिनिस्टर बनाना पड़ेगा जो कि सोशियल रिफार्म्स को देखे। इसी तरह की और बातें करनी पड़ेंगी जो इन जिम्मेदारियों को पूरा कर सकेंगी।

अब इसको छोड़ कर मैं जनाब की तवज्जह दो तीन और छोटी-छोटी चीजों पर दिलाना चाहता हूं। उनमें इस देश ने फिलवाके अपने को rediscover कर लिया, पुराने भारत को हमने पा लिया। नाम तो हमने देखा है "इंडिया यानी भारत" जिस पर कि कुछ लोगों ने आपत्ति भी की। मैं तो इतनी आपत्ति नहीं करता। सच तो यह है कि हम दुनिया से बाहर नहीं रह सकते। आज हमारा इतना सम्बन्ध सैकड़ों वर्षों का विलायत वालों के साथ और दुनिया वालों के साथ हो गया है। हम दुनिया में इंडिया ही रहेंगे, और अपने देश में अपने दिलों के अन्दर, अपनी सोल के अन्दर भारत भारत ही रहेगा। तो इस तरह इन दोनों चीजों का मेल हुआ है। दुनिया हमको इण्डिया के नाम से पुकारेगी और हम अपने को भारत के नाम से पुकारेंगे। ईस्ट और वेस्ट को ब्लेण्ड होना पड़ेगा। जो रूह है वह हमको मिल

गई और जैसे हमारे बुजुर्गों ने नाम रखा था वही नाम भारत हमने रखा। सिटीजनशिप जो इस विधान में दी गई है वह हमने आज के ही सिटीजन्स को नहीं दी है बल्कि हम इसमें दूर चले गये हैं, काफी दूर चले गये हैं और मुझे खुशी है कि पचास साठ लाख आदमी जो पाकिस्तान से उजड़ कर यहां आये उन सबको बिना किसी तकलीफ के इस कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली ने अपना सिटीजन बना लिया। और इतना ही नहीं, जो पाकिस्तान चले गये, वहां से जो वापिस आये इनमें से जो गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के पास लेकर आये उनको हमने अपना सिटीजन बनाया। बेशक इसमें कोई शक नहीं कि कानून की रूह से पांच वर्ष तक इन्तजार करना चाहिये था। मैं समझता हूं कि अगर वह इस देश में रहना चाहते हैं, कोई फर्क नहीं, वह यहां से चले गये, तो हम इस देश के रहने वालों को सिटीजनशिप राईट देंगे। फंडामेंटल राइट्स के बारे में हाउस को मालूम है कि मैं बहुत लड़ता आया हूं और हाउस ने मेरी तरमीम दफा 19 शब्द reasonable मंजूर करके उनको जसटिसिएबल बना दिया है। यह फंडामेंटल राईट्स तथा डाईरेक्टिव प्रिंसिपल यह दोनों के दोनों सारे कान्स्टीट्यूशन की जान हैं। आप इन दोनों को मिला दीजिये और अगर यह दोनों कायम हो जायें तो मुझे कोई शुबहा नहीं है कि हम महात्मा जी का रामराज्य कायम कर सकते हैं। और इन दोनों राईट्स के बारे में इस हाउस का फैसला जो है वह एक माईलस्टोन है। फंडामेंटल के जरिये जितना रास्ता हम तय कर चुके हैं वहां तक हम कामयाब हुए—directive principles उस चीज के जरिये, बाकी रास्ते तय करना है। हमने फंडामेंटल राईट्स पूरे हासिल नहीं किये। समता का असूल तो पास किया, अछूतपन दूर किया लेकिन पूरे हक न मिल सके।

मैं अदब से अर्ज करूंगा कि जो हमने अपना प्रीएम्बुल पेश किया है उसके अन्दर क्या चीज है। उसके अन्दर है डिगनिटी ऑफ दी इन्डिवीजुएल ऐण्ड यूनिटी ऑफ दी नेशन। हमारे इस आईडियल में जनाब वाला, मुलाहिजा फरमायें कोई जगह किसी किस्म की नैरो प्राविन्शियलिज्म के वास्ते नहीं है। कम्युनेलिज्म की जगह इस देश में नहीं है। कानून के सामने समानता फंडामेंटल राईट्स में दर्ज है और प्रीएम्बुल में व्यक्ति का ऊंचा दरजा करने व सारी कौम के एकता का सबक है। धर्म, जाति और सूबे की बुनियाद पर कोई फर्क नहीं माना गया है। फंडामेंटल राईट्स जो जनरल राईट्स हैं वह इस किस्म के राईट्स हैं जिनके अन्दर कोई एखतिलाफ हरगिज नहीं कर सकता। ड्यू कोर्स में हम इन हकूक को और आगे ले जायेंगे। और मैंने पार्टी में इसके वास्ते बहुत लड़ाई भी की थी। मैं जानता हूं कि हम उसे उतनी दूर तक नहीं ले जा सके जितनी दूर तक ले जाना चाहते थे। लेकिन मुझे इस का जरा भी अफसोस नहीं है। क्योंकि जो दफा 19 में लफ्ज रीजनएबुल रेस्ट्रिक्शन लिखा हुआ है इसमें करीब 75 फीसदी due process का असूल मौजूद है और जो फ्रीडम दफा 19 में मौजूद है उसको न तो गवर्नमेंट और न लेजिसलेचर उसको अपने हाथ में ले सकती है। दफा 19 में पब्लिक के हक महफूज हैं। और मुझे खुशी है कि इसके अन्दर ड्राफ्टिंग कमेटी के प्रेसीडेण्ट साहब डॉक्टर अम्बेडकर ने हमारे साथ इत्तिफाक किया। इसी तरीके से जो दूसरे हुकूक दफा 21 व 22 के अन्दर दिये गये उसके अन्दर भी हम बहुत दूर तक गये हैं। मुझे कोई इस बात में शुबहा नहीं है कि हमने जितने फंडामेंटल राईट्स दिये हैं वह हमने काफी दिये हैं। लेकिन इसमें शक नहीं है कि साथ ही साथ जितनी दूर तक जाना चाहते थे नहीं जा पाये हैं।

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में कोई ऐसे हक नहीं दिये गये थे। विलायत में फंडामेंटल राईट्स कहां विधान में दर्ज हैं। यह तो जब ही हो सकता है जब लोगों में वह जहनियत पैदा हो जाये, जो दूसरे आजाद मुल्कों में पाई जाती है। फंडामेंटल राईट्स के साथ साथ हमारी सिटीजन्स की ड्यूटीज भी होती है। मुझे उम्मीद है कि हम अपने हिन्दुस्तान को जानते हैं हम अपने कलचर को जानते हैं। मुझे कोई शुबहा नहीं है कि हम सिवाय आयन्दा तरक्की के और कुछ न करेंगे हमारा पवित्र देश अधोगति को नहीं जा सकता और हमारा देश आयन्दा बहुत तरक्की करेगा और हर एक आदमी को पूरे हक हासिल होंगे।

जब मैं इस फंडामेंटल राईट्स को छोड़कर डाईरेक्टिव प्रिंसिपल पर जाता हूं, तो मेरी खुशी की कोई इन्तहा नहीं रहती है। अभी कल मेरे भाई श्री लक्ष्मी नारायण साहू ने कहा कि इसमें फलां फलां चीज नहीं है, इसके अन्दर चरखा नहीं है। cottage industries नहीं है prohibition नहीं है लेकिन आप 36 से 51 दफे तक डाईरेक्टिव प्रिंसिपल को पढ़िये उसमें किस चीज की कमी है, उसमें सारी चीजें मौजूद हैं। मैं श्री साहू जी को बतलाऊं उसमें प्रोहिब्शन मौजूद है, उसके अन्दर कौटेज इंडस्टरीज मौजूद है, उसमें वह सारी चीजें मौजूद हैं, जो कि एक व्यक्ति को डिगनिटी और कौम को यूनिटी देता है। और आखिर में जो काउ प्रोटक्शन का अमेंडमेंट आया, वह एग्रीड अमेंडमेंट था, और सारा देश उसके पक्ष में होगा। उसके अन्दर इतना ही सवाल नहीं है जिसके कि हम हमेशा से हर एक हिन्दू व मुसलमान जिस चीज के कायल हैं, वह यह है कि हम गाय को बहुत अच्छा समझते हैं, उसके अन्दर सोलह आने हमारा और ड्राफ्टिंग कमेटी का व्यू पाइंट मौजूद है और मुझे खुशी है कि हाउस ने जान कर आखिर में उन सब गलतियों को एक तरह से हटा दिया, जो कि शुरू में उसके अन्दर थीं। अगर मैं आप साहबान की तवज्जेह दीगर मामलात की तरफ दिलाऊं। जनाब वाला, हमने इस कान्स्टीट्यूशन में सिर्फ इतना ही नहीं कि आपने सुप्रीम कोर्ट को सिर्फ इस कदर आजादी दी जिस कदर कि पहले हमारे कोर्ट्स के अन्दर थी। मेरा तो दावा है कि सुप्रीम कोर्ट को पहले से ज्यादा आजादी दी गई है। सुप्रीम कोर्ट को लोगों के हकूक को महफूज रखने की आजादी पहले की बनिस्बत ज्यादा मिली हुई है। मेरा निवेदन यह है कि जो प्रिवी कौंसिल को जूरिस्डिक्शन दिया गया है, वह क्रिमिनल जुरिस्डिक्शन हमने सुप्रीम कोर्ट को दे दिया है, वह किसी तरह से कम नहीं किया गया है और उसको पूरा अख्तियार दे दिया गया है। सुप्रीम कोर्ट convention से अपने अख्तियार रोज बरोज बढ़ाती भी रहेगी। मुझे कोई शुबहा नहीं है कि सिविल लिबर्टीज जो इसमें दी हुई है, वह किसी भी मुल्क से कम नहीं है। सर अल्लादी चाहते थे कि यहां पर ड्यू प्रोसेज का असूल लागू न हो। मुझे खुशी है कि ड्यू प्रोसेज भी 75 फीसदी से ज्यादा कायम हो गया है। इस विधान में आजाद Comptroller & Auditor General का इंस्टीट्यूशन कायम किया गया है जिससे हिसाब की जांच पड़ताल आजादाना होगी और पहले की तरह बिला अखत्यार रुपया खर्च न होगा। इसी तरह पब्लिक सर्विस कमीशन और उसके नीचे स्टेट्स कमीशन, का प्रबन्ध किया गया है मुझे खुशी है कि यह सब अकवारे उतने आजाद कर दिये गये हैं, जितने पहले नहीं थे। हर एक चीज के विषय में हमने सेंट्रल इन्स्टीट्यूशन बनाया, और फिर प्रोविन्सेस का भी वह इन्तजाम किया कि

वहां स्टेट्स के अन्दर भी स्टेट्स लेजिस्लेचर मौजूद हैं, और हर तरह की वहां रिसपांसिबल गवर्नमेंट मौजूद हैं जिसके वजीर लेजिसलेचर को जिम्मेदार है। अलबत्ता गवर्नर अब नामजद होंगे। क्योंकि जनाब वाला, इलेक्टेड गवर्नरस इस यूनिटरी सिस्टम के साथ लग्गा नहीं खाते। और जो पहले गलती की थी बाद में वह गलती भी सही कर ली गई। हमें इस विधान को बनाने में तीन साल जरूर लगे, लेकिन इन तीन सालों में जिस कदर कदम हमने आगे बढ़ाये उसका अंदाजा आप नहीं कर सकते। अगर सन् 46 में जब यह असेम्बली बैठी, तभी आईन पास हो जाता, तो इसमें सेप्रेट इलेक्टोरेट रहता, इसमें 562 स्टेट होती, इसमें वह सारी खराबियां होतीं, जो हमें बरसों में ब्रिटिश गवर्नमेंट से मिली थी।

मैं उनसे सहमत नहीं जो कहते हैं कि हम पहले से गिर गये हैं। मैं तो यह महसूस करता हूं कि दरअसल हमारा स्टैण्डर्ड ऑफ लिविंग पहले के मुकाबले में बहुत अच्छा हो गया है। हम लोग यह दिन अपने आगे देख रहे हैं। मेरे कहने की मंशा यह है कि जो जो हम चाहते हैं सब कुछ हमारे कान्स्टिट्शन में इन्कारपोरेटेड है। हमने यहां इसके अन्दर टैक्सेशन के असूल बनाये वहां आयन्दा जांच के लिये इसके अन्दर फिस्कल कमिशन के लिये भी रास्ता खुला रखा जो जल्द मुकर्रर किया जायेगा। मैं कोई चीज ऐसी विधान में नहीं पाता हूं जिसका ठीक प्रबन्ध न किया गया हो।

जनाब वाला, मैं बहुत ज्यादा वक्त इस हाउस का नहीं लेना चाहता। मैं इस मसले को यहीं खत्म करता हूं। आखिर में सिर्फ इस कदर मैं कहना चाहता हूं, कि आखिरी चीज यह है कि कान्स्टीट्यूशन कागज पर बनते हैं। लेकिन कागज के कान्स्टीट्यूशन से आगे काम नहीं चलता, काम चलता है स्प्रिट से जिसके अन्दर कान्स्टीट्यूशन पर चला जाता है। इस वास्ते आज इस कान्स्टीट्यूशन को खत्म करते वक्त इतना कहना चाहता हूं कि 26 तारीख को जो जो मेम्बर इस पर दस्तखत करेंगे, उनको याद रखना चाहिये, कान्स्टीट्यूशन का बनाना मामूली छोटा-सा काम था, हमारा असली काम यह है कि हम इस कान्स्टीट्यूशन को इस तरह से चलायें जिसके अन्दर हमारा देश सचमुच आजादी की तरफ बढ़े और देशवासियों को सुख मिले और सम्पत्ति बढ़े। मैं एक लफ्ज सिर्फ एक चीज़ के बारे में जो मुझे बहुत अजीज हैं, जनाब की इजाजत से और पेश कर दूं। हमने शड्यूल्ड कास्टस को बहुत कुछ दे दिया, रिजर्वेशन दे दिया। उनके वास्ते दफा 335 बनाई जिसके अन्दर उन्हें नौकरियों के वक्त उनके हक पर विचार का आश्वासन दिया। दफा 16 को डाल दिया कि उनके वास्ते नौकरियों का रिजर्वेशन हो सकता है। लेकिन मुझे वह दिन नजर नहीं आता जिसमें बैकवर्ड क्लासेज के वास्ते गवर्नमेंट रिजर्वेशन करेगी। मैं तो यह चाहता हूं कि अगर हम वाकई महात्माजी की क्लासलेस सोसायटी बनाना चाहते हैं तो हममें से हर एक जो विधान पुस्तक पर दस्तखत करे यह समझे कि वह अपने आप पर कसम खा कर दस्तखत करे, यह समझ कर वह अपने आप पर कसम खा कर दस्तखत करता है कि हम दस बरस के अन्दर शेड्यूल्ड कास्टस को व backward class को अपने बराबर ले आयेंगे। जो शख्स उसके ऊपर यहां दस्तखत करेगा लेकिन अमल नहीं करेगा, उसका अमल सच्चा नहीं होगा।

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

मैं आखिर में जनाब वाला का खुद शुक्रिया अदा करता हूं, और सब कर्मचारियों का जिन्होंने इसके बनाने में हिस्सा लिया, और सब मेम्बरों का फिर शुक्रिया अदा करता हूं। मैं परमात्मा से दुआ करता हूं कि परमात्मा हमें अक्ल और तौफीक दे कि हम अपने देश की सेवा करते रहें और जैसे हमारे बुजुर्ग महात्मा जी व दूसरे बुजुर्ग देश की भलाई की कोशिश करते रहे वैसे ही हम सब भी करें।

***अध्यक्ष:** इसके पूर्व कि हम सब स्थगित हों मैं माननीय सदस्यों का ध्यान उस बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जो थोड़ी देर पहले हुई थी जब कि एक माननीय सदस्य ने मेरा ध्यान किसी तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहा था। मेरी यह इच्छा है कि माननीय सदस्य उस तथ्य का ध्यान रखेंगे। मैं यह आशा करता हूं कि सदस्यों की रुचि अपने भाषणों की अपेक्षा औरों के भाषणों में अधिक हो। उन्हें कम से कम मुझसे सहानुभूति रखनी चाहिए जिसे केवल दूसरों के भाषण ही सुनने होते हैं और अपना भाषण कभी नहीं सुनना पड़ता और यदि और कुछ नहीं तो कम से कम मैं यह आशा करता हूं कि वे सत्र में यहां सदैव उपस्थित रह सकें जिससे कि हमारे सामने ऐसी शिकायत फिर न आये।

इसके पश्चात् सभा शनिवार, 19 नवम्बर 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-320 PSD–24–12–52–320

Con. 3. XI.6.49
320

अंक 11
संख्या 6

शनिवार
19 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ
संविधान का मसौदा–(जारी) 3815-3856

भारतीय संविधान सभा

———————

शनिवार, 19 नवम्बर, सन् 1949 ई.

———————

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे, अध्यक्ष महोदय, (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

———————

संविधान का मसौदा — (जारी)

*__अध्यक्षः__ हम अब वाद-विवाद को जारी रखेंगे। श्री कामत।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रदेश तथा बरारः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं. डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का सीमित तथा सशर्त समर्थन करता हूं। श्रीमान, हम भारत के लोग एक लम्बी यात्रा के अन्त पर पहुंच चुके हैं। किन्तु यह एक अधिक लम्बी, श्रमपूर्ण तथा जोखिमपूर्ण यात्रा का प्रारंभ है। कई दशाब्दियों के संघर्ष के बाद हम स्वतंत्रता के लक्ष्य पर पहुंचे हैं। इन दशकों में हम ने भाग्य के कई उलट फेर देखे तथा जिन नेताओं ने हमारा पथ प्रदर्शन किया उनमें से कई आज हमारे बीच में नहीं रहे हैं। भारतीय स्वभाव के अनुरूप हमारा संघर्ष, हमारी जागृति, आध्यात्मिक पुनरुत्थान से आरम्भ हुई थी, जिस का नेतृत्व रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी दयानन्द ने किया था। इन आध्यात्मिक नेताओं के पश्चात् राजनैतिक जागृति और सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ जिस के पथ प्रदर्शक, नेता तथा प्रवर्तक लोकमान्य तिलक, अरविन्द और महात्मा गांधी थे, तथा अंततः किन्तु किसी से कम नहीं, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस थे। परमात्मा का धन्यवाद है कि, उन दिनों के नेता, आप जैसे नेता, श्रीमान, और पंडित नेहरू तथा सरदार पटेल अब भी हमारे साथ हैं। जो हमें उस लक्ष्य तक पहुंचायेंगे जो महात्मा गांधी ने हमारे लिये निश्चित किया था। महात्मा गांधी ने जो लक्ष्य बनाया था वहां अभी हम नहीं पहुंच पाये हैं और भारत को उस लक्ष्य तक पहुंचाना ही आज इस सभा का और भारत के लोगों का उद्देश्य है, यही उनके सामने काम है।

स्वतंत्रता के महान संघर्ष में समस्त भारत ने भाग लिया था। सबसे उत्तर में कश्मीर में, मेरे माननीय मित्र, शेख अब्दुल्ला ने उस संघर्ष में भाग लिया था, और वीरतापूर्ण भाग लिया था। भारत के उत्तर-पश्चिम में, जो आज दुर्भाग्य से हमसे अलग कर दिया गया है, खान अब्दुल गफ्फार खां और उनके भाई डॉ. खान साहिब राष्ट्रीय संघर्ष में अग्रसर थे। भारत का वह भाग अब हमारे साथ नहीं है, किन्तु हमें आशा और विश्वास है कि जो भाग हमारे पास रहा है तथा जो भाग हमारे पास से चला गया है उनमें जो अंतर है वह शीघ्र ही दूर हो

[श्री एच.वी. कामत]

जायेगा और हमारे संबंध दिन प्रति दिन अधिक सुखद बन जायेंगे, और जैसे समय बीतता जायेगा पाकिस्तान तथा भारत अत्यन्त मैत्रीपूर्ण भावना के साथ रहेंगे।

यह दुर्भाग्य है कि यह सभा एक पूर्ण सभा नहीं है। हमारे देश के दो एककों विंध्य प्रदेश तथा हैदराबाद के प्रतिनिधि अब भी इस सभा में नहीं हैं। मुझे आशा है कि उन दो एककों, हैदराबाद तथा विंध्य प्रदेश के प्रतिनिधि, इस सभा के जनवरी में समाप्त होने से पूर्व हमारे साथ आ बैठेंगे।

इस सभा ने जो संविधान निश्चित किया है उसे मैं केन्द्रीयकृत संधान कह सकता हूं जिस का बाह्य रूप संसदीय लोकतंत्र का है। हमने बहुत लम्बी चौड़ी प्रस्तावना रखी है, किन्तु श्रीमान, भगवान के नाम के बिना मुझे तो वह थोथा ढोल ही दिखाई देती है; हमने प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता के अकाट्य सिद्धांतों की उद्घोषणा की है, किन्तु यदि हम अन्दर देखें और संविधान को पढ़ें तो हमें यह देखकर खेद होगा कि इन सिद्धान्तों को काफी नरम कर दिया गया है। मेरे कई मित्रों ने यहां संविधान में अपनी बुद्धि के अनुसार सुधार करने का प्रयत्न किया है तथा हममें से कुछ सदस्य कुछ हद तक सफल भी हुए हैं। अन्ततः ईश्वर को संविधान में स्थान मिल ही गया। यद्यपि वह राज्य के विविध पदाधिकारियों द्वारा ली जाने वाली शपथ के प्रपत्र में ही रखा गया है। मेरे मित्रों ने, जिनके नामों का मैं आज विशेषतः उल्लेख करूंगा, अर्थात् प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना डॉ. पी.एस. देशमुख, श्री आर.के. सिधवा, श्री महाबीर त्यागी, पं. ठाकुर दास भार्गव, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, प्रो. के.टी. शाह, पंडित हृदय नाथ कुंजरू तथा श्री ब्रजेश्वर नाथ कुंजरू ने और अंततोगत्वा मैं ने भी, सब ने अपने अपने प्रकार से यह प्रयत्न किया कि संविधान को प्रस्तावना के अनुरूप बनाया जाये, किन्तु मैंने देखा कि मसौदा समिति की कुंडली सबल थी। मैंने देखा, श्रीमान, कि नवग्रह के अतिरिक्त तथा दशमग्रह के अतिरिक्त, दो और ग्रह इकट्ठे थे जिन्होंने अन्य ग्रहों के अशुभ प्रभाव को नष्ट कर दिया—और वे ग्रह थे पंडित नेहरू तथा सरदार पटेल। एक ज्योतिष सूत्र है ''कि कुर्वन्ति ग्रहा सर्वेयस्य केन्द्रे बृहस्पति"। केन्द्र में बृहस्पति के होने से अन्य ग्रहों का प्रभाव बहुत कम हो गया। वह अधिक नहीं पड़ा।

***पंडित बालकृष्ण शर्माः** राहु और केतु कौन थे?

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह विनिश्चय करना पंडित बालकृष्ण पर छोड़ देता हूं कि वे कौन थे।

मैं कह रहा हूं कि यह संविधान संधानीय है जिसका मुख संसदीय लोकतंत्र है। महात्मा गांधी चाहते थे कि भारत में विकेन्द्रित लोकतंत्र हो। उन्होंने प्रसिद्ध अमरीकी लेखक लूइ फिशर से कुछ वर्ष पहले कहा था "भारत में सात लाख गांव हैं और प्रत्येक गांव को उसके नागरिकों की इच्छा के अनुसार संगठित करना

चाहिये और जो सब मतदान करें।" फिर सात लाख ही मत होंगे, 40 करोड़ नहीं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक गांव का एकमत होगा। गांव जिला प्रशासन को चुनेंगे; जिला प्रशासन प्रांतीय प्रशासन को चुनेंगे और वे फिर राष्ट्रपति को चुनेंगे जो कार्यपालिका का प्रधान होगा। लुई फिशर ने जिसे यह योजना बताई गई थी, बात काट कर कहा "यह तो सोवियत व्यवस्था से बहुत मिलती जुलती है।" और गांधी जी ने उत्तर दिया "मुझे उसका पता नहीं था। मैं इस बात की परवाह नहीं करता।"

श्रीमान, बुरा हुआ या अच्छा हुआ—मुझे आशा है अच्छा ही हुआ—कि हमने इस योजना को छोड़ दिया और हमने एक भिन्न योजना बना ली, अंशतः इस कारण कि हम कठिन संक्रमणकाल में हैं। एक समय आयेगा जब भारत स्थिर तथा शक्तिशाली बन जायेगा, और मुझे आशा है कि उस समय हम फिर पंचायत राज अर्थात् विकेन्द्रित लोकतंत्र की पुरानी योजना को अपनायेंगे, जिसमें ग्राम-एकक होंगे जो भोजन, वस्त्र तथा मकान के विषय में स्वावलंबी होंगे और अन्य मामलों में परस्परावलम्बी होंगे। मुझे आशा है कि हम बाद में पंचायत राज को पुनः अपनायेंगे, श्रीमान, मेरे विचार में वही एक व्यवस्था है जिस से भारत और संसार का त्राण हो सकता है और जिससे मैं आध्यात्मिक साम्यवाद कह सकता हूं, मेरे दिमाग में भौतिकवाद का साम्यवाद नहीं है। मेरे दिमाग में आध्यात्मिक साम्यवाद है। यही बात गांधी जी के दिमाग में थी जब कि उन्होंने भावी-शासन व्यवस्था की भावना को इस आधार पर रखा था कि मानवीय मामलों पर देवत्व का नियंत्रण होगा। उनका अभिप्राय आध्यात्मिक साम्यवाद से ही था। केवल उसी से विश्व का त्राण हो सकता है। आज, अणुबम तथा 'आत्मन' के मध्य जो संघर्ष है उसमें आत्म शक्ति की ही विजय होगी।

अब प्रस्तावना तथा संविधान के विषय को फिर लेता हूं, मैं देखता हूं कि जहां तक न्याय का संबंध है, संविधान में उन लोगों के लिये अच्छी व्यवस्था कर दी गई है। जो न्याय के आसनों पर प्रतिष्ठित होंगे वे उन लोगों से अच्छी स्थिति में होंगे जिन्हें न्याय के मंदिरों की शरण लेनी होगी। मसौदा समिति को उन प्रसिद्ध पदधारियों से प्रेम था जो उन न्याय के मंदिरों में अध्यासीन होंगे और मंदिरों के विनीत भक्तों से नहीं था। संविधान का मसौदा वकीलों ने बनाया था, अतः शायद यही होना अनिवार्य था, जैसे कि संस्कृत श्लोक में लिखा है "नीलकागतर्मापि कुटिलं न भवति सर लंशुनः पुच्छम्"। वकीलों का पक्षपात नहीं हटाया जा सकता था और इसी लिये संविधान में न्यायाधीशों को अनुचित रूप से मोटा करने का प्रयत्न किया गया है।

फिर हम देखते हैं कि इसमें आपात उपबंध है और अनुच्छेद 22 है—पता नहीं यह अनुच्छेद मूलाधिकारों में कैसे आ गया। किसी व्यक्ति को बिना मुकद्दमे के तीन महीने या अधिक के लिये निरुद्ध होने का अधिकार है इन उपबंधों से प्रस्तावना के व्यक्तिगत स्वतंत्रता विषयक सिद्धान्त पर पानी फिर जाता है। उनसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता को जकड़ दिया गया है। मैं यह स्पष्ट बताना चाहता हूं कि मैं पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थक नहीं हूं। मैं व्यक्तिगत स्वतंत्रता उसी हद तक चाहता हूं कि उससे राज्य की सुरक्षा को क्षति न पहुंचे। उस उद्देश्य से मैंने कई संशोधन पेश किये। वे स्वीकृत नहीं हुए। फिर समता के विषय में, हम देखते

[श्री एच.वी. कामत]

हैं कि कुछ उपबंध हैं जिनसे वैसी ही समता प्रदान की गई है जो बिल्ली तथा चूहे में होती है या गधे तथा घोड़े में होती है। जहां तक बन्धुत्व का संबंध है, मैं अनुभव करता हूं कि हमने मातृत्व का प्रेम तथा आदर केवल स्थायी सेवाओं के लिये ही प्रदर्शित किया है, विशेष उच्चतर सेवाओं तथा राज्यों के उच्च पदाधिकारियों के लिये, जिनका मैं पहले ही निर्देश कर चुका हूं। मैं नहीं समझता कि इसमें कुछ अत्युक्ति है कि हम सद्भावना के साथ विनायक बनाने के लिए बैठे थे किन्तु संस्कृत उक्ति के अनुसार वह वानर बन गया:

विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्।

हमने जो विनायक बनाया है वह गणेश की मूर्ति के समान न होकर वानर सा लगता है।

इन सब बातों के होते हुए भी इस संविधान में कुछ अत्यन्त अच्छी बातें हैं। इसीसे मैं अंशत: इस का स्वागत करता हूं।

राज्यों के एकीकरण के विषय में उपबंध, जिनका सब श्रेय सरदार पटेल को है और अल्पसंख्यकों के संबंध में उपबंध, जो प्रधानत: उनके प्रयत्नों का फल है, बहुत अच्छे हैं। फिर संपत्ति के विषय में भी उपबंध है। हमने उसे पूर्णत: न्याय्य नहीं बनाया है। यह भी संविधान में एक अच्छी बात है। हमने धार्मिक स्वतंत्रता को प्रत्याभूत किया है। यह एक और महत्वपूर्ण बात है। हमने भाषा के प्रश्न का संतोषजनक हल निकाल लिया। फिर, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, शपथ का भी प्रश्न है। राज्य के प्रतिष्ठित अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली शपथ में ईश्वर का नाम रखा गया है। फिर राज्य की नीति के निदेशों में ग्राम पंचायतों का उपबंध है। यद्यपि डाक्टर अम्बेडकर ने सबसे पहले गांवों को बहमबाजी और अज्ञानता या वैसी ही बातों का केन्द्र बताया था, पर अच्छा ही हुआ कि हमने निदेशक सिद्धान्तों में ग्राम पंचायतों का उपबंध रखा है। वे सब अच्छी बातें हैं और मैं उनका हार्दिक स्वागत करता हूं। फिर हमने खिताबों का अंत कर दिया है जो बेहूदे भेद भाव थे। अस्पृश्यता को भी समाप्त कर दिया गया है जो हिन्दू समाज का कलंक थी। किन्तु अन्य बातें हैं जिनसे संविधान की समन्वयता तथा सौंदर्य नष्ट हो जाता है। जैसाकि मैंने कहा है, इस देश में संसदीय लोकतंत्र होगा। मुझे आशा है कि वह सफल होगा। दुर्भाग्य से हमारे देश में कई बाधायें हैं, हमारी सामाजिक व्यवस्था जाति-उपजाति पर, मत मतान्तरों पर और ऊंच नीच की भावनाओं पर तथा प्रबल पक्षपात आदि पर आधारित है जो हमारी मनोवृत्ति का अभिन्न भाग है। इनसे लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण के विकास में बाधा पड़ती है, और जिस वायु में हम स्वास लेते हैं, वह भी दूषित हो जाता है। ये बातें जान बूझ कर नहीं की जातीं वरन्, अर्ध-जानकारी में की जाती हैं। फिर, श्रीमान, राज्य तथा नागरिक के बीच जो असंख्य संपर्क होंगे, प्रत्येक लोकतंत्र का रणक्षेत्र है, उनमें से केवल तिल के बराबर अनुपात न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में होगा, यद्यपि संविधान के मसौदे में उनका बहुत विस्तार था। मेरे विचार में उनसे लोकतंत्र की पूर्ण व्यवस्था नहीं बनती। उनसे शक्ति को वश में करने की समस्या हल नहीं होती। मुझे आशा है श्रीमान् कि जो लोग संविधान को क्रियान्वित करेंगे उनमें लोकतंत्रात्मक भावना पर्याप्त होगी। संविधान तो केवल शुष्क अस्थियां है। आखिर, हमें, भारत के लोगों

को ही संविधान की शुष्क अस्थियों में जीवन का संचार करना पड़ेगा। मुझे आशा है कि उस पर सहयोग की भावना से अमल होगा, भारत को एक महान राष्ट्र बनाने की भावना से, संसार के लिये उसे एक पथप्रदर्शक ज्योति बनाने की भावना से अमल होगा जिसके नीचे कि संसार के सब राष्ट्र भारत के प्राचीन किन्तु नवीन उपदेश को सुनने के लिये, शान्ति, समन्वय तथा प्रेम के उपदेश को, जो हिमालय की ऊषा के सुरभित प्रकाश से सिंचा हो, सुनने के लिये एकत्र होंगे। 26 जनवरी 1950 के दिन हमारे यहां जो समारोह होगा उसके विषय में मैं एक सुझाव देना चाहता हूं। मेरा सुझाव यह है, श्रीमान, कि गणराज्य की उद्घोषणा अर्ध-रात्रि के समय नहीं होनी चाहिये जैसा कि अगस्त 1947 में किया गया था, किन्तु सूर्योदय से जरा पहले होनी चाहिये क्योंकि यही भारतीय परंपरा है कि सूर्योदय से पूर्व पहले प्रहर ब्राह्मी मुहुर्त कहलाता है। उस दिन प्रातःकाल तीन और छः के बीच में हमें गणराज्य की उद्घोषणा करनी चाहिये और संविधान का उद्घाटन करना चाहिये। यदि हम सूर्योदय से जरा पूर्व ही ऐसा करेंगे तो हमारे देश के भविष्य के लिये अच्छा रहेगा।

मैं एक और बात कहना चाहता हूं, श्रीमान, और वह यह है कि हम भारत के लोग अपनी आध्यात्मिकता को तथा अपनी प्राचीन परम्पराओं को नहीं भूलेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने ही कहा था कि जिस दिन भारत ईश्वर को भूल जायेगा, जिस दिन वह आध्यात्मिकता को त्याग देगा, उस दिन वह मर जायेगा, और उस दिन वह संसार में कोई शक्ति नहीं रहेगा। मुझे आशा है कि हम अपनी परम्पराओं को बनाये रखेंगे, चाहे हम प्रस्तावना में भगवान के नाम को रखना भूल गये। आइये, हम इस संविधान को दैविक पथप्रदर्शन की भावना से दैविक अनुकम्पा तथा आशीर्वाद के अधीन, क्रियान्वित करें। महात्मा गांधी अपनी प्रार्थनाओं में कहा करते थेः

"सब को सन्मति दे भगवान।"

स्वामी विवेकानन्द भारत को जगाने के लिये कहते हुए यह वेद मंत्र कहते थेः

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरानिबोधत।"
"जागो, उठो और तब तक मत रुको जब तक कि लक्ष्य पर न पहुंच जाओ।"

हम अपने लक्ष्य पर पहुंच चुके हैं। किन्तु अभी हमें और ऊंचे लक्ष्य पर पहुंचना है, और हमें उसके लिये काम में जुट जाना चाहिये तथा अपनी शक्ति लगा देनी चाहिये ताकि हमारे इस प्राचीन देश में जनसाधारण—आखिर संविधान जनसाधारण के ही लिये है जिससे साधारण मनुष्य अपने जीवन को आनन्द से बिता सके। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि आप कितने मंत्री रखते हैं, कितने राज्यपाल रखते हैं, आप किस को राज्यपाल बनाते हैं। अंततोगत्वा इन बातों का कोई महत्व नहीं है। संविधान जनसाधारण, सामान्य मनुष्य के सुख, जीवन तथा स्वतंत्रता में सहायक होगा तो जीवित रह सकेगा और उनमें बाधक होगा तो स्वयं समाप्त हो जायेगा। उसी के नाम से हमने इस संविधान का निर्माण किया है, उसी के नाम से हमने स्वतंत्रता के लिये संघर्ष चलाया और उसे प्राप्त करके यहां

[श्री एच.वी. कामत]

समवेत हुए। हमें इस संविधान को उसी के नाम से क्रियान्वित करना चाहिये, हमें सर्वशक्तिमान के आशीर्वाद से तथा उसके पथ-प्रदशन में और भारत के लोगों के पूर्ण सहयोग के साथ उसी जनसाधारण के नाम से आगे बढ़ना चाहिये। हमें उस लक्ष्य पर पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिये जिसे महात्मा गांधी ने और हमारे सब अवतारों, ऋषियों तथा मुनियों ने निश्चित किया है, मैं उस लक्ष्य को साधुनाम-राज्यम अर्थात पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य कहूंगा, मैं उसे केवल पंचायत राज्य कहूंगा। आइये, हम जो यहां समवेत हुए हैं, संकल्प करें कि हम तब तक विश्राम नहीं करेंगे जब तक हम उस लक्ष्य को प्राप्त न कर लें जो गत साठ वर्ष या अधिक से समस्त राष्ट्र के सामने रहा है, और मुझे आशा है कि वही लक्ष्य भावी कठिन दिनों में भी हमें प्रेरणा देता रहेगा। जय हिन्द।

मौलाना हसरत मोहानी (युक्त प्रान्तः मुस्लिम): श्रीमान, क्या मैं जान सकता हूं कि क्या यह किसी प्रकार संभव है कि विभिन्न माननीय सदस्यों के भाषणों में उठाई गई कोई बात अब स्वीकृत होकर संविधान में रखी जा सके? यदि यह संभव नहीं है तो यह सब चीज 'आडम्बर' है और मुझे इस व्यापक वाद-विवाद से कोई लाभ दिखाई नहीं देता।

***अध्यक्षः** मैं मौलाना को बता देना चाहता हूं कि नियमों के अनुसार इस समय किसी संशोधन की कोई गुंजायश नहीं है। मैं अन्त में प्रस्ताव पर मत ले लूंगा।

***श्री मोहनलाल गौतम** (युक्त प्रान्तः जनरल): क्या मैं जान सकता हूं कि मौलाना इस 'आडम्बर' में भागी हैं या नहीं?

***मौलाना हसरत मोहानीः** मैं नहीं हूं। मैंने इस अवसर पर कोई संशोधन नहीं भेजा है। मैं तो सारी चीज का ही विरोध करूंगा।

***अध्यक्षः** मैं समझा था कि आप नहीं बोलेंगे।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रदेश तथा बरारः जनरल): क्या मैं माननीय सदस्य द्वारा प्रयुक्त शब्द की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करके आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि आप उन्हें उस शब्द को वापस लेने के लिये कहें।

***अध्यक्षः** उन्होंने कहा है कि वे कोई संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं। क्या कुछ और भी कहा था?

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रासः जनरल): उन्होंने 'आडम्बर' शब्द का प्रयोग किया था वह आपत्तिजनक है।

***अध्यक्षः** मौलाना, वह शब्द आपत्तिजनक है। सदस्यों को इस पर आपत्ति है। यह आडम्बर थोड़े ही है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** बहुत अच्छा, मैं उस शब्द को वापिस लेता हूं।

***सेठ दामोदर स्वरूप** (युक्त प्रान्त: जनरल): आदरणीय सभापति जी, ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन का दूसरा वाचन खत्म हो चुका है। और यह तीसरा वाचन चल रहा है, जो दो चार दिन के अन्दर खत्म हो जायेगा। इसके बाद 26 जनवरी के ऐतिहासिक दिन तक इस कांस्टीट्शन का उद्घाटन मुलतवी रहेगा। यह जो कुछ हो चुका है ठीक ही हुआ है और उसके लिये आनरेबिल डॉक्टर अम्बेडकर और ड्राफ्टिंग कमेटी के उनके दूसरे साथी सारे हाउस के बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने दिन रात एक करके कठिन परिश्रम और चतुराई के साथ इस विधान को खत्म किया है।

सभापति जी, इस हाउस के एक सदस्य की हैसियत से मुझे भी इस विधान के समाप्त हो जाने पर सन्तोष और खुशी होनी चाहिये। लेकिन आप मुझे यह कहने की इजाजत दें कि आज जब मैं इस विधान के सम्बन्ध में इस हाउस में कुछ कह रहा हूं तो मुझे न केवल कुछ सन्तोष ही नहीं है, कुछ खुशी ही नहीं है, बल्कि सच बात तो यह है कि मुझे अन्दर से ऐसा मालूम होता है कि मेरा दिल बैठा जा रहा है और उसके अन्दर जो काम करने की शक्ति है वह छिनी जा रही है। कारण यह है कि लगभग दो वर्ष से ज्यादा गुजर चुके जबसे अंग्रेज़ी हुकूमत हमारे देश से विदा हो चुकी है, लेकिन बदकिस्मती से यहां आम जनता, यहां के जन साधारण ने आज तक भी यह महसूस नहीं किया कि शासन का परिवर्तन होने से उनकी किसी प्रकार की बेहतर या बहबूदी हो सकी है। इतना ही नहीं, वह तो कुछ ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि शासन में परिवर्तन होने से उनकी स्थिति दिन-ब-दिन ज्यादा खराब होती जा रही है और वह यह भी नहीं समझ पा रहे हैं कि उनकी हालत की यह खराबी कहां पर जाकर रुकेगी। सच बात तो यह है कि देश के जन साधारण को तो, जिनके नाम पर यह विधान बना है और पास किया जायेगा, अपने चारों तरफ निराशा और अन्धकार ही दिखाई देता है।

सभापति जी, हमारे कुछ साथियों का ऐसा समझना था कि जन-साधारण की स्थिति में उनको कुछ तबदीली इसलिये नहीं दिखाई देती क्योंकि अभी तक विधान और कायदे कानून वही चल रहे हैं जो अंग्रेजी हुकूमत के बनाये हुए थे। वह ऐसा विश्वास करते थे कि जब हमारा स्वदेशी विधान बनकर तैयार हो जायेगा, तो यहां की जनता अवश्य ही यह महसूस करेगी कि वह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रही है।

लेकिन सभापति जी, मैं कुछ साफ और खरी बात कहने के लिये क्षमा मांगता हूं। इस विधान के बन जाने और लागू हो जाने के बाद भी यहां की जनता को जरा भी संतोष नहीं होगा, जरा भी खुशी नहीं होगी। क्योंकि इस विधान में, जो कि बनकर तैयार हुआ है, जो कि शीघ्र ही लागू होने जा रहा है उसमें उनके लिये क्या है? ऊपर से लेकर नीचे तक इस विधान को पढ़ जाइये तो इसमें आपको हिन्दुस्तान के गरीब, भूखे, नंगे और पीड़ित लोगों के लिये रोटी का किसी प्रकार का भी इन्तजाम नहीं है। उनकी रोजाना कठिनाइयों को हल करने के लिये यहां पर क्या प्रयत्न हुआ है? यह बात छोड़कर, उनको काम की गारन्टी भी

[सेठ दामोदर स्वरूप]

नहीं है, उनको रोजगार मिलेगा उसकी भी गारन्टी नहीं है। उन्हें परिश्रम के अनुसार मजदूरी या वेतन मिलेगा, यह तो दूर की बात है, उन्हें लिविंगवेजेज मिलेंगी, उनको जीवन निर्वाह करने के लिये मजदूरी और तनख्वाह मिल सकेगी, इसकी भी गारन्टी नहीं है।

ऐसी हालत में सभापति जी, यह विधान दुनिया के सारे विधानों से लम्बा-चौड़ा और भारी विधान हो सकता है, ज्यादा विस्तृत भी हो सकता है। यह हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े कानूनदानों के लिये एक स्वर्ग भी हो सकता है और हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों के लिये इसमें मैगनाकार्टा भी हो सकता है। लेकिन जहां तक हिन्दुस्तान के गरीब और करोड़ों मेहनत करने वाले भूखे नंगों की जनता का ताल्लुक है, उसके लिये इस विधान में कुछ नहीं है। उनके लिये यह भारी पोथी एक रद्दी की किताब से ज्यादा हैसियत नहीं रखता है। यह दूसरी चीज़ है कि हम इस चीज को मानें या न मानें, लेकिन यह तो हमें मानना पड़ेगा कि आम जनता की बातें यदि हम छोड़ भी दें तो भी कुछ बड़े लोगों की बात पर तो हम ध्यान देंगे ही।

अभी हमारे हिन्दुस्तान के पार्लियामेंट के जो माननीय स्पीकर साहब हैं, उनकी बात की तरफ मुझे आपका ध्यान दिलाना है। वह कहते हैं कि जो यह विधान तैयार हुआ है उसमें हिन्दुस्तान की प्रतिभा का नाम व निशान बिल्कुल नहीं है और उसके वह सर्वथा प्रतिकूल है। अगर मैं गलती नहीं करता तो इस हाउस के अन्दर ही कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी साहब श्री शंकर राव देव जी ने भी अपने विचार इस विधान के ऊपर प्रकट किये हैं। उन्होंने कहा है कि अगर जनमत लिया जाये तो इस विधान को अस्वीकार किया जाना निश्चित है। तो जब इस विधान के सम्बन्ध में हम आम जनता की राय को छोड़ भी दें और इतने बड़े बड़े आदरणीय लोगों की राय की ओर ही ध्यान दें, तो फिर इस विधान के सम्बन्ध में हम कैसे कहें कि जनता को इससे कुछ संतोष हो सकता है।

सभापति जी, इसका कारण स्पष्ट है। क्योंकि यह विधान जिन लोगों की ओर से बनाया गया है, वह सच्चे मानों में किसी भी हालत में आम जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं। मैं पहले भी इस बात को कह चुका हूं कि ज्यादा से ज्यादा इस विधान के बनाने वाले हिन्दुस्तान की 14 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह एक कड़वा सत्य है। हम लोग जो इस हाउस में जनता के प्रतिनिधि बन कर बैठे हैं वह भी अनेक कारणों से पार्टी की गुटबन्दी के कारण, अथवा किसी दूसरे कारण अपने उस कर्तव्य को जिसके लिये हम यहां पर जमा हुए थे, पूरा नहीं कर सके। इसका ही यह नतीजा हुआ कि आज हिन्दुस्तान की जनता को विशेष रूप से ऐसी ही निराशा होने जा रही है जैसा कि बदले हुए शासन प्रबन्ध से उन्हें हुई है। तो फिर क्या होना है, यह हमें सोचना है। इसमें शक नहीं कि यह जो विधान पास होने जा रहा है, उसको हिन्दुस्तान की जनता आदरणीय श्री शंकर राव देव के शब्दों में कभी भी नहीं स्वीकार करेगी। यह विधान स्थायी रूप से इस देश में नहीं चल सकेगा।

हमने देखा कि इसमें कुछ अच्छी बातें दी गई हैं और कुछ अच्छे उसूलों का भी इसमें वर्णन है। जैसाकि मताधिकार और संयुक्त निर्वाचन की बात है,

अस्पृश्यता को खत्म करने की बात है लेकिन जहां तक उसूल की बातों का ताल्लुक है, वहां तक तो और बात है, लेकिन इन बातों पर किस तरह से अमल दरामद होगा, यह तो तब ही मालूम होगा जब इन उसूलों को अमल में लाया जायेगा। हम देखते हैं कि इसमें मौलिक अधिकारों की फण्डामेंटल राइट्स (Fundamental Rights) की एक बहुत महत्वपूर्ण बात है। लेकिन, सभापति जी, क्या वाकई हमें इस विधान के जरिये कुछ मौलिक अधिकार मिले हैं, मैं जोरों के साथ कह सकता हूं कि मौलिक अधिकारों की देने की बात महज एक दिखावा है। वह एक हाथ से तो दिये गये हैं और दूसरे हाथ से छीन लिये गये हैं। स्पष्ट शब्दों में हमें बता दिया गया है कि यह जो मौलिक अधिकारों की गारण्टी दी गई है, यह गारण्टी नहीं लागू होगी, उन कायदे कानून पर जो आज जारी हैं, लिबेल (libel), स्लेण्डर (slander) या कंटेम्प्ट ऑफ कोर्ट के सम्बन्ध में, और सरकार को यह भी अधिकार है कि वह आगे भी दूसरे ऐसे ही कानून बना सकती है? इसके अलावा जहां संघ बनाने या राइट् ऑफ ऐसोसियेशन (Right of Association) का ताल्लुक है या लोगों के कहीं आने जाने या बसने का सम्बन्ध है वहां भी सरकार को यह अधिकार हासिल होगा कि वह जनहित के नाम पर इन अधिकारों को छीन लेने के लिये जिस तरह का कानून चाहेगी बना सकती है। तो फिर मौलिक अधिकारों को देना न देना एक प्रकार से बराबर है।

इसके बाद, सभापति जी, हमने देखा कि सम्पत्ति के सम्बन्ध में जो कानून (Law) है, वह वैसे का वैसा ही है जैसा कि सन् 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट में था। इस का परिणाम यह होगा कि सम्पत्ति का समाजीकरण या सोशलाइजेशन (socialisation) नहीं हो सकेगा और जो आर्थिक सुधार जनता के हित के लिये हो सकते हैं उनके रास्ते में बड़ी काफी कठिनाई पैदा होगी।

सभापति जी, आश्चर्य होता है, दुख भी होता है कि जब हमारे देश के प्रधान मंत्री इस विधान सम्बन्धी उद्देश्य के प्रस्ताव पर बोल रहे थे तो उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में कहा था कि मैं एक सोशिलिस्ट हूं। उन्होंने यह आशा भी प्रकट की थी कि यह विधान एक सोशिलिस्ट रिपब्लिक (Socialist Republic) का विधान होगा। लेकिन हमने उनकी सारी बातें सुन लीं और हमने देखा कि जब यह संशोधन हाउस के सामने आया कि रिपब्लिक के साथ सोशिलिस्ट शब्द भी जोड़ दिया जाये तो वह संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

सभापति जी, एक तरफ तो हम यह चाहते हैं कि आज का सामाजिक ढांचा बना रहे और उसमें किसी प्रकार की तबदीली न हो और साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि इस मुल्क से गरीबी दूर हो, इस मुल्क से बेकारी दूर हो। यह दोनों बातें साथ साथ नहीं चल सकतीं। समझ में नहीं आता कि जब हमारे प्रधान मंत्री अमेरीका में थे, तो उन्होंने कहा था कि सोशलिज्म (Socialism) और कैपिटलिज्म (Capitalism) दोनों साथ साथ नहीं चल सकते। आश्चर्य है कि इस देश में कैसे आशा की जा सकती है कि इस स्टेटस-को (*status quo*) को कायम रखा जाये। कैपिटलिज्म भी बना रहे और इसके साथ साथ जनता की गरीबी और

[सेठ दामोदर स्वरूप]

बेकारी भी दूर हो जाये। यह दोनों चीजें बिल्कुल असंगत हैं। इस लिये ऐसा अनुभव होता है कि शायद हिन्दुस्तान की नंगी, भूखी और पीड़ित जनता इसी प्रकार मुसीबत में फंसी रहेगी जैसी आज फंसी हुई है। इसके साथ हम कुछ और बातों की तरफ देखते हैं तो भी किसी परिणाम पर नहीं पहुंचते हैं। आज हमारे देश में कोपरेटिव कामनवेल्थ (Co-operative Commonwealth) की बात बहुत जोरों के साथ की जाती है: लेकिन क्या होता है? डारेक्टिव प्रिन्सिपल (Directive Principle) में स्पष्ट शब्दों में ऐसी कोई हिदायत नहीं की गई है कि सरकारें इस प्रकार की व्यवस्था करेंगी, तो गोल मोल शब्दों में कुछ हिदायतें दे देना और बात है और खुला यह आदेश दे देना कि इस प्रकार की व्यवस्था लागू की जानी चाहिये, दूसरी बात है। फिर कांग्रेस के सभापति इस बात की आशा दिलाते हैं कि पांच वर्ष में इस देश में वर्गहीन समाज कायम हो जायेगा। पर मेरे जैसे साधारण आदमी की बुद्धि में यह बात नहीं आती कि एक तरफ सोशलिस्ट सिद्धान्त से हम को चिढ़ है, और हम स्टेटस-को (*status quo*) कायम रखते हैं, और दूसरी तरफ हम यह चाहें कि शोषक वर्ग को बनाये रखते हुए हमारे देश में वर्ग-हीन समाज कायम हो जाये, तो यह दोनों बातें, जो परस्पर विरोधी हैं, कैसे हो सकती हैं? इसके अलावा और भी कई छोटी-छोटी बातें, जोकि की जा सकती थीं, वह नहीं की गई।

एग्जीक्यूटिव (Executive) और ज्यूडिशियरी (Judiciary) के अलग होने की मांग बहुत पुरानी मांग है, शायद इतनी पुरानी मांग है जितनी पुरानी कि राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस मानी जाती है। लेकिन इस विधान में कोई भी ऐसी निश्चित योजना (ऐडीक्वेट प्रावीजन) (adequate provision) नहीं है कि जिसके द्वारा जल्द से जल्द एग्जीक्यूटिव और ज्यूडिशियरी का सम्बन्ध एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हो जायेगा।

रियासतों में देखिये कि अभी तक जागीरदारी प्रथा खत्म करने के सम्बन्ध में कोई भी निर्णय नहीं किया गया है। इसका नतीजा यह होगा कि रियासतों की लाखों करोड़ों किसान जनता गुलाम बनी रहेगी। वहां की जागीरदारों की। इसके अलावा खेतिहर मजदूर महाजनों के गुलाम बने रहेंगे। इसके साथ ही साथ हम यह देखते हैं कि इस विधान में बहुत-सी बातें ऐसी पाई जाती हैं जो कि सन् 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट से भी कहीं ज्यादा पिछड़ी हुई और प्रतिक्रियावादी हैं, कहीं ज्यादा रिएक्शनरी (reactionary) हैं। पहले तो इस विधान में यह बताया गया था कि गवर्नरों का सीधा वोटरों से चुनाव होगा। उसके बाद दूसरा प्रस्ताव यह आया था कि एक पैनल (panel) द्वारा गवर्नरों की नियुक्ति होगी। परन्तु अब गवर्नरों को चुनने का अधिकार सभापति जी को दे दिया गया है और यह भी अधिकार दे दिया गया है कि उनकी नियुक्ति की मुद्दत भी वही निर्धारित करेंगे। यह ठीक है कि सभापति जी जहां तक भी होगा अपने अधिकार का ठीक इस्तेमाल करेंगे, लेकिन इससे प्रान्त की सरकार और गवर्नर के बीच

में रस्साकशी हो सकती है। हो सकता है कि प्रान्त की सरकार की विचारधारा कुछ हो और केन्द्रीय सरकार की विचारधारा कुछ हो, और उस विचारधारा के संघर्ष की वजह से प्रान्तीय सरकार और गवर्नर में संघर्ष होने लगे। इसके अलावा गवर्नर की डिस्क्रीशनरी पावर्स (discretionary powers) तो सन् 35 के ऐक्ट से भी ज्यादा रिएक्शनरी (reactionary) हैं। सन् 35 के एक्ट में गवर्नर को इंडीवीजुअल जजमेन्ट (Individual judgment) की पावर दी गई थी, लेकिन उसके लिये जरूरी होता था कि वह मंत्रिमंडल से राय ले। लेकिन अब डिस्क्रीशनरी पावर में तो गवर्नर को मंत्रिमंडल से सलाह लेने की भी जरूरत नहीं है, और यह भी उसके अपने अधिकार की बात है कि किस विषय को वह डिस्क्रीशनरी माने और किस विषय को वह डिस्क्रीशनरी न माने। इस प्रकार हम देखते हैं कि गवर्नरों के सम्बन्ध में और उनके अधिकारों के सम्बन्ध में भी आगे बढ़ने के बजाय हम पीछे ही हटे हैं।

इसके अलावा संकटकालीन अधिकारों के नाम पर, इमरजेन्सी पावरस (emergency powers) के नाम पर, सभापति जी को जरूरत से ज्यादा अख्तियारात दे दिये गये हैं और सेन्टर (केन्द्र) को भी प्रान्तों के मामलों में हस्तक्षेप करने के जरूरत से ज्यादा अधिकार दे दिये गये हैं। यों तो कहने के लिये तो हमारे विधान का ढांचा फैडरल (federal) या संघी है परन्तु वास्तव में देखें तो जहां तक एडमिनिस्ट्रेटिव स्फियर (administrative sphere) (शासन-क्षेत्र) का ताल्लुक है, वह बिल्कुल यूनिटरी (unitary) एकराज्य-सा बन गया है। हम यह समझते हैं कि कुछ हद तक केन्द्रीकरण होना जरूरी है, लेकिन जरूरत से ज्यादा केन्द्रीकरण के माने यह हैं कि मुल्क में भ्रष्टाचार बढ़े। उम्र भर गांधी जी हमको डिसेंट्रलाइजेशन (विकेन्द्रीकरण) का सबक सिखाते रहे। आश्चर्य है कि उनके विदा होने के बाद हम उस सबक को इतनी जल्दी भूल गये और आज शान्ति रक्षा के नाम पर सभापति जी को और केन्द्रीय सरकार को हम जरूरत से ज्यादा अधिकार दे रहे हैं।

सभापति जी, यों तो आजकल के राज्यों का ढांचा दो खम्भा होता है। कुछ अधिकार प्रान्तों को होते हैं और शेष अधिकार केन्द्र को होते हैं। वह खुद ही जरूरत से ज्यादा केन्द्रित (सेंट्रलाइज्ड) है। अगर हम चाहते हैं कि भ्रष्टाचार बन्द हो, ब्राइबरी (bribery) करप्शन (corruption) और निपाटिज्म (nepotism) का अन्त हो तो इसके लिये आज का दो खम्भा राज का ढांचा उपयुक्त नहीं मालूम देता है। इसके लिये तो जरूरी यही था कि ढांचा चौ खम्भा हो। जैसा कि मैंने पहले एक दफा सुझाव दिया था, कि हमारे गांवों की अलग प्रजातंत्र (रिपब्लिबक्स) होतीं, शहरों की प्रजातंत्र (रिपब्लिक्स) अलग होतीं, और सूबों की प्रजातंत्र अलग होतीं और उनका केन्द्रीय रिपब्लिक के रूप में संघ बनता तो यह सच्चे मानों में प्रजातांत्रिक संघ का ढांचा बनता। लेकिन जैसा मैंने अभी कहा आज संघ के नाम पर हमने एक युनिटरी एक ही राज्य का जैसा विधान बना कर रख दिया है। इसका लाजिमी नतीजा यही होगा कि जरूरत से ज्यादा केन्द्रीकरण (centralisation) होगा और हमारी सरकार जो कि जनता की सरकार होनी चाहिये वह एक फासिस्ट जैसी सरकार बन जायेगी। तो इस दृष्टिकोण से देखने पर भी सभापति जी हम

[सेठ दामोदर स्वरूप]

इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि यह जो विधान हमारे देश में बन कर तैयार हुआ है उससे न हमारी जनता की भलाई होती है और न उन ऊंचे सिद्धान्तों की रक्षा होती है जिनके आधार के नाम पर हमने इस विधान को बनाया है। यही कारण जान पड़ता है कि हिन्दुस्तान की सोशलिस्ट पार्टी ने यह घोषणा की है कि जब कभी ऐसा अवसर हुआ कि उनके हाथ में सत्ता आई तो पहला काम वह यह करेंगे कि जनमत के अधिकार पर एक-दूसरी विधान परिषद् बनाई जायेगी और वह विधान परिषद् या तो इस सारे विधान को समूल बदल देगी या इसमें आवश्यक संशोधन करेगी। इसलिये सभापति जी मैं और ज्यादा समय न लेकर यही कहूंगा कि जहां तक जनता के हित का ताल्लुक है और जहां तक विधान संबंधी ऊंचे उसूलों का ताल्लुक है, उनको देखते हुए विधान इस काबिल नहीं है कि इसको स्वीकार किया जाये। इस विधान को तो हमें यही चाहिये कि हम अस्वीकार कर दें। लेकिन सभापति जी, हम ऐसा करें या न करें मैं आपसे यही निवेदन करना चाहूंगा, और मैं अपने आदरणीय श्री शंकर राव जी देव की इस बात में पूरा विश्वास करता हूं कि चाहे हम इस विधान को स्वीकार कर भी लें लेकिन देश की जनता कभी भी इस विधान को स्वीकार नहीं करेगी। उनके लिये इस विधान का महत्व और दूसरी साधारण कानून की किताबों से ज्यादा नहीं होगा। जनता की जो आशायें इस विधान से थीं वह इसी तरह अपूर्ण बनी रहेंगी जैसी अंग्रेज़ी राज्य के परिवर्तन से उनकी आशायें पूरी नहीं हो सकीं। इस लिये अगर हम चाहते हैं कि हम पर जनता का विश्वास कायम रहे तो अभी भी यह मौका है कि हम उसे बनाये रखें। परन्तु अगर हम इस कार्य में सफल नहीं होते तो मेरा विश्वास है, सभापति जी, कि हिन्दुस्तान की आम जनता आज भी और आने वाली नसलें भी हमें किसी अच्छे सम्मानपूर्ण नाम से याद नहीं करेंगी।

*__श्री टी. प्रकाशम__ (मद्रास: जनरल) अध्यक्ष महोदय, यह संविधान वह नहीं है जिसकी मैं अपने देश के लोगों के लिये आशा करता था, जिसकी आशा मैं तथा अन्य बहुत से लोग करते थे जो इस देश की स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं, जिस संविधान की योजना महात्मा गांधी ने बनाई थी, केवल योजना ही नहीं बनाई थी वरन्, क्रियान्वित भी करने का प्रयत्न किया था। पंचायत राज्य की योजना बनाई गई थी और राष्ट्र के समक्ष पेश की गयी थी। उनके आने से पहले और देश के समक्ष अपना कार्यक्रम रखने से पहले कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि जनता, जो सब प्रकार विभक्त थी, एक नेतृत्व में आयेगी, एक झंडे के नीचे आकर उनके तथा कांग्रेस के आदेशों पर चलेगी। वे ही एक व्यक्ति थे जिन्हें, संविधान बनाना चाहिये था, वे ही इस देश के लोगों के लिये संविधान बना सकते थे जिससे सबको, करोड़ों को विश्राम मिल सकता था। उनकी योजना थी कि करोड़ों को शिक्षित किया जाये और उनके द्वारा आजादी के लिये संघर्ष कराया जाये, यह योजना उसी समय से थी जब वे दक्षिण अफ्रीका से लौट कर इस देश में आये थे। महात्मा गांधी के विषय में आप मेरे से या देश में किसी से भी अधिक जानते हैं, और श्रीमान, जब संविधान का मसौदा बन रहा था तब आपने कृपा करके एक रचनात्मक कार्यकर्त्ता के, जो

अधिवक्ता था, शिक्षित व्यक्ति था और जिसने काफी समय से ग्रामों में अपना जीवन बिताया था पत्र का उत्तर दिया था। उस पत्र में उसने महात्मा गांधी की इस पंचायत व्यवस्था का सुझाव दिया था और आपने उसे सविवरण उत्तर दिया और आप उससे प्रभावित हुए क्योंकि आप महात्मा गांधी के अग्रतम अनुयाइयों में से हैं और उस पत्र की एक प्रतिलिपि मुझे दी थी और उस पत्र को आपने सांविधानिक परामर्शदाता श्री बी.एन. राव को भेज दिया था। जब हम चर्चा कर रहे थे तब अन्यत्र मैंने उस प्रश्न को उठाया था और सब वहां प्रभावित हुए थे, किन्तु मैंने स्वयं पंचायत संविधान को, उसकी रूप रेखा को रखना कठिन समझा, क्योंकि संविधान में काफी प्रगति हो चुकी थी। अत: हमने उस विचार को छोड़ दिया, और नेताओं ने तब यह सुझाव दिया कि संविधान में निदेशक सिद्धान्त रख दिये जायेंगे। अब वह संविधान हमारे सामने है। अत: मैं जो संविधान चाहता था वह वैसा संविधान था। केवल उसी संविधान से करोड़ों को भोजन और कपड़ा और जीवन की सब आवश्यकतायें प्राप्त हो सकती हैं। ब्रिटिश राज्य में करोड़ों की उपेक्षा की गई थी और अंग्रेजों के जाने के बाद भी उनकी उपेक्षा हमारे देश में की गई और हमने भी उनकी उपेक्षा कर दी है और हम इस संविधान को बना रहे हैं।

संविधान एक महान लेख्य है और इसे बनाने वाले डॉ. अम्बेडकर एक महान वकील हैं, एक बहुत योग्य व्यक्ति हैं। यहां उन्होंने जो काम किया है उससे उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वे ग्रेट ब्रिटेन में राजा के परामर्शदाता बनने के योग्य हैं, शायद वूलसेक पर ही बैठने के योग्य हैं, किन्तु यह संविधान ऐसा नहीं है कि जो इस देश के लोग चाहते थे। जब महात्मा गांधी ने इस देश की बागडोर को कांग्रेस के नाम से संभाला था तब उन्होंने देख लिया था कि इस देश की और इसके करोड़ों लोगों की सहायता कैसे की जा सकती है। अतएव उन्होंने विनिश्चय किया था कि देश को भाषा के आधार पर विभक्त कर देना चाहिये जिससे कि प्रत्येक क्षेत्र के लोग अपना विकास स्वयं कर सकें। उन्होंने केवल प्रचार के निमित्त ही यह नियम नहीं बनाया था वरन् उन्होंने उस पर अमल किया, देश को 21 भाषा भाषी क्षेत्रों में विभाजित कर दिया और उन्होंने लोगों से उसी संविधान के अंतर्गत काम करवाया। वास्तव में उनके दिवंगत होने के पश्चात् तथा अंग्रेजों के यहां से चले जाने के पश्चात्, हमें उस आधार को छोड़ नहीं देना चाहिये था जिस पर कि उन्होंने देश को शिक्षित किया था, केवल शिक्षित ही नहीं किया था प्रत्युत प्रत्येक क्षेत्र के लोगों को काम चलाने के योग्य बना दिया था। वह कांग्रेस कार्य क्या था जो उनके निदेश से और कांग्रेस के निदेश से और आपके नेतृत्व में तथा अन्य लोगों के नेतृत्व में किया गया था? वे सब बातें अब कहीं नहीं हैं जो 26 वर्ष तक की जाती रही थीं कि अपना वस्त्र कैसे बनाया जाये, अपना भोजन कैसे पकाया जाये तथा रचनात्मक कार्यक्रम की अन्य मदों को कैसे पूरा किया जाये। अतएव मैं यहां दुखपूर्वक विचार करता रहा हूं कि हम उस मार्ग से हट रहे हैं। मानो उसकी आत्मा से दूर भाग रहे हैं।

संविधान को बहुत ध्यान से बनाया गया है। मैं बहुत समय से, लगभग 40 या 45 वर्ष तक संविधानिक विधि का विद्यार्थी रहा हूं। मैंने इस संसार के विविध देशों के संविधानों के सिद्धान्तों को समझा है। यहां वैधानिक विशेषज्ञ तथा मसौदा समिति के सभापति हमें प्राय: अमरीकी संविधान का हवाला देते थे। अमरीकी

[श्री टी. प्रकाशम]

संविधान में क्या है? हम उसके सार को समझ सकते हैं—किस प्रकार 13 विविध उपनिवेश या एकक एकत्रित हुए, और वे ब्रिटिश के विरुद्ध युद्ध जारी रखने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ थे और उन्होंने युद्ध चलाया और युद्ध समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने संविधान बनाया। जब ऐसी बात थी तब मसौदा समिति के सभापति के तथा वैधानिक विशेषज्ञ के—जो बहुत योग्य व्यक्ति हैं और जो विधि-वत्ति में सर्वोच्च थे—दिमाग में क्या भय था? उनका दिमाग वहां नहीं था क्योंकि वे उन में नहीं थे। अतः यह संविधान इंग्लिश संविधान के आधार पर आरम्भ हुआ। 1935 का अधिनियम इस संविधान का आधार बन गया। हमने मानों इसमें कई उपबंध ज्यों के त्यों रख दिये। वे अत्यन्त असाधारण प्रकार के हैं, वे नये आविष्कार नहीं हैं जो सर्व प्रथम ग्रेट ब्रिटेन ने किये हों। हम इतनी जल्दी यह कहने के लिए क्यों तैयार हो गये कि हम 1935 के ग्रेट ब्रिटेन के इस संविधान को स्वीकार करते हैं।

अतएव, श्रीमान, मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से निवेदन कर रहा हूं जो सब ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने ने हमारे देश की स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिये महान त्याग किये हैं, कि गांधी जी की योजना में जो बातें थीं वे उचित थीं, समस्त सदन मानों एक आवाज से उठ खड़ा हुआ था, और उन्होंने पंचायत-राज-व्यवस्था की मांग की थी। किन्तु अब समय नहीं रह गया था अतः उसे संविधान में नहीं रखा जा सका। किन्तु सब उसके पक्ष में थे, और गत दो दिन से भी सब अपने भाषणों में उसी का निर्देश कर रहे हैं, जैसा कि वे पहले भी करते थे। अतएव मैं जिस संविधान की आशा कर रहा था और मैं इस देश के लिये जिस संगठन की आशा कर रहा था वह भाषा के आधार पर विभाजन था जो गांधी जी ने तैयार किया था, जो केवल सिद्धान्त के रूप में या ऐसे ही स्वीकार करने के लिए नहीं तैयार किया गया था, बल्कि 26 वर्ष तक उस पर अमल किया गया था, अब तो 30 वर्ष हो गये हैं। अब भी वही व्यवस्था चालू है। हमने उसे क्यों छोड़ दिया है, और इसे क्यों अपना लिया है?

मैं इस सम्बन्ध में एक शब्द कहना चाहता हूं, श्रीमान। मेरे जैसे व्यक्ति, डॉ. पट्टाभि सीतारमैया, प्रो. रंगा और अन्य लोग जो हमारे प्रान्त के हैं और जो आंध्र प्रान्त को पृथक करने के लिये आन्दोलन करते रहे हैं, और उसके लिये 36 वर्षों से लड़ते रहे हैं, अभी तक सफल नहीं हुए हैं। अंततोगत्वा कांग्रेस कार्यसमिति ने कृपा करके आंध्र के पार्थक्य को स्वीकार कर लिया है। मैं कार्यसमिति को, डॉ. पट्टाभि सीतारमैया को, माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू को तथा माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल एवं कार्यसमिति के अन्य सदस्यों को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया है। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया है कि यह काम तत्काल आरम्भ कर दिया जाये और सब काम पूरा किया जाये। मद्रास शहर के विषय में एक विवाद था जिस का हल नहीं हो सकता था। आपने, श्रीमान, धर आयोग को नियुक्त किया था और उस आयोग ने समूचे प्रश्न पर विचार करके तथा देश भर का भ्रमण करके अपने प्रतिवेदन में कुछ निश्चय किये हैं। इन सिफारिशों के आधार पर ही हमने आंध्र प्रान्त की मांग की, और श्रीमान, मद्रास शहर पर दावा नहीं किया, यद्यपि उसे पृथक करने की और विभाजन की

तथा उसे पृथक प्रान्त बनाने की मांग थी। इस प्रश्न पर कार्यसमिति कोई विनिश्चय नहीं कर सकी थी। किन्तु उन्होंने कृपा करके उसे ऐसे रूप में रखा था कि प्रश्न पर विचार किया जा सकता था। और एक सीमा आयोग भी नियुक्त किया जाना है। अतः मैं सरकार को और उन सबको धन्यवाद देता हूं जिन्होंने यह कुछ किया है।

मैं यह भी अनुभव करता हूं कि आंध्र के विषय में जो कुछ किया गया है वही दूसरों के विषय में भी होना चाहिये। जो कि भाषावार प्रांत बनने के लिये आंदोलन कर रहे हैं इसमें अधिक समय नहीं लगता। किन्तु नेताओं के दिमाग में कुछ आशंका प्रतीत होती है जिससे कि वे भाषा के आधार पर पार्थक्य पर विचार नहीं कर सकते। यह असंभव बात नहीं है। उसी काम से और सब लोगों की उसी संयुक्त भावना से, उसी विभाजन से यह स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, और देश एक हुआ है। हम इसे टालना क्यों चाहते हैं, मेरी समझ में नहीं आता। किन्तु दोनों नेता इस समय, भाषा के आधार पर विभाजन के प्रबल विरोधी थे, और इस सदन में या बाहर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इन नेताओं के विचारों के विरुद्ध बोल सके, विशेषतः जब हम देखते हैं कि ये दो नेता इस देश का प्रशासन संभालने के पश्चात् अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में, कैसे काम करते रहे हैं, उदाहरण के लिये सरदार वल्लभभाई पटेल को लीजिये जिन्होंने सब राज्यों को संघ में संयुक्त कर दिया है, मानो समस्त भारत का एक संयुक्त संघ बना दिया है, संसार के इतिहास में ऐसा केवल एक ही व्यक्ति हुआ है, ऐसा ही महान व्यक्ति हुआ है वह है बिस्मार्क। किन्तु वल्लभभाई पटेल ने बिस्मार्क को मात कर दिया, फीका कर दिया, उससे भी वे आगे बढ़ गये। मुझे चाटुकारी की और उचित समय पर अच्छे शब्द कहने की बान नहीं है। किन्तु आप जानते हैं कि ब्रिटिश पत्रों में भी, जो सबसे अधिक रूढ़िवादी पत्रों में से होते हैं, सरदार वल्लभभाई पटेल को बिस्मार्क से बड़ा बताया गया है। अतः हमें सबको सरदार वल्लभभाई पटेल के काम पर महान गर्व है, और वे जितना परिश्रम करते रहे हैं, तथा कठिनाइयों का सामना करते हैं, केवल देश के संविधान के विषय में बाहर से तथा अंदर से ही नहीं, वरन्, शारीरिक कठिनाइयां भी झेलते रहे हैं, उन सब पर भी हमें गर्व है। हम जानते हैं कि वे देश के विषय में अन्य कठिनाइयों को झेलते रहे हैं वैसे ही वे शारीरिक कठिनाइयों को भी झेलते रहे हैं।

फिर, श्रीमान, माननीय श्री जवाहर लाल नेहरू को लीजिये, वे अभी अमरीका से लौटे हैं। उन्होंने क्या किया है अब? वहां अपने भ्रमण में वे शांति का संदेश ले गये हमारे ग्रामों में, या हमारे जिलों में, या हमारे प्रान्तों में नहीं, अपितु समस्त देश में और समूचे अमरीका में और मानो सब अन्य राष्ट्रों में ले गये। और वे मानो एक उत्तर वापिस लाये, कि वे सब आज शान्ति के पक्ष में हैं और युद्ध के पक्ष में नहीं हैं। रुस के प्रतिनिधि ने भी यही बात संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष अपने हाल ही के प्रस्तावों में प्रदर्शित की है। हां, उस पर अन्य लोगों ने बहुत अविश्वास किया, उसके शब्दों पर विश्वास नहीं किया गया। किन्तु मुझे विश्वास है कि उसने शांति की मांग सच्चे दिल से की थी, और जब वह मांग स्टालिन के देश से आती है तो उसे स्वीकार करके सफल बनाना चाहिये।

[श्री टी. प्रकाशम]

और इस प्रकार, भारत महात्मा गांधी के सिद्धान्त पर चलता है और भारत के यह प्रधानमंत्री हैं—जिनसे मैं कई कई बार मेरी इच्छानुसार काम न करने पर लड़ता रहता हूं—पर इन प्रधान मंत्री ने उन्हें यह शांति का संदेश ले जाकर दिया, और मानो उसका उत्तर लाये, मेरा मतलब है कि समूचे विश्व को शांति का संदेश दिया, और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे महात्मा गांधी के शिष्य हैं जहां तक कि अहिंसा, सत्य तथा शांति का संबंध है।

इसलिये, जब ये दोनों नेता यहां प्रयत्न कर रहे हैं, तो लोग उनका विरोध नहीं कर सके और उन्हें यह नहीं समझा सके कि भाषा के आधार पर देश के विभाजन से एकता होगी, फूट नहीं होगी। इससे गड़बड़ नहीं होगी। दूसरी ओर इससे शक्ति प्राप्त होगी। और उन तत्वों का विरोध करने की ताकत मिलेगी जो हमारी सरकार के विरुद्ध या इस देश में किसी सरकार के विरुद्ध काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिये अमरीकी राज्यों को लीजिये। तेरह राज्य संयुक्त हुए और युद्ध चलाया, और युद्ध के पश्चात् उन्होंने अपना संविधान बनाया, किन्तु उस प्रकार नहीं जिस प्रकार हम बना रहे हैं श्रीमान।

मेरी बहुत प्रबल भावना है। कि हमने ब्रिटेन में भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट तथा केबिनेट के निदेश के अंतर्गत संविधान सभा का निर्माण करके अपने संविधान की रचना का काम चलाया है 1947 के भारत स्वतंत्रता अधिनियम को देखिये। उसी अधिनियम के अंतर्गत हम यह सब कुछ करते हैं। हां, उन्हें तो वह अधिनियम पारित करना ही पड़ता। मुझे उस पर आपत्ति नहीं है, क्योंकि वे अपनी संसद के द्वारा सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करना चाहते थे कि उन्होंने भारत से अपने संबंध तोड़ लिये हैं, कि वे किसी बात के लिये उत्तरदायी नहीं होंगे। उन धाराओं में, जो अधिनियम के उत्तर भाग में थीं–(अधिनियम में 20 धारायें हैं)—उन्होंने घोषणा कर दी "हमने भारत भारतीयों को सौंप दिया है और इस तारीख से हम किसी बात के लिये उत्तरदायी नहीं होंगे जो भारत सरकार द्वारा, भारतीयों द्वारा, जो हमारा स्थान ले रहे हैं, की जाये। उन्हें यह उत्तरदायित्व भी लेने होंगे।" यदि ऐसी बात थी तो उन्हें हमें कहना चाहिये था कि हम अपनी खुद की संविधान सभा बनाकर अपना संविधान बनायें। किन्तु उसके स्थान पर मानो अंतिम क्षण तक उसे संसद के अधीन रखना चाहते थे और भारत स्वतंत्रता अधिनियम के नाम से चलाना चाहते थे। उन्होंने क्या किया? पहले उन्होंने गवर्नर जनरल बना दिया। गवर्नर अपने स्थान को तब छोड़ेगा जब यहां राष्ट्रपति नियुक्त हो जायेगा, और जब हम इस संविधान को पारित कर देंगे। किन्तु वह राजा जार्ज का गवर्नर जनरल है हमारा नियुक्त किया हुआ गवर्नर जनरल नहीं है। उसे वहां ब्रिटेन के हितों का ध्यान रखने के लिए रखा गया है। हां, मैं नहीं...

एक माननीय सदस्यः ऐसे कोई बात नहीं है।

***श्री टी. प्रकाशमः** यह कहना व्यर्थ है कि "ऐसी कोई बात नहीं है।" मैं संविधान की बात नहीं कर रहा हूं यहां क्या किया गया है? अंग्रेजों के जाने से पहले गवर्नर जनरल जो कुछ करता था वही काम अब भी गवर्नर जनरल करता रहा है? अतः मैं कहता हूं, श्रीमान, मैं इस संविधान की कमजोरी बता

रहा हूं जो कि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के फलस्वरूप ब्रिटेन के तत्वाधान में बनाया जा रहा है। मैं बता रहा हूं कि भारत स्वतंत्रता अधिनियम के पारित होने के दिन तक ब्रिटेन इस देश पर अपना अधिकार रखना चाहता था। उस अधिनियम की धारा 17 में वे कहते हैं कि अंग्रेज लोग जब सरकार चला रहे थे उस समय की गई किसी बात का दायित्व भारत-सचिव पर नहीं होगा। वहां यह भी लिखा है कि उनके पदासीन रहने पर उन्होंने जो कुछ किया है उसके लिये ब्रिटिश एक्सचेकर का दायित्व नहीं होगा। मैंने इस बात पर दो-तीन वर्ष विचार किया है मैं यह बताने के लिये आतुर हूं कि ब्रिटेन ने इस देश के लोगों के साथ सबसे बड़ा अन्याय किया था जब कि उसने भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 315 के अंतर्गत कुछ ऋण लिये थे और ये ऋण लेने के लिये किसी धातविक् आधार के बिना ही नोट जारी कर दिये थे। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कुल चालू नोट सात अरब 14 करोड़ रुपये के लगभग थे: युद्ध समाप्त होने के समय तक 1948 में कुल राशि 12 अरब 14 करोड़ रुपये की थी। मैं कहता हूं, मैं कहता रहा हूं और मैंने उस दिन संसद में अपनी आयव्ययक विषयक वक्तृता में कहा था कि इन नोटों का, जो युद्ध काल में किसी धातविक आधार के बिना जारी किये गये थे, उस कागज के बराबर भी मूल्य नहीं है जिस पर कि वे छापे गये थे, और इस देश के लोगों का उनके विषय में दायित्व नहीं होना चाहिये जिन्होंने ब्रिटिश सरकार को नकद राशि देकर इन नोटों को स्वीकार किया था। मेरा यही कहना है और मैं यही बात उठाना चाहता था। मैं आपको कोई नई विस्मयकारी बात नहीं कह रहा हूं। डॉ. अम्बेडकर मसौदा-समिति के सदस्य हैं, और इस संविधान निर्माता निकाय के वैधानिक परामर्शदाता हैं—मैंने दो वर्ष पहले उन्हें एक संकल्प की सूचना भेजी थी। उस खरीते में मैंने इस सारी बात पर प्रकाश डाला था और उनसे कहा था कि उस प्रस्ताव को सदन के समक्ष रखवायें। मुझे उस की कोई सूचना नहीं मिली और मैं कुछ समय तक उपस्थित नहीं हो सका। बाद में श्री सत्यनारायण सिंह ने एक खरीता भेजा कि जो वहां बैठे हैं उन्हें यहां नहीं आना चाहिये। मैं यहां एक विशेष मांग पर आया हुआ हूं जो पंडित जवाहर लाल नेहरू से की गई थी। मैंने 14 अगस्त 1949 को जिस संकल्प की सूचना दी थी वह यह है:—

> "मैं सूचना देना चाहता हूं कि संविधान सभा का यह सम्पूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न निकाय संघ संविधान के विचार तथा रचना पर आगे बढ़े, उससे पूर्व में निम्न संकल्प, जो लोकहित के महत्वपूर्ण मामले पर है, विचारार्थ तथा विनिश्चयार्थ प्रस्तावित करना चाहता हूं।"

संकल्प यह है:—

> "यह सभा एतद द्वारा घोषणा करती है कि ग्रेट ब्रिटेन ने, अपनी चलार्थ विधि द्वारा तथा चलार्थ नीति द्वारा और उसके परिणामस्वरूप तथाकथित लोकऋण द्वारा तथा धातविक प्रतिभूति के बिना कागजी चलार्थ के प्रसार एवं चलन से पैदा हुए करोड़ों रुपये के दायित्व द्वारा, भारत के लोगों पर जो भारी बोझ डाल दिया है वह अवैध है और भारत के लोगों ने अपनी राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता के लिये जो लम्बा संघर्ष किया है उसे देखते हुए यह सब

[श्री टी. प्रकाशम]

चलार्थ नोट, जो ऐसे जारी किये गये थे, भारत के लोगों के लिये व्यर्थ तथा मूल्यहीन हैं।"

खैर, श्रीमान, जब यह सूचना दे दी गई थी, तो क्या मसौदा समिति के प्रधान महोदय, या वैधानिक परामर्शदाता, या कोई भी कह सकता है कि यह मामला उनके सामने नहीं था? मैंने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था: मैंने यह भी कहा था कि संविधान सभा के संविधान अधिनियम पर विचार करने से पूर्व इस पर विचार करना चाहिये। अत: मेरा निवेदन है कि इस संविधान की रचना में हम हटते रहे हैं, हटते रहे हैं, हटते रहे हैं, और हमें पता ही नहीं था कि हम कहां जा रहे थे। ये 12, 14 करोड़ रुपये के चलार्थ नोट ब्रिटेन द्वारा इस देश को छोड़ने से पहले छापे गये थे, और भारत स्वतंत्रता अधिनियम में यह उपबंध किया गया कि उन्होंने जो कुछ किया है उसके लिये उनका दायित्व नहीं है। क्या वह वैध है? मेरा विचार यह है कि वह अवैध है। यदि उन्होंने जाते समय यह ऋण लिया है तो वे ही उत्तरदायी हैं। संविधान पारित हो जाने के पश्चात् भी इसके लिये उनका ही दायित्व है। इसका प्रभाव क्या पड़ा है? मैं आपसे और इस सदन के माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि इस पर जरा विचार करें। धातविक आधार के बिना ये 12, 14 करोड़ के चलार्थ के नोटों का मुद्रण किया गया, जिससे कि इस देश के लोगों पर दायित्व आ गया है, जिससे मुद्रास्फीति हो गई है और इस देश में मूल्य बढ़ गये हैं। विशेषज्ञ कहते रहे हैं कि वे मूल्य कम करेंगे और वे ऐसा करेंगे वैसा करेंगे, और वे इस बात पर चुप रहते हैं— लोगों पर आये हुए 12, 14 करोड़ रुपये के दायित्व को कम नहीं करना चाहते। यह लोगों के लिये जीवन तथा मृत्यु का प्रश्न है। यही हुआ है।

मैं यह बताना चाहता हूं कि इस संविधान को पूरा करने में हमें किन कठिनाइयों में से गुजरना पड़ा है और हम अंत में आ पहुंचे हैं। मैं सदन को तथा आप को बताना चाहता हूं, श्रीमान, कि हमने कितनी चीजें नहीं की हैं जिन का हम पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। ऐसा संविधान बनाने से क्या लाभ है जिसमें ऐसे महत्वपूर्ण मामले को नहीं रखा गया है तथा इस भार को कम करने के लिये कुछ नहीं किया गया है। इस मुद्रा प्रसार के शाप को और कौन कम कर सकता है जिससे मूल्य बढ़े हैं, जिनसे सब कठिनाइयां पैदा हुई हैं? सरकार इस मुद्रास्फीति को कम करने के लिये इतने अन्य कदम उठा रही है। यदि वे उन 12, 14 करोड़ रुपये की चट्टान को नहीं तोड़ते तो वे मुद्रास्फीति को कैसे हटा सकते हैं? इन सब अंग्रेजों ने, अपने शासन-काल में, ये चलार्थ नीतियां आरंभ की थीं। उन्होंने यह मुद्राप्रसार किया तथा मुद्रावमूल्यन भी किया। इतने चलार्थ आयोग बने और प्रत्येक आयोग के अन्त में उन्होंने सदा ऐसे ही आदेश पारित किये जो अंग्रेज लोगों को सुविधाजनक थे।

जब 12 अरब 14 करोड़ रुपये के चलार्थ नोट अनधिकृत रूप से छपे हैं तो उन्हें वापस लेने का भी कोई उपाय होना चाहिये। वास्तव में, कई देशों में ऐसा किया गया है। किन्तु यहां कोई ऐसी बात नहीं की गई और इसलिये मुझे भय है कि हम कठिनाई में हैं। यह अवमूल्यन कैसे हुआ, श्रीमान?

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य के भाषण में बाधा नहीं डालना चाहता। किन्तु मुझे भय है कि वे ऐसे विषयों पर बोल रहे हैं जो संविधान से, जिस पर हम चर्चा कर रहे हैं, संगत नहीं है। ये ऐसी बातें हैं जो सरकार से कही जा सकती थीं और सरकार को ही दोष दिया जा सकता था, या सदन जो कुछ करना चाहता सरकार के साथ कर सकता था। किन्तु यह बात अन्यत्र होनी थी, यहां नहीं।

***श्री टी. प्रकाशमः** श्रीमान, मैं विषयान्तर नहीं करना चाहता और संविधान पर ही चर्चा तक सीमित रहना चाहता हूं। मैं जिस बात का अभी निर्देश कर रहा था वह इस प्रकार संगत है: जो संविधान हमने बनाया है उसमें 1 शलिंग 6 पेन्स की विनिमय दर को बनाये नहीं रखना चाहिये था, जो कि भारत सरकार ने बहुत पहले स्वीकार की थी। दुर्भाग्य से वैसा नहीं किया गया है। इसी प्रकार मेरी बात इस चर्चा से संगत है।

अब श्रीमान, मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता के उपबंध को लेता हूं जो हमने स्वीकार किया था। हमने विचार विमर्श तथा चर्चा के पश्चात् यह उपबन्ध बनाया था कि तीन मास तक व्यक्ति को मुकद्दमे के बिना निरुद्ध किया जा सकता है। इससे मुझे आश्चर्य हुआ और अब भी आश्चर्य है कि हमने ऐसा उपबंध रखा है। हम संसार के सामने अपनी स्थिति को उचित सिद्ध नहीं कर सकते। यह विचित्र बात है कि हम लोग ऐसा उपबंध रख रहे हैं जो कि ऐसे महान व्यक्ति द्वारा प्रशिक्षित तथा अनुशासित हुए हैं जिस ने केवल इस देश को ही नहीं शेष विश्व को भी शांति दी है, ऐसा क्यों हो, श्रीमान, कि तीन महीने के लिये कोई व्यक्ति बिना मुकद्दमे के निरुद्ध किया जा सके? मुझे खेद है कि हमने इसे स्वीकार किया है।

इस संविधान से एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि अस्पृश्यता का अंत करके हरिजनों और अनुसूचित जातियों में ऐसी भावना भर दी गई है कि वे शेष जनता के बराबर स्तर पर आ गया हैं। उसके लिये हम कुछ श्रेय के भागी हैं।

मुझे यह भी प्रसन्नता है कि निदेशक सिद्धान्तों में पंचायत व्यवस्था रखी गई है। इसकी सफलता आप पर और दूसरों पर निर्भर है जो इस देश के तथा शासन के भार साधक होंगे। मुझे पता लगा था कि युक्त प्रान्त में पंडित गोबिन्द वल्लभ पंत के प्रशासन ने पंचायतें स्थापित कर दी हैं और आसाम ने तो उससे पहले ही ऐसा कर दिया था। यदि भारत के प्रांत इस उदाहरण का अनुसरण करें तो भारत के करोड़ों लोगों के उद्धार का दिन अधिक दूर नहीं होगा।

फिर एक और बात है, श्रीमान, जिसके विषय में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं—वह है वयस्क मताधिकार। मुझे प्रसन्नता है कि हमने किसी आशंका या संदेह के कारण वयस्क मताधिकार में कोई परिवर्तन नहीं किया है। जब हमने संविधान बनाना आरम्भ किया था तब यह विचार था कि राज्यपाल निर्वाचित होना चाहिये। मुझे उस पर हर्ष था। किन्तु दुर्भाग्य से इस उपबंध में पूर्व परिवर्तन हो गया है। लोग मुझसे सहमत हों या न हों। यदि आप अपने ही लोगों पर विश्वास नहीं करेंगे तो वे कुछ नहीं कर सकेंगे। वास्तव में हमारे देश के लोग इस संविधान की रचना आरम्भ होने के पश्चात तीन वर्षों तक दृढ़ रहे हैं। और उससे पूर्व

[श्री टी. प्रकाशम]

भी वे ईमानदार, सीधे तथा सरकार के वफादार थे। अतः हमें ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिये जिससे उनमें ऐसी भावना हो कि हम उनका विश्वास नहीं कर रहे हैं।

फिर मैं मसौदा समिति के सभापति द्वारा नये अनुच्छेद 365 को पेश किये जाने का निर्देश करना चाहता हूं। उस अनुच्छेद के अनुसार यदि कोई प्रांत यहां की सरकार के आदेशों का पालन करने के लिये तैयार नहीं हो तो उस प्रान्त को संविधान के अन्तर्गत रहने के लिये अयोग्य घोषित किया जा सकता है। यह तो केवल भारत शासन अधिनियम की धारा 93 का अनुकूलन ही है जिसके अनुसार प्रान्त के प्रशासन को राज्यपाल अपने हाथ में ले सकता था। हमारे लिये यह अच्छा नहीं है। हम देश की स्वतंत्रता के लिये अत्यन्त स्पष्ट रूप में लड़ चुके हैं अतः हमें ऐसा उपबंध नहीं रखना चाहिये। इस देश में हमें लोकतंत्र का विकास इस प्रकार नहीं करना चाहिये। प्रांतों में यदि त्रुटियां हों, तो आपको चाहिये कि उन्हें स्वयं सुधारने का अवसर दें।

आपको ऐसी वैसी बातों पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और उन्हें हट जाने के लिये नहीं कहना चाहिये, इस आधार पर कि वे आपकी आज्ञा पालन के लिये तैयार नहीं हैं। लोकतंत्रात्मक संविधानों को बनाने या कार्यान्वित करने का यह तरीका नहीं है और देश में इस प्रकार जनता की स्थिति को नहीं बनाये रखा जा सकता। यदि हम जनता को अपने साथ रखना चाहते हैं तो उन्हें आजादी दे दीजिये। मुझे इस प्रान्तीय स्वायत्तता के कारण स्वयं कष्ट सहन करना पड़ा है, किन्तु इस कारण मैं यह शिकायत नहीं करता कि उसके कारण आप उनके स्वशासन के अधिकार को छीन लें। यह उलटा कदम है जो हमें सर्वथा नहीं उठाना चाहिये था।

एक और बात है जिसे मैं इस अवसर पर कहे बिना नहीं रह सकता—वह है केन्द्रीकरण। सरकार तथा यह संविधान-निर्माता निकाय भी इस बात के लिये उत्सुक था कि सब चीजों को केन्द्रीय बना दिया जाये, केन्द्र को सब शक्ति दे दी जाये। एककों का क्या होगा? संयुक्त राज्य में एककों का क्या हुआ? तरेपन या चौवन एकक अलग-अलग ले और उन्होंने अपने आपको प्रभुत्व-सम्पन्न घोषित कर दिया और लड़ाई चलाई, उन्होंने अपने संविधान स्थापित कर लिये। इसी प्रकार स्विटजरलैंड में 22 केन्टन हैं। स्विटजरलैंड संसार में सबसे अधिक आदर्श देश है। गत दो सार्वदेशिक आर्थिक कठिनाइयों में स्विटजरलैंड ही एक देश था जिस पर प्रभाव नहीं पड़ा। उस देश में 22 एकक थे जिनमें से प्रत्येक को प्रभु शक्ति प्राप्त थी, वे अपना प्रशासन पूर्व रूप में चलाते थे बहुत प्रशंसनीय ढंग से चलाते थे जो देश की रक्षा के लिये तथा उस देश की भलाई के लिये था। आज कल वह बेदाग देश है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य भी है, जिसके लिये हमारे प्रधान मंत्री ने इतना कहा है। उन्होंने हमें चेतावनी दी है कि अमरीका एक पूर्ण देश है। वह किसी से अपनी रक्षा कर सकता है। साथ ही उन्होंने कहा था कि हमें अमरीका संबंधी नारे ही नहीं लगाने चाहिये किन्तु अपने आप को भी अनुकूल बनाना चाहिये। उसी वाक्य में उन्होंने, तुलना के रूप में गांधी जी के सिद्धान्तों की चर्चा की थी। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो गांधी जी के सिद्धान्तों को ले सकते थे, अन्य सिद्धान्तों को भी ले सकते थे और उनका संमिश्रण करके, अमरीका

जाकर के उन्हें तथा अन्य देशों को शांति का संदेश दे सकते थे, और शांति करने की भरसक प्रयत्न कोशिश कर सकते थे। किन्तु वे गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम पर और देश के भाषावार संगठन अथवा विभाजन के सिद्धान्त पर ध्यान नहीं दे सकते हैं।

धन्यवाद, श्रीमान।

***प्रो. शिब्बल लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, भारत के इतिहास में यह ऐतिहासिक अवसर है जब कि यह महान सभा अपना कार्य समाप्त करने वाली है। स्वतंत्र भारत का अज्ञात शताब्दियों के पश्चात् यह पहला स्वतंत्र संविधान होगा। भारत एक प्राचीन देश है और उसका इतिहास विस्मृत अतीत काल से आरम्भ होता है। बहुत प्राचीन साहित्य है। किन्तु मुझे किसी ऐसे लिखित संविधान का ज्ञान नहीं है जो प्राचीन भारत में रचा गया हो, जिसमें समस्त देश के शासन की व्यवस्था हो तथा जो आज भी उपलब्ध हो। हमें मनुस्मृति का पता है और प्राचीन भारत के अन्य महान विधि-रचियता का पता है, किन्तु शायद ऐसे किसी विस्तृत लोकतंत्रीय संविधान की कभी रचना नहीं हुई जिसमें इस समस्त उपमहाद्वीप के शासन की व्यवस्था हो जो दक्षिण में कुमारी अंतरीप से उत्तर में गिलगित तक, और पूर्व में लेडो से लेकर पश्चिम में पेशावर तक विस्तृत है। अशोक के समान महान भारत सम्राट भी हुए हैं जिनके साम्राज्य में समस्त उप-महाद्वीप शामिल था। हमारे पास उस के शासन के कुछ विभागों का विस्तृत विवरण है परन्तु उन दिनों का लिखित संविधान हमारे पास नहीं है। अतः असंख्य शताब्दियों के पश्चात् और कदाचित ज्ञात इतिहास में सर्वप्रथम, देश के प्रत्येक भाग से निर्वाचित प्रतिनिधि संविधान सभा के रूप में एकत्र हुए हैं तथा उन्होंने अपने लिए संविधान बना कर आत्मार्पित किया है।

किन्तु हम भूल नहीं सकते कि यह संविधान विभक्त भारत का संविधान है जिसमें हमारी मातृभूमि भारत के प्रदेश का 4/5वां अंश ही शामिल है, जिस भारत के लिये गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने यह गीत गाया था:

जनगणमन अधिनायक जय हे,
भारत भाग्य विधाता।
पंजाब, सिंधु, गुजरात, मराठा,
द्राविड़, उत्कल, बंग।
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा,
उच्छल जलधि तरंग।

भारत विभाजन महानतम दुर्घटना है जैसी भारत में अर्वाचीनकाल में कोई और नहीं हुई। हमें यह स्वतंत्रता का मूल्य चुकाना पड़ा है। अंग्रेजों में हृदय परिवर्तन के कारण भारत के प्रति कोई प्रेम का अकस्मात प्रादुर्भाव नहीं हो गया था जिससे कि वे हमारे देश से चले गये हैं, उन्हें परिस्थितियों के वशीभूत होकर, अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति के कारण, जो महात्मा गांधी के

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

आश्चर्यजनक नेतृत्व में चल रहा था, भारत छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। देश पर अत्यन्त अस्वाभाविक विभाजन थोपा गया। मुझे विश्वास है कि जब तक यह विभाजन रहेगा, तब तक न भारत न पाकिस्तान ही शांति में रह सकते हैं। दोनों भागों की मुक्ति अंततः इसी में है कि भारत के दोनों भागों का पुनः एकीकरण कर के एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाया जाये। मैंने गत तीस वर्षों से जिस स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखा है वह तो तभी पूरा होगा जब यह विभक्त भारत के स्थान पर समस्त भारत का, जो विभाजन से पूर्व था, संविधान बन जाये। मुझे विश्वास है कि हमारी मातृभूमि का यही स्वाभाविक लक्ष्य है।

मुझे आज अपने करोड़ों देशवासियों का ध्यान आता है, उन अज्ञात वीरों और शहीदों का ध्यान आता है जो 92 वर्ष से, जब से 1857 में भारत की स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम हुआ था, स्वतंत्रता के संघर्ष में, बलिदान हुए। हमारे उन करोड़ों देशवासियों के बलिदानों के कारण ही यह दिन उगा है। उन वीरों तथा शहीदों में, हम उन महान देशभक्तों को नहीं भूल सकते जो अब पाकिस्तान कहलाने वाले क्षेत्र में रह गये हैं। आज मेरा हृदय भारी हो जाता है जबकि मुझे खान अब्दुल गफ्फार खां तथा उनके हजारों खुदाई खिदमतगारों की याद आती है: जिन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिये अपना रक्त बहाया था और जो आज पाकिस्तान के जेलों में दुखमय जीवन काट रहे हैं। मैं विभाजन के कट्टरतम विरोधियों में से था, और मैं अनुभव करता हूं कि हमने खान भ्राताओं और लाखों खुदाई खिदमतगारों के साथ धोखा किया, जिन्हें हमने पाकिस्तान मानकर मध्य धार में छोड़ दिया। हम पूर्वी बंगाल में भी अपने लाखों देशवासियों को भूल नहीं सके, वहीं बंगाल के क्रांतिकारियों का स्थान है जिन्होंने हमारे देश में स्वतंत्रता की अग्नि को पहली बार सुलगाया था। भारत तब तक पूर्णतः स्वतंत्र नहीं होगा जब तक कि वे भाग जो कट गये हैं फिर न मिल पायें। हमें लाखों शरणार्थियों को भी नहीं भूलना चाहिये जो विभाजन के परिणामस्वरूप, जिसे हमने अपनी स्वतंत्रता के मूल्य के रूप में स्वीकार किया था, मृत्यु को प्राप्त हुये या अपना सर्वस्व खो कर अकिंचन बन गये। वे निस्संदेह हमारी स्वतंत्रता के शहीद हैं। आखिर, इस अवसर पर हम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को भूल नहीं सकते। जिन्होंने हममें से अधिकांश में स्वतंत्रता की ज्योति जलाई थी और जो अपने परिश्रम को सफल होते नहीं देख सके। मैं अन्य महान नेताओं को, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, देशबंधु चितरंजन दास, पं. मदन मोहन मालवीय, हकीम अजमल खां, पंडित मोती लाल नेहरू आदि को भी नहीं भूल सकता जिन्होंने हमारे मार्ग को प्रकाशित किया है। मैं विशेषतः नेता जी सुभाष चन्द्र बोस का स्मरण करना चाहता हूं जिन के विषय में अब भी लालसा है कि वे अभी तक कहीं पर जीवित हैं, और जिनकी आजाद हिन्द फौज ने और दक्षिण पूर्वी एशिया में उसकी शानदार विजयों ने भारतीय सेना और भारतीय नौ-सेना और भारतीय नभबल में देशभक्ति पूर्ण और राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत किया और स्वतंत्रता के दिन को अधिक निकट बुला लिया। मैं इस ऐतिहासिक तथा विख्यात उपलक्ष पर राष्ट्र के इन सब भक्तों, वीरों तथा शहीदों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भेंट करना चाहता हूं।

मुझे बहुत खेद है कि सदन मेरा संशोधन स्वीकार करने के लिए सहमत था जिसके द्वारा मैं इस संविधान को आरम्भ में ही प्रस्तावना में हमारे स्वतंत्रता संघर्ष

के वीरों तथा शहीदों को और राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि देना चाहता था मैं अनुभव करता हूं कि सदन ने ऐसा करके बुद्धिमानी नहीं की।

अब संविधान के विषय में, मैं प्रारम्भ में ही कहता हूं कि यह मध्यमार्ग है और उसमें मध्यमार्ग की समस्त त्रुटियां हैं। यह कांग्रेस दल में विभिन्न विचारों के लोगों के बीच जो रूढ़िवादी भी हैं, क्रान्तिवादी भी हैं, समझौता है। एक सहस्र वर्षों की स्वतंत्रता से नव प्राप्त स्वतंत्रता के बीच के संक्रमण काल में, यह शायद स्वभाविक ही है कि हमें वर्तमान स्थिति पर विचार करना चाहिये जो इस संविधान में प्रतिबिम्बित है। मैं इसे मेरे स्वप्नों के स्वतंत्र भारत का संविधान नहीं कह सकता। अतएव इसे स्वीकार करने के लिये डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव का मैं इसी भावना के साथ समर्थन कर सकता हूं। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही, संक्रमण काल समाप्त हो जाने पर, भारतीय जनता के प्रतिनिधि, वयस्क मताधिकार के आधार पर जागृत मतदाताओं द्वारा निर्वाचित होकर इस संविधान की पुनर्रचना करेंगे और ऐसा संविधान बनायेंगे जिससे हमारे स्वप्न पूरे होंगे। मैं चाहता था कि सदन मेरे इस संशोधन को स्वीकार कर लेता कि आरम्भ के पश्चात् दस वर्ष के अन्त में यह संविधान साधारण बहुमत से स्वतः पुनरीक्षित होता। वर्तमान परिस्थितियों की सीमा के अन्तर्गत, मुझे विश्वास है कि इससे अच्छा, संविधान नहीं बन सकता था। अतएव इस सफलता के लिये मैं उन सबको बधाई देता हूं, विशेषतः उन समितियों के सदस्यों को, जिन्होंने हमारे नेताओं की अध्यक्षता में संविधान के सिद्धान्तों को निश्चित करके अपने विवरण पेश किये थे, जैसे कि संघ शक्ति समिति, प्रांतीय संविधान समिति, अल्पसंख्यक समिति और अन्य बहुत सी समितियां हैं। इन समितियों ने जो सिद्धान्त निश्चित किये थे उन्हें प्रथम पठन में इस समिति ने स्वीकार किया था और मसौदा समिति ने उन्हें विधि का रूप दे दिया। मैं तो यह बहुत चाहता था कि इस संविधान पर सदन समिति स्टेज में विचार करता, जिससे सब संशोधनों पर पूर्णतः चर्चा हो सकती, समूचे सदन के बहुमत से विनिश्चय होता, केवल कांग्रेस दल के ही बहुमत से नहीं।

हमने जो प्रक्रिया स्वीकार की थी, उसके अन्तर्गत मसौदा समिति समूचे सदन के स्वतंत्र मत का लाभ नहीं उठा सकी और केवल कांग्रेस दल के विनिश्चय ही उसके लिये बाध्यकारी थे। मेरा व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव है कि इसी कारण संविधान में बहुत सी त्रुटियां रह गई हैं। गत वर्ष समय-समय पर कार्यावली में जो 10,000 संशोधन छपे थे उनमें से मेरे विचार में सदन को मुश्किल से कुछ सौ पर विचार करने का अवसर मिला था। शेष सब का कांग्रेस दल में ही गला घोट दिया गया और वे इस सदन में पेश ही नहीं किये गये क्योंकि दल ने उन्हें स्वीकार नहीं किया था। कांग्रेस दल की बैठकें वास्तविक संविधान सभा की बैठकें बन गईं, और यह वास्तविक सभा नाट्य सभा बन गई जहां कांग्रेस दल में किये गये विनिश्चयों को पंजीबद्ध किया जाता था। किन्तु कांग्रेस दल की वे बैठकें ऐसे प्रकार की थीं कि वे इस समूचे सदन की उन बैठकों का स्थान नहीं ले सकती थीं जो समिति स्टेज में बैठकर विभिन्न संशोधनों पर स्वतंत्र निर्णय करतीं।

इस संविधान सभा ने संविधान बनाने में जो लम्बा समय लगाया है उस पर कुछ आलोचना हुई है। मेरे विचार में आलोचना बहुत अनुचित है और ठीक नहीं

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है। अब तक इस सभा के 11 सत्र हुए हैं, उन सबमें 200 दिन लगे। इन सत्रों में सभा प्रायः 5 दिन प्रति सप्ताह बैठती थी। अतः कुल 120 दिन काम हुआ है। गत तीन वर्ष में इस सभा पर जो खर्च आया है वह एक करोड़ रुपये से कम है। मैं नहीं समझता कि स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने में यह समय बहुत लम्बा है या ये खर्च बहुत ज्यादा है। मेरा व्यक्तिगत रूप में यह ख्याल है कि संविधान के कुछ भागों को जल्दबाजी में पारित किया गया है और उन पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। यदि, इतना होते हुए भी, हम काफी अच्छा संविधान बनाने में सफल हो गये हैं, मेरे विचार से इसका श्रेय मसौदा समिति को और उसके विद्वान सभापति की बुद्धिमत्ता, योग्यता और अनथक परिश्रम को मिलना चाहिये। श्री एस.एन. मुखर्जी और उसके योग्य कर्मीवृंद को भी कम श्रेय नहीं है। मेरे विचार में भारत को श्री एस.एन. मुखर्जी की योग्यतापूर्ण मसौदाकारी तथा अनन्त परिश्रम पर गर्व होना चाहिये। संविधान की रचना में उनके गुणों का पता लग गया है।

अब संविधान के उपबन्धों को लेते हैं तो मैं वयस्क मताधिकार उसका सबसे बड़ा गुण समझता हूं। अब भारत का जनसाधारण अपने भाग्य का निर्माता बन जायेगा। मैं उनकी आशंकाओं को नहीं समझ पाता जो वयस्क मताधिकार से डरते हैं। हमें जनसाधारण पर भरोसा करना चाहिये। वयस्क मताधिकार कांग्रेस के समूचे संघर्ष में उसकी मुख्य मांगों में से था। अतः हमें आज गर्व होना चाहिये कि वह स्वप्न पूरा हो गया है। वयस्क मताधिकार के पश्चात् में मूलाधिकारों को महत्व देता हूं। मूलाधिकारों में, मनुष्य मनुष्य में समानता हमारे संविधान में निश्चित कर दी गई। अब विधि द्वारा प्रतिज्ञात अस्पृश्यता नहीं रहेगी। अस्पृश्यता की समाप्ति की तुलना अमरीका में दासता की समाप्ति से की गई है किन्तु मेरे विचार में अस्पृश्यता दासता से भी बढ़ा अभिशाप है। विधि के समक्ष प्रत्येक मनुष्य की समानता को भी प्रत्याभूत किया गया है। किन्तु हमारे संविधान में स्वतंत्रता की हत्या कर दी गई है। मेरे विचार में धारा 21 और 22 इस संविधान पर सबसे बड़े धब्बे हैं। मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था कि स्वतन्त्र भारत के संविधान में बिना मुकदमे निरोध की जनता के मूलाधिकारों के अधीन, अनुमति दे दी जायेगी। स्वाधीनता संग्राम में मैंने छः विभिन्न अवसरों पर छः मुकदमों में लगभग 31 वर्ष का दण्ड प्राप्त किया है और ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत हमारी दासता के दिनों में मैंने अपने यौवन के 10 वर्ष कारागृह की कोठिरियों में, नजरबन्द के रूप में या दण्ड प्राप्त बन्दी के रूप में गुजारे हैं, अतः मैं जानता हूं कि बिना मुकदमे निरूद्ध होने में कैसा कष्ट होता है और मैं कभी उसका समर्थन नहीं कर सकता। अनुच्छेद 358 तथा 359 भी संविधान पर उतने ही बड़े कलंक हैं, जिनमें आपात के समय मूल अधिकारों को निलम्बित करने के और उनको क्रियान्वित करने के उपायों के उपबन्ध हैं। मेरे विचार में यह मूल अधिकारों का मजाक उड़ाना है। मैं अनुच्छेद 31 को भी इस देश में पूंजीवाद का अधिकार पत्र समझता हूं। मुझे विश्वास है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित जनता के प्रतिनिधि इस अनुच्छेद को बदल देंगे जिससे उत्पादन के साधनों का समाजीकरण असम्भव हो जायेगा। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त, जिनका विवरण भाग 4 में इतने सुन्दर ढंग से किया गया है, तब तक पूरे नहीं हो सकते जब तक कि अनुच्छेद 31 इस संविधान का भाग है। मैं तो चाहता था कि ये

निदेशक सिद्धान्त संविधान में मूल अधिकारों के रूप में रखे जाते। मैं जानता हूं कि उन पर आज अमल करना संभव नहीं है। किन्तु हम कह सकते थे कि 10 वर्ष के अंत में निदेशक सिद्धान्त स्वत: मूल अधिकार बन जायेंगे। मैंने इसी उद्देश्य से अपना संशोधन सं. 559 भेजा था जो संशोधनों की सूची के ग्रंथ 1 में था, जिसमें आर्थिक स्वतन्त्रता के चार अधिकारों की चर्चा थी जो सोवियत संविधान में उपबन्धित हैं। इस समय हमारे संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है और मेरे विचार में यह उस की कमजोरियों में से है।

एक और अनुच्छेद जिसे मैं जनता के लिये अत्यन्त अन्यायपूर्ण समझता हूं अनुच्छेद 28 है जिसमें यह लिखा है कि राज्य निधि से सर्वथा पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। मैं धार्मिक शिक्षा को, जिससे मेरा आशय सच्चे धर्म की तथा उसके शाश्वत सिद्धान्तों से है, बालक की शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग समझता हूं। किन्तु राज्य के शिक्षालयों में धार्मिक शिक्षा पर रोक लगाने का परिणाम यह हो सकता है कि विद्यालयों में गीता और रामायण जैसी पुस्तकों को पढ़ाने का भी वर्जन हो जायेगा। मुझे विश्वास है कि जनता के प्रतिनिधि इस वर्जन को सहन नहीं करेंगे और इस अनुच्छेद का शीघ्र ही संशोधन करना पड़ जायेगा। यह ऐसा उदाहरण है जहां लौकिकता की अति कर दी गई है।

मेरे विचार में, निदेशक सिद्धान्तों का अध्याय संविधान में सबसे अधिक आशापूर्ण अध्याय है। मुझे आशा है कि इसमें स्वतन्त्र भारत के लिये आदर्श के रूप में जो सिद्धान्त रखे गये हैं, वे निकट भविष्य में ही क्रियान्वित होंगे और देश की विधि में उन्हें स्थान मिल जायेगा। देश भर में गोवध के वर्जन से ही भारत के जनसाधारण के विचारों में जोश पैदा हो सकता है। मैं चाहता हूं कि गोवध का निषेध पूर्ण ही होता और मूल अधिकारों में स्थान पाता, क्योंकि गाय ही कामधेनु है जिससे सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

प्रशासन व्यवस्था के विषय में मैं बहुत चाहता था कि गणराज्य का राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता। मैं एकसदनीय विधान-मंडल रखना भी पसन्द करता था। मैंने सदा उच्चतम न्यायालय तथा महालेखापरीक्षक की शक्तियों और स्वतन्त्रता में प्रत्येक हस्तक्षेप का विरोध किया था। मैं उच्चतम न्यायालय को जनता की स्वतन्त्रताओं का संरक्षक और महा लेखापरीक्षक को राज्य के वित्तों का प्रहरी समझता हूं, मैंने सदा राष्ट्रपति की मनमानी शक्तियों का भी विरोध किया है क्योंकि राष्ट्रपति का अर्थ है कार्यपालिका, और मेरी यही इच्छा थी कि ऐसे मामलों में अन्तिम शक्ति संसद में ही निहित हो। राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने की जो शक्तियां दी गई हैं मैं उनको भी पसन्द नहीं करता मुझे केवल यही आशा है कि जब संविधान की पुनर्रचना होगी तब उसकी ये सब अलोकतन्त्रात्मक बातें हट जायेंगी।

संविधान के विषय में मेरी आलोचना का यह अर्थ नहीं है कि मैं उन सफलताओं की ओर से आंखें मूंद रहा हूं जो हमने इन तीन वर्षों में प्राप्त की हैं। मैं समझता हूं कि इस संविधान की रचना ही स्वत: गत तीन वर्ष की सबसे बड़ी सफलता है। ब्रिटिश सरकार ने स्वतन्त्रता के प्रभात के मार्ग में जो रोड़े खड़े किये थे जैसे कि अल्पसंख्यकों की समस्या की अकृत्रिम सृष्टि, देशी राज्यों में नरेशों की तथा अन्यत्र स्वर्ग से अवतरित सिविल सेवाओं की समस्याएं, वे रोड़े

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

गत दो वर्ष के छोटे से काल में जादू के समान समाप्त कर दिये गये हैं। संविधान की रचना में जो देर हुई है उसके कारण हम इस संविधान में 566 देसी राज्यों के प्रशासन के लिये भी उपबन्ध रख सके हैं जिन्हें अब नौ प्रान्तों के रूप में संगठित करके संघ के अन्य अंगों के बराबर रख दिया गया है। यही अकेला कार्य ऐसा महान कार्य समझा जायेगा जैसा कभी किसी देश में नहीं हो सका था। हमारे प्यारे नेता सरदार बल्लभभाई पटेल ने रक्तहीन क्रान्ति के द्वारा यह महान कार्य किया है जिसके लिये भावी सन्तति सदा कृतज्ञ रहेगी। किन्तु यहां मैं कश्मीर सरकार के रूख पर अपनी निराशा को नहीं छिपा सकता जिसने अनुच्छेद 370 के अधीन पृथक् संविधान बनाने का हठ किया है। किन्तु कश्मीर सरदार पटेल का उत्तरदायित्व नहीं है। सरदार पटेल का दूसरा महानतम कार्य यह है कि उन्होंने अल्पसंख्यक समिति के सभापति के रूप में अल्पसंख्यकों की समस्या को हल किया है। मैं यहां श्री एच.सी. मुखर्जी, उस महान् ईसाई नेता, का नाम नहीं भूल सकता जो अल्पसंख्यक समस्या के सुखद समाधान के लिये प्रधानतः उत्तरदायी समझे जा सकते हैं उनकी राष्ट्रीयता की उत्कट भावना का सब अल्पसंख्यकों पर प्रभाव पड़ा और राष्ट्र सदा उनका ऋणी रहेगा। संविधान की एक और महान सफलता भाषा की समस्या का समाधान है। जो समझौता हुआ है उस पर मुझे जरा भी खुशी नहीं है और हिन्दी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा के रूप में पूरी तरह अपनाने के लिये 15 वर्ष की जो कालावधि नियत की गई है उसे मैं बहुत लम्बी समझता हूं, किन्तु मुझे यह आशा अवश्य है कि वास्तव में जनता शीघ्रता करेगी और इस समय अंग्रेज़ी का और समस्त अंग्रेज़ी वस्तुओं का जो प्रेम है वह शीघ्र ही हट जायेगा।

मुझे यह भी खेद है कि संविधान का प्राधिकृत रूप राष्ट्रभाषा में स्वीकृत नहीं हुआ है। मैं बहुत चाहता था कि आप अपने प्राधिकार से जिस हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करेंगे वह संविधान का प्राधिकृत रूप होकर इस सभा के द्वारा पारित किया जाता। मुझे आशंका है कि जब इस देश से अंग्रेज़ी की प्रभुता चली जायेगी तब हमारे देशवासियों को हमारे संविधान के इस अंग्रेजी मूलरूप का निर्वचन करने में कठिनाई होगी। मुझे लगभग विश्वास है कि बहुत शीघ्र जनता के नये निर्वाचित प्रतिनिधि संविधान के प्राधिकृत रूप को राष्ट्रभाषा में पारित करने का हठ करेंगे।

अन्ततः श्रीमान, हमने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अपना संबन्ध बनाये रखने का जो विनिश्चय किया है उस पर मैं अपनी कटु निराशा को व्यक्त करना नहीं भूल सकता। मैं इसे हमारी प्रभुता का अल्पीकरण समझता हूं। मुझे विश्वास नहीं होता कि सर्प अपने विष को एक दिन में ही छोड़ सकता है, और मैं अनुभव करता हूं कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से हमारा सम्बन्ध हमारे लिये किसी प्रकार कभी उपयोगी नहीं हो सकता। हमें इसका पहला फल यह मिला है कि हमारे चलार्थ का नाशकारी अवमूल्यन हो गया है। मुझे आशा है कि हम शीघ्र ही अपनी दासता की मनोवृत्ति से छुटकारा पा सकेंगे और यह प्रत्येक ब्रिटिश वस्तु का प्रेम मिट जायेगा, और हम विश्व में पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपना सर ऊंचा उठाये खड़े होंगे और संसार के महानतम राष्ट्रों में स्थान पायेंगे।

अंत में श्रीमान्, मैं अन्य वक्ताओं के समान आपको अपनी श्रद्धांजलि पेश करना चाहता हूं कि आपने इस महान् और ऐतिहासिक सभा की कार्यवाही को चलाने में धैर्य, योग्यता तथा स्वतन्त्रता से काम लिया। हम सबने यह अनुभव किया कि आपने हमें संविधान के प्रत्येक पहलू पर अपना दृष्टिकोण प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी है। समय समय पर, चर्चा के समय जो विभिन्न प्रश्न उठे थे उन पर निर्णय देने में आपने जो स्वतन्त्रता बरती उसकी भी हम सराहना करते हैं। मैं आपके उस निर्णय को नहीं भूल सकता जब कि आपने राष्ट्रमंडल में शामिल होने के संकल्प पर मुझे अपना संशोधन पेश करने की अनुमति दे दी थी। उस पर प्रधान मंत्री जैसे व्यक्ति ने भी प्रबल आपत्ति की थी। किन्तु बहुत शांत तरीके से आपने निर्णय दे दिया "सदन के नियमों से वह पेश हो सकता है।" भावी संतति के लिये आपकी मिसाल पथ प्रदर्शन के लिये ज्योति के रूप में रहेगी। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे इस अवसर पर अपने विचार प्रकट करने का मौका दिया।

माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय (आसाम: जनरल): अधयक्ष महोदय, मुझे बहुत प्रसन्नता है कि मैं डॉ. अम्बेडकर के इस प्रस्ताव का समर्थन करने आया हूं कि 'सभा द्वारा निश्चित रूप में संविधान पारित किया जाये।' मेरे विचार में यही सर्वोत्तम संविधान है जो वर्तमान परिस्थितियों में भारत में या संसार में बन सकता था। यद्यपि इसमें निस्संदेह त्रुटियां हैं, यद्यपि हम कुछ उपबन्धों को दूसरे रूप में रखना चाहते थे, फिर भी, श्रीमान, मेरा विश्वास है कि यही सर्वोत्तम है जो वर्तमान परिस्थितियों में हो सकता था। मुझे प्रसन्नता है श्रीमान् कि इस संविधान की रचना में मैंने भी भाग लिया है, यद्यपि वह छोटे से तरीके से ही है। समस्त देश ने इस संविधान की रचना में, आलोचना करके या सुझाव देकर के भाग लिया। संविधान का प्रारूप लगभग दो वर्ष पूर्व देश के समक्ष रखा गया था, और हमें सबको आलोचना करने का या सुझाव भेजने का अवसर मिला था, और इस संविधान सभा में हम सबने इस संविधान की रचना में भाग लिया है। अत: हम कह सकते हैं कि यह संविधान समस्त देश के लिये है और समस्त देश के द्वारा बनाया गया है। मैं इस संविधान को भारत की विद्यमान परिस्थितियों में संतोषजनक बता रहा हूं, मैं क्योंकि उस स्थिति को नहीं भूल सकता जो उस समय थी जब हम यहां लगभग तीन वर्ष पूर्व प्रथम बार एकत्र हुए थे। उस समय हम ब्रिटिश केबिनेट मिशन की छाया में थे। हमें केबिनेट मिशन ने यह पंचाट दिया था कि भारत वर्गों में विभक्त हो जायेगा। तीन वर्ग बनने थे। आसाम को बंगाल के वर्ग में रखा जाना था। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, पंजाब और सिंध का एक वर्ग बनना था और भारत के अन्य भाग अन्य वर्ग में जाने थे। उस समय हम आसाम के सदस्य डरते थे कि यह वर्गीकरण हम पर लाद दिया जायेगा, किन्तु वहां अन्य सब कोई उस वर्गीकरण व्यवस्था में आने के लिये तैयार थे चाहे उनकी इच्छा के विरूद्ध होता। वर्ग-व्यवस्था का विरोध करने पर हमारी हंसी उड़ाई गई। हमने अनुभव किया कि यदि हमें बंगाल के साथ वर्ग में रखा गया तो आसाम के लोगों के जीवन पर ही प्रभाव पड़ेगा। इस सभा के सदस्यों को पता है कि हमारे कारण क्या थे। हमें भय था कि हमें उससे हानि होगी। वास्तव में हमारा संघर्ष जीवन मरण का था। हमने अनुभव किया कि हम किसी भी परिस्थिति में बंगाल के वर्ग में नहीं जा सकते थे। हम उस समय ऐसी कठिनाई में थे कि आसाम के प्रधान मंत्री श्री गोपीनाथ बरदलोई को कार्यसमिति के पास

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

आना पड़ा जिसने आसाम की प्रार्थना के सुनने से लगभग इनकार ही कर दिया, और उन्हें महात्मा गांधी से अपील करनी पड़ी, और उनसे प्रार्थना की कि हमें इस आफत से बचाया जाये, और महात्मा गांधी ने ही हमें उस परिस्थिति से बचाया। हमें उन दिनों को नहीं भूलना चाहिये और आसाम के सदस्यों की कुछ लोग मज़ाक सी उड़ाते हैं कि हम केवल आसाम के ही विषय में सोचते रहते हैं, और हम समूचे भारत के विषय में नहीं सोचते। हमें अपने जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ा। मुझे यह कहने में हर्ष है कि महात्मा गांधी ने ही हमें उस स्थिति से बचाया, जब कि उन्होंने श्री बरदलोई से कहा "यदि आप इस वर्ग के अधीन नहीं रहना चाहते तो पृथ्वी पर कोई भी आपको उसमें आने के लिये बाध्य नहीं कर सकता।" ज़रा सोचिये, कि यदि हम उस वर्ग-व्यवस्था को स्वीकार कर लेते तो आज भारत की दशा कैसी होती, आज हमारा संविधान कैसा होता। भारत बिल्कुल एक भिन्न प्रकार का देश होता। अब हमारे पास जो शक्तियां हैं वे सर्वथा भिन्न होती। मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद सदा केन्द्रीयकरण के लिये जोर देते रहते हैं, किन्तु आज यह संविधान काफी केन्द्रीयकरण वाला बना है वह कभी नहीं बनता यदि हम उस वर्ग-व्यवस्था के विरूद्ध लड़े न होते चाहे हमारा संघर्ष अच्छा था या बुरा हमें उस चीज से बचने के लिये संघर्ष करना पड़ा जिसे हम आसाम के लोगों के लिये और सारी जनता के लिये बुरा समझते थे। श्रीमान आसाम सीमान्त का प्रांत है। यदि उस प्रान्त को नहीं बचाया जाता, यदि वह प्रांत किसी ऐसे के साथ में चला जाता जो समूचे भारत के पक्ष में न हो, यदि आसाम किसी विपरीत शक्ति के हाथ में होता तो समूचा भारत भी चला जाता।

अब श्रीमान, हमें इस संविधान पर जो आज है, बहुत प्रसन्नता है क्योंकि इस संविधान से समस्त भारत का एकीकरण होगा। यद्यपि हमारे देश का एक भाग छिन गया है, यद्यपि विभाजन के कारण हमारी बहुत हानि हुई है, विशेषत: पाकिस्तान के पास के सीमा-क्षेत्रों की फिर भी चाहे अनिच्छा से ही सही, हमें कम बुराई को पसन्द करना पड़ा। मेरे विचार में आज हमारे यहां जो कुछ है वह उससे कम बुरा है जो उस स्थिति में होता यदि हम केबिनेट मिशन योजना के विरूद्ध न लड़े होते। मैं उनमें से था जिन्होंने सदन में तथा दल की बैठकों में भी यही कहा कि केबिनेट मिशन योजना एक मैत्रीपूर्ण श्रम सरकार की सिफारिश ही है, हम अपने तरीके से चल सकते थे और हम अपने आपको भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न संविधान सभा घोषित कर सकते थे जो हमारा संविधान बना सकती थी। मुझे प्रसन्नता है कि हमने ऐसा किया, और हमें अपने संविधान को अपने ही तरीके से बनाने का अधिकार मिला। श्रीमान, उस विरोध के कारण भारत का विभाजन हुआ, विशेषत: आसाम बहुत बड़ी कठिनाई में पड़ गया। हमारे क्षेत्रों के प्रति पाकिस्तानी मित्रों का जो रूख है उसके कारण हमारे प्रांत के कुछ भागों को कष्ट झेलना पड़ा। वे सीमान्त क्षेत्रों के बीच व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में बहुत कठोर रूख अपना रहे हैं। उसी कारण हमें कष्ट उठाने पड़े। हम भारत सरकार से आशा करते हैं कि वह इन कष्टग्रस्त सीमा क्षेत्रों की सहायता करे क्योंकि पाकिस्तानी लोग उस कृषिजन्य माल को नहीं खरीदते जो आसाम के सीमान्त से आता है, जहां पहाड़ी जिले हैं, और कुछ मैदानी जिलों के भाग भी हैं, और इससे इन सीमा क्षेत्रों में हमारे लोगों को बहुत कठिनाई हो गई है। हम आशा कर रहे हैं कि भारत सरकार लोगों को इस कष्ट से छुटाने के लिये कुछ करेगी।

अब, श्रीमान, मैं वित्तीय स्थिति के विषय में राज्यों और केन्द्रीय सरकार के बीच सम्बन्धों के विषय में कुछ कहना चाहता हूं। हमारा यह मत था कि संविधान में सुनिश्चित प्रतिशत भाग का उल्लेख होना चाहिये जो राज्यों को, विशेषत: उत्पादक राज्यों को, उन राशियों में से मिलेगा जो केन्द्रीय सरकार चाय, पेट्रोल और पटसन पर आबकारी और निर्यात शुल्क के रूप में लेगी पर हम उस दिशा में अपने प्रयास में सफल नहीं हुए। राज्यों को ऐसी स्थिति में रखा गया है कि वे केन्द्र की दया पर हैं। अब केन्द्र को राज्यों की सहायता करनी होगी, कम से कम कुछ राज्यों की जो वित्तीय रूप में पिछड़े हुए हैं, विशेषत: आसाम और उड़ीसा की। वित्तीय वितरण के कारण, हम आसाम में बहुत कठिनाई में पड़ जायेंगे। जब 26 जनवरी आयेगी, तब भारत सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित कर दिया जायेगा किन्तु हमारे निर्धन प्रान्त आसाम की क्या दशा होगी जब तक केन्द्रीय सरकार हमारी सहायता नहीं करेगी आसाम के लिये काम चलाना असम्भव हो जायेगा। अब भी, श्रीमान, आसाम घाटे में हैं। हमें लगभग दो करोड़ रुपये का घाटा रहेगा, और यदि केन्द्रीय सरकार हमारी सहायता को नहीं आती और वित्तीय कठिनाई में पड़े प्रांतों को सहायता करने की शक्ति का, जो उसे संविधान में दी गई है, प्रयोग नहीं करती, तो आसाम के लिये काम चलाना असम्भव हो जायेगा और वैत्तिक व्यवस्था पूर्णत: ठप्प हो जायेगी। अतएव यह आवश्यक है कि भारत सरकार को इस विषय में तत्काल कुछ कार्यवाही करनी चाहिये। मैं जानता हूं, कि मैं संविधान सभा में बोल रहा हूं, जो कि संविधान बना रही है, संसद में नहीं बोल रहा हूं, किन्तु श्रीमान, यहां बहुत से ऐसे हैं जो संसद के सदस्य हैं, जिन्हें आसाम प्रान्त में और उन प्रान्तों में अवश्य दिलचस्पी होगी जो वित्तीय कठिनाई में हैं। जब हमने केन्द्र को शक्तिशाली बनाया है, हम ने राष्ट्रपति को आपात में कार्यवाही करने की शक्ति दी है, तो केन्द्रीय सरकार या भारत के लिये इस प्रान्त को ठप्प होने देना श्रेय की बात नहीं होगी। मुझे विश्वास है कि श्रीमान, कि संसद तथा केन्द्रीय सरकार इस पर तत्काल ध्यान देगी; अन्यथा आसाम वित्तीय रूप में ठप्प हो जायेगा। कोई ऐसा उपाय होना चाहिये जिससे हमारे प्रांत की इन कठिन समयों में सहायता की जानी चाहिये। मैं इसके विषय में यहां इस लिये बोल रहा हूं कि मुझे इससे दु:ख हो रहा है। यदि आसाम इस सभा के प्रारम्भ में संघर्ष नहीं करता तो ऐसा संविधान बनता ही नहीं जैसा आज बना है। आसाम के कारण भारत में घटनाचक्र बदला है, और इस संविधान सभा को यह संविधान बनाने की स्वतन्त्रता मिली है, अत: मुझे आशा है कि यह देश आसाम की वित्त-व्यवस्था को ठप्प नहीं होने देगा। भारत को तत्काल हमारी रक्षा करनी चाहिये।

श्रीमान, मैं जो अगली बात कहना चाहता हूं वह नागरिकता के विषय में है। नागरिकता के विषय में हमने स्त्री और पुरुष को बराबर बना दिया है। एक पुरूष जो किसी विदेशी से विवाह करता है नागरिक ही रहता है और जो स्त्री किसी विदेशी से विवाह करे वह भी नागरिक बनी रहनी चाहिये। इस विषय में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। यदि अन्य मामलों में स्त्री तथा पुरूष में कोई अन्तर नहीं है तो नागरिकता के विषय में स्त्री और पुरुष में क्यों भेद भाव हो? श्रीमान, इस विषय में विधियां बनाने का अधिकार संसद को दिया गया है; उसे इस बात पर विचार करना चाहिये और इस मामले में किसी स्त्री और पुरूष में विभेद नहीं होने देना चाहिये। मुझे विश्वास है कि हमारी स्त्रियां—समस्त भारत की स्त्रियां इससे

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

सहमत होंगी, और उठ कर अपने अधिकार के लिये लड़ेंगी। मुझे एक देश का पता है जहां किसी विदेशी से विवाह करने पर स्त्री की नागरिकता नहीं छिनती। भारत को उस स्तर से नीचे नहीं गिरना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): बच्चों के विषय में क्या होगा?

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** बच्चे उस देश के नागरिक होंगे जहां वे पैदा हों।

श्रीमान, हमें इस संविधान के बनाने में बहुत सी कठिनाइयों को पार करना पड़ा है। हमारे यहां अल्पसंख्यकों की समस्या थी और मुझे प्रसन्नता है कि यह समस्या हल कर ली गई है। मैं हमारे ईसाई नेता डॉ. एच.सी. मुखर्जी को उनके इस प्रस्ताव के लिये बधाई देना चाहता हूं कि धर्म के अधार पर स्थान-रक्षण नहीं होना चाहिए। मैं भी इस रक्षण को समाप्त करने के पक्ष में था। श्रीमान, आसाम के लिये मैंने कहा था कि इसाइयों के लिये कोई पृथक निर्वाचन क्षेत्र नहीं होना चाहिये और बाद में इस सभा के सब इसाई प्रतिनिधि उसी प्रस्थापना पर सहमत हो गये, क्योंकि हमने अनुभव किया कि धर्म के आधार पर किसी को एक दूसरे से भिन्न नहीं मानना चाहिये। एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में भेद करने के लिये धर्म का आधार नहीं होना चाहिये। हमें उस पर प्रसन्नता है, कि धर्म के आधार पर किसी जाति के लिये स्थान-रक्षण समाप्त कर दिया गया है। देशी राज्यों विषयक कठिनाइयों को आश्चर्यजनक प्रसार से हल किया गया है। इस का श्रेय राज्य मंत्रालय को है जिसने इस विषय में आश्चर्यजनक काम किये हैं।

अब, श्रीमान, मैं एक और विषय पर कुछ कहना चाहता हूं, और वह है छठी अनुसूची। मैं श्री एस.एन. मुखर्जी, मुख्य मसौदाकार, सर बी.एन. राव तथा डॉ. अम्बेडकर का व्यक्तिगत रूप में आभारी हूं कि उन्होंने इस छठी अनुसूची की रचना पर विशेष ध्यान दिया। मैं मसौदा समिति के सदस्यों का भी आभारी हूं जिन्होंने हमें उनके समक्ष बोलने का अवसर दिया। और मैं आसाम के हमारे मुख्य मंत्री का भी ऋणी हूं जिनकी भावना आसाम के पहाड़ी लोगों के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण है। छठी अनुसूची आसाम के पहाड़ी जिलों के विषय में है जहां आसाम के पहाड़ी लोग अपने प्रदेश में स्वयं अकेले ही रहते हैं, जिनकी अपनी भाषा और संस्कृति है और संविधान सभा ने मंत्रणा समिति की उप-समिति की सिफारिश को स्वीकार करके ठीक किया है जिसमें मेरे माननीय मित्र, श्री ए.वी. ठक्कर भी सदस्य थे। उप-समिति ने स्वीकार कर लिया कि इन विभिन्न जिलों के लिये परिषदें होनी चाहिये जिससे कि उन क्षेत्रों में रहने वाले लोग अपनी प्रतिभा तथा संस्कृति के अनुरूप उन्नति कर सकें। मुझे यह भी खुशी है, श्रीमान, कि खासी राज्यों को भी छठी अनुसूची में रख दिया गया है, क्योंकि उससे खासी जिले के लोगों का—जेन्तिया पहाड़ियों और खासी राज्यों का—एक प्रशासन बन सकेगा। मैं उन सब का अत्यन्त कृतज्ञ हूं जिन्होंने इस विषय में हमारी सहायता की है। मुझे अपने माननीय मित्र श्री चालिहा की आलोचना के विषय में भी कुछ कहना ही होगा, जिन्होंने इस सदन में दो बार उन शक्तियों की आलोचना की है जो छठी अनुसूची के अधीन जिला परिषदों को दी गई हैं। मेरे विचार में ऐसा करना उनकी गलती है। यदि वे समझते हैं कि आसाम के पहाड़ी जिलों के रहने वाले लोग अपना प्रशासन चलाने के और छठी अनुसूची के उपबन्धों द्वारा उन्हें

दी गई शक्ति का प्रयोग करने के योग्य नहीं हैं, तो उन्हें आकर उनकी सहायता करनी चाहिये, उन्हें भाई के समान अपने पहाड़ी क्षेत्रों के भाइयों की सहायता करनी चाहिये और इस प्रकार उन्हें बुद्धि देनी चाहिये जिससे कि वे अपने तरीके से अपना काम चला सकें, और वही चीज है जिससे उन्हें संतोष प्राप्त होगा और जिससे उन्हें शांतिपूर्वक रहने में सहायता मिलेगी। पहाड़ी क्षेत्रों के लोग शोषण से डरते हैं और यही कारण है कि वे जिला परिषदों की मांग करते हैं जिससे कि वे कुछ हद तक अपनी विधियां बना सकें और अपनी संस्कृति तथा स्वभाव के अनुरूप उन्नति कर सकें। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि बहुत से ऐसे सदस्य हैं जिन्होंने ऐसे प्रशासन की वांछनीयता को समझा और मैं संविधान सभा का आभारी हूं कि उसने छठी अनुसूची का विरोध नहीं किया जिसमें कि पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों के लिये बहुत अच्छे उपबन्ध हैं। मुझे विश्वास है कि यदि आसाम के लोग, जिन्हें वास्तव में इन पहाड़ी क्षेत्रों की, जो भारत के वास्तविक सीमान्त हैं, उन्नति में दिलचस्पी है, सहायता करेंगे, तो वहां ऐसा प्रशासन जमाने में कठिनाई नहीं होगी जो उन लोगों के लिये बहुत अच्छा होगा और शायद एक प्रकार से भारत के अन्य भागों में पंचायतों के लिये नमूना ही सिद्ध हो। आज, श्रीमान, इन क्षेत्रों में, जो भारत के सीमान्त पर हैं, आर्थिक कठिनाइयां और कष्ट हैं। भारत सरकार की सहायता की तत्काल आवश्यकता है।

बैठने से पहले बस एक बात और कहूंगा और वह है निदेशक सिद्धान्तों के अनुच्छेद 48 के विषय में। यह गोवध के निषेध का उपबन्ध है। मुझे आश्चर्य है कि क्या इस उपबन्ध का अर्थ यह होगा कि सब प्रकार की गायों और ढोरों का सब समयों पर वध निषिद्ध होगा? मेरा ख्याल यह है कि वह आशय नहीं है। यदि इस उपबन्ध का अर्थ यह है तो इससे राज्य पर महान भार आ पड़ेगा, किन्तु मैं समझता हूं कि यह आशय नहीं होगा। जरा खयाल कीजिये कि देश में लाखों गायें घास चारे बिना, रुग्ण सी घूमती फिरेंगी और उन पर कितना धन खर्च होगा और किसी भी देश पर वह कितना बड़ा भार होगा। उनमें सैंकड़ों खेतों में बेपरवाही से मर जायेंगी। किसी राज्य के लिये भी सब परिस्थितियों में गोवध बन्द करना लाभ का कार्य नहीं होगा। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद से केवल दुधारू गायों तथा भारवाही ढोरों के वध का ही वर्जन होगा, जो जनता के लिये लाभदायक होगा। यदि इसका अर्थ अन्यथा हो, तो मैं समझता हूं कि यह संविधान पर एक कलंक होगा, और कुछ लोगों के लिये कष्टकर भी होगा, विशेषतः आसाम के पहाड़ी लोगों के लिये जो गोमांस भक्षण करते हैं और भोजन के लिये ढोर पालते हैं। यह उन लोगों के साथ भी अत्याचार होगा जो गायों की बलि देते हैं जैसे कि मुस्लिम हैं; आसाम के हिन्दू गोरखा भी दुर्गा पूजा के समय भैसों की बलि देते हैं। यदि इस अनुच्छेद का यह अर्थ निकाला गया कि सब ढोरों का समस्त कालों और परिस्थितियों में वध निषिद्ध होगा तो इससे बहुत गड़बड़ और अशांति हो जायेगी। यह मूल अधिकारों के विरुद्ध भी होगा। मेरे विचार में अनुच्छेद का यह अर्थ नहीं है।

मैं आपको धन्यवाद देता हूं, श्रीमान, और उन सब माननीय सदस्यों का भी जिन्होंने इस संविधान के बनाने में सहायता की है, और श्रीमान, आपने इस सभा को जैसे चलाया है, उस पर मैं आपको बधाई देता हूं। मैं मसौदा समिति को उसके परिश्रम पर और अफसरों को भी बधाई देता हूं जिन्होंने इसकी रचना में

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

भाग लिया है और सदस्यों की वक्तृताओं को लिखने में परिश्रम किया है। प्रतिवेदकों ने वक्तृताओं को लिखने में जो कार्यकुशलता बरती है उसे देख कर मुझे हर्षपूर्ण आश्चर्य है। उन्होंने सचमुच बहुत सफलता से कार्य किया है। मैं आपको धन्यवाद देता हूं, श्रीमान। इस संविधान को क्रियान्वित करने में भगवान हमारे देश की सहायता करे।

***डॉक्टर रघुवीर** (मध्य प्रदेश और बरार: जनरल): माननीय प्रधान जी, हमको इस देश में स्वतन्त्रता मिली, स्वराज्य मिला, गणराज्य मिला, लोकराज्य मिला। भारत का नया जन्म हुआ। इस जन्म में हमको आश्वासन दिया गया कि आर्थिक समुन्नति होगी, सामाजिक समुन्नति होगी, किन्तु एक प्रश्न रह गया और उसका इस संविधान में, इस कान्स्टीट्यूशन में, कहीं पर मुझे स्थान दिखलाई नहीं पड़ा और वह था भारतवर्ष की सांस्कृतिक स्थिति। जिस समय भी कोई देश दूसरे देश के ऊपर अपना राज्य जमाता है, जैसे अंग्रेजों ने इस देश पर अपना राज्य जमाया, तो उसका बड़ा भारी कर्तव्य यह होता है कि वह अपने राज्य को स्थायी बनाने के लिये, अपने राज्य की नीवें नीचे गाड़ने के लिये, वह कुछ ऐसा काम करता है कि जिससे जिस देश पर उसने अपना राज्य जमाया उस देश की जड़ों को वह ढीला करें, उस देश को वह दुर्बल बनायें। इसमें तीन बातें होती हैं। एक भाषा, दूसरा उसका धर्म और तीसरा उसका आदर्श। हमारी जाति के धर्म को उन्होंने नीचे गिराया। कितने प्रकारों से वह नीचे गिराया गया यह तो आज मेरा विषय यहां नहीं हो सकता। धर्म को यहां राज्य में स्थान नहीं मिला। संस्कृत का इतना सुन्दर शब्द 'धर्म' उन्होंने अंग्रेजों ने, तथा उनके अनुयायी भारतीयों ने, एक बड़े निकम्मे छोटे और संकीर्ण शब्द 'रिलीजियन' से जोड़ दिया। धर्म शब्द का अर्थ रिलीजियन न कभी हुआ और न कभी हो सकता है। रिलीजियन के लिये शायद "पन्थ" शब्द का प्रयोग हो सकता है किन्तु धर्म शब्द का प्रयोग इस अर्थ में कभी नहीं हो सकता। अंग्रेजों ने यहां इस का प्रयोग किया।

अंग्रेजों ने हमारी भाषा के स्थान पर अपनी भाषा को स्थान दिया। उसके पुनर्जन्म के लिये, विधान बनाने के लिये, हमको आवश्यकता थी कि जिन जिन बातों को तोड़कर अंग्रेजों ने अपना राज्य बनाने की चेष्टा की उन बातों को लौटाने की हम कोशिश करें जिससे हमारे देश का अपनापन भी इस देश में ठीक प्रकार से स्थापित हो सके। किन्तु संस्कृत शब्द 'धर्म' का इस संविधान में कोई स्थान नहीं है। मैंने अपने एक मित्र से बात की तो वह कहने लगे कि संविधान तो लाज (laws) है, जिन पर न्यायालयों में वादविवाद हो सकता है केवल वही बातें संविधान में आ सकती हैं। किन्तु यह देश केवल राज्य नियम नहीं चाहता, यह तो ऊंचा उठना चाहता है, जब हमारे इस देश को गौरव था, इस देश का धर्म था, हम उस समय ऊंचे थे, हम संसार के गुरु थे। वह अभिमान भी अंग्रेजों ने नीचे गिराया। उन्होंने हमारा इतिहास लिखा, आई.सीएस लोगों ने इस देश का इतिहास लिखा और उनकी भाषा में हमको पढ़ाया कि तुम ऊंचे नहीं थे, तुम बहुत छोटे से आदमी थे। तुम सदा अलग-अलग रहे, तुमने हार खाई, इत्यादि, इत्यादि। तो हमको आवश्यकता थी कि ऊंचा उठने के लिये हम सांस्कृतिक क्षेत्र में अपने मस्तिष्क की अभिव्यक्ति और उन्नति के लिये कुछ प्रयत्न करते। किन्तु वह बात नहीं आई। इसकी बड़ी आवश्यकता थी कि यह शब्द हम अपनी प्रस्तावना

में, अपनी प्रीएम्बुल में, रखते। हमने लिबरटी, ईक्वेलटी और फ्रैटरनिटी, तीन बड़े सुन्दर शब्द फ्रेंच इतिहास से लिये, किन्तु ये सुन्दर शब्द भारत के इतिहास में कभी क्रान्ति लाने में समर्थ नहीं हुये और जहां तक मैं देख सकता हूं कि अब भी इन शब्दों के नाम पर यहां क्रान्ति नहीं आवेगी।

हम दूसरे देशों से वे बातें ले सकते हैं जिनसे हमारे देश को वास्तव में लाभ हो। किन्तु जहां हमने इन तीनों शब्दों को अपने संविधान में रखा था, स्थान दिया था। तो क्या इस देश के प्राचीन शब्दों के लिये इसमें स्थान नहीं था। क्या 'राम राज्य' जैसे एक सरल शब्द को, जिसको ग्राम का एक एक बच्चा समझता है, इस संविधान में स्थान नहीं था? हमारे इतिहास में एक बड़ा सुन्दर शब्द 'मत्स्य-न्याय' आता है कि बड़ी मछली छोटी मछली को नहीं खाये। यह राजा का परम धर्म था कि धनी गरीबों को न सताये।

Exploitation of the people, exploitation of the poor by the rich, exploitation of the weak by the strong.

एक्सप्लाईटेशन किसी प्रकार का भी न हो। उसके लिये एक ऐतिहासिक शब्द, एक सहस्रों वर्षों के प्राचीन शब्द, मत्स्य न्याय, को इस संविधान में स्थान नहीं मिला।

इसी प्रकार से मैं जब एक बार सन् 1931 ई. में लीग ऑफ नेशन्स में गया तो वहां पर प्रेसीडेन्ट से बात हुई और मैंने कहा कि लीग ऑफ नेशन्स का मोटो तो वह होना चाहिये जो ईशोपनिषद में दिया हुआ है, यजुर्वेद में दिया हुआ है, अर्थात् 'मा गृधः'। इसी प्रकार से और आदर्शों को भी, जो मनुष्य के जीवन का आधार है, जो मनुष्य को ऊंचा उठाने वाली बातें हैं, जो उनकी आवश्यकताओं को दूर करने वाली बातें हैं, उनको इस संविधान में स्थान नहीं दिया गया। संसार में गणराज्य को बनाने वाला, फैलाने वाला, संगठित रूप से किसी बात का और किसी आदर्श का प्रचार करने वाला सबसे बड़ा संघ इस देश में बना और उस समय उनका जो परम सिद्धान्त था वह यह था 'धर्मम् शरणं गच्छामि', 'संघम् शरणं गच्छामि' (जो मेरा कर्तव्य है उसकी शरण जाता हूं, उससे भाग कभी नहीं सकता, जो मेरा संघ है उसकी शरण जाता हूं, उससे भाग कभी नहीं सकता)। क्या इस देश के संविधान में इसको नहीं आना चाहिये था? यह हमारे इतिहास में ऋग्वेद से लेकर नीचे तक मिलता है। हमें यहां एक रोग दिखलाई पड़ा और वह रोग था फूट का। वह परस्पर लड़ाई झगड़े का रोग था। इसलिये 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' यह आदर्श हमारे देश के सामने नहीं रखा गया। इसी प्रकार से राजा अश्वपति ने कहा था:

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः। नानाहिताग्निर् नाविद्वान्। इत्यादि।' कि मेरे देश के अन्दर कोई चोर नहीं, कोई डाकू नहीं, कोई कायर नहीं, कोई मद्य पीने वाला नहीं और कोई अविद्वान् नहीं। क्या जब हम हिन्दी में, अपनी किसी भाषा में कहें कि दो और दो चार होते हैं तो वह गणित नहीं कही जायेगी? क्या मैथमैटिक्स तभी होगी जब यह कहें कि 'two and two make four'? क्या उसी बात को हम अपने शब्दों में कहें तो उसका महत्व घट जाता है? क्या जिन आदर्शों को हमने विदेशी भाषा में, विदेशी शब्दों में, विदेशी इतिहास के साथ सम्बद्ध वाक्यशैली में रखा है, यदि उस वाक्यशैली को मैं अपने प्रकार से अपनी भाषा में रखता तो वह विचार दूषित हो जाता?

[डॉक्टर रघुवीर]

हमारे साहित्य में एक और विचार था। उस विचार को यूरोप ने स्वीकार नहीं किया, और क्योंकि उस विचार को यूरोप ने स्वीकार नहीं किया, इसलिये आज हम भी उस विचार को स्वीकार नहीं करते। वह विचार था:

"कार्षापणं भवेद् दण्डयो यत्रान्य: प्राकृतो जन:।
तत्र श्रीमान् भवेद् दण्डय: सहस्रमिति धारणा।।"

अर्थात् कि जहां एक सामान्य व्यक्ति को आप 100 रुपये का दण्ड देते हैं तो वहां राजा हो या कोई बड़ा व्यक्ति हो तो उसको अधिक दण्ड दें। जो अपराध धनी व्यक्ति करता है तो उसके लिये उस अपराध के लिये 100 गुना या सहस्र गुना दण्ड हो जाता है। हमारे यहां इस संविधान में हमको कहीं भी ऐसी बात दिखाई नहीं पड़ी कि हमने इसके लिये यत्न किया हो। मैं अपने देश के इतिहास से जब कुछ बातें आपके सामने रखूं, यदि आपको वे अच्छी नहीं लगतीं तो आप उनको न लें, किन्तु जिस समय हमारे संविधान के सलाह देने वाले मंत्रदाता, बी. एन. राव और दूसरे सज्जन आयरलैंड में जा सकते हैं, जिस समय वे लोग स्विटरज़रलैंड और अमेरिका में जा सकते हैं, यह देखने के लिये कि दूसरे देश अपने राज्य का कारोबार किस तरह चलाते हैं, तो क्या इस देश में कोई ऐसा जानने वाला, लिखने पढ़ने वाला व्यक्ति विद्यमान नहीं था जो आपको यह बतलाता कि यह देश भी कुछ अनुभव रखता है, इस देश के रक्त में भी कुछ ऐसे विचार हैं जो लोगों के अन्दर घुसे हुये हैं और उनसे भी हमको लाभ उठाना चाहिये। यह बात हमारे समाने नहीं आई और यह एक दु:ख की बात है।

मेरे पास बहुत वक्त नहीं है, दो तीन बात कह कर मैं अपना भाषण समाप्त करूंगा। भाषा के सम्बन्ध में जो कि सभ्यता का एक बड़ा भारी अंश है, मुझे बड़ा हर्ष हुआ है कि हिन्दी को माना गया। सब भाईयों ने माना, सब प्रान्तों ने माना। मुझे बड़ा हर्ष है कि कोई भी एक भाषा सारे देश की भाषा मानी गई। किन्तु जिस प्रकार उसको माना गया और जिस प्रकार उसको 15 वर्ष तक हटा दिया गया है, उससे मुझे क्षोभ हुआ है। यह क्षोभ केवल मुझ को ही नहीं हुआ है बल्कि कई मित्रों को जो भारतीय भाषा के पक्षपाती थे, इसके लिये क्षोभ हुआ। किन्तु मेरा क्षोभ 100 गुना बढ़ गया जब विदेशी मित्र, दूसरे देशों के जो यहां पर राजदूत हैं, उनसे मेरी बात हुई। वह कहने लगे कि अभी तो तुम्हारे देश में अंग्रेज़ी का साम्राज्य रहेगा। मित्रो, इस बात को न भूलो, अच्छी प्रकार स्मरण रखो कि अंग्रेज़ अभी तक इस देश में बने हुये हैं। इस देश के अन्दर कोई भी और किसी देश का भी राजदूत विद्यमान नहीं जिस को यह बात अच्छी लगी हो। क्योंकि राजनीति से भाषा का सम्बन्ध है। योरूप के अन्दर किसी भी नैशनलिज़्म का निश्चय भाषा के आधार पर होगा, इसलिये वह लोग जानते हैं कि भाषा का राजनीतिक जीवन में क्या स्थान है। इसलिये अंग्रेजी को जिस समय आप देश के अन्दर रखते हैं तो आपका गठ जोड़ अंग्रेज़ी के साथ हो जाता है। यहां फ्रेंच व्यक्ति आये और वह कहने लगे कि फ्रेंच भाषा का स्थान यहां की यूनिवर्सिटियों में क्यों नहीं है। स्पेनिश भाषा का स्थान इस देश में क्यों नहीं है। अगर फ्रेंच और रूसी का स्थान यहां के विश्वविद्यालयों में होता तो फ्रेंच को बड़ी प्रसन्नता होती और रूस को बड़ी प्रसन्नता होती, इसलिये कि वह जानते हैं कि आप लोग उनके साहित्य को पढ़ सकते हैं और उनकी मैत्री कर सकते हैं। इसलिये राजनीतिक

दृष्टि से अंग्रेज़ी को इस देश में 15 वर्ष तक के लिये रखे रखना हमारे लिये उचित नहीं था। हिन्दी इस प्रकार परे रखी गई जैसे कि वह हमारे में घुस न आये। और अंग्रेज़ी इस प्रकार से कि अंग्रेज़ों के समय अंग्रेज़ी को जो स्थान प्राप्त नहीं था जो हमारे संविधान में अंग्रेज़ी को प्राप्त है।

यहां तक कि पार्लियामेंट के नियमों के अधीन जो कुछ नियम बनेंगे वह सब अंग्रेज़ी में। यदि दिल्ली की इलैक्टरिक कम्पनी नियम बनाती है कि हमारी ट्राम सर्विस सवेरे 5 बजे से रात के 11 बजे तक चलेगी तो उसको संविधान के नियमों के अधीन अंग्रेज़ी में ही छापना पड़ेगा। हिन्दी भाषा के साथ यह अत्याचार तो किया ही गया है फिर भी उसके अन्दर अंग्रेज़ी के अंक लिये गये। हमको इस प्रकार से पुचकारते हैं जिस प्रकार से बच्चों को पुचकारा जाता है। हमें कहा जाता है कि अंग्रेज़ी के जो न्यूमिरल्स हैं वे इंडियन न्यूमिरल्स के इन्टरनेशन फार्म हैं। यह तो किसी घाव पर नमक छिड़कने के समान है। यदि इस समय महात्मा गांधी जी जीवित होते तो मुझे विश्वास है कि वह इस बात को कदापि स्वीकार नहीं करते और संविधान के अन्दर अंग्रेज़ी को 15 वर्ष तक रखने की इजाज़त न देते।

ब्यूरोक्रेसी और नौकरशाही के जो लोग राज्य के सेवक भृत्य हैं वही राज्य के स्वामी बने बैठे हैं। मुकदमेबाज़ी को हटाने का इस देश में कोई यत्न नहीं किया गया है। इससे मुझे यह लगता है कि अंग्रेज़ों के 150 वर्ष तक इस देश में रहने से उन्होंने जिस प्रकार से यहां पर अपनी जड़ गहरी बनाई उससे दुगुनी गहरी जड़ आने वाले 15 वर्षों के अन्दर हो जायेगी। इसका अर्थ यह होगा कि इस देश की शक्ति अंग्रेज़ी जानने वालों के हाथ में होगी। सिर्फ एक बात रह गई जिस समय सारे भारतवर्ष में प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुनाव होगा तो उस समय ऐसे लोग चुनाव में आयेंगे जो अच्छी तरह से अंग्रेज़ी नहीं जानते। तो उस समय पर मैं अपनी आशा लगाये बैठा हूं कि अंग्रेजी का इस देश से बहिष्कार होगा और यह बहिष्कार इस देश की उन्नति के लिये परम आवश्यक है।

इसके पश्चात् मैंने भारतवर्ष की सीमा के बारे में एक दो शब्द कहने हैं। हमने भारतवर्ष में जो देशी राज्य थे उनको आत्मसात कर लिया है। किन्तु भारतवर्ष के हमने टुकड़े होने दिये और हमारे संविधान में ऐसी कोई बात नहीं जिससे यह पता लगे कि यह देश फिर एक बनेगा। जो लोग संस्कृति और साहित्य के पढ़ने वाले हैं उनको पता होगा कि पौराणिक काल में भारत की सीमा 'वक्षु' प्राकृत 'वखु' तक थी। इस नाम को ग्रीक में 'ओखुस' कहा जाता था और अंग्रेजी में उस का उच्चारण 'ओक्सेस' हो गया अब हटते हटते वह सीमा रावी तक आ गई है। मुगलों के समय दिल्ली साम्राज्य अफगानिस्तान तक विद्यमान था। और कई हालतों में वह अफगानिस्तान से परे भी विद्यमान था। आज पश्चिमी बंगाल और आसाम के बीच का इतना बड़ा टुकड़ा हमारे देश से काट लिया गया। उसके लिये देश क्या यत्न नहीं करेगा? चाहे यह काम युद्ध से हो, चाहे शान्तिपूर्वक। इस बात का इस समय प्रश्न नहीं है, यह तो भविष्य ही बतलायेगा। जाति के सामने यह लक्ष्य नहीं है, यह आदर्श नहीं है कि भारतवर्ष पूर्ण भारतवर्ष होगा, टुकड़े जो कट गये हैं उसके फिर भाग नहीं होंगे।

केवल इतना ही नहीं, हमने तो एक और भी अपने कर्तव्य की अवहेलना की, वह कश्मीर के सम्बन्ध में। कश्मीर के जो महाराजा हैं उन्होंने भारतवर्ष में

[डॉक्टर रघुवीर]

मिलने के लिये कहा। कश्मीर की जो जनता है वह भारतवर्ष के साथ मिलना चाहती है। कश्मीर में जम्मू प्रान्त के जो लोग हैं वे भारतवर्ष में मिलना चाहते हैं। कश्मीर में जो लद्दाख के लोग हैं वह शेष कश्मीर से अलग होकर भारतवर्ष में मिलना चाहते हैं और कहते हैं कि हम को भारतवर्ष में ले लो। किन्तु हमारी विधान सभा को, हमारी पार्लियामेंट को यह अधिकार नहीं होगा कि वह कश्मीर के बारे में कोई नियम बना सकें। हमारी सेना कश्मीर में शत्रु को बाहर निकालने के लिये गई और उसने अपना लहू बहाया और अनेकों प्रकार के कष्ट सहे और सह रही है। किन्तु कश्मीर के अन्दर भारतवर्ष का झण्डा अकेला नहीं लहराता। वहां एक और झण्डा लहराने की क्या आवश्यकता थी? मुझे इस बात का क्षोभ है कि इतना रुपया, इतनी सम्पत्ति और इतना लहू बहा कर कश्मीर को अपना न बना सके। हमारी सेना को आगे बढ़ने से रोका गया।

अन्त में मुझे एक बात और कहनी है वह यह है कि मुझे यह दिखाई देता है कि हम अभी तक अंग्रेज़ों के चंगुल से बाहर नहीं निकले। हमारी राजनीति में अंग्रेज़ों का बड़ा भारी हाथ है। अंग्रेज़ों को हमने अपने देश से बाहर निकाल दिया है किन्तु वह हमारे दिलों में घर किये हुये हैं। जैसा कि लार्ड मेकाले ने, शिक्षा आरम्भ करने के समय, प्रसिद्ध वाक्य कहे थे: "अंग्रेज़ी पढ़कर भारतवर्ष के लोग काले तो रहेंगे किन्तु उनके विचार और उनका रहन सहन सारा अंग्रेज़ी हो जायेगा।" वही सारा दृश्य हमारे सामने है। इन्हीं विचारों को हमारे संविधान में रखा गया है और उसमें भारतीयता का कोई भी अंश नहीं। मुझे आशा है कि कुछ वर्षों में, यह संविधान जिस रूप में पास किया गया है, यह संविधान उस रूप में नहीं रहेगा, इसका भारतीय स्वरूप बनाना होगा। भारतवर्ष की जो विशेष आवश्यकतायें हैं उनकी पूर्ति संविधान में होनी चाहिये थी।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल): अध्यक्ष महोदय, हम अब तीन वर्ष बाद अपने संविधान-निर्माण की अंतिम स्थिति में पहुंच रहे हैं। स्वभावत:, संविधान बनाने के लिये तीन वर्ष बहुत लम्बा समय दिखाई देता है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह संविधान सभा सर्वप्रथम बनी थी, तब से हमारे देश में कई परिवर्तन जल्दी-जल्दी हो गये। देश के विभाजन से, संविधान-निर्माताओं का प्रादेशिक क्षेत्र कम हो गया, और शक्ति-हस्तान्तरण से यह सदन सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न निकाय बन गया, जिसे स्वतन्त्र देश का संविधान बनाना था और संसद के रूप में भी काम करना था। इस प्रकार, उसके परिश्रम के सात मास अधिकांश में व्यर्थ गये क्योंकि परिवर्तन करने थे। संविधान सभा का अधिकांश समय आपात की स्थिति को संभालने में तथा संसद की रोजाना समस्याओं को निबटाने में ही खर्च हो गया। फिर, श्रीमान, भारतीय राज्यों के एकीकरण से, ऐसे परिवर्तन करने पड़े जिनकी एक वर्ष पहले भी कोई कल्पना नहीं की गई थी। श्रीमान, जब इस देश का विभाजन हुआ, और मेरे प्रांत तथा पंजाब जैसे प्रांतों को खंडित किया गया, तब उन लोगों ने जो हमारे मित्र नहीं थे, यह सोचा और आशा की कि भारत शीघ्र ही बलकान के समान खंड खंड हो जायेगा। उस समय कौन कल्पना कर सकता था, हम में से किसे खयाल था कि दो ही वर्षों में, हैदराबाद सहित सब देशी राज्य एक समूचे एकक के अभिन्न अंग बन जायेंगे, और हम समूचे भारतीय संघ के लिये, राज्यों और प्रांतों के लिये समान रूपेण एक संविधान बनायेंगे? श्रीमान, हम इन घटनाओं से निकट संपर्क में रह रहे हैं अत: हमारे लिये इस रक्तहीन क्रांति का

पूर्ण महत्व समझना कठिन है जो सरदार पटेल की प्रतिभा का जीता जागता प्रमाण है। मैं अनुभव करती हूं कि केवल भावी संतति ही इन घटनाओं का ठीक-ठीक मूल्य आंकेगी?

श्रीमान, अब संविधान के विषय में, मुझे कहना पड़ेगा कि यह बहुत भारी संविधान है। शायद यह संविधान संसार के सब संविधानों से बड़ा है। मैं उन लोगों में से थी जिनकी यह धारणा थी कि इसमें विस्तार की बातें न रखना अच्छा होता, और संविधान में अधिक व्यापक बातें ही रखी जातीं। श्रीमान, एक लिखित संविधान चाहे कितना ही लचकदार हो, फिर भी वह बहुत हद तक अपरिवर्तनशील ही होगा। मेरे विचार में, यथासंभव इसकी अपरिवर्तनशीलता को कम करने के लिये यह अच्छा होता कि अधिक विस्तार की बातें न रखी जातीं। किन्तु इस सदन में इस युक्ति को माना गया कि हमें बहुत सी उलझी हुई समस्याओं को निबटाना है, और इस देश में जीवन की परिस्थितियां इतनी भिन्न-भिन्न हैं कि विस्तार की बातें अत्यावश्यक हैं। किन्तु मैं समझ नहीं पाती कि हमने इतनी विस्तार की बातें क्यों रखी हैं कि राज्य के उच्च प्रतिष्ठित अधिकारियों, राष्ट्रपति तथा न्यायाधीशों आदि के वेतन तक संविधान में रख दिये हैं। इस प्रकार हमने संसद के साधारण कर्तव्यों को क्यों हड़प लिया है? जो वेतन रखे गये हैं उनकी राशि का तो प्रश्न ही अलग है, मैं तो यह बताना चाहती हूं कि आधुनिक जगत में, जहां धन का मूल्य सदा बदलता रहता है, आज 5000/- रुपये की जो रकम है कल उसका मूल्य केवल 500/- या 5/- ही रह सकता है। अतएव संविधान में वेतन की ठीक ठीक राशि निर्धारित करने से क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है?

श्रीमान, संविधान के वर्तमान रूप के विषय में, मैं अनुभव करती हूं कि चाहे उसमें कई त्रुटियां हों, और हमारी प्रस्तावना के उद्देश्यों से एक स्थान पर हम ज्यादा भी हट गये हैं, फिर भी यह समूचा संविधान उन उद्देश्यों को पूरा कर सकता है जो हमने निश्चित किये हैं।

आखिर इसके निर्माता वे स्त्री और पुरुष हैं जो इस देश के प्रतिनिधि हैं किन्तु जो बहुत भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के हैं, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों वाले हैं जिन के कई विषयों पर भिन्न-भिन्न विचार हैं, और इस प्रकार यह संविधान समझौते के रूप में बनाया है; और इसलिये यह कहा जा सकता है कि हम एक समझौता कर पाये हैं, यद्यपि हम में से कई व्यक्ति कई खंडों पर बहुत कुछ कह सकते हैं।

जहां तक इस संविधान के मूल अधिकारों का सम्बन्ध है, मेरा ख्याल है कि अधिकांश में वे ऐसे हैं कि यदि उन्हें हमारे लोगों को ठीक प्रकार समझाया जाये तो ऐसी कोई बात नहीं है जिसे वे स्वीकार या पसन्द न करें। विशेषत: मैं मूल अधिकार का निर्देश करना चाहती हूं जिससे बहुत फर्क पड़ जायेगा और सचमुच समानता हो जायेगी: "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा..." यह अधिकार अब न्याय्य मूल अधिकार है जिसे न्यायालय के द्वारा क्रियान्वित कराया जा सकता है और यदि कोई ऐसी विधियां हैं, सामाजिक और जो न्याय्य अधिकार के इस सिद्धान्त के विपरीत हों, तो उन विधियों को समाप्त कर देना होगा।

यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि यद्यपि इन मूल सिद्धान्तों में राजनैतिक अधिकारों को रखा गया है तथापि आज नागरिकों के आर्थिक अधिकारों को न्याय्य

[श्रीमती रेणुका रे]

अधिकारों के रूप में नहीं रखा जा सका है। हमारे देश में स्थितियां ऐसी हैं कि हमारे लिये इस समय यह सम्भव नहीं हो सका है कि उन्हें मूल अधिकारों के रूप में रखें जो न्यायालय के द्वारा क्रियान्वित हो सकें। उन्हें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के रूप में रखा गया है। श्रीमान, यह और भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि राज्य की नीति के इन निदेशकों में नागरिकों के कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार हैं जिनके साथ कई कम महत्वपूर्ण बातें रख दी गई हैं। इसके साथ ही, मेरे विचार में, निराशा की कोई बात नहीं है क्योंकि संसद के लिये और भविष्य की सरकार के लिये यह सम्भव है कि वह इन अधिकारों को, जो अब निदेशकों के रूप में हैं, निकट भविष्य में आर्थिक अधिकारों का और मूल अधिकारों का रूप दे दें।

श्रीमान, लोकतन्त्र में केवल राजनीतिक लोकतन्त्र नहीं होता, और यद्यपि यह सर्वथा सत्य है कि हमने ऐसा संविधान बनाया है जिससे वयस्क मताधिकार के कारण इस देश में राजनीतिक लोकतन्त्र स्थापित हो जायेगा, पर यह बात भी उतनी ही सत्य है कि इस संविधान में नागरिकों के आर्थिक अधिकारों का ऐसा प्रभावी उपबन्ध नहीं किया गया है जैसा सम्भव हो सकता था, यद्यपि उन अधिकारों की प्राप्ति में कोई रुकावट भी नहीं है।

मैंने कुछ समय पूर्व कहा था कि एक महान त्रुटि है, मूलाधिकार में एक प्रतिबन्ध है जो इस संविधान पर ही कलंक है। जब कि प्रत्येक दूसरा आर्थिक अधिकार राज्य की नीति के निदेशकों में निहित है, निजी सम्पत्ति का अर्जन करने और उसे रखने का अधिकार ही मूल न्याय्य अधिकार है। केवल वह अनुच्छेद 13(च) में ही नहीं है किन्तु मूल अधिकारों के अनुच्छेद 31 के कारण वह और भी सीमित हो गया है, यहां तक कि उस समय की संसद को भी उस प्रतिकर की राशि और मूल्य को अन्तिम रूप से निर्धारित करने की शक्ति नहीं होगी, जो राष्ट्रहित में सम्पत्ति को ले लेने पर दे देना होगा।

श्रीमान, अनुच्छेद 31 में जो अपवाद रखे गये हैं, उनसे भी यही पता चलता है कि ये अधिकार कितनी दृढ़ता से सीमित किये गये हैं। कुछ प्रांतों में जमींदारी सम्पत्ति को मुक्त किया गया है और उनके लिये भी अवधि है। इसका अर्थ यह है कि अन्य सब प्रकार की सम्पत्ति के विषय में और उस जमींदारी सम्पत्ति के विषय में भी, जिनके विषय में निर्धारित अवधि के अन्दर विधान नहीं बन पाता, संसद को कोई शक्ति नहीं होगी। मैं अनुभव करती हूं कि इस मामले में बहुत गड़बड़ थी। कई लोगों का यह विचार प्रतीत होता था कि यदि संसद को ही प्रतिकर के निश्चय करने का अधिकार होगा तो शायद कोई प्रतिकर दिया ही न जाये। श्रीमान, मुझे विश्वास है कि आप मुझ से सहमत होंगे, और सदन भी मुझ से सहमत होगा, कि कोई सांविधानिक सत्ता कभी ऐसे सिद्धान्त निश्चित नहीं कर सकती थी जिनसे कोई भी प्रतिकर न दिया जाये। अत: मैं समझती हूं कि जब यह प्रश्न उठे थे तब उन्हें समझने में बहुत गड़बड़ थी, और मैं अनुभव करती हूं, और मैं विनम्रता से निवेदन करना चाहती हूं, कि हम में से बहुत से सदस्यों ने पूरी तरह समझा ही नहीं कि हम क्या कर रहे थे, जब कि हमने इस खंड को वर्तमान रूप में संविधान में रखने दिया था।

शायद भावी संतति हमारे विषय में कह सकती है कि यहां हमने भविष्य के लिये, सदा के लिये आर्थिक ढांचा निश्चित करने का प्रयत्न अवश्य किया था,

शायद केवल एक ही संतोषप्रद बात है कि हम संविधान का संशोधन करके इसे बदल सकते हैं, और मुझे विश्वास है, श्रीमान, कि शीघ्र ही ऐसा संशोधन करना आवश्यक होगा।

आखिर, संविधान तो केवल कागज़ का ही लेख्य है। उसकी सफलता या असफलता का निर्णय तो इस बात से होगा कि उस पर कैसे अमल किया जाता है। हम इस संविधान के बनाने वाले हैं और विनम्रता के साथ, इतने लोगों में समझौते के रूप में, हमने यथसंभव सर्वोत्तम संविधान बनाया है, यद्यपि हमें मानना चाहिये कि कई त्रुटियां रह गई हैं। किन्तु निर्माता ही इस संविधान को क्रियान्वित करेंगे, जो इसे जीवन तथा श्वास प्रदान करेंगे, जो वास्तव में निश्चय करेंगे कि इस पर कैसे अमल किया जाये। उन पर यह निर्भर है कि वे इसका मूल्य स्थिर करें और हो सकता है वे इसे गिरा दें, तोड़फोड़ दें, पंगु बना दें और इन्हीं मूल सिद्धान्तों और अधिकारों का, जो नागरिकों की सुरक्षितता के लिये हैं, ऐसा प्रयोग करें कि उनसे नागरिकों का अहित हो जाये। वास्तव में इस पीढ़ी और अगली पीढ़ी के निर्माता ही इस संविधान को क्रियान्वित करेंगे, और उन पर ही इसकी सफलता या असफलता निर्भर होगी। हमारा काम यह कहना नहीं है कि हमने अपना कार्य ठीक किया है या नहीं। भावी संतति ही वास्तव में इसका निर्णय करेगी। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, इसमें संशोधनों की आवश्यकता है जो हममें से कुछ का ख्याल है कि निकट भविष्य में ही होने चाहिये। इस संविधान को क्रियान्वित करने के अनुभव को देखकर, इसमें कई रूपभेद करने होंगे जिससे कि यह हमारे राष्ट्र के स्वभाव के अनुरूप तथा अनुकूल बन जाये।

श्रीमान, समाप्त करने से पूर्व, मैं उन लोगों का साथ देना चाहती हूं जिन्होंने आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है क्योंकि आपने इस सदन के सदस्यों के प्रति साहस और धैर्य और मधुर सहिष्णुता दिखाई है।

मैं मसौदा समिति के योग्य सदस्यों और उसके सदस्यों को भी धन्यवाद देना चाहती हूं और विशेषत: मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के विषय में कुछ शब्द कहना चाहती हूं जिन्होंने इन प्रतिभाशाली वकीलों के समान ही प्रयास और परिश्रम किया है जिनके बीच उन्होंने अनेक अवसरों पर मानवीय भावना का प्रवेश किया था। हम सांविधानिक परामर्शदाता सर बी.एन. राव के भी आभारी हैं जिन्होंने पक्षपात से रहित होकर हमें कानूनी दावपेच समझाये और उन्हें स्पष्ट किया।

श्रीमान, अन्त में मैं कहना चाहती हूं कि ईश्वर करे हम इस संविधान को इस पीढ़ी में और आने वाली पीढ़ी में ऐसे प्रकार से क्रियान्वित कर सकें कि राष्ट्रपिता ने जो उच्च आदर्श रखे थे वे इस देश के निवासियों के लिये वास्तव में एक जीती जागती चीज बन जाये। गांधी जी का समाजवाद मानव जगत के लिये इस देश की व्यवहारिक देन बन जाये।

***माननीय श्री के. संतानम** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, गत तीन वर्ष में कई अवसरों पर मैं संविधान-निर्माण की धीमी गति पर कुछ अधीर सा हो उठा था। मुझे भय था कि ऐसी बात न हो जाये जिससे कि हमारा संविधान अनिश्चित काल के लिये रुक जाये। वह असाध्य विपत्ति होती। हमें सब को पता है कि चीन में जब संविधान निर्माण में अनुचित विलम्ब आया तब क्या हुआ, और जब अन्त में उस संविधान को क्रियान्वित करने के प्रयास किये गये तब वह टूट गया था। अत:, यह सौभाग्य है कि हमने अपना कार्य समाप्त कर लिया है।

[माननीय श्री के. संतानम]

पिछली बातों को सोचता हूं तो मैं अनुभव करता हूं कि ये तीन वर्ष अत्यधिक नहीं हैं। वास्तव में एक वर्ष पहले समाप्त करने पर जैसा संविधान बनता उससे अब हम अधिक अच्छा संविधान बना सके हैं। इस संविधान के विषय में बहुत सी आलोचनाएं की गई हैं। मेरे माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद ने मसौदा-लेखन के विषय में शिकायत की है परन्तु समूचे को पढ़ते हुए यदि हम स्पष्टता तथा अर्थ निश्चितता की कसौटी पर कसें तो, मेरे विचार में, हम सचमुच बहुत अच्छा संविधान बना पाये हैं।

श्रीमान, मेरे मित्र श्री पातस्कर ने कुछ न्यायायुक्त आलोचना की है कि प्रांतीय स्वायत्तता में हस्तक्षेप किया गया है। मैं सहमत हूं कि कुछ मामलों में अनावश्यक उपबन्ध रखे गये हैं जिससे यह प्रतीत होने लगता है कि इस संविधान में प्रांतीय स्वायत्तता उससे भी बहुत कम है जो भारत शासन अधिनियम 1935 के अन्तर्गत थी। परन्तु फिर भी मेरा सुझाव है कि हमें सब बातों को उचित प्रकार से देखना चाहिये। मैं नहीं समझता कि इस संविधान में प्रान्तीय स्वायत्तता की मात्रा कम की गई है, और यह मात्रा न्याय्य है। संविधान द्वारा इसकी रक्षा की गई है और इसमें न्यायालयों की शक्ति को बढ़ा भी दिया गया है। वास्तव में मूल मसौदे से अन्तिम मसौदे तक आते आते शक्ति कार्यपालिका से संसद को और संसद से न्यायापालिका को हस्तान्तरित हुई है। मैं कह नहीं सकता कि यह बुद्धिमानी है या नहीं, किन्तु हस्तान्तरण ऐसे ही हुआ है और उसके परिणामस्वरूप एक संविधान बन गया है जो संघानीय प्रकार का है और संघानवाद की रक्षा न्यायपालिका ऐसी अच्छी तरह करेगी कि उसे संविधान को बदले बिना तोड़ा नहीं जा सकता। अतएव मैं नहीं समझता कि प्रांतीय स्वायत्तता को कोई विशेष क्षति पहुंची है।

श्रीमान, हमें अपने संविधान में एक बात की सराहना करनी चाहिये, जो इसका आधार है, कि समूचा संविधान भारत के समस्त लोगों की इच्छा पर आधारित है। हमारे विगत इतिहास को देखते हुए, संघीयता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रीमान, यदि हम अवशिष्ट शक्तियों को प्रांतों के पास रहने देते तो इसका यह अर्थ हो सकता है कि प्रभुता भारतीय जनता के भागों के पास होती, समूची भारतीय जनता के पास नहीं। आज समूची भारतीय जनता की ही इच्छा इस संविधान में निहित की गई है।

इस सम्बन्ध में, हमें यह समझना है कि यह संविधान, जहां तक देशी राज्यों का सम्बन्ध है, संधियों पर आधारित नहीं है। संधियों का मूल्य उसी हद तक है कि उन्हें संविधान में निहित किया गया है अथवा अभिज्ञात किया गया है। भारत की अखंडता उन संधियों पर निर्भर नहीं है जो राज्य मंत्रालय ने अन्य राज्यों से की है। वे आरम्भ में उन्हें संविधान सभा में लाने के लिये किये गये थे। एक बार संविधान लागू होते ही वे सब संधियां संविधान से ही अपना प्राधिकार प्राप्त करेंगी। संविधान ही उच्चतम तथा मूल विधि है। अनुसूची में उल्लिखित भारत के किसी भाग को, संविधान के संशोधन के बिना, किसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता। अतः केवल भारत की समस्त जनता ही अनुसूची में उल्लिखित भारत के किसी भाग को भारत से बाहर निकलने की अनुमति दे सकती है। उसके बिना कोई भी भाग अपनी इच्छा से किसी प्रकार अलग या पृथक होने की मांग नहीं कर सकता। वह बहुत बड़ी चीज है।

***श्री के. हनुमंथैय्या** (मैसूर राज्य): किसी ने उस अधिकार का दावा नहीं किया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मैं नहीं चाहता कि देशी राज्यों के प्रतिनिधि संधियों के आधार पर किसी अधिकार का दावा करें।

श्रीमान, मुझे कुछ आश्चर्य सा हुआ जब कि मेरे माननीय मित्र सेठ दामोदर स्वरूप ने यह शिकायत की कि इस संविधान को भारत के लोग स्वीकार नहीं करेंगे और कि इससे उन्हें यथेष्ठ वस्तु नहीं मिलती। मैं जानना चाहता हूं कि वे क्या चाहते हैं। इस संविधान से भारत के लोगों को अधिकार मिल जाता है कि वे जो चाहें सो करें। यदि मैं उनकी बात को ठीक समझा हूं तो उनकी शिकायत यह है कि यह संविधान भारत के लोगों को कुछ करने से रोकता है। यह भारत के लोगों पर कुछ भी थोपता नहीं। संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे भारत के लोगों को पूर्णतया समाजवादी गणराज्य स्थापित करने में रुकावट हो। किन्तु वे चाहते हैं कि हम भारत के लोगों पर बाहर से कोई वस्तु लाद कर उन्हें अपनी स्वतन्त्र इच्छा का प्रयोग करने से रोकें। श्रीमान, इस संविधान का उद्देश्य यह है कि जनता की इच्छा ही चले और इस संविधान में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे किसी प्रकार उसमें बाधा हो।

श्रीमान, मैं इस प्रश्न के गुणावगुण पर जाना नहीं चाहता। मेरे विचार में हमें अब पूर्ण लोकतंत्र मिल गया है जो किसी संविधान से मिल सकता है। वह लोकतंत्र कैसे क्रियान्वित होगा, उसे केवल राजनीतिक लोकतन्त्र ही नहीं, वरन औद्योगिक लोकतन्त्र और सामाजिक लोकतन्त्र बनाने में किस हद तक सफलता मिलेगी, यह तो उन पर निर्भर होगा जो इस संविधान पर अमल करेंगे भारत की जनता की और भारतीय लोगों द्वारा बनाये गये नेताओं की व्यापक इच्छा पर निर्भर होगा। किसी संविधान में इन बातों की व्यवस्था नहीं की जा सकती। संविधान में केवल यही उपबन्ध हो सकता है कि जनता की इच्छा चलेगी और मेरे विचार में इस संविधान में यह बात पूरी तरह रख दी गई है। अतएव, श्रीमान, यह अपेक्षित है कि हमें आलोचना करने की बजाय आगे से इस संविधान की पवित्रता की भावना उत्पन्न करनी चाहिये। जनता को यह विश्वास दिलाने पर ही यह पवित्र बनेगा कि वे इस संविधान के द्वारा जो चाहें प्राप्त कर सकते हैं, और तभी कोई सैनिक शक्ति या कोई अन्य शक्ति संविधान को छल बल से समाप्त नहीं कर सकेगी। यही बड़ी बात है जो अपेक्षित है। इस संविधान की कमियों को समुचित संशोधनों द्वारा यथासमय संशोधित किया जा सकता है। मेरे विचार में बहुत ही कम संशोधन करने होंगे। आने वाले कई दशकों में शायद कोई संशोधन करना ही न पड़े। वर्तमान संविधान इतनी अधिक और इतनी पूर्ण शक्तियां देता है कि संविधान को लोकप्रिय बनाने के लिये उपाय किये जायें। मैं एक सुझाव देना चाहता हूं, श्रीमान, कि इस सभा के प्रत्येक सदस्य को आपके हस्ताक्षर सहित संविधान की एक प्रतिलिपि दी जाये जो भावी संतति को स्मृति के रूप में मिल सके।

***श्री आर.के. सिधवा:** वह कोई मौलिक सुझाव नहीं है, राष्ट्रपति उस आशय की घोषणा पहले ही कर चुके हैं।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा किस घोषणा का निर्देश कर रहे हैं?

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, यह घोषणा कि संविधान पूर्ण होने के पश्चात सदस्यों को उनके हस्ताक्षरों सहित दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मैंने ऐसी कोई घोषणा नहीं की थी; किन्तु ऐसा हो सकता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** मुझे यह सुझाव देना है कि राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर सहित सजिल्द संविधान प्रत्येक सदस्य को दिया जायेगा। जिससे वह भावी संतति के लिये स्मृति के रूप में रखेगा। मेरा यह भी सुझाव है कि ये प्रतियां सब सार्वजनिक संस्थाओं को दी जायें। विश्वविद्यालयों को भी कहा जाये कि वे कुछ भावी वर्षों के लिये संविधान को एक अनिवार्य विषय बना दें और प्रत्येक स्नातक इस संविधान की परीक्षा पास करे ताकि इस संविधान के उपबन्धों से सब परिचित हो जायें।

श्रीमान, मैं यह भी सुझाव देता हूं कि जैसे आपने वचन दिया है, निर्वाचन शीघ्र ही होना चाहिये और संविधान पर यथासम्भव शीघ्र ही पूर्णत: अमल किया जाना चाहिये। यदि संविधान के आरम्भ होने और संसद द्वारा उस पर पूर्णत: अमल होने के बीच बहुत विलम्ब होगा तो संविधान का मूल्य कम हो सकता है और उसका जनता पर शायद पर्याप्त प्रभाव न पड़े। अतएव यह आवश्यक है कि निर्वाचन यथासंभव शीघ्र होने चाहिये—हद से हद 1951 के प्रारम्भ में हो जाने चाहिये। मुझे आशा है कि यह हो जायेगा।

अंततोगत्वा, मेरे विचार में मसौदा समिति का कार्य सब प्रशंसातीत है। विशेषत: अंतिम कुछ मास में उन्हें इतनी जल्दी करनी पड़ी है, उनके पास इतना कम समय रहा है कि आश्चर्य है कि उन्होंने कार्य कैसे किया है। मुझे यह भी उल्लेख करना चाहिये। कि संविधान पर, केवल सदन के प्रांगण में ही विचार नहीं हुआ है, वरन कांग्रेस दल की बैठकों में बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया गया है। मैं नामों का उल्लेख नहीं करना चाहता, किन्तु दल के कुछ व्यक्तियों ने प्रत्येक खंड पर और प्रत्येक अनुच्छेद पर विचार करने में बहुत परिश्रम किया और उन बैठकों में बहुत से सुधार किये गये। यदि वे इस प्रकार इस पर विचार नहीं करते तो संविधान ऐसा अच्छा नहीं बनता जैसा कि अब बन पड़ा है। कुछ मिला कर हमने सफलता से कार्य किया है और मुझे आशा है कि यह संविधान भविष्य में सन्तति को वर्तमान युग के महानतम कार्य के रूप में प्राप्त होगा।

***अध्यक्ष:** हमारे उठने से पूर्व, मैं सदन से यह जानना चाहता हूं कि क्या वे मध्याह्न के पश्चात बैठना चाहेंगे ('नहीं श्रीमान' और 'मध्याह्नतर में एक घंटा' की ध्वनियां)। मुझे यह सुझाव दिया गया है कि आज शनिवार होने के कारण सदस्यों को अन्य कार्य करने हैं और इसलिये हमें मध्याह्न के पश्चात् बैठना नहीं चाहिये। यदि सदन की यही इच्छा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। क्या आप आज बिल्कुल नहीं बैठना चाहते?

***अनेक माननीय सदस्य:** मध्याह्नतर सत्र नहीं, श्रीमान,

***अध्यक्ष:** ऐसा प्रतीत होता है कि सदस्य दोपहर बाद सत्र नहीं रखना चाहते। यदि सदन की यही इच्छा है मेरे विचार में, मुझे अब यही पता लगता है कि बहुमत का यही विचार है, तो हम सोमवार को प्रात:काल के 10 बजे समवेत होंगे।

तत्पश्चात सभा सोमवार, तारीख 21 नवम्बर, 1949 के 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

GIPD–HS–296 PSD-24–1252–320

Con. 3. XI.7.49
320

अंक 11
संख्या 7

सोमवार
21 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3857–3928

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 21 नवम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा — (जारी)

***अध्यक्ष महोदयः** अब हम संविधान पर आगे विचार प्रारम्भ करते हैं। सरदार भूपेन्द्र सिंह मान अब अपनी बात कहेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): संविधान पर विचार शुरू करने से पहले, मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, श्रीमान, इस बात की ओर कि मैंने इस आशय के एक प्रस्ताव की सूचना भेज रखी है कि सभा भारत के राष्ट्रीय-गान के प्रश्न पर विचार करे। क्या आप कृपा कर सभा को यह बतलायेंगे कि इस प्रश्न पर यहां विचार किया जायेगा या नहीं और अगर किया जायेगा तो कब?

***अध्यक्षः** गत शनिवार को हमने कार्य संचालन-समिति की एक बैठक की थी किन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रश्न उस समय हमारे सामने नहीं आ पाया था अतः इस प्रश्न पर उस समिति की राय नहीं ली गई। इस प्रश्न पर विचार करने के लिये, इस समिति की बैठक मैं फिर बुलाऊंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** इस प्रश्न पर इसी अधिवेशन में विचार किया जायेगा या जनवरी वाले अधिवेशन में?

***अध्यक्षः** इस पर इस सभा में कब विचार किया जायेगा, इस बारे में कुछ भी कहने से पहले मुझे इस मसले को कार्य संचालन-समिति के सामने रखना होगा।

***सरदार भूपेन्द्र सिंह मान** (पूर्वी पंजाबः सिख): जहां तक कि आम बातों का सम्बन्ध है, यहां संविधान के विभिन्न पहलुओं पर, हमारे पूर्व वक्ता लोग अपना विचार व्यक्त कर चुके हैं। मैं नहीं समझता कि इन पर मैं कुछ और प्रकाश डाल सकूंगा। फिर भी सामान्य तौर पर मैं एक बात का जिक्र अवश्य करूंगा और वह यह कि संविधान में सारी शक्तियां केन्द्र को दे दी गई हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्न राज्यों का महत्व या उनकी स्थिति एक प्रतिष्ठित निगम से अधिक नहीं रह गई है। मैं ऐसा अनुभव करता हूं श्रीमान कि इस नीति के कारण संघ के विभिन्न घटकों को अपनी समुन्नति करने की बहुत कम सुविधा रह जायेगी। इससे उनकी प्रगति में बाधा पड़ना अनिवार्य है। लोकतन्त्र के समुचित विकास के

[सरदार भूपेन्द्र सिंह मान]

लिये सर्वाधिक आवश्यक यह होता है कि घटकों को अपने विकास का पूरा अवसर मिले पर अपनी वर्तमान व्यवस्था में उनको इसका मौका न मिल पायेगा। इस सम्बन्ध में यहां यह तर्क उपस्थित किया गया है कि वर्तमान स्थिति में, जब कि हमारा राज्य अभी एक नवजात राज्य है केन्द्र के साथ में अधिक अधिकार देना ही हमारे लिये आवश्यक है। इस प्रकार के तर्क से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह व्यवस्था सम्भवत: थोड़े दिनों के लिये ही की गई है और मैं यही महसूस करता हूं कि अन्ततोगत्वा इसके लिये संविधान में संशोधन अवश्य किये जायेंगे और उम्मीद है बहुत जल्द किये जायेंगे जिस से कि भारतीय संघ के अंगभूत विभिन्न घटकों को और अधिक स्वातन्त्र्य प्राप्त हो सके। इस सम्बन्ध में, मैं यह महसूस करता हूं कि कश्मीर राज्य संघ के और राज्यों से कहीं अच्छी स्थिति में है और उसकी इस स्थिति पर अवश्य यही मुझे ईर्ष्या होती है।

दूसरी बात जिसका यहां कई वक्ताओं ने उल्लेख है बल्कि जिस पर आपत्ति की है वह यह है कि नशाबन्दी में बारे में संविधान में यह नहीं कहा गया है कि इसे अविलम्ब दूर किया जायेगा। मुझे खुशी है इस बात की कि संविधान में नीति के तौर पर नशाबन्दी को मान लिया गया है और स्थिति के अनुसार इसको क्रियान्वित करने की स्वतन्त्रता घटकों को दी गई है। बहुत से महत्वपूर्ण सुधार और रचनात्मक योजनायें केवल इसलिये अभी छोड़ दी गई हैं कि हमारे पास कोष की कमी है। मुद्रा-स्फीति का प्रश्न भी हमारे सामने है। मैं तो ऐसा अनुभव करता हूं कि नशाबन्दी की बातें और देश भर में इसे अविलम्ब लागू करने की बातें लोग केवल मनोरंजन के लिये कहते हैं। वरना जहां तक कि व्यवहारिकता का सम्बन्ध है, मैं तो यही समझता हूं कि इन मित्रों को, जो आमोद-प्रमोद को हर तरह से मिटाने पर ही तुले हुए हैं अभी इसके लिये कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी होगी। मुझे मालूम है कि पंजाब में जैसा कि अन्य प्रान्तों में भी हो रहा है, नशाबन्दी की योजना को कार्यान्वित कर रहे हैं ऐसे प्राधिकारी जिन्हें खुद इस योजना पर कोई विश्वास नहीं है। जब ये लोग गांवों में उस बात की छानबीन करने जाते हैं कि वहां कहीं गैर नाजायज तौर पर शराब तो नहीं बनाई जा रही है, तो उन्हें आदेश इस बात का रहता है कि वह उन पात्रों को तोड़ फोड़ दें जिनमें कि नाजायज शराब तैयार की जाती है। परन्तु बजाय बर्तनों को तोड़ने के पुलिस करती यह है कि वह पात्रों की रखी शराब खुद पी जाती है और पूछने पर यह कहती है कि उन्हें आदेश इस बात का दिया गया है कि "जो लोग नाजायज शराब बनाते हैं उनकी शराब उनसे छीन लो और हमने यही किया है। ऐसी सुन्दर चीज को धूल में बर्बाद करने के बजाय हमने इसका सदुपयोग कर दिया है और सारा मद्य हम खुद पी गये हैं।" यह तो है स्थिति। हमें पहले ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिये कि लोग नशाबन्दी को दिल से स्वीकार कर लें और फिर उसके बाद हमें इस योजना को क्रियान्वित करने में लगना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि यहां बोलने के लिये मैं खास तौर पर इसलिये खड़ा हो रहा हूं कि मुझे आश्चर्य है इस बात पर कि यहां मुझ से पूर्व बोलने वालों में बहुत कम लोगों ने उन प्रावधानों के बारे में कुछ कहा है जो संविधान में अल्पसंख्यकों के लिये रखे गये हैं। केवल एकमात्र सदस्य रेवरेण्ड निकल्स राय ने ही इसकी चर्चा यहां की है और उन्होंने इस बात पर खुशी जाहिर की है

कि अल्पसंख्यकों को जो रियायतें दी गई थीं वह अब उठा दी गई हैं। इससे मुझे इस बात की याद आ गई है कि किस तरह यहां श्री निकल्स राय ने, आदिम जातियों को रियायत देने के लिये, परिमाण देने के लिये और इन प्राप्त परिमाणों को पाने के लिये हमेशा यहां जोर लगाया है। मैं उनको यह बताना चाहता हूं कि आदिमजाति-भावना भी उतनी ही अच्छी या बुरी बात है जितनी कि साम्प्रदायिक-भावना है। इन परिमाणों को किसी तरह पा लेने के बाद अब वह हमें जो यह उपदेश दे रहे हैं कि साम्प्रदायिक-भावना एक बड़ी खराब बात है वह उनको शोभा नहीं देता है। उनका यह उपदेश देना अब बिल्कुल बेमतलब है। जब हमने संविधान-निर्माण का कार्य शुरू किया था उस समय संविधान-निर्माताओं को इस बात की चिन्ता थी कि अल्पसंख्यकों को पूरा सन्तोष प्राप्त हो जाना चाहिये। ज्यों-ज्यों दिन बीतता गया वातावरण साफ होता गया और हम में परस्पर विश्वास-भावना बढ़ने लगी और हम एक-दूसरे पर अधिक भरोसा करने लग गये और आपसी रजामन्दी से हमने कई जटिल समस्याओं का निपटारा कर लिया। किन्तु अब सर्वत्र यह धारणा हो गई है और जहां तक मेरे समुदाय का सम्बन्ध है, यह ख्याल पैदा हो गया है कि संविधान-निर्माण के आखिरी दिनों में, अल्पसंख्यक-प्रश्न को, जो बहुसंख्यक समुदाय पर एक पवित्र थाती के रूप में सौंपा गया था, बिना सोचे विचारे टाल दिया गया है और अल्पसंख्यकों की इच्छाओं के विरुद्ध बिना उनकी स्वीकृति लिये इसे टाल दिया गया है। शुरू में संविधान-सभा को इस बात की चिन्ता थी कि विभिन्न अल्पसंख्यक वर्गों को पूरा सन्तोष मिलना चाहिये पर मैं यह महसूस करता हूं कि अब सभा अपने उस ख्याल से हट रही है।

इस सभा का जिस रूप में गठन हुआ है श्रीमान उसमें हमसे यह उम्मीद जरूर की जाती है कि हम यहां यह बतायें कि इस संविधान के सम्बन्ध में देश के उन विभिन्न समुदायों का ख्याल क्या है, उनकी प्रतिक्रिया क्या है जिनका हम सब यहां प्रतिनिधान कर रहे हैं। यह एक तथ्य है और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि हम यहां विभिन्न वर्गों एवं साम्प्रदायिक हितों का ही प्रतिनिधान कर रहे हैं। मैं अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा अगर यहां यह न बताऊं कि मेरे सम्प्रदाय की संविधान के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया क्या है; पूर्वी पंजाब के सिख समुदाय की प्रतिक्रिया क्या है यह मुझे बताना ही चाहिये। उनका ख्याल यह है कि श्रीमान, कि इस संविधान को अपना पूर्ण समर्थन वह नहीं दे सकते हैं; इसका सम्यक अनुमोदन वह नहीं कर सकते हैं। उनको यह याद है कि शुरू में, जहां तक कि अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है, यह बात तय पाई थी कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को, प्रशासन-कार्यपटुता बनाये रखने की संगति के अनुसार, नौकरियों में समुचित प्रतिनिधान दिया जायेगा और केन्द्र में तथा विभिन्न राज्यों में एक विशेष प्राधिकारी इस बात के लिये नियुक्त किया जायेगा कि वह इस बात को देखता रहे कि जहां तक अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है, संविधान पर किस तरह अमल किया जा रहा है। पर अब वह ऐसा महसूस करते हैं कि संविधान-निर्माण के आखिरी दिनों में सभा का यह रुख बिल्कुल बदल गया और अनुसूचित जातियों के सिवाए अन्य सभी अल्पसंख्यकों की उपेक्षा कर के उसने यहां नये-नये उपबन्ध रख दिये हैं। हम यह महसूस करते हैं कि यह परिवर्तन बिना सोचे समझे बड़ी आसानी से कर दिये गये हैं और सरदार पटेल की राज्य की उपेक्षा करके किये गये हैं जिन्होंने प्रतिवेदन में यह कहा था कि जो निर्णय हमने कर लिये हैं अब उसे हमें असानी से बिना सोचे समझे नहीं बदलना चाहिये। उनकी इस राय के

[सरदार भूपेन्द्र सिंह मान]

बावजूद भी पूर्व स्वीकृत निर्णयों में परिवर्तन कर दिया गया है और मैं यह कहूंगा कि जहां तक सिखों का सम्बन्ध है उनकी राय लिये बिना यह परिवर्तन किये गये हैं। हम लोग यह जोर दे कर कहते हैं कि सभी अपने पहले की बात से हट गई है। शुरू में हमारा तरीका यही रहा है कि जब भी कोई परिवर्तन करने का ख्याल किया गया है, अल्पसंख्यकों को उस बारे में हमेशा राय ली गई है। किन्तु अब अपने इस पुराने तरीके को ताक पर रख कर यहां परिवर्तन किये गये हैं। इस बारे में सम्बन्धित समुदाय के प्रतिनिधियों से कोई राय नहीं ली गई। सिख-समाचार पत्र इस बारे में बहुत ही क्षुब्ध हैं और उनमें रोजाना इस सम्बन्ध में विरोध के प्रस्ताव और समाचार देखने को मिलते हैं। सिखों को इससे बड़ा आघात पहुंचा है और वह आश्चर्य में हैं कि पूर्व स्वीकृत निर्णयों को अब अन्तिम समय में भला क्यों इस तरह बदल दिया गया है। इस बात को लेकर यहां बहुत कुछ कहा गया है कि सिख समुदाय के पिछड़े वर्ग अब अनुसूची में शामिल कर लिये जायेंगे और हिन्दू समाज की अनुसूचित जातियों की तरह उनको भी अनुसूची में स्थान दिया जायेगा और उनको अन्य पिछड़े दलित वर्गों की तरह ही समझा जायेगा। पर अगर यही बात उस भावना से की गई होती कि उनकी वाजिब मांगों को मंजूर करना ही चाहिये न कि इस भावना से कि हम उनके लिये त्याग कर रहे हैं और रियायत दे रहे हैं तो उनका क्षोभ बहुत कुछ बचाया जा सकता था। अब हम यह देख रहे हैं कि पहले जो यह निर्णय किया गया था कि सिखों की अनुसूचित जातियों को वही सुविधायें प्राप्त रहेंगी जो हिन्दू समाज की अनुसूचित जातियों को दी जायेंगी, वह भी अब निकाले गये आदेशों के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। अब सिखों की अनुसूचित जातियों को अन्य अनुसूचित जातियों के समान रियायतें न दी जायेंगी। पटियाला राज्य में, सिखों के दलित वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल नहीं किया जायेगा। मैं तो इसकी कल्पना ही नहीं कर पाता हूं कि सिख समाज के दलित वर्गों को जो वस्तुतः शैक्षिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं उनको केवल इसलिये दलित या पिछड़ा नहीं माना जायेगा कि वह पटियाला राज्य में रह रहे हैं जब कि बिल्कुल पास के ही पूर्वी पंजाब के सिख समाज के दलित वर्ग को सभा पिछड़ा मानने पर तैयार है। जहां तक कि संयुक्त प्रान्त का सम्बन्ध है, मुझे विश्वास है कि वहां सिखों का जो पिछड़ा हुआ वर्ग है वह समाज के निम्नतम स्तर पर ही अवस्थित है पर वहां उनको वह रियायतें नहीं दी जायेंगी जो वहां के अन्य पिछड़े वर्गों को अर्थात, हिन्दू भाइयों की दी जायेंगी। आपने जो इनको रियायत देने की कृपा दिखाई है उसका महत्व भी इस विभेद के कारण सर्वथा जाता रहता है। अब यह किया गया है कि सभी पिछड़े वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। आज इस समय मैं आप से यह अनुरोध करूंगा और बार-बार यह अनुरोध करूंगा श्रीमान, कि सिख समाज के दलित एवं पिछड़े वर्गों को वही रियायतें मिलनी चाहिये, उनके साथ भी वही बर्ताव होना चाहिये जो देश के अन्य पिछड़े वर्गों को दिये जा रहे हैं।

एक बात पर मैं और प्रकाश डाल दूं श्रीमान। इस पर यहां रोशनी नहीं डाली गई है और इस बारे में कभी-कभी यहां गलतफहमी पैदा हो गई है। पूर्वी पंजाब में कुछ एक ऐसा सुसम्बद्ध आर्थिक एवं सामाजिक ढांचा है, दोनों समाजों के बीच कुछ ऐसी आत्मिक ऐक्य है कि वहां अनुसूचित जाति का एक भाई हिन्दू है और उसका

अपना ही भाई सिख हो गया है और लम्बे केश रखता है। पर जहां तक उनके पेशा या काम का सम्बन्ध है दोनों एक ही काम करते हैं। दोनों के साथ समाज में एक सा बर्ताव किया जाता है। भले ही वह सिख है पर उसे कुएं से पानी नहीं भरने दिया जाता है। दोनों सहोदर भाई हैं पर एक हिन्दू है और दूसरा सिख। अगर एक भाई मोची का काम करता है तो दूसरा भी वही काम करता है। अगर एक भंगी का काम करता है तो दूसरा भी भंगी का ही काम करता है। पर केवल इसलिये कि एक के सर पर लम्बे बाल हैं उसे वह अधिकार नहीं दिये जायेंगे जो उसके सहोदर भाई को दिये जायेंगे। इनको अन्य समाज के पिछड़े वर्गों के समान अधिकार देना कोई रियायत करना नहीं है बल्कि आज भी वास्तविक स्थिति को स्वीकार करना है।

फिर भी मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि संविधान के निष्प्राण ढांचे का या उसमें लिपिबद्ध किये गये शब्दों का कोई महत्व नहीं होता है। मुझे विश्वास है कि समय के प्रवाह के साथ यहां ऐसी रूढ़ियां पैदा होंगी जो वास्तविकता से संगत होंगी और तेजी से बड़े-बड़े परिवर्तन लाने वाली होंगी। मुझे इस बात का विश्वास है श्रीमान कि अन्ततोगत्वा जनता में निहित सद्बुद्धि ही हमारे लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होगी, संविधान में लिपिबद्ध किये गये कोरे अक्षरों का यहां प्राधान्य न रहेगा बल्कि प्राधान्य रहेगा उस भावना का जिससे संविधान का निर्माण किया जा रहा है और देशवासियों को सभी क्षेत्रों में—आर्थिक एवं प्रशासकीय कार्यों में—सर्वत्र न्याय पाने का समान अवसर मिलेगा।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं धन्यवाद देता हूं मसौदा समिति को कि उसने यह वृहत कार्य सम्पादित किया है। मैं धन्यवाद देता हूं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद को उस कठोर काम के लिये जिसको उन्होंने ग्रहण कर रखा था पर इसके लिये मसौदा समिति की तरफ से धन्यवाद का एक शब्द भी उनको नहीं मिल पाया है। खास तौर पर मैं धन्यवाद देता हूं डॉ. अम्बेडकर को कि उन्होंने संविधान निर्माण का महान कार्य इस खूबी से पूरा किया है और इस शानदार ढंग से अपने मसौदे की यहां वकालत की है। मैं जानता हूं कि उनके सामने बड़ी कठिनाइयां थीं और इसका एक उदाहरण है मेरा वह संशोधन जिसे मैंने नाजायज तलाशियों के खिलाफ, गृहों और व्यक्तियों की तलाशी के खिलाफ पेश किया था। सभा ने उसे पहले तो स्वीकार किया पर एक सप्ताह तक स्थगित रखने के बाद विचार किये जाने पर सभा ने उसे नामंजूर कर दिया।

निस्संदेह आज का यह अवसर हमारे लिए एक बहुत ही पवित्र और ऐतिहासिक अवसर है। देश के जीवन में आज का दिन बड़ी ही खुशी का दिन है जब कि शताब्दियों की पराधीनता के बाद, विदेशी प्रभुता के बाद आज हम अपने भाग्य के निर्माता बन पाये हैं और अपने लिये संविधान बना पाये हैं। इस संविधान से कोई सहमत हो या असहमत पर है यह अपना संविधान। आज हम स्वाधीन अवश्य हो गये हैं पर संविधान द्वारा यह गारन्टी नहीं मिलती है कि सभी वर्गों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त रहेगी। इस संविधान में लचीलापन नहीं है। प्रधान मंत्री माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम से जो इस आशय का एक संशोधन आया था कि संविधान के उपबन्धों में पांच साल के अन्दर असाधारण बहुमत द्वारा संशोधन किया जा सकता है, वह पेश नहीं किया गया। इसलिए अगर आज यह संविधान

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

एक बहुमत प्राप्त दल द्वारा या एक सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत है तो आगामी पीढ़ी के लिये इसमें संशोधन करना बड़ा कठिन होगा। वह इसमें तब तक परिवर्तन नहीं कर सकते हैं जब तब कि दो तिहाई का बहुमत उनको न प्राप्त हो जाये। सो न केवल हमने अपने लिये यह संविधान तैयार किया है बल्कि अपनी सन्ततियों पर इसे लाद भी दिया है। कहने का मतलब यह है कि हमारा यह फर्ज था कि संविधान में लचीलापन रखते पर हमने ऐसा नहीं किया है।

मुझे इस बात का बड़ा अभिमान है कि भारत को एक असाम्प्रदायिक राज्य घोषित किया गया है। 9 से 30 तक के सभी अनुच्छेदों के उपबन्धों में धर्म, जाति या प्रजाति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया गया है तथा सरकारी नौकरियों के बारे में या सम्पत्ति को रखने या देने के बारे में सबको समान अवसर दिये गये हैं।

आज देश में जो साम्प्रदायिक कटुता और कलह दिखाई दे रहे हैं उनको हमें खत्म करना ही होगा। संविधान को हमें उसी भावना से कार्यान्वित करना होगा जिस भावना से इसकी रचना की गई है। मैं साग्रह इस बात की अपील करूंगा कि हमें अपने आदर्शों के अनुसार ही चलना चाहिये ताकि लोग यह न कहने पायें कि हम अपने सिद्धान्तों पर अमल नहीं करते हैं। आज मैं यह देख रहा हूं श्रीमान कि रक्षा विभाग और रेलवे विभाग की जो नीति है वह हमें आर्थिक आत्मघात की ओर लिये जा रही है और मैं यह निवेदन करूंगा कि सबको समान अवसर और समान रूप से नियुक्ति देने के बारे में जो उपबन्ध हमने मंजूर किये हैं उन्हें अगर हमने सच्चे दिल से मंजूर किया है तो इन दोनों विभागों में जो साम्प्रदायिक कार्रवाइयां चल रही हैं उनको हमें रोकना होगा। भारत में मुसलमान होना अनर्हता की बात न मानी जानी चाहिये। मुझे विश्वास है कि यहां का बहुसंख्यक समुदाय मुसलमानों के दिलों में भरोसा और विश्वास पैदा करेगा ताकि वह इस देश को अपना देश समझ सकें।

दूसरी समस्या है यहां अल्पसंख्यकों की समस्या जिसका जिक्र यहां माननीय मित्र सरदार मान ने किया है। मुझे इस बात का अभिमान है श्रीमान कि जब यहां संविधान का द्वितीय पठन हो रहा था उस समय सर्वप्रथम मैंने ही स्थान रक्षण की व्यवस्था उठाने का प्रस्ताव रखा था। उस समय अनुपाती प्रतिनिधान की व्यवस्था के लिये वकालत मैंने जरूर की थी। अनुपाती प्रतिनिधान की बात तो नहीं मंजूर की गई पर स्थान रक्षण की व्यवस्था को उठाने की बात को सभा ने स्वीकार कर लिया। अब तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि गत साठ साल से हम जिन सुविधाओं और विशेषाधिकारों का उपयोग करते आये हैं वह अब खतम कर दिये गये हैं और हमें अब यहां के बहुसंख्यक समुदाय की सद्भावना पर ही निर्भर करना होगा और उनकी सद्भावना से ही हम सुविधायें प्राप्त कर सकते हैं। मुझे तो केवल इतना ही कहना है कि:

"तमाशाये अहले करम देखते हैं"

अपने भविष्य के लिये अब हम यहां के बहुसंख्यक समुदाय की उदारता की ओर आशा लगाये बैठे हैं। हमने इस व्यवस्था को स्वीकार किया है इस लिये कि बहुसंख्यक समुदाय की यही इच्छा थी। जिन लोगों ने इसे स्वीकार किया है वह यहां किसी के प्रतिनिधि नहीं रह गये हैं। मैं अथवा श्री तजम्मुल हुसैन या बेगम ऐजाज रसूल—सभी—मुस्लिम लीग के भंग हो जाने के बाद वस्तुत: यहां

किसी के प्रतिनिधि नहीं रह गये हैं। इसलिये मेरा कहना यह है कि हम एक बहुत बड़ा प्रयोग प्रारम्भ करने जा रहे हैं। आज देश में जो तीव्र साम्प्रदायिक कटुता फैली हुई है, उसमें, परिमाणों के न रह जाने पर मुसलमान आगामी निर्वाचन में सफल होंगे, उनको नौकरियों में जगह मिल पायेंगी यह कहना सन्देहास्पद ही है। आशा करता हूं और यह विश्वास करता हूं कि कांग्रेस के शीर्ष स्थानीय नेता लोग, खास करके वह लोग जो पृथक् प्रतिनिधान की व्यवस्था को उठाने के लिये जिम्मेदार हैं, इस बात की कोशिश करेंगे कि यहां आगे चल कर लोगों में परस्पर सहयोग की भावना पैदा हो और सार्वजनिक जीवन में मुसलमानों को समुचित स्थान मिले। आगरा के अपने मित्र श्री कपूर को मैं धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपना संशोधन पेश करते समय अपनी वक्तृता में यहां यह कहा था कि अब बहुसंख्यक समुदाय को अपने उस महान दायित्व को समझना चाहिये जो पृथक् प्रतिनिधान प्रणाली की व्यवस्था के उठ जाने से उन पर आ पड़ा है।

दूसरी बात, जिस पर मैंने गम्भीर आपत्ति की थी और आज भी करता हूं वह है आपातशक्तियां जो राष्ट्रपति को दी गई हैं। यह एक मानी हुई बात है कि राष्ट्रपति का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं किया जायेगा। वह बहुमत-प्राप्त दल का ही आदमी होगा। उसकी कारवाइयां बहुमत प्राप्त दल की इच्छा के अनुसार ही होंगी। विरोधी दलों को सम्भवतः समुचित न्याय न प्राप्त हो सकेगा। यदि बहुमत प्राप्त दल यह चाहता है कि अनुच्छेदों में दिये कारणों के आधार पर संविधान निलम्बित कर दिया जाये तो वह निलम्बित कर दिया जायेगा। मेरी राय में प्रान्तीय स्वराज्य की व्यवस्था तो एक दिखावे की बात है। अगर कुछ प्रान्तों में विरोधी दल अधिकार में आ जाता है और केन्द्र यह नहीं चाहता है कि वह वहां शासनारूढ़ रहे तो किसी बहाने का सहारा लेकर संविधान को निलम्बित किया जा सकता है। इसलिये मेरा कहना यह है कि केन्द्र को यह देखना चाहिये कि नीति सम्बन्धी बातों को लेकर संविधान को निलम्बित न किया जाये। संविधान का निलम्बन तो केवल ऐसी ही अवस्था में किया जाना चाहिये जब कि राज्यों में भयंकर गृह कलह पैदा हो गया हो, अशान्ति और विद्रोह पैदा हो गया हो या वहां संविधान के अनुसार प्रशासन का चलाना ही असम्भव हो गया हो। अमेरिका में अभी हाल के एक मामले में ऐसा कहा गया है: "अमेरिका का संविधान एक ऐसा संविधान है जो शान्ति और युद्धकाल में समान रूप से शासकों और नागरिकों के लिये कानून का काम करता है और हमेशा, हर स्थिति में सभी वर्गों के लोगों को रक्षण देता है। यह सिद्धान्त कि शासन पर संकट आने के काल में संविधान के किसी उपबन्ध को निलम्बित किया जा सकता है एक खतरनाक सिद्धान्त है। मनुष्य की बुद्धिचातुरी अब तक ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं निकाल सकी है जो इतने अपकारक परिणामों से परिपूर्ण हो जितना कि यह सिद्धान्त है। ऐसा सिद्धान्त राष्ट्र को सीधे अराजकता की ओर, स्वेच्छाचारी राजतन्त्र की ओर ले जाता है।" मैं आशा करता हूं और विश्वास करता हूं कि परीक्षण के रूप में उनका प्रयोग कर लेने पर पांच या दस साल के अन्दर इन उपबन्धों को केन्द्र निरसित कर देगा और प्रान्तों को पूरी आजादी दे देगा।

संविधान के बारे में दूसरी आपत्ति यह है कि अनुच्छेद 15 में "without due process of law" (बिना समुचित विधि प्रक्रिया के) शब्दों को नहीं रखा गया

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

है और अनुच्छेद 13 के उपबन्धों पर कई प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। आज भी मैं यही मानता हूं और गम्भीरता के साथ मानता हूं कि इन शब्दों के न रहने से और अनुच्छेद 13 के उपबन्धों को परिसीमित कर देने से देशवासियों को नागरिक स्वातन्त्र्य पूर्ण रूपेण नहीं प्राप्त हो सकता है। जब "without due process of law" शब्द नहीं रखे गये हैं और विधान-मण्डल मूलाधिकारों पर आघात करता है उस अवस्था में तो विधि द्वारा विहित प्रक्रिया अगर पूर्ण कर दी जाती है तो किसी को एक अनुचित कानून के अधीन फांसी मिल सकती है। मेरा कहना यह है। हमने यह संविधान बनाया है ऐसे समय पर जब कि देश में अव्यवस्था थी। अतः अब मैं यही आशा और विश्वास करता हूं कि देश में पुनः शान्ति स्थापित होते ही अनुच्छेद 13 द्वारा दिये गये मूल अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध न रह जायेगा और "without due process of law" शब्दों को यहां अवश्य रख दिया जायेगा जैसा कि अमेरिका और अन्य देशों में है। इस पद संहति के रहने से ही व्यक्ति को स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति प्राप्त हो सकती है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है, अगर राष्ट्रपति की आपात-शक्तियां नहीं ले ली जाती हैं तो इसका परिणाम यही होगा कि देश में अव्यवस्था और अराजकता फैल जायेगी। केन्द्र के हाथ में बहुत ही अधिक शक्तियां दे दी गई हैं और उससे केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच संघर्ष का पैदा होना अनिवार्य है। आज यह संघर्ष हमें इसलिये नहीं दिखाई दे रहा है कि केन्द्र तथा प्रान्तों में एक ही दल अधिकारारूढ़ है। पर अगर प्रान्तीय विधान मण्डलों में दूसरे दलों के लोग चुन कर आ जाते हैं और केन्द्र तथा प्रान्तों में संघर्ष पैदा होता है तो उस हालत में सारे देश में सैनिक शासन लागू हो जायेगा और संविधान को निलम्बित कर दिया जायेगा। उस हालत में भारत एक विशाल कारागार बन जायेगा जिसमें राष्ट्रपति सुपरिन्टेंडेंट रहेगा और केन्द्रीय मंत्री लोग दर्शक रहेंगे। इसलिये मेरा कहना यही है कि इन दो उपबन्धों के विरुद्ध हमें गम्भीर आपत्ति है। मेरी राय में यह संविधान न तो संघात्मक संविधान है और न एकात्मक, यह न तो संसदात्मक संविधान और न असंसदात्मक। यह संविधान तो किसी ओर का नहीं हुआ है। इस शब्दों के साथ, इतनी शर्तें रखकर मैं इस संविधान का समर्थन करता हूं।

***श्री अरुण चंद्र गुहा** (पश्चिमी बंगालः जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज का दिन भारतवासियों के लिये एक गौरव का दिन है। आज शताब्दियों तक अपने तथा विदेशियों की पराधीनता में रहने के बाद हमें यह दिन नसीब हुआ है कि हमें अपने स्वतन्त्र राज्य के लिये संविधान बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ है। आज के दिन को भारतवासियों के लिये गौरव का दिन मैं इस लिये बता रहा हूं कि हाल के इतिहास में हमें कभी इस बात की शक्ति नहीं प्राप्त हो पाई है कि हम जिस तरह की शासन व्यवस्था पसन्द करते हों उसके लिये अपना संविधान तैयार कर सकें।

इस संविधान-सभा की सृष्टि हो पाई है एक क्रांति के फलस्वरूप। हम अभी इसी क्रांति से हो कर गुजर रहे हैं। सुतरां जो संविधान हम बनाने जा रहे हैं या जो बना चुके हैं वह ऐसा होना चाहिए कि हमारी वर्तमान क्रांतिकालीन स्थितियों के सर्वथा उपयुक्त हो। यदि हमने यह संविधान यह मान कर तैयार किया है

कि वर्तमान सामाजिक शक्तियां ही वहां स्थायी तौर पर बनी रहेंगी और अगर हमने इस संविधान को बनाया है केवल इसलिये कि वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को चालू रखने में सहायक हो तो मुझे शक है कि इस संविधान से देशवासियों का प्रयोजन शायद ही सिद्ध हो सकेगा।

अनेक वर्षों तक संघर्ष करते रहने के बाद हमने जनता में एक शक्ति पैदा की है, उनमें आकांक्षाएं पैदा की हैं और अब हमें इस शक्ति को, उनकी आकांक्षाओं को मान कर संविधान बनाना होगा ताकि संविधान में ये आकांक्षायें प्रतिबिम्बित रहें। अगर ऐसा नहीं होता है तो जनता के लिये इस संविधान की कोई उपयोगिता न रह जायेगी और इसे स्थिरता भी शायद ही प्राप्त हो सके। साथ ही मैं यह भी जानता हूं कि सत्ता के हस्तान्तरण के बाद से, यहां की विघटनकारी शक्तियों को सर उठाने का प्रोत्साहन मिलने लगा है। सन् 1917 की क्रांति के बाद रूस में ऐसा हुआ था कि वहां दर्जनों छोटी-बड़ी पार्टियां खड़ी हो गई थीं और सभी सत्ता को हथियाना चाहती थीं। उसी तरह यहां भी विभिन्न प्रदेशों में अनेक आर्थिक तथा राजनीतिक दल और गिरोह इसी उद्देश्य से खड़े हो गए हैं। संविधान बनाने में हमें इस तथ्य का भी ख्याल रखना होगा। फिर हम उस पुरानी शासनव्यवस्था को लेकर चल रहे हैं जो हमें यहां विरासत में मिली है। हम संविधान निर्माण का काम बिल्कुल नये सिरे से नहीं शुरू कर रहे हैं। सत्ता के हस्तान्तरण के फलस्वरूप जो शासनव्यवस्था, जो सामाजिक व्यवस्था हमें मिली है वह यद्यपि हमारे लिये बड़ी बोझिल है पर उसे लेकर चलना होगा। इन सभी बातों का हमें ख्याल रखना होगा। इसलिये अपना जो वर्तमान संविधान होगा, वह स्वाभाविक है, कि एक काम चलाऊ संविधान ही होगा और मिश्रित विचार धाराओं के आधार पर निर्मित होगा।

अपने इस संविधान के सम्बन्ध में यह कहा गया है, और मेरी समझ से ठीक ही कहा गया है, कि इसकी अपनी कोई विशेषता नहीं है। रूस के संविधान में यह साफ-साफ कहा गया है कि इस के द्वारा जिस राज्य की स्थापना की गई है उसकी व्यवस्था आधृत होगी समाजवाद पर और सारे सामाजिक प्राधिकार निहित रहेंगे वहां की सोवियट में। अपने संविधान में इस तरह की कोई बात नहीं कहीं गई है और मेरा ख्याल है कि जनता की आकांक्षाओं को हम संविधान में नहीं प्रतिबिम्बित कर पाये हैं और न उस विचारधारा को ही प्रतिबिम्बित कर सके हैं जिसके आधार पर हमने उस क्रांति का संचालन किया है जिसके फलस्वरूप इस संविधान-सभा की उत्पत्ति हो पाई है। संविधान में हमें यह साफ-साफ कह देना चाहिये था कि अपने नवनिर्मित राज्य की व्यवस्था ग्राम पंचायतों के आधार पर विकेन्द्रोन्मुखी व्यवस्था होगी और इसी आधारभूत सिद्धान्त पर हम राज्य की व्यवस्था करेंगे।

फिर भी यह तो कहना ही होगा कि अपने इस संविधान में उन कतिपय महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है जिन्हें हमारी राष्ट्रीय सरकार गत दो साल के अन्दर अपनाने में सफल हो पाई है। उसमें पहली उल्लेखनीय बात यह है कि अस्पृश्यता को समाप्त घोषित कर दिया गया है। अस्पृश्यता भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के लिये सबसे बड़ा कलंक थी। अब, संविधान के अनुसार, अस्पृश्यता

[श्री अरुण चंद्र गुहा]

एक अतीत की बात हो गई है। दूसरी उल्लेखनीय बात इसमें यह है कि साम्प्रदायिक निर्वाचन-व्यवस्था तथा इस तरह की अन्य विघटनकारी व्यवस्थायें उठा दी गई हैं। इस व्यवस्था की सृष्टि की थी ब्रिटिश हुकूमत ने और इसलिये कि समूचा राष्ट्र प्रादेशिक दृष्टि से तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से टुकड़ों में बंट जाये। संविधान में अब यह व्यवस्था उठा दी गई है। मैं यहां उन सम्प्रदायों के सदस्यों को जो अब तक अल्पसंख्यक नाम से ज्ञात थे, इस बात के लिये धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने समय की जरूरत को समझ कर ठीक-ठीक कदम उठाया, मैं उनको धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने अवसर के अनुकूल आचरण किया। इस सम्बन्ध में खास तौर पर मैं उल्लेख करूंगा सरदार पटेल का तथा श्री एच.सी. मुकर्जी का। इन दोनों सज्जनों ने यदि कृतसंकल्प होकर इसके लिये प्रयास न किया होता तो इस दिशा में हम सफल न हो पाते।

तीसरी महत्वपूर्ण बात हमने यह की है कि देशी राज्यों को समाप्त कर दिया है। यहां सब 600 से कुछ ऊपर रियासतें थीं और ये सब भारत की राजनीतिक काया में विषाक्त कीटाणु के समान थीं। यह सब अब समाप्त कर दी गई हैं और मुख्यतः सरदार पटेल की तत्परता और प्रयास के फलस्वरूप ही यह समाप्त हो पाई हैं।

इसकी चतुर्थ विशेषता यह है कि इसमें राज्य को सर्वथा धर्म निरपेक्ष रखा गया है। समस्त देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य की ज्वाला धधक रही थी पर संविधान निर्माताओं ने इस वैमन्स्य की एक चिनगारी तक को अपने पास नहीं फटकने दिया और दृढ़ होकर वह इसी बात पर अड़े रहे कि जिस राज्य का वह निर्माण करने जा रहे हैं वह सर्वथा एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्रीय राज्य होगा जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुए प्रतिनिधि लिये जायेंगे। अपने इस राज्य में हर नागरिक को चाहे उसका धर्म कुछ भी हो, समान अवसर और समान अधिकार प्राप्त रहेंगे। देश की जो वर्तमान हालत है जिसे कि सन् 1947 के पहले तक हम जानते आये हैं, उसमें इस तरह का संविधान बनाना विशेष रूप से महत्व रखता है और हमें विशेष रूप से इसकी सराहना करनी चाहिये।

भौगोलिक तथा आर्थिक शक्तियों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह राज्य में और समाज में अपना सन्तुलन चाहती है। परन्तु अपने इस संविधान में, मेरा ख्याल यह है कि, इनके सन्तुलन को स्वीकार नहीं किया गया है। मैं जानता हूं कि दुनिया के सभी संघात्मक संविधानों की यही प्रवृत्ति है कि अपने अधिकाराधीन के राज्य क्षेत्र का वह विस्तार करना चाहते हैं। यही बात अमेरिका, रूस और आस्ट्रेलिया के साथ भी है। अभी हाल में ही ब्रिटेन के उदारदलीय राजनीतिज्ञ लार्ड सैमुएल ने यह आशा व्यक्त की थी कि भारत एक वृहत्तर संघ का केन्द्र होगा जिसके अन्तर्गत विशाल प्रदेश होंगे। ऐसी भौगोलिक तथा आर्थिक शक्तियां वर्तमान हैं जो वृहत्तर प्रदेशों को एक राज्य के अन्तर्गत लाने की चेष्टा करेंगी।

इस संविधान के विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाये पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इसमें रखे गये मूल अधिकारों में, नीति के निदेशक सिद्धान्तों में तथा प्रस्तावना में बड़े ऊंचे आदर्शों और भावनाओं को स्थान दिया गया है। काम पाने का अधिकार,

शिक्षा पाने का अधिकार, जीवन निर्वाह के लिये एक निम्नतम पारिश्रमिक पाने का अधिकार—ये सभी अधिकार संविधान में रखे गये हैं। यह मैं जानता हूं कि कई उपबन्धों को रख कर इन अधिकारों का परिसीमन अवश्य कर दिया गया है पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, मेरी समझ से सत्ता के हस्तांतरण के ठीक बाद कुछ ऐसे परिसीमनों का होना आवश्यक भी है। जब तक समाज स्थिर रूप से न सुव्यवस्थित हो जाये, जब तक कि स्थिति न सुदृढ़ हो जाये तब तक इस तरह के प्रतिबन्धों को हमें रखना ही होगा। श्री जान स्टुअर्ट मिल ने भी जो वैयक्तिक स्वातन्त्र्य के प्रवर्तक माने जाते हैं, यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति के स्वातन्त्रय पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध का रहना आवश्यक है। नागरिकों के प्रति तथा राज्य के प्रति कुछ कर्तव्यों का आभार आरोपित करके व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को परिसीमित करना उन्होंने आवश्यक माना है। ऐसे आभार और प्रतिबन्ध प्रत्येक संविधान में ही रखे गये होंगे। स्थिति के अनुसार, व्यक्ति के स्वातन्त्र्य पर ऐसे प्रतिबन्ध सभी संविधानों में मिलेंगे।

भारत एक विशाल देश है जिसके अंगभूत अनेक प्रदेश हैं और यहां यह बात असम्भव नहीं है कि कोई राजनीतिक दल या शरारती गिरोह बैलट बक्स के जरिये या राजनीतिक जबरदस्ती और छल के सहारे किसी प्रदेश में सत्ता हथिया बैठे। ऐसी स्थिति के लिये राज्य के पास इसका अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि वह उस प्रदेश को नियंत्रण में रख सके ताकि वह राजनीतिक दल या गिरोह उस प्रादेशिक घटना को, जिस पर कि उसने अधिकार कर रखा है, अपनी शक्ति विस्तार के लिये आधारभूमि न बना सके। इसलिये, प्रादेशिक घटकों पर केन्द्र को अगर व्यापक अधिकार दिये गये हैं तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। फिर भी मैं यह अवश्य अनुभव करता हूं कि राष्ट्रपति में जो शक्तियां निहित की गई हैं वह बहुत ज्यादा हैं। उसे इतनी विस्तृत शक्ति देने का परिणाम बड़ा संकटमय हो सकता है। यह कुछ वैसा ही मालूम होता है जैसा कि जर्मनी के प्रेसिडेंट को व्यापक अधिकार दिये गये थे जिनकी सहायता से सन् 1933 में हिटलर का उत्थान हुआ था।

अपना यह संविधान एक मिश्रित संविधान है जो कई विचार धाराओं के आधार पर बनाया गया है। यह एक संघात्मक संविधान है पर इसका निर्माण शिखर से शुरू किया गया है न कि आधार से जैसा संघात्मक राज्यों के लिये होना चाहिये। इसमें केन्द्र ही संघ के अंगभूत घटकों को शक्तियां सौंपता है न कि सर्वसत्ताधारी होकर अंगभूत घटक अपनी कुछ शक्तियां केन्द्र को सौंपते हैं जैसा कि अमेरिका के विधान में है। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि केन्द्र जो सत्ता सौंप रहा है वह इसमें कृपणता से ही काम लेगा। इस स्थिति में संघबद्ध होने वाले घटकों को जो सम्यक् अधिकार नहीं मिल पाये हैं जो कि संघात्मक राज्य में उनको मिलना चाहिये, वह स्वाभाविक ही है। फिर भी यह मैं जरूर कहूंगा कि वित्त विषयक उपबन्धों को कुछ और उदार बनाया जा सकता था ताकि हर घटक को स्वेच्छानुसार अपने विकास का अवसर मिलता और छोटी मोटी आर्थिक सहायता के लिये उसे हमेशा केन्द्र की ओर न देखना पड़ता।

अपने इस संविधान की उत्पत्ति हुई है एक क्रांतिकारी आन्दोलन के फलस्वरूप, इसलिये इसमें देश के क्रांतिकारी जनसमूह की आकांक्षाओं को समुचित स्थान दिया जाना चाहिये था। हम एक क्रांति का संचालन कर रहे थे और अभी भी हम उसी

[श्री अरुण चंद्र गुहा]

क्रांति से होकर गुजर रहे हैं और अभी अपनी आखिरी मंजिल पर नहीं पहुंच पाये हैं। स्वातन्त्र्य संग्राम के दिनों में हमारे दिमाग में कुछ क्रांतिकारी आर्थिक विचार भरे गये थे पर उनको संविधान में समुचित स्थान नहीं मिल पाया है। हां, इतना किया गया है कि अनुच्छेद 40 और 43 में गांधी जी की विचारधारा के सम्बन्ध में, दो साधारण उपबंध जरूर रखे गये हैं। ये दोनों उपबंध हैं ग्राम पंचायत और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में। केन्द्र में सत्ता निहित करते हुए भी, समाज की स्थिरता के लिये कुछ शक्ति केन्द्र को देते हुए भी इन सब बातों के बारे में इकाइयों को अधिकार दिया जा सकता था और संविधान में इसके लिये उपबंध रखा जा सकता था। इसलिये अपना यह संविधान क्रांतिजनित आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है। फिर भी मैं निराशा का अनुभव नहीं कर रहा हूं। मैं जानता हूं इतिहास विकासशील होता है। किसी देश का संविधान एक प्रयास में स्थिर रूप से नहीं बन पाया है। रूस का वर्तमान संविधान चार प्रयासों के बाद आज इस रूप में आ पाया है। पहली बार उसका निर्माण किया गया सन् 1918 में, फिर 1923 में, 1936 में और 1944 में इसमें हेरफेर किया गया। अमेरिका के संविधान में कई बार संशोधन हुए हैं। अपने संविधान के बारे में मेरा ख्याल यही है कि यह फिलहाल काम चलाने के लिये बनाया गया है और आगे चलकर हमें इसमें बहुत कुछ संशोधन करना पड़ेगा ताकि देश की जनता की आकांक्षाओं का इसमें समुचित स्थान प्राप्त रहे। चीन की ओर से हमें चेतावनी का संकेत मिल रहा है जिसका हमें ध्यान रखना चाहिये। कांग्रेस ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है यही काफी नहीं है। जनता तो भविष्य की ओर देखेगी और देखना भी चाहिये। यदि भावी सम्भाव्यताओं को दृष्टि में रखकर हम राज्य का निर्माण नहीं करते हैं तो शायद कांग्रेस दल को भी वही गति प्राप्त होगी जो चीन के कुमिंटांग दल को हुई है। आशा है कांग्रेस दल के नेता इसका ख्याल रखेंगे और भावी संविधान बनाने में सही दृष्टिकोण से काम लेंगे ताकि जनता की आकांक्षाओं को संविधान में समुचित स्थान प्राप्त हो सके। संविधान की दूसरी बात जिस पर बोलने का मित्रों ने मुझ से बार-बार आग्रह किया है, यह है कि इसमें कार्यपालिका को बिना मामला चलाये नागरिकों को निरुद्ध रखने का अधिकार दिया गया है। बिना मामला चलाये मुझे निरोध में रखा जा चुका है और अपने जीवन के प्रायः पच्चीस साल मैंने निरोध में ही बिताये हैं श्रीमान, इस लिये मैं अच्छी तरह जानता हूं निरोध में क्या यातना भुगतनी पड़ती है। और विशेष करके बन्दी के सम्बन्धियों को। पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, सत्ता के हस्तान्तरण के ठीक बाद के काल में शासन को ऐसा अधिकार प्राप्त रहना चाहिये और मैं यह सुझाव दे रहा हूं बावजूद इस बात के मैं खुद निरोध की यातना भुगत चुका हूं।

कांग्रेस के अभी जयपुर के अधिवेशन में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि राजनीतिक स्वतन्त्रता तो देश ने प्राप्त कर ली है पर उस स्वतन्त्रता का विस्तार हमें सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों तक कर देना चाहिये। किन्तु मैं नहीं समझता हूं कि अपने इस संविधान के द्वारा हम आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों तक इस स्वतन्त्रता को विस्तृत कर सकते हैं। गांधी जी ने हमारे सामने यही आदर्श रखा था कि देशवासियों को आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त हो जाना चाहिये और इसी आदर्श की प्राप्ति के लिये हमने स्वातन्त्र्य संग्राम चलाया

था जिसे राष्ट्र भूल नहीं गया है। यह संविधान हमारी आशा के अनुरूप नहीं हो पाया है इससे मैं निराश या उत्साहशून्य नहीं हो बैठा हूं। हमें स्थिति का दृढ़ता से सामना करना होगा और गांधी जी के बताये मार्ग पर चलना होगा। एक पागल हठीले व्यक्ति ने उनके दुर्बल नश्वर शरीर को समाप्त अवश्य कर दिया है। पर उनकी आत्मा चारों ओर व्याप्त है। कवि टैगोर के शब्दों में मैं यही कहूंगा कि वह वृद्ध महापुरुष जिसे क्षुद्रतावश हमने ठुकरा दिया है। जिसकी क्रोधवश हमने हत्या कर दी है, भविष्य में भी हमारा पथप्रदर्शन करेगा और हमारे द्वारा नई दुनिया की, नये मानव समाज की सृष्टि करायेगा। 'बन्दे मातरम्'

***श्री शंकर राव देव** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, दो साल से अधिक काल तक धीरतापूर्वक श्रम करके आज कहीं हम इस स्थिति में पहुंच पाये हैं कि अपने इस संविधान को स्वीकृत करने जा रहे हैं जिसे हमने एक लोकतन्त्रीय राज्य के लिये बनाया है, एक ऐसे राष्ट्र के लिये बनाया है जिसकी जनसंख्या है 35 करोड़। देश का विभाजन हो जाने पर भी आज अपना भारत उससे कहीं बड़ा है जितना कि यह पहले कभी नहीं रहा है और इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं वह लोग जिन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास किया है। यह कहा जाता है कि अब हमने अपना काम प्राय: समाप्त कर दिया है। पर मानव इतिहास में आदमी का काम कभी समाप्त नहीं हुआ है। किसी भी सचेतन पदार्थ की दो ही गतियां होती हैं, या तो वह अपना विकास करेगा या विनष्ट हो जायेगा। वह स्थिर होकर गतिहीन अवस्था में नहीं पड़ा रह सकता है। हमारे राष्ट्र ने शताब्दियों के बाद आज स्वाधीनता प्राप्त की है और इसे अपना विकास करना होगा अपने स्वभाव, रहन-सहन के अनुसार। यदि संविधान को इस विकास के काम में राष्ट्र को सहायता देनी है तो इसे भी अपना विकास करना होगा अर्थात् इसमें विकास के बीजों का होना जरूरी है। हमारा देश एक विशाल देश है जिसमें तरह-तरह के लोग और तरह-तरह की संस्कृतियां हैं। शताब्दियों तक साम्राज्यवादी बन्धन में रहने के बाद आज बन्धन मुक्त होकर वह अपनी शासन व्यवस्था के लिये संविधान बनाने का प्रयास कर रहा है। यह प्रयास एक महत् प्रयास है। इसके लिये अपेक्षित है घनी सहानुभूति ताकि जनता की आकांक्षाओं को संविधान में स्थान प्राप्त रहे, इसके लिए आवश्यकता है उत्कृष्ट कल्पना की जिससे कि इतिहास की धारा को ठीक-ठीक समझा जा सके।

संविधान एक बार बना दिये जाते हैं पर उसके बाद अपना विकास वे स्वयं भी करते रहते हैं। संविधान-निर्माताओं को संविधान विषयक सिद्धांन्तों की पूरी जानकारी होनी चाहिये, उन्हें इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिये कि भिन्न-भिन्न काल में और भिन्न-भिन्न देशों में क्या सांविधान-सिद्धान्त रहे हैं और उन पर अमल किस तरह किया गया है। यदि हम इस वृहत् लेख्य को पढ़ें जो कि चन्द दिनों के अन्दर ही भारत के लोकतंत्रीय संघ का संविधान बनने जा रहा है, तो हम यह देखेंगे कि पूर्वगामी क्रांतियों के प्रवर्त्तकों की विचारधारा को इसमें स्थान दिया गया है। यदि हम इसके वृहदाकार की ओर दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि इसका आकार इतना बड़ा है कि अन्य कोई भी संविधान इसकी बराबरी नहीं कर सकता है। किन्तु इसका इतना वृहत् होना ही इसकी एक बड़ी कमी सिद्ध हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आगे के लिये इसमें कोई बात छोड़ी ही

[श्री शंकर राव देव]

नहीं गई है, और राष्ट्र के लिये संविधानरूपी एक तंग जामा बना दिया गया है जिसके अन्दर रह कर ही राष्ट्र को अपना विकास करना होगा। होना यह चाहिये था कि बहुत सी बातों को रूढ़ि के लिये छोड़ किया जाता ताकि भविष्य की घटनाओं के अनुसार, देशवासियों की आकांक्षाओं के अनुसार, और उनके विकास के अनुसार रूढ़ियां अपने आप विकसित होतीं और संविधान का काम देतीं। इतने वृहदाकार संविधान का कठोर होना अनिवार्य है, इसमें लचीलापन रह नहीं सकता है और इसलिये डर इस बात का है, सम्भावना इस बात की है कि देशवासियों के विकास में यह बाधक न हो जाये। फिर भी यह तो हमें मानना ही होगा कि पूर्वगामी क्रांतियों के प्रवर्तकों की विचारधारा को इसमें स्थान दिया गया है। लोकतंत्र के परीक्षण के फलस्वरूप अब तक जो राजनीतिज्ञ सिद्धान्त और प्रणालियां निकल पाई हैं उनको स्थान देकर इसे और मजबूत बनाया गया है संविधान की प्रस्तावना में जनता का सर्वसत्ताधारी होना स्वीकार किया गया है और यह रूसो कि "सोशल कन्ट्रैक्ट" की विचारधारा से सर्वथा संगत है। यह मान्टेस्क्यू के शक्ति पार्थक्य सम्बन्धी सिद्धान्त से सर्वथा संगत है। संविधान ने राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाया है और धर्म से इसका कोई लगाव नहीं रखा है और उसकी यह विशेषता यूरोप के पुन:प्रबोध काल की विचारधारा से सर्वथा संगत है। इसमें संघात्मक व्यवस्था अपनाई गई है जो व्यवस्था अमेरिका के स्वाधीन होने पर व्यावहारिक राजनीति के रूप में पहली बार अपनाई गई थी। भारतीय संघ के लिये शक्ति वितरण की जो व्यवस्था संविधान में रखी गई है वह जर्मनी के वाइमार संविधान से ली गई है जो 1918 में बना था। भारतीय लोकतन्त्र के प्रधान अधिशासी को न तो पूर्णत: अमेरिका के प्रेसिडेण्ट की स्थिति दी गई है और न फ्रांस के प्रेसिडेंट की ही स्थिति में उसे रखा गया है। अमेरिका के प्रेसिडेंट की भांति वह शासन के काम में सर्वेसर्वा न होगा और न फ्रांस के प्रेसिडेंट की तरह केवल मंत्रियों को हस्ताक्षर लेना ही उसका काम होगा। फिर भी, जैसा कि जर्मनी के वाइमार संविधान के अधीन हुआ, अपने प्रेसिडेंट को प्रस्तुत संविधान में ऐसी शक्तियां प्राप्त हैं कि वह यहां एक तरह से सर्वेसर्वा बन सकता है। ब्रिटिश कामनवेल्थ के साथ एक लम्बे अरसे तक सम्बद्ध रहने के कारण हमने प्रेसिडेंट की व्यवस्था रखते हुए संसदात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया है। संविधान का भाग 3 जिसमें मूल अधिकार रखे गये हैं तथा भाग 4 जिसमें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त रखे गये हैं—यह दोनों भाग इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं को "कानून का शासन" (Rule of Law) के सिद्धान्त का, जो सिद्धान्त कि ब्रिटिश स्वाधीनता की सुरक्षा के लिये किला का काम करता है, सदा ध्यान रहा है और उन्हें इस बात का सदा ध्यान रहा है कि मार्क्स की विचारधारा का मानव समाज पर, उसके जीवन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा है। निस्सन्देह अपने संविधान में निर्वाचनों को परम महत्व दिया गया है।

अपने संविधान निर्माण के लिये मसौदा समिति नियुक्त करते समय हमें बड़ी फिक्र इस बात की थी कि संविधान शास्त्र के पण्डितों की विज्ञता हमें प्राप्त हो सके, सांविधानिक वकीलों को कानून सम्बन्धी बारीकियों की जो जानकारी है वह हमें मिल सके और यह सभी बातें हमें यथेष्ठ मात्रा में मिली

हैं। डॉ. अम्बेडकर तथा मसौदा समिति के उनके अन्य सभी साथी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं और मेरा ख्याल यह है कि हम उनकी तुलना दुनिया के किसी भी देश के संविधान के निर्माताओं से कर सकते हैं। पर संविधान की रचना में हमने राजनीतिक व्यक्तियों की बुद्धिमत्ता से लाभ उठाना नहीं पसन्द किया। राजनीतियों के पास जो सबसे बड़ी निधि होती है वह है उनका अवसर चातुर्य तथा सहजज्ञान। पर इनकी इन खूबियों से हमने कोई सहायता नहीं ली और न अपनी क्रांति की धारा के आधार पर ही अपना संविधान बनाया, क्योंकि अपने संविधान निर्माताओं में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो यह दावा कर सकता है कि 1946 में संविधान-सभा के समवेत होने के पहले यहां जो क्रांतिकारी संग्राम चला था उसकी अग्नि परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ है। सच तो यह है कि यह कहा ही नहीं जा सकता है यह संविधान क्रांतिजनित संविधान है। दुनिया के अन्य संविधाओं को देखिये जिनकी सृष्टि क्रांति के फलस्वरूप हो पाई है। दुनिया के अन्य संविधानों को देखिये जिनकी सृष्टि क्रांति के फलस्वरूप हो पाई है। उन पर क्रांति की छाप पड़ी हुई है और दौड़ता हुआ आदमी भी उसे देखकर यह जान सकता है कि यह ब्रिटेन का, अमेरिका का या रूस का संविधान है। इस संविधान में, जिसके अधीन यहां की शासन व्यवस्था चलाई जायेगी, उन सभी व्यवस्थाओं को स्थान दिया गया है जिनसे व्यक्ति को स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति प्राप्त हो सकती है। इसमें ऐसे हर सिद्धान्त को स्थान दिया गया है जिससे सुख, शान्ति एवं बन्धुत्व भावना में वृद्धि होती है। पर हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि इस संविधान में ऐसी प्रभावी व्यवस्था का उपबन्ध नहीं किया गया है जिसके द्वारा समुन्नति सम्बन्धी किसी सिद्धान्त को, जिसने कि हमारी क्रांति को प्रोत्साहित किया है कार्यान्वित किया जा सकता हो। पर मैं जानता हूं कि इसके लिये दोषी कोई एक व्यक्ति नहीं है। हम यह कहते तो जरूर हैं कि हमने यहां क्रांति की है और महात्मा गांधी द्वारा संभावित अहिंसात्मक क्रांति के सहारे ही हमने आज सत्ता प्राप्त की है पर हमें यह मानना ही होगा कि जिन सिद्धान्तों के आधार पर यह अहिंसात्मक क्रांति चलाई गई थी, वह सिद्धान्त समस्त भारतीय समाज के या यहां के तमाम निवासियों के दिलों तक नहीं घर कर पाये हैं। हम महात्मा गांधी के पीछे चले। जो कुछ उन्होंने आदेश दिया उसका हमने पालन किया और इसलिये किया कि उन्होंने स्वराज्य दिलाने का वचन दे रखा था। पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमने उनका अनुगमन तो किया किन्तु जीवन के सम्बन्ध में उनकी जो विचारधारा थी उसे पूर्णरूपेण कभी हमने नहीं स्वीकार किया। यह क्रांति एक राजनीतिक क्रांति थी जिसने हमको राजनीतिक सत्ता प्रदान की है जिसे इस संविधान में हमने रखने की कोशिश की है। किन्तु हमें यह मानना होगा कि सामाजिक या आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में गांधी जी की जो विचारधारा थी हम उसके समीप भी नहीं पहुंच पाये हैं और एक बड़ी मंजिल तय करने के बाद कहीं हम उस विचारधारा तक पहुंच सकेंगे। हमारे प्रधान मन्त्री ने अपनी अमेरिका की यात्रा में कितनी बार इस बात को कहा है कि सारी दुनिया आशाभरी दृष्टि से भारत की ओर देख रही है इस बात के लिये कि आज दुनिया के सामने जो संकट है उससे बचने का वह कोई मार्ग बताये। दुख के साथ हमें यह स्वीकार करना होगा कि अपने संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है—जिसे वह नई समझ सकते हों और जिस पर चल कर वह वर्तमान संकट से बचने में समर्थ हो सकते हों। अमेरिका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा, आयरलैंड और जर्मनी आदि विभिन्न देशों के संविधानों से हमने बहुत सी बातें ली हैं पर अपने संविधान में अपनी कोई ऐसी बात नहीं है जिसे ये सारे देश ले सकते हों। अध्यक्ष महोदय, अपने संविधान ने दूसरों से

[श्री शंकर राव देव]

केवल लिया ही लिया है पर दूसरों को देने लायक चीज इसमें कोई नहीं है। पर, जैसा मैंने कहा है, इसके लिये कोई एक आदमी दोषी नहीं है। इसके लिये दोषी हैं हम सब क्योंकि हमने अपने उपदेष्टा का उपदेश पालन ईमानदारी से नहीं किया है। मैं यह नहीं कहूंगा कि हमने जानबूझ कर उसे धोखा दिया है। यह हमारी कमजोरी थी जिसकी वजह से हम उस अहिंसात्मक विचारधारा को स्वीकार नहीं कर सके जो उसने हमें जीवन के बारे में दी थी।

फिर भी इस संविधान में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनके लिये हम तथा हमारी भावी सन्ततियां गर्व कर सकती हैं। इसकी पहली खूबी जिसकी ओर हमारी निगाहें जाती हैं वह यह है कि इसमें ऐसे उपबन्ध रखे गये हैं जो राष्ट्र को एक बनाये रहेंगे। उस विषाक्त व्यवस्था को जिसने हमारे ऐक्य को, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक ऐक्य को नष्ट कर रखा था पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को तथा अल्पसंख्यकों के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था को—हमने समाप्त कर दिया है। मैं जानता हूं कि अनुसूचित जातियों से सम्बन्ध रखने वाले मित्रों ने इस बात के लिये आग्रह किया है कि स्थान-रक्षण के लिये कुछ न कुछ व्यवस्था जरूर रखी जाये। हमने इस व्यवस्था को दस साल के लिये और मान लिया है। किन्तु मुझे विश्वास है कि अगर हम सब अस्पृश्यता रूपी कलंक कालिमा को अगर मिटाने की कोशिश करें न कि संविधान के द्वारा बल्कि अपने हृदयों के द्वारा, यदि हम इस कालिमा को केवल कानून बना कर नहीं बल्कि मन से मिटा दें तो स्थान-रक्षण की व्यवस्था के रूप में जो इसका आखिरी दाग रह गया है वह भी खतम हो जायेगा। इस ऐक्य व्यवस्था की एक और विशेषता है।

हमें इस बात का गर्व है और विशेषकर के उन लोगों को जिन्हें कांग्रेस की सेवा करने का गौरव प्राप्त रहा है, कि स्वतन्त्र भारत के इस संविधान को स्वीकार करके हमने अपने उस वचन को पूरा कर दिया है जो हमने अपने भारतीय रियासतों के भाइयों को दे रखा था। हरिपुरा कांग्रेस के अधिवेशन में हमने यह वचन दिया था कि कांग्रेस न केवल ब्रिटिश भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रही है बल्कि वह भारतीय रियासतों की स्वतन्त्रता के लिये भी लड़ रही है। आज हम यह कह सकते हैं कि भारतीय रियासतों को भी उतनी ही स्वतन्त्रता इस संविधान के अधीन प्राप्त रहेगी जितनी कि भारतीय संघ के प्रान्त कहे जाने वाले प्रदेशों को प्राप्त रहेगी। सुतरां बिना किसी प्रतिवाद-भय के मैं यह कह सकता हूं कि हमारा देश पहले कभी इतना एक या वृहत् नहीं रहा है जितना कि वह आज है।

इसकी एक विशेषता और है। हम जोर के साथ यह कह सकते हैं कि इस संविधान ने हमें पूर्ण मात्रा में राजनीतिक स्वातन्त्र्य दे रखा है क्योंकि यह वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर आधृत है। मैं जानता हूं कि कुछ लोग ऐसे हैं जो जनता को दिये गये इस अधिकार के परिणाम से आशंकित हैं। पर मुझे विश्वास है कि उनके इस भय का कारण केवल यह है कि उन्हें जनता पर विश्वास नहीं है। यदि महात्मा गांधी की शिक्षा को हमने हृदयंगम कर लिया है तो जनता पर पूर्ण विश्वास के साथ हम इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। अगर आज देश को विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध किसी बात से प्रत्याभूति प्राप्त हो सकती है वह

है वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त। जहां तक कि किसी संविधान के लिये सम्भव है, वयस्क मताधिकार की व्यवस्था रख कर इसने यह प्रत्याभूति दी है कि अपना देश शान्तिपूर्वक लोकतंत्रीय मार्गों पर चलता हुआ अपनी समुन्नति करेगा।

किन्तु जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, हमें यह स्वीकार करना होगा कि जहां तक कि अपनी क्रांति का सम्बन्ध है, अपने इस संविधान में उसकी बहुत कम बातों को ही स्थान दिया गया है।

हमने प्राय: यह बात कही है कि दुनिया के सामने आज जो संकट है, उसके सामने जो सामाजिक और भौतिक संकट है, उसके निराकरण का उपाय है कि समाज को अहिंसात्मक और विकेन्द्रोन्मुखी बनाया जाये।

मैं जानता हूं कि अपने इस संविधान में शक्तियों को केन्द्र के हाथ में रखने पर ही ज्यादा जोर दिया गया है। किन्तु आज दुनिया में यही प्रवृत्ति सर्वत्र आपको दिखाई देगी। यह प्रवृत्ति इसलिये है कि युद्ध की सम्भावना को दृष्टि में रखकर हम आर्थिक व्यवस्था की योजना बनाते हैं। युद्ध जीतने के लिये यह अनिवार्य है कि सारी शक्ति और उत्पादन व्यवस्था एक जगह केन्द्रित की जाये। सर्वोच्च आदेश उसी एक अधिकारी की ओर से आना चाहिये जिसके हाथ में सारी शक्ति केन्द्रित की गई रहती है। जब तक अहिंसात्मक सिद्धान्तों के आधार पर समाज-निर्माण का निश्चय हम नहीं करते हैं तब तक न तो हम शोषण को रोक सकते हैं और न युद्ध को रोक सकते हैं। जो मित्र संविधान में दोष देखते हैं तथा शक्ति और उत्पादन व्यवस्था को विकेन्द्रित रखना चाहते हैं उनको मैं यह बताना चाहता हूं कि उन्हें अहिंसात्मक समाजिक व्यवस्था के लिये तैयार रहना चाहिये। यह एक ऐसा प्रश्न है जो हमारे मूल सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखता है। यह एक बुनियादी सवाल है जिसे हमें और शेष दुनिया को हल करना होगा। किन्तु खेदपूर्वक हमें यह स्वीकार करना होगा कि जहां तक हम लोगों का सम्बन्ध है। हम आज इस स्थिति में नहीं हैं कि हम ऐसे संविधान को अपना सकें जो हमारे लिये और शेष दुनिया के लिये अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था का प्रबन्ध करता हो। ग्राम पंचायत सम्बन्धी अनुच्छेद 44 के सिवाय जो 396 अनुच्छेद और एक वृहत् अनुसूची रखने वाले इस विशाल ग्रंथ में केवल चार पंक्तियों में रखा गया है और ग्रामोद्योग के केवल उल्लेखमात्र के सिवाय, इस संविधान में गांधी विचारधारा की और किसी बात को स्थान नहीं दिया गया है। गांधी विचारधारा के हिसाब से तो अपना यह संविधान पिरामिड के आकार का एक विशाल स्तूप होना चाहिये था जिसमें आधार का काम करतीं लाखों पंचायतें जो जनता की रचनात्मक एवं प्रेरणात्मक शक्ति से सदा सजीव रहतीं। सन् 1832 में हाउस ऑफ कामन्स की सेलेक्ट कमेटी के सामने जो स्मृतिपत्र सर चार्ल्स मेटकाफ ने रखा था उसमें यह अच्छी तरह दिखलाया गया है कि किस तरह इन पंचायतों ने हमारे जीवन और संस्कृति के क्रम को सुचारू रूप से चालू रखा था उस समय में जब कि यहां राजवंश पत्तों की तरह गिर रहे थे और क्रांति पर क्रांति हो रही थी। आज के केन्द्रोन्मुखी समाज में बिजलीघर पर अगर एक बम गिर जाता है तो वह सारे प्रकाश को खत्म कर सकता है और एक भी प्रदीप आपको कहीं अंधेरे में जलता हुआ नहीं दिखाई देगा। किन्तु जहां अनेकों मिट्टी के क्षुद्र प्रदीप जलते हों वहां

[श्री शंकर राव देव]

चकाचौंध पैदा करने वाला प्रकाश भले ही न मिले पर अंधेरा वहां कभी नहीं रहेगा। भारतीय लोकतन्त्र के इस केन्द्रोन्मुखी संविधान से, मुझे शंका इस बात की है कि राष्ट्र की हृद्गति रुक जायेगी और उसके अंगों को लकवा मार जायेगा।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि 15 अगस्त सन् 1947 को हुआ केवल इतना ही था कि सत्ता हस्तांतरित कर दी गई थी। अंग्रेज़ यहां से चले जरूर गये पर अपने लम्बे शासन काल में जिन कई बातों की सृष्टि उन्होंने की थी उसे वह यहां ही छोड़ गये। संविधान तो समाज का दर्पण मात्र है और समाज बिल्कुल वही है जो पहले था। इसलिये अपने संविधान में पूर्व की स्थिति को पूर्व की मान्यताओं को जो स्थान दिया गया है वह स्वाभाविक ही है। और शायद यह बात भी है कि लोग आशा रखते हैं और गलत आशा रखते हैं ऐसी चीज़ पाने की जिसके वह लायक नहीं हैं। लोग उम्मीद इस बात की करते हैं कि अपना यह संविधान, जिसे बनाया है, महान् शहीद महात्मा गांधी के अनुयायियों ने वह उस महान् शहीद की ऊंची भावनाओं से अनुप्राणित होगा। पर हमें विवेक से काम लेना चाहिये और भावुकता के प्रवाह में नहीं बह जाना चाहिये। बुद्धि का यह तकाज़ा है कि हम यथार्थवादी दृष्टिकोण से काम लें। कठोर वास्तविकता से भरी इस दुनिया में परमोत्कृष्ट राज्य व्यवस्था के निर्माण की गुंजाइश नहीं है। वास्तविकता का तकाज़ा यही है समाज को नये सांचे में ढालने के पहले आप उसे स्थिर बना लीजिये। प्रायः ऐसा हुआ है कि उत्तम राजनीतिज्ञ सिद्धान्त और राज्य व्यवस्था के प्रवर्तक अपने ही सिद्धान्तों के जाल में फंस गये हैं। प्रायः ऐसा हुआ है कि जिसे लोगों ने वास्तविक स्थायी समझा वह केवल एक अल्पकालिक वस्तु सिद्ध हुई। हमें व्यवस्था को स्थिर अवश्य बनाना चाहिये पर साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये, जिस व्यवस्था को आज हम स्थिर बना रहे हैं वही कालान्तर में प्रबल दैत्य बन कर हमको भयाभिभूत कर सकती है। इतिहास का और मानव कार्यव्यवस्था का यही क्रम रहा है वह सदा गतिशील रहा है और कभी कोई व्यवस्था स्थायी नहीं रही है। मानव इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ है उसने जो भी इमारत जल्दी में तैयार किया है उसे बिन गिराये उसमें आसानी से कोई परिवर्तन वह कर सका हो। यदि हम आज इस संविधान के आधार पर जिस में केन्द्र को शक्ति देने की पूर्ण व्यवस्था की गई है, अपनी राज्य व्यवस्था का निर्माण करते हैं तो फिर हम कभी भी अपनी व्यवस्था में परिवर्तन ही नहीं कर पायेंगे। यह सच है कि आज की स्थिति में हम कोई भी ऐसा संविधान नहीं बना सकते हैं जिसके अधीन हुकूमत कम से कम शासन और हस्तक्षेप करे। इसमें शक नहीं कि धीरे-धीरे लोग इस ऊंचे आदर्श के महत्व को ज़रूर समझने लगेंगे पर जैसा कि मैंने पहले कहा है संविधान न केवल बनाया जाता है बल्कि वह अपने आप भी विकसित होता है। अब अन्त में मुझे इतना ही कहना है कि इस संविधान के द्वारा इस बात की काफी गुंजाइश हमें मिलती है कि संविधान में बिना कोई उथल-पुथल पैदा करने वाला परिवर्तन किये ही धीरे-धीरे महत्वपूर्ण और बुनियादी परिवर्तन ला दें। यदि हम अपने आदर्शों के प्रति सच्चे रहते हैं तो धीरे-धीरे अपनी व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकते हैं। हमारा आदर्श एक अहिंसात्मक और शोषणहीन समाज की स्थापना करना जिसमें सबको समान

समझा जायेगा और आत्मोन्नति का समान अवसर प्राप्त हो सकेगा। इस संविधान के द्वारा हम अपने आदर्श की उपलब्धि कर सकते हैं। इस आदर्श की प्राप्ति कर लेने पर ही हम इस स्थिति में होंगे कि दुनिया के सामने एक तीसरा मार्ग रख सकें।

***सैयद मुहम्मद सादुल्ला** (आसाम: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, कहा जाता है कभी-कभी मौन रहना सर्वोत्तम होता है जब कि बोलना केवल उत्तम होता है। मेरी विनम्र राय में आज का अवसर भी ऐसा ही अवसर हैं जब कि हमारा मौन रहना ही इस महती सभा के लिये शोभा की बात होती है। द्वितीय पठन में हमने उन सभी संशोधनों को पास कर लिया है जो संविधान के मसौदे पर आये हैं। अब तृतीय पठन में संविधान के किसी उपबन्ध की आलोचना करना ऐसा ही है जैसे कि मृत्यु के बाद शव की डॉक्टरी परीक्षा करना है। किन्तु जब मैंने आप से यह सुना कि इस सभा के 125 सदस्य अर्थात् इसके 40 प्रतिशत से भी अधिक सदस्य इस अवसर पर बोलना चाहते हैं तो मुझे अपनी राय बदलनी पड़ी और मैंने यह सोचा कि इन बहुसंख्यक सदस्यों ने जरूर इस बहस की कोई उपयोगिता समझी होगी और इसे कार्रवाई में दर्ज कराने की जरूरत समझी होगी ताकि भविष्य में इससे लोगों को पथप्रदर्शन मिल सके। यही सोच कर मैं यहां बोलने के लिये खड़ा हुआ हूं। फिर पर्शियन में एक कहावत है:-"मर्गे अम्बोह जश्ने दारद" इसका मतलब यह है कि सभी साथियों के साथ, पूरे दल के साथ मरना भी एक खुशी का मौका है। इसलिये मैं भी इस दल में शामिल हो रहा हूं।

मै बोलने के लिये खड़ा रहा हूं दो व्यक्तित्व लेकर। एक तो इस सभा के सदस्य के रूप में और दूसरे मसौदा समिति के सदस्य के रूप में। मेरे लिये यह बात अनिवार्य है। मसौदा समिति के सदस्यों को गत दो साल की अवधि में इस कठिन और शुष्क काम में जो कठोर परिश्रम करना पड़ा है उसकी जिन मित्रों ने यहां प्रशंसा की है उनके प्रति मैं अपनी ओर से तथा मसौदा समिति के अपने साथियों की ओर से नतमस्तक होकर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। अपने उन आलोचकों को भी धन्यवाद देना मैं नहीं भूल सकता हूं जिनकी प्रखरतर बुद्धि ने समिति के सदस्यों की त्रुटियों की आलोचना करना ही ठीक समझा। पर मुझे दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि उन्होंने इस मसले पर गलत दृष्टिकोण से विचार किया है इसे गलत चश्मे से देखा है।

संविधान-रचना के काम में मसौदा समिति बिलकुल स्वतन्त्र नहीं थी श्रीमान। शुरू से ही इसे विभिन्न प्रणालियों और परिस्थितियों के अन्दर रह कर ही काम करना पड़ा है। हमें आदेश यह दिया गया था कि लक्ष्य प्रस्ताव रूपी शिशु के लिये हम परिधान तैयार कर दें। इस लक्ष्य प्रस्ताव को इस गौरवशालिनी सभा ने स्वीकार किया था। हमसे यह कहा गया कि संविधान लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार ही बनना चाहिये और इस प्रस्ताव से सर्वथा संगत होना चाहिए। फिर समिति जो कुछ भी तैयार करती थी उस पर संविधान-सभा को विचार करना पड़ता था और उसे पास भी उसी को करना था। ऐसी हालत में मसौदा समिति का कोई सदस्य भला कैसे यह धृष्टता करने का साहस कर सकता था कि सभा के 308 सदस्यों की राय के खिलाफ अपने सात आदमियों की राय को वह सभा पर लादता।

मनोविज्ञान शास्त्र का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य विकसित होता है अपने आस-पास के वातावरण के अनुसार। अपना संविधान का यह मसौदा,

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

जिसे मसौदा समिति को सभा के समक्ष उपस्थित करने का गौरव प्राप्त है इस सावभौम सिद्धान्त के प्रभाव से बच कैसे सकता था? समिति के सदस्यों को देश में व्याप्त स्थिति को और वातावरण को ध्यान में रखकर ही संविधान बनाना पड़ा है और कई उपबन्धों को जो समिति के सदस्यों को भी लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों से असंगत मालूम पड़ते थे, संविधान में रखना पड़ा है उन शक्तियों के कारण जो मसौदा समिति की शक्ति से भी प्रबल थीं।

मुझे याद है श्रीमान कि मसौदे के कई उपबन्धों में सात बार परिवर्तन किये गये हैं। किसी खण्ड के मसौदे को समिति के सदस्य अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छा से अच्छा रूप देते थे। फिर शासन के एक विशेष सचिवालय द्वारा उसकी छानबीन की जाती थी। सचिवालय जो कमी समझता था उसके हिसाब से फिर खण्ड का मसौदा तैयार किया जाता था। इतना होने के बाद फिर सभा का बहुमत प्राप्त दल—अर्थात् कांग्रेस पार्लामेन्टरी पार्टी—इस पर विचार करता था और वही उसे यहां पास करने का आदेश दे सकता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि यह पार्टी भी नये सुझाव रख देती थी जिसे हमें समुचित सांविधानिक रूप देना पड़ता था।

कोई भी मनुष्य-निर्मित संविधान या लेख्य कभी पूर्ण नहीं हो सकता है श्रीमान् और यह पुरानी कहावत है कि वास्तविकता आदर्श तक कभी नहीं पहुंच पाती है। जोकि मैं मसौदा समिति का एक सदस्य हूं पर संविधान में रखे गये कई सिद्धान्तों पर मुझे ही आपत्ति है। संविधान के मसौदे के किसी उपबन्ध की आलोचना करने का मुझे हक नहीं है क्योंकि उसे संविधान में स्थान देने के लिये मैं भी उतना ही दायी हूं जितना कि समिति के शेष सदस्य हैं। फिर भी मैं इस लालच को नहीं रोक सकता हूं कि आपका ध्यान संविधान के केवल दो या तीन उपबन्धों की ओर आकृष्ट करूं जो स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक संविधान के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

खामी की पहली बात इसमें यह है श्रीमान कि केन्द्र को अधिकार देने पर इसमें आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है और राष्ट्रपति को विस्तृत आपात शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। इसमें दूसरी त्रुटि यह है कि नागरिक-स्वातन्त्रय सम्बन्धी उपबन्धों का तथा मूल-अधिकारों को कई ऐसे प्रतिबन्धों से जकड़ दिया गया है जो आपत्तिपूर्ण हैं। इसकी तीसरी खराबी यह है कि प्रान्तों को आर्थिक सहायता देने के लिये कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है जोकि पूर्वगामी शासन के दिनों में हम यही कहा करते थे कि हमारे अंग्रेज़ शासक देश का शासन नहीं करते हैं बल्कि उसका शोषण करते हैं। मैंने अक्सर लोगों को तब यह कहते सुना है कि हमारी सरकार हमारा शासन नहीं करती है बल्कि शोषण करती है। मूल अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबन्धों का सम-समर्थन किया था हमारे श्रेष्ठ प्राधिकारियों ने और दलील में यह कहा था कि इनका रखना बड़ा आवश्यक है इसलिये कि आज देश में उपद्रव एवं विनाश पैदा करने वाली शक्तियों का प्राबल्य है। उन्होंने यह कहा कि व्यक्ति के स्वातन्त्र्य से अधिक आवश्यक है राष्ट्र का स्वातंत्र्य। यह सच है श्रीमान कि स्वातंत्र्य को हम उच्छृंखल होकर मनमानी नहीं करने दे सकते हैं और शांति और सुरक्षा को तोड़ने वाली शक्तियों से अधिक प्रबल बना कर रखना होगा हमें स्वातंत्र्य विषयक शक्तियों को। इसीलिये, यद्यपि ये प्रतिबन्ध स्वतन्त्र लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं पर मसौदा समिति को मूल अधिकारों पर ये सब प्रतिबंध रखने पड़े हैं।

जहां तक कि केन्द्र में आवश्यकता से अधिक शक्ति निहित रखने की शिकायत का सवाल है, मैं भाग 18 में रखी गई आपात शक्तियों का ही यहां जिक्र करूंगा। अनुच्छेद 352 में उल्लेख है आपात की उद्घोषणा का जिसका अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। आपात की उद्घोषणा तो अनुच्छेद 358 के अधीन भी की जा सकती है उस सूरत में जब कि प्रान्त का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। ऐसी उद्घोषणा की जा सकती है अनुच्छेद 360 के अधीन जब कि राज्य का वित्तीय स्थायित्व संकट में हो और अनुच्छेद 365 के अधीन आपात की उद्घोषणा की जा सकती है जबकि संघ के निदेशों का अनुवर्तन करने में राज्य असफल हुआ हो। आज सवेरे माननीय मित्र काजी करीमुद्दीन ने बहुत ठीक कहा है कि इस व्यवस्था से प्रायः संघर्ष पैदा होगा केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच और बजाय इसके कि प्रान्त स्वाधीनता और स्वातंत्र्य के वातावरण में रहें उनके कामों में केन्द्र तथा राष्ट्रपति का हस्तक्षेप होता रहेगा जिसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि देशवासियों के सुख, शांति और सन्तोष पर कुप्रभाव पड़ेगा।

निर्धन और ज़रूरतमन्द प्रान्तों की आर्थिक सहायता के लिये कोई उपबन्ध संविधान में नहीं है और इस प्रसंग में मुझे अपने प्रांत अर्थात् आसाम प्रान्त का प्रश्न उठाना पड़ रहा है। माननीय मित्रों को याद होगा कि इसी साल के शुरू में मैंने यहां आप लोगों से सत्तर मिनट लिया था यह बताने में कि आसाम की स्थिति यह है कि उसकी आर्थिक व्यवस्था टूट जायेगी अगर केन्द्र से समय पर सहायता नहीं मिलती है और उस हालत में अपने संघ की एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व शायद ही रह जाये। यह प्रान्त अपने विशाल देश के पूर्वी एवं उत्तरवर्ती सीमा पर प्रहरी के रूप में अवस्थित है जहां साम्यवाद की काली और भयावनी घटायें घिर कर इकट्ठी हो रही हैं जिससे समस्त सभ्य संसार दुखी और भयभीत हो गया है। किसी ने यह ठीक ही कहा है किसी संघ की शक्ति का अनुमान उसके अंगभूत घटकों की शक्ति से किया जाता है और इसमें शक नहीं कि संविधान में हमने केन्द्र को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न भी किया है। जंजीर की ताकत उसकी कमज़ोर से कमज़ोर से लड़ी की ताकत पर मुनस्सर करती है। आसाम की शासन व्यवस्था को हमें एक सभ्य शासन व्यवस्था के स्तर पर ही रखना होगा। वहां के निवासियों को हमें सुखी और सन्तुष्ट रखना हागा नहीं तो संकट इस बात का है कि यह प्रान्त साम्यवाद का क्रीड़ास्थल बन जायेगा।

आसाम के विधान मण्डल में और इस सभा में भी मैं यह बता चुका हूं कि साढ़े पांच करोड़ की कुल आय में ढाई करोड़ का घाटा कोई मामूली बात नहीं है जिसकी उपेक्षा की जाय। आसाम के मंत्रिमंडल ने बड़ी दृढ़ता के साथ मेरे इस ख्याल का और अनुमान का विरोध किया था। किन्तु मुझे खुशी है कि आसाम के ही एक मंत्री ने परसों यहां अपनी वक्तृता द्वारा मेरे इस कथन की पुष्टि की है। श्री निकल्स राय ने अपने भाषण में यह कहा है कि चालू वर्ष में आसाम की आय में करीब दो करोड़ की कमी होगी। पहले एक मौके पर यहां आसाम के मुख्य मंत्री को भी यह चेतावनी देनी पड़ी थी कि दो या तीन साल के अन्दर यह कभी तीन चार करोड़ तक पहुंच जायेगी। इस सभा से तथा इसके द्वारा केन्द्रीय प्राधिकारियों से मैं साग्रह इस बात का अनुरोध करूंगा कि आसाम की दुखद स्थिति पर वह दृष्टिपात करें और उदारतापूर्वक समय पर उसे

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

सहायता पहुंचायें। अपने कोष भण्डार से केन्द्र को कोई रकम देने की जरूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि जैसा कि दो या तीन महीना पहले मैं यह चुका हूं, केन्द्रीय शासन को आसाम से दस करोड़ की आय होती है। केन्द्रीय राजस्व में आसाम से कई मदों के जरिये दस करोड़ रुपये पहुंचते हैं। इसलिये अगर इस रकम से एक चौथाई या तिहाई केन्द्र आसाम को देता है तो इसे दान या विशेष सहायता नहीं कहा जा सकता है। केन्द्र तो आसाम की ही रकम आसाम को दे रहा है।

आसाम प्रान्त का एक जिला है जो खासी और जयन्तिया के पहाड़ी इलाकों से मिलकर बना है श्रीमान। इसी जिले में आसाम की राजधानी अवस्थित है। अधिकांश सदस्यों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि शिलांग से पाकिस्तान की सीमा केवल पचास मील की दूरी पर है। खासी पहाड़ियों के दक्खिनी ढाल के वासिन्दों को खाद्य सामग्री और आजीविका मिलती थी सिलहट जिले से जो अब पूर्वी पाकिस्तान में चला गया है। भारत और पाकिस्तान के बीच अब, चुंगी प्रतिबन्ध के कारण, व्यापार सामग्री का स्वतन्त्र यातायात बन्द हो गया है। माननीय मित्र श्री निकल्स राय ने इस स्थिति के लिये पाकिस्तान को ठीक ही दोषी ठहराया है। मैं केवल यह बताना चाहता हूं श्रीमान कि इस प्रदेश को तथा जिले के अन्य कतिपय प्रदेशों को अगर यथेष्ट मात्रा में खाद्य सामग्री नहीं उपलब्ध होती है तो अन्ततोगत्वा सम्भव है वहां के निवासी पाकिस्तान को ही अपना रक्षक समझ कर उसकी मुंहजोई करने लग जायेंगे। सबसे दयनीय बात तो यह है कि जहां तक गल्ले का सम्बन्ध है आसाम एक बचत वाला प्रान्त है फिर भी आज वह कमी वाला प्रदेश बन गया है। सन् 1943-46 तक के तीन वर्ष के अपने प्रधान मंत्रित्व काल में ही मैंने देखा है कि वहां 2 लाख टन चावल जरूरत से ऊपर पैदा हुआ था और इस अतिरिक्त गल्ले को केन्द्रीय सरकार को दिया गया था जैसा कि केन्द्रीय सरकार के कागजात से भी ज्ञात होगा। औसतन 50 लाख मन चावल सालाना आसाम ने केन्द्र को इस अरसे में दिया है पर आज यह एक कमी वाला प्रान्त बन गया है और आपको आश्चर्य होगा यह सुनकर कि शिलांग शहर में, जहां चावल राशन में मिलता है, मेरे अपने घर में, प्रान्त के भूतपूर्व प्रधानमंत्री तथा विरोधी पक्ष के नेता के घर में लोगों को तीन दिन बिना चावल के रहना पड़ा है।

खासी के पहाड़ी क्षेत्रों को षष्ठ अनुसूची में रख दिया गया है और इसके लिये सर्वाधिक कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे हैं श्री निकल्स राय। किन्तु इसमें एक संविधानिक असंगति है। यह सच है इसके प्रतिकार का मार्ग इस संविधान-सभा को नहीं निकालना है पर चेतावनी के लिये सभा को मैं यह बता देना चाहता हूं कि खासी के छोटे पहाड़ी जिले में छोटे-छोटे 25 देशी राज्य थे जिनमें अधिकांश को दिल्ली स्थित भारतीय शासन से संधि करने का अधिकार प्राप्त था। सन् 1947 में उनसे भारतीय डोमिनियन में शामिल होने को कहा गया। करार-पत्र के साथ प्रवेश-पत्र इनको दिया गया था जिन्हें इन रियासतों के प्रधानों ने स्वीकार किया और उन पर अपने हस्ताक्षर किये जिसे भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया। इस प्रदेश को यद्यपि पष्ठ अनुसूची में शामिल कर लिया गया है पर अब तक खासी-राज्य-संघ की संविधान-सभा और आसाम सरकार अथवा भारत सरकार के बीच कोई समझौता या करार नहीं हो पाया है 26 जनवरी सन् 1950 के बाद

इन प्रदेशों की या यहां निवासियों की क्या स्थिति रहेगी यह मालूम नहीं है। खासी राज्य-संघ के प्रेसिडेन्ट के नेतृत्व में एक डेपुटेशन इस महीने के शुरू में अपनी शिकायतों को राज्य-सचिवालय तथा मसौदा-समिति के सामने रखने के लिये दिल्ली आया था। मसौदा समिति ने उनसे मुलाकात की थी और उन्होंने दो साधारण बातों के लिये अनुरोध किया था। इनकी लोकतंत्रीय व्यवस्था औरों से कहीं उत्कृष्ट है। ये अपने प्रधानों को वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित करते हैं। प्रधानों को जनता हटा भी सकती है। वह चाहते यह हैं कि उनकी यह व्यवस्था बनी रहने दी जाय। दूसरी व्यवस्था जो इस प्रदेश वासियों के दिलों में घर कर गई है वह यह है कि इनके प्रधान वंश परम्परा के आधार पर नहीं रखे जाते हैं। उनका भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता है। भूमि तो जनता की ही होती है। भूस्वामित्व की इस प्राचीन और पवित्र व्यवस्था को धारा 3 के द्वारा यह व्यवस्था समाप्त कर दी जा सकती है। एक सामान्य उपबन्ध वह इस बार के लिये चाहते हैं कि जिला-स्वायत्त-शासी परिषदों के द्वारा इन अधिकारों में हेरफेर न किया जा सके।

कुछ लोग कह सकते हैं कि इन स्वायत्तशासी परिषदों में तो उनके ही प्रतिनिधि होंगे। पर इन परिषदों की कुल सदस्य संख्या सीमित रखी गई है। 24 तक और इसके केवल तीन-चौथाई सदस्य निर्वाचित रहेंगे और शेष एक चौथाई किसी तरह से लिए जायेंगे यह बात हवा में छोड़ दी गई है। मालूम नहीं इन स्थानों की पूर्ति किस व्यवस्था के अनुसार की जायेगी—मनोनयन के द्वारा की जायेगी या परोक्ष निर्वाचन की किसी अन्य पद्धति द्वारा और अगर मनोनयन द्वारा की जायेगी तो कौन उनको मनोनीत करेगा। मैं जानता हूं इन लोगों ने अपनी शिकायत सामने रखने में देर कर दी है और तृतीय पठन के समय इस बात के लिये कुछ नहीं किया जा सकता है पर संविधान-सभा के माननीय सदस्यों से जो 26 जनवरी सन् 1950 के बाद भी इस निकाय के सदस्य बने रहेंगे, मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह कृपा कर इस बात का ध्यान रखें कि खासी प्रदेशवासियों के साथ जो अन्याय हुआ है उसका शीघ्र ही प्रतिकार हो जाय क्योंकि इस प्रदेश के निवासियों के सन्तोष और शान्ति से देश की सीमाओं की सुरक्षा बहुत बढ़ जायगी।

दो शताब्दी के दासत्व और पराधीनता के बाद आज हमने अपना यह संविधान तैयार किया है श्रीमान। स्वतन्त्र संविधान की कल्पना ही मेरे हृदय को आल्हादित कर देती है, इसके ख्याल से ही हमारा हृदय हर्ष से उछलने लगता है। फिर भी अपने हृदय पर हाथ रखकर हम यह नहीं कह सकते हैं कि इस वर्तमान संविधान से हमें वैसी खुशी हो रही है जैसी कि होनी चाहिये यह संविधान जो स्वीकृत होकर दो महीने के अन्दर ही प्रभावी हो जायेगा, एक समझौते का संविधान है। कई सदस्यों ने यहां यह कहा है कि यह संविधान केवल संक्रांति काल के लिये है। मैं यही उम्मीद करता हूं कि अपने भावी विधि-निर्माता यह कोशिश करेंगे कि जहां तक हो सके इसे पूर्ण बनाया जाये। हलुआ अच्छा बना है या बुरा इसका पता तो खाने पर चलता है। इस लिये अभी कोई नहीं कह सकता है कि इसका लोग गुणगान करेंगे या निन्दा। इसे कार्यान्वित करने पर ही इस बात का पता चलेगा कि यह अमल में लाया जा सकता है या नहीं, इससे देशवासियों की आवश्यकताओं

[सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

की ओर जमाने की जरूरतों की पूर्ति हो सकती है या नहीं और यह देशवासियों की अपनी जीवन व्यवस्था के लिये अनुकूल है या नहीं पर एक बात जरूर है और वह यह कि अगर हम इसे कार्यान्वित करते हैं उसी उच्च भावना से जो प्रस्तावना में रखी गई है तो हम यह कह सकते हैं कि यह संविधान ऐसा है जिस को आदर्श संविधान बनाया जा सकता है।

अन्त में श्रीमान मैं जगन्नियंता परमात्मा से आशीर्वाद पाने की प्रार्थना करूंगा और संस्कृत की इन दो पंक्तियों को पढ़ूंगा:

असतो मा सदगमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय

अरेबिक में भी कहा गया है:–

अस् साइंयो मिन्नी अल् इत्मने ओ मिनुल् अल्लाह

मनुष्य का काम है प्रयास करना फल तो ईश्वर के हाथ में है। हमारा कर्तव्य यही होना चाहिये कि हम विनम्रतापूर्वक प्रयास करें इस संविधान को कार्यान्वित करने का जिसे ऐसे लोगों ने बनाया है जिन्होंने इसको बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी है। यदि इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं और उसी उदात्त भावना से जो कि प्रस्तावना में रखी गई है अर्थात् यदि हम सबके साथ न्याय करने की कोशिश करते हैं और बन्धुत्व एवं समानता की भावना से इस पर अमल करते हैं तो इस शुष्क संविधान को भी हम स्वर्गसुखद संविधान बना सकते हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रान्त और बरार जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं। संविधान के सम्बन्ध में कुछ भी कहने के लिये मैं आपको धन्यवाद देना चाहूंगा श्रीमान् इस बात के लिये कि आपने गत तीन वर्षों तक प्रशंसनीय योग्यता के साथ यहां अपना काम किया है। आपने सदस्यों के बीच कभी कोई भेद भाव नहीं बरता और सभी सदस्यों को बहस मुबाहिसे में हिस्सा लेने का उदारतापूर्वक मौका दिया। अध्यक्ष के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतित्व यह रहा है श्रीमान कि यहां उठाये गये औचित्य प्रश्नों पर आपने अच्छे से अच्छे निर्णय दिये हैं।

इसके बाद मैं धन्यवाद दूंगा मसौदा समिति को उसके संविधान-निर्माण सम्बन्धी काम के लिये। माननीय मित्र पंडित एच.वी. कामत को भी मैं धन्यवाद देता हूं कि संविधान निर्माण सम्बन्धी काम में उन्होंने बहुत बड़ी दिलचस्पी ली है। आप 'G.G.' के परम भक्त हैं। मुझे उन पर गर्व है क्योंकि वह हमारे प्रान्त मध्यप्रांत से ही आये हैं। मैं उन्हें पंडित कहता हूं क्यों वह इस अर्थ में पंडित हैं कि:–

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्
आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पंडित:।

पंडित कामत में ये गुण हैं और जब तक वह कुमार हैं ये गुण उनमें बने रहेंगे। हां विवाहित होने के बाद उनमें कोई परिवर्तन आ जायेगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता हूं।

देश की अनुसूचित जातियां इस संविधान का जिस उत्साह के साथ स्वागत करेंगी उस उत्साह के साथ और वर्ग इसका स्वागत शायद ही कर सकें और अनुसूचित जातियों के उत्साहित होने का कारण यह है कि इसमें अस्पृश्यता को समाप्त करने का उपबन्ध रखा गया है जिससे हरिजन लोग अब यहां मनुष्य की तरह रह सकेंगे। अनुसूचित जाति का एक सदस्य होने के नाते मैं हृदय से इस संविधान का स्वागत करता हूं श्रीमान। आप भी इसे जानते हैं श्रीमान कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज के लिये एक बड़ा अभिशाप है। इसके कारण देश के सात करोड़ निवासियों के साथ सवर्ण हिन्दू भाईयों द्वारा वैसा ही व्यवहार किया गया है जैसा कि कुत्ता और बिल्ली के साथ किया जाता है। गत कई शताब्दियों से उनको अछूत बनाकर समाज से सर्वथा पृथक रखा गया है। जब देश के स्वातंत्र्य के आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा तो पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, सरदार बल्लभ भाई पटेल, पंडित जवाहर लाल नेहरू, बाबू सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गांधी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, राजाजी एवं अन्य नेताओं ने यह देखा कि हिन्दू समाज से अस्पृश्यता को हटाये बिना देश को आजादी नहीं मिल सकती है। 15 अगस्त सन् 1947 को जब भारत आजाद हुआ उस समय, मुझे याद है, किसी मौके पर सरदार पटेल ने, जो मेरी राय में अपने इस स्वातंत्र्य के सब से बड़े रक्षक हैं और जो सभा की ओर से तथा देश की ओर से पूर्ण कृतज्ञता पाने के अधिकारी इस महत्वपूर्ण काम के लिये कि उन्होंने देश की सभी रियासतों को संघ में शामिल करा दिया, यह कहा था कि बहुत परिश्रम से प्राप्त की गई भारत की स्वतंत्रता तब तक सुरक्षित नहीं रखी जा सकती है जब तक कि अस्पृश्यता यहां बनी रहती है। मुझे यह भी याद है श्रीमान कि अपने प्रधानमंत्री और अग्रणी नेता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी किसी महत्वपूर्ण मौके पर यह कहा था कि विदेशों के लोग हमारी निन्दा केवल इसीलिये करते हैं कि हम अस्पृश्यता को मानते हैं। इस कुत्सित व्यवस्था को हटाने के लिये हमारे सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने मिलकर खूब परिश्रम के साथ काम किये हैं पर इसे मिटाने में उन्हें सफलता न मिल सकी। इसी तरह खुद अनुसूचित जातियों के सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने, नेताओं ने–सर्वश्री राव बहादुर श्रीनिवासन्, वीर रत्न देवी दास जी, जतससन्त चोखा मेला, भक्त रविदास, वी.एन. भाटकर, किशन फागू बंसोदे, जी.ए. गवई, महात्मा काली चरण नन्दागौली, उमाजी गजाबा खांडेकार, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, मुनिस्वामी पिल्ले, इ. कानन, बी.सी. मण्डल, नरायन धन जी भोंसले, श्रीमती बेनूभाई भाटकर, शम्भाजी गोडघाटे, आर.बी. महे, अन्तूजी भगत, दीवान बहादुर एम.सी. राजा, इस श्रुद्र वक्ता ने तथा देश के अन्य कई लोगों ने अस्पृश्यता को हटाने के लिये एक दीर्घकाल तक परिश्रम के साथ काम किया है पर यह कुव्यवस्था अब तक नहीं हट पाई है। हमें केवल इसी हद तक सफलता मिली है कि हम हरिजनों में ये यह अनुभूति पैदा कर सके हैं कि वह भी मनुष्य हैं। देश में एक लम्बे काल तक श्री मनु की विधि के अनुसार शासन चलता रहा है। आपको मालूम है श्रीमान कि मनु

[श्री एच.जे. खांडेकर]

के कानून का देश पर क्या प्रभाव पड़ा है। इससे यहां वर्णों की सृष्टि हुई, जातियों में उप-जातियां पैदा हो गईं और एक जाति वाला दूसरी जाति के व्यक्ति का मुंह नहीं देख सकता था। मनु के कानून के अनुसार अस्पृश्यों को गांव या नगर के बाहर और वह भी पूर्व की ओर बस्ती बनानी पड़ती थी। आज भी अगर आप गांवों या शहरों की बस्तियों को ध्यान से देखें तो आपको अस्पृश्यों की बस्ती पूर्व की ओर ही मिलेगी। हम अस्पृश्यों को जो उस जमाने में शूद्र कहे जाते थे: इतना भी अधिकार नहीं प्राप्त था कि अपने बच्चों का नाम हम अपनी इच्छानुसार रख सकें। मनुस्मृति में एक श्लोक है:-

मंगलम् ब्राहमणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसांयुक्तम्, शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।।

यदि हम शूद्रों को यानी आज के हरिजनों को अपने बच्चों का नामकरण करना होता था तो हम अपनी इच्छानुसार जवाहरलाल या ब्रह्मदत्त आदि नाम नहीं रख सकते थे, हम केवल नन्द, जनक जैसे जुगुप्सित नाम ही रख सकते थे। यह था मनु का कानून। आज हम स्वतंत्र भारत का संविधान बना रहे हैं, मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर की प्रतिमा की छत्रछाया में। यदि अनुमति हो श्रीमान, तो मैं इस संविधान को माहर-संविधान कहूंगा क्योंकि डॉ. अम्बेडकर माहर जाति के आदमी हैं। 26 जनवरी सन् 1950 को मनु-संविधान के स्थान पर यह माहर-संविधान देश में लागू हो जायेगा और मैं यही उम्मीद करता हूं कि उस संविधान का प्रभाव मनु-संविधान की तरह न होगा। मनु-संविधान के अधीन देश में सुख सम्पन्नता कभी नहीं रही पर इस माहर-संविधान के अधीन, मुझे यही उम्मीद है कि देश वस्तुत: स्वर्ग बन जायेगा। गौतम बुद्ध, रामानुज, कबीर, सन्त तुकाराम, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, परमहंस, महात्मा जोती राव फुल्ले, विट्ठल राम जी सिंधे, ठक्कर बापा तथा प्रात: स्मर्णीय महात्मा गांधी जैसे सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक सुधारकों ने अस्पृश्यता की कुव्यवस्था को मिटाने के लिये अथक प्रयास किया पर इस पिशाच प्रथा को हटाना उन्होंने कठिन पाया। इसके लिये उन्होंने देश में काफी आन्दोलन किया पर उन्हें सफलता न मिल पाई। अब संविधान में हम ने अनुच्छेद 17 को रखा है इस लिये कि यह कुव्यवस्था समाप्त हो जाये और मुझे पक्का विश्वास है कि अस्पृश्यता अवश्य उठ जायेगी। किन्तु विभिन्न प्रान्तों में भी अस्पृश्यता को उठाने के लिये कई बिल पास हुए हैं जैसे मन्दिर प्रवेश बिल, अस्पृश्यता निवारण बिल आदि। पर इन कानूनों का प्रभाव वहां क्या हुआ है। इन कानूनों द्वारा अस्पृश्यता उठाने में हमें रत्ती भर भी सफलता नहीं मिली है। इस लिये संविधान में अस्पृश्यता उठाने का उपबन्ध रख देने से मैं नहीं समझता कि अस्पृश्यता यहां से उठ जायेगी। अस्पृश्यता की कुत्सित व्यवस्था को समाप्त करने के लिये यहां के करोड़ों निवासियों के दिलों में परिवर्तन लाना होगा और जब तक इनके हृदयों में परिवर्तन नहीं होता है मैं नहीं समझता कि यह कलंक कालिमा कभी दूर हो सकती है। यह बात तो हिन्दू समाज को देखनी है कि अब किसी रूप में वह अस्पृश्यता को न माने। माननीय मित्र

श्री रंगा ने अभी उस दिन अपने भाषण में कहा है कि वह आशावादी व्यक्ति हैं और उन्हें इसका पक्का विश्वास है कि दस वर्ष के अन्दर न केवल अस्पृश्यता ही उठ जायेगी बल्कि 'अनुसूचित जाति' की संज्ञा भी बिल्कुल उठ जायेगी। वह आशावादी हो सकते हैं पर मैं आशावादी नहीं हूं। अछूत होने के कारण अछूतों की कठिनाइयों को मैं अच्छी तरह जानता हूं। मैं खुद अछूत हूं। *(बाधा)* अस्पृश्यता क्या है इसका मुझे व्यावहारिक अनुभव है और इसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि अगर हिन्दू समुदाय सच्चाई से पेश नहीं आता है तो यह कुत्सित प्रथा दस साल के अन्दर तो नहीं दूर हो सकती है। इसके दूर होने में कितने ही वर्ष बीत जायेंगे क्योंकि हिन्दू समाज के हृदय में अभी परिवर्तन नहीं आया है। अपनी इस बात की पुष्टि के लिये मैं कई घटनायें आपके सामने रख सकता हूं पर मेरे पास इस के लिये समय नहीं है। इसलिये विस्तार में न जाकर माननीय मित्र श्री रंगा से मैं इतना ही कहूंगा कि केवल सभा में वक्तृता देने से अस्पृश्यता नहीं उठेगी। इसके लिये उन्हें देश के कोने-कोने में जाकर हिन्दू समाज को उपदेश देना होगा और समाज के हृदय में ऐसा परिवर्तन करना होगा कि वह उनकी विचारधारा को अपना ले। ऐसा होने पर ही अस्पृश्यता के उठने की सम्भावना की जा सकती है। श्री रंगा ने उस दिन अपने भाषण में यह बात भी कही थी कि उनके लिये यह सौभाग्य की बात है कि आंध्र का एक पृथक प्रान्त बनने जा रहा है पर हम महाराष्ट्र वालों को अभी यह सौभाग्य नहीं मिला है कि हमारा भी अपना एक पृथक प्रान्त बने।

अस्पृश्यता को उठाने के लिये श्रीमान केन्द्रीय सरकार को, प्रान्तीय सरकारों को, कांग्रेस तथा राजनीतिक संगठनों को भी यथाशक्ति प्रयास करना होगा। इस अस्पृश्यता के कारण दुनियां के लोग हमें घृणा से देखते रहे हैं और अभी भी घृणा से ही देखते हैं। मैं इन देशों से यह कहूंगा कि हम अभी जो संविधान स्वीकार कर रहे हैं उसको देखकर वह हमारे सम्बन्ध में कोई फैसला करें। कोई भी बुद्धिमान और विवेकशील हरिजन सदा के लिये अछूत बना रहना नहीं पसन्द करेगा। हम सब यही चाहते हैं कि शीघ्रातिशीघ्र हम हिन्दू समाज में घुल मिलकर एक हो जायें क्योंकि भारत की संतान होने के कारण हम भी यही चाहते हैं कि हमारे देश का सर दुनियां में ऊंचा रहे।

अब मैं उस अनुच्छेद पर आता हूं जिसके द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिये स्थान रक्षण का उपबन्ध किया गया है। मुझे खुशी है कि विधान मण्डलों में इन दोनों वर्णों के लिये जगह सुरक्षित रखी गई हैं इन की जन संख्या के आधार पर। पर यह व्यवस्था केवल दस साल के लिये रखी गई है। इस अनुच्छेद पर शुरू में ही कई संशोधन आये थे। अल्पसंख्यक-समिति में तथा इस संविधान-सभा में भी इस पर संशोधन आये थे पर दुर्भाग्यवश वह स्वीकार नहीं किये गये। मेरा ख्याल यह है कि दस साल की अवधि इस बात के लिये काफी नहीं है कि हरिजन लोग सवर्ण हिन्दुओं के स्तर पर आ सकें। मुझे पक्का विश्वास है कि दस साल बाद जब कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था न रह जायेगी, कोई हरिजन अगर सिकी सवर्ण हिन्दू के विरुद्ध चुनाव लड़ता है तो कोई भी सवर्ण हिन्दू उसे अपना वोट न देगा और यह भी हो सकता है कि उसकी जमानत की रकम भी जब्त हो जाये। हमारे देश में यही स्थिति है। इसलिये, अनूसूचित जातियों के उत्थान के लिये दस वर्ष की अवधि काफी नहीं है।

[श्री एच.जे. खांडेकर]

दूसरी बात मैं कहना चाहता हूं अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों की उन मांगों के बारे में जो सरकारी नौकरियों से सम्बन्ध रखती हैं। अभी कुछ मिनट पहले मैंने यहां अपने एक मित्र का भाषण सुना है जो सिख समुदाय के सदस्य हैं। मुझे उनकी यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ है कि सिखों में भी अनुसूचित जातियां हैं। मुझे याद है कि जब डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म को छोड़ने का विचार व्यक्त किया था तो कई सिख दोस्तों ने, सिख नेताओं ने डॉ. अम्बेडकर के पास आकर कई बार यह कहा था, और कई मौकों पर सार्वजनिक रूप से भी यह कहा था कि उनके समाज में अस्पृश्यता की कुप्रथा नहीं है। इन लोगों ने डॉ. अम्बेडकर को यह आमंत्रण दिया था कि वह मय अपने दल के साथ सिख धर्म को अपना लें। किन्तु आज यहां अपने एक सिख बन्धु को यह कहते सुन रहा हूं कि सिख समाज में भी अस्पृश्य हैं। इसी आधार पर पूर्वी पंजाब में अनुसूचित जातियों के लिये रखी गई जगहों को सिख मित्रों ने लिया है। अस्पृश्यता के नाम पर ही अगर जगहों में से हिस्सा बटाना चाहते थे तो उन्हें जनरल सीटों में से जगह लेनी चाहिये थी। किन्तु उन्होंने जगहें ले ली हैं उनके हिस्से से जो अछूतों की तरह ही पिछड़े हुए हैं और जिन्हें यह लोग रामदासी कहते हैं और जो लोग इन की राय में देश में सबसे ज्यादा पिछड़े हुए हैं। अस्तु मुझे खुशी है कि अपने समुदाय के लिये हमने विधान मण्डलों में जगहें सुरक्षित करा ली हैं और हमारी इन जगहों में से हिस्सा बटा लिया है सिख समुदाय ने इस बहाने के आधार पर कि उनमें भी कुछ अछूत हैं। उनकी यह चाल कोई साधारण राजनीतिक चाल नहीं है। कुछ सिख जातियों को उन्होंने अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल करा लिया है इस उद्देश्य से कि पूर्वी पंजाब में हरिजनों की रक्षित जगहों के लिये चुनाव लड़ें और इस तरह वास्तविक हरिजनों के अधिकारों पर भी अतिक्रमण करें। सरकारी नौकरियों के बारे में हमारे यह सिख मित्र शिकायत कर रहे थे। नौकरियों के सम्बन्ध में भी वह यही चाहते हैं कि सिखों की अनुसूचित जातियों को हरिजनों की जगहें दी जायें। सभा को मैं बताऊं कि नौकरियों में हमें उतनी प्रतिशत जगहें नहीं दी गई हैं जितने प्रतिशत देने की बात भारत सरकार ने कह रखी है। ऊपर की नौकरियों में $12^{1}/_{2}$ प्रतिशत तथा नीचे की नौकरियों में $16^{1}/_{3}$ प्रतिशत जगहें हमें देने की बात भारत सरकार ने मंजूर की है पर उतनी जगहें हमें नहीं मिली हैं। पर यह जरूर हुआ है कि कटौती के लिये भारत सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा सरकार के हरिजन कर्मचारियों को नोटिस दी गई हैं। सैकड़ों हरिजन इसी महीने में या आगामी महीने अपनी नौकरियों से अलग कर दिये जायेंगे। मैं आशा करता हूं कि भारत सरकार का गृह-सचिवालय इस बारे में हरिजनों को छूट देगा और छंटनी के लिये उनको नहीं निकालेगा। अनुच्छेद 335 में यह कहा गया है कि नौकरियों के बारे में हमारी जो मांगें होंगी उन पर ध्यान दिया जायेगा पर भारत सरकार के कार्यालयों में हो यह रहा है कि इसी महीने में जब कि संविधान पास होने जा रहा है कितने ही हरिजन कर्मचारियों को छंटनी के लिये हटाया जा रहा है। इसलिये मैं यह कहूंगा कि इस खंड के रख देने से अनुसूचित जातियों का प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा जब तक भारत सरकार तथा विभिन्न प्रांतीय सरकारें इस खण्ड पर अमल करने की कोशिश न करें और हरिजनों को निश्चित अनुपात के हिसाब से नौकरियों में ले नहीं। मैं ज़्यादा नहीं चाहता हूं उनकी जनसंख्या के हिसाब से उन्हें जितनी जगहें मिलती हों उतनी उन्हें दीजिये।

दूसरी बात मैं कहना चाहता हूं संघ-लोकसेवा-आयोग तथा प्रान्तीय लोकसेवा-आयोगों के बारे में। दुर्भाग्य की बात यह है कि इन आयोगों में हरिजन सदस्य रखने के लिये संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है। इन समुदायों के अर्थात हरिजनों और अनुसूचित जातियों के भाग्य का निर्णय करना इन आयोगों के हाथ में होगा और इन आयोगों में कोई हरिजन सदस्य होगा नहीं। भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों को इन आयोगों को यह अनुदेश देना चाहिये कि यह अनुसूचित जातियों के दावों पर ध्यान दें। इन आयोगों के बारे में तथा हरिजनों के प्रति इनके कर्तव्य के सम्बन्ध में मुझे बस इतना ही कहना है।

गत कई वर्षों से हम बात की मांग करते आ रहे हैं कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में तथा प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों में अनुसूचित जातियों के लिये जगहें रक्षित रहनी चाहिये। संविधान में इसके लिये भी कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है। हां इस सम्बन्ध में एक रूढ़ि अवश्य चालू हो गई है। आशा है कि केन्द्र में जो दल अधिकारारूढ़ होने वाला होगा तथा प्रान्तों में जो दल अधिकारारूढ़ होगा, उनके नेता इस बात का ख्याल रखें तथा और उदारता के साथ मंत्रिमण्डलों में हरिजनों को स्थान देंगे। आप यह कह सकते हैं कि इन को मंत्रिमण्डलों में जगहें मिली हुई हैं पर यह जगहें पर्याप्त नहीं हैं। बस मैं एक या दो ही बात और कहूंगा। आज देश में एक भी हरिजन नहीं है जिसे गवर्नर या राजदूत अथवा डिप्टी मिनिस्टर का पद दिया गया हो। यह बात मैं केवल शासन तथा कांग्रेस के हाई कमान की जानकारी के लिये कह रहा हूं और आशा करता हूं कि वे इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।

इस संविधान में सारे अधिकार राष्ट्रपति को दिये गये हैं। मुझे उम्मीद है कि राष्ट्रपति उन अधिकारों का सर्वोत्तम उपयोग करेंगे जो उन्हें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सम्बन्ध में प्राप्त हैं। एक बात मैं आप की निगाह में जरूर लाना चाहता हूं श्रीमान् इस सभा के कुल 308 सदस्य हैं जिसमें से 73 सदस्य देशी राज्यों से आये हैं। मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है। कि इस 73 में केवल एक हरिजन सदस्य है। संविधान सभा का अध्यक्ष होने की हैसियत से, आशा है, आप कुछ ही महीनों के अन्दर आकस्मिक रिक्तयों को भरने जा रहे हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि आप इस बात को ध्यान में रखेंगे और राज्यों से तथा प्रान्तों से और अधिक हरिजन सदस्य इस सभा के लिये लेंगे। आज सभा में हमारी संख्या केवल 27 है जब कि जनसंख्या के हिसाब से हमारी संख्या यहां 60 होनी चाहिये थी। आप को तथा कांग्रेस के हाई कमान को यह देखना चाहिये श्रीमान कि इस सभा में हमें संख्या के हिसाब से जगहें प्राप्त हों। मैं यह भी सुझाव देना चाहूंगा कि कई हरिजन सदस्य जो उनके लिये बोलते हैं उन्हें संविधान सभा (विधायनी) में बने रहने की और प्रान्तीय विधान मण्डलों से स्तीफा देने की अनुमति मिलनी चाहिये।

इस संविधान के अधीन हमें वाक-स्वातंत्र्य, संचार स्वातंत्र्य आदि का अधिकार मिला हुआ है। पर देश के एक करोड़ अभागे नागरिकों को संचार का स्वातंत्र्य नहीं है। यहां के क्रिमिनल ट्राइब्स को संचार की स्वतंत्रता अभी नहीं प्राप्त है। इस संविधान में इनके बारे में कुछ नहीं कहा गया है। क्या शासन 'क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट' को हटा कर उन लोगों को स्वतंत्रता प्रदान करेगा?

***श्री एच.वी. कामतः** क्या तथा-कथित क्रिमिनल ट्राइब्स के लिये आप कह रहे हैं?

***श्री एच.जे. खांडेकरः** हां तथा कथित क्रिमनल ट्राइब्स के लिये ही मैं कह रहा हूं। अनुच्छेद 19 में वाक स्वातंत्र्य आदि कई अधिकारों को रक्षित रखा गया है। कई प्रतिबन्ध मूल उपबंधों के साथ। आशा है कि प्रतिद्वंदी राजनीतिक पाटिर्यों और श्रमिक-नेताओं के विरुद्ध अस्त्र के रूप में इस अनुच्छेद का उपयोग नहीं किया जायेगा। मुझे खुशी है यह देखकर कि संविधान ने बेगार और बलात श्रम लेने की कुत्सित व्यवस्था को उठा दिया है और अछूतों पर बेगार का जो अभिशाप था उसे संविधान ने अब समाप्त कर दिया है।

निजी तौर पर मैं विक्रय-कर के पक्ष में नहीं हूं क्योंकि यह एक अपरोक्षकर है जिसका भार गरीब जनता पर ही पड़ता है। पर इस बारे में सभा ने एक अनुच्छेद पास कर दिया है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं केवल इतना ही कहूंगा कि इससे मध्य प्रांत और बिहार को नुकसान उठाना पड़ जायेगा। वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में मैं एक बात कहना चाहता हूं। मुझे उम्मीद है कि इस व्यवस्था से, किसान और मजदूर राज्य सम्बन्धी स्वप्न पूरा हो जायेगा। इस देश के अधिकांश मतदाता किसान और मजदूर ही होंगे। ये लोग अपनी पसन्द के व्यक्तियों को चुनकर अपनी सरकार बना सकेंगे। गत निर्वाचन के समय अपने निर्वाचन सम्बन्धी घोषणापत्र में कांग्रेस ने यह कहा था कि वह इस देश में किसान-मजदूर राज्य स्थापित करेगी। व्यस्क मताधिकार के अनुच्छेद को रखकर कांग्रेस ने अपना वचन पूरा कर दिया है।

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि हिन्दी देश की राज्य भाषा बना दी गई है। किन्तु ऐसी हिन्दी राज्य भाषा नहीं होनी चाहिये जैसी कि आज के कार्यक्रम-पत्र में मैंने पढ़ी है। यहां 'पारित' शब्द रखा गया है जिसे मैं समझ ही नहीं सका। यदि हिन्दी में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया जायेगा तो यह देश के लिये दुर्भाग्य की ही बात होगी। हमें ऐसी हिन्दी रखनी चाहिये जिसे देश का हर आदमी समझ सकता हो। *(खूब, खूब)*

दूसरी बात यह है कि हमें अपना एक राष्ट्रीय गान अवश्य रखना चाहिये। मैं सभा का बहुत कृतज्ञ हूं कि उसने 'मध्यप्रांत और बरार' की जगह मेरे प्रान्त का नाम 'मध्य प्रदेश' स्वीकार किया है।

***श्री आर.के. सिधवाः** क्या मैं यह जान सकता हूं कि कार्यक्रम में प्रयुक्त कौन से शब्द की चर्चा आपने अभी की है?

***श्री एच.जे. खांडेकरः** मैंने 'पारित' शब्द का जिक्र किया है जो सभा के कार्यालय द्वारा वितरित आज के कार्यक्रम की हिन्दी वाली प्रति में प्रयुक्त हुआ है। कार्यक्रम में यह कहा गया है:- "इस परिषद् द्वारा निश्चित किये गये रूप में विधान पारित किया जाये।" मैं हिन्दी अच्छी तरह जानता हूं पर 'पारित' का क्या मतलब होता है यह मैं नहीं समझ सका। हां, मैं 'मध्य प्रदेश' की बात कह रहा था। इसके लिये संशोधन माननीय मित्र श्री एच.वी. कामत ने तथा मैंने रखा

था जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया है। मैं मध्य प्रान्त के मुख्य मंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल को और उनके मंत्रिमण्डल को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस नाम की सिफारिश की और इस सभा को धन्यवाद देता हूं कि उसने इसे स्वीकार किया।

(इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई)

***श्री एच.जे. खांडेकरः** एक समुदाय की तरफ से मैं यहां बोल रहा हूं श्रीमान।

***अध्यक्षः** और वक्ता भी तो हैं जो बोल चुके हैं और बोलेंगे।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** एक शब्द मैं कहूंगा। माननीय मित्र दामोदर स्वरूप के बारे में। इन्होंने फरमाया है कि अगर समाजवादी दल अधिकार में आता है तो उसे इस संविधान में जरूर परिवर्तन और संशोधन करना होगा। उनका ध्यान मैं अनुच्छेद 37 और 47 की ओर आकृष्ट करूंगा और यह पूछना चाहूंगा कि अपने प्रोग्राम और विचार के मुताबिक इस से ज़्यादा और वह क्या चाहते हैं? यह मैं जानता हूं यह दोनों अनुच्छेद निदेशक सिद्धान्तों में रखे गये हैं। यह शासन के लिये परामर्श मूलक ही हैं आदेश मूलक नहीं पर मुझे विश्वास है कि शासन इनको जरूर पूरा करेगा। माननीय मित्र सेठ दामोदर स्वरूप से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस देश में अगर समाजवाद की किसी को जरूरत है तो अनुसूचित जातियों को ही इसकी जरूरत है न कि पूंजीपतियों, जमींदारों, मालगुजारों और मिल मालिकों को। किन्तु आज मैं देखता यह हूं कि पूंजीपतियों के सुपुत्र ही आज समाजवादी पार्टी का आन्दोलन चला रहे हैं और उसमें यही लोग कर्मी हैं। मैं नहीं जानता हूं कि इसके पीछे उद्देश्य क्या है।

डॉ. अम्बेडर को मैं अपने भाषण के प्रारम्भ में ही धन्यवाद दे चुका हूं। पृथक निर्वाचन बनाम संयुक्त निर्वाचन के प्रश्न पर मुझ में और डॉ. अम्बेडकर में आज 18 वर्षों से मतभेद रहा है। इस 18 साल की अवधि में हम परस्पर आमने सामने आने के लिये भी तैयार नहीं थे। किन्तु मुझे खुशी है कि संविधान बनाने में इन्होंने बड़ा कठिन परिश्रम किया है और इतना ही नहीं बल्कि पृथक निर्वाचन के विचार का परित्याग कर दिया है और संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था के लिये उन्होंने 'ऐडवाइजरी सब-कमिटी' में वोट दिया था। इसलिए अब उनसे मेरा कोई मत भेद नहीं रह गया है। इस तीन साल के अन्दर आपने संविधान बनाने में देश की महती सेवा की है इसके लिये वह धन्यवाद के पात्र हैं। अब मैं उन्हें एक ही सलाह दूंगा और वह यह कि वह कांग्रेस में शामिल हो जायें और अपने भाइयों की भलाई करें। मुझे विश्वास है कि अगर वह कांग्रेस में आ जाते हैं तो इससे देश की अनुसूचित जातियों को और लाभ पहुंचेगा। मैं अपने अन्य बन्धु माननीय जगजीवन राम को, जो कि कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्य हैं और भारत सरकार के भी एक मंत्री हैं एक सुझाव दे देना चाहूंगा। इन तीन वर्षों की अवधि में जब कि डॉ. अम्बेडकर देश की महती सेवा कर रहे थे माननीय मित्र श्री जगजीवन राम देश को महती क्षति पहुंचा रहे थे।

***माननीय सदस्यगणः** प्रश्न।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** अनुसूचित जातियों को चमार और गैर चमार में विभक्त करके उन्होंने हरिजनों को बड़ी क्षति पहुंचाई है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहारः जनरल): इस वक्तव्य का हम विरोध करते हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** मैं तो केवल एक सुझाव रख रहा हूं। आशा है इस तरह वह इस समुदाय को विभक्त नहीं करेंगे।

***अध्यक्षः** यह सुझाव नहीं, यह तो दोषारोप है। अच्छा होगा कि आप अपना भाषण अब बन्द कर दें। तीस मिनट से ज़्यादा समय आपने ले लिया।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह जानना चाहता हूं श्रीमान 'जी.जी.' से उनका क्या मतलब था।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** G.G. से मेरा मतलब है God & Goddess से इन शब्दों के साथ, सभा से इस संविधान को स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

***श्री महबूब अली बेग साहिब** (मद्रासः मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, आपके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं इस बात के लिये कि आपने सभा का कार्यसंचालन इस खूबी के साथ किया है कि किसी को भी कभी शिकायत का मौका नहीं मिला। डॉ. अम्बेडकर को भी मैं धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस उत्कृष्ट योग्यता के साथ संविधान निर्माण का काम किया है। विश्वास कीजिये श्रीमान कि यह कृतज्ञता प्रकाश और धन्यवाद प्रदान मैं केवल रस्मी तौर पर शिष्टाचार के लिये नहीं कर रहा हूं। हम लोगों में से जो उस बहुमत प्राप्त दल के नहीं थे जो कि मसौदा समिति के विचारों में परिवर्तन करके या उसका समर्थन करके सभा से बाहर पहले से ही संविधान विषयक प्रश्नों का निर्णय कर लिया करते थे—और इस तरह एक तरह से यह पार्टी ही इसका अन्तिम निर्णायक रही है—वह लोग तो सर्वथा असहाय स्थिति में पड़ जाते अगर आप हमारा बचाव न करते और हमें अपनी बात कहने का मौका न देते। आपकी इस सच्चाई और न्यायप्रियता के लिये श्रीमान मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूं। डॉ. अम्बेडकर की स्पष्ट अभिव्यक्ति अनूठी थी और अनुपम स्पष्टता के साथ उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। संविधान सम्बन्धी एवं वित्तीय विषयों के बारे में उनका जो वाणिज्य है वह अनुपम है और पूर्ण हैं। किन्तु आपकी तरह उन्हें यहां स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी। इसलिये आज हम लोगों के समक्ष रखे गये संविधान में जो त्रुटियां हैं, खराबियां हैं वह उस स्थिति के कारण संविधान में अनिवार्य रूप से आ गई हैं जिसमें कि डॉ. अम्बेडकर को रखा गया था। अतः इनके लिये उनको जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

अब आइये, हम उन कारणों पर विचार करें जिन के लिये कि संविधान की रचना इस रूप में की गई है जिस रूप में कि यह हमारे सामने रखा गया है।

मेरी राय में इसके तीन कारण हैं। पहला कारण यह है कि हममें से अधिकांश लोगों का जिसमें कि मसौदा के सदस्य भी शामिल हैं, ब्रिटिश साम्राज्यवादी वातावरण में ही लालन पालन हुआ है, शिक्षा दीक्षा मिली है, और ब्रिटिश साम्राज्य अपने अन्तिम समय में बड़ा ही दमनकारी हो गया था खास करके उस समय जब कि स्वातंत्र्य-आन्दोलन चल पड़ा था और राज्य की सुरक्षा और स्थिरता के नाम पर उसने नागरिकों को नागरिक-अधिकारों से और वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित कर रखा था। यह सच है कि जिन लोगों को दमन की तकलीफें झेलनी पड़ीं उन्होंने दमन व्यवस्था का घोर विरोध किया था पर स्वतंत्रता के बाद जब उन्हें संविधान-निर्माण का काम करना पड़ा तो ये लोग उस मानसिक स्थिति से अपने को मुक्त न कर सके जो राज्य की सुरक्षा और स्थिरता सम्बन्धी ख्यालों के कारण पैदा हुई थी जिनका उपदेश यहां ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने दिया था।

इसका दूसरा कारण है कि श्रीमान। जब यह संविधान मसौदा समिति में था और उसके बाद जब यह सभा के कांग्रेसी सदस्यों के सामने आया था और अन्त में जब यह इस सभा के समक्ष रखा गया था उस समय देश में शान्ति नहीं थीं तीसरा कारण यह है कि ब्रिटिश हुकुमत का सारा उत्तराधिकार मिला यहां एक दल को और वही दल सारे अधिकारों का उपयोग करता आ रहा है। मेरा विश्वास यही है कि इन्हीं तीन बातों के कारण संविधान इस रूप में निर्मित हुआ है जिस रूप में कि यह हमारे सामने रखा गया है। मेरी राय में तो यह संविधान सर्वथा नैराश्यपूर्ण है, दकियानूसी है और प्रतिगामी है अपने इस मन्तव्य की पुष्टि के लिये और इसका खुलासा करने के लिये, आपके जरिये इस महत्वशालिनी सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करूंगा श्रीमान उस अन्तर की ओर जो इस सभा द्वारा सन् 1947 में किये गये निर्णयों में तथा विचार विमर्श की स्थिति के बाद अब किये गये निर्णयों में प्रत्यक्ष है।

सन् 1947 में दमन की याद हमारे दिमाग में बिलकुल ताजा थी। उस समय देश में बहुत अधिक अशान्ति नहीं दिखाई दे रही थी और जो राजनीतिक दल आज अधिकारारूढ़ है उसे अकेले ही उस समय सत्ता नहीं प्राप्त थी। यही कारण था कि जब नमूने का संविधान हमारे सामने रखा गया था उस समय माननीय सरदार पटेल ने यह प्रस्ताव रखा था कि संविधान से उन उपबंधों को हटा देना चाहिये जिनके द्वारा नागरिक-स्वातंत्र्य में कमी आती हो। यह प्रस्ताव भी उस समय माननीय पटेल ने ही रखा था कि जहां तक वैयक्तिक स्वातंत्र्यों का सम्बन्ध है उनके सम्बन्ध में निर्णय होना चाहिये एक न्यायिक समिति द्वारा। जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है, उस समय इनको स्वायत्त शासन देने की बात ही सोची गई थी। पर चूंकि सारी सत्ता एक राजनीतिक दल में निहित थी और दमन की याद धीरे-धीरे धुंधली पड़ती जा रही थी और देश में चारों ओर उपद्रवी और अशान्ति पैदा करने वाले लोग सर उठा रहे थे, इसलिये संविधान का सारा रूप ही बदल दिया गया है और बदल करके इसे खराब कर दिया गया। नागरिक स्वातंत्र्य में अब कमी कर दी गई है; वैयक्तिक स्वातंत्र्य पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये हैं और केन्द्र के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई है। कुछ लोगों का कहना यह है कि देश में जो स्थिति वर्तमान है उसे देखते हुए, नागरिक स्वातंत्र्य में कमी करना ठीक है।

मेरा कहना यह है श्रीमान, कि इस सम्बन्ध में हमें विचार करना होगा दो बातों पर। पहली बात यह है कि अपना यह संविधान हम बना रहे हैं हमेशा

[श्री महबूब अली बेग साहिब]

के लिये या केवल अपनी वर्तमान कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये। दूसरी विचारणीय बात यह है। हमने अपना संविधान बनाया है संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिए यानी ऐसी शासन व्यवस्था के लिये जिसका संचालन करेगा केवल एक राजनीतिक दल। अब हमें सोचना यह है कि इस संविधान में व्यक्ति के लिये परित्राण मूलक उपबन्ध क्या रखे गये हैं। इन दो प्रश्नों पर हमें विचार करना होगा। जहां तक कि पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा विनम्र कथन यह है कि आपात-शक्ति सम्बन्धी भाग 18 में इसके लिये पर्याप्त उपबन्ध रखा गया है। और फिर मेरे ख्याल से अनुच्छेद 358 में भी, जिसके द्वारा कि राज्यों को अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के निलम्बन की शक्ति दी गई है, इसके लिये पर्याप्त व्यवस्था है। इससे अधिक आप क्या चाहते हैं? फिर वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर नागरिक स्वातंत्र्य में कमी करके और मूल अधिकारों का न्यूनन करके संविधान को कुरूप क्यों बना रहे हैं? ऐसा करने का कोई समुचित कारण नहीं है। आपात-शक्तियों का उपबन्ध आपने रखा ही है। आपात की घोषणा होने पर केन्द्र को, राष्ट्रपति को, राज्य को इन अधिकारों को छीनने का अधिकार प्राप्त है। इसलिये मेरा कहना यह है कि मूलाधिकारों में या नागरिक स्वातंत्र्य में कमी करने का कोई समुचित कारण आपके पास नहीं है।

दूसरी बात यह है कि इस संविधान में, जो संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिये होगा, नागरिकों को क्या परिमाण दिये गये हैं? ऐसे संविधान में दो बातों का होना निहायत जरूरी है। पहली बात इसमें यह होनी चहिये कि मूलाधिकार वास्तविक होने चाहिये और उन्हें विधान मण्डल के क्षेत्राधिकार के अधीन न रखना चाहिये। संसदात्मक लोकतंत्र में विधान मण्डल में एक दल का ही प्राधान्य होगा जो शासनारूढ़ रहेगा। इसलिये इन मूलाधिकारों को हमें विधान मण्डल के क्षेत्राधिकारों के बाहर रखना चाहिये। संसदात्मक लोकतंत्रीय संविधान के लिये पहली जरूरी बात यही है। दूसरी जरूरी बात उसके लिये यह होती है कि आपात ग्रस्त नागरिक न्यायालय द्वारा इन अधिकारों को क्रियान्वित करा सकता हो। अच्छे संविधान की यही दो कसौटियां हैं। अब आइये हम यह देखें कि अपना यह संविधान इन दोनों बातों को पूरा करता है या नहीं। मेरा ख्याल यह है कि अपना संविधान इन जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता है। बावजूद डॉ. अम्बेडकर की सद्भावना के और सर्वश्री पंडित ठाकुरदास भार्गव, जसपत राय कपूर एवं अन्य मित्रों के प्रबल प्रयास करने पर भी हम सभा को या मसौदा समिति को इस बात पर राजी नहीं कर पाये कि मूलाधिकारों को वह विधान मण्डल के क्षेत्राधिकार से बाहर रखे। यह एक अनिवार्य बात है कि विधान मण्डल में एक दल का ही प्राधान्य रहेगा। अनुच्छेद 22 में इतना तथाकथित सुधार हो जाने के बाद आज भी राज्यों के विधान मण्डल किसी व्यक्ति को बिना मामला चलाये तीन माह तक नजरबन्द रख सकते हैं और संसद तो उसे उस अवधि तक नजरबन्द रख सकती है जिस अवधि तक भी रखने का वह निर्णय करे। जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, यह है स्थिति।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है संविधान के सारे उपबन्धों में न्यायपालिका के प्रति एक सन्देह-भावना का या विश्वासभाव का आभास मिलता है। यह बड़े ही

दुर्भाग्य की बात है श्रीमान। लोकतंत्रीय संविधान में, जिसमें संसदात्मक प्रणाली के आधार पर शासन व्यवस्था चलाने की बात सोची गई हो, ध्यान देने की सबसे जरूरी बात यह होती है कि उसमें रखे गये मूलाधिकार वास्तविक हों और अच्छी तरह से परिभाषित हों तथा न्यायालयों को इस का अधिकार प्राप्त हो कि राज्य की सुरक्षा को बिना आघात पहुंचाये वह मूलाधिकारों को क्रियान्वित करा सकते हों। यही एक मात्र उपाय है जिसके द्वारा संसदात्मक लोकतंत्रीय व्यवस्था में नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सकता है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है, श्रीमान तो मुझे डर है कि शासन सर्वथा निरंकुश और स्वेच्छाचारी बन जायेगा और अपनी डिक्टेटरी कायम कर देगा।

संविधान में, सारे अधिकार केन्द्र में ही निहित रखने का प्रयास किया गया है और यह बात भी संविधान की इसी प्रवृत्ति की पुष्टि करती है कि यहां शासन व्यवस्था एकतंत्रीय हो और सारी सत्ता उसी के हाथ में हो। जो कुछ भी थोड़ा बहुत शासन स्वातंत्र्य प्रान्तों को पहले प्राप्त था वह भी अब आपात के नाम पर छीन लिया गया है। जिस तरह ब्रिटिश अमलदारी में, राज्य की सुरक्षा और स्थिरता के नाम पर नागरिकों को स्वातंत्र्य से वंचित किया गया था उसी तरह इस संविधान में भी हम यह देखते हैं कि कतिपय उपबंधों द्वारा आपात के नाम पर नागरिकों को स्वातंत्र्य से वंचित किया गया है, राज्यों को अधिकारों से वंचित किया गया है और केन्द्र को ही मजबूत बनाया गया है।

अगर अनुमति हो श्रीमान तो आपात-उपबन्ध वाले अध्याय 18 में रखे गये पहले अनुच्छेद की ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। उसमें युद्ध, बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति की स्थिति के लिये आवश्यक उपबन्ध रखा गया है। आपात-स्थिति के लिये यह समूचा अध्याय आपके पास है। आपात की स्थिति आने पर आप इस अध्याय के उपबन्धों को उपयोग में ला सकते हैं। मूलाधिकारों का अगर आप न्यूनन करते हैं तो इसमें वस्तुतः संकट है। विवेकशून्य कार्यपालिका, अनुच्छेद 22 और 19 का लाभ उठाकर नागरिकों को भास दे सकती है। संविधान में रखे गये उपबन्धों से इसी स्थिति के आने की सम्भावना है। जिन लोगों पर संविधान निर्माण की जिम्मेदारी है उन्होंने कुछ न कुछ कारणों से यह सोच रखा है कि साधारण कालीन स्थिति की अपेक्षा आपात-स्थिति को अधिक महत्वपूर्ण बताकर अपने मंतव्य या दृष्टिकोण पर यहां जोर दिया जाय। कहा गया है कि लोकतंत्र का मूल्य चुका सकते हैं हम सदा सचेत रहकर। आशा है कि जनता इसके लिये पर्याप्त सचेत रहेगी कि संविधान को वह बदल सके और जरूरत होने पर उस सरकार को बदल सके जो संविधान के इन उपबन्धों से लाभ उठाकर मनमानी हुकुमत चला रही हो। मुझे विश्वास है कि अपना देश जागरूकता के इसी स्तर पर पहुंचा रहेगा और लोकतंत्रीय सिद्धान्तों और वैयक्तिक अधिकारों को वह प्रतिष्ठित रखेगा एवं ऐसे शासन को यहां प्रतिष्ठित करेगा जो व्यक्ति के अधिकारों को मान्यता देता हो।

***श्री एस.एम. घोष** (पश्चिमी बंगालः जनरल): अध्यक्ष महोदय, सबसे पहले मैं कृतज्ञता ज्ञापन करूंगा महात्मा अरविन्द के प्रति जिन्होंने भारतीय-स्वातंत्र्य संग्राम की हमें प्रेरणा दी। आज हम अपनी उस यात्रा की अन्तिम मंजिल पर पहुंच गये

[श्री एस.एम. घोष]

हैं। जिसे प्रारम्भ किया था सन् 1857 में भारतीय सिपाहियों ने और जिसमें आगे चल कर असंख्य शहीद और बड़े-बड़े नेता सम्मिलित हुए और संग्राम की इस कठिन यात्रा को पूरा कराते हुए आज हमें अपने गन्तव्य तक, अपने लक्ष्य तक पहुंचा दिया और देश को स्वतंत्र करा दिया। मैं अपने कर्तव्य से च्युत होऊंगा अगर इस अवसर पर अपने महान नेताओं और शहीदों का—तिलक, लाला लाजपतराय, पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित मदन मोहन मालवीय, चित्तरंजन दास, जे.एन. सेन गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस, श्रीनिवास आयंगर, सत्यमूर्ति, डॉ. अनसारी प्रभृति नेताओं का तथा कन्हैयालाल, सत्येन बोस, जतीन मुकर्जी, जतीन दास, सूर्यसेन तथा अनेक अन्य शहीदों का—नामोल्लेख यहां न करूं जिन्होंने इस संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे दी है। वर्तमान पीढ़ी में इस स्वातंत्र्य-संग्राम को चलाया है हमने भारतीय राष्ट्र के जनक महात्मा गांधी के नेतृत्व में, पंडित जी के, सरदारजी के, एवं आपके नेतृत्व में श्रीमान। इन सभी विभूतियों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

यह ख्याल करने की लोगों की प्रवृत्ति सी हो गई है कि जहां तक माननीय समुन्नति का सम्बन्ध है रूस ने आखिरी बात कह दी है और वह क्रांति की आखिरी मंजिल तक पहुंच गया है। किन्तु मैं जोर के साथ यह कहना चाहता हूं कि भारत को और भारतवासियों को उस मंजिल से कहीं आगे जाना है। मुझे विश्वास है कि इस महान काम को पूरा करने की शक्ति और साहस भारतवासियों में है, इस महान काम को पूरा करने के लिये जो गुण अपेक्षित हैं वह भी उनमें हैं।

यहां सभा में कुछ चर्चा मैंने मनु के सम्बन्ध में सुनी है पर मैं समझता हूं कि मनु से अभिप्रेत क्या है, इस का वास्तविक अर्थ क्या है इसकी ठीक जानकारी न होने से ही यह बात कही गई है। डॉ. अम्बेडकर के सम्बन्ध में बोलते हुए एक सदस्य ने यह कहा कि वह मनु नहीं हैं बल्कि महार जाति के हैं और हमें संविधान बना कर दे रहे हैं। मनु ब्राह्मण जाति के थे या महार जाति के इसे कोई नहीं जानता। भारतीयों की दृष्टि में मानवता के कल्याण के लिये जो आदर्श विधि हो सकती है उसी के प्रतीक हैं मनु। इस दृष्टि से, डॉ. अम्बेडकर को जो आधुनिक मनु कहा गया है वह ठीक ही है। यह बात नहीं है कि विधि निर्माण का काम जिसके जिम्मे होता है यह स्वयं कोई विधि बनाता है। वह तो केवल इतना ही करता है ऋषि दृष्टि से, चाहे कोई व्यक्ति महार जाति का हो या ब्राह्मण जाति का या अन्य किसी भी जाति का, अगर वह अन्तर्ज्ञान रखता है और विधि को संहिता बद्ध कर सकता है न केवल अपने सम्प्रदाय के हितार्थ और अपने सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से बल्कि समस्त मानवता के हितार्थ तो उस व्यक्ति को हम मनु कह सकते हैं।

अब मैं संविधान की ओर आता हूं। मैं जानता हूं कि हम में से बहुत लोग इससे सन्तुष्ट नहीं हैं क्योंकि इसमें भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ बांध कर रखा गया है। यह सच है; पर माननीय मित्रों को मैं यह बताना चाहता हूं कि देश के भावी भाग्य का फैसला संविधान उतना नहीं करेगा जितना कि जनता की मरजी।

इस लिपिबद्ध संविधान में कुछ में कुछ भी क्यों न रखा गया हो, हमें देखना केवल यह है कि इसमें ऐसी कोई बात तो नहीं है जो हमारे ऐसे प्रयास में बाधक होती हो जो हम अपनी रुचि के अनुसार भारतीय जनता की भलाई के लिये करना चाहते हों। जहां तक इस बात का सम्बन्ध है मुझे पक्का विश्वास है कि इस संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है जो हमें, जनता की भलाई के लिये किये जाने वाले किसी काम में बाधक हो सकती हो। और अगर कोई ऐसी बात है भी, तो मुझे विश्वास है कि बहुत कुछ निर्भर करेगा उन रूढ़ियों पर जिनका विकास हम करेंगे।

पंचायत सम्बन्धी उपबन्धों पर मैं विशेष रूप से जोर दूंगा श्रीमान। मैं जानता हूं कि हम जिस उपबन्ध को रखना चाहते थे वह यह नहीं है। फिर भी मुझे विश्वास है कि अगर हम तनमन से कोशिश करते हुए इस संविधान पर अमल करते हैं जिसमें पंचायतों की बुनियाद रखी गई है तो, ईश्वर चाहेगा तो हमें सफलता अवश्य मिलेगी।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री पी.टी. चक्को** (ट्रावनकोर और कोचीन का संयुक्त राज्य): इस संविधान के गुणों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है श्रीमान। मैं यह जरूर बता देना चाहता हूं कि इस संविधान पर मैं केवल उसी दृष्टिकोण से विचार कर सकता हूं जिससे कि देशी राज्य का प्रतिनिधि इस पर विचार कर सकता है। मैं यह देखता हूं कि संविधान में सारी सत्ता केन्द्र के हाथ दी गई है और उसे एक इर्ष्यालु, दुष्ट और स्वेच्छाचारिणी सास की स्थिति में रखा गया है जो कम उम्र में ही विधवा हो गई हो और नव दम्पति की गतिविधि पर तरह-तरह के नियंत्रण रखती हो और उनकी स्वतंत्रता में तरह-तरह की बाधायें उपस्थित करती हो। केन्द्र को मजबूत रखने के खिलाफ मैं नहीं हूं। अपने इतिहास की पृष्ठभूमि को देखते हुए मैं मानता हूं कि एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का होना हमारे लिये बहुत जरूरी है। एक समय ऐसा था कि जो कोई भी साहसी यात्री दुनिया के किसी भाग से यहां पहुंचता था, वह सम्पत्ति पा जाता था। जो भी साहसी आक्रान्ता यहां आया उसने असानी से अपना राज्य यहां स्थापित कर लिया। इस लिये हमें एक सुदृढ़ केन्द्र की जरूरत है। मैं यहां के निवासियों की प्रवृत्तियों से भी परिचित हूं और उनसे सदा सतर्क हूं। यह ऐसा जमाना है कि सभी जगह और कम से कम भारत के कुछ हिस्सों में तो जरूर ही राजनीतिक पार्टियां अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हिंसात्मक उपायों का अवलम्बन कर रही हैं। कांग्रेस स्वयंसेवक भी, जो कम से कम एक बार जेल हो आये हैं वह मंत्री बनने की ही बात सोच रहे हैं। आज हर ऐरा गैरा नत्थू खैरा यही समझ रहा है कि केन्द्र में या प्रान्त में कहीं न कहीं वह मंत्री तो बन ही सकता है। इसलिये अपने देश वासियों की प्रवृत्तियों को और अपने इतिहास की पृष्ठ भूमि को देखते हुए, मैं इस बात को जानता हूं कि हमारे लिये एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। पर हमें यह न भूलना चाहिये कि भारत है क्या। यह एक महादेश है जिसमें भिन्न-भिन्न भाषा के बोलने वाले, भिन्न भिन्न जाति के, भिन्न-भिन्न धर्म और मनोवृत्ति के लोग बसे हुए हैं जो एक-दूसरे के रीति रिवाज और रहन सहन को

[श्री पी.टी. चक्को]

प्राय: इर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। यहां संस्कृति, धर्म, सम्प्रदाय प्रजाति एवं भाषा के आधार पर कितने ही अल्पसंख्यक वर्ग बन गये हैं जिनके हित परस्पर विरोधी हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि हमें संघ-राज्य बनाने की आवश्यकता है और तदनुसार हमने संघ-राज्य बनाने का फैसला भी किया है। किन्तु मुझे अपने इस नये संविधान के संघात्मक होने में सन्देह है। यों देखने में यह संघात्मक अवश्य प्रतीत होता है पर मेरी राय में सारत: यह एकात्मक संविधान ही है। उदाहरण के लिये आप केन्द्र की विधायिनी शक्तियों को ही लीजिये। राज्यों को खास खास बातों के बारे में विधि निर्माण की शक्ति दे दी है और अवशिष्ट शक्तियां दी गई हैं केन्द्र को जो अमेरिका या आस्ट्रेलिया के संविधान में नहीं किया गया है।

फिर समवर्ती सूची और संघसूची को देखकर, जिस पर केन्द्र को विधि बनाने का अधिकार प्राप्त है, कोई भी इस बात को समझ सकता है कि प्रत्येक ऐसा विषय जो प्रदेश के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है, उसे इन्हीं दोनों सूचियों में रखा गया है। साधारण काल में भी केन्द्र ऐसे किसी विषय पर विधि बना सकता है जो प्रदेश के लिये महत्वपूर्ण है। और फिर अनुच्छेद 249, 250, 253 तथा 269 के उपबन्धों पर अमल करते हुए संसद राष्ट्र के हित में या आपस की स्थिति में अथवा किन्हीं करारों को कार्यान्वित करने के लिये किसी भी विषय पर, या पांच साल की अस्थायी अवधि के लिये चन्द कई विषयों पर, संसद् विधि बना सकती है। इन सब बातों से आप यह देख सकते हैं कि सारे अधिकार दिये गये हैं केन्द्रीय संसद को और राज्यों के विधान मण्डलों को वस्तुत: कोई अधिकार ही नहीं दिया गया है। इस तरह सारत: भारत प्राय: एकात्मक राज्य ही बनाया गया है।

कार्यपालिका सम्बन्धी बातों के बारे में भी असाधारण शक्तियां केन्द्र में ही निहित रखी गई हैं। आपात-शक्तियों के अलावा, अनुच्छेद 256 और 257 के अधीन केन्द्र अंगभूत राज्यों को निदेश भी दे सकता है। राज्यों को इन निदेशों का पालन करना पड़ेगा अन्यथा अनुच्छेद 365 के अधीन राज्य दण्डित किये जा सकते हैं मुझे तो यही प्रतीत होता है कि इन सभी उपबंधों से संविधान का एकात्मक स्वरूप सर्वथा स्पष्ट है। केन्द्र को कितनी शक्तियां दी गई हैं इसे मैं गणनावार भी बताये देता हूं–

(1) अविशष्टि अधिकार केन्द्र में निहित रखे गये हैं। (2) ऐसा कोई विषय नहीं है जिसके बारे में केन्द्र कानून न बना सकता हो और और साधारण काल में भी उसे सभी विषयों के बारे में कानून बनाने का अधिकार है। (3) राज्य-सूची में दिये गये विषयों पर कानून बनाने के लिये उसे विशेष शक्तियां प्राप्त हैं। (4) राज्य अपने संविधान में अपनी मरजी के मुताबिक परिवर्तन भी नहीं कर सकते हैं। (5) राज्य निर्मित-विधियों पर संसद-निर्मित विधियों को प्राप्त रहेगा। (6) केन्द्र में कार्यपालिका सम्बन्धी असाधारण शक्तियां निहित रखी गई हैं।

अब मैं इस बात की ओर आता हूं कि संविधान में देशी राज्यों की स्थिति क्या है। अनुच्छेद 371 के अधीन देशी राज्यों को दस साल तक के लिये केन्द्र

के अधीन रखा गया है। अनुच्छेद 371 को अनुच्छेद 365 के साथ मिला कर पढ़िये तो आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि देशी राज्यों को सर्वथा दास की स्थिति में डाल दिया गया है। मुझे दुख होता है उस दीर्घ कालीन संग्राम का ख्याल करके जिसमें देशी राज्यों के निवासियों का योगदान कम नहीं रहा है। देशी राज्यों में कई लोग ऐसे हुए हैं जिन्होंने इस स्वातंत्र्य-संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे दी है। इस संग्राम के लिये छोटा मोटा त्याग करने वाले भी अनेक हम लोगों में हैं। पर इस संग्राम का अन्तिम परिणाम हमारे लिये क्या मिल रहा है। विदेशी सामाज्यवाद की जगह अब भारतीय साम्राज्यवाद का जुआ हमारे कन्धों पर लद रहा है। यह सच है कि स्वेच्छा-चारी शासन व्यवस्था के चिन्ह स्वरूप जो कतिपय अवशिष्ट देशी राज्य रह गये थे उन्हें भी सरदार पटेल ने, मानो जादू का करिश्मा करके मिटा दिया है। किन्तु हम यह देखते हैं श्रीमान कि हमें अब केन्द्र के अभिभावकत्व में रखा गया है और हमें प्रायः अवयस्क समझा जा रहा है। मैं यह पूछता हूं कि आपका यह स्वायत्त शासन कहां गया जिसकी सन् 1947 में इतनी चर्चा की जाती थी? कहां है वह स्वायत्त शासन जिसके लिये सन् 1947 में, जब मंत्रिमण्डल बनाने की बात कांग्रेस स्वीकार करने वाली थी, हुकूमत से आश्वासन मांगा गया था?

संविधानिक कानून का यह एक सर्वविदित सिद्धान्त है कि संघ के अंगभूत राज्यों के सम्बन्ध में किसी के पक्ष में कोई रियायत या किसी के विरुद्ध कोई विभेद नहीं किया जाना चाहिये। आस्ट्रेलियन संविधान में व्यापार, वाणिज्य के सम्बन्ध में धारा 99 में यह कहा गया है कि कामनवेल्थ (केन्द्र) व्यापार वाणिज्य या राजस्व सम्बन्धी किसी विधि या विनियमन द्वारा किसी एक राज्य को दूसरे राज्य पर कोई तरजीह नहीं देगा। आस्ट्रेलियन संविधान की धारा 51(2) भी कर के सम्बन्ध में कोई विभेद बरतने पर रोक लगाती है। अमेरिका में रियासतें इसी शर्त पर संघ में शामिल हुई हैं कि सब रियासतों को समान संविधानिक अधिकार एवं शक्तियां प्राप्त रहेंगी। जिन नई रियासतों को वहां बाद में संघ में शामिल किया गया था उनके बारे में भी वहां की सर्वोच्च अदालत ने यही फैसला दिया था कि असमानता लाने वाली कोई भी शर्त कांग्रेस नई रियासतों पर नहीं लाद सकती है। इसी प्रश्न को लेकर वहां कोयेल बनाम स्मिथ का एक मामला चला था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि संघ में शामिल होते समय यदि किसी रियासत ने किसी शर्त को मान भी लिया था तो वह शर्त अवैध समझी जायेगी अगर वह उस रियासत को अन्य रियासतों के समक्ष आने से रोकती हो। अमेरिका के संयुक्त राज्य की अंगभूत सभी रियासतों को अधिकार और शक्ति के बारे में समता प्राप्त है। किन्तु अपने संविधान में हम यह पाते हैं कि उन राज्यों के बीच जो केवल घटनाओं के कारण किसी समय रियासत के नाम से पुकारे जाते थे तथा उन राज्यों के बीच जो अब प्रान्त नाम से ज्ञात हैं विभेद बरता गया है। रियासत नाम से ज्ञात राज्यों को दस साल के लिये आखिर क्यों केन्द्र की पूर्ण अधीनता में और उसके प्रबंधाधीन रखा जाये श्रीमान? क्या ऐसा इस आधार पर किया जा रहा है कि प्रान्त देशी राज्यों से अधिक समुन्नत और प्रगतिशील है? मैं इसे नहीं मान सकता कि प्रान्त देशी राज्यों से अधिक प्रगतिशील हैं। जैसा कि अनुच्छेद 371 विचार होते समय सभी वक्ताओं ने यहां कहा है,

[श्री पी.टी. चक्को]

कई देशी राज्य ऐसे हैं जो प्रान्तों से अधिक समुन्नत हैं। इसलिये मैं नहीं समझता कि देशी राज्यों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 371 तथ 365 को संविधान में रखने के लिये जो कारण यहां बताया है वह वस्तुतः सही है। इन उपबन्धों के कारण देशी राज्यों की तुलना में प्रान्तों को अधिक सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** प्रगतिशील रियासतों के बारे में तो यह उपबन्ध लागू ही नहीं होंगे।

***श्री पी.टी. चक्कोः** यह कहा जा रहा है श्रीमान् कि ये उपबन्ध ऐसी रियासतों पर लागू नहीं होंगे। मैं नहीं समझ सकता हूं कि फिर इनको रखा ही किस लिये जा रहा है। जब संविधान में यह कह दिया गया है कि देशी राज्य कुछ काल तक केन्द्र के नियंत्रणाधीन रहेंगे तो उसके प्रतिकूल जबानी तौर पर कोई कुछ भी क्यों न कहे उसका कोई मतलब नहीं हो सकता है। हां यह जरूर है कि सरदार पटेल द्वारा दिये गये आश्वासन को मैं महत्वपूर्ण मानता हूं और उसे वज़नी समझता हूं। पर फिलहाल मैं विचार कर रहा हूं संविधानिक स्थिति पर। इस सभा के लिये यह आसान था कि वह संविधान में ही यह कह देती कि प्रगतिशील रियासतें इस उपबन्ध से बरी रहेंगी।

***श्री मोहन लाल गौतम** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): इस आशय का एक परन्तुक संविधान में है कि राष्ट्रपति ऐसी छूट दे सकता है।

***श्री पी.टी. चक्कोः** अवश्य इस आशय का एक परन्तुक संविधान में है। इससे भविष्य में चल कर लाभ पहुंच सकता है। किन्तु मेरा कहना यह है कि यह सभा ही संविधान इसके लिये उपबन्ध रखकर रियासतों को इसके प्रभाव से बरी कर सकती थी। इसलिये जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है, मैं यह कहूंगा कि रियासतों और प्रान्तों के बीच संविधान में विभेद बरता गया है और प्रान्तों के साथ पक्षपात किया गया है।

***श्री मोहन लाल गौतमः** इसके लिये संविधान में एक परन्तुक रखा तो गया है।

***श्री पी.टी. चक्कोः** यह परन्तुक तो भविष्य के लिये रखा गया है पर हम चाहते तो रियासतों को अभी से इस उपबन्ध से बरी रख सकते थे। इसमें हमें कोई दिक्कत नहीं थी। संविधान को देखने से आपको ज्ञात होगा कि कई प्रयोजनों के लिये कई रियासतों के बारे में छूट का उपबन्ध संविधान में रखा गया है। इस बारे में भी हम संविधान में ऐसी छूट के लिए उपबन्ध रख सकते थे। संविधानिक कानून का यह एक सर्वविदित सिद्धान्त है कि विधान मण्डल को प्रदत्त की शक्तियां किसी अन्य प्राधिकारी को नहीं सौंपी जा सकती हैं। (पनामा रिफानिंग कम्पनी बनाम रियन का मामला) यह भी एक सर्वस्वीकृत सिद्धान्त है। कोई प्राधिकारी जिसे कोई शक्तियां सौंपी गई हों वह उन सौंपी गई शक्तियों को किसी अन्य व्यक्ति या निकाय को नहीं सौंप सकता है। अमेरिका में यह हुआ था कि संविधान का मसौदा तैयार हो जाने पर उसे सभी रियासतों के पास भेजा गया था उनके अनुसमर्थन के लिये। आस्ट्रेलिया में भी ऐसा ही किया गया था। दक्षिणी

अफ्रीका तक में भी ऐसा ही हुआ था। संविधान के मसौदे का सभी उपनिवेशों ने अनुसमर्थन किया था और उसके बाद यह अन्तिम रूप से संसद द्वारा स्वीकृत किया गया था। हमने भी संविधान के मसौदे को रियासतों के पास भेजा था कि उनके विधान मण्डलों द्वारा उसको अनुसमर्थन प्राप्त हो जाये। हमारे यहां तीन ही रियासतें हैं जिन का अपना विधान मण्डल है और ये रियासतें हैं ट्रावनकोर-कोचीन, मध्यभारत तथा मैसूर की। इन तीनों रियासतों के पास संविधान का मसौदा इनके अनुसमर्थन के लिये भेजा गया था। तीनों ही रियासतों ने संविधान में चन्द संशोधन करने की सिफारिश सर्वसम्मति से की थी। किन्तु संविधान सभा ने विचार-विमर्श के समय उनकी सिफारिशों पर विचार भी नहीं किया। इस लिये मैं यह पूछता हूं कि रियासतों के अनुसमर्थन के लिये संविधान को उनके पास भेजने की फिर जरूरत ही क्या थी? अमेरिका वालों का तो इस सिद्धान्त में विश्वास था कि विधान-मण्डल की शक्तियां किसी अन्य निकाय को नहीं सौंपी जा सकती हैं। उनको जनता से जो शक्ति प्राप्त हुई थी उसे वह अन्य निकाय को नहीं दे सकते हैं। इसीलिये वहां संविधान को विभिन्न अंगभूत राज्यों के पास उनके अनुसमर्थन के लिये भेजा गया था। यदि राज्यों के विधान-मण्डल अपने अधिकारों को यहां आये अपने प्रतिनिधियों को नहीं सौंप सकते थे तो फिर संविधान पर रियासतों का अनुसमर्थन प्राप्त कर लेना अवश्य जरूरी था। अगर इसी लिये संविधान को रियासतों के पास भेजा गया था कि उनके विधान मण्डलों का अनुसमर्थन उसे मिल जाये तो इसका अनुसमर्थन उन्होंने किया था चन्द संशोधनों का सुझाव रखते हुए। किन्तु मुझे खेद है कि विचार के समय इस सभा ने उनके किसी भी संशोधन पर विचार तक नहीं किया। इसलिये रियासतों ने संविधान को जो अनुसमर्थन दिया है उसे सम्यक या वैध मानना विवाद से खाली नहीं है।

भविष्य में जब अनुच्छेद 371 और 365 पर अमल किया जायेगा तो उस समय इन रियासतों के विधान-मण्डलों की स्थिति क्या होगी? केन्द्रीय शासन राज्य की सरकार को कोई कानून बनाने का निदेश दे सकता है क्योंकि राज्य की सरकार पूर्ण रूप से केन्द्र के अधीन है। अब मान लीजिये, राज्य का विधान-मण्डल जिसे अधिकार प्राप्त रहता है जनता की ओर से—उदाहरण के लिये ट्रावनकोर-कोचीन का विधान मण्डल वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होता है ओर उसे सीधे जनता से अधिकार मिलता है—वह केन्द्र के निदेशानुसार कानून नहीं बनाता है और वैसा कानून बनाने से इनकार कर देता है। ऐसी स्थिति में क्या होगा? अनुच्छेद 365 के अधीन केन्द्र यह कहेगा संविधान के उपबन्धों के अनुसार उस राज्य का शासन नहीं चलाया जा रहा है। उस स्थिति में उस राज्य का शासन केन्द्र अपने हाथ में ले लेगा। इसका मतलब यह हुआ कि केन्द्र के निदेश को न मानने के लिये राज्यों को दण्ड भुगतना पड़ेगा। राज्य का शासन केन्द्र के हाथ में जाने पर उसके विधान-मण्डल के पास वह शक्ति नहीं रह जायेगी जो उसे जनता से मिली होगी। उसके बाद तो उसे वह अधिकार भी नहीं प्राप्त होंगे जो खुद संविधान ने उसे दे रखे हैं। मैं नहीं कह सकता कि जनता द्वारा जो अधिकार राज्यों के विधान मण्डलों को प्राप्त हैं, उनको खत्म करना कहां तक ठीक हो सकता है। इसलिये मैं तो यही कहूंगा कि कम से कम दस साल के लिये—

[श्री पी.टी. चक्को]

और फिर इस अवधि को संसद बढ़ा भी सकती है—प्रान्त नामधारी राज्यों के साथ पक्षपात मूलक व्यवहार तो किया ही गया है और देशी राज्यों के विरूद्ध विभेद बरता गया है।

अपने संविधान में निदेशक सिद्धान्त भी रखे गये हैं। आयरिश संविधान को छोड़ कर और शायद वाइमार संविधान को छोड़कर दुनियां के और अन्य किसी भी संविधान में ऐसे निदेशक सिद्धान्त नहीं रखे गये हैं जिनको संविधान के अधीन निर्मित किसी निकाय द्वारा क्रियान्वित न कराया जा सकता हो, यह तो ऐसा लगता है मानो पार्टी ने अपने प्रोग्राम की बात कार्यक्रम-पत्र में कही हो। फिर संविधान में ऐसे राजनीतिक सिद्धान्तों को रखने की जरूरत ही क्या है जिनको संविधानाधीन निर्मित किसी निकाय या प्राधिकारी द्वारा क्रियान्वित न कराया जा सकता हो? मेरे मतानुसार अपने संविधान में तथा जर्मनी के वाइमार संविधान में कतिपय बातों के सम्बन्ध में सादृश्य अवश्य है। यह बात केवल वाइमार संविधान में ही आपको मिलेगी कि संसद को असाधारण शक्तियां दी गई हैं पर वहां भी अवशिष्ट अधिकार राज्यों में ही निहित रखे गये हैं। केन्द्र कार्यपालिका को भी असाधारण शक्तियां दी गई हैं। वाइमार संविधान में भी कुछ निदेशक सिद्धान्त रखे गये थे जिनको क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता था। यही वह संविधान है जिसने कुछ दिन तक अमल मे रहने पर हिटलर की उत्पत्ति की थी।

इसलिये मैं यह जरूर कहूंगा कि कम से कम राज्यों से आये हम प्रतिनिधियों को इस बात का बड़ा खेद है कि भारतीय जनता के प्रतिनिधि लोग एक ऐसा संविधान अपने लिये स्वीकार कर रहे हैं जो कई बातों में उस संविधान से मिलता हुआ है जिसने हिटलर को उत्पन्न किया था और यह संविधान भी भविष्य में चल कर, अगर अविवेकी व्यक्तियों के हाथ में शक्तियां आई तो एक-दूसरे हिटलर की उत्पत्ति कर सकता है।

इस बात को मैं जानता हूं कि संविधान के प्रयोग की सफलता संविधान के उपबन्धों पर उतना निर्भर नहीं करती है जितना कि देश वासियों के चरित्र पर और जमाने की हालत पर। अतः इन त्रुटियों को मानते हुए भी मैं जानता हूं कि हमारा यह कर्तव्य है कि इस संविधान पर सफलतापूर्वक अमल करने की हम ईमानदारी से कोशिश करें। हमें इस बात का विश्वास करना चाहिये कि यह अंधकार शीघ्र ही दूर हो जायेगा और आगे प्रकाश आने पर हम संविधान में संशोधन कर सकेंगे तथा सभी राज्यों को समान स्तर पर रखेंगे और उनको कुछ अधिकार देंगे। संविधान की कमियों को जानते हुए हमें इसे सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने की कोशिश करनी चाहिये।

इसके बाद सभा मध्याह्नकालीन भोजन के लिये 3 बजे तक के लिये उठ गई।

मध्याह्नकालीन भोजन के बाद सभा दिन के तीन बजे अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुनः समवेत हुई।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब: सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं अपनी बात शुरू करूंगा अपने सुयोग्य सभापति के प्रति अपनी सच्ची एवं हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जिनकी धीरता, सहनशीलता और न्याय प्रियता ने सभा की समस्त कारवाई में हमारा पथ प्रदर्शन किया है तथा सभा की कार्रवाई का सफलता पूर्वक संचालन कराने में बहुत हाथ बंटाया है।

अन्य मित्रों का साथ देते हुए, मैं भी मसौदा समिति को और विशेषकर उसके अध्यक्ष को धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने इस कठोर परिश्रम के साथ प्रसन्नता पूर्वक इस काम को पूरा किया है। यह काम एक बड़ा ही विशाल काम रहा है, और उसके पूरा हो जाने पर समिति ने ऐसा अनुभव किया होगा मानो एक कठिन भार से वह मुक्त हुई हो।

हमने जो संविधान बनाया है वह दुनिया का वृहत्तम संविधान है। अन्य देशों के संविधान इससे कहीं छोटे और सरल हैं। अवश्य ही अपने इस कृतित्व पर हमें हर्ष नहीं है।

अपने वर्तमान नेताओं के बड़कपन का शायद संविधान बनाने वाले विशेषज्ञों पर ऐसा जादू पड़ा है। कि उनकी दृष्टि में सुदूर की बातें आ ही नहीं सकीं। संविधान बनाने में हमें वर्तमान का ही नहीं बल्कि सुदूर भविष्य का भी ख्याल रखना चाहिये था। हमने यह मान कर संविधान बनाया है कि हमारे संघ-राज्य को भविष्य में भी ऐसे ही महान नेताओं को पाने का सौभाग्य प्राप्त रहेगा।

संविधान बनाने में किसी एक खास प्रकार के संविधान का अनुगमन नहीं किया है। विभिन्न प्रकार के संविधानों के आधार पर यह संविधान तैयार किया है इसलिये यह टिकाऊ नहीं हो सकता है क्योंकि न तो यह देशीय है और न पूरी तौर पर किसी खास एक संविधान के आधार पर ही तैयार किया गया है। यह संविधान न संघात्मक और न एकात्मक। यह संविधान क्या तैयार किया गया है एक पहेली तैयार की गई है। इसके हर भाग एक-दूसरे से सर्वथा अपरिमित हैं।

भारत-शासन-अधिनियम 1935 में ब्रिटेन निर्भीत एक संविधान-काया तो हमारे पास पहले से ही मौजूद थी। अमेरीकन प्रणाली का अनुगमन करके इसके लिए हमने राष्ट्रपति की व्यवस्था की है। इस काया के पुराने अंकों की जगह हमने ब्रिटेन की संसदात्मक प्रणाली को स्थान दे रखा है तथा आस्ट्रेलिया संविधान की अकठोरता या लचीलापन और कनाडियन संविधान की एक न्यायपालिका वाली व्यवस्था को इसमें स्थान दे रखा है। आयरिश संविधान से भी हमने एक बात ली है। अपेन निदेशक सिद्धान्त वहीं से लिये गये हैं। इस तरह विभिन्न संविधानों से विभिन्न व्यवस्थायें लेकर हमने संविधान रूपी यह खिचड़ी तैयार की है। इसका किस तरह विकास होगा और किस तरह यह काम करेगा इसे कोई नहीं जानता। फिर मेरा कहना यह भी है श्रीमान, कि कई बातों के बारे में और खास कर के प्रस्तावना में बड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। न्याय, स्वातंत्र्य तथा समता दिलाने के अलावा हमने प्रस्तावना में बन्धुत्व स्थापित करने का भी संकल्प

[सरदार हुकम सिंह]

व्यक्त किया है जो वर्तमान समय में सर्वथा एक असम्भव बात है। फिर हमने विचार-स्वातंत्र्य का पक्का आश्वासन दे रखा है जो एक अद्‌भुत बात है। विचार का सम्बन्ध है मनुष्य के मस्तिष्क से और जब तक कोई अपना विचार व्यक्त नहीं करता है राज्य या किसी व्यक्ति को उसके विचार का क्या पता हो सकता है। ऐसे ऊंचे-ऊंचे आदर्शों को अमल में लाना बड़ा असम्भव है और खासकर के धर्मनिरपेक्ष राज्य में। फिर संविधान में यह भी कहा गया है कि सबको समता प्राप्त रहेगी जो बिल्कुल कोरी कल्पना और झूठी शेखी बघारने की ही बात है। समता लोगों को प्राप्त हो सकती है केवल साम्यवादी राज्य में।

अब मैं आता हूं मूलाधिकारों की ओर। इनको भाग 3 में रखा गया है और इस भाग को सरसरी निगाह से देखने पर आपको यही प्रतीत होगा कि मूलाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये सम्यक व्यवस्था की गई है। इस भाग में इन अधिकारों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है और इनके संरक्षण का भार सौंपा गया है सर्वोच्च न्यायालय को। इन अधिकारों के रक्षण की दिखावटी प्रत्याभूति भी दी गई है।

किन्तु ध्यान से इन अधिकारों पर गौर करने पर यह मालूम होगा कि इन अधिकारों को और खास करके अनुच्छेद 19 में रखे गये स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकारों को ऐसे अपवादों और प्रतिबंधों से जकड़ दिया गया है कि ऐसी स्थितियों के लिये यह सर्वथा अप्रभावी हो गये हैं जब कि उनको किसी तरह की कमी साधारणत: शंका का कारण बन सकती है। अन्य संविधानों की तरह अपने संविधान में भी शासन और स्वतंत्रता का दायरा अलग-अलग रखा गया है किन्तु ऐसा करने में किया यह गया है कि अहस्तान्तरणीय या अपरिवर्तनीय अधिकारों की परिभाषा देने में विधान मण्डल को इतनी छूट दी है कि इन अधिकारों की स्थिति सर्वथा संदिग्ध हो जाती है और उनके रक्षण की जो प्रत्याभूति दी गई है वह छिन जाती है।

4 नवम्बर सन् 1948 को संविधान को पेश करते हुए जो आरम्भिक भाषण डॉ. अम्बेडकर ने दिया था उसमें एक स्थल पर आपने यह कहा था:—

> "भारतीय भूमि स्वभावत: अप्रजातंत्रात्मक है और यहां प्रजातंत्र केवल एक ऊपरी आवरण है।"

> "ऐसी परिस्थिति में शासन सम्बन्धी नियमों को निश्चित करने का काम विधानमण्डल पर न छोड़ना ही श्रेयस्कर है।"

मैं चाहता हूं कि अपने इस विश्वास के अनुसार ही संविधान में उपबंध रखने का हमने निर्णय किया होता। किन्तु हुआ यह कि न्यायपालिका की अपेक्षा विधान मण्डल पर ही अधिक भरोसा और विश्वास किया गया है और यह बात संविधान में सर्वत्र दिखाई देती है।

मेरी राय में यह एक गलत बुनियाद है जिस पर हमने अपने संविधान का समूचा ढांचा खड़ा कर रखा है। व्यक्ति और राज्य के प्रति समुचित न्याय करने के बारे में विधान मण्डल की अपेक्षा न्यायपालिका पर हम अधिक निश्चिंतता के साथ भरोसा कर सकते हैं।

अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त सभी अधिकार वस्तुतः आधृत हैं इस महत्वपूर्ण उपबंध पर कि प्रतिबंध आरोपित करने वाली वर्तमान विधियों के तथा आगे बनाई जाने वाली विधियों के अधीन रहकर ही ये अधिकार प्रभावी होंगे। इस संविधान के प्रारम्भ पर भला नागरिक क्या परिवर्तन अनुभव कर सकते हैं? इस सम्बन्ध में हमें यह बताया गया था कि अमेरिका में भी मूलाधिकार सर्वथा प्रतिबंधशून्य नहीं हैं और यह कहा गया कि अनुच्छेद 19 में रखे गये प्रत्येक प्रतिबंध के समर्थन में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम एक निर्णय का हवाला तो दिया ही जा सकता है। यह कैसा अद्‌भुत तर्क है? यदि किसी स्थिति विशेष में बड़े ही आवश्यक मामले में वहां की सर्वोच्च अदालत ने कोई प्रतिबंध रखने का फैसला किया था तो क्या उस प्रतिबंध को अपने संविधान का एक ऐसा उपबंध बनाना जिसे विधान मण्डल अपनी अनुकूलता के अनुसार जब चाहे अमल में ला सकता हो, तर्कसंगत माना जा सकता है? अमेरिका में इसका अन्तिम निर्णायक सर्वोच्च न्यायालय है कि कब किस परिस्थिति में इन अधिकारों पर कोई प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है और अपने संविधान में इसका अन्तिम निर्णायक विधान मण्डल को माना गया है। यह अन्तर एक जबरदस्त अन्तर है। हम दो पद्धतियों में से किसी एक को चुन सकते हैं। या तो हमें ब्रिटेन की प्रणाली लेनी चाहिये जिसमें संविधानिक परिणामों का सर्वथा अभाव है या हमें अमेरिका की प्रणाली अपनानी चाहिये जिसमें इन अधिकारों के परिमाण की व्यवस्था इतनी पूर्ण है जितनी कि मानव बुद्धि सोच सकती है। किन्तु अपने संविधान में इन दोनों प्रणालियों को समझौता कर के एक बीच का मार्ग अपनाया गया है पर इस पर अमल करना असम्भव है। विधान मण्डल पर हमने कई रोक लगा रखे हैं और इस तरह इस बात को स्वीकार किया है कि विधान मण्डल से खतरा हो सकता है। पर आगे चल कर स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार विधान मण्डल को ही दे किया है। जिस डाकू से आशंका है उसी को हमने जज बना दिया है और सम्भाव्य आक्रान्ता को ही मध्यस्थ मान लिया है। यह तो सरासर लोगों को धोखा देना है।

फिर हमने संविधान में आपात उपबंध रखे हैं। राज्यपाल या राज्यप्रमुख के प्रतिवेदन पर अनुच्छेद 358 के अधीन आपात की उद्‌घोषणा होते ही हमारी सारी स्वतंत्रतायें समाप्त हो जायेंगी। आपात की केवल उद्‌घोषणा के आधार पर ही समूचा नागरिक स्वातंत्र्य नहीं छिन जाना चाहिये। नागरिक स्वातंत्र्य को तो तभी खत्म करना चाहिये जब देश से असैनिक शासन उठ जाये। और फिर ये सभी अधिकार अपूर्ण हैं जब तक कि नागरिकों को काम पाने का अधिकार नहीं दिया जाता है। क्या आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि किसी भी स्वायंत्र्य का उपभोग कोई ऐसा नागरिक कर सकता है जो काम के अभाव में भूख से पीड़ित हो कर मारा मारा फिर रहा है और उसके सामने चिन्ता का यह भूत खड़ा हो कि उसके बाल बच्चे भूख से छटपटा रहे होंगे? ऐसे नागरिक के लिए हमने कोई उपबंध रखा है क्या?

क्या ऐसे नागरिक को प्रशासन से कोई दिलचस्पी हो सकती है? वह तो यही चाहेगा कि ऐसे प्रशासन को उखाड़ फेंका जाये। भौतिक साधनों के सम्बन्ध में जो अनिश्चितता है उसे जब तक दूर नहीं किया जाता है तब तक इन स्वातंत्र्यों का कोई मूल्य नहीं हो सकता है और यह स्वातंत्र्य कोरे कागजी स्वातंत्र्य ही बने रहेंगे।

[सरदार हुकम सिंह]

निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मैं पहले ही कह चुका हूं कि यह अध्याय व्यर्थ रखा गया है। (**एक सदस्यः** यह अध्याय है या व्याधि?) है तो यह अध्याय पर यहां यह व्याधिवत् लगता है। मेरा विश्वास यह है कि अधिकारों का कोई महत्व नहीं जब तक कि उनको क्रियान्वित न कराया जा सकता हो। शुरू में यह स्वीकार किया गया था कि इन सिद्धान्तों को संविधान में रखना ठीक नहीं होगा किन्तु दुराग्रह करके इनको रख दिया गया है। भाग 4 के पढ़ने से पाठक को यही धारणा होगी कि अपना राज्य एक समाजवादी राज्य होगा किन्तु शेष संविधान में कहीं भी कोई ऐसी बात नहीं मिलेगी जिससे इस मधुर धारणा की पुष्टि हो सकती हो।

अब हम आते हैं भाग 5 पर जिसमें राष्ट्रपति के सम्बन्ध में उपबंध रखे गये हैं। राष्ट्रपति अपने भारतीय संघ का प्रधान अधिशासी होगा। संविधान पेश करते हुए जो आरम्भिक भाषण मसौदा समिति के अध्यक्ष ने दिया है उसमें राष्ट्रपति के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उसको संविधान के अनुसार यहां वही स्थान प्राप्त है जो इंग्लैंड में सम्राट को प्राप्त है; वह राज्य का प्रधान है किन्तु कार्यपालिका का नहीं; राष्ट्र के प्रतीक के रूप में वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है पर उस पर शासन नहीं करता है। प्रशासन के क्षेत्र में उसकी उपयोगिता यह बताई गई है कि उसकी मुहर लगा कर एक रस्म पूरी की जाती है। किन्तु जो संविधान अब हमने स्वीकार किया है उसमें उसे विस्तृत और व्यापक शक्तियां दी गई हैं। अनुच्छेद 54 के अधीन विधान मण्डलों के सदस्यों द्वारा ही वह निर्वाचित होगा, इसलिये बहुत सम्भव है कि वह बहुमत प्राप्त दल का ही आदमी होगा। संविधान के अतिक्रमण के लिए ही अनुच्छेद 61 के अधीन उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है अन्य किसी दुर्व्यवहार के लिये नहीं। मेरी राय में यह व्यवस्था संविधान की एक बड़ी दोषपूर्ण व्यवस्था है।

मेरी दूसरी आपत्ति है अनुच्छेद 68(2) के बारे में। इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। उस दल के हित में जिसने राष्ट्रपति को अधिकारारूढ़ कराया हो, राष्ट्रपति यह कर सकता है कि अपनी पदावधि की समाप्ति से कुछ माह पूर्व अपने पद से इस्तीफा दे दे और पूरे पांच साल की दूसरी अवधि के लिये वह फिर से अपने को निर्वाचित करा ले चाहे आने वाले चुनाव में उसका दल हार भले ही जाये।

फिर अनुच्छेद 75 के अधीन राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है। यहां यह साफ-साफ नहीं कहा गया है कि बहुमत प्राप्त दल का नेता ही प्रधान मंत्री होगा और यह भी नहीं कहा गया है कि वह लोक-सभा का निर्वाचित सदस्य होगा। यदि उपबंध के शब्दार्थ पर ही चला जाये तो किसी ऐसे व्यक्ति को भी प्रधान मंत्री बनाया जा सकता है जो लोक सभा का सदस्य नहीं है। लिपिबद्ध संविधान में यह बात रूढ़ियों के लिये नहीं छोड़ी जानी चाहिये थी क्योंकि रूढ़ियों का अभी यहां विकास नहीं हो पाया है।

128, 358, 75 (2) तथा अन्य कई अनुच्छेदों में ऐसे उपबंध रखे गये हैं जिनसे किसी उच्चाकांक्षी राजनीतिज्ञ को डिक्टेटरी शक्तियां अपने हाथ में लेने का मौका मिल सकता है और संविधान के शब्दार्थों पर चलते हुए वह ऐसा कर सकता

है क्योंकि संविधान का निर्वचन तो किया जायेगा उसमें रखे गये शब्दों के आधार पर न कि उसमें रखे गये निहित किसी अव्यक्त आशय के आधार पर। यह सम्भावना कि एक सदाचारी डिक्टेटर शक्ति पाकर बिगड़ जायेगा, अपने वर्तमान नेताओं के सम्बन्ध में एक दूर की बात भले ही हो सकती है पर ऐतिहासिक दृष्टि से अमर होने पर भी ये लोग शरीरत: सदा तो अमर नहीं बने रहेंगे। संविधान में उक्त बात का ख्याल नहीं किया गया है। हमारे वर्तमान ने दरअसल हमें गुमराह कर दिया है। हमें यह समझना चाहिये था कि अपना संविधान अपने वर्तमान नेताओं के उठ जाने के बाद भी बना रहेगा। इस बात को बचाने के लिये कि डिक्टैटरी का प्रादुर्भाव न हो हमने कोई व्यवस्था नहीं की है। एक व्यक्ति के हाथ में इतनी विस्तृत शक्तियां देने में, चाहे वह व्यक्ति कितना भी महान क्यों न हो, मुझे बड़ी आशंका है।

अब मैं उन उपबंधों को लेता हूं जो अल्प संख्यकों के सम्बन्ध में रखे गये हैं। आज कल सिखों के जनसमुदाय की क्या भावना है इसे जानने का शायद आपको कौतूहल हो। स्वातंत्र्य के लिये क्या-क्या त्याग लोगों ने किये हैं इसका अगर सिंहावलोकन किया जाये तो सिख अपने कृतित्व पर गौरव का अनुभव कर सकते हैं। सन् 1872 के प्रसिद्ध कुलका विद्रोह में 98 सिख तोप से उड़ा दिये गये थे। 1907 में सरदार अजित सिंह और अन्य कई सिखों ने आन्दोलन में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था। सन् 1912-16 के गदर आन्दोलन के दिनों में कामागाटा मारू और अन्य जहाजों से लाये गये क्रांतिकारियों के आ जाने से आन्दोालन ने बड़ा काफी ज़ोर पकड़ लिया था। इन जहाज़ों से आये क्रांतिकारी अधिकतर सिख थे जो देश के लिये प्रसन्नता पूर्वक फांसी के तख्तों पर लटक गये। सन् 1919 में मार्शल ला के ज़माने में भी सिखों ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध खुला विद्रोह किया था और बड़ी यातनायें झेली थीं। इसमें शक नहीं कि गुरुद्वारा आन्दोलन गुरुद्वारों में धार्मिक सुधार करने के उद्देश्य से ही संगठित किया था पर इसका राजनीतिक महत्व भी कम नहीं था क्योंकि अपने महान त्याग और कठोर नियंत्रण के द्वारा सिखों ने शासकों की शान को जनता की निगाह में बहुत गिरा दिया था।

सन् 1937 में अकाली दल ने कांग्रेस के साथ मेल किया और चुनाव में राष्ट्रीय कार्यक्रम के आधार पर युनियनिस्ट दल के विरुद्ध जिसने कि नौकरशाही से गठबंधन कर रखा था इनको जीत मिली। कांग्रेस के साथ उन का यह मेल और भी मजबूत हो गया होता पर चूंकि एक सम्मिलित मोर्चा बनाने के उद्देश्य से कांग्रेस मुस्लिम लीग से मेल बढ़ाने और उसे खुश करने में लग गई इस लिये ऐसा न हो सका। सिखों को आशंका इस बात की थी कि देश को स्वतंत्र करने की फिक्र में कांग्रेस कहीं उनके प्रदेश को मुसलमानों को न सौंप दे और वह सदा के लिये उनकी अधीनता में पड़ गये जाये। इन आशंकाओं से प्रेरित होकर सिख समाज के एक वर्ग ने अपना एक स्वतंत्र कार्यक्रम बना लिया। किन्तु इसके बाद भी, इस अल्प समुदाय ने अपने निजी सामाजिकता को सुरक्षित रखते हुए, समझौते की जो बातचीत हुकूमत के साथ सन् 1942, 1945 और 1946 में चली उसमें ईमानदारी के साथ सदा कांग्रेस को अपना समर्थन दिया।

कैबिनेट मिशन की योजना सिखों के लिए समुचित और न्यायपूर्ण नहीं थी और इस बात को कांग्रेस की कार्य समिति ने भी 25 जून सन् 1946 के अपने प्रस्ताव में स्वीकार किया था। सिखों को उस योजना से बड़ा आक्रोश हुआ और प्रान्तिक प्रतिनिधि

[सरदार हुकम सिंह]

मण्डल ने 5 जुलाई सन् 1946 के अपने प्रस्ताव द्वारा संविधान-सभा का बहिष्कार किया जबकि मुस्लिम लीग ने इसे स्वीकार किया। कांग्रेस कार्यसमिति ने 10 अगस्त सन् 1946 की अपनी बैठक में सिखों से इस बात की अपील की कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और संविधान सभा में शामिल हों। कांग्रेस कार्य समिति ने सिखों को यह आश्वासन दिया कि 'कांग्रेस उनकी वाजिब शिकायतों को दूर करने में और उनके समुचित हितों के रक्षार्थ पर्याप्त परिमाण देने में उनको हर तरह से सहायता देगी।' इस आश्वासन पर सिखों ने फौरन अपने फैसले को बदल दिया और सिख प्रतिनिधियों को यह आदेश किया कि संविधान-सभा में मौका आने पर वह अपने लिये परिमाण का प्रश्न उठावें। उन्हें यह आशा थी कि कांग्रेस 10 अगस्त सन् 1946 के अपने आश्वासन के अनुसार तथा सन् 1929 के वचन के अनुसार सिखों की मांग का समर्थन अवश्य करेगी। उस दिन से सिखों ने कांग्रेस के उद्देश्य को अपना उद्देश्य बना लिया और उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करना शुरू कर दिया। उसके बाद फिर 6 जनवरी 1947 को कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना पर ब्रिटिश हुकूमत का जो भाष्य था उसे स्वीकार कर यह स्पष्ट कर दिया कि पंजाब में सिखों के जो अधिकार हैं उन पर कोई आघात नहीं पड़ने पायेगा। फिर आगे चल कर 8 मार्च सन् 1947 को कांग्रेस कार्यसमिति ने सिखों को यह आश्वासन दिया कि "उनके हितों की रक्षा के लिए जो भी कारवाई करनी आवश्यक होगी उसके लिए कांग्रेस सिख प्रतिनिधियों से परामर्श करती रहेगी ताकि उन को सहयोग दे सके।"

कांग्रेस बार-बार यही घोषित करती रही है कि सभी अल्पसंख्यक वर्गों को समुचित परिमाण दिये जायेंगे। किसी तरह के भी परिमाण को पाकर सन्तुष्ट होने पर मुसलमान राजी नहीं थे और वह अपने लिये पृथक प्रदेश की मांग करते रहे। उनको पाकिस्तान मिल गया और अब उनको कोई शिकायत नहीं हो सकती है। आंग्ल-भारतीय समुदाय को भी पर्याप्त परिमाण दिये गये हैं और उनको भी कोई शिकायत नहीं हो सकती है। पारसी और ईसाई शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से यहां के अन्य समुदायों से कहीं समुन्नत हैं और उन्होंने यह घोषित कर दिया है कि वह किसी तरह का परिमाण पाना नहीं चाहते हैं। परिमाणों की मांग केवल सिख समुदाय ही करता रहा है और उसने बार-बार इस बात का आग्रह किया है, अनुरोध किया है, कि उसे परिमाण दिये जायें पर उनकी मांग का कतई कोई ख्याल नहीं किया गया। वह यह नहीं समझ पाते हैं कि आखिर उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया गया है। बहुमत अल्पमत को दबा सकता है उसे सता सकता है पर इन तरीकों से वह उसमें सन्तोष की भावना तो कभी नहीं ला सकता है।

पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को जब उठाया गया तो सिखों ने खुशी से इसे मान लिया। जनसंख्या के आधार पर स्थान रक्षण की व्यवस्था भी उठा दी गई और इसमें भी सिखों ने आपका साथ दिया पर सेवाओं के सम्बन्ध में आर्थिक परिमाण पाने की मांग को सिखों ने स्वेच्छा से कभी नहीं छोड़ा।

अगर छानबीन की जाये तो निस्सन्देह उनकी यह मांग एक नगण्य बात ही सिद्ध होगी किन्तु यह मांग एक ऐसी बात है जिससे बहुमत के सद्भाव की परख

हो जाती है। यह कहा गया है कि धर्म तथा प्रजाति के आधार पर किसी वर्ग को अल्प संख्यक मानना हमारे लिये लज्जा और कलंक की बात होगी। पर संविधान में इसी आधार पर ईसाई समाज को परिमाण दिये गये हैं। सरकार के स्वयं अपने प्रकाशनों के अनुसार इस समाज को धर्म एवं प्रजाति के आधार पर एक अल्पसंख्यक वर्ग माना गया है। हमें यह कहा गया है कि सेवाओं के सम्बन्ध में सिखों की जो मांग है उसके लिये अगर कोई प्रविष्टि रखी जाती है तो इससे संविधान कुरूप हो जायेगा। पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों और ऐंग्लो इंडियनों के लिये इसी तरह की प्रविष्टि रखी गई है और इससे संविधान का सौदर्य नहीं नष्ट हो पाया है। सिख समुदाय की समूची अर्थ व्यवस्था निर्भर करती थी कृषि और सेना सम्बन्धी नौकरियों पर। हमारी सारी जमीन छूट गई पाकिस्तान में और सेना-सवाओं में हमारा जो अनुपात था वह भी देश विभाजन के बाद से धीरे-धीरे रोजाना कम होता जा रहा है।

सिखों की मांगें बहुत साधारण हैं। वह कोई बड़ी मांग आपसे नहीं कर रहे हैं। वह चाहते थे कि पंजाबी भाषियों का एक पृथक प्रान्त बना दिया जाये। उनकी यह मांग नामंजूर कर दी गई। उनकी यह मांग कोई साम्प्रदायिक मांग नहीं थी बल्कि अपने लिये वह एक अलग प्रदेश की मांग कर रहे थे। पर प्रान्त का बहुसंख्यक समाज इसके इतना विरुद्ध हो गया कि उसने यहां तक कह डाला कि पंजाबी तो उनकी मातृभाषा ही नहीं है। बहुसंख्यक समुदाय की इस उग्र नीति के कारण आज पंजाबी जबान खतरे में पड़ गई है। आन्ध्र को एक पृथक प्रान्त बनाने की बात प्राय: पक्की हो गई हे। अन्य प्रदेश वालों की मांगों पर भी यहां ध्यान दिया गया है। पर उत्तरी भारत वालों की मांग पर आज विचार भी नहीं करना चाहते हैं। सिखों की दूसरी मांग यह थी कि सेवाओं में उनको समुचित जगह देने की बात को ध्यान में रखा जाये पर उनकी यह मांग भी नामंजूर कर दी गई है।

श्री खाण्डेकर ने आज यह कहा है कि सिखों में अस्पृश्यता है ही नहीं। उन का यह भी कहना है कि अनुसूचित जातियों की जगहें सिखों को दे गई हैं। उनकी इन बातों के बारे में मैं संक्षेप में कुछ कहना चाहता हूं। इसमें शक नहीं कि सिख धर्म के अनुसार कोई भी अस्पृश्य नहीं है। पर आप जरा इस बात पर तो विचार कीजिये। एक किसान के दो लड़के हैं और दोनों ही अछूत हैं जिनमें से एक सिख धर्म को अपना लेता है। अब मैं पूछता हूं कि सिख धर्म को अपनाने वाले अछूत की केवल इसलिये उपेक्षा करना क्या ठीक है कि उसने अपना धर्म बदल दिया है। ऐसा करना क्या उसके प्रति धर्म के आधार पर विभेद बरतना नहीं है? मेरा ख्याल है कि इस अन्याय को रोकने के लिये ही यह व्यवस्था की गई है और इसको लेकर अनुसूचित जातियों को कोई शिकायत नहीं होनी चाहिये। आपने यह भी कहा कि अनुसूचित जातियों के लिये रखी गई जगहों में से सिखों को भी जगहें दी गई हैं। उनकी इस बात को मैं नहीं समझ सका हूं। क्योंकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं उनकी आबादी के हिसाब से। अगर कोई जाति अनुसूचित जाति में शामिल कर ली गई है तो अनुसूचित जातियों की आबादी भी बढ़ जायेगी और उसी हिसाब से उनको जगहें दी जायेंगी। फिर ऐसी हालत में कहना कहां तक ठीक है कि अनुसूचित जातियों के लिये रखी गई जगहों में से सिखों को जगहें दी जा रही हैं?

[सरदार हुकम सिंह]

ऐसी हालत में, जैसा कि मैं कह चुका हूं, सिखों का निराश होना सर्वथा स्वाभाविक है। वह यह महसूस करते हैं कि उनके साथ भेदभाव का बर्ताव किया गया है जो उनके हितों के प्रतिकूल है। यहां यह गलतफहमी न होनी चाहिये कि सिख इस संविधान से राजी हैं। इसके विरुद्ध मैं अपना विरोध व्यक्त करना चाहता हूं। इस ऐतिहासिक लेख्य पर मेरा समुदाय कभी अपनी सहमति नहीं दे सकता है।

अब मैं आता हूं सारी शक्तियों को केन्द्रीय शासन में निहित रखने के प्रश्न पर। गत तीस वर्षों से यहां प्रान्तों को अधिकाधिक स्वातंत्र्य देने की नीति को ही क्रियात्मक रूप देने का प्रयास होता आया है। ऐसा करने का समुचित कारण है। यह देश एक विशाल देश है; यहां के प्रदेश तरह-तरह के लोगों से आबाद हैं जिन की भाषायें भिन्न हैं; सामाजिक रहन-सहन भिन्न हैं। यहां आर्थिक विकास भी सर्वत्र एक सा नहीं हुआ है। इन सब कारणों से समूचे देश में एकरूपता लाना असम्भव सा है। पुराने शासन में भी यहां जब भी शक्तियों को एक जगह केन्द्रित रखने का प्रयास किया है तो उसका परिणाम यह हुआ है कि यह व्यवस्था अपने ही भार से टूट गई है। यहां तो प्रदेशों को स्वतंत्र रख कर, उन पर दायित्व आरोपित कर के और उनके स्वेच्छापूर्ण सहयोग को प्राप्त करके ही समूचे राष्ट्र को बलवान बनाया जा सकता है। पर अपने संविधान का प्रत्येक अनुच्छेद ही स्थानीय स्वातंत्र्य को कम करता है और प्रान्तों को सर्वथा दायित्वशून्य बनाता है।

संक्षेप में कहना यह है कि अपना यह संविधान व्यक्ति को कोई भी ऐसा अधिकार नहीं देता है जो सारवान हो। केवल मीठे वायदे और कोरी सदिच्छायें ही इस संविधान द्वारा हमें प्राप्त होती हैं। मूलाधिकारों को इसमें रखा जरूर गया पर वह भी सर्वथा विधान मण्डल की मर्जी पर छोड़ दिया गया है। काम पाने के अधिकार की इसमें कोई गारन्टी नहीं दी गई है। बुढ़ापे के लिए परवरिश पाने की इसमें कोई व्यवस्था नहीं की गई है और न बीमार और अशक्त की परवरिश की इसमें कोई व्यवस्था की गई है। इसमें तो नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिये भी कोई उपबंध नहीं रखा गया है। इसमें अल्पसंख्यकों की और खास करके सिखों की तो सर्वथा उपेक्षा की गई है। प्रान्तों की स्थिति नगरपालिका निकायों की सी कर दी गई है। साधारण नागरिक को तो राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया है और राष्ट्रपति को मुगल सम्राट की सुविधायें दी गई हैं ताकि दिल्ली में बैठे-बैठे पूरी शान और तड़क भड़क के साथ वह देश पर हुकूमत करता रहे। संविधान में इस बात की काफी गुंजायश है कि कोई भी उच्चाभिलाषी राष्ट्रपति अपने को यहां का सर्वेसर्वा घोषिता कर सकता है भले ही दिखावटी तौर पर वह संविधान के अधीन ही काम करता समझा जायेगा। जनता की आर्थिक कठिनाइयां जब तक हल नहीं की जाती हैं, यहां असन्तोष और अशान्ति बढ़ती ही जायेगी। इन सब बातों का परिणाम यही होगा कि प्रशासन को फास्सिस्टी राज्य कायम करने में सुविधा मिलेगी जिसकी संविधान में काफी गुंजाइश रखी गई है। ईश्वर ऐसी भयावह स्थिति से हमारी रक्षा करे।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, कई पूर्व वक्ताओं ने यहां मसौदा समिति को तथा उसके अध्यक्ष को इस संविधान पर बधाई दी है। मैं भी उसमें उनका साथ दूंगा।

अनुसूचित जातियों के हिसाब से तो उनकी बात उसी दिन पूरी हो गई जब डॉ. अम्बेडकर मसौदा समिति के अध्यक्ष चुन लिये गये। अनुसूचित जातियों के हितों के वह हमेशा से ही एक बड़े समर्थक रहे हैं। उन्हीं को यहां मसौदा समिति का अध्यक्ष चुना गया। जब से आप अध्यक्ष चुने गये हैं अनुसूचित जातियों के अन्य सदस्यों को इस काम में योगदान देने की कोई विशेष लालसा नहीं रह गई। यह इस लिये नहीं कि वह योगदान देने में अनिच्छुक थे बल्कि इसलिये कि वे जानते थे कि जब डॉ. अम्बेडकर जैसा उनका परम शुभैषी उनके हितों को देखने के लिये वहां है ही तो उनको चिन्ता करने की जरूरत ही क्या है। वह जानते थे कि डॉ. अम्बेडकर उनके हितों की रक्षार्थ समुचित प्रावधान संविधान में रखेंगे। उनके मसौदा समिति का अध्यक्ष निर्वाचित होने से यह प्रमाणित हो गया कि यद्यपि वह अनुसूचित जाति के सदस्य हैं पर मौका दिये जाने पर वह कितनी महत्ता प्राप्त कर सकते हैं। जिस कार्य-दक्षता और सुयोग्यता के साथ उन्होंने संविधान-निर्माण का काम पूरा किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि मौका दिये जाने पर वह कितना महत्वपूर्ण काम सम्पादित कर सकते हैं। अनुसूचित जातियों को अयोग्य समझा जाता है पर मेरा ख्याल है कि उनके बारे में लोगों की जो ऐसी धारणा है वह अब दूर हो जायेगी। यदि अवसर दिया जाये तो वह भी दूसरों से कम योग्य न निकलेंगे। अनुसूचित जातियों की ओर से जो महान काम उन्होंने पूरा किया है उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। बात यह नहीं है कि अनुसूचित जातियों की शक्ति ने इन को मसौदा समिति का अध्यक्ष बनाया बल्कि बहुमत प्राप्त दल की सद्भावना के सहारे ही उन्हें यह महत्वपूर्ण पद प्राप्त हो सका है और एतदर्थ हम बहुमत प्राप्त दल के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस संविधान को मैं एक ऐसा संविधान मानता हूं जिससे जनसारण को भलाई और समुन्नति प्राप्त हो सकती है। इस संविधान को हम जनसाधारण का संविधान कह सकते हैं। इस संविधान के द्वारा जमींदारों, उद्योगपतियों और पूंजीपतियों के अधिकारों की अपेक्षा कहीं अधिक रक्षा प्राप्त होती साधारण नागरिक के अधिकारों को। देश के साधारण नागरिकों की स्थिति समुन्नत करने में यह संविधान काफी सहायक हो सकेगा। यद्यपि डॉ. अम्बेडकर समाज के उच्च स्तर पर अवस्थित वर्ग से सम्बंध रखते हैं पर साधारण नागरिक की स्थिति से होकर ही वह इस स्तर पर पहुंच सके हैं और यही कारण है कि संविधान में साधारण नागरिकों के अधिकारों का इतना ख्याल रखा गया है। जनसाधारण के हितों को वह भूल नहीं गये हैं और उन की समुन्नति के लिये जो कुछ हो सका है उन्होंने किया है। 14 से 17 तक के अनुच्छेदों द्वारा अनुसूचित जातियों की स्थिति समुन्नत करने में पर्याप्त सहायता मिल जाती है। अनुच्छेद 14 इस बात का विश्वास दिलाता है कि कानून के सामने सभी नागरिक समान समझे जायेंगे। यह अनुच्छेद एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। अब तक कानून के सामने सभी नागरिक बराबर नहीं समझे जाते थे। अनुच्छेद 15 में यह कहा गया है किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति आदि के आधार पर कोई विभेद राज्य नहीं करेगा। ऐसे संविधान की देश को बड़ी ज़रूरत

[श्री एस. नागप्पा]

थी। अनुच्छेद 16 के द्वारा सबको अवसर समता प्राप्त होती है। इसमें शक नहीं कि अब तक लोगों को अवसर देने की गुंजाइश ही देश में नहीं थी पर मैं आशा करता हूं कि भविष्य में—यद्यपि मेरे ख्याल से तथा संविधान की निगाह में सभी समान हैं—अनुसूचित जातियों को औरों की अपेक्षा अधिक अवसर दिये जायेंगे।

बहुसंख्यक समुदाय ने हमारे इस अनुरोध को—मैं इसे मांग नहीं कहूंगा—कि अभी कुछ वर्षों तक विधान मण्डलों के लिये हमें स्थान रक्षण प्राप्त रहे, मान लिया है। उनकी इस उदारता और विशाल हृदयता के लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। स्थान-रक्षण सम्बन्धी मांग को हम खुशी-खुशी छोड़ देते अगर हमें भी वही हैसियत मिली रहती जो अन्य अल्पसंख्यकों की है, अगर आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से हमारी भी वही स्थिति होती जो अन्य अल्पसंख्यकों की है। पर दुर्भाग्यवश हम न केवल इन बातों में ही औरों से पिछड़े रहे हैं जबकि अछूत होने का कलंक भी हमारे साथ सदा लगा रहा है। बहुसंख्यक समुदाय के हम कृतज्ञ हैं कि उसने आज उस अन्याय को समझा जो शताब्दियों से हम पर वह करता आ रहा है। उन्होंने अब संविधान में एक उपबंध रखकर अस्पृश्यता को उठा दिया है जो सौजन्य की बात है। अस्पृश्यता को हमने उठा अवश्य दिया है पर संविधान निर्माताओं से तथा उन लोगों से जो 26 जनवरी सन् 1950 के बाद उसको अमल में लायेंगे मैं यह अपील करूंगा कि वह इस बात की कोशिश करें कि हर तरह से अस्पृश्यता यहां से उठ जाये। जब आपने इस बात की प्रतिज्ञा की है कि दस साल के अन्दर देश के सभी लोगों को आप एक समान स्तर पर ला देंगे तो इसको पूरा करने की जिम्मेदारी सबसे ज्यादा आप पर है। आशा है आपकी इस उदारता और सद्भावना की सहायता से हम सब अवश्य उसी स्तर पर पहुंच जायेंगे जो देश के अन्य वर्गों को प्राप्त है। हम सब अपनी ओर से भी इस बात का यथाशक्य प्रयास करेंगे कि यथाशीघ्र हम अभीष्ट स्तर पर पहुंच जायें।

अपने संविधान की दूसरी विशेषता यह है कि बेगार अर्थात् बलात श्रम को वर्जित कर दिया गया है। यह एक ऐसी ज्यादती थी जिसका यहां के गरीब एक अरसे से शिकार हो रहे थे। अनुच्छेद 23 के द्वारा अब इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। अनुच्छेद 31 से मैं सहमत नहीं हूं जिसके द्वारा सम्पत्तिवानों को सम्पत्ति के अवाप्तिकरण का अधिकार दिया गया है। मैं यह नहीं कहता कि देश के सभी लोगों को निर्धन बना दिया जाये पर जब आप समस्त राष्ट्र की समुन्नति के लिये किसी सम्पत्ति विशेष को उसके मालिक के हाथ से लेते हैं तो उसके लिए मुआवज़ा देने की व्यवस्था न रखनी चाहिये। अगर आप उसके लिए मुआवज़ा देना ही चाहते हैं तो उसकी भी एक हद होनी चाहिये। पर इस अनुच्छेद में इसके लिये कोई हद नहीं मुकर्रर की गई है। अगर पूंजीवादी शासन यहां अधिकार में आ जायेगा तो वह मुआवजे में जो भी चाहे दे सकता है, यहां तक कि जो सम्पत्ति शासन ने राष्ट्रीय काम के लिए ली है उसके मूल्य से कहीं अधिक रकम मुआवज़े में दे सकता है। यहां "ठीक-ठीक मुआवज़ा" (just compensation) देने की बात कही गई है पर जो रकम आपके हिसाब से ठीक से हो सकती है उसे हो सकता है कि दूसरे लोग ठीक न मानें। इस बात को

मैं जानता हूं कि इस संविधान से पूंजीवादी शासन के अस्तित्व में आने की कत्तई कोई संभावना नहीं है। जब सभी वयस्कों को मताधिकार दिया गया है तो यह अनिवार्य है कि देश की साधारण जनता का ही यहां शासन रहेगा। भले ही यह बात आज न हो पर वयस्क मताधिकार की व्यवस्था में आगे चलकर जनसाधारण का ही यहां शासन होगा। उन्हीं लोगों के हाथ में शासन प्रबंध रहेगा, यह लाजिमी है। फिर भी, इस बात की काफी गुंजाइश है कि यहां इस अन्तर्वत काल में सम्भवत: पूंजीवादी शासन अधिकारारूढ़ रहे। निदेशक सिद्धान्तों में यह बात जरूर कही गई है कि देश को तथा प्रान्तीय शासनों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि श्रमजीवियों को अधिक से अधिक पारिश्रमिक मिले। पूंजीपतियों, उद्योगपतियों और बड़े-बड़े भूस्वामियों के शोषण से उन्हें बचाने की पर्याप्त व्यवस्था संविधान में की गई है और मेरा ख्याल है कि इस व्यवस्था से देश को अवश्य लाभ पहुंचेगा।

इस देश में निरक्षरों की संख्या बहुत अधिक है और संविधान ने अनुच्छेद 45 के द्वारा इस बात की व्यवस्था की है कि 14 वर्ष से नीचे की आयु का प्रत्येक बालक या बालिका को साक्षर अवश्य बना दिया जाये। 14 साल से कम उम्र वालों को सरकारी खर्च पर शिक्षा दी जायेगी। मजदूरों और गरीबों के लिए यह एक बड़ी अच्छी बात है। इस संविधान ने अनुसूचित जातियों को न केवल यही रक्षण दिया है कि विधान-मंडलों में उनके लिए स्थान सुरक्षित रहेंगे बल्कि उन्हें अन्य रक्षण भी इसने दिये हैं। नौकरियों में भी इनके लिए रक्षण की व्यवस्था की गई है और राज्य की नौकरियों में नियुक्ति करते समय इन लोगों का ध्यान रखा जायेगा अगर इनमें से काफी संख्या में योग्य आदमी इसके लिए आते हैं। मुझे आशा है कि इस अनुच्छेद के द्वारा अनुसूचित जातियों को नौकरियों में अपना समुचित अंश पाने में पर्याप्त सहायता मिलेगी और अक्षरश: इस अनुच्छेद पर उसी भावना से अमल किया जायेगा जिससे यहां इसे स्थान दिया है। यह देखना कि इस पर ठीम-ठीक अमल हो कमोबेशी निर्भर करता है उन लोगों पर जिन्होंने संविधान की रचना की है। संविधान जिस भावना से बनाया गया है अगर उस पर उसी भावना से अमल नहीं किया जाता है तो वह एक निष्प्राण कोरा कागजी संविधान ही रह जायेगा और वह कभी अमल में न आ पायेगा। इसको अमली बनाने का का अधिकतर उन लोगों पर निर्भर करता है जो इसे कार्यान्वित करते हैं।

अब मैं राज्यपालों के निर्वाचन की बात को लेता हूं। जब हम लोग इस संविधान-सभा में पहुंचे नहीं थे उस समय सब जगह यही चर्चा थी कि निर्वाचित राज्यपाल होने चाहिएं। उस समय मैंने यह सोचा कि अगर राज्यपालों का निर्वाचन होता है तो अनुसूचित जातियों के आदमियों के राज्यपाल चुने जाने की सम्भावना बहुत ही कम रहेगी क्योंकि राज्यपाल का चुनाव सारे प्राप्त द्वारा होगा। प्रान्त के बहुसंख्यक लोगों के अनुसूचित जाति के पक्ष में होने पर भी हो सकता है कि कुछ लोग उनके खिलाफ हों—इसलिये नहीं कि वह उनको चाहते नहीं बल्कि इसलिये कि वह खुद राज्यपाल बनना चाहते हों—और उनका विरोध करें। किन्तु अब राष्ट्रपति को राज्यपालों को नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया है। इससे इसका पूरा भरोसा हो जाता है कि कुछ अनुसूचित जातियों के लोग भी अवश्य राज्यपाल बनाये जायेंगे।

अब मैं आता हूं लोक सेवा आयोग सम्बन्धी अनुच्छेद की ओर। मैं इस अनुच्छेद से सहमत नहीं हूं और खास करके उम्र वाले सवाल से। अनुच्छेद के अनुसार

[श्री एस. नागप्पा]

65 साल ही आयु के सदस्य आयोग में काम कर सकते हैं। किसी भी सरकारी नौकर के लिये इस उम्र तक नौकरी में रखना बहुत ज्यादा है। संघ लोक सेवा आयोग के बारे में यह बात खास तौर से लागू होती है। यदि वहां सदस्यगण 65 साल की आयु तक काम करते हैं तो वहां के काम में बड़ी ढिलाई आ जायेगी। आज भी अभ्यर्थी काम के सिलसिले में आयोग के सामने आते हैं और उनसे सब तरह की पूछताछ और परख कर लेने के बाद भी छः सात महीने तक उन्हें प्रतीक्षा में रखा जाता है और आयोग की ओर से उनको कोई जवाब नहीं मिलता है। एक लम्बे अरसे तक वह प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं। ऐसा इस लिये होता है कि आयोग में बूढ़े लोग हैं जिन में चुस्ती नहीं है। न वह देश को समझ सकते हैं और उस गति से काम कर सकते हैं। जिससे उनको वहां करना चाहिये। इसका परिणाम यह होता है कि वहां काम में ढिलाई आ जाती है। इसलिये मैं अनुच्छेद से सहमत नहीं हूं जिसमें आयोग के सदस्यों को 60 साल की उम्र तक काम करने की बात कही गई है। फिर अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि आयोग के सदस्य के लिये यह जरूरी होगा कि वह दस साल तक सरकार की अधीनता में काम कर चुका हो। मैं आपको यह बता दूं कि ऐसी सूरत में प्रान्तीय आयोग या केन्द्रीय आयोग के लिये अनुसूचित जाति का सदस्य पाना पड़ा मुश्किल होगा। अच्छा होता कि इसके बारे में कुछ ऐसा उपबंध रखा जाता कि इन गरीब आदमियों के प्रतिनिधि भी केन्द्रीय और प्रान्तीय लोक सेवा आयोग में सदस्य के रूप में आ सकते।

जहां तक कि कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक करने का सवाल है, संविधान ने इस सिद्धान्त को स्वीकार अवश्य कर लिया है। अब तब कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के प्रकार्यों को पृथक् नहीं किया गया था और अक्सर एक ही प्राधिकारी दोनों कामों को करता था। इएस व्यवस्था से सबसे ज्यादा तकलीफ पहुंचती थी गरीबों को। अक्सर होता यह था कि जिस प्राधिकारी को दोनों प्रकार्यों के अधिकार दिये जाते थे वह इन अधिकारों का जनता की भलाई के लिये सदुपयोग न करके दुरुपयोग ही करते थे। मैं यह अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूं। संविधान ने अब प्रकार्य विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। कांग्रेस का भी यही नारा रहा है। वह भी इसी बात का आन्दोलन करती रही है कि कार्यपालिका तथा न्यायपालिका सम्बन्धी शक्तियां एक प्राधिकारी को न सौंपी जायें। दोनों प्रकार्यों का भार पृथक पृथक प्राधिकारियों को देना चाहिये। मुझे इस बात का अभिमान है कि हमारे मद्रास प्रान्त ने इस सिद्धान्त पर अमल करना भी शुरू कर दिया। संयुक्त प्रान्त ने भी ऐसा ही किया है। आशा करता हूं कि शेष प्रान्त भी इस सिद्धान्त पर अमल करेंगे और यथाशीघ्र प्रकार्य-विभाजन कर देंगे ताकि गरीब जनता का भला हो सके जो शासन से न्याय पाने की आस रखती है।

अब मैं लेता हूं अनुच्छेद 335 को जिसमें अनुसूचित जातियों के दावों पर और खास करके नौकरियों के बारे में जो उनकी मांग है उन पर विचार किया गया है। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि सरकारी नौकरियों के लिये नियुक्ति करते समय उनके दावों को ध्यान में रखा जायेगा। ऐसा न होना चाहिये कि उनके

दावों पर केवल ध्यान ही दिया जाता रहे, बल्कि होना यह चाहिये कि उनकी मांगों को स्वीकार किया जाये। इस अनुच्छेद को मैं संविधान का एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद मानता हूं।

मुझे इस बात की खुशी है कि अनुच्छेद 391 द्वारा भाषा के आधार पर पृथक प्रान्त बनाने की व्यवस्था की गई है और किसी भी समय इस अनुच्छेद के अनुसार पृथक प्रान्त अस्तित्व में लाये जा सकते हैं। मुझे इस बात की खुशी है कि कांग्रेस हाई कमान ने आन्ध्र प्रदेश को एक अलग प्रान्त बनाने की बात मान ली है और आशा है, अध्यक्ष महोदय, कि आप कृपा कर इस बात की चेष्टा करेंगे कि यथाशीघ्र यह प्रान्त अस्तित्व में आ जाये। आपने इसके लिये धार कमीशन को नियुक्त किया था। उस कमीशन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि आन्ध्र का एक भाग है जो रायल सीमा कहलाता है और एक भाग है जो सरकार कहलाता है। इन दोनों भागों के निवासियों में यह समझौता हो चुका है कि इनको प्रतिनिधान आबादी के आधार पर नहीं बल्कि क्षेत्र के आधार पर दिया जायेगा और हर जिले को बराबर प्रतिनिधान मिलना चाहिये पर अब यह हुआ है कि आबादी के आधार पर प्रतिनिधित्व देने की बात हुई है और यह व्यवस्था रायल सीमा प्रदेश वासियों के हित के प्रतिकूल पड़ती है। किन्तु अब भी सरकार प्रदेश वाले अपनी विशालहृदयता का परिचय देते हुए यह कह सकते हैं कि उनको प्रतिनिधान मिलना चाहिये एक लाख पर एक के हिसाब से ओर रायलसीमा वालों को 75 हजार पर एक के हिसाब से। अगर वह इस बात को मान लें तो रायलसीमा वालों को बड़ी मदद मिल जायेगी। इसमें शक नहीं कि सभा हमारे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुई यद्यपि इस बारे में दोनों प्रदेशों के निवासियों में एक समझौता हो चुका था। फिर भी हम मसौदा समिति के निर्णय को मानने को तैयार हैं। मसौदा समिति हमारी बात से सहमत नहीं हुई इसलिये कि वह किसी प्रदेश को इस आधार पर कोई प्रतिनिधान नहीं देना चाहती थी कि वह प्रदेश विशेष पिछड़ा हुआ है। किन्तु जब इसने देश के कतिपय वर्गों के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था इसी आधार पर की है कि वह लोग पिछड़े हुए हैं तो मैं नहीं समझता कि किसी प्रदेश विशेष को यही सुविधा क्यों न दी जाये जब कि वह पिछड़ा हुआ है। फिर भी मसौदा समिति के निर्णय को हम स्वीकार कर चुके हैं जोकि यह व्यवस्था हमारे लिये बड़ी कठोर होगी। अब तो सरकार प्रदेश वासियों पर ही निर्भर करना होगा पर मैं आशा करता हूं कि वह लोग हमारे अधिकारों को मान कर अपनी उदारता का परिचय देंगे और हमारे साथ न्याय करेंगे।

भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद 120क इस सभा के लिए एक बड़ी कठिन समस्या रहा है। संयुक्त प्रान्त से आये मित्रों का रुख बड़ा कठोर रहा है और वह इस बात पर अड़े हुए थे कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जाये और जिस दिन संविधान प्रवर्तन में आये उसी दिन से हिन्दी राज्य भाषा के रूप में प्रयुक्त की जाये। बड़ी कठिनाई के बाद दक्षिण भारत से आये सदस्य इन मित्रों को समझा पाये और इन्हें अपनी बात पर राजी किया। इन्होंने हमें 15 वर्ष की मुहलत देने की कृपा की। यह अवधि भी काफी नहीं है। मैं नहीं समझता कि दक्षिण भारत वाले 15 साल के अन्दर हिन्दी सीख जायेंगे और देवनागरी में औरों की तरह वह पढ़ने लिखने लग जायेंगे। लिपि के सम्बन्ध में हमें कोई विवाद नहीं है। किन्तु 15 साल के अन्दर हमारे प्रदेश वासी उस स्तर पर आ जायेंगे जिस पर संयुक्त प्रान्त वाले बन्धु उनको लाना चाहते हैं। इसका पता तो हमें बाद में ही चलेगा।

[श्री एस. नागप्पा]

जो भी हो उन्होंने इसके लिये कृपा कर 15 साल की अवधि हमें दे दी है। फिर यहां अंकों का प्रश्न भी एक जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। इस पर बहस मुबाहिसे में तीन दिन लग गये और तब कहीं जाकर हम इसके बारे में फैसला कर सके। यद्यपि इन अंकों को 'अन्तर्राष्ट्रीय अंक' ही कहते हैं पर अपने बन्धुओं को हमें यह समझाना पड़ा कि ये अंक पहले भारतीय अंक ही थे और अन्ततोगत्वा उन्होंने हमारी बात मान ली। हम दक्षिण भारत वासियों के लिए यह बड़े महत्व की बात है कि अंकों के बारे में हमारी बात यहां मान ली गई। इस भाषा के राज्य भाषा होने से हमें कठिनाई होगी क्योंकि इसे सीखना तो हमें पड़ेगा उत्तर भारत वासियों को नहीं। आशा करता हूं कि इस कथन के कारण हमारे उत्तर भारतवासी मित्र मुझे समझने में कोई गलती नहीं करेंगे।

मुझे इस बात की खुशी है श्रीमान कि संविधान-रचना का काम हम समाप्त कर चुके हैं। यह संविधान इसी 26 जनवरी से प्रवर्तन में आयेगा। मैं एक बार पुनः सदस्यों से इस बात की अपील करूंगा—क्योंकि अधिकतर इसे कार्यान्वित करने का काम यही लोग करेंगे—कि उन्हें सदा इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि इस पर उसी भावना से अमल किया जाये जिस भावना से इसकी रचना की गई है। ऐसा होने पर ही हमारा वह स्वप्न पूरा हो सकेगा जिसके लिये हमने यह संविधान बनाया है। ग्राम पंचायतों की स्थापना से, ग्रामोद्योग की स्थापना से तथा मद्यनिषेध को लागू करने से हमारे गरीब देशवासियों को बड़ी सहायता मिल सकेगी।

इस संविधान की एक अनूठी विशेषता यह है कि इस में कृषि-श्रमिकों के अधिकारों को मान्यता दी गई है। यद्यपि देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा अंश इन्हीं श्रमिकों से बना है और यहां की आबादी में इन्हीं का बाहुल्य है, यही लोग देश की अधिकांश सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं। पर इनके अधिकारों की उपेक्षा केवल इसलिए होती आई है कि यह लोग अपना संगठन करके आन्दोलन नहीं करते हैं और न हड़ताल करते हैं। देश की सम्पत्ति के वास्तविक उत्पादक यही लोग हैं फिर भी यहां इनकी उपेक्षा होती रही है। जब मैंने यहां इस आशय का संशोधन रखा था कि कृषि-श्रमिकों को भी श्रमिकों में शामिल किया जाये तो मसौदा समिति ने कृपा कर उसे स्वीकार कर लिया। यह बात मैं माननीय सदस्यों पर छोड़ता हूं कि इस संविधान को क्रियान्वित करते समय वह इस बात का ख्याल रखें कि कृषि-श्रमिकों के वाजिब दावों को मंजूर किया जाये। मैं इस संविधान का समर्थन करता हूं और माननीय मित्र श्री कामत की तरह नहीं उसका समर्थन करता हूं। उन्होंने तो इसका सीमित समर्थन ही किया है। मैं इसका पूर्ण समर्थन करता हूं बिना किसी शर्त को मन में रखे।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, संविधान के तृतीय पठन पर यह गत कई दिनों से बहस मुबाहिसा चल रहा है और इसके हर छोटे-मोटे अनुच्छेद पर यहां आज तीन साल तक बहस हो चुकी है। ऐसी सूरत में यहां कोई नई बात कहना किसी के लिए भी मुश्किल है। फिर भी सभा के समक्ष मैं जो बोलने के लिए खड़ा हो रहा हूं वह इस लिए नहीं कि मैं कोई नई बात कहने जा रहा हूं बल्कि इसलिए ऐसे पुनीत अवसर पर मानव हृदय प्रसन्नता, कृतज्ञता और श्रद्धा से ओत प्रोत हो जाता है और अपनी भावनाओं

को व्यक्त करने की एक स्वाभाविक लालसा मनुष्य में उत्पन्न हो जाती है। माननीय मित्र श्री सादुल्ला ने इस अवसर के भाषणों को शव-परीक्षण कहा है पर यह शव-परीक्षण नहीं है क्योंकि हम किसी ऐसी वस्तु का परीक्षण नहीं कर रहे हैं जो मृत है। इस अवसर पर हम यहां समवेत हुए हैं इस हेतु कि नवजात संविधान को हम अपनी शुभकामनाएं दें अपना आशीर्वाद दें क्योंकि हम यह चाहते हैं कि यह सफल हो, चिरस्थायी रहे और देशवासियों को सुखसमृद्धि दे सके।

इस अवसर पर सबके दिलों में सर्वोपरि यह भावना काम कर रही है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें जिनके नेतृत्व और महान त्यागों के फलस्वरूप आज हम देश को बन्धनमुक्त और स्वाधीन कर सके हैं। इस पुनीत अवसर पर स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, गोखले, तिलक, मोती लाल नेहरू, पंडित मालवीय एवं अन्य दिवंगत देश भक्तों को तथा बहुतेरे अन्य ज्ञात और अज्ञात शहीदों को हम श्रद्धा से स्मरण करते हैं जिन्होंने स्वातंत्र्य-संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दे दी है। किन्तु देश की स्वतंत्रता के लिये अभी अभी सर्वाधिक बलिदान दिया है हमारे शरणार्थी भाइयों ने जिन्हें अपने घर द्वार को छोड़कर पश्चिमी एवं पूर्वी पाकिस्तान से भारत आना पड़ा है। देश की स्वतंत्रता के लिये इन्हें अपना सब कुछ छोड़ना पड़ा है। यह हमारी चरम कृतघ्नता होगी अगर इस अवसर पर हम उनकी उपेक्षा करते हैं। न केवल इतना ही होना चाहिये कि हम इनकी उपेक्षा न करें बल्कि हमें इस बात की यथाशक्ति चेष्टा करनी चाहिये कि इन के दु:खों को दूर करने के लिये हमसे जो कुछ भी हो सके हम करें। यदि हम इनकी उपेक्षा करेंगे तो परमात्मा हमें कभी क्षमा नहीं कर सकता है। जब तक हम इस स्थिति में नहीं आ जाते हैं कि इनको यहां फिर से ठीक ठीक बसा दें, तब तक देश में हम ऐसा वातावरण नहीं पैदा कर सकते हैं जो संविधान को ठीक ठीक क्रियान्वित करने के लिए अपेक्षित है। मैं तो ऐसा महसूस करता हूं कि हमारी स्थिति इस समय उस मोर की तरह है जो अपने चमकीले सुन्दर पंखों को देखकर गर्व के मारे नाचने लगता है पर जब उसकी नज़र अपनी टांगों पर पड़ती है तो उनकी कुरूपता को देखकर वह रोने लगता है। स्वातंत्र्य प्राप्ति पर हमें प्रसन्नता अवश्य होती है पर जब हमें देश विभाजन की याद आती है और विशेष करके अपने विस्थापित बन्धुओं के कष्टों का ख्याल आता है तो हम यह अनुभव करते हैं कि इस स्वतंत्रता का हम पूर्ण उपभोग नहीं कर सकते हैं। इसलिये मैं यह कहूंगा कि इन विस्थापित बन्धुओं को इस स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये जो महान बलिदान करने पड़े हैं उसका हमें ख्याल रखना चाहिये और इनके लिये हमसे जो भी हो सके करना चाहिये। इनके पुनर्वास के प्रश्न को हमें सर्वोपरि मानना चाहिये।

यहां हर वक्ता ने डॉ. अम्बेडकर एवं उनके साथियों की जो प्रशंसा की है उसके वे लोग सर्वथा अधिकारी हैं। जब मैं इस संविधान सभा में पहले पहल आया था उस समय डॉ. अम्बेडकर के प्रतिकूल मेरे मन में एक बहुमूल्य धारणा थी जिसका कारण यह था कि बहत दिन पहले, अनुसूचित जातियों के लिये ब्रिटिश हुकूमत द्वारा स्वीकृत पृथक निर्वाचन की व्यवस्था के विरोध में जब महात्मा जी अनशन कर रहे थे उस समय डॉ. अम्बेडकर के व्यवहार से मुझे बड़ा दुख पहुंचा

[श्री जसपतराय कपूर]

था। उस समय समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा था कि महात्मा जी ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये डॉ. अम्बेडकर को आमंत्रित किया था पर उन्होंने यह कहा था कि अपने कामों में व्यस्त रहने के कारण एक या दो दिन तक अभी नहीं जा सकते हैं। इस बात से मुझे बड़ा दु:ख पहुंचा था। मैं नहीं जानता कि यह बात कहां तक सही है। पर अगर यह सही भी हो तो इन तीन वर्षों के अन्दर इन्होंने जो महान उपयोगी और देश-भक्तिपूर्ण काम किया है उसके लिए उनके प्रति मेरे हृदय में प्रशंसा और स्नेह की भावना पैदा हो गई है। उनके सम्बन्ध में मुझे जो कुछ भी सन्देह और शंका थी वह सब उनके प्रथम भाषण से दूर हो गया जो इन्होंने सभा में दिया था और आज मैं यह कह सकता हूं कि मैं उनको सर्वोत्तम देशभक्तों में मानता हूं। मैंने यहां हमेशा यही देखा है कि इन्होंने हर प्रश्न पर निर्माणात्मक दृष्टिकोण से ही विचार किया है। कई मौकों पर जब यहां गतिरोध की स्थिति आ गई थी आपने ऐसे ऐसे सुझाव पेश किये जिनसे सारा मतभेद जाता रहा और गतिरोध न होने पाया। आपने यहां सदा अवसर के अनुरूप काम किया है। हां, केवल एक मौके पर आप ऐसा न कर पाये जब कि अनुसूचित जातियों के लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था को उठाने पर आप सहमत न हो सके। मैं यही चाहता हूं कि आप इस व्यवस्था को उठाने पर राजी हो गये होते और तब मैं यह कह सकता था कि हर मौके पर इन्होंने अवसर के अनुरूप काम किया। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अब मैं ऐसा नहीं कर सकता हूं। पर जो भी हो सिवाय इस एक अपवाद के आपने जो अन्य महान काम किये हैं उन्हें हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना होगा।

श्री बी.एन. राव, श्री मुकर्जी एवं उनके सहायकों ने जो उपयोगी काम इस सम्बन्ध में किये हैं उसके लिए इन लोगों को भी धन्यवाद देना मैं नहीं भूल सकता हूं। दुनिया के विभिन्न भागों में क्या संविधान और क्या उपबंध प्रयोग में हैं इसके अनेकानेक उदाहरण से आपने सदस्यों को सदा अवगत रखा जिससे उनको बड़ी मदद मिलती रही।

अब हमने अपना काम पूरा कर दिया है। पारस्परिक सद्भावना और सहमति से तथा एक दूसरे को समझते हुए और आपस की मुहब्बत से ही हम आप इस काम को इस खूबी के साथ खत्म कर पाये हैं। किन्तु, अध्यक्ष महोदय, यह सब हो सका है केवल इसलिए कि आपकी अध्यक्षता में यह किया गया है। आपने यहां अद्भुत और असीम धैर्य का परिचय दिया है। हमेशा सदस्यों को आपका सौजन्य और सहयोग मिलता रहा है। आपने हमें अपने विचारों को व्यक्त करने की पूरी आजादी दी है। आपने न केवल कार्यवाही का यहां संचालन ही किया है बल्कि जब भी आपने यह समझा कि सभा गलत निर्णय करने जा रही है, आपने हस्तक्षेप भी किया है और जब जब आपने हस्तक्षेप किया है बात सुधर गई है। यही बात है कि हम एक ऐसा संविधान बना पाये हैं जो सर्वथा हमारे योग्य है और जो सभी सदस्यों से तथा देश के प्रत्येक नागरिक से समर्थन पाने का अधिकारी है।

इस संविधान की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्राय: सभी खण्ड सर्वसम्मति से स्वीकृति हुए हैं और उन लोगों ने भी इस पर सहमति दी है जिन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यत्र तत्र के किसी खण्ड से हो सकता है किसी को मत भेद हो पर कुल मिलाकर यह कहना होगा कि संविधान को सभा के सभी

सदस्यों का समर्थन प्राप्त है। मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करता कि सेठ दामोदर स्वरूप, प्रो. शाह तथा श्री लक्ष्मी नारायण साहू जैसे कुछ कभी न राजी होने वाले सदस्य हैं जिनको इससे मतैक्य नहीं है। ये ऐसे लोग हैं जिनको कभी समझाया नहीं जा सकता है क्योंकि जो लोग न समझने पर ही तुले हैं उनको किसी तरह नहीं समझाया जा सकता है। इसलिये इनके विरोध का हमें विशेष ख्याल नहीं करना चाहिए। जहां तक सेठ दामोदर स्वरूप का सम्बन्ध है, उनका कहना है कि चूंकि यह सभा वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है इसलिए यह देश का प्रतिनिधित्व करने वाला निकाय नहीं मानी जा सकती है। उनके इस मन्तव्य से हम भले ही सहमत न हों पर जहां तक उनका निजी सम्बन्ध है हमें यह मानना ही होगा और उनके मन्तव्य के अनुसार ही हमें मानना होगा कि वह यहां किसी निकाय या संस्था का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। मेरा ख्याल है कि वह, इस विश्वास से अपने को सुरक्षित समझ कर ही कि वह किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, यहां इस तरह की गैर जिम्मेदारी की बातें कर रहे हैं क्योंकि वह समझते हैं कि जब वह किसी के प्रतिनिधि रूप में नहीं हैं तो जो चाहें यहां मजे में कह सकते हैं।

यद्यपि ऐसे विरोधी आलोचकों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है पर मैं यह अवश्य कहूंगा कि मुझे इस बात से बड़ा शोक और आश्चर्य हुआ है—और मेरा विश्वास है कि और कई लोगों के साथ भी यही बात होगी—कि इन विरोधी आलोचकों की जमात में अभी अभी आने वालों में संयुक्त प्रान्त के शिक्षा मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द जैसे व्यक्ति भी हैं। गत शनिवार को आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर छात्रों के समक्ष बोलते हुए आपने संविधान की बड़ी निन्दा की और इसे सर्वथा व्यर्थ बतलाया। उनके पास ही बैठा हुआ मैं उनकी वक्तृता सुन रहा था और मुझे आश्चर्य हो रहा था इस बात पर कि ऐसे अवसर पर उन्हें छात्रों के सामने यह सब बातें कहनी चाहिये या उन्हें इस मौके पर उनको यह बताना चाहिये था कि दुनियां में जब वह प्रविष्ट होने जा रहे हैं तो उनका कर्तव्य क्या होना चाहिये। उन्होंने संविधान का सर्वथा उपहास किया और शायद स्नातकों से भी यही आशा की कि वह भी उसका उपहास करेंगे। उनके जैसे जिम्मेदार और योग्य व्यक्ति से तो हम यह आशा करेंगे कि वह छात्रों को यह सलाह देगा कि उन्हें संविधान को बनाने का प्रयास करना चाहिये। ऐसे मौके पर तो हमें स्नातकों को सुन्दर सलाह देनी चाहिये। पर आपने बिल्कुल उलटा ही किया।

आपकी अनुमति हो तो मैं यहां उन तीन चार बातों का उल्लेख करूं जो उन्होंने भाषण में कही थीं। आपने यह फरमाया था:—

'मेरा यह विश्वास है कि यह संविधान वस्तुत: हमारे योग्य नहीं है।'

आगे चल कर आपने इसे "एक वृहत् ग्रंथ" बतलाया। आपने इसे इतना भारी बतलाया कि स्वयं उनके कंधे इसके भार का वहन नहीं कर सकते हैं। आपने यह नहीं बतलाया कि इसका ठीक ठीक वजन क्या है और न यही बतलाया कि कितना भार उनके कंधे वहन कर सकते हैं। आगे चल कर आपने फरमाया:—

"संविधान एक पवित्र वस्तु है जिससे भावी पीढ़ियों को प्रेरणा प्राप्त होती है। महत्वपूर्ण राज्यों के लिये यह रचयिताओं के सजीव विश्वास की, जीवन सम्बन्धी

[श्री जसपत राय कपूर]

दर्शन की एक प्रतिमा होती है। सोवियत रूस के संविधान को देखने से ही आप को हमारा यह कथन समझ में आ जायेगा।"

उनकी इस बात से हमें इस बात का आभास मिल जाता है कि उनके मन में क्या बात है और उनकी सहानुभूति किस दिशा में है। आगे चल कर आपने यह फरमाया:—

"जब हम इस कसौटी पर इसे परखते हैं तो इसे सर्वथा व्यर्थ पाते हैं। इस पर भारतीय संस्कृति की कोई छाप नहीं पड़ पाई है और न यह उस गांधीवाद से ही अनुप्राणित है जिसकी देश विदेश में हम इतनी दुहाई देते हैं। यह एक साधारण अनिधियम जितना महत्व रखता है जैसे कि 'मोटर वेहिकल ऐक्ट' है"।

इस पवित्र लेख्य का कितना हीन और कुत्सित वर्णन आपने किया है। इतने से सन्तुष्ट न होकर आपने अन्ततोगत्वा यह कहा:—

"इसमें अन्य और कई दोष हैं। पर मैं यहां केवल एक दोष का ही उल्लेख करूंगा। सारी शक्तियों को केन्द्र के साथ में रखने कोशिश की गई है और यह बात छिपी नहीं रह सकी है। प्रान्तीय शासनों की स्थिति संविधान में यही रह गई कि वह केन्द्र के एजेंट मात्र रह गये हैं। यह एक बहुत बुरी बात है। यहां देश में पहले भी कई बार समस्त देश को एक केन्द्र के अधीन रखने के प्रयोग का परीक्षण किया जा चुका है। इन परीक्षणों का परिणाम क्या रहा है इसे इतिहास के छात्र अच्छी तरह जानते हैं।"

मालूम नहीं कौन सा इतिहास आपने पढ़ रखा है। यह वह इतिहास नहीं मालूम पड़ता है जिसे हम लोगों ने पढ़ा है। इतिहास तो यही प्रमाणित करता है कि जब भी यहां की शासन व्यवस्था एक केन्द्राधीन नहीं रही है विदेशियों ने आक्रमण करके समस्त देश को ही रौंद डाला है। ऐसा मालूम पड़ता है। कि जो इतिहास श्री सम्पूर्णानन्दजी ने पढ़ रखा है वह ऐसा इतिहास है जिससे हममें से कोई भी परिचित नहीं है।

संविधान के विरुद्ध एक आपत्ति यह भी की जाती है कि इसमें गांधीवाद को स्थान नहीं दिया गया है। श्री सम्पूर्णानन्द जी को तथा अन्य कई मित्रों को भी, जिनकी संख्या कुछ ज्यादा नहीं है, इसकी शिकायत है। किन्तु उनकी यह शिकायत बिल्कुल गलत है। मूलाधिकारों के सम्बन्ध में तथा निदेशक सिद्धान्तों के बारे में जो अध्याय संविधान में रखे गये हैं वह इन शिकायतों को बिलकुल गलत साबित कर देते हैं। आखिर गांधी जी क्या चाहते थे? उनका परम प्रिय कार्य था अस्पृश्यता को दूर करना। क्या संविधान में यह साफ-साफ नहीं कहा गया है कि अस्पृश्यता अब समाप्त की जाती है और इस प्रथा को बरतना विधि के अनुसार दण्डनीय समझा जायेगा?

दूसरी बात जो गांधी जी चाहते थे वह यह थी कि शक्ति जनता को, देश के किसानों और मजदूरों को प्राप्त रहनी चाहिये। क्या संविधान में इसकी व्यवस्था

नहीं की गई है? वयस्क मताधिकार का आखिर मतलब क्या है? वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करके हमने बड़े साहस का काम किया है। इस व्यवस्था का प्रयोग करने में हम बहुत बड़ी जोखिम उठाने जा रहे हैं। पर महात्मा जी की इच्छा को पूरा करने के लिए हम यह जोखिम उठाने को तैयार हैं और मुझे विश्वास है कि हमें इस व्यवस्था के प्रयोग के लिये पछताना नहीं पड़ेगा।

तीसरी बात गांधी जी यह चाहते थे कि राज्य सर्वथा असाम्प्रदायिक हो और धर्म से उसका कोई वास्ता न हो। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति से हो और नागरिकों को अपनी इच्छानुसार धर्माचरण की स्वतन्त्रता रहे और सभी धर्मों के अनुयायियों को राज्य तथा विधि की दृष्टि में समता प्राप्त रहे।

संविधान में इन सब बातों की व्यवस्था की गई है। इसमें नागरिकों को धर्म के बारे में पूरी स्वतन्त्रता दी गई है और इस बात के लिये भी स्पष्ट उपबन्ध रख दिया गया है कि उन शिक्षण-संस्थाओं में जिनको सरकार से कोई भी सहायता मिलती होगी, धर्म की शिक्षा अनिवार्य नहीं रहेगी।

गांधी जी को खास तौर पर फिक्र इस बात की थी, यहां ग्राम-पंचायतों की स्थापना हो और इनको स्वशासन का कुछ हद तक अधिकार प्राप्त रहे। संविधान में, अनुच्छेद 40 द्वारा ग्राम पंचायतों की व्यवस्था भी कर दी गई है इस अनुच्छेद में यह कहा गया है:—

> "राज्य ग्राम पंचायतों का संघटन करने के लिये अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिय आवश्यक हों।"

इस तरह ग्राम पंचायतों के लिये संविधान में एक स्पष्ट उपबन्ध रख दिया गया है। जो लोग यह शिकायत करते हैं कि प्रशासन के सारे अधिकार केन्द्र में निहित किये गये हैं उनको संविधान के इस अनुच्छेद 40 को पढ़ लेना चाहिये। यह सच है कि यह अनुच्छेद निदेशक सिद्धान्तों में रखा गया है पर और इसे रखा ही कहां जा सकता है? और वर्तमान स्थिति में इससे अधिक और किया ही क्या जा सकता है? केवल लिख देने या जादू की घड़ी घुमा देने से तो ग्राम पंचायतों की स्थापना नहीं हो जायेगी। हम इसके लिये यही कर सकते थे कि इस दिशा में अग्रसर होने के अपने दृढ़ निश्चय को संविधान में लिपिबद्ध कर देते और यह काम हमने किया है।

दूसरी बात गांधी जी यह चाहते थे कि यहां ग्रामोद्योगों का प्रसार किया जाये। इसके लिये भी अनुच्छेद 43 के द्वारा संविधान में व्यवस्था की गई है।

फिर गांधी जी के कार्यक्रम में मद्यनिषेध को जरूरी बताया गया था। इसके लिये भी अनुच्छेद 47 के रूप में एक सुनिश्चित उपबन्ध संविधान में रखा गया है जिसे निदेशक सिद्धान्तों वाले अध्याय में स्थान दिया गया है।

जो लोग यह कहते हैं कि यह संविधान तो अन्य संविधानों की नकल मात्र है वह भला यह तो बताने की कृपा करें कि दुनियां में और कौन संविधान है जिसमें, राज्य के निदेशक सिद्धान्तों में मद्यनिषेध और ग्रामोद्योगों का उल्लेख हुआ है। फिर वह यह कैसे कहते हैं कि इस संविधान पर गांधीवाद की छाप नहीं है?

[श्री जसपतराय कपूर]

मैं यहां दो ही और बातों की चर्चा करूंगा। एक तो राष्ट्र भाषा सम्बन्धी प्रश्न की और दूसरा इस मसले की कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हमारी नीति क्या होगी? जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय मसलों का सम्बन्ध है हमने अनुच्छेद 51 में यह साफ साफ कह दिया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्व सम्बन्धों को बनाये रखने का, संघटित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा। मुझे विश्वास है अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सम्बन्ध में गांधी जी भी यही नीति पसन्द करते। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के बारे में हमारी जो नीति है वह सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों से, जिनकी गांधी जी बड़ी हिमायत करते थे, सर्वथा संगत है।

अब अन्त में मैं आता हूं राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रश्न पर। इस सम्बन्ध में हमने जो पथ अपनाया है उसी को गांधी जी भी अपनाने को कहते। भाषा सम्बन्धी प्रश्न पर आज जो मतभेद है उसे अच्छी तरह जानते हुए भी मैं यह राय जाहिर कर रहा हूं। भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद को हमने अब स्वीकार कर लिया है और जिस रूप में इसे स्वीकार किया है वह ऐसा है जिसे, मेरी समझ से, गांधी जी भी पसन्द करते। हां विस्तार की दो एक छोटी मोटी बातों के बारे में उनको मतभेद हो सकता था। हमने राष्ट्रभाषा बनाया है हिन्दी को और ऐसी हिन्दी को जो देश की विभिन्न भाषाओं से शब्दों को लेकर निर्मित रहेगी। हां यह बात जरूर है कि गांधी जी अंग्रेजी के आधिपत्य को नहीं पसन्द करते थे ओर इस बारे में हमें यह स्वीकार करना होगा श्रीमान कि पूर्णतः उनकी इच्छा को सन्तुष्ट नहीं कर पाये हैं। हमारे मित्र और जिम्मेदार सदस्य गण जो हमेशा गांधी जी की दुहाई दिया करते हैं यह नहीं चाहते थे कि हम अंग्रेज़ी को एक अल्प अवधि के अन्दर ही यहां से दूर कर दें। उन्होंने इस बात पर जोर दिया और आग्रह किया कि अभी पन्द्रह साल तक अंग्रेजी रखी ही जाये। गांधी जी इस बात को कभी न पसन्द करते कि यहां पन्द्रह साल तक अंग्रेजी का प्राधान्य बना रहे और न अंग्रेज़ी संख्या को अपनाना ही वह पसन्द करते। मुझे इसमें रंच मात्र भी शक नहीं है और न कोई मित्र ईमानदारी से शक कर सकता है कि गांधी जी की यही राय होती जो मैंने कही है। किन्तु जो लोग गांधी जी की नीति और सिद्धान्तों पर चलने का दूसरों को उपदेश देते हैं वही गला फाड़कर आज इस बात का आग्रह कर रहे हैं कि अंग्रेज़ी को अभी पन्द्रह साल तक बना रहने दिया जाये और अंग्रेज़ी संख्या को अपनाया जाये। हमने अंग्रेज़ी संख्या को रखना स्वीकार कर लिया है।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** वह बिलकुल भारतीय संख्यांक हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** माननीय मित्र का कहना है कि वह भारतीय संख्यांक हैं। मैं जानता हूं कि श्री भारतीय जी को आज अकस्मात् यह ज्ञानोदय हुआ है और कुछ अन्य मित्र भी यहां यह अनुभव करने लगे हैं कि श्री भारती के इस अनुसंधान को कि ये संख्यांक अंग्रेज़ी संख्यांक नहीं हैं बल्कि पहले भारत में प्रयुक्त यही होते थे, स्वीकार कर लेना ही उनके लिये बुद्धिमत्ता की बात होगी। और फिर अद्भुत बात यह है कि इन संख्याकों को अन्तर्राष्ट्रीय संख्यांक का नाम दिया गया है। इस कहानी के सम्बन्ध में मुझे और कुछ नहीं कहना है। यह कहानी

आत्म प्रवंचना की एक दुखद कहानी है। इसकी चर्चा तो मैंने केवल इस आपत्ति के प्रसंग में कर दी है जो श्री सम्पूर्णानन्द तथा उनकी विचारधारा के लोग संविधान के विरुद्ध करते हैं, कि इस संविधान पर गांधीवाद की छाप नहीं पड़ी है।

फिर, श्री सम्पूर्णानन्द तथा सेठ दामोदर स्वरूप जैसे कुछ अन्य व्यक्तियों का यह भी कहना है कि इस संविधान में समाजवादी सिद्धान्तों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इसके जवाब में मैं उनको यह कहना चाहता हूं कि संविधान के अनुच्छेद 39 और 41 को वह पढ़ें। इन अनुच्छेदों द्वारा देश के भौतिक साधनों पर सरकार के स्वामित्व की और सम्पत्ति के समवितरण की व्यवस्था की गई है। एक अनुच्छेद में यह भी कहा गया है एक से काम के लिये सबको समान पारिश्रमिक दिया जायेगा।

ये अनुच्छेद तथा इसी तरह के अन्य अनुच्छेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाजवादी सिद्धान्तों को पूरा पूरा इसमें स्थान दिया गया है। हां यह बात जरूर है कि हमने इन बातों को निदेशक सिद्धान्तों में स्थान दिया है और इससे ज्यादा हम कुछ कर ही नहीं सकते हैं।

संविधान की दो प्रमुख विशेषतायें यह हैं कि देश के ऐक्य पर तथा केन्द्र को मजबूत बनाने पर इसमें पूरा ध्यान दिया गया है और इन दोनों बातों के लिये किसी को भी कोई शिकायत नहीं हो सकती है। हमारे लिये यह परम आवश्यक है कि केन्द्रीय शासन बहुत शक्तिशाली और सुदृढ़ हो। और हमने केन्द्रीय शासन को उसी सीमा तक प्रबल बनाने की कोशिश की है जहां तक कि प्रान्तीय स्वशासन का ख्याल रखते हुए ऐसा करना संगत हो सकता है। हम इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो गये हैं। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं, हमने ग्राम पंचायतों की स्थापना की भी व्यवस्था की है और इन पंचायतों को स्वशासन का बहुत कुछ अधिकार दिया है। इसलिये हमने केन्द्र को प्रबल जरूर बनाया है पर उसी हद तक जहां तक कि प्रान्तीय स्वशासन और ग्राम-स्वशासन के ख्याल से केन्द्र को मजबूत बनाना संगत हो सकता है। जहां तक देश के ऐक्य का सम्बन्ध है हमने काफी बुद्धिमानी से काम लिया है और कुछ निश्चित सिद्धान्तों को संविधान में रखा है। मेरा ख्याल यह है कि इन सिद्धान्तों को रखने पर किसी को कोई खेद नहीं होना चाहिये। हां उन लोगों को अवश्य खेद होगा जो यहां देश में अव्यवस्था और अशांति पैदा करना चाहते हैं और जिनकी सहानुभूति देश के बाहर के किसी अन्य राज्य के साथ है।

हमने इस बात का भी उपबन्ध किया है कि यहां पैदा होने वाला और देश के किसी भाग में रहने वाला कोई व्यक्ति देश के किसी भाग में सरकारी काम में लगाया जा सकता है। जिस अनुच्छेद में यह उपबन्ध रखा गया है उसे मैं महत्वपूर्ण अनुच्छेद मानता हूं। हमने संसद को यह अधिकार दिया है कि कतिपय नियुक्तियों के बारे में आवास सम्बन्धी क्या अर्हतायें अपेक्षित होंगी इसके लिये वह विधि बना सकती है। पर मुझे विश्वास है कि इस अधिकार का प्रयोग वह खूब सोच समझ कर सावधानी के साथ ही करेगी।

फिर हम देश भर के लिये एक सी व्यवहार प्रक्रिया संहिता रखने जा रहे हैं। यह व्यवस्था भी देश ऐक्य में बड़ी सहायक होगी। फिर संविधान में हमने यह भी कहा है कि देशी रियासतों को वही दर्जा हासिल रहेगा जो प्रान्त कहे जाने वाले राज्यों का होगा। दो वर्ष पहले हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर

[श्री जसपतराय कपूर]

सकते थे कि देशी रियासतों का पृथक अस्तित्व ही न रह जायेगा और वह सब शेष भारत में मिल जायेंगी और समूचे देश के लिये एक संविधान लागू होगा। किन्तु आज यह बात पूरी हो गई है। यह एक ऐसी बात है जिस पर हम गर्व और प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। मेरी यही इच्छा है कि कश्मीर को भी वही स्थिति दी गई होती जो अन्य देशी राज्यों को दी गई है। कितु दुर्भाग्य की बात है, हमें भले ही इससे असन्तोष और दुख क्यों न हो, कि ऐसा नहीं किया जायेगा। यह एक बड़ा नाजुक मसला है इसलिये इससे अधिक इस बारे में और कुछ नहीं कह सकता हूं।

एक बहुत बड़ी अच्छी बात अनुच्छेद 25 (2) में आखिरी समय में जोड़ दी गई है। यहां हिन्दुओं में बौद्धों को भी शामिल कर लिया गया है। यह परिवर्तन अभी आखिर में किया गया है। इस उपबन्ध की मुझे खास तौर पर खुशी है।

अध्यक्ष महोदय ने घंटी बजा दी है और मेरा समय समाप्त हो चुका है। इसलिये अब मैं केवल उन दो तीन बातों की ही यहां चर्चा करूंगा जिनके बारे में मुझे कुछ कहना है। किन्तु यह खुशी की ही बात है कि मेरा समय खतम हो चुका है क्योंकि मैं संविधान की खामियों का ज़िक्र करने जा रहा था और समय के समाप्त हो जाने से मैं ऐसा कर नहीं सकता हूं। संविधान की खामियों को बताने का और उसकी आलोचना का समय बीत चुका है। अब तो समय इस बात का आ गया है कि हम देश में संविधान के प्रति आदर और श्रद्धा की भावना पैदा करें। जैसा कि माननीय मित्र श्री सन्तानम ने कहा है हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि देशवासी संविधान के विभिन्न उपबन्धों को ठीक ठीक समझें। हमें संविधान के प्रति देश में आदर और श्रद्धा की भावना पैदा करनी होगी ताकि सभी यथाशक्ति इस पर अमल करने की और इसे सफल बनाने की कोशिश करें। ऐसा करके ही हम देश में सुख, शान्ति सम्पन्नता ला सकते हैं।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज हम अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई के बाद जो नये राष्ट्र के निर्माण के लिये विधान बनाने चले थे उसकी यात्रा की अन्तिम मंजिल पर पहुंच गये हैं, और इस देश के वे लोग जो यहां जनता के प्रतिनिधि के रूप में बैठे हैं महान भाग्यशाली हैं कि उन्होंने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ा और वह दिन देखा जब कि अपना विधान अपने हाथों बना रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे राम के राज्याभिषेक के समय जब उनको राज्य मिला तो जो बानर भालू लंका विजय में उनके साथ थे उन्हीं के साथ अयोध्या आये। उपहार में उन्होंने उनको मणियों की माला दी। जिस तरह से उस मणि माला को लेकर वानर भालुओं ने अपने को सनाथ समझा था, आज भारत की वह जनता जिसने अपने त्याग और उत्सर्ग से कांग्रेस का साथ देकर, उन महान नेताओं का साथ देकर, जिनके पुरुषार्थ का फल है कि आज भारत स्वतन्त्र होकर यह विधान बनाने यहां बैठा है, उनको इस योग्य बनाया और देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने में उनका साथ दिया, ठीक उसी तरह जिस तरह वानर भालुओं ने लंका से माता सीता को लाने में राम का साथ दिया था। आज उपहार स्वरूप मणियों की माला के रूप में यह विशालकाय स्वतन्त्रता का संविधान इस विधान निर्मात्री समिति के विद्वान सदस्यों द्वारा प्राप्त कर रही है। मुझ को ऐसा लगता है कि यह सचमुच मणियों की माला है। हमारा विधान इस माने में और भी ज्यादा अच्छा है कि उसमें विपक्षियों की दृष्टि से भी देखें और

अनेक दोष देखें तो भी इतनी बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि इतना बड़ा देश जो इतनी रियासतों में बंटा हुआ था, जो इतने भीतरी भेदों के कारण छिन्न भिन्न हो रहा था, उसको एकता के सूत्र में बांधने का सफल प्रयन्त जो इस विधान के द्वारा हुआ है उसका उदाहरण मिलना कठिन होगा। यह एक अपूर्व कृति है। बड़े साहस से, बड़े परिश्रम से बड़ी, सद्भावना से हमने इसका निर्माण किया है। प्रत्येक वर्ग ने अपनी अपनी ओर से कुछ त्याग किया है और उसका फल है आज का हमारा यह संविधान।

अंग्रेज़ यहां से चले थे तो जाने से पहले वह तमाम राजाओं को मुक्त कर गये थे। उनके साथ अपनी संधियों को भंग कर गये थे और उनको स्वतन्त्र छोड़ गये थे। ऐसा प्रलोभन था कि वह सब राजे महाराजे अपनी जगह स्थिर होकर खड़े हो जाते और इतनी मूर्तियां होतीं, इतनी लड़ाई के लिये इतने फ्रंट खुल जाते कि जिनका हल करना असम्भव हो जाता। किन्तु उन राजाओं की सद्बुद्धि और हमारे महापुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की योग्यता तथा हमारे नेताओं के बुद्धिकौशल ने उन तमाम को एक सूत्र में बांध कर एक महान भारत का निर्माण किया है। भाषा के सम्बन्ध में इतनी प्रान्तीय भाषायें इस देश में हैं कि हर एक दस कोस पर नई भाषा है "दस बीघे पर पानी बदले और दसे कोस पर वाणी।" हर दस बीघे पर पानी बदलता है और हर दस कोस के फासले पर भाषा बदलती है। तो ऐसे विशाल देश की भाषा और उस भाषा की एक लिपि का स्वीकार होना यह इस राष्ट्र के, महान राष्ट्र के विभिन्न अंगों की उदारता है कि जिन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को समष्टि के हित के सामने रख दिया और उस पर बलिदान कर दिया। इसके लिये नेताओं की बुद्धिमत्ता तथा भिन्न भिन्न भाषा भाषी प्रान्तों के भाइयों की उदारता सराही जायेगी। इस दृष्टि से देखें कि हमने एक राष्ट्र का निर्माण किया, एक भाषा का निर्माण किया, रियासतों और विविध खंडों को तोड़कर उनको भारत के साथ मिला दिया तो यह स्वयं इस विधान की एक बड़ी विशेषता है और इसको पूरा करने में अनथक परिश्रम करना पड़ा है। और इसी दृष्टि से मैं कहता हूं कि यह मणियों की माला है जो भारतीय जनता को हमारे राष्ट्र के संचालक भेंट कर रहे हैं। मणियों की माला जब श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान को अर्पित की तो भगवान की उस माला को लेकर हनुमान ने देखना शुरू किया कि उसमें कहीं राम नाम भी है या नहीं। राम नाम न पाकर हनुमान उस मणियों की माला को फेंक देते हैं। मुझ को ऐसा लगता है कि भारत की वह जनता जिसे हमने विधान रूपी यह माला दी है उसे पाकर हर्षित होगी और भगवान को धन्यवाद देकर उसको अपने गले में डाल कर गौरव अनुभव करेगी। जनता में जो हनुमान होंगे रामभक्त होंगे वह इसमें राम नाम अंकित न पाकर उनको इस मणियों की माला में दोष नज़र आयेगा और वह उसको अपनाने से सकुचायेंगे। वह दोष क्या है? उसकी ओर मैं ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि हमने प्रीएम्बुल (भूमिका अथवा उपोद्घात) में बहुत सुन्दर और ललित भाषा का प्रयोग किया है, उसकी शब्दावलि बहुत ललित है किन्तु हनुमान सरीखे भक्तों को ऐसा लगता है कि उसमें राम नाम नहीं है। इस विधान में हम जब सारा पढ़ते हैं तो कहीं भी उन वीरों का हमें उल्लेख नहीं मिलता जिनके कि बलिदानों के फलस्वरूप हमको यह विधान और यह स्वतन्त्र राष्ट्र मिला है। कौन सा इसके अलावा दूसरा अवसर होगा जब हम स्वतन्त्रता में बलिदान होने वालों

[श्री अलगू राय शास्त्री]

को स्मरण करते, तारीख लिखने वाले लिखेंगे कि संविधान में उनका उल्लेख नहीं है, राष्ट्रपिता का उल्लेख नहीं है। हमने अहंकार के साथ यह कहा है कि हम अपने को यह संविधान दे रहे हैं, भारत की जनता को इससे अहंकार का भास यहां हो रहा है उसी भावना तो यह रही है कि मैंने यह सब किया ऐसा नहीं समझना चाहिये यह अहंकार की भावना है। ईश्वर को नमस्कार करके ही हमें इसको प्रारम्भ करना चाहिये था। दो ही शब्द होते। इन वीर आत्माओं को स्मरण करके, नमस्कार करके, श्रद्धा के साथ जिनके सत्य प्रयत्नों से बलिदानों से, बापू हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आशीर्वाद से हम आज यह दिन देखते हैं, उनका इसमें स्थान होता तो उनके उल्लेख से मणियों की माला वैसी ही रहती, मणियों की स्वन्त्रता, सुन्दरता, वैसी ही रहती इसमें राम नाम अंकित हो जाता। ऐसा न होने से जो राज्यभक्त हैं, देशभक्त हैं तथा ईश्वर भक्त हैं उनको इनका अभाव खटकता है।

इसके बाद जब हम प्रीएम्बुल (Preamble) से चल कर देश के नाम पर आते हैं तो पहले खंड में भारत एक राष्ट्र होगा, उसके नाम का प्रश्न आता है, मुझे अफसोस है कि हम इस में गुलामी की दासता की मनोवृत्ति से ऊपर नहीं उठ सके। हमने खोल कर यह नहीं कहा कि हमारे देश का नाम क्या होगा। संसार के किसी राष्ट्र का नाम ऐसा नहीं है, "इंडिया दैट इज़ भारत" यह क्या नाम है? हमने अपने देश का नाम भी ठीक तरह से नहीं दिया। यह मैं समझता हूं कि इतनी सुन्दर पदावलि के होते हुए भी, इस नाम का ठीक ठीक उदारतापूर्वक प्रयोग न करने से राम नाम शून्य हो गया है और हनुमान को ग्राह्य नहीं है। हम उसके बाद आ जाते हैं सिटीज़नशिप के क्लाजेज़ पर—नागरिकता से सम्बन्धित धाराओं पर—इसमें कहा गया है कि फलां तारीख को आये हुए पाकिस्तान से जो यहां आ गये हैं, वह भारत के सिटीजन अथवा नागरिक होंगे। हमको कहना चाहिये था कि वे हिन्दू तथा सिख जो स्वेच्छापूर्वक विदेशी नागरिकता न ले लिये हों चाहे जब आवें वे इस देश के नागरिक होंगे। इस तरह के सिटीज़न शिप के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं रखना चाहिये था कि भारत के विभाजन के जो कारण हुए, जो यहां से भाग कर चले गये हों, और इस तरह से न जाने क्या क्या भावनायें लेकर यहां फिर से बसना चाहते हैं, उनको सिटीजनशिप का राईट मिलने में काफी प्रतिबन्ध होना चाहिये था, इसकी आवश्यकता थी। इसकी भी कमी नज़र आती है। और इसलिये वह लोग जो देशभक्ति की भावना रखते हैं, वह इससे संतुष्ट नहीं हो सकते। उसके बाद हम धीरे-धीरे करके फंडामेन्टल राईट्स पर आते हैं। मूलाधिकार की बात पर आते हैं। उसमें मनुष्य की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का पूरा निर्णय किया गया है। प्रत्येक नागरिक को पूरा अधिकार दिया गया है, उसके स्वत्व की रक्षा का वचन दिया गया है। मगर हमने राष्ट्र को बलिष्ठ बनाने की ओर नागरिकों का क्या उत्तरदायित्व है, इसकी तरफ उनका ध्यान नहीं दिलाया है। हम उत्सुक हैं कि माईनारेटीज़ कहलाने वालों को यह संरक्षण दें और वह संरक्षण दें कि इन संरक्षणों को जरूरत है। परन्तु उनका राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य है, किस तरह वह राष्ट्र की सेवा करें, विदेशी भावना उनमें न आने पावे और दूसरे राष्ट्रों के प्रति ऐसी भावना न बढ़ने पाये, जो अपने देश के लिये घातक सिद्ध हो, उसके लिये जितना प्रतिबन्ध रखना चाहिये तथा उतना नहीं रखा गया है। हमने शिक्षालयों को रिलीजस (धार्मिक) शिक्षा से वंचित किया है जो सरकार

की सहायता से चलने वाली संस्थायें हैं उनमें धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, हमने यह कह दिया। मेरी समझ में यह उचित नहीं किया गया। महात्मा गांधी प्रेयर मीटिंग (प्रार्थना सभा) में रोज़ "रघुपति राघव राजा राम" गाते थे। महात्मा गांधी गीता, रामायण का पाठ करते थे। अगर ये और दूसरे धर्म ग्रन्थ नहीं पढ़े जायेंगे, तो हमारी नागरिकता का रूप कैसा बनेगा? और अगर हम धर्म को छोड़ देते हैं तो हम आचार विचार की मर्यादा कहां से स्थापित करेंगे? यह बड़ा दोष मौलिक अधिकारों में नज़र आता है। आगे बढ़कर जब हम वहां पहुंचते हैं जो डाइरेक्टिव प्रिंसपुल्स के नाम से इस विधान की धारा में हैं, जिसमें हमारे राष्ट्र के आदर्श तथा उनके अधिकार दिये गये हैं, उनमें जाते हैं, तो वहां अच्छी खासी पदावलि है, ललित, बहुत सुन्दर गौरवपूर्ण वह भाग है, किन्तु उसमें भी राष्ट्र ने यह जिम्मेदारी खुले तौर पर नहीं ली है कि हम अन्न, वस्त्र तथा दूसरी आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिये राष्ट्र को आश्वासन देते हैं। हमने यह अवश्य कहा है कि हम यथासाध्य इसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न करेंगे। विधान को देते वक्त प्रीएम्बुल (भूमिका) में हम देते हैं कि वहां पर हमने अहंकार से काम लिया है, किन्तु जहां पर शासन की सत्ता अपने हाथ में लेते हैं और जहां हमको उच्च स्वर से गर्व से तथा अहंकार से कहना चाहिये था कि प्रत्येक नागरिक यह समझ ले कि हम उसको भोजन, वस्त्र तथा निवास की सुविधा देंगे, यह हमारा उत्तरदायित्व है। "अन्नादेः समविभागः प्रजानां यथार्हतः" प्रजा मांग को उसकी आवश्यकता के अनुसार अन्नादि जीवन की अनिवार्य सामग्री का देना राज्य का एक मात्र उत्तरदायित्व है। वहां हम विनयशील बन गये हैं। वहां हम "यथासाध्य तथा शक्ति" की बात करने लग गये हैं। जो हमारा मुख्य उत्तरदायित्व है। उसको मौलिक अधिकारों में स्थान नहीं मिला। और इसी लिये जो इसमें इस तरह की बात देखने की आशा करते थे, उनको संतोष नहीं होता। हमारे यहां भिखमंगे, लूले, कोढ़ी, लंगड़े और अंधे, सड़कों पर मारे-मारे फिरते हैं और चलने वाले राहगीरों को परेशान करते हैं और पैसा दो पैसा चिल्लाते रहते हैं। उसको रोकने की इसमें कोई व्यवस्था नहीं है। ओर इसको रोकने की जिम्मेदारी सरकार ने अपने ऊपर नहीं ली है। हम यथासाध्य और यथासाधन आदि बातें यहां करते हैं, यह उसकी बड़ी भारी खामी है। उसमें स्पष्ट रूप से गायों और दूसरे पशुओं के वध करने पर निषेध होना चाहिये था। हमने बहुत समय से खुले तौर पर पशुओं और गायों के वध को रोकने के लिये आन्दोलन किया—यहां की जनता "गां मा हिंसाः, यजमानस्य पशून् पाहि" के मंत्र पढ़ती रही है। लेकिन हमने इस विधान में इस स्थान पर यह नहीं कहा कि वह उसी भावना में पली है। गोहत्या नर हत्या के समान मानी जायेगी और उसको रोक दें। यह भावना उसके अन्दर नहीं है। यह खटकने वाली बात है।

इसके बाद जो यूनियन गवर्नमेंट के ढांचे का, उसकी इक्जीक्यूटिव का, उसके लेजिस्लेचर का, उसके जुडीशरी का उल्लेख है उसमें कोई नवीनता न आ सकती थी न आई है, यह तो एक रूढ़िवाद है, वैसे ही संसार भर में चलता है। वैसे ही इसका ड्राफ्टिंग गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के अनुसार है। बदले हुए वातावरण में थोड़ा बहुत अन्तर जरूर है। इसी प्रकार प्रान्तीय तथा स्टेटस की धारा सभाओं, एक्जीक्यूटिव तथा न्याय विभाग, हिसाब किताब, नौकरियों आदि के सारे कार्यकलाप का विस्तृत विवरण और रूपरेखा भी प्रायः वही है जो 1935 के विधान में मिलती है। मगर उन मांगों को पढ़ने से भी जो चीज़ खटक जाती है—वैसे

[श्री अलगू राय शास्त्री]

हनुमान वाले एलीमेंट को, उनके जैसे देशभक्तों और राम भक्तों को। वह क्या हैं? जिनके सम्बन्ध में दो शब्द निवेदन करना आवश्यक प्रतीत है। वह प्रश्न यह है कि हमारा कराची रेजुलेशन के साथ कितना सम्बन्ध रह गया है। उसमें जनता को अपने साथ लाने के ख्याल से पांच सौ रुपये का वेतन नियत किया गया था। आप देखेंगे कि इस सारे के सारे विधान में उस पांच सौ रुपये का कहीं ज़िक्र नहीं है। खर्चा बढ़ रहा है। हम पहले कहा करते थे कि दो धारा सभाओं की क्या जरूरत है, एक के ऊपर दूसरे का कंट्रोल अंकुश या नियंत्रण रखने की क्या जरूरत है? दो मंज़िला या दो तल्ला इमारत बनाने की क्या जरूरत है—अपर चैम्बर और लोअर चैम्बर। मगर हम देखते हैं कि इस विधान के अनुसार करीब करीब हर सूबे में दो हाऊसेज़ रख दिये गये हैं। खर्चे को बहुत बढ़ा दिया गया है, मगर उत्पादन को बढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं है। गवर्नमेंट का खर्चा बढ़ाने के सारे साधन इसमें जुटा दिये गये हैं। हमने जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में अधिकार कम छोड़े हैं, हमने उन पर विश्वास नहीं किया है। उनकी संख्या भी बहुत बढ़ा दी गई है जिनका भार उत्पादक जनता पर ही अन्त में पड़ता है। हमने सबकी तनख्वाहें, सारे दिये जाने वाले भत्तों तथा और रहन सहन की सुविधाओं तथा अन्य सारी आवश्यक चीजों का ज़िक्र तो किया है किन्तु इसका ज़िक्र करते हुए हम सर्वथा भूल गये हैं कि जिस जनता की सींग पर यह पूरी पृथ्वी नाच रही है, जिस जनता की रीढ़ की हड्डी पर यह सारी अट्टालिका उठाई गई है, उसका स्तर कैसा हो। हम आज सरकारी लोगों की प्रशंसा करते हुए उनकी सुविधा देखते हैं। सरकारी कर्मचारी कोई विदेशी तो नहीं हैं। वह अपने ही भाई हैं, सब अपने सगे हैं, जब उन की प्रशंसा की जाती है और उनका कंट्रास्ट करते हुए उनकी तनख्वाहों का ज़िक्र होता है, और कहा जाता है कि क्या कांग्रेसमैनों को यह काम सिपुर्द किया जाय क्योंकि वही सदा मरते खपते रहें हैं। मुझे यह कहना पड़ता है कि कांग्रेसमैन हमेशा ही अपने को जाति की इमारत की नींव के कोनों को बनाने में लगे रहे हैं और ऐसे ही लगे रहेंगे। उन्हें सरकारी नौकरियों की कोई भूख नहीं है। उनके जीवन का आदर्श उत्सर्ग है—भोग नहीं। इस समय मुझे अपनी एक कविता याद आ जाती है:—

"देश जाति हित नींव के हम कंकड़ होवें।
आसुरि सम्पत्ति नारि के कत कंकण सोहें।"

अर्थात् हम अपने देश तथा जाति के कल्याण की इमारत के बुनियाद में पड़ने वाले कंकड़ पत्थर हों। हम सुन्दर सम्पन्न स्त्रियों और विलासिनियों के हाथ में शोभा पाने वाले सुखों के कंकण न बनें—हमारे जीवन का यह आदर्श हो।

कोई कांग्रेसी, कोई कांग्रेसजन जो सन् 1920 से इमसें खट रहा है वह किसी इमारत के बनाने में सामने का पत्थर नहीं बनना चाहेगा। वह जाति की सेवा में अपने जीवन को अर्पित करना अपना काम समझेंगे। नौकरियों के सम्बन्ध में जब सभी वेतनादि सुविधाओं का उल्लेख होता है तो वह केवल इस कारण कि हमने तनख्वाहों का विषय तो लिया लेकिन जो जनता बरसों से मरती रही, शोषित होती रही, हमने उसको

भुला दिया। मैं आपका ध्यान उसकी तकलीफ़ों की तरफ़ दिलाता हूं। हमने उन अभागों को छोड़ दिया उसकी तरफ हमारा पर्याप्त ध्यान नहीं गया है। यदि उसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जायेगा तो निश्चित रूप से मैं आपसे कहता हूं कि उसे खटकेगा और वह समझेगा कि हम व्हाइट बिरोक्रेसी से निकल कर एक ब्राउन बिरोक्रेसी के नीचे आ गये हैं। हमारे अपने जीवन का स्तर ऊंचा नहीं हो सकता किन्तु हमारे नौकरों के जीवन का स्तर ऊंचा बनाने को हम परेशान हैं। जनसाधारण, कि जो कमाने वाले हैं जिनकी कमाई से ही यह सारा ढांचा बना हुआ है, उनकी चिन्ता किसी को नहीं है। उत्पादन की ओर हमारा ध्यान गया है जो अपेक्षाकृत सुखी हैं, सम्पन्न हैं, और दिन रात हम उनका ख्याल रखते हैं जिसमें वह बिगड़ न जायें, बिगड़ कैसे जायेंगे? हमने ही देशभक्ति का जामा नहीं पहना है उसके दिल में भी देशभक्ति है।

श्रीमान जी, आपका अपना जीवन तपस्यामय रहा है, पंडित जवाहरलाल जी का जीवन तपस्यामय रहा है, सरदार साहब का जीवन तपस्यामय रहा है, आपने राजसी जीवन नहीं व्यतीत किया है, राज्य या पैसे के लिये आज आपने सत्ता ग्रहण नहीं की है, उत्पादक के लिये, जनता के लिये, आप यहां आये हैं, उसके पास पैसा थोड़ा है, उसकी क़ीमत पर लोगों के देश का जीवन बिताने की ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता। जनता के जीवन के स्तर को ऊंचा करने की ज़िम्मेदारी लेनी चाहिये, और वह इस विधान में नहीं है।

मैं एक दो चीजों की तरफ़ और ध्यान दिला कर अपनी बात समाप्त करता हूं। यह मैंने केवल इस कारण कहा कि इसी तरह के कारण हैं जो विरोधियों को इसकी आलोचना करने का अवसर देते हैं। और देशभक्त ऐक्शन को यह चीज खटकती है। मैं एक बात आपसे कहना चाहता हूं और वह यह कि हमने जो ढांचा बनाया है उसमें केन्द्र के पास बहुत अधिक शक्ति आई है। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का नियंत्रण हमारे ऊपर पहले था, रियासतें जो हमें मिली हैं उनके ऊपर हमारा खास नियंत्रण है। वैसा ही नियंत्रण रहा तो इनीशियेटिव (initiative) मारा जायेगा। और केन्द्र दुर्बल हो जायगा। हमारी केन्द्रीय सरकार दुर्बल होगी तो हमारे जो अंग हैं वह भी दुर्बल हो जायेंगे, और हमारा राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। लेकिन यदि केन्द्र इतना बलिष्ठ हो जाये, कि औरंगजेब की तरह से अंगों को, अपने पुत्रों को डांटता रहे तो प्रजा की जिम्मेदारी लेने वाला कोई नहीं होगा। इस लिये दोनों में सामंजस्य होना चाहिये। रक्षा के प्रश्न प्रर अवश्य नियंत्रण होना चाहिये—हमको देखना है कि कश्मीर की तरफ से कोई इनफ़िलट्रेशन तो नहीं होता है। आसाम की ओर से कोई इनफ़िलट्रेशन (infiltration) तो नहीं होता है। शत्रु किसी ओर से घुसता तो नहीं है। हम वहां पर अंगों पर अंकुश रखने की चेष्टा करेंगे, किन्तु सामान्यत: प्रतिबन्धों से केन्द्र अपने अंगों को पूर्णत: विकसित होने से रोकेगा नहीं। किसान को देखिये, जमे हुए खेत की रखवाली करता है, उसको हरही गाय तथा अन्य बनैले पशुओं से बचाता है, लेकिन बीज बोने के बाद से वह निकाल निकाल कर देखता नहीं कि उसमें अंकुर निकले या नहीं। इसलिये यदि छोटी-छोटी बातों में छेड़खानी की गई तो यह छेड़छाड़ केन्द्र को दुर्बल बना देगी, और अंग को भी दुर्बल बना देगी। एक बात मैंने देखी, अभी यू.पी. ने अपना नाम "आर्यावर्त" निश्चित करके भेज दिया। केन्द्र के आदमियों को लगा कि यह नाम एक निंकम्मी बात है। नाम रखने की बात, मैं उदाहरण के लिये कहता हूं, यदि हमने वह

[श्री अलगू राय शास्त्री]

नाम रख लिया, यह यदि आर्यावर्त हो गया तो इसका अर्थ यह कैसे हो गया कि शेष सारा देश अनार्यावर्त हो जायेगा। अब आप देखें "पाकिस्तान" ने अपना नाम पाकिस्तान रख लिया तो, क्या हिन्दुस्तान नापाकिस्तान हो गया? क्या पाकिस्तान के अतिरिक्त सब नापाकिस्तानी हैं? हमारे नेताओं ने समझौते से पाकिस्तान नाम स्वीकार किया था। इसी प्रकार आर्यावर्त हो सकता था। इससे दूसरे प्रान्त अनार्यावर्त न होते। अस्तु यह तो एक उदाहरण की बात है, आपने इसको पसन्द नहीं किया, हम इसे बदल देंगे, किन्तु यदि इस प्रकार की बातें होती रहेंगी तो सार्वजनिक स्वतंत्रता कहां रहेगी? लोकल इनीशियेटिव कहां रहेगी? हमारे जो अंग हैं उनमें आज अपने आप को विकसित करने की शक्ति होनी चाहिये इस प्रकार के हस्तक्षेप से वह रहेगी क्या? इस प्रकार से जो अंग आपने बनाये हैं वह अंग नष्ट हो जायेंगे। इसलिये चाहिये यह कि केन्द्र कम से कम हस्तक्षेप अंगों के साथ करे। इस सम्बन्ध में मुझे अंग्रेजी के ये शब्द स्वभावत: याद आ जाते हैं कि:—दैट गवर्नमेन्ट इज़ दि बेस्ट गवर्नमेन्ट ह्विच गवर्न्स दि लीस्ट—वही शासन सर्वश्रेष्ठ है जो कम से कम शासन करता है—यह महावाक्य इस मामले में बिल्कुल चरितार्थ होता है कि हमारे केन्द्र की ओर से असामान्य नियंत्रण न हो, संरक्षण हो, सुझाव हो। पग पग पर छेड़खानी न जारी रहे जिससे कि लोकल इनिशियेटिव बना रहे। इस तरफ मैं आपका ध्यान दिलाऊंगा।

शंकररावजी की यह बात मुझे पसन्द आई है कि इमसें जो गांधियन आउटलुक है, हिन्द स्वराज्य की धारायें हैं, वे इसमें नहीं दिखाई पड़ती हैं। मगर मैं उनसे और अपने विचार के दूसरे मित्रों से कहना चाहता हूं कि चाहे जैसे भी हो, चाहे डॉक्टर अम्बेडकर ने पंचायत का पहले मज़ाक उड़ाया हो, लेकिन पंचायत को इसमें स्थान है। ग्रामोद्योग के लिये इसमें स्थान है, इसमें मद्यनिषेध की बातों का जिक्र आया है। इसकी यह महानता है कि अछूतों की समस्याओं को इसमें हल कर दिया गया है, इसकी महानता है कि हमने जनसाधारण को बालिग मताधिकार, मत देने का अधिकार दे दिया है। यह सारी चीजें इसकी महान विशेषतायें हैं और इन विशेषताओं को देखते हुए हमें यह समझना चाहिये कि राष्ट्रपिता गांधी जी की आत्मा को इन बातों से सुख मिलेगा।

अब एक बात और कह कर मैं अपना कथन समाप्त करता हूं जिसके कारण यह विधान भारतीय जनता रूपी हनुमान को प्यारा नहीं है। वह यह देखती है, जनता देखती है कि यह विधान मणियों की माला है या नकली मणियों की। पन्ना की खानों से निकले हुए पन्नों की है, गोलकुण्डा के हीरों की है या यह माला कांच की है। वह इसे कांच की माला समझती है। जिस भाषा में यह विधान बना है वह जनता की भाषा नहीं है, जनता की भाषा वह भाषा है जिसमें, उत्तर भारत में आप देखेंगे, कि सूर की कवितायें हैं, तुलसी का महाकाव्य है। आज तो मुझे बहन दुर्गाबाई ने जो तेलगू की कविता सुनाई थी वह मैं कण्ठ नहीं कर सका लेकिन पढ़ देता हूं, उसके शब्द तेलगू के हैं:

"मंदार-मकरंद-माधर्यमुना देलु मधुपम्बु पोऊने मदन मुलको?
निर्मल मन्दाकिनी वीचिकल दूगु रायंज चुनने कुटज मुलको?

अम्बुजोदर दिव्य पादारविन्द चिन्तनायुत मत्तचित मेरीति।
नितरम्बु चेरनेत्मु विनुत गुण शील माढल वेइनेल।

उसके शब्दों को मैं देखता हूं जो उसके शब्द हैं उनको आप देखें तो कोई भी शब्द आपकी उत्तर पूर्व की हिन्दी का ऐसा नहीं मिलेगा जो इतना संस्कृत के मूल रूप से सम्बन्धित हो जैसे इस तेलगू की पूर्वता के शब्द हैं। यह सारे ही हिंदी के शब्द हैं। इन तेलगू के गीतों की तुलना कीजिये तुलसी के इन पदों से:

"मानस सार्ल सुधा प्रतिपाली। जिअई कि लवण पयोधि मराली।।
नव रसाल-वन विहरण शीला। सोह कि कोकिल विपिन शीला।।

आप ज़रा देखें कि हिमालय से कन्या कुमारी तक यह भाषा बोली जाती है। बंदे मातरम् का गान सीधा संस्कृत का गान है। यही हमारा राष्ट्रीय गान रहा है। "वैष्णव जन तो तेणें कहिये जिन पीड़ पराई जाणे रे" सीधा संस्कृत भाषा का सा गान है। यही गान महात्मा गांधी को प्राणों से प्यारा था। सारे देश की जो व्यापक भाषा है उसमें विधान नहीं है। श्रीमान जी आपकी अध्यक्षता में मुखारबिन्द से यह शब्द निकले थे कि अपने राष्ट्र का विधान अपनी भाषा में होगा। आज जिस विधान को यह विधान परिषद् पास कर रही है वह भाषा हमारी भाषा नहीं है। संथानम जी ने कहा कि इस विधान को व्यापक बनायें, सर्वसाधारण तक पहुंचायें। पहुंचायें कैसे? संस्कृत के द्वारा बुद्ध भगवान् ने अपने धर्म का प्रचार नहीं किया था। उन्होंने पाली भाषा को जो जनता की भाषा थी अपनाया था। महात्मा गांधी ने जब कांग्रेस के रंगमंच को जनता का रंगमंच बनाया तो अंग्रेजी को हटा कर हिन्दुस्तानी में, सरल हिन्दी में भाषण करना प्रारम्भ किया था। इसी तरीक़े से यह चीज तभी बन सकती है जब अपनी भाषा में विधान पास हो। अपनी भाषा का विधान ही सर्वसाधारण तक जा सकता है। "पापुलर" हो सकता है। पीपुल की भाषा के बिना वह पापुलर न होगा।

मैं एक और निवेदन करके बैठ जाऊंगा। मैं आशा करता हूं कि जनवरी में जो आप दो तीन दिन के लिये हाउस को बुलावें, तब तक विधान का हिन्दी में रूपान्तर हो जाये और यदि हम उस की धाराओं के ऊपर विचार न करें तो कम से कम दो तीन दिन का जनरल डिसकशन करके उसके ऊपर इस हाउस की मुहर लगवा दी जाये। श्रीमान जी, आप इस हाउस के मुकुटमणि हैं। अगर आपके हाथ से वह पास हो जायेगा तो भी उसका वही मूल्य होगा। किन्तु यदि इस हाउस में उस पर विवाद हो जायेगा और उस पर हाउस की मुहर लग जायेगी तो हम जनता के सामने जा कर कह सकेंगे कि सदियों की गुलामी को भंग करने वाले हमारे पुरुषोत्तमों ने, हमारे नेताओं ने, हमारे राष्ट्र के संचालकों ने, हमको वह निधि दी है, जो किसी जाति को कभी सौभाग्य से प्राप्त होती है और यह वह निधि है जो पराधीनता की कड़ियों के टूटने के बाद तुम्हें प्राप्त हुई है।

इन शब्दों के साथ बड़ी श्रद्धा से आपके सामने नतमस्तक होता हूं कि आपने यह अवसर दिया जो कि मेरे राजनीतिक जीवन में एक ऐसा महत्वपूर्ण क्षण है

[श्री अलगू राय शास्त्री]

जो कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सन् 20 से स्वतन्त्रता की लड़ाई में रहने और तरह-तरह की यातनाओं से गुजरने के बाद स्वतन्त्रता की घोषणा करने का अवसर मिला और उस अवसर पर बोलने का अवसर जीवन में आपकी अनुकम्पा से मिला है। इसके लिये मैं आपको अनेक धन्यवाद देता हूं।

***अध्यक्ष:** अब सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार दिनांक 22 नवम्बर, सन् 1949 के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-347 PSD–7-1-53–320

Con. 3. XI.8.49
320

अंक 11
संख्या 8

मंगलवार
22 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा–(जारी) 3929–3996

भारतीय संविधान सभा

———————

मंगलवार, 22 नवम्बर, सन् 1949 ई.

———————

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

———————

संविधान का मसौदा–(जारी)

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): अध्यक्ष महोदय, कुछ दिन पूर्व आपने कृपा करके सभा को बताया था कि विंध्य प्रदेश से संविधान सभा के लिये सदस्य इस महीने की बीस तारीख को चुने जायेंगे। क्या आप कृपा करके हमें बतायेंगे कि क्या निर्वाचन हो गया है और क्या यह सदस्य इस सभा में इस सत्र में ही आ जायेंगे?

***अध्यक्षः** मैं उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूं किन्तु उनका निर्वाचन नहीं होगा। जैसा कि मैं सभा को पहले बता चुका हूं, एक निर्वाचक-मंडल बनाने का प्रयास किया गया था, किन्तु किसी कारण वह स्थापित नहीं किया जा सका। अन्त में मुझसे कहा गया कि आप उन्हें मनोनीत करने के लिये सहमत हो जाइये और मैं सहमत हो गया। मैं मनोनीत सदस्यों की प्रतीक्षा कर रहा हूं।

***श्री जयनारायण व्यास** (संयुक्त राज्यः राजस्थान): मुझे ज्ञात हुआ है कि दो सदस्य यहां पहुंच गये हैं।

***अध्यक्षः** यदि वे आ गये हैं तो वे इस सभा में भी आयेंगे।

***श्री जयनारायण व्यासः** उन्हें राजप्रमुख से परिचय-पत्र प्राप्त नहीं हुए हैं। इसी कारण वे नहीं आ पाये हैं।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल): मैंने कल के समाचार पत्र में पढ़ा था कि आपने विंध्य प्रदेश से इस सभा के लिये चार व्यक्तियों को मनोनीत किया है।

***अध्यक्षः** मैंने मनोनीत नहीं किया है।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** जी नहीं क्षमा कीजिये, वे राजप्रमुख ने मनोनीत किये हैं। क्या मुझे यह सूचना दी जा सकती है कि उनमें कोई हरिजन भी है या नहीं?

***अध्यक्ष:** हमें यह नाम प्राप्त हुए हैं। मैं कह नहीं सकता कि उनमें से कोई हरिजन है या नहीं।

नाम इस प्रकार हैं:

(1) कैपटेन अवधेश प्रताप सिंह,

(2) श्री शम्भुनाथ शुल्क,

(3) पंडित राम सहाय तिवाड़ी, और

(4) श्री मन्नूलालजी द्विवेदी।

जी नहीं; मेरे विचार से इनमें से कोई भी हरिजन नहीं है।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** उपनामों के आधार पर भी मैं कह सकता हूं कि कोई हरिजन नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या अगले सत्र तक हैदराबाद राज्य का संविधान सभा में प्रतिनिधित्व करने के लिये कोई प्रयास किया जा रहा है अथवा क्या किया जायेगा?

***अध्यक्ष:** मैं कह नहीं सकता। जब तक हैदराबाद भारत में समाविष्ट नहीं होता और इस सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये तैयार नहीं होता तब तक मैं कोई प्रयास नहीं कर सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** समाचार पत्रों ने यह समाचार प्रकाशित किया था कि हैदराबाद जल्दी ही भारत में समाविष्ट होने जा रहा है।

***अध्यक्ष:** मुझे विदित नहीं है।

क्या मैं माननीय सदस्यों के सामने यह सुझाव रख सकता हूं कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति दस मिनट से अधिक समय न ले क्योंकि बहुत से सदस्य बोलना चाहते हैं और अधिकांश विषयों की चर्चा सदस्य कर चुके हैं। इसलिये जो भाषण अब दिये जायेंगे उनमें बहुत कुछ पहले की ही बातें दुहराई जायेंगी। इसलिये माननीय सदस्यों से मेरा निवेदन है कि उनमें से प्रत्येक वक्ता यदि हो सके तो दस मिनट में अपना भाषण समाप्त कर दे।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्त प्रान्त: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज एक पवित्र तथा शुभ दिवस है क्योंकि आज संविधान सभा ने स्वतन्त्र भारत के लिये एक संविधान बनाने का महान कार्य समाप्त किया है और वह भी एक ऐसा संविधान बनाने का कार्य जिसमें भारतीयों की आशाएं तथा आकांक्षाएं मूर्तिमान हुई हैं। यदि किसी संविधान को उसकी पदावलियों तथा उपबन्धों से जांचा जा सकता है तो यह संविधान अवश्य ही संसार के संविधानों में बहुत

ऊंचा स्थान प्राप्त करेगा और मेरे विचार से यह सर्वथा उचित ही है कि हम इस पर गर्व करें। डॉ. अम्बेडकर तथा मसौदा समिति के सदस्यों ने जो अद्‌भुत कार्य किया है उसके लिये मैं उन्हें बधाई देती हूं और अध्यक्ष महोदय, आपने जिस धैर्य और योग्यता से इस सभा की कार्यवाही का संचालन किया है उसके लिये आपको धन्यवाद देती हूं। संविधान सभा के कर्मचारियों ने जो कठिन कार्य तथा अथक परिश्रम किया है उसके लिये हम उन्हें भी धन्यवाद देते हैं।

श्रीमान, संविधान में सबसे अधिक महत्व इसका है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होने जा रहा है। यह संविधान इस कारण एक पवित्र संविधान है कि इसमें धर्मनिरपेक्षता का समर्थन किया गया है। हमें इस का गर्व है। मुझे पूरा विश्वास है कि धर्मनिरपेक्षता की सदा रक्षा की जायेगी और इस पर कलंक नहीं लगने दिया जायेगा क्योंकि इसी पर भारत के लोगों का अखंड ऐक्य निर्भर है और बिना इसके उन्नति की सभी आशाएं विफल हो जायेंगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, चूंकि हमारा देश एक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है इस लिये संविधान में इस सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये हैं कि सभी नागरिक व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से लोकतंत्र का सर्वोत्तम रूप से उपभोग करेंगे और उन्हें यह आश्वासन दिया गया है कि उन्हें वे आधारभूत जीवनोचित दशाएं तथा स्वतंत्रताएं प्राप्त होगीं जिनके कारण ही जीवन सार्थक, सुरक्षित तथा उपयोगी होता है। यद्यपि ये मूलाधिकार कई शर्तों और परन्तुकों से परिसीमित किये गये हैं किन्तु फिर भी श्रीमान, मेरे विचार से उनके द्वारा प्रत्येक नागरिक को उस स्वतंत्रता की प्रत्याभूति दी गई है जो उसके व्यक्तित्व के पूर्ण तथा अबाध विकास के लिये आवश्यक है। ये अधिकार न्याय्य भी हैं क्योंकि जब हमने मूलाधिकारों के सिद्धान्त को स्वीकार किया तो हमारे किये उन्हें न्याय्य बनाना भी आवश्यक था। संविधान में इन मूलाधिकारों को इस सिद्धान्त के आधार पर स्थान दिया गया है कि चाहे कोई भी सरकार शासनारूढ़ क्यों न हो प्रत्येक मनुष्य को कुछ अधिकार प्राप्त हैं। न्यायालय इसकी देखरेख करते रहेंगे कि कहीं सरकारी निकाय अर्थात विधान-मंडल अथवा कार्यपालिका कहीं इनमें हस्तक्षेप तो नहीं करते।

अनुच्छेद 14 से लेकर 28 तक में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समता का तथा अवसर समता का आश्वासन दिया गया है और यह कहा गया है कि जाति, धर्म अथवा लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध होगा। अनुच्छेद 29 तथा 30 द्वारा अल्पसंख्यकों को उनकी भाषा, लिपि तथा संस्कृति की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया है। मुझे आशा है कि अनुच्छेद 29 को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग में लाया जायेगा और जहां कहीं बच्चों को प्राथमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा में देने की मांग तर्क-संगत ढंग से की जायेगी वहां उन्हें अपनी मातृभाषा में ही प्राथमिक शिक्षा दी जायेगी।

किन्तु श्रीमान, मुझे खेद है कि संविधान में सम्पत्ति विषयक अनुच्छेद 31 को प्रविष्ट किया गया है, जो बहुत ही अनुचित तथा अन्यायपूर्ण है। नगर-निर्माता जैसे नगर को सभी कालों के लिये बनाते हैं वैसे ही संविधान निर्माता भी संविधान

[बेगम ऐजाज रसूल]

को सभी कालों के लिये बनाते हैं और उसमें सार्वभौमिक सिद्धान्तों का सन्निवेश करते हैं। संविधान में किसी एक दल, किसी एक समूह अथवा किसी एक प्रान्त के पक्ष में उपबन्ध नहीं रखे जाने चाहिये। यह खेद की बात है कि अनुच्छेद 31 के उपबन्ध इस कसौटी से खरे नहीं उतरते और वास्तव में वे कुछ प्रान्तों में एक दल-विशेष के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में सुविधा पैदा करने के लिये रखे गये हैं। उनमें संयुक्त प्रान्त, बिहार और मद्रास के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में जमींदारी उन्मूलन के सम्बन्ध में विभेद किया गया है और कृषि सम्पत्ति तथा औद्योगिक सम्पत्ति में भी विभेद किया गया है। इन प्रान्तों में कृषि सम्पत्ति के सम्बन्ध में न्याय्य अधिकारों का अपहरण किया गया है। यह एक अजीब उपबन्ध है और इसके कारण एक सुन्दर चित्र में धब्बा लगता है।

श्रीमान, इस देश के निवासियों को वयस्क मताधिकार प्रदान करके एक बहुत बड़ा कदम उठाया गया है। परन्तु चूंकि इस देश के अधिकांश लोग अशिक्षित हैं इस लिये यह प्रणाली तभी सफल हो सकती है जब भारतवासियों को नागरिकता की शिक्षा देने के लिये तुरन्त ही प्रभावपूर्ण कदम उठाये जायेंगे।

श्रीमान भारत की महिलाओं को इसकी प्रसन्नता है कि कार्य तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्हें पुरुषों के समान ही अधिकार दिये गये हैं। यह मैं इस लिये नहीं कह रही हूं कि संविधान में यह कोई नवीन बात है बल्कि इस लिये कह रही हूं कि बहुत काल तक भारत ने इस आदर्श का अनुसरण किया है यद्यपि कुछ काल तक ऐसी सामाजिक स्थिति उत्पन्न हो गई कि व्यवहार में बिल्कुल इसके विपरीत आचरण होने लगा। संविधान में इसी आदर्श को सामने रखा गया है और यह पवित्र आश्वासन दिया गया है कि भारतीय गणराज्य की विधि के अधीन महिलाओं के अधिकारों की पूर्ण रक्षा की जायेगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, संविधान के सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि अल्पसंख्यकों के लिये अब स्थान सुरक्षित नहीं रखे जायेंगे। मुझे इस की प्रसन्नता है कि मुझे सभा को यह सूचित करने का अवसर मिला है कि जैसा कि मैंने इस संविधान के प्रथम पठन के अवसर पर कहा था, मैं आरम्भ से ही इस विचार-धारा का समर्थन करती चली आई हूं कि इन स्थानों को सुरक्षित नहीं रखना चाहिये। इन सुरक्षित स्थानों को हटाने में मैंने भी हाथ बटाया और अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया समझ कर हाथ बटाया और वह इस कारण कि मेरा पूरा विश्वास है कि धर्म पर आधृत किसी अल्पसंख्यक समुदाय के लिये साम्प्रदायिक आधार पर स्थानों के रक्षण की मांग करके पृथक्करण की भावना बनाये रखना आत्मघात के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। वास्तव में भले ही अल्पसंख्यक अपने को बहुसंख्यक समुदाय से पृथक रखने के लिये एक दीवार खड़ी कर लें किन्तु उससे उनकी कुछ भी रक्षा नहीं हो सकती। इससे उन का समुदाय बिल्कुल ही पृथक समुदाय हो जायेगा और देश के अन्य समुदायों के निकट नहीं आ सकेगा। मुझे आशा है कि स्थानों के रक्षण की व्यवस्था को समाप्त करके हमारी वे कठिनाइयां तथा भ्रम भी मिट जायेंगे

जिनके कारण कुछ वर्षों से हमारा सार्वजनिक जीवन दूषित रहा है। श्रीमान, मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूं जब कि लोग अपने को धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य नहीं समझेंगे। किन्तु अध्यक्ष महोदय, यह तभी सम्भव हो सकेगा जब बहुसंख्यक समुदाय के सदस्य भी अपने को बहुसंख्यक नहीं समझें और सभी समुदायों के सदस्य, चाहे वे अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक अपने को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य के पूर्ण तथा समान अधिकार प्राप्त नागरिक समझें।

हमारे संविधान की एक अन्य विशेषता यह है कि यह सारे भारत में, जिसमें वे क्षेत्र भी सम्मिलित हैं जो अभी तक देशी राज्य कहे जाते थे, प्रयोग में आयेगा। सरदार बल्लभभाई पटेल की विलक्षण प्रतिभा के कारण ही यह सम्भव हो सका है जिन्होंने हैदराबाद और भूपाल जैसे राज्यों के अड़े रहने पर भी हमारे देश में पूर्णतया अहिंसात्मक ढंग से अल्प काल में ही एकता स्थापित कर दी है। हमें आशा है कि तुरंत ही हमें इस सभा में हैदराबाद के चुने हुए प्रतिनिधियों का स्वागत करने का अवसर प्राप्त होगा।

श्रीमान, मैं यह कहूंगी कि जब प्रधान मंत्री ने आधुनिक संसार के सबसे बड़े अधिक शक्तिशाली लोकतंत्र की संसद में भाषण देते हुए भारत के संविधान की ओर संकेत किया तथा उससे उद्धरण दिये तो हमें बहुत गर्व हुआ। उनके इस कदम से संविधान में सन्निहित लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का समर्थन हुआ है। श्रीमान, जिस भावना से किसी संविधान को प्रयोग में लाया जाता है उसी से उसका मूल्य आंका जाता है। उसे जिस ढंग से व्यवहार में लाया जाता है उससे उसका मूल्यांकन होता है। इसके अतिरिक्त सभी संविधानों का अन्तिम लक्ष्य मनुष्यों के सुख तथा कल्याण की अभिवृद्धि करना तथा किसी देश के विभिन्न तत्वों को एक सूत्र में बांध कर उन्हें एक राष्ट्र में परिणत करना ही है। हमारा देश एक महान देश है और उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। मुझे आशा है कि यह संविधान इस प्रकार व्यवहार में लाया जायेगा कि इससे मातृभूमि की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और हमारी मातृभूमि इतनी शक्तिशालिनी हो जायेगी कि संसार के सभी राष्ट्रों के बीच एकता तथा शान्ति स्थापित कर सकेगी। मैं इसके लिये प्रार्थना करती हूं। श्रीमान, मैं डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव का समर्थन करती हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही आप की प्रशंसा में जो कुछ कहा गया है उसकी मैं प्रशंसा करता हूं। विशेषता श्री मैत्र, मि. नज़ीरुद्दीन अहमद तथा पंडित ठाकुरदास भार्गव ने आपकी प्रशंसा में जो कुछ कहा है उसका मैं स्मरण कराता हूं। मैं इस सभा के विभिन्न सदस्यों को बधाई देने में अधिक समय नहीं लगाना चाहता। उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से कार्य किया और अपनी सारी बुद्धि खर्च की...

***एक माननीय सदस्य:** अपनी सारी बुद्धि?

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** सारी बुद्धि नहीं तो बहुत अधिक बुद्धि खर्च की है और एक संतोषजनक संविधान के निर्माण के लिये कठिन परिश्रम किया।

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

इस संविधान में हमने एक संसदात्मक लोकतंत्र का समावेश किया है। यह इंग्लिस्तान के संविधान के ढंग का संसदात्मक लोकतंत्र है। यद्यपि हमने संसदात्मक प्रभुत्ता को अंगीकार नहीं किया है और यद्यपि हमने संसद की प्रभुता में कई प्रकार हस्तक्षेप किया है और वह इस प्रकार कि हमने मूलाधिकारों को तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों को समाविष्ट किया है, जैसे कि हमने इसका उल्लेख किया है कि अमुक व्यक्तियों को अमुक वेतन दिये जायेंगे किन्तु फिर भी हमने अमरीका के संविधान की अपेक्षा इंग्लिस्तान के संविधान का अधिक अनुकरण किया है। जहां तक हमारे संविधान के अमरीका के संविधान के समान होने का सम्बन्ध है, केवल नामों में ही समानता है और उन सारवान शक्तियों में कोई समानता नहीं है जो हमने संविधान द्वारा विभिन्न पदाधिकारियों को अथवा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रदान की हैं।

इस संविधान का एक महान गुण यह है कि इस देश के निवासी एक ऐसे संविधान को अपनाने जा रहे हैं। जिससे वह पिछले दस या बारह वर्ष तक परिचित रहे हैं। केन्द्र के उत्तरदायित्व विषयक उपबन्धों को छोड़कर अन्य उपबन्धों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह संविधान बहुत कुछ 1935 के अधिनियम के समान ही है। मैं यह उस की निन्दा की दृष्टि से नहीं कह रहा हूं। मैं इसे उसका गुण मानता हूं न कि दोष क्योंकि लोगों को संविधान को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। गवर्नर अथवा राज्यपाल रखे ही गये हैं और गवर्नर जनरल का नाम बदल कर प्रेजीडेंट अथवा राष्ट्रपति कर दिया गया है। साथ ही 1935 के अधिनियम का ढांचा ज्यों का त्यों रखा गया है। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया है और मुझे आशा है कि उसके कारण इस देश के लोगों की सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति में बहुत अन्तर हो जायेगा। यह महत्वपूर्ण परिवर्तन लोगों को वयस्क मताधिकार प्रदान करना ही है। इस के अतिरिक्त संविधान में शायद ही कोई ऐसी बात मिलेगी जिसके कारण लोगों में उत्साह उत्पन्न हो सकता है। किन्तु यह वयस्क मताधिकार एक ऐसी बात है जिससे विभिन्न विधान मंडलों के वर्तमान प्रतिनिधित्व में बहुत परिवर्तन हो जायेगा। यद्यपि शासन-व्यवस्था पहले के समान ही रहेगी किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि भारत के जनसाधारण को पहले की अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त हो जायेगी और वे इस शक्ति को देश के हितसाधन के लिये प्रयोग कर सकेंगे। संविधान को दो दृष्टिकोणों से देखने पर मुझे वह असंतोषजनक ही प्रतीत होता है। पहले यदि हम उसकी एक शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण की दृष्टि से परीक्षा करें तो हमें विदित होगा कि हमने संगठन की कई ऐसी शक्तियों की उपेक्षा की है जो सभी समाजों और राष्ट्रों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं और जो हमारे लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकती थी उदाहरणार्थ संगठन की एक शक्ति धर्म भी है। मेरे विचार से इस संसार में भारत के समान अधार्मिक और कोई देश नहीं है। इस बहाने से अथवा इस आधारभूत सिद्धान्त के कारण कि हम अपने संविधान को एक धर्मनिरपेक्ष संविधान बनाना चाहते थे, हमने अपने संविधान में धर्म की परछाई तक नहीं पड़ने दी है। मैं स्वयं को बहुत अधिक धार्मिक व्यक्ति नहीं हूं किन्तु मेरे विचार से प्रत्येक समाज के जीवन में, तथा कई राज्यों के प्रशासन में, धर्म का एक निश्चित स्थान रहा है और अवश्य ही रह भी सकता है। यदि हम संसार के सबसे उत्कृष्ट

धर्म अर्थात हिन्दू-धर्म को स्थान देते तो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं होती, यदि हमने यह भी घोषित किया होता कि हमारा राज्य हिन्दू राज्य होगा तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि हमारा संविधान हमारी इच्छानुसार धर्मनिरपेक्ष ही रहता। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान की अपेक्षा संसार में अन्य कोई धर्म अधिक ऐहिक नहीं है *(वाह वाह)*। यदि मुझे इसकी स्वतंत्रता होती तो मैं भावी भारतीय राष्ट्र के निर्माण के लिये तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिये अपने पूर्वजों से प्राप्त धर्म का उपयोग करता।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी मुझे यह संविधान दोषपूर्ण दिखाई देता है। इस संसदात्मक लोकतन्त्र का उद्देश्य वास्तव में वर्तमान स्थिति को बनाये रखना है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि वर्तमान स्थिति में आधारभूत परितर्वन हो। हम विभिन्न संस्थाओं को बनाये रखना चाहते हैं। हम समाज के विभिन्न स्तरों को बनाये रखना चाहते हैं। इस कारण यदि यह संविधान अधिक दिन नहीं चला तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि इसके द्वारा इस समय के जनसाधारण की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो सकती। मेरे कई माननीय मित्रों ने समता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुता के सिद्धान्तों की प्रशंसा की है। श्रीमान, मेरे विचार से, अब दो सौ वर्ष से अधिक समय के पश्चात् इन ऊंचे शब्दों का महत्व कुछ भी नहीं रह गया है। कई देश इन पदावलियों का सहारा लेकर ऊंचे स्तरों को बनाये रहे और नीचे स्तरों के लोगों का मनमाने ढंग से शोषण करते रहे। मेरे विचार से यदि इस संविधान को ठीक भावना से व्यवहार में लाया गया और वयस्क मताधिकार के कारण कुछ परिवर्तन हो गया और जन साधारण से हमें ठीक तरह के प्रतिनिधि प्राप्त हो गये तभी लोग अपने मनोवांछित फल को प्राप्त कर सकेंगे। अन्यथा जो बातें फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् अच्छी समझी गई थीं वे सन् 1949 ई. के लिये अच्छी नहीं कही जा सकतीं। शासन-व्यवस्था के वर्तमान ढांचे को बदलने के लिये किसी प्रकार के बलवे की अथवा क्रान्ति की आवश्यकता होगी जिससे जनसाधारण अपना अधिकार तथा अपनी शक्ति प्राप्त कर सकेंगे और देश का कल्याण स्वयं कर सकेंगे।

इस दृष्टि से श्रीमान, संसदात्मक लोकतंत्र से वर्तमान युग की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। जब तक वयस्क मताधिकार के व्यवहार में आने से स्थिति में परिवर्तन नहीं होता, जब तक सम्पृक्त स्वार्थ वाले, जो वर्तमान स्थिति को बनाये रखने के लिये प्रयास करेंगे, भविष्य में स्थिति के बदलने के कारण अपने अधिकार को बनाये रखने की शक्ति खो नहीं बैठेंगे तब तक यह संविधान व्यवहार में आ नहीं सकेगा। अन्यथा वर्तमान युग को इससे बिल्कुल ही भिन्न संविधान की अपेक्षा है, कम से कम ऐसे संविधान की अपेक्षा तो है ही जैसाकि महात्माजी चाहते थे। आखिर पिछले तीन वर्षों में हम इसी संविधान को तो व्यवहार में लाये हैं। अपने अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि पिछले तीन वर्षों में हम जिस प्रकार प्रशासन कार्य चलाते रहे हैं उसमें तथा आगे जिस प्रकार चलायेंगे उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं होगा। अगर हम उसका सिंहावलोकन करें तो हम इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि हम लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सके हैं। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सरकार और लोगों की बीच कलह है, चाहे वह इस समय थोड़ा-सा ही क्यों न हो। हमें यह कहकर संतोष न करना चाहिये कि इस असंतोष ने अभी संगठित रूप धारण नहीं किया है और इसे व्यक्त करने के लिए लोगों ने अभी कोई ऐसा दल संगठित नहीं किया है जो वर्तमान प्रशासन को विनष्ट कर देगा। किन्तु इस प्रकार का दल आसानी से संगठित हो सकता

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

है क्योंकि असंतोष के बीज बो दिये गये हैं। लोगों को वर्तमान प्रशासन से बहुत सी शिकायतें हैं और वे उससे असंतुष्ट हैं और उसे अपना प्रशासन नहीं समझते हैं। इसलिये इस दृष्टि से मुझे सन्देह है कि वास्तव में यह संविधान भारतीयों के स्वभाव के अनुरूप है या नहीं और इससे वर्तमान युग की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी या नहीं।

श्रीमान, इन बातों के होते हुए भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमने कई ऐसी बातें हासिल की हैं जिनके लिये हमें बधाई मिलनी चाहिये। सबसे अधिक बधाई के पात्र हैं दृढ़व्रती सरदार वल्लभभाई पटेल। सभी देशी राज्यों को समाप्त करके भारतभूमि में उन्हीं ने एकता स्थापित की है। बहुत कुछ उनकी बुद्धिमत्ता, विवेकशीलता तथा कार्यकुशलता के कारण ही वास्तविक लोकतन्त्र को व्यवहार में लाने के मार्ग में अल्पसंख्यकों आदि की जो रुकावटें थीं वह दूर हो सकीं। इसलिये यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो हम ने बहुत कुछ हासिल किया है। वयस्क मताधिकार प्रदान करके, विशेष स्वार्थों तथा प्रतिनिधियों का उत्सादन करके तथा देशी राज्यों को समाप्त करके हमने बहुत उन्नति की है। किन्तु जहां हमने कुछ संपृक्त स्वार्थों को बढ़ने नहीं दिया है और उनकी निन्दा की है वहां दूसरी ओर इस प्रकार के अन्य स्वार्थों को मजबूत भी किया है। आगे चल कर हमें इन संपृक्त स्वार्थों को अनुदारता तथा जीर्ण दर्शनों के सुदृढ़ गढ़ न होने देना चाहिये और इसके लिये सचेष्ट रहना चाहिये। इस प्रसंग में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि भारत के लोग इस संविधान का आदर करना सीखें। यदि वे इसमें कोई अभाव देखें तो वे यथोचित समय पर इसमें परिवर्तन कर सकते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इस संविधान में हमने लोकतन्त्रात्मक शासन के तत्वों का समावेश करने के लिये यथाशक्ति प्रयास किया है।

कुछ लोगों को इस पर आपत्ति है कि राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्ति प्रदान की गई है। मैं भी इससे सहमत हूं कि कुछ मामलों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्तियां प्रदान की गई हैं किन्तु वास्तव में ये राष्ट्रपति की शक्तियां नहीं हैं। ये शक्तियां कार्यपालिका और प्रधान-मंत्री की हैं। मेरे विचार से राष्ट्रपति केवल संविधानिक सम्राट के रूप में ही कार्य कर सकेगा। वह कोई कदम नहीं उठा सकेगा और अपनी इच्छा से कोई कार्य नहीं कर सकेगा। यह अत्यधिक कार्यपालिका शक्ति केन्द्रीय सरकार को दी गई है। श्रीमान, मैंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया था हमें एकात्मक शासन-प्रणाली स्वीकार करनी चाहिये। मुझे इसका संतोष है कि यद्यपि हमने पूर्ण रूप से एकात्मक शासन-प्रणाली स्वीकार नहीं की है किन्तु हमारे संविधान का स्वरूप संघीय से अधिक एकात्मक ही है। इस दृष्टि से मेरा यह विचार है कि आरम्भ में हमने जो व्यवस्था रखी थी उसमें बहुत सुधार कर दिया है।

मुझे एक दो शिकायतें करनी हैं किन्तु मेरे विचार से यह अवसर दोष निकालने का नहीं है। केवल इतना कहना पर्याप्त है कि भारत में जो समुदाय पिछड़े हुए समुदाय कहे जाते हैं उनके लिये वह सब नहीं किया गया है जो मैं चाहता था। इस सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव रखा था उसे यदि स्वीकार का लिया गया होता तो कोई हानि नहीं होती। उसे संविधान में समाविष्ट करने योग्य नहीं समझा गया है किन्तु मुझे आशा है कि अनेक लोगों की उनके प्रति जो सहानुभूति है वह

भविष्य में विधि निर्माण करते समय अथवा नीतियों को निश्चित करते समय व्यक्त की जायेगी। आखिर अर्थ और शिक्षा की दृष्टि से सारा भारत पिछड़ा हुआ है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो सुसम्पन्न हैं, सुशिक्षित हैं और जीवन की सुन्दर वस्तुओं का उपभोग करते हैं। जनसाधारण अधिकतर निराश्रित हैं; उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता है और उनके स्वास्थ्य की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिये अनुसूचित जातियों अथवा आदिम जातियों की जो कठिनाइयां हैं वही कठिनाइयां हिन्दुओं के बड़े बड़े समुदायों की भी हैं। इस स्थिति में मेरा निवेदन है कि अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के प्रति जिस प्रकार हम सहानुभूति दिखाते हैं उसी प्रकार हम उन लोगों के प्रति भी सहानुभूति का परिचय दें जिन्हें अभी तक स्वतन्त्रता से कुछ भी लाभ नहीं हुआ है। जितनी अधिक सहानुभूति हम दिखायेंगे उतना ही अधिक सामंजस्य हम भारतीय समाज में ला सकेंगे।

श्रीमान, समय समय पर आपने हमें जिस स्वतन्त्रता से बोलने दिया तथा जिस निपुणता से इस सभा की कार्यवाही का संचालन किया उसके लिये मैं आपको फिर धन्यवाद देता हूं। उससे सभा के प्रत्येक सदस्य को बहुत हर्ष हुआ और हर प्रकार से संतोष हुआ। इस कारण मैं फिर आप की प्रशंसा करता हूं।

***श्री सीताराम एस. जाजू** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, मुझे इसका बहुत गर्व है कि मैं यहां माननीय डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये उपस्थित हुआ हूं। मैं संविधान सभा के इतिहास की चर्चा नहीं करना चाहता किन्तु मैं यह कहूंगा कि एक देशी राज्य के प्रतिनिधि होने के नाते मुझे इस संविधान सभा से देशी राज्यों के लोगों का उत्तरोत्तर घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होने से बहुत संतोष हुआ है। हम देशी राज्यों के लोग भारत के वर्तमान प्रधान-मंत्री माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में और बाद को डॉ. पट्टाभी सीतारमय्या तथा शेख अब्दुल्ला की अध्यक्षता में देशी राज्यों के लोगों का भारतीय संघ से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रयास करते रहे तथा आन्दोलन करते रहे। हम यह चाहते थे कि देशी राज्यों के लोगों के प्रतिनिधियों में और ब्रिटिश भारत के लोगों के प्रतिनिधियों में कोई विभेद न किया जाये। हम यह समझते थे कि वंश, जाति, संस्कृति तथा अन्य सभी बातों की दृष्टि से हम सब एक ही लोग हैं, एक ही जाति के लोग हैं और देश के अवशिष्ट भाग के सम्बन्ध में हमारे हित एक समान हैं। हमारे सौभाग्य से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा राष्ट्र के अन्य नेताओं ने इसे समझा ओर उनके आशीर्वाद से हमें उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त हुई और अन्ततोगत्वा हम आपके सुयोग्य नेतृत्व में इस सभा के कार्य में भाग ले रहे हैं। अध्यक्ष महोदय, आपने नरेशों से बातचीत आरम्भ की जिसका परिणाम यह हुआ कि अब केवल थोड़े से लोग उनके मनोनीत किये हुए हैं और अन्य सब भारतीयों के निर्वाचित सदस्य हैं। वास्तव में हमारी यह धारणा है कि एक वाक्य लिखकर ही हमने दो सौ वर्ष या इससे भी अधिक वर्षों का इतिहास मिटा दिया है। इस काल में विदेशी सरकार ने अपने साम्प्रदायिक स्वार्थों को तथा इस देश पर अपने आधिपत्य को बनाये रखने के लिये विभिन्न हितों को स्थापित किया था।

श्रीमान, इस संविधान के देशी राज्य विषयक अध्याय के सम्बन्ध में हमारी यह धारणा हुई कि देशी राज्यों पर केन्द्र के नियंत्रण की जो व्यवस्था की गई

[श्री सीताराम एस. जाजू]

है वह एक गलत व्यवस्था है। मेरी यह प्रबल धारणा है कि इस प्रकार के नियंत्रण को रखने का अर्थ देशी राज्यों का अपमान करना ही है। इस दृष्टि से मैंने तथा मेरे अन्य मित्रों ने विशेषत: श्री बलवंत सिंह मेहता ने इस विषय की ओर मसौदा समिति, उसके सभापति डॉ. अम्बेडकर तथा श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और अन्य लोगों का ध्यान दिलाया। उन्होंने कृपा करके हमारी बात सुनी और हमसे कहा कि देशी राज्यों में स्थिति ही ऐसी है कि वे इससे भिन्न व्यवस्था नहीं कर सकते हैं। हम बहुत आगा पीछा करके उनसे सहमत तो हो गये किन्तु अब भी हमारा यह विश्वास है कि संविधान में इस प्रकार का विभेद करने की आवश्यकता नहीं थी। बाद को हमने सुना कि प्रान्तों के प्रति भी इसी प्रकार का व्यवहार किया गया है और अब हम देखते हैं कि संविधान में इस सम्बन्ध में उपबन्ध रखे गये हैं इससे हमें कुछ संतोष हुआ है क्योंकि कहावत है कि दूसरे को भी अपने ही दु:ख का भागी देखकर अपना दु:ख पीड़ा नहीं देता। किन्तु फिर भी हमारी यह धारणा है कि हमारे साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए।

श्रीमान, देश-विभाजन के पश्चात् देश की राजनैतिक विचार-धारा में परिवर्तन हुआ है। पहले प्रान्तीय स्वायत्त-शासन पर ज़ोर दिया जाता था और अब केन्द्र को सुदृढ़ बनाने तथा उसे अधिक से अधिक शक्ति प्रदान करने पर जोर दिया जाने लगा है। विचार-धारा में जो परिवर्तन हुआ है उसकी मैं आलोचना नहीं करना चाहता क्योंकि सम्भवत: हमारे नेताओं का मत इसके पक्ष में है। वे देश को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं। देश-विभाजन के पश्चात् अन्य घटनाएं भी घटित हुई हैं। उन घटनाओं के लिये हम उत्तरदाई नहीं हैं। किन्तु हमारी यह धारणा है कि देशी राज्यों में जो कुछ किया गया है वह एक महान कार्य है। साथ ही उप-प्रधान मंत्री महोदय ने जो राज्यमंत्री भी हैं हमें यह आश्वासन दिया है कि राज्यों के प्रशासन में कम से कम हस्तक्षेप किया जायेगा। मुझे आशा है कि हमें हरिजन समझ कर हमारे साथ व्यवहार नहीं किया जायेगा।

सबसे बड़ी बात जो हमने हासिल की है यह है कि राज्यों के लोगों को जिन्हें अभी तक मनुष्य तक नहीं समझा जाता था और जिन्हें कोई नागरिक अधिकार अथवा नागरिक स्वतंत्रतायें प्राप्त नहीं थीं; अब ये अधिकार प्रदान किये गये हैं और उन्हें उसी स्तर पर रखा गया है। जिस स्तर पर देश के अन्य नागरिक हैं। पुरानी प्रणाली मिटा दी गई है और बलात् श्रम लेने की तथा अन्य अमानुषिक प्रथाएं अब नहीं रहेंगी। किन्तु अभी हमें यह देखना है कि इस संविधान के उपबन्धों को व्यवहार में लाने में कितनी सफलता प्राप्त होती है। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि हमारे प्रधान मंत्री तथा उप-प्रधान मंत्री के सुयोग्य नेतृत्व में हमारी सभी आकांक्षाएं पूरी हो जायेंगी।

एक अन्य बात हमने अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में हासिल की है। पृथक् निर्वाचनों के कारण देश में असंतोष रहा है और उन्हीं के कारण देश का विभाजन भी हुआ है। हमने अब उन्हें मिटा दिया है। किन्तु मैं अपने सहधर्मियों को, जिनका इस सभा में बहुमत है, एक चेतावनी देता हूं। हमने स्थानों के रक्षण की प्रथा को तथा पृथक् निर्वाचक मंडलों को मिटा दिया है और हरिजनों के लिये ही केवल

दस वर्ष के लिये स्थानों के रक्षण की प्रथा को रहने दिया है। हमें ध्यान में रखना चाहिये कि आने वाले दस वर्षों में हम अल्पसंख्यकों के प्रति ऐसा व्यवहार करें और ऐसी सद्भावना दिखायें कि इस कालावधि की समाप्ति पर हम अनुसूचित जातियों के लिये स्थानों को रक्षित करने की व्यवस्था को भी समाप्त कर सकें। यदि हम इस परीक्षा में असफल रहे तो हमारी असफलता हमारे लिये हमेशा के लिये एक कलंक रूप हो जायेगी, हमें अपने कार्यों से यह प्रमाणित करना है कि उनके प्रति हमारे हृदय में सद्भाव है। यह समय कार्य करने का है। संविधान के किसी भी उपबन्ध का वह महत्व नहीं है जो कार्यों का है बातें बघारने से अधिक आवश्यकता है कार्य की। मुझे आशा है कि हम पीछे नहीं रहेंगे।

एक अन्य प्रश्न जिसे मैं उठाना चाहता हूं हमारे देश के आर्थिक एकीकरण के सम्बन्ध में है। मेरी यह धारणा है कि आर्थिक एकीकरण द्वारा हम केन्द्र को सशक्त कर रहे हैं। किन्तु हमें इसकी भी चिन्ता करनी चाहिये कि हम देशी राज्यों के प्रति, जो केन्द्र को इतना अधिक धन देते हैं, समुचित व्यवहार करें। आप उनसे रेल की आय और अन्य साधनों के समान कई चीज़ों को ले रहे हैं। आपको उनकी आर्थिक व्यवस्था को नष्ट नहीं करना चाहिये। मध्य भारत और अन्य राज्यों से, विशेषत: राजस्थान से, आपने बीकानेर जोधपुर और उदयपुर की रेलों को ले लिया है। यदि उन्हें केन्द्र से यथोचित आर्थिक सहायता नहीं मिली तो उनका दिवाला निकल जायेगा। आपको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि वे अपना शासन प्रबन्ध अच्छी प्रकार करने में समर्थ हों।

प्रशासन के सम्बन्ध में हमने अपने प्रशासकों से सुना है कि देशी राज्यों के लोगों को अयोग्य ठहराया गया है। मैं यह कहूंगा कि देशी राज्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार की जो बातें कही जाती हैं वे गलत हैं। सम्भवत: प्रान्तों में कुशासन के कुछ अधिक उदाहरण मिल जायेंगे। यह हम सभी को विदित है कि इस समय कुछ प्रान्तों में क्या हो रहा है। यदि सभी लोगों की यह राय है कि देशी राज्य इतने समुन्नत नहीं हैं कि उन्हें शक्ति सौंपी जा सके तो मैं पूछता हूं कि मद्रास प्रान्त में, पश्चिमी बंगाल में और पूर्वी पंजाब में क्या हो रहा है?

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास: जनरल): आप मद्रास के बारे में क्या जानते हैं?

***श्री सीताराम एस. जाजू:** मैं मद्रास के बारे मैं कुछ नहीं जानता हूं किन्तु जो लोग प्रान्तों के हैं उनको चुनौती देकर मैं पूछता हूं कि वे आखिर देशी राज्यों के बारे में क्या जानते हैं। कोई कारण नहीं है कि आप देशी राज्यों के सैकड़ों लोगों को पिछड़े हुए लोग ठहरायें। हम पिछड़े हुए हो सकते हैं और हम यहां प्रतिनिधित्व भी कर सकते हैं। किन्तु आपको एक बात स्मरण रखनी चाहिये। हम मनुष्य हैं और हमारी वही आकांक्षायें हैं जो अन्य लोगों की हैं हम सब आप ही के समान दास थे और सौभाग्य से हम सभी दासत्व से मुक्त हुए हैं। इसके लिये हम बापू को धन्यवाद देते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप हमसे किस प्रकार श्रेष्ठ हैं। मैं यह कभी नहीं मान सकता। जहां तक प्रशासन का सम्बन्ध है, चूंकि उसे उपप्रधान मंत्री का सुयोग्य प्रथप्रदर्शन प्राप्त है इसलिये सभी प्रशासन सेवाओं का एकीकरण किया गया है। हमारी यह धारणा है कि हमें प्रशासन सेवाओं

[श्री सीताराम एस. जाजू]

में यथेष्ट प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये और उसके लिये हमें यथोचित अवसर मिलना चाहिये। इस सम्बन्ध में मेरी एक प्रार्थना है और वह यह है कि देशी राज्यों के लोगों की उपेक्षा न की जाये।

इसके अतिरिक्त एक बात और है वह यह है कि लोग यह कहते आये हैं कि "हम इस संविधान का समर्थन नहीं करेंगे। इसके लिये डॉ. अम्बेडकर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के समान अन्य सुयोग्य व्यक्ति हैं ही"। मैं इन लोगों से सहमत नहीं हूं। वे कहते हैं कि इस संविधान से अधिक परिवर्तन नहीं होता। मैं उनके इस विचार से भी सहमत नहीं हूं। मेरे विचार से यह संविधान इस देश के लिये सर्वथा उपयुक्त है। मेरे विचार से वर्तमान स्थिति में इससे अधिक उत्कृष्ट संविधान नहीं बनाया जा सकता है। हम सर्वत्र देखते हैं कि मनुष्य की बनाई हुई सभी चीज़ें दोषपूर्ण होती हैं और उनमें हमेशा सुधार किया जा सकता है। वर्तमान स्थिति में हम इससे अच्छा संविधान नहीं बना सकते थे। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि आज राष्ट्रपिता जीवित होते तो वे इसके सभी उपबन्धों से सहमत न होने पर भी इसका अनुमोदन करते। इस संविधान में ऐसे उपबन्ध हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि हमने गांधी के दर्शन का हृदय से समर्थन किया है। गांधी जी ने हमें जो भी सीख दी थी उसके तत्व संविधान में सन्निहित हैं और यदि संविधान को यथोचित रूप से व्यवहार में लाया गया तो इन तत्वों का विकास हो जायेगा।

जिस संविधान का हमने निर्माण किया है उसके द्वारा हम निर्वाचन के समय निर्वाचकों को दिये हुए सभी वचनों को पूरा कर सकते हैं किन्तु शर्त यह है कि हम उसे उसी भावना से व्यवहार में लायें जिस भावना से उसका निर्माण किया गया है। हमें अपने पथप्रदर्शन के लिये विधि अथवा अनुच्छेदों की शब्दावलि को ही नहीं देखना चाहिये। जिस भावना से हमने इस संविधान का निर्माण किया है उससे हमें प्रेरणा प्राप्त होनी चाहिये। श्रीमान, उदाहरणार्थ यद्यपि इस संविधान में इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है किन्तु हमारे प्रधान मंत्री ने हमें आश्वासन दिया है कि जब तक वे प्रधान मंत्री रहेंगे तब तक देशवासियों पर आय-कर फिर आरोपित नहीं किया जायेगा।

एक अन्य परिवर्तन भी किया गया है और वह यह है कि इस संविधान को वृहदाकार बनाया गया है। मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि कुछ बातें ऐसी हैं कि यदि उनके सम्बन्ध में आप संविधान में उपबन्ध नहीं रखेंगे तो वकीलों के वितंडावाद को प्रोत्साहन मिलेगा और न्यायपालिका कई उपबन्धों का ऐसा निर्वचन करेगी कि उनसे लोगों को हानि होगी।

श्रीमान, अब मैं सम्पत्ति के अधिकारों के प्रश्न को उठाऊंगा। श्रीमान् इस संविधान में यह उपबन्धित है कि केवल उन प्रान्तों में जमीदारी उत्सादित की जायेगी जहां 26 जनवरी 1950 के पूर्व इस उद्देश्य से विधेयक प्रस्तुत किये जायेंगे। इसे सारे भारत में समान रूप से उत्सादित करना चाहिये। 26 जनवरी तक सर्वत्र जमीदारी का उत्सादन हो जाना चाहिये। भारतीय गणराज्य में जमीदारी का, अथवा सामन्तशाही का, अथवा संपृक्त स्वार्थों का कोई अवशेष नहीं रहना चाहिये। इसके लिये हमें अवसर प्राप्त हुआ है और हमें पूर्ण विश्वास है कि पंडित नेहरू तथा

सरदार पटेल के नेतृत्व में हमें यह स्थिति प्राप्त होगी और देश उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा। हमारी यह अकांक्षा थी कि हम अपना संविधान स्वयं बनायें और वह पूरी हो गई है। अपनी यात्रा में हम एक मंज़िल तय कर चुके हैं। अब हमें इस संविधान में सन्निहित आकांक्षाओं को पूरा करने का इससे कहीं बड़ा कार्य आरम्भ करना है। अब लोग यह देखेंगे कि निर्वाचकों को हमने जो वचन दिये हैं, उन्हें हम कैसे पूरा करते हैं। हमें, जो प्रत्येक अवसर पर महात्मा गांधी की शपथ लेते आये हैं, अब व्यवहार में यह दिखाना है कि हमारे कार्य गांधी जी के सिद्धान्तों से असंगत नहीं हैं। विशेषत: कांग्रेसजनों का यह कर्तव्य है कि वे सत्यनिष्ठा से महात्मा जी के आदर्शों का अनुसरण करें और साम्प्रदायिकता तथा संपृक्त स्वार्थों का पोषण करने वाले लोगों के शिकार न हों।

हमें सब बातों पर व्यवहारिक दृष्टि से विचार करना चाहिये और इस की चिंता करनी चाहिये कि संपृक्त स्वार्थों के पोषक लोगों का उत्पीड़न न करें। हम समझते हैं कि यह संविधान इस सभा द्वारा पारित लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुरूप ही है और हम इस का अनुमोदन करते हैं। इन शब्दों के साथ श्रीमान् माननीय डॉ. अम्बेडकर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** पंडित हृदय नाथ कुंजरू।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा: जनरल): मैं आशा करता हूं कि जिन लोगों ने पहले दिन अपने नाम दिये थे उन्हें अवसर दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** जिस क्रम से लोगों ने अपने नाम दिये थे उस क्रम से मैं उन्हें नहीं बुला रहा हूं।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** फिर भी जिन लोगों ने अपने नाम दिये थे उन्हें अवसर मिलना चाहिये।

***अध्यक्ष:** उन्हें अवश्य अवसर मिलेगा।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस पूरे संविधान पर जो भी व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करना चाहेगा वह बिना अपना उत्तरदायित्व समझे हुए ऐसा नहीं करेगा। हो सकता है कि यह संविधान प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा के अनुरूप न बना हो किन्तु कुछ सदस्यों ने इस पूरे संविधान की जो निन्दा की है उसका कोई अर्थ नहीं है। इस सम्बन्ध में श्रीमान उचित यही है कि मसौदा-समिति ने जिस योग्यता और निपुणता के साथ अपना कार्य सम्पन्न किया है उसके लिये हम सब उसकी प्रशंसा करें। उसके प्रत्येक सदस्य ने अकेले तथा अन्य सदस्यों के साथ बहुत परिश्रम किया है। यद्यपि कोई भी यह नहीं कह सकता कि उनकी सिफारिशें ऐसी हैं कि सभा के सभी वर्ग उसका अनुमोदन करेंगे, किन्तु इसे स्वीकार करना होगा कि जहां तक उन्हें अपनी इच्छा प्रकट करने की स्वतंत्रता प्राप्त थी वहां तक उन्होंने स्वतंत्रता को अधिक से अधिक

[पंडित हृदय नाथ कुंजरू]

विस्तृत करने के उद्देश्य से ही अपने कर्तव्यों का तत्परता से पालन किया। इस सम्बन्ध में श्रीमान, मैं संविधान-सभा के अधिकारियों तथा कर्मचारियों की प्रशंसा करता हूं जिनका कर्तव्य इस सभा के समक्ष अपनी सिफारिशें रखने में मसौदा-समिति की सहायता करना तथा इस संविधान में विभिन्न उपबन्धों को समझने तथा उनके सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने में सदस्यों की सहायता करना था। सम्भवत: इस सभा के किसी अन्य सदस्य की अपेक्षा मैंने उन्हें अधिक कष्ट दिया है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): कुछ अन्य लोगों ने भी कष्ट दिया है।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** इसलिये इस अवसर पर मैं केवल उनकी योग्यता की ही प्रशंसा नहीं करता बल्कि जिस उत्कृष्ट भावना से उन्होंने कार्य किया है उसकी भी प्रशंसा करता हूं। अपने कार्य को सम्पन्न करने में उन्होंने अनुनानीय उत्साह तथा कर्तव्य निष्ठा का परिचय दिया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास: जनरल): वाह, वाह।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** मैं सच्चे हृदय से यह मत प्रकट करता हूं कि हमें उनके प्रति अपनी कृतज्ञता का उल्लेख कर देना चाहिये।

श्रीमान, हम संविधान पर कई दृष्टिकोणों से विचार कर सकते हैं किन्तु मेरे विचार से उसकी विशेषतायें यह हैं कि उसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता के विषय में तथा केन्द्र और संघागों के भावी सम्बन्धों के विषय में उपबन्ध रखे गये हैं। अनुच्छेद 22 प्रथम विषय के सम्बन्ध में है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि उस अनुच्छेद में प्रान्तीय सरकारों की तथा केन्द्रीय सरकार की शक्ति पर ऐसे निर्बन्धन लगाये गये हैं जो पहले नहीं थे। उदाहरणार्थ सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियमों के अधीन कई प्रान्तीय सरकारों ने इस दायित्व को स्वीकार किया था कि वे उन बन्दियों को उन पर लगाये गये अभियोगों की सूचना देंगे, जो उसके लिये मांग करेंगे। कई मामलों में यह देखा गया कि सूचना बहुत देर करके दी गई थी। प्रान्तीय सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियमों का एक अन्य दोष यह था कि उनमें कोई उपबन्ध ऐसे नहीं थे जिनके आधार पर बन्दियों के मामले किसी मंत्रणा-मंडली के सामने रखे जा सकते थे। यदि यह व्यवस्था होती तो अभियोगों की न्यायिक परीक्षा न होने पर भी लोग यह समझते कि एक निरपेक्ष निकाय ने अभियोगों पर विचार किया है और इसकी परीक्षा की है कि बन्दीकरण न्याय्य था या नहीं था। अनुच्छेद 22 के अधीन प्रत्येक बन्दी का मामला एक मंत्रणा-मंडली के सामने जायेगा, जिसमें ऐसे लोग होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके होंगे या न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखते होंगे। इसके अतिरिक्त श्रीमान, सम्बन्धित सरकार पर यह आभार होगा कि वह बन्दियों को यथाशक्य शीघ्र सूचित करेगी कि उन्हें किन कारणों से बन्दी अथवा निरुद्ध किया गया है। यह भी उपबन्धित किया गया है कि कोई व्यक्ति, जब तक वह संसद निर्मित विधि के अनुसार निरुद्ध न किया

गया हो, संसद-निर्मित विधि द्वारा निर्धारित कालावधि से अधिक काल तक निरुद्ध नहीं रखा जायेगा। इस प्रकार पहले की विधियों में जो दोष थे उन्हें अनुच्छेद 22 द्वारा दूर कर दिया गया है। किन्तु निर्बन्धनकारी वर्तमान विधियों का हमारा अनुभव यह रहा है कि उनका प्रभाव क्षेत्र इतना संकीर्ण है कि विभिन्न प्रान्तों में जो कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं उन्हें वे दूर नहीं कर सकतीं।

श्रीमान, यदि सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियमों के अधीन प्रान्तीय सरकारों को उन लोगों को निरुद्ध करने की पूर्ण शक्ति दी गई है जो उनके मतानुसार ऐसे कार्य करने जा रहे हैं, अथवा कर चुके हैं जिससे सार्वजनिक सुरक्षा की हानि होती है, किन्तु फिर भी कुछ मामलों में उच्च-न्यायालयों ने हस्तक्षेप किया है और उस आधार पर बन्दियों को मुक्त करने के लिये आदेश दिये हैं कि उन पर अस्पष्ट, अनिश्चित अथवा अपूर्ण अभियोग लगाये गये हैं और अधिनियमों के अधीन उन्हें जिन प्रार्थना-पत्रों को देने का अधिकार है उन्हें देने के लिये उन्हें पर्याप्त सूचना नहीं दी गई है। कुछ सरकारों ने मध्य प्रान्त की सरकार का नेतृत्व पाकर अपनी विधियों को संशोधित कर दिया है ताकि उच्च-न्यायालय इन कारणों से किसी व्यक्ति को मुक्त न कर सकें। मद्रास सरकार ने हाल ही में तत्विषयक विधि को संशोधित कर दिया और मद्रास की विधानसभा में वहां के विधि-मंत्री ने कहा कि यह परिवर्तन भारत सरकार के कहने पर किया जा रहा है। डॉ. अम्बेडकर ने हमारे सामने एक ऐसा अनुच्छेद रखा है जिससे प्रान्तीय सरकारों की शक्तियां निर्बन्धित हो जायेंगी किन्तु उनकी सरकार ने, सम्भवतः उन्हीं के मंत्रालय ने, प्रान्तीय सरकारों को यह मंत्रणा दी है कि वे उच्च न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र को समाप्त करने के लिये एक परोक्ष साधन को अपनायें।

यह दिखाने के लिये कि अनुच्छेद 22 का प्रभाव-क्षेत्र कितना संकीर्ण है मैं एक अन्य उदाहरण भी दूंगा। मध्य प्रान्त के उच्च-न्यायालय के समक्ष कुछ महीने पूर्व एक मामला आया था जिसमें उसे विदित हो गया कि जो अभियोग लगाये गये हैं वे निराधार हैं। सम्बन्धित बन्दी ने उसके समक्ष जो तथ्य तथा गवाही उपस्थित की उससे यह प्रमाणित हो गया कि प्रान्तीय सरकार का भय निराधार था और उसने जिन तथ्यों का उल्लेख किया था तथा बन्दी को गिरफ्तार करने के जो कारण बताये थे वे भी वास्तव में निराधार थे। मैं समझता हूं कि मध्य प्रान्त की सरकार ने बन्दी को निश्चित अभियोगों की सूचना दी होगी क्योंकि उसे यह भय था कि अन्यथा उच्च न्यायालय यह निर्णय करेगा कि उसका बन्दीकरण न्यायोचित नहीं है। किन्तु हमारे सामने इस सभा द्वारा पारित जिस अनुच्छेद 22 को रखा जा रहा है उससे ऐसे मामलों में कुछ भी सहायता नहीं मिलेगी। न तो केन्द्रीय सरकार पर और न प्रान्तीय सरकारों पर यह आभार होगा कि वे बन्दियों को निश्चित आरोपों की सूचना दें जिसका यह परिणाम होगा कि उच्च न्यायालय जो थोड़ा बहुत निरीक्षण करते रहे हैं वह भी नहीं कर सकेंगे।

श्रीमान, संविधान की एक विशेषता और है...

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं अपने माननीय मित्र को बता सकता हूं कि सम्भवतः अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) के अधीन ऐसे मामले आ जायेंगे जैसे कि उनके ध्यान में हैं?

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** अनुच्छेद 22 का खण्ड (1) उन लोगों के मामलों के सम्बन्ध में नहीं है जो किसी निवारक विधि के अधीन बन्दी किये गये हों। मैं सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियमों के अधीन गिरफ्तार किये हुए लोगों की चर्चा नहीं कर रहा हूं किन्तु साधारण विधि के अधीन गिरफ्तार किये हुए लोगों की चर्चा कर रहा हूं। इसलिये मेरे विचार से अनुच्छेद 22 का खण्ड (1) उन लोगों के मामलों के सम्बन्ध में लागू नहीं होगा जिनकी मैं चर्चा कर रहा हूं।

श्रीमान, इस सम्बन्ध में मैं संविधान की एक और विशेषता की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं। विधि के प्रशासन का विधि के उपबन्धों से कम महत्व नहीं है। इसलिये यह आवश्यक है कि न्यायपालिका की स्थिति सुदृढ़ की जाये और ऐसी व्यवस्था स्थापित करने के लिये प्रत्येक कार्यवाही की जाये जिससे प्रत्येक व्यक्ति के प्रति, बिना किसी पक्षपात के न्याय हो सके। किन्तु मुझे भय है कि संविधान द्वारा वह व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकेगी, जो इसके लिये आवश्यक है, अर्थात् न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण नहीं हो सकेगा। इस विषय के सम्बन्ध में हमारे सामने जो सिफारिश की गई थी उसके अनुसार यह सुधार तीन वर्ष में हो जाना चाहिये था किन्तु जब इस सभा में इस पर विचार विमर्श हुआ तो उसमें यह उल्लेख नहीं रहने दिया गया। इस कारण यह सिफारिश अब तक सामान्य सिफारिश रह गई है। मुझे विदित है कि कम से कम मद्रास में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने की योजना एक दो जिलों में व्यवहार में लाई गई है और एक दो प्रान्तों में उसे व्यवहार में लाने की योजनाओं पर विचार किया जा रहा है। किन्तु संविधान के वर्तमान उपबन्धों के अधीन हम इस सुधार को यथाशक्य शीघ्र करने के लिये प्रान्तीय सरकारों पर जोर नहीं डाल सकते।

इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालयों की स्थिति को ही देखिये। भविष्य में यह और भी अधिक आवश्यक होगा कि उच्च न्यायालयों में विधि विषयक उच्चतम योग्यता रखने वाले लोग आयें और उन्हें ऊंची प्रतिष्ठा प्राप्त हो। श्रीमान, न्यायाधीशों के वेतनों तथा निवृत्ति वेतनों के सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखे गये है उन्हें देखते हुए तथा उन पदों को स्वीकार करने पर निजी विधि-व्यवसाय के प्रतिषेध को देखते हुए, मेरी यह धारणा होती है कि उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के पदों के लिये विधि-विषयक उच्चतम योग्यता रखने वाले लोग नहीं आयेंगे। हम सब भी उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीशों के निवृत्ति वेतन विषयक विधि को दुहरा सकते हैं जिसके कम से कम एक विधि तो ऐसी हो जाये जिससे आकर्षित होकर वास्तविक योग्यता रखने वाले लोग न्यायाधीश पदों को स्वीकार करें। मैं इस विषय का विस्तृत विवेचन नहीं करना चाहता किन्तु मेरे विचार से आवश्यकता इसकी है कि यदि कोई व्यक्ति वकीलों में से न्यायाधीश नियुक्त किया जाये तो उसका निवृत्ति वेतन उसकी सेवा की अवधि पर निर्भर न करे और उसे तथा अन्य न्यायाधीशों को जो निवृत्ति वेतन दिया जाये वह कम से कम इंग्लिस्तान के न्यायाधीशों के निवृत्ति-वेतन के बराबर तो हो ही। इस समय भारत में न्यायाधीश सेवा-निवृत्त होने पर अपने वेतन की तिहाई धन-राशि निवृत्ति-वेतन के रूप में पा सकते हैं। मेरे विचार से भविष्य में जो निवृत्ति-वेतन दिया जाय वह वेतन की धन-राशि की दो तिहाई राशि से कम न हो।

उच्च न्यायालयों की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिये और न्याय प्रशासन की सुयोग्यता तथा पवित्रता के सम्बन्ध में लोगों में विश्वास उत्पन्न करने का एक अन्य उपाय यह है कि उच्च न्यायालयों को जिला न्यायाधीशों को नियुक्त करने तथा उनका स्थानान्तरण करने का अधिकार दिया जाये। आरम्भ में यह विचार किया गया था कि हम संविधान द्वारा उच्च न्यायालयों को यह प्राधिकार प्रदान करें। किन्तु दुर्भाग्य से सभा के समक्ष जो अनुच्छेद रखा गया था वह दुहराया गया और यह शक्ति उनसे ले ली गई। यह हमारे संविधान की एक कमजोरी है और मुझे बहुत खेद है कि यह रहने दी गई है। इन सभी विशेषताओं को देखने से हमें विदित होता है कि मसौदा-समिति ने और सम्भवत: केन्द्रीय सरकार ने उन उपबन्धों के महत्व को नहीं समझा है जो इस देश के भावी न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में है।

श्रीमान, अपनी जगह पर बैठने के पूर्व मैं एक प्रश्न को और उठाना चाहता हूं। केन्द्र और प्रान्तों के बीच शक्ति के बंटवारे के सम्बन्ध में जो उपबन्ध हैं उनके गुणदोषों पर विचार करने में मैं किसी सिद्धान्त का सहारा नहीं लूंगा। संघ-शासन की एक परिभाषा नहीं है। विभिन्न प्रकार के संघीय संविधान हैं। हमें केवल यह देखना चाहिये कि क्या केन्द्र के और अंगभूत एककों के सम्बन्ध ऐसे हैं कि उनसे लोकतंत्र का विकास होगा और प्रान्तीय सरकारों में उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत होगी। संसार के विभिन्न भागों में संघीय सरकारों का जो अनुभव रहा है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय सरकार को कुछ ऐसे महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में कार्यवाही करने का अधिकार होना चाहिये जिन्हें कुछ संविधानों में अंगभूत एककों के क्षेत्राधिकार में रखा गया है। इस समय जिस प्रकार की स्थिति है उसके अनुभव के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि आर्थिक क्षेत्र में भी केन्द्रीय सरकार को पर्याप्त शक्ति प्राप्त होनी चाहिये ताकि वह लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठा सके और देश को अधिक सुसम्पन्न बना सके। हम जानते हैं कि विभिन्न देशों में आर्थिक प्रश्न का क्या महत्व रहा है। इस लिये इस संविधान द्वारा संघीय सरकार को आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में जो शक्ति दी गई है उसका अवश्य ही स्वागत किया जाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त संविधान की इस विशेषता का भी स्वागत करना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार को अपनी की हुई सन्धियों को तथा उन अभिसमयों को व्यवहार में लाने की शक्ति होगी जिनके लिये वह सहमत हुई हो। मेरे विचार से तथा साधारणतया सभी भारतीयों के विचार से 1935 के भारत-शासन अधिनियम का यह सबसे बड़ा दोष था कि केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति प्राप्त नहीं थी। इसके अतिरिक्त श्रीमान, यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार को, जो देश की सुरक्षा के लिये उत्तरदाई है, बाहर के अथवा भीतर के कारणों से राष्ट्रीय सुरक्षा संकट में पड़ने पर प्रभावपूर्ण ढंग से हस्तक्षेप करने की शक्ति प्राप्त हो। किन्तु केन्द्रीय सरकार को कुछ ऐसी शक्तियां दी गई हैं जिनकी, मेरे विचार से, अन्य देशों के अनुभव को देखते हुए और पिछले युद्ध के पश्चात् संसार में जो घटनायें घटित हुई हैं उन्हें देखते हुए, आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान मेरी दृष्टि में जो उपबन्ध हैं वे उस स्थिति के सम्बन्ध में हैं जब आपात के उपस्थित होने पर केन्द्र तथा अंगभूत एककों के आर्थिक सम्बन्ध टूट

[पंडित हृदय नाथ कुंजरू]

जायेंगे और जब राष्ट्रपति की यह धारणा होने पर कि किसी प्रान्त में आर्थिक आपात उपस्थित हो गया है केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय आयव्ययकों पर नियंत्रण रखेगी। मेरे विचार से इन उपबन्धों की आवश्यकता नहीं है। मुझे इन प्रश्नों का विस्तृत विवेचन करने का अवसर मिल चुका है इसलिये मैं इन पर इस समय अधिक नहीं बोलूंगा। मैं यह कहूंगा कि यह दो अनुच्छेद तथा अनुच्छेद 365 यह प्रदर्शित करता है कि हमारे संविधान में केन्द्र को अत्यधिक शक्ति प्रदान की गई है। भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए भी इसकी आवश्यकता नहीं है कि केन्द्रीय सरकार अपने को हमेशा प्रान्तीय सरकारों की संरक्षक समझती रहे। मेरे विचार से 1935 के भारत शासन अधिनियम के अधीन राज्यपाल अन्य बातों के साथ अपने प्रान्त की साख तथा आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने के लिय उतरदाई था। इस संविधान के अधीन राज्यपाल का स्थान केन्द्रीय सरकार ले लेगी। हमें अपने संविधान में धारा 93 को कुछ रूप भेद के साथ स्थान देने से संतोष नहीं हुआ। हमने लोकतंत्रात्मक प्रान्तीय सरकारों के वित्त पर भी नियंत्रण रखने के लिये उस अधिनियम से उपबन्ध लिये हैं। मेरे विचार से अनुच्छेद 365 से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि संविधान में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच शक्ति के बटवारे के सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखे गये हैं वे प्रान्तों का बिल्कुल अविश्वास करके रखे गये हैं। हम लोकतंत्रात्मक शासन के युग को आरम्भ करने जा रहे हैं किन्तु जिन राज्यों पर इस देश में लोकतंत्र का सफल होना या विफल होना निर्भर करता है उनका आरम्भ में ही हम अविश्वास कर रहे हैं। मेरे विचार से केन्द्रीय सरकार ने अपने ऊपर बहुत जिम्मेदारी ले ली है। इस संविधान द्वारा राज्यों की सरकारें अपनी जिम्मेदारी को नहीं समझेंगी और निरुत्साह होकर ही अपना कार्य करेंगी। इससे वे यह भी समझेंगी कि वे केवल केन्द्रीय सरकार की कार्यसाधिका हैं। इस प्रकार की धारणा से पूर्ण उत्तरदायित्व की भावना नहीं जाग्रत हो सकती और न इससे प्रान्तीय निर्वाचक-मंडलों और विधान-मंडलों को एक स्वशासित देश में जिस निरीक्षण की आवश्यकता होती है उस निरीक्षण को रखने के लिये प्रोत्साहन ही मिलेगा।

श्रीमान, मुझे आशा है कि राज्यों के भावी संविधान के सम्बन्ध में आप मुझे दो शब्द वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में कहने की भी आज्ञा देंगे क्योंकि वयस्क मताधिकार के आधार पर ही प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्य चुने जायेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मताधिकार के लिये सम्पत्ति का आधार कोई संतोषजनक आधार नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी कर को नहीं देता है अथवा किसी विशेष किराये के मकान में नहीं रहता है तो इस कारण वह नागरिक होने के अधिकार से वंचित नहीं हो जाता। इसके विपरीत चूंकि पीड़ियों से उसकी श्रेणी के लोगों की उपेक्षा होती रही है इसलिये इस कारण भी उसे मताधिकार प्राप्त होना चाहिये जिससे वह उन लोगों पर दबाव डाल सके जिन पर उसकी स्थिति में सुधार करने का दायित्व है। किन्तु हमें इस पर विचार करना है कि वयस्क मताधिकार के कारण मताधिकार एकाएक विस्तृत हो जाने से क्या लोकतंत्र के विचारों का विकास होगा और क्या लोग विवेकशील और संयमशील होंगे क्योंकि उनके चरित्र पर ही लोकतंत्र की सफलता निर्भर है। मुझे विश्वास है कि प्रान्तों में इस समय 18 प्रतिशत से अधिक लोगों को वयस्क मताधिकार प्राप्त नहीं है। संविधान के भाग (ख) में उल्लिखित राज्यों में लोगों को शायद ही कोई मताधिकार प्राप्त है। उनमें से अधिकांश में शायद ही कोई स्थानीय निकाय होगा। इसलिये मुझे यह दिखाई देता है कि

जहां अभी तक बिल्कुल सीमित मताधिकार रहा है वहां लोगों को एकाएक सार्वभौम मताधिकार प्रदान करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। यदि हम मताधिकार धीरे-धीरे प्रदान करते और एक निश्चित समय में, जैसे कि पन्द्रह वर्ष में वयस्क मताधिकार प्रदान करते और इस समय केवल 40 प्रतिशत से लेकर 50 प्रतिशत तक को मताधिकार प्रदान करके संतोष कर लेते तो हम लोगों को फुसलाने वालों को अधिक अवसर नहीं देते और राजनैतिक दलों के तथा उम्मीदवारों के निर्वाचकों के सम्पर्क में आने में तथा उन्हें शिक्षा देने में सुविधा प्रदान करते। किन्तु इस संविधान के व्यवहार में आने पर जो स्थिति उत्पन्न हो जायेगी उस स्थिति में निर्वाचकों को शिक्षा देना एक बहुत ही कठिन कार्य हो जायेगा। जिन लोगों को निर्वाचकों के अज्ञान का अनुभव है वे मताधिकार को एकाएक विस्तृत बनाने के सम्बन्ध में मैंने जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे सहमत होंगे। चूंकि अब विचाराधीन संविधान में कुछ परिवर्तन नहीं किया जा सकता इसलिये मुझे आशा है कि देश के राजनैतिक दल तथा वे लोग हितैषी लोग, जिनकी यह प्रबल इच्छा रहती है कि प्रत्येक व्यक्ति एक उत्तरदाई नागरिक हो, निर्वाचकों को अपने कर्तव्यों से परिचित कराने के लिये तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिये यथासम्भव प्रयत्न करेंगे जिससे निर्वाचक आत्माभिमानी नागरिक हो सकें और कम से कम इतनी योग्यता तो प्राप्त कर सकें कि साधारण प्रश्नों पर विचार कर सकें।

श्रीमान, यदि हम संविधान पर उस दृष्टिकोण से विचार करें, जिसमें सभा के सामने रख चुका हूं, तो जहां हम उसके कुछ अंगों को अच्छा समझेंगे वहां दूसरे लोगों को बुरा भी समझेंगे। इममें कोई सन्देह नहीं है कि संविधान के कुछ अंग प्रशंसा के योग्य हैं। मूलाधिकार-विषयक अध्याय के कुछ उपबन्धों पर यद्यपि बहुत आपत्ति की जा सकती है किन्तु यह एक तथ्य है कि देशवासियों को और विशेषत: उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों को सारवान अधिकार प्राप्त हाते हैं। उस अध्याय में अल्पसंख्यकों को भी आश्वासन दिये गये हैं जिनका बहुत अधिक महत्व है। उन उपबन्धों को भी देखिये जो उस प्रणाली के सम्बन्ध में हैं जिसके अनुसार भविष्य में सरकारी सेवक नियुक्त किये जायेंगे। बहुत हद तक उनकी ईमानदारी तथा योग्यता पर ही देश का भविष्य निर्भर करेगा। मेरे विचार से हमें विश्वास होना चाहिये कि जहां तक किसी विधि के उपबन्धों द्वारा आश्वासन दिया जा सकता है वहां तक इस संविधान द्वारा भी आश्वासन दिया गया है कि सरकारी जगहों पर लोग केवल योग्यता के आधार पर ही नियुक्त किये जायेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमने यह एक बहुत बड़ी बात हासिल की है। संविधान की इस विशेषता के लिये हम मसौदा-समिति तथा इस सभा के आभारी हैं। किन्तु उसके कई अंग ऐसे हैं जिनका हम हृदय से समर्थन नहीं कर सकते। चाहे जो भी उपबन्ध हों इस अवसर पर हमें संविधान का समर्थन करना ही चाहिये। मेरे विचार से कोई भी व्यक्ति उसके विरोध में मत नहीं दे सकता है। साथ ही मैं यह कहूंगा कि हममें से कुछ लोग इस संविधान के कुछ महत्वपूर्ण उपबन्धों से असंतुष्ट हैं और हमारी यह इच्छा है, जैसा कि प्रधान-मंत्री महोदय ने कुछ मास पूर्व कहा था कि क्या ही इच्छा होता यदि यह सम्भव हो कि संविधान को कुछ वर्ष तक हम उसी प्रकार संशोधित कर सकते जैसे कि हम किसी साधारण विधि को संशोधित कर सकते हैं। *(हर्षध्वनि)*

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आज हमें जो अवसर प्राप्त हुआ है वह कई कारण से एक अद्वितीय अवसर कहा जा सकता है। इस अवसर पर सब से पहले हमें करबद्ध होकर धन्यवाद देना चाहिये कि उसने हमारे उन नेताओं की अभिलाषायें तथा आकांक्षायें पूर्ण की हैं जिन्होंने अर्धशताब्दी तक संघर्ष किया और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिये किसी त्याग को भी बड़ा नहीं समझा जिसे प्राप्त करने पर हमें आज यह सुदिन देखने को मिला है। आज हमें आशीर्वाद देने के लिये तथा उन्नति के मार्ग में हमारा पथप्रदर्शन करने के लिये यदि उनमें से कुछ नेता हमारे बीच में होते तो हम अपना अहोभाग्य समझते। साथ ही, मेरे विचार से, कितना अच्छा होता यदि इस संविधान में अध्यात्मिकता का भी समावेश होता तथा उसे एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता। इससे यह संविधान अन्य संविधानों से भिन्न नहीं हो जाता क्योंकि हम देखते हैं कि अन्य संविधानों में भी इस प्रकार का उल्लेख है। हमारे लिये इस विषय का और भी अधिक महत्व है क्योंकि इतिहास में पहली बार हमारे यहां महात्मा ने धर्म और राजनीति का सम्बन्ध स्थापित किया है। उन्होंने केवल यही नहीं बताया कि राजनीति में धर्म का क्या स्थान है बल्कि पहली बार यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया कि केवल लक्ष्य ही सच्चा तथा उत्कृष्ट न होना चाहिये बल्कि उसे प्राप्त करने के साधन भी सच्चे तथा उत्कृष्ट होने चाहिये क्योंकि तभी उससे वास्तव में लोगों का हितसाधन हो सकेगा। श्रीमान, हममें से कुछ लोगों की यह धारणा है कि राजनीति का अध्यात्म से नाता जोड़ना ठीक नहीं है। मेरे विचार से वर्तमान समय में इस प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं है। इस देश में अथवा विदेशों में बोलते हुए क्या हमारे नेता इस देश के आध्यात्मिक इतिहास के महत्व को नहीं बताते? अपने राष्ट्र के सर्वप्रथम कार्य में यदि हम इस अध्यात्म को अभिव्यक्त नहीं करते तो क्या इससे हमारी प्रशंसा होगी? किन्तु चाहे इसका इस देश के लिखित संविधान में समावेश हो या न हो किन्तु मुझे विश्वास है कि इस संविधान के उद्देश्य को पूरा करने में हमारे देशवासी तथा हमारे नेता कभी ईश्वर का विस्मरण नहीं होने देंगे। तभी हमारा संविधान वास्तव में सफलता के साथ प्रवर्तन में आयेगा।

श्रीमान, आज इस अवसर पर हमें प्राचीन ऋषियों के प्रति भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिये क्योंकि उन्हीं ने इस देश की आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था की सुदृढ़ भूमि में नींव डाली। वयोवृद्ध सुप्रतिष्ठित डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा अब आरम्भ में इस सभा के अध्यक्ष थे तो अपने अन्तिम भाषण में उन्होंने भारत के महान कवि इकबाल की कविता से यह उद्धरण दिया था–

यूनान ओ मिस्र रोमन सब मिट गये जहां से,
बाक़ी अभी तलक है हिन्दोस्तां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा।

कवि कहता है कि हम में अवश्य ही कोई बात ऐसी है कि अभी तक हमारा अस्तित्व है। अन्य देशों की तुलना में इस देश की वह विशेषता कौन सी है? श्रीमान, मेरा निवेदन है कि वह इस देश का अध्यात्म है।

जैसा कि मैं पहले निवेदन कर चुका हूं, आज हमें एक अद्वितीय अवसर प्राप्त हुआ है और वह कई कारणों से एक अद्वितीय अवसर है। इतिहास में वह एक अद्वितीय अवसर है। यदि हम अपने इतिहास का अवलोकन करें तो हमें यह स्वीकार करना होगा। एक समय सुयोग्य शासकों के राज में इस देश में दूध की नदियां बहती थीं और इस समय हम जिस रामराज्य की स्थापना के लिये सचेष्ट हैं वह एक समय यहां अस्तित्व में था। किन्तु था वह लोकहितैषी शासकों का शासन ही और लोकप्रतिनिधियों का स्वयं अपनाया हुआ विधि शासन नहीं था। इसलिये श्रीमान, मेरा निवेदन है कि यदि आप वर्तमान काल की तुलना प्राचीन काल से भी करें तो आपको प्रत्यक्ष हो जायेगा कि आज का अवसर एक अद्वितीय अवसर है। मेरा निवेदन है कि भविष्य के लिये भी यह अवसर अद्वितीय ही रहेगा। हम भविष्य में संविधान में सुधार कर सकते हैं और अधिक उत्कृष्ट बातों को अपना सकते हैं किन्तु यह फिर भी स्वीकार करना ही होगा कि आरम्भ में यही संविधान बना था, और कोई संविधान नहीं बना था।

श्रीमान, यह संविधान इस दृष्टि से भी एक अनूठा संविधान है कि इसमें न केवल तथाकथित ब्रिटिश भारत को स्थान दिया गया है बल्कि देशी राज्यों को भी स्थान दिया गया है जहां अभी तक परम्परागत नरेश शासन करते थे। अब भारत में हिमाचल से लेकर कन्याकुमारी तक एक ही प्रकार का शासन होगा।

जब हम यह सब विचार करते हैं तो हमें इस पर खेद होता है कि इस देश के दो भागों को पृथक कर दिया गया है। किन्तु हम आशा करते हैं कि हमारे देशवासी, चाहे वे कहीं भी क्यों न हों, सद्बुद्धि को ग्रहण करेंगे और हम फिर भारत को उसी रूप में देख सकेंगे जिस रूप में हम उसे अतीत काल से देखते आये हैं।

श्रीमान, हमारे देश में जो एकता स्थापित हुई है उसका पूर्ण श्रेय भारत के वयोवृद्ध तथ दृढ़व्रती सरदार वल्लभभाई पटेल को है। लैटिन में हमने एक कहावत पढ़ी थी जिसका अर्थ है, "गये, देखा और विजित किया।" यही कहावत कार्यरूप में परिणत हुई क्योंकि देशी राज्यों को समाविष्ट करने के सम्बन्ध में हमने सरदार पटेल को इसी को चरितार्थ करते देखा है। वे गये उन्होंने देखा और विजित किया। उनके देश के सभी लोग ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे दीर्घ काल तक जीवित रहें और इस देश की सेवा करते रहें।

श्रीमान, एक अन्य दृष्टि से भी आज का अवसर एक अद्वितीय अवसर है। आज से इस देश में स्वतंत्र्य-युग आरम्भ होने जा रहा है। यह स्वतंत्र्य, अहिंसात्मक असहयोग अथवा सत्याग्रह के उपाय से प्राप्त हुआ है, जो उपाय पहले कभी विदित नहीं था। अपने विरोधी के प्रति बिना किसी प्रकार का द्वेषभाव रखे हुए अहिंसा के उपाय से उसका सामना करने से आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। इस पर अब सारे संसार का अटल विश्वास हो गया है। यह कितने दु:ख का विषय है और विधि का कैसा कठोर विधान है कि जिस व्यक्ति की तपस्या से यह सब कुछ प्राप्त हुआ है वह अब हमारे बीच में नहीं है। भारत को उनकी आज और भी अधिक आवश्यकता थी। इतने अल्प काल में हमें जो फल प्राप्त हुआ है उससे उस तपस्या का प्रभाव प्रत्यक्ष हो जाता है। साथ ही यह देखकर हर्ष

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

भी होता है और आश्चर्य भी कि यद्यपि हम में से कुछ लोग अभी तक परित्राणों तथा स्थानों के रक्षण की चर्चा करते आये हैं किन्तु उन बातों को संविधान में बहुत कम स्थान दिया गया है। यह एक हर्ष की बात है कि जो लोक परित्राणों के समर्थक थे उन्होंने राष्ट्र के हितों को दृष्टि में रखकर उनकी मांग का स्वेच्छा से परित्याग कर दिया है। इसके लिये वे बहुत बधाई के पात्र हैं।

इस सम्बन्ध में अन्त में मैं यह निवेदन करता हूं कि यह संविधान एक अन्य दृष्टि से भी एक अनूठा संविधान है। महात्माजी के उपायों ने यह प्रमाणित किया है कि विरोधियों के प्रति सद्भाव रखने में बड़े से बड़े आलोचक को भी पराजित किया जा सकता है तथा उसका भी सद्भाव प्राप्त किया जा सकता है। इस आदर्श को हम अब व्यवहार में देख सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वतंत्रता प्राप्ति का श्रेय महात्माजी को है किन्तु साथ ही उसे एक संहिता का रूप देने का श्रेय महात्माजी के सबसे कड़े आलोचक, अर्थात हमारे महान संविधान के महान निर्माता डॉ. अम्बेडकर को है। श्रीमान, यह सभा ही नहीं बल्कि सारा राष्ट्र डॉ. अम्बेडकर का आभारी है। उन्होंने तथा उनके सहकारियों ने संसार की सर्वोत्तम बातों को ढूंढ निकालने तथा उन्हें इस देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिये अथक परिश्रम किया। उन्होंने जिस कुशलता से संविधान का मसौदा तैयार कराया, तथा जिस कुशलता से सत्ता द्वारा पारित कराया, उसे हम ही नहीं बल्कि आने वाली पीड़ियां भी कृतज्ञता के साथ स्मरण करेंगी। इस संविधान के कई दोषों की ओर ध्यान दिलाया गया है। मेरे विचार से इस संविधान के निर्माता यह नहीं कहते कि यह दोषमुक्त है। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि वर्तमान स्थिति में इसे जितना अधिक दोषमुक्त बनाया जा सकता था उतना अधिक दोषमुक्त बनाने के लिये सच्चाई और ईमानदारी के साथ प्रयत्न किया गया है। कुछ मित्रों ने और आलोचकों ने इसकी उस संविधान से तुलना की है फ्रांस में टेनिस के एक मैदान में बनाया गया था, अथवा उस संविधान से तुलना की है जो अमरीका के बहुत कुछ स्वनिर्वाचित एकतीस सदस्यों ने बनाया था। 1787 में जो प्रशासन-सम्बन्धी प्रश्न अथवा सिद्धान्त थे उनकी अपेक्षा अब बिल्कुल भिन्न प्रश्न और सिद्धान्त हैं। किसी देश के लिये अथवा किन्हीं लोगों के लिये जो संविधान के निर्माण का बीड़ा उठाना चाहते हैं यह उचित नहीं है कि पिछले पौने दो वर्षों में संसार में जो उन्नति हुई है उसकी उपेक्षा करें।

श्रीमान, इस संविधान में एक प्रकार की संघीय एकात्मक शासन प्रणाली को स्वीकार किया गया है जो बहुत कुछ एकात्मक शासन प्रणाली ही है। विधि निर्माण तथा कर लगाने के सम्बन्ध में समवर्ती तथा केन्द्रीय विषयों की लम्बी सूची, कुछ दिशाओं में राज्यों के प्रशासन को अपने हाथ में ले लेने की केन्द्र की शक्तियां, कार्यपालिका के मामलों के सम्बन्ध में भी राज्यों को निदेश देने की शक्तियां आदि अवश्य ही यह प्रमाणित करती हैं कि यह संविधान उतना संघीय संविधान नहीं है जितना कि एकात्मक संविधान है। मैं यह नहीं कहता कि यह अकारण ही किया गया है किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी यह धारणा है कि इस संविधान में राज्य और प्रान्तों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखते हुए हमने उन पर जिस प्रकार विश्वास प्रकट किया है उससे कहीं अच्छा यह होता कि हम उन पर तथा वहां के लोगों पर अधिक विश्वास करते।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, मूलाधिकारों के सम्बन्ध में मेरी यह धारणा है कि बहुत शर्तों को रख कर उनका परिसीमन किया गया है। यद्यपि संविधान में हमने सभी स्वातंत्र्यों के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं किन्तु जहां हमने उनका उल्लेख किया है वहां आगे चल कर तुरंत ही उन शर्तों को भी निर्धारित कर दिया है जिससे उन स्वातंत्र्यों का परिसीमन हो जाता है। वास्तव में हमने ऐसी विधियों की कोई कालावधि भी निश्चित नहीं की है जिनसे नागरिकों की स्वतंत्रता का परिसीमन होता है। श्रीमान आपको विदित ही होगा कि पहले इस प्रकार की विधियों की कालावधि निश्चित की जाती थी किन्तु वर्तमान संविधान में हमने निर्धारित किया है कि नागरिकों की स्वतंत्रता को परिसीमित करने वाली विधियों की कालावधि रखे बिना ही उन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है और पारित किया जा सकता है। सम्भवत: वर्तमान स्थिति में इस प्रकार के उपबन्ध से सुव्यवस्था बनी रहे किन्तु फिर भी मैं यह कहूंगा कि अच्छा यह होता कि हम अपने देशवासियों का कुछ अधिक विश्वास करते और उन लोगों को दंडित करने का काम न्यायपालिका पर छोड़ देते जो अपनी स्वतंत्रता को स्वच्छंदता में परिणत करना चाहते हैं। आखिर जनसाधारण स्वतंत्रता चाहते किस लिये हैं? वे चाहते हैं कि अभी हाल में उन्होंने जो स्वतंत्रता प्राप्त की है उससे उन्हें नवीन जीवन प्राप्त हो तथा नवीन प्रतिष्ठा प्राप्त हो और वह बिना स्वातंत्र्य अपहरण के भय के सर ऊंचा किये हुए इधर उधर जा सकें। मैं निवेदन करता हूं कि जन साधारण में इस भावना का अभाव है। यदि हम भाग 3 के अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) से लेकर (6) तक को ऊपरी तौर से भी देखें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमने जनसाधारण के मार्ग में बहुत निर्बन्धन रखने तथा प्राधिकारियों को बहुत शक्तियां प्रदान करने का प्रयास किया है। किन्तु इस संविधान को हम जिस प्रकार प्रयोग में लायेंगे उस पर बहुत बातें निर्भर करेंगी। चूंकि हम अपने नेताओं को जानते हैं इसलिये हम समझते हैं कि ऐसे बहुत अवसर नहीं आयेंगे जब सरकार को दी हुई इन शक्तियों का प्रयोग किया जायेगा।

मेरे विचार से प्रान्तों और केन्द्र के बीच आर्थिक समायोजन करने में प्रान्तों के साथ यथोचित व्यवहार नहीं किया गया है। वास्तव में मेरी यह धारणा है कि 1935 के अधिनियम के अधीन इस सम्बन्ध में प्रान्तों की जो स्थिति थी उसकी अपेक्षा अब वह गिर गई है। केन्द्र की अपेक्षा प्रान्तों के दायित्व अधिक हैं और लोगों के हितसाधन के लिये उन्होंने अधिक वचन दिये हैं। इस लिये उन्हें कर लगाने के लिये पर्याप्त अधिकार दिया जाना चाहिये था। श्रीमान आपको विदित ही है कि बिहार में यद्यपि इस्पात का एक कारखाना है, जो इस देश का ही नहीं बल्कि एक समय सारे साम्राज्य के सबसे बड़े कारखानों में दूसरा गिना जाता था, यद्यपि वहां से सारे देश को कोयला भेजा जाता है और यद्यपि जो पदार्थ निर्यात किये जाते हैं उन में वहां का अभ्रक सबसे अच्छा समझा जाता है किन्तु चूंकि इन सब कारखानों के मुख्य कार्यालय बम्बई अथवा कलकत्ता में हैं, इस लिये उस प्रान्त को उनसे बहुत कम आय होती है और आयकर तक का अधिक अंश नहीं मिलता। हाल में आसाम के प्रतिनिधि भी यही शिकायत कर रहे थे। इसे ध्यान में रखते हुए कि आर्थिक साधनों के सम्बन्ध में हम किन बातों पर आघात कर रहे हैं। इसकी आवश्यकता है कि इस विषय पर केन्द्र के प्रतिनिधि तथा प्रान्तों और राज्यों के प्रतिनिधि गम्भीरता से विचार करें।

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

मेरी यह धारणा है कि हमने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया है कि हम एक उच्च स्तर से उसे लोगों पर आरोपित कर सकेंगे और उसके लिये प्रयास नहीं किया है कि उसका आधार ग्रामीण जीवन हो। आपको स्मरण होगा कि इस विषय पर इस सभा में महत्वपूर्ण वाद-विवाद हुआ था और मैं यह कहूंगा कि पहली बार मेरे मन में यह विचार उठा कि डॉ. अम्बेडकर गलती कर रहे हैं और बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। इस देश के ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में उनकी जो धारणा है वह एक गलत धारणा है। वास्तव में गांव ही शहरों की आवश्यकतायें पूरी करते हैं। चाहे आप सैनिक प्रशासन को देखें अथवा असैनिक प्रशासन को और चाहे आप खाद्य के उत्पादन को ही देखें; आपको स्पष्ट हो जायेगा कि ग्रामीण ही हमारी सब आवश्यकतायें पूरी करते हैं। यह न कहना चाहिये कि उनका सुधार हो ही नहीं सकता। आखिर हमारे देशवासी अधिकतर ग्रामीण ही हैं। यदि वे अभी उस स्तर पर नहीं पहुंचे हैं जिस स्तर पर हममें से कुछ लोग उन्हें देखना चाहते हैं, तो इसके लिये कौन दोषी है? केन्द्र ने कभी उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। क्या अब भी हम यही करना चाहते हैं? मेरा निवेदन है कि यदि हम ऐसा करेंगे तो हमारी ही हानि होगी। दुर्भाग्य से हमने अधिकतर 1935 के अधिनियम का ही अनुसरण किया है और इस लिये हम इस देश के उत्थान के लिये जो अन्य कार्य आवश्यक थे उनपर न विचार ही कर सके हैं और न उनकी ओर यथेष्ट ध्यान ही दे सके हैं।

इसके अतिरिक्त हमने एक लिखित संविधान तैयार किया, किन्तु हमें विदित है कि ऐसे देश भी हैं जिनके लिखित संविधान नहीं हैं और यदि उनका कार्य लिखित संविधान वाले देशों से श्रेष्ठ ढंग से नहीं चल रहा है तो कम से कम उतनी ही अच्छी तरह तो चल ही रहा है। इसलिये बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि संविधान को किस प्रकार व्यवहार में लाया जाता है। हमारे देश में सुयोग्य व्यक्तियों का अभाव नहीं है। इसलिये यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया गया कि वे किस दल विशेष के हैं और उनकी सेवाओं से लाभ उठाने का सच्चा प्रयास किया गया, तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि हम शीघ्र ही प्रमाणित कर सकेंगे कि वास्तव में हमारे देशवासी कैसे हैं और यह संविधान कैसा है।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व मुझे यह प्रकट करना चाहिये कि आपने इस सभा के कार्य का संचालन जिस सुयोग्य ढंग से किया है उसके सम्बन्ध में मेरी तथा अन्य सदस्यों की क्या भावना है। जहां तक मुझे विदित है आप पहले किसी विधान-मंडल के सदस्य नहीं रहे हैं किन्तु आपने जिस ढंग से सभा के कार्य का संचालन किया तथा जिस ढंग से विधान-मंडल की परम्परा का पोषण किया उस पर संसार के अच्छे से अच्छे संसद-प्रक्रिया-वेत्ता गर्व कर सकते हैं। यह हम सभी के लिये गर्व की बात है।

मेरे विचार से बिना इस सभा के विरोधी दल के नेताओं के सम्बन्ध में दो शब्द कहे हुए मुझे अपना भाषण समाप्त नहीं करना चाहिये। विरोधी दल के नेता रहे हैं सर्वश्री कामत, सिधवा, नज़ीरुद्दीन अहमद और बिहार के संविधान-वेत्ता श्री ब्रजेश्वर प्रसाद। अन्ततोगत्वा मसौदा-समिति को इस सभा में बहुत से संशोधन उपस्थित करने पड़े जिससे यह प्रमाणित होता है कि इन साहसी सदस्यों ने समय समय पर जो सुझाव रखे थे उनमें बहुत सार था। प्रोफेसर शाह जैसे साहसी प्रतिवादी

भी अन्त में ब्रजेश्वर प्रसाद के आगे बढ़ने पर पीछे हट गये। एक नवीन धर्म अंगीकार करने वाले के समान वे अपनी पूरी योग्यता के साथ संघर्ष करते रहे। वास्तव में यदि यह लोग न होते तो हम पर संविधान को जल्दी में पारित करने का आरोप लगाया जाता। जिस प्रकार ये लोग तीन वर्ष तक वाद-विवाद चलाते रहे उसके लिये हममें से प्रत्येक व्यक्ति को इन्हें धन्यवाद देना चाहिये।

हमारे नेताओं ने देश को स्वतंत्र किया है और हम अपने लिये एक संविधान भी बना चुके हैं किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि हमारी कठिनाइयों का अन्त हो गया है मैं यह कहूंगा कि हमारी कठिनाइयां अब आरम्भ होने जा रही हैं। इसलिये हम इस बुद्धिमत्तापूर्ण कहावत को सदा स्मरण रखें कि "सतत सचेत रहना ही स्वतंत्रता का मूल्य है"। हम इस प्रकार व्यवहार करें कि हमारे सम्बन्ध में यह कभी न कहा जा सके कि:

"खोला कफस तो ताकते परवाज़ ही नहीं,
बुलबुल तेरे नसीब को सय्याद क्या करे।"

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष, मुझे इसका आश्चर्य है कि मेरे कुछ माननीय मित्र सभा की कार्यवाही को इस मंजिल तक पहुंचाने पर भी सचेत और गम्भीर भाषण ही देना चाहते हैं। मेरे लिये तो यह सप्ताह हर्ष और उत्सव का सप्ताह है। इस सप्ताह के समाप्त होने के पूर्व हम एक ऐसे संविधान को पारित कर चुकेंगे जिस पर मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं, भारत वर्ष तो गर्व करेगा किन्तु संसार भी इसे एक आश्चर्य समझेगा। श्रीमान आप जैसे सुयोग्य तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति के पथप्रदर्शन से हम सारे स्वतंत्र भारत के लिये एक ऐसे संविधान को पारित करने जा रहे हैं जिसमें, जहां तक हो सका है, संसार के वर्तमान संविधानों के दोषों को नहीं आने दिया गया है और उनके उत्कृष्ट सिद्धान्तों को चुन चुन कर समाविष्ट किया है। इससे स्वतंत्रता प्रेमी युवकों तथा युवतियों की आकांक्षायें ही नहीं पूरी हुई हैं किन्तु भारत की प्राचीन प्रतिष्ठा भी ऊंची हुई है। जब हमें यह ध्यान होता है कि यह प्राचीन देश, जो अभी तक इंडिया कहा जाता था, अब फिर भारत कहा जायेगा तो हमें हर्ष होता है। जब हमें इसका स्मरण होता है कि हाल ही में स्वतंत्रता प्राप्त किये हुए इस देश की राजकीय भाषा हिन्दी होने जा रही है तो हमें बहुत गर्व होता है। जब हम देखते हैं कि देवनागरी को सारे देश की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है तो हमें बहुत गर्व होता है। श्रीमान, मैं इस सभा के अपने मुसलमान भाइयों का आभारी हूं जिन्होंने बिना किसी संकोच के तथा एक मत से भारत की इस इच्छा की पूर्ति में हमारा समर्थन किया है।

इस संविधान के निर्माण के लिये हमें इस सभा के कई सदस्यों को धन्यवाद देना है। मैं उनके नाम नहीं दुहराना चाहता किन्तु श्रीमान, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस सभा का कार्य-संचालन करते हुए आपने हम पर जो कृपा की उसके लिये हम आपके बहुत आभारी हैं। मुझ जैसे लोगों के प्रति तथा अन्य लोगों के प्रति आपने जिस धैर्य का परिचय दिया उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वास्तव में आप धैर्य की मूर्ति ही हैं। मैं इस अवसर पर आप

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

को मि. नज़ीरुद्दीन अहमद, श्री सिधवा, श्री कामत तथा अपनी ओर से धन्यवाद देता हूं। मैं इस सूची में प्रोफेसर के.टी. शाह का नाम भी जोड़ देता किन्तु मैंने उसे जानबूझ कर नहीं रखा है। वे पिछले दो सत्रों में मौन रहे हैं—बिल्कुल मौन रहे हैं। दिखाई यह देता है कि मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधनों की प्रतिलिपियों को ही चोर उठा ले गये किन्तु वे प्रोफेसर शाह की तो पाण्डुलिपि को ही चुरा ले गये। इसलिये पिछले सत्र में थोड़े से संशोधनों के अतिरिक्त उन्होंने न तो अधिक संशोधन उपस्थित किये और न भाषण ही दिये।

श्रीमान इस सभा की कार्यवाही को आरम्भ करते हुए महामना डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा ने जो कुछ कहा था उसका एक एक शब्द मुझे स्मरण है। उन्होंने आपके निर्वाचित होने पर आप को बधाई दी थी और कहा था कि अपने जीवन में आप कभी भी द्वितीय श्रेणी में नहीं निकले। आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में, जिसका शिक्षा क्षेत्र पंजाब से लेकर सुदूर आसाम तक है, पहली श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उन्होंने यह भी कहा था कि जब आपने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने से इनकार कर दिया था तो वे बहुत हताश हुए थे। श्रीमान, आज मैं कह कहूंगा, और मेरे विचार से यह सभा मेरे इस कथन से सहमत होगी कि इस संविधान को देश में व्यवहार में लाने में भी आप सबसे आगे हैं। आपके नेतृत्व में एक पराधीन राष्ट्र, क्योंकि इस संविधान के निर्माण का कार्य आरम्भ करते समय हमारा राष्ट्र एक पराधीन राष्ट्र ही था, इस सभा के कार्य-काल में ही स्वाधीन हो गया। यद्यपि एक बार आप बिहार को हताश कर चुके हैं किन्तु मुझे आशा है कि संविधान के अधीन जिस प्रतिष्ठित तथा सम्मानित पद को प्राप्त करने के आप अधिकारी हैं उसे स्वीकार करने से इनकार कर के आप भारत के अन्य भागों के लोगों को हताश नहीं करेंगे।

मैंने अपने कुछ माननीय मित्रों के संयत तथा गम्भीर भाषणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। किन्तु कैसी बात है कि फिर भी उन्होंने दो महत्वपूर्ण विषयों की ओर ध्यान नहीं दिया है? मेरे विचार से इनमें से पहला विषय गायों से रक्षा के सम्बन्ध में है। इस संविधान में कुछ हद तक हमने गो-रक्षा के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं, किन्तु गायों की रक्षा के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। इस संविधान में स्त्रियों से रक्षा के सम्बन्ध में भी कोई उपबन्ध नहीं है। मेरा निवेदन है कि स्त्रियों से रक्षा के सम्बन्ध में उपबन्ध रखना बहुत आवश्यक है। आपने निदेशक तत्वों के अध्याय में स्त्रियों और बच्चों की रक्षा के सम्बन्ध में कुछ उपबन्ध रखे हैं किन्तु आपने एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय पर विचार नहीं किया है। वह विषय है स्त्रियों से रक्षा का विषय। मुझे आशा है कि यह सभा मेरे सुझाव को एकमत से स्वीकार करती है और मेरे समान उसे भी खेद है कि स्त्रियों से रक्षा के सम्बन्ध में संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है। यदि कोई व्यक्ति इस सुझाव के प्रति अपना विरोध प्रकट करना चाहता है, अथवा वह कर्णमधुर वाणी में विरोध प्रकट करना चाहती हो तो वे आगे बढ़ें और मेरे इस मत का विरोध करें।

***एक माननीय सदस्यः** क्या आप पर स्त्रियों ने अत्याचार किया है कि आप उनसे रक्षा की मांग करते हैं?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं इस की व्याख्या करूंगा। यह मेरा कोई नवीन विचार नहीं है। जिन माननीय मित्रों ने शिष्टता के नाते आसाम के मेरे माननीय मित्र—मि. निकोल्स राय का भाषण सुना उन्होंने आसाम की गायों के बारे में मेरे मित्र ने जो कुछ कहा था उसे सुना होगा। उन्होंने कहा था कि जब तक उन गायों को मारने की आज्ञा नहीं दी जाती जिन पर बेकार में खर्च होता है तब तक उनसे बहुत खतरा बना रहेगा। मैं उनके कथन की व्याख्या करते हुए निवेदन करता हूं कि आसाम में वास्तव में इस प्रकार का खतरा है क्योंकि उस प्रान्त में गो पालन प्रचलित नहीं है। जब गायें ब्याती हैं तभी उन्हें घर लाया जाता है। वे कभी बाज़ारों में और कभी खेतों में ब्या जाती है किन्तु किसी मनुष्य के घर में कभी नहीं ब्याती। ये गायें, जो साल में नौ-दस महीने स्वच्छंदता से घूमती रहती हैं और इसी दशा में ब्याती भी हैं, बहुत खतरनाक हो जाती हैं। वे बहुत कुछ जंगली हालत में होती हैं और जो व्यक्ति उनके निकट जाता है उसे सींग मारने के लिये दौड़ती हैं। आसाम के प्रान्त में कई बुरी नस्ल के सांड भी हैं जिनके कारण गायों की नस्ल भी खराब हो जाती है। यदि आप इन मवेशियों को बिना मनुष्यों की देख रेख के स्वच्छंदता से रहने देंगे तो वास्तव में इन गायों से खतरा रहेगा और इसकी आवश्यकता पड़ेगी कि हम इनसे अपनी रक्षा करें।

स्त्रियों से रक्षा-विषयक विचार भी मेरा अपना विचार नहीं है। मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने कुत्सित वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था किन्तु उन्होंने उसे उपस्थित नहीं किया। मेरे विचार से स्त्रियों की उपस्थिति में उस संशोधन को उपस्थित करने में डॉ. देशमुख ने लज्जा का अनुभव किया किन्तु मेरे विचार से उन्होंने गलती की। हमें वास्तव में स्त्रियों से रक्षा की आवश्यकता है क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से वे हमें ढकेल कर निकालने के लिये उद्यत हैं। दफ्तरों से, विधान-मंडलों से, दूतावासों से तथा सब जगहों से वे हमें ढकेल कर बाहर निकालने का प्रयास कर रही हैं। उन्हें सफलता प्राप्त होती है और वह दो कारणों से। एक कारण यह है कि हमें शिष्टता का बहुत ध्यान रहता है और दूसरा कारण यह है कि वे अधिकार-सम्पन्न लोगों के कान में जो कुछ कह देती हैं उसका उन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस संविधान में एक अच्छी बात है और उसके लिये मैं डॉ. अम्बेडकर को बधाई देता हूं। उन्होंने स्त्रियों के लिये विशेष स्थान रखने पर कभी जोर नहीं दिया और संविधान में ऐसी व्यवस्था नहीं है। इससे कुछ रक्षा हुई है और हमने कुछ हासिल किया है। यदि स्त्रियों के लिये स्थान न रखने के पश्चात् भी पुरुषों की यह धारणा है कि वे उन्हें आगे बढ़ायें तो मुझे खेद होगा। इन सब बातों के लिये डॉ. अम्बेडकर उत्तरदाई नहीं हैं। मूर्ख लोग ही उन्हें मत देकर विधान-मंडलों में भेजते हैं और फिर हिन्दू कोड के सम्बन्ध में जैसी कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं वैसी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं।

अब श्रीमान, मैं अपने मित्र श्री लक्ष्मी नारायण साहू के भाषण के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। उनका भाषण सुनने के पश्चात् यह धारणा बन सकती है कि इस संविधान में कोई भी ऐसी बात नहीं है जो देखने के योग्य हो। भारत-शासन-अधिनियम के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते थे, और ठीक ही कहते थे कि वह छूने के योग्य भी नहीं है। श्री साहू ने भी उन्हीं की भाषा दुहराई है और इस संविधान के विषय में उनका भी वही विचार है। किन्तु क्या

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं उनसे निवेदन कर सकता हूं कि वे 1946 के दिसम्बर के प्रथम सप्ताह का स्मरण करें? उस समय हमारी स्थिति कैसी थी? मुस्लिम लीग ने निर्वाचनों का बायकाट किया था और इस संविधान सभा का भी बायकाट करने का प्रयास कर रही थी। कहा यह जाता था कि जब तक दलबन्दी की प्रणाली को स्वीकार नहीं किया जायेगा तब तक संविधान सभा समवेत नहीं होगी। जब मुस्लिम लीग ने संविधान-सभा का बायकाट करने का निश्चय प्रकट कर दिया तो यह दिखाई दिया कि इस सभा का कार्य आगे बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होगा। संविधान-सभा में भी कुछ ऐसे सदस्य, जो मुस्लिम लीग के सदस्य नहीं थे, यह कहते थे कि अच्छा यह होगा कि इस समय हम लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव को स्थगित कर दें और मुस्लिम लीग के सदस्यों को सभा में आने दें और फिर अपना कार्य आरम्भ करें और तब तक संविधान-सभा की बैठकों को स्थगित रखें। वह एक बहुत संकटपूर्ण समय था। यदि उस समय हमारे नेता हिचकते और विचलित होते, यदि पंडित नेहरू और सरदार पटेल विचलित होते तो निकट भविष्य में स्वातन्त्र्य प्राप्ति की आशा बिल्कुल मिट जाती। किन्तु इसके विपरीत स्थिति यह थी कि यदि हम संविधान सभा के सदस्यों के रूप में समवेत हो जाते और यदि एक बार सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न संविधान सभा सत्रस्थ हो जाती तो संसार की कोई भी शक्ति स्वातन्त्र्य-प्राप्ति में बाधा नहीं डाल सकती थी। वास्तव में हुआ यही है। पंडित नेहरू ने दृढ़ निश्चय से कहा "चाहे कुछ भी हो जाये। चाहे दलबन्दी हो या न हो, संविधान-सभा समवेत होगी और समस्या को हल करेगी।" जब एक बार वह समवेत हुई तो स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया, क्योंकि स्थिति यह थी कि संविधान सभा जो भी संविधान बनाती वह व्यवहार में लाया जाता। इसलिये श्रीमान, स्वतंत्रता का संग्राम उसी समय सफल हो गया जिस समय संविधान-सभा समवेत हो गई। आज हमें उन राजनीतिज्ञों की प्रशंसा करनी चाहिये जिन्होंने किसी प्रकार संविधान-सभा की पहली बैठक करा दी। श्रीमान, जब उन दिनों का स्मरण किया जाता है तो महात्मा गांधी का भी स्मरण हो आता है, जिन्होंने दलबन्दी की प्रणाली को नष्ट किया था। दुर्भाग्य से इस सम्बन्ध में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के भी स्पष्ट विचार नहीं थे। यदि महात्मा गांधी तथा हमारे आसाम के प्रधान मंत्री सचेष्ट न रहते तो बंगाल और पंजाब जैसे बड़े प्रान्त और आसाम का एक बहुत बड़ा क्षेत्र पाकिस्तान के भाग हो जाते। इसलिये क्या मैं अपने माननीय मित्र श्री साहू से अनुरोध कर सकता हूं कि वे इस पर विचार करें और यह समझें कि संविधान-सभा तथा संविधान की योजना को कार्यान्वित करने से हमें क्या लाभ हुआ है? आज संविधान के अधीन कैसी स्थिति है और 1946 के दिसम्बर में कैसी स्थिति थी?

श्रीमान, मुझे अपने माननीय मित्र श्री कामत के पूरे भाषण को सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। मेरे विचार से उन्होंने पूरे संविधान का हृदय से समर्थन नहीं किया है। अपने मित्र श्री कामत के हाल के कृत्यों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। संविधान-निर्माण से सम्बन्धित कार्य की समाप्ति के पश्चात् मैंने उनके कुछ दायित्वों को स्वीकार किया था। मैं अपने निजी सम्बन्धों तथा उनके निजी जीवन की चर्चा कर रहा हूं। मैं उनसे असंतुष्ट हो गया हूं और मैं कह नहीं सकता कि मैं उस कार्य को करूंगा या नहीं जिसे सम्पन्न करने का मैंने उन्हें आश्वासन दिया था। वे कुछ दिनों से जोगिये रंग के कपड़े पहनने लगे हैं। आपने देखा है कि वे जोगिये रंग के कपड़े पहने हुए कैसे घूमते रहते हैं। वे हर समय

ईश्वर की चर्चा करते रहते हैं। वे चाहते हैं कि सभा ईश्वर से प्रार्थना करने के पश्चात् कार्य आरम्भ करे। उनके इन सब विचारों ने मुझे चकित कर दिया है। मैं समझता हूं कि एक समय वह भी आयेगा जब उनकी वह भावना प्रबल हो उठेगी जिसे उन्होंने देश की सेवा के लिये आई.सी.एस. को छोड़कर प्रदर्शित किया था। मुझे यह दिखाई देता है कि वे अपने विचारों को कार्यान्वित करने के हेतु अपने सांसारिक जीवन का परित्याग कर देंगे।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): क्या मैं पूछ सकता हूं कि इसका संविधान से क्या सम्बन्ध है?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान, इसका सम्बन्ध इस प्रकार है। हमने अपने लिये एक संविधान बनाया है और अब इस कार्य के समाप्त होने पर हमें खुशी मनानी चाहिये। हमने गम्भीरता से बहुत कार्य किया है। इस संविधान के फलस्वरूप हमें खुशी होनी चाहिये। यदि हमें खुशी ही है तो हम मुंह लटकाये हुए क्यों रहें। बायरन ने एक बार कहा था "जो कुछ लिख गया है वह लिख गया है, अब अच्छा यह होगा कि हम कुछ अधिक समझदारी से काम लें।" बहुत से गम्भीर भाषण देकर आप जो कुछ कर चुके हैं उसे मिटा नहीं सकते। यदि मेरे माननीय मित्र ठक्कर बापा ने मुझे परामर्श नहीं दिये होते तो मैं इस समय गम्भीर-मत्ता लोगों की बातों से भी अधिक गम्भीर बात कहता होता। आखिर सदा गम्भीर-मत्ता तथा रूढ़िवादी होने से क्या लाभ? एक कहावत है, "क्या मनुष्य गम्भीर-मत्ता उल्लू को घृणा की दृष्टि से देख सकता है" इसलिये मैं कहता हूं कि जो कुछ लिख गया है वह लिख गया है। बहुत चिंता मोल लेकर तथा बहुत कष्ट उठाकर हमने इस संविधान का मसौदा तैयार किया है और वह अब हमारे सामने है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि अन्य संविधानों की अपेक्षा इस संविधान में अधिक विवरण है। इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है। सम्भव है वह इस कारण रखा गया कि हम भारतीय कई शताब्दियों तक गुलाम रहे हैं और अब हम केवल लिखित बातों में विश्वास करते हैं, कथित बातों में नहीं। हमारा संविधान इंग्लिस्तान के अलिखित संविधान से भिन्न है, जिसमें वे जब चाहते हैं तब परिवर्तन कर लेते हैं। अपने संविधान में हमने बहुत सावधानी का परिचय दिया है और बहुत विवरण रखा है, यद्यपि हम उसे छोड़ सकते थे क्योंकि देशवासी उसे अपने सामूहिक अनुभव के आधार पर रख सकते थे। किन्तु हमने अपने ही सामूहिक अनुभव के आधार पर व्यवस्था की है और भविष्य के लिये कुछ न छोड़कर संविधान में बहुत अधिक विवरण रखा है।

किन्तु इससे यह न समझा जाये कि इस संविधान के विरूद्ध मुझे कोई आपत्ति नहीं करनी है। मुझे इस पर बहुत आपत्ति है कि संविधान मृत्यु-दंड के सम्बन्ध में मौन है। अब संसार सभ्य हो गया है और अब मृत्यु-दंड को जारी रखना बर्बरता समझा जाता है। सभ्य संसार मृत्यु-दंड नहीं चाहता है। मृत्यु-दंड से लोग अपराध करने से नहीं डरते। मैं यह चाहता था कि संविधान में हम इस आशय का एक उपबंध रख देते कि मृत्यु-दंड नहीं दिया जायेगा। जहां तक मुझे ज्ञात है स्कैंडेनेविया के देशों में अर्थात् नार्वे और स्वीडन में और अमरीका के कुछ राज्यों में मृत्यु-दंड की व्यवस्था नहीं है। इटली में मृत्यु-दंड समाप्त कर दिया गया था किन्तु फासिस्ट नेता सेनोर मुसोलिनी ने उसे फिर रख दिया। हममें जो

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

फासिस्टों की सी प्रवृत्ति है उस कारण हम इस देश में मृत्यु-दंड की व्यवस्था को अब भी बनाये रखना चाहते हैं। चाहे जो भी किया गया हो, संविधान में एक समुचित उपबन्ध है जिसके फलस्वरूप हम जब भी चाहेंगे संविधान को संशोधित कर सकेंगे।

***अध्यक्षः** श्री चौधरी, आप गम्भीर बातें करने लगे हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** श्रीमान, मैं हमेशा गम्भीर बातें करता हूं, किन्तु अन्य लोग उन्हें गम्भीर नहीं समझते। अपनी ओर से मैं हमेशा गम्भीरता को अपनाये रहता हूं किन्तु लोगों को मेरे सम्बन्ध में भ्रम हो जाता है। जिन लोगों ने कारावास का दंड भुगता है वे मेरे इस कथन का समर्थन करेंगे कि कालेपानी का दंड और आजन्म कारावास का दंड मृत्यु-दंड से कहीं कठोर दंड है। मृत्यु-दंड दे देने के पश्चात् उस दंड के पाने वाले को प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है। किसी अपराधी को यह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होनी चाहिये। मृत्यु-दंड चाहे राजनैतिक मामले में दिया जाये या अन्य मामलों में और चाहे पाने वाला साधारण अपराधी क्यों न हो, और चाहे अन्यथा उस अपराध के कारण उसका विस्मरण हो जाता और उसके परिवार वाले उससे घृणा करने लगते किन्तु उस दंड के कारण उनका उस अपराधी के प्रति प्रेम उमड़ आता है। यदि अन्य प्रकार का दंड दिया जाता तो उस आदमी के सम्बन्धी यह समझ सकते थे कि उसे ठीक ही दंड दिया गया है। किन्तु मृत्यु-दंड के दे दिये जाने पर उस अपराधी के मित्र तथा परिवार के लोग उससे सहानुभूति करने लगते हैं। क्या आप यह समझते हैं कि इस प्रकार के दंड से डर कर लोग अपराध नहीं करेंगे? इस प्रकार के दंड से जिस व्यक्ति को फांसी लगती है उसके परिवार वाले उससे सहानुभूति रखने लगते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। आखिर हम महात्मा गांधी के अनुयायी हैं जिन्होंने कुछ हद तक ईसा मसीह के सिद्धान्तों को स्वीकार किया था। आपको आंख फोड़ने के अपराध के लिये किसी की आंख न फोड़नी चाहिये और दांत तोड़ने के अपराध के लिये दांत न तोड़ना चाहिये। आपको जान लेने के अपराध के लिये किसी की जान न ले लेनी चाहिये। आधुनिक भारत को, गांधी के भारत को, इस प्रकार के विचार ही अपनाने चाहिये। अपने संविधान द्वारा मृत्यु-दंड को समाप्त न करके, मेरे विचार से हमने गलती की है। हम इस गलती को बाद में ठीक भी कर सकते हैं।

मैं एक अन्य विषय की भी चर्चा करना चाहता हूं जिसके सम्बन्ध में मेरा दृढ़ मत है। यह आयुध-अधिनियम का विषय है। अंग्रेजों के राजकाल में हमने आयुध-अधिनियम के विरूद्ध कई वर्षों तक संघर्ष किया किन्तु वह अब भी कानून के रूप में ज्यों का त्यों बना हुआ है। यह क्यों? चूंकि विभिन्न प्रकार के अपराध किये जाने लगे हैं इस कारण ही क्या आप आयुध-अधिनियम को समाप्त नहीं करना चाहते। यह विचार कदापि न कीजिये कि जो लोग हिंसा और अपराध करना चाहेंगे वे एक क्षण के लिये भी आपके आयुध-अधिनियम से डरेंगे। उससे केवल वही लोग डरेंगे जो डाकुओं और अपराधियों से अपनी रक्षा करना चाहते हैं। ये ईमानदार लोग ही आपके आयुध-अधिनियम के कारण आयुध नहीं रख सकते। अपराधियों और खूनियों को आपके इस अधिनियम का कभी भी डर नहीं रहेगा।

इसलिये श्रीमान, मेरी यह धारणा है कि अच्छा यह होता कि इस संविधान द्वारा हम आयुध-अधिनियम को समाप्त कर देते।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, एक विषय और है जिसकी अब मैं चर्चा करना चाहता हूं और जिसकी चर्चा करने के लिये मैं बंबई के मेरे माननीय मित्र श्री खेर के भाषण को सुनकर विवश हुआ हूं। वह विषय कार्यपालिका और न्यायपालिका के पृथक्करण का विषय है। हम न्यायपालिका और कार्यपालिका के पृथक्करण के लिये बहुत दिनों से चीख पुकार कर रहे हैं। किन्तु उसके सम्बन्ध में हमने संविधान में कोई उपबन्ध नहीं रखा है। इस पर मुझे अधिक आपत्ति नहीं है, क्योंकि संविधान में कोई उपबंध ऐसा नहीं है जिससे हमें न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने में रूकावट होती हो। परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि एक प्रतिष्ठित नेता, जिन पर बंबई जैसे बड़े प्रान्त के प्रशासन का भार है, यह कहने लगे कि न्यायपालिका के सभी लोग दूध के धोये नहीं हैं और कार्यपालिका के सभी लोग मूर्ख अथवा अपराधी नहीं हैं। हो सकता है कि आज कल की कार्यपालिका में बहुत ऊंचे लोग हों, जो न्यायपालिका के कार्य में हस्तक्षेप न करते हों, किन्तु आप भविष्य के लिये कैसे प्रत्याभूति दे सकते हैं। वास्तव में श्रीमान, मेरे विचार से, जब वयस्क मताधिकार प्रदान किया जा रहा है, तो हमें किसी प्रकार का संरक्षण प्राप्त होना चाहिये। यह संरक्षण एक स्वाधीन न्यायपालिका ही प्रदान कर सकती है। इसलिये न्यायपालिका को यथाशक्य शीघ्र स्वाधीन बना देना चाहिये।

इस सम्बन्ध में श्रीमान, मुझे खेद है कि संविधान में उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों को एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित करने के बारे में उपबन्ध रखे गये हैं। कुछ मामलों में दंड देने के उद्देश्य से स्थानान्तरण होगा। उदाहरणार्थ यदि बंबई के उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश आसाम को स्थानान्तरित किया गया तो उससे अच्छा वह यह समझेगा कि उसे पोर्ट ब्लेयर भेज दिया जाता। कोई न्यायाधीश बंबई से आसाम को अथवा संयुक्त प्रान्त से भी आसाम को स्थानान्तरित होना पसन्द नहीं करेगा। वह समझेगा कि उसे अनिश्चित काल के लिये कालेपानी की सजा दे दी गई है। वह यह करेगा कि राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति को प्रसन्न करने का प्रयास करेगा ताकि वह आसाम अथवा उड़ीसा जैसे दंडभोगियों के प्रान्त को स्थानान्तरित न किया जाये। आसाम अथवा उड़ीसा में भी कुछ न्यायाधीश ऐसे पाये जायेंगे जो संयुक्त प्रान्त अथवा बंबई को अपने को स्थानान्तरित कराने के लिये कुछ भी दे देने को तैयार होंगे। इस संविधान द्वारा यह संरक्षकता का अधिकार राष्ट्रपति और राज्यपाल को दिया गया है। यह एक नवीन प्रकार की संरक्षकता है। यह संरक्षकता का एक नवीन मार्ग है और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तक को खरीद कर स्थानान्तरित करने की एक नवीन प्रणाली है। पुराने संविधान के अधीन इस प्रकार स्थानान्तरण नहीं हो सकता था। नये संविधान द्वारा इस प्रकार स्थानान्तरण किया जा सकता है। यह मेरे विचार से एक बहुत बड़ी गलती है और यह हमारा कर्तव्य है कि हम यथाशीघ्र इस गलती को ठीक कर दें।

(इस अवसर पर अध्यक्ष महोदय ने घंटी बजाई)

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

श्रीमान, जिन लोगों ने इस सभा में पर्चियां दी थीं उनमें मैं तीसरा था। इस लिये मुझ पर पुराने नियम लागू होते हैं, नये नियम लागू नहीं होते। पुराना नियम बीस मिनट तक बोलने का है और नया नियम पन्द्रह मिनट तक बोलने का। मुझ पर पुराने नियम लागू होते हैं।

***अध्यक्ष:** दोनों एक साथ लागू होते हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान, हमारे प्रान्त की आर्थिक स्थिति की ओर इस सभा का ध्यान आकृष्ट करने के लिये मेरे माननीय मित्र श्री सआदुल्ला ने जो कुछ कहा है उसमें मैं भी योग देना चाहता हूं। यदि स्थिति वैसी ही रही जैसी कि इस समय है और उसमें तुरन्त ही कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो प्रान्त का प्रशासन चलाना असम्भव हो जायेगा। मैंने सुना है कि तुरन्त ही सब कुछ गिरने वाल है। आप सुनेंगे कि केवल धन के अभाव के कारण आसाम अपना शासन-कार्य नहीं चला पा रहा है।

श्रीमान, एक अन्य बात जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, अपवर्जित क्षेत्रों का न्याय-प्रशासन है। असैनिक प्रक्रिया संहिता, अपराध प्रक्रिया संहिता तथा अन्य सब विधियां जो भारत के अन्य प्रान्तों में प्रयुक्त हैं, अपवर्जित क्षेत्रों में प्रयुक्त नहीं हैं। यदि मैं यह समझता कि अपवर्जित क्षेत्रों में रहने वाले सभी लोग उतने ही सीधे सादे हैं जितने कुछ आदिम-जातियों के लोग हैं तो मैं उनके लिये कष्ट नहीं उठाता। किन्तु उनमें से कुछ लोग बहुत प्रगतिशील हैं। इन पर्वतों में भारत के अन्य भागों के लोग आ कर बसते थे। यदि दीनापुर और शिलांग जैसी जगहों में रहने वाले लोग न्याय-प्रशासन के प्रयोजन के लिए आदिम जातियों के लोग समझे गये तो यह बहुत दुर्भाग्य की बात होगी। श्रीमान, मेरा निवेदन है कि संविधान में एक उपबन्ध इस आशय का है कि न्याय-प्रशासन के लिये, राज्यपाल नियम बना सकता है, अर्थात वह स्वयं विधि बना सकता है। भारतीय दंड-संहिता बनाने के लिये, अथवा भारतीय दंड-संहिता अथवा अपराध प्रक्रिया संहिता अथवा असैनिक प्रक्रिया-संहिता को संशोधित करने के लिए 320 व्यक्तियों की आवश्यकता होगी किन्तु एक राज्यपाल न्याय-प्रशासन के सम्बन्ध में विधि बना सकेगा जो आदिम जातियों के लोगों पर ही लागू नहीं होगी बल्कि पंजाब, अथवा बंबई, अथवा बंगाल के सुसभ्य लोगों पर भी लागू होगी। श्रीमान, क्या यह दुर्भाग्य की बात नहीं है? क्या इसकी अपेक्षा यह कहना अच्छा न होता कि स्थिति के अनुसार रूप-भेद करके वहां सभी विधियां प्रयुक्त होंगी। इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं समाप्त करता हूं। यदि मैंने किसी व्यक्ति को धन्यवाद नहीं दिया है तो यह बात नहीं है कि मैं उसे भूल गया था। मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं मनुष्य के रोगों के तथा राजनैतिक रोगों के भी उस डॉक्टर को जिसने हमारे दल में छिपकर इस संविधान की रचना की है, अर्थात मैं डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

***श्रीमती हंसा मेहता** (बंबई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, अब हम अपनी यात्रा समाप्त करने जा रहे हैं और हमें हर्ष है कि आखिर यह सुदिन भी आ गया।

मेरी यह इच्छा थी कि हम इस यात्रा में कम समय लगाते। समय का बहुत महत्व होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से जिस घड़ी का महत्व होता है यदि वह बीत जाती है तो चाहे कोई चीज कितनी ही सुन्दर क्यों न हो उसमें दिलचस्पी नहीं रह जाती। यही इस संविधान के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। इस सभा में तथा इसके बाहर पूछा जाता है कि यह संविधान अच्छा है या नहीं और आखिर यह किस प्रकार व्यवहार में आयेगा यदि इससे लोगों का हितसाधन होगा तो यह सुन्दर संविधान कहा जायेगा। यदि इससे उनकी हित हानि होगी तो यह एक बुरा संविधान कहा जायेगा। भविष्य के निर्वाचकों को चाहिये कि वे ठीक तरह के लोगों को चुनें ताकि वे इस संविधान द्वारा लोगों का हितसाधन करें इस लिये जिम्मेदारी लोगों की ही है। एक बात मैं कहूंगी और वह यह है कि जिस स्थिति में हम थे उसमें इससे अच्छा संविधान बनाया नहीं जा सकता था। इस सभा में इतना मत-वैषम्य होने पर भी यह एक आश्चर्य की बात है कि इस संविधान में जो कुछ है कम से कम उसके लिये तो सभा की सहमति प्राप्त हो गई। एक ओर सेठ गोबिन्द दास गौ-रक्षा का बीड़ा उठाये हुए थे और दूसरी ओर प्रो. के.टी. शाह निम्न स्तर के लोगों के उत्थान का बीड़ा उठाये हुए थे। इन दो बिल्कुल ही भिन्न विचार रखने वालों के बीच में अनेक मत रखने वाले अनेक लोग थे। अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय एक अच्छे उदाहरण होंगे।

इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए और हमें जिन पेचीदे प्रश्नों का हल करना पड़ा है उन्हें भी दृष्टि में रखते हुए, मैं यह कह सकती हूं कि हम अपने कार्य में असफल नहीं रहे हैं। हमारे लिये सबसे कठिन प्रश्न अल्पसंख्यकों का प्रश्न रहा है। संविधान में किसी स्थल पर भी हम ने "अल्प संख्यकों" की परिभाषा नहीं की है। हमारे अन्तिम शासकों ने हमें जो परिभाषा प्रदान की उसी को हमने स्वीकार कर लिया। उन्होंने धर्म और सम्प्रदायों के आधार पर अल्पसंख्यक तैयार किये ताकि वे फूट डाल कर शासन करते रहें। उस नीति का परिणाम यह हुआ है कि देश का विभाजन हो गया है। हम नहीं चाहते कि देश का फिर विभाजन हो। आखिर अल्पसंख्यक चाहते क्या हैं? उनकी मांगें हो ही क्या सकती हैं। संविधान द्वारा विधि के समान संरक्षण की पद समता तथा अवसर-समता की तथा धार्मिक अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है। अल्पसंख्यक और काहे की मांग कर सकते हैं? यदि वे विशेषाधिकार चाहते हैं तो यह लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध है। वे विशेषाधिकारों की मांग नहीं कर सकते। केवल अनुसूचित जातियों के लिये अपवाद किया जा सकता है। उन्हें हिन्दू समाज में बहुत काल तक उत्पीड़न सहना पड़ा है और यदि उनके लिये कोई अपवाद किया गया तो वह उस उत्पीड़न के निराकरण की ओर एक कदम होगा। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगी कि अस्पृश्यता का अंत करना ही हमारा सबसे बड़ा कार्य रहा है। इस पर आने वाली पीढ़ियां बहुत गर्व करेंगी।

मूलाधिकार समिति में इस प्रश्न पर विचार-विमर्श करते समय हमने एक प्रश्न और उठाया था। हमारी प्रबल इच्छा थी कि पर्दे की प्रथा को समाप्त करने पर भी विचार किया जाये। यह एक अमानुषिक प्रथा है और भारत के कुछ भागों में अब भी चलन में है। दुर्भाग्य से हमसे यह कहा गया कि इस प्रश्न को उठाने से कुछ लोगों की धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुंचेगा। जहां तक हिन्दू धर्म का

[श्रीमती हंसा मेहता]

सम्बन्ध है उसमें पर्दे का कोई स्थान नहीं है। इस्लाम में उसका स्थान है। किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस्लाम को इस दोष से मुक्त कर देना चाहिये। यदि किसी दोष को धर्म के नाम पर स्वीकार किया जाता है तो उसकी प्रत्याभूति संविधान द्वारा नहीं दी जा सकती है। मुझे आशा है कि हमारे मुसलमान मित्र यह स्मरण रखेंगे कि यह प्रश्न इस समय नहीं तो बाद को अवश्य ही विधान मंडलों के सामने रखा जायेगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मूलाधिकार विषयक अध्याय बहुत महत्वपूर्ण है किन्तु साथ ही उसके आगे का अध्याय अर्थात राज्य की नीति के निदेशक तत्व विषयक अध्याय भी, मेरे विचार से बहुत महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय के दो विषयों की ओर मैं इस सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहती हूं। पहला विषय मादक-द्रव्य-प्रतिषेध का विषय है। हाल में बंबई के प्रधान मंत्री महोदय ने कहा था कि वे जो कुछ कर रहे हैं संविधान के अनुसार ही कर रहे हैं। मैं इसमें कुछ विभेद करना चाहती हूं। मादक-द्रव्य-प्रतिषेध के सम्बन्ध में गांधी जी का भी नाम लिया जाता है। किन्तु गांधी जी की यह इच्छा थी कि राज्य शराब न बनाये और न उसे बेचे और शराब की दूकानें भी बन्द कर दी जायें। ताकि जिन लोगों को पीने की लत पड़ी हुई है उनके लिये कोई प्रलोभन न रहे। किन्तु, मेरे विचार से, गांधी जी की यह कभी भी इच्छा नहीं थी कि हम एक पुलिस सेना का संगठन करें गांधी जी कभी यह नहीं चाहते थे कि अच्छे साधनों से जो धन प्राप्त हो वह पुलिस पर व्यय किया जाये। हम दूषित आय को छोड़ देने के लिए तैयार हैं किन्तु हम उत्पादन विभाग की पुलिस पर अच्छे साधनों से प्राप्त लाखों रुपये क्यों खर्च करें? देश में इस समय बहुत भ्रष्टाचार है। इससे भ्रष्टाचार का एक और मार्ग खुल जायेगा। एक अन्य बात यह है कि इससे विक्रय कर चिरस्थायी हो जायेगा। लोग करों के भार से दबे जा रहे हैं विक्रय कर के भार से वह कराहने लगे हैं इसलिये इस सम्बन्ध में मैं यह विभेद करना चाहती हूं—संविधान में सन्निहित मादक-द्रव्य-प्रतिषेध-विषयक नीति से तो मैं सहमत हूं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आज विभिन्न प्रान्तों में इस नीति को कार्यान्वित करने के लिये जिस प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है उससे मैं सहमत हूं।

एक अन्य विषय, जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहती हूं, सार्वजनिक-असैनिक-संहिता का विषय है। मेरे विचार से इसका महत्व राष्ट्र-भाषा से भी अधिक है। इस देश में बहुत सी स्वीय विधियां हैं और इन स्वीय विधियों के कारण आज हमारा राष्ट्र खंडित है। इसलिये यदि हम राष्ट्र को सुगठित करना चाहते हैं तो एक ही असैनिक-संहिता को व्यवहार में लाना बहुत आवश्यक है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि हम जिस असैनिक-संहिता को स्वीकार करें वह या तो देश में प्रचलित प्रगतिशील स्वीय विधियों के समान हो या उनसे अधिक प्रगतिशील हो। अन्यथा वह एक प्रतिगामी संहिता होगी और सब लोग उसे स्वीकार नहीं करेंगे।

यदि पुरुष स्त्रियों से रक्षा के सम्बन्ध में इस संविधान में उपबन्ध रखने की मांग करते तो संसार उन्हें बहुत छोटा समझता। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इस संविधान में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है। अन्यथा पुरुष संसार में अपना मुंह नहीं दिखा सकते।

श्रीमान, मैंने इसे एक वर्ग की बात समझी है कि मेरा स्वतंत्र भारत के संविधान-निर्माण से सम्बन्ध रहा है। मुझे आशा है कि तीन वर्ष पूर्व इस सभा में प्रधान मंत्री महोदय ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया था और जिसे पारित करके सभा ने प्रस्तावना का रूप दिया है उससे लोगों की जो आशायें हो गई हैं वे पूरी होंगी। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि वे पूरी हों। उस प्रस्तावना द्वारा दिये हुए वचन के पूर्ण होने पर ही यह देश अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को प्राप्त होगा।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि संविधान-निर्माण में मेरा इतना कम योग रहा है कि हमारे अध्यक्ष महोदय भी, जिन्होंने प्रत्येक व्यक्ति के प्रति उदारता दिखाई है, मेरा नाम तक नहीं जानते।

***अध्यक्षः** मुझे खेद है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** इससे यह प्रकट होता है कि मैंने यथोचित कार्य नहीं किया है मुझे इसका खेद है और इसके लिये मैं अपने अध्यक्ष महोदय को दोष नहीं देता। किन्तु, श्रीमान कर्तव्य-पालन की दृष्टि से मैं कहूंगा कि जिस संविधान को हम देश को तथा आने वाली पीढ़ियों को प्रदान करने जा रहे हैं उससे मेरे हृदय में कौन से विचार उत्पन्न हुए हैं।

मेरी यह धारणा है, और यही सच भी है, कि हमारा यह संविधानिक अधिनियम आधुनिक संसार की एक सभ्य और महान कृति समझी जायेगी। किन्तु मैं किसी प्रकार की आत्म-प्रशंसा नहीं करना चाहता और न मसौदा समिति की, अथवा माननीय सदस्यों की, अथवा अपने माननीय अध्यक्ष महोदय की, अथवा किसी व्यक्ति की प्रशंसा करना चाहता। इसका कारण यह है कि हमने अपने कर्तव्य का पालन किया है और यथाशक्ति पालन किया है और लोग ही हमारे श्रम के सम्बन्ध में निर्णय कर सकते हैं। वास्तव में हलवे का स्वाद चख कर ही जाना जा सकता है। जब लोग उसे चखेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उसका स्वाद कैसा है। उसके स्वादिष्ट होने पर भी यदि वह स्वास्थ्य वर्द्धक सिद्ध न हुआ तो उस पर आपत्ति की जा सकती है। इसलिये बिना अपनी प्रशंसा किये हुए मैं यह कहूंगा कि इस संविधान का आरम्भ तो बहुत ऊंचे शब्दों से हुआ है किन्तु इसके आदर्श निरर्थक ही हैं। इसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता का वचन दिया गया है, जिससे व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित होगी। परन्तु व्यक्ति! राष्ट्र!

मेरे मित्र कह चुके हैं कि सरदार पटेल ने जादू करके भारत में राजनैतिक एकता और संभवतः भौगोलिक एकता भी स्थापित की है। किन्तु मैं देखता हूं कि इस संविधान में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि वह राष्ट्र कैसा है, वह व्यक्ति कैसा है और भारत का वह कौन सा व्यक्तित्व है जिसके कारण भारत भारत है और जिसका हम पोषण करने जा रहे हैं। मैं देखता हूं कि इस संविधान में कहीं भी भारत के व्यक्तित्व का वर्णन नहीं है उस व्यक्तित्व का जिसके कारण भारत अन्य राष्ट्रों से भिन्न है। मैं संविधान में किसी स्थल पर भी इसे वर्णित नहीं देखता कि वह व्यक्ति कौन है, उसका प्रारब्ध कैसा है और उसका पुरुषार्थ

[श्री लोकनाथ मिश्र]

कैसा है, और राष्ट्र आखिर किस आदर्श के लिये प्रयत्न करे और व्यक्ति, परिवार तथा देश किस आदर्श को लेकर प्रयत्नशील हो।

जब हम मूलाधिकारों को उठाते हैं तो हम एक बात देखते हैं। उनका वर्णन करते हुए चाहे जो कुछ भी कहा गया हो किन्तु व्यवहार में उनसे इच्छित फल प्राप्त नहीं होगा। उनके द्वारा स्वतंत्रता तथा समता का वचन दिया गया है। मैं यह कहूंगा कि स्त्रियों और पुरुषों की समता तथा स्वतंत्रता के सम्बन्ध में मेरे हृदय में एक विचार उठता है। यदि दुर्भाग्य से स्त्रियों ने आधुनिकता को अपनाया और सभी मामलों में पुरुषों से समता तथा स्वतंत्रता की मांग की और उनकी प्रतिस्वर्धिनी बन गईं तो मुझे विश्वास है कि इतने वर्षों से हम जिस सभ्यता को पोषण करते आये हैं उसका अन्त हो जायेगा। मेरा निवेदन है कि भारत का अवश्य ही अपना एक व्यक्तित्व है। गांधी जी कहते है कि भारत को संसार को एक संदेश देना है और उसी संदेश को देने के लिये मैं जीवन धारण किये हुए हूं। यदि भारत उस विचार धारा का परित्याग करता है तो मेरे यहां रहने से कोई लाभ न होगा। मैं इस सभा से पूछता हूं कि भारतीय राष्ट्र के किस व्यक्तित्व का हम निर्माण करना चाहते हैं और संसार को तथा आधुनिक सभ्यता को कौन सा संदेश देना चाहते हैं। मेरा निवेदन है कि हमने केवल नकल की है। इसे भारतीय संविधान न कह कर मैं इसे भारत का आंग्ल-अमरीकी संविधानिक अधिनियम कहूंगा। इसका उचित नाम यही है।

हमने वयस्क मताधिकार प्रदान किया है। यह सुनाई तो अच्छा देता है किन्तु इस वयस्क मताधिकार को एकाएक देने से तथा एकाएक प्रयोग करने से उन लोगों को ही हानि सहन करनी पड़ेगी जो उसे प्रयोग करेंगे। उदाहरणार्थ, सामान्य निर्वाचनों में लगभग बीस करोड़ लोग मत देंगे। अभी वे नहीं जानते कि वे किस लिये मत देंगे। उन्हें केवल यह अधिकार प्राप्त हो जायेगा। निर्वाचनों में कई दल भाग लेंगे और कई उम्मीदवार एक दूसरे के विरोध में खड़े होंगे और वे लोगों के पास जा कर कहेंगे, "हम आपकी अमुक अमुक इच्छा पूरी करेंगे, अन्य उम्मीदवारों को मत न दीजिये, हमें मत दीजिये।" इससे उनमें केवल अधिकार-भावना जाग्रत होगी और कर्तव्य भावना जाग्रत नहीं होगी। वे किसी दल विशेष के पक्ष में मत देंगे, जो उनकी इच्छा कभी भी पूर्णतया पूरी नहीं कर सकेगा। उनकी इच्छायें और भी प्रबल हो उठेंगी। इससे समाज में अव्यवस्था फैल जायेगी और उसका समुचित विकास न हो पायेगा। इस लिये मेरा निवेदन है कि हमने दलबन्दी के आधार पर सरकार बनाने की इंग्लिस्तान की जो प्रणाली अपनाई है उससे इस समय हानि ही होगी किन्तु हम आशा करते हैं कि हमारे राजनीतिज्ञ तथा हमारे नेता अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे और लोगों को इस प्रकार शिक्षित करेंगे कि उन्हें एकाएक जो अधिकार दिया गया है उसका सर्वोत्तम प्रयोग करने में वे समर्थ हों।

मेरा यह विचार है, और यह मेरे कई मित्र और विशेष तथा माननीय श्री प्रकाशम भी कह चुके हैं कि यह संविधान एक उत्कृष्ट संविधान हो सकता था और वह तब जब कि इसका निर्माण पंचायत-राज के आधार पर किया जाता क्योंकि अभी भी पंचायत-राज हमारे रक्त में है और लोग उसे पसंद करते हैं। इससे हमारे देश

में छोटे-छोटे लोकतंत्रात्मक राज्य स्थापित हो जाते और लोकतंत्र प्रेमी लोग अपना उत्तरदायित्व समझ कर उत्साह तथा हर्ष से अधिकार प्रयोग करते हैं। किन्तु अब इस संविधान के अधीन दो वर्ग स्थापित हो जायेंगे—एक तो शासकों का वर्ग होगा, जो शिखर पर होगा, और दूसरा वर्ग उन साधारण लोगों का होगा जो सबसे नीचे होंगे, और पांच वर्ष में एक बार मत देंगे। इनके बीच में मध्यवर्ग होगा जो बिल्कुल ही कुचल दिया जायेगा। मेरा निवेदन है कि यदि मध्यवर्ग कुचल दिया गया तो देश में बुद्धिमान लोगों का बिल्कुल अभाव हो जायेगा तब कहा नहीं जा सकेगा कि देश का भविष्य क्या होगा।

मैं अब मूलाधिकार विषयक एक अन्य अनुच्छेद, अर्थात अनुच्छेद 31 उठाता हूं जो सम्पत्ति के विषय में है। सम्भवत: सारे संविधान में यह सबसे अधिक अनर्गल अनुच्छेद है। प्रत्यक्षत: इस अनुच्छेद में कहा गया है कि 26 जनवरी 1950 तक जो कुछ न्याय्य नहीं था वह उसके पश्चात् न्याय्य हो जायेगा। उदाहरणार्थ, संयुक्त प्रान्त के विधेयक को अथवा बिहार के विधेयक को लीजिये, जो इस समय लम्बित है। किन्तु यदि उनमें से कोई विधेयक इस संविधानिक अधिनियम के प्रारम्भ होने से पूर्व पारित कर दिया जाता है तो संविधान के पारित होने पर इस अनुच्छेद के अधीन उस अधिनियम के उपबंध न्याय्य नहीं होंगे, किन्तु यदि वही विधेयक अथवा उसके अधिकांश खंड उड़ीसा के किसी विधेयक में समाविष्ट कर लिये जाते हैं और वह वहां की विधान सभा द्वारा इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् पारित किया जाता है तो वह न्याय्य हो सकता है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो उपबंध इस समय न्याय्य नहीं हैं वे बाद को कैसे न्याय्य हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त उपखंड (6) को ही देखिये। इस संविधान के प्रारम्भ से 18 महीने पूर्व जो कुछ पारित किया गया है वह न्याय्य नहीं होगा और उसके पश्चात जो कुछ पारित किया गया है वह न्याय्य होगा। इस विभेदकारी उपबंध को किसी भी संविधान में, और विशेषकर उसके मूलाधिकार-विषयक अध्याय में स्थान नहीं दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त हमने इस अनुच्छेद में "सम्पत्ति", "कब्जा", "अर्जन" तथा "सार्वजनिक प्रयोजन" की परिभाषा नहीं की है। उदाहरणार्थ उड़ीसा में हमारी भू-राजस्व तथा भू-अवधि समिति इस परिणाम पर पहुंची है कि ज़मींदारी के उत्पादन का अर्थ यह नहीं है कि जो भूमि कब्ज़े में हो, अथवा अर्जित की गई हो, उसे सार्वजनिक प्रयोजन के लिये ले लिया जायेगा। इसका कारण यह है कि प्रत्येक ज़मींदार के दो अधिकार हैं—लगान वसूल करने का अधिकार और अपनी भूमि में खेती करने का अधिकार। यदि हम उसकी निजीभूमि को छोड़ देते हैं और केवल उसके लगान वसूल करने के अधिकार को समाप्त करते हैं तो आखिर उसकी कौन-सी सम्पत्ति चली जायेगी कि उसे मुआविजा दिया जाये? यदि हम थोड़ी देर के लिये यह मानें कि हम सामन्तशाही को पूर्णतया मिटा देते हैं तो हम भू-राजस्व को भी मिटा देते हैं और फिर उसके स्थान पर किसी कर को लगाते हैं—और तो क्या कुछ सम्पत्ति को जब्त कर लिया जा रहा है अथवा उससे कब्जा छुड़ाया जा रहा है। किन्तु उसके लिए मुआविजा दिया जा रहा है। हमने इन अयुक्त बातों को अकारण रखा है। यदि हम केवल अनुच्छेद 31 के खंड (1) को रखते तो पर्याप्त होता। इन उपबंधों के फलस्वरूप अकारण कलह होगा। मैं किसी को दोष नहीं देता किन्तु मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद को बनाने में समझौते की अत्यधिक चिन्ता की गई है। इससे इसका संकेत मिलता है कि किन विचारों से प्रेरित होकर इस संविधान का निर्माण किया गया है।

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इसलिये, मेरा निवेदन है कि यह संविधान अधिक से अधिक लोगों को प्रसन्न करने के लिये बनाया गया है किन्तु यह अनेक विचारों और विचार-धाराओं का मिश्रण हो गया है। इसका आधार इतना सुव्यवस्थित तथा सुगठित नहीं है कि हम एक सूत्र में बंधे रह सकें। इसका एकमात्र कारण यह है। वर्षों से आधुनिक विचारों को अपनाये हुए रहने के कारण हम उनके रंग में इतने रंग गये हैं कि हम अपने को भूल गये हैं। क्या इस देश की भूमि इतनी ठोस नहीं थी कि उस पर हमारे भावी संविधान की नींव रखी जा सकती? यदि आप एक ऐसी सभ्यता को अंगीकार करना चाहते हैं जो अभी इस देश में नहीं परखी गई है तो आप सभी सच्ची बातों को मिटा देंगे। इस दशा में मैं कह नहीं सकता कि भविष्य में हमें किस स्थिति का सामना करना पड़ेगा। श्रीमान, हमने वयस्क मताधिकार प्रदान किया है। यह एक अच्छी बात है। किन्तु मेरा निवेदन है कि इसके साथ हमें निर्वाचन के लिये खड़े होने वाले लोगों के सम्बन्ध में अधिक आयु रखनी चाहिये थी। मेरे विचार से अवर सदन के लिये खड़े होने वाले लोगों की कम से कम आयु तीस वर्ष और उत्तर सदन के लिये खड़े होने वाले लोगों की कम से कम आयु 35 वर्ष रखनी चाहिये थी। इससे इन मामलों पर हमारा एक प्रकार का नियंत्रण रहता और हमारे देशवासी समझदारी से काम करते।

इसके अतिरिक्त हमें विधान मंडलों के लिये खड़े होने वाले लोगों के लिये ऊंची योग्यता निश्चित करनी चाहिये थी। हम जानते हैं कि आगे चलकर क्या होने वाला है। हम जानते हैं कि यह संविधान संसदात्मक प्रणाली पर आधृत है और किसी संसदात्मक प्रणाली की सफलता संसद के सदस्यों पर निर्भर करती है। यदि उसके सदस्य संयमशील, सत्यनिष्ठ, बुद्धिमान तथा सुयोग्य न होंगे तो, मेरे विचार से, संसदात्मक लोकतंत्र विफल हो जायेगा। किन्तु मैं यह देखता हूं कि हमारी संसदात्मक प्रणाली केवल इस कारण विफल होगी कि हमने उन लोगों के सम्बन्ध में, जो एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी को स्वीकार करेंगे कोई योग्यता निश्चित नहीं की है। हमें सदस्यों के लिये यह योग्यता निश्चित करनी चाहिये थी कि वे ईमानदार होने चाहिये और उन लोगों में से न होने चाहिये जो लोगों का शोषण करते हैं और चोर बाज़ार को बढ़ावा देते हैं तथा उनके प्रति लोगों की श्रद्धा तथा उनका विश्वास होना चाहिये। किन्तु क्यों हमें तुरन्त ही स्वार्थों के संघात, प्रतिस्पर्धा तथा अव्यवस्थित जीवन का दर्शन होने जा रहा है? इसका परिणाम यह होगा कि संसदात्मक लोकतंत्र के नाम पर अराजकता फैल जायेगी।

अब श्रीमान, मैं दो शब्द केन्द्रीकरण के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। एक सुदृढ़ राज्य का निर्माण करने के नाम पर हमने शक्ति का ऐसा संकेन्द्रण किया है कि अपनी शक्ति के कारण ही केन्द्र की कमर टूट जायेगी। चाहे पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल कितने ही अच्छे क्यों न हों किन्तु उनसे मैं उतनी ही दूरी पर हूं जितनी दूरी पर दिल्ली से पुरी में मेरा घर है। मैं उनसे इस तरह बात नहीं कर सकता जैसे मैं किसी अपने आदमी से करता हूं। जीवन में हम अपने परिवार, अपने गांव, अपने जिले और अपने प्रान्त के साथ चलते हैं। एकाएक सारे भारत की दृष्टि से विचार करना एक अनर्गल बात है। सम्भव है कि कुछ विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीकरण लाभप्रद सिद्ध हो। किन्तु हमने केन्द्र को इतना शक्तिशाली बना दिया है और प्रान्तों को इतना शक्तिहीन

बना दिया है कि मेरे विचार से वास्तव में प्रान्तों के विधान मंडल अथवा प्रान्तों के मंत्री भी स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकेंगे। वास्तव में इस संविधान के फलस्वरूप लोगों में अनुत्तरदायी होने की प्रवृत्ति बढ़ेगी और उन्हें पांच वर्ष में एक बार मत देकर ही संतोष कर लेना होगा। वे केवल केन्द्र की ही चिन्ता करेंगे और किसी न किसी लाभ के लिये केन्द्र के शक्तिसम्पन्न लोगों की खुशामद करते रहेंगे। इस प्रकार हमने इस आशा से इस उत्तरदायित्व-विहीन संविधान की रचना की है कि लोग उत्तरदायी शासन को प्राप्त कर सकें।

इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि हमने बहुत ईमानदारी से परिश्रम करके तथा सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य से इस संविधान को पारित किया है और अब हमें देखना है कि व्यवहार में यह कैसा रूप धारण करता है। यह हमारा कर्तव्य है कि हम इस संविधान का पोषण करें। और लोगों को इस संविधान में सन्निहित सिद्धान्तों की शिक्षा दें। यह एक महान कार्य है और मुझे आशा है कि हमारा देश तथा केन्द्र के हमारे नेता इस कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ होंगे। यदि वे गलत रास्ते पर जायेंगे तो केन्द्र के बहुत शक्तिशाली होने के कारण सारा राष्ट्र ही गलत रास्ते पर चला जायेगा। मुझे तो यह दिखाई देता है कि सही रास्ते पर चलने के बजाय उसके गलत रास्ते पर चलने की ही अधिक सम्भावना है। जय हिन्द।

***अध्यक्ष:** अब सभा तीन बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

संविधान सभा दोपहर के भोजन के पश्चात् 3 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में फिर समवेत हुई।

***श्री जदुवंश सहाय** (बिहार: जनरल): श्रीमान, इस संविधान के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जिन्होंने इस संविधान के सम्बन्ध में निराशा तथा असंतोष की भावना प्रकट की है। मेरे विचार से, श्रीमान, हमने जो कुछ किया है उसके कारण हमें किसी प्रकार का खेद न होना चाहिये। जिन सदस्यों ने इस संविधान की कड़ी आलोचना की है उन्होंने केवल अपने उत्साह की कमी का परिचय दिया है।

वास्तव में तथ्य यह है कि हमारे राष्ट्र का जन्म हाल ही में हुआ है और हमें भी लोकतंत्र की कला सीखनी है। किसी पुस्तक द्वारा लोकतंत्र की शिक्षा नहीं दी जा सकती। लोकतंत्र का विकास होता है। किसी राष्ट्र के लोगों के चरित्र, उनकी सत्यनिष्ठा तथा ईमानदारी के कारण और लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तों के प्रति उनके प्रेम तथा उन सिद्धान्तों का अनुसरण करने के लिये उनके उत्साह के कारण ही उनका संविधान सफल अथवा विफल होता है। किसी देश का संविधान उसके निर्जीव अक्षरों के कारण सफल नहीं होता चाहे वे अक्षर कितने ही सुन्दर और उज्जवल क्यों न हों। उसका विकास देशवासियों के चरित्र के फलस्वरूप होता है। देश की भूमि में ही संविधान का बीज बोने से यह उपजता है और उसका विकास होता है। यदि भूमि पथरीली अथवा ऊसर हो तो चाहे संविधान का बीज

[श्री जदुवंश सहाय]

कितना ही अच्छा क्यों न हो वह उपज नहीं सकता, अर्थात् इस दशा में चाहे संविधान कितना ही अच्छा क्यों न हो और कितनी ही उत्कृष्ट भाषा में क्यों न लिखा गया है वह हमें अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचा सकता। किन्तु श्रीमान, मुझे अपने देशवासियों की निष्ठा पर विश्वास है। मुझे आने वाली पीढ़ियों पर भी विश्वास है। मैं समझता हूं कि हमने जो कुछ किया है उसके कारण हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। संविधान में चाहे हम कितनी ही प्रत्याभूतियां क्यों न दे दें और जो बातें रह गई हैं उनका भी चाहे उल्लेख क्यों न कर दें किन्तु इनके कारण हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। सब कुछ उन लोगों पर निर्भर है जो संविधान को व्यवहार में लायेंगे। सब कुछ इस पर निर्भर है कि हम सहिष्णुता की भावना का किस प्रकार विकास करते हैं चाहे हमारा संविधान कैसा ही क्यों न हो और हमारी विधि की शब्दावली कैसी ही क्यों न हो? सब कुछ इस पर निर्भर है कि हम पद-दलितों के प्रति तथा उन लोगों के प्रति जो अपने को अल्पसंख्यक कहते हैं कितने प्रेम का परिचय देते हैं। हम भले ही संविधान में लिख दें कि प्रत्येक घर तथा परिवार में अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है किन्तु इससे कुछ प्राप्त नहीं होता। जो लोग इस समय जीवन के अनेक साधनों से वंचित हैं उनसे हमें प्रेम करना चाहिये। तथा उनके प्रति सहानुभूति दिखानी चाहिये। हमारे उद्देश्य की पूर्ति इस पर निर्भर नहीं है कि हम किस प्रकार संविधान बनायें और उस में किस प्रकार के अनुच्छेद रखें। वह इस पर निर्भर है कि हम कितने चरित्रनिष्ठ और और हमारा राष्ट्र कितना सजग है।

मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो इस संविधान के कारण हताश हुये हैं। इसलिये मैं इसके केवल एक या दो विषयों पर निरपेक्ष दृष्टि से विचार करूंगा।

श्रीमान, हमने देश की स्वतंत्रता के लिय संग्राम किया और उसे प्राप्त किया। किन्तु हमने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की है। पच्चीस अथवा तीस वर्ष तक प्रत्येक देशभक्त और स्वतंत्रता का प्रत्येक सिपाही यही नारा लगाता रहा कि अंग्रेज़ी राज का अंत हो। उसने कोई भी अर्थ-विषयक नारा नहीं लगाया। अंग्रेज़ी राज्य का अन्त हो गया है और हमें राजनैतिक प्रभुता प्राप्त हुई है। इसलिये संविधान की प्रस्तावना में हम यह घोषणा करने जा रहे हैं कि भारत एक स्वतंत्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य है यद्यपि हम यह घोषणा 26 जनवरी को करने जा रहे हैं किन्तु संसार के राष्ट्र हमारे देश के इस स्वरूप को स्वीकार कर चुके हैं। पिछले तीस वर्षों में अर्थात्मक लोकतंत्र के लिये अधिक संघर्ष नहीं किया गया जिसका परिणाम यह हुआ है कि संविधान में भी हमें एक ऐसी झलक दिखाई देती है कि समाज के आर्थिक ढांचे के लिये खतरा उपस्थित हो सकता है। अभी तक समाज का जो आर्थिक ढांचा रहा है वह आगे भी रहेगा। इसी कारण संघर्ष की सम्भावना है। आज हमारा देश एक संकट का सामना कर रहा है। कृषि के उत्पादन के लिये तथा आद्योगिक पदार्थों के उत्पादन के लिये संकटापन्न स्थिति उपस्थित है और हम कोई हल नहीं निकाल सके हैं। हम जो कुछ कर सकते हैं वह सब कर रहे हैं किन्तु हमें उतने शीघ्र सफलता प्राप्त नहीं हो रही है जितने शीघ्र हम चाहते हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि एक ऐसी स्थिति उपस्थित

है जिससे हमारे समाज का आर्थिक ढांचा ही खतरे में पड़ गया है और उसमें आधारभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

दुहराये हुए संविधान का खण्ड 31 सम्पत्ति के विषय में है। यदि मैं यह कहूं कि हम इस प्रश्न को बिना किसी उत्साह के और बहुत हिचकिचा कर हल कर रहे हैं तो मुझे आशा है कि आप मुझे क्षमा करेंगे। हम देख रहे हैं कि हमारे पड़ोस में ही चीन, बर्मा तथा अन्य देशों में ऐसी विध्वंसकारी शक्तियां जिनसे हमारा देश कभी परिचित नहीं रहा बाढ़ के समान आगे बढ़ रही हैं। साम्यवाद उन देशों में छा जाता है जो कृषि की दृष्टि से पिछड़े हुए हों। वह चीन में छा गया है और बर्मा में भी छा जायेगा हम उसका सामना किस प्रकार करेंगे? हमने जमींदारी प्रथा को उत्सादन करने का संकल्प किया है। अनुच्छेद 31 में हम यह देखते हैं कि उसके फलस्वरूप बिहार, संयुक्त प्रान्त तथा मद्रास के समान कुछ प्रान्त लाभप्रद स्थिति को प्राप्त होंगे, यद्यपि हम बहुत आगा पीछा करने पर इसके लिये सहमत हुए हैं, किन्तु बंगाल और सम्भवतः आसाम और उड़ीसा उससे लाभ नहीं उठा सकेंगे। ये प्रान्त अभी तक अपनी विधान सभाओं में इस सम्बन्ध में कोई विधेयक नहीं लाये हैं। क्या आप यह समझते हैं कि हम साम्यवाद का सामना इस प्रकार कर सकते हैं। गोलियों से अथवा सेना से, अथवा पुलिस से साम्यवाद का दमन नहीं किया जा सकता। उसका सामना अन्य प्रकार करना होगा। उसके मूल कारण को ढूंढ निकालना होगा। इस रोग का कारण भूख से तथा अन्य कारणों से पीड़ित देश के जनसाधारण का असंतोष ही है। हम सुनते हैं कि बंगाल में बमों, गोलियों और तेजाब के बल्बों का प्रयोग किया जाता है और ट्रामगाड़ियों को जला दिया जाता है। बंगाल सरकार इस समय अपने घर के प्रश्नों में ही उलझी हुई है। वह अपने प्रान्त में सामन्तशाही के उत्सादन के लिये कोई विधेयक नहीं ला सकी है। 26 जनवरी के पश्चात् वह उस लाभ से वंचित हो जायेगी जो हमने इस संविधान के अनुच्छेद 33 के खण्ड (4) और (6) द्वारा प्रदान किया है। केवल कलकत्ता तथा अन्य बड़े-बड़े शहरों में ही नहीं किन्तु देहात में भी हम देखते हैं कि साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ रहा है। संथालों, आदिवासियों तथा किसानों पर उसका प्रभाव है। वे सब साम्यवादियों के नारों तथा प्रचार के शिकार हो रहे हैं। गांवों में पुलिस भेज कर आप इस प्रभाव को समाप्त नहीं कर सकते। स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह असमभव है। संविधान में हमने इस प्रश्न को बिना किसी उत्साह के हल करने का प्रयास किया है। विचार-धाराएं आपस में टकराती रही हैं। दो विचार धारायें आपस में टकराती रही हैं। एक विचार-धारा समाज के पुराने आर्थिक ढांचे को बनाये रखने तथा उसे सुस्थिर करने के पक्ष में हैं और दूसरी विचार धारा उसे विनष्ट करने तथा एक नवीन आर्थिक आधार पर समाज का निर्माण करने के पक्ष में है। मैं अनुच्छेद 31 की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करता हूं, जिसमें इन परस्पर-विरोधी विचार-धाराओं के बीच के मार्ग को अपनाया गया है। हम कृषि के हितों के अतिरिक्त अन्य हितों का उल्लेख नहीं कर सके हैं। जमींदारी के तथा सामन्तशाही के हितों का भी बहुत साधारण ढंग से उल्लेख किया गया है। किसी देश का राजनैतिक विकास उसके आर्थिक ढांचे के आधार पर ही होता है। एक ओर हम देश के जनसाधारण को वयस्क मताधिकार प्रदान करने जा रहे हैं, अर्थात् हम उन लोगों को राजनैतिक शक्ति प्रदान करने जा रहे हैं, जिन्हें दिन में दो वक्त पेट भर खाने को नहीं मिलता, जो भिखारी हैं और जो साल में नौ महीने बेकार रहते

[श्री जदुवंश सहाय]

हैं, और दूसरी ओर हम समाज के वर्तमान आर्थिक ढांचे को सुस्थिर बनाना चाहते हैं। आप वर्तमान स्थिति को बनाये रखना चाहते हैं। इस समस्या को आप को हल करना होगा। यदि हम लोग, जो उस महान संगठन के सदस्य हैं जिसने राजनैतिक स्वातंत्र्य प्राप्त किया है और जिसने बहुत हद तक इस देश के संविधान का निर्माण किया है इस प्रश्न की उपेक्षा करेंगे तो यह प्रश्न हमारी उपेक्षा नहीं करने जा रहा है। यदि हम इसे हल नहीं करेंगे तो अन्य लोग इसे हल करेंगे। इसे वे लोग हल करेंगे जो इस देश में विदेशी नारे लगायेंगे तथा अन्य देश के प्रभाव को स्थापित करेंगे। क्या हम इस प्रश्न को इन लोगों के हल करने के लिये छोड़ दें? इस चुनौती का उत्तर हम इस संविधान में नहीं दे सके हैं।

किन्तु मैं इसी प्रश्न को बार-बार नहीं दुहराऊंगा क्योंकि यदि हम संविधान को ईमानदारी से, उत्साह से तथा सत्यनिष्ठा से व्यवहार में लाना चाहते हैं तो प्रस्तावना में पर्याप्त प्रत्याभूति दी गई है। किसानों तथा मजदूरों के लिये और जो लोग पददलित हैं उनके लिये यह पर्याप्त प्रत्याभूति है। यदि हम इसे ठीक भावना से व्यवहार में नहीं लायेंगे तो आर्थिक न्याय का क्या अर्थ रह जायेगा? उस व्यक्ति के लिये आर्थिक न्याय का क्या अर्थ है जिसे पेट भर खाना न मिलता हो और जिसकी जेब में एक आना भी न हो? आप कहेंगे कि उसे संसद की सदस्यता के लिये खड़ा होने का अधिकार है। क्या यह आर्थिक न्याय है? यह एक मखौल है। आप कहेंगे कि आप के स्कूलों और कॉलेजों में किसानों और मजदूरों के लड़के स्वतंत्रता से भर्ती हो सकेंगे। क्या इसका अर्थ उनको शिक्षा देना है? विभिन्न विश्वविद्यालयों के विज्ञान के कालेजों में किसान और मजदूरों के कितने लड़के पढ़ रहे हैं? बहुत कम। इसलिये यह एक मखौल ही है। इस युग में जब हमें वास्तविक प्रश्नों को हल करना है, हमें जीवन की वास्तविकता से मुह न मोड़ना चाहिये। समय बदल रहा है और हमें समयोचित कार्य करना है। कांग्रेस का तथा राष्ट्र पिता का सबसे बड़ा गुण यह रहा है कि वे समयोचित कार्य करते थे और समय की आवश्यकताओं को पहचानने का प्रयास करते थे। जब वे देखते थे कि हम अमुक अमुक बातों को करने के लिये समर्थ हो गये हैं तो वे हमें उपचार बताते थे। किन्तु आज हम क्या कर रहे हैं? अवमूल्यन तथा आयात और निर्यात के प्रश्नों के कारण हमें आर्थिक जिन का तथा "अधिक उत्पादन करो या विनष्ट हो जाओ" के प्रश्न का सामना करना पड़ रहा है। हम उद्योगपतियों से अपील कर रहे हैं कि वे चीनी के विवादग्रस्त प्रश्न को हल करने में उदारता तथा साधुता का परिचय दें।

यदि हम इस संविधान में कुछ ऐसे उपबन्ध रखते जिन से इस देश में एक वर्गहीन समाज की स्थापना की आशा की जा सकती तो मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। यह कोई समाजवादी व्यवस्था नहीं है और न मार्क्स के दर्शन ने ही इसे जन्म दिया है। इन शब्दों को महात्मा गांधी ने स्वयं कहा था। यदि वे आज जीवित होते तो वे इस सिद्धान्त के अनुरूप आचरण करते और इस प्रकार के समाज को अस्तित्व में ले आते। श्रीमान, कुछ लोगों को यह वर्गहीन समाज का विचार अग्राह्य है। वे कहते हैं कि इसकी घोषणा तो समाजवादी और साम्यवादी किया

करते हैं और इससे हमें किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। जी नहीं, यह आवाज उन लोगों की है जिनके इस देश में संपृक्त स्वार्थ हैं। यह आवाज उन लोगों की है जो इस देश के करोड़ों लोगों को दबाना चाहते हैं। महात्मा गांधी भारत के ही नहीं बल्कि संसार भर के पददलितों के सबसे बड़े प्रेमी थे और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि भारत एक वर्गहीन समाज चाहता है। किन्तु आज हम क्या कर रहे हैं? वर्गहीन समाज तो दूर रहा मूलाधिकारों में अथवा निदेशक तत्वों में सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण तक का उल्लेख नहीं है। इस देश के करोड़ों लोगों के लिये कौन सी आशाप्रद बात रखी गई हैं? आशाप्रद बात केवल यह है कि इस देश के नेता समझदार हैं और उन पर लोकमत का प्रभाव पड़ता है। मुझे पूरी आशा है कि यदि हम प्रयास करेंगे तो हम इस संविधान के अधीन इन सब बातों को कर सकेंगे और एक वर्गहीन समाज को अस्तित्व में ला सकेंगे और इस देश के करोड़ों निवासियों के घरों में आशा का संचार कर सकेंगे। यदि हम ईमानदारी से कार्य करें, यदि हम यह समझ कर कार्य करें कि आर्थिक लोकतंत्र के बिना लोकतंत्र का कोई महत्व नहीं है तो हम इस संविधान द्वारा यह सब कर सकते हैं। कुछ लोगों के लोकतंत्र का विभिन्न प्रान्तों से आये हुए तथा दिल्ली के मकानों में रहने वाले कुछ लोगों के लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं है। वास्तविक लोकतंत्र का अर्थ यह है कि हम यह समझें कि हम लोगों के सेवक हैं तथा लोगों के वास्तविक प्रतिनिधि हैं। मैं यह कहूंगा कि भारत के इतिहास में यह सब से बड़ा प्रयोग है क्योंकि, चाहे शास्त्रों और पुराणों से हम कितने ही उद्धरण पढ़कर क्यों न सुनायें, इस प्रकार का लोकतंत्र पहले अस्तित्व में नहीं था। यदि यह महा-प्रयोग विफल हुआ तो इस संविधान के कारण विफल नहीं होगा बल्कि इस कारण विफल होगा कि हममें से वे लोग जिन्हें करोड़ों मील दूर रहने वाले लोगों का भाग्यवश प्रतिनिधित्व करना पड़ रहा है। वास्तव में उनका प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं फिर कहूंगा कि किसी संविधान का सफल होना केवल उन लोगों पर निर्भर नहीं करता जो उसे व्यवहार में लाते हैं बल्कि उन लोगों पर भी निर्भर करता है जिनके लिये वह व्यवहार में लाया जाता है। हमारे देशवासियों का चरित्र इसी संविधान की कसौटी पर कसा जायेगा। मुझे आशा है कि हम कोई भी कार्य ऐसा नहीं करेंगे जिससे हमें लज्जा से अपना सिर झुकाना पड़े।

नागरिक स्वतंत्राओं तथा इस प्रकार के अन्य विषयों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। इन विषयों में मेरी दिलचस्पी नहीं है। नागरिक स्वतंत्रता के विचार मात्र का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि देश का ही अस्तित्व नहीं रहेगा तो नागरिक स्वतंत्रता कहां रहेगी। आज हम देखते हैं कि मुट्ठी भर लोग जनसाधारण को पथभ्रष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं। हम उन्हें साम्यवादी कहते हैं अथवा अन्य नाम देते हैं। किन्तु वह इस देश के बहुत से लोगों को पथभ्रष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं। इस समय नागरिक स्वतंत्राओं के लिये संघर्ष करने का अर्थ यह है कि हम राज्य के अस्तित्व को ही संकट में डाल देंगे। इस समय हमें कई समस्याओं को हल करना पड़ रहा है जिनमें से कुछ पाकिस्तान के कारण उठ खड़ी हुई हैं और कुछ पश्चिमी देशों के कारण। इस समय हमारे देश को उन नागरिक स्वतंत्रताओं की आवश्यकता नहीं है जिन की न्याय-वेत्ता कल्पना करते हैं अथवा जिनका वर्णन हमने कॉलेज की किताबों में पढ़ा था। यदि शिक्षित लोग

[श्री जदुवंश सहाय]

अच्छी से अच्छी नागरिक स्वतंत्रताओं को प्राप्त करना चाहेंगे तो चाहे संविधान द्वारा कितने ही परिसीमन क्यों न आरोपित किये जायें वे उन्हें प्राप्त करेंगे। देश-द्रोह विषयक विधि अस्तित्व में थी किन्तु अवसर मिलने पर उसमें परिवर्तन कर दिया गया। पच्चीस वर्ष पूर्व यदि थोड़े से शब्द भी कहे जाते थे तो देशद्रोह विषयक विधि के अधीन कार्यवाही की जाती थी। किन्तु 1942 में "भारत छोड़ो" के समान नारे तथा अन्य आलोचनायें देशद्रोह की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आईं। इसलिये ये बातें किसी पुस्तक की प्राणशून्य शब्दावली पर निर्भर नहीं करतीं बल्कि किसी राष्ट्र के विकास पर, उसकी विकास-क्षमता पर तथा इन सब रोगों को दूर करने की शक्ति पर निर्भर करती हैं। इसलिये जिन नागरिक स्वतंत्रताओं की इतनी अधिक चर्चा की गई है उनके अपहरण का मुझे अधिक भय नहीं है।

मुझे केवल एक बात और कहनी है और वह प्रान्तों के सम्बन्ध में है। यह ठीक है कि सारी राजनैतिक शक्ति केन्द्र को ही प्राप्त हो किन्तु बिहार, मध्य प्रान्त, आसाम और उड़ीसा जैसे प्रान्तों से जो कृषि के सम्बन्ध में पिछड़े हुए हैं और जहां साम्यवाद किसी समय भी पनप सकता है मैं यह कहूंगा और श्रीमान, आप मुझे यह कहने के लिये क्षमा करें कि—विक्रय कर से उन्हें जो आय होती थी उसका बहुत बड़ा अंश लूट-खसोट कर ले लिया गया है। हम यह देखते हैं कि समाज के वर्तमान आर्थिक ढांचे को बनाये रखने के लिये तथा उसे पवित्र ठहराने के लिये व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य तथा अन्य बातों की प्रत्याभूति दी गई है। विक्रय कर के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि प्रान्तों को संग्रह के अपने भाग से वंचित किया जा रहा है। इससे केन्द्र को कोई लाभ नहीं हुआ है बल्कि मध्य-वर्ग के उन लोगों को हुआ है जो चीजों को एक स्थान पर खरीदते हैं और दूसरे स्थान पर बेचते हैं। बिहार का ही उदाहरण लीजिये विक्रय-कर के सम्बन्ध में जो संशोधन किया गया है उससे हमें दो करोड़ रुपये से अधिक धनराशि की हानि होगी। आप एक कल्याणकारी राज्य को न कि पुलिस-शासित राज्य को स्थापित करना चाहते हैं क्योंकि आज कल पुलिस शासित राज्य टिक नहीं सकते हैं। यदि आप एक कल्याणकारी राज्य को स्थापित करना चाहते हैं, यदि आप मजदूरों और किसानों तथा पद-दलितों के बच्चों के लिये स्कूल और कॉलेज खोलना चाहते हैं तथा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहते हैं और उनके लिये अस्पतालों और दवाओं का प्रबन्ध करना चाहते हैं तो इसके लिये धन कहां से आयेगा। इसके लिये आप प्रान्तों से ही धन मांगेंगे। किन्तु उनके आयव्ययकों की स्थिति डांवांडोल होगी क्योंकि प्रान्तों के आयव्ययक दृढ़ निश्चय से नहीं बनाये जाते। प्रान्तों के मार्ग में इन आर्थिक कठिनाइयों को नहीं रखना चाहिये था। उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिये और धन-संग्रह की भी स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिये। कम से कम विक्रय-कर से धन-संग्रह की स्वतंत्रता तो प्राप्त होनी ही चाहिये जिससे वे कल्याणकारी राज्यों के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन कर सकें।

श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं इस सभा से फिर सिफारिश करता हूं कि यह संविधान स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, तीन वर्ष तक, जब इस संविधान का निर्माण हो रहा था, मैं इस सभा के कार्य को चुपचाप देखता रहा और केवल दो बार मैंने अपना मौन भंग किया। किन्तु इस अन्तिम अवसर पर, अर्थात् तृतीय पठन के अवसर पर मैं साहस करके अपने विचारों को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करना चाहता हूं।

आरम्भ में मैं मसौदा समिति के सभापति डॉ. अम्बेडकर को तथा उसके सदस्यों को एक ऐसे वृहदाकार संविधान को बनाने के लिये बधाई देता हूं जिसमें वास्तव में कुछ भी नहीं छोड़ा गया है। उसमें मूल्य-नियंत्रण तक को स्थान दिया गया है। मैं यह कहूंगा यदि उनके पास समय होता तो वे इस संविधान में एक प्रकार की जीवन-चर्या का भी वर्णन कर देते। श्रीमान, डॉ. अम्बेडकर के सम्बन्ध में मैं दो शब्द और कहना चाहता हूं। वे स्पष्ट अभिव्यक्ति की तो मूर्ति ही हैं। उन्होंने बहुत ख्याति प्राप्त की है।

कुछ महीने पूर्व माननीय श्री सम्पूर्णानन्द एक सम्मेलन में भाग लेने के लिये यहां आये थे और उन्होंने इस संविधान के सम्बन्ध में मेरी सम्मति पूछी थी। मैंने उनसे स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यह बहुत कुछ 1935 के भारत-शासन-अधिनियम पर आधृत है और इसमें कुछ बातें अमरीका, कनाडा आदि के संविधानों में से लेकर जोड़ दी गई हैं। इससे संकेत लेकर उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय के स्नातकों को दीक्षांत भाषण देते हुए कहा कि यह संविधान "कतरनों को जोड़कर" बनाया गया है। मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूं। किन्तु मैं अपने मित्र सेठ दामोदर स्वरूप से सहमत नहीं हूं, जिन्होंने इस संविधान को जागीरदारों तथा पूंजीपतियों का संविधान कहा है। इस संविधान के सम्बन्ध में मेरी यह सम्मति है कि इस संविधान से हमारे आदर्श की पूर्ति नहीं हुई है। यह उसके निकट की चीज़ नहीं है जो कांग्रेसजन पिछले तीस वर्षों तक स्वतंत्रता के लिये संग्राम करते रहे हैं.....

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अच्छा यह होता कि आप हमें समय पर चेतावनी दे दिये होते।

***श्री गोपाल नारायणः** जब श्री जसपत राय कपूर अपना भाषण दे रहे थे तो मैं उसे चुपचाप सुनता रहा। मैंने उसमें विघ्न नहीं डाला। मुझे आशा है कि वे भी मेरे भाषण में विघ्न नहीं डालेंगे। श्री कपूर की अपेक्षा मैं कांग्रेस से अधिक परिचित हूं। मैं यह कह रहा था कि संविधान से हमारे आदर्श की पूर्ति नहीं हुई है। जिन कांग्रेस जनों ने तीस वर्ष तक स्वतंत्रता के लिये संग्राम किया है उनके मस्तिष्क में संविधान का बिल्कुल भिन्न चित्र था। वे इससे बिल्कुल भिन्न संविधान की कल्पना करते थे। इससे उनकी आशायें पूरी नहीं हुई हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इसमें कुछ अच्छी बातें भी हैं। एक वृहदाकार पुस्तक में कुछ अच्छी बातें अवश्य होंगी। मैं उनकी ओर ध्यान दिलाता हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथक् निर्वाचक-मंडलों को समाप्त कर दिया गया है। वयस्क मताधिकार और मादक द्रव्य प्रतिषेध के सम्बन्ध में भी उपबन्ध रखे गये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बहुत अच्छी बातें हैं। इसके अतिरिक्त पिछड़े हुए वर्गों के लिये कुछ सुविधायें

[श्री गोपाल नारायण]

भी रखी गई हैं। उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई गई है। इन अच्छी बातों को रखने के लिये मैं मसौदा समिति के सदस्यों को बधाई देता हूं। यह संविधान की बहुत उत्कृष्ट बातें हैं। किन्तु उसके कुछ दोष भी हैं।

अनुच्छेद 21 और 31 उसके दोषों के उदाहरण हैं। अनुच्छेद 21, जिसका मनुष्य के जीवन से सम्बन्ध है, न्याय्य नहीं है। किन्तु निजी सम्पत्ति के अधिकार को न्याय्य बनाया गया है। ये संविधान के बहुत बड़े दोष हैं।

मैं एक अन्य बात पर भी जोर देना चाहता हूं। अत्यधिक केन्द्रीकरण किया गया है। स्थानीय विधान मंडलों की ऐसी दशा कर दी गई है कि उन्होंने अब स्थानीय निकायों, नगर पालिकाओं, स्थानीय मंडलियों आदि का रूप धारण कर लिया है। इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्तीय विधान मंडल स्थानीय मंडलियों तथा नगरपालिकाओं की शक्तियों को समाप्त कर देंगे। यद्यपि पंचायतों को कुछ शक्तियां प्रदान की गई हैं। किन्तु मैं समझता हूं कि उनका कोई भी कार्य क्षेत्र नहीं रह जायेगा। मेरे विचार से यह ठीक नहीं है।

मैं एक और बात पर भी जोर देना चाहता हूं। भविष्य में किसी समय इस विभाजित भारत के एक होने के सम्बन्ध में कोई उपबंध नहीं है। हिन्दी को राजकीय भाषा के रूप में स्वीकार करने से इस प्रकार की कोई संभावना नहीं रह गई है। इसके कारण पश्चिमी पाकिस्तान भी हमारे देश में किसी प्रकार समाविष्ट नहीं हो सकेगा। यह सब होते हुए भी हम आशा करते हैं कि जो हिन्दी अपनाई जायेगी वह इस ढंग की होगी कि आगे चलकर किसी समय ये दो देश एक हो सकेंगे। अन्यथा इस संविधान में इन दो देशों के एक होने के सम्बन्ध में कोई उपबंध नहीं है। यह इस संविधान का एक बहुत बड़ा दोष है।

अन्त में श्रीमान, मैं आपको इस सभा के कार्य का संचालन इतनी योग्यता से करने के लिये बधाई देता हूं। आपने सभी का ध्यान रखा और किसी सदस्य को अपने विरुद्ध एक शब्द भी कहने का अवसर नहीं दिया। मैं समाप्त करता हूं।

***श्री अजित प्रसाद जैन** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, प्रत्येक राष्ट्र अपने जीवन काल में एक ही बार किसी संविधान को अंगीकार करने का निर्णय करता है। हम लोगों को अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिये कि हमें इस संविधान के निर्माण कार्य में भाग लेने का अवसर मिला है। भारत के इतिहास में महान प्रतिष्ठा के काल रहे हैं। बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित हुए हैं तथा उनका प्रसार हुआ है और उदार हृदय तथा सज्जन सम्राटों ने शासन किया है किन्तु कभी भी लोगों ने, लोगों के लिये कोई संविधान नहीं बनाया अन्य बातों की चर्चा करने के पूर्व मैं यह आवश्यक समझता हूं कि मैं डॉ. अम्बेडकर को तथा मसौदा-समिति को धन्यवाद दूं, जो लगातार कई दिनों तक कठिन परिश्रम करते रहे हैं।

लगभग तीन वर्ष पूर्व, आज की स्थिति से बिल्कुल भिन्न स्थिति में इस संविधान सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया था। भारत उस समय अविभक्त था किन्तु मुस्लिम

लीग ने, जो कांग्रेस दल का प्रतिद्वन्दी दल था, संविधान के निर्माण कार्य में भाग लेने से इन्कार कर दिया था उस समय प्रत्येक व्यक्ति यही प्रश्न पूछता था "सभी मुसलमानों के अनुपस्थित रहने पर क्या हम संविधान का निर्माण कर सकेंगे?" इसके पश्चात् खिन्न मन से हमने देश का विभाजन स्वीकार किया। देश के विभक्त हो जाने से हममें से किसी को भी प्रसन्नता नहीं है किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि इससे हमारा संविधान निर्माण का कार्य आसानी से सम्पन्न हो सका है। वास्तव में अल्पसंख्यकों के प्रश्न के कारण हमें बहुत काल तक सरदर्द रहा है और उसके कारण कई राष्ट्रीय प्रश्नों को हल करने के लिये हम जो प्रयास करते रहे हैं वह विफल रहा है। किन्तु अब उस प्रश्न का कुछ भी महत्व नहीं रह गया है। हो सकता है कि हम अभी तक एक सुगठित तथा सामंजस्यपूर्ण समाज स्थापित नहीं कर सके हैं। किन्तु पुरानी कटुता बहुत कुछ मिट चुकी है और इस समय हम सच्ची राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के पथ पर अग्रसर हैं।

जिस संविधान का हमने निर्माण किया है वह राजनैतिक आर्थिक दृष्टि से क्रान्तिकारी संविधान नहीं कहा जा सकता है। उसमें 1935 के भारत शासन अधिनियम की व्यवस्था तथा पदावलियों को तो स्वीकार किया ही गया है किन्तु साथ ही पुरानी विधियों और संस्थाओं को भी स्वीकार किया गया है। उन विधियों के अतिरिक्त, जो अध्याय 3 में वर्णित मूलाधिकारों का खंडन करती हैं वे सब विधियां जो इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पूर्व प्रवर्त्तन में थीं, नवीन संविधान के अधीन भी प्रवर्तन में रहेंगी। संघीय न्यायालय उच्चतम-न्यायालय के नवीन नाम से कार्य करेगा और उसका कुछ अतिरिक्त क्षेत्राधिकार भी हो जायेगा, अर्थात उसे वह क्षेत्राधिकार भी प्राप्त हो जायेगा जो अभी तक प्रिवी कौंसिल को प्राप्त रहा है। संघीय न्यायालय के न्यायाधीश उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीश हो जायेंगे और प्रान्तीय उच्च-न्यायालय तथा उनके न्यायाधीश तत्स्थानी राज्यों के उच्च-न्यायालय तथा उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश हो जायेंगे। महाधिवक्ता तथा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक वही कार्य करेंगे जो वह पहले करते थे और जो लोग अभी तक इन कार्यों को करते थे वही इस संविधान के अधीन भी इन कार्यों को करते रहेंगे। संघ के तथा राज्यों के लोक-सेवा आयोगों का गठन पहले के समान ही होगा और वही कार्यकर्ता उनमें काम करते रहेंगे। भारत-शासन अधिनियम के अधीन भारत-मंत्री ने, अथवा सपरिषद् भारत-मंत्री ने, जिन लोगों को सेवाओं में, नियुक्त किया है उनमें से प्रत्येक को "भारत सरकार या राज्य की सरकार से, जिसकी सेवा वह समय समय पर करता आया हो, पारिश्रमिक छुट्टी और निवृत्ति-वेतन के बारे में उन्हीं सेवा-शर्तों का, तथा अनुशासनीय विषयों के बारे में उन्हीं अधिकारों का अथवा उनके तुल्य ऐसे अधिकारों का, जैसे कि परिवर्तित, परिस्थितियों में सम्भव हों, हक होगा, जिनका कि उस व्यक्ति को ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले हक था।" इससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह नहीं किया गया है कि नये ढांचे में पुरानी बातें रखी गई हैं बल्कि यह किया गया है कि पुराने ढांचे में पुरानी ही बातें रखी गई हैं। नई व्यवस्था के अधीन पहले के समान ही विधियां बनेंगी और जो प्रशासन-संगठन होगा वह भी पहले के समान ही होगा।

आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में मूलाधिकार-विषयक अनुच्छेद 31 को देखना चाहिये। उसमें कहा गया है, 'कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा और कोई स्थावर या जंगम सम्पत्ति... ऐसी

[श्री अजित प्रसाद जैन]

विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो।" यह अनुच्छेद बहुत कुछ भारत-शासन अधिनियम की धारा 299 के समान ही है। थोड़ा बहुत हेर फेर अवश्य किया गया है और कुछ प्रान्तों के लिये जमींदारी के अधिकारों के सम्बन्ध में अपवाद किया गया है। उसमें पूंजीमूलक समाज का तथा धन और आय के सम्बन्ध में उसकी विषमताओं का पोषण किया गया है। सम्भव है कि हमारे वर्तमान आर्थिक संकट के रहते हुए इससे अच्छी व्यवस्था नहीं की जा सकती थी किन्तु यह व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं टिक सकती है। जैसा कि हाल में माननीय श्री गाडगिल ने कहा था, हमें अपने समाज के गठन में मूलभूत परिवर्तन करना होगा। आज कल जो उद्योग धंधे निजी रूप से चलाये जाते हैं उनमें से बहुतों का हमें राष्ट्रीयकरण करना होगा। बिना इसके न तो हम अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर सकेंगे और न अपने राष्ट्र का ही हित साधन कर सकेंगे।

श्रीमान, अंग्रेज़ हमें बहुत ही विषम स्थिति में डाल गये। 15 अगस्त 1947 को पांच सौ से अधिक छोटे और बड़े भारतीय नरेश एकाएक सम्राट हो गये। तिरुवांकुर और भूपाल भयानक रुख का परिचय दे रहे थे। लोगों की इच्छा न होते हुए भी जूनागढ़ ने पाकिस्तान में समाविष्ट हो जाने का निश्चय कर लिया था और हैदराबाद हमारी ओर ऐसा रुख अपना रहा था जो शत्रुता का रुख कहा जा सकता है। इस स्थिति में हमें फूट की उसी विभिषिका का सामना करना पड़ रहा था जो हमारे इतिहास की तथा एशिया के बहुत से देशों के इतिहास की विशेषता रही है। यह कोई छोटी बात नहीं है कि ढाई वर्ष में ही हमने कम से कम भौगोलिक एकता तो स्थापित कर दी है और देशी राज्यों को राजनैतिक एककों के रूप में नहीं रहने दिया है। प्रथम अनुसूची के भाग (ख) पर दृष्टिपात करने से ज्ञात हो जायेगा कि पहले भारत का जो राज्य क्षेत्र "भारतीय भारत" कहा जाता था और 500 से अधिक राज्यों में बंटा हुआ था वह अब केवल नौ राज्यों में बंटा हुआ है। मेरे विचार से अध्याय 7 संविधान का सबसे अधिक उज्जवल अंग है क्योंकि उसमें पहले के नरेशों के भारत के देशी राज्यों को भाग (क) के राज्यों, अर्थात् प्रान्तों के स्तर पर रखा गया है। किन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि अभी यह केवल कागज में ही लिखा हुआ है।

यद्यपि उन राज्यों में जो पहले प्रान्त को आधुनिक लोकतंत्र की विशेषतायें अर्थात् लोकमत, राजनैतिक दल, निर्वाचक-मंडल प्रशासन तंत्र आदि अस्तित्व में हैं किन्तु उन राज्यों में, जो पहले देशी राज्य कहे जाते थे इनका सर्वथा अभाव है। उन्हें अभी बहुत उन्नति करनी है और वास्तव में हमारे आदर्शों की पूर्ति इससे आंकी जायेगी कि हम प्रथम अनुसूची के भाग (क) और भाग (ख) के राज्यों को किस सीमा तक एक समान बना सके हैं। हम आशा करते हैं कि सरदार वल्लभभाई पटेल की बुद्धिमत्तापूर्ण राजनीतिज्ञता के फलस्वरूप हम शीघ्र ही उन सब बातों को व्यवहार में भी ला सकेंगे जिन्हें हमने सैद्धान्तिक रूप में प्राप्त किया है।

मैं यह कह चुका हूं कि नवीन संविधान में तथा वर्तमान संविधान में अधिक अन्तर नहीं है। किन्तु कुछ विषयों के सम्बन्ध में उसके द्वारा एक क्रान्ति के

युग का प्रवर्तन हुआ है। भविष्य में इक्कीस वर्ष की आयु प्राप्त सभी वयस्कों को समान रूप से पूर्ण मताधिकार प्राप्त होगा। हमारी राजनैतिक संस्थाओं अर्थात संसद और राज्यों के विधान-मंडलों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। हमारे देश के निर्वाचकों की संख्या संसार के सभी देशों के निर्वाचकों की संख्या और रूस और अमरीका के निर्वाचकों की संख्या से भी बड़ी होगी। इस प्रकार के प्रयोग को करने में खतरा अवश्य है किन्तु हम आशा करते हैं कि भारत में ऊंची योग्यता रखने वाले नेताओं के होते हुए राज्य की नौका सभी खतरों में बच कर किनारे आ लगेगी।

भाग 2 में नागरिकता की परिभाषा की गई है। इसमें कहा गया है कि वे सब लोग जो भारत में जन्मे हों, अथवा जो वैध रूप में भारत के निवासी हों अथवा जिन्होंने पाकिस्तान से प्रवजन किया हो और अब भारत के निवासी हो गये हों, उन्हें समान रूप से नागरिकता के अधिकार प्राप्त होंगे और धर्म, वंश, जाति अथवा वर्ग के आधार पर विभेद नहीं किया जायेगा। नागरिकता की आधार-शिला पर ही हमारे संविधान की नीव डाली गई है। संविधान में वर्णित सभी अधिकारों की प्रत्याभूति सभी नागरिकों को दी गई है। भारत के प्रत्येक नागरिक को वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का, शान्ति पूर्वक और निरायुध सम्मेलन का, सन्था या संघ बनाने का, भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग में अबाध संचरण का तथा बस जाने का और कोई वृत्ति या व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा। यह स्वीकार करना होगा कि स्वतंत्रता के ये अधिकार आगे कुछ खण्डों द्वारा निर्बन्धित किये गये हैं। उदाहरणार्थ शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार अपराध-प्रक्रियासंहिता की निन्दनीय धारा 144 द्वारा निर्बन्धित किया गया है। यह एक दोष कहा जा सकता है किन्तु उस समय तक दोष भी न कहा जा सकता है जब तक हम वास्तविक स्वातंत्र्य को व्यवहार में लाते हुए आत्मसंयम के गुणों को न समझने लगें। किन्तु हमारी सफलता का परिचय इन निर्बन्धनों को प्रायः प्रयोग करने से नहीं बल्कि इन धाराओं को बहुत कम प्रयोग करने से ही मिलेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समता की प्रत्याभूति दी गई है। किसी व्यक्ति को अपने प्राण तथा अपनी सम्पत्ति से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा। एक उपबंध निवारक-निरोध के सम्बन्ध में भी हैं। यह एक दोषपूर्ण उपबंध है किन्तु सम्भवतः वर्तमान स्थिति को देखते हुए इसे स्वीकार करना आवश्यक है। मैं यह फिर कहूंगा कि हमारी सफलता का परिचय निवारक निरोध विषयक इस धारा के बहुत कम प्रयोग से ही मिलेगा।

हमारे संविधान में यह उपबंध रखा गया है कि लिंग के आधार पर किसी नागरिक के प्रति विभेद नहीं बरता जायेगा। राज्याधीन पदों तथा नौकरियों को प्राप्त करने के लिये स्त्रियों को वही अधिकार प्रदान किये गये हैं जो पुरुषों को प्राप्त हैं और इनके विषय में किसी नागरिक के लिये धर्म, जाति, लिंग अथवा मूलवंश के आधार पर अपात्रता नहीं होगी। यह राज्य की नीति का एक निदेशक तत्व है कि स्त्री और पुरुषों को समान कार्य के लिये समान वेतन दिया जाये। हमारे इतिहास में ऐसी महिलाओं के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने पुरुषों से भी अधिक प्रतिष्ठा तथा ख्याति प्राप्त की है किन्तु जिस अर्थ में इस संविधान के अधीन

[श्री अजित प्रसाद जैन]

पुरुषों और स्त्रियों की समानता को स्वीकार किया गया है उस अर्थ में उसे कभी भी स्वीकार नहीं किया गया था। जिस अस्पृश्यता के कारण इस देश का सहस्त्रों वर्षों का इतिहास कलंकित रहा है उसका अन्त कर दिया गया है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया गया है। उसे दंडनीय अपराध घोषित किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश का तथा तालाबों, स्नानघाटों तथा सार्वजनिक समागम स्थानों के उपभोग का समान अधिकार होगा, राष्ट्रपिता के प्रेरणापूर्ण नेतृत्व में हमें अस्पृश्यता का अंत करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो चुकी है। जो कुछ कार्य शेष है वह मूलाधिकार-विषयक इन उपबंधों से शीघ्र ही सम्पन्न हो जायेगा। किन्तु अस्पृश्यता के मूल में आर्थिक विषमता ही है। उन लोगों को जो अन्य लोगों के उत्पीड़न के कारण सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में पिछड़ गये हैं अन्य लोगों के स्तर पर आने का अवसर देने के लिये अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिये संसद तथा राज्यों के विधान मंडलों में और सेवाओं में उस समय तक के लिये स्थान रक्षित किये गये हैं जब तक कि वे अन्य लोगों के स्तर पर न आ जायें। पहली बार दस वर्ष तक इस प्रकार का रक्षण रखा गया है।

अल्प संख्यकों के पेचीदे प्रश्न को भी हम बड़ी कठिनाई से हल कर पाये हैं। भविष्य में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिमजातियों और पिछड़े हुए वर्गों के अतिरिक्त विधान-मंडलों में अथवा सेवाओं में अल्पसंख्यकों के लिये स्थान रक्षित नहीं किये जायेंगे। यह रिआयत धर्म अथवा जाति के आधार पर नहीं की गई है बल्कि इन लोगों के पिछड़े हुए होने के कारण की गई है। अल्पसंख्यकों को धर्माचरण की तथा अपनी संस्कृति, भाषा और लिपि के विकास की स्वतंत्रता प्रदान की गई है किन्तु राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में उनके पक्ष में, अथवा उनके निरोध में कोई विभेद नहीं किया है। इसलिये अल्पसंख्यकों को अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इसी अर्थ में हमने ऐसे राज्य की स्थापना की है जिसे लोग धर्म निरपेक्ष राज्य कहते हैं।

संविधान में जिन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है उनमें से अधिकांश न्याय्य अधिकार हैं अर्थात यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि उसके साथ अन्याय हुआ है तो वह न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता है। किन्तु न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना हमेशा आसान नहीं होता। मैं कह नहीं सकता है कि मैग्ना कार्टा में उल्लिखित अधिकारों और विशेषाधिकारों को सुरिक्षत रखने के लिये अंग्रेज़ों ने जिस भावना का परिचय दिया है वही भावना हमारे देशवासी भी रखते हैं, या नहीं। सतत सचेत रहना ही स्वातंत्र्य का मूल्य है जिससे राष्ट्रों को तथा लोगों को चुकाना होता है। हमारे यहां तो राज्य की जिम्मेदारी और भी अधिक है। व्यवहार में उसे नागरिकों को वे अधिकार प्राप्त करने होंगे जो विधि द्वारा उन्हें प्रदान किये गये हैं।

इस संविधान के फलस्वरूप एक बहुत बड़ी बात यह हासिल हुई है कि भाषा के प्रश्न के सम्बन्ध में समझौता हो गया है। युगों से भारत एक बहु-भाषी देश रहा है और यहां 13 अथवा 14 मुख्य भाषायें और असंख्य बोलियां प्रचलित रही

हैं जिनमें से कुछ की अपनी लिपियां रही हैं और कुछ की लिपियां नहीं रही है। अंग्रेज़ों के राज में हमारी भाषाओं की उपेक्षा की गई और अंग्रेज़ी हम पर थोप दी गई। स्वतंत्र भारत में अंग्रेज़ी को कोई स्थान नहीं दिया जा सकता है। किन्तु एकाएक एक भाषा और लिपि के सम्बन्ध में भी समझौता कर लेना कोई सरल कार्य नहीं था। सौभाग्य से हमने एक बहुत ही सुन्दर समझौता किया है। देवनागरी लिपि में हिन्दी भारत की राज-भाषा होगी किन्तु पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेज़ी को विशेष स्थान प्राप्त रहेगा और संविधान के प्रारम्भ के ठीक पूर्व वह संघ के जिन राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग की जाती थी उन प्रयोजनों के लिये वह राज-भाषा के रूप में प्रयोग की जाती रहेगी। किन्तु पन्द्रह वर्ष के पूर्व संघ के किन्हीं राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेज़ी के अतिरिक्त हिन्दी को भी प्रयोग करने की आज्ञा देने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान की गई है। अनुच्छेद 31 में उपबन्धित है कि "हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावलि को आत्मसात करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।" भाषा के सम्बन्ध में जो विधि रखी गई है वह एक प्रसरणशील विधि है। यह हमारे प्रयत्नों पर निर्भर है कि इन पन्द्रह वर्षों में कितने शीघ्र, अथवा कितने समय के पश्चात् हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले लेगी। किन्तु अब चूंकि हमने अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी को देने का निर्णय कर लिया है इसलिये जितने ही शीघ्र हम उसे कार्यान्वित करेंगे उतना ही अच्छा होगा। किन्तु हमें इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिये कि वे लोग जो संस्कृत-जन्य भाषाओं को नहीं बोलते हैं यह न समझें कि उन पर अत्याचार किया जा रहा है अथवा उन्हें दबाया जा रहा है। यदि यह हुआ तो हिन्दी के हितसाधनों द्वारा ही उसकी हितहानि होगी। हिन्दी को सभी लोगों की, तथा सभी क्षेत्रों की सद्भावना के फलस्वरूप प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी शीघ्र ही भारतीय संघ में अभिव्यंजना का ही माध्यम न हो जायेगी बल्कि संघ और राज्यों के बीच में और राज्यों के बीच में लिखा पढ़ी का माध्यम भी हो जायेगी और साथ ही संस्कृति, तथा प्रशिक्षा का भी माध्यम हो जायेगी।

मैं आप की अनुमति से इस संविधान की रचना तथा इसके मसौदे के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। साधारणतया यह शिकायत की जाती है इस संविधान के निर्माण में हमने बहुत अधिक समय लगाया है और हमने इसे बहुत बोझल बना दिया है। मेरी भी यही सम्मत्ति है। कई ऐसे विषयों को, जिनके बारे में संसद विधि द्वारा उपबन्ध रख सकती थी अथवा जिनके बारे में नियम अथवा विनियम बनाये जा सकते थे, संविधान में स्थान दिया गया है। सम्भव है कि मसौदा समिति को अत्यधिक रक्षणों को रखने की चिन्ता रही हो किन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि जब तक भावी पीढ़ियां उनका आदर न करेंगी तब तक कागज़ में लिखे हुए ये रक्षण निरर्थक ही सिद्ध होंगे। मैंने अभी तक किसी भी स्वतंत्र देश के संविधान में सेवाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार के रक्षणों को नहीं देखा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सेवाओं में लगे हुए कर्मचारियों को जो प्रत्याभूतियां दी गई हैं, उन्हें समाप्त कर दिया जाये। किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि संविधान में इनके सम्बन्ध में उपबन्ध न रखने चाहिये थे। जो विषय कुछ कम महत्वपूर्ण थे उनके सम्बन्ध में विधि बनाने

[श्री अजित प्रसाद जैन]

का कार्य हम आने वाली पीढ़ियों के लिये छोड़ सकते थे। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार की व्यवस्था से किसी को भी हानि नहीं उठानी पड़ती। किन्तु अब इस अवसर पर इस प्रश्न पर अधिक जोर देने से कोई लाभ नहीं होगा।

अन्त में मैं यह निवेदन करूंगा कि इस संविधान में कोई ऐसी बात नहीं है जो नवीन हो अथवा जो चित्ताकर्षक हो। इसमें जो उपबन्ध रखे गये हैं वे अन्य लोगों के अनुभव के आधार पर रखे गये हैं। मेरे मित्रों का चाहे जो भी विचार हो किन्तु मेरा यह मत है कि संविधान निर्माण के सम्बन्ध में रूढ़िरक्षक होना उचित नहीं है परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि संविधान प्रगति तथा उन्नति के मार्ग में बाधक सिद्ध न हो। इस संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों को देखने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस संविधान में विकास के लिये बहुत स्थान है, संविधान में कुछ स्पष्ट उपबंधों के विरुद्ध संसद को विधि बनाने की शक्ति दी गई है और इसके लिये संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में देश के कुछ भाग ऐसे हैं, विशेषतया वे राज्य जो पहले देशी राज्य कहे जाते थे, जहां संविधानिक तथा राजनैतिक उन्नति अभी उस स्तर तक नहीं पहुंची है जिसका वर्णन इस संविधान में किया गया है और न वहां का प्रशासन संगठन ही उस स्तर तक पहुंचा है। मुझे अधिकृत रूप से ज्ञात हुआ कि कि इन भागों को इस योग्य बनाने के लिये कि ये प्रथम सामान्य निर्वाचन में भाग ले सकें बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता पड़ेगी। जब ऐसे प्रश्नों के लिये संविधान बनाया जा रहा था जो प्रगति के विभिन्न स्तरों पर हैं तो यह स्वभाविक ही था कि रूक रूक कर कदम उठाया जाता। इसके अतिरिक्त संविधानों के प्रसंग में किसी बात को पवित्र नहीं कहा जा सकता। स्थिति में परिवर्तन होने पर हम एक नये संविधान का निर्माण भी कर सकते हैं। नये संविधान का निर्माण करने में हमारे लिये कोई भी बात बाधक सिद्ध नहीं होगी।

समाप्त करने के पूर्व श्रीमान, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि इस सभा का कार्य कभी बहुत शुष्क होने पर भी आपने उसका संचालन करने में धैर्य तथा सहिष्णुता का परिचय दिया जिसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यदि आप हमारा पथप्रदर्शन न करते और सचेष्ट न रहते तो इस संविधान के निर्माण में विलम्ब होता। आपने किसी व्यक्ति के हृदय में यह विचार नहीं उठने दिया कि उसे अपने विचार व्यक्त करने का पूर्ण अवसर नहीं मिला है। इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं समाप्त करता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति रावः** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मुझे इसका गर्व है कि संविधान के निर्माण-कार्य के साथ सम्बन्ध रखने का मुझे भी सुअवसर प्राप्त रहा है और इसका भी गर्व है कि हमें आपका सुयोग्य पथप्रदर्शन भी प्राप्त रहा है। मसौदा-समिति तथा उसके सभापति ने जिस उत्कृष्ट ढंग से अपना कार्य सम्पन्न किया है उसकी प्रशंसा में अपना भी थोड़ा बहुत योग देने के लिये मैं आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं। श्रीमान, उन्हें जिस स्थिति में और जिस समय में काम करना पड़ा और जिस परिश्रम से काम करना पड़ा उसे ध्यान में रखते हुए मैं कह सकता हूं कि कोई अन्य समिति अथवा निकाय हमारे लिये इससे अच्छा संविधान तैयार नहीं कर सकता था।

इस संविधान के कई दोष बताये गये हैं। उनमें से कुछ की मैं गणना करना चाहता हूं। एक आरोप यह लगाया गया है कि संविधान सभा ने इस संविधान को समाप्त करने में तीन वर्ष का अत्याधिक समय लगाया है। हमें यह न भूलना चाहिये कि अमरीका की संविधान सभा ने वहां का संविधान नौ वर्ष में तैयार किया था। आस्ट्रेलिया, कनाडा और अफ्रीका ने अपने संविधानों को तैयार करने में दो वर्ष से अधिक समय लगाया। एक और आपत्ति यह की गई है कि यह बहुत ही बड़ा संविधान हो गया है। अर्थात यह आकार में रूस के संविधान का तिगुना और अमरीका के संविधान का नौ गुना है। कुछ सदस्यों ने कहा है कि इस संविधान में नागरिक स्वातंत्र्यों का उल्लेख उपहासास्पद है और यह भी कहा है कि यह संविधान संसार के अनेक संविधानों की अनेक धाराओं का सम्मिश्रण मात्र ही है। यह भी कहा गया है कि केन्द्र को बहुत शक्तिशाली और राज्यों को पंगु बना दिया गया है। यह भी कहा गया है कि इस देश की स्थिति को देखते हुए इस संविधान में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करके बहुत खतरा उठाया गया है और यह भी कहा गया है कि गांधी के आदर्शों का परित्याग करके एक पूंजीमूलक संविधान की रचना की गई है और समाजवादी सिद्धान्तों को बलि की वेदी पर चढ़ा दिया गया है। संविधान के कुछ पंडितों ने यह आलोचना की है कि इस संविधान में गोवध-निषेध, ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन, ग्राम पंचायतों की स्थापना, अस्पृश्यता का उत्सादन, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका का पृथक्करण जैसे जिन निदेशक तत्वों को स्थान दिया गया है वे सब प्रशासन सम्बन्धी विषय हैं और उन्हें संविधान में स्थान देकर उसे बोझीला बनाने की आवश्यकता नहीं थी। यह आपत्ति भी की गई है कि इस संविधान में जनमत लेने, अथवा जनमत द्वारा विधिनिर्माण करने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं रखे गये हैं।

इन आपत्तियों का खण्डन करते हुए मैं पूछता हूं कि इस संविधान में हमने आखिर किन बातों को रखा है? 1000 वर्ष से अधिक काल तक पराधीन रहने के पश्चात् आज भारत ने प्रथम बार सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य का रूप धारण किया है। हमने न्याय्य मूलाधिकारों की भी व्यवस्था की है, जिनका खण्डन होने पर कोई भी नागरिक उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता है और अपनी शिकायत दूर करवा सकता है। हमने वयस्क मताधिकार प्रदान करके एक महान प्रयोग का सूत्रपात किया है। उसके फलस्वरूप आम चुनाव में लगभग सोलह से उठारह करोड़ लोग मत देंगे। हमने संसदात्मक लोकतंत्र को अपनाया है। चाहे आप संविधान की जिस धारा को भी उठायें आपको विदित हो जायेगा कि उसमें संसद के प्रभुत्व को स्वीकार किया गया है। भारत के इतिहास में प्रथम बार राजनैतिक, वित्तीय, आर्थिक न्यायिक तथा प्रतिरक्षा सम्बन्धी एकीकरण किया गया है। इस संविधान के अधीन अब छोटी छोटी सेनायें नहीं रह सकेंगी इस प्रकार की सेनाओं का एक उदाहरण हैदराबाद की सेना थी। इस संविधान के अधीन केवल एक सेना रहेगी। और वह भारत के राष्ट्रपति के कमान में रहेगी। राजनैतिक तथा आर्थिक एकीकरण के सम्बन्ध में मैं केवल लन्दन टाइम्स से एक उद्दरण दूंगा। लंदन टाइम्स के 7 फरवरी 1949 के अंक के एक अग्रलेख में कहा गया था:

"बिसमार्क जिन कार्यवाहियों से जर्मनी को एक सूत्र में बांधा था वे भारत सरकार की कार्यवाहियों की तुलना में बहुत साधारण प्रतीत होती है। क्योंकि

[श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव]

उसने अल्प काल में ही अनेक राज्यों का स्वरूप ही बदल कर भारत के बहुरंगी नक्शे को एक ही रंग में रंग दिया है। इतना विशाल परिवर्तन हुआ किन्तु वहां की शांति भंग नहीं हुई है।"

सरदार पटेल अपने मंत्रालय के कार्यों पर संतोष कर सकते हैं और गर्व कर सकते हैं। राष्ट्र इस महान नेता को श्रद्धांजलि अर्पित करता है। हमने राज्यों तथा प्रान्तों के विभेद को भी मिटा दिया है। आज इस संविधान के अधीन सभी प्रदेश राज्य हैं। श्रीमान, मुझे इस अब की प्रसन्नता है कि मूल अनुच्छेद 306 (ख) में जो थोड़ी सी कटुता थी वह अब उससे अर्थात् अनुच्छेद 372 से निकाल दी गई है। मुझे इसकी भी प्रसन्नता है कि अनुच्छेद 365 अब सभी राज्यों को लागू कर दिया गया है। यह अनुच्छेद 365 किसी व्यक्ति को पसंद नहीं है और मुझे तो बिल्कुल ही नापसंद है। किन्तु मुझे आशा है कि यह अनुच्छेद मृतप्राय ही रहेगा और इस अनुच्छेद के उपबंधों को व्यवहार में लाने का अवसर ही नहीं आयेगा। इस संविधान द्वारा "अल्पसंख्यक" और "अछूत" शब्दों का बहिष्कार कर दिया गया है। पृथक निर्वाचक-मंडलों को भी समाप्त कर दिया गया है। अस्पृश्यता को अपराध ठहराया गया है। राज्य के शासन के निदेशक तत्वों में समाजवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का समावेश किया गया है और उपाधियों का अन्त कर दिया गया है।

स्वविवेक से प्रयोग की जाने वाली शक्तियों के सम्बन्ध में श्रीमान, मेरा निवेदन है कि मैंने जितनी सावधानी से हो सकता है उतनी सावधानी से संविधान का अध्ययन किया है किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं हो सका है कि राज्यपालों को उस दशा के अतिरिक्त कौन-सी स्वविवेक से प्रयोग की जाने वाली शक्तियां प्राप्त हैं जबकि आपात की घोषणा के सम्बन्ध में अथवा अनुसूची 5 और 6 के अधीन उसे अनुसूचित क्षेत्रों तथा आदिम-जातियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना होगा। आपात सम्बन्धी शक्तियों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उन पर संसद का नियंत्रण रखा गया है और आपात की अवधि केवल दो मास रखी गई है। इसके पश्चात संसद का सत्र शीघ्र से शीघ्र जब कभी होगा उसमें उसकी सूचना संसद को देनी होगी। आपात सम्बन्धी शक्तियां भी विशेष स्थिति में ही प्रयोग की जा सकती हैं। अर्थात् जब युद्ध का खतरा हो अथवा बाहर से आक्रमण हुआ हो अथवा देश में कोई उपद्रव हो गया हो अथवा जब कोई राज्यपाल अथवा राजप्रमुख यह सूचना दें कि उनके प्रदेश में संविधान के अधीन शासन नहीं चलाया जा सकता, अथवा जब राष्ट्रपति का यह विचार हो कि किसी राज्य की आर्थिक स्थिरता अथवा उसकी साख संकट में पड़ गई है। फिर भी श्रीमान, इन आपात-विषयक विधियों का संसद पुनर्विलोकन करेगी और यदि वह इस आशय का एक प्रस्ताव पारित करेगी कि जब आपात की स्थिरता न समझी जाये तो इस सम्बन्ध में जो घोषणा की गई थी उसका शून्यन हो जायेगा।

इस संविधान के अधीन अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य अबाध रूप से किया जा सकता है। न्यायपालिका की स्वाधीनता के सम्बन्ध में तथा महालेखापरीक्षक और

विधान मंडलों के कार्यालयों की स्वाधीनता के सम्बन्ध में संविधान में विशेष उपबन्ध रखे गये हैं। निर्वाचनों की ऐसी व्यवस्था की गई है कि कार्यपालिका उनमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। हमने वित्त आयोग अन्तर्राज्यिक परिषद, लोक सेवा आयोग और निर्वाचन-आयोग के समान अखिल भारतीय आयोग स्थापित किये हैं और ऐसी व्यवस्था की है कि कार्यपालिका उनके कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी। श्रीमान, मेरा निवेदन है कि इन उपबंधों को संविधान में रख कर हमने कोई साधारण कार्य नहीं किया है।

मैं यह निवेदन कर चुका हूं कि कार्यपालिका के पास अत्यधिक कार्य रहा है और उसे बहुत परिश्रम करना पड़ा है। यदि हमें इस प्रकार के कार्य का कहीं उदाहरण मिलता है तो अमरीका के संविधान निर्माण के इतिहास में मिलता है। मैं कार्ल वान डोरेन द्वारा लिखित "ग्रेट रिहर्सल" पुस्तक से एक उद्धरण देता हूं। उसमें कहा गया है:

> "उस समय के अमरीका निवासियों के हृदय में अपने अपने राज्यों के लिये वफादारी बसी हुई थी। नवीन केन्द्रीय सरकार के प्रति वफादारी की भावना उत्पन्न करना कोई आसान काम नहीं था। कई प्रकार के समझौतों को करने की तथा अनेक प्रकार के राजनैतिक संगठन स्थापित करने की आवश्यकता थी और तभी यह आशा की जा सकती थी कि सम्मेलन में आये हुए प्रतिनिधि नवीन संविधान के सम्बन्ध में एकमत हो सकेंगे। शांति स्थापित होने पर राज्य पृथक होने लगे थे। उनमें से अधिकांश राज्य अपने संकुचित स्वार्थों का परित्याग करने में अपने को असमर्थ पा रहे थे। देश के आर्थिक हित तो संकटापन्न थे ही किन्तु साथ ही वाणिज्य के क्षेत्र में उससे कहीं अधिक अव्यवस्था फैल गई थी।"

न्यायाधिपति बेंजेमिन कार्डोजो ने कहा था:

> "विभिन्न राज्यों के लोगों को साथ ही पार उतरना चाहिये अथवा साथ ही डूब जाना चाहिये और यह समझना चाहिये कि अन्ततोगत्वा सम्पन्नता और सम्मुत्थान एकता ही से सम्भव है, विभेद से नहीं।"

1786 में वाशिंगटन ने लिखा था:

> "प्रत्येक राज्य ज्वालाग्राही पदार्थों से परिपूर्ण है जिन्हें एक चिन्गारी भी प्रज्वलित कर सकती है।"

कार्ल वान डोरेन की पुस्तक के प्रथम अध्याय का शीर्षक "सेनानायक और दार्शनिक" है। सेनानायक से लेखक का अभिप्राय जार्ज वाशिंगटन से है, जिन्होंने अपने देश को विजय पथ पर अग्रसर किया था। दार्शनिक से बेंजेमिन फ्रेंकलिन अभिप्रेत है, जिन्होंने अपने राज्य की ऐसी सेवा की थी कि उनका नाम उनके समय में उनके प्रत्येक देशवासी की जबान पर चढ़ गया था। लेखक कहता है:

> "संविधान निर्माण सभा अपने कार्य में बहुत कुछ सेनानायक की गम्भीरता तथा सहज-बुद्धि और दार्शनिक की उदारता तथा परिपक्व बुद्धि के कारण सफल हुई।"

[श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव]

इन दो महान नेताओं के सम्बन्ध में कार्ल वान डोरेन लिखता है:

"क्रान्तिकाल में वाशिंगटन को गृह-कार्य का और फ्रेंकलिन को वैदेशिक-कार्य का बहुत बड़ा भार उठाना पड़ा। वे इतने सत्यनिष्ठ थे कि सन्देह का उन पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता था और इतने महान थे कि उनके सम्बन्ध में द्रोह की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी।"

मेरा निवेदन है कि लेखक की ये बातें भारत के प्रसंग में सौ-गुना सच्ची ठहरती हैं। हमारे राज्य का कार्य संचालन जिन दो महान नेताओं ने किया है उन्हें बहुत बड़ा भार उठाना पड़ा है। इस संविधान सभा को भी अत्यधिक कार्य करना पड़ा है। क्योंकि अन्तरिम काल में इसे संसद के रूप में भी कार्य करना पड़ा है।

इन दो वर्षों में हमें कई बाधाओं को दूर करना पड़ा और देश के जटिल प्रश्नों को हल करने में हमें जितना परिश्रम करना पड़ा उसे ध्यान में रखते हुए मैं यह कहूंगा कि हमने बहुत कम समय लिया और वास्तव में इस स्थिति में अन्य कोई सभा इससे कम समय न लेती।

मूलाधिकारों के परिसीमनों के सम्बन्ध में यह आलोचना की गई है कि हमने अबाध रूप से अन्य संविधानों के अंगों को स्थान दिया है। इस सम्बन्ध में मेरा केवल यह निवेदन है कि संसार का कोई भी लिखित संविधान अन्तिम संविधान नहीं कहा जा सकता। हमें अन्य राष्ट्रों के अनुभव के आधार पर कार्य करना होगा। यदि हम युद्ध के पहले के अथवा बाद के काल पर विचार करें, अथवा युद्धकाल पर विचार करें और इसका अध्ययन करें कि संघीय संविधान किस प्रकार प्रवर्तन में आये हैं तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि प्रत्येक देश ने अपने अपने संविधानों के अधीन केन्द्र को शक्तिशाली बनाने का ही प्रयास किया है। अणु-युग में केन्द्र को शक्तिशाली ही बनाने की आवश्यकता है। गुजरात में सूखा पड़ने और आंध्र प्रदेश में बाढ़ आने का तो कहना ही क्या है—आज यदि कनाडा में सूखा पड़े और आस्ट्रेलिया में फसल अच्छी हो तो संसार की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है और हमारे देश पर भी कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। हमें इस प्रकार के बड़े बड़े प्रश्नों को अपने देश में भी हल करना पड़ा है और इस समय भी हल कर रहे हैं। मेरा निवेदन है कि इनकी उपेक्षा करना मूर्खता ही होगी। जिन उपबन्धों को रखा गया है उन्हें संकट के निवारणार्थ ही रखा गया है। मेरे विचार से मसौदा समिति के सदस्यों की भी ये उपबन्ध पसन्द नहीं है। मुझे विश्वास है कि इस संविधान को व्यवहार में लाने में कोई ऐसा अवसर न आयेगा जब कि आपात-सम्बन्धी शक्तियों को प्रयोग में लाते हुये मूलाधिकारों के इन परिसीमनों को प्रभाव में लाना होगा।

यह भी आलोचना की गई है कि गांधी जी के सिद्धान्तों को बलि की वेदी पर चढ़ा दिया गया है। मैं यह निवेदन कर चुका हूं कि हमने अस्पृश्यता का अन्त करने, राष्ट्र-भाषा को व्यवहार में लाने, साम्प्रदायिक सामंजस्य उत्पन्न करने तथा अल्पसंख्यकों के प्रति सद्भावना प्रदर्शित करने और उनके हितों की सुरक्षा की प्रत्याभूति देने के सम्बन्ध में और ग्राम पंचायतों, ग्रामोद्योगों तथा दुधारू ढोरों

की रक्षा को बढ़ावा देने के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे हैं। इस देश में गांधीवाद इन्हीं बातों से फैला और इन्हीं के फलस्वरूप यहां अहिंसात्मक क्रांति का सूत्रपात हुआ। यदि संविधान में इन सिद्धान्तों का समावेश किया गया है तो मैं पूछता हूं कि इस संविधान द्वारा गांधीवाद को किस प्रकार बलि की वेदी पर चढ़ा दिया गया है। मेरा निवेदन है कि राष्ट्रपिता ने जिस कार्यक्रम की घोषणा की थी उसे व्यवहार में लाने के लिये पर्याप्त उपबन्ध रखे गये हैं। इस संविधान में सर्वोत्कृष्ट भारतीय परम्परा, अन्य देशों के राजनैतिक और संविधानिक अनुभव और गांधी के आदर्शों का बहुत सामंजस्यपूर्ण समन्वय है। सारा संविधान वास्तविकता के रंग में रंगा हुआ है। यदि सद्भावना तथा देशसेवा का परिचय दिया गया और स्वातन्त्र्य संग्राम के समय हम जिस आत्मत्याग की भावना से ओतप्रोत थे वही आत्मत्याग अब भी प्रदर्शित किया गया तो इस संविधान से देश सुखी हो सकता है। अब स्वतन्त्रतात्मक कार्य करने का समय आ गया है। मुझे विश्वास है कि यदि हमने उसी सद्भावना का परिचय दिया जिसका हमने इस सभा में भाषा के प्रश्न, अल्पसंख्यकों के प्रश्न, नागरिकता के प्रश्न तथा मुआवजे के प्रश्न जैसे अनेक प्रश्नों को हल करने में परिचय दिया है तो इस संविधान द्वारा इस देश में एक नवीन युग का प्रवर्तन होगा।

भाषा के प्रश्न के सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि जिस प्रस्ताव को इस सभा ने स्वीकार किया है उसे हम व्यवहार में लाने लगे हैं। मुझे सभा को यह सूचित करते हुए हर्ष है कि मैसूर सरकार ने हाल में एक आज्ञा निकाली है जिसके फलस्वरूप सभी हाई स्कूलों में हिन्दी अनिवार्य रूप से सिखाई जायेगी। साथ ही मुझे इसका खेद भी है कि हमारे कुछ हिन्दीभाषी मित्र इस प्रकार के कार्य करने के लिये उत्साह नहीं दिखा रहे हैं। इस सभा ने सभी की सहमति से जो प्रस्ताव स्वीकार किया था उसकी हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आलोचना की है। मैं अपने हिन्दी भाषी मित्रों से अपील करता हूं कि वे आदान-प्रदान की भावना से कार्य करें और भाषा के प्रश्न के सम्बन्ध में हमें अपने साथ लें। मैं फिर निवेदन करता हूं कि यदि सद्भावना का परिचय दिया गया तो इस प्राचीन देश में इस संविधान के फलस्वरूप सुख और संतोष का साम्राज्य छा जायेगा।

***श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस संविधान में कोई न कोई दोष निकाल कर कई सदस्यों ने इसकी आलोचना की है। उन्होंने जो तर्क उपस्थित किये हैं उनके सम्बन्ध में मैं किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहता। जनसाधारण की दृष्टि से इस पर विचार करते हुए मैं कह सकता हूं कि इस संविधान में जनसाधारण के विकास के लिये, तथा वर्तमान विषम स्थिति के निवारण के लिये, पर्याप्त व्यवस्था की गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संविधान के अधिकांश अनुच्छेद 1935 के अधिनियम से लिये गये हैं, किन्तु इस सभा ने एक आधारभूत परिवर्तन किया है। वह परिवर्तन वयस्क मताधिकार प्रदान करने से हुआ है। इस अधिकार से 1935 के अधिनियम का स्वरूप ही बदल गया है। आज नहीं तो किसी न किसी दिन अवश्य ही इससे वास्तविक लोकतन्त्र का प्रभुत्व स्थापित हो जायेगा। चाहे 1935 के भारत-शासन-अधिनियम में कैसे ही उपबन्ध क्यों न हों, हमारे देश का स्वल्प-अधिकार प्राप्त वर्ग शासन की बागडोर अपने हाथ में नहीं ले सकता और वह इस कारण कि उसे मताधिकार प्राप्त नहीं है। वास्तव में प्रशासन में उसका कोई हाथ नहीं है परन्तु जब संविधान प्रवर्तन

[श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन]

में आयेगा और उसके अधीन प्रथम निर्वाचन हो जायेगा तो, मेरा विश्वास है, सारी स्थिति ही बदल जायेगी। 1935 के अधिनियम द्वारा जनसाधारण को सीमित शक्ति दी गई है परन्तु चूंकि इस देश के जनसाधारण अशिक्षित हैं इसलिये कुछ वर्गों के प्रभुत्व के कारण, अर्थात् उन लोगों के प्रभुत्व के कारण जो सम्पत्तिवान तथा बुद्धिमान हैं, वे उस सीमित शक्ति को भी प्रयोग नहीं कर सकते। किन्तु भविष्य में इस संविधान के प्रवर्तन में आने पर भारत की 85 प्रतिशत जनता का मत ही हमारे विधान-मंडलों के निर्माण में तथा संविधानिक प्रभुत्वों और प्रान्तों और केन्द्र में मंत्रिमंडलों के बनाने में निर्णायक अथवा पहले से अधिक प्रभावी सिद्ध होगा। मैं यह कहूंगा कि उनकी आवाज़ का प्रभाव होगा। अन्यथा अगले निर्वाचन में वे अपने मित्रों को चुन सकेंगे। यह आधारभूत परिवर्तन हो गया है। इस दृष्टि से भले ही इस संविधान के उपबन्ध 1935 के अधिनियम से लिये गये हों किन्तु स्थिति बिल्कुल ही भिन्न हो जायेगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, यह कहा गया है कि हमने इस संविधान को बनाने में बहुत समय लगाया है। मुझे यह विदित नहीं है, किन्तु अभी मेरे जो माननीय मित्र बोले थे उन्होंने बताया था कि अमरीका के संविधान को बनाने में 9 वर्ष का समय लगा था। जिन माननीय सदस्यों ने इस संविधान की आलोचना की है उनसे मेरा अनुरोध है कि वे एक बात स्मरण रखें। इस संविधान के निर्माण को आरम्भ करने के पूर्व इस देश की क्या दशा थी? इस संविधान के निर्माताओं को अथवा देश के भाग्य का निर्णय करने वालों को कौन से वचन पूरे करने थे और किन प्रश्नों को हल करना था? मैं दो बातें कहूंगा। पहली बात यह है कि इस देश में पांच सौ बासठ देशी राज्य थे। जब ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ तो वास्तव में प्रान्तों के अतिरिक्त देश पांच सौ बासठ भागों में विभाजित था। यदि यह संविधान जल्दी में बनाया जाता तो क्या इसका स्वरूप वही होता जो आज है? यह आसानी से समझा जा सकता है कि इसका स्वरूप इसके वर्तमान स्वरूप से बिल्कुल भिन्न होता। देशी राज्यों की समस्या को माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल तथा इस देश के अन्य नेताओं ने जिस ढंग से हल किया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं। उन्होंने इस प्रश्न को ऐसे सुन्दर ढंग से सुलझाया कि भले ही अंग्रेज़ भारत में अव्यवस्था उत्पन्न करके चले गये थे किन्तु थोड़े ही समय में यह देश एक हो गया ओर सारे देश के लिये एक ही संविधान बनाया गया। यत्र तत्र कुछ अन्तर रखा गया है किन्तु अभी तक हमें जो सफलता प्राप्त हुई है उसे भी हमें स्मरण रखना चाहिये। उसे स्मरण रखते हुए मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि ये अन्तर भी तुरन्त ही मिट जायेंगे।

दूसरी बात जिसे मैं बताना चाहता हूं यह है कि चाहे इस प्रकार की स्थिति के लिये कोई भी क्यों न उत्तरदाई रहा हो किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि हमारे देश में कई साम्प्रदायिक वर्ग थे और जहां तक मैं जानता हूं, भारत छोड़ने के पूर्व अंग्रेज़ों ने हमारे नेताओं से यह वचन लिया था कि अल्पसंख्यकों के सभी अधिकारों का सम्मान किया जायेगा। हमारे नेताओं ने इस वचन को पूरा किया है। ऐसी स्थिति के होते हुए भी हम देखते हैं कि हमारा संविधान उन अनेक दोषों से मुक्त है जो उस समय वर्तमान थे। बात यह नहीं है कि बहुसंख्यक दल ने अपने बहुमत से ही इस पेचीदे प्रश्न को सुलझाया है और संविधान को उन दोषों से मुक्त किया है। वास्तव में जब अल्पसंख्यकों को यह विश्वास हो गया कि भय

का कोई कारण नहीं है और भारत के कल्याण के हेतु उन्हें इन दोषों को दूर करना चाहिये तो वे स्वेच्छा से इसके लिये सहमत हो गये। अपने समुदाय के सम्बन्ध में मैं यह स्वीकार करता हूं कि हमने यह विचार किया कि कम से कम कुछ समय के लिये हमें कतिपय विशेषाधिकार प्रदान किये जाने चाहिये और मैं संविधान सभा के सदस्यों को तथा इस देश के नेताओं को हमें इन विशेषाधिकारों को कुछ समय के लिये प्रदान करने के लिये कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं। मैं पूछता हूं कि यदि यह संविधान जल्दी में बनाया गया होता तो क्या इसे इसका वर्तमान स्वरूप प्राप्त होता? यद्यपि मेरे विचार से इस के निर्माण में कोई विलम्ब नहीं हुआ। किन्तु यदि हुआ भी है तो यह देश के कल्याण के लिये ही हुआ है।

जैसाकि मैं आरम्भ में ही निवेदन कर चुका हूं, जनसाधारण की दृष्टि से मेरी यह धारणा है कि भविष्य में देश के प्रशासन में जनसाधारण का अधिक हाथ होगा। आखिर लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने के लिये ही हम वचनबद्ध हैं और इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है कि हमें लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली के अतिरिक्त कोई अन्य शासन-प्रणाली स्वीकार करनी चाहिये थी। जब हम यह स्वीकार करते हैं कि यदि संसार में कोई लोकतन्त्र-प्रणाली सफलता के साथ व्यवहार में आई हुई है तो वह संसदात्मक लोकतन्त्र प्रणाली ही है तो हमें अवश्य ही लोकतन्त्र सम्पन्न देशों के उन संविधानों की परीक्षा करनी पड़ती है जो इस समय सफलता के साथ व्यवहार में आये हुए हैं। मेरे विचार से भारत में अपने स्वभाव के कारण ही संसार में जहां कहीं संसदात्मक लोकतन्त्र-प्रणाली प्रवर्तन में है वहां से सर्वोत्कृष्ट अंशों को स्वीकार किया है। मैं इसे फिर दुहराना चाहता हूं कि इस प्रणाली से ही जन-साधारण की तथा पददलित मानव के उत्थान की आशा की जा सकती है। जिस संसदात्मक प्रणाली को हमने स्वीकार किया है उसके अधीन देश का शासन एक निर्वाचित सभा करेगी और यद्यपि उसके दो भाग हैं, अर्थात् केन्द्र में दो सभायें हैं, किन्तु धन विधेयकों के सम्बन्ध में व्यय के सम्बन्ध में तथा आय-व्ययक के साधनों तथा उपायों के सम्बन्ध में, जिन का जनसाधारण पर सारवान प्रभाव पड़ता है, लोक सभा का मत ही अन्तिम समझा जायेगा। वास्तव में इस देश के जनसाधारण के सभी दोषों की जड़ आर्थिक दुर्व्यवस्था ही है। हमने जिस संविधान का निर्माण किया है यदि उसे हमने यथोचित रूप से व्यवहार में लाना है तो जनसाधारण को सचेत रहना होगा। यदि वे बुद्धिमान होंगे और सचेत रहेंगे तो वे ठीक तरह के नेताओं को चुनेंगे और वे जनसाधारण को ऊपर उठायेंगे। इस प्रकार वे अपने को लोक सभा के तथा प्रान्तीय विधान सभा के प्रभु सिद्ध करेंगे। वही इस का निर्णय करेंगे कि लोक कल्याण के लिये किस मार्ग का अवलम्बन किया जाये। मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि किसी भी संसदात्मक लोकतन्त्र प्रणाली के अधीन इससे अधिक और कुछ किया जा सकता है। हो सकता है कि संविधान में कुछ दोष हों किन्तु जैसा कि कई माननीय सदस्य कह चुके हैं, यदि संविधान के कुछ उपबन्धों को संशोधित करने की आवश्यकता हुई तो उसके लिये पर्याप्त व्यवस्था है।

जहां तक निकट भविष्य में किये जाने वाले शासन-प्रबन्ध का सम्बन्ध है, मेरा इस सभा के माननीय सदस्यों से अनुरोध है कि इस संविधान के एक निदेशक सिद्धान्त की ओर वे ध्यान दें। मेरा अभिप्राय ग्राम-पंचायतों के संगठन से है। साथ ही चौदह वर्ष तक के बच्चों के लिये निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करने के सम्बन्ध

[श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन]

में जो निदेशक सिद्धान्त रखे गये हैं उनकी ओर भी वे ध्यान दें। यदि इन दो निदेशक सिद्धान्तों का हमारी भावी सरकार ने यथोचित रूप से अनुसारण किया तो मेरे विचार से निकट भविष्य में ही सारे देश की स्थिति में सुधार हो जायेगा। भारत जैसे विशाल देश में जिसका विस्तार सम्भवत: यूरोप से भी अधिक है और जिसकी जनसंख्या पैंतीस करोड़ है, केन्द्र मूलक शासन-प्रणाली से इन दोषों का निराकरण नहीं हो सकता। कोई भी केन्द्र मूलक सरकार ऐसे प्रशासन संगठन को लेकर जैसा कि हमें अंग्रेजों ने सौंपा है, उन दोषों को दूर नहीं कर सकती जिनके कारण देहात के लोगों का तथा जिन लोगों को अधिकार प्राप्त नहीं हैं उनका जीवन ही नष्ट हो रहा है। जब हमने वयस्क मताधिकार प्रदान किया है और देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक का विश्वास किया है और यह स्वीकार किया है कि वयस्क नागरिक ही सरकार स्थापित करने के अधिकारी हैं तो यदि हम इन पंचायतों के निर्माण में एक दिन की भी देर करें तो यह एक मूर्खता ही होगी। जब आपने वयस्क नागरिकों का विश्वास किया है और सरकार स्थापित करने के सम्बन्ध में उन्हें मताधिकार प्रदान किया है तो आपको उन्हें कुछ जिम्मेदारी देनी ही चाहिये। यदि आप यह करेंगे तो आपका प्रति दिन के प्रशासन के कार्य का बोझ बहुत हल्का हो जायेगा। जब तक आप सरकारी कर्मचारियों से यह आशा करेंगे कि वे जनसाधारण की देख-रेख करें तो जनसाधारण गैर-जिम्मेदार ही रहेंगे और सरकार की शिकायत ही करते रहेंगे। किन्तु जैसे ही आप स्थानीय प्रशासन की कुछ जिम्मेदारी उन पर डालेंगे वैसे ही वे अपने मामलों में बहुत दिलचस्पी लेने लगेंगे।

निस्संदेह यह आलोचना की गई है कि, चूंकि हमारे ग्रामवासी अशिक्षित हैं इस लिये ग्राम पंचायतें सफल नहीं होंगी और उसका परिणाम यह होगा कि लोग केवल शक्ति के पीछे ही दौड़ेंगे। किन्तु यदि हम दैनिक पत्रों को देखते रहें तो हमें विश्वास हो जायेगा कि अधिकांश प्रान्तों में प्रान्तीय नेता भी शक्ति के ही पीछे दौड़ते हैं। इस लिये इस तर्क में कुछ सार नहीं है कि जनसाधारण स्थानीय प्रशासन के तथा अपने हितों की चिन्ता करने के योग्य नहीं हैं। मेरा केवल यह निवेदन है कि जितने शीघ्र हो सके हम इन ग्राम-पंचायतों को ही सौंप दें ताकि इस देश के शासन सम्बन्धी अनेक प्रकार के प्रश्न हल हो सकें।

अन्त में मैं कृतज्ञता पूर्वक महात्मा का स्मरण करता हूं और उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। 1938 में कलकत्ता में मुझे उन्हें मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और मैंने उनसे स्वल्प-अधिकार प्राप्त अनुसूचित जातियों की बहुत सी समस्याओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया था। कई बातों के सम्बन्ध में मैं उनसे सहमत हुआ था और उनमें से एक यह थी कि अंग्रेज़ जब तक पदारूढ़ हैं, अनुसूचित जातियों के लोगों को उनका विरोध करते हुये अधिकारों की आशा नहीं करनी चाहिये। महात्मा ने यह भी कहा था कि जब कांग्रेस के हाथ में शक्ति आ जायेगी तो अनुसूचित जातियों को जिन अधिकारों की आवश्यकता होगी वे उन्हें दे दिये जायेंगे। मैं देखता हूं कि एक दशाब्दी में ही सत्य और अहिंसा के उस उपासक की वाणी सत्य हो गई है। भारत अब स्वाधीन हो गया है। मैं महात्मा के उन शब्दों का भक्तिपूर्वक स्मरण करता हूं। भारत की अनुसूचित जातियों को जो विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं उनके लिये मैं इस आदरणीय सभा के सभी

सदस्यों का भी आभारी हूं। मैं आदरपूर्वक उस महान आत्मा को नमन करता हूं जिसे सदा अनुसूचित जातियों के लोगों के हितसाधन की चिंता रहती थी।

***श्री पी. कक्कन** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसका समर्थन करने के लिये मैं अपनी जगह से उठा हूं। इस संविधान द्वारा हरिजनों को सभी प्रकार की सहायता देने के लिये मैं आपको तथा मसौदा समिति को धन्यवाद देता हूं। श्रीमान, आपको विदित ही है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सवर्ण हिन्दुओं का मस्तिष्क ही बदल दिया और संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली द्वारा अस्पृश्यता का अन्त करने के लिये मार्ग प्रशस्त किया। संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के फलस्वरूप अब हमने अपना लक्ष्य प्राप्त किया है।

श्रीमान, मेरा विश्वास है कि केवल कांग्रेस दल ही हरिजनों के उत्थान के लिये कार्य कर रहा है और अन्य कोई दल इस दिशा में कार्य नहीं कर रहा है। इस लिये इस आदरणीय सभा के मंच से मैं भारतीय संघ के हरिजनों से अपील करता हूं कि वे कांग्रेस के सदस्य हों और हरिजनों के उत्थान के लिये कार्य करें। इस सम्बन्ध में मैं डॉ. अम्बेडकर से भी अपील करता हूं कि वे कांग्रेस के सदस्य हो जायें और दस वर्ष में ही हरिजनों को पूर्ण रूप से समुन्नत बनाने के लिये कार्य करें।

श्रीमान, मुझे इस की प्रसन्नता है कि इस संविधान में पंचायत-प्रणाली को स्थान दिया गया है।

मुझे आशा है कि इस विशाल देश के कोने-कोने में पंचायत-प्रणाली को व्यवहार में लाने के लिये भारत सरकार आवश्यक कार्यवाही करेगी और जैसी कि महात्मा गांधी की इच्छा है बिना जाति, धर्म अथवा रंग का विभेद किये हुए ग्राम-स्वराज का विकास करेगी।

अन्त में श्रीमान, मेरा निवेदन है कि वयस्क मताधिकार की प्रणाली को स्वीकार करके हमने ग्रामवासियों को शक्ति प्रदान की है। मुझे आशा है कि भविष्य में मतदाता अपने मताधिकार का दुरुपयोग नहीं करेंगे। श्रीमान, मेरा यह भी विश्वास है कि भारत के लोग गांधीवाद को नहीं भुलायेंगे। गांधीवाद का लक्ष्य केवल भारत का ही कल्याण नहीं है बल्कि सारे विश्व का कल्याण है। मैं विशेषतया मद्रास प्रान्त के प्रतिनिधि माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर, श्री अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। मसौदा समिति में रह कर इन्होंने देश की बहुत बड़ी सेवा की है।

***श्री थीरुमल राव** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, मुझे इसका गौरव है कि जिन लोगों ने इस संविधान का मसौदा तैयार करने में अपना समय लगाया है तथा श्रम किया है उनकी प्रशंसा करने का मुझे भी अवसर प्राप्त हुआ है। मैं यहां कुछ शब्द कह कर संतोष करने के लिये नहीं आया हूं। इस संविधान के निर्माण में मैंने भी थोड़ा बहुत योग दिया है और अब इस अन्तिम अवसर पर मैं उस सम्बन्ध में कुछ अन्तिम शब्द कहने आया हूं।

इस अवसर पर मुझे उस महान आत्मा का स्मरण हो आता है जिसने मिट्टी में प्राण फूंक कर एक राष्ट्र का निर्माण किया। उसमें स्वतन्त्रता के विचारों का संचार किया और उन विचारों को कार्य रूप में लाने के लिये उससे दृढ़

[श्री थीरुमल राव]

प्रतिज्ञा कराई तथा अपने जीवन-काल ही में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर दिखाया। यह कहा जा सकता है कि लक्ष्य का केवल दर्शन-मात्र उसकी प्राप्ति से भिन्न है। लक्ष्य के दूर होने से हमें पहले जो प्रेरणा प्राप्त होती थी वह अब प्राप्त नहीं होती है क्योंकि अब हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके हैं और यह देख रहे हैं कि इस समय जो स्थिति उपस्थित है उसमें हमें किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

मैं यह विचार करता था कि इस संविधान के निर्माता तथा वे नेता जिनसे मसौदाकारों को प्रेरणा प्राप्त हुई है, इस संविधान में महात्मा गांधी का राष्ट्र के निर्माता के रूप में तथा आधुनिक भारत के जन्मदाता के रूप में कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख करेंगे, विशेषतया जब कि उन्होंने सारे संसार को एक नवीन संदेश सुनाया है। मैं कह नहीं सकता कि किन कारणों से उन्होंने संविधान के मसौदे में उनके नाम का उल्लेख नहीं किया, यद्यपि यह हमारी परम्परा के, प्राचीन भारत की परम्परा के अनुरूप ही होता क्योंकि हम प्रत्येक सुअवसर पर अपने पूर्वजों के नामों का प्रातः से लेकर सायंकाल तक उच्चारण करते हैं। यदि हम अपने संविधान के किन्हीं अनुच्छेदों में महात्मा गांधी के नाम का उल्लेख कर देते तो यह उपयुक्त ही होता, किन्तु हमारे नेताओं की यह इच्छा नहीं थी।

निकट भविष्य में युगप्रवर्तक घटनायें घटित होने जा रही हैं। पश्चिमी देशों में उपद्रव हो चुका है। वहां स्वतन्त्रता का युग कुछ वर्षों तक रहा और अब समाप्त हो गया है। अब पूर्वी देशों में नवीन विचारों का उदय हो रहा है। भारत पश्चिमी देशों और पूर्वी देशों के मध्य में स्थित है और अब यहां भी इस संविधान द्वारा स्वशासन के युग का प्रवर्त्तन होने जा रहा है।

इस संविधान के गुणों के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं क्योंकि वास्तव में यह संविधान पिछली कुछ घटनाओं की देन है। वास्तविक स्थिति की उपेक्षा करने से हमें कुछ लाभ न होगा। आरम्भ में इस संविधान सभा में भाषण देते हुए पंडित नेहरू ने कहा था कि हम एक ऐसे संविधान का निर्माण करें जिससे हमें एक स्वतन्त्र सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य प्राप्त हो सके। अब 'स्वतन्त्र' शब्द को हटा दिया गया है और उसके स्थान पर 'लोकतंत्रात्मक' शब्द रखा गया है। इसके फलस्वरूप हम अभी साम्राज्य में ही हैं और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अभी हमारा नाता नहीं टूटा है। यह पिछली घटनाओं के फलस्वरूप हुआ है और वास्तव में 150 वर्ष के ब्रिटिश शासन के पश्चात् यही सम्भव भी था। भारत को अपने सभी बन्धनों से मुक्त होने के लिये—राष्ट्रमंडल के बन्धन से भी मुक्त होने के लिये—अभी कुछ समय तक ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में रहना होगा। पिछली घटनाओं से विवश होकर हम राष्ट्रमंडल में रह रहे हैं। पहले हम ऋणी थे किन्तु अब ऋण दाता हो गये हैं और हमारे भूतपूर्व प्रभुओं को हमें बारह करोड़ का ऋण चुकाना है। जब तक हम इंग्लिस्तान से यह राशि वसूल नहीं कर लेते और जब तक हम उस देश को दिये हुये सभी वचनों से मुक्त नहीं हो जाते तब तक अंग्रेज़ों से नाता तोड़ने से देश का हित-साधन नहीं होगा। मेरे विचार से इसी को ध्यान में रखकर हमारे नेता तथा यह सभा ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में रहने के लिये राजी हुए हैं किन्तु वे कम से कम समय तक राष्ट्रमंडल में रहेंगे।

जहां तक संविधान का सम्बन्ध है, यह एक ऐसी कृति है जिस पर हमारे नेता गर्व कर सकते हैं। अंग्रेजों ने इस देश में एक सत्तात्मक शासन स्थापित करके

तथा इसे ऐसे भागों में विभाजित करके जिन पर लोग अपना नियंत्रण नहीं रख सकते थे, अपना आधिपत्य जमा रखा था। उन्होंने 630 देशी राज्यों की स्थापना की थी, जो 630 अल्स्टरों के समान थे। उन्होंने उन्हें बहुत पिछड़ी हुई दशा में रखा था और केन्द्र से ही वे उनके सम्बन्ध में नीति निश्चित करते थे। उन्होंने मुस्लिम समुदाय को 'संयुक्तस्वार्थ' का रूप दिया था और उसे पृथक् निर्वाचक-मंडल प्रदान किये थे। उन्होंने उसे भारत की राष्ट्रीयता का खंडन करने की छूट दे रखी थी। उन्होंने अखिल भारतीय प्रशासन स्थापित कर रखा था और हम सभी को अनुभव है कि प्रशासकों की वफादारी का हर कदम पर मूल्य चुकाया जाता था और वे उसके बदले भारतीय स्वातन्त्र्य का बलिदान करते थे। अंग्रेज़ों के शस्त्रागार में ये तीन शस्त्र थे और इनके बल पर उन्होंने इस देश में एक केन्द्र नियंत्रित शासन स्थापित कर रखा था। वे यह समझते थे कि जब तक उनका साम्राज्य है तब तक यह शासन भी बना रहेगा। सम्भवत: यह लार्ड मार्ले ने ही कहा था कि वे इस की कभी भी कल्पना नहीं कर सकते कि मनुष्यों के संसार में एक दिन वह आयेगा जब ब्रिटिश साम्राज्य मिट जायेगा। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ प्रशासन करते रहे किन्तु उन्होंने इसकी कभी कल्पना तक नहीं की थी कि उनका भाग्य इस देश के एक सामान्य व्यक्ति से टकरायेगा जिसे साम्राज्यवाद के सम्राट श्री चर्चिल नफरत से "नंगा फकीर" कहते थे और न इसकी ही कल्पना की थी कि वह सत्याग्रह का नारा लगाकर उनकी सभी योजनाओं को तथा उनके साम्राज्य को मिटा देगा। हमें विभाजित भारत सौंपा गया किन्तु सरदार पटेल अपनी प्रखर व्यवहारिक बुद्धि से समझ गये कि उसके पीछे कौन सी चाल छिपी हुई है और उन्होंने उसी के समान एक सशक्त नीति से उसका निराकरण करना चाहा। अंग्रेज़ भारत छोड़ कर चले गये थे और इसलिये विषम स्थिति का निराकरण करने के लिय हमें वही कदम उठाने पड़े जो कि अंग्रेज़ों ने उठाये थे। जब अंग्रेज़ यहां से गये तो वे यह विचार करते थे कि देशी राज्य कांग्रेस सरकार के विरुद्ध विद्रोह करेंगे। किन्तु सरदार पटेल ने तथा उनके परामर्शदाताओं ने कांग्रेस की तथा देश की शक्ति से स्थिति को संभाला। उन्होंने कुछ राज्यों को प्रान्तों में समाविष्ट करके तथा कुछ के राज्य-संघ बनाकर सभी राज्यों को नया रूप दिया है तथा उनके अस्तित्व को मिटा दिया है। इस प्रकार उन्होंने एक अद्‌भुत कार्य कर दिखाया है। देशी राज्यों के मेरे मित्र यह न समझें कि उनको छोटा समझा जा रहा है और इस कारण वे स्वयं भी अपने को छोटा न समझें। इतिहास इसका प्रमाण है कि देशी राज्य प्रतिक्रिया तथा उत्पीड़न के गढ़ रहे हैं और यहां के लोग सदा पिछड़े हुए ही रहे हैं। इन सब दोषों को एक दो वर्ष में ही मिटाना कोई सरल कार्य नहीं है, किन्तु संविधान में इस की प्रत्याभूति दी गई है कि उनका स्तर उन 'ब्रिटिश भारतीय' प्रान्तों से निम्न नहीं है जिन का पिछले 70 वर्षों से कांग्रेस नेतृत्व करती रही है। देशी राज्यों को प्रान्तों के ही स्तर पर रखा गया है।

पृथक निर्वाचक-मंडलों के सम्बन्ध में भी अल्पसंख्यक समिति का सभापति होकर सरदार पटेल ने जो कार्य किया है वह उल्लेखनीय है। आप ही के समान सुयोग्य हमारे उपाध्यक्ष डॉ. एच.सी. मुकर्जी की इस देश की राष्ट्रीयता के प्रति सत्यनिष्ठा तथा उनकी सहायता के फलस्वरूप सरदार पटेल अल्पसंख्यकों के लिये पृथक निर्वाचक मंडलों की जो व्यवस्था थी उसे समाप्त कर सके हैं और इस प्रकार संविधान से ब्रिटिश साम्राज्य के उस अन्तिम अभिशाप को निकाल सके हैं।

[श्री थीरुमल राव]

देश में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से हमने एक अन्य कदम यह उठाया है कि सभी सेनाओं को संगठित करके हमने उन्हें एक ही सेना का स्वरूप प्रदान कर दिया है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रशासन सेवा स्थापित करके हमने पुरानी अखिल भारतीय सेवा की परम्परा को बनाये रखा है और हमें आशा है कि उसका आचरण भ्रष्टता से मुक्त होगा। इस सुयोग्य सेवा द्वारा यह देश अपनी नीतियों को कार्यान्वित कर सकेगा। सरदार पटेल के सुयोग्य नेतृत्व में जो ये तीन संगठन स्थापित हुए हैं उनके फलस्वरूप देश में एकता स्थापित हो गई है। इन सभी विषयों के सम्बन्ध में इस संविधान में उपबन्ध रखे गये हैं।

भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस देश को स्वतन्त्र किया है और मुख्यत: उसी ने इस संविधान का मसौदा तैयार किया है। संविधान में कांग्रेस की विचार-धारा की ही अमिट छाप लगी हुई है। श्रीमान, कई मित्रों ने आपकी इन शब्दों में प्रशंसा की है कि आपने इस सभा के कार्य की अध्यक्षता करके संसदीय कार्य करने की निपुणता का यथेष्ट परिचय दिया है। सम्भवत: वे लोग कांग्रेस में नहीं रहे हैं और उन्हें आपके नेतृत्व का व्यक्तिगत अनुभव नहीं रहा है क्योंकि अन्यथा उन्हें ज्ञात होता कि आप दो बार कांग्रेस के प्रधान रहे हैं और आपने कई बार अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के उत्तेजना से परिपूरित अधिवेशनों के कार्य का संचालन किया है। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की सुयोग्यता, कार्यक्षमता, देशभक्ति तथा संसदीय कार्य में दक्षता का परिचय इस सभा में भी मिल चुका है। श्रीमान, जब आप कांग्रेस के प्रधान रह चुके हैं तो हमें आपको इस सभा की अध्यक्षता का निर्वहन सुयोग्यता से कहने के लिये बधाई देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आपने यह कोई नवीन कार्य नहीं किया है। हमारे राजनीतिज्ञों के लिये भी शासन-कार्य कोई नवीन कार्य नहीं है क्योंकि उन्हें लोकनायक होने तथा जनमत का प्रतिनिधित्व करने का अनुभव रहा है। हमारे प्रधान मंत्री, उपप्रधान मंत्री तथा कांग्रेस के अनेक मंत्रियों ने मंत्रिपद का कार्य करके अपनी कार्यपटुता सिद्ध की है।

श्रीमान, मैं आंध्र प्रान्त की स्थापना के सम्बन्ध में जो निर्णय किया गया है उसके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं और इस विषय में एक दो बातें कहना चाहता हूं क्योंकि इस ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। 1938 में, जब बाबू सुभाष बोस कांग्रेस के प्रधान थे, देशभक्त कोंडा वेंकटापय्या पांटूलू के नेतृत्व में हमारा एक प्रतिनिधि मण्डल जिसमें कुछ अन्य कांग्रेसी नेता भी थे, कांग्रेस कार्यकारिणी के समक्ष उपस्थित हुआ था जिसने आंध्रों को यह पवित्र आश्वासन दिया था कि भारतीय स्वातन्त्र्य का प्रश्न हल होते ही उन्हें आंध्र प्रान्त प्रदान कर दिया जायेगा। हमने प्रतिक्रिया का कभी भी आश्रय नहीं लिया। आंध्रों का सदा महात्मा गांधी के नेतृत्व में तथा कांग्रेस के नेतृत्व में अटल विश्वास रहा है। हमने कभी साइमन आयोग की खुशामद नहीं की। हमने उस आयोग का प्रत्येक कदम पर बायकाट किया जिससे लार्ड सायमन बहुत अप्रसन्न हो गये। ब्रिटिश सरकार ने यह विचार किया कि इस प्रान्त को स्थापित न करके वहां के निवासियों को कठोर दण्ड दे दिया गया है। किन्तु हमारा सदा कांग्रेस पर तथा कांग्रेस के नेतृत्व पर विश्वास रहा और हम इसके लिये आभारी हैं कि कांग्रेस कार्यकारिणी ने 1938 में एक प्रस्ताव द्वारा हमें जो वचन दिया था वह आज पूरा किया जा

रहा है। आप यह विचार न करें कि आंध्र प्रान्त का आन्दोलन 'दलित वर्ग' के आन्दोलन अथवा किसी अन्य गौण आन्दोलन के समान है। यह आन्दोलन राष्ट्रीयता के आन्दोलन का ही अंग है। कहा जाता है कि प्रशासन कार्य मातृ-भाषा में अथवा प्रादेशिक भाषा में किया जाना चाहिये किन्तु मद्रास में हम प्रशासन कार्य अंग्रेजी में करने में लिये विवश हैं क्योंकि उस प्रान्त में बिल्कुल भिन्न भाषा-भाषी चार प्रदेश हैं। यदि भारत के प्रत्येक प्रान्त का वास्तविक अर्थ में विकास करना है और लोकतन्त्र को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार में लाना है तो जनसाधारण में अंग्रेज़ी बोलने वालों का जो महत्व है उसे आपको मिटा देना चाहिये और करदाताओं तथा सरकार के बीच जो खाई है उसे पाट देना चाहिये।

वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उससे मेरा उत्साह नहीं बढ़ता। वह एक दुधारी तलवार के समान है जो इस तरफ भी काटती है और उस तरफ भी। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से उसके सम्बन्ध में हमारे नेता वचनबद्ध थे क्योंकि आरम्भ में उन्होंने वयस्क मताधिकार पर आधृत संविधान सभा के निर्माण के लिये ही आन्दोलन किया था। वयस्क मताधिकार प्रदान करने से हमारे 17 करोड़ देशवासियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा और उन सबके नाम निर्वाचन-सूचियों में लिखने होंगे। इस देश में यथेष्ट शिक्षा तथा यथेष्ट देशभक्ति का अभाव होने के कारण यह हथियार एक खतरनाक हथियार सिद्ध हो सकता है। गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन से वास्तव में जनसाधारण प्रभावित नहीं हुए। उसने गांवों की केवल सीमा ही स्पर्श की। आखिर केवल चार पांच लाख लोग ही जेल गये थे, अर्थात् गांधी के आन्दोलन को केवल मध्यम वर्ग के सुपठित लोगों ने ही अंगीकार किया था। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि कितने लोगों में देशभक्ति की भावना जाग्रत हुई है। आपने देखा कि मेरे एक मित्र की जो इस सभा के सदस्य हैं, कितनी संकुचित भावना है। उन्होंने कहा कि वे उड़ीसा से अधिक दूरस्थ प्रदेश की कल्पना नहीं कर सकते। उन्हें पहले अपना घर प्रिय है, फिर अपना ग्राम प्रिय है, फिर अपना जिला प्रिय है और फिर अपना प्रान्त प्रिय है। उनकी कल्पना इतनी विस्तृत नहीं है कि वह पंडित जवाहरलाल नेहरू अथवा सरदार पटेल के नेतृत्व का मूल्य आंक सकें। यदि इस सभा के एक सुपठित सदस्य देशभक्ति से प्रेरित होकर अपने प्रान्त की सीमा के आगे किसी प्रदेश की कल्पना नहीं कर सकते तो उन करोड़ों अनपढ़ लोगों की कौन कहे जिनसे स्वार्थ-सेवी राजनैतिक नेता अपने समुदायों तथा उपसमुदायों की ही बात सोचने को कहते हैं? जिला बोर्डों के पिछले चुनावों में हमारे प्रान्तीय नेताओं ने इस आशय के वक्तव्य निकाले कि उप-समुदाय सम्बंधी भावनाओं को उभारा गया है और लोगों को सावधान रहना चाहिये। अब चूंकि निर्वाचन क्षेत्रों का बंटवारा होने लगा है इस लिये स्वार्थ-सेवी नेता इसका हिसाब लगाने लगे हैं कि अमुक अमुक निर्वाचन क्षेत्र में उसके समुदाय के अधिक मतदाता हैं या नहीं और अमुक राजनैतिक अखाड़िया देश के हितों के विरुद्ध नारे लगाकर उस निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित हो सकता है या नहीं। वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में मेरी इसी प्रकार की भावनायें हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि उसके सम्बन्ध में मुझे अपने उन मित्रों से कम उत्साह है जो वयस्क मताधिकार प्रदान करने की कसम खाये बैठे हैं। उसे अवश्य स्वीकार कीजिये किन्तु आगामी चार या पांच या दस वर्षों में धीरे-धीरे स्वीकार कीजिये। आज मतदाताओं की संख्या $3^{1}/_{2}$ करोड़ है। आगामी निर्वाचन में उनकी

[श्री थीरुमल राव]

संख्या दस करोड़ कर दीजिये और फिर उसके पश्चात् जो निर्वाचन हों उनमें उसे बढ़ा कर 17 करोड़ कर दीजिये। जब आप लोकतन्त्र के इस तथाकथित हथियार को प्रदान कर रहे हैं तो आपको स्मरण रखना चाहिये कि इस हथियार की दो धारें हैं। प्रश्न केवल निर्वाचक-मंडल का नहीं है और प्रश्न केवल विधान-मंडलों के उन सदस्यों का भी नहीं है जो वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होंगे। प्रश्न नेताओं का भी है। इस संविधान में सन्निहित सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिये देश को सुयोग्य, अनुभवी, देशभक्त तथा निस्वार्थ नेताओं को आगे बढ़ाना होगा।

वास्तव में वर्तमान स्थिति को देखते हुए एक संघीय संविधान का निर्माण करना चाहते थे किन्तु हमने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया है जो बहुत कुछ एकसत्तात्मक ही है। हमने सभी अवशिष्ट शक्तियां केन्द्रीय सरकार को ही प्रदान कर दी हैं और हम उसे अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी राज्यों के होते हुए और देश के पेट में हैदराबाद के रूप में एक नासूर होते हुए—भले ही वह हाल में मिटा दिया गया हो—और हमारी सीमा पर, अर्थात कश्मीर में, खतरनाक स्थिति के होते हुए तथा इसे भी ध्यान में रखते हुए कि साम्यवादी शक्ति प्राप्त करने के लिये किसी भी साधन और अपने सभी साधनों का उपयोग करना चाहते हैं और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग भारतीय संस्कृति तथा हिंदुत्व का लोकप्रिय नारा लगा कर राजनैतिक शक्ति पर अपना अधिकार करना चाहते हैं, यदि केन्द्रीय सरकार का स्वरूप सावधानी से निश्चित नहीं किया गया तो बहुत खतरा उठाना पड़ेगा। इन सभी बातों को देखते हुए हमारे नेताओं ने अपने पिछले अनुभव के आधार पर तथा भविष्य की यथोचित कल्पना के आधार पर यह कहा है कि इस राष्ट्र की अवशिष्ट शक्तियां एक ऐसी सरकार को प्रदान करनी चाहियें जिसका केन्द्र सुदृढ़ हो। इसके अतिरिक्त इस संविधान का प्रभावपूर्ण होना एक व्यक्ति पर भी, अर्थात इस देश के प्राधानमंत्री पर भी निर्भर है जिसे सर्वशक्तिमान बनाया गया है। इस संविधान को कार्यान्वित करने के लिये आपने केन्द्रीय विधान मंडल के बहुसंख्यक दल के नेता को हर प्रकार की शक्ति प्रदान की है। इस लोकतन्त्रात्मक संविधान को व्यवहार में लाना प्रधानमंत्री पर ही निर्भर है और इस कारण उसे बहुत शक्तियां प्रदान की गई हैं। यद्यपि कांग्रेस ने इस देश को स्वतन्त्र किया, और यद्यपि इस देश के शासन को चलाने वाला बहुसंख्यक दल भी कांग्रेस दल ही है, किन्तु वह इतना क्षुद्र अथवा कुचक्री नहीं कि वह संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध रखता जिससे कुछ समय तक उसकी शक्ति बनी रहती। उसने अपने स्वार्थ को आगे नहीं रखा और एक ऐसे संविधान का निर्माण किया जिसके आधार पर देश का कोई ऐसा दल जिसे देश में लोगों का सबसे अधिक समर्थन प्राप्त हो शक्ति ग्रहण कर सकता है। और अपनी इच्छानुसार प्रशासन चला सकता है। किन्तु फिर भी हमारा विश्वास है कि संविधान में हमारे प्रधानमंत्री तथा उपप्रधानमंत्री की अमिट छाप लगी हुई है और करोड़ों लोगों की यही आशा है कि वे बहुत वर्ष तक हमारे बीच में रहेंगे और इसकी चिंता करेंगे कि हमारे राष्ट्र ने जो शक्ति प्राप्त की है उसका एकीकरण इस प्रकार किया जायेगा कि उससे देश के गरीब लोगों का हितसाधन होगा क्योंकि इस संविधान द्वारा उनकी रक्षा का आश्वासन दिया गया है।

मूलाधिकारों के सम्बन्ध में मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्येक अधिकार परमाधिकार नहीं है। जहां कहीं किसी अधिकार का उपयोग किया जाता है वह लोक नीति, लोकाचार तथा राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार को प्रयोग करना चाहे और उनसे लाभ उठाना चाहे और राज्य के हितसाधन के हेतु किसी जिम्मेदारी को स्वीकार न करना चाहे तो उसे उसी जगह रखना चाहिये जहां इस प्रकार के व्यक्ति को रखा जाना चाहिये। केवल यही अपवाद है। मूलाधिकारों के सम्बन्ध में इस संविधान में किसी स्थल पर पूर्ण व्यवस्था नहीं की गई है? इस संविधान के अधीन सभी लोग अपनी वृत्ति और व्यवसाय को शान्तिपूर्वक कर सकेंगे। उन्हें यह प्रत्याभूति दी गई है कि ऐसे लोग जो अन्य लोगों का शोषण करके अत्यधिक अधिकारों का अनुचित प्रयोग करते हैं उनके काम में हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे।

इस सम्बन्ध में मैं एक घटना की चर्चा करूंगा। कुछ समय पूर्व मद्रास में होने वाले नागरिक स्वातन्त्र्य सम्मेलन का सभापतित्व करते हुए पटना के उच्च न्यायालय के एक भूतपूर्व न्यायाधीश ने जब केन्द्र से लेकर प्रान्तों तक की सभी कांग्रेस सरकारों की आलोचना की तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। नागरिक-स्वातन्त्र्य के नाम पर सरकारों की आलोचना करते हुए वे वास्तव में अपनी बुद्धि खो बैठे। उनके भाषण में सुस्थापित सरकारों को बहुत गालियां दी गईं। साम्यवादियों ने उससे उद्धरण दिये हैं। नागरिक स्वातन्त्र्य की चर्चा करते हुए साम्यवादी भी इतना उग्र भाषण नहीं देते जितना उग्र भाषण पटना के उच्च-न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश ने दिया था। यह कोई नागरिक स्वातन्त्र्य नहीं है। प्रत्येक नागरिक को देश में शांति बनाये रखने के लिए अपनी भी कुछ जिम्मेदारी समझनी चाहिये। जब लोग अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे तभी वे स्वतन्त्रता के फलों का उपभोग कर सकेंगे। आपको नागरिक स्वातंत्र्य के ऐसे समर्थकों को, जो जीवन भर विदेशी प्रभुओं की नौकरी करके निवृत्त होने पर नागरिक स्वतंत्रताओं का बड़े जोश-खरोश से समर्थन करते हैं, मनमाने ढंग से नहीं बोलने देना चाहिये। उन्हें आपको यह बताना चाहिये कि राज्य के प्रति भी उनकी कुछ जिम्मेदारी है।

श्रीमान, यद्यपि मैं एक बात और कहना चाहता हूं किन्तु मैं अब सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता। वर्तमान स्थिति में जो लोग इस संविधान को विधान-मंडलों के सदस्यों तथा उनके चुने हुए मंत्रियों द्वारा कार्यान्वित करायेंगे, उसका बहुत सदुपयोग कर सकते हैं। मैं यह कहूंगा कि इस संविधान से अधिक से अधिक लाभ उठाना आगामी कुछ वर्षों तक प्रधान-मंत्रियों पर ही निर्भर है। श्रीमान, हमने अशोक काल की ऐतिहासिक देन, अर्थात चक्र को अपने राष्ट्र का ठीक ही प्रतीक चुना है। इस चक्र का अर्थ बताते हुए एक प्रख्यात प्राच्य-वेत्ता रिस डेविस ने कहा है कि इस चक्र का उद्देश्य यह है कि संसार में सत्य और सदाचार के विश्व-सामंज्य के शाही रथ का चक्र गतिशील हो उठे। यदि कोई देश उन सारभूत नैतिक सिद्धान्तों का परित्याग करता है जिन्हें उसने अपना आधार स्वीकार किया है तो उसका भविष्य अंधकारमय ही समझिये। इस देश ने अपने प्राचीन आदर्शों तथा परम्परा का ध्यान रखकर उस चक्र को अपना प्रतीक चुन कर ठीक ही कदम उठाया है जो अशोक का धर्म-चक्र है और जिसे महात्मा गांधी का आशीर्वाद

[श्री थीरुमल राव]

प्राप्त है। इसे ध्यान में रखकर कि उनकी आत्मा इस राष्ट्र का संरक्षण कर रही है और हमारी पताका पर यह प्रतीक है, इस सभा का तथा भविष्य के नेताओं का यह कर्तव्य हो जाता है और कि वे कांग्रेस के सिद्धान्तों को व्यवहार में लायें और इस राष्ट्र के भविष्य को उज्ज्वल बनायें।

———————

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 23 नवम्बर, 1949 के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-319 PSD–17-1-53–320

Con. 3. XI.9.49
320

अंक 11
संख्या 9

बुधवार
23 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ
संविधान का मसौदा–(जारी) 3997-4061

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 23 नवम्बर, सन् 1949

भारतीय संविधान सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

***श्री अरि बहादुर गुरुंग** (पश्चिमी बंगालः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदा समिति के प्रधान को बधाई देने में मैं अपने सहयोगियों का साथ देना चाहता हूं, कि उन्होंने इस महान कार्य को सफलता से पूरा किया है। मुझे केवल कुछ बातें कहनी हैं। पहली बात तो यह है कि संविधान की यह आलोचना कि उसमें समाजवाद की स्थापना का उपबन्ध नहीं है उतनी ही अप्रासंगिक है जितनी यह शिकायत व्यर्थ है कि उससे तानाशाही का मार्ग खुल जायेगा। लोकतन्त्र की असली कसौटी लोगों को ही यह निश्चय करने का अधिकार देना है कि वे किस प्रकार का शासन चाहते हैं। तानाशाही या समष्टिवादी साम्यवाद का प्रश्न तो पूर्णतः इस बात पर निर्भर रहेगा कि वे किस प्रकार संविधान को क्रियान्वित करेंगे। संविधान में लोगों की इच्छा के अनुसार लगातार बहुत से रूपभेद होंगे। संविधान में ऐसे उपबन्ध ही रखे गये हैं। श्रीमान, मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूं कि संविधान एक पवित्र सी चीज़ है। जो भावी संतति को प्रेरणा देता है। यह अपने निर्माताओं के विश्वास और जीवन-दर्शन का प्रतीक होता है। इसे परखने के लिये, किसी को भी विविध देशों के संविधानों पर दृष्टिमात्र डालनी होगी। दूसरे शब्दों में, संविधान जनता की सर्वोच्च इच्छा का प्रतिबिम्ब है कि वे कि प्रकार की शासन-व्यवस्था चाहते हैं। यद्यपि संविधान देश की विधि बन जायेगा, परन्तु उसमें कोई पवित्रता की भावना नहीं होगी क्योंकि उसमें रूपभेद हो सकेंगे जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं। वर्तमान परिस्थितियों में, सब व्यवहारिक प्रयोजनों के लिये यह संविधान एक नमूना है जो भारत में रहने वाले लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त है।

मैं नागरिकता सम्बन्धी अनुच्छेद 5 का निर्देश करना चाहता हूं। जिस वर्ग का मैं हूं वह इसे अत्यधिक महत्व देता है, और मैं अनुभव करता हूं कि यहां एक उल्लेख कर देना मेरा कर्तव्य है कि गुरखों की कुल आबादी में से एक तिहाई लोग भारत में आकर बस गये हैं। जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, एक करोड़ में से, लगभग 67.5 लाख नेपाल में हैं और शेष भारत में बस गये हैं और यहां रहने वाले गुरखा अधिकांश में उन सैनिकों के वंशज हैं जिन्होंने भारत में कई

---

* इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अरि बहादुर गुरुंग]

युद्धों में भाग लिया। हम अनुच्छेद 5 के अधीन नागरिकता के उसी अधिकार का दावा करते हैं, यदि हम उसमें उल्लिखित सब कर्तव्यों को पूरा करें। कुछ समय पूर्व, वर्ष के आरम्भ में, मैं जब गुरखाओं के विषय में बोला था तब मैंने कहा था कि उन्हें पिछड़ी हुई जातियों की श्रेणी में रखना चाहिये। मेरा कहना यह है कि पिछड़े हुए वर्गों के लिये सेवाओं के विषय में विशेष उपबन्ध होना चाहिये था, किन्तु दुर्भाग्य से संविधान के अन्तर्गत ऐसे विशेषाधिकार केवल अनुसूचित जातियों आदिमजातियों और आंग्ल भारतीयों को ही दिये गये हैं, यद्यपि अनुच्छेद 16, कंडिका (4) में लिखा है:

> इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।"

दूसरे शब्दों में, यह एक हाथ से देना है और दूसरे से वापस ले लेना है, यह उन लोगों के साथ सबसे बड़ा अन्याय है जो बहुत पिछड़े हुए हैं, फिर भी उन्हें अनुसूचित जातियों या आदिम जातियों की श्रेणी में होने का विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। मुझे सच्चे हृदय से आशा है कि भावी संसद, जिसके सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जायेंगे, इस भूल को सुधारेगी। भारत की कुल जनसंख्या में लगभग नब्बे प्रतिशत लोग पिछड़े हुए हैं और वे लोग भविष्य में अपने प्रतिनिधियों के द्वारा, देखेंगे कि यह संविधान कैसे क्रियान्वित होता है।

संविधान में शक्तिशाली केन्द्र रखने पर प्रबल आलोचनाएं हुई हैं। मैं अनुभव करता हूं कि विद्यमान परिस्थितियों में शक्तिशाली केन्द्र रखने के सिवा कोई और चारा ही नहीं है।

इस संविधान में अनुच्छेद 3 और 4 तथा 391 के विषय में मुझे पश्चिमी बंगाल के सम्बन्ध में कुछ बातें कहनी हैं। जैसा कि आप जानते हैं, श्रीमान, रेडक्लिफ पंचाट के पश्चात दार्जिलिंग और जलपेगुरी के दो जिले पश्चिमी बंगाल से बिल्कुल काट दिये गये हैं। भारत के उत्तरी सीमान्त की प्रतिरक्षा के दृष्टिकोण से, यह एक ऐसा मामला है जिस पर भारत सरकार को तत्काल ध्यान देना चाहिये। चीन की कुमिनटांग सरकार समाप्त होने वाली है, जिसे भारत का पड़ौसी तिब्बत भी, समाचारों के अनुसार, साम्यवादी षड्यंत्रों का अड्डा बन रहा है। सिक्किम का राज्य और दार्जिलिंग का जिला तिब्बत को भारत संघ से मिलाता है, और आसाम, जो भारत-संघ का पूर्वतम सीमान्त है, एक संकीर्ण भूखंड द्वारा भारत से जुड़ा हुआ है जिसमें दार्जिलिंग जिले तथा जलपेगुरी के भाग शामिल हैं। इन क्षेत्रों को तथा कूच बिहार राज्य को, उनके सामरिक महत्व के कारण, मजबूत बनाना और उनका सुसंगठन करना आवश्यक है।

दार्जिलिंग और जलपेगुरी के जिलों का, जो पश्चिमी बंगाल के उत्तरतम जिले हैं, शेष पश्चिमी बंगाल से कोई सम्पर्क नहीं है, क्योंकि पूर्वी पाकिस्तान बीच में आ जाता है। इस बात से साधारण समयों में भी कई प्रशासकीय असुविधाएं उत्पन्न

हो जाती हैं और आपात के समय तो वे बहुत ही बढ़ जायेंगी। सीमान्त क्षेत्र में यदि ऐसी असुविधाओं को जारी रहने दिया गया तो उनसे गम्भीर जोखिम है। पश्चिमी बंगाल के इन दो जिलों के विषय में यह बात कहने का मेरा उद्देश्य यह है कि यदि हम भारत के मानचित्र को देखें तो हमें पता लगता है कि बिहार और आसाम को मिलाने वाली एक संकीर्ण सी भूखंड की पट्टी है, अर्थात् दार्जिलिंग और जलपेगुरी के जिले हैं। पाकिस्तान भारत के हृदय पर कृपाण के समान खड़ा है। ईश्वर न करे, यदि दुर्भाग्य से पाकिस्तान और भारत के बीच कभी कोई बात हो जाये, तो आसाम को बहुत कम समय में काट दिया जा सकता है, क्योंकि हिमालय के उत्तरी भाग अगम्य हैं; और इन्हीं क्षेत्रों पर सरकार द्वारा तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

***श्री के. हनुमन्थैय्या** (मैसूर राज्य): विमान यात्रा तो हो सकती है।

***श्री अरि बहादुर गुरुंग:** आपके सुझाव के लिये बहुत धन्यवाद, किन्तु वह सब तो हमारी शक्ति पर निर्भर है। वास्तव में आधुनिक युद्धों में विमानों में बमबारी में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। अन्तिम संग्राम, फिर भी, भूमि पर ही हुआ और जीता गया। यदि आप सब युद्धों के, विशेषत: प्रथम महायुद्ध तथा गत महायुद्ध के इतिहास को पढ़ें, तो पता लगेगा कि भाग्य का अन्तिम निर्णय थल सेना ने ही किया। विगत युद्ध में शायद हिरोशिमा पर अणुबम से ही भाग्यनिर्णय हो गया हो, किन्तु वह क्रूरता थी, और यदि युद्ध होने हैं तो वे भूमि पर ही होने चाहिये। मैं अनुभव करता हूं, श्रीमान, कि यदि आपात उत्पन्न हो जाये तो जो आयोग नियुक्त हो उसे इन मामलों पर विचार करना चाहिये जो मैंने बताये हैं, क्योंकि ये दो जिले, दार्जिलिंग और जलपेगुरी, शेष पश्चिमी बंगाल से पूर्णत: कट गये हैं। अब कलकत्ता से दार्जिलिंग को सामान भेजना हो तो बिहार के द्वारा भेजना होता है। अवमूल्यन के कारण भाड़े (प्रथम श्रेणी) की भी कठिनाई हो गई है। कलकत्ता से सिलिगुरी का किराया लगभग 50 रुपये हैं, पर सिलिगुरी से कलकत्ता को 72 रुपये देने पड़ते हैं और सिलिगुरी से कलकत्ता को सामान भेजने में बहुत कठिनाई होती है। एक ही प्रांत में हमें ऐसी कठिनाइयां होती हैं, अत: मेरा सुझाव है कि इन दो जिलों के विषय में कुछ न कुछ करना ही होगा; या तो उन्हें शेष पश्चिमी बंगाल से जोड़ देना होगा या कोई और व्यवस्था करनी पड़ेगी। मुझे ये ही बातें कहनी हैं। श्रीमान, आपका बहुत धन्यवाद है।

ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर (पूर्वी पंजाब: सिख): साहब सदर, अपने दूसरे दोस्तों की तरह मुझे भी यह कहने में झिझक नहीं है कि स्वतन्त्र भारत का यह विधान सचमुच एक शानदार दस्तावेज है। मैं समझता हूं कि यह एक समुद्र है और साथ ही मुझे विश्वास है कि हर गोताजन के लिये यह मुश्किल है कि इस समुद्र में से अच्छे अच्छे मोती निकाल सके और उनकी पहचान कर सके। जिन हालात में यह दस्तावेज़ तैयार किया गया है उनको मद्देनज़र रखते हुये यह कहना जरूरी है कि ऐसा अच्छा विधान बनाना बड़ा ही मुश्किल था। बहुत से अहम सवालात सामने थे और उनको हल करने में बड़ी बड़ी मुश्किलात दरपेश थीं। मसलन माइनारेटीज प्राब्लम एक बड़ा अहम सवाल था। देश में जो हालात थे उनकी मौजूदगी में इस सवाल को हल करना एक बड़ा मुश्किल काम था। मगर जिस खूबी से इसका फैसला किया गया है वह वाकई काबिले कदर है। जुदागाना इन्तेखाबात हमारे देश के लिये एक ऐसी लानत थी जिसने देश के हर

[ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर]

एक काम की तरक्की में रुकावट पैदा की हुई थी। जब जब भी इसके हल के बारे में सोचा गया तो यही जुदागाना इन्तेखाबात सबसे बड़ी रुकावट साबित हुए और जब जब भी इसके इलाज के बारे में कदम उठाये गये तो यह मर्ज़ बढ़ता ही गया। "मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यूं ज्यूं दवा की के मिसदाक यह बीमारी बढ़ती ही चली गई।

हमारे पंजाब के मशहूर शायर डॉक्टर इकबाल ने कहा है:—

"मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा।"

मगर इस सेपरेट एलक्टोरेट के उसूल ने न सिर्फ यह कि शायर के इस ख्वाब को पूरा न होने दिया बल्कि कहने वाले खुद ही मजबूर हुये कि वह किसी न किसी ढंग से उसी रौ में बह जायें जो कि जुदागाना इन्तेखाबात की वजह से शुल्क में पैदा हो चुकी थी यानी अलायहदगी की स्कीमों में मददगार हों। अखीर पर डॉक्टर इकबाल ने अंग्रेज़ को गोया एक किस्म की मोहलत दे दी और घबरा कर गुस्से में कहा:

"निशाने बर्गों गुल तक भी न छोड़ इस बाग में गुलचीं,
तेरी किसमत से रज्म आराइयां हैं बागबानों में।"

यानी ऐ गुलचीं! तू हमारे इस बाग के फूल तो क्या पत्ते भी न छोड़ क्योंकि तेरी किसमत से बागवान जो हैं वह आपस में ही लड़ रहे हैं। इस लिये तुझे मोहलत है कि तू इस बाग के फूल और पत्ते सब उड़ा ले और इसको वीरान कर दे।

इन जुदागाना इन्तेखाब की वजह से बहुत ही बेइत्तफ़ाक़ी हमारे देश के अन्दर ही है और मजहबी झगड़े हुए हैं। अब जिस दिलेरी से जुदागाना इन्तेखाब हटाया गया है मैं समझता हूं कि वह इस विधान की बुनियादी खूबियों में से एक बड़ी खूबी है। इस विधान में से सपरेट एल्कटोरेट को हटा दिया गया है और मजहबी बिना पर इसमें कोई भी रेज़र्वेशन नहीं रखा गया। मैं यह समझता हूं कि यह बातें देश के आदर्श को ऊंचा बनाने में मददगार साबित होंगी। मुझे यह कहने में कोई दरेग़ नहीं है कि इस बात का आसानी से हल होना मुश्किल मालूम होता था क्योंकि माइनारेटीज़ में जिस तरह की बेएतबारी पाई जाती थी इससे मालूम हेाता था कि इस मामले का हल होना बहुत ही कठिन है। मैं यह समझता हूं कि यह हमारे प्राइम मिनिस्टर पंडित जवाहरलाल नेहरू और हमारे डिप्टी प्राइम मिनिस्टर सरदार पटेल और हमारी इस विधान सभा के प्रेसीडेन्ट राजेन्द्र प्रसाद जी के परसनल रसूख और डिसायसिवनेस (decisiveness) का नतीजा है। और इन तमाम लीडरों का जिन्होंने कि मुल्क की आजादी के लिये काम किया है यानी हमारे आनरेबिल मौलाना अबुल कलाम आजाद और दूसरे नेताओं के रसूख व असर से यह नतीजा निकला है। माइनारेटीज को उन पर एतबार था और उन्होंने इसका फैसला करने में जो मेहनत की उसी का यह आज हम नतीजा देखते हैं। हमारे इस विधान में जुदागाना इन्तेखाब की लानत को साफ पर दिया गया है और इसके अलावह रेजर्वेशन का मामला भी तय हो गया है। माइनारेटीड प्राब्लम के लिये

जो एडवाइजरी कमेटी बनी थी उसके प्रसीडेन्ट सरदार पटेल थे। सरदार जी का असर, रसूख, तदब्बुर और दृढ़ इरादा इसमें ज़्यादा काम आया और इस विधान में सेपरेट एलक्टोरेट मामले को साफ़ कर दिया गया और मैं फिर दोहराता हूं कि यह एक बड़ी ही खूबी है, जिसने कि हमारे इस विधान को चमकाया है।

कुछ बातें मैं विधान के मुतालिक और कहना चाहता हूं। चूंकि यह हमारे स्वतन्त्र भारत का विधान है। इस विधान का जनता के साथ ताल्लुक है। इसलिये यह विधान विधान ही नहीं है बल्कि इस विधान के जो दफ़ात हैं उन्होंने हमारे लोगों के मारल को भी ऊंचा रखना है। इसलिये मैं समझता हूं कि इस विधान में और दूसरे किसी विधान में फ़र्क़ ज़रूर होना चाहिये। अंग्रेज़ का यह तरीक़ा रहा है कि कोई बात जो वह न देना चाहते थे तो वह लफ़्ज़ों के हर फेर से एक हाथ से देते थे और दूसरे हाथ से वापस ले लेते थे। यानी जो काम के दफ़ात या चीज़ें होती थीं उनके आख़िर में प्रोवीज़ो (proviso) के ज़रिये से वह कन्डीशन लगाते थे जिसकी वजह से उसका असल मक़सद कभी भी पूरा नहीं होता था। अगर हमारे इस विधान में इस क़िस्म की कोई कमी है तो ऐसा नहीं होना चाहिये। या उसे दूर करना चाहिये। बाज़ मेम्बर साहबान ने फन्डामेन्टल राइट्स के चैप्टर पर कुछ नुक़ताचीनी की है, और बुनियादी हक़ूक़ पर लगाई गई पाबन्दियों के मुतालिक़ कहा है। मैं यह समझता हूं कि शायद सरकारी मज़बूरियों की वजह से कुछ न कुछ पाबन्दियों को ज़रूरी ख्याल किया गया है लेकिन मैं एक दो बातों की तरफ़ ज़रूर तवज्जो दिलाना चाहता हूं और यह कहना चाहता हूं कि इस क़िसम की पाबन्दिया नहीं होनी चाहिये। मसलन जायदाद और ज़मीनों के मुतालिक़, ज़मीनों और जायदाद के लेने देने पर जो आज़ादी की गई है कि हर एक को हक़ है कि वह किसी जायदाद को डिस्पोज़ आफ़ कर सके या खरीद सके। इसके बारे में जो मेन क्लाज़ है उसमें एक तरफ़ से तो यह हक़ दिया गया है मगर उसी दफ़ा की क्लाज़ 5 के प्रोवीज़ो के तहत जो पाबन्दी लगाई गई है उसमें कहा गया है कि उसके बारे में जो पहला कानून बना है वह कायम रहेगा। यह क्लाज़ किसी और सूबे पर असर करता हो या न करता हो लेकिन हमारे पंजाब पर यह बहुत असर करता है। पंजाब में एक इनतेकाल आराज़ी एक्ट बड़ी देर का बना हुआ है जिसे लैन्ड एलीनेशन एक्ट कहते हैं। इस एक्ट की रू से ऐसा होता है कि अगर एक आदमी जो वाकई तौर पर काश्तकारी का काम करता भी हो लेकिन ज़मींदार ज़ातों में से न हो वह ज़मीन नहीं खरीद सकता है। चाहिये तो यह था कि इस क़िस्म की पाबन्दी को एकदम उठा दिया जाता। लेकिन ऐसा नहीं किया गया है क्योंकि इस दफ़ा के साथ जो प्रोवीज़ो लगाया गया है उससे कुछ कनफ्यूजन सा पैदा हो गया है। इससे यह पता नहीं चल सकता है कि आया इसको उठा दिया गया है या नहीं। इस बात को साफ करना ज़रूरी है। पंजाब को इससे बहुत नुक़सान पहुंचा है। वहां के ज़मींदारों को भी इससे नुक़सान पहुंचता है। क्योंकि जिसके पास रुपया हो वह पाबन्दियों की वजह से ज़मीन नहीं खरीद सकता। इस लिये जो बेचना चाहें उन्हें कीमत कम मिलती है। पंजाब मुतवस्सित दरजे के ज़मींदारों का सूबा है। इस क़ानून से छोटे ज़मींदारों की बहुत छोटे और बड़ों का बहुत बड़े बन जाने की सम्भावना है। ज़्यादा वज़ाहत के लिये वक्त नहीं है। यह ग़ैर क़ुदरती चीज़ है। लिहाज़ा इस चीज़ को उड़ा देना चाहिये था। बुनियादी हक़ूक़ पर पाबन्दियों के सिलसिले में दूसरी बात है: दफा 22 क्लाज 3 की सब-क्लाज़ बी जिसके ज़रिये डिटेन्शन को क़ायम रखा गया है। मैं समझता हूं कि स्वतन्त्र भारत के विधान

[ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर]

में जैसे माननीय योग्य मेम्बर डॉक्टर कुंजरू साहब ने कहा है डिटेन्शन का तरीक़ा क़ायम नहीं रहना चाहिये। हम चाहते हैं कि लोगों में जनता में एतबार हो और जनता महसूस करे कि आज़ाद भारत के विधान में एक तबदीली हुई है और इस किस्म की बातें लोगों में विश्वास नहीं पैदा करेंगी कि सचमुच अब कोई तबदीली हो गई है अब हम आज़ाद हो गये हैं। और आज़ाद भारत का यह विधान बनाया जा रहा है। मेरे ख्याल में बगैर मुक़दमा चलाये किसी को भी डिटेन (detain) नहीं करना चाहिये। एक दो बातें मैं डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स के मुतालिक़ कहना चाहता हूं। उसमें जो प्रिंसिपल्ज़ दिये गये हैं वह बड़े ही शानदार हैं और मैं समझता हूं कि कांग्रेस गवर्नमेंट की शान के बिल्कुल शायान हैं। हम जनता से जो भी कहते रहे हैं वही सब बातें उनमें रख दी गई हैं। मगर दफ़ा 37 में उनकी कानूनी पोज़ीशन को उड़ा दिया गया है। अगर सरकारी मजबूरियों की वजह से दफ़ा 37 का क़ायम रखना ज़रूरी है, तो मैं समझता हूं कि दफ़ा 37 की मौजूदगी में डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स का जो चैप्टर है वह विधान में न हो तो अच्छा है। अगर यह नहीं हो सकता तो दो बातों के मुतालिक़ मैं ज़ोर दूंगा कि उन्हें डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स के चैप्टर से निकाल कर फ़न्डामेन्टल राइट्स के चैप्टर में रख देना चाहिये।

एक बात तालीम के मुतालिक़ कि 14 साल की उम्र तक जो लाज़मी तालीम डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स में रखी गई है मैं समझता हूं कि यह फन्डामेन्टल राइट्स में होना चाहिये। और दूसरी बात जो कम उम्र और जिन में काम करने की ताक़त नहीं है उनके मुतालिक़ यह कहा गया है कि उनसे काम नहीं लेना चाहिये उन पर पाबन्दी होनी चाहिये काम न लेने की। यह बात एक ज़रूरी बात है और मैं समझता हूं कि यह बात भी फ़न्डामेन्टल राइट्स के चैप्टर में होनी चाहिये।

आख़री बात जो मैं कहना चाहता हूं वह लैंगुएज के मुतालिक़ है। लैंगुएज का सवाल बहुत देर तक मुल्तवी रखा गया और मुझे खुशी है कि आख़िर में एक बात तय हो गई और ज़बान के मुतालिक़ हम फ़ैसला करने में कामयाब हो गये। तो अब इस फ़ैसले के बाद मैं समझता हूं कि 15 साल के अरसे तक अंग्रेज़ी का जारी रखना ठीक न होगा। मैं समझता हूं कि यह हमारी ग़ुलामाना ज़हनियत का इज़हार है। हम आज़ाद हो चुके हैं मगर हमारी हालत उस परिन्दे की तरह है जो ज़्यादा देर तक पिंजरे में बन्द रहने की वजह से आज़ादी का एहसास खो चुका हो। अब पिंजरा टूट चुका है और हम आज़ाद हो चुके हैं लेकिन चूंकि हम आज़ादी का एहसास खो चुके हैं इस लिये हम अपने आपको कैद समझते हैं। मैं इसलिये अंग्रेज़ी ज़बान का मुखालिफ़ नहीं हूं कि वह कोई बुरी जबान है बल्कि इसलिये कि हमको यह शोभा नहीं देता कि हम उस गुलामी के निशान को देर तक अपने देश में क़ायम रखें। अगर एक भाषा का फैसला हम कर पाये हैं तो मैं समझता हूं कि वह भाई जिनकी मिन्नत समाजत करके, दलील से, प्यार से, हम एक भाषा को मनवा चुके हैं, तो अब उनकी वजह से इतना लम्बा अरसा अंग्रेज़ी को जारी रखना उनको राज़ी करने की बहुत ज़्यादा क़ीमत देना है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा हो चुकी है हिन्दी में हमारा कारोबार चले। 15 साल की मियाद तो एक ऐसी मियाद है जो पुश्त भर (जनरेशन) की उम्र कही जा सकती है।

अव्वल तो मैं सेठ गोविन्द दास के ख्याल से मुत्तफ़िक़ हूं कि यह हमारा विधान हमारी राष्ट्रभाषा में होना चाहिये और उसी विधान को मुसतनद विधान माना जाये। मुझको इस सिलसिले में बाबू रामनारायण सिंह जी की बात बहुत ठीक मालूम होती है कि आया हम यह विधान अपने देश में बना रहे हैं या इंग्लैंड में। इसलिये मैं समझता हूं कि हम अपने विधान को अपनी राष्ट्र भाषा में चलायें और अभी से इस पर अमल करना शुरू करें। अगर यह अभी से शुरू नहीं हो सकता तो मैं समझता हूं कि यह 15 साल का अरसा कम करके 5 साल या ज़्यादा से ज्यादा 6 साल कर देना चाहिये। और हमको इस तरह तसल्ली हो सकती है और हम जल्दी से जल्दी इस गुलामी की ज़हनियत को छोड़ सकते हैं और हम अपनी देश की ज़बान में और राष्ट्र भाषा में सब काम कर सकते हैं।

एक बात मैं और कहना चाहता हूं और यह ठीक है, बाज़ भाइयों ने कहा है और जैसा कि सरदार हुकुम सिंह जी ने कहा कि मुलाज़मतों में जो रेज़र्वेशन उड़ा दिया गया है उससे सिखों को तसल्ली नहीं है। जैसाकि मैंने पहले ज़िक्र किया है जुदागाना इन्तेख़ाब के उड़ाने में सब माइनारेटीज़ मुत्तफ़िक़ हो गई। मुलाज़मतों में जो रेज़र्वेशन का ख्याल है मैं उसको मानता हूं कि इससे सिख कम्युनिटी में या किसी और माइनारेटी कम्युनिटी में कहीं न कहीं डिस्सेटिसफ़ेक्शन है यह माना जा सकता है लेकिन विधान में यह चीज़ रखना बाक़ी दफ़ात के साथ मुताबक़त नहीं खाता। रेज़र्वेशन उड़ा देने के बाद हर एक आदमी मैरिट पर लिया जायेगा और इस तरह से हर एक को अपने में मैरिट पैदा करने की ख्वाहिश पैदा होगी और मेजारेटी कम्युनिटी पर भी इस से एक और ज़िम्मेदारी आ जाती है और माइनारेटी कम्युनिटी भी इसे महसूस करेगी कि वह अपने मैं क़ाबलियत या मैरिट पैदा करने की कोशिश करे।

आख़िर में सिर्फ़ एक बात मैं और कहना चाहता हूं। बेशक़ डॉ. अम्बेडकर और उनकी ड्राफ्टिंग कमेटी के बाक़ी मेम्बरों ने यह जो मसविदा तैयार किया है उस पर उन लोगों ने बड़ी मेहनत की है और मैं समझता हूं कि इतने थोड़े अरसे में और देश के नामुवाफ़िक़ हालात में यह मसविदा तैयार किया है। इसलिये वह मुबारक़बाद के मुस्तहक़ हैं। मगर हम इसमें ठीक न होंगे और हम अपना फ़र्ज़ पूरा न करेंगे अगर हम अपने उन नेताओं और भाइयों को ख़िराज़ तहसीन न दें। मेरी मुराद अपने महान नेता महात्मा गांधी और उन बेशुमार और गुमनाम शहीदों से है जिन्होंने देश की आज़ादी के लिये कुरबानियां कीं, जिन्होंने बेज़र, बेघर, बेदर और बे परस्त होकर और अपना घर छोड़कर जिसे आज पाकिस्तान कहा जाता है इस देश की आज़ादी के लिये काम किया है। और मैं श्री जसपतराय कपूर जी के उन अलफ़ाज़ से मुत्तफ़िक़ हूं कि उन शरणार्थियों की तरफ़ भी ध्यान देना चाहिये। उन्होंने देश की जो खिदमत की है, देश की जो सेवा की है, वह काबिल क़दर है, उनकी तसल्ली लाज़िमी है। उनकी तसल्ली के बगैर हम इस विधान को चलाने में कामयाब पूरे तौर पर नहीं होंगे। इन अलफ़ाज़ के साथ मैं इस विधान की पूरे तौर पर ताईद करता हूं और मैं समझता हूं कि यह हर एक के लिये काबिल क़बूल होगा और इन हालात में इससे अच्छा विधान बनाना मुश्किल था।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (युक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा इस सदन में प्रस्तावित संकल्प का समर्थन करने यहां आया

[श्री आर.वी. धुलेकर]

हूं। संविधान पर इन तीन वर्षों में बहुत लम्बी चौड़ी चर्चा हुई है और इसलिये अब संविधान की सब त्रुटियों को और अच्छाइयों को बताने का समय नहीं रहा है। मुझे संतोष है कि संविधान को—समूचे को—लिया जाये तो वह बहुत ही अच्छा है। सबको पता है कि दूध में 75 प्रतिशत से भी अधिक जल होता है और यदि संतुलन अच्छा हो तो उससे हमारी शक्ति की रक्षा होती है और हमें बल मिलता है उससे हम दीर्घायु होते हैं। इसलिये मैं त्रुटियों पर अधिक समय लगाने का प्रयत्न नहीं करूंगा। चाहे वे 75 प्रतिशत से भी अधिक हो, मुझे कोई चिन्ता नहीं है, मुझे तो यही चाहिये कि यदि जमाखाते में रक़म ज़्यादा हो और यदि हमारे बनाये हुए संविधान में वे सब सारतत्व हों जो इस जीते जागते भारत के लिये अपेक्षित हैं तो, मुझे विश्वास है कि यह अच्छा संविधान है। अतएव मैं उन विभिन्न बातों पर ध्यान दूंगा जो संविधान के पक्ष में हैं और मैं कहना चाहता हूं कि ये बातें, जो मैं आपके समक्ष पेश करने जा रहा हूं, इस देश को इस संसार में समृद्धि और सुख का लम्बा जीवन देने में लिये काफ़ी होंगी।

पहली बात यह है, कि हमने एक लौकिक राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। मुझे विश्वास है कि भारत में जो धर्म है वह सदा से लौकिक ही है। यह परस्पर विरोधी बातें दिखाई दे सकती है किन्तु मैं यह कहूंगा कि भारत में हमने कभी किसी व्यक्ति का अनुसरण नहीं किया और हम कभी किसी पुस्तक के अनुयायी नहीं बने। हमने कभी किसी पन्थ का अनुसरण नहीं किया, कभी किसी 'वाद' में विश्वास नहीं किया। वेदों और उपनिषदों में सब में लिखा है कि हम कभी किसी एक व्यक्ति या ग्रन्थ के अनुयायी नहीं हैं। वेदों के मंत्रों में हम देखते हैं कि जिस व्यक्ति ने किसी महान सत्य को कभी आत्मसात किया—वह मंत्र उसी के नाम से चलता है। हम इस देश में कभी भी रूढ़िवादी नहीं थे और हम कभी भी कट्टरपंथी थे ही नहीं। मैं कह सकता हूं कि लोग कहते हैं कि बौद्धमत भारत से निकाल दिया गया। मैं कहता हूं नहीं—बौद्धमत केवल 'मत' के रूप में भारत से चला गया किन्तु बौद्धमत की सब अच्छाइयां अब भी शेष हैं। हिन्दुमत में बहुत हद तक पशु-बलि की प्रथा आ गई थी। बुद्ध का यह प्रभाव शेष रहा कि पशुबलि और धर्मान्धता भारत से उठ गई। मुझे आशा है, श्रीमान, कि समय की गति के साथ, इस्लाम भी इस अर्थ में भारत से चला जायेगा कि भारत में कट्टरता नहीं रहेगी, और इस देश के मुस्लिमों में से धर्मान्धता मिट जायेगी। और इसलिये मुझे यह सोच कर प्रसन्नता है कि हमने यह सिद्धान्त रख दिया है कि इस देश पर किसी व्यक्ति, धर्म या मत या किसी भी वाद का शासन नहीं होगा।

दूसरी बात, जो बहुत बड़ा कार्य है, वह है वयस्क मताधिकार। प्रत्येक व्यक्ति, जो 21 वर्ष की आयु का है, जिसमें संविधान में उल्लिखित कोई अयोग्यता नहीं हैं, राष्ट्रपति के पद तक चढ़ने का अधिकारी है, जो सबसे बड़ा सम्मान है जो यह देश उसे दे सकता है और यह एक बड़ी चीज़ है बाज़ार में चलने वाला व्यक्ति सबसे ऊंचे स्थान पर चढ़ सकता है जो भारत उसे दे सकता है।

तीसरी बात यह है कि हमारे यहां ग्राम पंचायतें बनेंगी, जो निम्नतम आधार पर लोकतन्त्र का विस्तार है कुछ वर्षों से भारत में लोकतन्त्र चल रहा है, किन्तु

जनसाधारण ने कभी यह अनुभव नहीं किया कि उसे लोकतंत्र मिला है। जब हम अपने लोकतंत्र को गांवों में ले जाकर ग्राम-पंचायतें स्थापित करेंगे और जनसाधारण को स्वशासन देंगे तो मुझे विश्वास है कि भारत इंगलिस्तान या अमरीका से कहीं अच्छा रहेगा।

चौथी बात जो मैं संविधान के पक्ष में कहना चाहता हूं वह संयुक्त निर्वाचन है। अल्पसंख्यकों के प्रश्न को हटा दिया है। अब पृथक मतदाता-मंडल नहीं होंगे। प्रत्येक मनुष्य जो भारत में रहता है तथा भारत में पैदा हुआ है बराबर है और वह किसी धर्म या मत विशेष का अनुयायी है इस आधार पर वह राज्य से किसी पक्षपात का दावा नहीं कर सकता। मुझे यह बात सोच कर प्रसन्नता है कि अंग्रेज़ों द्वारा छोड़ा गया महान कलंक, महान अधर्म सब मिटा दिया गया है।

फिर पांचवीं बात यह है कि देशी राज्यों को मिटा दिया गया है। मुझे खुशी है कि नरेश, देशी राज्यों के शासक नरेश बहुत उदार निकले, और उन्होंने अपने आप की बलि देकर महानता दिखाई। मैं जानता हूं कि उस बलिदान के बिना, हमारे माननीय सरदार पटेल को सफलता नहीं मिलती और इसलिये मैं कहता हूं कि जब मैं सरदार पटेल की बुद्धिमानी और दृढ़ता की सराहना करता हूं तो मैं भारत के उन पुत्रों की, नरेशों, राजा महाराजाओं की भी सराहना करता हूं जो अपने आपको बलिदान करके इस देश के जनसाधारण के समान बन गये।

फिर, श्रीमान, छठी बात है, अन्तर्राष्ट्रीय शांति। हम अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिये प्रार्थना करते हैं। हम सदा उसमें विश्वास करते रहे हैं, और मुझे यह कहने में गर्व है कि भारत ने अपने राज्य क्षेत्र के बाहर कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया है, और मुझे इस बात पर प्रसन्नता है। सिकन्दर महान या सिकन्दर डाकू के समान भारत के किसी राजा ने किसी दूसरे देश पर कभी चढ़ाई नहीं की। नादिरशाह या महमूद ग़जनी या मौहम्मद ग़ौरी के समान भारत का कोई राजा किसी विजय या प्रदेश को प्राप्त करने के लिये देश के बाहर नहीं गया। उस बात पर मुझे प्रसन्नता है। अतएव जब हम कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति हमारा अन्तिम ध्येय है तो मैं कह सकता हूं कि समस्त संसार को हम पर विश्वास करना चाहिये। जब इंगलिस्तान या अमरीका कहता है कि वे शांति चाहते हैं तो उन पर विश्वास नहीं होता। सबको उन पर संदेह है, क्योंकि उन लोगों ने कभी अपने जीवन में यह सिद्ध नहीं किया कि उन्होंने जो कहा है वह सच है। इंगलिस्तान तथा अन्य देश अपने देशों से बाहर गये और अन्य देशों पर आक्रमण किया, उन पर हमला करके उन्हें लूटा। अतएव जब वे आज संयुक्त राष्ट्र संघ में जाकर कहते हैं कि उन्हें शांति से प्रेम है तो उन पर विश्वास नहीं किया जाता। मैं कहता हूं कि श्रीमान, कि भारत का विश्वास किया जायेगा और संसार में सबको कोई हमारी इस बात पर विश्वास कर लेगा कि हम अन्तर्राष्ट्रीय शांति चाहते हैं। जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू अमरीका गये, तब उनका ऐसा स्वागत क्यों किया गया? लोग हजारों लाखों की संख्या में उनका अभिवादन करने क्यों आये? इसका कारण यह है कि उनके पीछे एक महान इतिहास है। वे जानते थे कि वे ऐसे देश से गये थे जहां याज्ञवल्क, महात्मा गांधी, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द और सर रविन्द्रनाथ ठाकुर पैदा हुये थे। वे लोग भारत से बाहर गये थे—तलवार लेकर नहीं, शांति का लक्ष्य लेकर गये थे। और इसलिये जब पंडित जवाहरलाल नेहरू अमरीका गये और उन्होंने कहा कि हम शांति के समर्थक हैं तो उनका विश्वास किया गया।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

अब, संविधान के पक्ष में सातवीं बात यह है कि अब अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र में होंगी। यह बहुत अच्छी वस्तु है। आरम्भ में शब्द यह हैं "भारत एक संघ होगा।" मैं कहा हूं कि "संघ" सुखद शब्द नहीं है। संघ का सदा यही आशय और भाव होता है कि पहले विसंगठन था, अतएव हम अब संगठित हो रहे हैं। मैं कहता हूं कि वह सुखद शब्द नहीं है। किन्तु जब हम अवशिष्ट शक्तियों पर आये और हमारी सद्बुद्धि की विजय हुई तब हमने यह रखा कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र में सकेंद्रित होनी चाहिये। इसका अर्थ यह है कि हमारे यहां शक्तिशाली केन्द्र होगा और भारत सदा अविभक्त तथा प्रबल रहेगा।

फिर, श्रीमान, आठवीं बात यह है कि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया है। कुछ लोग कह सकते हैं कि पन्द्रह वर्ष अंग्रेजी भाषा का शासन रहेगा। दूसरे कहते हैं, कि अन्याय हुआ है, क्योंकि हिन्दी भाषा को आज से भी लागू नहीं कर दिया गया। किन्तु मैं कहता हूं कि हमने जो प्रस्ताव पारित किया है वह एक महान विजय है। अंग्रेज भारत में दो सौ वर्ष से भी अधिक रहे, परन्तु उन्हें भारत से जाना पड़ा। इसी प्रकार, मैं अपने सब मित्रों को हिन्दी के प्रेमियों को, आश्वासन देना चाहता हूं कि अंग्रेजी भाषा भी एक दो वर्ष में ही भारत से चली जायेगी, और पांच वर्ष के पश्चात अंग्रेज़ी में लिखा कोई पत्र देहातों में पढ़वाना मुशकिल हो जायेगा। मुझे इस पर पूर्ण विश्वास है और इसलिए मैं अनुभव करता हूं कि चाहे कुछ भी निर्बंधन लगाये गये हों, वे ऐसे नहीं हैं कि हिन्दी को अपना उपयुक्त स्थान लेने से रोक सकें।

नौवीं बात जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं यह है कि कुछ लोग कहते हैं इस संविधान में समाजवाद या साम्यवाद के पक्ष में कोई बात नहीं है। मैं कहता हूं, श्रीमान, कि कोई भी 'वाद' चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, कट्टरता पैदा करता है। प्रत्येक वाद कट्टरता और धर्मान्धता का समानार्थक ही है। यदि हमारे संविधान में लिखा होता कि समाजवाद हमारा ध्येय है या साम्यवाद हमारा लक्ष्य है, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि चार पांच वर्ष में ही, हजारों कट्टर लोग देश भर में यह कहते फिरते कि इस संविधान का जो विरोध करेगा उसे मार डाला जायेगा और उसकी हत्या कर दी जायेगी। आप रूस जाकर देख क्यों नहीं आते? जो भी साम्यवाद का विरोधी है उसे कोई भी मार सकता है। इसलिये अपने सांविधानिक ध्येय में कोई भी वाद न रखकर हमने बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण बात की है। भारत अब किसी 'वाद' में नहीं है। अतः मुझे प्रसन्नता है कि हम इन 'वादों' में से साफ निकल गये हैं। हम किसी 'वाद' में विश्वास नहीं करते। हम अपनी वैयक्तिक बुद्धिमानी में, अपनी सामूहिक बुद्धिमत्ता में, अपने राष्ट्र की बुद्धिमानी में और संसार की बुद्धिमत्ता में विश्वास करते हैं। हमने सदा यही अनुभव किया है कि यदि हम 20, 50 या 100 व्यक्ति मिल कर बैठेंगे तो हम कोई ऐसी वस्तु की सृष्टि कर लेंगे जो किसी विगत, वर्मंमान या भावी 'वाद' से अच्छी होगी।

दसवीं बात यह है। इस संविधान में लोकतन्त्र के लिये पूरा क्षेत्र है। लोकतन्त्र क्या है? मैं उसकी परिभाषा करता हूं, एक शब्द में। लोकतन्त्र सहिष्णुता है। कोई व्यक्ति जो लोकतन्त्र की इस छोटी सी परिभाषा को नहीं समझ सकता वह कभी लोकतंत्री नहीं हो सकता है। कोई व्यक्ति, जो किसी समिति से बाहर निकल कर

असंतुष्टता का अनुभव करता है और यही राग अलापता रहता है कि उसकी बात नहीं सुनी गई और सदा शिकायत ही करता रहता है, मैं कहता हूं कि वह लोकतन्त्री नहीं है। जब दस व्यक्ति साथ मिलकर बैठते हैं या अपने दिमाग से सोचते हैं तो वे या तो सहमत होते हैं या असहमत। यदि वे किसी नतीजे पर पहुंचते हैं तो मेरा यह विचार है और विश्वास है कि यह लोकतन्त्रात्मक संकल्प है और उसका पालन होना चाहिये। मैं कहता हूं, कि जब हम 300 और उससे अधिक व्यक्ति यहां मिल कर बैठे, अपना दिमाग़ लगाया और एक संविधान बना डाला—हो सकता है कि मेरा संकल्प पारित हो गया और अन्य व्यक्ति अनुभव कर सकते हैं कि उनका संकल्प पारित नहीं हुआ, यह प्रश्न यहां नहीं है—यह सबके मिले जुले प्रयत्नों का फल है और इसलिये इसका पालन होना चाहिये। यह पवित्र है।

फिर, राष्ट्रपति का पद है। यह बहुत बड़ी वस्तु है। हमारे प्राचीन काल में भी और हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी हम सदा देखते हैं कि जब भी हम कोई धार्मिक विधि करते हैं, तो हम सर्वप्रथम सदा गणपति की पूजा करते हैं, जो विश्व का शक्तिशाली स्वामी है, और हम उसे कहते हैं कि वह बैठकर हमारे कृत्यों को देखे, हमारे कार्य में और धार्मिक विधि में पथ-प्रदर्शन करे। फिर हम उस विधि को करते हैं और अन्त में हम कहते हैं:

गच्छ गच्छ सर्वश्रेष्ठ,
इष्ट कार्य प्रसिद्ध्यर्थ पुनरागमनायच।
अर्थात् आपने इष्ट कार्य पूरा कर दिया है, कृपया जाइये, पर फिर भी आइये।

अत: उस पवित्र परम्परा पर चलते हुये, श्रीमान, मैं कहता हूं कि, अध्यक्ष महोदय, आपने हमारी कार्यवाही को चलाया है और हमें यह संविधान दिया है और अब मैं प्रार्थना करता हूं, श्रीमान, कि संविधान सभा के अध्यक्ष (President) के रूप में आप चले जायें, किन्तु संविधान के अध्यक्ष (राष्ट्रपति President) के रूप में, आप कृपया वापस आइये।

मुझे विश्वास है कि समस्त सदन की, मेरे साथ यही इच्छा है कि आप इस उच्च पद पर पुन: चुने जायेंगे।

***अध्यक्ष:** आप ऐसे मामलों की चर्चा न करें तो अधिक अच्छा हो।

***श्री आर.वी. धुलेकर:** अन्त में मैं, श्रीमान, आपको तथा डॉ. अम्बेडकर को हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूं। हमारे समक्ष जो कार्य था वह बहुत भारी था। मैं इसे 'हरकुलियन' कार्य नहीं कहना चाहता क्योंकि बहुत छोटा शब्द है। उन्होंने महान् पांडव भीम के योग्य कार्य किया है और अपने नाम—भीम राव अम्बेडकर—को सार्थक बनाया है—उन्होंने अपने नाम भीमराव के अनुरूप ही कार्य किया है—और उन्होंने इस कार्य को स्पष्ट दृष्टि से, स्पष्ट विचारधारा से और स्पष्ट भाषा से किया है। आदि से अन्त तक वे बहुत स्पष्ट थे। उन्होंने सदा विरोधी के विचारों को समझने का प्रयत्न किया और उन्होंने उनके साथ सहिष्णुता बरती और अपने भावों को सदा अत्यन्त स्पष्ट भाषा में रखना चाहा। हम उनके बहुत आभारी हैं।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

मैं हमारे कांग्रेस प्रधान का भी—जो कुछ समय के लिये श्री कृपलानी थे और बाद में माननीय पट्टाभि सीतारामैय्या थे—बहुत आभारी हूं। परदे के पीछे दल के व्यक्ति के रूप में उन्हें कई बैठकें करनी पड़ीं और उन्होंने उन बैठकों को ऐसी सफलता से किया कि कांग्रेसजन मिल कर इस समूचे सदन की स्वीकृति के लिये ऐसे सुन्दर तरीक़े से संविधान बना सके। अतएव, मैं हमारे कांग्रेस प्रधान, पट्टाभि सीतारामैय्या का वैयक्तिक रूप से धन्यवाद देता हूं, और हमारा आभारयुक्त धन्यवाद सब सदस्यों को भी है जिन्होंने हमारे साथ सहयोग किया है।

अन्त में मैं, श्रीमान, मैं राष्ट्रपिता गांधी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि देना चाहता हूं। इन शब्दों के साथ मैं समाप्त करता हूं; ओम् शांति, ओम् शांति, ओम् शांति।

***डॉ. पी.के. सेन** (बिहार: जनरल): मैं अनुभव करता हूं कि मेरा अपने आप के प्रति और इस महान् सभा के प्रति यह कर्तव्य है कि इस महान् उपलक्ष्य पर कुछ शब्द कहूं जब कि हम यह संविधान देश और समस्त विश्व के सामने पेश कर रहे हैं।

अब तक यह संविधान एक काग़ज़ी लेख था और वह 26 जनवरी 1950 तक ऐसा ही रहेगा। फिर ऐसा अवसर होगा कि यह जीवन प्राप्त कर लेगा, क्योंकि काग़ज़ के संविधान से राष्ट्र के जीवनों पर, व्यक्तियों या समुदाय के रूप में, शासन और विनियमन नहीं होगा, वरन् उसके पीछे जनता की जो भावना होगी उससे वास्तव में विनियमन होगा, उसी से वह लोकतन्त्र स्थापित होगा जो हम सब स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस सदन के प्रांगण पर बहुत सी बातें हुई हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि संगठन की उस भावना को त्याग दिया गया है, जिससे लोकतन्त्र में सफलता प्राप्त हो सकती थी। मैं इससे सहमत नहीं हूं। सदन के प्रांगण में जो कटु विवाद हुए हैं, समय समय पर जो महान् मतभेद पैदा हुए हैं, उनसे केवल यही पता लगता है कि दृष्टि कोण का, विचारों का और मतों का अन्तर होते हुए भी, वे सब एक ही बात की ओर संकेत करते हैं कि वे सब पारस्परिक सद्भावना से बद्ध हैं, जिसे आप चाहें तो 'मध्यमार्ग' कह सकते हैं, और उन्होंने समन्वय की भावना ये यह 395 अनुच्छेदों का संविधान साथ मिल कर तैयार कर डाला है। जब यह जीवनयुक्त बन जायेगा, जब वह अमल में आ जायेगा, वह जीतीजागती वस्तु बन जायेगा, और इसलिये सब जीवित वस्तुओं के समान वह बढ़ेगा और उसका विकास होगा। हमें आशा करनी चाहिये कि वह कभी भी गलेगा नहीं, किन्तु जनता की वृद्धि और विकास के साथ उसका भी विकास और वृद्धि होगी। जनता और केवल जनता की इस संविधान को अच्छा बना सकती है, उसे वास्तव में लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये क्रियान्वित कर सकती है।

यहां संविधान के विषय में बहुत सी बातें कही गई हैं। किन्तु मैं फिर भी यही अनुभव करता हूं कि उन सब बातों के पीछे लगभग सब में एकता है, मतभेद नहीं है। इसे 'मध्यमार्ग संविधान' कहा गया है। खैर, 'मध्यमार्ग' ही बुद्धिमत्ता का सार है। यदि आप अपने दृष्टिकोण के साथ साथ विरोधी के दृष्टिकोण को भी देखने लगें, तभी आप संयुक्त हो सकते हैं—केवल संविधान निर्माण के लिये ही नहीं वरन् राष्ट्र के जीवन के विनियमन के लिये भी। अतएव यदि यह मध्यमार्गीय संविधान है तो मैं उसे गर्व की बात समझता हूं। आप अनुभव करते

हैं कि बहुत सी ऐसी बातें कर दी गई हैं जो सर्वथा क्रांतिकारी ढंग की है। आप अनुभव करते हैं कि आप बिल्कुल नये मार्ग पर हैं और यदि आप इन मूल बातों के विषय में सहमत हो सके हैं तो आपकी यात्रा विजय-यात्रा ही होगी।

सर्वप्रथम, हमने विधि द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया है।

फिर देशी नरेशों की समाप्ति है और इन सब रियासतों के एकीकरण का आश्चर्यजनक कार्य है।

फिर विशेष निर्वाचक वर्गों की समाप्ति है, स्थान-रक्षण की समाप्ति है और स्थान-रक्षण को समाप्त करने के उद्देश्य से कुछ अल्पसंख्यकों द्वारा अधिकारों का स्वेच्छा से समर्पण है। निस्संदेह कुछ विशेष मामलों में स्थान-रक्षण रखा गया है और वह सीमित अवधि के लिये है, किन्तु उसे हम सबने एकमत होकर न्यायपूर्ण और अच्छा उपबन्ध समझा है और स्वीकार किया है।

फिर केन्द्र और विविध अंगों अथवा प्रान्तों अथवा राज्यों के बीच सम्बन्धों को ठीक कर लिया गया है और हम देखते हैं कि वहां भी, विजय ही हुई है, यद्यपि दृष्टिकोणों का अन्तर हो सकता है; कुछ व्यक्तियों का यह खयाल है कि केन्द्र को अत्यधिक शक्ति दे दी गई है, और उसका अन्त वास्तव में तानाशाही की सर्वोच्चता में हो सकता है; दूसरी ओर कुछ लोगों का यह ख्याल है कि केन्द्र को और भी अधिक शक्ति मिलनी चाहिये थी।

किन्तु, जैसा कि मैं इसे समझता हूं मैं सच्चे हृदय से निवेदन करता हूं, हम ऐसे स्थान पर आ पहुंचे हैं, जहां फिर, संविधान के क्रियान्वित होने से ही पता लगेगा कि उसमें जो कुछ लिखा है वह कहां तक ठीक है। एक के बाद एक, कई माननीय सदस्यों ने सदन के प्रांगण में आगे बढ़ कर इसी बात पर अपना विश्वास और भरोसा प्रकट किया है कि केवल संविधान से ही उसका औचित्य सिद्ध नहीं होगा, वरन् संविधान और जनता दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव और प्रतिक्रिया इन सबसे अन्त में सिद्ध होगा कि संविधान सराहनीय है या निंदनीय।

फिर श्रीमान, मैं इस बात की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि सदन ने, कुछ मतभेदों के होते हुए भी, एकमत से निर्धारण किया कि समूचे भारत के लिये एक भाषा स्वीकार की जाये, चाहे मातृभाषा का लिहाज़ करना होगा, चाहे देश के कुछ विशेष भागों में प्रचलित अन्य भाषाओं का उचित ध्यान रखना होगा; किन्तु एक अखिल भारतीय भाषा और समस्त भारत के लिये अभिव्यक्ति का एक माध्यम बनाने का निश्चय सर्वथा एकमत से किया गया है।

आगे चल कर हम वयस्क मताधिकार को लेते हैं, और वयस्क मताधिकार के महासागर में अपनी नैया उतारने से पूर्व हमें ध्यान रखना चाहिये कि हम कैसे आगे बढ़ेंगे। आख़िर, हमारा लोकतन्त्र शिशु है और हमें अभी पता नहीं है कि जलयात्रा में क्या जोखिम तथा कठिनाइयां होती हैं, कैसे रेतीले तट होते हैं। हमें अभी पता नहीं है कि जब हम जोखिम में हों तब हमें अपने तटीय क्षेत्र को कैसे ढूंढना होगा; अत: संविधान सभा के सदस्यों तथा दूसरों के लिये यह अत्यन्तावश्यक है कि वे ऐसे प्रकार से कार्य करें कि यह संविधान जो वयस्क मताधिकार पर आधारित है, वास्तव में केवल सफल ही न हो वरन् समस्त विश्व के लिये आदर्श बन जाये।

[डॉ. पी.के. सेन]

अनेक बार इस बात का निर्देश किया गया है कि पंचायत-व्यवस्था ही आधार होना चाहिये था, वह पुराना विचार जो राष्ट्रपिता ने बहुत स्पष्टता से अभिव्यक्त किया कि पैंदे पर पंचायत होनी चाहिये और पंचायतों के चौड़े आधार पर जो लोकतन्त्र बने वह शंकु के समान होना चाहिये और वह शंकु लोकतन्त्र की पूर्णता हागी, उस विचारधारा पर चलना चाहिये था। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि वह अब भी क्यों नहीं हो सकता। जैसा कि मैं कह चुका हूं, वयस्क मताधिकार एक महासागर है और समुचित नौचालन द्वारा हमें यह पता लगाना है कि सुरक्षितता का स्थान कौन-सा है। मुझे सन्देह नहीं है कि शनैः शनैः यही पंचायत व्यवस्था आ आयेगी और उस लोकतन्त्र का आधार बन जायेगी जो हम स्थापित कर रहे हैं।

अन्त में, बहुत सी बातें हैं, बहुत विस्तृत चीज़ें हैं, जो मेरे मन में आती हैं, किन्तु मैं जानता हूं कि समय मूल्यवान है और मैं यथाशक्ति संक्षेप में बोलने का प्रयत्न करूंगा। आखिर, हमारा पथप्रदर्शक सिद्धान्त क्या है? वे सुरक्षितता के कवच कौन से होने चाहिये जिनसे हम जगत से लोकतन्त्र के आधार पर लड़ेंगे? वहां भी, राष्ट्रपिता ने, अनेक बार, अपने जीवन भर में, प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक शब्द में जो उन्होंने कहा, ये बातें सुझाई थीं—सत्य और स्वतन्त्रता। हम अपने आपके प्रति सच्चे नहीं हो सकते यदि हम दूसरों के प्रति सच्चे नहीं हैं। हम तब तक वैयक्तिक रूप में स्वतंत्र नहीं हो सकते जब तक प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी की स्वतन्त्रता का आदर सम्मान न करे। यदि हम सच्चाई और स्वतन्त्रता के इस सिद्धान्त की बुद्धिमत्ता का आदर सम्मान न करे। यदि हम सच्चाई और स्वतन्त्रता के इस सिद्धान्त की बुद्धिमत्ता के सार को सचमुच समझ लें, केवल तभी हम सफल होंगे, केवल तभी इस संविधान को हम जीवित वस्तु बना सकेंगे। इसका निर्देश किया गया है, अतः मैं इस बात को दोहराये बिना नहीं रह सकता कि हमारे में सच्चाई और स्वतन्त्रता में प्रशिक्षित सैनिक हैं, ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है जो हमारे पथप्रदर्शक बन सकते हैं और हमें सुरक्षितता के स्थान पर पहुंचा सकते हैं। इनमें से मैं उन्हें अलग नहीं करता जो नाममात्र के लिये मानो दूसरे दल में हैं—यहां कोई दल नहीं है। इस सैनिक दल में मैं मसौदा समिति को भी शामिल करता हूं जिसके प्रधान डॉ. अम्बेडकर हैं। इन माननीय सदस्यों ने निरन्तर कार्य किया है और हर सम्भव तरीके से संविधान सभा की ऐसे प्रसार से सेवा की है कि वे हमारे अधिकतम आधार के अधिकारी हैं और मैं इस समय उन भावों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। श्रीमान, आपको भी धन्यवाद देना आवश्यक है, जैसा कि प्रत्येक सदस्य प्रत्येक बार कहता है—यह पुनरावृत्ति दिखाई दे सकती है परन्तु यह अनिवार्य है। जिस प्रकार से आपने प्रत्येक व्यक्ति को, जो वाद-विवाद में भाग लेना चाहे, पूर्ण स्वतन्त्रता, स्पष्टता और अवसर दिया है, उस पर हम सच्चे हृदय से आपके आभारी हैं।

एक बात यह कर मैं समाप्त कर दूंगा। प्रायः यहां इस बात को संविधान पर एक कलंक बताया गया है कि ईश्वर या धर्म से सारा सम्पर्क ही मानो तोड़ दिया गया है, मानो यह ईश्वरहीन संविधान है, मानो इसे लौकिक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य कहने से यह सचमुच लौकिक अथवा ईश्वरहीन बन गया है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि यह एक भ्रम है। हमने धर्म को नहीं मिटाया है जिससे मेरा आशय है भगवान् में, जो हमारे भाग्य को निश्चित करता है, मनुष्य का अंतरतम विश्वास और हमारे तथा हमारे सृजनहार के मध्य का वैयक्तिक सम्बन्ध। इसमें

उस अर्थ में धर्म को नहीं मिटाया गया है। इसमें धर्मों को मिटाया गया है जिसका अर्थ है धर्मों का आपसी संघर्ष। किन्तु यदि एक बार इस बात पर विश्वास कर लिया जाये, एक बार यह समझ लिया जाये कि सारे धर्म सच्चे हैं, सब धर्मों में केवल सत्यसार ही नहीं है वरन् सब धर्म ईश्वर के दिये हुए हैं और भगवान के प्रतीक हैं, तो क्या अभी एक धर्म और दूसरे धर्म के बीच कोई कठिनाई हो सकती है, कोई संघर्ष हो सकता है? और यदि ऐसा हो जाये, जब राष्ट्र यह समझ ले, तब 'लौकिक' शब्द को यथासमय संविधान से हटाया भी जा सकता है। क्योंकि फिर यह कहना, यह घोषणा करना अपेक्षित ही नहीं रहेगा कि किसी धर्म को, किसी विश्वास या मत को या किसी पूजाविधि को कोई अधिमान नहीं दिया जायेगा, इसलिये इसे लौकिक कहना आवश्यक हो गया है। किन्तु मेरा सच्चा विश्वास है कि जो भगवान हमारे भाग्य का निश्चय करता है वह हमारे ऊपर है और इस राष्ट्र के भविष्य का पथप्रदर्शन इसी संविधान के द्वारा करेगा जो केवल नाममात्र के लिये ही लौकिक है। यदि पारस्परिक समझौते की भावना होगी तो हम साथ चल सकेंगे। यदि मूल आधारों में ही अन्तर हो, तो यह अधिक अच्छा होगा कि दोनों दलों में संघर्ष हो जाना चाहिये—उसके बिना शायद कोई भलाई नहीं होगी। और यदि संघर्ष अनिवार्य हो मूल बातों के विषय में, आवश्यक चीज़ों के विषय में हो, तो हमें संघर्ष की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सुरों और असुरों के युद्ध में भी अमृत निकला था और विष निकला था उसे नीलकंठ ने पी लिया था जिससे कि उनकी सृष्टि विषहीन रहे। क्या हमें विश्वास नहीं है कि आज, जब कि हम इस संविधान को लागू करने जा रहे हैं, वही भगवान जो हमारे ऊपर है यहां उपस्थित है, और यदि कोई जोखिम हो या कोई बुरी बात हो जाये तो वही अवश्य विष को पी जायेगा और इस राष्ट्र को विषहीन बना देगा?

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय इस संविधान पर बहुत आलोचना हुई है और मसौदा समिति पर एक दोष यह भी लगाया कि उन्होंने 1935 के भारत शासन अधिनियम को रख दिया है और कुछ नहीं किया है। यदि मसौदा समिति के विरुद्ध यह आलोचना की जा सकती है तो मुझे यह कहना चाहिये कि यह बहुत अनुदारता है। दूसरी ओर, मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी अनुच्छेद को अपनाने से पहले मसौदा समिति ने संसार के समस्त संविधानों को देखने का कष्ट उठाया और सब संशोधनों पर ध्यान पूर्वक विचार किया—सैद्धान्तिक दृष्टि से भी और व्यवहारिक दृष्टि से भी। यदि उन्होंने किसी सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया है तो इसका यह कारण नहीं है कि वे भारत शासन अधिनियम 1935 में नहीं थे, यद्यपि वे सिद्धान्त व्यवहारिक थे और ठीक थे, किन्तु क्योंकि वे यहां वर्तमान परिस्थिति में व्यवहारिक रूप में लागू नहीं होते थे। मैंने लोगों को यह कहते हुए सुना है कि इस संविधान के अधीन प्रशासन से कुछ नहीं होगा, क्योंकि यह तो 1935 का भारत शासन अधिनियम ही है कुछ और नहीं, और हम उस अधिनियम के प्रशासन के परिणाम को देख चुके हैं। अतएव मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि यह विचार ग़लत है, बिल्कुल ग़लत है। यदि ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई किसी चीज़ में कोई अच्छी बातें हैं तो हम उन्हें क्यों छोड़ें? उनके उद्देश्य भिन्न हो सकते हैं, किन्तु उन्होंने जो कुछ भी किया, बाहर से उस में कोई भी बुराई नहीं थीं हमें केवल अपने विचारों को और ध्येय को बदल कर संविधान को क्रियान्वित करना चाहिये और हम देखेंगे कि हमारी प्रस्तावना में जो कुछ भी लिखा है वह पूरा हो जायेगा, किन्तु यदि हम किसी विरोधी भावना को लेकर

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

चलेंगे तो कठिन हो जायेगा। श्रीमान, जैसाकि मैंने कहा है, मसौदा समिति ने संसार के सभी संविधानों को देखा है और हमें ऐसा संविधान दिया है जिससे हम बहुत सुविधा के साथ काम चला सकते हैं जैसी कि हमें आदत है।

एक और बात जिस पर चर्चा और आलोचना हो रही है यह है कि केन्द्र को आवश्यकता से अधिक शक्ति दे दी है, और प्रान्तीय स्वायत्तता की सब बात भुला दी गई है और प्रान्तों से शक्ति छीन ली गई है। यह बहुत ग़लत है। देश की वर्तमान स्थिति में और विश्व की शक्तियां जैसे काम कर रही हैं उन परिस्थितियों में यह अत्यावश्यक था कि इतनी शक्ति केन्द्र अपने पास रखता। श्रीमान, संविधान के निर्माण में हमारे वे नेता थे जिन्होंने अपने आपको मिटा डाला है और जिन्होंने कभी नहीं सोचा कि इस जीवन में वे अपने स्वतन्त्रता के स्वप्न को पूरा कर सकेंगे और यह देख सकेंगे कि भारत के लोगों ने उस वस्तु को प्राप्त कर लिया है जो उनके सुख और भावी समृद्धि के लिये आवश्यक थी। श्रीमान, अब ऐसे लोग ही इस समय कामकाज संभाले हुए हैं। यदि उन्होंने केन्द्र को अधिक शक्ति देने का निर्णय किया है तो अपने शक्ति के प्रेम के कारण नहीं। उन्होंने केवल एक ही चीज का ध्यान रखा है और वह है देश की भलाई और लोगों का सुख। श्रीमान, शासन के रूप से कुछ अन्तर नहीं होता। अन्तर इस बात से पड़ता है कि देश का प्रशासन कैसे हो। जब काम संभालने वाले व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने, जैसा कि मैंने पहले कहा है, अपने आपको मिटा दिया है, जिन्होंने कभी नहीं सोचा था कि अपने इस जीवन में उन्हें कोई शक्ति मिल जायेगी या वे अपने देश को इस समृद्धिशाली अवस्था में देख सकेंगे, अत: हमें कोई ऐसी आशंका नहीं होनी चाहिए। कि केन्द्र कोई ऐसी बात करेगा जो हमारे देश के हितों के विरुद्ध होगी। इतिहास से पता लगता है कि राजतंत्र की शासन व्यवस्था के अंतर्गत भी हमारे यहां ऐसे ही शासक थे जो जनता की भावनाओं और स्वतन्त्रताओं का आदर करते थे। अतएव कोई कारण नहीं है कि हमें ऐसी आशंका हो कि प्रान्तों में या केन्द्र में कभी भी हमारी स्वतन्त्रताओं को कम किया जायेगा। यदि किसी समय हमारी स्वतन्त्रता पर कोई भी निर्बंधन लगाया जाता है तो मुझे विश्वास है कि वह जनता की भलाई के लिये ही होगा, वर्तमान सत्ता के संतोषमात्र के लिये नहीं।

श्रीमान, मैं उस सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता कि सब चीज़ों का केन्द्रीकरण हो जाना चाहिये ओर देश का शासन केन्द्र से ही होना चाहिये। परन्तु मैं इस बात से सहमत हूं कि केन्द्र को शक्तियां दे देनी चाहिये जिससे कि आपात में उनका प्रयोग जनता की भलाई के लिये किया जा सके। श्रीमान, केन्द्र के पास ऐसी ही शक्ति होनी चाहिये जो आवश्यक हो और जिसका प्रयोग उसके अंगभूत शासक अंग न कर सकें, जिससे कि समूचे भारत की एकता तथा अखंडता बनी रहे। अन्य सब शक्तियों को, यथासम्भव, विकेन्द्रित कर देना चाहिये और ग्राम के एकक को या ग्रामों के समूहों को दे देना चाहिये, प्रान्तों का तो कहना ही क्या। उसी प्रयोजन से मैंने प्रस्तावना में एक संशोधन की सूचना भेजी थी "कि 'Republic' शब्द के पश्चात् 'to be worked on the basis of autonomous village units or groups of villages organised on the principle of self-sufficiency as

far as practicable' ये शब्द जोड़ दिये जायें।" दूसरी बात मैंने प्रस्तावना के विषय में यह कही थी कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा संयम, सादगी और निस्वार्थ कार्य का जो उच्चादर्श रखा गया था उसे प्रस्तावना में संशोधन द्वारा रख दिया जाये। संशोधन का उद्देश्य यह था कि जब हम लोकतंत्रात्मक शासन बनाने जा रहे हैं तो हमें यथासम्भव सच्चा लोकतन्त्र बनाने के लिये लघु से लघु अंग को यथा सम्भव अधिकाधिक शक्ति दे देनी चाहिये जिससे कि उस एकक के व्यक्तियों को सुलभ और शीघ्र न्याय मिल सके जो ग्राम गणराज्य के अन्तर्गत सम्भव है। एक और संशोधन द्वारा मैं संविधान में ऐसे मार्गदर्शक सिद्धान्त रखना चाहता था जो हमारे लोगों में होने चाहियें, जिनके बिना प्रस्तावना में दिये हुए अन्य ध्येय प्राप्त नहीं हो सकते। किन्तु इसे स्वीकार नहीं किया गया।

श्रीमान, ग्राम गणराज्य के विषय में मैं सदन का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। पता नहीं माननीय डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के मसौदे के दूसरे पठन के आरम्भ होने पर जो बातें कही थीं वे उनकी अपनी राय थी या मसौदा समिति की थी जब उन्होंने यह कहा था:

> "इस मसविदे के विरुद्ध दूसरी आलोचना यह की गई है कि इसमें कहीं भी भारत की प्राचीन राजनीति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह कहा जाता है कि इस नवीन विधान का निर्माण प्राचीन हिन्दू राज्य परम्परा के आधार पर होना चाहिये था और इसमें पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों का समावेश न कर, ग्राम और जिला पंचायतों की भित्ति पर इसे खड़ा करना चाहिये था। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी विचार धारा बहुत आगे—अति की ओर—चली गई है। वे कोई भी केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन नहीं चाहते थे। वे चाहते हैं कि भारत में केवल ग्राम सरकारें हों। बुद्धि सम्पन्न भारतीयों का ग्राम समाज के प्रति जो प्रेम है वह यदि कारुणिक नहीं तो असीम तो अवश्य ही है।"

फिर डॉ. अम्बेडकर ने एक उद्धरण दिया है:

> "इस मनोवृत्ति का बहुत कुछ कारण तो यह है कि श्री मेटकाफ ने जो ग्राम समाज का स्तुतिगान किया है इससे वे प्रभावित हैं। मेटकाफ ने ग्रामों का वर्णन करते हुए कहा है कि वे छोटे-छोटे प्रजातन्त्र थे जिनमें अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं और जो वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित करने से प्राय: मुक्त थे। मेटकाफ की राय यह है कि सभी क्रांतियों एवं परिवर्तनों में जिनमें कि यहां की जनता को कष्ट भोगना पड़ा, भारतीय जन समुदाय की रक्षा में और कोई भी बात इतनी सहायक नहीं हुई है जितनी कि इन ग्राम पंचायतों का अस्तित्व जो छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों के रूप में वर्तमान थे, और उनके मतानुसार यह ग्राम पंचायतें भारतीयों के सुख में एवं उनके स्वातंत्र्य उपभोग में बहुत हद तक सहायक हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जहां और सभी कुछ नष्ट हो गये, हमारा ग्राम समुदाय आज भी वर्तमान है। किन्तु जो लोग

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

इन गांवों पर गर्व करते हैं, वे इस बात का विचार ही नहीं करते कि आखिर देश के भाग्य निर्माण में तथा उसके कार्यकलाप में इन ग्रामों ने कितना कम हाथ बटाया है और क्यों। देश के भाग्य निर्माण में इन्हें क्या भाग लिया है इसका अच्छा वर्णन भी मेटकाफ़ के स्वयं किया है जो कहता है:"

फिर आगे चल कर डॉ. अम्बेडकर कहते हैं:

"हमारी ग्राम पंचायतों ने देश के इतिहास में यही ज्वलंत काम किया है इसे जानते हुए हमें उसके लिए आखिर क्या गर्व हो सकता है। यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल पुथल होते हुये भी यह जीवित रह गई। किन्तु केवल जीवित रहने का क्या मूल्य है? प्रश्न तो यह है कि ये किस स्तर पर जीवित रहीं? निश्चय ही बड़े निम्न और स्वार्थपूर्ण स्तर पर यह जीवित रहीं। मेरा मत है कि ये ग्राम पंचायतें ही भारत की बर्बादी का कारण रही हैं। इस लिये मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रान्तीयता की साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हैं, वे ही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। हमारे ग्राम हैं क्या? वे कूपमण्डूकता के अड्डे हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काल कोठरियां हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि संविधान के मसविदे में ग्राम को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति राष्ट्र का अंग माना गया है।"

श्रीमान, मैं केवल यही कहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने ग्रामीणों के प्रति जो कुछ कहा है उससे अधिक अनुदार और अन्यायपूर्ण बात और क्या हो सकती है। डॉक्टर अम्बेडकर स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे जीवित रहे हैं और उन्होंने भारत की स्वतंन्त्रता को बनाये रखा है। उन्होंने कहा है कि केवल जीवित रहना पर्याप्त नहीं है, केवल जीवित रहने का कोई मूल्य नहीं है। आज क्या स्थिति है? हमें अपने खाद्य पदार्थों के लिये भी भीख मांगनी पड़ती है। हमें यह स्वतन्त्रता भी प्राप्त नहीं होती, यदि हम कम से कम खाद्यान्न के विषय में ग्राम अर्थव्यवस्था को बनाये न रखते, और अर्थव्यवस्था में ग्राम एककों को रखने से ही हम अपनी स्वतन्त्रता को उसके असली अर्थ में बनाये रख सकेंगे और जीवित रह सकेंगे। ग्रामों को बनाये रखने क कारण ही हम जीवित रह सके हैं और सुख से रह सके हैं। यह बात डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार की है। आज हम जो कुछ चाहते हैं वह चीज़ पैदा नहीं कर सकते। ग्रामों में जो कुछ भी सम्पत्ति थी वह उनसे छीन ली गई है या जो भी सम्पत्ति भूमि या ढोरों के रूप में थी वह नष्ट भ्रष्ट हो गई है। जो भूमि थी वह लगभग बंजर ही बन गई है। क्यों? जो भी खाद था, हड्डियों आदि के रूप में जो खाद था, जिससे भूमि का उपजाऊपन बना रहता था, वह अब निर्यात हो जाता है। सब हड्डियां और मृतक जानवर आदि खाद जो कुछ खेत में पड़ा रह जाता था वह शनैः शनैः सड़ता था और भूमि के उपजाऊपन को बनाये रखता था। ढोरों के विषय में, जब लार्ड लिनलिथगो आया था तो उसने सांड की नस्ल को बढ़ाने का आन्दोलन आरम्भ किया था। वह एक वर्ष के लगभग चला, किन्तु युद्धकाल में यह हुआ कि देश के सर्वोत्तम ढोर सेना के लिये, ब्रिटिश साम्राज्य के रक्षण के लिये, काट डाले गये। जब डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि ग्रामीणों ने और ग्राम गणराज्यों ने देश के रक्षण में

भाग नहीं लिया, तब मैं उनसे पूछूंगा कि क्या उन्होंने असहयोग के इतिहास को पढ़ा है। यदि उन्होंने पढ़ा है, तो उन्हें पता लगेगा कि ग्रामीणों ने हमारे उन योग्य नेताओं के कहने पर कार्य किया जिन्होंने अपने आपको मिटा दिया था और जो यह सोच कर ग्रामों में गये थे कि ग्राम ही देश को स्वतन्त्रता दिला सकते हैं। ग्रामीणों ने स्वतन्त्रता के संघर्ष में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। यह कहना अत्यन्त अनुदारता है कि ग्रामीणों और ग्राम गणराज्यों ने कुछ नहीं किया है और उन्होंने देश को बरबाद कर दिया है। वास्तव में देश की बरबादी ग्राम गणराज्यों के कारण नहीं हुई है, वरन् बात उल्टी है। ब्रिटिश शासन में केन्द्र ने गांवों को बरबाद कर दिया, जिनमें भारत के 90 प्रतिशत लोग रहते हैं और समूचे भारत को अपनी आवश्यकताओं के लिये भिखारी के समान बना दिया। हां, उस समय केन्द्र में हम नहीं थे। दूसरे लोग थे। उन्हें कोई और प्रयोजन सिद्ध करना था। अब जनता के लोग कामकाज संभाले हुए हैं और स्थिति भिन्न होनी चाहिये। श्रीमान मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि हम देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारना चाहते हैं, यदि हम जनता को सुखी बनाना चाहते हैं, तो हमें केवल आदर्श के रूप में ही नहीं, वरन् व्यवहारिक मार्ग के रूप में ग्रामों का संगठन प्राचीन आधार पर करना होगा। ग्राम पंचायतों का संगठन उसी आधार पर होना चाहिये जिस पर वे अतीत में चलती थीं। उस प्रकार देश की अर्थ-व्यवस्था को विकेन्द्रित करना होगा। वर्तमान संसार में हमारे लिये वस्तुओं का बड़े पैमाने पर निर्माण बन्द कर देना सम्भव नहीं है, किन्तु फिर भी हमारे देश की अर्थ व्यवस्था को यथासम्भव शीघ्र ही विकेन्द्रित कर देना चाहिये। हम जितनी जल्दी ऐसा करें, हम जितनी जल्दी इस पर ध्यान दें, उतना ही हमारे लिये अच्छा होगा। श्रीमान, यद्यपि संविधान के मुख्य भाग में ऐसा नहीं लिखा है और संविधान ग्राम गणराज्यों को केन्द्र का अंग मान कर नहीं बनाया गया है; फिर भी निदेशक सिद्धान्तों में लिखा है ग्रामों पंचायतों का यथासम्भव अधिकतम शक्तियों के साथ संगठन करना चाहिये, और मैं अपने नेताओं से प्रार्थना करना चाहता हूं कि इस चीज को यथासम्भव शीघ्र क्रियान्वित करना चाहिये मानो कि यह संविधान में ही समाविष्ट हो। केवल तभी, श्रीमान, हम अपनी वास्तविक स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकेंगे। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, माननीय डॉ. अम्बेडकर ने संविधान को स्वीकार करने का जो प्रस्ताव रखा है उसका समर्थन करते हुए मैं सदन का थोड़ा सा समय लेना चाहता हूं। इस संविधान का आधार वे सिफारिशें हैं जो इस सदन द्वारा निर्मित विभिन्न समितियों ने की थीं और वह मसौदा है जो पहले मसौदा समिति ने पेश किया था और बाद में उसे दोहराया था। अपनी वक्तृता में मैं सदन का ध्यान संविधान की मुख्य बातों की ओर दिलाऊंगा और ऐसा करते समय मैं उन आलोचनाओं का ख्याल रखूंगा जो कुछ सदस्यों ने संविधान पर की हैं। मेरा निवेदन है कि यह संविधान अपने अन्तिम स्वरूप में, उस लक्ष्य सम्बन्धी संकल्प की भावना का सच्चा प्रतिबिम्ब है जो इस सभा ने अपना कार्यारम्भ करने पर पारित किया था और संविधान की प्रस्तावना की भावना का भी प्रतीक है जो मुख्यत: लक्ष्यसम्बन्धी संकल्प पर ही मुख्यत: आधारित था।

सर्वप्रथम, भारतीय लोगों की अज्ञानता और निरक्षरता के बावजूद, सभा ने वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, जिसका अर्थ यह है कि

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

जनसाधारण में और लोकतंत्रात्मक शासन की सफलता में उसे पूर्ण विश्वास है, और उसे पूरा भरोसा है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर लोकतन्त्रात्मक शासन की स्थापना से जनसाधारण को बुद्धि प्राप्त होगी, और उसकी भलाई, जीवनस्तर और आराम में वृद्धि होगी। वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को यूं ही स्वीकार नहीं कर लिया गया था, वरन् उसके आशय को पूरी तरह समझ कर ही ऐसा किया गया था। यदि लोकतन्त्र का आधार विस्तृत होना है और शासन का अन्तिम आधार समूची जनता की इच्छा होनी है, तो ऐसे देश में जहां अधिक जनता निरक्षर है और सम्पत्ति वाले व्यक्ति बहुत कम हैं, मताधिकार के लिये किसी सम्पत्ति सम्बन्धी या शिक्षा सम्बन्धी योग्यताओं को रखने से लोकतन्त्र के सिद्धान्तों का ही निराकरण हो जाता है। यदि ऐसी योग्यताएं रखी जाती तो उससे बहुत से श्रमिक वर्ग और बहुत सी स्त्रियां मताधिकार से वंचित हो जातीं। आखिर यह तो माना नहीं जा सकता कि थोड़ी सी प्रारम्भिक शिक्षा वाला तथा पढ़ना लिखना गिनना मात्र जानने वाला व्यक्ति किसी श्रमिक कृषक या भूमिधर से अधिक अच्छी प्रकार मताधिकार का प्रयोग कर सकेगा, वे भी यह जान सकते हैं कि उनका हित किस में है और वे अपने प्रतिनिधियों को चुन सकते हैं। सम्भवत: बड़े पैमाने पर मताधिकार का प्रभाव यह भी हो सकता है कि भ्रष्टाचार मिट जाये, जो लोकतन्त्रात्मक निर्वाचन का परिणाम हो सकता है। वयस्क मताधिकार के सिद्धान्तों को स्वीकार करने पर यह सभा बधाई की पात्र है और यह कहा जा सकता है कि कि विश्व के इतिहास में पहले कभी ऐसा प्रयोग इतने साहस के साथ नहीं किया गया है। वयस्क मताधिकार का विकल्प केवल किसी न किसी प्रकार का अप्रत्यक्ष निर्वाचन होता जो ग्राम समुदाय या स्थानीय निकायों के आधार पर, उन्हें निर्वाचक-मंडल बना कर किया जाता, और वे निर्वाचक-मंडल वयस्क मताधिकार के अनुसार चुने जाते। यह बात सम्भव नहीं प्रतीत हुई।

इस बात को पूर्णतया समझते हुए कि साम्प्रदायिक निर्वाचकवर्ग और लोकतन्त्र दोनों साथ साथ नहीं रह सकते, और कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने लोकतन्त्र का स्वस्थ तथा मजबूत आधार पर स्वतन्त्र विकास होने से रोकने के लिये ही साम्प्रदायिक निर्वाचक-वर्ग का उपाय अपनाया था, इस सभा ने हमारे प्रधान मन्त्री और सरदार पटेल के योग्य नेतृत्व में, साम्प्रदायिक निर्वाचनों को समाप्त कर दिया है, और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के लिये अस्थायी काल के लिये संयुक्त निर्वाचक-वर्ग के आधार पर विशेष व्यवस्था कर दी है। जैसाकि उस समय सरदार जी ने अपनी प्रसिद्ध वक्तृता में ठीक ही कहा था, हमें संसार को यह दिखाना है, उन लोगों को जो साम्प्रदायिक दावों के आधार पर पले हैं यह दिखाना है कि हमें लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्तों में और जाति, विचारधारा या श्रेणी के विभेद के बिना लौकिक राज्य की स्थापना में सच्चा विश्वास है।

साम्प्रदायिक निर्वाचक-वर्गों को हटाने के विषय में जो सिद्धान्त संविधान के अनुच्छेदों में निहित हैं, उनसे ही अत्यन्त सम्बद्ध उपबन्ध मूल अधिकारों के अध्याय में है कि राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्ति सम्बन्धी मामलों में प्रत्येक नागरिक को अवसर-समता होगी, कि राज्य के अधीन किसी नियुक्ति या पद के विषय में किसी नागरिक के साथ, धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, वंश, जन्मस्थान आदि के

आधार पर विभेद नहीं किया जायेगा। मैं उन विशेष उपबन्धों को तो गिन ही नहीं रहा हूं जो नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में रखे गये हैं। इस सम्बन्ध में यह दिलचस्पी की बात है कि संयुक्त राज्य अमरीका तक के संविधान में ऐसी भाषा में ऐसी कोई घोषणा नहीं है। संयुक्त राज्य के संविधान में 14वें संशोधन का उद्देश्य हबशियों की निर्योग्यता को हटाना था, पर, अनुभव से पता लगा है कि उससे प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है और पन्द्रहवें संशोधन में केवल मतदान का ही विषय है। अतएव हम यह भी दावा कर सकते हैं कि हमारा संविधान अमरीका के उन्नत संविधान से भी अधिक लोकतन्त्रात्मक है, लोकतन्त्र के सिद्धान्तों में उसकी जड़ें अधिक गहरी जमी हुई हैं। अस्पृश्यता का अन्त एक और बड़ा कार्य है जो इस सभा ने किया है।

बहुत सी रियासतों का, जो इस देश के कोने में द्वीपों के समान बिखरी हुई थीं, अंत, पड़ोस के प्रान्तों में उनका विलय, सरदार पटेल के योग्य नेतृत्व में हुआ है। इसके फलस्वरूप राज्यों की संख्या बहुत कम रह गई है, और पृथक् पृथक् राज्यों के रूप में या राज्य संघों के रूप में उन्हें भारतीय संघ के वृत्त में शामिल कर दिया गया है। उनके संविधानों को भाग 1 के राज्यों के संविधानों के बराबर बना दिया है, और वे उन्हीं शर्तों पर भारत-संघ के एकक बन गये हैं जिन पर भाग 1 के राज्य हैं, और अब हम यह कह सकते हैं कि संघ के सब एकक उसके सम्बन्ध में एक ही स्थिति में हैं, केवल कुछ विशिष्ट अन्तर्कालीन उपबन्ध अपवाद रूप में है। संविधान उन राज्यों को, जो संघ में मिल गये हैं, उससे पृथक् होने की अनुमति नहीं देता। संघ के साथ उन का सम्बन्ध अटूट है और वे भारतीय संघ के अभिन्न अंग बन गये हैं। अब पीछे हटने का प्रश्न नहीं है। इस कार्य सफलता की महत्ता इसलिये बहुत अधिक है कि ऐसे बहुत से राज्यों के अस्तित्व का बहाना बना कर ही अंग्रेज़ साम्राज्यवादी सदा भारत को स्वतंत्रता देने से इनकार करते रहते थे। 1935 के अधिनियम से यह अन्तर दूर होने की बजाय स्थायी बन गया।

अमरीका से राष्ट्रपति पद्धति और इंगलिस्तान तथा अधिराज्यों की केबिनेट शासनप्रणाली के गुणों और अवगुणों को तोलने के पश्चात्, और यह भी विचार करने के बाद कि कुछ वर्षों से भारतीय प्रान्तों में उत्तरदायी शसन कैसे काम करता रहा है और भाग 2 (अब भाग 1 ख) के राज्यों में शुद्धतः राष्ट्रपति पद्धति की शासन-व्यवस्था रखना कितना कठिन है, इस सभा ने जानबूझ कर राज्यों में तथा केन्द्र में, दोनों स्थानों पर, उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। साथ ही सभा को इस बात का पूरा पूरा ध्यान था कि भाग 1ख के बहुत से राज्य लोकतन्त्रात्मक या उत्तरदायी शासन से अपरिचित थे और प्रारम्भिक स्थिति में उसकी सफलता के लिये संघ सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है जब कि लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में असफलता या गतिरोध हो जाये।

मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने पार्थक्य के सिद्धान्त पर आधारित सांविधानिक व्यवस्था के गुणों का गान करते हुए, पूरी तरह यह नहीं समझा कि भारत जैसी परिस्थितियों में है उनमें इस व्यवस्था से अश्वमेव संघर्ष और गतिरोध हो सकता है। संविधान में आपात के उपबन्धों का उद्देश्य यह नहीं है कि विविध एककों में लोकतंत्रात्मक संस्थाओं या उत्तरदायी शासन के स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में बाधा डाली जाये, किन्तु केवल यही उद्देश्य है कि जब संविधान पर अमल करने में सचमुच कठिनाइयां पैदा हो जायें तब शासन को सफलता से चलाया

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

जा सके। 1935 के संविधान में ब्रिटिश संसद की सत्ता के अधीन राज्यपाल या गवर्नर जनरल जिस शक्ति का प्रयोग करते थे उसमें और इस नये संविधान के अधीन केन्द्रीय सरकार को जो शक्ति प्राप्त होगी उसमें कोई समानता नहीं है। भविष्य में भारत की केन्द्रीय सरकार भारतीय संसद के प्रति उत्तरदायी होगी, जिसमें कि विभिन्न एककों के लोग वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुए हैं और वे अपने किसी कार्य के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी हैं। एक प्रकार से, आपात उपबन्ध केवल यही है कि जब एककों में प्रशासन टूट जाये तो दिल्ली में संसद उस उत्तरदायित्व को संभाल ले।

नागरिकता के विषय में, संविधान ने जानबूझ कर समूचे भारत के लिये एक नागरिकता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है और द्वैध नागरिकता को नहीं रखा है जो कई संविधानों में प्रायः पाई जाती है। इस विषय में भारतीय संविधान कुछ संघीय संविधानों से आगे बढ़ा हुआ है। आशा की जाती है कि इससे भारत-संघ का एकीकरण हो जायेगा। संविधान का उद्देश्य यह नहीं है कि नागरिकता के विषय में कोई विस्तृत विधि बनाई जाये, वरन् ऐसी विधि बनाने का कार्य भारत की भावी संसद् पर छोड़ दिया गया है।

संविधान में न्यायपालिका को समुचित स्थान दिया गया है जो एक लिखित और विशेषतः एक संघीय संविधान में होना चाहिये। संघवादी की भाषा में, अमरीका में न्यायालय की पूर्ण स्वतन्त्रता संघीय संविधान के ठीक प्रकार से कार्य करने के लिये विशेषतः आवश्यक है। राज्य के विविध अंगों को सीमा में रखने का तरीका केवल न्यायालयों का माध्यम ही है और राष्ट्रपति विलसन के अनुसार न्यायालय संविधान के संतुलन-चक्र हैं। भारतीय संविधान के अंतर्गत भारत के उच्चतम न्यायालय को बहुत शक्तियां हैं जितनी किसी अन्य संघ के न्यायालय में नहीं हैं, संयुक्त राज्य अमरीका में भी नहीं हैं, क्यों कि वहां का उच्चतम न्यायालय अपील का सामान्य न्यायालय नहीं है। उच्चतम न्यायालय सब व्यवहार वादों में सब उच्च न्यायालयों से अपील का न्यायालय है जिनमें भाग 1 ख के राज्यों के न्यायालय भी शामिल हैं। संविधान के निर्वचन सम्बन्धी सब मामलों में वही अन्तिम निर्णायक है। उसे सब न्यायाधिकरणों के निर्णयों को दोहराने का क्षेत्राधिकार हैं चाहे वे न्यायालय शब्द की परिधि में भी न आते हों। कनाडाई उच्चतम न्यायालय अधिनियम के अधीन वहां के उच्चतम न्यायालय को जो अधिकार प्राप्त है वैसा ही परामर्श-सम्बन्धी क्षेत्राधिकार भी हमारे उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है, जो कि संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय को भी प्राप्त नहीं है। उसे भारत के सब भागों में परमाधिकार के लेख निकालने का मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। वह राज्यों के बीच के प्रश्नों का फैसला करने वाला न्यायालय भी है। आपराधिक मामलों में भी, उच्चतम न्यायालय विशेष अनुमति दे सकता है और कुछ विशिष्ट प्रकार के मामलों में दण्ड विषयक अपीलीय क्षेत्राधिकार का भी प्रयोग कर सकता है। यदि आलोचना हो तो यह नहीं हो सकती कि उच्चतम न्यायालय की शक्तियां काफी विस्तृत नहीं है, वरन् यह आलोचना हो सकती है कि वे अत्यधिक विस्तृत हैं।

उच्च न्यायालय विषयक उपबन्ध मुख्यतः वर्तमान उपबन्धों के नमूने पर ही बने हैं, केवल यही अपवाद है कि क्षेत्राधिकार पर कुछ रुकावटें हटा दी गई

हैं। आगे से वे अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सब क्षेत्रों में परमाधिकार लेख निकाल सकते हैं। उच्च न्यायालयों को राजस्व सम्बन्धी मामलों में क्षेत्राधिकार नहीं था, उस अंसगति को हटा दिया गया है, और अधीनस्थ न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्तियां उन्हें फिर दे दी गई हैं। इस बात का ध्यान रखा गया है सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्ति के विषय में, राष्ट्रपति को उन लोगों की मंत्रणा प्राप्त होगी जो उसे इस विषय पर मंत्रणा देने के लिये अत्यन्त सक्षम हैं। उच्च न्यायालय को प्रांतीय राजनीति के क्षेत्राधिकार से बाहर रखने के लिये, महत्वपूर्ण मामलों में उच्च न्यायालयों को राष्ट्रीय सरकार के क्षेत्राधिकार में रख दिया गया है। न्यायिक स्वाधीनता को बनाये रखने की आवश्यकता के विषय में दो मत नहीं हो सकते जिससे कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता का संरक्षण हो सके तथा संविधान को समुचित रूप से चलाया सके, परन्तु एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को ध्यान में रखना भी अपेक्षित है। स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को एक ऐसी रूढ़ि नहीं मान लेना चाहिये जिससे कि न्यायपालिका विधान-मंडल से भी ऊंची वस्तु या कार्यपालिका से ऊंची वस्तु बन सके। न्यायपालिका संविधान का निर्वचन करने के लिये है या सम्बद्ध पक्षकों के बीच के अधिकारों का निर्णय करने के लिये है। जैसा कि अभी हाल में ही उच्चतम न्यायालय के एक मुख्य विनिश्चय में बताया गया है, कांग्रेस और कार्यपालिका के समान ही न्यायपालिका भी अपने कुशल और ठीक कार्य करने के लिये दोनों के सहयोग पर निर्भर है।

मूल अधिकारों के विषय में यह आलोचना हुई है कि अपवाद उन अधिकारों के मूल पर ही कुठाराघात करते हैं। यह आलोचना सर्वथा निराधार है। उन अनुच्छेदों में जो शर्तें और अपवाद रखे गये हैं, उनसे मूल अधिकारों पर सर्वमान्य अपवादों और सीमाओं को केवल कानून का रूप मिल गया है। संयुक्त राज्य के संविधान में भी जिसमें इन अधिकारों का व्यापक उपबन्ध है, उच्चतम न्यायालय ने ये ही निर्बंधन लगाये हैं। यह सबको ज्ञात है कि संयुक्त राज्य के उच्च्तम न्यायालय ने वाक् स्वातन्त्र्य और प्रेस-स्वातन्त्र्य का यह अर्थ निकाला है कि उससे ऐसे कानूनों का वर्जन नहीं होता जो वचन या लेख द्वारा भय उपजाने का निषेध करते हों या अश्लील बातों के प्रकाशन को बन्द करते हों, राज्य की पुलिस-शक्ति के प्रयोगार्थ हों, यदि राज्य को ऐसा करने के लिये काफी सामाजिक हित दिखाई दे। इसी प्रकार धार्मिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ निकाला गया है कि उससे नागरिकों की असामाजिक कार्यों में रक्षा नहीं हो सकती। संस्था बनाने और सार्वजनिक सभा करने के अधिकार से इस बात में बाधा नहीं पड़ती है कि संयुक्त राज्य या उसका कोई राज्य सामान्य कल्याण के हितार्थ लोगों के समवेत होने पर सामाजिक नियंत्रण लगा सकते हैं। यह अनुचछेद जिस अन्तिम रूप में आ गया है, उसमें इस सभा ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता और सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता के बीच एक सीमा रखने का प्रयत्न किया है। संविधान में इस सिद्धान्त को नहीं छोड़ा गया है कि किसी व्यक्ति को प्रतिकर के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा, किन्तु संसद को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह सम्बद्ध सम्पत्ति के प्रकार और इतिहास आदि पर समुचित विचार करके प्रतिकर के सम्बन्ध में सिद्धान्त निश्चित कर सकती है। बहुत से कृषकों पर प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण कृषि-सम्बन्धी सुधारों की आवश्यकता पर पूरी तरह ध्यान रखते हुए, इस सभा ने, उचित विचार के पश्चात्, कुछ विशेष उपबन्ध रखे हैं जिससे

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

कि जो कदम उठाये जायें उनकी वैधता पर न्यायालयों में आपत्ति न की जा सके, किन्तु साथ ही सम्बद्ध दलों के हितों का रक्षण करने के लिये आवश्यक रक्षा-कवच रखे गये हैं।

मूल अधिकारों के अध्याय में एक और मामला है जिस पर कुछ अधिक ध्यान देना अपेक्षित है। अनुच्छेद 22 के खंड (4) से कार्यपालिका को अधिकार मिल जाता है कि वह किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक के लिये निरुद्ध रख सकती है अतः उस खंड की आलोचना की गई है। पर ऐसी कोई बात नहीं है। समूचे अनुच्छेद 22 का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 21 के उपबन्धों के दुरुपयोग को रोका जाये जिसमें व्यापक शब्दों में कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा।" यदि अनुच्छेद 21 अकेला ही होता तो उससे अनिश्चित काल के लिये निरोध किया जा सकता है यदि वह केवल विधि द्वारा प्रस्थापित प्रक्रिया के अनुरूप हो। अनुच्छेद 22 को इस लिये रखा गया है जिससे कि अनिश्चित काल तक निरोध न हो सके। संविधान सभा को पता था कि नये राज्य पर बहुत सी जोखिम हैं, अतः वह निरोध को बिल्कुल हटा नहीं सकी।

मैं समझता हूं कि राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त भी संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता हैं। उन अनुच्छेदों में कई विस्तृत प्रकार के विषयों का उल्लेख है और उन विषयों को न्याय्य बनाना स्पष्टतः कठिन है, इसलिये उन्हें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों की श्रेणी में रखा गया है। सामाजिक नीति के सिद्धान्तों का आधार संविधान की प्रस्तावना और लक्ष्यमूलक संकल्प है। अनुच्छेद 37 में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उनमें जो सिद्धान्त है वे देश के शासन में आधारभूत हैं और राज्य का कर्तव्य है कि उन सिद्धान्तों का विधि-निर्माण में प्रयोग करे। कोई मंत्रिमंडल, जो जनता के प्रति उत्तरदायी हो, संविधान के भाग 4 के उपबन्धों की यूंही उपेक्षा नहीं कर सकता।

विधायी शक्ति के वितरण के विषय में इस सभा ने इस समय की राजनैतिक और आर्थिक स्थितियों पर विचार किया है, और संघानीय शासन के संविधान में वितरण के सिद्धान्तों सम्बन्धी किसी निश्चित नियमों का अनुसरण नहीं किया है। वितरण के विषय में केन्द्र को अवशिष्ट शक्ति दे दी गई हैं, और राष्ट्रीय तथा अखिल भारतीय महत्व के विशेष विषयों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है। बहुत से विषयों को समवर्ती सूची में रख दिया गया है, जिससे कि जहां हस्तक्षेप की आवश्यकता हो वहां केन्द्र हस्तक्षेप कर सके और राज्य-विधान का निराकरण कर सके, यद्यपि साधारणतः, जब मार्ग साफ़ हो, तब राज्य-विधान-मण्डलों को विधान-निर्माण का अधिकार होगा। बहुत से समवर्ती विषयों के रखने का उद्देश्य केन्द्र और एककों में समन्वय बढ़ाना है, जिससे कि संघर्ष होने पर न्यायालयों की शरण न लेनी पड़े, जो कि विषयों को श्रेणियों में बांटने पर आवश्यक हो जाता। अप्रत्याशित राष्ट्रीय आपात और आर्थिक स्थिति का सामना करने के लिये, विशेष उपबन्ध रख दिये गये हैं कि केन्द्र हस्तक्षेप भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि आधुनिक संसार में संघवाद का सारा आशय ही बदलता जा रहा है। सामाजिक और आर्थिक बलों के प्रभाव से, संचरण के द्रुत-साधन निकल जाने से, और व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में विविध एककों के आवश्यक सन्निकट सम्बन्धों के कारण, आधुनिक संसार में संघवाद का अर्थ

ही बदल रहा है। कनाडा में रोवेल स्कोर आयोग ने, और आस्ट्रेलिया के संविधान की सफलता पर विवरण देने के लिये जो राजकीय आयोग बना था उसने, बहुत से उपाय सुझाये हैं जिनसे संघीय शासन के काम में आने वाली कठिनाइयों को दूर किया जा सके। इस समस्या का समाधान प्रत्येक देश को अपने यहां की विशेष स्थितियों का ध्यान रख कर करना होगा, क्योंकि प्रत्येक देश की विशेष परिस्थितियां होती हैं, समस्याओं का समाधान किसी पूर्वनिश्चित सिद्धान्त या परिकल्पना से नहीं हो सकता।

इस प्रकार के मामले पर विचार करते हुए, हम इस आधार पर नहीं चल सकते कि संघवाद अवश्यमेव किसी निश्चित प्रकार का या परिभाषा के अनुसार होना चाहिये। कनाडा के संविधान के विषय में भी, लार्ड हालडेन और लार्ड वाटसन जैसे दो विद्वानों में गहरा मतभेद था, पहले महाशय कहते थे कि संविधान संघानीय नहीं है और दूसरे महाशय स्पष्टतः इससे विरोधी विचारधारा के थे। सब परिकल्पनाओं को छोड़कर मुख्य प्रश्न यह है कि "क्या राष्ट्रीय और राज्य सरकारें एक दूसरे से 'प्रधान' और 'प्रतिनिधि' के रूप में सम्बद्ध है?" जब तक कि वे अपने निश्चित क्षेत्राधिकार में अपनी पूर्ण सत्ता का प्रयोग कर सकते हैं, तब तक संविधान को संघानीय प्रकार का बताने से इनकार नहीं किया जा सकता।

मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं कि केन्द्र को संघ-एककों से शक्ति लेकर बहुत शक्तिशाली बना दिया है। विधायी क्षेत्र में एककों को दिये गये विषयों की सूची में अधिक परिवर्तन नहीं किया गया है। एककों को प्रांतीय क्षेत्र में असीमित कार्यपालिका शक्ति प्राप्त है। समवर्ती विषयों में भी कार्यपालिका शक्ति एककों में ही निहित है, यद्यपि राज्य की आवश्यकताओं पर केन्द्र को हस्तक्षेप करने की शक्ति है। संघ में निहित आपात शक्तियां ऐसे प्रकार की हैं कि वे कभी सामान्य या साधारण स्थिति के लिये नहीं हो सकतीं।

करारोपण शक्ति के सम्बन्ध में, संविधान के अधीन जो आयोग नियुक्त होगा उसके प्रतिवेदन के फलस्वरूप अन्तिम वितरण पर आगे विचार हो सकता है, फिर भी करारोपण शक्ति सम्बन्धी अनुच्छेदों में विविध एककों की सामान्य आर्थिक स्थिति और वित्तीय दशा का ध्यान रखा गया है और इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि आधुनिकतम संघानों में यह भावना प्रबल है कि केन्द्रीय सरकार देश के हित में करारोपण करने वाला एकमात्र अधिकरण होता है, पर साथ ही आय को विभिन्न एककों में विभाजित तथा वितरित करने का भी और वित्तीय-सहायता देने का भी उपबन्ध रख दिया गया है।

संविधान सभा ने अंतर्राज्यिक वाणिज्यिक सम्बन्धों के विषय पर काफी समय लगाया है। इस सभा ने, इस सिद्धान्त को रखते हुए कि विविध एककों के मध्य वाणिज्य स्वातंत्र्य संघ को समुचित रूप से चलाने के लिये अनिवार्य है, अंतर्राज्यिक संबंधों को, हमारे संविधान में, भारत जैसे महान महाद्वीप की स्थिति और आर्थिक दशा के अनुरूप ऐसा लचकदार और परिवर्तनशील बनाया है जैसा कुछ ज्ञात संघानीय संविधानों में नहीं है।

संविधान सभा के समूचे भारत के लिये एक राज्य भाषा की आवश्यकता को पूर्णतया समझा जिससे कि राष्ट्र का एकीकरण और संगठन हो सके और ऐसे विस्तृत देश में प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को भी पहचाना, अतः इसने ऐसी योजना बनाई है जिससे कि हिन्दी यथासंभव शीघ्र भारत की राजभाषा बन जाये। साथ ही संविधान सभा यह नहीं भूली कि कुछ समय तक वैधानिक प्रयोजनों के लिये

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

और आज की दुनिया में वैज्ञानिक तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेज़ी की भी अपेक्षा है।

संविधान बहुत भारी भरकम और विस्तृत बन गया है, इस आलोचना पर ध्यान देना व्यर्थ है। अन्य संविधानों के समान उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालयों की रचना और शक्तियां साधारण संसदीय विधान-निर्माण के लिये छोड़ दी गईं हैं, यदि निर्वाचन-व्यवस्था संबंधी उपबंधों को हटा दिया जाये, यदि न्यायाधीशों और असैनिक सेवाओं के वेतनों संबंधी प्रत्याभूतियों को हटा दिया जाये, यदि विद्यमान प्रशासन-व्यवस्था की, जो काम कर रही है, अवहेलना कर दी जाये, यदि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये कोई विशेष उपबंध न रखा जाये, तो संविधान को छोटा करने में और अनुच्छेदों की संख्या घटाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। किन्तु लोकतंत्र-प्रणाली को ठीक प्रकार और कुशलता से चलाने के लिये, यह अनुभव किया गया कि यदि इन उपबंधों को संविधान में न रखा गया, तो हमारा शिशु लोकतंत्र कठिनाई में पड़ सकता है और संविधान को ठीक प्रकार तथा कुशलता से चलाना कठिन हो सकता है। विभिन्न हितों की ओर से इस बात पर जोर दिया गया कि संविधान में ही पर्याप्त रक्षा-कवच रख दिये जायें, और इस सभा के कुछ सदस्यों ने भी, जो संविधान में केवल कुछ मुख्य उपबंधों को ही रखने का सिद्धान्त मानते हैं, विस्तृत उपबंधों को रखने में कम सहायता नहीं की है।

तृतीय पठन के वाद विवाद के समय, भारत के राष्ट्रमंडल का सदस्य होने के प्रश्न का निर्देश किया गया है। इस विषय पर, जब यह मामला इस सभा में विचारार्थ आया था, मैंने अपने विचार प्रकट कर दिये थे। सदन को यह याद दिलाना आवश्यक है कि संविधान में इस विषय पर कोई अनुच्छेद नहीं है। राष्ट्रमंडल की सदस्यता दोनों देशों के ऐच्छिक सहयोग और स्वीकृति पर निर्भर है, और वे दोनों देश सब प्रकार से एक दूसरे से स्वाधीन हैं।

अध्यक्ष महोदय, मूल अधिकारों की चर्चा करते समय मैं एक बात को भूल गया था जिसका निर्देश मैं अब करना चाहता हूं। प्रत्येक व्यक्ति को और प्रत्येक धर्म के अनुयायी को धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है, पर राज्य किसी धर्म विशेष को नहीं अपनायेगा। भारत में राज्य-धर्म जैसी कोई वस्तु नहीं है।

यह दावा किया जा सकता है कि संविधान में इसके लिये काफी अवसर दिया है कि भारत गणराज्य उन सब महान उद्देश्यों को प्राप्त कर सके जो इस संविधान की प्रस्तावना में हैं। संविधान में विकास, लचकीलापन और विस्तार के आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। इसमें समाज के लिये किसी विशेष आर्थिक पुनर्संगठन का वचन नहीं दिया गया है, पर जनता को स्वतंत्रता है कि वह जैसे चाहे अपनी भलाई के लिये आर्थिक दशा को ठीक कर और ढाल सकती है। बहुत कुछ हद तक प्रत्येक संविधान उन लोगों पर निर्भर होता है जो कि उसे चलाते हैं। आखिर किसी संस्था को चलाने में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ व्यक्तित्व होती है। यह बात सर्वज्ञात है कि जब अमरीका का अंतिम संविधान स्वीकार किया गया था तब उसके लिये

बहुत कम जोश था, और 'फेडरेलिस्ट' में उस संविधान के पक्ष में अमरीकी लोगों के लिये कई संदेश दिये गये थे। पर आज उस संविधान का ऐसा सम्मान है जैसा बाईबिल में 'आर्क ऑफ़ कवनेंट' का है। अन्य देशों के अनुभव से सिद्ध होता है कि जिन संविधानों की संसार भर में प्रशंसा की गई थी वे असफल सिद्ध हुए हैं। संशोधन का एक सरल उपाय रखा गया है। किन्तु उस का यह अर्थ नहीं है कि आसानी से ही संशोधन कर दिये जायें। फिर तो जनता के पास बस यही काम रह जायेगा कि संविधान में संशोधन पर संशोधन किये जायें।

मैं समाप्त करने से पहले अपना कर्तव्य समझता हूं कि अपने मित्र माननीय डॉ. अम्बेडकर की योग्यता की प्रशंसा करूं जिन्होंने कि इस संविधान को पारित करवाया है और मसौदा समिति के सभापति के रूप में अनथक कार्य किया है। मैं यह भी जानता हूं कि उनकी सहायता मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने योग्यतापूर्वक की है। मुझे श्री बी.एन. राव की सेवाओं की भी प्रशंसा करनी है सह-सचिव श्री मुखर्जी और उनके कर्मचारियों के अनथक परिश्रम, धैर्य, योग्यता और उद्योग की सराहना करना भी मेरा कर्तव्य है।

अंत में, श्रीमान, क्षमा करें, मैं इस सभा में आपके कार्य पर भी कुछ कहना चाहता हूं क्योंकि यह चाटुकारिता कहलायेगी। आपने इस देश की सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया है और यह आपका सफल कार्य है। आपके समान किसी का भी सम्मान नहीं है और किसी से भी प्रेम नहीं हैं और आपने अपने आपको इस सभा के अध्यक्ष पद के योग्य सिद्ध कर दिया है। मैं आपका विशेषत: आभारी हूं क्योंकि मेरा स्वास्थ्य खराब होने के कारण आपने कृपा कर के मुझे अपने आसन से बोलने की अनुमति दे दी और मैं सदस्यों का भी आभारी हूं कि उन्होंने इस विषय में मुझ पर कृपा की है। मुझे इस पर कुछ संतोष है कि मैं शायद इस सभा के कार्य में तथा इसकी विविध समितियों के कार्य में कुछ थोड़ा सा उपयोगी सिद्ध हुआ हूं। *(हर्ष ध्वनि)*।

***श्री हैदर हुसेन** (संयुक्त प्रान्त: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इस महान प्रगतिचक्र को कंधा देने के लिये खड़ा हुआ हूं जो इस राष्ट्र ध्वज पर अंकित है जो इस हाल के चारों ओर लगाया हुआ है और जिसका प्रतिविंब इस महान रचना में है जो कुछ दिन बाद स्वतंत्र भारत के विधि-संग्रह की शोभा बढ़ायेगी। यह भारतीय पुनरुत्थान में एक महत्वपूर्ण घटना है और राजनैतिक विचारधारा में प्रगति का चिह्न है। स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के फ्रांसीसी नारे ने मानवीय मस्तिष्कों में क्रांति उत्पन्न कर दी और स्वाधीनता की मशाल को दूर दूर तक पहुंचा दिया। उस महान राष्ट्र ने अपने देश में आधुनिक लोक-तंत्र की आधार-शिला रखी और अन्य स्वतंत्रता-प्रेमी देशों में उसका समर्थन किया। उन्होंने अमरीकी राष्ट्र को स्वतन्त्रता की प्रतिमा का जो महान उपहार दिया, वह उनके आज़ादी के प्रेम का प्रमाण है। अमरीकी लोगों ने अपने स्वभावोचित तरीके से उसका मूल्य समझा और उसकी स्थापना न्यूयार्क के दक्षिण में एक द्वीप पर कर दी, और दर्शकों के लिये वह बहुत आकर्षण की वस्तु बन गई है। संसार कभी स्थिर नहीं रह सकता, और मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के साथ साथ राजनैतिक आदर्शों का भी विकास होता है। लोकतंत्र के विषय में फ्रांस वालों के जो विचार थे हम उनसे भी आगे बढ़ गये और उनके त्रिवर्ग में चौथी चीज़, 'न्याय' को जोड़ दिया,

[श्री हैदर हुसेन]

और उसे हमारे संविधान की प्रस्तावना में प्रथम स्थान दिया है। प्रस्तावना किसी भी कानून के अर्थ और क्षेत्र की कुंजी होती है और हम देखते हैं कि प्रस्तावना की भावना बाद के सब उपबंधों में बिखरी हुई है। हम राजनैतिक सिद्धान्तों में प्रगति के भी चिह्न देखते हैं और हम न्यायपूर्वक यह दावा कर सकते हैं कि हमारा संविधान संसार के विद्यमान संविधानों में सबसे आगे बढ़ा हुआ है और हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप भी है। सदस्यों को जो ढेर सारा साहित्य एकत्र करके भेजा गया था वह इस बात का प्रमाण है कि संसार भर के देशों के संविधानों की कितनी विस्तृत खोज की गई है। इस सभा की कार्यवाही इसका स्पष्ट उल्लेख है कि मसौदा समिति ने और सभा के माननीय सदस्यों ने उस साहित्य का पूर्ण प्रयोग किया है। मेरे सम्मानित तथा योग्य मित्र श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर ने अभी मेरे सामने समूचे संविधान का पारंगत वर्णन करके इसी बात का सबूत दिया है, और इसी चीज़ को दोहराना मेरे लिये अशोभनीय होगा।

यह ठीक है कि संविधान पर बहुत आलोचना की गई है और मैं इसे ठीक ही समझता हूं कि ऐसा हुआ है। इन आलोचनाओं से और लम्बी चर्चा से मूल मसौदे में बहुत सुधार हुआ है। हममें से कुछ के मनों में अब भी जो मतभेद है उन्हें कम से कम कुछ समय के लिये तो अब भूल ही जाना चाहिये। हमें अब भी समझना चाहिये कि आलोचना का समय समाप्त हो गया है और काम करने का समय आ गया है। हमारा कर्तव्य है कि उसे शब्दशः और भावनानुरूप सफल बनाने के लिये संयुक्त प्रयत्न करें। तभी और केवल तभी हमारा देश द्रुतगति से आगे बढ़ सकता है।

हमारा संविधान काफी लचकदार है और मुझे विश्वास है कि सरकार के समक्ष कोई भी ज्ञात आदर्श हो वह इस पर अमल कर सकती है। संविधान किसी दल विशेष के लिये या किसी निश्चित कार्यक्रम के लिये नहीं बनाये जाते। एक लिखित संविधान राष्ट्र की आकांक्षाओं का प्रतिबिंब होता है, और संसार के लिये एक संदेश होता है कि हम क्या चाहते हैं। हमारे संविधान से हमें एक आधार मिल गया है और हमें एक भवन बनाना है जो हमारी प्राचीन बपौती के योग्य होगा। इस महान कार्य में हमें सबको सहयोग देना चाहिये। देश को प्रत्येक नर, नारी और बालक की सेवाओं की आवश्यकता है जो अपने आपको भारतीय कहता है। तभी और केवल तभी हमारे स्वप्न पूरे हो सकते हैं, नव भारत के उस महान प्रवर्तक का स्वप्न पूरा हो सकता है, हां, वह आज हमारे साथ नहीं हैं किन्तु उसके चित्र का प्रकाश हमारी कार्यवाही पर पड़ रहा है।

हम महान बलिदानों के पश्चात् इस स्थिति तक आ पहुंचे हैं। हमें अपना समय सैद्धान्तिक चर्चाओं में और संसदीय वाद-विवाद में नहीं गंवाना चाहिये। हमारा संघर्ष लम्बा और कठोर था। बंगाल के माननीय सदस्य, श्री मैत्र ने दो पीढ़ियों के समय का उल्लेख किया है। इस प्रकार से वे ठीक ही हैं। किन्तु मैं इसे गत शताब्दी के मध्य तक ले जाना चाहता हूं। उस समय, विदेशी नौकरशाही के एक शती के शोषण के पश्चात् हमारे संघर्ष ने विद्रोह का रूप धारण किया था। वह उन्नीसवीं शताब्दी के महान राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग था। वह असफल रहा और उसके पश्चात् ऐसा दमन हुआ कि भारतीय लोग एक पीढ़ी के बाद पुनः उभर सके।

इस बार उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से एक अधिक संगठित और सुव्यवस्थित रूप धारण किया। यही उस युग का आरम्भ था जिसकी चर्चा श्री मैत्र ने की है। संघर्ष कठिनाइयों से भरपूर था, और मार्ग में गड्ढे थे और काम जोखिम से भरा था। किन्तु हमारे महान नेताओं ने दृढ़ता से और साहसपूर्वक उस कार्य को किया। हमारे राष्ट्रपिता ने भारतीय राजनीति को जो नया रूप दिया उससे हमारी गति बढ़ गई। उनका नाम अमर रहे। यह संविधान सभा 1946 में अविभक्त भारत का संविधान बनाने के लिये बनी थी। इस काल में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। अपनी स्वतंत्रता को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने के उद्देश्य से हमारे नेताओं ने देश के विभाजन तक को स्वीकार कर लिया। किन्तु उस समय किसी ने इस बात को नहीं समझा कि इससे मनुष्य अपने भाई के प्रति ही भेड़िया बन जायेगा। उन भयानक अत्याचारों का वर्णन करने का यह स्थान नहीं है किन्तु दुर्भाग्य यह है कि उसके कुछ प्रभाव अब भी शेष हैं और हमारे दैनिक जीवन पर भी उनका असर है। देश इससे भी अधिक उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने में सफल हुआ है और मुझे भरोसा है कि वह इस रोड़े को भी दूर कर देगा जो प्रगति का मार्ग रोके हुए है।

इस संविधान के विविध उपबंधों की आलोचना करने का यह समय नहीं है। आलोचना तो बहुत हो चुकी है, यहां भी और बाहर भी। मेरा उत्तर यह है कि देश के उपलब्ध योग्य व्यक्ति जैसा बना सकते थे वैसा यह है और यदि हम अधिक अच्छा चाहते हैं तो हमें देश में अधिक योग्य और विवेकशील व्यक्ति पैदा करने होंगे। यदि हो सके तो निकट भविष्य में ही। किन्तु मुझे यह कहना ही होगा कि यह रचना ऐसी है जिस पर किसी भी राष्ट्र को गर्व हो सकता है। अतएव हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम इसका पूरे मन से, बिना शर्त, बिना आनाकानी के समर्थन करेंगे। हमने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, और आज आवश्यकता इस बात की है कि देश का आर्थिक उत्थान हो, और इसी के लिये स्वतंत्रता लेने से कुछ लाभ भी था। इसके लिये अधिक परिश्रम, अधिक कार्य और अधिक त्याग करना पड़ेगा, स्वतंत्रता के युद्ध से भी अधिक। किसी वस्तु को नष्ट करना इतना कठिन नहीं है जितना उसे बनाना है। देश में विदेशी राज्य समाप्त हो जाने पर, हमें रचनात्मक कार्य के लिये पूरा अवसर मिला है। अब हमें अपने भारत के निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिये। जो अपने अतीत के योग्य हो और भविष्य के लिये गौरव हो।

अंतर्राष्ट्रीयतावाद के इन दिनों में हम अपने देश को शेष संसार से अलग नहीं कर सकते। हमें संसार के सब राष्ट्रों के साथ आगे बढ़ना है और तभी हमारा देश राष्ट्रों की बिरादरी में अपना न्यायपूर्ण तथा सम्मानित स्थान ले सकेगा।

दुर्भाग्य से संविधान के निर्माण में मेरा अपना भाग अलग नहीं के बराबर है। मैं ऐसे समय पर आया हूं जब कि कुछ भी सारवान बात नहीं हो सकती है। मेरा यह सौभाग्य है कि तृतीय पठन के समय भारतीय सांविधानिक विकास में मेरा सहयोग रहा है। जब भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम हाउस ऑफ कामन्स में था तब मैं अमरीका से भारत वापस आ रहा था और वहां भी मैं विधेयक की अंतिम स्टेज पर ही उपस्थित था। विधेयक मेरी उपस्थिति में पारित किया गया था और मेरे देशवासियों को यहां जो आनंद प्राप्त हुआ वह मुझे वहां कुछ घंटे पहले हो

[श्री हैदर हुसेन]

गया था। मैं उसे अपने जीवन का स्मरणीय दिवस समझता हूं। इसी प्रकार यहां भी मैं इस संविधान के निर्माण में भी अंतिम स्टेज पर ही सहयोग दे रहा हूं। मैं यहां उनके कहने पर आया हूं जिनसे मेरे प्रान्त वालों के बहुत प्रेम और स्नेह है, और जो देश के सबसे बड़े प्रान्त में सबसे अधिक स्थिर शासन चला रहे हैं। मैं उनके इस सुझाव के लिये उनका आभारी हूं। और मैं इसे वास्तव में बहुत बड़ा सम्मान समझाता कि मैं, इस अन्तिम समय ही सही, इस महान निकाय का सदस्य हूं।

समय कम है और अवसर ऐसा है कि मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता। अतएव मैं हमारे विधि मंत्री के संकल्प का समर्थन करता हूं।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बंबई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, यह संविधान समझौतों के कारण हुए विनिश्चयों से बना है अत: इसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर हमें बहुत गर्व हो सकता है और बहुत सी ऐसी बातें भी हैं जिन्हें हम हटाना चाहते थे। इस समन्वय के प्रयास में, संविधान में कुछ सुसंगति और व्यवस्था कम हो गई है, किंतु उसकी शक्ति और स्थिरता बढ़ गई है। मुझे विश्वास है कि इस संविधान का निर्माण काल असाधारण न होता तो यह अधिक प्रगतिशील होता। संसार भर में अव्यवस्था है भारत भी उससे बच नहीं सकता। इस देश में और बाहर, हमारे चारों ओर जो बेचैनी, अस्थिरता और कोलाहल है—उनका प्रभाव इस संविधान पर बहुत पड़ा है। फिर भी यह लोकतंत्रात्मक संविधान है और इससे सामाजिक समता स्थापित हो जाती है।

कई आलोचकों ने, आपातिक उपबंधों के आधार पर आपत्ति करते हुए, इस संविधान को तानाशाही पूर्ण और फासिस्ट कह कर बुरा बताया है। किन्तु वे भूल जाते हैं कि आपात में भी लोक सभा का ही स्थिति पर नियंत्रण रहता है जो कि अत्यन्त विस्तृत मताधिकार पर चुनी गई होगी। मैं नहीं समझ पाता कि इसे तानाशाही या फासिस्टवाद कैसे कहा जा सकता है। मैं जानता हूं कि प्रांतीय सभाओं को निलम्बित किया जा सकता है, किन्तु प्रान्तीय सभाओं के लिये वही मताधिकार हैं जो लोक सभा के लिये हैं, अतएव प्रान्तीय सभायें अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण होने का दावा नहीं कर सकतीं। हां, हमारी संसद ऐसी सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न नहीं है, जैसे कि इंगिलस्तान में हाउस ऑफ पीपुल है। यह तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि संघीय राज्य में संविधान ही सम्पूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न होता है, राज्य का कोई एक अंग नहीं।

मूल अधिकारों से और प्रान्तीय विषयों के छोटे से क्षेत्र के कारण ही लोक सभा की प्रभुता पर कुछ सीमायें लग गई हैं। किन्तु वे सीमायें तानाशाही या फासिस्ट ढंग की नहीं हैं। इसलिये यह बात स्वाभाविक ही है, कि आपात में भी संविधान पूर्णत: लोकतंत्रात्मक रहेगा, मेरे विचार में यह बात काफी ठीक है।

फिर सामाजिक समता को लीजिये। किसी आधार पर मनुष्य मनुष्य में भेद करने की अनुमति नहीं है और उसे सहन नहीं किया जायेगा और अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। यह बहुत दु:ख की बात है कि राष्ट्रपिता नये

संविधान के प्रारम्भ को देखने के लिये नहीं रहे हैं, किन्तु यह कुछ संतोष की बात है कि उन्होंने अपने हृदय की सबसे प्यारी बात अस्पृश्यता-निवारण, को सांविधानिक रूप में पूरा होते हुए देख लिया। संविधान की एक और विशेषता यह है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को हटा दिया है, यह वह कीड़ा था जो हमारे राजनीतिक जीवन को अंदर अंदर से खाकर नष्ट कर रहा था।

हमने अपना कार्य पूरा करने में लगभग तीन वर्ष लगाये हैं। कुछ लोगों का गलत ख्याल है कि यह अनुचित रूप में लम्बा समय है। किन्तु मैं उनका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि द्रुतगति से बदलने वाली स्थिति में जल्दबाजी में बनाया हुआ संविधान अधिक गड़बड़ और व्यय का कारण बनता। मान लीजिये हम अपने कार्य को एक दो वर्ष में पूरा कर लेते, तो साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व रह जाता और कम से कम पहले निर्वाचन तो उस सिद्धान्त पर होते ही। अतः मेरे विचार में जो देर हुई है, यदि वह देर है, तो बिल्कुल ठीक ही है, क्योंकि हमने उससे यह अवांछनीय चीज़ हटा दी है।

फिर आर्थिक पहलू को लेते हैं। तो मुझे स्वीकार करना होगा कि यह इस विषय में इतना प्रगतिशील नहीं है जितना राजनैतिक या सामाजिक विषय में है। यह संविधान निस्संदेह समाजवादी नहीं है, किन्तु समाजवाद की ओर कुछ झुकाव अवश्य है, और महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि मतदाता चाहें तो समाजवाद की स्थापना करने में कोई बाधा या रुकावट नहीं है।

हमारे कुछ आलोचकों ने कहा है कि यह सभा प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि यह सीधी वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है, और इस लिये यह संविधान सेवा समाजवादी नहीं बना है जैसा कि यह अन्यथा बनता। मैं इस बात को नहीं मानता। सिद्धान्त के अनुसार यह बात ठीक हो सकती है, किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि इस सभा की रचना के समय निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता तो भी कांग्रेस अवश्य ही अधिकाधिक स्थान प्राप्त कर लेती। और इस लिये इस सभा की बनावट में मुश्किल से ही कोई परिवर्तन होता। इसलिये मेरा निवेदन है कि यह सभा काफी प्रतिनिधित्वपूर्ण है और यह संविधान उस समय के जनमत का सार रूप में प्रतिबिम्ब है जब कि यह बना था।

अब कुछ दोषों को लेता हूं—मैं केवल कुछ ही दोषों का उल्लेख कर सकता हूं—मैं यह कह सकता हूं कि मैं एककों और केन्द्र के बीच संबंधों के विषय में उपबंधों को पसंद नहीं करता। पहले एक बार मैंने कहा था कि हमारा राज्य संघानीय नहीं है, वरन् विकेन्द्रित एकात्मक राज्य है। बाद के उपबंधों, अर्थात् अनुच्छेद 365 और अनुच्छेद 371 से सिद्ध हो जाता है कि मेरी बात ठीक थी। जहां तक भाग 'ख', 'ग' और 'घ' का संबंध है, अधीक्षण और नियंत्रण की शक्ति स्पष्टतः केन्द्र में निहित है और इसलिये उस हद तक राज्य एकात्मक बन जाता है। केवल भाग 'क' के विषय में ही कुछ संदेह हो सकता हैं। जब मैं इस विषय पर बोला था तब मैंने बताया था कि केन्द्र की अधीनता के क्या चिह्न हैं। अब उन्हें दोहराना मेरे लिये अपेक्षित नहीं है। केन्द्र का प्रभुत्व है। किन्तु मेरी शिकायत यह है कि इस कार्य को अप्रत्यक्ष रूप में किया गया है। यदि इस काम को सीधे, स्पष्ट रूप में किया जाता तो मैं बुरा नहीं मानता। एककों को वित्तीय मामलों में पूर्णतः केन्द्र की कृपा पर छोड़ दिया गया है, और मेरे विचार

[श्री बी.एम. गुप्ते]

में यही सबसे आपत्तिजनक बात है कि स्वाधीनता का दिखावा कर के वित्त के मामले में, एककों को केन्द्र के पूर्णतः आश्रित रखा गया है।

फिर मैंने यह भी शिकायत की थी कि राज्य शब्द बिल्कुल असंगत है। एककों की शक्तियों और कृत्यों में जो असमानता है वह संविधान की विशेषता है। नाम के विषय में यह असंगति दूसरी विशेषता है। हां, पहली असंगति के कारण ऐतिहासिक थे, और हम उन्हें हटा नहीं सकते थे; पहले भी कई प्रकार के एकक थे—प्रांत, राज्य, चीफ कमिश्नर के प्रांत आदि। किन्तु इस नाम 'राज्य' के बिना हम काम चला सकते थे। जैसा कि मैंने उस समय सिद्ध किया था, यह असंगतिपूर्ण है, क्योंकि किसी एकक को कोई अवशिष्ट शक्ति प्राप्त नहीं है। भाग 'ख', 'ग' और 'घ' के राज्य निश्चय से केन्द्र के अधीन हैं फिर भी हमने उन्हें 'राज्य' जैसा बड़ा नाम दे दिया है। इससे उनमें अपनी प्रतिष्ठा के विषय में बढ़ी चढ़ी भावना हो सकती है। इस बड़े नाम के कारण वे समझ सकते हैं कि उन्हें कुछ स्वतंत्रता प्राप्त है, किन्तु उनकी आशायें अवश्यमेव धूल में मिल जायेंगी। इस नाम के कारण ही हमें यह दोष दिया जाता है कि हमारा नाम गुणों के अनुसार नहीं है या नाम के अनुसार गुण नहीं हैं। मेरे विचार में, यह असंगत नाम हटा देना चाहिये था।

इसके कारण मैं रचना संबंधी दोषों पर आता हूं। मेरा अवश्य यह ख्याल है कि रचना में सुधार हो सकता था, यद्यपि जहां तक मौखिक सुधारों का संबंध है मैं मसौदा समिति को दोष नहीं देना चाहता। हम लगातार समय के मुकाबले में दौड़ लगा रहे थे और एक के बाद दूसरी अवधि नियत करते थे। जल्दी के काम में मसौदा समिति को इस विषय पर विचार करने का अवसर नहीं मिला। मैं इस बात से भी सहमत नहीं हूं जो कई आलोचकों ने कई बार प्रकट की है कि यह संविधान वकीलों के लिये कामधेनु है। यह हमारे संविधान की कोई नवीनता नहीं है। यह तो सारे ही आधुनिक संविधानों की विशेषता है और इसी प्रकार प्रत्येक विधान की ही यह बात है। संसार इतना उलझा हुआ कि पूर्ण मसौदा बनना असंभव है, और वकीलों की बुद्धि सदा मसौदाकार की बुद्धि को पछाड़ती रहेगी। इसके अतिरिक्त इस संविधान में विस्तृत उपबंधों के कारण निर्वाचन या अभिसमय की कोई गुंजायश ही नहीं रही, और इसलिये कोई नहीं कह सकता कि मसौदा समिति के वकील सदस्यों ने, अपने पेशे के पक्षपात के कारण, इस संविधान को वकीलों के लिये कल्पवृक्ष बना दिया है।

किन्तु मसौदा-लेखन पर मेरी आपत्ति अधिक मूलभूत है। मेरी राय में, उत्तरदायी शासन के अभिसमय के विषय में एक बहुत गम्भीर त्रुटि है। इस मामले में हमने आयरिश संविधान की नकल की है यद्यपि कनाडा या आस्ट्रेलिया के संविधानों में ऐसा उपबंध नहीं है। आयरलैंड के संविधान में एक उपबंध है कि मंत्रिमंडल विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होगा। हमने इसे ले लिया है किन्तु हमने साथ ही उसके इस उपबंध की नकल नहीं की कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की मंत्रणा पर चलने के लिये बाध्य होगा। हमने उसे छोड़ दिया है। मैं असल में नहीं जानता कि क्यों। इससे बहुत भ्रांति उत्पन्न हो गई और कई लोगों का विचार है कि

राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है। अभिसमय के अनुसार तो वह सांविधानिक प्रधान ही होगा। यह सब अनुदेश-लिखित में थी। किन्तु बाद में हमने उस लिखित को भी हटा दिया और इससे इस मामले में स्थिति अनिश्चित हो गई है।

फिर, राष्ट्रपति के विषय में हमने कोई स्वविवेक की शक्तियां नहीं रखी हैं, किन्तु राज्यपाल के विषय में स्वविवेक की शक्ति का उल्लेख है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह अंतर क्यों रखा जाये। हां अभिसमय है, और लोकतंत्र की शक्ति उसके लोगों के और उनके प्रतिनिधियों के चरित्र पर निर्भर है। यदि हमारे प्रतिनिधि काफी सशक्त हैं, तो वे देखेंगे कि उपबंध की संशयप्रद भाषा के बावजूद भी उस अभिसमय पर अमल हो। किन्तु में तो यह कहता हूं कि मुझे यह बात पसंद नहीं है कि इस महत्वपूर्ण मामले में स्पष्टता नहीं है।

आखिर संविधान पर उसके मजमून को या पत्र पर जो कुछ है उसे देखकर निर्णय नहीं किया जा सकता। कनाडा और आस्ट्रेलिया के संविधानों में बहुत से उपबंध हैं जिनसे गवर्नर जनरल को शक्तियां दी गई हैं, किन्तु वास्तव में उन शक्तियों का प्रयोग कभी नहीं हुआ। वीमर संविधान को आदर्श लोकतंत्रात्मक संविधान बताया जाता था, किन्तु उसे शीघ्र ही हिटलर ने तोड़ दिया और उसकी राख में से एक भयानक तानाशाही उत्पन्न हुई जिसने संसार में एक नाशकारी युद्ध करा दिया। अतएव, संविधान से कुछ नहीं होता और उसके बनाने वाले लोगों पर भी कुछ निभर नहीं है, वरन् सब कुछ उन लोगों पर निर्भर है जो संविधान पर अमल करते हैं और जिस भावना से उस पर अमल करते हैं। कोई संविधान कागज़ पर तो अच्छा हो सकता है किन्तु उसकी सफलता इस बात पर निर्भर होगी कि उस पर कैसे अमल होता है।

इस संबंध में कई लोगों को वयस्क मताधिकार के विषय में आशंकायें हैं। उनकी आशंकायें अशत न्यायोचित हैं, किन्तु हमें अपने सिद्धान्तों पर और जनसाधारण पर भरोसा होना चाहिये। अन्य बालकों के समान हमारे शिशु लोकतन्त्र को भी दांत निकलते समय कष्ट होंगे, और उसके नवयौवन पर शरारतें और अल्हड़न की बातें होंगी, किन्तु प्रारंभिक कष्ट और कभी कभी भूल चूक के बावजूद भी, मुझे आशा है कि साधारणः और अंततः जनसाधारण की सामान्य बुद्धि की विजय होगी। हमारा काम तो केवल उपकरण तैयार कर देना था। उस पर अमल करना दूसरों का काम है। जहां तक मैं देख सकता हूं, हम निस्संदेह यह दावा कर सकते हैं कि हमने इसे अपनी योग्यता और ज्ञान के अनुरूप अच्छे से अच्छा बनाया है। यह काफी क्रियात्मक है और काफी लचकदार है। इससे सुरक्षा और स्थिरता तो रहेगी ही। यदि हम इस संविधान के उपबंधों का अध्ययन करें तो, हम देखेंगे कि मसौदा समिति को सबसे अधिक चिन्ता नये राज्य की सुरक्षा की थी। अतएव इस संविधान में प्रगति में बाधा न डालते हुए सुरक्षा और स्थिरता को निश्चित कर दिया गया है। इसमें वैयक्तिक व्यक्तित्व के विकास को कुंठित न करते हुए सामूहिक कल्याण की वृद्धि की गई है। किन्तु, मेरे विचार में संविधान की असली कसौटी यह होगी कि क्या इससे जनसाधारण के कष्टपूर्ण जीवन में, जो वह कई पीढ़ियों से बिता रहा है, शीघ्रतापूर्वक कोई सुधार होगा। यदि इस संविधान से उसे कुछ संतोष प्राप्त होगा तो निस्संदेह मुझे इसके निर्माण में सहयोग देने पर बहुत गर्व अनुभव होगा।

***श्री बलवन्त सिंह मेहता:** (राजस्थान): माननीय सभापति जी, मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूं कि आज मुझे अपने इस असेम्बली के जीवन में पहली बार ही, किन्तु उस समय मौका मिला है, जब कि हमारे स्वतंत्र भारत का स्वतंत्र विधान इस असेम्बली हाल से स्वतंत्र होने जा रहा है। इसलिये मुझे अपने विचार यहां व्यक्त करने में बड़ी खुशी भी हो रही है।

इस विधान पर कई महानुभावों ने काफी प्रकाश डाला है। कुछ ने इसकी स्तुति की है और कुछ ने इसकी टीका की है। लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, टीका करने वालों ने भी केवल नम्रतावश ही टीका की है। हम लोग संकोचशील हैं और कुछ हमारी ऐसी परम्परा भी रही है कि जब तक बाहर के लोग हमारी तारीफ न करें, तब तक हम अपने आपको कुछ कम ही समझते हैं। इसके कई एक उदाहरण भी है, जहां तक मेरा ख्याल है हमने विधान को जितना बड़ा बनाया है उतना ही अच्छा भी बनाया है। इसको जब बाहर के लोग देखेंगे, तो वास्तव में इस पर काफी आश्चर्य प्रकट करेंगे। इस विधान को बनाने में सब ही प्रतिनिधि हमारे विधान समिति के महानुभावों और खास करके डॉक्टर अम्बेडकर साहब, टी.टी. कृष्णमाचारी, श्री अल्लादि कृष्णस्वामी आदि ने इसमें काफी परिश्रम किया है, वे सब ही हमारी बधाई के पात्र हैं। इसके साथ ही हमारे नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और कांग्रेस के नेता और शहीद, जिनकी वजह से हमने आज स्वतंत्र भारत का विधान बनाया हैं, वे सब हमारी श्रद्धांजलि तथा बधाई के पात्र हैं, क्योंकि इन सबका इसके बनाने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पूरा पूरा हाथ रहा है। विधान परिषद् के अध्यक्ष ने सब विचार के लोगों को अपने विचार प्रकट करने के लिये अधिक से अधिक सुविधा दी है। इस देश के प्रतिनिधियों ने भी विधान की विभिन्न धाराओं के ऊपर पूरे विचार विनिमय के बाद उसे मंजूर किया है, अत: ये भी उतने ही धन्यवाद के पात्र हैं।

विधान के आलोचकों ने काफी और कटु आलोचना भी की है, कुछ लोगों का कहना है कि इसमें राष्ट्रपति को काफी सत्ता दे दी गई है, केन्द्र को काफी मजबूत बना दिया गया है और नागरिकों की स्वाधीनता और मौलिक अधिकारों के ऊपर कुछ प्रतिबन्ध भी लगा दिये गये हैं। ठीक है, इसकी सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन हमारी मौजूदा परिस्थिति में देश की हालत को देखते हुए ऐसा करने के लिये हमें विवश होना पड़ा है। और जिन हालात में हमने इस विधान को बनाया है, उनको देखते हुए, यह उचित ही किया गया मालूम होता है। हमारी आज़ादी अभी शैशवावस्था में है और हमारी राष्ट्रीयता भी अभी जड़बद्ध नहीं हुई है। इसलिये भी यह आवश्यक है कि हम ऐसा प्रतिबन्ध लगायें। आपको मालूम है कि हमारे यहां पहले कितने छोटे-छोटे राज्य थे, राजे महाराजे थे और हमारे यहां प्रादेशिक भावना कितनी बढ़ी हुई थी। इन सब बुराइयों ने अपना घर कर लिया था, इसलिये भी आवश्यक था कि इन हालात को मिटाने के लिये हम केन्द्र को मजबूत बनायें। मैं समझता हूं कि विधान पूर्ण रूप से लोकतंत्री है। इसमें स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की भावना है, और साथ में इसमें समानता भी रखी गई है, और खास करके इसमें हमने बालिग मताधिकार की एक ऐसी धारा रखी है, जो कि मैं समझता हूं कि, अगर सब धाराओं को उठा भी दिया जाये, तो यह एक ही बात ऐसी है, जिससे यह पूर्ण लोकतंत्री माना जा सकता है। इस वक्त हमारे राष्ट्र ने बड़े खतरे को भी मोल लेकर बालिग मताधिकार को रखकर लोकतंत्र की रक्षा की है।

कुछ लोगों का कहना है कि इसमें प्राचीन-शासन प्रणाली का अनुसरण नहीं किया गया है। आपको मालूम होना चाहिये, इस समय हमारे पास प्राचीनता का बहुत कम और धुंधला सा रूप मौजूद है और हमारे पास इसकी कोई रूप रेखा भी नहीं है, फिर भी जहां तक मेरा खयाल है, इसमें ऐसे काफी तत्वों का समावेश किया गया है, जिससे हमारी संस्कृति की रक्षा होती है।

एक बात जरूर इसमें खटकती है। मेरे खयाल से जिस प्रकार से हमारे राष्ट्र-पिता ने हमको आजादी दिलाई, और वह एक खास ढंग से दिलाई, उस प्रकार से हम को राजनैतिक आजादी मिल गई, लेकिन हमारी आर्थिक आजादी अभी प्राप्त करना बाकी है। अतः महात्मा गांधी का आदर्श यानी उनके गांधीवाद का इसमें समावेश होता, तो यह वास्तव में सोने में सुगन्ध का काम देता। और हमारा विधान ऐसा होता, जिससे बाहर वाले भी सबक सीख सकते। आज संसार में घोर अशांति छाई हुई है। अगर अन्य राष्ट्र किसी की तरफ इस अशांति से मुक्ति पाने के लिये देख रहे हैं, तो वह भारत की तरफ की देख रहे हैं। अगर हमारे विधान में गांधीवाद और खास कर गांधी जी की आर्थिक योजना का समावेश और उनके सामाजिक आदर्शों का उल्लेख होता, तो और भी अच्छा होता। अस्तु, राष्ट्र के विकास के साथ विधान का भी विकास होता है। मौलिक अधिकारों की गारन्टी, बालिग मताधिकार और साम्प्रदायिकता का बहिष्कार, विधान में ये तीन चीजें ऐसी हैं, जिस पर हम सबको बड़ा गौरव हो सकता है। इस विधान में हमारी जो आकांक्षायें व्यक्त हुई हैं, उनपर वास्तव में हमको गौरव होना चाहिये। राष्ट्रों के विधान अपरिवर्तनशील नहीं होते, भविष्य में जब भी प्रतिनिधि इसमें परिवर्तन चाहेंगे, तत्काल कर सकेंगे और यह हमारे हाथ में एक ऐसा साधन है, जिसे हम अपनी आवश्यकतानुसार बदल कर देश की उन्नति कर सकेंगे।

देशी राज्यः देशी राज्यों की प्रजा के लिये यह विधान सबसे ज्यादा उल्लासप्रद है। सबसे बड़ा कार्य अगर इन दिनों में कुछ हुआ है, तो यह हुआ कि हमारे यहां जो 562 छोटी-बड़ी राज्यशाहियां थीं, सामन्तशाही का दौर दौरा था, वह एक दम से मिटा कर रियासतों को प्रान्तों के बराबर बना दिया गया। यह एक ऐसा कार्य है जिसके लिये सारे संसार के अच्छे से अच्छे वैधानिक भी इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकेंगे और इसके लिये हमारे सरदार पटेल विशेष धन्यवाद तथा बधाई के पात्र हैं।

साथ ही हमारे यहां पर जागीरदारी का काफी दौर दौरा है और आज इसके कारण काफी डाके पड़ रहे हैं, कहीं लूट हो रही है, हत्यायें की जा रही हैं, इससे लोगों में काफी आतंक छाया हुआ है। मैं समझता हूं कि हमारे विधान के आरम्भ होते-होते यह सब व्यवस्था भी ठीक हो जायेगी।

राष्ट्र भाषाः दूसरा जो सबसे बड़ा काम, मैं समझता हूं, हमारी आजादी के बाद हुआ है, वह है हमारा अपनी राज भाषा को स्वीकार करना। हमने हिन्दी को राज भाषा स्वीकार किया है। और यह स्वयं अकेला ही ऐसा कार्य है, जो हमारे सारे राष्ट्र को एक सूत्र में रख सकता है और रखेगा। यह बहुत बड़ा कार्य हुआ, लेकिन अब हमें राजभाषा को राष्ट्र भाषा बनाना है। इस काम की खास

[श्री बलवन्त सिंह मेहता]

कर जिम्मेदारी उन लोगों के ऊपर है, जिनकी भाषा हिन्दी है और अन्य दूसरे सब भाई इसमें इस प्रकार सहयोग दें कि हमारी यह भाषा इतनी सरल और सुगम होकर सारे भारतवर्ष में एक राष्ट्र भाषा के रूप में व्यापक हो जाये।

एक खेद वाली बात यह है कि हमारी प्रादेशिक भाषाओं की जो सूची स्वीकार की गई है, उसमें हमारी 'राजस्थानी' को स्थान नहीं दिया गया। यह डेढ़ करोड़ मनुष्यों की भाषा है और इसमें बड़ा साहित्य है और हिन्दी के प्राचीन और वीर रस के साहित्य में इस भाषा का काफी ऊंचा स्थान रहा है। ऐसी भाषा को उस सूची से अलग रखना हमारे लिये काफी दु:ख की बात है। मैं समझता हूं कि हमारे महारथी आगे इसको पार्लियामेंट के द्वारा प्रादेशिक भाषाओं की सूची में अपना उचित स्थान दिलायेंगे।

एक बात जो देशी रियासतों को और खासकर राजस्थानियों को खटकने वाली और आघात पहुंचाने वाली हुई है, वह हमारे रियासती सचिवालय के द्वारा सिरोही का विभाजन है। सिरोही एक ऐसा स्थान है, जो कि राजस्थान में एक बहुत महत्व का स्थान रखता है। सिरोही का मतलब राजस्थानी में तलवार से होता है और वह वास्तव में राजस्थान की तलवार है। हमारे श्रद्धेय नेता सरदार साहब ने हमारे महाराणा प्रताप का राजस्थान निर्माण का स्वप्न पूरा किया था, लेकिन अगर उसकी यह तलवार तोड़ दी जाती है, तो मैं समझता हूं कि यह एक ऐसी चीज़ है, जिससे प्रत्येक राजस्थानी को दु:ख होगा। सिरोही का सम्बन्ध बराबर राजस्थान से रहा है। वह राजस्थान की भाषा से, भूगोल से, और इतिहास से बराबर सम्बन्धित रहा है। कम से कम एक हजार वर्ष का ऐसा इतिहास है, जिससे यह कहा जा सकता है कि सिरोही बिल्कुल राजस्थान का अविभाज्य अंग है। आबू में महाराणा कुम्भा ने अचलगढ़ का किला इसी लिये बनाया था कि वह गुजरात के हमले से राजस्थान की रक्षा कर सके, इसके खंडहर आज भी मौजूद हैं। आज भी राजस्थान के धनी लोगों का लाखों रुपया वहां लगा हुआ है, और इतिहास से, परम्परा से, भूगोल से और सब तरह से वह हमारा अंग है और इस प्रकार उसका अंगभंग होना राजस्थान के लिये बड़े दु:ख की बात है। मैं समझता हूं कि इसके लिये हमारे समस्त देशी रियासतों के प्रजाजनों को दु:ख हुए बिना नहीं रहेगा। यह इस प्रकार का बंटवारा किया गया है कि जिसकी न तो जनता की ओर से मांग थी और न राजा की ओर से ही। न वहां की कांग्रेस कमेटी ने और न वहां की प्रजा ने ही कभी यह मांग की है। जब से वह बम्बई में मिलाया गया है, तब से वहां के निवासियों की यही मांग चली आ रही है कि हम राजस्थान के रहने वाले हैं और हम राजस्थान में रहेंगे। लेकिन अचानक और जिस गोपनीय ढंग से उसका बंटवारा हुआ, इसको सुनकर प्रत्येक आदमी चकित हो जाता है। जिस रोज उसका ऐलान यहां असेम्बली हाल में किया गया था, मुझे मालूम है कि उस समय हमारे भाग्य से हमारे नेता पं. जवाहर लाल जी भी यहां मौजूद थे, वे और सभी अन्य सदस्य बड़े गौर से और स्तम्भित होकर उस आदेश को सुन रहे थे, जिसमें यह कहा गया था कि आज से सिरोही का विभाजन हो गया। हमें नहीं मालूम कि विभाजन किस प्रकार हुआ है, लेकिन जहां तक हमारा ख्याल है, यह विभाजन आबू को लेकर हुआ है। आबू सिरोही और राजस्थान का खास अंग रहा है। यह हमेशा से राजपूताना का एक भाग और अंग्रेज़ी शासन-काल में राजधानी के रूप

में रहा था और उसका राजस्थान से करीब एक हज़ार वर्ष का बराबर सम्बन्ध चला आ रहा है। वहां के लोग हिन्दी भाषा-भाषी हैं और राजस्थानी भाषा बोलते हैं। वहां पर गुजराती बोलने वाले बहुत ही कम होंगे। शायद तीन या चार परसेंट मुश्किल से मिलें। ऐसा करने के लिये राजस्थान की जनता की ओर से कोई मांग नहीं थी और न राजा की ओर से ऐसा करने का संकेत ही था। बहुत से कविनेंट हो चुके हैं, पर यह पहला कदम है कि जहां बिना राजा के पूछे हुए या प्रजा के पूछे हुए किसी प्रदेश का विभाजन किया गया है। तो मैं समझता हूं कि यह एक ऐसी चीज़ हुई है कि जिससे राजस्थानियों को बहुत ही दु:ख होगा और मैं आशा करता हूं कि यह भूल जल्दी ही ठीक कर ली जायेगी।

हमारे विधान में एक सबसे बड़ी बात यह हुई है कि हमारे भारत के ऊपर जो एक बहुत बड़ा कलंक अस्पृश्यता का था, उसको इस विधान के द्वारा हमेशा के लिये मिटा दिया गया है। यह खास कर सबसे बड़ी गर्व और खुशी की बात हुई है। इसका श्रेय हमारे नेताओं को और खासकर ठक्कर बापा को है। उनका सारा जीवन आदिवासियों और हरिजनों की सेवा में बीता है। ठक्कर बापा की सेवा और महात्मा गांधी का त्याग और तपस्या का फल है कि आज हम इस कलंक को धो सके। आपको मालूम होगा कि हमारे हिन्दुस्तान में करोड़ों ऐसे आदिवासी हैं, जो विकट जंगलों में रहते हैं। उनको सबसे पहले जगाने वाले हमारे श्रद्धेय ठक्कर बापा ही हैं। वह आज इस अवस्था में भी, उनके लिये वहां जाते हैं और उनको चेतना देते हैं। मैं ठक्कर बापा को भी इस मौके पर, इस राष्ट्रजागृति के लिये, अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। हमारे राजस्थान में भी काफी संख्या में आदिवासी और हरिजन रहते हैं और मेरी प्रार्थना है कि जिस प्रकार मध्य भारत में उन के लिये एक मिनिस्टर रखा गया है, उसी प्रकार से हमारे यहां भी इस तरह के एक मिनिस्टर की योजना की जानी चाहिये थी। हमारे राजस्थान के प्रधान मंत्री जी भी यहां मौजूद हैं। मेरी उनसे अपील है कि वे जल्दी ऐसा प्रबन्ध करें। वे लोग करीब तीस लाख की संख्या में हैं और उनकी दशा काफी गिरी हुई है और अब तक उनके लिये कोई खास कदम नहीं उठाया गया है। इसलिये अगर हमें इन भाइयों को अपने स्तर पर लाना है तो हमारा और आप सब लोगों का फर्ज़ है कि हम इस कार्य में पूरा पूरा योग दें।

विधान को जितना अच्छा हम बना सकते थे बनाया है। अब हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी कांस्टीट्यून्सीज़ में जायें और इस विधान को हम अपने गांवों में लोगों को समझावें, जहां कि हमारा कार्य क्षेत्र है। शिक्षा व प्रचार के अभाव में कभी कभी जनता में बड़ी गलतफहमी फैल जाती है। आम जनता के लिये तो स्वराज्य और विधान का यही मतलब है कि उन लोगों को खाने के लिये रोटी, पहनने के लिये कपड़ा, रहने के लिये मकान और शिक्षा मिले। लेकिन यद्यपि इस विधान में इसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं है, फिर भी हम अपने कार्यों से इस विधान को ऐसा बना सकते हैं कि जिससे जल्दी से जल्दी ऐसी व्यवस्था उनके लिये की जा सके कि उनके दु:ख जल्दी ही दूर हो जायें। लेकिन यह कब होगा, जब हम महात्मा गांधी के आदर्शों पर चलेंगे। जिन का इसमें पहले संकेत किया गया है। इसके लिये हमको अपनी फ़जूल खर्ची को भी कम करना होगा हमें ऊपर वालों के रहन सहन को थोड़ा नीचे लाना पड़ेगा और नीचे वालों

[श्री बलवन्त सिंह मेहता]

के रहन-सहन को ऊपर लाना पड़ेगा। हमारा शासन काफ़ी खर्चीला होता जा रहा है। मैं समझता हूं कि इसकी वजह अंग्रेज़ी शासन का प्रभाव है। हमारे वर्तमान शासन के काफी खर्चीले होने के कारण ही विधान को भी काफी खर्चीला रखा गया है। अगर इसके सुधार की ओर ध्यान दिया जाता, तो ज्यादा अच्छा होता और अब भी यह शासन-व्यवस्था के हाथ में है कि इसको ऐसा रूप दे, जिससे गरीबों को ज़्यादा लाभ पहुंचे।

बस यह कह कर मैं डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा हमारे विधान को पास करने के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और महात्मा गांधी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं कि जिनकी तपस्या और बलिदान से आज हम यह दिन देख पाये हैं कि भारत के स्वतंत्र होने के बाद हम अपना विधान भी पूरा कर सके।

तत्पश्चात् सभा मध्याह्न भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

सभा मध्याह्न भोजन के पश्चात्, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में, तीन बजे समवेत हुई।

श्री नंदकिशोर दास (उड़ीसा: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे इस संविधान पर खंडश: चर्चा में भाग लेने का अवसर बिल्कुल नहीं मिला था अतएव मैं इस अंतिम अवसर से ही लाभ उठा कर संविधान पर जिस रूप में कि यह गत लगभग तीन वर्षों के विचार विमर्श से पश्चात् अंतत: बना है, कुछ व्यापक बातें कहना चाहता हूं।

मुझे उन बातों का ध्यान आता है जबकि दिसम्बर 1946 में हम संविधान सभा में प्रथम बार समवेत हुए थे। उस समय देश में राजनैतिक आकाश श्यामघनों से आच्छादित था और अपशकुनों तथा अशुभ लक्ष्णों से भरा था और हमारे मन में काफी संदेह और चिन्ता थी कि क्या वे विरोधी तत्व और विचार भेद वाले वर्ग, जो संविधान सभा में थे, एक सर्वसम्मत तथा संतोषजनक संविधान बना सकेंगे, जो समूचे देश को स्वीकार्य हो।

संविधान सभा की प्रारंभिक कार्यवाही के पश्चात् द्रुतगति से जो घटनायें हुईं, जिनका परिणाम सत्ता का हस्तांतरण और देश का विभाजन हुआ, उनसे ये अनिश्चितता बहुत हद तक दूर हो गई। सभा से हठी तत्वों के गायब हो जाने से रास्ता साफ हो गया कि संविधान सभा अधिक सुखद परिस्थिति में और अधिक अच्छे वातावरण में अपना कार्य आरंभ कर सके। किन्तु फिर भी ऐसे देश के लिये संविधान बनाना बहुत कठिन कार्य था जिसमें इतने विभिन्न तत्व हों और इतने अनेक हित हों, अत: हममें से अत्यन्त आशावादी लोगों को भी हमारी अंतिम सफलता में स्वभावत: संदेह हो रहा था।

अतएव यह एक सर्वोच्च संतोष की बात है, और इसके लिये हमें अपने नेताओं और संविधान निर्माताओं की सहिष्णुता की भावना को श्रेय देना चाहिये, कि इस

संविधान सभा का परिश्रम अंततोगत्वा सफल हो गया और हमारे समक्ष एक संविधान है जो अपने परिमाण में और उसके अन्दर जो कुछ लिखा है उसके मूल्य में, संसार के सर्वोत्तम संविधानों में से हो सकता है। सदन में एक वर्ष पूर्व संविधान का मसौदा पेश करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि इस संविधान में 313 अनुच्छेद हैं इस लिये यह संसार में सबसे भारी संविधान है, और अब तो अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 395 हो जाने पर यह और भी भारी हो गया है। हमारे नेताओं और संविधान निर्माताओं को हम हार्दिक बधाई देते हैं कि उन्होंने अन्य कार्यों के होते हुए भी इस स्पष्टतः भागीरथ कार्य में योग दिया है। इस संविधानिक ढांचे का रक्त मांस तो हमारे वर्तमान नेताओं और उनके पूर्ववर्ती अनेक क्रांतिकारियों की देन है, किन्तु उसकी अस्थियां और मांस-पेशियां, दूसरे शब्दों में संविधान का असली ढांचा, मसौदा समिति के परिश्रमों का ही फल है, जिसके अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने ही पूर्ण योग्यता से इस महान कार्य को अकेले अपने कंधों पर वहन किया।

इस संविधान की बहुत सी सराहनीय बातें हैं जिसकी ओर इतने माननीय सदस्यों ने पहले ही ध्यान आकर्षित कर दिया है और मैं उन सब का निर्देश करना आवश्यक नहीं समझता। देश की समस्त वयस्क जनता को मताधिकार देना इस संविधान का सबसे बड़ा लोकतंत्रात्मक कार्य है। सदन के माननीय सदस्यों को यह जान कर दिलचस्पी होगी कि इस संविधान में जिन लोगों को मताधिकार दिया गया है, उनकी संख्या सोवियत रूस की समस्त जनसंख्या से अधिक नहीं तो लगभग बराबर है। वयस्क मताधिकार निस्संदेह हमारे चिराकांक्षित और प्रायः घोषित इच्छा की पूर्ति है किन्तु देहात में आज जो अव्यवस्थित वस्तुस्थिति है उसमें इसकी सफलता होगी या नहीं यह संदेह और चिन्ता का विषय बन गया है। मूल अधिकार इस संविधान का एक और महान अध्याय है। इन अधिकारों पर इतने उपयोगी निर्बन्धन लगाये गये हैं उनसे उनकी उपादेयता कम नहीं होती, वास्तव में उनके कारण वे अधिकार और भी अधिक मूल्यवान बन जाते हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नागरिकों को जो अधिकार दिये गये हैं उनका अर्थ यह न बन जाये कि 'नागरिक स्वातंत्र्य' के अशुद्ध नाम से होने वाली कार्य-स्वतंत्रता जैसी बातों के लिये खुली छुट्टी मिल जाये। कुछ मित्रों ने हमारे मूल अधिकारों की अपर्याप्तता की शिकायत की है। मेरे माननीय मित्र श्री लक्ष्मी नारायण साहू ने तो यहां तक कह डाला है कि ब्रिटिश राज में जो नागरिक अधिकार थे वे भी वर्तमान संविधान में कम कर दिये गये हैं। मैं अपने मित्र श्री साहू जी और उनके विचारों वाले अन्य लोगों को एक समाचार का निर्देश करना चाहता हूं जो आज के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में 'रेलवे अधिकारी पर विद्यार्थियों द्वारा आक्रमण' शीर्षक के अंतर्गत छपा है:—

> "कुल्हाड़ों, लोहे के छड़ों और हाकी स्टिकों से लैस, स्थानीय इंग्लिश हाई स्कूल के 40 विद्यार्थियों ने यहां पास के घुसिया कला रेलवे स्टेशन पर टिकट बाबू को गार्ड के डिब्बे से बाहर घसीट लिया और उसे घायल कर दिया। उस टिकिट बाबू ने कुछ विद्यार्थियों से, जो प्रथम श्रेणी में बिना टिकट चल रहे थे, किराया चार्ज किया था। उसे अपने सख्त घावों के उपचारार्थ सैदा हस्पताल में भरती किया गया।"

[श्री नंदकिशोर दास]

यदि मेरे माननीय मित्र श्री साहू की नागरिक स्वतंत्रता में ऐसी असामाजिक और राष्ट्रीयता विरोधी कार्यवाहियां भी शामिल हैं तो मुझे इस पर सचमुच खेद है।

अधिकारों के साथ कुछ कर्तव्य भी होने चाहिये। अच्छा होता यदि संविधान में मूल अधिकारों के साथ साथ यह भी होता कि नागरिकों को उन अधिकारों के योग्य बनने के लिये क्या क्या विशिष्ट कर्तव्यों का पालन करना होगा।

अस्पृश्यता का अंत, किसी रूप में अस्पृश्यता के कारण किसी निर्योग्यता को लागू करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध माना जायेगा, साम्प्रदायिक निर्वाचक-मंडल के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन, ये सब संविधान की अन्य सुखद विशेषताऐं हैं। अनुच्छेद 36 से 51 में जो संविधान के भाग 4 में हैं, अर्थात् राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त हैं, संसार भर की, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक या आर्थिक नीति के सर्वश्रेष्ठ और महानतम सिद्धान्तों का निचोड़ है। मुझे आश्चर्य है कि इन सब सुन्दर उपबंधों के होते हुए, कुछ क्षेत्रों ने इस संविधान को कैसे प्रतिक्रियात्मक और पिछड़ा हुआ बता दिया है। क्यों मैं उन अनुदार आलोचकों से कह सकता हूं कि वे एकत्र होकर कोई दूसरा संविधान बनाकर दिखायें जो देश की आवश्यकताओं के अनुसार व्यवहारिक संविधान होना चाहिये, किसी स्वप्न-देश के लिये न हो।

किन्तु यह स्वीकार करना ही होगा कि यह संविधान संसार के सर्वोत्तम कागज़ी संविधानों में से होते हुए देश में काफी उत्साह उत्पन्न नहीं कर सका है और संविधान के अत्यन्त प्रशंसकों के मन में भी संदेह है कि इसमें कुछ कसर है और यह यथेष्ट वस्तु नहीं है। कुछ मित्रों ने शिकायत की है कि यह संविधान गांधी जी की विचार धारा के अनुरूप नहीं है और इसी कारण उन्हें बहुत निराशा हुई है। मैं वैयक्तिक रूप में अपनी ओर से कह सकता हूं कि मुझे इस बात पर जरा भी निराशा नहीं है कि यह संविधान गांधी जी के आदर्श के अनुसार नहीं बना है, क्योंकि मुझे हमारे संविधान निर्माताओं से गांधीवादी संविधान की जरा भी आशा ही नहीं थी। हम सब राष्ट्रपिता का नाम लेते हैं किन्तु हमने कितनों ने अपने दैनिक जीवन में उनके उपदेशों को अपनाया है? हममें से कितने हैं जिन्हें प्राचीन आत्मभरित ग्राम प्रणाली पर समाज का निर्माण करने में अखंड विश्वास है? गांधीवादी संविधान केवल मशीनी तरीके से नहीं बन जायेगा, उसके लिये यह आवश्यक है कि उनके विचारों के सर्वथा अनुरूप समाज को बनाने का हमारा पूर्ण विश्वास हो और दृढ़ निश्चय हो। यह दृढ़ निश्चय देश में लगभग कहीं भी नहीं है। अतः गांधीवाद से विहीन दिमागों से गांधीवादी संविधान का निकलना संभव है ही नहीं। गांधी जी ने अपने जीवन भर में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर ज़ोर दिया किन्तु हमारा संविधान बिल्कुल उल्टे ही मार्ग पर चला है, वह है अत्यधिक केन्द्रीयकरण। हमारे नेताओं का विचार है, और ठीक भी है, कि सशक्त केन्द्र नहीं होगा तो इस शिशु लोक तंत्र को सब ओर से विघ्नशील शक्तियों द्वारा नष्ट होने का खतरा रहेगा। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् देश में जो घटनायें हुई हैं, उससे इस प्रकार के संविधान का औचित्य पर्याप्त रूप में सिद्ध हो जाता है। अतः संविधान के लिये उत्साह की कमी का ठीक-ठीक कारण ढूंढा जाये तो वह संविधान में किसी आंतरिक त्रुटि के कारण नहीं है, इसका कारण वह परिवर्तनशील और दुःखद

परिस्थिति है जो इस देश में स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् ढाई वर्ष से चल रही है। इन परिस्थितियों में संविधान में झूठे सच्चे दोष निकाल कर उसे बुरा बताने से कोई लाभ नहीं होगा, और जनता के सब वर्गों के लिये सर्वोत्तम और सबसे अधिक देश-प्रेम पूर्ण मार्ग यही है कि सब एक हो कर इस नये गणराज्य-संविधान को सफल होने का अवसर दें और इस प्रकार देश के नेताओं द्वारा नवार्जित स्वतंत्रता को पक्का करने के कार्य में अखंड श्रद्धा प्रकट करें।

श्रीमान, मैं समाप्त करने से पूर्व अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपने इस सदन की कार्यवाही को जिस न्यायपूर्ण और निष्पक्ष ढंग से चलाया है और इस प्रकार इस कार्य की सफलता में कम योग नहीं दिया है, उसके लिये सम्मान और सराहना की नम्र श्रद्धांजलि पेश करूं।

***सरदार सुचेत सिंह** (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ): अध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा को बधाई देने के लिये खड़ा हुआ हूं कि इसका तीन वर्ष का परिश्रम सफल हो गया है और देश का संविधान इस अंतिम रूप में तैयार हो गया है। देश को अपने महान नेताओं का, सुविख्यात विधि-वेत्ताओं का, भाषाविज्ञों, वैयाकरणों और विद्वानों का आभारी होना चाहिये कि उन्होंने कठोर और ध्यानपूर्वक परिश्रम करके अपनी इस मातृभूमि को ऐसी वस्तु पेश की है जो उन्होंने अपनी सच्चाई और विवेक के अनुसार करोड़ों नरनारियों और बालकों के लिये सर्वश्रेष्ठ समझी, क्योंकि वे ही करोड़ों व्यक्ति इस महान उप-महाद्वीप में रहते हैं और अब वे देश के मामलों में प्रभुता और अंतिम शक्ति उन्हीं लोगों में निहित है।

श्रीमान, सांविधानिक ढांचा किस प्रकार का होना चाहिये और किस दिशा में उसका रुख होना चाहिये, इस विषय पर काफी कहा जा चुका है। हमने कार्य आरम्भ किया तब हमारे दिमाग में किसी विशेष सिद्धान्त के प्रति या विरुद्ध पक्षपात नहीं था। हम संघानीय, एकात्मक या किसी अन्य प्रकार के ढांचे के रखने पर तुले हुए नहीं थे। हमारे सामने अन्य उन्नत देशों के इतने संविधानों के मज़मून और अनुभव थे। हमने उनमें सर्वोत्तम बातें चुनने का प्रयत्न किया जो हमारी स्थिति के और विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप हो जो हमारी परंपराओं और गत अर्धशताब्दी के शासकीय संस्थानों के अनुभव के अनुरूप हो। परिस्थितियों की ऐतिहासिक व्यापकता के साथ साथ हमें गत 27 मासों में देश के शासन का व्यवहारिक अनुभव भी हो गया और अंतर्राष्ट्रीय तथा विश्व समस्याओं के संबंध में अपनी सामाजिक और घरेलू समस्याओं की हमें समुचित और वास्तविक समझ भी आ गई, और इस परिस्थिति में और पृष्ठभूमि पर हमें अपने संविधान के गुणावगुण का निर्णय करना चाहिये और उसे समझना चाहिये।

श्रीमान, मैं उन लोगों में से हूं जो यह अनुभव करते हैं और विश्वास करते हैं कि हमारी नवप्राप्त स्वतंत्रता के हित, संगठन और स्थायित्व के लिये यह आवश्यक है कि एक सबल केन्द्र हो और साथ ही प्रांतीय और स्थानीय स्वायत्तता भी समुचित रूप से और स्वतंत्र रूप से चल सके। हम केवल कुछ नारों और आन्दोलनों का समाधान मात्र करने के लिये अत्यधिक विकेन्द्रीकण जैसी चीज़ स्वीकार नहीं कर सकते। ठीक है कि इतने बड़े देश में, जहां 34 करोड़ जनसंख्या हो, और विविध स्थानीय समस्याएं हों, एकात्मक शासन-व्यवस्था अनुपयुक्त है, परन्तु

[सरदार सुचेत सिंह]

एक पूर्णतया विकेन्द्रित शासन-योजना से तो निश्चय ही विघटनशील शक्तियां छूट पड़ेंगी और फलतः देश अंत में खंड खंड हो जायेगा, विशेषतः इसलिये कि हमारे मध्य प्रांतीयता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद और सामाजिक तथा आर्थिक असमता का बहुमुखी राक्षस सदा मुंह बाये खड़ा है।

कुछ मित्रों ने नागरिक स्वाधीनता को देवता ही बनाने का प्रयत्न किया, जो, उनके कथनानुसार तभी समाप्त होनी चाहिये जब कि नागरिक सत्ता ही समाप्त हो जाये। ऐसा कहना केवल मनोरंजन का विषय है, या विचित्र बात है। यह तो ऐसे ही है कि कोई किसी देवता को नष्ट करने पर तो आपत्ति न करे किन्तु उसी की उपासना में विध्न डालने पर आपत्ति करे। स्वाधीनता के दुरुपयोग पर उपयोगी निर्बन्धन और बाधायों होनी चाहिये तभी हम अपने देश के खंडन को और शासन व्यवस्था के टूटने को रोक सकते हैं।

कुछ मित्रों ने यह दुःख प्रकट किया है कि हमारे संविधान में काम करने का अधिकार नहीं रखा गया है। अनुच्छेद 19 खंड (छ) में लिखा है "सब नागरिकों को कोई वृत्ति उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।" यदि यह काम करने का अधिकार नहीं है, तो मुझे आश्चर्य है कि काम करने की भावना को किस भाषा में अधिक अच्छी तरह से और स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता था।

पूर्वी पंजाब के मेरे दो सिख मित्रों ने अल्पसंख्यकों संबंधी उपबंधों पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की है। मैं यह बता देता हूं कि धार्मिक या मूलवंशीय "अल्पसंख्यक" शब्द तो कहीं भी संविधान में आया ही नहीं है। किन्तु सम्प्रदाय शब्द को, जो साम्प्रदायिकता नामक गंदी मनोवृत्ति का मूल है, आंग्ल-भारतीयों के संबंध में रख दिया गया है। मैं स्वीकार करता हूं कि आंग्ल-भारतीय कोई धार्मिक वर्ग नहीं हैं, वरन् वे एक मूलवंशी सम्प्रदाय हैं, जो सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप में इतना उन्नत है कि उसे कोई विशेष रियायत देने में कोई औचित्य नहीं है। निस्संदेह, उनके पिछड़े हुए होने के कारण किसी अन्य कारण से ही उन्हें यह अधिकार दिया गया है कि वह अनावश्यक और अशोभनीय पक्षपात के उपबन्ध को रखकर संवधिान को कुरूप बनायें। विद्यमान सेवाओं के लिये जो रक्षा-कवच रखे हैं वे उनके हितों की रक्षा के लिये पर्याप्त समझे जा सकते हैं, परन्तु भविष्य में भरती के विषय में उनके पक्ष में कोई विभेद करने पर अन्य जातियां न्यायपूर्वक आपत्ति कर सकती हैं। सिख आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को दी गई रियायतों पर तो आपत्ति कर सकते हैं, पर इसके अतिरिक्त अपने लिये कोई अनुचित रियायत मांगने का उन्हें कोई न्यायपूर्ण अधिकार नहीं है। सिखों का प्रश्न भावना का नहीं है, सार का है। मूल प्रश्न यह है कि क्या सिख सामाजिक, शैक्षणिक या आर्थिक या किसी अन्य क्षेत्र में किसी प्रकार पिछड़ा हुआ सम्प्रदाय है। मैं कहता हूं कि ऐसी बात नहीं है। समाज में उनका सम्मान है और आर्थिक रूप में वे समृद्ध हैं क्योंकि वे उद्यमी और परिश्रमी होते हैं। गत मास पटियाला में सिख शिक्षा सम्मेलन में बताया गया था कि गत जनगणना के अनुसार पंजाब के मुस्लिमों में साक्षरता का स्तर 9 प्रतिशत था, हिन्दुओं में 16 प्रतिशत और सिखों में $17^{1}/_{2}$ प्रतिशत था।

इसी वर्ष पूर्वी पंजाब लोक-सेवा आयोग ने प्रांतीय सेवाओं के लिये सफल अभ्यर्थियों की सूची बनाई जिसमें अस्थायी रूप से स्वीकृत अनुपात से 40 प्रतिशत सिखों को और 60 प्रतिशत अन्यों को रखा गया। पूर्वी पंजाब के मुख्य मंत्री श्री भीमसेन सच्चर ने वह सूची लोक सेवा आयोग को यह सिफारिश करके भेज दी कि सूची को पूर्णत: योग्यता के आधार पर बनाया जाये और फलत: सिख अभ्यर्थी 40 प्रतिशत से भी अधिक आ गये। क्या मैं सरदार हुक्म सिंह और सरदार भोपेन्द्र सिंह मान और उनके विचारों के अन्य व्यक्तियों से पूछ सकता हूं कि क्या हमारी पिछड़ी हुई अवस्था और रक्षा कवचों की आवश्यकता हमारी उच्चतर साक्षरता और अधिक दक्षता के कारण है? इसके अतिरिक्त, आई.ए.एस. के लिये गत दो वर्षों में जो दो प्रतियोगिता परीक्षायें हुई थीं उनमें सिख अभ्यर्थियों को संख्या देश में हमारी जनसंख्या के अनुपात से कम नहीं रही। यह याद रखना चाहिये कि ये दोनों परीक्षायें कठिन समय पर हुई थीं जबकि सिख सम्प्रदाय के बहुत से लोग विभाजन के कष्टों और कठिनाइयों से उत्पीड़ित थे और विस्थापित व्यक्तियों को ऊंची परीक्षाओं के लिये बहुत अच्छी तैयारी करने का आवश्यक वातावरण ही उपलब्ध नहीं था। मुझे पूरी आशा और भरोसा है कि विस्थापित व्यक्तियों के पुन:स्थापन के पश्चात् हमारे नवयुवक देश की सेवा के लिये अवसर प्राप्त करने के लिये और भी अच्छे परिणाम प्राप्त करेंगे।

सरदार हुक्म सिंह ने यह एक आर्थिक सत्य ही कहा है कि सिखों के दो मुख्य पेशे कृषि और सेना हैं। उन्हें खेती के संबंध में तो विभेद की शिकायत करने का कोई अवसर ही नहीं है क्योंकि उसमें हमारे 85 प्रतिशत लोग लगे हुए हैं। सेना में हमारी विशेष स्थिति भी बनी ही रहेगी जब तक कि हमारे नैतिक और शारीरिक गुण और भौगोलिक परिस्थिति वैसी बनी रहेगी जैसी कि अब है। कोई भी देश वीरता और साहस को अपनी सेना से बाहर नहीं रख सकता, और पूर्वी पंजाब एक सीमा प्रांत है इसलिये सरकार को अवश्य बाध्य होकर वहां की जनता को सैनिक प्रशिक्षण देना होगा और दूसरी ओर से खतरों का सामना करने के लिए उन्हें पूर्णत: लैस रखना होगा और एक स्थायी जनकोष भी रखना होगा जहां से सेना के लिये समय समय पर आवश्यकतानुसार भरती की जा सके। मेरे विचार में अब समय है कि हम अपनी पतितावस्था का निरंतर राग अलापना बंद कर दें क्योंकि यह सरकारी सेवाओं में नये भरती होने वाले हमारे नवयुवकों की बुद्धिमत्ता और योग्यता का अपमान है, और जो पहले ही सरकारी सेवा में हैं उनकी कार्यक्षमता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जब कोई कमी या अभाव न हो तब उनपर अत्यधिक जोर देने से हमारे योग्य अधिकारियों के स्वाभिमान और प्रतिष्ठा को क्षति होती है, चाहे भविष्य में उनकी उन्नति पर प्रभाव न पड़े। जहां तक सेवाओं का संबंध है, हमारा मामला अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के समान नहीं है, और सत्य को छिपाने या तोड़ने मोड़ने के लिये कृत्रिम प्रयास करना व्यर्थ है।

एक अन्य कृत्रिम शिकायत भी गढ़ने का प्रयत्न किया जाता है कि अल्पसंख्यक परामर्शदात्री समिति ने सिखों के पिछड़े हुए वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल करने का जो निर्णय किया गया था उसे यूं ही बदल कर पटियाला और पंजाब राज्य संघ पर लागू नहीं किया गया है। मैं कहता हूं कि इससे बड़ा असत्य कुछ नहीं है। सरदार भोपिन्द्र सिंह मान ने इस मामले को जिस प्रकार रखने का प्रयत्न किया है, वास्तव में बात उसके विपरीत है और स्थिति में काफी सुधार ही हुआ

[सरदार सुचेत सिंह]

है। माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जो अल्पसंख्यकों और मूलाधिकारों संबंधी परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष थे, अपने 11 मई 1949 के प्रतिवेदन में यह लिखा था कि:—

"समिति ने सिख प्रतिनिधियों की इस सर्वसम्मत प्रस्थापना को भी स्वीकार कर लिया कि पूर्वी पंजाब में निम्न श्रेणियां, अर्थात्, मज़हबी, रामदासी, कबीरपंथी और सिक्लीगर, जो उन्हीं निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं जिनसे कि अनुसूचित जातियों के अन्य सदस्य हैं अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल की जानी चाहिये जिससे कि वे अनुसूचित जातियों को दिये गये प्रतिनिधित्व से लाभ उठा सकें।"

उस समय देशी राज्यों का पद प्रांतों के पद से विभिन्न रखने का इरादा था। किन्तु बाद में एक ही स्तर और पद स्थापित करने के निर्णय से अनुच्छेद 341 का निम्न रूप बन गया है:—

"राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श करने के पश्चात्, लोक-अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूलवंशों या आदिमजातियों अथवा जातियों, मूल वंशों या आदिमजातियों के भागों या उनमें के यूथों का उल्लेख कर सकेगा, जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उस राज्य के संबंध में अनुसूचित जातियां समझी जायेंगी।"

इससे यह प्रतीत होता है कि पूर्वी पंजाब और प.पू.प.रा. संघ में कोई अन्तर नहीं है। अनुच्छेद 15 खंड (1) में लिखा है:

"राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इसमें से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा।"

इसे देखते हुए, हमारा संविधान या देश की सरकार या इस संविधान पर आधारित देश में कोई भी राज्य पूर्वी पंजाब और प.पू.प.रा. संघ के बीच विभेद कैसे कर सकता है? मुझे भय है कि मेरे सहधर्मियों ने जो आशंकायें प्रकट की हैं वे तर्कहीन हैं और इस संविधान के समुचित उपबंधों को देखे बिना ही बना ली गई हैं।

पिछड़े हुए वर्गों सम्बन्धी आयोग के क्षेत्राधिकार और कृत्यों के विषय में जो आपत्ति है वह भी इतनी ही निराधार है। अनुच्छेद 340 के अधीन नियुक्त किया जाने वाला आयोग भारत राज्य क्षेत्र में सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं का तथा जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनका अनुसंधान करेगा और उन कठिनाइयों को दूर करने के लिये सिफारिशें करेगा इत्यादि इत्यादि।

सिखों के पिछड़े हुए वर्गों को इस आयोग के कार्य क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है। समूचा सिख सम्प्रदाय तो पिछड़ा हुआ वर्ग नहीं है और सदन में उसके प्रवक्ताओं को इस बात के लिये हठ करने का कोई अधिकार नहीं है कि उसे जनता के पिछड़े हुए वर्गों में रखा जाये। यह एक तथ्य नहीं है और इस पर

अधिकांश सिख या उनके प्रसिद्ध नेता विश्वास भी नहीं करते। प.पू.प.रा. संघ के राजप्रमुख महाराज पटियाला, भारत के प्रतिरक्षा मंत्री सरदार बलदेव सिंह, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के प्रधान जथेदार उधम सिंह नागोके, कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य सरदार परताप सिंह केरों, पूर्वी पंजाब प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष ग्यानी गुरमुख सिंह मुसाफिर, पूर्वी पंजाब के समस्त पिछले और वर्तमान नेता और पूर्वी पंजाब के विधानवेत्ता सरदार हुक्म सिंह और सरदार भोपेन्द्र सिंह मान के इन विचारों और भावनाओं से सहमत नहीं हैं कि समूचा सिख सम्प्रदाय पिछड़े हुए वर्गों में शामिल होना चाहिये और उसके साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिये। जहां तक मेरा संबंध है मैं भारत के बहुमत में से हूं—किसानों में से जो उसकी जनसंख्या के 85 प्रतिशत हैं।

दुर्भाग्य से हमारे कुछ नेताओं ने अपने सार्वजनिक जीवन में कभी भी किसी लौकिक संस्था में कार्य नहीं किया है और उन्होंने सदा अपने नेतृत्व और शक्ति 'धर्म या सम्प्रदाय जोखिम में', का नारा लगा कर ही प्राप्त की है और उनके लिये कठिन है कि वे पुराने स्वभाव और आंदोलन को छोड़कर नये दृष्टिकोण को या कार्यक्रम को अपना सकें। मैं आशा करता हूं कि यदि मास्टर तारा सिंह ने कभी भी अमृतसर में नगरपालिका आयुक्त के रूप में काम किया होता और व्यवहार में देखा होता कि हिन्दू और सिख आयुक्त नगर के सब नागरिकों के स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिये समान रूप से उत्सुक हैं तो उनके कुछ कल्पित भय और संदेह, जो आज उनके मन में बहुसंख्यकों के विरुद्ध हैं, मिट जाते। एक सांस में तो वे कहते हैं कि हिन्दू और सिख जीवन-मृत्यु के साथी हैं और दूसरे सांस से वह कहते हैं कि एक दूसरे के अधीन नहीं रह सकते। यह विचित्र तर्क है किन्तु सदन में हमारे मित्रों को वे ही विचार और भावनायें प्रतिध्वनित करनी पड़ती हैं जो उनका नेता बाहर प्रकट करता है।

मैं अपने सहधर्मियों से अनुरोध करता हूं कि वे इस पारम्परिक अविश्वास और शत्रुता के आन्दोलन को समाप्त करें। यदि हम विश्वास का बीज बोयेंगे तो विश्वास का ही फल प्राप्त होगा। हम साम्प्रदायिक विचारों और नारों में लगे रहे थे और अब हम पूर्वी पंजाब में बहुसंख्यक सम्प्रदाय के भीषण सम्प्रदायवाद के विरूद्ध शिकायत कैसे कर सकते हैं, वे अब पंजाबी भाषा को भी दबा रहे हैं। हमें तो वातावरण में परिवर्तन की अपेक्षा है जहां न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व ही व्याप्त हो जिससे सबका कल्याण हो और देश की शान बढ़े। हमारे संविधान पर यह दोष लगाया जा सकता है कि उसमें एक के अतिरिक्त किसी वर्ग के प्रति अनुचित पक्षपात नहीं है, किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि उसमें किसी वर्ग या हित के विरुद्ध कोई विभेद किया गया है।

हमारे संविधान पर अध्यक्ष डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद की उच्च आत्मा का प्रभाव है, पं. जवाहर लाल नेहरू के विश्वव्यापी विचारों का प्रभाव है, सरदार वल्लभ भाई पटेल के अचक विवेक और शक्ति का प्रभाव है, डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैय्या की पारदर्शी बुद्धि का प्रभाव है, डॉक्टर अम्बेडकर की योग्यता और परिश्रम का प्रभाव है और सबसे बड़ी बात यह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आशीर्वाद और दैवी प्रेरणा का प्रभाव है। मुझे आशा है मेरी यह प्रार्थना है कि हमारे करोड़ों

[सरदार सुचेत सिंह]

देशवासियों के इस महान स्वाधीनता पत्र से इस देश में ही नहीं, समस्त विश्व में शांति, समृद्धि और सुख की स्थापना अवश्य होगी। *(कर्तलध्वनि)*।

***श्री टी.जे.एम. विल्सन** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं भी आपको, राष्ट्रपति को और समिति के प्रधान तथा सदस्यों को धन्यवाद देने में शामिल होना चाहता हूं। संविधान की आलोचना इस आधार पर की गई है कि इसमें विदेशी संविधानों से और विदेशी विचारों से बहुत कुछ लिया गया है। यह विचार एक गलत धारणा से उत्पन्न हुआ है कि हमारा देश अन्य देशों से सर्वथा स्वतंत्र है और पृथक है और इसलिये हमारे राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों के विचारों और कार्यों से कोई मतलब नहीं है। किन्तु तथ्य तो यह है—कि समस्त मानवता एक ही एकक के रूप में आगे बढ़ रही है—हां विश्व के विभिन्न देशों की प्रगति भिन्न भिन्न है क्योंकि उनकी परिस्थितियां भिन्न भिन्न हैं किन्तु सब एक ही है—लक्ष्य की ओर और एक ही दिशा में बढ़ रहे हैं और अब तक मानवता ने जो बपौती प्राप्त की चाहे समता और स्वतंत्रता और बन्धुत्व के मूलाधिकारों की या संविधान की ही बपौती—वह एक राष्ट्रों की समान बपौती है और समान सम्पत्ति है और प्रत्येक राष्ट्र उस बपौती में से अपना अंश ले लेगा और उसे ले भी लेना चाहिये और अपने अनुभवों तथा अपने संघर्षों से उस बपौती को बढ़ाता जायेगा। आज प्रत्येक देश समता की बात करता है, यह समता में हमें बहुत पहले प्राप्त हुई थी—जब मसीहत ने यह स्वतंत्रता की भावना मानवता को मानव-समाज के महानतम संकट के समय प्रदान की थी—जब कि यूनानी नगर राज्यों का पतन हुआ था, उससे पहले समता की भावना उन नगर राज्यों के लिये सर्वथा नई और अज्ञात वस्तु थी और समाज का कोई आधार नहीं था; और आज हम सब ही स्वतंत्रता की बात करते हैं, यह स्वतंत्रता कई शताब्दियों के संघर्षों, क्रान्तियों और अनुभव से हमें प्राप्त हुई है, अतएव यह आलोचना बिल्कुल गलत है, कि हमने विदेशी संविधानों से या विदेशी राष्ट्रों से बहुत कुछ लिया है।

परन्तु आज तक मानवता कितनी प्रगति कर चुकी है और हमारे संविधान में इस मानव प्रगति का कितना आभास है? चाहे उपायों और प्रणालियों में कुछ भी अन्तर हो, इस समय समस्त मानवीय विचार धारा का—साहित्य, विज्ञान, कला और दर्शन सबका संकेन्द्रण एक ही आधारभूत तत्व पर है और वह है जनसाधारण और उसका उत्थान। जनसाधारण की स्थिति ऐसी स्थिर हो गई है कि उसके शत्रु भी उसका नाम लेकर अपना प्रचार करते हैं। इसी प्रकार आज यह बात है कि प्रत्येक व्यक्ति लोकतंत्र की बात करता है यद्यपि इस अभागे शब्द का अर्थ इतना तोड़ा मोड़ा जाता है। परन्तु यह लोकतंत्र है क्या? लोकतंत्र की सबसे मूल आवश्यकता यह है कि प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार है और हमने उसे अपने संविधान में रखा है। किन्तु इस पर हमारे कुछ मित्रों ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि वे इतने शिक्षित नहीं हैं कि देश का शासन चला सकें। उनका कहना यह है कि देश के शासन के लिये केवल मस्तिष्क की आवश्यकता है। किन्तु परिस्थितियां बदल चुकी हैं और सिद्धान्त भी बदल चुके हैं। शासन भी बदल गया है—अब शासन कोई अध्यात्म तत्व की या रहस्य की वस्तु नहीं है। आज सरकार को जनता की वास्तविक स्थिति और आवश्यकताओं को संभालना

पड़ता है, चाहे वे खाद्यान्न संबंधी हों या वस्त्र सम्बन्धी या स्वास्थ्य अथवा शिक्षा सम्बन्धी हों और जनता की इन आवश्यकताओं को जनता से अधिक समझने का दावा कौन कर सकता है? विचार तो आवश्यक है ही और मस्तिष्क भी वास्तव में अत्यावश्यक है। किन्तु यदि वह कार्यान्वित न हो, यदि वह जनता के अनुभव पर आधारित न हो तो उसमें सफलता नहीं मिल सकती। अतएव वयस्क मताधिकार का प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार देने का प्रयोजन यह है कि कार्यवाही और विचारधारा के बीच के अन्तर को मिटाया जाये। परन्तु क्या यह पांच वर्ष में एक बार मत देने का अधिकार काफी है? लोकतंत्र का सार केवल यही नहीं है कि राजनैतिक दलों आदि का अस्तित्व रहे, किन्तु लोकतंत्र का सार यह है कि व्यक्ति देश के शासन में प्रभावी रूप में भाग ले सके। शासन में व्यक्ति का भाग जितना अधिक होगा, और जितना प्रभावी होगा, उतना ही वहां लोकतंत्र होगा, क्योंकि लोकतंत्र अभी तक एक आदर्श है जहां तक मानवता को पहुंचना है। इस दिशा में विकेन्द्रीकरण से कुछ हो सकता था, यदि हम इसकी अपने संविधान में व्यवस्था कर देते। किन्तु संविधान के संधानीय रूप को भी काफी संकीर्ण बना दिया गया है, और कभी कभी तो वह धीमी और संकीर्ण संघीयता भी नहीं रहती और एकात्मक व्यवस्था आ जाती है। कुछ वक्ताओं ने ग्राम पंचायतों का निर्देश किया है, उन प्रचीन स्वावलंबी भारतीय समाजों का—जहां कृषि और बुनाई उद्योग साथ साथ चलते थे और जो शताब्दियों के आक्रमणों और पराजयों के बावजूद भी बने रहे जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उखाड़ दिया और नष्ट कर दिया जिसकी शानदार सफलता पर गवर्नर जनरल ने 1884 में रिपोर्ट भेजी थी "भारत के मैदानों में जुलाहों की हड्डियां फैली हुई हैं।" मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो इन पंचायतों को पूर्ण या शाश्वत समझते हैं। परन्तु मेरा तो यह कहना है कि इस सभा को भारतीय समाज की उस प्राचीन, देशी प्रणाली को अपनाना चाहिये था और कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये थी, जिससे कि व्यक्ति देश के शासन में प्रभावी रूप से भाग ले सकता और सत्ता का वहन चोटी से न होकर नीचे से चोटी की ओर होता। मैं व्यक्ति के इस सहयोग के लिये अनुरोध करता हूं, केवल इसी कारण नहीं कि यह लोकतंत्र के लिये अत्यावश्यक है, वरन् इसलिये भी कि केवल इसी से केन्द्र को शक्ति और क्षमता और क्षमता प्राप्त होगी, यद्यपि कुछ लोगों का यह गलत ख्याल है कि शक्ति का आधार केन्द्रीकरण है और प्रबल केन्द्र है। मैं फिर कहता हूं कि सब दृष्टिकोणों से, प्रभावी और समझदार नागरिकों का लोकतंत्र किसी भी शासन-व्यवस्था से अधिक शक्तिशाली और अधिक कार्यकुशल होता है, और लोकतंत्र की कमज़ोरी की सामान्य चर्चा नितान्त मूर्खता है।

संविधान में अनेक भाषाओं और संस्कृतियों की स्वतंत्रता के लिये उपबन्ध कर दिया है, किन्तु साथ ही साथ एक राष्ट्रभाषा के लिये उपबन्ध कर दिया गया है। इसका तर्कसंगत परिणाम राज्यों के लिये अधिक स्वायत्तता और अधिक स्वाधीनता होना चाहिये, परन्तु साथ ही एक ही शक्तिशाली राष्ट्र भी रहे। वे अनेक भाषाएं और संस्कृतियां प्रत्याभूत हो जातीं और अधिक प्रभावी हो जाती यदि ऐसे स्वतंत्र राज्यों का भी उपबन्ध रख दिया जाता और उनका निर्माण सांस्कृतिक तथा भाषा के आधार पर होता। किन्तु मैं आभारी हूं कि आंध्र प्रांत को स्वीकार कर लिया

[श्री टी.जे.एम. विल्सन]

गया है और संविधान में उसका उपबन्ध कर दिया जायेगा। परन्तु हमारे संविधान की सबसे बड़ी बात है उनका लौकिक रूप और उसमें से उत्पन्न होने वाला लौकिक राज्य। हमने राज्य के इस लौकिक रूप को स्थापित किया है और संविधान में उसका उपबन्ध किया है। किन्तु बादल आ रहे हैं, और राज्य के इस लौकिक रूप में छिपाने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं केवल यही प्रार्थना करता हूं और विश्वास करता हूं कि इस देश की प्रगतिशील शक्तियां, हमारे महान और प्यारे प्रधानमंत्री के नेतृत्व में, उन काले मेघों को हटा सकेंगी और हमारे देश को उस नाश और विपत्ति से बचा लेंगी जो यूरोप तथा एशिया के अधिकांश राष्ट्रों को लौकिक राज्य स्थापित करने से पहले उठानी पड़ी थीं।

मैं एक और बात का उल्लेख कर देना चाहता हूं जिसे शायद मेरे सम्प्रदाय के बहुत से लोगों ने नहीं समझा होगा। स्थान-रक्षणों को छोड़ने से चाहे हमारी कुछ भी हानि हुई हो किन्तु हमारा बहुत लाभ भी हुआ है क्योंकि उसके कारण मुख्यत: लौकिक राज्य स्थापित हो सका है जिस पर कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के रूप में हमारा अस्तित्व निर्भर है। मैं यहां अपने सम्प्रदाय के एक अभागे वर्ग के लिये आवाज़ उठाना चाहता हूं—वे हैं हरिजन ईसाई। श्रीमान, वे अछूत हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है; सवर्ण हिन्दू, जिनके साथ उन्हें अपने जीवन में प्रतिक्षण सम्पर्क में आना पड़ता है, उनके साथ अछूतों का सा व्यवहार करते ही हैं, परन्तु मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि उनके ईसाई भाई भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं, और उन बच्चों के माता-पिता हमारे पास आकर अश्रुपूर्ण आंखों से कहते हैं कि उनके बच्चों को पाठशालाओं से निकलना पड़ा है और वे शिक्षा से वंचित हो गये हैं क्योंकि उनकी छात्रवृत्तियां बन्द कर दी गई हैं, जब कि उनके भाई बहिनों के बच्चे, जिन्होंने धर्म परिवर्तन नहीं किया था, अब भी अपनी शिक्षा जारी रख रहे हैं। मुझे इस मूलाधिकार के विषय में कुछ भी नहीं कहना है कि धर्म के आधार पर उनके साथ विभेद नहीं होना चाहिये पर मैं मसौदा समिति से और सरकार से यही प्रार्थना करता हूं कि उन पर दया करे और उनकी इस शिक्षा को बीच में समाप्त न होने दे।

अब, संविधान पर यह भी आलोचना की जाती है कि उसने जनसाधारण को कुछ नहीं दिया है, कि उसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था नहीं है। श्रीमान, मेरा निवेदन है कि यह भी एक गलत ख्याल है, जो संविधान के क्षेत्र को गलत समझने के कारण है। संविधान का क्षेत्र सीमित होता है। उसका मुख्य कार्य शासन के लिये व्यवस्था निश्चित करना है, और इस संविधान में शासन के लिये व्यवस्था ही कर दी गई है, चाहे वह किसी प्रकार की हो। और कुछ अध्यायों में जो भी रियायतें या अधिकार रखे गये हैं वे केवल ऐसे हैं जो हम प्राप्त कर चुके हैं। संविधान में केवल वे ही अधिकार निहित किये गये हैं जो हम प्राप्त कर चुके हैं। यही मूल बात है जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं, क्योंकि अन्यथा, यदि हमने संविधान में कुछ अधिकार रख दिये होते, जो अभी हमने प्राप्त नहीं किये हैं, तो उससे देश का तोड़ामरोड़ा हुआ, असत्य और आडम्बरपूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है, और इससे बड़ी बात यह होती कि संविधान अक्रियात्मक बन जाता। अत: संविधान का सीमित प्रयोजन है और संविधान में

कुछ असुन्दर बातें होते हुए भी, जैसे कि मूलाधिकार के रूप में संपत्ति की रक्षा का उपबन्ध है, इससे देश को समाजवाद स्थापित करने में बाधा नहीं होगी, जैसा कि श्री सन्तानम कह चुके हैं।

स्वाधीनता और स्वतंत्रता के विषय में काफी कुछ कहा जा चुका है। हमें उस स्वाधीनता को प्राप्त करने का और उस तक पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिये जो नकारात्मक ही नहीं है, जो किसी संयम की अनुपस्थिति का ही नाम नहीं है, वरन् वह स्वाधीनता जिससे ऐसी स्थितियां पैदा होती हैं जिनमें इस देश के प्रत्येक नर नारी को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक अवसर मिलेगा, और अभाव और भय से स्वतंत्रता होगी। और मैं यह भी कह सकता हूं कि स्वतंत्रता का मूल्य सावधानी नहीं है, वरन् कार्य अधिक कार्य है, अधिक उत्पादन है जिससे मानवता आगे बढ़े तथा सुख, स्वतंत्रता और लोकतंत्र प्राप्त करे।

***श्री एच. सिद्धवीरप्पा** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, यह बहुत हर्ष की बात है कि मैं उस स्तुति-गान में सहायोग देता हूं जो सामान्यत: मसौदा समिति और विशेषत: उसके सभापति के लिये गाया जा रहा है। श्रीमान, गत अनेक दिनों से, संविधान के गुणावगुणों पर ऐसी विस्तृत चर्चा हुई है कि कोई नई बात कहना संभव नहीं है। लगभग सब ही बातें कही जा चुकी हैं।

इस संविधान को देखने पर एक मुख्य बात मेरे दिमाग में आती है कि इस संविधान सभा के प्रथम बार समवेत होने के समय से इसमें कई परिवर्तन कर दिये गये हैं, जिनमें से कई तो घटनाओं के दबाव के कारण हुए हैं। यह देखा जा सकता है कि आरम्भ से ही इस संविधान का रुख यह है कि एक शक्तिशाली केन्द्र बने और हमारी स्थिति ही ऐसी है कि हम किसी अन्य प्रकार के संविधान की बात सोच ही नहीं सकते थे, यद्यपि नाम के लिये यह भी संधान ही है। यह भी देखा जा सकता है कि शक्तियों का ऐसा केन्द्रीकरण किया गया है कि यह संविधान एकात्मक अधिक है संधानीय कम। प्रश्न केवल यही है कि क्या केन्द्र को इतना शक्तिशाली बनाया गया है कि इसे अत्यधिक केन्द्रीयकरण कहा जा सकता है। अब कुछ लोगों की यह राय है कि केन्द्र को इतना शक्तिशाली और प्रबल बना दिया गया है कि संघभूत अंगों के पास कुछ बचा ही नहीं है, और मैं भी इस विचार से कुछ सहमत सा हूं। मसौदा समिति के सभापति ने ही 4 नवम्बर 1948 को अपनी प्रारंभिक वक्तृता में केन्द्र की प्रबलता के विषय में कहा था:—

> "वह जितना पचा सकता है उससे अधिक नहीं चबा सकता। उसकी शक्ति उसके तोल के अनुसार होनी चाहिये। उसे इतना प्रबल बनाना मूर्खता होगी कि वह अपने वज़न से ही गिर जाये।"

कुछ लोगों का यह मत है कि केन्द्र को लगभग सभी शक्तियां मिल गई हैं और एककों के पास कुछ नहीं रहा है। संविधान एकात्मक है या संधानीय, इस विषय में मुझे इतना ही कहना है।

[श्री एच. सिद्धवीरप्पा]

मैं देशी राज्य का हूं अत: मैं राज्यों के विषय में संविधान की स्थिति पर विशेष निर्देश किये बिना नहीं रह सकता। इस देश में 562 देशी राज्यों में भारत का लगभग एक-तिहाई राज्य-क्षेत्र था, 27 प्रतिशत जनसंख्या अर्थात् 8,08,80,434 लोग थे। इन राज्यों में राजनैतिक प्रगति और आर्थिक उन्नति के भिन्न भिन्न स्तर थे, कुछ राज्य भारत के उन्नत प्रान्तों के बराबर थे, चाहे उनसे अधिक उन्नत न हों, और कुछ बहुत पिछड़े हुए थे। इन देशी राज्यों की समस्या इस बालक स्वतंत्र राष्ट्र के सामने बहुत विकट रूप में थी। अंग्रेज़ों के समय में भी उन्हें राज्यों का एकीकरण करने में और उनका कोई रूप निश्चित करने में बहुत समय लगा था। राज्यों के विषय में बटलर समिति के प्रतिवेदन में लिखा था:

"राजनैतिक रूप में दो भारत है—एक तो ब्रिटिश भारत है जिस पर संसद के कानूनों और भारतीय विधान मंडल की अधिनियमितियों के अनुसार क्राउन द्वारा शासन होता है, और दूसरे हैं देशी राज्य जो क्राउन की प्रभुता के अधीन हैं फिर भी अधिकांश में नरेशों के वैयक्तिक शासन में हैं। भौगोलिक रूप में भारत एक है और अखंड है जिस पर गुलाबी और पीला रंग है। राजनीतिज्ञता की समस्या इन दोनों को साथ रखने की है।"

15 मई, 1946 को जो मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल योजना घोषित हुई थी उसमें भी राज्य के विषय में दो महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव था, कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रभुसत्ता समाप्त हो जायेगी और राज्यों के पास प्रतिरक्षा, संचार और वैदेशिक मामलों के अतिरिक्त शेष सभी विषय बने रहेंगे।

आप देखेंगे कि अंग्रेज़ों के इस देश से चले जाने के पश्चात्, कानूनी रूप में तो 562 राज्य भारत के अन्य भागों के समान ही स्वतंत्र हो गये थे। इस कठिनाई और दबाव के समय ही कुछ क्षेत्रों में कुछ विघटनशील शक्तियों ने अपने भद्दे सिर उठाये और उन्होंने कहा कि वे स्वतंत्र थे, यद्यपि उन्हें प्रारम्भ में ही कुचल दिया गया। इसी काल में 5 जुलाई 1949 को भारत सरकार का राज्य मंत्रालय बना और उस समय सरदार पटेल ने कहा:—

"राज्यों ने इस मूल सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है कि वैदेशिक मामलों, प्रतिरक्षा और संचार के लिये वे भारत संघ में आ जायेंगे। हम इससे अधिक कुछ नहीं चाहते कि वे इन विषयों को दे दें जिन में देश का सामान्य हित अंतर्ग्रस्त है। दूसरे शब्दों में, हम उनके स्वायत्ततापूर्ण अस्तित्व का पूर्ण सम्मान करेंगे।"

यह अत्यन्त आकर्षण और दिलचस्पी का विषय है क्योंकि इतिहास हमारी आंखों के सामने लिखा जा रहा है। यह समझना संभव नहीं है कि इन दो ही वर्षों में, किस प्रकार, यह समस्त देश जो कुमारी अंतरीप से लेकर हिमाचल तक विस्तृत है, एक प्रशासन और सरकार के अंतर्गत लाया गया है, केवल उन विषयों के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् सभी महत्वपूर्ण मामलों में; और इसका श्रेय, श्रीमान्,

उस महान नेता सरदार पटेल को मिलना चाहिये। जिन्होंने इस परिवर्तन को—इस रक्तहीन क्रांति को सफल बनाया है। किसी को विश्वास नहीं हो सकता था कि इतने अल्प काल में दो वर्ष में इतना महान परिवर्तन हो सकता था! केवल इतना ही नहीं कुछ उन्नत राज्यों में संविधान सभाएं बना दी गईं थीं और वे अपने कार्य में संलग्न थीं। राज्य मंत्रालय की इच्छा के अनुसार, उन संविधान सभाओं को अपना कार्य स्थगित करना पड़ा, क्योंकि यह अभीष्ट समझा गया कि समूचे भारत के लिये—चाहे प्रांत हों चाहे देशी राज्य–एक ही संविधान होना चाहिये। उन परिस्थितियों में यह संभव प्रतीत हुआ कि तथाकथित देशी राज्यों के लिये, जो प्रथम अनुसूची के भाग (ख) को देखने से पता लगेगा कि बहुत कम हैं, एक ही संविधान हो। इस समूचे देश के लिये अब एक ही संविधान है, और यह कहना गलत नहीं होगा कि यदि देशी नरेश और देशी राज्यों की प्रजा यदि पूर्ण समर्थन न करती तो यह कार्य पूरा होना आसान नहीं था। स्वयं सरदार पटेल ने अनेक बार कहा है कि इस छोटे से काल में इस रक्तहीन क्रांति को पूरा करने में नरेशों और प्रजाजनों की देशभक्ति की भावनाओं का भी हाथ था।

यह देखा जा सकता है कि कुछ उन्नत राज्यों को, वित्तीय एकीकरण के कारण कुछ राजस्व-हानि हुई है, विशेषत: मैसूर को वित्तीय एकीकरण के कारण काफी राजस्व की क्षति हो गई है। फिर भी लोगों ने प्रसन्नता से इन सबका अस्थायी असुविधाओं को, जो कई मामलों में स्थायी ही है, देश हित के लिये सहन किया। जब यह सब कुछ कहा जाता है, तब मैं यह जानना चाहता हूं कि अनुच्छेद 371 को रखकर विभेद करने का क्या औचित्य है। इसके अतिरिक्त, जब कि राज्यों की जनता ने काफी त्याग किये हैं और किसी विरोध के ही बिना समूचे भारत के शेष भागों के बराबर बन गये हैं, तब क्या 391 जैसे अनुच्छेद की कोई आवश्यकता थी—जो कि एक प्रकार से सद्व्यवहार का खंड है—जिसमें सब राज्यों पर दस वर्ष की कालावधि के लिये साधारण अधीक्षण और नियंत्रण की व्यवस्था की गई है? शायद मैं उन कारणों का पता नहीं लगा पाता। हो सकता है कि इसके लिये भारी कारण हों, किन्तु राज्यों के कुछ लोगों के दिमाग में यह भावना है: हमने ऐसा क्या किया है कि हमें इतना गिरा दिया गया है? क्या यह इस बात का पुरस्कार है कि देशी राज्यों ने इतना त्याग किया है कि वे शेष देश के स्तर पर आ गये हैं? कुछ भी हो, जहां तक मैसूर और तिरुवांकुर और कोचीन का सम्बन्ध है, वचन दिया गया है कि उन्हें इस उपबन्ध से मुक्त कर दिया जायेगा, किन्तु उन राज्यों की जनता को बहुत प्रसन्नता होती यदि इस वचन को वैधानिक मान्यता दे दी जाती है। मुझे सच्ची आशा है कि यह अनुच्छेद 391 मृताक्षर ही रहेगा।

अंत:, श्रीमान, मैं उस श्रद्धांजलि में भागी होना चाहता हूं जो इस सदन की कार्यवाही को इतनी महान योग्यता से चलाने पर आपको दी गई है।

श्री कमलापति तिवारी (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, भारतीय संविधान के इस अन्तिम वाचन के अवसर पर पिछले छ: दिनों से वादविवाद चल रहा है। इस वादविवाद में इस संविधान की पूरी चर्चा की जा चुकी है। संविधान के स्वरूप का कदाचित कोई अंश बाकी नहीं रहा जिस पर कि माननीय सदस्यों ने कुछ न कहा हो। इन संविधान के गुण और दोषों की विवेचना भी

[श्री कमलापति तिवारी]

पूरी तरह से की जा चुकी है। इसकी विशेषताओं तथा उसके गुणों के सम्बन्ध में जो भी कहा जा सकता था, वह सब कहा जा चुका है। इसके दोष को दिखाने के लिये, इसकी त्रुटियों तथा विकारों के सम्बन्ध में जो भी बातें कही जा सकती थीं, मैं देखता हूं कि वह सब कही जा चुकी हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि छः दिनों के बाद खड़े होकर आपके सम्मुख इस संविधान के गुण अथवा दोष के सम्बन्ध में कदाचित कोई नई बात नहीं कह सकता। फिर भी मैंने साहस किया, अध्यक्ष महोदय, इस भवन का समय लेने का ऐसा साहस केवल इस विचार से किया कि यह अवसर एक ऐसा बड़ा ऐतिहासिक तथा महत्वपूर्ण अवसर है कि उसके स्मरण मात्र से हम स्पंदित हो उठते हैं। विशेषकर के हमारे ऐसे उन सैनिकों के जीवन के लिये, जिन्होंने आपके समान आदरणीय पूज्य नेताओं के चरणों में बैठ कर आज से 25-30 वर्ष पूर्व राष्ट्र की सेवा तथा देश की सेवा का व्रत लिया था और उन्होंने आपसे दीक्षा ग्रहण की थी, यह कदाचित् ऐसा अवसर है जो संभवतः पुनः कभी उपलब्ध होने वाला नहीं है। फलतः मैं भी कुछ कहने के अपने लोभ को संवरण न कर सका।

मैं कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे यह अवसर प्रदान किया कि मैं कुछ बातें आपके सम्मुख रखूं। अध्यक्ष महोदय, हममें से बहुत से लोग गत तीस वर्षों से अपने राष्ट्र तथा अपने देश के भविष्य के सम्बन्ध में एक स्वप्न देखते चले आये हैं। हमारी अपने देश के सम्बन्ध में और उसके भविष्य के सम्बन्ध में एक कल्पना भी रही है। हमारा स्वप्न और हमारी कल्पना यह थी कि हम सोचते और आशा करते रहे हैं कि एक दिन आवेगा, जब हम अपने देश के भाग्य का निर्णय बिना किसी हस्तक्षेप के स्वयं कर सकेंगे। हमारे उस स्वप्न ने, हमारी उस कल्पना ने गत 30 वर्षों में बराबर हमें प्रेरणा प्रदान की और हमने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपनी शक्ति तथा बुद्धि के अनुकूल अग्रसर होते रहने की शक्ति प्राप्त की। आज उस तीस वर्ष के बाद कदाचित हमारा वह स्वप्न कुछ कुछ सत्य होता दिखाई दे रहा है और हमारी कल्पना भी साकार होती दृष्टिगोचर हो रही है। हमने देखा अपने देश को स्वतंत्र होते और हमने यह देखा कि जो स्वप्न तथा जो कल्पना हमने की थी कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि हमारा यह देश अपने भाग्य का निर्णय बिना किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप कर सकेगा, वह हमारी कल्पना भी पूरी होने जा रही है। आज हमारा यह सौभाग्य है। और हमारा जीवन वस्तुतः इस बात को सोचकर धन्य हो जाता है कि हमारे राष्ट्र का, हमारे स्वतंत्र देश का स्वतंत्र संविधान हमारे सामने उपस्थित हो रहा है। जहां तक इस संविधान के गुण-दोषों की विवेचना का प्रश्न है, मैं अत्यन्त नम्रता के साथ यह निवेदन करना चाहता हूं, सभापति जी, कि इस वाद-विवाद ने जो स्वरूप पकड़ा, उसने जो मार्ग ग्रहण किया और उसकी जो धारा प्रवाहित हुई, उससे मुझे कम से कम कोई संतोष नहीं हुआ। मैंने देखा कि संविधान के गुणों की चर्चा करते हुए एक के बाद दूसरे हमारे माननीय सदस्य उठे और संविधान की विशेषताओं की पूरी पूरी प्रशंसा करते हुए परस्पर की भारी प्रशंसा आरम्भ की तथा एक-दूसरे को बधाई के बाद बधाई देते चले गये। मुझे यह समझ में न आया कि यह परस्पर की प्रशंसा तथा परस्पर की बधाई किस लिये चल रही है। यह विधान हम सबके सामूहिक प्रयास का फल है। अपने ही किये पर यदि हम परस्पर प्रशंसा करें और अपने ही को स्वयं ही बधाई देते न थकें, तो क्या यह हमारे

लिये बड़े शोभा की बात होगी? हम भारतीय हैं और अपनी संस्कृति पर गर्व करते हैं। हमारी संस्कृति भी यही कहती है कि अपने गुणों की प्रशंसा अपने मुख से मत कीजिये और हमारी संस्कृति यह भी कहती है कि जो कुछ भले काम आपने कर डाले हैं, उस पर किसी प्रकार का अभिमान न कीजिये। फिर हमने किया क्या है, जिसके लिये अपने ही मुंह अपनी तारीफ कर रहे हैं और अपने ही आपको बधाई दे रहे हैं। अपने हाथ ही अपनी पीठ ठोंकने की यह आवश्यकता क्यों पड़ रही हैं? हमारे देश ने हममें अपना विश्वास प्रकट किया और राष्ट्र ने हमें यहां निर्वाचित करके इस आशा, आस्था और इस विचार से भेजा कि हम कदाचित् यहां उसके जीवन के लिये तथा उसके भावी विधान के लिये कोई ऐसी व्यवस्था निर्धारित करेंगे तथा उसकी एक ऐसी रूपरेखा उपस्थित करेंगे, जो न केवल उसके गौरव के अनुकूल होगी, बल्कि उसके श्रेय और अभ्युत्थान की साधिका भी बनेगी। फिर जब देश ने हमें भेजा और अपने भाग्य का सूत्र हमारे हाथों में सौंप दिया, तब उसने यह भी आशा की थी कि जो संविधान हम बनायेंगे, वह गुणों से, अच्छाइयों से, विशेषताओं से भरा हुआ संविधान होगा। आपने अवश्य ही एक ऐसा विधान बनाया, जो विभिन्न गुणों से परिपूरित है और जिसमें बहुत सी विशेषतायें भी हैं। पर उसके लिये हम बधाई किसे दें तथा किस बात की बधाई दें। देश ने विश्वास करके हमें अपने भाग्य के निर्णय का जो अधिकार प्रदान किया था, उस उत्तरदायित्व का यदि हम निर्वाह करने में सफल हुए और अपने कर्तव्य को पूरा कर सके हैं, तो यह ऐसी बात नहीं है, जिसके लिये अपने से ही अपनी बड़ाई करें। हमने तो वही किया, जिसे करने का भार हमने उठाया था। रही प्रशंसा की बात, सो स्पष्ट है कि अपनी प्रशंसा हमें स्वयं न करके यह कार्य देश के लिये ही छोड़ देना चाहिये। यह विधान कितना गुण संपन्न है और इसके लिये हम बधाई तथा प्रशंसा के पात्र हैं, या नहीं, इसपर निर्णय प्रदान करेगा राष्ट्र और तब वही प्रशंसा तथा बधाई शोभा की भी बात होगी। फलतः अन्य मित्रों की भांति बधाई देने तथा 'आप अच्छे और मैं अच्छा' कहने की जो परम्परा चल पड़ी है, उसे छोड़कर मैं संविधान की ही संक्षिप्त विवेचना में अग्रसर होता हूं। इस संविधान में कौन सी भारी विशेषता है और कौन सा महान गुण है, इसकी ओर जब दृष्टिपात करता हूं, तो यह देखता हूं कि मुख्यरूप से तीन बातें हैं, जो बराबर उपस्थित की जाती हैं। मेरे जिन साथियों ने भी इस विधान का गुणगान किया है, उन सबने बराबर प्रायः इन्हीं तीनों बातों को दुहराया है। कहा गया है कि इस विधान द्वारा हमने बालिग मताधिकार दिया है। दूसरी बात यह कही गई कि विधान ने छूतछात मिटा दिया और तीसरी बात जिस पर बड़ा गर्व किया जा रहा है, वह है पृथक् निर्वाचन को मिटा कर संयुक्त निर्वाचन की पद्धति, जिसे संविधान में स्वीकार किया गया है।

यही तीन बातें मुख्य रूप से इसकी विशेषतायें बताई जा रही हैं और इसी के लिये बधाइयां बांटी जा रही हैं। यहां तक कि कानून के प्रकांड पंडित मेरे आदरणीय सर अल्लादी ने आज प्रातःकाल जो भाषण किया, उसमें भी प्रायः इन्हीं तीन बातों को फेंट फेंट कर हमारे सामने रखा। मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि यह कोई ऐसी भारी विशेषता नहीं है, जिसके लिये मन ही हम फूले न समायें और गर्व करें तथा स्वयं अपने को ही इस कार्य के लिये बधाई दें। अरे, मैं पूछता हूं कि जब देश ने आपको निर्वाचित

[श्री कमलापति तिवारी]

करके भेजा और आप संविधान बनाने के लिये यहां आये, तो भला इतनी मोटी मोटी बातें अगर आप विधान में नहीं रखते, तो विधान बनाते किस चीज़ का? देश में बालिग मताधिकार हो, यह एक ऐसी स्वयं सिद्ध और स्वयं स्वीकृत सिद्धान्त है और एक ऐसी पहले से ही मानी हुई बात है कि उसके लिये गर्व करने की कोई बड़ी भारी आवश्यकता नहीं है। जिस महान भारतीय लोकतन्त्र की अट्टालिका आप खड़ी करने जा रहे हैं, उसकी भित्ति यदि जन अधिकार प्रस्तुत बालिग मताधिकार द्वारा न होगी, तो होगा क्या? संसार में सर्वत्र ही बालिग मताधिकार प्रचलित हो रहा है और उसी पर लोकतन्त्र का दिव्य भवन प्रतिष्ठित हुआ माना जाने लगा है। फिर क्या हम सदा से यह घोषणा नहीं करते रहे हैं कि भारत में हमें सच्चे लोकतन्त्र की ही स्थापना करनी है। हमने क्या यह दावा नहीं किया और ऐसा करके ही यहां नहीं आये कि भारत में हम जनतन्त्रात्मक लोक राज्य की स्थापना करेंगे? फिर हमने उसमें बालिग मताधिकार न रखा होता, तो करते क्या? इतना कर डालने से कोई ऐसी बात नहीं हो गई, जिसके लिये हम अपने को ही प्रशंसित समझें। कम से कम यह तो हम करते ही। यह तो एक सर्वमान्य और अतिआरंभिक तथा मौलिक बात थी, जिसे हम करते ही। हम ही क्या कोई भी इस देश का व्यक्ति, कोई भी दल, जो यहां आता और इस देश की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की रूपरेखा अंकित करने के काम को उठाता, तो कम से कम बालिग मताधिकार तो रखता ही। हम तो एक सफल विद्रोह के बाद यहां आये। उस विद्रोह का नेतृत्व हमने ही किया था। फिर हमने बालिग मताधिकार की व्यवस्था की, तो कौन सी नई और भारी बात हो गई। मैं तो कहता हूं हम नहीं, बल्कि यदि विधान की रचना का काम पुराने टोडी कहे जाने वाले लोग, अथवा दकियानूस और पूंजीपति भी करने के लिये बैठे होते, और यह काम उन्हें करने के लिये दिया गया होता, तो कम से कम बालिग मताधिकार तो वे भी प्रदान ही करते। यह तो हुई बालिग मताधिकार की बात।

अब उस दूसरी विशेषता पर विचार कर लीजिये, जिसकी चर्चा बार बार की गई है और जिसके लिये हम अपनी ही प्रशंसा अपने मुख से करते हैं और अपने आप ही अपने को बधाई देते हैं, वह है अस्पृश्यता की समाप्ति कर देने की बात। हम बड़े अभिमान से कहते हैं कि यह वह विधान है, जिसके द्वारा हमने अस्पृश्यता को पूरी तरह मिटा डाला। सभापति जी, जब हम यह सुनते हैं कि विधान में अस्पृश्यता के न रहने देने पर हम गर्व करते हैं और इसे अपनी बड़ी भारी सफलता समझते हैं, तो हमें आश्चर्य होता है। मैं पूछता हूं कि छुआछूत को हम क्या आज मिटा रहे हैं? क्या विधान में अस्पृश्यता को सभा के लिये गैर कानूनी बना कर हमने ऐसा काम किया है, जिसके लिये हमें बड़ा भारी श्रेय मिलना चाहिये? क्या यह कोई बड़ी नई बात की गई है? अरे, छुआछूत कब का मिट गया है। वह उस जमाने में मिट गया, जब बापू के मुख से छुआछूत के विरुद्ध विद्रोह की हुंकार उठी। तीस वर्ष हुए, जब बापू हमारे जीवन में अवतरित हुए और छुआछूत के विरुद्ध उन्होंने बगावत का झन्डा उठाया और कहा कि भारतीयता के मस्तक पर का यह कलंक अब मिट जाना चाहिये। वह वाणी थी, जिसके ओज और जिसकी प्रखरता ने आज से न जाने कितने वर्ष पूर्व ही अस्पृश्यता

को समाप्त कर दिया था। फिर जब आज हमने विधान बनाया, तब हमने अपने लिये यह कहा कि हमने यह कर डाला। हम पूछते हैं कि जो बापू कर गये हैं, जो सर्वमान्य हो चुका है, यदि हम उतना भी न करते, तो संसार में या अपने ही देश में कौन-सा मुंह दिखाते। इसके लिये यह कहना कि हमने कोई बड़ी भारी अनोखी बात की है, मुझे उचित नहीं प्रतीत होता। मैं पूछता हूं कि छुआछूत के साथ, बालिग मताधिकार के साथ, और कौन सी तीसरी बड़ी भारी बात हमने कर डाली, जिसके लिये हमें अभिमान करने की आवश्यकता है।

मैं समझता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि यहां जो पृथक् निर्वाचन की बात कही गई है, वह भी ऐसी ही है, जिस पर कोई बड़ा भारी अभिमान करने की बात नहीं रहती। अरे, पृथक् निर्वाचन ने इस देश का सत्यानाश कर डाला है। हमारा पिछले 150 वर्षों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत का सत्यानाश करने में पृथक निर्वाचन कदाचित जितना बड़ा शत्रु रहा है, उतना बड़ा शत्रु दूसरी कोई समस्या, दूसरा कोई प्रश्न नहीं रहा है। यह पृथक् निर्वाचन ही है, जिसके गर्भ से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ। यह पृथक् निर्वाचन ही है, जिसके गर्भ से दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का जन्म हुआ। यह पृथक् निर्वाचन ही है, जिसके गर्भ से भारत के विभाजन का जन्म हुआ और इस देश का विखंडीकरण हुआ, विच्छेदीकरण और शरीरोच्छेद हो गया। यह सब केवल इस पृथक् निर्वाचन के कारण ही हुआ। क्या अब भी हम पृथक् निर्वाचन रखते! यदि हमने इसे मिटा डाला, तो कोई बड़ी भारी बात नहीं कर डाली, अपने संविधान में, जिसके लिये बहुत बड़ी तारीफ़ की आवश्यकता थी। मैं तो यह समझता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि हमने जो कुछ किया है और संविधान के जिन गुणों की चर्चा हम कर रहे हैं, उसके लिये हमें बड़ी भारी तारीफ़ और प्रशंसा करने की और एक-दूसरे को बधाई देने की आवश्यकता नहीं है। आज इस अवसर पर परस्पर प्रशंसा करने की नीति को छोड़कर हमें यह देखना है कि हम से जो बन पड़ा, वह तो हमने किया, पर जो नहीं किया अथवा जो नहीं कर सके, वह क्या है? उसकी तरफ हमको संकेत करना है, इसलिये कि हम समय पाकर स्वयं उन त्रुटियों को दूर कर सकें, जो किसी कारण रह गई हैं और साथ ही देश को बता सकें कि हम जो नहीं कर सके, वह क्या है। स्वयं अपनी ओर से हम यह बता दें कि हमें त्रुटियों का ज्ञान है तथा हम स्वयं अपनी ओर से आने वाली पीढ़ियों को यह बता दें कि इस विधान में कौन सी त्रुटियां रह गई हैं, कौन से दोष रह गये हैं, कौन से विकार रह गये हैं, जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। हमें इस तरफ विशेष दृष्टिपात करना जरूरी मालूम होता है। और फिर मैं तो समझता हूं कि कोई व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, सफल तभी हो सकता है, जब अपने दोषों की तरफ दृष्टिपात करे। गांधी जी ने हमें सिखाया कि तुम अपने दोषों की ओर देखो, अपनी कमज़ोरियों की ओर देखो, तुम अपने गुणों की ओर न देखो, अपने में जो विकार हों उनकी ओर देखो और उन्हें स्वीकार करो तथा उन्हें दूर करने की चेष्टा करो। वे कहा करते थे कि व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, सबके विकास, सबकी उन्नति और कल्याण का मार्ग यही है कि भूल को बिना संकोच स्वीकार किया जाये, त्रुटियों को देखने के लिये अपनी ओर देखा जाये। फलतः अपने देश के विकास के लिये आज यह देखने की आवश्यकता है कि हमारे इस संविधान में वह कौन सी त्रुटियां रह गई हैं जिन्हें दूर किये बिना काम नहीं चल सकता।

[श्री कमलापति तिवारी]

साथ साथ यह भी देखा जाये कि वे कौन सी बातें रह गई हैं, जिनकी आवश्यकता थी और जिनकी आवश्यकता का राष्ट्र अनुभव करता था और जिन आवश्यकताओं को हम पूरी नहीं कर सके हैं। मैं तो अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन करता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि जब इस दृष्टि से मैं इस विधान की ओर देखता हूं, तो मुझे लगता है कि यह संविधान, जिसकी रचना का उत्तरदायित्व हम सब पर रहा है, हमारे लिये संतोषजनक तथा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य नहीं है। संभव है मेरा ऐसा कहना छोटे मुंह बड़ी बात हो, पर आज अवसर यह मांग करता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो समझ रहा है, उसे एक मात्र देश-हित को सामने रख कर कहे। इसी भावना ने मुझे ऐसा कहने का साहस प्रदान किया है। मैं मानता हूं इस बात को कि आज हमने इस संविधान की रचना एक संकट के समय की है। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि जो स्थिति हमारे देश में रही है, उस स्थिति की प्रतिच्छाया हमारे मन पर पड़ी है। हम भय से, हम शंका से, हम आशंका से प्रपीड़ित रहे हैं और उस सबका प्रतिबिम्ब इस सम्पूर्ण विधान पर पड़ा दिखाई दे रहा है। यह कारण हो सकता है इसमें दोष का, पर कारण चाहे जो हो, हमें तो अपनी त्रुटियों को देखना और कहना आवश्यक है। हमारे शास्त्र कहते हैं:

शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि।

अर्थात् शत्रु में जो गुण हों, उन्हें बखान करो और अपने में तथा गुरुजनों में भी जो दोष हो, उन्हें भी अवश्य कहो। इस दृष्टि से यदि हम विवेचना करें, तो उसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि अपने किसी गुरुजन के प्रति हम असम्मान व्यक्त कर रहे हैं। जो कमी है, उसके लिये कोई एक व्यक्ति तथा कमेटी ही उत्तरदायी नहीं है। हम सब उस त्रुटि के लिये समान रूप से ज़िम्मेदार हैं। फलतः सभापतिजी, मैं अब कुछ उन मौलिक त्रुटियों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं, जो मेरी समझ में मुख्य रूप से इस संविधान में रह गई हैं। वैसे तो विस्तार से अन्य अनेक छोटी-बड़ी त्रुटियों की चर्चा की जा सकती हैं, पर मैं उन्हें छोड़ देता हूं। मेरे पास इतना समय नहीं है कि अपनी बुद्धि के अनुसार तफसील से उन सब धाराओं और उपधाराओं की चर्चा करूं, जिनसे मुझे शिकायत है। थोड़ा सा जो समय मुझे आपकी कृपा से प्राप्त हुआ है, उसमें मुख्य मौलिक त्रुटियों की ओर ही संकेत कर देने का साहस करता हूं। पहला अत्यन्त मौलिक दोष इस संविधान का है, इसका अत्यन्त प्रचण्ड और घोर केन्द्रित स्वरूप। मुझे ऐसा लगता है कि हमने इस संविधान में जो व्यवस्था निर्धारित की है, उसके फलस्वरूप शक्ति, अधिकार और सत्ता का घोर केन्द्रीकरण केन्द्रीय सरकार में होना अनिवार्य होगा। मैं केन्द्रीकरण की इस व्यवस्था को दोषपूर्ण और खतरनाक समझता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि केन्द्रीकरण की व्यवस्था अनिवार्यतः उन प्रवृत्तियों को उत्पन्न करती है, जो भयावह हो सकती हैं। फिर एक बात और, गत तीस वर्षों तक हमें अपने जिस नेता के पीछे चलने का सौभाग्य प्राप्त था, उसने हमें एक दृष्टि, एक कल्पना और एक विचारधारा प्रदान की। हमारे बापू प्रकाशपुंज थे और उन्होंने हमें यह बताया कि केन्द्रीयकरण चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में हो, अथवा आर्थिक क्षेत्र में, निश्चय ही जनता जनार्दन की राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का अपहरण करने की ओर अग्रसर होगा। यह थी एक नई कल्पना और एक

नई विचारधारा, जो उन्होंने हमें प्रदान की। उन्होंने बताया कि सच्चे लोकतंत्र का उदय ऊपर से नहीं, नीचे से होना चाहिये। अधिकार और शक्ति ऊपर कहीं केन्दित नहीं, बल्कि नीचे समाज के आधार जनमंडल में वितरित होना चाहिये। उसी स्थिति में वस्तुतः जनतन्त्र की सच्ची स्थापना हो सकती है और तभी जनता स्वतंत्रता का भोग कर सकती है। आज जो व्यवस्था हम बनाने जा रहे हैं, वह अधोमुखी है। ऐसा वृक्ष लगाया जा रहा है, जिसकी जड़ तो ऊपर है और जिसकी शाखायें नीचे की ओर हैं। गीता का ऊर्ध्वमूलमधः शाखा वाला वृक्ष आध्यात्मिक वृक्ष हो सकता है, पर राजनीतिक क्षेत्र में कोई भी तन्त्र ऐसा बने, जिसकी जड़ ऊपर हो और शाखा नीचे की तरफ, तो उस तंत्र में सच्चे जनतंत्र की स्थापना और सच्चे लोकतंत्र की स्थापना वास्तविक अवस्था में नहीं हो सकती। केन्द्रीकरण आज के इतिहास का भयावना अभिशाप है। जब उत्पादन की पद्धति का केन्द्रीकरण हुआ, उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण हुआ, तो उस पूंजीवाद का जन्म हुआ, जिसने जगत की आर्थिक स्वतंत्रता नष्ट कर डाली है। राजनीतिक क्षेत्र में जब सरकारों का केन्द्रीकरण हुआ और अधिकार तथा सत्ता केन्द्रित हुई तो उस तंत्र का लोप हो गया, जिसका जन्म फ्रांस की राज्यक्रांन्ति के बाद हुआ था। आज आप रूस की तरफ दृष्टिपात करें और देखें कि सबसे बड़े जनतंत्र और लोकतंत्र का दावा करने वाला रूस भी लोकतंत्र की प्रतिष्ठा नहीं कर सका है। वह इस कारण कि एक महाभयावनी पिशाचिनी केन्द्रित सत्ता वहां की जनता के मस्तक पर प्रतिष्ठित हुई है, जो उसके व्यक्तित्व और उसकी स्वतंत्रता का निर्दलन कर रही है। यदि आपने भारत में उस केन्द्रीकरण की प्रतिष्ठा की, तो स्मरण रखें कि उस केन्द्रीकरण का परिणाम यह होगा कि अधिकारों का केन्द्रीकरण होगा, अधिकारों का केन्द्रीकरण होने पर उसकी रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि शक्ति का केन्द्रीकरण हो और शक्ति का केन्द्रीकरण शस्त्र के आधार पर होता है और जब शस्त्र के आधार पर शक्ति का केन्द्रीकरण हुआ, तो जनता के अधिकारों का निर्दलन अवश्यम्भावी है। यह ऐतिहासिक सत्य है। आज वह खतरा हमारे संविधान में प्रत्यक्ष रूप से निहित है। भले ही आज की परिस्थितियों ने हमें बाध्य किया हो कि हम केन्द्रित सत्ता बनायें, परन्तु यह खतरा इसमें है, यह भय इसमें है, जिसकी तरफ़ दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। केन्द्रीकरण के विरुद्ध गांधीजी ने जो कल्पना हमें दी, वह इसी दृष्टि से दी थी। उन्होंने हमें बताया था कि सच्चे जनतंत्र की स्थापना के लिये उत्पादन के साधनों को विकेन्द्रित करो, उत्पादन के प्रकार को भी विकेन्द्रित करो और उसकी भित्ति पर जिस समाज की रचना करो, वह भी विकेन्द्रित हो और समाज पर जिस सत्ता की रचना हो, वह भी विकेन्द्रित हो और उसके अधिकार नीचे से ऊपर को चलें और सत्ता को वही अधिकार मिलें, जो जनता उसे प्रदान करे। हमसे कहा गया कि यह पीपुल्स कान्स्टीट्यूशन है, कामन-मैन्स कान्स्टीट्यूशन है। मैं अत्यंत नम्रता के साथ कहना चाहता हूं कि मुझे अत्यन्त अनकामनमैन्स कान्स्टीट्यूशन मालूम पड़ता है। इसकी शक्ति का केन्द्रीकरण ऊपर होता है। इसमें भले ही कहा गया हो कि जनता के हाथों में शक्ति है और वही सत्ताधिकारिणी है, परन्तु यह शक्ति ऊपर प्रतिष्ठित है, इसे आप देखें।

फिर मैं देखता हूं कि हमारे इस संविधान में भारत की आत्मा का कोई परिचय नहीं है। यह संविधान ऐसा मालूम होता है कि एकमात्र अवसर को देखकर बनाया

[श्री कमलापति तिवारी]

गया है। परिस्थितियों के भय से जो प्रतिक्रिया हमारे मन पर हुई कि न जाने कौन अराजकता कब उत्पन्न हो जाये, न जाने कौन सी परिस्थिति अभी पैदा हो जाय, न जाने स्वतंत्रता कब खतरे में पड़ जाये, उसने ही हमें प्रभावित किया और उसी के प्रभाव में पड़कर हमने ऐसा संविधान बना डाला। आज के संक्रमण काल में यह परिस्थिति हमारे सामने है, इसमें सन्देह नहीं, जब एक बनी बनाई व्यवस्था चूर होती है, एक स्थापित अट्टालिका गिरती है, तो उसके गर्जन से पृथ्वी में भी कम्पन होता है। इस कंपन से उत्पन्न स्थिति में भय और आशंका भी निर्विवाद है, स्वाभाविक है। एक महान शक्तिशाली साम्राज्य हमारे देखते देखते लुप्त हुआ है। इस संक्रमण काल में हमारे मन में भय है और आशंका है, पर इसकी प्रतिच्छाया हमारे संविधान पर पड़े, यह मैं समझता हूं, उचित नहीं हुआ है। हमने विदेशों से तो बहुत सी प्रेरणा प्राप्त की। आस्ट्रेलियन कांस्टीट्यूशन को हमने भले ही देखा हो, कनेडियन कांस्टीट्यूशन को भी भले ही देखा हो, ब्रिटेन के अलिखित कांस्टीट्यूशन को भी देखा हो, हम यह भी बहस कर रहे हों कि यह फेडरल है या यूनिटरी, किन्तु हमने भारत की आत्मा और संस्कृति और भारत के दृष्टिकोण की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इस संविधान की रचना करते हुए हमने यह न देखा कि हमारे इस प्राचीन पुरातन देश में, जिसकी सहस्राब्दियों की संस्कृति है, जिसने राजनीतिक जीवन के रंगमंच पर बहुत अभिनय किये हैं, उसकी अपनी राजनीतिक विचारधारा भी कुछ रही है। राजनीति के क्षेत्र में हमारे इस देश ने महान प्रयोग किये हैं, जिनका इतिहास साक्षी है। हमने कभी इसकी ओर दृष्टिपात करने की इच्छा नहीं की। कैसे हम कह सकते हैं कि हमारे इसी देश में बहुतंत्र व्यवस्था नहीं रही है। आज इतिहास साक्षी है कि हमारा देश वह भूमि है, जहां कि सर्वप्रथम यदि विशुद्ध लोकतंत्र नहीं, तो बहुतंत्र की प्रतिष्ठा हो चुकी है। जिस समय सिकन्दर ने इस देश पर आक्रमण किया था, उस युग में भी भारत के पश्चिम में समस्त पांचाल की भूमि गणतंत्रों से भरी हुई थी। कपिलवस्तु का भी गणतंत्र ही था, जहां भगवान बुद्ध उत्पन्न हुए थे। लिच्छिवियों का एक बड़ा गणतंत्र था, जिससे भगवान बुद्ध का बहुत सम्बन्ध रहा था। इस देश में गणतंत्रों की महिमा हजारों वर्ष तक छाई रही है। वेदों में, उपनिषदों में, ब्राह्मणों में साम्राज्य की, वैराग्य की, अराजक राज्यों की पूरी कल्पना मिलती है। कैसे आप कह सकते हैं कि हमारे देश में गणतंत्र का, बहुतंत्र का या लोकतंत्र का ज्ञान नही रहा है। इस देश में राजनीतिक विचारों की पूरी विचारधारा बही है। महाभारत में जो कुछ महर्षि वेदव्यास ने भीष्म के मुंह से कहलवाया है, आप यदि उसकी तरफ दृष्टिपात करें, तो आप देखेंगे कि पूरा विधान मौजूद है, पूरी राजनीतिक विचारधारा है। क्या हमने कभी इसकी तरफ दृष्टिपात किया है? बाहर की तमाम चीज़ें इस संविधान में अवश्य हैं और सबसे बढ़कर चाहे आप कितना ही अस्वीकार करें, सन् 1935 के गवर्नमेंट ऑफ़ इन्डिया के काले ऐक्ट की काली छाया इस संविधान पर प्रत्यक्ष दिखाई देती है। चाहे हम इसका कितना ही विरोध करते रहे हों, पर उसकी छाया हमारे संविधान पर पड़ी है, इससे हम इन्कार नहीं कर सकते। इस प्रकार भारत का संविधान बनाते हुए हमने उसे देश की संस्कृति, परंपरा, इतिहास और राष्ट्र की आत्मा, हृदय तथा प्रतिभा से उसे दूर रखकर दूसरी मौलिक भूल की है। स्मरण रखिये कि इस सांस्कृतिक विच्छेद ने इस संविधान को न केवल अभारतीय बल्कि इसे निष्प्राण भी बना डाला है।

इसका तीसरा मौलिक दोष है, नागरिक अधिकारों पर हस्तक्षेप। आप कहते हैं कि हमने अछूतपना मिटाया है। आप पूछते हैं कि क्या हमने फंडामेंटल राइट्स की इस विधान में गारंटी नहीं की है। पर मैं पूछता हूं कि क्या फंडामेंटल राइट्स में हमने रुकावटें नहीं लगा दी हैं? क्या यह बिल्कुल सही नहीं है कि इसमें एक के बाद दूसरी ऐसी अनेक धारायें हैं, जो फ़ंडामेंटल राइट्स पर हस्तक्षेप करती हैं? और यह क्या है? यह प्रेरणा आपको कहां से मिली है? अध्यक्ष महोदय, मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि यह प्रेरणा मिली है, पुराने गवर्नमेंट ऑफ इन्डिया ऐक्ट से। यह अंग्रेज़ों का तरीक़ा रहा है कि जो चीज़ एक हाथ से दी, वही दूसरी तरफ़ से निकाल ली। यह संस्कार हमारे ऊपर उनके पड़े हैं। मैं मानता हूं कि स्टेट की सीक्युरिटी के लिये यह सब करना आवश्यक हुआ। ऐसा आप करें, लेकिन स्वीकार कर लें, इस दोष को। स्टेट की सीक्युरिटी, हमें गांधी जी ने बताया था केवल शस्त्र से और अधिकारों के अपहरण से नहीं होती है। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा था कि देश की सुरक्षा का एकमात्र मार्ग है कि प्रजा का पूर्ण पालन हो और उसकी बुभुक्षा और उसकी नग्नता और उसकी पीड़ा का विनाश हो। ऐसे राज्य की प्रतिष्ठा करो, जो सूर्य के समान है, जो पृथ्वी से रस को ग्रहण करता है और जितना ग्रहण करता है, उससे अठगुना। उसके कल्याण के लिये पृथ्वी को देता है। ऐसे राज्य की रक्षा के लिये शस्त्र की आवश्यकता नहीं, सेना की आवश्यकता नहीं। बापू ने भी हमें यही बताया कि जो राज्य केवल शक्ति के भरोसे टिके रहने की कोशिश करेगा, वह टिक नहीं सकेगा। उसका सहारा शस्त्र ही उसके लिये खतरनाक हो जायेगा। यदि शक्ति के द्वारा स्टेट कायम की जायेगी, तो वह अधिक दिन नहीं चलने की। यदि जनता के अधिकारों को अपहरण करके कोई सत्ता कायम की जाती है, तो आगे चलकर उसके लिये भयावह आशंका मौजूद रहती है। मनुष्य की प्रवृत्ति है जैसा कि कहा गया है कि 'नथिंग करप्ट्स लाइक पावर।' आज भले ही हमारे नेताओं के हाथों में इस व्यवस्था की बागडोर हो, जिनका हृदय, जिनकी आत्मा, जिनका सारा जीवन जनता जनार्दन के चरणों में अर्पित रहा है। इनसे किसी प्रकार की आशंका नहीं हो सकती। पर यही शक्ति आगे चल कर किसी ऐसे के हाथ में पड़ सकती है, जो कि इसका दुरुपयोग कर सकता है। यही खतरा है।

इस विधान का चौथा मौलिक दोष यह है कि हमने इसमें गरीबों के लिये, भारत की दरिद्र जनता के लिये कुछ नहीं किया है। आप देखें कि डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स में भी, जो हमें गारंटी दी गई है, वह पूरी नहीं दी गई है। उसमें भी यही कहा गया है कि जहां तक हो सकेगा, हम करेंगे। उसमें यह गारंटी कहां दी गई है कि देश में भुखमरी नहीं रह जायेगी और सड़कों पर एक भी भिखमंगा भविष्य में नहीं रह जायेगा? इसकी कोई गारंटी नहीं है। यह गारंटी कहां दी गई है कि देश में एक भी व्यक्ति बेकार नहीं रहेगा और काम देना सरकार का काम होगा? यह कहां हमने गारंटी दी है? हमने अपने प्रेसीडेंट की दस हज़ार तनख़ाह की ज़रूर गारंटी कर दी है। अपने संविधान के बड़े भारी पोथे में एकाउंटेंट जनरल और गवर्नर और जज इन सबकी तनख़ाह निश्चित कर दी है, लेकिन हमने यह निश्चित नहीं किया कि हमारे चपरासियों को क्या तनख़ाह मिलनी चाहिये। हमने कहां यह निश्चित किया कि हमारे देश में कम से कम वेतन क्या होना चाहिये? उदाहरण के लिये हमने यह क्यों नहीं तय कर दिया कि इस देश में

[श्री कमलापति तिवारी]

कम से कम कोई काम करने वाला 75 रुपया महीने से कम नहीं पायेगा। यदि हम ऐसा करते, तो हम इस देश की आत्मा को स्पर्श करते। आप लोगों ने ऊपर की ओर ध्यान दिया है, नीचे की ओर ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि हमारा यह संविधान निर्जीव दिखाई देता है। यह आदर्शों से अनुप्राणित नहीं हो सका है।

हमने इस देश के लिये एक भाषा स्वीकार की, पर दूसरी ओर उसके पीछे एक के बाद दूसरी ऐसी धारायें लगा दीं, जिनका एक मात्र भाव यह है कि वह भाषा, जिसे हम राष्ट्रभाषा करने वाले हैं, जल्दी से न चली आवे। अध्यक्ष महोदय, मैं आपसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि 15 वर्ष में ही हिन्दी आ गई, तो सेक्रेटरियेट की नौकरियां कैसे ठीक होंगी। सिर्फ इस अवसरवादिता पर तो हमने ध्यान दिया, पर यह नहीं सोचा कि भाषा का सम्बन्ध राष्ट्र के हृदय से, उसकी आत्मा से होता है। भाषा भावों के प्रवाह का आधार होती है, भाषा संस्कृति का आधार होती है और संस्कृति राष्ट्रों के इतिहास और उनके जीवन और उनके उत्थान और विकास का आधार हुआ करती है। भाषा और संस्कृति का कितना सम्बन्ध है। भाषा के बिना हमारी रचना की भित्ति क्या हो सकती है? हमने इस बात की ओर ध्यान न दिया और विदेशी भाषा को आज भी अपनाये रहे। आपने अपने शासन-विधान की भित्ति के लिये कौन सी भाषा खोजी है? भारत के पास कुछ और रहा हो या नहीं, परन्तु भाषा और लिपि के क्षेत्र में हमारा यह देश कभी दरिद्र नहीं रहा। इतिहास साक्षी है कि समस्त एशियाई देशों ने हमारी लिपि से सहारा लेकर अपनी लिपियों का निर्माण किया है। हमारी भाषा में ऐसा ऊंचा वांग्मय है, जिसके आगे संसार नतमस्तक है। कितनी लज्जा की बात है कि हमारे देश का विधान, जिसे हम प्रामाणिकता प्रदान करने जा रहे हैं, वह भी एक विदेशी भाषा में लिखा हुआ हो। यह ऐसे दोष हैं, जिन की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये। मैंने सोचा कि देश के प्रति यह मेरा कर्तव्य है, अपने नेताओं के प्रति मेरा यह कर्तव्य है और अपनी विधान-परिषद् के प्रति यह मेरा कर्तव्य है कि हम अपने हृदय के इन भावों को आपके सामने अर्पित कर दें और यह स्वीकार करें कि जो कुछ हम कर रहे हैं, वह सुन्दर है, पर हम अपने दोषों से अपरिचित नहीं हैं।

सभापति जी, संक्षेप में मैंने अपने हृदय के भावों को आपके सामने रख दिया है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम निराश हैं अथवा हम जो कर सके हैं, उसकी महत्ता किसी प्रकार कम है। हमने केवल इसी विचार से अपने दोषों की चर्चा की। हम देश से कह दें कि भला या बुरा जो बन पड़ा है, वह आपके सामने है। हम उससे कह दें कि हमारा प्रयास त्रुटिपूर्ण है, दोषपूर्ण है। हम इन दोषों से और त्रुटियों से अज्ञात नहीं हैं। हमें ज्ञान है, हम जानते हैं कि हमारा विकार क्या है ओर हम कहां जा रहे हैं। कभी सम्भव होगा कि हम इन दोषों का और इन विकारों का निराकरण करने में समर्थ होंगे। सभापति जी, आज हम इन दोषों और तमाम त्रुटियों को देखते हुए भी, जो कर सके हैं, उसके लिये नम्रतापूर्वक संतोष प्रकट करते हैं। इस संविधान के प्रति हमारी दृष्टि भावुक है, इसका निर्माण हमने किया है, शुद्ध नीयत और राष्ट्र के हित की दृष्टि से किया है। हम आज के अपने युग को देखकर ही प्रसन्न हैं। इस युग की तुलना हम अपने उस युग से करते हैं, जब हमने राष्ट्र की स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये

अपने महान तथा कठिन पथ पर आज से तीस वर्ष पूर्व अपनी यात्रा आरम्भ की थी। हमने उस युग को देखा है, जब एक प्राचीन राष्ट्र प्राभूत धरती पर पड़ा हुआ नाक रगड़ रहा है। वह युग था, जब इसी देश में जीवन जीने के लिये तरस रहा था। हमारी मातृभूमि दलिता, हीना, मलीना और पीड़िता हमारे सामने कराह रही थी। हमारे चारों ओर अंधकार था और हम अपने भविष्य के सम्बन्ध में निराश हो गये थे। हमने देखा कि ऐसे युग में एक देवता हमारे जीवन में अवतरित हुआ। उसकी वाणी में वह अमृत था जिसने मुर्दों में भी प्राण का संचार कर डाला। उस देवता के ओज और तेज़ ने हमें चेतना प्रदान की। उसके आयंत्रण में विप्लव का गर्जन और बलि-पथ पर अग्रसर होने की पुकार थी। उसने राष्ट्र को नया मंत्र दिया और हमारे लिये नये युद्ध की रचना की। उसकी युद्ध-प्रणाली अनूठी थी। यह युद्ध था धर्म का, सत्य का, मनुष्यता का, प्रकाश का, जो अधर्म के, असत्य के, पशुता और अंधकार के विरुद्ध छेड़ा गया। हमने देखा कि उस युद्ध के फलस्वरूप एक दिन संसार की सबसे बड़ी साम्राज्य शक्ति हमारे देखते-देखते हिमशिला की भांति गल कर वहीं अनन्त में लुप्त हो गई। हमने देखा कि एक राष्ट्र, जो रात्रि में पराधीन सोया था, जब प्रातःकाल उठा, तो उसके अन्तरिक्ष पर उदीयमान होने वाला सूर्य स्वतंत्र भारत का सूर्य था। हमारे नेत्रों के सम्मुख ही यह चमत्कार हुआ। आज उसी देवता के चमत्कार का फल है कि हम इस संविधान की रचना कर सके। फलतः हम अपने इस प्रयास की ओर भावुक दृष्टि से देख रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि देश में एक बार पच्चीस सौ वर्ष पूर्व एक विधान की रचना हुई थी, वह युग था जब चन्द्रगुप्त की भुजाओं ने उस महान् भारतीय साम्राज्य की प्रतिष्ठा की, जिसकी हुंकार ने इस देश से यूनानी शक्ति को उखाड़ फेंका। उस युग में कौटिल्य ने विधान की रचना की थी, जो सहस्रों वर्ष तक भारत के गौरव का कारण बना रहा। पच्चीस सौ वर्ष बाद यह हमारा दूसरा प्रयास है। चाहे हमारा यह प्रयास दोषपूर्ण हो या गुणपूर्ण हो, इसी विधान को हम राष्ट्र देवता के चरणों में समर्पित करते हैं। हमारा विश्वास है कि ऐसा युग आयेगा, जब हम अपने राष्ट्र में एक ऐसा जीवन का निर्माण कर सकेंगे, जो समस्त-मानव जाति को संदेश प्रदान करने का काम करेगा।

***श्री धरणिधर बसुमतारीः** (आसामः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुभव करता हूं कि मैं इस संविधान सभा को छोड़कर अपने प्रांत आसाम को तब तक नहीं लौट सकता जब तक कि मैं इस संविधान के निर्माण-कार्य के लिये डॉक्टर अम्बेडकर और मसौदा समिति की प्रशंसा में कुछ शब्द न कह लूं। मेरे विचार में मेरा यह कथन ठीक ही है कि सबको कोई न कोई आलोचना या शिकायत करनी है। यह संविधान सब वर्गों को सब दृष्टिकोणों को संतुष्ट नहीं करता और न कर ही सकता है, किन्तु अखिल भारतीय दृष्टिकोण से सब बातों पर विचार किया जाये तो यह संविधान निराशात्मक नहीं है और वास्तव में विभाजन के पश्चात् की कठिन परिस्थितियों में जैसा सर्वोत्तम संविधान बन सकता है वही यह है। संविधान में, अनुच्छेदों में, अनुसूचियों में जो कुछ लिखा है उसी से कुछ नहीं होगा। वास्तव में संविधान के प्रयोजन को जिस भावना से पूरा किया जायेगा उसी पर सब कुछ निर्भर होगा। यदि सब ही वर्ग ईमानदारी से और निस्वार्थता से सहयोग करें तो मुझे भरोसा है कि भारत ठीक मार्ग पर प्रगति करेगा।

[श्री धरणिधर बसुमतारी]

प्रगति की चर्चा करते समय, हमें यह बात सर्वथा स्पष्ट कर देनी चाहिये कि यदि हमारे राष्ट्र के बड़े भागों को जानबूझ कर पिछड़े हुए रखा जायेगा तो वास्तविक सम्भव नहीं है। उन्नत जातियों को विशेष प्रयत्न करने होंगे, विशेष त्याग करने होंगे, तभी पिछड़े हुए वर्ग ऊंचे उठ सकते हैं। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो यह विश्वास करते हैं कि पिछड़े हुए वर्गों को 10 वर्ष में साधारण स्तर पर लाया जा सकता है। यह असंभव है और यह दुर्भाग्य की बात है कि संविधान में दस वर्ष की अवधि रख दी गई है। किन्तु दस वर्ष में भी काफी कुछ किया जा सकता है यदि पिछड़े हुए वर्गों की उन्नति के लिये पर्याप्त धन रखा जाये और उसी पर सदा ध्यान दिया जाये।

संविधान में ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनके लिये आसाम की आदिमजातियों को आभारी होना चाहिये। यह तो स्वीकार करना ही होगा कि तथाकथित स्वायत्तशासी जिलों में, जहां आदिमजातीय परिषदें आदि होंगी; आदिमजातियों के विकास के लिये बहुत क्षेत्र हैं। किन्तु आसाम की जो आदिमजातियां मैदानों में और चाय बागानों में हैं उनके विषय में मुझे संतोष नहीं है। स्वायत्तशासी जिलों के बाहर भी उनमें से लाखों रहते हैं। उनका क्या होगा? क्या उन्हें किसी संरक्षण की और विशेष व्यवहार की अपेक्षा नहीं है? मुझे आसाम के मैदानों वाले आदिम लोगों के विषय में जरा भी संतोष नहीं हैं। मुझे अच्छी तरह पता है कि उनकी अब तक कैसी उपेक्षा और शोषण हुआ है, और मेरे ख्याल में, उनका दमन होता रहेगा, जब तक कि उनकी उन्नति के लिये विशेष प्रयत्न न किये जायें। सच बात तो यह है कि उन्हीं के विरूद्ध उनकी सहायता करनी होगी। स्थिति ऐसी है कि वे मैदानों के अन्य लोगों का मुकाबला नहीं कर सकते।

उनकी उन्नति की गति तेज़ होनी चाहिये। नियुक्तियों के ही प्रश्न को लीजिये। यह कहने से कोई लाभ नहीं है कि इतने आदिमजातीय लोगों को जंगल के काम में लगा दिया गया है। आदिमजातीय लोगों को ऊंची से नीची सभी सेवाओं में नियुक्त करना होगा, केवल प्रांतों में ही नहीं, केन्द्र में भी। केवल इतना ही नहीं हो कि उनकी नियुक्तियों के लिये न्यूनतम स्थान नियत किये जायें, वरन् उनकी पदोन्नति का भी ध्यान रखना चाहिये जिससे कि वे जहां के तहां न रह जायें। ऐसा तभी होगा जब कि उन्नत वर्ग कुछ त्याग करेंगे। उन्हें पीछे हटना होगा और आदिमजातीय लोगों को आगे बढ़ना होगा। जब यहां उन्नत सम्प्रदाय यह कहते हैं कि वे आदिमजातियों को अपने स्तर पर लाना चाहते हैं, तो क्या उनका सचमुच यह आशय है कि वे शिक्षित आदिमजातीय लोगों के लिये मार्ग देने के लिये तैयार हैं? प्रतियोगिता के आधार पर तो सुधार नहीं होगा। जिन वर्गों का सेवाओं पर अधिकार हो गया है वे ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि उनकी प्रभुता जोखिम में न पड़े। मेरे विचार में प्रशासन की कुशलता की युक्तियां वर्गों के या प्रादेशिक स्वार्थों को बनाये रखने के लिये आडम्बर मात्र हैं। ब्रिटिश शासन में कुछ लोगों पर कृपादृष्टि थी और उन्हें नौकरियां मिल जाती थीं, ठेके और विशेषाधिकार मिल जाते थे; सैनिक और असैनिक का भेद भी रखा गया था। स्वतंत्र भारत में ऐसे भेदभाव को कोई स्थान नहीं होगा। मैं जानता हूं कि इस संविधान से वे लोग

संतुष्ट नहीं हैं जिन्हें रियायतों की आदत पड़ गई हैं। ऐसे लोग लोकतंत्र का कुछ और ही अर्थ मानते हैं।

श्रीमान, फिर भी स्थिति निराशाजनक नहीं है। मुझे यह विश्वास है कि संविधान पर लोकतंत्रात्मक ढंग से अमल हो सकता है, यदि नेता अपने अधिकारों से अधिक आदर दूसरों के अधिकारों का करें। आदिमजातीय लोग निस्संदेह इस संविधान को सफल बनाने में अपना सहयोग देंगे और मुझे आशा है कि दूसरे भी उनके मार्ग में बाधा नहीं डालेंगे।

श्रीमान, सब जानते हैं कि राष्ट्रपिता गांधी जी रामराज्य स्थापित करना चाहते थे और मेरे विचार में वे ऐसा संसार चाहते थे जहां धनी और निर्धन में विभेद न हो, सुखी और दुःखी में विभेद न हो, और हमें उनके शिष्य होने पर गर्व है।

***श्री अरि बहादुर गुरंगः** अध्यक्ष महोदय, मसौदा समिति के प्रधान को बधाई देने में मैं अपने सहयोगियों का साथ देना चाहता हूं। कि उन्होंने इस महान कार्य को सफलता से पूरा किया है, मुझे केवल कुछ बातें कहनी हैं। पहली बात तो यह है कि यह आलोचना कि उसमें समाजवाद की स्थापना का उपबन्ध नहीं है उतनी ही अप्रासंगिक है जितनी यह शिकायत व्यर्थ है कि उसमें तानाशाही का मार्ग खुल जायेगा। लोकतंत्र की असली कसौटी लोगों को ही यह निश्चय करने का अधिकार देना है कि वे किस प्रकार का शासन चाहते हैं। तानाशाही या समष्टिवादी साम्यवाद का प्रश्न तो पूर्णतः इस बात पर निर्भर रहेगा कि वे किस प्रकार संविधान को क्रियान्वित करेंगे। संविधान में लोगों की इच्छा के अनुसार लगातार बहुत से रूपभेद होंगे। संविधान में ऐसे उपबन्ध ही रखे गये हैं। श्रीमान, मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूं कि संविधान एक पवित्र सी चीज़ है जो भावी संतति को प्रेरणा देता है। यह विश्वास और जीवन-दर्शन का प्रतीक होता है। अतएव हमें उनके उपदेश को नहीं भूलना चाहिये। अन्त में, श्रीमान, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे संविधान के विषय में अपने विनीत विचारों को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान किया। जय हिन्द।

***श्री दीप नारायण सिंह** (बिहारः जनरल): सभापति जी, इस अवसर पर जब हम हिन्दुस्तान के लिये एक विधान पास करने जा रहे हैं। बहुत अदब से मैं अपनी श्रद्धांजलि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को देता हूं, जिनकी कठिन तपस्या और अद्भुत कार्य-कुशलता से हमारे देश को आजादी मिली। साथ ही, मैं उन असंख्य नर-नारियों को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम में हमारा साथ दिया, अनेक यातनायें सहीं और समय समय पर कठिन से कठिन कुर्बानियां कीं। जिस विधान को हम पास करने जा रहे हैं, वह विधान हमारे देश के इतिहास में एक अपूर्व सी चीज़ होगी। इस विधान की धाराओं के आधार पर हमारे देश का राष्ट्रीय जीवन बनेगा। इस जिले में इस विधान को एक बहुत पत्र और बड़े महत्व की चीज़ समझता हूं। मैं चाहता हूं कि हर एक भारतवासी इस विधान को इसी दृष्टि से देखे। मैं मानता हूं कि इस विधान में अनेकों त्रुटियां हैं। इसमें सुधार के काफी स्थान हैं। पर इस विधान में ऐसी खूबियां हैं, जिनको अपने विधान में पाकर कोई भी देश अपने को धन्य मान सकता है। अब हम लोगों को सच्चे

[श्री दीप नारायण सिंह]

हृदय से, सच्ची भावना से इस विधान को काम में लाने का यत्न करना चाहिये और इससे जितना फायदा देश को हो, पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिये। अगर हम सच्चे मन से इस विधान को काम में लाने की कोशिश करेंगे, तो इसमें जो त्रुटियां रह गई हैं, उनको हम हटा सकेंगे और जब कभी सुधार करने की जरूरत होगी, तब आसानी से सुधार कर लेंगे। मैं अब इस विधान पर दो चार शब्द एक साधारण मनुष्य के दृष्टिकोण से कहना चाहता हूं। गांव का रहने वाला एक साधारण मनुष्य जब इस विधान के पन्ने को उलटेगा, तो वह विधान की खूबियों को देखना शायद पसन्द नहीं करेगा। वह विधान की गहराइयों में जाना पसन्द नहीं करेगा। वह तो यह देखना चाहेगा कि उसकी जरूरत की चीज़ें विधान में मौजूद हैं या नहीं। वह यह जानना चाहेगा कि यह विधान उसके लिये स्वास्थ्यकर भोजन, वस्त्र, सुन्दर स्वास्थ्य तथा उचित शिक्षा की गारंटी देता है या नहीं। मैं कहना चाहता हूं कि गांव के रहने वाले और साधारण मनुष्य उस गारंटी का इसमें अभाव पायेंगे। हां विधान में कहा गया है कि दस साल के भीतर शिक्षा का प्रबन्ध इस तरह से किया जायेगा, ताकि 14 साल की आयु तक पहुंचते-पहुंचते सभी बालक और बालिकायें शिक्षा पा सकें। उनसे अधिक उम्र वालों को इस विधान मे कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन भोजन, वस्त्र तथा सुन्दर स्वास्थ्य की किसी भी तरह गारंटी इस विधान में नहीं है। मैं जानता हूं और सब जानते हैं कि हमारा देश गांवों का देश है, हमारी जनता गांवों में बसती है, मैं कह सकता हूं कि दुनिया के बड़े बड़े देश शहरों के देश हैं, लेकिन मेरा देश तो गांवों का देश है। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति गांवों में ही है और अभी भी जो कुछ भी हमारी सभ्यता या संस्कृति बची हुई है, वह गांवों के पुण्य-प्रताप से ही बची हुई है। लेकिन इस विधान में गांवों की प्रधानता तो अलग रही, उसका कोई स्थान भी नहीं है। हां, मैंने देखा है कि एक छोटे से आर्टिकिल में गांवों की पंचायत की चर्चा की गई है; लेकिन वह केवल याद मात्र है। गांवों की रूपरेखा क्या होगी, गांवों का स्थान भविष्य में क्या होगा, इसकी तरफ हमारा विधान चुप है। विधान में जिस शासन-प्रणाली की रूपरेखा दी हुई है, जिस समाज का ढांचा बनाया गया है, उसमें गांवों का कोई स्थान नहीं है। मैं तो चाहता था कि शासन के कामों में या और दूसरे दूसरे कामों में गांवों की ही प्रधानता होती और गांव को ही आधार मानकर हमारे देश की शासन की रूपरेखा बनती पर इस विधान में ऐसा नहीं हैं। मैं इसको एक भारी कमी मानता हूं। मैं समझता हूं कि बिना सोचे विचारे यह कमी आ गई है। लेकिन यह है, बहुत भारी मौलिक कमी। अगर हम चाहते हैं कि हमारे देश की काफी तरक्की हो, हमारा देश सुख और शान्ति से शीघ्र पूर्ण हो जाये, तो हमें गांवों को सभी कामों में प्रधानता देनी होगी और गांवों को ही आधार मानकर निर्माण की सभी स्कीमों को बनाना होगा, चाहे उनका सम्बन्ध शासन से हो या और दूसरे कामों से। यदि हम ऐसा न कर सकेंगे, तो हम अपने देश का पिछला दुखदपूर्ण इतिहास दुहरायेंगे। मैं चाहता हूं कि भविष्य में अपने विधान को काम में लाते समय इस त्रुटि पर हम ध्यान देंगे और राष्ट्र-निर्माण की सभी स्कीमों में गांव को ही आधार बनायेंगे।

एक बात मुझे और भी बहुत खटकती है। स्वराज्य की लड़ाई जब छिड़ी, तो हम से कहा गया कि हम आज़ादी हासिल कर सकते हैं, तो केवल एक

शस्त्र के ग्रहण करने से, और वह हथियार अहिंसा का और सत्य का था। सत्य व अहिंसा के आधार पर चल कर हमने विजय पाई और उसी की वजह से सारी दुनिया की निगाह को अपनी ओर खींच लिया। इस समय जब हमारे प्रधान मंत्री विदेशों में दौरा करते हैं या और भी हमारे प्रतिनिधि जब विदेशों में जाते हैं, तो वे अधिक से अधिक आदर के पात्र बनते हैं। मैं मानता हूं कि जो व्यक्ति विशेष बाहर जाते हैं, उनमें ऐसी योग्यता व प्रतिभा होती है, जो दूसरे के लिये वे आदर के पात्र बन जाते हैं। लेकिन मेरी राय में सबसे बड़ा कारण इस आदरभाव का यह है कि हमने अपनी गुलामी की बेड़ियों को अहिंसा के मार्ग पर चलकर काटा है और स्वराज्य पाया है और उसी के द्वारा बड़ी से बड़ी विदेशी ताक़त को अपने देश से हटाया है। लेकिन उस अहिंसा की चर्चा मात्र भी इस विधान में नहीं है। मुनासिब यह था कि इस समूचे विधान का आधार अहिंसा पर होता और तभी हम अपनी भावनाओं को और अपने विचारों को पूर्णरूप से भविष्य में काम में लाने में सफल होते। जब हम अपनी स्वाधीनता प्राप्ति की लड़ाई लड़ रहे थे, तो बार बार हम अपना मोर्चा बदलते समय अहिंसा का अमोघ मंत्र याद कराया जाता था। कोई भी प्रस्ताव पास हो, कोई भी स्कीम बने, कोई भी चुनाव का मैनीफैस्टो निकले, उसमें ऊपर से लेकर नीचे तक अहिंसा की ही मुहर रहती थी। लेकिन इतने बड़े ग्रन्थ में जिस पर हमारे देश का भविष्य-जीवन निर्भर करता है, उसमें अहिंसा व सत्य की कोई भी चर्चा नहीं है। यह बहुत मुनासिब था और यह उपयुक्त होता कि अहिंसा के भाव का भी हम एक अध्याय इसमें पूर्ण रूप से लिख डालते, ताकि आगे की जनता और इस विधान को काम में लाने वाले सब उससे रोशनी लेकर, उसकी मदद लेकर अपने समाज को, अपने राष्ट्र को बनाने में आगे बढ़ते। लेकिन विधान तो बन गया। दो-चार दिनों में यह विधान पास हो जायेगा। अब मैं अपने नेताओं से और समूचे राष्ट्र से इस बात के लिये अपील करूंगा कि इस विधान में, हालांकि अहिंसा की बात नहीं रखी गई है, लेकिन इसको काम में लाने के समय अहिंसा को वे अपना आधार ज़रूर बनायेंगे। हम यदि अहिंसा को छोड़ेंगे, तो न केवल हम अपना नुकसान उठायेंगे, लेकिन अभी तो दुनिया के लोग हमारी तरफ इस आशा से देख रहे हैं कि भारत शायद कुछ काल के बाद इस हिंसा से पीड़ित संसार में शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो, उन्हें भी दु:ख होगा। इसलिये मैं फिर से अपने देश के नेताओं से और इस देश के सब लोगों से इस बात की प्रार्थना करूंगा कि इस विधान को काम में लाते समय सत्य और अहिंसा को वे न भूलें।

***अध्यक्ष:** हम अब कल के 10 बजे तक के लिये स्थगित होंगे।

तत्पश्चात् सभा बृहस्पतिवार तारीख 24 नवम्बर 1949 के 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

GIPD–HS-321 PSD–17-12-52–320

Con. 3. XI.10.49
320

अंक 11
संख्या 10

बृहस्पतिवार
24 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 4063
संविधान का मसौदा–(जारी) 4063–4138

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 24 नवम्बर, सन् 1949

भारतीय संविधान सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

***अध्यक्षः** मुझे मालूम हुआ है कि कुछ नये सदस्य—विन्ध्य प्रदेश के सदस्य आ गये है। उन्हें अब प्रतिज्ञा ग्रहण करनी है और रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने हैं।

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

1.	कैप्टेन अवधेश प्रताप सिंह	विन्ध्य प्रदेश का संयुक्त राज्य
2.	श्री शम्भू नाथ शुक्ल	
3.	पंडित राम सहाय तिवारी	
4.	श्री मन्नू लाल जी द्विवेदी	

संविधान का मसौदा–(जारी)

***अध्यक्षः** अब संविधान के मसौदे पर हम बहस जारी करने जा रहे हैं। सदस्यों को मैं यह बता देना चाहता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर के प्रस्ताव पर 77 सदस्य अब तक बोल चुके हैं। और अभी सूची पर 54 सदस्य रह गये हैं जो बोलना चाहते हैं। इसके लिये हमारे पास केवल आज का दिन रह गया है और शायद कल एक घंटा भी हमें मिल जाये। इसलिये बाकी सदस्य भी अगर इसी रफ्तार से बोलेंगे जिससे पूर्ववक्ता बोले हैं तो सबके लिये बोलने का मौका पाना मुश्किल होगा। यह बात मैं सदस्यों पर छोड़ता हूं कि या तो वे स्वेच्छानुसार मनमाना समय लेकर अन्य सदस्यों को बोलने से वंचित रखें या यहां आकर केवल चन्द शब्द बोल दें ताकि उनका नाम भी रिकार्ड में आ जाये और जहां तक उनसे हो सके औरों को भी इस अवसर पर बोलने का मौका दें।

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहारः जनरल): मैं एक सुझाव पेश करना चाहता हूं श्रीमान। ऐसा मालूम पड़ता है कि बहुत से सदस्य ऐसे हैं जो बोलने के लिये इच्छुक हैं। मेरा सुझाव यह है कि जो लोग बोलना चाहते हैं उनसे यह कहा जाये कि वह अपना लिखित भाषण पेश कर दें और यह मान लिया जाये कि इन सदस्यों ने अपने भाषण पढ़कर सुना दिये हैं।

***अध्यक्ष:** अपने नियमों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके अनुसार हम लिखित भाषणों को पढ़ा हुआ मान लें क्योंकि भाषण यदि पढ़कर सुनाये भी जायें तो उनके बारे में यही माना जायेगा कि वह यह दिये गये हैं। इस लिये सदस्यों से मैं केवल यही कहूंगा कि वह न केवल अपना ही बल्कि औरों का भी ख्याल रखें। ज्योंही कोई सदस्य पांच मिनट ले लेगा मैं घंटी बजा दूंगा।

चौधरी रणवीर सिंह (ईस्ट पंजाब: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं संविधान के ऊपर अपने विचार प्रकट करने से पहले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस और दूसरे देशभक्तों के आदर में, जिन्होंने देश की वेदी पर अपने जीवन की कुर्बानी दी और तरह तरह की तकलीफें उठाई, श्रद्धा के फूल भेंट करना चाहता हूं।

सभापति महोदय, आज बहुत सारे भाई इस बात का गिला जाहिर करते हैं कि हमने संविधान के बनाने में काफी वक्त लिया है, लेकिन इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि जिस वक्त यह सभा बैठी थी उस वक्त हिन्दुस्तान एक गुलाम देश था और 600 से ज्यादा हिस्सों में बंटा हुआ देश था, उसमें तरह तरह के आदमी थे और तरह तरह की पार्टियां थीं जो देश का बटवारा करना चाहती थीं। इस तीन साल के अन्दर जो देश में तबदीली हुई है वह इतिहास के अन्दर एक निराली चीज है। इसमें हमारा देश दो हिस्सों में बंटा, लेकिन इसके बावजूद कोई आदमी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि आपकी प्रधानता के अन्दर हम भारत के इतिहास में भारत को पहली दफा इतने बड़े और मज़बूत रूप में स्थापित करेंगे जितना कि वह पहले कभी नहीं था।

कोई भाई कह सकते हैं कि अंग्रेज़ों के राज्य में भारत इससे ज्यादा बड़ा देश था, पर इस बात के मानने से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अंग्रेज़ी राज्य में भारत में जो 562 रियासतें थीं उनका अधिकार अजीब था और उनका राज्य शासन भी अजीब ढंग से चलता था। कोई आदमी इससे इन्कार नहीं कर सकता कि सन् 57 से पहले अंग्रेज़ों ने कोशिश की थी कि भारत की रियासतों को तोड़कर एक मजबूत राज्य बना लें, लेकिन अंग्रेज़ थोड़ी ही रियासतों को तोड़ने में कामयाब हुए थे कि देश के अन्दर उथल पुथल हुई और अंग्रेज़ों को यह ख्याल छोड़ना पड़ा। पर हमने आपकी प्रधानता में और हमारे नेता पंडित जवाहर लाल नेहरू और सरदार पटेल के नेतृत्व में महात्मा गांधी के बताये हुए रास्ते पर चल कर देश में से एक नहीं सैंकड़ों रियासतों को शान्ति से समझाया बुझाया और उन को देश के अन्दर संगठित किया और वह देश जो कि इस सभा के शुरू होते समय 600 से ज्यादा हिस्सों में बंटा था अब मुश्किल से 27 प्रान्तों का देश बन जायेगा। समझता हूं कि थोड़े ही दिनों में 15 या 20 हिस्सों में ही रह जायेगा। इस तरह देश को इतने कम हिस्सों में संगठित कर के हमने एक मज़बूत संघ की बुनियाद डाली है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि देर ज़रूर हुई पर उस देर के अन्दर काम बहुत ज्यादा हुआ। मैं समझता हूं कि अगर हम एक साल के अन्दर अन्दर यह विधान बना लेते तो इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यहां कितना कम्युनिटीज़ के लिये रिजरवेशन होता। वह जो झगड़ा या बीमारी थी उसको हमने दूर कर दिया और यह कामयाबी हमारे नेताओं की होशियारी की वजह से मिली।

सभापति महोदय, मैं अब संविधान की दो चार धाराओं पर, जिन पर मैं बहुत ज्यादा महसूस करता हूं, कुछ कहना चाहता हूं। इस संविधान में हमने बालिग मताधिकार को मानकर हर एक हिन्दुस्तानी को राजनीतिक तौर पर आज़ाद किया है और इसी तरह से धारा 17 के द्वारा बेगार खत्म करके और धारा 23 के द्वारा छुआछूत को गैर कानूनी करार देकर हमने सामाजिक तौर पर देश के हर एक अंग को आजाद किया है। इससे आगे चल कर हमने जहां तक आर्थिक आजादी का ताल्लुक है, धारा 31 (4) को मान कर देश के अन्दर एक ऐसी हालत पैदा की है कि जिससे जैसे हमने अपने नेता पंडित जवाहर लाल नेहरू और वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में हिन्दुस्तान की 562 रियासतों का मसला हल किया है, उसी तरह मुझे पूर्ण आशा है कि अगले साल के अन्दर हिन्दुस्तान में जमींदारी प्रथा जो कि एक बोझ की तरह है और देश की तरक्की में रोड़ा बनी हुई है वह भी समाप्त हो जायेगी, और पंजाब जैसे प्रदेश में जिसका कि मैं रहने वाला हूं और जो कि आम तौर पर छोटे छोटे किसान मालिकों का देश है, जहां पर दस फीसदी बड़े बड़े जमींदार हैं मैं समझता हूं कि उनका मसला भी शान्ति के साथ हल हो जायेगा। और जो किसान बे जमीन हैं उनको आर्थिक तौर पर हम इस धारा के तहत आजाद कर पायेंगे। इसी तरह से जो भाई खेत मज़दूर हैं या कारखाने के मज़दूर हैं उनको भी हम इस संविधान के द्वारा आजाद कर सकेंगे। लेकिन सभापति महोदय, जिस इन्टरेस्ट का मैं प्रतिनिधित्व करता हूं यानी खेत मालिक किसान, उनको मुझे खेद है कि इस संविधान के अन्दर कुछ न कुछ पहले से भी पीछे फेंका गया है। उनको आर्थिक आज़ादी तभी मिल सकती थी जब ऐसा कायदा माना जाता कि जिस चीज़ को वह पैदा करते हैं, उनको उस चीज को जिस कीमत पर वह उससे पैदा करते हैं उससे कम कीमत पर बेचने को मजबूर न किया जा सकता होता। अगर हम ऐसा मानते और इस विधान में कोई ऐसी धारा पैदा कर देते तो उनको भी हम आर्थिक लूट से बचा सकते थे। लेकिन बदकिस्मती से हमने 19 (एफ) को मान लिया है जिसका असर हमारे प्रान्त पर बुरा पड़ता है। हमारे इन्तकाल अराज़ी का कानून है। मैं मानता हूं कि उसके अन्दर कुछ खामियां हैं, लेकिन इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस कानून के द्वारा पंजाब के लाखों किसानों को जो दिन रात मेहनत करते हैं यह फायदा हुआ है कि उनकी ज़मीनें उनके पास रह सकती हैं। मुझे पूर्ण आशा है और विश्वास है कि हमारे हाउस के एक बहुत बड़ी तादाद की इच्छा है और मुझे पूर्ण आशा है कि आप हाउस की इस इच्छा को ठुकरायेंगे नहीं। इस विधान के अन्दर एक धारा है जिसके द्वारा प्रधान को यह अख्तियार है कि वह जो कानून थोड़ा बहुत संविधान से टकराते हों उनको अमेंड कर सकता है या रिपील कर सकता है। इसलिये मैं आपसे विशेषतया यह प्रार्थना करता हूं कि इससे लाखों किसानों का सम्बन्ध है और आप इसे अमेंड बेशक कर दें। हमें ऐतराज नहीं कि आप हरिजनों को जो जमीन के अन्दर काम करते हैं उनको अधिकार दे दें कि वह जमीन खरीद सकें, लेकिन इतनी मैं प्रार्थना करता हूं कि कम से कम ऐसी हालत न पैदा होने दीजिये कि जिससे वह आदमी जिस का सम्बन्ध जमीन से बिल्कुल नहीं रहा हो वह जमीन को खरीद सके। अगर ऐसा हुआ तो इसमें शक नहीं कि लूट खसोट होने लगेगी और ज़मींदारी अबालीशन के फायदे का खातमा हो जायेगा।

[चौधरी रणबीर सिंह]

एक चीज जिस के बारे में हाउस में किसी ने ज़िक्र नहीं किया और जिसके बारे में मैं बहुत ज़्यादा महसूस करता हूं वह चीज़ आती है 327 में हलकाबन्दी के सिलसिले में। मैं यह मानता हूं कि हिन्दुस्तान के अन्दर देहात जो हैं वह बहुत पिछड़ा हुआ इलाका है और अगर शहर वालों को देहात वालों के हल्के के साथ मिला दिया गया तो उनके साथ यह एक बड़ी भारी ज़्यादती होगी। हम हिन्दुस्तान में राष्ट्र भाषा हिन्दी को इतनी जल्दी लागू नहीं कर सके इसका कारण यह था कि कुछ लोगों को यह ख्याल था कि उनकी नौकरी खुस जायेगी लेकिन वह आदमी जिन्हें न बोलना आता है, न जिनके पास प्रेस है न लीडरशिप है, उनके साथ आप एक बड़ा भारी घोर अन्याय करेंगे अगर शहर और देहात की हल्के बन्दी को एक कर देंगे तो इस संविधान के द्वारा उनको अलग भी रखा जा सकता है और एक भी किया जा सकता है। मैं यह उम्मीद करता हूं कि बाद में जो कमीशन इस काम के लिये बनेगा वह शहर और देहात के हलकों को अलहदा अलहदा रखेगा।

मैं दो तीन बातों के ऊपर अपने विचार और प्रकट करना चाहता था, लेकिन मैं दूसरे साथियों के समय पर छापा नहीं मारना चाहता और समाप्त करता हूं।

श्री मानिक लाल वर्मा (यूनाइटेड स्टेट ऑफ राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, इस बात का धन्यवाद देता हूं कि मुझे आज बोलने का मौका दिया गया है मगर अफसोस इस बात का है कि इस कंट्रोल का मैं शिकार हुआ हूं। आज तक मुझे कभी भी बोलने का मौका नहीं मिला। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जी को और श्री कामथ जी को यहां पर बोलने का काफी अवसर मिला। अध्यक्ष महोदय से अनुरोध करूंगा कि अगर एक दो मिनट अगर मैं ज़्यादा ले लूं तो वह मुझे निभा लें।

मैं पहले विधान बनाने वाले महोदय डॉक्टर अम्बेडकर साहब और दूसरे सज्जनों को बधाई देता हूं। दूसरा जो हमारे विधान में बालिग मताधिकार रखा गया है यह ठीक है। हिन्दुस्तान में इसका प्रयोग हो रहा है। महात्मा गांधी जी की इच्छा थी कि हमारे देहातों और गांवों की पंचायतों से और उसके बाद जिलों की पंचायतों से लोग चुनकर आयेंगे वह राष्ट्र की समस्या को ठीक तरह से समझने वाले होंगे। अगर यह नया प्रयोग सफल हुआ तो वह ठीक बात होगी। हम लोगों ने बालिग मताधिकार का नारा लगाया अवश्य है किन्तु इस असफल प्रयोग को करना गलत बात होगी। महात्मा जी की भी यह यही इच्छा थी और इस को हमें ज़रूर पूरा करना चाहिये।

इसके बाद मुझे हमारे पूज्य ठक्कर बापा को जिन्होंने कई वर्षों से हरिजनों की सेवा में प्रगतिशील कदम उठाये हैं इसके लिये मैं उनको धन्यवाद देता हूं। हमारे विधान में हरिजनों का जो स्थान रखा गया है उसके लिये मैं विधान के निर्माताओं को

धन्यवाद देता हूं। न्याय और शासन के प्रथक्करण में यह हमारा एक नया प्रयोग है और हम इसमें कामयाब होंगे या नहीं? यह भविष्य बतायेगा। यह हमारी आजादी की शुरूआत है। मैं आशा करता हूं कि हमारा यह प्रयोग सफल ही होगा।

रियासतों के अन्त के बारे में हमारे माननीय नेता सरदार वल्लभभाई पटेल बधाई के पात्र हैं जिन्होंने 584 रियासतों का अन्त किया है। यह सही बात है कि हम जो रियासत के रहने वाले हैं, जिन को अनुभव है, वहां की सामन्तशाही के जुल्मों का, हम लोगों को अनुभव है और इस वास्तविक स्वराज्य का। हम रियासतों वाले ही इस फल का अनुभव कर सकते हैं। मैं इसके साथ ही यह बात भी कहना चाहता हूं कि हमारे राष्ट्र के शरीर में जो बड़ी बड़ी गांठें सामन्तशाही की थीं वह तो खत्म हो गई हैं। मैं आशा करता हूं कि इन फुनसियों को सरदार पटेल साहब जल्द से जल्द खत्म करेंगे। क्योंकि आज भी वहां भयानक स्थिति है। जहां से मैं आया हूं, राजस्थान से, वहां पर जागीरदारों में दो तरह के वर्ग हैं। एक वर्ग तो यह समझ कर कि अब हमारी जागीरदारी का अन्त होने वाला है वह खेती और दूसरे किसी न किसी उद्योग धंधों में लग गये हैं। जागीरदारों में दूसरा वर्ग वह है जो आंतक फैला कर भारत सरकार को प्रभावित करना चाहता है। भारत सरकार के रियासती सचिवालय को हर तरह से डराने और आतंक फैलाना शुरू कर दिया है, जिससे वह समझते हैं कि अपनी जागीरदारी खत्म नहीं होगी। इस विश्वास के अनुसार उन्होंने डाकेजनी शुरू कर दी है। मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं और आशा करता हूं कि जल्दी से जल्दी इन की शक्ति का अन्त किया जायेगा।

इसके बाद मैं भारत सरकार और अध्यक्ष महोदय का ध्यान हमारे प्रान्त की आय के बारे में आकृष्ट करना चाहता हूं। बीकानेर, जोधपुर और उदयपुर रेलवे जिसका चार्ज इस अप्रैल से लिया जा रहा है और जिसका मुआवज़ा प्रान्त को नहीं दिया जायेगा और जिस की आमदनी का हिस्सा प्रान्त को नहीं मिलेगा। कस्टम हमारे प्रान्त में खत्म हो रहा है जिससे करीब 6 और 7 करोड़ की आदमनी समाप्त हो जायेगी। हमारे प्रान्त का नया निर्माण हो रहा है और उसको हर प्रकार से सहायता दी जानी चाहिए और केन्द्र से हर प्रकार का सहयोग मिलना चाहिये।

इसके बाद मैं आपका थोड़ा सा ध्यान इस बात की ओर भी ले जाना चाहता हूं। वह यह है कि हमारे राजस्थान में जो बड़ी बड़ी राजधानियां मसलन भरतपुर, अलवर, बीकानेर, कोटा, जोधपुर, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और किशनगढ़ थीं, इनके राजा महाराजाओं के साथ बहुत से चारण कार्य, पंडित कारीगर थे और हजारों आदमी काम पर लगे हुए थे। इन हजारों आदमियों के बेकार होने पर वहां का व्यापार ठप हो गया है। भारत सरकार की ओर से जितने भी डिपार्टमेंट दिल्ली की राजधानी से बाहर जा रहे हैं उनको इन राजधानियों में भेजने का अवश्य प्रयत्न किया जाये ताकि वहां की आर्थिक स्थिति खराब न होने पावे।

[श्री मानिक लाल वर्मा]

इसके साथ ही हिन्दुस्तान की जो बड़ी बड़ी योजनायें बन रही हैं उनका अमल इन राजधानियों में किया जाये। क्योंकि प्रान्तीय सरकार की इतनी हैसियत नहीं है कि वह इस तरह की योजनाओं को कार्यान्वित करे जब कि उसकी कस्टम और रेलवे से होने वाली आय को भारत सरकार ने ले लिया है। भारत सरकार द्वारा जो जो ट्रेनिंग केन्द्र खोले जायें और बान्ध का काम शुरू हो वह इन रियासतों में किया जाये।

अब मैं थोड़ा राजस्थानी भाषा के बारे में भी कहना चाहता हूं। जो कि डेढ़ करोड़ की भाषा है। मैं यहां पर एक उदाहरण देता हूं। जिस समय महाराणा प्रताप अकबर के साथ लड़ रहे थे तो उस समय पृथ्वी राज बीकानेर को यह खबर लगी कि प्रताप अब थक कर अकबर से समझौता कर रहा है, पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप को पत्र इस काव्य में लिखा:—

"राखूं मूंछा पाण, कन पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इणदो महली बात इकै।।

इसके जवाब में महाराणा प्रताप ने निम्न प्रकार का उत्तर भेजा:—

"निहचे रखसी अ नम्यो, इ तन सूं इकलिंग।
ऊगे जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग।।"

यह राजस्थानी भाषा का उदाहरण है जो वीरता से भरी हुई है। जिसे सीख कर बंगाल ने वीरता सीखी और बंगाल ने राष्ट्र प्रेम की भावना को बढ़ाया जो देश में फैली। इस राजस्थानी भाषा को हमारे इस विधान में ज़रूर जगह मिलनी चाहिये।

एक आखिरी बात फिर कहनी रह गई है जो मुझे एक चोट की तरह मालूम हो रही है, इस विधान के द्वारा सिरोही का बटवारा हो गया है और उसमें से आबू गुजरात में मिला लिया गया है। इस बारे में आपका थोड़ा ध्यान दिलाना चाहता हूं। यह ठीक है कि आबू को गुजरात में मिला दिया गया है। और यह भारत सरकार के अधिकार की बात है वह कुछ कर सकती है। हम लोग जो कांग्रेस में हैं, जिनके सर झुके हुए हैं कांग्रेस के अनुशासन से हम लोग कुछ बोल नहीं सकते हैं। जिस तरह से आबू को गुजरात में मिलाया गया है उसी तरह से अब बासवाड़ा, डूंगरपुर और उदयपुर तथा दूसरे स्थान का नम्बर आने वाला है। आज कल गुजराती भाई जिस तरह यहां गुजरात का नारा लगा रहे हैं उसका जहर राष्ट्र में फैले बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार की भावना ठीक नहीं है। इससे हमारा राष्ट्र कमजोर हो जायेगा। अगर आबू के सम्बन्ध में न्याय करना हो तो बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र के व्यक्तियों का एक कमीशन नियुक्त किया जाय उसके निर्णय के बाद पता लगेगा कि आबू राजस्थान का है अथवा गुजरात का। और उसके अनुसार भारत सरकार फैसला दे। अब जो कुछ भी आबू के सम्बन्ध में फैसला हो वह न्याय से हो और उसके लिये हम लोग तैयार हैं।

यहां पर एक चर्चा यह भी चल रही है कि राजस्थान और गुजरात एक हो दलीलमत है कि डेढ़ करोड़ का प्रान्त चल नहीं सकता। इस प्रकार सारे देश में होता है तो मैं स्वागत करूंगा। आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से। एक दूसरे का जोड़ बैठाया जा सकता है। डेढ़ करोड़ के बजाय तीन चार करोड़ का प्रान्त बनाया जा सकता है। समझौता द्वारा कोई निर्णय पसन्द हो सकता है अन्यायपूर्वक नहीं।

अध्यक्ष महोदय से मैं प्रार्थना करूंगा कि इस बारे में राजस्थान के साथ न्याय हो।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार: जनरल): मैं खड़ा हो रहा हूं संविधान को सीमित समर्थन देने के लिये और अगर मगर के साथ इसका समर्थन करने के लिये। अगर संविधान में हिन्दी को राष्ट्र भाषा न बनाया गया होता और अस्पृश्यता न उठाई गई होती तो मैं कभी इसका समर्थन न करता। मैं संविधान का उसी हद तक समर्थन करता हूं जहां तक कि यह एकात्मक है। मैं संघ व्यवस्था, प्रान्तीय स्वशासन, संसदीय पद्धति, वयस्क मताधिकार तथा मूलाधिकारों के सर्वथा विरुद्ध हूं।

संविधान पर आदर्शवाद की कत्तई कोई छाप नहीं पड़ने पाई है। यह संविधान ऐसा संविधान है जो देशवासियों की संस्कृति और उनकी प्रकृति के लिए सर्वथा अपरिचित है। यह वकीलों का संविधान है। यह बनाया गया है मध्यमवर्ग और पूंजीपति वर्ग के हितों को उनके आर्थिक एवं राजनैतिक हितों को स्थायित्व देने के लिए। अनुच्छेद 24 के द्वारा प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया गया है। उत्पादन साधनों पर व्यक्ति के स्वामित्व को जब तक खत्म नहीं किया जाता भारत का भविष्य उज्जवल हो नहीं सकता है।

***एक सदस्य:** माननीय सदस्य से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह अपने भाषण को कृपया धीरे-धीरे पढ़ें ताकि हम समझ सकें। वह तूफान मेल की रफ्तार से पढ़ रहे हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं बिल्कुल साफ साफ पढ़ रहा हूं। माननीय अध्यक्ष महोदय जब तक हमें समय नहीं देते हैं मैं धीरे धीरे नहीं बोलूंगा। वह मुझे इसके लिये समय नहीं दे सकते हैं।

अनुच्छेद 24 में जो प्रतिकर का उपबंध रखा गया है वह प्रगति के मार्ग में रुकावट डालने वाला है। वर्तमान भारत-शासन-अधिनियम में समुपयुक्त संशोधन कर देने से ही हमारी आज की ज़रूरतें अच्छी तरह पूरी हो जा सकती थीं। हम अभी अन्तरावर्ती काल से होकर गुज़र रहे हैं। क्रांति हमारे दरवाज़े पर खड़ी है। हम इस समय इस स्थिति में नहीं हैं कि आने वाली शताब्दी की ज़रूरतों का ठीक ठीक अनुमान कर सकें। चारों ओर अवनति दिखाई दे रही है।

उस समय संविधान बनाने की हमें कोई ज़रूरत नहीं थी। हमें इस बात का अभी पता नहीं है कि निकट भविष्य में भारत किस ओर जाना चाहेगा। उसके सामने तीन रास्ते हैं या तो वह उस रास्ते को अपना सकता है जिस पर आज

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

मास्को चल रहा है या उस पथ को अपना सकता है जिस पर इंग्लैंड और अमेरिका चल रहे हैं। उसके सामने एक तीसरा मार्ग भी है और मेरी समझ से तो इसी मार्ग को अपनाना हमारे लिये सर्वोत्तम होगा। यदि भारत की रगों में, उसके खून में कुछ भी जान और गर्मी रह गई है तो वह अपनी संस्कृति और अपनी परम्परागत विचारधारा के प्रति निष्ठ बना रहेगा और दुनिया की राजनीति में एक तृतीय पथ के नेता के रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखेगा।

भारत और रूस के बीच मित्र भाव स्थापित करने में यह संविधान रुकावट डालता है। अनुच्छेद 24 को रख कर हमने पूंजीपतियों को सहारा दिया है और इससे पूंजीवादी व्यवस्था को प्राणदान मिल गया है। पूंजीवादी राज्यों और सोवियत रूस के बीच कभी कोई सच्चा सहयोग हो नहीं सकता है।

यदि भारतवर्ष को अपनी प्राचीन परम्परा के प्रति निष्ठावान बना रहना है तो उसे संविधान के बुनियादी सिद्धान्तों को छोड़ना ही होगा। प्राचीन भारत में धर्म ही सदा प्रशासन का आधार रहा है। यदि ज्ञानशून्य और भूखी जनता की इच्छा को ही यहां प्रशासन का आधार बनाया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि भारतीय समाज की सभी ऊंची और अच्छी बातों का सर्वथा लोप हो जायेगा। साधारण जनता अपनी कोई मरज़ी नहीं रखती है। वह तो तात्कालिक आवेश के वशीभूत हो चलती है और परिस्थितियों और परम्पराओं का दास होती है। दुनिया के किसी भाग में भी जनता की मरज़ी को आधुनिक प्रशासन का आधार मानकर नहीं चला जा सकता है। खासकर के भारत वर्ष में तो ऐसा किया ही नहीं जा सकता है क्योंकि यहां जनता में अनेक कमियां हैं। धर्म की जो कल्पना है उसमें सभी ऊंची और अच्छी बातें आ जाती हैं जो संसदात्मक व्यवस्था में पाई जा सकती हैं। जो राज्य धर्म पर आधृत होगा वह आर्थिक वैषम्य को तथा सामाजिक अन्याय को कभी बरदाश्त नहीं कर सकता है। वह इस सिद्धान्त को भी नहीं स्वीकार कर सकता है कि जनता की मरज़ी ही प्रशासन का आधार है। जनता की इच्छा सदा मलिन, पाशविक और अविकसित होती है। लोकतंत्र की बुनियादी बातों से धर्म का कभी असामन्जस्य नहीं हो सकता है। लोकतंत्र का सार यही है कि लोगों में यह भावना हो कि जनमत के अनुसार सारा काम चले। लोकतंत्र का सार इसी बात में है कि जनता की वास्तविक इच्छा का पूरा ध्यान रखा जाये और प्रकट रूप से जो मत उसने व्यक्त किया हो उसे प्रधानता न दी जाये। उसका प्रकट-मत आवेश और पक्षपात से ओतप्रोत रहता है। उसमें प्रतिक्षण परिवर्तन हुआ करता है। वह आज कुछ और कल कुछ हो जायेगा। जनता प्रकट रूप से जो मत व्यक्त करती हैं उसमें मानव जीवन की वह सभी बातें रहती हैं जो अधम और मूर्खतापूर्ण हैं। उसे प्रशासन का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इसके प्रतिकूल जनता के वास्तविक मत को बड़े-बड़े स्थानीय विचारकों ने पवित्र माना है। उसको प्रधानता देना संसार के बड़े बड़े विचारकों के उपदेशों से तथा नीति से सर्वथा संगत है।

संसदात्मक पद्धति के विरुद्ध मैं इस लिये हूं कि आज के युग में इस पद्धति का कोई भविष्य नहीं रह गया है। आज के उद्योग प्रधान समाज की जो जटिल एवं गहन समस्यायें हैं उन्हें जनसाधारण नहीं समझ सकता है। यह विशेषज्ञों का युग है।

यह संविधान भारत के लिये काफी उपयोगी हो सकता है अगर वह ऐंग्लो-अमरीकी गिरोह में शामिल हो जाये। पर मेरा यह मत है कि अगर भारत इंग्लैंड और अमरीका के दल में शामिल होने का फैसला करता है तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी।

इस देश में भूखों मरने वाला जो विशाल जनसमुदाय है वह ऐसे किसी प्रशासन को बरदाश्त नहीं कर सकता है जो ऐंग्लो-अमरीकी शक्तियों में शामिल होना पसन्द करेगा। वाशिंगटन और मास्को के बीच मुझे एक को चुनना हो तो मैं तो मास्को को ही चुनूंगा न कि वाशिंगटन को। स्वातंत्र्य से अधिक प्रिय है मुझे साम्य।

विकेन्द्रीकरण का जो सिद्धान्त चला है उसके पीछे मूल बात यही है कि इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों को राज्य पर सर्वथा अविश्वास था। बाकुनिन एवं प्रिंस क्रोपाटकिन का यह मत था कि राज्य एक बुरी चीज़ है, वह हिंसा पर आधृत होता है इसलिये मानव जीवन में जो कुछ भी ऊंची और अच्छी बातें हैं उनके प्रति राज्य का शत्रु भाव रहता है। उनका मत है कि सर्वोत्तम राज्य वही राज्य है जहां जनता पर कम से कम शासन होता हो। मैं माननीय सदस्यों से यह पूछना चाहता हूं कि क्या आप इस मत के आधार पर अपने राज्य का निर्माण करने के लिए तैयार हैं?

अराजकतावाद व्यक्ति को महत्व देता है न कि राज्य को। इसके अनुसार सारी शक्तियां व्यक्ति में निहित रहनी चाहिये। जब हम शक्तियों के विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं तो उसमें हमारा मुख्य प्रयोजन यही रहता है कि सारी शक्तियों को केन्द्र से छीन कर उन्हें प्रान्तीय शासकों को सौंप दिया जाये। मेरा यह मत है कि अगर केन्द्र के अधिकारों को और छीना जाता है तो भारत सरकार की हैसियत वही रह जायेगी जो राष्ट्र संघ (League of Nations) को प्राप्त थी। जमाने की जो सामाजिक आवश्यकतायें हैं। उन्हें अगर आप पूरा करना चाहते हैं तो केन्द्र के हाथ में और अधिक अधिकार देने होंगे। विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त एकात्मक राज्य के सिद्धान्त से सर्वथा विपरीत है। आज जरूरत है एकात्मक राज्य की। यदि प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता रूपी विषवृक्ष का हमें विनाश करना है तो विकेन्द्रीकरण की बात हमें सोचनी भी नहीं चाहिये।

पूज्य महात्मा जी विकेन्द्रीकरण के बड़े समर्थक थे। विकेन्द्रीकरण का उनका जो सिद्धान्त था वह आधृत था राम-राज्य की कल्पना पर।

(इस स्थल पर अध्यक्ष ने घंटी बजाई)

विकेन्द्रीकरण तो केवल एक ऐसे समाज में ही किया जा सकता है जो सम्यक् रूपेण अहिंसात्मक हो और जिस में लोग हिंसा की प्रवृत्ति का सर्वथा दमन कर चुके हों। किन्तु जब तक संसार में युद्धोद्यत राष्ट्र रहेंगे हम विकेन्द्रीकरण की बात भी नहीं सोच सकते हैं। जब तक आर्थिक वैषम्य बना रहेगा विकेन्द्रीकरण का स्वप्न कभी पूरा नहीं हो सकता है। विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को प्रयोग में लाते ही राज्य समाप्त हो जायेगा। जब तक संसार में सैनिकवाद रहेगा शक्तियों का विकेन्द्रीकरण असम्भव है।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

(यहां अध्यक्ष ने फिर घंटी बजाई)

यदि अनुमति हो श्रीमान् तो मैं एक या दो मिनट में अपनी बात खत्म कर दूं।

***अध्यक्षः** नहीं, अच्छा होगा कि आप अपनी वक्तृता हमें दीजिए।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** तो इसे यहां पढ़ा हुआ मान लिया जायेगा श्रीमान्?

***अध्यक्षः** नहीं। आप अपनी वक्तृता यहां लाइये।

***श्री मुहम्मद ताहिर** (बिहारः मुस्लिम): जनाब सदर, कब्ल इसके कि मैं कुछ अर्ज करूं जनाब को तहे दिल से मुबारकबाद देता हूं कि आज़ाद हिन्दुस्तान का दस्तूर जनाब की सदारत में तकमील पाया और क्यों न होता यह एक तड़प थी, दिल की आवाज़ थी जो बिहार की ज़मीन से उठी और बिहार ही ने उसको मुकम्मल कर दिया।

अब जहां तक दस्तूर का ताल्लुक है मैं अपने नाचीज़ ख्यालात का इज़हार करना चाहता हूं और मैं कोशिश करूंगा कि इसके दोनों पहलू अच्छाई और बुराई को मुख्तसर अलफ़ाज़ में मैंने जो समझा है और मुझ को यह दस्तूर बतला रहा है आपके सामने पेश कर दूं। अच्छाई इसलिये पेश करूंगा कि दुनिया वाले इससे सबक हासिल करेंगे और बुराई इसलिये बयान करूंगा ताकि आइन्दा कांग्रेस या कोई जमात बरसरे अख्तयार आई जो इन बुराइयों को बुराई महसूस करे तो मुमकिन है वह इसका इलाज भी करने की कोशिश करे।

इसके अच्छाई का पहलू ऐडमिनिस्ट्रेशन है। हमारा दस्तूर एक बेहतरीन ऐडमिनिस्ट्रेशन को दुनिया के सामने पेश करता है और मुझे उम्मीद है कि इस पर कराबन्द हो कर अगर हमारे मुल्क के कारकुनान ईमानदारी के साथ अमल करें तो यकीन कामिल है कि थोड़े दिनों में हमारा मुल्क कहीं से कहीं पहुंच जायेगा और दुनियां हमारे मुल्क पर नाज़ करेगी।

जहां तक इसके बुराई का सवाल है मुझे अफसोस है कि हमारे दोस्तों को मुमकिन है बुरा मालूम हो तो मैं माफी चाहता हूं और मुझे उम्मीद है कि वह मुझ को सुनने की कोशिश फरमायेंगे। इस की बुराई इसकी पालिसी में है। हमारा दस्तूर दुनिया के सामने एक बदतरीन पालिसी का सुबूत पेश करता है इस लिये कि हमारे दस्तूर को एक आइना होना चाहिये था कि अगर दुनिया का कोई आदमी उसे उठाकर देखता तो उसको इस मुल्क की सही और साफ शक्ल नज़र आती। मगर वह देख सकता है तो सिर्फ यह कि इस मुल्क में क्रिश्चियन-ऐंग्लो-इंडियन-ट्राइबल्स-हिन्दू शिड्यूल्ड कास्ट्स और हिन्दू वगैरह वगैरह तो बसते हैं और अगर इससे कोई पूछे कि भई इस मुल्क में सिख बसते हैं तो वह जवाब देगा कि नहीं। अगर पूछे मुसलमान बसते हैं तो जवाब देगा कि नहीं। यह महज़ दस्तूर की तंग नज़र पालिसी की वजह से है। मुसलमान जो एक मुस्तकिल अकलियत की हैसियत रखता है इसके आम स्यासी और कल्चरल हुकूक को पामाल कर दिया गया है। गोया मुसलमानों का बहैसियत मुसलमान के स्यासत में कोई वजूद दस्तूर में बाकी नहीं रहा। जो लोग यह कहा करते थे कि हिन्दुस्तान की अकसरियत

मुसलमान की स्यासत, कल्चर, जबान वगैरह को बरबाद कर देगी उसका मुकम्मल सुबूत इस दस्तूर में मौजूद है कि मुसलमानों की न स्यासत रही न कल्चर रहा और न जबान ही रही। हालांकि दीगर अकलियतों के लिये दस्तूर में सब चीज़ें मौजूद हैं। इसी तरह सिखों की स्यासी हुकूक का भी खात्मा किया गया। अब दुनिया इसका फैसला करेगी कि आज़ाद हिन्दुस्तान का यही फर्ज़ था जो उसने अपने दस्तूर में अदा किया। बहर कैफ दस्तूर जिस शक्ल में है मुझे शिकायत नहीं, जो कुछ बुराई थी उसको मैंने बयान कर दिया। अगर मुसलमानों के साथ दस्तूर में बेइन्साफी की गई है या इनको सज़ा दी गई तो इस से मुसलमानों का पोज़ीशन और अच्छा हो जाता है इसलिये कि इस कमी की वजह से हिन्दुस्तान की हुकूमत और अवाम की जिम्मेदारी मुसलमानों की तरफ और ज़्यादा हो जाती है। अगर ईमानदारी के साथ इस ज़िम्मेदारी को महसूस किया गया तो मुसलमान कभी घाटे में नहीं रहेगा। इस सिलसिले में एक बात जनाब की खिदमत में अर्ज करूंगा वह यह कि 26 जनवरी के बाद हिन्दुस्तान का मुसलमान एक तहरीक में हरकत देगा और वह बहुत हल्का होगा और उसका वफद आज़ाद हिन्दुस्तान के प्रेसीडेंट के पास हाजिर होगा और यह आखिरी इम्तहान होगा कि वाकई हिन्दुस्तान में मुसलमानों को कुछ मराआत इनायत किये जा सकते हैं या नहीं।

आखिर मैं एक बात अर्ज़ करना चाहता हूं कि यह निहायत शर्म की बात है कि हमारा दस्तूर हमारे मुल्क के नाम तऐयुन न कर सका। जनाब डॉक्टर अम्बेडकर की ज़हानत का सुबूत है कि जिन्होंने एक खिचड़ीनुमा नाम तजवीज़ फरमा कर मंजूर करा दिया। भला डॉक्टर साहब से कोई पूछे कि जनाब का दौलत खाना किस मुल्क में है तो इसका जवाब वह फखरियह दे सकते थे कि मैं भारत का रहने वाला हूं या यूं कहते कि इंडिया या हिन्दुस्तान का रहने वाला हूं। मगर अब तो जनाब डॉक्टर साहब को जवाब देना होगा कि मैं इंडिया दैट इज़ भारत का रहने वाला हूं। जब जनाब वाला खुद ही मुलाहज़ा फरमायें कि कितना बेहतर और खुशनुमा जवाब हुआ। आखिर में जनाब और मैम्बरान से अर्ज़ करूंगा कि अगर मेरे इज़हार ख्यालात से कोई तकलीफ पहुंची हो तो मुझे माफ फरमायें।

***श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी:** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, यद्यपि यह पुनरुक्ति की ही बात होगी पर अपने पूर्ववक्ता साथियों का अनुगमन करते हुए मैं भी यहां शुरू में मसौदा समिति को, आपको तथा अन्य लोगों को, जिन्होंने संविधान निर्माण के काम में हर समय यहां इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक भाग लिया है, धन्यवाद प्रदान करती हूं। इस सम्बन्ध में मैं कोई ऐसा विभेद बरतना नहीं चाहती हूं जिससे किसी को ईर्ष्या हो और मुझ पर दोषारोप किया जाये फिर भी पिछली पंक्तियों में बैठने वाले सदस्यों की ओर से मैं आपको विशेष रूप से धन्यवाद दूंगी क्योंकि जब भी हमें यहां किसी अनुच्छेद या खंड के सम्बन्ध में कोई गलत या सही शक हुआ है तो आपने हमेशा हमारे लिये मसौदा समिति पर अपना प्रभाव डाल कर उसे स्पष्ट करा दिया है।

संविधान देश के लिए एक बहत ही महत्वपूर्ण और मूल्यवान लेख्य होता है क्योंकि उससे हमें इस बात का आभास मिलता है कि देशवासी किस तरह की शासन व्यवस्था रखना चाहते हैं, किस तरह का जीवन चाहते हैं, किस तरह से

[श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी]

अपनी शासन व्यवस्था चलाना चाहते हैं और भविष्य में किन आकांक्षाओं की वह पूर्ति करना चाहते हैं। वर्तमान संविधान पर विचार करते समय बेवश हमारा ध्यान अतीत की ओर चला जाता है और वह सारी मंजिलें हमें याद आती हैं जिनसे हो कर हम गुजर चुके हैं, हमें अपनी राजनैतिक परीधनता का वह निकटवर्ती अतीत याद आता है जब हमसे यह कहा जाता था कि तुम लोग एक राष्ट्र ही कहां हो? तुम लोग तो परस्पर विरोधी अनेक दलों में बंटे हो, तुम्हारे यहां जो स्थिति है उसमें लोकतंत्रीय व्यवस्था उपयुक्त नहीं हो सकती है—इत्यादि इत्यादि। बड़े बड़े सहानुभूतिपूर्ण और दिखावटी तौर पर उदार शब्दों द्वारा हमें यह कहा जाता था कि शासन का लक्ष्य यही है कि देश वासियों को प्रशासन में शामिल होने का अधिकाधिक अवसर दिया ताकि धीरे धीरे यहां उत्तरदायित्व स्वराज्य की व्यवस्था स्थपित कर दी जाये। एक समय ऐसा था कि जब भी शासक हमें कोई अधिकार देते थे तो तत्सम्बन्धी लेख्य में इन शब्दों का प्रयोग करते थे:—"हमारी प्रजा का चाहे वह किसी जाति, धर्म या रंग की हो सरकारी नौकरियों में बिना किसी पक्षपात के स्थान दिया जायेगा।" या "यहां के किसी 'नेटिव' के लिए अब भविष्य में जन्म, वंश या रंग के आधार पर नौकरी में प्रविष्ट होने पर कोई रुकावट न लागू ही जायेगी" "हम देशी रजवाड़ों के अधिकारों का, उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान का हम आदर करेंगे।" इत्यादि, इत्यादि। इन पदसंहतियों से यह पता चल जाता है कि देश के भविष्य के बारे में हमारे भाग्य विधाताओं की धारणा क्या थी। हम लोगों ने अधीर होकर इन बातों से मुह मोड़ लिया और स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ग्रहण की जो इतिहास में सदा अंकित रहेगी। हमने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की:—"हमारा यह विश्वास है कि भारतवासियों को स्वाधीनता और स्वतंत्रता पाने का जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त है।" इस प्रतिज्ञा के साथ हमने एक नये पथ का अवलम्बन किया और देश की स्वतंत्रता के लिये जी जान से काम किया। इसी का फल है कि आज इस संविधान में हमें 'समता, स्वातंत्र्य और बन्धुत्व' शब्द मिल रहे हैं। ये शब्द इतिहास प्रसिद्ध शब्द हैं और दुनिया के अन्य भागों में भी इनका नारा उठाया गया है और हमेशा इनका नारा उठता रहेगा जब तक कि संसार में समता, बन्धुत्व और स्वतंत्रता स्थापित न हो जायेंगे। उन दिनों के अपने माप-दण्ड से जब हम वर्तमान को आंकते हैं तो यह मालूम पड़ता है कि भले ही हम अपने लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति तक न पहुंच पाये हों पर हमने प्रगति अवश्य की है। और जहां तक कि आम समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं का सम्बन्ध है, संविधान में उसकी पूर्ति की व्यवस्था अवश्य कर दी गई है। अब हमसे कोई यह नहीं कह सकता कि हमारा देश एक राष्ट्र नहीं है और हम अभी स्वराज्य को नहीं चला सकते हैं।

यहां सभा में गत कई दिनों से जो बहस चल रही है उससे, मैं ऐसा अनुभव करती हूं कि यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि संविधान का स्वागत सब लोगों ने एक भाव से नहीं किया है। यह संविधान ही ऐसा है कि इस पर लोगों की भिन्न भिन्न रायें होंगी। फिर भी संविधान में खास बुनियादी बात यह मानी गई है कि यहां की शासन व्यवस्था लोकतंत्रीय होगी और सभी देशवासियों की राष्ट्रीयता एक होगी। अपने संविधान में यह कहा गया है कि चाहे हम देश के किसी भी भाग में बसते हों पर हम सभी एक ही मातृभूमि के सन्तान हैं,

देश की महत्ता के लिए, हम चाहे जहां भी होंगे, मिल कर काम करेंगे, जाति, धर्म, रंग और प्रान्त के आधार पर कोई भेद नहीं बरता जायेगा। विघटन की प्रवृत्तियों को हम यहां अनेकता न लाने देंगे तथा हर वयस्क नागरिक जो अभ्यर्थी के लिये रखी गई अल्पतम अर्हताओं को पूरा करता है, वह देश के परमोच्च पद पाने की अभिलाषा कर सकता है। इस लिये कम से कम हमने एक मंजिल तो पूरी ही कर ली है और ऐसी स्थिति में पहुंच गये हैं जहां हम यह महसूस नहीं करते हैं देश के विशिष्टतम व्यक्ति को अब किसी विदेशी शासक के सामने सर झुकाने की नौबत आयेगी।

फिर भी श्रीमान, मैं यह जरूर समझती हूं कि चूंकि स्थिति में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है इसलिये संविधान के इन उपबंधों द्वारा समाज की अल्पतम आवश्यकताओं की ही पूर्ति हो पाती है। स्वातंत्र्य आन्दोलन के जमाने में हम खुद यह कहते थे कि हम जो लड़ाई लड़ रहे हैं वह पद से प्राप्त होने वाली तुच्छ सुविधाओं के लिए नहीं बल्कि इसलिये कि राजनीतिक शक्ति हमारे हाथ में आ जाये ताकि सारी सामाजिक व्यवस्था को बदल कर उसका इस तरह से पुनर्निमार्ण करें कि जनता की यह जानमारू गरीबी दूर हो जाये, उसका जीवन स्तर समुन्नत हो जाये और हम देश में एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकें जहां सभी समान हों। इस लक्ष्य की कसौटी पर संविधान को कसने पर मैं यह महसूस करती हूं कि संविधान में इसकी व्यवस्था जरूर कर दी गई है कि स्थिति में आवश्यक परिवर्तन किया जा सके। निदेशक सिद्धान्तों में ऐसे उपबंध रखे गये हैं जिनके द्वारा देश की स्थिति में अपेक्षित परिवर्तन किया जा सकता है। सारहीन लोकतंत्र की व्यवस्था कर देने से ही अर्थात् मतदान के अधिकार की व्यवस्था कर देने से, सरकार बनाने के अधिकार की और उसे बदलने के अधिकार की व्यवस्था करके ही हम सन्तुष्ट नहीं हो गये हैं। ये अधिकार महत्वपूर्ण अवश्य हैं पर मैं यह समझती हूं कि जिन मूलाधिकारों को हमने संविधान में रखा है, लोकतंत्रीय व्यवस्था को क्रियान्वित करने के लिये उनका संविधान में होना बहुत जरूरी है। अगर हम एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते हैं जो हमारे आज के विकासशील समाज की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता हो तो हमें वह साधन जनता के हाथ में देने होंगे जिनके द्वारा शासन की स्थापना की जा सकती हो। इसके लिये यह जरूरी है कि जनता को संघ बनाने की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार प्राप्त रहे जिसका प्रयोग करके वह शासन में परिवर्तन कर सकें। मैं यह जरूर महसूस करती हूं, श्रीमान, कि इन मूलाधिकारों पर प्रतिबंध लगाने वाले जो खंड रखे गये हैं उनको संविधान में नहीं रखना चाहिये था ताकि शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा जनता देश के शासन को अपने हितार्थ बदल सकती।

राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में हमने यह कहा है कि यद्यपि न्यायालय में अपील करके इन सिद्धान्तों पर अमल नहीं कराया जा सकता है पर देश के शासन के लिये इनका भी वही महत्व है जो मूलाधिकारों का है। फिर अनुच्छेद 38 और 39 की देश की आर्थिक नीति पर इस तरह अमल किया जायेगा कि जिससे सारे देशवासियों का कल्याण हो। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 39 में जो शब्द रखे गये हैं वह यह हैं:—

"समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो, तथा आर्थिक व्यवस्था

[श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी]

इस प्रकार चले कि जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिये अहितकारी केन्द्रण न हो।"

यह सच है कि न्यायालय द्वारा शासन से हम इन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर अमल नहीं करा सकते हैं फिर भी देश के शासन के लिये ये सिद्धान्त मूलाधिकारों के समान ही महत्व रखते हैं ओर भावी शासनों को इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना होगा। निजी तौर पर मैं यह महसूस करती हूं कि इन खंडों को संविधान में रखकर हमने सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रबंध अवश्य कर दिया है। हमें स्थापना करनी है एक वास्तविक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य की— ऐसे गणराज्य की नहीं जिसमें मत देने का और कानून बनाने का थोथा अधिकार ही जनता को प्राप्त हो, जो केवल नाम के लिए लोकतंत्रात्मक बना रहता हो और स्वैरतंत्र अर्थात् हस्तक्षेप न करने की नीति पर चलता हो बल्कि ऐसे गणराज्य की जो इस उपयोगी सिद्धान्त पर चलता हो कि सर्वोत्तम शासन वही है जो कम से कम शासन करता हो, जो इस सिद्धान्त पर चलता हो कि नागरिकों को सक्रिय होने का प्रोत्साहन देना शासन का कर्तव्य है। हम ऐसे लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना कर सकेंगे या नहीं यह निर्भर करता है हम पर। जिन दो अनुच्छेदों का ऊपर मैंने उद्धरण दिया है वह संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं। अगर हम यह चाहते हैं कि जनता शान्तिपूर्वक कहीं समवेत हो सके और उसको हिंसा का सहारा न लेना पड़े तो उन्हें समवेत होने और सभा करने का पूरा अधिकार देना होगा।

मेरा यह मत अवश्य है कि सम्मेलन का और संघ बनाने का जो अधिकार दिया गया है, उन पर किसी भी परन्तुक द्वारा किसी तरह का कोई प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिये था। इस सम्बन्ध में मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हुई है अमेरिकन संविधान से जहां मूलाधिकारों को स्पष्ट शब्दों में रखा गया है और प्रतिबंध की बात केवल यह कही गई है कि ये अधिकार संसद निर्मित विधियों के अधीन प्रयुक्त होंगे। मैं इस सनकी सिद्धान्त को नहीं मानती कि सभी अधिकार सर्वथा परमाधिकार होते हैं। अधिकारों के लिये स्थिति विशेष अपेक्षित होती है और उस स्थिति विशेष में ही कोई अधिकार को अमल में ला सकता है। फिर भी जब अधिकारों को संविधान में रखना हो तो मेरा ख्याल यही है कि वहां यह प्रतिबंध न रख देना चाहिये कि अमुक सूरत में ही ये अधिकार प्रयोक्तव्य हो सकते हैं। मूलाधिकारों के बारे में अगर संविधान में प्रतिबंध मूलक उपबंध न रखे गये होते तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्थिति में एक बड़ा अन्तर यह आ जाता है कि जरूरत न रहने पर मूलाधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित करने वाली विधियों का निरसन कर दिया जाता। किन्तु संविधान में इनको लिपिबद्ध कर देने से यह बात नहीं हो सकती है। अभी लोग यह शिकायत करते हैं कि यह एक वृहत् संविधान है और इसमें बहुत सी बातें लिपिबद्ध कर दी गई हैं। जितनी ही बातें संविधान में लिपिबद्ध की जायेंगी संविधान उतना ही कम लचीला हो जायेगा और उस की कठोरता बढ़ जायेगी। इन सब बातों को देखते हुए मैं यही महसूस करती हूं कि मूलाधिकारों में स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में जो प्रतिबंध मूलक खण्ड रखे गये हैं उनका न रखना ही अच्छा होता।

अनुच्छेद 21 दैहिक स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति देता है और अनुच्छेद 28 निवारक निरोध का उपबंध करता है। अनुच्छेद 21 में व्यक्ति के सुरक्षा की उसके मकान और वैयक्तिक सम्पत्ति की तलाशी न लिये जाने की और जब्त न किये जाने की व्यवस्था भी अगर रखी गई होती तो मेरी समझ से ज्यादा अच्छा होता क्योंकि हमारा राजनीतिक इतिहास बतलाता है कि सरकार को तलाशी और निवारक निरोध का जो अधिकार प्राप्त रहा है उसने जनता पर गज़ब ढाह दिया है और हम कभी यह न चाहेंगे कि उन अधिकारों के कारण भविष्य में यहां के किसी उपयोगी राजनीतिक आन्दोलन की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो।

राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों वाले अध्याय में अनुच्छेद 39 में हमने यह अवश्य कहा है कि अपनी सामाजिक व्यवस्था में हम इस प्रकार परिवर्तन कर सकते हैं जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो, पर उसमें यह नहीं कहा गया है कि आवश्यकता होने पर सामूहिक हित के लिए राज्य किसी उद्योग धंधे को अपने अधिकार में ले सकता है। कांग्रेस के कराची वाले अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किया गया था उसमें पहली बार इन मूलाधिकारों की बात कही गई थी और उसमें यह भी कहा गया था कि देश के मुख्य मुख्य उद्योग धंधे राज्य के नियंत्रणाधीन रहेंगे। निदेशक सिद्धान्तों में इस बात को ही हमें स्थान देना चाहिये था। यदि विदेशी प्रभाव को रोकने के लिए शासन को अधिकार देना आप आवश्यक समझते हैं तो मैं यह जरूर कहूंगी कि देश के प्रमुख उद्योगों और खनिजों को राज्य को अपने हाथ में ले लेना चाहिये था और प्रतिकर का जो उपबंध रखा गया है इससे राज्य को इस सम्बन्ध में विमुक्त कर देना चाहिये था।

दूसरी बात मैं नमक के बारे में कहना चाहती हूं और मेरा ख्याल है कि मैं जो कुछ कहने जा रही हूं वही राय इस बारे में यहां अधिकांश मित्रों की है। इस देश में नमक के पीछे एक बड़ा इतिहास है जो हमारे लिये उतना ही महत्व रखता है जितना अमेरिका वालों के लिए बोस्टन चाय का इतिहास। यह तो मैं समझती हूं कि शासन नमक पर कर लगाने का कोई इरादा नहीं रखता है पर मैं ऐसा महसूस करती हूं कि स्वातंत्र्योपलक्ष्य में देशवासियों को नमक कर से सर्वथा विमुक्त कर देना चाहिये था और संविधान में यह उपबंध रख देना चाहिये था कि भारत में बने नमक पर कोई कर नहीं लगेगा। कराची वाले कांग्रेस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुआ था उसमें नमक को करमुक्त रखने की बात भी कही गई है।

प्रस्तावना में "पूर्ण स्वराज्य" शब्दों का न होना मुझे बहुत खटक रहा है। ये शब्द हम लोगों को बहुत प्रिय रहे हैं इसलिये इनको प्रस्तावना में स्थान मिलना ही चाहिये था। मैं यह चाहती हूं कि मसौदा समिति ने प्रस्तावना में ये शब्द रखे होते:—

"हम भारत के लोग पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर अब राष्ट्र को एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाते हैं"

मेरी समझ से इन शब्दों का रखना एक अच्छी बात होती।

एक दूसरी बात मैं कहना चाहती हूं सेवाओं के सम्बन्ध में। इस विषय पर और लोगों ने भी बहुत कुछ कहा है। निजी तौर पर मैं यही समझती हूं कि

[श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी]

संविधान में चन्द ऊंची नौकरियों के स्थायित्व का उपबंध रखकर के विभेद नहीं बरतना चाहिये था। नौकरियों में स्थायित्व का होना उपयोगी जरूर है पर इसके लिए संविधान में उपबंध रखने की मेरी समझ से ज़रूरत नहीं थी। 'सर्विस मैनुअल' नामक पुस्तिका में भरती और बरखास्तगी के बारे में ये नियम दिये हुए हैं और इन्हीं नियमों के अधीन सरकारी नौकर नियंत्रित रहते हैं। अगर ये नियम देश के बहुसंख्यक सरकारी नौकरियों के लिए ठीक हैं तो फिर चन्द ऊंची नौकरियों के लिए भी ये पर्याप्त समझे जाने चाहियें।

आपकी अनुमति हो श्रीमान, तो, मैं एक और बात भी कह देना चाहता हूं। इस संविधान में स्त्रियों का भी उल्लेख आया है। मैं यहां अपने सार्थियों से और खास करके रोहिणी बाबू से यह कहना चाहूंगी कि उन्हें इस मसले पर गम्भीरता के साथ ही विचार करना चाहिये। हमें यह समझना चाहिये कि भारत के शेष नागरिकों की तरह यहां का स्त्री समुदाय भी अब जीवन के एक नवद्वार पर खड़ा है। पर्दा के जाल से निकल कर स्त्री समाज अब एक नये जीवन में आ गया है जहां उसके व्यक्तित्व को विकास मिलेगा। उसे अपने घर में और देश में एक नया स्थान मिल रहा है जो काफी दायित्वपूर्ण और कठिन है। गृहस्थी के कामों में उसे सहधर्मिणी बताया गया है और गृहस्थी-निर्माण के काम में उसकी जो देन है वह अब राष्ट्रीय महत्व के कार्यों तक जानी चाहिये। राष्ट्रीय कार्यों में भी उसे वही महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए जो गृहस्थी निर्माण के काम में उसे प्राप्त है। पुरुषों के बराबर की वह साझीदार है और उनकी सहायक साथी है। राष्ट्र निर्माण के लिए उन्हें भी बहुत कुछ करना है। अभी स्त्रियों को यह स्थिति नहीं प्राप्त हो पाई है कि पुरुषों के समान राष्ट्र निर्माण के काम में वह भी योगदान दें। इसलिये माननीय मित्र भी रोहिणी कुमार चौधरी तथा अन्य उपस्थित मित्रों से यह अनुरोध करूंगी कि वह इस समस्या पर यथाशक्य गम्भीरता के साथ विचार करें और उसके समाधान में भरसक सहायता और सहयोग दें। स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये जो संग्राम चला है उसमें स्त्रियां पीछे नहीं रही हैं और मुझे विश्वास है कि नवप्राप्त स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने में भी वह पीछे न रहेंगी।

इन शब्दों के साथ मैं अपनी वक्तृता समाप्त करती हूं और उपसंहार में उन शब्दों को दुहराना चाहती हूं जिन्हें 14 अगस्त को प्रस्ताव उपस्थित करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भाषण में प्रयुक्त किया था। उन्होंने कहा था कि युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष की आकांक्षा यही थी कि हर दुखिया के आंसू को हम पोंछ दें। हो सकता है कि हममें से सबको इतना सामर्थ्य न प्राप्त हो कि युग के महा मानव की इस आकांक्षा को पूरा कर सकें पर जब तक जनता की गरीबी नहीं दूर हो जाती है और उनकी तकलीफें बनी रहती हैं तब तक देश की सेवा हम करते रहेंगे यही प्रतिज्ञा हमें करनी चाहिये। आशा करती हूं जो थोड़ी मुद्दत हमें इस काम के लिये मिली है उसमें हम सभी साथी और दोस्त देश की महत्ता के लिए कंधे से कंधा मिलाकर खूब मेहनत से काम करेंगे।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि अपने इस संविधान की सबसे बड़ी खूबी यह है कि भारत सीमा के

अन्तर्गत अवस्थित सभी देशी राज्यों पर भी यह उसी तरह लागू होगा जिस तरह कि प्रान्त कहे जाने वाले राज्यों पर। यह संविधान की सर्वोत्कृष्ट सफलता है जो भारतीय इतिहास में एक अपूर्व बात है और इसके लिये समस्त राष्ट्र को सरदार पटेल का ऋणी होना चाहिये। पर साथ ही हमें उन लोगों को भी न भूलना चाहिये जिनकी भी इस साफल्य प्राप्ति में बड़ी देन रही है। यहां मेरा संकेत है देशी राज्यों की जनता की ओर। यह सभा शेख अब्दुल्ला के त्यागों से और उनकी सेवाओं से अच्छी तरह परिचित है पर अन्य देशी राज्यों में शेख अब्दुल्ला सरीखे अनेक त्यागी व्यक्ति रहे हैं कि जिनकी इस सभा के अनेक सदस्यों को शायद कोई जानकारी नहीं है। ऐसे त्यागी व्यक्ति, ट्रावनकोर, मैसूर, बड़ौदा, कोचीन, सौराष्ट्र, मध्यभारत की रियासतों में रहे हैं। राजस्थान में तथा उत्तर में सिख राज्यों में और पूर्व में उड़ीसा के राज्यों तक में भी ऐसे त्यागी व्यक्ति रहे हैं। इन लोगों ने अपने अपने राज्यों में प्रजा मण्डल का खूब सुदृढ़ संगठन काम कर रखा था और उत्तरदायी शासन की इनकी मांग को वहां के शासक ब्रिटिश शक्ति की सहायता पाकर भी दबा न सके। अपनी उदारता दिखाने के लिये भले ही हम यह कहें कि भारत सरकार ने जब इन नरेशों के सामने प्रसंविदा या प्रवेश-लिखत रखे तो इन्होंने आत्म-त्याग की भावना से उसे स्वीकार कर लिया। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह सत्य नहीं है। वहां की जनता ने उत्तरदायी शासन पाने के लिए जो घोर प्रयास किया था उसे वहां के नरेश अच्छी तरह समझते थे और यह अच्छी तरह जानते थे कि प्रसंविदा या प्रवेश-लिखत को मानने के सिवा उनके पास और कोई चारा नहीं है। वह इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि अगर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया तो जनता उनको और भी बदतर हालत में रखेगी। इस लिये स्थिति से विवश होकर ही उन्होंने प्रसंविदा या प्रवेश-लिखत को स्वीकार किया था। इसलिए, मुझे विश्वास है कि देशी राज्यों की जनता के त्याग और सेवा को स्वीकार करने में, देश के एकीकरण के लिये राज्यों में संग्राम चलाकर जो कष्ट और कठिनाइयां उन्होंने झेली हैं उसे मानने में सभा कभी कोई अनिच्छा न दिखलायेगी।

जहां तक इस संविधान का सम्बन्ध है, मैं यह अवश्य कहूंगा कि प्रत्येक देशवासी को बड़ी खुशी होती अगर राजप्रमुख को राज्यपाल और राष्ट्रपति के स्तर पर न रखा होता। इस प्रसंग में मुझे संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण श्री पाणिनि पर किया गया एक कटाक्ष याद आ गया है। उन्होंने एक सूत्र में कहा है:—

श्वा युवाय द्योन:

उन्होंने एक समान नियम लागू किया है, कुत्ता, नवयुवक और भगवान इन्द्र, इन तीनों के लिए। इस संविधान के साथ भी कुछ ऐसी ही बात है। अनुच्छेद 361(2) को पढ़िये। उसमें कहा गया है कि:—

> "राष्ट्रपति के अथवा राज्य के राज्यपाल या राज्यप्रमुख के खिलाफ उसकी पदावधि में किसी भी प्रकार की दंड कार्यवाही किसी न्यायालय में संस्थित नहीं की जायेगी और न चालू रखी जायेगी।"

जहां तक राष्ट्रपति या राज्यपाल का सम्बन्ध है यह व्यवस्था ठीक है। किन्तु राजप्रमुख के लिये यही ठीक नहीं हो सकती है। उसका पद तो उसके जीवन काल तक बना रहेगा। इस व्यवस्था के अनुसार तो उसके विरुद्ध कभी कोई दंड

[श्री वी.एस. सर्वटे]

कार्यवाही ही नहीं चलाई जा सकती है। इस व्यवस्था से इससे भी विषम स्थिति पैदा हो सकती है। मान लीजिये राजप्रमुख ने खून कर दिया है ऐसी स्थिति के लिये संविधान में कोई व्यवस्था नहीं है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी (मद्रास: जनरल): माननीय मित्र को मैं यह बताना चाहता हूं कि राजप्रमुख तभी तक अपने पद पर रहेगा जब तक राष्ट्रपति उसको रहने देंगे। यदि वह खून करता है तो राष्ट्रपति उसे पद से हटा देंगे।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** मैं पुन: यह कहूंगा कि राजप्रमुख राष्ट्रपति के प्रसाद काल पर्यन्त नहीं अपना पद धारण करेगा। वह पद धारण करेगा उस प्रसंविदा के बल पर जिस पर दोनों पक्षों ने मान लिया है और जिसे अब रद्द नहीं किया जा सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं कहूंगा कि माननीय मित्र को उस बारे में बिल्कुल गलत जानकारी मिली है।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** अच्छी बात है। अगर मेरी जानकारी गलत है तो खुशी होगी। फिर भी.....

***पंडित ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब: जनरल): अब संविधान को ही पूर्णाधिकार प्राप्त है और प्रसंविदा आदि को वह उलट सकता है।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** मुझे अपना विचार व्यक्त करने दीजिये। मैं यही समझता हूं कि राष्ट्रपति या राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की गिरफ्तारी या उनको कारावास में रखने के लिये उनकी पदावधि में किसी न्यायालय द्वारा कोई व्यवस्था नहीं निकाली जायेगी।

अब मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा अनुच्छेद 238 की ओर जिसमें यह कहा गया है कि भाग 6 के कतिपय उपबंध देशी राज्यों के सम्बन्ध में लागू न होंगे। इसमें यह कहा गया है कि भाग 6 के अनुच्छेद 155, 156 और 157 देशी राज्यों के बारे में लागू न होंगे। अनुच्छेद 155 में यह कहा गया है कि "राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा।" अनुच्छेद 156 में यह कहा गया है कि "राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त राज्यपाल पद धारण करेगा।" पर अनुच्छेद 238 में यह स्पष्ट रूप से प्रावहित कर दिया गया है कि अनुच्छेद 156 देशी राज्यों के बारे में लागू न होगा। इस अनुच्छेद के द्वारा मेरे इस कथन का समर्थन हो जाता है राजप्रमुख के लिये यह जरूरी नहीं है कि वह राष्ट्रपति के प्रसाद काल पर्यन्त ही पद धारण करेगा। और आश्चर्य की बात यह है कि अनुच्छेद 157 भी देशी राज्यों के बारे में लागू नहीं होता है। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है: "कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त होने का पात्र न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो तथा 35 वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो।" यह अनुच्छेद राजप्रमुख के लिए लागू नहीं होता है। अपने संविधान के अनुसार इक्कीस वर्ष की आयु का व्यक्ति भी राजप्रमुख के कर्तव्यों का निर्वहन कर सकता है। प्रान्तों के बारे में यह कहा जाता है कि

देशी राज्यों की अपेक्षा वहां का प्रशासन अच्छा है और वहां की सरकार अच्छी है। प्रान्तों के लिये तो यह व्यवस्था रखी गई है कि राज्यपाल वही व्यक्ति बनाया जा सकता है जो पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो पर देशी राज्यों के बारे में, जिनकी प्रशासन व्यवस्था प्रान्तों के मुकाबले में कम अच्छी बताई जाती है, यह रखा गया है पैंतीस वर्ष से कम आयु का व्यक्ति राजप्रमुख बनाया जा सकता है। राजप्रमुख के कर्त्तव्य भी वही होंगे जो राज्यपाल के हैं। प्रान्तों और देशी राज्यों के बारे में भिन्न भिन्न व्यवस्था का रखना एक असंगत बात ही है। जहां तक कि राजप्रमुख की आयु का सम्बन्ध है, अनुच्छेद 157 क्यों नहीं लागू किया जा रहा है यह मैं नहीं समझ पाता हूं। प्रसंविदाओं के बारे में कुछ कठिनाइयां हैं इसे मैं जानता हूं। प्रसंविदाओं में यह कहा गया है कि उनके राज्यों में उत्तराधिकार सम्बन्धी जो नियम हैं वही राजप्रमुख के बारे में लागू होंगे। उनमें यह भी कहा गया है कि देशी राज्यों के नरेश अपने जीवनकाल पर्यन्त राजप्रमुख पद पर रहेंगे। यदि अपने संविधानवेत्ता लोग कोई ऐसा उपाय निकालते जिससे राज्यपाल और राजप्रमुख के पद में कुछ अन्तर रहता तो मुझे खुशी होती और शायद सभी को खुशी होती। राजप्रमुख का पद तो नाम मात्र के लिये रखना चाहिये था और राज्यपाल पद के लिये नई व्यवस्था करनी चाहिये थी। अब यह सुझाव देने का समय नहीं रह गया है पर संविधान में यह कमी रह गई है और आगे चल कर संशोधन का समय आने पर हमें इसे दूर कर देना चाहिये।

एक या दो बातें और हैं जिनके बारे में कुछ कहना जरूरी है। वित्त आयोग की नियुक्ति के लिये एक अनुच्छेद रखा गया है—अनुच्छेद 280। इसके उपखण्ड (ग) में यह कहा गया है:—

> "अनुच्छेद 278 के खण्ड (1) के अधीन या अनुच्छेद 306 के अधीन भारत सरकार और प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में उल्लिखित किसी राज्य की सरकार के बीच किये गये किसी करार के उपबंधों के चालू रखने अथवा रूपभेद करने के बारे में;"

यहां "अनुच्छेद 278 के खण्ड (1) के अधीन या अनुच्छेद 306 के अधीन।" शब्द द्वितीय पठन के बाद जोड़े गये हैं। मुझे इसका खेद है कि बीमार होने के कारण मैं इस पर अपना संशोधन नहीं भेज सका। सभा को या मसौदा समिति को या जो कोई भी संविधान निर्माण की जिम्मेदारी रखता हो, उसे इस बात पर विचार करना चाहिये कि भारत सरकार तथा देशी राज्यों के बीच वित्त-विषयक एकीकरण का जो भी मामला हो उन सब को वित्त-आयोग पर छोड़ना क्या ज़्यादा अच्छा और समस्त देश के लिए कल्याणकर न होगा। इसके लिए एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण की व्यवस्था होनी चाहिये थी जो सभी बातों को ध्यान में रखते हुए इसके बारे में निर्णय देता। अभी जो स्थिति है वह यह है कि भारत सरकार ही इस बारे में अन्तिम निर्णय देगी जो वित्त विषयक एकीकरण के मामले में स्वयं एक पक्ष है। वित्तीय एकीकरण की व्यवस्था में भारत सरकार तथा देशी राज्य दोनों ही साझीदार हैं पर प्रमुख साझीदार है भारत सरकार और देशी राज्य उसके अधीनस्थ साझीदार हैं। इसलिए इस व्यवस्था से जो भी लाभ होगा वह अधिकतर भारत सरकार को भी प्राप्त होगा। सुतरां मेरा कहना यह है कि अच्छा यह होता कि वित्तीय एकीकरण के प्रश्न को वित्त आयोग पर छोड़ दिया गया होता। जिस खण्ड का

[श्री वी.एस. सर्वटे]

ऊपर मैंने ज़िक्र किया है वह द्वितीय पठन में नहीं रखा गया था, वह नया जोड़ा गया है। इसके अनुसार वित्त-आयोग कपितय करारों के सम्बन्ध में ही विचार कर सकता है। इस खण्ड के द्वारा आयोग का अधिकार सीमित हो जाता है। शायद इस नवीन खण्ड की ओर सभा का ध्यान नहीं जा पाया है। आदरणीय अध्यक्ष महोदय से तथा सम्बन्धित अधिकारियों से मैं सविनय यह अनुरोध करूंगा कि इस अंश पर वह पुनर्विचार करें और देखें कि इसमें ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है क्या? जिससे भारत सरकार तथा देशी राज्यों के बीच उठने वाले वित्तीय एकीकरण के सभी प्रश्न वित्त आयोग को सौंपे जा सकें। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और विशेष कर के इसका महत्व और भी बढ़ जाता है इसलिये, जैसा कि कई पूर्व वक्ताओं ने कहा है कि कई राज्य अपनी आय का अर्थात् वहि-शुल्क और रेलवे की आमदनी का एक बड़ा अंश अब नहीं पा सकेंगे। ऐसी हालत में भारत सरकार के लिए यह शोभा की बात होगी कि राज्यों को जो घाटा होता हो उसको वह ध्यान में रखें और कम से कम निजी थैली की रकम का भार अपने ऊपर ले लें। देशी राज्यों के उठा दिये जाने से भारत सरकार को ही कुल मिलाकर अधिक लाभ पहुंचता है। देशी राज्यों को इस व्यवस्था से कम लाभ है। मुझे पक्का विश्वास है कि चन्द साल के बाद हर देशी राज्य में उत्तरदायी सरकारें अस्तित्व में आ जायेंगी। वहां उत्तरदायी शासन के लिये इतना प्रबल जनमत रहा है कि थोड़े ही दिनों में वहां नरेश के रूप में किसी का अस्तित्व न रह जाता और सम्भवत: नरेशों की स्थिति उससे भी बदतर हो जाती जो आज उनको प्राप्त है।

एक या दो मिनट में मैं अपनी बात खत्म कर दूंगा। मुझे केवल एक या दो बातों की और चर्चा करनी है। मैं यह कहना चाहता हूं कि कई राज्यों के बारे में ऐसा हुआ है कि निजी थैली की जो रकम प्रसंविदा के अनुसार अब तय हुई है वह उससे कहीं ज्यादा है जो नरेशों को पहले मिला करती थी। एक खास राज्य के बारे में मुझे मालूम है कि वहां राजा को पहले कम रकम मिलती थी पर अब प्रसंविदा के अनुसार निजी थैली के रूप में उसे ज्यादा रकम मिलेगी। यह व्यवस्था इस लिये की गई है कि समस्त देश के हित को देखते हुए एकीकरण के लिये ऐसा करना जरूरी था। इसलिए भारत सरकार के लिए उचित यही है और उसका यह कर्तव्य होना चाहिये कि निजी थैली की रकम का भार वह अपने ऊपर ले ले। अभी होता यह है कि भारत सरकार उस रकम को देती जरूर है पर बाद में राज्य से वह वूसल कर लेती है। ऐसा न होना चाहिये। भारत सरकार को यह रकम अपनी संचित निधि से देनी चाहिये।

बस एक और अनुच्छेद 295 का ही मुझे जिक्र करना रह गया है। शायद यह अनुच्छेद भी पहले नहीं था और द्वितीय पठन के बाद नया जोड़ा गया है। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि संघ-सूची से सम्बन्ध रखने वाली सभी सम्पत्ति जो किसी राज्य में होगी उस पर पहले स्वामित्व रहेगा भारत सरकार का और बाद में चलकर उसके बारे में जो करार तय पाये उसके अनुसार उसका स्वामित्व राज्यों को हो सकता है। मैं यह समझता हूं कि व्यवस्था इससे ठीक उल्टी होनी चाहिये थी। सभी सम्पत्ति पर पहले तो राज्य का ही स्वामित्व माना जाना चाहिये था और बाद में करार के अनुसार उसका स्वामित्व भले ही भारत

सरकार को दिया जाता। जो भी हो, संघ-सूची से सम्बन्ध रखने वाली राज्य-सम्पत्ति पर स्वामित्व किसका हो इस प्रश्न का निर्णय भी वित्त-आयोग द्वारा ही होना चाहिये। इस मसले पर वित्त-आयोग को अनुसंधान करना चाहिये। अभी इस संबंध में जो करार तय हुए हैं वह वित्तीय सिद्धान्तों के आधार पर नहीं बल्कि हर राज्य की अपनी अलग-अलग परिस्थिति को ख्याल में रख कर।

अन्त में अब मुझे एक शब्द कहना है अनुच्छेद 371 के बारे में जिसमें यह कहा गया है कि राज्यों की सरकारें किसके साधारण नियंत्रण के अधीन होंगी। राज्य तो बहुत से हैं। मैं यह मानता हूं और हर आदमी को यह तथ्य मानना होगा कि ऐसे राज्य मैं जिन पर बाहरी नियंत्रण की ज़रूरत हो सकती है। पर ऐसे राज्य भी हैं जो प्रान्त नाम धारी राज्यों से किसी भी तरह कम दक्ष प्रशासन व्यवस्था नहीं रखते हैं। इस लिये यह व्यवस्था देशी राज्यों के लिए कलंक के समान ही है। सभी राज्यों को बाहरी नियंत्रण के अधीन रखने की जो व्यवस्था की गई है उससे हर स्वाभिमानी व्यक्ति को ठेस पहुंचेगी और वह यही महसूस करेगा कि सभी राज्यों को मानो आप नाबालिग समझ कर कोर्ट ऑफ वाड्स की अधीनता में रख रहे हैं। इसमें शक नहीं कि एक उपबंध इस सम्बन्ध में ऐसा रखा गया है जिससे कुछ धीरज हो जाता है। पर जब तक राज्य मंत्रालय (States Ministry) का नियंत्रण राज्यों पर रहता है, राज्यों के मंत्री अपने आन्तरिक मतभेदों को दूर करने के लिये कभी अपने विधान मंडलों की ओर न देखेंगे बल्कि राज्य मंत्रालय से सलाह लेने के लिये सीधे दिल्ली की ओर दौड़ेंगे। अपने निर्वाचन क्षेत्रों के मतदाताओं को प्रसन्न करने के बजाय वह राज्य मंत्रालय को खुश करने की कोशिश करेंगे। वर्तमान परिस्थिति में यह बात अनिवार्य है। पर यह बात न राज्यों के लिये लाभप्रद होगी और न भारत को ही इससे फायदा होगा इसलिये मैं भावी राष्ट्रपति से यह अपील करूंगा कि इस अनुच्छेद के परन्तुक पर पूरी उदारता के साथ अमल करें। परन्तुक यह है:– "परन्तु राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि इस अनुच्छेद के उपबन्ध उस आदेश में उल्लिखित किसी राज्य को लागू न होंगे" किसी को स्वावलम्बी बनाने के लिए सर्वोत्तम उपाय यह है कि आप उसको अपना सहारा न दीजिये। शुरू में वह जरूर लड़खड़ायेगा पर बाद में वह अवश्य सम्भल जायेगा। इस लिये राष्ट्रपति से मैं यह अपील करूंगा कि इस परन्तुक के अधीन जो अधिकार उसे दिया गया है उसका प्रयोग करके वह ऐसे राज्यों को इस अनुच्छेद के प्रभाव से विमुक्त कर दे जिसकी प्रशासन व्यवस्था इतनी अच्छी है कि उनको नियंत्रण मुक्त रखना उचित कहा जा सकता हो। इन शब्दों के साथ मैं इस संविधान का समर्थन करता हूं।

श्री बसन्त कुमार दास (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुख्यत: तीन बातें हैं, जिन्होंने संविधान को प्रस्तुत रूप दिया है। इन्हीं को मैं संविधान का आधार मानता हूं और ये यह हैं:—

(1) वह अनुभव जो भारत-शासन अधिनियम 1935 को क्रियान्वित करने में हमें प्राप्त हुआ है।

[श्री बसन्त कुमार दास]

(2) स्वाधीनता प्राप्त जनता की आवश्यकतायें और आकांक्षायें।

(3) देश और विदेश में होने वाली घटनाओं का तथा अभी आगे कम से कम दस साल तक घटने वाली घटनाओं का आघात।

इसमें शक नहीं कि "पुलिस राज्य" को सुचारू रूप से चलाने के लिये भारत शासन अधिनियम 1935 एक सुन्दर व्यवस्था है और इसे बड़ी उपयुक्त कानूनी भाषा में लिपिबद्ध किया गया है जो जमाने की कसौटी पर खरा उतरा है। इसलिए, जहां तक प्रशासन विषयक बातों का सम्बन्ध है यह ठीक ही हुआ है कि संविधान में बहुत कुछ लिया गया है इसी अधिनियम से।

पर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अब अपना राज्य 'पुलिस राज्य' न रहकर 'जनता राज्य' हो गया है जिस में जनता के कल्याण को ध्यान में रखकर सारी व्यवस्था होनी चाहिए तथा देश में शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के साथ जनता के पूर्ण विकास का आश्वासन मिलना चाहिए। इसलिए इस अधिनियम की नकल से हमारा काम नहीं चलेगा और न ऐसा करना ठीक ही है। देश में "शान्ति रखना तथा जनता को विकसित करना" दोनों ही आवश्यक बातें हैं। इसक लिए एक ऐसा मार्ग निकालना होगा जिस पर चलकर इन दोनों में सन्तुलन बनाये रखा जा सके। किन्तु सन्तुलन मूलक मार्ग निकालने में बड़ी बाधा पड़ रही है इन कारणों से कि देश विभाजन के फलस्वरूप एक नई राजनीतिक स्थिति पैदा हो गई है, नवप्राप्त स्वाधीनता के साथ विघटन मूलक प्रवृत्तियां पैदा हो गई हैं और आज अपना देश और सारी दुनिया ही एक सांस्कृतिक और आदर्शिक संकट से होकर गुज़र रही है। इन सभी बातों में समन्वय स्थापित करने का समय बड़ा ही कठिन है जिसको पूरा करने में हमारे नेताओं की बुद्धिमत्ता की, उनके ज्ञान और अनुभव की कठोर परीक्षा हुई है। संविधान में एक तरफ तो हम यह देखते हैं कि केन्द्रीय शासन को अबाध अधिकार दिये गये हैं, उसे प्राय: डिक्टेटरी अधिकार दिये गये हैं ताकि देश में शान्ति और व्यवस्था बनी रह सके और विध्वंसात्मक शक्तियों का कठोरता के साथ दमन किया जा सके। दूसरी तरफ संविधान में मूलाधिकार तथा निदेशक सिद्धान्तों को, भी स्थान दिया गया है जिनको अगर सद्भावना के साथ सही सही ढंग पर अमल में लाया जाये तो जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति में बड़ी सहायता मिल सकेगी। देश की जनता अधीरता के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करती जा रही है जब विदेशी बन्धन से मुक्त होने पर वह अपने को सुखी और सम्पन्न देख पायेगी।

संविधान में रखे गये सिद्धान्तों से भी यदि प्रत्याशित परिणाम न प्राप्त हो सका तो इस विफलता का श्रेय संविधान को नहीं बल्कि उन लोगों की अकुशलता को मिलना चाहिये जिन्होंने संविधान को कार्यान्वित किया है। संविधान चाहे जितना ही अच्छा क्यों न हो पर एक दुर्बल, अदक्ष और कौशलहीन प्रशासन जनता को सुख पहुंचा नहीं सकता है। इस संविधान के पीछे एक ऐसा शासन है जिसका संचालन देश के बड़े बड़े नेता कर रहे हैं और मेरा ख्याल यह है कि परीक्षण के लिये कम से कम दस साल तक तो इस संविधान पर हमें अमल करना ही चाहिये।

इन निदेशक सिद्धान्तों को रखा गया इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये राष्ट्र निर्माण का वृहत् काम पूरा किया जा सके। जनता के प्रतिनिधियों ने प्रशासकों को अनुदेश-लिखत के रूप में इन सिद्धान्तों को दिया है। मैं यह अवश्य कहूंगा कि इनको और आदेशात्मक रूप में संविधान में रखना चाहिये था। संविधान में राष्ट्र-निर्माण की जिस योजना की कल्पना की गई है वह उतनी विशद और निश्चित नहीं है जितनी कि होनी चाहिये थी। उदाहरण के लिये शिक्षा सम्बन्धी उपबंध का ही मैं हवाला दूंगा। इस उपबंध में प्रशासन के लिये यह अनिवार्य नहीं बनाया गया है कि एक निश्चित अवधि के अन्दर उसे जनता को अमुक शिक्षा स्तर पर ला ही देना होगा। आज राज्य का नारा होना चाहिये "शिक्षित बनाओ" "शिक्षित बनाओ" ताकि देश में लोकतंत्रीय व्यवस्था सफल हो सके। समाज की आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में भी संविधान में भी यही बात है।

पर अगर विभिन्न आवश्यकताओं के बीच समन्वय लाने का काम ठीक तरह से नहीं किया गया और नेताओं ने उदारता से काम न लेकर तात्कालिक स्थिति पर ही विशेष ध्यान दिया तो अन्ततोगत्वा बैलट बक्स का ही सहारा लेना होगा और इसके निर्णयानुसार ही सारी व्यवस्था करनी होगी। संविधान की सबसे बड़ी देन यही है कि उसने मतपत्र-पेटिका (बैलट बक्स) को ही प्रमुख निर्णायक माना है।

मैं इस बात से इन्कार नहीं करता हूं कि मतपत्र-पेटिका की प्रणाली में ही बहुतेरे दोष हैं और कुछ लोगों ने इसे भारत के लिये अनुपयुक्त बतलाया है। परन्तु अपने लिये जिस तरह का संविधान हमने बनाया है उसमें मतपत्र-पेटिका की व्यवस्था से बचने का कोई उपाय नहीं है। अब यह बात हम पर निर्भर करती है कि इस पद्धति को हम दोषमुक्त रखें और यह खुद सीखें और सिखावें मतपत्र-पेटिका को पवित्र धरोहर मानकर ही हमें इसको व्यवहार में लाना चाहिये। अगर केवल मतपत्र-पेटिका भ्रष्टाचार से मुक्त रही तो कार्यपालिका को कितने ही मनमाने अधिकार क्यों न दिये जायें डरने की कोई बात नहीं है। कार्यपालिका को तो अपने मालिक का हुक्म मानना होगा और उसका मालिक वही होगा जिसे मतपत्र पेटिका मालिक बनावे। यहां यह सुझाव भी दिया गया है मतपत्र-पेटिका की पद्धति के स्थान पर यह होना चाहिये था ग्राम पंचायतों को शासन का घटक माना जाता और इन पंचायतों पर शासन को आधृत रखा जाता ताकि और अधिक सही और सच्ची लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था यहां स्थापित हो पाती। इस सम्बन्ध में मैं यह स्वीकार करूंगा कि विकेन्द्रित शासन व्यवस्था के लिए समाज में जो क्रांतिकारी परिवर्तन अपेक्षित है वह अभी हम नहीं ला पाये हैं। सत्य और अहिंसा के महान पुजारी की शिक्षाओं के बावजूद भी हम अपने जीवन-विचार राजनीति को ऐसा आध्यात्मक मूलक नहीं बना पाये हैं कि विकेन्द्रित शासन व्यवस्था यहां स्थापित की जा सके। इसके लिये समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन अपेक्षित है और वह परिवर्तन जिस दिन समाज में आ जायेगा इस संविधान में परितर्वन करना ही पड़ेगा। किन्तु आज तो हमें इस संविधान को एक महान् कृतित्व समझ कर इसका अभिनन्दन करना चाहिये। अब इस संविधान को हमें विश्वास और आशा की भावना

[श्री बसन्त कुमार दास]

से क्रियान्वित करना और अपना पूरा सहयोग अपने नेताओं को देना चाहिये जिन्होंने इसकी रचना की है और जिन्हें हम इसके लिये उपयुक्त समझते हैं कि इस संविधान को चालू करके देश को बलशील, सम्पन्न और सुरक्षित बना सकेंगे।

इन शब्दों के साथ संविधान की स्वीकृति के लिये जो प्रस्ताव रखा गया है उसका समर्थन करता हूं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो संविधान हम देश को देने जा रहे हैं उसकी विस्तृत समीक्षा यहां मेरे वक्ताओं ने बड़े पाण्डित्यपूर्ण ढंग से की है। मैं उनकी बातों को दुहराना नहीं चाहती हूं क्योंकि विधिविषयक एवं संविधानिक जानकारी मेरी इतनी ज्यादा नहीं है कि सभा के समक्ष कही गई बातों पर मैं कुछ और प्रकाश डाल सकूं। फिर मैं यह भी समझती हूं कि इस समय बजाय इसके कि हम पीछे की ओर देखें और संविधान के गुण दोषों को ढूंढने के लिये सैद्धान्तिक दृष्टि से इसकी विवेचना करें अच्छा यह होगा कि हम आगे की ओर देखें और इसे क्रियान्वित करने की ओर ध्यान दें। संविधान को परखने का मापदण्ड केवल एक है। लोकतंत्रीय संविधान का प्रयोजन यही होता है कि एक ऐसी व्यवस्था निकाली जाये और स्थापित की जाये जिसके द्वारा जनमत का पता लग सके और जनमत के अनुसार ही सारी बातों की व्यवस्था की जा सके। हमें देखना यह है कि क्या अपना संविधान इस प्रयोजन को पूरा करता है या नहीं। विचार हमें इसी बात पर करना है। जब संविधान में सभी वयस्कों को मताधिकार दिया गया है और कार्यपालिका को नियंत्रण में रखने की पर्याप्त व्यवस्था की गई है तथा मूलाधिकारों की सुरक्षा की प्रत्याभूति दी गई है तो मैं नहीं समझती कि कोई विवेकी आदमी यह कह सकता है कि जिस लोकतंत्रीय प्रयोजन के लिये संविधान बनाये जाते हैं उसकी पूर्ति इससे नहीं हो पाती है और न इससे इस बात का मौका मिल सकेगा कि प्रशासन के काम में जनता की मरज़ी को प्राधान्य प्राप्त रहे। मैं यह कहना चाहती हूं श्रीमान कि संविधान निर्माताओं का न यह उद्देश्य होता है और न होना चाहिये कि संविधान में वह किसी विशेष राजनीतिक दल की विचार-धारा को ही महत्व दें। यह ठीक ही हुआ है जो यह काम जनता पर छोड़ दिया गया है। जनता को इस बात की स्वतंत्रता रहनी चाहिये कि इच्छानुसार वह देश के भाग्य का निर्माण करे और अपनी मरज़ी के मुताबिक शासन व्यवस्था रखे। जब तक संविधान में जनमत को प्राधान्य प्राप्त रहता है उसकी इच्छा के अनुसार ही सारा काम होना चाहिये। संविधान निर्माताओं की यह गलती होती अगर वह संविधान में रखे गये उपबंधों में किसी खास राजनीतिक विचारधारा को ही प्राधान्य देते। संविधान का काम यही है कि जनता को वह इस बात की पर्याप्त स्वतंत्रता दे कि अपनी अपनी राजनीतिक विचारधारा का प्रचार कर सके। संविधान द्वारा जनता को इस बात का साधन प्राप्त रहना चाहिये कि जब तक जनमत के अनुसार शासन व्यवस्था चलती है जनता अपनी इच्छा को प्राधान्य दिला सके।

समाजवादी इस बात की शिकायत कर सकता है कि संविधान में समाजवादी दल के सिद्धान्तों को स्थान नहीं दिया गया है। किन्तु अपना यह संविधान न तो

समाजवादी संविधान है, न साम्यवादी संविधान है और जहां तक किसी वाद का संबंध है यह पंचायत-राज्य संविधान भी नहीं है। यह संविधान जनता का संविधान है जिसमें देशवासियों को इस बात की पूरी आजादी दी गई है कि समाजवाद या साम्यवाद अथवा जिस किसी वाद के सम्बन्ध में उनका यह विश्वास हो कि उससे देश सुखी और सम्पन्न हो सकता है, उसका वह यहां प्रयोग करें। संविधान निर्माता अगर अपनी राजनीतिक विचार धारा को संविधान में रखते तो यह उनकी गलती होती। संविधान को उन्होंने जो बिल्कुल शत प्रतिशत जनता का संविधान बनाया है यह उन्होंने ठीक ही किया है।

नैराश्य के आवेश में कुछ कठोर आलोचकों ने यहां तक कह डाला है कि इस संविधान का महत्व उतना ही है जितना कि "मोटर वेहिकिल टेक्सेशन ऐक्ट" का है। यह तो बड़ी ओछी आलोचना है। इस संविधान में पहले पहल वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की है, मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी है। देश की सैंकड़ों बुराइयों को दूर करने में तथा देश को सशक्त और एक बनाने में इसे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। क्या इस संविधान का वही महत्व है जो "मोटर वेहिकिल टेक्सेशन ऐक्ट" का है? यह आलोचना, जैसाकि मैं यह कह चुकी हूं बड़े सस्ते ढंग की ओछी आलोचना है।

लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था के लिये जो विभिन्न संविधानिक परिमाण रखे गये हैं उनके बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगी। यह ऐसा विषय है जिस पर यहां कई वक्ताओं ने पाण्डित्य पूर्ण विवेचन किया है। जैसा कि मैं कह चुकी हूं अब हमें इस संविधान के सहारे भविष्य का निर्माण करना है। वयस्क मताधिकार के गुण दोषों पर यहां बहुत से लोगों ने अपनी राय जाहिर की है। वयस्क मताधिकार की व्यवस्था एक बड़ी सुन्दर व्यवस्था है अगर देश हित का ध्यान रखते हुए लोग इसको अमल में लायें। प्रश्न यह है कि इस चरम परिणति की प्राप्ति के लिए हमें क्या करना चाहिये।? यह कहा जाता है कि वयस्क मताधिकार की व्यवस्था से ऐसी विस्तृत शक्तियां बन्धनमुक्त होकर क्षेत्र में आ जायेंगी जो शायद राष्ट्रीय हित को ध्यान में न रखकर केवल वर्गीय हितों के लिए काम करने लग जायेंगी। अधिकार के ऐसे दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त परित्राण की व्यवस्था करने का काम निर्भर करता है नेताओं पर जो देश का भाग्यसूत्र अपने हाथ में लेने जा रहे हैं और संविधान को कार्यान्वित करने जा रहे हैं। मैं नहीं समझती कि यह काम उतना कठिन है जितना लोग समझते हैं। अगर हम केवल इतना कर दें कि इस सभा की सदस्यता को यानी संसद की सदस्यता को असाधारण प्रतिष्ठा या शक्ति का पद न बनाकर इसे कठोर कर्तव्य का गम्भीर दायित्व का कठिन श्रम और सुरक्षा काम का पद बना दें तो यह समस्या आसानी से हल हो जायेगी। संसदात्मक लोकतंत्र की बहत सी त्रुटियां अपने आप दूर हो जायेंगी। पर तभी जब ऐसा किया जाये। हमें एक ऐसा उपाय निकालना चाहिये कि निर्वाचित प्रतिनिधियों के बारे में लोग यह समझें कि वह किसी विशेष अधिकार और सुविधा प्राप्त वर्ग के आदमी नहीं है बल्कि ऐसे लोग हैं जो यहां बात करने के अलावा—जैसा कि अभी हम कर रहे हैं—गम्भीर दायित्व और कठोर कर्तव्यों का भार वहन करते हैं। निर्वाचित प्रतिनिधियों की स्थिति को, उनके पद को जब तक यह यही महत्व देते रहेंगे

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

जो उन्हें आज प्राप्त है, संसद में स्थान पाने के लिये तथा अधिकार पाने के लिये लोग इसी तरह लालायित रहेंगे। जब हमें इस बात का विश्वास हो जायेगा और हम दूसरों की समझ में यह बात ला देंगे कि निर्वाचित प्रतिनिधियों का पद केवल प्रतिष्ठा और मर्यादा नहीं है जहां भाग्य सुधर सकता है बल्कि कठिन परिश्रम और कठोर कर्तव्य का पद है तभी प्रतिनिधियों के चुनाव के बारे में लोग आवश्यक नियंत्रण से काम ले सकेंगे।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लूंगी श्रीमान। मैं संविधान की केवल एक बात का उल्लेख करूंगी। जिसके कारण अपना संविधान अमेरिकन संविधान से भिन्न है। यद्यपि अपना संविधान फेडरल संविधान है पर इसमें देश के लिये दो तरह के न्यायालयों की एक तो फेडरल विधियों के प्रशासन के लिए और दूसरा राज्यों की विधियों के प्रशासन के लिये व्यवस्था नहीं की गई है। इसमें सभी न्यायालय एक न्यायपालिका के अंग हैं जिन के शिखर पर है उच्चतम न्यायालय। उच्चतम न्यायालय के ठीक नीचे हैं विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालय और इनके नीचे हैं राज्यों के छोटे-छोटे न्यायालय। पर इन सभी न्यायालयों को अर्थ सम्बन्धी और स्थान सम्बन्धी परिसीमनों के अधीन रहते हुए देश की सभी विधियों के प्रशासन का, चाहे वह संसद निर्मित हों या राज्य के विधान मण्डलों द्वारा निर्मित हों, अधिकार प्राप्त हैं।

संविधान के विरुद्ध और कई तरह की आलोचनायें भी यहां की गई हैं पर मेरे पास इतना समय नहीं है कि उन सबका जवाब दूं। क्योंकि जैसा कि अध्यक्ष महोदय ने कहा है हमें अन्य वक्ताओं के लिये भी समय निकालना होगा।

मैं केवल एक या दो आलोचनाओं का जिक्र करूंगी। संविधान के विरुद्ध यह कहा गया है कि इसमें गांधी विचारधारा की किसी भी बात को स्थान नहीं दिया गया है। मैं यह कहती कि मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय को आप देखिये। पर मूलाधिकारों की भी यहां आलोचना की गई है और कुछ लोगों ने तो मूलाधिकारों की बड़ी तीव्र आलोचना की है। उन्होंने यहां तक कहा है कि इन मूलाधिकारों का महत्व उतना भी नहीं कितना कि उस कागज का जिस पर यह लिपिबद्ध किये गये हैं। क्या मूलाधिकारों को सर्वथा महत्वशून्य इस लिये समझा गया है कि इनको कई प्रतिबंधों से जकड़ दिया है। किन्तु न केवल इस देश के कानून शास्त्र में बल्कि दुनिया भर के कानून शास्त्रों ने जिन प्रतिबन्धों को मान्यता दी है उनसे ये सर्वथा संगत है और सभी देशों के संविधानों ने इन प्रतिबन्धों को ठीक माना है। पूर्ण अधिकार तो होने ही नहीं चाहिये। अधिकारों को प्रतिबन्धित करना आवश्यक है।

अपने संविधान के विरुद्ध एक यह भी आलोचना मैंने सुनी है कि इसमें नागरिकों के कर्तव्य क्या होंगे यह नहीं बताया गया है। इसमें केवल अधिकारों का ही उल्लेख किया गया है। मूलाधिकारों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं उनके बारे में मैं कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहती। जब नागरिक संविधान के अनुसार अधिकारों का दावा

करता है तो उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि उस राज्य के प्रति उसके कतिपय कर्तव्य भी हैं जिससे वह अधिकार पाने की और रक्षण पाने की उम्मीद रखता है।

उस अध्याय पर दृष्टिपात कीजिये जिसमें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों की बात कही गई है। उसमें यह कहा गया है कि ये सिद्धान्त केवल सिद्धान्त के रूप में रखे गये हैं, किसी न्यायालय द्वारा इन पर अमल नहीं कराया जा सकता है। राज्य की आर्थिक और सामाजिक नीति क्या होगी इसके बारे में संविधान में एक घोषणा दी जाती है। यह एक प्रथा है जो सर्वत्र प्रचलित होती जा रही है। प्राचीन भारत में भी यह प्रथा प्रचलित थी। अपने अर्थशास्त्र में राजा को दिये गये एक आदेश का उल्लेख आया है जो यों है:—

"अनाथ, मरणासन्न, अशक्त, दुखी तथा असहाय व्यक्तियों की परवरिश की व्यवस्था राजा करेगा। असहाय स्त्रियों की, प्रसव धारण करने वाली स्त्रियों की और उनसे उत्पन्न शिशुओं की परवरिश की व्यवस्था भी राजा करेगा।"

अर्थशास्त्र का यह मूल आदेश है जिस का राजा को पालन करना ही होगा। अपने केन्द्रीय तथा राज्यों के शासनों के लिए भी यही आदेश निदेशक सिद्धान्त होना चाहिये।

यहां यह बात भी कही गई है कि अपना संविधान, जो एक लोकतंत्रात्मक संविधान है वह सुचारू रूप से काम नहीं कर सकता है अगर देश राष्ट्र मंडल का अंग बन कर रहता है जैसा कि हम लोगों ने पसन्द किया है। इस आलोचना के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहना चाहती। यह आलोचना हमें अन्य कई सूत्रों से भी सुनने को मिली है। उसके सम्बन्ध में मैं ज्यादा कुछ न कहकर केवल एक ही बात कहना चाहती हूं। मैं नहीं समझती कि यह कठिनाई ऐसी कठिनाई है जो अजेय है। इसके सम्बन्ध में भी मैं यही कहूंगी कि प्राचीन भारत में ऐसी व्यवस्था रही है। ग्रंथों में ऐसा उल्लेख आया है कि लिच्छवी का लोकतंत्र सदस्य या साझीदार के रूप में चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का अंग बनकर रहा है। उस समय के शाही सिक्कों पर दोनों राज्यों के नाम खुदे हुए मिलते हैं। श्री बेरीडेल कीथ का यह कहना है कि राष्ट्रमंडल में रह कर, अगर विभिन्न लोकतंत्रों को सुचारू रूप से काम करने की गुंजायश नहीं रहती है तो फिर यह बात ही सन्देहास्पद है कि राष्ट्र मण्डल स्थायी हो सकेगा। इसलिये ठीक यह होगा कि सम्मिलित रूप से काम करने के लिए हम कुछ प्राधिकारियों को मान लें। इसलिये मेरा कहना यह है कि हमें ऐसा ख्याल करने की जरूरत नहीं है कि राष्ट्र मण्डल के अन्दर रहकर संविधान पर अमल करने में हमें कोई कठिनाई हो सकती है।

आखिरी बात जो मैं कहना चाहती हूं और जो कम महत्व की नहीं है वह यह है: आज सवेरे समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा है कि भारत सरकार ने जल्द से जल्द आंध्र का एक पृथक प्रांत बनाने के लिये कुछ उपाय तय कर लिये हैं। इसके लिये एक विभाजन परिषद् गठित करने का उसने फैसला किया है। यह ठीक ही हुआ है जो विस्तार की बातों को तय करने का काम परिषद् पर छोड़ दिया गया है और यह तय किया गया है भारत सरकार परिषद् के काम में कोई

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

दखल नहीं देगी। इस समाचार से मुझे बड़ी प्रसन्ता है और आशा करती हूं कि गठित होने वाली विभाजन परिषद् कोई ऐसा काम करेगी जो वहां वालों के शान्त और सुव्यवस्थित जीवन के लिये जिसका कि अब तक वह उपभोग करते आ रहे हैं, हानिप्रद होगी।

***श्री डी.वी. सुब्रमन्यम्** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, संविधान के इस मसौदे में जिसे चन्द दिनों के अन्दर हम संविधान के रूप में अपनाने जा रहे हैं, हमने उस मार्ग को प्रशस्त करने के लिये जिससे होकर राज्य की नौका चलेगी केवल प्रकाश स्तम्भ भर खड़े कर दिये हैं। राज्य-नौका की पतवार होगी हमारे नये प्रधान मंत्री के हाथ में और करीब पांच सौ संसद सदस्य होंगे उसके नाविक। भारतीय लोकतंत्र के प्रधान का कर्तव्य यह होगा कि पथ प्रदर्शन देकर हम सबको लक्ष्य स्थल तक पहुंचाने में सहायक हों। हमारा लक्ष्य या गन्तव्य क्या है यह प्रस्तावना में दिया हुआ है। संविधान में 395 अनुच्छेद जो हैं वही प्रकाश स्तम्भ हैं। इस मार्ग का ठीक ठीक निर्माण करेंगे भावी संसदों के सदस्य लोग। आगे की कठिनाइयों को सोच समझ कर और अन्य राष्ट्रों के अनुभवों से लाभ उठाते हुए अपने नेताओं की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से तथा माननीय सदस्यों के सहयोग और सहायता से हमने अब एक योजना तैयार कर ली है। हम सबको परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें पर्याप्त बल और बुद्धि दे कि सभी अदृश्य बाधाओं से नौका को निकाल कर पार पहुंच जायें।

अपनी यात्रा शुरू करने जा रहे 26 जनवरी सन् 1950 को जिस दिन कि हम देशवासियों की भलाई के लिए संविधान के प्रत्येक शब्द को और प्रत्येक भावना को व्यवहार में लाने का व्रत हम लेंगे। साथ ही जनता को भी यह समझना चाहिये कि राज्य के प्रति उसका कर्तव्य क्या है और राज्य के साथ कंधे से कंधा मिलाकर उसे काम करना चाहिये। मूलाधिकारों में तथा राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में जो उपबंध रखे गये हैं वह इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि भारत जनता के हित सदा ध्यान रखेगा।

जैसा कि अपने ऋषियों ने व्यवस्था की थी अपना प्राचीन समाज आधृत था वर्ण और धर्म पर अर्थात् इस बात पर प्रत्येक वर्ण का अमुक कर्तव्य होगा। किन्तु काल के प्रभाव से अब सभी वर्ण अपने कर्म को छोड़ बैठे हैं। आज सामाजिक व्यवस्था में ऐसा परितर्वन अपेक्षित हो गया है कि लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार अपने लिये व्यवसाय चुन सकें तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में सबको समान अवसर मिल सके। फिर आज का समाज जन्म या पद के आधार पर मनुष्यों में कोई भेद नहीं बरतना चाहता है। गत कई शताब्दियों से हमें सामाजिक व्यवस्था में यह सब आवश्यक परिवर्तन करने का मौका नहीं मिल पाया था। आज विदेशी शासन का यहां से लोप हो गया है इसलिये हम इस संविधान को अंगीकार कर रहे हैं।

प्राय: करके सभी देशों के संविधान बने हैं युद्ध या क्रांति के ठीक बाद। हम लागों का यह सौभाग्य है कि हम संविधान बना रहे हैं ऐसे समय में जब कि देश विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न कुछ उपद्रव के सिवाय देश में सर्वत्र स्वाभाविक स्थिति वर्तमान है। इस अवसर पर श्रद्धा से मैं सर झुकाता हूं राष्ट्रपिता के प्रति जिनके अनुपम नेतृत्व में उनके बताये गये आदर्शों पर चल कर हम

इस मंजिल तक पहुंच पाये हैं। मेरा ख्याल है कि अपना संविधान यथा समय ठीक ठीक काम करने लग जायेगा। अभी प्रारम्भ में ही इसकी आलोचना करना बुद्धिमत्ता की बात न होगी।

यदि हम आदर्श भारत का निर्माण करना चाहते हैं तो अपने नव राज्य को ध्यान देना होगा इस बात पर कि राज्य के व्यक्तियों का निर्माण किया जाये। यदि व्यक्ति पूर्ण है तो राज्य भी पूर्ण बन जायेगा। इस काम में समय लगेगा। ऐसे व्यक्तियों द्वारा या व्यक्तियों के समूह द्वारा परिचालित शासन जो कि मनसा और कर्मणा पूर्ण है, राम राज्य कहलाता है जो महात्मा जी की आदर्श था?

इस संविधान में मुझे एक कमी दिखाई देती है। शालिवाहन शमाबद्ध जैसे एक नये सम्वत्सर की स्थापना के लिये इसमें कोई उपबंध नहीं रखा गया है। शालिवाहन सम्वत्सर के अनुसार यह 1872वां साल चल रहा है और कलि के हिसाब से 5051वां साल चल रहा है। मैं यह चाहता हूं कि संविधान के प्रवर्त्तन में आने के साथ ही सारे राजकीय प्रयोजनों के लिए हमें गांधी संवत्सर के नाम से एक नया सम्वत्सर चालू करना चाहिये। और इस सम्वत्सर के प्रथम वर्ष का पहला दिन वह होना चाहिये जिस दिन या तारीख को गांधी की की हत्या की गई थी। गांधी जी के जन्म या मृत्यु का दिन ऐसा दिन है जिस दिन से एक नया सम्वत्सर चलाना सर्वथा उचित है।

गांधी संवत्सर की प्रमुख विशेषता यह होगी कि राज्य के बजाये व्यक्ति को समुचित अधिक महत्व दिया जाये। राज्य में अंगभूत व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विकासार्थ समुचित स्थिति पैदा करने की आवश्यकता पर ही गांधी ने अपने सभी लेखों और भाषणों में सदा जोर दिया है। वह इस आदर्श की पूर्ति सर्वथा सम्भव समझते थे पर केवल उसी स्थिति में जब शक्ति का आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों शक्तियों का—सर्वथा विकेन्द्रीकरण कर दिया जाये। अपने कतिपय साथियों के इस विचार से मैं अपने को सर्वथा सहमत पाता हूं कि इस संविधान ने देश में ऐसी स्थिति लाने पर कत्तई ध्यान नहीं दिया है। संविधान में राजनीतिक शक्तियों को इतना केन्द्रित कर दिया गया है कि यह सम्भावना ही खतरे में पड़ गई है कि शक्तियों का विकेन्द्रीकरण यहां हो पायेगा जो कि मानव समाज के विकास के लिए शक्तियों को विकेन्द्रित करना परमावश्यक है।

इन शब्दों के साथ मैं उपस्थित प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री के.एम. जेढे** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं खड़ा हो रहा हूं डॉ. अम्बेडकर और उनके साथियों को धन्यवाद देने के लिये कि उन्होंने भारत के इस नये संविधान की रचना में इतना बड़ा योगदान दिया है। इस काम में हमने करीब तीन साल लगा दिये हैं। और तब कहीं आज हम इस महत् कार्य को पूरा कर पाये हैं। कुछ सदस्यों ने डॉ. अम्बेडकर को बधाई देते हुए उन्हें आधुनिक मनु की उपाधि दी है। मुझे विश्वास है कि वह इस उपाधि को कभी पसन्द न करेंगे। चार वर्गों की स्थापना मनु ने ही की है जिसमें अछूतों को उन्होंने निम्नतर स्थान दिया है अत: मैं जानता हूं कि मनु के प्रति डॉ. अम्बेडकर घृणा

[श्री के.एम. जेढे]

भाव रखते हैं। मुझे याद है कि सन् 1929 में मोहाद की एक बड़ी सार्वजनिक सभा में मनुस्मृति को उन्होंने जलाया था। हरिजनों के वह महान नेता हैं और हरिजन उन्हें अपना हितैषी मान कर उनकी अभ्यर्थना करते हैं। और देवता की तरह पूजते हैं। हरिजनों को उन पर गर्व है। वे लोग उन्हें भीम कहते हैं और जनता को यह बताते हैं कि उन्होंने भीम स्मृति की रचना की है। मैं भी इस संविधान को भीम-स्मृति कहता हूं गोकि मैं स्पृश्य वर्ग का आदमी हूं। डॉ. अम्बेडकर एक बड़े कानून वेत्ता हैं और महती मेघा और योग्यता रखने वाले व्यक्ति हैं। उनकी उन खूबियों से कौन इनकार कर सकता है। अस्पृश्यता अब कानून द्वारा समाप्त कर दी गई है। संविधान बनाने में हरिजनों के हितों को सुरक्षित रखने का उन्होंने तत्परता के साथ ध्यान दिया है। सभी हरिजनों को उनका कृतज्ञ होना चाहिये। और साथ ही हम सबको कृतज्ञ होना चाहिये। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति जिन्होंने हमें स्वतंत्रता दिलाई। वह एक महान पुरुष थे जिन्होंने अपने जीवन काल में अस्पृश्यता को दूर करने का बड़ा प्रयास किया था। उनकी महती इच्छा यही थी कि हरिजनों को सवर्णों के स्तर पर ला दिया जाये। आज वह हम लोगों के बीच में नहीं हैं कि अपनी बस महती इच्छा को पूर्ण देखते और हमें अपना आशीर्वाद देते क्योंकि वह एक क्रूर और अधम षड्यंत्र के शिकार हो चुके हैं।

सरदार वल्लभभाई पटेल को भी मैं बधाई देता हूं कि भारत के एकीकरण का काम आपने इस साफल्य के साथ सम्पादित किया है। न्याय प्रशासन में आप बड़ी दृढ़ता, कठोरता और अनुशासन प्रियता से काम लेते हैं। ब्रिटिश अमलदारी के दिनों में स्वराज्य आन्दोलन के लिये देशी नरेश बड़ी बाधा सिद्ध हो रहे थे। सरदार पटेल ने इन नरेशों को सर्वसाधारण के स्तर पर ला दिया है और अब उन्होंने विशिष्ट होने के गर्व का परित्याग कर दिया है। आज सम्पूर्ण भारत एक हो गया है जिस का श्रेय सरदार पटेल को ही मिलना चाहिए। इस अवसर पर केति मैं आदर सम्मान व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता।

अपना संविधान अब प्राय: तैयार हो चुका है। इसमें केन्द्र को बहुत सशक्त बना कर रखा गया है और प्रान्तों के बहुत से अधिकार कम कर दिये गये हैं। केन्द्र को सम्राट की स्थिति मिल गई है और प्रान्तों को केन्द्र के सर्वथा अधीन कर दिया गया है। संविधान में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गई है जिसके लिये हम सब को अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिये। इक्कीस वर्ष से ऊपर की आयु वाले सभी नर नारियों को मताधिकार दिया गया है जिसके लिये यहां बहुतों ने अश्रुपात किया है। वयस्क मताधिकार की व्यवस्था के विरुद्ध उन्होंने जो तर्क उपस्थित किया है वह बड़ा स्वार्थपूर्ण है। उनका कुल यही है कि इस देश के लोग सर्वथा अशिक्षित और ज्ञानशून्य हैं। पर इस स्थिति के लिये दोषी कौन है? सारा दोष है उच्च वर्ग वालों का क्योंकि अपने स्वार्थ के लिये उन्होंने देशवासियों को सदा अशिक्षित और अज्ञानी रखा है। अगर हम लोकतंत्र चाहते हैं, जनता का शासन चलाना चाहते हैं तो किसी भी वयस्क को मताधिकार से हम वंचित नहीं रख सकते हैं। हमसे कहा यह जाता है कि संविधान में लोकतंत्रीय व्यवस्था रखी गई है। संविधान ने राष्ट्रपति को असीम अधिकार दे रखा है और मुझे बड़ी आशंका इस बात की है कि लोकतंत्र की जगह यहां तानाशाही शासन चलने लगेगा और

केन्द्र को इतना सशक्त कर देने से मनमानी करने की प्रवृत्ति उसमें आ जायेगी। जो भी है अभी हमें यह देखना चाहिये कि संविधान कैसा काम करता है और जनता को कहां तक सन्तुष्ट करता है।

हम लोगों ने बड़ी आशा बांध रखी थी संविधान के प्रारम्भण पर आंध्र प्रांत की स्थापना के साथ संयुक्त-महाराष्ट्र का भी एक अलग प्रान्त बना दिया जायेगा। पर इस सम्बन्ध में हम लोगों को बड़ी निराशा मिली है। आंध्रवासी बन्धुओं को अपना अलग मिल गया है इसके लिये हम उनको बधाई देते हैं। और हम उनकी प्रशंसा करते हैं कि अपनी मांग के लिये उन्होंने एक होकर प्रयास किया है। हम महाराष्ट्री लोग भी महाराष्ट्री भाषा भाषियों के लिये संयुक्त महाराष्ट्र नाम के एक अलग प्रान्त की जिसमें बम्बई भी शामिल रहे, मांग जरूर करते आये हैं पर हमें इसमें सफलता इस लिये नहीं मिल सकी कि हम एक नहीं थे। मध्य प्रान्त के कुछ सदस्य महाविदर्भ के पक्ष में थे और बम्बई की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी इस पक्ष में थी बम्बई को एक अलग घटक के रूप में रखा जाये। हम लोग यह नहीं चाहते हैं कि महाराष्ट्र का विभाजन हो। बम्बई प्रसिडैंसी में और कुछ अरसे तक रहने के लिये हम तैयार हैं। हम अभी भी आशान्वित हैं कि संयुक्त महाराष्ट्र प्रान्त की स्थापना अवश्य होगी जिसमें बम्बई का शहर भी शामिल रहेगा। प्रतीक्षा करने के लिये अपेक्षित धैर्य हम रखते हैं और यह आशा करते हैं कि जिस रूप में हम अपना प्रान्त चाहते हैं वह हमें अवश्य मिलेगा। इस सम्बन्ध में शंकर राव देव और काका साहिब गाडगिल भी मेरा समर्थन करेंगे। बस मुझे इतना ही कहना था।

***श्री सतीश चन्द्र सामन्त** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, अपना भाषण प्रारम्भ करने से पहले मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूं उन लोगों के प्रति जिन्होंने देश के लिये अपने प्राणों की, अपने स्वातन्त्र्य की और जीवन के सभी सुखों की आहुति दे दी है और जिनके इन महान त्याग के फलस्वरूप हम आज स्वतन्त्र हो पाये हैं। स्वाधीनता मिलते ही हमने संविधान-निर्माण का काम प्रारम्भ किया था और आज यह समाप्ति पर आ गया है। यह संविधान, जिसे हम अपने लिये अंगीकार करने जा रहे हैं, आधृत है लोकतंत्रीय व्यवस्था के आधार पर। आज सारी दुनिया लोकतन्त्र के पीछे है और हम भी इसी व्यवस्था का अनुसरण कर रहे हैं। श्री अब्राहम लिंकन के मतानुसार लोकतन्त्र से अभिप्रेत है ऐसा शासन जो जनता का शासन हो और जनता के लिये हो तथा जो जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा संचालित हो। उसी सिद्धान्त के आधार पर हमने अपना संविधान बनाया है। लोकतन्त्रीय व्यवस्था के अनुसार हम सब यहां आने के लिये चुने गये हैं और यथाशक्ति अपने ज्ञानानुसार हमने यह संविधान तैयार किया है। कई बातों के सम्बन्ध में वैयक्तिक मतभेद होने पर भी हमने बहुमत के निर्णय को मान्यता दी है। अब अगर हम संविधान के गुण दोषों पर विचार करते हैं तो इससे कुछ लाभ नहीं होगा।

जहां तक कि संविधान बनाने का सम्बन्ध है मैं आपको बताऊं कि 29 जुलाई सन् 1934 को कांग्रेस ने इसके लिये एक संविधान सभा गठित करने की मांग की थी। किन्तु तत्कालीन ब्रिटिश शासकों ने हमारी इस मांग को स्वीकार नहीं किया। अब अपने त्याग और प्रयास के फलस्वरूप हमने इस संविधान सभा का

[श्री सतीश चन्द्र सामन्त]

गठन किया है। यह संविधान जिसे हम देश को देने जा रहे हैं वह एक ऐसी वस्तु है जिसे हमें सच्ची भावना से स्वीकार करना चाहिये और सच्चाई के साथ इस पर हमें अमल करना चाहिये। हम भारत के लोगों ने ही इसे बनाया है और अगर इसमें कोई त्रुटि है तो उसे हमें स्वीकार करना चाहिये और उसको लेकर हमें असन्तोष न प्रकट करना चाहिये क्योंकि भारत के लोग तथा उनके प्रतिनिधि जिन्होंने संविधान की रचना की है, वह वही रहेंगे जो वह हैं।

इसलिये इस पर असन्तोष प्रकट करने की कोई बात नहीं है। कई मित्रों ने संविधान के गुण दोषों की चर्चा की है। मैं मानता हूं कि इसमें कुछ दोष हैं पर अब हम उन दोषों से बच कैसे सकते हैं? मैं उन लोगों में हूं जो इस संविधान के बन जाने पर अपनी खुशी ज़ाहिर कर सकते हैं क्योंकि जो बुनियादी बातें हम चाहते हैं वह सब संविधान में हैं। बावजूद उन दोषों के जो संविधान में हैं, हम लोगों को, जिन्होंने कि इस संविधान की रचना की है, संविधान के अनुच्छेदों को देश की भलाई के लिये सच्ची भावना के साथ कार्यान्वित करना चाहिये। अगर हम ऐसा नहीं करते हैं तो अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं। इसलिये संविधान में जो भी खामियां हों इसकी सफलता वस्तुतः बहुत कुछ निर्भर करती है इस बात पर कि हम इसको कार्यान्वित किस तरह करते हैं। सुतरां संविधान के रचयिताओं से, संविधान सभा के सदस्यों से इस बात का आग्रह करूंगा कि वह लोग अब से एक साल तक जब कि नया आम चुनाव शुरू नहीं हो जाता है अपने अपने निर्वाचन क्षेत्रों की जनता को संविधान के उपबन्धों को समझायें और निर्वाचकों को शिक्षा देकर योग्य नागरिक बनायें ताकि संविधान को समुचित ढंग से कार्यान्वित करने के लिये वह लोग सही सही आदमियों को अपना प्रतिनिधि चुनें। जब तक निर्वाचकों को इतनी शिक्षा नहीं मिल जाती है कि सही आदमियों को वह अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज सकें, तब तक, यह संविधान कितना भी उत्तम क्यों न हो इससे देश को कोई लाभ न पहुंचेगा। मैं वर्तमान शासन से भी यही अनुरोध करूंगा कि आगे साल तक वह अनिवार्य वयस्क शिक्षा की व्यवस्था चलाकर निर्वाचकों को शिक्षित बना दें ताकि संविधान से हमें वांछित परिणाम प्राप्त हो सके।

एक शब्द मैं कहना चाहता हूं वयस्क मताधिकार के सम्बन्ध में। एक ग्रामीण तथा साधारण नागरिक होने के नाते ग्रामीणों की त्रुटियों को मैं जानता हूं। जब तक हम उन्हें यह जानने का मौका नहीं देते हैं कि वह क्या हैं, उनका उत्थान कभी नहीं हो सकेगा। गांवों में अच्छे आदमी रहे हैं और अब भी हैं। अगर उन पर वास्तविक दायित्व दिया जाये तो उनमें हर आदमी अपनी योग्यता सिद्ध कर सकेगा और अपना यह संविधान सफलता पूर्वक कार्यान्वित किया जा सकेगा।

मैंने इस बात के लिये एक संशोधन रखा था श्रीमान कि मूलाधिकारों में ग्राम-पंचायतों की स्थापना की बात भी रखी जाये। यह बात मूलाधिकारों में तो नहीं रखी गई पर निदेशक सिद्धान्तों में इसको स्थान अवश्य दिया गया है। यदि ग्राम-पंचायतों का ठीक-ठीक गठन किया जाता है जैसा कि निदेशक सिद्धान्तों से प्रावहित किया गया है तो महात्मा गांधी की इच्छा अवश्य पूरी हो जायेगी। इस संविधान में कई अनुच्छेद ऐसे रखे गये हैं जिनके द्वारा राष्ट्रपिता के आदर्शों को पूरा करने का प्रयास किया गया है। उनके आदर्शों को हमें पूरा करना ही चाहिये।

अन्त में मैं सभी से यह अपील करूंगा कि आप संविधान की आलोचना न कीजिये, आप कीजिये यह कि इसके उपबन्धों पर सेवा भावना से अमल कीजिये ताकि राष्ट्रपिता की इच्छायें पूरी हो सकें। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात खतम करता हूं।

काका भगवन्त राय (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य-संघ): साहब सदर, मेरे बहुत से मुहतरिम साथियों ने इस अपने ही बनाये हुए विधान के मुतालिक तरह तरह के ख्यालात का इज़हार किया। मुझे कुछ हैरानी भी हुई। कभी कभी खुशी भी। जहां तक मैं देखता हूं मुझे तो इस विधान में एक इनकलाब की बुनियाद नज़र आती है। सालहा साल की स्यासी जद व जहद, बेमिसाल कुर्बानियों के बाद हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ और आज़ाद हिन्दुस्तान की विधान सभा बनाई गई। हिन्दुस्तान में खुशी की लहर दौड़ गई मगर रियासती लोगों ने उम्मीद भरी नज़रों से देहली की इस बड़ी सभा की तरफ देखा। ज्यूं ज्यूं वक्त ग़ुज़रता गया हिन्दुस्तान के अवाम के सामने अपने ख़ूबसूरत मुस्तक़बिल का नक़शा साफ़ होता गया और रियासती लोगों ने शख्सी निज़ाम से छुटकारा पाया। छोटी-छोटी रियासतें खत्म करके यूनियन्ज़ की शक्ल दे दी गई। और हिन्दुस्तान से बड़े मुल्क में बराबर का हिस्सा दिया गया। हिन्दुस्तान के अवाम को अपनी हुकूमत खुद अपने वोटों से बचाने का हक़ दिया। सही मानों में कहा जा सकता है कि आने वाले दौर में हिन्दुस्तान की हुकूमत की बागडोर हिन्दुस्तान के अवाम को दे दी गई। मुझे तो ऐसा महसूस होता है कि इस प्राचीन मुल्क की तारीख में यह अपनी ही क़िस्म का है पहला इनक़लाब जब कि राजाओं महाराजाओं या उनके खुशामदियों के हाथों से हुकूमत छीन कर आम लोगों के हाथों में दे दी गई है हुकूमत करने का पैदाइशी हक़ खत्म हुआ। इस इनक़लाब को संभालना अब लोगों का काम है इस खूबसूरत ख्यालात पर बनाये हुये विधान में ज़िन्दगी खूबसूरत अमल से पैदा हो सकती है। जो कि मुल्क के लोगों और उनके लीडरों का ज़िम्मा है। मैं जानता हूं मुल्क के अवाम भोले और इल्म से अनपढ़ और बेबहरा हैं और क़िसम क़िस्म के लोग और रंग बिरंग की जमातें अपने अपने अन्दर से उनके जज़बात से खेलेंगी। मगर यह कुछ थोड़े से समय के लिये हो सकता है। मुझे तो खौफ़ दिखाई देता है। इस विधान के चालू होते ही मुल्क के पिछड़े हुए लोग एक क़ुदरती ताक़त की मदद से उठेंगे सदियों से ग़ज़बशुदा हुक़ूक़ पर ख़ुद क़ाबिज़ होंगे। और वह बड़ा इनक़लाब जो इस वक्त इस विधान में बन्द एक ख्वाब नज़र आता है अपनी सही शक्ल में आयेगा। और जो नक़शा अपने दिमाग़ में लेकर हमारे महबूब लीडरों (पूज्य बापू जी) ने स्यासी जद व जहद की थी वह अपने जोबन पर होगा। और जो कहानियां हम अपने मुल्क के इल्म व हुनर व तहज़ीब व तमुद्दन दौलत व सरवोत के पढ़ते और सुनते आये हैं एक हक़ीक़त बन कर फिर दुनिया को खुशी व मुहब्बत व खूबसूरती का पैग़ाम देगा। विधान में हरिजनों के मुताल्लिक़ ज़िक्र किया गया है और जब हम इस सभा में इस मजमून पर ज़िक्र करते थे और इस पर बहस की भी जरूरत होती थी मेरा तो सिंर शर्म से झुक जाता था। मैं तो कहूंगा कि हिन्दुस्तान के उन लोगों ने जो खुद को ऊंची जाति का लोग कहते हैं किस जुल्म ज़बर से एक फ़िरक़ा को छोटी जाति का नाम देकर किस तरह सदियों तक तरह तरह के नीच काम करने पर मजबूर किया। मुझे नहीं मालूम हिन्दुस्तान व हिन्दुस्तान के लोगों को ऊंचा कहने वाले किस तरह ऊंचा कहते थे? मैं तो कहूंगा कि जिस मुल्क में इन्सान और इन्सान में भेद रखा जाता था

[काका भगवन्त राय]

और रखा जाता है वह बहुत छोटा और घटिया मुल्क है। हिन्दुस्तान के अछूत व हरिजन सदियों इस तरह कुचले व रौंदे गये हैं अगर आप उनको हिन्दुस्तान की हुकूमत देकर भी प्रायश्चित करना चाहें तो नहीं होता है। इस बढ़ते हुए दौर में ऐसा भी वक्त आयेगा जब आने वाली नसलें इस हरिजन व छूत छात के मुताल्लिक़ पढ़ा करेंगी तो अपने बुज़ुरगों के कारनामों को पढ़कर शर्म से सिर नीचा किया करेंगी। इसके साथ साथ में यह भी कह दूं कि सदियों पुरानी फ़िरक़ा परस्ती जो हिन्दुस्तानियों के दिमाग़ों पर किसी न किसी शक्ल में छाई हुई थी और ज़िन्दगी की हर चीज़ फ़िरक़ा परस्ती के तराजू में तोली और नापी जाती थी। यहां तक कि हिन्दुस्तान का पानी भी हिन्दू व मुसलमान पानी के नाम से पुकारा जाता था। फ़िरक़ों के नाम पुराने देश के टुकड़े के लिये और वह फ़िरक़ा परस्ती जिसका शिकार भोले भाले हिन्दू, सिख, मुसलमान आज से दो सौ साल पहले हुए जिस फ़िरक़ा परस्ती के नाम पर ईश्वर और उसके बनाये हुए बंदों को क़तल किया गया उस फ़िरक़ा परस्ती को हमेशा के लिये ख़त्म करके स्यासत में मज़हब एक दूसरे से अलायहदा किया है।

साहब, जहां तक सूबों और सेण्टर का ताल्लुक़ है देखा गया है कि सेण्टर को बहुत ताक़तवर व मज़बूत किया गया है। ठीक ऐसे बहुत बड़े मुल्क की मरकज़ी हुकूमत का ताक़तवर होना लाज़मी है जैसा कि तारीख से ज़ाहिर है जब जब भी मरक़ज़ी हुकूमत कमज़ोर हुई सूत्रों के गवर्नरों ने बग़ावत की। और अपने ही राज के झंडे गाड़ दिये। मैं तो यह कहे बग़ैर नहीं रह सकता कि अंग्रेज़ ने पहली बार हिन्दुस्तान को इकट्ठा किया और एक मज़बूत मरकज़ी हुकूमत दी और हर हिन्दुस्तानी में हिन्दुस्तानी होने का एहसास पैदा हुआ मगर हम सदियों इतने तंग दायरे में रहे हैं कि मैं अब भी देखता हूं हम हिन्दुस्तान के नहीं बल्के सूबों और फिरकों के ढंग पर सोचते हैं यह मैं मानता हूं कि मरकज़ की मज़बूती के साथ मुल्क के तमाम हिस्सों का मज़बूत होना लाज़मी है क्योंकि दिमाग़ी, जिसमानी व रूहानी तौर पर जब तक जिस्म के तमाम हिस्से मज़बूत न हों तमाम जिस्म मज़मूई तौर पर मज़बूत नहीं होता। मगर तमाम हिस्सों से काम लेने के लिये सेन्टर में एक दिमाग़ होना चाहिये जो कि सब हिस्सों का मुनासिब और ठीक इस्तेमाल करे और सबको ठीक नशो नुमा पाने का मौक़ा दे। यही सूरत हमारे मरक़ज़ और सूबों की होनी चाहिये।

आखिर में एक रियासती नुमाइन्दा होने के नाते जिनको इस विधान में बराबर का दर्जा दिया गया है हिन्दुस्तान की इस एसेम्बली और हरमन प्यारे प्रधान डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद का शुक्रग़ुज़ार हूं जिन्होंने रियासती मसलों को दीगर सूबों के बराबर दरजा दिया। इसके बाद मैं अपने महबूब लीडर सरदार पटेल का शुक्रग़ुज़ार हूं जिन्होंने किस मज़बूती और खूबसूरती से राजाओं से ताक़त छीन कर अवाम को दे दी। सदियों पुराने निज़ाम को खत्म करके राजाओं और अवाम को एक सफ़ में खड़ा किया। मुझे तो जनाब इस विधान में साफ़ नज़र आता है कि हिन्दुस्तान में हमेशा के लिये तलवार राज खत्म हुआ प्यार राज शुरू हुआ।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपने एक ही बात बार-बार यहां ना दुहराने की सलाह हम लोगों को अवश्य दी है पर अगर अनुमति हो तो थोड़ी देर के लिये आपके इस परामर्श को भूल कर के डॉ. अम्बेडकर और कठिन परिश्रम का भार वहन करने वाले साथियों ने संविधान निर्माण के काम में जो अथक प्रयास किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दूं तथा आपके प्रति

भी कृतज्ञता ज्ञापित करूं उस असीम धैर्य के लिये जिसका कि परिचय आपने सभा के कार्य संचालन में यहां दिया है। आपके प्रति एवं मसौदा समिति के सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते समय मैं, संविधान सभा के कार्यालय के कर्मचारियों द्वारा की गई ज्ञात एवं अज्ञात महती सेवाओं को भी मैं भूल नहीं सकता हूं। मैं समझता हूं कि संविधान सभा के छोटे से छोटे से लेकर बड़े से बड़े सभी कर्मचारी हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं। संविधान सभा के हम सदस्यों को तो अपने पद के कारण कठिन श्रम करना ही पड़ा है पर कार्यालय के कर्मचारियों ने हमें अपनी सेवाएं प्रदान करने में बड़ी निष्ठा और परिश्रम का परिचय दिया है। उस तमाम अवधि में जब तक कि हम यहां रहे हैं, इन्होंने जिस तत्परता, सेवा भावना और श्रम से काम किया है उसकी हम सबको यहां सराहना करनी चाहिये। संविधान सभा के कार्यालय का एक भी कर्मचारी अगर बेकाम हो जाता है तो इससे संविधान की पवित्रता में बट्टा लग जायेगा। अतः मैं आशा अवश्य करता हूं कि ऐसी स्थिति न आने दी जायेगी कि इस कार्यालय का कोई कर्मचारी बेकाम हो जाये। निजी तौर पर मैं यही देखना चाहता हूं कि चाहे जैसे हो संविधान सभा का प्रत्येक कर्मचारी जिसने संविधान में हमारे साथ काम किया है वह अगर यहां के भावी कार्यालय में अगले साल से नहीं खपाया जा सकता है तो अन्यत्र कहीं न कहीं किसी दफ्तर में उसे अवश्य काम में लगा दिया जायेगा। मैं नहीं समझता कि इस सम्बन्ध में इस कार्यालय के किसी विभाग विशेष का खास तौर पर नामोल्लेख करने की मुझे ज़रूरत है। हम सभी जानते हैं कि इस कार्यालय के वर्तमान सभी कर्मचारियों ने किस तत्परता के साथ यहां काम किया है। चाहे हिसाब किताब की बात रही हो या पेट्रोल दिलाने का काम रहा हो या सुविधानुसार आवास स्थान के प्रबन्ध की बात रही हो अथवा फरनीचर दिलाने का काम रहा हो इन्होंने हर काम में सदा मुस्तैदी का परिचय दिया है। मैं यह महसूस करता हूं कि मुझे इनकी सेवाओं की सराहना यहां अवश्य कर देनी चाहिये क्योंकि फाइनांस कमेटी का सदस्य होने के नाते मैं जानता हूं कि इन्होंने कितनी लगन और मेहनत से यहां काम किया है। इनकी सेवाओं का उल्लेख करने में मुझे अधिक ख्याल हो रहा है उन लोगों का जिनके काम को हमने कभी देखा नहीं, जो लोग इस इमारत की ऊपर की मंज़िलों में बैठकर काम करते रहे हैं। मुझे केवल उन्हीं लोगों का ख्याल नहीं है जो काम के सिलसिले में रोज़ हमारे सामने आया करते थे।

मैं नहीं समझता कि संविधान के सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिये ज़रूरी है। इस संविधान की रचना हमी ने की है। मैं जानता हूं कि कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो इससे पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हैं। यह स्वाभाविक बात है। कोई भी संविधान देश के सभी वर्गों को खुश नहीं कर सकता है फिर भारत जैसे विशाल देश का तो कहना ही क्या है फिर भी मेरा ख्याल यही है कुल मिला कर अपना यह संविधान सन्तोषप्रद ही है न कि असन्तोषप्रद। मुझे इस बात का बड़ा विश्वास है कि मानव निर्मित अपना यह संविधान सफल ही सिद्ध होगा अगर इसे कार्यान्वित करने में लोग सच्चाई और उदारता से काम लें। संविधान की कई बातों से हो सकता कि अभी लोगों को चिन्ता होती हो। पर संविधान में ऐसी बातें हैं जिनसे इस बात की पूरी सम्भावना है कि यह संविधान लोकतंत्रात्मक ही सिद्ध होगा। पर दूसरी ओर कुछ ऐसी बातें भी हैं जो चिन्ता में डालने वाली हैं और जिनके कारण हो सकता है कि यहां का शासन सर्वेसर्वा बन जाये। इसमें सभी बातें हैं। अब यह हमारा काम है कि हम इसे जैसा चाहे बनावें। इस संविधान में लचीलापन

[श्री जयपाल सिंह]

है जिसके आधार पर हम इसे चाहे जैसा बनावें। संविधान में लिपिबद्ध किये गये शब्दों का कोई महत्व नहीं होता है। कालान्तर में चल कर महत्व रखती है वस्तुतः वह सजीवता जो हम इसमें लिपिबद्ध किये गये शब्दों को देते हैं।

मैं जानता हूं आदिवासियों से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी ऐसी बातें हैं जो संविधान में नहीं लिपिबद्ध की गई हैं। उदाहरण के लिये, हमें अभी भी यह नहीं मालूम हो पाया है कि राष्ट्रपति अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने के बारे में किस तरह काम करेगा। हमें यह नहीं मालूम है कि विभिन्न अनुसूचित जातियों की सूची किस तरह तैयार की जायेगी। हमें अभी भी इस बात का पता नहीं है कि इन क्षेत्रों का शासन केन्द्र से एक रूप में होगा ताकि जहां अनुसूचित जातियां हैं उन प्रान्तों का काम इस सम्बन्ध में विनियमित रूप में हो। इनमें किसी भी बात का उल्लेख संविधान में नहीं हुआ है फिर भी मैं पर्याप्त विश्वास के साथ यह कहता हूं कि अनुसूचित जातियों का तथा औरों के सामने सुन्दर भविष्य अवश्य आयेगा क्योंकि इस देश के भविष्य को बनाना या बिगाड़ना, इस संविधान को बनाना या बिगाड़ना हम लोगों पर निर्भर करता है। इस महत् विश्वास को लेकर ही मैं इस संविधान का सम्यक् समर्थन करता हूं।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (त्रिवांकुर राज्य): अध्यक्ष महोदय, अब हम एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य की समाप्ति पर आ गये हैं। इस संविधान को अब हम अन्तिम रूप से स्वीकार करने जा रहे हैं और एक ऐसे महान देश के लिये जिसकी परम्परा ऐसी अटूट रही है जिसका कि अन्य कम ही देश अभिमान कर सकते हैं। यह देश से एक ऐसे सुन्दर भविष्य की सतत कामना करता रहा है जो मूलाधिकारों वाले तथा राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों वाले अध्याय में लिपिबद्ध की गई हमारी आकांक्षाओं को पूर्ण कर सकता हो।

संविधान के सभी अनुच्छेदों पर हम यहां द्वितीय पठन के अवसर पर विस्तार पूर्वक सोच विचार कर चुके हैं और इनके विरुद्ध की गई सभी आलोचनाओं का जवाब उस समय डॉ. अम्बेडकर जैसे योग्य वकील ने दे दिया है। अब तो हम अपने काम की परिसमाप्ति पर पहुंच गये हैं। वयस्क मताधिकार के विरुद्ध यहां चाहे जो भी आलोचना की गई हो पर मैं तो इस व्यवस्था को संविधान का प्राण मानता हूं। इस व्यवस्था को स्वीकार करके हमने सर्वथा एक उचित और न्यायपूर्ण काम ही किया है। वस्तुतः मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा है कि अभी भी इसके विरुद्ध आपत्ति उठाई जा रही है। इस व्यवस्था को रखना न केवल लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के ख्याल से ही ठीक है बल्कि देश की स्थिति को देखते हुए भी इस व्यवस्था का रखना परमावश्यक है। आज राष्ट्र की मनोदशा क्या है इसका हमें ध्यान रखना होगा। वयस्क मताधिकार के अलावा और भी कोई व्यवस्था है क्या जो आज देशवासियों को सन्तुष्ट कर सकती है? मेरा तो यह निश्चित मत है कि संविधान के आधार के लिये इससे कम कोई बात और रखी ही नहीं जा सकती थी।

मेरे पास समय बहुत कम है और खास करके मैं केवल उन चन्द बातों को बताने के लिये ही खड़ा हूं जिनका संविधान को कार्यान्वित करने में हमें ध्यान

रखना चाहिये। मैं श्री सन्थानम से सर्वथा सहमत हूं जिन्होंने यह कहा है कि संविधान के समस्त उपबन्धों को देश को पूरी तरह समझा देना चाहिये और जहां तक हो सके जल्द से जल्द हमें चुनाव कर लेना चाहिये। संविधान में विभिन्न दोषों की चर्चा यहां की गई है पर आम तौर पर इसके बारे में यही मत व्यक्त किया गया है और मैं भी इससे सहमत हूं कि राष्ट्र के सभी कामों का नियंत्रण संविधान द्वारा जनता के हाथ में ही दिया गया है। वयस्क मताधिकार की व्यवस्था इसी लिये तो रखी गई है। पर होना अब यह चाहिये कि जल्द से जल्द चुनाव कर लेना चाहिये। इसमें अगर और देर की जाती है तो वह संकट का कारण सिद्ध हो सकती है। फिर चुनाव के सम्बन्ध में हमारे सामने बहुत सी कठिनाइयां हैं। निजी अनुभव के आधार पर मैं यह जानता हूं कि वयस्क मताधिकार के आधार पर होने वाला चुनाव क्या होता है और इस सम्बन्ध में मैं सभा को एक बात जरूर बता देना चाहता हूं। मैं जो कहने जा रहा हूं उसको लेकर किसी गलत फहमी की कोई गुंजाइश नहीं है। मैं कहने यह जा रहा हूं कि वयस्क मताधिकार के आधार पर होने वाला निर्वाचन सही सही होना चाहिये जिसमें मतदाता स्वतन्त्रतापूर्वक इच्छानुसार मतदान कर सकें। सभी दलों की राजनीतिक नेताओं को, अधिकारारूढ़ दल के नेताओं को यथाशक्ति इस बात की चेष्टा करनी चाहिये कि चुनाव बिल्कुल ठीक ठीक हो और लोग स्वतन्त्रतापूर्वक इच्छानुसार मतदान कर सकें। मैं जानता हं श्रीमान कि कांग्रेसी शासनों में भी आज चुनाव में लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक मतदान करने का मौका नहीं मिल पाता है। पूर्ववर्ती शासन के अधिकारियों के दुराचरण को अपने वर्तमान शासन के अधिकारियों ने अब विरासत के रूप में अपना रखा है। पूर्ववर्ती शासन ने तो देश के कई भागों में अपने कृपापात्र अभ्यर्थियों को जिताने के लिये हर तरह की अनुचित कारवाइयां की हैं पर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान शासन द्वारा परिचालित चुनावों में भी आज अधिकारी उसी पुरानी नीति पर अमल कर रहे हैं। चाहे जो भी अधिकारारूढ़ हों उनका यह कर्तव्य है—और केन्द्रीय शासन का विशेषरूप से यह कर्तव्य है कि वह इस बात का ख्याल रखें कि चुनाव में लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक मतदान करने का पूरा मौका मिले। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि नये संविधान के अधीन इन सब बातों को देखने का अधिकार केन्द्र को दिया गया है यानी निर्वाचन-आयोग को नियुक्त करने का अधिकार केन्द्र को दिया गया है और निर्वाचन का पूरा नियंत्रण जैसे कि निर्वाचन सूची का तैयार करना निर्वाचन सम्बन्धी वादों का निपटारा करना—यह सब काम निर्वाचन आयोग के तत्वावधान में होगा जिसकी नियुक्ति करेगा केन्द्र। संविधान बनाने में मुख्यत: इस विचार से काम लिया गया है कि जहां तक हो केन्द्र को यथासम्भव विस्तृत अधिकार प्राप्त रहें और प्रादेशिक घटकों के अधिकार यथासम्भव सीमित रहें। उस विचार धारा से मैं चाहे कितना भी असहमत क्यों न हूं पर इस बात से मैं सर्वथा सहमत हूं कि इस बात का पूरा प्रबन्ध संविधान में रहना चाहिये कि निर्वाचन सही सही हो और स्वतन्त्रतपूर्वक लोग मतदान कर सकें।

कांग्रेसी हुकूमत के खिलाफ़ तरह तरह की शिक़ायतें लोग कर रहे हैं। कांग्रेस शासन जनता के लिये कुछ नहीं कर रहा है, वह भ्रष्टाचार से अपने को ऊपर नहीं रख रहा है—इस तरह की शिकायतें आज सभी कर रहे हैं। इन सब शिक़ायतों का एक मात्र उत्तर और प्रभावोत्पादक उत्तर यही है कि शक्ति खुद जनता के हाथ में दे दी जाये और सही ढंग से दी जाये। फिर इन सभी शिक़ायतों की

[श्री ए. थानू पिल्ले]

जवाबदेही जनता पर आ जायेगी। पर यह बात तभी हो सकती है जब चुनाव निर्वाद हों। किसी दल को अधिकारारूढ़ होने के नाते जो सुविधायें प्राप्त रहती हैं शासन के अधिकार प्राप्त रहते हैं उनका रंचमात्र भी उपयोग दल को लाभान्वित करने के लिये नहीं दिया जाना चाहिये। यदि इस बात की उपेक्षा को जाती है तो लोकतन्त्र का कोई मतलब न रह जायेगा। वर्तमान शासन को वयस्क मताधिकार के आधार पर किये गये निर्वाचन के फलस्वरूप अधिकारारूढ़ हुआ नहीं है। इस लिये इसे सही माने में हम लोकशासन नहीं कह सकते हैं। हमें जल्द से जल्द वास्तविक लोकशासन की यहां स्थापना कर देनी चाहिये।

दो एक बातों की चर्चा मैं यहां और कर देना चाहता हूं। भाषा के आधार पर प्रान्तों के बनाने का जहां तक सम्भव है मेरा मत यह है—इसको आप इतना ही महत्व दें जितना इसे मिलना चाहिये—कि प्रान्तों की रचना के बारे में भाषा को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। इसमें शक नहीं कि प्रशासन के काम में भाषा का बढ़ा महत्वपूर्ण हाथ होता है पर भाषा ही वहां सब कुछ नहीं है। भाषा की ही तरह और भी बहुत सी जरूरी बातें हैं जिनका नये प्रान्त बनाते समय हमें पूरा ध्यान रखना चाहिये। उदाहरण के लिये, यहां कोचीन, ट्रावंकोर और मालाबार को मिलाकर केरल का एक नया प्रान्त बनाने का जो सुझाव रखा गया है उसके बारे में मैं सुझाव रखने वालों से यह कहूंगा कि वह इस बात पर भी विचार करें कि आर्थिक दृष्टि से इस प्रदेश को कहां तक एक ठोस घटक बनाया जा सकता है। इस प्रश्न पर आर्थिक दृष्टि से भी विचार कीजिये और यह सोचिये कि क्या ठीक यह होगा कि इन प्रदेशों को मिलाकर एक पर्याप्त साधन शून्य नया प्रान्त बनाया जाये या अगर वर्तमान प्रांतों में हेर फेर करना जरूरी हो तो यह करना ठीक होगा कि इन प्रदेशों को मद्रास प्रान्त के जिलों में मिला दिया जाये ताकि एक ठोस, मजबूत और साधन सम्पन्न राज्य दक्षिण भारत में स्थापित हो जाये। यह सुझाव यहां मैं उन सभी लोगों के विचारार्थ रख रहा हूं जिन्हें इस प्रश्न से दिलचस्पी है। अभी यह कहा जाता है श्रीमान कि तमिल लोग यह नहीं चाहते हैं कि मलयालम वाले उनके प्रान्त में रहें और मलयालम वाले तमिलों को नहीं चाहते हैं। यदि हमारी यही मनोदशा रही तो भारतीय संघ टिकेगा कैसे? भाषा के आधार पर प्रान्त बनाये जायें इस विचारधारा का परिणाम यह हुआ कि देश में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि लोग यह कहने लग गये हैं कि हम उन लोगों के साथ रह नहीं सकते हैं जो हमसे भिन्न भाषा बोलते हैं। मुझे तो कोई कारण समझ में नहीं आता है कि आखिर भिन्न भाषा भाषियों के साथ क्यों नहीं रह सकते हैं। हमारी अपनी रियासत में तमिल भी हैं और मलयाली भी हैं और दोनों का परस्पर सम्बन्ध अच्छा है। भाषावार प्रान्तों को बनाने की मांग ने अब कई कठिनाइयां पैदा कर दी हैं। इस स्थिति के लिये जो लोग जिम्मेदार हैं उनसे मैं यह कहूंगा कि वह इस प्रश्न पर और गम्भीरता से विचार करें और इसके पीछे जो कठिनाइयां हैं उनका भी वह ख्याल रखें।

अब श्रीमान, मुझे चन्द सुझाव रख देना है भाषा सम्बन्धी प्रश्न के सम्बन्ध में। मुझे बड़ी खुशी है कि संविधान में एक उपबन्ध इस आशय का रख दिया

गया है कि किसी भी राज्य में हिन्दी राजभाषा के रूप में अपनाई जा सकती है। इस सम्बन्ध में मुझे एक बात कहनी है। मैं इस उपबन्ध पर बहुत जोर देना चाहता हूं और यह सुझाव रखना चाहता हूं कि कोई प्रान्त भले ही हिन्दी भाषी न हो पर शासन सम्बन्धी प्रयोजनों के लिये प्रशासन के उच्च स्तर पर हिन्दी को ही हमें अपनाना चाहिये। राष्ट्र के राजनीतिक जीवन में अब हिन्दी को वही स्थान मिल जाना चाहिये जो अंग्रेज़ी को प्राप्त है। मैं जानता हूं कि मेरी इस राय को अहिन्दी भाषी प्रान्तों में शायद लोग स्वीकार न करें। अपनी इस राय के खिलाफ मैं प्रभावशाली व्यक्तियों को पाता हूं जिनके हाथ में आज शिक्षा सम्बन्धी कामकाज की बागडोर है और जिनका मत यह है कि प्रान्त या राज्य की भाषा ही वहां राजभाषा होनी चाहिये। मैं इन लोगों से सहमत नहीं हूं। मैं यह चाहता हूं कि जब अंग्रेज़ी को हटाना है तो उसकी जगह हिन्दी को ही हमें स्थान देना चाहिये। अंग्रेज़ों से हमारा कितना ही मतभेद क्यों न रहा हो तो हमें यह बात न भूलनी चाहिये कि उन्होंने हमारा एक बड़ा भारी उपकार किया है। हम यहां आज क्यों कर समवेत हुए हैं? आप यहां मेरी बात क्यों कर समझ रहे हैं और आपकी बात को मैं क्यों कर समझने में समर्थ हो रहा हूं? इसका कारण यह है कि हम सबने यहां एक भाषा अपना रखी है, हम सब अंग्रेजी के जरिये ही अपना विचार व्यक्त कर रहे हैं। मैं यह सोच रहा हूं कि अब हमें अंग्रेज़ी का स्थान एक भारतीय भाषा को देना चाहिये और वह भाषा एक मात्र हिन्दी ही हो सकती है। अत: अंग्रेजी का स्थान अब हिन्दी को मिलना ही चाहिये। आप खुद विचार कीजिये श्रीमान, कि आगे चलकर हमें कितने ऐसे प्रश्नों पर विचार करना होगा जो हम सबके लिये समान रूप से आवश्यक होंगे। अगर ट्रांवकोर या तामिलनाड से कोई आदमी किसी काम के सिलसिले में आता है तो उसे हिन्दी जाननी ही होगी। चाहे किसी अनुसंधान संस्था से सम्बन्धित किसी सभा के प्रसंग में या किसी भारतीय सम्मेलन के प्रसंग में कोई यहां आवे, अगर उसे सभा की कारवाई में भाग लेना है तो उसे हिन्दी जानना ही होगा। इसी तरह हजारों ऐसी और बातें हैं जो समस्त राष्ट्र के लिये समान रूप से आवश्यक हैं और समस्त राष्ट्र को उन पर विचार करना होगा। विधान मण्डल में ऐसे ही सदस्य होने चाहिये जो हिन्दी जानते हों। तामिलनाड के विधान मण्डल का काम आखिर किस जुबान में होगा? हर आदमी हिन्दी को सीख क्यों न ले? समस्त देश में हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य हो जानी चाहिये। जो भी हो अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी अब प्रतिष्ठित हो ही जानी चाहिये। मैं यह नहीं चाहता हूं कि अंग्रेज़ी को बिल्कुल हटा ही दिया जाये। हमारे बच्चे हिन्दी अंग्रेजी और अपनी जुबान इन तीनों को ही सीखने का सामर्थ्य रखते हैं। मेरा अपना मत तो यही है। कुछ लोगों का यह कहना है कि तामिलनाड में अगर प्रशासन का काम तामिल भाषा में नही चलाया जाता है तो वहां के ग्रामीण आपकी बात समझेंगे नहीं और प्रान्त का शासन चलाना असम्भव हो जायेगा। मैं इससे सहमत नहीं हूं। जहां तक ग्रामीणों का सवाल है आप उनके लिये उस भाषा में आदेश या अनुदेश निकाल सकते हैं जिसको वह जानते हैं। किन्तु जहां तक कि प्रान्तीय सचिवालय में उच्च स्तर पर होने वाले प्रशासन सम्बन्धी कामों का सम्बन्ध है, वहां हमें हिन्दी का ही प्रयोग करना चाहिये। अन्यथा समस्त देश एक असुविधा में पड़ जायेगा और उसके सामने बड़ी कठिनाइयां आ जायेंगी जिनके फलस्वरूप शासन का चलना बिल्कुल असम्भव सा हो जायेगा। इस प्रश्न पर मैं और भी बहुत कुछ कह सकता था पर आपके आदेश के विरुद्ध मैं जाना नहीं चाहता हूं श्रीमान।

[श्री ए. थानू पिल्ले]

एक और बात का मैं यहां जिक्र कर देना चाहता हूं, केन्द्र को बड़े व्यापक अधिकार दिये गये हैं। निजी तौर पर मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि केन्द्र को आवश्यकता से अधिक अधिकार दे दिया गया है। जो लोग कि इस बात के लिये जिम्मेदार हैं उनके मन में यह विश्वास जरूर रहा होगा कि केन्द्र तो कभी गलती न करेगा और उससे कभी चूक न होगी पर प्रान्त सम्भवतः सदा ही ग़लती करेंगे। इसी विश्वास के आधार पर ही केन्द्र को उतने व्यापक अधिकार दिये गये हैं। पर मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। अपनी सभी बातों की देखभाल प्रान्त भी उसी तरह कर सकते हैं जिस तरह कि केन्द्र अपनी बातों की। यह तथ्य की बात है जिसे हमें मानना ही होगा।

बस एक या दो बातों का मैं और जिक्र करूंगा। विधि निर्माण के प्रश्न को आप लीजिये। सभी आवश्यक विषयों के बारे में, चाहे वह विषय समवर्ती सूची में हों या केन्द्रीय सूची में प्राधान्य प्राप्त रहेगा केन्द्रीय विधि को ही। यह बात मैं सभा की निगाह में ला देना चाहता हूं तथा उन लोगों की निगाह में ला देना चाहता हूं जिन पर आगे चल कर विधि निर्माण की जिम्मेदारी आने वाली है कि देश के कुछ भाग ऐसे हैं जहां देश के शेष भागों की अपेक्षा या बड़े बड़े प्रान्तों की अपेक्षा कई दिशाओं में अधिक प्रगति हो चुकी है। उदाहरण के लिये मैं यही बता दूं कि ट्रावन्कोर राज्य में मृत्यु दण्ड पहले ही उठा दिया जा चुका है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर सभा को गम्भीरता से विचार करना चाहिये। 26 जनवरी सन् 1950 को ट्रावन्कोर राज्य में हत्या का अपराधी अभियुक्त फांसी पर लटका दिया जा सकता है। 26 जनवरी के पहले वह मृत्यु दण्ड से मुक्त था। हत्यारे को सहायता देने के लिये मैं यह नहीं कह रहा हूं। हमने जो कानून वहां अपनाया है वह सर्वथा मानवतापूर्ण कानून है और उसके पक्ष में एक प्रबल मत है। सवाल यह है तो क्या हम सब पीछे की ओर चलें? ऐसी स्थिति में वहां हम हत्यारे को फांसी लटकाने के सिवा और कर क्या सकते हैं? 26 जनवरी को वहां हमें ऐसे अपराधी को फांसी लटकाना ही होगा। जो बात मैं आप लोगों के ध्यान में लाना चाहता हूं वह यह है कि देश के छोटे से छोटे प्रदेश में भी जो प्रगति हो चुकी हो उसका हमें ध्यान रखना चाहिये और ऐसा कोई कानून न बनने देना चाहिये जो किसी हुए अच्छे काम को व्यर्थ कर दे। एक-रूपता के लिये पश्चात् गति का मार्ग अपनाना ठीक नहीं होगा। यदि देश के किसी भाग ने किसी दिशा में प्रगति का उच्चतम स्तर प्राप्त कर लिया है तो देश के शेष भागों को भी हमें उसी स्तर पर ला देने की चेष्टा करनी चाहिये। उस प्रसंग में मैं एक और बात का भी उल्लेख कर देना चाहता हूं। यह उल्लेख इस समय विशेष रूप से प्रासंगिक होगा इसलिये कि अभी हिन्दू कोड विधान-मंडल के विचाराधीन है। हमारे प्रदेश में मैसभारथामियों की जो स्वीय विधियां हैं, पारिवारिक विधियां या वैवाहिक विधियां है वह ऐसी हैं...।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रासः जनरल): इस समय यहां हिन्दू कोड बिल पर हम नहीं विचार कर रहे हैं।

***श्री ए. थानू पिल्लेः** मैं उस बिल पर नहीं बोल रहा हूं। बिल का उल्लेख मैं कर रहा हूं अपनी एक बात का खुलासा करने के लिये और मैं समझता हूं

बिल्कुल कायदे के अन्दर हूं। मैं कहना यह चाहता था कि जीवन की अर्वाचीन कल्पना को देखते हुए हमारे प्रदेश में प्रचलित विधियां अधिक प्रगतिशील हैं और हम अब अगर प्राचीन हिन्दू कानून की अपनाते हैं जो धर्म के संकीर्ण आधार पर बनाई गई हैं तो इसका परिणाम बड़ा दुखद ही होगा। यदि आप समस्त देश के लिये एक व्यवहार-संहिता रखना चाहते हैं तो वह संहिता ऐसी होनी चाहिये जो जीवन सम्बन्धी अर्वाचीन कल्पना से सर्वथा संगत होनी चाहिये। हमारे प्रदेश में नारी समाज सर्वथा स्वतन्त्र है। हमारे जो विवाह सम्बन्धी कानून हैं वह समाज की आधुनिक स्थिति से समाज की आधुनिक समुन्नत कल्पना से सर्वथा संगत हैं। फिर ऐसी स्थिति में जीवन सम्बन्धी उन प्राचीन कल्पनाओं को अपनाना जो आधुनिक जगत को अमान्य है क्या हमारे लिये ठीक होगा? मैं यही चाहता हूं कि प्रश्न के इस पहलू पर भावी विधानमण्डल विचार करे। मैं यह हिन्दू कोड बिल पर विचार करना नहीं चाहता हूं। इतना अनुभव मैं रखता हूं कि यह समझ सकूं कि यहां इस बिल पर नहीं विचार किया जा सकता है। श्री भारती को यह बात मालूम हो जानी चाहिये।

राज्यों के काम में केन्द्र को हस्तक्षेप करने का जो बहुत अधिकार दिया गया है उसके बारे में मुझे एक बात कह देनी है। इस बात से मैं सर्वथा सहमत हूं कि केन्द्र को शक्ति सम्पन्न रखना चाहिये। पर केन्द्र की शक्ति इस बात पर नहीं निर्भर करती है कि कितने अधिक विषय उसके अधिकार में हैं बल्कि निर्भर करती है इस बात पर कि केन्द्र जो कुछ करता है उसमें प्रान्त या राज्य स्वेच्छा से कितना सहयोग देते हैं और स्वेच्छा से कहां तक उसको स्वीकार करते हैं। प्रान्तों या घटकों की गर्दन दबा कर आप उनसे उनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग नहीं पा सकते हैं। और न उनसे आजानुवर्तन करा सकते हैं। यह सब तो आपको तभी मिल सकता है जब आप उनको अपना विकास करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता दें। राज्यपालों की नियुक्ति के सम्बन्ध में भी, मेरा ख्याल यह है कि हमने गलती की है। राज्यपाल तो वस्तुतः एक नाममात्र का पदाधिकारी होगा। उसको चुनने का काम हम प्रान्त पर ही छोड़ सकते थे।

मैं सभा का और अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। मैं यही आशा करता हूं कि संविधान के समस्त उपबन्ध को इस तरह से कार्यान्वित किया जायेगा कि यथाशक्य कम से कम विग्रह पैदा होगा और प्रान्त ऐसा अनुभव करने लगेंगे कि अपना विकास करने की पूरी स्वतन्त्रता उनको प्राप्त है। मुझे विश्वास है कि प्रान्तों में इस तरह की अनुभूति लाने का केन्द्र पूरा ख्याल रखेगा और कोशिश करेगा।

केन्द्र पर अनेक कर्तव्यों का भार डाला गया है। आज ही समाचार पत्र में मैंने पढ़ा है कि जहां तक लोक-स्वास्थ्य का सम्बन्ध है एक अकेले यक्ष्मा के निवारण का काम शुरू करने के लिये माननीय राजकुमारी अमृत कौर चार सौ करोड़ रुपये चाहती हैं और इस काम में सालाना खर्च लगेगा करीब एक सौ करोड़ रुपया। इसके अलावा मलेरिया तथा अन्य सैकड़ों बीमारियां हैं जिनको रोकने का काम करना होगा। शिक्षा को ही लीजिये। यह कितना जरूरी काम है। हमें देश के सभी बालकों को शिक्षित करना है क्योंकि वयस्क मताधिकार की व्यवस्था हम चालू करने जा रहे हैं। इसके लिये हमें एक बहुत बड़ी रकम खर्च करनी होगी। घटकों के वित्तीय साधनों को चरण सीमा तक कम कर दिया गया है। वह कोई

[श्री ए. थानू पिल्ले]

नया कर तक नहीं लगा सकेगा। नया कर केवल केन्द्र ही लगा सकता है। ऐसी हालत में यह केन्द्र का कर्तव्य है कि वह इस बात की कोशिश करे कि देश का विकास हो। संविधान सभा ने केन्द्र पर इतना भार लाद दिया है कि उसका वहन करना उसके लिये कठिन हो जायेगा। संविधान के उपबन्धों का यही परिणाम होगा। जब राज्यों के वित्तीय साधनों को इस तरह कम कर दिया गया है, जब उन सभी साधनों को जिन पर नया कर लगाकर आय बढ़ाई जा सकती है, केन्द्र के हाथ में रख दिया गया है तो राज्यों से यह कैसे कहा जा सकता है कि वह उद्योगों का विकास करें, कृषि का विकास करें, शिक्षा का प्रसार करें, लोक स्वास्थ्य को समुन्नत करें और मजदूरों की दशा सुधारें? सभी साधन तो केन्द्र के हाथ में दे दिये गये हैं। फिर यह केन्द्र का कर्तव्य हो जाता है कि देश के सर्वोमुखी विकास के लिये निधि का प्रबन्ध करे। आशा है कि केन्द्र अपने दायित्व का वहन करने में सफल होगा और देश क्रमशः उन्नति के शिखर पर चढ़ता जायेगा तथा अपना यह संविधान भारत को वैभव सम्पन्न बनाने में सर्वथा सहायक सिद्ध होगा।

बस मुझे एक बात और कहनी है श्रीमान। इस संविधान की आलोचना में यह कहा जाता है कि यह लचीला नहीं है। पर यह बात नहीं है। हां यह जरूर है कि संविधान के कई उपबन्धों को और अच्छे रूप में लिपिबद्ध किया जा सकता था। दैहिक स्वातन्त्र्य के बारे में भी, मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 22 में विधि बनाने का अधिकार दिया है केन्द्रीय विधानमण्डल को। आप जैसा चाहें कानून पास कर सकते हैं। पर मैं इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि कई बातों के बारे में संविधान में संशोधन करने के लिये, केन्द्रीय विधान मण्डल के दो तिहाई बहुमत को तथा राज्यों के विधान-मण्डल के बहुमत को जरूरी ठहराया गया है। किस तरह इन उपबन्धों पर अमल किया जायेगा, किस तरह ये विग्रह को बचायेंगे और किस तरह सुचारू रूप से इनको काम करने दिया जायेगा, यह बहुत कुछ निर्भर करता है केन्द्र तथा घटकों के पारस्परिक सहयोग की भावना पर।

अब अन्त में मुझे यह कहना है श्रीमान, कि सभा की कार्रवाई को देखते हुए मैं यह जरूर कहूंगा श्रीमान कि मुझे आश्चर्य हो रहा है आपकी धीरता पर जिसका कि आपने सभा के कार्य संचालन में परिचय दिया है। एक असम्भव बात ही यहां क्यों न उठाई गयी हो पर अगर वह नियमानुसार यहां उठाई जा सकती थी तो आपने उस पर भी सभा की राय ली है। इस सीमा तक आपने यहां अपनी धीरता का परिचय दिया है। मैं उन लोगों को भी धन्यवाद दूंगा जिन्होंने संविधान की रचना का काम किया है। मैं धन्यवाद देता हूं डॉ. अम्बेडकर और श्री अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर को उनकी योग्यता के लिये, मैं धन्यवाद देता हूं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को, श्री सन्थानम को तथा औरों को उनकी लगन के लिये जिसके साथ कि संविधान निर्माण का काम किया है। मैंने चन्द नामों का ही यहां उल्लेख किया है पर इसका मतलब यह नहीं है कि और नाम उल्लेखनीय नहीं है। संविधान निर्माण के काम में दिलचस्पी रखने वाले सभी सदस्यों ने अपना काम सुचारू रूप से किया है। हम लोगों को यही आशा करनी चाहिये कि इतिहास में इस अवसर का उल्लेख स्वर्णाक्षरों में किया जायेगा और यह कहा जायेगा कि यह संविधान देश को वैभव और प्रतिष्ठा, सुख और समृद्धि तथा शांति और सन्तोष

प्रदान करने में सर्वथा सहायक सिद्ध हुआ। हमें सदा कृतज्ञतापूर्वक याद रखना चाहिये उस महापुरुष को जो यद्यपि पार्थिव रूप से हमारे बीच मौजूद नहीं है पर वस्तुतः अपने लेखों और भाषणों द्वारा तथा उस नवप्रेरणा और नवविचार द्वारा जिसका उसने समस्त देश में और सारी दुनिया में अपने आदर्शमय जीवन द्वारा प्रसार कर रखा था, आज भी हमारे भाग्य का निर्माण कर रहा है। आइये हम सब यही प्रयास करें कि दुनिया के देशों में शान्ति और सद्भावना स्थापित करने का श्रेय हमारे देश को प्राप्त हो जाये।

***श्री ओ.वी. अलगेशन** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदा समिति को तथा अन्य सभी लोगों को जिन्होंने संविधान रचना के काम में योगदान दिया है, यहां जो धन्यवाद दिया गया है वह ठीक ही दिया गया है। ये सभी लोग हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। अब हमें इस बात का मौक़ा न मिल सकेगा कि डॉ. अम्बेडकर को यहां अपनी बुलन्द आवाज में संविधान के उपबन्धों पर सहज बोधगम्य रूप से समझाते हुए सुनें और न इस प्रसंग में श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की ही तीव्र पर सुमधुर आवाज सुनने को हमें अब मिलेगी जिसकी संविधान-निर्माण सम्बन्धी देन को सभी स्वीकार करते हैं।

संविधान के विरुद्ध एक आलोचना यह भी की गई है कि यह बहुत लम्बा हो गया है। किसी एक नमूने को लेकर चलने में सुविधा होती है तो असुविधा भी होती है। सुविधा यह होती है कि इससे हमें एक रास्ता मिल जाता है। इसमें असुविधा यह होती है कि इससे कुछ हद तक हम बंध जाते हैं और उस हद तक हमारी मौलिक गति भी अवरुद्ध हो जाती है। इसमें शक़ नहीं कि भारत-शासन अधिनियम को ही नमूना मान कर हमने संविधान की रचना की है और यह कहना गलत नहीं होगा कि अपना संविधान इस अधिनियम का ही एक भव्य संस्करण है। हां, इतना अन्तर अवश्य कर दिया है कि इस अधिनियम के अधीन सारी सत्ता निहित थी अंग्रेज़ों के हाथ में पर इस संविधान के अनुसार अब हमी लोग सारी बातों के मालिक हैं। हमारे देश में लोग रामायण और महाभारत जैसे महा काव्य पढ़ने के आदी हो गये हैं। सुतरां अपने संविधान को महाग्रंथ बनाने के लिये ही हमने अपनी परम्परा का ही पालन किया है। यदि अनुमति हो तो मैं कहूं कि इस इस लेख को लम्बा बनाने के लिये कुछ हद तक मसौदा समिति ही जिम्मेदार है। उन्होंने बुद्धिमत्ता इसी में समझी कि सभी बातों के लिये संविधान में ही उपबन्ध दिया जाये और आगे आने वाली सन्ततियों के ऊपर कुछ न छोड़ा जाये। उन्होंने इस बात की कोशिश की कि भविष्य में उठ सकने वाली सभी सम्भाव्य कठिनाइयों के लिये संविधान में उपबन्ध रख दिया जाये। उस कलाकार की तरह जो एक पूर्ण चित्र तैयार करने के लिये खाक़ा खींचता है और बार-बार उसमें कांट छांट करता है, मसौदा समिति ने भी, संविधान को पूर्ण बनाने के अभिप्राय से इसके मसौदे में बार-बार जोड़ घटाव और संशोधन किया है और ऐसा करने में सभा की ढिलाई से उसे बड़ा प्रोत्साहन मिला है। इन्हीं सब बातों का यह फल है कि इतना वृहत् संविधान हमें दिया गया है जिसमें विस्तार की बहुत सी बातें शामिल कर ली गई हैं जिनको कि हम भावी संसद पर आसानी से छोड़ सकते थे।

फिर एक आलोचना यह भी की गई है कि संविधान बनाने में हमने बड़ा समय लिया है। यह शिकायत सही नहीं है। यदि हम केवल उन्हीं दिनों को गिनें

[श्री ओ.वी. अलगेशन]

जितने दिन कि सभा की बैठक हुई है तो आप यह देखेंगे कि इस काम में कत्तई समय व्यर्थ नहीं गया है। पर अगर किसी को इतने पर भी इस बारे में कोई सन्देह है तो मैं उनसे यही कहूंगा कि पाकिस्तान के संविधान को याद कीजिये। हमसे कुछ ही अरसा बाद उन्होंने भी संविधान-निर्माण का काम प्रारम्भ किया था। उन्होंने अब तक कोई प्रगति नहीं कर पाई है जब कि हमने अपना संविधान तैयार कर लिया है और उसे लागू करने जा रहे हैं। इसे अलावा एक और भी जरूरी बात है जिसके लिये इस अवधि को जो कि संविधान तैयार करने में हमने लगाया हम लम्बी अवधि नहीं कह सकते हैं जैसा कि एक वक्ता ने बताया है इस तीन साल के अन्दर यहां समय स्थिर नहीं रहा है। बड़े बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन या द्रुतपरिवर्तन—जैसा कि हमारे प्रधान मन्त्री जी कहा करते हैं—यहां इस बीच में होते रहे हैं। जब भारतवर्ष हमें सौंपा गया था उस समय राजनीतिक दृष्टि से वह एक नहीं था। उसी समय से देश के राजनीतिक एकीकरण का वृहत् कार्य इसके आर्थिक एकीकरण का सुदीर्घ कार्य प्रारम्भ किया गया है और आज भी यह काम जारी है। अतः संविधान निर्माण के साफल्य का श्रेय हमारे नेताओं को मिलना ही चाहिये और इसके लिये वस्तुतः वह हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

इन सभी बातों पर विचार करते हुए कोई भी यह नहीं कह सकता है कि संविधान तैयार करने में हमने आवश्यकता से अधिक समय लिया है और फिर संविधान ऐसा होना चाहिये जिसमें उसके निर्माण से पूर्व होने वाली क्रांति की भावनाओं को स्थान दिया गया हो और उनको सुरक्षित रखा गया हो। जहां तक अपने संविधान का सम्बन्ध है इसमें न केवल पूर्ववर्ती क्रान्ति की भावनाओं को स्थान ही दिया गया है बल्कि संविधान निर्माण काल में जो क्रांतिकारी परिवर्तन यहां होते रहे हैं उनको भी संविधान में एक सुव्यवस्थित रूप में शामिल कर लिया गया है। इसलिये, इस बात को देखते हुए तो अपना सर्वथा एक बेजोड़ संविधान है। इस संविधान पर हम गर्व कर सकते हैं।

इस समय जबकि इस संविधान को पाने पर सारा देश हर्ष मना रहा है, मैं सभा से यह अनुरोध करूंगा कि वह देशस्थित छोटे छोटे विदेशी इलाकों की तरफ भी ध्यान दे जो देश के राजनीतिक नक़शे को कुरूप किए हुए हैं। इन इलाक़ों में रहने वाले लोग हमारे ही भाई बहिन हैं और आज जब सारा देश हर्ष मना रहा है ये लोग इस खुशी में हिस्सा बटाने में असमर्थ हैं। एक कृत्रिम दीवार खड़ी करके इनको हमसे पृथक् कर दिया गया है। इन विदेशी इलाक़ों को संविधानाधीन लाने के लिये अगर मुझ से महीने तक और प्रतीक्षा करने को भी कहा जाये तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूंगा और यह समय व्यर्थ न जायेगा। पर ऐसा होगा नहीं। हमें इसके लिये अभी और प्रतीक्षा करनी होगी। इस समय हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि हमारे नेता जिनको अनेक साफल्य पाने का श्रेय प्राप्त हो चुका है इस प्रश्न को भी अविलम्ब हाथ में लेंगे और हमारे सन्तोषानुकूल एक समाधान निकालेंगे तथा हम भारतीयों को पृथक करने वाली इस कृत्रिम दीवार को वह खत्म करने की कोशिश करेंगे।

संविधान के विरुद्ध एक दूसरी गम्भीर आलोचना यह की गई है कि इसके अधीन अपना राज्य लोकतन्त्रात्मक से डिक्टेटर प्रधान बन जायेगा। इस तरह की

कल्पना का मैं तो कोई कारण नहीं देख पाता हूं। हमारा अपना अनुभव तो इस आशंका को मिथ्या ही सिद्ध करता है। हम यह देखते हैं कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों ही विधान मण्डलों में केवल एक दल—कांग्रेस दल का ही प्राधान्य है। विधान मण्डलों में कोई ऐसा विपक्षी दल संगठित नहीं हो पाया है जिसे विपक्षी दल की संज्ञा दी जा सके। विधान मण्डलों के बाहर, देश में जो विरोधी दल हैं वह बड़े ग़ैर जिम्मेदाराना ढंग से काम कर रहे हैं। एक दल, जो हिंसा और तोड़फोड़ के सिद्धान्त को अपनाये हुए है वह देश में अव्यवस्था पैदा करना चाहता है इस उद्देश्य से कि वह किसी तरह अधिकारारूढ़ हो जाये। एक दूसरा दल जो हिंसा को तो नहीं अपनाता है पर चूंकि उसे इस बात का पक्का विश्वास है कि निकट भविष्य में इसकी कत्तई कोई आशा नहीं है कि शासन की बागडोर संभालने का भार उसको सौंपा जा सकेगा, इसलिये वह तरह तरह के बड़े बड़े अव्यावहारिक नारे लगा कर बड़ी बड़ी दिखावटी बातें कह कर जनता को गुमराह करने की कोशिश कर रहा है। ऐसी स्थिति में कांग्रेस के सामने यह बड़ा प्रलोभन अवश्य है कि उसका दल डिक्टेटर की तरह शासन करे। पर वस्तुतः हम क्या देखते हैं? क्या कांग्रेस दल डिक्टैटरी आचरण कर रहा है? नहीं। बिना किसी खण्डन की आशंका के हम यह कह सकते हैं कि देश में अगर कोई दल है जिसने इतनी शक्ति रखने पर भी दूसरों के दृष्टिकोण का ख्याल रखा है और उनको माना भी है तो एक मात्र कांग्रेस दल ही है। इस देश में हमारे नेताओं की बात को जनता श्रद्धा से मानती है। दूसरे किसी देश में नेताओं को जनता का न इतना समर्थन प्राप्त है और न इतनी श्रद्धा। जनता उनकी बातों को मानती है। हमारे नेता अगर चाहते तो आसानी से यहां अपनी डिक्टैटरी व्यवस्था चला सकते थे और अगर उन्होंने ऐसा किया होता तो उस पर देश में विशेष आपत्ति भी नहीं उठती। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। उनका आचरण सदा लोकतन्त्रात्मक ही रहा। मैं कहता हूं कि अपने संविधान के लिये, देश की लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था के लिये यह एक शुभ लक्षण की बात है। इस संविधान के अधीन अपने लोकतंत्र को किसी तरह का कोई खतरा नहीं आ सकेगा। और न डिक्टेटरी शासन का हमें डर हो सकता है। इस तरह की आशंका का कत्तई कोई कारण नहीं है। आखिर यह तो कोई भी नहीं कह सकता है कि संविधान में लिपिबद्ध किये गये शब्दों द्वारा लोकतन्त्र को सुरक्षा मिल ही जायेगी। अपने कथन की पुष्टि के लिये मैं आपके सामने केवल एक उदाहरण उपस्थित करता हूं। ब्रिटिश भारत और फ्रांसीसी भारत दोनों ही स्थानों में लोकतंत्रात्मक चुनाव अतीत में हुए हैं। यहां तत्कालीन शासन का विपक्षी दल चुनाव में जीत गया और विधान मण्डलों में उसे बहुमत प्राप्त हुआ। किन्तु फ्रांसीसी भारत में उस दल को जिसे तत्कालीन शासन का समर्थन प्राप्त नहीं था एक भी सीट नहीं मिल पाई। चुनाव का फैसला दोनों ही स्थानों पर वोटों से ही किया गया था पर एक जगह के विपक्षी दल बहुमत से जीता और दूसरी जगह के विपक्षी दल को एक जगह भी नहीं मिल पाई इसलिये यह बात नहीं कही जा सकती है कि संविधान में जो कुछ लिपिबद्ध किया गया है वह लोकतन्त्र को रक्षित ही रख सकेगा। लोकतन्त्र की सुरक्षा अधिक निर्भर करती है इस बात पर कि किस तरह और किस भावना के साथ उसे अमल में लाया जाता है न कि इस बात पर कि संविधान में उसके लिये परित्राण कितने रखे गये हैं। इस दृष्टिकोण से विचार करते हुए हम साहस से यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत संविधान के अधीन लोकतंत्र के संकट में पड़ने की कतई कोई गुंजाइश नहीं है। इस संविधान के अधीन यहां की लोकतंत्रीय व्यवस्था ठीक तरह से चलेगी। यह तो कोई कह नहीं सकता है कि यह संविधान सर्वथा पूर्ण ही है। कोई भी

[श्री ओ.वी. अलगेशन]

संविधान पूर्ण नहीं हो सकता है और मैं तो यहां तक कहूंगा कि किसी भी संविधान का पूर्ण होना अपेक्षित भी नहीं है। सब कुछ निर्भर करता है इस बात पर कि संविधान पर अमल किस तरह किया जाता है। भोजन सुस्वादु है या नहीं इसका पता तो खाने से ही चल सकता है।

संविधान के विरूद्ध एक दूसरी आलोचना यह भी की जाती है कि इसमें ग्रामों को राजनीतिक इकाई नहीं माना गया है। मेरा ख्याल तो यह है वयस्क मताधिकार की व्यवस्था में अविश्वास का होना ही इस आलोचना का मुख्य कारण है। ग्रामों को इकाई बनाने की बात इसीलिये तो सोची गई थी कि गांव के मतदाता अपनी अपनी पंचायत का चुनाव करें और इन पंचायतों के सदस्य ही केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान मण्डलों के चुनाव में मतदान करें? किन्तु अब यह किया गया है कि गांवों के मतदाता ही सीधे अपने प्रतिनिधि चुनेंगे और खुद वही सभी मसलों को सोच समझ कर चुनाव का फैसला करेंगे। ग्राम इकाइयां पंचायत का चुनाव करें और पंचायर्तो के सदस्य विधान मण्डलों के लिये प्रतिनिधि चुनें यह व्यवस्था तो अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था होगी और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इस व्यवस्था से कहीं अधिक प्रगतिशील व्यवस्था है वह जो अब संविधान में रखी गई है। संविधान के विरुद्ध यही शिकायत नहीं की गई है। इसके विरुद्ध यह भी कहा गया है कि संविधान पर देश की संस्कृति की छाप नहीं पड़ी है। मैं नहीं समझ पाया हूं कि इस शिकायत का ठीक ठीक मतलब क्या है। यदि देश की संस्कृति की छाप का ही आपको इतना ख्याल है तो यहां संस्कृति से केवल राजतंत्र ही सदा अभिप्रेत रहा है। इस देश में सदा राजतंत्रीय व्यवस्था ही प्रचलित रही है। किन्तु आज के जमाने में गम्भीरता पूर्वक कोई यह सुझाव नहीं रखेगा। कि हम राजतंत्रीय व्यवस्था की ओर अब वापस चलें। तथ्य यह है कि इस व्यवस्था के जो भी चिन्ह यहां बच गये हैं उन्हें हम हटा देने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिये यह शिकायत कि संविधान पर देश की संस्कृति की छाप नहीं पड़ी है बिल्कुल निरर्थक है। वस्तुतः इस अभियोग में भावुकता ही भावुकता है सार की कोई बात नहीं है। कोई भी देश इस बात का दावा नहीं कर सकता है कि धर्म दर्शन, राजनीति और समाज विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में वह सभी विचारों का आविष्कार कर चुका है। आखिर हर देश अपने ढंग से महान होता है और हर देश को दूसरे देशों से कुछ न कुछ अच्छी बात ग्रहण करनी ही पड़ती है। जिस तरह कि पाश्चात्य देशों को हमसे हमारे प्राचीन महर्षियों के धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी विचारों को ग्रहण करना पड़ता है उसी तरह हमें भी अन्य देशों से राजनीति और समाज विज्ञान सम्बन्धी पद्धतियों को ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करने में कोई खराबी नहीं है।

संविधान के विरुद्ध एक दूसरा आरोप यह भी लगाया गया है श्रीमान कि यह प्रतिबन्धों और परिमाणों से भरा हुआ है, यह व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को कम करता है तथा प्रादेशिक इकाइयों के स्वातंत्र्य परिसीमित करता है। मैं इन प्रतिबन्धों को इस दृष्टि से नहीं देखता हूं। ये परिमाण संविधान में केवल चार दीवारी के रूप में रखे गये हैं इस अभिप्राय से कि अपनी नवप्राप्त स्वतन्त्रता और अपना नवजात लोकतन्त्र भयंकर पशुओं से सुरक्षित रह सके। आखिर चीता तो यह नहीं कह सकता है कि उसे इस बात की आजादी मिलनी चाहिये कि वह भेड़ों को मार

सके। जो यह नारा उठाया जाता है कि नागरिक स्वातन्त्र्य खतरे में है और इन प्रतिबंध मूलक उपबन्धों का इसके लिये हवाला दिया जाता है उसका यही जवाब मैं देता हूं। मेरे लिये तथा अनेक अन्य लोगों के लिये, जिन्हें यह अनुभव मिल चुका है नजरबन्दी क्या होती है, निवारक निरोध सम्बन्धी अनुच्छेद को स्वीकार करना है तो बड़ी जिल्लत की ही बात पर हमें यह भरोसा करना चाहिये कि इन उपबन्धों का बहुत कम ही प्रयोग किया जायेगा और उनको प्रयोग में लाने की तभी जरूरत समझी जायेगी जब कि कोई गम्भीर आपात की दशा उत्पन्न हो गई हो जिसमें समस्त समाज की स्थिरता ही विध्वंसक शक्तियों द्वारा संकट में पड़ गई हो।

इस संविधान में अपने धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र की बुनियाद एक सुदृढ़ और सही नींव पर रखी गई है। अगर हम अपने प्रति, अपनी परम्परा के प्रति तथा अपने नेता महात्मा गांधी के सच्चे हैं तो हम विश्वास के साथ यह भरोसा कर सकते हैं कि उत्तरोत्तर हम समुन्नति करते जायेंगे और अपनी प्राचीन भूमि के लिये इस संविधान को प्रस्तुतः एक वरदान सिद्ध कर सकेंगे।

***अध्यक्षः** सभा की बैठक स्थगित करने से पहले मैं सभा को आगे के कार्यक्रम के बारे में एक आभास दे देना चाहता हूं। दोपहर बाद आज सभा दो घंटे के लिये बैठेगी और जिन सदस्यों को बोलने का मौक़ा नहीं मिला है आशा है वह उपस्थित होकर इस अवसर का उपयोग करेंगे। कल मध्यान्ह काल में तीन या साढ़े तीन बजे डॉ. अम्बेडकर बोलेंगे और इसके पहले मसौदा समिति का एक सदस्य थोड़ा समय लेंगे उन बातों का जवाब देने में जो बहस मुबाहिसे के दौरान में यहां उठाई गई हैं। बाकी समय सदस्यों को दिया जायेगा। आशा है आज दोपहर से लेकर कल तक जो भी समय मिल सकेगा उसमें सभा उन सब लोगों को बोलने का मौक़ा देने की सुविधा मुझे देगी जिन्होंने इसके लिये अपने नाम मेरे पास भेजे हैं। यह सम्भव है अगर सदस्यगण बोलने में उसी तरह औचित्य से काम लें जिस तरह कि उन्होंने आज किया है।

उसके बाद शनिवार को सवेरे मैं इस प्रस्ताव पर मत लेना चाहता हूं। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर यहां सदस्यों के सामने मैं संविधान पर हस्ताक्षर करके उसके प्रमाणीकरण के कार्य को सम्पन्न करूंगा। पर प्रस्ताव पर मत देने से पहले अगर सदस्यों ने अनुमति दी तो चन्द शब्द मैं कहना चाहूंगा।

अब सभा स्थगित होती...

***श्री लक्ष्मी कान्त मैत्रः** (पश्चिमी बंगालः जनरल): संविधान के प्रमाणीकरण का अर्थ यही तो है कि उस पर सभी सदस्यों के हस्ताक्षर हो जायें?

***अध्यक्षः** नहीं यह बात नहीं है। मैं समझा देता हूं। संविधान में कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं जो उसके स्वीकृत होते ही सद्य प्रभावी हो जायेंगे और शेष सभी अनुच्छेद प्रभावी होंगे 26 जनवरी को। इसलिये, ताकि उन अनुच्छेदों के अधीन काम किया जा सके जो संविधान के स्वीकृत होते ही प्रभावी होते, मुझे कल दोपहर को ही संविधान के प्रमाणीकरण का काम पूरा कर देना होगा और इसे कल दोपहर को कर दूंगा।

[अध्यक्ष]

विचार यह किया जा रहा है कि सभा का दूसरा सत्र 24 या 25 जनवरी को बुला लिया जाये। उसी दिन राष्ट्रपति का चुनाव किया जायेगा और सभी सदस्यों से मैं संविधान पर हस्ताक्षर करने को कहूंगा। विचार यह है कि उस दिन संविधान बिलकुल ऐसी सूरत में तैयार रहे कि सभी सदस्य उस पर अपने हस्ताक्षर कर सकें। पहले यहां इस आशय का एक सुझाव रखा गया था कि संविधान की हस्तलिखित प्रति को ही हमें यहां पास करना चाहिये। हस्तलिखित प्रति तैयार कराने के लिये कई सदस्यों ने मुझ पर जोर दिया था और तदनुसार एक लिपिक के द्वारा हस्तलिखित प्रति को उस समय तक तैयार कराने का प्रबन्ध हम कर रहे हैं। उस समय तक छपी हुई प्रतियां भी तैयार हो जायेंगी और सदस्य लोग हस्तलिखित प्रति पर अथवा छपी हुई प्रति पर या दोनों पर ही जैसा वह चाहें, अपने हस्ताक्षर कर सकते हैं। यह तो सम्भव नहीं हो सकेगा कि उस समय हम सभी सदस्यों को संविधान की एक एक प्रति सदस्यों के हस्ताक्षरयुक्त दे सकें। पर बाद में हम इस पर विचार कर लेंगे। अगर यह बहुत व्यय साध्य न हुआ, कि क्या प्रत्येक सदस्य को सदस्यों के हस्ताक्षर युक्त एक प्रति दे सकते हैं ताकि...

***श्री बी.एल. सौंधी** (पूर्वी पंजाब: जनरल): अगर सदस्य वृन्द ऐसी प्रति पाना चाहते हैं तो क्या इसके लिये वह खर्च नहीं कर सकते हैं?

***अध्यक्ष:** हम इस बात को भी ध्यान में रखेंगे और अगर सदस्य लोग कीमत देने पर तैयार हुए तो खर्च का कोई सवाल ही नहीं उठेगा।

***कतिपय माननीय सदस्य:** हां श्रीमान।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** श्री सन्तानम् ने एक सुझाव यह रखा था प्रत्येक सदस्य को संविधान की एक प्रति ऐसी मिलनी चाहिये जिस पर अध्यक्ष के हस्ताक्षर हों। इस सुझाव के बारे में क्या तय हो रहा है श्रीमान्?

***अध्यक्ष:** इसके लिये मुझे लगभग तीन सौ प्रतियों पर हस्ताक्षर करने होंगे और मुझे इसमें कोई दिक्क़त नहीं होगी। हम ऐसा कर सकते हैं, इसमें कोई ज्यादा फ़रक़ तो नहीं पड़ेगा। मैं सोच रहा था उन प्रतियों के बारे में जिन पर सभी सदस्यों के हस्ताक्षर या उनके हस्ताक्षरों की फोटो रहेगी और जिन प्रतियों को सदस्य वृन्द सदस्य होने के नाते शायद रखना चाहेंगे।

अस्तु, फ़िलहाल यही कार्यक्रम हमने तय कर रखा है और मुझे आशा है कि हम लोग इसके अनुसार ही अपना सारा काम पूरा कर लेंगे और जो विचार मैंने अभी अभी प्रकट किये हैं उसे भी हम पूरा कर सकेंगे।

अब सभा कल दोपहर के तीन बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा मध्यान्ह कालीन भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

दोपहर के भोजन के पश्चात् तीन बजे माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में सभा पुनः समवेत हुई।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान, भारत के इतिहास में ऐसी स्मरणीय घटनायें कभी नहीं हुई जो पिछले तीन वर्षों के इस अल्पकाल में यहां हुई हैं। विगत तीन वर्षों पर दृष्टि डालते हुए जबसे कि हमने संविधान बनाने के इस महान कार्य को आरम्भ किया प्रत्येक व्यक्ति उन परिवर्तनों से प्रभावित हुआ है जो हमारे देश के इतिहास में हुए हैं।

इस महत्वपूर्ण काल में पांच बड़ी बड़ी महत्वपूर्ण स्मरणीय घटनायें हुई हैं। वे घटनायें क्रम से इस प्रकार हैं: 1-हमारे देश का विभाजन, 2-स्वाधीनता प्राप्ति, 3-राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का निधन, 4-देशी रियासतों के नाम से प्रसिद्ध राज्यों का एकीकरण और अन्तिम पर महत्व में किसी से कम नहीं 5-स्वतन्त्र भारत के संविधान की स्थापना।

इन विषयों को विस्तारपूर्वक मैं नहीं लेना चाहता हूं। इस संविधान पर बहुत से सदस्य भाषण दे चुके हैं। कुछ सदस्यों ने इसकी आलोचना की है और कुछ ने प्रशंसा। न तो किसी ने इस समूचे के समूचे संविधान को निन्दनीय बताया है और न किसी ने इसे पूर्ण रूप से स्वीकार ही किया है। यह सत्य है कि एक ऐसी सभा से, जैसी कि यह सभा है, सर्वसम्मत स्वीकृति प्राप्त करना सम्भव नहीं है। परन्तु फिर भी, श्रीमान, मैं समझता हूं कि हम यह दावा कर सकते हैं कि इस संविधान में सदस्यों में परस्पर किये गये करार का अधिकतम रूप वर्तमान है।

इस संविधान में कुछ विशेष बातें हैं, परन्तु यदि इस संविधान पर गांधीवादी आदर्श के मूलाधारों की दृष्टि से विचार किया जाये तो मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह उस आदर्श तक नहीं पहुंच सका है। कदाचित यह कहना तो ग़लत है कि इसमें गांधीवादी आदर्श की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गई है, पर मेरा यह स्पष्ट विचार है कि गांधीवादी आदर्श के आधारभूत तथा मूल सिद्धान्त को इस संविधान में बेमन से हिचकते हुए तथा झिझकते हुये रखा गया है।

इतना समय नहीं कि विषय को विस्तारपूर्वक लिया जा सके। फिर भी कुछ दृष्टांत मैं प्रस्तुत करूंगा। राष्ट्रीय झंडे से चरखे का हटाना एक ऐसा ही उदाहरण है। मैं जानता हूं कि अपने मृत्यु समय तक महात्मा गांधी स्वयं इस परिवर्तन से सहमत नहीं हो सके थे। दूसरी बात यह है कि गांधी जी के लोकतन्त्र के विकेन्द्रीकरण के विचार को मूर्त्त रूप नहीं दिया गया है। जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं—खाना और कपड़ा के सम्बन्ध में ग्रामीण स्तर की आर्थिक आत्म-निर्भरता के गांधी जी के आदर्श को न इस संविधान में रखा गया है और न उस पर ज़ोर दिया गया है। तीसरी बात यह है कि पदाधिकारियों का उच्च वेतन गांधी जी के दृष्टिकोण से सर्वथा विरुद्ध है। चौथी बात यह है कि नमक-कर संविधानिक रूप से प्रतिषिद्ध नहीं किया गया है और अन्तिम, पर अन्तिम होने से इसका महत्व कम नहीं हो जाता है, बात यह है कि राज्य की भाषा के सम्बन्ध में गांधी जी की इच्छाओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। इन विषयों के विस्तार में मैं नहीं जाना चाहता हूं।

[श्री एल. कृष्णस्वामी भारती]

हां, भाषा के प्रश्न पर मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। यद्यपि मुझे प्रसन्नता है कि इस सभा ने सर्वसम्मति से उसे स्वीकार कर लिया है, परन्तु यदि शेक्सपीयर के उग्रतम भाव प्रकट करने वाले शब्दों के दुहरे प्रयोग को किया जाये तो राजभाषा के सम्बन्ध का संकल्प "सब घावों में एक बड़ा ही अधिकतम निर्दयतापूर्ण किया गया घाव" है। मुझे बड़ा खेद है कि इस सम्बन्ध में हम महात्मा गांधी के पथ पदर्शन को स्वीकार नहीं कर सके। गांधी जी की राजभाषा की परिभाषा यह थी कि वह एक ऐसी भाषा होनी चाहिये जो "उत्तर भारत की अधिकांश जनता में साधारणतया बोली और सरलता से समझी जाती हो" जो न तो अधिक संस्कृतनिष्ठ और न अधिक फारसी मिश्रित हो अर्थात्, मिली जुली हिन्दी और उर्दू—हिन्दुस्तानी हो। मैं यह नहीं जानता हूं कि हिन्दी के समर्थकों द्वारा इस आदर्श का कितना परिपालन किया जा रहा है। मेरा निजी विचार यह है कि वे परिपालन नहीं कर रहे हैं बल्कि शायद विपरीत दिशा में जा रहे हैं। मुझे एक बड़ी रोचक पुस्तक पढ़ने को मिली जिसमें बड़ी लाभदायक बातें थीं। भाषाओं के महान् विशेषज्ञ ग्रियर्सन ने अपनी महान कृति 'लिंग्युस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' में कुछ बड़ी लाभदायक तथा महत्वपूर्ण बातें कहीं हैं। उनका विचार यह है कि भाषा की उन्नति जन समुदाय को ध्यान में रखते हुए करनी चाहिये। संस्कृतनिष्ठ भाषा बनाने के प्रयत्न से विद्वान तथा साधारण लोगों में परस्पर अन्तर उत्पन्न हो जायेगा—और इसी विचार के महात्मा गांधी कट्टर समर्थक थे। वे बनारस के एक अति वृद्ध संस्कृत प्रोफ़ेसर का उदाहरण देते हैं "जब कभी कोई हिन्दी लेखक अपने हाथ में लेखनी लेता है तो वह गम्भीरता को तिलांजलि दे देता है और संस्कृत के मद में चूर हो जाता है।" मैं यह नहीं जानता हूं कि यह बात कहां तक ठीक है, पर मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह है कि हिन्दी के कुछ समर्थकों में हिन्दी के प्रति इतना अधिक प्रेम है कि कभी कभी वे गम्भीरता की परिधि को भी लांघ जाते हैं। मैं यह नहीं जानता हूं कि राज भाषा के वर्तमान नाम को स्वीकार कर लेने के लिये हम अपने हिन्दी के समर्थक मित्रों को बधाई दें या न दें चूंकि हिन्दी फ़ारसी शब्द है और इस सूचना के लिये मैं उस महान भाषाविद् ग्रियर्सन का ऋणी हूं। कदाचित इस नाम के स्वीकार करने से यह प्रकट हो सकता है कि आखिर हिन्दी के समर्थक इतने उर्दू-विरोधी तथा फ़ारसी-विरोधी नहीं हैं जितना उनको कहा जाता है।

भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद गम्भीर तथा सावधानीपूर्ण विचार का परिणाम स्वरूप है। हमने उसे स्वीकार कर लिया है और हम दक्षिण वाले आपको यह आश्वासन देते हैं कि हम उसका पालन करेंगे। एक राष्ट्र के रूप में भारत की एक भाषा होनी चाहिये और भारत की भाषाओं में से महात्मा गांधी द्वारा परिभाषित रूप में हिन्दी वह भाषा होनी चाहिये। इस विषय पर न दो राय हो सकती हैं और न होनी चाहिये। परन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण बात है इस विषय के प्रति दृष्टिकोण। हम दक्षिण भारत वालों को इससे हानि होगी। हिन्दी को राजभाषा के रूप में ग्रहण करना उत्तर भारत के लोगों के लिये सरल होगा क्योंकि दैवयोग से वह उनकी मातृभाषा है। हिन्दी के पुर:स्थापन के विरोध में दक्षिण में एक आन्दोलन चल रहा है, पर हमें वहां जाकर लोगों को यह समझाना चाहिये कि इससे उनकी मातृभाषा नहीं हटाई जायेगी। श्री पत्तम थानू पिल्ले ने आज प्रात: काल इस विषय की ओर

निर्देश किया था। मैं यह नहीं जानता हूं कि त्रिवेन्द्रम में क्या हो रहा है, पर जहां तक मेरे प्रान्त का सम्बन्ध है मुझे प्रसन्नता है कि हमने संविधान में यह रख दिया है कि हिन्दी का विचार और उसको पुर:स्थापन करने की आवश्यकता प्रादेशिक भाषा के लिये हानिकर सिद्ध नहीं होगी। प्रादेशिक भाषायें पूर्णरूप में बनी रहेंगी। केवल अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये हमें एक भाषा की आवश्यकता है और केवल हिन्दी ही यह भाषा हो सकती है। पर आज प्रात:काल श्री पत्तम थानू पिल्ले यह कहा था कि हम अपने अपने क्षेत्रों में हिन्दी रख सकते हैं। अवश्य, वे उसे त्रिवेन्द्रम या कोचीन और तिरुवांकुर के संयुक्त राज्य में रख सकते हैं।

***श्री पी.टी. चक्को:** वहां भी ऐसे ही विचार हैं, भ्रम में न पड़िये।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** यह जान कर मुझे खुशी हुई है। यही बात ठीक है और हम केवल इस बात की मांग कर सकते हैं कि यद्यपि प्रान्त अपनी भाषा रख सकते हैं, पर उन्हें सम्पूर्ण राष्ट्र का ध्यान रखते हुए प्रकार्य करना चाहिये; राष्ट्र-भाषा के हितों के लिये हानिकर रूप में अन्य भाषाओं को नहीं होना चाहिये। भारत के लिये पत्र व्यवहार केवल हिन्दी ही में हो सकता है। वह किसी अन्य भाषा में नहीं हो सकता है। जिन लोगों पर तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश इत्यादि के प्रशासन का उत्तरदायित्व है वे केवल हिन्दी में ही भारत से पत्र व्यवहार कर सकते हैं। अत: हम लोगों से जाकर यह कहेंगे कि हिन्दी स्वीकार कर लेने में कोई त्रुटि नहीं हुई है। वे हर प्रकार से अपनी अपनी प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति कर सकते हैं और उन भाषाओं में अपना काम कर सकते हैं, पर उनकी एक राष्ट्र भाषा होनी चाहिये। इसमें आरोपण का कोई प्रश्न नहीं है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है जिसे मेरे उत्तर भारत के मित्रों को समझ लेना और समझा देना चाहिये। यह एक कठिन कार्य है। हम लोगों को यह समझा सकते हैं कि इसमें कोई त्रुटि नहीं है। पर श्री पत्तम थानू पिल्ले जैसे सदस्यों के भाषण बहुत ही भ्रमपूर्ण विचार उत्पन्न करेंगे। हमें लोगों से यह कहना पड़ेगा कि यह उनकी अपनी सम्मति है। तिरुवांकुर के एक और सदस्य ने भी यह कहा है कि तिरुवांकुर में वही विचारधारा है जो मैं ने प्रकट की है। मेरे ये विचार सुस्पष्ट हैं कि हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि हम मातृभाषा को हानि पहुंचायें और न यह है कि राजभाषा को ही हानि पहुंचायें।

***श्री ए. थानू पिल्ले:** मैं अपने मित्र को यह सूचित करना चाहता हूं कि यदि उन्होंने मेरी बात का यह अर्थ लगाया है कि हिन्दी मातृभाषा के हितों के लिये हानिकर सिद्ध होगी तो उन्होंने गलत समझा है। जो कुछ मैंने कहा था वह यह है कि प्रशासन कार्य के उच्चतर स्तर में हिन्दी को ग्रहण करना चाहिये। इसका अर्थ वह नहीं है जो उन्होंने समझा है।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** मेरा विचार यह है कि जब कोई भाषा राजभाषा हो जाती है तो चाहे यह अभिप्राय न हो पर फिर भी वह मातृभाषा के लिये हानिकर हो सकती है। जब राजभाषा अंग्रेज़ी थी तो भारत की अन्य भाषाओं के लिये वह बहुत ही हानिकर सिद्ध हुई तथा अन्य क्षेत्रों में भी वह मातृभाषा के लिये हानिकर हुई। केवल इसी भाव से मैंने यह कहा था कि प्रान्तों के प्रशासन में हिन्दी पुर:स्थापित करने का परिणाम यह होगा कि वह प्रान्तों की मातृभाषाओं के लिये हानिकर होगी। भाषावार प्रान्त बनाने का विचार प्रान्तों की मातृभाषाओं

[श्री एल. कृष्णस्वामी भारती]

का पोषण करने के लिए है। कुछ लोग समझते हैं कि यह विचार राष्ट्र-विरोधी है। इसके विपरीत मेरा यह विश्वास है कि यह विचार पूर्णतया राष्ट्रीय हितों से संगत है। कांग्रेस के हित के लिये हम भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं और केवल प्रादेशिक भाषाओं में ही लोगों से अपील करते हैं। प्रशासन कार्य का संचालन जनता की भाषा में होना चाहिये जिससे कि शासक और शासितों के हित और विचार में एकरूपता हो। इस ख्याल से मैंने यह कहा था कि हमें प्रादेशिक भाषायें रखनी चाहिये। मूलरूप में यही भाषावार प्रान्तों के बनाने का आधार है। इसका अर्थ विघटन या प्रान्त विशेष अथवा प्रदेश विशेष के हितों के लिये कार्य करना नहीं है।

इसके बाद अंकों का प्रश्न आता है। इस प्रश्न को जिस रूप में हल किया गया है उसका हमें गौरव है। मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर ने कहा था कि अंग्रेज़ी के अंक हैं और मैंने यह कह कर उनको टोका था कि अब उन्हें अंग्रेज़ी अंक कहना ग़लत है। वे वास्तव में भारतीय अंक हैं। इन अंकों का मूल रूप भारतीय है। अपने इस विचार के समर्थन में मैं इस तथ्य की ओर निर्देश करूंगा कि 2000 वर्ष पूर्व के अशोक स्तम्भ में, नानाघाट के शिला लेखों में और नासिक की गुफ़ाओं में ये सब अंक मिलते हैं। एक, चार और छः अंक अशोक स्तम्भ में मिलते हैं, दो, चार और सात नाना घाट के शिलालेखों में मिलते हैं और शेष अंक पहली और दूसरी शताब्दि की नासिक की गुफ़ाओं में मिलते हैं। ये रूप इन अंकों के वर्तमान रूपों से बहुत कुछ मिलते हैं। अतः यह कहना कि ये अंक अंग्रेज़ी के हैं ठीक नहीं है। श्री कपूर ने यह कहा था कि जिन सदस्यों ने इन अंकों का समर्थन किया था उन्होंने इस तथ्य को इस विषय पर वाद विवाद आरम्भ हो जाने के बाद मालूम किया था। श्रीमान, सदस्यों को यह जान कर कदाचित् प्रसन्नता होगी कि हमारे प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कुछ वर्ष पूर्व के लेखों में इस विषय के इस पहलू का निर्देश किया है। वह बड़े ही रोचक ढंग से हैं। उन्होंने इन अंकों को 'अपने भारतीय अंक' कहा है। श्रीमान, पृष्ठ 248 पर...

***अध्यक्षः** क्या मैं माननीय सदस्य को यह याद दिला सकता हूं कि यदि वे इसी प्रकार से भाषण देते रहेंगे तो अन्य सदस्यों को अपनी बात कहने के लिये समय बड़ी कठिनाई से मिलेगा।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारतीः** श्रीमान, मैं अपना भाषण शीघ्र ही समाप्त करने वाला हूं। इस सम्बन्ध में पण्डित नेहरू के विचार बड़े रोचक हैं। पंडित जी ने कहा है "गणना शैली और उसके प्रयोग की कठिन प्रणाली और रोमन तथा अन्य इसी प्रकार के अंकों का प्रयोग बहुत समय तक उन्नति में बाधक रहा जब तक कि शून्य सहित दस अंकों ने इन कठिनाइयों से मनुष्य को मुक्त न किया और अंकों के व्यवहार पर पर्याप्त प्रकाश न डाला। ये अंक चिन्ह अन्य देशों में प्रयुक्त सब चिन्हों से पूर्णतया भिन्न तथा विलक्षण हैं। आज भी उनका प्रयोग पर्याप्त रूप में मिलता है और हम उन रूपों को स्वीकार करते हैं।" श्रीमान, मैं सिर्फ कुछ चन्द मिनट और लूंगा।

इस संविधान में एक मुख्य बात पृथक् निर्वाचनों का अन्त करना है। मुझे खुशी है कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की सम्मति के आधार पर यह कार्य हुआ है। विधान-मंडलों में विशेष प्रतिनिधान को छोड़ने के लिये सहमत होने पर

मुस्लिम सम्प्रदाय के सदस्यों को मैं विशेषकर बधाई देता हूं। यह कोई तुच्छ विषय नहीं है और ऐसा करना समय के अनुकूल है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है जब यह वास्तव में क्रियान्वित किया जायेगा तो इस पर नेता और हमारी जनता कहां तक अमल करेंगे। क्या हमें इस बात का विश्वास है कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने साम्प्रदायिकता को छोड़ दिया है और इस कारण अन्य सम्प्रदायों के अभ्यर्थियों को उनके धर्म का विचार किये बिना चुन लिया जायेगा? इसका उत्तर भविष्य पर निर्भर करता है। मेरी बड़ी इच्छा है कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय इस विषय पर सही रूप में अमल करे। साथ ही साथ अल्पसंख्यक सम्प्रदाय पर यह एक बड़ी भारी ज़िम्मेवारी आ गई है कि वे इस प्रकार से व्यवहार करें कि अन्य सम्प्रदायों का उनमें विश्वास हो। यह केवल तभी हो सकता है जब कि वह राजनैतिक दृष्टि से शेष जनसंख्या में मिल जाये और सम्प्रदाय के आधार पर राजनैतिक संघटनों द्वारा साम्प्रदायिकता को न बनाये रखे। मैं समझता हूं कि अब समय आ गया है कि मुस्लिम लीग राजनैतिक संघटन के रूप में समाप्त हो जाये और राजनीति शून्य क्षेत्र में कार्य करे। इस संघटन को राजनैतिक रूप छोड़ देना चाहिये। मुझे दु:ख है कि इस प्रकार का वातावरण बनाने में पाकिस्तान हमारे लिये कठिनाई पैदा कर रहा है। परन्तु, जैसाकि महात्मा गांधी ने कहा है, उनकी बुरी बातों की हम नक़ल न करें। मैं आशा करता हूं कि ऐसा आवश्यक वातावरण पैदा किया जायेगा जिसमें पुन: साम्प्रदायिक द्वेष पैदा करने के लिये कोई साम्प्रदायिकता के आधार पर राजनैतिक संघटन नहीं होगा। श्रीमान, मुझे स्मरण है कि हमारी सरकार ने महात्मा गांधी की मृत्यु के पश्चात् तुरन्त ही एक इस प्रकार का संकल्प पारित कर दिया है। मैं आशा करता हूं कि ये लोग इस संकल्प का संपालन करेंगे और अन्य लोग किसी भी साम्प्रदायिक संघटन को राजनैतिक क्षेत्र में सफल नहीं होने देंगे।

श्रीमान, वयस्क मताधिकार का विषय इस संविधान की एक और मुख्य बात है। मैं इसका स्वागत करता हूं। एक ऐसे देश में जहां जनता का अधिकांश भाग निरक्षर है इस बात में शंका की जाती है कि क्या हम सही रूप में कार्य करने के लिये उनमें विश्वास कर सकते हैं। मेरा निजी अनुभव यह है कि ठीक व्यक्ति या ठीक पक्ष पहचान लेने की जनता में स्वाभाविक शक्ति तथा बुद्धिमत्ता होती है। परन्तु एक बात स्पष्ट है कि यदि लोकतन्त्र को सफल रूप में क्रियान्वित करना है तो यह आवश्यक है कि अधिकांश जनता साक्षर हो। और तभी लोगों के विचारों की झलक सरकार में दिखाई देगी। पर श्रीमान, निर्वाचन ऐसे नहीं होते हैं जैसे कि वे होने चाहिये। विधान सभा के एक बड़े संघर्षमय निर्वाचन में मैं अभ्यर्थी रह चुका हूं और उसमें मेरी विजय हुई। मैंने यह देखा है कि यह एक दुर्भाग्य की बात है कि अधिकांश लोग झूठा मत देते हैं। यह अधिकतर पाया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का मत देता है। एक व्यक्ति 15 या 20 अन्य व्यक्तियों का मत देकर मतों की संख्या बढ़ाता है। एक माननीय सदस्य ने मुझे यह बताया कि एक स्त्री ने 13 अन्य स्त्रियों के मत डाले। मैंने स्वयं लोगों को यह कहते सुना कि उन्होंने एक दर्जन से अधिक लोगों के मत डाले। यह बड़ा दु:ख का विषय है। जब तक इस बुरी प्रथा को रोका नहीं जायेगा तब तक लोकतंत्र निरर्थक रहेगा। इस प्रकार से किसी भी अभ्यर्थी के मतों की संख्या बढ़ाई जा सकती है पर इससे जनता की सदिच्छा नहीं जानी जा सकती।

(इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई।)

श्रीमान मैं समाप्त कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** आपने पच्चीस मिनट से अधिक समय ले लिया है।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** मुझे खेद है। मैं शीघ्र ही समाप्त कर दूंगा। अत: मैं चाहता हूं कि यदि हो सके तो मतदान को त्रुटिशून्य बना देना चाहिये। मैं समझता हूं कि यह हो सकता है और इस लिये मेरा सुझाव यह है: मतदाताओं को चित्र सहित परिचय-पत्र दे देना चाहिये। यह ठीक है कि लोग कई तरह की आपत्तियां करेंगे पर इस महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिये मेरे पास समय नहीं है। यदि परिचय पत्र पहले से दे दिये जाते हैं तो कोई मतदाता किसी अन्य मतदाता का मत नहीं डाल सकता है।

मैं एक और सुझाव देना चाहूंगा, वह यह है। जब कोई मतदाता अपना मत डालने आये तो उसकी अंगुलियां किसी ऐसी पक्की स्याही से रंग दी जाये जो एक या दो दिन तक न मिट सके। इससे यह प्रकट हो जायेगा कि वह अपना मत दे चुका है। इन सुझावों पर विचार किया जाये।

अन्त में, मेरा अनुभव यह है कि हम गांधी के आदर्श पर आश्रित इससे अच्छा संविधान बना सकते थे। सम्भवत: इस कथन से सांत्वना मिले कि राष्ट्र को वही मिलता है जिसके वह योग्य है। मैं यह आशा करता हूं, मुझे यह विश्वास है और मैं यह प्रार्थना करता हूं कि इस संविधान के व्यवहार में प्रस्तावना में दिये हुए इस संविधान के उद्देश्यों का पूर्णतया पालन होगा जिससे कि इस देश में सुख, शान्ति और सम्पन्नता का साम्राज्य हो।

श्री रतन लाल मालवीय (सी.पी. एण्ड बरार स्टेट): सभापति महोदय, विधान पर इतने भाषण हो चुके हैं कि उनके बाद उन बातों पर मुझे कुछ बोलने की आवश्यकता नहीं है। मैं विधान के सिर्फ़ उन पहलुओं पर प्रकाश डालने की कोशिश करूंगा जो अभी तक अछूते हैं। मेरा मतलब स्टेटों से है।

जहां तक स्टेटों का ताल्लुक़ है मैं छत्तीसगढ़ की रियासतों का प्रतिनिधि हूं और मुझे यह गौरव है कि स्टेटों का इतिहास जहां से शुरू होता है उसका श्रेय छत्तीसगढ़ और उड़ीसा की स्टेटों को जाता है। सबसे पहले 14 दिसम्बर और 15 दिसम्बर 1947 को इन्हीं स्टेटों से भारत की स्टेटों के मरजर का श्रीगणेश हुआ था। उसके बाद इन दो सालों में जो परिवर्तन स्टेटों में हुआ है वह तो छिपा नहीं है। 562 रियासतें एक सूत्र में बंध गई हैं। मर्ज्ड और सैंट्रली एडमिनिस्टर्ड स्टेट्स और यूनियनों के रूप में अलग अलग प्रान्तों में वह स्टेट्स मिल गई हैं और इससे देश के एकीकरण में बड़ा फ़ायदा हुआ है। इनमें से जहां तक सैंट्रली एडमिनिस्टर्ड स्टेट्स का ताल्लुक़ है प्रेसीडेंट महोदय सेंटर ने उनकी पूरी ज़िम्मेवारी ले ली है और जो दूसरी तरह की स्टेट्स हैं जो कि युनियन्स में शामिल हुई हैं उनके लिये भी एक विधान है और प्रेसीडेंट ने दफ़ा 371 के मुताबिक़ उनकी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले ली है और दस साल तक प्रेसीडेंट उनकी देख रेख करेंगे। हमारे मैसूर और ट्रावनकोर के भाइयों ने इस दफ़ा का विरोध किया है। हो सकता है कि उनका विरोध किसी हद तक ठीक हो क्योंकि ट्रावनकोर और मैसूर की रियासतें सन् 1947 के पहले या यूनियन बनने के पहले प्रान्तों से बहत आगे बढ़ी हुई रियासतें थीं। उनमें बड़ी शिक्षा थी, बड़ा उद्योगधंधा था और इस लिये वह रियासतें प्रान्तों से भी ऊंची मानी जाती हैं। जैसा कि हमारे दोस्त थानू पिल्ले ने कहा है कि विधान की दफ़ा 371 के अनुसार जो यूनियनों के शासन

हैं गवर्नमेंट का हाथ है, उसका अलटा असर यह न हो कि रियासतों की उन्नति प्रान्तों के मुआफ़िक़ करने के उद्देश्य से उनकी तरक्क़ी में भी फ़र्क़ कर दिया जाये। मगर मैं यह बताना चाहता हूं कि यह दफ़ा बहुत ज़रूरी थी। अगर ट्रावनकोर और मैसूर की रियासतों को निकाल दिया जाये तो फिर दूसरी इतनी गई गुज़री हैं, इस क़दर पिछड़ी हुई हैं कि वहां गवर्नमेंट का हाथ जब तक दस साल तक नहीं रहेगा तब तक वहां तरक्क़ी की कोई खास उम्मीद नहीं की जा सकती। इसलिये दफ़ा 371 कांस्टीट्यूशन में बहुत पिछड़ी हुई रियासतों के लिहाज़ से बहुत फ़ायदे की है और उसका होना बहुत ही ज़रूरी था।

जहां तक मर्ज्ड स्टेट्स का ताल्लुक़ है दफ़ा 290 गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की तरमीम के मुताबिक़ उनका प्रबन्ध प्रान्तों को सौंप दिया गया है। मगर मैं यह चाहता था कि जिस तरह से यूनियन्स के लिये दफ़ा 371 बनाई गई थी, इस दफ़ा 371 का उपयोग दस साल तक इन मर्ज्ड स्टेट्स के लिये भी होता, जिससे कि गवर्नमेंट को इनकी रियाया की हालत का पता लगता रहता और उसकी उन्नति में प्रेसीडेंट का हाथ होता।

प्रेसीडेंट महोदय, मैं यह बता देना चाहता हूं कि जब मैं यह कहता हूं कि दफ़ा 371 के मुआफ़िक़ मर्ज्ड स्टेट्स के ऊपर गवर्नमेंट की निग़ाह रहनी ज़रूरी है उस वक्त मैं प्राविंशियल गवर्नमेंट्स के ख़िलाफ़ यानी बिहार, उड़ीसा और सी.पी. की गवर्नमेंट्स के ख़िलाफ़ कोई सेंसर मोशन नहीं ला रहा हूं। जो हमारे नेता इन प्रान्तों में शासन की बागडोर संभाले हुए हैं उनके ख़िलाफ़ यह अविश्वास का प्रस्ताव नहीं है। वह माने हुए लोग हैं, उन्हें हम श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, मगर यह बात ज़रूरी है कि रियासतों की देखरेख अभी होनी चाहिये थी। अभी दो सालों में जो कुछ हुआ है उससे तसल्ली नहीं होती है और इसलिये यह ज़रूरी मालूम होता है कि कुछ दिनों के लिये अगले पांच या दस साल तक अगर दफ़ा 371 की रू से नहीं तो वैसे ही प्रेसीडेंट अपनी ज़िम्मेवारी से उनके ऊपर निगाह रखें।

अब मैं खास तौर से प्रकाश डालना चाहता हूं सी.पी. की रियासतों के ऊपर क्योंकि मैं सी.पी. से आता हूं। जहां तक सी.पी. की स्टेटों का ताल्लुक है, प्रेसीडेंट महोदय, इन रियासतों की आबादी 28 लाख के क़रीब है और उसमें से साढ़े चौदह लाख आदिवासी हैं। शिड्यूल 6 के मुताबिक़ इन आदिवासियों की ज़िम्मेवारी प्रेसीडेंट ने ले रखी है और इस तरह से मर्ज्ड होते हुए भी और दफ़ा 290 के मुआफ़िक़ प्रान्तीय शासन का पूरा हाथ इन लोगों के ऊपर होते हुए भी मैं यह कहना चाहता हूं कि केन्द्रीय शासन की ज़िम्मेवारी किसी तरह से टल नहीं सकती। मैं एक उदाहरण देकर आपको साफ़ कर देना चाहता हूं।

माननीय प्रेसीडेंटः शायद शिड्यूल 5 से आपका मतलब है?

श्री रतन लाल मालवीयः जी हां। तो एक उदाहरण के बतौर मैं यह बता देना चाहता हूं कि दफ़ा 290 के पास होने के पहले हमने बड़ी कोशिश की थी कि प्राविंशयल लैजिस्लेचर में हमारे प्रतिनिधि लिये जायें, लेकिन जब तक 290 पास नहीं हुई तब तक हमारे प्रतिनिधि सी.पी. असेम्बली में नहीं लिये गये। बाद में जब प्रान्तीय असेम्बली में प्रतिनिधि नामजद हुए तो यह भी जरूरी था कि रियासतों से कम से कम एक मिनिस्टर होता। मैं खर साहब से मिला। उन्होंने

[श्री रतन लाल मालवीय]

मुझे बतलाया कि बम्बई में दो मिनिस्टर लिये गये हैं। समाचार पत्रों में पढ़ा और जानकारी हासिल की तो मुझे मालूम हुआ है कि उड़ीसा में भी तीन मिनिस्टर लिये जाने वाले हैं। मगर सी.पी. के बारे में अखबारों में तो खबरें ज़रूर निकलीं मगर ऐसी कोई तजवीज़ मुझ को नहीं मालूम होती कि कोई मिनिस्टर सी.पी. की रियासतों से भी लिया जायेगा। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैंने जो कुछ कहा है वह सी.पी. की गवर्नमेंट के खिलाफ वोट आफ़ सेंसर नहीं है। मगर मैं यह कहना चाहता था कि आजकल जो सी.पी. के मिनिस्टर हैं उनका खास ताल्लुक रियासतों से नहीं रहा है और उनका सीधा ताल्लुक़ न होने से रियासतों की शिक़ायतें दूर होने में बड़ी देर होती है। ठीक प्रतिनिधित्व न होने की वजह से पिछड़ी हुई रियासतों के लोगों की पहुंच कैबिनेट तक नहीं है। इस लिहाज़ से यह जरूरी हो जाता है कि सी.पी. स्टेट्स में से एक मिनिस्टर ज़रूर रहे।

एक बात मैं और बतलाना चाहता हूं और वह है आदिवासियों के बारे में। जैसाकि मैं ने बतलाया कि 50 प्रतिशत से भी ज्यादा आदिवासी सी.पी. में बसते हैं। ठक्कर बापा की देखरेख में और उनकी कृपा से खासतौर से एक योजना उनके लिये बनाई गई है और वह योजना लागू भी हो गई है। पर वह योजना उसी वक्त पूर्ण रूप से सफल होगी जब कि हमारी स्टेटों के मिनिस्टर कैबिनेट में जायेंगे और वे इस योजना को संभालेंगे। मैं ठक्कर बापा को इस बारे में धन्यवाद देता हूं।

एक बात जो अभी ताजी है मैं उसे आपके नोटिस में लाना चाहता हूं वह है विन्ध्य प्रदेश के बारे में। विन्ध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ से लगा हुआ है और खास तौर से जहां से मैं आता हूं वहां से विन्ध्य प्रदेश की सरहद 4 मील की दूरी पर है। मेरा ताल्लुक विन्ध्य प्रदेश की राजनीति से थोड़ा बहुत है और मैं जानकारी भी काफी रखता हूं। वहां के वातावरण के बारे में जो कुछ भी अखबारों में निकलता है उनका मुझे ज्ञान भी है। वहां की राजनीति में किस प्रकार की छीछालेदर हो गई है वह भी मैं जानता हूं। विन्ध्य प्रदेश की एरिया और आबादी इतनी कम है कि वह एक स्वतन्त्र रूप से उन्नति नहीं कर सकता। उसका मर्जर होना जरूरी है। जहां तक मैं वहां के लोगों के बारे में जानता हूं वहां दो प्रकार के ग्रुप हैं। एक मरजर के खिलाफ़ है उनकी तादाद बहुत ज्यादा है और दूसरा जो मरजर चाहता है। उनकी तादाद बहुत कम है। जैसा कि मैंने बतलाया मरजर विन्ध्य प्रदेश का जरूर होना चाहिये। मगर अखबारों की खबरों से पता चलता है कि विन्ध्य प्रदेश के टुकड़े होने वाले हैं। कुछ हिस्सा तो यू.पी. प्रान्त में चला जायेगा और कुछ हिस्सा सी.पी. प्रान्त में मिला दिया जायेगा। जहां तक मेरा ख्याल है यह ठीक बात नहीं है। इससे वहां के लोगों में अश्रद्धा पैदा हो जायेगी और इसके साथ ही साथ वहां पर अशान्ति फैलाने का भी डर है। इसलिये बेहतर यह होगा कि विन्ध्य प्रदेश को मरजर तो कर देना चाहिये मगर ऐसी स्टेटें जो पौकेट स्टेट्स हैं उनको तो यू.पी. में मिला देना चाहिये और बाकी स्टेटों को सी.पी. में मिला देना चाहिये।

अन्त में सभापति महोदय, मैं अपना छोटा सा वक्तव्य आपको धन्यवाद दिये बिना समाप्त नहीं कर सकता। मैं अपनी श्रद्धांजलि पूज्य बापू को भी समर्पित किये

बिना अपना भाषण समाप्त नहीं कर सकता। जैसा कि हमने आजादी पाई है और आज हम यह विधान खत्म करने जा रहे हैं वह सबके सहयोग का ही परिणाम है और हमारे बापू के ही आशीर्वाद का यह फल है जो आज हम यह विधान खत्म करने जा रहे हैं। हमें यह आशा है कि उनकी छाया में हमारा देश उत्तरोत्तर उन्नति करेगा और हम फले और फूलेंगे।

श्री हरगोविन्द पन्त (यू.पी.: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं पण्डित अम्बेडकर महोदय के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये यहां उपस्थित हुआ हूं। मैं पंडित शब्द का प्रयोग जानबूझ कर कर रहा हूं। क्योंकि डाक्टर अम्बेडकर द्वारा इस संविधान की पांडुलिपि की रचना, उसका प्रतिपादन तथा युक्तियुक्त समर्थन जिस पांडित्य के साथ इस भवन में किया गया है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है और उन्हें इस पद का अधिकारी सिद्ध करता है। इतना ही नहीं उनके पांडित्य से प्रभावित होकर हमारे कतिपय सदस्यों ने उन्हें मनु भगवान का पद दे देने तक की कृपा की है। यह वैवश्वत नाम का मन्वन्तर है। एक मन्वन्तर में 72 चतुर्युगी अर्थात् चौंकड़ी होती है। वैवश्वत नाम के सातवें मनु की 28वीं चौकड़ी का समय चल रहा है। और इसमें नये मनु की स्थापना करना शायद एक वैधानिक संकट उपस्थित करेगा। इसलिये मैं समझता हूं कि ''मनु'' नहीं ''उप मनु'' की उपाधि दी जा सकती है। पर इस सम्बन्ध में एक बात विचारणीय यह है कि इस विधान के बनाने में 8 मनुओं का योग रहा है। अत: यदि इन सबको ही हम अष्ट ''उपमनु'' कहें तो अनुचित नहीं होगा।

मैं प्राचीन पद्धति पर विश्वास करता हूं और उसके अनुसार तो मन्वन्तर अर्थात् एक मनु का समय बहुत लम्बा हुआ करता है। जब 72 बार चारों युग बीत जावें तब एक मन्वन्तर पूरा होता है। एक सृष्टि में 14 मनु होते हैं। अकेले कलिकाल का समय 4 लाख 32 हज़ार वर्ष का होता है। द्वापर 8 लाख 64 हजार वर्ष का होता है। त्रेता उसका दुगना होता है यानी 17 लाख 28 हजार होता है। सतयुग की अवधि 34 लाख 56 हजार होती है। कुल मिला कर 64 लाख 80 हजार हुआ। और यह केवल एक चतुर्युग अर्थात् चौकड़ी मात्र का समय हुआ अर्थात् 72 चतुर्युग का समय व्यतीत होने के बाद केवल एक मन्वन्तर हो पायेगा।

यह भारतवर्ष की वर्तमान सृष्टि की आयु के विषय की अपनी कल्पना है। यह प्राचीन भारतवर्ष का मापदंड हमारी आंखों के सामने उपस्थित करती है। सम्भव है विज्ञान की काफी उन्नति होने पर इन बातों का समर्थन होने लगे। काल की अनन्तता को लेते हुए मैं वर्तमान संविधान के दीर्घायु होने की आशा करता हूं। मुझे तो इतना कहना है कि यह जो विधान बना है वह सब के समझौते से बना है। जैसा कि मैंने कहा जो प्रस्ताव भवन के सामने हैं उसका समर्थन करने के लिये मैं यहां पर उपस्थित हूं। मैं इसमें कोई नुक्ताचीनी करना आवश्यक नहीं समझता हूं।

जैसा कि मैं कह चुका हूं कि यह संविधान सब के समझौते के रूप में तैयार किया गया है और हमको सच्चे हृदय से उसको सफल बनाना चाहिये। हमारी पुरानी पद्धति के अनुसार चतुरवर्ग की प्राप्ति मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य समझा गया है। हमारे संविधान में धर्म के लिये क्या स्थान है यह बतलाने की मुझे आवश्यकता नहीं है। और जहां धर्म का ही स्थान इस प्रकार संदिग्ध हो वहां मोक्ष की चर्चा करनी और भी अनावश्यक है।

[श्री हरगोविन्द पन्त]

शेष रह जाते हैं अर्थ और काम। इन दोनों की हमारे संविधान में उचित ही व्यवस्था की गई है और सब को उनकी प्राप्ति का समान अधिकारी माना गया है। प्राचीन भारत तो यह मानता आया है दोनों दुनिया में भलाई के ही आधार पर मिल सकती हैं जैसा कि श्री व्यास देव कहते हैं:–

अर्ध्ववाहु: विरोम्येष: नहि कश्चित श्रुणोति माम।
धर्मादर्थश्च कामश्च स: धर्म: किन्नसेकते।।

सबका सुख या समाज का हित वास्तव में धर्म के आधार पर ही हो सकता है यदि उसको भुला देवें और उसके अनुसार काम न करें, तो राष्ट्र तथा व्यक्ति कदापि सुखी नहीं हो सकते हैं। संविधान में जिस हद तक गोवध निषेध का ज़िक्र किया गया है, वह उचित ही हुआ है। पूर्वकाल में ब्राह्मण लोग अकिंचन होते थे और अपनी रक्षा करना आवश्यक नहीं समझते थे वे अपने लिये कोई संरक्षण प्राप्त करना, अपना धर्म नहीं समझते थे। अत: उनकी विधान के अनुसार रक्षा का प्रबन्ध होता था। वर्तमान विधान में परिगणित जातियों और कबीलों का संरक्षण कुछ समय के लिये रखा गया है। उनका संरक्षण भी जरूरी था, क्योंकि वह भी अपना खुद संरक्षण नहीं कर सकते। इस तरह हम पायेंगे कि पुरानी मनुस्मृति और आज की स्मृति में एक प्रकार की समता सी आ जाती है? अन्तर केवल इतना है कि "गो ब्राह्मण हिताय" के स्थान में "गो परिगणित हिताय" हो गया है। अत: मनुस्मृति के विरुद्ध प्रदर्शन उचित नहीं थे। खैर, जो भी हो, मैं तो इस विषय में अधिक न कहते हुए इस बात पर जोर दूंगा कि जो संविधान सबकी मर्ज़ी से सबके समझौते से तैयार हुआ है, उसकी हम पूर्णतया रक्षा करें। इसमें हमने बालिग़ मताधिकार रखकर एक बड़ा सुन्दर कार्य किया है, दूसरी विभूति हमें मूलाधिकार के रूप में प्राप्त हुई है और तीसरी हमें हासिल हुई है यह जो पृथक् निर्वाचन का तरीक़ा था, उसका खात्मा हो गया है, यह हमारे लिये तीसरी निधि प्राप्त हुई है। राष्ट्र भाषा हिन्दी होगी यह चौथी निधि हमें प्राप्त हुई है इन्हीं चार निधियों को हम चतुवर्ग की प्राप्ति मान सकते हैं। इन सब चीज़ों की प्राप्ति तो हमें हुई, पर इन सब का भोग, उपभोग, इनका वास्तविक लाभ तभी हमें होगा, जब हम सच्चे दिल से जो निश्चय हमने किया है, जो सबकी मरज़ी से फैसला हुआ है, उसको पूरा करने में हम सच्चे हृदय से योग देवें। मैं मानता हूं कि हमारे दक्षिण भारत के भाइयों को हिन्दी सीखने में कठिनता अवश्य होगी, परन्तु कठिनता को पार करना यही तो पुरुषार्थ है। इसलिये मैं यह चाहूंगा कि प्रत्येक निश्चय जो यहां स्वीकार हुआ है, उसको पूरी तौर पर सफल बनाना भवन के सब सदस्य और सारा देश अपना कर्तव्य समझे, तो हमारे देश का भला हो सकता है। मैं केवल इस सम्बन्ध में एक बात और कहना चाहता हूं कि यह हमारे लिये गर्व की बात है कि हमारा विधान इतना लम्बा और संसार भर के सब विधानों से बड़ा विधान होते हुए भी उसकी किसी भी धारा के विषय मत लेते समय कभी भी हाउस में किसी प्रश्न में डिवीजन की नौबत नहीं आई और मत विभाजन की एक भी सूची नहीं बनानी पड़ी। इस अद्भुत घटना का श्रेय किन महानुभाव को है, उनका नाम लेने की मुझे आवश्यकता नहीं है। श्रद्धा हृदय में होती है, प्रकट करने से उसका महत्व घट जाता है, इसलिये मैं इस विषय में किसी विशेष

व्यक्ति का नाम नहीं लूंगा। हमारे देश की स्वाधीनता के अहिंसात्मक युद्ध का इतिहास ही निराला है। हम लोग सब अपने हृदय में जानते हैं कि किसकी बदौलत, किसकी कृपा से यह ऐसा मौका आया। संसार के इतिहास में जो कभी घटित नहीं हुआ था, वह यहां घटित होकर रहा। मुझे जब कभी मैं इस भवन में आता था, तो सबसे पहले नज़र पड़ती थी महात्मा गांधी के चित्र पर और मुझे यह पूरा विश्वास है कि यद्यपि यह तैल चित्र भवन के एक निश्चित स्थान पर रखा है, पर महात्मा जी की आत्मा तो सारे देश में, हमारे हृदयों में व्याप्त है। यह सब कुछ उनकी ही तपस्या का फल है। आज उस चित्र को देखते हुए ऐसा मालूम होता है, वह चित्र संकेत कर रहा है। देश ने कुछ आय के लालच में पड़कर दंडी की महान यात्रा को भुला दिया। खेद है नमक कर के विषय में हम कोई स्पष्ट फैसला नहीं कर पाये हैं। पर मैं आशा करता हूं कि भविष्य में इस राष्ट्र को कभी नमक पर कर लगाने की आवश्यकता न होगी। सांभर झील के प्रबन्ध के विषय में काफ़ी शिक़ायतें सुनते हैं यदि नमक पर कर लगा तो दूसरे प्रान्तों में नमक महंगा हो जायेगा। मैं सन् 1905 से कांग्रेस में काम करता रहा हूं, मेरा तब से यह विश्वास रहा है कि भारतवर्ष की राष्ट्रीय आत्मा जीवित है और जागृत है। मैं जब विद्यार्थी जीवन में था, तो अखबारों में खुदीराम बोस तथा कन्हैयालाल दत्त आदि अन्य देशभक्तों की कथा पढ़ कर देश के अमरत्व में विश्वास करता था। मुझे पूरा विश्वास है कि जब इस युग में भी महात्मा गांधी जैसे महापुरुष हमारे बीच में पैदा हो सकते हैं, तो भारतवर्ष की आत्मा जीवित है, हमारी राष्ट्रीय आत्मा जीवित है और हमें कोई कारण निराश होने का नहीं है, केवल सच्चे दिल से हमें काम करने की आवश्यकता है। अगर हम जिस निश्चय पर पहुंचे हैं, उसका पालन करने में सब लोग एक हृदय से योग देवें तो हमारी सफलता निश्चित है और जो ऊंचा स्थान भारतवर्ष का पुराने इतिहास में था, उससे भी ऊंचा स्थान हमें मिल सकता है। अभी चर्चा इस बात की होती थी कि इस संविधान का प्रचार जनता में किया जाये और लोगों को उसकी विशेष धाराओं का महत्व बतलाया जाये। मैं यह बतला देना चाहता हूं कि इस विषय में जो लोग काम करने वाले हैं, अभी से प्रचार कार्य में लग गये हैं और थोड़ा थोड़ा बहुत मैंने भी इस दिशा में कार्य आरम्भ कर दिया। मुझे इस सम्बन्ध में एक कठिनता है, मेरा प्रदेश हिमालय प्रदेश है, जहां कि बहुत बड़े सुरम्य स्थान तथा पवित्र तीर्थ हैं, वहां देश के लोगों का आवागमन बहुत कम रहता है। यात्रा के लिये भी लोग कम जाते हैं और बाहर के लोगों से हमारे प्रदेश के निवासियों का सम्पर्क बहुत कम रहता है। अतः देश राष्ट्रीय दृष्टि से हमारे प्रदेश का महत्व नहीं जान सका है। इसलिये यह सारा भार हमारे ही ज़िम्मे आ जाता है, अपने यहां की जनता को जागृत करें और देश के प्रति उनका क्या कर्तव्य है सो बतलायें। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि इन आन्तरिक असुविधाओं के होते हुए भी हम अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं और करते जायेंगे। अखबार पढ़ने से मालूम ही होगा कि तिब्बत पर चीन के साम्राज्यवादियों की नज़र पड़ने लगी है, और तिब्बत हमारे इस प्रदेश से बिल्कुल मिला हुआ है। सम्भव है कि थोड़े ही समय में हमें अपना कर्तव्य देश के प्रति पालन करने का अवसर आ जावे और हम यह दिखा सकें कि वास्तव में हम लोग देश की सेवा अपने तन, मन और धन से करने के लिये तत्पर रहते हैं। अन्त में मैं केवल यही कहूंगा कि मेरा सौभाग्य है कि संविधान की इस अवस्था में, इस कार्य में शामिल होने का मुझे भी सुअवसर मिले और आपकी कृपा से दो शब्द कह सका। इसलिये मैं

[श्री हरगोविन्द पन्त]

आपको हृदय से धन्यवाद देता हूं और मुझे आशा है कि जो अमर भारत है वह सदा ही अमर भारत रहेगा और संसार के हित का बहुत कार्य करेगा।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीसा: जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस संविधान को मैं पूर्ण समर्थन नहीं दे सकता हूं क्योंकि यह कोई क्रांतिकारी संविधान नहीं है। इस संविधान के अनुसार देश का वर्तमान सामाजिक और आर्थिक ढांचा ज्यों का त्यों बना ही रहेगा। पर इसके कुछ दोष ऐसे हैं जो बिल्कुल प्रत्यक्ष हैं। मैं इन्हीं दोषों को और खास करके जिनका सम्बन्ध मूलाधिकारों से है, सभा की निगाह में ला देना चाहता हूं। इसमें शक नहीं कि मूलाधिकारों के द्वारा कतिपय बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार जनता को दिये गये हैं पर बाद के एक अनुच्छेद द्वारा अर्थात् अनुच्छेद 22 के द्वारा जो निवारक निरोध के बारे में है, इनमें से बहुत से अधिकार छीन भी लिये गये हैं। सुतरां यह कहना सही नहीं हो सकता है कि मूल अधिकार हमको पूर्णत: दिये गये हैं।

फिर इस सम्बन्ध में मैं उस खण्ड का भी उल्लेख करूंगा जो सम्पत्ति के अवाप्तिकरण के बारे में रखा गया है। सम्पत्ति के अवाप्तिकरण के लिये प्रतिकर देने की जो व्यवस्था की गई है वह वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के आधार पर ही की गई है और यह कहना सरासर गलत है कि इस संविधान के द्वारा हम जनता के लिये एक सुख समृद्धि का युग उपस्थित करने जा रहे हैं। मेरा निजी मत यह है कि देश के सभी प्राकृतिक साधनों का तथा उत्पादन के सभी साधनों पर समाज का स्वामित्व है और यह सभी साधन समाज की सम्पत्ति हैं। इस विचारधारा को हम सर्वथा नई और क्रांतिकारी विचार धारा नहीं कह सकते हैं क्योंकि हम यह देखते हैं कि अन्य बहुत से देशों में और खासकर के अमेरिका में जहां सम्पत्ति के स्वामित्व को पहले बहुत ही पवित्र माना गया था इधर 19वीं और बीसवीं शताब्दी में इस ख्याल में बड़ा परिवर्तन हो गया है। मेरा ख्याल तो यह है कि संविधान में हमें यह घोषित कर देना चाहिये था कि देश के सभी प्राकृतिक साधनों पर तथा उत्पादन और वितरण के सभी उपायों पर समाज का स्वामित्व है और जहां तक कि ऐसी सम्पत्ति के अवाप्तिकरण का सम्बन्ध है इसके लिये प्रतिकर देने की व्यवस्था न होनी चाहिये क्योंकि इस तरह की सम्पत्ति को रखने वाले व्यक्ति आज सैकड़ों वर्षों से इस सम्पत्ति का उपयोग करते आये हैं और उन्होंने इससे प्रचुर लाभ उठा लिया है। ऐसी दशा में मैं तो कोई कारण नहीं देखता कि इस सम्पत्ति को अवाप्त करने के लिये अब इसके स्वामियों को प्रतिकर क्यों दिया जाये। विस्तार की बातों में मैं नहीं जाना चाहता पर यह जरूर कहना चाहता हूं कि जो बात मैंने ऊपर कही है उसका भी हमें ध्यान रखना चाहिये था। मैं जानता हूं कि प्रतिकर सम्बन्धी खण्ड का यहां कुछ लोगों ने विरोध किया था पर अन्ततोगत्वा वह खण्ड बहुमत से स्वीकृत ही हो गया।

कई माननीय मित्रों ने यहां इस बात की भी चर्चा की है कि गांधी जी किस तरह का लोकतंत्र चाहते थे। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि गांधी जी के सिद्धान्तों को संविधान में स्थान ही नहीं दिया गया है। जहां तक मेरा निजी सम्बन्ध है मैं इस प्रश्न को यहां उठाना नहीं चाहता पर यह जरूर कहना चाहता हूं कि जहां तक बोलने का सम्बन्ध है हम लोग एक ऐसे समाज के निर्माण

की बात जरूर करते हैं जिसमें न कोई ऊंच होगा और न नीच अर्थात् उस समाज में सभी की आमदनी जहां तक सम्भव हो सकेगा समान रखी जायेगी। कहते तो हम यह सब बातें ज़रूर हैं पर खुद संविधान में हमने राष्ट्रपति से लेकर सभी उच्च पदाधिकारियों के लिये बड़े लम्बे लम्बे वेतनों की व्यवस्था रख छोड़ी है। जब निम्नतर स्तर के सरकारी कर्मचारियों के लिए तीस रुपये मासिक वेतन की व्यवस्था की है तो उस हालत में राष्ट्रपति को दस हजार माहवार देना बिल्कुल बेतुकी बात है। जब मैं अमेरिका में था उस समय यानी आज से करीब पच्चीस साल पहले भी, मुझे याद है कि किसी स्थान में भी कर्मचारियों के अधिकतम और अल्पतम वेतन में इतना अन्तर नहीं रहा है जितना कि यहां अब रखा गया है। यदि उच्चतम वेतन पाने वाले कर्मचारियों की सेवाओं को इसी दृष्टि से देखेंगे तो हम किस तरह यह बात कह सकते हैं कि हम एक ऐसा संविधान पास कर रहे हैं जो एक ऐसे समाज का निर्माण करेगा जिसमें आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सभी समान होंगे।

अब मैं राष्ट्रीय भाषा के सम्बन्ध में कुछ बातें कहना चाहता हूं। भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद जिस रूप में स्वीकार किया गया है उससे तथा उस पर आज सवेरे श्री थानु पिल्ले ने जो कुछ कहा है उससे मेरा पूर्ण मतैक्य है। पर मैं इतना अवश्य कह देना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात का ज़िक्र करना ही वह भूल गये और दुर्भाग्य की बात यह है कि वह बात उनकी समझ में आ भी नहीं सकती। गांधी जी का तथा उन लोगों का भी जो इस बात को जानते हैं कि भाषा के बारे में दुनिया किस तरह चलती है, मूल मत यही था कि हिन्दुस्तानी हमारी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिये। भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद जिस रूप में लिपिबद्ध किया गया है उसका अर्थ तो निस्सन्देह यही होता है कि हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दुस्तानी होगी पर मेरा विश्वास है कि इसे हिन्दी कहना गलत होगा क्योंकि हिन्दी की वकालत यहां दो तीन प्रान्तों के कुछ सदस्यों ने की है जो हमेशा इसमें मूल संस्कृत शब्दों को रखने की बात कहते हैं और उनके इस मंतव्य का दक्षिण भारत में, बंगाल में और मेरा ख्याल है कि बम्बई के कुछ हिस्सों में भी, बड़ा विरोध हुआ है। वह भाषा जिसे कि यहां कि लोग बोलते हैं वह वस्तुतः हिन्दुस्तानी ही है और यहां के अहिन्दुस्तानी भाषी प्रदेशों के लोग भी हिन्दी में बोलने वाले वक्ता की अपेक्षा हिन्दुस्तानी में बोलने वाले वक्ता की बातों को अधिक अच्छी तरह समझ पाते हैं। हमारे उड़ीसा प्रान्त को ही लीजिये। यद्यपि हम लोग हिन्दुस्तानी बोलते हैं पर हिन्दी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी को और अच्छी तरह समझ लेते हैं। यह इस लिये कि शुद्ध हिन्दी में जिसकी संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त यहां वकालत कर रहे हैं, संस्कृत के अनेक शब्द रहते हैं जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं होते क्योंकि वह संस्कृत पढ़े नहीं हैं। अगर संविधान निर्माताओं में शुद्ध हिन्दी के हिमायती मित्रों के दबाव में आकर इस अनुच्छेद को पास किया है तो उन्होंने बड़ी गलती की है। भाषा सम्बन्धी अनुच्छेद के स्वीकृत हो जाने पर मुझे दक्षिण भारत में तथा बंगाल में भी यात्रा करने का मौका मिला था और वहां सर्वत्र मैंने इस अनुच्छेद का घोर विरोध ही देखा। विरोध का और कोई कारण नहीं है केवल एक कारण यही है कि वहां वालों को यह ख्याल है कि उत्तर भारत के लोग ज़बरदस्ती उनपर यह भाषा लाद रहे हैं। मेरा ख्याल है कि उन का यह आक्रोश ठीक ही है। इसलिए इस अनुच्छेद को कार्यान्वित करने का जब समय हो तो तत्कालीन शासन को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसी तरह की हिन्दुस्तानी यहां राष्ट्र भाषा के रूप में व्यवहृत हो जिस तरह की हिन्दुस्तानी

[श्री सारंगधर दास]

का प्रसार देश के कई भागों में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा कर रही है। जब समस्त देश में लोग हिन्दुस्तानी को अपना लेंगे उस समय मेरा ख्याल है कि भाषा के सम्बन्ध में लोगों की जो मिथ्या आशंकायें हैं वह चन्द दिनों के अन्दर अपने आप खत्म हो जायेंगी।

जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है यहां कई मित्रों ने और रियासतों से आये हुए कुछ मित्रों ने भी उस अनुच्छेद का समर्थन किया है जिसमें रियासतों और रियासती संघों—जैसे कि मैसूर का राज्य और ट्रावंकोर-कोचीन राज्य-संघ—को अभी दस साल तक केन्द्रीय शासन के संरक्षण में रखने की व्यवस्था की गई है। जब इस अनुच्छेद पर यहां विचार किया जा रहा था उस समय मैंने इसका विरोध किया था। उन मित्रों से मैं सहमत नहीं हूं जो इस व्यवस्था का समर्थन करते हैं। कुछ रियासतें कितनी भी पिछड़ी क्यों न हों पर मेरा ख्याल है कि यहां की जनता के तथा उसके प्रतिनिधियों के लोकतंत्रीय अधिकारों को छीनना और उनको केन्द्र की कृपा पर आश्रित रखना ठीक न होगा। जब इन रियासतों का—जिनकी संख्या 6 सौ से कुछ ऊपर है—स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व समाप्त कर दिया गया है तो उनके लिये अब इस तरह का उपबंध रखना एक बड़ी प्रतिगामी व्यवस्था होगी। इन रियासतों के कतिपय भागों को अब दस साल तक के लिये केन्द्र के नियंत्रणाधीन रखना वस्तुतः एक प्रतिगामी व्यवस्था ही कही जायेगी। फिर इस सम्बन्ध में मुझे यह भी कहना है कि यद्यपि इन रियासतों का स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व समाप्त कर दिया गया है और हम यह कहते हैं कि देशी नरेश अब नहीं रह गये हैं पर मैं नहीं मानता कि वह नहीं रह गये हैं। निजी थैली के रूप में उन्हें रकम मिलेगी ही तथा अन्य परिलाभ भी उन्हें मिलेंगे ही चूंकि इन सब बातों की व्यवस्था संविधान में कर दी गई है इसलिये वह तो सदा के लिये बने ही रहेंगे। वस्तुतः इस व्यवस्था से तो देशी नरेशों को और लाभ हो जायेगा क्योंकि अब उन पर अपने प्रदेश के प्रशासन की कोई जिम्मेदारी ही न रह जायेगी। कोई जिम्मेदारी न रहने पर भी निजी थैली की रकम वह पाते रहेंगे। फिर उनको इतनी रकम देना इसलिये गैर वाजिब भी है कि युद्धकालीन स्फीत आय के आधार पर यह रकम निश्चित की गई है इसलिये मेरा मंतव्य यह है कि नरेशों को समाज में बना रहने दिया गया है पर एक दूसरे रूप में अपने प्रदेशों पर शासन का अधिकार उन्हें अब ज़रूर नहीं रह गया है। और वह शासक के रूप में नहीं रह गये हैं पर एक नये निहित-स्वार्थ वर्ग के रूप में वह अवश्य कायम रखे गये हैं। उस रूप में उनको बनाये रखना न वांछनीय कहा जा सकता है और न यह व्यवस्था उस तरह के समाज के निर्माण के लिये सहायक हो सकती है जिसको संविधान कायम करना चाहता है।

यह बात भी आपत्तिजनक है कि केन्द्र को आवश्यकता से अधिक अधिकार दिये गये हैं। मुझे याद है, सन् 1947 में जब संविधान की मूल बातों के बारे में निर्माण किया गया था उस समय केन्द्र को इतने अधिकार देने की बात नहीं सोची गई थी। मैं इस बात को समझता हूं कि देश विभाजन के बाद से स्थिति में परिवर्तन हो गया है। फिर भी केन्द्र को इतने व्यापक अधिकार देना, इसे इस पदाधिकारी, उस पदाधिकारी और राज्यपाल आदि के मनोनयन का अधिकार देने

का परिणाम यह होगा कि अधिकारारूढ़ दल को इस बात का मौका मिलेगा कि वह स्थायी रूप से अपने को अधिकारारूढ़ बनाये रखे। फिर जहां तक कि प्रान्तों के राज्यपालों के मनोनयन के अधिकार का सम्बन्ध है, मुझे आशंका इस बात की है कि अगर किसी प्रान्त में वर्तमान शासनारूढ़ दल से भिन्न कोई और दल अगर अधिकार में आ जाता है और राज्यपाल वहां नियुक्त किया कोई ऐसा व्यक्ति जो वर्तमान शासनारूढ़ दल का आदमी है तो वहां राज्यपाल और शासन के बीच यानी मंत्रिमंडल कभी सहायक नहीं हो सकती है। इस दृष्टिकोण से, मेरा विश्वास यही है कि केन्द्र में इतनी व्यापक शक्तियों को विहित करने का परिणाम यह होगा कि यहां शनैः शनैः एक दल विशेष की डिक्टेटरशिप चालू हो जायेगी।

फिर संविधान में रखी गई एक और व्यवस्था भी आपत्तिजनक और यह लोकतंत्रीय सिद्धान्तों से सर्वथा प्रतिकूल है जिसका मैं यहां ज़िक्र कर देना चाहता हूं। वह आपत्तिजनक व्यवस्था यह है कि राज्य परिषद् में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत कतिपय सदस्यों को रखने की बात और इन मनोनीत सदस्यों में से दो एक को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में रखने की बात भी कही कही गई है। एक तरफ तो हम लोकतंत्र का नारा लगा रहे हैं और दूसरी तरफ हम ऐसी पद्धतियों का अवलम्बन कर रहे हैं जो लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है।

जो थोड़ा समय मुझे यहां मिला है उसमें तो इन त्रुटियों का ही दिगदर्शन करा सकता हूं जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया है। पर मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं करता कि संविधान में कुछ खूबियां भी हैं जिनका ज़िक्र मुझे यहां करना ही चाहिये।

अपने अधिकांश मित्रों से और खासकर के हिन्दू मित्रों से मैं सहमत नहीं हूं जो गणतंत्रीय शासन पद्धति को अर्थात् यहां की प्राचीन गणतंत्रीय व्यवस्था को स्थापित करने पर इतना तूमार बांध रहे हैं। मेरा कहना यह है कि देश के निम्नतर के लोगों को समाज की निम्न जातियों को जिनको हम हरिजन कहते हैं यहां हमेशा दलित अवस्था में ही रखा गया है। इस लिये यहां वास्तविक लोकतंत्र तो कभी रहा नहीं है। अगर यहां कोई लोकतंत्र या गणतंत्र रहा है तो वह केवल उच्च जातियों तक ही सीमित रहा है। अगर इस दृष्टिकोण से हम संविधान पर विचार करते हैं तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि अस्पृश्यता को उठाने वाला उपबंध तथा वयस्क मताधिकार सम्बन्धी उपबंध ये दोनों उपबंध संविधान की वयस्क मताधिकार का अधिकार केवल गोरे पर स्वतंत्र नागरिकों को ही दिया गया था क्योंकि उन दिनों कुछ गोरे भी ऐसे थे जो दास थे और पश्चिमी द्वीप समूह में तथा करेबियन द्वीपों में दास वृत्ति करते थे। उनको मताधिकार से वंचित ही रखा गया था। कालों को, निग्रो लोगों को तो अधिकार दिया ही नहीं गया था। उनको मताधिकार से वंचित ही रखा गया था। उनको तो मताधिकार उस समय मिला जब श्री अब्राहम लिंकन अधिकार में आये। इसलिये मेरा यह मत अवश्य है कि अपने संविधान में जो वयस्क मताधिकार का उपबंध रखा गया है, महिलाओं को समता देने का और अस्पृश्यता को उठाने का जो उपबंध रखा गया है यह सभी बातें संविधान की सर्वोत्कृष्ट विशेषतायें हैं।

[श्री सारंगधर दास]

संविधान की एक उत्कृष्ट विशेषता यह भी है कि इसने राज्य को सर्वथा धर्म निरपेक्ष रखने की व्यवस्था की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राज्य को धर्म निरपेक्ष रखने के लिये जो कुछ भी हो सकता है संविधान द्वारा किया गया है गोकि अनेक सदस्यों ने इसकी तीव्र आलोचना की है इस आधार पर कि यह व्यवस्था सर्वथा अभारतीय है यानी हिन्दू धर्म की उपेक्षा कर के रखी गई है। इस सम्बन्ध में मैं यह कह दूं कि अब किसी भी शिक्षण संस्था में, चाहे वह हिन्दुओं की हों या मुसलमानों की या इसाइयों की, धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी। इस सम्बन्ध में जो खण्ड रखे गये है उनमें कुछ में यह उपबंध ज़रूर रखा गया है कि कतिपय विशेष स्थितियों में धार्मिक शिक्षा देने की अनुमति मिल सकती है पर मेरा ख्याल यही है कि यह बात हटा दी जानी चाहिये।

यद्यपि संविधान की कतिपय गम्भीर त्रुटियों का यहां उल्लेख किया है पर चूंकि संविधान में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गई है इसलिये मुझे विश्वास है कि जनता जो आगे चल कर मताधिकार का प्रयोग करेगी वह अगर चाहेगी तो समूचे संविधान को बदल सकती है और मेरा ख्याल है कि वह ऐसा जरूर ही चाहेगी। इसलिये मैं न तो इस संविधान की निन्दा ही करूंगा और न इससे असहमति की प्रकट करूंगा जैसा कि कतिपय मित्रों ने किया है। इसकी निन्दा करने में कोई लाभ नहीं है। जब वयस्क मताधिकार की व्यवस्था रखी गई है तो आगे चलकर इस अधिकार का प्रयोग करके हम अपनी आवश्यकतानुसार संविधान में ये परिवर्तन कर सकते हैं।

इन शब्दों के साथ मैं धन्यवाद देता हूं मसौदा समिति को और धन्यवाद देता हूं आपको श्रीमान कि इस संविधान के निर्माण में आपने इतना अधिक प्रयास किया और सभा के सभी वर्गों को सन्तोष देने के लिये जो कुछ भी हो सकता था किया।

***श्रीमती अम्मू स्वामिनाथन्** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, बिना किसी अत्युक्ति के यह बात कही जा सकती है कि स्वतंत्र भारत के लिये इस संविधान को स्वीकार करके सभा ने देश के चालीस करोड़ नर नारियों के स्वप्नों को पूरा किया है। इस स्वप्न की पूर्ति के लिये देशवासी कितने ही दिनों अथक प्रयास करते आ रहे हैं और आज वह सुदिन हमें प्राप्त हुआ है कि हमारा स्वप्न पूरा हुआ है।

आज मध्यान्ह काल में यहां खड़ा होने पर जो पहली तस्वीर मेरे दिमाग में आ रही है वह है। महामानव महात्मा गांधी की जिन्होंने अनेकानेक वर्षों के अपने अथक प्रयास द्वारा यह सम्भव बनाया है कि आज हम स्वतंत्र हो गये हैं। मेरा ख्याल यह है कि अगर हम वस्तुत: अपने को इस संविधान के लायक बनाना चाहते हैं तो हमें इस बात का पक्का इरादा कर लेना होगा कि हम इसे एक सजीव वस्तु मानकर इस पर इस तरह अमल करेंगे कि देश के प्रत्येक नर नारी को लाभ पहुंच सके। मैं यह जानती हूं कि संविधान में हमें मूलाधिकार दिये हैं।, समता का अधिकार दिया है, वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की है तथा अस्पृश्यता को उठाने की व्यवस्था की है और इसी तरह की अन्य कई बातों का उपबंध इसने किया है जिसके लिये हम वर्षों से संघर्ष करते आ रहे हैं। पर अगर हम

देश को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं तो इन अधिकारों को केवल संविधान में लिपिबद्ध कर देने से ही हमारा काम नहीं चल जायेगा। हमें कोशिश इस बात की करनी होगी कि संविधान में रखे गये विचारों और आदर्शों को क्रियान्वित किया जाये और देश के लोग उन पर अमल करें।

अन्य सदस्यों का अनुगमन करते हुए जिन्होंने आपको धन्यवाद दिया है और अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की है, मैं भी आपको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहती हूं। सभा के सभी सदस्य आपको सदा असीम स्नेह और श्रद्धा से याद करेंगे। सभा के प्रत्येक सदस्य के प्रति आपने सदैव सदय और सहृदय बर्ताव किया है जिसे हम लोग कभी भूल नहीं सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर को, समिति के सदस्यों को तथा संविधान सभा कार्यालय के कर्मचारियों का भी हम धन्यवाद दिये नहीं रह सकते हैं। इन्होंने इतने दिनों तक घोर परिश्रम के साथ संविधान निर्माण के कार्य में हमें चंद सहायता दी है। मैं जानती हूं कि इनका काम आसान नहीं रहा है, इनको तरह तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। पर इन्होंने सभी कठिनाइयों को पार किया। इसी का फल है कि आज हम संविधान को पास करने जा रहे हैं।

मैं यह अनुभव करती हूं कि अपने संविधान के वस्तुतः दो ही मुख्य स्तम्भ हैं एक तो मूलाधिकार दूसरे राज्य की नीति के निदेशक तत्व और उन्हीं दो स्तम्भों पर समूचा संविधान खड़ा है। भाषा के बारे में संघ बनाने और पूजा पाठ के बारे में देशवासियों को मूलाधिकारों के अधीन पूरी स्वतंत्रता प्राप्त रहेगी। जहां तक पूजा पाठ का सम्बन्ध है यहां वालों के लिये यह एक बड़ी महत्वपूर्ण बात होती है। हिन्दू सदा से ही इस बात के लिये प्रसिद्ध हैं कि वह सभी धर्मों का आदर करते हैं और हमने इस बात को संविधान में भी रख दिया है ताकि इस सम्बन्ध में किसी को भी कोई गलतफहमी न हो और कोई यह न कह सके कि संविधान में स्वेच्छानुसार उपासना की स्वतंत्रता नागरिकों को नहीं दी गई है।

अब यह देखना हमारा काम है कि संविधान समुचित रूप से अमल में लाया जाये ताकि देश में लोकतंत्रीय राज्य की स्थापना हो सके जिसके लिये हम इतने दिनों से प्रयास करते आये हैं। फिर लोकतंत्रीय राज की स्थापना हो जाने पर हमें ध्यान देना होगा न सिर्फ इस बात की ओर कि नागरिकों के अधिकार सुरक्षित रहें बल्कि हमें इसकी भी कोशिश करनी होगी कि नागरिकों को यह मालूम रहे कि राज्य के प्रति उनके कर्तव्य और दायित्व क्या हैं। नागरिकों के स्वातंत्र्य का उपयोग होना चाहिये देश की भलाई के लिये। वह अपने स्वातंत्र्य का उपयोग इसके लिये नहीं कर सकते हैं जो मन में आये करें। जैसा कि अक्सर कहा गया है, स्वतंत्रता का मतलब यह नहीं है कि लोग उच्छृंखल होकर जो चाहे करें। हमें इस बात की आशा करनी चाहिये कि आगे चलकर अपना यह संविधान देश के लिये एक उपयोगी और योग्य संविधान ही समझा जायेगा। यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो संविधान के अनेक खण्डों को दोषपूर्ण समझते हैं पर मुझे विश्वास है कि ये लोग इस बात को भी ध्यान में रखेंगे कि जब हम यहां संविधान निर्माण का काम कर रहे थे उस समय सारा देश एक कठिन समय से होकर गुज़र रहा था और वैसे समय में संविधान बनाने का काम बड़ा कठिन

[श्रीमती अम्मू स्वामिनाथन्]

काम था। मैं यह महसूस करती हूं कि हमारे लिये लिये यह एक बड़ी सफलता की बात है कि भिन्न भिन्न विचारों के लोगों को साथ लेकर चलने में और इस तरह का संविधान बनाने में हम समर्थ हो पाये हैं जिसे सब लोगों ने नहीं तो, एक बहुत बड़े बहुमत ने स्वीकार किया है।

इस सभा के अनेकानेक सदस्यों ने इस संविधान की प्रशंसा की है और कुछ लोगों ने इसकी निन्दा भी की है। इसके विरुद्ध एक शिकायत यह भी की जाती है कि यह एक बहुत ही लम्बा और वृहदाकार है। संविधान के सम्बन्ध में सदा ही मेरा ख्याल यही रहा है और अब भी यही है कि यह एक छोटी सी पुस्तिका के रूप में होना चाहिये जिसे कोई अपने पाकेट में या मनी बेग में रख सके। इसमें विस्तार की अनेक बातों का उल्लेख किया गया है। जिनके उल्लेख की इसमें कोई ज़रूरत नहीं थी। मेरा ख्याल है कि विस्तार की इन सभी बातों को हमें शासन या विधान मण्डलों पर छोड़ देना चाहिये था। आखिर शासन या विधान मण्डल तो संविधान में रखी गई नीति के अनुसार ही अपना प्रकार्य करेंगे। फिर मैं पूछती हूं कि इन सब विस्तार की बातों से संविधान को बोझिल बनाने की जरूरत क्या थी? संविधान निर्माण के बारे में मेरी जानकारी नहीं के बराबर है, इस विषय में विशेषज्ञ होने का मैं दिखावा नहीं करती। किन्तु भारत के एक नागरिक की हैसियत से और एक ऐसे नागरिक की हैसियत से जो विधान मण्डल का दो तीन साल तक सदस्य रहा है, मैं यह ज़रूर अनुभव करती हूं कि संविधान में इतने विस्तार की बातों को रखने की कोई ज़रूरत नहीं थी। अस्तु, संविधान जिस रूप में हमारे सामने हैं, उसे मैं एक महत्वपूर्ण कृतित्व समझती हूं। मेरे लिये यह एक बड़ी प्रसन्नता और सुख की बात रही है कि इस संविधान को तैयार करने वाली संविधान सभा के एक सदस्य के रूप में यहां उपस्थित रह कर संविधान रचना के काम में योग दान देने का मुझे सुअवसर मिला है और मुझे विश्वास है कि हममें से कुछ लोग जीवित रह कर यह देख सकेंगे कि मानव अधिकारों की रक्षा के लिये अपना संविधान एक सुदृढ़ गढ़ का काम दे रहा है। मुझे विश्वास है कि एक वास्तविक लोकतंत्र को स्थापित करने के लिये इस पर अमल किया जायेगा ताकि यहां का प्रत्येक नागरिक सुखी और सम्पन्न हो सके।

सबको समान अधिकार देना एक बहुत बड़ी बात है और संविधान में यह बात रखकर हमने बहुत ठीक काम किया है। बाहर के लोग यह कहते रहे हैं कि भारत ने स्त्रियों को समान अधिकार नहीं दिया है। अब हम यह कह सकते हैं कि जब हमें अपने संविधान को स्वयं बनाने का मौका मिला तो हमने स्त्रियों को भी वह सब अधिकार दिये हैं जो औरों को दिये गये हैं। यह हमारी एक बहुत बड़ी सफलता है और इससे हमारे महिला समाज को न केवल इस बात में ही सहायता मिलेगी कि वह अपने दायित्वों को समझ सकें बल्कि अब वह आगे बढ़कर अपने दायित्वों को सम्भाल सकेंगी। और भारत को अतीत कालीन भारत की तरह महान देश बना सकेंगी।

इन शब्दों के साथ श्रीमान, मैं इस प्रस्ताव का प्रबल समर्थन करती हूं कि इस संविधान को स्वीकार किया जाये।

श्री एल.एस. भाटकरः (सी.पी. और बरारः जनरल)ः श्रीमान सभापतिजी, हमारे राष्ट्र के स्वतंत्र होने के पश्चात्, हमारा यह विधान डॉ. अम्बेडकर और ड्राफ्टिंग कमेटी दोनों के परिश्रम से बना इसके लिये मैं उन दोनों को बधाई देता हूं।

इस विधान के बनाते समय इसमें बहुत सी कमी रह गई है। फंडामेंटल राइट्स के आर्टिकल 19 में जो भी अधिकार जनता को दिये गये हैं वह न देने सरीख हैं क्योंकि उस आर्टिकल में जो भी दिया है तो उसको निकाल लिया गया है। आर्टिकल 17 में एबालिशन ऑफ अनटचेबलेटी रखी गई है इसके लिये ड्राफ्टिंग कमेटी को बधाई देता हूं। अनटचेबलेटी को समाप्त करने का कानून हर प्रान्त में बनाया गया है परन्तु वह केवल कानून की पुस्तक में ही पड़ा है उसका पालन कहीं नहीं होता। जो अस्पृश्यता हजारों वर्षों से सर्वण हिन्दुओं के रोम रोम में भिदी हुई है थोड़े से सज्जन उसको निकालने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन कानून द्वारा निकालने से पहले सवर्ण हिन्दुओं को अपने मन की शुद्धि करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार अस्पृश्यता का अन्त हो सकता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने जो सबक इसको दूर करने का सिखाया है उसका पठन कर के परीक्षा में पास होने की जवाबदोशी आपके सिर पर है।

ये जो विधान बन रहा है उसमें काश्तकार और मज़दूरों के लिये स्थान नहीं है। जो सरकारी कर्मचारी हैं उनको ज्यादा तन्खाहें देने की ही तत्परता इसमें दिखाई गई है। जो काश्तकार और मजदूर हैं, जो राष्ट्र की उन्नति के लिये रात दिन कष्ट सहते रहते हैं जिन्होंने राष्ट्र के स्वतंत्र करने के समय तकलीफें भोगी हैं उनके लिये इस विधान में कहीं पर भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता। यह तो केवल अमीरों के रक्षण के लिये बन रहा है। हज़ारों बीघा जमीन ज़मींदारों ने काश्तकारों से तरह-तरह से लूटी हैं। उस जमीन को किसानों को देने का इस में कहीं पर कोई प्रत्यत्न नहीं है। जब तक कारखानों का राष्ट्रीकरण नहीं किया जाता तब तक राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। प्रान्तों में जमींदारी नष्ट करने के लिये कानून बन रहा है जब कि काश्तकार लोगों की ज़मीन अन्य भागों से लूटी गई है। वह जमीन काश्तकार लोगों को रुपया खर्च करके लेनी पड़ रही है। इसका मतलब तो यही निकलता है कि जो ज़मींदार हैं उनको और बलवान बनाया जा रहा है। इस विधान में इस बात का रहना जरूर था कि काश्तकारों को जमीन मुफ्त मिलेगी। महात्मा जी ने हमें बताया है कि यह राष्ट्र तब स्वतंत्र समझा जायेगा जब कि काश्तकार और मज़दूरों के लिये फलदायक होगा। इस विधान में उनके लिये कोई लाभ की बात नहीं दिखाई देती।

विधान में माइनारिटी के संरक्षण के बारे में काफी प्रयत्न किया गया है। आर्टिकल 338 में शैड्यूल्ड कास्ट्स के लिये न्याय मिलने की बात कही गई है। सभापति जी आज तक नौकरी में हरिजनों को जो स्थान था वह मैं आपको बतलाना चाहता हूं।

[श्री एल.एस. भाटकर]

सी.पी. और बरार

कास्ट	1931 में जनसंख्या	गज़ेटेड पोस्ट्स
ब्राह्मण	5,42,555	448
मरहठा और अन्य	18,82,654	17
शेड्यूल्ड कास्ट	30,51,413	3
मुसलमान	7,83,697	99
सिख	14,999	13
		580

बम्बई लेजिस्टेटिव असेम्बली में श्री आर.एम. नालवाडे ने एक प्रश्न किया था उसका उत्तर माननीय श्री बी.जी. खेर ने इस प्रकार दिया था—

कम्युनिटी	1931 में जनससंख्या	गजेटेड अफसरों की संख्या	नान गजेटेड अफसरों की संख्या
डिप्रेस्ड क्लासेज़	18,55,148	14	8,201
मरहठा और अन्य	42,07,159	606	43,360
ब्राह्मण	9,18,120	1,370	21,448
मुसलमान	19,20,368	201	13,797
अन्य	...	886	18,658

इससे दिखाई देता है कि इसका आश्वासन मिलना चाहिये कि इस प्रकार का अन्याय न होगा और इसके लिये जल्दी कार्यवाही होगी। मैं हिन्दुस्तान सरकार और प्रान्तीय सरकारों से प्रार्थना करता हूं कि वे आर्टिकल 338 को हमारी भलाई के लिये काम में लावें और हरिजनों को उनकी संख्या के अनुसार नौकरियों में भरती करें।

दूसरी बात यह है कि इस सभागृह में हम हरिजनों की संख्या के अनुसार 60 सदस्य आने चाहिये थे परन्तु आज केवल 27 हैं। केजुअल वेकेन्सीज़ भरने के समय सभापति जी आपका कोटा पूरा करेंगे ऐसी मेरी आशा है।

श्री रामचन्द्र उपाध्याय (राजस्थान संघ): सभापतिजी, आज हम जो कुछ इस विधान के सम्बन्ध में कहें, वह हमें इस बात को देखकर कहना चाहिये कि तीन साल पहले हमारा देश भविष्य के लिये क्या सोचता था और क्या उम्मीद करता था कि हम कैसा विधान बना सकेंगे। मुझे अच्छी तरह याद है कि जिस वक्त यहां पर इंटेरिम गवर्नमेंट बनी थी उस वक्त रियासतों के लोग जेलों में पड़े थे और उत्तरदायी शासन के लिये ही सब कुछ कर रहे थे। दो साल पहले भी

हमको यह उम्मीद थी कि हमें उत्तरदायी शासन मिलेगा और हम अपनी रियासतों का अलग विधान बनायेंगे। समय बहुत तेजी से गुज़र रहा है और हम शायद उसके साथ नहीं चल पा रहे हैं। हमारे देखते देखते दो साल के अन्दर ही सब रियासतें, जो अलग अलग अपनी सत्ता रख रही थीं, एक हो गईं और एक होकर उनकी अलग-अलग यूनियनें बन गईं। जो कुछ हम साल भर पहले नहीं सोच सकते थे वह आज हमने करके दिखा दिया। मुझे याद है कि साल भर पहले मत्स्य कांग्रेस कमेटी का जलसा हो रहा था उसमें एक प्रस्ताव यह भी था कि हमारी यूनियन की एक विधान परिषद् बननी चाहिये और उस विधान परिषद् को हमारा विधान बनाना चाहिये। उस वक्त मैं भी वहां था मैंने कहा कि यह प्रतिक्रियावादी है कि जब हम सारे देश के लिये विधान बनाना चाहते हैं उस वक्त भिन्न भिन्न यूनियनों के लिये विधान बनाने की मांग करना उचित नहीं है। लोगों ने इस पर आश्चर्य किया कि ऐसी बात कैसे हो सकती है। लेकिन हमारे देखते देखते यह एक साल ही में मुमकिन हो गया। इस दृष्टि से अगर हम देखें कि हमारा विधान कितनी जल्दी बना, सारे देश के लिये एक विधान बना, तो यह हमारे लिये एक बड़े गौरव की बात है। हम देखते हैं कि हमारे पड़ोस का देश जो हमारा ही एक हिस्सा था, यानी पाकिस्तान विधान बनाने में हमसे बहुत पीछे है। यही नहीं कि उनका विधान अब तक नहीं बना बल्कि वहां छोटी-छोटी जो चार पांच रियासतें थीं वे भी अभी वैसी ही पड़ी हुई हैं। उनको भी अभी वह ढंग में नहीं ला सके हैं। जब उसकी तरफ हम देखते हैं और दो साल का पिछला अर्सा देखते हैं तो हमें महसूस होता है कि वास्तव में जो कुछ हमने कर लिया है हमारे लिये बड़े गौरव की बात है। हिन्दुस्तान के बहुत से लोग हमारे ऊपर यह लांछन लगाते हैं कि हमने विधान बनाने में बड़ी देर की। इसमें शक नहीं कि समय लगा लेकिन उन कठिनाइयों को जिनका हमें मुकाबिला करना पड़ा है देखते हुए कहना पड़ेगा कि समय ज़्यादा नहीं लगा और मैं तो यह महसूस करता हूं कि हमने छः महीने पहले विधान बना लिया होता तो हम आज जैसी चीज़ बना पाये हैं नहीं बना पाते। मैं यह भी महसूस करता हूं कि आज यदि इस विधान के अन्तिम वाचन में छः महीने और लगाते तो और भी अच्छा होता। इस बीच में हम अपनी मतदाताओं की सूची तैयार कराते, छपवाते, और हल्केबन्दी करते और तब हमें अन्तिम वाचन करना चाहिये था। मैं समझता हूं कि और भी छः महीने बाद अपना काम समाप्त करते तो हमारा विधान और भी पूर्ण होता लेकिन इसमें यह देखकर सन्तोष होता है, बहुत सी बातों को, जिनमें रद्दोबदल करने की आवश्यकता पड़ती रहेगी उनको तबदील करने की गुंजायश विधान में रखी है। यह कहना कि हमने कैसा विधान बनाया है कैसा नहीं बनाया है मैं समझता हूं कि हमारे लिये ज़्यादा संगत नहीं है। यह हमारी बनाई हुई चीज़ है और हमने अपनी सारी स्थिति को देखते हुए जो अच्छी से अच्छी चीज़ बना सकते थे वह बनायी है। यह काम आप आगे आने वाले लोगों और इतिहासकारों के लिये छोड़ सकते हैं कि हमने इस स्थिति तथा वातावरण में जो विधान बनाया है वह अच्छा किया या नहीं।

बहुत से लोगों का कहना है कि हमने इसमें बहुत सी बातें डिमाक्रेसी के उसूलों के खिलाफ रखी हैं, हमने नागरिकता के अधिकार को खत्म कर दिया

[श्री रामचन्द्र उपाध्याय]

है। मैं तो यह कहूंगा कि आप इस विधान को इस दृष्टि से न देखें कि अमेरिका आदि वेर्स्टन कंट्रीज़ में आज डिमाक्रेसी कितनी आगे बढ़ी हुई है और हम उससे कितने पीछे हैं। इस दृष्टि से अगर देश इसे देखे तो हमारे साथ अन्याय करेगा। लोगों को यह सोचना चाहिये कि उन देशों के लोगों को जितना अपने देश से प्रेम है, उनको अपने प्रजातंत्र के लिये प्रेम है, जितना अपने अधिकारियों तथा कर्तव्यों के लिये प्रेम है क्या उतना हम लोगों को भी है। उत्तर स्पष्ट है कि नहीं है। तो फिर उनसे आज क्यों तुलना की जाये। जिस दिन हमारी आजादी और प्रजातंत्र मज़बूत हो जायेंगे उस दिन हम अपने विधान को जिस तरह से चाहेंगे तबदील करके उसे आगे बढ़ा सकेंगे। और तभी दूसरे देशों से अपने विधान की तुलना करना ठीक होगा, आज नहीं।

हम को तो यह देखना है कि कितने हज़ार सालों की गुलामी के बाद हमने आज़ादी पाई है। अभी तो लोगों को अपने देश के लिये अपने राष्ट्र के लिये प्रेम भी पैदा नहीं हुआ है। आज तो देश की हालत इस कदर खराब हो रही है कि हमें कभी कभी यह शक होने लगता है कि यह विधान के अन्दर भी हम अपनी आज़ादी को, अपने प्रजातंत्र को, कायम रख सकेंगे या नहीं। एक तरफ हम देखते हैं कि राजा लोग अभी बदस्तूर मौजूद हैं। मैं मानता हूं कि सरदार पटेल ने या हमारी हुकूमत ने रियासतों को खत्म कर दिया है, लेकिन इससे ही हमको धोखे में आकर आंखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिये। सत्य यह है कि चाहे रियासतें खत्म हो गईं मगर राजा अभी मौजूद हैं। रियासतों के खत्म होने से राजा लोग तो खत्म नहीं हुए। उनके पास पूरी शक्ति और धन मौजूद है। वह यह स्वप्न देखते हैं कि अगर मरकज़ी हुकूमत कमजोर पड़े तो फिर उनका समय आवेगा। हम भूले नहीं हैं कि डेढ़ साल पहले हमारे महाराजा यह स्वप्न देखते थे कि वह दिल्ली के बहुत नजदीक हैं और अगर मौका होगा तो वह लाल किले पर अपना झंडा गाड़ेंगे। इसलिये उन्होंने हवाई जहाज़ भी खरीद रखे थे और सेना भी तैयार की हुई थी। राजा लोग इस तरफ देख रहे हैं और मौके की तलाश में हैं। दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग हैं जो कि अपनी जाति को ही देश समझते हैं देश रहे चाहे जाये। उनकी जाति के हाथ में सत्ता आ जाये। राजपूत चाहते हैं कि उनका ही राज हिन्दुस्तान में कायम होना चाहिये। कुछ जाट राज के लिये स्वप्न देखते हैं। कुछ समझते हैं कि अहीरों का राज कायम करें और इसी दृष्टि से वे भविष्य को देखते हैं। मैं पूछता हूं कि क्या यह देश के लिये कम खतरे की चीज़ है। इसके अलावा कुछ लोग वह हैं जो देश में अराजकता फैलाने में अपना भला समझते हैं कुछ लोग वे हैं जो समझते हैं कि समस्त देश पर उनके प्रान्त का ही शासन रहना चाहिये और उन्हीं की सत्ता होनी चाहिये। कोई महाराष्ट्र के राज्य का स्वप्न देखते हैं तो दूसरे कुछ और ही सोचते हैं। कितने खतरे हमारे सामने इस वक्त मौजूद हैं उनको देखते हुए हमें इस विधान की परीक्षा करनी चाहिये। इसमें शक नहीं कि यदि हमारी स्थिति अच्छी होती तो हम और भी अच्छी बातें रख सकते थे। यह बात नहीं है कि हमको आज़ादी और नागरिकता से प्रेम नहीं है। हम भी चाहते हैं कि कोई आदमी जब तक कानून के अनुसार उसका जुर्म साबित न हो जाये उस वक्त तक उसे जेल में बन्द नहीं किया जाना चाहिये

और प्रत्येक नागरिक को पूर्ण आजादी होनी चाहिये। लेकिन अपनी स्थिति को देखते हुए हमने जो अधिकार रखे वे भी कम नहीं हैं। इस स्थिति में तो हमें इस विधान को दस साला बन्दोबस्त ही समझना चाहिये। दस साल के बाद यदि हमारी आज़ादी कायम रह सके, जैसी कि मुझे पूरी उम्मीद है कि रह सकेगी, और हमारे प्रजातंत्र की जड़ें मजबूत हो सकें तो दस साल के बाद हम इसे बदल कर काफी प्रगतिशील बना सकेंगे। और फिर तुलना करना उचित होगा। समय को देखते हुए मैं इसमें दो तीन बातें ऐसी देखता हूं जो बहुत ही सुन्दर हैं और उन्हें प्रजातंत्र के स्वस्थ बीज कहा जा सकता है।

उचित जल और वायु मिलने पर वह बीज पौधे का रूप और पौधा पेड़ का रूप धारण कर लेगा। एडल्ट फ्रैंचाइज की बिना पर बनी पार्लियामेंट को समस्त अधिकार दिये गये हैं। इसी से हम अपने प्रजातंत्र को सुरक्षित रख लेंगे और फिर भविष्य के लिये हमको डर भी कोई नहीं है। इसके अलावा धर्म के नाम पर लोग किस कदर देश के अन्दर बवन्डर फैला रहे हैं। वेद शास्त्र की दुहाई देकर जनता को बहका रहे हैं। मज़हब के नाम पर कायम हुए पाकिस्तान से धर्म के नाम पर ही हिन्दुओं और गैर मुस्लिमों को निकाल दिया गया। ऐसे वक्त पर हमने सिक्यूलर स्टेट बनाया है, इसका नतीजा यह हुआ कि लोग हमें कांग्रेस वालों को दोषी समझने लगे। हमारे लिए यह कम साहस का काम नहीं था। हमने इसके लिये सब कुछ आलोचनायें बरदाश्त की हैं। इसके लिये आज भी कांग्रेस और हमारे खिलाफ धर्म के नाम पर प्रचार किया जाता है और हमारी आलोचना की जाती है। हमने सब को नागरिकता के अधिकार बराबर दिये हैं। स्त्रियों को बराबर के अधिकार दिये हैं जो कि इंग्लैंड और अमरीका बहुत दिनों बाद कर पाये थे। हमने धर्म के प्रचार करने की पूरी आज़ादी दी है। अगर हम देखें तो यह बातें हमारे लिये काफी गौरव की हैं।

रियासतों के सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि हमने जो कुछ किया है वह बहुत ही गौरव की बात है और इसके लिये विदेशी लोग भी आश्चर्य करते हैं कि हमने कैसे कर लिया।

दो तीन बातें मैं यह अवश्य महसूस करता हूं कि ऐसी हैं कि जिनको हम और अच्छी तरह कर सकते थे। हमने माना कि हम रियासत के लोग और प्रान्तों के लोग थोड़े पिछड़े हुए हैं लेकिन हमारे वास्ते यह शर्त लगाना कि हम दस साल तक सेंटर के नियंत्रण में रहेंगे यह कुछ ज्यादती है। ऐसा करने से हमारे यहां डिमाक्रेसी को चलाना कठिन हो रहा है और हो जायेगा। हम अनुभव कर रहे हैं कि हमारे यहां ड्यूअल गवर्नमेंट हो रही है। सेंटर के सिविल सर्विस वाले अपना दृष्टिकोण अलग रखते हैं और वैसी ही अपनी हुकूमत करते हैं और दूसरी तरफ हमारे मिनिस्टर अपनी अलग दृष्टि से हुकूमत करते हैं और उसका परिणाम भयानक होता है। वे एक दूसरे पर दोष डालने की कोशिश करते हैं जिससे शासन बहुत ज्यादा खराब होता है। आदरणीय सरदार पटेल के यह विश्वास दिलाने पर कि इस का इस्तेमाल तभी किया जायेगा जब बहुत आवश्यकता होगी, हमने इसको मान लिया है, मगर इस चीज को बहुत ही कम काम में लाया जाये और अगर हो सके तो न काम में लाया जाये। इसी में देश की भलाई है।

[श्री रामचन्द्र उपाध्याय]

दूसरी चीज यह है कि हमने सेंटर को बहुत ज़्यादा अधिकार व विशेष अधिकार दिये हैं। प्रान्तों को तो शक्तिहीन बना दिया है। हम समझते हैं कि यह एक बड़े दोष की चीज़ है। इससे हमारी डिमाक्रेसी को धक्का लगेगा, लेकिन समय को देखते हुए हमने इसको स्वीकार किया है। मैं आशा करता हूं कि हमारी सेंट्रल गवर्नमेंट उन विशेष अधिकार को जितना भी कम हो सकेगा इस्तेमाल में लायेगी। इससे हमारे प्रजातंत्र की उन्नति होगी।

अन्त में मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि इस विधान की आड़ में हमारे प्रान्त पर एक ज्यादती की गई है। मैं महसूस करता हूं कि इस विषय में मुझे भी कुछ कहना चाहिये। मन चाहे ढंग से सिरोही को बांट कर उसका एक हिस्सा बम्बई में मिला दिया गया है। बिना जनता से पूछे ऐसा करना अन्याय है। अगर इसी तरह से से हम डिमाक्रेसी को चलायेंगे तो खतरा है। सिरोही बहुत मामूली सी चीज़ है और इसके बंट जाने से कोई ऐसी बात नहीं है कि राजस्थान मिट जायेगा या खत्म हो जायेगा लेकिन सवाल भावनाओं का और काम करने के तरीके का है। उसको जनता से बिना पूछे इस तरह से बांट देना अनुचित है। फिलहाल इसे आप गुजरात में रख सकते थे या राजस्थान में रख सकते थे इससे क्या फर्क पड़ता और दो या चार साल बाद लोगों से पूछकर जहां वे चाहते मिला सकते थे। इसको जितनी जल्द हो सके ठीक करने की कोशिश करनी चाहिये। जनता की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने से प्रजातंत्र को धक्का लगता है और लोगों को अश्रद्धा पैदा होती है।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि कम से कम थोड़े दिनों के लिए हमारा यह विधान बहुत अच्छा है और इस पर हम चले तो हमारी आजादी व प्रजातंत्र सुरक्षित रहेगी और कुछ समय में ही हम अपने देश को महान बना सकेंगे, इसलिये इसे स्वीकार करना ही उचित है।

***श्री रामचन्द्र गुप्त** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं कि आपने इस प्रस्ताव पर बोलने का मुझे मौका दिया और इसके लिए चन्द मिन्टों का समय दिया।

यह संविधान जो देशवासियों को आज एक सतत एवं दीर्घकालीन संघर्ष के बाद और अनेक कष्टों को झेलने के बाद उपलब्ध हुआ है, वह अपने देश के इतिहास में स्वतंत्रता के एक महाधिकार पत्र के रूप में सदा अंकित रहेगा। सुतरां अपने इस संविधान पर हम अभिमान कर सकते हैं और मुझे इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि हमारी भावी संततियां 26 जनवरी सन् 1950 के दिन को जिस दिन की यहां स्वातंत्र्य सूर्य का उदय हुआ है, हमेशा पवित्र मानती रहेंगी।

अपना यह संविधान जिसमें करीब चार सौ खंड रखे गये हैं, तीन वर्ष के कठोर परिश्रम, गम्भीर चिन्तन और बहुत कुछ समझौते के फलस्वरूप निर्मित हो पाया है। इसमें शक नहीं कि सारा देश कृतज्ञ अनुभव करेगा उन लोगों का संविधान निर्माण में हाथ रहा है। हम कृतज्ञ हैं मसौदा समिति के और खास कर के डॉ. अम्बेडकर

के और आपके श्रीमान्। आप दोनों महानुभावों ने यह दिखला दिया है कि सब को सन्तुष्ट करने में आप लोग कितना सौजन्य बरत सकते हैं।

अपने इस संविधान पर सदस्यों ने हजारों तो संशोधन पेश किये और एक दीर्घकालीन विचार और उत्तेजनापूर्ण वाद विवाद के फलस्वरूप आज इस रूप में यह हमारे सामने आ पाया है। वस्तुतः संविधान का एक भी शब्द ऐसा न होगा जिस पर सभा के एक न एक सदस्य का ध्यान न गया हो। मैं तो यहां तक कहूंगा कि इसके प्रत्येक विराम और अर्धविराम आदि के चिन्हों पर भी अपने सतत जागरूक मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने समुचित ध्यान दिया है। यह सच है कि इसकी सभी बातों को हम सर्वसम्मति से स्वीकार नहीं कर पाये हैं पर इसके सभी अनुच्छेदों और खण्डों को सभा के एक बहुत बड़े बहुमत का समर्थन प्राप्त रहा है। प्रायः सभी महत्वपूर्ण और विवादग्रस्त मसलों को यहां कई बार इसलिये रखा गया है कि उन पर पूरी तरह विचार किया जा सके और अगर सम्भव हो तो उस पर सब का समर्थन प्राप्त किया जा सके।

संक्षेप में मैं यह कह सकता हूं कि प्रस्तुत संविधान तैयार हो पाया आपस के कई सुखद समझौतों के फलस्वरूप और इन समझौतों को भी हम मान सके हैं इसलिये कि सब में परस्पर सहयोग की सद्भावना रही है जिसका कि सभी सदस्यों ने यहां पर्याप्त परिचय दिया है। ऐसी स्थिति में तो इस बात की तो आशा नहीं की जा सकती कि संविधान में रखे गये सभी प्रावधानों के सम्बन्ध में सभी सदस्य समान रूप से सन्तुष्ट होंगे। यही कारण है जो यहां वक्ताओं ने संविधान के प्रति सन्तोष और असन्तोष दोनों ही व्यक्त किये हैं। मैं स्वयं संविधान की प्रत्येक बात से सहमत नहीं हूं पर किसी प्रतिवाद की रंचमात्र आशंका किये बिना मैं यह कह सकता हूं कि सभा के अधिकांश लोगों का और महत्व रखने वाले वर्गों का इसे समर्थन प्राप्त है।

इसमें शक नहीं कि संविधान का जो मूल मसौदा तैयार किया गया था उसमें अब काफी परिवर्तन और बुनियादी परिवर्तन कर दिये गये हैं। किन्तु देश की बदली हुई स्थिति में ये परिवर्तन अनिवार्य थे। संविधान निर्माण का काम हमने प्रारम्भ किया था सन् 1946 के दिसम्बर के महीने में जब देश अविभक्त था और उस समय जो स्थिति थी उसमें देश को एक भिन्न तरह के संविधान की आवश्यकता थी। बहुत सी बातें ऐसी थीं जो पहले महत्व रखती थीं पर देश विभाजन के फलस्वरूप इनका अब कोई महत्व नहीं रह गया। देश विभाजन के पूर्व सोचा यह गया था कि सभी प्रान्तों को, बचाव तथा यातायात आदि कई बातों को छोड़ कर अन्य सभी बातों में केन्द्र के नियंत्रण से सर्वथा मुक्त और स्वतंत्र रखा जायेगा। तब यह सोचा गया कि अवशिष्ट अधिकार निहित रखे जायें प्रादेशिक घटकों में। किन्तु विभाजन के कारण अब यह आवश्यक हो गया है कि केन्द्र को यथाशक्य शक्तिशाली बनाया जाये। संविधान में तदनुसार अब परिवर्तन कर दिया गया है और मेरा विश्वास है कि इस परिवर्तन से सुधार ही हुआ है। संविधान के विरुद्ध यह जो आलोचना की जाती कि अधिकारों को केन्द्रित करने पर हमें कम ध्यान देना चाहिये था और उनको विकेन्द्रित करने पर हमें अधिक ध्यान देना चाहिए था, इससे मैं सहमत नहीं हूं। इस आलोचना से एक बहुत सीमित अंश में ही मैं सहमत हो सकता हूं। आज एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की ज़माने को ज़रूरत है।

[श्री रामचन्द्र गुप्त]

मैं यह भविष्यवाणी करता हूं कि आगे चलकर भविष्य आप को बतायेगा कि केन्द्रीकरण की जो व्यवस्था की गई वह हमारे लिए एक वरदान है। यहां सदा से ही सबसे बड़ी समस्या यही है कि देश को एक किस तरह किया जाये, उसे सुसम्बद्ध और दृढ़ किस तरह बनाया जाये। हमारा इतिहास भी यही बतलाता है कि हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत यही रही है कि समस्त भारत एक-सूत्र में बंध कर सुदृढ़ रहे। इस देश के लिये एक सर्वथा केन्द्रित और एकात्मक-शासन व्यवस्था ही उपयुक्त हो सकती है। फिर भी आगे चल कर यदि अनुभव के आधार पर हमें यह मालूम होता है कि कई बातों के बारे में प्रादेशिक घटकों को और अधिकार प्राप्त रहने चाहियें तो मेरा ख्याल यह है कि अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान में संशोधन करने में हमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती है।

संविधान के मूल मसौदे में दूसरा सारवान परिवर्तन करना पड़ा इस कारण से कि छः सौ और कई देशी रियासतों को भारत राज्य संघ में मिला दिया गया है। इस सम्बन्ध में किये गये परिवर्तन को क्या कोई बुरा बता सकता है? इन देशी रियासतों को भारत के संघ-राज्य में मिलाने का समस्त श्रेय प्राप्त है हमारे परम-प्रिय उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल को जिन्होंने यह आश्चर्यजनक काम पूरा कर दिया ऐसी थोड़ी अवधि के अन्दर ही। इन रियासतों के नरेश भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने मातृभूमि के हित के लिए स्वेच्छा से अपने शासनाधिकार का परित्याग कर दिया है।

अब हम सब इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि हमारा देश एक है, हमारी भाषा एक है और संविधान एक है जिसके अधीन ऊंच-नीच, छूत अछूत, बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक सब का ही, शासन किया जायेगा। अपना संविधान किसी तरह का कोई भी विभेद नहीं बरतता है। उसने देश से अस्पृश्यता को उठा दिया है। सभा के सभी अनुसूचित जातियों के सदस्यों ने संविधान का सहर्ष स्वागत किया है और अब हम यह निर्णय कर सकते हैं कि इन लोगों के दृष्टिकोण से भी अपना संविधान सर्वथा सन्तोषप्रद है। सतर्कतामूलक उपाय के तौर पर संविधान ने अनुसूचित जातियों को ऐंग्लो इंडियनों को केवल एक संक्षिप्त अवधि के लिए ही कुछ विशेषाधिकार भी दिये हैं।

संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान स्तर पर ला दिया है और हम यह कह सकते हैं कि एक मात्र हमारे ही संविधान में स्त्रियों को बिना किसी प्रतिबंध के पुरुषों के समान अधिकार दिये गये हैं।

संविधान के विरुद्ध दूसरी शिकायत यह की जाती है कि यह बहुत ही लम्बा हो गया है। इस शिकायत में भी कोई औचित्य नहीं है। हमारा देश एक अद्‌भुत देश है और हमें अनेक तरह की तात्कालिक आवश्यकताओं के लिये तथा विभिन्न परस्पर विरोधी हितों के लिये व्यवस्था करनी होगी। ऐसी स्थिति में संविधान का वृहत् होना सर्वथा स्वाभाविक है। क्योंकि विस्तार की अनेक बातों के लिये इसमें उपबंध रखने ही होंगे। विस्तार की उन विभिन्न बातों को जिनका प्रश्न सम्भवतः प्रायः ही उठा करेगा, संविधान में स्थान देने से इसका वृहदाकार होना स्वाभाविक

है। फिर इन सब बातों के अलावा, भारत-शासन अधिनियम 1935 तथा अन्य पुराने अधिनियमों के तुलनात्मक अध्ययन से लाभ उठाते हुए हमने उनके प्रायः सभी जरूरी उपबंधों को भी इसमें अपनाया है। हमने ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों के संविधानों से भी बहुत सी अच्छी बातें ली हैं और अन्य संविधानों के दोषों से भी अपने को बचाने की कोशिश की है। कई माननीय मित्रों ने यह कहा है कि विभिन्न संविधानों से इधर उधर के बहुत से उपबंध लेकर किसी तरह उन्हें जोड़ जाड़ हमने अपना यह संविधान तैयार किया है। पर बात ऐसी नहीं है। वास्तविकता यह है कि अन्य संविधानों में जो भी अच्छी बातें हैं वह सब अपने संविधान में रखी गई हैं और देश की अपनी अद्‌भुत आवश्यकताओं के उपयुक्त इसे तैयार किया गया है।

इस संविधान की दूसरी अच्छाई यह है कि पृथक निर्वाचन की तथा स्थान रक्षण की व्यवस्था को (कुछ लोगों के बारे में एक अल्पकालीन अवधि तक भी जारी रखने के सिवाय) बिल्कुल उठा दिया गया है।

इस संविधान में, पहली बार इस बात के लिए उपबंध रखा गया है कि कतिपय स्थितियों में मृत्यु-दण्ड के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। अवश्य ही इस सम्बन्ध में यह बहुत आगे नहीं बढ़ सका है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये या अनुमोदित किये गये मृत्यु-दण्ड के सभी निर्णयों के विरुद्ध अपील की व्यवस्था इसमें नहीं की गई है। जो भी हो, मृत्यु दण्ड को बिल्कुल ही उठा देने की बात को मैं अधिक पसन्द करता।

ज़मींदारी को उठाने का सवाल आज देश में अरसे से चल रहा है। इसके लिये अगर चालू बाज़ार भाव से प्रतिकर की रकम चुकानी पड़ती तो यह घटकों के बूते के बाहर की बात हो जाती। पर अपने संविधान में समुचित प्रतिकर की बात कही गई है और अनुच्छेद 31 में यह कहा गया है प्रतिकर की रकम कतिपय सिद्धान्तों के आधार पर निश्चित की जायेगी। इस व्यवस्था के कारण ज़मींदारी प्रणाली का यहां से आमल उठ जाना अब सम्भव हो गया है।

व्यक्ति के दैहिक स्वातंत्र्य तथ उसके प्राण के रक्षण के सम्बन्ध में संविधान में जो अनुच्छेद (21) रखा गया है वह एक ऐसा अनुच्छेद है जिसने अधिकांश लोगों का ध्यान और खास करके वकीलों और न्यायाधीशों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। इनका कहना यह है कि जिस रूप में यह अनुच्छेद लिपिबद्ध किया है उसमें उससे व्यक्ति के अधिकारों की समुचित रूप से सुरक्षा न हो पायेगी। किन्तु उनकी यह आशंका सर्वथा औचित्यशून्य है क्योंकि कोई भी शासन न तो ऐसा कानून ही पास कर सकता है और न पास करके उसे मनमाने गैर ज़िम्मेदाराना तौर पर लागू ही कर सकता है। अनुच्छेद के अधीन विधान मण्डल की अनुमति आवश्यक ठहराई गई है। इसमें शक नहीं कि यह उपबंध इतना व्यापक है कि इसके अनुसार देश के विधान मण्डलों को व्यापक अधिकार मिल जा सकते हैं पर मुझे विश्वास है कि ऐसे असीम अधिकारों को प्रयोग उसी हालत में किया जायेगा जब कि तात्कालिक स्थिति को देखते हुए उनके प्रयोग की कत्तई ज़रूरत ही हो जाये।

[श्री रामचन्द्र गुप्त]

अन्त में मैं सभा के सदस्यों से और उनके द्वारा देशवासियों से यह अनुरोध करूंगा कि इस संविधान को वह एक सच्चे भक्त की भावना से कार्यान्वित करें। अगर हम इस संविधान पर अमल करते हैं और एक दूसरे को सहयोग देते हैं तो हमें आज इस संविधान की जो बड़ी बड़ी खामियां दिखाई दे रही हैं वह धीरे धीरे अब अपने आप गायब हो जायेंगी। इस संविधान की शपथ लेकर हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम इस संविधान को सदा रक्षित रखेंगे और इसे कायम रखेंगे, चाहे इसके लिए हमें कितनी भी बड़ी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

***अध्यक्ष:** सभा अब कल प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार 25 नवम्बर सन् 1949 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-253 PSD–17-1-53–320

Con. 3. XI.11.49
320

अंक 11
संख्या 11

शुक्रवार
25 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारत शासन अधिनियम (संशोधन) विधेयक– 4139-63
संविधान का मसौदा–(जारी) 4163-4229

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 25 नवम्बर, सन् 1949

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

भारत शासन अधिनियम (संशोधन) विधेयक

***अध्यक्षः** आज हमें सबसे पहले उस विधेयक को उठाना है जिसकी सूचना डॉ. अम्बेडकर ने दी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बंबईः जनरल): श्रीमान मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने के उद्देश्य से एक विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"भारत-शासन अधिनियम को आगे संशोधित करने के उद्देश्य से एक विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं विधेयक को प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्षः** विधेयक प्रस्तुत कर दिया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने वाले विधेयक पर यह सभा तुरंत विचार करे।"

***अध्यक्षः** यह प्रस्ताव किया गया है किः

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने वाले विधेयक पर यह सभा तुरंत विचार करे।"

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसाः जनरल): श्रीमान मैं इस संशोधक विधेयक का स्वागत करता हूं। इस सम्बन्ध में मैं कुछ कहना भी चाहता हूं।

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इस विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के वक्तव्य में कहा गया है कि इस विधेयक को सभा के समक्ष इसलिये रखा जा रहा है कि कुछ प्रान्तों ने यह मांग की है कि उनके नामों में परिवर्तन किया जाये। मेरा निवेदन है कि कुछ ही प्रान्तों के नाम बदलने के स्थान पर गवर्नर जनरल को सभी प्रान्तों के नामों को बदलने के लिये तथा उन्हें "भारत वर्ष" संज्ञा के अनुरूप बनाने के लिये कदम उठाने चाहिये। उदाहरणार्थ, मेरे पास अपने प्रान्त से यह मांग आई है कि उड़ीसा का नाम उत्कल रख दिया जाये। कई कारणों से यह आवश्यक है। हमारे विश्वविद्यालय का नाम उत्कल विश्वविद्यालय है। श्रीमान, आपको विदित ही है कि कांग्रेस उस प्रान्त को उत्कल प्रान्त कहती है। इसके अतिरिक्त आदरणीय रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी–"जन, गण, मन" गान में हमारे प्रान्त को उत्कल कहा है। "उत्कल" एक श्रेष्ठ शब्द है। उसका अर्थ है उच्च कला तथा उच्च कल्पना। मैं आशा करता हूं कि मेरे यह शब्द गवर्नर जनरल महोदय तक पहुंचेंगे। मेरा निवेदन है कि उड़ीसा प्रान्त का नाम उत्कल रखने के लिये कदम उठाये जाने चाहियें।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य-प्रान्त और बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, दुर्भाग्य से समय के अभाव के कारण इस विधेयक को इस सत्र में प्रस्तुत किया जा रहा है। वास्तव में इस विषय का सम्बन्ध संविधान-सभा से है और इसे कुछ पहले प्रस्तुत करना चाहिये था। किन्तु श्रीमान, इसमें न आपका दोष है, न मसौदा-समिति का दोष है और न सभा का ही दोष है क्योंकि हमारे पास बहुत कम समय था। इसके लिये जो दूसरा उत्तम उपाय था उसी को मसौदा-समिति ने अपनाया। इसलिये मेरे विचार से उसका कोई दोष नहीं है।

किन्तु श्रीमान, मेरी यह धारणा है कि प्रान्तों के नामों में परिवर्तन करने का विषय इतना महत्वपूर्ण विषय है कि इस सम्बन्ध में इस प्रणाली का अनुसरण न करना चाहिये कि केवल प्रान्तीय सरकारें ही, अथवा कांग्रेस समितियां ही इस सम्बन्ध में निर्णय करें और वे अपने निर्णय को गवर्नर जनरल के समक्ष रखें और गवर्नर जनरल उस निर्णय का अनुमोदन कर दे। इस सम्बन्ध में हमारा कुछ दु:खद अनुभव रहा है। पिछले सत्र में सभा स्थगित करने के पूर्व हमने यह इच्छा प्रकट की थी कि चूंकि इस विषय का बहुत अधिक महत्व है इसलिये यदि प्रान्तीय कांग्रेस समितियां और प्रान्तीय सरकारें इस सम्बन्ध में कोई निर्णय कर लें तो यह सभा उसके पक्ष में अपना मत प्रकट करेगी। किन्तु हुआ क्या? संयुक्त प्रान्त की सरकार तथा विधान-सभा ने निर्णय किया कि उनके प्रान्त का नाम आर्यावर्त रखा जाय। इस पर इस सभा ने बहुत आपत्ति की और वह इस कारण कि आर्यावर्त सारे भारत का नाम है। संयुक्त प्रान्त के मेरे मित्रों को सारे भारत के नाम को अपनाने की बहुत चिंता रहती है। प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना के इस आशय के प्रस्ताव को सभा ने बहुमत से अस्वीकार कर दिया। इसका उल्लेख इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदन में है। 1938 में जब राष्ट्रीय कांग्रेस ने कानपुर में

अपना अधिवेशन किया था तो संयुक्त प्रान्त के मेरे मित्रों ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था कि संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस समिति का नाम हिन्दुस्तान कांग्रेस समिति रखा जाये। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। मेरे मित्रों का इस सम्बन्ध में इतना उत्साह था कि उसके बाद उन्होंने उस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में रखा था। मुझे उसका विरोध करना पड़ा था और कांग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया था। यह 1938 में हुआ था जब पंडित जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रपति थे। मैंने ही कांग्रेस के खुले अधिवेशन में उसका घोर विरोध किया था और मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कांग्रेस ने मेरे तर्क को स्वीकार किया था और यह कहा था कि संयुक्त प्रान्त सारे हिन्दुस्तान के नाम को नहीं अपना सकता है। इस कारण उसने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। चूंकि आर्यावर्त का नाम अस्वीकार कर दिया गया है इसलिये मुझे यह आशंका है कि कहीं वे हिन्दुस्तान के नाम का सुझाव न रखें। मुझ से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय ने कहा है कि जिस प्रकार मध्य-प्रान्त को मध्य प्रदेश कहा जा रहा है उसी प्रकार उड़ीसा को भी उत्कल कहा जाये। संयुक्त प्रान्त को संयुक्त प्रदेश क्यों न कहा जाये? यदि इस नाम को पसंद न किया जाये तो अवध, अयोध्या, गंगा आदि के समान अन्य भी सुन्दर नाम हैं। वहां के लोग सारे भारत के नाम को अपना कर हमें यह क्यों बताना चाहते हैं कि भारत के धरोहरी केवल वही हैं? भारत के नाम पर अधिकार जमाने की उनकी प्रवृत्ति का मैं पूरे जोर के साथ विरोध करता हूं। इसलिये मेरी वह धारणा है कि इस सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को शक्ति देना बहुत खतरनाक है। इस सम्बन्ध में मेरे नाम से एक संशोधन है, जिसे मैं यथोचित अवसर पर उपस्थित करूंगा। अपनी कुछ शर्तों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। मैं यह चाहता हूं कि यह शक्ति गवर्नर जनरल को न दी जाये क्योंकि उसका अधिकार इस सभा को ही है। यदि इस सभा के पास इस सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये समय न रहा तो अन्तिम निर्णय गवर्नर जनरल न करे बल्कि संसद ही करे।

***श्री मोहन लाल गौतम** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो छोटे विवादों में पड़ते हैं। लोग अपने नाम स्वयं चुनते हैं। यदि अब उन्हें बदला जायेगा तो वे इस सभा में विवाद करेंगे। यदि हमारे प्रान्त, अर्थात् संयुक्त प्रान्त का नाम दो वर्ष पूर्व स्वातंत्र्य प्राप्ति के समय बदल दिया जाता तो यह सभा किसी प्रकार की आपत्ति न करती और हम सभी उसे स्वीकार कर लेते।

***माननीय सदस्य:** यह प्रश्नास्पद है।

***श्री मोहन लाल गौतम:** आप इसे प्रश्नास्पद कह सकते हैं। किन्तु चाहे आप कुछ प्रदेशों को उत्कल कहें या कराला या मलाबार या कन्नड़, इस सम्बन्ध में

[श्री मोहन लाल गौतम]

कोई आपत्ति नहीं करता। जब यह प्रश्न इस सभा के समक्ष रखा गया है तो लोग आपत्ति करने लगे हैं। मेरे मित्र श्री सिधवा ने कहा है कि संयुक्त प्रान्त को हमेशा सारे भारत के नाम पर अधिकार जमाने की पड़ी रहती है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि संयुक्त प्रान्त को एक देन है और वह यह है कि वही देश में ऐसा प्रान्त है जो यह दावा कर सकता है कि वह प्रान्तीयता का शिकार नहीं हुआ है।

***माननीय सदस्यः** यह प्रश्नास्पद है।

***श्री मोहन लाल गौतमः** आप इसे प्रश्नास्पद कह सकते हैं किन्तु मैं आपको चुनौती देकर कहता हूं कि सभी प्रान्तों में आप प्रान्तीयता के शिकार हैं।

***माननीय सदस्यः** जी नहीं।

***श्री मोहन लाल गौतमः** आपके हृदय में अन्य लोगों के लिये स्थान नहीं है। मैं अन्य सभी प्रान्तों के लोगों को चुनौती देकर कहता हूं कि आप मुझे उन लोगों के उदाहरण दें जो आपके प्रान्त के नहीं हैं और जिन्हें आपने संविधान सभा के लिये चुना है। मैं आपको चुनौती देकर पूछता हूं कि 1919 से अब तक आपने अपने मंत्री मंडलों में कितने ऐसे लोगों को रखा है जो आपके प्रान्त के नहीं हैं।

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे उन विषयों की चर्चा न करें जिनका विचाराधीन प्रस्ताव से सम्बन्ध नहीं है। सभा के समक्ष इस समय एक सीधा-सादा प्रस्ताव है। वे अपनी बातों को उसी प्रस्ताव तक सीमित रखें।

***श्री मोहन लाल गौतमः** मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है किन्तु मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि संयुक्त प्रान्त किसी ऐसे नाम को नहीं अपनाना चाहता है जिस पर आप आपत्ति कर सकते हैं। ब्राह्मणों के इस कार्य का, अर्थात् नामकरण का कुछ आधार होना चाहिये। आप कहते हैं कि उसका नाम अवध क्यों नहीं रखा जाता। अवध संयुक्त प्रान्त के बहुत महत्वपूर्ण भागों में से एक भाग है किन्तु है वह एक भाग ही। अवध में नवाबों और ज़मींदारों की परम्परा रही है जिसे हम नहीं चाहते हैं।

***अध्यक्षः** हम नामों पर विचार न करें क्योंकि इस समय सभा नामों पर विचार नहीं कर रही है।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): संयुक्त प्रान्त भी आर्यावर्त का भाग ही है और वह पूरा अर्यावर्त नहीं है।

***श्री मोहन लाल गौतमः** मैं यह जानता हूं कि संयुक्त प्रान्त आर्यावर्त का भाग ही है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से आप विधेयक के उपबन्धों तक ही अपनी बातों को सीमित रखें।

***श्री मोहन लाल गौतमः** इस विधेयक को प्रस्तुत करने का कारण यह है कि बिना किसी प्रान्त के इतिहास को जाने हुए, बिना वहां के लोगों को जाने हुए न एक या दो सदस्यों के लिये ही यह सम्भव है कि वे खड़े उठकर उसके नाम प्रस्तावित करें और न इस सभा के लिये ही यह कोई सरल कार्य है कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय करे। एक और कठिनाई भी उठ खड़ी होती है। यदि आप स्वयं इस प्रान्त का कोई नाम रख देते तो हम उसे स्वीकार कर लेते अथवा यों कहिये कि हमें उससे कोई आपत्ति न होती किन्तु आपने इस प्रश्न को प्रान्तीय सरकार के सामने रखा और प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय कांग्रेस समिति से परामर्श किया और तदनन्तर एक नाम को प्रस्तावित किया किन्तु वह आपको मान्य नहीं है *(विघ्न)*। मैं श्री सिधवा के किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये तैयार नहीं हूं क्योंकि अध्यक्ष महोदय ने यह निर्णय किया है कि नामों पर विचार न किया जाये। इस लिये श्री सिधवा बिना नामों के आशय को समझे हुए ही इस समय यहां कुछ नामों का सुझाव रखने का कष्ट न करें। इस प्रकार कठिनाई यह है कि जो नाम प्रस्तावित किया गया था वह इस सभा को मान्य नहीं है और एकाएक कोई नवीन नाम का प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता। मसौदा-समिति ने, तथा उसके सभापति डॉ. अम्बेडकर ने 1935 के भारत-शासन अधिनियम के सम्बन्ध में इस संशोधन को प्रस्तावित करके बीच का एक रास्ता निकाला है जिसके लिये मैं उनका आभारी हूं। उससे यह कठिनाई दूर हो जायेगी। इस समस्या का हल यह है कि नामों के सम्बन्ध में प्रान्तों की राय ली जाय और वे ऐसे होने चाहिये कि अखिल भारतीय प्राधिकारी को भी मान्य हों। अखिल-भारतीय प्राधिकारी राष्ट्रपति है और राष्ट्रपति से अभिप्रेत है राष्ट्रपति तथा मंत्रिमंडल। यदि मंत्रिमंडल शासनारूढ़ दल के प्रति उत्तरदाई होगा तो वह उस दल से अर्थात् आप लोगों से परामर्श करेगा। इसलिये वास्तव में यह शक्ति इस सभा से लेकर संसद के कांग्रेस दल को दे दी गई है। यदि आपको यह मान्य नहीं है तो आप इस प्रश्न के किसी अन्य हल का सुझाव रखें। इसे केवल अस्वीकार कर देने का अर्थ कुछ दूसरा ही होता है। मैं इस संशोधन के लिये मसौदा-समिति का आभारी हूं और हृदय से इसका समर्थन करता हूं। यह एक बीच का रास्ता है और मैं इस सभा के सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे इसे अपनायें।

***अध्यक्षः** श्री पातस्कर क्या आप बोलना चाहते हैं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बंबईः जनरल): जी नहीं, मैं इस प्रस्ताव का विरोध नहीं करना चाहता किन्तु कुछ बातें अवश्य कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** जब हम विधेयक के खण्डों को उठायेंगे तो उस समय आप अपनी बात कह सकते हैं। अब मैं प्रस्ताव पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"भारत-शासन-अधिनियम को आगे संशोधित करने वाले विधेयक पर यह सभा तुरंत विचार करे।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम विधेयक के खण्डों को उठायेंगे।

खण्ड 1, इसके सम्बन्ध में एक संशोधन मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

मि. नज़ीरुद्दीन अहमद (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि "खण्ड 1 के उपखण्ड (1) में 'Fourth Amendment' (चतुर्थ संशोधन)' शब्दों के स्थान पर 'Third Amendment' (तृतीय संशोधन)' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्ष:** अथवा, विकल्पत:

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जी नहीं श्रीमान, मैं वैकल्पिक संशोधन को उपस्थित नहीं करना चाहता।

श्रीमान, मेरे विचार से इस उपखण्ड में एक स्पष्ट दोष है और मैं उसकी ओर सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं। भारत-शासन-अधिनियम के संशोधन के सम्बन्ध में हम इस सभा में चार अधिनियमों को स्वीकार कर चुके हैं। यद्यपि हम चार अधिनियमों को स्वीकार कर चुके हैं किन्तु उनकी गणना अजीब ढंग से की गई है। अधिनियम संख्या 1 का उल्लेख है। उसके पश्चात् अधिनियम संख्या 2 आता है। उसके पश्चात् अधिनियम संख्या 3 आता है और फिर एकाएक अधिनियम संख्या 5 आ जाता है। दिखाई यह देता है कि अधिनियम संख्या 4 कोई अधिनियम है ही नहीं। श्रीमान, साधारणतया अधिनियमों की गणना क्रमानुसार की जाती है। अधिनियम संख्या 3 के पश्चात् अधिनियम संख्या 4 आना चाहिये और अधिनियम संख्या 5 नहीं आना चाहिये। अधिनियम संख्या 4 के अभाव के कारण एक स्थान रिक्त रह जाता है। मैं कह नहीं सकता कि यही स्थिति है या नहीं। कम से कम मैंने इसे इसी प्रकार समझा है। जहां तक संशोधनों का सम्बन्ध है, चार संशोधनों में से पहले को भारत-शासन-संशोधन अधिनियम, 1949, कहा गया है। दूसरे को भारत-शासन-संशोधन अधिनियम द्वितीय 1949, कहा गया है। तीसरे अधिनियम की गणना ही नहीं की गई है। इस लिए मेरा निवेदन है कि यह अधिनियम तृतीय संशोधन कहा जाये। जहां तक इस अधिनियम की संख्या

का सम्बन्ध है मैं कह नहीं सकता कि वर्तमान अधिनियम यदि स्वीकार कर लिया गया तो उसकी संख्या क्या होगी।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से तृतीय संशोधन-अधिनियम विस्थापितों की सम्पत्ति के सम्बन्ध में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हो सकता है किन्तु वह प्रश्न दूसरा है।

***अध्यक्षः** और इसलिये यह चतुर्थ संशोधन-अधिनियम है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** किन्तु प्रश्न इससे बिल्कुल भिन्न है। मेरा अभिप्राय यह है कि अधिनियमों की गणना क्रमानुसार होनी चाहिये चाहे अधिनियमों का विषय कुछ भी क्यों न हो उनकी गणना क्रमानुसार होनी चाहिये। संविधान सभा के पारित किये हुये प्रत्येक अधिनियम में, एक, दो, तीन, चार आदि से क्रम से संख्या डाली जानी चाहिये। चतुर्थ अधिनियम को वास्तव में पंचम अधिनियम कहा गया है। इस समय इस पर विचार कर लेना चाहिये कि अधिनियम संख्या 5 को अधिनियम संख्या 4 समझा जाये अथवा वर्तमान अधिनियम को पिछली संख्या अर्थात् संख्या 4 दी जाये। यह पंचम अधिनियम के बाद स्वीकार किया जा रहा है किन्तु क्या इसे इसी प्रकार रहने दिया जाये और बीच में एक रिक्त स्थान भी रहने दिया जाय? क्या उस रिक्त स्थान को रहने दिया जाये अथवा क्या अभी उस दोष को दूर कर दिया जाये? मेरे विचार से इन बातों का बहुत महत्व है। दिखाई यह देता है कि कहीं कोई बात रह गई हैं मैं इस ओर सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं ताकि यह दोष दूर किया जा सके।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मेरे विचार से मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के मस्तिष्क में कुछ भ्रम उत्पन्न हो गया है क्योंकि संविधान सभा ने जो विभिन्न अधिनियम स्वीकार किये हैं उन्हें देखने पर मुझे विदित हुआ है कि इस विधेयक में चतुर्थ संशोधन अधिनियम का जो नाम प्रस्तावित किया गया है वही नाम उपयुक्त नाम है। संविधान सभा ने जो प्रथम अधिनियम स्वीकार किया था वह भारत शासन (संशोधन) अधिनियम, 1949 है। दूसरा अधिनियम भारत शासन (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1949 है जो बन्दियों के एक स्थल से दूसरे स्थल को हटाये जाने के सम्बन्ध में है। तृतीय अधिनियम, तृतीय संशोधन अधिनियम, 1949 है जो विस्थापितों की सम्पत्ति तथा बंगाल के निर्वाचन के सम्बन्ध में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उसे संशोधन अधिनियम नहीं कहा गया है। उसका दूसरा ही नाम हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि आप खंड (1) की देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि उसमें ये शब्द प्रयुक्त हैं–"यह अधिनियम भारत-शासन (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1949, कहा जायेगा।" इसके आगे का अधिनियम तृतीय संशोधन अधिनियम 1949, है, जो विस्थापितों की सम्पत्ति की अभिरक्षा तथा प्रबन्ध करने तथा उसे निबटाने और पश्चिमी बंगाल के निर्वाचन के सम्बन्ध में है।

[श्री बी.आर. अम्बेडकर]

मेरे विचार से भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ है कि हमने संविधान सभा में दो अन्य अधिनियम स्वीकार किये हैं जिनमें से एक प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार के उत्सादन के सम्बन्ध में है और एक केन्द्रीय सरकार और विधान मण्डल के 1946 के अधिनियम के संशोधन के सम्बन्ध में है। ये अधिनियम भारत-शासन अधिनियम के संशोधन कदापि नहीं हैं इन अधिनियमों का भारत-शासन अधिनियम पर परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ सकता है किन्तु ये भारत-शासन अधिनियम के संशोधन नहीं हैं। इसलिये हमें इसका अधिकार है कि हम इसे चतुर्थ संशोधन कहें क्योंकि जहां तक भारत-शासन अधिनियम 1935 के संशोधन का सम्बन्ध है, इस सभा ने केवल तीन अधिनियम स्वीकार किये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** किन्तु तृतीय संशोधन-अधिनियम नाम का कोई अधिनियम नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह अधिनियम अस्तित्व में है। तृतीय अधिनियम विस्थापितों की सम्पत्ति की अभिरक्षा तथा प्रबन्ध करने तथा उसे निबटाने के सम्बन्ध में है। वह अधिनियम मेरे पास यहां पर है।

***अध्यक्ष:** यह दिखाई देता है कि इस विषय के सम्बन्ध में कुछ भ्रम उत्पन्न हो गया है चतुर्थ संख्या अधिनियम की संख्या नहीं है इस स्थल को अधिनियम का चतुर्थ संशोधन कहा गया है। वह अधिनियम की संख्या नहीं है। अधिनियम की संख्या अलग दी गई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह वर्तमान अधिनियम का वर्णन है। वह उसका छोटा नाम है।

***अध्यक्ष:** वह केवल वर्णन ही है। उसकी संख्या इस प्रकार दी जायेगी— अधिनियम संख्या 6, 1949।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, यही बात है। यह छोटा नाम है।

***अध्यक्ष:** संविधान सभा ने अभी तक अर्थात् 1949 में, पांच अधिनियमों को स्वीकार किया है। यह छठा अधिनियम होगा। किन्तु जहां तक संशोधनों का सम्बन्ध हैं, यह भारत-शासन-अधिनियम का चौथा संशोधन है। इसीलिये यह चतुर्थ संशोधन कहा गया है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांत: जनरल): यदि जिन पांच अधिनियमों को हमने स्वीकार किया है उनमें से...

***अध्यक्ष:** यह छठा अधिनियम है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम इस सभा में पांच अधिनियमों को स्वीकार कर चुके हैं। उनमें से दो के भारत-शासन-अधिनियम, 1935, के संशोधन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** यदि वे संविधानिक अधिनियम नहीं थे तो वे इस सभा के समक्ष क्यों रखे गये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** छोटा नाम अधिनियम के आशय से बिल्कुल भिन्न होता है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** प्रश्न यह है कि क्या बिना भारत-शासन-अधिनियम, 1935, को संशोधित किये हुये किसी वादी को प्रिवीकौंसिल में अपील करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अगले अधिनियम का छोटा नाम केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल संशोधन अधिनियम, 1949 था। उस अधिनियम का उद्देश्य भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 को संशोधित करना था। यह अधिनियम संसद का अधिनियम है और भारत-शासन-अधिनियम, 1935, नहीं है। दूसरा अधिनियम प्रिवी कौंसिल-क्षेत्राधिकार अधिनियम, 1949, को समाप्त करने के सम्बन्ध में था।

***पंडित हृदय नाथ कुंजरू:** किन्तु मेरे माननीय मित्र ने जिस पहले के अधिनियम की, अर्थात् विधान-मंडल अधिनियम के संशोधन की चर्चा की है वह भी भारत शासन-अधिनियम का संशोधन ही हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं, यह बात नहीं है। संसद ने एक पृथक अधिनियम स्वीकार किया था जो भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946, के नाम से विदित है। यह संशोधन उस अधिनियम के संशोधन के सम्बन्ध में था। उस अधिनियम का भारत-शासन-अधिनियम, 1935 से कोई सम्बन्ध नहीं था।

***श्री आर.के. सिधवा:** संभवत: डॉ. अम्बेडकर को स्मरण होगा कि बिनौले से रुई विषयक अधिनियम का जो संशोधन हुआ था वह वास्तव में भारत-शासन-अधिनियम का ही संशोधन है किन्तु उन्होंने उसकी चर्चा नहीं की है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे अभिप्रेत है छठा अधिनियम किन्तु छोटा नाम अधिनियम की संख्या से बिल्कुल भिन्न होता है। हम इस समय छोटे नामों पर विचार कर रहे हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** (मुद्रास: जनरल): यह नामों का विषय है और वास्तव में संसद ने जिन पहले के अधिनियमों को संशोधित किया है उनके विभिन्न नाम रखे हैं, यद्यपि उनका उद्देश्य भारत-शासन-अधिनियम का संशोधन ही है जैसे कि भारत बर्मा आयात शक्ति अधिनियम, 1942। नामों को तर्क की कसौटी पर कसने की आवश्यकता नहीं है। मेरा यह सुझाव है कि सरकार विधेयक पर विचार करे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या कोई अधिनियम संख्या 4 भी है?

***अध्यक्ष:** दिखाई यह देता है कि वह है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वह मेरे पास नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि आपके पास उसकी प्रति नहीं है तो हम क्या करें?

***अध्यक्ष:** आखिर नाम पर कुछ निर्भर नहीं करेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि सदस्य महोदय यह चाहते हैं तो मैं उन्हें उसकी संख्या भी बता सकता हूं।

1949 का अधिनियम संख्या 1, "भारत-शासन (संशोधन) अधिनियम 1949" के छोटे नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 2, "भारत-शासन (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1949," के नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 3, "भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) संशोधन अधिनियम, 1949," के नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 4, "भारत शासन (तृतीय संशोधन) अधिनियम, 1949" के नाम से विदित है।

1949 का अधिनियम संख्या 5 "प्रिवी कौंसिल क्षेत्राधिकार-अधिनियम का उत्सादन, 1949," के नाम से विदित है।

अधिनियम संख्या 3 और अधिनियम संख्या 5 का भारत-शासन-अधिनियम, 1935 से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण हमने इसे भारत-शासन-अधिनियम का चतुर्थ संशोधन कहा है।

***अध्याय:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 1 के उपखण्ड (1) में 'Fourth Amendment (चतुर्थ संशोधन)' शब्दों के स्थान पर 'Third Amendment (तृतीय संशोधन)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खंड 1 विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 1 विधेयक का अंग बना लिया गया।

खण्ड 2

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 2 निकाल दिया जाये।"

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 2 के अन्त में यह विधि उल्लेख किया जाये:

'52 & 53 Vict, C.63 (52 और 53 वीआईसीटी, सी 63 ।)'"

ये संशोधन रस्मी संशोधन हैं जहां तक अन्तिम संशोधन का सम्बन्ध है, मैं उसे इस कारण उपस्थित कर रहा हूं कि यद्यपि साधारणतया विधियों में सचिव को साधारण शक्तियां दी होती हैं किन्तु हमने अपने नियमों में विधेयक के स्वीकार होने के पश्चात् उसमें कुछ परिवर्तन करने के लिये सचिव को कोई शक्ति नहीं दी है। यह विधि-उल्लेख आवश्यक है और यह किया जाना चाहिये।

जहां तक मेरे पहले संशोधन का, अर्थात् खंड 2 को निकालने के बारे में जो संशोधन है उसका सम्बन्ध है, उसकी इस कारण आवश्यकता है। जब अन्तिम अधिनियम, अर्थात् संविधान सभा का अधिनियम संख्या 5 स्वीकार किया गया था तो उस समय उस विधेयक में खंड 2 के समान कोई खंड नहीं था। खंड 2 इस प्रकार है–"1889 का निर्बचन-विषय-अधिनियम इस अधिनियम के निर्वाचन के लिये भी लागू होगा और संसद के किसी अधिनियम के निर्वाचन के लिये भी लागू होगा।" पहले के अधिनियम में वह खंड है किन्तु उस विधेयक में वह नहीं था जिसने अधिनियम संख्या 5 का रूप धारण किया था। उस समय मैंने कहा था कि इस प्रकार के एक खंड की आवश्यकता होगी किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि इस खंड की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। यदि अधिनियम संख्या 5 में उसकी आवश्यकता नहीं थी तो इस विधेयक में भी, मेरे विचार से, उसकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। आखिर कुछ एकरूपता तो होनी ही चाहिये। पहिले अधिनियमों में यह खंड है किन्तु अन्तिम अधिनियम में नहीं है हमें किसी निश्चत नीति के अनुसार मसौदा बनाना चाहिये और जब जो बात समझ में आ जाय उस बात को न रखना चाहिये। इसलिये मैं डॉ. अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या उन्हें अधिनियम संख्या 5 के मसौदे की प्रणाली मान्य है अथवा पहले के अधिनियमों के मसौदों की प्रणाली मान्य है और इस कारण वे इस खंड को रहने देना चाहते हैं या नहीं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं केवल यह निवेदन करता हूं कि उन सभी अधिनियमों में, जिनके द्वारा भारत शासन अधिनियम को संधोधित किया गया है, इस सभा ने इस खंड को स्वीकार किया है। इसलिये एकरूपता बनाये रखने के लिये और इस अधिनियम के निर्वचन के लिये, खंड 2 इस विधेयक का बहुत आवश्यक अंग है।

मेरे मित्र के सुझाव के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उसका अर्थ केवल यह है कि हाशिये में 1889 का निर्वचन अधिनियम के सम्बन्धित अध्याय की संख्या का उल्लेख होना चाहिये। इस पर मसौदावार विचार कर सकता है। यदि वह हाशिये में इस प्रकार के उल्लेख की आवश्यकता समझेगा तो निस्संदेह इस पर विचार करेगा। किन्तु मेरा निवेदन है कि 1935 के भारत शासन अधिनियम को संशोधित करने वाले अन्य अधिनियमों के इस खंड के आगे हाशिये में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यद्यपि डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि पहले के सभी अधिनियमों में यह खंड है किन्तु अधिनियम संख्या 5 में इस प्रकार का कोई खंड नहीं है। मैंने यह कहा था कि यह रह गया है किन्तु इसके विरुद्ध निर्णय किया गया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह अधिनियम अन्य अधिनियमों पर निर्भर नहीं था। उसमें निर्वचन अधिनियम के उल्लेख की आवश्यकता नहीं थी।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

(क) "खंड 2 निकाल दिया जाये।"

(ख) "खड 2 के अन्त में यह विधि उल्लेख किया जाये:

'52 & 53 Vict, C.63 (52 और 53 वीआईसीटी, सी 63।)'"

संशोधन गिर गये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खंड 2 विधेयक का अंग बना लिया जाये"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खंड 2 विधेयक का अंग बना लिया गया।

खण्ड 3

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यह केवल विराम सम्बन्धी संशोधन है, जिसे मेरे विचार से, मसौदा-समिति स्वीकार कर लेगी। यदि वह खुली तौर पर स्वीकार नहीं करेगी तो चुपचाप स्वीकार कर ही लेगी।

***श्री एच.वी. पातस्करः** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 3 में 'alter the name of any province (किसी प्रान्त का नाम बदला जा सकता है)' शब्दों के पश्चात् 'after ascertaining the opinion of the members of the Legislature of the province whose name is proposed to be changed (जिस प्रान्त के नाम को बदलने का प्रस्ताव हो उसके विधान मंडल के सदस्यों की राय लेने के पश्चात्)' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, मैं इन कारणों से इस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं। उद्देश्यों और कारणों के विवरण से यह विदित होता है कि विचाराधीन विधेयक इस सभा में तीन कारणों से उपस्थित किया गया है। पहला कारण यह है कि कुछ प्रान्तीय सरकारों ने यह इच्छा प्रकट की है कि उनके प्रान्तों के नाम बदले जायें। उद्देश्यों और कारणों के विवरण में यही कहा गया है। इस विधेयक को प्रस्तुत करने का दूसरा कारण यह है कि इन प्रान्तीय सरकारों ने यह इच्छा भी प्रकट की है कि प्रान्तों के नाम-संविधान के प्रारम्भ के पूर्व, अर्थात् 26 जनवरी 1950 से पूर्व बदल दिये जायें। तीसरा कारण यह है कि भारत शासन अधिनियम, 1935, में नामों में परिवर्तन की करने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है।

श्रीमान, यह सच है कि भारत-शासन अधिनियम, 1935, में किसी प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। मेरे संशोधन का आधार यह सिद्धान्त है कि जिस प्रान्त का नाम बदलना हो वहां के विधान मंडल से पूछना चाहिये कि इस सम्बन्ध में उसका मत क्या है। मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 3 की ओर दिलाता हूं, जिसे यह सभा स्वीकार कर चुकी है। अनुच्छेद 3 में राज्यों के नामों में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में उपबन्ध है (आगे सभी प्रान्त राज्य ही कहे जायेंगे)। अनुच्छेद 3 का परन्तुक इस प्रकार है:

"परन्तु इस प्रयोजन के लिये कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश बिना, तथा जहां विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव प्रथम अनुसूची के भाग (क) या भाग (ख) में उल्लिखित राज्य या राज्यों की सीमाओं पर अथवा किसी ऐसे राज्य या राज्यों के नाम या नामों पर पड़ता हो वहां जब तक कि विधेयक की पुर:स्थापना की प्रस्थापना के तथा उसके उपबन्ध, इन दोनों के सम्बन्ध में, यथास्थिति, राज्य के विधान-मंडल अथवा राज्यों में से प्रत्येक के विधान मंडल के विचार राष्ट्रपति ने निश्चित रूप से जान लिये हों तब तक, किसी सदन में पुर:स्थापित न किया जायेगा।"

इससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि हम इस प्रकार के परिवर्तन के लिये उपबन्ध रख चुके हैं। यदि यह परिवर्तन 26 जनवरी के पश्चात् करने की आवश्यकता पड़े तो यह एक विधेयक को प्रस्तुत करके किया जा सकता है। सम्बन्धित राज्यों के विधान-मंडलों के विचार ज्ञात करने के पश्चात् इस प्रकार के विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा दी जा सकती है।

[श्री एच.वी. पातस्कर]

यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि प्रान्तीय सरकारें अपनी इच्छा प्रकट कर चुकी हैं। मैं यह नहीं सकता है कि इस सम्बन्ध में किन प्रान्तीय सरकारों ने अपनी इच्छा प्रकट की है। "आर्यावर्त" नाम के सम्बन्ध में जो विचार-विमर्श हुआ है और जिस सरगर्मी का परिचय दिया गया है उसे ध्यान में रखते हुए, मेरे विचार से, प्रान्तों का नाम बदलना उतना आसान नहीं है जितना कि वह समझा जाता है।

यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि चूंकि प्रान्तीय सरकारें यह इच्छा प्रकट कर चुकी हैं कि नामों में परिवर्तन किया जाना चाहिये, इसलिये इसका अर्थ बहुत कुछ यही है कि विधान-मंडलों के विचार ज्ञात किये जा चुके हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि विधान मंडलों के तथा प्रान्तीय सरकारों के विचार हमेशा समान नहीं होते हैं। विधान मंडलों में लोक-प्रतिनिधि होते हैं और उनके विचार ज्ञात करना प्रान्तीय सरकारों के विचार ज्ञात करने से बिल्कुल भिन्न बात है क्योंकि सरकारों का सम्बन्ध प्रान्तों के प्रतिदिन के प्रशासन सम्बन्धी प्रश्नों ही से रहता है। अनुच्छेद 3 में हमने जिस सिद्धान्त का अनुसरण किया है वह बहुत ही उपयुक्त सिद्धान्त है। उससे जनसाधारण का मत बहुत अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है क्योंकि विधान-मंडलों में प्रान्तों के लोक-मत का ही प्रतिनिधित्व होगा।

श्रीमान, बिना अधिक विवरण दिये हुए मैं यह आसानी से बता सकता हूं कि किस प्रकार कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। पश्चिमी बंगाल का ही उदाहरण लीजिये। एक बार वहां के लोग पश्चिमी बंगाल का नाम बंगाल रखना चाहते थे। बाद में उन्होंने अपना विचार बदल दिया और यह इच्छा प्रकट की कि इसका नाम पश्चिमी बंगाल ही रहने दिया जाये। संविधान के तृतीय पठन के अवसर पर हमने फिर "पश्चिमी बंगाल" नाम को ही अपनाया। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि हमें कभी किसी नाम को बदलना हो तो हमें साधारणतया अनुच्छेद 3 में वर्णित सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिये। वह सिद्धान्त यह है कि नाम में परिवर्तन सरकार की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि विधान-मंडल की इच्छा के अनुसार करना चाहिये क्योंकि सरकार समय-समय पर बदलती रहती है और विधान-मंडल का निश्चय उससे अधिक दृढ़ होता है।

इसके अतिरिक्त श्रीमान, कोशल-विदर्भ के नाम का ही उदाहरण लीजिये। पहले मसौदे में हमने जिस नाम का उल्लेख किया है वह कोशल-विदर्भ ही है और हमने इस नाम का उल्लेख अवश्य ही वहां की सरकार से परामर्श कर के ही किया होगा। बाद में वहां की सरकार ने अपना विचार बदल दिया और मध्य-प्रदेश के नाम को स्वीकार करना चाहा। इसलिये क्या यह उचित नहीं है कि अनुच्छेद 3 में जो उपयुक्त सिद्धान्त निर्धारित किया गया है उसका हम अनुसरण करें? परिस्थिति के बदलने पर सरकारें भी अपने विचारों को बदल देती हैं। वास्तव में सरकारें लोगों का प्रतिनिधित्व उस अर्थ में नहीं करती हैं जिस अर्थ में प्रान्तों के विधान-मंडल करते हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से इस प्रश्न पर इतना अधिक तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. पातस्करः** मैं एक बात और कहना चाहता हूं और वह यह है अनुच्छेद 3 में एक सिद्धान्त की परिभाषा करके हमने उसे संविधान में स्थान दिया है। अब संविधान स्वीकार होने के केवल एक दिन पूर्व हम उस सिद्धान्त को केवल इस कारण अस्वीकार करना चाहते हैं कि कुछ लोग शीघ्र ही प्रान्तों के नाम बदलना चाहते हैं। आखिर नाम बदलने से अधिक अन्तर नहीं पड़ता। जैसा कि कवि ने कहा है चाहे गुलाब को किसी नाम से क्यों न कहा जाये उसकी खुशबू वही रहेगी। इसलिये अनुच्छेद 3 में जिस सिद्धान्त की परिभाषा की गई है उसी को क्यों न रहने दिया जाये? उसका इस अवसर पर क्यों खण्डन किया जाये? श्रीमान, मैं इस पर ज़ोर देता हूं कि हमने गम्भीरतापूर्वक जिन सिद्धान्तों को निर्धारित किया है उनका यदि हम खण्डन करेंगे तो हम आने वाली पीढ़ियों के सामने एक गलत उदाहरण रखेंगे।

इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि मेरे इस सीधे-साधे संशोधन को सभा के सदस्य स्वीकार पर लें। इस के विरुद्ध केवल यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि इस में कुछ समय लगेगा। प्रान्तों के अधिकांश नाम विदेशियों के रखे हुए हैं। अच्छा यह होगा कि उन्हें विभिन्न विधान-मंडलों के विचार ज्ञात करके बदला जाये। साथ ही उन्हें शांत वातावरण में बदलना चाहिये और इतनी शीघ्रता से न बदलना चाहिये जितनी शीघ्रता से इस विधेयक को प्रस्तुत करके बदलने का प्रयास किया जा रहा है।

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, मेरा संशोधन इस प्रकार हैः

"भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 290 की उपधारा (1) के परन्तुक के अन्त में यह जोड़ दिया जाये, अर्थात्:—

'and any such Order made by the Governor General shall be placed before the Parliament within three days of its making, and the Parliament shall have the right to either accept or reject the name contained in that Order.

(और गवर्नर जनरल का दिया हुआ प्रत्येक ऐसा आदेश उसके दिये जाने के तीन दिन पश्चात् संसद के सामने रखा जायेगा और संसद को उस आदेश में दिये हुए नाम को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होगा।)'"

श्रीमान, धारा 290 का स्वरूप इतना सीमित है कि किसी माननीय सदस्य के लिये, किसी दोष, अथवा किसी ऐसे सुझाव के निवारण के लिये, जो सभा को अथवा देश को मान्य न हो, एक विस्तृत संशोधन उपस्थित करना कठिन है। यह धारा प्रान्तों के नाम बदलने के ही सम्बन्ध में है। इसकी सीमा के अन्दर रहते हुए मेरे लिये इस संशोधन को उपस्थित करने के अतिरिक्त और कोई चारा न

[श्री आर.के सिधवा]

था। इसका उद्देश्य यह है कि किसी प्रान्त के मनमाने ढंग से अपना नाम बदलने के कारण संसद और देशवासियों के अधिकार पर आघात न हो। ऐसे प्रान्तों के प्रति जो अपने नाम इतिहास के आधार पर अथवा अन्य उपयुक्त कारणों से बदलना चाहते हैं मेरे हृदय में पूरा सम्मान है। मेरे मित्र श्री मोहन लाल गौतम ने जो तर्क दिये उन्हीं को दृष्टि में रखकर मैंने इस संशोधन को उपस्थित करना आवश्यक समझा। उन्होंने चुनौती देकर कहा कि उनका प्रान्त अन्य सब प्रान्तों से ऊंचा है *(विघ्न)*। मेरा निवेदन है कि यदि कुछ प्रान्तों की यह मनोवृत्ति है तो इस सभा को इसका अधिकार है कि वह इस प्रकार की मनोवृत्ति समाप्त कर दे। श्रीमान, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि उनके प्रान्त के सदस्यों के बीच भी उस प्रान्त का नाम "आर्यावर्त" रखने के सम्बन्ध में मतभेद था।

***अध्यक्ष:** कृपा करके किसी नाम की चर्चा न कीजिये। आप इस विषय के सम्बन्ध में ही अपना मत प्रकट कीजिये।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान, इसका उपाय क्या है? मेरे मित्र श्री पातस्कर ने स्थिति को ठीक समझा और यह कहा कि विधान-मंडल से परामर्श करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। विधानमंडल से परामर्श करने का उद्देश्य भी विफल हो जायेगा क्योंकि वहां के अधिकांश सदस्य कहेंगे "आर्यावर्त अथवा हिन्दुस्तान" के नाम को स्वीकार कीजिये। यदि उसने अपने प्रान्त का नाम हिन्दुस्तान रख दिया, अर्थात् यदि संयुक्त प्रान्त के विधान-मंडल ने अपने प्रान्त का नाम हिन्दुस्तान रख दिया तो होगा? यह देश भविष्य में भारत कहा जायेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमने हिन्दुस्तान के नाम को त्याग दिया है। इसलिये श्रीमान, आप कृपा करके मुझे बतायें कि 'हिन्दुस्तान' नाम अपना कर देश के हितों को हानि पहुंचाने से आप संयुक्त प्रान्त को कैसे रोकेंगे? पहले एक बार कांग्रेस समिति में इसके लिये प्रयास किया गया था यद्यपि वह विफल हुआ था। श्रीमान, मैं चाहता हूं कि आप अथवा मसौदा-समिति के सभापति महोदय इस सम्बन्ध में मेरा पथप्रदर्शन करें। श्रीमान, मैं जानना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में हमने कौन से परिमाण रखे हैं। कोई प्रान्त अपना नाम नहीं बदल सकता है। गवर्नर जनरल ही उसका नाम बदल सकता है।

***पंडित बाल कृष्ण शर्मा** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): यदि मेरे माननीय मित्र को इससे संतोष हो सकता है तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मुझे "हिन्दुस्तान" शब्द से घृणा है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह ठीक है किन्तु 1939 में आपने अपनी प्रान्तीय कांग्रेस-समिति का नाम हिन्दुस्तान कांग्रेस-समिति रखने का प्रस्ताव रखा था।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): आप हमें उन नामों को बता दें जिन्हें आप पसंद नहीं करते हैं।

***अध्यक्ष:** हम इस विषय पर बेकार समय नष्ट कर रहे हैं और इसके सम्बन्ध में बीच में बोलने की भी आवश्यकता नहीं है। माननीय सदस्य अपने भाषण को अपने संशोधन तक ही सीमित रखें।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं केवल यह चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकार के अथवा अन्य लोगों के विचारों को गवर्नर जनरल के स्वीकार कर लेने पर जो स्थिति उत्पन्न होगी उस स्थिति में देश के हितों की रक्षा करने की व्यवस्था की जाये क्योंकि सम्भावना इसी की है कि गवर्नर जनरल सम्बन्धित प्रान्त के सुझाव को स्वीकार कर लेगा। इस दशा में यदि जो नाम स्वीकार किया गया हो वह भारत के हितों की दृष्टि से उपयुक्त न हो तो, यदि मेरे संशोधन को स्वीकार किया गया, संसद को उस पर विचार करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। इस संविधान सभा के विघटन के पश्चात् इस विषय पर संसद ही विचार कर सकेगी। मेरे विचार से इन बातों को रोकने का एकमात्र उपाय यही है। यह कहा गया है कि गवर्नर जनरल हितों को सुरक्षित रखेगा किन्तु मेरे विचार से यह उपयुक्त उपचार नहीं है। मेरे विचार से ऐसे महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में संसद् को ही निर्णय करना चाहिये। मेरे मित्र श्री पातस्कर ने ठीक ही कहा है कि चूंकि हम जल्दी में हैं इसलिये हम इस प्रकार की व्यवस्था कर रहे हैं। इस विषय के सम्बन्ध में हम बिना किसी आवश्यकता के जल्दी क्यों करें। हम इस सम्बन्ध में 26 जनवरी के पश्चात् निर्णय क्यों न करें? शांत वातावरण में तथा सभी लोगों से परामर्श करके इस प्रकार का निर्णय करना चाहिये। इस सभा में एक या दो नामों के सम्बन्ध में निर्णय किया गया था और, जैसा कि श्री पातस्कर बता चुके हैं, थोड़े ही समय में इन दो नामों को बदलना पड़ा।

किसी ऐसी प्रणाली की सुरक्षा के लिये जिससे कोई ऐसा नाम स्वीकार न किया जा सके जिससे देश के हितों की हानि होती हो, मुझे कोई अन्य सुझाव नहीं देना है। मैं केवल इसी प्रणाली का सुझाव रखता हूं। मुझे आशा है कि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर कृपा करके मेरे सुझाव को ध्यान में रखेंगे क्योंकि मैंने उसे सदिच्छा से ही उपस्थित किया है। यदि उनके अन्य कोई सुझाव है तो उन्हें मुझे बता दिया जाय क्योंकि मैं उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। इस सुझाव को मैंने अपने पहले अनुभव के आधार पर सदिच्छा से ही प्रस्तुत किया है। मुझे आशा है कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा, अथवा देश के हितों की रक्षा के लिये विकल्पत: अन्य कोई सुझाव रखा जायेगा।

***अध्यक्ष:** श्री जसपत राय कपूर। मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे किसी नाम-विशेष के गुण दोषों पर, अथवा पहले के किसी व्यक्ति के कार्य पर विचार न करें। वे विचाराधीन प्रस्ताव तक ही अपने भाषण को सीमित रखें।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री पातस्कर तथा श्री सिधवा ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उन दोनों का मैं विरोध करता

[श्री जसपतराय कपूर]

हूं। प्रान्तों के नामकरण प्रश्न का अब बहुत अधिक महत्व हो गया है। किसी नये प्रान्त के निर्माण को, अथवा किसी प्रान्त के क्षेत्र को बढ़ाने अथवा घटाने को माननीय सदस्य जितना महत्व देते हैं उससे कहीं अधिक महत्व इस प्रश्न का हो गया है क्योंकि मैं देखता हूं कि श्री पातस्कर के संशोधन का यह उद्देश्य है कि यदि गवर्नर जनरल किसी प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में कोई आदेश निकाले तो उसे आदेश निकालने के पूर्व प्रान्तीय विधान-मंडल की राय लेनी चाहिये, और श्री सिधवा के संशोधन का उद्देश्य है कि प्रान्त का नाम बदलने के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल यदि कोई आदेश निकाले तो उसके पश्चात उसे संसद के समक्ष रखना चाहिये और गवर्नर जनरल ने जो आदेश निकाला हो उसे स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार संसद को प्राप्त होना चाहिये। धारा 290 के अधीन गवर्नर जनरल जो आदेश किसी प्रान्त को बनाने, अथवा किसी प्रान्त की सीमाओं में परिवर्तन करने के सम्बन्ध में निकालेगा उन्हें सारा देश चुपचाप स्वीकार कर लेगा और न तो सम्बन्धित प्रान्त के विधान-मंडल की राय ली जायेगी और न संसद का ही इस सम्बन्ध में कोई अधिकार होगा। मुझे यह एक विचित्र बात दिखाई देती है कि किसी प्रान्त के नाम बदलने के प्रश्न को तो इतना अधिक महत्व दिया जाता है और जहां किसी प्रान्त को अस्तित्व में लाने का प्रश्न उठ खड़ा होता है उसकी ओर माननीय सदस्य कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं। मैं विवेदन करता हूं कि जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त को इस वाद-विवाद में लाया गया है उससे हमें क्षोभ हुआ है क्योंकि हम संयुक्त प्राप्त के लोग हमेशा से यही समझते आये हैं कि हमारे काम का सारा देश समर्थन करेगा। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री मोहन लाल गौतम बता चुके हैं, हमारे प्रान्त में प्रान्तीयता का सर्वथा अभाव है। इसलिये हमने यह विचार किया था कि अन्य प्रान्तों के लोग इसके लिये हमें कुछ श्रेय देंगे और कम से कम हमें अपने प्रान्त का कोई यथेष्ठ नाम रखने की स्वतन्त्रता देंगे।

***अध्यक्षः** यहां आपके प्रान्त का कोई प्रसंग नहीं है।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान, मैं इसकी केवल आकस्मिक रूप से चर्चा कर रहा था। समय के अभाव के कारण मैं अब इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहूंगा।

मैं श्री पातस्कर के संशोधन का इस कारण विरोध करता हूं कि वह धारा 290 के अनुरूप नहीं है और साथ ही यदि उसे स्वीकार कर लिया गया तो प्रान्त का विधान मंडल तथा वहां की सरकार अकारण एक-दूसरे का विरोध करने लगेंगे क्योंकि श्री पातस्कर यह नहीं चाहते कि भारत-शासन अधिनियम की धारा 290 के परन्तुक में संधोधन किया जाये, जिसमें यह कहा गया है कि इस धारा के अधीन आदेश निकालने के पूर्व गवर्नर जनरल को प्रान्तीय सरकार की राय लेनी चाहिए। इस परन्तुक के अधीन प्रान्तीय सरकार की राय लेनी होगी। श्री पातस्कर का यह सुझाव कि विधान-मंडल की भी राय लेनी चाहिए। इस प्रकार उसका आशय यह है कि पहले विधान-मंडल की राय लेनी चाहिये और उसके

पश्चात् सरकार की राय लेनी चाहिये। क्योंकि परन्तुक के अधीन यह करना आवश्यक है। यदि यह मान लिया जाय कि सरकार और विधान-मंडल की राय एक ही होगी तो श्री पातस्कर के संधोधन की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी। यदि उनमें मतभेद हो तो...

***श्री एच.वी. पातस्करः** ऐसे उदाहरण हैं जब उनमें मतभेद रहा है।

***श्री जसपतराय कपूरः** यदि इस प्रकार के उदाहरण हैं तो कम से कम इस संविधान-सभा में बैठकर हमें इस प्रकार के मतभेद को प्रोत्साहित न करना चाहिये। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि विधान-मंडल और सरकार के बीच मतैक्य रहे और इस प्रकार के मतभेद का कोई अवसर न आये। इसलिए मेरा निवेदन है कि यह संशोधन इस प्रसंग में बेमेल लगता है।

श्री सिधवा के संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि श्री सिधवा बहुत कुशाग्र बुद्धि वाले पुरुष हैं और अनेक प्रकार के संशोधनों की कल्पना करने में समर्थ हैं। किन्तु मैं नहीं समझता था कि वे एक ऐसे संशोधन की भी कल्पना कर सकते हैं जो बहुत कुछ निरर्थक हैं। उनका यह सुझाव है कि गवर्नर जनरल का आदेश संसद के समक्ष रखा जाना चाहिये और संसद को उसे स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसे आदेश में संशोधन करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। वह या तो गवर्नर जनरल के मंजूर किये हुये नाम को स्वीकार कर सकती है या अस्वीकार कर सकती है। यदि आदेश में प्रस्तावित किये हुये नाम को संसद अस्वीकार कर दे तो क्या होगा? इससे एक बात रह जायेगी और उसकी पूर्ति नहीं हो सकेगी। इसीलिये मैं निवेदन कर रहा हूं कि श्री सिधवा का संशोधन बहुत कुछ निरर्थक ही है। इसके अतिरिक्त श्री सिधवा के संशोधन में कहा गया है कि ये शब्द वर्तमान परन्तुक में जोड़ दिये जाने चाहिये। इसका अर्थ यह है कि श्री सिधवा का संशोधन धारा 290 के अधीन गवर्नर जनरल के निकाले हुये सभी आदेशों पर लागू होगा जो कि किसी नये प्रान्त को अस्तित्व में लाने, किसी प्रान्त की सीमा में परिवर्तन करने आदि के सम्बन्ध में होंगे। मेरे विचार से श्री सिधवा का उद्देश्य यह नहीं है कि उनके संशोधन का आशय इतना अधिक विस्तृत हो। किन्तु उसकी शब्दावलि के फलस्वरूप वह धारा 290 के अधीन निकाले हुए गवर्नर जनरल के सभी आदेशों पर लागू होगा। मेरे विचार से श्री सिधवा ने अपने संशोधन की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया है। यदि वे उस पर फिर विचार करें तो मुझे विश्वास है कि वे उस पर मत लिये जाने के लिये जोर नहीं देंगे। इन कारणों से मैं इन दोनों संशोधनों का विरोध करता हूं।

***श्री एम. थीरुमल राव** (मद्रासः जनरल): श्रीमान क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं?

***अध्यक्ष:** मैं किसी सदस्य को बोलने से नहीं रोक सकता। किन्तु सदस्यों को सम्भवत: स्मरण होगा कि संविधान पर अभी कई सदस्य बोलना चाहते हैं।

***श्री एम. थीरुमल राव:** श्रीमान, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं केवल बहस में भाग लेने के लिये अपनी जगह से नहीं उठा हूं। इस विधेयक के सम्बन्ध में मैं एक बात कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं केवल यह कहूंगा कि इस प्रकार माननीय सदस्य केवल उन लोगों का समय लेंगे जो बोलना चाहते हैं किन्तु जिन्हें अभी तक बोलने का अवसर नहीं मिला है।

संविधान के सम्बन्ध में सदस्य महोदय बोल चुके हैं।

***माननीय सदस्य:** अब बहस बन्द की जाये।

***अध्यक्ष:** बहस बन्द करने की मांग की गई है और मैं इस ओर सदस्य महोदय का ध्यान आकर्षित करता हूं।

***श्री एम. थीरुमल राव:** श्रीमान, क्या यह उचित है कि, चूंकि बहस बन्द करने का प्रस्ताव क्या है, इसलिये मुझ से बैठ जाने को कहा जाये?

श्रीमान, मुझे उस सभा के समक्ष एक सीधा सादा प्रस्ताव रखना है। मुझे इस की चिन्ता नहीं है कि यह सभा इस प्रस्ताव को स्वीकार करती है या अस्वीकार करती है। मेरी समझ में नहीं आता कि जब सरकार सभा के समक्ष किसी प्रस्ताव को रखे तो वह उसके उचित अनुचित होने के सम्बन्ध में निर्णय करने के अवसर से क्यों वंचित की जाये। यह विधेयक सभा के समक्ष [26 जनवरी के पश्चात् रखा जा सकता है। यदि संविधान के अनुच्छेद 3 के अधीन वह प्रस्ताव सभा के समक्ष] रखा जायेगा तो तब तक कोई बात नहीं होगी। इस सभा में जो बहस हुई है उसे दृष्टि में रखते हुए सरकार इस विधेयक को इस समय वापस ले सकती है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम: जनरल): श्रीमान, क्या मैं...

***अध्यक्ष:** कृपया अब अधिक बहस न कीजिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि कोई प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्त का नाम बदलने के लिये तैयार हो [जाय, जैसे कि आसाम की सरकार तैयार] गई थी, जो "आसाम" का नाम "अस्समे" रखना चाहती थी, और प्रधान मंत्री ने...

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न इस विधेयक के सम्बन्ध में नहीं उठता।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** नाम में इस प्रकार का परिवर्तन करने के लिये एक संशोधन भेजा गया था किन्तु उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी गई थी।

किन्तु आसाम के प्रधानमंत्री से मुझे ज्ञात हुआ है कि सरकार इसके लिये सहमत हो गई है कि...

***अध्यक्षः** आप यथोचित अवसर पर इस प्रश्न को उठा सकते हैं किन्तु इस प्रसंग में नहीं उठा सकते।

श्री रोहिणी कुमार चौधरीः किन्तु श्रीमान, मुझे...

***अध्यक्षः** मैं यह निर्णय सुना चुका हूं कि यह प्रश्न इस समय नहीं उठता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, पहले में भी पातस्कर के संशोधन को उठाता हूं। मैं देखता हूं कि इसे धारा 290 में स्थान नहीं दिया जा सकता है। यह प्रतीत होता है कि मेरे मित्र ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि धारा 290 के खण्ड (1) के विभिन्न उपखण्डों के सम्बन्ध में एक परन्तुक है। यह परन्तुक सभी उपखण्डों पर, अर्थात् उपखण्ड (क), (ख), (ग) और (घ) पर लागू होता है। यदि वे उस उपखण्ड को देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उनके संशोधन को स्वीकार करने से नवीन खण्ड, अर्थात् उपखण्ड (ङ), दुहरी शर्तों के अधीन ही प्रवर्त्तन में आ सकेगा। उपखण्ड (ङ) उनके संशोधन की शर्त के अधीन प्रवर्त्तन में आयेगा। वह शर्त इन शब्दों द्वारा रखी गई है—"जिस प्रान्त के नाम को बदलने का प्रस्ताव हो उसके विधान-मंडल के सदस्यों की राय लेने के पश्चात।" इसके अतिरिक्त उपखण्ड (ङ) में यह परन्तुक भी रहेगा–"परन्तु गवर्नर जनरल प्रान्त की सरकार की राय लेगा।" इन दो शर्तों के कारण बहुत कठिन स्थिति उत्पन्न हो जायेगी इस संशोधन के अनुसार गवर्नर जनरल को अवश्य ही विधान मंडल की राय लेनी होगी। साथ ही धारा 290 के परन्तुक के अधीन उसे प्रान्त की सरकार की राय लेनी ही होगी। इस प्रकार उसे दुहरी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, अर्थात् उसे दो विभिन्न निकायों से परामर्श करना होगा। यह कोई आसान काम नहीं होगा। साथ ही यह बात नहीं है कि उपखण्ड (क) से लेकर उपखण्ड (घ) तक सब एक ही परन्तुक हो और उपखण्ड (ङ) में हो।

***श्री एच.वी. पातस्करः** यह धारा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह कहता हूं। आप यह कैसे जानते है? मुझे यह दिखाई देता है कि इस प्रकार का सुझाव प्रस्तुत करके आप अपने को तथा गवर्नर जनरल को कठिनाई में डाल रहे हैं। चाहे यह सुझाव कितना ही उपयुक्त क्यों न हो किन्तु इस समय इसे स्वीकार करना उचित नहीं होगा।

श्री सिधवा के संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि उससे इस अनुच्छेद का, तथा नवीन संविधान के उपबन्धों का मतलब ही खत्म हो जाता है: वे संसद की चर्चा करते हैं और यह मांग करते हैं कि गवर्नर जनरल का आदेश उसके निकाले जाने की तिथि से तीन दिन के अन्दर संसद के समक्ष रखा जाना चाहिये।

[श्री बी.आर. अम्बेडकर]

संसद की चर्चा करते हुए भी सिधवा संभवत: यह भूल गये थे कि उससे अभिप्रेत है वह विधान-मंडल जो 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आयेगा। उस तिथि को गवर्नर जनरल नहीं रहेगा। और यह धारा 290 और यह उपखण्ड (ङ) भी, जिसे प्रविष्ट कराने का मैं प्रयास कर रहा हूं, अस्तित्व में नहीं रहेगा। 26 जनवरी को नवीन संविधान के अनुच्छेद 3 के उपबन्ध ही प्रवर्तन में रहेंगे। मुझे खेद है कि जो कुछ मैंने स्पष्ट करने का प्रयास किया है उस की ओर उन्होंने यथेष्ठ ध्यान नहीं दिया है।

***श्री आर.के. सिधवा:** गवर्नर जनरल जो कुछ करेंगे वह राष्ट्रपति के लिये भी बन्धनकारी होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे यह दिखाई देता है कि ये दोनों सुझाव व्यवहारिक नहीं हैं। जहां तक इस विषय का सम्बन्ध है कि संसद से राय ली जाये या न ली जाये, हमें प्रश्नों पर विचार करना होगा। उनमें से एक यह है कि कुछ प्रान्तों का यह विचार है कि भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन थे जिन नामों से ज्ञात हैं वे कर्ण मधुर नहीं हैं और वे संविधान के प्रारम्भ की तिथि से कर्ण मधुर नामों से ज्ञात होना पसन्द करेंगे। पिछली बार जब इस विषय पर बहस हुई थी तो संविधान सभा ने यह विचार प्रकट किया था कि जब कुछ प्रान्तों का स्वयं यह मत है कि उनके नाम अच्छे नहीं हैं तो कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे गवर्नर जनरल इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व इन प्रान्तों की इच्छा पूरी करने के लिय आवश्यक कार्यवाही कर सके। इसलिए मेरे विचार से इस प्रकार के उपबन्ध की आवश्यकता है।

साथ ही यह भय भी प्रकट किया गया है कि कुछ प्रान्त गवर्नर जनरल के समक्ष ऐसे नामों का सुझाव रख सकते हैं जो अन्य प्रान्तों को मान्य न हों और इस प्रकार इस सभा ने जो नाम अस्वीकार किये हैं उन्हें बिना संविधान सभा को बनाये हुए, अथवा बिना सम्बन्धित प्रान्तीय विधान मंडलों की सहमति प्राप्त किये हुए, रख सकते हैं। मेरे विचार से इस प्रकार का सुझाव इस विधेयक द्वारा संशोधित धारा 290 का बहुत खींचातानी का अर्थ निकाल कर ही रखा गया है। धारा 290 के अधीन गवर्नर जनरल को इस विषय के सम्बन्ध में स्वविवेक से निर्णय करने का पूरा अधिकार है और उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रान्तीय सरकार के किसी सुझाव के अनुसार अथवा, विधान मंडल की राय के अनुसार, कार्य करे क्योंकि यदि श्री पातस्कर का संशोधन स्वीकार किया गया तो उसे विधान मंडल की भी राय लेनी होगी। वह स्वतन्त्रता से कार्यवाही कर सकता है और यदि इस सम्बन्ध में उसे कोई मन्त्रणा दे सकता है तो वह केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ही है। धारा 290 में केवल यह कहा गया है कि प्रान्तीय सरकार की राय ली जानी चाहिये। इनका अर्थ यह है कि जो कोई नाम भी प्रस्तुत किया जायेगा उसे

गवर्नर जनरल स्वीकार कर लेगा। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि संयुक्त प्रान्त के नाम के सम्बन्ध में प्रोफेसर सक्सेना के सुझाव पर इस सभा में जो बहस हुई है, और जो विचार प्रकट किये गये हैं, उन पर केन्द्रीय कार्यपालिका तथा गवर्नर जनरल अवश्य ही विचार करेंगे और तभी अनुच्छेद 290 के प्रस्तावित संशोधन के अधीन कार्यवाही की जायेगी।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। मि. नजीरुद्दीन अहमद, क्या आप चाहते हैं कि आपके संशोधन पर मत लिया जाये? वह केवल विरामों के सम्बन्ध में ही है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** उसे मसौदा समिति के लिये छोड़ दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह एक गलत संशोधन है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** यदि उस पर खुले तौर पर मत लिया गया तो वह अस्वीकार कर दिया जायेगा अन्यथा मसौदा समिति उसे स्वीकार भी कर सकती है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"खंड 3 में 'alter the name of any Province (किसी प्रान्त का नाम बदला जा सकता है)' शब्दों के पश्चात 'after ascertaining the opinion of the members of legislature of the Province whose name is proposed to be changed' (जिस प्रान्त के नाम को बदलने का प्रस्ताव हो उसके विधान मण्डल के सदस्यों की राय लेने के पश्चात्)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

भारत-शासन-अधिनियम, 1935 की धारा 290 की उपधारा (1) के परन्तुक के अन्त में यह जोड़ दिया जाये, अर्थात्:—

"and any such order made by the Governor-Genreral shall be placed before the Parliament within three days of its making, and the Parliament shall have the right to either accept or reject the name contained in that order."

(और गवर्नर जनरल का दिया हुआ प्रत्येक ऐसा आदेश उसके दिये जाने के तीन दिन पश्चात् संसद के सामने रखा जायेगा और संसद को उस

[अध्यक्ष]

आदेश में दिये हुए नाम को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार होगा।)'"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 3 को विधेयक का अंग बना दिया गया।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 3 विधेयक का अंग बना लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावना को विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रस्तावना को विधेयक का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"नाम को विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

नाम को विधेयक का अंग बना लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधित करने के लिये इस सभा द्वारा निश्चित किये गये विधेयक को स्वीकार कर लिया जाये।"

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, हमारे सामने एक विधेयक रखा गया हैं जिस का उद्देश्य 1935 के भारत-शासन-अधिनियम को संशोधित करना है, जिस का 26 जनवरी, 1950 को निरसन हो जायेगा। इस लिये श्रीमान इस विधेयक की केवल दो महीने के लिये आवश्यकता है। आखिर इतनी जल्दी क्यों की जा रही है? भारत-शासन-अधिनियम में प्रान्तों के नाम बदलने के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। हम एक प्रान्त का नाम, अथवा एक से अधिक प्रान्तों का नाम बदलना चाहते हैं। इसी कारण यह विधेयक उपस्थित किया गया है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस विधेयक को लाने की आवश्यकता ही क्या है। मैं इस पूरे विधेयक का विरोध करने के लिए यहां आया हूं। मैं समझता हूं कि हम दो महीने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। हम दो महीने तक प्रतीक्षा न

करके चाहते हैं कि यह विधेयक कल ही से, अर्थात् 26 जनवरी से प्रभाव में आ जाय। जब हम इस संविधान को स्वीकार कर लेंगे तो भारत-शासन-अधिनियम का ही निरसन हो जायेगा। हमने संविधान में इसका उल्लेख किया है कि भारत-शासन-अधिनियम, 1935, 26 जनवरी 1950 से निरसित हो जायेगा। तब प्रान्तों के नाम बदलने के सम्बन्ध में इतनी जल्दी क्यों की जा रही है? उन्हें दो महीने बाद बदला जा सकता है। आप चाहते हैं कि संयुक्त प्रान्त का, अथवा अन्य प्रान्तों का नाम अभी बदल दिया जाय और ये नये नाम 26 जनवरी से प्रभाव में आ जायें। इस पर मुझे बहुत आपत्ति है। हम इस संविधान सभा पर प्रति दिन 30,000 रु. व्यय कर रहे हैं। हम दिन में पांच घंटे काम करते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम प्रति घंटा, 6,000 रु. व्यय करते हैं। इस विधेयक को मैं बिल्कुल ही अनावश्यक समझता हूं किन्तु इस पर बोलते हुए हमें एक विधेयक को मैं बिल्कुल की अनावश्यक समझता हूं किन्तु इस पर बोलते हुए हमें एक घंटा बीस मिनट हो गये हैं और जब तक मैं अपना भाषण समाप्त करूंगा डेढ़ घंटा हो जायेगा। इसका अर्थ यह है कि 9,000 रु. व्यर्य में नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि मैं समझता हूं कि हम समय नष्ट ही कर रहे हैं। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं इसका विरोध करता हूं। मेरे विचार से इस पर मत नहीं लेना चाहिये और इसे वापस ले लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं इस पूरे विधेयक का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"भारत-शासन-अधिनियम, 1935 को आगे संशोधन करने के लिये इस सभा द्वारा निश्चित किये गये विधेयक को स्वीकार कर लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान का मसौदा–(जारी)

***अध्यक्षः** अब हम संविधान के मसौदे पर विचार करेंगे। मैंने यह विचार किया था कि इस विधेयक पर पौन घंटे से अधिक समय नहीं लगेगा, किन्तु इस पर डेढ़ घंटा लग गया है। सवा दस बजे इस कार्य को आरम्भ करने पर जितने अधिक वक्ता बोल सकते थे उतने अब नहीं बोल सकेंगे। मेरे सामने जो सूची है उसमें अब भी लगभग बीस नाम हैं। मैंने विचार किया था कि आज पन्द्रह सदस्य बोल लेंगे किन्तु अब मैं इतने सदस्यों को बालने की आज्ञा नहीं दे सकूंगा। बोलने वाले सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि वे कम से कम समय लें ताकि इस बहस में अधिक से अधिक सदस्य भाग ले सकें। मैं इस बहस को आरम्भ से ही सुनता रहा हूं और मैं सदस्यों को विश्वास दिलाता हूं कि मैं ने प्रत्येक सदस्य का प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक वाक्य सुना है और मैं यह कह सकता हूं कि अब कोई सदस्य कोई नई बात नहीं कहेगा। इस अवसर पर बोलने से सभा संविधान के पूर्ण दोषों पर विचार करने के लिये कोई नई सूचना अथवा नया ज्ञान प्राप्त नहीं करेगी। इस समय बोलने का उद्देश्य केवल यह हो सकता है कि सदस्यों के नामों का उल्लेख हो जाये ताकि जब प्रतिवेदन प्रकाशित हो तो उन्हें ज्ञात हो सके कि उन्होंने

[अध्यक्ष]

भी विधेयक पर होने वाली अन्तिम बहस में भाग लिया है। इस उद्देश्य की पूर्ति एक वाक्य कहकर भी हो सकती है। मैं उन्हें आश्वासन देता हूं कि यदि वे इस मसौदे के सम्बन्ध में एक वाक्य भी कहेंगे तो उनके नामों का उल्लेख रहेगा। माननीय सदस्यों से इतना कहकर मैं उनसे निवेदन करता हूं कि वे बहस को आरम्भ करें।

***श्री फ्रैंक ऐंथनी** (मध्य प्रान्त और बरार जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपने जिस शील और शिष्टता के साथ इस सभा की अध्यक्षता की है उसके लिये मैं सबसे पहले आपको धन्यवाद देता हूं। आपने दुष्कर तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिय मसौदा-समिति की जो प्रशंसा की है वह सर्वथा उचित ही है। मैं कुछ शब्दों में अपनी दाहिनी और बैठे हुए अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर की विशेष रूप से प्रशंसा करना चाहता हूं। हममें से कोई व्यक्ति भी इसकी आसानी से कल्पना नहीं कर सकता कि इस वृहत ग्रंथ को तैयार करने में; जिसमें बहुत दुरूह विषयों की चर्चा की गई है, कितनी वृद्धि लगानी पड़ी होगी और कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। कुछ अवसरों पर मैं डॉ. अम्बेडकर के विचारों से सहमत नहीं रहा हूं। किन्तु मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि उनका केवल सैद्धान्तिक बातों पर ही नहीं बल्कि अनेक प्रकार के विवरण पर भी बहुत अधिकार है तथा वे अपना तर्क स्पष्ट शब्दों में उपस्थित करने में भी समर्थ हैं। यह कहा गया है कि इस संविधान को लोगों ने विभिन्न भावनाओं से स्वीकार किया है। यह स्वभाविक ही था क्योंकि इस संविधान में विभिन्न भावनाओं का तथा विभिन्न आदर्शों का समावेश है। मेरे विचार से इसमें आदर्शवाद तथा यथार्थवाद के बीच का रास्ता अपनाया गया है। मुझे विदित है कि मेरे कुछ आदर्शवादी मित्रों ने इसकी आलोचना की है। वे चाहते थे कि इसमें इंजील के दस आदेशों के समान आदर्शवादी बातें ही होतीं। किन्तु व्यवहार में प्रशासन और राजनीति की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इस दृष्टि से उनका कुछ भी महत्व न रह जाता।

जैसा कि मैं कह चुका हूं हमने इस संविधान में बहुत से आदर्शों का समावेश किया है जिनके कारण यह संविधान चित्ताकर्षक और प्रेरणापूर्ण हो गया है। साथ ही हमने इसका आधार केवल भौतिक ही नहीं रखा है क्योंकि ऐसा करने पर यह संविधान प्रेरणाशून्य हो जाता। श्रीमान, मैं यह अनुभव करता हूं कि यह संविधान दोषमुक्त नहीं है किन्तु साथ ही मैं यह भी समझता हूं कि इसके निर्माण में हमने लोकतंत्रात्मक प्रणाली का ही अनुसरण किया है, इसके निर्माण में सावधानी से विचार किया गया है, बहुत ही छान-बीन की गई है और तर्क-वितर्क तथा कटु वाद-विवाद हुआ है। एक बार तो वाद-विवाद इतना कटु हो गया था कि मैंने यह विचार किया था कि निर्णय बल-प्रयोग से ही किया जा सकेगा। किन्तु अन्त में विभिन्न प्रश्नों का विश्लेषण करते हुए सभी ने सहिष्णुता तथा सहनशीलता का ही परिचय दिया।

जहां तक अल्पसंख्यक-विषयक उपबंधों का सम्बन्ध है, मैं आंग्ल-भारतीय समुदाय के अतिरिक्त अन्य किसी अल्पसंख्यक वर्ग की ओर से बोलने का अधिकारी नहीं हूं। इस संविधान में आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रति जो उदारता दिखाई गई है उसकी मैंने अनेक बार प्रशंसा की है। आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रति जो उदारतापूर्ण व्यवहार किया गया है उसके लिये मैं इस समय फिर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं और उसकी प्रशंसा करता हूं।

अब मैं संविधान के कुछ अंगों के सम्बन्ध में थोड़े से शब्द कहूंगा। मैं अपने माननीय मित्र पंडित हृदय नाथ कुंजरू के इस विचार से सहमत हूं कि समझदारी इसी में थी कि हम एकाएक वयस्क मताधिकार प्रदान न करते। मैं आपके सामने इंग्लिस्तान का उदाहरण रखना चाहता हूं और यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में उसका क्या अनुभव रहा है। मुझे यह विदित है कि हम अन्य देशों के उदाहरणों को तथा उनके अनुभव को पवित्र नहीं समझते हैं किन्तु मताधिकार के सम्बन्ध में आखिर इंग्लिस्तान का क्या अनुभव रहा है? इंग्लिस्तान में 19वीं शताब्दी में ही संसदात्मक प्रतिनिधि सरकार स्थापित हो चुकी थी किन्तु यहां 1928 तक सार्वभौम मताधिकार, अर्थात् वयस्क मताधिकार नहीं प्रदान किया गया। हममें से कुछ लोग बिना लोकतंत्र का स्वरूप समझे हुए, और बिना उसके उद्देश्यों को जाने हुए उसकी दुहाई देते हैं किन्तु जहां तक मैं समझता हूं केवल सिरों की गणना ही लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र में कम से कम यह सिद्धान्त तो सन्निहित है ही कि मताधिकार का प्रयोग यदि तर्कपूर्ण ढंग से नहीं तो कम से कम सामान्य बुद्धि से तो किया ही जाये। श्रीमान, मेरी यह धारणा रही है कि यदि इस सम्बन्ध में हम राजनीतिज्ञता का आश्रय न लेकर बुद्धिमत्ता का आश्रय लेते तो हम इस दिशा में जल्दी में कदम नहीं उठाते। हम एकाएक वयस्क मताधिकार प्रदान न करते बल्कि उसे आंशिक रूप से प्रदान करते। हम धीरे-धीरे प्रदान न करते बल्कि आंशिक रूप से प्रदान करते। अगले निर्वाचन में, अथवा उससे अगले निर्वाचन में, मतदाता निरक्षर ही होंगे और वे बिना राजनैतिक प्रश्नों का तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण किये हुए मत देंगे किन्तु मुझे आशा है कि वे खोखले तथा भ्रामक नारों से प्रभावित होकर झूठे राजनैतिक आदर्शों के पीछे नहीं दोड़ेंगे। यदि उन्होंने यह किया तो इसके फलस्वरूप अराजकता तो फैलेगी ही किन्तु साथ ही जिस लोकतंत्र को हमने उन्हें प्रदान किया है वह भी विनष्ट हो जायेगा।

श्रीमान, इस संविधान की यह कह कर निन्दा की गई है कि इसके द्वारा बहुत अधिक केन्द्रीकरण किया गया है, किन्तु मेरे विचार से यह आलोचना अनुचित है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि जिस किसी उपबन्ध से केन्द्र को अधिक शक्ति प्राप्त हुई उससे मुझे हर्ष ही हुआ। इस सम्बन्ध में भी हम लोकतंत्र के नारे लगाते हैं; किन्तु मैं पूछता हूं कि पूर्ण रूप से विश्लेषण करने पर हमारे सामने लोकतंत्र का कौन-सा स्वरूप प्रकट होता है और उसका हम क्या अर्थ लगाते हैं? उससे अवश्य ही अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक कल्याण अभिप्रेत है। मुझे यह कहते हुए खेद हो रहा है किन्तु मैं बिना किसी पर आक्षेप किये हुए

[श्री फ्रैंक ऐंथनी]

यह कहूंगा कि प्रान्तीय प्रशासनों के सम्बन्ध में आखिर हमें प्रतिदिन कौन सी बातें ज्ञात हो रही हैं? क्या प्रतिदिन कुशासन के तथा लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धान्तों के अतिक्रमण के नवीन उदाहरण नहीं मिल रहे हैं? सच पूछिए तो इस संक्रान्ति काल के लिये कम से कम मैं तो एकात्मक शासन-प्रणाली का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं। प्रान्तों का प्रशासन राज्यपाल अथवा राजप्रमुख कर सकते थे और उनकी सहायता स्थाई असैनिक सेवा के अधिकारी कर सकते थे। श्रीमान, मैं कम से कम इसका उल्लेख तो चाहता ही हूं कि मुझे इससे असन्तोष है कि शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पुलिस के समान महत्वपूर्ण विषय पूर्णतया प्रान्तों के हाथ में दे दिये गये हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में मुख्य अधिकार हमने प्रान्तीय सरकारों को दे दिया है। मुझे खेद है कि इस अधिकार को पाकर वे थोड़े समय में ही उन्मत्त हो गई हैं। मध्य प्रान्त में आखिर क्या हो रहा है? मैं यह निवेदन करता हूं कि मध्य प्रान्त ने अपनी शिक्षण-नीति से जानबूझ कर लोकतंत्र का हनन किया है और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र सिद्धांन्तों का अतिक्रमण किया है। मध्य प्रान्त में जो अल्पसंख्यक वर्ग भाषा पर आधृत हैं उनकी, शिक्षा और भाषा की दृष्टि से तो मृत्यु ही हो जायेगी। इस प्रकार की बातें हो रही हैं। वहां भाषा पर आधृत अल्पसंख्यक वर्गों की कोई चिंता नहीं की जाती। एकाएक एक ऐसी भाषा-नीति का अनुसरण किया जाने लगा है जिससे न केवल मूलाधिकार-विषयक उपबन्धों का खण्डन होता है बल्कि असंहिष्णुता, वर्गयिता तथा जोर ज़बरदस्ती की भावना भी झलकती है। केवल यहीं इसका अन्त नहीं हो जाता। मुख्य अधिकार आपने प्रान्तों को ही दिया है और उसे पाकर वे उन्मत्त हो गये हैं। राष्ट्रीय प्रगति और देश के सबसे बड़े हितों की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। मेरा यह विश्वास है कि कुछ ही वर्षों में हमारे देश के नेता यह अनुभव करने लगेंगे कि शिक्षा के सम्बन्ध में प्रान्तों को पूर्ण अधिकार देकर हमने बहुत बड़ी गलती की है। आप देखेंगे कि देश की तुरन्त ही वही दशा हो जायेगी जो बालकान के देशों की हुई थी। आपने प्रान्तों को शक्ति दी है उससे वे देश को अनेक भाषा-भाषी प्रदेशों में विभाजित कर देंगे और इस प्रकार विभाजित करेंगे कि एक दूसरे का कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि एक राष्ट्र की भावना मिटती जायेगी। मुझे इसकी बहुत आशंका है। जब तक निकट भविष्य में कोई प्रभावपूर्ण कार्यवाही न की जायेगी मेरी समझ में नहीं आता कि जो शक्ति होगी उसकी पूर्ति कैसे होगी।

समवर्ती सूची में मैं एक और विषय को रखना चाहता था। वह विषय स्वास्थ्य का विषय है। श्रीमान, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि कुछ प्रान्तों में इस सम्बन्ध में ठीक कार्य हो रहा है। सौभाग्य से बंबई के कर्णधार खेर जी हैं। अच्छा यह होता कि देश में एकात्मक शासन स्थापित किया जाता और प्रान्तों से प्रतिष्ठित व्यक्ति केन्द्र में लाये जाते। जैसा कि मैं कह चुका हूं, हमने स्वास्थ्य का विषय

प्रान्तों को सौंप दिया है। राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से इस विषय का बहुत अधिक महत्व है किन्तु प्रान्त इस सम्बन्ध में अपनी क्षमता के अनुसार रुक रुक कर ही ढीले कदम उठायेंगे।

अन्त में पुलिस के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करता हूं कि यह विषय केन्द्र के ही अधिकार में ही होना चाहिये। बंबई के प्रान्त में पुलिस ने अच्छा नाम कमाया है। किन्तु हम सच्ची बात क्यों न कहें? विभिन्न प्रान्तों में पुलिस को कैसी ख्याति अथवा कुख्याति प्राप्त है? विभिन्न प्रान्तों में पुलिस-शासन के सम्बन्ध में जनसाधारण की क्या राय है? मैं जानता हूं कि उनकी क्या राय है और आप भी जानते हैं कि उनकी क्या राय है। बहुत से प्रान्तों में पुलिस बदनाम है। वे विधि और व्यवस्था के संरक्षक नहीं समझे जाते बल्कि भ्रष्टाचार और उत्पीड़न के पोषक समझे जाते हैं। मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि पुलिस-प्रशासन का विषय केन्द्रीय सूची में रख दिया जाता।

क्या मैं एक शब्द निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में भी कह सकता हूं? मुझे यह विदित है कि मेरे माननीय मित्र श्री खरे मेरे विचारों से सहमत नहीं होंगे और सम्भवत: ये विचार धर्म विरोधी तथा असंगत प्रतीत होंगे। मैं नशाबन्दी के विषय को निदेशक तत्वों के साथ नहीं रखना चाहता था। मैं पियक्कड़ों का अथवा नशे का पक्ष नहीं ले रहा हूं। इसके विपरीत मैं नशाबन्दी को एक उच्च आदर्श मानता हूं। किन्तु मुझे यह भय है कि चूंकि इसे निदेशक तत्वों के साथ रखा गया है। इसलिये इस सम्बन्ध में प्रान्तों को अधिकार प्राप्त हो जाता है और कुछ प्रान्त बिना वास्तविकता की ओर यथेष्ट ध्यान दिये हुए नशाबन्दी की प्रणाली को शीघ्रता से व्यवहार में लाना चाहेंगे। मैं उन लोगों में हूं जो इस प्रश्न पर तर्क और मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करते हैं। मैं नशाबन्दी के प्रश्न को बहुत कुछ एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न समझता हूं। मेरा विश्वास है कि मनुष्य प्रकृति सर्वत्र समान है और कुछ आधारभूत बातों के सम्बन्ध में भारतीय यूरोपियनों से भिन्न नहीं है। मेरा विश्वास है कि इस सम्बन्ध में जो विधियां बनाई गई हैं उनसे लोग बहुत कुछ असंतुष्ट ही हैं और उनके सम्बन्ध में लोगों यह भावना है कि उनसे उनके वैयक्तिक जीवन में, तथा उनके वैयक्तिक स्वातंत्र्य में हस्तक्षेप हुआ है। मैं अपने माननीय मित्र श्री खरे से यह पूछना चाहता था कि क्या यह सम्भव है कि नैतिकता के सम्बन्ध में विधि बनाई जा सके? क्या विधि द्वारा नैतिकता का उदय हो सकता है? यह सम्भव नहीं है और कभी सम्भव नहीं रहा है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यदि आप नशाबन्दी के कार्यक्रम को धीरे-धीरे व्यवहार में लायें और उसके साथ-साथ सामाजिक सुधार भी करते रहें तो आप कुछ लोगों को नशे से बचा सकते हैं। जब तक आप शहरों में मज़दूरों के चालों को बनाये रखते हैं और उन्हें स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करने के थोड़े बहुत साधन भी प्रदान नहीं करते तब तक विधि-निर्माण द्वारा उन्हें नैतिक बनाने और उन की नशे की आदत छुड़ाने से क्या लाभ होगा? जहां तक नशेबन्दी के आदर्श का सम्बन्ध है,

[श्री फ्रैंक ऐंथनी]

मुझे उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना है। मैं जिस चीज़ के विरुद्ध हूं वह यह है: हमारे प्रधान मंत्री हमसे यह कहते रहते हैं कि पहले जो कार्य करने चाहिये उन्हें पहले करना चाहिये किन्तु दुर्भाग्य से हमारी यह आदत हो गई है कि जिन कार्यों को हमें अन्त में करना चाहिये उन्हें हम पहले करते हैं। किसी भी सरकार को पहले कौन से कार्य करने चाहिये? राष्ट्र-निर्माण के कौन से सबसे महत्वपूर्ण कार्य हैं जिन की ओर हमे पहले ध्यान देना चाहिये। निस्सन्देह हमें स्वास्थ्य और शिक्षा की ओर ही सबसे पहले ध्यान देना चाहिये। किन्तु आज अधिकांश प्रान्तीय सरकारें इस सम्बन्ध में क्या कर रही हैं? जिन राष्ट्र-निर्माण के कार्यों को उन्हें सर्वप्रथम आरम्भ करना चाहिये था उनके सम्बन्ध में वे एक ओर तो यह कहती हैं कि उनके पास धन नहीं है और दूसरी ओर इन मृगमरीचिकाओं को आदर्श मानकर इनके पीछे दौड़ती हैं। हम इस प्रकार करोड़ों रुपया नष्ट कर रहे हैं। नशाबन्दी के समान कार्यों को एकाएक आरम्भ करने के सम्बन्ध में मेरी यही आपत्ति है। सिद्धान्त: मैं उसके विरुद्ध नहीं हूं—वह एक उत्तम आदर्श है और यदि हम उसे प्राप्त कर सकें तो अनेक परिवार एक अभिशाप से मुक्त हो जायेंगे।

निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में मैं गो-वध-विषयक उपबन्ध को उठाता हूं। मैं जानता हूं कि इस विषय की चर्चा करना खतरे से खाली नहीं है किन्तु मैं इस सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कर देना चाहता हूं। निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में मुझे आपत्ति केवल इस पर है कि गौ-वध पर प्रतिषेध विषयक उपबन्ध को चालबाजी से इस अध्याय में प्रविष्ट किया गया है। वह पहले नहीं रखा गया था। मैं यह कहूंगा कि वे धर्मांध लोग तथा उग्र मतावलम्बी, जो इस उपबन्ध को प्रत्यक्ष रूप से नहीं रख सके, वे इसे अप्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट करने में सफल हो गये हैं। श्रीमान, मैं गोमांसाहारी नहीं हूं और मैं गोमांसाहारियों की ओर से तर्क नहीं उपस्थित कर रहा हूं। मैं कहता हूं कि गौ-वध का प्रतिषेध करिये किन्तु ईमानदारी से करिये और ऐसे उपायों का आश्रय न लीजिये जिनके आधार पर यह आरोप लगाया जा सके कि आप चालबाजी कर रहे हैं। मैं अपने हिन्दू मित्रों से पूछता हूं कि क्या गौ-वध से आपकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती है।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर राज्य): जी हां, पहुंचती है।

***श्री फ्रैंक ऐंथनी:** अच्छी बात है, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आपने यह कह दिया है। यदि आप यह पहले कहते तो मैं इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित करता कि मूलाधिकारों में गो-वध प्रतिषेध-विषयक एक उपबन्ध रख दिया जाये और गो-वध को एक दंडनीय अपराध घोषित कर दिया जाये। किन्तु लोग इसके लिये तैयार नहीं थे। इस उपबन्ध को अब अप्रत्यक्ष रूप से क्यों रखा जा रहा है? हो सकता है कि आपकी धार्मिक भावनाओं को ठेस लगे किन्तु इसके

साथ ही मैं यह भी आशा करता हूं कि मेरी धार्मिक भावनाओं का भी आदर किया जाये। मैं आपकी भावनाओं का आदर करने के लिये तैयार हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं इसे बाद में सोच विचार कर इस प्रकार निदेशक तत्वों के अध्याय में प्रविष्ट करने का प्रयास क्यों किया जा रहा है? देखिये तो इसे किस प्रकार प्रविष्ट किया गया है। तत्विषयक खण्ड में कहा गया है:

"भारत के ढोरों के, दुधारू तथा वाहक ढोरों के परिरक्षण के लिये ढोरों के वध का प्रतिषेध किया जा सकता है।"

***श्री के. हनुमन्थय्या:** श्रीमान, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। क्या यह उचित है कि माननीय सदस्य यह कहें कि यह कुछ उद्देश्यों से और चालबाजी से किया गया है? मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं। माननीय सदस्य महोदय कह सकते हैं कि हमने एक उपबन्ध चालबाजी से रखा है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार हमने उसे निदेशक तत्वों के अध्याय में रखा है इससे प्रमाणित होता है कि हमने उसे कुछ उद्देश्यों से रखा है। श्रीमान मैं चाहता हूं कि इसके औचित्य पर आप निर्णय करें।

***श्री फ्रैंक एंथनी:** श्रीमान, मैंने जो कुछ कहा है वह यदि किसी प्रकार भी संसदोचित भाषा नहीं है तो मैं आपसे और सभा से क्षमा मांगता हूं। मैंने यह नहीं कहा कि यह किसी उद्देश्य से किया गया है। मैं केवल वस्तु-स्थिति का वर्णन कर रहा था। जैसाकि मैं कह चुका हूं, जो कुछ किया गया है उसके आधार पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि उद्देश्य यह था कि इस उपबन्ध को अप्रत्यक्ष रूप से रखा जाये मैं "चालबाजी से" रखा जाये नहीं कहूंगा। मैं यह कह चुका हूं, और इसे फिर दुहराता हूं कि यदि इस प्रश्न से आपकी भावनाओं को ठेस लगने की सम्भावना थी, और मुझे यह ज्ञात होता, तो मैं सबसे पहले यह सुझाव रखता कि इस विषय को मूलाधिकारों का अंग बना देना चाहये। इसे केवल इस देश के ढोरों के परिरक्षण विषयक उपबन्ध का अंग बनाया गया है। यह एक बच्चा भी जानता है कि अन्य देशों में जनसंख्या के अनुपात से जितने ढोर हैं उससे कहीं अधिक ढोर इस देश में है। प्रत्येक होशियार बच्चा यह भी बता सकता है कि इतने अधिक ढोर होने पर भी हमारे देश में फी जानवर की दूध देने की अथवा भार ढोहने की शक्ति संसार के अन्य देशों के जानवरों से बहुत कम है। ढोरों के परिरक्षण तथा देश के हितसाधन के लिये ढोर के वध का प्रतिषेध करने की आवश्यकता नहीं थी बल्कि वास्तव में इस देश के आधे से अधिक पशुओं का वध करने की आवश्यकता थी। इसी कारण मैं यह निवेदन कर रहा हूं कि इस उपबन्ध को इस प्रकार नहीं रखना चाहिये था। मैं इस ओर केवल आपका ध्यान आकृष्ट कर देना चाहता हूं।

अन्त में मैं एक शब्द अनुच्छेद 21 के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। एक वकील होने के नाते मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि मुझे अनुच्छेद

[श्री फ्रैंक एंथनी]

21 के कारण कुछ निराशा हुई है। उसमें कहा गया है कि किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा। यदि अनुच्छेद 21 इसी रूप में रहा तो यदि कार्यपालिका चाहेगी तो उसका दुरूपयोग कर सकेगी और पूरी शक्ति स्वयं लेकर लोगों का उत्पीड़न कर सकेगी। कार्यपालिका इस अनुच्छेद का आश्रय लेकर विधि के शासन को मिटा सकेगी और नागरिकों को न्याय तथा न्याय-शास्त्र के साधारण सिद्धान्तों से वंचित कर सकेगी। किन्तु मैंने इस अनुच्छेद का विरोध इस कारण नहीं किया। हम एक ऐसे अधिकार के न्यूनन के लिये, जिसे कि मैं एक मूल मानुषिक अधिकार समझता हूं, इसलिये तैयार हो गये कि इस समय संक्रान्ति काल है और हो सकता है कि हमें सरकारों और प्रशासनों को अत्यधिक शक्तियां देनी पड़ें। हम ये शक्तियां इस लिये नहीं देने जा रहे हैं कि उनका दुरुपयोग किया जायेगा बल्कि इस लिये देने जा रहे हैं कि अव्यवस्था तथा अराजकता न फैले। यह चेतावनी देते हुए मैं आशा करता हूं कि प्रान्तीय सरकारें अथवा केन्द्रीय सरकार, अनुच्छेद 21 के अधीन मिली हुई अत्यधिक शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करेंगी। उन्हें केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करना है और तदुपरान्त वे उनका दुरुपयोग भी कर सकती हैं। हमें आशा है कि प्रान्तीय सरकारें, अथवा केन्द्रीय सरकार, विधि द्वारा जिस प्रक्रिया को स्थापित करेगी उसके द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का निराकरण नहीं होगा।

मैं यह कह कर समाप्त करना चाहता हूं। मेरा विश्वास है कि हमने एक बहुत कुछ सुन्दर संविधान का ही निर्माण किया है। उसमें अवश्य ही दोष होंगे क्योंकि इसे दोषपूर्ण मनुष्यों ने बनाया है। किन्तु मेरा विश्वास है कि हमने अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न किया है। इसे व्यवहार में लाने के लिये न केवल हमारी सद्भावना की आवश्यकता है बल्कि हमारे आशीर्वाद की भी आवश्यकता है। हमें यह न समझना चाहिये कि हमने एक महत्वपूर्ण तथा वृहद ग्रंथ को तैयार करके अथवा अल्पसंख्यकों को विस्तृत प्रत्याभूतियां देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दी है। अन्त में यह संविधान इसी कसौटी पर कसा जायेगा कि इसके उपबन्धों को किस उद्देश्य से प्रभाव में लाया जाता है और किस भावना से व्यवहार में लाया जाता है।

***डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमय्या** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो व्यक्ति बहुत बातूनी होता है उसके लिये सीमित समय में अपनी बात समाप्त करना बहुत कठिन हो जाता है। विशेषतया जब कि यह सभा अपना विचार-विमर्श समाप्त करने वाली ही हो तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है चूंकि हम अब विचार विमर्श करने वाले हैं इस लिये अब बोलने में मैं कुछ घबराहट का अनुभव कर रहा हूं, मुख्यत: इस लिये कि मुझे थोड़े ही समय में अपना भाषण समाप्त कर देना है। मैं सारी स्थिति का सिंहावलोकन करना चाहता था किन्तु इसके लिये अब समय नहीं है। आपको स्मरण होगा कि एक समय हम किस प्रकार की अटपटी बातें करते थे। 1927 में हम "संविधान सभा" के सम्बन्ध में स्पष्ट भाषा में चर्चा

करते हुए हिचकते थे। 1934 में द्वितीय नमक सत्याग्रह आन्दोलन के विफल होने पर हमने यह चर्चा फिर आरम्भ की थी। यह उस समय हमने अनुभव किया था कि विवश होकर हमें वापस लौटना पड़ रहा है। अन्त में हमें एकाएक इस संविधान सभा को अनेक वर्गों तथा समूहों के साथ अपनाना पड़ा। बहुत मूल्य चुका कर हमने इन वर्गों और समूहों से अपना पीछा छुड़ाया। जब 9 दिसम्बर 1946 को हमने अपना विचार-विमर्श आरम्भ किया तो हम चाहते थे कि तुरन्त ही उसे समाप्त कर दें और वास्तव में हममें से कुछ लोग तो यह समझते थे कि छः महीने में ही हम अपना कार्य समाप्त कर देंगे। यदि 1946 में हम अपने संविधान को समाप्त करते तो वह एक गड़बड़झाला ही होता और यदि 1948 में समाप्त करते तो वह एक गोरखधंधा ही होता। जितना भी विलम्ब हुआ है उसके फलस्वरूप हमने सभी बातों पर यथोचित रूप से विचार किया और जैसे जैसे राजनैतिक घटनाएं घटित हुई वैसे वैसे हमने प्रशासन में भी परितर्वन किये। यदि हम 15 अगस्त 1947 के पूर्व अपना संविधान समाप्त कर देते तो उसका स्वरूप कैसा होता? वह उसके वर्तमान स्वरूप से बिल्कुल भिन्न होता। हमें अंग्रेज़ों से जो परम्परा प्राप्त हुई है उसे भी इस विलम्ब से हम हम अपनी इच्छा के अनुरूप बना सके हैं। कई लोगों का यह विचार है कि यह संविधान 1935 के अधिनियम की केवल नकल ही है और वास्तव में निन्दनीय ढंग से उसकी नकल की गई है, और उनका यह भी विचार है कि यह संविधान क्रान्किारी नहीं है और जहां हमें वास्तव में मौलिक रचना करनी चाहिये थी वहां हमने वास्तव में केवल नकल ही की है। ये बातें आधी सच हैं और आधी झूठ। "क्रांतिकारी दस्तावेज"–इस पदावलि में विशेषण और विशेष्य में विरोध है। क्रांन्ति दस्तावेजों का सृजन नहीं करती और न दस्तावेज ही क्रांति का सृजन करते हैं। हमने 1935 के अधिनियम की इस कारण नकल की है कि सौभाग्य से, अथवा दुर्भाग्य से, हम किसी रक्तपूर्ण क्रान्ति के फलस्वरूप अपने बन्धनों से मुक्त नहीं हुए हैं। वास्तव में नौकरशाही और दासत्व की अवस्था से धीरे-धीरे उठाकर हमने गणराज्य और सहयोग-मूलक राज्य की अवस्था प्राप्त की है। हमें कभी सैनिक विधि का सामना नहीं करना पड़ा, हमें लोगों को कभी गलियों में अथवा, पेड़ों से लटका कर, फांसी नहीं देनी पड़ी, हमें अपराध सिद्ध लोगों को गोली से नहीं उड़ाना पड़ा और न हमें कभी अपना अथवा अपने शत्रुओं का एक बूंद भी रक्त बहाना पड़ा। इसी कारण सामयिक उत्तेजना से प्रभावित न होकर हमने एक प्रकार के शांतिपूर्ण असैनिक शासन का परित्याग करके एक दूसरे प्रकार के असैनिक शासन को अपनाया जो लोकप्रिय शासन है और हमारा अपना शासन है। जो विलम्ब हुआ है उसके फलस्वरूप हमारे शासक 562 छिन्न-भिन्न देशी राज्यों को एक सूत्र में बांध सके हैं। इस प्रकार संविधान के विकास के साथ-साथ अथवा संविधान को विकसित करने के प्रयत्नों के साथ-साथ, अंग्रेज़ों द्वारा अनेकों भागों में विभाजित इस देश में एकता स्थापित करने के लिये भी प्रशासन-सम्बन्धी कार्यवाही की गई है।

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

आखिर हमें क्या प्राप्त हुआ? हमें एक ऐसा देश प्राप्त हुआ जो प्रान्तों तथा राज्यों में, समुदायों तथा वर्गों में, शहरी तथा देहाती क्षेत्रों में और अनुसूचित जातियों तथा आदिम-जातियों में विभाजित था इन सबको एक सूत्र में बांध दिया गया है। प्रशासन सुविधा के लिये प्रान्तों का होना आवश्यक है किन्तु देशी राज्यों सरकारों का स्वरूप प्रान्तों की सरकारों के अनुरूप ही कर दिया गया है इस प्रकार देश में सामंजस्य उत्पन्न हो सका है और ही केन्द्रीय सरकार तथा एक ही संघीय ढांचे का निर्माण हो सका है इसके अतिरिक्त 1906 के पश्चात् अंग्रेजों ने अत्यन्त प्रयत्न करके तथा विभिन्न समुदायों में फूट डालकर और पहले हिन्दू मुसलमानों को, फिर सिख और हिन्दुओं को तथा हरिजन और हिन्दुओं को एक-दूसरे से पृथक करके जिन पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की स्थापना की थी उन्हें हम समाप्त कर सके हैं। अब सभी निर्वाचकों का एक ही समुदाय बना दिया गया है। यह कोई साधारण काम नहीं हुआ है।

इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता का भी अन्त कर दिया गया है जिसके कारण हिन्दुओं का एक वर्ग अन्य लोगों से बिल्कुल पृथक् रहा है। महात्मा जी ने इस उद्देश्य से 20 सितम्बर 1932 से आमरण अनशन आरम्भ किया था और छः ही दिन में एक चमत्कार कर दिखाया था। अब हमने अस्पृश्यता की संज्ञा अथवा शब्द को ही नहीं और इसमें सन्निहित भावना को ही नहीं मिटाया है बल्कि विधि द्वारा भी यह उपबन्धित किया है कि भविष्य में कोई व्यक्ति किसी से अछूत नहीं कह सकेगा और यदि कोई व्यक्ति कहेगा तो उसे जुर्माने और कैद की सजा दी जा सकेगी। हमने अपने सीमावर्ती प्रदेशों में, विशेषतया उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व में आदिम-जातियों के लिये प्रगतिशील सरकारों की तथा उनके गणराज्यों की स्थापना की है। इस प्रकार अपने संविधान का निर्माण करते हुए हम उन सिद्धांतों को कार्य रूप में लाये हैं जिनका समर्थन महात्मा गांधी करते रहे हैं। आपको स्मरण होगा कि 1921 में अपने दौरे में वे प्रत्येक गांव में केवल तीन वाक्य कहते थे और वहां से तीन से लेकर तीस हजार रुपये तक इकट्ठा कर ले जाते थे। ये वाक्य खद्दर, अस्पृश्यता तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में थे। खद्दर को हमने ग्राम-उद्योगों के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया है और हमने इस पर जोर दिया है कि देश की उन्नति के लिये घरलू उद्योग-धंधों को बढ़ावा देना चाहिये। अस्पृश्यता को हमने विधि द्वारा समाप्त कर दिया है। संयुक्त, निर्वाचन क्षेत्र स्थापित करके हम हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता भी स्थापित कर सके हैं।

***एक माननीय सदस्यः** नशाबन्दी?

***डॉ. बी. पट्टाभी सीतारमय्याः** नशाबन्दी को व्यवहार में लाने का कार्य प्रान्तों को सौंपा गया है। अपने संविधान में हमने उसे निदेशक तत्वों के रूप में रखा है। यदि इसे व्यवहार में लाया गया तो इससे बहुत बड़ा नैतिक सुधार होगा। यद्यपि

प्रान्तीय सरकारों की कुछ आय की हानि होगी किन्तु यदि नैतिक दृष्टि से देखा जाय तो राष्ट्र को भविष्य में इससे बड़ा लाभ होगा। (*हर्षध्वनि*)

अन्त में मैं यह कहूंगा कि हमने मताधिकार को अधिक विस्तृत बनाया है। जिस समय अंग्रेज इस देश को छोड़कर गये उस समय केवल साढ़े तीन करोड़ मतदाता थे। अगले वर्ष मतदाताओं की सूची में लगभग साढ़े सत्रह करोड़ मतदाताओं के नामों का उल्लेख होगा।

इस प्रकार हमने एक पराधीन देश को एक सहयोग-मूलक राज्य में परिणत कर दिया है। यह कहने का साहस किसको है कि हमने जो कुछ किया है वह हमारे देश को शोभा नहीं देता? यह सब कार्य हमने तीन ही वर्ष में कर दिखाया है। कनाडा के स्वतन्त्र होने पर वहां के लोग 1842 में संविधान-निर्माण के लिए एकत्रित हुए थे। उस समय लार्ड हाई कमिश्नर लार्ड डरहम को लन्दन टाइम्स ने लार्ड हाई सेडिशनर कहा था। कनाडा का संविधान 1867 में, अर्थात् 25 वर्ष पश्चात् बन कर तैयार हुआ। हमने तो इस संविधान को केवल तीन वर्ष में ही तैयार कर दिया है।

संविधान के सम्बन्ध में मैं इस सभा का ध्यान केवल दो बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिनमें से एक मूलाधिकारों के सम्बन्ध में है और दूसरी नियंत्रक महालेखा परीक्षक के सम्बन्ध में है।

मूलाधिकार विषयक अध्याय में मेरी बहुत दिलचस्पी है क्योंकि उसके लिये एक समिति ने मुसलीपट्टम में मेरे घर पर नींव डाली थी। यह समिति कराची में अप्रैल 1931 में नियुक्त की गई थी। उस समय हम केवल मूलाधिकारों की ही नहीं बल्कि मूल कर्तव्यों की भी चर्चा करते थे। किन्तु उस समय यह आशा नहीं की जाती थी कि इनका उल्लेख किया जा सकेगा क्योंकि प्रत्येक अधिकार में कर्तव्य भी सन्निहित है। मेरा जो अधिकार है वह मेरे पड़ोसी का मेरे प्रति कर्तव्य है। पत्नी को पति के समान ही अधिकार है तो पति का यह कर्तव्य है कि वह पत्नी के प्रति समता का व्यवहार करे। यदि लोगों को सरकार के प्रति विद्रोह करने का अधिकार है तो सरकार को भी विद्रोह के लिये लोगों को फांसी पर चढ़ाने के कर्तव्य का पालन करना होगा। अधिकार और कर्तव्य एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। ये परस्पर विरोधी होते हैं, अर्थात् यूं कहिये कि ये एक ही सिक्के के ऊपर के और नीचे के हिस्सों के समान हैं। इस सभा के मेरे कुछ मित्रों ने यह आपत्ति की है कि कर्तव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु यह निराधार है क्योंकि प्रत्येक अधिकार में कर्तव्य सन्निहित होता है।

दूसरी बात जिसके सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं, नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के सम्बन्ध में है। नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को एक प्रतिष्ठित पद प्रदान करके हमने एक बड़ा कार्य किया है। आपका संविधान चाहे कितना ही उत्कृष्ट

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

क्यों न हो और भविष्य में सुचारू रूप से कार्य संचालन के लिये उसमें कितने ही रक्षण क्यों न रखे गये हों आखिर सब कुछ धन पर ही निर्भर करेगा। हमें लगभग तीन सौ सत्तर करोड़ रुपये का केन्द्र में और लगभग इतने ही रुपये का प्रान्तों में लेखा जोखा रखना होगा। यदि इस धन को यथोचित रूप से व्यय नहीं किया गया और यदि लोग मुझ जैसे व्यक्तियों की, जो रुपये आने पाई गिनते रहते हैं और जिनके लिये प्रत्येक रुपये के 16 आने होते हैं और प्रत्येक आने की बारह पाईयां होती हैं, मजाक उड़ाते रहे तो हमें किसी प्रकार का शासन नहीं दिखाई देगा। बल्कि दिखाई देगी अव्यवस्था, अराजकता, लूट और डकैती। इस लेखे-जोखे पर नियंत्रण कौन रखेगा? क्या मन्त्रिमंडल का नियुक्त किया हुआ कोई व्यक्ति उस पर नियंत्रण रखेगा? जी नहीं। नियंत्रक महा-लेखापरीक्षक को उतना ही सर्वोच्च अधिकार सम्पन्न तथा स्वतन्त्र होना चाहिये जितने स्वतन्त्र उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीशों को बनाया गया है और वास्तव में उससे भी अधिक स्वतन्त्र होना चाहिये। वह केवल महालेखापरीक्षक ही नहीं होगा बल्कि वह एक न्यायप्राधिकारी भी होगा। उसे न्याय के विषय का ज्ञान होगा और वह न्याय करेगा। वह यह बतायेगा कि वह किस बात को ठीक समझता है और वास्तव में कार्यपालिका ने क्या किया है। कभी तो उसे कार्यपालिका की आलोचना करनी होगी और इतनी कड़ी आलोचना करनी होगी। कि वह लोगों की नजर से गिर जाये। इसलिये ऐसे उपबन्ध न रखने चाहिये कि वह सरकार के अथवा किसी दल के अथवा कोषाधिकारियों के अथवा वित्त मंत्रालय के क्रोध का शिकार हो जाये। 1806 तक इंग्लिस्तान में महा-लेखापरीक्षक एक स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं था और इस देश में 1921 तक हमने इस पर विचार तक नहीं किया था। कि महालेखा-परीक्षक एक स्वतन्त्र व्यक्ति होना चाहिये। हमने इस अधिकारी की स्वतन्त्रता के लिये धीरे-धीरे कदम उठाये और आज हमने उसे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र कर दिया है। अब वह स्वविवेक से निर्णय कर सकेगा और उसे अन्य लोगों की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता की चिन्ता नहीं होगी। अभी इस सम्बन्ध में पूरी कार्यवाही नहीं हुई है। इस देश में अभी हमें लेखा परीक्षक अधिनियम पारित करना है। कई अन्य स्वाधीन देशों को भी इस अधिनियम को पारित करना है। जब यह पारित हो जाएगा तो महालेखा-परीक्षक तथा नियंत्रक भारत के वित्त का सर्वोच्च अधिकारी हो जायेगा। वास्तव में तभी हम सच्चे अर्थ में स्वराज प्राप्त करेंगे।

अन्त में मैं आपसे पूछता हूं कि आखिर संविधान का क्या अर्थ है? वह राजनीति का व्याकरण है और राजनैतिक नाविक के लिए एक कुतुबनुमा है। वह चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो किन्तु स्वयं वह प्राणशून्य और चेतनाशून्य है और स्वयं किसी प्रकार का कार्य करने में असमर्थ है वह हमारे लिये उतना ही उपयोगी

होगा जितना उपयोगी हम उसे बना सकते हैं। वह विपुल शक्ति का भंडार है किन्तु हम उसका जितना उपयोग करना चाहेंगे उतना ही उपयोग कर सकेंगे। सब कुछ इस पर निर्भर करेगा कि हम उसके शब्दों को ही देखते हैं और उसमें सन्निहित भावना की उपेक्षा करते हैं अथवा हम उसके शब्दों तथा उसमें सन्निहित भावना की ओर भी ध्यान देते हैं। शब्दकोष में सबके लिये समान शब्द होते हैं किन्तु उन्हें प्रयोग करके विभिन्न लेखक विभिन्न शैलियों का सृजन करते हैं। स्वर और ध्वनियां सभी के लिये समान हैं किन्तु उनसे विभिन्न गायक विभिन्न गीतों की रचना करते हैं। रंग और तूलिकायें सबके लिए समान हैं किन्तु उनसे चित्रकार विभिन्न चित्रों को चित्रित करते हैं। इसी प्रकार संविधान के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि हम उसे किस प्रकार व्यवहार में लाते हैं। मैं केवल संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली का उदाहरण दूंगा। हमने संयुक्त निर्वाचक-मंडल स्थापित किये हैं। क्या वास्तव में हमने अपने कर्तव्य का पालन किया है? क्या हम निर्वाचकों को मनमाने ढंग से निर्णय करने देंगे? इस देश में मुसलमानों की संख्या लगभग तीन करोड़ पचास लाख है, अर्थात् वे कुल जनसंख्या के आठ या सात प्रतिशत से भी कम हैं। संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अधीन क्या वे अपनी ही शक्ति से और बिना हमारे सहयोग के एक जगह भी प्राप्त कर सकेंगे। हमने एक ऐसा समझौता किया है जिस पर हमें टिके रहना है। उसके फलस्वरूप हम पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है क्योंकि हमने उनसे कहा है कि वे रक्षणों की, अथवा पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की, मांग न करें। संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अधीन हमें मुसलमानों के कम से कम उतने प्रतिनिधि तो निर्वाचित करने ही चाहिये जितने पृथक निर्वाचन-प्रणाली के अधीन निर्वाचित होते। यही भारतीय ईसाईयों तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। यह मार्ग वास्तव में हमारी महिलाओं ने प्रशस्त किया है। जो महिलायें प्रान्तीय अनुकरणीय संविधान समिति में, अथवा केन्द्रीय संविधान-समिति में थीं उन्होंने कहा कि महिलाओं के लिये न तो पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र होने चाहिये और न किसी प्रकार के रक्षण रखे जाने चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्तमान व्यवस्था से उन्हें अधिक लाभ होगा। किन्तु उस समय यह कहने के लिए साहस तथा दूरदर्शिता की आवश्यकता थी। उन्होंने मुसलमानों को भी रास्ता दिखाया। ईसाई तो सदा से ही रक्षणों तथा पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों का विरोध करते रहे हैं। किन्तु उन्हें एक प्रकार से बिल्कुल पृथक् कर दिया गया था। सभी निर्वाचक-मंडल बिल्कुल पृथक् रखे गये थे और उनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं था, यहां तक उनके मत भी बिल्कुल पृथक् थे। किसी एक निर्वाचक-मंडल का व्यक्ति किसी अन्य निर्वाचक-मंडल में जाकर मत नहीं दे सकता था।

यह बहुसंख्यक समुदाय के लोगों का कर्तव्य है कि वे सज्जनों के बीच किये गये इस समझौते के प्रत्येक शब्द का तथा इसमें सन्निहित भावना का आदर करें और अपने मित्रों को जितनी जगहें उन्हें अपनी जसंख्या के आधार पर मिलनी चाहियें उनसे अधिक जगहें ही प्राप्त करायें। यदि हम यह न कर सकें तो हम

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

यह प्रमाणित करेंगे कि उन्होंने जो बहुत बड़ी रियायत की है उसके योग्य हम नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त अहिंसा का प्रश्न भी है। क्या हमने गांधी जी के उपदेशों का अनुकरण किया है? जी हां, हमने किया है। हमने अन्त तक उनकी इच्छाओं को पूरा किया है। यदि गांधी जी की इच्छा कभी पूरी नहीं हुई तो उनके जीवन काल में ही पूरी नहीं हुई। उन्होंने देश विभाजन का विरोध किया था किन्तु अन्ततोगत्वा उन्हें उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार अंग्रेजों पर चतुर्मुखी आक्रमण के सिद्धांत और देश के पुनर्निर्माण के सिद्धांतों के समान आधारभूत सिद्धांतों का हमने अपने संविधान में समावेश किया है। इस प्रकार बिना किसी संकोच के हम यह कह सकते हैं कि हमने उनकी इच्छाओं को पूरा किया है।

जहां तक अहिंसा का सम्बन्ध है, वह कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसका कोई अहिंसा प्रिय राज्य विधियों में समावेश कर सके। वह एक दृष्टिकोण है, एक मार्ग हैं वह कोई लक्ष्य नहीं है। अहिंसा की एक कार्य प्रणाली है और वह स्वयं कोई लक्ष्य नहीं है। इसलिए जब तक हम अहिंसा के मार्ग पर चलते रहेंगे हमारे प्रयत्न अवश्य ही सफल होंगे। इस सम्बन्ध में मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब हमारे प्रधान मंत्री हाल में अमरीका गये थे तो उन्हें इस युग का एक महापुरुष समझा गया और सम्भवत: विश्व राज्य का प्रथम प्रधान मंत्री भी समझा गया और उन्हें हार पहनाये गए। वे पाश्चात्य देशों के लोगों को हमारे देश के दर्शन से प्रभावित कर सके हैं। इसमें संदेह नहीं कि हम अहिंसा की भावना से ओत-प्रोत हैं भले ही हम पुलिस और सेना का उपयोग करते हैं और कुछ ऐसे युद्धों के लिए भी तैयार रहते हैं जिनमें हमारे संलग्न होने की संभावना होती है।

अब हम सब कुछ कह चुके हैं और हमें यह अनुभव करना चाहिये कि हम उन छ: व्यक्तियों के कितने आभारी हैं जिन्होंने इस संविधान का निर्माण किया है और इसे एक स्वरूप प्रदान किया है। हमारे मित्र डॉ. अम्बेडकर चले गये हैं अन्यथा मैं उनसे कहता कि इस महान कार्य को सम्पन्न करने में उन्होंने विशाल बुद्धि का परिचय दिया है। अपने अदम्य बुद्धि बल से उन्होंने सभी कठिनाइयों को दूर कर दिया है। वे जिस बात को ठीक समझते थे उस पर अडिग रहे और उन्हें कभी परिणामों का ध्यान तक नहीं आया।

हमारे बीच में सर अल्लादी भी थे जिनकी गहन विद्वत्ता तथा संविधानिक विधि के विशाल ज्ञान से हमने लाभ उठाया। इस संविधान के निर्माण में उन्होंने बहुत योग दिया है। यदि वे इस संविधान के विषय में एक भाष्य लिख दें तो उनका कार्य सम्पूर्ण हो जायेगा। श्री सन्तानम ने उनसे यही प्रार्थना की है। मुझे आशा है कि वे इस कार्य को पूरा करेंगे।

इनके अतिरिक्त हमारे बीच में सुशील और शान्त-स्वभाव श्री गोपालास्वामी आयंगर भी रहे हैं, जो यथोचित अवसर पर ऊंचे से ऊंचा तर्क उपस्थित करते रहे हैं, जो सदा यथार्थवाद और आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय रहा है साथ ही वे प्रत्येक कठिन समस्या को सहिष्णुता तथा उदारता से हल करते रहे हैं।

हमें श्री मुंशी की प्रतिवादिता तथा ग्रहणशीलता का भी परिचय मिला। उनकी कुशाग्र बुद्धि तथा उपस्थिति से और विभिन्न विषयों के विस्तृत ज्ञान से हमें बहुत सहायता मिली।

श्री माधव राव इस समय यहां उपस्थित नहीं हैं। वे मैसूर के दीवान रहे हैं। उन्होंने हमारी समिति में बहुत परिश्रम किया है। जब मैं डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त कर रहा था तो वे मैसूर में असिस्टेंट कमिश्नर थे। आगे चलकर वे दीवान हो गये। इस प्रकार उन्हें बहुत अनुभव रहा है इस कार्य में उनके हाथ बटाने से भी लाभ हुआ है।

एक व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया है और जिनके नाम की चर्चा मेरे किसी मित्र ने नहीं की है। वे विनम्र तथा मधुर भाषी सआदुल्ला साहब हैं। उनके मूल्यवान अनुभव से इस सभा को अपने विचार विमर्श में बड़ी सहायता मिली है।

अन्त में मैं मेरे सामने बैठने वाले चुस्त बदन तथा लम्बे कद के एक व्यक्ति की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करता हूं जिन्हें विरोधियों के तर्कों का खण्डन करने के लिये प्रबल प्रतिवादिता तथा प्रवर बुद्धि की देन है और साथ ही क्षतिपूर्ति की विशाल शक्ति भी प्राप्त है। यह व्यक्ति श्री टी.टी. कृष्णमाचारी हैं।

हमें इन सभी लोगों से सहायता मिली है किन्तु श्रीमान बिना आप की विनम्रता तथा मधुरता के इस सभा का कार्य विफल ही रहता। यदि आप किसी सदस्य को अधिक न बोलने देना चाहते थे तो आप अपनी इन्हीं विशेषताओं का आश्रय लेते थे। आप किसी सदस्य का ध्यान आकर्षित करने के लिये बहुत धैर्य से काम लेते थे। इसके विपरीत आपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किसी को कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ता था। आप बहुत धीरे से यह संकेत करते थे कि वक्ता को अब अपनी बात समाप्त कर देनी चाहिये। यदि कभी हम में से कुछ लोगों को अपने व्यवहार में नियमों का, अथवा व्यवस्था का ध्यान नहीं रहता था तो आप केवल मुस्करा देते थे और इस प्रकार इस ढंग के व्यवहार को समाप्त कर देते थे।

मैं यह कहूंगा कि हमने एक बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति की है। हमने जो कार्य किया है उसका महत्व घटाना उचित नहीं है। बहुत कार्य परोक्ष में हुआ

[डॉ. बी. पट्टाभी सीतारम्य्या]

है। यदि इस सभा के बहुसंख्यक दल ने कठोर अनुशासन को स्वीकार न किया होता तो इसके विचार विमर्श के फलस्वरूप हमें इतना सुखद परिणाम प्राप्त न हुआ होता।

इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिये मैं आप सभी को धन्यवाद देता हूं तथा आपको बधाई भी देता हूं।

मैं अब केवल यह कहना चाहता हूं कि अपना कार्य आरम्भ करने के लिये हमने एक सुन्दर संविधान का निर्माण किया है। आप अपनी पूरी योग्यता से उसे व्यवहार में लायें और उसे आधार मान कर कार्य करें। 19वीं शताब्दी में जब इंगलिस्तान में मताधिकार को अधिक विस्तृत किया गया था तो उस अवसर पर कामन्स सभा में संसदीय विषयों के एक महान नेता ने कहा था आप यह संकल्प करें कि "हम अपने प्रभुत्वों को सीख देंगे।"

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार: जनरल): श्रीमान, डॉ. सीतारमय्या की उच्च वकृता के पश्चात् मुझे अब अधिक बातें कहने की आवश्यकता नहीं रह गई है। किन्तु मैं संविधान के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। कई मित्रों ने इसकी आलोचना की है और कई ने इसका समर्थन किया है। मैं समझता हूं कि यह संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। न तो यह पूर्णतया अमरीका के संविधान पर आधृत है और न पूर्णतया इंग्लिस्तान के संविधान पर। इसमें दोनों देशों की शासन-प्रणालियों का समावेश है और साथ ही इसकी अपनी विशेषता भी है जो भारत की स्थिति को देखते हुए बहुत आवश्यक है। केन्द्र को नियंत्रण की जो शक्ति दी गई है वह मेरे विचार से बहुत आवश्यक है। सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि देश की एकता को बनाये रखा जाये। इस देश के इतिहास की यह विशेषता रही है कि समय-समय पर इसकी एकता भंग होती रही है और यह विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा विजित होता रहा है। श्रीमान, चूंकि अब विदेशी शासन का अन्त हो गया है इसलिये इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता इसकी है कि देश की एकता को अक्षुण्ता रखा जाये। इसे दृष्टि में रखते हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण नहीं किया जाना चाहिये। हमारी हमेशा ही यही धारणा रही है कि यदि प्रान्तों का पुनर्निर्माण करना ही है तो उसे शासन की दृष्टि से करना चाहिये। इस दृष्टि से आन्ध प्रान्त के निर्माण की आवश्यकता है। यदि शासन की सुविधा की दृष्टि से किसी प्रान्त के निर्माण की आवश्यकता है तो वह आन्ध्र प्रान्त की है। हमने यह निर्णय भी किया है कि शासन की दृष्टि से कुछ अन्य प्रान्तों के पुनर्निर्माण की भी आवश्यकता है। यथोचित स्थिति उत्पन्न होने पर, तथा यथोचित अवसर आने पर, उनका पुनर्निर्माण किया जाना चाहिये।

मैंने यह देखा है कि इस सभा में, तथा अन्यत्र, इस संविधान में निदेशक तत्वों को समाविष्ट करने की भी आलोचना की गई है। ये निदेशक तत्व बहुत ही आवश्यक हैं। इन तत्वों के आधार पर राज्य को कार्य करना है। इन तत्वों में गांधीवाद तथा समाजवाद दोनों का समावेश है। आयरलैंड के संविधान के अनुच्छेद 45 में भी इस प्रकार के निदेशक तत्वों का वर्णन है।

अब श्रीमान, मैं इस संविधान की कुछ कमजोरियों की ओर ध्यान दिलाऊंगा, अर्थात् उन बातों की ओर ध्यान दिलाऊंगा जो रह गई हैं। उदाहरणार्थ मेरी यह इच्छा थी की "इंडिया" के पूर्व "भारत" का उल्लेख किया जाता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि "भारत" और "इंडिया" दोनों का उल्लेख किया गया है किन्तु मेरी यह इच्छा थी कि "भारत" का उल्लेख पहले किया जाता।

श्रीमान, मुझे इसका खेद है कि हम संविधान से ईश्वर के नाम का बहिष्कार करने के लिये बहुत चिंतित रहे हैं। अन्य देशों के संविधानों को देखने पर मुझे ज्ञात हुआ है कि दक्षिणी अफ्रीका के संविधान के पहले अनुच्छेद में ही कहा गया है "संघ के लोग सर्वशक्तिमान परमात्मा की सर्वसत्ता तथा पथ प्रदर्शन को स्वीकार करते हैं।" श्रीमान, हमारा देश सदा एक धर्मप्रधान देश रहा है और यहां अध्यात्म को ही सदा महत्व दिया गया है। आधुनिक काल में भी अध्यात्म के क्षेत्र में इस देश में सबसे महान व्यक्ति ने जन्म लिया है। मेरी यह इच्छा थी कि इस संविधान में ईश्वर के नाम का उल्लेख किया जाता। इसके अतिरिक्त संविधान में "धर्मनिरपेक्ष राज्य" का उल्लेख नहीं किया जाना चाहिये था। केवल यह उल्लेख पर्याप्त होता कि राज्य किसी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगा अथवा यह न कह कर कि राज्य धर्म निरपेक्ष होगा हम यह भी कह सकते थे कि उसका दृष्टिकोण अध्यात्म और नैतिकता का होगा। इन शब्दों को प्रविष्ट करने से बहुत भ्रम उत्पन्न हो गया है।

हमने अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार किया है किन्तु हममें से बहुत से लोग उन्हें पसंद नहीं करते हैं। किन्तु मेरी हमेशा यह धारणा रही है कि हमें अपने विचारों को दूसरों पर नहीं थोपना चाहिये और एक मत से जो भी निर्णय किया गया हो उसका हमें स्वागत करना चाहिये। मुझे आशा है कि कुछ समय पश्चात् हम एक दूसरे का दृष्टिकोण समझने लगेंगे।

आंग्ल भारतीयों के लिये हमने स्थान रक्षित किये हैं किन्तु मुझे यह भी नापसंद है। आंग्ल भारतीय शिष्ट तथा शिक्षित लोग हैं और उन्हें स्थानों के रक्षण की आवश्यकता नहीं है। वे अपनी योग्यता से ही यथोचित स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

जहां तक गोवध के प्रतिषेध के प्रश्न का सम्बन्ध है, मैं अपने से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय के इस विचार से सहमत हूं कि उसका संविधान में स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया जाना चाहिये था। गोवध के प्रतिषेध का उल्लेख उस प्रकार न किया जाना चाहिये था जैसे कि वह किया गया है। इस देश के अधिकांश

[श्री जगत नारायण लाल]

निवासियों के लिये गाय एक पवित्र पशु है। इस सम्बन्ध में इनकी बड़ी प्रबल धारणा है। जैसा कि महात्मा गांधी कहते थे गाय सारे पशु-वर्ग की प्रतिनिधि है। एक समय था जब इस देश में केवल गोवध की नहीं बल्कि प्रत्येक पशु का वध प्रतिषिद्ध था।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैंने ये थोड़ी-सी आपत्तियां की हैं किन्तु मैं संविधान का समर्थन करता हूं। मुझे विश्वास है कि देश का भविष्य उज्ज्वल है और एक नवीन युग का आरम्भ होने वाला ही है जिसमें हमारा राज्य सशक्त, सुस्थिर तथा सुसम्पन्न हो जायेगा।

अन्त में मैं अध्यक्ष महोदय तथा मसौदा-समिति के सदस्यों और विशेषतया डॉ. अम्बेडकर, श्री मुंशी और श्री कृष्णमाचारी तथा अन्य लोगों के कार्य की हृदय से प्रशंसा करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं सभा को यह सूचित करना चाहता हूं कि दोपहर के पश्चात् एक घंटा डॉ. अम्बेडकर लेंगे। अबसे एक बजे तक का समय श्री कृष्णमाचारी को दिया जायेगा। दोपहर के पश्चात् हमें एक घंटा और मिलेगा और इस समय में जितने भी सदस्यों को बोलने का अवसर देना सम्भव होगा दूंगा।

यद्यपि यह नियमों में नहीं दिया हुआ है किन्तु क्या सभा मुझे इसकी आज्ञा देती है कि मैं सदस्यों के लिखित भाषण स्वीकार कर लूं?

***कुछ माननीय सदस्यः** जी नहीं, श्रीमान्

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि सभा यह नहीं चाहती है। दोपहर के पश्चात् उस एक घंटे में मैं जितने भी सदस्यों को हो सकेगा बोलने का अवसर दूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, सबसे पहले मैं इस आदरणीय सभा के सदस्यों को मसौदा-समिति की ओर से धन्यवाद देता हूं। चाहे संविधान के विभिन्न उपबन्धों के सम्बन्ध में उनकी सम्मति कुछ भी रही हो किन्तु उन सब ने मसौदा-समिति के काम की प्रशंसा की है। श्रीमान, हमारे एक सत्तर वर्षीय नेता ने तो मसौदा-समिति के प्रत्येक सदस्य को चुनकर उसकी प्रशंसा की है। उनके शब्दों को हम सभी आजन्म स्मरण रखेंगे।

श्रीमान, इस संविधान की अथवा इसके कुछ उपबन्धों की जो आलोचना की गई है मैं समझता हूं कि मैं उसके प्रत्येक अंश के सम्बन्ध में नहीं बोल सकूंगा और सम्भवतः इसकी आवश्यकता भी नहीं है। किन्तु इस समय यदि उन आलोचनाओं का उत्तर नहीं दिया गया जो कुछ सदस्यों ने इस संविधान के उपबन्धों को गलत ढंग से समझ कर अथवा भ्रमवश की है तो जिन लोगों के लिये यह संविधान बनाया गया है उन्हें मिथ्या धारणा हो सकती है। मेरे पास जो समय है

उसमें मैं आपकी तथा इस सभा की अनुमति से इन आलोचनाओं में से कुछ के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं।

श्रीमान, यदि मैं विभिन्न आलोचनाओं की गणना करूं तो मेरा पूरा समय ही व्यय हो जायेगा। किन्तु मैं सभा को यह बताना चाहता हूं कि ये आलोचनाएं विभिन्न प्रकार की हैं और एक आलोचना से दूसरी आलोचना का खण्डन हो जाता है। मैंने कुछ आलोचनाओं को कागज़ पर लिखा है और मैं उन्हें पढ़कर सुनाऊंगा। इस संविधान का एक बड़ा दोष यह बताया गया है कि यह संघात्मक नहीं है बल्कि एकात्मक है। कुछ सदस्यों की यह धारणा है कि इस संविधान की श्रेणी इन दो श्रेणियों के बीच की श्रेणी है चाहे इसका जो कुछ भी अर्थ लगाया जाये। एक तीसरे वर्ग के लोगों की यह धारणा है कि इसमें एक विकेन्द्रित एकात्मक राज्य का निरूपण किया गया है मेरे विचार से यह श्री गुप्ते ने कहा था। साथ ही श्री गुप्ते ने "राज्य" शब्द के प्रयोग पर भी आपत्ति की थी, क्योंकि संघ के लोगों में राज्यत्व सन्निहित नहीं है। साधारणतया यह आपत्ति की गई है कि संविधान द्वारा बहुत सकेन्द्रण किया गया है, जिसके फलस्वरूप संघांगों को स्वयं किसी कार्य करने का सामर्थ्य नहीं रह जाता। प्रान्तों की ओर से बोलने वाले अधिकांश लोगों ने यह आपत्ति की है कि प्रान्तों की वित्तीय स्थिति को संकटपूर्ण ही रहने दिया गया है। एक आपत्ति यह भी की गई है कि हमने अन्य संविधानों के उपबन्धों की केवल नकल ही की है। यह भी कहा गया है कि समझदारी की बात यह थी कि हम अमरीका के संविधान अथवा रूस के संविधान के आधार पर अपने संविधान का निर्माण करते। श्री के.टी. शाह ने, जो इस समय अनुपस्थित हैं, यह कहा है कि हमने सक्रिय लोकतंत्र की व्यवस्था नहीं की है।

कुछ आपत्तियां उन वक्ताओं ने की हैं जिनके भाषणों को मैं पूर्णतया नहीं समझ पाया क्योंकि जिस भाषा में वे बोले थे उसे मैं नहीं समझ पाया। उन की मुख्य आपत्ति यह है कि इस संविधान का स्वरूप भारतीय नहीं है और इसमें भारतीय संस्कृति की छाप नहीं है। एक आपत्ति यह भी की गई है कि इस के द्वारा आर्थिक प्रत्याभूतियां नहीं दी गई हैं। यह आपत्ति श्री दामोदर स्वरूप ने की थी। इस कारण वे यह चाहते थे कि यह संविधान अस्वीकार कर दिया जाये।

इसके अतिरिक्त यह आपत्ति की गई है कि यह संविधान बहुत लम्बा है और इसमें अनावश्यक विवरण दिया गया है। इस प्रकार इसके विकास की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। तिरुवांकुर राज्य के एक सदस्य ने यह कहा था (और सम्भवत: किसी अन्य सदस्य ने भी यही आलोचना की हो) कि बीमार के संविधान ने हिटलर को जन्म दिया और सम्भव है कि यह संविधान भी किसी हिटलर को

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जन्म दे। यह आपत्ति साधारणतया सभी मूलाधिकारों के सम्बन्ध में की गई है और विशेषतया उन उपबन्धों के सम्बन्ध में की गई है जो वैयक्तिक स्वातंत्रय तथा आयात के सम्बन्ध में हैं। अनुच्छेद 360 तथा 365 की बहुत आलोचना की गई है।

देशी राज्यों के कुछ सदस्यों ने यह शिकायत की है कि देशी राज्यों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया है। साथ ही देशी राज्यों के कुछ सदस्यों ने यह भी कहा है कि देशी राज्यों के साथ उस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिये था जैसा कि प्रान्तों के साथ किया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से शक्तियों के पृथक्करण पर जोर दिया गया ओर वक्ताओं ने यह कहा कि इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया और संविधान में इस सम्बन्ध में उपबन्ध नहीं रखे गए हैं। कुछ माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि इस संविधान द्वारा राष्ट्रपति को एक स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया है। कुछ अन्य लोगों ने यह कहा है कि इस संविधान द्वारा प्रधानमंत्री को एक स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया है। एक आधारभूत आपत्ति यह की गई है कि इस का कहीं उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति राज्य का संविधानिक प्रभुत्व है। अन्य कई आपत्तियां भी की गई हैं, जैसे कि भाषा-विषयक उपबन्ध अटकते हुए हैं और यह कि संविधान हिन्दी में बनाया जाना चाहिये था। पिछले सात दिनों के वाद-विवाद का मुख्य विषय निस्सन्देह गाय ही रही है। यह आवाज़ भी उठाई गई है कि इस संविधान के अधीन समाजवाद नहीं पनप सकता और कुछ माननीय सदस्यों ने इसी से सम्बन्धित यह आपत्ति भी की है कि आवश्यकता न होने पर भी सम्पत्ति-विषयक अधिकारों को सुरक्षित किया गया है। किन्तु मेरी माननीय मित्र बेगम ऐज़ाज़ रसूल ने यह आपत्ति की है कि सम्पत्ति-विषयक अधिकारों की पर्याप्त सुरक्षा नहीं की गई है। इस प्रकार माननीय सदस्यों के ध्यान में आ गया होगा कि ऐसी आलोचनाएं की गई हैं जो एक-दूसरे का खण्डन करती हैं। यदि सभी आलोचनाओं को एक साथ रखा जाये तो सम्भवत: हमारा, अर्थात् इस सभा की मसौदा-समिति के सदस्यों का यह विचार हो कि आखिर हमने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है।

श्रीमान, मैं कुछ आधारभूत आपत्तियों के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह उचित नहीं होगा कि हम इन आलोचनाओं का उत्तर न दें। मैं पहले एक ऐसे प्रश्न को उठाऊंगा जो अंशत: एक सैद्धान्तिक प्रश्न है, किन्तु इस देश के जनसाधारण के लिये उसका महत्व है। क्या हम एक एकात्मक संविधान का निर्माण कर रहे हैं? क्या इस संविधान के फलस्वरूप शक्ति का संकेन्द्रण दिल्ली में हो जायेगा? क्या कोई ऐसी व्यवस्था भी की गई है जिससे विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के हितों की रक्षा हो सकती है और स्थानीय प्रशासन के सम्बन्ध में उनके मत को महत्व दिया जा सकता है? मेरे विचार से यह आरोप एक बहुत बड़ा आरोप है कि यह संविधान संघात्मक नहीं बल्कि एकात्मक है। हमें यह न भूलना चाहिये कि भारतीय संविधान के संघात्मक होने

के प्रश्न को हमारे स्वर्गीय नेता ने अठारह वर्ष पूर्व लंदन के गोल मेज़ सम्मेलन में तय कर दिया था। मेरे विचार से भारत-शासन-अधिनियम के कुछ उपबन्धों का स्वरूप उनके तर्क के अनुसार ही निश्चित किया गया था यद्यपि प्रान्तीय स्वायत-शासन के सम्बन्ध में गोल मेज़ सम्मेलन में भाग लेने वाले मुसलमान सदस्यों के दृष्टिकोण के अनुसार ही बहुत कुछ निर्णय किया गया था। आखिर संघ है क्या चीज़? मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू इस सभा में उपस्थित हैं क्योंकि उन्होंने हमसे आग्रह किया था कि हम संघ का विवरण न दें। यह कोई सुस्पष्ट संज्ञा नहीं है और न इसका कोई सुनिश्चित अर्थ ही है। इस पद की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है। यदि हम ईसा के पूर्व के काल की, अथवा मध्य कालीन युग की राजनैतिक विचारधाराओं की ओर ध्यान न दें; और आधुनिक युग की विचारधाराओं की ओर ही ध्यान दें, तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि संघात्मक संविधान के सम्बन्ध में पहले-पहल अमरीका के तेरह उपनिवेशों के लोगों ने विचार किया था। इसकी चर्चा हमें उन लोगों के लेखों में मिलती है जिन्होंने अमरीका के संविधान का निर्माण किया। उन्होंने इस विषय के सम्बन्ध में विभिन्न अनुच्छेदों का निर्माण किया जिन्हें ''फैडोयिस्ट'' नाम की एक पुस्तक में संकलित किया गया। राजनैतिक विचारधारा को "संघ" का वर्तमान पद अठारहवीं शताब्दी के अमरीका के संघवादियों ने प्रदान किया। उन्होंने जिस अर्थ में वह पद प्रयोग किया था उसमें, तथा उसके वर्तमान अर्थ मैं, बहुत भेद को गया है। राजनीति-शास्त्र के विद्यार्थियों को विदित हागा कि हेमिल्टन के वह विचार नहीं थे जो जेफरसन अथवा मेडिसन के थे। यद्यपि उस समय उन लोगों को जिन प्रश्नों को हल करना था वे आज की तुलना में सीमित थे और अमरीका के संविधान के निर्माण के समय वहां जो स्थिति थी उसी से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी विचारधारा प्रतिपादित की थी, किन्तु उनका इतना महत्व तो था ही कि वे आगे चल कर संविधान के निर्वाचन पर अपना प्रभाव डालते। वास्तव में उन माननीय सदस्यों को जो अमरीका के संविधान से परिचित हैं; यह विदित होगा कि अमरीका की राष्ट्रीय सरकार के स्वरूप को बहुत कुछ निश्चित करने वाले सज्जन अर्थात् मार्शल का यह विचार था कि राष्ट्रीय सरकार को सशक्त बनाने के लिये है। मिल्टन ने जो कुछ किया उसका उसके उत्तराधिकारियों ने, विशेषतया मुख्य न्यायाधिपति टैनी ने, जो पूर्णतर्या जेफरसन का मतावलम्बी था, निराकरण कर दिया था। मैं अमरीका के संविधान का विवरण नहीं देना चाहता, और न यह बताना चाहता हूं कि उत्तरोत्तर उस का निर्माण कैसे हुआ, किन्तु हमें यह समझना चाहिये कि चाहे संविधान के निर्माताओं का कुछ भी उद्देश्य क्यों न रहा हो और "संघवाद" का अर्थ वे चाहे कुछ भी क्यों न समझते हों, अमरीका के गृह-युद्ध के पश्चात् सारी स्थिति ही बदल गई और तब से संविधान के उपबन्धों का अनेक बार ऐसा निर्वाचन किया गया है कि राष्ट्रीय सरकार की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। केवल कुछ समय के लिये, अर्थात् 1919 से लेकर 1920 तक, यह नहीं होने पाया और इस काल में जेफरसन के विचारों का प्रभाव रहा। भले ही यह चर्चा सैद्धान्तिक प्रतीत हो किन्तु मैं इस पर इसलिये ज़ोर दे रहा हूं कि इसके प्रकाश में इस संविधान की कई आलोचनाएं निराधार प्रमाणित हो जायेंगी। मैं चाहता

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हूं कि माननीय सदस्य इन बातों को स्मरण रखें। इस कारण भी वे इन्हें स्मरण रखें कि इससे इस आरोप का भी निराकरण हो जाता है कि यह संविधान बहुत लंबा हो गया है।

कई माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि हमें अमरीका के संविधान की नकल करनी चाहिये थी। इस सभा के बाहर के कुछ प्रतिष्ठित नेताओं ने भी जिन्हें संविधानिक विधि के जानकार होने की ख्याति प्राप्त है और जो उच्च पदस्थ भी हैं; यह कहा है कि हमें अमरीका के संविधान की नकल करनी चाहिये थी और यह भी सम्मति प्रकट की है कि यह लम्बा-चौड़ा संविधान बेकार है, अथवा उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि हमें संविधान में कुछ सामान्य उपबन्ध रखने चाहिये थे ताकि उनका विकास हो सकता। किन्तु इस सभा के इन माननीय सदस्यों से, तथा बाहर के इन सज्जनों से, मेरा निवेदन है कि वे उन निर्णयों पर भी दृष्टिपात करें जो इस समय अमरीका के संविधान के अंग हैं। उन्हें विदित हो जायेगा कि अमरीका के संविधान को समझने के लिये केवल मूल पाठ को ही नहीं पढ़ना होता है बल्कि उच्चतम न्यायालय के पिछले डेढ़ सौ वर्षों के निर्णयों को भी पढ़ना होता है। अमरीका में 1862 के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों को अनेक उपायों से बढ़ाया गया है। वास्तव में मार्शल ने भी यह कहा है कि ऐसी भी शक्तियां हैं जो सविधान में सन्निहित हैं। बाद में न्यायालयों के निर्णयों में यह कहा गया है कि राष्ट्रीय सरकार को कुछ शक्तियां प्रत्यक्ष रूप से दी गई हैं और कुछ शक्तियां परोक्ष रूप से दी गई हैं। इसके अतिरिक्त न्यायालयों के निर्णयों द्वारा भी राष्ट्रीय सरकार को शक्तियां प्रदान की गई; क्योंकि सरकार के मुख्य-मुख्य कृत्यों के निर्वहन के लिये इनकी आवश्यकता थी। साथ ही संघीय विधान-मंडल ने भी अपने क्षेत्राधिकार को अधिक विस्तृत बना दिया, क्योंकि अपने कृत्यों के निर्वहन के लिये उसके लिये यह कहना आवश्यक था। इन शक्तियों को "परिणाम-मूलक शक्तियां" भी कहा गया है क्योंकि इनके प्रयोग के फलस्वरूप जो परिणाम होंगे उनकी गणना की गई है। अमरीका के संविधान में राष्ट्रीय सरकार की संधि करने की जिस शक्ति का उल्लेख किया गया है, उसे भी बहुत विस्तृत बना दिया गया है। वास्तव में इस शक्ति के प्राप्त होने से कभी तो केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप किया है। न्यायिक शक्ति प्रदान करने की विधाई शक्ति प्राप्त होने से राज्यों के क्षेत्राधिकार में भी हस्तक्षेप हुआ है। तीन शक्तियों का तो, अर्थात् प्रस्तावना में और धारा 8 के अनुच्छेद 1 में उल्लिखित लोक-कल्याण-विषयक शक्ति तथा वाणिज्य विषयक शक्ति का और कर लगाने की शक्ति का बहुत विस्तृत अर्थ लगाया गया है। मेरी माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने अपने भाषण में इन शक्तियों की चर्चा की थी। इसके अतिरिक्त केन्द्र की धन व्यय करने की तत्सम्बन्धी शक्ति को प्रयोग किया गया है और इस प्रकार कर लगाने की शक्ति को अधिक विस्तृत किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अमरीका में इस समय संघ की एक केन्द्रीय लोक-स्वास्थ्य

सेवा है और विभिन्न राज्यों में विभिन्न मंडल अपने-अपने विभागों का प्रशासन करते हैं।

मैंने यह विवरण इस सभा के माननीय सदस्यों को केवल यह बताने के लिये दिया है कि यदि हमने अपना संविधान अमरीका के संविधान को नमूना मानकर बनाया होता तो हमने जितना विवरण दिया है उससे कहीं अधिक विवरण देने की आवश्यकता पड़ती और वास्तव में इस संविधान द्वारा हमने केन्द्र जितनी शक्तियां प्रदान की हैं उससे कहीं अधिक शक्तियां प्रदान करने की आवश्यकता पड़ती।

श्रीमान, अमरीका के संविधान को देखते हुए यह कहना कठिन है कि उस देश में इस समय संघवाद की क्या स्थिति है। अमरीका के संविधान पर लास्की ने हाल में जो पुस्तक लिखी है उसके अन्त में लेखक कहता है, "यदि लोग अमरीका के संविधान को समझना चाहते हैं तो उन्हें जानना चाहिये कि वहां के प्रेजीडेंट की क्या स्थिति है।" अमरीका की संघात्मक प्रणाली में सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ है कि प्रेज़ीडेंट की प्रतिष्ठा को तथा उसकी शक्तियों को बहुत बढ़ा दिया गया है। लेखक का यह विचार है कि थोड़े ही समय पश्चात् संघवाद के सिद्धान्त का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं रह जायेगा।

श्रीमान, अपने संविधान का निर्माण करने में हमें क्या अमरीका के संविधान के उन अंगों को अपनाना चाहिये जो अब जीर्ण हो गये हैं और जिनका केवल ऐतिहासिक महत्व ही है? क्या हमें उन अंगों को छोड़ देना चाहिये जिनका सम्बन्ध व्यवहार से है ताकि इस सभा के तथा बाहर के कुछ माननीय सज्जनों का सौंदर्य-प्रेम तृप्त हो सके। इन लोगों का यह विचार है कि हमारा संविधान स्तोत्र-गुटिका के समान होना चाहिये जिसे महिलाएं अपने चोलों में इधर-उधर ले जा सकें। संविधान द्वारा जनसाधारण के समक्ष एक विचारधारा रखी जानी चाहिये और उसका अर्थ स्पष्ट होना चाहिये। जनसाधारण को इस स्थिति में न डालना चाहिये कि उन्हें न्यायालयों के निर्णयों पर अथवा विशेषज्ञ वकीलों के निर्वचन पर निर्भर रहना पड़े।

इस प्रसंग में मैं अवशिष्ट शक्तियां प्रदान करने के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाया गया है उसके बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मेरे विचार से कई माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि चूंकि हमारे संविधान में अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दी गई हैं इस कारण हमारा संविधान एकात्मक संविधान हो गया है। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र श्री गुप्ते ने अपने भाषण में यह भी कहा था कि, "इसका प्रमाण यह है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दी गई हैं।" मैं श्री गुप्ते की इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहता हूं क्योंकि उन्होंने संघवाद-विषयक किसी किताब को सावधानी से पढ़कर यह बात कही है। मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि यदि इसकी परीक्षा करनी है कि कोई संविधान संघीय प्रणाली पर आधृत है या नहीं तो इस प्रसंग में इसका अधिक महत्व नहीं है कि अवशिष्ट

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

शक्तियां राज्यों को प्रदान की गई हैं अथवा केन्द्रीय सरकार को प्रदान की गई हैं। श्री के.सी. व्हेर ने संघवाद पर हाल में एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने इस विषय की चर्चा की है। इस प्रश्न को उन्होंने कुछ भी महत्व नहीं दिया है। यद्यपि मुझे कुछ विवरण देना पड़ेगा किन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि जर्मनी के राजनैतिक दार्शनिकों ने ही क्षमता-सिद्धान्त को जन्म दिया है। यह सिद्धान्त इस प्रकार है कि राष्ट्रीय सरकार को, अथवा राज्य को, ऐसी क्षमता अपने अधिकार में लेने की शक्ति प्राप्त है जो पहले उन्हें नियमित रूप से प्राप्त थी, अथवा जो बाद में अस्तित्व में आई थी। जिस संविधान में यह क्षमता राज्य को प्राप्त है वह संविधान संघात्मक संविधान कहलायेगा। वास्तव में इस प्रकार के राज्य कभी अस्तित्व में नहीं आये। यदि किसी अंगभूत राज्य को यह क्षमता अवश्य ही केन्द्रीय सरकार को सौंपनी पड़े तो वह शासन-व्यवस्था संघात्मक शासन-व्यवस्था नहीं कही जायेगी। वह व्यवस्था राज्य संघ की व्यवस्था कही जायेगी, यह कहा गया है कि जिन परिभाषाओं में इस प्रकार की शर्तें रखी गई थीं वे निरर्थक हैं और वह इस कारण कि जो कोई भी परिवर्तन करना हो वह संशोधन करने की शक्ति द्वारा किया जा सकता है। संशोधन करने की शक्ति केन्द्र को प्राप्त रहती ही है और उसके अधीन वह जब चाहे तब कदम उठा सकता है।

मुझे इसकी प्रसन्नता है कि यद्यपि श्री पातस्कर ने संविधान की ऊपरी तौर पर बहुत विस्तृत आलोचना की है किन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इस संविधान का संशोधन करने के सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखे गये हैं वही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। मैं इससे सहमत हूं, कि सबसे बड़ी विशेषता संशोधन करने की शक्ति ही है और यह निवेदन करना चाहता हूं कि संविधान में जिन विषयों की चर्चा की गई है उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में संशोधन करने की शक्ति केन्द्र को प्रदान की गई है। एकात्मक राज्य की जो कसौटी है उसे ध्यान में रखते हुए, तथा इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए, हम यह कह सकते हैं कि केवल इस विशेषता के कारण भी यह संविधान संघात्मक संविधान कहा जा सकता है।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** मैंने यह नहीं कहा कि केवल यही उपबन्ध संतोषजनक है किन्तु यह कहा कि यह उपबन्ध संतोषजनक है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरे माननीय मित्र ने अपने भाषण की इस बात को जिस रूप में बताया है उस रूप में उसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं। ये बातें इसकी कसौटी नहीं हैं कि कोई संविधान संघात्मक है या नहीं। किसी भी संघात्मक संविधान के उपबंधों को देखने पर आपको विदित हो जायेगा कि जब तक राष्ट्रीय सरकार का अस्तित्व बना रहता है तब तक संविधान के एक भाग का स्वरूप एकात्मक ही बना रहता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि संविधान का स्वरूप एकात्मक हो जाता है क्योंकि जब तक राष्ट्रीय सरकार अस्तित्व में रहती है तब तक उस सरकार को, गिनती करके अथवा अन्य प्रकार, कुछ

शक्तियां दी ही जाती हैं। केवल इन शक्तियों के प्रयोग होने से ही कोई संविधान एकात्मक संविधान नहीं हो जाता।

यह जानने के लिये कि यह संविधान एकात्मक है या नहीं मैं अपने माननीय मित्र से निवेदन करता हूं कि वे एक साधारण परीक्षा करें। जर्मनी की एक राजनैतिक विचारधारा के अनुसार इसकी यह परिभाषा की गई है: पहली कसौटी यह है कि किसी राजनैतिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिये राज्य अनिवार्य शक्ति का प्रयोग करें; दूसरी कसौटी यह है कि इस प्रकार की शक्ति किसी क्षेत्र के निवासियों पर समान रूप से प्रयोग की जाये; और तीसरी कसौटी, जो कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, यह है कि किसी उच्च एकक द्वारा दिये गये आदेशों से राज्य की शक्ति पूर्णतया सीमित न हो। "पूर्णतया सीमित न होनी चाहिये" शब्दों का महत्व है क्योंकि इनका अर्थ है कि संघीय शक्ति के प्रयोग से राज्य की शक्ति अंशत: तो अवश्य ही सीमित होगी। इन सब बातों की ओर ध्यान दिलाते हुए मैं निवेदन करना चाहता हूं कि हमारा संविधान संघात्मक संविधान है। मेरा निवेदन है कि अपने संविधान द्वारा हमने एककों को सारपूर्ण तथा महत्वपूर्ण विधायी और कार्यपालिका शक्तियां प्रदान की हैं।

यदि आप मुझसे यह पूछें कि हमने अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को क्यों प्रदान की हैं और क्या इसका कोई विशेष अर्थ है तो मैं यह कहूंगा कि यह हमने इस कारण किया है कि हमने केन्द्र की, तथा राज्यों की शक्तियों की विस्तृत रूप से गणना की है और उनकी समवर्ती शक्तियों की भी गणना की है। मैं प्रोफेसर व्हरे की एक और सम्मति बतलाऊंगा। उन्होंने भारत-शासन अधिनियम का ऊपरी तौर पर अवलोकन किया है और उनका यह विचार है कि उसका सबसे उत्कृष्ण गुण यह है कि अनुसूची 7 में शक्तियों की पूर्ण रूप से तथा विस्तृत रूप से भी गणना की गई है। मेरे विचार से गणना न की हुई शक्तियों की श्रेणी में केवल एक शक्ति ऐसी है जिसका अवशिष्ट शक्ति के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। वह शक्ति कृषि-भूमि के मूलधन को उगाहने की शक्ति है। यह शक्ति न तो केन्द्र को दी गई है और न एककों को। शहरों की और कृषि की सम्मति पर लगाये जाने वाले सम्पत्ति कर और उत्तराधिकार कर की योजना के अधीन यदि कुछ समय पश्चात् केन्द्र को इस अवशिष्ट शक्ति को स्वीकार भी करना करना पड़े तो इसके प्रयोग से जो कुछ भी आय होगी उसे वह प्रान्तों को दे देगा, क्योंकि कृषि-सम्बन्धी सभी अधिकार प्रान्तों को सौंप दिये गये हैं। मेरे विचार से आज कल अवशिष्ट शक्तियों का अब केवल बौद्धिक महत्व ही रह गया है। यह कहना कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को प्रदान की गई हैं, और प्रान्तों को प्रदान नहीं की गई हैं, और इस कारण यह संविधान संघात्मक संविधान नहीं है, सही बात नहीं है।

केन्द्र और प्रान्तों के सम्बन्धों के प्रश्न के बारे में हमने जो एक दो सुन्दर बातें की हैं उनकी ओर मैं अपने माननीय मित्रों का ध्यान आकर्षित करता हूं।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

हम इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहे हैं कि सरकार की शक्ति कभी शून्य न हो जाय। शक्तियों की गणना इस प्रकार की गई है कि चाहे किसी अवशिष्ट शक्ति को ग्रहण किया जाये या न किया जाये किन्तु सरकार किसी कदम को उठाने में शक्ति शून्यता का अनुभव नहीं करेगी। जहां तक हो सका है हमने ऐसी व्यवस्था की है कि मामले न्यायालय में इस कारण नहीं लाये जायेंगे कि संघ की ओर संघांगों की जो अपनी पृथक् शक्तियां हैं जो कभी समवर्ती हो जाती हैं। कनाडा के संविधान का यह एक दोष है। कनाडा के संविधान की धारा 91 और धारा 92 के अधीन जिन शक्तियों की गणना की गई है वे हैं तो पृथक् किन्तु कभी वे एक दूसरे का निराकरण कर देती हैं, अर्थात् कभी कभी केन्द्र और प्रान्तों के लिये समवर्ती क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। इसका परिणम यह हुआ कि न्यायालयों को अनेक मामलों में निर्णय करने पड़े हैं। संघात्मक संविधानों की नकल करने में हमने ऐसे दोषों को बहुत सावधानी से दूर किया है जैसे कि कनाडा के संविधान में विद्यमान है।

जहां तक समवर्ती क्षेत्र का सम्बन्ध है हमने भारत-शासन अधिनियम तथा आस्ट्रेलिया के संविधान के ततविषयक उपबन्धों से अच्छे उपबन्ध रखे हैं। भारत-शासन अधिनियम के अतिरिक्त केवल आस्ट्रेलिया के संविधान में ही समवर्ती शक्तियों का उल्लेख है। आस्ट्रेलिया के संविधान की समवर्ती शक्तियों के कारण बहुत विवाद उत्पन्न हुआ है। कार्यपालिका की कार्यवाही के लिये क्षेत्राधिकारों को पृथक् नहीं किया गया है। इसके कारण बहुत कलह रहा है। यद्यपि भारत-शासन अधिनियम में इन दोषों को ज्यों का त्यों रहने दिया गया था किन्तु अनुच्छेद 73 में हमने इन दोषों को नहीं रहने दिया है। यद्यपि इस अनुच्छेद पर इस सभा में बहुत वाद-विवाद हुआ है किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस सभा के बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णयों में से यह भी एक निर्णय है। भारत-शासन-अधिनियम की धारा 126 में जो अर्थ-भ्रम है उसे इस अनुच्छेद में नहीं रहने दिया गया है। नये संविधान के अधीन विधि-निर्माण के सम्बन्ध में जब कभी केन्द्र समवर्ती क्षेत्र में हस्तक्षेप करेगा तो इसके लिये उसे जिस कार्यपालिका शक्ति की आवश्यकता होगी उसे वह स्पष्ट रूप से ग्रहण करेगा। मैं इस प्रश्न पर इसलिये जोर दे रहा हूं कि माननीय सदस्यों ने यह आरोप लगाया है कि प्रान्तीय सरकारों को कोई भी जिम्मेदारी नहीं दी गई है। इसे डींग मारना ही क्यों न कहा जाये किन्तु मैं यह कहूंगा कि मसौदा-समिति में मैं इसके लिये सचेष्ट रहा हूं कि जिम्मेदारियां अस्पष्ट न होने पायें। इस सभा के कुछ सदस्यों ने इस पर बहुत जोर दिया है कि विभिन्न सरकारों की जिम्मेदारियों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया जाये। मेरे विचार से इस अनुच्छेद में जिम्मेदारियों को अस्पष्ट नहीं रहने दिया गया है।

मैं एक अन्य प्रश्न पर भी अपने विचार व्यक्त कर देना चाहता हूं। वह प्रश्न वित्तीय शक्ति का प्रश्न है, अर्थात् इसका प्रश्न है कि एककों और केन्द्र के बीच वित्तीय शक्ति का वितरण किस प्रकार हो। सामान्यत: यह आरोप लगाया गया है कि प्रान्तों के पास कोई साधन नहीं रहने दिये गये हैं और केन्द्र ने सब कुछ

अपने अधिकार में ले लिया है। मैं इससे सहमत नहीं हूं, क्योंकि इस प्रकार की बातें या तो केवल प्रचार दृष्टि से कही गई है या संविधान के उपबन्धों की केवल ऊपरी तौर से परीक्षा करने पर कही गई हैं। मैं प्रान्तों के वित्त मंत्रियों से कोई विवाद नहीं करना चाहता किन्तु मैं यह कहूंगा कि प्रान्तों के वित्त-मंत्री अपनी नीति के समर्थन के लिये यह कहते हैं, "हमारे पास धन नहीं है। केन्द्र हमें धन नहीं देता है। कर लगाने के सभी साधन केन्द्र के ही अधिकार में हैं।" मैंने सुना है कि एक दो वित्त-मंत्रियों ने हाल में यह वक्तव्य दिया है कि नये संविधान के प्रवर्तन में आने पर प्रान्तों की वित्तीय शक्ति समाप्त हो जायेगी। मैं इस आलोचना की विशेष रूप से इसलिये चर्चा कर रहा हूं कि मैं यह समझता हूं कि यह बिल्कुल गलत है और इसमें शरारत भी छिपी हुई है। वास्तव में भारत शासन अधिनियम में केन्द्र और एककों के बीच वित्त के वितरण की जो योजना स्वीकार की गई है उसमें बिना कोई आधारभूत परिवर्तन किये हुए इस संविधान में भी स्वीकार किया गया है। इस सभा के माननीय सदस्यों को यह विदित ही है कि हम इस प्रश्न पर पूर्ण रूप से अथवा विस्तारपूर्वक, विचार नहीं कर सके हैं। करों के बारे में हाल में काई जांच-पड़ताल नहीं हुई है। श्रीमान आपने एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की थी। उसके विचारणीय विषय बहुत कम थे और उसका प्रतिवेदन भी मोटी-मोटी बातों को लेकर तैयार किया गया था। इसलिये हमें बहुत कुछ 'भारत-शासन-अधिनियम' की ही योजना को स्वीकार करना पड़ा। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब प्रान्तों और देशी राज्यों के वित्त मंत्रियों तथा प्रधानमंत्री और केन्द्रीय सरकार के कुछ मंत्रियों तथा मसौदा समिति के कुछ सदस्यों का सम्मेलन हुआ था उस समय मैंने उसके सामने यह सुझाव रखा था कि प्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में कृषि सम्पत्ति और अकृषि सम्पत्ति के विभेद को मिटा देना चाहिये जिससे गरीबों को अधिक धन मिल सके और कृषि आय पर आयकर की पूरी आय प्रान्तों को दी जा सके। कुछ प्रान्तीय मंत्रियों ने इस सुझाव को स्वीकार किया किन्तु उनमें जो सबसे बड़े थे उन्होंने कहा कि प्रान्त अभी इस परिवर्तन के लिये तैयार नहीं हैं। इसलिये स्थिति वश हमने केन्द्र और एककों के बीच वित्त के वितरण के सम्बन्ध में भारत शासन अधिनियम के उपबन्धों को ही रखा। हो सकता है कि एक दो विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तों की वित्तीय शक्ति को निर्बन्धित किया गया है, जैसे कि विक्रय कर लगाने के सम्बन्ध में, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इससे केन्द्र को कुछ लाभ हुआ है। देश की व्यवस्था को दृष्टि में रखकर न कि केन्द्र के लाभ को दृष्टि में रखकर, विक्रय कर को निर्बन्धित किया गया है। मेरी समझ में नहीं आया कि पिछले सात दिनों में यह शिकायत किस आधार पर की गई थी कि इस संविधान के अधीन प्रान्तों को स्वयं कदम उठाने की शक्ति नहीं रह जायेगी क्योंकि वे अर्थाभाव से पीड़ित रहेंगे। यह भी कहा गया है कि, चूंकि केन्द्र ने सभी वित्तीय साधन अपने अधिकार में लिये हैं, इसलिये यह संविधान एकात्मक संविधान है। मेरा इस सभा के माननीय सदस्यों से, जिनमें से अधिकांश भविष्य में संसद के सदस्य होने जा रहे हैं, यह अनुरोध है कि वे इस प्रश्न की गम्भीरतापूर्वक परीक्षा करें। इस समय मैं

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

डॉ. जॉन मथाई के उन शब्दों का स्मरण कराता हूं जो उन्होंने उस अवसर पर कहे थे जब वे हम लोगों के समक्ष उपस्थित हुए थे—वास्तव में वे हम लोगों के समक्ष उसी एक अवसर पर उपस्थित भी हुई थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जहां तक वित्तीय शक्ति का सम्बन्ध है, केन्द्र और प्रान्तों में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वास्तव में केन्द्र को वित्त की जो आवश्यकता होती है वह रक्षा तथा प्रशासन के लिये ही होती है और यदि देखा जाये तो कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें केन्द्र की विशेष दिलचस्पी हो और वह इस कारण उस पर अधिक धन व्यय करना चाहे।

मेरे विचार से आसाम के माननीय सदस्यों ने जो शिकायत की है उसकी मुझे इस अवसर पर चर्चा कर देनी चाहिये। मैं इससे सहमत हूं कि आसाम कुछ तो स्थितिवश, और कुछ सरकार के कार्यों के वश, संकट में पड़ा हुआ है। चाहे जो भी हो केन्द्र का यह कर्त्तव्य है और भविष्य की राष्ट्रीय सरकारों की यह जिम्मेदारी है कि कोई प्रान्त, कोई सीमावर्ती प्रान्त, कोई ऐसा प्रान्त जो आर्थिक दृष्टि से अशक्त हो, वित्त के अभाव के कारण संकट में न पड़े। जैसा कि मैं सभा को पहले बता चुका हूं, इस सम्बन्ध में केन्द्र और उसके एककों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वित्त विषयक उपबन्ध हमने अनुच्छेद 268 में रखे हैं, जिसके अधीन कुछ करों को केन्द्र आरोपित करेगा, किन्तु उनका संग्रह राज्य करेंगे जैसे कि औषधीय और प्रसाधनीय सामग्री पर शुल्क। इन शुल्कों से प्राप्त धन राशि राज्यों को दी जायेगी। अनुच्छेद 269 के अधीन उत्तराधिकार विषयक शुल्क, सम्पत्ति विषयक शुल्क आदि को राज्यों की ओर से केन्द्र आरोपित करेगा और केन्द्र ही संग्रह भी करेगा। अनुच्छेद 270 आयकर के सम्बन्ध में है। माननीय सदस्यों को यह विदित है कि आयकर की राशि सीधे-सीधे उस धनराशि में सम्मिलित कर दी जाती है जो राज्यों और केन्द्र के बीच वितरित होती है। अनुच्छेद 271 द्वारा केन्द्र को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये आयकर पर, तथा अन्य करों पर, अधिकार आरोपित करने की शक्ति प्रदान की गई है। अनुच्छेद 272 के अधीन संघ को उत्पादन-शुल्क आरोपित करने की शक्ति प्रदान की गई है और उसमें यह कहा गया है कि उसकी पूरी राशि, अथवा उसका कोई भाग, राज्यों के बीच वितरित किया जायेगा। अनुच्छेद 273 में पटसन या पटसन से बनी हुई वस्तुओं पर निर्यात-शुल्क का उल्लेख है और उसमें यह कहा गया है कि उसकी धनराशि दस वर्ष तक कुछ राज्यों के बीच वितरित की जायेगी। अनुच्छेद 280 वित्त आयोग के सम्बन्ध में है, जो करों के आगम को केन्द्र और एककों के बीच वितरित करने के सम्बन्ध में और केन्द्र द्वारा प्रान्तों को दिये जाने वाले अनुदानों को प्रदान करने की कसौटी के बारे में केन्द्र को मंत्रणा देगा। हमारे सामने जो तथ्य थे उन्हें ध्यान में रखते हुए हम संविधान में जो अच्छे से अच्छे उपबन्ध रख सकते थे वे यही हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि यदि इस संविधान के अन्तिम उद्देश्य को पूरा करना है, अर्थात् यदि जनसाधारण की आर्थिक स्थिति को सुधारना है, तो वित्तीय साधनों से प्राप्त होने वाली केन्द्र की तथा एककों की राशि को बढ़ाना होगा। किन्तु इसका उपाय यह नहीं है कि केन्द्र पर अथवा इस संविधान पर

पत्थर मारे जायें और अपनी जिम्मेदारी न समझी जाये तथा प्रान्तीय मंत्री यह कहें कि कर लगाने की पूरी शक्ति केन्द्र को ही प्राप्त है और हमें यह शक्ति बिल्कुल भी प्राप्त नहीं है। मैं इस सभा के अपने माननीय मित्रों को बताना चाहता हूं कि अनेक संविधानों को देखने से यह विदित होता है कि कर लगाने की शक्ति केन्द्र को ही दी जाने लगी है और इस प्रकार स्थिति-वश संघात्मक अथवा एकात्मक राज्य पुलिस राज्य न होकर कल्याणकारी राज्य हो गये हैं। देश के आर्थिक कल्याण की जिम्मेदारी अब अन्ततोगत्वा केन्द्र की ही हो गई है। स्विटजरलैंड ने आयकर को केन्द्र को सौंप दिया है। अमरीका के संविधान के सोलहवें संशोधन द्वारा आयकर की पूरी राशि राष्ट्रीय सरकार को सौंप दी गई और उस पर उस राशि को राज्यों के बीच वितरित करने का कोई भार नहीं है। एक विधि द्वारा आस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकार ने कर लगाने की शक्ति राज्यों से ले ली है। कनाडा के डोमीनियन तथा प्रान्तों के सम्बन्ध में रावेल-सरवोई प्रतिवेदन में यह सिफारिश की गई है कि आयकर लगाने की शक्ति प्रान्तों के पास बिल्कुल भी न रहने दी जाये। साथ ही उस प्रतिवेदन में यह भी कहा गया है कि केन्द्र को इस व्यवस्था के अधीन कुछ कर्तव्यों का पालन करना पड़ेगा और कुछ आभारों को स्वीकार करना पड़ेगा। इसे स्वीकार किया गया है कि यदि सरकार को कुछ कृत्यों का निर्वहन करना पड़ेगा तो उसे राजस्व संगृहीत करने की शक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये। यदि आज हम उत्पादन-शुल्क संगह करने की शक्ति एककों को दे देते हैं तो क्या होगा? विक्रय कर के सम्बन्ध में जो कुछ होता है उससे भी कहीं दुष्कर बातें इस शुल्क के सम्बन्ध में होंगी। एकरुपता नहीं रह जायेगी तथा इस शुल्क से बचने की बहुत गुंजाइश निकल आयेगी। इसका परिणाम यह होगा कि सारे देश की व्यवस्था को क्षति पहुंचेगी। यदि केन्द्र की आवश्यकताएं पूरी होने के पश्चात केन्द्र द्वारा संगृहीत धन में से अवशेष धन राज्यों को अर्थात् एककों को दे दिया जाता है और इस सम्बन्ध में हमने संविधान में उपबन्ध रखे हैं तो मेरे विचार से यह आरोप कि केन्द्र ने सभी वित्तीय शक्तियों को ले लिया है और सारे धन को भी ले लिया है, निराधार प्रमाणित हो जाता है।

एक अन्य विषय को उठाने के पूर्व मैं एक बात और कहना चाहता हूं। यद्यपि इस सम्बन्ध में मैंने कई अन्य बातों को भी लिख रखा है किन्तु इस समय मैं उन्हें नहीं उठा सकूंगा। मैं इस समय केवल उस जटिल प्रश्न की चर्चा करूंगा जिसे मेरे माननीय मित्र श्री गुप्ते ने उठाया था और मेरे विचार से, वह इस सभा में, भले ही स्पष्ट शब्दों में न हो किन्तु कई अवसरों पर उठाया अवश्य गया था। यह कहा गया है कि इस संविधान के मुख्य दोषों में से एक दोष यह है कि हमने इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है कि राष्ट्रपति एक संविधानिक प्रधान है और इस कारण यह कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में राष्ट्रपति की शक्तियों का क्या होगा। मैं इस प्रश्न को केवल इसलिये उठा रहा हूं कि यह प्रश्न इस दृष्टि से एक सारवान प्रश्न है कि ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ डोमीनियनों में गवर्नर जनरलों के विशेष रूप से कार्य करने के कारण यह प्रश्न उठाया गया है। आस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री तथा भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति, मि. इबाट ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने लिखा है कि डोमीनियन के संविधानिक प्रधान के

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

रूप में गवर्नर जनरल द्वारा शक्ति प्रयोग के सम्बन्ध में स्पष्ट उपबन्ध होने चाहिये। आनुषंगिक रूप से वह यह भी लिखते हैं कि इंगलिस्तान के सम्राट के सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि अच्छा यह होता कि इसका किसी विधि में उल्लेख होता कि वह अमुक शक्ति को अमुक अवसरों पर अमुक प्रकार प्रयोग कर सकेगा। मसौदा समिति ने इस प्रश्न की कुछ हद तक परीक्षा की है। उत्तरदायी शासन में राष्ट्रपति की वह स्थति नहीं होती जो अमरीका के समान प्रतिनिधि शासन में उसकी होती है। इस सभा के कई सदस्यों ने जब यह कहा कि राष्ट्रपति तानाशाह हो जायेगा तो उन्होंने गलती की, क्योंकि उन्होंने यह नहीं समझा कि राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री से मन्त्रणा लेकर कार्य करना होगा। इस आरोप में कुछ तथ्य है कि प्रधान मंत्री तानाशाह हो सकता है। यदि वह दल जिसने प्रधान मंत्री को निर्वाचित किया जो, तथा वह संसद जिसके प्रति वह उत्तरदाई हो, अकर्मण्य हो जायें तो वह अवश्य ही तानाशाह हो जायेगा। साथ ही प्रधान मंत्री उसी अवधि तक पदारूढ़ रह सकता है जब तक कि उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित न किया जाये। जब प्रधान मंत्री की पदावधि इतनी अल्प हो सकती है तो, जब तक कोई अन्य कारण न हो जिन के फलस्वरूप वह संसद पर तथा अपने दल पर अपना प्रभुत्व स्थापित न करे, मेरी समझ में नही आता कि वह तानाशाह कैसे हो जायेगा। जहां तक राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल के सम्बन्धों का प्रश्न है, मैं यह कहूंगा कि इस सम्बन्ध में हमने उस उत्तरदाई शासन की प्रणाली को अपनाया है जो इस समय इंगलिस्तान में चलन में है। हमने उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है और यदि कोई किया है तो इस कारण किया है कि हमारा संविधान संघात्मक है। अन्यथा केन्द्र के लिये, तथा एककों के लिये, हमने उत्तरदाई शासन की उसी प्रणाली को स्वीकार किया है। एककों में मंत्रियों के उत्तदायित्व को बहुत थोड़े अंश में कम किया गया है और केवल उसी सीमा तक कम किया गया है जिस सीमा तक कम करने की बहुत आवश्यकता है और जिस सीमा तक कम करने के बारे में संविधान में स्पष्ट उल्लेख है। माननीय सदस्य कृपा करके अनुच्छेद 163 को देखें, जिसमें हमने कहा है कि जिन बातों में राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों को स्वविवेक से करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल अपने कृत्यों का निर्वहन मंत्रियों से मंत्रणा लेकर करेगा। एक माननीय सदस्य ने आज मुझसे पूछा कि इसका अर्थ क्या है। अनुसूची 6 के आसाम-विषयक पैरा 9 और 18 के कारण ही इसकी आवश्यकता पड़ी थी क्योंकि उनमें उल्लिखित विषय के सम्बन्ध में ही राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करना होगा। षष्ठ अनुसूची के नवें पैरा में एक ऐसे विषय का उल्लेख है जो राज्यपाल को निर्धारण के लिये सौंपा जायेगा और उस अनुसूची के अठारहवें पैरा में उसे राष्ट्रपति के पास प्रतिवेदन भेजना होगा। इन उपबन्धों के अतिरिक्त अन्य किसी उपबन्ध द्वारा राज्यपाल को स्वविवेक से निर्णय करने की शक्ति नहीं दी गई है। हमने यह कहा है कि सभी नियमों के सम्बन्ध में राज्यपाल इस प्रकार कार्य करे कि यह समझा जाये कि वह मंत्रियों से मंत्रणा लेकर ही कार्य कर रहा है। विधेयकों के सम्बन्ध में अनुमति देने के बारे में, जब उसे राष्ट्रपति के पास उन्हें अनुमति के लिये भेजने के उद्देश्य से अनुमती नहीं देनी होगी, और वह इस प्रकार कि

विधेयक का विषय समवर्ती सूची का विषय है अथवा उच्च न्यायालयों का विषय है, इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया गया है। किन्तु राष्ट्रपति की स्थिति वह नहीं है जो इंग्लिस्तान के सम्राट की है, और वह इस कारण कि उसे वह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं जो इंग्लिस्तान के सम्राट को प्राप्त है। विधेयकों के सम्बन्ध में अनुमति देने के बारे में राष्ट्रपति क्या कर सकता है इसकी परिभाषा की गई है। जो शक्तियां उसे प्रदान की गई हैं उन्हें सम्भवतः वह स्वविवेक से बहुत कम प्रयोग कर सकेगा और यदि प्रयोग कर सकेगा तो उस अवस्था में जब संसद का, अर्थात् लोक सभा का, विघटन होगा और मंत्रिमंडल को विघटित करने तथा किसी व्यक्ति से मंत्रि-मंडल बनाने के लिये आमंत्रित करने का प्रश्न उठेगा। श्रीमान, मेरे पास बहुत कम समय है किन्तु मैं अपने माननीय मित्रों को आश्वासन देता हूं कि इंग्लिस्तान के सम्राट की शक्तियों के सम्बन्ध में, तथा मंत्रिमंडल से उसके सम्बन्धों के बारे में जो प्रथाएं बन गई हैं वे बहुत ही ठोस प्रथाएं हैं और यह निवेदन करता हूं कि उनका अनुकरण करके हम संतोष कर सकते हैं। साथ ही मैं यह आश्वासन देता हूं कि राष्ट्रपति को परोक्ष रूप से जो शक्तियां प्राप्त हैं उनका दुरुपयोग नहीं किया जायेगा। इंग्लिस्तान के प्रधानमंत्री की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रही है। यदि सम्राट ने स्वविवेक से कभी कदम उठाया तो उसी सीमा तक उठाया जिस सीमा तक उसे परोक्ष शक्ति प्राप्त है। 1924 में प्रधानमंत्री मैकडोनेल्ड ने कामन्स सभा को विघटित करने के लिये जो सुझाव प्रस्तुत किया था उससे वहां के सम्राट सहमत हो गये और 1931 में उन्होंने मैकडोनेल्ड से मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहा, यद्यपि जिस दल का वह सदस्य था उसने विरोधी दल का रूप धारण कर लिया था। इसके बाद के भी कई उदाहरण हैं। वहां प्रधान मंत्री ने एक बार यह विचार प्रकट किया था कि चूंकि सम्राट एक विशेष कार्य करने जा रहा है इसलिये अब उसे गद्दी छोड़ देनी चाहिये। उसने गद्दी छोड़ दी। बाद में भी अपनी एवज में काम करने के लिये परामर्शदाताओं का एक अस्थाई आयोग स्थापित करने के उद्देश्य से उसे प्रधान मंत्री से मंत्रणा लेनी पड़ी। इंग्लिस्तान की इन बातों से, तथा अन्य बातों से, बहुत कुछ यह प्रमाणित होता है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रधान मंत्री की मंत्रणा है और वास्तव में सम्राट परामर्श के लिये यदि किसी अन्य व्यक्ति को बुला सकता है तो वह केवल विरोधी दल का नेता हैं। इस दशा में भी उसे प्रधान मंत्री को बताना होता है कि उनके बीच क्या बातचीत हुई। इस सम्बन्ध में काफी ठोस और सुस्थापित प्रथाएं है, किन्तु उनके अतिरिक्त भी कोई मामला उठ खड़ा हो सकता है। इसलिये हम संविधान में इसका उल्लेख नहीं कर सकते कि किस अवसर पर राष्ट्रपति को कौन-सा कदम उठाना चाहिए और प्रधान मंत्री को उससे कौन-सा कदम उठाने के लिये कहना चाहिये तथा किन कठिन मामलों के सम्बन्ध में उसे स्वविवेक से कदम उठाना चाहिये। हो सकता है कि स्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती की जाये और गलत कदम उठाया जाये, अथवा यह भी सम्भव है कि उस कदम को उठाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न हो। हमने इस विषय पर विचार

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

किया और पूर्ण विचार करने के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे कि इस सम्बन्ध में हमें उन देशों के समान प्रथाएं स्थापित होने देनी चाहिये जहां उत्तरदाई शासन का अनुसरण किया जा रहा है।

श्रीमान, क्या मुझे दोपहर के पश्चात् पन्द्रह मिनट दिये जा सकते हैं?

***अध्यक्ष:** जी हां, अब हम तीन बजे तक के लिये सभा स्थगित करते हैं।

इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

दोपहर के भोजन के पश्चात् सभा तीन बजे माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में पुन: समवेत हुई।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं उन प्रश्नों को लेना चाहूंगा जो माननीय सदस्यों द्वारा मूलाधिकारों के सम्बन्ध में उठाये गये थे। इस भाग के कई उपबन्धों से माननीय सदस्य सहमत हैं। परन्तु दो प्रकार के उपबन्धों पर आपत्ति की गई है। एक वे जो व्यक्तिगत रूप में नागरिक के स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में हैं और दूसरे वे जो सम्पत्ति के सम्बन्ध में है। श्रीमान यह विषय विवादास्पद है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संसद् युक्त देश में जहां यह समझा जाता है कि जन साधारण का देश के प्रशासन में और विधियों के निर्माण करने में प्रभावशाली हाथ है वहां क्या यह आवश्यक है कि इस प्रकार के मूलाधिकार रखें जायें जो इस संविधान में रखे गये हैं। मेरी माननीया मित्र श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने कहा था कि यदि मूलाधिकारों में बिना किसी प्रकार की कमी किये उनको उसी रूप में रहने दिया जाता जिस रूप में वे अमरीका के संविधान में पाये जाते हैं तो वे इस बात को अधिक पसन्द करतीं। मुझे फिर यह कहना पड़ेगा कि जो मित्र अमरीका के संविधान में से नकल किये गये मूलाधिकारों को चाहते थे विशेषकर उन मूलाधिकारों को जो वैयक्तिक स्वातन्त्र्य से सम्बन्ध रखते हैं वे इन मूलाधिकारों के अमरीका के संविधान में रखे जाने के ऐतिहासिक आधार को भूल गये। ये मूलाधिकार केवल एक उस सम्प्रदाय के भय के कारण रखे गये थे जिसने संविधान बनाया और जिसने यह समझा कि नव-निर्मित केन्द्र एक हौआ बन जायेगा और वह केवल राज्यों के अधिकारों पर नहीं वरन् व्यक्ति के अधिकारों पर भी आक्रमण करेगा—एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार के प्रति इन लोगों की स्वभाविक घृणा ही इसका मुख्य कारण थी और ये लोग जेफरसन जैसी बुद्धि वाले व्यक्ति थे और इन्हीं पर अमरीका के संविधान में इन मूलाधिकारों के रखने का उत्तरदायित्व था। पर जिस संविधान को 1949 ई. में हम बना रहे हैं उसमें इन उपबन्धों को बिना किसी परिवर्तन, संशोधन या कमी के रखना ठीक नहीं होगा।

मुझे आर्थिक विषय सम्बन्धी उपबन्ध को विशेषकर अनुच्छेद 31 को लेने दीजिये। जैसा कि मैंने आरम्भ में बताया था मेरी माननीया मित्र बेगम ऐजाज रसूल

ने कहा था कि इन उपबन्धों की पहुंच बहुत दूर तक नहीं है। मैं इस बात से सहमत हूं, मेरे विचार से वे बिल्कुल ठीक कहती हैं। मूलाधिकार केवल उन लोगों के लिये है जो एक विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधान करते हैं जिनको बहुधा रूढ़गत स्वार्थ कहा जाता है। रूढ़गत स्वार्थ ही वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित उस भावी संसद से भयभीत है जो देश में सम्पत्ति तथा अवसरों का लोकतंत्रीकरण, समाजीकरण और समविभाजन करना चाहेगा। रूढ़गत स्वार्थ को ही भविष्य से डरना होगा। यह बात बिल्कुल ठीक है यद्यपि बेगम ऐजाज रसूल की यह शिकायत सम्भव है उचित आधार पर न हो कि सम्पत्ति सम्बन्धी मूलाधिकारों की पहुंच दूर तक नहीं है।

इसके विपरीत यहां मेरे कई मित्रों ने जिनमें मेरी माननीया मित्र श्रीमती रेणुका रे भी सम्मिलित है यह अनुभव किया कि सम्पत्ति स्वामियों को अनुच्छेद 31 में जो अधिकार दिये गये हैं वे अधिक है।

***एक माननीय सदस्य:** बहुत अधिक।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जिन लोगों ने यह प्रवृत्ति ग्रहण की उनकी विचारधारा यह होनी चाहिये कि एक ऐसे संविधान में मूलाधिकारों का परित्राण करना आवश्यक नहीं है जिसमें कि वयस्क मताधिकार को प्राधान्य है, जिसमें संसद का निर्वाचन देश के प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक द्वारा किया जायेगा। यह निष्कर्ष स्वभाविक ही है। इस विषय के औचित्य पर मुझे कुछ थोड़ा और कहना है।

मैं यह चाहता हूं कि सभा यह समझ ले कि मूलाधिकारों पर विचार करते समय लोगों के मन में दो विरोधी धारणायें उत्पन्न होती हैं: एक यह कि मूलाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत हो गया है और दूसरी यह है कि मूलाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत नहीं है। मुझे अपने माननीय मित्र पंडित कुंजरू ओर पंडित ठाकुर दास भार्गव के विचार को लेने दीजिये जिनकी अनुच्छेद 19, 21 और 22 तथा कुछ अन्य अनुच्छेदों पर भी यह आपत्ति है कि व्यक्ति को जो अधिकार दिये गये हैं उनमें कमी कर दी गई है। ठीक है, मैं यह कहूंगा कि विशुद्ध औचित्य के आधार पर और हमारे चारों तरफ इस समय जो कुछ हो रहा है और पहले जो कुछ हुआ है उसके आधार पर मैं पूर्ण रूप से उनसे सहानुभूति रखता हूं। स्वतंत्रता की इच्छा और अंग्रेज़ी शासन से घृणा के फलस्वरूप हम सबने राजनीति में इस कारण पदार्पण किया कि हम व्यक्ति के अधिकारों से संयुक्त स्वतंत्रतावादी परम्पराओं से आकर्षित हुये थे। उस समय जब कि एक विदेशी शासक हम पर शासन कर रहा था हम इन अधिकारों की रक्षा चाहते थे। परन्तु आज इन अधिकारों में यदि कुछ कमी की जाती है तो वह कमी संसद द्वारा तथा राज्यों के विधान मंडलों द्वारा की जायेगी; सच पूछो तो अन्तिम रूप में संसद को ही यह शक्ति होगी क्योंकि अधिकांश विषय जिनके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वातंत्र्य आता है समवर्ती सूची में हैं और इन विषयों में संसद के अधिनियमों की ही प्रधानता रहेगी। यदि संसद के किसी विधान पारित करने पर आपत्ति की जाती है तो इसका यह अर्थ

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

है कि जिस संसद का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा उस संसद के प्रति कुछ मात्रा में विश्वास का अभाव है। यह तर्क चाहे विवेक हीन प्रतीत हो पर है यह कटु सत्य। मेरे माननीय मित्र इन दो बातों में से एक को अपना सकते हैं। हमने जो कुछ किया है वह केवल यह है कि प्रस्तावना रख दी है और यह कह दिया है कि यदि संसद ऐसा चाहती है तो जिस सीमा तक (क), (ख), (ग), (घ) और (ङ) प्रस्तावनाओं में अधिकार दिये गये हैं उनमें वह कमी कर सकती है। यदि संसद कमी करना नहीं चाहती है तो वह न करे और जिन मूलाधिकारों का वर्णन वहां किया गया है वे बिना किसी कमी के बने रहेंगे। प्रत्येक अधिकार के लिये विधियां अधिनियमित करते हुये संसद किसी निश्चित अधिनियम द्वारा ही कमी कर सकती है। माननीय सदस्यों को मैं इसी बात को समझाना चाहता हूं। जो लोग संविधान की इस आधार पर आलोचना करते हैं कि जो मूलाधिकार दिये गये हैं वे व्यर्थ हैं क्योंकि उनमें कमी कर दी गई है मैं यह चाहता हूं कि वे लोग इस बात को समझें कि संसद द्वारा ही इनमें कमी की जा सकती है और यदि संसद में उनका कुछ विश्वास है तो जब तक ऐसा करना नितान्त आवश्यक नहीं होगा तब तक संसद ऐसा नहीं करेगी। मैं इस बात से सहमत हूं कि वर्तमान परिस्थितियों के कारण हमारी निगाह बदल जाती है और इनकी ओर हम इस प्रकार के देखने लगते हैं कि नक्शा बदरंग दिखाई देने लगता हैं। किसी प्रान्त की विधि और व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं रहा; मुझे शक्ति नहीं मिली है अत: अपने उन मित्रों से सहानुभूति रखना मेरे लिये सरल कार्य है जो यह समझते हैं कि यद्यपि अंग्रेज चले गये हैं पर उनका चोला अभी तक यहां लटक रहा है। जो नागरिक सरकार की आलोचना करते हैं उनका प्रभाव हम पर पड़ता है। इसका प्रभाव उन लोगों पर भी पड़ता है जिनके हाथ में शासन है क्योंकि उन्होंने हमारे पूर्ववर्ती शासकों की परम्पराओं को अपनाया है। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुदास भार्गव और पंडित कुंजरू ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि वर्तमान समय में ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ मात्रा में प्राधिकार का दुरुपयोग या कदाचित् प्राधिकार का अतिरिक्त उपयोग हुआ है। मैं कभी भी इन आपतियों की मान्यता पर आपत्ति नहीं करता हूं। पर मैं यह नहीं समझता हूं कि यह एक ऐसी बात हो जो सदा बनी रहेगी। जो कुछ भी हो यदि भावी संसद व्यक्ति के स्वातन्त्र्य की सुरक्षा नहीं करेगी तो मैं नहीं समझता हूं कि संविधान में किसी भी बात के रखने से उसकी सुरक्षा हो सकेगी। अत: संविधान में मूलाधिकारों का पूर्णतया अन्यून रूप में रखने का आग्रह तथा एक ऐसे रूप में रखने का आग्रह जिसमें वे किसी ऐसे देश में 160 वर्ष पूर्व रखे गये थे जिसके आदर्श विभिन्न थे और जिसकी आशायें भिन्न थी, एक ऐसा तर्क है जो विषय से असंगत है और उसके लिये यह स्थल उपयुक्त नहीं है।

आर्थिक उपबन्धों के सम्बन्ध में कुछ शब्द और कहना चाहूंगा। श्रीमती रेणुका रे तथा अन्य मित्रों ने जो आपत्तियां उठाई हैं उनकी मान्यता से में पूर्णतया सहमत

हूं। यह सच है कि इन आपतियों के प्रति मुझे बहुत कुछ सहानुभूति है यद्यपि मैंने सदैव यह अनुभव किया है कि जिस रूप में इस समय ये उपबन्ध हैं—वे उपबन्ध, जो भारत शासन अधिनियम की धारा 299 के मूल रूप में उपबन्ध थे, संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा प्रतिकर के सिद्धान्त के सम्बन्ध में बनाये गये किसी विधान की न्यायालय में ले जाने की और तत्पश्चात् उनके सम्बन्ध में निर्णय किये जाने की अनुज्ञा नहीं देते थे। पर मुझे यह क्यों प्रतीत होता है कि जिन माननीय मित्रों ने इन उपबन्धों की आलोचना की है वे ठीक है, इसलिये कि इस उपरोक्त विचार के रखते हुए भी तथा इस तथ्य के होते हुए भी, कि लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व मेरे विद्धान सहयोगी अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर विरोधी विचार रखते थे और अब यह विचार रखते हैं कि वे सिद्धान्त न्याय्य नहीं हैं, मैं यह देखता हूं कि इस विषय को न्यायालय में ले जाने की संभावना है और मेरा विचार यह है कि इस देश में हम उन विषयों को, जो बड़े आर्थिक महत्व के हैं और देश की साधारण जनता के लिये महत्वपूर्ण हैं, न्यायालय में ले जाना बर्दाशत नहीं कर सकते हैं और वह भी एक अनिश्चित अवधि के लिये।

परन्तु जिस रीति से इस संविधान की रूपरेखा उठाई गई थी उसके मैं एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग पर आता हूं। माननीय सदस्यों ने अनुभव किया होगा कि यह संविधान मेरे समक्ष समझौते का परिणाम स्वरूप है जैसाकि अन्य सदस्यों ने इसका वर्णन किया है। 206 व्यक्ति जो यहां एकत्रित हुये हैं आर्थिक विषयों पर भिन्न-भिन्न मत रखते हैं और यदि मैं यह कहूं कि किसी खास बात को मैं नहीं होने दूंगा। और अन्य लोगों को मेरी बात माननी चाहिये तो कोई बात तय नहीं होगी और हम संविधान नहीं बना सकते हैं। लगभग यह सारा का सारा संविधान—विशेषकर इस संविधान के बहुत ही महत्वपूर्ण भाग तत्सम्बन्धी पक्षों में परस्पर किये गये अन्तिम समझौते के विषय हैं और यदि कुछ व्यक्ति अधिकांश प्रस्थापनाओं से सहमत होकर किसी एक प्रस्थापना पर आपति करते हैं तो वे एक ऐसा कार्य करते हैं जो ठीक नहीं है। इस संविधान को हममें से अधिकांश लोगों में परस्पर किये गये समझौते के रूप में पूरा किया गया है। मैं समझता हूं कि इस विशिष्ट विषय में हमने जन-साधारण को मुकदमेबाजी के अधीन कर दिया है और संभव है कि इसका निर्णय करने में एक वर्ष लग जाये और इस के कारण हमारी आर्थिक उन्नति में अवनति हो। मैंने यह इस लिये मान लिया कि इस संविधान में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो उन मित्रों ने मान ली हैं जिनके उस विषय में विरोधी विचार थे। श्रीमान, मेरी उन माननीय मित्रों के मार्ग में रुकावट डालने की इच्छा नहीं है जो कुछ मिनट के लिये अपना भाषण देना चाहते हैं।

***श्री पी.टी. चक्को** (तिरुवांकुर: राज्य): क्या मैं एक बात जान सकता हूं? भाग 7 में राजप्रमुख की नियुक्ति के लिये कोई उपबन्ध नहीं है। धारा 155 में राज्यपाल की नियुक्ति के लिये उपबन्ध है जिसको भाग 7 में अपमार्जित कर

[श्री पी.टी. चक्को]

दिया गया है और कुछ राज्यों में राज्य प्रमुखों को उत्तराधिकार नहीं है मैं यह जानना चाहूंगा कि जहां उत्तराधिकार नहीं है वहां क्या राज-प्रमुख की नियुक्ति के लिये उपबन्ध आवश्यक नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं अपने माननीय मित्र से अनुच्छेद 366 के खंड (21) को पढ़ने के लिये कहूंगा जिसमें इसका उत्तर दिया गया है। मैं इस विषय को लेना चाहता था पर मैं समझता हूं कि मेरे पास समय नहीं है। श्री सरवटे ने एक ऐसे राजप्रमुख की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया है जो दुर्व्यवहार करता है और जिसके लिये उन्होंने समझा कि कोई उपबन्ध नहीं है जब कि राज्यपाल द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के लिये हमारे यहां उपबन्ध है। मैं समझता हूं कि जो विशेष खंड वहां दिया हुआ है अर्थात् अनुच्छेद 366 का खण्ड (21) राजप्रमुखों के व्यवहार को ठीक रखने के लिये सब प्रकार से पर्याप्त है। एक प्रश्न और है जिसको मेरे उन माननीय मित्र ने उठाया था जिन्होंने मुझ से उसक बारे में अनुच्छेद 371 के सम्बन्ध में भी कहा था, विशेषकर राज्यों में उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 371 जिस रूप में उसको यहां अन्य मित्रों ने मान लिया है और श्री मालवीय, जिन्होंने कल भाषण दिया था, इसके पक्ष में थे कि यह विशुद्ध रूप में एक अन्तर्कालीन उपबन्ध है और इसे आपको तत्कालीन सरकार पर छोड़ देना चाहिये कि वह इस बात को देखें कि इसका प्रवर्तन उन राज्यों में न हो जो उन्नत है और जहां तक राज्यों में के उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन का सम्बन्ध है भाग-क के राज्यों के उच्च-न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन ऊंचे हैं और यदि हम राज्यों में वेतन के इसी स्तर का आरोप करें तो राज्यों का दिवाला निकल जायेगा। कुछ असंगतियों का पैदा होना अनिवार्य है क्योंकि हमने देशी रियासतों और प्रान्तों को साथ-साथ रख दिया है; और यदि हम उनको साथ-साथ न रखते तो हम एक ऐसा संविधान बनाते जो एकरूप नहीं होता। हमारे कुछ माननीय मित्रों ने यह विषय उठाया है पर हमारे सामने परिसीमायें हैं और इन परिसीमाओं के अधीन हमने एकरूपता लाने का प्रयास किया है।

समाप्त करने के पूर्व मैं एक विषय का जिक्र करना चाहूंगा जो मेरे विचार मेरे खेदनीय है और मैं समझता हूं कि सभा मुझ से इस विषय में सहमत होगी। मेरे माननीय मित्र और सहयोगी श्री के.एम. मुंशी वादविवाद की अन्तिम स्थिति में भाग लेने के लिये बड़े उत्सुक थे। मैं समझता हूं कि कि शक्ति पार्थक्य संविधान का प्रकार इत्यादि विषयों पर जो आलोचनायें की गई हैं। इन पर भी उन्हें कुछ रचनात्मक बातें कहनी थीं, पर दुर्भाग्यवश उनको हरारत हो गई और गले में तकलीफ हो गई जिसके कारण वे बिस्तर में पड़ गये। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस सभा के सदस्य जो उन्हें उतना ही चाहते हैं जितना मैं, उनके शीघ्र स्वस्थ हो जाने की कामना करेंगे और इस बात पर खेद प्रकट करेंगे कि वे आज हमारे साथ नहीं हैं जब कि उस कार्य को हम अन्तिम रूप दे रहे हैं जिसको हम

तीन वर्ष से अधिक समय से करते चले आ रहे हैं और जिसमें श्री के.एम. मुंशी ने बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया है।

श्रीमान अन्त में मैं उस आभार का वर्णन करता हूं जिससे हमें विशेषकर भारत सरकार के मंत्रालयों के प्रति मसौदा समिति के रूप में उऋण होना है वित्त मंत्रालय, बाह्य विषयक मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय ने हमारे साथ बड़ा नेक व्यवहार किया और हमको पर्याप्त सहायता दी। राज्य मंत्रालय के सम्बन्ध में हम श्री वी.पी. मेनन और उनके सहायकों के आभारी हैं कि उन्होंने देशी रियासतों को एकीकरण करके इस संविधान में रखा और वे हमारे बड़े सहायक रहे। जहां तक विधि सम्बन्धी मंत्रालय का सम्बन्ध है मैं दो व्यक्तियों सचिव और संयुक्त सचिव के नाम लेकर उल्लेख करना चाहूंगा—श्री सुन्दरम और श्री भंडारकर जो हमारे लिये बड़े उपयोगी सिद्ध हुये यहां तक कि अन्त में यह संविधान उन्हीं को सौंपा जायेगा। अतः यह ठीक ही है कि वे इस प्रकार की सहायता करते, पर मैं समझता हूं कि मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करूंगा यदि मैं जो महान सेवायें उन्होंने हमें अर्पित की हैं उनके प्रति उनका नाम लेकर उल्लेख न करूं। श्री बी.एन. राउ के सम्बन्ध में जो कुछ सदस्यों ने कहा है कि उससे मैं अपनी सहमति प्रकट करना चाहूंगा। अन्तिम स्थिति में हम उनकी सहायता से वंचित रहे, पर उनकी सहायता से वंचित रहने पर भी हम उनकी उस महान सहायता से परिचित थे जो हमें इस कार्य के आरम्भ में प्राप्त हुई थी और उनके विचार इतने प्रगतिशील थे वे इतने सहानुभूति पूर्ण थे, इतने शीघ्र विचारक थे कि जब हमारे सामने कठिनाई आती थी तो वे तुरन्त ही उसको दूर करने का सूत्र खोज लेते थे। श्रीमान, मैं फिर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाऊंगा। यदि मैं उस सुखद संयोग का वर्णन न करूं जिसका वर्णन माननीय मित्रों ने किया है वह यह कि हमें श्री एस.एन. मुकर्जी जैसा योग्य संयुक्त सचिव तथा मसौदा लेखक मिला। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि हमें वे वास्तव में एक अमूल्य रत्न के रूप में मिले। केवल मसौदा लेखक के रूप में ही उनकी योग्यता इतनी परिपूर्ण न थी वरन् इससे भी महानतर उनमें कार्य करने की लगन थी (*हर्षध्वनि*) और सभा यह भी चाहेगी कि यह कहा जाये कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति श्री खन्ना से लेकर नीचे बाबुओं, अधीक्षकों तथा प्रतिवेदकों तक को कठिन परिश्रम करना पड़ा। अन्तिम आठ या दस महीनों तक मसौदा समिति के कार्य से निकट सम्पर्क रखने के कारण और उसके यांत्रिक कार्य को स्वेच्छा से ले लेने के कारण मैं यह देख सका कि ये नवयुवक अधिकांश रात के दस बजे तक कार्य करते रहते थे केवल इस कारण कि वे उत्साह से ओत प्रोत थे और अन्तिम मास तो उनके लिये घोर परिश्रम का मास था और मैं आशा करता हूं कि इस संविधान को बनाने में जो कार्य उन्होंने किया है उसे यह सभा अभिज्ञात करेगी और वह कार्य बहुत ही प्रमुख तथा महत्वपूर्ण था।

श्रीमान, मेरे लिये यह बात असंगत होगी यदि मैं दो महान नेताओं की सेवाओं का उल्लेख न करूं और यह दुख की बात है कि आज कुछ चन्द शब्द कहने

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के लिये वे यहां उपस्थित नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से हमें बड़ी शक्ति और सहायता मिली। उन्होंने वास्तव में, इस संविधान और उसके विभिन्न अनुच्छेदों को आरम्भ से ही समझा और कई बार एक मसौदा लेखक तथा लेखक के रूप में हमें उनकी महान योग्यताओं का परिचय मिला जब कि उन्होंने सभा के समक्ष रखे गये विशिष्ट अनुच्छेदों की भाषा में सुधार किये। निस्सन्देह यह दुर्भायपूर्ण बात थी कि हमारे इस कार्य के आरम्भ में बीमार होने के कारण माननीय सरदार पटेल हमारा साथ न दे सके पर अन्तिम तीन या चार माह में हमें कई बार उनकी मंत्रणा लेने के लिये जाना पड़ा और उन्होंने बड़े प्रेम और हर्षपूर्वक अपनी मंत्रणा दी। आखिर ये लोग इस संविधान के सच्चे निर्माता हैं।

मैं यह जानता हूं कि उस व्यक्ति के बारे में कहना जिस पर इस देश के संविधान का भाग्य आश्रित था मेरे और आपके लिये बड़ा ही अप्रिय विषय है। मसौदा समिति का सदस्य होने पर मैं अपने आपको भाग्यशाली समझाता हूं—यह एक ऐसा तथ्य है जिसके लिये मैं अपने एक और मित्र का कृतज्ञ हूं और उनका मुझे जिक्र करना है—डॉ. एच.सी. मुकर्जी जिन्होंने जब कि आप कुछ अल्प समय के लिये यहां नहीं थे अध्यक्ष के रूप में बड़ी प्रभावपूर्ण तथा कुशल रीति से कार्य किया और उनके नाम का उल्लेख न करना अनुचित होगा। पर, श्रीमान यह तथ्य कि मैं मसौदा समिति का सदस्य था मेरे लिये एक बड़े सौभाग्य की बात थी विशेषकर इसलिये कि आपको निकट से देख सका। वास्तव में यह मेरे लिये एक महान व्यक्तिगत लाभ का विषय है और बड़े ही हर्ष का विषय है। इस सभा में मंत्रियों ने उस कार्य का वर्णन कर दिया है जो आपने सम्पन्न किया और उन बातों को दुहराना मेरे लिये आवश्यक नहीं है। सभा यह जानती है कि अध्यक्ष का मसौदा समिति से निकट सम्पर्क रहा और हमारे द्वारा किये गये अधिकांश कार्य में आपका कुछ न कुछ हाथ रहा और आपकी मंत्रणा तथा मार्गप्रदर्शन से हमें बड़ी सहायता मिली।

केवल एक अन्तिम बात और है और वह यह...

***श्री महाबीर त्यागी:** कृपा कर औरों के लिये कुछ समय रहने दीजिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** केवल एक आखरी बात कह लेने के बाद में बैठ जाऊंगा और वह यह है माननीय सदस्यों को यह समझ लेना चाहिये कि मसौदा समिति में हम लोगों को भी कुछ अपनी व्यक्तिगत धाराओं से प्रेम था और कुछ से ईर्ष्या व घृणा; पर इस कार्य कर हमने बिना किसी ईर्ष्या व घृणा के विचार किया और उसका फल सभा के समक्ष है। पादरी के अंडे की तरह उसके कुछ भाग अच्छे हो सकते हैं या वह समस्त रूप में बहुत अच्छा हो, पर अन्त में मैं तो इस सम्बन्ध में यही कहूंगा कि लोगों ने इस संविधान पर इस देश के जन साधारण के लिये एक संविधान बनाने के प्रयोजन से मेहनत की और यह संविधान उनको सम्मान पूर्ण जीवन बिताने में सहायक होगा और मैं यह सुझाव दूंगा कि

यह संविधान जनसाधारण को अर्पण किया जाये और जन साधारण को अर्पण करने में इस देश के कल्याण की तथा इस संविधान के कुशल तथा व्यवस्थित रूप में क्रियान्वित किये जाने की आशा है।

आपको बहुत धन्यवाद।

***अध्यक्षः** डॉ. सुब्बारायन। मैं आप से निवेदन करूंगा कि आप पांच मिनट से अधिक समय न लें।

***डॉ. पी. सुब्बारायन** (मद्रास जनरल): श्रीमान, मुझे यह अवसर देने के लिये आपका कृतज्ञ होना चाहिये, और मैं पांच मिनट ही लूंगा।

इस संविधान की केवल दो बातों को ही मैं लूंगा। अंग्रेज़ हमारे लिये केवल दो बातें छोड़ गये हैं एक असैनिक सेवाओं की कार्य-कुशलता और दूसरी विधि का राज्य। मैं समझता हूं कि इन दोनों बातों का पालन किया गया है और उनको इस संविधान में रख दिया गया है क्योंकि बिना कार्य कुशल असैनिक सेवा के शासन का चलाना और नीति को कायम रखना असम्भव हो जायेगा। मेरे विचारानुसार सरकारी प्रशासन का महत्व इस बात में निहित है कि वह कायम रहे और यदि वह कायम नहीं रहेगा तो उपद्रव अवश्य होगा और मेरे विचार से इस बात की व्यवस्था करने में, मसौदा समिति बहुत ही सावधान रही और उप-प्रधानमंत्री ने स्वयं सेवाओं की प्रशंसा की है और यह प्रशंसा ठीक है क्योंकि मेरे विचार से सेवाओं के संतुष्ट रहने में ही देश की क्षेम निहित है।

दूसरी बात जिसे मैं लेना चाहता हूं वह विधि का राज्य है जो मेरे विचार से अंग्रेजी विधि प्रणाली का एक विलक्षण अंग है। यदि कोई ऐसी वस्तु है जिसे मैं इस देश के भविष्य के लिये अपनाना चाहूंगा तो वह यह विधि का राज्य है। प्रोफेसर डाइसी ने अपनी संविधान की विधि नामक पुस्तक में इस स्थिति की पूर्ण रूप में व्याख्या की हैं। मेरे विचार से हमने इसकी व्यवस्था उस देश के उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में शक्तियां निहित करके की है और कोई भी नागरिक उस समय की सरकार के विरूद्ध, चाहे वह केन्द्रीय हो चाहे प्रान्तीय, इन न्यायालयों में अपने अधिकार की मांग कर सकता है और इस प्रकार अधिकारों का अतिक्रमण नहीं हो सकता हैं और इस कार्य को पूरा करने के लिये न्यायपालिका को पर्याप्त स्वतंत्रता दी गई है। मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ऐयर ने यह यह ठीक संकेत किया था कि न्यायपालिका अपने आपको साम्राज्य के अन्तर्गत एक और राज्य के समान न समझे और मुझे संतोष है कि इस संविधान में जो उपबन्ध रखे गये हैं वे न्यायपालिका को एक साम्राज्य के अन्तर्गत एक और राज्य नहीं बनने देंगे। हां यह संकट सदैव बना रहता है। जब लोग शक्ति पार्थक्य की बातें करते हैं तो यह शक्ति पार्थक्य इस प्रकार से भी किया जा सकता है कि न्यायपालिका को महान शक्ति सौंप दी जाये जिससे कि वह अन्ततोगत्वा तत्कालीन शासन व्यवस्था को ही भंग करने की ओर उन्मुख हो सके, पर हमारे संविधान में मेरे विचार से ऐसी कोई बात नहीं है।

[डॉ. पी. सुब्बारायन]

एक बात और है श्रीमान, और उसके बाद मैं अपना भाषण समाप्त कर दूंगा। कुछ लोगों को वयस्क मताधिकार से भय सा लगता है। इस बात को भूलना नहीं चाहिये कि आज जो मताधिकार प्रचलित है उसके अधीन भी अधिकांश मतदाता अशिक्षित हैं। यह भारतीय जनता इस प्रकार की है कि उसमें पर्याप्त साधारण ज्ञान है और मैं तो यह कहूंगा कि अपना स्वामी पहचानने का उसे पर्याप्त ज्ञान है जिसके कारण वे विवेक सहित अपने शासक चुन लेंगे और ऐसे लोग चुन लेंगे जिनको वे समझते हैं कि वे इस प्रकार से प्रशासन कार्य कर सकेंगे जो इस जनसाधारण के लिये लाभदायक हो जिसका हमने इस सभा में इतना जिक्र किया है। श्रीमान मुझे विश्वास है कि हम एक ऐसा संविधान स्थापित कर रहे हैं जो काल की कसौटी पर खरा उतरेगा और इस देश को राष्ट्र मंडल में अपना उचित स्थान प्राप्त कराने के कार्य में सहायक होगा।

मैं अपना भाषण समाप्त कर चुका हूं। श्रीमान, आपको धन्यवाद।

***अध्यक्ष:** श्री महावीर त्यागी, आप कृपा कर केवल चार मिनट ही लगायें।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे यह अवसर दिया। श्रीमान, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपने जो ये चार या पांच मिनट दिये हैं ये मेरे भूत, भविष्य और वर्तमान जीवन के बड़े ही अमूल्य क्षण हैं तथा बड़े ही रोमांचकारी क्षण हैं। आज मैं अपने बड़े पुराने स्वप्नों के चित्र के तथा तीस वर्ष के अपने घोर परिश्रम के परिणाम के समक्ष खड़ा हुआ हूं। हमारे सामने एक साकार चित्र है। मुख्य कलाकार डॉ. अम्बेडकर ने अपनी कूंची दूर रख दी है और जनता के निरीक्षण तथा आलोचना के लिये चित्र का उद्घाटन कर दिया है सभा ने जो खोल कर आलोचना की है। इस चित्र को हम सबने मिलकर बनाया है और इसकी मैं और अधिक आलोचना नहीं करना चाहता हूं इस चित्र के पक्ष में जो कुछ भी कहा गया है मैं उसका पूर्ण समर्थन करता हूं। आखिर सच्चे हृदय से तथा विनम्रता पूर्वक हमें अपनी भावी सन्ततियों को उत्तराधिकार में वे श्रेष्ठ गुण देने चाहिये जो हममें हैं इस विचार से हमने इस कार्य में पूरा-पूरा परिश्रम किया है और पूरा-पूरा विचार किया है, और बहुत विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद के पश्चात् हम इस चित्र को बना सके हैं। हमें अब यह आशा कर इसे भावी सन्तति को सदेच्छा पूर्वक उत्तराधिकार में सौंप देना चाहिये कि यदि हमारी कुछ कमियां रही हैं तो वह उन्हें क्षमा कर देगी और अपनी बुद्धि तथा योग्यता से इन कमियों को दूर करेगी। मुझे यह दिखाई देता है और यही संसार को दिखाई देगा कि इस चित्र में संकट भी है और इन संकटों को मैं अभिलेखबद्ध कराना चाहता हूं।

एक एक ऐसा प्रयोग कर रहे हैं जो संसार में असफल रहा है। हम लोकतंत्र की स्थापना कर रहे हैं; वह लोकतंत्र जिस का जहां-जहां प्रयास किया गया है

वहां वह जनता तथा जन-समुदाय की कोई वास्तविक भलाई करने में सफल नहीं हुआ है। हम कर तो उसी प्रयोग को रहे हैं, पर एक उन्नत रूप में। हमारा लोकतंत्र दोनों इंग्लैंड के संसदीय लोकतंत्र और अमरीका के गणराज्यात्मक लोकतंत्र से उन्नत रूप का है। शायद यह दोनों का सम्मिश्रण है। देखिये यह लोकतंत्र यहां सफल होता है या नहीं।

फिर भी एक संकट और है। वयस्क मताधिकार का कई मित्रों ने समर्थन किया है। मैं स्वयं बड़ा प्रसन्न हूं क्योंकि इस संविधान के समर्थकों को जब बहुत से तर्क नहीं मिले तो वे उन चन्द बातों का राग अलापने लगे जिनको इस संविधान में रखने का मैंने और मेरे जैसे विचार वाले कुछ मित्रों ने आग्रह किया था—मेरा आशय "ग्राम गणराज्यों" "घरेलू उद्योग धंधे" और "प्रतिषेध" से है। पहले इन बातों का कई उत्तरदायित्वपूर्ण लोगों ने विरोध किया था। पर अब मैं देखता हूं कि वे ही लोग इस संविधान के समर्थन में उन्हीं तर्कों का सहारा ले रहे हैं।

एक और बड़ा तर्क जिसको वे इस संविधान के समर्थन में बार-बार कहते हैं वह व्यस्क मताधिकार का महान प्रयोग है। मुझे आशंका है कि यह एक बड़ा भयानक प्रयोग है जिसे हम क्रियान्वित कर रहे हैं। और संभव है कि यह एक अजगर का रूप धारण कर ले। मैं यह नहीं जानता हूं कि हमें किस ओर ले जायेगा, चाहे जो कुछ भी हो यह प्रयोग तो करना ही है। मैं आशा करता हूं कि इन प्रयोगों में सफल उतरने के लिये भावी सन्तानों पर पर्याप्त रूप में उत्तरदायित्व होगा।

यद्यपि इस संविधान के प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है और मैं इसकी प्रशंसा करता हूं फिर भी एक बात है जिसका मुझे बड़ा भारी भय है और वह यह है कि इस संविधान में एक वर्ग उत्पन्न करने की प्रवृत्ति पाई जाती है—एक वह वर्ग जिसका लोकतंत्र ने सर्वत्र सृजन किया है—'वृत्ति भोगी राजनीतिज्ञों' का वर्ग। सब लोकतंत्रों का संचालन 'वृत्तिभोगी राजनीतिज्ञों' द्वारा किया जाता है और उनके असफल होने का यही मुख्य कारण है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति लोकतंत्रों पर ही जीवन बिताने लग जाते हैं। उनके लिये यह एक वृत्ति का साधन बन जाता है और राजनीति ही उनके जीवन का साधन मात्र हो जाती है। यह बात लोकतंत्र के लिये घातक है और भावी सन्तानों को मैं इससे परिचित कराना चाहता हूं। यह 'वृत्तिभोगी राजनीतिज्ञों' का सृजन करती है—वे लोग जिनकी वृत्ति राजनीति पर आश्रित है और इसका परिणाम यह होता है कि वे अन्य सृजनात्मक वृतियों से अपने आपको पृथक कर लेते हैं। यदि इस लोकतंत्र का भी संचालन ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिनके पास जीवन बिताने का अन्य और कोई साधन नहीं होगा सिवा मंत्रालयों के या संसद सदस्यता के तो मुझे विश्वास है कि यह लोकतंत्र भी विनाश को प्राप्त होगा।

ऐसा संकट है। अत: मैं चाहता हूं कि भावी सन्तानें उन लोगों के हाथों का खिलौना न बनें जो 'वृत्ति भोगी राजनीतिज्ञ' हैं। संविधान का संचालन तो 'राजनीति

[श्री महावीर त्यागी]

में रुचि रखने वाले किसी अन्य वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले, व्यक्तियों द्वारा होना चाहिये—ऐसे लोग जिनके पास जीवन निर्वाह करने की अपनी वृत्ति हो और जो यहां स्वेच्छा पूर्वक या न्यून वेतनों पर राज्य संचालन करने के लिये आयें क्योंकि अपनी स्वीय वृत्ति के साथ-साथ उनको राजनीति में रुचि है और देश सेवा करने की इच्छा है। मैं इस प्रकार से इस चित्र को कार्यान्वित करना चाहता हूं। पर ग्रामीणों के दृष्टिकोण से यह चित्र भद्दा और निर्जीव है। न इसमें कोई ऐसी वस्तु स्पष्ट है जिसके द्वारा वह इस संविधान को अच्छी तरह से समझ सकें; क्योंकि ग्रामीणों को हमने मत के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया है जिसे हम उससे दो वर्ष बाद ले लेंगे। हमने उसको केवल यही एक वस्तु दी है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि जब उन लोगों को जो खेती करते हैं यह संविधान संचालन करने दिया जायेगा तभी वे इसे अधिकारों तथा स्वतंत्रता का अपना अधिकार पत्र समझेंगे। अन्यथा यह संविधान भद्दा है। कोई नेता होना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि हमारी भारतीय भूमि इतनी ऊसर नहीं है कि वह किसी ऐसे नेता को जन्म न दे जो इस संविधान में ऐसा जीवन अनुप्राणित करे कि यह बोल सके। वह बोलेगा यदि हमें अपने सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास है और मैं आपसे कहता हूं कि महामंत्र का जपना आवश्यक है और मुझे खेद है कि आज भारत में ऐसा कोई नहीं है जो इस महामंत्र को फूंके जो हमारे समस्त राष्ट्र को इस छोटी सी पुस्तक पर न्योछावर होने के लिये प्रेरित करे। और क्या मैं इस बात का संकेत करूं कि वह महामंत्र क्या है? केवल एक बात इस संविधान को आकर्षक बना देगी। यदि इस समूचे संविधान में एक सर्वोच्च उपबन्ध या रक्षाकवच रख दिया जाता तो मैं समझता हूं कि सब बातें ठीक हो जातीं। वह उपबन्ध यह है: यदि हम इसमें एक इस प्रकार का परन्तुक रख देते:

> "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी भारत का कोई भी नागरिक लोक निधि से या गैर सरकारी उद्यम से अपने स्वीय प्रयोग के लिये इतना वेतन लाभ या भत्ता नहीं लेगा जो एक औसत श्रमभोगी की आय से अधिक हो।"

यदि यह संविधान में हो तो सारा भारत इस संविधान द्वारा संगठित हो जाये। जब तक यह बात उसमें नहीं है तब तक भारत इसको नहीं समझ पायेगा क्योंकि यह संविधान केवल उन लोगों के लिये रोटी की व्यवस्था करता है जिनके पास भरपेट रोटी है न कि उन लोगों की रोटी की जिनके पास नहीं है।

***श्री सुरेशचन्द्र माजुमदार** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): अध्यक्ष महोदय, चूंकि एक स्वतंत्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारत के संविधान को अन्तिम रूप दिया जा रहा है, क्या यह महान सभा अपनी एक व्यक्तिगत बात कहने की मुझे अनुज्ञा देगी और मुझे उस संस्मरण की याद ताज़ा करने की आज्ञा देगी जिससे एक स्कूल के छात्र के हृदय को पचास वर्ष पूर्व एक रात दु:खद धक्का लगा था? उस रात मैं भारतीय इतिहास की अपने स्कूल की पाठ्यपुस्तक पढ़ रहा था और मैं तथाकथित "ब्रिटिश काल" के प्रारम्भ पर पहुंच चुका था।

यह सत्य है कि विदेशी राज्य के कारण देश की आपत्ति से परिचित होने के लिये किसी व्यक्ति को ऐतिहासिक पुस्तक का अध्ययन करना आवश्यक नहीं था— एक बालक भी यह समझ सकता था। यह जान कर मेरा कोमल हृदय शोकाकुल हुआ और उसे चोट पहुंची कि अंग्रेज़ी शक्ति ने किस प्रकार हमारी आपस की मार काट और लड़ाई झगड़ों से लाभ उठाकर शिवाजी के उन स्वप्नों के नष्टावशेषों पर अपनी नींव जमाई जो स्वप्न लगभग साकार हो चुके थे। मरहटों की असफलता मुझे सबसे अधिक दु:खद घटना प्रतीत हुई और वह कुमार, जो पुन: स्वतंत्र भारत का स्वप्न देख रहा था, निराश हुआ और इस बात को आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि क्या हम कभी अपने अतीत पर विजय प्राप्त कर सकेंगे और एक संयुक्त स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उठ सकेंगे। आज मैं उन कटु संस्मरणों की याद फिर ताज़ा करता हूं और राष्ट्र ने जो सफलताएं प्राप्त की हैं उनकी मुझे बहुत अधिक खुशी है और उन पर मुझे गौरव है।

इन अन्तर्कालीन वर्षों की घटनाओं को मैं विस्तारपूर्वक नहीं लूंगा। आज मुझे वह समय अच्छी तरह याद है जब श्री अरविन्द बड़ौदा से बंगाल आये थे उन्होंने कला कौशल की जाग्रति के लिए एक आन्दोलन का सूत्रपात किया था और एक निर्भीक स्पन्दित राष्ट्रीयता के नये युग को जन्म दिया था। उन्होंने एक उग्र क्रान्तिकारी संगठन बनाने के लिये प्रोत्साहित किया और अपने गुरु स्वर्गीय जतेन्द्रनाथ मुकर्जी द्वारा मुझे एक शिविर-अनुचर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद दु:ख और कष्टों से परिपूर्ण स्वदेशी और क्रान्तिकारी आन्दोलनों का अनोखा समय आया और लोग अपने खून पसीने और आंसुओं से विदेशी राज्य के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। इसके बाद यकायक प्रथम विश्वयुद्ध आ धमका और उसके साथ भारत-प्रतिरक्षा अधिनियम के रूप में दमनकारी सशक्त दानव आया। और इस दानव ने स्वातंत्र्य आन्दोलन का बड़ी निर्दयता से दमन किया और ऐसा प्रतीत होता था कि यह आन्दोलन अब न पनप सकेगा। सारे देश में घोर अन्धकार छा गया कहीं कोई प्रकाश की रेखा तक दृष्टि नहीं आती थी। पर वह एक अस्थाई रूप ही था। उस समय मुझे ऐसा ही लगा। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ भारतीय रंगमंच पर गांधी का दैदीप्यमान रूप प्रकट हुआ। नव-भारत का भाग्य विधाता, राष्ट्रपिता गांधी प्रकट हुआ जिनके अतुलनीय नेतृत्व में देश की कांग्रेस ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने के लिए एक शक्तिशाली यन्त्र के रूप में पुन: संघटन किया। अंधकार दूर होने लगा। कई संघर्षों में उन्होंने हमारा तब तक नेतृत्व किया जब तक कि उन्होंने भारत को स्वतंत्र सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न बनाने के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की। ऐसा लगता है कि इस ऐतिहासिक संघर्ष में एक तुच्छ सेवक के रूप में भाग लेना और अपने नेताओं, अंग्रेज़ों और साथियों के साथ मिलकर स्वतंत्र भारत गणरात्य के लिये संविधान बनाना एक बहुत बड़ा गौरव है।

इतने परिश्रम और विचार के फलस्वरूप बनाये गये इस संविधान की सारे देश में चर्चा हो रही है। इसकी प्रशंसा करने में आकाश तक को छू लिया गया है

[श्री सुरेशचन्द्र माजुमदार]

तथा कटु से कटु भाषा में इसकी बुराई भी की है कुछ ऐसे हैं और मेरे विचार से इनका ही बहुमत है जो इसमें भली और बुरी दोनों बातों का सम्मिश्रण देखते हैं और समूचे रूप में इसे व्यवहारिक तथा मान्य समझते हैं। मुझे यह संविधान कैसा लगा? मेरे मन में एक ही विचार है जो अन्य सब विचारों पर छा जाता है—वह यह विचार कि यह संविधान पूर्णतया हमारा है शत प्रतिशत भारत निर्मित है। यह चाहे भला हो चाहे बुरा पर इसे हम भारत निवासियों ने बनाया है। न तो यह बाहर से हम पर लादा गया है न किसी विदेशी प्राधिकार ने हम पर इसे आरोपित किया है। जिस प्रकार से हमने इसे बनाया है कि उसी प्रकार से यदि हम चाहें तो भविष्य में इसका संशोधन कर सकते हैं। अच्छी और यदि कोई बुरी बात हो तो उसके भी सहित यह हमारी ही कृति है। इस संविधान का बनाना स्वयं ही एक सर्वोच्च कोटि का स्वतंत्र कार्य है और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की सर्वोच्च कोटि की अभिव्यंजना है और इस रूप में मैं इसका स्वागत करता हूं। इस बात से मुझे स्वतंत्रता का तुरन्त आभास होता है और मैं अपने देशवासियों के उस वर्ग के समक्ष अपना यह व्यक्तिगत प्रमाण प्रस्तुत करता हूं जो एक आवेश पूर्ण मोह में फंस कर चीखते हैं कि "ये आजादी झूठी है।" मेरे ख्याल से इस चीख का विरोध केवल मेरी भावनाओं द्वारा ही नहीं वरन् कुछ मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर अन्य सब भारतवासियों की भावनाओं से होता है।

यह एक सामान्य बात है पर फिर भी इसको बार-बार दुहराना आवश्यक है कि किसी संविधान की सफलता यहां तक कि चाहे वह संविधान बहुत ही सावधानी से लिखा गया हो—भाषा पर इतना निर्भर नहीं करती है जितना उस भावना पर निर्भर करती है जिसके द्वारा उसे क्रियान्वित किया जाता है। यह हम पर जनता पर निर्भर करता है कि उसे बनायें या बिगाड़ें। अत: मैं अपने सब देशवासियों से विनम्र निवेदन करता हूं कि इस संविधान को सहयोगपूर्ण भावना से कार्यान्वित करें और इसके कार्यान्वित करने में वह सारी की सारी देशभक्ति और निस्वार्थ लग्न लगा दें जो इस राष्ट्र में है और यदि वे ऐसा करेंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि यह संविधान हमारी स्वतंत्रता, सम्पन्न्ता और सुख की वृद्धि का साधन होगा।

श्रीमान, एक और बात जिसका इस संविधान के बनाने के सम्बन्ध में वर्णन करने से मैं अपने आपको नहीं रोक सकता हूं वह यह है। जब संविधान सभा बुलाई गई थी उसे समस्त भारत का संविधान बनाने का कार्य दिया गया था। पर उसके पश्चात् चूंकि यह देश दो भागों में विभाजित हो गया यह वर्तमान संविधान केवल एक भाग पर ही लागू होता है। इस बात को भविष्य ही जानता है कि क्या कभी समस्त देश के लिये एक ही संविधान हो सकेगा।

अन्त में क्या मैं डॉ. अम्बेडकर को इस सभा में के अपने बुजुर्गों और सहयोगियों को इस महान जटिल तथा ऐतिहासिक कार्य के सफल सम्पादन पर अपनी सम्मानपूर्ण

बधाई दे सकता हूं? और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं यहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की भावनाओं के स्वर में स्वर मिला रहा हूं जब कि मैं आपको उस शान्त, धैर्यपूर्ण, उदार तथा पूर्ण आदर्शयुक्त रीति के लिये धन्यवाद देता हूं जिसके अनुसार आपने इस सभा में विचार विमर्श होने दिया है।

जय हिन्द!

बन्दे मातरम्!!

लाला देशबन्धु गुप्त (देहली: जनरल): माननीय सभापति जी, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि समय कम होते हुये भी आपने मुझे चन्द मिनिट देने की कृपा की है। आज से तीन साल पहले जो महायज्ञ आरम्भ किया गया था इस समय उसकी पूर्ण आहूति हो रही है। इसलिये यह अभिनन्दन का समय है। बधाई और धन्यवाद देने का समय है। कड़ी समालोचना का समय नहीं है। हमने यह विधान बनाने में मिलकर तीन साल तक कोशिश की है और इसको मिलकर बनाया है। इसलिये अब जब कि विधान तैयार हो गया है कोई कटु समालोचना करना मुनासिब न होगा। लेकिन मैं इस समय एक बात अपने महानुभावों को याद दिलाना चाहता हूं और वह यह है कि अब यह विधान देश और संसार के सामने जा रहा है इसे हम ने देहली में बैठकर सबने पिछले तीन वर्ष में इस विधान को बनाया है। लेकिन खेद की बात है कि देहली वालों के लिये इसमें उत्साह का कोई सामान नहीं है। मैं शिकायत नहीं करता इसलिये कि मुझे विश्वास है कि इस विधान परिषद् के सदस्य दिल्ली वालों की मांग के साथ हमदर्दी रखते हैं और अगर उनका बस चलता तो वह जरूर ऐसी तरमीम करते कि देहली वालों को भी आज खुशी मनाने का अवसर होता और 26 जनवरी के बाद जब यह विधान देश में लागू होगा तो देहली के दिन भी फिरते। मैं जानता हूं कि विधान परिषद् के सदस्य देहली के लिये अपने दिल में स्थान रखते हैं। और देहली वालों की मुसीबतों का भी उन्हें थोड़ा बहुत अन्दाज़ा है लेकिन देहली के दुर्भाग्य की वजह से कुछ समस्यायें सामने आती रही हैं जिनकी वजह से रास्ते में रुकावटें खड़ी हो गई और इस विधान में देहली को कोई स्थान नहीं मिला। जिस देहली ने आज़ादी की लड़ाई 1857 से लड़ी है, जिस देहली के लोगों ने छै छै माह तक चने चबा चबा कर दुश्मनों की तोपों का मुकाबला किया, जिस देहली के चप्पे चप्पे पर आज भारत का इतिहास लिखा हुआ है उसी देहली की लगभग बीस लाख जनता को आज यह अनुभव होता है कि अब भी जब कि सारे देश में स्वराज्य हो गया है, जनता का राज्य हो गया है देहली वालों के लिये कोई परिवर्तन राज प्रणाली में नहीं हुआ और अगस्त 1947 से पहले जो ऐडमिनिस्ट्रेटिव सेटअप अंग्रेज़ों ने बनाया था इस विधान के बाद भी वही सेटअप जारी रहेगा। इससे दिल्ली वालों की निराशा का अन्दाजा लगाया जा सकता है लेकिन आशा की एक रेखा नज़र आती है और वह यह कि हमारे प्रधान मंत्री ने इसी भवन में हमें यह विश्वास दिलाया है कि 26 जनवरी से पहले पार्लियामेंट द्वारा एक कानून पास किया जायेगा जिस कानून के जरिये यह प्रयत्न किया जायेगा कि देहली

[लाला देशबन्धु गुप्ता]

की जनता को भी दिल्ली के ऐडमिनिस्ट्रेशन में मुनासिब अधिकार दिया जाये। इस लिये मैं आशा करता हूं कि जब ऐसा बिल पार्लियामेंट के सामने आयेगा इस विधान परिषद् का कोई भी सदस्य इस ऐशोरेन्श को जो कि प्रधान मंत्री ने दी है भूलेगा नहीं। और यह जो अब चिराग तले अन्धेरे की कहावत दिल्ली पर लागू होती है उसे नहीं रहने देंगे। मैं आशा करता हूं कि आप देहली वालों का जरूर ख्याल रखेंगे। देहली वाले कोई बड़ी मांग नहीं कर रहे हैं। सिर्फ यह चाहते हैं कि आपने जो यह खूबसूरत गुलदस्ता बनाया है यह खूबसूरत चित्र बनाया है उसमें देहली को भी कुछ स्थान होना चाहिये।

मैं एक और बात की तरफ हाऊस की तवज्जो खींचना चाहता हूं और वह यह है कि प्रेस की आज़ादी के बारे में हमारे फेंडामेन्टल राइट्स में खास तौर पर कोई दफा नहीं रखी गई है। दुनियां के अनेक विधानों से हमने अपने इस विधान में बहुत कुछ लिया है। आयरलैंड और अमेरिका और दूसरे देशों के विधान से हमने कई बातें नकल की हैं। मगर प्रेस जिसको कि फोर्थ स्टेट कहते हैं इस बारे में हमने उनसे कोई फायदा नहीं उठाया है। चुनाचे इसका इस विधान में कोई ज़िक्र नहीं है। अमेरिका के एक कान्स्टीट्यूशन के महा पंडित थामेस जैफ्र्सन ने कहा था:

> "Were it left to me to decide whether we should have Government without newspapers or newspapers without Government I should not hesitate a moment to prefer the latter. But I should mean that every man should receive these papers and be capable of reading them."

अमेरिका के विधान में विधान बन जाने के बाद प्रेस की आजादी की दफा तरमीम के तौर पर दाखिल की गई थी। मैं चाहता हूं कि हमारे विधान में भी प्रेस की आजादी का साफ शब्दों में ज़िक्र हो। मुझे यह आशा है कि ऐसा अवसर आयेगा कि हमारी पार्लियामेंट के सदस्य भी इस बात पर गौर करेंगे और तरमीम करने में पश व पेश नहीं करेंगे और हमारे विधान में हमारे प्रेस को भी ऐसा स्थान जो उसके योग्य है प्राप्त होगा।

इन अलफाज के साथ प्रधान जी मैं आपका धन्यवाद फिर एक दफा करता हूं और यह प्रार्थना करता हूं कि यह विधान सफल हो।

पंडित बालकृष्ण शर्मा: अध्यक्ष महोदय, जबकि मैं इस सम्पूर्ण वादविवाद में इस संविधान के पक्ष और विपक्ष में विभिन्न भाषणों को बैठा हुआ सुन रहा था मुझे विक्टर ह्यूगो की प्रसिद्ध पुस्तक 'दी नाइन्टी थ्री' की याद आई। उस पुस्तक में ह्यूगो अभिसमय के बारे में लिखते हैं और वे कहते हैं: ''अब हम अभिसमय को लेते हैं। अब हम हिमालय के समीप आते हैं।'' और आगे वह ये कहते है कि इस अवसर के सम्पूर्ण महत्व को हम नहीं समझ सकते हैं क्योंकि हम

इसके बहुत निकट हैं? उन की यह बात सही है। पहाड़ की ओर कुछ दूरी से देखिये तो आप उस विशालता का कुछ अनुभव कर सकेंगे। पर यदि आप उसके बहुत निकट हैं तो आप उस विशालता का अनुभव नहीं कर सकते।

श्रीमान, मैं समझता हूं मेरे उन आलोचक और समर्थक मित्रों में जो हमारे संविधान को तृतीय पठन की स्थिति में बोले हैं इस ऐतिहासिक अवसर के महत्व को समझने की उचित विचार व्यापकता तथा क्षमता नहीं है। हम यहां आये और हमने अपने ही संविधान की आलोचना की। हां यह हो सकता है कि इसमें दोष हों, यह भी हो सकता है कि ऐसे लोग हों जिनके विचार इस संविधान के सब उपबन्धों से पूर्णतया मेल न रखते हों, पर फिर भी हमें यह शोभा नहीं देता कि यहां आकर इस महान सभा को निन्दात्मक आलोचना करने की भावना से सम्बोधित करें। यदि इस संविधान में त्रुटियां हैं तो उनका उत्तरदायित्व आखिर किस पर है? क्या हम ही वे लोग नहीं हैं जो इसमें गत तीन वर्ष तक लगे रहे और जिनको इसके प्रति उत्तरदायी समझा जाये। यदि सेठ दामोदर स्वरूप जैसे व्यक्ति खड़े होकर यह कहें कि यह एक ऐसा संविधान है जिसे इस देश के लोग नहीं मानेंगे तो मैं इस बात को समझ सकता हूं, पर मैं उनको यह कह सकता हूं कि हम यहां गत तीन वर्षों से जनता के प्रतिनिधियों के रूप में बैठे रहे हैं। जनता की हम उस इच्छा के रूप में यहां हैं जिसे रूसी 'नारो दिना वोलिया' कहते हैं। जनता की हम उस इच्छा के रूप में यहां हैं और इस रूप में हम यहां गत तीन वर्ष तक बैठे हैं और मैं आपको यह कह सकता हूं कि संविधान का हर एक खंड इस देश के लोगों को मान्य है। इस बात में कोई भी शंका नहीं होनी चाहिये।

चार या पांच बातें हैं जिनके लिये इस संविधान की आलोचना की गई है। पहली यह है कि यह कहा गया है कि हम केन्द्रीय करण की ओर बहुत झुक गये हैं। दूसरी यह आपत्ति उठाई गई है कि मूलाधिकारों के चारों ओर अनेक अवरोधों द्वारा कंटीली झाड़ियां लगा दी गई हैं। तीसरी आपत्ति यह है कि इसकी भावना अभारतीय है और चौथी आपत्ति यह है कि न्यूनाधिक रूप में यह भारत शासन अधिनियम की प्रतिलिपि है। पांचवीं बात यह है कि यह संविधान देश को उस आर्थिक स्वातंत्र्य के प्रकाश का आभास करने का कोई अवसर नहीं देता जिसका उपभोग हम सब चाहते हैं कि यह देश करे।

इन पांच बातों के लिये इस संविधान की आलोचना की गई है। आइये, हम प्रत्येक आपत्ति पर विचार करें और इन पर कुछ तर्क का प्रकाश डालें। जब हम यह कहते हैं। कि केन्द्रीकरण का पक्ष लेकर हमने बड़ी भारी भूल की है और जब हम अपने संविधान की इसी बात के कारण आलोचना करते हैं तो क्या हम अपने इतिहास में, अपनी परम्परा में पृथक् होने की ऐतिहासिक परम्परा को नहीं भूल जाते हैं। यह देश इस नाशक प्रवृत्ति का शिकार रहा है और इसके कारण इस देश की उन्नति में बाधायें आई हैं और यह याद रखिये इतिहास में भारत ने अपना मस्तक तभी ऊंचा किया है जबकि एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की

[पंडित बालकृष्ण शर्मा]

स्थापना हुई। अन्यथा भारतीय इतिहास जैसी कोई वस्तु नहीं है, भारतीय वंश नाम की कोई वस्तु नहीं है। अत: हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जब हमें इस प्रवृत्ति का इस नाशक प्रवृत्ति का, इस केन्द्र-विघटनकारी प्रवृत्ति का विरोध करना है तो यह अत्यावश्यक है कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाया जाये।

दूसरी आपत्ति यह है कि मूलाधिकार एक हाथ से दिये गये हैं और दूसरे हाथ से छीन लिये गये हैं। मैं इस तर्क को कभी भी नहीं समझ पाया। महात्मा गांधी के शब्दों में क्या नागरिक स्वातन्त्रय का अर्थ आपराधिक लाइसेंस है? नागरिक स्वातन्त्रय का अर्थ आपराधिक लाइसेंस नहीं है। यदि वाक्-स्वातन्त्रय हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि मैं जिस किसी व्यक्ति को न चाहूं उसको गाली देने में स्वतंत्र हो जाऊं और इस प्रकार की बातों की कमी हमारे संविधान में की गई है। अत: यह तर्क मुझे बहुत ही निराधार प्रतीत होता है और मैं इसे कभी नहीं समझ पाया हूं।

तीसरा तर्क कि यह भारत शासन अधिनियम की प्रतिलिपि है और अभारतीय है, इसके सम्बन्ध में जो कुछ मैं कह सकता हूं वह यह है कि मसौदा समिति, डॉ. अम्बेडकर और उन सबके लिये जिन्होंने डॉ. अम्बेडकर का साथ दिया यह गौरव की बात है कि वे संकीर्णता की किसी भी भावना से प्रेरित नहीं हुये। आखिर हम एक संविधान बना रहे हैं और हमारे सामने आधुनिक प्रवृत्तियां, आधुनिक कठिनाइयां और आधुनिक समस्यायें हैं और अपने संविधान में इन सबके लिये हमें उपबन्ध करना है और इस कार्य के लिये यदि हमने भारत शासन अधिनियम का सहारा लिया है तो मैं नहीं समझता हूं कि हमने कोई पाप किया है।

इस आलोचना के सम्बन्ध में कि यह अभारतीय है जो कुछ मैं कह सकता हूं वह यह है कि हम भारतीय यहां समवेत हुये हैं और हमने यह संविधान बनाया है। वाक्यावली अवश्य अभारतीय है, परन्तु आज हमारे सामने ऐसी कई समस्यायें हैं जिनका रूप अभारतीय है इस कारण मैं कहता हूं कि यदि वाक्यावलि वहां है, भी तो क्या हुआ? उसे वहां रहने दीजिये, पर क्या इसी कारण वह अभारतीय हो गया? इस संविधान में हमारी कठिनाइयां हैं, और वे सब समस्यायें जिनको हमें सुलझाना है इस संविधान में दी गई हैं और इस संविधान में देश पर शासन करने की एक शैली निर्धारित कर दी गई है। इसलिये मैं कहता हूं कि यह अभारतीय नहीं है।

इस केन्द्रीकरण और मूलाधिकारों के बारे में मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने क्षमायाचना की है। उन्होंने कहा "हां, अपने अतीत इतिहास की ओर देखते हुये हमें इस बात पर बड़ा दु:ख है।" मैं इसके प्रति कोई क्षमायाचना नहीं करता हूं। श्री कृष्णमाचारी, आपने सोच समझकर जो कुछ तय किया, जो कुछ मसौदा समिति समिति और डॉ. अम्बेडकर ने किया वही हमारे लिये बिल्कुल ठीक है और वही चीज़ हमें अराजकता से बचा सकती है। इसलिये मैं कहता हूं कि जो लोग इस भावना से इस बात की आलोचना करते हैं वे सही नहीं हैं।

इस संविधान की आत्मा कहां है? प्रश्न यह है कि इस संविधान को कौन कार्यान्वित करेगा जो इस संविधान को कार्यान्वित करेगा वह एक निष्कलंक, पवित्र तथा सुसंगठित राजनैतिक पक्ष होगा या उपद्रवी मनुष्यों का कोई गिरोह होगा? आज मैं अपनी आंखों के सामने ही उस महान राष्ट्रीय संगठन को छिन्न भिन्न होते हुये देखता हूं जिसका निर्माण राष्ट्रपिता ने किया था। प्रश्न यह है कि कौन व्यक्ति आगे बढ़े और मशाल अपने हाथ में लेकर प्रकाश दिखाये और उस महान संगठन को एक बार फिर संगठित करे जिसने मानव इतिहास में एक बड़ी ही आश्चर्यजनक क्रान्ति की और वह आश्चर्यजनक क्रान्ति अहिंसा द्वारा देश को स्वतन्त्र करना है हां यह सत्य है कि यह सब उस एक महान आत्मा की प्रेरणा द्वारा हुआ— उस आत्मा की प्रेरणा द्वारा जो दो हजार वर्ष में एक बार अवतरित होता है। परन्तु हमारे लिये भविष्य के गर्भ में क्या छिपा हुआ है? यदि कांग्रेस को छिन्न-भिन्न होने दिया जाता है, यदि स्वार्थियों द्वारा कांग्रेस को खराब होने दिया जाता है तो मैं आपको यह कहे देता हूं कि इस देश में इससे अच्छा संविधान भी कुछ नहीं कर पायेगा। अतः आज मैं यह अनुभव करता हूं कि इस संविधान को क्रियान्वित करने का एक ही मार्ग है और वह मार्ग यह है कि हमारे प्रधान मंत्री अपने पद से त्यागपत्र दे दें और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता स्वीकार करें और एतद द्वारा लोगों में नया विश्वास भरें और इस प्रकार एक ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें इस संविधान का कार्यान्वित करना सरल हो जाये।

(श्री तजम्मुल हुसैन भाषण देने के लिय खड़े हुए)

***अध्यक्षः** हम सात मिनट तक वाद विवाद और जारी रखेंगे, मैं इस समय में तीन या चार सदस्यों को भाषण देने का अवसर देना चाहता हूं।

***श्री राजबहादुर** (राजस्थान): अध्यक्ष महोदय, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपकी, मसौदा समिति की और संविधान सभा के सदस्यों और कर्मचारियों की जो यथायोग्य उच्च प्रशंसा की जा रही है उसमें सहयोग देने का आपने मुझे अवसर दिया। यह एक महानतम ऐतिहासिक महत्व का अवसर है। मैं इसे महानतम महत्व का अवसर कहता हूं क्योंकि हमारे इतिहास में यह प्रथम अवसर है जब कि राष्ट्र के चुने चुने प्रतिनिधि एक स्थान पर एकत्रित हुये हैं और उन्होंने देश के लिये संविधान बनाया है। इसका महत्व और भी दूना हो जाता है चूंकि इस संविधान के निर्माता हमारे वे महान और योग्य नेता हैं जिन्होंने हमारे देश को स्वतंत्र किया और फिर हमारे इतिहास में प्रथम बार जन साधारण को मूलाधिकार मानव मूलाधिकार दिये हैं और प्रत्याभूत किये गये हैं। इन बातों के कारण मैं इस अवसर को महान कहता हूं। श्रीमान, इस प्रकार के किसी भी माननीय साहसिक प्रयत्न में अर्थात् संविधान बनाने के साहसिक प्रयत्न में पूर्ण रूप से एकमत होना असम्भव है। कदाचित एकमत होने की सम्भावना केवल मूर्ख समाज में ही की जा सकती है। अतः यदि मतभेद है तो यह हमारी बुद्धिमत्ता का चिन्ह है, इस बात का चिन्ह है कि हमारा राष्ट्र विचारशील है, मननशील है। हम सबके लिये प्रत्येक विषय में तथा समस्त प्रश्नों पर एकमत हो जाना असम्भव है। आश्चर्य इस बात पर नहीं है कि हम इससे अच्छा संविधान न बना सके। आश्चर्य तो इस बात पर

[श्री राजबहादुर]

है कि हम किसी एक उस सीमा तक एकमत हो गये जो इस संविधान में समाविष्ट है। मैं बहुत ही आदरपूर्वक यह निवेदन करूंगा कि जहां तक देशी राज्यों की जनता का सम्बन्ध है हम सबके लिये यह एक बड़ी कृतज्ञता का विषय है। जब हमने इस विशाल भवन के द्वार में प्रवेश किया हमारे मन में यह संशय था कि जैसा विभिन्न करार पत्रों में दिया हुआ है इन राज्यों को अपनी संविधान सभायें बुलानी होंगी। सौभाग्यवश ये सब संशय निराधार सिद्ध हुये। अब जब कि इस संविधान को अन्तिम रूप दिया जा रहा है, जब यह महान कार्य समाप्ति पर है हमारे लिये यह बड़े संतोष की बात है कि वही संविधान राज्यों पर भी लागू होगा जो हमारी एकता का प्रतीक है और हमारे राष्ट्रीय एकता और दृढ़ता का प्रतीक है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि इस संविधान के उपबन्धों के प्रति मुझे कोई खेद नहीं है। देशी-राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ उपबन्धों के प्रति मुझे खेद है। मुझे इस कारण खेद है कि अनुच्छेद 371 के अधीन दस वर्ष की अवधि के लिये इन राज्यों के प्रशासन पर केन्द्र के नियंत्रण का आरोपण किया गया है—एक प्रकार का दुहरा लोकतन्त्र, जिसकी इन एककों के लिये व्यवस्था की गई है। भाग क में के राज्यों के लिये एक प्रकार के लोकतन्त्र की व्यवस्था की गई है और भाग ख में राज्यों के लिये दूसरे प्रकार के लोकतन्त्र की। यहां मैं उस अनुभव को प्रकट करूंगा जो हमें इन राज्यों और इन राज्य-संघों में हुआ। हमने देखा है कि राज्य-संघों में किस प्रकार राज्य-मंत्रालय में मंत्रालय चुने हैं, किस प्रकार राज्य-मंत्रालय ने परामर्श दाता और सचिव चुने हैं, उसी मंत्रालय द्वारा दिन प्रतिदिन की नीतियों और कार्यक्रमों का नियंत्रण किया जाता है...

इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई पर फिर भी जनता द्वारा किया गया दोषारोपण स्थानीय कांग्रेस संस्था के कांग्रेसियों के मत्थे आता है। अन्त में मैं केवल यही कहूंगा कि इस संविधान में चाहे जो दोष या गुण हों, सारी बातें इसके क्रियाकरण पर निर्भर हैं। जैसा ब्राइस ने कहा है "एक संविधान-रूपी पौद का लगाना सरल है पर उस प्रवृत्ति-रूपी पौदे का लगाना सरल नहीं है जिसकी उस संविधान को कार्यान्वित करने में आवश्यकता है।" अत: हम सब उस महान अमरीका निवासी महान राजनीतिज्ञ बेन्ज़ामिन फ्रेंकलिन के शब्दों को याद करें जिन शब्दों को मैं इस सभा के तथा बाहर के लोगों के लिये प्रस्तुत करता हूं "अपने मिथ्या-अभिमान को हम छोड़ दें। हम यह न समझें कि हम त्रुटि नहीं कर सकते हैं।" हममें से ऐसा कोई भी नहीं है जो त्रुटि नहीं करता हो। इस संविधान में चाहे जो कुछ गुण या दोष हों पर इस बात में सन्देह नहीं है कि यह संविधान कार्यान्वित हो सकता है। इस संविधान की परिसीमायें हमारी अनोखी परिस्थिति की परिसीमायें हैं—और इसकी सफलतायें इस पीढ़ी की सफलतायें हैं—वह पीढ़ी जिसने देश को दासत्व से छुड़ाकर स्वतंत्र किया। अत: मैं इसका अपने नेताओं की एक महान सफलता के रूप में स्वागत करता हूं। यदि हम प्रस्ताव के भावानुसार इस संविधान को कार्यान्वित करते हैं तो मुझे विश्वास है कि हमारे देश का भविष्य महान होगा।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, हमारी यह आलोचना की जाती है कि इस संविधान के बनाने में हमने बहुत समय लिया। इन आलोचकों को मैं यह याद दिलाऊंगा कि दो अधिराज्यों ने लगभग एक ही समय अपना संविधान बनाना आरम्भ किया। हमने समाप्त कर दिया और दूसरे को भी अभी आरम्भ करना है।

श्रीमान, इस संसार में कोई वस्तु पूर्ण नहीं है। कोई भी यह नहीं कह सकता है कि हमारा संविधान पूर्ण है, पर हां जो अच्छे से अच्छा संविधान बना सकता था वह यह संविधान है। मेरी अपनी सम्मति के अनुसार यह एक आदर्श संविधान है। न्यायपालिका स्वतंत्र होगी; हमें स्वातंत्र्य, समानता और बन्धुत्व प्राप्त होगा; हमारा देश अब एक संयुक्त भारत है; राजाशाही व्यवस्था का अन्त हो गया; अल्पसंख्यक वर्गों का प्रश्न हल हो गया; स्थानों का कोई संरक्षण नहीं है; पृथक् निर्वाचन नहीं हैं; अस्पृश्यता मिटा दी गई है। श्रीमान, इस अद्‌भुत संविधान के बनाने का श्रेय सामान्यतया हम सबको है क्योंकि इस सभा के हम सब सदस्यों ने श्रीमान जी, आपके साथ अपना पूर्ण सहयोग किया। हमने अपने भाषण संक्षिप्त रूप में दिये। हमने रुकावट डालने का कभी प्रयास नहीं किया। आपने जो प्रक्रिया निर्धारित की उसका हमने अनुसरण किया। पर मैं उन लोगों के नाम बताना चाहूंगा जो इतने अल्पकाल में इस संविधान के बनाने के विशेषकर ज़िम्मेवार हैं। सर्वप्रथम मैं आपका नाम पेश करूंगा। आपने इस सभा की कार्यवाहियों का संचालन बड़े ही प्रशंसनीय तथा प्रभावपूर्ण ढंग से किया। कठिन परिस्थितियों को आपने नीति पूर्वक सुलझाया। आप सच्चाई और विश्वासपात्रता के आदर्श हैं और हमारे साथ आपका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण रहा...

***अध्यक्ष:** इस विषय को रहने ही दीजिये।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** आपने असीम कृपा और सहृदयता दिखाई। इस महान आसन को ग्रहण करने के लिये आप ही सबसे अधिक योग्य व्यक्ति हैं। आप की अनुपस्थिति में डॉ. मुकर्जी ने इस आसन को ग्रहण किया और बड़े सुन्दर रूप से कार्यवाहियों का संचालन किया। इस संविधान के बनाने का श्रेय विधि-मंत्री को है। वे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। संसार के सब संविधानों और विधियों की हर एक बात वे जानते हैं। वे क्या नहीं जानते हैं इस बात को जानने की जरूरत नहीं। स्वास्थ्य अच्छा न रहने पर भी आरम्भ से अन्त तक उन्होंने कठिन परिश्रम किया है। उनके अविराम परिश्रम से यह सुन्दर संविधान बन पाया है। अपने नेता प्रधान मंत्री के हम बड़े कृतज्ञ हैं। उन्होंने भारत का गौरव ऊंचा किया है। जहां कहीं वे जाते हैं उनके मनोहर व्यक्तित्व की छाप पड़े बिना नहीं रहती है। जब हमारे सामने कठिन तथा उलझी हुई समस्यायें आ जाती हैं उन्होंने कई बार हमारी सहायता की। हमारे उप-प्रधान मंत्री ने अपने आपको एक दृढ़ तथा शक्तिशाली प्रशासक सिद्ध कर दिया है। उन्होंने ऐसे काम किये जिन्हें कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता था। उन्होंने राजाशाही व्यवस्था को मिटा दिया। उन्होंने पृथक निर्वाचन

[श्री तजम्मुल हुसैन]

को समाप्त कर दिया। अब हम वास्तव में यह कह सकते हैं कि भारत में समानता, बन्धुत्व और स्वातंत्र्य है। सबसे अन्त में हमारे कर्मचारीगण हैं, पर इस अन्तिम रूप में लेने से उनका महत्व कम नहीं हो जाता है, उन्होंने बड़ा कठिन परिश्रम किया है; हममें से कई व्यक्तियों से अधिक मेहनत का कार्य इन्होंने किया है; उन्होंने सवेरे से अर्द्धरात्रि तक कार्य किया है। कुछ दोषों के होते हुए भी यह एक अद्भुत और सुन्दर संविधान है और हमें इसका गौरव होना चाहिये। अब मैं इसके कुछ दोषों पर विचार प्रकट करूंगा। केवल दो ही दोष हैं।

(इस समय अध्यक्ष ने घंटी बजाई।)

श्रीमान, कम से कम एक के बारे में तो मुझे कह लेने दीजिये।

(फिर घंटी बजाई गई।)

माननीय अध्यक्ष महोदय ने अपना भाषण समाप्त कर देने का मुझे आदेश दिया है। मैं अब और अधिक नहीं कहूंगा पर फिर भी मैं यह कहूंगा कि यह एक सर्वोत्तम संविधान है। इसमें दो दोष हैं जो उल्लेखनीय हैं पर उनका उल्लेख करना मैं नहीं चाहता हूं।

***श्री कमलेश्वरी प्रसाद यादव** (बिहार: जनरल): माननीय अध्यक्ष महोदय, इस संविधान के सम्बन्ध में कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि इस संविधान में क्या रखा है। यह तो केवल एक फेन्टास्टिक मिक्सचर ऑफ कान्स्टिट्यूशन्स ऑफ दी वर्ल्ड है। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कौन-सा ऐसा कान्स्टिट्यूशन बनाया है तो उसमें तरह तरह की हर एक देश की अच्छी अच्छी चीज़ों को नहीं रखा है। ठीक उसी तरह से हमने हमें जो जो अच्छी चीजें मालूम हुई उनको इसमें चुन-चुन कर रखा है। इसमें खूबियां भरी पड़ी हैं। हमारा देश आज एक और भाषा एक है। एबोलिशन ऑफ अनटचेबिलिटी—मानव मानव में जो अस्पृश्यता जैसी जघन्य चीज़ हमारे देश में मौजूद थीं, उसका आज खात्मा हुआ, इसके लिये हमें आज बहुत खुशी है। हमारे यहां अडल्ट सफरेज़ अर्थात् बालिग मताधिकार जो है उसके सम्बन्ध में जैसा आस्ट्रेलिया, कनाडा और अन्य देशों में है उससे बहुत ऊंचे हम उठे हैं। नागरिकता के सम्बन्ध में भी वही चीज़ है और पंडित जवाहरलाल नेहरू के नायकत्व में जो हमने अपने देश को सेकुलर स्टेट रखा है वहां भी हमने अपना बहुत ऊंचा आदर्श रखा है एक समय था जब जापान की तरफ सारा एशिया देखा करता था आज भी एक समय है जब हिन्दुस्तान की तरफ सारे एशिया की नज़र लगी हुई है कि हिन्दुस्तान जाति, धर्म, भाषा और राष्ट्रीयता—किसी चीज का पक्षपात करता है या नहीं। इसकी तरफ एक टक से देख रहा है कि हम कितना ज़्यादा ऊंचे उठ रहे हैं।

त्रुटियों के सम्बन्ध में हमें सबसे पहली चीज़ जो खटकती है वह विश्वबंध बापू के सम्बन्ध में—जिन्होंने हमें रास्ता दिखाया, चलना सिखाया, अपने सांचे में

ढाला, सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। जिन्होंने हमें कुर्बानियां करना सिखाया। जिनके कारण हम आज स्वतंत्र हैं, जिनकी वजह से हम इस संविधान सभा में आये अब संविधान पास करने हम जा रहे हैं और उसको सारे देश में लागू करने जा रहे हैं। कितना दुखद है कि इसके सम्बन्ध हमने उनकी चर्चा तक नहीं की। उसके बाद जो छोटे सूबे और जिनकी आमदनी कम है उनमें लेजिसलेटिव कौंसिल नहीं रहना चाहिये। उन सूबों में जहां आमदनी कम है, मेरी समझ में नहीं आता कि वहां लेजिस्लेटिव कौन्सिल क्यों रखा गया है। बिहार हम लोगों ने विधायिका सभा में एकमत से इसे पास किया था कि वहां लेजिसलेटिव कौन्सिल न हो परन्तु वह एक मत से स्वीकृत निर्णय यहां आकर पलट गया। वहां बड़े-बड़े विद्वान और एक्सपर्टस के रखने का जो ख्याल है उस चीज़ के लिये हम लोग दूसरा प्राविजन कर सकते थे किन्तु हम लोगों ने ऐसा नहीं किया। हम लोग उन्हें निश्चित अवधि के लिये नामजद कर सकते थे जिसमें वे अपना विचार दे सकते थे और वाद-विवाद कर सकते थे। जिसमें वे अपना विचार दे सकते थे और वाद-विवाद कर सकते थे। सिर्फ उन्हें वोट देने का हक नहीं होता। हम ने डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स जो दिये हैं अपने संविधान में उसमें 40 से 51 तक जो धारायें हैं सब में 'endeavour to' की झड़ी लगी हुई है। ऊपर से देखने से बहुत सुन्दर मालूम होता है। शहरी है पर आत्मा नहीं। मेरी समझ में आता है कि जब हम कोई काम करते हैं या टालना चाहते हैं तो हम आधे मन से कह दिया करते हैं कि "मैं कोशिश करूंगा।" मुझे ऐसा लगता है कि यही है यहां पर "endeavour to" इसी तरह अध्यक्ष जी, शराब के सम्बन्ध में हमने जैसा, रखना चाहा था वैसा नहीं रखा। गौवध भी हमने पूरी तरह से नहीं रोका। 340 धारा में पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध में जो एक कमीशन बनाने की बात है वह विधान लागू होने के छह महीने के अन्दर बन जाना चाहिये। क्योंकि यह समस्या बहुत गम्भीर है। जब तक सभी समान स्तर पर नहीं आयेंगे देश की उन्नति नहीं हो सकती। उसके बाद मैं कहना चाहता हूं कि प्रान्तीयता की भावना आज बहुत जोर पकड़ रही है और बड़े-बड़े एवं उन्नत प्रान्त छोटे प्रान्तों के हिस्सों को निगल जाना चाहते हैं। इसके सम्बन्ध में मिसाल मैं बिहार की देना चाहता हूं कि वहां के खनिजों का सब मुनाफा बम्बई और कलकत्ता चला जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस संविधान सभा के पिछले कार्य की ओर ध्यान देने से यह विदित होता है कि जब यह प्रथम बार 9 दिसम्बर 1946 को समवेत हुई थी उस समय से अब तक दो वर्ष ग्यारह महीने और सत्रह दिन हुये हैं। इस समय में संविधान सभा के कुल सत्रह सत्र हुये। इन सत्रह सत्रों में से प्रथम छः सत्र लक्ष्यमूलक संकल्प पारित करने और मूलाधिकार विषयक, संघ संविधान विषयक, संघ की शक्तियों की, प्रान्तीय संविधान विषयक, अल्पसंख्यक-वर्ग विषयक तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों विषयक समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार करने में लगे। सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें सत्रों में संविधान के मसौदे पर विचार हुआ। संविधान सभा के इन ग्यारह सत्रों में 165

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दिन लगे। इनमें से सभा ने 114 दिन संविधान के मसौदे पर विचार करने में लगाये।

मसौदा समिति का निर्वाचन संविधान सभा ने 29 अगस्त 1947 को किया था। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई। 30 अस्त से उसकी बैठक 141 दिनों तक हुई और इस समय में वह संविधान का मसौदा तैयार करने में लगी रही। मसौदा समिति के लिये कार्य करने के लिये संविधानिक परामर्शदाता द्वारा तैयार किये गये संविधान के मूल मसौदे में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। मसौदा समिति द्वारा जिस रूप में संविधान का प्रथम मसौदा संविधान सभा में उपस्थित किया गया था उसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। विचार-स्थिति के समाप्त होने पर संविधान के मसौदे में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई। अपने अन्तिम रूप में संविधान के मसौदे में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। संविधान के मसौदे पर भेजे गये कुल संशोधनों की संख्या लगभग 7635 थी। इनमें से सभा में पेश किये गये संशोधनों की संख्या 2473 थी।

इन तथ्यों का मैंने इसलिये वर्णन किया है कि एक स्थिति ऐसी आ गई थी जब यह कहा जाता था कि कार्य समाप्त करने में सभा ने बहुत अधिक समय ले लिया, वह आराम से चल रही है और लोक-धन का अपव्यय कर रही है। 'गांव में आग लग रही है और कहार नाचने में मस्त हैं, की कहावत चरितार्थ हो रही है, कहा जाता था। क्या यह शिकायत किसी रूप में भी न्याययुक्त है? आइये हम उस समय पर विचार करें जो अन्य देशों की संविधान सभाओं ने अपना संविधान बनाने में लगाया। इनके कुछ उदाहरण लीजिये। अमरीका का सम्मेलन 25 मई 1787 को हुआ और 17 सितम्बर 1787 में उसने अपना कार्य समाप्त कर दिया—अर्थात् चार माह में कनाडा का संविधान सम्बन्धी सम्मेलन में 10 अक्तूबर 1864 को हुआ और दो वर्ष पांच माह लगाते हुये मार्च 1867 वह संविधान विधि के रूप में पारित हुआ। आस्ट्रेलिया का संविधान सम्बन्धी सम्मेलन मार्च 1891 में हुआ और नौ साल बाद 9 जुलाई 1900 में संविधान ने विधि का रूप धारण किया। दक्षिणी अफ्रीका का सम्मेलन अक्तूबर 1908 में हुआ और एक वर्ष के बाद 20 सितम्बर 1909 को संविधान ने विधि का रूप लिया। यह सच है कि अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका के सम्मेलनों ने जितना समय लिया हमने उससे अधिक समय लिया है। पर कनाडा ने जितना समय लिया उससे अधिक समय हमने नहीं लिया है और आस्ट्रेलिया से तो बहुत ही कम समय लिया है। इस कार्य में व्यतीत किये गये समय के आधार पर तुलना करने में दो बातें याद रखनी चाहिये। एक यह कि अमरीका, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के संविधान हमारे संविधान से बहुत छोटे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद

हैं और अमरीका निवासियों ने सात अनुच्छेद रखे हैं जिनमें से प्रथम चार को धाराओं में बांटा गया है जिनकी कुल संख्या 21 है, कनाडा के संविधान में 147, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 और दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में 159 धारायें हैं। दूसरी बात यह याद रखनी है कि अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों के निर्माताओं को संशोधनों की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। उनको पेश किया हुआ मान लिया गया। इसके विपरीत इस संविधान सभा को 2473 संशोधन पर विचार करना पड़ा। इन तथ्यों पर ध्यान देते हुये देर लगाने का दोषारोपण मुझे निराधार प्रतीत होता है बल्कि इतने महान और जटिल कार्य को इतने अल्प समय में पूरा करने के लिये इस संविधान सभा को चाहिये कि वह अपने आपको बधाई दे।

मसौदा समिति द्वारा दिये गये कार्य की पूर्णतया निन्दा करना श्री नजीरुद्दीन अहमद ने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। उनकी सम्मति में मसौदा समिति द्वारा किया गया कार्य केवल प्रशंसा न करने के योग्य ही नहीं वरन् वह निश्चित रूप से जिस स्तर का होना चाहिये उस स्तर से निम्न श्रेणी का है। मसौदा समिति द्वारा किये गये कार्य के बारे में अपनी राय कायम करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है और अपनी राय कायम करने के लिये श्री नजीरुद्दीन अहमद का स्वागत है। श्री नजीरुद्दीन अहमद समझते हैं कि मसौदा समिति के किसी भी व्यक्ति की उपेक्षा उनमें बुद्धिबल अधिक है। मसौदा समिति उनके इस दावे पर आपत्ति करना नहीं चाहती है। इसके विपरीत यदि सभा उनको मसौदा समिति में नियुक्त किये जाने के योग्य समझती तो मसौदा समिति उन्हें अपने में पाकर उनका स्वागत करती। यदि संविधान के निर्माण करने में उन्हें कोई स्थान नहीं मिला तो निश्चय ही इसमें मसौदा समिति का कोई दोष नहीं है।

यह स्पष्ट है कि मसौदा समिति के प्रति अपनी घृणा प्रकट करने के लिये श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने उसका नया नाम गढ़ा है। वह विषयान्तर करने वाली समिति है। श्री नजीरुद्दीन अहमद अवश्य ही अपनी इस सूझ से प्रसन्न होंगे। पर वे यह नहीं जानते हैं कि कौशल सहित विषयान्तर करने और कौशल रहित विषयान्तर करने में अन्तर है। यदि मसौदा समिति ने विषयान्तर किया तो वह परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं किया। उसने अकस्मात् मछली पकड़ने के लिये बंसी नहीं फैंकी। वह जिस मछली के पीछे थे उसे प्राप्त करने के लिए उसने परिचित जलाशयों में खोज की। किसी अच्छी वस्तु की खोज में लगना विषयान्तर करने जैसी बात नहीं है। यद्यपि श्री नजीरुद्दीन अहमद का इस बात को मसौदा समिति की प्रशंसा के रूप में कहने का आशय न था पर मैं इसे मसौदा समिति की प्रशंसा के रूप में स्वीकार करता हूं। मसौदा समिति ने जिन संशोधनों को दोषयुक्त समझा उनको वापस करने की और उनके

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

स्थान में जो उसने अच्छे समझे उन्हें रखने की हिम्मत और सच्चाई यदि न दिखाई होती तो उस पर कर्त्तव्य पालन न करने तथा झूठी मान मर्यादा की भावना रखने का भारी दोष लगता। यदि कोई गलती हुई तो मुझे प्रसन्नता है कि मसौदा समिति ने उन गलतियों को मानने में आनाकानी नहीं की और उनको सुधारने में वह अग्रसर हुई।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि सिवा एक सदस्य के मसौदा समिति द्वारा किये गये कार्य के प्रति संविधान सभा के सदस्यों ने सामान्यतया प्रशंसात्मक भाव प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि मसौदा समिति इस यथार्थ अभिस्वीकरण को देखकर प्रसन्न होगी जो इतने उदार शब्दों में प्रकट किया गया है। इस सभा के सदस्यों द्वारा तथा मसौदा समिति के मेरे सहयोगियों द्वारा मुझ पर जो बधाइयों की वर्षा की गई है उसके कारण मैं प्रसन्नता से इतना ओत प्रोत हो गया हूं कि उनके प्रति पूर्णतया अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मुझे शब्द ही नहीं मिलते। संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के स्वार्थों की रक्षा कराने के अतिरिक्त मैं अन्य किसी महानतर आकांक्षा को लेकर नहीं आया था। मुझे स्वप्न में भी यह विचार नहीं हुआ था कि मुझे और भी बड़े-बड़े प्रकार्यों को हाथ में लेने के लिये आमंत्रित किया जायेगा। इस कारण जब सभा ने मुझे मसौदा समिति में निमंत्रित किया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और जब मुझे मसौदा समिति का सभापति चुना गया तो मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ। मसौदा समिति में मुझसे बड़े, मुझसे अच्छे और मुझसे अधिक सक्षम व्यक्ति विद्यमान थे जैसे कि मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर। संविधान सभा और मसौदा समिति का मैं कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझ में इतना विश्वास तथा भरोसा किया तथा मुझे अपना एक साधन बनाया और देश की सेवा करने का मुझे यह अवसर दिया (*हर्ष ध्वनि*)।

जो श्रेय मुझे दिया गया है उसका वास्तव में मैं अधिकारी नहीं हूं। उसके अधिकारी श्री बी.एन. राउ भी हैं जो इस संविधान के संविधानिक परामर्शदाता हैं और जिन्होंने मसौदा समिति के विचारार्थ संविधान का एक मोटे रूप में मसौदा बनाया। कुछ श्रेय मसौदा समिति के सदस्यों को मिलना चाहिये जिन्होंने जैसा कि मैं कह चुका हूं, 141 दिन तक बैठक की और उनके नये सूत्र खोजने के कौशल के बिना तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति सहनशील तथा विचारपूर्ण सामर्थ्य के बिना इस संविधान बनाने का कार्य इतनी सफलतापूर्वक समाप्त न हो पाता। सबसे अधिक श्रेय इस संविधान के मुख्य मसौदा लेखक श्री एस.एन. मुकर्जी को है। बहुत ही जटिल प्रस्थापनाओं को सरल से सरल तथा स्पष्ट से स्पष्ट वैध भाषा में रखने की उनकी योग्यता की बराबरी कठिनाई से की जा सकती है और न कठिन परिश्रम करने की उनकी सामर्थ्य की तुलना की जा सकती है। इस सभा

के लिये वे एक देन स्वरूप थे। यदि उनकी सहायता न मिलती तो इस संविधान को अन्तिम स्वरूप देने में इस सभा को कई और वर्ष लगते। श्री मुकर्जी के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों को भूल नहीं जाना चाहिये। क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्होंने कितना कठिन परिश्रम किया है, और किस प्रकार उन्होंने कभी-कभी आधी रात के बाद तक भी काम किया है। उनके श्रम और सहयोग के लिये मैं उन सबको धन्यवाद देता हूं (*हर्ष ध्वनि*)।

मसौदा समिति का कार्य बहुत ही कठिन हो जाता यदि यह संविधान सभा विभिन्न विचार वाले व्यक्तियों का एक समुदाय मात्र होती, एक उखड़े हुए फर्श के समान होती जिसमें कहीं एक काला पत्थर होता तो कहीं सफेद और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति या प्रत्येक समुदाय स्वयं अपने को विधिवेत्ता समझता। सिवा उपद्रव के और कुछ नहीं होता। सभा में कांग्रेस पक्ष की उपस्थिति ने इस उपद्रव की संभावना को पूर्णतया मिटा दिया और इसके कारण कार्यवाहियों में व्यवस्था और अनुशासन दोनों बने रहे। कांग्रेस पक्ष के अनुशासन के कारण ही मसौदा समिति यह निश्चित रूप में जानकर कि प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक संशोधन का क्या भाग्य होगा इस संविधान का संचालन कर सकीं। अतः इस सभा में संविधान के मसौदे के शान्त संचालन के लिये कांग्रेस पक्ष ही श्रेय की अधिकारी है।

यदि इस पक्ष के अनुशासन को सब लोग मान लेते तो संविधान सभा की कार्यवाही बड़ी नीरस हो जाती। यदि पक्ष के अनुशासन का कठोरता से पालन किया जाता तो यह सभा 'जी हजूरों' की सभा बन जाती। सौभाग्यवश कुछ द्रोही थे। श्री कामत, डॉ. पी.एस. देशमुख, श्री सिंधवा, प्रो. सक्सेना और पंडित ठाकुरदास भार्गव थे। इनके साथ-साथ मुझे प्रो. के.टी. शाह, और पंडित ह्रदयनाथ कुंजरू का भी उल्लेख करना चाहिए। जो प्रश्न उन्होंने उठाए वे बड़े सिद्धान्तपूर्ण थे उनके सुझावों को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार नहीं था इस बात से उनके सुझावों का मूल्य कम नहीं होता और न उनकी इस सेवा में कोई कमी आती है जो उन्होंने इस सभा की कार्यवाहियों को रोचक बनाने में की है। मैं उनका कृतज्ञ हूं। यदि वे न होते तो मुझे वह अवसर नहीं मिलता जो मुझे इस संविधान में निहित सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए मिला और जो इस संविधान के पारित करने के यंत्रवत कार्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था।

अन्त में अध्यक्ष महोदय मुझे आपको धन्यवाद देना चाहिये कि आपने बड़ी कुशल रीति से इस सभा की कार्यवाहियों का संचालन किया। जिन लोगों ने इस सभा की कार्यवाहियों में भाग लिया है वे उस उदारता और सहृदयता को नहीं भूल सकते हैं जो आपने इस सभा के सदस्यों के साथ प्रदर्शित की। ऐसे अवसर आये जबकि केवल पारिभाषिक आधार पर मसौदा समिति के संशोधनों को रोकने का प्रयास किया गया। मेरे लिये वे बड़े चिन्तापूर्ण क्षण थे। मैं आपका इस बात के लिये बड़ा कृतज्ञ हूं कि आपने विधिवाद की संविधान निर्माण कार्य पर विजय नहीं होने दी।

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

इस संविधान की जितनी भी प्रति रक्षा की जा सकती थी उतनी प्रतिरक्षा मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने की है। अत: इस संविधान के गुणों के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि संविधान चाहे जितना भी अच्छा हो यदि उसे कार्यान्वित करने वाले लोग बुरे हैं तो वह निस्संदेह बुरा हो जाता है। संविधान का क्रियाकरण पूर्णतया संविधान के प्रकार पर निर्भर नहीं करता है। संविधान केवल विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे अंगों के लिये व्यवस्था कर सकता है। राज्य के इन अंगों का क्रियाकरण जिन पर निर्भर करता है वह जनता और उसके द्वारा स्थापित किये गये राजनैतिक पक्ष है जो उसकी इच्छा और नीति पालन करने के साधन होते हैं। यह कौन कह सकता है कि भारत की जनता और उसके पक्ष किस प्रकार का व्यवहार करेंगे? क्या वे अपने प्रयोजनों को सिद्ध करने में संविधानिक साधनों को काम में लेंगे या वे क्रांतिकारी साधनों को अधिमान देंगे? यदि वे क्रांतिकारी साधन अपनाते हैं तो चाहे संविधान कितना ही अच्छा हो यह कहने के लिये किसी देवदूत की आवश्यकता नहीं है कि वह असफल होगा। अत: इस संविधान पर बिना इस निर्देश के कि जनता और पक्ष किस प्रकार की प्रवृत्ति दिखायेंगे कोई निर्णय देना व्यर्थ है।

इस संविधान की निन्दा अधिकतर दो क्षेत्रों से की जाती है साम्यवादी पक्ष द्वारा और समाजवादी पक्ष द्वारा वे क्यों इस संविधान की निन्दा करते हैं? क्या इस लिये कि यह संविधान वास्तव में खराब है? मैं यह कहने का साहस करता हूं कि 'नहीं हैं।' साम्यवादी पक्ष श्रमिकों की तानाशाही के सिद्धान्त पर आधृत संविधान चाहते हैं वे संविधान की इस कारण निन्दा करते हैं कि यह संसदीय लोकतंत्र पर आधृत है। समाजवादी दो बातें चाहते हैं। पहली बात जो वे चाहते हैं वह यह है कि यदि उनके हाथ में शक्ति आ जायेगी तो बिना प्रतिकर दिये सारी निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण करने या समाजीकरण करने की स्वतन्त्रता संविधान द्वारा उन्हें मिलनी चाहिये। दूसरी बात समाजवादी यह चाहते हैं कि संविधान में वर्णित मूलाधिकार निरपेक्ष तथा बिना किसी परिसीमा के होने चाहिये जिससे कि यदि उनके पक्ष के हाथ में शक्ति आ जाये तो उन्हें आलोचना करने के लिये ही नहीं वरन् राज्य को उलटने तक के लिये भी पूरी पूरी आजादी मिल जाये।

ये ही मुख्य बातें हैं जिनके आधार पर इस संविधान की निन्दा की जाती है। मैं यह नहीं कहता हूं कि संसदीय लोकतन्त्र का सिद्धान्त ही राजनैतिक लोकतन्त्र का आदर्श स्वरूप है। मैं यह नहीं कहता हूं कि बिना प्रतिकर सम्पत्ति अर्जन न करने का सिद्धान्त इतना पवित्र है कि इसकी अवहेलना ही नहीं की जा सकती मैं यह नहीं कहता हूं कि मूलाधिकार कभी निरपेक्ष नहीं हो सकता है और उन पर जो परिसीमा लगाई गई है उनको कभी नहीं उठाया जा सकता है। हां, मैं यह अवश्य कहता हूं कि इस संविधान में जो सिद्धान्त निहित हैं वे इस वर्तमान पीढ़ी के विचार हैं और यदि आप इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति समझें तो

मैं यह कहूंगा कि ये संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। तो फिर इनको संविधान में निहित करने के लिये मसौदा समिति को दोष क्यों? और फिर मैं तो यह कहता हूं संविधान सभा के सदस्यों को भी दोष क्यों? महान अमरीका निवासी राजनीतिज्ञ जेफ़रसन ने, जिसने अमरीका के संविधान निर्माण कार्य में प्रमुख कार्य किया, कुछ बड़े गम्भीर विचार व्यक्त किये हैं जिनकी उपेक्षा संविधान बनाने वाले कभी नहीं कर सकते हैं। एक स्थल पर उन्होंने कहा है:—

"बहुमत की इच्छा से अपने आपको किसी बन्धन में डालने के लिये एक विशिष्ट राष्ट्र के रूप में हम प्रत्येक पीढ़ी को, मान सकते हैं पर वर्तमान पीढ़ी किसी भी अनुवर्त्ती पीढ़ी को, किसी अन्य देश के निवासियों से अधिक, बन्धन में नहीं बांध सकती है।"

एक और अन्य स्थल पर उन्होंने कहा है:

"राष्ट्र के उपयोग के लिये स्थापित संस्थाओं को उनके उद्देश्यों के अनुरूप बनाने तक के लिये भी न छुआ जा सकता है और न उनमें रूप भेद किया जा सकता है क्योंकि जनता के लिये न्यास के रूप में उनके प्रबन्ध करने के लिये जो व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं उनमें अधिकार निष्कारण मान लिये जाते हैं; यह विचार सम्भव है कि एक शासक के दुरुपयोग से बचने के लिये कल्याणकारी हों, पर स्वयं राष्ट्र के लिये ये बड़े मूर्खतापूर्ण हैं। फिर भी हमारे वकील और पुजारी इसी सिद्धान्त का प्रचार करते हैं, और मान लीजिये कि पूर्ववर्त्ती पीढ़ी का आधार हमसे अधिक सुदृढ़ था, उसे हम पर विधियों के आरोपण करने का अधिकार था जो हमारे लिये अपरिवर्त्तनीय है और उसी प्रकार से हम भावी पीढ़ियों के लिये विधि बना सकें और उनपर भार डाल सकें जिनमें परिवर्तन करने का उन्हें अधिकार न हो तो ठीक है यह संसार मृतकों का है और जीवन जीवन नहीं है।"

मैं निवेदन करता हूं कि जेफरसन ने जो कुछ कहा है वह केवल सत्य ही नहीं वरन् परम सत्य है। इस पर कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। जेफरसन द्वारा निर्धारित इस सिद्धान्त का यदि संविधान सभा पालन न करती तो वह अवश्य ही दोष ही का नहीं वरन् निन्दा तक का पात्र होती। पर मैं पूछता हूं कि क्या वह दोष का पात्र है? बिलकुल नहीं। इसके लिये केवल संविधान के संशोधन सम्बन्धी उपबन्धों का ही परिक्षण करना है। जनता को संविधान में संशोधन करने का अधिकार न देकर, जैसा कि कनाडा में है, या संविधान के संशोधन को असाधारण निबन्धों और शर्त्तों की पूर्त्ति के अधीन रखकर, जैसाकि अमरीका और आस्ट्रेलिया में है, सभा ने इस संविधान पर अपनी अन्तिम अच्युतता की मुहर लगाने का काम करने से अपने आपको रोका ही नहीं वरन् इस संविधान के संशोधन करने की एक बड़ी ही सुविधाजनक प्रक्रिया उपबन्धित की है। इस संविधान के किसी भी आलोचक को मैं यह चुनौती देता हूं कि वह यह सिद्ध करे कि संसार में कहीं भी किसी संविधान सभा ने, उन परिस्थितियों में जिनमें यह देश फंसा हुआ है,

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संविधान के संशोधन के लिये इतनी सुविधाजनक प्रक्रिया उपबन्धित की हो। जो लोग इस संविधान से असन्तुष्ट हैं उन्हें केवल दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और यदि वे वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित संसद् में दो-तिहाई बहुमत भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं तो यह नहीं समझा जा सकता है। कि जन साधारण उनके असंतोष में उनका साथ दे रहा है।

संविधानिक अर्थ की केवल एक ही बात है जिसका मैं निर्देश करना चाहता हूं। इस बात की बड़ी शिकायत की गई है कि केन्द्रीयकरण बहुत अधिक है और राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी कर दी गई है। यह स्पष्ट है कि यह विचार केवल अतिशयोक्ति ही नहीं है बल्कि यह इस बात के प्रति मिथ्याधारणा पर भी आधृत हैं कि संविधान यथार्थ रूप में किन किन बातों के लिये प्रयास करता है। केन्द्र और राज्यों में परस्पर सम्बन्ध के विषय में उस मूलाधिकार का ध्यान में रखना आवश्यक है जिसपर यह सम्बन्ध निर्भर करता है। फेडरल शासन पद्धति का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि विधायी और कार्यपालिका प्राधिकार का विभाजन केन्द्र और राज्यों में केन्द्र द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा नहीं होता वरन् स्वयं संविधान द्वारा किया जाता है। यही यह संविधान करता है। हमारे संविधान के अधीन राज्य अपने विधायी और कार्यपालिका अधिकार के लिये किसी प्रकार से भी केन्द्र पर आश्रित नहीं हैं। इस विषय में केन्द्र और राज्यों की स्थिति समान है। यह अनुभव करना कठिन है कि ऐसे संविधान को केन्द्रवादी किस प्रकार कहा जा सकता है। यह हो सकता है कि विधायी तथा कार्यपालिका प्राधिकार के प्रवर्तन के लिये केन्द्र को जितना क्षेत्र किसी अन्य फेडरल संविधान में दिया गया है उससे अधिक क्षेत्र का संविधान में दिया गया हो। यह हो सकता है कि अवाशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दे दी गई हों और राज्यों को न दी गई हों। पर फेडरल शासन पद्धति की मुख्य बातें ये नहीं हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं फेडरल शासन पद्धति की मुख्य बात यह है कि संविधान द्वारा केन्द्र और एककों में विधायी तथा कार्यपालिका प्राधिकार का विभाजन हो। यह सिद्धान्त हमारे संविधान में निहित है। इसमें कोई भ्रम हो ही नहीं सकता। अतः यह कहना गलत है कि राज्य केन्द्र के अधीन रख दिये गये हैं। केन्द्र अपनी स्वेच्छा से उस विभाजन में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है। न न्यायपालिका कर सकती है। यह ठीक ही कहा गया है:

> "न्यायालय रूप भेद कर सकते हैं पर वे एक के स्थान में दूसरी बात नहीं रह सकते हैं। नये तर्कों के रूप में वे पहले निर्वचनों का पुनरीक्षण कर सकते हैं, नये दृष्टिकोण उपस्थित किये जाते हैं, सीमा तक दशाओं में वे विभाजन-पंक्ति को इधर-उधर कर सकते हैं, पर कुछ ऐसे अवरोध हैं जिनको वे पार नहीं कर सकते, निश्चित रूप से सौंपी हुई शक्तियों का वे पुनर्वटन नहीं कर सकते। वर्तमान शक्तियों की वे एक व्यापक रूप योजना दे सकते

हैं, पर किसी प्राधिकार को स्पष्ट रूप में दी गई शक्ति को वे किसी अन्य प्राधिकार को नहीं सौंप सकते हैं।"

अत: केन्द्रीयकरण के सम्बन्ध में लगाया गया प्रथम अभियोग जो फेडरेशन को निर्मूल करता है सिद्ध नहीं होगा।

दूसरा अभियोग यह है कि केन्द्र को राज्यों पर अतिक्रमण करने का अधिकार दिया गया है। इस अभियोग को स्वीकार कर लेना चाहिये। पर इन अतिक्रमणकारी शक्तियों के होने के कारण इस संविधान की निन्दा करने से पूर्व कुछ बातों पर ध्यान देना चाहिये। पहली बात यह है कि ये अतिक्रमणकारी शक्तियां इस संविधान का शान्तिकालीन रूप नहीं है। उनका प्रयोग और प्रवर्तन स्पष्ट रूप से केवल आपात के लिये ही सीमित है। दूसरी बात यह है: क्या हम आपात हो जाने पर केन्द्र को अतिक्रमणकारी शक्ति देने का वर्जन कर सकते थे? जो लोग आपात में भी केन्द्र को इन आक्रमणकारी शक्तियों के देने के औचित्य को स्वीकार नहीं करते हैं वे, ऐसा प्रतीत होता है कि, इस विषय के मूल में जो समस्या है उसका स्पष्ट ज्ञान नहीं रखते हैं। "दी राउन्ड टेबुल" प्रसिद्ध पत्रिका के दिसम्बर 1935 के अंक में एक लेखक ने इस समस्या को स्पष्ट रूप में दिया है और उसके निम्नलिखित उद्धरण को उद्धृत करने के लिये मुझे क्षमायाचना की आवश्यकता नहीं है। लेखक कहता है:

"राजनैतिक पद्धतियां, अन्तत: इस प्रश्न पर निर्भर करती हुई कि किस के प्रति या किस प्राधिकारी में नागरिक निष्ठा रखे, अधिकार और कर्तव्य की एक गुत्थी है। शान्तिकाल में यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता क्योंकि विधि सरलतापूर्वक क्रियान्वित होती रहती है और व्यक्ति कुछ विषयों में एक प्राधिकारी की और कुछ में किसी अन्य प्राधिकारी की आज्ञा पालन करता हुआ अपना कार्य करता चला जाता है। पर संकटकाल में हो सकता है कि प्राधिकार विषयक दावों में संघर्ष हो जाये और उस समय यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत: निष्ठा का विभाजन नहीं हो सकता है। निष्ठा का यह वाद हेतु इस अन्तिम रूप में किसी न्याय-मण्डल के विधि-निर्वचन द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता है। विधि को तथ्य के अनूरूप होना चाहिये और यही विधि का दोष है। जब इन सब बातों को दूर कर दिया जाता है तो केवल यह प्रश्न रह जाता है कि कौन प्राधिकारी नागरिक की अवशिष्ठ निष्ठा का अधिकारी है। केन्द्र अधिकारी है या संघटक राज्य?"

इस समस्या का हल इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है जो इस समस्या पर सारभूत प्रश्न है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता है कि जनता के एक विशाल भाग की सम्मति के अनुसार आपातकाल में नागरिक की अवशिष्ठ राज्य भक्ति केन्द्र के प्रति होनी चाहिये न कि संघटक राज्य के प्रति। क्योंकि केन्द्र ही सार्वजनिक लक्ष्य के लिये तथा समूचे देश के सामान्य हित के लिये प्रयत्नशील

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हो सकता है। आपातकाल में प्रयोग करने के लिये केन्द्र को कुछ अतिक्रमणकरी शक्तियां देने के पक्ष में यह प्रमाण है। और फिर इन आपात शक्तियों द्वारा संघटक राज्यों पर क्या आभार डाले जाते हैं? इससे अधिक और कुछ नहीं कि आपात में अपने स्थानीय हितों के साथ साथ समूचे राष्ट्र की सम्मति और हितों का भी विचार किया जाये। केवल वे ही लोग इसके प्रति शिकायत कर सकते हैं जिन्होंने इस समस्या को समझा नहीं है।

यहां मैं अपना भाषण समाप्त कर देता। पर मेरा मस्तिष्क अपने देश के भविष्य विषयक विचारों से इतना परिपूर्ण है कि मैं यह अनुभव करता हूं कि इस अवसर पर इस विषय पर मैं अपने विचारों को व्यक्त करूं। 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतन्त्र देश होगा (*हर्षध्वनि*) उसकी स्वाधीनता का क्या परिणाम होगा? क्या वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा या उसको फिर खो देगा? मेरे मन में सर्वप्रथम यह विचार आता है। यह बात नहीं कि भारत कभी स्वाधीन न रहा हो। बात यह है कि एक बार वह पाई हुई स्वाधीनता को खो चुका है। क्या वह दुबारा भी उसे खो देगा? यही वह विचार है जिसके विषय में भविष्य के प्रति मैं बहुत चिन्तित हूं। जो तथ्य मुझे बहुत परेशान करता है वह यह है कि भारत ने पहले एक बार अपनी स्वाधीनता खोई ही नहीं वरन् अपने ही कुछ लोगों की कृतघ्नता तथा फूट के कारण वह स्वाधीनता आई गई हुई। मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध पर आक्रमण करते समय दाहर राजा के सेनापति ने मुहम्मद बिन कासिम के अभिकर्त्ताओं से घूंस ले ली और अपने राजा की ओर से युद्ध करने से मना कर दिया। वह जयचन्द था जिसने मुहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने और पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये निमन्त्रण दिया और अपनी तथा सोलंकी राजाओं की सहायता का बचन दिया। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिये युद्ध कर रहा था उस समय अन्य मरहठा सरदार और राजपूत राजा मुगल बादशाओं की ओर से युद्ध कर रहे थे। जब अंग्रेज सिख शासकों को मिटाने में लगे हुए थे, सिखों का मुख्य सेनापति गुलाब सिंह चुपचाप बैठा रहा और सिख राजय को बचाने में सहायता न की। 1857 में जब भारत के एक विशाल भाग ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वाधीनता के संग्राम की घोषणा की तो मूक दर्शकों की भांति सिख खड़े खड़े तमाशा देखते रहे।

क्या इसी इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? इस विचार से मैं चिन्तित हूं। इस तथ्य के कारण, कि जाति और मत मतान्तर के रूप में हमारे प्राचीन दुश्मनों के साथ साथ हम विरोधी राजनैतिक मत मतान्तर के आधार पर कई राजनैतिक पक्ष बनाते चले जा रहे हैं, यह चिन्ता और भी अधिक उग्ररूप धारण कर लेती है। क्या भारतीय मत मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानेंगे या देश को मत मतान्तरों से श्रेष्ठ मानेंगे? मैं इस बात को नहीं मानता हूं। पर यह सत्य है कि यदि ये पक्ष मत

मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानते हैं तो हमारी स्वाधीनता फिर संकट में पड़ जायेगी और संभवतः सदैव के लिए हाथ से जाती रहेगी। इस संकट से हम सबको दृढ़ होकर रक्षा करनी चाहिये। अपने खून की अन्तिम बूंदों से अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए हमें दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिये। (*हर्ष ध्वनि*)।

26 जनवरी 1950 को भारत एक लोकतंत्रात्मक देश होगा। इसका यह अर्थ है कि उस दिन से भारत में जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार होगी। वही विचार फिर मेरे मष्तिष्क में आता है। उसके इस लोकतन्त्रात्मक संविधान का क्या होगा? क्या वह इसकी रक्षा कर सकेगा या इसको फिर खो देगा। यह दूसरा विचार है जो मेरे मन में उत्पन्न होता है और मुझे पहले विचार की भाँति व्यथित करता है।

यह बात नहीं कि भारत लोकतन्त्र को जानता ही न था। एक समय था जब भारत गणराज्यों से सुसज्जित था और जहां राजा थे वहां भी या तो वे निर्वाचित होते थे या उनके अधिकार सीमित रहते थे। उनको परमाधिकार प्राप्त न थे। यह बात नहीं है कि भारत संसद या संसदीय प्रक्रिया से परिचित न था। बौद्ध भिक्षु-संघ के अध्ययन से विदित होता है कि केवल संसद ही नहीं थी—संघ संसद के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते थे—वरन् आधुनिक युग में संसदीय प्रक्रिया के जितने भी नियम हैं उन सबसे ये संघ परिचित थे। उनके यहां बैठने के प्रबन्ध सम्बन्धी नियम, प्रस्तावों, संकल्पों, गणपूर्ति, उन्मोधक, मतगणना, शलाका द्वारा मतदान, अविश्वास-प्रस्ताव, व्यवस्था, पहले निर्णय हुए अभियोग इत्यादि सम्बन्धी नियम थे। यद्यपि बुद्ध इन नियमों को संघ की बैठकों में लागू करते थे, पर उन्होंने इन नियमों को देश की तत्कालीन राजनैतिक सभाओं में प्रचलित नियमों में से लिया होगा।

भारत से यह लोकतंत्रात्मक व्यवस्था मिट गई। क्या वह फिर इस व्यवस्था को मिटा देगा? मैं नहीं जानता। पर भारत जैसे देश में, जहां लोकतंत्र के एक दीर्घ काल से अप्रयुक्त रहने से यह एक नई सी वस्तु समझी जाती है, संभवतया लोकतन्त्र के स्थान में तानाशाही के होने का संकट वर्तमान है। यह बहुत कुछ संभव है कि यह नवजात लोकतंत्र अपना स्वरूप बनाये रखे पर वास्तव में अपने स्थान में तानाशाही की स्थापना कर दे। यदि कोई दुर्घटना होती है तो दूसरी संभावना के साकार होने की अधिक आशा है।

यदि हम लोकतंत्र को केवल रूप में ही नहीं वरन् यथार्थ में बनाये रखना चाहते हैं तो हमें क्या करना चाहिये? मेरे विचारानुसार सबसे पहले हमें यह करना चाहिये कि अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हम संविधानिक रीतियों को दृढ़ता पूर्वक अपनायें। इसका अर्थ यह है कि क्रान्ति की निर्मम रीतियों का हम परित्याग करें इसका अर्थ यह है कि सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह की रीति का हम परित्याग करें। आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जब कोई मार्ग न रहे तब तो इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बहुत कुछ रूप में न्यायपूर्ण हो सकता है। पर जब संविधानिक रीतियों का मार्ग खुला हुआ है कि इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना कभी न्यायसंगत नहीं हो सकता है। ये रीतियां अराजकता के सूत्रपात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जितना शीघ्र इनका परित्याग किया जाये उतना ही हमारे लिये अच्छा है।

दूसरी बात जो हमें करनी है वह यह है कि हम उस सावधानी को बरतें को जोन स्टूआर्ट मिल ने उन सबको बरतने के लिये कहा है जो लोकतन्त्र को बनाये रखने में रुचि रखते हैं, वह यह है कि "किसी भी महान व्यक्ति के चरणों में अपने स्वातन्त्र्य को चढ़ा न दें या उसे वे शक्तियां न सौंपे जो उसे उन्हीं की संस्थाओं को मिटाने की शक्ति दे।" महान व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने जीवन पर्यन्त देश की सेवा की हो, कृतज्ञ होने में कोई बुराई नहीं है। पर कृतज्ञता की भी सीमा है। आयरलैंड के देशभक्त डोनियल ओं कोनैल ने उस विषय में यह ठीक ही कहा है अपने सम्मान को खोकर कोई पुरुष कृतज्ञ नहीं हो सकता, अपने सतित्व को खोकर कोई स्त्री कृतज्ञ नहीं हो सकती, और अपने स्वातन्त्र्य को खो कर कोई राष्ट्र कृतज्ञ नहीं हो सकता। किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत के लिये यह चेतावनी अधिक आवश्यक है। क्योंकि भारत में भक्ति या जिसे भक्ति मार्ग या वीर पूजा कहा जाता है उसका भारत की राजनीति में इतना महत्वपूर्ण स्थान है जितना किसी अन्य देश की राजनीति में नहीं है। धर्म में भक्ति आत्म-मोक्ष का मार्ग हो सकता है। पर राजनीति में भक्ति या वीर पूजा पतन तथा अन्ततः तानाशाही का एक निश्चित मार्ग है।

तीसरा काम जो हमें करना है वह यह है कि केवल राजनैतिक लोकतन्त्र से ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। अपने राजनैतिक लोकतन्त्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप भी देना चाहिये। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से है जो स्वातंत्र्य, समता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में अभिज्ञात करता है। स्वातन्त्र्य, समता और बन्धुत्व के इन सिद्धान्तों को इन तीनों के एक संयुक्त रूप से पृथक पृथक मदों के रूप में नहीं समझनी चाहिये। इन तीनों को मिलकर एक इस प्रकार का संयुक्त रूप बनता है कि एक का दूसरे से विच्छेद करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विफल करना है। स्वातन्त्र्य को समता से पृथक नहीं किया जा सकता, समता को स्वातन्त्र्य से पृथक नहीं किया जा सकता। और न स्वातन्त्र्य या समता को ही बन्धुत्व से पृथक किया जा सकता है। समता विहीन स्वातन्त्र्य से कुछ व्यक्तियों की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता का प्रादुर्भाव होगा। स्वातन्त्र्य विहीन समता व्यक्तिगत उपक्रम का ह्रास करेगा। बन्धुत्व के बिना स्वातन्त्र्य और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते। उनको प्रवत्त करने के लिये सिपाही की आवश्यकता है। यह तथ्य स्वीकार करते हुये हमें कार्यारम्भ करना चाहिये कि भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतया अभाव है। इनमें से एक समता है। सामाजिक स्तर पर हमारे

भारत में हमारा एक ऐसा समाज है जो क्रमानुसार निश्चित असमता के सिद्धान्त पर आश्रित है जिसका अर्थ कुछ व्यक्तियों की उन्नति और कुछ का पतन है। आर्थिक स्तर पर हमारा एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास अतुल सम्पत्ति है और कुछ ऐसे हैं जो निरी निर्धनता में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी 1950 को हम विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। राजनैतिक जीवन में हम समता का व्यवहार करेंगे और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमता का। राजनीति में हम एक व्यक्ति के लिये एक मत और एक मत का एक ही मूल्य के सिद्धान्त को मानेंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में अपनी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण एक व्यक्ति का एक ही मूल्य के सिद्धान्त का हम खंडन करते रहेंगे। इन विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन को हम कब तक बिताते चले जायेंगे? यदि हम इसका बहुत काल तक खंडन करते रहेंगे तो हम अपनी राजनैतिक लोकतन्त्र को सकट में डाल देंगे। हमें इस विरोध को यथासंभव शीघ्र ही मिटा देना चाहिये अन्यथा जो असमता से पीड़ित हैं वे लोग इस राजनैतिक लोकतन्त्र की उस रचना का विध्वंस कर देंगे जिसका निर्माण इस सभा ने इतने परिश्रम के साथ किया है।

एक दूसरी वस्तु जिसका हमारे यहां अभाव है वह बन्धुत्व के सिद्धान्त का अभिस्वीकरण है। बन्धुत्व से क्या अभिप्राय है? बन्धुत्व से अभिप्राय समस्त भारतवासियों के भाईचारे की भावना से है—यदि भारतवासी सब एक हैं तो। यह वह सिद्धान्त है जो सामाजिक जीवन को एकता तथा दृढ़ता प्रदान करता है। इसका प्राप्त करना कठिन है। यह कितना कठिन है इसका अनुमान जेम्स ब्राइस की उस कहानी से लगाया जा सकता है जिसका जिक्र उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में अमरीका कामनवेल्थ विषय पर अपनी एक कृति में किया है वह कहानी यह है—मैं स्वयं ब्राइस के शब्दों में इसे कहना चाहता हूं:—

> "कुछ वर्ष पूर्व अमरीका का प्रोटेस्टेन्ट एपिस्कोपल गिरजाघर अपने द्विवार्षिक सम्मेलन में अपनी पूजा की पद्धति के पुनरीक्षण में संलग्न था। यह वांछनीय समझा गया कि छोटे-छोटे वाक्यों की प्रार्थनाओं में एक प्रार्थना समस्त जनता के लिये भी पुर:स्थापित की जाये और एक प्रसिद्ध नये इंग्लैंड के पुजारी ने ये शब्द प्रस्थापित किये 'हे ईश्वर' हमारे राष्ट्र को आशीर्वाद दे। दोपहर बाद तत्क्षण स्वीकार करने के पश्चात इस वाक्य को दूसरे दिन पुनर्विचार के लिये प्रस्तुत किया गया और उस समय जन साधारण ने इस शब्द 'राष्ट्र' पर राष्ट्रीय एकता के बहुत ही अधिक निश्चित अभिस्वीकरण के रूप में अर्थ लगाते हुये इतनी आपत्तियाँ उठाई कि उस शब्द को छोड़ना पड़ा और ये शब्द रखने पड़े 'ऐ ईश्वर इन संयुक्त राज्यों को आशीर्वाद दीजिये।"

संयुक्त राज्य अमरीका में उस समय जब यह घटना हुई थी। इतना कम ऐक्यभाव था कि अमरीका के लोग यह नहीं समझते थे कि उनका एक राष्ट्र है। यदि

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संयुक्त राज्य अमरीका के लोग यह नहीं सोच सकते थे कि उनका एक राष्ट्र है तो भारतवासियों के लिये यह सोचना कितना कठिन है कि उनका एक राष्ट्र है। मुझे वे दिन याद हैं जब कि राजनीति में दखल रखने वाले भारतवासी "भारत की जनता" शब्दों पर आक्रोश प्रकट करते थे। वे "भारतीय राष्ट्र" शब्दों को अधिक चाहते थे। मेरी यह सम्मति है कि इस बात में विश्वास करके कि हमारा एक राष्ट्र है हम एक बड़े मायाजाल में अपने आपको डाल रहे हैं। हजारों जातियों में बंटी हुई जनता किस प्रकार एक राष्ट्र हो सकती है? जितना शीघ्र हम यह अनुभव कर लें कि अभी हम राष्ट्र शब्द के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थ में राष्ट्र नहीं है उतना ही हमारे लिये लाभदायक होगा। क्योंकि यह अनुभव कर लेने पर ही हम एक राष्ट्र बनाने की आवश्यकता का अनुभव करेंगे और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग और साधनों के बारे में गंभीर विचार करेंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति बहुत कठिन है—संयुक्त राज्य अमरीका में जितना कठिन थी उससे कहीं अधिक कठिन है। संयुक्त राज्य अमरीका में जाति-समस्या न थी। भारत में जातियां हैं। ये जातियां राष्ट्रीयता की विरोधिनी है। सर्व प्रथम इस कारण कि ये सामाजिक जीवन में पार्थक्य प्रस्तुत करती हैं। ये इस कारण भी राष्ट्रीयता की विरोधिनी हैं कि परस्पर जातियों में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न करती हैं। परन्तु यदि हम वास्तव में एक राष्ट्र के रूप में होना चाहते हैं तो हमें इन सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना है। क्यों बन्धुत्व तभी सत्य हो सकता है जब कि एक राष्ट्र हो। बन्धुत्व के बिना समता और स्वातन्त्र्य की जड़ उतनी ही गहरी हो सकेगी जितनी रंग की सतह की जड़ होती है।

जो कार्य हमारे सामने हैं उसके बारे में मेरे ये विचार हैं। कुछ लोगों को अच्छे न लगें। पर इस बात का विरोध नहीं किया जा सकता। कि इस देश में राजनैतिक शक्ति एक दीर्घ काल से चन्द लोगों के अधिकार में ही रही है और अधिकांश लोग केवल भारवाही पशु ही नहीं वरन् बलि-पशु तक रहे हैं और हैं। इस एकाधिकार ने उन्हें केवल अपनी दशा सुधारने के अवसर से ही वंचित नहीं रखा वरन् इसने उनमें से उस तत्व तक को निचोड़ लिया जिसको जीवन का महत्व कहा जा सकता है। ये पद्दलित वर्ग शासित होने से परेशान हैं। वे स्वयं अपने पर शासन करने के लिये बेचैन हैं। पद्दलित वर्गों में इस स्वानुभूति की प्रेरणा को वर्ग-संघर्ष या वर्ग-युद्ध का रूप ग्रहण नहीं करने देना चाहिये। इससे सभा में विभाजन हो जायेगा। वह दिवस वास्तव में प्रलय दिवस होगा। क्योंकि जैसा अब्राहम लिन्कन ने ठीक ही कहा है कि जिस सभा में ही स्वयं मतभेद हो वह अधिक काल तक नहीं टिक सकती। अत: उनकी आकांक्षाओं की जितनी शीघ्र पूर्ति की जायेगी उतनी ही अधिक चन्द व्यक्तियों की, देश की, उसकी स्वाधीनता को बनाये रखने में तथा उसकी लोकतंत्रात्मक रूप रेखा को बनाये रखने

में भलाई है। यह तभी हो सकता है जब कि समता और बन्धुत्व की स्थापना जीवन के सब अंगों में हो। इसी कारण मैंने इन पर इतना जोर दिया है।

सभी को मैं और अधिक कष्ट देना नहीं चाहता हूं। इसमें सन्देह नहीं कि स्वाधीनता हर्ष का विषय है। पर हम यह न भूल जायें कि स्वाधीनता ने हमारे ऊपर महान उत्तरदायित्व डाल दिये हैं। स्वाधीनता के कारण अब हमारे पास किसी त्रुटि के लिये अंग्रेजों पर दोष डालने का बहाना नहीं रहा। यदि एतत्पश्चात् कोई त्रुटि होती है तो सिवा अपने स्वयं के हम किसी अन्य को दोष नहीं दे सकते हैं। त्रुटियां होने का बड़ा भारी भय है। काल बड़ी तीव्र गति से बदलता चला जा रहा है। जनता जिसमें हमारे देश की जनता भी शामिल है नई विचार धाराओं से प्रभावित हो रही है। जनता द्वारा शासन से वह परेशान होती चली जा रही है। वह जनता के लिये सरकार बनाने के लिये तैयार है और इस बात के प्रति उदासीन है चाहे वह जनता को जनता द्वारा सरकार हो या न हो। यदि हम इस संविधान का रक्षण करना चाहते हैं जिसमें हमने जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है तो हम इस बात का संकल्प करें कि जो बुराइयां हमारे मार्ग में हैं और जिनके कारण जनता के लिये सरकार को जनता द्वारा सरकार से अधिक पसन्द करती है उन बुराइयों को समझने में बिलम्ब न करें और उन बुराइयों को दूर करने के उपक्रम में दौर्बल्य न दिखायें। देश की सेवा करने का यही मार्ग है। इससे अच्छे मार्ग से मैं परिचित नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** सभा कल प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित होगी और उस समय हम डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव पर मत लेंगे।

इसके पश्चात् सभा शनिवार 26 नवम्बर 1949 ई. के प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।

———————

GIPD–HS-247A PSD–9-1-53–320.

Con. 3. XI.12.49
320

अंक 11
संख्या 12

शनिवार
26 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

राज्य सम्बन्धी घोषणा 4231
संविधान का मसौदा–(जारी) 4231–51

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 26 नवम्बर, सन् 1949

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

राज्य सम्बन्धी घोषणा

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि राज्यों की स्थिति के सम्बन्ध में सरदार पटेल को कुछ घोषणा करनी है। प्रस्ताव पर औपचारिक रूप में मत लेने के लिये प्रस्तुत करने से पूर्व मैं उनसे घोषणा करने के लिये निवेदन करूंगा।

***माननीय सरदार बल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बईः जनरल): श्रीमान, मुझे एक संक्षिप्त घोषणा करनी है। जैसा कि माननीय सदस्यों को याद होगा कि नये संविधान के अधीन राज्यों की स्थिति पर 12 अक्टूबर को जो विवरणपूर्ण वक्तव्य मैंने दिया था उसमें मैंने माननीय सदस्यों को उस प्रक्रिया से परिचित कराया था जिसको हमने राज्यों द्वारा इस संविधान की स्वीकृति के सम्बन्ध में विचारा था। मैं प्रसन्नतापूर्वक सभा को यह सूचना देता हूं कि हैदराबाद राज्य के सहित इस संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग ख में उल्लिखित समस्त नौ राज्यों ने 12 अक्टूबर को दिये गये मेरे वक्तव्य में इंगित रीति के अनुसार इस संविधान को स्वीकार करना प्रकट किया है जिसे यह सभा इस समय स्वीकार करने वाली है।

संविधान का मसौदा-(जारी)

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या आप यह उद्घोषणा करने वाले हैं कि आया 'बन्देमातरम्' हमारा राष्ट्रीय गान होगा तथा हमारा राष्ट्रीयगान क्या होना चाहिये।

***अध्यक्षः** इस समय मैं कोई घोषणा नहीं करूंगा। यदि आवश्यक हुआ तो बाद में जब हम जनवरी में समवेत होंगे यह सभा इस विषय पर विचार करेगी।

दो सज्जनों से मुझे संवाद प्राप्त हुये हैं उनमें से एक तो इस सभा के सदस्य थे और दूसरे अब तक सदस्य हैं। पहला संदेश हिज़ एक्सेलेन्सी श्री श्रीप्रकाश जी का है:

"स्वयं राष्ट्र द्वारा निर्मित स्वतंत्रता के अधिकार पत्र को प्रमाणित करते हुये अध्यक्ष की मुहर लगने के इस पवित्र तथा शुभ अवसर पर हार्दिक तथा सम्मानपूर्ण बधाई। हार्दिक प्रार्थना है कि सच्ची सेवा करने के लिये जो अवसर

[अध्यक्ष]

हमें प्राप्त हो रहे हैं उन अवसरों का अपनी इच्छानुकूल उपयोग करते हुये हम स्वतंत्रता के योग्य बनें और इस संविधान में निष्ठा रखें—श्री प्रकाश।"

दूसरा संवाद श्री सच्चिदानन्द सिन्हा का है:

"यदि हो सके तो कृपया मेरा यह संदेश सभा को दे दीजिये। यद्यपि दिसम्बर 1946 में प्रथम अध्यक्ष के रूप में कार्रवाई के उद्घाटन करने का विशेषाधिकार मुझे प्राप्त हुआ था, पर लगातार अस्वस्थ रहने के कारण कल कार्रवाइयों की समाप्ति के समय मैं भाग न ले सकूंगा। मैंने बड़ी रुचि तथा सहानुभूतिपूर्वक इस संविधान निर्माण कार्य को समझा है और यह स्मरण रखते हुये कि इस संसार में न कोई वस्तु पूर्ण है और न हो सकती है या न कोई वस्तु सबको प्रसन्न कर सकती है तथा इन प्रत्यक्ष तथ्यों को भी याद रखते हुये कि जिस क्षेत्र के लिये संविधान बनाया गया है वह एक विशाल क्षेत्र है और उसमें करोड़ों की अपार जनसंख्या है जिसमें अनेक भाषायें हैं और अनेक भिन्न-भिन्न हितों में परस्पर संघर्ष हैं, इस कारण आश्चर्य नहीं कि कई समस्यायें हल ही न हो पाई हों। पर मेरे लिये यह एक बड़ी आश्चर्जनक बात है कि सब विषयों में इतनी एकता तथा पूर्णरूपता आ गई है कि इसके कारण सभा की सद्भावना का उच्चतमरूप प्रदर्शित होता है और एक नीतिवान अध्यक्ष के रूप में आपके लिये भी यह कोई कम प्रशंसा की बात नहीं है। सभा का सबसे प्राचीन सदस्य होने के नाते मैं उस करुणामयी भगवती से प्रार्थना करता हूं कि आपका यह श्रम पूर्ण सफलता से सुशोभित हो और भारत की प्राचीन ऐतिहासिक भूमि राष्ट्रों में पुनः महान तथा यशपूर्ण स्थान ग्रहण करें—सच्चिदानन्द सिन्हा।"

श्री अलगू राय शास्त्री: सभापति जी, इससे पहले कि आप आगे की कार्रवाई करें मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूं वह यह है कि इस विधान का हिन्दी भाषान्तर कब आयेगा और किस रूप में आयेगा। उस दिन मैंने कहा था कि 26 जनवरी से पहले जब हम लोग मिलें तो 2 या 3 दिन का समय लेकर उस भाषान्तर पर समान रूप से वाद-विवाद यहां पर हो जाय और असेम्बली की मोहर उस पर लगा दी जाये। क्या आप मेरी इस विनम्र प्रार्थना पर ध्यान दे रहे हैं? आपको स्मरण होगा कि आपने स्वयं यह कहा था कि हमारे राष्ट्र का विधान हमारी राष्ट्र भाषा में बनाया जायेगा मगर अब तक आपने कोई निश्चित बात इस सम्बन्ध में घोषित नहीं की है। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में कोई घोषणा कर देनी चाहिये। हम यहां पर दो तीन रोज बैठकर अपनी राष्ट्रभाषा में विधान को स्वीकार कर सकते हैं। हमको देश की भाषा में उसका विधान पास करना चाहिये। यह भाषा जनता की भाषा नहीं है। कामन-मैन की भाषा नहीं है। इसलिये मैं आपसे यह निवेदन भारत की राष्ट्रीयता के नाम पर और भारत की जनता के नाम पर करना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में आप कोई निश्चित घोषणा आज करें।

अध्यक्ष: आपको मालूम होगा कि इस विधान के अन्दर कई धारायें इस सम्बन्ध की पास की गई हैं जिनमें यह तय किया गया है कि हमारे देश के सरकारी

काम के लिये कौन सी भाषा होगी। इसमें यह भी तय किया गया है कि 15 वर्ष तक हमारा सरकारी काम, अखिल भारतीय सरकारी काम—सब अंग्रेज़ी द्वारा किया जायेगा। और अगर ज़रूरत पड़ेगी और मौका होगा तो हिन्दी को भी स्थान दिया जायेगा। इस वक्त आप हिन्दी में विधान तैयार करके और उसे सारी सभा के सामने रखकर पास करना शायद मुमकिन नहीं होगा। इसके अलावा कान्स्टीटुएन्ट असेम्बली ने खुद एक प्रस्ताव पास किया है जिसमें उसने मुझे आदेश दिया है कि विधान का हिन्दी भाषान्तर मैं 26 जनवरी से पहले प्रकाशित कर दूं। मैं उसका प्रबन्ध कर रहा हूं और 26 जनवरी के पहले वह भाषान्तर प्रकाशित हो जायेगा।

दूसरी भाषाओं में जहां तक हो सकेगा मैं तर्जुमा करके जल्दी से जल्दी प्रकाशित कराऊंगा। इसलिये अब इस वक्त मौका नहीं है कि हम हिन्दी में विधान तैयार करवायें और उस पर यहां बहस करके उसको मंजूर करवायें।

श्री आर.वी. धुलेकर (यू.पी. : जनरल): क्या उस पर हमारे हस्ताक्षर हो सकेंगे जब कि कान्स्टीटुएन्ट असेम्बली उसको यहां पर पास कर देगी?

अध्यक्ष: मैं नहीं जानता कि असेम्बली के सब सदस्य इस बात के लिये तैयार होंगे कि इस भाषान्तर को पास कर दें क्योंकि भाषान्तर के हर एक शब्द को और हर एक जुम्ले को पूरी तरह से विचार करके उसको मंजूर किया जा सकता है। ऐसा करने में शायद उतना ही समय लगेगा जितना कि अंग्रेज़ी में पास करने में लगा है। इसलिये यह बात मुमकिन नहीं मालूम होती है। मगर भाषान्तर तैयार रहेगा।

श्री आर.वी. धुलेकर: मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि 26 जनवरी को सभा द्वारा भाषान्तर पास किया जाये बल्कि यह तय किया जाये कि यह भाषान्तर आज से लागू होगा।

अध्यक्ष: वह भाषान्तर मेरी तरफ से प्रकाशित किया जायेगा। जिसकी जितनी कीमत होगी दुनिया उस पर लगायेगी।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव पर मत लेने से पूर्व मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

एक इतने बड़े महान कार्य को पूरा करने पर मैं इस सभा को बधाई देना चाहता हूं। मेरा प्रयोजन यह नहीं है कि इस सभा ने जो कार्य किया है उसका मैं मूल्य आंकूं अथवा जो संविधान इसने बनाया है उसके गुण और दोषों को बताऊं। इस कार्य को औरों पर तथा आगे आने वाली संतति पर छोड़ने में मुझे संतोष है। मैं केवल उसकी कुछ मुख्य बातें बताने तथा उस रीति को बताने का प्रयास करूंगा जिसका इस संविधान के निर्माण करने में हमने अनुसरण किया है।

ऐसा करने से पूर्व मैं कुछ उन तथ्यों का वर्णन करना चाहूंगा जो इस कार्य की महानता को प्रकट करेंगे जिसको हमने लगभग 3 वर्ष पूर्व हाथों में लिया

[अध्यक्ष]

था। यदि आप उस जनसंख्या का विचार करेंगे जिसका इस सभा को ध्यान रखना पड़ा तो आपको विदित होगा कि वह रूस रहित समस्त यूरोप की जनसंख्या से अधिक है। यह जनसंख्या 31 करोड़ 90 लाख है और रूस रहित यूरोप की जनसंख्या 31 करोड़ 70 लाख है। एक एकात्मक सरकार के अधीन आना तो दूर रहा यूरोप के देश कभी संगठित तक नहीं हो पाये हैं या एक संयुक्त मंडल (कान्फीडरेशन) तक नहीं बना पाये हैं। यहां जनसंख्या और देश के इतने बड़े आकार के होते हुये भी हम एक ऐसा संविधान बनाने में सफल हुए हैं जिसके अन्तर्गत सारा देश और सारी जनसंख्या आ जाती है। आकार के अतिरिक्त और भी कठिनाइयां थीं जो इस समस्या ही के अन्तर्गत थीं। हमारे यहां देश में कई सम्प्रदाय रहते हैं। हमारे यहां देश के भिन्न-भिन्न भागों में कई भाषायें प्रचलित हैं। हमारे यहां और भी अन्य प्रकार की भिन्नतायें हैं जो भिन्न-भिन्न भागों में मनुष्यों को परस्पर विभाजित करती हैं। हमें केवल उन क्षेत्रों के लिये ही उपबन्ध नहीं बनाने पड़े जो शैक्षणिक तथा आर्थिक रूप में उन्नत हैं; हमें जनजातियों जैसे पिछड़े लोगों के लिये भी तथा जनजाति क्षेत्रों के समान पिछड़े क्षेत्रों के लिये भी उपबन्ध बनाने पड़े। साम्प्रदायिक समस्या एक बहुत ही जटिल समस्या थी जो इस देश में एक अरसे से प्रचलित थी। दूसरा गोल-मेज सम्मेलन जिसमें महात्मा गांधी गये थे इसी कारण असफल हुआ कि साम्प्रदायिक समस्या हल न हो सकी। इसके बाद का देश का इतिहास इतना आधुनिक है कि उसके कहने की यहां आवश्यकता नहीं है। पर हम यह जानते हैं कि परिणामस्वरूप देश का विभाजन करना पड़ा और पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर में हमारे देश में से दो भाग निकल गये।

दूसरी महान समस्या देशी राज्यों की समस्या थी। जब अंग्रेज़ भारत में आये तो उन्होंने सारे देश को एकदम एक ही बार नहीं जीता। वे समय समय पर थोड़ा थोड़ा करके उसको लेते चले गये। वे टुकड़े जो उनके प्रत्यक्ष कब्जे तथा नियंत्रण में आ गये ब्रिटिश भारत के नाम से ज्ञात हुये; परन्तु एक बड़ा भाग भारतीय राजाओं के शासन तथा नियंत्रण में रहा। उस समय अंग्रेज़ों ने यह सोचा कि यह उनके लिये आवश्यक तथा लाभदायक नहीं है कि उन राज्य-क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रखें और इस कारण उन्होंने पुराने शासको को अपनी (अंग्रेज़ों की) प्रभुता के अधीन बने रहने दिया। पर उन्होंने उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार की संधियां कीं और सम्बन्ध स्थापित किये। हमारे यहां लगभग छः सौ रियासतें थीं जो भारत के राज्य-क्षेत्र के तिहाई भाग से अधिक भाग को घेरे हुये थीं और जिनमें देश की एक चौथाई जनसंख्या थी। छोटे-छोटे ठिकानों से लेकर मैसूर, हैदराबाद, काश्मीर इत्यादि बड़ी-बड़ी रियासतों तक वे भिन्न-भिन्न आकार प्रकार की थीं। जब अंग्रेज़ों ने इस देश को छोड़ना निश्चित किया तो उन्होंने हमको शक्ति दी, पर इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी घोषणा की, राज्यों से जो संधियां या सम्बन्ध उनके थे वे सब भंग हो गये। वह प्रभुता भी मिट गई जिसका वे इतने काल तक प्रयोग करते रहे और जिससे वे शासकों को व्यवस्थानुसार चला सकते थे। इस समय भारतीय सरकार को इन राज्यों से सुलझने की समस्या का सामना करना पड़ा जिनमें

भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थायें थीं, कुछ राज्यों की सभाओं में लोकप्रिय प्रतिनिधान का कुछ रूप था और कुछ में ऐसी कोई बात न थी और उन पर पूर्णतया स्वतन्त्र शासन था।

इस घोषणा के परिणामस्वरूप कि देशी राजाओं के साथ संधियां और उन पर प्रभुता भंग हो गई थी। किसी राजा या राजाओं के गुट को यह अधिकार मिल गया था कि वे स्वाधीन हो जायें और यहां तक कि किसी विदेशी शक्ति से संधि सम्बन्धी बातचीत भी करें और इस प्रकार इस देश में स्वाधीन राज्य क्षेत्र के भागों की स्थापना हो। यद्यपि भौगोलिक अथवा अन्य ऐसी अनिवार्यतायें अवश्य थी जिनके कारण उन राज्यों में से अधिकांश के लिये यह नितान्त असंभव था कि वे भारत सरकार के विरुद्ध हो सकें पर संविधानिक रूप में ऐसा हो सकता था। अत: आरम्भ में ही उनके प्रतिनिधियों को सभा में लाने के लिये संविधान सभा को उनसे बातचीत करनी पड़ी जिससे कि उनसे परामर्श कर संविधान बनाया जा सके। प्रथम प्रयास में ही सफलता मिली और कुछ रियासतें शुरू ही में इस सभा में आ गईं पर कुछ रियासतें संकोच करती रहीं। यह आवश्यक नहीं है कि उन घटनाओं के गुप्त भेदों को खोला जाये जो उन दिनों परदे की आड़ में हो रही थीं। केवल यह कहना पर्याप्त होगा कि अगस्त 1947 तक जब कि स्वाधीनता अधिनियम प्रवृत्त हुआ लगभग सब रियासतें भारत में प्रवेश कर गईं सिवा दो उल्लेखनीय अपवादों के—उत्तर में काश्मीर और दक्षिण में हैदराबाद। काश्मीर ने तुरन्त ही अन्य राज्यों के उदाहरण का अनुसरण किया और प्रविष्ट हो गया। हैदराबाद सहित सब रियासतों से आगे कार्रवाई न करने (स्टैन्डस्टिल) के करार हुये और हैदराबाद की स्थिति पूर्ववत बनी रही। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया यह स्पष्ट होता गया कि छोटे-छोटे राज्यों के लिये अपनी पृथक स्वाधीन सत्ता रखना किसी प्रकार संभव नहीं था अत: भारत में सम्मिलित होने का कार्य आरम्भ हुआ। कुछ समय में केवल छोटी-छोटी रियासतें ही भारत के किसी न किसी प्रान्त से मिलकर एक नहीं हो गई वरन् कुछ बड़ी बड़ी रियासतें भी मिल गईं। बहुत सी रियासतों ने अपने संघ बना लिये और ये संघ भारतीय संघ के भाग बन गये हैं। यह कहना चाहिये कि रियासतों की जनता और शासकों को श्रेय प्राप्त है और सरदार पटेल के बुद्धिमत्तापूर्ण तथा दूरदर्शी पथप्रदर्शन के अधीन राज्य मंत्रालय के लिये भी यह कम श्रेय की बात नहीं है कि अब जब कि हम यह संविधान पारित कर रहे हैं रियासतों की स्थिति न्युनाधिक रूप में वही है जो कि प्रान्तों की है और देशी रियासतों और प्रान्तों के सहित सबका हम इस संविधान में राज्यों के रूप में वर्णन कर सके हैं। जो घोषणा सरदार पटेल ने अभी की है उससे स्थिति बहुत स्पष्ट हो गई है, और अब इस नये संविधान में रियासतों और प्रान्तों में वह अन्तर नहीं है जो पहले था।

इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य को पूरा करने में हमें तीन वर्ष लगे हैं, पर जब हम, जो काम पूरा हो चुका है उस पर और जो दिन इस संविधान के बनाने में हमने लगाये हैं उनकी संख्या पर, विचार करें—इसका विवरण कल डॉ. अम्बेडकर

[अध्यक्ष]

ने दिया था—तो जो समय हमने व्यतीत किया है उसके प्रति खेद करने के लिये कोई कारण नहीं मिल सकता है।

इसके कारण राज्यों की वह समस्या, जो न सुलझने वाली प्रतीत होती थी, और साम्प्रदायिक समस्या हल हो गई। जो बात गोल मेज सम्मेलन में न सुलझने वाली सिद्ध हुई थी और जिसके परिणाम स्वरूप देश का विभाजन हुआ वह सब सम्बद्ध पक्षों की सम्मति से हल कर ली गई है और यह कार्य भी माननीय सरदार पटेल के बुद्धिमतापूर्ण मार्गदर्शन के अधीन हुआ।

आरम्भ में हम पृथक निर्वाचक मंडलों से छुटकारा पा चुके थे जिन्होंने हमारे राजनैतिक जीवन को इतने वर्षों तक विषमय बना दिया था, पर उन सम्प्रदायों के लिये, जो पृथक निर्वाचक मंडलों का पहले उपभोग करते रहे थे स्थानों का रक्षण स्वीकार करना पड़ा और यह उनकी जनसंख्या के आधार पर है न कि जैसा 1919 के अधिनियम में और 1935 के अधिनियम में किया गया था कि उनको तत्कथित उन ऐतिहासिक तथा अन्य श्रेष्ठताओं के आधार पर अतिरिक्त प्रतिनिधान दिया गया था जिसका कुछ सम्प्रदाय दावा करते थे। यह केवल इसी कारण हो सका है कि संविधान जल्दी पारित नहीं हो पाया और इस समय में सम्बद्ध सम्प्रदायों ने स्थानरक्षण को भी छोड़ दिया अतः हमारे संविधान में साम्प्रदायिक आधार पर स्थानों के रक्षण की व्यवस्था नहीं है वरन् हमारी जनसंख्या में केवल दो प्रकार के लोगों के लिये रक्षण रखा गया है, अर्थात् दलित जातियां जो हिन्दू हैं और जनजाति के लोग जो शिक्षा तथा अन्य बातों में पिछड़े हुये हैं।

जिन बातों पर खर्च हुआ है यदि आप उन बातों पर विचार करें तो जो खर्च सभा ने अपने तीन वर्ष के जीवन में किया है वह बहुत अधिक नहीं है। मैं समझता हूं कि 22 नवम्बर तक 63,96,729 रुपया खर्च में आया है।

संविधान के सम्बन्ध में जिस रीति को संविधान सभा ने अपनाया वह यह थी कि सर्वप्रथम 'विचारणीय बातें' निर्धारित की जो कि लक्ष्य मूलक संकल्प के रूप में थीं जिसको एक ओजस्वी भाषण द्वारा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया था और जो अब हमारे संविधान की प्रस्तावना है। इसके बाद संविधानिक समस्याओं के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिये कई समितियां नियुक्त कीं। डॉ. अम्बेडकर ने इन समितियों के नामों का वर्णन किया था। इनमें से कई समितियों के सभापति या तो पंडित जवाहरलाल नेहरू होते थे या सरदार पटेल अतः इस प्रकार हमारे संविधान की मूलभूत बातों का श्रेय इन्हीं को है। मुझे केवल यही कहना है कि इन सब समितियों ने उचित और ठीक रीति से कार्य किया और अपने अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिन पर सभा ने विचार किया और उनकी सिफारिशों को उन आधारों के रूप में ग्रहण किया गया जिन पर संविधान का मसौदा तैयार किया गया था। यह कार्य श्री बी.एन. राउ ने किया जिन्होंने अपने

इस कार्य में अन्य देशों के संविधानों के पूर्ण ज्ञान और इस देश की दशा के व्यापक ज्ञान तथा अपने प्रशासी ज्ञान का भी पुट दिया। इसके बाद सभा ने मसौदा समिति नियुक्त की जिसने श्री बी.एन. राउ द्वारा निर्मित मूल मसौदे पर विचार किया और संविधान का मसौदा बनाया जिस पर द्वितीय पठन की स्थिति में इस सभा ने विस्तार पूर्वक विचार किया। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने बताया था 7635 से कम संशोधन नहीं थे जिनमें से 2473 संशोधन पेश किये गये। मैं केवल यह सिद्ध करने के लिये यह कह रहा हूं कि केवल मसौदा समिति के सदस्य ही इस संविधान पर दत्तचित होकर अपना ध्यान नहीं दे रहे थे वरन् अन्य सदस्य भी सचेष्ठ थे ओर मसौदे की पूर्णरूप से जांच परख कर रहे थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मसौदे में केवल प्रत्येक अनुच्छेद पर ही नहीं वरन् लगभग प्रत्येक वाक्य पर और कभी-कभी तो प्रत्येक अनुच्छेद के प्रत्येक शब्द पर हमें विचार करना पड़ा। माननीय सदस्यों को यह जान कर खुशी होगी कि इस कार्यवाई में जनता बड़ी दिलचस्पी ले रही थी और मुझे यह विदित हुआ है कि जितने समय तक संविधान विचाराधीन रहा उस समय मैं 53,000 दर्शकों को दर्शक गैलरी में जाने दिया गया। परिणाम यह हुआ कि संविधान के मसौदे का आकार बढ़ गया और जब यह पारित हुआ तो श्री बी.एन. राउ के मूल मसौदे के 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियों के स्थान में उसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हो गईं। मैं उस शिकायत को कोई महत्व नहीं देता हूं जो कभी कभी इस रूप में की जाती थी कि यह संविधान बहुत विशाल हो गया है। यदि उपबन्धों पर भली प्रकार से विचार कर लिया गया है तो इस बृहदाकर से हमारे चित्त की स्थिर वृत्ति में कोई विध्न नहीं पड़ना चाहिये।

अब हमें इस संविधान की मुख्य बातों पर विचार करना है। सबसे पहला प्रश्न यह है और इस पर वाद-विवाद हो चुका है कि यह संविधान किस श्रेणी का है। मैं स्वयं उस श्रेणी को कोई महत्व नहीं देता हूं जो इस संविधान को दी जायेगी—चाहे आप उसे फेडरल संविधान कहें या एकात्मक शासन तंत्र का संविधान कहें या और कुछ कहें। जब तक संविधान हमारे प्रयोजनों की पूर्ति करता है तब तक इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हमारे लिये यह कोई बन्धन नहीं है कि हम एक ऐसा संविधान रखें जो संसार के संविधानों की ज्ञात श्रेणियों के पूर्णतया अनुरूप हो। हमें अपने देश के इतिहास के कुछ तथ्यों को लेना पड़ेगा और इतिहास के तथ्यों जैसी इन वास्तविकताओं का इस संविधान पर कोई कम प्रभाव नहीं पड़ा है।

आप सबको यह विदित है कि 1930 के गोल-मेज सम्मेलन तक भारत में पूर्णतया एकात्मक शासन व्यवस्था थी और प्रांतों को जो कुछ भी शक्तियां थी वे भारत सरकार से प्राप्त होती थीं। प्रथम बार फेडरेशन का प्रश्न व्यावहारिक रूप में उठा जिसके अन्तर्गत केवल प्रान्त ही नहीं रखे गये वरन् उन अनेक रियासतों को भी रखा जो उस समय वर्तमान थी। 1935 के संविधान में एक फेडरेशन की व्यवस्था की गई जिसमें सम्मिलित होने के लिये दोनों भारत के प्रान्तों और

[अध्यक्ष]

रियासतों से कहा गया। पर उस संविधान का फेडरल भाग प्रवर्त्तन में नहीं आ सका क्योंकि बहुत समय तक बातचीत करने पर भी ये बातें निश्चित न हो सकीं जिनके अनुसार शासक सम्मिलित होने के लिये सहमत हो सकते थे और जब युद्ध छिड़ गया तो संविधान के उस भाग का निराकरण करना पड़ा।

वर्तमान संविधान में लगभग उन सब रियासतों को जो हमारी भौगोलिक सीमाओं के भीतर हैं प्रविष्ट ही नहीं कराया गया है वरन् उनमें से अधिकांश को पूर्ण एकक के रूप में भारत में मिला दिया गया है, और जिस रूप में यह संविधान है इसमें जहां तक राज्य के विभिन्न एककों का सम्बन्ध है पहले जो प्रान्त थे और जो देशी रियासतें थी उनके आधार पर प्रशासन और शक्ति विभाजन के विषय में कोई अन्तर नहीं रखा गया है। न्यूनाधिक रूप में उनकी स्थिति अब समान वही है और कुछ समय बीतने पर जो कुछ थोड़ा सा अन्तर इस समय है वह भी मिट जायेगा। अतः जहां तक संविधान की श्रेणी का सम्बन्ध है हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

सबसे पहला और अति स्पष्ट तथ्य जो किसी भी पर्यवेक्षक का ध्यान आकर्षित करेगा वह यह है कि हम एक गणराज्य बना रहे हैं। भारत में प्राचीन काल में गणराज्य थे, पर यह व्यवस्था 2000 वर्ष पूर्व थी इससे भी अधिक समय पूर्व थी और वे गणराज्य बहुत छोटे-छोटे थे। जिस गणराज्य की हम अब स्थापना कर रहे हैं उस गणराज्य जैसा गणराज्य हमारे यहां कभी नहीं था, यद्यपि उन दिनों में भी और मुगल काल में भी ऐसे साम्रान्य थे जो देश के विशाल भागों पर छाये हुये थे। इस गणराज्य का राष्ट्रपति एक निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। हमारे यहां ऐसे बड़े राज्य का निर्वाचित मुखिया कभी नहीं हुआ जिसके अन्तर्गत भारत का इतना बड़ा क्षेत्र आ जाता है। और यह प्रथम बार ही हुआ है कि देश के तुच्छ से तुच्छ और निम्न से निम्न नागरिक को भी यह अधिकार मिल गया है कि वह इस महान राज्य के राष्ट्रपति या मुखिया के योग्य हो और बने जो आज संसार के विशालतम राज्यों में गिना जाता है। यह कोई छोटा विषय नहीं है। चूंकि हमारे यहां निर्वाचित राष्ट्रपति होगा कुछ ऐसी कुछ ऐसी समस्यायें खड़ी हो गई हैं जो बड़ी जटिल प्रकार की हैं। हमने राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था की है। हमने निर्वाचित विधान मंडल की व्यवस्था की है जिसको सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त होंगे। अमरीका में विधान-मंडल और राष्ट्रपति दोनों का निर्वाचन होता है और वहां दोनों को न्यूनाधिक रूप से समान शक्तियां होती हैं—प्रत्येक को अपने अपने क्षेत्र में, राष्ट्रपति को कार्यपालिका क्षेत्र में और विधान-मंडल को विधायी क्षेत्र में।

हमने विचार किया कि हम अमरीका का आदर्श ग्रहण करें या ब्रिटिश आदर्श जहां राजा वंशानुगत होता है और वह समस्त आदर और शक्ति का स्रोत है, पर जो वास्तव में किसी शक्ति का उपभोग नहीं करता। सब शक्तियां विधान-मंडल में निहित होती हैं और मंत्री विधान-मंडल के ही प्रति उत्तरदायी होते हैं। हमें

एक निर्वाचित राष्ट्रपति की स्थिति का एक निर्वाचित विधान-मंडल से मेल बिठाना था और ऐसा करने में हमने राष्ट्रपति के लिये न्यूनाधिक रूप में ब्रिटेन के बादशाह की स्थिति को अपनाया है। यह संतोषजनक हो या न हो। कुछ लोग सोचते हैं कि राष्ट्रपति को बहुत अधिक शक्तियां दे दी गई हैं; कुछ लोग सोचते हैं कि निर्वाचित राष्ट्रपति होने के कारण उसे जो शक्तियां दी गई हैं उनसे अधिक शक्तियां होनी चाहिये।

यदि आप इस विषय की ओर उस निर्वाचक-मंडल के दृष्टिकोण से ध्यान दें जो संसद् का निर्वाचन करता हैं और जो राष्ट्रपति का निर्वाचन करता है तो आपको विदित होगा कि देश की लगभग पूरी की पूरी वयस्क जनसंख्या संसद् के निर्वाचन करने में भाग लेती है और केवल भारत की इस संसद के सदस्य ही नहीं वरन् राज्यों की विधान सभाओं के सदस्य भी राष्ट्रपति के निर्वाचन करने में भाग लेते हैं। अतः परिणाम यह निकलता है कि संसद और विधान सभाओं का निर्वाचन देश की समूची वयस्क जनसंख्या द्वारा किया जाता है और राष्ट्रपति का निर्वाचन उन प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है जो समस्त जनसंख्या का दो बार प्रतिनिधान करते हैं—एक बार राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में और दूसरी बार देश की केन्द्रीय संसद में उसके प्रतिनिधि के रूप में। यद्यपि राष्ट्रपति का निर्वाचन उसी निर्वाचक-मंडल द्वारा किया जाता है जो केन्द्रीय और राज्य के विधान-मंडलों का निर्वाचन करता है परन्तु उसकी स्थिति एक संविधानिक राष्ट्रपति की स्थिति जैसी है।

इसके बाद हम मंत्रियों पर आते हैं। वे वास्तव में विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी हैं और राष्ट्रपति को मंत्रणा देंगे और राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक है कि उस मंत्रणा के अनुसार कार्य करे। जहां तक मैं जानता हूं यद्यपि स्वयं इस संविधान में ऐसे विशिष्ट उपबन्ध नहीं हैं जो राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करने के लिये बाध्य करते हों पर यह आशा की जाती है कि उस परम्परा को इस देश में भी स्थापित किया जायेगा जिसके अधीन इंग्लैंड का बादशाह सदैव अपने मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार चलता है और संविधान में लिखित शब्द के कारण नहीं वरन् इस कल्याणकारी परम्परा के फलस्वरूप राष्ट्रपति सब विषयों में एक संविधानिक राष्ट्रपति होगा।

केन्द्रीय विधान-मंडल में लोक सभा और राज्य-परिषद नाम से ज्ञात दो सदन होंगे जो मिलकर भारत की संसद का गठन करेंगे। सब प्रान्तों में जिनको अब राज्य कहा जायेगा हम विधान सभा रखेंगे सिवा उनके जिनका अनुसूची 1 के भाग ग और घ में वर्णन है, पर प्रत्येक राज्य में द्वितीय सदन नहीं होगा। कुछ प्रान्तों में, जिनके प्रतिनिधियों ने यह अनुभव किया कि उनके लिये द्वितीय सदन अपेक्षित हैं, द्वितीय सदन के लिये व्यवस्था कर दी गई है। परन्तु संविधान में एक ऐसा भी उपबन्ध है कि यदि कोई प्रान्त ऐसे द्वितीय सदन को बनाये रखना नहीं चाहता है या यदि कोई प्रान्त जिसमें द्वितीय सदन नहीं है वह द्वितीय सदन

[अध्यक्ष]

चाहता है तो यह इच्छा विधान-मंडल द्वारा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से और विधान सभा के कुछ सदस्यों के बहुमत से प्रकट करनी होगी। अत: यद्यपि कुछ राज्यों के लिये द्वितीय सदनों की व्यवस्था करते हुये भी हमने उनको सरलता से मिटाने या सरलता से स्थापित करने की भी व्यवस्था संविधान में इस प्रकार का संशोधन करके की है और यह संशोधन कोई संविधानिक संशोधन नहीं है वरन् एक साधारण संसदीय विधान का विषय है।

हमने वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की है जिसके द्वारा प्रान्तों में विधान-सभाओं और केन्द्र में लोक सभा का निर्वाचन होगा। यह हमने एक बहुत बड़ा-कदम उठाया है यह केवल इस कारण ही बड़ा कदम नहीं है कि हमारा वर्त्तमान निर्वाचक-मंडल एक बहुत ही छोटा निर्वाचक-मंडल है और वह अधिकतर संपति-अर्हता पर आश्रित है; पर वह इस कारण भी बड़ा कदम है कि उसके अन्तर्गत एक बहुत बड़ी संख्या हो जाती है। हमारी जनसंख्या यदि अधिक नहीं तो लगभग 32 करोड़ है और मतदाताओं की सूचियां जो कि प्रान्तों में बनाई जा रही हैं उनके बनाने में जो अनुभव हमें हुआ उससे यह विदित हुआ है कि मोटे रूप में वयस्क जनसंख्या 50 प्रतिशत है और इस आधार से हमारी सूचियों में 16 करोड़ से कम मतदाता नहीं होंगे। इतनी बड़ी संख्या में मतदाताओं द्वारा निर्वाचन को संगठित करने का कार्य बहुत बड़ा कार्य है और ऐसा अन्य कोई देश नहीं है जहां इतने बड़े परिमाण में कभी निर्वाचन हुआ हो।

इस संबंध में मैं आपके सामने कुछ तथ्यों का वर्णन करूंगा। मोटे रूप में यह अनुमान लगाया गया है कि प्रांतों में की विधान सभाओं में 3800 सदस्यों से अधिक सदस्य होंगे और जिनका निर्वाचन उतने ही निर्वाचक क्षेत्रों में से या शायद कुछ कम क्षेत्रों में से होगा और फिर लोक सभा के लिये लगभग 500 सदस्य होंगे और राज्य-परिषद् के लिये लगभग 220 सदस्य। इस प्रकार हमें 4500 से अधिक सदस्यों के लिये निर्वाचन की व्यवस्था करनी होगी और देश को लगभग 4000 निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित करना होगा। एक दिन मनोविनोद के रूप में मैं यह अनुमान लगा रहा था कि हमारी निर्वाचक सूची का क्या आकार प्रकार होगा। यदि आप फूल्स्केप नाप के एक पृष्ठ पर 40 नाम छापें तो सब मतदाताओं के नाम छापने के लिये हमें फूल्स्केप नाप के 20 लाख पृष्ठों की आवश्यकता होगी और यदि आप इन सबकी एक प्रति बनायें तो उस प्रति की मुटाई लगभग 200 गज़ होगी। केवल इसी एक बात से हमें यह अनुमान हो जाता है कि यह कार्य कितना विशाल है और इन सूचियों को अन्तिम रूप देने, निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन करने, मतदान करने के स्थलों को नियत करने और अन्य उन प्रबन्धों को करने में कितना काम बढ़ जाता है और यह सब अब से लेकर 1950-51 के शीत काल तक हो जाना चाहिये जिस समय के लिये यह आशा की जाती है कि निर्वाचन होंगे।

कुछ लोगों ने इस बात के प्रति संदेह किया है कि वयस्क मताधिकार बुद्धिमानी की बात होगी। यद्यपि मैं इसे एक ऐसे प्रयोग के रूप में देख रहा हूं जिसके परिणाम के सम्बन्ध में आज कोई भी व्यक्ति भविष्यवाणी नहीं कर सकता है पर मैं इससे आश्चर्य चकित नहीं हुआ हूं। मैं एक ग्रामीण व्यक्ति हूं और यद्यपि अपने कार्य के कारण मुझे बहुत अधिक समय तक नगरों में रहना पड़ा है परन्तु मेरी जड़ अब भी वहीं है। अत: मैं उन ग्रामीण व्यक्तियों से परिचित हूं जो इस महान निर्वाचक-मंडल का एक बड़ा भाग होगा। मेरी सम्मति में हमारे इन लोगों में बुद्धि और साधारण ज्ञान है। उनकी एक संस्कृति भी है जिसको आज की आधुनिकता में रंगे हुए लोग चाहे न समझें पर है वह एक ठोस संस्कृति। वे साक्षर नहीं हैं और पढ़ने लिखने का मंत्रवत् कौशल उनमें नहीं है। पर इस बात में मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि यदि उनको वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे अपने हित तथा देश के हित के लिये उपक्रम कर सकते हैं। कुछ बातों में तो मैं वास्तव में उनको किसी भी कारखाने के श्रमिक से भी अधिक चतुर समझता हूं जो अपने व्यक्तित्व को खो देता है और जिस यंत्र का उसे संचालन करना पड़ता है न्यूनाधिक रूप से वह उसी यंत्र का एक भाग बन जाता है। अत: मेरे मन में इस बात के प्रति कोई सन्देह नहीं है कि यदि उनको वस्तुस्थिति समझा दी जाये तो वे केवल निर्वाचन की बारीकियों को ही नहीं समझेंगे बल्कि बुद्धिमानी पूर्वक अपना मत भी देंगे और इसलिये इनके कारण भविष्य के प्रति मुझे कोई शंका नहीं है। अन्य उन लोगों के प्रति मैं यह बात नहीं कह सकता हूं जो नारों द्वारा तथा उनके सामने अव्यावहारिक कार्यक्रमों के सुन्दर चित्र रखकर उन पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करें। फिर भी मेरा यह विचार है कि उनका पुष्ट साधारण ज्ञान वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक समझने में उनकी सहायता करेगा। अत: हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे विधान-मंडलों में ऐसे सदस्य होंगे जो वास्तविकता से परिचित होंगे और जो वस्तुस्थिति पर यथार्थ दृष्टिकोण से विचार करेंगे।

यद्यपि संसद् में द्वितीय सदन के लिये और कुछ राज्यों में द्वितीय सदन के लिये उपबन्ध बना दिया गया है, परन्तु सर्वोच्च स्थान लोक सभा का ही है। वित्त तथा धन सम्बन्धी सब विषयों में लोक सभा की सर्वोच्चता कितने ही शब्दों में निर्धारित की गई है। और अन्य विषयों में भी जहां उत्तर सदन को विधियों का सूत्रपात करने और पारित करने की समान शक्तियां कही जा सकती हैं वहां भी लोक सभा की सर्वोच्चता सुनिश्चित की गई है। जहां तक संसद का सम्बन्ध है यदि दोनों सदनों में मतभेद हो जाता है एक संयुक्त सत्र किया जा सकता है; पर संविधान यह उपबन्ध करता है कि राज्य-परिषद् के सदस्यों की संख्या लोक-सभा के सदस्यों की संख्या के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। अत: संयुक्त सत्र की दशा में भी लोक सभा की सर्वोच्चता का निर्वाह किया गया है जब तक कि स्वयं लोक सभा में ही बहुमत थोड़ा न हो जो वास्तव में एक ऐसी दशा हो जायेगी जिसमें उसकी सर्वोच्चता नहीं रहेगी। प्रान्तीय विधान मंडलों में यदि प्रथम सदन किसी विनिश्चय को दूसरी बार करता है तो वह विनिश्चय

[अध्यक्ष]

माना जायेगा। अत: उत्तर सदन कुछ समय के लिये विधेयकों में केवल विलम्बन कर सकता है, पर उन्हें रोक नहीं सकता। किसी विधान पर राष्ट्रपति या राज्यपाल को, यथास्थिति, अपनी अनुमति देनी होगी, पर यह अनुमति उसके मंत्रालय की मंत्रणा के आधार पर ही होगी जो अन्ततोगत्वा लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। अत: लोक-सदन में जनता के प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त किये गये रूप में जनता की इच्छा ही अन्त में सब विषयों का निश्चय करेगी। द्वितीय सदन और राष्ट्रपति या राज्यपाल केवल पुनर्विचार के लिये निदेश दे सकते हैं और कुछ विलम्ब कर सकते हैं; परन्तु यदि लोक सभा दृढ़ है तो संविधान के अधीन उसे सफलता मिलेगी। अत: समूचे देश की सरकार, दोनों केन्द्र में तथा प्रान्तों में, जनता की इच्छा पर निर्भर होगी जो दिन प्रति दिन विधान-मंडलों में उसके प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त हुआ करेगी और कभी कभी साधारण निर्वाचनों में प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा व्यक्त होगी।

संविधान में हमने एक न्यायपालिका की व्यवस्था की है जो स्वाधीन होगी। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त करने के लिये इससे अधिक कुछ और सुझाव देना कठिन है। अवर न्यायपालिका को भी किसी बाह्य या असम्बद्ध प्रभाव से मुक्त रखने का संविधान में प्रयास किया गया है। हमारा एक अनुच्छेद राज्य की सरकरों के लिये कार्यपालिका के कृत्यों को न्यायिक कृत्यों से पृथक करने के विषय को प्रस्तुत करने के कार्य को सरल कर देता है और उस दण्डाधिकारी न्यायालय को, जो आपराधिक मामलों पर विचार करता है, व्यवहार-न्यायालयों के आधार पर लाने के कार्य को सरल कर देता है मैं केवल यही आशा प्रकट कर सकता हूं कि यह सुधार, जो बहुत समय पूर्व हो जाना चाहिये था तथा राज्यों में तुरन्त कर दिया जायेगा।

कुछ विशेष विषयों को निपटाने के लिये हमारे संविधान में कुछ स्वाधीन अभिकरणों की योजना की गई है। अत: इसमें दोनों संघ और राज्यों के लिये लोक सेवा आयोगों की व्यवस्था की गई है और इन आयोगों को स्वतंत्र आधार पर रखा है जिससे कि कार्यपालिका से प्रभावित हुए बिना ये अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकें। एक बात जिससे हमें बचना है वह यह है कि जहां तक माननीय रूप में सम्भव हो सकता है स्वार्थ साधन, कुल-पोषण और पक्षपात के लिये कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये। मेरा विचार है कि जिन उपबन्धों को हमने अपने संविधान में पुर:स्थापित किया है वे इस दशा में बड़े सहायक होंगे।

एक और स्वाधीन प्राधिकारी नियंत्रण-महालेखा परीक्षक है जो हमारी वित्त व्यवस्था की देखभाल करेगा और इस बात पर ध्यान रखेगा कि भारत या किसी भी राज्य के आगमों के किसी अंश का बिना समुचित प्राधिकार के किसी प्रयोजनों या मदों के लिये उपयोग न हो और जिसका यह कर्तव्य होगा कि वह हमारे हिसाब-किताब को ठीक रखे। जब हम इस बात पर विचार करें कि हमारी सरकार को अरबों

में काम करना होगा तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विभाग कितना महत्वपूर्ण और आवश्यक होगा। हमने एक और महत्वपूर्ण प्राधिकारी की व्यवस्था की है अर्थात् निर्वाचन-आयुक्त जिसका कार्य विधान मंडलों के निर्वाचनों का संचालन तथा निरीक्षण करना होगा और इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक कार्रवाई करनी होगी। एक संकट जिसका हमें सामना करना होगा वह किसी ऐसे भ्रष्टाचार से उत्पन्न होता है जिसका शायद पक्ष, अभ्यर्थी या शक्ति प्राप्त सरकार आचरण कर बैठे। हमें एक दीर्घ काल से लोकतंत्रात्मक निर्वाचनों का कोई अनुभव प्राप्त नहीं है सिवा पिछले कुछ वर्षों के बारे अब जब कि हमें यथार्थ शक्ति प्राप्त हो गई है भ्रष्टाचार का संकट केवल काल्पनिक मात्र ही नहीं है। अत: यह बात ठीक ही है कि हमारा संविधान इस संकट के प्रति सतर्क है और मतदाताओं द्वारा एक ठीक तथा यथार्थ निर्वाचन के लिये उपबन्ध करता है। विधान-मंडल, उच्च न्यायालयों, लोक-सेवा आयोग, नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक और निर्वाचन आयुक्त के विषय में जो कर्मचारी वृन्द इनको इनके कार्य में सहायता प्रदान करेगा उस कर्मचारी वृन्द को भी इनके नियंत्रण ही में रख दिया है और अधिकांश विषयों में उनकी नियुक्ति, पदवृद्धि और अनुशासन उनकी अपनी-अपनी विशिष्ट संस्थाओं में निहित है और इस प्रकार उनकी स्वाधीनता के लिये और भी अधिक रक्षाकवच दे दिये गये हैं।

इस संविधान की दो अनुसूचियों में अर्थात् 5 और 6 अनुसूचियों में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिये विशेष उपबन्ध रखे गये हैं। आसाम को छोड़कर अन्य राज्यों में की जनजातियों के और जनजाति-क्षेत्रों के विषय में जनजाति मंत्रणादात्री परिषद् के द्वारा जन-जातियां प्रशासन पर प्रभाव डाल सकेंगी। आसाम की जनजातियों के और जनजाति क्षेत्रों के विषय में जिला परिषदों और स्वायत्त शासी प्रादेशिक परिषदों के द्वारा उनको अधिक व्यापक शक्तियां दे दी गई हैं। राज्य मंत्रालयों में एक मंत्री के लिये भी आगे और उपबन्ध है जिस पर जन-जातियों और अनुसूचित जातियों के कल्याण का भार होगा और एक आयोग उस रीति के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा जिसके अनुसार इन क्षेत्रों पर प्रशासन किया जाता है। इस उपबन्ध का बनाना इस कारण आवश्यक था कि जनजातियां पिछड़ी हुई हैं और उनको रक्षा की आवश्यकता है और इस कारण भी कि अपनी समस्याओं को सुलझाने की उनकी अपनी ही रीति है और जन-जातिवत् जीवन बिताने का उसका अपना ढंग है। इन उपबन्धों ने उनको पर्याप्त संतोष प्रदान किया है जैसे कि अनुसूचित जातियों के कल्याण और रक्षण के उपबन्धों ने उनको संतोष दिया है।

संघ और राज्यों के प्रशासी तथा अन्य कार्यों के सब रूपों में संघ और राज्यों में परस्पर शक्ति तथा प्रकार्यों के विभाजन संबंधी विषय को इस सविधान में बड़े विवरण पूर्ण ढंग से लिया गया है। कुछ लोगों ने यह कहा है कि जो शक्तियां

[अध्यक्ष]

केन्द्र को दी गई हैं वे बहुत अधिक हैं और बहुत ही व्यापक हैं और राज्यों को उस शक्ति से वंचित कर दिया है जो उनके अपने क्षेत्र में वास्तव में उनकी ही होनी चाहिये थी। इस आलोचना पर मैं कोई निर्णय देना नहीं चाहता हूं और केवल यही कह सकता हूं कि अपने भविष्य के प्रति हम आवश्यकता से अधिक सतर्क नहीं हो सकते हैं विशेषकर जब हम इस देश के कई शताब्दियों के इतिहास को याद रखें। पर वे शक्तियां जो केन्द्र को राज्यों के क्षेत्र के अन्तर्गत कार्रवाई करने के लिये दी गई हैं वे केवल आपात सम्बन्धी हैं जो चाहे राजनैतिक हो या वित्तीय और आर्थिक आपात हो, और मुझे यह आशा नहीं है कि केन्द्र की ओर से उस शक्ति की अपेक्षा और अधिक शक्ति हथियाने की प्रवृत्ति होगी जो इस समूचे देश के सुप्रशासन के लिये आवश्यक है। किसी दशा में भी केन्द्रीय विधान-मंडल में राज्यों के प्रतिनिधि होंगे और जब तक उनको यह विश्वास नहीं होगा कि उनपर अतिक्रमण करने की आवश्यकता है तब तक इस बात की संभावना नहीं हो सकती कि वे उन राज्यों के विरुद्ध जिनकी जनता के वे प्रतिनिधि हैं केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा किसी ऐसी शक्ति के प्रयोग से सहमत हो जायें। मैं इस शिकायत को कोई महत्व नहीं देता हूं कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को सौंप दी गई हैं। सप्तम अनुसूची की तीन सूचियों में शक्तियों की बड़े व्यापक तथा विस्तृत रूप में परिभाषित तथा सीमांकित कर दिया गया है और जो कुछ भी अवशेष रह गई हों उनके अन्तर्गत किसी बड़े क्षेत्र के आने की सम्भावना नहीं है और इस कारण इन अवशिष्ट शक्तियों के सौंपने का अभिप्राय यह नहीं है कि जो शक्तियां राज्यों की होनी चाहियें उनका वास्तव में बहुत अधिक अल्पीकरण कर दिया गया हो।

उन समस्याओं में से एक समस्या जिनके सुलझाने में संविधान सभा ने बहुत समय लिया देश के राजकीय प्रयोजनों के लिये भाषा सम्बन्धी समस्या है। यह एक स्वभाविक इच्छा है कि हमारी अपनी भाषा होनी चाहिये और देश में बहुत सी भाषाओं के प्रचलित होने के कारण कठिनाइयों के होते हुए भी हम हिन्दी को अपनी राज भाषा के रूप में स्वीकार कर सके हैं जो एक ऐसी भाषा है जिसे देश में सबसे अधिक लोग समझते हैं। जब हम यह विचार करते हैं कि स्विट्जरलैंड जैसे एक छोटे से देश में तीन राजभाषाओं से कम राज भाषा नहीं हैं और दक्षिणी अफ्रीका में दो राजभाषाएं हैं तो मैं इस विनिश्चय को एक बड़े ही महत्वपूर्ण विनिश्चय के रूप में देखता हूं। देश को एक राष्ट्र के रूप में संघटित करने के दृढ़ निश्चय की ओर सुविधा-क्षमता की भावना इस बात से प्रकट होती है कि वे लोग जिन की भाषा हिन्दी नहीं है उन्होंने स्वेच्छापूर्वक इसे राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया है (*तालियां*)। अब भाषा के आरोपण करने का प्रश्न ही नहीं है। अंग्रेज़ी राज्य में अंग्रेज़ी और मुस्लिम राज्य में फारसी कचहरी और राज की भाषायें थीं। यद्यपि लोगों ने इन भाषाओं का अध्ययन किया और

उनमें विशेष योग्यता प्राप्त की, पर कोई यह दावा नहीं कर सकता है कि उनको इस देश के अधिकांश लोगों ने स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किया। अपने इतिहास में पहली बार इस समय हमने एक भाषा स्वीकार की है जिसका समस्त राजकीय प्रयोजनों के लिये सारे देश में प्रयोग होगा और मुझे यह आशा करने दीजिये कि यह उन्नत होकर एक ऐसी राष्ट्रीय भाषा का रूप धारण करे जिसमें सबको समान रूप से गौरव मिले, और इसके साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्र को अपनी निजी भाषा की उन्नति करने की स्वतन्त्रता ही नहीं होगी वरन् उसको उस भाषा को उन्नत बनाने के लिये प्रोत्साहित भी किया जायेगा जिसमें उसकी संस्कृति और परम्परा पवित्र रूप से स्थापित है। व्यावहारिक कारणों वश इस अन्तर्कालीन समय में अंग्रेजी का प्रयोग अनिवार्य समझा गया और इस विनिश्चय से किसी को निराश नहीं होना चाहिये जिसको विशुद्ध व्यावहारिक विचारों के आधार पर किया गया है। अब यह इस समूचे देश का कर्तव्य है और विशेष कर उनका जिनकी भाषा हिन्दी है कि इसको ऐसा रूप दें और इस प्रकार से विकसित करें कि यह एक ऐसी भाषा बन जाये जिसमें भारत की सामाजिक संस्कृति की पर्याप्त तथा सुन्दर रूप में अभिव्यक्ति हो सके।

हमारे संविधान की और महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें किसी अधिक कष्ट के बिना संशोधन किया जा सकता है। यहां तक कि संविधानिक संशोधन भी ऐसे कठिन नहीं हैं जैसे कुछ अन्य देशों में हैं। और इस संविधान में के बहुत से उपबन्धों का संशोधन तो साधारण अधिनियमों द्वारा संसद कर सकती है और संविधानिक संशोधनों के लिये निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं है। इस समय एक ऐसा उपबन्ध रखा गया था जिसमें यह प्रस्थापित किया गया था कि इस संविधान के प्रवृत्त होने के बाद पांच वर्ष तक इसमें संशोधन करना सरल बना दिया जाये पर इस कारण ऐसा उपबन्ध अनावश्यक हो गया कि इस संविधान में संविधानिक संशोधनों के लिये निर्धारित प्रक्रिया के बिना संशोधन करने के लिये अनेक अपवाद रख दिये गये हैं। समष्टि रूप से हम एक ऐसा संविधान बना सके हैं जो मेरा विश्वास है कि देश के लिये उपयुक्त सिद्ध होगा।

हमारे निदेशक सिद्धान्तों में एक विशिष्ट उपबन्ध है जिसको मैं बहुत महत्व देता हूं। हमने केवल अपने लोगों की भलाई के लिये ही उपबन्ध नहीं बनाये हैं वरन् अपने निदेशक तत्वों में हमने यह निर्धारित किया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा। संघर्षों से जर्जरित संसार में, एक ऐसे संसार में जो दो विश्व युद्धों के संहार के पश्चात् अब भी शान्ति और सद्भावना स्थापित करने के लिये शस्त्रीकरण में विश्वास कर रहा है, यदि हम राष्ट्रपिता की शिक्षाओं का सच्चे

[अध्यक्ष]

रूप में पालन करें और अपने संविधान के इस निदेशक तत्व पर चलें कि यह निश्चित है कि हम अवश्य ही एक महान् कार्य करने में सफल होंगे। इन कठिनाइयों के होते हुए भी जो हमें घेरे हुये हैं और एक ऐसे वातावरण के होते हुए भी जो हमारा मार्ग भली प्रकार रोक सकता है हे ईश्वर! तू हमें इस मार्ग पर चलने की सद्बुद्धि और शक्ति दे। हम स्वयं अपने में और उस स्वामी की शिक्षाओं में विश्वास रखें जिसका चित्र मेरे सर पर टंगा हुआ है और केवल अपने देश की ही नहीं वरन् इस सारे संसार की आशाओं को हम पूरा करेंगे और केवल अपने देश के ही नहीं वरन् सारे संसार के सर्वोत्तम हितों के प्रति हम सच्चे सिद्ध होंगे।

मैं उस आलोचना के प्रति कुछ नहीं कहना चाहता हूं जो विशेषकर मूलाधिकारों संबंधी भाग में के उन अनुच्छेदों के सम्बन्ध में है जिनके द्वारा परमाधिकारों को कम कर दिया गया है और जो उन अनुच्छेदों के सम्बन्ध में है जो आपात शक्तियों के विषय में है। अन्य सदस्यों ने इन आपत्तियों पर विस्तारपूर्वक विचार प्रकट किया है। इस समय मुझे केवल यही कहना है कि देश की वर्तमान दशा और जो प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखाई दे रही हैं उन्होंने इन उपबन्धों को आवश्यक बना दिया है और ये उपबन्ध अन्य देशों के अनुभव पर आधृत हैं जिनको उन देशों ने न्यायिक विनिश्चयों द्वारा प्रवृत्त किया, यद्यपि इन उपन्धों की व्यवस्था उनके संविधान में नहीं थी।

ऐसी केवल दो खेद की बातें हैं जिनमें मुझे माननीय सदस्यों का साथ देना चाहिये। विधान मंडल के सदस्यों के लिये कुछ अर्हतायें निर्धारित करना मैं पसंद करता। यह बात असंगत हैं कि उन लोगों के लिये हम उच्च अर्हताओं का आग्रह करें जो प्रशासन करते हैं या विधि के प्रशासन में सहायता देते हैं और उनके लिये हम कोई अर्हता न रखें जो विधि का निर्माण करते हैं सिवा इसके कि उनका निर्वाचन हो। एक विधि बनाने वाले के लिये बौद्धिक उपकरण अपेक्षित हैं और इससे भी अधिक वस्तुस्थिति पर संतुलित विचार करने की स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करने की सामर्थ्य की आवश्यकता है और सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि जीवन के उन आधारभूत तत्वों के प्रति सच्चाई हो—एक शब्द में यह कहना चाहिये कि चरित्रबल हो (*वाह, वाह*)। यह संभव नहीं है कि व्यक्ति के नैतिक गुणों को मापने के लिये कोई मापदण्ड तैयार किया जा सके और जब तक यह संभव नहीं होगा तब तक हमारा संविधान दोषपूर्ण रहेगा। दूसरा खेद इस बात पर है कि हम किसी भारतीय भाषा में स्वतंत्र भारत का अपना प्रथम संविधान नहीं बना सके। दोनों मामलों में कठिनाइयां व्यावहारिक थीं और अविजेय सिद्ध हुई। पर इस विचार से खेद में कोई कमी नहीं हो जाती है।

हमने एक लोकतन्त्रात्मक संविधान तैयार किया है। पर लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तों के सफल क्रियाकरण के लिये उन लोगों में, जो इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करेंगे,

अन्य लोगों के विचारों के सम्मान करने की तत्परता और समझौता करने तथा श्रेय देने के लिये सामर्थ्य आवश्यक है। बहुत सी बातें जो संविधान में नहीं लिखी जा सकती हैं अभिसमयों द्वारा की जाती हैं। मुझे यह आशा करने दीजिये कि हममें ये योग्यतायें होंगी और इन अभिसमयों का हम विकास करेंगे। मतदान तथा सभाकक्षों (लॉबी) में मत विभाजन की शरण लिये बिना जिस रीति से हम यह संविधान बना सके हैं वह इस आशा को प्रबल बनाती है।

यह संविधान किसी बात के लिये उपबन्ध करे या न करे, देश का कल्याण उस रीति पर निर्भर करेगा जिसके अनुसार देश का प्रशासन किया जायेगा। देश का कल्याण उन व्यक्तियों पर निर्भर करेगा जो देश पर प्रशासन करेंगे। यह एक पुरानी कहावत है कि देश जैसी सरकार के योग्य होता है वैसी ही सरकार उसे प्राप्त होती है।

हमारे संविधान में ऐसे उपबन्ध हैं जो किसी न किसी रूप में कुछ लोगों को आपत्तिजनक प्रतीत होते हैं। हमें यह मान लेना चाहिये कि दोष तो अधिकतर स्वयं देश की परिस्थिति और जनता में है। जिन व्यक्तियों का निर्वाचन किया जाता है यदि वह योग्य, चरित्रवान ओर ईमानदार हैं तो वे एक दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम संविधान बना सकेंगे। यदि उनमें इन गुणों का अभाव होगा तो यह संविधान देश की सहायता नहीं कर सकेगा। आखिर संविधान एक यंत्र के समान एक निष्प्राण वस्तु ही तो है। उसके प्राण तो वे लोग हैं जो उस पर नियंत्रण रखते हैं और उसका प्रवर्तन करते हैं और देश को आज तक ऐसे ईमानदार लोगों के वर्ग से अधिक किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं है जो अपने सामने देश के हित को रखें। हमारे जीवन में भिन्न-भिन्न तत्वों के कारण भेदमूलक प्रवृत्तियां पैदा हो जाती हैं। हममें साम्प्रदायिक भेद हैं, जातिगत भेद हैं, भाषा के आधार पर भेद हैं, प्रान्तीय भेद हैं और इसी प्रकार के अन्य भेद हैं। इसके लिये ऐसे दृढ़ चरित्र व्यक्तियों की, ऐसे दूरदर्शी लोगों की और ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो छोटे-छोटे समूहों और क्षेत्रों के लिये पूरे देश के हितों का परित्याग न करें और जो इन भेदों से उत्पन्न हुए पक्षपात से परे हों। हम केवल यह आशा ही कर सकते हैं कि इस देश में ऐसे लोग बहुत मिलेंगे। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय जो संघर्ष हमने लिया था उसके अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि नये अवसरों ने नये व्यक्तियों को जन्म दिया; केवल एक बार ही नहीं बल्कि प्रत्येक बार जब कि कांग्रेस के नेताओं को यकायक जेल में बन्द कर दिया गया और उनको इस बात का भी समय नहीं मिला कि वे दूसरों को कुछ हिदायतें दे जाते और अपना युद्ध जारी रखने की योजना बना जाते, जनता में से ऐसे व्यक्ति निकले जिन्होंने उन संघर्षों का इस योग्यता, सूझ और संगठन-शक्ति सहित चालन किया और उनको जारी रखा कि किसी भी व्यक्ति को यह आशा न थी कि उनमें ऐसे गुण होंगे। इस बात में मुझे सन्देह नहीं है कि जब देश को चरित्रवान व्यक्तियों की आवश्यकता होगी तो ऐसे व्यक्ति मिलेंगे

[अध्यक्ष]

और जनता ऐसे व्यक्तियों को पैदा करेगी। जो लोग पहले से सेवा करते चले आ रहे हैं वे यह कहकर अपनी पतवार न डाल दें कि वे अपना सेवा-कार्य समाप्त कर चुके हैं और अब वह समय आ गया है कि वे अपने श्रमलाभ का उपभोग करें। जो मनुष्य सच्चे हृदय से अपने कार्य में संलग्न रहता है उसके लिये ऐसा कोई समय नहीं आता है। मैं समझता हूं कि भारतवर्ष में आज जो कार्य हमारे सन्मुख है वह उस कार्य से भी अधिक कठिन है जो उस समय हमारे सन्मुख था जबकि हम संघर्ष में लगे हुए थे। उस समय हमारे सामने ऐसी कोई विरोधी मांगें नहीं थीं जिनमें परस्पर मेल बिठाना हो, दाल रोटी का प्रश्न नहीं था और शक्तियों को बांटने की बात नहीं थी। इस समय हमारे सामने ये सब बातें हैं और बड़े-बड़े प्रलोभन भी हैं। ईश्वर करे इन प्रलोभनों से ऊपर उठने की और उस देश की सेवा करने की जिसको हमने आजाद किया है बुद्धि और शक्ति हममें हो।

अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये जिन साधनों को अपनाना होता है उनकी पवित्रता पर महात्मा गांधी ने जोर दिया था। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि यह शिक्षा चिरस्थायी है और यह केवल संघर्ष काल के लिये ही नहीं थी वरन आज भी इसका उतना ही प्राधिकार तथा मूल्य है जितना पहले था। यदि कोई काम गलत हो जाता है तो हमारी यह प्रवृत्ति है कि हम दूसरों को दोष देते हैं परन्तु अन्तर्परीक्षण कर यह देखने का प्रयास नहीं करते कि हमारा दोष है या नहीं। यदि कोई व्यक्ति अपने कर्मों और उद्देश्यों का विवेचन करना चाहे तो दूसरों के कर्मों और उद्देश्यों को सही-सही जानने की अपेक्षा अपने कर्मों और उद्देश्यों का विवेचन करना बहुत सरल है। मैं यही आशा करूंगा कि वे सब लोग जिन को भविष्य में इस संविधान को कार्यान्वित करने का सौभाग्य प्राप्त होगा, यह याद रखेंगे कि वह एक असाधारण विजय थी जिसको हमने राष्ट्रपिता द्वारा सिखाई गई अनोखी रीति से प्राप्त किया था और जो स्वाधीनता हमने प्राप्त की है उसकी रक्षा करना और उसको बनाये रखना और जनसाधारण के लिये उसको उपयोगी बनाना उन पर ही निर्भर करता है। विश्वास पूर्वक सत्य तथा अहिंसा के आधार पर और तब से अधिक यह कि हृदय में साहस धारण कर और ईश्वर में विश्वास कर हम अपने स्वाधीन गणराज्य के संचालन करने के इस नये कार्य में संलग्न हों।

समाप्त करने से पूर्व इस महान सभा के सब सदस्यों के प्रति मुझे अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये जिन्होंने मेरे साथ केवल विनम्र व्यवहार ही नहीं किया बल्कि मैं यह कहूंगा कि उन्होंने सम्मानपूर्ण तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। इस कुर्सी पर बैठे बैठे दिन प्रतिदिन की कार्रवाई देखते हुए मैंने जो अनुभव किया है वह कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता कि मसौदा समिति के सदस्यों ने और अपना स्वास्थ्य खराब होने पर भी उसके सभापति डॉ. अम्बेडकर ने कितने उत्साह और लगन के साथ कार्य किया है (*तालियां*)। हम कोई ऐसा विनिश्चय नहीं कर

सकते थे जो कभी भी इतना ठीक हो सकता था जितना कि वह जब हुआ जब कि हम ने डॉ. अम्बेडकर को मसौदा समिति में सम्मिलित किया और उसका सभापति बनाया। उन्होंने अपने चुनाव को ही न्याययुक्त सिद्ध नहीं किया वरन् जो कार्य उन्होंने किया है उसमें चार चांद लगा दिये हैं। इस सम्बन्ध में समिति के अन्य सदस्यों में परस्पर भेद विभेद करना अस्याजनक होगा। मैं जानता हूं कि उन सबों ने उतने ही साहस और उतनी ही लगन के साथ कार्य किया जितना उसके सभापति ने और वे देश की कृतज्ञता के पात्र हैं।

यदि आप मुझे अनुज्ञा दें तो मैं अपनी ओर से तथा इस सभा की ओर से भी अपने संविधानिक परामर्शदाता श्री बी.एन. राउ को धन्यवाद दूं जिन्होंने उस सारे समय में जब कि वे यहां रहे अवैतनिक रूप में कार्य किया और अपने उच्च ज्ञान से इस सभा को ही सहायता न दी वरन् अन्य सदस्यों को भी वह सामग्री देकर, जिसके आधार पर वे कार्य कर सकते थे, पूर्ण रूप से योग्यतापूर्वक अपने कर्तव्य पालन करने में उनको सहायता दी। इस कार्य में उनकी अनुसंधानकों तथा अन्य कर्मचारियों ने सहायता दी जिन्होंने उत्साह और लग्न के साथ कार्य किया। श्री एस.एन. मुखर्जी की प्रशंसा सही की गई है जिन्होंने मसौदा समिति की बहुत ही अमूल्य सहायता की।

संविधान सभा के सचिवालय के कर्मचारियों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम मैं सचिव श्री एच.वी.आर. आयंगर का उल्लेख करूंगा और उनको धन्यवाद दूंगा जिन्होंने सचिवालय का एक कुशल कार्य करने वाले निकाय के रूप में संगठन किया। यद्यपि बाद में जबकि कार्य न्युनाधिक रूप में यंत्र चालित नियमित्ता के रूप में चलने लगा तो हम उनको कुछ कर्त्तव्यों से मुक्त कर सके जिससे कि वे दूसरा कार्य हाथों में ले सकें पर वे हमारे सचिवालय के या संविधान सभा के कार्य के सम्पर्क से कभी भी अलग नहीं हुए।

हमारे उप-सचिव श्री जुगलकिशोर खन्ना के अधीन कर्मचारियों ने योग्यता तथा श्रद्धापूर्वक कार्य किया। उनके कार्य पर सदैव ध्यान नहीं दिया जा सकता था चूंकि वह कार्य इस सभा के सदस्यों की दृष्टि से ओझल होता था। पर मुझे विश्वास है कि उनकी कार्य क्षमता और कार्य के प्रति श्रद्धा की जो कई सदस्यों ने प्रशंसा की है वह पूर्णतया उनके अनुकूल है। हमारे प्रतिवेदकों ने अपना कार्य इस रीति से किया है कि उनको उस कार्य का श्रेय अवश्य प्राप्त होगा और उनके कार्य से सभा की कार्रवाई के अभिलेख के रक्षण में सहायता मिली है और ये कार्रवाई बड़ी लम्बी तथा कष्टदायक रही। मैं अनुवादकों का उल्लेख करूंगा और माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्ता के सभापतित्व में अनुवाद समिति का भी उल्लेख करूंगा जिसे संविधान में प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्दों के हिन्दी पर्याय खोजने का कठिन कार्य करना पड़ा। इस समय वे भाषा विज्ञों की समिति की सहायता में लगे हुए हैं

[अध्यक्ष]

जो एक शब्दावलि तैयार कर रही है जो संविधान तथा विधि में प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्दों के पर्याय के रूप में सब भाषाओं को स्वीकार्य होगी। देख-रेख करने वाले पदाधिकारियों ने, आरक्षी दल ने और मार्शल ने, यद्यपि इन का नाम अन्त में है पर इससे इनका महत्व कम नहीं होता है संतोषजनक कार्य किया है (*तालियां*)। चपरासियों और छोटे पदों पर के लोगों को मुझे भुला नहीं देना चाहिये। उन सबों ने अपनी ओर से भरसक कार्य किया है। ये सब मुझे इस लिये कहना आवश्यक है कि संविधान-निर्माण कार्य के समाप्त होने के साथ साथ इनमें से अधिकांश व्यक्ति जो अस्थाई रूप में कार्य कर रहे हैं यदि उनको अन्य विभागों या मंत्रालयों में नहीं लिया जायेगा तो वे नौकरी से अलग हो जायेंगे। मुझे यह पूर्ण आशा है कि उन सबको ले लिया जायेगा (*वाह, वाह*) क्योंकि उनको पर्याप्त अनुभव है और ये लोग मन लगाकर कार्य करने वाले तथा कुशल कर्मचारी हैं। क्योंकि इन सबसे मुझे विनय, सहयोग और भक्ति पूर्ण सेवा प्राप्त हुई है अतः इन सबका मैं कृतज्ञ हूं।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा जो प्रस्ताव पेश किया गया था उस पर अब सभा का मत लेना शेष रह गया है।

प्रश्न यह है:

"कि इस सभा द्वारा निश्चित किये गये रूप में यह संविधान पारित किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया (देर *तक तालियां*)।

***अध्यक्ष:** अब मुझे इस विधेयक पर औपचारिक रूप में हस्ताक्षर करने हैं जो अपनी प्रमाणिकता प्राप्त करने पर एक अधिनियम बन गया है जिससे कि उसे शीघ्र प्राधिकार मिल जाये और वह शीघ्र प्रवृत्त हो सके।

***डॉ. रघुबीर:** क्या आपके हस्ताक्षर हिन्दी में होंगे?

***अध्यक्ष:** आप यह सवाल क्यों कर रहे हैं?

इसके पश्चात् अध्यक्ष ने संविधान को प्रमाणित किया।

***अध्यक्ष:** सभा स्थगित होने से पूर्व एक औपचारिक कार्य करना है और वह यह है कि जनवरी में इस सभा का एक और सत्र निमंत्रित करने का मुझे प्राधिकार दिया जाये।

***श्री सत्यनरायण सिन्हा** (बिहार: जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"यह संकल्प किया कि संविधान सभा 26 जनवरी सन् 1950 ई. की किसी ऐसी तिथि तक स्थगित हो जिसे अध्यक्ष नियत करे।"

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"यह संकल्प किया कि संविधान सभा 26 जनवरी सन् 1950 ई. तक की किसी ऐसी तिथि तक स्थगित हो जिसे अध्यक्ष नियत करे।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** स्थगित होने से पूर्व मैं, उसी प्रकार से हाथ मिलाउंगा जैसा कि मैंने, जब कि आपने इस पद के लिये मुझे पहले चुना था, सबके पास जाकर हाथ मिलाया था।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): श्रीमान, एक एक करके हम आपके पास आयेंगे और हाथ मिलायेंगे।

(इसके पश्चात् एक-एक करके माननीय सदस्यों ने अध्यक्ष से हाथ मिलाया।)

***अध्यक्षः** सभा अनिश्चित तिथि तक स्थगित हुई।

इसके पश्चात् सभा 26 जनवरी सन् 1950 ई. की किसी ऐसी तिथि तक के लिये स्थगित हुई जिसे अध्यक्ष नियत करेंगे।

———————

GIPD–HS-347BPSD–2-1-53–320.

खण्ड XII
पुस्तक सं. 10

24.1.1950

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2014

जैनको आर्ट इण्डिया, 13/10, डब्ल्यूईए, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष :

माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष :

डा. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार :

सर बी. एन. राव, *सी.आई.ई.*

सचिव :

श्री एच.वी.आर. आयंगर

सी.आई.ई., आई.सी.एस.

संयुक्त सचिव :

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव :

श्री जुगल किशोर खन्ना

अवर सचिव :

प्रो. बाल कृष्ण

मार्शल :

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 3. XII.1.49
320

अंक 12
संख्या 1

मंगलवार
24 जनवरी
सन् 1950 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर 4253
राष्ट्रगान के सम्बन्ध में वक्तव्य 4253
नवीन सदस्यों का निर्वाचन 4253-4255
भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन 4255-4260
संविधान के हिन्दी संस्करण पर हस्ताक्षर 4260-4261
संविधान पर हस्ताक्षर 4261-4262

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 24 जनवरी, सन् 1950 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः ग्यारह बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

शपथ ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने शपथ ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:—

श्री रत्नप्पा भरमप्पा कुम्भार (बम्बई राज्य)

डॉ. वाई.एस. परमार (हिमाचल प्रदेश)

राष्ट्रगान के सम्बन्ध में वक्तव्य

***अध्यक्ष:** इस सभा ने अभी एक प्रश्न पर विचार नहीं किया है। वह प्रश्न राष्ट्र-गान का प्रश्न है। एक समय यह विचार किया गया था कि इस विषय को सभा के समक्ष रखा जाये और वह एक प्रस्ताव द्वारा इसके सम्बन्ध में निर्णय करे। किन्तु अब यह समझा गया है कि राष्ट्र-गान के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकार करके रस्मी तौर से निर्णय करने के स्थान पर मैं ही एक वक्तव्य दे दूं। इसलिये मैं यह वक्तव्य देता हूं।

जिस गान के शब्द तथा स्वर 'जन-गण-मन' के नाम से विख्यात हैं वह भारत का राष्ट्रगान है किन्तु उसके शब्दों में सरकार की आज्ञा से यथोचित अवसर पर हेर फेर किया जा सकता है। वंदे मातरम्' के गान का जिस का भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में ऐतिहासिक महत्व रहा है, 'जन, गण, मन' के समान ही सम्मान किया जायेगा और उसका पद उसके समान ही होगा (*हर्षध्वनि*)। मुझे आशा है कि इससे सदस्यों को संतोष हो जायेगा।

नवीन सदस्यों का निर्वाचन

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान, पिछली बार, सभा विसर्जित करने के पूर्व हमने आपको, अर्थात् संविधान सभा के माननीय अध्यक्ष को उन स्थानों को भरने के लिये, जिन्हें ऐसे लोगों ने रिक्त किया है जो अब इस सभा के

[श्री बी. दास]

सदस्य नहीं रह गये हैं, प्रान्तीय सरकारों तथा भारत सरकार को निर्देश देने के लिए पूर्ण शक्ति प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त हमने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि माननीय प्रधान मंत्री महोदय ने संसद के लिये अधिक महिलाओं को निर्वाचित करने के सम्बन्ध में एक वक्तव्य दिया है। अधिक महिलाओं को निर्वाचित करने के सम्बन्ध में हमने राष्ट्रपति डॉ. पट्टाभी सीतारमय्या का भी एक वक्तव्य देखा है।

***एक माननीय सदस्य:** श्रीमान, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है।

***श्री बी. दास:** अब इस अवसर पर कोई औचित्य प्रश्न नहीं किया जा सकता। मेरा निवेदन है कि वर्तमान स्थिति यह है कि संयुक्त प्रान्त से महिलाओं की तीन रिक्त स्थानों के लिये दो महिलाएं भेजी गई हैं। उड़ीसा प्रान्त से कोई महिला सदस्य नहीं भेजी गई है। अन्य किसी प्रान्त ने महिला सदस्यों को भेजने के लिये विशेष प्रयास नहीं किया है। महिलाओं की संख्या जन संख्या की 50 प्रतिशत है। मैं नहीं चाहता कि अगले निर्वाचन में वे हमसे इस कारण संघर्ष करें। मैं नहीं चाहता कि स्त्रियों और पुरुषों के बीच भीषण संघर्ष हो।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से यदि आप केवल एक प्रश्न पूछें तो मैं उसका उत्तर दे दूंगा।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): श्रीमान, क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि कृपा करके बताया जाये कि इस सभा में हैदराबाद का प्रतिनिधित्व करने के लिये क्या कोई कदम उठाये गये हैं और यदि उठाये गये हैं तो इस समय इस सम्बन्ध में स्थिति क्या है? वही एक ऐसा राज्य है जिसका अभी तक कोई प्रतिनिधि नहीं आया है।

***अध्यक्ष:** मैं प्रश्नों का उत्तर एक-एक करके दूंगा। जहां तक उन स्थानों को भरने का सम्बन्ध है, जो ऐसे सदस्यों के हट जाने से रिक्त हुए हैं जो प्रान्तीय विधान मंडलों के भी सदस्य हैं, तत्विषयक नियमों को संशोधित किया गया है और उन नियमों के अनुसार निर्वाचन किये गये हैं। सभा के निर्णय के अधीन तथा उन नियमों के अधीन महिलाओं के लिये कोई स्थान रक्षित नहीं किये गये हैं। यह निर्वाचकों पर ही निर्भर है कि वे महिलाओं को निर्वाचित करें या न करें। जो व्यक्ति निर्वाचित हुए हैं वे इस सभा में आये हैं। हम किन्हीं निर्वाचकों को केवल महिलाओं को ही निर्वाचित करने के लिये विवश नहीं कर सकते थे।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में मैं कह नहीं सकता कि कौन से कदम उठाये गये हैं और कौन से कदम नहीं उठाये गये हैं। वास्तव में इस विषय से सरकार का ही सम्बन्ध है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं जान सकता हूं कि आपके कार्यालय से क्या कोई निदेश दिये गये थे?

***अध्यक्षः** इस सभा में जिन लोगों को सदस्य भेजने का अधिकार था उन सभी से हमने कहा कि वे अपने प्रतिनिधि भेजें। उनसे यह कहा गया था और उसके पश्चात् और कोई कदम नहीं उठाया गया है।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): क्या मैं जान सकता हूं कि उन स्थानों को, जिन्हें अनुसूचित जातियों के सदस्यों ने रिक्त किया था, आदिवासियों के सदस्यों द्वारा भरने के लिए आपने, अथवा आपके कार्यालय ने, क्या कोई निदेश दिये थे?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से इस प्रकार के कोई निदेश नहीं दिये गये थे।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** किन्तु कुछ प्रान्तों को यह निदेश दिया गया था कि हरिजनों द्वारा रिक्त किये हुए स्थान आदिवासी सदस्यों द्वारा भरे जायें।

***अध्यक्षः** मैं कह नहीं सकता।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** क्या इस प्रकार के कोई निदेश उड़ीसा को दिये गये थे?

***अध्यक्षः** मैं कह नहीं सकता।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या संविधान का कोई हिन्दी अनुवाद तैयार किया गया है?

***अध्यक्षः** जी हां, वह तैयार है।

***श्री एच.जे. खांडेकरः** क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि आप उड़ीसा के सम्बन्ध में इसकी पूछताछ करें कि इस सभा के एक हरिजन के स्थान के लिये क्या कोई आदिवासी सदस्य निर्वाचित किया गया है?

***अध्यक्षः** यदि मैं इस पद पर रहा तो मैं इस सम्बन्ध में अवश्य पूछताछ करूंगा।

भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन

***अध्यक्षः** अब निर्वाचन का परिणाम घोषित किया जायेगा। निर्वाचनाधिकारी तथा संविधान सभा के सचिव श्री एच.वी.आर. आयंगर उसे घोषित करें।

***श्री एच.वी.आर. आयंगर** (निर्वाचनाधिकारी तथा संविधान सभा के सचिव): अध्यक्ष महोदय मुझे माननीय सदस्यों को यह सूचित करना है कि भारत के राष्ट्रपति-पद के लिए केवल एक मनोनयन पत्र प्राप्त हुआ है। उम्मीदवार का नाम डॉ. राजेन्द्र प्रसाद है (*उच्च और लगातार हर्षध्वनि*)। उनका नाम पंडित जवाहरलाल

[श्री एच.वी.आर. आयंगर]

नेहरू ने प्रस्तावित किया है (*पुनः हर्षध्वनि*)। और उसका समर्थन सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया है (*लगातार हर्षध्वनि*)। राष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी नियमों के नियम 8 के उपनियम (1) के अधीन मैं घोषित करता हूं कि भारत के राष्ट्रपति पद के लिये डॉ. राजेन्द्र प्रसाद नियमानुसार निर्वाचित किये गये (*लगातार हर्षध्वनि*)।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी ओर से तथा इस आदरणीय सभा के प्रत्येक सदस्य की ओर से आपको जो उच्च सम्मान प्रदान किया गया है उसके लिये बधाई देता हूं। तीन वर्ष से कुछ अधिक समय पूर्व हमने आपके नेतृत्व में संविधान सभा का कार्य आरम्भ किया था। इन तीन वर्षों में इस देश में ऐसी घटनाएं घटित हुईं कि उनसे देश का स्वरूप ही बदल गया। हमने उपद्रव का और संकट का सामना किया और भारतीय गणराज्य के लिये संविधान का निर्माण करते रहे। अब हमने वह कार्य समाप्त किया है। वह अध्याय हम समाप्त कर चुके हैं। हमें अब नये कार्य करने हैं। एक दो दिन में एक नवीन अध्याय का आरम्भ होगा। इन तीन संकटपूर्ण वर्षों में आपने हमें अपने सुयोग्य नेतृत्व का परिचय किया। किन्तु हममें से बहुत से लोगों को आप पिछले तेतीस वर्षों में स्वातन्त्र्य संग्राम के मोर्चे पर डटे रहने वाले भारतीय सैनिक के रूप में भी अपनी परिचय दे चुके थे (*हर्षध्वनि*)। श्रीमान, हम आपको अपना नेता समझकर, भारतीय गणराज्य का प्रधान समझ कर तथा एक ऐसा सखा समझ कर आपका स्वागत करते हैं जिन्होंने पिछली पीढ़ी में इस देश के संकटों तथा कष्टों का अडिग होकर सामना किया है। इस सभा ने आज एक कार्य सम्पन्न कर दिया है और अब इस सभा का अस्तित्व नहीं रहेगा, अथवा यों कहिये कि इसका स्वरूप बदल जायेगा और अब यह भारतीय गणराज्य की संसद का रूप धारण कर लेगी। बहुत पहले से हमारे ऊपर जिसका भार था उसे आज हमने पूरा कर दिया है। अब हमें अन्य कार्यों को पूरा करना है। जिस स्वप्न को हम वर्षों से देखते आ रहे थे वह आज पूरा हो गया है। किन्तु हमें अन्य स्वप्नों को तथा अन्य कार्यों को पूरा करना है और उन्हें पूरा करने के लिए अभी तक जितना परिश्रम किया गया है उससे कहीं अधिक परिश्रम करना है। हम सभी को यह जानकर संतोष हुआ है कि भविष्य के कार्यों और संघर्षों में हमें भारतीय गणराज्य के प्रधान के रूप में आपका नेतृत्व प्राप्त रहेगा। श्रीमान, इस गणराज्य के प्रति, जिसके आप सम्मानित राष्ट्रपति होंगे, मैं अपनी वफादारी तथा सत्यनिष्ठा प्रकट करता हूं (*लगातार हर्षध्वनि*)।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बईः जनरल): अध्यक्ष महोदय तथा मित्रो! यदि श्रीमान, आपकी आज्ञा हो तो इस पवित्र अवसर पर, जब आप राष्ट्र के प्रतिनिधियों के एकमत से राज्य के प्रधान चुने जा रहे हैं मैं भी आपकी

प्रशंसा में अपना योग देना चाहता हूं। माननीय प्रधान-मंत्री महोदय ने जो शब्द कहे हैं उनमें से प्रत्येक का मैं समर्थन करता हूं और आपको जो ऊंचा सम्मान प्रदान किया गया है। उसके लिये आपको बधाई देता हूं। तीन वर्ष से आप संविधान सभा के अध्यक्ष की हैसियत से काम करते रहे हैं और सदस्यों ने देखा है कि आपने इस सभा के कार्य का संचालन किस प्रकार किया है। अत्यधिक कार्य करने के कारण आपका स्वास्थ्य गिरने लगा था और एक समय तो हमें बहुत चिन्ता होने लगी थी। किन्तु परमात्मा की कृपा से आप को स्वास्थ्य-लाभ हुआ और आज यह हमारा सौभाग्य है कि आप भारतीय गणराज्य के प्रधान तथा प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए हैं। भारत के इतिहास में आज का दिवस बहुत ही शुभ दिवस है। हमें इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि आपके बुद्धिबल, शान्त स्वभाव तथा सुन्दर व्यवहार के फलस्वरूप इस देश के मान तथा इसकी प्रतिष्ठा में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी तथा आपके ओजस्वी नेतृत्व में हमारा देश संसार के राष्ट्रों के बीच एक सम्मानित पद प्राप्त करेगा। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह हमें आपके प्रति सत्यनिष्ठा से वफादार होने, तथा ईश्वर ने आप पर जिस महान कार्य का भार डाला है उसमें पूर्ण सहयोग देने के लिये सद्बुद्धि प्रदान करे। हमें भविष्य में एक ही नाव में बैठकर तूफान का सामना करना है और समुद्र को पार करना है। आपको अपने मृदुल स्वभाव तथा निर्मल हृदय के कारण इस सभा के ही नहीं बल्कि सारे देश के प्रत्येक वर्ग का स्नेह प्राप्त है। आपको जो सम्मान प्रदान किया गया है उसके आप सर्वथा योग्य ही हैं। (*हर्षध्वनि*)।

***श्री बी. दास:** अध्यक्ष महोदय.....

***अध्यक्ष:** श्री दास के बोलने के पूर्व मैं सदस्यों से निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रकार के अवसर पर यहां बैठकर ऐसी भावनाओं से परिपूर्ण भाषणों को सुनकर, जिनके योग्य मैं नहीं हूं, मुझे संकोच का ही अनुभव हो रहा है। इसलिये मैं सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि यदि वे बोलना ही चाहते हैं तो वे कुछ वाक्य कह कर ही संतोष कर लें।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान, मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं कि आप भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए हैं। दो हजार पांच सौ वर्ष पूर्व आपके प्रान्त में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था, जिन्होंने सारे एशिया को शान्ति का संदेश सुनाया था। इस शताब्दी में भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अहिंसा द्वारा विश्व-शान्ति स्थापित करने का उपदेश दिया है। आप उनके एक महान अनुयायी हैं। मैं आपको बहुत वर्षों से जानता हूं। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि भारत शासन करते हुए तो आप महात्मा गांधी के सिद्धांतों को व्यवहार में लायेंगे ही किन्तु सारे संसार को भी उनका संदेश सुनायेंगे। मनुष्यों के लोभ के कारण लोग सर्वत्र दु:खी हैं। भारत के उत्थान की भी आवश्यकता है। यह परमात्मा की ही

[श्री बी. दास]

इच्छा है कि आप हमारा पथप्रदर्शन कर रहे हैं और हमें अहिंसा के मार्ग से शान्ति की ओर तथा मनुष्यता के एक उच्च स्तर की ओर ले जा रहे हैं। मुझे आशा है कि आपके नेतृत्व में भारत विश्व शान्ति स्थापित करने तथा मनुष्यों को सुखी बनाने में समर्थ होगा।

***डॉ. एच.सी. मुखर्जी** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान, मैं एक विशेष राजनैतिक संगठन का सदस्य हूं किन्तु मैं यह कह सकता हूं कि इस प्रतिष्ठित पद के लिये आपका एकमत से निर्वाचित होना यह सिद्ध करता है कि आप को किसी बहुसंख्यक राजनीतिक दल ने नहीं निर्वाचित किया है बल्कि सारे राष्ट्र ने निर्वाचित किया है। आपकी सत्यनिष्ठा तथा निस्वार्थ सेवा के कारण ही सारे राष्ट्र ने आपको इस उच्चतम पद पर प्रतिष्ठित किया है। मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देने जा रहा हूं क्योंकि आप यह नहीं चाहते हैं। मैं केवल ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि अपना कर्तव्य पालन करते हुए आप जो कार्य करें उससे आपका अपना अन्त:करण संतुष्ट हो और जिस राष्ट्र ने आपको निर्वाचित किया है वह संतुष्ट हो। आपसे राष्ट्रपिता अवश्य ही संतुष्ट होंगे क्योंकि जो कुछ हो रहा है उसे देखकर वे अवश्य ही प्रसन्न हो रहे होंगे। अन्त में मैं प्रार्थना करता हूं कि आपसे ईश्वर भी संतुष्ट हों। आप जो कार्य भी करें उसमें आप को ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त हो।

***मि. हुसैन इमाम** (बिहार: मुस्लिम) अध्यक्ष महोदय, आज का दिन हम सभी के लिये और विशेषतया हम बिहारियों के लिये बहुत खुशी का दिन है क्योंकि आज शताब्दियों के पश्चात् आपके समान महान व्यक्तित्व रखने वाला बिहारी भारत की सेवा के लिये आगे बढ़ सका है। श्रीमान, इस सभा में हम सभी को आप नेकी का तथा बुद्धिमता और सहृदयता का परिचय मिला है और हम सभी को आपके निर्वाचित होने से प्रसन्नता हुई है। हम सभी लोग, चाहे हमारी जाति तथा हमारा धर्म और समुदाय कोई भी क्यों न हो, सच्चे हृदय से आपको बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि आप इस पद पर रह कर इसका मान तथा इस की प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे और भारत के लोगों का हितसाधन करेंगे।

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि सभा मुझे अब बहस बन्द करने की आज्ञा देगी क्योंकि इन तीन वर्षों में मैं पहली बार इसके लिये आग्रह कर रहा हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, मैं सुदूर दक्षिण में स्थित भारत के तमिलनाडु प्रान्त से आया हूं और इस अवसर पर मैं आपको भारत के उच्चतम पद के लिये एक मत से निर्वाचित होने के लिये सच्चे हृदय से बधाई देता हूं क्योंकि इसी पद की छत्रछाया में भारत के भविष्य का स्वरूप निश्चित होगा। श्रीमान, आप हमेशा महात्मा गांधी के पद चिह्नों का ही अनुसरण

करते रहे हैं और भारत के पददलित लोगों के उत्थान के लिये आपने उन्हीं का आदर्श अपने सामने रखा है। श्रीमान, मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आप दीर्घायु हों और पददलित, पीड़ित तथा अछूत लोगों को और उन लोगों को जो अब कानून की निगाह में अछूत नहीं रह गये है, ऊपर उठाते रहें।

***अध्यक्षः** सभी सदस्य इस काल में मेरे साथ सहयोग करते आये हैं और मुझे आशा है आज अन्तिम दिन वे मुझे उससे वंचित न रखेंगे। इसलिये माननीय सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि अब वे बहस बन्द करें और मुझे अधिक लज्जित न करें।

(सेठ गोविन्द दास बोलने के लिये माइक्रोफोन पर आये)

(विघ्न)

***अध्यक्षः** मुझे आशा है कि यह सभा जिस प्रकार सभी अवसरों पर मेरे साथ सहयोग करती रही है उसी प्रकार इस अवसर पर भी मेरे साथ सहयोग करेगी। जो सदस्य बोलना चाहते हैं उनसे मैं प्रार्थना करता हूं कि वे न बोलें।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यह एक पवित्र अवसर है। बहुत काल तक संग्राम करने के पश्चात् हमने एक मंजिल तय की है और अब हम दूसरी मंजिल की ओर बढ़ने जा रहे हैं। आपने कृपा करके मुझे बहुत बड़ी जिम्मेदारी सौंपी है। मेरा हमेशा यही विचार रहा है कि बधाई उस अवसर पर नहीं दी जानी चाहिये जब कोई व्यक्ति किसी पद पर नियुक्त किया जाता है बल्कि उस अवसर पर दी जानी चाहिये जब वह अपनी सेवा से निवृत होता है। मैं उस समय तक प्रतीक्षा करूंगा जब कि आपने मुझे जो सौंपा है उससे मैं निवृत्त हो जाऊंगा और इस पर विचार कर सकूंगा कि सभी ओर से तथा सभी मित्रों द्वारा मेरा जिस प्रकार विश्वास किया गया और मेरे प्रति जिस प्रकार सद्भावना दिखाई गई उसके योग्य मैं रहा या नहीं रहा। इन प्रशंसापूर्ण भाषणों में मैंने सीमित करने का प्रयास किया है किन्तु फिर भी मुझे उन्हें सुनना ही पड़ा और उन्हें सुनते हुए मुझे महाभारत के एक कथानक का स्मरण हो आया। उस ग्रन्थ में बहुत ही विषम स्थितियों का तथा उनके फलस्वरूप जो जटिल समस्याएं उठ खड़ी होती हैं और श्री कृष्ण उन्हें किस प्रकार हल करते हैं उसका वर्णन है। एक दिन अर्जुन ने यह प्रण किया कि सूर्यास्त के पूर्व मैं अमुक कार्य समाप्त कर दूंगा और यदि समाप्त न कर पाया तो चिता जला कर भस्म हो जाऊंगा। दुर्भाग्य से वे उसे पूरा नहीं कर सके। तब प्रश्न यह उठा कि क्या किया जाये। अपना प्रण पूरा करने के लिये उन्हें भस्म हो जाना चाहिये था किन्तु पांडव यह कैसे होने देते। साथ ही अर्जुन भी अपने प्रण पर अटल थे। श्री कृष्ण ने यह कहकर यह समस्या हल की थी "यदि आप बैठकर अपनी प्रशंसा करें, अथवा अन्य लोगों से अपनी प्रशंसा

[अध्यक्ष]

सुनें तो वह आत्मघात करने और भस्म होने के समान ही है। इसलिये आज ऐसा ही करें और आपका प्रण पूरा हो जायेगा।" प्रायः इसी भावना से मैंने इसी प्रकार के भाषणों को सुना है। मैंने यह अनुभव किया है कि मैं कई बातों को पूरा नहीं कर सका हूं और कई कार्यों को नहीं कर सका हूं और यह भी विचार किया है कि उन्हें पूरा करने का एक उपाय यह है कि इस प्रकार का आत्मघात कर लिया जाये। किन्तु यहां स्थिति भिन्न है। जब हमारे प्रधान मंत्री अथवा उपप्रधान मंत्री मेरे सम्बन्ध में भावना से कुछ कहते हैं तो मेरे लिये भी अपनी भावना का परिचय देना आवश्यक हो जाता है। हम पच्चीस वर्ष से अधिक काल तक बढ़ी घनिष्टता से एक साथ रहे हैं और हमने एक साथ कार्य किया है और संघर्ष किया है। हम कभी विचलित नहीं हुए और साथ ही सफल भी हुए हैं। आज मैं एक आसन पर बैठा हूं तो वे भी मेरे निकट ही अन्य आसनों पर बैठे हुए हैं तथा अन्य मित्र, जिनके साथ सम्बन्ध रहने का मुझे उतना ही गर्व है उन के निकट बैठेंगे और मेरी सहायता करते रहेंगे। जब मैं यह विचार करता हूं कि मुझे इस सभा के सभी सदस्यों तथा इस सभा के बाहर अनेक मित्रों की सद्भावना प्राप्त है तो मुझे विश्वास होता है कि जो कर्तव्य मुझे सौंपा गया है उसे मैं संतोषजनक ढंग से पूरा कर सकूंगा—इस कारण नहीं कि मैं उसे पूरा करने में समर्थ हूं बल्कि इस कारण कि सभी लोगों के प्रयत्नों के फलस्वरूप वह पूरा हो जायेगा।

इस समय देश को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और मेरी यह धारणा है कि अब हमें जो कार्य करना है वह उस कार्य से भिन्न है जो हम दो वर्ष से करते आये हैं। उसके लिये अधिक लगन, अधिक सावधानी, अधिक तन्मयता और अधिक बलिदान की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि देश ऐसे स्त्री पुरुषों को प्रतिनिधि बना कर भेजेगा जो कर्तव्य भार उठा सकेंगे और लोगों की ऊंची से ऊंची आकांक्षाओं को पूरा कर सकेंगे। इसके लिये ईश्वर हमें शक्ति दे।

संविधान के हिन्दी संस्करण पर हस्ताक्षर

***अध्यक्षः** अब केवल दो कार्य शेष रह गये हैं। उनमें से एक संविधान के हिन्दी रूपान्तर का प्रमाणीकरण है। माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि इस सभा के एक प्रस्ताव द्वारा मुझे यह अधिकार दिया गया था कि मैं संविधान का अनुवाद हिन्दी में कराऊं और 26 जनवरी के पूर्व छपा दूं और प्रकाशित करा दूं। यह कार्य पूरा हो गया है। सभा ने अन्य भाषाओं में भी अनुवाद तैयार कराने, उन्हें छपाने तथा प्रकाशित कराने का अधिकार मुझे दिया था। वह कार्य आरम्भ तो किया गया है किन्तु अभी पूरा नहीं हुआ है।

मैं श्री घनश्याम सिंह गुप्त से निवेदन करता हूं कि वे हिन्दी अनुवाद को मुझे दें ताकि मैं उसे रस्मी तौर पर सभा के समक्ष रखूं और उसका प्रमाणीकरण कर दूं।

(माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने अध्यक्ष महोदय को संविधान के हिन्दी अनुवाद की प्रतियां समर्पित कीं। तत्पश्चात् महोदय ने उन पर हस्ताक्षर किये।)

संविधान पर हस्ताक्षर

***अध्यक्ष:** अब सदस्यों को केवल संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर करने हैं। तीन प्रतियां तैयार हैं। एक अंग्रेज़ी की प्रति है जो हाथ से लिखी गई है और जिस पर कलाकारों ने चित्र अंकित किये हैं। दूसरी प्रति अंग्रेज़ी की छपी हुई प्रति है। तीसरी प्रति हाथ से लिखी हुई हिन्दी की प्रति है। तीनों प्रतियां मेज पर रख दी गई हैं। सदस्यों से प्रार्थना है कि वे एक-एक कर के आयें और प्रतियों पर हस्ताक्षर करें। विचार यह है कि इस सभा में वे इस समय जिस क्रम से बैठे हुए हैं उसी क्रम से उन्हें बुलाया जाये। प्रधान-मंत्री महोदय को सार्वजनिक कार्य के लिये शीघ्र जाना है, इस लिये मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे पहले हस्ताक्षर करें।

(माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू ने तत्पश्चात् संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर किये।)

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्त प्रान्त: जनरल): माननीय सभापति जी, मैं आप से एक प्रार्थना करना चाहता हूं और वह यह कि अब इस विधान-परिषद् का कार्य समाप्त हो गया है और उसका कार्यालय बन्द हो जायेगा। तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जो कर्मचारी इसके कार्यालय में कार्य करते रहे हैं उनकी सेवायें किसी न किसी रूप में जारी रहनी चाहिये। ऐसा न हो कि 26 जनवरी को जब सारा देश आमोद-प्रमोद मनावे तो ये कर्मचारी उसमें हिस्सा न ले सकें जिसके कि वे पात्र हैं। बस, मैं इतना ही निवेदन करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं इस सम्बन्ध में इतना कहना चाहता हूं कि इस सवाल को मैंने पहले ही से अपने सामने रखा है और गवर्नमेंट के लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट से और दूसरे डिपार्टमेंटों से लिखा पढ़ी की है कि जितने लोग हमारे दफ्तर में काम करते थे उनको, जहां तक हो सके, और दफ्तरों मैं जगहें दे दी जायें और इस बात की कोशिश हो रही है। मैं आशा करता हूं कि उनमें से अगर सब नहीं तो ज़्यादा से ज़्यादा आदमी काम में लग जायेंगे और जो बाकी रह जायेंगे उनके लिये भी कोशिश की जायेगी।

सदस्य अब दाहिनी ओर से अर्थात् जैसे कि वे अब बैठे हुए हैं, मद्रास की ओर से एक-एक करके आयें और एक-एक करके हस्ताक्षर करें।

(सदस्यों ने तत्पश्चात् संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर किये।)

***अध्यक्षः** माननीय सदस्यों से मेरा निवेदन है कि वे अपनी जगहों पर बैठ जायें और जब उनके नाम पुकारे जायें, यहां आकर हस्ताक्षर करें। श्री खन्ना क्रमानुसार सदस्यों के नाम पुकारेंगे।

(तत्पश्चात् अवशिष्ट सदस्यों ने संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर किये और उसके पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने उन पर हस्ताक्षर किये।)

***अध्यक्षः** क्या किसी सदस्य महोदय ने अभी हस्ताक्षर नहीं किये हैं? यदि किसी ने नहीं किये हैं तो वे बाद में दफ्तर में जाकर हस्ताक्षर कर सकते हैं।

***माननीय सदस्यः** बन्दे मातरम्।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रासः जनरल) श्रीमान यदि आपकी आज्ञा हो तो हम सभी "जन, गण, मन" गान गाना चाहते हैं।

***अध्यक्षः** जी हां, आप गायें।

(श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने अन्य सदस्यों के साथ "जन, गण, मन" गान गाया। सभी सदस्य खड़े रहे।)

***अध्यक्षः** "बंदे मातरम्।"

(तत्पश्चात् लक्ष्मीकांत मैत्र ने अन्य सदस्यों के साथ "बन्दे मातरम्" का गान गाया। सभी सदस्य खड़े रहे।)

***अध्यक्षः** अब सभा अनिश्चित तिथि तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् संविधान सभा अनिश्चित तिथि तक के लिये स्थगित हो गई।

———————

GIPD–HS-348PSD–8-12-53–320.